1

माहात्म्यसमेतम् १०

॥ अथ श्रीमद्भागवतं ब्रजभाषाटीकायुतं ॥

सविषयानुक्रमणिकं सदृष्टान्तं च

यह ग्रन्थ सन् १८६७ के ऐक्ट २५ के अनुसार रजिष्टरी करके सब हक यन्त्राधिकारीने अपने स्वाधीन रक्खा है.

ब्राह्मणको उपदेश करते भए ॥ १० ॥ दत्तात्रेय अवतार भयो, छटीवेर अत्रिऋषिके पुत्र भए, अनुसूयाने वरसे प्रसन्न करे, अलर्क प्रल्हाद दैहयादिकोंको आत्मविद्या कहते भए॥ ११ ॥ यज्ञ अवतार भयो, सातवींवेर रुचिप्रजापतिकी आकूती नाम स्त्रीमें यज्ञ भगवान् भए, यामा नाम देवगण सहित स्वायंभुव मन्वंतरकी रक्षा करते भए ॥१२॥ ऋषभदेवजी भए आठवींवार नाभी नाम राजाकी मरुदेवीमें अवतरे, सब आश्रमोंसे नमस्कृत धीरोंको पारमहंस आश्रम दिखावते भय ॥ १३ ॥ पृथु अवतार भयो, नवमींवार ऋषियोंकी चाहनासे पृथु अवतार धारण करके सब औषधीयुक्त पृथ्वीमें से सब वस्तु दोहते भए, हे ब्राह्मणो ! वा पृथ्वी दोहेनेसे ये अवतार अति श्रेष्ठ भयो ॥ १४ ॥ मत्स्यावतार भयो दशमींवार चाक्षुषमन्वंतरमें

षष्ठे अत्रेरपत्यत्वं वृतः प्राप्तोऽनसूयया ॥ आन्वीक्षिकीमलर्काय प्रह्लादादिभ्य ऊचिवान् ॥ ११ ॥ ततः सप्तम
आकूत्यां रुचेर्यज्ञोऽभ्यजायत ॥ स यामाद्यैः सुरगणैरपात्स्वायंभुवान्तरम् ॥ १२ ॥ अष्टमे मरुदेव्यां तु नाभेर्जात
उरुक्रमः ॥ दर्शयन्वर्त्म धीराणां सर्वाश्रमनमस्कृतम् ॥ १३ ॥ ऋषिभिर्याचितो भेजे नवमं पार्थिवं वपुः ॥
दुग्धेमामौषधीर्विप्रास्तेनायं स उशत्तमः ॥ १४ ॥ रूपं स जगृहे मात्स्यं चाक्षुषोदधिसंप्लवे ॥ नाव्याऽऽरोप्य महीमय्यामपाद्वैवस्वतं मनुम् ॥ १५ ॥ सुरासुराणामुदधिं मथ्नतां मन्दराचलम् ॥ दध्रे कमठरूपेण पृष्ठ एकादशे विभुः ॥ १६ ॥
धान्वन्तरं द्वादशमं त्रयोदशममेव च ॥ अपाययत् सुरानन्यान्मोहिन्या मोहयन्स्त्रिया ॥ १७ ॥ चतुर्दशं नारसिंहं
बिभ्रद्दैत्येन्द्रमूर्जितम् ॥ ददार करजैर्वक्षस्येरकां कटकृद्यथा ॥ १८ ॥ पञ्चदशं वामनकं कृत्वाऽगादध्वरं बलेः ॥
पदत्रयं याचमानः प्रत्यादित्सुस्त्रिविष्टपम् ॥ १९ ॥

सब समुद्र एक भए पृथ्वीमिय नावसें वैवस्वत मन्वंतरकी रक्षा करते भए, मत्स्यरूप धारते भए॥१५॥कच्छप अवतार कहै है,ग्यारवींवेर सुर असुर समुद्रको मंथते भये तिस समयमें कच्छरूप धार मंदराचल पीठपर विभु धरते भए ॥ १६ ॥ बारवींवेर धन्वंतरि अवतार भयो, तेरवींवार मोहनी अवतार धर राक्षस तो मोहे. देवतानकी रक्षा करी उन्है अमृत प्यायो ॥ १७ ॥ नृसिंहअवतार भयो, चौदहवीं वार बढे हुए दैत्यराज हिरण्यकशिपुकों नृसिंहरूप धार नखोंसे चटाई बनानेवारे जैसे तृणको फाडें तैसे दैत्यकी छाती फाडते भए ॥ १८ ॥ वामन अवतार भयो, पंद्रहवींवार

वामनरूप धर बलिराजाके यज्ञमें गए, तीनपग पृथ्वी मांगी, इंद्रको स्वर्ग देवेकी इच्छा करते भए ॥ १९ ॥ परशुरामजी भए, षोडशमें अवतार ब्राह्मणद्रोही राजानको कोपकरके इक्कीसवार मार कर क्षत्रीरहित पृथ्वी करते भए ॥ २० ॥ व्यासजी भए, सत्रहवींवार पराशरते सत्यवतीमें व्यासजी भए, पुरुषनकी मंदबुद्धि जानके वेदकी शाखाओंका विस्तार करतेभए ॥२१॥ श्रीरघुनाथजी भए, अठारवींवार देवतानके कार्य करवेको इच्छा करके समुद्र बांधो, और अधिक आश्चर्यके कर्म करे ॥ २२॥ राम कृष्ण आवतार भए उन्नीसवीं वीसवींवार, यादवोंमें जन्मभयो राम कृष्ण होकर भगवान् भूमिभारको उतारते भए॥ २३ ॥ ताके पीछे कलियुग आयों तब असुरनके मोहके लिये बुद्ध नाम अवतारसे जिनसुत कीकटदेश

अवतारे षोडशमे पश्यन्ब्रह्मद्रुहो नृपान् ॥ त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥ २० ॥ ततः सप्तदशे
जातः सत्यवत्यां पराशरात् ॥ चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥ २१ ॥ नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्य-
चिकीर्षया ॥ समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम् ॥ २२ ॥ एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी ॥
रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥ २३ ॥ ततः कलौ संप्रवृत्ते संमोहाय सुरद्विषाम् ॥ बुद्धो नाम्ना जिनसुतः
कीकटेषु भविष्यति ॥ २४ ॥अथासौ युगसंध्यायां दस्युप्रायेषु राजसु॥जनिता विष्णुयशसा नाम्ना कल्किर्जगत्पतिः
॥ २५ ॥ अवतारा ह्यसंख्येया हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः ॥ यथाऽविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥ २६ ॥ ऋषयो
मनवो देवा मनुपुत्रा महौजसः ॥ कलाः सर्वे हरेरेव सप्रजापतयस्तथा ॥ २७ ॥ एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु
भगवान्स्वयम् ॥ इन्द्रारिव्याकुलं लोकं मृडयान्ति युगे युगे ॥ २८॥

गयाके समीप होयगो ॥ २४ ॥ जुगकी संधिमें राजा चौरप्राय जब होंगे तबविष्णुयश नाम ब्राह्मणके यहां यह जगत्पति कल्कि अवतार होंगे ॥२५ ॥ सतोगुणी हरिके असंख्यात अवतार हैं, जैसे अमित जल भरे सरोवरसे तुच्छ प्रवाहवारी हजारों नदी वहैं हैं ॥ २६ ॥ ऋषि, मनु, देवता, मनुसुत, महाबली, प्रजापति, ये सब हरिकी कला हैं ॥ २७ ॥ उस अविनाशी पुरुषके ये सब अंशकला है, श्रीकृष्ण आप भगवान् हैं इंद्र शत्रुओंसे लोक जब व्याकुल होवै है, तब युगयुगमें सबको सुखी करै है ॥२८ ॥

मोक्ष पर्यंत धर्मको फल प्राप्त होनो ये प्रयोजन नहीं है, धर्मके योग्य धन खर्च करनो याको फल काम लाभके अर्थ नहीं हैं, धन धर्मको फल मोक्ष है ॥ ९ ॥ कामको फल इन्द्रिय प्रीति नहीं किन्तु केवल जीवन मात्रही फल है और यावज्जिवन कर्म करके धन उपार्जन करनोही जीवन को फल नहीं किन्तु तत्वजान्नोही जीवनको फल है ॥१०॥ तत्ववेत्ता जा अद्वितीय ज्ञानको तत्व कहते हैं उसैही उपनिषद, ब्रह्म परमात्मा भगवान् कहैं हैं ॥ ११ ॥ वा ब्रह्मके श्रद्धाकरवेवारे ज्ञान वैराग्य युक्त वेदांतादिश्रवणसे ग्रहण करी भक्ति जीवात्मामें परमात्माकों दर्शन करें हैं ॥ १२ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! शौनकादिक मुनियों यातें वर्ण आश्रमके विभागसे सुंदर अनुष्ठान करे धर्मकी सुंदर सिद्धि हरिको प्रसन्न करनो ही पुरुषनको योग्य

धर्मस्य ह्यापवर्ग्यस्य नार्थोऽर्थायोपकल्पते ॥ नार्थस्य धर्मैकान्तस्य कामो लाभाय हि स्मृतः ॥ ९ ॥ कामस्य नेन्द्रियप्रीतिर्लाभो जीवेत यावता ॥ जीवस्य तत्वजिज्ञासा नार्थो यश्चेह कर्मभिः ॥ १० ॥ वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ॥ ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते ॥ ११ ॥ तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया ॥ पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतगृहीतया ॥१२॥ अतः पुम्भिर्द्विजश्रेष्ठा वर्णाश्रमविभागशः ॥ स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसिद्धिर्हरितोषणम् ॥ १३ ॥ तस्मादेकेन मनसा भगवान्सात्वतां पतिः ॥ श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा॥१४॥ यदनुध्याऽसिना युक्ताः कर्मग्रन्थिनिबन्धनम्॥ छिन्दन्ति कोविदास्तस्य को न कुर्यात्कथारतिम् ॥१५॥ शुश्रूषोः श्रद्दधानस्य वासुदेवकथारुचिः ॥ स्यान्महत्सेवया विप्राः पुण्यतीर्थनिषेवणात् ॥ १६ ॥ शृण्वतां स्वकथां कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ हृद्यन्तस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥ १७ ॥

हैं ॥ १३ ॥ तातें एकाग्रमनसे भगवान्सात्वतपति श्रवण कीर्तन ध्यान पूजन करने योग्य हैं ॥ १४ ॥ जिनको ध्यान रूप खड्ग लेकर कर्मग्रंथिके बंधनको विद्वान पंडित छेदन करते हैं, तिनकी कथामें कौन प्रीत नहीं करें ॥ १५ ॥ हे द्विजहो ! सुखेकी इच्छावारे श्रद्धालुको वासुदेवकथामें रुचि, महात्माकी और पुण्यतीर्थकी सेवाते होय है ॥ १६ ॥ अपनी कथा सुनवेवारे सज्जननके सुहृत् पुण्यरूप श्रवण कीर्तनवारे कृष्ण उन भक्तनके हृदयमें वास कर सब अमंगल नाश कर देयहैं ॥ १७ ॥

जब अमंगल नष्ट होजाय है तब नित्य भागवतसेवासे उत्तम यशवारे भगवान्में फलानुसंधानरहित निष्काम भक्ति होवे है ॥१८॥ तब रज तमसे प्रगट होनेवाले काम लोभादि शत्रुओंसे न पराभव हुआ मन सतोगुणमें स्थित होकर शांत होजाय है ॥ १९ ॥ ऐसे भगवतकी भक्तियोगसे प्रसन्न मन होनेके कारण मुक्तसंग होनेसे भगवतके तत्त्वको ज्ञान होवै हैं ॥ २० ॥ जीव अपनेंही रूपमें ईश्वरको दर्शन करै हैं, तब हृदयकी ग्रंथि सब टूटे हैं, सब संशय कट जावैं हैं, कर्म सब क्षय होवैं हैं ॥ २१ ॥ याते पंडित परम आनन्दकरकै मनके शोधन करवेवारी भक्ति नित्य वासुदेव भगवान्में करैं हैं ॥ २२ ॥ सत्त्व रज तम ये मायाके गुण हैं, इन करके युक्त परमपुरुष एकही या विश्वकी उत्पति पालन नाशके लिये हरि ब्रह्मा हर ये संज्ञा धारै हैं,

नष्टप्रायेष्वभद्रेषु नित्यं भागवतसेवया ॥ भगवत्युत्तमश्लोके भक्तिर्भवति नैष्ठिकी ॥ १८ ॥ तदा रजस्तमोभावाः
कामलोभादयश्च ये ॥ चेत एतैरनाविद्धं स्थितं सत्त्वे प्रसीदति ॥ १९ ॥ एवं प्रसन्नमनसो भगवद्भक्तियोगतः ॥ भगवत्तत्वविज्ञानं
मुक्तसङ्गस्य जायते ॥ २० ॥ भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥ क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे
॥ २१ ॥ अतो वै कवयो नित्यं भक्तिं परमया मुदा ॥ वासुदेवे भगवति कुर्वन्त्याऽऽत्मप्रसादिनीम् ॥ २२ ॥ सत्त्वं रजस्तम
इति प्रकृतेर्गुणास्तैर्युक्तः परः पुरुष एक इहाऽस्य धत्ते ॥ स्थित्यादये हरिविरिञ्चिहरेति संज्ञाः श्रेयांसि तत्र
खलु सत्त्वतनोर्नृणां स्युः ॥ २३ ॥ पार्थिवाद्दारुणो धूमस्तस्मादग्निस्त्रयीमयः ॥ तमसस्तु रजस्तस्मात्सत्त्वं यद्ब्रह्मदर्शनम्
॥ २४ ॥ भेजिरे मुनयोऽथाग्रे भगवन्तमधोक्षजम् ॥ सत्त्वं विशुद्धं क्षेमाय कल्पन्ते येऽनु तानिह ॥ २५ ॥
मुमुक्षवो घोररूपान् हित्वा भूतपतीनथ ॥ नारायणकलाः शान्ता भजन्ति ह्यनसूयवः ॥२६॥

परन्तु निश्चय हैं कि इन तीनोंमेंसे कल्याण शुभफल वासुदेवसेही प्राप्त होय हैं ॥ २३ ॥ पृथिवीके विकार काठसे धूम होवै है, तासे वेदत्रयी प्रतिपाद्य कर्म अग्नि होय है, तैसेई तमसे रज रजसे सतोगुण बढके ब्रह्मका दर्शन होजावे हैं ॥ २४ ॥ या कारणसे पहिले सैही सत्वमूर्ति इंद्रियोंसे परै भगवान्को ही मुनीश्वर लोग भजतेभए, सो अब जो उनके पीछे या प्रकार भजें हैं, वे जीवभी या संसारमें आनंद पावैं हैं ॥ २५ ॥ यासे मुमुक्षु घोररूप भूतपतिनको त्यागकर निंदा न करकै शांत नारायणको कला भजें हैं ॥ २६ ॥

राजसी तामसी स्वभाववारे समान शीलवारे पितर भूत प्रजाके ईशनको लक्ष्मी ऐश्वर्य पुत्रके लिये भजें हैं ॥ २७ ॥ सब शास्त्रको तात्पर्य ये है कि मोक्षदाता वासुदेवको भजै ॥ वेद वासुदेवको वर्णन करैं हैं. यज्ञ वासुदेवको कहैं हैं, योग वासुदेवको कहैं हैं क्रिया सब वासुदेवको प्रतिपादन करै हैं ॥ २८ ॥ ज्ञान वासुदेवको कहैं हैं तप वासुदेवको कहैं हैं, सब धर्म वासुदेवको वर्णन करैं हैं गति सब वासुदेवको कहैं हैं ॥ २९ ॥ सो भगवान् अपनी माया करकै पहिले या विश्वको रचतेभये सत असत रूप गुणमयी मायाकरकै आप समर्थ हैं ॥ ३० ॥ ता मायाके गुणोंमें गुणवानकी नांई विज्ञानसे अतिवर्धित अंतःप्रविष्ट होके प्रकाश करै हैं ॥ ३१ ॥ जैसे अग्नी उत्पत्तिस्थान काष्ठमें दयो अग्नि नानाप्रकाश करै है ऐसे विश्वात्मा

रजस्तमःप्रकृतयः समशीला भजन्ति वै ॥ पितृभूतप्रजेशाशीञ्छ्रियैश्वर्यप्रजेप्सवः ॥ २७ ॥ वासुदेवपरा वेदा वासुदेवपरा मखाः ॥ वासुदेवपरा योगा वासुदेवपराः क्रियाः ॥ २८ ॥ वासुदेवपरं ज्ञानं वासुदेवपरं तपः ॥ वासुदेवपरो धर्मो वासुदेवपरा गतिः ॥ २९ ॥ स एवेदं ससर्जाग्रे भगवानात्ममायया ॥ सदसद्रूपया चासौ गुणमय्याऽगुणो विभुः ॥ ३० ॥ तया विलसितेष्वेषु गुणेषु गुणवानिव ॥ अन्तः प्रविष्ट आभाति विज्ञानेन विजृम्भितः ॥ ३१ ॥ यथा ह्यवहितो वह्निर्दारुष्वेकः स्वयोनिषु ॥ नानेव भाति विश्वात्मा भूतेषु च तथा पुमान् ॥ ३२ ॥ असौ गुणमयैर्भावैर्भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मभिः ॥ स्वनिर्मितेषु निर्विष्टो भुङ्क्ते भूतेषु तद्गुणान् ॥ ३३ ॥ भावयत्येष सत्त्वेन लोकान्वै लोकभावनः ॥ लीलावतारानुरतो देवतिर्यङ्नरादिषु ॥ ३४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे प्रथमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

॥ सूत उवाच ॥ ॥ जगृहे पौरुषं रूपं भगवान्महदादिभिः ॥ संभूतं षोडशकलमादौ लोकसिसृक्षया ॥ १ ॥

पुरुष सब भूतोंमें नानारूपसे प्रकाश करै है ॥३२॥ यह हरि गुणमय भूतसूक्ष्म इंद्रिय आत्माके भावकरके अपने रचेभए पंचभूतोंमें उन गुणोंको भोगे है ॥३३॥ यह भगवान् लोककर्ता सतोगुणकरके पालन करै हैं. देव पक्षि नर आदिमें लीलावतार धारै है ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवते प्रथमस्कंध द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि ॥ या अध्यायमें चौवीस अवतारकी कथा हैं ॥ प्रथम पुरुषअवतार भए भगवान् महत्तत्व अहंकार पंचतन्मात्रा आदिसे युक्त पुरुषरूप धारते भए आदिमें लोकको रचनेकी इच्छा करकै सोलह कलाका रूप धरते भए ॥ १ ॥

जलशायी योगनिद्रा विस्तारी श्रीहरिकी नाभि रूप सरोवरके कमलमेंसे विश्व रचनवारोंको पति ब्रह्मा होतो भयो ॥ २ ॥ जिनके अवयवस्थानोंसे लोकका विस्तार भया है, वो भगवान्का विशुद्ध सत्व महा बलिष्ठ रूप है ॥ ३॥ जिनके असंख्य चरण जंघा भुजा मुख । असंख्य मस्तक श्रवण नेत्र नासिका । असंख्य शिरभूषण वस्त्र कुंडल शोभित अद्भुत स्वरूपकों ज्ञाननेत्रसे योगीश्वर दर्शन करै हैं, सहस्रशब्द वेदमें असंख्यवाचक है ॥ ४ ॥ ये आदिनारायण सब अवतारोंके बीज अव्यय हैं, सब कार्य अंतमें इन्हींमें प्रवेश करै हैं, जिनका अंश ब्रह्मा उनके अंश मरीचि आदिसे देव पशु पक्षी मनुष्यादि रचे जावै हैं ॥ ५ ॥ प्रथम सनत्कुमार अवतार उनको चरित्र कहै है, सो देव प्रथम कुमार भए, ब्राह्मण होके अति कठिन तप करते

यस्याम्भसि शयानस्य योगनिद्रां वितन्वतः ॥ नाभिह्रदाम्बुजादासीद्ब्रह्मा विश्वसृजां पतिः ॥२॥ यस्यावयवसंस्थानैः कल्पितो लोकविस्तरः ॥ तद्वै भगवतो रूपं विशुद्धं सत्त्वमूर्जितम् ॥ ३ ॥ पश्यन्त्यदो रूपमदभ्रचक्षुषा सहस्रपादोरुभुजाननाद्भुतम् ॥ सहस्रमूर्द्धश्रवणाक्षिनासिकं सहस्रमौल्यम्बरकुण्डलोल्लसत्॥४॥एतन्नानावताराणां निधानं बीजमव्ययम् ॥ यस्यांशांशेन सृज्यन्ते देवतिर्यङ्नरादयः॥५॥स एव प्रथमो देवः कौमारं सर्गमास्थितः ॥ चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ॥ ६ ॥ द्वितीयं तु भवायास्य रसातलगतां महीम् ॥ उद्धरिष्यन्नुपादत्त यज्ञेशः सौकरं वपुः ॥ ७ ॥ तृतीयमृषिसर्गं वै देवर्षित्वमुपेत्य सः ॥ तन्त्रं सात्वतमाचष्ट नैष्कर्म्यं कर्मिणां यतः ॥ ८ ॥ तुर्ये धर्मकलासर्गे नरनारायणावृषी ॥ भूत्वाऽऽत्मोपशमोपेतमकरोद्दुश्चरं तपः ॥९॥ पञ्चमः कपिलो नाम सिद्धेशः कालविप्लुतम् ॥ प्रोवाचाऽऽसुरये सांख्यं तत्त्वग्रामविनिर्णयम् ॥१०॥

भए, जो कभी खंडित न होय, ऐसा ब्रह्मचर्य व्रत करते भये ॥ ६ ॥ दूसरीवार वाराह अवतार भयो रसातलगई पृथ्वीको उठाय लाय, या विश्वकी उत्पत्तिके लिये यज्ञेश वाराह जो भये ॥ ७॥ नारदजी भये सो भगवान् तीसरीवेर ऋषियोंमें देवऋषि होकर सब कर्मसे छुटानेको वैष्णवोंको नारदपंचरात्र तंत्र कहतभये ॥ ८ ॥ नर नारायण भए चौथीवार धर्मकी कला नाम स्त्रीमें नर नारायण होकर ऋषि भए, अतिकठिन सबको सुखदायक तप करते भए ॥ ९॥ कपिल देव अवतार हुओ पांचमेंवार सिद्धेश कपिल नाम होके बहुत कालसे नष्ट तत्वसमूहको निर्णय सांख्यशास्त्र आसुरी

मनवचनसे नाम रूपका विस्तार करनेहारे जगदीश्वरकी लीला मूर्ख मनुष्य नहीं जानसक्ते जैसे नटकी लीलाको मूर्ख जन न जाने हैं ॥३७॥ जो कोई कुटिलभाव त्यागके सदा अनुकूलतासे तिनके चरणकमलकी सुगंधको भजें हैं, सो मनुष्य चक्रधारी महापराक्रमी धाता परम ईश्वरकी पदवीको जाने है॥३८॥ यासे सर्वज्ञ तुम सब धन्य हो, जो सब लोकके नाथ हरिमें सर्वात्मा करके आत्मभावना करते हो, जामें फेर जन्ममरणको भाव नहीं होता है॥३९॥सब वेदोंके समान भगवतके चरित्र युक्त यह भागवतनाम पुराण व्यासजी करते भए॥४०॥ लोकके सुखके लिये धनदाता मंगलदाता

न चास्य कश्चिन्निपुणेन धातुरवैति जन्तुः कुमनीष ऊतीः ॥ नामानि रूपाणि मनोवचोभिः संतन्वतो नटचर्यामिवाऽज्ञः॥३७॥स वेद धातुः पदवीं परस्य दुरन्तवीर्यस्य रथाङ्गपाणेः ॥ यो मायया संततयाऽनुवृत्त्या भजेत तत्पादसरोजगन्धम्॥३८॥ अथेह धन्या भगवन्त इत्थं यद्वासुदेवेऽखिललोकनाथे ॥ कुर्वन्ति सर्वात्मकमात्मभावं न यत्र भूयः परिवर्त उग्रः ॥ ३९ ॥ इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ उत्तमश्लोकचरितं चकार भगवानृषिः ॥ ४० ॥ निःश्रेयसाय लोकस्य धन्यं स्वस्त्ययनं महत् ॥ तदिदं ग्राहयामास सुतमात्मवतां वरम् ॥ ४१ ॥ सर्ववेदेतिहासानां सारं सारं समुद्धृतम् ॥ स तु संश्रावयामास महाराजं परीक्षितम् ॥ ४२ ॥ प्रायोपविष्टं गङ्गायां परीतं परमर्षिभिः॥ कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ॥ ४३ ॥ कलौ नष्टदृशामेष पुराणाऽर्कोऽधुनोदितः ॥ तत्र कीर्तयतो विप्रा विप्रर्षेर्भूरितेजसः ॥ ४४ ॥ अहं चाध्यगमं तत्र निविष्टस्तदनुग्रहात ॥ सोऽहं वः श्रावयिष्याभि यथाऽधीतं यथामति ॥४५॥ इति श्रीभा० म० प्रथमस्कं०तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

महान् ज्ञानवान् आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ शुकपुत्रको पढाते भए॥४१॥सब वेदके इतिहासनको सार निकास शुकदेवजी महाराज परीक्षित्को सुनावते भए ॥४२॥ राजा परीक्षित् महर्षियों सहित गंगातीरपर मृत्युतक बैठते भये, जिस समय धर्म ज्ञानादि सहित श्रीकृष्णजी वैकुंठको गए॥४३॥ उपरांत कलियुगमें जब नरनको नष्ट दृष्टि भई, तब यह पुराणरूप सूर्यको उदय भयो है हे द्विजो ! शुकदेवजी तेजस्वी राजा परीक्षित्से कहते भए॥४४॥तहां तिनकी कृपासे वहां बैठे हमनेंभी सुनो सो हम तुमकों जैसा पढा है, जैसी बुद्धि है तैसो विस्तारसे सुनावेंगे॥४५॥इति श्रीभा०तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

भगवान्‌के यह छिपे हुए जन्म जो नर पवित्र होकै सायंकाल प्रातःकाल पढै सुनै तो दुःखसमूहोंसे छूटै है ॥ २९ ॥ अरूप चिन्मय एकरस व्यापक, ईश्वर भगवान्‌को यह रूप है, महत्तत्वादि माया गुणोंकरकै जीवात्मांतर्यामीमें प्रकट होवै है ॥ ३० ॥ जैसे अज्ञानी आकाशमें नीलेपीले वादलका आरोप करै हैं जैसे पृथ्वीके रेणुओंको धुंधकार आदिक पवनमें अज्ञानी कल्पित करैहैं, तैसे द्रष्टा आत्मामें दृश्यत्व आदि शरीर धर्म अज्ञानियोंनें मानाहै ॥ ३१ ॥ जैसे स्थूल शरीरका आत्मामें आरोपण करै हैं याही प्रकार सूक्ष्म शरीरभी आत्मामें आरोपित है यद्यपि वह सूक्ष्म शरीरमें स्थूल शरीरको समान आकारवाला नहीं है न स्थूलकी समान दृष्टिगोचर होय है और इन्द्रादि देवतोंकी सदृश दृष्टिगोचरभी नहीं होता

जन्म गुह्यं भगवतो य एतत्प्रयतो नरः ॥ सायं प्रातर्गृणन्भक्त्या दुःखग्रामाद्विमुच्यते ॥ २९ ॥ एतद्रूपं भगवतो ह्यरूपस्य चिदात्मनः ॥ मायागुणैर्विरचितं महदादिभिरात्मनि ॥ ३० ॥ यथा नभसि मेघौघो रेणुर्वा पार्थिवोऽनिले ॥ एवं द्रष्टरि दृश्यत्वमारोपितमबुद्धिभिः ॥ ३१ ॥ अतः परं यदव्यक्तमव्यूढगुणव्यूहितम् ॥ अदृष्टाश्रुतवस्तुत्वात्स जीवो यत्पुनर्भवः ॥ ३२ ॥ यत्रेमे सदसद्रूपे प्रतिषिद्धे स्वसंविदा ॥ अविद्ययाऽऽत्मनि कृते इति तद्ब्रह्मदर्शनम् ॥ ३३ ॥ यद्येषोपरता देवी माया वैशारदी मतिः ॥ संपन्न एवेति विदुर्महिम्नि स्वे महीयते ॥ ३४ ॥ एवं जन्मानि कर्माणि ह्यकर्तुरजनस्य च ॥ वर्णयन्ति स्म कवयो वेदगुह्यानि हृत्पतेः ॥ ३५ ॥ स वा इदं विश्वममोघलीलः सृजत्यवत्यत्ति न सज्जतेऽस्मिन् ॥ भूतेषु चान्तर्हित आत्मतन्त्रः षाड्वर्गिकं जिघ्रति षड्गुणेशः ॥ ३६ ॥

किन्तु आत्माकी उपाधि होनसे उसै जीव कहते हैं इसी लिंग शरीरके होनेसै जन्म मरण होय हैं ॥३२॥ यह सत् असत् रूप अविद्याकरके आत्मामें कल्पित है जब आत्माके यथार्थ ज्ञानसै स्थूल सूक्ष्म रूप मिट जाय तौ ब्रह्मको दर्शन होवै है ॥ ३३ ॥ जो यह क्रीडा करनेवारी ईश्वरकी माया दूर हो जाय, तौ श्रेष्ठ मतिवारो ब्रह्म स्वरूपकों प्राप्त होवै है, अपनी महिमामें आपही पूजित होवै हैं ॥३४॥ ऐसे अकर्ताके कर्म, अजन्माके जन्म वेदमें छिपे हुएहैं, ये सब अंतर्यामीके जन्मकर्म कविलोग वर्णन करते हैं ॥३५॥ अमोघलीलाधारी ईश्वर या विश्वको रचै पालै नाश करै है परन्तु यामें आसक्त नहीं होते सब जीवोंमें अंतर्हित स्वतंत्र, छह गुणोंके ईश्वर हैं छेओं इंद्रियोंके विषय दूरसे ग्रहण करै है छेओं इंद्रियोंको स्वामी हैं ॥३६॥

उनके आश्रमको पवित्र करते हैं वह इतने समयतक कैसे ठहरे ॥ ८ ॥ हे सूत ! अभिमन्युके पुत्र परीक्षित्को भागवतोंमें उत्तम कहते हैं, सो वाको जन्मकर्म महा आश्चर्यको है; सो भी कहो ॥ ९ राज्यलक्ष्मीको अनादर कर पांडुओंके मान बढानेवारे चक्रवर्ती राजा परीक्षित किस हेतुसे गंगातीर पर अन्न जल त्यागकर मृत्युपर्यंत बैठे सो कहो ॥१०॥ हे मित्र ! हे सूत ! शत्रुलोग अपनी रक्षाके निमित्त धन लायकर जिनके चरणको प्रणाम करते हैं; ऐसी लक्ष्मीको वीर तरुण राजा परीक्षित प्राणसहित त्यागवेकी इच्छा करताभयो ॥ ११ ॥ लोकके कल्याणके लिये सबजीवनके ऐश्वर्यके अर्थ सुन्दर यशस्वी हरिके परायण जन प्राण धारण करै हैं कुछ अपनी आत्माके अर्थ नहीं, जब ऐसा है तो बहुतोंको जीवदान देनेवारो देहको वैराग्य लेकर

अभिमन्युसुतं सूत प्राहुर्भागवतोत्तमम् ॥ तस्य जन्म महाश्चर्यं कर्माणि च गृणीहि नः॥९॥स सम्राट् कस्य वा हेतोः
पाण्डूनां मानवर्धनः ॥ प्रायोपविष्टो गङ्गायामनादृत्याऽधिराट्श्रियम् ॥१०॥ नमन्ति यत्पादनिकेतमात्मनः शिवाय
हाऽऽनीय धनानि शत्रवः ॥ कथं स वीरः श्रियमङ्ग दुस्त्यजां युवैषतोत्स्रष्टुमहो सहासुभिः ॥ ११ ॥ शिवाय लोकस्य
भवाय भूतये य उत्तमश्लोकपरायणा जनाः ॥ जीवन्ति नात्मार्थमसौ पराश्रयं मुमोच निर्विद्य कुतः कलेवरम् ॥१२॥
तत्सर्वं नः समाचक्ष्व पृष्टो यदिह किंचन ॥ मन्ये त्वां विषये वाचां स्नातमन्यत्र छान्दसात् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥
द्वापरे समनुप्राप्ते तृतीये युगपर्यये ॥ जातः पराशराद्योगी वासव्यां कलया हरेः ॥ १४ ॥ स कदाचित्सरस्वत्या
उपस्पृश्य जलं शुचिः ॥ विविक्तदेश आसीन उदिते रविमण्डले ॥ १५ ॥

कैसे त्यागते भए ॥ १२ ॥ जो पूछा होय और जो कुछ न पूछा होय सो भी सब हमसे कहो, हम वेदको छोडकर शेष सब वाणीके विषयमें तुम्हे पारंगत मान्ते हैं यह बात है ॥ १३ ॥ सूतजी बोले ॥ कि बेहतर चतुर्युगियोंमें तीसरी वेर जब द्वापरयुग आयो, तब पराशरऋषिसें उपरिचर वसुके वीर्यते उत्पन्न सत्यवतीमें योगीश्वर व्यासजी हरिकलामें जन्म लेते भए ॥ १४ ॥ सो व्यासजी कोई समय सरस्वतीमें स्नानकर पवित्र होकर सूर्य उदयके समयमें एकांत स्थान बदरिकाश्रममें बैठे हैं ॥ १५ ॥

श्रीव्यासजी बोले कि बडे यज्ञ करनेंवारे मुनीनके मध्यमें सूतजीके यह वचन सुनकर वृद्ध कुलपति ऋग्वेद पढनेवारे शौनक मुनि बोले ॥ १ ॥
शौनकजी बोले कि । हे सूत! हे सूत! हे महाभाग! हे वक्तानमें श्रेष्ठ! भागवतकी पुण्यदात्री कथा कहो, जो भगवान् शुकदेवजीनें कही है ॥ २ ॥
किस युगमें कौन स्थानमें कौन हेतुसे यह भागवतका प्रवर्तन हुआ व्यासजीको कौनने प्रेरणाकरी, तब मुनीने ये संहिता करी ॥ ३ ॥ तिनके पुत्र
महायोगी समदर्शी भेदभावरहित एक ब्रह्ममें निष्ठा और विकल्प रहित मायाके प्रपंचसे जाग्रत तथापि गुप्त होनेसे मूढकी समान लक्षित होत
थे ॥ ४ ॥ पुत्रके पीछे जाते भये वस्त्र पहिरे व्यासजीकों देखकर लाजसे जलमें न्हाती हुई देवस्त्री वस्त्र पहिरती भई, और नग्न पुत्र शुकको देख

व्यास उवाच ॥ इति ब्रुवाणं संस्तूय मुनीनां दीर्घसत्रिणाम् ॥ वृद्धः कुलपतिः सूतं बह्वृचः शौनकोऽब्रवीत् ॥ १ ॥ शौनक उवाच ॥ सूत सूत महाभाग वद नो वदतां वर ॥ कथां भागवतीं पुण्यां यदाह भगवाञ्छुकः ॥ २ ॥ कस्मिन्युगे प्रवृत्तेयं स्थाने वा केन हेतुना ॥ कुतः संचोदितः कृष्णः कृतवान्संहितां मुनिः ॥ ३ ॥ तस्य पुत्रो महायोगी समदृङ् निर्विकल्पकः ॥ एकान्तमतिरुन्निद्रो गूढो मूढ इवेयते ॥ ४ ॥ दृष्ट्वाऽनुयान्तमृषिमात्मजमप्यनग्नं देव्यो ह्रिया परिदधुर्न सुतस्य चित्रम् ॥ तद्वीक्ष्य पृच्छति मुनौ जगदुस्तवास्ति स्त्रीपुंभिदा न तु सुतस्य विविक्तदृष्टेः ॥ ५ ॥ कथमालक्षितः पौरैः संप्राप्तः कुरुजाङ्गलान् ॥ उन्मत्तमूकजडवद्विचरन्गजसाह्वये ॥ ६ ॥ कथं वा पाण्डवेयस्य राजर्षेर्मुनिना सह ॥ संवादः समभूत्तात यत्रैषा सात्वती श्रुतिः ॥ ७ ॥ स गोदोहनमात्रं हि गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ अवेक्षते महाभागस्तीर्थीकुर्वंस्तदाश्रमम् ॥ ८ ॥

लाज न करी, यह विचित्र भाव देख व्यासजी उनको पूछनेलगे कि शुकको नग्न देखके तौ वस्त्र न पहिरे, मो बूढेको देखके तुमको लाज क्यों
भई ! तब देवस्त्री बोली तुह्मे अभी पुरुष स्त्री भेद भाव है; एकांतमें पवित्र दृष्टिवारे शुकको यह भाव नहीं है ॥ ५ ॥ वह कुरुजांगलदेशमें
कैसे गए और पुरवासीनको कैसे मालूम पडे, वे तो उन्मत्त गूंगजडकी नांई हस्तिनापुरमें विचरते थे ॥ ६ ॥ राजऋषि राजा परीक्षित्का शुक
मुनिसे कैसे संवाद हुआ, जहां यह भागवतकी संहिता भई ॥ ७॥ महाभागवत शुकाचार्य तो गौ दोही जाय इतनी देरतक गृहस्थियोंके घरमें रहकर

हे महाभाग ! भक्तोंके अभयकारक संसारसे जरे जविनको सुखदाता तुम हो ॥२२॥ तुम आद्य पुरुष साक्षात् केवल मायासे परै हो अपनी चित्शक्तिसे मायाको तिरस्कार कर कैवल्य आत्मामें आप स्थित हो ॥ २३॥ माया मोहित चित्त जीवलोकको अपने प्रभावकरकै धर्मादिलक्षण कल्याण तुमही विधान करो हो ॥२४॥ तैसे ये अवतार आपको भूमिके भार उतारवेकी इच्छासें है, और अपनें जातिके और एकांतिभक्तोंके ध्यानके लिये हैं ॥ २५॥ हे देवदेव ! ये कहा है, कहांसे आयो है, सब ओरसे परम दारुण तेज आवै है, सो हम नहीं जानें हैं ॥२६॥ श्रीभगवान् बोले कि प्राणबाधा होनेसै द्रोणाचार्यके पुत्रनें ब्रह्मास्त्र दिखायो है, सो ये चलानो तो जाने है, फेर वाको अपनें पास बुलानो न जाने है ॥ २७ ॥ या अस्त्रको दूर करवेवारो और कोई उपाय नहीं है, तुमभी अपनों ब्रह्मास्त्र चलाके अपनें तेजसे नाश करो; क्यों कि तुम दोनों बात जानो हो ॥ २८ ॥ सूतजी बोले कि शत्रुनको नाशक अर्जुन भगवानूकी बात सुनकर जलसे आचमन कर श्रीकृष्णकी परिक्रमा करकै वा ब्राह्मणपर ब्रह्मास्त्र चलाते भये ॥ २९ ॥ तब दोनो ब्रह्मास्त्र परस्पर लडे, उनको तेज पृथिवी आकाशकौं ढककर महाप्रलयमें जैसे संकर्षणके मुखकी अग्नि, ऊपरसे सूर्यको तेज, ये दोनों मिलके जैसे बढैं ताकी नांई दोनों ब्रह्मास्त्रको तेज बढो ॥ ३० ॥ उन दोनों ब्रह्मास्त्रको तेज महाभारी त्रिलोकीको जरातो देख जरीभई सब

त्वमाद्यः पुरुषः साक्षादीश्वरः प्रकृतेः परः ॥ मायां व्युदस्य चिच्छक्त्या कैवल्ये स्थित आत्मनि ॥ २३ ॥ स एव जीवलोकस्य मायामोहितचेतसः ॥ विधत्से स्वेन वीर्येण श्रेयो धर्मादिलक्षणम् ॥ २४ ॥ तथाऽयं चावतारस्ते भुवो भारजिहीर्षया ॥ स्वानां चानन्यभावानामनुध्यानाय चासकृत् ॥ २५ ॥ किमिदं स्वित्कुतो वेति देवदेव न वेद्म्यहम् ॥ सर्वतोमुखमायाति तेजः परमदारुणम् ॥ २६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वेत्थेदं द्रोणपुत्रस्य ब्राह्ममस्त्रं प्रदर्शितम् ॥ नैवासौ वेद संहारं प्राणबाध उपस्थिते ॥ २७ ॥ न ह्यस्यान्यतमं किंचिदस्त्रं प्रत्यवकर्शनम् ॥ जह्यस्त्रतेज उन्नद्धमस्त्रज्ञो ह्यस्त्रतेजसा ॥२८॥ सूत उवाच ॥ श्रुत्वा भगवता प्रोक्तं फाल्गुनः परवीरहा ॥ स्पृष्ट्वाऽपस्तं परिक्रम्य ब्राह्मं ब्राह्माय संदधे ॥ २९ ॥ संहत्याऽन्योऽन्यमुभयोस्तेजसी शरसंवृते ॥ आवृत्य रोदसी खं च ववृधातेऽर्कवह्निवत् ॥ ३० ॥ दृष्ट्वाऽस्त्रतेजस्तु तयोस्त्रीँल्लोकान्प्रदहन्महत् ॥ दह्यमानाः प्रजाः सर्वाः सांवर्तकममंसत ॥३१॥

समझावते हुये ॥१५॥ हे दौपदी! अग्नि लगानेवारो, जहर देवेहारो, शस्त्र बांधवेवारो, धनको चोर, खेत, लुगाई चुरानेवारो, ये छै आततायी कहावैं है सो ब्राह्मणोंमें अधम आततायी अश्वत्थामाको सीस गांडीवधनुषसे निकरे बाणोंसे काट लाऊं वापै ठाडी होकर तू मृतपुत्रा स्नान करि याप्रकार मैं तुमारो शोच दूर करूंगो ॥ १६ ॥ ऐसे द्रौपदीको मनोहर विचित्र वाक्योंसे प्रसन्न कर श्रीकृष्ण जाके मित्र सारथी बख्तर पहिरे, बडोलिये धनुष हनूमानजीकी ध्वजावारे रथपर चढ अर्जुन गुरुपुत्र अश्वत्थामाके पीछे दौडो ॥ १७ ॥ बालघाती हृदै कांपै प्राण बचानेकी इच्छा करे अश्वत्थामा अर्जुनको दूरसे अपने पीछे आतो देख रथपर बैठके जहांलग भागोगयो तहांलग पृथ्वीपर भागो जैसे रुद्रके भयसे सूर्य भागै ॥ वामनपुराणमें ऐसे हैं कि विद्युन्माली कोई शिवभक्त राक्षस हो ताको शिवजीने सोनेका विमान दीनों, सो वो सूर्यके पाछे २ डोलै, विमानके प्रकाशसे रात दूर कीनीं, तब सूर्यनें देखो मेरो तेज तो यानें नष्ट करो, ये जान वाको विमान पटकों; ये सुन शिवजी कोपकर मारवेकों दौडै, सो सूर्य भागै, रुद्रकी क्रूरदृष्टिसे जरकर काशीमें गिरे, सो आजतक लोलार्क नामक तीर्थ काशीमें विख्यात है ॥१८॥ जब घोडे, थकगए; अपने शरीरको रक्षक कोई न देखो तब विप्रपुत्र अपनी रक्षाको ब्रह्मास्त्र मानतोभयो ॥ १९ ॥ तब आचमन कर प्राणोंको कष्ट जब आयो तब ब्रह्मास्त्र चलायो; पर फेर बुलायो, ब्रह्मास्त्रको वो नहीं जाने हो ॥ २० ॥ सब ओरसे प्रचंड तेज ब्रह्मास्त्रसे जब प्रगटो प्राणोंपर संकट आयो जान अर्जुन श्रीकृष्णजीसें बोले ॥ २१ ॥ अर्जुन बोले हे कृष्ण!

तदा शुचस्ते प्रमृजामि भद्रे यद्ब्रह्मबन्धोः शिर आततायिनः ॥ गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैरुपाहरे त्वाक्रम्य यत्स्नास्यसि दग्धपुत्रा ॥ १६ ॥ इति प्रियां वल्गुविचित्रजल्पैः स सान्त्वयित्वाऽच्युतमित्रसूतः ॥ अन्वाद्रवद्दंशित उग्रधन्वा कपिध्वजो गुरुपुत्रं रथेन ॥ १७ ॥ तमापतन्तं स विलक्ष्य दूरात्कुमारहोद्विग्नमना रथेन ॥ पराद्रवत्प्राणपरीप्सुरुर्व्यां यावद्गमं रुद्रभयाद्यथार्कः ॥ १८ ॥ यदाऽशरणमात्मानमैक्षत श्रान्तवाजिनम् ॥ अस्त्रं ब्रह्मशिरो मेने आत्मत्राणं द्विजात्मजः ॥ १९ ॥ अथोपस्पृश्य सलिलं संदधे तत्समाहितः ॥ अजानन्नुपसंहारं प्राणकृच्छ्र उपास्थिते ॥ २० ॥ ततः प्रादुष्कृतं तेजः प्रचण्डं सर्वतोदिशम् ॥ प्राणापदमभिप्रेक्ष्य विष्णुं जिष्णुरुवाच ह ॥ २१ ॥ अर्जुन उवाच ॥ कृष्ण कृष्ण महाभाग भक्तानामभयंकर ॥ त्वमेको दह्यमानानामपवर्गोऽसि संसृतेः ॥ २२ ॥

भूत भविष्यतके जाननेवारे ऋषि व्यास अप्रकट वेग कालकरकै पृथ्वीपर युगयुगमें होनेवारे पृथ्वीपर वर्ण आश्रम धर्मका संकर देखकर ॥ १६ ॥ शरीरधारियोंके भाव और उनकी शक्ति कालकरकै घटगई; श्रद्धा नहीं, सतोगुण नहीं, बुद्धि नहीं, आयु नहीं ॥ १७ ॥ ऐसे दुर्भागी जीवनकों देख मुनीश्वर दिव्यज्ञानचक्षुसै सब वर्णोंको आश्रमोंके हित करनेके निमित्त ध्यान करते भए ॥ १८ ॥ ब्रह्मा होता अध्वर्यु आग्नीध्र इन चारों करिके अनुष्ठेय प्रजाओंका शुद्धिकारक वैदिक कर्मको जानकर, यज्ञोंके अविच्छेदके लिये एक वेदको चार भाग करते भये ॥ १९ ॥ ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद अथर्वणवेद ये चार पृथक् करे, इतिहास पुराणोंको पंचमवेद कहा है ॥ २० ॥ तहां पैलमुनिने ऋग्वेद पढा जैमिनी पण्डितने सामवेद वैशंपायनजी

परावरज्ञः स ऋषिः कालेनाव्यक्तरंहसा ॥ युगधर्मव्यतिकरं प्राप्तं भुवि युगे युगे ॥ १६ ॥ भौतिकानां च भावानां शक्तिह्रासं च तत्कृतम् ॥ अश्रद्दधानान्निःसत्त्वान्दुर्मेधान्ह्रसितायुषः ॥ १७ ॥ दुर्भगांश्च जनान्वीक्ष्य मुनिर्दिव्येन चक्षुषा ॥ सर्ववर्णाश्रमाणां यद्दध्यौ हितममोघदृक् ॥ १८ ॥ चातुर्होत्रं कर्म शुद्धं प्रजानां वीक्ष्य वैदिकम् ॥ व्यदधाद्यज्ञसंतत्यै वेदमेकं चतुर्विधम् ॥ १९ ॥ ऋग्यजुःसामाऽथर्वाख्या वेदाश्चत्वार उद्धृताः ॥ इतिहासपुराणं च पञ्चमो वेद उच्यते ॥ २० ॥ तत्रर्ग्वेदधरः पैलः सामगो जैमिनिः कविः ॥ वैशम्पायन एवैको निष्णातो यजुषामुत ॥ २१ ॥ अथर्वाङ्गिरसामासीत्सुमन्तुर्दारुणो मुनिः ॥ इतिहासपुराणानां पिता मे रोमहर्षणः ॥ २२ ॥ त एत ऋषयो वेदं स्वं स्वं व्यस्यन्ननेकधा ॥ शिष्यैः प्रशिष्यैस्तच्छिष्यैर्वेदास्ते शाखिनोऽभवन् ॥ २३ ॥ त एव वेदा दुर्मेधैर्धार्यन्ते पुरुषैर्यथा ॥ एवं चकार भगवान्व्यासः कृपणवत्सलः ॥ २४ ॥

यजुर्वेदके पारंगत भए ॥ २१ ॥ अंगिरागोत्री सुमंतु मुनिने अथर्ववेद पढा उस वेदके मारण उच्चाटन आदि कर्म करनेसे उन्हें दारुण कहते भए, और इतिहास पुराणोंके जाननेवारे हमारे पिता रोमहर्षणजी भए ॥ २२ ॥ वे ऋषि अपने अपने वेदको अनेक प्रकारसे विभाग करते भए, शिष्य उनके शिष्य तिनके चेलाओं करकै वेदकी शाखा भई ॥ २३ ॥ पहिले अति विशाल बुद्धिवारे वेदका अर्थ जानतेथे, अब वेही वेद दुर्बुद्धिजन पढके उलटे पुलटे अर्थ करवेलगे, तब व्यासजी दयालु उनके कल्याणके निमित्त वेदके विभाग करते भये ॥ २४ ॥

स्त्री शूद्र और सबसे अधमकों वेदत्रय सुननेका अधिकार नहीं है, तो अच्छे कर्ममें मूढोंकों कल्याण किस प्रकार होयगो ॥ २५ ॥ ये विचार भारतका आख्यान कृपा करके करो, वेदका अर्थ लेकर व्यासमुनि भारतमें कहत भए ॥ २६ ॥ हे शौनक आदि मुनियो ! सब जीवनके हितके लिये ऐसे जब प्रवर्त भए, अनेक प्रकारके उपकारके कर्मसे जब इनका हृदय प्रसन्न न हुआ तब ॥ २७ ॥ यह महात्मा सरस्वती तटपर एकांतमें बैठे अनेक तर्क करते करते उदासीन चित होके ये बोले ॥ २८ ॥ मैंनें व्रत धरके. गुरु अग्नि सबकी

स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा ॥ कर्मश्रेयसि मूढानां श्रेय एवं भवेदिह ॥ ॥ २५. ॥ इति भारतमाख्यानं कृपया मुनिना कृतम् ॥ वेदार्थंच समुद्धृत्य भारते प्रोक्तवान्मुनिः ॥२६॥ एवं प्रवृत्तस्य सदा भूतानां श्रेयसि द्विजाः॥ सर्वात्मकेनापि यदा नाऽतुष्यद्धृदयं ततः ॥२७॥ नातिप्रसीदद्धृदयः सरस्वत्यास्तटे शुचौ ॥ वितर्कयन्विविक्तस्थ इदं प्रोवाच धर्मवित् ॥२८॥ धृतव्रतेन हि मया छन्दांसि गुरवोऽग्नयः॥ मानिता निर्व्यलीकेन गृहीतं चानुशासनम् ॥ २९ ॥ भारतव्यपदेशेन ह्याम्नायार्थश्च दर्शितः ॥ दृश्यते यत्र धर्मादि स्त्रीशूद्रादिभिरप्युत ॥ ३० ॥ अथापि बत मे दैह्यो ह्यात्मा चैवात्मना विभुः ॥ असंपन्न इवाभाति ब्रह्मवर्चस्यसत्तमः ॥ ३१ ॥ किं वा भागवता धर्मा न प्रायेण निरूपिताः ॥ प्रियाः परमहंसानां त एव ह्यच्युतप्रियाः ॥ ३२ ॥ तस्यैवं खिलमात्मानं मन्यमानस्य खिद्यतः ॥ कृष्णस्य नारदोऽभ्यागादाश्रमं प्रागुदाहृतम् ॥ ३३ ॥

निष्कपट भावसे सेवा की और उनकी आज्ञा मानी ॥ २९ ॥ भारतके बहानेसे वेदको अर्थ सब कह्यो, जा भारतमें स्त्री शूद्रादिकोंकोभी धर्म अर्थ काम जानपडै ॥ ३० ॥ मेरा आत्मा वेद पढने और श्रवण करनेसै अति उत्कृष्ट तेजस्वी पुरुषोंमें उत्तम है तौभी बडे खेदका बात है कि मेरो जीव समर्थ मन करकै प्रसन्न नहीं है ॥ ३१ ॥ अथवा मैंने भागवत धर्म बहुधा करकै नहीं कहे हैं, वे भगवतकों प्रिय हैं, परमहंसको प्रिय हैं, वे भागवत हरिकों प्यारे हैं ॥ ३२ ॥ अपनेको न्यून मान, खेदित मन, बैठे हुए व्यासजीके आश्रमपर नारद आए ॥ ३३ ॥

देवताओंसे पूजित अज्ञान नाशक नारदमुनिको आए जानिके व्यासजी बडी शीघ्रतासे उठे, और विधिवत् पूजन करते भए ॥३४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्रपारमहंस्यां संहितायां नारदव्याससंगमो नाम चतुर्थोऽध्यायः समाप्तः ॥४॥ सूतजी बोले कि ॥ याके उपरांत सुखसे बैठे व्यासजीसे बडे यशस्वी वीणालिये मुसुकाते देवर्षि नारदजी बोले॥१॥ श्रीनारदजी बोले कि हे पराशरपुत्र! हे महाभाग ! आपके शरीरके शरीरका अभिमानी आत्मा प्रसन्न है, और मनका अभिमानी मनकरकै प्रसन्न है कि नहीं ॥ २ ॥ जो जानवे योग्य सो भी जान्यो कारण कि अद्भुत और सब अर्थ भरी महाभारत आप बनाय चुके हैं॥३॥ हे प्रभो! आप सनातन ब्रह्मको जानकर उसै प्राप्त भये हो तौभी जाको प्रयोजन न सिद्ध होय वह जैसे सोचै तैसे

तमभिज्ञाय सहसा प्रत्युत्थायागतं मुनिः ॥ पूजयामास विधिवन्नारदं सुरपूजितम् ॥ ३४ ॥ इति श्रीभा० म० प्रथ० चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ सूत उवाच ॥ अथ तं सुखमासीन उपासीनं बृहच्छ्रवाः ॥ देवर्षिः प्राह विप्रर्षिं वीणापाणिः स्मयन्निव ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ पाराशर्य महाभाग भवतः कच्चिदात्मना ॥ परितुष्यति शारीर आत्मा मानस एव वा ॥ २ ॥ जिज्ञासितं सुसंपन्नमपि ते महदद्भुतम् ॥ कृतवान्भारतं यस्त्वं सर्वार्थपरिबृंहितम् ॥ ३ ॥ जिज्ञासितमधीतं च यत्तद्ब्रह्म सनातनम् ॥ अथापि शोचस्यात्मानमकृतार्थ इव प्रभो ॥ ४ ॥ व्यास उवाच ॥ अस्त्येव मे सर्वमिदं त्वयोक्तं तथापि नात्मा परितुष्यते मे ॥ तन्मूलमव्यक्तमगाधबोधं पृच्छामहे त्वाऽऽत्मभवात्मभूतम् ॥ ५ ॥ स वै भवान्वेद समस्तगुह्यमुपासितो यत्पुरुषः पुराणः ॥ परावरेशो मनसैव विश्वं सृजत्यवत्यात्ति गुणैरसङ्गः ॥ ६ ॥ त्वं पर्यटन्नर्क इव त्रिलोकीमन्तश्चरो वायुरवात्मसाक्षी ॥ परावरे ब्रह्मणि धर्मतो व्रतैः स्नातस्य मे न्यूनमलं विचक्ष्व ॥७॥

तुम सोच करो हो॥४॥ व्यासजी बोले कि॥ तुमने कहीं सो सब है तथापि मेरो मन प्रसन्न नहीं ताको कारण अप्रगट है तोभी बडे ज्ञानवारे ब्रह्माजीके पुत्र तुम पूछो हौं ॥ ५ ॥ जो सबसे छिपी बात है सो आप जानो हो क्यों कि पुराणपुरुषकी तुमने उपासना करी है जो गुणोंमें असंग कार्यकारणके नियंता मनसेई सब विश्वको रचै रक्षा करै भक्षण करै हैं ॥ ६ ॥ सूर्यकी नाईं त्रिलोकीमें तुम विचरोहो वायुकी नाईं सबके अंतर्घटकी जानो हो, बुद्धिकी वृत्ति जानो हो परब्रह्ममें और वेदमें धर्मसे व्रतसे परायण मुझमें जो कुछ न्यूनता है सो विचारो ॥ ७ ॥

श्रीनारदजी बोले कि ॥ भगवान्‌को निर्मल यश आपने नहीं कह्यो जासे मन प्रसन्न नहीं है येही न्यूनता मानूहूं॥८॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जैसे प्रधानता करकै धर्म अर्थादि आपने कहे हैं, तैसी वासुदेवभगवान्‌को महिमा प्राधान्यसे नहीं वर्णन करी॥९॥जगत्‌को पवित्र करवेवारो हरिके यशसै रहित चित्रविचित्र पदकी कविता काकतुल्य कामियोंकों अच्छी लगे, ऐसी कविताइकों, सतोगुणप्रधान कर मनमें वर्तमान ब्रह्ममें निवास करवेवारे सार असारके ज्ञानी ब्रह्मवादी काकतीर्थ कहे हैं, अत्यंत वा कविताईको न वांचैं हैं जैसे प्रसिद्ध है कि मानससरोवरवासी हंस मानससरोवरमें विचरते हैं, सुंदर कमलवनको काककी क्रीडाके स्थान जंठनवारे स्थानमें कभी नहीं जाते ॥१०॥ चाहैं उसमें श्लोक श्लोकमें अशुद्धि हो परन्तु जनसमूहोंके पाप नाश करनेहारे भगवतके यश युक्त कविताई साधु ब्राह्मण सुनेहैं गावैहैं सुनावैं हैं ॥ ११ ॥ ब्रह्मार्पण कर्म करेहैं परंतु भगवद्भक्तिरहित है, वो उपाधिरहित अत्यंत ज्ञान शोभाको नहीं प्राप्त होवै है, फेर फलके समेभी दुःख होताहै, जाने निष्काम कर्म ईश्वरमें समर्पण न किये वाकी ये गति है ॥ १२ ॥ यासे हे महाभाग! आप यथार्थद्रष्टा हो, शुद्धयशस्वी सत्यवादी सब व्रत करनेवारे हो; आप अब चित्त एकाग्र करके भगवान्‌की लीला वर्णन करो, जिसके श्रवण करनैसै मनुष्योंके सब बंधन छूटजाय ॥ १३ ॥ भगवतयशके विना जो और कुछ कहाहै पृथक् दृष्टिसे करे,

नारद उवाच ॥ भवतानुदितप्रायं यशो भगवतोऽमलम् ॥ येनैवासौ न तुष्येत मन्ये तद्दर्शनं खिलम् ॥ ८ ॥ यथा धर्मादयश्चार्था मुनिवर्यानुकीर्तिताः ॥ न तथा वासुदेवस्य महिमा ह्यनुवर्णितः ॥ ९ ॥ न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ॥ तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा न यत्र हंसा विरमन्त्युशिक्क्षयाः ॥ १० ॥ तद्वाग्विसर्गो जनताऽघविप्लवो यस्मिन्प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि ॥ नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यच्छृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः ॥ ११ ॥ नैष्कर्म्यमप्यच्युतभाववर्जितं न शोभते ज्ञानमलं निरञ्जनम् ॥ कुतः पुनः शश्वदभद्रमीश्वरे न चार्पितं कर्म यदप्यकारणम् ॥ १२ ॥ अथो महाभाग भवानमोघदृक्छुचिश्रवाः सत्यरतो धृतव्रतः ॥ उरुक्रमस्याखिलबन्धमुक्तये समाधिनाऽनुस्मर तद्विचेष्टितम् ॥ १३ ॥ ततोऽन्यथा किंचन यद्विवक्षतः पृथग्दृशस्तत्कृतरूपनामभिः ॥ न कुत्रचित्क्वापि च दुस्थिता मतिर्लभेत वाताहतनौरिवास्पदम् ॥ १४ ॥

नाम रूपसै चलीभई बुद्धि दुःस्थित होके कहींभी एकठिकाने नहीं रहती, जैसे पवनसे कंपित नाव जलमें एक ठिकाने नहीं रहती ॥ १४ ॥ धर्मके लिये शिक्षा करनेवारे तुह्मारो नैष्कर्म्यकी आज्ञा दुष्टस्वभाववारेनको महा अन्यायवारी होवेगी तुह्मारे वाक्यसे प्राकृत तुच्छ जीव येही मानेंगे कि येभी धर्म है ये न जानेंगे कि याको व्यासने निवारण करोहै ॥ १५ ॥ जो कोई अतिनिपुण है, वही स्वभावसे अनंतपार प्रभुके सुखरूपको जाननके योग्य है, इस कारण गुणोंकरकै प्रवर्तमान जीवसे भिन्न समर्थ ईश्वरकी लीला आप वर्णन करो ॥ १६॥ स्वधर्म त्यागके हरिके चरणारविंदको भजन करत जो अधम बीचमें मरै या पतित हो जाय तौ क्या स्वधर्मत्यागको दोष होयहै, नहीं जो ऐसा होय तौ ईश्वरके अभक्तौंने अपने धर्मसै किस अर्थकी प्राप्ति करी अर्थात् कुछभी नहीं की और स्वधर्मसे भजनेवारे या जीवको जहां कहीं कुयोनिमें

जुगुप्सितं धर्मकृतेऽनुशासतः स्वभावरक्तस्य महान्व्यतिक्रमः ॥ यद्वाक्यतो धर्म इतीतरः स्थितो न मन्यते तस्य निवारणं जनः ॥ १५ ॥ विचक्षणोऽस्यार्हति वेदितुं विभोरनन्तपारस्य निवृत्तितः सुखम् ॥ प्रवर्तमानस्य गुणैरनात्मनस्ततो भवान्दर्शय चेष्टितं विभोः ॥ १६ ॥ त्यक्त्वा स्वधर्मं चरणाम्बुजं हरेर्भजन्नपक्वोऽथ पतेत्ततो यदि ॥ यत्र क्व वा भद्रमभूदमुष्य किं को वाऽर्थ आप्तोऽभजतां स्वधर्मतः ॥ १७ ॥ तस्यैव हेतोः प्रयतेत कोविदो न लभ्यते यद्भ्रमतामुपर्यधः ॥ तल्लभ्यते दुःखवदन्यतः सुखं कालेन सर्वत्र गभीररंहसा ॥ १८ ॥ न वै जनो जातु कथंचनाव्रजेन्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम् ॥ स्मरन्मुकुन्दाङ्घ्र्युपगूहनं पुनर्विहातुमिच्छेन्न रसग्रहो यतः ॥ १९ ॥

जन्म होय तोभी भक्तिसे कल्याणही होयहै, सब अर्थकी प्राप्ति होवैहै ॥ १७ ॥ विवेकी पुरुषौंको उसो सुखके लिये यत्न करना चाहिये कि जो सुख ऊपर ब्रह्मलोकतक हो आवो, नीचै स्थावरपर्यंत हो आवो, तौभी भटकते प्राणियौंको नहीं मिलता परंतु विषयसुख तौ प्राचीनकर्मसे सब ठौर नरकादिकमें विना यत्न किये दुःखकेसी नाई प्राप्त होयहै, ऐसेई सुखभी प्राचीन कर्मसे गंभोर वेगवारे कालकरकै विना चाहेई आयजावैहै ॥ १८ ॥ हे व्यासजी ! मुकुंदसेवो जन कदाचित् भी कर्मासक्त पुरुषकी समान संसारमें नहीं आवै है क्योंकि भगवच्चरणारविंदको स्पर्श वारंवार स्मरण करते त्यागवेकी इच्छा न करैहै, कारण वानें रस मानकर ग्रहण करो है ॥ १९ ॥

20

ये विश्व भगवानमय है और ईश्वर उस्सै पृथक् है जासे जगत्की उत्पत्ति पालन नाश होय है, सो आप सब जानोहो तौहू आपको एक देशमात्र दिखायो है ॥ २० ॥ हे अमोघदृक्! तुम परपुरुष परमात्माकी कला हो, सो मनसे परमात्माको जानो, जा नहीं जन्मतेथे वे ईश्वर जगत्के कल्याणके लिये जन्में, ऐसे महाप्रतापीकी लीला वर्णन करो ॥२१॥ पुरुषके तपका, श्रवणका, सुंदर कूआ बावडी इत्यादि बनानेका, सुंदर उक्तिका, बुद्धिका, दानका यही प्रयोजन कवियोंने कह्योहै कि उत्तमयशवारे हरिके गुण कहिना ॥२२॥ हे व्यास! हम पहिले जन्ममें कोई वेदवादी ब्राह्मणकी दासीमें

इदं हि विश्वं भगवानिवेतरो यतो जगत्स्थाननिरोधसंभवाः ॥ तद्धि स्वयं वेद भवांस्तथाऽपि वै प्रादेशमात्रं भवतः प्रदर्शितम् ॥ २० ॥ त्वमात्मनात्मानमवेह्यमोघदृक्परस्य पुंसः परमात्मनः कलाम् ॥ अजं प्रजातं जगतः शिवाय तन्महानुभावाभ्युदयोऽधिगण्यताम् ॥ २१ ॥ इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः ॥ अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम् ॥ २२ ॥ अहं पुरातीतभवेऽभवं मुने दास्यास्तु कस्याश्चन वेदवादिनाम् ॥ निरूपितो बालक एव योगिनां शुश्रूषणे प्रावृषि निर्विविक्षताम् ॥ २३ ॥ ते मय्यपेताखिलचापलेऽर्भके दान्तेऽधृतक्रीडनकेऽनुवर्तिनि ॥ चक्रुः कृपां यद्यपि तुल्यदर्शनाः शुश्रूषमाणे मुनयोऽल्पभाषिणि ॥ २४ ॥ उच्छिष्टलेपाननुमोदितो द्विजैः सकृत्स्म भुञ्जे तदपास्तकिल्बिषः ॥ एवं प्रवृत्तस्य विशुद्धचेतसस्तद्धर्म एवात्मरुचिः प्रजायते ॥ २५ ॥ तत्रान्वहं कृष्णकथाः प्रगायतामनुग्रहेणाशृणवं मनोहराः ॥ ताः श्रद्धया मेऽनुपदं विशृण्वतः प्रियश्रवस्यङ्ग ममाभवद्रुचिः ॥ २६ ॥

जन्मे थे, बालक ह, वर्षाकालमें आयके वास करनेहार योगियोंकी सेवामें मोको राख्यो ॥ २३ ॥ मैं संपूर्ण चंचलता और खेल कूद त्याग जितेंद्रिय हो उन मुनियौंके अनुकूल वर्तन कर सेवा करनैलगा और कार्यानुसार थोड़ाही बोलता यह देख समदर्शी मुनि मुझपर प्रसन्न हुए ॥ २४ ॥ उन ब्राह्मणोंके कहिवेसे पात्रोंमें लगी झूठनके पावनेसे मेरे सब प प दूर होगये, ऐसं विशुद्धचित्तसे जब रहिवेलगो वाही धर्ममें मरी रुचि होयगई ॥२५॥ हे मित्र! वे दिनरात मनोहर कृष्णकथा गावे है उसै दिनरात सुन्नेसे और उनकी कृपासे प्रिय यशवारे हरिमे मरी रुचि होतीभई ॥ २६ ॥

हे व्यास ! भगवतमें जब मेरी रुचि भई, तो हरिमें अखंडित बुद्धि लगी, जिसके कारण इस स्थूल सूक्ष्म शरीरको प्रपंचसै परे परब्रह्म रूप जिन स्वरूपमें अविद्यासै कल्पित देखने लगा ॥ २७ ॥ याप्रकार शरदवर्षा ऋतुमें दिन रात निर्मल यश हरिको सुनो. जो महात्मा मुनियोंने गायो, वाते आत्माके रजतम नाश करवेवारी भक्ति प्रवर्त भई ॥ २८ ॥ अनुरागी नम्र पापरहित श्रद्धालु जितेंद्री सेवक मोसरीखे बालकको ॥ २९ ॥ साक्षाद्भगवान्को कह्यो। गुह्यतम ज्ञान कृपाकरके वे दीनवत्सल मुनि जाती विरिया माकों उपदेश करतेभए ॥ ३० ॥ वा ज्ञानसे सर्वव्यापक भगवान् वासुदेवकी मायाको प्रभाव जानताभयो जिस ज्ञानसै ब्रह्मपदकी प्राप्ति होती है ॥३१ ॥ हे ब्रह्मन् ! आध्यात्मादि तापत्रयकी औषधि ये है

तस्मिंस्तदा लब्धरुचेर्महामुने प्रियश्रवस्यऽस्खलिता मतिर्मम ॥ ययाहमेतत्सदसत्स्वमायया पश्ये मयि ब्रह्मणि कल्पितं परे ॥ २७ ॥ इत्थं शरत्प्रावृषिकावृतू हरेर्विशृण्वतो मेऽनुसवं यशोऽमलम् ॥ संकीर्त्यमानं मुनिभिर्महात्मभिर्भक्तिः प्रवृत्ताऽऽत्मरजस्तमोपहा ॥ २८ ॥ तस्यैवं मेऽनुरक्तस्य प्रश्रितस्य हतैनसः ॥ श्रद्दधानस्य बालस्य दान्तस्यानुचरस्य च ॥ २९ ॥ ज्ञानं गुह्यतमं यत्तत्साक्षाद्भगवतोदितम् ॥ अन्ववोचन्गमिष्यन्तः कृपया दीनवत्सलाः ॥ ३० ॥ येनैवाहं भगवता वासुदेवस्य वेधसः ॥ मायानुभावमविदं येन गच्छन्ति तत्पदम् ॥ ३१ ॥ एतत्संसूचितं ब्रह्म तापत्रयचिकित्सितम् ॥ यदीश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम् ॥ ३२ ॥ आमयो यश्च भूतानां जायते येन सुव्रत ॥ तदेव ह्यामयं द्रव्यं न पुनाति चिकित्सितम् ॥ ३३ ॥ एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः ॥ त एवात्मविनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे ॥ ३४ ॥

जो बृहत्त्वादि गुणविशिष्ट चैतन्य पूर्णरूप भगवान् ब्रह्मईश्वरमें सब कर्म समर्पण करनो ॥ ३२ ॥ हे सुव्रत ! जो रोग जासे जीवनको होवै, वोही पदार्थसे वो रोग नहीं जाय है चाहे जितनी चिकित्सा करो ॥ ३३ ॥ ऐसेही मनुष्यों सब कर्मकांड अपने निमित्त करैं तो सदा संसारमें जन्मे मरै है, अपना विनाश होयहै वेही सब परमेश्वरमें समर्पण करै तो अपनी मोक्ष होवै है ॥ प्रथम तो महात्मानकी सेवा, वासे उनकी कृपा, कृपासे धर्ममें श्रद्धा होय तब भगवत्कथा श्रवण वा कथन, ईश्वरमें प्रीति, वा प्रीतिकरके दोनों देहको विवेक होय, वासे आत्मज्ञान होय उस्सै दृढभक्ति वा भक्तिसे भगवत्तत्वज्ञान, वा तत्वज्ञानसे सर्वज्ञत्व सर्वात्मत्व अपहतपाप्मत्व इत्यादि भगवद्गुण प्रगट होजाय है यह क्रम है ॥ ३४॥

जो कर्ममें भगवतकी प्रसन्नता है ये जानके कर्म करैहै वा कर्मके आधीन भक्तियोगसहित ज्ञान होवे है॥३५॥भगवतकी आज्ञा है कि सब शुभकर्म करो, ये जान जो कर्म करै है उनकी मोक्ष होय है, कृष्णके गुणनामस्मरण करै हैं मुखसे उच्चारण करे हैं ॥३६॥ भगवान्‌के अर्थ नमस्कार होय, वासुदेवको ध्यान करै प्रद्युम्न संकर्षण अनिरुद्धको नमस्कार होय ॥ ३७॥ जो पुरुष इस प्रकार मूर्तिके नामसे अलौकिक मूर्तिमान मंत्रमूर्ति यज्ञपुरुषका पूजन करतेहैं वेही तत्ववेत्ता ज्ञानी कहातेहैं ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन् ! ये अपनो ज्ञान जो मैंने अनुष्ठान करो, यासे ईश्वर केशव मुझको ज्ञान ऐश्वर्य

यदत्र क्रियते कर्म भगवत्परितोषणम् ॥ ज्ञानं यत्तदधीनं हि भक्तियोगसमन्वितम् ॥ ३५ ॥ कुर्वाणा यत्र कर्माणि भगवच्छिक्षयाऽसकृत् ॥ गृणन्ति गुणनामानि कृष्णस्यानुस्मरन्ति च ॥ ३६ ॥ ॐ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय धीमहि ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥ ३७ ॥ इति मूर्त्यभिधानेन मन्त्रमूर्तिममूर्तिकम् ॥ यजते यज्ञपुरुषं स सम्यग्दर्शनः पुमान् ॥३८॥ इमं स्वनिगमं ब्रह्मन्नवेत्य मदनुष्ठितम् ॥ अदान्मे ज्ञानमैश्वर्यं स्वस्मिन्भावं च केशवः ॥ ३९ ॥ त्वमप्यदभ्रश्रुतविश्रुतं विभोः समाप्यते येन विदां बुभुत्सितम् ॥ आख्याहि दुःखैर्मुहुरर्दितात्मनां संक्लेशनिर्वाणमुशन्ति नान्यथा ॥ ४० ॥ इति श्रीभा० प्रथ०व्यासनारदसं०पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ सूत उवाच ॥ एवं निशम्य भगवान्देवर्षेर्जन्म कर्म च ॥ भूयः पप्रच्छ तं ब्रह्मन्व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥ व्यास उवाच ॥ भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिस्तव ॥ वर्तमानो वयस्याऽऽद्ये ततः किमकरोद्भवान् ॥ २ ॥

और अपनेमें भावको देते भए ॥ ३९ ॥ हे बहुश्रुत ! विभुकी लीला तुमभी कहो, जासे सब जानवेकी इच्छा पूरी होय, और दुःखसे पीडित जीवनको सब क्लेश याहीसे शांत होय है, और प्रकारसे नहीं ॥ ४० ॥ इति श्रीभा० व्यासनारदसंवादवर्णनंनाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ सूतजी बोले कि ॥ सत्यवतीसुत भगवान् व्यासजी देवर्षिनारदके जन्म कर्म सुनकै फेर नारदसे पूछते भए ॥ १ ॥ व्यासजी बोले कि जब वे ज्ञानदाता भिक्षु चले गए तो आप प्रथम अवस्थामें कहा करते भए ॥ २ ॥

हे स्वायंभुव ! पिछली अवस्था कैसे व्यतीत करी, जब काल प्राप्त भयो तो ये शरीर कैसे त्यागते भए ॥ ३ ॥ हे सुरसत्तम ! प्रथमकल्पकी ये याद् कैसे रही, सबके परलोकदाता इस कालसैं तुम्हारी स्मृतिभी खंडित न भई सो कहौ ॥ ४ ॥ श्रीनारदजी बोले कि ॥ ज्ञानदाता भिक्षु जब चले गए तब आयुके आदिमें हम ये करतेभए ॥ ५ ॥ मेरी माता स्त्रीभावसे मूढ दासी, कोई गति नहीं होनेसे अपने इकलौते मुझ पुत्रमें बहुत स्नेह करती भई ॥ ६ ॥ मेरी मा सदा मेरी क्षेमकी इच्छा करती परन्तु पराधीन असमर्थ होनेसे कुछ न करसकी कारण कि जिसप्रकार काठकी पुत्तली नटके आधीन रहे है ऐसे यह लोक ईश्वरके वशमें है ॥ ७ ॥ माताके स्नेहसे ब्रह्मकुलमें वास करता हुआ मैं यह विचार करनेलगा, कि यह

स्वायंभुव कया वृत्त्या वर्तितं ते परं वयः ॥ कथं चेदमुदस्राक्षीः काले प्राप्ते कलेवरम् ॥ ३ ॥ प्राक्कल्पविषयामेतां स्मृतिं ते सुरसत्तम ॥ न ह्येष व्यवधात्काल एष सर्वनिराकृतिः ॥ ४ ॥ नारद उवाच ॥ भिक्षुभिर्विप्रवसिते विज्ञानादेष्टृभिर्मम ॥ वर्तमानो वयस्याऽऽद्ये तत एतदकारषम् ॥ ५ ॥ एकात्मजा मे जननी योषन्मूढा च किंकरी ॥ मय्यात्मजेऽनन्यगतौ चक्रे स्नेहानुबन्धनम् ॥ ६ ॥ साऽस्वतन्त्रा न कल्पाऽऽसीद्योगक्षेमं ममेच्छती ॥ ईशस्य हि वशे लोको योषा दारुमयी यथा ॥ ७ ॥ अहं च तद्ब्रह्मकुल ऊषिवांस्तदवेक्षया ॥ दिग्देशकालाव्युत्पन्नो बालकः पञ्चहायनः ॥ ८ ॥ एकदा निर्गतां गेहाद्दुहन्तीं निशि गां पथि ॥ सर्पोऽदशत्पदा स्पृष्टः कृपणां कालचोदितः ॥ ९ ॥ तदा तदहर्मीशस्य भक्तानां शमभीप्सतः ॥ अनुग्रहं मन्यमानः प्रातिष्ठं दिशमुत्तराम् ॥ १० ॥ स्फीताञ्जनपदांस्तत्र पुरग्रामव्रजाकरान् ॥ खेटखर्वटवाटीश्च वनान्युपवनानि च ॥ ११ ॥

स्नेहपाश कब छुटैगा, उस समय दिशा समयका कुछ ज्ञान नहीं था, कारण कि पांच वर्षका बालक था ॥ ८ ॥ एक समय रातको गाय दुहायवेको रस्तेमें जाती रही सो मार्गमें ओ विचारी माता कालप्रेरित सर्पने डसलई ॥ ९ ॥ मैंने तासमय भक्तोंपर ईश्वर कल्याणही करे है ये मानों अपनें ऊपर ईश्वरकी कृपा जान मैं उत्तर दिशाको चला ॥ १० ॥ समृद्ध देश, राजधानी, ग्राम, ब्रज, रत्नादि उत्पतिस्थान, किसानोंके गांव, गिरितटके गांव, सुपारी, पुष्पकी वाटिका जहां स्वतः सिद्ध वृक्षसमूह होय वो वन, रोपे भये वृक्षसमूहोंके उपवन देखता ॥ ११ ॥

24

चित्रधातु विचित्र पर्वत, हाथियोंके तोडै शाखा वृक्ष,निर्मल जलके तलाव देखता देवताओंसे सेवित बावडी देखता चला ॥१२॥ चित्र विचित्र शब्दवारे पक्षियोंके गुंजार भ्रमरोंसे शोभित नर्षल वांस सैंठेके समूह कुश,कीचक वांसके छिद्रमें पवनके वंशीकी समान स्वरवारे घने वनको उलंघन कर ॥१३॥महाघोर भयंकररूप सर्प उल्लू गीदडोंकी क्रीडासे युक्त वन देखता भया मैं एकाएक विचरने लगा॥१४॥जब मेरी इंद्रिय शरीर थकगयो,प्यासो भूखो भयो तब नदीमें न्हायो,जल पीयो आचमन करो,तब सब श्रम दूर भयो ॥ १५ ॥ जहां कोई मनुष्य नहीं ऐसे वनमें पीपरके नीचे बैठो,बुद्धिसे हृदयमें स्थित परमात्माको चिंतवन करतो भयो जैसो सुनो तैसो ध्यान करतो भयो ॥१६॥ भावसे मन जीतके चरणकमल ध्यान करवेलगो, बडी

चित्रधातुविचित्राद्रीनिभभग्नभुजद्रुमान् ॥ जलाशयाञ्छिवजलान्नलिनीः सुरसेविताः ॥ १२ ॥ चित्रस्वनैः पत्ररथैर्विभ्रमद्भ्रमरश्रियः ॥ नलवेणुशरस्तम्बकुशकीचकगह्वरम् ॥ १३ ॥ एक एवातियातोऽहमद्राक्षं विपिनं महत् ॥ घोरं प्रतिभयाकारं व्यालोलूकशिवाऽजिरम् ॥ १४ ॥ परिश्रान्तेन्द्रियात्माऽहं तृट्परीतो बुभुक्षितः ॥ स्नात्वा पीत्वा ह्रदे नद्या उपस्पृष्टो गतश्रमः ॥ १५ ॥ तस्मिन्निर्मनुजेऽरण्ये पिप्पलोपस्थ आस्थितः ॥ आत्मनात्मानमात्मस्थं यथाश्रुतमचिन्तयम् ॥ १६ ॥ ध्यायतश्चरणाम्भोजं भावनिर्जितचेतसा ॥ औत्कण्ठ्याश्रुकलाक्षस्य हृद्याऽऽसीन्मे शनैर्हरिः ॥ १७ ॥ प्रेमातिभरनिर्भिन्नपुलकाङ्गोऽतिनिर्वृतः ॥ आनन्दसंप्लवे लीनो नापश्यमुभयं मुने ॥ १८ ॥ रूपं भगवतो यत्तन्मनःकान्तं शुचाऽपहम् ॥ अपश्यं सहसोत्तस्थे वैक्लव्याद्दुर्मना इव ॥ १९ ॥ दिदृक्षुस्तदहं भूयः प्रणिधाय मनो हृदि ॥ वीक्षमाणोऽपि नापश्यमवितृप्त इवातुरः ॥२०॥

प्रीतिसे अश्रुपात नेत्रसे गिरते भए, तब धीरे धीरे हृदयमें मेरे हरि दिखते भए॥ १७ ॥ प्रेमके अति भारसे शरीरमें पुलकावली हुई, तब महासुखी भयो,आनंदके महाप्रवाहमें लीन होगयो, देहकी सुधि नहीं रही परमात्माकी भी सुधि नहीं रही ॥१८ ॥ मनको सुखदायक शोकनाशक भगवान्‌को रूप एकसंग हृदयमें दीखो ताको मैं देखतो भयो तब विवशतासे कछू खेदितकीसीनाई मैं उठ खडा हुआ पुनः वो रूप अंतर्धान होगयो ॥ १९॥ वा रूपको फेर देखवेको हृदयमें मन लगायो प्रथम देखोऊ हो तोभी आतुरकी नाई तृप्त न भयो परंतु वो रूप फिर न दीखो ॥ २० ॥

वा एकांत बनमें ऐसे यत्न करते भएको परमेश्वर गम्भीर मनोहर आकाशवाणीसे शोक दूर करते भये बोले ॥ २१ ॥ वडे खेदकी वात है कि या जन्ममें तुम मोकों देखनेका योग्य न हो कामादि मल जिनके दग्ध नहीं भए उन कुयोगियोंको मेरो दर्शन नहीं होय है ॥२२॥ हे पापरहित ! एकवार जो मैंने अपनो स्वरूप दिखायो है, सो मेरेमें अनुराग बढै याके लिये दिखायो हैं, मेरो चाहवारो साधक सब काम विषयनको त्याग करैं हैं ॥ २३ ॥ थोरीसी सज्जनोंकी सेवासे मोमें दृढ मति भई, अब या निंद्य देहको त्यागकर मेरे पार्षद होओगे ॥२४॥ मेरेमें लगी मति अब कबहू सृष्टिके आदि अंतमें मेरी कृपासे नष्ट न होवेगी, मेरी कृपासे तुमें स्मृति रहैगी ॥ २५ ॥ या श्लोकमें विलक्षण वात है कि जाकी देह नहीं सबसे वडी जाकी

एवं यतन्तं विजने मामाहाऽगोचरो गिराम् ॥ गम्भीरश्लक्ष्णया वाचा शुचः प्रशमयन्निव ॥ २१ ॥ हन्ताऽस्मिञ्जन्मनि भवान्न मां द्रष्टुमिहार्हति ॥ अविपक्वकषायाणां दुर्दर्शोऽहं कुयोगिनाम् ॥ २२ ॥ सकृद्यद्दर्शितं रूपमेतत्कामाय तेऽनघ ॥ मत्कामः शनकैः साधुः सर्वान्मुञ्चति हृच्छयान् ॥ २३ ॥ यत्सेवया दीर्घया ते जाता मयि दृढा मतिः ॥ हित्वाऽवद्यमिमं लोकं गन्ता मज्जनतामसि ॥ २४ ॥ मतिर्मयि निबद्धेयं न विपद्येत कर्हिचित् ॥ प्रजासर्गनिरोधेऽपि स्मृतिश्च मदनुग्रहात् ॥ २५ ॥ एतावदुक्त्वोपरराम तन्महद्भूतं नभोलिङ्गमलिङ्गमीश्वरम् ॥ अहं च तस्मै महतां महीयसे शीर्ष्णाऽवनामं विदधेऽनुकम्पितः ॥ २६ ॥ नामान्यनन्तस्य हतत्रपः पठन्गुह्यानि भद्राणि कृतानि च स्मरम् ॥ गां पर्यटंस्तुष्टमना गतस्पृहः कालं प्रतीक्षन्विमदो विमत्सरः ॥ २७ ॥ एवं कृष्णमतेर्ब्रह्मन्नसक्तस्यामलात्मनः ॥ कालः प्रादुरभूत्काले विद्युत्सौदामनी यथा ॥ २८ ॥

श्वास, आकाशके भीतर जाकी मूर्ति, ऐसे अलिंगमहत्तत्वरूप ईश्वर मोकों कहिकर चुप होगए, मैंभी उनकी कृपासे सब वडोंके वडे परमेश्वरके अर्थ शिरसे प्रणाम करतोभयो ॥ २६ ॥ लाज त्यागकर भगवत्के नाम लेतो भयो, जो मंगलीक छिपेहुये चरित्र उनै मैं सुमरूं पृथ्वीपर विचरूं मन प्रसन्न चाह कुछ नहीं, मद रहित ईर्षा त्याग कालकी वाट देखतो भयो ॥२७॥ हे ब्रह्मन् ! इसप्रकार श्रीकृष्ण भगवान्में बुद्धि लगाने और निर्मल अंतःकरण होने और आसक्तिरहित होनेसै समयपर याप्रकार काल प्राप्त भयो जैसे सुदामा पर्वत पर अकस्मात् विजली प्रगट होय है ॥ २८॥

प्रारब्धकर्म समाप्त भए तब पंचभूतको ये शरीर गिरपडो, शुद्धभगवतपार्षदको शरीर जो शुद्धसत्वमय है सो भगवान् मोको देते भये ॥ २९ ॥ कल्पके अंतमें या त्रिलोकीकों संहार कर एक समुद्रमें सोए समर्थ श्रीमन्नारायण जब शयनकी इच्छा करते भए, तब उनके श्वासके संग मैंभी भीतर प्रविष्ट होयगयो ॥ ३० ॥ सहस्रयुगके अंतमें उठकर जब ब्रह्माअंतर्यामी ईश्वरने जगत्के रचवेकी इच्छा करी तब मरीचि आदि ऋषि भए प्राणसे हम भए ॥ ३१ ॥ सब ठौर मेरी जानेकी गति है बाहर भीतर त्रिलोकीमें अखंडित ब्रह्मचर्य लेकर महाविष्णुके अनुग्रहसे पर्यटन करूं हूं ॥ ३२ ॥ देव जो श्रीइश्वर तिनके दिये जो स रि ग म प ध नि ये सप्त स्वर ब्रह्मरूप इनकी मूर्छना या वीणामें बजायके हरिकथा गाय विचरूं

प्रयुज्यमाने मयि तां शुद्धां भागवतीं तनुम् ॥ आरब्धकर्मनिर्वाणो न्यपतत्पाञ्चभौतिकः ॥ २९ ॥ कल्पान्त इदमादाय शयानेऽम्भस्युदन्वतः ॥ शिशयिषोरनुप्राणं विविशेऽन्तरहं विभोः ॥ ३० ॥ सहस्रयुगपर्यन्त उत्थायेदं सिसृक्षतः ॥ मरीचिमिश्रा ऋषयः प्राणेभ्योऽहं च जज्ञिरे ॥ ३१ ॥ अन्तर्बहिश्च लोकांस्त्रीन्पर्येम्यस्कन्दितव्रतः ॥ अनुग्रहान्महाविष्णोरविघातगतिः क्वचित् ॥ ३२ ॥ देवदत्तामिमां वीणां स्वरब्रह्मविभूषिताम् ॥ मूर्च्छयित्वा हरिकथां गायमानश्चराम्यहम् ॥ ३३ ॥ प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः ॥ आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥ ३४ ॥ एतद्ध्यातुरचित्तानां मात्रास्पर्शेच्छया मुहुः ॥ भवसिन्धुप्लवो दृष्टो हरिचर्यानुवर्णनम् ॥ ३५ ॥ यमादिभिर्योगपथैः कामलोभहतो मुहुः ॥ मुकुन्दसेवया यद्वत्तथात्माऽद्धा न शाम्यति ॥ ३६ ॥ सर्वं तदिदमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽनघ ॥ जन्मकर्मरहस्यं मे भवतश्चात्मतोषणम् ॥ ३७ ॥ सूत उवाच ॥ एवं संभाष्य भगवान्नारदो वासवीसुतम् ॥ आमन्त्र्य वीणां रणयन्ययौ यादृच्छिको मुनिः ॥ ३८ ॥

हूं ॥ ३३ ॥ भगवान्के चरित्र गाऊंहूं ध्यान करतेही श्रीनारायणको दर्शन हृदयमें तत्काल होयहै जैसे कोई बुलायेसे आय जायहै ॥ ३४ ॥ आतुरचित्तवारोंको विषयस्पर्शकी इच्छा करकै वारंवार संसारसमुद्रके तरवेकी नाव; हरिचरित्रवर्णन करनो ये हैं ॥ ३५ ॥ कामलोभसे ग्रसित जीवको मन योगके मार्ग यम नियमादिकसे ऐसो शांत नहीं होताहै जैसो मुकुंदकी सेवामात्रसे मन शांत होवै है ॥ ३६ ॥ हे पापरहित ! जो तुमने पूछो हो सो हमने सब जन्मकर्मको रहस्य कह्यो आपके मनकी प्रसन्नता होय सो कही ॥ ३७ ॥ सूतजी बोले कि उपरिचरवसुके वीर्यसे उत्पन्न

भई वासवीके पुत्र व्याससे भगवान्नारद मुनि ऐसे कहिकै आज्ञा ले वीणा बजाते हरिगुण गाते स्वप्रयोजनसंकल्पशून्य होके जाते भए ॥ ३८ ॥ अहो देवर्षि धन्य हैं, जो भगवतकी कीर्ति गावे हैं, हृष्ट होवे हैं, वीणा बजाकै सब आतुर जगत्को उद्धार करे हैं ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्भाग० महा० पु० व्यासनारदसंवादो नाम षष्ठोध्यायः ॥ ६ ॥ शौनकमुनि बोले कि ॥ हे सूत! जब नारदजी चले गए तब उनको सब अभिप्राय सुनकर समर्थ विभु व्यासजी कहा करतेभये सो कहिये ॥ १ ॥ ब्रह्माकी नदी सरस्वतीतीर ऋषीनको यज्ञ बढानेवारो पश्चिमकी ओर शम्याप्रास नामक आश्रम हो ॥२॥ बेरके समूहोंसे शोभित अपने वा आश्रमपर व्यासजी बैठे आचमन कर मनसे ध्यान करते भए ॥ ३ ॥ भक्तियोगसे सुंदर निर्मल मन निश्चल कर

अहो देवर्षिर्धन्योयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः॥गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत् ॥३९॥ इति श्रीभा०प्रथम० व्यासनारदसंवादे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥॥ शौनक उवाच ॥ निर्गते नारदे सूत भगवान्बादरायणः ॥ श्रुतवांस्तदभिप्रेतमितः किमकरोद्विभुः ॥ १ ॥ सूत उवाच ॥ ब्रह्मनद्यां सरस्वत्यामाश्रमः पश्चिमे तटे॥ शम्याप्रास इति प्रोक्त ऋषीणां सत्रवर्धनः ॥२॥ तस्मिन्स्व आश्रमे व्यासो बदरीखण्डमण्डिते ॥ आसीनोऽप उपस्पृश्य प्रणिदध्यौ मनः स्वयम् ॥ ३ ॥ भक्तियोगेन मनसि सम्यक् प्रणिहितेऽमले ॥ अपश्यत्पुरुषं पूर्वं मायां च तदपाश्रयाम् ॥ ४ ॥ यया संमोहितो जीव आत्मानं त्रिगुणात्मकम् ॥ परोऽपि मनुतेऽनर्थं तत्कृतं चाभिपद्यते ॥ ५ ॥ अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे ॥ लोकस्याजानतो विद्वांश्चक्रे सात्वतसंहिताम् ॥ ६ ॥ यस्यां वै श्रूयमाणायां कृष्णे परमपूरुषे ॥ भक्तिरुत्पद्यते पुंसः शोकमोहजरापहा ॥ ७ ॥

पूर्णपुरुषको देखते भए, और उनके आधीन माया देखते भए ॥ ४ ॥ जा मायासे मोहित जीव त्रिगुणसे परभी आत्माको त्रिगुणमय अर्थात् देहरूप मानता है, और उस देहमें होनेवाले सुखदुःख आत्मामें मानता है ॥ ५ ॥ अनर्थनाशक साक्षात् भक्ति योग भगवान्में लोग जब न करवे लगे, तो व्यासजी श्रीमद्भागवतसंहिता करतेभए ॥ ६ ॥ जाश्रीमद्भागवतसंहिताके प्रेमसे सुनेसे श्रीकृष्णपरमपुरुषमें शोक मोह जराकी नाश करनेवारी भक्ति पुरुषको उत्पन्न हो है ॥ ७ ॥

सो व्यासजी मुनि श्रीभागवतसंहिता करकै शोधके अपने शुकदेवपुत्रको पढावते भये,वे शुकदेवजी निवृत्तिमार्गमें सदा लगे रहैहै॥८॥शौनकजी बोले
कि निवृत्तिमार्गमें लगे, सबसे जिनको त्याग, आत्मामें रमण करनेहारे शुकदेवजी किस कारणसे ऐसी बडी संहिताको अभ्यास करतेभए ॥९॥सूतजी
बोले कि आत्माराम, क्रोधअहंकाररूप गांठरहित मुनिजन फल कामना रहित भक्ति हरिमें करैहै, क्योंकि हरिके ऐसेही गुण हैं ॥ १० ॥ श्रीहरिके
गुणोंमें मति लगानेहारे भगवान् शुकाचार्य महाव्याख्यान पढतेभए, श्रीशुकदेवजीको विष्णुके जन बडे प्रिय हैं ॥ ११ ॥ याके उपरांत परीक्षितराजऋषिके
जन्म कर्म मुक्ति मृत्यु और पांडुके पुत्रनकों स्वर्ग गमन श्रीकृष्ण कथानको उदय हम कहे हैं ॥ १२ ॥ तहां परीक्षितको जन्म कहिबेको

स संहितां भागवतीं कृत्वाऽनुक्रम्य चात्मजम् ॥ शुकमध्यापयामास निवृत्तिनिरतं मुनिः ॥ ८ ॥ शौनक उवाच॥
स वै निवृत्तिनिरतः सर्वत्रोपेक्षको मुनिः ॥ कस्य वा बृहतीमेतामात्मारामः समभ्यसत् ॥ ९ ॥ सूत उवाच॥ आत्मारामाश्च
मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ॥ कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः ॥ १० ॥ हरेर्गुणाऽऽक्षिप्तमतिर्भगवान्बादरायणिः
॥ अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः ॥११॥ परीक्षितोऽथ राजर्षेर्जन्मकर्मविलायनम्॥
संस्थां च पाण्डुपुत्राणां वक्ष्ये कृष्णकथोदयम् ॥१२॥ यदा मृधे कौरवसृंजयानां वीरेष्वथो वीरगतिं गतेषु ॥ वृकोदराविद्धगदाभिमर्शभग्नोरुदण्डे
धृतराष्ट्रपुत्रे ॥ १३ ॥ भर्तुः प्रियं द्रौणिरिति स्म पश्यन्कृष्णासुतानां स्वपतां शिरांसि ॥
उपाहरद्विप्रियमेव तस्य तज्जुगुप्सितं कर्म विगर्हयन्ति ॥ १४ ॥ माता शिशूनां निधनं सुतानां निशम्य घोरं परितप्यमाना
॥ तदाऽरुदद्बाष्पकलाकुलाक्षी तां सान्त्वयन्नाह किरीटमाली ॥ १५ ॥

प्रथम गर्भमें जब परीक्षित हे, तब अश्वत्थामाको ब्रह्मास्त्रसे श्रीकृष्णजीने रक्षा करी ये कहि कथाको प्रारंभ करेहै, जासमय युद्धमें कौरव पांडव धृष्टद्युम्नप्रभृतियोंके
वीरलोक वीरगतियोंको गए, भीमसेनकी फैंकी गदाके लगनेंसे धृतराष्ट्रके पुत्र दुर्योधनकी टांग टूटीथी ॥ १३ ॥ वा समय अश्वत्थामा
दुर्योधनको प्रियकरनेको द्रौपदीके सोयेभये पुत्रोंके शिर काटताहुआ ये बहुत अप्रिय बातही या निंदित कर्मकी शास्त्रमें निंदा है ॥ १४ ॥
आंखमेंसे आसू वहाती महादुःखी पुत्रनकी माता द्रौपदी बालकोंको मरनो यह घोरकर्म सुनकर रोरहीथी वा समय अर्जुन वाको रोवनो बन्दकर

प्रजा महाप्रलय आई मानतीभई ॥ ३१ ॥ प्रजाको और लोकको नाश देखे वासुदेवको मत लेकर अर्जुनने दोनोंको शांत कर अपने पास बुलाय लीनें ॥ ३२ ॥ अस्त्र शांत होनेपर बडे वेगसे वाको पकडकर कठोर, गौतमवंशकी गौतमी कृपीके सुत, अश्वत्थामाको, क्रोधसे ताम्रके समान लाल नेत्रवारो अर्जुन बांध लेतोभयो जैसे यज्ञ करवेवारे पशुको रस्सीसे बांधैहै ॥ ३३ ॥ शोकरोषयुक्त अर्जुनकी धर्मनिष्ठा देखवेको श्रीकृष्णजी सेनानिवासस्थान कंपूमेंकों बलसे रस्सीसे वैरिको बांधकर लियेजाते कुपित अर्जुनसे भगवान् कमलनयन बोले ॥ ३४ ॥ हे पार्थ! याकी रक्षा करवेकों आप योग्य नहीं, या ब्राह्मण अधमको मारो, जो ये निरपराधी सोए भए बालकनको रातमें मारतो भयो ॥ ३५ ॥ धर्मशास्त्रमें ऐसे है कि

प्रजोपप्लवमालक्ष्य लोकव्यतिकरं च तम् ॥ मतं च वासुदेवस्य संजहाराऽर्जुनो द्वयम् ॥ ३२ ॥ तत आसाद्य तरसा दारुणं गौतमीसुतम् ॥ बबन्धाऽमर्षताम्राक्षः पशुं रशनया यथा ॥ ३३ ॥ शिबिराय निनीषन्तं दाम्ना बद्ध्वा रिपुं बलात् ॥ प्राहार्जुनं प्रकुपितो भगवानम्बुजेक्षणः ॥३४॥ मैनं पार्थाऽर्हसि त्रातुं ब्रह्मबन्धुमिमं जहि ॥ योऽसावनागसः सुप्तानवधीन्निशि बालकान् ॥ ३५ ॥ मत्तं प्रमत्तमुन्मत्तं सुप्तं बालं स्त्रियं जडम् ॥ प्रपन्नं विरथं भीतं न रिपुं हन्ति धर्मवित् ॥ ३६ ॥ स्वप्राणान्यः परप्राणैः प्रपुष्णात्यघृणः खलः ॥ तद्वधस्तस्य हि श्रेयो यद्दोषाद्यात्यधः पुमान् ॥ ३७ ॥ प्रतिश्रुतं च भवता पाञ्चाल्यै शृण्वतो मम ॥ आहरिष्ये शिरस्तस्य यस्ते मानिनि पुत्रहा ॥ ३८ ॥ तदसौ वध्यतां पाप आततायात्मबन्धुहा ॥ भर्तुश्च विप्रियं वीर कृतवान्कुलपांसनः ॥ ३९ ॥

मद्यादिकसे मत्त १ और कोई तरहसे प्रमत्त २ ग्रहवातादिसे उन्मत्त ३ सोयाहुआ जीव ४ बालक ५ स्त्री ६ जो कोईभी उद्यम न करसके वो ७ अपनी शरण आया होय वो ८ इन आठ जीवोंकों धर्मवेत्ता जो अपनो वैरि होय तौभी नहीं मारते हैं ॥ ३६ ॥ पराएके प्राण लेकै जो निर्दयी खल अपनें प्राण पुष्ट करता है, उसका वध करनाही श्रेष्ठ है न करनेके दोषते पुरुष नरकमें जावै हैं ॥ ३७ ॥ मेरे सुनते भये द्रौपदीके आगे आपने प्रतिज्ञा कीनींही, कि हे मानिनि! जो तेरो पुत्र मारनहारो है वाको शिर काटकै लाऊंगो ॥ ३८ ॥ आततायी अपने पुत्रनके मारनहारे या पापीको मारो हे वीर ! दुर्योधनभी इन बालकनको देख दुःखित भयो, सो ये कुलमें धूर समान है ॥ ३९ ॥

ऐसे धर्मकी परीक्षा करवेवारे कृष्णजी बहोत अर्जुनसे कहते भए यद्यपि अपने पुत्रको मारवेवारो है तथापि गुरुपुत्र है, ये जान अर्जुन मारनेकी इच्छा न करतो भयो ॥ ४० ॥ गोविंद प्रिय सारथी अर्जुन अपने कंपूमें आयकर मरे पुत्रोंको सोच करती भई द्रौपदीको जाय देतोभयो ॥ ४१ ॥ तिस प्रकारसे लाए हुए पशु समान फांसीमें बंधे, निंदितकर्मसे नीचेको मुख किये अपराधी गुरुपुत्र. अश्वत्थामाको देखकर कृपा करके शोभनस्वभाववारी द्रौपदी नमस्कार करतीभई ॥ ४२ ॥ उसका बांधना नहीं सहती भई, द्रौपदी बोली छोडो २ ॥ ये ब्राह्मण हमारो अत्यंत गुरु है ॥४३ ॥ जिनसे गोप्यमंत्रसहित धनुर्वेद सीखे हो ब्रह्मअस्त्रको चलानो बुलानो दोनो बात तुमें याके पिताने सिखाई,जिन द्रोणाचार्यकी

एवं परीक्षता धर्मं पार्थः कृष्णेन चोदितः ॥ नैच्छद्धन्तुं गुरुसुतं यद्यप्यात्महनं महान् ॥ ४० ॥ अथोपेत्य स्वशिबिरं
गोविन्दप्रियसारथिः ॥ न्यवेदयत्तं प्रियायै शोचन्त्या आत्मजान्हतान् ॥ ४१ ॥ तथाहृतं पशुवत्पाशबद्धमवाङ्मुखं
कर्मजुगुप्सितेन ॥ निरीक्ष्य कृष्णाऽपकृतं गुरोः सुतं वामस्वभावा कृपया ननाम च ॥ ४२ ॥ उवाच चाऽसहन्त्यस्य
बन्धनानयनं सती॥ मुच्यतां मुच्यतामेष ब्राह्मणो नितरां गुरुः ॥४३॥ सरहस्यो धनुर्वेदः सविसर्गोपसंयमः ॥ अस्त्र-
ग्रामश्च भवता शिक्षितो यदनुग्रहात् ॥ ४४ ॥ स एव भगवान्द्रोणः प्रजारूपेण वर्तते ॥ तस्याऽऽत्मनोऽर्धं प-
त्न्याऽऽस्ते नान्वगाद्वीरसूः कृपी ॥ ४५ ॥ तद्धर्मज्ञ महाभाग भवद्भिर्गौरवं कुलम् ॥ वृजिनं नार्हति प्राप्तं पूज्यं वन्द्य-
मभीक्ष्णशः ॥ ४६ ॥ मा रोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता ॥ यथाऽहं मृतवत्साऽऽर्ता रोदिम्यश्रुमुखी मुहुः ॥
॥ ४७ ॥ यैः कोपितं ब्रह्मकुलं राजन्यैरकृतात्मभिः ॥ तत्कुलं प्रदहत्याशु सानुबन्धं शुचाऽर्पितम् ॥ ४८ ॥

कृपासे सब अस्त्र शस्त्र यंत्र मंत्र तंत्र तुम सीखेहो ॥४४ ॥ सो ये भगवान्द्रोणाचार्य पुत्ररूप होके वर्तरहे हैं, उन द्रोणाचार्यकी आधी देह कृपी उनकी स्त्री अभी है सो या पुत्रके रहिवेसें वो सती न भई, या एकबालकसे जीवे है, जैसे मैं मरे पुत्रोंको सोच करूं हूं तैसे वो सोच न करै ॥ ४५ ॥ ताते हे धर्मज्ञ हे महाभाग ! आप गुरुकुलकों कष्ट देनें योग्य नहीं, वारंवार पूज्य और वंदन करवे योग्य ब्राह्मण है ॥ ४६॥ पतिव्रता गौतमी याकी मा न रोवे जैसे पुत्रोंके मरनसे वारंवार आंसुओंसे दुःखित हो मैं रोतीहूं ॥ ४७ ॥ ब्राह्मणकुल जापै कोप करै वो राजा होवै तौभी वाको

परिवार वंश वा ब्राह्मणके शोकके मारे झटपट भस्म होजाताहै ॥ ४८ ॥ सूतजी बोले कि ॥ हे ब्राह्मणो! धर्म न्याय दया निष्कपट समानभाव वडप्पनके द्रौपदीके वचन सुन धर्मपुत्र युधिष्ठिर वडी प्रशंसा करतेभए ॥ ४९ ॥ नकुल सहदेव सात्यकी अर्जुन देवकीपुत्र भगवान् और जो स्त्रियें हीं सो सब प्रसन्न भई ॥ ५० ॥ तहां क्रोध कर भीमसेन बोले कि, याको मारनोही श्रेष्ठ हो, क्यौंकी अपने भर्ता दुर्योधन और अपनो दोनोंको कुछ प्रयोजन सिद्ध न भयो, वृथा सोए हुए बालक याने मारे ॥ ५१ ॥ भीमसेनकी ये वाणी सुन दौपदी और भगवान् श्रीकृष्णजी अर्जुनकी ओर देख हंसके ये बोले ॥ ५२ ॥ श्रीभगवान् बोले कि आततायी वधके योग्य है परन्तु ब्राह्मण होय तो न मारनो, दोनों

सूत उवाच ॥ धर्म्यं न्याय्यं सकरुणं निर्व्यलीकं समं महत् ॥ राजा धर्मसुतो राज्ञ्याः प्रत्यनन्दद्वचो द्विजाः ॥४९॥ नकुलः सहदेवश्च युयुधानो धनंजयः ॥ भगवान्देवकीपुत्रो ये चान्ये याश्च योषितः ॥ ५० ॥ तत्राहाऽमर्षितो भीमस्तस्य श्रेयान्वधः स्मृतः ॥ न भर्तुर्नात्मनश्चार्थे योऽहन्सुप्ताञ्छिशून्वृथा ॥ ५१ ॥ निशम्य भीमगदितं द्रौपद्याश्च चतुर्भुजः ॥ आलोक्य वदनं सख्युरिदमाह हसन्निव ॥ ५२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मबन्धुर्न हन्तव्य आततायी वधार्हणः ॥ मयैवोभयमाम्नातं परिपाह्यनुशासनम् ॥ ५३ ॥ कुरु प्रतिश्रुतं सत्यं यत्तत्सान्त्वयता प्रियाम् ॥ प्रियं च भीमसेनस्य पाञ्चाल्या मह्यमेव च ॥५४॥ सूत उवाच ॥ अर्जुनः सहसाऽऽज्ञाय हरेर्हार्दमथासिना ॥ मणिं जहार मूर्धन्यं द्विजस्य सहमूर्धजम्॥५५॥विमुच्य रशनाबद्धं बालहत्याहतप्रभम्॥तेजसा मणिना हीनं शिबिरान्निरयापयत्॥५६॥

बात हमनें ही कहीहै, परंतु ब्राह्मणके लिये शरीरदंड न देनो हमारी आज्ञा है कि रक्षा करो, सदा ब्राह्मणकों धन देओ, पूजो, ब्राह्मण कैसोही अपराध करै तोभी न मारौ, ये हमारी आज्ञा है ॥ ५३ ॥ और द्रौपदीके सामने जो प्रतिज्ञा करी वो पूरी करो, भीमसेनको प्रिय होय सोभी करो, मेरीभी प्रसन्नता करो, द्रौपदीकी प्रसन्नता करो ॥ ५४ ॥ सूतजी बोले कि हरिके हृदयकी अर्जुनने जानकर वा अश्वत्थामा ब्राह्मणके मस्तककी मणि तरवारसे मूंड चीरकर निकासलीनी मूंड मुडायो ॥ ५५ ॥ रस्सीसे खोलदीनो, बालहत्यासे वाकी कांति न रही, तेज वामें नहीं, मणि छीनलीनी, अपने कंपूमेंसे निकासदीनों ॥ ५६ ॥

मुंडन करो, धन लेलीनो, स्थानसे निकासो, येही ब्राह्मणोंको वध है, और कुछ शरीरदंड नहीं है ॥ ५७ ॥ पुत्रशोकसे व्याकुल सब पांडव द्रौपदीको आगे करके अपने मरे सुतनको दाहकर्म करते भए ॥ ५८ ॥ इति श्रीमद्भागवतप्रथमस्कन्धभाषा० द्रौणि० निग्रहो नाम स०ध्यायः ॥७॥ सूतजी बोले कि॥याके उपरांत मरेभए अपने बंधु जो जल चाहतेथे उनको तिलांजली देनेको द्रौपदीकों साथ लेकर स्त्रीनको आगे कर गंगातीर जाते भए ॥ १॥ वे सब जल देकै वारंवार विलाप कर हरिके चरणकमलकी रजसे पवित्र जल वारी गंगामें न्हाए ॥२॥ तहां युधिष्ठीर धृतराष्ट्र भीमादि

वपनं द्रविणादानं स्थानान्निर्यापणं तथा ॥ एष हि ब्रह्मबन्धूनां वधो नान्योऽस्ति दैहिकः ॥ ५७ ॥ पुत्रशोकातुराः सर्वे पाण्डवाः सह कृष्णया ॥ स्वानां मृतानां यत्कृत्यं चक्रुर्निर्हरणादिकम् ॥ ५८ ॥ इति श्रीभा०प्रथ०द्रौणिनिग्रहो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ अथ ते संपरेतानां स्वानामुदकमिच्छताम् ॥ दातुं सकृष्णा गङ्गायां पुरस्कृत्य ययुः स्त्रियः ॥ १ ॥ ते निनीयोदकं सर्वे विलप्य च भृशं पुनः ॥ आप्लुता हरिपादाब्जरजःपूतसरिज्जले ॥२॥ तत्रासीनं कुरुपतिं धृतराष्ट्रं सहानुजम् ॥ गान्धारीं पुत्रशोकार्तां पृथां कृष्णां च माधवः ॥ ३ ॥ सान्त्वयामास मुनिभिर्हतबन्धूञ्छुचार्पितान् ॥ भूतेषु कालस्य गतिं दर्शयन्नप्रतिक्रियाम् ॥ ४ ॥ साधयित्वाऽजातशत्रोः स्वं राज्यं कितवैर्हृतम् ॥ घातयित्वाऽसतो राज्ञः कचस्पर्शक्षतायुषः ॥ ५ ॥ याजयित्वाश्वमेधैस्तं त्रिभिरुत्तमकल्पकैः ॥ तद्यशः पावनं दिक्षु शतमन्योरिवातनोत् ॥ ६ ॥ आमन्त्र्य पाण्डुपुत्रांश्च शैनेयोद्धवसंयुतः ॥ द्वैपायनादिभिर्विप्रैः पूजितैः प्रतिपूजितः ॥ ७ ॥

सहित बैठे हैं, पुत्रशोकातुर गांधारी कुंती द्रौपदी आदिको ॥ ३ ॥ कि जो बंधुजनोंके मरनेसे शोकसें व्याकुल थे उन्हें श्रीकृष्ण मुनियों सहित जाको कोई कछू न करसके ऐसे कालकी गति सब जीवनमें दिखावते भए शांत करत भये ॥ ४ ॥ कपटी दुर्योधनादिको करकै हरे राज्यको युधिष्ठिरको दिवायो द्रौपदीके जूडा पकडनेसे नष्ट आयु खोटें राजानको मरवाय ॥ ५ ॥ उत्तम सामग्री युक्त तीन अश्वमेध करवाय उनको पवित्रयश इंद्रकी नांई सब दिशांनमें विस्तार करतेभए ॥ ६ ॥ पांडुपुत्रोंसे आज्ञा लेकर सात्यकी उद्धव सहित महापूजनीय द्वैपायनआदि विप्रोंसें पूजित हो ॥ ७ ॥

हे ब्रह्मन् ! श्रीकृष्णजीकी द्वारका जानेकी जब इच्छा भई तब रथमें बैठे वा समय भयभीत दौडी आती उत्तराको देखतेभये ॥८॥ उत्तरा बोली हे महायोगिन्! हे देवनके देव हे जगत्पते ! मेरी रक्षा करो २ जहां परस्पर मृत्यु है या विश्वमें आपकें विना अभयदाता काऊकोंहू नाय देखूहूं ॥ ९ ॥ हे ईश! तपो लोहसदृश बाण सामनेंसे चलो आवै है हे समर्थ हे नाथ ! मेरो दाह यह यथेष्ट करै परन्तु मेरो गर्भ न गिरै सो उपाय करो ॥ १० ॥ सूतजी बोले कि भक्तवत्सल भगवान् वाको वचन सुन पांडव एक न रहै ऐसो करवेको अश्वत्थामानें अस्त्र चलायो है ये जानतेभए ॥ ११ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ! तासमय पांडव सब पांच बाण अपने सामने प्रकाश करते आतेहैं ये देखकर अपने अस्त्र ग्रहण करतेभए ॥१२॥

गन्तुं कृतमतिर्ब्रह्मन्द्वारकां रथमास्थितः ॥ उपलेभेऽभिधावन्तीमुत्तरां भयविह्वलाम् ॥ ८ ॥ पाहि पाहि महायोगिन्देवदेव जगत्पते ॥ नान्यं त्वदभयं पश्ये यत्र मृत्युः परस्परम् ॥ ९ ॥ अभिद्रवति मामीश शरस्तप्तायसो विभो ॥ कामं दहतु मां नाथ मा मे गर्भो निपात्यताम् ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ उपधार्य वचस्तस्या भगवान्भक्तवत्सलः ॥ अपाण्डवमिदं कर्तुं द्रौणेरस्त्रमबुध्यत ॥११॥ तर्ह्येवाऽथ मुनिश्रेष्ठ पाण्डवाः पञ्च सायकान् ॥ आत्मनोऽभिमुखान्दीप्तानालक्ष्यास्त्राण्युपाददुः ॥ १२ ॥ व्यसनं वीक्ष्य तत्तेषामनन्यविषयात्मनाम् ॥ सुदर्शनेन स्वास्त्रेण स्वानां रक्षां व्यधाद्विभुः ॥ १३ ॥ अन्तस्थः सर्वभूतानामात्मा योगेश्वरो हरिः ॥ स्वमाययाऽवृणोद्गर्भं वैराट्याः कुरुतन्तवे ॥ १४ ॥ यद्यप्यस्त्रं ब्रह्मशिरस्त्वमोघं चाप्रतिक्रियम् ॥ वैष्णवं तेज आसाद्य समशाम्यद्भृगूद्वह ॥ १५ ॥ मा मंस्था ह्येतदाश्चर्यं सर्वाश्चर्यमयेऽच्युते ॥ य इदं मायया देव्या सृजत्यऽवति हन्त्यजः ॥ १६ ॥

और काऊ विषयमें जिनको मन नहीं ऐसे पांडवोंपर कष्ट देखकर श्रीकृष्ण अपने भक्तोंकी सुदर्शन चक्रसे रक्षा करतेभए ॥ १३ ॥ सब जीवमात्रके अंतर्यामी, व्यापक योगियोंके ईश्वर, सकल दुःख हरवेवारे; हरि अपनी मायाकरकै कौरवनके संतानकी वृद्धिके लिये विराटकी बेटी उत्तराके गर्भकी रक्षा करतेभए ॥ १४ ॥ यद्यपि जाको कोई सामनो न करसकै विफल नहीं ऐसो ब्रह्मास्त्र है, तथापि विष्णुके सुदर्शन चक्रके सामने सब शांत होयहै हे शौनक ! ॥ १५ ॥ सबके आश्चर्य करानेवारे भगवान्में ये कुछ आश्चर्य मत मानो, जो भगवान् अपनी प्रकाशनी माया करकै या

विश्वको रचे है, रक्षा करेहैं, नाश करेहै, आप अजन्मा हैं ॥ १६ ॥ ब्रह्मास्त्रसे छूटे पुत्र, द्रौपदी सहित; सती कुंती, जानेके समय कृष्णसे ये बोली ॥ १७ ॥ कुंती बोली कि ॥ आदिपुरुष प्रकृतिसे परे काउसे लखे न जांय सब जीवमात्रके बाहर भीतर स्थित आप ईश्वरकूं नमस्कार करूंहूं ॥ १८ ॥ मायारूप चिकसे कछु दीखो, कछु न दीखो, इंद्रियजन्य ज्ञानसे परे अविनाशी आपको मैं अज्ञानिनी कहा जानो, मूढ दृष्टिवारेको आप नहीं लखाईमें आवोहो, जैसे नट अनेक नाट्योंको धारेहै, सो कोई न जानसकै है ॥ १९ ॥ जीवात्माके द्वारा ईश्वरको देखनेवारे परमहंस मनन करवेवारे मुनि, और रागादिकरहित निर्मल अंतःकरणवारोंकेभी जानवेमें न आवो हो, सो भक्तियोग विधानको अवतार धारनेहारे

ब्रह्मतेजोविनिर्मुक्तैरात्मजैः सह कृष्णया ॥ प्रयाणाभिमुखं कृष्णमिदमाह पृथा सती ॥ १७ ॥ कुन्त्युवाच ॥ नमस्ये पुरुषं त्वाऽऽद्यमीश्वरं प्रकृतेः परम् ॥ अलक्ष्यं सर्वभूतानामन्तर्बहिरवस्थितम् ॥ १८ ॥ मायाजवनिकाच्छन्नमज्ञाधोक्षजमव्ययम् ॥ न लक्ष्यसे मूढदृशा नटो नाट्यधरो यथा ॥ १९ ॥ तथा परमहंसानां मुनीनाममलात्मनाम् ॥ भक्तियोगविधानार्थं कथं पश्येम हि स्त्रियः ॥ २० ॥ कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च ॥ नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः ॥ २१ ॥ नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ॥ नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥ २२ ॥ यथा हृषीकेश खलेन देवकी कंसेन रुद्धाऽतिचिरं शुचार्पिता ॥ विमोचिताऽहं च सहात्मजा विभो त्वयैव नाथेन मुहुर्विपद्गणात् ॥ २३ ॥ विषान्महाग्नेः पुरुषाददर्शनादसत्सभाया वनवासकृच्छ्रात् ॥ मृधे मृधेऽनेकमहारथास्त्रतो द्रौण्यस्त्रतश्चास्मि हरेऽभिरक्षिता ॥ २४ ॥

आपको मैं स्त्रीजन कैसे देखसकूं ॥ २० ॥ वासुदेव देवकीनंदन नंदगोपकुमार गोविंद श्रीकृष्णजीको नमस्कार होय ॥ २१ ॥ जिनकी नाभिमें कमल तिनकों नमस्कार होय, कमलमालाधारी कमल सदृशनेत्र कमल समान चरणवारे हरिको नमस्कार होय ॥२२॥ हे हृषीकेश ! कंससै बंदी करीहुई चिरकालसै दुःखी शोच करती देवकी एकहीवार आपने कष्टसै छुडाई और मेरी तौ आप समर्थने वारंवार विपतोंसे पुत्रसहित रक्षा करी, मासे अधिक मोपे दया कीनी॥२३॥जिन विपत्तियोंमें रक्षा करि वे ये हैं,कि भीमसेनको विषके लडुआ दिये वाते, लाक्षागृहमें जराए वातें,पुरुष खानेवारे हिडंबादि-

कके दीखनेसे, खोटी सभासे, वनवासके कष्टसे, संग्राममें अनेक महारथियोंके अस्त्रतें, अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रतें, और सब ओरकी विपतोंसे रक्षा कीनी ॥ २४ ॥ हे जगद्[illegible] ! हमें तौ जब तब जहां तहां विपत्तेई आवै, जिन विपत्तोंमें मोक्षदाता तुम्हारो दर्शन तौ होयहै जासे फेर संसारमें जन्म नहीं होयहै ॥ २५ ॥ सत्कुलमें जन्म, ऐश्वर्य, शास्त्र, लक्ष्मीसे पुरुषको मद होयहै, ऐसे पुरुष भक्तोंसे सेवित श्रीकृष्ण गोविंद नारायण वासुदेव नाम उच्चारण करवेको योग्य नहीं होयहै ॥ २६ ॥ जिनको कुछ चाह नहीं अकिंचन पुरुषोंके धन गुणोंकी वृत्ति रहित आत्माराम शांत मोक्षदाता आपको नमस्कार होय ॥ २७ ॥ आपको मैं काल, ईश्वर, आदि अंत रहित प्रभु, सबसे समान भावसें वर्तनेहारे मान्तीहूं सब जीवनमें कलह

विपदः सन्तु नः शश्वत्तत्र तत्र जगद्गुरो ॥ भवतो दर्शनं यत्स्यादपुनर्भवदर्शनम् ॥ २५ ॥ जन्मैश्वर्यश्रुतश्रीभिरेधमानमदः पुमान् ॥ नैवार्हत्यभिधातुं वै त्वामकिंचनगोचरम् ॥ २६ ॥ नमोऽकिंचनवित्ताय निवृत्तगुणवृत्तये ॥ आत्मारामाय शान्ताय कैवल्यपतये नमः ॥ २७ ॥ मन्ये त्वां कालमीशानमनादिनिधनं विभुम् ॥ समं चरन्तं सर्वत्र भूतानां यन्मिथः कलिः ॥ २८ ॥ न वेद कश्चिद्भगवंश्चिकीर्षितं तवेहमानस्य नृणां विडम्बनम् ॥ न यस्य कश्चिद्दयितोऽस्ति कर्हिचिद्द्वेष्यश्च यस्मिन्विषमा मतिर्नृणाम् ॥ २९ ॥ जन्म कर्म च विश्वात्मन्नजस्याकर्तुरात्मनः ॥ तिर्यङ्नृषिषु यादस्सु तदत्यन्तविडम्बनम् ॥ ३० ॥ गोप्याऽऽददे त्वयि कृतागसि दाम तावद्या ते दशाऽश्रुकलिलाञ्जनसंभ्रमाक्षम् ॥ वक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य सा मां विमोहयति भीरपि यद्बिभेति ॥ ३१ ॥

करनेके कारणभी आपही हो ॥ २८ ॥ हे भगवन् ! मनुष्योंके एक अनुकरण मात्र चेष्टा करनेहारे तुम्हारी करवेकी इच्छाकू कोई न जानेहै, न कोई आपको प्रिय न अप्रिय है तथापि मनुष्योंकी आपमें विषम बुद्धि होयहै कि यापै आप कृपा करो याको दंड दोहो ऐसे पुरुष आपको नहीं जान्ते ॥ २९ ॥ हे विश्वात्मन् ! सबमें तुम व्यापक हो तुम्हारे अकर्त्ताके कर्म, अजन्माके जन्म, आश्चर्यमय है, कभी वाराहरूप, कभी रामचन्द्ररूप, कभी वामनरूप, कभी मत्स्यरूप तुम धारण करोहो, ये सब अत्यंत कथन मात्र है ॥ ३० ॥ जिस समय दहीके भाजन फोडनेंसे यशोदा तुम्हारे अपराधको देखके ताडन करनेको रस्सी लेती भई, तब आसुओंसे अंजन वहाते व्याकुल नेत्र, मुख नीचे करे भयके भावसे बैठे हे वा

समयकी आपकी दशा मोको मोह करावैहै, जिन तुमसे भय डरै है सो आप डरे ये आश्चर्य है ॥ ३१ ॥ पृण्यश्लोकोंके कीर्तिके लिये प्रिय यदुके वंशके मलयागिरिपर जैसे चन्दन उपजै ताकी नाई अजन्मानें जन्म लियो ऐसे कोई कहे हैं ॥ ३२ ॥ कोई ऐसे कहै हैं कि वसुदेव देवकीकी चाहनातें अवतरे, आप तो जन्म नहीं लेवे है, तोभी या विश्वके कल्याणके लिये और देवद्रोहीनके वधके लिये अवतार धारे हैं, ॥ ३३ ॥ और कोई ऐसै कहै हैं कि भूभार उतारवेको समुद्रमैं जैसे नाव डूबै वाकी रक्षाकी नांई बहुत भारसे दुःखी पृथ्वीको देख तुम ब्रह्माकी प्रार्थनासे अवतार लेतेभए ॥ ३४ ॥ जब या संसारके जीव अविद्या काम कर्मसें दुःखी भए, तब आप सब जीवौंको श्रवण स्मरण योग्य चरित्र करनेको अवतार लेतेभए ऐसे कोई आचार्य कहैं हैं ॥ ३५ ॥ तुम्हारी लीलाको सुनैं हैं, गावैहैं, सुनावैहैं, वारंवार स्मरण करैं हैं, आनंदित होयहैं, वे मनुष्य थोडेही कालमें संसारके प्रवाहको नाशक तुह्मारो चरणकमल देखैं हैं ॥ ३६ ॥ हे भक्तअभीष्टदायक ! हे प्रभो ! तुह्मारे चरणके सिवाय हमें कुछभी आश्रय नहीं है राजा दुःख पानेके कारण हमसै वैर करैं हैं फिर आप हम सुत्हृदौंको छोडकर कैसे जाओहो ॥ ३७ ॥ यादवसाहित हमारे पांडवनके नामरूपसे कहा है, जो आपको दर्शन होय सो श्रेष्ठ है, जैसे इंद्रियोंको स्वामी जीवको दर्शन श्रेष्ठ है॥३८॥ हे गदाधर ! जैसी अब पृथ्वी शोभित है, ऐसी फेर नहीं शोभा देगी, क्योंकि

केचिदाहुरजं जातं पुण्यश्लोकस्य कीर्तये ॥ यदोः प्रियस्याऽन्ववाये मलयस्येव चन्दनम् ॥ ३२ ॥ अपरे वसुदेवस्य देवक्यां याचितोऽभ्यगात् ॥ अजस्त्वमस्य क्षेमाय वधाय च सुरद्विषाम् ॥ ३३ ॥ भारावतरणायाऽन्ये भुवो नाव इवोदधौ ॥ सीदन्त्या भूरिभारेण जातो ह्यात्मभुवाऽर्थितः ॥ ३४ ॥ भवेऽस्मिन्क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभिः ॥ श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन ॥ ३५ ॥ शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्यभीक्ष्णशः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ॥ त एव पश्यन्त्यचिरेण तावकं भवप्रवाहोपरमं पदाम्बुजम् ॥ ३६ ॥ अप्यद्य नस्त्वं स्वकृतेहित प्रभो जिहाससि स्वित्सुहृदोऽनुजीविनः ॥ येषां न चान्यद्भवतः पदाम्बुजात्परायणं राजसु योजितांहसाम् ॥ ३७ ॥ के वयं नामरूपाभ्यां यदुभिः सह पाण्डवाः ॥ भवतोऽदर्शनं यर्हि हृषीकाणामिवेशितुः ॥३८॥ नेयं शोभिष्यते तत्र यथेदानीं गदाधर ॥ त्वत्पदैरङ्किता भाति स्वलक्षणविलक्षितैः ॥ ३९ ॥

अब तौ आपके वज्र यव अंकुश आदि चिन्हवारे चरणोंसे शोभित है, फिर इन चिन्होंका अभाव होजायगा ॥३९॥ ये देश सुंदर समृद्धिवान् हैं, सुंदर
पकी औषधी वेलैं है वन पर्वत नदी ये सब आपके देखवेसें वृद्धिको प्राप्त है ॥४०॥ यासे हे विश्वेश ! हे विश्वात्मन् ! हे विश्वमूर्ते ! मेरी अपने जनोंमें,
पांडवोंमें, यादवोंमें स्नेहकी जो फांसी है याको तुम काटो ॥ ४१ ॥ हे मधुपते ! तुह्मारेमें मेरी ये बुद्धि सदा लगीरहै और कहीं न लगै, जैसे गंगाको
प्रवाह निरंतर समुद्रमें मिलोरहैहै ॥ ४२ ॥ हे श्रीकृष्ण ! हे अर्जुनसखे ! हे यादवश्रेष्ठ ! हेपृथ्वीद्रोहीक्षत्रीवंशनाशक ! हे अक्षीणप्रभाव ! हे गोविंद !
हे गोब्राह्मणदेवताक्लेशनाशक अवतारधारक ! हे योगीश्वर ! हे अखिलगुरो ! हे भगवन् ! तुह्मारे अर्थ नमस्कार होय ॥४३॥ सूतजी बोले कि ॥ सब

इमे जनपदाः स्वृद्धाः सुपक्कौषधिवीरुधः ॥ वनाद्रिनद्युदन्वन्तो ह्येधन्ते तव वीक्षितैः ॥ ४० ॥ अथ विश्वेश विश्वात्मन्विश्वमूर्ते स्वकेषु मे ॥ स्नेहपाशमिमं छिन्धि दृढं पाण्डुषु वृष्णिषु ॥ ४१ ॥ त्वयि मेऽनन्यविषया मतिर्मधुपतेऽसकृत् ॥ रतिमुद्वहतादद्धा गङ्गेवौघमुदन्वति ॥ ४२ ॥ श्रीकृष्ण कृष्णसख वृष्ण्यृषभाऽवनिध्रुग्राजन्यवंशदहनाऽनपवर्गवीर्य ॥ गोविन्द गोद्विजसुरार्तिहरावतार योगेश्वराऽखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥४३॥ सूत उवाच ॥ पृथयेत्थं कलपदैः परिणूताखिलोदयः ॥ मन्दं जहास वैकुण्ठो मोहयन्निव मायया ॥ ४४ ॥ तां बाढमित्युपामन्त्र्य प्रविश्य गजसाह्वयम् ॥ स्त्रियश्च स्वपुरं यास्यन्प्रेम्णा राज्ञा निवारितः ॥ ४५ ॥ व्यासाद्यैरीश्वरेहाज्ञैः कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ प्रबोधितोऽपीतिहासैर्नाऽबुध्यत शुचार्पितः ॥ ४६ ॥

महिमासें उदित श्रीकृष्णजीकी मधुरपदोंसे जब स्तुति कीनी तब भगवान् मंदमंद हंसे, मानो मायाकरकै मोहकराय रहेहै, हांसी हरिकी सब जनों-
को उन्माद करदेवैहै (हासो जनोन्मादकरी च माया) ये द्वितीयस्कंधमें लिखाहै ॥ ४४ ॥ हे कुंती ! जो तुम वर मागो सो संपूर्ण होय, ऐसे कहि
हस्तिनापुरमें आय सुभद्रादिस्त्रियोंसे पूछकर अपने पुरकों जातेभए, राजा युधिष्ठिरने बहुत कही आप यहाई रहो ॥ ४५ ॥ ईश्वरकी चेष्टा जानवे-
वारे व्यासादिकोंने और अद्भुतकर्मवारे श्रीकृष्णजीने अनेक इतिहासोंसे ज्ञानभी दीनो, तोभी शोकके मारे युधिष्ठिरको मन शांत नहीं भयो ॥४६॥

हे ब्राह्मणो ! अपने बंधुओंके वधका चिन्तन करते स्नेह और मोहके वश हो राजा युधिष्ठिर चित्तमें अज्ञान होनेके कारण कहनेलगे ॥ ४७ ॥ अहो मुझ दुरात्माके अज्ञानको तौ देखो कि पराये शरीरके निमित्त जिसै सृगालादि खाजाते हैं मैंने अनेक अक्षौहिणीयोंका नाश किया अक्षौहिणीकी ये संख्या है २१८७० जामें हाथी इतनेई २१८७० रथ ६५६१० जामें घोडे १०९३५० जामें पदाति इसै अक्षौहिणी कहैं हैं ॥४८॥ बालक, ब्राह्मण, सुहृत्, मित्र, पिता, भ्राता गुरुद्रोही मेरो नरकसे क्रोडहो वर्षमेंभी उद्धार न होवेगो ॥ ४९ ॥ धर्मयुद्धमें द्वेषियोंको वध करनो प्रजापालक राजाको पाप नहीं होय है ये शिक्षाको वचन मोकों बोध नहीं करे है ॥ ५० ॥ मोसे मारे गए बंधुवारी इन स्त्रीनको जो द्रोह मोसें उठो है सो कितने ही गृहस्थाश्रमके कर्म करो तोभी वो पाप न जावैगो ॥ ५१ ॥ जैसे कीचसे कीच धोया नहीं जाता है, मदिरासे मदिराका पात्र शुद्ध नहीं होता है, तैसेही हटवस एक जीवकी भी हिंसा यज्ञोंसे नहीं छूटती है ॥५२॥ इतिश्रीम० भा० कुंतीस्तुतियुधिष्ठिरानुतापो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ॥८॥ सूतजी बोले कि॥ इस प्रकार प्रजाके द्रोहसे डर कर युधिष्ठिर सब धर्म जानवेकी इच्छा करकै जहां भीष्मपितामह पडे है वहां कुरुक्षेत्रमें आवते भए ॥१॥ तब सब भाई सुवर्णके साज पडे घोडा जुते रथमें सवार होकर आवतेभए वहां व्यासजी धौम्य कृपादिक भी आतेभए ॥ २ ॥ हे शौनक !

आह राजा धर्मसुतश्चिन्तयन्सुहृदां वधम् ॥ प्राकृतेनात्मना विप्राः स्नेहमोहवशंगतः ॥४७॥ अहो मे पश्यताज्ञानं हृदि रूढं दुरात्मनः ॥ पारक्यस्यैव देहस्य वह्व्यो मेऽक्षौहिणीर्हताः ॥ ४८ ॥ बालद्विजसुहृन्मित्रपितृभ्रातृगुरुद्रुहः ॥ न मे स्यान्निरयान्मोक्षो ह्यपि वर्षायुतायुतैः ॥ ४९ ॥ नैनो राज्ञः प्रजाभर्तुर्धर्मयुद्धे वधो द्विषाम् ॥ इति मे न तु बोधाय कल्पते शासनं वचः ॥ ५० ॥ स्त्रीणां मद्धतबन्धूनां द्रोहो योऽसाविहोत्थितः ॥ कर्मभिर्गृहमेधीयैर्नाहं कल्पो व्यपोहितुम् ॥ ५१ ॥ यथा पङ्केन पङ्काम्भः सुरया वा सुराकृतम् ॥ भूतहत्यां तथैवैकां न यज्ञैर्मार्ष्टुमर्हति ॥ ५२ ॥ इति श्रीभा०म०प्र० अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ सूत उवाच ॥ इति भीतः प्रजाद्रोहात्सर्वधर्मविवित्सया ॥ ततो विनशनं प्रागाद्यत्र देवव्रतोऽपतत् ॥ १ ॥ तदा ते भ्रातरः सर्वे सदश्वैः स्वर्णभूषितैः ॥ अन्वगच्छन्रथैर्विप्रा व्यासधौम्यादयस्तथा ॥ २ ॥ भगवानपि विप्रर्षे रथेन सधनंजयः ॥ स तैर्व्यरोचत नृपः कुबेर इव गुह्यकैः ॥ ३ ॥

अर्जुनको साथ लेकर रथपर बैठ भगवान्भी उनके साथ चले शोभित हो रहे हैं जैसे कुबेर अपने यक्षसहित शोभे हैं ॥ ३ ॥ स्वर्गसे गिरे देवताकी नाई भूमिमें पडे भीष्मपितामहको सब सेवक और श्रीकृष्णसहित पांडव प्रणाम करतेभए ॥ ४ ॥ हे सत्तम ! तहां सब देवर्षि ब्रह्मर्षि राजर्षि भीष्मपितामहको देखवेको आऐहैं ॥ ५ ॥ पर्वत मुनि, नारदऋषि, धौम्य, भगवान् बादरायणजी, बृहदश्व, भरद्वाज, शिष्यसाथ परशुराम ॥ ६ ॥ वसिष्ठ, इंद्रप्रमद, त्रित, गृत्समद, असित, कक्षीवान्, गौतम, अत्रि, कौशिक, सुदर्शन ॥ ७ ॥ और निर्मल शुकाचार्यादिक मुनि हे शौनक !

दृष्ट्वा निपतितं भूमौ दिवश्च्युतमिवामरम् ॥ प्रणेमुः पाण्डवा भीष्मं सानुगाः सह चक्रिणा ॥ ४ ॥ तत्र ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षयश्च सत्तम ॥ राजर्षयश्च तत्रासन्द्रष्टुं भरतपुङ्गवम् ॥ ५ ॥ पर्वतो नारदो धौम्यो भगवान्बादरायणः॥ बृहदश्वो भरद्वाजः सशिष्यो रेणुकासुतः ॥ ६ ॥ वसिष्ठ इन्द्रप्रमदस्त्रितो गृत्समदोऽसितः ॥ कक्षीवान् गौतमोऽत्रिश्च कौशिकोऽथ सुदर्शनः ॥ ७ ॥ अन्ये च बहवो ब्रह्मन्ब्रह्मरातादयोऽमलाः ॥ शिष्यैरुपेता आजग्मुः कश्यपाङ्गिरसादयः ॥ ८ ॥ तान्समेतान्महाभागानुपलभ्य वसूत्तमः ॥ पूजयामास धर्मज्ञो देशकालविभागवित् ॥ ९ ॥ कृष्णं च तत्प्रभावज्ञ आसीनं जगदीश्वरम् ॥ हृदिस्थं पूजयामास माययोपात्तविग्रहम् ॥ १० ॥ पाण्डुपुत्रानुपासीनान्प्रश्रयप्रेमसंगतान् ॥ अभ्याचष्टाऽनुरागास्रैरन्धीभूतेन चक्षुषा ॥ ११ ॥ अहो कष्टमहोऽन्याय्यं यद्यूयं धर्मनन्दनाः ॥ जीवितुं नार्हत क्लिष्टं विप्रधर्माच्युताश्रयाः ॥ १२ ॥ संस्थितेऽतिरथे पाण्डौ पृथा बालप्रजा वधूः ॥ युष्मत्कृते बहून्क्लेशान्प्राप्ता तोकवती मुहुः ॥ १३ ॥

शिष्योंको लेलेकर कश्यप अंगिरा आदिक आवते भए ॥ ८ ॥ धर्मज्ञ भीष्मपितामह इन सब महात्मानकों आए जान देशकालविभाग जाननेवारे पूजन करतेभए ॥ ९ ॥ जगदीश्वर हृदयनिवासी मायाकरकै जिन्होंने विग्रह धारचो सिंहासनपर विराजमान श्रीकृष्णजीको भगवत्के प्रभाव जानवेवारे भीष्म पितामहजी पूजन करतेभए ॥१०॥ विनय स्नेहमें मग्न; समीप बैठे पांडुपुत्रोंसे अनुरागी, आंसु नेत्रोंमें भरे भीष्मजी बोले ॥११॥ हे धर्मपुत्र ! अहो कष्ट है, बडो अन्याय है, कि तुम ब्राह्मण धर्म भगवान्के आश्रित होकैभी क्लेशसे जीते हो ॥ १२ ॥ महारथी राजा पांडु मेरे पीछे बालसंतान

40

वधू कुंती तुह्मारे अर्थ बडे क्लेश भोगती भई ॥ १३ ॥ जो आपको प्रिय न है सो ये सब समयकी करीभई बात है, सो काल वो है जाके वसमें सब लोग हैं, जैसे मेघपंक्ति वायुके वसमें होय है ॥ १४ ॥ जहां धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर, गदापाणि भीमसेन, शस्त्रधारी अर्जुन, गांडीवसो धनुष श्रीकृष्णसे मित्र तहांभी विपतें आई ॥१५॥ इन श्रीकृष्णकी जो करवेकी इच्छा है सो कोईभी पुरुष न जानसकै है, जिनकी जानवेकी इच्छा करकै कविभी मोहको प्राप्त होवै है ॥ १६ ॥ हे युधिष्ठिर ! तातें ये विश्वके सुखादिक देवआधीन है, हे नाथ ! हे प्रभो ! तिनके अनुवर्त्ती हो आप अनाथ प्रजाको पालन करो ॥ १७ ॥ ये साक्षात् भगवान् आद्य नारायण पुरुष हैं मायाकरकै लोकको मोहित करते वृष्णियोंमें छिपकर विचरैं हैं ॥१८॥

सर्वं कालकृतं मन्ये भवतां च यदप्रियम् ॥ सकालो यद्वशे लोको वायोरिव घनावलिः ॥ १४ ॥ यत्र धर्मसुतो राजा गदापाणिर्वृकोदरः ॥ कृष्णोऽस्त्री गाण्डिवं चापं सुहृत्कृष्णस्ततो विपत् ॥ १५ ॥ न ह्यस्य कर्हिचिद्राजन्पुमान्वेद विधित्सितम् ॥ यद्विजिज्ञासया युक्ता मुह्यन्ते कवयोऽपि हि ॥ १६ ॥ तस्मादिदं दैवतन्त्रं व्यवस्य भरतर्षभ ॥ तस्यानुविहितोऽनाथा नाथ पाहि प्रजाः प्रभो ॥ १७ ॥ एष वै भगवान्साक्षादाद्यो नारायणः पुमान्॥ मोहयन्मायया लोकं गूढश्चरति वृष्णिषु ॥ १८ ॥ अस्यानुभावं भगवान्वेद गुह्यतमं शिवः ॥ देवर्षिर्नारदः साक्षाद्भगवान्कपिलो नृप ॥ १९ ॥ यं मन्यसे मातुलेयं प्रियं मित्रं सुहृत्तमम् ॥ अकरोः सचिवं दूतं सौहृदादथ सारथिम् ॥ २० ॥ सर्वात्मनः समदृशो ह्यद्वयस्याऽनहंकृतेः ॥ तत्कृतं मतिवैषम्यं निरवद्यस्य न क्वचित् ॥ २१ ॥ तथाप्येकान्तभक्तेषु पश्य भूपाऽनुकम्पितम् ॥ यन्मेऽसूंस्त्यजतः साक्षात्कृष्णो दर्शनमागतः ॥ २२ ॥

इनको प्रभाव छिपोभयो है सो भगवान् महादेवजी जानें हैं, हे राजन् ! देवऋषि नारद और साक्षात् भगवान् कपिलदेवजीभी जाने हैं ॥ १९ ॥ अज्ञानसे जिनको तुम मामोंके पुत्र प्रियमित्र सुहृत्तम मानो हो, जिन्होंने मंत्रीपनो तुह्मारो करो, दूत बने तुमारे प्यारके मारे सारथी भए ॥ २० ॥ सर्वात्मा समदृष्टिवारे, जाके समान कोई नहीं, जिनको अहंकार नहीं रागादिक जिनमें नहीं, ऐसे ईश्वरकों नीच उच्च कर्म करनो ये हमारे योग्य है, ये योग्य न है, ये बुद्धिकी विषमता परमेश्वरमें नहीं है ॥ २१ ॥ हे राजन् युधिष्ठिर! यद्यपि परमेश्वरमें ये बात है, तथापि जो उनको एकांतमें ध्यान

विशुद्ध धारणा करकैं सब पाप नष्ट भए श्रीकृष्णजीके दर्शनसे तत्काल आयुधोंके लगवेकी व्यथा दूर भई, सब इंद्रीनकी वृत्तियोंको भ्रम दूर
भयो, तब भीष्मजी देह त्यागके समय जनार्दनकी स्तुति करतेभए ॥ ३१ ॥ भीष्मजी बोले कि ॥ यादवनमें श्रेष्ठ सबसें महामहिमावारे बडे स्व-
स्वरूपभूत परमानंदको प्राप्त उसमें विहार करवेको योगमायाको प्राप्त होकर शरीर धारण करनेहारे सब संसारके उत्पादक भगवान् षड्गुण
ऐश्वर्यवान् श्रीकृष्णजीमें निष्काम बुद्धि मैंने समर्पण करी ॥ ३२ ॥ त्रिलोकीमें सुन्दर तमालवत् नील वर्ण, सूर्यकी किरणसम प्रकाशित गौरवस्त्र
धारे, अलकसमूहसे शोभायमान मुखकमल देह धारण करनेहारे, अर्जुनके सारथी श्रीकृष्णचंद्रजीमें मेरी फलकी चाहरहित प्रीति होय ॥ ३३ ॥

विशुद्धया धारणया हताशुभस्तदीक्षयैवाऽऽशु गतायुधव्यथः ॥ निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिविभ्रमस्तुष्टाव जन्यं विसृज-
ञ्जनार्दनम् ॥ ३१ ॥ भीष्म उवाच ॥ इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा भगवति सात्वतपुङ्गवे विभूम्नि ॥ स्वसुखमु-
पगते क्वचिद्विहर्तुं प्रकृतिमुपेयुषि यद्भवप्रवाहः ॥ ३२ ॥ त्रिभुवनकमनं तमालवर्णं रविकरगौरवराम्बरं दधाने ॥ व-
पुरलककुलावृताननाब्जं विजयसखे रतिरस्तु मेऽनवद्या ॥ ३३ ॥ युधि तुरगरजोविधूम्रविष्वक्कचलुलितश्रमवार्यलं-
कृतास्ये ॥ मम निशितशरैर्विभिद्यमानत्वचि विलसत्कवचेऽस्तु कृष्ण आत्मा ॥३४॥ सपदि सखिवचो निशम्य मध्ये
निजपरयोर्बलयो रथं निवेश्य ॥ स्थितवति परसैनिकायुरक्ष्णा हृतवति पार्थसखे रतिर्ममास्तु ॥३५॥ व्यवहितपृतना-
मुखं निरीक्ष्य स्वजनवधाद्विमुखस्य दोषबुद्ध्या ॥ कुमतिमहरदात्मविद्यया यश्चरणरतिः परमस्य तस्य मेऽस्तु ॥ ३६ ॥

युद्धमें घोडानके खुरकी रजसे अटी भई, इत उतको बिखरी भई, अलकोंके श्रमसे पसीना जिस मुखमें आयरह्यो, मेरे पैने बाणोंसे भेदी भई देहसे
शोभायमान बखतरवारे श्रीकृष्णजीमें मेरो मन लगै ॥ ३४ ॥ शीघ्र अर्जुनको वचन सुन अपनी कौरवनकी सेनामें रथ खडो कर शत्रुनकी सेना
पतिनकी आयु हरते भए, ये भीष्म, ये द्रोण, ये कर्ण, ऐसे दिखायवेके बहानेकरके सबकी आयु खीचकर अर्जुनकी जय कराते भए, ऐसे पार्थ-
सखा श्रीकृष्णजीमें मेरी प्रीति होय ॥३५॥ दूर खडी सेनानको मुख देख द्वेष बुद्धिके कारण स्वजनोंके वधसे विमुख अर्जुनकी कुमतिको आत्मविद्या

करवेवारे भक्त हैं, उनपर दया करै है, सो देखो तो कि जो मेरे प्राण त्यागके समयमें श्रीकृष्णजीने आयकर दर्शन दीनो ॥ २२ ॥ भक्तिसे मन लगाय वाणीसे नाम कीर्तन कर देह त्याग करै तो वो योगी काम कर्मसे छूटजावै है ॥ २३ ॥ जबतक हम देहत्याग करैं, तबतक प्रसन्न हांसी, लालनेत्रोंसे रुचिर मुखकमल, ध्यानयोगमार्ग, चार भुजावारे देवदेव हमारे सामने दर्शन देतेरहो ॥ २४ ॥ सूतजी बोले कि बाणोंके पिंजरपर सोए भीष्मजीके ये वाणी सुन युधिष्ठिर सब ऋषीनके सुनते भए अनेक धर्म पूछते भए ॥ २५ ॥ जो धर्म पुरुषके स्वभावके योग्य है ॥ वर्णोंके धर्म, वैराग्य राग उपाधियोंके धर्म, वेदोक्त प्रवृत्तिमार्ग, निवृत्तिमार्ग ॥ २६ ॥ दानधर्म, राजधर्म, मोक्षधर्म, स्त्रीयोंके धर्म, भगवद्धर्म संक्षेप विस्तारसै अलग अलग

भक्त्यावेश्य मनो यस्मिन्वाचा यन्नाम कीर्तयन् ॥ त्यजन्कलेवरं योगी मुच्यते कामकर्मभिः ॥ २३ ॥ स देवदेवो भगवान्प्रतीक्षतां कलेवरं यावदिदं हिनोम्यहम् ॥ प्रसन्नहासारुणलोचनोल्लसन्मुखाम्बुजो ध्यानपथश्चतुर्भुजः ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ युधिष्ठिरस्तदाकर्ण्य शयानं शरपञ्जरे ॥ अपृच्छद्विविधान्धर्मानृषीणामनुशृण्वताम् ॥ २५ ॥ पुरुषस्वभावविहितान्यथावर्णं यथाऽऽश्रमम् ॥ वैराग्यरागोपाधिभ्यामाम्नातोभयलक्षणान् ॥ २६ ॥ दानधर्मान्राजधर्मान्मोक्षधर्मान्विभागशः ॥ स्त्रीधर्मान्भगवद्धर्मान्समासव्यासयोगतः ॥ २७ ॥ धर्मार्थकाममोक्षांश्च सहोपायान्यथा मुने ॥ नानाख्यानेतिहासेषु वर्णयामास तत्त्ववित् ॥ २८ ॥ धर्मं प्रवदतस्तस्य स कालः प्रत्युपस्थितः ॥ यो योगिनश्छन्दमृत्योर्वाञ्छितस्तूत्तरायणः ॥ २९ ॥ तदोपसंहृत्य गिरः सहस्रणीर्विमुक्तसङ्गं मन आदिपूरुषे ॥ कृष्णे लसत्पीतपटे चतुर्भुजे पुरः स्थिते मीलितदृग्व्यधारयत् ॥ ३० ॥

कहते भए ॥ २७ ॥ हे मुने! धर्म अर्थ काम मोक्ष कहवेके उपाय नाना प्रकारके इतिहास कथानमें तत्ववेत्ता भीष्मजी वर्णन करतेभए ॥ २८ ॥ ऐसे धर्म कहिरहेथे कि वा समय वो काल आय प्राप्तभयो, जाको अपनी इच्छासे मोक्ष जानेवाले स्वच्छन्द योगी चाहतेहैं वही उत्तरायण काल प्राप्तहुआ ॥ २९ ॥ युद्धमें समीपवासी हजारोंकी रक्षा करनेहारे भीष्मजी सहस्र अर्थ कहिवेवारी वाणीसे आदिपुरुष पीताम्बरशोभित चतुर्भुजावारे सामने बैठे, ऐसे श्रीकृष्णजमिं सब संगरहित मन लगावते भए ॥ ३० ॥

गीताशास्त्रको उपदेश कर हरते भए ऐसे परमेश्वरमें मेरी प्रीति होय ॥ ३६ ॥ शस्त्र विनालिये हम केवल सहायमात्र करेंगे ऐसी अपनी प्रतिज्ञाकों त्यागकर रथपर बैठे मेरी करी प्रतिज्ञाको (कि मैं श्रीकृष्णकों शस्त्र ग्रहण कराऊंगो) सत्य करवेको रथसे उतरे, रथके पैयाको चक्र कर क्रोधसे मनुष्य नाश्य करवेको भूलगए, सर्व भुवनभारसैं पृथ्वीके चलायमान होनेसै अपने पीतपटको उसके ऊपर डालते हाथीके मारनेकों सिंहकी समान मारे सामने दोडे आते श्रीकृष्णजीमें मेरी प्रीति हो ॥ ३७ ॥ मुझ आततायीके पैने वाणोंसे भग्न वखतर रुधिरसै लिप्त हो श्रीकृष्ण अर्जुनके वचनोंकोभी उल्लंघन कर मेरे वधको हठसे सामने आए, सो भगवान् मुकुंद मेरी रक्षा करो ॥ ३८ ॥ अर्जुनके रथरूप कुटुंबमें कोडा लिये घोडानको पचरंगी

स्वनिगममपहाय मत्प्रतिज्ञामृतमधिकर्तुमवप्लुतो रथस्थः ॥ धृतरथचरणोऽभ्ययाच्चलद्गुर्हरिरिव हन्तुमिभं गतोत्तरीयः ॥ ३७ ॥
शितविशिखहतो विशीर्णदंशः क्षतजपरिप्लुत आततायिनो मे ॥ प्रसभमभिससार मद्वधार्थं स भवतु मे
भगवान्गतिर्मुकुन्दः ॥ ३८ ॥ विजयरथकुटुम्ब आत्ततोत्रे धृतहयरश्मिनि तच्छ्रियेक्षणीये ॥ भगवति रतिरस्तु मे
मुमूर्षोर्यमिह निरीक्ष्य हता गताः स्वरूपम् ॥ ३९ ॥ ललितगतिविलासवल्गुहासप्रणयनिरीक्षणकल्पितोरुमानाः ॥
कृतमनुकृतवत्य उन्मदान्धाः प्रकृतिमगन्किल यस्य गोपवध्वः ॥ ४० ॥ मुनिगणनृपवर्यसंकुलेऽन्तः सदसि युधिष्ठिरराजसूय एषाम् ॥ अर्हणमुपपेद ईक्षणीयो मम दृशिगोचर एष आविरात्मा ॥ ४१ ॥ तमिममहमजं शरीरभाजां हृदि हृदि धिष्ठितमात्मकल्पितानाम् ॥ प्रतिदृशमिव नैकधाऽर्कमेकं समधिगतोऽस्मि विधूतभेदमोहः ॥ ४२ ॥

वागडोर पकडे सारथीपनकी शोभा धारे दर्शन योग्य भगवान्में मरनवारे मोसरीकेकी प्रीति होय जो इन्हे देख युद्धमें मरे सो उनके स्वरूपको प्राप्तभए ॥ ३९ ॥ ललित गति, विलास मनोहर हांसीसहित नम्रतासे देखनेसे बडे मानवती उसीकारण अति मदसै अंधवत् हो उन्हीं भगवान्के चरित्रौंके अनुकरण करतीं गोपवधू जिनके स्वरूपको प्राप्त होती भई उन श्रीकृष्णमें मेरी प्रीति हो ॥ ४० ॥ युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें अनेक मुनि और श्रेष्ठ राजाओंके समागममें जिनकी सवसे पहिले पूजा भई, वही दर्शन योग्य मेरी दृष्टिके सन्मुख प्रगट हो आएहै मेरो धन्य भाग्य है ॥ ४१ ॥ जिस प्रकार संपूर्ण प्राणियोंकी प्रत्येक दृष्टिमें सूर्य एक होनेपरभी अनेक रूपसै प्रतीत होयहै इसी प्रकार अपने निर्माण किये प्राणियोंके प्रत्येक

हृदयमें एक रूपसे विराजनेपरभी अनेक रूपसे प्रतीत होते हो ऐसे जन्म रहित आप ईश्वरको मैं भेद और मोहको त्याग कर प्राप्त हुआ हूं ॥४२॥ सूतजी बोले कि ॥ भगवान् कृष्णमें मन वाणी दृष्टिकी वृत्तियोंसे शरीरमें जीवात्माको लगायकर भीष्मजी अन्तःश्वासी उपरामकों प्राप्त होते भए ॥ ४३ ॥ उपाधिरहित ब्रह्ममें लीन भीष्मजीको जानकर सांज समयके पक्षियौंकी समान सब चुप होतेभए ॥ ४४ ॥ देवता मनुष्यौंकी बजाई भई दुंदुभी बजी राजानमें साधु प्रशंसा करतेभए, आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होतीभई ॥ ४५ ॥ हे शौनक ! भीष्मजीके दाहादिक कराय युधिष्ठिरजी दो घडी दुःखी होतेभए ॥ ४६ ॥ प्रसन्न मुनि सब श्रीकृष्णजीके छिपे नामोंकरकै स्तुति करतभये, पाछे कृष्णको हृदयमें धारणकर वे सब फेर अपने अपने आश्रमोंको जातेभए ॥ ४७ ॥ तब कृष्णसहित युधिष्ठिर हस्तिनापुर जाय धृतराष्ट्र तपस्विनी गांधारीको शांत करतेभए ॥ ४८ ॥ धृतराष्ट्र करके सराहेभए वासुदेवसे महाप्रसन्न राजा युधिष्ठिर धर्म कर्मकरकै अपने परदादेनको करो राज्य समर्थ होके करतेभए ॥ ४९ ॥ इति श्रीभा०भीष्मस्तुतियुधिष्ठिरराज्यप्रलम्भो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ शौनकजी बोले कि ॥ अपने हिस्साके अर्थ चाहना करनेहारे आततायियोंको मारकर धर्मधारियोंमें श्रेष्ठ युधिष्ठिर अपने भाइयोंसहित भोग रागसे संकोचकर कहा करत भए,कैसे आपनो समय व्यतीत करते भए सो कहो ॥१॥

सूत उवाच ॥ कृष्ण एवं भगवति मनोवाग्दृष्टिवृत्तिभिः ॥ आत्मन्यात्मानमावेश्य सोन्तःश्वास उपारमत् ॥ ४३ ॥ संपद्यमानमाज्ञाय भीष्मं ब्रह्मणि निष्कले ॥ सर्वे बभूवुस्ते तूष्णीं वयांसीव दिनात्यये ॥ ४४ ॥ तत्र दुन्दुभयो नेदुर्देवमानववादिताः ॥ शशंसुः साधवो राज्ञां खात्पेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ ४५ ॥ तस्य निर्हरणादीनि संपरेतस्य भार्गव ॥ युधिष्ठिरः कारयित्वा मुहूर्तं दुःखितोऽभवत् ॥ ४६ ॥ तुष्टुवुर्मुनयो हृष्टाः कृष्णं तद्गुह्यनामभिः ॥ ततस्ते कृष्णहृदयाः स्वाश्रयान्प्रययुः पुनः ॥ ४७ ॥ ततो युधिष्ठिरो गत्वा सहकृष्णो गजाह्वयम् ॥ पितरं सान्त्वयामास गान्धारीं च तपस्विनीम् ॥ ४८ ॥ पित्रा चानुमतो राजा वासुदेवानुमोदितः ॥ चकार राज्यं धर्मेण पितृपैतामहं विभुः ॥ ४९ ॥ इति श्रीभा०प्रथ०युधिष्ठिरराज्यप्रलम्भनो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ शौनक उवाच ॥ हत्वा स्वरिक्थस्पृध आततायिनो युधिष्ठिरो धर्मभृतां वरिष्ठः॥सहानुजैः प्रत्यवरुद्धभोजनः कथं प्रवृत्तः किमकारषीत्ततः ॥१॥

सूतजी बोले कि ॥ कुरुके वंशरूप दावानल अग्निसे जरे भए वंशको संसार उत्पन्न करनेवारे हरि भगवान् फेर उत्पन्न करके अपने निजराज्यमें युधिष्ठिरको प्रवेश करवायकर बहुतही प्रसन्न होतेभए ॥ २ ॥ भीष्मजी और श्रीकृष्णजीके उपदेश सुनकर प्रवृत्त भये विज्ञानते भ्रम दूर होनेसै श्रीकृष्णजीके आश्रयसे सब भाई सहित युधिष्ठिर समुद्रपर्यंत पृथ्वीको इन्द्रकी नाई पालन करतेभए ॥ ३ ॥ मेघ जब इच्छा होय तब वर्षै, सब कामदात्री धरती भई, बडे ऐनवारी गौ दूध देकै सब व्रजको पूर्ण करतीभई ॥४॥ नदी, समुद्र, पर्वत, वनस्पति वेल सहित सब ओषधियें सब ऋतुमें इच्छा पूर्वक फलतीभई ॥ ५ ॥ जब राजा युधिष्ठिर राज्य करतेथे, तब कोउ जीवको किसी समयमें मानसी व्यथा रोग शीत उष्णादिक अध्यात्म आदिदैव अधिभूत दुःख न भयो ॥ ६ ॥ सुहृदनके शोक दूर करवेको भगिनीकी प्रीतिकी इच्छासे कुछ महीनातक हस्तिनापुरमें बसके पश्चात् अजातशत्रुसे सलाह कर और उनसे आज्ञाको प्राप्त होके और मिलके और उनको प्रणाम करके और वहांके पुरुषोंसे यथायोग्य मिलके और प्रणामको प्राप्त होके भगवान् कृष्णचंद्र रथपर बैठतेभये ॥ ७॥८॥ सुभद्रा, द्रौपदी, कुंती, विराटपुत्री उत्तरा, गांधारी, धृतराष्ट्र, युयुत्सु, जो धृतराष्ट्रसे वेश्यामें जन्मो हो और कृपाचार्य, नकुल, सहदेव ॥ ९ ॥

सूत उवाच ॥ वंशं कुरोर्वंशदवाग्निनिर्हृतं संरोहयित्वा भवभावनो हरिः ॥ निवेशयित्वा निजराज्य ईश्वरो युधिष्ठिरं
प्रीतमना बभूव ह ॥ २ ॥ निशम्य भीष्मोक्तमथाच्युतोक्तं प्रवृत्तविज्ञानविधूतविभ्रमः ॥ शशास गामिन्द्र इवाऽजिताश्रयः परिध्युपान्तामनुजानुवर्तितः ॥ ३ ॥ कामं ववर्ष पर्जन्यः सर्वकामदुघा मही ॥ सिषिचुः स्म व्रजान्गावः
पयसोधस्वतीर्मुदा ॥ ४ ॥ नद्यः समुद्रा गिरयः सवनस्पतिवीरुधः ॥ फलन्त्योषधयः सर्वाः काममन्वृतु तस्य वै
॥ ५ ॥ नाधयो व्याधयः क्लेशा दैवभूतात्महेतवः ॥ अजातशत्रावभवञ्जन्तूनां राज्ञि कर्हिचित् ॥ ६ ॥ उषित्वा
हास्तिनपुरे मासान्कतिपयान्हरिः ॥ सुहृदां च विशोकाय स्वसुश्च प्रियकाम्यया ॥ ७ ॥ आमन्त्र्य चाऽभ्यनुज्ञातः
परिष्वज्याऽभिवाद्य तम् ॥ आरुरोह रथं कैश्चित्परिष्वक्तोऽभिवादितः ॥ ८ ॥ सुभद्रा द्रौपदी कुन्ती विराटतनया
तथा ॥ गान्धारी धृतराष्ट्रश्च युयुत्सुर्गौतमो यमौ ॥ ९ ॥

भीमसेन, धौम्यऋषि, और स्त्री मत्स्यसुता (उत्तरा) आदि विमोहके मारे श्रीकृष्णजीके विरहको न सहितेभए, मत्स्यसुता सत्यवतीकोभी कहैं हैं ॥ १० ॥ महात्मा पुरुषोंके मुखसे एकवार जिस परमात्माके यशको सुनकर बुद्धिमान उसही क्षणसे स्त्रीपुत्रादिकोंमें लग्नमोहको तजिके उस परमेश्वरके यश गानेवालोंके सत्संगको फिर त्याग करनेंको समर्थ नहीं होते हैं तो साक्षात् परस्पर दर्शन स्पर्शन सम्भाषण और एक समयमें शयन बैठना भोजन नित्य करनेवाले युधिष्ठिर आदिकी कौन कथा है ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णमें बुद्धि लगानेहारे युधिष्ठिरादिक वा विरहको कैसे सहैं कारण कि उन्होंने दर्शन स्पर्शन बोलनों शयन आसन भोजन ये सदा संग करो है ॥ १२ ॥ अतिस्नेहके मारे बंधेभए पलक विसार नेत्रोंसै उन्हींका दर्शन करते

वृकोदरश्च धौम्यश्च स्त्रियो मत्स्यसुतादयः ॥ न सेहिरे विमुह्यन्तो विरहं शार्ङ्गधन्वनः ॥ १० ॥ सत्सङ्गान्मुक्तदुःसङ्गो हातुं नोत्सहते बुधः ॥ कीर्त्यमानं यशो यस्य सकृदाकर्ण्य रोचनम् ॥ ११ ॥ तस्मिन्न्यस्तधियः पार्थाः सहेरन्विरहं कथम् ॥ दर्शनस्पर्शसंलापशयनासनभोजनैः ॥ १२ ॥ सर्वे तेऽनिमिषैरक्षैस्तमनुद्रुतचेतसः ॥ वीक्षन्तः स्नेहसंबद्धा विचेलुस्तत्र तत्र ह ॥ १३ ॥ न्यरुन्धन्नुद्गलद्बाष्पमौत्कण्ठ्याद्देवकीसुते ॥ निर्यात्यगारान्नो भद्रमिति स्याद्बान्धवस्त्रियः ॥ १४ ॥ मृदङ्गशङ्खभेर्यश्च वीणापणवगोमुखाः ॥ धुन्धुर्यानकघण्टाद्या नेदुर्दुन्दुभयस्तथा ॥ १५ ॥ प्रासादशिखरारूढाः कुरुनार्यो दिदृक्षया ॥ ववृषुः कुसुमैः कृष्णं प्रेमव्रीडास्मितेक्षणाः ॥ १६ ॥ सितातपत्रं जग्राह मुक्तादामविभूषितम् ॥ रत्नदण्डं गुडाकेशः प्रियः प्रियतमस्य ह ॥ १७ ॥

अपने चित्त श्रीकृष्णमेंही लग जानेके कारण सब कोई श्रीकृष्णजीकी पूजनके लिये जहां तहां चलेगए ॥ १३ ॥ देवकीसुतकी यात्रामें अमंगल न होय इससे बांधवोंकी स्त्रियें उत्कंठाके मारे आंखोंसें निकसे आसुओकों रोकतीभईं ॥ १४ ॥ मृदंग शंख नगारे वीणा भेरी गोमुख धुंधुरो शंख घंटादिक वडे नगारे ये सब वजतेभए ॥ १५ ॥ कौरवोंकी स्त्रियें छज्जोंपर बैठीभई श्रीकृष्णको प्रेम लज्जा मुसकानकी तिर्छि चितवनसे देखती श्रीकृष्णपर पुष्पवर्षा करतीभईं ॥ १६ ॥ महाहर्षसे प्यारे कृष्णके ऊपर मोतीनकी मालावारो रतनकी डांडीको श्वेतछत्र अर्जुननें ग्रहण कीनों ॥ १७ ॥

अद्भुत पंखा ऊधो और सात्यकीनें हाथमें लीने, श्रीकृष्णपर पुष्पोंकी वर्ष
विनाशनानारूपके योग्य हैं सत्य आशीर्वाद जहां तहां ब्राह्मणलोगोंसे
है ॥ यह सुनवेमें मनोहर वचन आपसमें होतेभए ॥ २० ॥ वे बोली वि
रची है । अव इंद्रियेंभी उसीमें लीन थीं उससमय सब प्रपंच रहित अप
विलंब करिके स्थितकी जिवायवेवारी रचवेवारी अपनी प्रकृतिको नाम
ही तुमारी श्रीमद्भागव्यजने परमाद्भुते ॥ विकीर्यमाणः कुसु
असंख्यात जन्मनके पुण्यपानुरूपाश्च निर्गुणस्य गुणात्मन

निगमकल्पतरोर्गलितं फलोहरः ॥ २० ॥ स्त्रिय ऊचुः ॥
श्वरे निमीलितात्मन्निशि

शिरोमणि है याते भक्तनकू नित्यही श्रव मरूपात्मनि रूपना
शास्त्रनको फलरूप यही है, याते परमादर क रिश्वनः ॥ पश्यन्
अखिल कामना देनवारे वेदरूपी कल्पवृक्षको फ स्राह्येषु च गुह्य
वैकुंठते लायकें यह श्रीमद्भागवत मुझ वेदव्यासकू
शिष्य और उनके शिष्यरूप पत्तानपै लुडकत भयो, हो
गवत व्यासजीनें रची नहीं हैं, पर बुद्धिमें रचो रचायो भा के ये
करिकेही हैं (अनागताख्यान कहिये जो बात नहीं भई ताकूं पू श्रे
यह बात प्रसिद्ध है, कि तो ताकी चोंच जा फलमें लगे सो फल मीठं
रचे हैं

श्रीमैत्रेयजी बोले कि अब राजा सौ अश्वमेध यज्ञ करवेकी दी
है " सरस्वती दृषद्वत्योर्देवनद्योर्यदंतरं । तं देवनिर्मितं देश
मेरो इंद्रासन छीन लेगो सो भगवान् पृथु यज्ञके महो
गुरु प्रभु आवते भए ॥ ३ ॥ जिनके संग ब्रह्म
म् ॥

मैत्रेय उवाच ॥ अथादीक्षत राजर्षिष आ-
गवान्कर्मातिशयमात्मनः ॥चोदितां स्व-
अन्वभूयत सर्वात्मा सर्व २ ॥ स वा अयं
भिश्चाप्सरोगणैः ॥ त्वं परिमार्ष्टुमर्हति॥
लो नारदो दत्तो लीलया सृजत्यवत्यत्ति
दुघा सती ॥

भूरिवष्मर्वन जीतवेवारे, भक्तिसे उत्कंठित, निर्मल
सपाशुद्ध करवेवारे हैं; और कोई नहीं है ॥ २३ ॥
वि है जो एक ईश्वर अपनी लीलाकरके या जगत्को

मायारूपी कपट वातें दूरिही रहै है, ताहि ध्यान करे हैं, या प वर्पा
पुराण ब्रह्मविद्यारूप है, तथा गायत्रीको भाष्यरूप है ॥ यह मत्स्यास सुने
धर्मको विस्तारवर्णन कन्योजाय, और वृत्रासुरके वधकी कथ ाली कि उ
सिंहासनपर स्थापनकरि भाद्रशुक्लपूर्णमासीके दिन वैष्ण रहित अपने
श्लोक हैं। और पुराणमें लिख्यो है। अठारह हजार कृतिको नाम रूप
अर्थ करिके प्रारंभ है तिसको नाम श्रीभागवत है कीर्यमाणः कुसुमै
रीष! जो संसारकूं तू तर्यो चाहै है तो शुकदे नर्गुणस्य गुणात्मनः ॥
धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो॥ २० ॥ स्त्रिय ऊचुः ॥ स
महामुनिकृते किं वा परैरीनीश्वरे निमीलितात्मन्निशि
इत्यादिक प्रमाणनतें यह प्रतीतिम् ॥ अनामरूपात्मनि रूपनामन
नवीन काहू काशीवासीनिन्द्रया निर्जितमातरिश्वनः ॥ पश्यन्ति
त्रिकांड विषयशास्त्रस्य ऽनुगीतसत्कथो वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवा
चाहना रूप कपट ॥ २४ ॥
अधिकारी हैं स्थित होतेभए वह यही कृष्ण हैं ॥ २२ ॥ निश्चयकरके ये ई
हैं। इतने बडे बडे विवेकी जिनके पदको देखे हैं सो निश्चय करकै ये श्रीकृ
! यह वही ईश्वर है कि जिनकी सत्कथा वेदोंमें और रहस्य ग्रंथोंमें गु
रक्षा करैहै भक्षण करै हैं परन्तु या विश्वमें आसक्त नहीं होवैहै ॥ २४ ॥

रहै, महाशोभा होयरहीहै ॥ १८ ॥ निर्गुण सगुण
रिमें चित्त लगाये कौरवेंद्र युधिष्ठिरके पुरकी
चरम प्रलयकालमें जीव ईश्वरमें लीन होगये थे
विहायस थे सो यही कृष्णचंद्र हैं ॥ २१ ॥
त संक्रुद्धास्ति करनेको सब शिक्षाशास्त्र करवे-
न मुञ्चति ॥ १४ ॥ ताऽऽशिषः सत्यास्त-
वैन्यसुतः प्रोक्तस्त्वरश्लोकचेतसाम् ॥
तस्मा अन्तर्हितः स्वरादिविशेष आ-
मर्षयः ॥ नामधेयं ददुस्तस्मैदितां स्व-
पतश्छन्नो हिरण्यरशनं विभुः ॥ अयं
चि॥
पुत्र! यज्ञनाशक देवनमें अधम ये महाइंद्र है या
जटायु गृध्रराज रावणपर दौडेथे ॥ १६ ॥ वो इंद्र अश्व
भये ॥ १७ ॥ वाको अद्भुत कर्म देखकर परम ऋषिलोग
यज्ञस्तंभसे बंधे अश्वको समर्थ इंद्र फिर हरतो भयो ॥ १९ ॥

परम अद्भुत पंखा ऊधो और सात्यकीनें हाथमें लीने, श्रीकृष्णपर पुष्पोंकी वर्षा मार्गमें होतीजायहै, महाशोभा होयरहीहै ॥ १८ ॥ निर्गुण सगुण परमेश्वरके नानारूपके योग्य हैं सत्य आशीर्वाद जहां तहां ब्राह्मणलोगोंसे सुनेजाय हैं ॥ १९ ॥ श्रीहरिमें चित्त लगाये कौरवेंद्र युधिष्ठिरके पुरकी स्त्रीनके सबको सुनवेमें मनोहर वचन आपसमें होतेभए ॥ २० ॥ वे बोली कि जब गुणोंमें क्षोभ नहीं था तब प्रलयकालमें जीव ईश्वरमें लीन होगये थे और उपाधिभूत शक्तियेंभी उसीमें लीन थीं उससमय सब प्रपंच रहित अपने स्वरूपमें जो पुराण पुरुष स्थित थे सो यही कृष्णचंद्र हैं ॥ २१ ॥ अपनें वीर्यसे प्रेरीत सबकी जिवायवेवारी रचवेवारी अपनी प्रकृतिको नाम रूप रहित आत्मामें रूप नाम निधान करनेको सब शिक्षाशास्त्र करवेवारे फेर मायामें स्थित होतेभए वह यही कृष्ण हैं ॥ २२ ॥ निश्चयकरके ये ईश्वर हैं, जिनको जितेंद्रिय पवन जीतवेवारे, भक्तिसे उत्कंठित, निर्मल आत्माकरकै बडे बडे विवेकी जिनके पदको देखे हैं सो निश्चय करकै ये श्रीकृष्ण सब जीवमात्रके शुद्ध करवेवारे हैं; और कोई नहीं है ॥ २३ ॥ हे सखियो! यह वही ईश्वर है कि जिनकी सत्कथा वेदोंमें और रहस्य ग्रंथोंमें गुप्त वक्ताओंने गाई है जो एक ईश्वर अपनी लीलाकरकै या जगत्को रचे है रक्षा करैहै भक्षण करैं हैं परन्तु या विश्वमें आसक्त नहीं होवैहै ॥ २४ ॥

उद्धवः सात्यकिश्चैव व्यजने परमाद्भुते ॥ विकीर्यमाणः कुसुमै रेजे मधुपतिः पथि ॥ १८ ॥ अश्रूयन्ताऽऽशिषः सत्यास्तत्र तत्र द्विजेरिताः ॥ नानुरूपानुरूपाश्च निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १९ ॥ अन्योन्यमासीत्संजल्प उत्तमश्लोकचेतसाम् ॥ कौरवेन्द्रपुरस्त्रीणां सर्वश्रुतिमनोहरः ॥ २० ॥ स्त्रिय ऊचुः ॥ स वै किलायं पुरुषः पुरातनो य एक आसीदविशेष आत्मनि ॥ अग्रे गुणेभ्यो जगदात्मनीश्वरे निमीलितात्मन्निशि सुप्तशक्तिषु ॥ २१ ॥ स एव भूयो निजवीर्यचोदितां स्वजीवमायां प्रकृतिं सिसृक्षतीम् ॥ अनामरूपात्मनि रूपनामनी विधित्समानोनुससार शास्त्रकृत् ॥ २२ ॥ स वा अयं यत्पदमत्र सूरयो जितेन्द्रिया निर्जितमातरिश्वनः ॥ पश्यन्ति भक्त्युत्कलितामलात्मना नन्वेष सत्त्वं परिमार्ष्टुमर्हति ॥ ॥ २३ ॥ स वा अयं सख्यऽनुगीतसत्कथो वेदेषु गुह्येषु च गुह्यवादिभिः ॥ य एक ईशो जगदात्मलीलया सृजत्यवत्यत्ति न तत्र सज्जते ॥ २४ ॥

जब अधर्म करकै ये तामसी बुद्धिवारे राजा जीवें हैं, तब ये ईश्वर सात्विक रूप धर निश्चयकरके संसारस्थितिके अर्थ युगयुगमें रूप धारैहै, और ऐश्वर्य, सत्यप्रतिज्ञता, यथार्थवार्ता भक्तोंपर कृपा, ये अद्भुतकर्म धारैहै ॥ २५ ॥ ये यादवोंकों कुल अत्यंत श्लाघा करवे योग्य है, ये मधुवन अत्यंत पुण्यतम है, जो सबके स्वामी श्रीपति अपने जन्मकरकै चलने फिरने करकै पूजनके योग्य करतेभए ॥ २६ ॥ आश्चर्य है कि स्वर्गके यशकी तिरस्कार करवेवारी पुण्य यश करवेवारी श्रीद्वारकाजी भई कि नित्य अनुग्रह दृष्टिसे स्मित मुसकानसे देखनेहारे अपने प्रति श्रीकृष्णको जिनकी प्रजा दर्शन करैहै ॥ २७ ॥ इनको पाणिग्रहण करवेवारी इनकी स्त्रियोंने निश्चयही व्रत स्नान हवनादिसे सूर्य देवका पूजन किया होगा कारण

यदा ह्यधर्मेण तमोधियो नृपा जीवन्ति तत्रैष हि सत्त्वतः किल॥ धत्ते भगं सत्यमृतं दयां यशो भवाय रूपाणि दधद्युगे युगे ॥२५॥ अहो अलं श्लाघ्यतमं यदोः कुलं अहो अलं पुण्यतमं मधोर्वनम् ॥ यदेष पुंसामृषभः श्रियः पतिः स्वजन्मना चङ्क्रमणेन चाञ्चति ॥ २६ ॥ अहो बत स्वर्यशसस्तिरस्करी कुशस्थली पुण्ययशस्करी भुवः ॥ पश्यन्ति नित्यं यदनुग्रहेषितस्मितावलोकं स्वपतिं स्म यत्प्रजाः ॥ २७ ॥ नूनं व्रतस्नानहुतादिनेश्वरः समर्चितो ह्यस्य गृहीतपाणिभिः ॥ पिबन्ति याः सख्यधरामृतं मुहुर्व्रजस्त्रियः संमुमुहुर्यदाशयाः ॥ २८ ॥ या वीर्यशुल्केन हृताः स्वयंवरे प्रमथ्य चैद्यप्रमुखान्हि शुष्मिणः ॥ प्रद्युम्नसाम्बाम्बसुतादयोऽपरा याश्चाहृता भौमवधे सहस्रशः ॥२९॥ एताः परं स्त्रीत्वमपास्तपेशलं निरस्तशौचं बत साधु कुर्वते ॥ यासां गृहात्पुष्करलोचनः पतिर्न जात्वपैत्याहृतिभिर्हृदि स्पृशन् ॥३०॥

कि जा अधरामृतमें अन्तःकरण लगायकै व्रजको स्त्रियें मोहको प्राप्त भई यह उस अधरामृतका वारंवार पान करैहैं ॥ २८ ॥ शिशुपाल आदि मत्तराजानको जीतकर अपने पराक्रमरूप वीर्यसे स्वयंवरमें जिन्हें हरलाए, और प्रद्युम्न सांब अम्बसुतादिक जिनके पुत्र भये और भौमासुर मारके जो हजारों स्त्रियें लाए उन सबके धन्य भाग्य हैं ॥ २९ ॥ यह सब स्त्री पवित्रता और चतुरताहीन स्त्रीभावहीको शोभित करतीहैं जिनके हृदयको कमलनयन श्रीकृष्णचंद्र अनेक कार्योंसे आनंद देते हृदयकी स्पर्श करनेहारी वाणियोंसे प्रसन्न करते कभी बाहर नहीं जातेहैं ॥ ३० ॥

हस्तिनापुरकी रहनेहारी स्त्रियोंके इसप्रकार वचन सुनकर हास्यपूर्वक उनको देखते और आनंद देते श्रीकृष्ण गये ॥ ३१ ॥ राजा युधिष्ठिर भगवान्की रक्षाके लिये थोडीसी सेना भेजतेभए, शत्रुओंकी शंकाते, स्नेहते हाथी रथ घोडे प्यादे थोडेसे भेजदीने ॥ ३२ ॥ तब दूर आये विरहातुर कौरवनको श्रीकृष्णजी लोटावतेभए, बडे स्नेहीनको हस्तिनापुर पठाय आप अपनी द्वारकाकों चले ॥ ३३ ॥ कुरु जांगल पांचाल शूरसेन यमुना किनारेके देश ब्रह्मावर्त कुरुक्षेत्र मत्स्यदेश सरस्वती तीरके देश ॥ ३४ ॥ हे शौनक! मारवाड़से बडे सौविर आभिरदेश, और देश आनर्त देश

एवंविधा गदन्तीनां स गिरः पुरयोषिताम् ॥ निरीक्षणेनाभिनन्दन्सस्मितेन ययौ हरिः ॥ ३१ ॥ अजातशत्रुः पृतनां गोपीथाय मधुद्विषः ॥ परेभ्यः शङ्कितः स्नेहात्प्रायुङ्क्त चतुराङ्गिणीम् ॥ ३२ ॥ अथ दूरागताञ्च्छौरिः कौरवान्विरहातुरान् ॥ सन्निवर्त्य दृढं स्निग्धान्प्रायात्स्वनगरीं प्रियैः ॥ ३३ ॥ कुरुजाङ्गलपाञ्चालाञ्छूरसेनान्सयामुनान् ॥ ब्रह्मावर्तं कुरुक्षेत्रं मत्स्यान्सारस्वतानथ ॥ ३४ ॥ मरुधन्वमतिक्रम्य सौवीराभीरयोः परान् ॥ आनर्तान्भार्गवोपागाच्छ्रान्तवाहो मनाग्विभुः ॥ ३५ ॥ तत्र तत्र ह तत्रत्यैर्हरिः प्रत्युद्यतार्हणः ॥ सायं भेजे दिशं पश्चाद्गविष्ठो गां गतस्तदा ॥ ३६ ॥ इति श्रीभा० प्र० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ सूत उवाच ॥ आनर्तान्स उपव्रज्य स्वृद्धाञ्जनपदान्स्वकान् ॥ दध्मौ दरवरं तेषां विषादं शमयन्निव ॥ १ ॥ स उच्चकाशे धवलोदरो दरोऽप्युरुक्रमस्याऽधरशोणशोणिमा ॥ दध्मायमानः करकञ्जसंपुटे यथाब्जखण्डे कलहंस उत्स्वनः ॥ २ ॥

जो द्वारकाके समीपही हैं वहां घोडे थकगए तौ वहांई रहे ॥ ३५ ॥ तहां तहां तहांके वासीनने हरिकी पूजा करि, सांझ भई सूर्य पश्चिममें पहुचे तब वहांई वास करतेभए ॥ ३६ ॥ इति भा० भाषा० श्रीकृष्णस्यानर्तदेशागमनं नाम दशमोध्यायः समाप्तः ॥ १० ॥ ॥ सूतजी बोले कि समृद्ध अपनें आनर्त देशसे चलकर उनके विषाद शांत करवेको भगवान् अपनो पांचजन्यशंख बजावतेभए ॥ १ ॥ सुपेद उदर श्रीभगवान्के अधरकी ललाईसे लालकमल सदृश हस्तसंपुटमें धरोभयो शब्दायमान शंख अत्यन्त शोभित होतोभयो, जैसे लालकमलोंके समूहमें राजहंस सोहै है ॥ २ ॥

जगत्के भयको नाशक वा शंखको नाद सुन श्रीकृष्णदर्शनकी लालसासै सब प्रजाभी हरिके सन्मुख आतीभई ॥ ३ ॥ जैसे कोई सूर्यको दीपदान करै तैसे भगवान् आत्माराम पूर्णकाम निजलाभसे नित्य प्रसन्नको प्रजाने भेंटे अर्पण की ॥ ४ ॥ जिसप्रकार बालक अपने पितासै वचन कहते हैं इसप्रकार प्रीतिसै प्रसन्न होकर प्रजानै सबके सुहृद और पालन करनेहारे श्रीकृष्णचंद्रसै गद्गद वाणी होकर कहा ॥ ५ ॥ हे नाथ ! ब्रह्मा, सनकादिक देवता,इंद्र करकै वंदित क्षेमकी इच्छा करवेवारोंको परम आश्रयदायक, जहां देवताओंका प्रभु कालभी समर्थ न होय ऐसे आपके चरणकमलको सदा हम सब नमस्कार करैं हैं ॥६॥ हे विश्वभावन ! हम सबकी उत्पात्तिके लिये आप हो, तुमही माता हो सुहृत् पति पिता हो, तुम सद्गुरु हो, हमा-

तमुपश्रुत्य निनदं जगद्भयभयावहम् ॥ प्रत्युद्ययुः प्रजाः सर्वा भर्तृदर्शनलालसाः ॥ ३ ॥तत्रोपनीतबलयो रवेर्दीपमिवाऽऽदृताः ॥ आत्मारामं पूर्णकामं निजलाभेन नित्यदा ॥ ४ ॥ प्रीत्युत्फुल्लमुखाः प्रोचुर्हर्षगद्गदया गिरा ॥ पितरं सर्वसुहृदमवितारमिवार्भकाः ॥ ५ ॥ नताः स्म ते नाथ सदाङ्घ्रिपङ्कजं विरिञ्चवैरिञ्चसुरेन्द्रवन्दितम् ॥ परायणं क्षेममिहेच्छतां परं न यत्र कालः प्रभवेत्परः प्रभुः ॥ ६ ॥ भवाय नस्त्वं भव विश्वभावन त्वमेव माताऽथ सुहृत्पतिः पिता ॥ त्वं सद्गुरुर्नः परमं च दैवतं यस्यानुवृत्त्या कृतिनो बभूविम ॥७॥ अहो सनाथा भवता स्म यद्वयं त्रैविष्टपानामपि दूरदर्शनम् ॥ प्रेमस्मितस्निग्धनिरीक्षणाननं पश्येम रूपं तव सर्वसौभगम् ॥ ८ ॥ यर्ह्यम्बुजाक्षाऽपससार भो भवान्कुरून्मधून्वाऽथ सुहृद्दिदृक्षया ॥ तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद्रविं विनाक्ष्णोरिव नस्तवाऽच्युत ॥९॥ इति चोदीरिता वाचः प्रजानां भक्तवत्सलः ॥ शृण्वानोऽनुग्रहं दृष्ट्या वितन्वन्प्राविशत्पुरीम् ॥ १० ॥

रे तुह्मी परमदेवता हो, जिन तुह्मारी सेवाकरकै हम सब कृतार्थ होतेभए ॥ ७ ॥ स्वर्गवासी देवतानकी जिनको दूरसे दर्शन होय, सब सुंदरताकी खान प्रेमभरि मुसकान मनोहर चितवनवारे आपके मुखका हम दर्शन करैं हैं यासे आपकरकै हम सब महाऐश्वर्यवान् होतेभए ॥८॥ हे अंबुजाक्ष हे अच्युत ! जब आप हस्तिनापुरको अथवा मथुराको सुहृदोंके देखवेको पधारोहो वो समय कोटिवर्षकी समान हमको होयहै, जैसे सूर्यके विना नेत्रनसे कछु न सूझेहै तैसे हमारी गति होयहै ॥ ९ ॥ प्रजानकी ऐसी निकसी वाणीको भक्तवत्सल सुनते जावैहैं, उनपर अनुग्रह दृष्टि विस्ता-

र करत अपनीं द्वारकामें प्रवेश करतेभए ॥ १० ॥ जिस पुरीकी अपनें समान बली मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, कुकुर, अंधक, वृष्णि, यादव रक्षा कररहेहैं, जैसे भोगवती पुरीकी नागलोक रक्षा करैं हैं ॥ ११ ॥ सब ऋतुओंमें सब पुष्पादि फलै, पुण्यदायक वृक्ष लताके मंडपोंसे शोभित हैं, फलप्रधान हो उद्यान कहावैं हैं, पुष्पप्रधान उपवन, खेलवेके योग्य वनकों आराम कहैहैं, ये जहां शोभित हैं, कमलनकी शोभा न्यारी होय रहीहैं ॥ १२ ॥ गोपुर द्वार मार्गोंमें उत्सव करकै तोरण वंदनवार बांधैहैं, चित्र विचित्र गरुड चिन्हसे अंकित ध्वजा लगाएहैं, जयदायक यंत्र कढै वडे २ झंडा लगेहैं, जिनके फरराहटेसे धूप नहीं लगेहै ॥ १३ ॥ महामार्ग, छोटेमार्ग, दुकानदारोंको मार्ग, चौरहै सब छिडके, बुहारेहै, सुगंधिको जल छिडको फल पुष्प चामर दूर्वांअंकुर विखेरेहैं ॥ १४ ॥ गृहोंके द्वार द्वारमें दही अक्षत फल गंडेरी पूर्णकुंभ बलिदान धूप दीप इनसे अतिशोभित होरहेहै ॥ ऐसी द्वारकाकी शोभा होयरहीहै ॥ १५ ॥ प्यारे श्रीकृष्णजीकों आते सुनकर महामनवारे वसुदेव, अक्रूर, उग्रसेन, बलदाऊ अद्भुत पराक्रमी सब आतेभए ॥ १६ ॥ प्रद्युम्न चारुदेष्ण जांववती सुत सांव अति हर्षके मारे शयन आसन भोजन त्याग आये ॥ १७ ॥ एक गजेंद्र आगे करो, ब्राह्मण सुमंगल गावैं हैं, शंख तूर्यके शब्द होते आवैहै, आदरसे ब्राह्मण वेदपाठको घोष करते आवैं हैं यादवोंमें श्रेष्ठ नम्रतासे महासंमोहको प्राप्त हो प्रसन्न हो रथपर बैठ भगवान्के सन्मुख आते भये ॥ १८ ॥

मधुभोजदशार्हार्हकुकुरान्धकवृष्णिभिः॥ आत्मतुल्यबलैर्गुप्तां नागैर्भोगवतीमिव॥ ११॥ सर्वर्तुसर्वविभवपुण्यवृक्षलताश्रमैः ॥ उद्यानोपवनारामैर्वृतपद्माकरश्रियम् ॥ १२ ॥ गोपुरद्वारमार्गेषु कृतकौतुकतोरणाम् ॥ चित्रध्वजपताकाग्रैरन्तःप्रतिहतातपाम् ॥ १३ ॥ संमार्जितमहामार्गरथ्यापणकचत्वराम् ॥ सिक्तां गन्धजलैरुप्तां फलपुष्पाक्षताङ्कुरैः ॥ १४ ॥ द्वारि द्वारि गृहाणां च दध्यक्षतफलेक्षुभिः ॥ अलंकृतां पूर्णकुम्भैर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥ १५ ॥ निशम्य प्रेष्ठमायान्तं वसुदेवो महामनाः ॥ अक्रूरश्चोग्रसेनश्च रामश्चाद्भुतविक्रमः ॥ १६ ॥ प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ प्रहर्षवेगोच्छ्वसितशयनासनभोजनाः ॥ १७ ॥ वारणेन्द्रं पुरस्कृत्य पाणिभिश्च सुमङ्गलैः ॥ शङ्खतूर्यनिनादेन ब्रह्मघोषेण चादृताः ॥ प्रत्युज्जग्मू रथैर्हृष्टाः प्रणयागतसाध्वसाः ॥ १८ ॥

श्रीकृष्णजीके दर्शनको सैंकडौं वेश्या कि जिनके देदीप्यमान कुंडलकी कांतिसै कपोल और मुखकी शोभा प्रकाश होरही है सवारियोंपर बैठके आतीं भई ॥ १९ ॥ नवरस जाननेंवारे नट, तालके अनुसार नाचनेहारे नर्तक, गानेंहारे गंधर्व, पुराणवक्ता सूत, वंशोंको जाननेवारे मागध, जैसा देखे तैसा कहै वे बंदी जन ये सब श्रीकृष्णजीके अद्भुत चरित्र गावैंहैं ॥ २० ॥ उस समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने सन्मुख आये अपने बंधु और पुरवासियोंका अनेक प्रकारसै सन्मान किया ॥ २१ ॥ कोई शिरसे नमैं कोई वाणीसे नमः करै, कोई मिले, काऊसे हाथसे हाथ मिलायो, काउको मुसुकायके देखो, चांडाल पर्यंतको शांतकर सबको यथायोग्य वर देते भए ॥ २२ ॥ और आपभी गुरु, ब्राह्मण, तथा स्त्रियों सहित वृद्धोंके आशीर्वाद

वारमुख्याश्च शतशो यानैस्तद्दर्शनोत्सुकाः ॥ लसत्कुण्डलनिर्भातकपोलवदनश्रियः ॥१९॥ नटनर्तकगन्धर्वाः सूतमा-
गधबन्दिनः ॥ गायन्ति चोत्तमश्लोकचरितान्यद्भुतानि च ॥ २० ॥ भगवांस्तत्र बन्धूनां पौराणामनुवर्तिनाम् ॥ यथावि-
ध्युपसंगम्य सर्वेषां मानमादधे ॥ २१ ॥ प्रह्वाभिवादनाश्लेषकरस्पर्शस्मितेक्षणैः ॥ आश्वास्य चाऽऽश्वपाकेभ्यो वरै-
श्चाभिमतैर्विभुः ॥ २२ ॥ स्वयं च गुरुभिर्विप्रैः सदारैः स्थविरैरपि ॥ आशीर्भिर्युज्यमानोऽन्यैर्बन्दिभिश्चाऽविशत्पुरम् ॥
॥ २३ ॥ राजमार्गं गते कृष्णे द्वारकायाः कुलस्त्रियः ॥ हर्म्याण्याऽऽरुरुहुर्विप्र तदीक्षणमहोत्सवाः ॥ २४ ॥ नित्यं निरी-
क्षमाणानां यदपि द्वारकौकसाम् ॥ न वितृप्यन्ति हि दृशः श्रियो धामाङ्गमच्युतम् ॥२५॥ श्रियो निवासो यस्योरःपान-
पात्रं मुखं दृशाम् ॥ बाहवो लोकपालानां सारङ्गाणां पदाम्बुजम् ॥ २६ ॥ सितातपत्रव्यजनैरुपस्कृतः प्रसूनवर्षैरभिव-
र्षितः पथि ॥ पिशङ्गवासा वनमालया बभौ घनो यथार्कोडुपचापवैद्युतैः ॥ २७ ॥

श्रवण करते हुए और बंदिजनोंसै स्तुतिको प्राप्त हो पुरमें प्रवेश करते हुए ॥ २३ ॥ हे विप्र ! जब श्रीकृष्णजी राजमार्गमें आये तब द्वारकाकी कुलस्त्रियें तिनके महाउत्सव देखवेको मेहलोंपर जाय बैठतीभई ॥ २४ ॥ यद्यपि द्वारकावासी श्रीकृष्णको नित्य देखते थे तथापि अंग अंग शोभित श्रीकृष्णको देख उनकी दृष्टि तृप्त नहीं होती थी ॥ २५ ॥ लक्ष्मी जिनके उरमें निवास करै, जिनको मुख सब प्राणियोंकी दृष्टियोंकी सौंदर्यामृतपानार्थ पात्र है, जिनके बाहु लोकपालनको निवासस्थान हैं, पदकमल उनके यश गानेहारे भक्तोंका निवासस्थान है॥२६॥ शुक्लछत्र चमरसे

शोभित, मार्गमें पुष्पवृष्टिसे शोभित, पीरे पीताम्बर वनमालासे प्रकाश करते भए, जैसे मेघ सूर्य तारा इंद्रधनुष विजुरी एकसंग सोहैं तद्वत् कृष्णकी शोभा है छत्र तो सूर्यकी उपमा है, पुष्पवृष्टि नक्षत्र है, मंडलाकारक चमर पंखा चंद्रमाकी समान है वनमाला धनुष है, विजुरी पीरो पीताम्बर है, ये अभूतोपमा कहावै है ॥ २७ ॥ अपनी मासे मिले, पिताके घरमें आए, सिरसे सातों देवकी आदि मातानको आनंदित होय वंदना करते भए ॥२८॥ वे पुत्रकों गोदमें बैठाय स्नेहसे स्तननमेंसे दूध चूय हर्षसे विव्हल देह नेत्रोंके जलसे सींचती भई ॥ २९ ॥ याके उपरांत सब कामसे उत्तम अपने भवनमें प्रवेश करते भए, जहां सोलेहजार येकसौ आठ पत्नीयोंके रहनेके महल हैं ॥ ३० ॥ श्रीकृष्णपत्नी श्रीकृष्णको प्रदेशसे आए देखकर

प्रविष्टस्तु गृहं पित्रोः परिष्वक्तः स्वमातृभिः ॥ ववन्दे शिरसा सप्त देवकीप्रमुखा मुदा ॥ २८ ॥ ताः पुत्रमङ्कमारोप्य स्नेहस्नुतपयोधराः ॥ हर्षविह्वलितात्मानः सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः ॥ २९ ॥ अथाविशत्स्वभवनं सर्वकाममनुत्तमम् ॥ प्रासादा यत्र पत्नीनां सहस्राणि च षोडश ॥ ३० ॥ पत्न्यः पतिं प्रोष्य गृहानुपागतं विलोक्य संजातमनोमहोत्सवाः ॥ उत्तस्थुराराात्सहसाऽऽसनाशयात्साकं व्रतैर्व्रीडितलोचनाननाः ॥ ३१ ॥ तमात्मजैर्दृष्टिभिरन्तरात्मना दुरन्तभावाः परिरेभिरे पतिम् ॥ निरुद्धमप्यास्रवदम्बु नेत्रयोर्विलज्जतीनां भृगुवर्य वैक्लवात् ॥ ३२ ॥ यद्यप्यसौ पार्श्वगतो रहोगतस्तथापि तस्याङ्घ्रियुगं नवं नवम् ॥ पदे पदे का विरमेत तत्पदाच्चलापि यच्छ्रीर्न जहाति कर्हिचित् ॥ ३३ ॥

महाप्रसन्न भई और लाजभरे नेत्रसै नीचा मुख किये व्रतोंके संग शरीर और अंतःकरणसै सहसा उठ खडी हुई क्रीडा, शरीरको मलके धोवनो, समाजमें जानों, उत्सव देखनों, हासी करनीं, पराये घर जानो जाको पति परदेश गयो होय वह इतनी वस्तु न करै ऐसे याज्ञवल्क्यस्मृतिमें लिखा है ॥३१॥ हे शौनक ! वे श्रीकृष्णकी गंभीर स्वभाववारी स्त्री प्रथम बुद्धि पश्चात् दृष्टि तिसके पीछे पुत्रोंद्वारा श्रीकृष्णसे मिलि यद्यपि उन्होंने लज्जासे नेत्रोंके आसू रोक रक्खे थे तथापि विकलतासे निकासि आये ॥३२॥ यद्यपि कृष्ण पास है एकांतमें रहिते है तथापि तिनके दोनों चरणको नवीन २ संगम क्षण २ में कौन भूलेगो जब चंचल लक्ष्मीजी तिनके समीपसे कभी कहीं न जावैहै तब कौन स्त्री उनके चरणकी सेवाको त्यागैंगी ॥ ३३ ॥

ऐसे पृथ्वीपर भाररूप जिनके जन्म, अक्षौहिणी करकै सब ओर जिनको तेज ऐसे राजानको आपसमें वैर कराय, परस्पर वध कराय, आप उपरामकों प्राप्त भए, जैसे वांसके वनमें आपसमें घसके अग्नि लगकर वांसवन जलायकर फिर शान्त होजाताहै ॥ ३४ ॥ ये भगवान् अपनी मायाकरके मनुष्यनाट्य करवेको अवतार लेतेभए, स्त्रीरत्नसमूहमें स्थित हो प्राकृत संसारीजीवनकी नाईं रमण करतेभए ॥३५ ॥जिन स्त्रियोंके गंभीर अभिप्रायसूचक मनोहर सुंदर लाजसहित हास्यसे ताडित हो महादेव मोहित होकर अपनों पिनाकधनुष त्यागतेभए, वे ऐसी श्रेष्ठ स्त्री जिन श्रीकृष्णजीकी इंद्रियोंको वस करवेको कपटभावसेभी समर्थ न होतीभई ॥ ३६ ॥ तिन श्रीकृष्णजीकों ये प्राकृतलोग अपनी समान संगी मनुष्य मानें हैं, वे किसीके

एवं नृपाणां क्षितिभारजन्मनामक्षौहिणीभिः परिवृत्ततेजसाम् ॥ विधाय वैरं श्वसनो यथानलं मिथो वधेनोपरतो निरायुधः ॥ ३४ ॥ स एष नरलोकेऽस्मिन्नवतीर्णः स्वमायया ॥ रेमे स्त्रीरत्नकूटस्थो भगवान्प्राकृतो यथा ॥३५॥ उद्दामभावपिशुनामलवल्गुहासव्रीडावलोकनिहतो मदनोऽपि यासाम् ॥ संमुह्य चापमजहात्प्रमदोत्तमास्ता यस्येन्द्रियं विमथितुं कुहकैर्न शेकुः ॥ ३६ ॥ तमयं मन्यते लोको ह्यसङ्गमपि सङ्गिनम् ॥ आत्मौपम्येन मनुजं व्यापृण्वानं यतोऽबुधः ॥ ३७ ॥ एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः ॥ न युज्यते सदात्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया॥ ३८ ॥ तं मेनिरेऽबला मूढाः स्त्रैणं चाऽनुव्रतं रहः॥ अप्रमाणविदो भर्तुरीश्वरं मतयो यथा ॥३९॥इति श्रीभा॰महा॰प्र॰एकादशोऽध्यायः॥ ११॥ शौनक उवाच॥अश्वत्थाम्नोपसृष्टेन ब्रह्मशीर्ष्णोरुतेजसा॥उत्तराया हतो गर्भ ईशेनाऽऽजीवितः पुनः॥१॥

संग नहीं है तत्वके न जान्नेहारे पुरुष अपने अज्ञानसे उन्हें व्यापार करने देख विषयी मानेंहैं ॥ ३७॥ ईश्वरकी यही ईश्वरता है कि मायामें स्थित होकर असत् सुख दुःखादिक मायाके गुणोंकरके लिप्त न होवै, जैसे मायाश्रया बुद्धि मायाकी उपाधिमें लिप्त न होवैहै ॥ ३८ ॥ अपनें भर्ताके प्रमाणकी न जाननेवारी मूर्ख अवला स्त्रियें स्त्री चाहनेंवारे एकांतमें क्रीडा करवेवारे श्रीकृष्णको मानती भई, जैसे अहंकारकी वृत्ति मति ईश्वरको स्वाधीन मानें है ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते प्रथमस्कन्धे श्रीकृष्णद्वारकाप्रवेशो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ शौनक मुनि बोले कि ॥ अश्वत्थामाके छोडे भए तेजस्वी ब्रह्मास्त्रसे उत्तराको गर्भ नष्ट भयो हो सो फेर ईश्वरनें जिवायो ॥ १ ॥

ताको जन्म महाआश्चर्यको और कर्म हमसे कहो जिस प्रकार देह त्यागनकर परलोक गया सो कहो ॥ २ ॥ जो आप कहिवेको योग्य हो तौ कहो हमारी सुनवेकी इच्छा है जिसप्रकार उसे शुकदेवजीने ज्ञान दिया वह सब हमें सुनाओ ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि ॥ राजा युधिष्ठिर पिताकी नांई प्रजाको सुख देते भए राज्यकी पालना करतेभए सब कामना त्याग श्रीकृष्णके चरणकमलकी सेवा करते रहे ॥ ४ ॥ संपद, यज्ञ, लोक, स्त्रियें, भाई, धरती, जंबूद्वीपको राज्य और स्वर्गतक पहुचो यश ॥ ५ ॥ हे द्विजो ! यह सम्पूर्ण पदार्थ देवताभी जिनकी इच्छा करैं वह राजा युधिष्ठिरके विद्यमान थे परन्तु युधिष्ठिरको मन श्रीकृष्णमें आसक्त होनेके कारण उसको कुछभी आनंददायक नहीं है जैसे भूंखे पुरुषको पुष्प माला चंदन आदि पदार्थ

तस्य जन्म महाबुद्धेः कर्माणि च महात्मनः ॥ निधनं च यथैवासीत्स प्रेत्य गतवान्यथा ॥ २ ॥ तदिदं श्रोतुमिच्छामि गदितुं यदि मन्यसे ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां यस्य ज्ञानमदाच्छुकः ॥३॥ सूत उवाच ॥ अपीपलद्धर्मराजः पितृवद्रञ्जयन्प्रजाः ॥ निःस्पृहः सर्वकामेभ्यः कृष्णपादानुसेवया॥४॥ संपदः क्रतवो विप्रा महिषी भ्रातरो मही ॥ जम्बूद्वीपाधिपत्यं च यशश्च त्रिदिवं गतम्॥५॥किं ते कामाः सुरस्पार्हा मुकुन्दमनसो द्विजाः ॥ अधिजह्रुर्मुदं राज्ञः क्षुधितस्य यथेतरे॥६ ॥ मातुर्गर्भगतो वीरः स तदा भृगुनन्दन॥ददर्श पुरुषं कंचिद्दह्यमानोऽस्त्रतेजसा ॥ ७॥ अङ्गुष्ठमात्रममलं स्फुरत्पुरटमालिनम् ॥ अपीच्यदर्शनं श्यामं तडिद्वाससमच्युतम् ॥ ८ ॥ श्रीमद्दीर्घचतुर्बाहुं तप्तकाञ्चनकुण्डलम्॥क्षतजाक्षं गदापाणिमात्मनः सर्वतोदिशम् ॥ ९ ॥ परिभ्रमन्तमुल्काभां भ्रामयन्तं गदां मुहुः ॥ कौमोदकीमतिश्रेष्ठां भक्तरक्षणतत्पराम् ॥ १० ॥ अस्त्रतेजः स्वगदया नीहारमिव गोपतिः ॥ विधमन्तं संनिकर्षे पर्यैक्षत क इत्यसौ ॥ ११ ॥

प्रीतिकारक नहीं होते ॥ ६ ॥ हे भृगुनंदन ! माताके गर्भमेंभी वो वीर परीक्षित् अस्त्रके तेजसे तपित भए, तब कोई एक पुरुष देखतेभए ॥ ७ ॥ अंगुष्ठ मात्र निर्मल दमकते सुवर्ण समान मस्तक, अतिसुंदर, श्याम, विजुरीसमान पीतांबर पहरे विकार रहित ॥ ८ ॥ शोभायमान लंबी चार भुजा, तप्तसुवर्णके कुंडल पहरे लालनेत्र, गदा लिये अपनें चारों ओर ॥ ९ ॥ सब ओर घूमैं उल्काकी समान अतिश्रेष्ठ भक्तोंकी रक्षामें परायण कौमोदकी गदाको वारंवार घुमाते ॥ १० ॥ जैसे सूर्यको कुहरा नाश करै तैसे अपनी गदासै अस्त्रका तेज नाश करते महापुरुषको देख वह बालक

गर्भमेंही विचार करनेलगा कि यह कौन है ॥ ११ ॥ धर्मरक्षकदेह अप्रमेय विभु, भगवान् वा ब्रह्मास्त्रकों दूरकर दशमासके बालकके देखते तहांही अन्तर्ध्यान होगये ॥ १२ ॥ ताके उपरान्त सब गुणोंसे परिपूर्ण सुखदायक अनुकूल ग्रहोंके उदयसमयमें वंशधारी पांडुके जन्मे, मानों फेर पांडु राजा जन्म लेतेभए ॥ १३ ॥ प्रसन्नमन राजा युधिष्ठिर धौम्य कृपादिकविप्रोंसे वा बालकके जन्मसमयके सब कर्म करवावतेभए, स्वस्तिवाचन मंगल कराते भए ॥ १४ ॥ जबतक नाल च्छेदन न होय है तबतक सूतक न लगेहै, नाल कटे पीछे सूतक लगेहै, सो सुवर्ण, गौ, धरती, ग्राम, हाथी, घोडा, श्रेष्ठ देतोभयो, सुंदर अन्नसे ब्राह्मण जिमाय पुत्रके उत्पन्न होनेके समयमैं जैसे तीर्थमें दान पुण्य करै तैसे करतेभए ॥ १५ ॥ प्रसन्न ब्राह्मण नम्रीभूत राजा-

विधूय तदमेयात्मा भगवान्धर्मगुब्विभुः ॥ मिषतो दशमास्यस्य तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥ १२ ॥ ततः सर्वगुणोदर्के सानुकूलग्रहोदये ॥ जज्ञे वंशधरः पाण्डोर्भूयः पाण्डुरिवौजसा ॥ १३ ॥ तस्य प्रीतमना राजा विप्रैर्धौम्यकृपादिभिः ॥ जातकं कारयामास वाचयित्वा च मङ्गलम् ॥ १४ ॥ हिरण्यं गां महीं ग्रामान्हस्त्यश्वान्नृपतिर्वरान् ॥ प्रादात्स्वन्नं च विप्रेभ्यः प्रजातीर्थे स तीर्थवित् ॥ १५ ॥ तमूचुर्ब्राह्मणास्तुष्टा राजानं प्रश्रयानतम् ॥ एष ह्यस्मिन्प्रजातन्तौ कुरूणां पौरवर्षभ ॥ १६ ॥ दैवेनाप्रतिघातेन शुक्ले संस्थामुपेयुषि ॥ रातो वोऽनुग्रहार्थाय विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ १७ ॥ तस्मान्नाम्ना विष्णुरात इति लोके बृहच्छ्रवाः ॥ भविष्यति न संदेहो महाभागवतो महान् ॥ १८ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अप्येष वंश्यान्राजर्षीन्पुण्यश्लोकान्महात्मनः ॥ अनुवर्तिता स्विद्यशसा साधुवादेन सत्तमाः ॥ १९ ॥ ब्राह्मणा ऊचुः ॥ पार्थ प्रजाऽविता साक्षादिक्ष्वाकुरिव मानवः ॥ ब्रह्मण्यः सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्यथा ॥ २० ॥

से बोले कि हे पुरुवंशियोंमें श्रेष्ठ ! येभी प्रजानमैं आपके समान होयगे ॥ १६ ॥ जाको कोई सामनों न करसके ऐसे कालकरकै शुद्धदिनमें उत्पन्न भएहैं तुह्मारे सबके ऊपर अनुग्रहके अर्थ सर्वव्यापक सबके उत्पात्तिकर्ता प्रभु विष्णुनें याकी रक्षा करीहै ॥ १७ ॥ ताते याको नाम विष्णुरात लोकमें होगो, बडो यशस्वी होगो, यामें संदेह नाय है महाभागवत होगो ॥ १८ ॥ श्रीयुधिष्ठिरजी बोले कि ॥ हे द्विजसत्तम ! पुण्यश्लोक महात्मा राजऋषीनके वंशके अनुसार साधुवाद करकै यह उनको अनुवर्ति होगो कि नहीं सो कहो ॥ १९ ॥ ब्राह्मण बोले कि ॥ हे पार्थ ! प्रजाको रक्षक,

साक्षात् इक्ष्वाकुकी नाई होगो,ब्रह्मण्य,सत्यतामें दाशरथी रामचंद्रके बराबर होगो॥२०॥ये दान और शरणागतको प्रतिपालक शिवी उशीनर देशवासीकी
नांई होगो, उशीनर देशवासी राजा शिबीनें अपनों मांस शिकराको देकर शरणागत कपोतकी रक्षा कीनीं, अपनेनको यश विस्तार करने और
यज्ञ करताओंमे यश फैलानेसें दुष्यन्तपुत्र भरतकी समान होयगो ॥ २१ ॥ धनुषधारीनमें अग्रणी सहस्रार्जुन अर्जुनकी नाई होगो, अग्निकीनाई दुर्धर्ष
होगो, सागरसमान दुस्तर होगो ॥२२॥ सिंहसदृश विकराल,हिमवान्की नाई सेवायोग्य होगो,वसुधाकी नाई सहनशीली होयगो, सहनेवारो माबापकी
नाई होगो ॥ २३ ॥ ब्रह्मासमान साम्यभावमें रहेगो, महादेवजीको नाई शीघ्र प्रसन्न होजायगो, सब जीवनके आश्रय देनेको भगवान्की नाई रहैगो

एष दाता शरण्यश्च यथा ह्यौशीनरः शिबिः ॥ यशो वितनिता स्वानां दौष्यन्तिरिव यज्वनाम् ॥२१॥ धन्विनामग्रणी-
रेष तुल्यश्चाऽर्जुनयोर्द्वयोः ॥ हुताश इव दुर्धर्षः समुद्र इव दुस्तरः॥२२॥ मृगेन्द्र इव विक्रान्तो निषेव्यो हिमवानिव ॥
तितिक्षुर्वसुधेवाऽसौ सहिष्णुः पितराविव ॥ २३ ॥ पितामहसमः साम्ये प्रसादे गिरिशोपमः ॥ आश्रयः सर्वभूतानां
यथा देवो रमाश्रयः ॥ २४ ॥ सर्वसद्गुणमाहात्म्य एष कृष्णमनुव्रतः ॥ रन्तिदेव इवोदारो ययातिरिव धार्मिकः ॥ २५ ॥
धृत्या बलिसमः कृष्णे प्रह्राद इव सद्ग्रहः ॥आहर्तैषोऽश्वमेधानां वृद्धानां पर्युपासकः॥२६॥राजर्षीणां जनयिता शास्ता
चोत्पथगामिनाम् ॥ निग्रहीता कलेरेष भुवो धर्मस्य कारणात् ॥ २७॥ तक्षकादात्मनो मृत्युं द्विजपुत्रोपसर्जितात् ॥
प्रपत्स्यत उपश्रुत्य मुक्तसङ्गः पदं हरेः॥२८॥ जिज्ञासितात्मयाथात्म्यो मुनेर्व्याससुतादसौ ॥ हित्वेदं नृप गङ्गायां
यास्यत्यद्धाऽकुतोभयम् ॥ २९ ॥

॥ २४ ॥ सब सद्गुणको माहात्म्य कृष्णभक्त होगो, रंतिदेवकी नाई उदार, ययातिकी नाई धर्मात्मा होगो ॥ २५ ॥ धैर्यमें बलिसमान, समतामें श्रीकृष्णजीकी
नाई, प्रह्लादकी नाई सब सत्पदार्थग्राही होगो, अश्वमेध करैगो, वृद्धनकी अतिउपासना करैगो ॥ २६ ॥ राजऋषिनको जन्मावैगो, पाखण्डीनको
शिक्षक होगो भूमिके धर्मके कारणते ये कलियुगको पकडैगो ॥ २७ ॥ ब्राह्मणके पुत्रके शापसे तक्षकके काटनेसे याकी मृत्यु होगी, सब
संग त्यागकर श्रीमद्भागवत सुन श्रीहरिके वैकुंठको प्राप्त होयगो ॥ २८ ॥ आत्माकी याथात्म्य जानकर व्याससुत शुकदेवसे ज्ञान सुन

गंगामें देह त्यागकर जहां कदी भय नहीं वा पदको जायगो ॥ २९ ॥ ज्योतिषी ब्राह्मण ऐसे राजासे कहिकर पूजा लेकर अपने अपने गृहोंको जाते भए ॥ ३० ॥ सो ये लोकमें विख्यात परीक्षित गर्भमें देखे हुवे प्रभु भगवान्‌को ध्यानकर सब नरोंमें परीक्षा करतो भयो कि जो पुरुष मैंनें गर्भमें देखाथा वह कहां है यासै परीक्षित नामसै जगत्में विख्यात भये ॥ ३१ ॥ जैसे दिन दिन अपनी कलाओंसै पूर्ण होयकर शुक्लपक्षका चंद्रमा वृद्धिको प्राप्त होय है ऐसे यह परीक्षितभी अपने पितामहाओंसै लालित पालित हो चौंसठ कला करके परिपूर्ण हो बढनेलगे ॥३२॥ जातिकेनके द्रोह त्यागकी इच्छा करके युधिष्ठिरने अश्वमेध यज्ञ करनेकी इच्छा की परन्तु राजाके करदंडके विना धनप्राप्ति न देखकर मनमें विचार करते भये ॥ ३३ ॥ ये अभिप्राय जानकर भगवान्‌के भेजेभए सब भाई उत्तरकी दिशासे जहां राजा मरुत्‌के यज्ञका धन पड़ाथा वहांसै बोहाते धन लाये ॥ ३४ ॥ वा धनसे सब सामग्री तैयार कर धर्मनंदन राजा युधिष्ठिर तीन अश्वमेध यज्ञ करतो भयो, ज्ञातिके द्रोहसे डरे राजाने यज्ञोंसे श्रीकृष्णका पूजन किया ॥ ३५ ॥ राजाके बुलाये हुए श्रीकृष्णजी ब्राह्मणोंसे राजाको यज्ञ करायकर अपने सुहृदनके प्यारकी इच्छा कर कुछ मास वहां निवास करते भए ॥ ३६ ॥ हे ब्रह्मन् ! पाछैं राजासे आज्ञा ले द्रौपदीसे पूंछ, भाई बंधुनसे आज्ञा लेकर नोकर चाकर और यादव सहित श्रीकृष्ण द्वारकाको जाते भए ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे भाषाटीकायां परीक्षित्‌जन्मोत्सवो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इति राज्ञ उपादिश्य विप्रा जातककोविदाः॥ लब्धापचितयः सर्वे प्रतिजग्मुः स्वकान्गृहान्॥३०॥ स एष लोकविख्यातः परीक्षिदिति यत्प्रभुः॥ पूर्वंदृष्टमनुध्यायन्परीक्षेत नरेष्विह ॥३१॥ स राजपुत्रो ववृधे आशु शुक्ल इवोडुपः॥ आपूर्यमाणः पितृभिः काष्ठाभिरिव सोऽन्वहम् ॥३२॥ यक्ष्यमाणोऽश्वमेधेन ज्ञातिद्रोहजिहासया॥ राजाऽलब्धधनो दध्यावन्यत्र करदण्डयोः ॥३३॥ तदभिप्रेतमालक्ष्य भ्रातरोऽच्युतचोदिताः॥ धनं प्रहीणमाजह्रुरुदीच्यां दिशि भूरिशः॥३४॥ तेन संभृतसंभारो लब्धकामो युधिष्ठिरः॥ वाजिमेधैस्त्रिभिर्भीतो यज्ञैः समयजद्धरिम् ॥३५॥ आहूतो भगवान्राज्ञा याजयित्वा द्विजैर्नृपम् ॥ उवास कतिचिन्मासान्सुहृदां प्रियकाम्यया॥३६॥ ततो राज्ञाऽभ्यनुज्ञातः कृष्णया सह बन्धुभिः॥ययौ द्वारवतीं ब्रह्मन्सानुगैर्यदुभिर्वृतः॥३७॥इति श्रीभा०प्रथम०परीक्षिज्जन्माद्युत्कर्षो नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

सूत उवाच ॥ विदुरस्तीर्थयात्रायां मैत्रेयादात्मनो गतिम् ॥ ज्ञात्वाऽगाद्धास्तिनपुरं तयाऽवाप्तविवित्सितः ॥ १ ॥
यावतः कृतवान्प्रश्नान्क्षत्ता कौषारवाग्रतः॥ जातैकभक्तिर्गोविन्दे तेभ्यश्चोपरराम ह ॥ २॥ तं बन्धुमागतं दृष्ट्वा धर्मपुत्रः
सहानुजः ॥ धृतराष्ट्रो युयुत्सुश्च सूतः शारद्वतः पृथा ॥ ३ ॥ गान्धारी द्रौपदी ब्रह्मन्सुभद्रा चोत्तरा कृपी ॥ अन्याश्च
जामयः पाण्डोर्ज्ञातयः ससुताः स्त्रियः ॥ ४ ॥ प्रत्युज्जग्मुः प्रहर्षेण प्राणं तन्व इवागतम् ॥ अभिसंगम्य विधिवत्परिष्व-
ङ्गाभिवादनैः ॥ ५ ॥ मुमुचुः प्रेमबाष्पौघं विरहौत्कण्ठ्यकातराः ॥ राजा तमर्हयांचक्रे कृतासनपरिग्रहम् ॥६॥ तं भुक्त-
वन्तमासीनं विश्रान्तं सुखमासने ॥ प्रश्रयावनतो राजा प्राह तेषां च शृण्वताम् ॥७॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अपि स्मरथ नो
युष्मत्पक्षच्छायासमेधितान् ॥ विपद्गणाद्विषाग्न्यादेर्मोचिता यत्समातृकाः ॥ ८ ॥ कया वृत्त्या वर्तितं वश्चरद्भिः क्षिति-
मण्डलम् ॥ तीर्थानि क्षेत्रमुख्यानि सेवितानीह भूतले ॥ ९ ॥

सूतजी बोले कि विदुर तीर्थयात्रामें मैत्रेयजीसे श्रीकृष्णजीकी गति श्रवण करके हस्तिनापुरमें आए वा करके सब जानवेकी इच्छा पूरी भई ॥ १ ॥
विदुरजीनें मैत्रेयजीके आगे जितने प्रश्न करे;उनमें तीन चार प्रश्नसेही गोविंदमें भक्ति भई,सो उन प्रश्नोंसे उपराम भयो॥२॥ हे ब्रह्मन् ! विदुरबंधुको
आए देख भाई सहित धर्मपुत्र धृतराष्ट्र युयुत्सु संजय कृपाचार्य कुंती ॥३॥ गांधारी, द्रौपदी, सुभद्रा, उत्तरा, कृपी, द्रोणाचार्यकी स्त्री, जातिकी स्त्रियें
पुत्रसहित और स्त्रियें ॥ ४ ॥ यह सब वडी प्रसन्न हो इसप्रकार श्रीकृष्णचंद्रके सन्मुख आई जैसे प्राणोंके आनेपर सब इन्द्रिय उनके सन्मुख जाय हैं
आलिंगन और प्रणाम कर विधिपूर्वक मिलै ॥ ५ ॥ विरहकी उत्कंठासें विवश हो प्रेमके अश्रुपात वहितेभए, युधिष्ठिरनें पूजा कीनी, आसनपर बैठाए ॥ ६ ॥ जव भोजन कर विदुरजी सुखसे आसनपर बैठे तव नम्रतासे प्रणामकर राजा तिन सबके सामनें बोले ॥ ७ ॥ युधिष्ठिर बोले कि ॥
आपकी पक्षरूप छायासें बढे हमको आप कभी याद करो हो कि नांय,जैसे पक्षीलोग अपनें पुत्रोंको अतिस्नेहसे पंखोंकी छायासे बढावैहै तैसे आपने
हमैं बढाए हमारी मासाहित सब विपत्तोंसे छुडाए, विपत्तोंसे जहरसे, अग्निसे, और अनेकठौर विघ्नोंसे रक्षा कीनीं ॥ ८ ॥ या क्षितिमण्डलमें आपने
कौन वृत्तिसे शरीर निर्वाह कियो, या भारतवर्षमें धरतीपर जितने तीर्थक्षेत्र मुख्य है सो सब आपने करे ॥ ९॥

भवद्विधा भागवतास्तीर्थीभूताः स्वयं विभो ॥ तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तस्थेन गदाभृता ॥१०॥ अपि नः सु-
हृदस्तात बान्धवाः कृष्णदेवताः ॥ दृष्टाः श्रुता वा यदवः स्वपुर्यां सुखमासते ॥ ११ ॥ इत्युक्तो धर्मराजेन सर्वं
तत्समवर्णयत् ॥ यथानुभूतं क्रमशो विना यदुकुलक्षयम् ॥ १२ ॥ नन्वप्रियं दुर्विषहं नृणां स्वयमुपस्थितम् ॥
नावेदयत्सकरुणो दुःखितान्द्रष्टुमक्षमः ॥ १३ ॥ कंचित्कालमथावात्सीत्सत्कृतो देववत्सुखम् ॥ भ्रातुर्ज्येष्ठस्य श्रेय-
स्कृत्सर्वेषां प्रीतिमावहन् ॥१४॥ अबिभ्रदर्यमा दण्डं यथावदघकारिषु ॥ यावद्दधार शूद्रत्वं शापाद्वर्षशतं यमः॥१५॥

आपसरीखे महात्मानको तीर्थाटन तीर्थोंके अनुग्रहके अर्थ है, कुछ अपने अर्थ नहीं है॥ आपसरीके भागवत आपही तीर्थरूप हैं, तीर्थनकोभी पवित्र करैं हैं ॥ अपनें अंतःकरणके निवासी गदाधारी भगवान् करकै मलिनजनोंके संगसे तीर्थ मलिन होजायहैं, उनको फेर सत्कर्म अनुष्ठानी वेदांती ज्ञानी भगवद्भक्त पवित्र सत्वादिगुणयुक्त ब्राह्मण पवित्र करैं हैं, भगवद्भक्तसे तीर्थभी शुद्ध होजाय है ॥ १० ॥ हे पितः! हमारे सुहृत् बांधव कृष्ण जिनके देवता ऐसे यादव आपने देखेसुने है, अपनी पुरीमें सुखी है कि नांय सो कहो ॥ ११ ॥ धर्मराजनें जब ऐसे कहो तब विदुरजीने जैसा अनुभव कियाथा तैसा सब वर्णन करतेभए परंतु यदुकुलका क्षय वर्णन नहीं करा ॥१२॥ ये निश्चय है कि जो अप्रिय है सहनेयोग्य न है वो तौ मनुष्योंको दैवयोगसे आपही आयजायहै, यासे दयालु विदुर अपनें सामने उनको दुःखी देख नसकै यासे न कह्यो ॥१३॥ याके उपरांत कुछेक काल वास करतेभए, सत्कार पाय देवताकी नाई सुखी रहे, बडे भैयाके कल्याणके अर्थ सबसें प्रीति करतेभए ॥ १४ ॥ मांडव्यके शापसे सौ १०० वर्ष तक यहां यमराज शूद्ररूप होय विदुर नामसे रहे, तबतक यथावत् पापियोंको अर्यमा यम होय दंड देतेभए याकी कथा ऐसै है कि “ चोरोंके पीछे दौडते राजदूत मांडव्यऋषि तप करतेहे उनके समीप आयकर ऋषिसहित चोरोंको बांध लाय राजासे कही तब राजाकी आज्ञासें सबकों शूलीपर धरदीने तब राजानें उन्हें ऋषि जान शूलसें उतार प्रसन्न करलिये, पाछे मुनि यमधर्म राजके पास जाय कोपसें बोले कि हमें क्यों शूलपे चढवायो, तब यमराज बोले कि बालकपनमें टीडीको कुशाके अग्रभागसे छेदके तुम खेले हे यासे ऐसें करनो पडो, ये सुन मांडव्यनें शाप दीनों कि बालकपनमें अज्ञानसे मैंनें कर्म करो ताको ऐसो बडो दंड दीनों यासे तुम शूद्र होओ ” ॥ १५ ॥

राज्य पाय युधिष्ठिर पोतेको कुलधारक देखकर लोकपालसम भातृसहित परम लक्ष्मीसे आनंदित होतेभए ॥ १६ ॥ गृहके व्यापारसै गृहमें आसक्तमन तिन्हें मालूम न पडी और परम दुस्तर काल आय पहुंचो ॥ १७ ॥ ये अभिप्राय जानकर विदुरजी धृतराष्ट्रसे बोले हे राजन् ! शीघ्र निकरो ये भय आयाहै सो देखो ॥१८॥ हे प्रभो ! जाकालकी कोई लौटायवेकी क्रिया नहीं है, कहींसे कहींभी न जायसकै है, सो यह भगवान् काल हम सबको आयके प्राप्त भयो ॥ १९ ॥ जाकालसे ग्रसोभयो जीव अतिप्रिय प्राणोंसे शीघ्र छुटायो जाय है, और धनादि पुत्रादिकको वियोग कहा है ॥ २० ॥ पिता भाई सुहृत् पुत्र ये सब तुह्मारे मारे गए, सब आयु तुह्मारी होचुकी देहको बुढापेनें घेरो, पराए घरमें वसोहो ॥ २१ ॥ बडो

युधिष्ठिरो लब्धराज्यो दृष्ट्वा पौत्रं कुलंधरम् ॥ भ्रातृभिर्लोकपालाभैर्मुमुदे परया श्रिया ॥ १६ ॥ एवं गृहेषु सक्तानां
प्रमत्तानां तदीहया ॥ अत्यक्रामदविज्ञातः कालः परमदुस्तरः ॥ १७ ॥ विदुरस्तदभिप्रेत्य धृतराष्ट्रमभाषत ॥
राजन्निर्गम्यतां शीघ्रं पश्येदं भयमागतम् ॥ १८ ॥ प्रतिक्रिया न यस्येह कुतश्चित्कर्हिचित्प्रभो ॥ स एष भगवान्
कालः सर्वेषां नः समागतः ॥ १९ ॥ येन चैवाऽभिपन्नोऽयं प्राणैः प्रियतमैरपि ॥ जनः सद्यो वियुज्येत किमुतान्यैर्धनादिभिः ॥ २० ॥
पितृभ्रातृसुहृत्पुत्रा हतास्ते विगतं वयः ॥ आत्मा च जरया ग्रस्तः परगेहमुपासते ॥२१॥
अहो महीयसी जन्तोर्जीविताशा यथा भवान् ॥ भीमेनावर्जितं पिण्डमादत्ते गृहपालवत् ॥ २२ ॥ अग्निर्निसृष्टो
दत्तश्च गरो दाराश्च दूषिताः ॥ हृतं क्षेत्रं धनं येषां तद्दत्तैरसुभिः कियत् ॥२३॥ तस्यापि तव देहोऽयं कृपणस्य
जिजीविषोः ॥ परैत्यनिच्छतो जीर्णो जरया वाससी इव ॥ २४ ॥

आश्चर्य है कि या जीवको जीवकी बडी आशा लगरही है, सो तुह्मैंभी हैं भीमसेनके दियेभए टूक कुत्ताकी नाईं तुम खाओहो ॥ २२ ॥ अग्निमें जराय, जहर दीनो, उनकी स्त्री द्रौपदीकी अवज्ञा करी, क्षेत्र उनको छीनो धन लेलीनो; तिनको दियोभयो अन्न खायकर प्राणोंके पुष्ट करनेसे कुछभी प्रयोजन नहीं होगो ॥ २३ ॥ कृपण जीवैकी इच्छा है नहीं इच्छा है तौभी तुह्मारो ये जराजीर्ण शरीर सब तरहसे क्षिण होयगयो है, जैसे वस्त्र पुराणो त्यागवे योग्य होयहै, तैसी या तुह्मारी देहके गति है, सो अब धीर होओ ॥ २४ ॥

विरक्त सब बंधनसे मुक्त, अलख गति स्वार्थ रहित इस देहको त्यागे सो धीर कहाहै ॥ २५ ॥ जो कोई अपने आप अथवा पराएके उपदेशते आत्माकों जानकर हृदयमें हरिको करके घरसे संन्यास लेकर जाय वों नरोंमें उत्तम है ॥ २६ ॥ अपने कुटुम्बियोंका मालूम न पडै, तैसे तुम उत्तरकी दिशाकों चलो, यासे पीछे पुरुषोंको गुणनाशक बहुत बुरो काल आवैगो ॥ २७ ॥ आजमीढवंशी जन्मांध राजाकों भाई विदुरने ऐसे ज्ञान दीनों, तब अपनो चित्त दृढकर भाई बंधुओंमें स्नेहफास काटकर भाईनें जो मार्ग दिखायो वा मार्गमें होकर निकरो ॥ २८ ॥ पतिकों जातो देखकर सुबलकी बेटी पतिव्रता साध्वी गांधारी पाछे पाछे जातीभई, संन्यस्तदंड ले अतिहर्षसे हिमालयकों गये, मनस्वी शूरोंको

गतस्वार्थमिमं देहं विरक्तो मुक्तबन्धनः ॥ अविज्ञातगतिर्जह्यात्स वै धीर उदाहृतः ॥ २५ ॥ यः स्वकात्परतो वेह जातनिर्वेद आत्मवान् ॥ हृदि कृत्वा हरिं गेहात्प्रव्रजेत्स नरोत्तमः ॥ २६ ॥ अथोदीचीं दिशं यातु स्वैरज्ञातगतिर्भवान् ॥ इतोऽर्वाक्प्रायशः कालः पुंसां गुणविकर्षणः ॥ २७ ॥ एवं राजा विदुरेणानुजेन प्रज्ञाचक्षुर्बोधितो ह्याजमीढः ॥ छित्त्वा स्वेषु स्नेहपाशान्द्राढिम्नो निश्चक्राम भ्रातृसंदर्शिताध्वा ॥ २८ ॥ पतिं प्रयान्तं सुबलस्य पुत्री पतिव्रता चानुजगाम साध्वी ॥ हिमालयं न्यस्तदण्डप्रहर्षं मनस्विनामिव सत्संप्रहारः ॥ २९ ॥ अजातशत्रुः कृतमैत्रो हुताग्निर्विप्रान्नत्वा तिलगोभूमिरुक्मैः ॥ गृहं प्रविष्टो गुरुवन्दनाय न चापश्यत्पितरौ सौबलीं च ॥ ३० ॥ तत्र संजयमासीनं पप्रच्छोद्विग्नमानसः ॥ गावल्गणे क्व नस्तातो वृद्धो हीनश्च नेत्रयोः ॥ ३१ ॥ अम्बा च हतपुत्राऽऽर्ता पितृव्यः क्व गतः सुहृत् ॥ जानासि चेत्कथय नः कृपया वेत्थ वै ऋषे ॥ ३२ ॥

जैसे युद्धमें सुन्दर प्रहार प्रिय लगैहै तैसे करतेभये ॥ २९ ॥ धर्मराज सन्ध्यावन्दन कर अग्निमें हवन कर तिल गौ भूमि सुवर्ण दान कर ब्राह्मणोंको नमस्कार कर गुरुवंदनको गृहमें गयो, सो न तो विदुर धृतराष्ट्र देखे न गांधारी देखी ॥ ३० ॥ उद्विग्न मनसे तहां बैठेभए संजयसे पूछतेभए, हे गावल्गणे ! हे संजय ! हमारो चाचा बूढे नेत्रहीन कहां गये सो कहो ॥ ३१ ॥ मृतपुत्रा हमारी सुहृत् चाची कहां गई जो आप जानोहों तो हमसें कहो, आप व्यासजीकी कृपासे सब जानोंहो ॥ ३२ ॥

संहार करनेके निमित्त अवतार लियो हैं ॥ ५० ॥ देवतानको सब कार्य करचुके हैं, केवल यदुकुलकी ओर वाट देखै है, तबतक तुमभी यहां रहो जबतक ईश्वर श्रीकृष्णजी यहां रहैं पाछे तुमभी जाईयो ॥ ५१ ॥ धृतराष्ट्र विदुरसहित गांधारीको लिये हिमाचलकी दक्षिण ओर ऋषिनके आश्रममें गएहैं ॥ ५२ ॥ जो गंगाजी सातऋषियोंको प्रसन्न करनेके अर्थ सात ओर बहिकर आप सातरूप भई हैं, यासे सप्तस्रोत विख्यात हैं ॥५३॥ वहां सदा स्नानकर यथाविधि अग्निमें हवन कर पवनभोजन कर अति शांत मनकरकै सब कुटुम्बसे मन हटायकर वहां विद्यमान है ॥५४ ॥ आसन जीति श्वास जीत छेओं इंद्रियोंको प्रत्याहार करकै हरिभावनासे राजस तामस सात्विक सब मलरहित होगये हैं ॥ ५५ ॥ अहंकारके स्थान आत्माको स्थूल

निष्पादितं देवकृत्यमवशेषं प्रतीक्षते ॥ तावद्यूयमवेक्षध्वं भवेद्यावदिहेश्वरः ॥५१॥ धृतराष्ट्रः सह भ्रात्रा गान्धार्या च स्व-
भार्यया ॥ दक्षिणेन हिमवत ऋषीणामाश्रमं गतः ॥ ५२ ॥ स्रोतोभिः सप्तभिर्या वै स्वर्धुनी सप्तधा व्यधात् ॥ सप्तानां
प्रीतये नाम्ना सप्तस्रोतः प्रचक्षते ॥ ५३ ॥ स्नात्वाऽनुसवनं तस्मिन्हुत्वा चाग्नीन्यथाविधि ॥ अब्भक्ष उपशान्तात्मा स
आस्ते विगतैषणः ॥५४॥ जितासनो जितश्वासः प्रत्याहृतषडिन्द्रियः ॥ हरिभावनया ध्वस्तरजःसत्त्वतमोमलः ॥५५॥
विज्ञानात्मनि संयोज्य क्षेत्रज्ञे प्रविलाप्य तम् ॥ ब्रह्मण्यात्मानमाधारे घटाम्बरमिवाम्बरे ॥ ५६ ॥ ध्वस्तमायागुणो-
दर्को निरुद्धकरणाशयः ॥ निवर्तिताखिलाहार आस्ते स्थाणुरिवाधुना ॥५७ ॥ तस्यान्तरायो मैवाभूः संन्यस्ताखिल-
कर्मणः ॥ स वा अद्यतनाद्राजन्परतः पञ्चमेऽहनि ॥ ५८ ॥ कलेवरं हास्यति स्वं तच्च भस्मीभविष्यति ॥ धृतराष्ट्रस्य
मोक्षः स्याज्ज्ञानेन विदुरस्य च ॥ ५९ ॥

देहसे पृथक् कर विज्ञानात्मामें चित्त आरोपण कर जीवान्तर्यामि सर्वाधार बृहत्त्वादिगुणविशिष्ट चैतन्य ब्रह्ममें जीवात्माको संयोग कर तद्रूप होकर लीन होयगे, जैसे घट फूटनेसें घटाकाश महाकाशमें लीन होय है ॥५६॥ माया गुणोंकी वासनासे रहित होय इंद्रियें अंतःकरण रोक, सब प्रकारके आहार त्यागे खंभकी नाई अचल होजायगे ॥५७ ॥ वे सब कर्मसे संन्यस्त है तुम उसमें कोई विघ्न मत करियो हे राजन् ! सो वे आजसे पांच दिनके उपरांत ॥ ५८ ॥ शरीर त्यागैंगे, वो देह आपही भस्म होजायगो, विदुरजीके ज्ञानसे धृतराष्ट्रको मोक्ष होयगो ॥ ५९ ॥

पर्णशालामें अग्निसें जब देह जरजायगो, तो बाहिरस्थित साध्वी उनकी स्त्री गांधारी वाही अग्निमें प्रवेश करैगी ॥ ६० ॥ हे कुरुनंदन ! विदुर ये आश्चर्य देखकर अतिहर्ष शोकयुक्त तीर्थयात्राको चले जायगे ॥६१ ॥ ऐसे कहि तुंबरुगंधर्व सहित नारदजी स्वर्गको गए, युधिष्ठिरजी उनको वचन हृदयमें कर शोकत्याग करतेभए ॥६२॥ इति भा० भा० प्र० श्रीविदुरोक्त्या धृतराष्ट्रमोक्षवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥ सूतजी बोले कि॥ बंधु देखवेकी इच्छाकरके और पुण्ययशस्वी श्रीकृष्णजीकी चेष्टा जान्नेके निमित्त द्वारकामें गये अर्जुनको ॥ १ ॥ हे परीक्षित् ! कुछ मास व्यतीत भए

दह्यमानेऽग्निभिर्देहे पत्युः पत्नी सहोटजे ॥ बहिः स्थिता पतिं साध्वी तमग्निमनुवेक्ष्यति ॥ ६० ॥ विदुरस्तु तदाश्चर्यं निशाम्य कुरुनन्दन ॥ हर्षशोकयुतस्तस्माद्गन्ता तीर्थनिषेवकः ॥ ६१ ॥ इत्युक्त्वाऽथारुहत्स्वर्गं नारदः सहतुम्बरुः ॥ युधिष्ठिरो वचस्तस्य हृदि कृत्वाऽजहाच्छुचः ॥ ६२ ॥ इतिश्री०म०प्र०विदुरोक्त्या धृतराष्ट्रमोक्षवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ संप्रस्थिते द्वारकायां जिष्णौ बन्धुदिदृक्षया ॥ ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥ १ ॥ व्यतीताः कतिचिन्मासास्तदा नाऽयात्ततोऽर्जुनः ॥ ददर्श घोररूपाणि निमित्तानि कुरूद्वह ॥ २ ॥ कालस्य च गतिं रौद्रां विपर्यस्तर्तुधर्मिणः ॥ पापीयसीं नृणां वार्तां क्रोधलोभानृतात्मनाम् ॥३ ॥ जिह्मप्रायं व्यवहृतं शाठ्यमिश्रं च सौहृदम् ॥ पितृमातृसुहृद्भ्रातृदम्पतीनां च कल्कनम् ॥४॥ निमित्तान्यत्यरिष्टानि काले त्वनुगते नृणाम् ॥ लोभाद्यधर्मप्रकृतिं दृष्ट्वोवाचानुजं नृपः ॥ ५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ संप्रेषितो द्वारकायां जिष्णुर्बन्धुदिदृक्षया ॥ ज्ञातुं च पुण्यश्लोकस्य कृष्णस्य च विचेष्टितम् ॥ ६ ॥

तोहू अर्जुन न आए तब युधिष्ठिरजी घोर रूप उत्पात देखतेभए ॥ २ ॥ कालकी घोरगति देखी, धर्मको उलटो देखो क्रोधी लोभी मिथ्यावादी जीव देखे, उनकी पापी बातें देखतेभये ॥ ३ ॥ सबलोग व्यवहारमें कपट करनेलगे, सुहृदताईमेंभी ठगपनो देखो, पिता माता सुहृद भाई लोग लुगाई ये सब कलह करवेलगे ॥ ४ ॥ कालसै अत्यंत अरिष्टकारी शकुन देखे, लोभसे आदिलेकर अधर्मकी प्रकृति देखकर राजा युधिष्ठिर भीमसेनजीसे बोले ॥ ५ ॥ युधिष्ठिर बोले कि ॥ अर्जुनको बंधुओंकी खबर लायवेको द्वारकामें भेजे हैं, और पुण्ययशवारे श्रीकृष्णजीकी कहा करवेकी

बुद्धिहीन मोमें कछू अपराध विचार बंधुओंके मरनेसै स्त्रीसहित दुःखित होकै गंगामें तौ न जाय पडे ॥ ३३ ॥ हमारो पिता परमपदकौ गयो, तापाछे सब बाल सुहृद जानकर अनेक कष्टोंसे रक्षा करतेभए, वे हमारे चाचा चाची यहांते कहां गए ॥ ३४ ॥ सूतजी बोले कि कृपाकरके स्नेहसे विरहपीडित संजय अपने ईश्वर युधिष्ठिरको देख अतिपीडित हो कछूभी न कहितोभयो ॥३५॥ दोनो हाथोंसे आंसु पोछकर बुद्धिसे मनको धीरकर अपने प्रभुके पादको स्मरण करते भए अजातशत्रुसै बोले ॥ ३६ ॥ संजय बोले कि हे कुलनंदन ! तुम्हारे पिताको जो निश्चय है सो हम नहीं जाने हैं, हे महाबाहो ! गांधारीकीभी तो खबर नहीं, इन महात्मानकरके मैं वंचित हुओ ॥ ३७ ॥ इसके बीचमें भगवान् नारद तुंबुरु गंधर्वको लेकर आए,

अपि मय्यकृतप्रज्ञे हतबन्धुः सभार्यया ॥ आशंसमानः शमलं गङ्गायां दुःखितोपतत् ॥ ३३ ॥ पितर्युपरते पाण्डौ सर्वान्नः सुहृदः शिशून् ॥ अरक्षतां व्यसनतः पितृव्यौ क्व गतावितः ॥३४ ॥ सूत उवाच ॥ कृपया स्नेहवैक्लव्यात्सूतो विरहकर्शितः ॥ आत्मेश्वरमचक्षाणो न प्रत्याहातिपीडितः ॥३५॥ विमृज्याऽश्रूणि पाणिभ्यां विष्टभ्यात्मानमात्मना ॥ अजातशत्रुं प्रत्यूचे प्रभोः पादावनुस्मरन् ॥ ३६ ॥ संजय उवाच ॥ नाहं वेद व्यवसितं पित्रोर्वः कुलनन्दन ॥ गान्धार्या वा महाबाहो मुषितोऽस्मि महात्मभिः ॥३७॥ अथाजगाम भगवान्नारदः सहतुम्बरुः ॥ प्रत्युत्थायाभिवाद्याऽऽह सानुजोभ्यर्चयन्निव ॥३८ ॥ युधिष्ठिर उवाच॥नाहं वेद गतिं पित्रोर्भगवन्क्व गतावितः ॥ अम्बा वा हतपुत्राऽऽर्ता क्व गता च तपस्विनी ॥३९ ॥ कर्णधार इवापारे भगवान्पारदर्शकः ॥ सर्वज्ञः सर्वगो धीमान्नारदोऽज्ञाननाशकः ॥ ४० ॥ अथाबभाषे भगवान्नारदो मुनिसत्तमः ॥ मा कंचन शुचो राजन्यदीश्वरवशं जगत् ॥ ४१ ॥

धर्मराज उन्होंको देख उठे, प्रणाम कर भाई सहित पूजन कर बोले ॥३८॥ श्रीयुधिष्ठिरजी बोले कि हे भगवन् ! चाचा चाचीकी गति हम नहीं जाने हैं यहांसे कहां गये, पुत्र जाके मेरे ऐसी मा दुखियारी तपस्विनी कहां गई ॥ ३९ ॥ मलाहकी नांई अपार समुद्रमें आप पारदर्शक हो, कारण कि आप सर्वज्ञ सब स्थानमें जानैहारे महाबुद्धिमान अज्ञाननाशक हो ॥ ४० ॥ ये सुनकर मुनिसत्तम भगवान् नारदजी बोले कि हे राजन् ! शोक मत करो, ये जगत सब ईश्वरके वशमें है ॥ ४१ ॥

जो सबको ईश्वर है, वाको अपनें पालक सहित सब लोक बलि देवें हैं, वोही परमेश्वर सब जीवोंको संयोग करदेवें है वोहि वियोग करै है ॥४२॥ जैसे बली बैल नाथके वश होकर अपनें स्वामीको सब कार्य कर बलि देवै है, तैसे ये करनो ये न करनो ऐसी वेदकी वाणीरूप डोरमें, वर्णाश्रमधर्मरूप नाथकरकै बंधे सब जीव परमेश्वरको बलि देवें हैं ॥४३ ॥ खेल्वेवारेकी इच्छा करके खेलकी सब सामग्रीनको संयोग वियोग होजावै है, तैसेई ईश्वरकी इच्छा करकै सब जीवनको संयोग वियोग समझो ॥ ४४ ॥ जो लोकको ध्रुव मानों अथवा अध्रुव मानों वा दोनों मत मानों, मोहसे स्नेहसे सब प्रकारसे शोक नहीं करनो चाहिये ॥ ४५ ॥ हे युधिष्ठिर ! तातें अज्ञानको करो जो ये व्याकुलपन ताहि त्यागो, तुम कहो हो कि अनाथ कृपण

लोकाः सपाला यस्येमे वहन्ति बलिमीशितुः ॥ स संयुनक्ति भूतानि स एव वियुनक्ति च ॥ ४२ ॥ यथा गावो नसि प्रोतास्तन्त्यां बद्धाः स्वदामभिः ॥ वाक्तन्त्यां नामभिर्बद्धा वहन्ति बलिमीशितुः ॥ ४३ ॥ यथा क्रीडोपस्कराणां संयोगविगमाविह ॥ इच्छया क्रीडितुः स्यातां तथैवेशेच्छया नृणाम् ॥ ४४ ॥ यन्मन्यसे ध्रुवं लोकमध्रुवं वा न चोभयम् ॥ सर्वथा हि न शोच्यास्ते स्नेहादन्यत्र मोहजात् ॥ ४५ ॥ तस्माज्जह्यङ्ग वैक्लव्यमज्ञानकृतमात्मनः ॥ कथं त्वनाथाः कृपणा वर्तेरन्वनमाश्रिताः ॥ ४६ ॥ कालकर्मगुणाधीनो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः ॥ कथमन्यांस्तु गोपायेत्सर्पग्रस्तो यथा परम् ॥ ४७ ॥ अहस्तानि सहस्तानामपदानि चतुष्पदाम् ॥ फल्गूनि तत्र महतां जीवो जीवस्य जीवनम् ॥ ४८ ॥ तदिदं भगवान्राजन्नेक आत्माऽऽत्मनां स्वदृक् ॥ अन्तरोऽनन्तरो भाति पश्य तं माययोरुधा ॥ ४९ ॥ सोयमद्य महाराज भगवान्भूतभावनः ॥ कालरूपोऽवतीर्णोऽस्यामभावाय सुरद्विषाम् ॥ ५० ॥

वनमें मो विन कैसे रहेंगे ये शोक करो ॥ ४६ ॥ काल कर्म गुण इनके आधीन पंचतत्त्वको बनों ये देह कौनकी रक्षा करसकै है, जैसे अजगरसर्प ग्रसित जीव औरको कैसे बचायसकेगो ॥ ४७ ॥ चार पगवारे पशु आदि तृणादिकको खावें हैं, हस्तवारे जीव औरभी सूक्ष्मको भक्षण करै हैं ऐसेई सब जीवमात्रको जीव जीवन है, सब कालग्रसित हैं ॥ ४८ ॥ हे राजन् ! सर्वद्रष्टा सब आत्मानमें एक, भीतर बाहर जामें नहीं, मायाकरकै बहुत दीखै, सजातीय विजातीय स्वगतभेद शून्य ये भगवानही प्रकाश करैं हैं ॥ ४९ ॥ हे महाराज ! सो ये भगवान् कालरूपनें पृथिवीपर सुरद्रोहिनके

इच्छा है यालिये भेजो हो ॥ ६ ॥ सो हे भीमसेन ! अब सात मास भए तुह्मारो भैया आयो नहीं, याको कहा कारण है, सो अनायासकरकै हम नहीं जानसकैं ॥७॥ ऐसो निश्चय होय है कि श्रीनारदजी जो कहिगए वो समय आयगयो कहा, क्यों कि जा समय सब क्रीडाके साधन अंगको भगवान् त्यागैंगे, वा समय सब अमंगल होगो ॥ ८ ॥ जिन श्रीकृष्णजीकी कृपासे सब हमारे संपदा राज्य स्त्री प्राण कुल प्रजा वैरीनको विजय सब लोकको धन होतो भयो ॥ ९ ॥ हे नरव्याघ्र ! स्वर्गके भूमिके शरीरके दारुण बुद्धिके मोह करावनेवारे भयदायक उत्पातनको देखो ॥ १० ॥ हे मित्र ! छातीको वामभाग, बांयों नेत्र बाई भुजा ये सब वारंवार फरकें हैं और हृदय वारंवार कांपै है, समीपही कुछ अप्रिय बात होगी ऐसे दीखै है ॥११॥

गताः सप्ताऽधुना मासा भीमसेन तवानुजः ॥ नायाति कस्य वा हेतोर्नाहं वेदेदमञ्जसा ॥७॥ अपि देवर्षिणाऽऽदिष्टः स कालोयमुपस्थितः ॥ यदात्मनोऽङ्गमाक्रीडं भगवानुत्सिसृक्षति ॥ ८ ॥ यस्मान्नः संपदो राज्यं दाराः प्राणाः कुलं प्रजाः ॥ आसन्सपत्नविजयो लोकाश्च यदनुग्रहात् ॥ ९ ॥ पश्योत्पातान्नरव्याघ्र दिव्यान्भौमान्सदैहिकान् ॥ दारुणाञ्छंसतो दूराद्भयं नो बुद्धिमोहनम् ॥ १० ॥ ऊर्वक्षिबाहवो मह्यं स्फुरन्त्यङ्ग पुनः पुनः ॥ वेपथुश्चापि हृदये आराद्दास्यन्ति विप्रियम् ॥ ११ ॥ शिवैषोद्यन्तमादित्यमभिरौत्यनलानना ॥ मामङ्ग सारमेयोऽयमभिरौति ह्यऽभीरुवत् ॥१२॥ शस्ताः कुर्वन्ति मां सव्यं दक्षिणं पशवोऽपरे ॥ वाहांश्च पुरुषव्याघ्र लक्षये रुदतो मम॥१३॥ मृत्युदूतः कपोतोऽयमुलूकः कम्पयन्मनः ॥ प्रत्युलूकश्च कुह्वानैरनिद्रौ शून्यमिच्छतः ॥ १४ ॥ धूम्रा दिशः परिधयः कम्पते भूः सहाद्रिभिः ॥ निर्घातश्च महानासीत्साकं च स्तनयित्नुभिः ॥ १५ ॥

सूर्यके सामने खडी होय ये गीदडी रोवै है, मुखसे आग उगले है, हे भीम ! मेरे सामने खडे होयकर निःशंक होकर कुत्ता रोवै है ॥ १२ ॥ अच्छे पशु गौ आदिक तो मेरे बांयें होकर निकसें हैं, और गर्दभ आदिक मेरी परिक्रमा करैं हैं, हे पुरुषनमें सिंहसम हे भीम ! मेरे रथको घोडे जब सवार होऊं तब रोवतेसे दीखें हैं ॥ १३ ॥ मृत्युके दूत ये कबूतर कौआ घूघू रातको बोलैं हैं, विश्वको सूनों करनो चाहैं, ऐसे इन लक्षणोंको देख देख मेरो मन कांपै है ॥ १४ ॥ सब दिशा धुंधरी होयरहीं हैं सूर्य चंद्रमाके मंडल बंधे है, पर्वत सहित भूमि कांपै है, मेघके विना वज्रपात होय है, वादर भए

70

विना गर्जनकी अवाज आवै है ॥ १६ ॥ पवन धूर लेकर उडे है, रेतसे अंधकार कररही है, सब ओरसे भयानक मेघ रुधिर वर्षावै है ॥ १६ ॥ स्वर्गमें सब ग्रह आपसमें लडैं हैं, सूर्यकी कछू कांति नांय, ये देखो भूतगणोंसे व्याकुल सब धरती मानो जर रही है ॥ १७॥ नदियें नद सरोवर सब क्षोभको प्राप्त हैं, अग्निमें घृत डारनेसे जरती नहीं, ऐसो यह काल कहा करैगो ॥ १८॥ वत्सा स्तन नहीं पीते हैं, मैया स्तनमेंसे दूध न छोडै है गौ सूर्यसन्मुख ठाडी होय आंशु गेरती रोवै है, गौओंके स्थानोंमें बैल प्रसन्न होकर बोलते नहीं ॥१९॥ मंदिरोंमें देवतानकी प्रतिमा रोयरही हैं पशीनें

वायुर्वाति खरस्पर्शो रजसा विसृजंस्तमः॥ असृग्वर्षन्ति जलदा बीभत्समिव सर्वतः ॥ १६ ॥ सूर्यं हतप्रभं पश्य ग्रहमर्दं मिथो दिवि ॥ ससंकुलैर्भूतगणैर्ज्वलिते इव रोदसी ॥ १७॥ नद्यो नदाश्च क्षुभिताः सरांसि च मनांसि च॥ न ज्वलत्यग्निराज्येन कालोऽयं किं विधास्यति ॥ १८ ॥ न पिबन्ति स्तनं वत्सा न दुह्यन्ति च मातरः ॥ रुदन्त्यश्रुमुखा गावो न हृष्यन्त्यृषभा व्रजे ॥ १९ ॥ दैवतानि रुदन्तीव स्विद्यन्ति ह्युच्चलन्ति च ॥ इमे जनपदा ग्रामाः पुरोद्यानाकराश्रमाः ॥ भ्रष्टश्रियो निरानन्दाः किमघं दर्शयन्ति नः ॥२०॥ मन्य एतैर्महोत्पातैर्नूनं भगवतः पदैः ॥ अनन्यपुरुषश्रीभिर्हीनाभूर्हतसौभगा ॥ २१ ॥ इति चिन्तयतस्तस्य दृष्टारिष्टेन चेतसा ॥ राज्ञः प्रत्यागमद् ब्रह्मन्यदुपुर्याः कपिध्वजः ॥ २२ ॥ तं पादयोर्निपतितमयथापूर्वमातुरम् ॥ अधोवदनमब्बिन्दून्मुञ्चन्तं नयनाब्जयोः ॥ ॥ २३ ॥ विलोक्योद्विग्नहृदयो विच्छायमनुजं नृपः ॥ पृच्छति स्म सुहृन्मध्ये संस्मरन्नारदेरितम् ॥ २४ ॥

आयरहे हैं हिलती हैं ये देश गांव पुर बाग खान आश्रम इनकी शोभा जातीरही, आनंद रहित होनेसे हमको ये कहा दुःख देंगे ॥ २० ॥ इन उत्पातोंके देखनेसे मुझे निश्चय होय है कि अनन्य शोभावारे भगवान श्रीकृष्णके चरणारविंदोंके हीन होनेसे यह पृथ्वी सौभाग्यहीन हुई है ॥ २१ ॥ हे ब्रह्मन् ! अरिष्ट देखनेसै मनमें चिन्ता करते हुए राजाके समीप यदुपुरीसें हनुमान जाकी ध्वजामें ऐसे अर्जुन आवतेभए ॥ २२ ॥ अपनें कचरोंमें पडे विवश आतुर, नीचे मुख करे नयनकमलसें आंसू छोडते ॥ २३ ॥ कांतिहीन भाई अर्जुनसें सुहृदोंके सामने नारदजीकी कहीको यादणर कंपितहृदय राजा युधिष्ठिर पूछतेभए ॥ २४ ॥

यद्बाहुदण्डगुप्तायां स्वपुर्यां यदवोऽर्चिताः॥क्रीडन्ति परमानन्दं महापौरुषिका इव॥३६॥ यत्पादशुश्रूषणमुख्यकर्मणा
सत्यादयो द्व्यष्टसहस्रयोषितः॥निर्जित्य संख्ये त्रिदशांस्तदाशिषो हरन्ति वज्रायुधवल्लभोचिताः॥३७॥यद्बाहुदण्डाभ्युदयाऽनुजीविनो यदुप्रवीरा ह्यकुतोभया मुहुः ॥ अधिक्रमन्त्यङ्घ्रिभिराहृतां बलात्सभां सुधर्मां सुरसत्तमोचिताम्
॥ ३८ ॥ कच्चित्तेऽनामयं तात भ्रष्टतेजा विभासि मे ॥ अलब्धमानोऽवज्ञातः किं वा तात चिरोषितः ॥ ३९ ॥ कच्चिन्नाभिहितो भावैः शब्दादिभिरमङ्गलैः॥ न दत्तमुक्तमर्थिभ्य आशया यत्प्रतिश्रुतम्॥ ४० ॥कच्चित्त्वं ब्राह्मणं बालं गां वृद्धं
रोगिणं स्त्रियम् ॥ शरणोपसृतं सत्त्वं नात्याक्षीः शरणप्रदः ॥ ४१ ॥ कच्चित्त्वं नागमोऽगम्यां गम्यां वाऽसत्कृतां
स्त्रियम्॥ पराजितो वाऽथ भवान्नोत्तमैर्नाऽसमैः पथि ॥ ४२ ॥ अपि स्वित्पर्यभुङ्क्थास्त्वं संभोज्यान्वृद्धबालकान्॥
जुगुप्सितं कर्म किंचित्कृतवान्न यदक्षमम्॥४३॥

क्षेमके अर्थ, सबकी वृद्धिके लिये शेषसखा आद्यपुरुष श्रीकृष्ण यदुकुलरूप समुद्रमें सुखी हैं ॥ ३५ ॥ जिनकी भुजारूप दण्डसे रक्षित द्वारकामें पूजित यादव परम आनंदित वैकुण्ठनाथके पार्षदनकी नाईं क्रीडा करते हैं ॥ ३६ ॥ जिनके चरणारविंदकी सेवारूप मुख्यकर्मसे सत्यभामादिक सोळे हजार स्त्रियें संग्राममें देवतानको जीत इंद्रकी रानीके भोग्य कल्पवृक्षादिक सुन्दर द्रव्यौंका हरण करै हैं ॥३७॥ जिनकी भुजादंडसैं रक्षित उत्साहसे जीनेहारे यादव भय त्यागे सुरश्रेष्ठोंके योग्य सुधर्मा सभाको बलात्कारसैं लायकर उसमें चरण धरते हैं वे भगवान् प्रसन्न तौ है ॥ ३८ ॥ हे तात! हे भैया! तुम तो प्रसन्न हो? मोकों ऐसे मालूम पडे है कि तुमारो तेज भ्रष्ट होगयो है; अथवा बहुत दिनां रहे याते तुम्हारो मान न करो होय अवज्ञा करी है ॥ ३९ ॥ अमंगल प्रेमरहित शब्दसे तो तुह्मे काऊने नहीं पुकारो और जो मांगनेंवारो आशाकरकै आयो वाको कहिकर फिर तुमनें दीनों न होय ऐसे तो न करो है ॥ ४० ॥ शरणदायक तुमनें ब्राह्मण, बालक, गौ, वृद्ध, रोगी, स्त्री, कोई शरणागत आयो होय वाको तौ कहीं त्याग न करो है ॥४१॥ जो स्त्री गमन करवे योग्य न है वासे तो कहीं भोग न करो है, अथवा विना सिंगार करी स्त्रीसे तो न बोलेहो, अथवा आपसे उत्तमनें वा बराबरकेने मार्गमें तुह्मारो पराजय तो न कीनो है ॥ ४२ ॥ अथवा भोजन करायवे योग्य वृद्ध बालकको त्याग एकले तुमनें

प्रसाद पायले ताकी उपरांत दशसहस्र चेला लेकर वाके घर भोजनकूं जय्यो, ये सुन दुर्वासा तैसेंई पहुंचे, और भोजन मांगो परम आदरसें युधिष्ठिरनें मध्याह्नकृत्यकर आइये ऐसे विनती करी,मुनिसमूह पापनाशके अर्थ जलमें स्नानको गएथे, तहां चिंतासे आतुर द्रौपदीके स्मरण करतेही श्रीकृष्ण तत्क्षण आए,भक्तवत्सलता करके वाने दुर्वासा आगमनकी कथा कही, ये सुन श्रीकृष्णजी बोले हमभी भूखे हैं प्रथम मोको भोजन कराव, तब बडी लाजसे द्रौपदी बोली हे स्वामिन् ! मेरे भोजनपर्यंत अक्षय अन्न सूर्यदत्त वटलोईमेंसे निकसतो रहै है, मैंने सबको भोजन कराय भोजन कीनों है, यासे अब कुछ नहीं है, तोऊ भगवान् बोले कि वा बटलोईको लाओ, वो लाई वाके किनारेमें कोई शाकान्न लगोरह्यो, सो पायकर भगवान् बोले कि या शाकपत्रसें विश्वात्मा भगवान् प्रसन्न होय, ये कहि युधिष्ठिरसे कही अब भोजनको मुनिसमूह बुलावो: मुनियोंके तो न्हाते २ पेट

यत्तेजसाऽथ भगवान्युधि शूलपाणिर्विस्मापितः सगिरिजोऽस्त्रमदान्निजं मे ॥ अन्येऽपि चाहममुनैव कलेवरेण प्राप्तो महेन्द्रभवने महदासनार्धम् ॥१२॥ तत्रैव मे विहरतो भुजदण्डयुग्मं गाण्डीवलक्षणमरातिवधाय देवाः ॥ सेन्द्राः श्रिता यदनुभावितमाजमीढ तेनाहमद्य मुषितः पुरुषेण भूम्ना ॥१३ ॥ यद्बान्धवः कुरुबलाब्धिमनन्तपारमेको रथेन ततरेऽहमर्तीर्यसत्त्वम् ॥ प्रत्याहृतं बहुधनं च मया परेषां तेजास्पदं मणिमयं च हृतं शिरोभ्यः ॥ १४ ॥

भरगये वृथा पाक करायो ये भय मान सब चेला लेकर दुर्वासाजी चले गये ॥ ११ ॥ जिन श्रीकृष्णजीके तेजसे पार्वती सहित भगवान् शूलपाणि युद्ध करनेसे विस्मित हो मोको अपनों पाशुपत अस्त्र देते भये, औरोंनेंभी अस्त्र दीनें, याही शरीरसे इंद्रलोकमें आधो आसन इंद्रको मिलो ॥ १२ ॥ तहां स्वर्गमें जब हम विहार करतेथे, तब इंद्रसहित देवता निवातकवचन वैरियोंको वधके अर्थ गांडीव धनुष देख मेरे भुजदंडको आश्रय लेतेभए,सो हे युधिष्ठिर ! ऐसो मेरो प्रभाव कीनों, ऐसे निजमहिमावारे श्रीकृष्ण पुरुषने मोकों ठगलियो ॥१३॥ श्रीकृष्णके सखा होनेसे मैं जब मेरे बंधु थे भीष्म आदि महारथ रूप ग्राहों करके दुस्तर कुरूनके सेनारूप अपार समुद्रको अकेलो रथसे पार होगयो, उत्तरको गोधन और शत्रुओंके शिरोंसे तेजवंत मणिमय मुकुट कुंडल पाग बहुत धन मैं लायो, मोहनास्त्रसे मोह करायो, सो श्रीकृष्ण अंतर्द्धान होगए ॥ १४ ॥

हे युधिष्ठिर ! बडे राजेंद्रोंके रथोंसे शोभित भीष्म, गुरु, कर्ण, शल्यकी सेनामें सारथी होयकर मेरे आगे चले, रथी यूथपालकोंकी आयु मन बल सब शस्त्रादिकुशलता दृष्टिसे जो भगवान् हरते भये ॥ १५ ॥ जिनकी भुजानमें स्थित मुझै गुरु भीष्म कर्ण द्रौणि त्रिगर्त शल्य सैंधव बाल्हीक इनके अमोघ महिमावारे अस्त्र स्पर्श न करते भए, जैसे भगवद्दासको असुर न छूयसकै है ॥ १६ ॥ जिनके चरणकमलको श्रेष्ठजन मोक्षके लिये भजे है, जब मैं घोडौंके थक जानेसै संग्राममें पृथ्वीपर उतर कर खडाहुआ तब श्रीकृष्णके प्रभावसे रथी वैरी मुझै न मारसके ऐसे आत्मदाता ईश्वर मैंनें सारथी करे ये मेरी कुमति थी ॥ १७ ॥ हे नरदेव ! श्रीकृष्णकी उदार रुचिर स्मितसे शोभित हांसी की वह हृदयको स्पर्श करवेवारी हे अर्जुन ! हे पार्थ ! हे सखे ! हे कुरुनंदन ! वह वाणी और वे बातें मैं याद करूंहूं, तब मेरो मन हृदय बडो क्षुभित होय है ॥१८॥ शय्या, अटन, चाहे जैसे बोलनों, भोजन इत्यादिमें 'हे मित्र ! जो तुम कहो सो सत्य है ऐसे बोलते' जैसे सखाको अपराध सखा सहै पिता पुत्रके अवगुण सहे श्रीकृष्णजी अपनों बडप्पन करकै मोसरीखे कुमतिवारेके सब अपराध सहतेभए ॥ १९ ॥ हे नृपेन्द्र ! सो मैं अपने सखा प्यारे सुहृद हृदय स्वरूप पुरुषोत्तम करके

यो भीष्मकर्णगुरुशल्यचमूष्वदभ्रराजन्यवर्यरथमण्डलमण्डितासु ॥ अग्रेचरो मम विभो रथयूथपानामायुर्मनांसि
च दृशा सह ओज आच्र्छत् ॥ १५ ॥ यद्दोष्षु मा प्रणिहितं गुरुभीष्मकर्णद्रौणित्रिगर्तशलसैन्धवबाह्लिकाद्यैः ॥ अस्त्रा-
ण्यमोघमहिमानि निरूपितानि नोपस्पृशुर्नृहरिदासमिवाऽऽसुराणि ॥ १६ ॥ सौत्ये वृतः कुमतिनाऽऽत्मद ईश्वरो मे
यत्पादपद्ममभवाय भजन्ति भव्याः ॥ मां श्रान्तवाहमरयो रथिनो भुविष्ठं न प्राहरन्यदनुभावनिरस्तचित्ताः॥१७॥ न-
र्माण्युदाररुचिरस्मितशोभितानि हे पार्थ हेऽर्जुन सखे कुरुनन्दनेति॥संजल्पितानि नरदेव हृदि स्पृशानि स्मर्तुर्लुठन्ति
हृदयं मम माधवस्य ॥ १८ ॥ शय्यासनाटनविकत्थनभोजनादिष्वैक्याद्वयस्य ऋतवानिति विप्रलब्धः ॥ सख्युः
सखेव पितृवत्तनयस्य सर्वं सेहे महान्महितया कुमतेरघं मे ॥ १९ ॥ सोहं नृपेन्द्र रहितः पुरुषोत्तमेन सख्या प्रि-
येण सुहृदा हृदयेन शून्यः ॥ अध्वन्युरुक्रमपरिग्रहमङ्ग रक्षन्गोपैरसद्भिरबलेव विनिर्जितोऽस्मि ॥ २० ॥

खायो तो नहीं है वा कोई महानिषिद्ध कर्म तो न करो है, जो काऊसे सह्यो न जाय है ॥ ४३ ॥ अथवा अति प्यारे हमारे हृदयरूप बंधु श्रीकृष्ण
करकै रहित तौ तुम न होगये हो,कारण कि तुम्है और प्रकारका रोग विदित नहीं होयहै ॥४४॥ इति श्रीभा० भा० प्र० युधिष्ठिरवितर्को नाम चतुर्द-
शोऽध्यायः॥१४॥ सूतजी बोले कि॥ऐसे श्रीकृष्णके सखा अर्जुनसे जो कि श्रीकृष्णके वियोगसे अत्यन्त कृश हो रहाथा राजा युधिष्ठिरने अनेक संदेह
कर प्रश्न किये ॥ १ ॥ अर्जुनका शोक करके मुख हृदयकमल सूखगया, कांति जाती रही, श्रीकृष्ण सर्व समर्थको ध्यान करे हैं, परंतु बोलनेको
समर्थ नहीं होतोभयो ॥ २ ॥ कष्टसे शोक रोक, हाथसे नेत्रोंको पोंछ, श्रीकृष्णके अंतर्द्धान होनेके आधिक प्रेमसे व्याकुल अर्जुन ॥ ३ ॥ सारथ्यादि

कच्चित्प्रेष्ठतमेनाऽथ हृदयेनात्मबन्धुना ॥ शून्योऽस्मि रहितो नित्यं मन्यसे तेन्यथा न रुक् ॥ ४४ ॥ इति श्रीभा०
माहा०प्र०युधिष्ठिरवितर्के द्वारकाया अर्जुनस्यागमनवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ एवं
कृष्णसखः कृष्णो भ्रात्रा राज्ञा विकल्पितः ॥ नानाशङ्काऽऽस्पदं रूपं कृष्णविश्लेषकर्शितः ॥ १ ॥ शोकेन शुष्यद्व-
दनहृत्सरोजो हतप्रभः ॥ विभुं तमेवाऽनुध्यायन्नाऽशक्नोत्प्रतिभाषितुम् ॥ २ ॥ कृच्छ्रेण संस्तभ्य शुचः पाणिनाऽऽ-
मृज्य नेत्रयोः ॥ परोक्षेण समुन्नद्धप्रणयौत्कण्ठ्यकातरः ॥ ३ ॥ सख्यं मैत्रीं सौहृदं च सारथ्यादिषु संस्मरन् ॥
नृपमग्रजमित्याह बाष्पगद्गदया गिरा ॥ ४ ॥ अर्जुन उवाच ॥ वञ्चितोहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा ॥ येन मेऽपहृ-
तं तेजो देवविस्मापनं महत् ॥ ५ ॥ यस्य क्षणवियोगेन लोको ह्यऽप्रियदर्शनः ॥ उक्थेन रहितो ह्येष मृतकः प्रोच्यते
यथा ॥ ६ ॥ यत्संश्रयाद् द्रुपदगेहमुपागतानां राज्ञां स्वयंवरमुखे स्मरदुर्मदानाम् ॥ तेजो हृतं खलु मयाऽभिह-
तश्च मत्स्यः सज्जीकृतेन धनुषाऽधिगता च कृष्णा ॥ ७ ॥

समय श्रीकृष्णजीको करोभयो सख्यभाव, मैत्री, सुहृदताको यादकर भाई राजा युधिष्ठिरसें रुकेकंठ गद्गदवाणीसे बोले ॥ ४ ॥ अर्जुन बोले
कि ॥ हे महाराज ! बन्धुरूप श्रीहरिकरकै मैं ठगोगयो, देवनको विस्मय करावनेवारो महातेज मेरो सब हरगयो ॥ ५ ॥ जा प्राणके
क्षणमात्र वियोग होनें करके ये लोग देखवेयोग्य न रहै हैं, मृतक कहावेहै सो प्राणरूप श्रीकृष्णके अंतर्द्धान होयवेते मृतक सम हम भए ॥ ६ ॥
जिन श्रीकृष्णके आश्रयसें द्रुपदके घरमें आए कामके मदसे उन्मत्त राजानको तेज मैंनें स्वयंवरमें हरलीनों धनुष सूधो कर मत्स्य वेधो निश्चयहीं

द्रौपदी हमको प्राप्त भई ॥ ७ ॥ जिन श्रीकृष्णजीके समीप रहिनेसे खांडववन अग्निको भोजनको हमनें दीनो, देवगण सहित शीघ्र इंद्रको जीतकर मय नामक दैत्यकी बनाईभई अद्भुत अनेक शिल्पशास्त्रकी कारीगरी भरी सभा मिली, और आपके यज्ञमें सब दिशानसे आयकर राजान नें बलि दीनीं ॥ ८ ॥ जिन श्रीकृष्णके तेजसे राजानके शिरपर पग राखनवारे दशसहस्र हाथीनके बलवारे जरासंधको भीमसेनजी यज्ञके लिये मारतेभये, भैरवजीके यज्ञके लिये वाने जो राजा रोकेथे उन्हें छुडाया वे आपके यज्ञमें भेटैं लाये ॥ ९ ॥ आंखमेंसे आंसू वहैं, श्रीकृष्णजीके चरणनमें गिरी तुम्हारी स्त्री द्रौपदीको राजसूययज्ञमें रचो गुंथोभयो महा अभिषेक करकै श्लाघा योग्य श्रेष्ठ रमणीक जूडा कपटी दुर्योधन आदिकोंनै सभामें छूयकर विखेरो ये दशा देख वा जूडाके खोलनवारेनकी स्त्रियोंके मालकोंको मार उनकी स्त्रीनको जूडा खुलाते भए, क्योंकि वैधव्य होय जब स्त्री माथेको जूडा खोलै सो जन्मभर फिर न बंधे है, तैसेही भगवान्नें विचारी कि मेरे भक्तोंकी स्त्रीनको जूडा तो थोडे दिनां खुलो रहैगो, परन्तु तुम्हारी रांडनको जूडा जबतक जीवेंगी तबलग खुलो रहैगो ॥ १० ॥ जो श्रीकृष्णजी वनमें आयकर दशसहस्र शिष्योंके प्रथम बैठकर भोजन करनेहारे खवाय दुर्योधनके भेजे अत्यंत दुरंत कष्टरूप दुर्वासामुनिसै हमारी रक्षा करतेभए, शाकपत्रको पाय त्रिलोकी तृप्तकरि जलमें न्हाते सब चेला भाजगए ॥ भारतमें ये कथा ऐसे है कि कोई समय दुर्योधनने दुर्वासाको भोजन कराया, या दुर्योधनसे प्रसन्न दुर्वासा बोले कुछ वर मांगो, तब उसनें मनमें विचारा कि दुर्वासाके शापसें पांडव नष्ट होयँ, तब दुर्योधन बोलो कि युधिष्ठिर हमारे कुलमें मुख्य हैं, तो जब

यत्संनिधावहमु खाण्डवमग्नयेऽदामिन्द्रं च साऽमरगणं तरसा विजित्य ॥ लब्धा सभा मयकृताद्भुतशिल्पमाया दिग्भ्योऽहरन् नृपतयो बलिमध्वरे ते ॥ ८ ॥ यत्तेजसा नृपशिरोङ्घ्रिमहन्मखार्थे आर्योनुजस्तव गजायुतसत्त्ववीर्यः ॥ तेनाहृताः प्रमथनाथमखाय भूपा यन्मोचितास्तदनयन्बलिमध्वरे ते ॥ ९ ॥ पत्न्यास्तवाधिमखक्लृप्तमहाभिषेकश्लाघिष्ठचारुकबरं कितवैः सभायाम् ॥ स्पृष्टं विकीर्य पदयोः पतिताश्रुमुख्या यस्तत्स्त्रियोऽकृत हतेशविमुक्तकेशाः ॥ १० ॥ यो नो जुगोप वनमेत्य दुरन्तकृच्छ्राद्दुर्वाससोऽरिविहितादयुताग्रभुग्यः ॥ शाकान्नशिष्टमुपभुज्य यतस्त्रिलोकीं तृप्तामममंस्त सलिले विनिमग्नसंघः ॥ ११ ॥

रहित सूनोंहूं हे अंग! मार्गमें श्रीकृष्णके परिवारकी रक्षा करत आवैहो सो स्त्रीकी नाईं गोपोंनें मोय जीतलीनों ॥ २० ॥ सोई मैं रथी जाको राजालोग नमस्कार करते हैं, मेरो वोही धनुष, वेही बाण, वोही रथ, वेही घोडे हैं, परन्तु ईश्वर चले गए यासे इन सबमेंसे सामर्थ्य जातीरही, जैसे भस्ममें हवन किया, कपटीसें मिलाहुआ धन, ऊषर धरतीमें बोयाभया अन्न, ये सब निष्फल होते हैं तैसे मेरे कर्तव्य सब निष्फल हुए ॥ २१ ॥ हे राजन्! सुहृदपुरके सुहृदोंकी जो तुमनें कुशल पूछी वे विप्रशापसे मूढ हो मुक्कानसे आपसमें मारते भए ॥२२ ॥ मदसे चित्त सावधान न रहनेसे वे वारुणी मदिरा पीकर आपसमें अनजानकीसी नाईं कट मरे चार पांच बाकी बचे ॥ २३॥ प्रायःकरके ये भगवान् ईश्वरकीही चेष्टा है आपसमें जीवनको मारते हैं, कभी परस्पर पालन करावै हैं॥२४॥हे नृप! जैसे जलके वासी बडे जीव छोटे जीवनकों खायजाते हैं,ऐसे बली राजा दुर्बलोंकों आपसमें जीतले हैं ॥२५॥ इस प्रकार विभु श्रीकृष्ण प्रथम तौ बली महान् यादवों करकै छोटे जीवनको मरवावते भये, फिर यादवोंसे यादवोंका परस्पर मरवाए और भूभार उतारतेभए ॥ २६ ॥ देश काल अर्थ योग्य हृदयके तापके नाशक गोविंदके वचन स्मरण करोंहों तो वे मेरो चित्त हरै हैं ॥ २७ ॥ ऐसे चितवन करते अर्जुनकी बुद्धि श्रीकृष्णके चरणकमलकों अतिगाढी सौहार्दतासे निर्मल शांत और वैराग्ययुक्त होती भई ॥ २८ ॥

तद्वै धनुस्त इषवः स रथो हयास्ते सोहं रथी नृपतयो यत आनमन्ति ॥ सर्वं क्षणेन तदभूदसदीशरिक्तं भस्महुतं कुहकराद्धमिवोप्तमुष्याम् ॥ २१ ॥ राजंस्त्वयाऽनुपृष्टानां सुहृदां नः सुहृत्पुरे ॥ विप्रशापविमूढानां निघ्नतां मुष्टिभिर्मिथः ॥ २२ ॥ वारुणीं मदिरां पीत्वा मदोन्मथितचेतसाम् ॥ अजानतामिवान्योन्यं चतुःपञ्चाऽवशेषिताः ॥ ॥ २३॥ प्रायेणैतद्भगवत ईश्वरस्य विचेष्टितम् ॥ मिथो निघ्नन्ति भूतानि भावयन्ति च यन्मिथः ॥ २४ ॥ जलौकसां जले यद्वन्महान्तोऽदन्त्यणीयसः ॥ दुर्बलान्बलिनो राजन्महान्तो बलिनो मिथः ॥ २५ ॥ एवं बलिष्ठैर्यदुभिर्महद्भिरितरान्विभुः ॥ यदून्यदुभिरन्योन्यं भूभारान्संजहार ह ॥ २६॥ देशकालार्थयुक्तानि हृत्तापोपशमानि च ॥ हरन्ति स्मरतश्चित्तं गोविन्दाभिहितानि मे ॥ २७ ॥ एवं चिन्तयतो जिष्णोः कृष्णपादसरोरुहम् ॥ सौहार्देनातिगाढेन शान्ताऽऽसीद्विमला मतिः ॥ २८ ॥

वासुदेवके चरणके अतिध्यानसे अत्यन्त वेगसे भक्ति बढनेसे अर्जुनके सब कामादिमल नष्ट हो गये ॥ २९ ॥ जो गीताको ज्ञान संग्रामके आदिमें भगवान्नें गायोहो, वो ज्ञान काल कर्म अंधकारसे भूलगयो हो फेर श्रीकृष्णजीसे प्राप्त होतो भयो ॥ ३० ॥ ब्रह्मज्ञानकरकै जब अविद्या लीनभई, तो निर्गुण होय स्थूल शरीर और लिंग शरीरका नाश हुआ तब द्वैतभ्रम सब नष्ट होगयो, तासे विशोक होय मुक्तिका अधिकारी हुआ ॥ ३१ ॥ भगवन्मार्गकी बात और यदुकुलकी मृत्यु सुन निश्चलचित्त हो युधिष्ठिर स्वर्ग जायवेकी मति करते भए ॥ ३२ ॥ अर्जुनको कथन कुंतीभी सुनती भई यादवनको नाथ भगवत्की गति सुन एकांतभक्ति कर भगवान् ईश्वरमें मन लगाय जीवन्मुक्त होती भई ॥ ३३ ॥ जन्मरहित भगवान् जा शरीरकरके भूभार

वासुदेवाङ्घ्र्यभिध्यानपरिबृंहितरंहसा ॥ भक्त्या निर्मथिताशेषकषायधिषणोऽर्जुनः ॥ २९ ॥ गीतं भगवता ज्ञानं यत्तत्संग्राममूर्धनि ॥ कालकर्मतमोरुद्धं पुनरभ्यगमद्विभुः ॥ ३० ॥ विशोको ब्रह्मसंपत्त्या संछिन्नद्वैतसंशयः ॥ लीनप्रकृतिनैर्गुण्यादलिङ्गत्वादसंभवः ॥ ३१ ॥ निशम्य भगवन्मार्गं संस्थां यदुकुलस्य च ॥ स्वःपथाय मतिं चक्रे निभृतात्मा युधिष्ठिरः ॥ ३२ ॥ पृथाप्यनुश्रुत्य धनंजयोदितं नाशं यदूनां भगवद्गतिं च ताम् ॥ एकान्तभक्त्या भगवत्यधोक्षजे निवेशितात्मोपरराम संसृतेः ॥ ३३ ॥ ययाऽहरद्भुवो भारं तां तनुं विजहावजः ॥ कण्टकं कण्टकेनेव द्वयं चापीशितुः समम् ॥ ३४ ॥ यथा मत्स्यादिरूपाणि धत्ते जह्याद्यथा नटः ॥ भूभारः क्षपितो येन जहौ तच्च कलेवरम् ॥ ३५ ॥ यदा मुकुन्दो भगवानिमां महीं जहौ स्वतन्वा श्रवणीयसत्कथः ॥ तदाहरेवाऽप्रतिबुद्धचेतसामभद्रहेतुः कलिरन्ववर्तत ॥ ३६ ॥

हरते भए वा देहको ऐसे त्याग करते भए, जैसे काटेकों काटेसे निकारकर कार्य होजानेसे उस कांटेकोभी त्यागदे हैं कारण कि ईश्वरको तो पृथ्वीका भाररूप शरीर और यादवशरीर दोनों तुल्य हैं ॥ ३४ ॥ जैसे मत्स्यादि रूपको अजन्मा ईश्वर धारैहै, त्यागैहै, जैसे नट अनेक रूप त्यागै, ऐसे जा देहसे भूभार नाश कियो वो शरीर त्यागकरते भए ॥ ३५ ॥ श्रवण योग्य जिनकी कथा ऐसे मुकुंद भगवान् शरीरसै जब या पृथ्वीको त्याग करते भए वाही दिनसे अज्ञानीनके चित्तमें अधर्महेतु कलियुग आय वर्त्ततो भयो ॥ ३६ ॥

युधिष्ठिरस्तत्परिसर्पणं बुधः पुरे च राष्ट्रे च गृहे तदात्मनि ॥ विभाव्य लोभानृतजिह्महिंसनाद्यधर्मचक्रं गमनाय पर्यधात् ॥३७॥ स्वराट् पौत्रं विनयिनमात्मनः सुसमं गुणैः ॥ तोयनीव्याः पतिं भूमेरभ्यषिञ्चद्गजाह्वये ॥ ३८ ॥ मथुरायां तथा वज्रं शूरसेनपतिं ततः ॥ प्राजापत्यां निरूप्येष्टिमग्नीनपिबदीश्वरः ॥३९॥ विसृज्य तत्र तत्सर्वं दुकूलवलयादिकम् ॥ निर्ममो निरहंकारः संछिन्नाशेषबन्धनः ॥ ४० ॥ वाचं जुहाव मनसि तत्प्राण इतरे च तम् ॥ मृत्यावपानं सोत्सर्गं तं पञ्चत्वे ह्यऽजोहवीत् ॥ ४१ ॥ त्रित्वे हुत्वाऽथ पञ्चत्वं तच्चैकत्वेऽजुहोन्मुनिः॥ सर्वमात्मन्यजुहवीद्ब्रह्मण्यात्मानमव्यये ॥ ४२ ॥ चीरवासा निराहारो बद्धवाङ् मुक्तमूर्धजः ॥ दर्शयन्नात्मनो रूपं जडोन्मत्तपिशाचवत् ॥ ४३ ॥ अनवेक्षमाणो निरगादशृण्वन्बधिरो यथा ॥ उदीचीं प्रविवेशाऽऽशां गतपूर्वां महात्मभिः॥४४॥हृदि ब्रह्म परं ध्यायन्नाऽऽवर्तेत यतो गतः ॥ ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति ब्रह्मलोकं स गच्छति ॥ ४५ ॥

बुद्धिमान् युधिष्ठिर पुरमें, राज्यमें, घरमें, अपनपेमें कलियुगको आगमन देखकर लोभ झूठता कपट हिंसा आदि अधर्मको चक्र आयो जान जायवेकी इच्छा करते भए ॥ ३७ ॥ राजा युधिष्ठिर विनयी गुणोंमें अपनेसमान पोतेको जान समुद्रपर्यंतकी भूमिको राज्यतिलक हस्तिनापुरमें करदेते भए ॥ ३८ ॥ तैसेई शूरसेन देशके पति वज्रनामको मथुराको राज्याभिषेक कर राजा प्राजापत्य इष्टिका विधान कर आत्मामें अग्नि आरोपण कर ॥ ३९ ॥ तहां युधिष्ठिर सब वस्त्र कंकण आदिकोंको त्यागकर ममता छोड अहंकार त्याग सब उपाधिसे रहित हो ॥ ४० ॥ वाणीको मनमें लगाय, मनको प्राणमें लीनकर, प्राणको अपानमें लीनकर, अपानको मृत्युमें लीनकर, उत्सर्ग वायुके सहित मृत्युको पंचत्वमें होमते भए ॥४१ ॥ पंचभूतोंको त्रिगुणमें, त्रिगुणोंको अविद्यामें अविद्याको जीवमें लीन करतेभए जीवको अव्यय ब्रह्ममें लीन करतेभए ॥ ४२ ॥ चीर वस्त्र पहिर भोजन त्याग चुप होकर मूंडके बार खोल अपनो रूप जड उन्मत्त पिशाचकी नाईं दिखावते भए ॥ ४३ ॥ काऊकी ओर देखे नहीं बहेरेसे होकर उत्तर दिशाको जाते भये वा दिशाको बडे महात्मालोग पहिले गए हैं ॥ ४४ ॥ हृदयमें परब्रह्मको ध्यान करै जहांके गए फेर नहीं आवै हैं, “ ब्रह्मका वेत्ता ब्रह्मही होता है ” पाछे ब्रह्मलोकको जाय है ॥ ४५ ॥

सब भैया निश्चय कर युधिष्ठिरके पीछे जाते भए,अधर्मके मित्र कलियुगनें सब प्रजा भूमिमें स्पर्श करी ये देखते भए ॥४६॥वे सब कृत्यनको साधकर आत्माकी अत्यंत क्षेम जानकर वैकुंठ भगवान्के चरणकमलको मनसे ध्यान करते भए ॥ ४७॥ तिनके ध्यान और बढीभई भक्ति करकै सब इंद्रियें विशुद्ध कर परात्पर नारायणमें एकांत मति कर गतिको प्राप्त होते भये,विषयी असत् लोगोंको वो गति नहीं प्राप्त होयहै,सब कलमष धोयकर निर्मल शरीर कर श्रीवैकुंठस्थानको गए ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ आत्मज्ञानी विदुरजीभी प्रभासक्षेत्रमें देहत्याग कर श्रीकृष्णमें चित्त लगाय युधिष्ठिरादि सहित अपनें अधिकारस्थानोंको जातेभए ॥ ५० ॥अपनी ओर न देखैं ऐसे पतीनको जान द्रौपदी वासुदेव भगवान्में एकांत मन लगाय परमपदको प्राप्त

सर्वे तमनु निर्जग्मुर्भ्रातरः कृतनिश्चयाः ॥ कलिनाऽधर्ममित्रेण दृष्ट्वा स्पृष्टाः प्रजा भुवि ॥ ४६ ॥ ते साधुकृतसर्वार्था ज्ञात्वाऽऽत्यन्तिकमात्मनः ॥ मनसा धारयामासुर्वैकुण्ठचरणाम्बुजम् ॥४७॥ तद्ध्यानोद्रिक्तया भक्त्या विशुद्धधिषणाः परे ॥ तस्मिन्नारायणपदे एकान्तमतयो गतिम् ॥ ४८ ॥ अवापुर्दुरवापां ते असद्भिर्विषयात्मभिः ॥ विधूतकल्मषाः स्थानं विरजेनात्मनैव हि ॥ ४९ विदुरोपि परित्यज्य प्रभासे देहमात्मवान् ॥ कृष्णावेशेन तच्चित्तः पितृभिः स्वक्षयं ययौ ॥ ५० ॥ द्रौपदी च तदाऽऽज्ञाय पतीनामनपेक्षिताम् ॥ वासुदेवे भगवति ह्येकान्तमतिराप तम् ॥५१॥ यः श्रद्धयैतद्भगवत्प्रियाणां पाण्डोः सुतानामिति संप्रयाणम् ॥शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम् ॥ ५२ ॥ इति श्रीभा० म० प्रथ० पाण्डवस्वर्गारोहणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ सूत उवाच ॥ ततः परीक्षिद्द्विजवर्यशिक्षया महीं महाभागवतः शशास ह ॥ यथा हि सूत्यामभिजातकोविदाः समादिशन्विप्र महद्गुणस्तथा ॥ १॥

भई ॥५१॥ भगवत्के प्यारे पांडुके पुत्रोंको ये स्वर्गारोहण श्रद्धाकरकै जो सुनै है, वो पवित्र होय है, वाको मंगल होय है श्रीहरिमें भक्ति होयकर सिद्धिको प्राप्त होय है ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवतभाषाटीकायां पाण्डवस्वर्गारोहणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ सूतजी बोले कि ताके पीछे महाभागवत परीक्षित ब्राह्मणोंकी शिक्षाकरकै पृथ्वीकी रक्षा करतोभयो ॥ हे विप्रो ! जन्ममेंही सब विद्वान् आयकर जैसे गुण कहगयेथे वैसेही सब महागुण वामें होतेभए ॥ १ ॥

राजा परीक्षित् उत्तरकी बेटी इरावतीको व्याहतेभए, वामें जनमेजयसे आदि लेकर चार पुत्र उत्पन्न करतेभए ॥ २ ॥ बहुत जामें दक्षिणा दीनीं ऐसे तीन अश्वमेध कीने गंगातीरपर कृपाचार्यको गुरु करचो, जा यज्ञमें देवता सामने आयआयके अपनों भाग लेगए ॥ ३ ॥ कोई समय राजानकेसे वेष धारे गौके जोडाको पांवसे मारते शूद्र कलियुगको दिग्विजयमें अपनें पराक्रमसे पकडते भए ॥४॥ शौनकमुनि बोले कि ॥ राजा परीक्षित् दिग्विजयमें किस हेतु कलियुगको पकडते भए, राजानके चिन्ह धारनेवारो वो शूद्र कौन हो जो पांवसे गौको मारे हो॥५॥हे महाभाग ! जो कृष्णकथाके आधीन बात होय सो, अथवा श्रीकृष्णके पदकमलके मकरंदके स्वाद लेवेवार संतोंकी कथा होय सो कहो ॥६ ॥ खोटे कथानसे कहा प्रयोजन है जो आयुको

स उत्तरस्य तनयामुपयेम इरावतीम् ॥ जनमेजयादींश्चतुरस्तस्यामुत्पादयत्सुतान् ॥ २॥ आजहाराश्वमेधांस्त्रीन् गङ्गायां भूरिदक्षिणान्॥शारद्वतं गुरुं कृत्वा देवा यत्राक्षगोचराः ॥३॥ निजग्राहौजसा वीरः कलिं दिग्विजये क्वचित् ॥ नृपलिङ्गधरं शूद्रं घ्नन्तं गोमिथुनं पदा ॥ ४ ॥ शौनक उवाच ॥ कस्य हेतोर्निजग्राह कलिं दिग्विजये नृपः ॥ नृदेवचिह्नधृक्छूद्रः कोसौ गां यः पदाऽहनत् ॥ ५ ॥ तत्कथ्यतां महाभाग यदि कृष्णकथाश्रयम् ॥ अथवास्य पदाम्भोजमकरन्दलिहां सताम् ॥ ६ ॥ किमन्यैरसदालापैरायुषो यदसद्व्ययः ॥ व्यर्थमायुः क्षयिष्यन्ते ते वै निरयगामिनः ॥ ७ ॥ क्षुद्रायुषां नृणामङ्ग मर्त्यानामृतमिच्छताम् ॥ इहोपहूतो भगवान्मृत्युः शामित्रकर्मणि ॥ ८ ॥ न कश्चिन्म्रियते तावद्यावदास्त इहाऽन्तकः ॥ एतदर्थं हि भगवानाहूतः परमर्षिभिः ॥ ९ ॥ अहो नृलोके पीयेत हरिलीलामृतं वचः ॥ हरिलीलाः कलौ शृण्वन्वैकुण्ठं लभते नरः ॥ १० ॥

वृथा क्षय करैं हैं, जो लोग आयुको वृथा खोवें हैं वेही नरकमें जावें हैं ॥ ७ ॥ हे अंग ! थोडी आयुवारे मरण धर्मवारे मोक्षकी इच्छावारे मनुष्योंकी जो मृत्युको सब कर्म बंधनका शमन करनेवारे इस यज्ञमें उत्तम मुनिलोगोंने बुलालिया है इस्सै जब तक जियै तबतक नारायणकी कथा सुनै ॥ ८ ॥ जबतक ये मृत्यु यहां रहैगी, तबतक कोई नहीं मरेगो, यालिये भगवान् मृत्युको परमऋषियोंने बुलायो, कह्यो कि तुमभी यहां बैठकर कथा सुनो ॥ ९ ॥ अहो मनुष्यलोकमें हरिलीलाकथामृत पीवो, कलियुगमें हरिलीलाश्रवण करै सो

मनुष्य वैकुंठमें जाय है ॥ १० ॥ मंद मंद बुद्धिवारे थोडी आयुके जीव रात तो सोयकर खोवे हैं, दिन व्यर्थ कर्मकर खोवे हैं ॥ ११ ॥ सूतजी बोले कि ॥ जब परीक्षित कुरुजांगलदेशमें बसते थे तब अपने चक्रसे रक्षित राज्यमें कलियुगको आयो जान, बहुत अमंगलीक बाते सुन संग्राम करवेमें महाचतुर परीक्षित् धनुपबाण लेतेभए ॥ १२ ॥ सुंदर शृंगारेभये श्याम घोडा जामें लगे, सिंह ध्वजावारे रथमें बैठ रथ घोडा हाथी सिपाहीयोंकी सेना लिये दिग्विजयके अर्थ निकसे ॥ १३ ॥ भद्राश्व, केतुमाल, भारतवर्ष, उत्तर तक किंपुरुष, हरिवर्ष, रम्यक, हिरण्मय इत्यादि खंडोंको जीतकर बलि लेतेभए ॥ १४ ॥ तहां तिन खंडोंमें अपने पूर्वके महात्मापुरुषनको श्रीकृष्णके माहात्म्य, जितायवेवारो गायोभयो यश

मन्दस्य मन्दप्रज्ञस्य वयो मन्दायुषश्च वै ॥ निद्रया ह्रियते नक्तं दिवा च व्यर्थकर्मभिः ॥ ११ ॥ सूत उवाच ॥ यदा परीक्षित्कुरुजाङ्गले वसन्कलिं प्रविष्टं निजचक्रवर्तिते ॥ निशम्य वार्तामनतिप्रियां ततः शरासनं संयुगशौण्डिराददे॥ ॥ १२ ॥ स्वलंकृतं श्यामतुरङ्गयोजितं रथं मृगेन्द्रध्वजमास्थितः पुरात् ॥ वृतो रथाश्वद्विपपत्तियुक्तया स्वसेनया दिग्विजयाय निर्गतः ॥ १३ ॥ भद्राश्वं केतुमालं च भारतं चोत्तरान्कुरून् ॥ किंपुरुषादीनि सर्वाणि विजित्य जगृहे बलिम् ॥ १४ ॥ तत्र तत्रोपशृण्वानः स्वपूर्वेषां महात्मनाम् ॥ प्रगीयमानं च यशः कृष्णमाहात्म्यसूचकम् ॥ १५ ॥ आत्मानं च परित्रातमश्वत्थाम्नोऽस्त्रतेजसः॥स्नेहं च वृष्णिपार्थानां तेषां भक्तिं च केशवे॥ १६॥तेभ्यः परमसन्तुष्टः प्रीत्युज्जृम्भितलोचनः ॥ महाधनानि वासांसि ददौ हारान्महामनाः॥ १७॥ सारथ्यपारषदसेवनसख्यदौत्यवीरासनानुगमनस्तवनप्रणामम् ॥ स्निग्धेषु पाण्डुषु जगत्प्रणतिं च विष्णोर्भक्तिं करोति नृपतिश्चरणारविन्दे ॥ १८ ॥

सुनतेभए ॥ १५ ॥ अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे अपनी रक्षा, यादवनको पांडवोंको स्नेह उनकी केशवमें भक्ति ये सुनी ॥ १६ ॥ उनपर अतिसंतुष्ट होकर प्रीतिसे प्रफुल्लित नयन होकर महामना परीक्षित् महाधन वस्त्र हार देते भए ॥ १७ ॥ अपने प्यारे पांडवोंको सारथीपन, पारषद बननों, सेवा करनी, सख्यभाव, दूत बननो, वीरआसन होय रक्षा करनी, उनके पीछे चलनों, प्रणाम करनों, विष्णुकी जगत्कर्तृता सुनते राजा परीक्षित् विष्णुके चरणारविंदमें भक्ति करते भए ॥ १८ ॥

इसप्रकार दिन रात अपने पूर्व पुरुषनकी नाईं आचरण करते राजा परीक्षित्के समीप जो आश्चर्य हुआ सो सुनो ॥ १९ ॥ एक पगसे चलते वृषरूपधारी धर्म वत्सहीन माताकी समान व्याकुल कान्ति हीन रुदन करती गोरूपधारी पृथ्वीको देखकर पूछने लगे ॥ २० ॥ हे भद्रे ! हे अंब ! तुम्हारो कल्याण तो है, कुछ मलिन मुखसे कांति हत होगई है, आपके कुछ भीतरकी पीडा है, आपके बंधु दूर है ऐसो सोच करो है ॥ २१ ॥ अथवा मैं एक पद हूं तुम्है मेरा शोक है, वा तुमपर शूद्र राज्य करै है ये दुःख है, अथवा यज्ञमें भाग न मिलनेसे सुरनको शोक है वा प्रजाको शोक है वा मेघ न वर्षै है ये शोच है ॥२२॥ हे पृथिवी ! पति स्त्रियोंकी रक्षा नहीं करते यह शोक है अथवा राक्षसोंकी समान पिता बालकोंको दुःख दै है तुझे उनका

तस्यैवं वर्तमानस्य पूर्वेषां वृत्तिमन्वहम् ॥ नातिदूरे किलाश्चर्यं यदासीत्तन्निबोध मे ॥ १९ ॥ धर्मः पदैकेन चरन्विच्छायामुपलभ्य गाम् ॥ पृच्छति स्माऽश्रुवदनां विवत्सामिव मातरम् ॥ २० ॥ धर्म उवाच ॥ कच्चिद्भद्रेऽनामयमात्मनस्ते विच्छायाऽसि म्लायतेषन्मुखेन ॥ आलक्षये भवतीमन्तराधिं दूरे बन्धुं शोचसि कंचनाम्ब ॥ २१ ॥ पादैर्न्यूनं शोचसि मैकपादमात्मानं वा वृषलैर्भोक्ष्यमाणम् ॥ अथोऽसुरादीन्हृतयज्ञभागान्प्रजा उतस्विन्मघवत्यवर्षति॥२२॥ अरक्ष्यमाणाः स्त्रिय उर्वि बालाञ्छोचस्यथो पुरुषादैरिवार्तान् ॥ वाचं देवीं ब्रह्मकुले कुकर्मण्यब्रह्मण्ये राजकुले कुलाग्र्यान् ॥ २३ ॥ किं क्षत्रबन्धून्कलिनोपसृष्टान्राष्ट्राणि वा तैरवरोपितानि ॥ इतस्ततो वाऽशनपानवासःस्नानव्यवायोन्मुखजीवलोकम् ॥ २४ ॥ यद्वाऽम्ब ते भूरिभरावतारकृतावतारस्य हरेर्धरित्रि ॥ अन्तर्हितस्य स्मरती विसृष्टा कर्माणि निर्वाणविलम्बितानि ॥ २५ ॥

शोच है अथवा कुकर्मीनमें सरस्वती जाय बसी, और जो ब्राह्मणोंको न मानें उनमें लक्ष्मी देवी गई, राजा लोग ब्राह्मणोंकों न मानने लगे, कुलीन ब्राह्मण सेवकाई करनें लगे ये शोक है कहो ॥ २३ ॥ अथवा कलियुगग्रसित क्षत्रिय होगए उनके राज्य सब कलियुगी होगए, सब जीव इधर उधर भोजनके लिये जल पीनेके वास्ते स्नानके अर्थ मैथुन करनेका ऊंचो मुख उठाय डोलैं हैं॥२४॥अथवा हे अंब ! हे धरित्रि ! तुम्हारे ऊपरसै बडे भारके उतारनेवारे ईश्वर अवतारधारी अंतर्द्धान होगये ये शोक है वा मोक्षदायक उनके करेभये कर्मनको स्मरण करोहो ॥ २५ ॥

इदं ममाऽऽचक्ष्व तवाऽऽधिमूलं वसुंधरे येन विकर्शितासि ॥ कालेन वा ते बलिनां बलीयसा सुरार्चितं किं हृतमद्य सौभगम् ॥ २६ ॥ धरण्युवाच ॥ भवान्हि वेद तत्सर्वं यन्मां धर्मानुपृच्छसि ॥ चतुर्भिर्वर्तसे येन पादैर्लोकसुखावहैः ॥ २७ ॥ सत्यं शौचं दया क्षान्तिस्त्यागः सन्तोष आर्जवम् ॥ शमो दमस्तपः साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतम् २८॥ ज्ञानं विरक्तिरैश्वर्यं शौर्यं तेजो बलं धृतिः ॥ स्वातन्त्र्यं कौशलं कान्तिर्धैर्यं मार्दवमेव च ॥ २९ ॥ प्रागल्भ्यं प्रश्रयः शीलं सह ओजो बलं भगः ॥ गाम्भीर्यं स्थैर्यमास्तिक्यं कीर्तिर्मानोऽनहंकृतिः ॥ ३० ॥ एते चान्ये च भगवन्नित्या यत्र महागुणाः ॥ प्रार्थ्या महत्त्वमिच्छद्भिर्न वियन्ति स्म कर्हिचित् ॥ ३१ ॥

हे वसुंधरे ! जाकरके तुम अति कृषित हो सो तुम्हारो दुःखको कारण कहाहै सो मोसों कहो अथवा बलियोंको बली कालनें देवतापूजित तेरा सौभाग्य हरलिया यासै तू शोच करै है ॥२६॥ पृथिवी बोली॥आप तो सब जानोंहो तोभी हे धर्म ! जो तुम मोसे पूंछोंहो सो कहूंहूं, लोकके सुखदाता चार पादसे आप वर्ततेहो ॥ २७ ॥ यथार्थ बोलनों १ शुद्ध रहिनो २ परायो दुःख सहनो ३ क्रोध आवै वा समय चित्तको रोकनो ४ धन माँगे वाको सदा धन देनो ५ वस सब कुछ है ऐसे रहिनो ६ काऊसे टेढो न होनो ७ मनको निश्चल रखनो८बाह्यइंद्रियोंको निश्चल करनो९स्वधर्मको त्याग न करनो१० ये अपनो वैरी है ये मित्र है ये न विचारनो ११ अपराध सहनो १२ लाभ प्राप्तिमें उदासीन रहनो १३ सत् शास्त्रको विचार करते रहनो १४ ॥२८॥ परमेश्वर है ये ज्ञान माननों १५ तृष्णा त्याग करनो १६ हमारो नियंता है ये माननो १७ संग्राममें उत्साह करनो१८प्रभाव रखनो १९ चतुराई रखनीं २० जो काम करनों है वाकी याद राखनीं २१ पराधीन न रहिनों २२ सब क्रिया करनेमें निपुण २३ सुंदर रहिनों २४ व्याकुल न रहनो २५ कठिन चित्त न राखनो २६ ॥२९॥ बुद्धि प्रकाशित राखनों २७ विजयी रहनो २८ सुंदर स्वभाव राखनों २९ सहनशक्ति ३० पराक्रम ३१ देहमें बल रखनों ३२ सब भोग भोगनों ३३ गंभीर रहिनो ३४ चंचल न रहिनों ३५ सबमें श्रद्धा राखनीं ३६ यश होय सो करनो ३७ पूजा होय सो कर्म करनो ३८ गर्व न करनो ३९ ॥ ३० ॥ हे भगवन् ! ये एक कम चालीस गुण भगवान्में हैं, औरभी महागुण हैं महत्त्वकी इच्छावारोंको ये करने योग्य है,कभीभी हरिमेंसे ये गुण न जांय हैं ॥ ३१ ॥

सब गुणपात्र श्रीनिवास अब या पृथ्वीपर न है यासे शोचोंहो, पापी कलिने सब लोक ग्रस लीनें हैं येही शोच है ॥३२॥ मेरे गौवत्स न रहे, आप एकपद रहे, देवश्रेष्ठनको देवतानको पितरनको ऋषिनको साधूनको सब ब्राह्मण आदि वर्णनको सब आश्रमोंको मैं सोचोंहूं ॥ ३३ ॥ श्रीलक्ष्मीजीको कटाक्ष हमपर होय ये कामना कर बहुत दिनतक भगवत्प्रपन्न ब्रह्मादिक तप करतेभए सो लक्ष्मी अपनों वासस्थान कमलकों त्यागकर जिनके चरणकी सुंदरताको अत्यंत भजतीभई ॥३४॥ कमल वज्र अंकुश ध्वजा इत्यादि चिन्हसे अंकित भगवान्‌के श्रीमच्चरणकमल अलंकृत भगवत् विभूतिको प्राप्त

तेनाहं गुणपात्रेण श्रीनिवासेन साम्प्रतम् ॥ शोचामि रहितं लोकं पाप्मना कलिनेक्षितम् ॥ ३२॥ आत्मानं चानुशोचामि भवन्तं चाऽमरोत्तमम् ॥ देवान्पितॄनृषीन्साधून्सर्वान्वर्णांस्तथाऽऽश्रमान् ॥ ३३ ॥ ब्रह्मादयो बहुतिथं यदपाङ्गमोक्षकामास्तपः समचरन्भगवत्प्रपन्नाः ॥ सा श्रीः स्ववासमरविन्दवनं विहाय यत्पादसौभगमलं भजतेऽनुरक्ता ॥ ३४ ॥ तस्याऽहमब्जकुलिशाङ्कुशकेतुकेतैः श्रीमत्पदैर्भगवतः समलंकृताङ्गी ॥ त्रीनत्यरोच उपलभ्य ततो विभूतिं लोकान्स मां व्यसृजदुत्स्मयतीं तदन्ते ॥ ३५ ॥ यो वै ममातिभरमासुरवंशराज्ञामक्षौहिणीशतमपानुददात्मतन्त्रः ॥ त्वां दुःस्थमूनपदमात्मनि पौरुषेण संपादयन्यदुषु रम्यमबिभ्रदङ्गम् ॥ ३६ ॥ का वा सहेत विरहं पुरुषोत्तमस्य प्रेमावलोकरुचिरस्मितवल्गुजल्पैः ॥ स्थैर्यं समानमहरन्मधुमाधवीनां रोमोत्सवो मम यदङ्घ्रिविटङ्किताया: ॥ ३७ ॥ तयोरेवं कथयतोः पृथिवीधर्मयोस्तदा ॥ परीक्षिन्नाम राजर्षिः प्राप्तः प्राचीं सरस्वतीम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीभा॰महा॰प्रथम॰पृथिवीधर्मसंवादो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

होकर त्रिलोकीमें शोभित भई, ये गर्व जब मोको भयो तो सब लोकसहित मुझै त्याग करत भए येही शोच है ॥ ३५ ॥ मोपर अतिभारकारी असुरवंशी राजानकी सैकडों अक्षौहिणी आप स्वाधीन होके मारते भए, और अपने पुरुषार्थसे चरण टूटनेके कारण पीडित आपको संपूर्ण करनेके लिये यदुकुलमें सुंदर शरीर धारण किया ॥ ३६ ॥ प्रेमकौ अवलोकन मनोहर मुसकान, मनोहर वचन करकै सत्यभामादिकोंको मानस्थैर्य हरतेभए; उनके चरणस्पर्शसें शोभित मोकों रोमांच होआवैहो, ऐसे पुरुषोत्तमको विरह कौन सहैगो ॥ ३७ ॥ पृथ्वी धर्म ये दोनों ऐसे

कहिरहेथे तहांही परीक्षित् नामक राजऋषि पूर्ववाहिनी सरस्वतीसे युक्त कुरुक्षेत्रमें पहूंचते भए ॥ ३८ ॥ इति श्रीभा० प्र० पृथ्वीधर्मसंवादवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ सूतजी बोले कि ॥ राजा परीक्षित्नें तहां गौको जोडा अनाथकी नाईं पिटतो भयो देखो, और दंड हस्तमें लियें शूद्र नृपोंकेसो चिन्हधारे देखतेभये ॥ १ ॥ कमल जडसम सुपेतवर्ण गोवर करते डरते एकपदसे खडे कांपते दुःख पाते शूद्रसे ताडित वृषको देखते भये ॥ २ ॥ सब धर्म भरपूर करवेवारी, दीन, अत्यंत शूद्रके पदसे मारीभई, वत्सारहित आसूं मुखसे गिराती दूबरी घासकी इच्छा करती गौरूप धारे पृथ्वीको देखतेभये ॥ ३॥ सुवर्णको जामें काम ऐसे रथपर बैठे भए राजा परीक्षित् धनुष बान चढायकर मेघसमान गंभीर वाणीसे पूछते भए॥४॥

॥ सूत उवाच ॥ तत्र गोमिथुनं राजा हन्यमानमनाथवत् ॥ दण्डहस्तं च वृषलं ददृशे नृपलाञ्छनम् ॥ १ ॥ वृषं मृणालधवलं मेहन्तमिव बिभ्यतम् ॥ वेपमानं पदैकेन सीदन्तं शूद्रताडितम् ॥ २ ॥ गां च धर्मदुघां दीनां भृशं शूद्रपदाहताम् ॥ विवत्सामश्रुवदनां क्षामां यवसमिच्छतीम् ॥ ३ ॥ पप्रच्छ रथमारूढः कार्तस्वरपरिच्छदम् ॥ मेघगम्भीरया वाचा समारोपितकार्मुकः ॥ ४ ॥ कस्त्वं मच्छरणे लोके बलाद्धंस्यऽबलान्बली ॥ नरदेवोऽसि वेषेण नटवत्कर्मणाऽद्विजः ॥ ५ ॥ कस्त्वं कृष्णे गते दूरं सह गाण्डीवधन्वना ॥ शोच्योऽस्यऽशोच्यान्रहसि प्रहरन्वधमर्हसि ॥ ६ ॥ त्वं वा मृणालधवलः पादैर्न्यूनः पदा चरन् ॥ वृषरूपेण किं कश्चिद्देवो नः परिखेदयन् ॥ ७ ॥ न जातु कौरवेन्द्राणां दोर्दण्डपरिरम्भिते ॥ भूतले नु पतन्त्यस्मिन्विना ते प्राणिनां शुचः ॥ ८ ॥

तू कौन है जो मेरे आधीन लोकमें अपनें बलसे निर्बलोंको मारता है,तू राजा वेषसे मालूम पडे है,परंतु नटकी नाईं है तेरा कर्म शूद्रोंके समान है॥५॥ तू कौन है क्या गांडीवधनुपधारी अर्जुन श्रीकृष्ण तैंने दूर गए जानें हैं,क्यों तूं एकान्तमें निरपराधी गौ बैलको मारता है, यासे तू अपराधी है; सो वधके योग्य है॥ ६ ॥ हे कमलनालसमानधवल ! तुम कौन हो, जो तीन पद रहित एकपगसे चलना चाहोहो, वृषरूप धारकर कोई देवता हो कहो, जो हमें खेद करोहो ॥ ७ ॥ कौरवेंद्रोंकी भुजादंडोंसे रक्षित भूतलपर तुह्मारे विना किसी प्राणीमात्रके शोकके आंसू कभीभी नहीं गिरते हैं ॥ ८ ॥

हे सुरभिनंदन ! या शूद्रसे अब तुह्मैं भय न होगा, हे अंब ! तुह्मारोभी कल्याण हो, खलोंको दंडदाता मैं हूं ॥९॥ जा राजाके राज्यमें साधु प्रजा दुष्टोंसे दुःखित होती है, वा मदांध राजाकी कीर्ति आयु ऐश्वर्य परलोक सब नष्ट होजाते हैं ॥ १० ॥ राजानका यही परमधर्म है कि आर्तोंकी पीडा दूर करना, या कारणते सब जीवनको द्रोही असत्तमको मारूंगो ॥ ११ ॥ हे सुरभिनंदन ! तुह्मारे तीन पावो कौननें काटे हैं तुम तो चार पदवारे हो श्रीकृष्णके सेवक राजनके राज्यमें तुमसरीको कोई न होय ॥१२॥ हे वृष ! तुह्मारो कल्याण होय, निरपराधी साधुनको विरूप करनों ये राजाको कीर्तिको दूषण करवेवारो है ॥ १३ ॥ निरपराधी जनमें अपराध लगावनेहारेको सब ओरसे मेरो भय रहे है, ब्राह्मण बालक गौ इनको जो दुःख देवै है वो नरकमें जावे है ॥ १४ ॥ निरपराधीमें जो अपराध निरंकुश होके लगावै वो देवताभी होय तो वाकी बाजुसहित भुजा काटडालूंगो ॥ १५ ॥ परमधर्म राजाको ये है कि स्वधर्ममें स्थितको पालन करनो, औरोंको शिक्षा करनो, शास्त्रके अनुसार बिना विपति पाखंडीनको शिक्षा करनो ॥ १६ ॥ धर्म बोले कि ॥ पांडुके कुलकेनको ऐसो अभयदानको वचन कहिनो युक्तही है, जिनके गुणोंसे श्रीकृष्णनें दूत आदि कर्म करो ॥ १७ ॥

मा सौरभेयाऽनुशुचो व्येतु ते वृषलाद्भयम् ॥ मा रोदीरम्ब भद्रं ते खलानां मयि शास्तरि ॥ ९ यस्य राष्ट्रे प्रजाः सर्वास्त्रस्यन्ते साध्व्यसाधुभिः ॥ तस्य मत्तस्य नश्यन्ति कीर्तिरायुर्भगो गतिः ॥ १० ॥ एष राज्ञां परो धर्मो ह्यार्तानामार्तिनिग्रहः ॥ अत एनं वधिष्यामि भूतद्रुहमसत्तमम् ॥ ११ ॥ कोऽवृश्चत्तव पादांस्त्रीन्सौरभेय चतुष्पद ॥ मा भूवंस्त्वादृशा राष्ट्रे राज्ञां कृष्णानुवर्तिनाम् ॥ १२॥ आख्याहि वृष भद्रं वः साधूनामकृतागसाम् ॥ आत्मवैरूप्यकर्तारं पार्थानां कीर्तिदूषणम् ॥ १३ ॥ जनेऽनागस्यऽघं युञ्जन्सर्वतोऽस्य च मद्भयम् ॥ ब्रह्मणां बालकगवां दुःखदो निरयं व्रजेत् ॥१४ ॥ अनागःस्विह भूतेषु य आगस्कृन्निरङ्कुशः ॥ आहर्तास्मि भुजं साक्षादमर्त्यस्यापि साङ्गदम् ॥१५॥ राज्ञो हि परमो धर्मः स्वधर्मस्थानुपालनम् ॥ शासतोऽन्यान्यथाशास्त्रमनापद्युत्पथानिह ॥१६॥ धर्म उवाच ॥ एतद्वः पाण्डवेयानां युक्तमार्ताभयं वचः ॥ येषां गुणगणैः कृष्णो दौत्यादौ भगवान्कृतः ॥१७॥

हे पुरुषश्रेष्ठ ! जहांते क्लेशको बीज होय है सोभी हम नहीं जानै हैं, कारण कि अनेक वादियोंके भिन्न२वाक्य होनेसे हम मोहित हैं॥१८॥कोई विकल्प-वादी आत्मामें आत्मा ही मानैं हैं; कोई भाग्यको ईश्वर कहे है कोई कर्मको, कोई स्वभावको प्रभु मानैं हैं ॥१९॥ कोई लोगोंने तर्क करके निर्देशमें न आनेहारे परमेश्वरसैही सब कुछ होता है ऐसा निश्चय किया है यामें जो आपको मालूम पडे सो अपनी बुद्धिसे विचारो॥२०॥हे द्विजसत्तम! धर्म जब ऐसे कहिरहेथे, तब वो राजा सावधान मनकरकै बडो खेदित हुओ॥२१॥हे धर्मज्ञ ! तुम धर्मही बोलते हो, वृषरूपधारी धर्म हो, जो कोई अधर्मकी

न वयं क्लेशबीजानि यतः स्युः पुरुषर्षभ ॥ पुरुषं तं विजानीमो वाक्यभेदविमोहिताः ॥ १८ ॥ केचिद्विकल्पवसना आहुरात्मानमात्मनः ॥ दैवमन्ये परे कर्म स्वभावमपरे प्रभुम् ॥ १९ ॥ अप्रतर्क्यादनिर्देश्यादिति केष्वपि निश्चयः ॥ अत्रानुरूपं राजर्षे विमृश्य स्वमनीषया ॥ २० ॥ एवं धर्मे प्रवदति स सम्राट् द्विजसत्तम ॥ समाहितेन मनसा विखेदः पर्यचष्ट तम् ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ धर्मं ब्रवीषि धर्मज्ञ धर्मोऽसि वृषरूपधृक् ॥ यदधर्मकृतः स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत् ॥ २२ अथवा देवमायाया नूनं गतिरगोचरा ॥ चेतसो वचसश्चापि भूतानामिति निश्चयः ॥ २३ ॥ तपः शौचं दया सत्यमिति पादाः प्रकीर्तिताः ॥ अधर्मांशैस्त्रयो भग्नाः स्मयसंगमदैस्तव ॥ २४ ॥ इदानीं धर्म पादस्ते सत्यं निर्वर्तयेद्यतः ॥ तं जिघृक्षत्यऽधर्मोऽयमनृतेनैधितः कलिः ॥ २५ ॥ इयं च भूर्भगवता न्यासितोरुभरा सती ॥ श्रीमद्भिस्तत्पदन्यासैः सर्वतः कृतकौतुका ॥ २६ ॥

बात करता है और जो उसकी सूचना करता है दोनोंकोभी वोही पाप होता है॥२२॥अथवा देवताकी मायाकी गतिसे जीवोंकी मन और वाणीसे अगोचर है यह निश्चय है॥२३॥तप करनों पवित्र रहनों दया राखनी सत्य बोलनों ये धर्मके चार चरन हैं,सो अधर्मके अंश विस्मय स्त्रीप्रसंग मद ये तीन हैं,इनसे धर्मके तीन पग टूटगए एक रहा है ॥२४॥ अब हे धर्म ! तुह्मारो सत्य एकपाद रह्यो है वाहूको झूठ बोलनेसे वृद्धिको प्राप्तहुआ यह कलियुग तोडा चाहताहै ॥२५॥ श्रीभगवान्ने अत्यन्त भार दूर कर अपने चरणोंसे जिसको शोभित किया वह यह सती पृथ्वी है॥ २६ ॥

सो ये राजा परीक्षित् राजनके योग्य आसनपर बैठे हैं, वनको जानेहुवे या राजाके परदादे तो याको राज्य देगए ॥४३॥ अब वो राजऋषि कौरवोंकी श्रीको बढानेवारो महाभागवत आसनपर चक्रवर्ती महायशस्वी हस्तिनापुरमें हैं ॥४४॥ अभिमन्युके पुत्र राजा परीक्षितको ऐसो प्रताप है, वो पृथ्वीपालन करै है तब तुम यज्ञ करोहौ ॥ ४५ ॥ इतिश्रीभा० म० भा० कलिनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ जो अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रसे दग्ध होनेपरभी अद्भुतकर्मवारे श्रीकृष्णजीकी कृपासे माके पेटमें न मरे ॥ १ ॥ और भगवानमें अविचल भक्ति होनेके कारण ब्राह्मणके क्रोधसै उत्पन्न हुए

स एष एतर्ह्यध्यास्त आसनं पार्थिवोचितम् ॥ पितामहेनोपन्यस्तं राज्ञाऽरण्यं विविक्षता ॥ ४३ ॥ आस्तेऽधुना स राजर्षिः कौरवेन्द्रः श्रियोल्लसन् ॥ गजाह्वये महाभागश्चक्रवर्ती बृहच्छ्रवाः ॥ ४४ ॥ इत्थंभूतानुभावोऽयमभिमन्युसुतो नृपः ॥ यस्य पालयतः क्षोणीं यूयं सत्राय दीक्षिताः ॥ ४५ ॥ इति श्रीभा०महा०प्रथमस्कन्धे कलिनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ यो वै द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टो न मातुरुदरे मृतः ॥ अनुग्रहाद्भगवतः कृष्णस्याद्भुतकर्मणः ॥ १ ॥ ब्रह्मकोपोत्थिताद्यस्तु तक्षकात्प्राणविप्लवात् ॥ न संमुमोहोरुभयाद्भगवत्यर्पिताशयः ॥ २ ॥ उत्सृज्य सर्वतः सङ्गं विज्ञाताजितसंस्थितिः ॥ वैयासकेर्जहौ शिष्यो गङ्गायां स्वं कलेवरम् ॥३॥ नोत्तमश्लोकवार्तानां जुषतां तत्कथामृतम् ॥ स्यात्संभ्रमोऽन्तकालेऽपि स्मरतां तत्पदाम्बुजम् ॥ ४ ॥ तावत्कलिर्न प्रभवेत्प्रविष्टोपीह सर्वतः ॥ यावदीशो महानुर्व्यामाभिमन्यव एकराट् ॥ ५ ॥ यस्मिन्नहनि यर्ह्येव भगवानुत्ससर्ज गाम् ॥ तदैवेहानुवृत्तोऽसावधर्मप्रभवः कलिः ॥ ६ ॥

प्राणोंका संहार करनेहारे तक्षकरूप महाभयसे जिनका मन मोहकू प्राप्त न हुआ ॥ २ ॥ सब ओरसे संग त्याग भगवत्तत्व जान व्यासपुत्र शुकके समीप श्रीगंगा तीरपर देहत्याग करतेभए ॥ ३ ॥ श्रीभगवत्की वार्ता सेवन करवेवारे तिनकी कथामृत पान करवेवारे श्रीकृष्णचरणस्मरण करवेवारनको अंतकालमेंभी संभ्रम न होय है ॥ ४ ॥ कलि प्रविष्ट तौ भयो परंतु सब ठौर तबतक कलियुग न प्रवेश करतोभयो जबतक पृथ्वीनरेश परीक्षित् राज्य करतेथे ॥ ५ ॥ जा दिन जा समय भगवान् पृथ्वीको त्यागतेभए, तबसेही यहां अधर्मवर्द्धक कलियुग सब जगह प्रवेश करतोभयो ॥ ६ ॥

राजा परीक्षित् कलिसे वैर न करतभए, भ्रमरवत् सारग्राही भए क्योंकि जा कलियुगमें मानसी पुण्य तो संकलपमात्र करनेसे सिद्ध होतेहैं, और पाप संकल्प करनेसे न होय, करोतो वाको देरमें फल होय ॥ ७ ॥ जो धीरसे डरवेवारो कलि धर्म करनवारे शूरको कहा करैगो मदांधमनुष्योंमें कलि शीघ्र घुसे है जैसे बालकोंमें भेडिया आवै है शूरनमें नहीं ॥ ८ ॥ जो तुमने भगवान्‌की कथा मिश्रित आख्यान पूछाथा वह पुण्यरूप परीक्षित्‌को आख्यान हमनें वर्णन कीनों ॥ ९ ॥ कथन योग्य श्रीकृष्णके कर्म हैं, उन भगवानकी जो जो कथा गुणकर्माश्रय हैं वे संसारमें सुखकी इच्छावारेको सदा सेव्य हैं ॥ १० ॥ सब ऋषि बोले कि हे सूत ! हे सौम्य ! हजार वर्षतक जीवो, बहुत दिन तुम्हारो यश होय, जो तुम अमृतकी

नानुद्वेष्टि कलिं सम्राट् सारङ्ग इव सारभुक् ॥ कुशलान्याशु सिध्यन्ति नेतराणि कृतानि यत् ॥ ७ ॥ किं नु बालेषु शूरेण कलिना धीरभीरुणा ॥ अप्रमत्तः प्रमत्तेषु यो वृको नृषु वर्तते ॥ ८ ॥ उपवर्णितमेतद्वः पुण्यं पारीक्षितं मया ॥ वासुदेवकथोपेतमाख्यानं यदपृच्छत ॥ ९ ॥ या याः कथा भगवतः कथनीयोरुकर्मणः ॥ गुणकमाश्रयाः पुंभिः संसेव्यास्ता बुभूषुभिः ॥ १० ऋषय ऊचुः ॥ सूत जीव समाः सौम्य शाश्वतीर्विशदं यशः ॥ यस्त्वं शंससि कृष्णस्य मर्त्यानाममृतं हि नः ॥ ११ ॥ कर्मण्यऽस्मिन्ननाश्वासे धूमधूम्रात्मनां भवान् ॥ आपाययति गोविन्दपादपद्मासवं मधु ॥ १२ ॥ तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ॥ भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ १३ ॥ को नाम तृप्येद्रसवित्कथायां महत्तमैकान्तपरायणस्य ॥ नाऽन्तं गुणानामगुणस्य जग्मुर्योगेश्वरा ये भवपाद्ममुख्याः ॥ ॥ १४ ॥ तन्नो भवान्वै भगवत्प्रधानो महत्तमैकान्तपरायणस्य ॥ हरेरुदाराचरितं विशुद्धं शुश्रूषतां नो वितनोतु विद्वन् ॥ १५ ॥

तुल्य श्रीकृष्णके चरित्र मनुष्योंको कहोहो ॥ ११ ॥ जो तुम फलके संशयहारे इस यज्ञ कर्ममें धुआंसे धुंधरी आत्मावारे हमको मनुष्योंको अमृतदायक श्रीकृष्णके पादपद्मको मधु प्याओहो ॥ १२ ॥ भगवतके संग करनेवारेनके एक लवमात्रके सत्संगकी बराबरी न स्वर्ग करसकै न मोक्ष, ॥ फिर मनुष्योंके राज्यादिकी क्या कथा है ॥ १३ ॥ महात्मानके एकान्त ध्यानयोग्य उनकी कथामें कौन रसवेत्ता तृप्त होवै हैं, कोई नहीं, निर्गुणी ईश्वरके गुणनको अंत योगेश्वर शिव ब्रह्मादिक नहीं जानसकै हैं ॥ १४ ॥ हे विद्वन् ! महात्मा पुरुषोंके परम आश्रय हरिके

श्रीकृष्णके किये अपने त्यागकूं एक अभागिनी अबलाकी सदृश द्विजौंके द्रोही, राजौंके वेषधारी शूद्र मेरा भोग करैंगे ऐसा विचार आंसू वहाती शोक करैं हैं ॥ २७ ॥ महारथी राजा परोक्षित् इस प्रकार धर्म और पृथिवीको शांतकर, अधर्महेतुकालिके मारनेको तीक्ष्ण खड्ग हाथमें लिया॥२८॥ मारनेको आते राजाको देख नृपचिह्न त्याग तिनके पादमूलमें भयभीत होके कलियुग गिरपडो ॥ २९ ॥ शरण देनेवालौंमें श्रेष्ठ यशभाजन दीनवत्सल राजा परीक्षितनै उसै चरणौंमें पतित देख दया करके वध नहीं किया और हंसकर इस प्रकार कहा ॥ ३० ॥ राजा बोले कि अर्जुनसरीखे यशधारीनके आगे हाथ जोड शरणमें आनेहारेको किंचित् भय नहीं है, परन्तु अधर्मको मित्र तू मेरे राज्यमें कहीं मत रह शीघ्र चलेजाओ ॥ ३१ ॥

शोचत्यऽश्रुकला साध्वी दुर्भगेवोज्झिताऽधुना ॥ अब्रह्मण्या नृपव्याजाः शूद्रा भोक्ष्यन्ति मामिति ॥ २७ ॥ इति धर्मं महीं चैव सान्त्वयित्वा महारथः ॥ निशातमाददे खड्गं कलयेऽधर्महेतवे ॥ २८ ॥ तं जिघांसुमभिप्रेत्य विहाय नृपलाञ्छनम् ॥ तत्पादमूलं शिरसा समगाद्भयविह्वलः ॥ २९ ॥ पतितं पादयोर्वीरः कृपया दीनवत्सलः ॥ शरण्यो नाऽवधीच्छ्लोक्य आह चेदं हसन्निव ॥ ३० ॥ राजोवाच ॥ न ते गुडाकेशयशोधराणां बद्धाञ्जलेर्वै भयमस्ति किंचित् ॥ न वर्तितव्यं भवता कथंचन क्षेत्रे मदीये त्वमधर्मबन्धुः ॥ ३१ ॥ त्वां वर्तमानं नरदेवदेहेष्वऽनुप्रवृत्तोऽयमधर्मपूगः ॥ लोभोऽनृतं चौर्यमनार्यमंहो ज्येष्ठा च माया कलहश्च दम्भः ॥ ३२ ॥ न वर्तितव्यं तदधर्मबन्धो धर्मेण सत्येन च वर्तितव्ये ॥ ब्रह्मावर्ते यत्र यजन्ति यज्ञैर्यज्ञेश्वरं यज्ञवितानविज्ञाः ॥ ३३ ॥ तस्मिन्हरिर्भगवानिज्यमान इज्यामूर्तिर्यजतां शं तनोति ॥ कामानमोघान्स्थिरजङ्गमानामन्तर्वहिर्वायुरिवैष आत्मा ॥ ३४ ॥

जहां तू रहैगा वहांके राजौंके देहमेंभी अधर्मको समूह लोभ अनृत चौर्य अनारीपनो पाप बडी माया क्लेश दंभ अधिक बढैंगे ॥ ३२ ॥ हे अधर्मके मित्र! तुम यहां मतरहियो, सत्य धर्मसे वर्तौतो रहो, यज्ञके विस्तारमें चतुर ज्ञानी लोग या ब्रह्मावर्त बिठूरमें यज्ञेश्वरको यज्ञसे यजन करैं हैं ॥ ३३ ॥ ता यज्ञमें भगवान् हरिकी पूजा होयहै, इज्यामूर्ति ईश्वर यज्ञ करवेवारेनकों कल्याण करैं हैं, अमोघ सब कामना देवैं हैं, जैसे स्थावर जंगमांके बाहर भीतर वायु रहै तैसे ईश्वर रहैं हैं ॥ ३४ ॥

सूतजी बोले कि ॥ ऐसें जब परीक्षितनें कही तब कलियुग कांपने लगो, तरवार मारवेको उठाये, जैसे दंड हाथमें लिये यमराजकी समान परीक्षितको देख बोलो ॥ ३५ ॥ हे सार्वभौम ! तुमारी आज्ञासे यदि जहां कहीं रहूंगो, तौभी तहां तहां धनुष बाण लिये आपही दीखोहो यासें न बसूंगो ॥३६॥ हे धर्मभृतांश्रेष्ठ ! मेरे रहिवेको स्थान देनेको योग्य हो, जहां मैं निश्चिंत होकर रहूं, तुह्मारी आज्ञा मानूं सो कहो ॥ ३७ ॥ सूतजी बोले कि ॥ ऐसे जब प्रार्थना करी तौ वा कलिके लिये राजा यह स्थान देते भए जूवा, मदिरा, विकनेको स्थान, वेश्याको घर, कसाई जहां जीव मारें, इन चार जगह तुम रहो, जहां चारप्रकारको अधर्म रहै है ॥ ३८ ॥ कलि बोले मेरो कुटुंब बहुत है, इतनी जगहमें न समावैगो,

सूत उवाच ॥ परीक्षितैवमादिष्टः स कलिर्जातवेपथुः ॥ तमुद्यतासिमाहेदं दण्डपाणिमिवोद्यतम् ॥ ३५ ॥ यत्र क्वचन वत्स्यामि सार्वभौम तवाज्ञया॥लक्षये तत्र तत्रापि त्वामात्तेषुशरासनम् ॥३६॥ तन्मे धर्मभृतां श्रेष्ठ स्थानं निर्देष्टुमर्हसि ॥ यत्रैव नियतो वत्स्य आतिष्ठंस्तेऽनुशासनम् ॥ ३७ ॥ सूत उवाच ॥ अभ्यर्थितस्तदा तस्मै स्थानानि कलये ददौ ॥ द्यूतं पानं स्त्रियस्सूना यत्राधर्मश्चतुर्विधः ॥ ३८ ॥ पुनश्च याचमानाय जातरूपमदात्प्रभुः ॥ ततोऽनृतं मदं कामं रजो वैरं च पञ्चमम् ॥ ३९ ॥ अमूनि पञ्च स्थानानि ह्यधर्मप्रभवः कलिः ॥ औत्तरेयेण दत्तानि न्यवसत्तन्निदेशकृत् ॥ ४० ॥ अथैतानि न सेवेत बुभूषुः पुरुषः क्वचित् ॥ विशेषतो धर्मशीलो राजा लोकपतिर्गुरुः ॥४१॥ वृषस्य नष्टांस्त्रीन्पादांस्तपः शौचं दयामिति ॥ प्रतिसंदध आश्वास्य महीं च समवर्धयत् ॥ ४२ ॥

तौ राजाने सुवर्णमें रहिवेको और स्थान दीनों, फिर परीक्षितनें झूंठ मद काम रजोगुण वैर ये पांच दिये ॥ ३९ ॥ परीक्षितके दिये इन पांच स्थानोंमें अधर्मी कलि राजा परीक्षितकी आज्ञासें वसतोभयो ॥ ४० ॥ जो पुरुष संसारमें अपनी वृद्धि चाहै तौ इन पांचोंको न सेवन करै, धर्मात्मा राजा लोकपति गुरु विशेष करके यह तौ इनको सेवन न करैं ॥ ४१ ॥ वृषके तीन पद तप, शौच, दया, ये नष्ट भएथे इनको आप बढावतेभए शांत करते भए पृथ्वीकों समाधान करते भए ॥ ४२ ॥

उदार विशुद्ध चरित्र हम सुनवेवारेनको भगवत्प्रधान आप विस्तार करकै कहो॥१५॥महाभागवत मोक्षमार्गमें तीव्र बुद्धिमान् राजा परीक्षित् व्यासपुत्र
शुकाचार्यके कहे भए ज्ञानसे गरुड़ध्वजी श्रीहरिके चरणके समीपको प्राप्त होते भए ॥१६॥ वह अतिश्रेष्ठ,पुण्यदायक,सुगम अर्थ युक्त अति अद्भुत,
योगगम्य,अनंत भगवानके चरित्रोंसे सुशोभित परीक्षित्को कथानक भागवतोंका आनंददायक बड़ो आख्यान हमसे कहो ॥१७॥ सूतजी बोले
कि॥बड़े आनंदकी बात है कि विलोममें हमारो जन्म है,तोभी वृद्धोंकी सेवासे हमारो सफल जन्म भयो, और महात्मानको सत्संग नीच कुल जन्मकी
मानसी पीडाको शीघ्र नाश करे है॥१८॥जब हरी भक्तोंके सत्संगको ऐसो माहात्म्य है तो जो महान गुणयुक्त होनेसे अनन्त कहाते ऐसे अपार शक्ति-

स वै महाभागवतः परीक्षिद्येनाऽपवर्गाख्यमदभ्रबुद्धिः ॥ ज्ञानेन वैयासकिशब्दितेन भेजे खगेन्द्रध्वजपादमूलम् ॥
॥ १६ ॥ तन्नः परं पुण्यमसंवृतार्थमाख्यानमत्यद्भुतयोगनिष्ठम् ॥ आख्याह्यनन्ताचरितोपपन्नं पारीक्षितं भागवताभिरामम्
॥ १७ ॥ सूत उवाच ॥ अहो वयं जन्मभृतोऽद्य हास्मद्वृद्धानुवृत्त्याऽपि विलोमजाताः ॥ दौष्कुल्यमाधिं विधुनोति
शीघ्रं महत्तमानामभिधानयोगः ॥ १८ ॥ कुतः पुनर्गृणतो नाम तस्य महत्तमैकान्तपरायणस्य ॥ योऽनन्तशक्तिर्भगवानन्ततो
महद्गुणत्वाद्यमनन्तमाहुः ॥ १९ ॥ एतावताऽलं ननु सूचितेन गुणैरसाम्यानतिशायनस्य ॥ हित्वेतरान्प्रार्थयतो
विभूतिर्यस्याङ्घ्रिरेणुं जुषतेऽनभीप्सोः ॥ २० ॥ अथापि यत्पादनखावसृष्टं जगद्विरिञ्चोपहृतार्हणाम्भः ॥ सेशं
पुनात्यऽन्यतमो मुकुन्दात्को नाम लोके भगवत्पदार्थः ॥ २१ ॥

मान् अविनाशी महात्माओंके प्रधान आश्रय परमात्माके नाम स्मरण करनैसै मनकी व्यथा दूर होय तो इसमें क्या कहना है ॥ १९ ॥ गुणोंमें जिनके
समान कोई नहीं , उनका महत्त्व सूचन करनैको इतनाहीं बहुत है की प्रार्थना कर्त्ता देवतोंको त्यागन कर इच्छा रहित उन भगवान्के चरणरजकी
लक्ष्मीजी सेवा करती है जिनके चरण नखका धोमन ब्रह्माजीका दिया अर्घ वह गंगाजीको ॥ २० ॥ जल सब जगत्को पवित्र करै है,ऐसो सर्व
सामर्थ्यवान् मुकुंदसे अधिक और भगवतपदार्थ लोकमें कौन है अर्थात् कोई नहीं है ॥ २१ ॥

94

जहां जिन भगवानमें प्रेम करनेहारे धीर पुरुष देहादिकोंमें सब संगकों त्यागकर परमहंसोंके आश्रय उस परम पदको प्राप्त होते हैं जामें अहिंसा और उपशांति यह स्वाभाविक धर्म हैं ॥ २२ ॥ हे सूर्य समान ! हे त्रयीमूर्तें ! आपनें हमसे जो पूछो है सो जितनों मोकों ज्ञान है उतनो हम कहैंगे, जैसें पक्षीलोग आकाशमें अपनीं शक्तिके अनुसार उडैं है तैसेई विष्णुको अपनीं बुद्धिके अनुसार विद्वान् लोग कहैं हैं ॥ २३ ॥ एकादिन धनुष लेकर वनमें शिकार खेलनेंको राजा परीक्षित मृगोंके पाछे चले गए, भूखे प्यासे अत्यन्त व्याकुल भए ॥ २४ ॥ जलाशय ढूंढते २ एक आश्रममें प्रवेश करतेभए,वहां शांत नेत्र मूंदे बैठे एक मुनि देखे ॥ २५ ॥ प्राण मन बुद्धि इंद्रियें सब जीतलीनीं, सबसे उपराम होय,तीनों अवस्थासे तुरीया अवस्थाको प्राप्त

यत्रानुरक्ताः सहसैव धीरा व्यपोह्य देहादिषु सङ्गमूढम् ॥ व्रजन्ति यत्पारमहंस्यमन्त्यं यस्मिन्नहिंसोपशमः स्वधर्मः ॥ ॥२२॥अहं हि पृष्टोऽर्यमणो भवद्भिराचक्ष आत्मावगमोऽत्र यावान्॥नभः पतन्त्यात्मसमं पतत्त्रिणस्तथा समं विष्णुगतिं विपश्चितः ॥ २३ ॥ एकदा धनुरुद्यम्य विचरन्मृगयां वने ॥ मृगाननुगतः श्रान्तः क्षुधितस्तृषितो भृशम् ॥ २४ ॥ जलाशयमचक्षाणः प्रविवेश तमाश्रमम् ॥ ददर्श मुनिमासीनं शान्तं मीलितलोचनम् ॥२५॥ प्रतिरुद्धेन्द्रियप्राणमनोबुद्धिमुपारतम् ॥ स्थानत्रयात्परं प्राप्तं ब्रह्मभूतमविक्रियम् ॥ २६ ॥ विप्रकीर्णजटाच्छन्नं रौरवेणाजिनेन च ॥ विशुष्यत्तालुरुदकं तथाभूतमयाचत ॥२७॥ अलब्धतृणभूम्यादिरसंप्राप्ताऽर्घसूनृतः ॥ अवज्ञातमिवात्मानं मन्यमानश्चुकोप ह ॥ २८ ॥ अभूतपूर्वः सहसा क्षुत्तृड्भ्यामर्दितात्मनः ॥ ब्राह्मणं प्रत्यभूद्ब्रह्मन्मत्सरो मन्युरेव च ॥ २९ ॥ स तु ब्रह्मऋषेरंसे गतासुमुरगं रुषा ॥ विनिर्गच्छन्धनुष्कोट्या निधाय पुरमागमत् ॥ ३० ॥

क्रिया रहित ब्रह्मभूत ब्रह्मरूप हो रहे थे ॥ २६ ॥ जटा सब बिखर रहीं; रुरुनामक मृगके चर्मपै बैठे, जिने देहको कुछ अनुसंधान नहीं, उन शमीक मुनिसे प्याससे शुष्ककंठ राजा जल मांगतो भयो ॥ २७ ॥ तृण भूमि आदि न मिलो, अर्घ्य न दीनों, मीठो कुछ न बोले तब राजाने अपनें आपही मानलीनों कि इन्होनें मेरी अवज्ञा करी, ऐसे मानकर क्रोध करतो भयो ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन् ! ऐसा कभी न हुआ; राजा भूख प्याससे व्याकुल ब्राह्मणपर बडो क्रोध मत्सरता करतो भयो ॥ २९ ॥ राजा परीक्षित् वा ब्रह्मऋषिके कंठमें मरो सर्प क्रोध करकै धनुषके

अग्रभागसे डारकर अपनें पुरकों आतेभए ॥ ३० ॥ मनमें राजानें कही यह मुनि सब इंद्रियें रोके, नेत्र मूंदे, झुठी समाधि लगाये है, कि क्षत्रिय
लोग हमारो कहा करेंगे अथवा सत्य समाधि है यह परीक्षा करनेको राजानै मरा साप उनके गलैमें डाला ॥ ३१ ॥ तिनके पुत्र अतितेजस्वी
बालक बालकोंके साथ विहरते शृंगीऋषि राजानें पिताके गलेमें सर्प डारो ये सुन तहा बोलो ॥ ३२ ॥ अधर्म है कि पालक पुष्ट दास द्वार-
पालक राजानको अपनें स्वामीमें अपराध करनों नहीं चाहिये, जैसे कौआ कुत्ता करे हैं ॥ ३३ ॥ क्षत्रियनको ब्राह्मणोंनें द्वारपालक करे हैं
सो द्वारवासी उनके घरमें जाकै उसी पात्रमें कैसे भोजन करनें योग्य हैं ॥ ३४ ॥ पाखण्डियोंके शिक्षक भगवान् श्रीकृष्णजी चले गए, तौ क्या हैं

एष किं निभृताशेषकरणो मीलितेक्षणः ॥ मृषासमाधिराहोस्वित्किं न स्यात्क्षत्रबन्धुभिः ॥३१॥ तस्य पुत्रोऽतितेजस्वी
विहरन्बालकोऽर्भकैः ॥ राज्ञाऽघं प्रापितं तातं श्रुत्वा तत्रेदमब्रवीत् ॥ ३२ ॥ अहो अधर्मः पालानां पीव्नां बलिभु-
जामिव ॥ स्वामिन्यऽघं यद्दासानां द्वारपानां शुनामिव ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणैः क्षत्रबन्धुर्हि द्वारपालो निरूपितः ॥ स क-
थं तद्गृहे द्वाःस्थः सभाण्डं भोक्तुमर्हति ॥ ३४ ॥ कृष्णे गते भगवति शास्तर्युत्पथगामिनाम् ॥ तद्भिन्नसेतूनद्याहं
शास्मि पश्यत मे बलम् ॥ ३५ ॥ इत्युक्त्वा रोषताम्राक्षो वयस्यानृषिबालकान् ॥ कौशिक्याऽप उपस्पृश्य वाग्वज्रं
विससर्ज ह ॥३६ ॥ इति लङ्घितमर्यादं तक्षकः सप्तमेऽहनि ॥ दङ्क्ष्यति स्म कुलाङ्गारं चोदितो मे ततद्रुहम्॥३७॥ ततोऽ-
भ्येत्याऽऽश्रमं बालो गलेसर्पकलेवरम् ॥ पितरं वीक्ष्य दुःखार्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह ॥ ३८ ॥ स वा आङ्गिरसो ब्रह्म-
ञ्छुत्वा सुतविलापनम् ॥ उन्मील्य शनकैर्नेत्रे दृष्ट्वा स्वांसे मृतोरगम् ॥३९॥

इन धर्मके सेतुनके तोडनेवारेनकों हम शिक्षा करै हैं, तुम सब मेरो बल देखो ॥ ३५ ॥ ऐसे कहिकर क्रोधसे लालनेत्रकर अपनें बराबर ऋषि बाल-
कोंमें कौशिकीको जल ले वाग्वज्र छोडते भए ॥ ३६ ॥ आजसे सातवें दिन मर्यादानाशक कुलमें अंगाररूप मेरे द्रोहीको मेरो भेजो तक्षक सर्प
काटै ॥३७॥ पाछे आश्रमपर आय बालक सर्पको शरीर पिताके गलेमें देख दुःखी होय अधिक चिल्लायके रोवतो भयो ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन् ! सो वे
अंगिरागोत्री पुत्रको विलाप सुन धीरेसे नेत्र खोल अपनें कंधेमें मरो सर्प देखते भए ॥ ३९ ॥

वाको निकासकर पुत्रसे बोले हे पुत्र ! क्यों रोवै है कौननें तेरो अनादर करो ये सुन वानें सब कह्यो ॥ ४० ॥ शापके योग्य नहीं ऐसे राजा परीक्षित्कों शाप दीनों जान वो ब्राह्मण पुत्रको बहुत बुरो कहिते भए, अहो बडे खेदकी बात है कि बडो अपराध कीनों, थोडे अपराध करनेपर ऐसो बडो द्रोहमान बडो दंड दीनों ॥ ४१ ॥ हे कच्ची बुद्धिवारे ! राजा परीक्षित् मनुष्योंके समान नहीं है, वाको पराजय करनों योग्य नहीं है, जिनके महाभारी तेजसें रक्षित प्रजा सदा भयहीन होकर सब सुखकों भोगती है ॥ ४२ ॥ श्रीभगवत्को स्वरूप राजा प्रजाकी रक्षा न करै तो ये लोग चोरोंके बढनेंसे मेंढोंके समूहकी नाई सब नष्ट होजाय है ॥ ४३ ॥ जब राजा नष्ट होजायगो तो उनको धन लूट जायगो, या पापसे हमारो वंश सब

विसृज्य पुत्रं पप्रच्छ वत्स कस्माद्धि रोदिषि ॥ केन वा ते प्रतिकृतमित्युक्तः स न्यवेदयत् ॥ ४० ॥ निशम्य शप्तमतदर्हं नरेन्द्रं स ब्राह्मणो नाऽऽत्मजमभ्यनन्दत् ॥ अहो बतांहो महदज्ञ ते कृतं स्वल्पीयसि द्रोह उरुर्दमो धृतः ॥ ४१ ॥ न वै नृभिर्नरदेवं पराख्यं संमातुमर्हस्यविपक्वबुद्धे ॥ यत्तेजसा दुर्विषहेण गुप्ता विन्दन्ति भद्राण्यऽकुतोभयाः प्रजाः ॥ ४२ ॥ अलक्ष्यमाणे नरदेवनाम्नि रथाङ्गपाणावयमङ्ग लोकः ॥ तदा हि चौरप्रचुरो विनङ्क्ष्यत्यरक्षमाणोऽविवरूथवत्क्षणात् ॥ ४३ ॥ तदद्य नः पापमुपैत्यऽनन्वयं यन्नष्टनाथस्य वसोर्विलुम्पकात् ॥ परस्परं घ्नन्ति शपन्ति वृञ्जते पशून्स्त्रियोऽर्थान्पुरुदस्यवो जनाः ॥ ४४ ॥ तदार्यधर्मश्च विलीयते नृणां वर्णाश्रमाचारयुतस्त्रयीमयः ॥ ततोऽर्थकामाभिनिवेशितात्मनां शुनां कपीनामिव वर्णसंकरः ॥ ४५ ॥ धर्मपालो नरपतिः स तु सम्राड् बृहच्छ्रवाः ॥ साक्षान्महाभागवतो राजर्षिर्हयमेधयाट् ॥ ॥ ४६ ॥ क्षुत्तृट्श्रमयुतो दीनो नैवाऽस्मच्छापमर्हति ॥ शमीकऋषिणा प्रोक्तं शृङ्गिणं स्वसुतं द्रुतम् ॥ ४७ ॥

पाप भोगैगो, आपसमें मारेंगे शाप देंगे, बहुत चोर लुटेहरे बढकर पशु स्त्रियें अनेक पदार्थ हरेजायँगे ॥ ४४ ॥ तब सदाचार, धर्म, वेदोक्त वर्णाश्रम, आचार, सब मनुष्योंके लीन हों जायँगे, अर्थ काम चाहनेवारे वानर कुत्ताकी नाईं सब वर्णसंकर होजायंगे ॥ ४५ ॥ धर्मरक्षक नरपति साक्षात् महायशस्वी राजर्षि अश्वमेधकारी राजा परीक्षित हैं ॥ ४६ ॥ क्षुधा तृषा परिश्रम सहित अपने यहां आये उनका सत्कार उचित था परन्तु एक तौ वो उलटे हमसे शापित होयवेके योग्य नहीं थे इस प्रकार शमीक मुनिने शीघ्र शृंगीऋषिसें कह्यो ॥ ४७ ॥

और देवऋषि, ब्रह्मऋषियोंमें श्रेष्ठ राजर्षिवर्य अरुणआदिक, नानाऋषिवर्य आए, इन सबको पूजनकर शिरसे परीक्षित् वंदना करते भए ॥ ११॥ जब, सुखपूर्वक सब बैठगए, सबको प्रणाम कर एकांतचित्त कुशासनपर बैठे हाथ जोडकर राजा जो अपनी करवेकी इच्छा थी सो कहिते भए ॥१२॥राजा बोले कि ॥ बडे आश्चर्यकी वार्ता है कि अत्यंत शीलयुक्त महात्मानने बडो अनुग्रह कीनों हम राजानमें धन्य हैं. क्यों कि निन्दितकर्म करनेहारो यह राजोंका कुल ब्राह्मणोंके चरणोंके जलसे दूरहो रहनेके योग्य है ॥१३ ॥ गृहमें वारंवार आसक्तचित्त मुझसे पापीकों ज्ञानदायक ईश्वरही द्विजशापरूप भये जिससें शीघ्र मुझे भय होता है ॥१४॥ हे ब्राह्मणों ! मैं परमात्मामें चित्त धारण करकै तुम्हारी और गंगा देवीके शरण आयाहूं सो

अन्ये च देवर्षिब्रह्मर्षिवर्या राजर्षिवर्या अरुणादयश्च ॥ नानार्षेयप्रवरान्समेतानभ्यर्च्य राजा शिरसा ववन्दे ॥ ११ ॥ सुखोपविष्टेष्वथ तेषु भूयः कृतप्रणामः स्वचिकीर्षितं यत् ॥ विज्ञापयामास विविक्तचेता उपस्थितोऽग्रेऽभिगृहीतपाणिः ॥ १२ ॥ परीक्षिदुवाच ॥ अहो वयं धन्यतमा नृपाणां महत्तमानुग्रहणीयशीलाः ॥ राज्ञां कुलं ब्राह्मणपादशौचाद्दूराद्विसृष्टं बत गर्ह्यकर्म ॥ १३॥ तस्यैव मेऽघस्य परावरेशो व्यासक्तचित्तस्य गृहेष्वभीक्ष्णम्॥निर्वेदमूलो द्विजशापरूपो यत्र प्रसक्तो भयमाशु धत्ते ॥ १४॥ तं मोपयातं प्रतियन्तु विप्रा गङ्गा च देवी धृतचित्तमीशे॥ द्विजोपसृष्टः कुहकस्तक्षको वा दशत्वलं गायत विष्णुगाथाः ॥ १५॥ पुनश्च भूयाद्भगवत्यनन्ते रतिः प्रसङ्गश्च सदाश्रयेषु ॥ महत्सु यां यामुपयामि सृष्टिं मैत्र्यस्तु सर्वत्र नमो द्विजेभ्यः॥ १६ ॥ इति स्म राजाध्यवसाययुक्तः प्राचीनमूलेषु कुशेषु धीरः॥ उदङ्मुखो दक्षिणकूल आस्ते समुद्रपत्न्याः स्वसुतन्यस्तभारः ॥ १७॥

जानिये ब्राह्मणको भेजो कपटी तक्षक मुझे भलेही काटै परन्तु आप विष्णु भगवान्की कथा गान कीजिये ॥१५ ॥ फिर भगवान् अनंतमें प्रीति अधिक होय,और तिनके आश्रयी महात्मा ब्राह्मणोंके सत्संग सदां प्राप्त रहै जहां जहां में जन्म लेऊं तहां तहां महात्मा पुरुषोंकी मित्रता बनी रहै आप सबको नमस्कार होय, ब्राह्मणोंकी मैं शरण हूं ॥ १६ ॥ महाधीर राजा परीक्षित् ऐसे निश्चयकर पूर्वको मूलवारे कुशानके आसनपर उत्तरको मुख कर समुद्रपत्नी गंगाजीके दक्षिणकी ओर बैठतेभए, और जनमेजयको आप सब राज्यको भार सौंपगए ॥ १७ ॥

ऐसे वह नरदेवदेव अन्न जल त्यागके बैठे, तब देवनके समूह स्वर्गमें प्रशंसा कर भूमिमें पुष्पोंका वर्षा करते भए, और वारंवार नगारे बजावते भए ॥१८॥ जो महाऋषि आए थे वे प्रशंसाकर बहुत अच्छी वार्ता है ऐसी बडाई करते भए, प्रजाके अनुग्रहके अर्थशील और सारवारे वे मुनि उत्तम श्लोकके सुंदर गुण कहिते भए ॥१९॥ हे राजर्षिवर्य ! श्रीकृष्णके अनुवर्ती आपमें ये कुछ विचित्र वात नहीं है क्यों कि भगवत्के समीपकी चाहनावारे, आप राजकिरीटों करकै सेवित राज्य त्यागते भए ॥ २० ॥ जबतक ये शरीरको नहीं त्याग करैगो तबतक हम सब यहांई बैठे रहेंगे ये भागवतोंमें

एवं च तस्मिन्नरदेवदेवे प्रायोपावेष्टे दिवि देवसंघाः ॥ प्रशस्य भूमौ व्यकिरन्प्रसूनैर्मुदा मुहुर्दुन्दुभयश्च नेदुः ॥ १८ ॥
महर्षयो वै समुपागता ये प्रशस्य साध्वित्यऽनुमोदमानाः ॥ ऊचुः प्रजानुग्रहशीलसारा यदुत्तमश्लोकगुणाभिरूपम् ॥
॥ १९ ॥ न वा इदं राजर्षिवर्य चित्रं भवत्सु कृष्णं समनुव्रतेषु ॥ येऽध्यासनं राजकिरीटजुष्टं सद्यो जहुर्भगवत्पार्श्वकामाः ॥ २० ॥
सर्वे वयं तावदिहास्महेद्य कलेवरं यावदसौ विहाय ॥ लोकं परं विरजस्कं विशोकं यास्यत्ययं भागवतप्रधानः ॥ २१ ॥
आश्रुत्य तदृषिगणवचः परीक्षित्समं मधुच्युद्गुरु चाव्यलीकम् ॥ अभाषतैतानभिवन्द्य युक्तं शुश्रूषमाणश्चरितानि विष्णोः ॥ २२ ॥
समागताः सर्वत एव सर्वे वेदा यथा मूर्तिधरास्त्रिपृष्ठे ॥ नेहाथ वाऽमुत्र च कश्चनाऽर्थ
ऋते परानुग्रहमात्मशीलम् ॥ २३ ॥ ततश्च वः पृच्छ्यमिमं विपृच्छे विश्रभ्य विप्रा इतिकृत्यतायाम् ॥ सर्वात्मना म्रियमाणैश्च कृत्यं शुद्धं च तत्रामृशताभियुक्ताः ॥ २४ ॥

प्रधान निर्मल शोक रहित वैकुंठ लोकको जायगो॥२१॥ सब ऋषिगणोंके पक्षपातशून्य अमृत भरे गंभीर अर्थ सत्य वचन राजा परीक्षित् सुनकर विष्णुके चरित्र सुनवेकी इच्छासे प्रणामकर इन आएभएनसे ये बोले ॥२२ ॥ त्रिलोकसें ऊपर सत्यलोकमें जैसे् वेदमूर्ति धारकर बैठे हैं, तैसेई आप सब आयकर विराजेहो, पराएके अनुग्रहके अर्थ आपको स्वभाव है, या लोकमें जो कर्तव्य होय अथवा परलोकके लिये जो कुछ होय सो कहो ॥ २३ ॥ हे विप्र हो ! आपपर विश्वास कर जो पूछनें योग्य है सो पूछें हैं कि या समय कहा कर्तव्य है; सब प्रकारसे मृत्यु जाकी आई वाको जो शुद्धकृत्य होय सो विचार एक मत कर कहो ॥ २४ ॥

पाप रहित अपने सेवकको निर्बुद्धि बालकने पाप कीनो है, सो सर्वात्मा भगवान् वाको क्षमा करे ॥ ४८ ॥ तिरस्कृत वंचित शापित अवमानित मारे भए भगवान्के भक्त अपनेसे अपराध करनेवालेको शाप देवे नहीं ॥ ४९ ॥ पुत्रके करे अपराधसे महामुनि या प्रकार दुःखित भये परन्तु राजाने जो अपराध कीनों वाको कछु चिंतवन नहीं करते भये ॥ ५० ॥ बाहुल्यकरकै लोकमें परकार्यके साधक ब्राह्मणोंको दुःख सुख कुछ नहीं व्यापै है, न उन्हें कोई व्यथा होय, न वे प्रसन्न होवें, क्यौ कि गुणोंसे सर्वव्यापक ईश्वरके समान आप होजाय हैं ॥ ५१ ॥ इ०भा०भा०प्र०विप्रशापवर्णनं नाम अ-

अपापेषु स्वभृत्येषु बालेनाऽपक्वबुद्धिना ॥पापं कृतं तद्भगवन्सर्वात्मा क्षन्तुमर्हति ॥ ४८ ॥ तिरस्कृता विप्रलब्धाः शप्ताः क्षिप्ता हता अपि ॥ नास्य तत्प्रतिकुर्वन्ति तद्भक्ताः प्रभवोऽपि हि ॥ ४९ ॥ इति पुत्रकृताघेन सोऽनुतप्तो महामुनिः ॥ स्वयं विप्रकृतो राज्ञा नैवाऽघं तदचिन्तयत् ॥५० ॥ प्रायशः साधवो लोके परैर्द्वन्द्वेषु योजिताः ॥ न व्यथन्ति न हृष्यन्ति यत आत्माऽगुणाश्रयः ॥ ५१ ॥ इति श्रीभा० महापु० प्रथमस्कन्धे विप्रशापोपलम्भनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ सूत उवाच ॥ महीपतिस्त्वथ तत्कर्म गर्ह्यं विचिन्तयन्नात्मकृतं सुदुर्मनाः ॥ अहो मया नीचमनार्यवत्कृतं निरागसि ब्रह्मणि गूढतेजसि ॥ १ ॥ ध्रुवं ततो मे कृतदेवहेलनाद्दुरत्ययं व्यसनं नातिदीर्घात् ॥ तदस्तु कामं त्वघनिष्कृताय मे यथा न कुर्यां पुनरेवमद्धा ॥ २ ॥ अद्यैव राज्यं बलमृद्धकोशं प्रकोपितब्रह्मकुलानलो मे ॥ दहत्वभद्रस्य पुनर्न मेऽभूत्पापीयसी धीर्द्विजदेवगोभ्यः ॥ ३ ॥

ष्टादशोऽध्यायः ॥ १८॥ सूतजी बोले कि ॥ याके उपरांत राजा अपनें किये निंदितकर्मको चिंतवन कर बहुत दुःखित मन करतेभए बोले अहो निरअपराध गूढ तेजवारे ब्राह्मणपर अनारीपनेंको महानीच कर्म मैंने कीनों ॥ १ ॥ निश्चय ईश्वरकी अवज्ञा कीनीं याते थोरेही कालमें मोकों अत्यंत दुःख शीघ्र या पापके प्रायश्चित्तके लिये अवश्य होय, ये इच्छा है क्यौं कि अपनें आप ऐसे फेर न करूंगो ॥ २॥ मेरा राज्य सेना ऋद्धि खजानों अत्यंत कुपित ब्राह्मणकुलसे उठी अग्नि अबही सब भस्म करै मोसरीके अमंगलीककी ऐसी पापी बुद्धि ब्राह्मणदेवतागौमें कभी फेर न हो ॥ ३ ॥

स चिन्तयन्नित्थमथाशृणोद्यथा मुनेः सुतोक्तो निर्ऋतिस्तक्षकाख्यः ॥ स साधु मेने न चिरेण तक्षकानलं प्रसन्नस्य विरक्तिकारणम्॥४॥ अथो विहायेममसुं च लोकं विमर्शितो हेयतया पुरस्तात् ॥कृष्णाङ्घ्रिसेवामधिमन्यमान उपाविशत्प्रायममर्त्यनद्याम् ॥ ५ ॥ या वै लसच्छ्रीतुलसीविमिश्रकृष्णाङ्घ्रिरेण्वभ्यधिकाम्बुनेत्री ॥ पुनाति लोकानुभयत्र सेशान्कस्तां न सेवेत मरिष्यमाणः ॥ ६ ॥ इति व्यवच्छिद्य स पाण्डवेयः प्रायोपवेशं प्रति विष्णुपद्याम् ॥ दध्यौ मुकुन्दाङ्घ्रिमनन्यभावो मुनिव्रतो मुक्तसमस्तसङ्गः ॥ ७ ॥ तत्रोपजग्मुर्भुवनं पुनाना महानुभावा मुनयः सशिष्याः ॥ प्रायेण तीर्थाभिगमापदेशैः स्वयं हि तीर्थानि पुनन्ति सन्तः ॥८॥ अत्रिर्वसिष्ठश्च्यवनः शरद्वानरिष्टनेमिर्भृगुरङ्गिराश्च ॥ पराशरो गाधिसूतोऽथ राम उतथ्य इन्द्रप्रमदेध्मवाहौ ॥९॥ मेधातिथिर्देवल आर्ष्टिषेणो भारद्वाजो गौतमः पिप्पलादः ॥ मैत्रेय और्वः कवषः कुम्भयोनिर्द्वैपायनो भगवान्नारदश्च ॥ १० ॥

ऐसे चिंतवन करते थे वाही विरियां शमीकके भेजेभए एक शिष्यसे ये सुनी कि मुनिके पुत्र शृंगीऋषिने ये शाप दीनोहै कि आजसे सातवैं दिन तक्षक राजाको काटैगो वासे वाकी मृत्यु होयगी ये सुन वो तक्षककी अग्निको बहुत अच्छी मानतोभयो, क्यौं कि विषयासक्तको यही विरक्तिको कारण होय है॥४॥ये देह ये राज्य दोनों पहिलेहीसे त्यागने योग्य विचारे हे सो सब त्यागनकर श्रीकृष्णके चरणकी सेवा करनेको अधिक मान अनशन व्रत धारन करनेको श्रीगंगातीर जाते भए ॥५ ॥ शोभित तुलसीमिश्रित श्रीकृष्णजीके चरणको रेणुसे अत्यंत अधिक पवित्र जल वहिवेवारी गंगाजी दोनों लोकनको ईश सहित सबको पवित्र करै है ऐसी गंगाजीको आसन्नमृत्यु कौन मनुष्य न सेवन करै ॥६॥ सो पांडुनंदन ऐसे निश्चयकर अनशन व्रत ले गंगातीर जायकर सब भाव हरिमें कर मौन व्रत ले सबसंग त्याग मुकुंदके चरणको ध्यान करतो भयो ॥७॥ तहां भुवन पवित्र करनेवारे महाअनुभाव ज्ञानी शिष्य सहित बहुतसे तीर्थ यात्राके आप सब तीर्थोंको पवित्र करनेवारे ब्राह्मण मननशीली मुनि आतेभए ॥८॥ अत्रि वसिष्ठ च्यवन शरद्वान् अरिष्टनेमि भृगु अंगिरा पराशर विश्वामित्र परशुराम उतथ्य इंद्रप्रमद इध्मवाह ॥९॥ मेधातिथि, देवल, आर्ष्टिषेण, भारद्वाज, गौतम, पिप्पलाद, मैत्रेय, और्व, कवष, अगस्त्य, द्वैपायन, भगवत् अवतार श्रीनारद है ॥१०॥

ये सुन कोई बोले यज्ञ करो, कोई बोले योग करो, कोई बोले तप करो कोई बोले दान करो, ये विवाद होरह्याथा ॥ तहां भगवान् व्यासनंदन अपनी इच्छासे पृथिवीपर विचरतेभए, अपेक्षारहित आश्रमादिकै चिन्होंसें हीन निजलाभसै संतुष्ट स्त्रीबालकौंसे अनुगम्यमान अवधूतवेषधारे शुकाचार्य आतेभए ॥ २५ ॥ षोडशवर्षकी अवस्था, सुकुमार चरण, हाथ, हृदय, बाहु, कंधा, गाल, शरीर सुंदर, विशाल नेत्र, उठेभए दोनों बराबर कर्ण, सुंदर भौं मुख शंखसमान कंठ सुंदर ॥ २६ ॥ मांससे छिपी हुई कण्ठके नीचेकी दोनों हड्डी, और चौडा ऊंचा वक्षःस्थल, कुण्डके समान गोल और गम्भीर नाभिस्थल, तिरछी झुकीहुई रेखाओंसे मनोहर उदर दिगम्बर वेष अर्थात् नग्न, और फैलेहुवे केश, बहुत लम्बे भुजदण्ड, और सुरोत्तमकी समान शोभावारे ॥ २७ ॥ श्यामशरीर सदा सुंदर अंगकी लक्ष्मी और सुंदर मुसकानकरकै स्त्रीनके मन हरवेवारे ऐसे गुप्त तेजस्वी शुकदेवजीके लक्षण जान्नेहारे मुनि उन्है देख आसनोंसे उठ खडेभए ॥२८॥ सो राजा परीक्षित आएभए अतिथि शुकदेवजीको शिरसे पूजा करतो भयो, अज्ञानी स्त्री बालक सब चलेगए, वे पूजित हो महासिंहासनपर बैठगए ॥ २९ ॥ तहां महापूज्योंमें ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवर्षि समूहोंकरकै घिरे शुक भगवान् अत्यंतशोभित हुए, जैसे ग्रह नक्षत्र तारानके समूहोंकरकै चंद्रमा शोभित होय ॥३०॥ अतिशांत बैठे हुए सब अर्थमें तीक्ष्ण बुद्धिवारे शुकमुनिको

तत्राभवद्भगवान्व्यासपुत्रो यदृच्छया गामटमानोऽनपेक्षः ॥ अलक्ष्यलिङ्गो निजलाभतुष्टो वृतः स्त्रिबालैरवधूतवेषः ॥ ॥ २५ ॥ तं द्व्यष्टवर्षं सुकुमारपादकरोरुबाह्वंसकपोलगात्रम् ॥ चार्वायताक्षोन्नसतुल्यकर्णसुभ्र्वाननं कम्बुसुजातकण्ठम् ॥ २६ निगूढजत्रुं पृथुतुङ्गवक्षसमावर्तनाभिं वलिवल्गूदरं च ॥ दिगम्बरं वक्रविकीर्णकेशं प्रलम्बबाहुं स्वमरोत्तमाभम् ॥ २७ ॥ श्यामं सदाऽपीच्यवयोऽङ्गलक्ष्म्या स्त्रीणां मनोज्ञं रुचिरास्मितेन ॥ प्रत्युत्थितास्ते मुनयः स्वासनेभ्यस्तल्लक्षणज्ञा अपि गूढवर्चसम् ॥ २८ ॥ स विष्णुरातोऽतिथय आगताय तस्मै सपर्यां शिरसाऽऽजहार ॥ ततो निवृत्ता ह्यऽबुधाः स्त्रियोऽर्भका महासने सोपविवेश पूजितः ॥ २९ ॥ स संवृतस्तत्र महान्महीयसां ब्रह्मर्षिराजर्षिदेवर्षिसंघैः ॥ व्यरोचताऽलं भगवान्यथेन्दुर्ग्रहर्क्षतारानिकरैः परीतः ॥ ३० ॥ प्रशान्तमासीनमकुण्ठमेधसं मुनिं नृपो भागवतोऽभ्युपेत्य ॥ प्रणम्य मूर्ध्नाऽवहितः कृताञ्जलिर्नत्वा गिरा सूनृतयाऽन्वपृच्छत् ॥ ३१ ॥

भागवत नृप प्राप्त होकर मस्तकसें प्रणाम कर सावधानीसें हाथ जोड नमस्कार कर कोमल वाणीसे पूछतेभए ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मन् ! आज ब्राह्मणोंकी सेवा करकै क्षत्रिय लोग सफलजन्मा भए, जो अतिथिरूप आपने कृपा करकै पवित्र कीने ॥ ३२ ॥ जिन ब्राह्मणोंके स्मरणसे पुरुषनके शीघ्र गृहादिक शुद्ध होजावें हैं, दर्शन स्पर्शन कर पाद धोए आसन दान मिष्टान्नसे भोजन करानेसे तौ अत्यन्तही शुद्ध होय हैं ॥ ३३ ॥ हे महायोगिन् ! आपकी समीपतासे पुरुषोंके महापातक नष्ट होजांय हैं, जैसे विष्णुकी समीपतासे असुर नष्ट होगए ॥ ३४॥ अपनी फूफीके पुत्र पाण्डव पुत्रौंके प्यारे उनके प्रिय करनेके निमित्त भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने अपने कुटुम्बका समझकर मुझपै कृपा करी है ॥३५॥ नहीं तौ गुप्त गतिवाले सब

अहो अद्य वयं ब्रह्मन्सत्सेव्याः क्षत्रबन्धवः ॥ कृपयाऽतिथिरूपेण भवद्भिस्तीर्थकाः कृताः ॥ ३२ ॥ येषां संस्मरणात्पुंसां सद्यः शुध्यन्ति वै गृहाः ॥ किं पुनर्दर्शनस्पर्शपादशौचासनादिभिः ॥३३॥ सान्निध्यात्ते महायोगिन्पातकानि महान्त्यपि ॥ सद्यो नश्यन्ति वै पुंसां विष्णोरिव सुरेतराः ॥ ३४ ॥ अपि मे भगवान्प्रीतः कृष्णः पाण्डुसुतप्रियः ॥ पैतृष्वस्रेयप्रीत्यर्थं तद्गोत्रस्यात्तबान्धवः ॥ ३५ ॥ अन्यथा तेऽव्यक्तगतेर्दर्शनं नः कथं नृणाम् ॥ नितरां म्रियमाणानां संसिद्धस्य वनीयसः ॥३६॥ अतः पृच्छामि संसिद्धिं योगिनां परमं गुरुम् ॥ पुरुषस्येह यत्कार्यं म्रियमाणस्य सर्वथा ॥ ॥ ३७ ॥ यच्छ्रोतव्यमथो जाप्यं यत्कर्तव्यं नृभिः प्रभो ॥ स्मर्तव्यं भजनीयं वा ब्रूहि यद्वा विपर्ययम् ॥ ३८ ॥ नूनं भगवतो ब्रह्मन्गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ न लक्ष्यते ह्यवस्थानमपि गोदोहनं क्वचित् ॥ ३९ ॥

प्रकारसै सिद्ध उदारतासै मन इच्छित देनेवारे आपसे पुरुषौंका मनुष्यौंको दर्शन दुर्लभ है और निकट मृत्युवारौंको तौ महाही दुर्लभ है ॥ ३६ ॥ याते योगियोंके परमगुरु आपसे पूछूंहूं कि या संसारमें मरणधर्म्मी पुरुषको सर्वथा मोक्ष साधनमें जो कर्तव्य होय सो कहो ॥ ३७ ॥ हे प्रभो! मनुष्यको जो श्रवण योग्य होय जो जपके योग्य जो करवे योग्य होय, स्मरणके योग्य भजन योग्य जो होय, वा कुछ उलट पलट होय सो कहो ॥ ॥ ३८ ॥ हे ब्रह्मन् ! गृहस्थीनके घरमें आपका स्थित होना गोदोहन पर्यन्त तो होताही नहीं ॥ ३९ ॥

सूतजी बोले कि॥ राजानें कोमल वाक्योंसे जब इस प्रकारको प्रश्न किया तौ तो धर्मज्ञ भगवान् शुक्राचार्य इस प्रकारसै कहने लगे॥४०॥ इति श्रीभागवते

सूत उवाच ॥ एवमाभाषितः पृष्टः स राज्ञा श्लक्ष्णया गिरा ॥ प्रत्यभाषत धर्मज्ञो भगवान्बादरायणिः ॥४०॥ इति श्री भागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां पारमहंस्यां संहितायां प्रथमस्कन्धे शुकागमनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

॥ समाप्तोऽयं प्रथमस्कन्धः ॥ १ ॥

श्रीमन्नारायणशास्त्रिविरचितपदार्थमुक्तावलीव्रजभाषाटीकायुते शुकागमनवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ समाप्तः प्रथमस्कन्धः ॥ १ ॥

दोहा—कृष्णचरितपूरित विमल,ज्ञान भक्तिको सार। भवबंधन सुनतहि कटै,चारन फल दातार॥१॥प्रतिश्लोक प्रतिचरणसैं,भाषा अर्थ मिलाय।द्विज ज्वालाप्रसादने,शोध्यो अति चित लाय॥२॥
जगमें प्रभुकी भक्तिविन, और नहीं कछुसार । तासो भक्ति कीजिये, अभिमत फलदातार ॥३॥ अनुपम चरित मुकुंदके,काटत भवजंजाल । तासौं करिये भजन नित,विपिनविहारीलाल ॥४ ॥

इदं पुस्तकं श्रीकृष्णदासात्मजगङ्गाविष्णुना कल्याण–मुंबई-स्थे स्वकीये
लक्ष्मीवेंकटेश्वरमुद्रणयंत्रालयेंऽकितम् । संवत् १९५२, शके १८१७

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते प्रथमस्कन्धः सम्पूर्णः ॥

॥ इति भाषाटीकायुते श्रीमद्भागवते प्रथमस्कन्धः समाप्तः ॥

पार्ट-2

(1)

॥ अथ भाषाटीकायुत श्रीमद्भागवते द्वितीयस्कन्धप्रारम्भः ॥

यह ग्रन्थ सन १८६७ के ऐक्ट २५ के अनुसार रजिष्टरी करके सब हक यन्त्राधिकारीने अपने स्वाधीन रक्खा है.

जो कोई भगवान् सर्व व्यापकको अथवा ब्राह्मणोंको कथामृत काननसे खूब भरभरके पीवै हैं वे विषयोंसे अतिदूषित अंतःकरणकों पवित्र करैहैं श्रीहरिके चरणकमलके समीप जांय है ॥३७॥ इति श्रीम॰भा॰भाषाटीकायां सूक्ष्मरूपध्यानवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः॥२॥ जो बात आपने हमसे पूछी सो ऐसे हमने कही है,शीघ्र मृत्यु प्राप्त होंनेहारे बुद्धिमान मनुष्योंमें ये श्रीहरिकी कथाही श्रवण करना श्रेष्ठ है ॥१॥परंतु अनेक कामोंके फल प्राप्तिके लिये अन्यदेवतानकाभी भजन करनो योग्य है, ब्रह्मतेज बढायवेकी जाको कामना होय वो वेदपति ब्रह्माको पूजन करे, इंद्रियोंकी पुष्टताकी कामना जाको होय वो इंद्रकी पूजा करै, संतान वृद्धिकी चाहनावारो दक्ष प्रजापतिकी पूजा करै ॥२॥ लक्ष्मीकी जाको इच्छा होय वो दुर्गादेवीकी पूजा करै,

पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपुटेषु संभृतम्॥ पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम्॥३७॥इति श्रीभा॰म॰ द्वितीयस्कन्धे पुरुषसंस्थानुवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ ॥श्रीशुक उवाच॥ एवमेतन्निगदितं पृष्टवान्यद्भवान्मम ॥ नृणां यन्म्रियमाणानां मनुष्येषु मनीषिणाम्॥ १ ॥ब्रह्मवर्चसकामस्तु यजेत ब्रह्मणस्पतिम् ॥ इन्द्रमिन्द्रियकामस्तु प्रजाकामः प्रजापतीन् ॥ २ ॥ देवीं मायां तु श्रीकामस्तेजस्कामो विभावसुम्॥ वसुकामो वसून्रुद्रान्वीर्यकामोऽथ वीर्यवान् ॥३॥ अन्नाद्यकामस्त्वदितिं स्वर्गकामोऽदितेः सुतान् ॥ विश्वान्देवान्राज्यकामः साध्यान्संसाधको विशाम्॥४॥ आयुःकामोऽश्विनौ देवौ पुष्टिकाम इलां यजेत्॥प्रतिष्ठाकामः पुरुषो रोदसी लोकमातरौ॥५॥रूपाभिकामो गन्धर्वान्स्त्रीकामोऽप्सर उर्वशीम् ॥ आधिपत्यकामः सर्वेषां यजेत परमेष्ठिनम्॥६॥

तेजकी चाहनावारो अग्निकी पूजा करै, धनकी कामनावारो अष्ट वसुकी पूजना करै, वीर्यकी कामनावारो धनदाता रुद्रकी पूजना करै॥३॥ अन्नआदि भोज्यकी चाह जाको होय वो अदितिकी सेवा करे, स्वर्गकी कामनावारो द्वादशादित्योंकी पूजा करे, राज्यकी कामनावारो विश्वेदेवाको भजन करै, देश देशकी प्रजानकी अपने आधीनकी इच्छा करै वो साध्यनामक देवताको पूजन करै ॥ ४ ॥ आयुकी चाहनावारो अश्विनीकुमारको पूजन करै; पुष्टिकी कामनावारो पृथिवीको पूजन करै, अपनी प्रतिष्ठाकी कामना होय वो लोकप्राप्त द्यावापृथिवीकी पूजा करै ॥ ५ ॥ रूपकी चाहनावारो गंधर्वोंकी पूजा करै, सुंदरस्त्रीकी चाहनावारो उर्वशी अप्सराको पूजन करै, सब देशके राज्यकी कामनावारो परमेष्ठीनामक ईश्वरको पूजन करै ॥६ ॥

यशकी चाहनावारो यज्ञपुरुषको पूजन करै, खजानेकी चाहनावारो प्रचेता वरुणको पूजन करै, विद्याकी चाहनावारो महादेवजीकी पूजन करै, अपने स्त्री पुरुषनमें प्यारकी इच्छावारो पार्वतीजीकी पूजन करै ॥ ७॥ धर्मकी चाहनावारो विष्णुको पूजा करै, संतानोंकी वृद्धिकी चाहनावारो अर्यमा नामक पितरकी पूजा करै, रक्षा रहै कोई बाधा न होय ये कामनावारो यक्षोंकी पूजन करै, बलकी कामनावारो मरुद्गणोंकी पूजन करै ॥ ८ ॥ राज्यकामनावारो मनुकी पूजा करै शत्रुमरणकी इच्छा होय वो निर्ऋति मृत्युको पूजन करै भोगकी इच्छा होय वो चंद्रमाको पूजन करै कोई कामकी इच्छा न होय वैराग्यकी चाहना होय वो परमपुरुषको पूजन करै ॥९॥ जाकू कोई वस्तुकी चाहना न होय अथवा सब वस्तुकी चाहना होय, मोक्षकी

यज्ञं यजेद्यशःकामः कोशकामः प्रचेतसम् ॥ विद्याकामस्तु गिरिशं दाम्पत्यार्थ उमां सतीम् ॥ ७ ॥ धर्मार्थ उत्तमश्लोकं तन्तुं तन्वन्पितॄन्यजेत् ॥ रक्षाकामः पुण्यजनानोजस्कामो मरुद्गणान् ॥ ८ ॥ राज्यकामो मनून्देवान्निर्ऋतिं त्वभिचरन्यजेत् ॥ कामकामो यजेत्सोममकामः पुरुषं परम् ॥ ९ ॥ अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम् ॥ १० ॥ एतावानेव यजतामिह निःश्रेयसोदयः ॥ भगवत्यचलो भावो यद्भागवतसंगतः ॥ ११ ॥ ज्ञानं यदा प्रतिनिवृत्तगुणोर्मिचक्रमात्मप्रसाद उत यत्र गुणेष्वसङ्गः ॥ कैवल्यसंमतपथस्त्वथ भक्तियोगः को निर्वृतो हरिकथासु रतिं न कुर्यात् ॥ १२ ॥ शौनक उवाच ॥ इत्यभिव्याहृतं राजा निशम्य भरतर्षभः ॥ किमन्यत्पृष्टवान्भूयो वैयासकिमृषिं कविम् ॥ १३ ॥

कामनावारो उदार बुद्धि तीव्र भक्तियोग करके परपुरुष विष्णुकी पूजन करै॥ १०॥ भगवानमें अचलभाव होय, ब्राह्मण भगवत्के जनोंको संग करनो येही सब कर्म करवेवारेको परम पुरुषार्थको लाभ है॥ ११॥ सब ओरसे रागादिकनको समूह रहित ज्ञान जा कथामें होयहै आत्मा मन प्रसन्न होयहै विषयनसे मन हटै है. कैवल्य संमतमार्गमें भक्तियोग होय है जामें सब सुख होय है ऐसी नारायणकी कथामें कौन पुरुष प्रीति न करै ॥१२॥ शौनकजी बोले कि भरतवंशीनमें श्रेष्ठ राजा ये कथन सुनकर फेर व्यासपुत्र शब्दब्रह्मके ज्ञाता परब्रह्मदर्शी शुकदेवजीसे कहा पूछते भए ॥१३॥

एतच्छुश्रूषतां विद्वन्सूत नोऽर्हसि भाषितुम् ॥ कथा हरिकथोदर्काः सतां स्युः सदसि ध्रुवम् ॥ १४ ॥ स वै भागवतो राजा पाण्डवेयो महारथः ॥ बालक्रीडनकैः क्रीडन्कृष्णक्रीडां य आददे ॥ १५ ॥ वैयासकिश्च भगवान्वासुदेवपरायणः ॥ उरुगायगुणोदारः सतां स्युर्हि समागमे ॥ १६ ॥ आयुर्हरति वै पुंसामुद्यन्नस्तं च यन्नसौ ॥ तस्यर्ते यत्क्षणो नीत उत्तमश्लोकवार्तया ॥ १७ ॥ तरवः किं न जीवन्ति भस्त्राः किं न श्वसन्त्युत ॥ न खादन्ति न मेहन्ति किं ग्रामपशवोऽपरे ॥१८॥ श्वविड्वराहोष्ट्रखरैः संस्तुतः पुरुषः पशुः ॥ न यत्कर्णपथोपेतो जातु नाम गदाग्रजः ॥ १९ ॥ बिले बतोरुक्रमविक्रमान्ये न शृण्वतः कर्णपुटे नरस्य ॥ जिह्वाऽसती दार्दुरिकेव सूत न चोपगायत्युरुगायगाथाः ॥ २० ॥ भारः परं पट्टकिरीटजुष्टमप्युतमाङ्गं न नमेन्मुकुन्दम् ॥ शावौ करौ नो कुरुतः सपर्यां हरेर्लसत्काञ्चनकङ्कणौ वा ॥ २१ ॥

हे सूत हे विद्वन्! हम सुनवेकी इच्छावारेनको आप कहिवेकों योग्य हो, संतोंकी सभामें श्रीहरिकथाही फल है सो निश्चयकरके होय है ॥ १४॥ सो भागवत पांडुनंदन महारथी परीक्षित बालक्रीडामें खेलतो विरियां श्रीकृष्णको क्रीडाकों करो करत है ॥ १५॥ व्यासपुत्र भगवान् वासुदेवमें परायण बोहोत गाएजांय ऐसे श्रीहरिके उदार चरित्र संतोंको सभामें सदा कह्यो करैहै ॥ १६ ॥ ये सूर्यनारायण उदय अस्त होकर पुरुषनकी आयु हरै हैं, उत्तम यशस्वीकी वार्ताके विना जो क्षण व्यतीत होय है वो आयु वृथा है॥१७॥वृक्ष कहा नहीं जीवै है,धोकनी क्या श्वांस न लेवै है, और ग्रामके पशु क्या न खांवै हैं, वा विष्टादि न करै हैं,इनकी व्यर्थही आयु है ॥१८॥ कुत्ता, विष्टाखादि शूकर, ऊंट,गधा,ये जाकी स्तुति करै ऐसो पुरुष पशु है, जाके कांनमें कदीभी भगवतकथा न गई हैं वो पुरुष पशुतुल्य है ॥ १९॥ हे सूत! परमेश्वरके चरित्र जो नर कांननसे न सुने वे कान सर्पके बिलेके समान है गाने योग्य हरिकी गाथा न गानेहारी खोटी जीभ मेंडकाकी जीभके समान वृथा बकवाद करै है॥ २० ॥ रेशमी वस्त्र जामें लिपटो, किरीट पहिने शिरसे जो मुकुंदको न प्रणाम करै वो शिर केवल भार है, कांचनके कंकण शोभित हाथ जो हरिको सेवा न करै तो वे हाथ मुरदाके हाथके बराबर है ॥ २१ ॥

जिन नेत्रोंसें भगवतके दर्शन न करे वे मनुष्योंके नेत्र मोरपंखके समान है, जिन पांवोंसें भगवतके क्षेत्रोंमें न फिरे, वे मनुष्योंके पांव वृक्षोंके समान है ॥ २२ ॥ जाने भागवतके ब्राह्मणोंके चरणकी रज कदीभी न स्पर्श करी, वो जीवतो भयो मुदाके समान है भगवान्के पदमें लगीहुइ तुलसीका सुगंध जाने नहीं सेवन करी वो स्वास लेतो भयो मुरदा है ॥ २३ ॥ बडे खेदकी वार्ता है, कि ग्रहण करवे योग्य श्रीहरिके नाम हैं उनको जो हृदयसे न ले वो हृदय पत्थरके समान है, हरिका नामस्मरण कर जो हृदय द्रवीभूत न हो नेत्रमें जल न आवे शरीरके रोम खडे न होय वो पाषाणका हृदय है ॥ ॥ २४ ॥ जो अभक्त हैं वाको सब व्यर्थ होय है, हे अंग! हमारे मनके अनुकूल तुम कहो भागवतोंमें प्रधान व्यासनंदन आत्मविद्याके ज्ञाता राजाके

बर्हायिते ते नयने नराणां लिङ्गानि विष्णोर्न निरीक्षतो ये ॥ पादौ नृणां तौ द्रुमजन्मभाजौ क्षेत्राणि नानुव्रजतो हरेर्यौ ॥ २२ ॥ जीवञ्छवो भागवताङ्घ्रिरेणुं न जातु मर्त्योऽभिलभेत यस्तु ॥ श्रीविष्णुपद्या मनुजस्तुलस्याः श्वसञ्छवो यस्तु न वेद गन्धम् ॥ २३ ॥ तदश्मसारं हृदयं बतेदं यद्गृह्यमाणैर्हरिनामधेयैः ॥ न विक्रियेताऽथ यदा विकारो नेत्रे जलं गात्ररुहेषु हर्षः ॥ २४ ॥ अथाभिधेह्यङ्ग मनोनुकूलं प्रभाषसे भागवतप्रधानः ॥ यदाह वैयासकिरात्मविद्याविशारदो नृपतिं साधुपृष्टः ॥ २५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ वैयासकेरिति वचस्तत्त्वनिश्चयमात्मनः ॥ उपधार्य मतिं कृष्णे औत्तरेयः सतीं न्यधात् ॥ १ ॥ आत्मजासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु ॥ राज्ये चाविकले नित्यं निरूढां ममतां जहौ ॥ २ ॥ पप्रच्छ चेममेवार्थं यन्मां पृच्छथ सत्तमाः ॥ कृष्णानुभावश्रवण श्रद्दधानो महामनाः ॥ ३ ॥

पूछनेपर जो कहिते भए सो आप कहो ॥ २५ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां द्वितीयस्कन्धे ब्रह्मादिदेवपूजनफलवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ॥ ३ ॥ सूतजी बोले कि राजा परीक्षित् शुकाचार्यके कहे वचन आत्माके तत्त्व निश्चय करवेवारे सुनकर श्रीकृष्णमें अधिक अपनो मति लगावते भए ॥ १ ॥ शरीर स्त्री पुत्र घर पशु धन भाइ बंधु राज्य सबमें लगी ममता त्याग करते भए ॥ २ ॥ हे श्रेष्ठजनो! जो तुम मोसें पूछतेभए याहीको श्रीकृष्णके अनुभाव सुनवेमें श्रद्धाधारी राजा पूछते भए ॥ ३ ॥

अपनी मृत्यु जान धर्म अर्थ कामको सबप्रकार ईश्वरमें समर्पण कर वासुदेव भगवान्में अपने आत्माको दृढभाव करतेभए ॥ ४ ॥ परीक्षित् बोले कि
हे ब्रह्मन्! हे पापरहित! श्रीहरिकी कथा कहिवेवारे सर्वज्ञ तुमारो वचन बहुत सुंदर है, मेरो सब अंधकार दूर होगयो ॥ ५ ॥ ब्रह्मादिकों करके चिंतवन
न करोजाय ऐसे या विश्वकों भगवान् अपनी माया करकै जैसे रचे है याको औरभी सुनवेकी इच्छा है ॥६॥ जैसे विश्वकी रक्षा करे हैं जैसे फेर संहार
करैहै, जाजा शक्तिको आसरो लेकर बहुशक्तिधारी परपुरुष होयहै सो कहो ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन्! अद्भुत कर्म करवेवारे भगवान् हरिकी चेष्टा निश्चय

संस्थां विज्ञाय संन्यस्य कर्म त्रैवर्गिकं च यत् ॥ वासुदेवे भगवति आत्मभावं दृढं गतः ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ समीचीनं
वचो ब्रह्मन्सर्वज्ञस्य तवाऽनघ ॥ तमो विशीर्यते मह्यं हरेः कथयतः कथाम् ॥ ५ ॥ भूय एव विवित्सामि भगवाना-
त्ममायया ॥ यथेदं सृजते विश्वं दुर्विभाव्यमनीश्वरैः ॥ ६ ॥ यथा गोपायति विश्वं यथा संयच्छते पुनः ॥ यां यां
शक्तिमुपाश्रित्य पुरुशक्तिः परः पुमान् ॥ (आत्मानं क्रीडयन्क्रीडन्करोति विकरोति च) ॥ ७ ॥ नूनं भगवतो ब्रह्म-
न्हरेरद्भुतकर्मणः ॥ दुर्विभाव्यमिवाभाति कविभिश्चापि चेष्टितम् ॥ ८ ॥ यथा गुणांस्तु प्रकृतेर्युगपत्क्रमशोऽपि वा ॥
बिभर्ति भूरिशस्त्वेकः कुर्वन्कर्माणि जन्मभिः ॥ ९ ॥ विचिकित्सितमेतन्मे ब्रवीहि भगवान्यथा ॥ शाब्दे ब्रह्मणि
निष्णातः परस्मिन्भगवान्खलु ॥ १० ॥ सूत उवाच ॥ इत्युपामन्त्रितो राज्ञा गुणानुकथने हरेः ॥ हृषीकेशमनुस्मृत्य
प्रतिवक्तुं प्रचक्रमे ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नमः परस्मै पुरुषाय भूयसे सदुद्भवस्थाननिरोधलीलया ॥ गृहीतशक्तित्रि-
तयाय देहिनामन्तर्भवायानुपलक्ष्यवर्त्मने ॥ १२ ॥

करकै बडे कवियोंसेभी नहीं निश्चय करीगई है ऐसी मालूम पडै है ॥ ८ ॥ जन्म धारण कर कर्म कर एक ईश्वर एक कालमें अथवा क्रमक्रमसे
प्रकृतिके गुणनको अनेक प्रकारसै धारण करै है ॥ ९ ॥ ये जानवेकी मेरी इच्छा है सो आप कहैं, क्योंकि आप परमेश्वरमैं और शब्दब्रह्ममें अधिक
पारंगत हौं ॥ १० ॥ सूतजी बोले कि श्रीहरिके गुणानुवाद कहिवेमैं ऐसे प्रार्थना करे गए श्रीशुकदेवजी श्रीहृषीकेशको स्मरण कर कहिवेको प्रारंभ
करते भए ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि जिनकी महिमाकी प्रमाण नहीं, या विश्वकी उत्पत्ति पालन नाशके निमित्त लीला करकै ब्रह्मादि

तीन शक्ति धारवेवारे सब देहीनके अंतर्यामी काहूकों जिनको मार्ग दीखे नहीं ऐसे परम पुरुष ईश्वरके अर्थ नमस्कार होय ॥ १२ ॥ धर्मवर्ती संतोंके दुःखनाशक, अधर्मी असतोंके नाशक, सब जीवमात्रमें जिनकी मूर्ति, पारमहंस आश्रममें स्थित पुरुषनको आत्मतत्वके देनेवारे परमेश्वरको नमस्कार होय ॥ १३ ॥ भक्तपालक, कुत्सित योगियोंको दूर अपने बराबर नहीं अपनेसे अधिक नहीं ऐसे ऐश्वर्य करकै अपने स्वस्वरूपमें रमण करनेहारे परब्रह्मको वारंवार नमस्कार होय ॥ १४ ॥ जिनको कीर्तन, जिनको स्मरण, जिनको दर्शन जिनको वंदन जिनकी कथाकों श्रवण, जिनको पूजन, सबलोकके शीघ्र सब पापको नाश करैहैं, ऐसे सुंदर मंगलरूप यशवारे परमेश्वरकों नमस्कार होय सर्वज्ञ सर्व शक्तिमान् सर्वांतर्यामी

भूयो नमः सद्वृजिनच्छिदेऽसतामसंभवायाऽखिलसत्त्वमूर्तये ॥ पुंसां पुनः पारमहंस्य आश्रये व्यवस्थितानामनुमृग्यदाशुषे ॥ १३ ॥ नमो नमस्तेऽस्त्वृषभाय सात्त्वतां विदूरकाष्ठाय मुहुः कुयोगिनाम् ॥ निरस्तसाम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंस्यते नमः ॥ १४ ॥ यत्कीर्तनं यत्स्मरणं यदीक्षणं यद्वन्दनं यच्छ्रवणं यदर्हणम् ॥ लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १५ ॥ विचक्षणा यच्चरणोपसादनात्सङ्गं व्युदस्योभयतोऽन्तरात्मनः ॥ विन्दन्ति हि ब्रह्मगतिं गतक्लमास्तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १६ ॥ तपस्विनो दानपरा यशस्विनो मनस्विनो मन्त्रविदः सुमङ्गलाः ॥ क्षेमं न विन्दन्ति विना यदर्पणं तस्मै सुभद्रश्रवसे नमो नमः ॥ १७ ॥

सर्वेश्वरको सब ओरसें नमस्कार मात्रही श्रेष्ठ है ॥ १५ ॥ विवेकी लोग जिनके चरणनकी सेवासें आत्माको दोनों ओरसे संग त्याग सब परिश्रम रहित ब्रह्मकी गतिको प्राप्त होयहैं, ऐसे मंगल यशस्वीके अर्थ नमस्कार होय ॥ १६ ॥ तपस्वी लोग महादानी यशस्वीजन मनस्वी लोग मंत्रवेत्ता सुंदर मंगलकारी ये सब अपनो अपनो करो भयो कर्म जिन परमेश्वरमें समर्पण करै बिना क्षेमको नहीं प्राप्त होय हैं, ऐसे सुंदर मंगल यशस्वीके अर्थ नमस्कार होय ॥ १७ ॥

किरात हूण आंध्र पुलिंद पुल्कस आभीर कंक यवन खशादिक ये और औरभी पापी जिनके आश्रयसे शुद्ध होजाय है, ऐसे सबमें होयवेवारे ईश्वरके अर्थ नमस्कार होय ॥१८॥ आत्मज्ञानियोंके आत्मा, सबके ईश्वर, वेदत्रयीमय, धर्ममय, तपोमय, निष्कपटी, ब्रह्मा, शंकर आदि करकै अति आश्चर्यसे जिनकी मूर्ति देखनेके योग्य सो भगवान प्रसन्न होओ ॥ १९ ॥ श्रीभूलीलानायक, यज्ञपति, प्रजापति, बुद्धियोंके पति, लोकपति, धरापति, अंधक वृष्णि सात्वत इनके पति, और गति, भगवान सतोंके पति मोपर प्रसन्न होओ ॥ २० ॥ जिनके दोनों चरणोंके निरंतर ध्यानरूप समाधिसें

किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कसा आभीरकङ्का यवनाः खसादयः ॥ येऽन्ये च पापा यदुपाश्रयाश्रयाः शुध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥ १८ ॥ स एष आत्माऽऽत्मवतामधीश्वरस्त्रयीमयो धर्ममयस्तपोमयः ॥ गतव्यलीकैरजशंकरादिभिर्वितर्क्यलिङ्गो भगवान्प्रसीदताम् ॥ १९ ॥ श्रियः पतिर्यज्ञपतिः प्रजापतिर्धियां पतिर्लोकपतिर्धरापतिः ॥ पतिर्गतिश्चान्धकवृष्णिसात्वतां प्रसीदतां मे भगवान्सतां पतिः ॥२०॥ यदङ्घ्र्यनुध्यानसमाधिधौतया धियाऽनुपश्यन्ति हि तत्त्वमात्मनः ॥ वदन्ति चैतत्कवयो यथारुचं स मे मुकुन्दो भगवान्प्रसीदताम् ॥ २१ ॥ प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती वितन्वताऽजस्य सतीं स्मृतिं हृदि ॥ स्वलक्षणा प्रादुरभूत्किलाऽऽस्यतः स मे ऋषीणामृषभः प्रसीदताम् ॥ २२ ॥ भूतैर्महद्भिर्य इमाः पुरो विभुर्निर्माय शेते यदमूषु पूरुषः ॥ भुङ्क्ते गुणान्षोडश षोडशात्मकः सोऽलं कृषीष्ट भगवान्वचांसि मे ॥ २३ ॥

धुईभई बुद्धिसे सगुण निर्गुण उपासना करकै ईश्वरके तत्वको दर्शन करैं हैं, और पंडित लोग अपनी रुचिके अनुसार या तत्त्वको वर्णन करै हैं, सो मुकुंद भगवान् मोपर प्रसन्न होओ ॥ २१ ॥ क्यों कि कल्पके आदिमें ब्रह्माके त्हदयमें सृष्टिके रचनेवारी स्मृति विस्तारवेवारे करकै प्रेरित सरस्वती ब्रह्माके मुखसे प्रगटभई, जाके असाधारण लक्षण हैं, सो ऋषीनकेभी बडे श्रेष्ठ ईश्वर मोपर प्रसन्न होओ॥ २२ ॥ जो ईश्वर पंचभूतों करकै इन सबको निर्माण कर इनके भीतर वसते हैं, षोडश कलाधारी समर्थ सोले गुणोंको भोगें हैं, सो भगवान् मेरे वचनोंको अलंकार करैं ॥ २३ ॥

ब्रह्माके अंतर्यामी भगवान् वासुदेवके अर्थ नमस्कार होय, भक्त जन जिनके मुखकमलके मादक ज्ञानमय रसको पीतेभए ॥ २४ ॥ हे राजन् ! परीक्षित् ! वेदगर्भमें साक्षात् हरि व्यापक ईश्वरने जो ब्रह्माजीसे कहा और ब्रह्माने नारदजीसे कहा वो यही प्रश्न है जो तुमने किया है ॥२५॥ इति श्रीभा॰द्वि॰ सृष्ट्यादिश्रीहरिचेष्टावर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ श्रीनारदजी बोले कि हे देवनके देव ! हे सब जीववत्सल! हे पूर्वज! आपके अर्थ नमस्कार होय, आत्माके तत्त्वको निरंतर दर्शन देनेवारो ज्ञान कहो ॥ १ ॥ हे प्रभो ! जो रूप है, जाके आश्रय ये सब है,जासे ये सब रचो गयो है, जामें ये सब लीन होय है, जाके आधीन है, जो कुछ है वो तत्वसिद्धांतसे आप कहो ॥ २ ॥ भूत भविष्यत् वर्तमान ये सब आप प्रभु जानों हों,

नमस्तस्मै भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ पपुर्ज्ञानमयं सौम्या यन्मुखाम्बुरुहासवम् ॥ २४ ॥ एतदेवात्मभू राजन्नारदाय विपृच्छते ॥ वेदगर्भोऽभ्यधात्साक्षाद्यदाह हरिरात्मनः ॥ २५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ नारद उवाच ॥ ॥ देवदेव नमस्तेऽस्तु भूतभावन पूर्वज ॥ तद्विजानीहि यज्ज्ञानमात्मतत्त्वनिदर्शनम् ॥ १ ॥ यद्रूपं यदधिष्ठानं यतः सृष्टमिदं प्रभो ॥ यत्संस्थं यत्परं यच्च तत्त्वं वदत तत्त्वतः ॥ २ ॥ सर्वं ह्येतद्भवान्वेद भूतभव्यभवत्प्रभुः ॥ करामलकवद्विश्वं विज्ञानावसितं तव ॥ ३ ॥ यद्विज्ञानो यदाधारो यत्परस्त्वं यदात्मकः ॥ एकः सृजसि भूतानि भूतैरेवात्ममायया ॥४॥ आत्मन्भावयसे तानि न पराभावयन्स्वयम् ॥ आत्मशक्तिमवष्टभ्य ऊर्णनाभिरिवाक्लमः ॥ ५ ॥ नाहं वेद परं ह्यस्मिन्नापरं न समं विभो ॥ नामरूपगुणैर्भाव्यं सदसत्किंचिदन्यतः ॥ ६ ॥

हाथमें जैसे निर्मल जलकी बूंद अथवा आंमलो होय तैसे अत्यंत ज्ञान कर निश्चित या विश्वकों तुम जानों हो ॥३॥ जो विशेष ज्ञान है,जो आधार है, जाके तुम परायण हो, जो स्वरूप है, अपनी माया करकै सब जीवनको एक तुमही रचोहो मोको तो तुम्ही ईश्वर मालूम पडोहो ॥ ४ ॥ उन सबको आपही पालन करो हो, तुमारो तिरस्कार कोई न करै है,श्रमरहित मकडी अपनी शक्तिको आश्रय लेकर जे घर रचैहै तद्वत् तुम हो॥५॥ हे विभो ! या विश्वमें उत्तम अधम समान मनुष्यादि नाम रूप, द्विपदत्वादि गुण शुक्लादिसे साध्य सूक्ष्म स्थूल तुमसे और कोई नहीं है ये सब तुमसेही होयहै ॥६॥

फिर बहुत सावधान होयकर आप घोर तप करोहो, यातें हमकों बडी शंका उत्पन्न होयहै खेद होवे है ॥ ७ ॥ हे सर्वज्ञ ! हे सकलेश्वर ! ये सब मैं पूंछूंहूं सो आप करके शिक्षित जैसे मैं जानसकूं तैसे विशेष करकै मोसें तुम कहो ॥ ८ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि हे पुत्र ! दयावंत तुम्हारो ये संदेह ठीक है हे सौम्य ! भगवत्के वीर्यके प्रकाशनमें तुम मोकों प्रेरणा करते भए ॥९॥ हे नारद ! जैसे तुम मोसे कहोहौ ये एसेई है,तुम्हारो कहिवो मिथ्या नहीं है कारण कि जिनके प्रतापसे मैं ऐसा हूं उन्हे तुम नहीं जान्ते ॥ १० ॥ जिनके प्रकाशसें प्रकाशित विश्वकों मैं प्रकाश करूंहूं जैसे सूर्य अग्नि चंद्रमा नक्षत्र ग्रह तारा ये ईश्वरकी सत्तासे सब प्रकाश करैंहै " श्रुति ॥ न तत्र सूर्यो भाति न चंद्रतारकं नेमा विद्युतो भांति कुतोयमग्निः । तमेव भांतमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति " सूर्य चंद्रमा तारा विजुरी अग्नि ईश्वरके प्रकाशसे प्रकाशित है, उनके तेजसें ये सब प्रकाश करैंहै ॥११॥ तिन भगवान्को नमस्कार होय वासुदेवकों ध्यान करैंहै जिनकी दुर्जय मायाकरकै जगद्गुरु मोकों सब जीव कहैं हैं ॥ १२ ॥ जिन ईश्वरके सन्मुख खडे होते कपटभरी मायाकूं लाज आतीहै उस मायासें मोहित दुर्बुद्धिवारे हम सरीके ब्रह्मादिक ये मेरो है ये हम हैं ऐसे श्लाघा करैं हैं ॥ १३ ॥ सबको उत्तर ब्रह्मदेव कहिते भए द्रव्य कर्म काल स्वभाव जीव ये सिद्धांतसें विचारै है तो हे ब्रह्मन् ! वासुदेवसें परै नहीं है कि " व्याकरणसे वासुदेव शब्दकी ये व्युत्पत्ति है कि वसंति भूतान्यस्मिन्निति वासुः दीव्यतीति देवः वासश्चासौ देवश्च वासुदेव इति " ॥ १४ ॥

स भवानचरद्घोरं यत्तपः सुसमाहितः ॥ तेन खेदयसे नस्त्वं परां शङ्कां प्रयच्छसि ॥७॥ एतन्मे पृच्छतः सर्वं सर्वज्ञ सकलेश्वर ॥ विजानीहि यथैवेदमहं बुध्येऽनुशासितः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ सम्यक्कारुणिकस्येदं तव वत्स चिकित्सितम् ॥ यदहं चोदितः सौम्य भगवद्वीर्यदर्शने ॥ ९ ॥ नानृतं तव तच्चापि यथा मां प्रब्रवीषि भोः ॥ अविज्ञाय परं मत्त एतावत्त्वं यतो हि मे ॥ १० ॥ येन स्वरोचिषा विश्वं रोचितं रोचयाम्यहम् ॥ यथाऽर्कोऽग्निर्यथा सोमो यथर्क्षग्रहतारकाः ॥ ११ ॥ तस्मै नमो भगवते वासुदेवाय धीमहि ॥ यन्मायया दुर्जयया मां ब्रुवन्ति जगद्गुरुम् ॥ १२ ॥ विलज्जमानया यस्य स्थातुमीक्षापथेऽमुया ॥ विमोहिता विकत्थन्ते ममाहमिति दुर्धियः ॥ १३ ॥ द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ॥ वासुदेवात्परो ब्रह्मन्न चान्योऽर्थोऽस्ति तत्त्वतः ॥ १४ ॥

वेद नारायणको कहैं है सब देवता नारायणके अंगसे जन्मे है। श्रुति है कि “ स आत्मा अंगान्यन्यादेवतेति ” । सब लोक नारायणको वर्णन करैं हैं, सब यज्ञ नारायणको वर्णन करैं हैं ॥ १५ ॥ योगशास्त्र नारायणकों वर्णन करैं हैं, तप नारायणकों कहैं हैं, ज्ञान नारायणकों कहैं हैं, सबकी गति नारायण हैं ॥ १६ ॥ जीवके द्रष्टा ईश्वर सर्वांतर्यामी सबमें व्यापक उनके रचेभये पदार्थ मैं रचूंहूं, उन्होनें मोकों रचो है, उनके कटाक्षसें मैं प्रेरित हूं ॥ १७ ॥ व्यापक निर्गुण ईश्वरके सत्व रज तम ये तीन गुण उत्पत्ति पालन नाशमें माया करकै ग्रहण करें हैं ॥ १८ ॥ कार्य कारण कर्तापनेमें द्रव्य ज्ञान क्रियाके आश्रयी गुण नित्य मायावी पुरुषको बांधै हैं ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन् ! सो ये भगवान् तीन गुणोंकरकै सबके मेरे ईश्वर हैं, उनके ब्राह्मणोंकोही उनकी गति लखवेमें आवै हैं ॥ २० ॥ काल कर्म स्वभाव अपनी माया करकै मायाके स्वामी आत्मामें अपनी इच्छासे प्राप्त विविध प्रकारसे होयवेकी इच्छा करकै ग्रहण करैहैं ॥ २१ ॥ कालसें गुणोंकों उलट पलट होय है, स्वभावसे औरको और रूप होयजाय है, और जीवोंके अदृश्यसै महत्तत्त्व होय है ॥ २२ ॥ रज सत्वसे बढे भये महत्तत्वसे द्रव्य ज्ञान कियात्मक तम प्रधान होय है ॥ २३ ॥

नारायणपरा वेदा देवा नारायणाङ्गजाः॥नारायणपरा लोका नारायणपरा मखाः ॥ १५ ॥ नारायणपरो योगो नारायणपरं तपः ॥ नारायणपरं ज्ञानं नारायणपरा गतिः ॥ १६ ॥ तस्यापि द्रष्टुरीशस्य कूटस्थस्याखिलात्मनः ॥ सृज्यं सृजामि सृष्टोऽहमीक्षयैवाभिचोदितः ॥ १७ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति निर्गुणस्य गुणास्त्रयः ॥ स्थितिसर्गनिरोधेषु गृहीता मायया विभोः ॥१८॥ कार्यकारणकर्तृत्वे द्रव्यज्ञानक्रियाश्रयाः ॥ बध्नन्ति नित्यदा मुक्तं मायिनं पुरुषं गुणाः ॥१९॥ स एष भगवाँल्लिङ्गैस्त्रिभिरेभिरधोक्षजः ॥ स्वलक्षितगतिर्ब्रह्मन्सर्वेषां मम चेश्वरः ॥२०॥ कालं कर्म स्वभावं च मायेशो मायया स्वया ॥ आत्मन्यदृच्छया प्राप्तं विबुभूषुरुपाददे ॥ २१ ॥ कालाद्गुणव्यतिकरः परिणामस्वभावतः ॥ कर्मणो जन्म महतः पुरुषाधिष्ठितादभूत् ॥ २२ ॥ महतस्तु विकुर्वाणाद्रजःसत्त्वोपबृंहितात् ॥ तमःप्रधानस्त्वभवद्द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥ २३ ॥

सो अहंकार कहाहै उसमें तीन प्रकारके विकार होयहैं, वैकारिक, तैजस तामस, ये तीन भेद होयहैं हे प्रभो ! द्रव्यशक्ति क्रियाशक्ति ज्ञानशक्ति भई, तामसमें महाभूत,राजस अहंकारमें इन्द्रिय और सात्त्विक अहंकारमें देवता उत्पन्न हौनेकी शक्ति है॥२४॥सब. भूतनको आदि तामस जब विकारको प्राप्त भयो,तब आकाश भयो ताकी मात्रा शब्दगुण है जो द्रष्टा और दृश्यको जतायवेवारो है॥२५॥आकाश जब विकारको प्राप्त भयो तब स्पर्श गुणवारो पवन भयो उसमें आकाशको शब्दगुणभी आयो पवनशरीरको धारण करैहै ओज अर्थात् इन्द्रिय बल सह अर्थात् मनको बल और शरीरके बलका कारण है ॥ २६ ॥ काल कर्मके स्वभावसे जब वायु विकारी भयो तब रूप स्पर्श, शब्दगुणवारो तेज उत्पन्न होतो भयो ॥ २७ ॥ तेज जब विकारी भयो तब रसकी आत्मा जल भयो पूर्वके रूप स्पर्श और शब्दगुणभी आगये ॥२८॥ जलके क्षुभित होनेसै गंधगुणवारी पृथ्वी भई जिसमें रस स्पर्श शब्द रूप यह चार गुण पूर्वके और निजका पांचवां गुण गंध हुआ ॥ २९ ॥ सात्त्विक अहंकारसे चंद्रमा देवता सहित मन और विकारी देवताके रस स्पर्श शब्द रूप गुण होते भए दिशा, विदिशा, पवन, सूर्य, प्रचेता, अश्विनीकुमार, अग्नि, इंद्र, उपेंद्र, मित्र, ब्रह्मा ये दश भए ॥ ३० ॥ तैजस अहंकार जब विकारी भयो तब दश इन्द्रियें भईं, ज्ञानशक्ति क्रियाशक्ति बुद्धि प्राण तैजस अहंकारसे

सोऽहंकार इति प्रोक्तो विकुर्वन्समभूत्त्रिधा ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेति यद्भिदा॥ द्रव्यशक्तिः क्रियाशक्तिज्ञानशक्तिरिति प्रभो॥२४॥ तामसादपि भूतादेर्विकुर्वाणादभून्नभः ॥ तस्य मात्रा गुणः शब्दो लिङ्गं यद्द्रष्टृदृश्ययोः ॥ २५ ॥ नभसोऽथ विकुर्वाणादभूत्स्पर्शगुणोऽनिलः ॥ परान्वयाच्छब्दवांश्च प्राण ओजः सहो बलम् ॥ २६ ॥ वायोरपि विकुर्वाणात्कालकर्मस्वभावतः॥ उदपद्यत तेजो वै रूपवत्स्पर्शशब्दवत् ॥ २७ ॥ तेजसस्तु विकुर्वाणादासीदम्भो रसात्मकम् ॥ रूपवत्स्पर्शवच्चाम्भो घोषवच्च परान्वयात्॥२८॥विशेषस्तु विकुर्वाणादम्भसो गन्धवानभूत्॥ परान्वयाद्रसस्पर्शशब्दरूपगुणान्वितः ॥ २९ ॥ वैकारिकान्मनो जज्ञे देवा वैकारिका दश ॥ दिग्वातार्कप्रचेतोऽश्विवह्नीन्द्रोपेन्द्रमित्रकाः ॥३०॥ तैजसात्तु विकुर्वाणादिन्द्रियाणि दशाभवन् ॥ ज्ञानशक्तिः क्रियाशक्तिर्बुद्धिः प्राणस्तु तैजसौ ॥ श्रोत्रत्वग्घ्राणदृग्जिह्वावाग्दोर्मेंढ्राङ्घ्रिपायवः ॥ ३१ ॥

भए कान त्वचा नाक नेत्र जीभ बाणी भुजा लिंग चरण गुदा ये भए, दिशा वायु सूर्य प्रचेता अश्विनीकुमार कान त्वचा नेत्र जीभ नाकके क्रमसे स्वामी है और अग्नि इन्द्र उपेंद्र मित्र ब्रह्मा ये वाणी पद लिंग गुदाके देवता हैं ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मवित्तम ! जब ये भूत इन्द्रिय और मन गुण न मिले तब शरीर रचनेमें समर्थ न होते भए ॥ ३२ ॥ तब भगवत्की शक्तिमें प्रेरित सब आपसमें मिलकर सत् असत्को लेकर समष्टि व्यष्टि ब्रह्मांडरूप स्थूल शरीर रचते भये ॥ ३३ ॥ असंख्यात सहस्र वर्ष जब होगए तबतक ये अंड जलमें पडो रह्यो, तब काल कर्म स्वभावमें स्थित होकर " जीवयतीति जीवः " सदा जोवनेवारे परमात्मा इस अचेतनको जिवाते भए ॥ ३४ ॥ सो ये पुरुष वा अंडको भेदके निकसे, सहस्र ऊरु चरण भुजा नेत्र

यदैतेऽसंगता भावा भूतेन्द्रियमनोगुणाः ॥ यदाऽऽयतननिर्माणे न शेकुर्ब्रह्मवित्तम ॥ ३२ ॥ तदा संहत्य चान्यो-
न्यं भगवच्छक्तिचोदिताः ॥ सदसत्त्वमुपादाय चोभयं ससृजुर्ह्यदः ॥ ३३ ॥ वर्षपूगसहस्रान्ते तदण्डमुदकेशयम् ॥
कालकर्मस्वभावस्थो जीवो जीवमजीवयत् ॥ ३४ ॥ स एष पूरुषस्तस्मादण्डं निर्भिद्य निर्गतः ॥ सहस्रोर्वङ्घ्रिबा-
ह्वक्षः सहस्राननशीर्षवान् ॥ ३५ ॥ यस्येहावयवैर्लोकान्कल्पयन्ति मनीषिणः ॥ कट्यादिभिरधः सप्त सप्तोर्ध्वं जघना-
दिभिः ॥ ३६ ॥ पुरुषस्य मुखं ब्रह्म क्षत्रमेतस्य बाहवः ॥ ऊर्वोर्वैश्यो भगवतः पद्भ्यां शूद्रोऽभ्यजायत ॥ ३७ ॥
भूर्लोकः कल्पितः पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ॥ हृदा स्वर्लोक उरसा महर्लोको महात्मनः ॥ ३८ ॥ ग्रीवायां
जनलोकश्च तपोलोकः स्तनद्वयात् ॥ मूर्धभिः सत्यलोकस्तु ब्रह्मलोकः सनातनः ॥ ३९ ॥ तत्कट्यां चातलं क्लृप्त-
मूरुभ्यां वितलं विभोः ॥ जानुभ्यां सुतलं शुद्धं जङ्घाभ्यां तु तलातलम् ॥ ४० ॥

सहस्र मूंड शिरवारे होते भए ॥३५॥ जिनकी चेष्टाके लेशमात्रसें बुद्धिमान लोकोंकी कल्पना करे है,कमरसे नीचे सात लोक हैं,और जंघादिके ऊपर सात लोक हैं ॥३६॥ परब्रह्म पुरुषको मुख ब्राह्मण,क्षत्रिय भुजा भगवान्के ऊरु वैश्य पांवसे शूद्र जन्मे हैं ॥३७॥ भूर्लोक पगमें है भुवर्लोक नाभिमें है हृदयमें स्वर्गलोक है महात्मा ईश्वरके उरमें महर्लोक है ॥ ३८ ॥ जनलोक ग्रीवामें, तपोलोक दोनों स्तनमें, मस्तकमें सत्यलोक है;ब्रह्मलोक वैकुंठ सनातन है या ब्रह्मांडमें नहीं है॥३९॥तिनकी कमरमें अतल लोक है; विभुके ऊरुमें वितल लोक है जानुमें शुद्ध सुतललोक है जंघामें तलातल है ॥४०॥

महातल गुल्फोंमें है एडिमें रसातल है पादके तलेमें पाताल है ऐसे लोकमय पुरुष ईश्वर है ॥ ४१ ॥ पांवमें भूर्लोक है नाभिमें भुवर्लोक है स्वर्गलोक मस्तकमें है ऐसंभी लोकको कल्पना है ॥४२॥ इति० भा० म० द्वि० श्रीविराट्सृष्टिहरिलीलाविराट्रूपवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ब्रह्माजी बोले कि अब विराट् पुरुषकी विभूति वर्णन करै है अस्मदादिकोंकी वाणीके मालक वन्हि तिन ईश्वरको मुख उत्पत्तिस्थान है, इनमें चार बातें है वाणी तो इंद्रिय है, वरुण देवता है मुख उत्पत्ति स्थान है रसस्वाद लेनो ये उसको विषय है, ये बात सब जगे जानलेनी ग्रंथके विस्तारके भयसें ऐसें लिखा है, गायत्री आदि सात छंदोंका त्वचा आदि उत्पत्ति स्थान है 'देवानामन्नं हव्यम्' जो देवनके निमित्त करकै दियो जाय वो हव्य है 'पितॄणामन्नं कव्यम्'

महातलं तु गुल्फाभ्यां प्रपदाभ्यां रसातलम् ॥ पातालं पादतलत इति लोकमयः पुमान् ॥ ४१ ॥ भूर्लोकः कल्पितः
पद्भ्यां भुवर्लोकोऽस्य नाभितः ॥ स्वर्लोकः कल्पितो मूर्ध्ना इति वा लोककल्पना ॥ ४२ ॥ इति श्रीभा० म० द्विती०
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५॥ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ वाचां वह्नेर्मुखं क्षेत्रं छन्दसां सप्त धातवः ॥ हव्यकव्यामृतान्नानां जिह्वा सर्वरसस्य
च ॥ १ ॥ सर्वासूनां च वायोश्च तन्नासे परमायने ॥ अश्विनोरौषधीनां च घ्राणो मोदप्रमोदयोः ॥ २ ॥ रूपाणां तेजसां
चक्षुर्दिवः सूर्यस्य चाक्षिणी ॥ कर्णौ दिशां च तीर्थानां श्रोत्रमाकाशशब्दयोः ॥ ३ ॥ तद्गात्रं वस्तुसाराणां सौभगस्य
च भाजनम् ॥ त्वगस्य स्पर्शवायोश्च सर्वमेधस्य चैव हि ॥ ४ ॥ रोमाण्युद्भिज्जजातीनां यैर्वा यज्ञस्तु संभृतः ॥ केशश्म-
श्रुनखान्यस्य शिलालोहाभ्रविद्युताम् ॥ ५ ॥

जो पितरनके लिये दियो जाय वो अन्न कव्य है, अमृत अन्न सब रसकी जिव्हा कारण है ॥ १ ॥ हमारे सबके प्राण और वायुका नासाको रंध्र उत्पत्तिस्थान है जामें मोद प्रमोद जानवेवारी घ्राणेन्द्रिय है अश्विनीकुमार देवता है सब औषधी विषय है ॥ २ ॥ रूप और रूपप्रकाशक तेजका परमेश्वरकी चक्षुइन्द्रिय स्थान है, स्वर्ग और सूर्यका स्थान परमेश्वरके नेत्रगोलक हैं, दिशा और तीर्थको स्थान परमेश्वरके कर्ण अर्थात् श्रोत्र इन्द्रियके अधिष्ठान है, आकाश और उसका सूक्ष्म रूप शब्दका स्थान परमेश्वरकी श्रोत्र इन्द्रिय है ॥ ३ ॥ वस्तुनके सारांशका स्थान ईश्वरको शरीर है स्पर्शगुणवारो वायु ईश्वरकी त्वचा है ॥ ४ ॥ जिन करके यज्ञके संभार होते हैं ऐसे सब वृक्ष और शिला

लोह मेघ बिजुरी सब परमेश्वरके केश मूंछ नख हैं ॥ ५ ॥ प्रायकरके क्षेमकर्मकारी लोकपाल हरिकी बाहु है, क्षेमी रक्षक ईश्वरको पाद रखनों भूर्भुवस्वर्गलोक हैं ॥ ६ ॥ सब कामवर हरिके चरणस्थानमें है, जलवीर्य सृष्टि मेघ और प्रजापतिका उत्पत्तिस्थान ॥ ७॥ ईश्वरका शिश्न उपस्थ है संभोगसे उत्पन्न हुए सुखका उत्पत्ति स्थान उपस्थ है हे नारद ! मलत्यागकी पायु इन्द्रिय गुदा है जाके यम देवता हैं ॥८॥ हिंसा अलक्ष्मी मृत्यु नरक ईश्वरकी गुदा है तिरस्कार अधर्म अज्ञान ये भगवानकी पीठ है ॥९॥ तलाव नदियें ईश्वरकी नाडियें हैं सब पर्वत ईश्वरके हाड हैं प्रधान रस समुद्र सब जीवनको जामें नाश है ॥ १० ॥ वो पुरुषको पेट है, हृदय मनको स्थान है धर्मका मेरे तुमारे सनकादिकोंका महादेवजीका ॥११॥

बाहवो लोकपालानां प्रायशः क्षेमकर्मणाम् ॥ विक्रमो भूर्भुवःस्वश्च क्षेमस्य शरणस्य च ॥६ ॥ सर्वकामवरस्यापि हरेश्चरण आस्पदम् ॥ अपां वीर्यस्य सर्गस्य पर्जन्यस्य प्रजापतेः ॥ ७ ॥ पुंसः शिश्न उपस्थस्तु प्रजात्यानन्दनिर्वृतेः ॥ पायुर्यमस्य मित्रस्य परिमोक्षस्य नारद ॥८ ॥ हिंसाया निर्ऋतेर्मृत्योर्निरयस्य गुदः स्मृतः ॥ पराभूतेरधर्मस्य तपसश्चापि पश्चिमः ॥ ९ ॥ नाड्यो नदनदीनां तु गोत्राणामस्थिसंहतिः ॥ अव्यक्तरससिन्धूनां भूतानां निधनस्य च ॥१०॥ उदरं विदितं पुंसो हृदयं मनसः पदम् ॥ धर्मस्य मम तुभ्यं च कुमाराणां भवस्य च ॥ ११ ॥ विज्ञानस्य च सत्त्वस्य परस्यात्मा परायणम् ॥ अहं भवान्भवश्चैव त इमे मुनयोऽग्रजाः ॥ १२ ॥ सुरासुरनरा नागाः खगा मृगसरीसृपाः ॥ गन्धर्वाप्सरसो यक्षा रक्षोभूतगणोरगाः ॥ १३ ॥ पशवः पितरः सिद्धा विद्याध्राश्चारणा द्रुमाः ॥ अन्ये च विविधा जीवा जलस्थलनभौकसः ॥ १४ ॥ ग्रहर्क्षकेतवस्तारास्तडितः स्तनयित्नवः ॥ सर्वं पुरुष एवेदं भूतं भव्यं भवच्च यत् ॥ १५ ॥

विशेष ज्ञानका सतोगुणका स्थान परमेश्वरका चित्त है हम तुम शिव ये सब मुनिलोग जो तुमसे पहिले जन्मे हैं ॥ १२ ॥ देवता, असुर, नर, नाग, पक्षी, मृग, सर्प, गंधर्व, अप्सरा, यक्ष, राक्षस, भूतगण, उरग ॥ १३ ॥ पशु, पितर, सिद्ध, विद्याधर, चारण, वृक्ष, और अनेक प्रकारके जितने जीव हैं वे जलके जीव स्थलके जीव आकाशवासी जीव ॥ १४ ॥ नवग्रह अश्विन्यादि नक्षत्र, प्रलयके समय जो पूंछके तारे होय वे, और बिजुरी, गर्जन शब्द, भूत, भविष्यत, वर्तमान, और जो कुछ है ये सब पुरुष परमेश्वरस्वरूपही है। " पुरीषु शेते इति पुरुषः "॥

जो सब जीवमात्रके शरीररूप पुरोयोंमें वसै वो पुरुष ईश्वर है "पुरुष एवेदं सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम्" इति ॥१५॥ तिन ईश्वर करके व्याप्त ये विश्व है वह इस्सै कही अधिक अंशमें विराजते हैं अपने मंगलकों प्रकाश करैहै ये प्राण और बाहिर प्रकाशसे सूर्यकी नाई तपे है 'असौ प्राण आदित्य असावादित्यः प्राण' इति श्रुतेः ॥१६॥ ऐसे या विराट्में बाहर भीतर पुरुष तपते हैं, 'उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति' जिसमें भय नहीं ऐसे मोक्षके ईश्वर मरणधर्मक अन्नरूप कर्म फलको प्रगट करते भए ॥१७॥ "एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः" हे ब्रह्मन्! ईश्वर पुरुषकी महिमा बडी कठिन हैं "पादोस्य विश्वा भूतानि" ईश्वर पुरुषके पादमें सब जीवोंकी स्थिति है ऐसे जानो ॥१८॥ "त्रिपादस्यामृतं दिवि" क्षेमदायक, अभयदाता, अमृत, त्रिलोकीके मूंडपर राखते भए, अथवा क्षेमो अभयो मरनों जहां नहीं ऐसो त्रिपादविभूति त्रिलोकीके मूंडपर रखतेभए,त्रिपाद विभूति बाहर

तेनेदमावृतं विश्वं वितस्तिमधितिष्ठति ॥ स्वधिष्ण्यं प्रतपन्प्राणो बहिश्च प्रतपत्यसौ ॥ १६॥ एवं विराजं प्रतपंस्तपत्यन्तर्बहिः पुमान् ॥ सोऽमृतस्याभयस्येशो मर्त्यमन्नं यदत्यगात् ॥ १७ ॥ महिमैष ततो ब्रह्मन्पुरुषस्य दुरत्ययः ॥ पादेषु सर्वभूतानि पुंसः स्थितिपदो विदुः ॥ १८ ॥ अमृतं क्षेममभयं त्रिमूर्ध्नोऽधायि मूर्धसु ॥ पादास्त्रयो बहिश्चासन्नप्रजानां य आश्रमाः ॥ १९ ॥ अन्तस्त्रिलोक्यास्त्वपरो गृहमेधो बृहद्व्रतः ॥ विप्रक्षत्रियवैश्यानां गृहे मुक्तिः सदा भवेत् ॥ ॥ २० ॥ सृती विचक्रमे विष्वक् साशनानशने उभे ॥ यदविद्या च विद्या च पुरुषस्तूभयाश्रयः ॥ २१ ॥ यस्मादण्डं विराड् जज्ञे भूतेन्द्रियगुणात्मकः ॥ ते द्रव्यमत्यगाद्विश्वं गोभिः सूर्य इवातपन् ॥ २२ ॥

है, जो नैष्ठिक ब्रह्मचारियोंके स्थान है आश्रम है ॥१९॥ ब्रह्मचर्य व्रत रहित गृहस्थ तौ त्रिलोकीके भीतरही निवास करै हैं ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इनकी घरमेंही सदा मुक्ति होय है ॥ २०॥ "ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशने अभि।" 'विविधं सुष्ठु अंचतीति विष्वक्' अनेक प्रकारसे सब ओरसें जिनकी पूजा होय वे ईश्वर शिक्षा शास्त्र और एक वे शिक्षाका शास्त्र जामें ऐसे दो मार्ग प्रगट करते भए विद्या अविद्या रची ईश्वर दोनोंके आश्रित हैं अविद्या बंधन करवेवारी है विद्या मोक्षदात्री है ॥ २१ "ततो विराडजायत" भूत इंद्रिय गुणात्मक विराट् ब्रह्मांड होतो भयो जिनते अनेक द्रव्य भए, या विश्वको सूर्यकी नाई ईश्वर तपावते भये ॥ २२ ॥

18

"यत्पुरुषेण हविषा" 'नाभौ भवं नाभ्यम्।' जा समय इन व्यापक ईश्वरकी नाभिके कमलसे हम भए, पुरुषके अवयवके बिना यज्ञकी कुछ सामग्री न देखी ॥ २३ ॥ तिनके अवयवोंसैही यज्ञके पशु, सब वनस्पति, कुशा, और देवतानके यजनके योग्य स्थान अनेक गुणयुक्त समय ॥ २४ ॥ हे सत्तम! सब पात्र औषधी, घृतादिक द्रव्य, मधुरादि रस, सुवर्णादि धातु, मृत्तिका, जल, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, चार ब्राह्मण जामें हवन करैं वो कर्म ॥ २५ ॥ ज्योतिष्टोमादि नाम "मंतारमनुसंधातारं त्रायंते इति मन्त्राः" स्वाहाकारादिक मंत्र, सुवर्णादि दक्षिणा, एकादश्यादि सब व्रत, देवतानके नाम सबके निमित्त, बौधायनादि कर्म, पद्धति, संकल्प, अनुष्ठानकी क्रियातंत्र ॥ २६ ॥ विष्णुक्रमादि गति, देवताको ध्यानादि मति, प्रायश्चित्त जो करनों

यदाऽस्य नाभ्यां नलिनादहमासं महात्मनः ॥ नाविदं यज्ञसंभारान्पुरुषावयवादृते ॥ २३ ॥ तेषु यज्ञस्य पशवः सवनस्पतयः कुशाः ॥ इदं च देवयजनं कालश्चोरुगुणान्वितः ॥ २४ ॥ वस्तून्योषधयः स्नेहा रसलोहमृदो जलम् ॥ ऋचो यजूंषि सामानि चातुर्हौत्रं च सत्तम ॥ २५ ॥ नामधेयानि मन्त्राश्च दक्षिणाश्च व्रतानि च ॥ देवतानुक्रमः कल्पः संकल्पस्तन्त्रमेव च ॥ २६ ॥ यतयो मतयश्चैव प्रायश्चित्तं समर्पणम् ॥ पुरुषावयवैरेते संभाराः संभृता मया ॥ २७ ॥ इति संभृतसंभारः पुरुषावयवैरहम् ॥ तमेव पुरुषं यज्ञं तेनैवायजमीश्वरम् ॥ २८ ॥ ततस्ते भ्रातर इमे प्रजानां पतयो नव ॥ अयजन्व्यक्तमव्यक्तं पुरुषं सुसमाहिताः ॥ २९ ॥ ततश्च मनवः काले ईजिरे ऋषयोऽपरे ॥ पितरो विबुधा दैत्या मनुष्याः क्रतुभिर्विभुम् ॥ ३० ॥ नारायणे भगवति तदिदं विश्वमाहितम् ॥ गृहीतमायोरुगुणः सर्गादावगुणः स्वतः ॥ ३१ ॥

उसकों भगवानमें समर्पण करनों, पुरुषके अवयवोंकरकै मैंने सब सामग्री रची हैं ॥ २७ ॥ "यज्ञेन यज्ञमयजंत देवाः" पुरुषके अवयवोंकरके ऐसे सब सामग्रीसें तिन पूजनीय ईश्वर पुरुषको यज्ञ हम करते भए ॥ २८ ॥ तिनके पाछे नौ प्रजापति ये तुमारे भैया सुन्दर सावधान होकर इन्द्रादि रूप करकै अपनेही आप ईश्वर पुरुषको पूजन करतेभए ॥ २९ ॥ ताके उपरांत अपनें समयमें सब मनु सब ऋषि और सब पितर विबुध दैत्य मनुष्य यज्ञों करकै समर्थ ईश्वरका यज्ञ करते भए ॥ ३० ॥ ये सब विश्व भगवान् नारायणमें स्थित है, या सृष्टिके रचवेकी आदिमें बोहोत

मायाके गुण ग्रहण कीनें, आप सब गुणोंसें पृथक् हैं ॥ ३१ ॥ तिन ईश्वरकी आज्ञासें हम संसार रचै हैं ईश्वरके वश होकर शिव संहार करैहैं, पुरुष विष्णुरूप होकर विश्वकी रक्षा करैहै "त्रिशक्तिर्माया तां धरतीति त्रिशक्तिधृक्" तीन शक्तिधारी मायाधारी ईश्वर हैं ॥ ३२ ॥ हे नारद! जैसे तुमनें पूछो तैसे हमनें ये कही, भगवान्के विना सत् असत् आत्मक या विश्वमें कुछभी नहीं है ॥ ३३ ॥ हे अंग हे नारद ! मेरी वाणी कभी मिथ्या न होय है, और मनकी गति कभी मिथ्या न होय है, मेरी ये इन्द्रियें कभी खोटे मार्गमें न जाय हैं, क्यों कि निश्चय करकै अत्यंत भक्तिकरकै हृदयसे हरिको धारण करैहै ॥ ३४ ॥ सो हम वेदमय तपोमय प्रजापतीनको पति सबसें वन्दित सुन्दर योगमें स्थित होकर तप करैं हैं

सृजामि तन्नियुक्तोऽहं हरो हरति तद्वशः ॥ विश्वं पुरुषरूपेण परिपाति त्रिशक्तिधृक् ॥ ३२ ॥ इति तेऽभिहितं तात यथेदमनुपृच्छसि ॥ नान्यद्भगवतः किंचिद्भव्यं सदसदात्मकम् ॥ ३३ ॥ न भारती मेऽङ्ग मृषोपलक्ष्यते न वै क्वचिन्मे मनसो मृषा गतिः ॥ न मे हृषीकाणि पतन्त्यसत्पथे यन्मे हृदौत्कण्ठ्यवता धृतो हरिः ॥ ३४ ॥ सोऽहं समाम्नायमयस्तपोमयः प्रजापतीनामभिवन्दितः पतिः ॥ आस्थाय योगं निपुणं समाहितस्तन्नाध्यगच्छं यत आत्मसंभवः ॥ ३५ ॥ नतोऽस्म्यहं तच्चरणं समीयुषां भवच्छिदं स्वस्त्ययनं सुमङ्गलम् ॥ यो ह्यात्ममायाविभवं स्म पर्यगाद्यथा नभः स्वान्तमथापरे कुतः ॥ ३६ नाहं न यूयं यदृतां गतिं विदुर्न वामदेवः किमुताऽपरे सुराः ॥ तन्मायया मोहितबुद्धयस्त्विदं विनिर्मितं चात्मसमं विचक्ष्महे ॥ ३७ ॥

उनको अबतक नहीं जाने हैं जिनसे हम भए हैं ॥ ३५ ॥ शरणागतके रक्षक संसारनाशक स्वस्तिदाता मंगलदायक ईश्वरके चरणके हम आश्रित हैं, जो भगवान् अपनी मायाको विस्तार आपभी न जानते भए, जैसे आकाशको अंत आकाश न जानसकै औरनकी तो कहा बात है, जैसे आकाशपुष्पकों न देखनों कुछ सर्वज्ञताको नहीं नाश करैहै । श्रुतिश्च " यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्सो अंग वेद यदि वा न वेद" इति ॥ ३६ ॥ जाकी सत्यगतिको न हम जानें, न तुम सब जानों, न शिव जानें, और देवतानकी तौ कहा बात है, तिनकी माया करके मोहित बुद्धिवारे या मायाके रचे भए विश्वको अपने ज्ञानके अनुसार वर्णन करैं हैं ॥ ३७ ॥

जिन ईश्वरके अवतारोंके कर्म (अस्मदादिक) अर्थात् हम गावै हैं सिद्धांतसे जिनको नहीं जानै हैं तिन भगवान्के अर्थ नमस्कार होय ॥ ३८ ॥ सो अजन्मा पुरुष ईश्वर सबसे प्रथम है कल्प कल्पमें विश्व रचे हैं कर्ता अधिकरण साधन कर्म सब रूप आपही हैं संहार करै हैं रक्षा करै हैं ॥ ३९ ॥ "विशुद्धं" विषय आकाररहित हैं "केवलं" जलशायी हैं "ज्ञानं" ज्ञानस्वरूप हैं "प्रत्यक्" सबके अंतर्यामी हैं "सम्यक्" संदेहादि रहित हैं "अवस्थित" स्थिर हैं "सत्यं" सत्यस्वरूप हैं "पूर्ण" सबमें पूर्ण हैं "अनाद्यंतं" आदि अंत रहित हैं "निर्गुणं" मायाकृत गुण जिनमें नहीं हैं "नित्यम्" सदा बने रहे हैं "अद्वयम्" ईश्वरके विना और कोई नहीं हैं ॥ ४० ॥ जब प्रसन्न आत्मा मन इन्द्रियें अंतःकरण होते हैं, तब मुनि लोग

यस्यावतारकर्माणि गायन्ति ह्यस्मदादयः ॥ न यं विदन्ति तत्त्वेन तस्मै भगवते नमः ॥ ३८ ॥ स एष आद्यः पुरुषः कल्पे कल्पे सृजत्यजः ॥ आत्माऽऽत्मन्यात्मनाऽत्मानं संयच्छति च पाति च ॥ ३९ ॥ विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक्सम्यगवस्थितम् ॥ सत्यं पूर्णमनाद्यन्तं निर्गुणं नित्यमद्वयम् ॥ ४० ॥ ऋषे विदन्ति मुनयः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः ॥ यदा तदेवासत्तर्कैस्तिरोधीयेत विप्लुतम् ॥ ४१ ॥ आद्योवतारः पुरुषः परस्य कालः स्वभावः सदसन्मनश्च ॥ द्रव्यं विकारो गुण इन्द्रियाणि विराट् स्वराट् स्थास्नु चरिष्णु भूम्नः ॥ ४२ ॥ अहं भवो यज्ञ इमे प्रजेशा दक्षादयो ये भवदादयश्च ॥ स्वर्लोकपालाः खगलोकपाला नृलोकपालास्तललोकपालाः ॥ ४३ ॥ गन्धर्वविद्याधरचारणेशा ये यक्षरक्षोरगनागनाथाः ॥ ये वा ऋषीणामृषभाः पितॄणां दैत्येन्द्रसिद्धेश्वरदानवेन्द्राः ॥ ४४ ॥ अन्ये च ये प्रेतपिशाचभूतकूष्माण्डयादोमृगपक्ष्यधीशाः ॥ यदस्ति ब्रह्माण्डकटाहमध्ये सर्वं स्वरूपं परमेश्वरस्य ॥ ४५ ॥

ईश्वरकूं जानते हैं, हे नारद ! जब खोटे लोग खोटी तर्क करै हैं, तब सब ईश्वरको ज्ञान नष्ट होकर अंतर्ध्यान होजाय है ॥ ४१ ॥ परब्रह्मको प्रथम अवतार पुरुष हैं, काल स्वभाव सत् असत् मन महाभूत अहंकार मन आदि इन्द्रियें विराट् स्वराट् स्थावर जंगम ये सब ईश्वरके अवतार हैं ॥ ४२ ॥ हम महादेव यज्ञ ये प्रजेश्वर दक्षादिक, तुम सब स्वर्लोकपालक, खगलोकपालक, मनुष्यलोकपालक तललोकपालक सब ईश्वरकी विभूति हैं ॥ ४३ ॥ गंधर्व विद्याधर चारण ईश यक्ष राक्षस उरग सर्पोंके मालक जो ऋषीनकेभी बडे हैं, पितृीश्वर दैत्येंद्र सिद्धेश्वर दानवेंद्र ॥ ४४ ॥ और प्रेत पिशाच

भूत कूष्मांड जलजंतु मृग पक्षीनके ईश या ब्रह्मांड कटाहमें जो कुछ है,सो सब परमेश्वरको स्वरूप है ॥४५॥ जो कुछ या लोकमें है, सो हे भगवन् ! महापराक्रम बलकी नाईं क्षमावत्, श्री लज्जा संपदा और ईश्वरके तुल्य जो हैं वे जो रूपवान हैं, जो विना रूपवान् हैं ये सब परमतत्त्व हैं ॥ ४६ ॥ प्रधानतासें जिनै ऋषिलोग नमस्कार करते हैं,वे लीलावतार पुरुष ब्रह्मके हैं,कर्णोंके मैल दूर करवेवारे हैं,वे सुंदर अवतार हम तुमसे अब कहैंगे॥४७॥ इति श्रीम० भा० भाषाटीकायां विराड्विभूतिपुरुषसूक्तार्थवर्णनं नाम षष्ठोध्यायः ॥६ ॥ ब्रह्माजी बोले कि वराह अवतार कहैं हैं कि पृथ्वीतल उद्धारके लिये श्रीवाराहजी अनंत भगवान् वराहरूप धारते भए,महासमुद्रमें आएभए आदिदैत्य हिरण्याक्ष दैत्यको जैसे वज्रधर इन्द्र पर्वतोंको विदीर्ण करैं इस

यत्किंच लोके भगवन्महस्वदोजःसहस्वद्बलवत्क्षमावत् ॥ श्रीह्रीविभूत्यात्मवदद्भुतार्णं तत्त्वं परं रूपवदस्वरूपम् ॥
॥ ४६ ॥ प्राधान्यतो यानृष आमनन्ति लीलावतारान्पुरुषस्य भूम्नः ॥ आपीयतां कर्णकषायशोषाननुक्रमिष्ये त
इमान्सुपेशान् ॥ ४७ ॥ इति श्रीभा० म० द्वि० विराड्विभूतिपुरुषसूक्तार्थवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ ब्रह्मोवाच
॥ यत्रोद्यतः क्षितितलोद्धरणाय बिभ्रत्क्रौडीं तनुं सकलयज्ञमयीमनन्तः ॥ अन्तर्महाऽर्णव उपागतमादिदैत्यं
तं दंष्ट्रयाऽद्रिमिव वज्रधरो ददार ॥ १ ॥ जातो रुचेरजनयत्सुयमान्सुयज्ञ आकूतिसूनुरमरानथ दक्षिणायाम् ॥ लोकत्रयस्य
महतीमहरद्यदाऽऽर्तिं स्वायंभुवेन मनुना हरिरित्यनूक्तः ॥ २ ॥ जज्ञे च कर्दमगृहे द्विजदेवहूत्यां स्त्रीभिः समं
नवभिरात्मगतिं स्वमात्रे ॥ ऊचे ययाऽत्मशमलं गुणसङ्गपङ्कमस्मिन्विधूय कपिलस्य गतिं प्रपेदे ॥ ३ ॥

प्रकार मार डाढपर धरती धरलाए ॥१॥यज्ञ अवतार कहैं हैं कि रुचिप्रजापतिसे उसकी आकूति नाम स्त्रीमें जो पुत्र पैदा हुवा सो सुयज्ञनाम हुवा, सो सुयज्ञ अपनी सुदक्षिणा नाम स्त्रीमें सुयमनामक देवताओंको उत्पन्न करता भया, सोही इन्द्र होकै जब तीनों लोककी महापीडाको नाश करताभया, तब पहले सुयज्ञ ऐसा नाम कहाभी था, परन्तु फिर मातामहनें हरि ऐसा नाम रक्खा, देवनकी उत्पत्ति लोकत्रयकी पीडाहरण तिनको कर्म है,ये सब अवतारमें और अवतारको कर्म सब जगे जानलेनो ॥२॥ कपिल अवतार कहेहैं हे नारद ! कर्दमजीके घर देवहूतिमें नौ स्त्रीनकरकै सहित कपिलदेवजी भए, अपनी माके अर्थ ब्रह्मविद्या कहते भये ब्रह्मविद्यासे जीवको मलिन करवेवारो संसारकीचकों याही जन्ममें धोयकर कपिलदेवजीकी

गतिकों प्राप्त होते भए ॥३॥ दत्तात्रेयावतार कहै हैं कि अत्रिऋषिने पुत्रकी चाहना करी तब प्रसन्न हो ईश्वर बोले मैंनें तो अपनेको दियो यासे दत्तात्रेय भगवान् भए, जिनके चरणकमलकी परागसें पवित्र देहीवारे यदु हैहयादिक ऐहिक आमुष्मिक भुक्ति मुक्तिरूपा योगसिद्धिको प्राप्त होतेभए॥४॥ सनकादि अवतार कहैं कि पहिले अनेक लोक रचवेकी इच्छा भई तब पहिले कल्पके प्रलयमें नष्ट आत्मतत्त्वको सुंदरतासें कहितेभए, जिनके कहिवेमात्रमें मुनिलोग अपनेमें साक्षात् ईश्वरकों देखतेभए ॥ ५ ॥ नरनारायणको अवतार कहैं कि, धर्मकी स्त्री दक्षकी बेटी मूर्तिसें अपने तपके प्रभावसे नर नारायण भए,कामसेना अप्सरा भगवान्के सकासतें अपने समान उर्वशी आदि स्त्रीनको देखकर ईश्वरके व्रतभंग करवेको न समर्थ होती भई

अत्रेरपत्यमभिकाङ्क्षत आह तुष्टो दत्तो मयाहमिति यद्भगवान्स दत्तः ॥ यत्पादपङ्कजपरागपवित्रदेहा योगर्द्धिमापुरुभयीं यदुहैहयाद्याः ॥ ४ ॥ तप्तं तपो विविधलोकसिसृक्षया मे आदौ सनात्स्वतपसः स चतुःसनोऽभूत् ॥ प्राक्कल्पसंप्लवविनष्टमिहात्मतत्त्वं सम्यग्जगाद मुनयो यदचक्षतात्मन् ॥ ५ ॥ धर्मस्य दक्षदुहितर्यजनिष्ट मूर्त्यां नारायणो नर इति स्वतपःप्रभावः ॥ दृष्ट्वात्मनो भगवतो नियमावलोपं देव्यस्त्वनङ्गपृतना घटितुं न शेकुः ॥ ६ ॥कामं दहन्ति कृतिनो ननु रोषदृष्ट्या रोषं दहन्तमुत ते न दहन्त्यसह्यम् ॥ सोऽयं यदन्तरमलं प्रविशन्बिभेति कामः कथं नु पुनरस्य मनः श्रयेत ॥ ७ ॥ विद्धः सपत्न्युदितपत्रिभिरन्ति राज्ञो बालोऽपि सन्नपगतस्तपसे वनानि ॥ तस्मा अदाद्ध्रुवगतिं गृणते प्रसन्नो दिव्याः स्तुवन्ति मुनयो यदुपर्यधस्तात् ॥ ८ ॥

॥ ६ ॥ महासुकर्मकारी शिवादिक क्रोधदृष्टिसे कामकों भस्म करतेभए, परंतु दुःसह देहकों जरानेहारे क्रोधकों नहीं भस्म करसके, सो ये रोष जिन ईश्वरके भीतर घुसनेको सामर्थ्य न भयो, फिर काम कैसे उनके मनमें घुसे ॥ ७ ॥ ध्रुवावतार कहैहैं कि उत्तानपाद राजाके समीप सौत सुरुचिके कहे वाक्यबाणोंसें विद्ध भए, ध्रुव बालक तपके लिये वनको गए; स्तुति करते भए, ध्रुवको प्रसन्न ईश्वर ध्रुवपद देते भए " दिवि भवा दिव्याः" स्वर्गवासी उत्तानपाद राजाकी पुत्रके समीप भृगु आदिक ऊपरसे नीचेसे सप्तऋषि जिनकी स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥

यद्वेनमुत्पथगतं द्विजवाक्यवज्रविप्लुष्टपौरुषभगं निरये पतन्तम् ॥ त्रात्वाऽर्थितो जगति पुत्रपदं च लेभे दुग्धा वसूनि वसुधा सकलानि येन ॥ ९ ॥ नाभेरसावृषभ आस सुदेविसूनुर्यो वै चचार समदृग् जडयोगचर्याम् ॥ यत्पारमहंस्यमृषयः पदमामनन्ति स्वस्थः प्रशान्तकरणः परिमुक्तसङ्गः ॥ १० ॥ सत्रे ममास भगवान्हयशीरषाऽथो साक्षात्स यज्ञपुरुषस्तपनीयवर्णः ॥ छन्दोमयो मखमयोऽखिलदेवतात्मा वाचो बभूव रुशतीः श्वसतोऽस्य नस्तः ॥ ११ ॥ मत्स्यो युगान्तसमये मनुनोपलब्धः क्षोणीमयो निखिलजीवनिकायकेतः ॥ विस्रंसितानुरुभये सलिले मुखान्मे आदाय तत्र विजहार ह वेदमार्गान् ॥ १२ ॥ क्षीरोदधावमरदानवयूथपानामुन्मथ्नताममृतलब्धय आदिदेवः ॥ पृष्ठेन कच्छपवपुर्विदधार गोत्रं निद्राक्षणोऽद्रिपरिवर्तकषाणकण्डूः ॥ १३ ॥

पृथु अवतार कहे हैं कि, एक समय राजा वेन पाखंडको प्राप्त हो ब्राह्मणोंके वाक्यरूप वज्रसे दग्ध पुरुषार्थ ऐश्वर्य हीन हो नरकमें गिरें तब उनकी प्रार्थनासे पृथु पुत्र होय रक्षाकर जगत्में पुत्र नाम विख्यात करते भए पुत्रपदकी व्युत्पत्ति ये है "पुंनाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते सुतः। तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवा" पृथ्वीसे सब वस्तु निकासी ॥ ९ ॥ ऋषभ अवतार कहे हैं कि, ये ईश्वर नाभिके आग्नीध्र पुत्रसे सुदेवीपुत्र ऋषभदेवजी भए. समानद्रष्टा जडकी नाईं योगाभ्यास करतेभए, जिनके पारमहंस्य पदको ऋषियोंनें नमस्कार कीनों, स्वस्थ, शान्त इन्द्रिय सब संग त्यागे ऋषभदेवजी भए, जिनसे जैनमत प्रगटभयो ॥ १० ॥ हयग्रीव अवतार कहे हैं कि मेरे यज्ञमें हयग्रीव भगवान् भए, साक्षात् यज्ञपुरुष सुवर्ण समान वर्ण, वेदमय, यज्ञमय, सब देवतामय वेदरूप सुंदर वाणी अर्थात् वेदरूपा जिनके नाकके श्वासते भई ॥ ११ ॥ मत्स्यावतार वर्णन करैहैं कि युगके अंतसमयमें वैवस्वत मनुने पृथ्वीमय सब जीवनको आश्रय रूप मत्स्य भगवान् देखे; महा भयानक जलमें मेरे मुखसे गलित वेदमार्गनको लाय कर हर्षसे विहार करतेभए ॥ १२ ॥ कच्छप अवतार कहे हैं, कि क्षीरसमुद्रमें अमृत प्राप्तिके अर्थ देवयूथ और दानवयूथ मथन करतेहे तब आदिदेव पीठपर मंदरगिरिको कच्छपरूप धर धारण करते भए, और वा पर्वतके भ्रमणसे खुजार दूर भई निद्रा आई ॥ १३ ॥

24

नृसिंह अवतार भयो कि देवतानको महाभय जिनके हसवेसे गयो, ऐसो नृसिंहरूप करकै घूमतीभई भ्रुकुटि डाढसे भयानकमुख शीघ्र गदा लेके समीप आये प्रकाशित हिरण्यकशिपुके हृदयको नखोंसे फाडते भए ॥ १४ ॥ हरि अवतार कहैं हैं कि, त्रिकूट पर्वतके सरोवरमें महाबलसे ग्राहने पद पकडो तब यूथनपति गजेन्द्र कमल सूंडमें ले आर्त होय ये बोलो, हे आदिपुरुष ! हे सबलोकनाथ ! हे पुण्ययशः ! हे श्रवण मंगलनामधेय ! ॥ १५ ॥ शरणागत गजेंद्रकों सुनकर अप्रमेय श्रीहरि भगवान् चक्र आयुध लिये गरुडपर बैठकर चक्रसे मगरकी मुख काट सूंड पकडकर कृपाकरके गजको

त्रैविष्टपोरुभयहा स नृसिंहरूपं कृत्वा भ्रमद्भ्रुकुटिदंष्ट्रकरालवक्त्रम् ॥ दैत्येन्द्रमाशु गदयाऽभिपतन्तमाराद्‌दूरौ निपात्य विददार नखैः स्फुरन्तम् ॥१४॥ अन्तःसरस्युरुबलेन पदे गृहीतो ग्राहेण युथपतिरम्बुजहस्त आर्तः ॥ आहेदमादिपुरुषाखिललोकनाथ तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ॥ १५ ॥ श्रुत्वा हरिस्तमरणार्थिनमप्रमेयश्चक्रायुधः पतगराजभुजाधिरूढः ॥ चक्रेण नक्रवदनं विनिपाट्य तस्माद्धस्ते प्रगृह्य भगवान्कृपयोज्जहार ॥१६॥ ज्यायान्गुणैरवरजोऽप्यदितेः सुतानां लोकान्विचक्रम इमान्यदथादियज्ञः ॥ क्ष्मां वामनेन जगृहे त्रिपदच्छलेन याच्ञामृते पथि चरन्प्रभुभिर्न चाल्यः ॥ १७ ॥ नार्थो बलेरयमुरुक्रमपादशौचमापः शिखां धृतवतो विबुधाधिपत्यम् ॥ यो वै प्रतिश्रुतमृते न चिकीर्षदन्यदात्मानमङ्ग शिरसा हरयेऽभिमेने ॥ १८ ॥

उद्धरतेभए ॥ १६ ॥ वामन अवतार कहैं है कि, गुणोंमें बडे अदितिके द्वादश सुतनमें छोटे वामनजी होय सब लोक पगसे नापे, यज्ञ भगवान् वामनरूप धार पृथिवी राजा बलिसे तीन पदके मिसकरकै लेतेभए,क्यों कि धर्ममार्गमें वर्तमान समर्थको ईश्वर मांगवेकी वृत्तिके विना चलायमान न करते भए ॥१७॥ हे नारद ! श्रीभगवानके चरणकों धोंवन गंगाजल शिखापर धारण करनेको बलिको सब राज्य प्राप्त होनों ये अर्थ नहीं है, क्यौं कि जो राजा बलिनें प्रतिज्ञा करी वासे अधिक करवेकी इच्छा कर अपनी देह शिरसे हरिको तीसरो चरण पूरो करवेकों देतेभए ॥ १८ ॥

---

(१) “ राग देस । करुणाकर कुंज टेरो मेरो कैसें कटै डरलेरो । टेर । नाम त्रिकूट सुभग गिरी सरबिच गजको ग्राहने घेरो ॥ १॥ कमल फूल ले सूंड उठाई हरिरक्षक जग हेरो ॥ २ ॥ अति आतुर होय चक्र चलायो चलत पीत पट गेरो ॥ ३ ॥ हरि आएहैं अर्द्ध नाम सुनरी मुखसे न उचेरो ॥ ४ ॥ पुरुषोत्तम प्रभु करसे करिको करलीनो निज चेरो ॥ ५ ॥

हंसावतार कहैं हैं कि, हे नारद ! भगवान् अत्यंत भक्तिभावसें प्रसन्न होयकर ज्ञानयोग भागवत जो आत्मज्ञानको प्रकाशक तुमारे अर्थ कहिते भए, जाको शरणागत भक्त अनायाससें प्राप्त होते भए ॥ १९ ॥ मन्वंतर अवतार कहैं हैं कि दशों दिशानमें जिनकी आज्ञा कोई न रोकै ऐसो सुदर्शन चक्र मन्वंतरोंमें मनुवंशधारी भगवान् धारण कर, दुष्टराजानको दंड देतेभए, और त्रिलोकीमें अपनें चरित्र करके सुंदरकीर्त्ति विस्तारतेभए ॥ २०॥ धन्वंतरिका अवतार कहैं हैं, कि धन्वंतरि भगवान् अपनी कीर्तिसें अपनें नामसें महारोगी जीवनको रोग शीघ्र नाश करतेभए, और यज्ञमें अमृत असुरनसे लाए, लोकमें वैद्यकशास्त्र आयुर्वेद अवतार लेकर सिखावते भए ॥ २१ ॥ परशुरामका अवतार कहैं हैं कि दैवसे प्राप्त ब्राह्मणद्रोही वेदमार्गत्यागी नरकभागी धरतीपर कंटकरूप क्षत्रियोंके क्षयके अर्थ परशुराम अवतार ले उग्रवीर्य धारके परसेसै एकविंशतिवार राजोंको मारतेभए ॥ २२॥ श्रीरघुनाथजीको अवतार कहैंहैं, कि हमारे ब्रह्मादिकोंके ऊपर प्रसन्न होयकर कलाको अवतार धार कलाके ईश्वर इक्ष्वाकुवंशमें अवतार धारकर दशरथ पिताकी आज्ञामें स्थित होतेभए, सीता लक्ष्मण सहित बनको पधारे जिनसे विरोधकर दशशिरवारो रावण विनाशको प्राप्त भयो ॥ २३ ॥ भयसें कंपित अंग दूर वर्तमान, सीताके निमित्त क्रोधसें लालनेत्र करके तपायमान मगर सर्प नाकेनके समूहवारो समुद्र

तुभ्यं च नारद भृशं भगवान्विवृद्धभावेन साधु परितुष्ट उवाच योगम् ॥ ज्ञानं च भागवतमात्मसतत्वदीपं यद्वासुदेवशरणा विदुरञ्जसैव ॥ १९ ॥ चक्रं च दिक्ष्वऽविहतं दशसु स्वतेजो मन्वन्तरेषु मनुवंशधरो बिभर्ति ॥ दुष्टेषु राजसु दमं व्यदधात्स्वकीर्तिं सत्ये त्रिपृष्ठ उशतीं प्रथयंश्चरित्रैः ॥ २० ॥ धन्वन्तरिश्च भगवान्स्वयमेव कीर्तिनाम्ना नृणां पुरुरुजां रुज आशु हन्ति ॥ यज्ञे च भागममृतायुरवाप रुद्धमायुश्च वेदमनुशास्त्यवतीर्य लोके ॥ २१ ॥ क्षत्रं क्षयाय विधिनोपभृतं महात्मा ब्रह्मध्रुगुज्झितपथं नरकार्तिलिप्सु ॥ उद्धन्त्यसाववनिकण्टकमुग्रवीर्यस्त्रिःसप्तकृत्व उरुधारपरश्वधेन ॥ २२ ॥ अस्मत्प्रसादसमुखः कलया कलेश इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोर्निदेशे ॥ तिष्ठन्वनं सदयितानुज आविवेश यस्मिन्विरुध्य दशकन्धर आर्तिमार्च्छत् ॥२३ ॥ यस्मा अदादुदधिरूढभयाङ्गवेपो मार्गं सपद्यरिपुरं हरवद्दिधक्षोः ॥ दूरे सुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या तातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः ॥ २४ ॥

त्रिपुर दग्ध करनेवाले शिवकी समान जिन रघुनाथजीके अर्थ मार्ग देतोभयो ॥ २४ ॥ युद्धमें रावणके वक्षःस्थलके स्पर्शसे भग्न इंद्रके ऐरावत वारणके दातोंसें सुपेत दिशानतक राज्य करनेवारे अपनी सेनामें विचरते सीताचोर रावणको बढोभयो महागर्वको शीघ्र प्राणसहित श्रीरामचंद्रजी विनाश करते भए॥२५॥श्रीकृष्णावतार दश श्लोक करकै वर्णन करैहैं कि असुरनके अंशभूत राजानके समूहसें दुःखित भूमिके क्लेशनाशके अर्थ बलदाऊजी सहित शुक्ल कृष्णवारवारे गूढगति श्रीकृष्णजी होय अपनी महिमाके प्रगट करवेवारे कर्म करैंगे, कोई ये तर्क न करै कि केशमात्र अवतार हैं क्यों कि भारको उतारनों कार्य हमारे केशही करसकै हैं, ये जतायवेके लिये और रामकृष्णके वर्ण सूचनाके लिये ऐसा लिखा है । भारते"स चापि केशौ हरिरुच्च जह्रे शुक्लमेकमपरं चापि कृष्णम् । तौ चापि केशावविशेतां यदूनां कुले स्त्रियौ रोहिणीं देवकीं च ॥ १ ॥ तयोरेको बलभद्रो बभूव योसौ

वक्षःस्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाहदन्तैर्विडम्बितककुब्जुष ऊढहासम् ॥ सद्योऽसुभिः सह विनेष्यति दारहर्तुर्विस्फूर्जितैर्धनुष उच्चरतोऽधिसैन्ये ॥ २५॥ भूमेः सुरेतरवरूथविमर्दितायाः क्लेशव्ययाय कलया सितकृष्णकेशः ॥ जातः करिष्यति जनानुपलक्ष्यमार्गः कर्माणि चात्ममहिमोपनिबन्धनानि ॥ २६ ॥ तोकेन जीवहरणं यदुलूकिकायास्त्रैमासिकस्य च पदा शकटोऽपवृत्तः ॥ यद्रिङ्गतान्तरगतेन दिविस्पृशोर्वा उन्मूलनं त्वितरथाऽर्जुनयोर्न भाव्यम् ॥ २७ ॥ यद्वै व्रजे व्रजपशून्विषतोयपीथान्पालांस्त्वजीवयदनुग्रहदृष्टिवृष्ट्या ॥ तच्छुद्धयेऽतिविषवीर्यविलोलजिह्वमुच्चाटयिष्यदुरगं विहरन्ह्रदिन्या ॥ २८ ॥

श्वेतस्तस्य देवस्य केशः । कृष्णो द्वितीयः केशवः संबभूव केशो योसौ वर्णतः कृष्ण उक्तः ॥ २ ॥ " भारतमें है कि श्रीईश्वरने दो सुपेद कारे वार उखाडे, वे दोनों वार यादवोंके कुलमें रोहिणी और देवकी स्त्रीमें प्रवेश करते भये. देवको सुपेद केश हो वासें बलभद्र भए, दूसरो जो वर्णसे कारो हो वासें केशीमारक श्रीकृष्णजी भए॥२६ बालकपनमें पूतनाको मारी तीन मासके हे तब पांवसे शकटासुर मारो, घोटू चलने करकै आकाशतक ऊंचे यमलार्जुनको जडसें उखाडे, ये ईश्वर विना और न करसकै है ॥ २७ ॥ जो श्रीकृष्ण व्रजमें व्रजके पशु कालीदहके जल पीके गोपालसहित विचेत होगए हे, सो उनको अनुग्रहकी दृष्टिकी वृष्टिसें जिवावते भए, यमुनामें विहार करतेभये यमुनाकी शुद्धिके लिये अतिचंचल

जिह्वावारे काली सर्पको उच्चाटन करैंगे ॥ २८ ॥ तिन श्रीकृष्णके दिव्यअलोकिक कर्म हैं, क्यों कि दावाग्निसे पवित्र वन जब जरो, वामें सब सोये निश्चय सबको काल आयो हो तब व्रजवासिनसे कही सब नेत्र मूंदो, तब बलराम सहित अमित पराक्रम श्रीकृष्ण दावाग्नि पान कर व्रजको उद्धार करते भए ॥ २९॥ इन श्रीकृष्णजीकी माता यशोदा श्रीकृष्णकों बांधवेको जो जो जेवरी लाई सो सब कम भई, एक पूरी न भई, श्रीकृष्णने जब जंभाई लीनी तो यशोदा मुखमें सब विश्व देख शंकित भई, पीछे वाकों ज्ञान होतो भयो॥३०॥वरुणकी फांसीके भयसें नंदको मोक्ष करैंगे, मयके पुत्र व्योमासुरनें विलेमें गोपनको बंध करौ वहांसे उन्हें छुडाय दिनमें सब काम करनेसै श्रमित हो सोय सब गोकुलवासियोंको वैकुंठलोकमें पहुचावैंगे

तत्कर्म दिव्यमिव यन्निशि निःशयानं दावाग्निना शुचिवने परिदह्यमाने ॥ उन्नेष्यति व्रजमतोऽवसितान्तकालं नेत्रे पिधाय्य स बलोऽनधिगम्यवीर्यः ॥ २९ ॥ गृहीत यद्यदुपबन्धममुष्य माता शुल्बं सुतस्य नतु तत्तदमुष्य माति ॥ यज्जृम्भतोऽस्य वदने भुवनानि गोपी संवीक्ष्य शङ्कितमनाः प्रतिबोधिताऽऽसीत् ॥ ३० ॥ नन्दं च मोक्ष्यति भयाद्वरुणस्य पाशाद्गोपान्बिलेषु पिहितान्मयसूनुना च ॥ वह्न्याप्लुतं निशि शयानमतिश्रमेण लोके विकुण्ठ उपनेष्यति गोकुलं स्म ॥ ३१ ॥ गोपैर्मखे प्रतिहते व्रजविप्लवाय देवेऽभिवर्षति पशून्कृपया रिरक्षुः ॥ धर्तोच्छिलीन्ध्रमिव सप्त दिनानि सप्तवर्षौ महीध्रमनघैककरे सलीलम् ॥३२॥ क्रीडन्वने निशि निशाकररश्मिगौर्यां रासोन्मुखः कलपदायतमूर्च्छितेन ॥ उद्दीपितस्मररुजां व्रजभृद्वधूनां हर्तुर्हरिष्यति शिरो धनदानुगस्य ॥ ३३ ॥

॥ ३१ ॥ हे नारद! गोपोंनें इंद्रयज्ञ जब न करो, तब व्रजके विनाशके लिये इंद्रनें वर्षा कीनी, तब कृपा करकै बैल गौकी रक्षाकी इच्छासै सात वर्षके श्रीकृष्ण सात दिनतक गोवर्द्धन एक हाथसै लीलाकरके उठावेंगे जैसे कोई बालक छत्राकको उठायलेवै ॥ ३२ ॥ चंद्रमाकी किरणोंकरकै सुपेद रात्रिमें रासकी इच्छा कर क्रीड़ाकर मधुर पदसे मूर्छना ले राग गाय ब्रजवासिनीनको कामदेव जगाय उनको प्रसन्न करेंगे और गोपस्त्रीनके हरवेवारे कुबेरके सेवक शंखचूडके शिरको रत्न हरैंगे ॥ ३३ ॥

प्रलंबासुर, धेनुकासुर, वकासुर, केशी, अरिष्टासुर, मल्ल, कुवलयापीड, कंस, कालयवन, नरकासुर, पौंड्रकादिक, शाल्व, द्विविद, बल्वल, दंतवक्र, सप्तवृषभ, शंबर, विदूरथ, रुक्मैया आदिक ॥ ३४ ॥ और संग्राममें श्लाघनीयो धनुषधारी कांबोज, मत्स्य, कुरु, कैकय, सृंजय आदिक इन सबको बलदेव भोमसेन अर्जुन इनके बहाने करकै दुर्लभदर्श श्रीहरि वैकुण्ठस्थानको पहुचावैंगे ॥ ३९ ॥ अब व्यासजीको अवतार वर्णन करै हैं कि काल करके अब मनुष्योंकी बुद्धि संकुचित होगई, थोडी आयु भई मनुष्यनको वेदके ज्ञानसैं दूर देखकर युगयुगमें सत्यवतीमें अवतार धार वेदरूप वृक्षको शाखा भेदकरकै विस्तार करते भए ॥ ३६ ॥ बौद्धावतार कहै हैं, अलक्ष्यगति मय दैत्यके बनाये पुरोंमें बैठकर लोकोंके नाश करते वेदमें निष्ठा

ये च प्रलम्बखरदर्दुरकेश्यरिष्टमल्लेभकंसयवनाः कुजपौण्ड्रकाद्याः॥ अन्ये च शाल्वकपिबल्वलदन्तवक्त्रसतोक्षश-
म्बरविदूरथरुक्मिमुख्याः ॥ ३४॥ ये वा मृधे समितिशालिन आत्तचापाः काम्बोजमत्स्यकुरुकैकयसृञ्जयाद्याः ॥
यास्यन्त्यदर्शनमलं बलभीमपार्थव्याजाह्वयेन हरिणा निलयं तदीयम्॥ ३९ ॥ कालेन मीलितधियामवमृश्य नृणां
स्तोकायुषां स्वनिगमो बत दूरपारः॥ आविर्हितस्त्वनुयुगं स हि सत्यवत्यां वेदद्रुमं विटपशो विभजिष्यति स्म ॥३६॥
देवद्विषां निगमवर्त्मनि धिष्ठितानां पुंभिर्मयेन विहिताभिरदृश्यतूर्भिः ॥ लोकान्घ्नतां मतिविमोहमतिप्रलोभं वेषं
विधाय बहुभाष्यत औपधर्म्यम् ॥ ३७॥यर्ह्यालयेष्वपि सतां न हरेः कथाः स्युः पाखण्डिनो द्विजजना वृषला नृदेवाः॥
स्वाहास्वधावषडिति स्म गिरो न यत्र शास्ता भविष्यति कलेर्भगवान् युगान्ते ॥ ३८ ॥

करनेवाले दैत्योंकी मतिको मोहित करनेको मोहित करनेहारा वेष धारणकर बहुतसे पाखण्ड धर्म्मका उपदेश करेंगे ॥ ३७ ॥ कल्कि अवतार कहैहैं कि जो समय सज्जनोंके घरमें श्रीहरिकी कथा न होयगी ब्राह्मण पाषंडी हो जांयगे राजा शूद्र होंयगे स्वाहा स्वधा वषट् वेदकी वाणी जब न होगी, तब या कलियुगके अन्तमें भगवान् शिक्षा करैंगे, कल्कीरूप धारैंगे, जहां ब्रह्मा नारदके संवादसे वराहादिक तो पहिले भए थे मन्वंतरावतार वा समय हो, धन्वंतरी परशुरामभी थे श्रीरामकृष्णादिक आगे होनहारे थे यासे भविष्यत् वार्ताभी कहीं कहीं कही है ॥ ३८ ॥

मायागुणावतार भगवान्की विभूति है सो कहैहैं कि या संसारके रचवेमें तौ तप हम ऋषि नौ प्रजाके ईश पालनको धर्म यज्ञ मनु देवता और राजालोग संहारमें अंतमें अधर्म हर क्रोधी असुर आदिक यह सब अनंत शक्तिधारी ईश्वरकी मायाकी विभूतियें हैं ॥ ३९ ॥ ये मैंने संक्षेपसें कहीहै विस्तारसे कोईभी कहिवेको समर्थ नहीं है श्रीविष्णुके चरित्र गिनवेकों कोई समर्थ नहीं है चाहें कोई विद्वान पृथिवीके रज भलेई गिनलेवै, वेदमें मंत्र है कि " विष्णोर्नु कं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजांसि " इति। जो ईश्वर अपने अत्यंत वेग करकै अत्यंत कम्पायमान सत्यलोक और सब त्रिलोकीको धरते भये, जिन भगवान्के माया बलका अंत न तौ हम जानै हैं और न यह तुम्हारे अग्रज मुनि जानते हैं ॥ ४० ॥ ईश्वरके गुण गाते

सर्गे तपोऽहमृषयो नव ये प्रजेशाः स्थाने च धर्ममखमन्वमराऽवनीशाः ॥ अन्ते त्वधर्महरमन्युवशासुराद्या मायाविभूतय इमाः पुरुशक्तिभाजः ॥ ३९ ॥ विष्णोर्नु वीर्यगणनां कतमोऽर्हतीह यः पार्थिवान्यपि कविर्विममे रजांसि ॥ चस्कम्भ यः स्वरंहसाऽस्खलता त्रिपृष्ठं यस्मात्त्रिसाम्यसदनादुरुकम्पयानम् ॥ ४० ॥नान्तं विदाम्यहममी मुनयोऽग्रजास्ते मायाबलस्य पुरुषस्य कुतोऽपरे ये ॥ गायन्गुणान्दशशतानन आदिदेवः शेषोऽधुनापि समवस्यति नास्य पारम् ॥ ४१ ॥ येषां स एव भगवान्दययेदनन्तः सर्वात्मना श्रितपदो यदि निर्व्यलीकम् ॥ ते दुस्तरामतितरन्त्यथ देवमायां नैषां ममाहमिति धीः श्वशृगालभक्ष्ये ॥ ४२ ॥ वेदाऽहमङ्ग परमस्य हि योगमायां यूयं भवश्च भगवानथ दैत्यवर्यः ॥ पत्नी मनोः स च मनुश्च तदात्मजाश्च प्राचीनबर्हिर्ऋभुरङ्ग उत ध्रुवश्च ॥ ४३ ॥

भये सहस्रमुखधारी आदिदेव शेषजीभी अबतक पारको नहीं प्राप्त होते हैं, औरनकी तो कहा सामर्थ्य है ॥ ४१ ॥ " ये शंका भई कि कोई न जान सकेहै तो मोक्ष कैसो होयगो" याको उत्तर ये है कि, मोक्ष ईश्वरकी कृपासै होय है, और तरहसे नहीं सो यह अनंत भगवान् जिसपर दया करैं हैं और जो सब प्रकारसे निष्कपट होके उनके पदको आश्रय लै, वोह अति दुस्तर देवताकी मायाकों तरैं हैं, जो कुत्ता गीदडके भक्ष इस देहमें आस्था नहीं करते, वे तरजाते हैं ॥ ४२ ॥ हे नारद ! तिनकी कृपासे परमेश्वरकी योगमायाकों मैं जान्ताहूं और तुम जानोहो तथा शिव भगवान्, प्रल्हाद, मनुकी स्त्री, स्वयंभू मनु, ताके पुत्र, प्राचीनबर्हि, ऋभु, ध्रुवजी ॥ ४३ ॥

इक्ष्वाकु, ऐलराज, मुचकुंद,विदेह, गाधी, रघुराजा, अंबरीष,सगरराजा,नाहुष आदिक, मांधाता, अलर्क, शतधनु, पाछै रंतिदेव, भीष्मपितामह, बलि,
अमूर्तरय, दिलीप ॥ ४४ ॥ सौभरी, उतंक, शिबि, देवल, पिप्पलाद, उद्धव,पराशर, भूरिषेण और बिभीषण, हनूमान्, उपेंद्र, दत्तात्रेय, अर्जुन, आर्ष्टिषेण,
विदुर, श्रुतदेववर्य यह सब जान्ते हैं ॥ ४५ ॥ अधिक क्या यदि स्त्री शूद्र हूण शबर और पापी जीव तथा पशु पक्षीभी भगवान्के भक्त
मनुष्यौंके स्वभावकी शिक्षा धारण करैं तौ उनकी मायाकों जानसकै हैं और तरसकै हैं परन्तु जो उनमें प्रेम करै हैं उनके तो तरनेकी कथाही
क्या है ॥ ४६ ॥ भगवत्का स्वरूप वर्णन करैं हैं, कि सदा प्रशांत भयरहित ज्ञानघन, शुद्ध, बराबर कार्यकारणसे परे, आत्माको तत्व है, जहां

इक्ष्वाकुरैलमुचुकुन्दविदेहगाधिरघ्वम्बरीषसगरा गयनाहुषाद्याः ॥ मांधात्रलर्कशतधन्वनुरन्तिदेवा देवव्रतो बलिरमूर्तरयो
दिलीपः ॥ ४४ ॥ सौभर्युतङ्कशिबिदेवलपिप्पलादसारस्वतोद्धवपराशरभूरिषेणाः ॥ येऽन्ये बिभीषणहनूमदुपेन्द्रदत्तपार्थार्ष्टिषेणविदुरश्रुतदेववर्याः ॥४५ ॥ ते वै विदन्त्यतितरन्ति च देवमायां स्त्रीशूद्रहूणशबरा अपि पापजीवाः ॥
यद्यद्भुतक्रमपरायणशीलशिक्षास्तिर्यग्जना अपि किमु श्रुतधारणा ये ॥४६ ॥ शश्वत्प्रशान्तमभयं प्रतिबोधमात्रं शुद्धं
समं सदसतः परमात्मतत्वम् ॥ शब्दो न यत्र पुरुकारकवान्क्रियार्थो माया परैत्यभिमुखे च विलज्जमाना ॥ ४७ ॥
तद्वै पदं भगवतः परमस्य पुंसो ब्रह्मेति यद्विदुरजस्रसुखं विशोकम् ॥ सध्र्यङ्नियम्य यतयो यमकर्तहेतिं जह्युः स्वराडिव
निपानखनित्रमिन्द्रः ॥ ४८ ॥ स श्रेयसामपि विभुर्भगवान्यतोऽस्य भावस्वभावविहितस्य सतः प्रसिद्धिः ॥ देहे
स्वधातुविगमेऽनुविशीर्यमाणे व्योमेव तत्र पुरुषो न विशीर्यतेऽजः ॥ ४९ ॥

कारकवान् क्रिया कारकशब्द कुछ न कहि सकै हैं, जिनके सामने माया लज्जाके मारे न जाय है, दूर चली जाय है ॥४७॥ परम पुरुष ईश्वरको वहां
स्थान है जो ब्रह्म और निरंतर सुखरूप है जैसे धनहीन पुरुष धनी होकर दरिद्रताके समयके मजदुरी करनेके फांवडे कुदालादिकोंको त्याग
देताहै इसी प्रकार यतिजन मनको परमात्मामें लय कर अभेद ज्ञानके साधन त्याग देते हैं ॥ ४८ ॥ सो भगवान् सब कल्याणकारी
कर्मके फलदाता है, याते या विश्वकी भाव स्वभावाहित सत् पदार्थकी प्रसिद्धि है जैसे सब धातुनको वियोग होय तब ये देह नाश होय है परन्तु

सोऽयं तेभिहितस्तात भगवान्विश्वभावनः ॥ समासेन हरेर्नान्यदन्यस्मात्सदसच्च यत् ॥ ५० ॥ इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम् ॥ संग्रहोऽयं विभूतीनां त्वमेतद्विपुलीकुरु ॥ ५१ ॥ यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्भविष्यति ॥ सर्वात्मन्यखिलाधार इति संकल्प्य वर्णय ॥५२॥ मायां वर्णयतोऽमुष्य ईश्वरस्यानुमोदतः ॥ शृण्वतः श्रद्धया नित्यं माययाऽऽत्मा न मुह्यति ॥ ५३ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे ब्रह्मनारदसंवादे चतुर्विंशत्यवतारचरित्रवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मणा चोदितो ब्रह्मन्गुणाख्यानेऽगुणस्य च ॥ यस्मै यस्मै यथा प्राह नारदो देवदर्शनः ॥ १ ॥ एतद्वेदितुमिच्छामि तत्त्वं वेदविदां वर ॥ हरेरद्भुतवीर्यस्य कथा लोकसुमङ्गलाः ॥ २ ॥

आकाशकी नाईं जिन अजन्मा पुरुषका वियोग नहीं होता वेई भगवान् सम्पूर्ण फलोंके विभु और स्वयं देनेहारे हैं ॥ ४९ ॥ हे नारद ! विश्वके उत्पन्न करनेहारे भगवानकी यह कथा मैंने संक्षेपसे सुनाईहै इन ईश्वरसे अलग सत् असत् कछुभी नहीं है ॥५०॥ जो मोको भगवान्नें कहीं, सो ये भागवत नाम पुराण है और इनकी विभूतीनको संग्रह अब तुम विख्यात करो ॥ ५१ ॥ जैसे हरि भगवान्में मनुष्योंकी भक्ति होय, सबकी आत्मा सबके आधार ईश्वरको चिंतवन करकै तुम वर्णन करो ॥ ५२ ॥ इन ईश्वरकी मायाको जो वर्णन करै है जो इनकी प्रशंसा करैहै जो श्रद्धाकरकै नित्य सुनेहै वो माया करकै कदीभी मोहको नहीं प्राप्त होवै है * ॥ ५३ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां द्वितीयस्कंधे ब्रह्मनारदसंवादे चतुर्विंशत्यवतारचरित्रवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीराजा परीक्षित बोले कि हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मा करकै प्रेरित निर्गुण ईश्वरके गुणवर्णन करवेमें देवदर्शन नारदजी जो कहिते भए सो कहो ॥ १ ॥ हे विदांवर ! ये जानवेकी इच्छा है अद्भुतपराक्रमी ईश्वरकी कथा लोकमें सुंदर मंगल करवेवारी है ॥ २ ॥

---

* एक पंडितजी कथा वांच रहे थे उन्हौने कही कि बुरे काममें भी सच्च बोलनैसै डर नहीं होता, एक चोरनै कही कि में चोरी करने जाताहूं आज सत्यही बोलूंगा, देखूं क्या होता है ? यह विचार राजभवनमें चोरी करने गया, जभी द्वारपर द्वारपालैंने कहा कौन ? तब यह बोला चोर हूं, वे विचार करने लगे कि यह चोर होता तौ छिपता यह कोई बडा राज कर्मचारी है, यह विचारकर उसै जानै दिया इसी तरह वह राजाके स्थानपर बराबर चला गया, ओर उसै किसीनै न रोका, राजभवनमें जाय राजाके कपडे पहर हथियार लगाय राजाके अस्तबलमें गया, और घोडा कसकर खाटकी पट्ठीसै बांध सो रहा, प्रातःकाल राजाको तलाश हुई कि हमारे कपडे और हथियार कौन लेगया ? एक नौकरनै आकर राजासै कहा कि महाराज कोई आदमी आपका घोडा कसें आपके वस्त्र पहरे हथियार लगाये अस्तबलमें सोता है. राजा जाकर देखनै लगे तौ अपने वस्त्र हथियार और घोडा औरही प्रकारका देख कहने लगे कि यह हमारे नहीं कोई मनुष्य भूलसे चला आया है इसै जगाकर जानैदो चोर जागकर यह समाचार देखतेही भगवद्भक्त होगया सत्यकी और कथाकी ऐसी महिमा है.

हे महाभाग ! जैसे हम सर्वांतर्यामी श्रीकृष्णमें सबसे मन हटाय मन लगावैं या शरीरको त्याग करें सो कहो ॥३॥ जो श्रद्धाकरकै उनके चरित्र नित्य
श्रवण करै, ईश्वरकी लीलाको मुखसे कहैं, थोडेही कालमें भगवान् उनके हृदयमें प्रवेश करै हैं ॥ ४ ॥ कानके छिद्र करकै प्रविष्ट श्रीकृष्ण अपने
भक्तोंके हृदय कमलको मल नाश करदे हैं जैसे जलको मल शरद ऋतुके आयवेमें नष्ट होजायहै ॥ ५ ॥ सब क्लेश छुट जानेसै पवित्रात्मा पुरुष
श्रीकृष्णके पादमूलको नहीं त्यागैहैं, जैसे रस्ता चलवेवारो अपने घर आय सब दुःखसे छूटैहै ॥६॥ हे ब्रह्मन् ! त्वचा मांस रुधिर स्नायु मेद मज्जा हाड
इन सप्त धातुओंकी देह रहित ईश्वरको पंचभूत देह धारनो अपनी इच्छासें है, अथवा किसी हेतुसें शरीर धारैहैं, सो जैसो है तैसो आप जानतेहो सो

कथयस्व महाभाग यथाहमखिलात्मनि ॥ कृष्णे निवेश्य निःसङ्गं मनस्त्यक्ष्ये कलेवरम् ॥ ३ ॥ शृण्वतः श्रद्धया नित्यं
गृणतश्च स्वचेष्टितम् ॥ कालेन नातिदीर्घेण भगवान्विशते हृदि ॥ ४ ॥ प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेण स्वानां भावसरोरुहम् ॥
धुनोति शमलं कृष्णः सलिलस्य यथा शरत् ॥ ५ ॥ धौतात्मा पुरुषः कृष्णपादमूलं न मुञ्चति ॥ मुक्तसर्वपरिक्लेशः पान्थः
स्वशरणं यथा ॥ ६ ॥ यदधातुमतो ब्रह्मन् देहारम्भोऽस्य धातुभिः ॥ यदृच्छया हेतुना वा भवन्तो जानते यथा ॥ ७ ॥
आसीद्यदुदरात्पद्मं लोकसंस्थानलक्षणम् ॥ यावानयं वै पुरुष इयत्ताऽवयवैः पृथक् ॥ ८ ॥ तावानसाविति प्रोक्तः संस्था
ऽवयववानिव ॥ शुकार्य ब्रूहि तत्सर्वं यच्च न ज्ञायते मया ॥ ९ ॥ अजः सृजति भूतानि भूतात्मा यदनुग्रहात् ॥ ददृशे
येन तद्रूपं नाभिपद्मसमुद्भवः ॥ १० ॥ स चापि यत्र पुरुषो विश्वस्थित्युद्भवाप्ययः ॥ मुक्त्वाऽऽत्ममायां मायेशः शेते
सर्वगुहाशयः ॥ ११ ॥ पुरुषावयवैर्लोकाः सपालाः पूर्वकल्पिताः ॥लोकैरमुष्यावयवाः सपालैरिति शुश्रुम ॥ १२ ॥

हमसै कहो ॥ ७ ॥ सब लोककी रचनारूप कमल जिनके उदरसे होतोभयो, जैसे ये पुरुष है जैसे अवयवोंसे पृथक् पृथक् है, इतने हैं, ये सब कहो
॥ ८ ॥ हे शुकाचार्य ! उस पुरुषके अवयवस्थिति जो हमसे न जानी जायहै सो सब तुम कहो ॥ ९ ॥ नाभिकमलसे जन्मे ब्रह्माजी जिनकी कृपासे
प्राणियोंको सृजत हैं और उन्हींके अनुग्रहसे उनके स्वरूपको जान्ते हैं ॥ १० ॥ सोई ईश्वर पुरुष विश्वकी उत्पात्ति पालन नाश करै है मायाके
ईश अपनी मायाको त्यागकर सबके अंतर्यामी होय भीतर सोए रहितेहैं ॥ ११ ॥ हमने आपहीसै सुनाहै कि पुरुषके अवयवोंसे लोकपाल

सहित लोकोंकी कल्पना हुई है तथा लोकपालोंसहित लोकोंसे इनके अवयवोंकी कल्पना हुई है ॥ १२ ॥ जैसा कल्प है, जैसा विकल्प है, जैसे कालको अनुमान करो जायहै, भूत भविष्यत् वर्त्तमान आयुको प्रमाण जो है सो कहो ॥ १३ ॥ कालकी जो गति छोटी मोटी है, जितनी कर्मकी गतियें हैं जैसी गति होयहै सो हे द्विजसत्तम ! हे शुक्राचार्य ! आप कहो ॥ १४ ॥ सत्त्वादि गुणोंको देवादिरूप शरीरकी इच्छा करवेवारे जीवनके मध्यमें कौन जीव कैसे पुण्य पाप कर्मोंको समूहसे कैसे शरीरको प्राप्त होय सो कहो ॥ १५ ॥ भूमि, पाताल सब दिशा, आकाश, ग्रह, नक्षत्र, पर्वत, नदियें, समुद्र, द्वीप, इनकी उत्पत्ति इनके वासी जो होय वो कहो ॥ १६ ॥ या ब्रह्माण्डको प्रमाण, बाहिर भीतरको भेद, महात्मानके चरित्र, वर्ण आश्रमको निर्णय, तिन तिन स्वभावोंसे वर्णआश्रमको निर्द्धार सो कहो ॥ १७ ॥ अत्यंत आश्चर्यदायक श्रीहरिके अवतारोंके चरित्र, और युग, और युगनके प्रमाण, और युगयुगमें जो धर्म होय सो कहो ॥ १८ ॥ मनुष्योंके साधारण धर्म कहो, और जो वर्णाश्रमके बंधनसें करने पडे वे धर्म कहो, और व्यवहारियोंके धर्म कहो, और प्रजापालनके अधिकारी राजर्षीनके धर्म कहो, सब जीवमात्रको आपदामें करवे योग्य धर्म कहो ॥ १९ ॥ तत्वोंकी संख्या उनके लक्षण, अथवा कोई हेतुसे उनके लक्षण जैसे होय सो कहो, परम पुरुषके पूजनकी विधि अष्टांगयोगकी विधि, ब्रह्मविद्या सब कहो ॥ २० ॥

यावान्कल्पो विकल्पो वा यथा कालोऽनुमीयते ॥ भूतभव्यभवच्छब्द आयुर्मानं च यत्सतः ॥ १३ ॥ कालस्यानुगति-
र्या तु लक्ष्यतेऽण्वी बृहत्यपि ॥ यावत्यः कर्मगतयो यादृशीर्द्विजसत्तम ॥ १४ ॥ यस्मिन्कर्मसमावायो यथा येनोपगृ-
ह्यते ॥ गुणानां गुणिनां चैव परिणाममभीप्सताम् ॥ १५ ॥ भूपातालककुब्व्योमग्रहनक्षत्रभूभृताम् ॥ सरित्समुद्रद्वी-
पानां संभवश्चैतदोकसाम् ॥ १६ ॥ प्रमाणमण्डकोशस्य बाह्याभ्यन्तरभेदतः ॥ महतां चानुचरितं वर्णाश्रमविनिश्चयः
॥ १७ ॥ अवतारानुचरितं यदाश्चर्यतमं हरेः ॥ युगानि युगमानं च धर्मो यश्च युगे युगे ॥ १८ ॥ नृणां साधारणो धर्मः
सविशेषश्च यादृशः ॥ श्रेणीनां राजर्षीणां च धर्मः कृच्छ्रेषु जीवताम् ॥ १९ ॥ तत्त्वानां परिसंख्यानं लक्षणं हेतुलक्षणम् ॥
पुरुषाराधनविधिर्योगस्याऽऽध्यात्मिकस्य च ॥ २० ॥

योगीश्वरोंके ऐश्वर्यकी गति, अर्चिरादि मार्गके योगियोंके लिंगदेहके भंगकी गति, ऋगादिवेद, आयुर्वेदादिक, धर्मशास्त्रोंकी गति, इतिहास पुराणोंका स्वरूप ये सब कहो ॥ २१ ॥ सब जीवनकी प्रलय स्थिति महाप्रलय वैदिककर्म पूर्तकर्म ये हैं कि " वापीकूपतडागादिदेवतायतयानि च ॥ अन्नप्रदानमारामः पूर्तमित्यभिधीयते ॥१॥" बावडी कूप तलाव आदि देवमंदिर बनावनो सदा अन्नदान करनों ईश्वरके निमित्त बगीचा लगावनों इनको पूर्त कहैहैं कामना करके कर्म करनों अर्थ धर्म कामकी विधि ये सब कहो ॥ २२ ॥ उपाधि लीन जीवनके धर्म, उनकी रचना, पाखण्डकी उत्पत्ति, जीवको बंधमोक्ष स्वस्वरूपमें स्थित होनों कहो ॥ २३ ॥ जैसे स्वाधीन भगवान् अपनी मायाकरके क्रीडा करैं हैं, कभी मायाकों त्याग करै है

योगेश्वरैश्वर्यगतिर्लिङ्गभङ्गस्तु योगिनाम् ॥ वेदोपवेदधर्माणामितिहासपुराणयोः ॥ २१ ॥ संप्लवः सर्वभूतानां विक्रमः प्रतिसंक्रमः ॥ इष्टापूर्तस्य काम्यानां त्रिवर्गस्य च यो विधिः ॥ २२ ॥यश्चानुशायिनां सर्गः पाखण्डस्य च संभवः ॥ आत्मनो बन्धमोक्षौ च व्यवस्थानं स्वरूपतः ॥ २३ ॥ यथात्मतन्त्रो भगवान्विक्रीडत्याऽऽत्ममायया ॥ विसृज्य वा यथा मायामुदास्ते साक्षिवद्विभुः ॥ २४ ॥ सर्वमेतच्च भगवान्पृच्छते मेऽनुपूर्वशः ॥ तत्त्वतोऽर्हस्युदाहर्तुं प्रपन्नाय महामुने ॥ २५ ॥ अत्र प्रमाणं हि भवान्परमेष्ठी यथात्मभूः ॥ परे चेहानुतिष्ठन्ति पूर्वेषां पूर्वजैः कृतम् ॥ २६ ॥ न मेऽसवः परायन्ति ब्रह्मन्ननशनादमी ॥ पिबतोऽच्युतपीयूषमन्यत्र कुपिताद्द्विजात् ॥ २७ ॥ सूत उवाच ॥ स उपामन्त्रितो राज्ञा कथायामिति सत्पतेः ॥ ब्रह्मरातो भृशं प्रीतो विष्णुरातेन संसदि ॥ २८ ॥

जैसे साक्षीकी नाईं विभु विराजते हैं सो कहो ॥२४॥ क्रमसे सब ये आप सिद्धांतसे मोसे कहिवेकों योग्य हो, हे महामुने! मैं तुमारे आश्रित हूं ॥२५॥ जैसे नारदजीको ब्रह्माजीका वचन इसी प्रकार हमें इस विषयमें आपका वचन प्रमाण है क्यों कि दूसरे लोग तौ पूर्वजोंकेभी पूर्वजोंके किये कर्मका अनुष्ठान करते हैं ॥ २६ ॥ द्विजकोपसे व्याकुल तोकों इतने प्रश्नके सुनवेको कहां अवकाश तहां कहै है, हे ब्रह्मन् ! मेरे प्राण भूख प्याससे नहीं निकसेंगे, भगवत्कथामृत पान करवेवारे मोकों कुपित द्विजके सर्पको भय नैकवी नहीं है ॥ २७ ॥ सूतजी बोले कि संतोंके पति हरिकी कथामें ऐसे राजाने प्रार्थना कीनी, तब सभामें राजा परीक्षित्से शुकदेवजी बहुत प्रसन्न होतेभए ॥ २८ ॥

वेदके समान भागवत नाम पुराण कहितेभए, जो ब्रह्मकल्प आनेके समय ब्रह्मासें भगवान्ने कहीही ॥ २९ ॥ पांडूनमें श्रेष्ठ परीक्षितनें जो जो पूछा सो सब संक्षेप विस्तारसे क्रमपूर्वक व्याख्यान करवेको प्रारंभ करते भए ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कंधे राजकृतप्रश्नविधिर्नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! अनुभवकी आत्मा परमेश्वरकों देहको संवंध अपनी मायाके बिना नहीं होयहै जैसे अनायास स्वप्नके द्रष्टाको सुपनेके समयको देहसंबन्ध नहीं होयहै ॥ १ ॥ बहुतरूपवारी मायासे आत्मा अनेक रूपकासा भासे है या मायाके गुणमें रम-

प्राह भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ ब्रह्मणे भगवत्प्रोक्तं ब्रह्मकल्प उपागते ॥ २९ ॥ यद्यत्परीक्षिदृषभः पाण्डूनामनुपृच्छति ॥ आनुपूर्व्येण तत्सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वितीयस्कन्धे राजकृतप्रश्नविधिर्नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आत्ममायामृते राजन्परस्यानुभवात्मनः ॥ न घटेतार्थसंबन्धः स्वप्नद्रष्टुरिवाञ्जसा ॥ १ ॥ बहुरूप इवाभाति मायया बहुरूपया ॥ रममाणो गुणेष्वस्या ममाहमिति मन्यते ॥ २ ॥ यर्हि वाव महिम्नि स्वे परस्मिन्कालमाययोः ॥ रमेत गतसंमोहस्त्यक्त्वोदास्ते तदोभयम् ॥ ३ ॥ आत्मतत्त्वविशुद्ध्यर्थं यदाह भगवानृतम् ॥ ब्रह्मणे दर्शयन्रूपमव्यलीकव्रतादृतः ॥ ४ ॥ स आदिदेवो जगतां परो गुरुः स्वधिष्ण्यमास्थाय सिसृक्षयैक्षत ॥ तां नाध्यगच्छद्दृशमत्र संमतां प्रपञ्चनिर्माणविधिर्यया भवेत् ॥ ५ ॥

ण करके मेरो है, हम है ऐसे आप माने है ॥२॥ जब अज्ञान और मोह निवृत्त होजाताहै तब यह प्रकृति पुरुषसे परे निजानन्दमें जा रमण करैहैं, तब अहंकार ममकार दोनोंको त्यागकर साक्षीकी नाई रहै है ॥३॥ जीवके स्वरूप जान्नेके निमित्त ब्रह्माजीने कपटरहित हो भगवान्की सेवा की तब भगवान्ने दर्शन दे जो ब्रह्माजीसै आत्माका स्वरूप वर्णन किया वह आप सुनिये ॥ ४ ॥ सो आदिदेव जगत्के परम गुरु ब्रह्माजी अपने कमलमें विराजमान होयकर जब जगत् रचवेकी इच्छा करतेभए तब या संसारके रचवेके योग्य दृष्टिको नहीं प्राप्त होते भए, जासें या विश्वके रचवेकी विधि होय ॥५॥

एक समय ब्रह्माजी चिंतवन करवे लगे तब वा जलमें दोबार तप करो तप करो ये सुनो ककारसें लेके मकारपर्यंत अक्षरोंकी स्पर्श संज्ञा है इनमें सोलवों
अक्षर तो (त) है और इक्कीसवो (प) है दोनो मिलके (तप) बने है हे राजन्! जिनको किसी वस्तुकी चाहना नहीं ऐसे मुनीनको वो धन है यासै
तपोधन मुनि प्रसिद्ध हैं ॥६॥ तप करो ये सुन उन वक्ताकी देखवेकी इच्छाकरके ब्रह्माजीनें सब दिशानमें देखो तो तहां कोई नहीं देखो तब कमलपर
वैठकर अपनो हित विचार तप करवेको मनमें धारण करतेभए ॥ ७ ॥ सफल दर्शन पवन मन जीत कर्मइंद्रियें और ज्ञानइंद्रियें जीत तप करवेवारेनमें
अति तपस्वी ब्रह्माजी सब लोकको प्रकाशक तप दिव्य हजार वर्षतक करते भए ॥ ८ ॥ श्रेष्ठ जासे परे और कोई नहीं क्लेश मोह संभ्रम रहित

स चिन्तयन्द्व्यक्षरमेकदाऽम्भस्युपाशृणोद्द्विर्गदितं वचो विभुः ॥स्पर्शेषु यत्षोडशमेकविंशं निष्किञ्चनानां नृप यद्धनं
विदुः ॥ ६ ॥ निशम्य तद्वक्तृदिदृक्षया दिशो विलोक्य तत्राऽन्यदपश्यमानः ॥ स्वधिष्ण्यमास्थाय विमृश्य तद्धितं
तपस्युपादिष्ट इवाऽऽदधे मनः ॥७॥ दिव्यं सहस्राब्दममोघदर्शनो जितानिलात्मा विजितोभयेन्द्रियः ॥अतप्यत स्माऽखिललोकतापनं
तपस्तपीयांस्तपतां समाहितः ॥ ८ ॥ तस्मै स्वलोकं भगवान्सभाजितः संदर्शयामास परं नयत्परम् ॥
व्यपेतसंक्लेशविमोहसाध्वसं स्वदृष्टवद्भिर्विबुधैरभिष्टुतम् ॥ ९ ॥ प्रवर्तते यत्र रजस्तमस्तयोः सत्वं च मिश्रं
नच कालविक्रमः ॥ न यत्र माया किमुतापरे हरेरनुव्रता यत्र सुरासुरार्चिताः ॥ १० ॥ श्यामावदाताः शतपत्रलोचनाः
पिशङ्गवस्त्राः सुरुचः सुपेशसः ॥ सर्वे चतुर्बाहव उन्मिषन्मणिप्रवेकनिष्काभरणाः सुवर्चसः ॥ ११ ॥

सत्पुण्यवान्, आत्मवेत्ता, अपने दर्शन करवेवारेनकरके स्तुत, प्रसन्न होय भगवान् ब्रह्माके लिये निजवैकुंठ लोक दिखावतेभए ॥ ९ ॥ जा वैकुंठमें
राजस तामस नहीं, शुद्ध सत्व जहां वर्तै, रज तम मिलो सत्वगुण जहां नहीं, कालको पराक्रम न चलै, जहां माया नहीं, रागादिककी तो
कहा चलाई, जहां देव असुरोंसे पूजित भगवतके पार्षद हैं ॥ १० ॥ पार्षदनको वर्णन करैहै कि, श्यामसुंदर, उज्ज्वलरूप, कमलसमान नेत्र, पीरे
पीतांबर धारे, अतिसुंदर, अतिसुकुमार, अतिप्रभावाले, उत्तम मणिजटित आभरण धारण करैहैं अति तेजस्वी सब पार्षद हैं ॥ ११ ॥

मूंगा, वैडूर्य कमलनाल समान तेजस्वी सब ओरसे देदीप्यमान, कुंडल, मुकुट मालाधारी, सामवेद गाय रहे, सर्वेश्वरको सब ओरसे नमस्कार करते, कहीं हरिस्मरण करैहै, कहीं प्रशंसा करैहै कहीं भगवद्गुण वर्णन करैहै, ऐसे भगवत्पार्षद हैं ॥ १२ ॥ महात्मानके प्रकाशमान शोभित विमानोंकी पंक्तियों करके श्रीवैकुंठलोक सब ओरसे विशेषकरिके प्रकाशमान होय रह्यो है, उत्तम स्त्रियोंकी कांति करकै प्रकाशमान हैं, जैसे विजुरी सहित मेघमालासे आकाश सोहे, विजुरीकी नाईं तो स्त्रियें हैं मेघपंक्तिकी नाईं विमान हैं, आकाशतुल्य वैकुंठलोक है ॥ १३ ॥ जहां वैकुंठमें रूपवती महालक्ष्मीजी नारायणके चरणको बहुत विभूतियों करकै सेवा करैहैं झूलामें झूलती जायहै, वसंतके अनुचर भ्रमर अनेक

प्रवालवैडूर्यमृणालवर्चसः परिस्फुरत्कुण्डलमौलिमालिनः॥गायन्ति सामानि नमन्ति वै विभुं स्मरन्ति नन्दन्ति गृणन्ति पार्षदाः॥ १२ ॥ भ्राजिष्णुभिर्यः परितो विराजते लसद्विमानावलिभिर्महात्मना॥ विद्योतमानः प्रमदोत्तमाद्युभिः सविद्युदभ्रावलिभिर्यथा नभः॥ १३ ॥ श्रीर्यत्र रूपिण्युरुगायपादयोः करोति मानं बहुधा विभूतिभिः ॥ प्रेङ्खं श्रिता या कुसुमाकरानुगैर्विगीयमाना प्रियकर्म गायती ॥ १४ ॥ ददर्श तत्राखिलसात्वतां पतिं श्रियः पतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम्॥ सुनन्दनन्दप्रबलार्हणादिभिः स्वपार्षदमुख्यैः परिसेवितं विभुम्॥ १५ ॥ भृत्यप्रसादाभिमुखं दृगासवं प्रसन्नहासारुणलोचनाननम्॥ किरीटिनं कुण्डलिनं चतुर्भुजं पीताम्बरं वक्षसि लक्षितं श्रिया ॥ १६ ॥ अध्यर्हणीयासनमास्थितं परं वृतं चतुःषोडशपञ्चशक्तिभिः ॥युक्तं भगैः स्वैरितरत्र चाध्रुवैः स्व एव धामन्रममाणमीश्वरम् ॥१७॥

प्रकारसे गुंजार करैहैं, अपनेको प्रिय हरिके चरित्रनको गाती जांयैहैं ॥ १४ ॥ वा वैकुंठमें सब भक्तनके पति श्रीभूलीलानायक यज्ञपति जगत्पति सुनंद नंद प्रबल अर्हण आदि अपने मुख्य पार्षदोंसै सेवित समर्थ श्रीमन्नारायणको ब्रह्माजी दर्शन करतेभए ॥ १५ ॥ भृत्यनको और प्रसन्नतासै मुख किये मदकी नांईं हर्षकारी नेत्र प्रसन्न हांसीसे नेत्र मुख लाल हो रह्यो, किरीट कुंडलधारी, चतुर्भुज, पीतांबर पहिरे, हृदयमें श्रीजी शोभायमान होरही हैं ॥ १६ ॥ अत्यंत पूजन योग्य सिंहासनपर विराजमान परब्रह्म प्रकृतिपुरुष महत्तत्व अहंकार ये चार और ग्यारह इंद्रियें पंच महाभूत यह सौलह और पांच तिनकी मात्रा इन शक्तियोंकरकै युक्त अपने सब स्वाभाविक ऐश्वर्य करकै युक्त योगियोंको अध्रुव

आगामी ऐश्वर्यसहित अपने धाममें सदा रमण करनेहारे ईश्वरके ॥ १७ ॥ दर्शनके आनंदसे प्रसन्न अंतःकरण रोमांचित्त देह, प्रेमभारसे आसू नेत्रमें भर ब्रह्माजी इन ईश्वरके चरणकमलको नमस्कार करते भए जिनको दर्शन परमहंसोंके ज्ञानमार्गसे होयहै ॥ १८ ॥ प्रसन्न होकर प्रजाको रचनेके निमित्त अपने सन्मुख उपस्थित हुए आज्ञा करने योग्य ब्रह्माजीको देखकर मंद मुसकानकी वाणीसे प्रसन्नमन हो ईश्वर अपने हाथसे उनका हाथ पकडकर बोले ॥ १९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे वेदगर्भ ! हे ब्रह्मन् ! जगत् रचवेकी इच्छा करके तुमनें हमें बहुत प्रसन्न कीनो बोहोते तप कीनों जो मूर्ख अर्थात् (मूढ) योगी जन हैं उनसे मैं प्रसन्न नहीं होऊंहूं॥२०॥ आपको कल्याण होय, वरदाता मोसे जो इच्छा होय वो वर मांगो, हे ब्रह्मन् ! कल्याणकी प्राप्तिमें पुरुषको तबतक श्रम है जबतक हमारा दर्शन न होवे, अर्थात् अब मेरा दर्शन तुमको हुआ तो अब तुमको कोई श्रम नहीं है, जो इच्छा हो सो मांगो ॥ २१ ॥ मेरे मनकी इच्छाको ये प्रभाव है कि मेरे लोकको तुम्हें दर्शन भयो, ये मनमें मत विचारयो कि मैंने तपके बलसे ये करो, ऐसे स्वतंत्र मत होइयो, मेरी कृपासे ये दर्शन तुमको भयो, जो सुनके एकांतमें परम तप करो ॥ २२ ॥ जब कर्ममें तुम विशेष करके मोहित भए, तब हमनें तुमसे कही हे पापरहित ! तप मेरो हृदय है, साक्षात् तप मेरो देह है, तप मेरी भितरकी शक्ति है " यस्य ज्ञानमयं तपः " इति श्रुतेः ॥ २३ ॥ तपसें या विश्वको रचेहैं, फेर तपसें संहार करै हैं तपसें विश्वको धारण करै हैं, ये तपरूप बडो

तद्दर्शनाह्लादपरिप्लुतान्तरो हृष्यत्तनुः प्रेमभराश्रुलोचनः ॥ ननाम पादाम्बुजमस्य विश्वसृग्यत्पारमहंस्येन पथाऽधिगम्यते ॥ १८ ॥ तं प्रीयमाणं समुपस्थितं तदा प्रजाविसर्गे निजशासनार्हणम् ॥ बभाष ईषत्स्मितशोचिषा गिरा प्रियः प्रियं प्रीतमनाः करे स्पृशन् ॥ १९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वयाऽहं तोषितः सम्यग्वेदगर्भ सिसृक्षया ॥ चिरं भृतेन तपसा दुस्तोषः कूटयोगिनाम् ॥ २० ॥ वरं वरय भद्रं ते वरेशं माऽभिवाञ्छितम् ॥ ब्रह्मञ्छ्रेयः परिश्रामः पुंसो मद्दर्शनावधिः ॥ २१ ॥ मनीषितानुभावोऽयं मम लोकावलोकनम् ॥ यदुपश्रुत्य रहसि चकर्थ परमं तपः ॥२२॥ प्रत्यादिष्टं मया तत्र त्वयि कर्मविमोहिते ॥ तपो मे हृदयं साक्षादात्माऽहं तपसोऽनघ ॥ २३ ॥ सृजामि तपसैवेदं ग्रसामि तपसा पुनः ॥ बिभर्मि तपसा विश्वं वीर्यं मे दुश्चरं तपः ॥ २४ ॥

भारी पराक्रम है, बडो दुश्चर है तप करनो बडो कठिन है ॥ २४ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे भगवन् ! आप सब जीवमात्रके अधिष्ठाता सबमें स्थित हो अप्रतिहत ज्ञानसे जो करवेकी इच्छा है ताहि तुम जानों हो ॥ २५ ॥ यद्यपि ऐसे हैं तथापि हे नाथ ! आप मांगनेहारे मनुष्यको याचित पदार्थ देओ " नाथृ नाधृ याच्ञोपतापैश्वर्याशीःषु " कि तुमारे निर्गुण सूक्ष्म स्थूल रूपको जैसे जानूं सो कहो ॥ २६ ॥ जैसे आप मायाके संयोगसे नानाशक्तियोंसे वर्द्धित विश्वको संहार, रचन और पालन ब्रह्मादिरूप धारकर क्रीडा करोहो ॥ २७ ॥ हे अमोघसंकल्प ! जैसे मकडी अपने तंतुओंसे आप फैल जायहै, तैसें आप क्रीडा करोहो, हे माधव ! सृष्टिके रचवेकी बुद्धि मोमें तुम धारण करो ॥ २८ ॥ आपसे शिक्षित हम निरालस्य होकर तुमारे अनुग्रहसे प्रजासर्गकी चेष्टा करेंगे तौ अहंकारादिके बंधनमें न पडेंगे ॥ २९ ॥ हे ईश ! तुमनें लौकिक सखाकी नांई करस्पर्शादिक करके मेरो सन्मान कीनो सो प्रजाके रचवेके रूप कर्ममें अव्याकुल होकर उत्तममध्यमादि भेद करके जीवको विभाग करनेमें अजमानी मोकों ये महामद न होय कि में सृष्टिका कर्ता हूं यह वर दीजिये ॥ ३० ॥ श्रीभगवान् बोले कि मेरो शास्त्रोक्त ज्ञान परम गोप्य है, वो अनुभवसहित भक्तिसहित सब साधनसहित है सो हम कहें हैं तुम ग्रहण करो ॥ ३१ ॥ जैसा हमारा स्वरूप जैसे हम है, और जैसे सत्तावान् हैं, जो रूप गुण कर्म

ब्रह्मोवाच ॥ भगवन्सर्वभूतानामध्यक्षोऽवस्थितो गुहाम् ॥ वेद ह्यप्रतिरुद्धेन प्रज्ञानेन चिकीर्षितम् ॥ २५ ॥ तथापि
नाथमानस्य नाथ नाथय नाथितम् ॥ परावरे यथा रूपे जानीयां ते त्वरूपिणः ॥२६॥ यथाऽऽत्ममायायोगेन नानाशक्त्युपबृंहितम् ॥ विलुम्पन्विसृजन्गृह्णन्बिभ्रदात्मानमात्मना ॥२७॥ क्रीडस्यऽमोघसंकल्प ऊर्णनाभिर्यथोर्णुते ॥
तथा तद्विषयां धेहि मनीषां मयि माधव ॥२८॥ भगवच्छिक्षितमहं करवाणि ह्यतन्द्रितः ॥ नेहमानः प्रजासर्गं
बध्येयं त्वदनुग्रहात् ॥ २९ ॥ यावत्सखा सख्युरिवेश ते कृतः प्रजाविसर्गे विभजामि भो जनम् ॥ अविक्लवस्ते
परिकर्मणि स्थितो मा मे समुन्नद्धमदोऽजमानिनः ॥३०॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञानसमन्वितम्॥
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया ॥ ३१ ॥ यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः ॥ तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥ ३२ ॥

39

हमारे हैं, तैसेही तत्वनको विशेषकरकै ज्ञान मेरी कृपासे तुमकों होय ॥ ३२ ॥ या सृष्टिसे पहिले हमही हे, स्थूल सूक्ष्म इनको परम कारक कुछभो नहींहो, पाछे सृष्टिके उपरांतभी हमही हैं, जो ये विश्व है सो हमही हैं, जो पीछे बाकी बचेगो सोभी हमही हैं, यासें ये जानो गयो कि अनादि अनंत अद्वितीय परिपूर्ण हमही हैं ॥३३॥ अर्थके विना जो जो प्रतीत होय है और आत्माके प्रकाश होनेपर जो प्रतीत नहीं प्रतीतहोय है वो ईश्वरकी माया जानों, जैसे दो चंद्रादि प्रतीत होय हैं, जैसे राहु ग्रहमंडलमें स्थित है, परंतु दीखे नहीं हैं ग्रहणके द्वारा दीखे है, तैसेई ये मायाकार्योंके द्वारा दीखे हैं साक्षात् मालुम नहीं पडैहै ॥ ३४ ॥ जैसे पंच महाभूत ऊंचे नीचे जीव मात्रमें प्रविष्ट अप्रविष्टकी नाईं मालूम पडै हैं, तैसेई हम उनमें मालूम नहीं पडे हैं ॥ ३५ ॥ आत्माके तत्व जानवेवारेको इतनोंही अन्वयव्यतिरेक करके जान्ने योग्य है जो सब ठौर सदा है वो ईश्वर है “ कार्येषु कारणत्वेनानुवृत्तिरन्वयः ” अर्थ-कार्योंमें कारणभावकरके जो सदा वर्तै वाको नाम अन्वय है “ कारणावस्थायां च तेभ्यो व्यतिरेकः ” अर्थ–कारण अवस्थामें उनसे पृथक् रहै वाको नाम व्यतिरेक है ॥ ३६ ॥ परमसमाधिसें या मतमें तुम स्थित रहोगे तो तुम कल्पोंमें जो अनेकप्रकारकी सृष्टि है कदीभी हम कर्ता हैं ऐसे अभिमानसे मोहकों प्राप्त न होओगे ॥ ३७ ॥ शुकदेवजी बोले कि सब जननमें श्रेष्ठ ब्रह्माकों अजन्मा श्रीहरि ईश्वर ऐसे कहिकर ब्रह्माके देखते भए अपनो रूप अंतर्द्धान करतेभए ॥ ३८ ॥ अंतर्द्धान भए अच्युत हरिके अर्थ हाथ जोडकर, ब्रह्माजी सब जीवमय या विश्वको पहिले कल्पकी नाईं रचतेभए ॥ ३९ ॥

अहमेवाऽऽसमेवाऽग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् ॥ पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥३३॥ ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ॥ तद्विद्यादात्मनो मायां यथा भासो यथा तमः ॥३४॥ यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ॥ प्रविष्टान्यऽप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥३५॥ एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः ॥ अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात्सर्वत्र सर्वदा ॥३६॥ एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना ॥ भवान्कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥ ३७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ संप्रदिश्यैवमजनो जनानां परमेष्ठिनम् ॥ पश्यतस्तस्य तद्रूपमात्मनो न्यरुणद्धरिः ॥ ३८ ॥ अन्तर्हितेन्द्रियार्थाय हरये विहिताञ्जलिः ॥ सर्वभूतमयो विश्वं ससर्जेदं स पूर्ववत् ॥ ३९ ॥

प्रजापतिर्धर्मपतिरेकदा नियमान्यमान् ॥ भद्रं प्रजानामन्विच्छन्नातिष्ठत्स्वार्थकाम्यया ॥४०॥ तं नारदः प्रियतमो रिक्थादानामनुव्रतः ॥ शुश्रूषमाणः शीलेन प्रश्रयेण दमेन च ॥ ४१ ॥ मायां विविदिषन्विष्णोर्मायेशस्य महामुनिः ॥ महाभागवतो राजन्पितरं पर्यतोषयत् ॥४२॥ तुष्टं निशम्य पितरं लोकानां प्रपितामहम् ॥ देवर्षिः परिपप्रच्छ भवान्यन्माऽनुपृच्छति ॥ ४३ ॥ तस्मा इदं भागवतं पुराणं दशलक्षणम् ॥ प्रोक्तं भगवता प्राह प्रीतः पुत्राय भूतकृत्॥४४॥ नारदः प्राह मुनये सरस्वत्यास्तटे नृप ॥ ध्यायते ब्रह्म परमं व्यासायाऽमिततेजसे ॥ ४५ ॥ यदुताऽहं त्वया पृष्टो वैराजात्पुरुषादिदम् ॥ यथाऽऽसीत्तदुपाख्यास्ये प्रश्नानन्यांश्च कृत्स्नशः ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते म० द्वितीयस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

प्रजापति धर्मपति ब्रह्माजी एकसमय यमनियमनको प्रजाके कल्याणकी इच्छाकरकै और अपने स्वार्थकी कामनाकरकै रचतेभये, यमादिकमें आप स्थित होतेभए ॥ ४० ॥ पुत्रोंमें अति प्रिय भगवानके परम भक्त महामति पिताके सेवक आज्ञाकारी शील नम्रता इन्द्रिय दमन कर नारदजी ॥४१॥ हे राजन्! मायाके ईश्वर व्यापक विष्णुकी माया जानवेकी इच्छाकर महामुनि महाभागवत नारदजी पिताको प्रसन्न करतेभए "वेवेष्टीति विष्णुः" सबमें व्यापै उनको नाम विष्णु है व्याकरणमें 'विष्लृ व्याप्तौ' धातु है इससे विष्णुशब्द व्युत्पादित होताहै ॥ ४२ ॥ सब लोकके परदादे ब्रह्माकों प्रसन्न जानकर नारदजी यही पूछतेभए जो आपने हमसे पूछो ॥ ४३ ॥ नारदजीके वचनोंसे परम प्रसन्न होकर ब्रह्माजीने दशलक्षणवाला भागवत पुराण जो भगवानने उन्हें सुनायाथा नारदजीके प्रति वर्णन किया ॥ ४४ ॥ हे राजन्! वही भागवत पुराण सरस्वतीके तटपर बैठे परब्रह्मके ध्यानमें तत्पर महातेजस्वी व्यासजीको नारदजीने सुनाया ॥४५॥ हे नृप! जो तुमने पूछी कि विराट् पुरुषसे ये विश्व कैसे होय है, और तुमारे करेंभए सब प्रश्न और औरभी बातें जैसी है तैसी कहेंगे ॥४६॥ इति श्रीभागवते महापुराणे द्वि०स्कं० चतुःश्लोकीभागवतवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

42

श्रीशुक उवाच ॥ अत्र सर्गो विसर्गश्च स्थानं पोषणमूतयः ॥मन्वन्तरेशानुकथा निरोधो मुक्तिराश्रयः ॥ १ ॥ दशमस्य विशुद्धयर्थं नवानामिह लक्षणम् ॥ वर्णयन्ति महात्मानः श्रुतेनाऽर्थेन चाञ्जसा ॥ २ ॥ भूतमात्रेन्द्रियधियां जन्म सर्ग उदाहृतः ॥ ब्रह्मणो गुणवैषम्याद्विसर्गः पौरुषः स्मृतः ॥३॥ स्थितिर्वैकुण्ठविजयः पोषणं तदनुग्रहः ॥ मन्वन्तराणि सद्धर्म ऊतयः कर्मवासनाः ॥४॥ अवतारानुचरितं हरेश्चास्यानुवर्तिनाम् ॥ पुंसामीशकथाः प्रोक्ता नानाख्यानोपबृंहिताः ॥ ५ ॥ निरोधोऽस्यानुशयनमात्मनः सह शक्तिभिः ॥ मुक्तिर्हित्वाऽन्यथारूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः ॥ ६॥ आभासश्च निरोधश्च यतश्चाऽध्यवसीयते ॥ स आश्रयः परं ब्रह्म परमात्मेति शब्द्यते ॥ ७ ॥ योऽध्यात्मिकोऽयं पुरुषः सोऽसावेवाधिदैविकः ॥ यस्तत्रोभयाविच्छेदः पुरुषो ह्याधिभौतिकः ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि इस भागवतमें सर्ग विसर्ग स्थान पोषण ऊति मन्वंतर ईशानुकथा निरोध मुक्ति आश्रय ॥ १ ॥ दशमो आश्रय लक्षणकी विशेष शुद्धिके अर्थ ९ नौनको लक्षण महात्मालोग सुने भए अर्थ करके अनायाससे वर्णन करैं हैं, अथवा श्रुतियों करकै कहै हैं ॥ २ ॥ अब दश लक्षणोंको व्याख्यान करै है, कि पंच भूतमात्रा इंद्रियोंके जन्मको सर्ग कहै हैं, ब्रह्मासे गुणकी विषमता होनेसे विराट् पुरुषसे उत्पन्नको नाम विसर्ग है ॥ ३ ॥ वैकुंठको विजय अर्थात् ईश्वरकी रची भई मर्यादानको पालन करनेंको नाम स्थान है, अपने भक्तोंपर कृपा करनेको नाम पोषण है, मन्वंतरोंके अधिपतीनके सद्धर्मको नाम मन्वंतर है, कर्मकी वासनाको नाम ऊती है, क्यों कि “ वेभ तंतुसंताने ” धातुसे व्याकरणमें है “ ऊयंते कर्मभिः संतन्यंत इति ऊतयः ” ऊति बने है ॥ ४ ॥ श्रीहरिके अवतारनको चरित्र और इनके पाछै जो पुरुष भए उनकी नानाप्रकारके आख्यानों करकै अत्यंत बढीभई वार्ताको नाम ईशकथा है ॥ ५ ॥ या जीवको ईश्वरकी योगनिद्राके पाछे शक्तियों और उपाधियों-करकै सहित लय होनेको नाम निरोध है, अन्यथा रूपकों त्याग करकै अपने स्वरूपमें स्थिति होनेको नाम मुक्ति है ॥ ६ ॥ जासे सृष्टि होय है जामें लीन होयहै जासे प्रकाशित होयहै वो परब्रह्म परमात्मा कहे जावैं है, वाको नाम आश्रय है ॥ ७ ॥ जो आध्यात्मिक पुरुष है सोई आधिदैविक है, जो इनमें विभाग है सोई आधिभौतिक है ॥ ८ ॥

इनमें एकका अभाव हो तौ दूसरा प्रतीत नहीं होता कारण कि यह तीनौ परस्पर अपेक्षावारे हैं इन तीनों पदार्थोंको साक्षीपनसे देखनेहारे परमात्माहीका नाम आश्रय है जिसे किसी दूसरेका आश्रय नहीं है ॥ ९ ॥ ये विराट् पुरुष अंडको भेदकर जब बाहिर निकसे तब अपने रहिवेको स्थानकी इच्छा करते भए, तौ पवित्र ईश्वर पवित्र जल रचते भए ॥ १० ॥ अपने रचे भए जलमें सहस्र वर्षपर्यंत वसते भए, वो पुरुष नर हो वासे जल उत्पन्न भयो, तिससे नारायण नाम भयो " नारा अयनं यस्य स नारायणः " नार नाम जलका है वामें जाको स्थान सो नारायण कहावै " आपो नारा इति प्रोक्ता आपो वै नरसूनवः । अयनं तस्य ताः प्रोक्तं तेन नारायणः स्मृतः ॥ १ ॥ " ॥ ११ ॥ द्रव्य कर्म काल स्वभाव जीव जिनकी कृपासे

एकमेकतराभावे यदा नोपलभामहे ॥ त्रितयं तत्र यो वेद स आत्मा स्वाश्रयाश्रयः ॥९॥ पुरुषोऽण्डं विनिर्भिद्य यदासौ स विनिर्गतः ॥आत्मनोऽयनमन्विच्छन्नपोऽस्राक्षीच्छुचिः शुचीः॥१०॥ तास्ववात्सीत्स्वसृष्टासु सहस्रपरिवत्सरान् ॥ तेन नारायणो नाम यदापः पुरुषोद्भवाः ॥ ११ ॥ द्रव्यं कर्म च कालश्च स्वभावो जीव एव च ॥ यदनुग्रहतः सन्ति न सन्ति यदुपेक्षया ॥ १२ ॥ एको नानात्वमन्विच्छन्योगतल्पात्स उत्थितः ॥ वीर्यं हिरण्मयं देवो मायया व्यसृजत्त्रिधा ॥ १३ ॥ अधिदैवमथाऽध्यात्ममधिभूतमिति प्रभुः ॥ यथैकं पौरुषं वीर्यं त्रिधाऽभिद्यत तच्छृणु ॥१४॥ अन्तः शरीर आकाशात्पुरुषस्य विचेष्टतः॥ओजः सहो बलं जज्ञे ततः प्राणो महानसुः ॥१५॥ अनुप्राणन्ति यं प्राणाः प्राणन्तं सर्वजन्तुषु ॥ अपानन्तमपानन्ति नरदेवमिवानुगाः ॥ १६ ॥

होयहै, जिनकी इच्छा न होय तो नहीं होयहै ॥ १२ ॥ एक ईश्वर नानाप्रकार होयवेकी इच्छा करते भए, तब योगशय्यासें उठ सुवर्णमय अपनेको मायाकरकै तीन भाग करतेभए ॥ १३ ॥ तब वह प्रभु आधिदैव अध्यात्म और अधिभूत इनको रचतेभए एक पुरुषको वीर्य तीन प्रकारके भेदको प्राप्त होतो भयो सो तुम सुनो ॥ १४ ॥ विशेष करके चेष्टा करी तब पुरुषके भीतरसे इंद्रियशक्ति मनशक्ति देहशक्ति ये भई, सूक्ष्मरूपसे सूत्रात्मा सबमें मुख्य प्राण भये ॥ १५ ॥ सब जीवोंमें ईश्वर प्राणरूप चेष्टा करै हैं, तो सब इंद्रियें चेष्टा करैहैं, जो चेष्टाको त्याग करै तो प्राणभी चेष्टा त्यागेहै जैसे राजाको सिपाई, राजा चले तो चले, राजा खडो होजाय तो वेभी खडे हो जाय ॥ १६ ॥

प्राणेन क्षिपता क्षुत्तृडन्तरा जायते प्रभोः॥ पिपासतो जक्षतश्च प्राङ्मुखं निरभिद्यत ॥१७॥ मुखतस्तालु निर्भिन्नं जिह्वा तत्रोपजायत ॥ ततो नानारसो जज्ञे जिह्वया योऽधिगम्यते ॥१८॥ विवक्षोर्मुखतो भूम्नो वह्निर्वाग्व्याहृतं तयोः॥ जले वै तस्य सुचिरं निरोधः समजायत ॥१९॥ नासिके निरभिद्येतां दोधूयति नभस्वति॥तत्र वायुर्गन्धवहो घ्राणो नसि जिघृक्षतः ॥ २० ॥ यदात्मनि निरालोकमात्मानं च दिदृक्षतः ॥ निर्भिन्ने ह्यक्षिणी तस्य ज्योतिश्चक्षुर्गुणग्रहः ॥ २१ ॥ बोध्यमानस्य ऋषिभिरात्मनस्ताञ्जिघृक्षतः॥ कर्णौ च निरभिद्येतां दिशः श्रोत्रं गुणग्रहः ॥ २२ ॥ वस्तुनो मृदुकाठिन्यलघुगुर्वोष्णशीतताम् ॥ जिघृक्षतस्त्वङ्निर्भिन्ना तस्यां रोममहीरुहाः ॥ २३॥ तत्र चान्तर्बहिर्वातस्त्वचा लब्धगुणो वृतः॥ स्पर्शं गृह्णत्तदेव त्वग्लोकपालोनिलोऽविशत् ॥२४॥ हस्तौ रुरुहतुस्तस्य नानाकर्मचिकीर्षया ॥ तयोस्तु बलमिन्द्रश्च आदानमुभयाश्रयम् ॥ २५ ॥

देहके चलानेहारे विराट्के प्राणनें जब प्रेरणा कीनी तब क्षुधा तृषा भई, जलपानको भोजन करवेको पूर्व मुख निकरो, यहां ये बात जाननी कि तालु अधिष्ठान है जिह्वा इंद्रिय है, नाना रस विषय है, वरुण देवता है ये सर्वत्र जान लेनी ॥ १७ ॥ मुखते तालु भयो तहां जिह्वा भई जीभसे नानाप्रकारके स्वादको ज्ञान होयहै ॥ १८ ॥ विराट्के कुछ बोलवेकी जब इच्छा भई तब मुखसै अग्नि देवतात्मक वाणी इन्द्रिय भाषण विषय उत्पन्न हुआ परन्तु इस भाषणका बहुत कालतक जलमें निरोध भया ॥ १९ ॥ नासिकाकी वायु जब अत्यंत चलायमान भई, तब नाक भई तहां वायु देवता; सुगंध विषय, घ्राण इंद्रिय सूंघवेको भई ॥ २० ॥ कछु न सूझनेसै विराट्ट पुरुषको जब देखनेकी इच्छा भई तब नेत्रगोलक उत्पन्न भये जिसकी चक्षु इन्द्रिय सूर्य देवता रूप विषय हुआ ॥ २१ ॥ वेदके दिये ज्ञानके सुनवेकी इच्छा भई तब दिशा देवता, श्रोत्र इंद्रिय शब्द गुणको ग्रहण करनेहारे कान निकसे ॥ २२ ॥ वस्तूनकी कोमलता कठणपण लघु गुरु गर्म शीतके ज्ञानकी जब इच्छा भई उसमेंसे वृक्षोंकी समान रोम प्रगट भये ॥ २३ ॥ तहां बाहर भीतर पवन जानेके गुणवारी त्वचा भई, वाही त्वचासे स्पर्शको ज्ञान भयो, वामें सब लोककी पालन करवेवारी पवन प्रवेश करती भई ॥ २४ ॥ नानाप्रकारके कर्म करवेकी जब इच्छा भई, तब बल इंद्रिय, इंद्र देवता, सब पदार्थको धरनो उठावनो

कर्मवारे दो हाथ भए ॥ २५ ॥ जब माको ये इच्छा भई कि मेरो मन होय तहां जाऊं तब भगवान्देवतात्मक चरण कि जिन पांवसें चलकर यज्ञादिके लिये समिधादिक लावनों हवन करनों और अनेक कर्म करनों बनै ऐसे पांव याके होते भए इनकी चलन शक्ति इन्द्रिय हुत द्रव्य विषय भया ॥ २६ ॥ पुत्र होय विषय आनंद अमृत सुख होय ये इच्छा जब भई तब उपस्थ इंद्रिय, प्रजापति देवतावारो लिंग भयो इन दोनोंके आश्रित कामसम्बंधी सुख भयो ॥ २७ ॥ भोजन कर बाकी जब असारांश मल त्यागवेकी इच्छा भई तब पायु इंद्रिय, मित्र देवता मलत्यागनेंके कर्म वारी गुदा प्रगट भई इन दौनोंके आश्रित मलत्याग विषय भयो ॥ २८ ॥ या देहरूप पुरीसे और देहरूप पुरामें जाययेकी इच्छा भई, तब नाभि भई जिसमें दूसरे शरीरमें जानेका साधन अपान वायु इन्द्रिय मृत्यु देवता मरण विषय हुआ वह मरण विषय मृत्यु देवता और अपान इन्द्रियके आधीन है ॥ २९ ॥ जब अन्न जलकी ग्रहण करवेकी इच्छा भई तब कोख आंतें नाडी हुईं, नदियें समुद्र कोख नाडीके देवता भए पुष्टि विषय उत्पन्न भया ॥ ३० ॥ ईश्वरकी मायाके अत्यंत चिंतवनकी इच्छा भई तब हृदय भयो, वा हृदयमें मन चंद्र देवतासहित संकल्प काम इत्यादिक विषय होते भये ॥ ३१ ॥ त्वक् चर्म मांस रुधिर मेद मज्जा हाड सप्तधातु भूमि जल तेज होयहैं आकाश जल और वायुसै प्राण प्रगट होयहै ॥ ३२ ॥ सब इंद्रियें गुणोंसे होयहैं, और गुण अहंकारसे, मन सब विकारनको स्वरूप है, बुद्धि विशेषज्ञानकी रूपिणी है ॥ ३३ ॥

गतिं जिगीषतः पादौ रुरुहातेऽभिकामिकाम् ॥ पद्भ्यां यज्ञः स्वयं हव्यं कर्मभिः क्रियते नृभिः ॥ २६ ॥ निरभिद्यत शिश्नो वै प्रजानन्दामृतार्थिनः ॥ उपस्थ आसीत्कामानां प्रियं तदुभयाश्रयम् ॥ २७ ॥ उत्सिसृक्षोर्धातुमलं निरभिद्यत वै गुदम् ॥ ततः पायुस्ततो मित्र उत्सर्ग उभयाश्रयः ॥ २८ ॥ आसिसृप्सोः पुरः पुर्या नाभिद्वारमपानतः ॥ तत्रापानस्ततो मृत्युः पृथक्त्वमुभयाश्रयम् ॥ २९ ॥ आदित्सोरन्नपानानामासन्कुक्ष्यऽन्त्रनाडयः ॥ नद्यः समुद्राश्च तयोस्तुष्टिः पुष्टिस्तदाश्रये ॥ ३० ॥ निदिध्यासोरात्ममायां हृदयं निरभिद्यत ॥ ततो मनस्ततश्चन्द्रः संकल्पः काम एव च ॥ ३१ ॥ त्वक्चर्ममांसरुधिरमेदोमज्जास्थिधातवः ॥ भूम्यप्तेजोमयाः सप्त प्राणो व्योमाऽम्बुवायुभिः ॥ ३२ ॥ गुणात्मकानीन्द्रियाणि भूतादिप्रभवा गुणाः ॥ मनः सर्वविकारात्मा बुद्धिर्विज्ञानरूपिणी ॥ ३३ ॥

ये भगवानको स्थूलरूप तुमसे मैंने कह्यो, जो पृथिवीसे आदि आठ आवरणसे बाहिर व्यापैहैं ॥ ३४ ॥ वह ईश्वर मायासें परे सूक्ष्मतम अप्रगट विशेषणरहित आदि मध्य अंत रहित सदा एक रूप वाणी मनसें परै है यही निर्गुणरूप है ॥ ३५ ॥ ये दो सगुण निर्गुणरूप भगवान्के मैंने तुमसे वर्णन करे परंतु विद्वान् लोग याके रचे इन दोनोंको ग्रहण नहीं करते हैं ॥३६॥ सो अकर्मा भगवान् ब्रह्मरूपधारी परमेश्वर कर्मकारक वाच्यरूपसें तो नाम धारतेभये और वाचकरूपसैं रूप क्रिया धारैहैं ॥३७॥ जो जो रूप ईश्वर जगतके कार्यके लिये होयहैं, सोकहैहैं कि प्रजापति, मनु, देवता, ऋषि, पितरनके गण, पृथक् पृथक् सिद्ध, चारण, गंधर्व, विद्याधर, सुर, गुह्यक ॥ ३८ ॥ किन्नर, अप्सरा, नाग, सर्प, वानर, उरग, सप्त मातृका, राक्षस,

एतद्भगवतो रूपं स्थूलं ते व्याहृतं मया ॥ मह्यादिभिश्चावरणैरष्टभिर्बहिरावृतम् ॥३४॥ अतः परं सूक्ष्मतममव्यक्तं निर्विशेषणम् ॥ अनादिमध्यनिधनं नित्यं वाङ्मनसः परम् ॥ ३५ ॥ अमुनी भगवद्रूपे मया ते ह्यनुवर्णिते ॥ उभे अपि न गृह्णन्ति मायासृष्टे विपश्चितः ॥ ३६ ॥ स वाच्यवाचकतया भगवान्ब्रह्मरूपधृक् ॥ नामरूपक्रिया धत्ते सकर्माऽकर्मकः परः ॥ ३७ ॥ प्रजापतीन्मनून्देवानृषीन्पितृगणान्पृथक् ॥ सिद्धचारणगन्धर्वान्विद्याध्रासुरगुह्यकान् ॥ ३८ ॥ किन्नराप्सरसो नागान्सर्पान्किंपुरुषोरगान् ॥ मातृरक्षःपिशाचांश्च प्रेतभूतविनायकान् ॥ ३९ ॥ कूष्माण्डोन्मादवेतालान्यातुधानान्ग्रहानपि ॥ खगान्मृगान्पशून्वृक्षान्गिरीन्नृप सरीसृपान् ॥ ४० ॥ द्विविधाश्चतुर्विधा येऽन्ये जलस्थलनभौकसः ॥ कुशलाकुशला मिश्राः कर्मणां गतयस्त्विमाः ॥ ४१ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति तिस्रः सुरनृनारकाः ॥ तत्राप्येकैकशो राजन्भिद्यन्ते गतयस्त्रिधा ॥ ४२ ॥

पिशाच, प्रेत, भूत, विनायक ॥ ३९ ॥ हे राजन्! कूष्माण्ड उन्मादकारी ग्रह वेताल, यातुधानग्रह, पक्षी मृग पशु, वृक्ष, पर्वत रेंगके चलनेहारे जीव सरीसृप ॥ ४० ॥ स्थावर जंगम रूपसें दो प्रकारके जीव जरायुज, अंड़ज स्वेदज उद्भिज्ज ये चार प्रकारके जीव और जल स्थल आकाशवासी जीव उत्तम नीच कुछ दोनों मिले भए ये कर्मकी गतिसै सत रज तम मिश्रित तीन प्रकारके रूप ब्रह्म धारते भये ॥४१॥ सत्व रज तम इन तीनसे देवता मनुष्य नारकी जीव होंयहैं हे राजन्! तिनमेंभी एक एक गति तीन तीन प्रकारसें भेदको प्राप्त होयहैं ॥ ४२ ॥

स्वर भेदमें कुशल होनेसे अर्जुनने राग गाना प्रारम्भ किया इन्द्रने मृदंग बजाने प्रारम्भ किये कुमार जय जय अथवा धन्य २ कहने लगे और सबके आगे रसकी विरचनतासे भावके बतानेवाले शुकदेवजी हुए ॥८६॥ उस तेजस्वियोंके स्थानमें भक्ति ज्ञान वैरागोंका त्रिक नटकी नाई नाचने लगा यह अलौकिक कीर्तन देखकर नारायण प्रसन्न होकर वचन बोले ॥ ८७ ॥ हे भक्तो ! तुम्हारे कीर्तनसे मैं बहुत प्रसन्न हुआ जो इच्छा हो सो वर मांगो यह सुनकर वे सब हरिभक्त प्रेमसे गद्गद हो बोले ॥ ८८ ॥ महाराज सप्ताहकी कथाओंमें इसी प्रकार आपको प्रगट होना योग्य है अथवा भक्तोंके हृदयमें प्रगटहुआ कीजियें यही हमारा मनोरथ पूर्ण करो बहुत अच्छा ऐसा कहकर नारायण अन्तर्धान होगये ॥ ८९॥ इसके उपरान्त नारदजी सनकादिकोंके

ननर्त मध्ये त्रिकमेव तत्र भक्त्यादिकानां नटवत्सुतेजसाम् ॥ अलौकिकं कीर्तनमेतदीक्ष्य हरिः प्रसन्नोऽपि वचोऽब्रवीत्तत् ॥ ८७ ॥ मत्तो वरं भागवता वृणुध्वं प्रीतः कथाकीर्तनतोऽस्मि सांप्रतम् ॥ श्रुत्वेति तद्वाक्यमतिप्रसन्नाः प्रेमार्द्रचित्ता हरिमूचिरे ते॥८८॥ नगाहगाथासु च सर्वभक्तैरेभिस्त्वया भाव्यमतिप्रयत्नात्॥मनोरथोऽयं परिपूरणीयस्तथेति चोक्त्वान्तरधीयताच्युतः॥ ८९ ॥ ततोऽनमत् तच्चरणेषु नारदस्तथा शुकादीनपि तापसांश्च॥ अथ प्रहृष्टाः परिनष्टमोहाः सर्वे ययुः पीतकथामृतास्ते ॥९०॥ भक्तिः सुताभ्यां सह रक्षिता सा शास्त्रे स्वकीयेपि तदा शुकेन ॥ अतो हरिर्भागवतस्य सेवनाच्चित्तं समायाति हि वैष्णवानाम् ॥९१॥ दारिद्र्यदुःखज्वरदाहितानां मायापिशाचीपरिमर्दितानाम् ॥ संसारसिन्धौ परिपातितानां क्षेमाय वै भागवतं प्रगर्जति ॥ ९२ ॥ शौनक उवाच ॥ शुकेनोक्तं कदा राज्ञे गोकर्णेन कदा पुनः ॥ सुरर्षये कदा ब्राह्मैश्छिन्धि मे संशयं त्विमम् ॥ ९३ ॥

चरणोंको नमस्कार करते हुये और शुकदेवजी तथा अन्यतपस्वियोंकोभी नमस्कार किया वे सब मोह रहित प्रसन्न हो कथामृत पान करके यथास्थानको चले गये॥९०॥ भक्ति ज्ञान वैराग्य सहित शुकदेवजीने इस भागवत शास्त्रमें स्थापित करी है इस कारण भागवत्के सेवन करनेसे भगवान् वैष्णवोंके चित्तमें प्राप्त होते हैं ॥ ९१ ॥ दारिद्रदुःखज्वरसे दुःखित मायापिशाचिनीसे मर्दित संसार समुद्रमें गिरते हुओंको कल्याणके निमित्त यह भागवतकी कथा गर्जतीहै ॥९२॥ शौनकजी बोले शुकदेवजीने राजा परीक्षितको यह कथा कब सुनाई और गोकर्णने कब सुनाई तथा सनत्कुमारा-

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ॥ श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥८१॥ श्रीमद्भागवतं पुराणतिलकं यद् वैष्णवानां धनं यस्मिन् पारमहंस्यमेकममलज्ञानं परं गीयते ॥ यत्र ज्ञानविरागभक्तिसहितं नैष्कर्म्यमाविष्कृतं तच्छृण्वन् प्रपठन् विचारणपरो भक्त्या विमुच्येन्नरः ॥ ८२ ॥ स्वर्गे सत्ये च कैलासे वैकुण्ठे नास्त्ययं रसः ॥ अतः पिबन्तु सद्भाग्या मा मा मुञ्चत कर्हिचित् ॥ ८३ ॥ सूत उवाच ॥ एवं ब्रुवाणे सति बादरायणे मध्ये सभायां हरिराविरासीत् ॥ प्रह्लादबल्युद्धवफाल्गुनादिभिर्वृतः सुरर्षिस्तमपूजयच्च तान् ॥ ८४ ॥ दृष्ट्वा प्रसन्नं महदासने हरिं ते चक्रिरे कीर्तनमग्रतस्तदा ॥ भवो भवान्या कमलासनस्तु तत्रागमन् कीर्तनदर्शनाय ॥ ८५ ॥ प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्ताऽर्जुनोऽभूत् ॥ इन्द्रोऽवादीन्मृदङ्गं जयजयसुकराः कीर्तने ते कुमारा यत्राग्रे भाववक्ता रसविरचनया व्यासपुत्रो बभूव ॥ ८६ ॥

जिस श्रीमद्भागवतमेंसे फलकांक्षा रूप कपट धर्म सम्यक् त्यागदिया है केवल ईश्वरसेवारूप धर्म निरूपण किया है मत्सरता रहित सत्पुरुषोंका इसमें अधिकार है महामुनि श्रीनारायणके बनाये हुए इस श्रीमद्भागवतमें वास्तव परमार्थ रूप एक परमेश्वरही जानने योग्य है जो कल्याणदायक तीनों तापका नाश करनेहारा है निश्चय श्रीमद्भागवतके सुन्नेवाले महात्माओंके हृदयमें शीघ्र ईश्वर प्राप्तहोजाताहै क्या और शास्त्रोंसे शीघ्र हृदयमें प्राप्त होजाता है अर्थात् नहीं होता ॥८१॥ यह श्रीमद्भागवत पुराणोंमें श्रेष्ठवैष्णवोंका परमधन है जिसमें भक्तोंके परम प्रिय ज्ञान परब्रह्म श्रीकृष्णही गाये जाते हैं जिस श्रीमद्भागवतमें ज्ञान वैराग्य भक्तिसहित निष्कर्मता रूप ब्रह्म हृदयमें प्राप्त होते हैं इसके श्रवण पठन करने विचार करने भक्ति करनेसे मनुष्य मुक्त होजाता है ॥८२॥ स्वर्गमें सत्यलोकमें कैलासमें वैकुंठमें यह रस नहीं है इस कारणसे सद्भाग्यवाले इसे पियो कभी त्याग न करो ॥८३॥ सूतजी बोले शुकदेवजीके ऐसा कहते संते सभाके मध्यमें नारायण प्रगट होगये प्रल्हाद बलि उद्धव अर्जुनादि करकै युक्त भगवानका नारदजीने पूजन किया और उनकाभी पूजन किया ॥ ८४ ॥ आगे आसनमें बैठे हुए भगवानके सन्मुख वे सब कीर्तन करने लगे पार्वती सहित शिव और ब्रह्माजी कीर्तन दर्शन करनेके निमित्त तहां आये ॥८५॥ प्रल्हादने तालैं धारण करी तरलगतिसे उद्धवने छैने अर्थात् झांझै धारण करीं नारदजीने वीणा धारणकरी

नारदजी बोले मैं धन्य हूं आप करुणा सागरोंने मेरे ऊपर बडी कृपा की आज मुझे सब पाप हरनेहारे हरि भगवान् मिलगये ॥७५॥ हे तपोधनवारे महात्माओ ! सब धर्मोंसें श्रवणधर्म अधिक है कारण कि जिसके श्रवणमे वैकुंठमें स्थित कृष्ण प्राप्त होते हैं ॥ ७६ ॥ सूतजी बोले कि वैष्णवोत्तम नारदजी जिस समय यह कह रहे थे उसी समय विचरते हुए योगीश्वर शुकदेवजी आगये ॥ ७७ ॥ वोह षोडश वर्षकी अवस्था युक्त व्यासजीके पुत्र ज्ञान महासागरके चन्द्रमा श्रीमद्भागवतके प्रकाशक कथावसानमें अपनेही लाभसे परिपूर्ण प्रेमपूर्वक शनैः शनैः श्रीमद्भागवतका पाठ करते हुए आये ॥ ७८ ॥ इन बडे उग्र तेजस्वीको देखतेही सब सभासद उठ खडे हुये और महाआसन दिया और नारदजीने प्रीतिपूर्वक उनका पूजन किया

नारद उवाच ॥ धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्भिः करुणापरैः ॥ अद्य मे भगवान् लब्धः सर्वपापहरो हरिः ॥ ७५ ॥ श्रवणं सर्वधर्मेभ्यो वरं मन्ये तपोधनाः ॥ वैकुण्ठस्थो यतः कृष्णः श्रवणाद्यस्य लभ्यते ॥ ७६ ॥ सूत उवाच ॥ एवं ब्रुवति वै तत्र नारदे वैष्णवोत्तमे ॥ परिभ्रमन् समायातः शुको योगेश्वरस्तदा ॥ ७७ ॥ तत्रायया षोडशवार्षिकस्तदा व्यासात्मजो ज्ञानमहाब्धिचन्द्रमाः ॥ कथावसाने निजलाभपूर्णः प्रेम्णा पठन् भागवतं शनैः शनैः ॥ ७८ ॥ दृष्ट्वा सदस्याः परमोरुतेजसं सद्यः समुत्थाय ददुर्महासनम् ॥ प्रीत्या सुरर्षिस्तमपूजयत्सुखं स्थितोऽवदत् संश्रृणुतामलां गिरम् ॥७९॥ श्रीशुक उवाच ॥ निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् ॥ पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥८० ॥

तब सुखसे स्थित हो शुकदेवजी बोले सो वाणी सुनो ॥ ७९ ॥ शुकदेवजी बोले वेद कल्पवृक्ष है उसका यह भागवत फल है सो मुझ शुकदेवके मुखसे पृथिवीमें गिरा है इस कारण अमृतरूपी रससे संयुक्त है जिस फलमें तोतेकी चोंच लगजाती है वोह अधिक मीठा होता है यहां शुकरूपी शुकदेवजीने इसका स्वाद लिया है इस कारण यह अधिक मीठा होगया है यह " भाग्य है " यह भक्ति रूप रससे पूर्ण है हे रसिको! भगवच्चरितामृत पान करनेहारे महात्माओ! इस्से मोक्षभी न्यून है इसकारण इसे वारंवार पान करो ॥ ८० ॥

पूजन कर आवाहनादि उपचार दक्षिणा सहित वस्त्र भूषण गंधादिसे पूजित जितेन्द्रिय ॥ ६६ ॥ आचार्यके निमित्त बुद्धिमान पुस्तक प्रदान करै तौ
भवबंधनसे मुक्त होजाय इस प्रकारके सब पाप हरनेहारे विधानके करनेसे ॥६७॥ यह श्रीमद्भागवत पुराण फलका देनेहारा होता है यह धर्मार्थकाममो-
क्षका साधन है इसमें कुछभी संदेह नहीं है ॥६८॥ कुमार बोले नारदजो यह तौ सब कुछ तुमको सुनाया अब क्या सुन्नेकी इच्छा है श्रीमद्भागवतके
श्रवण करनेसे ही भुक्ति मुक्ति हाथमें स्थित होती है ॥ ६९ ॥ सूतजी बोले ऐसा कहने उपरान्त वे सनकादिक महात्मा भागवतकी कथा वर्णन करते

संपूज्य वाहनाद्यैस्तदुपचारैः सदक्षिणम् ॥ वस्त्रभूषणगन्धाद्यैः पूजिताय यतात्मने ॥ ६६ ॥ आचार्याय सुधीर्दत्त्वा
मुक्तः स्याद्भवबन्धनैः ॥ एवं कृते विधाने च सर्वपापनिवारणे ॥ ६७ ॥ फलदं स्यात् पुराणं तु श्रीमद्भागवतं शुभम् ॥
धर्मकामार्थमोक्षाणां साधनं स्यान्न संशयः ॥ ६८ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ इति ते कथितं सर्वं किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥
श्रीमद्भागवतेनैव भुक्तिमुक्ती करे स्थिते ॥ ६९ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्त्वा ते महात्मानः प्रोचुर्भागवतीं कथाम् ॥
सर्वपापहरां पुण्यां भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् ॥ ७० ॥ शृण्वतां सर्वभूतानां सप्ताहं नियतात्मनाम् ॥ यथाविधि ततो
देवं तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥७१॥ तदन्ते ज्ञानवैराग्यभक्तीनां पुष्टता पुरा ॥ तारुण्यं परमं चाभूत् सर्वभूतमनोहरम् ॥
॥ ७२ ॥ नारदश्च कृतार्थोऽभूत् सिद्धे स्वीये मनोरथे ॥ पुलकीकृतसर्वाङ्गः परमानन्दसंभृतः ॥ ७३ ॥ एवं कथां
समाकर्ण्य नारदो भगवत्प्रियः ॥ प्रेमगद्गदया वाचा तानुवाच कृताञ्जलिः ॥ ७४ ॥

हुए जो कथा सब पापकी हरनेहारी पुण्यरूप भुक्ति मुक्तिकी देनेहारी है ॥ ७० ॥ इस सप्ताह कथाकू सब जितेन्द्रिय महात्मा और सब प्राणियोंसे
यथाविधि श्रवण करनेसे पुरुषोत्तम भगवानकू प्रसन्न किया ॥ ७१ ॥ तिससे अन्तमें ज्ञान वैराग्य और भक्तिकी बडी पुष्टी हुई सब प्राणियोंके
मन हरनेहारे ज्ञान वैराग्य तत्काल तरुण होगये ॥७२॥ नारदजी अपना मनोरथ पूर्ण होजानेसे कृतार्थ होगये शरीर पुलकित सर्वांगमें आनंद भरगया
॥ ७३ ॥ इस प्रकार भगवान्के प्यारे नारदजी कथा श्रवण करके प्रेमसे गद्गदवाणी हो हाथ जोड सनकादिकोंसे बोले ॥ ७४ ॥

इस सप्ताहयज्ञकी समाप्तिमें श्रोताओंको पुस्तककी और वक्ताकी भक्तिपूर्वक पूजा करनी योग्य है ॥ ५६ ॥ प्रसाद नैवेद्य तुलसीमाला सुन्नेवालोंको
देनी फिर मृदंग ताल आदि बाजोंसे कीर्तन करना योग्य है ॥ ५७ ॥ फिर जयशब्द नमस्कार शब्द और शंखध्वनि करै ब्राह्मण और याचकोंको
धन और अन्न दे ॥ ५८ ॥ जो मुख्य श्रोता विरक्त हो तौ दूसरे दिन गीता वांचनी और जो गृहस्थ होय तौ कर्म शांतिके निमित्त हवन कर्त्तव्य है
॥ ५९ ॥ प्रति श्लोक दशमस्कंधके से विधि पूर्वक खीर शहद घी तिल अन्नोंसे हवन करे ॥ ६० ॥ अथवा गायत्रीसे सावधान होकर हवन करै क्यों

एवं नगाहयज्ञेऽस्मिन् समाप्ते श्रोतृभिस्तदा ॥ पुस्तकस्य च वक्तुश्च पूजा कार्यातिभक्तितः ॥ ५६ ॥ प्रसादतुलसीमालाः
श्रोतृभ्यश्चाथ दीयताम् ॥ मृदङ्गतालललितं कर्तव्यं कीर्तनं ततः ॥५७॥ जयशब्दं नमःशब्दं शङ्खशब्दं च कारयेत्
॥ विप्रेभ्यो याचकेभ्यश्च वित्तमन्नं च दीयताम् ॥ ५८ ॥ विरक्तश्चेद् भवेच्छ्रोता गीता वाच्या परेऽहनि ॥ गृहस्थश्चेत्
तदा होमः कर्तव्यः कर्मशान्तये ॥ ५९ ॥ प्रतिश्लोकं च जुहुयाद्विधिना दशमस्य च ॥ पायसं मधु सर्पिश्च तिलान्नादिकसंयुतम्
॥ ६० ॥ अथवा हवनं कुर्याद् गायत्र्या सुसमाहितः ॥ तन्मयत्वात् पुराणस्य परमस्य च तत्त्वतः ॥ ६१ ॥
होमाशक्तौ बुधो हौम्यं दद्यात्तत्फलसिद्धये ॥ नानाच्छिद्रनिरोधार्थं न्यूनताधिकताख्ययोः ॥ ६२ ॥ दोषयोः प्रशमार्थं
च पठेन्नामसहस्रकम् ॥ तेन स्यात् सफलं सर्वं नास्त्यस्मादधिकं यतः ॥ ६३ ॥ द्वादश ब्राह्मणान् पश्चाद् भोजयेन्मधुपायसैः
॥ दद्यात् सुवर्णधेनुं च व्रतपूर्णत्वहेतवे ॥ ६४ ॥ शक्तौ पलत्रयमितं स्वर्णसिंहं विधाय च ॥ तत्रास्य पुस्तकं
स्थाप्यं लिखितं ललिताक्षरम् ॥ ६५ ॥

कि यह परम पुराण तत्त्वसे गायत्रीमयही है॥६१॥जो होम करनेमें असमर्थ हो तौ बुद्धिमान उसकी फलकी सिद्धिके निमित्त होम करने योग्य वस्तु
दे अनेक प्रकार छिद्र शांतिके निमित्त और न्यूनता अधिकता॥६२॥दोषोंके शान्त करनेको सहस्रनामका पाठ करै इससे सब सफल होजाता है क्यों
कि इससे अधिक और कुछ नहीं है ॥६३॥ फिर बारह ब्राह्मणोंकों बूरा मिश्रित खीरसे भोजन करावै और व्रत पूर्तिके निमित्त सुवर्ण गाय देनी
योग्य है ॥६४॥ और जो समर्थ हो तौ तीन पलका सोनेका सिंहासन बनाकर उसके ऊपर सुंदर अक्षरोंसे लिखीहुई यह पुस्तक स्थापन करै ॥६५॥

कथा सुन्नेवाले व्रती दो पत्तेवाले अन्न, मद, गरिष्ठ अन्न, स्वाभाविक दुष्ट अन्न और वासी अन्नकू सदा त्यागन करै ॥ ४६ ॥ काम क्रोध मद मान मत्सर लोभ दंभ मोह वैर कथा श्रवण करनेहारा त्यागदे ॥ ४७ ॥ कथाका व्रती वेद वैष्णव ब्राह्मण गुरु गौ व्रतधारी स्त्री राजा कुटुम्बियोंकी निंदा न करै ॥ ४८ ॥ रजस्वला नीच म्लेच्छ पतित चांडाल ब्राह्मणद्वेषी और जे वेदबाह्य हैं उनसे व्रती बात न करै ॥ ४९ ॥ सत्य पवित्रता दया मौन नम्रता विनय मनमें उदारता यह व्रतीको कर्तव्य है ॥ ५० ॥ दरिद्र क्षयी रोगी निर्भाग्य पापकर्मा जिसके पुत्र न हो और मुक्तिकी इच्छावाला सदा इस कथाको सुनै ॥ ५१ ॥ जिसको रजोदर्शन न होता हो काकवंध्या अर्थात् एकवार जिसके बालक हुआहो अथवा जिसके बालक

द्विदलं मधु तैलं च गरिष्ठान्नं तथैव च ॥ भावदुष्टं पर्युषितं जह्यान्नित्यं कथाव्रती ॥ ४६ ॥ कामं क्रोधं मदं मानं मत्सरं लोभमेव च ॥ दम्भं मोहं तथा द्वेषं दूरयेच्च कथाव्रती ॥ ४७ ॥ वेदवैष्णवविप्राणां गुरुगोव्रतिनां तथा ॥ स्त्रीराजमहतां निन्दां वर्जयेद्यः कथाव्रती ॥४८॥ रजस्वलान्त्यजम्लेच्छपतितव्रातकैस्तथा ॥ द्विजद्विड्वेदबाह्यैश्च न वदेद्यः कथाव्रती ॥ ४९ ॥ सत्यं शौचं दया मौनमार्जवं विनयं तथा ॥ उदारमानसं तद्वदेवं कुर्यात् कथाव्रती ॥ ५० ॥ दरिद्रश्च क्षयी रोगी निर्भाग्यः पापकर्मवान् ॥ अनपत्यो मोक्षकामः शृणुयाच्च कथामिमाम् ॥ ५१॥ अपुष्पा काकवन्ध्या च वन्ध्या या च मृतार्भका ॥ स्रवद्गर्भा च या नारी तया श्राव्यः प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥ एतेषु विधिना श्रावे तदक्षय्यतरं भवेत् ॥ अत्युत्तमा कथा दिव्या कोटियज्ञफलप्रदा ॥ ५३ ॥ एवं कृत्वा व्रतविधिमुद्यापनमथाचरेत् ॥ जन्माष्टमीव्रतमिव कर्तव्यं फलकाङ्क्षिभिः ॥ ५४ ॥ अकिञ्चनेषु भक्तेषु प्रायो नोद्यापनाग्रहः ॥ श्रवणेनैव पूतास्ते निष्कामा वैष्णवा यतः ॥५५॥

होकर मरजातेहों जिसका गर्भ गिरने लगै वोह स्त्रीभी कथाको प्रयत्नसे सुनै ॥ ५२ ॥ इन सात दिन पर्यंत जो विधिपूर्वक सुनै तो अक्षय फल होताहै यह दिव्य कथा अत्युत्तम है करोडों यज्ञ फलकी देनेहारी है ॥ ५३ ॥ इस प्रकार व्रतका विधान करके फिर उद्यापन करै फलकी इच्छा करनेवालोंको जन्माष्टमीके व्रतकी नाई यह कर्तव्य है ॥ ५४ ॥ निष्किंचन अर्थात् निष्काम भक्तोंको उद्यापनकी आवश्यकता नहीं है वे निष्काम वैष्णव श्रवण मात्रसेही पवित्र होजाते हैं ॥ ५५ ॥

53

लोक, धन,स्थान पुत्रादि सबकी चिंता त्यागन करकै कथामें शुद्ध बुद्धिसे चित्त लगावै उसें उत्तम फल प्राप्त होता है ॥३७॥ वक्ताका सूर्योदयसें लेकर साढेतीन पहरतक कथा वाचनी योग्य है और जलदी न करै धीरे कंठसे वांचै ॥ ३८ ॥ दुपहरको दो घडी पर्यंत कथाका विराम करै कथान्तमें वैष्णव भगवान्का कीर्तन करै ॥ ३९ ॥ मल मूत्रकी बाधा शान्तिके निमित्त लघु आहार करना योग्य है सो कथा सुननेहारोंको चावल दुग्धादिका भोजन एकवार कर्तव्य है ॥ ४०॥ यदि शक्ति हो तो सात रात्रिपर्य्यन्त व्रत करकै कथा सुनै अथवा घृतपान दुग्ध पानकर सुनै ॥ ४१ ॥ या फलाहार करकै

लोकवित्तधनागारपुत्रचिन्तां व्युदस्य च ॥ कथाचित्तः शुद्धमतिः स लभेत् फलमुत्तमम् ॥ ३७ ॥ आसूर्योदयमारभ्य सार्धत्रिप्रहरान्तिकम् ॥ वाचनीया कथा सम्यक् धीरकण्ठे सुधीमता ॥ ३८ ॥ कथाविरामः कर्तव्यो मध्याह्ने घटिकाद्वयम् ॥ तत्कथामनु कार्यं वै कीर्तनं वैष्णवैस्तदा ॥ ३९ ॥ मलमूत्रजयार्थं हि लघ्वाहारः सुखावहः ॥ हविष्यान्नेन कर्तव्यो ह्येकवारं कथार्थिना ॥ ४० ॥ उपोष्य सप्तरात्रं वै शक्तिश्चेच्छृणुयात्तदा ॥ घृतपानं पयःपानं कृत्वा वै शृणुयात् सुखम् ॥ ४१ ॥ फलाहारेण वा श्राव्यमेकभुक्तेन वा पुनः ॥ सुखसाध्यं भवेद्यत्तु कर्तव्यं श्रवणाय तत् ॥४२ ॥ भोजनं तु वरं मन्ये कथाश्रवणकारणम् ॥ नोपवासो वरः प्रोक्तः कथाविघ्नकरो यदि ॥ ४३ ॥ सप्ताहव्रतिनां पुंसां नियमान् शृणु नारद ॥ विष्णुदीक्षाविहीनानां नाधिकारः कथाश्रवे ॥ ४४ ॥ ब्रह्मचर्यमधःसुप्तिः पत्रावल्यां च भोजनम् ॥ कथासमाप्तौ भुक्तिं च कुर्यान्नित्यं कथाव्रती ॥ ४५ ॥

सुने वा एकही वार भोजन करै अथवा जिस प्रकारसे श्रवण करनेमें आलस्य न आवै सुख मिले सो करै॥४२॥यदि भोजन करनेसे कथा श्रवण करनेमें आलस्यादि न आवै तौ अच्छा है और यदि उपवास करनेसे कथामें विघ्न पडै तो वोह ठीक नहीं ॥ ४३ ॥ नारदजी सप्ताहमें व्रत करनेवालोंके तुम नियम सुनो विष्णुदीक्षाविहीन जो गायत्रीका जप वा जिन्होंने भगवान्का मंत्र गुरूसे नहीं लिया है उनका कथा श्रवण करनेमें अधिकार नहीं है ॥ ४४ ॥ ब्रह्मचर्य पृथ्वीमें शयन पत्तलमें भोजन कथासमाप्तिमें भोजन नित्य व्रती करै ॥ ४५ ॥

कि, हे करुणानिधान ! संसारसागरमें मग्न हुए मुझ दीनको जो कि मैं कर्म मोहसे ग्रहीत होरहा हूं आप संसार सागरसे उद्धार कीजिये ॥ २७ ॥ फिर श्रीमद्भागवतकीभी पूजा यत्न पूर्वक करनी चाहिये प्रीतिसे धूप दीप नैवेद्य करै ॥ २८ ॥ फिर नारियल चढा कर नमस्कार करै फिर प्रसन्न चित्त होकर स्तुति करै ॥ २९ ॥ यह श्रीमद्भागवतकी कथा प्रत्यक्ष श्रीकृष्णरूपीही है हे नाथ ! भवसागरसें मुक्त होनेके निमित्त मैंने यह स्वीकार किया है ॥ ३० ॥ यह मेरा मनोरथ तुम्हीसें सफल होगा सो महाराज मैं आपका दास हूं ऐसा हो कि इसकी निर्विघ्न समाप्ति होजाय ॥ ३१ ॥ ऐसे नम्र वचन

संसारसागरे मग्नं दीनं मां करुणानिधे ॥ कर्ममोहगृहीताङ्गं मामुद्धर भवार्णवात् ॥ २७ ॥ श्रीमद्भागवतस्यापि ततः पूजा प्रयत्नतः ॥ कर्तव्या विधिना प्रीत्या धूपदीपसमन्विता ॥ २८ ॥ ततस्तु श्रीफलं धृत्वा नमस्कारं समाचरेत् ॥ स्तुतिः प्रसन्नचित्तेन कर्तव्या केवलं तदा ॥ २९ ॥ श्रीमद्भागवताख्योऽयं प्रत्यक्षः कृष्ण एव हि ॥ स्वीकृतोऽसि मया नाथ मुक्त्यर्थं भवसागरे ॥ ३० ॥ मनोरथो मदीयोऽयं सफलः सर्वथा त्वया ॥ निर्विघ्नेनैव कर्तव्यो दासोहं तव केशव ॥३१॥ एवं दीनवचः प्रोक्त्वा वक्तारं चाथ पूजयेत् ॥ संभूष्य वस्त्रभूषाभिः पूजान्ते तं च संस्तवेत् ॥ ३२ ॥ शुकरूप प्रबोधज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ॥ एतत्कथाप्रकाशेन मदज्ञानं विनाशय ॥ ३३ ॥ तदग्रे नियमः पश्चात्कर्तव्यः श्रेयसे मुदा ॥ सप्तरात्रं यथा शक्त्या धारणीयः स एव हि ॥ ३४ ॥ वरणं पञ्चविप्राणां कथाभङ्गनिवृत्तये ॥ कर्तव्यं तैर्हरेर्जाप्यं द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणान् वैष्णवांश्चान्यांस्तथा कीर्तनकारिणः ॥ नत्वा संपूज्य दत्ताज्ञः स्वयमासनमाविशेत् ॥ ३६ ॥

कहकर फिर वक्ताका पूजन करै वस्त्र भूषणसे भूषित कर फिर पूजा करके स्तुति करै ॥ ३२॥ आप शुकदेवके रूप ज्ञान देनेहारे सब शास्त्रके ज्ञाता हो इस कथाके प्रकाशसे मेरा अज्ञान दूर करो ॥३३॥ फिर वक्ताके आगे कल्याणके निमित्त नियम करै प्रसन्न होकर यथाशक्ति सात रात्रितक नियम धारण करे ॥ ३४ ॥ कथाभंग निवृत्तिके निमित्त पांच ब्राह्मणोंको वरण करै वे द्वादशाक्षर (ॐ नमो भगवते वासुदेवाय) इस विद्याका जप करते रहैं ॥ ३५ ॥ और वैष्णव ब्राह्मणोंको तथा हरिचरित्र कीर्तन करनेवालोंको नमस्कार कर पूजन कर उनसे आज्ञा ले आप आसन पर बैठे ॥ ३६ ॥

वक्ता उत्तरकी ओर मुख करके बैठे और सुन्नेहारे पूर्वकी ओर मुख करकै बैठें अथवा वक्ता पूर्वको देख कर बैठे श्रोता उत्तरकों ॥ १८ ॥ अथवा
पूजा करनेहारे और पूज्यके मध्यसे पूर्व दिशामें सब सुन्नेहारे बैठें ॥ १९॥ विरक्त वैष्णव ब्राह्मण वेदशास्त्रानुसार शुद्ध अथवा वेद शास्त्रका जान्नेहारा
दृष्टान्त देनेमें कुशल धीर लोभरहित ऐसा वक्ता होना चाहिये ॥ २० ॥ जो अनेक धर्मोंमें भ्रमतेहैं अर्थात् जहां जैसा देखा वहां पैसेके निमित्त उसी
मतमें होगये स्त्रीलंपट अर्थात् पराई स्त्रियोंको चोरीसे ले भागनेवाले पाखंडवादो यदि वे पंडितभी हो तोभी यह श्रेष्ठशास्त्रकी कथा उनसे न कहावै
॥ २१ ॥ कथा कहनेवालेके धोरे एक औरभी पंडित स्थापन करने योग्य हैं जो संदेहोंको छेदन करनेमें समर्थ हो लोगोंको समझासकै ॥ २२ ॥ व्र-

उदङ्मुखो भवेद्वक्ता श्रोता वै प्राङ्मुखस्तदा ॥ प्राङ्मुखश्चेद्भवेद्वक्ता श्रोता चोदङ्मुखस्तदा ॥ १८ ॥ अथवा पूर्व-
दिग् ज्ञेया पूज्यपूजकमध्यतः ॥ श्रोतॄणामागमे प्रोक्ता देशकालादिकोविदैः ॥ १९ ॥ विरक्तो वैष्णवो विप्रो वेदशा-
स्त्राभिशुद्धिकृत् ॥ दृष्टान्तकुशलो धीरो वक्ता कार्योऽतिनिस्पृहः॥२०॥ अनेकधर्मविभ्रान्ताः स्त्रैणाः पाखण्डवादिनः॥
शुभशास्त्रकथोच्चारे त्याज्यास्ते यदि पण्डिताः ॥ २१ ॥ वक्तुः पार्श्वे सहायार्थमन्यः स्थाप्यस्तथाविधः ॥ पण्डितः
संशयच्छेत्ता लोकबोधनतत्परः ॥२२॥ वक्त्रा क्षौरं प्रकर्तव्यं दिनादर्वाग् व्रताप्तये ॥ अरुणोदयेऽसौ निर्वर्त्य शौचं
स्नानं समाचरेत्॥२३॥नित्यं संक्षेपतः कृत्वा संध्याद्यं संप्रयत्नतः ॥ कथाविघ्नविघाताय गणनाथं प्रपूजयेत्॥२४॥
पितॄन् संतर्प्य शुद्ध्यर्थं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥ मण्डलं च प्रकर्तव्यं तत्र स्थाप्यो हरिस्तथा ॥ २५॥ कृष्णमुद्दिश्य
मन्त्रेण चरेत्पूजाविधिं क्रमात् ॥ प्रदक्षिणानमस्कारान् पूजान्ते स्तुतिमाचरेत् ॥ २६ ॥

तके निमित्त वक्ताकू एक दिन पहले क्षौर कराना योग्य है और अरुणोदय होतेही यह शौचादिसे निवृत्त हो स्नान करै ॥२३॥ प्रथम तौ नित्य संध्या-
संक्षेपसे करकै कथाके विघ्न नाशके निमित्त गणेशजीका पूजन करे ॥ २४ ॥ पितरोंका तर्पण करकै शुद्धिके वास्ते प्रायश्चित्त करै एक मंडल बना-
कर हरि भगवान्का पूजन करना चाहिये ॥ २५ ॥ कृष्णके उद्देशसे अर्थात् 'नमः कृष्णाय' इस मंत्रसे आरंभ कर पूजा सम्पूर्ण करै प्रदक्षिणा
नमस्कारादि करकै पूजाके अन्तमें स्तुति करै ॥ २६ ॥

प्रकारस बांध होजाय सो करना॥६॥

देश देशमें जो विरक्त वैष्णव कीर्तन करनेवाले हैं उनके पास भी पत्र भेजने और यह लिखदेना ॥ ७ ॥ महादुर्लभ सात दिन पर्यन्त सत् पुरुषोंके समाज होगा और अपूर्व रसरूपी भगवानकी कथा होगी ॥ ८ ॥ श्रीमद्भागवत रूपी अमृतके पानमें रसलंपट आप प्रेमी जन शीघ्र आइये ॥ ९ ॥ यदि अवकाश न हो तौ एक दिनको तौ अवश्य आइये क्यों कि इस समाजका क्षणमात्रकाभी सत्संग दुर्लभ है ॥ १० ॥ इस प्रकारसे उन सबको पत्र भेजकर आये हुओंके निमित्त वास और स्थान कल्पना करै ॥ ११ ॥ चाहै तीर्थमें चाहै वनमें चाहै घरमें सुनै कहीं कथा स्थान बडी पृथ्वीमें कल्पना

देशे देशे विरक्ता ये वैष्णवाः कीर्तनोत्सुकाः ॥ तेष्वेव पत्रं प्रेष्यं च तल्लेखनमितीरितम् ॥ ७ ॥ सतां समाजो भाविता सप्तरात्रं सुदुर्लभः ॥ अपूर्वरसरूपैव कथा चात्र भविष्यति ॥ ८ ॥ श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलम्पटाः ॥ भवन्तश्च तथा शीघ्रमायात प्रेमतत्पराः ॥ ९ ॥ नावकाशः कदाचिच्चेद्दिनमात्रं तथापि तु ॥ सर्वथागमनं कार्यं क्षणोऽत्रैव सुदुर्लभः ॥ १० ॥ एवमाकारणं तेषां कर्तव्यं विनयेन च ॥ आगन्तुकानां सर्वेषां वासस्थानानि कल्पयेत् ॥ ११ ॥ तीर्थे वापि वने वापि गृहे वा श्रवणं मतम् ॥ विशाला वसुधा यत्र कर्तव्यं तत्कथास्थलम् ॥ १२ ॥ शोधनं मार्जनं भूमेर्लेपनं धातुमण्डनम् ॥ गृहोपस्करमुद्धृत्य गृहकोणे निवेशयेत् ॥ १३ ॥ अर्वाक् पञ्चाहतो यत्नादास्तीर्णानि प्रमेलयेत् ॥ कर्तव्यो मण्डपः प्रोच्चैः कदलीखण्डमण्डितः ॥ १४ ॥ फलपुष्पदलैर्विष्वग्वितानेन विराजितः ॥ चतुर्दिक्षु ध्वजारोपो बहुसंपद्विराजितः ॥ १५ ॥ ऊर्ध्वं सप्तैव लोकाश्च कल्पनीयाः सविस्तरम् ॥ तेषु विप्रा विरक्ताश्च स्थापनीयाः प्रबोध्य च ॥ १६ ॥ पूर्वं तेषामासनानि कर्तव्यानि यथोत्तरम् ॥ वक्तुश्चापि तदा दिव्यमासनं परिकल्पयेत् ॥ १७ ॥

करै जहां बहुत स्थान हो ॥ १२ ॥ जलादिकोंसे संमार्जन कर बुहारीसे बुहार गोबरसे लीपदे गेरू आदिकोंसे चित्रित कर घरकी सामग्री उठाकर एक कोनेमें लगादे ॥ १३ ॥ पांच दिन पहले बडे बडे आसन ग्रहणकर रक्खे केलेके वृक्षोंसे मंडित मंडप ऊंचा बनावै ॥ १४ ॥ फल पुष्प पत्ते आदि सहित चारों ओर वंदनवार बांधदे चारों ओर ध्वजा बांधदे वितान अर्थात् चंदोवा तानदे ॥ १५ ॥ वेदिकाके ऊपर भागमें सात लोक अर्थात् सात स्थान बनावै उनमें विरक्त ब्राह्मण बैठावै ॥ १६ ॥ प्रथम तौ तिन्हैं यथा योग्य आसन दे पुनः वक्ताकोभी एक दिव्य सुंदर ऊंचा आसन जिसपर बैठकर कथा कहै ॥ १७ ॥

देहके सुखानेवाले बहुत दिनोंसे उग्र तपके संचयवाले तथा योगीभी नहीं प्राप्त होते ॥ ८८ ॥ इस पवित्र इतिहासकोभी शांडिल्य मुनीश्वर चित्रकूटमें पाठ करनेसे ब्रह्मानंदसे व्याप्त हुए ॥ ८९॥ यह पवित्र आख्यान है जो इसे एकवारभी पाठ कर लेताहै उसके सब पाप दूर होजाते हैं जो श्राद्धमें पढै तो पितरोंकी तृप्ति होती है नित्य पाठ करनेसे फिर जन्म नहीं होता ॥ ९० ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवत मा० गोकर्णवर्णनं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ कुमार बोले अब हम तुम्हें सप्ताह श्रवणको विधि सुनाते हैं जो विधि प्राय धनसेभी साध्य है ॥ १ ॥ प्रथम तो ज्योतिषीको

इतिहासमिमं पुण्यं शाण्डिल्योऽपि मुनीश्वरः ॥ पठते चित्रकूटस्थो ब्रह्मानन्दपरिप्लुतः ॥ ८९ ॥ आख्यानमेतत्परमं पवित्रं श्रुतं सकृद्वै विदहेदघौघम् ॥ श्राद्धे प्रयुक्तं पितृतृप्तिमावहेन्नित्यं सुपाठादपुनर्भवं च ॥९०॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभा० मा० गोकर्णवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामः सप्ताहश्रवणे विधिम् ॥ सहायैर्वसुभिश्चैव प्रायः साध्यो विधिः स्मृतः ॥ १ ॥ दैवज्ञं तु समाहूय मुहूर्तं पृच्छ्य यत्नतः ॥ विवाहे यादृशं वित्तं तादृशं परिकल्पयेत् ॥ २ ॥ नभस्य आश्विनोर्जौ च मार्गशीर्षः शुचिर्नभाः ॥ एते मासाः कथारम्भे श्रोतॄणां मोक्षसूचकाः ॥ ३ ॥ मासानां विग्रहे यानि तानि त्याज्यानि सर्वथा ॥ सहायाश्चेतरे चात्र कर्तव्याः सोद्यमाश्च ये ॥ ४ ॥ देशे देशे तथा सेयं वार्ता प्रेष्या प्रयत्नतः ॥ भविष्यति कथा चात्र आगन्तव्यं कुटुम्बिभिः ॥ ५ ॥ दूरे हरिकथाः केचिद्दूरे चाच्युतकीर्तनाः ॥ स्त्रियः शूद्रादयो ये च तेषां बोधो यतो भवेत् ॥ ६ ॥

बुलाकर मुहूर्त पूछे जैसी विवाहादिमें मंडप रचना होती है तिस प्रकार करै॥२॥ भाद्रपद आश्विन कार्तिक मार्गशीर्ष आषाढ श्रावण ये महीने कथारंभमें सुन्नेवालोंको मोक्षसूचक हैं॥३॥जो महीनोंके विग्रह हैं अर्थात् भद्रा दग्ध व्यतीपात वैधृत गंडान्त क्षय मृत्यु उत्पातादि निंदित दिनोंको त्यागदे और सहाय जो अच्छा दिन नक्षत्रादि है सो सर्वथा करणीय है ॥ ४ ॥ देश देशमें यत्नपूर्वक यह वार्ता प्रगटकर देना हमारे यहां कथा होगी सब कोई कुटुम्ब सहित आओ ॥ ५॥ कोई हरिकथासें दूर हैं कोई अच्युतके गुण कीर्तनसें दूर हैं स्त्री शूद्रादिकोंको जिस प्रकारसे बोध होजाय सो करना॥६॥

विमानों और भक्तों सहित भगवान् प्रगट हुए तब चारों ओरसे जयशब्द नमःशब्द होने लगा ॥ ८० ॥ भगवान्ने प्रसन्न होकर तहां पांचजन्य शंखकी ध्वनी करी गोकर्णकूं आलिंगन करकै अपने रूपकी समान बना लिया ॥ ८१ ॥ और जितने श्रोता थे उनको क्षणमात्रमें भगवाननें घनश्याम पीतवस्त्र युक्त किरीटकुंडलधारी करदिया ॥ ८२ ॥ और जो उस ग्राममें श्वासे लेकर चांडालादि जातिके थे वेभी गोकर्ण कृपासे विमानमें स्थितहुए ॥ ८३ ॥ वे भगवाननें उस स्थानमें भेजदिये जहां योगी गमन करतेहैं और गोपाल श्रीकृष्णचंद्र गोकर्ण सहित गोपवल्लभ गोलोकको ग-

विमानैः सह भक्तैश्च हरिराविर्बभूव ह ॥ जयशब्दा नमःशब्दास्तत्रासन् बहवस्तदा ॥ ८० ॥ पाञ्चजन्यध्वनिं चक्रे हर्षात्तत्र स्वयं हरिः ॥ गोकर्णं तु समालिङ्ग्याकरोत्स्वसदृशं हरिः ॥ ८१ ॥ श्रोतॄनन्यान्घनश्यामान्पीतकौशेयवाससः ॥ किरीटिनः कुण्डलिनस्तथा चक्रे हरिः क्षणात् ॥ ८२ ॥ तद्ग्रामे ये स्थिता जीवा आश्वचाण्डालजातयः ॥ विमाने स्थापितास्तेऽपि गोकर्णकृपया तदा ॥ ८३ ॥ प्रेषिता हरिलोके ते यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥ गोकर्णेन स गोपालो गोलोकं गोपवल्लभम् ॥ ८४ ॥ कथाश्रवणतः प्रीतो निर्ययौ भक्तवत्सलः ॥ अयोध्यावासिनः पूर्वं यथा रामेण संगताः ॥ ८५ ॥ तथा कृष्णेन ते नीता गोलोकं योगिदुर्लभम् ॥ यत्र सूर्यस्य सोमस्य सिद्धानां न गतिः कदा ॥ तं लोकं हि गतास्ते तु श्रीमद्भागवतश्रवात् ॥ ८६ ॥ ब्रूमोऽद्य ते किं फलवृन्दमुज्ज्वलं सप्ताहयज्ञेन कथासु संचितम् ॥ कर्णेन गोकर्णकथाक्षरं यैः पीतं च ते गर्भगता न भूयः ॥ ८७ ॥ वाताम्बुपर्णाशनदेहशोषणैस्तपोभिरुग्रैश्चिरकालसंचितैः ॥ योगैश्च संयान्ति न तां गतिं वै सप्ताहगाथाश्रवणेन याति याम् ॥ ८८ ॥

ये ॥ ८४ ॥ कथा श्रवणसे प्रसन्न होकर भक्तवत्सल भगवान गये जैसे पूर्व कालमें श्रीरामचंद्र अयोध्यावासियोंको साकेत लोकको लेगयेथे ॥ ८५ ॥ इसी प्रकार भगवान् कृष्णचंद्रभी योगियोंके दुर्लभ गोलोकको उन्हें लेगये वहां सूर्य चंद्रमा और सिद्धोंकीभी कभी गति नहीं होती ॥ ८६ ॥ जो सप्ताह यज्ञमें इस कथा श्रवणसे फल प्राप्त होताहै हे महात्माओ! हम कहांतक वर्णन करैं जिन्होंने गोकर्ण कथाके अक्षर कर्णद्वारा पान किये हैं वे फिर गर्भमें नहीं आते ॥ ८७ ॥ जिस गतिको सप्ताह श्रवण करनेसे प्राप्त होते हैं तिस गतिको पवन जल पत्त भक्षण करी तपस्यासे

जब कि सबका श्रवण बराबरही होताहै तौ फलमें भेद क्यों हुआहै हरिके प्यारो यह बात कहो ॥ ७० ॥ हरिदास बोले श्रवणके भेदसे फलकाभी भेद हुआहै सबनें सुनाहै परन्तु तिस प्रकारसे मनन नहीं किया ॥ ७१ ॥ इस कारणसे भजनेसेभी फलभेद हुआ सात रात्रिपर्यंत व्रत करके प्रेतने श्रवण किया ॥ ७२॥ और उसने स्थिरचित्त होकर मननादिभी किया जिसको दृढ नहीं होता उसका ज्ञान हत है जिसने प्रमादसे सुनाहै वोहभी हत है ॥७३॥संदिग्धका मंत्र हत है व्यग्रचित्तका जप हत अर्थात् निरर्थक है वैष्णव रहित देश हत है अपात्र अर्थात् विद्या सद्गुण रहितको श्राद्धमें देनाभी वृथा है ॥ ७४ ॥ वेदविद्या रहितकू दान देना निरर्थक है सदाचार रहित कुल हत है गुरुके वाक्योंमें विश्वास और अपनेमें दीनताकी भावना करनी

श्रवणं समभागेन सर्वेषामिह दृश्यते ॥ फलभेदः कुतो जातः प्रब्रुवन्तु हरिप्रियाः ॥७० ॥ हरिदासा ऊचुः ॥ श्रवणस्य विभेदेन फल भेदोपि संस्थितः ॥ श्रवणं तु कृतं सर्वैर्न तथा मननं कृतम् ॥ ७१॥ फलभेदस्ततो जातो भजनादपि मानद ॥ सप्तरात्रमुपोष्यैव प्रेतेन श्रवणं कृतम्॥७२॥ मननादि तथा तेन स्थिरचित्ते कृतं भृशम् ॥ अदृढं च हतं ज्ञानं प्रमादेन हतं श्रुतम् ॥७३॥ संदिग्धो हि हतो मन्त्रो व्यग्रचित्तो हतो जपः॥ अवैष्णवो हतो देशो हतं श्राद्धमपात्रकम् ॥ ७४ ॥ हतमश्रोत्रिये दानमनाचारहतं कुलम् ॥ विश्वासो गुरुवाक्येषु स्वस्मिन् दीनत्वभावना ॥७५॥ मनोदोषजयश्चैव कथायां निश्चला मतिः ॥ एवमादि कृतं चेत्स्यात्तदा वै श्रवणे फलम् ॥ ७६ ॥ पुनः श्रवान्ते सर्वेषां वैकुण्ठे वसतिर्ध्रुवम् ॥ गोकर्ण तव गोविन्दो गोलोकं दास्यति स्वयम् ॥७७॥ एवमुक्त्वा ययुः सर्वे वैकुण्ठं हरिकीर्तनाः ॥ श्रावणे मासि गोकर्णः कथामूचे तथा पुनः॥७८॥सप्तरात्रवतीं भूयः श्रवणं तैः कृतं पुनः॥कथासमाप्तौ यज्जातं श्रूयतां तच्च नारद॥७९॥

योग्य है ॥७५॥ मनके दोषोंको जीतना कथामें निश्चल मति रखनी जब इस प्रकारसे विश्वस्त शुद्ध चित्त हो तब कथा सुन्नेका फल होताहै ॥ ७६ ॥ फिर कथान्तमें सबका वैकुंठलोकमें वास होताहै हे गोकर्ण! तुझै तौ गोविंद भगवान् स्वयं गोलोक देंगे ॥ ७७ ॥ इस प्रकारसे कहकर वे भगवान्के पार्षद सब वैकुंठलोकको चले गये फिर श्रावणके महीनेमें गोकर्णने कथाका आरंभ किया ॥ ७८ ॥ फिर सात रात्रीवाली सप्ताहकी कथाको उन सबने सुना हे नारदजी! सुनो जब कथा समाप्त हुई तब ॥ ७९ ॥

इस स्थिरसे सदैव रहनेहारा कर्म क्यों न साधन किया जाय जो प्रातःकाल खाया हुआ अन्न सायंकालमें नष्ट होजाता है ॥ ६१ ॥ सो अन्नादिके रससे
पुष्ट इस कायाकी क्या नित्यता है क्षणभंगुर है सप्ताह श्रवण करनेसें लोकमें भगवान् निकटही प्राप्त होतेहैं ॥ ६२॥ इस्से दोषनिवृत्तिके निमित्त
एक यही साधन है जलोंमें बुद्बुदेकी नाईं जंतुओंमें मशककी नाईं कथाश्रवण रहित जन वृथाही उत्पन्न होते हैं ॥ ६३॥ जहां जड और सूखे बांसकीभी
गांठै टूट गई तौ फिर चित्तकी ग्रंथि टूट जाय तौ क्या आश्चर्य है ॥६४ ॥ हृदयकी ग्रंथि टूट जाती सब संदेह नाश हो जाते कर्म क्षय होजाते हैं

अस्थिरेण स्थिरं कर्म कुतोऽयं साधयेन्नहि ॥ यत्प्रातः संस्कृतं चान्नं सायं तच्च विनश्यति ॥ ६१ ॥ तदीयरससंपुष्टे
काये का नाम नित्यता ॥ सप्ताहश्रवणाल्लोके प्राप्यते निकटे हरिः ॥ ६२ ॥ अतो दोषनिवृत्त्यर्थमेतदेव हि साधनम्॥
बुद्बुदा इव तोयेषु मशका इव जन्तुषु ॥ जायन्ते मरणायैव कथाश्रवणवर्जिताः ॥ ६३ ॥ जडस्य शुष्कवंशस्य यत्र
गन्थिविभेदनम् ॥ चित्रं किमु तदा चित्तग्रन्थिभेदः कथाश्रवात् ॥ ६४ ॥ भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ॥
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि सप्ताहश्रवणे कृते ॥६५॥ संसारकर्दमालेपप्रक्षालनपटीयसि ॥ कथातीर्थे स्थिते चित्ते मुक्तिरेव
बुधैः स्मृता ॥ ६६ ॥ एवं ब्रुवति वै तस्मिन्विमानमगमत्तदा ॥ वैकुण्ठवासिभिर्युक्तं प्रस्फुरद्दीप्तिमण्डलम् ॥ ६७ ॥
सर्वेषां पश्यतां भेजे विमानं धुन्धुलीसुतः ॥ विमाने वैष्णवान्वीक्ष्य गोकर्णो वाक्यमब्रवीत् ॥ ६८ ॥ गोकर्ण उवाच ॥
अत्रैव बहवः सन्ति श्रोतारो मम निर्मलाः ॥ आनीतानि विमानानि न तेषां युगपत्कुतः ॥ ६९ ॥

जो सप्ताह श्रवण करते हैं ॥ ६५ ॥ संसाररूपी कीचडमें फंसे हुओंको धोनेमें यह कथा श्रेष्ठ है जिसका चित्त कथारूपी तीर्थमें है उसकी पंडितोंने
मुक्ति कही है ॥ ६६॥ यह उसके कहते हुएही वैकुण्ठसे विमान आया जिसके चारों ओर प्रभा फैली हुई वैकुंठ वासियोंसे युक्त॥६७॥सबके देखते हुए
धुंधुलीका पुत्र विमानमें बैठा और तब विमानमें वैष्णवोंको बैठा देखकर गोकर्ण कहनेलगा ॥ ६८॥ गोकर्ण बोले यहां बहुतसे सुन्नेवाले उज्ज्वलचित्त
मेरी कथाके हैं उनके निमित्त विमान क्यों नहीं आये ॥ ६९ ॥

61

द्वादश स्कंधके श्रवण करनेसे धुंधुकारी प्रेतत्वको त्यागन करता हुआ दिव्यरूप धारण किये हुए तुलसी माला पहरेहुए ॥ ५१ ॥ पीतवस्त्र धारण किये घनश्याम मुकुटधारे कुंडल पहरे गोकर्ण अपने भाईको नमस्कार करकै बोला ॥ ५२ ॥ भाई तुमने बडी कृपाकरकै प्रेतरूपी पापसे छुटायाहै यह भागवती कथा प्रेतबाधा दूर करनेवाली धन्य है ॥ ५३ ॥ यह सप्ताह धन्य है जो कृष्णलोक फलका देनेहारा है सप्ताह सुन्नेको बैठतेही मनुष्यके पाप कांपने लगतेहैं ॥ ५४ ॥ हम प्रेतोंकी तौ यह भागवत प्रलय करदेगी गीला सूखा लघु स्थूल वाणी मन कर्मसे किये ॥ ५५ ॥ पापकू यह सप्ता-

कृत्वापि द्वादशस्कन्धश्रवणात्प्रेततां जहौ ॥ दिव्यरूपधरो जातस्तुलसीदाममण्डितः ॥ ५१ ॥ पीतवासा घनश्यामो मुकुटी कुण्डलान्वितः ॥ ननाम भ्रातरं सद्यो गोकर्णमिति चाब्रवीत् ॥ ५२ ॥ त्वयाहं मोचितो बन्धो कृपया प्रेतकश्मलात् ॥ धन्या भागवती वार्ता प्रेतपीडाविनाशिनी ॥ ५३ ॥ सप्ताहोऽपि तथा धन्यः कृष्णलोकफलप्रदः ॥ कम्पन्ते सर्वपापानि सप्ताहश्रवणे स्थिते ॥ ५४ ॥ अस्माकं प्रलयं सद्यः कथा चेयं करिष्यति ॥ आर्द्रं शुष्कं लघु स्थूलं वाङ्मनःकर्मभिः कृतम् ॥ ५५ ॥ श्रवणं विदहेत्पापं पावकः समिधो यथा ॥ अस्मिन्वै भारते वर्षे सूरिभिर्देवसंसादे ॥ ५६ ॥ अकथाश्राविणां पुंसां निष्फलं जन्म कीर्तितम् ॥ किं मोहतो रक्षितेन सुपुष्टेन बलीयसा ॥ ५७ ॥ अश्रवेण शरीरेण शुकशास्त्रकथां विना ॥ अस्थिस्तम्भं स्नायुबद्धं मांसशोणितलेपितम् ॥ ५८ ॥ चर्मावनद्धं दुर्गन्धं पात्रं मूत्रपुरीषयोः ॥ जराशोकविपाकार्तं रोगमन्दिरमातुरम् ॥ ५९ ॥ दुष्पूरं दुर्धरं दुष्टं सदोषं क्षणभङ्गुरम् ॥ कृमिविड्भस्मसंज्ञातं शरीरमिति वर्णितम् ॥ ६० ॥

हयज्ञ नाशकर देताहै जैसे अग्नि समिधाकू, इस भारतवर्षमें देवताओंकी सभामें विद्वानोंने ॥ ५६ ॥ कथा नहीं सुन्नेवालोंका निष्फल जन्म कहाहै मोहसे रक्षा कर करकै पुष्ट बलवान् देहसे क्या है ॥५७॥ जिस शरीरने यह शुकशास्त्र कथा नहीं सुनी वोह अस्थियोंका स्तंभनसोंसे बद्ध मांस रुधिरसे लेपित ॥ ५८ ॥ चर्मसे आच्छादित दुर्गन्धयुक्त मूत्र पूरीषका पात्र है बुढापा, शोकके फलसे युक्त रोगका स्थान दुःखरूप ॥ ५९ ॥ कभी मरता नहीं दुर्धर खोटा दोषसहित क्षणभंगुर कीड विष्ठा और भस्म संज्ञावाला यह शरीर कहाहै ॥ ६० ॥

यह वचन सुनकर भगवान् भास्कर दूरसे स्फुट बोले श्रीमद्भागवतका सप्ताहयज्ञ करो मुक्ति हो जायगी ॥४१ ॥ यह धर्मरूप सूर्य भगवान्का वचन सबने सुना सब कहने लगे निश्चय यह शुभ कर्म कीजिये ॥ ४२ ॥ गोकर्णभी निश्चय कर कथा वांचने में प्रवृत्त हुए तहां श्रवण करनेकू देश और गांवके मनुष्य आये ॥ ४३ ॥ लंगडे अंधे वृद्ध मंदभी पाप दूर करनेके निमित्त आये देवताओंको विस्मयदायक बडा समाज हुआ ॥ ४४ ॥ जब आसनके ऊपर बैठके गोकर्ण कथा कहने लग तब वोह प्रेतभी आया और इधर उधर स्थान देखने लगा ॥ ४५ ॥ तब तहां एक सात गांठोंका वांस

तच्छुत्वा दूरतः सूर्यः स्फुटमप्यभ्यभाषत ॥ श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहे वाचनं कुरु ॥ ४१ ॥ इति सूर्यवचः सर्वैर्धर्मरूपं तु विश्रुतम् ॥ सर्वैऽब्रुवन्प्रयत्नेन कर्तव्यं सुकरं त्विदम् ॥ ४२ ॥ गोकर्णो निश्चयं कृत्वा वाचनार्थं प्रवर्तितः ॥ तत्र संश्रवणार्थाय देशग्रामाज्जना ययुः ॥४३॥ पङ्ग्वन्धवृद्धमन्दाश्च तेपि पापक्षयाय वै ॥ समाजस्तु महाञ्जातो देवविस्मयकारकः ॥ ४४ ॥ यदैवासनमास्थाय गोकर्णोऽकथयत्कथाम् ॥ स प्रेतोऽपि तदाऽऽयातः स्थानं पश्यन्नितस्ततः ॥ ४५ ॥ सप्तग्रन्थियुतं तत्रापश्यत्कीचकमुच्छ्रितम् ॥ तन्मूलच्छिद्रमाविश्य श्रवणार्थं स्थितो ह्यसौ ॥ ॥४६॥ वातरूपी स्थितिं कर्तुमशक्तो वंशमाविशत् ॥ वैष्णवं ब्राह्मणं मुख्यं श्रोतारं परिकल्प्य सः ॥ ४७ ॥ प्रथमस्कन्धतः स्पष्टमाख्यानं धेनुजोऽकरोत् ॥ दिनान्ते रक्षिता गाथा तदा चित्रं बभूव ह ॥४८॥ वंशैकग्रन्थिभेदोऽभूत्सशब्दं पश्यतां सताम् ॥ द्वितीयेह्नि तथा सायं द्वितीयग्रन्थिभेदनम् ॥ ४९ ॥ तृतीयेऽह्नि तथा सायं तृतीयग्रन्थिभेदनम् ॥ एवं सप्तदिनैर्वंशसप्तग्रन्थिविभेदनम् ॥ ५० ॥

देखकर उसकी मूलमें छिद्रके द्वारा प्रवेशकर सुन्नेको बैठगया ॥ ४६ ॥ वोह पवनरूपी था इसकारण स्थित न रहसका तब वांसमें प्रवेश किया गोकर्णने एक मुख्य वैष्णव ब्राह्मणको श्रोता कल्पना करकै ॥ ४७ ॥ प्रथमस्कंन्धकी अच्छी प्रकार कथा गोकर्णने सुनाई जब संध्या समय कथा विसर्जन हुई तब बडा आश्चर्य हुआ ॥ ४८ ॥ वांसकी एक गांठ टूटगई और बडा शब्द हुआ इसीप्रकार दूसरे दिन संध्याके समय दूसरी गांठ फटगई ॥ ४९ ॥ तीसरे दिन संध्या समय तीसरी गांठ फटगई इस प्रकार सात दिनमें सात गांठें टूटगईं ॥ ५० ॥

गोकर्ण बोला भाई ! मैंने तो तेरे निमित्त गयामें पिंड दिये थे सो अबभी मुक्ति नहीं हुई यह बडे आश्चर्यकी बात है ॥ ३१ ॥ जो
गयामें पिंड देनेसे मुक्ति न होवे तो फिर और उपाय नहीं है हे प्रेत! अब मैं क्या करूं सो तू विस्तारसे कह ॥ ३२ ॥ प्रेत बोला सौ गयाश्राद्धसेभी
मेरी मुक्ति नहीं होगी कोई और उपाय तुम विचारो ॥ ३३ ॥ उसके यह वचन सुनकर गोकर्णकू बडा आश्चर्य हुआ जो सौ श्राद्धसेभी मुक्ति न
हो तो तेरी मुक्ति असाध्य है ॥ ३४ ॥ अब तू प्रेत अपने स्थानमें निर्भय रह तेरी मुक्तिका साधन मैं विचारकर करूंगा ॥ ३५ ॥ यह सुनकर धुन्धु-

गोकर्ण उवाच ॥ त्वदर्थं तु गयापिण्डो मया दत्तो विधानतः॥तत्कथं नैव मुक्तोऽसि ममाश्चर्यमिदं महत् ॥ ३१ ॥
गयाश्राद्धान्न मुक्तिश्चेदुपायो नापरास्त्विह ॥ किं विधेयं मया प्रेत तत्त्वं वद सविस्तरम् ॥ ३२ ॥ प्रेत उवाच ॥ ग-
याश्राद्धशतेनापि मुक्तिर्मे न भविष्यति ॥ उपायमपरं किंचित्तद्विचारय सांप्रतम् ॥ ३३ ॥ इति तद्वाक्यमाकर्ण्य
गोकर्णो विस्मयं गतः॥ शतश्राद्धैर्न मुक्तिश्चेदसाध्यं मोचनं तव ॥ ३४ ॥इदानीं तु निजस्थानमातिष्ठ प्रेत निर्भयः ॥
त्वन्मुक्तिसाधकं किंचिदाचरिष्ये विचार्य च ॥ ३५ ॥ धुन्धुकारी निजस्थानं तेनादिष्टस्ततो गतः ॥ गोकर्णश्चि-
न्तयामास तां रात्रिं न तदध्यगात् ॥ ३६ ॥ प्रातस्तमागतं दृष्ट्वा लोकाः प्रीत्या समागताः ॥ तत्सर्वं कथितं तेन
यज्जातं च यथा निशि ॥ ३७ ॥ विद्वांसो योगनिष्ठाश्च ज्ञानिनो ब्रह्मवादिनः ॥ तन्मुक्तिं नैव पश्यन्ति पश्यन्तः
शास्त्रसंचयान् ॥ ३८ ॥ ततः सर्वैः सूर्यवाक्यं तन्मुक्तौ स्थापितं परम् ॥ गोकर्णः स्तम्भनं चक्रे सूर्यवेगस्य वै तदा
॥ ३९॥ तुभ्यं नमो जगत्साक्षिन्ब्रूहि मे मुक्तिहेतुकम् ॥ ४० ॥

कारी अपने स्थानको गया गोकर्णने सब रात्रिमें विचार किया परन्तु कोई उपाय निश्चित न हुआ ॥ ३६ ॥ प्रातःकालको गोकर्णका आना सुनकर
बहुत लोग देखनेको आये तब गोकर्णने रात्रिका वृत्तान्त उनसे सब कहकर सुनाया ॥ ३७ ॥ विद्वान् योगी ब्रह्मवादी बहुत शास्त्र देखनेलगे परन्तु
कोई उपाय उसकी मुक्तिका नहीं सिद्ध हुआ ॥ ३८ ॥ तब सबने यही निश्चय किया कि सूर्य भगवान्से इसका उपाय बूझिये जो वोह कहै सो करो
तब गोकर्णने मंत्रबलसे सूर्यका वेग रोक दिया ॥ ३९॥ हे जगत्के साक्षी ! तुमको नमस्कार है इसकी मुक्तिका उपाय बताओ ॥ ४० ॥

अर्द्धरात्रिमें महा भयानक शरीर दिखाता हुआ॥२१॥ कभी मेढा कभी हाथी कभी भैंसा होजाय कभी इन्द्र कभी अग्नि होजाय फिर पुरुष होगया॥२२॥ इस विपरीतकूं देखकर धीरज धारण कर गोकर्णने जाना कि यह कोई दुर्गतिको प्राप्त हुआहै ऐसा निश्चय कर बोला॥२३॥ गोकर्ण बोला भाई! तू कौन है जो रात्रिमें यहां आया है और इस दशाकू प्राप्त है क्या तू प्रेत पिशाच वा राक्षस है सो हमसे कह॥ २४॥ सूतजी बोले जब इस प्रकारसे गोकर्णने पूछा तौ वोह ऊंचे स्वरसे रोने लगा वचन कहनेमें असमर्थ था केवल संज्ञाही करता हुआ अर्थात् संकेतसे कहा ॥ २५ ॥ तब गोकर्णने अंजलीमें

सकृन्मेषः सकृद्धस्ती सकृच्च महिषोऽभवत् ॥ सकृदिन्द्रः सकृच्चाग्निः पुनश्च पुरुषोऽभवत् ॥ २२ ॥ वैपरीत्यमिदं दृष्ट्वा गोकर्णो धैर्यसंयुतः ॥ अयं दुर्गतिकः कोऽपि निश्चित्याथ तमब्रवीत् ॥ २३ ॥ गोकर्ण उवाच ॥ कस्त्वमुग्रतरो रात्रौ कुतो यातो दशामिमाम् ॥ किंवा प्रेतः पिशाचो वा राक्षसोऽसीति शंस नः ॥ २४ ॥ सूत उवाच॥ एवं पृष्टस्तदा तेन रुरोदोच्चैः पुनः पुनः ॥ अशक्तो वचनोच्चारे संज्ञामात्रं चकार ह ॥ २५ ॥ ततोऽञ्जलौ जलं कृत्वा गोकर्णस्तमुदीरयन् ॥ तत्सेकाद्धतपापोऽसौ प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ २६ ॥ प्रेत उवाच ॥ अहं भ्राता त्वदीयोऽस्मि धुन्धुकारीति नामतः॥ स्वकीयेनैव दोषेण ब्रह्मत्वं नाशितं मया ॥२७॥ कर्मणो नास्ति संख्या मे महाऽज्ञाने विवर्तिनः॥ लोकानां हिंसकः सोऽहं स्त्रीभिर्दुःखेन मारितः ॥२८ ॥ अतः प्रेतत्वमापन्नो दुर्दशां च वहाम्यहम् ॥ वाताहारेण जीवामि दैवाधीनफलोदयात् ॥ २९॥ अहो बन्धो कृपासिन्धो भ्रातर्मामाशु मोचय ॥ गोकर्णो वचनं श्रुत्वा तस्मै वाक्यमथाऽब्रवीत् ॥ ३० ॥

जल ले मंत्र पढकर उच्चारण किया उसके छिडकनेसे पाप रहित हो वोह कहने लगा ॥ २६॥ प्रेत बोला गोकर्ण! मैं धुन्धुकारी नाम तुम्हारा भाई हूं अपनेही दोषसे मैंने अपनो ब्राह्मणत्व नाश करदियाहै ॥ २७ ॥ महा अज्ञानमें रहनेवाले मेरे कुकर्मोंकी संख्या नहीं हैं मैं लोकोंका मारनेवाला मुझे स्त्रियोंने दुःखसे मारडाला ॥ २८ ॥ इस्से प्रेतत्वकू प्राप्त हुआहूं अपनी दुर्दशाभी कहताहूं दैवाधीनके फल प्राप्त होनेसे मैं पवन भक्षण कर जीता हूं ॥ २९ ॥ हे कृपासिंधु बंधु ! मुझे इस संकटसे शीघ्र छुटाओ यह वचन सुनकर गोकर्ण उसके प्रति कहने लगा ॥ ३० ॥

तासे कबहूँ भूलसे, इनसे रमो न कोय ॥११॥ वे साहसवाली स्त्रियें उसके देहको गड्ढेमें दाबदेतीहुई यह भेद किसीनेभी नहीं जाना ॥ १२ ॥ आदमायोंको पूछनेपर कहा कि हमारा प्यारा दूरगया है वोह द्रव्य कमानेगयाहै इस वर्षके अन्तमें आवैगा ॥ १३ ॥ पंडितोंको योग्य है कि स्त्रियोंका और दुष्टोंका विश्वास न करै जो इनका विश्वास करता है सो दुःखी होता है ॥ १४ ॥ इनके वचन कामियोंको रस बढानेंवाले अमृतकी समान हैं हृदय छुरेकी धाराकी नाई है इस्से कहते हैं कि स्त्रियोंको कौन प्यारा है अर्थात् कोईभी नहीं है ॥१५॥ वे कुलटा बहुत भर्त्ता करनेवाली उसका सब धन

तं देहं मुमुचुर्गर्ते प्रायः साहसिकाः स्त्रियः॥न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापीदं तथैव च ॥ १२ ॥ लोकैः पृष्टा वदन्ति स्म दूरं यातः प्रियो हि नः ॥ आगमिष्यति वर्षेऽस्मिन्वित्तलोभविकर्षितः ॥ १३ ॥ स्त्रीणां नैव तु विश्वासं दुष्टानां कारयेद्बुधः॥ विश्वासे यः स्थितो मूढः स दुःखैः परिभूयते ॥१४॥ सुधामयं वचो यासां कामिनां रसवर्धनम्॥ हृदयं क्षुरधाराभं प्रियः को नाम योषिताम् ॥ १५ ॥ संहृत्य वित्तं ता याताः कुलटा बहुभर्तृकाः ॥ धुन्धुकारी बभूवाऽथ महान्प्रेतः कुकर्मतः ॥ १६ ॥ वात्यारूपधरो नित्यं धावन्दशदिशोऽन्तरम् ॥ शीतातपपरिक्लिष्टो निराहारः पिपासितः ॥ १७॥ न लेभे शरणं कुत्र हा दैवेति मुहुर्वदन् ॥ कियत्कालेन गोकर्णो मृतं लोकादबुध्यत ॥ १८ ॥ अनाथं तं विदित्वैव गयाश्राद्धमचीकरत् ॥ यस्मिंस्तीर्थे तु संयाति तत्र श्राद्धं प्रवर्तयन् ॥१९॥ एवं भ्रमन्स गोकर्णः स्वपुरं समुपेयिवान् ॥ रात्रौ गृहाङ्गणे स्वप्तुमागतोऽलक्षितः परैः ॥ २० ॥ तत्र सुप्तं स विज्ञाय धुन्धुकारी स्वबान्धवम् ॥ निशीथे दर्शयामास महारौद्रतरं वपुः ॥ २१ ॥

लेकर चलीगई और धुंधुकारी कुकर्मसे महाप्रेत हुआ ॥ १६ ॥ वायुरूप धारण कियेहुये नित्य दश दिशाओंमें फिरै शीत धूपसे व्याकुल निराहार भूंखा प्यासा ॥ १७ ॥ कहीं शांतिकू न प्राप्त हुआ हा दैव! ऐसा वारंवार कहने लगा कुछ कालमें गोकर्णने लोगोंसे सुना कि धुंधुकारी मरगया॥१८॥ उसे अनाथ जानकर गयामें श्राद्ध किया और जिस जिस तीर्थमें जाय तहाँ तहाँ श्राद्ध करै ॥ १९ ॥ इसप्रकार भ्रमण करताहुआ अपने नगरमें प्राप्त हुआ रात्रिमें घरके आंगनमें सोनको आया इसे किसीने न जाना ॥ २० ॥ वोह धुंधुकारी तहां अपने भाईको सोता जानकर

धुन्धुकारने माताको बहुत मारा और कहा बता धन कहां है नहीं तौ लातोंसे मारूंगा॥१॥इस प्रकार माता उसके वचनसे भयभीत दुखी हो रातमें कुएमें गिरकर मरगई॥२॥गोकर्ण योगमें स्थितहो तीर्थ यात्राको चलेगये उसे न दुःख न सुख न कोई वैरी है न बन्धु॥३॥धुंधुकारी उसघरमें पांच वेश्याओंके साथ रहनेलगा बडा कुत्सितकर्मी उनका पालन मूर्खतासे करने लगा ॥ ४ ॥ एक समय उनकू गहनेकी इच्छा हुई तौ यह कामान्ध मृत्युका विचार न करकै घरसे निकला ॥ ५ ॥ इधर उधरसै द्रव्य संचय करकै फिर घरकू आया उन्हैं कितने एक भूषण और वस्त्र दिये ॥ ६ ॥ बहुत धन

इति तद्वाक्यसंत्रासाज्जनन्या पुत्रदुःखतः॥ कूपे पातः कृतो रात्रौ तेन सा निधनं गता ॥ २ ॥ गोकर्णस्तीर्थयात्रार्थं निर्गतो योगसंस्थितः ॥ न दुःखं न सुखं तस्य न वैरी नापि बान्धवः ॥ ३ ॥ धुन्धुकारी गृहेऽतिष्ठत्पञ्चपण्यवधूवृतः ॥ अत्युग्रकर्मकर्ता च तत्पोषणविमूढधीः ॥ ४ ॥ एकदा कुलटास्तास्तु भूषणान्यभिलिप्सवः ॥ तदर्थं निर्गतो गेहात्कामान्धो मृत्युमस्मरन् ॥ ५ ॥ यतस्ततश्च संहृत्य वित्तं वेश्म पुनर्गतः ॥ ताभ्योऽयच्छत्सुवस्त्राणि भूषणानि कियन्ति च ॥ ६ ॥ बहुवित्तचयं दृष्ट्वा रात्रौ नार्योऽविचारयन् ॥ चौर्यं करोत्यसौ नित्यमतो राजा ग्रहीष्यति ॥ ७ ॥ वित्तं हृत्वा पुनश्चैनं मारयिष्यति निश्चितम् ॥ अतोऽर्थगुप्तये गूढमस्माभिः किं न हन्यते ॥८ ॥ निहत्यैनं गृहीत्वाऽर्थं यास्यामो यत्र कुत्रचित् ॥ इति ता निश्चयं कृत्वा सुप्तं संबध्य रश्मिभिः ॥ ९ ॥ पाशं कण्ठे निधायास्य तन्मृत्युमुपचक्रमुः ॥ त्वरितं न ममारासौ चिन्तायुक्तास्तदाऽभवन् ॥ १० ॥ तप्ताङ्गारसमूहांश्च तन्मुखे हि विचिक्षिपुः ॥ अग्निज्वालातिदुःखेन व्याकुलो निधनं गतः ॥ ११ ॥

संचय देखकर वे स्त्री रात्रिमें विचारनें लगी यह प्रतिदिन चोरी करताहै कदाचित् राजा पकडलेगा तौ॥७॥यह सब धन फिर लेकर इसे निश्चय मार डालैगा तौ धनकी रक्षाके निमित्त गुप्त रीतिसे हमही इसे क्यों न मारडालैं ॥ ८ ॥ इसे मारकै यह सब धन ले इच्छापूर्वक विचरैं यह उन्होंने निश्चय करकै सोते हुएको रस्सियोंसें बांधा ॥ ९ ॥ इसकै गलेमें फांसी डालकर मारने लगीं जब यह जलदी न मरा तौ चिन्तासे विचारने लगीं ॥ १० ॥ बहुतसारे अंगारोंसे उसका मुख जलाया तब अग्नि लगनेके दुःख करकै वोह मरगया ॥ दोहा ॥ जो गणिकाके संग रमै, तेहिकी यह गति होय ।

विरक्त मुनिकोही कुछ सुख है ॥ ७५ ॥ यह संतानरूप अज्ञान छोड, मोहसे नरक होता है यह देह एकदिन गिरजायगा इस कारण सब कुछ त्यागन कर वनको जाओ ॥ ७६ ॥ उसके यह वचन सुन वनके जानेकी इच्छा करते गोकर्णसे इसप्रकार उसके पिता बोले हे पुत्र! वनमें क्या कर्तव्य है सो तुम विस्तारसे कहो ॥७७॥ स्नेहपाशसे बँधाहुआ मैं लंगडा हुआ मूर्ख कर्मोंसे इस संसाररूपी अंधकूपमें पडाहूं हे दयालु पुत्र! मुझे निकाल ॥७८॥ गोकर्ण बोला इस अस्थि मांस रुधिरसे बनेहुए देहमें अभिमान मतकरो स्त्री पुत्रोंसे ममताकू त्यागन करो इस जगत्कूं प्रतिदिन क्षणभंगुर

मुञ्चाज्ञानं प्रजारूपं मोहतो नरके गतिः ॥ निपतिष्यति देहोऽयं सर्वं त्यक्त्वा वनं व्रज ॥ ७६ ॥ तद्वाक्यं तु समाकर्ण्य गन्तुकामः पिताऽब्रवीत् ॥ किं कर्तव्यं वने तात तत्त्वं वद सविस्तरम् ॥ ७७ ॥ अन्धकूपे स्नेहपाशैर्बद्धः पङ्गुरहं शठः ॥ कर्मणा पतितो नूनं मामुद्धर दयानिधे ॥ ७८ ॥ गोकर्ण उवाच ॥ देहेऽस्थिमांसरुधिरेऽभिमतिं त्यज त्वं जायासुतादिषु सदा ममतां विमुञ्च ॥ पश्याऽनिशं जगदिदं क्षणभङ्गनिष्ठं वैराग्यरागरसिको भव भक्तिनिष्ठः ॥ ७९ ॥ धर्मं भजस्व सततं त्यज लोकधर्मान्सेवस्व साधुपुरुषाञ्जहि कामतृष्णाम् ॥ अन्यस्य दोषगुणचिन्तनमाशु मुक्त्वा सेवाकथारसमहो नितरां पिब त्वम् ॥ ८० ॥ एवं सुतोक्तिवशतोऽपि गृहं विहाय यातो वनं स्थिरमतिर्गतषष्टिवर्षः ॥ युक्तो हरेरनुदिनं परिचर्ययाऽसौ श्रीकृष्णमाप नियतं दशमस्य पाठात् ॥८१॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवतमाहात्म्ये विप्रमोक्षो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ सूत उवाच ॥ पितर्युपरते तेन जननी ताडिता भृशम् ॥ क्व वित्तं तिष्ठते ब्रूहि हनिष्ये लत्तया न चेत् ॥ १ ॥

जानो भक्तिमें प्रीति करके वैराग्यका सुख अनुभव करो ॥७९॥ नित्य भागवतधर्मोंको सेवन करो काम्य कर्मोंका त्यागन करो काम और तृष्णाको छोड साधुओंकी सेवा करो औरोंके दोष गुणोंका चिंतन छोड भगवतकी सेवा और कथारसको नित्य पिओ ॥८०॥ यह पुत्रका उपदेश सुन घर त्यागनकर वोह साठ वर्षकी अवस्था युक्त ब्राह्मण स्थिर मति करकै वनको चलागया नित्यप्रति श्रीकृष्णचंद्रकी सेवा करने और दशमके पाठ करनेसे श्रीकृष्णकूं प्राप्त हुआ ॥ ८१ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे भागवतमाहात्म्ये भाषाटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ सूतजी बोले पिताके मरजानेसे

गौके थे इस कारण पिताने इसका गोकर्णही नाम धरा ॥ ६५ ॥ कुछ कालमें वोह दोनों बालक तरुण हुए गोकर्ण ज्ञानी पंडित और धुन्धुकारी बडा दुष्ट हुआ ॥ ६६ ॥ स्नान शौच क्रियासे रहित कुत्सित वस्तु भक्षण करै क्रोधी दुष्ट परिग्रहकर्ता चाण्डालोंके हाथ भोजन करै ॥ ६७ ॥ चोर सबसे वैर कर पराये घरोंमें आग लगादे छोटे बालकोंको देखकर कुएमें डालदे ॥ ६८ ॥ हत्यारा शस्त्र धारै दीन और अंधोंको दुःख दे चांडालोंके संग प्रीति करै जाललिये फिरै ॥ ६९ ॥ वेश्याके संगसे उसने अपने पिताको सब धन नष्ट करदिया एक समय पिता माताको पीटकर

कियत्कालेन तौ जातौ तरुणौ तनयावुभौ ॥ गोकर्णः पण्डितो ज्ञानी धुन्धुकारी महाखलः ॥६६ ॥ स्नानशौचक्रियाहीनो दुर्भक्षी क्रोधसंयुतः ॥ दुष्परिग्रहकर्त्ता च शवहस्तेन भोजनः ॥ ६७॥ चौरः सर्वजनद्वेषी परवेश्मप्रदीपकः॥ लालनायार्भकान्धृत्वा सद्यः कूपे न्यपातयत् ॥ ६८ ॥ हिंसकः शस्त्रधारी च दीनान्धानां प्रपीडकः ॥ चाण्डालाभिरतो नित्यं पाशहस्तश्च सङ्गतः ॥ ६९ ॥ तेन वेश्याकुसङ्गेन पित्र्यं वित्तं तु नाशितम् ॥ एकदा पितरौ ताड्य पात्राणि स्वयमाहरत् ॥ ७० ॥ तत्पिता कृपणः प्रोच्चैर्धनहीनो रुरोद ह ॥ वन्ध्यत्वं तु समीचीनं कुपुत्रो दुःखदायकः ॥ ७१ ॥ क्व तिष्ठामि क्व गच्छामि को मे दुःखं व्यपोहयेत् ॥ प्राणांस्त्यजामि दुःखेन हा कष्टं मम संस्थितम् ॥ ७२ ॥ तदानीं तु समागत्य गोकर्णो ज्ञानसंयुतः ॥ बोधयामास जनकं वैराग्यं परिदर्शयन् ॥ ७३ ॥ असारः खलु संसारो दुःखरूपी विमोहकः ॥ सुतः कस्य धनं कस्य स्नेहवाञ्ज्वलतेऽनिशम् ॥ ७४ ॥ न चेन्द्रस्य सुखं किंचिन्न सुखं चक्रवर्तिनः ॥ सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तजीविनः ॥ ७५ ॥

घरके बर्तन लेगया ॥७०॥ उसका पिता कृपण धनहीन होजानेसे ऊंचे स्वरसे रोनेलगा पुत्रका न होनाही भला है क्योंकि कुपुत्र दुःखदायक है ॥७१॥ कहां रहूं कहां जाऊं कौन मेरे दुःख दूर करै मैं दुःखसे प्राण त्याग दूंगा हा हा कष्ट है ॥ ७२ ॥ उस समय ज्ञानी गोकर्ण आयकर पिताकू वैराग्य दिखाता हुआ समझाने लगा ॥ ७३ ॥ यह संसार असार है दुःखरूप मोह करानेहारा है सुत किसका धन किसका यह सब मिथ्या है इसमें प्रेम करनेहारा रात दिन दुःखी होता है ॥ ७४ ॥ इंद्रकोभी कुछ सुख नहीं न चक्रवर्तीको कुछ है परन्तु एकान्तसेभी

कुछ समय उपरान्त उस नारीके बालक हुआ तब उसके पिताने एकान्तमें वोह बालक लाकर धुंधलीको दिया ॥५६॥ तब धुन्धलीने अपने स्वामीसे कही कि मेरे सुखपूर्वक बालक उत्पन्न होगया आत्मदेवके संतान होनेसे बहुतोंको प्रसन्नता हुई ॥ ५७ ॥ जातकर्म किया ब्राह्मणोंको दान दिया गीत बाजोंके शब्द और सब मंगल उसके द्वारेपर हुए ॥ ५८ ॥ धुन्धुली अपने पतिसे बोली मेरे कुचोंमें दूध नहींहै सो मैं निर्दुग्धा दूसरीके दूध विना बालककू कैसे पालोंगी ॥ ५९ ॥ मेरी बहनका थोडेही दिनोंका उत्पन्न हुआ बालक मरगया है उसे अपने घरमें बुलालो काम धंधाभी करैगी बालककोभी पालन करैगी ॥ ६० ॥ पतिने पुत्ररक्षाके निमित्त यह सब कुछ किया माताने पुत्रका नाम धुंधुकारी रक्खा ॥६१ ॥ तीन महीने उपरान्त उस गायकेभी एक बालक उत्पन्न हुआ सर्वांग सुंदर उज्ज्वल दिव्य शरीर सुवर्णकी नाई ॥ ६२ ॥ ब्राह्मण उसे देख बडा प्रसन्न हो स्वयं उसके संस्कार करता हुआ इसे आश्चर्य मानकर बहुत मनुष्य देखनेको आये ॥ ६३ ॥ देखो अब आत्मदेवका भाग्य उदय हुआ है जो गौनेभी देवरूपी बालक उत्पन्न किया है बडे आश्चर्यकी बात है ॥ ६४ ॥ दैवसे किसीनेभी इस भेदको नहीं जाना सब शरीर मनुष्यका केवल कानही

अथ कालेन सा नारी प्रसूता बालकं तदा ॥ आनीय जनको बालं रहस्ये धुन्धलीं ददौ ॥ ५६ ॥ तया च कथितं भर्त्रे प्रसूतः सुखमर्भकः ॥ लोकस्य सुखमुत्पन्नमात्मदेवप्रजोदयात् ॥५७॥ ददौ दानं द्विजातिभ्यो जातकर्म विधाय च ॥ गीतवादित्रघोषोऽभूत्तद्द्वारे मङ्गलं बहु ॥ ५८ ॥ भर्तुरग्रेऽब्रवीद्वाक्यं स्तन्यं नास्ति कुचे मम ॥ अन्यस्तन्येन निर्दुग्धा कथं पुष्णामि बालकम् ॥ ५९ ॥ मत्स्वसायाः प्रसूताया मृतो बालस्तु वर्तते ॥ तामाकार्य गृहे रक्ष सा तेऽर्भं पोषयिष्यति ॥ ६० ॥ पतिना तत्कृतं सर्वं पुत्ररक्षणहेतवे ॥ पुत्रस्य धुन्धुकारीति नाम मात्रा प्रतिष्ठितम् ॥ ६१ ॥ त्रिमासे निर्गते चाथ सा धेनुः सुषुवेऽर्भकम् ॥ सर्वाङ्गसुन्दरं दिव्यं निर्मलं कनकप्रभम् ॥ ६२ ॥ दृष्ट्वा प्रसन्नो विप्रस्तु संस्कारान् स्वयमादधे ॥ मत्त्वाश्चर्यं जनाः सर्वे दिदृक्षार्थं समागताः ॥ ६३ ॥ भाग्योदयोऽधुना जात आत्मदेवस्य पश्यत ॥ धेन्वा बालः प्रसूतस्तु देवरूपीति कौतुकम् ॥ ६४ ॥ न ज्ञातं तद्रहस्यं तु केनापि विधियोगतः ॥ गोकर्णं च सुतं दृष्ट्वा गोकर्णं नाम चाकरोत् ॥६५ ॥

कहीं भाग्यसें गांवमें आग लगजाय तौ गर्भिणी कैसे भाजें शुककी नाईं रहतेहुए गभकूं कोखसे कैसे त्याग न करै ॥ ४६ ॥ और जो कहीं गर्भ टेढा पडगया तौ मेरा मरणही होजायगा प्रसूतके समय बडा दुःख होता है उसे सुकुमारी कैसे सहै ॥४७॥ तब मुझ मंदभागनीके सर्वस्व धनकूं ननन्द हरण कर लेगी और फिर सत्य शौचादि नियमसे मुझे यह दुःसाध्यही दीखै है॥४८॥ फिर बालकके लालन पालनमें बडा दुःख होता है यातौं वंध्या या विधवा नारी सुखी है यह मेरी मति है॥४९॥ऐसी कुतर्कना करकै उसने वोह फल नहीं खाया और जब पतिने पूछा कि फल खाया तौ कह दिया कि हां खा लिया॥५०॥एक समय उसकी भगिनी निज इच्छासे उसके घर आई उसके आगे इसने सब वृत्तान्त सुनाकर कहा कि मुझे यह बडी चिन्ता है

दैवाद्धाटीं व्रजेद्ग्रामे पलायेद्गर्भिणी कथम् ॥ शुकवान्निवसेद्गर्भस्तं कुक्षेः कथमुत्सृजेत् ॥४६॥ तिर्यक् चेदागतो गर्भस्तदा मे मरणं भवेत् ॥ प्रसूतौ दारुणं दुःखं सुकुमारी कथं सहे ॥ ४७॥ मन्दायां मयि सर्वस्वं ननान्दा संहरेत्तदा ॥ सत्यशौचादिनियमो दुराराध्यः स दृश्यते ॥ ४८ ॥ लालने पालने दुःखं प्रसूतायाश्च वर्तते॥ वन्ध्या वा विधवा नारी सुखिनी चेति मे मतिः ॥ ४९ ॥ एवं कुतर्कयोगेन तत्फलं नैव भक्षितम् ॥ पत्या पृष्टं फलं भुक्तं भुक्तं चेति तयेरितम् ॥ ५० ॥ एकदा भागिनी तस्यास्तद्गृहे स्वेच्छयाऽऽगता ॥ तदग्रे कथितं सर्वं चिन्तेयं महती हि मे॥५१॥दुर्बला तेन दुःखेन ह्यनुजे करवाणि किम् ॥ साऽब्रवीन्मम गर्भोऽस्ति तं दास्यामि प्रसूतितः ॥५२॥ तावत्कालं सगर्भैव गुप्ता तिष्ठ गृहे सुखम्॥ वित्तं त्वं मत्पतेर्यच्छ स ते दास्यति बालकम् ॥५३॥षाण्मासिको मृतो बाल इति लोको वदिष्यति॥ तं बालं पोषयिष्यामि नित्यमागत्य ते गृहे ॥ ५४ ॥ फलमर्पय धेन्वै त्वं परीक्षार्थं तु सांप्रतम् ॥ तत्तयाचरितं सर्वं तथैव स्त्रीस्वभावतः ॥ ५५ ॥

॥५१॥इसी दुःखसे दुर्बल होगई हूं, छोटी बहन! बता तो क्या करूं तब वोह बोली मुझै गर्भ है उत्पन्न होनेपर तुझै दूंगी ॥५२॥ तबतक तू सगर्भासी होकर घरमें सुखी रह तू मेरे पतिकू द्रव्य दीजै वोह तुझै बालकको देदैगा ॥ ५३ ॥ मेरा बालक छः महीनेका मरगया ऐसा मैं प्रगट करदूंगी और प्रतिदिन आकर तेरे बालककू मैं दूध पियाया करूंगी ॥५४॥ और परीक्षाके निमित्त तू यह फल इस समय गायकू देदे यह सुनकर उसने स्त्रीस्वभावसे यह सब कुछ किया ॥ ५५ ॥

ब्राह्मण बोला मुझे ज्ञानसे कुछ न होगा कैसेही हो पुत्र दीजिये नहींतौ तुह्मारे आगेही मैं प्राणोंको दुःखीहुआ त्यागकर दूंगा ॥३७॥ पुत्रादि सुखहीन यह संन्यासभी शुष्कही है गृहस्थही जो पुत्र पौत्र युक्त हैं वो लोकमें प्रसन्न हैं ॥३८॥ यह ब्राह्मणका आग्रह देख वोह तपस्वी बोला अरे विधिके अंक मिटानेसे चित्रकेतुको बडा दुःख हुआथा इस कारण प्रारब्धका अतिक्रमण नहीं करना ॥ ३९ ॥ जैसे दैवहत होनेसे उद्यम वृथा होता है इसी प्रकार पुत्रसे तुझै कुछ सुख नहीं प्राप्तहोगा इसकारण तुझे हठी अर्थीसे मैं क्या कहूं ॥ ४० ॥ उस ब्राह्मणका बहुत आग्रह देखकर यतीने उसे एक फल दिया यह कहा इसे तू अपनी स्त्री को खवा एक पुत्र होगा ॥ ४१ ॥ सत्य शौच दया दान पूर्वक रहने दुपहरके

ब्राह्मण उवाच ॥ विवेकेन भवेत्किं मे पुत्रं देहि बलादपि ॥ नो चेत्त्यजाम्यहं प्राणांस्त्वदग्रे शोकमूर्छितः ॥ ३७ ॥ पुत्रादिसुखहीनोऽयं संन्यासः शुष्क एव हि ॥ गृहस्थः सरसो लोके पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥ ३८ ॥ इति विप्राग्रहं दृष्ट्वा प्राब्रवीत्स तपोधनः ॥ चित्रकेतुर्गतः कष्टं विधिलेखाविमार्जनात् ॥३९॥ न यास्यसि सुखं पुत्राद्यथा दैवहतोद्यमः ॥ अतो हठे न युक्तोऽसि ह्यर्थिनं किं वदाम्यहम् ॥ ४० ॥ तस्याग्रहं समालोक्य फलमेकं स दत्तवान् ॥ इदं भक्षय पत्न्या त्वं ततः पुत्रो भविष्यति॥४१॥ सत्यं शौचं दया दानमेकभक्तं तु भोजनम्॥ वर्षावधि स्त्रिया कार्यं तेन पुत्रोऽतिनिर्मलः ॥४२॥ एवमुक्त्वा ययौ योगी विप्रस्तु गृहमागतः॥ पत्न्याः पाणौ फलं दत्त्वा स्वयं यातस्तु कुत्रचित् ॥४३॥ तरुणी कुटिला तस्य सख्यग्रे च रुरोद ह ॥ अहो चिन्ता ममोत्पन्ना फलं चाहं न भक्षये ॥४४॥ फलभक्ष्येण गर्भः स्याद्गर्भेणोदरवृद्धिता ॥ स्वल्पभक्ष्यं ततोऽशक्तिर्गृहकार्ये कथं भवेत् ॥ ४५ ॥

उपरांत अतिथिको भोजन कराकर आप खाना इस प्रकारसे एक वर्षतक स्त्री रहैगी तौ श्रेष्ठ पुत्र होगा ॥ ४२ ॥ यह कह कर योगी चलेगये ब्राह्मण अपने घरमें आया वोह फल स्त्रीको दे उसका विधान बताय ब्राह्मण कहीं चलागया ॥ ४३ ॥ उसकी तरुणी कुटिल तौ थीही सखीके आगे रुदन करनेलगी अरी मुझे बडी चिंता उत्पन्न हुई है मैं इस फलकूं न खाऊंगी ॥ ४४ ॥ फल खानेसे गर्भ रहैगा फिर पेट बढैगा थोडा भोजन करनेसे निर्बलता हो जायगी तौ घरके काम कैसे होंगे ॥ ४५ ॥

चित किये दुःखकूं आपसे क्या कहूं मेरे पूर्वज पितर मेरे दिये हुए जलको श्वाससे गरमकर पीते है कि आगेको इसके सन्तान न होनेसे हमें जल न मिलैगा ॥ २७ ॥ मेरे दियेहुएकूं प्रीतिसे देवता ब्राह्मणभी नहीं ग्रहण करते मैं सन्तानके दुःखसे जडताको प्राप्त हो प्राण त्यागन करनेकूं यहां आयाहूं ॥ २८ ॥ संतानके विना जीनेको धिक्कार है विनासंतानके घरको धिक्कार है पुत्रहीनके धनको धिक्कार है संतानके विना कुलको धिक्कार है ॥२९ ॥ जो मैं धेनु पालताहूं वोहभी तौ वंध्या होती है और जो मैं वृक्ष लगाताहूं वोहभी फलरहित होजाता है ॥३० ॥ जो फल मेरे घर आता है वोह शीघ्र सूखजाता है तौ निर्भाग्य पुत्रहीन मेरे जीनेसे क्या है ॥ ३१॥ ऐसा कह वोह ब्राह्मण उस यतिके धोरे बैठकर ऊंचे स्वरसे रोने लगा तब उस संन्यासीके

मद्दत्तं नैव गृह्णन्ति प्रीत्या देवा द्विजातयः ॥ प्रजादुःखेन शून्योऽहं प्राणांस्त्यक्तुमिहागतः ॥ २८ ॥ धिग्जीवितं प्रजाहीनं धिग्गृहं च प्रजां विना ॥ धिग् धनं चानपत्यस्य धिक्कुलं संततिं विना ॥ २९॥ पाल्यते या मया धेनुः सा वन्ध्या सर्वथा भवेत् ॥ यो मया रोपितो वृक्षः सोऽपि वन्ध्यत्वमाश्रयेत् ॥ ३०॥ यत्फलं मद्गृहायातं शीघ्रं तच्च विशुष्यति ॥ निर्भाग्यस्यानपत्यस्य किमतो जीवितेन मे ॥ ३१ ॥ इत्युक्त्वा स रुरोदोच्चैस्तत्पार्श्वे दुःखपीडितः ॥ तदा तस्य यतेश्चित्ते करुणाऽभूद्गरीयसी ॥ ३२ ॥ तद्भालाक्षरमालां च वाचयामास योगवान् ॥ सर्वं ज्ञात्वा यतिः पश्चाद्विप्रमूचे सविस्तरम् ॥ ३३ ॥ यतिरुवाच ॥ मुञ्चाज्ञानं प्रजारूपं बलिष्ठा कर्मणो गतिः ॥ विवेकं तु समासाद्य त्यज संसारवासनाम् ॥ ॥ ३४ ॥ शृणु विप्र मया तेऽद्य प्रारब्धं तु विलोकितम् ॥ सप्तजन्मावधि तव पुत्रो नैव च नैव च ॥ ३५ ॥ संततेः सगरो दुःखमवापाङ्गः पुरा तथा ॥ रे मुञ्चाद्य कुटुम्बाशां संन्यासे सर्वथा सुखम् ॥ ३६ ॥

चित्तमें बडी दया हुई ॥ ३२ ॥ वोह योगी उसकी माथेकी रेखा अर्थात प्रारब्धकूं बांचताहुआ सब जानकर फिर ब्राह्मणसे प्रति विस्तारपूर्वक वचन बोला॥३३॥यति बोले ब्राह्मण ! संतान रूप अज्ञानकूं त्यागनकर कर्मकी गति बडी बलवान् है ज्ञानके आश्रित हो संसारवासनाकूं त्यागन कर ॥३४॥ सुन ब्राह्मण इस समय मैंने तेरी प्रारब्ध देखी सातजन्म पर्यन्त तेरा पुत्र नहीं है ॥ ३५ ॥ संतानसे सगर और अंगराजाने पहले बडा दुःख पायाथा अरे कुटुम्बकी आशा त्याग संन्यासमें सर्वथा सुख है ॥ ३६ ॥

72

वो भिक्षुक धनवान था उसकी स्त्रीका नाम धुन्धुली सुन्दरी सत्कुलोत्पन्ना सदा अपनी टेक रखनेहारी थी ॥ १८ ॥ लोकवार्त्तामें प्रीति करनेहारी क्रूरा और बहुतबोले थी बलवान घरके कार्योंमें कृपण कलेश कारिणी थी ॥ १९ ॥ इस प्रकार प्रेमपूर्वक उन दोनोंको रहते विहार करते हे राजन् ! अर्थ काम सम्पन्न गृहादिक उन्हें सुखकारी न हुआ ॥ २० ॥ तब उन्होंने सन्तानके निमित्त दीनोंको गौ भूमि सुवर्ण सदा देकर धर्म करना प्रारम्भ किया ॥ २१ ॥ जब कि उन दोनों स्त्री पुरुषोंने धर्ममार्गमें आधा धन लगादिया और तौभी कोई बेटा

भिक्षुको वित्तवाँल्लोके तत्प्रिया धुन्धुली स्मृता ॥ स्ववाक्यस्थापिका नित्यं सुन्दरी सुकुलोद्भवा ॥ १८ ॥ लोकवार्तारता क्रूरा प्रायशो बहुजल्पिका ॥ शूरा च गृहकृत्येषु कृपणा कलहप्रिया ॥१९॥ एवं निवसतोः प्रेम्णा दम्पत्यो रममाणयोः ॥ अर्थाः कामास्तयोरासन्न सुखाय गृहादिकम् ॥ २० ॥ पश्चाद्धर्माः समारब्धास्ताभ्यां सन्तानहेतवे ॥ गोभूहिरण्यवासांसि दीनेभ्यो यच्छतः सदा ॥ २१ ॥ धनार्धं धर्ममात्रेण ताभ्यां नीतं तथाऽपि च ॥ न पुत्रो नापि वा पुत्री ततश्चिन्तातुरो भृशम् ॥ २२ ॥ एकदा स द्विजो दुःखाद्गृहं त्यक्त्वा वनं गतः ॥ मध्याह्ने तृषिता जातस्तडागं समुपेयिवान् ॥ २३ ॥ पीत्वा जलं विषण्णस्तु प्रजादुःखेन कर्शितः ॥ मुहूर्तादपि तत्रैव संन्यासी कश्चिदागतः ॥ २४ ॥ दृष्ट्वा पीतजलं तं तु विप्रो यातस्तदन्तिकम् ॥ नत्वा च पादयोस्तस्य निःश्वसन्संस्थितः पुरः ॥ २५ ॥ यतिरुवाच ॥ कथं रोदिषि विप्र त्वं का ते चिन्ता बलीयसी ॥ वद त्वं सत्वरं मह्यं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥२६॥ ब्राह्मण उवाच ॥ किं ब्रवीमि ऋषे दुःखं पूर्वपापेन संचितम् ॥ मदीयाः पूर्वजास्तोयं कवोष्णमुपभुञ्जते ॥२७॥

बेटी न हुई तब ब्राह्मणकूं बडी चिन्ता हुई ॥ २२ ॥ एक समय वोह ब्राह्मण दुःखी हो घरसे निकल वनको चलागया दुपहरके समय प्याससे व्याकुल हो एक सरोवरके निकट प्राप्त हुआ ॥ २३ ॥ जल पीकर सन्तानके दुःखसे दुःखी वोह तहांहीं बैठगया कि एक मुहूर्त उपरान्त कोई संन्यासी तहां आया ॥ २४ ॥ जब वोह जल पी चुका तब यह ब्राह्मण उसके धोरे जा चरण वंदन कर श्वास लेता आगे बैठा ॥ २५ ॥ यति बोला ब्राह्मण ! क्यों रोता है तेरे मनमें क्या चिंता है तू शीघ्र मुझसे अपने दुःखका कारण कह ॥ २६ ॥ ब्राह्मण बोला महाराज ! सब पापसे सं-

विशुद्ध होते हैं महात्माओंने लोकका हित विचार कर क्या कोई नवीन मार्ग स्थापित किया है ॥ १० ॥ कुमार बोले जो मान देनेवाले पापात्मा सदा दुराचारवाले कुत्सित मार्गमें चलनेवाले क्रोधाग्निसे दग्ध कुटिल कामी हैं वेभी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र होजाते हैं ॥ ११ ॥ सत्यसे हीन पिता माताको दोष देनेवाले तृष्णासे व्याकुल आश्रमधर्मसे वर्जित जो पाखण्डो घमंडी हिंसकभी हैं वेभी सप्ताह यज्ञसे कलियुगमें पवित्र होजाते हैं ॥ १२ ॥ पांच बडे उग्रताप छल छद्मकारी जो क्रूर और पिशाचोंकी नाईं निर्दई हैं जो ब्राह्मणोंके द्रव्य हरण कर पुष्ट होते व्यभिचारी हैं

कुमारा ऊचुः ॥ ये मानदाः पापकृतस्तु सर्वदा सदा दुराचाररता विमार्गगाः ॥ क्रोधाग्निदग्धाः कुटिलाश्च कामिनः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ ११ ॥ सत्येन हीनाः पितृमातृदूषकास्तृष्णाकुलाश्चाश्रमधर्मवर्जिताः ॥ ये दाम्भिका मत्सरिणोऽपि हिंसकाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १२ ॥ पञ्चोग्रपापाश्छलछद्मकारिणः क्रूराः पिशाचा इव निर्दयाश्च ये ॥ ब्रह्मस्वपुष्टा व्यभिचारकारिणः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥ १३ ॥ कायेन वाचा मनसापि पातकं नित्यं प्रकुर्वन्ति शठा हठेन ये ॥ परस्वपुष्टा मलिना दुराशयाः सप्ताहयज्ञेन कलौ पुनन्ति ते ॥१४॥ अत्र ते कीर्तयिष्याम इतिहासं पुरातनम् ॥ यस्य श्रवणमात्रेण पापहानिः प्रजायते ॥ १५ ॥ तुङ्गभद्रातटे पूर्वमभूत्पत्तनमुत्तमम् ॥ यत्र वर्णाः स्वधर्मेण सत्यसत्कर्मतत्पराः ॥ १६ ॥ आत्मदेवः पुरे तस्मिन्सर्ववेदविशारदः ॥ श्रौतस्मार्तेषु निष्णातो द्वितीय इव भास्करः ॥ १७ ॥

वेभी कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र होते हैं ॥ १३ ॥ और जो शठ हठपूर्वक मन वचन कर्मसे नित्य पाप करतेहैं पराये द्रव्य लेकर पुष्ट होतेहैं वे मलीन दुष्ट चित्तवारे कलियुगमें सप्ताहयज्ञसे पवित्र होते हैं ॥ १४ ॥ यहां मैं तुमसे एक पुरातन इतिहास कहूंगा जिसके सुन्नेसेही पाप नष्ट हो जातेहैं ॥ १५ ॥ तुंगभद्रा नदीके किनारे एक सर्वोत्तम नाम उत्तम पत्तन था जहांके चारों वर्ण अपने धर्मके सत्कर्मोंमें तत्पर थे ॥ १६ ॥ उसी पुरमें सब वेदोंका जान्नेवाला आत्मदेव नाम ब्राह्मण श्रौतस्मार्तकर्मोंका पारंगत दूसरे सूर्यकी नाईं निवास करै है ॥१७॥

श्रीभागवतमाहात्म्ये भक्तिकष्टनिवर्तनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ सूतजी बोले इनके उपरान्त वैष्णवोंके चित्तमें अलौकिक भक्ति देख भगवान् भक्तवत्सल ॥ १ ॥ वनमाली घनश्याम पीतवस्त्र धारें मनोहर वेश किये कमरमें क्षुद्रघंटिका मोरमुकुट सुंदर कुंडल धारण किये ॥ २ ॥ त्रिभंगी छबि किये सुंदर कौस्तुभमणिसे विराजमान कोटि कामदेवकी समान शोभायमान हारचंदन लगाये हुए ॥३॥ परमानंद चिन्मूर्ति मधुरमुरली धारण किये भक्तोंके निर्मल मनोंमें प्रवेश करते हुए ॥ ४ ॥ जो वैकुण्ठके रहनेवारे और जो वैष्णव उद्धवादिक हैं वे गूढ रूपसे कथा सुन्नेको स्थित हुए ॥५॥ तब

सूत उवाच ॥ अथ वैष्णवचित्तेषु दृष्ट्वा भक्तिमलौकिकीम् ॥ निजलोकं परित्यज्य भगवान्भक्तवत्सलः ॥ १ ॥ वनमाली
घनश्यामः पीतवासा मनोहरः ॥ काञ्चीकलापरुचिरोल्लसन्मुकुटकुण्डलः ॥२॥ त्रिभङ्गललितश्चारुकौस्तुभेन विराजितः॥
कोटिमन्मथलावण्यो हरिचन्दनचर्चितः ॥ ३॥ परमानन्दचिन्मूर्तिर्मधुरो मुरलीधरः ॥ आविवेश स्वभक्तानां
हृदयान्यमलानि च ॥ ४ ॥ वैकुण्ठवासिनो ये च वैष्णवा उद्धवादयः ॥ तत्कथाश्रवणार्थं ते गूढरूपेण संस्थिताः॥५॥
तदा जयजयारावो रसपुष्टिरलौकिकी ॥ चूर्णप्रसूनवृष्टिश्च मुहुः शङ्खरवोऽप्यभूत् ॥ ६ ॥ तत्सभासंस्थितानां च
देहगेहात्मविस्मृतिः ॥ दृष्ट्वा च तन्मयावस्थां नारदो वाक्यमब्रवीत् ॥७॥ अलौकिकोऽयं महिमा मुनीश्वराः सप्ताहजन्योऽद्य
विलोकितो मया ॥ मूढाः शठा ये पशुपक्षिणोऽत्र सर्वेऽपि निष्पापतमा भवन्ति ॥८॥ अतो नृलोके ननु नास्ति
किञ्चिच्चितस्य शोधाय कलौ पवित्रम् ॥ अघौघविध्वंसकरं तथैव कथासमानं भुवि नास्ति चान्यत् ॥९॥ के के विशुध्यन्ति
वन्दतु मह्यं सप्ताहयज्ञेन कथामयेन ॥ कृपालुभिर्लोकहितं विचार्य प्रकाशितः कोपि नवीनमार्गः ॥१०॥

जय जय शब्द रसरूप भागवतकी पुष्टिचूर्ण और पुष्पोंकी वृष्टि और वारंवार शंखध्वनि हुई ॥ ६॥ उस सभामें स्थित हुओंको देह गेह और आत्माकी सुधि न रही सबकी तन्मय अवस्था देखकर नारदजी वचन बोले ॥७॥ हे मुनीश्वरो ! आज इस जनसमुदायमें मैंनें सप्ताहकी अलौकिक महिमा देखी जिसे मूढ शठ पशु पक्षीभी सब निष्पाप होते हैं ॥ ८ ॥ इससे इस कलियुगमें चित्तके शुद्ध करनेके निमित्त और कुछ नहीं है पापसमूह विध्वंस करनेको इसकी समान पृथ्वीमें और कुछ नहीं है ॥ ९ ॥ परन्तु यह आप मुझसे कहिये कि कथामय सप्ताह यज्ञसे कौन

उस भागवतार्थ भूषण सुन्दर वेष किये सभामें आई हुईकूं देखने लगे और यह कैसे मुनिजनोंके मध्यमें आई इस प्रकार सब कोई तर्कना करने लगे ॥ ६८ ॥ तब कुमार उस समय बोले यह इस समय कथाहीके निमित्त आई इस प्रकार वोह भक्ति ज्ञान वैराग्य सहित सुनकर बडी नम्र हो सनत्कुमारसे बोली ॥ ६९ ॥ भक्ति बोली कि कलियुगसे प्रनष्टभी मुझको आपने कथारस सुनाकर पुष्ट किया है अब मैं कहां रहुं सो बतावो तब वे ब्रह्माके पुत्र इस प्रकार वचन बोले ॥ ७० ॥ गोविंदके समानरूप धारण करनेवाली स्नेह करनेहारी संसार रोगकी हरनेहारी बडे धीरज धरनेहारे

तां चागतां भागवतार्थभूषां सुचारुवेषां ददृशुः सदस्याः ॥ कथं प्रविष्टा कथमागतेयं मध्यं मुनीनामिति तर्कयन्तः ॥६८॥ऊचुः कुमारा वचनं तदानीं कथार्थतो निष्पतिताऽधुनेयम्॥एवं गिरः सा ससुता निशम्य सनत्कुमारं निजगाद नम्रा॥६९॥ भक्तिरुवाच ॥ भवद्भिरद्यैव कृतास्मि पुष्टा कलिप्रनष्टाऽपि कथारसेन॥क्वाहं तु तिष्ठाम्यधुना ब्रुवन्तु ब्राह्मा इदं तां गिरमूचिरे ते ॥७०॥ भक्तेषु गोविन्दसुरूपधर्त्री प्रेमैककर्त्री भवरोगहन्त्री ॥ सा त्वं च तिष्ठस्व सुधैर्यसंश्रया निरन्तरं वैष्णवमानसानि ॥७१॥ ततोऽपि दोषाः कलिजा इमे त्वां द्रष्टुं न शक्ताः प्रभवोऽपि लोके ॥ एवं तदाज्ञाऽवसरेऽपि भक्तिस्तदा निषण्णा हरिदासचित्ते ॥७२॥ सकलभुवनमध्ये निर्धनास्तेऽपि धन्या निवसति हृदि येषां श्रीहरेर्भक्तिरेका॥ हरिरपि निजलोकं सर्वथाऽतो विहाय प्रविशति हृदि तेषां भक्तिसूत्रोपनद्धः ॥७३ ॥ ब्रूमोऽद्य ते किमधिकं महिमानमेवं ब्रह्मात्मकस्य भुवि भागवताभिधस्य॥यत्संश्रयान्निगदिते लभते सुवक्ता श्रोतापि कृष्णसमतामलमन्यधर्मैः ॥७४॥ इति श्रीपद्मपुराण उत्तरखण्डे श्रीभागवतमा॰भक्तिकष्टनिवर्तनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

वैष्णव भक्तोंके मनमें तू नित्य वास कर ॥ ७१ ॥ तौ यह कलियुगके दोष तुझको देखनको समर्थ न हों इस प्रकार उनकी आज्ञासे भक्ति नारायणके भक्तोंके चित्तमें प्रवेश करगई ॥ ७२ ॥ सम्पूर्ण संसारके मध्यमें वे निर्धनभी धन्य जिनके हृदयमें भक्ति निवास करती है भक्ति सूत्रसें वशीभूत हो भगवान् अपने लोककूं छोडकर उनके हृदयमें प्रवेश करते हैं ॥७३॥ इस ब्रह्मरूप भागवतका पृथ्वीमें हम आपसें क्या माहात्म्य कहैं जिसके कहने सुन्नेसे श्रोता वक्ता कृष्णकी समान विभूतिको प्राप्त करते हैं फिर और धर्मोंसे क्या है ॥ ७४ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे

कारणसे सगुण हुयेहो ॥ ५८ ॥ तुम्हारे वियोगसे तुम्हारे भक्त पृथ्वीमें कैसे रहैंगे निर्गुण उपासनामें कष्ट होगा इस्से कुछ विचारिये ॥ ५९॥ ऐसे उद्धवजीके वचन सुनकर भगवान् प्रभासक्षेत्रमें विचार करने लगे भक्तोंके अवलम्बनके निमित्त मुझे क्या करना योग्य है ॥ ६० ॥ जो अपना तेज था सो भागवतमें धरदिया अन्तर्धान होकर यह श्रीमद्भागतरूपी समुद्रमें प्रवेश करगये ॥ ६१ ॥ इसकारण यह श्रीकृष्णकी वाणीरूप प्रत्यक्ष मूर्ति है सेवन श्रवण पाठ दर्शन करनेसें पाप दूर करतीहै ॥ ६२ ॥ इस कारण सबसे अधिक सप्ताहश्रवण कहाहै और सब साधनोंका तिरस्कार करकै कलियुगमें

त्वद्वियोगेन ते भक्ताः कथं स्थास्यन्ति भूतले ॥ निर्गुणोपासने कष्टमतः किञ्चिद्विचारय ॥ ५९ ॥ इत्युद्धववचः श्रुत्वा प्रभासेऽचिन्तयद्धरिः ॥ भक्तावलम्बनार्थाय किं विधेयं मयेति च ॥ ६० ॥ स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात् ॥ तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम्॥६१॥ तेनेयं वाङ्मयी मूर्तिः प्रत्यक्षा वर्तते हरेः ॥ सेवनाच्छ्रवणात् पाठाद्दर्शनात् पापनाशिनी ॥ ६२ ॥ सप्ताहश्रवणं तेन सर्वेभ्योऽप्यधिकं कृतम् ॥ साधनानि तिरस्कृत्य कलौ धर्मोयमीरितः ॥ ६३ ॥ दुःखदारिद्र्यदौर्भाग्यपापप्रक्षालनाय च ॥ कामक्रोधजयार्थं हि कलौ धर्मोयमीरितः ॥६४॥ अन्यथा वैष्णवी माया देवैरपि सुदुस्त्यजा ॥ कथं त्याज्या भवेत्पुम्भिः सप्ताहोऽतः प्रकीर्तितः॥६५॥सूत उचाव ॥ एवं नगाहश्रवणोरुधर्मे प्रकाश्यमाने ऋषिभिः सभायाम्॥आश्चर्यमेकं समभूत्तदानीं तदुच्यते संशृणु शौनक त्वम्॥६६॥भक्तिः सुतौ तौ तरुणौ गृहीत्वा प्रेमैकरूपा सहसाऽऽविरासीत् ॥श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे नाथेति नामानि मुहुर्वदन्ती ॥६७॥

यह धर्म कहाहै ॥ ६३ ॥ दुःख दरिद्र दुर्भाग और पापके धोनेके निमित्त काम क्रोधके जयके निमित्त कलियुगमें यही धर्म कहाहै ॥ ६४ ॥ अथवा वैष्णवी माया जो देवतोंकोभी दुस्त्यज सो मनुष्योंसे कैसे त्यागन होगी इसकारण सप्ताह विधि कहीहै ॥६५॥ सूतजी बोले इस प्रकार सप्ताहश्रवणका बडा धर्म जब ऋषिने सभामें कथन किया तब एक बडा आश्चर्य उस समय हुआ हे शौनकजी ! तुम सुनो ॥६६॥ तब भक्ति अपने दोनों जवान हुए ज्ञान वैराग्योंको लेकर शीघ्र प्रेमके मारे सभामें प्रगट हुई और श्रीकृष्ण गोविंद हरे मुरारे नाथ यह नाम वारंवार उच्चारण करने लगी ॥ ६७ ॥

जो फल तप योग समाधिसे नहीं होता सो फल अनायास सप्ताहश्रवणसे होता है ॥ ५० ॥ यज्ञसे सप्ताह गर्जताहै सप्ताह व्रतसे गर्जताहै तपसे तीर्थोंसे नित्य गर्जताहै॥५१॥ योग ज्ञान ध्यानसे सप्ताह गर्जता है हम उसके गर्जनेको क्या कहैं अरे रे कहकर गर्जताहै अर्थात् जबतक भागवत नहीं सुनी तवतक व्रतादिक हैं इसके श्रवण करनेके अंतरमें सब आ जातेहैं ॥५२॥ शौनकजी बोले यह बडे आश्चर्यका कथानक सुनाया ज्ञान धर्मादिकोंकू तिरस्कार करकै अब परब्रह्मका सूचक भागवतपुराण मोक्षके देनेहारा है सो सुनाओ ॥५३॥ सूतजी बोले जब श्रीकृष्ण पृथ्वीको त्यागन करकै अपने

यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ॥ अनायासेन तत्सर्वं सप्ताहश्रवणं लभेत् ॥ ५० ॥ यज्ञाद्गर्जति सप्ताहः सप्ताहो गर्जति व्रतात् ॥ तपसो गर्जति प्रोच्चैस्तीर्थान्नित्यं हि गर्जति ॥ ५१ ॥ योगाद्गर्जति सप्ताहो ध्यानाज्ज्ञानाच्च गर्जति ॥ किं ब्रूमो गर्जनं तस्य रे रे गर्जति गर्जति ॥ ५२ ॥ शौनक उवाच ॥ साश्चर्यमेतत्कथितं कथानकं ज्ञानादिधर्मान्विगणय्य सांप्रतम् ॥ निःश्रेयसे भागवतं पुराणं जातं कुतो योगविदादिसूचकम् ॥ ५३ ॥ सूत उवाच ॥ यदा कृष्णो धरां त्यक्त्वा स्वपदं गन्तुमुद्यतः ॥ एकादशं परिश्रुत्वाप्युद्धवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५४ ॥ उद्धव उवाच ॥ त्वं तु यास्यसि गोविन्द भक्तकार्यं विधाय च ॥ मच्चित्ते महती चिन्ता तां श्रुत्वा सुखमावह ॥ ॥ ५५ ॥ आगतोऽयं कलिर्घोरो भविष्यन्ति पुनः खलाः ॥ तत्सङ्गेनैव सन्तोऽपि गमिष्यन्त्युग्रतां यदा ॥ ५६ ॥ तदा भारवती भूमिर्गोरूपेयं कमाश्रयेत् ॥ अन्यो न दृश्यते त्राता त्वत्तः कमललोचन ॥ ५७ ॥ अतः सत्सु दयां कृत्वा भक्तवत्सल मा व्रज ॥ भक्तार्थं सगुणो जातो निराकारोऽपि चिन्मयः ॥ ५८ ॥

पदकूं जाने लगे तब एकादशमें कहे ज्ञानको सुनकर उद्धवजी बोले ॥५४॥ हे भगवन्! आप तौ भक्तिके कार्यको विधान करकै जाते हो अब जो मेरे मनमें बडी चिन्ता है उसे सुनकर मुझे समझाकर सुखी करो ॥५५॥ यह घोर कलियुग आया है इसमें बडे खल उत्पन्न होंगे उनके संगसें संतभी जब उग्रताको प्राप्त होंगे ॥ ५६ ॥ तब यह गोरूपा भूमि भाराक्रांत होकर किसका आश्रय करैगी हे कमललोचन! तुम्है छोड कोई इसका दूसरा रक्षक नहींहै ॥ ५७ ॥ इसकारण हे भक्तवत्सल! सत्पुरुषोंकें ऊपर दया करकै मतजाओ निराकार चिन्मय आप भक्तोंहीके

जो कोई सुवर्णसिंहासनसहित वैष्णवके निमित्त इसे प्रदान करते हैं वोह पुरुष निश्चय श्रीकृष्णकी सायुज्यपदवीको प्राप्त होते हैं ॥४१॥ जिस मूर्खने
जन्मसे अंततक मन लगाकर शुकशास्त्रकथा नहीं पान करी उसने चांडाल और खरकी नाई अपना जन्म वृथा खोया और उत्पन्न होकर माताको
दुःख दिया ॥ ४२॥ जिसने कभी शुककथाका कोई वचन नहीं सुना वोह पापकर्मा जीवितही मृतक है उस पशुसमान पृथ्वीपर भाररूप मनुष्यको
धिक्कार है ऐसा ब्रह्मादिदेवता कहते हैं ॥४३ ॥ श्रीमद्भागवतकी कथा संसारमें दुर्लभ है कोटिजन्मके प्राप्त हुये पुण्योंसे प्राप्त होती है ॥४४ ॥ इस

हेमसिंहयुतं चैतद्वैष्णवाय ददाति च ॥ कृष्णेन सह सायुज्यं स पुमाँल्लभते ध्रुवम् ॥ ४१ ॥ आजन्ममात्रमपि येन शठेन
किञ्चिच्चित्तं विधाय शुकशास्त्रकथा न पीता॥चाण्डालवच्च खरवद्बत तेन नीतं मिथ्या स्वजन्म जननी जनिदुःखभाजा
॥ ४२ ॥ जीवच्छवो निगदितः स तु पापकर्मा येन श्रुतं शुककथावचनं न किंचित् ॥ धिक्तं नरं पशुसमं भुवि भाररूप-
मेवं वदन्ति दिवि देवसरोजमुख्यः ॥ ४३ ॥ दुर्लभैव कथा लोके श्रीमद्भागवतोद्भवा ॥ कोटिजन्मसमुत्थेन पुण्येनैव
तु लभ्यते ॥ ४४ ॥ तेन योगनिधे धीमञ्छ्रोतव्या सा प्रयत्नतः ॥ दिनानां नियमो नास्ति सर्वदा श्रवणं मतम् ॥ ४५ ॥
सत्येन ब्रह्मचर्येण सर्वदा श्रवणं मतम् ॥ अशक्यत्वात्कलौ बोध्यो विशेषोऽत्र शुकाज्ञया ॥ ४६ ॥ मनोवृत्तिजयश्चैव
नियमाचरणं तथा॥दीक्षां कर्तुमशक्यत्वात्सप्ताहश्रवणं मतम् ॥४७॥श्रद्धातः श्रवणे नित्यं माघे तावद्धि यत्फलम्॥
तत्फलं शुकदेवेन सप्ताहश्रवणे कृतम् ॥ ४८ ॥ मनसश्चाऽजयाद्रोगात्पुंसां चैवायुषः क्षयात् ॥ कलेर्दोषबहुत्वाच्च
सप्ताहश्रवणं मतम् ॥ ४९ ॥

कारण हे योगनिधान बुद्धिमान्! यह कथा यत्नपूर्वक सुन्नी योग्य है इसमें कोई दिनोंका नियम नहीं सदा सुनै ॥ ४५ ॥ सत्य और ब्रह्मचर्य सहित
सदा सुनै अशक्य होनेसे कलियुगमें शुक आज्ञासे विशेषता कही है ॥ ४६ ॥ मनवृत्तियोंका जीतना नियमाचरण करना दीक्षा करनमें अशक्य
हो तो सप्ताह सुन्ना श्रेष्ठ है ॥ ४७ ॥ नित्य श्रद्धापूर्वक श्रवण करनेसे माघमासमें जितना फल कहा है वोह फल सप्ताह श्रवण करनेसे होता है॥४८॥
मनके अजय होने रोग होने और आयुके क्षय होने और कलियुगके बहुत दोष होनेसे सप्ताहश्रवण श्रेष्ठ है ॥ ४९ ॥

कथाकी सोलहवीं कलाभी नहीं है ॥३०॥ हे तपोधनो! जबतकही इस देहमें पाप निवास करते हैं तबतक मनुष्य मन लगाकर भागवत कथा नहीं श्रवण करते ॥ ३१ ॥ शुकशास्त्रके फलकी बराबरी गंगा गया काशी पुष्कर प्रयागभी नहीं करसकते ॥ ३२ ॥ जो परागति इच्छा रखते हो तौ नित्यही अपने मुखसे आधा श्लोक वा एक चौथाई श्लोकही भागवतका उच्चारण किया करो ॥ ३३ ॥ वेदादी ओंकार वेदमाता गायत्री पुरुषसूक्त ऋक् यजुः साम तीनों वेद भागवत पुराण "ओं नमो भगवते वासुदेवाय" द्वादशाक्षर मंत्र ॥३४॥ द्वादशात्मा सूर्य प्रयाग संवत्सरात्मक काल ब्राह्मण अग्निहोत्र कामधेनु द्वादशी ॥ ३५ ॥ तुलशी वसन्तऋतु पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण इनको बुद्धिमान् तत्वसे पृथक पृथक भाव नहीं देखतै हैं ॥ ३६ ॥

तावत्पापानि देहेऽस्मिन्निवसन्ति तपोधनाः ॥ यावन्न श्रूयते सम्यक् श्रीमद्भागवतं नरैः ॥ ३१ ॥ न गङ्गा न गया काशी पुष्करं न प्रयागकम् ॥ शुकशास्त्रकथायाश्च फलेन समतां नयेत् ॥ ३२ ॥ श्लोकार्ध श्लोकपादं वा नित्यं भागवतोद्भवम् ॥ पठस्व स्वमुखेनैव यदीच्छसि परां गतिम् ॥ ३३ ॥ वेदादिर्वेदमाता च पौरुषं सूक्तमेव च ॥ त्रयी भागवतं चैव द्वादशाक्षर एव च ॥ ३४ ॥ द्वादशात्मा प्रयागश्च कालः संवत्सरात्मकः ॥ ब्राह्मणाश्चाग्निहोत्रं च सुरभिर्द्वादशी तथा ॥ ३५ ॥ तुलसी च वसन्तश्च पुरुषोत्तम एव च ॥ एतेषां तत्त्वतः प्राज्ञैर्न पृथग्भाव इष्यते ॥३६॥ यश्च भागवतं शास्त्रं वाचयेदर्थतोऽनिशम् ॥ जन्मकोटिकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः ॥३७॥ श्लोकार्ध श्लोकपादं वा पठेद्भागवतं च यः॥ नित्यं पुण्यमवाप्नोति राजसूयाश्वमेधयोः॥३८॥ उक्तं भागवतं नित्यं कृतं च हरिचिन्तनम् ॥ तुलसीपोषणं चैव धेनूनां सेवनं समम् ॥३९॥ अन्तकाले तु येनैव श्रूयते शुकशास्त्रवाक् ॥ प्रीत्या तस्यैव वैकुण्ठं गोविन्दोऽपि प्रयच्छति ॥ ४० ॥

जो प्रतिदिन भागवत शास्त्रको अर्थसे वांचते है उनके कोटि जन्मके किये पाप नष्ट होजाते हैं इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ३७॥ जो भागवतका आधा वा चौथाई श्लोक प्रतिदिन पढते हैं उन्हें राजसूय और अश्वमेधका फल प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥ नित्य भागवतका कथन नारायणका कीर्तन तुलसीका पोषण और धनुओंका सेवन समान है ॥ ३९ ॥ अन्तकालमें जिसने शुकशास्त्रकी वाणी श्रवण करीहै उसे श्रीव्रजराज प्रसन्न हो वैकुंठ देते हैं ॥ ४० ॥

तीर्थ और एक स्थानमें स्त्रियें बैठीं ॥ २० ॥ तब जयशब्द नमःशब्द और शंखोंका शब्द होनेंलगा और चूर्ण खीलैं फूलोंकी बडी वर्षा हुई ॥ २१ ॥ कितने तो देवनायक विमानोंमें चढे आकाशसे फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ २२ ॥ सूतजी बोले इस प्रकार सबके एकचित्त होकर बैठनेमें नारदजीके निमित्त कुमारने भागवत माहात्म्य कहना प्रारंभ किया ॥ २३ ॥ कुमार बोले शुकशास्त्रसे उत्पन्न हुई महिमाको मैं तुमसें कहूंगा जिसके श्रवणमात्रसें हाथमें मुक्ति प्राप्त होती है ॥ २४ ॥ यह श्रीमद्भागवतकी कथा सदा

जयशब्दो नमःशब्दः शङ्खशब्दस्तथैव च ॥ चूर्णलाजाप्रसूनानां निक्षेपः सुमहानभूत् ॥ २१ ॥ विमानानि समारुह्य
कियन्तो देवनायकाः ॥ कल्पवृक्षप्रसूनानि सर्वांस्तत्र समाकिरन् ॥ २२ ॥ सूत उवाच ॥ एवं तेष्वेकाचित्तेषु श्री-
मद्भागवतस्य च ॥ माहात्म्यमूचिरे स्पष्टं नारदाय महात्मने ॥ २३ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामो महिमा
शुकशास्त्रजः ॥ यस्य श्रवणमात्रेण मुक्तिः करतले स्थिता ॥ २४ सदा सेव्या सदा सेव्या श्रीमद्भागवती कथा ॥
यस्याः श्रवणमात्रेण हरिश्चित्तं समाश्रयेत् ॥ २५ ॥ ग्रन्थोऽष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कन्धसंमितः ॥ परीक्षिच्छुकसं-
वादः शृणु भागवतं च तत् ॥ २६ ॥ तावत्संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमतेऽज्ञानतः पुमान् ॥ यावत्कर्णगता नास्ति शुक-
शास्त्रकथा क्षणम् ॥२७॥ किं श्रुतैर्बहुभिः शास्त्रैः पुराणैश्च भ्रमावहैः ॥ एकं भागवतं शास्त्रं मुक्तिदानेन गर्जति॥२८॥
कथा भागवतस्यापि नित्यं भवति यद्गृहे ॥ तद्गृहं तीर्थरूपं हि वसतां पापनाशनम् ॥ २९ ॥ अश्वमेधसहस्राणि
वाजपेयशतानि च ॥ शुकशास्त्रकथायाश्च कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ३० ॥

सेवनीय है जिसके श्रवणमात्रसे श्रीकृष्ण चित्तमें प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥ इस ग्रंथमें अठारह सहस्र श्लोक और द्वादशस्कंध हैं यह परीक्षित और शुकदेवजीके संवादवाली भागवत सुनो ॥ २६ ॥ पुरुष अज्ञानसे तबतक इस संसारचक्रमें भ्रमताहै जबतक शुकशास्त्रकी कथा क्षणमात्रको कर्णगोचर नहीं होती ॥ २७ ॥ बहुतसे शास्त्र और भ्रमानेहारे पुराणोंके सुन्नेसे क्या है एक भागवत शास्त्रही मुक्ति दान करके गर्जता है ॥ २८ ॥ जिस घरमें नित्य भागवतकी कथा होती है वोह घर तीर्थरूप है वहां रहनेहारोंके पाप नाश होजाते हैं ॥२९ ॥ हजार अश्वमेध सौ वाजपेय शुकशास्त्रकी

कोलाहल हुआ भूलोकमें देवलोकमें और इसी प्रकार ब्रह्मलोकमेंभी कोलाहल हुआ ॥ ११ ॥ श्रीमद्भागवतरूपी अमृतके पान करनेको प्रथम तौ जे वैष्णव थे ते चारों ओरसे दौरे ॥ १२ ॥ भृगु वशिष्ठ च्यवन गौतम मेधातिथि देवल देवरात परशुरामजी विश्वामित्र शाकल मृकंडके पुत्र मार्कण्डेय अत्रिके पुत्र दत्तात्रेय पिप्पलाद ॥ १३ ॥ योगेश्वर याज्ञवल्क्य जैगीषव्य व्यास पराशर छायाशुक जाजलि जन्हु ये मुख्य मुख्य ऋषिगण अपने पुत्र शिष्य स्त्रीसहित प्रणयपूर्वक आये ॥ १४ ॥ वेदान्त वेद मंत्र तंत्र अपनी मूर्ति धारणकर आये इसी प्रकार सत्रह पुराण छः शास्त्रभी

श्रीभागवतपीयूषपानाय रसलम्पटाः ॥ धावन्तोप्याऽऽययुः सर्वे प्रथमं ये च वैष्णवाः ॥ १२ ॥ भृगुर्वासिष्ठश्च्यवनश्च गौतमो मेधातिथिर्देवलदेवरातौ ॥ रामस्तथा गाधिसुतश्च शाकलो मृकण्डपुत्रोऽत्रिजपिप्पलादाः ॥ १३ ॥ योगेश्वरौ व्यासपराशरौ च च्छायाशुको जाजलिजह्नुमुख्याः ॥ सर्वेऽप्यमी मुनिगणाः सहपुत्रशिष्याः स्वस्त्रीभिराययुरतिप्रणयेन युक्ताः ॥ १४ ॥ ॥ वेदान्तानि च वेदाश्च मन्त्रास्तन्त्राः समूर्तयः ॥ दश सप्त पुराणानि षट् शास्त्राणि तथाऽऽययुः ॥१५॥ गङ्गाद्याः सरितस्तत्र पुष्करादिसरांसि च ॥ क्षेत्राणि च दिशः सर्वा दण्डकादिवनानि च ॥ १६ ॥ नगादयो ययुस्तत्र देवगन्धर्वकिन्नराः ॥ गुरुत्वात्तत्र नायातान्भृगुः संबोध्य चानयत् ॥ १७ ॥ दीक्षिता नारदेनाथ दत्तमासनमुत्तमम् ॥ कुमारा वन्दिताः सर्वैर्निषेदुः कृष्णतत्पराः ॥ १८ ॥ वैष्णवाश्च विरक्ताश्च न्यासिनो ब्रह्मचारिणः ॥ मुख्यभागे स्थितास्ते च तदग्रे नारदः स्थितः ॥ १९ ॥ एकभागे ऋषिगणास्तदन्यत्र दिवौकसः ॥ वेदोपनिषदोऽन्यत्र तीर्थान्यत्र स्त्रियोऽन्यतः ॥ २० ॥

आये ॥ १५ ॥ गंगादि नदियें पुष्करादि सरोवर सब क्षेत्र दिशा और दंडकादि वन ॥ १६ ॥ पर्वत आदि सब आये और जो देवता गंधर्व दानव शरीरके गौरवसे नहीं आये उन्हें मानपूर्वक ब्रह्माके पुत्र भृगुजी बुलालाये ॥ १७ ॥ तब नारदसे दीक्षित हो दियेहुए उत्तम आसन पर कृष्णकथामें तत्पर सबसे नमस्कृत हो कुमार बैठे ॥ १८ ॥ वैष्णव विरक्त संन्यासी ब्रह्मचारी यह मुख्य भागमें स्थितहुए सबकी आगे नारदजी बैठे ॥ १९ ॥ एक भागमें ऋषिगण एक भागमें देवता एक स्थानमें वेद उपनिषद एक स्थानमें

83

जहां यह महायज्ञ कियाजाय आप उस स्थानको बताइये वेदके जाननेवालोंमें शुकशास्त्रकी महिमा कहने योग्य है ॥ २ ॥ यह
श्रीमद्भागवतकी कथा कितने दिनतक सुनी योग्य है और उसमें क्या विधान है सो मुझसे आप कहिये ॥३॥ कुमार बोले हे नारदजी ! सुनो हम कहते
हैं नम्रीभूत ज्ञानयुक्त गंगाद्वारके समीपही आनंद नाम तट है ॥ ४ ॥ अनेक ऋषिगणोंसे युक्त देवता सिद्धोंसे सेवित अनेक वृक्ष वेलोंसे संघटित
नवीन कोमलवालुकासे युक्त ॥५॥ वडा मनोहर एकान्तस्थान सुवर्णके आकारवाले कमलोंकी सुगन्धिसे युक्त जिसके समीपके रहनेवाले जीवोंके मनमें

यत्र कार्यो महायज्ञः स्थलं तद्वाच्यतामिह ॥ महिमा शुकशास्त्रस्य वक्तव्यो वेदपारगैः ॥ २ ॥ कियद्भिर्दिवसैः श्राव्या
श्रीमद्भागवती कथा ॥ को विधिस्तत्र कर्तव्यो ममेदं वदतामितः ॥ ३ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ शृणु नारद वक्ष्यामो
विनम्राय विवेकिने ॥ गङ्गाद्वारसमीपे तु तटमानन्दनामकम् ॥ ४ ॥ नानाऋषिगणैर्जुष्टं देवसिद्धनिषेवितम् ॥ नानातरुलताकीर्णं
नवकोमलवालुकम् ॥ ५ ॥ रम्यमेकान्तदेशस्थं हैमपद्मसुशोभितम् ॥ यत्समीपस्थजीवानां वैरं चेतसि
न स्थितम् ॥ ६ ॥ ज्ञानयज्ञस्त्वया तत्र कर्तव्यो ह्यप्रयत्नतः ॥ अपूर्वा रसरूपा च कथा तत्र भविष्यति ॥७॥
पुरःस्थं निर्बलं चैव जराजीर्णकलेवरम् ॥ तद्वयं च पुरस्कृत्य भक्तिस्तत्र गमिष्यति ॥ ८ ॥ यत्र भागवती वार्ता
तत्र भक्त्यादिकं व्रजेत् ॥ कथाशब्दं समाकर्ण्य तत्त्रिकं करुणायते ॥ ९ ॥ सूत उवाच ॥ एवमुक्त्वा कुमारास्ते
नारदेन समन्ततः ॥ गङ्गातटं समाजग्मुः कथापानाय सत्वराः ॥१०॥ यदा यातास्तटं ते तु तदा कोलाहलोऽप्यभूत्
॥ भूर्लोके देवलोके च ब्रह्मलोके तथैव च ॥ ११ ॥

वैर नहीं होता ॥ ६ ॥ उस स्थानमें तुमको अप्रयत्न होकर ज्ञानयज्ञ करना चाहिये और तहांही पूर्व अपूर्व और रसरूपवाली कथा होगी
॥ ७ ॥ और निर्बल जरासे जरजरित देह वे ज्ञान वैराग्यको भक्तिसहित आगे करके तहां हमभी जांयगे ॥ ८ ॥ जहां भागवतकी कथा होती
हैं तहां भक्ति आदिक सब जांय कथा शब्द श्रवणमात्रसे भक्ति ज्ञान वैराग्यका त्रिक करुणा युक्त होता है ॥ ९ ॥ सूतजी बोले कि इस
प्रकार कहकर कुमार नारदजीके साथही कथाके पान करनेको शीघ्र गंगातटमें आये ॥ १० ॥ जब वे उस तटपर आये तब बडा

जैसें बूरा गन्नेमेंसर्वत्र व्याप्त रहती है परन्तु वोह पृथक्भूत होकर जैसी मीठी लगती है तैसी भागवतकथा है ॥७०॥ यह सर्व वेदसम्मत भागवत पुराण ज्ञान वैराग्यके स्थापन करनेहीको प्रकाश किया है ॥ ७१ ॥ वेद वेदान्तके पारगामी गीताके कर्ता दुःखकूं प्राप्त होतेहुए अज्ञान सागरमें मोहित व्यासजीसें ॥ ७२ ॥ जो तुमने पहलें चतुःश्लोकी भागवत कही जिसके श्रवणमात्रसे तत्काल व्यासजी दुःखरहित होगये ॥ ७३ ॥ फिर तुम्है इसमें विस्मय कैसे प्राप्त हुआ जो तुम प्रश्न करत हो श्रीमद्भागवत जो शोकदुःखका नाशक है सो सुनाओ ॥ ७४ ॥ नारद बोले दर्शन तत्काल अशुभोंको

इक्षूणामपि मध्यान्तं शर्करा व्याप्य तिष्ठति ॥ पृथग्भूता च सा मिष्टा तथा भागवती कथा ॥७०॥ इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्मसंमितम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनाय प्रकाशितम् ॥७१॥ वेदान्तवेदसुस्नाते गीताया अपि कर्तरि॥ परितापवति व्यासे मुह्यत्यज्ञानसागरे ॥ ७२ ॥ तदा त्वया पुरा प्रोक्तं चतुःश्लोकसमन्वितम् ॥ तदीयश्रवणात्सद्यो निर्बाधो बादरायणः ॥ ७३ ॥ तत्र ते विस्मयः केन यतः प्रश्नकरो भवान् ॥ श्रीमद्भागवतश्रावे शोकदुःखविनाशनम् ॥ ७४ ॥ नारद उवाच ॥ यद्दर्शनं च विनिहन्त्यशुभानि सद्यः श्रेयस्तनोति भवदुःखदवार्दितानाम् ॥ निःशेषशेषमुखगीतकथैकपानाः प्रेमप्रकाशकृतये शरणं गतोऽस्मि ॥ ७५ ॥ भाग्योदयेन बहुजन्मसमार्जितेन सत्सङ्गमं च लभते पुरुषो यदा वै ॥ अज्ञानहेतुकृतमोहमदान्धकारनाशं विधाय हि तदोदयते विवेकः ॥ ७६ ॥ इति श्रीपद्मपुराण उत्तरखण्डे श्रीभागवतमा॰कुमारनारदसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ ज्ञानयज्ञं करिष्यामि शुकशास्त्रकथोज्ज्वलम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां स्थापनार्थं प्रयत्नतः ॥ १ ॥

दूरकर संसारी दुःखसे दुःखियोंका कल्याण करताहै संपूर्ण शेषजीके मुखोंसे गाई हुई कथाके पान करनवालेके प्रेमसे प्रकाश करनेवाले भगवान्को मैं शरण हूं ॥ ७५ ॥ जब बहुत जन्मके भाग्य उदय होनेसे मनुष्योंकों सत्संगकी प्राप्ति होती है तब अज्ञानकृत मोह मदके अंधकारका नाश होकर ज्ञान उदय होता है ॥७६॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवतमा॰ कुमारनारदसंवादो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारदजी बोले यत्नपूर्वक भक्ति ज्ञानके स्थापनके निमित्तमें शुकशास्त्रकी कथाका उज्ज्वल ज्ञानयज्ञ करूंगा ॥ १ ॥

पंडितोंने ज्ञानयज्ञ कहाहै वोह श्रीमद्भागवतका आलाप जो शुकादि महात्माओंने गाया है ॥ ६० ॥ उसके शब्दसे भक्ति ज्ञान वैराग्यका बडा बल बढैगा दोनोंका कष्ट दूर होगा भक्तिको सुख मिलैगा ॥ ६१ ॥ श्रीमद्भागवतको ध्वनिसे यह सब कलिके दोष इस प्रकार नाश होजायगे जैसे सिंहके शब्दसे भेडिये भाग जाते हैं ॥ ६२ ॥ तब ज्ञान वैराग्यसे संयुक्त प्रेमरस वहानेहारी भक्ति घर घर मनुष्य मनुष्यमें क्रीडा करैगी ॥ ६३ ॥ नारदजी बोले जब कि वेद वेदान्तके शब्द और गीतापाठसेभी भक्ति ज्ञान वैराग्यका त्रिक नहीं उठा तौ ॥ ६४ ॥ श्रीमद्भागवतके आलापसे कैसे चैतन्यकूं

भक्तिज्ञानविरागाणां तद्घोषेण बलं महत् ॥ व्रजिष्यति द्वयोः कष्टं सुखं भक्तेर्भविष्यति ॥ ६१ ॥ प्रलयं हि गमिष्यन्ति श्रीमद्भागवतध्वनेः ॥ कलिदोषा इमे सर्वे सिंहशब्दाद्वृका इव ॥ ६२ ॥ ज्ञानवैराग्यसंयुक्ता भक्तिः प्रेमरसावहा ॥ प्रतिगेहं प्रतिजनं ततः क्रीडां करिष्यति ॥६३॥ नारद उवाच ॥ वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैः प्रबोधितम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा॥६४॥ श्रीमद्भागवतालापात्तत्कथं बोधमेष्यति ॥ तत्कथासु तु वेदार्थः श्लोके श्लोके पदे पदे ॥६५॥ छिन्दन्तु संशयं ह्येनं भवन्तोऽमोघदर्शनाः ॥ विलम्बो नात्र कर्तव्यः शरणागतवत्सलाः ॥६६॥ कुमारा ऊचुः ॥ वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा॥ अत्युत्तमा ततो भाति पृथग्भूता फलोन्नतिः ॥६७॥ आमूलाग्रं रसस्तिष्ठन्नास्ते न स्वदते यथा ॥ संभूय स पृथग्भूतः फले विश्वमनोहरः ॥ ६८ ॥ यथा दुग्धे स्थितं सर्पिर्न स्वादायोपकल्पते ॥ पृथग्भूतं हि तद्दिव्यं देवानां रसवर्धनम् ॥ ६९ ॥

प्राप्तहोगा उसकी कथामेंभी तौ श्लोकश्लोकमें पद पदमें वेदार्थही है ॥ ६५॥ अमोघदर्शन आप लोग यह मेरा संदेह दूर कीजिये हे शरणागत वत्सलो! इसमें विलम्ब मत करो ॥ ६६ ॥ कुमार बोले वेदोपनिषदके सारसे भागवतकथा हुई है तिससे पृथक् हुई फलोन्नति औरभी अति उत्तम होगई है ॥ ६७ ॥ जैसे मूलसे लेकर अग्रभागपर्यंत रसवाली चीजमें बाहरसे उतना स्वादिष्ट नहीं लगता जितना कि वोही रस पृथक् फलमें होकर विश्वमनोहर रूप होता है ॥६८॥ जैसे दूधमें स्थित घी ऐसा स्वादिष्ट नहीं होता जैसा कि पृथक् होकर वोह स्वादिष्ट देवताओंका रसवर्द्धक होता है ॥६९॥

आप दयालुओंको मुझ दीनके ऊपर दया करनी योग्य है ॥५०॥ जो कुछ आकाशवाणीनें कहाहै सो क्या साधन है यह आप बताईये और कैसे अनुष्ठान करना चाहिये सो आप विस्तारपूर्वक कहो ॥५१॥ भक्ति ज्ञान वैराग्यकू किस प्रकारसे सुखकी प्राप्ती होगी और सब वर्णोंमें प्रेमपूर्वक यत्नसे उनका कैसे स्थापन होगो ॥ ५२ ॥ कुमार बोले देवर्षे ! चिंता मतकरो मनमें प्रसन्न हो इसका उपाय सुख साध्य पूर्वकालसेही है ॥५३॥ अहो नारदजी ! धन्य हो तुम विरक्तोंको शिरोमणि हो सदा श्रीकृष्णके दासोंमें तुम अग्रणी हो योगके सूर्य हो ॥ ५४ ॥ भक्तिके निमित्त श्रम करना यह तुममें कुछ

अशरीरगिरोक्तं यत्तत्किं साधनमुच्यताम् ॥ अनुष्ठेयं कथं तावत् प्रब्रुवन्तु सविस्तरम् ॥५१॥ भक्तिज्ञानविरागाणां सुखमुत्पद्यते कथम् ॥ स्थापनं सर्ववर्णेषु प्रेमपूर्वं प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥ कुमारा ऊचुः ॥ मा चिन्तां कुरु देवर्षे हर्षं चित्ते समावह ॥ उपायः सुखसाध्योऽत्र वर्तते पूर्व एव हि ॥ ५३ ॥ अहो नारद धन्योऽसि विरक्तानां शिरोमणिः ॥ सदा श्रीकृष्णदासानामग्रणीर्योगभास्करः ॥ ५४ ॥ त्वयि चित्रं न मन्तव्यं भक्त्यर्थमनुवर्तिनि ॥ घटते कृष्णदासस्य भक्तेः स्थापनता सदा ॥५५॥ ऋषिभिर्बहवो लोके पन्थानः प्रकटीकृताः ॥ श्रमसाध्याश्च ते सर्वे प्रायः स्वर्गफलप्रदाः ॥५६॥ वैकुण्ठसाधकः पन्था स तु गोप्यो हि वर्तते ॥ तस्योपदेष्टा पुरुषः प्रायो भाग्येन लभ्यते ॥ ५७॥ सत्कर्म तव निर्दिष्टं व्योमवाचा तु यत् पुरा ॥ तदुच्यते शृणुष्वाद्य स्थिरचित्तः प्रसन्नधीः ॥५८॥ द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे ॥ स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च ते तु कर्मविसूचिकाः ॥ ५९॥ सत्कर्मसूचको नूनं ज्ञानयज्ञः स्मृतो बुधैः ॥ श्रीमद्भागवतालापः स तु गीतः शुकादिभिः ॥ ६० ॥

विचित्र वार्ता नहीं है श्रीकृष्णदासोंको तो सदा भक्तिकी स्थापना करनी योग्यही है ॥ ५५॥ ऋषियोंने लोकमें बहुतसे मार्ग प्रगट कियेहैं वे सब श्रम साध्य हैं और प्रायः सब स्वर्गफलके देनेहारे हैं ॥५६॥ परन्तु जो वैकुंठसाधक पंथ है वोह गुप्तही है उसके उपदेश करनेवाले पुरुष भाग्यसेही प्राप्त होते हैं ॥ ५७ ॥ जो पूर्व आकाशवाणीने तुमको सत्कर्मका उपदेश दिया है सो स्थिरचित्तसे प्रसन्न होकर सुनो हम कहते हैं ॥ ५८ ॥ द्रव्ययज्ञ तपयज्ञ योगयज्ञ स्वाध्याययज्ञ (वेदका पढना) ज्ञानयज्ञ यह सर्व कर्म फलसे स्वर्गादिके देनेहारे हैं ॥ ५९ ॥ परन्तु सत्कर्मका जतानेहारा

और उपाय कछु नहीं है यह वार्ता मनुष्य कानों कानोंमें कहनेलगे भाई योगिराज नारदजीकोभी तौ बुद्धिमें यह बात न आई ॥ ४१ ॥ तौ और इतर मनुष्य इसे किस प्रकार कह सक्तेहैं इसप्रकार ऋषियोंने दुर्गम वार्ता निर्णय करकै कही ॥ ४२ ॥ तब नारदजी चिन्तातुर होकर बद्रीवनमें आये और यह निश्चय किया कि यहां तप करूंगा ॥ ४३ ॥ तबतक आगे सनकादि मुनियोंको जिनकी करोड सूर्यकी समान कान्ति है देखकर मुनिश्रेष्ठ नारदजी बोले ॥ ४४ ॥ नारदजी कहने लगे इस समय बडे भाग्यसे आपका दर्शन हुआ है हे कुमारो! मेरे ऊपर कृपा करकै शीघ्र कहो ॥४५॥ तुम

उपायो नापरोऽस्तीति कर्णे कर्णेऽजपञ्जनाः॥ योगिना नारदेनापि स्वयं न ज्ञायते तु यत्॥४१॥तत् कथं शक्यते वक्तुमितरैरिह मानुषैः॥ एवं ऋषिगणैः पृष्टं निर्णीयोक्तं दुरासदम् ॥ ४२ ॥ ततश्चिन्तातुरः सोऽथ बदरीवनमागतः॥ तपश्चरामि चात्रेति तदर्थं कृतनिश्चयः॥ ४३ ॥तावद्ददर्श पुरतः सनकादीन्मुनीश्वरान् ॥ कोटिसूर्यसमाभासानुवाच मुनिसत्तमः ॥ ४४ ॥ नारद उवाच ॥ इदानीं भूरिभाग्येन भवद्भिः संगमः स्थितः॥ कुमारा वदतां शीघ्रं कृपां कृत्वा ममोपरि ॥४५॥ भवन्तो योगिनः सर्वे बुद्धिमन्तो बहुश्रुताः॥ पञ्चहायनसंयुक्ताः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ॥४६॥ सदा वैकुण्ठनिलया हरिकीर्तनतत्पराः॥ लीलामृतरसोन्मत्ताः कथामात्रैकजीविनः ॥ ४७ ॥ हरिः शरणमेवं हि नित्यं येषां मुखे वचः॥ अतः कालसमादिष्टा जरा युष्मान्न बाधते॥४८॥ येषां भ्रूभङ्गमात्रेण द्वारपालौ हरेः पुरा॥ भूमौ निपतितौ सद्यो यत्कृपातः परं गतौ॥४९॥ अहो भाग्यस्य योगेन दर्शनं भवतामिह॥ अनुग्रहस्तु कर्तव्यो मयि दीने दयापरैः ॥५०॥

सब बुद्धिमान् शास्त्रवेत्ता योगी हो सदा पांच वर्षके रहते और सबसे पूर्व उत्पन्न हुये हो ॥ ४६ ॥ सदा वैकुंठमें रहते भगवान्के गुणानुवाद गाते हो भगवान्की लीलारूपी अमृत रससे मत्त एक कथामात्रसेही जीते हो ॥ ४७ ॥ “ हरिःशरणमेवं ” अर्थात् परमात्माकी शरणहूं यही जिनके मुखसे नित्य वचन निकलताहै इस कारण कालसे प्राप्त जरा तुमको बाधा नहीं करती ॥ ४८ ॥ पहले नारायणके दो द्वारपाल जिनके भ्रूभंग मात्रसेही पृथ्वीमें गिरे और फिर जिनकी कृपासे शीघ्र वैकुंठको गये ॥ ४९ ॥ कोई बडाही भाग्य है जो आपका दर्शन प्राप्त हुआ है

तब आकाशवाणी हुई तपोधन ! खेद मतकरो तुह्मारा उद्यम सफल होगा इसमें कुछ संदेह नहींहै ॥ ३१ ॥ इसके निमित्त देवऋषि तुम सत्कर्मका प्रारम्भ करो और साधुओंके भूषण महात्मा वे सत्कर्म तुमसे कहैंगे ॥ ३२ ॥ सत्कर्मके करने मात्रसेही इन दोनोंकी निद्रासहित वृद्धता जातीरहैगी और सब जगह भक्तिका प्रकाश होगा ॥ ३३ ॥ यह आकाशवाणी उन सबोंने स्पष्ट सुनी नारदजीने कही यह क्या बात है मैंने नहीं जानी तब बडे आश्चर्यकूं प्राप्तहुए ॥ ३४ ॥ नारदजी बोले इस आकाशवाणीनेभी गुप्तरूपसे कहा है सो वोह क्या साधन है जिसे इन दोनोंका कार्य हो ॥ ३५ ॥

व्योमवाणी तदैवाभून्मा ऋषे खिद्यतामिति ॥ उद्यमः सफलस्ते तु भविष्यति न संशयः ॥३१॥ एतदर्थं तु सत्कर्म सुरर्षे त्वं समाचर ॥ तत्ते कर्माभिधास्यन्ति साधवः साधुभूषणाः॥३२॥ सत्कर्मणि कृते तस्मिन्सनिद्रा वृद्धताऽनयोः॥ गमिष्यति क्षणाद्भक्तिः सर्वतः प्रसरिष्यति ॥ ३३ ॥ इत्याकाशवचः स्पष्टं तत्सर्वैरपि विश्रुतम् ॥ नारदो विस्मयं लेभे नेदं ज्ञातमिति ब्रुवन् ॥३४॥ नारद उवाच ॥ अनयाऽऽकाशवाण्याऽपि गोप्यत्वेन निरूपितम् ॥ किं वा तत्साधनं कार्यं येन कार्यं भवेत्तयोः॥३५॥ क्व भविष्यन्ति सन्तस्ते कथं दास्यन्ति साधनम्॥ मयात्र किं प्रकर्तव्यं तदुक्तं व्योमभाषया ॥३६॥ सूत उवाच ॥ तत्र तावपि संस्थाप्य निर्गतो नारदो मुनिः॥ तीर्थं तीर्थं विनिष्क्रम्य पृच्छन्मार्गे मुनीश्वरान् ॥ ३७॥ वृत्तान्तः श्रूयते सर्वैः किंचिन्निश्चित्य नोच्यते ॥ असाध्यं केचन प्रोचुर्दुर्ज्ञेयमिति चापरे ॥ ३८॥ मूकीभूतास्तथाऽन्ये तु कियन्तस्तु पलायिताः ॥ हाहाकारो महानासीत्त्रैलोक्ये विस्मयावहः॥ ३९ ॥ वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्विबोधितम् ॥ भक्तिज्ञानविरागाणां नोदतिष्ठत्त्रिकं यदा ॥ ४० ॥

वोह संत कहां होंगे और साधन किस प्रकार देंगे और जो आकाश वाणीने कहाहै मैं उसे किस प्रकार करूं ॥ ३६ ॥ सूतजी बोले नारदजी भक्ति ज्ञान वैराग्यकू तहांही ठहराकर आप वहासे चले तीर्थोंमें होतेहुए मुनियोंसे पूछते हुए ॥ ३७ ॥ सबने वृत्तान्त सुना परन्तु किसीनें निश्चय करकै न बताया कोई बोले असाध्य है कोई बोले समझमें नहीं आता ॥३८॥ कोई चुप होगये कोई सुन्तेही चलदिये इस प्रकार त्रिलोकीमे विस्मय दायक बडा हाहाकार हुआ ॥ ३९ ॥ जब कि वेद वेदान्त और वारंवार गीताके पाठसेभी भक्ति ज्ञान वैराग्यका त्रिक (तिगड्डा) न उठा तो ॥ ४० ॥

89

व्रत, तीर्थ, योग, यज्ञ, ज्ञान, अथालापसे क्या है एकभक्तिही मुक्ति देनेवाली है ॥२१॥ सूतजी बोले इसप्रकार नारदजीसे कहेहुए अपने माहात्म्यको
सुनकर भक्ति सर्वांगपुष्टिसंयुक्त हो नारदजीसे बोली ॥२२॥ भक्ति बोली अहो नारदजी तुमको धन्य है तुमनें मेरी दृढ प्रीति है सो मैं कभी नहीं त्यागन
करूंगी सदैव चित्तमें धारण किये रहूंगी ॥ २३॥ हे महात्मन् ! तुमने कृपा पूर्वक मेरी सब बाधा क्षणमात्रमें दूर करदी परन्तु अभीतक इन मेरे
पुत्रोंको चेतना नहीं हुई सो इन्हें जगाओ जगाओ ॥२४॥ सूतजी बोले दयालु नारदजी भक्तिके वचन सुनकर हाथसे सहराते हुए उन दोनोंको जगाने

अलं व्रतैरलं तीर्थैरलं योगैरलं मखैः ॥ अलं ज्ञानकथालापैर्भक्तिरेकैव मुक्तिदा ॥ २१ ॥ सूत उवाच ॥ इति नारदनिर्णीतं
स्वमाहात्म्यं निशम्य सा ॥ सर्वाङ्गपुष्टिसंयुक्ता नारदं वाक्यमब्रवीत् ॥ २२ ॥ श्रीभक्तिरुवाच ॥ अहो नारद
धन्योऽसि प्रीतिस्ते मयि निश्चला ॥ न कदाचिद्विमुञ्चामि चित्ते स्थास्यामि सर्वदा ॥ २३ ॥ कृपालुना त्वया साधो
मद्बाधा ध्वंसिता क्षणात् ॥ पुत्रयोश्चेतना नास्ति ततो बोधय बोधय ॥ २४ ॥ सूत उवाच ॥ तस्या वचः समाकर्ण्य
कारुण्यं नारदो गतः ॥ तयोर्बोधनमारेभे कराग्रेण विमर्दयन् ॥ २५ ॥ मुखं संयोज्य कर्णान्ते शब्दमुच्चैः समुच्चरन्
॥ ज्ञान प्रबुध्यतां शीघ्रं रे वैराग्य प्रबुध्यताम् ॥ २६ ॥ वेदवेदान्तघोषैश्च गीतापाठैर्मुहुर्मुहुः ॥ बोध्यमानौ तदा
तेन कथंचिच्चोत्थितौ ॥ बलात् ॥२७॥ नेत्रैरनवलोकन्तौ जृम्भन्तौ सालसावुभौ ॥ बकवत् पलितौ प्रायः शुष्ककाष्ठसमाङ्गकौ
॥२८॥ क्षुत्क्षामौ तौ निरीक्ष्यैव पुनः स्वापपरायणौ ॥ ऋषिश्चिन्तापरो जातः किं विधेयं मयेति च॥२९॥
अहो निद्रा कथं याति वृद्धत्वं च महत्तरम् ॥ चिन्तयन्निति गोविन्दं स्मारयामास भार्गव ॥ ३०॥

लगे॥२५॥ कानके धोरे मुख करके नारदजीने ऊंचे स्वरसे पुकारा ज्ञान शीघ्र जागो रे वैराग्य शीघ्र जागो ॥ २६ ॥ वेदवेदान्तके शब्द और वारंवार
गीताके पाठ करके जब नारदजीने जगाया तो बलपूर्वक वे बडी कठिनाईसे उठे ॥२७॥ नेत्र मीचे बडे आलसमें जंभाई लेनें लगे बगलेकीनाई श्वेतबाल
हो रहे सूखे काष्ठकीनाई शरीर था ॥ २८ ॥ भूखके मारे क्षीण होनेके कारण व फिर सोगये तब नारदजीको बडी चिंता हुई क्या करूं ॥ २९ ॥
अहो इन वृद्धोंकी बडी निद्रा कैसे जायगी इस प्रकार विचार करते करते नारदजी गोविंद भगवान्का स्मरण करनेलगे ॥ ३० ॥

आजाती है और तैंने यह पुत्र करके अपने निकट रक्खे हैं ॥११॥ कलियुगमें यद्यपि त्यागसे यह मंद बुद्ध तेरे पुत्र होगयेहैं तौभी चिन्ता त्यागन कर इसका मैं उपाय सोचताहूं ॥१२॥ हे सुमुखी ! कलियुगकी समान कोईभी युग नहींहै तिसमें तुझे मैं घर घर प्रत्येक मनुष्यमें स्थापन करूंगा ॥१३॥ और धर्मोंका तिरस्कार कर और महोत्सवोंको आगे करके जो मैं लोकमें तुझे प्रवृत्त न करूं तो हरिका दास नहीं ॥ १४ ॥ जो इस कलियुगमें तुझसे युक्त जीव होंगे यदि वे पापीभी हों तौभी कृष्णके मंदिरमें जांयगे ॥ १५ ॥ जिनके हृदयमें सर्वदा प्रेमरूपिणी भक्ति वास करैगी वे उज्वलमूर्ति होजां-

उपेक्षातः कलौ मन्दौ वृद्धौ जातौ सुतौ तव ॥ तथापि चिन्तां मुञ्च त्वमुपायं चिन्तयाम्यहम् ॥१२॥ कलिना सदृशः कोपि युगो नास्ति वरानने ॥ तस्मिंस्त्वां स्थापयिष्यामि गेहे गेहे जने जने ॥ १३ ॥ अन्यधर्मांस्तिरस्कृत्य पुरस्कृत्य महोत्सवान् ॥ तदा नाहं हरेर्दासो लोके त्वां न प्रवर्तये॥१४॥ तदन्विताश्च ये जीवा भविष्यन्ति कलाविह ॥ पापिनोऽपि गमिष्यन्ति निर्भयाः कृष्णमन्दिरम्॥१५॥ येषां चित्ते वसेद्भक्तिः सर्वदा प्रेमरूपिणी ॥ न ते पश्यन्ति कीनाशं स्वप्नेऽप्यमलमूर्तयः ॥ १६ ॥ न प्रेतो न पिशाचो वा राक्षसो वाऽसुरोऽपि वा ॥ भक्तियुक्तमनस्कानां स्पर्शने न प्रभुर्भवेत् ॥ १७ ॥ न तपोभिर्न वेदैश्च न ज्ञानेनापि कर्मणा ॥ हरिर्हि साध्यते भक्त्या प्रमाणं तत्र गोपिकाः ॥१८॥ नृणां जन्मसहस्रेण भक्तौ प्रीतिर्हि जायते॥कलौ भक्तिः कलौ भक्तिर्भक्त्या कृष्णः पुरः स्थितः॥१९॥भक्तिद्रोहकरा ये च ते सीदन्ति जगत्त्रये ॥ दुर्वासा दुःखमापन्नः पुरा भक्तिविनिन्दकः ॥ २० ॥

येंगे कभी यमका दर्शन नहीं करैंगे ॥ १६ ॥ भक्तियुक्त मनवाले महात्माओंको प्रेत, पिशाच, राक्षस, असुर कोईभी स्पर्श नहीं करसकैंगे ॥ १७ ॥ तप वेद और ज्ञानभी हरिको ऐसा वशमें नहीं करसके जैसा कि भक्ति वश करदेती है इसमें गोपियें प्रमाण हैं॥१८॥ हजार जन्मके अनुष्ठानसे मनुष्यकी भक्तिमें प्रीति उत्पन्न होती है कलियुगमें भक्तिसेही कृष्ण आगे स्थित होते हैं ॥ १९ ॥ जो भक्तिद्रोह करते हैं वोह त्रिलोंकीमें दुःखी होते हैं आगे भक्तिकी निंदा करनेसे दुर्वासा बडे दुःखी हुएथे ॥ २० ॥

91

जिन श्रीकृष्णने कौरवोंके महासंकटसे द्रौपदीकी रक्षा करी गोपकुमारी शंखचूडादिसे बचाई वोह कहीं नहीं गये हैं ॥ २ ॥ और तू तो भक्ति उनको प्राणोंसेभी अधिक प्यारी है तुझसे बुलाये भगवान् तौ नीचोंके घरोंमेंभी आते हैं ॥ ३ ॥ सतयुगादि तीन युगोंमें ज्ञान और वैराग्य मुक्तिके साधक थे कलियुगमें केवल भक्ति ही ब्रह्मसायुज्यकी देनेहारी है ॥ ४ ॥ वोह परमात्मा चिद्रूप परमानन्द चिन्मूर्त्ति सुन्दरी कृष्णवल्लभा अपना स्वरूपही तुमको उत्पन्न करते हुए ॥५॥ तब तैंने हाथ जोडकर कहा कि मैं क्या करूं तब कृष्णने आज्ञा करी कि मेरे भक्तोंको पुष्टकर जब तैंने यह अंगीकार किया तब भगवान् कृष्ण प्रसन्न हुए ॥ ६ ॥ तब तेरे निमित्त यह मुक्ति दासी दी और यह दोनों ज्ञान वैराग्यभी दासादिये ॥७॥ अपने निजरूपसे तौ तू वैकुंठमें पोषणा करतीहै और पृथ्वीमें भक्तोंके विशेष संतुष्टिके अर्थ तैंने छायारूप कियाहै ॥ ८॥ मुक्ति और ज्ञान वैराग्यको साथ लेकर तुम पृथ्वीमें आई और सतयुगसे लेकर द्वापरके अन्ततक तुम बडे आनंदसे पृथ्वीमें रही ॥ ९ ॥ कलियुगमें पाखण्डसे पीडित होनेसे क्षयको प्राप्त होगई तुम्हारी आज्ञासे फिर वोह शीघ्र वैकुंठको गई ॥ १० ॥ और फिर तेरे स्मरणमात्रसेही इस स्थानमें फिर

द्रौपदी च परित्राता येन कौरवकश्मलात् ॥ पालिता गोपसुन्दर्यः स कृष्णः क्वापि नो गतः ॥२॥ त्वं तु भक्ते प्रिया तस्य सततं प्राणतोऽधिका ॥ त्वयाहूतस्तु भगवान्याति नीचगृहेष्वपि ॥ ३ ॥ सत्यादित्रियुगे बोधवैराग्यौ मुक्तिसाधकौ ॥ कलौ तु केवलं भक्तिर्ब्रह्मसायुज्यकारिणी ॥ ४ ॥ इति निश्चित्य चिद्रूपः सरूपां त्वां ससर्ज ह ॥ परमानन्दचिन्मूर्तिः सुन्दरीं कृष्णवल्लभाम् ॥ ५ ॥ बद्धाञ्जलिं त्वया पृष्टं किं करोमीति चैकदा ॥ त्वां तदाज्ञापयत्कृष्णो मद्भक्तान्पोषयेति च ॥ ६ ॥ अङ्गीकृतं त्वया तद्वै प्रसन्नोऽभूद्धरिस्तदा ॥ मुक्तिं दासीं ददौ तुभ्यं ज्ञानवैराग्यकाविमौ ॥ ७ ॥ पोषणं स्वेन रूपेण वैकुण्ठे त्वं करोषि च ॥ भूमौ भक्तिविपोषाय च्छायारूपं त्वया कृतम् ॥८॥ मुक्तिं ज्ञानं विरक्तिं च सह कृत्वा गता भुवि ॥ कृतादिद्वापरस्यान्तं महानन्देन संस्थिता ॥९॥ कलौ मुक्तिः क्षयं प्राप्ता पाखण्डामयपीडिता ॥ त्वदाज्ञया गता शीघ्रं वैकुण्ठं पुनरेव सा ॥ १० ॥ स्मृता त्वयापि चात्रैव मुक्तिरायाति याति च ॥ पुत्रीकृत्य त्वयेमौ च पार्श्वे स्वस्यैव रक्षितौ ॥ ११ ॥

पाखण्डके आश्रय करनेसे शास्त्रके अनभ्याससे ध्यानयोगका फल जातारहा ॥ ७३ ॥ पंडित महिषकी नाईं स्त्रियोंके साथ रमते पुत्रोत्पादन करनेमें तौ चतुर हैं परंतु मुक्तिसाधनमें मूर्ख हैं ॥ ७४ ॥ कहीं वैष्णवता जो सब संप्रदायोंमें श्रेष्ठ है नहीं पाईजाती इस प्रकार स्थान २ में सब पदार्थोंका सार जातारहा ॥ ७५ ॥ फिर यह तौ युगधर्मही है इसमें किसीका दोष नहीं इसकारण पुण्डरीकाक्ष निकट स्थित हुएभी सहन करतेहैं ॥ ७६ ॥ सूतजी बोले हे शौनक ! इसप्रकार नारदजीके वचन सुन बडी विस्मयको प्राप्त हो भक्ति फिर बोली सो तुम सुनो॥७७॥ भक्ति बोली देवर्षि तुम धन्यहो मेरे

पण्डितास्तु कलत्रेण रमन्ते महिषा इव ॥ पुत्रस्योत्पादने दक्षा अदक्षा मुक्तिसाधने ॥ ७४ ॥ न हि वैष्णवता कुत्र संप्रदायपुरःसरा ॥ एवं प्रलपतां प्राप्तो वस्तुसारः स्थले स्थले ॥ ७५ ॥ अयं तु युगधर्मो हि वर्तते कस्य दूषणम् ॥ अतस्तु पुण्डरीकाक्षः सहते निकटे स्थितः ॥ ७६ ॥ सूत उवाच ॥ इति तद्वचनं श्रुत्वा विस्मयं परमं गता ॥ भक्तिरूचे वचो भूयः श्रूयतां तच्च शौनक ॥ ७७ ॥ श्रीभक्तिरुवाच ॥ सुरर्षे त्वं च धन्योऽसि मद्भाग्येन समागतः ॥ साधूनां दर्शनं लोके सर्वसिद्धिकरं परम् ॥ ७८ ॥ जयति जयति मायां यस्य कायाधवस्ते वचनरचनमेकं केवलं चाकलय्य ॥ ध्रुवपदमपि यातो यत्कृपातो ध्रुवोऽयं सकलकुशलपात्रं ब्रह्मपुत्रं नताऽस्मि ॥ ७९ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीभागवतमाहात्म्ये भक्तिनारदसमागमो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ वृथा खेदायसे बाले अहो चिन्तातुरा कथम् ॥ श्रीकृष्णचरणाम्भोजं स्मर दुःखं गमिष्यति ॥ १ ॥

भाग्यसेही आनकर प्राप्त हुएहो साधुओंका दर्शन लोकमें सब सिद्धियोंका देनेहारा है॥७८॥जगत्में जिन तुह्मारी केवल अनुपम वचनरचनाकूं विचार कर कयाधूका पुत्र प्रल्हाद शापको त्यागताभया और जिसकी कृपासे यह ध्रुव अचलपदको प्राप्त हुआ सब क्षेमोंके पात्र ऐसे ब्रह्माके पुत्र नारदकूं नमस्कार करतीहूं ॥ ७९ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे भागवतमाहात्म्ये भाषाटीकायां भक्तिनारदसमागमो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ नारदजी बोले तू वृथा खेद करतीहै और क्यों चितातुर होरहीहै श्रीकृष्णके चरणकमलके स्मरण करते ये सब दुःख जातारहैगा ॥ १ ॥

93

जब मुकुंद भगवान् पृथ्वीको त्यागन कर अपने धामको पधारे उसी दिनसे सब साधनका बाधक कलियुग आनकर प्राप्तहुआ ॥ ६५ ॥ जिस समय दिग्विजय करते राजा परीक्षितने कलिको देखा तुरंत यह इसे मारनेको उद्यत हुए तब यह दीनता पूर्वक शरणमें आनकर प्राप्त हुआ तब राजाने विचारा कि यह शरणमें आया है इस कारण मुझे मारना नहीं योग्य राजाकी नाईं सारका भोगनेवाला था ॥६६॥ क्यों कि जो फल तपस्या और योगसमाधिसेभी नहीं होता है वोह फल कलियुगमें केवल अच्छीप्रकार केशवके नाम लेनेसे प्राप्त होता है॥६७॥ जिसमें केवल भक्तिही साधन है और ज्ञान वैराग्यादि जिसविषे निरस हैं ऐसे कलियुगको देख कलिवासी जनोंके सुख करनेको केवल भक्ति करनेसेही मनुष्य तर जांयगे राजाने

यदा मुकुन्दो भगवान्क्ष्मां त्यक्त्वा स्वपदं गतः ॥ तद्दिनात्कलिरायातः सर्वसाधनबाधकः ॥ ६५ ॥ दृष्टो दिग्विजये राज्ञा दीनवच्छरणं गतः ॥ न मया मारणीयोऽयं सारङ्ग इव सारभुक् ॥ ६६ ॥ यत्फलं नास्ति तपसा न योगेन समाधिना ॥ तत्फलं लभते सम्यक्कलौ केशवकीर्तनात् ॥ ६७ ॥ एकाकारं कलिं दृष्ट्वा सारवत्सारनीरसम् ॥ विष्णुरातः स्थापितवान्कलिजानां सुखाय च ॥६८॥ कुकर्माचरणात्सारः सर्वतो निर्गतोऽधुना ॥ पदार्थाः संस्थिता भूमौ बीजहीनास्तुषा यथा ॥ ६९ ॥ विप्रैर्भागवती वार्ता गेहे गेहे जने जने ॥ कारिता कणलोभेन कथासारस्ततो गतः ॥ ७० ॥ अत्युग्रभूरिकर्माणो नास्तिका रौरवा जनाः ॥ तेपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः ॥ ७१ ॥ कामक्रोधमहालोभतृष्णाव्याकुलचेतसः॥तेऽपि तिष्ठन्ति तपसि तपःसारस्ततो गतः॥७२॥ मनसश्चाजयाल्लोभाद्दम्भात्पाखण्डसंश्रयात् ॥ शास्त्रानभ्यसनाच्चैव ध्यानयोगफलं गतम् ॥७३॥

उसका स्थापन किया ॥ ६८ ॥ कुकर्माचरण करनेसे सबका स्थिरांश अब निकलगया है और पृथ्वीमें पदार्थ बीजहीन भूमीकीनाईं उत्पन्न होते हैं ॥ ६९ ॥ ब्राह्मणोंने थोडे धनके लोभसे भगवत्सम्बन्धी वार्ता घरघरमें जिस तिस मनुष्यसे कहनी प्रारम्भ करदीहै इस्से कथाका सार अर्थात् फल जातारहा ॥ ७० ॥ बडे भयंकर कुत्सित कर्म नास्तिक पापी मनुष्य तीर्थोंमें वास करनेलगे इसकारण तीर्थोंका सार जातारहा ॥ ७१ ॥ जिनके चित्त काम क्रोध महालोभसे व्याकुल हैं वोभी तप करनेलगे इस्से तपस्याका सार जातारहा ॥ ७२ ॥ मनके नहीं जीतनेसे लोभ दंभ

कलियुग वर्त्तताहै ॥ ५५ ॥ इसकारण सदाचार योगमार्ग तप लुप्त होगये हैं इसी कारणसे मनुष्य पाप करनेके कारण असुरभावको प्राप्त होगये हैं ॥ ५६ ॥ इस युगमें संत दुःख पाते हैं असाधु प्रसन्न रहते हैं जो बुद्धिमान् धैर्य धारण करता है वोही धीर पंडित है अथवा ॥ ५७ ॥ यह शेषजीको भार करानेहारी पृथ्वी अब छूने और देखनेके अयोग्य होगई है और प्रतिवर्ष क्रमसे ऐसीही होती जाती है कि अब कहीं शुभवार्ता नहीं दीखती॥५८॥ तुझेभी पुत्र सहित अब कोई नहीं देखता पुत्र दारा धनादिके अनुरागसे अंधे हुए तेरा आदर कोई नहीं करते इससे तू जर्जर होगई है ॥ ५९ ॥ वृंदावनके संयोगसे अब फिर तू नवीन तरुणी होगइ है इस्से वृंदावन धन्य है जहां भक्ति विराजती है ॥६० ॥ इस वृंदावनमें यह ज्ञान वैराग्य ग्राहकाभावसे वृद्धावस्थाको नहीं त्यागन करैंगे इस स्थानमें इन ज्ञान वैराग्यकी और कुछ तेरीभी कामक्रोधादि दुःखाभावसे सुखपूर्वक स्थिति होगी ऐसा माना जाताहै ॥६१॥ भक्ति बोली महाराज ! परीक्षितने इस अपवित्र कलियुगको क्यों स्थापित किया जो इसके प्रवृत्त होतेही सब बडा सारबल कहांगया ॥ ६२॥ दयायुक्त भगवान् विष्णु इस पापकूं कैसे देखते हैं यह मेरा संदेह दूर करो तुह्मारी वाणीसे मैं प्रसन्न हूं ॥६३॥ नारदजी बोले हे बाले ! जो तैंने पूछाहै तो प्रेमसे श्रवण कर मैं तेरे अर्थ सम्पूर्ण वर्णन करूंगा जिस्से तेरा दुःख दूर होगा ॥ ६४ ॥

तेन लुप्तः सदाचारो योगमार्गस्तपांसि च ॥ जना अघासुरायन्ते शाठ्यदुष्कर्मकारिणः ॥५६ ॥ इह सन्तो विषीदन्ति प्रहृष्यन्ति ह्यसाधवः ॥ धत्ते धैर्यं तु यो धीमान्स धीरः पण्डितोऽथवा ॥५७॥ अस्पृश्याऽनवलोक्येयं शेषभारकरी धरा वर्षे वर्षे क्रमाज्जाता मङ्गलं नापि दृश्यते ॥ ५८ ॥ न त्वामपि सुतैः साकं कोऽपि पश्यति सांप्रतम् ॥ उपेक्षिताऽनुरागान्धैर्जर्जरत्वेन संस्थिता॥५९॥ वृन्दावनस्य संयोगात् पुनस्त्वं तरुणी नवा ॥ धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च ॥ ६० ॥ अत्रेमौ ग्राहकाभावान्न जरामपि मुञ्चतः ॥ किंचिदात्मसुखेनेह प्रसुप्तिर्मन्यतेऽनयोः ॥ ६१ ॥ श्रीभक्तिरुवाच ॥ कथं परीक्षिता राज्ञा स्थापितो ह्यशुचिः कलिः ॥ प्रवृत्ते तु कलौ सर्वसारः कुत्र गतो महान् ॥ ६२ ॥ करुणापरेण हरिणाप्यधर्मः कथमीक्ष्यते ॥ इमं मे संशयं छिन्धि त्वद्वाचा सुखितास्म्यहम् ॥ ६३॥ नारद उवाच ॥ यदि पृष्टस्त्वया बाले प्रेमतः श्रवणं कुरु॥ सर्वं वक्ष्यामि ते भद्रे कश्मलं ते गमिष्यति ॥ ६४ ॥

देवताओंके सेवा करनेंसेभी मेरी शांति नहीं होगी ॥ ४५ ॥ हे तपोधन! इससमय मन लगाकर मेरी बात सुनो मेरी कथा बडी है उसे सुनकर सुख होगा ॥४६ ॥ मैं द्रविडदेशमें उत्पन्न होकर करनाटक देशमें वृद्धिको प्राप्त भई कहीं कहीं महाराष्ट्र देशमें और गुर्जर देशमें वृद्ध होगई ॥ ४७ ॥ तहां घोर कलियोगसे पाखण्डोंसे खंडित शरीर मैं पुत्रोंसहित बडी दुर्बल होगई ॥४८ ॥ अब इस समय वृन्दावनमें फिर सुन्दर रूपवती पहलेकी नाईं होगई हूं ॥ ४९ ॥ यह मेरे दोनों पुत्र श्रमसे दुःखित पडे हैं इस स्थानको छोडके मुझसहित परदेशको गये ॥ ५० ॥ सो यह दोनों बूढे होगये इस

इदानीं शृंणु मद्वार्तां सचिन्तस्त्वं तपोधन ॥ वार्ता मे वितताऽप्यस्ति तां श्रुत्वा सुखमावह ॥ ४६ ॥ उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्नाटके गता ॥ क्वचित्क्वचिन्महाराष्ट्रे गुर्जरे जीर्णतां गता॥४७॥तत्र घोरकलेर्योगात्पाखण्डैः खण्डिताङ्गका ॥ दुर्बलाहं चिरं जाता पुत्राभ्यां सह मन्दता ॥४८॥ वृन्दावनं पुनः प्राप्य नवीनेव सुरूपिणी ॥ जाताहं युवती सम्यक्प्रेष्ठरूपा तु सांप्रतम् ॥ ४९ ॥ इमौ तु शयितावत्र सुतौ मे क्लिश्यतः श्रमात् ॥ इदं स्थानं परित्यज्य विदेशं गम्यते मया ॥ ५० ॥ जरठत्वं समायातौ तेन दुःखेन दुखिता ॥ साहं तु तरुणी कस्मात्सुतौ वृद्धाविमौ कुतः ॥ ५१ ॥ त्रयाणां सहचारित्वाद्वैपरीत्यं कुतः स्थितम् ॥ घटते जरठा माता तरुणौ तनयाविति ॥ ५२ ॥ अतः शोचामि चात्मानं विस्मयाविष्टमानसा ॥ वद योगनिधे धीमन्कारणं चात्र किं भवेत् ॥ ५३ ॥ नारद उवाच ॥ ज्ञानेनात्मनि पश्यामि सर्वमेतत्तवानघे ॥ न विषादस्त्वया कार्यो हरिः शं ते करिष्यति ॥ ५४ ॥ सूत उवाच ॥ क्षणमात्रेण तज्ज्ञात्वा वाक्यमूचे मुनीश्वरः ॥ नारद उवाच ॥ शृणुष्वाऽवहिता बाले युगोऽयं दारुणः कलिः ॥ ५५ ॥

दुःखसे मैं दुःखी हूं और मैं जवान होगई और दोनों पुत्र कैसे वृद्ध होगये ॥ ५१ ॥ तीनों साथही रहते थे यह विपरीतता कैसे हुई माता वृद्धा पुत्र तरुण यह तो योग्य है पर यह विपरीत तो घटताही नहीं ॥ ५२ ॥ इसकारण मैं बडे आश्चर्यपूर्वक अपने आत्माकूं शोचती हूं हे योगी महात्मन् ! आप कहिये इसमें क्या कारण है॥५३॥नारदजी बोले हे निष्पापे ! मैं ज्ञानसे अपनेमें यह सब तेरी वार्ता देखताहूं तू दुःख मत करै परमेश्वर तेरा कल्याण करैंगे ॥ ५४ ॥ सूतजी बोले क्षणमात्रमें सब विचारकर मुनीश्वर कहने लगे हे बाले ! सावधान होकर सुन इससमय दारुण

इस प्रकार कलियुगके दोष देखता पृथ्वीमें विचारताहुआ मैं यमुनाके किनारे आया जहां कृष्णचंद्रने अनेक लीला करी थीं ॥ ३६ ॥ वहां जो मैंने आश्चर्य देखा सो हे मुनियो ! श्रवण करो तहां एक युवा स्त्री दुःखी मन बैठीथी ॥३७॥ उसके धोरे दो बुड्ढे अचेत पडे सांस ले रहेथे वोह उनकी शुश्रूषा करती और समझाती हुई उनके आगे रोतीथी ॥३८ ॥ अपने शरीरके रक्षा करनेवालेको दशोंदिशामें देखतीथी सैंकडो स्त्री उसकी पवन करती और वारंवार समझातीथीं ॥ ३९ ॥ उसे दूरसे देखतेही मैं कौतुकसे उसके धोरे गया वोह बाला मुझे देखतेही उठ बैठी और व्याकुल होकर बोली

एवं पश्यन् कलेर्दोषान्पर्यटन्नवनीमहम् ॥ यामुनं तटमापन्नो यत्र लीला हरेरभूत् ॥ ३६ ॥ तत्राश्चर्यं मया दृष्टं श्रूयतां तन्मुनीश्वराः ॥ एका तु तरुणी तत्र निषण्णा खिन्नमानसा ॥ ३७ ॥ द्वौ वृद्धौ पतितौ पार्श्वे निःश्वसन्तावचेतनौ॥शुश्रूषन्ती प्रबोधन्ती रुदन्ती च तयोः पुरः ॥३८ ॥ दशदिक्षु निरीक्षन्ती रक्षितारं निजं वपुः॥वीज्यमाना शतस्त्रीभिर्बोध्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ३९ ॥ दृष्ट्वा दूराद्गतः सोऽहं कौतुकेन तदन्तिकम् ॥ मां दृष्ट्वा चोत्थिता बाला विह्वला चाब्रवीद्वचः ॥४०॥ बालोवाच ॥ भो भोः साधो क्षणं तिष्ठ मच्चिन्तामपि नाशय ॥ दर्शनं तव लोकस्य सर्वथाऽघहरं परम् ॥ ४१॥ बहुधा तव वाक्येन दुःखशान्तिर्भविष्यति ॥ यदा भाग्यं भवेद्भूरि भवतो दर्शनं तदा ॥ ४२॥ नारद उवाच ॥ कासि त्वं काविमौ चेमा नार्यः काः पद्मलोचनाः ॥ वद देवि सविस्तारं स्वस्य दुःखस्य कारणम् ॥४३ ॥ बालोवाच ॥ अहं भक्तिरिति ख्याता इमौ मे तनयौ मतौ ॥ ज्ञानवैराग्यनामानौ कालयोगेन जर्जरौ ॥ ४४ ॥ गङ्गाद्याः सरितश्चेमा मत्सेवार्थं समागताः ॥ तथापि न च मे श्रेयः सेवितायाः सुरैरपि ॥ ४५ ॥

॥ ४०॥ हे साधु ! थोडी देर ठहरो मेरी चिन्ताकूभी नाश करो तुम्हारा दर्शन संसारके जीवोंका निश्चय पाप दूर करनेवाला है ॥ ४१ ॥ प्रायः तुम्हारे वाक्यसे दुःखकी शांति होजायगी जब बडा भाग्य होता है तब तुम्हारा दर्शन होता है ॥ ४२ ॥ नारदजी बोले तू कौन है और यह दोनों कौन हैं और यह कमलनयनी स्त्रियें कौन हैं हे देवि ! अपने दुःखके कारणको विस्तारसहित कहो ॥ ४३ ॥ बाला बोली मैं भक्ति जगत् विख्यात हूं और यह ज्ञान वैराग्य नाम मेरे दोनों पुत्र कालयोगसे वृद्ध हुए पडे हैं ॥ ४४ ॥ यह गंगादि नदियें मेरी सेवा करनेको आगई हैं तौभी

अपने कारणसें भिन्न नहीं होय है । अब यामें श्रुतिको प्रमाण देय है । “ यतो[1] वेति ” । जाते संपूर्ण जीव पैदा होंय हैं, और पैदा भये जाके जिवाये जीवें हैं, और प्रलयकालमें जामें मिलें हैं,और मुक्तिकालमें प्रविष्ट होय हैं । और स्मृतिहू प्रमाण हैं “ यतः[2] सर्वाणीति” युगकी आदिमें जा ब्रह्मते सब जीव उत्पन्न होय हैं, और युगके अंतमें जामें लय होय हैं, इत्यादिक । कदाचित् कोई व्यासजीते कहै कि ऐसी तौ जगत्की कारण माया है ताको ध्यान कहा करो हो ? तापै कहें हैं कि नहीं; माया तो जड है, हम तो सर्वज्ञको ध्यान करें हैं । ब्रह्मकी सर्वज्ञतामें श्रुतिप्रमाण है “ सईति[3] ” सो ब्रह्म मायाकी ओर दृष्टि करतभयो, कि तू लोकनकूं पैदा करि, तब माया लोकनकूं पैदा करत भई । यहां व्यासजीको सूत्र हू प्रमाण हैं “ ईक्षतेरिति[4] ” वह द्रष्टा ब्रह्महो जगत्को कारण है, माया नहीं इति । शंका । ऐसो तो जीव है वाको ध्यान करो हौ ? तापै कहैं हैं कि नहीं जीव तो ज्ञान पराधीन है; हम तो स्वतःसिद्धज्ञानवान्को ध्यान करें हैं । शंका । ऐसे तो ब्रह्माजी हैं! क्यों कि श्रुतीमें लिखे है “ हिरंण्यगर्भेति[5] ” जगत्की आदिमें हिरण्यगर्भ ब्रह्मा ही होत भये, और सब जीवनके पति भये इति । तापै कहै हैं, कि हम वा ब्रह्मको ध्यान करें हैं कि जिनने ब्रह्मावो हू वेद पढायो है, यह श्रुतीमें लिखो है । “ यो[6] ब्रह्माणमिति ” जानै पूर्वही ब्रह्माकूं पैदा कियो, और फिर ब्रह्माकूं वेद पढाये, उस बुद्धिके प्रकाशक देवकी शरणमें मुमुक्षु प्राप्त भयोहुं ॥ शंका ॥ ब्रह्माजी काईके पास वेद पढने गये हैं, यह कथा कहीं पुराणादिकमें सुनी नहीं है । याते कहै हैं कि तुह्मारो कहनों ठीक नहीं । ब्रह्माजीकों वेद तौ प्रभुने मनके द्वाराही पढाये हैं । या पदतें यह प्रतीत भई कि ब्रह्माकी बुद्धिके प्रवर्त्तक प्रभू हैं । यह गायत्रीमंत्रको अर्थ दिखायो । यही बात द्वितीयस्कन्धमें शुकदेवजी अपने मंगलाचरणमें कहेंगे “ प्रचोदितेति[7] ” ॥ शंका ॥ जा विद्यावान्को जो विद्या अच्छी अभ्यसिता है वा विद्याकी निद्राकालमें (विस्मृत होजाय है, और जाग्रतमें वा विद्याकी स्मृती स्वतः होय आवैं है, ऐसे प्रलयकालमें) ब्रह्माजी सोयगये, तौ वेद विस्मृत होय गये, जब उठे तब फेर स्मृत व्है आये ॥ तापै कहे हैं कि नहीं । यह वेद ऐसो सुगम नहीं है,कि जो स्वतःही स्मृत व्है आवे या वेदमें महत् विद्वान् मोहकूं प्राप्त होय है, याते ब्रह्माजीकोहू ज्ञान पराधीन है,हम तो स्वतःसिद्ध ज्ञानवान् जगत्के कारण परमेश्वरको ध्यान करे हैं । याहोते वह सत्य है, और झूठे जगत्कूं साच्यो दिखाय रारयो है, याते परमार्थ सत्य है । और सर्वज्ञ है याते

---

[1] यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयंत्यभिसंविशन्ति इति । [2] यतः सर्वाणि भूतानि भवन्त्यादियुगागमे ॥ यस्मिंश्च प्रलयं यान्ति पुनरेव युगक्षये । [3] स ईक्षते । [4] ईक्षतेर्नाशब्दम् । [5] हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । इति । [6] यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वम् इत्यादि । [7] प्रचोदिता येन पुरा सरस्वती । इति ।

श्रीभगवत्कलाअवतार श्रीवेदव्यासजी एकसमय अनेक पुराण और अनेक शास्त्र तथा महाभारतादि प्रबंध करके चित्त शांतिको न पावते तथा उन उन शास्त्रनके कहे भये सिद्धान्तनमें अप्रसन्न होते भये, भगवत्के अंशावतार श्रीनारदजीके उपदेशते श्रीमद्भगवद्गुणवर्णन प्रधान श्रीमद्भागवतशास्त्रको रचतभये, तिसके प्रारम्भमें ताके विघ्ननिवृत्ति सिद्धिके अर्थ श्रीभागवतके इष्टदेवका स्मरणरूप मंगलाचरण करे हैं॥ सब शिष्यवर्गनसहित हम परमेश्वरको ध्यानकरेहैं।अब उन परमेश्वरकूं स्वरूपलक्षणा और तटस्थ लक्षणा करिकैं लखामें हैं,तहां पहिले स्वरूप लक्षण। कहे हैं। कैसो परमेश्वर है कि तीनो कालमें एकरस सत्यरूप है, जा परमेश्वरमें सत्व रज तम मायाके तीन गुण तिनको कार्य (पंचभूत इन्द्रियदेवतारूप प्रपंच) झूठो भासैहै।अथवा जा अधिष्ठानब्रह्मकी सत्यतातें असत्यहू प्रपञ्च सांचोसो प्रतीति होय है, यातें वह परमसत्यहै।यहां दृष्टांत है कि जैसें काहूकूं वनमें रात्रिके समय ऊसरभूमिमें जलको भ्रम और जलमें स्थलको भ्रम होय है, तथा दिनमें मरुमरीचिकामें जल भासे है, तथा काचमें जलकी प्रतीति होय है, इत्यादि भ्रमभी अधिष्ठानकी सत्यता करके सत्यसो दीखे है, ऐसे हीं अधिष्ठानब्रह्मकी सत्यताते झूठो हू प्रपञ्च सत्यसो भासे हैं। अथवा। ता

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट् तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः॥
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥ १ ॥

ब्रह्मकी ही पारमार्थिकी सत्यताके कहनेके हेतु प्रपञ्चको मिथ्याभाव कह्यो है जा ब्रह्ममें वह प्रपञ्च सर्वकाल असत् है वास्तवते कबहु सत् नहीं होय है "जा ब्रह्ममें" यापदके कहनेसों ब्रह्ममें प्रपञ्चरूपी उपाधिकों सम्बन्ध भाष्यो ताकी निवृत्ति करें हैं, अपने तेजकरिके सर्वकाल जिसमेंसे माया लक्षणकपट दूर भयो है क्यों जी ! अंधकारमें रस्सी पडी है तामें काहूकूं सर्पप्रतीति भयो, सो वास्तवमें वा प्रतीतसर्पको और रस्सीको कौन संबन्ध है किंतु कोईभी संबंध नहीं तैसें अधिष्ठान ब्रह्ममें अज्ञानकी अवस्थामें जो प्रपञ्चभ्रम भास्यो ताको ज्ञानावस्थामें कोई संबन्ध नहीं। अब तटस्थलक्षणा करिकें लखामें है। या विश्वके उत्पत्ति पालन संहार जिस ब्रह्मते होय हैं ताहि हम ध्यान करे हैं। जो घटपटादिक पदार्थमें सत्तारूपकरिकें व्यापक है, और अकार्य खपुष्पादिकनतें न्यारो है। अथवा प्रपञ्चको सत्तारूप ब्रह्म कारण है, जैसें घटको कारण मट्टी, कुण्डलादिकनको कारण सुवर्ण, अथवा ब्रह्मको कार्य विश्व है, जैसे मट्टीको कार्य घटादिक, और सुवर्णको कार्य कुण्डलादिक, जो जाको कारण है वह कार्य

श्रीभागवतसम्प्रदाय उच्छिन्न न होय ओर पूर्वापरकी संगतीमें विरोध न होय यानिमित्त भावार्थदीपिका नामक भागवतजीकी टीकाकूं रचूंहूं ॥ ५ ॥ स्वामीजी कहे हैं कि, कहां तो मोसों मन्दबुद्धि, और कहां क्षीरसमुद्रके मन्थनके समान टीकाको रचन, यह बात असम्भव है, क्योंकि जा श्रीभागवतके गम्भीर अर्थनके विचाररूपसमुद्रमें बडे बडे विद्वान् मन्दराचलसे डूबेहैं,तहां मोसे परमाणुकी कौन गणना है॥६॥ परंतु श्रीस्वामीजी कहे हैं कि धन्य गुरुचरणारविन्दकी कृपा कि जो गूंगेको विद्वान् करे हैं, और पांगुरेको परवत लंघावे हैं, यातें मैं परमानन्दमाधवगुरुनकों प्रणाम करूं हूं ॥७॥

सम्प्रदायानुरोधेन पौर्वापर्यानुसारतः ॥ श्रीभागवतभावार्थदीपिकेयं वितन्यते ॥ ५ ॥ क्वाहं मन्दमतिः क्वेदं मन्थनं क्षीरवारिधेः ॥ किं तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मन्दरः ॥ ६ ॥ मूकं करोति वाचाऽलं पङ्गुं लङ्घयते गिरिम् ॥ यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम् ॥ ७ ॥ श्रीमद्भागवताभिधः सुरतरुस्ताराङ्कुरः सज्जनिः स्कन्धैर्द्वादशभिस्ततः प्रविलसद्भक्त्यालवालोदयः ॥ द्वात्रिंशत्त्रिशतं च यस्य विलसच्छाखाः सहस्राण्यलं पर्णान्यष्टदशेष्टदोऽतिसुलभो वर्वर्ति सर्वोपरि ॥ ८ ॥

श्रीमद्भागवत नामक कल्पवृक्ष सर्वशास्त्र पुराण आदिके शिरनपर गर्जें है,कैसो श्रीभागवतकल्पवृक्ष है कि प्रणव जाको अंकुर ब्रह्म जाकी भूमि,द्वादशस्कन्ध जाके गुद्दे, प्रेम लक्षणाभक्ति जाको थामरो, तीनसों पैतीस अध्याय जाकी शाखा, अठारह हजार श्लोक जाके पत्ता, और अखिलमनोरथनकों पूरण करनवारो श्रीमद्भागवतरूप कल्पवृक्ष परमसुलभजीवनके अनेकपुण्यनके उदयते पृथ्वीमें प्राप्त भयो है ॥ ८ ॥ यहां श्रीधरस्वमीको मंगलाचरण समाप्त भयो ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

॥ श्रीशं वन्दे ॥ कृष्णचरण पंकजविमल, भक्तनसुखदातार ॥ नित ज्वालाप्रसादके, हृदयवसहिं दुःखदार ॥१॥ जिनकी कृपाकटाक्षसे, मूक होत वाचाल ॥ सो ज्वालाप्रसादपर, द्रवहु सो दीनदयाल॥२॥श्रीनिकुञ्जविहारिणे नमः ॥ ॥ श्रीगुरुचरणकमलेभ्योनमः ॥ ॥ नमो नलिननेत्राय वेणुवाद्यविनोदिने॥ राधाधरसुधापानशालिने वनमालिने ॥ १॥ हरिमजरमनाद्यनन्तमध्यं परमसुखद्वयबोधमात्रलभ्यम् ॥ उपरतसकलभ्रमं विशुद्धं निजमहसा स्फुरदात्मतत्त्वमीडे ॥ २ ॥ अथ शुभमनसां विवेकभाजावधिगतसारतयोदिताशयानाम् ॥ अतिविततपुराणभावदीपं शुभतिलकं व्रजभाषया लिखामि ॥ ३ ॥
श्रीधरस्वामी सर्वशास्त्रमुकुटमणि श्रीमद्भागवतशास्त्रके गम्भीरअर्थनको प्रकाशिका भावार्थदीपिका टीकाके प्रारम्भमें इष्टदेवस्मरण पूर्वक मंगलाचरण

ॐ श्रीगणेशाय नमः॥ ॥ ॐ वेङ्कटाद्रिविहारिणे नमः ॥ ॥ ॐ नमः परमहंसास्वादितचरणकमलचिन्मकरन्दाय भक्तजनमानसनिवासाय श्रीरामचन्द्राय ॥१॥ वागीशा यस्य वदने लक्ष्मीर्यस्य च वक्षसि ॥ यस्याऽऽस्ते हृदये संवित्तं नृसिंहमहं भजे ॥२॥ विश्वसर्गविसर्गादिनवलक्षणलक्षितम् ॥ श्रीकृष्णाख्यं परं धाम जगद्धाम नमामि तत्॥३॥ माधवोमाधवावीशौ सर्वसिद्धिविधायिनौ ॥ वन्दे परस्परात्मानौ परस्परनुतिप्रियौ ॥ ४ ॥

करे हैं जैसे कि मैं श्रीधरस्वामी रघुकुलमण्डन रघुनन्दनकूं प्रणाम करूंहूं,जिनके चरणकमलनके चैतन्यमकरन्दको स्वाद परमहंसनने समाधिकालमें लीनो है,जो भक्तनके मनमें सर्वकाल वासकरे हैं ॥१॥ स्वामीजो कहे हैं कि अब मैं श्रीनृसिंहदेवको स्मरण करूंहूं,जिनके मुखकमलमें सरस्वती,वक्षःस्थलमें लक्ष्मी, और जिनके हृदयमें ज्ञान वास करे हैं ॥ २ ॥ विश्वके सर्ग विसर्ग आदि नवलक्षणनकरिके लक्षित, और जगत्के आधार सत्चित् आनन्दघनरूप श्रीकृष्णचन्द्रकूं हम नमस्कार करेंहैं॥ ३ ॥ जगत्के ईश्वर भक्तनको सर्वसिद्धिके दायक परस्पर एकहीरूप और परस्पर प्रणामप्रिय माधव (विष्णु) और उमाधव (शिव) कूं प्रणाम करूंहूं ॥ ४ ॥

॥ इति श्रीमद्भागवतमाहात्म्यं भाषाटीकासहितं सम्पूर्णः ॥

दशमस्कंध		
अ.	श्लो.	अ.
८१	४३	२८
८२	५३	२४
८३	५१	२८
८४	७६	२४
८५	६४	४
८६	६२	०
८७	८३	१२
८८	४२	०
८९	७२	२०
९०	५०	१०

जोर दशमस्कंधको श्लो. ४३६९ अक्षर २७

एकादशस्कंध											
अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.
१	२७	२४	११	५०	१६	२१	४३	१२	३१	३१	८
२	६१	१०	१२	२८	४	२२	६३	६			
३	६०	१६	१३	४६	१२	२३	६७	१२			
४	३४	१२	१४	४७	२०	२४	२९	०			
५	५८	४	१५	३६	०	२५	३६	१६			
६	६०	१२	१६	४४	२८	२६	३५	२८			
७	७६	२०	१७	५७	१२	२७	५५	०			
८	४४	२४	१८	४८	१६	२८	५१	२०			
९	३६	१६	१९	४७	१२	२९	५७	८			
१०	३७	१२	२०	३८	०	३०	५४	२८			

जोर एकादशस्कंधको श्लो. १४६७ अक्षर २४

द्वादशस्कंध					
अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.
१	४२	१६	११	५४	४
२	४४	१६	१२	७६	४
३	५२	२८	१३	२५	१६
४	४६	२८			
५	१३	१६			
६	८८	२४			
७	२५	१६			
८	५७	१६			
९	३९	२०			
१०	४२	१६			

जोर द्वादशको श्लो. ६०९ अक्षर २८

जोर संपूर्ण श्रीमद्भागवत द्वादशस्कंधको श्लोक १६००८ सोलहै हजार आठ श्लोक हैं और उवाचश्लोक १२६७ मिलिकै १७२७५ है यह संख्या किसीएक पुस्तकको है परंतु अन्यान्य अनेक पुस्तक संग्रह करकै हमने महापरिश्रमसें पाठपाठांतर जितने मिले वे सब मिलाये हैं. ऐसे मिलाकर बराबर १८००० संख्याका यह संपूर्ण ग्रंथ संपादन करके भाषाटीकासुधारकै तृतीयावृत्ति छपाया है यह ग्रंथ सर्वांग परमसुंदर साग्र होनेसें वाचकलोगोंको परिपूर्ण फल देनेवाला है.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापाखाना- कल्याण-मुंबई.

103

अहंकार तीन प्रकारको है, तामस, राजस, सात्विक, तामससे जड भूत सूक्ष्म उत्पन्न होय हैं राजससें बहिर्मुख दश इंद्रियें,सात्विकसे मन इंद्रियें देवता, इनको लय तिस तिस अहंकारमें होय हैं,सो योगी भूतसूक्ष्म इंद्रियोंकों लय मनोमय देवमय अहंकारको गतिसें प्राप्त होयकर गुणौंके लय महत्तत्त्वकों प्राप्त होयहै॥३०॥ हे राजन् ! आनंदमय जीव उपाधीनके अंतमें प्रधानरूप करकै तिन आत्माको प्राप्त होय,भगवत्की गतिकों जो गयो है सो फेर या संसारमें आसक्त नहीं होय है ॥ ३१ ॥ तुमनें वेदमें कहेहुए जो सनातन मार्ग पूछे दोनों वेदके मार्ग हमने तुमसे कहे पहले भगवान् वासुदेव आराधना करकै ब्रह्माजीनै उनसै यही वार्ता पूछीथी तौ भगवान् वासुदेवने ब्रह्माजीसें कहीथी ॥ ३२ ॥ जो संसारमें जीव फसरहे हैं उनको

①

स भूतसूक्ष्मेन्द्रियसन्निकर्षं मनोमयं देवमयं विकार्यम् ॥ संसाद्य गत्या सह तेन याति विज्ञानतत्त्वं गुणसंनिरोधम् ॥
॥३०॥तेनाऽऽत्मनात्मानमुपैति शान्तमानन्दमानन्दमयोऽवसाने॥एतां गतिं भागवतीं गतो यः स वै पुनर्नेह विषज्जते-
ऽङ्ग॥३१॥ एते सृती ते नृप वेदगीते त्वयाऽभिपृष्टे ह सनातने च॥एते पुरा ब्रह्मण आह पृष्ट आराधितो भगवान्वासुदेवः
॥ ३२ ॥ न ह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह ॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत् ॥ ३३ ॥ भगवान्ब्रह्म
कार्त्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया ॥ तदध्यवस्यत्कूटस्थो रतिरात्मन्यतो भवेत् ॥ ३४ ॥ भगवान्सर्वभूतेषु लक्षितः स्वा-
त्मना हरिः ॥ दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकैः ॥ ३५ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्हरिः सर्वत्र सर्वदा ॥ श्रोतव्यः
कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम् ॥ ३६ ॥

यासे और कल्याणदायक मार्ग नहीं है जाते वासुदेव भगवान्में भक्तियोग होय है ॥३३॥ भगवान् ब्रह्मा निर्विकार एकाग्रचित्तकरकै वेदकों तीनवार बुद्धिसें विचारकर आत्मामें प्रीति होनीही निश्चय करते भए ॥ ३४ ॥ भगवान् हरि सब जीवोंमें अपनें आत्माकरकै दीखैहै, बुद्धि आदि ईश्वरके देखवेके उपाय हैं, अनुमान करवेके लक्षणसें वे दीखै हैं जैसे कुहाडा आदि चेतनके आश्रयसें वृक्ष काटता हैं वैसे इन्द्री चेतनका आश्रय कर काम करै है ईश्वरके जान्नेमें यही अनुमान है ॥३५ ॥ हे राजन् ! तातै सर्व आत्मा हरि सर्वत्र सब कालमें सुनवे योग्य है, कीर्तन करवे योग्य है और वेई भगवान् सब जीवोंको स्मरण करवे योग्य हैं ॥ ३६ ॥

दोहा–जाका कृपाकटाक्ष है सकलसुमंगलमूल । सो ज्वालाप्रसादपर सदा रहो अनुकूल ॥

श्रीगणेशायनमः ॥ अब द्वितीयस्कंधकी व्याख्याका प्रारंभ करैहैं तहां द्वितीयस्कंधकी प्रथमाध्यायमें श्रीशुकदेवजी राजाके प्रश्नकी प्रशंसा करके भगवतके विराट्स्वरूपको वर्णन करचो है यह कथा कहैंगे ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि ॥ हे राजन् ! तुमने लोकहितकारी मुक्तनको संमत, सुनवेके योग्य अत्यंत श्रेष्ठ यह बहुत अच्छो प्रश्न कीनों॥१॥हे राजेंद्र! आत्मतत्वको न देखकर घरमें पांच हत्या नित्य करनेहारे जीवनको सुनवेकी बातें तो हजारन है, वे पंचहत्या[1] ये हैं ऊखर १ चक्की २ चूल्हो ३ जलको धरवेको स्थान ४ बुहारी ५ इन जगै सदा जीव मरै हैं और अपने कल्याण करवेके निमित्त आत्मतत्व नहीं विचारते॥२॥हे राजन् ! रात्रिमें तो निद्रा करके मैथुन करकै आयु क्षय करैहै और दिनमें धन पैदा करवेकी वा कुटुंबको भरण पालनकी इच्छा कर सब आयु खोवै है॥३॥ महा खोटी अपनी आत्माकी सेना देह पुत्र स्त्रीनके बीचमें आसक्त होकर इनको नाश देखकरभी न देखें हैं ॥ ॥ ४ ॥ हे भारत! ताते सबके अंतर्यामी सुंदर भगवान् दुःखहारक हरि ईश्वर सुनवे योग्य हैं, कीर्तन करवे योग्य हैं, मोक्षकी इच्छा करवेवारेको वेई स्मरण करवे योग्य हैं ॥ ५ ॥ तत्वोंको विचार सांख्य, अष्टांगयोग, स्वधर्ममें अत्यंत निष्ठा करनी येही जन्म लेवेको परम लाभ हैं, कि अंतसमयमें नारायणमें स्मृति होय ॥ नारायण शब्दको ये अर्थ है कि कदी क्षय न हो, नित्य वस्तु ज्ञान आनंदादिक जामें रहै वो नारायण[2] हैं ॥६ ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वरीयानेष ते प्रश्नः कृतो लोकहितं नृप ॥ आत्मवित्संमतः पुंसां श्रोतव्यादिषु यः परः ॥ १ ॥ श्रोतव्यादीनि राजेन्द्र नृणां सन्ति सहस्रशः ॥ अपश्यतामात्मतत्त्वं गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ २ ॥ निद्रया ह्रियते नक्तं व्यवायेन च वा वयः ॥ दिवा चार्थहया राजन्कुटुम्बभरणेन वा ॥ ३ ॥ देहापत्यकलत्रादिष्वात्मसैन्येष्वसत्स्वपि ॥ तेषां प्रमत्तो निधनं पश्यन्नपि न पश्यति ॥ ४ ॥ तस्माद्भारत सर्वात्मा भगवान्हरिरीश्वरः ॥ श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताऽभयम् ॥ ५ ॥ एतावान् सांख्ययोगाभ्यां स्वधर्मपरिनिष्ठया ॥ जन्मलाभः परः पुंसामन्ते नारायणस्मृतिः ॥ ६ ॥

---

[1] कंडनी पेषणी चुल्ही उदकुंभी च मार्जनी । पञ्च सूना गृहस्थस्य ताभिःस्वर्गं न विंदते ॥ १ ॥

[2] व्याकरणमें ऐसें है कि ‘रीङ् क्षये इति धातोः’ उत्पन्नः र इति क्षयिष्णुवस्तुवाची नकारस्तन्निषेधाति समूहार्थे अण् प्रत्ययः आदिवृद्धौ ॥ नाराणि नित्यवस्तुसमूहास्तेषामयनो नारायणशब्दार्थः ॥ २॥

2

हे राजन् ! प्रायकरके विधि निषेधसे निचिंत मुनि लोग श्रीहरिके गुणके कथनमें और निर्गुण बृहत्त्वादि गुणविशिष्ट चैतन्य ब्रह्ममें रमण करैहैं ॥
॥ ७ ॥ श्रीभगवत्प्रोक्त ये भागवत नामक पुराण वेदके तुल्य ब्रह्मको सुंदरज्ञान करायवेवारो है, सो द्वापरके आदिमें वेदव्यास पितासे हमने पढीही ॥
॥८॥ हे राजर्षे ! यद्यपि हमारी निर्गुणमें वडी निष्ठा थी परन्तु उत्तम यशवारे भगवान्की लीलासे चित्त गृहीत होनेके कारण हम ये आख्यान पढतेभए
॥९॥ तुम महापुरुष श्रीविष्णुके भक्त हो सो हम आपसे यह कहैंगे जाके सुननेसे श्रद्धा करवेवारेको मुक्तिदायक मुकुंदमें वहुत अच्छी भक्ति होयहै ॥
॥ १० ॥ हे नृप ! अत्यंत वैराग्यवान मुमुक्षुजननकों और कहींसे भय न होय, ऐसी इच्छावारे योगियोंको श्रीहरिको नाम सदा कीर्तन करनो

प्रायेण मुनयो राजन्निवृत्ता विधिषेधतः ॥ नैर्गुण्यस्था रमन्ते स्म गुणानुकथने हरेः ॥ ७ ॥ इदं भागवतं नाम पुराणं
ब्रह्मसंमितम् ॥ अधीतवान्द्वापरादौ पितुर्द्वैपायनादहम् ॥ ८ ॥ परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्य उत्तमश्लोकलीलया ॥
गृहीतचेता राजर्षे आख्यानं यदधीतवान् ॥ ९ ॥ तदहं तेऽभिधास्यामि महापौरुषिको भवान् ॥ यस्य श्रद्दधतामाशु
स्यान्मुकुन्दे मतिः सती ॥ १० ॥ एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम् ॥ योगिनां नृप निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम्
॥ ११ ॥ किं प्रमत्तस्य बहुभिः परोक्षैर्हायनैरिह ॥ वरं मुहूर्तं विदितं घटेत श्रेयसे यतः ॥ १२ ॥
खट्वाङ्गो नाम राजर्षिर्ज्ञात्वेयत्तामिहायुषः ॥ मुहूर्तात्सर्वमुत्सृज्य गतवानभयं हरिम् ॥ १३ ॥ तवाप्येतर्हि कौरव्य
सप्ताहं जीवितावधिः ॥ उपकल्पय तत्सर्वं तावद्यत्सांपरायिकम् ॥ १४ ॥

येही निर्णय करोहै ॥ ११ ॥ यदि राजा संदेह करे कि अब थोडी आयु रहनेसे मैं क्या करसकूहूं उसपर कहतेहैं कि प्रमत्त जीवोंको असावधानीसे परलोक
बिगड जानेके कारण वर्षों वीत जायहैं शुभकार्यमें यत्न करनेहारेकी दो घडीभी श्रेष्ठ हैं ॥१२॥ खट्वांग नामक राजर्षि दो घडी अपनी आयु जान
एक मुहूर्तमें सबकों त्यागकर अभयदायक श्रीहरिकों प्राप्त होतेभए ॥ राजा खट्वांग देवपक्ष होकर दैत्यनको जीततेभए तब प्रसन्न होके देवता बोले वर
मांगो, ये सुन राजा वोले प्रथम मेरी आयु कहो कितने दिन जीऊंगो, तब देवतानने कही दो घडी जीओगे, ये सुन शीघ्र विमानपर बैठ भूमिमें आय
श्रीहरिकी शरणागति कर मोक्ष होगयो ॥ १३ ॥ सो हे राजन् ! तुम तो सात दिन जीओगे सो जो परलोकके साधनकी क्रिया हैं सो करो ॥ १४ ॥

जब अंतमें काल आवै तब मृत्युके भयसें रहित पुरुष असंगरूप शस्त्रकरकै या देहमें और देहके पीछें पुत्रकलत्रादिकसे सुखकी इच्छा दूर करे ॥१५॥ गृहसें निकसकर धीर पुण्यतीर्थोंके जलमैं तो स्नान करैं, पवित्र एकांतमें विधिवत् आसनपर बैठे ॥ १६ ॥ शुद्ध अ उ म् ये तीन अक्षर युक्त परब्रह्म स्वरूप ओंकारको मनसें अभ्यास करै, मनकों जीते, स्वांस जीते, ब्रह्मको बीजमंत्र प्रणव कदी भूलै नहीं ॥ १७ ॥ बुद्धि सारथीसे मन, विषयोंसे इंद्रिनकों जीते, अनेक कर्मोंकरके खिचोंभयो मन भगवतके रूपमें बुद्धिसें धारण करै ॥ १८ ॥ तिन ईश्वरके चरणआदि एक एक अवयवको कभी न भूले सब रूपकों चित्तकरकै ध्यान करै, मनको सब विषयोंसे हटाय परमानंदको साक्षात्कर फेर कुछभी न स्मरण करे ॥ १९ ॥ वोही

अन्तकाले तु पुरुष आगते गतसाध्वसः ॥ छिन्द्यादसङ्गशस्त्रेण स्पृहा देहेऽनु ये च तम् ॥ १५ ॥ गृहात्प्रव्रजितो धीरः पुण्यतीर्थजलाप्लुतः ॥ शुचौ विविक्त आसीनो विधिवत्कल्पितासने ॥ १६ ॥ अभ्यस्येन्मनसा शुद्धं त्रिवृद्ब्रह्माक्षरं परम् ॥ मनो यच्छेज्जितश्वासो ब्रह्मबीजमविस्मरन् ॥ १७ ॥ नियच्छेद्विषयेभ्योऽक्षान्मनसा बुद्धिसारथिः ॥ मनः कर्मभिराक्षिप्तं शुभार्थे धारयेद्धिया ॥ १८ ॥ तत्रैकावयवं ध्यायेदव्युच्छिन्नेन चेतसा ॥ मनो निर्विषयं युक्त्वा ततः किंचन न स्मरेत् ॥१९॥ पदं तत्परमं विष्णोर्मनो यत्र प्रसीदति॥मानसे पूजने सक्तास्ते यान्ति परमं पदम्॥२०॥ रजस्तमोभ्यामाक्षिप्तं विमूढं मन आत्मनः॥ यच्छेद्धारणया धीरो हन्ति या तत्कृतं मलम् ॥२१॥ यतः संधार्यमाणायां योगिनो भक्तिलक्षणः॥ आशु संपद्यते योग आश्रयं भद्रमीक्षतः॥२२॥ राजोवाच ॥यथा संधार्यते ब्रह्मन्धारणा यत्र संमता ॥ यादृशी वा हरेदाशु पुरुषस्य मनोमलम् ॥ २३ ॥

विष्णुको परमपद है जामें मन प्रसन्न होय, जो मानसीपूजनमें लीन है, वे वैकुंठको जाय हैं ॥ २० ॥ रजोगुणसे प्रेरे तमोगुणसें विमूढ अपने मनको धारणा करकै रोकै, रजतमको करोभयो मल नाश करै ॥ २१ ॥ जिस धारणाके करते करते अपने कल्याणके करनेवाले आश्रयको देखते हुए प्राणीको उसी कल्याणकारक भगवत्के रूपमें भक्तिरूप योग (अर्थात् प्रीति) शीघ्र होवे है ॥२२॥ राजा परीक्षित् बोले कि ॥ हे ब्रह्मन्! जहां जैसे धारणा धारण करी जाय है और जाविषे धारणा श्रेष्ठ है और जिस धारणासे पुरुषको मन निर्मल होय सो कहो ॥ २३ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि ॥ अतिस्थूल विराट्रूप हम कहैं हैं तुम सुनो, आसनसै श्वांस जीत संगरहित जितेन्द्रिय हो भगवान्के स्थूल रूपमें मनको बुद्धि करकै लगावो ॥ २४ ॥ जितनें स्थूल रूप है तिनके मध्यमें विराट् देह ये है कि, जहां भूत भविष्यत् वर्तमान सत् विश्व ईश्वरमेंहीं दीखै है ॥ २५ ॥ पृथिवी जल तेज पवन आकाश अहंकार महत्तत्व ये सप्त आवरण सहित या ब्रह्मांडमें अथवा शरीरमें जो विराट पुरुष है भगवान् या धारणाके आश्रय हैं ॥२६॥ विराटरूपको कहते हैं इन सर्वव्यापक ईश्वरके पादमूलमें पाताल है। और एढीमें रसातल हैं। विश्वरचकईश्वरकी एढीके ऊपरकी गांठोंके भागमें महातल है। तलातल विराट पुरुषकी जंघामें है ॥ २७ ॥ विश्वमूर्तिके दोनों जानुमें सुतललोक है। दोनों ऊरुमें वितल अतललोक हैं। महीतल जघनमें है। नभस्तल नाभिमें है ॥ २८ ॥ ज्योतियोंको समूह स्वर्ग ईश्वरके हृदयमें है। ग्रीवामें महर्लोक हैं। वदनमें जनलोक है। आदिपुरुषके तपलोक ललाटमें है। सहस्र शिर धारीके शिरमें सत्य लोक है ॥२९॥ तेजोमय इंद्रादिक देवता बाहुमें हैं। कर्णमें सब दिशा है। श्रोत्रमें शब्द है । अश्विनीकुमार नासिकामें है। घ्राणइंद्रियमें गंध है। देदीप्यमान अग्नि मुखमें है ॥ ३० ॥ अंतरिक्ष नेत्रगोलक हैं। चक्षुइंद्रिय सूर्य है। विष्णुके दोनों पलक दिनरात है। भौंएको चलनों ब्रह्मपद है। जल इनको तालु है। रस इनकी जीभ है ॥३१॥

श्रीशुक उवाच ॥ जितासनो जितश्वासो जितसङ्गो जितेन्द्रियः॥स्थूले भगवतो रूपे मनः संधारयेद्धिया ॥ २४ ॥
विशेषस्तस्य देहोऽयं स्थविष्ठश्च स्थवीयसाम्॥यत्रेदं दृश्यते विश्वं भूतं भव्यं भवच्च सत्॥२५॥
आण्डकोशे शरीरेऽस्मिन्सप्तावरणसंयुते ॥ वैराजः पुरुषो योऽसौ भगवान्धारणाश्रयः ॥ २६ ॥
पातालमेतस्य हि पादमूलं पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम् ॥ महातलं विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातलं वै पुरुषस्य जङ्घे ॥ २७ ॥
द्वे जानुनी सुतलं विश्वमूर्तेरूरुद्वयं वितलं चातलं च ॥ महीतलं तज्जघनं महीपते नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति ॥ २८ ॥
उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य॥तपो रराटीं विदुरादिपुंसः सत्यं तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः॥२९॥
इन्द्रादयो बाहव आहुरुस्राः कर्णौ दिशः श्रोत्रममुष्य शब्दः॥नासत्यदस्रौ परमस्य नासे घ्राणोऽस्य गन्धो मुखमग्निरिद्धः॥३०॥
द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत्पतङ्गः पक्ष्माणि विष्णोरहनी उभे च॥तद्भ्रूविजृम्भः परमेष्ठिधिष्ण्यमापोऽस्य तालू रस एव जिह्वा ॥ ३१ ॥

वेद अनंतके शिर है। यमराज डाढ है। स्नेह दांत हैं। सब जनोंको उन्माद करायवेवारी माया हासी है। अपार विस्तारवारो सर्ग (अर्थात् विश्वरचना) ईश्वरको कटाक्ष है ॥ ३२ ॥ लज्जा ऊपरको होट है। और नीचेको होठ लोभ है। धर्म भगवान्के स्तन अर्थात् हृदयमें है अधर्मको मार्ग सब इनकी पीठमें है। प्रजापति शिश्न अर्थात् लिंग है। मित्रावरुण अंडकोश कोखमें सप्तसमुद्र हैं। सब पर्वत भगवान्के हाड हैं ॥ ३३ ॥ सब नदी इनकी नाडियें हैं। ईश्वरके बाल सब वृक्ष हैं। हे नृपेंद्र! श्रीभगवान् विश्वरूप हैं अनंतवीर्य हरिको श्वास पवन हैं। गति अवस्था है। गुणप्रवाह संसार भगवान्को कर्म है ॥३४॥ ईश्वरके केश मेघ हैं। हे कुरुश्रेष्ठ ! व्यापक ईश्वरके वस्त्र संध्या हैं। प्रधान हृदय हैं। सब विकारको निधि चंद्रमा भगवान्को मन

छन्दांस्यनन्तस्य शिरो गृणन्ति दंष्ट्रा यमः स्नेहकला द्विजानि॥ हासो जनोन्मादकरी च माया दुरन्तसर्गो यदपाङ्गमोक्षः॥३२॥ व्रीडोत्तरोष्ठोऽधर एव लोभो धर्मः स्तनोऽधर्मपथोऽस्य पृष्ठः॥ कस्तस्य मेढ्रं वृषणौ च मित्रो कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसंघाः॥३३॥ नद्योऽस्य नाड्योऽथ तनूरुहाणि महीरुहा विश्वतनोर्नृपेन्द्र॥ अनन्तवीर्यः श्वसितं मातरिश्वा गतिर्वयः कर्मगुणप्रवाहः॥३४॥ ईशस्य केशान्विदुरम्बुवाहान्वासस्तु संध्ये कुरुवर्य भूम्नः॥अव्यक्तमाहुर्हृदयं मनश्च स चन्द्रमाः सर्वविकारकोशः॥ ३५॥ विज्ञानशक्तिं महिमामनन्ति सर्वात्मनोऽन्तःकरणं गिरित्रम्॥ अश्वाश्वतर्युष्ट्रगजा नखानि सर्वे मृगाः पशवः श्रोणिदेशः॥३६॥ वयांसि तद्व्याकरणं विचित्रं मनुर्मनीषा मुनयो निवासः॥ गन्धर्वविद्याधरचारणाप्सरः स्वरस्मृतीरसुरानीकवीर्यः॥३७॥ ब्रह्माऽऽननं क्षत्रभुजो महात्मा विडूरुरङ्घ्रिश्रितकृष्णवर्णः॥ नानाभिधाभीज्यगणोपपन्नो द्रव्यात्मकः कर्मवितानयोगः॥ ३८ ॥

हैं ३५ ॥ विज्ञान शक्ति भगवान्की महिमा अर्थात् महत्तत्व है। सर्वात्मा श्रीहरिको अंतःकरण शिव है। घोडा खिच्चर उंट हाथी ये भगवान्के नख हैं। मृग और पशु ये भगवान्के नितंब है॥३६॥ भगवान्के विचित्र व्याकरण शब्दशास्त्र पक्षी है। मनुष्योंके निवास मनु भगवान्की बुद्धि है। गन्धर्व विद्याधर चारणादिक षड्ज ऋषभादि सप्त स्वर है। उर्वश्यादि अप्सरा भगवानकी स्मृति हैं। असुरनकी सब सेना भगवान्को पराक्रम है ॥ ३७ ॥ ब्राह्मण तिनको मुख क्षत्रि भुजा महात्मा ईश्वरके वैश्य ऊरू चरणके आश्रित वर्ण शूद्र भगवानके पांव हैं नानाप्रकारके नाम सब प्रकारसे

पूजनीय देवगुणसहित अनेक द्रव्यसे संपादित द्रव्यात्मक प्रयोगविस्तारवारो यज्ञ भगवानको वीर्य है ॥ ३८ ॥ ईश्वरके विग्रह अवयवोंकी यही स्थिति है, सो मैंने तुमसे कही, या स्थूल शरीरमें मन अपनी बुद्धिसे सम्यक्प्रकार धारो जायहै मुमुक्षुओंको यासें परे और कछु नहीं है ॥ ३९ ॥ सब बुद्धिकी वृत्तिसें अनुभव सब कर स्वप्नके समें जो जन द्रष्टा हैं एक आत्माको ऐसे मन लगाय सत्यस्वरूप आनंदके सागर ईश्वरको भजन करै औरमें आसक्त न होय क्योंकि आसक्त होनेसे आत्माको संसारमें वसनों पडैहैं ईश्वर तो विद्याशक्तिके आश्रय है यासे बंधनमें न आवैहैं और जीव अविद्याशक्तिके आश्रय होवैं हैं यासें संसारके बंधनमें आवै हैं ॥४०॥ इति श्रीभा० द्वि० विराड्रूपवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

इयानसावीश्वरविग्रहस्य यः सन्निवेशः कथितो मया ते ॥ संधार्यतेऽस्मिन्वपुषि स्थविष्ठे मनः स्वबुद्ध्या न यतोऽस्ति किंचित् ॥ ३९ ॥ स सर्वधीवृत्त्यनुभूतसर्व आत्मा यथा स्वप्नजनेक्षितैकः ॥ तं सत्यमानन्दनिधिं भजेत नान्यत्र सज्जेद्यत आत्मपातः ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पा०सं०द्वितीयस्कन्धे महापुरुषसंस्थानवर्णनं विराड्रूपकथनं नाम प्रथमोध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं पुरा धारणयाऽऽत्मयोनिर्नष्टां स्मृतिं प्रत्यवरुध्य तुष्टात् ॥ तथा ससर्जेदममोघदृष्टिर्यथाप्ययात्प्राग्व्यवसायबुद्धिः ॥ १ ॥ शाब्दस्य हि ब्रह्मण एष पन्था यन्नामभिर्ध्यायति धीरपार्थैः ॥ परिभ्रमंस्तत्र न विन्दतेऽर्थान्मायामये वासनया शयानः ॥ २ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि ॥ पहिले प्रलयके समयमें या धारणासै ईश्वरको प्रसन्न ब्रह्माजी उनसै सृष्टिके रचनेकी स्मृतिको प्राप्त होकर महाप्रलयसें पहिले जैसो ये विश्व हो तैसोई फेर रचते भए, उनकी निश्चयकारी बुद्धि और अमोघ दृष्टि भई, या धारणासे विश्व रचवेकी सामर्थ्य होय है॥ १ ॥ उपासनाफलसेभी विरक्तकों शुद्ध आत्मधारणामें अधिकार हैं यातें वैराग्यके अर्थ सब कर्मफलकी निंदा करै हैं ॥ शब्दब्रह्म वेदको ये मार्ग है कि प्रयोजन रहित स्वर्गादि नाम सुनकरकै उनके साधनकी बुद्धिको ध्यान करै हैं सो कर्म करकै तिन २ लोकनमें घूमैभी है परन्तु अपने प्रयोजनको नहीं प्राप्त होवै है काहेसें कि मायामय वासनामें ये सोय रह्योहै यासे अखंडित सुख याकों नहीं मिलैहै ॥ २ ॥

याकारणसे पंडित नाममात्र भोगके योग्य पदार्थोंमें जितनेमें देहनिर्वाह होय उतनेहीमें आसक्त होय ये निश्चय करवेवारी बुद्धि विना परिश्रम जब
प्रयोजन सिद्ध होजाय तौ उनमें परिश्रम समझ यत्न न करै ॥३॥ विना परिश्रम ये पदार्थ हैं फिर इनके लिये परिश्रम ज्ञानी न करै, पृथिवी शयनके
लिये है, फिर शय्याके वास्ते मेहनत न करैं, स्वतःसिद्ध तकियाके वास्ते भुजां हैं यासे तकिया न बनावै, अंजलि जल पीनेको है खानेकों है फेर
वोहोत अन्नके वास्ते पात्रको न मागै, दिगंबर वा वल्कल पहिरनेको है तो वस्त्रसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ४ ॥ मार्गमेंसे चीर लाय उनकी कंथा
ओढै, वृक्षोंसें फलादि भिक्षा मांग पेट भरै, सबकों भरण पोषण करवेवारी नदीनसे जल पीवै, वे सूकी नहीं है. गुफानमें रहै, उनमें शरणागतोंकी

अतः कविर्नामसु यावदर्थः स्यादप्रमत्तो व्यवसायबुद्धिः ॥ सिद्धेऽन्यथाऽर्थे न यतेत भूयः परिश्रमं तत्र समीक्षमाणः
॥ ३ ॥ सत्यां क्षितौ किं कशिपोः प्रयासैर्बाहौ स्वसिद्धे ह्युपबर्हणैः किम् ॥ सत्यञ्जलौ किं पुरुधाऽन्नपात्र्या
दिग्वल्कलादौ सति किं दुकूलैः ॥ ४ ॥ चीराणि किं पथि न सन्ति दिशन्ति भिक्षां नैवाङ्घ्रिपाः परभृतः सरितोप्यशुष्यन्
॥ रुद्धा गुहाः किमजितोऽवति नोपसन्नान्कस्माद्भजन्ति कवयो धनदुर्मदान्धान् ॥५॥ एवं स्वचित्ते स्वत
एव सिद्ध आत्मा प्रियार्थो भगवाननन्तः ॥ तं निर्वृतो नियतार्थो भजेत संसारहेतूपरमश्च यत्र ॥ ६ ॥ कस्तां त्वनादृत्य
परानुचिन्तामृते पशूनसतीं नाम युञ्ज्यात् ॥ पश्यञ्जनं पतितं वैतरिण्यां स्वकर्मजान्परितापाञ्जुषाणम् ॥ ७ ॥
केचित्स्वदेहान्तर्हृदयावकाशे प्रादेशमात्रं पुरुषं वसन्तम् ॥ चतुर्भुजं कञ्जरथाङ्गशङ्खगदाधरं धारणया स्मरन्ति ॥८॥

ईश्वर रक्षा करैं है जब यह सब विद्यमान हैं तौ किसकारणसे कवि लोग धनके दुर्मदतासें अंधे अज्ञानियौंकी सेवा करैं अर्थात् न करैं ॥ ५ ॥ ऐसें
अपनो चित्त अपने आपही जब सिद्ध होय वैराग्यकी प्राप्ति होय तब अपने हृदयमें प्रिय ईश्वर भगवान् अनंतके निश्चित स्वरूपको आनंदसै
भजै तब सब संसारके हेतूनको नाश होवै है ॥६॥ ऐसो कौन है जो परमेश्वरके ध्यानकी चिंताको त्याग विषयोंको ध्यान करै, पशुबुद्धिवारे तो विषयकोही
ध्यावैहै, अपने करे कर्मोंके क्लेशनको सहै ऐसे जीव वैतरणी नदीमें पडेहैं, ये देख ईश्वरको सदा स्मरण करै, एक क्षणभर न विसारै ॥ ७ ॥
मानसी पूजन वर्णन करैं है कि कोई अपने देहके भीतर हृदयके अवकाशमें जहां "तर्जनी अंगुष्ठके फैलाव" एक विलस्तभरमें पुरुष वसतेहैं, चारभुजा

कमल, चक्र, शंख,गदाधारे ईश्वरकों धारण करके स्मरण करते हैं ॥८॥ जिनको प्रसन्न मुख है,कमलसमान दीर्घ नेत्र कदंबके फूलसमान पीरो पीतावर धारे प्रकाशमान महारत्न जडे जून और दमकते भए महारत्नोंके किरीट कुंडल धारे है॥९॥ प्रसन्नहृदयकमलके पत्ररूप स्थानपर जिनके चरणकमल योगीश्वरों करके स्थापन कियेजाते हैं महालक्ष्मी भृगुलता हृदयमें दीखै है, कौस्तुभरत्न कंठमें धारे हैं, जाकी कांति कदी मलीन न होय ऐसी वनमाला धारे ॥ १० ॥ कौधनी अंगूठियें, बढके नूपुर, कंगण, इत्यादिक करकें विभूषित चिक्कण निर्मल घूंघरवारी नील अलकों करकैं शोभायमान सुंदर जिनको हास्य है ॥११॥ उदारलीलासें हसतेभए,नेत्रोंपर अत्यंत शोभित भ्रुकुटीके चलानेसे भक्तोंपर बडो अनुग्रह सूचन करते चिंतवन करनेसे प्रगट

प्रसन्नवक्त्रं नलिनायतेक्षणं कदम्बकिञ्जल्कपिशङ्गवाससम् ॥ लसन्महारत्नहिरणमयाङ्गदं स्फुरन्महारत्नकिरीटकुण्डलम् ॥ ९ ॥ उन्निद्रहृत्पङ्कजकर्णिकालये योगेश्वरास्थापितपादपल्लवम् ॥ श्रीलक्ष्मणं कौस्तुभरत्नकन्धरमम्लानलक्ष्म्या वनमालयाऽऽचितम् ॥१०॥ विभूषितं मेखलयाङ्गुलीयकैर्महाधनैर्नूपुरकङ्कणादिभिः॥ स्निग्धामलाकुञ्चितनीलकुन्तलैर्विरोचमानाननहासपेशलम्॥११॥अदीनलीलाहसितेक्षणोल्लसद्भ्रूभङ्गसंसूचितभूर्यवग्रहम् ॥ ईक्षेत चिन्तामयमेनमीश्वरं यावन्मनोधारणयाऽवतिष्ठते ॥१२॥ एकैकशोऽङ्गानि धियाऽनुभावयेत्पादादि यावद्धसितं गदाभृतः॥ जितं जितं स्थानमपोह्य धारयेत्परं परं शुध्यति धीर्यथा यथा ॥ १३ ॥ यावन्न जायेत परावरेऽस्मिन्विश्वेश्वरे द्रष्टरि भक्तियोगः ॥ तावत्स्थवीयः पुरुषस्य रूपं क्रियावसाने प्रयतः स्मरेत ॥१४॥ स्थिरं सुखं चासनमास्थितो यतिर्यदा जिहासुरिममङ्ग लोकम् ॥ काले च देशे च मनो न सज्जयेत्प्राणं नियच्छेन्मनसो जितासुः ॥१५॥

हुए तिनको दर्शन करै जबतक मन धारणा करकै उनमें स्थित रहैं ॥ १२ ॥ गदाधरके चरणसें लेकर हांसी पर्यन्त एक एक अंगको बुद्धिसे अनुभव करै, जो जो स्थान विनायत्न स्फुरित होजाय; उनको त्यागकर और जंघा आदिको ध्यान करै तैसेई बुद्धि होती जायगी ॥ १३ ॥ पर अवर द्रष्टा विश्वेश्वरमें भक्तियोग जबतक न होय तबतक स्थूल विराट पुरुषको रूप आवश्यक कर्मके अनुष्ठानके उपरांत नियमोंमें तत्पर होकर स्मरण करै ये तो समीप मृत्यु आयेको कर्तव्य है ॥ १४ ॥ हे राजन्! और अपने आप देह त्यागै वाको ये कृत्य कर्तव्य है जो यति

या लोककी त्यागवेकी इच्छा करे, वो स्थिर सुखदायक आसनपर बैठ, शुभकाल और पुण्य देशमें मनको आसक्त न कर मन करकै प्राणोंको जीतै योगाभ्यासही योगीकों मोक्षदायक कहै ॥१५॥ अपनी निर्मल बुद्धि करके बुद्ध्यादिकके द्रष्टा जीवमें मन लगावैं, जीवात्माको शुद्ध चैतन्य ब्रह्ममें एक करकै आनंदको प्राप्त होकर सब कृत्यसें विराम करै,वासें परे कोई कार्य कर्तव्य नहीं है॥१६॥ जिस आत्मस्वरूपमें देवनको परम प्रभु कालभी समर्थ न होय सकैहै जगत्के ईश्वर देवतानकी कहा सामर्थ्य है,जगत्की तो का सामर्थ है,न जहां सतोगुणकी चलै;न रजोगुण,न तमोगुण न अहंकार न महत्तत्व न माया इन सबकी कुछ सामर्थ्य नहीं है ॥ १७ ॥ सम्पूर्ण अनात्मवस्तुको यहभी नहीं यहभी नहीं इस विचारसै त्यागनेकी इच्छा करनेहारे योगी

मनः स्वबुद्ध्याऽमलया नियम्य क्षेत्रज्ञ एतां निनयेत्तमात्मनि॥आत्मानमात्मन्ववरुध्य धीरो लब्धोपशान्तिर्विरमेत कृत्यात् ॥१६॥ न यत्र कालोऽनिमिषां परः प्रभुः कुतो नु देवा जगतां य ईशिरे ॥ न यत्र सत्त्वं न रजस्तमश्च न वै विकारो न महान्प्रधानम् ॥ १७॥ परं पदं वैष्णवमामनन्ति तद्यन्नेति नेतीत्यतदुत्सिसृक्षवः ॥ विसृज्य दौरात्म्यमनन्यसौहृदा हृदोपगुह्याऽर्हपदं पदे पदे ॥ १८ ॥ इत्थं मुनिस्तूपरमेव्यवस्थितो विज्ञानदृग्वीर्यसुरन्धिताशयः ॥ स्वपार्ष्णिनाऽपीड्य गुदं ततोऽनिलं स्थानेषु षट्सून्नमयेज्जितक्कमः॥ १९ ॥ नाभ्यां स्थितं हृद्यधिरोप्य तस्मादुदानगत्योरसि तं नयेन्मुनिः॥ ततोऽनुसंधाय धिया मनस्वी स्वतालुमूलं शनकैर्नयेत ॥ २० ॥ तस्माद् भ्रुवोरन्तरमुन्नयेत निरुद्धसप्ताऽयतनोऽनपेक्षः ॥ स्थित्वा मुहूर्तार्धमकुण्ठदृष्टिर्निर्भिद्य मूर्धन्विसृजेत्स धर्मः ॥ २१ ॥

देहादिकौंमें आत्मबुद्धिको त्याग पूज्यतम विष्णु भगवान्के पवित्र स्वरूपका हृदयमें प्रतिक्षण आलिंगन कर उन्हींमें प्रीति लगाय विष्णु भगवान्के परम पदकोही सबसै श्रेष्ठ मान्ते हैं ॥१८॥ ईश्वरको चिंतवन करके याप्रकार मुनि स्थित होयकर सबसे उपराम करै,ब्रह्मज्ञानकी दृष्टिके बलसै विषयवासना नाशकर अपनी एढीसे गुदाको बंधकर, सब परिश्रम जीत नाभि आदि छैः स्थानौंमें पवनको प्राप्त करै ॥१९ ॥ जो पवन नाभीमें मणिपूरक चक्रमें स्थित है वाको हृदयके अनाहत चक्रमें रोककर उदान गतिसें कंठमें स्थित विशुद्ध चक्रमें वा पवनको प्राप्त करै फिर वो मुनि पाछै बुद्धिसें अनुसंधान कर चित्तके जीते अपने तालुके मूलमें धीरेसे वा वायुको प्राप्त करै ॥ २० ॥ दोनों कान दोनों नेत्र दोनों नाक मुख ये सातोंको रोककर

उसकीभी चाहना न करे, वो मुनि वहांसे भ्रुकुटीके भीतर आज्ञाचक्रमें प्राप्त करै, एकघडी स्थित होकर शुद्ध दृष्टिकर परब्रह्मको प्राप्त होकर ब्रह्मरंध्रको भेदकर देह इंद्रियें सबको त्याग करै ॥ २१ ॥ पूर्वोक्त सद्योमुक्ति कही, अब क्रममुक्ति कहे हैं; हे नृप ! जो ब्रह्माके स्थानमें होकै जायहै जहां आकाशचारी सिद्धनको विहारस्थान है, और अणिमादिक अष्टसिद्धि मिलैहै, वह या ब्रह्मांडमें मन इंद्रियोंके साथही चलो जायहै, क्योंकि मरवेके समय जो वासना याके हृदयमें रहैहै, कि सब लोकनके भोग भोगतो भयो जाऊ तो मन इंद्रियें सहित जीव जावैहै ॥२२॥ पवनरूप जिनकी देह, उपासना, भगवद्धर्म अष्टांगयोग, समाधिके करवेवारे योगीश्वरनको त्रिलोकीसें बाहर भीतर सब जगे जायवेकी गति होय है ऐसे कहे है, वा गतिके कर्मोंकरकै कोई नहीं प्राप्त होयहैं ॥ २३ ॥ हे नृप! आकाशमें होयकर ब्रह्मलोक मार्गमें होय, ज्योतिर्मय सुषुम्ना नाडीकरकै अग्निअभिमानी देवताको प्राप्त होवै है, पाछैं सब मल दूर होनेसे ऊपर वर्तमान हरिको संबंधी तारारूप शिशुमार चक्रको प्राप्त होय है। शिशुमार चक्रको वर्णन पञ्चम स्कंधमें करेंगे ॥ २४ ॥ श्रीविष्णुको सूर्यादिकोंके आश्रयभूत विश्वकी नाभीरूप चक्रको उल्लंघन करै है क्यों कि उस्से ऊपर स्वर्गियोंकी फेर गति नहीं है, यातें एकही निर्मल लिंगशरीर अणुरूप होकर औरों करके नमस्कृत ब्रह्मवेत्तानके स्थान महर्लोकको प्राप्त होय है जहां महाकल्पकी आयुवारे पण्डित भृगु आदिक रमण करतेहैं ॥ २५ ॥ याके उपरांत कल्पांतमें श्रीशेषजीके मुखकी अग्निसे भस्म विश्वको देखकर सिद्धेश्वरोंकरके सेवित स्थान द्विपरार्द्धमें स्थित रहैहै, वा ब्रह्मलोकको जाय हैं ॥ २६ ॥

यदि प्रयास्यन्नृप पारमेष्ठ्यं वैहायसानामुत यद्विहारम् ॥ अष्टाधिपत्यं गुणसन्निवाये सहैव गच्छेन्मनसेन्द्रियैश्च ॥ ॥ २२ ॥ योगेश्वराणां गतिमाहुरन्तर्बहिस्त्रिलोक्याः पवनान्तरात्मनाम् ॥ न कर्मभिस्तां गतिमाप्नुवन्ति विद्यातपोयोगसमाधिभाजाम् ॥ २३ ॥ वैश्वानरं याति विहायसा गतः सुषुम्नया ब्रह्मपथेन शोचिषा ॥ विधूतकल्कोऽथ हरेरुदस्तात्प्रयाति चक्रं नृप शैशुमारम् ॥ २४ ॥ तद्विश्वनाभिं त्वतिवर्त्य विष्णोरणीयसा विरजेनात्मनैकः ॥ नमस्कृतं ब्रह्मविदामुपैति कल्पायुषो यद्विबुधा रमन्ते ॥२५॥ अथो अनन्तस्य मुखानलेन दन्दह्यमानं स निरीक्ष्य विश्वम् ॥ निर्याति सिद्धेश्वरजुष्टधिष्ण्यं यद्द्वै परार्ध्यं तदु पारमेष्ठ्यम् ॥ २६ ॥

वा ब्रह्मलोकमें शोक वृद्धापन मृत्यु दुःख भय कहींसे कदीभी नहीं होय है केवल ये भगवत्ध्यानको न जानवेवारोंको भगवत्कृपा विना अत्यंत दुःख प्राप्त हौने और उनके वारंवार जन्ममरण देखकर जो दया आवै है केवल यही दुःख है वहां शोकादिक कहींसेभी नहीं है जो ब्रह्मलोकमें गये हैं उनकी तीन प्रकारकी गति है जो पुण्य वहुत करकें गए हैं वे कल्पांतरमें पुण्यकी न्यून अधिकता करके अधिकारी होय हैं,जो हिरण्यगर्भादिककी उपासनाके बलकरके गएहैं वे ब्रह्माके साथ मुक्त होंयगे, जो भगवत्के उपासक हैं वे अपनी इच्छासे ब्रह्माण्डको भेदकर श्रीवैकुण्ठ वैष्णव पदको जायहैं ॥२७॥ पाछे लिंगदेह करकै पृथिवीरूपताको प्राप्त होयकर भय त्याग पृथिवीरूप होयकैं जलकों प्राप्त होय, शीघ्रता न करकै ज्योतिर्मय होय वायुको प्राप्त होय वायुरूप होकर बडो भारी ब्रह्मस्वरूप आकाशकों प्राप्त होयहैं भगवत्भक्तको ब्रह्मांडके भेदनको प्रकार कहैं हैं ईश्वरकी रची प्रकृतिके

न यत्र शोको न जरा न मृत्युर्नार्तिर्न चोद्वेग ऋते कुतश्चित् ॥ यच्चित्ततोदः कृपयाऽनिदंविदां दुरन्तदुःखप्रभवानुदर्शनात् ॥ २७ ॥ ततो विशेषं प्रतिपद्य निर्भयस्तेनात्मनाऽपोनलमूर्तिरत्वरन् ॥ ज्योतिर्मयो वायुमुपेत्य काले वाय्वात्मना खं बृहदात्मलिङ्गम् ॥ २८ ॥ घ्राणेन गन्धं रसनेन वैं रसं रूपं तु दृष्ट्या श्वसनं त्वचैव ॥ श्रोत्रेण चोपेत्य नभोगुणत्वं प्राणेन चाकूतिमुपैति योगी ॥ २९ ॥

कोई एक अंशसे महत्तत्व होय है, वाके अंशसे अहंकार होय है, वा अहंकारके अंशसे शब्द, ताकी मात्राके द्वारा आकाश होय है आकाशके अंशसे स्पर्श ताकी मात्राके द्वारा वायु होय है, वायुके अंशसे रूप तन्मात्राके द्वारा तेज होय है, तेजके अंशसे रस तन्मात्राके द्वारा जल होय हैं, जलके अंशसे गंध तन्मात्राद्वारा पृथ्वी होय है; ये सब मिलकर चतुर्दश भुवनात्मक विराटशरीर ब्रह्मांड होय है, सो सो ब्रह्मांडको पंचाशतकोटी योजन विस्तार हैं, पृथिवी शब्दवाच्य विशेष अंडकटाह शतकोटि योजन विस्तार है, कोई पंचाशतकोटि योजन विशाल है, ऐसेंभी कहै है, फेर वायु आदिकोंके अनगिनती अंश हैं, सो वे उत्तरोत्तर दशगुणे अधिक हैं आठ प्रकृतिको आवरण व्यापक है ॥ २८ ॥ घ्राणसे गंध, रसनासें रस, दृष्टीसें रूप,त्वचासे श्वास,श्रोत्रसे आकाशके गुण शब्दकों प्राप्त होकर योगी प्राण करिकै तिन तिन क्रियाको प्राप्त होयहै ॥ २९ ॥

अहंकार तीन प्रकारको है, तामस, राजस, सात्विक, तामससे जड भूत सूक्ष्म उत्पन्न होय हैं राजससें बहिर्मुख दश इंद्रियें, सात्विकसे मन इंद्रियें देवता, इनको लय तिस तिस अहंकारमें होय हैं, सो योगी भूतसूक्ष्म इंद्रियोंकों लय मनोमय देवमय अहंकारको गतिसें प्राप्त होयकर गुणौंके लय महत्तत्त्वकों प्राप्त होयहै॥३०॥ हे राजन् ! आनंदमय जीव उपाधीनके अंतमें प्रधानरूप करकै तिन आत्माको प्राप्त होय, भगवत्की गतिकों जो गयो है सो फेर या संसारमें आसक्त नहीं होय है ॥ ३१ ॥ तुमनें वेदमें कहेहुए जो सनातन मार्ग पूछे दोनों वेदके मार्ग हमने तुमसे कहे पहले भगवान् वासुदेव आराधना करकै ब्रह्माजीनै उनसै यही वार्ता पूछीथी तौ भगवान् वासुदेवने ब्रह्माजीसें कहीथी ॥ ३२ ॥ जो संसारमें जीव फसरहे हैं उनको

स भूतसूक्ष्मेन्द्रियसन्निकर्षं मनोमयं देवमयं विकार्यम् ॥ संसाद्य गत्या सह तेन याति विज्ञानतत्त्वं गुणसंनिरोधम् ॥ ॥३०॥तेनाऽऽत्मनात्मानमुपैति शान्तमानन्दमानन्दमयोऽवसाने॥एतां गतिं भागवतीं गतो यः स वै पुनर्नेह विषज्जतेऽङ्ग॥३१॥ एते सृती ते नृप वेदगीते त्वयाऽभिपृष्टे ह सनातने च॥एते पुरा ब्रह्मण आह पृष्ट आराधितो भगवान्वासुदेवः ॥ ३२ ॥ न ह्यतोऽन्यः शिवः पन्था विशतः संसृताविह ॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगो यतो भवेत् ॥ ३३ ॥ भगवान्ब्रह्म कार्त्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया ॥ तदध्यवस्यत्कूटस्थो रतिरात्मन्यतो भवेत् ॥ ३४ ॥ भगवान्सर्वभूतेषु लक्षितः स्वात्मना हरिः ॥ दृश्यैर्बुद्ध्यादिभिर्द्रष्टा लक्षणैरनुमापकैः ॥ ३५ ॥ तस्मात्सर्वात्मना राजन्हरिः सर्वत्र सर्वदा ॥ श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यो भगवान्नृणाम् ॥ ३६ ॥

यासे और कल्याणदायक मार्ग नहीं है जाते वासुदेव भगवान्में भक्तियोग होय है ॥३३॥ भगवान् ब्रह्मा निर्विकार एकाग्रचित्तकरकै वेदकों तीनवार बुद्धिसें विचारकर आत्मामें प्रीति होनीही निश्चय करते भए ॥ ३४ ॥ भगवान् हरि सब जीवोंमें अपनें आत्माकरकै दीखैहै, बुद्धि आदि ईश्वरके देखवेके उपाय हैं, अनुमान करवेके लक्षणसें वे दीखै हैं जैसे कुहाडा आदि चेतनके आश्रयसें वृक्ष काटता हैं वैसे इन्द्री चेतनका आश्रय कर काम करै है ईश्वरके जान्नेमें यही अनुमान है ॥३५ ॥ हे राजन् ! ताते सर्व आत्मा हरि सर्वत्र सब कालमें सुनवे योग्य है, कीर्तन करवे योग्य है और वेई भगवान् सब जीवोंको स्मरण करवे योग्य हैं ॥ ३६ ॥

14

द्वितीयस्कन्धः

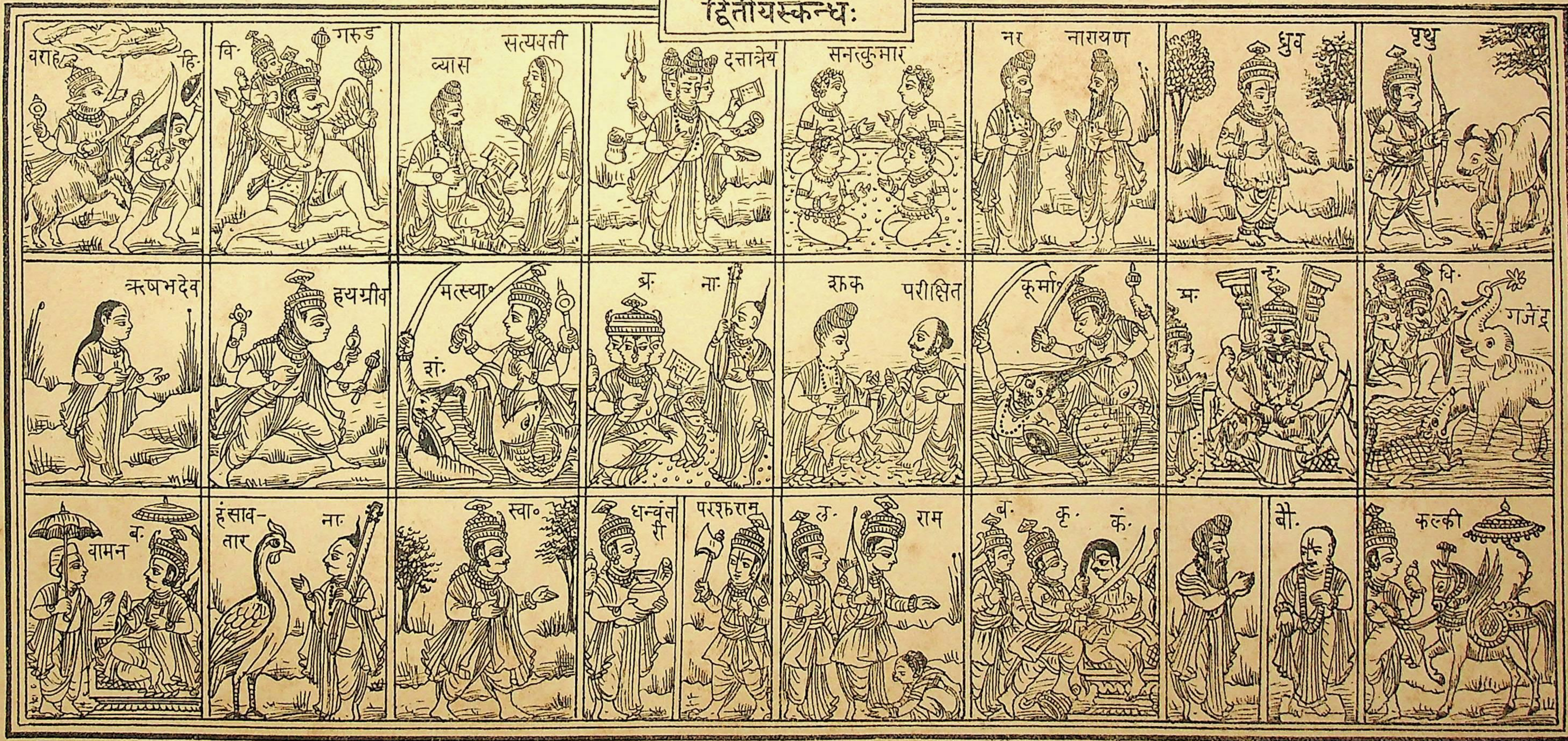
वराह
हि·
वि·
गरुड
व्यास
सत्यवती
दत्तात्रेय
सनत्कुमार
नर
नारायण
ध्रुव
पृथु
ऋषभदेव
हयग्रीव
मत्स्या·
शं·
ब्र·
ना·
शुक
परीक्षित
कूर्मा·
म·
नृ·
वि·
गजेंद्र
वामन
ब·
हंसाव-
तार
ना·
स्वा·
धन्वंतरी
परशुराम
ल·
राम
ब·
कृ·
कं·
बौ·
कल्की

जब एक और गुणकरके और तरेहेको होय है तब स्वभावसे नष्ट होय जायहै, जाको जैसो स्वभाव होयहै तैसी गति वाको होयहै ॥ ४३ ॥ सोई भगवान् धर्मरूपधारी जगत्के धारण करवेवारे या विश्वको तिर्यक्‌ पशु पक्षियोंमें अवतार लेकर याको स्थापन करते पुष्ट करै हैं ॥ ४४ ॥ ताके उपरांत काल अग्निरूप रुद्रांतर्यामी ईश्वर जासें ये सब रचोभयोहै, काल करकै इस सब विश्वको संहार करते हैं, जैसे मेघके समूहको पवन उड़ादेती है ॥ ४५ ॥ “ तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः । सोऽकामयत बहुस्यां प्रजायेयेत्यादिश्रुत्या कथितः ” याप्रकारसे भगवान् जो भगवत्तम हैं सो कहै या भावके बिना और प्रकारसे बडे बडे विवेकी लोग देखवेको योग्य नहीं है अत्यन्त ऐश्वर्यसम्पन्न भगवानका जगतके उत्पन्न पालन संहार करता रूपका वर्णन किया परन्तु विद्वान् लोक केवल इसही रूपसे देखने योग्य नहीं हैं ॥ ४६ ॥ इस जगतके जन्मआदि कर्मके निमित्त जो इस रीतिसे कहाहै वह परत्माके कर्तापनके प्रतिषेधके निमित्त नहीं हैं कारण कि वह परमात्माकी मायाही शक्तिसे आरोपित है “ निष्कलं निष्क्रियं शांतं निरवद्यं निरंजनं । इंद्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते इति श्रुतिः ” ॥ ४७ ॥ ये ब्रह्माको कल्प विकल्पसहित कह्यो, महा कल्पमें महत्व आदि सृष्टिका प्रकार और अवान्तर कल्पमें स्थावर जंगम सृष्टिका प्रकार समानही है ॥ ४८ ॥ परिणाम, कल्पलक्षण विग्रह, स्थूल, सूक्ष्म, कालको आगे तृतीयस्कंधमें कहैंगे अब पाद्म कल्प संपूर्णतासें कहै हैं सो सुनो ॥ ४९ ॥ शौनकजी बोले कि हे सूतजी ! जो तुमनें हमते कही कि भागवतोंमें

यदैकैकतरोऽन्याभ्यां स्वभाव उपहन्यते ॥ यस्य यादृक्स्वभावोऽस्ति तादृक्तस्य गतिर्भवेत् ॥४३॥ स एवेदं जगद्धाता भगवान्धर्मरूपधृक्॥ पुष्णाति स्थापयन्विश्वं तिर्यङ्नरसुरात्मभिः॥४४॥ ततः कालाग्निरुद्रात्मा यत्सृष्टमिदमात्मनः॥ संनियच्छति कालेन घनानीकमिवाऽनिलः॥४५॥ इत्थंभावेन कथितो भगवान्भगवत्तमः॥ नेत्थंभावेन हि परं द्रष्टुमर्हन्ति सूरयः॥ ४६ ॥ नास्य कर्मणि जन्मादौ परस्यानुविधीयते ॥ कर्तृत्वप्रतिषेधार्थं माययाऽऽरोपितं हि तत् ॥ ४७॥ अयं तु ब्रह्मणः कल्पः सविकल्प उदाहृतः॥ विधिः साधारणो यत्र सर्गाः प्राकृतवैकृताः॥ ४८॥ परिमाणं च कालस्य कल्पलक्षणविग्रहम् ॥ यथा पुरस्ताद्व्याख्यास्ये पाद्मं कल्पमथो शृणु ॥ ४९॥ शौनक उवाच ॥ यदाह नो भवान्सूत क्षत्ता भागवतोत्तमः॥ चचार तीर्थानि भुवस्त्यक्त्वा बन्धून्सुदुस्त्यजान् ॥ ५० ॥

उत्तम विदुरजी त्यागवेके अयोग्य बंधूनको त्यागकर भूमिके सब तीर्थनमें विचरतेभए ॥ ५० ॥ सो मैत्रेयजी और विदुरजीको ब्रह्मविद्यासंबंधी संवाद कहा भयो अथवा तिन मैत्रेयजीने पूछो तो विदुरजीने तिनके लिये कौन तत्वज्ञान कह्यो ॥ ५१ ॥ हे सौम्य ! सो ये विदुरजीके चरित्र विशेष कर हमसे कहो उन्होंने अपने बंधुओंका क्यों त्याग किया और पीछे क्यों आये सो कहो ॥ ५२ ॥ सूतजी बोले कि राजा परीक्षित करके पूछेभए भगवान् महामुनि शुकदेवजी जो कहिते भए सो राजाके प्रश्नके अनुसार हम तुमसें कहैहैं तुम सुनो ॥ ५३ ॥ जिन ईश्वरनें श्रीमद्भागवत ब्रह्माजीसें आप कही ब्रह्माजीने नारदजीसे कही ऐसे ईश्वर गुरुको प्रणाम करे हैं, द्वितीय स्कंधसंबंधी व्याख्या हमनें कही, महात्मा विद्वान् हमारो साहस क्षमा करे मैंनें अपने बोधके लिये करी है, कुछ सबके वास्ते नहीं, परंतु काल बलीनमें बली है, जो कालसे बचेगो वोही ईश्वरके लोककों जायगो, काल बडो

कुत्र कौषारवेस्तस्य संवादोऽध्यात्मसंश्रितः ॥ यद्वा स भगवांस्तस्मै पृष्टस्तत्वमुवाच ह ॥ ५१ ॥
ब्रूहि नस्तदिदं सौम्य विदुरस्य विचेष्टितम् ॥ बन्धुत्यागनिमित्तं च तथैवागतवान्पुनः ॥ ५२ ॥
॥ सूत उवाच ॥ राज्ञा परीक्षिता पृष्टो यदवोचन्महामुनिः ॥ तद्वोऽभिधास्ये शृणुत राज्ञः प्रश्नानुसारतः ॥ ५३ ॥

बली है याकी बडी सूक्ष्मगति है तापर ये दृष्टांत है कि गरुडजीको मित्र एक गीध हो सो गरुडजीके घौसलासे दशहजार कोसपर वा गीधको घौसला हो, सो एक समय वैकुंठनाथको वैकुंठ पहुचाय गरुडजी वा गीध मित्रसे मिलवेको वा गीधके घौसालमें गए, गरुडकों आयो जान गीध आदरकर प्रणाम कर बैठायके बोले हे गरुडजी ! आज यमधर्मराज या ओर होके निकसे, सो मोको देखकर बडे हंसे ये सुन गरुडजी बोले कि जाको देख यमराज हंसें वाकी मृत्यु आई जानो सो तुम हमारे पीठपर बैठकर हमारे घौसलेमें चलो, वहां तुमको बैठाय हम यमराजसे पूछ आवेंगे, ये सुन गीधने वैसेही करी वाको गरुडजी अपने घौसलेमें रखके यमसे पूछवे गए पाछे गरुडजीके घुसलेके नीचे एक बडो भारी बिलाव रहै सो जब गरुडजी चलेजांय, तब वो वामें आयकें सदा यथासुख विचरै, सो मार्जारने वा दिन वा गीधकों वहां बैठो देख झटपट खाय लीनों गरुडजी यमराजसें बोले

कि हमारे मित्र गीधकों देख आप क्यों हंसे ये सुन यमराज बोले कि कल्ह सबेरे याको काल है, सो याको मारवेवारो यहांसे दसहजार कोसपर है, ये दोनों दशहजार कोस जायसकै नहीं ये कैसे मरैगो यासें मोकों हांसी आई सो जाओ वाको घातक मार्जार तुम्हारे घौसलेके नीचे हे सो तुम यहां पूछवे आए वाने वाको मारो ये सुन गरुडजी वहां आए देख बोले काल बडो बली है, जो ब्राह्मणोंकी सेवा करैगो हरिनाम ले वह कालसें बचेगो ❀ ॥

इतिश्रीभा॰म॰द्वि॰ स्कन्धे पुरुषसंस्थानुवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥ ॥ समाप्तोऽयं द्वितीयः स्कन्धः॥ २॥

इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां द्वितीयस्कंधे महापुरुषसंस्थानुवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ॥ ॥ ॥

॥ द्वितीयस्कंधः समाप्तः ॥ २ ॥

दो॰ कृष्णनामके जपतही, मिटत सकल जंजाल ॥ शरण उन्हींकी लीजिये, जिनसे डरपत काल ॥ १ ॥

इदं पुस्तकं श्रीकृष्णदासात्मजगङ्गाविष्णुना कल्याण–मुंबई-स्थे स्वकीये
लक्ष्मीवेंकटेश्वरमुद्रणयंत्रालयेंऽकितम् । संवत् १९५२, शके १८१७.

॥ इति भाषाटीकायुतः श्रीमद्भागवतद्वितीयस्कन्धः समाप्तः ॥

1

भाग-३

॥ अथ भाषाटीकायुतश्रीमद्भागवते तृतीयस्कन्धप्रारम्भः ॥

यह ग्रन्थ सन् १८६७ के ऐक्ट २५ के अनुसार रजिष्टरी करके सब हक्क यन्त्राधिकारीने अपने स्वाधीन रक्खा है.

भाग-३

①

॥ अथ भाषाटीकायुतश्रीमद्भागवते तृतीयस्कन्धप्रारम्भः ॥

यह ग्रन्थ सन १८६७ के ऐक्ट २५ के अनुसार रजिष्टरी करके सब हक्क यन्त्राधिकारीने अपने स्वाधीन रक्खा है.

3

6

तृतीय स्कन्धः

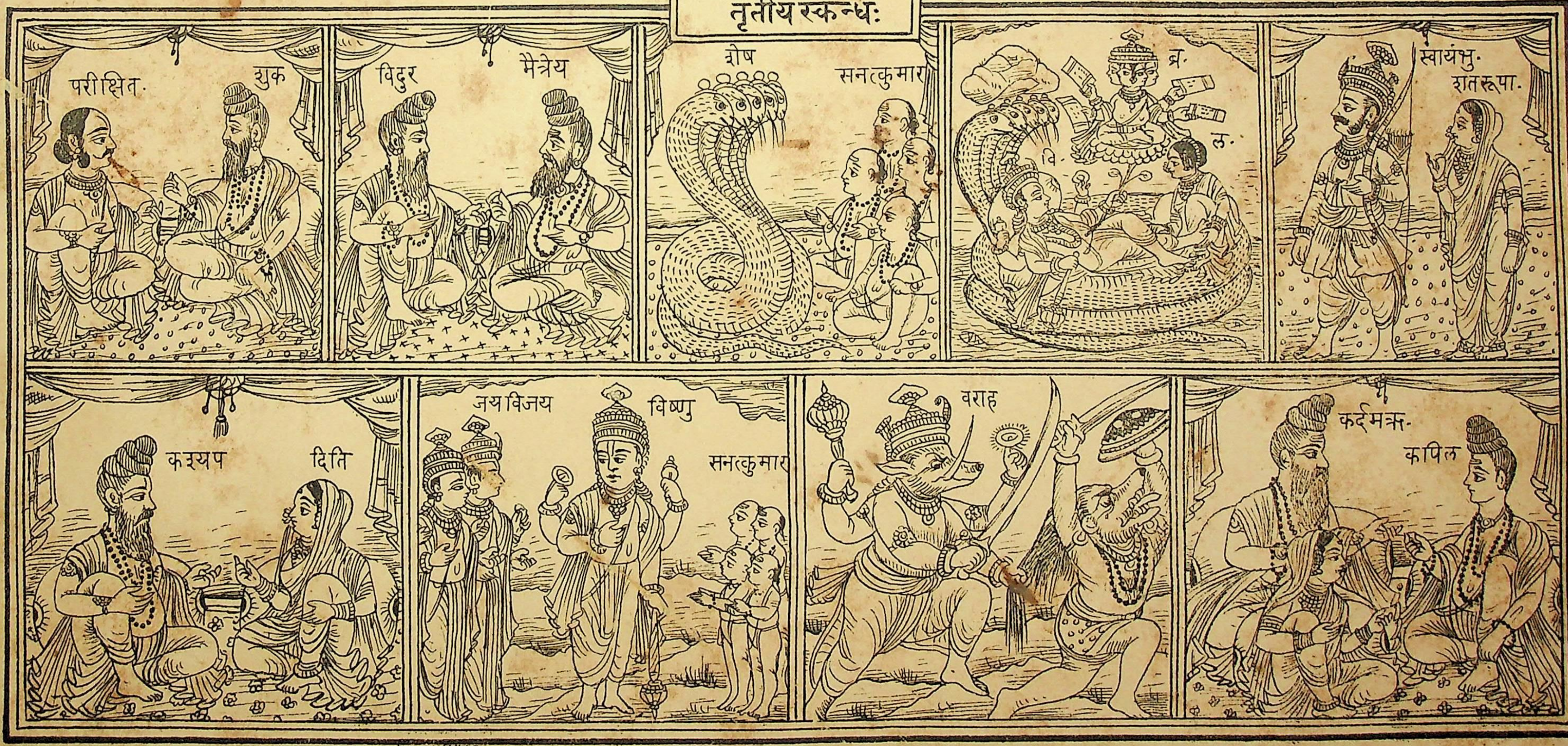
परीक्षित·
शुक
विदुर
मैत्रेय
शेष
सनत्कुमार
ब्र·
ल·
वि·
स्वायंभु·
शतरूपा·
कश्यप
दिति
जयविजय
विष्णु
सनत्कुमार
वराह
कर्दमऋ·
कपिल

श्रीपरमेश्वराय नमः ॥ अब तृतीयस्कंधको प्रारंभ करैहैं ॥ या तृतीयस्कंधमें तेतीस अध्यायसें सर्गवर्णन करोहै ईश्वरकी इच्छासें गुणोंके चलायमान होयवेसें ब्रह्मांडको होनों याको नाम सर्ग हैं तहां प्रथम अध्यायमें क्षीण हुई आयु जिनकी ऐसे बंधुनको त्याग निकसेहुए विदुरको आदिमें संवाद वर्णन करैगे पहिले भगवान्‌को ब्रह्माको संवाद संक्षेपसें कह्यो है फेर शेषजीकी कही भागवत सुंदर विस्तारसे कहै हैं दोप्रकारसें श्रीमद्भागवतके संप्रदायकी प्रवृत्ति है एक तो संक्षेपसे श्रीनारायण ब्रह्माके द्वारा और विस्तारसे शेष सनत्कुमार सांख्यायनादि द्वारा भई तहां द्वितीयस्कंधमें श्रीनारायण ब्रह्माके संवादसें संक्षेपसें “ अहमेवासमेवाग्रे ” इत्यादिकरकै चतुःश्लोकी श्रीभागवत कही सोही ब्रह्मानारदके संवादसें दशलक्षणसें कछु विस्तारसें कही सोही शेषजीको कही अब अतिविस्तारसें कहिवेकों तृतीय आदिको प्रारंभ है तहां तृतीयमें पहिले विदुरमैत्रेयको संगम चार अध्यायसें हुओ आठ अध्यायसें विसर्गसहित सब प्रपंच कह्यो विसर्गके प्रस्तावसे सात अध्यायसे वराह अवतार कह्यो एक अध्यायसें विसर्गकी संपूर्णता कही चार अध्यायसें कपिल अवतार भये न१ अध्यायसें कपिलदेवजीको आख्यान भयो ऐसे तृतीयस्कंधकी तेतीस अध्यायसे प्रवृत्ति है ॥

ॐनमो भगवते वासुदेवाय ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमेतत् पुरा पृष्टो मैत्रेयो भगवान् किल ॥ क्षत्रा वनं प्रविष्टेन
त्यक्त्वा स्वगृहमृद्धिमत् ॥ १ ॥ यद्वा अयं मन्त्रकृद्वो भगवानखिलेश्वरः ॥ पौरवेन्द्रगृहं हित्वा प्रविवेशात्मसात्कृतम्
॥ २ ॥ राजोवाच ॥ कुत्र क्षत्तुर्भगवता मैत्रेयेणाऽऽस संगमः ॥ कदा वा सहसंवाद एतद्वर्णय नः प्रभो ॥ ३ ॥ न
ह्यल्पार्थोदयस्तस्य विदुरस्याऽमलात्मनः ॥ तस्मिन् वरीयसि प्रश्नः साधुवादोपबृंहितः ॥ ४ ॥ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि, सब संपदासे संपूर्ण घर त्याग वनमें गये विदुर निश्चयसे भगवान मैत्रेयजीसे पहिले ये चरित्र ऐसें पूछतेभए ॥१॥ सबके ईश्वर षड्गुण ऐश्वर्यवान् यह श्रीकृष्ण तुमारे पांडवोंके मंत्री भये और दुर्योधनके घरकूं त्याग अपना जान विदुरजीके घरको जातेभए ॥ २ ॥ राजा परीक्षित बोले कि हे समर्थ शुकाचार्य! भगवान मैत्रेयको विदुरको संगम कहां भयो और कब संवाद भयो सो हमको कहो ॥ ३ ॥ हे मुने! तिस शुद्ध मनवारे विदुरका प्रश्न ऐसे महात्मा मैत्रेयजीसे कछु थोडे प्रयोजनका देनेवाला न हुवाहोगा किंतु बहुत प्रयोजनका साधक जानना

---

१ योगयज्ञजपनेमतप, यह रखिये इकठौर॥ करहु भक्ति ब्रजचन्द्रकी, चर्चा करहु नओर ॥ १ ॥ ज्ञान ध्यान नित दान कर, तीक्षण धारो नेम ॥ अस रीझत ब्रजराज नहिं, जैसे सांचे प्रेम ॥२॥

चाहिये क्योंकि जिसके प्रश्नको महात्मा पुरुष सराहतेहैं ॥ ४ ॥ सूतजी बोले कि राजा परीक्षित करके पूछेगए सुन्दर बहुत जानवेवारे प्रसन्न जिनको मन ऐसे शुकदेवजी राजासो बोले कि आप सुनो ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि जासमें राजा धृतराष्ट्र दुष्ट अपनें पुत्रनको पुष्ट करतोहो याते अधर्मसे विनष्ट दृष्टि भई सो बडे भाई पांडुके पिता जिनके नांय ऐसे पुत्रनको लाखके गृहमें प्रवेशकरवा जरावतो भयो ॥ ६ ॥ जा समय सभामें अपनी पुत्रवधू अपनें आसूओंसें कुचोंकी कुंकुम धोवै ऐसी राजा युधिष्ठिरकी स्त्री द्रौपदीके केशनको खीचनों ये पुत्रके निंदित कर्मको धृतराष्ट्र मने न करतो भयो ॥७॥ अधर्मसे जुयेमें हारे सूधे सत्यवादी बनसे आए पहिले करेभए समयकरकै अपनें हिस्सेकों मांगे जिनको कोई शत्रु नांय ऐसे युधिष्ठिरकों, अधर्मसे दुर्योधनके सेवन करवैवारो धृतराष्ट्र भाग न देतोभयो ॥ ८ ॥ जा समय युधिष्ठिरके भेजेभए जगतके गुरु श्रीकृष्णजी पुरुषनको अमृततुल्य जो वचनसो सभामें कहिते भए पुण्यको लेश जाको नष्ट भयो ऐसो राजा धृतराष्ट्र तिन वचनोंको बहुमान न करतो भयो ॥ ९ ॥ अब विदुरको जो तिरस्कार भयो सो कहैं हैं कि जा समय धृतराष्ट्रने अपने भवनमें विदुरको सलाह पूछवेको बुलाये तब बडे बडे सलाह जानवेवारे पुरुषोंमें जो सलाहकी बात विदुरने कही उनको आजतक मंत्रीलोग विरदुजीके वाक्य हॆ ऐसे कहैहैं ॥ १० ॥

॥ सूत उवाच ॥ स एवमृषिवर्योऽयं पृष्टो राज्ञा परीक्षिता ॥ प्रत्याह तं सुबहुवित् प्रीतात्मा श्रूयतामिति॥५॥ श्रीशुक उवाच ॥ यदा तु राजा स्वसुतानसाधून् पुष्णन्नधर्मेण विनष्टदृष्टिः॥भ्रातुर्यविष्ठस्य सुतान् विबन्धून् प्रवेश्य लाक्षाभवने ददाह ॥ ६ ॥ यदा सभायां कुरुदेवदेव्याः केशाभिमर्शं सुतकर्म गर्ह्यम् ॥ न वारयामास नृपः स्नुषायाः स्वास्रैर्हरन्त्याः कुचकुङ्कुमानि ॥७॥ द्यूते त्वधर्मेण जितस्य साधोः सत्यावलम्बस्य वनागतस्य ॥ न याचतोऽदात् समयेन दायं तमो जुषाणो यदजातशत्रोः ॥ ८ ॥ यदा च पार्थप्रहितः सभायां जगद्गुरुर्यानि जगाद कृष्णः ॥ न तानि पुंसाममृतायनानि राजोरु मेने क्षतपुण्यलेशः ॥ ९ ॥ यदोपहूतो भवनं प्रविष्टो मन्त्राय पृष्टः किल पूर्वजेन ॥ अथाह तन्मन्त्रदृशां वरीयान् यन्मन्त्रिणो वैदुरिकं वदन्ति ॥ १० ॥

जो सहे न जाय ऐसे अपराधोंको सहिवेवारे युधिष्ठिरको दाय अर्थात् हिस्सा सो देओ सब भाई सहित भीमसेनरूप सर्प क्रोधसे जहां श्वास लेवे है जासे तुम अत्यंत डरोहो ॥ ११ ॥ फिर विदुरने कहा कि हे धृतराष्ट्र! तुम भीमसेन और अर्जुनके समान बलवाले बहुतसे मेरे पुत्र हैं ऐसा अभिमान मत करो क्यों कि उन पांडवोंको तो श्रीमुकुन्दनें यह अपनें ही हैं इसभावसे ग्रहण किया है और वह श्रीमुकुन्द कैसाहै कि जो देव भगवान् है और जिसके साथ सब विप्र और देवता है सो अपनी द्वारकापुरीमें विद्यमान कहीं गया नहीं है फिर सो श्रीमुकुन्द यदुवंशीय राजाओंका पूज्य है इससे उसकी पक्षमें यदुवंशीयभी बहुतसे बडे बडे वीर हैं और जिस श्रीमुकुन्दने सब बडे बडे राजा लोगोंको जीतके स्वाधीन कियेहैं इससे सब राजाभी उनके पक्षमें सहायक हैं इससे केवल अपने पुत्रोंकी बलवत्ताके देखनेंसे बढा हुआ जो अभिमान तिसको छोड कर पांडवोंका भाग देवो ॥ १२ ॥

अजातशत्रोः प्रतियच्छ दायं तितिक्षतो दुर्विषहं तवाऽऽगः ॥ सहानुजो यत्र वृकोदराहिः श्वसन् रुषा यत् त्वमलं बिभेषि ॥ ११ ॥ पार्थांस्तु देवो भगवान् मुकुन्दो गृहीतवान् स क्षितिदेवदेवः ॥ आस्ते स्वपुर्यां यदुदेवदेवो विनिर्जिताशेषनृदेवदेवः ॥ १२ ॥ स एष दोषः पुरुषद्विडास्ते गृहान् प्रविष्टोऽयमपत्यमत्या ॥ पुष्णासि कृष्णाद्विमुखो गतश्रीस्त्यजाश्वशैवं कुलकौशलाय ॥ १३ ॥ इत्यूचिवांस्तत्र सुयोधनेन प्रवृद्धकोपस्फुरिताधरेण ॥ असत्कृतः सत्स्पृहणीयशीलः क्षत्ता सकर्णानुजसौबलेन ॥ १४ ॥ क एनमत्रोपजुहाव जिह्मं दास्याः सुतं यद्बलिनैव पुष्टः ॥ तस्मिन् प्रतीपः परकृत्य आस्ते निर्वास्यतामाशु पुराच्छ्वसानः ॥ १५ ॥ ॥ ॥ ॥

सो ये दुर्योधन श्रीकृष्णसे विमुख इसीसे विनष्टश्री होकर दोषरूपधारि श्रीकृष्णद्वेष्टा होकर घरमें घुसके रहै है तुम जाको पुत्रबुद्धिसे पुष्ट करोहो "न पतत्यस्मादित्यपत्यम्" जासें कुल गिरै नहीं वो अपत्य है कृष्णविमुख जाकी श्री नष्ट भई ऐसे या एक दुर्योधनको कुलकी कुशलताके अर्थ शीघ्र त्याग करो "त्यजेदेकं कुलस्यार्थे" कुलके सुखके लियें एकको त्यागें ये राजनीति है ॥ १३ ॥ जिनके शीलकी सज्जन इच्छा करें ऐसे विदुरजी वा सभामें ऐसे कहिरहेथे तब अत्यंत कोपसे होठ जिसके फरकै ऐसे कर्ण दुःशासन शकुनि सहित दुर्योधनने विदुरको तिरस्कार कीनो ॥ १४ ॥ या कपटीको यहां कौनने बुलायोहै ये दासीसूत जासें पुष्ट होयहै तिसीसें प्रतिकूल होकर परायके कृत्यमें वर्तै है यासें जीते भए अमंगली-

कको शीघ्र पुरसे निकासो ॥ १५ ॥ अपने भाई धृतराष्ट्रके सामनें दुर्योधन करके वचनरूप कठोर बाणोंसे मर्मस्थानोंमें ताडितभी होकर ईश्वरकी मायाका माहात्म्य ऐसाही है ऐसे बहुत मानते हुवे विदुरजी अपनें धनुषको घरके द्वारपर रखके चले जाते भये ॥ १६ ॥ कौरवोंके पुण्यकर्मसे प्राप्तहुवे जो विदुरजी सो पूर्व कहे है तैसें हस्तिनापुरसे निकस तीर्थरूप हैं चरण जिनके ऐसे हरिके क्षेत्रनको पवित्र करनेकी इच्छासे जाते भये कौरवोंके पुण्य कर्मसे प्राप्त इस अर्थसे सूचित होताहै कि विदुर नहीं गये तात्पर्य यह है कि कौरवोंका पुण्य विदुररूपको धारण करके चला गया पृथ्वीपर जहां जहां ब्रह्म रुद्र आदि अनेकरूप होय आप ईश्वर अत्यन्त निवास करतेहै तहां सब क्षेत्रोंमें गये ॥ १७ ॥ पुरोंमें पुण्यदाता जो उपवन

स इत्थमत्युल्बणकर्णबाणैर्भ्रातुः पुरो मर्मसु ताडितोऽपि ॥ स्वयं धनुर्द्वारि निधाय मायां गतव्यथोऽयादुरुमानयानः ॥ १६ ॥ स निर्गतः कौरवपुण्यलब्धो गजाह्वयात् तीर्थपदः पदानि ॥ अन्वाक्रमत् पुण्यचिकीर्षयोर्व्यां स्वधिष्ठितो यानि सहस्रमूर्तिः ॥ १७ ॥ पुरेषु पुण्योपवनाद्रिकुञ्जेष्वपङ्कतोयेषु सरित्सरस्सु॥ अनन्तलिङ्गैः समलंकृतेषु चचार तीर्थायतनेष्वनन्यः ॥ १८ ॥ गां पर्यटन् मेध्यविविक्तवृत्तिः सदाप्लुतोऽधःशयनोऽवधूतः ॥ अलक्षितः स्वैरवधूतवेषो व्रतानि चेरे हरितोषणानि ॥ १९ ॥ इत्थं व्रजन् भारतमेव वर्षं कालेन यावद् गतवान् प्रभासम् ॥ तावच्छशास क्षितिमेकचक्रामेकातपत्रामजितेन पार्थः ॥ २० ॥ ॥ ॥ ॥

तिन्होंमें पर्वतोंमें कुंजोंमें कीच नहीं ऐसी नदियोंमें सरोवरोंमें ईश्वरके चिन्हों करकै सुंदर अलंकृतोंमें और जो तीर्थोंके स्थान क्षेत्र है तिनमें सबमें एकले विदुरजी विचरते भये ॥ १८ ॥ पृथिवीपर विचरतेभये एकांतकी वृत्ति जिनकी पवित्र सदा सब तीर्थोंमें स्नान करते जाय धरित्रीपर शयन करैं शरीरके संस्कार न करैं ऐसो अवधूत रहै चीर वल्कल पहिने रहैं अपनेनकोभी जिनको स्वरूप लखो न जाय अवधूत वेष धार हरिके प्रसन्न करवेवारे व्रत करते भये ॥ १९ ॥ ऐसे या भारतवर्षमें विचरते भए कोई कालमें प्रभास क्षेत्रमें गए, एक आज्ञारूप चक्र जिनको सब पृथ्वीपर श्रीकृष्णजीकी सहायता करकै राजा युधिष्ठिर पृथिवीपर राज्य करते भए ॥ २० ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥

जैसे वांसोंके वनमें आपही वांसोंके रगडोसे अग्नि लग नष्ट हो जाय तैसे प्रभासक्षेत्रमें अपने सुहृद कौरव पांडवोंको विनाश सुनते भए परस्पर ईर्षाकरके भस्म होगए उनको शोक करते भए फिर चुप होकर पूर्ववाहिनी सरस्वती तीर जाते भए ॥ २१ ॥ वा सरस्वती तीरपर एकादश तीर्थ हैं ब्रह्मा विष्णु शिवको तीर्थ हैं १ शुक्राचार्यको मंदिर है २ मनुको स्थान है ३ पृथुको भवन है ४ अग्निको कुंड है ५ शनिको चित्र है ६ वायुको वासस्थान है ७ सुदासराजाकी प्रतिमा है ८ गौवनकी शाला है ९ स्वामिकार्तिकको मंदिर है १० श्राद्धदेव मनुकी सभा है ११ इन सबको विदुरजी सेवन करते भए ॥ २२ ॥ "श्रीविष्णोरङ्गमङ्गं प्रति वर्तन्त इति प्रत्यङ्गानि शङ्खचक्रगदापद्मादीनि तेषु मुख्ये शङ्खचक्रे ताभ्यामङ्कितानि मन्दिराणि" श्रीविष्णुके अंग अंगके प्रतिवर्तै ऐसे प्रत्यंग शंख चक्र गदा पद्मादिक तिनमें मुख्य शंख चक्र तिनके चिन्हसें अंकित मंदिर हैं वे जिन्ह ऐसे हैं ऋषियोंके देवतानके करेभए विष्णुके नानाप्रकारके मंदिर हैं और बहुत सरस्वती तीरपर शंखचक्रांकित स्थान थे, जिनके दर्शनसे श्रीकृष्णजीको स्मरण होयहै ॥ २३ ॥ तापाछे सुराष्ट्र ऋद्ध सौवीर मत्स्य कुरु जांगल इन सब देशनको यथाक्रम उल्लंघन करके कोई कालमें श्रीयमुनापर जाय भागवत उद्धवको तहां देखते भए ॥ २४ ॥ श्रीवासुदेवके अनुचर प्रशांत बृहस्पतिके नीतिशास्त्रमें पहिले शिष्य विख्यात उद्धवसे खूब मिले भगवतके प्रजानकी अपनेंनकी कुशल विदुरजी पूछतेभए ॥ २५ ॥ श्रीरामकृष्णको कुशल

तत्राथ शुश्राव सुहृद्विनष्टिं वनं यथा वेणुजवाह्निसंश्रयम् ॥ संस्पर्धया दग्धमथानुशोचन् सरस्वतीं प्रत्यगियाय तूष्णीम् ॥ २१ ॥
तस्यां त्रितस्योशनसो मनोश्च पृथोरथाग्नेरसितस्य वायोः ॥ तीर्थं सुदासस्य गवां गुहस्य यच्छ्राद्धदेवस्य स आसिषेवे ॥ २२ ॥
अन्यानि चेह द्विजदेवदेवैः कृतानि नानायतनानि विष्णोः ॥ प्रत्यङ्गमुख्याङ्कितमन्दिराणि यद्दर्शनात् कृष्णमनुस्मरन्ति ॥ २३ ॥
ततस्त्वतिव्रज्य सुराष्ट्रमृद्धं सौवीरमत्स्यान् कुरुजाङ्गलांश्च ॥ कालेन तावद्यमुनामुपेत्य तत्रोद्धवं भागवतं ददर्श ॥ २४ ॥
स वासुदेवानुचरं प्रशान्तं बृहस्पतेः प्राक्तनयं प्रतीतम् ॥ आलिङ्ग्य गाढं प्रणयेन भद्र स्वानामपृच्छद्भगवत्प्रजानाम् ॥ २५ ॥
कच्चित्पुराणौ पुरुषौ स्वनाभ्यपाद्मानुवृत्त्येह किलाऽवतीर्णौ ॥ आसात उर्व्याः कुशलं विधाय कृतक्षणौ कुशलं शूरगेहे ॥ २६ ॥ ॥ ॥

पूछे हैं, कच्चित् ये अव्यय प्रश्नमें आवेहै, पुराण पुरुष अपनी नाभिमेंसे भये ऐसे ब्रह्माकी सेवासें प्रसन्न होय यहां अवतरे पृथिवीको कुशल विधान कर अब यासमय अवकाशसें शूरसेनके घरमें श्रीकृष्ण बलदाऊजी है? ॥ २६ ॥ अब नवश्लोकसें यादवनकी कुशल पूछेहैं कुरुनके परम सुहृद हमारे भगिनीभर्ता पूज्य वसुदेवजी सुखी हैं? जो अत्युदार वसुदेवजी अपने जंमाईनको खूब धन दे तृप्त करके शूरसेनकी नाईं सदा धन देतेरहे ॥ २७ ॥ सब सेनानके मालक यदुनके अधिपति महावीर प्रद्युम्नजी सुखी हैं? जिनकों पहिले जन्ममें विप्रनकी आराधनकर खूब मिष्टान्न दक्षिणा देकर कामके अवतार परम भागवत प्रद्युम्नको रुक्मिणी प्राप्त करतीभई ॥ २८ ॥ सात्वत वृष्णि भोज दास अर्हक इनके स्वामी उग्रसेन

कच्चित् कुरूणां परमः सुहृन्नो भामः स आस्ते सुखमङ्ग शौरिः ॥ यो वै स्वसॄणां पितृवद् ददाति वरान् वदान्यो वरतर्पणेन ॥ २७ ॥ कच्चिद्वरूथाधिपतिर्यदूनां प्रद्युम्न आस्ते सुखमङ्ग वीरः ॥ यं रुक्मिणी भगवतोऽभिलेभे आराध्य विप्रान् स्मरमादिसर्गे ॥२८॥ कच्चिद् सुखं सात्त्वतवृष्णिभोजदाशार्हकाणामधिपः स आस्ते ॥ यमभ्यषिञ्चच्छतपत्रनेत्रो नृपासनाशां परिहृत्य दूरात् ॥ २९ ॥ कच्चिद् हरेः सौम्य सुतः सदृक्ष आस्तेऽग्रणी रथिनां साधु साम्बः ॥ असूत यं जाम्बवती व्रताढ्या देवं गुहं योऽम्बिकया धृतोऽग्रे ॥ ३० ॥ क्षेमं स कच्चिद्युयुधान आस्ते यः फाल्गुनाल्लब्धधनूरहस्यः ॥ लेभेऽञ्जसाधोक्षजसेवयैव गतिं तदीयां यतिभिर्दुरापाम् ॥३१॥ कच्चिद् बुधः स्वस्त्यनमीव आस्ते श्वफल्कपुत्रो भगवत्प्रपन्नः ॥ यः कृष्णपादाङ्कितमार्गपांसुष्वचेष्टत प्रेमविभिन्नधैर्यः ॥ ३२ ॥ ॥

सुखी हैं? कमलनयन नृपासनकी आशा दूरसे त्याग नृपासन आशाकों त्यागी ऐसे उग्रसेनको राज्याभिषेक करतेभए ॥ २९ ॥ हे सौम्य उद्धव! रथियोंमें अग्रणी कृष्णसमान सूधो सांब श्रीहरिको सुत प्रसन्न है? पूर्व जन्ममें स्वामिकार्तिकेयकों भवानीनें गर्भमें धांरे तैसेही व्रतकरकै जांबवतीजी जिनें उत्पन्न करतीभई ॥ ३० ॥ धनुषकी रहस्य अर्जुनसें जिनकों लब्ध हुई ऐसे सात्यकी प्रसन्न हैं? जो गति यतियोंको दुःखसे प्राप्त होयहै वो श्रीकृष्णकी सेवासे अनायाससे प्राप्त होतीभई ॥ ३१ ॥ बुद्धिमान निष्पापी भगवतके शरणागत श्वफल्कपुत्र अक्रूर सुखी है? प्रेमसें धैर्य जिनकों जातो रह्यो ऐसे अक्रूर श्रीकृष्णके चरणनकी लगी रजमें लोटते भए ॥ ३२ ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥

देवकनामा भोजकी पुत्री अदितिकी नाईं विष्णु जाके पुत्र ऐसी देवकी प्रसन्न है ? जोकी अपनें गर्भमें श्रीकृष्णजीको धारण करतीभई वेदत्रयी जैसै यज्ञके विस्तृत अर्थको धारण करै तद्वत् जानों ॥ ३३ ॥ आपके भगवान् उपासकोंके कामनाके दाता अनिरुद्धजी तो सुखी है ? जिन अनिरुद्धकों शब्दशास्त्रके कारण मनोमय अंतःकरणके चतुर्थ तत्त्व वेद मानतेहैं ॥ ३४ ॥ हे सौम्य ! अपनें आत्मदेव ऐसे अनन्यवृत्तिसें जो और भगवत्परायण हैं वे सुखी हैं हृदीक सत्यभामाके पुत्र चारुदेष्ण गदआदिक सुखी हैं ॥ ३५ ॥ अर्जुन श्रीकृष्ण अपनीं भुजानसे धर्म करकै धर्मके सेतुको धर्म अ-

कच्चिच्छिवं देवकभोजपुत्र्या विष्णुप्रजाया इव देवमातुः ॥ या वै स्वगर्भेण दधार देवं त्रयी यथा यज्ञवितानमर्थम् ॥
॥ ३३ ॥ अपिस्विदास्ते भगवान् सुखं वो यः सात्त्वतां कामदुघोऽनिरुद्धः ॥ यमामनन्ति स्म ह शब्दयोनिं मनो-
मयं सत्त्वतुरीयतत्त्वम् ॥ ३४ ॥ अपिस्विदन्ये च निजात्मदैवमनन्यवृत्त्या समनुव्रता ये ॥ हृदीकसत्यात्मजचा-
रुदेष्णगदादयः स्वस्ति चरन्ति सौम्य ॥ ३५ ॥ अपि स्वदोर्भ्यां विजयाच्युताभ्यां धर्मेण धर्मः परिपाति सेतुम् ॥
दुर्योधनोऽतप्यत यत्सभायां साम्राज्यलक्ष्म्या विजयानुवृत्त्या ॥ ३६ ॥ किं वा कृताघेष्वघमत्यमर्षी भीमोऽहि-
वद् दीर्घतमं व्यमुञ्चत् ॥ यस्याङ्घ्रिपातं रणभूर्न सेहे मार्गं गदायाश्चरतो विचित्रम् ॥ ३७ ॥ कच्चिद् यशोधा रथ-
यूथपानां गाण्डीवधन्वोपरतारिरास्ते ॥ अलक्षितो यच्छरकूटगूढो मायाकिरातो गिरिशस्तुतोष ॥ ३८ ॥ यमावुतस्वि-
त् तनयौ पृथायाः पार्थैर्वृतौ पक्ष्मभिरक्षिणीव ॥ रेमात उद्दाय मृधे स्वरिक्थं परात् सुपर्णाविव वज्रिवक्त्रात् ॥ ३९ ॥

वतार युधिष्ठिर रक्षा करैहैं ? जिनकी सभामें विशेषकरकै जयकी अनुवृत्ति करकै और सम्राट्पनेंकी लक्ष्मीसें दुर्योधन तपतोभयो ॥ ३६ ॥ अपराधकारी कुरुमें क्रोधी जो सर्पकी नाईं अत्यंत श्वास लेवै, गदा ले विचित्रमार्गोंमें विचरै जिसके चरणकी धमक भूमि न सहसकतीभई सो भीमसेन प्रसन्न हैं ? ॥ ३७ ॥ रथयूथपोंमें यशधारी शत्रु जासे दूर भए ऐसे गांडीव धनुषधारी अर्जुन प्रसन्न है अलक्षित जिनके बाणोंसे ढकेभए, मायासे भील बनें, ऐसे शिव प्रसन्न भए ॥ ३८ ॥ क्योंजी माद्रीके पुत्र कुंतीनें पुत्रवत् पाले कुन्तीके पुत्रों करके शोभित जैसे पलके आंखोंकी रक्षा

13

करैं तैसे राखै, शत्रु इंद्रके मुखसें जैसें दो गरुड अमृत लावै ताकी नाईं अपनें भाग लेकर नकुल सहदेव रमण करैंहैं वे सुखी हैं ? ॥ ३९ ॥ बडे आश्चर्यकी वार्ता है कि, पांडु राजर्षिके विना केवल पुत्रों की रक्षाके लिये कुंती प्राण धारै है जो पांडु एक वीर सबमें महारथी एक दूसरो धनुष लेकर चारों दिशा जीतते भए ॥ ४० ॥ हे सौम्य उद्धव! नरकमें गिरैगो ऐसो धृतराष्ट्रको मोय बडो शोक है कि मरेभए पांडुसे जानें द्रोह कीनों उसी धृतराष्ट्रनें अपनें पुत्रके आधीन होयकै हमको पुरीसें निकास दीनों ॥ ४१ ॥ मनुष्योंमें अवतार धार मनुष्योंकी दृष्टिकों चलायमान करै सबके धारक श्रीहरिके प्रसादसें तिनकी पदवीकों देखतो भयो कोई न देखे इसतरह अपनें रूपको छिपाकर सब विस्मय जिसको गयो ऐसो मैं वा पृथिवीमें विचरूंहूं ॥ ४२ ॥ " विद्यामदो धनमदस्तथैवाभिजनो मदः । एते मदा मदान्धानां त एव हि सतां दमाः ॥ १ ॥ "अर्थ–विद्या धन जाति ये तीन मद हैं सो जो मदांध हैं उनकों ये मद होयहैं संतोंके ये ही दम हैं ॥ १ ॥ ये तीन मद जिन्है सेनासे सब धरतीकों चलायमान करै ऐसै राजानको वध करवेसे शरणागतोंकी पीडा हरवेको भगवान कौरवनके अपराधको त्यागतेभए ॥ ४३ ॥ अजन्मा ईश्वरके जन्म पाषंडियोंके नाशके लियेहै और अकर्ताके कर्म पुरुषनके ग्रहण करवेकों है याके विना गुणोंसे परै जो ईश्वर है उनके विना कर्मके वश होनों ब्रह्मनिष्ठको धारनों और देहके योग्य नहीं है ॥ ४४ ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥

अहो पृथाऽपि ध्रियतेऽर्भकार्थे राजर्षिवर्येण विनाऽपि तेन ॥ यस्त्वेकवीरोऽधिरथो विजिग्ये धनुर्द्वितीयः ककुभश्चतस्रः ॥ ४० ॥ सौम्यानुशोचे तमधः पतन्तं भ्रात्रे परेताय विदुद्रुहे यः ॥ निर्यापितो येन सुहृत् स्वपुर्या अहं स्वपुत्रान् समनुव्रतेन ॥ ४१ ॥ सोऽहं हरेर्मर्त्यविडम्बनेन दृशो नृणां चालयतो विधातुः ॥ नान्योपलक्ष्यः पदवीं प्रसादाच्चरामि पश्यन् गतविस्मयोऽत्र ॥ ४२ ॥ नूनं नृपाणां त्रिमदोत्पथानां महीं मुहुश्चालयतां चमूभिः ॥ वधात् प्रपन्नार्तिजिहीर्षयेशो व्युपैक्षताघं भगवान् कुरूणाम् ॥ ४३ ॥ अजस्य जन्मोत्पथनाशनाय कर्माण्यकर्तुर्ग्रहणाय पुंसाम् ॥ नन्वन्यथा कोऽर्हति देहयोगं परो गुणानामुत कर्मतन्त्रम् ॥ ४४ ॥ ॥ ॥ ॥

हे सखे! शरणागत सब लोकपालनके और अपनी आज्ञामें स्थित जो हैं उनके अर्थ यादवोंमें जन्में तीर्थरूप जिनकी कीर्ति ऐसे तिन श्रीकृष्णजीकी वार्ता कहो ॥ ४५ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां तृतीयस्कन्धे विदुरोद्धवसंवादवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि ईश्वर जिनको स्मरण करायो ऐसे भागवत उद्धवसे श्रीकृष्ण प्यारेकी ऐसी वार्ता पूछी तव श्रीकृष्ण विरहमें आवेशित होके कुछबी बोल न सके ॥ १ ॥ जो उद्धव पांच वर्षके हे तब बाल लीलामेंभी श्रीकृष्णकी पूजा करतेहे तो प्रातःसमय मैया खायवेको बुलाती तो न जाय ॥ २ ॥

तस्य प्रपन्नाखिललोकपानामवस्थितानामनुशासने स्वे ॥ अर्थाय जातस्य यदुष्वजस्य वार्तां सखे कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे विदुरोद्धवसंवादे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति भागवतः पृष्टः क्षत्रा वार्तां प्रियाश्रयाम् ॥ प्रतिवक्तुं न चोत्सेह औत्कण्ठ्यात् स्मारितेश्वरः ॥ १ ॥ यः पञ्चहायनो मात्रा प्रातराशाय याचितः ॥ तन्नेच्छद्रचयन् यस्य सपर्यां बाललीलया ॥ २ ॥ स कथं सेवया तस्य कालेन जरसं गतः ॥ पृष्टो वार्तां प्रतिब्रूयात् भर्तुः पादावनुस्मरन् ॥ ३ ॥ स मुहूर्तमभूत् तूष्णीं कृष्णाङ्घ्रिसुधया भृशम् ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन निमग्नः साधु निर्वृतः ॥ ४ ॥ पुलकोद्भिन्नसर्वाङ्गो मुञ्चन् मीलद्दृशा शुचः ॥ पूर्णार्थो लक्षितस्तेन स्नेहप्रसरसंप्लुतः ॥ ५ ॥ शनकैर्भगवल्लोकान्नृलोकं पुनरागतः ॥ विमृज्य नेत्रे विदुरं प्रत्याहोद्धव उत्स्मयन् ॥ ६ ॥ उद्धव उवाच ॥ कृष्णद्युमणिनिम्लोचे गीर्णेष्वजगरेण ह ॥ किं पुनः कुशलं ब्रूयां गतश्रीषु गृहेष्वहम् ॥ ७ ॥

सो उद्धवजी तिनकी सेवा करते काल करकै वृद्ध होगए श्रीकृष्णभर्ताके चरण स्मरण करत जो पूछो सो कहितेभए ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णके चरणामृतसे तीव्रभक्तिसे अत्यंत मग्न होयकै अतिसुखमें होनेसे एक मुहूर्त्त चुपहोगये ॥ ४ ॥ सब अंगमें रोमांच खडेहोगये नेत्र मूंद शोक त्याग स्नेह वाहमें निमग्न सब अर्थ पूर्णहुये ये दिखायो ॥ ५ ॥ धीरैसैं भगवतके ध्यानसें फेर सदा देहानुसंधानमें आय नेत्र पोछ उद्धव विदुरजीसें बोले ॥ ६ ॥ श्रीउद्धवजी बोले कि श्रीकृष्ण रूपसूर्य अस्त होगए कालरूप अजगरनें सब शोभित गृहोंकों ग्रसे सो हम कौनकी कुशल कहैं ॥ ७ ॥ ॥

ये सब लोक भाग्यहीन हैं यादव तो सब बहुत भाग्यहीन हैं जो हरिके साथ वसतेरहे तोभी हरिकों न जानतेभए जैसैं एकसमय किसी शापसें चंद्रमा मीन होय जलमें रहै तव कोऊ जलचरनें नहीं जानें अथवा जैसे मीन अवतरकों जलचर संसार तारक न मानतेभए तद्वत् कहीं ऐसें भी है कि समुद्रमथनसें पहिले चंद्ररूप हरिको संसार तापहारक न मांनै तसे जानों ॥ ८ ॥ भगवतके चित्तके ज्ञाता अतिनिपुण एक स्थानमें रहैं ऐसे यादव यादवश्रेष्ठ सर्व जगन्निवास ईश्वरकों मानतेभए ॥ ९ ॥ ईश्वरी मायामें फसेभए असत्पदार्थके आधीन जो असुर आदिक थे उनके वाक्योंकरकै आत्मा हरिमें लगो जिनको चित्त ऐसी हमारी बुद्धि नहीं भ्रमी ॥ १० ॥ तप न करैं दृष्टि तृप्त न भई ऐसे नरनकों लोकको नेत्र अपनों स्वरूपदर्शन

दुर्भगो बत लोकोऽयं यदवो नितरामपि ॥ ये संवसन्तो न विदुर्हरिं मीना इवोडुपम् ॥ ८ ॥ इङ्गितज्ञाः पुरुप्रौढा एकारामाश्च सात्त्वताः ॥ सात्त्वतामृषभं सर्वे भूतावासममंसत ॥ ९ ॥ देवस्य मायया स्पृष्टा ये चान्यदसदाश्रिताः ॥ भ्राम्यते धीर्न तद्वाक्यैरात्मन्युप्तात्मनो हरौ ॥ १० ॥ प्रदर्श्यातप्ततपसामवितृप्तदृशां नृणाम् ॥ आदायान्तरधाद् यस्तु स्वबिम्बं लोकलोचनम् ॥ ११ ॥ यन्मर्त्यलीलौपयिकं स्वयोगमायाबलं दर्शयता गृहीतम् ॥ विस्मापनं स्वस्य च सौभगर्द्धेः परं पदं भूषणभूषणाङ्गम् ॥ १२ ॥ यद् धर्मसूनोर्बत राजसूये निरीक्ष्य दृक्स्वस्त्ययनं त्रिलोकः ॥ कार्त्स्न्येन चाद्येह गतं विधातुरर्वाक् सृतौ कौशलमित्यमन्यत ॥ १३ ॥ यस्यानुरागप्लुतहासरासलीलावलोकप्रतिलब्धमानाः ॥ व्रजस्त्रियो दृग्भिरनुप्रवृत्तधियोऽवतस्थुः किल कृत्यशेषाः ॥ १४ ॥ ॥

कराय आप अन्तर्द्धान होतेभए ॥ ११ ॥ ईश्वरतत्त्ववर्णन करैहै की. जो मनुष्यलीलाके योग्य अपनी योग्यमायाके बल दिखायवेको ग्रहण कीनों अपनेनकोंभी विस्मय करायवेवारो अत्यंत सौभाग्य ऋद्धिको परमस्थान भूषणनकेभी भूषण ऐसे ईश्वर हैं ॥ १२ ॥ धर्मपुत्रयुधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें दृष्टिकों आनंद दाता ईश्वरको देख सब तीनों लोक ये मानतेभए कि ब्रह्माकी सृष्टिमें आज श्रीकृष्णजीके श्रीअंगमें सब कारीगराई गई क्यों कि सब अवतारनके अंग ब्रह्माके रचे नहीं है आप स्वयंभू हैं ॥ १३ ॥ जिनकी अनुरागभरी हासरासलीला देखकै मांन करैं दृष्टियोंसे बुद्धियोंसे जाने न जाय, मनोरथ जिनके पूर्ण न भए ऐसी व्रजस्त्रियें होतीभईं ॥ १४ ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥

भगवत्के दर्शनमें कारण है कि अपनें शांत अशांतरूपोंमें और स्वरूपोंसे पीडितों पर दयाकारी देह जाकी पर अवरके ईश महा अंशसे युक्त अजन्मा ईश्वर जन्मतेभए जैसे महाभूतरूप करकै नित्य वसैं ऐसी अग्नि काष्ठमें प्रगट होय तद्वत् जानों ॥ १५ ॥ श्रीउद्धवजी बोले कि तर्कमें न आवै काऊसें होसकै नहीं ऐसो मोकों भी खेद होयहै कि जो कभी न जन्मै सो वसुदेवके घरमें जन्मै ब्रजमें वसे शत्रुभयसे भजे जिनमें अनंत वल सो पुरसे निकसे ॥ १६ ॥ इन बातनकूं यादकरत मेरो चित्त व्यथाकूं प्राप्त होयहै जब पिता माताके पादमें वंदन कर ये बोले हे तात! हे अंब ! कंससें बहुत शं

स्वशान्तरूपेष्वितरैः स्वरूपैरभ्यर्द्यमानेष्वनुकम्पितात्मा ॥ परावरेशो महदंशयुक्तो ह्यजोऽपि जातो भगवान् यथाग्निः ॥ १५ ॥ मां खेदयत्येतदजस्य जन्मविडम्बनं यद् वसुदेवगेहे ॥ व्रजे च वासोरिभयादिव स्वयं पुराद्व्यवात्सीद् यदनन्तवीर्यः ॥ १६ ॥ दुनोति चेतः स्मरतो ममैतद् यदाह पादावभिवन्द्य पित्रोः ॥ तातम्ब कंसादुरुशङ्कितानां प्रसीदतं नोऽकृतनिष्कृतीनाम् ॥ १७ ॥ को वा अमुष्याङ्घ्रिसरोजरेणुं विस्मर्तुमीशीत पुमान् विजिघ्रन् ॥ यो विस्फुरद्भ्रूविटपेन भूमेर्भारं कृतान्तेन तिरश्चकार ॥ १८ ॥ दृष्टा भवद्भिर्ननु राजसूये चैद्यस्य कृष्णं द्विषतोपि सिद्धिः ॥ यां योगिनः संस्पृहयन्ति सम्यग् योगेन कस्तद्विरहं सहेत ॥ १९ ॥ तथैव चान्ये नरलोकवीरा य आहवे कृष्णमुखारविन्दम् ॥ नेत्रैः पिबन्तो नयनाभिरामं पार्थास्त्रपूताः पदमापुरस्य ॥ २० ॥

ङ्का आपकी कुछ सेवा हमसे न बनी ऐसे हमपर तुम दोनों प्रसन्न होओ ॥ १७ ॥ इनके चरणकी रजको स्वाद लेतभए इनको कौन भूल सकैहै जो भगवान् विशेषकरकै फरकै ऐसे भ्रूविटपरूप यम धर्मराजसे भूभारको नाश करतभए ॥१८॥ राजसूययज्ञमें श्रीकृष्णजीकी निंदा करै ऐसे शिशुपालकों जो सिद्धि प्राप्त भई सो अपनें देखी जा सिद्धिको सुंदर योगसे योगीजन चाहैहैं ऐसे श्रीकृष्णजीके विरह कौन सहि सकैहै ॥ १९ ॥ तैसेही मनुष्यलोकमें बुद्धमें नेत्रनको आनंददायक श्रीकृष्णके मुखारविंदकों नेत्रोंसें पीते हुए अर्जुनके अस्त्रसें पवित्र होके वीरलोग वैकुंठकों जातेभए ॥ २० ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥ ॥छ॥

ईश्वर आप ऐसे है कि जिनके कोई बरावर नहीं जिनसें कोई अधिक नहीं है अपनी राज्यलक्ष्मी करकै सब भोग जिनकों प्राप्त हैं और चिरलोकपाल जे ब्रह्मादिक ते बलिदानपूर्वक जिनके चरणारविन्दको चौकीको अपनें किरीटके अग्रभागसे स्तुति करते हैं अर्थात् प्रणाम करनेंवारांके किरीटके संघर्षणकी जो ध्वनि है सो ही मानों स्तुति होयहै ये उत्प्रेक्षा अलंकार है ॥ २१ ॥ हेविदुर ! ऐसे ईश्वरकी कैंकर्य करें जो हम उनके सेवक तिनको वडो विस्मय होयहै कि राज्य सिंहासनपर बैठे उग्रसेनको बोले हे देव ! आप हमको निरंतर धारण करो ॥ २२ ॥ बडे आश्चर्यकी वार्ता है कि दुष्ट पूतना स्तनमें विष लगाय मारवेकी इच्छा कर जिन श्रीकृष्णको स्तन प्यातीभई वासे माता यशोदाके योग्य जो गति ही सो दीनीं ऐसे

स्वयं त्वसाम्यातिशयस्त्र्यधीशः स्वराज्यलक्ष्म्याप्तसमस्तकामः ॥ बलिं हरद्भिश्चिरलोकपालैः किरीटकोट्येडितपाद-
पीठः ॥ २१ ॥ तत् तस्य कैङ्कर्यमलं भृतान् नो विग्लापयत्यङ्ग यदुग्रसेनम् ॥ तिष्ठन् निषण्णं परमेष्ठिधिष्ण्ये न्यबो-
धयद् देव निधारयेति ॥ २२ ॥ अहो बकीयं स्तनकालकूटं जिघांसयाऽपाययदप्यसाध्वी ॥ लेभे गतिं धात्र्युचितां
ततोन्यं कं वा दयालुं शरणं व्रजेम ॥ २३ ॥ मन्येऽसुरान् भागवतांस्त्र्यधीशे संरम्भमार्गाभिनिविष्टचित्तान् ॥ यं सं-
युगेऽचक्षत तार्क्ष्यपुत्रमंसे सुनाभायुधमापतन्तम् ॥ २४ ॥ वसुदेवस्य देवक्यां जातो भोजेन्द्रबन्धने ॥ चिकीर्षुर्भग-
वानस्याः शमजेनाभियाचितः ॥ २५ ॥ ततो नन्दव्रजमितः पित्रा कंसाद्वि बिभ्यता ॥ एकादश समास्तत्र गूढार्चिः
सबलोऽवसत् ॥ २६ ॥ परीतो वत्सपैर्वत्सांश्चारयन् व्याहरद् विभुः ॥ यमुनोपवने कूजद्द्विजसंकुलिताङ्घ्रिपे ॥२७॥

दयालु श्रीकृष्णके विना कौनकी शरण जाय ॥ २३ ॥ क्रोधसे श्रीकृष्णमें मन लगायो यासे हम असुरनकों भागवत मानेंहै जो संग्राममें गरुडजीके कंधापर बैठे अपनें ऊपर चलें आंवें ऐसे श्रीकृष्णजीके दर्शन करतेभए ऐसे बी कहैहैं कि “तस्मात्केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत्” तातैं कोई भी उपायकरकै श्रीकृष्णमें मन लगावै ॥ २४ ॥ कंसके बंधनमें वसुदेवकी देवकीमें जन्मे या पृथिवीके सुख करवेकी इच्छा करकै ब्रह्मानें प्रार्थना कीनी तब अवतरे ॥ २५ ॥ कंससे डरपे तापाछै पिताने नंदके व्रजमें पहुचाए ऐसे बलदेवजी सहित ग्यारह वर्ष गुप्ततेज होकर वसे ॥ २६ ॥ गोपाल सहित श्रीकृष्ण वत्सा चरावतेभए जिन वृक्षोंपर पक्षियोंके समूह शब्द करें ऐसे यमुनाके उपवनमें विहार करतेभए ॥ २७ ॥ ॥छ॥ ॥छ॥

देखवे योग्य कौमार अवस्था व्रजवासीनको दिखावतेभए कदी रोवे कदी हसे मोहमें होके मोही बाल सिंह समान जिनको अवलोकन है ॥ २८ ॥ सो श्रीकृष्णजी जब अधिक बडे भए, तब लक्ष्मीको स्थान सुपेत गाय बैल गोधनको चरावतेभए वांसुरी बजावत गोपनके साथ रमण करते भए ॥ २९ ॥ कंसने मायावी नानारूपधारी दैत्य भेजे तिन्हे भगवान् लीलाकरके नाश करतेभये, जैसे बालक अपने बनाये हुये मट्टीसे घरोंको बिगाडदेवे ॥ ३० ॥ तैसे फिर भगवान् विषजलके पान करनेसे मरे गौ और गोपोंको जिवाय और कालिय सर्पको ह्रदसे निकाल फिर निर्मल हुयो वही जल गोप और गय्यानको पान करवातेभये ॥ ३१ ॥ फिर बडो भाररूप धनको सन्मार्गमें खरच करवानेंकी इच्छासे और इंद्रके मानभंग करवानेंकी इच्छा-

कौमारीं दर्शयंश्चेष्टां प्रेक्षणीयां व्रजौकसाम् ॥ रुदन्निव हसन् मुग्धबालसिंहावलोकनैः ॥२८॥ स एव गोधनं लक्ष्म्या निकेतं सितगोवृषम् ॥ चारयन्ननुगान् गोपान् रणद्वेणुररीरमत् ॥२९॥ प्रयुक्तान् भोजराजेन मायिनः कामरूपिणः॥ लीलया व्यनुदत् तांस्तान् बालः क्रीडनकानिव ॥ ३० ॥ विपन्नान् विषपानेन निगृह्य भुजगाधिपम् ॥ उत्थाप्यापाययद् गावस्तत्तोयं प्रकृतिस्थितम् ॥ ३१ ॥ अयाजयत् गोसवेन गोपराजं द्विजोत्तमैः ॥ वित्तस्य चोरुभारस्य चिकीर्षन् सद्व्ययं विभुः ॥ ३२ ॥ वर्षतीन्द्रे व्रजः कोपात् भग्नमानेऽतिविह्वलः ॥ गोत्रलीलातपत्रेण त्रातो भद्रानुगृह्णता ॥ ३३ ॥ शरच्छशिकरैर्मृष्टं मानयन् रजनीमुखम् ॥ गायन् कलपदं रेमे स्त्रीणां मण्डलमण्डनः ॥ ३४ ॥ इति श्रीभा॰ तृतीय॰ श्रीकृष्णचरितवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

से ब्राह्मणोंके द्वारा समर्थ भगवान् नन्दजीको गौओंकी पूजा निमित्त यज्ञ करवाते भये ॥ ३२ ॥ मानभंग होनेके कारण क्रोधकर जब इंद्रने वर्षा की कि जिससे व्रज बडो विव्हल भयो तब मंगलकी इच्छा कर श्रीकृष्णजीने गिरिराज उठाय वाहीको छत्र कर सबकी रक्षा कीनी ॥ ३३ ॥ शरदके चंद्रमाकी किरणोंसे प्रकाशित रजनीमुखकों मान मनोहर पद गाय स्त्रीनके रासमंडलमें शोभित होय रमण करतेभए ॥ ३४ ॥ इति श्रीमन्महाभा॰ तृतीय॰ भाषाटीकायां श्रीकृष्णबाललीलावर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

20

उद्धवजी बोले कि तापाछे श्रीकृष्णजी मधुपुरमें आय अपने पिताके कल्याणकी इच्छाकर बलदेव सहित ऊंचे मंचानपरसे शत्रुयूथनके नाथ कंसकों पटककर प्राण निकसनेपर कंसको पृथिवीमें खैंचतेभए ॥ १ ॥ सांदीपन गुरुको कह्यो भयो वेद एकवारमें विस्तारसें पढकर गुरुकों मरे पुत्र पंचजनके उदरसे लायकर देते भए ॥ २ ॥ श्रीमहालक्ष्मीके समान रूपवती रुक्मिणीजीनें गंधर्वविवाहकी इच्छाकरकै जो राजालोग बुलाये हे इन्हें देखते भये, नृपनके मध्यमें मस्तकपर पद धर गरुडजी जैसे अमृत हरलाए तैसे अपनों भागरूप रुक्मिणीकूं हरके लेजाते भए ॥ ३ ॥ ना-

उद्धव उवाच ॥ ततः स आगत्य पुरं स्वपित्रोश्चिकीर्षया शं बलदेवसंयुतः ॥ निपात्य तुङ्गाद्रिपुयूथनाथं हतं व्यकर्षद्व्यसुमोजसोर्व्याम् ॥१॥ सान्दीपनेः सकृत् प्रोक्तं ब्रह्माधीत्य सविस्तरम् ॥ तस्मै प्रादाद् वरं पुत्रं मृतं पञ्चजनोदरात् ॥ २ ॥ समाहुता भीष्मककन्यया ये श्रियः सवर्णेन बुभूषयैषाम् ॥ गान्धर्ववृत्त्या मिषतां स्वभागं जह्रे पदं मूर्ध्नि दधत् सुपर्णः ॥ ३ ॥ ककुद्मतोऽविद्धनसो दमित्वा स्वयंवरे नाग्नजितीमुवाह ॥ तद्भग्नमानानपि गृध्यतोऽज्ञान् जघ्नेऽक्षतः शस्त्रभृतः स्वशस्त्रैः ॥ ४ ॥ प्रियं प्रभुर्ग्राम्य इव प्रियाया विधित्सुरार्च्छत् द्युतरुं यदर्थे ॥ वज्र्याऽऽद्रवत् तं सगणो रुषांऽधः क्रीडामृगो नूनमयं वधूनाम् ॥ ५ ॥ सुतं मृधे खं वपुषा ग्रसन्तं दृष्ट्वा सुनाभोन्मथितं धरित्र्या ॥ आमन्त्रितस्तत्तनयाय शेषं दत्त्वा तदन्तःपुरमाविवेश ॥ ६ ॥ तत्राहृतास्ता नरदेवकन्याः कुजेन दृष्ट्वा हरिमार्तबन्धुम् ॥ उत्थाय सद्यो जगृहुः प्रहर्षव्रीडाऽनुरागप्रहितावलोकैः ॥ ७ ॥

थ जिनकी विंधी नहीं ऐसे सात वृषभनको जीतकर स्वयंवरमें नाग्नजितीसे व्याह करतेभये बैलनसे मान जिनके भग्न भए नाग्नजितीकूं चाहैं ऐसे अज्ञानी शस्त्रधारीनको अपनें शस्त्रोंसे मारतेभये ॥ ४ ॥ जा सत्यभामाके निमित्त प्रियाके प्रियकी इच्छा करकै संसारीकी नाई कल्पवृक्ष लाये सब गणसहित क्रोधसे अंधो स्त्रीनके मध्यमें वानरसम विषयी इंद्र श्रीकृष्णजीसे लडवेको आयो ॥ ५ ॥ संग्राममें आकाशतक लंबो चक्रसें मारो भौमासुरकों देख वाकी मा पृथिवी प्रार्थना करती भई तो वाके पुत्र भगदत्तको राज्य दे ताके महलनमें प्रवेश करतेभये ॥ ६ ॥ वाके अंतःपुरमें भौमा-

सुरकी हरीभई राजानकी कन्या श्रीकृष्णचंद्रको देख शीघ्र उठी और अतिहर्षकी लाज अनुरागसहित चितवनसे श्रीकृष्णसे व्याह करती भई ॥ ७ ॥ इन स्त्रीनके सब घरघरमें एक मुहूर्तमें अपनी मायासें उनके अनुसार होयकर विवाहयोग्य प्रकारसहित पाणिग्रहण करतेभये ॥ ८ ॥ सब गुणोंमें अपनें समान दश दश पुत्रनको एक एक स्त्रीनमें मायाको अनेक करवेकी इच्छाकर जन्मावते भये ॥ ९ ॥ कालयवन जरासंध शाल्वादिकोंकी सेनासें अपने पुरको घिरो देख उनकों आप मारते भए, अपने पुरुषनको दिव्य तेज जगावते भये ॥ १० ॥ शंबरासुर द्विविद वानर बाणासुर मुर बल्वल और दंतवक्रादिकोंको किसीकों आप मारते भए किसीकों औरसें मरवावते भये ॥११॥ याके उपरांत तुह्मारे भाईके

आसां मुहूर्त एकस्मिन् नानागारेषु योषिताम् ॥ सविधं जगृहे पाणीननुरूपः स्वमायया ॥ ८ ॥ तास्वऽपत्यान्यजनयदात्मतुल्यानि सर्वतः ॥ एकैकस्यां दश दश प्रकृतेर्विबुभूषया ॥ ९ ॥ कालमागधशाल्वादीननीकै रुन्धतः परम् ॥ अजीजनत् स्वयं दिव्यं स्वपुंसां तेज आदिशत् ॥ १० ॥ शम्बरं द्विविदं बाणं मुरं बल्वलमेव च ॥ अन्यांश्च दन्तवक्रादीनवधीत् कांश्च घातयत् ॥ ११ ॥ अथ ते भ्रातृपुत्राणां पक्षयोः पतितान् नृपान् ॥ चचाल भूः कुरुक्षेत्रं येषामापततां बलैः ॥ १२ ॥ स कर्णदुःशासनसौबलानां कुमन्त्रपाकेन हतश्रियायुषम् ॥ सुयोधनं सानुचरं शयानं भग्नोरुमुर्व्यां न ननन्द पश्यन् ॥ १३ ॥ कियान् भुवोऽयं क्षपितोरुभारो यद्द्रोणभीष्मार्जुनभीममूलैः ॥ अष्टादशाक्षौहिणिको मदंशैरास्ते बलं दुर्विषहं यदूनाम् ॥ १४ ॥ मिथो यदैषां भविता विवादो मध्वामदाताम्रविलोचनानाम् ॥ नैषां वधोपाय इयानतोऽन्यो मय्युद्यतेऽन्तर्दधते स्वयं स्म ॥ १५ ॥

पुत्रनकी ओर जो नृप हैं तिनकी सेनानके आयवेसें कुरुक्षेत्रकी भूमि चलायमान होतीभई ॥ १२ ॥ कर्ण दुश्शासन सौबलकी कुत्सित सलाहसे लक्ष्मी आयुहीन सोये भये, सब सेनासमेत मरे जंघा टूटी धरतीमें पडे दुर्योधनकों देख श्रीकृष्णजी कुछ प्रसन्न न भये ॥ १३ ॥ द्रोणाचार्य भीष्म पितामह अर्जुन भीमसेनके कारण अष्टादश अक्षौहिणीको भार नाश भयो सो कछु न भयो अभी मेरे अंश असह्य यादवरूप बल भार विद्यमान है ॥ १४ ॥ मीठी वारुणीके मदसे लाल लोचन इन यादवनकों आपसमें विवाद होय येही इनके मारवेकी उपाय है और नहीं जब हम

22

याँ काम करवेकों प्रारंभ करेगे तो आपसेंही ये सब नष्ट होय अंतर्धान होंगे ॥ १५ ॥ ऐसें चिंतवन कर भगवान् अपनें राज्यपर युधिष्ठिरको स्थित कर सूधेनको मार्ग दिखावतेभये सुहृदसहित आनंदित होतेभये ॥ १६ ॥ सूधे अभिमन्युनें पुरुको वंश उत्तरामें धारण कीनो जो अश्वत्थामासे नष्ट भयो हो सो भगवानने फेर रक्षा कीनी ॥ १७ ॥ समर्थ कृष्णजी तीन अश्वमेध यज्ञ राजा युधिष्ठिरसे करावते भये, वोभी श्रीकृष्णकी सेवासे भाईनसे धरतीकी रक्षा कराय रमण करतोभयो ॥ १८ ॥ भगवान् विश्वात्माभी लोक वेदके मार्गके अनुसार द्वारावतीमें रहिके सांख्यशास्त्रमें मन लगाय सब काम भोग करतेभए ॥ १९ ॥ मनोहर मुसकानकी दृष्टिसे अमृततुल्य मीठी वाणीसे कोई निंदा करे नहीं

एवं संचिन्त्य भगवान् स्वराज्ये स्थाप्य धर्मजम् ॥ नन्दयामास सुहृदः साधूनां वर्त्म दर्शयन् ॥ १६ ॥ उत्तरायां धृतः पूरोर्वंशः साध्वभिमन्युना ॥ स वै द्रौण्यस्त्रसंछिन्नः पुनर्भगवता धृतः ॥ १७ ॥ अयाजयद् धर्मसुतमश्वमेधैस्त्रिभिर्विभुः ॥ सोऽपि क्ष्मामनुजै रक्षन् रेमे कृष्णमनुव्रतः ॥ १८ ॥ भगवानपि विश्वात्मा लोकवेदपथानुगः ॥ कामान् सिषेवे द्वार्वत्यामसक्तः सांख्यमास्थितः ॥ १९ ॥ स्निग्धस्मितावलोकेन वाचा पीयूषकल्पया ॥ चरित्रेणाऽनवद्येन श्रीनिकेतेन चात्मना ॥ २० ॥ इमं लोकममुं चैव रमयन् सुतरां यदून् ॥ रेमे क्षणदया दत्तक्षणस्त्रीक्षणसौहृदः ॥ २१ ॥ तस्यैवं रममाणस्य संवत्सरगणान् बहून् ॥ गृहमेधेषु योगेषु विरागः समजायत ॥ २२ ॥ दैवाधीनेषु कामेषु दैवाधीनः स्वयं पुमान् ॥ को विस्रम्भेत योगेन योगेश्वरमनुव्रतः ॥ २३ ॥

ऐसे चरित्र करके श्रीमहालक्ष्मीके निवास शरीरसे सबको आनंद देतेभए ॥ २० ॥ या लोकको वा लोककों यादवनको अत्यंत रमण करावत जिन्हें रात्रिने क्षणमात्र सुख दीनो है ऐसी स्त्रियोंमें क्षणिक प्रीतिवाले भगवान् श्रीकृष्णजी रमण करतेभए ॥ २१ ॥ बहुत वर्षपर्यंत रमण करते करते तिन श्रीकृष्णजीको गृहस्थाश्रममें वैराग्य होतोभयो ॥ २२ ॥ जो कि अपने अधीनभी कामोंमें स्वतन्त्र परमेश्वरको विराग हुवा तो जिनके काम परके आधीन है और आपभी परके आधीन उनमें कौन ऐसा है कि जो योगेश्वर भगवानको भ-

जन करताहुआ दैवाधीन कामोंमें प्रीति करैगा ॥ २३ ॥ कोई समय द्वारकापुरीमें क्रीडा करते यदुभोजवंशीनके बालकोंकरके कोप कराये भए भगवतकी इच्छाके अनुकूल मुनिलोग शाप देते भए ॥ २४ ॥ तापाछे कुछेक महीनेमें वृष्णि भोज अंधक आदिक प्रसन्न होय रथपर बैठ दैवसें विमोहित होयकै प्रभास क्षेत्रमें गये ॥ २५ ॥ तहां स्नान कर वाही जलसें पितृ देव ऋषिनको तर्पणकर बहुत गुणवाली गौ ब्राह्मणोंको देते भये ॥ २६ ॥ सुवर्ण चांदी शय्या वस्त्र दुशाला पीताम्बर मृगचर्म सवारी रथ हाथी कन्या पृथिवी जीविका चलानेहारी वस्तु दान करते भये ॥२७॥ बहुत जामें रस युक्त अन्न ब्राह्मणोंकों दीनों, सब भगवत्के समर्पण करतेभये, गौ ब्राह्मणके अर्थ प्राण दैनेहारे यादव भूमिमें मस्तकसैं प्रणाम

पुर्यां कदाचित् क्रीडद्भिर्यदुभोजकुमारकैः ॥ कोपिता मुनयः शेपुर्भगवन्मतकोविदाः ॥ २४ ॥ ततः कतिपयैर्मासैर्वृष्णिभोजान्धकादयः ॥ ययुः प्रभासं संहृष्टा रथैर्दैवविमोहिताः ॥ २५ ॥ तत्र स्नात्वा पितॄन् देवानृषींश्चैव तदम्भसा ॥ तर्पयित्वाऽथ विप्रेभ्यो गावो बहुगुणा ददुः ॥ २६ ॥ हिरण्यं रजतं शय्या वासांस्यऽजिनकम्बलान् ॥ यानं रथानिभान् कन्या धरां वृत्तिकरीमपि ॥ २७ ॥ अन्नं चोरुरसं तेभ्यो दत्वा भगवदर्पणम् ॥ गोविप्रार्थासवः शूराः प्रणेमुर्भुवि मूर्धभिः ॥ २८ ॥ इति श्रीभा० म० तृ० प्रभासक्षेत्रगमनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ उद्धव उवाच ॥ अथ ते तदनुज्ञाता भुक्त्वा पीत्वा च वारुणीम् ॥ तया विभ्रंशितज्ञाना दुरुक्तैर्मर्म पस्पृशुः ॥ १ ॥ तेषां मैरेयदोषेण विषमीकृतचेतसाम् ॥ निम्लोचति रवावासीद्वेणूनामिव मर्दनम् ॥ २ ॥

करते भए ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां तृतीयस्कंधे प्रभासक्षेत्रागमनवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ उद्धवजी बोले कि याके उपरांत ब्राह्मणोंसे आज्ञा लेकर भोजनकर वारुणी पीकर वासै सबके ज्ञान नष्ट भये, आपसमें बुरी बुरी बातें कर वज्रसमान वचनोंसे मर्ममें मारते भये ॥ १ ॥ "मैरेयमासवो मधुरिति कोशे, मैरेयं धातकीपुष्पगुडधानांबुसंहितमिति माधवः । मिरायां देशविशेषे औषधिविशेषे द्राक्षारसविशेषे भवं मैरेयम् , नद्यादिभ्यो ढक्" मैरेय मदको नाम है, धत्तूरेके पुष्प गुडधान जलके संयोगसें बनेहै, ये माधव निदानमें है, मिरानामक देशमें वा औषधियोंमें दाखके रसविशेषसे जो होय वो मैरेय कहावै, नद्यादि० या पाणिनीय सूत्रसे ढक् प्रत्यय होवैहै । वा मदके दोषसे तिनके चित्त विषम

23

24

हो गये, (१) सूर्य अस्तके समय जैसे वांस घिसके नष्ट होय ऐसे यादव नष्ट भये ॥ २ ॥ भगवान् अपनी आत्ममायाको वा गतिकों देख सरस्वतीमें आचमन कर वृक्षके मूलमें बैठतेभए ॥ ३ ॥ शरणागतकी पीडानाशक अपने कुलके संहारकी इच्छा करवेवारे भगवान्नें हमसें कही कि तुम बद्रिकाश्रम जाओ ॥ ४ ॥ यद्यपि ऐसे है तथापि तिनके अभिप्रायको जाने हो तोभी शत्रुनाशक श्रीकृष्णजीके पीछे पीछे जातो भयो, श्रीकृष्णजीके चरणको वियोग मोसो सह्यो न गयो ॥ ५ ॥ तिन परमेश्वरके पदको देखता हुवा मैं सरस्वतीके तटपर अकेले विराजमान प्रिय पति श्रीजीके स्थान अकेतन अनाश्रय, स्वाश्रय स्वतन्त्र परमेश्वरको देखताभया ॥ ६ ॥ श्यामसुन्दर शुद्ध सत्वमय प्रशांत रक्तलोचन चार भुजा धारे, विख्यात पीतांबर पहिरे हैं ॥ ७ ॥ दहिनो चरणकमल वामें चरणपर राख छोटेसे पीपरके समीप बैठे, पुष्ट शरीर, विषयसुख त्यागे बैठे थे ॥ ८ ॥ तहां महाभागवत द्वैपायनके सुहृद सखा लोकनमें विचरते हुवे सिद्ध मैत्रेयजी दैवकी इच्छासे आवतेभए ॥ ९ ॥ प्रेम करनेहारे आनन्दके भावसे कंधा नीचेकर मेरे सामनें अनुरागी हांसीकी दृष्टिसें विश्राम देत मुनीसें मुकुंदजी बोले ॥ १० ॥ श्रीभगवान्

भगवान् स्वात्ममायाया गतिं तामवलोक्य सः ॥ सरस्वतीमुपस्पृश्य वृक्षमूलमुपाविशत् ॥ ३ ॥ अहं प्रोक्तो भगवता प्रपन्नार्तिहरेण ह ॥ बदरीं त्वं प्रयाहीति स्वकुलं संजिहीर्षुणा ॥ ४ ॥ अथाऽपि तदभिप्रेतं जानन्नहमरिन्दम ॥ पृष्ठतोऽऽन्वगमं भर्तुः पादविश्लेषणाक्षमः ॥ ५ ॥ अद्राक्षमेकमासीनं विचिन्वन् दयितं पतिम् ॥ श्रीनिकेतं सरस्वत्यां कृतकेतमकेतनम् ॥ ६ ॥ श्यामावदातं विरजं प्रशान्तारुणलोचनम् ॥ दोर्भिश्चतुर्भिर्विदितं पीतकौशाम्बरेण च ॥ ७ ॥ वाम ऊरावधिश्रित्य दक्षिणाङ्घ्रिसरोरुहम् ॥ अपाश्रितार्भकाश्वत्थमकृशं त्यक्तपिप्पलम् ॥ ८ ॥ तस्मिन् महाभागवतो द्वैपायनसुहृत्सखः ॥ लोकाननुचरन् सिद्ध आससाद यदृच्छया ॥ ९ ॥ तस्यानुरक्तस्य मुनेर्मुकुन्दः प्रमोदभावाऽऽनतकन्धरस्य ॥ आशृण्वतो मामनुरागहाससमीक्षया विश्रमयन्नुवाच ॥ १० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वेदाऽहमन्तर्मनसीप्सितं ते ददामि यत् तद्दुरवापमन्यैः ॥ सत्रे पुरा विश्वसृजां वसूनां मत्सिद्धिकामेन वसो त्वयेष्टः ॥ ११ ॥

---

(१) –छप्पनकोटिके यादवा, मद पीकर भये नष्ट ॥ यासें मद मत पीजियो, सदा देयगो कष्ट ॥ १ ॥

अपनें आत्माको एकांतमें प्रकाश करवेवारो ज्ञान संपूर्ण ब्रह्माके लिये तुमनें कह्यो, हे स्वामिन् ! जो हमारे जानवेके योग्य होय सो कहो; जासें अनायास करके संसारदुःखको हम सब तरें ॥ १८ ॥ ऐसे मेरे हृदयकी जान परमेश्वर भगवान् कमलनयन आत्माकी परमस्थिति कहतेभये ॥ १९ ॥ ऐसे मैं भगवानको आराधन कर उनके चरणामृतसें तत्व आत्माके ज्ञानको मार्ग प्राप्त कर उनके चरणको प्रणाम और परिक्रमा कर विरहमें आतुर होय यहां आयोहूं ॥ २० ॥ सो मैं तिनके दर्शनके आल्हादसे और वियोगकी पीडासे खेदित प्रभुको प्रिय बद्रिकाश्रम मंडलको जाऊंगो

ज्ञानं परं स्वात्मरहःप्रकाशं प्रोवाच कस्मै भगवान् समग्रम् ॥ अपि क्षमं नो ग्रहणाय भर्तर्वदाऽञ्जसा यद्र वृजिनं तरेम ॥ १८ ॥ इत्यावेदितहार्दाय मह्यं स भगवान् परः ॥ आदिदेशाऽरविन्दाक्ष आत्मनः परमां स्थितिम् ॥ १९ ॥ स एवमाराधितपादतीर्थादधीततत्त्वात्मविबोधमार्गः ॥ प्रणम्य पादौ परिवृत्त्य देवमिहागतोऽहं विरहातुरात्मा ॥ २० ॥ सोऽहं तद्दर्शनाह्लादवियोगार्तियुतः प्रभो ॥ गमिष्ये दयितं तस्य बदर्याश्रममण्डलम् ॥ २१ ॥ यत्र नारायणो देवो नरश्च भगवानृषिः ॥ मृदु तीव्रं तपो दीर्घं तेपाते लोकभावनौ ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युद्धवादुपाकर्ण्य सुहृदां दुःसहं वधम् ॥ ज्ञानेनाऽशमयत् क्षत्ता शोकमुत्पतितं बुधः ॥ २३ ॥ स तं महाभागवतं व्रजन्तं कौरवर्षभः ॥ विश्रम्भादस्य धत्तेदं मुख्यं कृष्णपरिग्रहे ॥ २४ ॥ विदुर उवाच ॥ ज्ञानं परं स्वात्मरहःप्रकाशं यदाह योगेश्वर ईश्वरस्ते ॥ वक्तुं भवान् नोर्हति यद्धि विष्णोर्भृत्याः स्वभृत्यार्थकृतश्चरन्ति ॥ २५ ॥

॥ २१ ॥ जहां नारायणदेव और नर ऋषि दूसरेके उपद्रवसे शून्य दुश्चर तप कल्पपर्यंत सब लोकके अनुग्रहके अर्थ करतेभये ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि सुहृदनको दुस्सह वध उद्धवजीसे सुनकर बुद्धिमान् विदुरजी वा उत्पन्न हुए महाशोकको ज्ञानसे नाश करतेभये ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णजीके परिवारमें मुख्य महाभागवत उद्धवजी जब जाने लगे तब कौरवश्रेष्ठ विदुरजीने विश्वास कर उनसे कहा ॥ २४ ॥ विदुरजी बोले कि आत्माको एकांतमें प्रकाश करवेवारो परम ज्ञान जो योगीश्वर ईश्वरनें आपसे कह्यो वो हमको आप कहिवेकों योग्य हो, क्यों कि श्रीविष्णुके उपासक ब्राह्मण

मैत्रेयजीके सुन्ते यह बोले कि तुह्मारे मनकी हृदयकी जो चाहना है वो हम जाने हैं, सोही तुह्मं देंगे, जो औरनकों प्राप्त न होयहै पहिले विश्व रचवेवारे वसूनके यज्ञमें मेरी सिद्धिकी कामनाकरकै तुमनें मेरो यजन कीनों हो हे वसुरूप उद्धव ! ॥११॥ हे साधो ! मेरी कृपासें ये अंतको जन्म आपको प्राप्त भयोहै, मनुष्यलोकको त्याग वैकुंठकों जाते मेरा एकांतमें एकांतभक्तिसें दर्शन करतभये येही आनंद है ॥ १२ ॥ पहिले पाद्मकल्पमें आदिसर्गमें कमलपर विराजते ब्रह्माजीसें मैंने अपनी लीलाको प्रकाशक ज्ञान परमश्रेष्ठ कह्योहो जाकों महाचतुर विद्वान् भागवत कहैहैं ॥ १३ ॥ ऐसे आदरसें जब श्रीकृष्णजीनें कह्यो तब परमपुरुषके क्षण क्षणके प्रति अनुग्रहको पात्र मेरे स्नेहसें रोमांच खडे होगए अक्षर न बोलो जाय, शोकके

स एष साधोश्चरमो भवानामासादितस्ते मदनुग्रहो यत् ॥ यन्मां नृलोकान् रह उत्सृजन्तं दिष्ट्या ददृश्वान् विशदानुवृत्त्या ॥ १२ ॥
पुरा मया प्रोक्तमजाय नाभ्ये पाद्मे निषण्णाय ममादिसर्गे ॥ ज्ञानं परं मन्महिमावभासं
यत् सूरयो भागवतं वदन्ति ॥ १३ ॥ इत्यादृतोक्तः परमस्य पुंसः प्रतिक्षणानुग्रहभाजनोऽहम् ॥ स्नेहोत्थरोमास्खलिताक्षरस्तं
मुञ्चन् शुचः प्राञ्जलिराबभाषे ॥ १४ ॥ कोन्वीश ते पादसरोजभाजां सुदुर्लभोऽर्थेषु चतुर्ष्वपीह ॥ तथापि
नाहं प्रवृणोमि भूमन् भवत्पदाम्भोजनिषेवणोत्सुकः ॥ १५ ॥ कर्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्य ते दुर्गाश्रयोऽथारिभयात्
पलायनम् ॥ कालात्मनो यत् प्रमदायुताश्रयः स्वात्मन् रतेः खिद्यति धीर्विदामिह ॥ १६ ॥ मन्त्रेषु
मां वा उपहूय यत् त्वमकुण्ठिताखण्डसदात्मबोधः ॥ पृच्छेः प्रभो मुग्ध इवाऽप्रमत्तस्तन्नो मनो मोहयतीव देव ॥ १७ ॥

आंसुनको डारतो मैं हाथ जोडकर बोलो ॥ १४ ॥ हे ईश ! हे भूमन् ! यद्यपि या संसारमें तुह्मारे चरणकमलके भजन करवेवारेनको चारों अर्थोंमें सब अर्थ प्राप्त है, तथापि मैं आपके चरणकमलकी सेवा करवेवारो हूं, सो उन्हैं नहीं चाहूंहूं ॥ १५ ॥ जो अघटमान हैं सो कहैहै कि जो चेष्टा न करै अकर्त्ताके कर्म अजन्माके जन्म शत्रुनके भयसें भागनो कालकी आत्मा असंख्यात स्त्रीनसें विहार करनो अपनी आत्मामें सदा रमण करनेहारे तुह्मारी लीला देखकै या संसारमें सर्व वेत्तानकी बुद्धि खेदको प्राप्त होयहै ॥१६॥ हे प्रभो हे देव ! सब कालमें अखंड सदा आत्मज्ञान तुम मोंकों सलाहमें बुलावतेभये, सावधान आप मूर्खकी नांई पूछतेभये याते मन मोहै है ॥ १७ ॥

लोग अपनें दासनके प्रयोजनसाधनकों विचरैं हैं जो कृतार्थ हैं उनको कुछ कृत्य करवेको नहीं हैं ॥ २५ ॥ उद्धवजी बोले कि निश्चयसें तत्वोंकी सुंदर सिद्धिके जानवेवारे मैत्रेयजी आपकों ज्ञान देंगे, जो मनुष्यलोक त्याग करवेवारे भगवान्‌ने कह्योहै ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि या प्रकार विदुरजीके साथ विश्वमूर्तिके गुणोंकी कथारूप अमृतसे सब ताप नष्ट होनेसे उद्धवजी श्रीयमुनाजीके पुलिनमें एकक्षणकी नाई वसतेभये, रात व्यतीतभई ॥ २७ ॥ राजा परीक्षित बोले कि नष्ट भये वृष्णि भोजोंके महारथीनके यूथपालकोंमें मुख्य उद्धव कैसे बचे कारण कि ब्राह्मणके शापसे त्रिगुणोंके स्वामी हरिभी मनुष्यके आकारकों त्यागतेभये फिर उद्धव कैसे बचे ॥ २८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि शापकी कुछ सामर्थ्य नहीं ही, भग-

उद्धव उवाच ॥ ननु ते तत्त्वसंराध्य ऋषिः कौषारवोऽन्तिमे ॥ साक्षात् भगवताऽऽदिष्टो मर्त्यलोकं जिहासता ॥२६॥
श्रीशुक उवाच ॥ इति सह विदुरेण विश्वमूर्तेर्गुणकथया सुधया प्लावितोरुतापः ॥ क्षणमिव पुलिने यमस्वसुस्तां
समुषित औपगविर्निशां ततोऽगात् ॥ २७ ॥ राजोवाच ॥ निधनमुपगतेषु वृष्णिभोजेष्वधिरथयूथपयूथपेषु मुख्यः ॥
स तु कथमवशिष्ट उद्धवो यद् हरिरपि तत्यज आकृतिं त्र्यधीशः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ब्रह्मशापापदेशेन
कालेनाऽऽमोघवाञ्छितः ॥ संहृत्य स्वकुलं नूनं त्यक्ष्यन् देहमचिन्तयत् ॥ २९ ॥ अस्माल्लोकादुपरते मयि ज्ञानं
मदाश्रयम् ॥ अर्हत्युद्धव एवाऽद्धा संप्रत्यात्मवतां वरः ॥ ३० ॥ नोद्धवोऽण्वपि मन्न्यूनो यद्गुणैर्नार्दितः प्रभुः ॥
अतो मद्वयुनं लोकं ग्राहयन्निह तिष्ठतु ॥ ३१ ॥

वत्की इच्छा ऐसेही, ब्राह्मणोंका शापको तौ एक वहानो हो, कालकरके अमोघवांछावारे श्रीकृष्णजी अपनें कुलको संहार कर देहको त्यागती बेर ये चिंतवन करतेभये ॥ २९ ॥ मैं या लोकसें चलो जाऊंगो तो मेरो ये ज्ञान आत्मज्ञानियोंमें श्रेष्ठ उद्धव या समय जानवेकों योग्य है ॥ ३० ॥ उद्धव ज्ञान जानवेमें अणुमात्रभी मोसे न्यून नहीं है याके गुणोंसे कभी ईश्वर पीडित न भये, याते मेरे संबंधको ज्ञान षड्विध शरणागति लोककों उपदेश करनेको यह यहीं रहै ॥ ३१ ॥

ऐसे शब्दमात्रके कर्ता वेदकर्ता त्रिलोकगुरुनें आज्ञा कीनी कि बद्रिकाश्रममें जाय समाधिसे श्रीहरिकों पूजतेभये ॥ ३२ ॥ लीलाके लिये देहधारी श्लाघनीयकर्मकारी श्रीकृष्ण परमात्माको उद्धवसे विदुरजी सुनकर ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्णजीको अंतर्द्धान होनो धीरनको धैर्य देतोभयो और अधीर चित्तवारनको अतिदुष्कर मालुम पडो ॥ ३४ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ ! श्रीकृष्णके मन चिंतितको ध्यान करते भागवत उद्धवजी गये, तब प्रेममें विव्हल होय विदुरजी रोवतेभये ॥ २५ ॥ भरतवंशीनमें श्रेष्ठ विदुरजी कुछ दिनतक सिद्ध होय वसते भये, पाछे जहां मैत्रेयजी रहे ऐसी

एवं त्रिलोकगुरुणा संदिष्टः शब्दयोनिना ॥ बदर्याश्रममासाद्य हरिमीजे समाधिना ॥ ३२ ॥ विदुरोऽप्युद्धवात् श्रुत्वा कृष्णस्य परमात्मनः ॥ क्रीडयोपात्तदेहस्य कर्माणि श्लाघितानि च ॥ ३३ ॥ देहन्यासं च तस्यैवं धीराणां धैर्यवर्धनम् ॥ अन्येषां दुष्करतरं पशूनां विक्लवात्मनाम् ॥ ३४ ॥ आत्मानं च कुरुश्रेष्ठ कृष्णेन मनसेक्षितम् ॥ ध्यायन् गते भागवते रुरोद प्रेमविह्वलः ॥ ३५ ॥ कालिन्द्याः कतिभिः सिद्ध अहोभिर्भरतर्षभः ॥ प्रापद्यत स्वःसरितं यत्र मित्रासुतो मुनिः ॥ ३६ ॥ इति श्रीभा॰तृती॰विदुरोद्धवसंवादे संपूर्णवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ द्वारि द्युनद्या ऋषभः कुरूणां मैत्रेयमासीनमगाधबोधम् ॥ क्षत्तोपसृत्याऽच्युतभावशुद्धः पप्रच्छ सौशील्यगुणाभितृप्तः ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ सुखाय कर्माणि करोति लोको न तैः सुखं वाऽन्यदुपारमं वा ॥ विन्देत भूयस्तत एव दुःखं यदत्र युक्तं भगवान् वदेन्नः ॥ २ ॥

गंगाजोपर जातेभये ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभागवते भा॰ तृतीयस्कंधे विदुरोद्धवसंवादे संपूर्णवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि श्रीहरिद्वारमें कुरुनमें श्रेष्ठ अच्युतके भावसें शुद्ध सुशीलता आदिगुण दयासे तृप्त विदुरजी गंभीर ज्ञानी मैत्रेयजीके समीप आयकर ये पूछतेभये ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि सब लोग सुखके लिये कर्म करे हैं, न सुख मिले है न दुःखनाश होय है फेर दुःखही होय है, जो करवेको योग्य होय सो सर्वज्ञ आप कहो ॥ २ ॥

29

सिद्ध नारायण प्रकट करतेभये सो आप हमसे वर्णन करो ॥ ९ ॥ हे भगवन् ! श्रीकृष्णजीकी कथामृत पानके समूहके विना तुच्छ सुखवारे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्रके धर्म व्यासजीके मुखसे वारंवार हमने सुनेहैं परंतु उनके श्रवणसे हम तृप्त नहीं भये ॥ १० ॥ आपके यज्ञमें नारदादिकोंके गाये भगवन्नामसें कोईभी तृप्त नहीं होयहै, जो नाम पुरुषनके कांनकी नाडीमें प्राप्त होयकै संसारकी देवेवारी घरकी भीतिकूं छेदै है ॥ ११ ॥ श्रीवेदव्यास मुनि मोक्षधर्मके अंतमें नारायणीय उपाख्यानमें भगवतके गुणनकी कहिवेकी इच्छा भई तव आपके सखा व्यासजीने भारत कह्यो जा भारतमें संसारी सुखके मिस करकै हरिकी कथामें मति ग्रहण करीहै सो बात इतिहाससमुच्चयमें है कि " कामिनो वर्णयन्कामं लोभं लुब्धस्य वर्णयन् । नरः किं फलमाप्नोति कूपेंधमिव पातयन् ॥ १ ॥ लोकचित्तावतारार्थं वर्णयित्वात्र तेन तौ ॥ इतिहासैः पवित्रार्थैः पुनरत्रैव निंदितौ

परावरेषां भगवन् व्रतानि श्रुतानि मे व्यासमुखादभीक्ष्णम् ॥ अतृप्नुमः क्षुल्लसुखावहानां तेषामृते कृष्णकथाऽमृतौघात् ॥ १० ॥ कस्तृप्नुयात् तीर्थपदोऽभिधानात् सत्रेषु वः सूरिभिरीड्यमानात् ॥ यः कर्णनाडीं पुरुषस्य यातो भवप्रदां गेहरतिं छिनत्ति ॥ ११ ॥ मुनिर्विवक्षुर्भगवद्गुणानां सखाऽपि ते भारतमाह कृष्णः ॥ यस्मिन् नृणां ग्राम्यसुखानुवादैर्मतिर्गृहीता नु हरेः कथायाम् ॥ १२ ॥ सा श्रद्दधानस्य विवर्धमाना विरक्तिमन्यत्र करोति पुंसः ॥ हरेः पदानुस्मृतिनिर्वृतस्य समस्तदुःखात्ययमाशु धत्ते ॥ १३ ॥ तान् शोच्यशोच्यानविदोऽनुशोचे हरेः कथायां विमुखानघेन ॥ क्षिणोति देवोऽनिमिषस्तु येषामायुर्वृथावादगतिस्मृतीनाम् ॥ १४ ॥

॥ २ ॥ अन्यथा घोरसंसारबंधहेतू जनस्य तौ ॥ वर्णयेत्स कथं विद्वान्महाकारुणिको मुनिः ॥ ३ ॥ " (कामीसे कही काम कर लोभीसे कही लोभसे जीवको कहा फल प्राप्त भयो जैसे अंधेको कूपमें पटकनो है ॥ १ ॥ व्यासजीने लोगोंको चित्त लगनेको काम लोभ वर्णन कर फेर वहांही पवित्र इतिहासकरके निंदा करीहै ॥ २ ॥ केवल चित्तके प्रवेशरूप प्रयोजनके विना विद्वान् महादयालु मुनि प्राणियोंके घोर संसारमें बन्धनके हेतु काम और लोभको कैसे वर्णन करते ॥ ३ ॥) ॥ १२ ॥ श्रद्धालु हरिके पदमें मन लगायवेसे सुखी भये पुरुषकों बढी भई भक्ति संसारसुखोंमें विरागको करतीहै, और समस्तदुःखोंको नाश करैहै ॥ १३ ॥ ऐसी परमेश्वरकी कथामें जो पुरुष प्रीति नहीं करतेहैं उनको

श्रीकृष्णसें विमुख प्राचीन कर्मसें अधर्मशील, अत्यंत दुःखी जीवनके ऊपर दया करवेकों या विश्वमें जनार्दनके मंगलकारी परोपकारी ब्राह्मण विचरें हैं ॥ ३ ॥ तातें हे साधुवर्य ! सुखकों मार्ग कहो जाकरके पुरुषनके हृदयमें भगवान् स्थित होय भक्तिसें पवित्र हृदयमें अनादि वेदप्रमाणसिद्ध तत्वज्ञान हरि देवैं हैं ॥ ४ ॥ त्रिगुणी मायाके नियंता, स्वतंत्र ईश्वर अवतार धार जिन कर्मनकूं करैं हैं, निष्क्रिय होयके जा प्रकारसे प्रथम याको रचतेभये, पाछे सुस्थिरकरकै जगतकी वृत्ति विधान करतेभये ॥ ५ ॥ जैसे फेर अपनें हृदयआकाशमें याकों स्थित करके सब वृत्तियोंसे

जनस्य कृष्णाद्द विमुखस्य देवादधर्मशीलस्य सुदुःखितस्य ॥ अनुग्रहायेह चरन्ति नूनं भूतानि भव्यानि जनार्दनस्य ॥ ३ ॥ तत् साधुवर्याऽऽदिश वर्त्म शं नः संराधितो भगवान् येन पुंसाम् ॥ हृदि स्थितो यच्छति भक्तिपूते ज्ञानं सतत्त्वाधिगमं पुराणम् ॥४॥ करोति कर्माणि कृतावतारो यान्यात्मतन्त्रो भगवांस्त्र्यधीशः ॥ यथा ससर्जाऽग्र इदं निरीहः संस्थाप्य वृत्तिं जगतो विधत्ते ॥ ५ ॥ यथा पुनः स्वे ख इदं निवेश्य शेते गुहायां स निवृत्तवृत्तिः ॥ योगेश्वराधीश्वर एक एतदनुप्रविष्टो बहुधा यथाऽसीत् ॥ ६ ॥ क्रीडन् विधत्ते द्विजगोसुराणां क्षेमाय कर्माण्यवतारभेदैः ॥ मनो न तृप्यत्यपि शृण्वतां नः सुश्लोकमौलेश्चरितामृतानि॥७॥यैस्तत्त्वभेदैरधिलोकनाथो लोकान्सलोकान् सहलोकपालान् ॥ अचीक्लृपद्द यत्र हि सर्वसत्त्वनिकायभेदोऽधिकृतः प्रतीतः ॥ ८ ॥ येन प्रजानामुत आत्मकर्मरूपाभिधानां च भिदां व्यधत्त ॥ नारायणो विश्वसृगात्मयोनिरेतच्च नो वर्णय विप्रवर्य ॥ ९ ॥

निवृत्त होयके अंतःकरणमें सोवे है, योगीश्वरोंके ईश्वर एक या विश्वमें प्रविष्ट होके जैसे बहुतसे होतेभये ॥ ६ ॥ ब्राह्मण गौ देवताके क्षेमके अर्थ अवतारोंके भेदकरके विहार करते कर्मनको करैं हैं सो कहो सुंदर यशस्वीनमें मुकुटमणि श्रीकृष्णके चरित अमृत सुनते हमारो मन तृप्त नहीं होयहै ॥ ७ ॥ सब लोकनाथोंके अधिपति जिन तत्वोंके भेदकरके लोकालोक पर्वतसें बाहिर सब लोकपालसहित कल्पना करतभये, जहां सब जीवनके समूहोंके भेद अधिकारी करके प्रकट करैहै ॥ ८ ॥ हे विप्रनमें श्रेष्ठ ! जा प्रकारसें प्रजाके आत्मा कर्मरूप नामभेद विश्व रचवेवारे स्वतः

सोचते हुवे विदुरजी मैत्रेयजीसे कहतेहैं कि, अपने किये पापके कारण परमात्माकी कथासै विमुख शोच करने योग्य पुरुषौंकेभी शोचनीय अज्ञानी पुरुषौंको मैं शोच करूंहूं कारण कि जिनकी मन वचनकी क्रिया वृथा है ऐसे पुरुषनकी आयुको जिसकी गति एकक्षणकोभी नहीं रुकती काल वृथा नाश करता है ॥ १४ ॥ तातें हे मैत्रेजयी ! जैसे भ्रमर पुष्पौंके साररूप रसको खेंच कर लावै है तैसे संसारके सुखदाता पवित्र कीर्तिवारे आर्तबंधु ईश्वरकी साररूप कथा कहो ॥ १५ ॥ ईश्वरने विश्वकी उत्पत्ति पालन नाशके अर्थ शक्तियुक्त अवतार धार जो मनुष्योंसे न होसके ऐसे कर्म कीने वे कर्म मोसे कहो ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, ऐसे भगवान् मैत्रेयमुनिसें विदुरनें पूछी, तब वे मुनि पुरुषोंके मोक्ष-

तदस्य कौषारव शर्मदातुर्हरेः कथामेव कथासु सारम् ॥ उद्धृत्य पुष्पेभ्य इवाऽऽर्तबन्धो शिवाय नः कीर्तय तीर्थकीर्तेः ॥ १५ ॥ स विश्वजन्मास्थितिसंयमार्थे कृतावतारः प्रगृहीतशक्तिः ॥ चकार कर्माण्यतिपूरुषाणि यानीश्वरः कीर्तय तानि मह्यम् ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स एवं भगवान् पृष्टः क्षत्त्रा कौषारविर्मुनिः ॥ पुंसां निःश्रेयसार्थेन तमाह बहु मानयन् ॥ १७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ साधु पृष्टं त्वया साधो लोकान्साध्वनुगृह्णता ॥ कीर्तिं वितन्वता लोक आत्मनोऽधोक्षजात्मनः ॥ १८ ॥ नैतच्चित्रं त्वयि क्षत्तर्बादरायणवीर्यजे ॥ गृहीतोऽनन्यभावेन यत् त्वया हरिरीश्वरः ॥ १९ ॥ माण्डव्यशापाद्भगवान्प्रजासंयमनो यमः ॥ भ्रातुः क्षेत्रे भुजिष्यायां जातः सत्यवतीसुतात् ॥ २० ॥

के लिये तिनको बहुमान कर बोले ॥ १७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, हे साधो ! सब लोकपर अनुग्रह कर ईश्वरमें मन लगाये अपने आत्माकी जगतमें कीर्ति फैलाते आपने यह भला प्रश्न किया ॥ १८ ॥ हे विदुर ! व्यासवीर्यसे जन्मे भये आपमें ये कुछ वैचित्र नहीं है, तुमनें सब प्रकारसे भावकरकै हरि ईश्वर ग्रहण कीने हैं ॥ १९ ॥ मांडव्यके शापसे सब प्रजाके दंडदाता यमराज विचित्रवीर्य भ्राताके क्षेत्रमें भुजिष्या दासीमें व्यासजीसे तुम जन्मतेभये ॥ २० ॥

भगवज्जनसहित भगवान्‌को तुम नित्य प्रिय हो जाको ज्ञान उपदेश करनेकी जातीविरियां भगवान् मोको आज्ञा करतेभये ॥ २१ ॥ अब तुमसे हम उत्पत्ति पालन नाशके कर्ता भगवानकी लीला विस्तारपूर्वक वर्णन करैं हैं जो योगमायासे बढी भई लीला है ॥ २२ ॥ इस सृष्टिकी उत्पत्तिके प्रथम एक नारायणही विद्यमान थे जो जीवोंके आत्मा है और उनसें भिन्न कुछ नहीं था न तौ आत्माही भिन्न था और न अनेक बुद्धि करके प्राप्त द्दश्यादि भेदभाव विद्यमान था ॥ २३ ॥ ता समय ये सर्व द्रष्टा प्रकाशमान ईश्वर सम्पूर्ण शक्तिसै प्रकाशित हौनेपरभी इस वैभवका कोई देखनेवारा न हौनेसे और मायादिक शक्तिलीन होनेसै अपनेकौ असत्सा मान्ते भये कि हम हैं तो सही परंतु कुछ नहीं हैं ॥ २४ ॥ हे महाभाग ! तब सर्वद्रष्टा या

भवान्भगवतो नित्यं संमतः सानुगस्य च ॥ यस्य ज्ञानोपदेशाय माऽऽदिशद्भगवान् व्रजन् ॥ २१ अथ ते भगवल्लीला योगमायोपबृंहिताः ॥ विश्वस्थित्युद्भवान्तार्था वर्णयाम्यऽनुपूर्वशः ॥ २२ ॥ भगवानेक आसेदमग्र आत्माऽऽत्मनां विभुः ॥ आत्मेच्छानुगतो वाऽऽत्मा नानामत्युपलक्षणः ॥ २३ ॥ स वा एष तदा द्रष्टा नापश्यद्दृश्यमेकराट् ॥ मेने ऽसन्तमिवात्मानं सुप्तशक्तिरसुप्तदृक् ॥ २४॥ सा वा एतस्य संद्रष्टुः शक्तिः सदसदात्मिका ॥ माया नाम महाभाग ययेदं निर्ममे विभुः ॥ २५ ॥ कामवृत्त्या तु मायायां गुणमय्यामधोक्षजः ॥ पुरुषेणात्मभूतेन वीर्यमाधत्त वीर्यवान् ॥ २६ ॥ ततोऽभवन्महत्तत्त्वमव्यक्तात्कालचोदितात् ॥ विज्ञानात्माऽऽत्मदेहस्थं विश्वं व्यञ्जंस्तमोनुदः ॥ २७॥ सोऽप्यंशगुणकालात्मा भगवद्दृष्टिगोचरः ॥ आत्मानं व्यकरोदात्मा विश्वस्याऽऽस्य सिसृक्षया ॥ २८॥

ईश्वरकी कार्यकारणरूपिणी ये मायानाम्नी महाशक्ति अनुसंधानरूपा उत्पन्न होतीभई, जासे समर्थ ईश्वर या सबको रचतभये ॥ २५॥ गुणमयी कालकी शक्तिसें मायामें पुरुषरूपकरकै परमेश्वर वीर्यवान् वीर्यको धारण करतेभये ॥ २६ ॥ कालप्रेरित अव्यक्त मायासें महतत्त्व भयो, तमोगुणको नाशक विज्ञान आत्मा जीवके देहमें स्थित होकर विश्वको प्रकाश करतोभयो ॥ २७ ॥ सो जीव अंश गुण काल आत्मा भगवत्‌की दृष्टिके सामनें या विश्वकी रचवेकी इच्छाकरके जीवात्मा अपनें आत्माको रूपांतर करतेभये ॥ २८ ॥

महत्तत्त्व जब विकारकों प्राप्त भयो, तब अहंतत्व भयो, कार्य कारण कर्ता जीव पंचभूत इंद्रिय मनोमय होतोभयो ॥ २९ ॥ वो अहंकार वैकारिक तैजस तामस भेदसें तीन प्रकारको भयो अहंकार विकारकों प्राप्त भयो तब विकारी अहंकारसें मन भयो ॥ ३० ॥ वैकारिक जो देवता भए उनसे शब्दादिक गुण प्रकाशक होयहैं, रजःसत्वमय ब्रह्मा विष्णु शिव हैं ॥ ३१ ॥ तैजस अहंकारसें ज्ञान कर्ममय इंद्रियें होयहैं, और तामस अहंकारसें पंचभूत सूक्ष्मकी आदि आकाश व्यापकको चिन्ह भयो " आकाशशरीरं ब्रह्मेति श्रुतेः " ॥ ३२ ॥ कालमायाके अंशयोगसें भगवत्करके देखोभयो

महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणादहंतत्त्वं व्यजायत ॥ कार्यकारणकर्त्रात्मा भूतेन्द्रियमनोमयः ॥ २९ ॥ वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्चेत्यहं त्रिधा ॥ अहंतत्त्वाद्विकुर्वाणान्मनो वैकारिकादभूत् ॥ ३० ॥ वैकारिकाश्च ये देवा अर्थाभिव्यञ्जनं यतः ॥ रजःसत्त्वमयाः प्रोक्ता ब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ ३१ ॥ तैजसानीन्द्रियाण्येव ज्ञानकर्ममयानि च ॥ तामसो भूतसूक्ष्मादिर्यतः खं लिङ्गमात्मनः ॥ ३२ ॥ कालमायांशयोगेन भगवद्वीक्षितं नभः ॥ नभसोऽनुसृतं स्पर्शं विकुर्वन्निर्ममेऽनिलम् ॥ ३३ ॥ अनिलोऽपि विकुर्वाणो नभसोरुबलान्वितः ॥ ससर्ज रूपतन्मात्रं ज्योतिर्लोकस्य लोचनम् ॥ ३४ ॥ अनिलेनान्वितं ज्योतिर्विकुर्वन्परवीक्षितम् ॥ आधत्ताऽम्भो रसमयं कालमायांऽशयोगतः ॥ ३५ ॥ ज्योतिषाऽम्भोऽनुसंसृष्टं विकुर्वद्ब्रह्मवीक्षितम् ॥ महीं गन्धगुणामाधात् कालमायांऽशयोगतः ॥ ३६ ॥ भूतानां नभ आदीनां यद्यद्भाव्यं परावरम् ॥ तेषां परानुसंसर्गान्यथासंख्यं गुणान्विदुः ॥ ३७ ॥

आकाशके पीछै स्पर्श भयो वाके विकारसे पवन भई ॥ ३३ ॥ आकाशके बहुत बलसें युक्त पवन जब विकारकों प्राप्त भई तब ताकी मात्रासहित सब लोकको लोचन रूप प्रकाश भयो ॥ ३४ ॥ परमेश्वरकरके देखो भयो पवनसहित ज्योति जब विकारको प्राप्त भयो तब कालमायाके अंशोंके योगसे रसमय जल भयो ॥ ३५ ब्रह्मकी इच्छासे ज्योतिकरके जलसहित कालमायाकें अंशोंके योगसै गंधगुणवारी पृथिवी भई ॥ ३६ ॥ हे विदुर ! आकाशआदि पंचभूतनके पर अवरके परम संगसे यथाक्रम गुणनको जानो आकाशको शब्द गुण है, वायुको स्पर्श गुण है, तेजको रूप गु-

ण है जलको रस गुण है परंतु पृथिवीसे सब होयहै ॥ ३७ ॥ काल माया अंशरूपी विष्णुके ये सब देवता कला हैं नानारूप होयवेसे ब्रह्मांड रचना करवेमें सामर्थ्य न भई, तब हाथ जोडकर परमेश्वरकी स्तुति करते भए ॥ ३८ ॥ सब देवता बोले कि हे देव ! शरणागततापनाशक छत्ररूप आपके चरणकमलकूं हम सब नमस्कार करैंहैं, जिनके चरणकमलके तलेमें वासी यति लोग संसारदुःखको दूरसें त्याग करैंहैं ॥ ३९ ॥ हे धातः हे आत्मन्! हे ईश! हे भगवन् ! तीन पापसे दुःखी या संसारमें जीव सुखकों नहीं प्राप्त होवै हैं याते विद्यासहित तुह्मारे चरणकी छायाको आसरो लेवैहैं ॥ ४० आपके चरण तीर्थरूप है इसकारण पापनाशक जलवारी उत्तम नदियोंमें श्रेष्ठ श्रीगंगाजीके स्थान चरणकमलकी शरणागत होय

एते देवाः कला विष्णोः कालमायांऽशयोगतः ॥ नानात्वात्स्वक्रियाऽनीशाः प्रोचुः प्राञ्जलयो विभुम् ॥ ३८ ॥ देवा
ऊचुः ॥ नमाम ते देव पदारविन्दं प्रपन्नतापोपशमातपत्रम् ॥ यन्मूलकेता यतयोऽञ्जसोरु संसारदुःखं बहिरुत्क्षिपन्ति
॥ ३९ ॥ धातर्यदस्मिन् भव ईश जीवास्तापत्रयेणोपहता न शर्म ॥ आत्मँल्लभन्ते भगवंस्तवाङ्घ्रिच्छायां सविद्यामत
आश्रयेम ॥ ४० मार्गन्ति यत् ते मुखपद्मनीडैश्छन्दःसुपर्णैर्ऋषयो विविक्ते ॥ यस्याऽघमर्षोदसरिद्वरायाः पदं पदं
तीर्थपदाः प्रपन्नाः ॥ ४१ ॥ यच्छ्रद्धया श्रुतवत्या च भक्त्या संमृज्यमाने हृदयेऽवधाय ॥ ज्ञानेन वैराग्यबलेन धीरा
व्रजेम तत् तेऽङ्घ्रिसरोजपीठम् ॥ ४२ ॥ विश्वस्य जन्मस्थितिसंयमार्थे कृतावतारस्य पदाम्बुजं ते ॥ व्रजेम सर्वे शरणं
यदीश स्मृतं प्रयच्छत्यऽभयं स्वपुंसाम् ॥ ४३ ॥

ऋषिलोग एकांतमें बैठ कर संसारके विषयोंको त्यागनेंहारे अपने अन्तःकरणमें कि तुह्मारा मुखही जिनका धौंसला है ऐसे आपके मुखसै निकले हुए वेद वेदरूपी पक्षियोंसैं आपको ढुंढतेहैं ॥ ४१ ॥जिन चरणकमलकी श्रद्धासें सुनी भई भक्तिसें शुद्ध हृदयमें धारणकर ज्ञान वैराग्यके बलकरकै धीर लोग आपके चरणकमलके धरवेके पीढाके पास जावै है ॥ ४२ ॥ हे ईश ! विश्वकी उत्पत्ति पालन नाशके लिये अवतार धारनेहारे तुह्मारे चरणकमलकी हम सब शरण हैं सो अपने पुरुषनको स्मरण करवे योग्य अभय देओ ॥ ४३ ॥

हे भगवन् ! सब तुच्छ सामग्रीवारे देह गेहमें मैं हूं मेरा है, ऐसे दुराग्रहसे देहपुरीमें वास करनेहारे पुरुषनको आप दुःखसेंभी नहीं प्राप्त होओहो तुह्मारे चरणकमलकों भजै है ॥ ४४ ॥ खोटे मार्गमें जायवेवारी इंद्रियोंसें जिनके मन हरे भये है हे उरुगाय ! वे आपके चरण धरवेके विलासकी शोभा नहीं देखैहै ॥ ४५ ॥ हे देव ! आपके कथामृत पानसे अत्यंत बढी भक्तिसे विशाल अंतःकरणवारे वैराग्यको सार ज्ञानकूं प्राप्त होय अनायासकरके श्रीवैकुंठलोककों चले जांयहैं ॥ ४६ ॥ तैसें औरभी आत्मयोगबलसे बली प्रकृतीको जीतकर धीर लोग पुरुषरूप तुममें प्रवेश करैहैं

यत् सानुबन्धेऽसति देहगेहे ममाहामित्यूढदुराग्रहाणाम् ॥ पुंसां सुदूरं वसतोऽपि पुर्यां भजेम तत्ते भगवन्पदाब्जम् ॥ ४४ ॥ तान्वा असद्वृत्तिभिरक्षिभिर्ये पराहृतान्तर्मनसः परेश ॥ अधो न पश्यन्त्युरुगाय नूनं ये ते पदन्यासविलासलक्ष्म्याः ॥ ४५ ॥ पानेन ते देव कथासुधायाः प्रवृद्धभक्त्या विशदाशया ये ॥ वैराग्यसारं प्रतिलभ्य बोधं यथाञ्जसाऽन्वीयुरकुण्ठाधिष्ण्यम् ॥ ४६ ॥ तथाऽपरे चात्मसमाधियोगबलेन जिन्वा प्रकृतिं बलिष्ठाम् ॥ त्वामेव धीराः पुरुषं विशन्ति तेषां श्रमः स्यान्न तु सेवया ते ॥ ४७ ॥ तत् ते वयं लोकसिसृक्षयाऽऽद्य त्वयाऽनुसृष्टास्त्रिभिरात्मभिः स्म॥सर्वे वियुक्ताः स्वविहारतन्त्रं न शक्नुमस्तत्प्रतिहर्तवे ते ॥ ४८ ॥ यावद्बलिं तेऽज हराम काले यथा वयं चान्नमदाम यत्र ॥ यथोभयेषां त इमे हि लोका बलिं हरन्तोऽन्नमदन्त्यनूहाः ॥४९॥ त्वं नः सुराणामसि सान्वयानां कुटस्थ आद्यः पुरुषः पुराणः ॥ त्वं देवशक्त्या गुणकर्मयोनौ रेतस्त्वजायां कविमादधेऽजः ॥ ५० ॥

जो तुह्मारी सेवा न करैंगे उनको परिश्रम होय है ॥ ४७ ॥ हे आद्य ! लोकके रचवेकी इच्छा करकै तीनों गुणोंसे तुमसे रचे हम विरुद्ध स्वभावसें विमुक्त हैं, सो आपके विहार करके या ब्रह्मांडकों आपकों समर्पण करवेको हमारी शक्ति नहीं है ॥ ४८ ॥ हे अज ! जबतक हम आपकों समयमें बलि देवैं जहां हम सब अन्नको जा प्रकारसे भक्षण करैं जैसे तुमको हमको ये सब निःसंदेह तर्क छोड कर लोग बलि देदेवैं अन्नको पावैं सो कीजियें ये प्रार्थना है " श्रुतिः—ता एनमब्रुवन्नायतनं नः प्रजानीहि यस्मिन्प्रतिष्ठिता अन्नमदामेति " ॥ ४९ ॥ हे देव ! तुम हमारे देवतानके सब वंशोंके आद्य पुरुष पुराण अविक्रिय अजन्मा हो सत्वादि गुण कर्मकी कारणरूप शक्ति मायामें क्रांतदर्शी वीर्यको धारण करतेभए ॥ ५० ॥

36

आत्मन् हे देव ! तातें सत्प्रमुख हम सब महदादि जो अर्थ हुएहैं सो आपको कहा काम करैं, सो हम आपके अनुग्रहके पात्र हैं हमको सब संसार रचवेकी सामर्थ्य शक्ति सहित अपना ज्ञान हमैं सब ओरसें देओ ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भा० भा० तृतीय० महदादिसर्गे सर्वदेवकृतस्तोत्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि जिनमें जीवोंके भोगके साधन सूक्ष्मरूपसै रहतेहैं उन पृथक् पृथक् महत्त्वादि शक्तियोंकी गति देखकर ॥ १ ॥ ता समय ईश्वर कालसंज्ञा देवी शक्तिकों धारण कर तेईस तत्वोंके गणमें एकसंग प्रवेश करतेभए ॥ २ ॥ सो भगवान् चेष्टारूप

ततो वयं सत्प्रमुखा यदर्थे बभूविमाऽऽत्मन्करवाम किं ते॥त्वं नः स्वचक्षुः परिदेहि शक्त्या देव क्रियार्थे यदनुग्रहाणाम् ॥५१॥इति श्रीभागवते म० तृतीयस्कन्धे महदादिसर्गे सर्वदेवकृतस्तोत्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः॥५॥ऋषिरुवाच॥ इति तासां स्वशक्तीनां सतीनामसमेत्य सः॥ प्रसुप्तलोकतन्त्राणां निशाम्य गतिमीश्वरः॥ १ ॥ कालसंज्ञां तदा देवीं बिभ्रच्छक्तिमुरुक्रमः॥ त्रयोविंशतितत्त्वानां गणं युगपदाविशत् ॥ २ ॥ सोऽनुप्रविष्टो भगवांश्चेष्टारूपेण तं गणम् ॥ भिन्नं संयोजयामास सुप्तं कर्म प्रबोधयन् ॥ ३ ॥ प्रबुद्धकर्मा दैवेन त्रयोविंशतिको गणः॥ प्रेरितोऽजनयत्स्वाभिर्मात्राभिरधिपूरुषम्॥४॥परेण विशता स्वस्मिन् मात्रया विश्वसृग्गणः॥ चुक्षोभान्योन्यमासाद्य यस्मिँल्लोकाश्चराचराः ॥ ५ ॥ हिरण्मयः स पुरुषः सहस्रपरिवत्सरान् ॥ आण्डकोश उवासाऽप्सु सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥ ६ ॥

करकै उस तत्त्वात्मक गणको प्रवेश कर फिर सुप्तकर्मको बोधन करते अलग अलग सब गणको इकट्ठो करतेभये ॥ ३ ॥ ईश्वरकरके प्रेरित जगोभयो तेईस तत्वोंको गण अपनें अंशोंकरकै विराटदेहकों उत्पन्न करतभयो ॥ ४ ॥ अपनें अंशोंसे ईश्वरनें जामें प्रवेश कीनों ऐसे विश्व रचवेवारेनको वो गण आपसमें इकट्ठा होय अपनेंमेंही चलायमान होतोभयो, जामैं चराचर लोक है ॥ ५ ॥ सुवर्णमय सब ब्रह्मांडको जामें खजानो, सब जीव करके बडोभयो वो पुरुष सहस्रवर्षपर्यंत जलमें वास करतोभयो ॥ ६ ॥

देव कर्म आत्मा इन तीन शक्तिवालो वो विश्वरचवेवारेनको गर्भ अपनी आत्माकरकै एक दश और तीन विभाग करतो भयो, देवशक्ति ज्ञानशक्तिसे हृदयमें चैतन्यरूपसे विराजे हैं, और कर्मशक्ति क्रियाशक्ति सें प्राणरूपकरकै दशरूप होयहैं, आत्माशक्ति भोक्तृशक्तिसे अध्यात्म अधिदैव अधिभूत तीनप्रकार होयहैं ॥७॥ परमात्माकी आत्माको अंश सब जीवमात्रके अंतर्यामी ये प्रथम अवतार हैं, जामें सब जीवमात्रको जन्म होय हैं॥८॥ अध्यात्म अधिदैव अधिभूत ये तीन प्रकारके हैं विराटप्राण दश प्रकारको है, एकरूपसै हृदयमें है ॥ ९ ॥ विश्वको रचवेवारेनके ईश्वर श्रीहरि ऐसे स्मरणकर विनती करतेभए विराटको अपनें तेजकरके इन महदादिकनकी वृद्धिके लिये तप करतेभये "यस्य ज्ञानमयं तप इति श्रुतेः" ॥ १० ॥ अव

स वै विश्वसृजां गर्भो देवकर्मात्मशक्तिमान् ॥ विबभाजात्मनात्मानमेकधा दशधा त्रिधा॥७॥ एष ह्यशेषसत्त्वानामात्मांशः परमात्मनः ॥ आद्योऽवतारो यत्रासौ भूतग्रामो विभाव्यते ॥८॥ साध्यात्मः साधिदैवश्च साधिभूत इति त्रिधा ॥ विराट्प्राणो दशविध एकधा हृदयेन च ॥ ९ ॥ स्मरन्विश्वसृजामीशो विज्ञापितमधोक्षजः ॥ विराजमतपस्त्वेन तेजसैषां विवृत्तये ॥ १० ॥ अथ तस्याभितप्तस्य कति चायतनानि ह ॥ निरभिद्यन्त देवानां तानि मे गदतः शृणु ॥ ११ ॥ तस्याग्निरास्यं निर्भिन्नं लोकपालोऽविशत्पदम् ॥ वाचा स्वांशेन वक्तव्यं ययाऽसौ प्रतिपद्यते ॥ १२ ॥ निर्भिन्नं तालु वरुणो लोकपालोऽविशद्धरेः ॥ जिह्वयांऽशेन च रसं ययाऽसौ प्रतिपद्यते ॥ १३ ॥ निर्भिन्ने अश्विनौ नासे विष्णोराविशतां पदम् ॥ घ्राणेनांऽशेन गन्धस्य प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥ १४ ॥

ऐसे तपस्वी विराटके मुख आदिक कितने स्थान देवतानके निकसे उनको मैं कहूं तुम सुनो॥११॥ जिस विराटके मुख भयो वामें लोकपालक अग्नि प्रवेश करतीभई, जा अपने वाणीके अंशकरकै ये विराट देह जो कछु कहिवेके योग्य है वाकूं प्राप्त होतोभयो मुख अधिष्ठान है १ वाणी इन्द्रिय है २ अग्नि देवता है ३ वचन विषय है४ ॥१२॥ हरिरूप विराटके तालु निकरौ धामें लोकपाल वरुणनें प्रवेश कीनों, जिस जिव्हाके अंशसे ये विराट देह रसस्वाद लेतोभयो॥१३॥वा व्यापक विष्णुके विराटमें नाक निकसी, तब अश्विनीकुमार प्रवेश करतेभये, घ्राणके अंशसे सुगंधकी सिद्धि होय है॥१४॥

विभुके विराट देहमें दो आंख निकसी, तब लोकपालक सूर्य प्रवेश करतेभए, जाते चक्षुके अंशसे रूपकी सिद्धि होय है ॥ १५ ॥ वा विराट देहमें चर्म निकसो, तो लोकपालक पवन प्रवेश करतेभए, प्राणके अंशसे याकों स्पर्श होयवेलगो ॥ १६ ॥ कान याके निकसे तो दिशानने अपनो स्थान जान प्रवेश कीनो, श्रोत्रके अंशसे शब्दकी सिद्धि याकों होतीभई ॥ १७॥ फेर याके त्वचा निकसी, तब सब औषधीनने प्रवेश कीनों जाके अंशसे रोंवाकरके खुजार होती भई ॥ १८ ॥ तिस देहके लिंग निकसो तो वामें ब्रह्माने वास कीनों, वीर्यके अंशसे आनंदसुख होतोभयो ॥

निर्भिन्ने अक्षिणी त्वष्टा लोकपालोऽविशद्विभोः ॥ चक्षुषांऽशेन रूपाणां प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥ १५ ॥ निर्भिन्नान्यस्य चर्माणि लोकपालोऽनिलोऽविशत् ॥ प्राणेनांऽशेन संस्पर्शं येनाऽसौ प्रतिपद्यते ॥ १६ ॥ कर्णावस्य विनिर्भिन्नौ धिष्ण्यं स्वं विविशुर्दिशः ॥ श्रोत्रेणांशेन शब्दस्य सिद्धिर्येन प्रपद्यते ॥ १७ ॥ त्वचमस्य विनिर्भिन्नां विविशुर्धिष्ण्यमौषधीः ॥ अंशेन रोमभिः कण्डूं यैरसौ प्रतिपद्यते ॥ १८ ॥ मेढ्रं तस्य विनिर्भिन्नं स्वधिष्ण्यं क उपाविशत् ॥ रेतसांऽशेन येनासावानन्दं प्रतिपद्यते ॥ १९ ॥ गुदं पुंसो विनिर्भिन्नं मित्रो लोकेश आविशत् ॥ पायुनांशेन येनाऽसौ विसर्गं प्रतिपद्यते ॥ २० ॥ हस्तावस्य विनिर्भिन्नाविन्द्रः स्वःपतिराविशत् ॥ वार्तयांशेन पुरुषो यया वृत्तिं प्रपद्यते ॥ २१ ॥ पादावस्य विनिर्भिन्नौ लोकेशो विष्णुराविशत् ॥ गत्या स्वांशेन पुरुषो यया प्राप्यं प्रपद्यते ॥ २२ ॥ बुद्धिं चास्य विनिर्भिन्नां वागीशो धिष्ण्यमाविशत् ॥ बोधनांशेन बोद्धव्यं प्रतिपत्तिर्यतो भवेत् ॥ २३ ॥

॥ १९ ॥ वा पुरुषके गुदा निकसी तो लोकेश मित्र प्रवेश करतेभये, जिस पायुके अंशसे मलत्याग करतोभयो ॥ २० ॥ फेर याके हाथ निकसे तब उनके स्वामी इंद्र प्रवेश करते भये वार्ताके अंशसे जिन हाथनसे सब वृत्ति ये विराटदेह करवेलगो ॥ २१ ॥ पाछे पांव याके निकसे तब लोकके ईश्वर विष्णु प्रवेश करतेभये चलनों ये अंशकरकै जो प्राप्ति योग्य होय वाको प्राप्त होतो भयो ॥ २२ ॥ पाछे याकों बुद्धि भई तब सरस्वती प्रवेश करतीभई, तब ज्ञानके अंशकरकै संकल्प विकल्प आदि क्रियानकों प्राप्त होतोभयो । न्यायशास्त्रमें है कि“ सर्वव्यवहारहेतुर्गुणो बुद्धि-

ज्ञानम्” सब व्यवहारको हेतु जो गुण वो ज्ञान बुद्धि है ॥ २३ ॥ या विराट् देहके हृदय भयो ताके चन्द्रमा देवता भए मनके अंश करके ये देह संकल्परूप विकारको प्राप्त होतो भयो ॥ २४ ॥ फेर अहंकार भयो तामैं अभिमन्यते अनेनेत्यभिमानः” सब ओरसे अभिमान करनेहारे रुद्र हृदयमें प्रवेश करते भए जा कर्मके अंशसे सब करवेयोग्य हो वाकी योग्यताको प्राप्त भयो ॥ २५ ॥ याके सत्व भयो तो ब्रह्माजी प्रवेश करते भए जा चित्तके कारण ये विराट विज्ञानको प्राप्त भयो ॥ २६ ॥ याको शिरसै स्वर्ग पांवसे धरती नाभीसे आकाशमें भई जिनमें गुणोंकी वृत्तियोंसे देवता आदि प्रतीत होते हैं ॥ २७ ॥ अत्यंत सतोगुण अधिकतर होनेसे देवता स्वर्गमें वसें रजोगुणके स्वभावसें यागादिकरकैं व्यवहार करवे लगे वे मनुष्य

हृदयं चास्य निर्भिन्नं चन्द्रमा धिष्ण्यमाविशत् ॥ मनसांऽशेन येनासौ विक्रियां प्रतिपद्यते ॥२४॥ आत्मानं चास्य
निर्भिन्नमभिमानोऽविशत्पदम् ॥ कर्मणांशेन येनासौ कर्तव्यं प्रतिपद्यते ॥ २५ ॥ सत्त्वं चास्य विनिर्भिन्नं महान्धि-
ष्ण्यमुपाविशत् ॥ चित्तेनांऽशेन येनाऽसौ विज्ञानं प्रतिपद्यते ॥ २६ ॥ शीर्ष्णोऽस्य द्यौर्धरा पद्भ्यां खं नाभेरुदपद्यत ॥
गुणानां वृत्तयो येषु प्रतीयन्ते सुरादयः ॥ २७ ॥ आत्यन्तिकेन सत्त्वेन दिवं देवाः प्रपेदिरे ॥ धरां रजःस्वभावेन पणयो
ये च ताननु ॥ २८ ॥ तार्तीयेन स्वभावेन भगवन्नाभिमाश्रिताः ॥ उभयोरन्तरं व्योम ये रुद्रपार्षदां गणाः ॥ २९ ॥
मुखतोऽवर्तत ब्रह्म पुरुषस्य कुरूद्वह ॥ यस्तून्मुखत्वाद्वर्णानां मुख्योऽभूद् ब्राह्मणो गुरुः ॥ ३० ॥ बाहुभ्योऽवर्तत क्षत्रं
क्षत्रियस्तदनुव्रतः ॥ यो जातस्त्रायते वर्णान्पौरुषः कण्टकक्षतात् ॥ ३१ ॥

और गौ आदिक पृथिवीपर प्राप्त होत भये “ पणंते व्यवहरंतीति पणयो मनुष्याः ” “ पण व्यवहारे स्तुतौ च ” या धातुसे ये शब्द सिद्ध है ॥२८॥ तीसरे तमोगुणसे भगवत्की नाभिके आश्रय वसे दोनोंके मध्यमें आकाश भयो जहां रुद्रके पार्षद गण वसते भये ॥ २९ ॥ हे राजन् वा पुरुषके मुखसें वेद ब्रह्म भयो मुखसे होनैसे वेद मुखसे कहिनेसे सब वर्णोंमें मुख्य ब्राह्मण गुरु होतो भयो ॥ ३० ॥ “ क्षतात्त्रायत इति क्षत्रम् ” बाहुसे पालनरूप कर्म भयो वासें क्षत्रिय भये चोरादिकोंके उपद्रवसें रक्षा किनी यासे ईश्वरांश भए जाने जन्मतेही वर्णोंकी रक्षा कीनी ॥ ३१ ॥

तिनके ऊरुसे कृष्यादिं व्यवहार भए, वो लोकके सब व्यवहार करवेवारे भए जिनसें वैश्य भए जो मनुष्यों की सब वार्ता वर्तती भई ॥३२॥ शुश्रूषा कर्मसिद्धिके अर्थ भगवान्के पांवसें सेवकाई वृत्ति भई पांवसे शूद्र भए जिनकी जीविकासें हरि प्रसन्न भए ॥ ३३ ॥ ये चारों वर्ण अपने धर्मसे अपने गुरु श्रीहरिकों पूजते भए श्रद्धाकरके आत्माकी विशुद्धिके अर्थ सब वृत्तियों करके सहित सब वर्ण होते भए ॥ ३४ ॥ हे क्षत्तः! दैव कर्म आत्मारूपी भगवान्को ये योग्यमायाको बल कौन कहिवेंको योग्यहै ॥ ३५ ॥ हे विदुर! जैसी मेरी मति है जैसो मैनें सुनों है तैसी श्रीहरिकी कीर्ति अपनीं वाणीको

विशोऽवर्तन्त तस्योर्वोर्लोकवृत्तिकरीर्विभोः ॥ वैश्यस्तदुद्भवो वार्तां नृणां यः समवर्तयत्॥३२॥पद्भ्यां भगवतो जज्ञे शुश्रूषाधर्मसिद्धये॥तस्यां जातः पुरा शूद्रो यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः ॥ ३३ ॥ एते वर्णाः स्वधर्मेण यजन्ति स्वगुरुं हरिम् ॥ श्रद्धयाऽऽत्मविशुद्ध्यर्थं यज्जाताः सह वृत्तिभिः ॥ ३४ ॥ एतत्क्षत्तर्भगवतो दैवकर्मात्मरूपिणः ॥ कः श्रद्दध्यादुपाकर्तुं योगमायाबलोदयम् ॥ ३५ ॥ अथाऽपि कीर्तयाम्यङ्ग यथामति यथाश्रुतम् ॥ कीर्तिं हरेः स्वां सत्कर्तुं गिरमन्याभिधां सतीम् ॥ ३६ ॥ एकान्तलाभं वचसोऽनु पुंसां सुश्लोकमौलेर्गुणवादमाहुः ॥ श्रुतेश्च विद्वद्भिरुपाकृतायां कथासुधायामुपसंप्रयोगम् ॥ ३७ ॥ आत्मनोऽवसितो वत्स महिमा कविनाऽऽदिना ॥ संवत्सरसहस्रान्ते धिया योगविपक्वया॥ ३८ ॥ अतो भगवतो माया मायिनामपि मोहिनी ॥ यत्स्वयं चात्मवर्त्मात्मा न वेद किमुताऽपरे ॥३९॥

सफल करवेको वर्णन करूहुं क्यों कि खोटी वाणी और और वर्णन करकै अशुद्ध होगई है ॥३६॥ पुरुषनके वचनको एकांतमें लाभ देवेवारो श्रुतियोंसै विद्वानोंने संग्रह कीनो कथामृतमें जाको वर्णन ऐसे सुंदर यशस्विनमें मुगुटमणि श्रीकृष्णजीके गुणानुवाद कहें हैं॥३७॥ हे विदुरजी! श्रीहरिकी महिमा ब्रह्मादिकरकै योगाभ्याससें पकी भई बुद्धिकरकै सहस्रसंवत्सरके अंतमेंभी जानवेको योग्य नहीं हैं ॥ ३८ ॥ या कारणसे भगवान्की माया मायावियोंकोभी मोह करायवेवारी है क्यों कि सर्वव्यापक श्रीहरि आप आपनीं मायाकी गतिको न जानसकैहैं औरनकी तो कहा चलाई है ॥ ३९ ॥

जिन ज्ञानके अर्थ मनकरकै सहित वाणी वर्णन करत करत जिनको न प्राप्त होकर उलटी बगद आवै है; हम और ये सब देवता जिन्है नहीं जानसकै हैं तिन षड्गुणऐश्वर्य संपत्तिमान भगवान्के अर्थ नमस्कार होय । भगवान् शब्दको ये अर्थ है कि "ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः॥ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इति स्मृतः ॥ १ ॥ " ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवतभा० तृतीयस्कन्धे विराड्देहे ईश्वरप्रवेशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि ऐसे कहते हुवे मैत्रेयजीसे व्यासपुत्र बुद्धिमान् विदुरजी वाणीसे प्रसन्न करते बोले ॥ १ ॥ विदुरजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! षड्गुण ऐश्वर्य संपत्तिमान् चैतन्यमात्र अविकारी निर्गुण बृहत्त्वादिगुणविशिष्ट चैतन्य ब्रह्मकी क्रिया और गुण लीला कैसे होयहै सो कहो ॥ २ ॥ बालकको क्रीडामें उद्यम करनो ये काम है और खेलकरवेकी इच्छा करनीं योग्य है परंतु अपने आप तृप्त सदा सब ओरसे निवृत्त ईश्वरकों काम और इच्छा कैसें होयहै सो कहो ॥ ३ ॥ गुणमयी अपनीं मायाकरकै या विश्वकों रचैहै वाहीसें स्थिति करैहै फेर संहार करैं हैं ॥ ४ ॥ देशते कालते अवस्थाते अपनेसे औरसें जाको ज्ञान नष्ट नहीं होय सो ये ईश्वर माया करकै कैसें संयुक्त होय है सो कहो ॥ ५ ॥ भगवान् एक है सबके क्षेत्रमें स्थित है इनको दुर्भागीपनो क्लेश होनो ये कर्मोंसें कैसे होय है सो कहो ॥ ६ ॥ हे विद्वन् हे विभो ! या अज्ञान संकटमें मेरो मन खेदकों प्राप्त

यतोऽप्राप्य निवर्तन्ते वाचश्च मनसा सह ॥ अहं चान्य इमे देवास्तस्मै भगवते नमः ॥ ४० ॥ इति श्रीभा० तृतीय० विराड्देहे ईश्वरप्रवेशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणं मैत्रेयं द्वैपायनसुतो बुधः ॥ प्रीणयन्निव भारत्या विदुरः प्रत्यभाषत ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ ब्रह्मन्कथं भगवतश्चिन्मात्रस्याऽविकारिणः ॥ लीलया चापि युज्येरन्निर्गुणस्य गुणाः क्रियाः ॥ २ ॥ क्रीडायामुद्यमोऽर्भस्य कामश्चिक्रीडिषाऽन्यतः ॥ स्वतस्तृप्तस्य च कथं निवृत्तस्य सदाऽन्यतः ॥ ३ ॥ अस्राक्षीद्भगवान्विश्वं गुणमय्याऽऽत्ममायया ॥ तया संस्थापयत्येतद्भूयः प्रत्यभिधास्यति ॥४॥ देशतः कालतो योऽसाववस्थातः स्वतोऽन्यतः ॥ अविलुप्तावबोधात्मा स युज्येताऽजया कथम् ॥ ५ ॥ भगवानेक एवैष सर्वक्षेत्रेष्ववस्थितः ॥ अमुष्य दुर्भगत्वं वा क्लेशो वा कर्मभिः कुतः ॥ ६ ॥ एतस्मिन्मे मनो विदन्खिद्यते ज्ञानसंकटे ॥ तन्नः पराणुद विभो कश्मलं मानसं महत् ॥ ७ ॥

52

होय है सो ये मनको महासंकट तुम दूरकरो ॥ ७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि, तत्त्व जानवेकी इच्छावारे विदुरने ऐसे मैत्रेय मुनिसे पूछी तब भगवतमें चित्तवारे मुनि कुछ मुसकायकै बोले ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि यही भगवानकी माया है जो कि तर्ककरकै विरुद्ध होवे है विमुक्त ईश्वरको कृपण होनो ये तर्कसे होय है ॥ ९ ॥ जा शिरइछेदनके विना स्वप्नके साक्षि पुरुषको मेरो या शिरछेदो ये आत्माको उलटो पुलटो होनो प्रतीत होय है ॥ १० ॥ जैसें जलमैं प्रतिबिंबित चंद्रमाको जलकी उपाधिको करो भयो कंपादि धर्मगुण दीखै है कुछ आकाशमें स्थित चंद्रमामें कंपादिक नहीं, तैसे आत्माको देहादिधर्म सत् नहीं है परंतु तदभिमानी द्रष्टा तदंतर्यामी ईश्वरको दीखै है सो ये केवल मिथ्या हैं ॥ ११ ॥ सो देहके गुणोंका

श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थं चोदितः क्षत्त्रा तत्त्वजिज्ञासुना मुनिः ॥ प्रत्याह भगवच्चित्तः स्मयन्निव गतस्मयः ॥ ८ ॥
मैत्रेय उवाच ॥ सेयं भगवतो माया यन्नयेन विरुध्यते ॥ ईश्वरस्य विमुक्तस्य कार्पण्यमुत बन्धनम् ॥ ९ ॥ यदर्थेन
विनाऽमुष्य पुंस आत्मविपर्ययः ॥ प्रतीयत उपद्रष्टुः स्वशिरश्छेदनादिकः ॥ १० ॥ यथा जले चन्द्रमसः कम्पादि-
स्तत्कृतो गुणः ॥ दृश्यतेऽसन्नपि द्रष्टुरात्मनो नात्मनो गुणः ॥ ११ ॥ स वै निवृत्तिधर्मेण वासुदेवाऽनुकम्पया ॥ भगवद्भक्ति-
योगेन तिरोधत्ते शनैरिह ॥ १२ ॥ यदेन्द्रियोपरामोऽथ द्रष्ट्रात्मनि परे हरौ ॥ विलीयन्ते तदा क्लेशाः संसुप्तस्येव कृत्स्नशः
॥ १३ ॥ अशेषसंक्लेशशमं विधत्ते गुणानुवादश्रवणं मुरारेः ॥ कुतः पुनस्तच्चरणारविन्दपरागसेवारतिरात्मलब्धा ॥ १४ ॥
विदुर उवाच ॥ संछिन्नः संशयो मह्यं तव सूक्तासिना विभो ॥ उभयत्राऽपि भगवन्मनो मे संप्रधावति ॥ १५ ॥

आत्मामें अज्ञानकृत आभास निश्चयकरकै निवृत्ति मार्गके धर्म करकै वासुदेवकी कृपासे भगवतकी भक्तियोगसे धीरेधीरेसें अर्थात् साधनके अनुसार सब नष्ट होजायहै तात्पर्य यह है कि जैसा साधनको करेगा उतने कालमें अज्ञान नष्ट होगा उत्तम साधनसे शीघ्र निकृष्ट साधनसे विलंब होगा ॥ १२ ॥ जब इंद्रियें शांत होय तब द्रष्टा आत्मा हरिमें सब क्लेश विशेष करकै लीन होय हैं, जैसै सोए भएको सब क्लेश दूर होय हैं ॥ १३ ॥ श्रीमुरारीके गुणानुवाद संपूर्ण क्लेशको शान्त करवेवारो हैं तैसेंई तिनके चरणारविंदकै परागको सेवामें प्रीति आत्माके लाभ करवेवारी है ॥ १४ ॥ विदुरजी बोले कि हे विभो! आपके सुंदर वचनरूप खड्गसें मेरे सब संशय कटगये परंतु हे भगवन्! जीव परतंत्र है ईश्वर स्वतंत्र है इन दोनों बा-

तनमें मेरो मन फेर संदिग्ध है सो कहो ॥ १५ ॥ हे ब्रह्मन् ! बहुत सुंदर बात कही कि श्रीहरि अपनी मायामें निवास करैहैं, परन्तु ये कछु सिद्धांत नहीं है निर्मूल है जो कि बाहरसे विश्वकी ये ही माया कारण है ॥१६॥ लोकमें जो अत्यंत मूर्ख है,वो सुखी है और जो अत्यंत बुद्धिमान् है वो सुखी हैं, और जो न मूर्ख है न बुद्धिमान् है जो अधवीचको जीव है वो क्लेशकों प्राप्त होयहैं ॥ १७ ॥ सबमें मालूम पडे ऐसे संसारमें अर्थके भावके निश्चय कर तुह्मारे चरणकी सेवा करकै वा [illegible]को त्याग करैहै ॥ १८ ॥ जिनकी सेवा करकैं सर्वांतर्य्यामी मधुद्वेषी भगवानके चरणोंमें सब दुःख-

साध्वेतद्व्याहृतं विद्वन्नात्ममायाऽयन हरेः ॥ आभात्यपार्थं निर्मूलं विश्वमूलं न यद्बहिः ॥ १६ ॥ यश्च मूढतमो लोके यश्च बुद्धेः परं गतः ॥ तावुभौ सुखमेधेते क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥ १७ ॥ अर्थाऽभावं विनिश्चित्य प्रतीतस्यापि नात्मनः ॥ तां चापि युष्मच्चरणसेवयाऽहं पराणुदे ॥१८॥ यत्सेवया भगवतः कूटस्थस्य मधुद्विषः ॥ रतिरासो भवेत्तीव्रः पादयोर्व्यसनार्दनः ॥ १९ ॥ दुरापा ह्यल्पतपसः सेवा वैकुण्ठवर्त्मसु ॥ यत्रोपगीयते नित्यं देवदेवो जनार्दनः ॥ २० ॥ सृष्ट्वाऽग्रे महदादीनि सविकाराण्यनुक्रमात् ॥ तेभ्यो विराजमुद्धृत्य तमनुप्राविशद्विभुः ॥ २१ ॥ यमाहुराद्यं पुरुषं सहस्राङ्घ्र्यूरुबाहुकम् ॥ यत्र विश्व इमे लोकाः सविकाशं समासते ॥२२॥ यस्मिन्दशविधः प्राणः सेन्द्रियार्थेन्द्रियस्त्रिवृत् ॥ त्वयेरितो यतो वर्णास्तद्विभूतीर्वदस्व नः ॥ २३ ॥ यत्र पुत्रैश्च पौत्रैश्च नप्तृभिः सह गोत्रजैः ॥ प्रजा विचित्राकृतय आसन्याभिरिदं ततम् ॥ २४ ॥

को विनाश करवेवारी तीव्र प्रीति होय है ॥ १९ ॥ थोडे तप करवेवारेको श्रीहरिके मार्गमें सेवा प्राप्त नहीं होय है, जा सेवामें देवनके देव जनार्दन नित्य गाए जाय हैं ॥ २० ॥ क्रमसे विकारसहित महदादिकोंको रचकर उनसें विराट् देह उत्पन्न कर विभु वामैं प्रवेश करते भए ॥ २१ ॥ सहस्र चरण ऊरु बाहु युक्त आद्य पुरुष जिनको कहैहैं, जामें सब विश्व ये लोक अवकाशसहित होयहैं ॥ २२ ॥ इंद्रिय इंद्रियोंके अर्थ सहित तीन वृत्तिवारे तुम्हारे कहे दशविध प्राण जामैं होते भए जाते सब वर्ण होयहैं तिनकी विभूती हमसें कहो ॥ २३ ॥ जा संसारमें पुत्र पौत्र नाती गोत्रके

---

१ तापै ये दोहा है कि–खर घूघू मूरख पशू, सदा सुखी सब मास । चातुर चकवा सुघड नर, आठो प्रहर उदास ॥ १ ॥

सहित अनेक प्रकारकी आकृतिकी प्रजा भई जासे ये विश्व विस्तृत भयो सो कहो ॥ २४ ॥ प्रजापतिनके मध्यमें कोंनको प्रजापति करतेभए, सर्ग
अनुसर्ग मनु मन्वंतरोंके मालक कौन भए सो कहो ॥ २५ ॥ हे मैत्रेयजी ! इनके वंश वंशोमें जो भए उनके चरित्र भूमिके ऊपर नीचे जो लोक हैं सो
हमसें कहो ॥ २६ ॥ तिनकी स्थिती तिनके प्रमाण कहो, भूलोकको प्रमाण, पशु मनुष्य देवता सर्प पक्षी इनको वर्णन करो ॥ २७ ॥ (संप्रदाय
कहो, कलियुगके धर्म कहो श्रीवैष्णव मत कहो) सर्गोंके विभाग गर्भसे जो होय पसीनेसे जो होय सो कहिये ॥ २८ ॥ गुण अवतार विश्वकी उत्पत्ति

प्रजापतीनां स पतिश्चक्लृपे कान्प्रजापतीन् ॥ सर्गांश्चैवानुसर्गांश्च मनून् मन्वन्तराधिपान् ॥ २५ ॥ एतेषामपि वंशांश्च
वंश्यानुचरितानि च ॥ उपर्यधश्च ये लोका भूमेर्मित्रात्मजासते ॥ २६ ॥ तेषां संस्थां प्रमाणं च भूर्लोकस्य च वर्णय
॥ तिर्यङ्मानुषदेवानां सरीसृपपतत्त्रिणाम् ॥ २७ ॥ (संप्रदायं कलेर्धर्मं श्रीवैष्णवमतं तथा) ॥ वद नः सर्गसंव्यूहं
गार्भस्वेदद्विजोद्भिदाम् ॥ २८ ॥ गुणावतारैर्विश्वस्य सर्गस्थित्यप्ययाश्रयम् ॥ सृजतः श्रीनिवासस्य व्याचक्ष्वोदारविक्रमम्
॥ २९ ॥ वर्णाश्रमविभागांश्च रूपशीलस्वभावतः ॥ ऋषीणां जन्मकर्मादि वेदस्य च विकर्षणम् ॥३०॥ यज्ञस्य
च वितानानि योगस्य च पथः प्रभो ॥ नैष्कर्म्यस्य च सांख्यस्य तन्त्रं वा भगवत्स्मृतम् ॥ ३१ ॥ पाखण्डपथवैषम्यं
प्रतिलोमनिवेशनम् ॥ जीवस्य गतयो याश्च यावतीर्गुणकर्मजाः ॥ ३२ ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां निमित्तान्यऽविरोधतः॥
वार्ताया दण्डनीतेश्च श्रुतस्य च विधिं पृथक् ॥ ३३ ॥

पालन नाश श्रीनिवास जो जो रचैहैं उनके उदारचारित्र कहो ॥२९॥ वर्ण आश्रमके विभागरूप शील स्वभाव ऋषीनके जन्मकर्म आदि वेदको विभाग
॥ ३० ॥ हे प्रभो ! यज्ञोंके विस्तार योगको मार्ग फलकी चाहना न करके कर्म करनो, सांख्य, भगवतको कह्यो नारद पंचरात्रतंत्र कहो ॥ ३१ ॥
पाखंडको मार्ग उनको उलटो होजानों, गुणकर्मसे जीवको जितनीं गती होयहैं सो कहो ॥ ३२ ॥ कोई तरहसें विरोध न पडै ऐसे धर्म अर्थ काम मोक्ष
कहो दंडनीतिकी वार्ता सुनवेकी अलग विधि कहो ॥ ३३ ॥

हे ब्रह्मन् ! श्राद्धकी विधि कहो पितरनकी सृष्टि ग्रह नक्षत्र तारा कालके अवयवोंकी स्थिति कहो ॥ ३४ ॥ दान तप इष्टापूर्तको फल परदेशको धर्म जो पुरुषको आपमें करनों वो धर्म कहो ॥ ३५ ॥ हे पापरहित ! धर्मके कारण भगवान् जिनसे प्रसन्न होय सो कहो, जिनके ऊपर भगवान् प्रसन्न भए सो कहो ॥ ३६ ॥ हे द्विजोत्तम ! अनुरागी शिष्यनको, पुत्रोंको, दीनवत्सल गुरु लोग विना पूछी बातभी कहि देतेहैं गुरु कौन कहावे है कि " गुकारस्त्वंधकारः स्याद् रुकारस्तन्निरोधकः ॥ अंधकारविनाशित्वाद्गुरुरित्यभिधीयते ॥ १ ॥ " गु अंधकारको कहैं है रु अंधकारका नाश करै वाको कहै

श्राद्धस्य च विधिं ब्रह्मन्पित्र्यां सर्गमेव च ॥ ग्रहनक्षत्रताराणां कालावयवसंस्थितम् ॥ ३४ ॥ दानस्य तपसो वाऽपि यच्चेष्टापूर्तयोः फलम् ॥ प्रवासस्थस्य यो धर्मो यश्च पुंस उताऽपदि ॥ ३५ ॥ येन वा भगवांस्तुष्येद्धर्मयोनिर्जनार्दनः ॥ संप्रसीदति वा येषामेतदाख्याहि चाऽनघ ॥ ३६ ॥ अनुव्रतानां शिष्याणां पुत्राणां च द्विजोत्तम ॥ अनापृष्टमपि ब्रूयुर्गुरवो दीनवत्सलाः ॥ ३७ ॥ तत्त्वानां भगवंस्तेषां कतिधा प्रतिसंक्रमः ॥ तत्रेमं क उपासीरन्क उ स्विदनुशेरते ॥ ॥ ३८ ॥ पुरुषस्य च संस्थानं स्वरूपं वा परस्य च ॥ ज्ञानं च नैगमं यत्तद्गुरुशिष्यप्रयोजनम् ॥ ३९ ॥ निमित्तानि च तस्येह प्रोक्तान्यनघ सूरिभिः ॥ स्वतो ज्ञानं कुतः पुंसां भक्तिर्वैराग्यमेव वा ॥ ४० ॥ एतान्मे पृच्छतः प्रश्नान्हरेः कर्मविवित्सया ॥ ब्रूहि मेऽज्ञस्य मित्रत्वादजया नष्टचक्षुषः ॥ ४१ ॥

अंधकारविनाश करै वाको गुरु कहे हैं ॥ ३७ ॥ हे भगवन् ! तत्वोंकी संख्या कहो, वा प्रलयमैं कौन इनकी उपासना करैहै, उनके पाछै कौन शयन करैहै ॥ ३८ ॥ पुरुषकी स्थिति परमेश्वरको स्वरूप निगमको ज्ञान, गुरु शिष्यको प्रयोजन कहो ॥ ३९ ॥ हे पापरहित ! जो महात्माननें कहेहैं वे निमित्त पुरुषनको अपने आप ज्ञान भक्ति वैराग्य कैसे होय सो कहो ॥ ४० ॥ श्रीहरिके कर्मोंकी जानवेकी इच्छाकरकै ये जो मैनें प्रश्न पूछेहैं सो

एक चेलेने गुरुकी बडी भारी सेवा बारह वर्षतक की, परन्तु उन्हौने उसै कछु पढाया नहीं जब बारह वर्षके उपरान्त उसका पिता आया उसने पूछी महाराज ! कुछ मेरा पुत्र पढा गुरुजी बोले लडके सै पूछलो कुछ देरके उपरान्त गुरुजी लघुशंका को गये और वह चेला गुरुजी के हाथ धुलाने आया गुरुजी हाथ धोतेथे तब उसके पिता बोले बेटा ! बारह वर्षमें तू क्या पढा वह बोला पिताजी ! सब कुछ, वह बोले क्या, लडका, संसार के जन्म मरण छुटानेवाली गुरुकी सेवा और भक्ति सीखी है, गुरुजी शिष्यके यह वचन सुनकर प्रसन्न होगये और दोनोंहाथ मट्टीलगे लोटेमें घंघोल दिये चेलासे बोले बेटा ! पीजा चेला बेही पीगया और चौदहो विद्यानिधान होगया, शिष्यौको सदां अनुकूल रहना उचितहै ।

आप कहो तुम मेरे मित्र हो माया करकै मेरी दृष्टि नष्ट होगई है ॥ ४१ ॥ हे पापरहित ! सब वेद यज्ञ तप दान जीवके अभय दान करनेको एक कलासेंभी समर्थ नहीं है ॥ ४२ ॥ श्रीशुकाचार्य बोले कि कौरवनमें प्रधान विदुरनें मुनिप्रधान पुराणोंमें जिनको वर्णन ऐसे मैत्रेयसे जब पूछी तब भगवतकी कथामें अत्यंत हर्ष बढनेके कारण तिनकी प्रेरणासे इस प्रकार बोले ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटिकायां तृतीयस्कंधे विदुरोक्तप्रश्नविधिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि बहुत आनंद है कि ये पुरुवंश संतोंके सेवाकरवे योग्य है, जो भगवानके मंत्री यमधर्मराज तुम भए, श्रीहरिकी कीर्तिरूप मालाको क्षणमें नवीनसी करौहौ ॥ १ ॥ मैं तुच्छ सुखके निमित्त महादुःखको प्राप्त मनुष्योंके उस दुःखके

सर्वे वेदाश्च यज्ञाश्च तपोदानानि चानघ ॥ जीवाभयप्रदानस्य न कुर्वीरन्कलामपि ॥४२॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थमापृष्टपुराणकल्पः कुरुप्रधानेन मुनिप्रधानः ॥ प्रवृद्धहर्षो भगवत्कथायां संचोदितस्तं प्रहसन्निवाऽह ॥४३॥ इति श्रीभा० तृती० विदुरोक्तप्रश्नविधिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ मैत्रेय उवाच ॥ सत्सेवनीयो बत पूरुवंशो यल्लोकपालो भगवत्प्रधानः ॥ बभूविथेहाजितकीर्तिमालां पदे पदे नूतनयस्यऽभीक्ष्णम् ॥ १ ॥ सोऽहं नृणां क्षुल्लसुखाय दुःखं महद्गतानां विरमाय तस्य ॥ प्रवर्तये भागवतं पुराणं यदाऽऽह साक्षाद्भगवानृषिभ्यः ॥ २ ॥आसीनमुर्व्यां भगवन्तमाद्यं संकर्षणं देवमकुण्ठसत्त्वम् ॥ विवित्सवस्तत्त्वमतः परस्य कुमारमुख्या मुनयोऽन्वपृच्छन् ॥ ३ ॥ स्वमेव धिष्ण्यं बहु मानयन्तं यं वासुदेवाभिधमामनन्ति॥ प्रत्यग्धृताक्षाम्बुजकोशमीषदुन्मीलयन्तं विबुधोदयाय॥४॥ स्वर्धुन्युदार्द्रैः स्वजटाकलापैरुपस्पृशन्तश्चरणोपधानम् ॥ पद्मं यदर्चन्त्याहिराजकन्याः सप्रेमनानाबलिभिर्वरार्थाः ॥ ५ ॥

दूर होनेके निमित्त भागवत पुराणको प्रारंभ करूंहूं जो साक्षात् शेष भगवाननें ऋषियोंसे कह्यो है ॥ २ ॥ पातालतलेमें विराजमान अप्रतिहत ज्ञानवाले आद्यसंकर्षण भगवान् शेषजीसे वासुदेव भगवानके तत्वकी जानवेकी इच्छाकरके सनत्कुमार आदि मुख्य मुनिलोग पूछते भए ॥ ३ ॥ जो शेषजी अपने ऊपर शयन करतेहुए वासुदेव भगवानको ध्यानमें अनुभव करकै सबसै अधिक उपचारसै पूजरहेहैं और भीतरको मिचीहुई नैन पंकजकी कलीको सनत्कुमारादि मुनियोंके अनुग्रहके अर्थ कुछ एक खोलरहेहैं ॥ ४ ॥ श्रीभागवतश्रवणको सत्यलोकसे

पातालमें गंगाद्वार होयके जाते भए श्रीगंगाजलसे भीजे भए अपनें जटासमूहों करके श्रीशेषजीके चरणकमलकों स्पर्श करै हैं जिन चरणनके धरवेके कमलको नागराजकन्या महाप्रेमसें नानाप्रकारकी बलियोंकरके अपनें पतिकी चाहनाकर पूजन करै हैं ॥ ५ ॥ अनुरागसे गद गद वचन करकै शेषजीके चरित्रनको तिनके माहात्म्य जानवेवारे वारंवार स्तुति करैहैं, जिनके हजारों किरीटोंके मणिरत्नोंसें सहस्र फण अत्यन्त प्रकाशित हो रहे हैं ॥ ६ ॥ निवृत्तिमार्गके धर्म में लगेभए सनत्कुमारके अर्थ निश्चयकर तिन भगवान् शेषजीनें भागवत सुनाई हे राजन् ! सर्व व्रतधारी सांख्यायनके पूछनेपर सनत्कुमारनें उनसैं कही ॥ ७ ॥ परमहंसोंमें मुख्य सांख्यायनजीकों भगवत्की विभूति कहिवेकी इच्छा भई तब वे

मुहुर्गृणन्तो वचसाऽनुरागस्खलत्पदेनाऽस्य कृतानि तज्ज्ञाः॥किरीटसाहस्रमणिप्रवेकप्रद्योतितोद्दामफणासहस्रम्॥६॥ प्रोक्तं किलैतद्भगवत्तमेन निवृत्तिधर्माभिरताय तेन॥ सनत्कुमाराय स चाह पृष्टः सांख्यायनायाऽङ्ग धृतव्रताय ॥७॥ सांख्यायनः पारमहंस्यमुख्यो विवक्षमाणो भगवद्विभूतीः ॥ जगाद सोऽस्मद्गुरवेऽन्विताय पराशरायाऽथ बृहस्पतेश्च ॥ ८ ॥ प्रोवाच मह्यं स दयालुरुक्तो मुनिः पुलस्त्येन पुराणमाद्यम् ॥ सोहं तवैतत्कथयामि वत्स श्रद्धालवे नित्यमनुव्रताय ॥ ९ ॥ उदाप्लुतं विश्वमिदं तदाऽऽसीद्यन्निद्रयाऽमीलितदृग् न्यमीलयत ॥ अहीन्द्रतल्पेऽधिशयान एकः कृतक्षणः स्वात्मरतो निरीहः ॥ १० ॥

अपनें समीपमें आए पराशर और बृहस्पति हमारे गुरुसे कहितेभये ॥ ८ ॥ पुलस्त्य मुनिकरके तुम पुराणवक्ता होओ इस प्रकार कहे गये पराशर मुनि दयालुभावसे मोसे आद्यपुराण भागवतको कहतेभये, हे वत्स ! हम श्रद्धालु नित्य सेवा करवेवारे आपसें कहैं हैं या प्रसंगमैं ऐसे कथा है कि " पिताको राक्षसभक्षित सुन पराशर राक्षसोंके मारवेको यज्ञमें प्रवर्त्त भए, तब वसिष्ठजीके वचनसे निवृत्त भए, तब पुलस्त्यने अपनी संतानके रक्षासे प्रसन्न होय वर दीनों कि तुम पुराणोंके वक्ता होओगे " ॥ ९ ॥ जा समय महाप्रलयमें ये विश्व नष्ट होयगो, ता समय चिच्छक्तिको न त्यागकरके नेत्र मीचते भये शेषशय्यापर शयन कर एक श्रीमन्नारायण सावकाश पायकर अपनीं आत्माकी रतिमें चेष्टारहित होते भए ॥ १० ॥

शरीरके भीतर भूत सूक्ष्म अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गंधकी तन्मात्राओंके धारण करनेहारे कालरूप शक्तिकी प्रेरणा करनेहारे भगवान् अपने स्थानरूप जलमें वसतेभये, जैसे काष्ठमें अग्नि अपनें पराक्रमकों रोक कर निवास करें है जो घिसो तो वाही काष्ठमें अग्नि उत्पन्न होयहै ॥ ११ ॥ चारों युगोंके हजारों वर्ष पर्यंत वा जलमें सोवतेभये, अपनी प्रेरित अपनी कालरूपा शक्ति करके सब कर्मकों प्राप्त भये ईश्वर सब लोकनको अपनेंमें लीन देखतेभये॥१२॥भूक्ष्म अर्थमें सब ओरसे जिनकी प्रविष्ट दृष्टि तिन ईश्वरके भीतरको जो अर्थ हो सो रजोगुणसे सूक्ष्म होय कालके अनुसार गुणकरकै चलायमान होय सूखो तब नाभिसे कमल भयो॥१३॥कर्मको प्रतिबोधक काल करकै एक संग वो सबको खजानों कमल ऊगो वह अपनीं

सोऽन्तःशरीरेऽर्पितभूतसूक्ष्मः कालात्मिकां शक्तिमुदीरयाणः ॥ उवास तस्मिन्सलिले पदे स्वे यथाऽनलो दारुणि रुद्धवीर्यः ॥ ११ ॥ चतुर्युगानां च सहस्रमप्सु स्वपन्स्वयोदीरितया स्वशक्त्या ॥ कालाख्ययाऽऽसादितकर्मतन्त्रो लोकानपीतान्ददृशे स्वदेहे ॥ १२ ॥ तस्याऽर्थसूक्ष्माभिनिविष्टदृष्टेरन्तर्गतोऽर्थो रजसा तनीयान् ॥ गुणेन कालानुगतेन विद्धः सूष्यंस्तदाऽभिद्यत नाभिदेशात् ॥ १३ ॥ स पद्मकोशः सहसोदतिष्ठत्कालेन कर्मप्रतिबोधनेन ॥ स्वरोचिषा तत्सलिलं विशालं विद्योतयन्नर्क इवात्मयोनिः ॥ १४ ॥ तल्लोकपद्मं स उ एव विष्णुः प्रावीविशत्सर्ग्गुणावभासम् ॥ तस्मिन्स्वयं वेदमयो विधाता स्वयंभुवं यं स्म वदन्ति सोऽभूत्॥ १५॥तस्यां स चाम्भोरुहकर्णिकायामवस्थितो लोकमपश्यमानः ॥ परिक्रमन्व्योम्नि निवृत्तनेत्रश्चत्वारि लेभेऽनुदिशं मुखानि ॥ १६॥ तस्माद्युगान्तश्वसनावघूर्णजलोर्मिचक्रात्सलिलाद्विरूढम् ॥ उपाश्रितः कञ्जमु लोकतत्त्वं नात्मानमद्धाऽविददादिदेवः ॥ १७ ॥

कांति करकै उस विशाल जलको प्रकाश करत सूर्यकी नाईं आप सबके कारण होते भए॥१४॥सब गुणनको प्रकाश करवेवारो सो वो लोकको कमल भयो, तामें श्रीविष्णु प्रवेश करते भये तामें अपने आप वेदमय ब्रह्मा भए, जाको स्वयंभू कहैहैं॥१५॥तिस कमलकी कलीनके मध्यमें ब्रह्माजीको जब लोक न दीखैं तो आकाशमें सब ओर नेत्र घुमाये तब चारों दिशा देखवेंको चार मुख होतेभए॥१६॥प्रलयवायुसे कंपित जलकी लहरोंसे भंवर पडनेहारे सागरके जलसे उत्पन्न सब लोकके तत्वयुक्त कमलमें विराजमान सबके आदिदेव ब्रह्मा साक्षात् अपनपेको और कमलको न जानतेभये ॥१७॥

जो हम कमलके ऊपर हैं सो कौन है, एक ये कमल जलमें कहांसे भयो, नीचेतक है कि यहां ही है, जो ये यहां स्थित है सो कोई नीचे है ताकरकै वर्तमान है ये निश्चय भावना होयहै। तथा च श्रुतिः " सोऽपश्यत्पुष्करपर्णें तिष्ठन्सोमन्यत आस्ति वै तद्यास्मिन्निदमधितिष्ठतीति " ॥ १८॥ सो ब्रह्माजी ऐसे देख वा कमलकी नालकरकै जलके भीतर चलेगए, पीछे कमलकी नाल तिनकी नाभी जहां वो नाभि है ये ढूंढते ढूंढते नालसे बाहर नि[illegible]से परंतु वाको ठिकानों न लगो ॥ १९ ॥ हे विदुर! अपार अंधकारमें अपने रचवेवारेको ढूंधते भए ब्रह्माको बहुत काल होतोभयो जो अजन्मा ईश्वरको [illegible]ल देहधारियोंको भय देतो भयो, श्रीविष्णुको सुदर्शन चक्र कालरूप सबकी आयु क्षीण करतो भयो, एतावता अभिप्राय ये है कि शत

क एष योऽसावहमब्जपृष्ठ एतत्कुतो वाऽब्जमनन्यदप्सु ॥ अस्ति ह्यधस्तादिह किंचनैतदधिष्ठितं यत्र सतानुभाव्यम् ॥ १८ ॥ स इत्थमुद्वीक्ष्य तदब्जनालनाडीभिरन्तर्जलमाविवेश ॥ नार्वाग्गतस्तत्खरनालनालनाभिं विचिन्वंस्तदविन्दताऽजः ॥ १९ ॥ तमस्यपारे विदुरात्मसर्गं विचिन्वतोऽभूत्सुमहांस्त्रिणेमिः ॥ यो देहभाजां भयमीरयाणः परिक्षिणोत्यायुरजस्य हेतिः ॥ २० ॥ ततो निवृत्तोऽप्रतिलब्धकामः स्वधिष्ण्यमासाद्य पुनः स देवः ॥ शनैर्जितश्वासनिवृत्तचित्तो न्यषीददारूढसमाधियोगः ॥ २१ ॥ कालेन सोजः पुरुषायुषाऽभिप्रवृत्तयोगेन विरूढबोधः ॥ स्वयं तदन्तर्हृदयेऽवभातमपश्यताऽपश्यत यं न पूर्वम् ॥२२॥ मृणालगौरायतशेषभोगपर्यङ्क एकं पुरुषं शयानम् ॥ फणातपत्रायुतमूर्धरत्नद्युभिर्हतध्वान्तयुगान्ततोये ॥ २३ ॥

संवत्सरतक ढूंढो तोंहु पार न पायो ॥ २० ॥ तौ अपनी कामना पूरी न होनेसै निवृत्त होय फेर ब्रह्मदेव अपने कमलपर आय कर बैठे, धीरेंसे श्वास जीत सबसे निवृत्त चित्त कर समाधियोगमें लगकर बैठतेभये ॥ २१ ॥ सौ वर्षके उपरांत वा योगसें ज्ञान भयो, सो आप अपनें हृदयमें प्रकाशक जिन्हें कभी न देखो तिनको देखतेभये ॥ २२ ॥ जो ईश्वर ब्रह्मानें देखे उनको नव श्लोकसें वर्णन करे हैं कि कमलनालवत् गौर विस्तृत शेषजीके फण रूप शय्यापर एक पुरुष सोते हैं, जो दस हजार फणोंके छत्ररूप मस्तकोंके रत्नोंकी कांतिकरकै महाप्रलयके अंधकारकों दूर करैहै ॥ २३ ॥

संध्याकालीनमेघवत् पीतांबर पहिरे अनेक सुवर्ण शिखर युक्त किरीट रत्न जलधारा औषधि पुष्प वनमालासै शोभायमान वांसरूपभुजा व वृक्षरूप चरणवाले हरितमणिके पर्वतकी कांतिको अपनी आभासे तिरस्कार करते ॥ २४ ॥ अति दीर्घ विस्तृत अपनो मान करवेवारो लोकत्रयके संग्रह देह करकै तथा विचित्र दिव्य आभरण वस्त्रोंकी शोभाकरके देहको अलंकार किये ॥ २५ ॥ अपनीं अपनीं कामनासे वेदगीत मार्गोंसे पूजतेहुवे मनुष्योंको नखरूप चन्द्रोंकी किरणोंसे सुन्दर पृथक् पृथक् अङ्गुलीरूप पत्र युक्त सम्पूर्ण कामनाके देनेंहारे चरणकमलको कछु ऊपरको उठाके दिखातेभये ॥ २६ ॥ लोककी पीडानाशक मुसकान और सब ओरसे दमकनेहारे कुंडलोंसे शोभित लाल कुंदरीफलवत् होठनकी कांति करकै सुंदर नाक सुंदर

प्रेक्षां क्षिपन्तं हरितोपलाद्रेः सन्ध्याभ्रनीवेरुरुरुक्ममूर्ध्नः ॥ रत्नोदधारौषधिसौमनस्यवनस्रजो वेणुभुजाङ्घ्रिपाङ्घ्रेः ॥२४॥
आयामतो विस्तरतः स्वमानदेहेन लोकत्रयसंग्रहेण ॥ विचित्रदिव्याभरणांशुकानां कृतश्रियाऽपाश्रितवेषदेहम् ॥२५॥
पुंसां स्वकामाय विविक्तमार्गैरभ्यर्चतां कामदुघाङ्घ्रिपद्मम्॥प्रदर्शयन्तं कृपया नखेन्दुमयूखभिन्नाङ्गुलिचारुपत्रम्॥२६॥
मुखेन लोकार्तिहरस्मितेन परिस्फुरत्कुण्डलमण्डितेन॥शोणायितेनाधरबिम्बभासा प्रत्यर्हयन्तं सुनसेन सुभ्र्वा ॥२७॥
कदम्बकिञ्जल्कपिशङ्गवाससा स्वलंकृतं मेखलया नितम्बे॥हारेण चानन्तधनेन वत्स श्रीवत्सवक्षःस्थलवल्लभेन॥२८॥
परार्ध्यकेयूरमणिप्रवेकपर्यस्तदोर्दण्डसहस्रशाखम् ॥ अव्यक्तमूलं भवनाङ्घ्रिपेन्द्रमहीन्द्रभोगैरधिवीतवल्शम् ॥ २९ ॥

भ्रू संयुक्त मुखसें अपने पूजन करवेवारे पुरुषोंको सन्मान करतेहुए ॥ २७ ॥ कदंबके केसरवत् पीरे पीतांबर और क्षुद्रघंटिका करकै कटिपश्चाद्भाग सुंदर अलंकृतकिये हे वत्स! बढमोले हारसें श्रीजीको चिन्ह भृगुलता वक्षस्थलमें शोभित ॥ २८ ॥ महाचंदन वृक्षरूप करकै वर्णन करैं हैं, कि बढमोले बाजूनकी श्रेष्ठ मणिसे भुजादंड सहस्र शाखातुल्य व्याप्त होयरहीहै, जैसे चंदनवृक्ष केयूरादितुल्य फल पुष्पादि व्याप्त होयहै अप्रगट जाकी मूल सकल भुवनात्मक वृक्षेंद्र शेषजीके फणोंसें स्कंधादि शाखा युक्त ईश्वर हैं जैसी वेदमें श्रुतिहै “ वनस्पते शतवल्शो विरोहेति ” जैसे चंदन सर्पोंसे वेष्टित होय है, महाशेषजी करकै वेष्टित परमेश्वर हैं ॥ २९ ॥

चर अचरके निवासरूप भगवान् शेषजीके बंधु जलसे आवृत सहस्रकिरीट सुवर्ण शृंगसमान कौस्तुभ रत्न जिनके स्वरूपमें प्रतीत होरहाहै ऐसे पर्वतकी शोभा धारण करनेहारे ऐसे ईश्वर ॥३०॥ वेदरूप भ्रमरौंकरकै शोभायमान अपनी कीर्तिरूप वनमाला कंठमें पहिरै, सूर्य चंद्रमा वायु अग्नि जिसै न जानरूकै, त्रिलोकीमें स्फूर्तिवारे रक्षाके निमित्त चारोंओर धावमान सुदर्शनादि शस्त्रके प्रभावसै दुष्प्राप श्रीहरिका दर्शन किया ॥ ३१ ॥ जा समय भगवानको देखो वाही समयमें नाभिसरोवरमें कमल अपनों देह, प्रलयको जल, पवन, वायु, आकाश, जगत्के विधान करवेंवारे ब्रह्माजी देखते भए, यासे परै लोकके विशेष करके रचवेकी दृष्टि न देखतेभए ॥ ३२ ॥ सो ब्रह्मा सब कर्मनको बीज रजोगुणकरकै युक्त प्रजा रचवेकी इच्छाकी

चराचरौंको भगवान् महीध्रमहीन्द्रबन्धुं सलिलोपगूढम् ॥ किरिटसाहस्रहिरण्यशृङ्गमाविर्भवत्कौस्तुभरत्नगर्भम् ॥ ३० ॥ निवीतमाम्नायमधुव्रताश्रिया स्वकीर्तिमय्या वनमालया हरिम् ॥ सूर्येन्दुवाय्वग्न्यगमं त्रिधामभिः परिक्रमत् प्राधनिकैर्दुरासदम्॥ ३१ ॥ तर्ह्येव तन्नाभिसरःसरोजमात्मानमम्भः श्वसनं वियच्च ॥ ददर्श देवो जगतो विधाता नातः परं लोकविसर्गदृष्टिः ॥ ३२ ॥ स कर्मबीजं रजसोपरक्तः प्रजाः सिसृक्षन्नियदेव दृष्ट्वा ॥ अस्तौद्विसर्गाभिमुखस्तमीड्यमव्यक्तवर्त्मन्यभिवेशितात्मा ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे ब्रह्मणा सर्वोत्कृष्टश्रीमन्नारायणस्वरूपवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ज्ञातोऽसि मेऽद्य सुचिरान्ननु देहभाजां न ज्ञायते भगवतो गतिरित्यवद्यम् ॥ नान्यत्त्वदस्ति भगवन्नपि तन्न शुद्धं मायागुणव्यतिकराद्यदुरुर्विभासि ॥ १ ॥

दृष्टि करकै, विसर्गमें चित्त लगाये श्रीभगवतके अप्रगट मार्गमें निवेशितचित्त, ब्रह्माजी स्तुतियोग्य भगवानकी स्तुति करते भए ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवतभा० तृतीयस्कंधे ब्रह्मणा सर्वोत्कृष्टश्रीमन्नारायणस्वरूपवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ अब ब्रह्माजी भगवत्स्वरूपको ज्ञान होजानेसे अपनी कृतार्थताको प्रसिद्ध करते हुए अज्ञ पुरुषोंको शोचते बोले कि बहुत काल तपकरके अब मैंनें आपको जानौ देहधारियोंकरकै भगवानकी गति न जानीजायहै देह धारीयौंके यह बडे दीन हैं कि भगत्स्वरूप आपके तत्वको ये नहीं जान्तैहैं हे भगवन् ! तुमसे परे ओर कोई शुद्ध नहीं है, क्योंकि मायागुणोंके चलायमान होनेसै तुम बहुत रूपको प्रकाश करोहो ॥ १ ॥

अब ब्रह्माजी तुमभी अच्छीतरह हमारे स्वरूपको नहीं जानतेहो क्यों कि जो यह रूप तुमनें देखाहै सोभी गुणात्मकहै और सत्य तो निर्गुण ब्रह्म ही है इस शंकाको उठाके समाधान करेहै कि ज्ञानरससूर्यके उदयसे जिसमें तमोगुणका लेशभी नहींहै ऐसे यह तुम्हारा सहस्रों अवतारोंका बीजरूप स्वरूप है जो तुमनें भक्तोंपर अनुग्रह करनेके निमित्त धारण कियाहै जिसके नाभिकमलसै मैं उत्पन्नहुआ ॥ २ ॥ हे परम ! हे आत्मन् ! आनंदमात्र ! संकल्प विकल्प रहित सदा तेजोमय आपका रूप इस शरीरसो भिन्न नहीं इस कारण जगतके उत्पन्न करनेहारे जगतसै पृथक् पंचमहाभूत और इंद्रियोंके कारण रूपमें आपके इस स्वरूपकी शरण हूं ॥ ३ ॥ हे भुवनमंगल ! ध्यानमें हमसरीखे उपासकोंको चतुर्दश भुवननको मंगलदायक

रूपं यदेतदवबोधरसोदयेन शश्वन्निवृत्ततमसः सदनुग्रहाय ॥ आदौ गृहीतमवतारशतैकबीजं यन्नाभिपद्मभवनादहमाविरासम् ॥ २ ॥ नातः परं परम यद्भवतः स्वरूपमानन्दमात्रमविकल्पमविद्धवर्चः ॥ पश्यामि विश्वसृजमेकमविश्वमात्मन् भूतेन्द्रियात्मकमदस्त उपाश्रितोऽस्मि ॥ ३ ॥ तद्वा इदं भुवनमङ्गल मङ्गलाय ध्याने स्म नो दर्शितं त उपासकानाम् ॥ तस्मै नमो भगवतेऽनुविधेम तुभ्यं योऽनादृतो नरकभाग्भिरसत्प्रसङ्गैः ॥ ४ ॥ ये तु त्वदीयचरणाम्बुजकोशगन्धं जिघ्रन्ति कर्णविवरैः श्रुतिवातनीतम् ॥ भक्त्या गृहीतचरणः परया च तेषां नापैषि नाथ हृदयाम्बुरुहात्स्वपुंसाम् ॥ ५ ॥ तावद्भयं द्रविणगेहसुहृन्निमित्तं शोकः स्पृहा परिभवो विपुलश्च लोभः ॥ तावन्ममेत्यसदवग्रह आर्तिमूलं यावन्न तेऽङ्घ्रिमभयं प्रवृणीत लोकः ॥ ६ ॥ दैवेन ते हतधियो भवतः प्रसङ्गात्सर्वाशुभोपशमनाद्विमुखेन्द्रिया ये ॥ कुर्वन्ति कामसुखलेशलवाय दीना लोभाभिभूतमनसोऽकुशलानि शश्वत् ॥ ७ ॥

ये स्वरूपको दर्शन करायो ऐसे भगवानके अर्थ नमस्कार होय नरकभागी खोटे प्रसंग करनेहारे या सगुणरूपको तिरस्कार करैहैं ॥ ४ ॥ वेदसे प्राप्त तुह्मारे चरणकमलकी सुगंधीको जो सूंघे है जिन्हौनें परमभक्तिसे चरण ग्रहणकियेहैं हे नाथ! ऐसे पुरुषोंके हृदयकमलसैं आप नहीं जाओ हो ॥ ५ ॥ जबतक ये लोक आपके अभयदायक चरणनको आश्रय न लेवें हैं, तबतक याको धन घरमें भय होयहै, सुहृदनके निमित्त शोक चाहै अनादर बहुत लोभ मोह होयहै, ये खोटो आग्रह पीडा होयहै ॥ ६ ॥ भाग्यसे बुद्धि नष्ट होनेंसे तुम्हारी

सब अशुभनाशक कथातें विमुख हो, लोभसे भ्रष्टचित्त होनेके कारण वे मनुष्य कामसुखलेशमात्रके लिये सदा जिनसे अपने निमित्त अमंगल दायक कर्म करैहैं ॥ ७ ॥ हे उरुक्रम ! भूख प्यास वात पित्त कफसे वारंवार पीडित, शीत गर्मी वात वर्षा सें दुःखी, काम अग्निसे भगवतके अत्यंतक्रोधसे दुःखी इन प्रजानको देखतो भयो मेरो मन बहुत दुःखी होयहै ॥ ८ ॥ हे देव ! हे ईश्वर ! जबतक यह प्राणी आपकी इन्द्रिय और विषय रूप मायासे वृद्धिको प्राप्त हुए इस देहादिके भेद भावको देखैहै तबतक दुःखसमूह संयुक्त जन्म मरण का देनेवाला यह संसार व्यर्थ होनेपरभी नहीं छूटता ॥९॥ हे देव ! दिनमें क्लिष्ट कर्ममें इन्द्रियें मन लगावें, रातको सोतेमें नाना मनोरथोंमें ध्यान लगाये क्षणक्षणमें निद्रासे जाग

क्षुत्तृट्त्रिधातुभिरिमा मुहुरर्द्यमानाः शीतोष्णवातवर्षैरितरेतराच्च ॥ कामाग्निनाऽच्युत रुषा च सुदुर्भरेण संपश्यतो मन उरुक्रम सीदते मे ॥ ८॥ यावत्पृथक्त्वमिदमात्मन इन्द्रियार्थमायाबलं भगवतो जन ईश पश्येत् ॥ तावन्न संसृतिरसौ प्रतिसंक्रमेत व्यर्थाऽपि दुःखनिवहं वहति क्रियार्था ॥ ९ ॥ अह्न्यापृतार्तकरणा निशि निःशयाना नानामनोरथधिया क्षणभग्ननिद्राः॥दैवाहतार्थरचना ऋषयोऽपि देव युष्मत्प्रसङ्गविमुखा इह संसरन्ति ॥ १० ॥ त्वं भावयोगपरिभासितहृत्सरोज आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम् ॥ यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय ॥ ११ ॥ नातिप्रसीदति तथापचितोपचारैराराधितः सुरगणैर्हृदि बद्धकामैः॥यत्सर्वभूतदययाऽसदलभ्ययैको नानाजनेष्ववहितः सुहृदन्तरात्मा ॥ १२ ॥

उठते हैं दैवने जिनके धनके उद्यमको नष्ट कर दिया ऐसे तुह्मारी कथासे विमुख ऋषिलोग या संसारमें जन्में मरैं हैं ॥ १० ॥ हे उरुगाय ! हे नाथ ! भावयोग शोधित हृदयकमलमें श्रवण करनेसे जिनका मार्ग विदित होताहै ऐसे आप सदा विराजत हो और वे भक्तजन अपनी इच्छासे जिस २ रूपका ध्यान करते हैं जो जो बुद्धि करके अपनी इच्छासे तैसो तैसो स्वरूप भक्तनपर कृपाकर तुम धारण करोहो ॥ ११ ॥ हृदयोंमें जिनके अनेक कामना लगी ऐसे देवसमूहोंके रचे उपचार आराधनसे तैसे नहीं प्रसन्न होओहो, जैसे सब जीवमात्रपर दया करनेवारे पर प्रसन्न होतेहो जिसका मिलना अभक्त पुरुषोंको दुर्घट है कारण कि तुम सब प्राणियोंके अन्तर्यामी रूपसे विराजमान सबके सुहृदरूप हो ॥ १२ ॥

यातै पुरुषनको अनेक कर्म यज्ञादिक दान तथा उग्रव्रतसें आप को आराधन करनो यही कर्मका श्रेष्ठ फल है कारण कि आपको समर्पण किया कर्म कभी नष्ट न होयहै ॥ १३ ॥ सदा स्वरूपके तेजसे भेद मोह नाशक, ज्ञान बुद्धि युक्त परेसें परे विश्वकी उत्पत्ति पालन नाशके निमित्त लीला करनेहारे ईश्वरके अर्थ नमस्कार होय ॥ १४ ॥ जिनके अवतारकथन देवकीनंदन आदि, गुणकथन सर्वज्ञ भक्तवत्सल इत्यादि, कर्मकथन गोवर्द्धनका उद्धरण कंसाराति इत्यादिक, प्राण निकसवेके समय विवश होयकै जिनको नाम लेहैं वे अनेक जन्मके पाप नाशकर शीघ्र सत्यस्वरूप ईश्वरको प्राप्त होयहैं ऐसे ईश्वरके हम शरणागत हैं ॥ १५ ॥ हम शिव विष्णु आप उत्पत्ति पालन नाशके हेतु आप जाकी जड, ब्रह्मादिक तीन जाके बडे

पुंसामतो विविधकर्मभिरध्वराद्यैर्दानेन चोग्रतपसा व्रतचर्यया च ॥ आराधनं भगवतस्तव सत्क्रियाऽर्थो धर्मोऽर्पितः कर्हिचिद् ध्रियते न यत्र ॥ १३ ॥ शश्वत् स्वरूपमहसैव निपीतभेदमोहाय बोधधिषणाय नमः परस्मै ॥ विश्वोद्भवस्थितिलयेषु निमित्तलीलारासाय ते नम इदं चकृमेश्वराय ॥ १४॥ यस्यावतारगुणकर्मविडम्बनानि नामानि येऽसुविगमे विवशा गृणन्ति ॥ तेऽनेकजन्मशमलं सहसैव हित्वा संयान्त्यऽपावृतमृतं तमजं प्रपद्ये ॥१५॥ यो वा अहं च गिरिशश्च विभुः स्वयं च स्थित्युद्भवप्रलयहेतव आत्ममूलम् ॥ भित्त्वा त्रिपाद्ववृधे एक उरुप्ररोहस्तस्मै नमो भगवते भुवनद्रुमाय ॥ १६ ॥ लोको विकर्मनिरतः कुशले प्रमत्तः कर्मण्ययं त्वदुदिते भवदर्चने स्वे॥यस्तावदस्य बलवानिह जीविताशां सद्यश्छिनत्त्यनिमिषाय नमोऽस्तु तस्मै ॥ १७ ॥ यस्माद्बिभेम्यहमपि द्विपरार्ध्यधिष्ण्यमध्यासितः सकललोकनमस्कृतं यत् ॥ तेपे तपो बहुसवोऽवरुरुत्समानस्तस्मै नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥ १८ ॥

स्कंध, मरीचि मन्वादिरूप जाकी बहुत शाखा होय एक वृक्षरूप होयकर जो बढै तिन भुवनद्रुम भगवानके अर्थ नमस्कार होय ॥ १६ ॥ यह लोक विरुद्धकर्ममें सदा लगे रहैहैं, और कुशलदाता आपके पूजनरूप कर्म करवेकी जो आपनें आज्ञा कीनी उस कर्ममें चित्त न लगावैहैं। जो भगवद्गीतामें आपनें कहाहै कि " यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्। यत्तपस्यासि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ " इसी कारण बलीकाल इसकी जीनेकी आशाको काट देताहै उस अकुंठगति कालरूप तुमको नमस्कार होय ॥१७॥सबके पूजनीय और दोपदार्थ पर्यन्त निश्चल रहनेहारे स्थान-

पर स्थितमें भी जिससै सदा डरताहूं कि जिस पदकी इच्छासे मैंने बहुत वर्षोंतक तप कियाहै उस यज्ञपति भगवान् आपको मैं प्रणाम करूंहूं॥१८॥ पक्षी मनुष्य देवता आदि योनियोंमें अपनी इच्छाकरकै अपने करेभए धर्मसेतुओंकी पालनकी इच्छा करके जो रमण करतेभए, विषयसुख रहित वीर्य रोके पुरुषोत्तम भगवान्के अर्थ नमस्कार होय। पुरुषोत्तम वे हैं जाको गीतामें श्लोक है "यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपि चोत्तमः। अतोस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १ ॥ " ॥ १९ ॥ तम मोह महामोह तामिस्र अंधतामिस्र इन पांच प्रकारकी अविद्या रहित सब लोक जिनके उदरमें हैं सो ईश्वर भयंकर लेहरोंकी मालासे युक्त जलमें शेषशय्यापर शयन करवेसें अनुकूल निद्राको प्राप्त हो संसारीजनोंको निद्रासुख दिखावतेभए॥ ॥ २० ॥ हे स्तुतियोग्य! त्रिलोकीके रचवेको पात्र जिनकी कृपासें नाभिकमलसें हम भये, जाके पेटमें विश्व योगनिद्राके अंतमें प्रफुल्लित कमलके

तिर्यङ्मनुष्यविबुधादिषु जीवयोनिष्वात्मेच्छयाऽऽत्मकृतसेतुपरीप्सया यः ॥ रेमे निरस्तरतिरप्यवरुद्धदेहस्तस्मै
नमो भगवते पुरुषोत्तमाय ॥ १९ ॥ योविद्ययानुपहतोऽपि दशार्धवृत्त्या निद्रामुवाह जठरीकृतलोकयात्रः ॥ अन्तर्जले हि कशिपुस्पर्शानुकूलां भीमोर्मिमालिनि जनस्य सुखं विवृण्वन् ॥ २० ॥ यन्नाभिपद्मभवनादहमाससमाड्य
लोकत्रयोपकरणो यदनुग्रहेण ॥ तस्मै नमस्त उदरस्थभवाय योगनिद्राऽवसानविकसन्नलिनेक्षणाय ॥ २१ ॥
सोयं समस्तजगतां सुहृदेक आत्मा सत्वेन यन्मृडयते भगवान्भगेन ॥ तेनैव मे दृशमनुस्पृशताद्यथाहं
स्रक्ष्यामि पूर्ववदिदं प्रणतप्रियोऽसौ ॥ २२ ॥ एष प्रपन्नवरदो रमयात्मशक्त्या यद्यत्करिष्यति गृहीतगुणावतारः ॥
तास्मिन्स्वविक्रममिदं सृजतोऽपि चेतो युञ्जीत कर्मशमलं च यथा विजह्याम् ॥ २३ ॥

समान नेत्रवारे तुह्मारे अर्थ नमस्कार होय ॥ २१ ॥ ये समस्त जगत्के सुहृद शरणागतौंके प्रिय एक आत्मा जिस सत्व ऐश्वर्यसें विश्वको सुख देते हैं वोही दिव्य दृष्टि हमें मिलै, वासे पहिलेकी नाईं मैं या विश्वकों रचूं ॥ २२ ॥ ये शरणागतके वरदाता श्रीमहालक्ष्मी अपनी शक्तिसे सगुण अवतार होय जो जो करैंग, अपनें प्रभाव सूचित या विश्वकों रचतेभये मोकों या विश्वके रचवेमें प्रवृत्त करो जिससे कर्ममें आसक्त न हूं और उससै कियेहुए विषमता आदि पापौंका त्याग हो ॥ २३ ॥

56

अनंत शक्ति पुरुषकी नाभिसरोवरसे जलमें विज्ञानशक्तिरूप हम भए, या विश्वको विचित्र विस्तारक मेरी वेदकी अवयवरूप वाणीको उच्चारण लुप्त
न होय " रिषेर्हिंसार्थकस्य यङ्लुङंतात्कर्मकर्तरि लिङि छांदसं रूपम् " ॥ २४ ॥ सो ये महादयालु भगवान् अत्यंत बढेभये प्रेमकी मुसक्कानसें नयन
कमलको प्रकाश करते उठके विश्व विजयके अर्थ हमारे क्लेशकों मीठी वाणी करकै पुराणपुरुष दूर करै ॥ २५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, तप विद्या समाधिके
प्रभावसै अपने उत्पन्न करनेवाले प्रभुका दर्शनकर ब्रह्माजी जहांतक मन वचन पहुंचो तहांतक स्तुतिकर खेदितभए ॥ २६ ॥ तिस कल्पके

नाभिह्रदादिह सतोम्भसि यस्य पुंसो विज्ञानशक्तिरहमासमनन्तशक्तेः ॥ रूपं विचित्रमिदमस्य विवृण्वतो मे मा
रीरिषीष्ट निगमस्य गिरां विसर्गः ॥ २४ ॥ सोऽसावदभ्रकरुणो भगवान् विवृद्धप्रेमस्मितेन नयनाम्बुरुहं विजृम्भन्
॥ उत्थाय विश्वविजयाय च नो विषादं माध्व्या गिराऽपनयतात्पुरुषः पुराणः ॥ २५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स्वसंभवं
निशाम्यैवं तपोविद्यासमाधिभिः ॥ यावन्मनोवचः स्तुत्वा विरराम स खिन्नवत् ॥ २६ ॥ अथाऽभिप्रेतमन्वीक्ष्य
ब्रह्मणो मधुसूदनः ॥ विषण्णचेतसं तेन कल्पव्यतिकराम्भसा ॥ २७ ॥ लोकसंस्थानविज्ञान आत्मनः परिखिद्यतः
॥ तमाहाऽगाधया वाचा कश्मलं शमयन्निव ॥२८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा वेदगर्भ गास्तन्द्रीं सर्गं उद्यममावह ॥
तन्मयाऽऽपादितं ह्यग्रे यन्मां प्रार्थयते भवान् ॥२९॥ भूयस्त्वं तप आतिष्ठ विद्यां चैव मदाश्रयाम् ॥ ताभ्यामन्तर्हृदि
ब्रह्मन्लोकान्द्रक्ष्यस्यपावृतान् ॥ ३० ॥ तत आत्मनि लोके च भक्तियुक्तः समाहितः ॥ द्रष्टासि मां ततं ब्रह्मन्मयि
लोकांस्त्वमात्मनः ॥ ३१ ॥

उलटे करवेवारे जलसे खेदित ब्रह्माको अभिप्राय मधुसूदन जानकर ॥२७॥ लोकको स्थितिके विज्ञानमें आति खेदित ब्रह्माको मोह दूर करत गंभिर
वाणोसे ब्रह्मासे बोले ॥ २८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे वेदगर्भ हे ब्रह्मन्! आलस्य मत करो विश्व रचवेमें उद्यम करो जो तुमनें मोंसें प्रार्थना की सो
हमनें पहिलेहीसें सब करदीनों ॥२९॥ हे ब्रह्मन्! फेर तुम तप करो तो मेरी विद्यासे विस्तृत सब लोकनकों हृदयमेंही देखोगे ॥ ३० ॥ हे ब्रह्मन् ! ता
पीछे आत्मामें लोकमें भक्तियुक्त सावधान होय मोको व्याप्त देखोगे लोकोंको मोमें देखोगे जीवनको देखोगे ॥ ३१ ॥

जैसे काष्टमें अग्नि स्थित रहै हे तैसे सब जीवोंमें जब तुम मोको देखोगे तो सब कश्मल ताही समय जातोरहैगो ॥ ३२ ॥ भूत इंद्रिय अंतःकरण गुण इनसे रहित आत्माको मेरे स्वरूप करकै युक्त जब देखोगे तब अपनें स्वाराज्यपदको प्राप्त होओगे ॥३३॥ नाना कर्मोंके विस्तारकर प्रजा बहुत रचवेवारे तुमारो आत्मा नहीं फसैगो, ये मेरी कृपा हे जातें तुम वृद्धतर हो ॥ ३४ ॥ आद्य ऋषि तुमको ये पापी रजोगुण नहीं बाधेगो, प्रजा रचते तुमनें मन मोमें लगायो है ॥ ३५ ॥ देहधारियोंसे न जान्ने योग्य मुझै तुमनें जानों अब भूत इंद्रिय गुण और अहंकारसे जो तुमनें मोको अलिप्त मानों

यदा तु सर्वभूतेषु दारुष्वग्निमिव स्थितम् ॥ प्रतिचक्षीत मां लोको जह्यात्तर्ह्येव कश्मलम् ॥ ३२ ॥ यदा रहितमात्मानं
भूतेन्द्रियगुणाशयैः ॥ स्वरूपेण मयोपेतं पश्यन्स्वाराज्यमृच्छति ॥ ३३ ॥ नानाकर्मवितानेन प्रजा बह्वीः
सिसृक्षतः ॥ नात्माऽवसीदत्यस्मिंस्ते वर्षीयान्मदनुग्रहः ॥ ३४ ॥ ऋषिमाद्यं न बध्नाति पापीयांस्त्वां रजोगुणः ॥
यन्मनो मयि निर्बद्धं प्रजाः संसृजतोऽपि ते ॥ ३५ ॥ ज्ञातोऽहं भवता त्वद्य दुर्विज्ञेयोऽपि देहिनाम् ॥ यन्मां त्वं मन्यसेऽयुक्तं
भूतेन्द्रियगुणात्मभिः ॥ ३६ ॥ तुभ्यं मद्विचिकित्सायामात्मा मे दर्शितोऽबहिः ॥ नालेन सलिले मूलं पुष्करस्य
विचिन्वतः ॥ ३७ ॥ यच्चकर्थाऽङ्ग मत्स्तोत्रं मत्कथाऽभ्युदयाङ्कितम् ॥ यद्वा तपसि ते निष्ठा स एष मदनुग्रहः
॥ ३८ ॥ प्रीतोऽहमस्तु भद्रं ते लोकानां विजयेच्छया ॥ यदस्तौषीर्गुणमयं निर्गुणं माऽनुवर्णयन् ॥ ३९ ॥ य एतेन
पुमान्नित्यं स्तुत्वा स्तोत्रेण मां भजेत् ॥ तस्याऽशु संप्रसीदेयं सर्वकामवरेश्वरः ॥ ४० ॥

सो ठीक है ॥ ३६ ॥ कमलकी नालके द्वारा जलमें कमलकी जडकों ढूंढते तुमको मेरी जानवेकी इच्छा भई, तब अपनो स्वरूप तुमारे हृदयमें दिखायदीनों ॥३७॥ हे ब्रह्मन् ! जो मेरी तुमने स्तुति कीनी मेरी कथाको जिसमें कि उदय है जो तपमें निष्ठा है ये मेरो अनुग्रह है॥ ३८ ॥ हम तुमपर प्रसन्न भए; तुम्हारो कल्याण होय, लोकनकी विजयकी इच्छा कर गुणमय मेरी स्तुति कीनी निर्गुण मोकों वर्णन कीनों ॥ ३९ ॥ जो पुरुष या स्तोत्र करके स्तुति करै मोकों भजै तापर सब कामवरके ईश्वर हम प्रसन्न होयहैं ॥ ४० ॥

कुआ बावडी बनानेसे तपसे यज्ञसे दानसे योगसे समाधिसे पुरुषनको ये सिद्धांत है कि मेरी प्रीति होनी ये तत्त्ववेत्तानको मत है ॥ ४१ ॥ हम सबकी
आत्मा हैं सब आत्मानके धारण पोषण करवेवारे हैं, प्यारोंके प्यारे है यासे मेरेमें प्रीति करै मेरेमें प्रीत्ति करवेके निमित्तही देह आदि प्रीतिके पात्र
हैं ॥ ४२ ॥ सब वेदमय मेरी आत्मा तुम हो मैंही तुह्मारो आदिकारण हूं, जो प्रथम मेरेमें प्रजा लीन है उनको जैसे पहिले ही वैसेही रचो ॥ ४३ ॥
मैत्रेयजी बोले कि प्रधान पुरुष ईश्वर जगतके रचवेवारे ब्रह्माको ऐसे अपनो रूप दिखाय अंतर्द्धान होते भये ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे

पूर्तेन तपसा यज्ञैर्दानैर्योगसमाधिना ॥ राद्धं निःश्रेयसं पुंसां मत्प्रीतिस्तत्त्वविन्मतम् ॥४१॥ अहमात्मात्मनां धातः
प्रेष्ठः सन्प्रेयसामपि ॥ अतो मयि रतिं कुर्याद्देहादिर्यत्कृते प्रियः ॥ ४२ ॥ सर्ववेदमयेनेदमात्मनाऽऽत्मात्मयोनिना ॥
प्रजाः सृज यथापूर्वं याश्च मय्यनुशेरते ॥ ४३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तस्मा एवं जगत्स्रष्ट्रे प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ व्यज्येदं स्वेन
रूपेण कञ्जनाभस्तिरोदधे ॥ ४४ ॥ इति श्रीभाग० तृ० भगवद्ब्रह्मसंवादे भगवदन्तर्धानवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥९॥
विदुर उवाच ॥ अन्तर्हिते भगवति ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ प्रजाः ससर्ज कतिधा दैहिकीर्मानसीर्विभुः ॥ १ ॥ ये च
मे भगवन्पृष्टास्त्वय्यर्था बहुवित्तम ॥ तान्वदस्वाऽऽनुपूर्व्येण च्छिन्धि नः सर्वसंशयान् ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ एवं संचोदितस्तेन
क्षत्त्रा कौषारवो मुनिः ॥ प्रीतः प्रत्याह तान्प्रश्नान् हृदिस्थानथ भार्गवः ॥ ३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ विरिञ्चोऽपि
तथा चक्रे दिव्यं वर्षशतं तपः ॥ आत्मन्यात्मानमावेश्य यदाऽऽह भगवानजः ॥ ४ ॥

तृतीयस्कंधे भगवदंतर्द्धानवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ विदुरजी बोले कि लोकपितामह ब्रह्माजीने जब भगवान् अन्तर्धान होगये तब दैहिकी मानसी
कितनी प्रजा रची ॥ १ ॥ हे बहुवित्तम ! हे भगवन् ! जो बातें तुमसे पूछी उनको प्रथमसें लेकर कहो हमारे सब संशय काटो ॥ २ ॥ सूतजी
बोले कि हे शौनक ! विदुरजीने मैत्रेयमुनिको ऐसे प्रेरणा करी तब प्रसन्न होय जो हृदयमें स्थित प्रश्न हैं उनकों कहितेभये ॥ ३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि
ब्रह्माजी दिव्य सौवर्षतक भगवानमें मन लगाय तप करते भये, जो अजन्मा भगवानने कही सो करते भये ॥ ४ ॥

जिस कमलपर ब्रह्माजी बैठेथे उस कमल और जलको प्रलयकालके पराक्रमी वायुसें कंपित देख ॥ ५ ॥ बढेभए तप और आत्मविद्यासे ब्रह्माजी पवनके साथ उस जलको पीगये कारण कि उस समय उनका विज्ञानबल अधिक बढगयाथा ॥ ६ ॥ कमलपर बैठेथे उसै आकाशमें व्याप्त देख ये विचारो कि या कमलकरकै पहिले लीन भये लोकनकों मैं रचूंगो ॥ ७ ॥ भागवतकरकै अपने कर्ममें प्रेरित वा कमलपर बैठकर एक विश्वको त्रिलोकीरूप कर चतुर्दशभुवनरूपसे बहुत प्रकारसे भावनाके योग्य विभाग करतेभए ॥ ८ ॥ यह त्रिलोकीरूप जीव मात्रके कर्म फलकी भोग भूमिकी रचना वर्णन की जिसकी प्रतिदिन उत्पत्ति होती है और जन तप सत्यलोक निष्काम कर्मके कल्परूप हैं उनका ब्रह्माजीके प्रतिदिनमें नाश और जन्म नहीं होता उन लोकनिवासियोंकी परान्तमें मुक्ति होतीहै ॥ ९ ॥ विदुरजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मरूपी अद्भुतकर्मकारी हरिको जैसे तुम कहोहो उनके कालको लक्षण जैसो है तैसो हमसे वर्णन करो ॥ १० ॥ मैत्रेयजी बोले कि सामान्यसे कालको स्वरूप यहां कहैं हैं, आगेकी अध्यायमें विशेष करके कहैंगे ॥ गुणोंको औरसे और आकार करनो, जाको कोई विशेषण नहीं, एक जगै रहै नहीं, सबको उपादान कारण, आप ईश्वरको आत्मा ऐसे कालकों ईश्वर लीला करकै रचतेभये ॥ ११ ॥ निश्चय है कि विश्व ब्रह्मस्वरूपही है, विष्णुकी मायाकरकै स्थित और अप्रगट मूर्ति कालस्वरूप ईश्वरसे पृथक् प्रकाशित है ॥ १२ ॥ जैसे अब है ये विश्व तैसोही

तद्विलोक्याऽब्जसंभूतो वायुना यदधिष्ठितः ॥ पद्ममम्भश्च तत्कालकृतवीर्येण कम्पितम् ॥ ५ ॥ तपसा ह्येधमानेन विद्यया चात्मसंस्थया ॥ विवृद्धविज्ञानबलो न्यपाद्वायुं सहाम्भसा ॥ ६ ॥ तद्विलोक्य वियद्व्यापि पुष्करं यदधिष्ठितम् ॥ अनेन लोकान्प्राग्लीनान्कल्पिताऽस्मीत्यचिन्तयत् ॥ ७ ॥ पद्मकोशं तदाऽऽविश्य भगवत्कर्मचोदितः ॥ एकं व्यभाङ्क्षीदुरुधा त्रिधा भाव्यं द्विसप्तधा ॥ ८ ॥ एतावाञ्जीवलोकस्य संस्थाभेदः समाहृतः ॥ धर्मस्य ह्यनिमित्तस्य विपाकः परमेष्ठ्यसौ ॥ ९ ॥ विदुर उवाच ॥ यदाऽऽत्थ बहुरूपस्य हरेरद्भुतकर्मणः ॥ कालाख्यं लक्षणं ब्रह्मन्यथा वर्णय नः प्रभो ॥ १० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ गुणव्यतिकराकारो निर्विशेषोऽप्रतिष्ठितः ॥ पुरुषस्तदुपादानमात्मानं लीलयाऽसृजत् ॥ ११ ॥ विश्वं वै ब्रह्मतन्मात्रं संस्थितं विष्णुमायया ॥ ईश्वरेण परिच्छिन्नं कालेनाऽव्यक्तमूर्तिना ॥ १२ ॥ यथेदानीं तथाऽग्रे च पश्चादप्येतदीदृशम् ॥ सर्गो नवविधस्तस्य प्राकृतो वैकृतस्तु यः ॥ १३ ॥

आगे हो, पाछेभी ऐसोही हो, परंतु संसारके रचनाको प्रकार नवविध है, और एक प्रकृतिसे होयहै, और एक विकारसे होय ये दशमसर्ग हैं ॥ १३ ॥ केवल कालसे नित्य प्रलय होय है संकर्षणकी अग्निरूप द्रव्यसे नैमित्तिक प्रलय होय है, अपने अपने कार्योंके ग्रसवेवारे गुणोंसे प्राकृतिक प्रलय होयहै ये तीन प्रकारको प्रलय है, प्रथम प्रलय ये है कि महत्तत्त्वको सर्ग गुणोंकी विषमतासे सर्व व्यापक ईश्वरसें होयहै ॥ १४ ॥द्रव्य ज्ञान क्रियाको उदय दूसरो अहंकार है, तिनकी मात्रा द्रव्य शक्तिमान् तृतीय भूतसर्ग है ॥१५॥ ज्ञान और क्रियाकी आत्मा चौथो इंद्रियोंको सर्ग है, विकारी देवतानको सर्ग पांचमो है, सो मन है ॥ १६॥ हे प्रभो ! छटो अज्ञानियोंको करो तम नामसे सर्ग हैं, ये छे प्रकृतिके सर्ग हैं अब जो विकारी सर्ग है सो सुनो ॥ १७ ॥ राजससेभी भगवान् हरि पूजनीयकी ये लीला है, सप्त मुख्य सर्ग है, छे प्रकारकी स्थावरनकी रचना है॥१८॥षड्विध सर्ग ये हैं कि, जो

कालद्रव्यगुणैरस्य त्रिविधः प्रतिसंक्रमः ॥ आद्यस्तु महतः सर्गो गुणवैषम्यमात्मनः ॥ १४ ॥ द्वितीयस्त्वहमो यत्र द्रव्यज्ञानक्रियोदयः ॥ भूतसर्गस्तृतीयस्तु तन्मात्रो द्रव्यशक्तिमान् ॥ १५॥ चतुर्थ ऐन्द्रियः सर्गो यस्तु ज्ञानक्रियात्मकः ॥ वैकारिको देवसर्गः पञ्चमो यन्मयं मनः ॥ १६ ॥ षष्ठस्तु तमसः सर्गो यस्त्वबुद्धिकृतः प्रभो ॥ षडिमे प्राकृताः सर्गा वैकृतानपि मे शृणु ॥ १७ ॥ रजोभाजो भगवतो लीलेयं हरिमेधसः ॥ सप्तमो मुख्यसर्गस्तु षड्विधस्तस्थुषां च यः ॥ १८ ॥ वनस्पत्यौषधिलतात्वक्सारा वीरुधो द्रुमाः ॥ उत्स्रोतसस्तमःप्राया अन्तःस्पर्शा विशेषिणः ॥ १९ ॥ तिरश्चामष्टमः सर्गः सोऽष्टाविंशतिधा मतः ॥ अविदो भूरितमसो घ्राणज्ञा हृद्यवेदिनः ॥ २० ॥

विना पुष्पके फले हैं वे वनस्पति हैं अंतमें फलपाक होय वे औषधी हैं, सहारेसें बढें वे लता हैं, वांस इत्यादि त्वक्सार हैं, बहुत कठनसे कोई आसरेसे बढैं, वे वीरुध हैं, फूल आयके पीछे फल लगैं वे द्रुम हैं, इनको आहार संचार ऊपरसे होय है तामसी हैं चैतन्य अप्रगट है, भीतरसे स्पर्शको जानें हैं, इनके बढने घटनेको प्रमाण नहीं है अनेक भेद होय हैं ॥ १९ ॥ पशूनको सर्ग आठवों अट्ठाईस तरहको है कल्हका होगो ये ज्ञानरहित हैं आहार आदि ज्ञानमात्र जानें हैं, नाकसे अपनेको इष्ट अर्थ जानलेवैं हैं, दीर्घ ज्ञानशून्य हैं । तहां वेदमें श्रुति है कि " अथेतरेषां पशूनामशनापिपासे एवाभिविज्ञानं न विज्ञातं वदंति, न विज्ञातं पश्यंति, न विदुः श्वस्तनं, न लोकालोकाविति " ॥ २० ॥

अट्ठाईस भेद कहेहै कि, गौसे आदिले ऊंटतक द्विशफके दोखुरके नौ हैं गौ, बकरा, भैंसा, कृष्णसार, मृग, सूकर, लीलगाय, रुरुमृग, भेड, ऊंट, हे सत्तम! इन पशूनके खुर दो तरहसे चिरेहैं ॥ २१ ॥ गधा, घोडा, खिच्चर, गौर मृग, चित्र मृग, चमर जाके होय वो गाय, हे विदुर! इनके खुर चिरै नहीं हैं अब पांच नखके पशू सुनो ॥ २२ ॥ कुत्ता, गीदड, भिडिया, बघेरा, बिलाव, खर्गोस, सेहि, सिंह, बंदर, हाथी, कछुआ, गोह, मगरादिक इनके पांच नख हैं ॥ २३ ॥ काग, गीध, बदक, शिकरा, मुर्गा, भालु, मोर, हंस सारस, चकवा, श्वेत काग, उल्लु ये पक्षी हैं ॥ २४ ॥ हे विदुर! नी-

गौरजो महिषः कृष्णः सूकरो गवयो रुरुः ॥ द्विशफाः पशवश्चेमे अविरुष्ट्रश्च सत्तम ॥ २१ ॥ खरोऽश्वोऽश्वतरो गौरः शरभश्चमरी तथा ॥ एते चैकशफाः क्षत्तः शृणु पञ्चनखान् पशून् ॥ २२ ॥ श्वा सृगालो वृको व्याघ्रो मार्जारः शशशल्लकौ ॥ सिंहः कपिर्गजः कूर्मो गोधा च मकरादयः ॥ २३ ॥ कङ्कगृध्रवटश्येनभासभल्लुकबर्हिणः ॥ हंससारसचक्राह्वकाकोलूकादयः खगाः ॥ २४ ॥ अर्वाक्स्रोतस्तु नवमः क्षत्तरेकविधो नृणाम् ॥ रजोऽधिकाः कर्मपरा दुःखे च सुखमानिनः ॥ २५ ॥ वैकृतास्त्रय एवैते देवसर्गश्च सत्तम ॥ वैकारिकस्तु यः प्रोक्तः कौमारस्तूभयात्मकः ॥ २६ ॥ देवसर्गश्चाष्टविधो विबुधाः पितरोऽसुराः ॥ गन्धर्वाप्सरसः सिद्धा यक्षरक्षांसि चारणाः ॥ २७ ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च विद्याध्राः किन्नरादयः ॥ दशैते विदुराऽख्याताः सर्गास्ते विश्वसृकृताः ॥ २८ ॥ अतः परं प्रवक्ष्यामि वंशान्मन्वन्तराणि च ॥ एवं रजःप्लुतः स्रष्टा कल्पादिष्वात्मभूर्हरिः ॥ २९ ॥ सृजत्यमोघसंकल्प आत्मैवात्मानमात्मना ॥ सदा शुद्धस्वरूपोऽसौ सर्वं भवति सैव हि ॥ ३० ॥

चैसें खाय ये नवम सर्ग मनुष्योंको है, राजस आधिक है, कर्मपरायण हैं दुःखमें सुख मानै हैं ॥ २५ ॥ हे सत्तम! देवतानको तीन प्रकारको सर्ग है वैकारिक जो कह्यो है सो कौमार सर्ग दोनों तरहको है ॥ २६ ॥ देवसर्ग आठ प्रकारके हैं, विबुध, पितर, सुर, गंधर्व, अप्सरा, सिद्ध, यक्ष, राक्षस, चारण ॥ २७ ॥ भूत, प्रेत, पिशाच, विद्याधर किन्नरादिक हे विदुर! विश्वके रचवेवारेनें दश सर्गभेद करे हैं ॥२८॥ यासे परै अब वंश मन्वंतर कहैं हैं, राजसव्याप्त कल्पके आदिमें हरि भगवान् स्वयंभूही अपने स्वरूपसै जगतको उत्पन्न करतेहैं ॥ ॥ २९ ॥ पूर्णसंकल्प है सो आपही आपको

रचें है, सदा शुद्ध स्वरूपी ये ईश्वर ही सब होय हैं ॥ ३० ॥ गुणोंके उलटे होनेसे या सर्गमें मायावेत्ता ईश्वरकी पूर्वापर मालूम नहीं पडैहै, जैसे नदीमें घूमती नावमें पूर्वापरका भ्रम होजाताहै ॥ ३१ ॥ हे विदुर! या कल्पमें देव असुरादिक जो हमनें कहे है सोही मन्वंतरमें नामरूपते होतेभए ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां तृतीयस्कंधे दशविधसर्गवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ अब श्रीमैत्रेयजी कालको विशेष लक्षण कहै हैं, सो सुनों. मैत्रेयजी बोले कि सांचे विशेषणोंको जो अंत, जाको विभाग न होयसकै अनेक काऊमें मिलें नहीं, सदा रहै वो परमाणु जानों, जिन परमाणूनते मनुष्यनकों एकको भ्रम होय है अर्थात् अवयवी बुद्धि होती है ॥ १ ॥ जो सत् पदार्थ है वह अपने स्वरूपमें स्थित है वो केवल अत्यंत महा बडो है जाको कोई विशेषण नहीं है निरंतर है ॥ २ ॥ हे सत्तम! सूक्ष्म स्थूल रूप करकै ऐसे कालको अनुमान कीनो है अर्थात् अव्यक्त स्वरूप विभु काल अपने परमाणु आदि अवस्थाओंकी व्याप्तिसे व्यक्तपदार्थका परिच्छेद करताहै ॥ ३ ॥ सो काल परमाणु है जो परमाणु भावको भोगेहै, ताकोंभी अत्यंत भोगै सो काल बहुत बडो है "याको ये अर्थ है कि ग्रह नक्षत्र तारा चक्र इत्यादिसें सूर्यको पर्यटन कहैं हैं तहां सूर्य जितने परमाणुके देशको उल्लंघन करै वो कालको नाम परमाणु है जितनी द्वादशराशिरूप होय सब ब्रह्मांडमें विचरैहै वो परम महान् संवत्सर कहावै है. तिस क्रमसे युग मन्वंतर आदि क्रमकरकै द्विपरार्ध अंतकाल होय है ये कालको विभाग पंचमस्कंधमें कहैंगे" ॥ ४ ॥

गुणव्यत्यय एतस्मिन्मायावित्त्वाद्धधीशितुः ॥ न पौर्वापर्यमिच्छान्ति नद्यां भ्राम्यद्रुमेरिव ॥ ३१ ॥ देवासुरादयः क्षत्तः कल्पेऽस्मिन्ये च कीर्तिताः ॥ त एव नामरूपाभ्यामासन्मन्वन्तरान्तरे ॥३२॥ इति श्रीभा० महा० तृ० दशविधसर्गवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ चरमः सद्विशेषाणामनेकोऽसंयुतः सदा ॥ परमाणुः स विज्ञेयो नृणामैक्यभ्रमो यतः ॥ १ ॥ सत एव पदार्थस्य स्वरूपावस्थितस्य यत् ॥ कैवल्यं परममहानविशेषो निरन्तरः ॥ २ ॥ एवं कालोऽप्यनुमितः सौक्ष्म्ये स्थौल्ये च सत्तम ॥ संस्थानभुक्त्या भगवानव्यक्तो व्यक्तभुग्विभुः ॥ ३ ॥ स कालः परमाणुर्वै यो भुङ्क्ते परमाणुताम् ॥ सतोऽविशेषभुग्यस्तु स कालः परमो महान् ॥ ४ ॥

दो अणूसे परमाणु होयहै, तीन परमाणूको एक त्रसरेणू होयहै, वो त्रसरेणु झरोखानमें सूर्यकी किरणसे दीखैहैं, जो अतिसूक्ष्मतर है सो नीचें पृथ्वीमें नहीं आवैहैं. आकाशको ही उडके जाते दीखैहै ॥ ५ ॥ वे त्रसरेणु तीन मिलकै चुटकी बजावै इतनो काल होयहै, सौवेर चुटकी बजायकर जो काल व्यतीत होयहै वाको वेध कहैहैं, ऐसे तीन वेध इकट्ठे होय तो उस कालको नाम लव होयहै ॥ ६ ॥ तीन निमेषको एक लव जानो तीन लवको एक क्षण होयहै, पांच क्षणकी एक काष्ठा होयहै पंद्रह १५ काष्ठाको एक लघु होयहै ॥ ७ ॥ पञ्चदश १५ लघुओंको नाडी कहतेहैं और ऐसी दो नाडियोंको मुहूर्त्त कहतेहैं, और छह नाडियोंको अथवा सात नाडियोंको प्रहर बोलतेहैं, और याम ऐसाभी बोलतेहैं सो याम दिन और रात्रिका चौथा हिस्सा होताहै, घटेंनमें छह घडीका और बढेनमें सात घडीका ऐसा जाननाचाहिये किंवा शब्द इसश्लोकमें अनियम अर्थको कहता

अणुर्द्वौ परमाणू स्यात्त्रसरेणुस्त्रयः स्मृतः ॥ जालार्करश्म्यवगतः खमेवानुपतन्न गाम् ॥ ५ ॥ त्रसरेणुस्त्रिकं भुङ्क्ते यः
कालः स त्रुटिः स्मृतः ॥ शतभागस्तु वेधः स्यात्तैस्त्रिभिस्तु लवः स्मृतः ॥ ६ ॥ निमेषास्त्रिलवो ज्ञेय आम्नातस्ते त्रयः
क्षणः ॥ क्षणान् पञ्च विदुः काष्ठां लघु ता दश पञ्च च ॥ ७ ॥ लघूनि वै समाम्नाता दश पञ्च च नाडिका ॥ ते द्वे मुहूर्तः
प्रहरः षड् यामः सप्त वा नृणाम् ॥ ८ ॥ द्वादशाऽर्धपलोन्मानं चतुर्भिश्चतुरङ्गुलैः ॥ स्वर्णमाषैः कृतच्छिद्रं यावत्
प्रस्थजलप्लुतम् ॥ ९ ॥

है क्योंकि नित्य नित्य दिन और रात्रि इनके घटने बढनेको गिनने बहुत हैरानी है इसलिये छह और सात घटीका स्थूल प्रमाण पकडलिया ॥ ८ ॥ एकघटीका उन्मान कहतेहैं कि छह ६ पलभर तांबेका पात्र होवे सो पलका प्रमाण भास्कराचार्य्यनें लिखा है कि "दशार्द्धगुञ्जम्प्रवदन्ति माषं माषाह्वयैः षोडशभिश्च कर्षम् ॥ कर्षैश्चतुर्भिश्च पलं तुलाज्ञाः" इति । अर्थ पांच ५ गुञ्जाभरको माषा कहते हैं गुञ्जानाम चिरमठीका है और भास्कराचार्यने तो दो जवभरको गुञ्जा कहाहै सोही "तुल्या यवाभ्यां कथिताऽत्र गुञ्जा" इति वचन है और सोलह १६ मासे भारका एक कर्ष होताहै और चार कर्षका एक पल होताहै । इसतरह ३२० गुञ्जाका एक पल होताहै । ऐसे छह ६ पलभर तांबेका पात्र बनाना । और उस पात्रमें चार ४ माक्षेभर सोनेकी बराबर गोल बनीहुई शलाकासे छिद्रकरना, उस छिद्रसे जितने समयमें प्रस्थ भर जलके प्रवेश होनेसे वह पात्र जलमें

डूब जावे उतने समयको घडी कहते हैं, शिरोमणिके अनुसारही प्रस्थका प्रमाण, हाथभर ऊंचा चौडा लम्बा और बारह कोणवाला पात्र खारी होता है और इसका सोलहवां हिस्सा द्रोण कहाताहै, और द्रोणके चतुर्थ भागको आढक कहतेहैं, और आढकके चतुर्थ भागको प्रस्थ कहतेहैं, प्रस्थ जल उसको जानना चाहिये कि जो खारीभर जलके सोलहवां हिस्साके चौथा हिस्सा॥९॥चारचार प्रहरके मनुष्योंके दिन रात होतेहैं हे मानद!पंद्रह दिनको शुक्ल और कृष्ण पक्ष होयहै ॥ १० ॥ दोनो इकट्ठे होनेसै एक मास होताहै वह पितरनको एक अहोरात्र होताहै ॥ ११ ॥ दो मासकी एक ऋतु, और छह मासका अयन; एक दक्षिण और एक उत्तर और यही दोनों अयन क्रमसे देवतोंके दिन और रात्रि होतेहैं और बारह १२ मासका संवत्सर होताहै सौ १०० वर्षकी मनुष्योंकी परम आयु होतीहै ॥ १२॥या क्रमसें ये सूर्य उदय अस्त होकर जगतकी आयु क्षीण करैहै यह कहतेहैं कि ग्रह

यामाश्चत्वारश्चत्वारो मर्त्यानामहनी उभे ॥ पक्षः पञ्चदशाहानि शुक्लः कृष्णश्च मानद ॥ १० ॥ तयोः समुच्चयो मासः पितॄणां तदहर्निशम् ॥॥ द्वौ तावृतुः षडयनं दक्षिणं चोत्तरं दिवि ॥ ११ ॥ अयने चाहनी प्राहुर्वत्सरो द्वादश स्मृतः ॥ संवत्सरशतं नृणां परमायुर्निरूपितम् ॥ १२ ॥ ग्रहर्क्षताराचक्रस्थः परमाण्वादिना जगत् ॥ संवत्सरावसानेन पर्येत्यऽनिमिषो विभुः ॥ १३ ॥ संवत्सरः परिवत्सर इडावत्सर एव च ॥ अनुवत्सरो वत्सरश्च विदुरैवं प्रभाष्यते ॥१४॥ यः सृज्यशक्तिमुरुधोच्छ्वसयन्स्वशक्त्या पुंसोऽभ्रमाय दिवि धावति भूतभेदः ॥ कालाख्यया गुणमयं क्रतुभिर्वितन्वंस्तस्मैं बलिं हरत वत्सरपञ्चकाय ॥ १५ ॥

चंद्र आदि, ऋक्ष अश्विनी आदि तारा और नक्षत्र करके उपलक्षित कालचक्रमें स्थित कालात्मा व्यापक समर्थ सूर्यनारायण बारह राशिप्रमाण भुवनकोशको पर्य्यटन करते हैं ॥१३॥हे विदुरजी ! संवत्सर, परिवत्सर,इडावत्सर,अनुवत्सर,वत्सर ये वर्षनकी संख्या कही हैं ॥१४॥“ संवत्सरादि भेद सौर बार्हस्पत्य सावन चांद्र नाक्षत्र मास के भेदसें जाननों, जब शुक्लपक्षकी पडवाको संक्रांति होयहै तब सौर चांद्रमाससे एक संग वर्ष होजायहै, और सौर मानसे वर्षमें छैद्दिन बढतेहैं और चांद्रमान करके वर्षमें छैदिन घट जायहै ऐसे बारह दिनके घटने बढनेसे दोनोंका आगा पीछा होताहै ऐसे विचारसे पांच वर्ष होतेहैं तिनके बीचमें दो मलमास होंयहैं फेर छठो संवत्सर होयहै” ऐसे कालात्मा सूर्यनारायणको अप्रमत्त होके नित्य पूजन करें इस बातको कहतेहैं

यः सृज्य इत्यादि श्लोकसे अंकुर आदि कार्य जिसका विषय ऐसी बीज आदिकोंको शक्तिको कालरूपा अपनी शक्तिसे बहुत प्रकारसे कार्यके सन्मुख करताहुआ अन्तरिक्षमें धावन करताहै, महाभूतविशेष तेजोमण्डलरूपी सूर्य किस प्रयोजनसे दौडताहै कि पुरुषोंके मोहको दूर करनेके लिये अर्थात् दिनरात्रिके प्रमाणसे आयुआदिके क्षीण होनेसे विषयोंमें लगीहुई प्रीतिको छुडवाताहै, और सकाम पुरुषोंको तो गुणमय स्वर्गादि फलको यज्ञोंसे विस्तार करवाताहै, ऐसे संवत्सरपञ्चकके प्रवर्तककी पूजा करो ॥ १५ ॥ विदुरजी बोले कि पितर देव मनुष्यनकी आयु आपनें कही, अब जो या कल्पसें बाहिर ज्ञानी लोग हैं उनकी गति कहो ॥ १६ ॥ निश्चय है कि कालरूप ईश्वरकी गति आप जानोंहो, जो धीर लोग हैं वे योगाभ्यासकी सिद्धिके नेत्रोंसे विश्वकी सब जानेंहैं ॥ १७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि सतयुग त्रेता द्वापर कलि ये चारयुग सन्ध्या और सन्ध्यांशके सहित दिव्य द्वादश वर्षोंसें निरूपण करेहैं ॥ १८ ॥ तहां फिर बारह हजार दिव्यवर्षोंकी ऐसी व्यवस्था है कि कृतयुगका प्रमाण तो चारहजार ४००० दिव्य वर्ष, और इनके सन्ध्यांशका प्रमाण आठ सौ ८०० दिव्य वर्ष, और त्रेतायुगका तीनहजार ३००० दिव्य वर्ष, और इसके सन्ध्या और संध्यांशका प्रमाण छहसौ ६०० दिव्य वर्ष, और द्वापर युगका प्रमाण दो हजार २००० दिव्य वर्ष, और इसके सन्ध्या और सन्ध्यांशका प्रमाण चारसौ ४०० दिव्य वर्ष, और कलियुगका प्रमाण एक हजार १००० दिव्य वर्ष, और इसके सन्ध्या और संध्यांशका प्रमाण दोसौ २०० दिव्य वर्ष ये कहे हैं, इन सबके जोड देनेसे सन्ध्या और संध्यांशके सहित चारोयुगोंका प्रमाण बारह हजार १२००० दिव्य वर्ष होतेहैं, मनुष्योंके एक वर्षका देवतोंका एक दिनरात्रि होता है, ऐसे मनुष्योंके तीन सौ साठ ३६० वर्षोंका देवतोंका एक वर्ष होता है, इस स्थूल मतके माननेसे १४४०००० मनुष्योंके वर्षोंसे कृतयुगका प्रमाण होता है, इसके सन्ध्या और अंशका प्रमाण २८८००० मनुष्यवर्ष होतेहैं और त्रेतायुगका प्र-

विदुर उवाच ॥ पितृदेवमनुष्याणामायुः परमिदं स्मृतत् ॥ परेषां गतिमाचक्ष्व ये स्युः कल्पाद्बहिर्विदः ॥ १६ ॥
भगवान् वेद कालस्य गतिं भगवतो ननु ॥ विश्वं विचक्षते धीरा योगराद्धेन चक्षुषा ॥ १७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ कृतं
त्रेता द्वापरं च कलिश्चेति चतुर्युगम् ॥ दिव्यैर्द्वादशभिर्वर्षैः सावधानं निरूपितम् ॥ १८ ॥ चत्वारि त्रीणि द्वे चैकं
कृतादिषु यथाक्रमम् ॥ संख्यातानि सहस्राणि द्विगुणानि शतानि च ॥ १९ ॥

माण १०८०००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं और त्रेतायुगके सन्ध्या और अंशका प्रमाण २१६००० मनुष्योंके वर्ष होतेहैं और द्वापरयुगका प्रमाण ७२०००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं और द्वापर युगके सन्ध्या और अंशका प्रमाण १४४००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं और कलियुगका प्रमाण ३६०००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं और कलियुगके सन्ध्या और अंशका प्रमाण ७२००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं इस तरह सन्ध्या और अंशके सहित चारों युगोंका प्रमाण ४३२०००० मनुष्योंके वर्ष होते हैं ॥ १९ ॥ दिव्य वर्षोंके सैकडोंसे जिनका प्रमाण कहा वे सन्ध्या और अंश हैं और उनके बीचमें जो काल है उसकी युगसंज्ञा है कि जिसमें यज्ञ आदि धर्म विशेषका विधान है और साधारण धर्म तो संन्ध्या और अंशमेंभी होता है युगके आदिमें सन्ध्या और अन्तमें अंश होता है ॥ २० ॥ कृतयुगमें चारों पांवोंके सहित धर्म मनुष्योंको सेवन करताहै, और वही धर्म त्रेता

सन्ध्यांऽशयोरन्तरेण यः कालः शतसंख्ययोः ॥ तमेवाहुर्युगं तज्ज्ञा यत्र धर्मो विधीयते ॥२०॥ धर्मश्चतुष्पान्मनुजान्कृते समनुवर्तते ॥ स एवान्येष्वधर्मेण व्येति पादेन वर्धता ॥ २१ ॥ त्रिलोक्या युगसाहस्रं बहिराब्रह्मणो दिनम् ॥ तावत्येव निशा तात यन्निमीलति विश्वसृक् ॥ २२ ॥ निशाऽवसान आरब्धो लोककल्पोऽनुवर्तते ॥ यावद्दिनं भगवतो मनून्भुञ्जंश्चतुर्दश ॥२३॥ स्वं स्वं कालं मनुर्भुङ्क्ते साधिकां ह्येकसप्ततिम् ॥ मन्वन्तरेषु मनवस्तद्वंश्या ऋषयः सुराः ॥ ॥ २४ ॥ सप्तर्षयस्तु गन्धर्वाः क्रमेणैव भवन्ति ते ॥ भवन्ति चैव युगपत्सुरेशाश्चानु ये च तान् ॥ २५ ॥

आदि युगोंमें एक एक पांवसे रहित होताहै, जैसे जैसे एक एक पांवसे अधर्म बढता है, ऐसे कलियुगमें तीन पावोंसे रहित धर्म रहता है, यह कथन केवल वैराग्यके लिये है कुछ धर्मके त्यागके लिये नहीं है ॥ २१ ॥ त्रिलोकीसे बाहर महर्लोकसें आदि ले ब्रह्मलोकपर्य्यन्तमें हजार १००० चतुर्युगीका एक दिन होता है और हे तात ! उन लोकोंमें रात्रिभी हजार १००० चतुर्युगी प्रमाण होती है, कि जिस रात्रिमें विश्वके रचनेहारे ब्रह्मा शयन करतेहैं ॥ २२ ॥ निशाके अंतमें लोकोंकी रचनाका प्रारंभ होय है, जब ब्रह्माके दिनमें चौदेहे मनु भोगैहै ॥ २३ ॥ इकहत्तर युगतक मनु अपनें अपनें कालकों भोगे हैं मन्वंतरोंमें मनु उनके वंश ऋषि देवता होवै हैं ॥ २४ ॥ सप्त ऋषि गंधर्व ये सब क्रमकरकै होयहैं और इंद्रादिक और जो उनके पीछेके हैं वे एक संग होय हैं ॥ २५ ॥

त्रिलोकीको प्रवर्तक ये ब्रह्माजीके दिनकी रचना है पशु मनुष्य पितर देवता इनको जन्म कर्म करके होयहै ॥ २६ ॥ मन्वंतरोंमें भगवान् अपनी मूर्तियोंकरकै सत्यकों धारण करैं है अपनें पुरुषार्थको उदयकर मन्वादिकोंसें विश्वकी रक्षा करैं है ॥ २७ ॥ तामस अंशकों ग्रहणकर अपनों विक्रम रोकैहैं समय पायकर सब अपनेंमें लीन देख सायंकालके समयमें चुप्प होकर रहैं हैं ॥ २८ ॥ भू आदि लोक तिनमें लीन होजांयहैं, निशा प्रवृत्त होनेसै चंद्र सूर्य नहीं रहते ॥ २९ ॥ संकर्षणकी अग्निसें जब त्रिलोकी भस्म होयहै तब वा गर्मीसें पीडित भृगु आदि ऋषीश्वर महर्लोकसें जनलोककों चलेजांयहै ॥ ३० ॥ कल्पके अन्तमें बढो भयो और प्रचंड पवनके प्रभावसै चलायमान लहरोंवाले और क्षुभितसमुद्र त्रिलोकी डुबा देताहै ॥ ३१ ॥ शेषजीके आसनपर श्रीहरी वा जलमें योगनिद्रासे नेत्र मूंद जनलोकवासी ऋषियोंसै स्तुतिको प्राप्त हो विराजते हैं ॥ ३२ ॥ कालकी गतिसे लक्षित दिन रातकरकै इस प्राणीकी आयु क्षीण करैं हैं, परम आयु सो १०० वर्षकी है ॥ ३३ ॥ जो आधी आयु है वाको परार्द्ध कहैं हैं पूर्व परार्द्ध हो चुको अब अपरार्ध प्रवर्त भयो है ॥ ३४ ॥ पूर्व परार्द्धके आदिमें ब्राह्मनामक कल्प होतो भयो जहां ब्रह्माजी भए वाको शब्दब्रह्म कहैं हैं ॥ ३५ ॥

एष दैनंदिनः सर्गो ब्राह्मस्त्रैलोक्यवर्तनः ॥ तिर्यङ्नृपितृदेवानां सम्भवो यत्र कर्मभिः ॥ २६ ॥ मन्वन्तरेषु भगवान् बिभ्रत्सत्त्वं स्वमूर्तिभिः ॥ मन्वादिभिरिदं विश्वमवत्युदितपौरुषः ॥ २७ ॥ तमोमात्रामुपादाय प्रतिसंरुद्धविक्रमः ॥ कालेनाऽनुगताऽशेष आस्ते तूष्णीं दिनात्यये ॥२८॥ तमेवान्वपिधीयन्ते लोका भूरादयस्त्रयः॥ निशायामनुवृत्तायां निर्मुक्तशशिभास्करम् ॥ २९ ॥ त्रिलोक्यां दह्यमानायां शक्त्या संकर्षणाग्निना ॥ यान्त्यूष्मणा महर्लोकाज्जनं भृग्वादयोऽर्दिताः ॥ ३० ॥ तावत्त्रिभुवनं सद्यः कल्पान्तैधितसिन्धवः ॥ प्लावयन्त्युत्कटाटोपचण्डवातेरितोमर्यः ॥ ३१ ॥ अन्तः स तस्मिन् सलिल आस्तेऽनन्तासनो हरिः ॥ योगनिद्रानिमीलाक्षः स्तूयमानो जनालयैः ॥ ३२ ॥ एवंविधैरहोरात्रैः कालगत्योपलक्षितैः ॥ अपक्षितामिवास्याऽपि परमायुर्वयःशतम् ॥ ३३ ॥ यदर्धमायुषस्तस्य परार्धमभिधीयते ॥ पूर्वः परार्धोऽपक्रान्तो ह्यपरोऽद्य प्रवर्तते ॥ ३४ ॥ पूर्वस्यादौ परार्धस्य ब्राह्मो नाम महानभूत् ॥ कल्पो यत्राऽभवद्ब्रह्मा शब्दब्रह्मेति यं विदुः ॥ ३५ ॥

68

ताके अंतमें जो कल्प भयो वाको पाद्मनाम है जो श्रीहरिके नाभिसरोवरसें सब लोकको उत्पादक कमल भयो ॥ ३६ ॥ हे भारत ! ये कल्प तो कह्यो दूसरो वाराह कल्प भयो जहां श्रीहरि भगवान् शूकर भए ॥ ३७ ॥ अचिंत्यशक्ति कार्योंकी उपाधिरहित, अनंत अनादि जगतकी आत्मा ईश्वरको ये द्विपरार्द्ध निमेष काल कह्यो जाय है कछु या क्रमसे आयुकी गणना नहीं जाननीं ॥ ३८ ॥ परमाणु आदि द्विपरार्द्धपर्यंत कालको ईश्वर परवश नहीं चलसक्ता यह तौ देह और घरके अभिमानियोंपर अपना बल चलासकताहै ॥ ३९ ॥ सब विकारोंसें युक्त विशेष आयिसे

तस्यैव चान्ते कल्पोऽभूद्यं पाद्ममभिचक्षते ॥ यद्धरेर्नाभिसरस आसील्लोकसरोरुहम् ॥ ३६ ॥ अयं ते कथितः कल्पो द्वितीयस्यापि भारत ॥ वाराह इति विख्यातो यत्रासीत् सूकरो हरिः ॥ ३७ ॥ कालोऽयं द्विपरार्धाख्यो निमेष उपचर्यते ॥ अव्याकृतस्याऽनन्तस्य अनादेर्जगदात्मनः ॥ ३८ ॥ कालोऽयं परमाण्वादिर्द्विपरार्धान्त ईश्वरः ॥ नैवेशितुं प्रभुर्भूम्न ईश्वरो धाम मानिनाम् ॥ ३९ ॥ विकारैः सहितो युक्तैर्विशेषादिभिरावृतः ॥ आण्डकोशो बहिरयं पञ्चाशत्कोटिविस्तृतः ॥ ४० ॥ दशोत्तराधिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् ॥ लक्ष्यतेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः ॥ ॥ ४१ ॥ तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ॥ विष्णोर्धाम परं साक्षात् पुरुषस्य महात्मनः ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृतीयस्कन्धे विदुरमैत्रेयसंवादे कल्पमानादिवर्णनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

वेष्टित बाहिरसे ये अंडकोश पंचकोटियोजनको विस्तृत है ॥ ४० ॥ यह ब्रह्मांड जिनके विषे एकपरमाणुसा प्रतीत होताहै जो कि पृथ्वी आदि एक एकसै दसगुने आवरणोंसै ढकाहै और ऐसे ऐसे औरभी करोडों ब्रह्माण्ड पडेहैं ॥ ४१ ॥ ता समय उस सब कारणनके कारण अक्षर “ बृहत्त्वादि गुणविशिष्ट चैतन्यको ब्रह्मको कहैं हैं ” वो सर्वव्यापक महात्मा पुरुष विष्णुको सर्वोत्तम स्वरूप है ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे भा० तृतीयस्कन्धे परमाण्वादिद्विपरार्द्धपर्यंतकालस्वरूपईश्वरवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

---

१ वो ब्रह्म ऐसो होयहै भक्तनके कारण “ ब्रह्ममें ढूंढो पुराण न वेद न भेद सुनो चितबौ गुणौ चाय न देख्यो सुनो न । कबहुं कितहुं वह कैसो स्वरूप है कैसो मुभायन ॥ हेरत हेरत हार फरो रस खान बतायो न लोग लुगायन । देख्यो कहो वह कुंजकुटीतट बैठयो पलोटत राधिका पायन ॥ १ ॥ ”

श्रीमैत्रेयजी बोले कि हे विदुर ! कालरूप परमात्माकी ये महिमा वर्णन कीर्नी, और ब्रह्माजी जैसे और सृष्टि रचतेभए सो मोसे सुनों ॥ १ ॥ प्रथम अंधतामिस्र तामिस्र महामोह मोह तम ये ब्रह्माजी रचते भये, ये सब अज्ञानकी वृत्तियें हैं ॥ २ ॥ अपनीं सृष्टिको पापी देख अपनेंको बहुमान न करते भए भगवतके ध्यानसे मन पवित्र कर औरनको रचतेभए ॥ ३ ॥ सनक सनंदन सनातन सनत्कुमार चार ब्रह्मानें रचे ये क्रिया रहित वीर्य ऊपरकों चढाय नैष्ठिक ब्रह्मचारी भये ॥ ४ ॥ हे पुत्रो ! प्रजा रचो ऐसे ब्रह्माजीनें जब कही तो वे प्रजा रचवेकी इच्छा न करतेभए,मोक्षधर्ममें परायण

मैत्रेय उवाच ॥ इति ते वर्णितः क्षत्तः कालाख्यः परमात्मनः ॥ महिमा वेदगर्भोऽथ यथाऽस्राक्षीन्निबोध मे ॥ १ ॥ ससर्जाग्रेऽन्धतामिस्रमथ तामिस्रमादिकृत् ॥ महामोहं च मोहं च तमश्चाऽज्ञानवृत्तयः ॥ २ ॥ दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मानं बह्वमन्यत ॥ भगवद्ध्यानपूतेन मनसाऽन्यां ततोऽसृजत् ॥ ३ सनकं च सनन्दं च सनातनमथात्मभूः ॥ सनत्कुमारं च मुनीन् निष्क्रियानूर्ध्वरेतसः ॥ ४ तान् बभाषे स्वभूः पुत्रान् प्रजाः सृजत पुत्रकाः ॥ ते नैच्छन् मोक्षधर्माणो वासुदेवपरायणाः ॥५॥ सोऽवध्यातः सुतैरेवं प्रत्याख्यातानुशासनैः ॥ क्रोधं दुर्विषहं जातं नियन्तुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥ धिया निगृह्यमाणोपि भ्रुवोर्मध्यात् प्रजापतेः ॥ सद्योऽजायत तन्मन्युः कुमारो नीललोहितः ॥७ ॥ स वै रुरोद देवानां पूर्वजो भगवान् भवः ॥ नामानि कुरु मे धातः स्थानानि च जगद्गुरो ॥ ८ ॥ इति तस्य वचः पाद्मो भगवान् परिपालयन् ॥ अभ्यधाद् भद्रया वाचा मा रोदीस्तत् करोमि ते ॥ ९ ॥

वासुदेवमें सदा लगेरहैं ॥ ५ ॥ हमारी शिक्षा पुत्रोंनें न मानीं तब ध्यान करतेभए ब्रह्माजीको क्रोध भयो क्रोधको ब्रह्माजी रोकनेलगे ॥ ६ ॥ बुद्धिसे क्रोध रोको तोभी ब्रह्माके भ्रुकुटिमेंते शीघ्र नीलरंगको बालरूप धर वो क्रोध उत्पन्न भयो ॥ ७ ॥ देवताओंसे प्रथम उत्पन्न भये भगवान शिव रोते हुए ब्रह्मासे बोले हे पितः ! हमारो नामकरण करो हे जगद्गुरो ! स्थान बताओ ॥ ८ ॥ ये वचन सुन ब्रह्माजी पालन करतेभये सुंदरवाणीसें बोले कि मत रोओ तैसोई तुमारे लिये करैंगे ॥ ९ ॥

70

हे सुरश्रेष्ठ! जो तुम उद्वेगसे बालककी नाईं रोए यासे ये सब प्रजा तुमकों रुद्र कहैगी ॥ १० ॥ हृदय इंद्रियें प्राण आकाश पवन अग्नि जल पृथिवी सूर्य चंद्रमा तप ये स्थान प्रथमसें हमने करेहैं, ॥ ११ ॥ (मन्यु मनु महिनस महान् शिव क्रतुध्वज उग्ररेत भव काल वामदेव धृतव्रत यह तुह्मारे नाम होंगे) इनमें तुम बसो धी वृत्ति उशना उमा नियुत् सर्पि इला अंबिका इरावती सुधा दीक्षा रुद्राणी हे रुद्र! ये तुमारी स्त्रियें हैं ॥ १२ ॥ ये नाम और स्थान ग्रहण करो, अपनी स्त्रीनसमेत तुम प्रजा रचो, क्योंकि जिससें तुम प्रजाके पति हो ॥ १३ ॥ जब ब्रह्मानें ये आज्ञा कीनो तब नीलकण्ठवारे शिव अपनीं आकृति स्वभावसे अपने समान प्रजा रचते भए ॥ १४ ॥ रुद्रके रचे भए सब ओरसें जगतको खायवेलगे, ये सुन प्रजापतिको शंका भई ॥ १५ ॥ हे सुरोत्तम! ऐसी रची भई प्रजासे में पूर्ण भयो बसकरो यह तीव्रनेत्रोंसे मेरे सहित सब प्रजाको जरावैहै ॥ १६ ॥ तेरो कल्याण होय, सब जीवनको सुखदायक तप करो, तपसे जैसी प्रजा पहिले ही तैसी आप रचोगे ॥ १७ ॥

यदरोदीः सुरश्रेष्ठ सोद्वेग इव बालकः ॥ ततस्त्वामभिधास्यन्ति नाम्ना रुद्र इति प्रजाः ॥ १० ॥ हृदिन्द्रियाण्यसुर्व्योम वायुरग्निर्जलं मही ॥ सूर्यश्चन्द्रस्तपश्चैव स्थानान्यग्रे कृतानि मे ॥ ११ ॥ (मन्युर्मनुर्महिनसो महाञ्छिवः क्रतुध्वजः ॥ उग्ररेता भवः कालो वामदेवो धृतव्रतः ॥ १ ॥) धीर्वृत्तिरुशनोमा च नियुत्सर्पिरिलाम्बिका ॥ इरावती सुधा दीक्षा रुद्राण्यो रुद्र ते स्त्रियः ॥१२॥ गृहाणैतानि नामानि स्थानानि च सयोषणः ॥ एभिः सृज प्रजा बह्वीः प्रजानामसि यत्पतिः ॥१३॥ इत्यादिष्टः स गुरुणा भगवान्नीललोहितः ॥ सत्त्वाकृतिस्वभावेन ससर्जात्मसमाः प्रजाः ॥ १४ ॥ रुद्राणां रुद्रसृष्टानां समन्ताद्ग्रसतां जगत् ॥ निशम्याऽसंख्यशो यूथान् प्रजापतिरशङ्कत ॥ १५ ॥ अलं प्रजाभिः सृष्टाभिरीदृशीभिः सुरोत्तम ॥ मया सह दहन्तीभिर्दिशश्चक्षुर्भिरुल्बणैः ॥ १६ ॥ तप आतिष्ठ भद्रं ते सर्वभूतसुखावहम् ॥ तपसैव यथापूर्वं स्रष्टा विश्वमिदं भवान् ॥ १७ ॥

परंज्योतिःस्वरूप भगवान् अधोक्षज सब जीवके भीतर वास करनेहारे ईश्वरको तप करकै अनायाससें प्राप्त होयहैं ॥ १८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि ऐसे ब्रह्माजीसे आज्ञा लेकर ब्रह्माजीकी परिक्रमा कर बोहोत अच्छा ऐसे कहिकर तप करवेको वनमें प्रवेश करते भए ॥१९॥ याके उपरांत फेर रचवेकी इच्छा भई, तब भगवतकी शक्तियुक्त लोकके संतानके हेतु दश पुत्र होते भए ॥ २० ॥ मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ, दक्षप्रजापती, दशम नारद भए ॥ २१ ॥ ब्रह्माकी गोदसे नारद भए, स्वयंभूके अंगूठेसे दक्ष, प्राणसे वसिष्ठ, ब्रह्माके त्वचासें भृगु भए ॥ २२ ॥ पुलह

71

तपसैव परं ज्योतिर्भगवन्तमधोक्षजम् ॥ सर्वभूतगुहावासमञ्जसा विन्दते पुमान् ॥१८॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवमात्मभुवाऽऽदिष्टः परिक्रम्य गिरां पतिम् ॥ बाढमित्यमुमामन्त्र्य विवेश तपसे वनम् ॥ १९ ॥ अथाभिध्यायतः सर्गं दश पुत्राः प्रजज्ञिरे ॥ भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः॥२०॥ मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः ॥२१॥ उत्सङ्गान्नारदो जज्ञे दक्षोऽङ्गुष्ठात् स्वयंभुवः ॥ प्राणाद्वसिष्ठः सञ्जातो भृगुस्त्वचि करात्क्रतुः ॥ २२ ॥ पुलहो नाभितो जज्ञे पुलस्त्यः कर्णयोर्ऋषिः ॥ अङ्गिरा मुखतोऽक्ष्णोऽत्रिर्मरीचिर्मनसोऽभवत् ॥ २३ ॥ धर्मः स्तनाद्दक्षिणतो यत्र नारायणः स्वयम् ॥ अधर्मः पृष्ठतो यस्मान्मृत्युर्लोकभयंकरः ॥२४॥ हृदि कामो भ्रुवः क्रोधो लोभश्चाधरदच्छदात् ॥ आस्याद्वाक् सिन्धवो मेढ्रान्निर्ऋतिः पायोरघाश्रयः ॥२५॥ छायायाः कर्दमो जज्ञे देवहूत्याः पतिः प्रभुः ॥ मनसो देहतश्चेदं जज्ञे विश्वकृतो जगत् ॥ २६ ॥

नाभिसे भए, पुलस्त्यऋषि कर्णसे, अंगिरा मुखसे, नेत्रोंसे अत्रि, मनसें मरीचि भए, ॥ २३ ॥ धर्म दहने स्तनसें भयो, जा धर्ममें नारायण विराजे है, अधर्म पीठसै भयो, जासे सब लोककी भयंकर मृत्यु भई ॥ २४ ॥ हृदयसें काम उत्पन्न है, भौंसें क्रोध उत्पन्न है, नीचेके होठसे लोभ भयो,मुखसे वाणी, लिंगसे समुद्र, और गुदासे पापको आश्रित मृत्यु हुआ ॥ २५ ॥ छायासे कर्दमजी भये, जो देवहूतिके पति प्रभु भए, ब्रह्माके देह और मनसें यह जगत् भयो ॥ २६ ॥

72

हमने ऐसे श्रवण कियाहै कि युवा अवस्थाको प्राप्त वाणीरूप सरस्वती जो स्वयंभूसे उत्पन्न होनेसे उनकी कन्या हुई उसे देख ब्रह्माजी सकाम हो इच्छा करनेलगे ❀ और सरस्वती इसमें सम्मत न हुई ॥ २७ ॥ अधर्ममें बुद्धि लगाये पिताको देख पुत्र मरीचि मुख्य मुनि ज्ञानसे उपदेश करते भए ॥ २८ ॥ ऐसी पहिलेभी किसीनें न करी, न आगे कोई करैगो जो तुम बेटीमें गमन करोहो, कामको जीतो तुम समर्थ हो ॥२९॥ हे जगद्गुरो! तेजवंतोंके योग्य ये नहीं है, जिनके कर्मके अनुसार रहिवेसे लोक क्षेमको प्राप्त होयहैं ॥ ३० ॥ तिन भगवानके अर्थ नमस्कार होय, जो या विश्वको अपनी कांति करकै आत्मामें स्थित करते भए सो ईश्वर धर्मकी रक्षा करिवेके योग्य है ॥ ३१ ॥ ऐसे प्रजापतिनकी पुत्रोंकी स्तुति देख लाजसे

वाचं दुहितरं तन्वीं स्वयंभूर्हरतीं मनः ॥ अकामां चकमे क्षत्तः सकाम इति नः श्रुतम् ॥ २७ ॥ तमधर्मे कृतमतिं विलोक्य
पितरं सुताः ॥ मरीचिमुख्या मुनयो विश्रम्भात्प्रत्यबोधयन् ॥ २८ ॥ नैतत्पूर्वैः कृतं त्वद्य न करिष्यन्ति
चापरे ॥ यत्त्वं दुहितरं गच्छेरनिगृह्याङ्गजं प्रभुः ॥ २९ ॥ तेजीयसामपि ह्येतन्न सुश्लोक्यं जगद्गुरो ॥ यद्वृत्तमनुतिष्ठन्वै
लोकः क्षेमाय कल्पते ॥३०॥ तस्मै नमो भगवते य इदं स्वेन रोचिषा ॥ आत्मस्थं व्यञ्जयामास स धर्मं पातुमर्हति
॥३१॥ स इत्थं गृणतः पुत्रान् पुरो दृष्ट्वा प्रजापतीन् ॥ प्रजापतिपतिस्तन्वं तत्याज व्रीडितस्तदा ॥ ३२ ॥
तां दिशो जगृहुर्घोरां नीहारं यद्विदुस्तमः ॥ इदानीमपि संसारे कुहरो दृश्यते नरैः ॥३३॥ कदाचिद् ध्यायतः स्रष्टुर्वेदा
आसंश्चतुर्मुखात् ॥ कथं स्रक्ष्याम्यहं लोकान् समवेतान् यथा पुरा ॥३४॥ चातुर्होत्रं कर्मतन्त्रमुपवेदनयैः सह
॥ धर्मस्य पादाश्चत्वारस्तथैवाऽऽश्रमवृत्तयः ॥ ३५ ॥

प्रजानके पतीनके पती ब्रह्माजी वा समय वा शरीरको त्यागते भए ॥ ३२ ॥ वा धीरदेहको दिशाननें ग्रहण कीनों, जो तम नीहार नामसे अबभी संसारमें कभी अंधकार सो होय कुहरा मनुष्योंको दीखेहै ॥ ३३ ॥ जैसे पूर्व कल्पमें सब लोक वे वैसेही कैसे रचोंगो ऐसे चिन्तन करते हुये ब्रह्माके चारों मुखोंसे वेद भयो ॥ ३४ ॥ चार ब्राह्मण मिलकर करें वो यज्ञ, यज्ञोंको विस्तार, उपवेद न्याय सहित ये चारभी धर्मके पांव है, तैंसेही आश्रम और आश्रमोंकी वृत्तियें ब्रह्माजी रचतेभए ॥ ३५ ॥

❀ यह अलंकार है यहां सरस्वतीरूप विद्या जाननी ।

विदुरजी बोले कि हे तपोधन ! वे विश्व रचवेवारेनके ईश्वर ब्रह्मा वेदादिकोंको मुखसे रचतेभए, जो जो वेद जिस मुखसे रचते भए सो मोसे कहो ॥ ३६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि ऋक् यजु साम अथर्व नामक वेदनको पूर्व आदि चारों मुखोंसे क्रमसे रचतेभए, जो गानमें न आवै ऐसे मंत्रको स्तोत्र यज्ञको कर्म स्तुतिनको समूह प्रायश्चित्त येभी क्रमसे रचते भए ॥ ३७ ॥ क्रमसे अपने पूर्व आदि मुखसे (आयुर्वेद) अर्थात् वैद्यकशास्त्र (धनुर्वेद) अर्थात् धनुष चलानेको शास्त्र (गांधर्ववेद) गायवेको शास्त्र सरिगम इत्यादिक (स्थापत्य) घर बनावेको शास्त्र विश्वकर्माको बनायो भयो ये सब रचते भए ॥ ३८ ॥ सबके दर्शन योग्य ईश्वर इतिहास पुराण पंचम वेद सब मुखोंसे रचतेभए ॥ ३९ ॥ षोडशी मृतककर्म ये पूर्वकी ओरके मुखसे रचे, अग्नि लानों अग्निष्टोम यज्ञ दक्षिण मुखसें रचे, यथार्थ वक्तानके शास्त्र रात्रिके अनुष्ठान पश्चिम मुखसे रचे, वाजपेय यज्ञ गोमेध यज्ञ उत्तरके मुखसें रचे ॥ ४० ॥ विद्याके द्वारा शौच करनों " क्षेत्रज्ञस्येश्वरज्ञानाद्विशुद्धिः परमात्मनः ॥ इति" दया तप सत्य ये धर्मके पांव हैं " भूताभयप्रदानस्य कलां नार्हति षोडशीम्" सब वृत्तियोंसें यथाविधि आश्रय रचतेभए ॥ ४१ ॥ गायत्रीके उपासक सावित्र कहावै हैं, एक वर्षतक व्रत करै वे प्राजापत्य कहावै हैं, वेदको पाठ करनों ये ब्राह्मणधर्म है, नैष्ठिक ब्रह्मचर्यको बृहद्व्रत कहैं हैं, जाको कोई निषेध न करै वाको वार्ता वृत्ति कहै हैं ऐसी खेती करनीं यज्ञ करावनेंकी वृत्ति संचय कहैं हैं, विना मागे जीविका करनी शालीन वृत्ति कहावैहै,गिरेभए कणवीनके निर्वाह करनो ऐसी शिलोंछवृत्ति घरमें रहिके वृत्ति करनीं गृह कहावै ये सब रचतेभए ॥ ४२ ॥

विदुर उवाच॥स वै विश्वसृजामीशो वेदादीन्मुखतोऽसृजत्॥यद्यद्येनासृजद्देवस्तन्मे ब्रूहि तपोधन॥३६॥मैत्रेय उवाच॥
ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान् वेदान् पूर्वादिभिर्मुखैः॥ शस्त्रमिज्यां स्तुतिस्तोमं प्रायश्चित्तं व्यधात्क्रमात् ॥३७॥आयुर्वेदं
धनुर्वेदं गान्धर्वं वेदमात्मनः॥स्थापत्यं चासृजद वेदं क्रमात्पूर्वादिभिर्मुखैः ॥३८॥ इतिहासपुराणानि पञ्चमं वेदमीश्वरः॥
सर्वेभ्य एव वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः॥३९॥षोडश्युक्थौ पूर्ववक्त्रात्पुरीष्यग्निष्टुतावथ॥ आप्तोर्यामातिरात्रौ
च वाजपेयं सगोसवम् ॥४० ॥ विद्या दानं तपः सत्यं धर्मस्येति पदानि च ॥ आश्रमांश्च यथासंख्यमसृजत्सह
वृत्तिभिः ॥ ४१ ॥ सावित्रं प्राजापत्यं च ब्राह्मं चाथ बृहत्तथा ॥ वार्ता-सञ्चय-शालीन-शिलोञ्छ इति वै गृहे ॥ ४२ ॥

74

वैखानस वे हैं जो सांवांके चांवल खायके तप करैं,वालखिल्य वे हैं जो नयो अन्न मिल जाय तो पहिलोको संचित अन्न त्यागैहैं,औदुंबर ये है कि प्रातःकाल उठकर जा दिशाकों जांय उधर पहिले जहां फल मिले वे खाय जीवैं हैं, फेनप वे हैं कि अपने आप गिरे फलादि खायके जीवैं हैं, ये चार वनवासी ब्राह्मण हैं, अपनें आश्रमके कर्ममें प्रधान रहैं वे कुटीचक हैं कुछ काम करके जीविका करैं ज्ञान सीखैं वे बव्होद हैं ज्ञानमें अभ्यास करैं वे हंस हैं तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिवारे निष्क्रिय हैं इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हैं ॥ ४३ ॥ वेदविद्या वेदत्रयीकी वार्ता, दंडविद्या नीतिकी वार्ता ये व्याहृति प्रणव ब्रह्माके हृदयसे होती भई । तथा च श्रुतिः " भूर्भुवः सुवरिति वा एतास्तिस्रो व्याहृतयस्तासामुह स्मैतां चतुर्थीमाह चमस्य प्रवेदयते " ॥ ४४ ॥

वैखानसो वालखिल्यौदुम्बराः फेनपा वने ॥ न्यासे कुटीचकः पूर्वं बह्वोदो हंसनिष्क्रियौ ॥ ४३ ॥ आन्वीक्षिकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिस्तथैव च ॥ एवं व्याहृतयश्चासन् प्रणवो ह्यस्य दह्रतः ॥ ४४ ॥ तस्योष्णिगासील्लोमभ्यो गायत्री च त्वचो विभोः ॥ त्रिष्टुब् मांसात्स्नुतोऽनुष्टुप् जगत्यस्थ्नः प्रजापतेः ॥ ४५ ॥ मज्जायाः पङ्क्तिरुत्पन्ना बृहती प्राणतोऽभवत् ॥ स्पर्शस्तस्याऽभवज्जीवः स्वरो देह उदाहृतः ॥४६॥ ऊष्माणमिन्द्रियाण्याहुरन्तःस्था बलमात्मनः ॥ स्वराः सप्त विहारेण भवन्ति स्म प्रजापतेः ॥४७॥ शब्दब्रह्मात्मनस्तात व्यक्ताव्यक्तात्मनः परः ॥ ब्रह्माऽवभाति विततो नानाशक्त्युपबृंहितः ॥ ततोऽपरामुपादाय स सर्गाय मनो दधे ॥ ४८ ॥ ऋषीणां भूरिवीर्याणामपि सर्गमविस्तृतम् ॥ ज्ञात्वा तद्धृद्ये भूयश्चिन्तयामास कौरव ॥ ४९ ॥

ब्रह्माजीके वारसे उष्णिक् छंद भयो, विभूके त्वचासे गायत्री भयी, त्रिष्टुप् मांससे भयो स्नायुसे अनुष्टुप् भयो ॥ ४५ ॥ मज्जासें पंक्ति छंद भयो, प्राणसे बृहती छंद होतोभयो, तिसके जीवसे स्पर्श भयो, देहसें स्वर भये ॥ ४६ ॥ श ष स ह ये ऊष्म ब्रह्माके इंद्रियोंसे भये, य र ल व ये अंतःस्थ ब्रह्माके बलसें भए,षड्जादिकसप्तस्वर श्रीब्रह्माजीके विहारसें भए ॥ ४७ ॥ जिन शब्द ब्रह्मरूप व्यक्त अर्थात् वैखरिणी नाम स्वरूपसे अनेक शक्तियोंसे उत्पन्न इन्द्रादिरूप और अव्यक्त अर्थात् प्रणवस्वरूपसे परिपूर्ण ब्रह्मरूप प्रकाशित है उसने देह धार सृष्टि रचनेका ध्यान किया ॥ ४८ ॥ बडे वीर्यवारे ऋषीनके महाविस्तृत सर्गवर्णन करै सो बढे नहीं हे राजन् ! ऐसे जान फेर हृदयमें चिंता करतेभए ॥ ४९ ॥

ये बडो आश्चर्य है कि नित्य ऐसे व्यापार करूं हूं तोहू सृष्टि बढै नहीं है निश्चय है कि याको दैव नहीं बढने देहै ॥ ५० ॥ प्रजाकी वृद्धि नहीं होय है ऐसे जब दैवकों दोष देवैलगे तब ब्रह्मामेंसे दो रूप भये जाकों काय कहैं हैं ॥ ५१ ॥ तब उन रूपके विभागमेंसे एक मिथुन जोडा होतोभयो जो उनमें पुरुष हो वो स्वराट् स्वायंभुव मनु भयो ॥ ५२ ॥ जो स्त्री थी वो शतरूपा वा महात्माकी राणी भई तब मैथुनकर्म करनेसे प्रजा बढती भई ॥ ५३ ॥ वानें शतरूपामें पांच संतान उत्पन्न करे प्रियव्रत उत्तानपाद ये दो पुत्र और तीन कन्या ॥ ५४॥ आकूति देवहूति प्रसूति हे सत्तम! ये पां-

अहो अद्भुतमेतन्मे व्याप्टतस्यापि नित्यदा ॥ न ह्येधन्ते प्रजा नूनं दैवमत्र विघातकम् ॥ ५० ॥ एवं युक्तकृतस्तस्य दैवं चा॑वेशतस्तदा ॥ कस्य रूपमभूद्द्वेधा यत् कायमभिचक्षते ॥ ५१ ॥ ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥ यस्तु तत्र पुमान् सोऽभून्मनुः स्वायंभुवः स्वराट् ॥ ५२ ॥ स्त्री याऽऽसीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः ॥ तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्येधाम्बभूविरे ॥ ५३ ॥ स चापि शतरूपायां पञ्चाऽपत्यान्यऽजीजनत् ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ तिस्रः कन्याश्च भारत ॥ ५४ ॥ आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति सत्तम ॥ आकूतिं रुचये प्रादात्कर्दमाय तु मध्यमाम् ॥ दक्षायाऽदात्प्रसूतिं च यत आपूरितं जगत् ॥ ५५ ॥ इति श्रीभा॰तृती॰मनुसर्गवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य वाचं वदतो मुनेः पुण्यतमां नृप ॥ भूयः पप्रच्छ कौरव्यो वासुदेवकथादृतः ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ स वै स्वायंभुवः सम्राट् प्रियः पुत्रः स्वयंभुवः ॥ प्रतिलभ्य प्रियां पत्नीं किं चकार ततो मुने ॥ २ ॥

च संतान भए आकूती रुचिप्रजापतिकों व्याही देवहूती कर्दमजीको दक्षको प्रसूति दई, इनसे सब जगत् भरगयो ॥ ५५ ॥ इति श्रीभा॰म॰ मनुसर्गवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीशुकाचार्य बोले कि हे नृप! ऐसे कहितेभए मुनिकी अत्यंत पुण्यतम वाणी सुनकर वासुदेवकी कथामें आदर कर विदुरजी फिर पूछतेभए ॥१॥ विदूरजी बोले कि हे मुने! ब्रह्माके प्यारे पुत्र वे स्वायंभुवमनु राजेश्वर प्रियपत्नीको प्राप्त होय कहा करतेभए ॥२॥

हे सत्तम! तिस आदिराजको चरित मोसें कहो मोको श्रद्धा है वो भगवानके आश्रित हो ॥ ३ ॥ बहुत दिनकें सुनेभए पुरुषको श्रवणको यही फल
महात्माननें कह्योहै कि मुकुंदके पादारविंद जिनके हृदयमें हैं, उनके गुणानुवादको श्रवण करनो शुभफलदायक है ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि
ऐसे कहितेभए, विनीत सहस्र शिरवारे भगवानके चरणमें शिर रखनेहारे विदुरसें भगवतकी कथामें अत्यंत प्रसन्न रोमांचित हुए प्रसन्न मुनि मैत्रेयजी
कहितेभए ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि जब अपनीं भार्यासहित स्वायंभुव मनु भए, तब हाथ जोड ब्रह्मासे बोले ॥ ६ ॥ तुम एक सब जीवनके जन्म

चरितं तस्य राजर्षेरादिराजस्य सत्तम ॥ ब्रूहि मे श्रद्दधानाय विष्वक्सेनाश्रयो ह्यसौ ॥ ३ ॥ श्रुतस्य पुंसां सुचिर-
श्रमस्य नन्वञ्जसा सूरिभिरीडितोऽर्थः ॥ यत्तद्गुणानुश्रवणं मुकुन्दपादारविन्दं हृदयेषु येषाम् ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच
॥ इति ब्रुवाणं विदुरं विनीतं सहस्रशीर्ष्णश्चरणोपधानम् ॥ प्रहृष्टरोमा भगवत्कथायां प्रणीयमानो मुनिरभ्यचष्ट
॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ यदा स्वभार्यया साकं जातः स्वायंभुवो मनुः॥प्राञ्जलिः प्रणतश्चेदं वेदगर्भमभाषत
॥ ६ ॥ त्वमेकः सर्वभूतानां जन्मकृद्वृत्तिदः पिता ॥ अथाऽपि नः प्रजानां ते शुश्रूषा केन वा भवेत् ॥ ७ ॥ तद्विधेहि
नमस्तुभ्यं कर्मस्वीड्यात्मशक्तिषु ॥ यत् कृत्वेह यशो विष्वगमुत्र च भवेद्गतिः ॥ ८ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ प्रीतस्तुभ्यमहं
तात स्वस्ति स्ताद्वां क्षितीश्वर ॥ यन्निर्व्यलीकेन हृदा शाधि मेत्यात्मनार्पितम् ॥ ९ ॥ एतावत्यात्मजैर्वीर कार्या
ह्यपचितिर्गुरौ ॥ शक्त्याऽप्रमत्तैर्गृह्येत सादरं गतमत्सरैः ॥ १० ॥

करवेवारे वृत्तिदायक पिता हो, तोहू प्रजा आपकी शुश्रूषा कौन प्रकारसें करे ॥ ७ ॥ हे स्तुतियोग्य! सो कहो तुह्मै नमस्कार होय, अपनीं सामर्थ्य
भर जो कर्म करसकै जाके करेसें या लोकमें परलोकमें सब ओरसें सुंदर गति होय सो कहो ॥ ८ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि हे पुत्र! हे पृथिवीश्वर! हम
तुमपर प्रसन्न भए तुह्मारो मंगल होय जो निष्कपट हृदयसें मेरी कही आपनें कीनीं ॥ ९ ॥ हे वीर! ईर्षा त्याग अपनी सामर्थ्य भर पिताकी आज्ञा
पुत्रोंको इसी प्रकार मान्नीयोग्य है कि अपनी शक्तिअनुसार आदरसै पिताकी आज्ञा मानले ॥ १० ॥

हे वीर! अपने समान गुणवारे संतान या स्त्रीमें उत्पन्न कर धर्मसे पृथिवी शिक्षा करो, परमेश्वरकौं पूजन करो ॥ ११ ॥ हे नृप! प्रजाकी रक्षा करनेंसे मेरी अत्यंत शुश्रूषा होगी भगवान् सब प्रजाके भर्ता हृषीकेश प्रसन्न होवेंगे ॥ १२ ॥ यज्ञरूप जनार्दन भगवान् जिनके ऊपर नहीं तुष्ट भए; तिनको या देहके अर्थ केवल श्रम भयोहै कारण कि उन्होंने साक्षात् अपने आत्माकाही आदर नहीं किया ॥ १३ ॥ मनुजी बोले कि हे पापनाशक हे प्रभो! आपकी आज्ञामें हम वर्तेंगे, परंतु प्रजाके वसवेको मोको स्थान बताओ ॥ १४ ॥ हे देव! सब जीवमात्रकी स्थान पृथिवी तौ महाप्रलयमें जलमें डूबरही है या भू देवीके उद्धारकों यत्न विधान करो ॥१५॥ मैत्रेयजी बोले कि ब्रह्माजी जलके मध्यमें डूबी भई पृथ्वीको देख बुद्धिसे बहुत काल ध्यान कर बोले कैसें याकों निकासैं ॥ १६ ॥ विश्व रचतेभई मेरे सामनें जलसें डूबके पृथिवी रसातलको गई या सृष्टिमें लगेभए हम सब कहा उपायकों अनुष्ठान करैं ॥१७॥ जाके हृदयसें हम भए सो ईश्वर मेरो कार्य विधान करै, करुणासिंधु तीर्थरूप कीर्तिवारे भगवान् मेरो मनोरथ पुरोकरो ॥१८॥ हे पापरहित! ऐसे ध्यान करतेभए ब्रह्माके नाकके छिद्रमेंसे अकस्मात् अंगुष्ठसमान छोटेसे वराहजी निकसतेभए ॥ १९ ॥

स त्वमस्यामपत्यानि सदृशान्यात्मनो गुणैः ॥ उत्पाद्य शास धर्मेण गां यज्ञैः पुरुषं यज ॥ ११ ॥ परं शुश्रूषणं मह्यं स्यात्प्रजारक्षया नृप ॥ भगवांस्ते प्रजाभर्तुर्हृषीकेशोऽनुतुष्यति ॥ १२ ॥ येषां न तुष्टो भगवान् यज्ञलिङ्गो जनार्दनः ॥ तेषां श्रमो ह्यपार्थाय यदात्मानादृतः स्वयम् ॥ १३ ॥ मनुरुवाच ॥ आदेशेऽहं भगवतो वर्तेयाऽमीवसूदन ॥ स्थानं त्विहानुजानीहि प्रजानां मम च प्रभो ॥ १४ ॥ यदोकः सर्वसत्त्वानां मही मग्ना महाम्भसि ॥ अस्या उद्धरणे यत्नो देव देव्या विधीयताम् ॥ १५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ परमेष्ठी त्वपां मध्ये तथाऽऽसन्नामवेक्ष्य गाम् ॥ कथमेनां समुन्नेष्य इति दध्यौ धिया चिरम् ॥ १६ ॥ सृजतो मे क्षितिर्वार्भिः प्लाव्यमाना रसां गता ॥ अथाऽत्र किमनुष्ठेयमस्माभिः सर्गयोजितैः ॥ १७ ॥ यस्याऽहं हृदयादासं स ईशो विदधातु मे ॥ करोतु करुणासिन्धुस्तीर्थकीर्तिरधोक्षजः ॥ ॥ १८ ॥ इत्यभिध्यायतो नासाविवरात्सहसाऽनघ ॥ वराहतोको निरगादङ्गुष्ठपरिमाणकः ॥ १९ ॥

तस्याभिपश्यतः खस्थः क्षणेन किल भारत ॥ गजमात्रः प्रववृधे तदद्भुतमभून्महत् ॥२०॥ मरीचिप्रमुखैर्विप्रैः कुमारैर्मनुना सह ॥ दृष्ट्वा तत्सौकरं रूपं तर्कयामास चित्रधा ॥२१॥ किमेतत्सौकरव्याजं सत्त्वं दिव्यमवस्थितम् ॥ अहो बताश्चर्यमिदं नासाया मे विनिःसृतम् ॥२२॥ दृष्टोऽङ्गुष्ठशिरोमात्रः क्षणाद्गण्डशिलासमः ॥ अपि स्विद्भगवानेष यज्ञो मे खेदयन्मनः ॥ २३ ॥ इति मीमांसतस्तस्य ब्रह्मणः सह सूनुभिः ॥ भगवान्यज्ञपुरुषो जगर्जाऽगेन्द्रसन्निभः ॥२४॥ ब्रह्माणं हर्षयामास हरिस्तांश्च द्विजोत्तमान्॥स्वगर्जितेन ककुभः प्रतिस्वनयता विभुः ॥ २५ ॥ निशम्य ते घर्घरितं स्वखेदक्षयिष्णु मायामयसूकरस्य ॥ जनस्तपःसत्यनिवासिनस्ते त्रिभिः पवित्रैर्मुनयोऽगृणन्स्म ॥ २६ ॥ तेषां सतां वेदवितानमूर्तिर्ब्रह्मावधार्याऽत्मगुणानुवादम् ॥ विनद्य भूयो विबुधोदयाय गजेन्द्रलीलो जलमाविवेश ॥ २७ ॥ उत्क्षिप्तवालः खचरः कठोरः सटा विधुन्वन् खररोमशत्वक् ॥ खुराहताभ्रः सितदंष्ट्र ईक्षाज्योतिर्बभासे भगवान्महीध्रः॥२८॥

हे राजन्! ताके देखते देखते एक क्षणमें आकाशमें स्थित गजके समान बढे वो महाअद्भुत होतेभए ॥ २० ॥ मरीचि आदि ब्राह्मण सनत्कुमारादि मनुसहित यूं सूकररूप देख अनेक प्रकारकी तर्क करतेभए ॥ २१ ॥ वराहरूप धार कोई स्वर्गवासी तो न आयो है बडे आश्चर्यकी बात है मेरी नासिकामेंसें कैसे निकसो ॥ २२ ॥ पहिले तो अंगुष्ठसमान हे एक क्षणमें बडे पर्वतसम स्थूल पाषाणसमान होयगए, कहीं यज्ञ भगवान् मेरे मनको खेद करतभये तौन प्रकटभये ॥ २३ ॥ पुत्रोंकरके सहित ऐसे विचारतेभए ब्रह्माके सामनें भगवान् यज्ञपुरुष पर्वतके समान गर्जतेभए ॥ २४ ॥ उन ब्राह्मण उत्तमोंको समर्थ श्रीवराहजी महाहर्ष करावतेभए आपनें गर्जवेसें सब दिशानको गर्जावतेभए ॥ २५ ॥ मायामय वराहजीको अपनेनके खेदको नाशक घुर्घुर शब्द सुनकर जनलोक तपलोकके निवासी मुनिलोग पवित्र वेदत्रयीके मंत्रोंसे स्तुति करतेभये ॥ २६ ॥ तिन सज्जनोंको वेदविस्तारक स्वरूप ब्रह्म अपने गुणानुवादनको सुनकर वराहजी फेर गर्जकर देवनके उदयके अर्थ गजेंद्रसमान लीला करते जलमें प्रवेश करतेभये ॥ २७ ॥ जिनके छौटीसी पुच्छ ऊपरको उठी हुई आकाशमें विचरते कठोर कंधेके वारनकों धरकाते तीक्ष्ण रोग शरीरवारे खुरोंसें मेघौंको विदीर्ण करते श्वेत दंत प्रकाशक दृष्टि, पृथ्वीके उद्धर्ता श्रीवराहजी प्रकाश करतेभए ॥ २८ ॥

यज्ञमूर्ति हौनेपरभी वाराहरूप धारनेके व्याजसै घ्राणसै पृथ्वीकी पदवीको सूंघते पानीमें खोजते विकराल डाढौंसै युक्त सौम्य दृष्टिसे स्तुति करते मरीचि आदिकौंकी ओर देखते जलमें प्रवेश कर गये ॥२९॥ हीराके पर्वत समान अंगके गिरवोंकै वेगसें कोंख फटनेसे समुद्र फैली भई दीर्घ लहरस्रूप भुजानसे आर्त होय हे यज्ञेश्वर ! मेरी रक्षा करो ऐसे पुकारतो भयो ॥३०॥ यज्ञमूर्ति वाराहजी पार रहित जलोंका पार पानैकी विधिसे उस जलको छुरेके समान पैनें खुरोंसे विदारते तहां पृथिवी देखते भये जिस सब जीवकी धारवेवारी धरतीको प्रलयके समय आपनें उदरमें धारण कियाथा॥३१॥ डूबीभई धरतीको अपनी डाढसे उठाय रसातलसे उठ आए, तब बडी शोभा भई, उस समय गदा हाथमें ले आतेहुए और रोकतेहुए महापराक्रमी

घ्राणेन पृथ्व्याः पदवीं विजिघ्रन्क्रोडापदेशः स्वयमध्वराङ्गः ॥ करालदंष्ट्रोऽप्यकरालदृग्भ्यामुद्वीक्ष्य विप्रान्गृणतोऽविशत्कम् ॥ २९ ॥ स वज्रकूटाङ्गनिपातवेगविशीर्णकुक्षिः स्तनयन्नुदन्वान् ॥ उत्सृष्टदीर्घोर्मिभुजैरिवार्तश्चुक्रोश यज्ञेश्वर पाहि मेति ॥ ३० ॥ खुरैः क्षुरप्रैर्दरयंस्तदाऽप उत्पारपारं त्रिपरू रसायाम् ॥ ददर्श गां तत्र सुषुप्सुरग्रे यां जीवधानीं स्वयमभ्यधत्त ॥ ३१ ॥ स्वदंष्ट्रयोद्धृत्य महीं निमग्नां स उत्थितः संरुरुचे रसायाः ॥ तत्रापि दैत्यं गदया पतन्तं सुनाभसंदीपिततीव्रमन्युः ॥ ३२ ॥ जघान रुन्धानमसह्यविक्रमं स लीलयेभं मृगराडिवाम्भसि ॥ तद्रक्तपङ्काङ्कितगण्डतुण्डो यथा गजेन्द्रो जगतीं विभिन्दन् ॥ ३३ ॥ तमालनीलं सितदन्तकोट्या क्ष्मामुत्क्षिपन्तं गजलीलयाङ्ग ॥ प्राज्ञाय बद्धाञ्जलयोऽनुवाकैर्विरिञ्चिमुख्या उपतस्थुरीशम् ॥ ३४ ॥

और क्रोधित हिरण्याक्ष दैत्यको ॥ ३२ ॥ जैसे सिंह हाथीका संहार करै इसप्रकार लीलासेही सुदर्शन चक्रके समान महाक्रोधको प्राप्त हो भगवानने उसका वध किया उस समय वाराहजीका गंड़स्थल और तुंड उस दैत्यके रुधिरपंकसै लिप्त होरहाथा इस्से वे पृथ्वी भेदन करते गजराजकी समान शोभित हुए ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! तमाल समान नील सुपेद दांतोंके अग्रभागसे गजकी लीलाकी नांई पृथिवीको उछारतेभए वाराहजीको देख हाथ जोड वेदसूक्तोंसे श्रीवाराहजीको ब्रह्मादिक सब स्तुति करतेभये ॥ ३४ ॥

॥ ऋषय ऊचुः ॥ जितं जितं तेऽजित यज्ञभावन त्रयीं तनुं स्वां परिधुन्वते नमः ॥ यद्रोमगर्तेषु निलिल्युरध्वरास्तस्मै नमः कारणसूकराय ते ॥ ३५ ॥ रूपं तवैतन्ननु दुष्कृतात्मनां दुर्दर्शनं देव यदध्वरात्मकम् ॥ छन्दांसि यस्य त्वचि बर्हिरोमस्वाऽऽज्यं दृशि त्वङ्घ्रिषु चातुर्होत्रम् ॥ ३६ ॥ स्रुक् तुण्ड आसीत्स्रुव ईश नासयोरिडोदरं चमसाः कर्णरन्ध्रे ॥ प्राशित्रमास्ये ग्रसने ग्रहास्तु ते यच्चर्वणं ते भगवन्नग्निहोत्रम् ॥ ३७ ॥ दीक्षाऽनुजन्मोपसदः शिरोधरं त्वं प्रायणीयोदयनीयदंष्ट्रः ॥ जिह्वाप्रवर्ग्यस्तव शीर्षकं क्रतोः सभ्यावसथ्यं चितयोऽसवो हि ते ॥ ३८ ॥ सोमस्तु रेतः सवनान्यवस्थितिः संस्थाविभेदास्तव देव धातवः ॥ सत्राणि सर्वाणि शरीरसन्धिस्त्वं सर्वयज्ञक्रतुरिष्टिबन्धनः ॥ ३९ ॥ नमो नमस्तेऽखिलमन्त्रदेवताद्रव्याय सर्वक्रतवे क्रियात्मने ॥ वैराग्यभक्त्यात्मजयाऽनुभावितज्ञानाय विद्यागुरवे नमो नमः ॥ ४० ॥

ऋषिलोग बोले कि हे अजित ! हे यज्ञभावन ! आपने सबको जीते हैं वेदत्रयीमय रूपकर आपनैं शरीरकों कंपाते आपके अर्थ नमस्कार होय, जिनके रोमकें गढेलेमें यज्ञ लीन भए तिन कारण सूकरके अर्थ नमस्कार होय ॥ ३५ ॥ हे देव ! निश्चय है कि दुष्टकर्म करवेवारेनकों ये यज्ञस्वरूप आपके रूपको दर्शन दूर रहे हैं, सब छंद जिनके त्वचामें है, यज्ञ रोममें सुन्दर आज्य दृष्टिमें हैं, चरणोंमें चातुर्होत्र यज्ञ है ॥३६॥ हे ईश ! जुहू नामक स्रुवा आपकों तुंड है, द्वितीय स्रुवा नाक हैं, भक्षणको पात्र उदर है, सोमपात्र चमस कर्णको छिद्र है, ब्रह्मभाग पात्र मुखको छिद्र है, चर्वण अग्नि होयहै ॥ ॥३७॥ दीक्षा आपको जन्म है, तीन इष्टि शिर होठ ग्रीवा हैं,दीक्षाके पीछेकी इष्टी और समाप्तकी इष्टी आपके डाढ हैं, जो यज्ञमें प्रथम महावीर करो जाय सो जिह्वा है, यज्ञ तुमारे शिरमें है,उपासनाकी अग्नि सभासद हैं, इष्टकाचयन तुह्मारे पंच प्राण है ॥३८॥ हे देव ! चंद्रमा तो वीर्य है, सब यज्ञमें स्थित संस्थाविभेद तुम्हारे सप्त धातु हैं संस्था विभेद ये है कि अग्निष्टोम उक्थ षोडशी वाजपेय अतिरात्र, आप्तोर्यामा सब यज्ञ शरीरकी संधी हैं, तुम सब यज्ञ क्रतु इष्ट बंधन हो ॥ ३९ ॥ सब मंत्र देवता द्रव्यरूप सब क्रियारूप यज्ञरूपके अर्थ नमस्कार होय, वैराग्य भक्ति पुत्रसें अनुभव किये ज्ञानरूप विद्या गुरुके अर्थ नमस्कार होय ॥ ४० ॥

हे भगवन् हे भूधर ! डाढके अग्रभागपर पर्वतसहित भूमि तुमनें धारण करी है, सो विशेष करके प्रकाशकर रही है, जैसे जलमेंसे निकसत गजेंद्रके दांतोंपर धरीभई कमलिनी शोभित होय है ॥ ४१ ॥ वेदत्रयीमय ये सूकररूप है, सो भूमंडल दांतोंपर धारण करनेसे ऐसी शोभा है जैसे कुलाचलके शिखरपर बैठे हुए सघन वादलको शोभा होती है ॥ ४२ ॥ अब याकों स्थित करो यह स्थावर जंगमकी माता है, लोकके अर्थ तुमारी पत्नी है तुम पिता हो, तुम सहित भूदेवीकों प्रणाम करैं है, जा पृथिवीपर अपनों तेज अग्निको काष्ठमें तुम धारण करो हो ॥४३॥ हे प्रभो ! रसातल गई भूमिको लानों याको आपके विना कौन श्रद्धा करैगो विश्वके विस्मय करवेवारे तुमारेमें ये कुछ विस्मय नहीं हैं, जो मायासें अतिविस्मयकारी या विश्वकों रचतेभए ॥ ४४ ॥ हे ईश ! वेदमय शरीरके कंपावनेसे आपके उठे भए वारोंके सुंदर जलबिंदुओंसे स्नान किये भए जन तप सत्य लोकवासी हम सब पवित्र भए ॥४५॥ अकर्मा तुमारे अपार कर्मनको जो पार माने है वाकी मति भ्रष्ट है ये निश्चय है हे भगवन् ! योगमायाके गुणयोगसे मोहित सब विश्वको मंगल तुम करोहो ॥ ४६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि ब्रह्मवादी मुनियोंने ऐसे स्तुति कीनीं तब भगवाननें अपनीं धारणाशक्तिसे अपने खुरसें मर्दित जलपर पृथिवीको स्थिर करतेभए ॥ ४७ ॥

दंष्ट्राग्रकोट्या भगवंस्त्वया धृता विराजते भूधर भूः सभूधरा ॥ यथा वनान्निःसरतो दता धृता मतङ्गजेन्द्रस्य सपत्रपद्मिनी ॥ ४१ ॥ त्रयीमयं रूपमिदं च सौकरं भूमण्डले नाथ दता धृतेन ते ॥ चकास्ति शृङ्गोढघनेन भूयसा कुलाचलेन्द्रस्य यथैव विभ्रमः ॥ ४२ ॥ संस्थापयैनां जगतां सतस्थुषां लोकाय पत्नीमसि मातरं पिता ॥ विधेम चास्यै नमसा सह त्वया यस्यां स्वतेजोऽग्निमिवारणावधाः ॥ ४३ ॥ कः श्रद्दधीताऽन्यतमस्तव प्रभो रसां गताया भुव उद्विबर्हणम् ॥ न विस्मयोऽसौ त्वयि विश्वविस्मये यो माययेदं ससृजेऽतिविस्मयम् ॥ ४४ ॥ विधुन्वता वेदमयं निजं वपुर्जनस्तपःसत्यनिवासिनो वयम् ॥ सटाशिखोद्धूतशिवाम्बुबिन्दुभिर्विमृज्यमाना भृशमीश पाविताः ॥ ४५ ॥ स वै बत भ्रष्टमतिस्तवैष ते यः कर्मणां पारमपारकर्मणः ॥ यद्योगमायागुणयोगमोहितं विश्वं समस्तं भगवन्विधेहि शम् ॥४६॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्युपस्थीयमानस्तैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ सलिले स्वखुराक्रान्त उपाधत्ताऽविताऽवनिम् ॥४७॥

स इत्थं भगवानुर्वीं विष्वक्सेनः प्रजापतिः ॥ रसाया लीलयोन्नीतामप्सु न्यस्य ययौ हरिः ॥४८॥ य एवमेतां हरिमेधसो हरेः कथां सुभद्रां कथनीयमायिनः ॥ शृण्वीत भक्त्या श्रवयेत वोशतीं जनार्दनोऽस्याऽऽशु हृदि प्रसीदति ॥४९॥ तस्मिन्प्रसन्ने सकलाशिषां प्रभौ किं दुर्लभं ताभिरलं लवात्मभिः ॥ अनन्यदृष्ट्या भजतां गुहाशयः स्वयं विधत्ते स्वगतिं परः पराम् ॥ ५० ॥ को नाम लोके पुरुषार्थसारवित्पुरा कथानां भगवत्कथासुधाम् ॥ आपीय कर्णाञ्जलिभिर्भवापहामहो विरज्येत विना नरेतरम् ॥५१॥ इति श्रीभा॰तृ॰श्रीव॰प्रादु॰व॰त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

सो भगवान् विष्वक्सेन प्रजापति हरि रसातलसे लीलाकरके लाय वा धरतीको जलपर धरकर चले जाते भए॥४८॥कथनोयोंमें मायावी पवित्र श्रीवाराहजीकी सुन्दर कल्याण देवेवारी कथाकों जो भक्तिसे सुनेहै सुन्दर लीला सुनावै है, वाके हृदयमें शीघ्र जनार्दन प्रसन्न होवै है॥ ४९॥सब आशीर्वादनके प्रभु प्रसन्न भए,तब फेर तुच्छ जीवनकों कहा दुर्लभ है, उन्हे सब कुछ प्राप्तभयो,अनन्य दृष्टिसें भजवेवारेनके अंतःकरणवासी परमेश्वर अपनी परमगतिको आपही देवै हैं ॥५०॥ या लोकमें पुरुषार्थ सारवेत्ता पुरातनी कथानमें भगवत्कथामृत जो संसारका मिटानेवाला है उसै कर्णरूप अंजलीसै पानकर फिर पशुके विना कौन विरक्त होताहै अर्थात् कोई नहीं हरिकी कथा श्रवण कर मनुष्य तौ विरक्त नहीं होते पशु होते हैं परंतु कथामें कवीश्वरोंके देवेमें बडेबडे साहनकेंबी तंगो रहेहै उनकी ऐसी गति है ॥५१॥ इतिश्रीमद्भा॰भा॰टी॰तृती॰श्रीवाराहावतारवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

---

१ उनकी ऐसी गति है (१) कवित्त–कुटनिनको कर्णसे कजावतनको कल्पवृक्ष भांडनको भोजसे हमेश दानदेवेकों । प्रकट परनारीकी पुरी अभिलाषा करैं सैकडन रुपैया तिन दण्डके भरवेको ॥ कञ्चनिकों कञ्चन अनेक भांत देवेकों वारुदको पैसा रातदिवस लेवेको । दोय ठौर खर्चीकी तंगा रहै सो हमकु ईश्वरके हेत क्या कछू कथामैं देवेकों ॥ १ ॥

२ एक ब्राह्मण और ब्राह्मणी महादरिद्री थे, जब कहीं खानेका ठीक न लगा तब वनमें तप करने गये ऋषियोंने उनसे कही कि तुमसे तपस्या न होगी, जाओ अमुक स्थानमें कथा कहो आजीविका होगी वे सुनकर गये, और कथा हुई, उचापत खाते रहे तीन महीनेमें कथा समाप्त हुई, जितने रुपये आये उतनेही उचापतवालेके खागये, सो सब उचापतवालेको दे, अपनो भाग्य फूटो जान फिर तपस्या करने गये, ऋषि बोले अब कैसे आये ? उन्हौने सब कही कि कथा कही और कुछ बच्यौ नहीं, तब ऋषि बोले कीसी मनुष्यने कथा नहीं सुनी होगी, वह बोले महाराज थे तो सब मनुष्यही, ऋषि बोले यह ठीक नहीं, अबकै तुम फिर जाओ और कथा वांचो, हम तुम्हे एक अंजन देते हैं, कथा कहते समय इसै लगाना यदि कोई मनुष्य दीखै तौ कथा कहना नहीं, और जगह वांचना; ब्राह्मणराज द्वारमें जाकर कथा वांचने लगे, बहुतसे श्रोता आये अंजन जो लगाया तो कोई हाथी, घोडा, ऊंठ, गधा, बकरा भैंसा, सिंह इत्यादि दृष्टि आये पंडितजी घबराकै चारों ओर देखने लगे तौ एक बुढिया राजकुलकी ज्यौं की त्यौं दृष्टि आई; पंडितजी बोले इनमें एक मनुष्य है तौ अब ठीक लगजायगी और कथा वांचने लगे,समाप्तिके दिन कोई एक कोई दो रुपय्या चढा गये बुढियाने मोहरैं थाली भरकैं चढाई,और पंडितजी निहाल हो गये अहंकारी और जिन्है धर्म नहीं वे पशुकी समानही हैं।

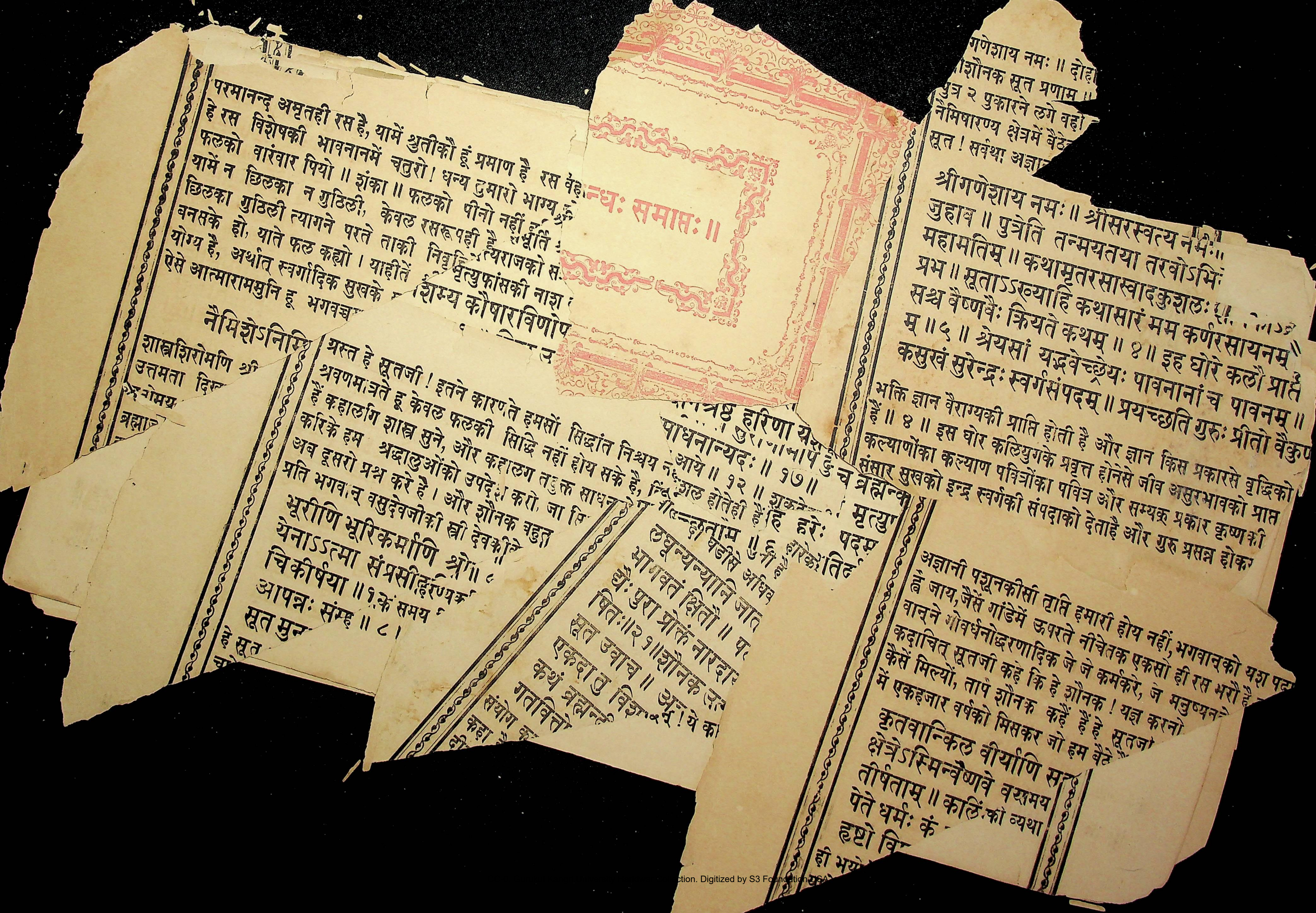

परमानन्द अमृतही रस है, यामें श्रुतीकौ हूं प्रमाण है रस वेह
हे रस विशेषकी भावनानमें चतुरो! धन्य तुमारो भाग्य,
फलको वारंवार पियो ॥ शंका ॥ फलको पीनो नहीं
यामें न छिलका न गुठिली, केवल रसरूपही है
छिलका गुठिली त्यागने परते ताकी निवृ
बनसके हो, याते फल कह्यो । याहीतें
योग्य है, अर्थात् स्वर्गादिक सुखके
ऐसे आत्मारामसुनि हू भगवच्च

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्य नमः ॥
जुहाव ॥ पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभि
महामतिम् ॥ कथामृतरसास्वादकुशलः
प्रभ ॥ सूताऽऽख्याहि कथासारं मम कर्णरसायनम्
सश्च वैष्णवैः क्रियते कथम् ॥ ४ ॥ इह घोरे कलौ प्राते
म् ॥ ६ ॥ श्रेयसां यद्भवेच्छ्रेयः पावनानां च पावनम् ॥
कसुखं सुरेन्द्रः स्वर्गसंपदम् ॥ प्रयच्छति गुरुः प्रीतो वैकुण

नैमिशेऽनिमि
शास्त्रशिरोमणि श्री
उत्तमता दिख

मृत्युफांसकी नाश
त्यराजको स
शम्य कौषारविणोप

न्धः समाप्तः ॥

गणेशाय नमः ॥ दोहा
शौनक सूत प्रणाम
पुत्र २ पुकारने लगे वहां
नैमिषारण्य क्षेत्रमें बैठ
सूत ! सर्वथा अज्ञा

भक्ति ज्ञान वैराग्यकी प्राप्ति होती है और ज्ञान किस प्रकारसे वृद्धिको
हैं ॥ ४ ॥ इस घोर कलियुगके प्रवृत्त होनेसे जीव असुरभावको प्राप्त
कल्याणोंका कल्याण पवित्रोंका पवित्र और सम्यक् प्रकार कृष्णकी
संसार सुखको इन्द्र स्वर्गकी संपदाको देताहै और गुरु प्रसन्न होकर

ग्रस्त हे सूतजी ! इतने कारणते हमसों सिद्धांत निश्चय न
श्रवणमात्रते हू केवल फलकी सिद्धि नहीं होय सके है,
हैं कहालगि शास्त्र सुने, और कहालग तदुक्त साधन
करिके हम श्रद्धालुओंको उपदेश करो, जा
अब दूसरो प्रश्न करे है । और शौनक बहुत
प्रति भगवान् वसुदेवजीकी स्त्री देवकी
भूरीणि भूरिकर्माणि श्रो ॥ ८
येनाऽऽत्मा संप्रसीदति हरण्यकं
चिकीर्षया ॥ १७ ॥ के समय
आपन्नः संसृ ॥ ८ ।
सूत मुन
हे सूत

श्रेष्ठ हरिणा यश
पाधनान्यदः ॥ १२ ॥ १७ ॥
आये ॥ १२ ॥ शुक
अल होतेही हैं हि हरेः
च ब्रह्मन्क
मृत्यु
पदम्
तिद

कृताम् ॥ ६
उद्धृत्यन्यानि जात
भागवतं क्षितौ ॥ प
वैः पुरा प्रोक्तं नारदा
पितः ॥ २१ ॥ शौनक उ
सूत उवाच ॥ अ
एकदा तु विप्र ! ये का
कथं ब्रह्मन्
गतावितो
संयोग
कहा

अज्ञानी पशूनकीसी तृप्ति हमारी होय नहीं, भगवान्को यश पद
है जाय, जैसें गांडेमें ऊपरते नीचेतक एकसो ही रस भरो है
वान्ने गोवर्धनोद्धरणादिक जे जे कर्मकरे, जे मनुष्यन
कदाचित् सूतजी कहे कि हे शौनक ! यज्ञ करनो
कैसें मिल्यों, तापें शौनक कहैं हैं हे सूतजी
में एकहजार वर्षको मिसकर जो हम बैठे
कृतवान्किल वीर्याणि स
क्षेत्रेऽस्मिन्वैष्णवे वयमय
तीर्षताम् ॥ कलिंको व्यथा
पते धर्मः कं
हष्टो वि
ही भये

तव
हे सूत
त एकद।
पुराणानि सो
न्बादरायणः ॥ अ
स्निग्धस्य शिष्यस्य
शंसितुमर्हसि ॥९॥ प्रायेण।
जिन जिन शास्त्रनको जाने हैं, और सगु
तिन सब शास्त्रनको गुरुनकी कृपाते तुम य
हे दीर्घ आयुवारे सूत ! तिन सर्व शास्त्रनको सिद्ध
साधनको करि मोक्षको प्राप्त होय ॥ ९ ॥ कदाचित्
समीचीन बुद्धिके बलते सर्व शास्त्रनको सिद्धांतको निश्चय
निमित्त कलियुगमें प्रथम तौ जीवनकी आयु अल्प है, इतनेपर हु
निमित्त हो

बोले कि कारणशूकरदेहधारी श्रीहरिकी
कि हे मुनिश्रेष्ठ! यज्ञमूर्ति श्रीहरिने
विरिया दैत्यराजको संग्राम का
मृत्युफांसकी नाश करवेवार
कौषारविणोपवर्णित।
विदुर उवाच ॥ ते
क्षोणीं स्वदंष्ट्र
पृष्टमवतारकथां
याऽर्भकः ॥ मत्पे दु कृ
तपाधनान्यदः ॥ १७ ॥

को वा भग
राणि परिगीता। यं श्रुतो मे वर्ण
मन्नवतारकथाः शुभ्रिम् ॥ अप
श्लोकविक्रमे ॥ यच्छृण्वत आसी
श्रीकृष्णके अवतारके प्रयोजनके प्रश्नस
की इच्छा करत,तिन चरित्रनके सुननेमें अ
परन्तु जिनके यश श्रवणतें हृदयके अंधकार
कि हम रसज्ञ सुननेवारोंको भगवान्‌को यश पद प
होय है ॥दृष्टान्त ॥ जैसें भोजनमें तृप्ति तीन प्रकारते हो
भगवत् यशके श्रवणतै तृप्तिमें तीनौंनमेंते कोई कारण न

बा आये ॥ १२ ॥ शुकश्चैर्यादितेयें ॥ १४ ॥ कह
आज्ञल होतेही हैं ॥ दितिरुवाचको अभक्त जान

नारद
हरिक्षेत्रं कुरु
षकारकम् ॥ क
भरिणो जीवा वरा इति
सपरिग्रहाः ॥ २१ ॥ त
आश्रमा यवने रुद्धास्ते
ज्ञानी सत्क्रियो नरः ॥
कामिन्यः केशशूलिन्
ोमसे क

बोले हे शौनक ! तुम्हारे मनमें बहुत प्रीति है इस कारण मैं
श्रीकृष्णके संतोषका कारण मैं तुमसे वर्णन करताहूं सो तुम सावधा
श्रीमद्भागवतशास्त्र कलियुगमें शुकदेवजीने कहा है ॥ १० ॥ इस्से अ
से भागवतकी प्राप्ति होती है ॥ ११ ॥ जिससमय परीक्षित सभामें बैठेथे
सूत उवाच ॥ प्रीतिः शौनक चित्ते ते यतो वच्मि विचार्य
वर्धनं यच्च कृष्णसंतोषहेतुकम्॥तदहं तेऽभिधास्यामि सा
श्रीमद्भागवतं शास्त्रं कलौ कीरेण भाषितम् ॥ १० ॥
तदा भागवतं लभेत् ॥ ११ ॥ परीक्षिते कथां वक्तुं सभा
॥ १२ ॥ शुकं नत्वाऽवदन्सर्वे स्वकार्यकुशलाः सुराः
निमये जाते सुधा राज्ञा प्रपीयताम् ॥
काचः क्व मणिर्महान् ॥ ब्रह्मरातो विचार्य
॥ श्रीमद्भागवती वार्ता
बद्ध्वाऽतोलयत्
अमृतका कलश ले
ये देवता अपने का
दक्षकी बेट
॥ अग्नि ज
देन ! ये कामदेव ध

एतर पूछतेभए
दंष्ट्राके अग्र-
अवतार कथा
लक मृत्युके मूं-
तमुद्यताञ्जलिर्न चा-
त्यो हिरण्याक्षो हत
सूत तो भून्मृधः ॥ ३ ॥
सर्वभूत नीम् ॥ ४ ॥ य-
संसारिणां प्रीतिहासोऽ-
त्तमम् ॥ देवीं सर कश्यपं
कृष्णसंप्रश्नो येनाऽऽत्मो-
ऽऽत्मा संप्रसीदति ॥ ६ ॥
धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक
जो श्रीकृष्णको प्रश्न कीनो, ये सब शास्त्रार्थको
धर्म प्रवृत्ति मार्ग है, और श्रवण आदर आदि लक्षण।
रहित विघ्न रहित भक्ति होय, जा करके जीवात्मा प्रसन्न
उत्पन्न होवै है॥७॥ सुंदर अनुष्ठान करो भयो धर्म पुरुषनक

C University Haridwar Colle 3 Foundat

श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य कौषारविणोपवर्णितां हरेः कथां कारणसूकरात्मनः ॥ पुनः स पप्रच्छ तमुद्यताञ्जलिर्न चातितृप्तो विदुरो धृतव्रतः ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ तेनैव तु मुनिश्रेष्ठ हरिणा यज्ञमूर्तिना ॥ आदिदैत्यो हिरण्याक्षो हत इत्यनुशुश्रुम ॥ २ ॥ तस्य चोद्धरतः क्षोणीं स्वदंष्ट्राऽग्रेण लीलया ॥ दैत्यराजस्य च ब्रह्मन्कस्माद्धेतोरभून्मृधः ॥ ३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ साधु धीर त्वया पृष्टमवतारकथां हरेः ॥ यत्त्वं पृच्छसि मर्त्यानां मृत्युपाशविशातनीम् ॥ ४ ॥ ययोत्तानपदः पुत्रो मुनिना गीतयाऽर्भकः ॥ मृत्योः कृत्वैव मूर्ध्न्यङ्घ्रिमारुरोह हरेः पदम् ॥ ५ ॥ अथात्रापीतिहासोऽयं श्रुतो मे वर्णितः पुरा ॥ ब्रह्मणा देवदेवेन देवानामनुपृच्छताम् ॥ ६ ॥ दितिर्दाक्षायणी क्षत्तर्मारीचं कश्यपं पतिम् ॥ अपत्यकामा चकमे सन्ध्यायां हृच्छयार्दिता ॥ ७ ॥ इष्ट्वाग्निजिह्वं पयसा पुरुषं यजुषां पतिम् ॥ निम्लोचत्यर्क आसीनमग्न्यागारे समाहितम् ॥ ८ ॥ दितिरुवाच ॥ एष मां त्वत्कृते विद्वन्काम आत्तशरासनः ॥ दुनोति दीनां विक्रम्य रम्भामिव मतङ्गजः ॥ ९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि कारणशूकरदेहधारी श्रीहरिकी मैत्रेयकी कही कथा सुन व्रतधारी विदुरजी अत्यन्ततृप्त न होनेसे हाथ जोड़ फेर पूछतेभए ॥१॥ विदुरजी बोले कि हे मुनिश्रेष्ठ! यज्ञमूर्ति श्रीहरिने आदिदैत्य हिरण्याक्षको मारो ये हमने सुनों है॥२॥ हे ब्रह्मन्! लीलाकरके अपनी दंष्ट्राके अग्रभागसे पृथिवीको लावती विरिया दैत्यराजको संग्राम का हेतुते भयो सो कहो ॥ ३ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि हे वीर! तुमनें श्रीहरिकी अवतार कथा बहुत सुंदर पूछी, वो मनुष्योंके मृत्युफांसकी नाश करवेवारी है ॥४॥ श्रीनारदजीकी गाईभई जा कथाकरके उत्तानपादको पुत्र ध्रुव बालक मृत्युके मूंडपर पग धरकर श्रीहरिके वैकुंठको जातोभयो ॥ ५ ॥ अब यहांभी ये इतिहास मैंनें सुनों है जो देवताननें पूछो ता देवताके देव ब्रह्माने पहिले वर्णन कीनोंहो ॥ ६ ॥ अब हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपुकी उत्पत्ति कहै हैं कि, दक्षकी बेटी दिती पुत्रकामना कर सांझको कामसे पीडित होकर मरीचिके पुत्र कश्यप पतिसें संध्याके समय विषयकरवेकी इच्छा करतीभई ॥ ७ ॥ अग्नि जीभवारे यजुर्वेदके पति पुरुषको यज्ञ कर सूर्यअस्तके समय यज्ञशालामें सावधान होय बैठे हे ॥ ८ ॥ उनके निकट जाय दिति बोली कि हे विद्वन्! ये कामदेव धनुष बाण बांधकर तुमारे अर्थ मो दीनको व्यथा

देवेहै, जैसें मतवारो हाथी कदलीकों व्यथा देयहै ॥ ९ ॥ पुत्रवती सौतनकी समृद्धिसें दहतीहुई मोपर तुम अनुग्रह करो तुम्हारो कल्याण होय ॥१०॥ भर्तासें बहुत सन्मानित स्त्रीनको यश लोकोंमें फैलजायहै, जिनके आपसरीके पति तापर हमारे पुत्र नहीं होय "तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनरिति श्रुतेः" ॥ ११ ॥ पहिले पुत्रीनकों बहुत चाहनेहारे दक्षप्रजापति भगवान् हमारे पिता एक समय हमसें बोले, हे पुत्रियो! कौनकों वरोगी, ऐसें हमसें पृथक् पृथक् पूछते भए ॥ १२ ॥ हम सब बेटीनको संतान होनेको भाव जान जिनमेंसे तेरे तुम्हें देतेभए, जो तुमारे शीलके अनुसार चलतीभई ॥१३॥ हे कल्याण! हे कमलनयन! हमारी इच्छा पूरी करो हे भूमन्! आप सरीके महात्मानमें आर्तोंको आवनों व्यर्थ नहीं होय है ॥ १४ ॥ हे वीर! ऐसें बहुत दीनवचन कहती बढेहुए कामके वेगसे व्याकुल अपनी स्त्री दितीको वाणीसे समझाते कश्यपजी हंसकर बोले ॥ १५ ॥ हे भीरु! ये तेरो प्रिय हम विधान करेंगे जो तू इछा करैहै जा स्त्रीसे धर्म अर्थ काम मोक्ष ये चारों पदार्थ प्राप्त होय ताको काम कौन न करेगो, स्त्रीके विना चारों वर्णकी महाफजीती हैं यासे गृहस्थ होनों मुख्य धर्म है ॥ १६ ॥ सब आश्रमको ग्रहण कर जो अपनें गृहस्थाश्रममें होयकर रहे है वो सब व्यसननके सागरको तरजायहै जैसें नावमें बैठकर समुद्रकों तरजायहै ॥ १७ ॥

तद्भवान्दह्यमानायां सपत्नीनां समृद्धिभिः ॥ प्रजावतीनां भद्रं ते मय्याऽऽयुङ्क्ष्वामनुग्रहम् ॥ १० ॥ भर्तर्याऽऽप्तोरुमानानां लोकानाविशते यशः ॥पतिर्भवद्विधो यासां प्रजया ननु जायते ॥११॥ पुरा पिता नो भगवान्दक्षो दुहितृवत्सलः॥ कं वृणीत वरं वत्सा इत्यपृच्छत नः पृथक् ॥ १२ ॥ स विदित्वाऽऽत्मजानां नो भावं सन्तानभावनः ॥ त्रयोदशाऽददत्तासां यास्ते शीलमनुव्रताः ॥ १३ ॥ अथ मे कुरु कल्याण कामं कञ्जविलोचन ॥ आर्तोपसर्पणं भूमन्न मोघं हि महीयसि ॥ १४ ॥ इति तां वीर मारीचः कृपणां बहुभाषिणीम् ॥ प्रत्याहाऽनुनयन्वाचा प्रवृद्धानङ्गकश्मलाम् ॥ १५ ॥एष तेऽहं विधास्यामि प्रियं भीरु यदिच्छसि ॥ तस्याः कामं न कः कुर्यात्सिद्धिस्त्रैवर्गिकी यतः ॥१६॥ सर्वाश्रमानुपादाय स्वाश्रमेण कलत्रवान् ॥ व्यसनार्णवमत्येति जलयानैर्यथार्णवम् ॥ १७ ॥

हे मानिनि ! श्रेयकामके लिये अपनी अर्द्धांगी जाकूं कहैं है जामें अपनो सब भार धर पुरुष विज्वर होकर विचरैं हैं ॥ १८ ॥ और आश्रमोंसे न जीती जांय ऐसी दुर्जय इंद्रियरूप शत्रुनको जा स्त्रीको आसरो लेकर लीलाकरकै हम जीतैहैं, जैसे किलाको पति किलैमैं बैठकर चोरनकों जीते है ॥ १९ ॥ हे गृहेश्वरि ! तुमारे करे उपकारको प्रत्युपकार करवेकों संपूर्ण आयुसें तुम्हारे समान होयवेकों नहीं समर्थ हैं, और जे प्यारे गुण हैं वेबी समर्थ नहीं होयसकैहै ॥ २० ॥ यद्यपि ऐसें है तथापि पुत्रउत्पत्तिके लिये तुम्हारी इच्छा पूरी करैंगे, जामें मेरी निंदा कोइं न करै एक दो घडी ठैरो ॥ २१ ॥ ये समय अत्यंत घोरतम है, घोरनकोभी घोर दिखायवेवारो है या समयमै महादेवजीके भूतगण विचरते हैं ॥ २२ ॥ हे साध्वि ! या

यामाहुरात्मनो ह्यर्धं श्रेयस्कामस्य मानिनि ॥ यस्यां स्वधुरमध्यस्य पुमांश्चरति विज्वरः ॥ १८ ॥ यामाश्रित्येन्द्रियारातीन्दुर्जयानितराश्रमैः ॥ वयं जयेम हेलाभिर्दस्यून् दुर्गपतिर्यथा॥१९॥ न वयं प्रभवस्तां त्वामनुकर्तुं गृहेश्वरि ॥ अप्यायुषा वा कार्त्स्न्येन ये चान्ये गुणगृध्नवः ॥ २० ॥ अथापि काममेतं ते प्रजात्यै करवाण्यऽलम् ॥ यथा मां नातिवोचन्ति मुहूर्तं प्रतिपालय ॥ २१ ॥ एषा घोरतमा वेला घोराणां घोरदर्शना ॥ चरन्ति यस्यां भूतानि भूतेशानुचराणि ह ॥ २२ ॥ एतस्यां साध्वि सन्ध्यायां भगवान्भूतभावनः ॥ परीतो भूतपर्षद्भिर्वृषेणाऽटति भूतराट् ॥२३ ॥ श्मशानचक्रानिलधूलिधूम्रविकीर्णविद्योतजटाकलापः ॥ भस्मावगुण्ठामलरुक्मदेहो देवस्त्रिभिः पश्यति देवरस्ते ॥ २४॥ न यस्य लोके स्वजनः परो वा नात्यादृतो नोत कश्चिद्विगर्ह्यः ॥ वयं व्रतैर्यच्चरणापविद्धामाशास्महेऽजां बत भुक्तभोगाम् ॥२५॥

सायंकालमें भगवान् भूतभावन भूतराज भूतपार्षदोंके गणसहित श्रीमहादेवजी वृषभपर बैठकर विचरते हैं ॥ २३ ॥ श्मशानकी पवन मंडलीकी घरसे धूम्रसमान बिथुरी प्रकाशित जटासमूह सुवर्णसमान देहमें भस्म लगाये तुम्हारे देवर महादेवजी चंद्र सूर्य अग्नि इन तीन नेत्रोंसे सब समैं देखै हैं ॥२४ ॥ या लोकमें जिन शिव शंकरको न कोई स्वजन है, न शत्रु है, न अति आदरणीय है, न निंदायोग्य है हम सब महाव्रतधारण करकै जिनके चरणोंसे दूर फैंकी हुई उनकी भुक्त भोगविभूतीको महाप्रसादकी समान पानैकी आशा करैहैं ॥ २५ ॥

जिनके विषयासक्तिशून्य अनिंद्य चरित अविद्याके समूहनाशक सुंदर बुद्धिमान् महात्मा लोग वर्णन करैंहै, जिनके समान जिनसें बडो कोई नहीं, सज्जनोंकी गति आप सदाशिव पिशाचनकीसी लीला करते हैं ॥ २६ ॥ अपनीं आत्मामैं रमण करनेहारे सर्वज्ञ जिन शिवजीके चरित्रनकों देख दुर्भागी हंसे है, वे दुर्भागी वस्त्र माला गहिनें पहिनें चंदन लगाय कुत्तेके भक्ष्या या शरीरकों ये देह आत्मा है ऐसी बुद्धिकर अत्यंत लालन पालन करैंहै ॥२७॥ ब्रह्मादिक जिनके करे सेतुनको पालै हैं, जो या विश्वके कारण हैं जिन्हौंने इस जगतको उत्पन्न कियाहै माया जिनकी आज्ञा मान्नेहारी है उनका पिशाचोंके संग फिरना महा आश्चर्यरूप है उनकी लीला सदा अतर्क्य है (कवित्त-ओढे वाघछाला, दूर करत है कसाला, काटडारे भ्रमजा-

यस्याऽनवद्याचरितं मनीषिणो गृणन्त्यविद्यापटलं बिभित्सवः ॥ निरस्तसाम्यातिशयोऽपि यत्स्वयं पिशाचचर्यामचरद्गतिः सताम् ॥ २६ ॥ हसन्ति यस्याचरितं हि दुर्भगाः स्वात्मन् रतस्याऽविदुषः समीहितम् ॥ यैर्वस्त्रमाल्याभरणानुलेपनैः श्वभोजनं स्वात्मतयोपलालितम् ॥ २७ ॥ब्रह्मादयो यत्कृतसेतुपाला यत्कारणं विश्वमिदं च माया ॥ आज्ञाकरी तस्य पिशाचचर्या अहो विभूम्नश्चरितं विडम्बनम् ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सैवं संविदिते भर्त्रा मन्मथोन्माथितेन्द्रिया ॥ जग्राह वासो ब्रह्मर्षेर्वृषलीव गतत्रपा ॥ २९ ॥ स विदित्वाऽथ भार्यायास्तं निर्बन्धं विकर्मणि ॥ नत्वा दिष्टाय रहसि तयाऽथोपविवेश ह ॥ ३० ॥ अथोपस्पृश्य सलिलं प्राणानायम्य वाग्यतः ॥ ध्यायञ्जजाप विरजं ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ॥ ३१ ॥

ला, धरे आधे अंगबाला है । सोहै कण्ठकाला, और साजै शशिभाला, जाके मस्तकमै मसाला, एक भस्महो रसाला है ॥ मूरत विशाला, नैन तीसरेमें ज्वाला, गजचर्मको दुशाला, प्रिये प्रेमप्याला है । देवनमें आला यह ज्योति है निराला, अब मेरे मनवाला देनेवाला बैलवाला है ॥) ॥ २८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि भर्तांने ऐसे कही तोभी कामदेवके वेगसे विह्वलइन्द्रिय हो वेश्याकी नाईं लाज त्याग ब्रह्मऋषिके वस्त्रको ग्रहण करतीभई ॥ २९ ॥ कश्यपजी निषिद्ध कर्ममें अपनीं भार्याको हठ जान भाग्यरूप ईश्वरको नमस्कार कर वासैं मैथुन करतेभए ॥ ३० ॥ पाछै स्नान कर प्राणायाम कर वाणी जीत रजोगुणरहित सनातन ब्रह्मज्योतीको घ्यानकर जप करत भए ॥ ३१ ॥

हे परीक्षित् ! वा निंदित कर्मसें दिति लज्जित होय नीचेको मुख कर विप्र ऋषिके समीप आयकर बोली ॥ ३२ ॥ दिती बोली कि हे ब्रह्मन् ! सब जीवमात्रके ईश्वर शिव मेरे या गर्भको न मारैंगे, सब भूतनके पति रुद्र हैं, जिनको मैंने अपराध कीनोंहैं ॥ ३३ ॥ " रुत् दुःखं द्रावयतीति रुद्रस्तस्मै रुद्राय " दुखकों दूर करनेहारे महादेव उग्र सकाम प्राणियोंके मनोरथ पूरण करनेहारे दंडहीन और दंडधारी संहार समयमें क्रोधमूर्तिधारी श्रीमहादेवको नमस्कार होय ॥ ३४ ॥ सो भगिनीभर्ता हमारे बहुत अनुग्रहकारी शिव दया करवे योग्य स्त्रीनके देव सतीपति निर्दयी परबी दया करवेवारे शिवजी मोपर प्रसन्न होओ ॥ ३५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि अपनों संतानको शुभ आशीर्वाद दोंनो लोकोंके योग्य चाहवेवारी कांती अपनी भार्यासें संध्याके नियमसें निवृत्त होय कश्यपजी बोले ॥३६॥ कश्यपजी बोले कि तुह्मारे चित्तके अशुद्ध होनेसेही संध्याके दोषतें और मेरी आज्ञा न माननेसे देवतानके अति अनादर करनेसें ॥ ३७ ॥ हे चंडी हे मंगलरूपिणी ! तेरे अमंगलरूप अधम दो पुत्र होंगे जो लोकनकों वारंवार दुःख देंगे ॥ ३८ ॥ स्त्रीन को पकडके लेजायगे, दीन निरपराधी प्राणियोंको मारैंगे तब महात्मा कोप करैंगे ॥ ३९ ॥ तब विश्वेश्वर भगवान् लोकभावन क्रोध कर अवतार धार जैसें इंद्र पर्वतनकों मार तैसे मारैंगे ॥ ४० ॥

दितिस्तु व्रीडिता तेन कर्मावद्येन भारत ॥ उपसंगम्य विप्रर्षिमधोमुख्यऽभ्यभाषत ॥ ३२ ॥ दितिरुवाच ॥ न मे गर्भमिमं ब्रह्मन्भूतानामृषभोऽऽवधीत् ॥ रुद्रः पतिर्हि भूतानां यस्याऽकरवमंहसम् ॥ ३३॥ नमो रुद्राय महते देवायोग्राय मीढुषे ॥ शिवाय न्यस्तदण्डाय धृतदण्डाय मन्यवे ॥ ३४ ॥ स नः प्रसीदतां भामो भगवानुर्वनुग्रहः ॥ व्याधस्याप्यनुकम्प्यानां स्त्रीणां देवः सतीपतिः ॥ ३५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स्वसर्गस्याशिषं लोक्यामाशासानां प्रवेपतीम् ॥ निवृत्तसंध्यानियमो भार्यामाह प्रजापतिः ॥३६॥ कश्यप उवाच ॥ अप्रायत्यादात्मनस्ते दोषान्मौहूर्तिकादुत ॥ मन्निदेशातिचारेण देवानां चातिहेलनात् ॥ ३७ ॥ भविष्यतस्तवाभद्रावभद्रे जाठराधमौ ॥ लोकान्सपालांस्त्रींश्चण्डि मुहुराक्रन्दयिष्यतः ॥ ३८ ॥ प्राणिनां हन्यमानानां दीनानामकृतागसाम् ॥ स्त्रीणां निगृह्यमाणानां कोपितेषु महात्मसु ॥ ३९ ॥ तदा विश्वेश्वरः क्रुद्धो भगवान् लोकभावनः ॥ हनिष्यत्यवतीर्याऽसौ यथाऽद्रीञ्छतपर्वधृक् ॥ ४० ॥

88

दिति बोली कि हे समर्थ ! चक्रसें शोभित उदार बाहुसें साक्षात् भगवान् वध करेंगे यही मैं दोंनोंको चाहूहुं, कोई क्रोधी ब्राह्मण न मारे ॥ ४१ ॥ क्यों कि ब्राह्मणोंके दंडसें दग्ध सब जीवके भयदाता पर नरकवासीभी दया नहीं करैंहैं, जो जो योनिमें जाय तहां दुःखही पावे है ॥ ४२ ॥ कश्यपजी बोले कि अपनें करे अपराधके पश्चात्ताप करने और अयोग्य योग्य विचार करने तीसरे विष्णु भगवान महादेव और मेरा सत्कार करनेसे ॥ ॥ ४३ ॥ तेरं हिरण्यकशिपुके पुत्रोंके मध्यमें एक सतोंको संमत सुत होगो प्रल्हाद नाम जाको शुद्ध यश भगवतके समान पौराणिक गावैंगे ॥ ४४ ॥

दितिरुवाच ॥ वधं भगवता साक्षात्सुनाभोदारबाहुना ॥ आशासे पुत्रयोर्मह्यं मा क्रुद्धाद् ब्राह्मणाद्विभो ॥ ४१ ॥ न ब्रह्मदण्डदग्धस्य न भूतभयदस्य च ॥ नारकाश्चानुगृह्णन्ति यां यां योनिमसौ गतः ॥ ४२ ॥ कश्यप उवाच ॥ कृतशोकानुतापेन सद्यः प्रत्यवमर्शनात् ॥ भगवत्युरुमानाच्च भवे मय्यपि चादरात् ॥ ४३ ॥ पुत्रस्यैव तु पुत्राणां भवितैकः सतां मतः ॥ गास्यन्ति यद्यशः शुद्धं भगवद्यशसा समम् ॥ ४४ ॥ योगैर्हेमेव दुर्वर्णं भावयिष्यन्ति साधवः ॥ निर्वैरादिभिरात्मानं यच्छीलमनुवर्त्तितुम् ॥ ४५ ॥ यत्प्रसादादिदं विश्वं प्रसीदति यदात्मकम् ॥ स स्वदृक् भगवान्यस्य तोष्यतेऽनन्यया दृशा ॥ ४६ ॥ स वै महाभागवतो महात्मा महाऽनुभावो महतां महिष्ठः ॥ प्रवृद्धभक्त्या ह्यनुभाविताशये निवेश्य वैकुण्ठमिमं विहास्यति ॥ ४७ ॥ अलं पटुः शीलधरो गुणाकरो हृष्टः परर्द्ध्या व्यथितो दुःखितेषु ॥ अभूतशत्रुर्जनशोकहर्ता नैदाघिकं तापमिवोडुराजः ॥ ४८ ॥

जैसे दुर्वर्ण सुवर्ण तपाएसें सुवर्ण होजायहै, तैसे निर्वैरादिकरके वाके आत्माके समान बनवेको अपनीं देहकों साधु जन भावना करेंगे ॥ ४५ ॥ जिनकी कृपासें जिनको स्वरूपभूत ये विश्व प्रसन्न होवैहे, तैसें सर्वांतर्यामी भगवान् अनन्य दृष्टिकरके जिसपर संतुष्ट होंगे ॥ ४६ ॥ सो महाभागवत महात्मा महाप्रभाववारो महानजनोंमेंभी अत्यंत महान् अत्यंत बढी भक्तिसें अनुभव करेभये अंतःकरणमें श्रीवैकुंठवासी भगवानको प्रवेश कर या शरीरको त्यागेंगे ॥ ४७ ॥ सबसें विरक्त शीलधारी; सब गुणकी खान, पराएकी संपदासें प्रसन्न, दुःखीपर दुःखी

शत्रुहीन जगतके शोकहर्ता चन्द्रमाकी समान ताप हरनैवाला होगा ॥ ४८ ॥ निर्मल कमलनेत्र अपने भक्तनकी इच्छासे अवतार धारनेवाले लक्ष्मीके आभूषण रूप दमकते कुंडलौंसे शोभित मुखवारे सबके भीतर बाहर विराजमान ईश्वरको दर्शन करैगो ॥ ४९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि अपने पोतेकों परमभक्त सुन दिति अति प्रसन्न भई, दोनों पुत्रोंको श्रीकृष्णसे वध श्रवणकर महा आनंदित होतीभई ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भा० भा० टी० तृती० दितिकश्यपसंवादवर्णनं नाम चतुर्दशोध्यायः ॥ १४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि देवनके पीडाकी शंकाकरकै शत्रुनके तेजको नाश करवेवारो कश्यपको वो तेज शत वर्ष दिति धारण करतीभई ॥१॥ वा गर्भके तेजसे त्रिलोकीकों हत देख सब दिशानमें अंधकार हुयो जान सब लोकपाल देवता लोग श्रीब्रह्माजीसे कहितेभए ॥ २ ॥ देवता बोले कि हे समर्थ ! या अंधकारकों जानोंहो जासे हम सब अत्यंत डरे भए हैं, जाको मार्ग न जानों जाय ऐसे भगवानको कालकरकै हम न जानसके हैं ॥ ३ ॥ हे देवदेव हे जगत्पितः ! हे लोकनाथशिखामणे ! पर अपर लोकके जीवनके भाववेत्ता तुम हो ॥ ४ ॥ विज्ञान वीर्य माया करके ये देहधारी सब गुण भेद ग्रहण करनेहारे आदि कारणरहित ब्रह्मान्तर्यामी ईश्वरके अर्थ नमस्कार होय ॥ ५ ॥

अन्तर्बहिश्चामलमब्जनेत्रं स्वपूरुषेच्छाऽनुगृहीतरूपम् ॥ पौत्रस्तव श्रीललनाललामं दृष्ट्वा स्फुरत्कुण्डलमण्डिताननम् ॥४९॥ मैत्रेय उवाच ॥ श्रुत्वा भागवतं पौत्रममोदत दितिर्भृशम् ॥ पुत्रयोश्च वधं कृष्णाद्विदित्वाऽऽसीन्महामनाः ॥ ॥५०॥ इति श्रीभा॰महापु॰तृती॰दितिकश्यपसंवादवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः॥१४॥ मैत्रेय उवाच॥ प्राजापत्यं तु तत्तेजः परतेजोहनं दितिः॥ दधार वर्षाणि शतं शङ्कमाना सुरार्दनात् ॥ १ ॥ लोके तेन हतालोके लोकपाला हतौजसः॥ न्यवेदयन्विश्वसृजे ध्वान्तव्यतिकरं दिशाम् ॥२॥ देवा ऊचुः ॥ तम एतद्विभो वेत्थ संविग्ना यद्वयं भृशम् ॥ न ह्यव्यक्तं भगवतः कालेनास्पृष्टवर्त्मनः ॥ ३ ॥ देवदेव जगद्धातर्लोकनाथशिखामणे ॥ परेषामपरेषां त्वं भूतानामसि भाववित् ॥ ४ ॥ नमो विज्ञानवीर्याय माययेदमुपेयुषे ॥ गृहीतगुणभेदाय नमस्तेऽव्यक्तयोनये ॥ ५ ॥

90

जीवोंके पालनेहारे कार्य कारणरूप तथा इनसे परे चेतन अचेतनके कारण तुमको जो अनन्यभावसे ध्यान करतेहैं ॥ ६ ॥ तिन सुंदर पके भए योगसाधकोंको श्वास इंद्रिय आत्मा जीतवेवारोंको तुह्मारे प्रसाद प्राप्त होनेसे कहीसेबी तिरस्कार नहीं होयहै ॥ ७ ॥ जैसे रस्सीके वश बैल होय है तैसें जिनकी वाणीरूप रस्सीमें सब प्रजा बंधकर आधीन होकर बलि देवैहै, तिन मुख्य ईश्वर आपके अर्थ नमस्कार होय ॥ ८ ॥ हे भूमन्! सो तुम हमारो कल्याण करो अंधकारसे सब कर्म लुप्त भए, आपत्तिको प्राप्त हम सबको अत्यंत दयाकी दृष्टिसे देखवेकों योग्य हो ॥९॥ हे देव! ये दितिको गर्भ है यामें कश्यप मुनिको पराक्रम धरो है सो सब दिशानको अंधकार करत ईंधनमें जैसें अग्नि बढै तैसे बढै है ॥१०॥ मैत्रेयजी बोले कि हे महा-

ये त्वाऽनन्येन भावेन भावयन्त्यात्मभावनम् ॥ आत्मनि प्रोतभुवनं परं सदसदात्मकम् ॥ ६ ॥ तेषां सुपक्वयोगानां जितश्वासेन्द्रियात्मनाम् ॥ लब्धयुष्मत्प्रसादानां न कुताश्चित्पराभवः ॥ ७ ॥ यस्य वाचा प्रजाः सर्वा गावस्तन्त्येव यन्त्रिताः ॥ हरन्ति बलिमायत्तास्तस्मै मुख्याय ते नमः ॥ ८ ॥ स त्वं विधत्स्व शं भूमंस्तमसा लुप्तकर्मणाम् ॥ अदभ्रदयया दृष्ट्या आपन्नानर्हसीक्षितुम् ॥ ९ ॥ एष देव दितेर्गर्भ ओजः काश्यपमार्पितम् ॥ दिशस्तिमिरयन्सर्वा वर्धतेऽग्निरिवैधसि ॥ १० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स प्रहस्य महाबाहो भगवाञ्छब्दगोचरः ॥ प्रत्याचष्टाऽत्मभूर्देवान्प्रीणन्रुचिरया गिरा ॥ ११ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ मानसा मे सुता युष्मत्पूर्वजाः सनकादयः ॥ चेरुर्विहायसा लोकाँल्लोकेषु विगतस्पृहाः ॥ १२ ॥ त एकदा भगवतो वैकुण्ठस्यामलात्मनः ॥ ययुर्वैकुण्ठनिलयं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ १३ ॥ वसन्ति यत्र पुरुषाः सर्वे वैकुण्ठमूर्तयः ॥ येऽनिमित्तनिमित्तेन धर्मेणाऽऽराधयन्हरिम् ॥ १४ ॥

बाहो हे विदुर! यह वचन सुनकर सो भगवान् शब्दशास्त्र जानवेवारे ब्रह्मा हंसकर सुंदर वाणीसें प्रसन्न करत देवनके प्रति बोले ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले कि मेरे मनसे भए तुमसे पहिले सनकादिक सुत आकाश मार्गमें होकर सब लोकोंमें निस्पृह होकै लोकोंमें विचरते भए ॥ १२ ॥ एक समय वे सनकादिक निर्मल आत्मा ईश्वरके सब लोकोंसे नमस्कृत वैकुंठलोकमें जातेभए ॥ १३ ॥ अब द्वादश श्लोक करकै वैकुंठको वर्णन करै है जा वैकुंठमें निष्काम कर्मसे हरिका आराधन करनेहारे पुरुष श्रीनारायणकी समान चतुर्भुजी मूर्ति धारण कर विराजतहैं ॥ १४ ॥

इन तथा और उपायोंसें असन्मार्गमें लगे मनकों धीरे
करकै जीतै, तापर मंगलीक आसन बांध बैठे, सूधो श
योगिनो यदवस्थानं स्वस्तिकं तद्विदुर्बुधाः” ॥ ८ ॥ पू
करे जिससे फिर चंचल न होय स्थिर करै, चंचल न र
तापित हो सुवर्ण मल त्याग शुद्ध होजायहै ॥ १० ॥ प्रा

एतैरन्यैश्च पथिभिर्मनो दुष्टमसत्पथम् ॥ बु
जितासन आसनम् ॥ तस्मिन् स्वस्ति सम
चकैः ॥ प्रतिकूलेन वा चित्तं यथा स्थि
वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वै म
संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ११ ॥
त्स्वनासाऽग्रावलोकनः ॥ १२ ॥ प्रसन्नवद
रम् ॥ १३ ॥ लसत्पङ्कजकिञ्जल्कपी
मत्तद्विरेफकलया परीतं वनमालया ॥६

नको दूर करै, ध्यानकरकै रागादिक दूर करै ॥ ९
नासाग्रभागको देखतो रहै ॥ १२ ॥ कमलसमान प्रसन्न म
शोभित कमलके केसरसमान पीतांवर पहिरे, श्रीवत्स, व
मधुर ध्वनियुक्त वनमाला पहिरे, अमूल्य हार कंकण किरीट

ण जीतै, निरालस होकर रहै ॥ ७ ॥ पवित्र देशमें रहै, आसन विशेष
। ये स्वस्तिकासन हैं कि ‘‘उरू जंघांतराधाय पादाग्रे जानुमध्यगे ॥
गंधव मार्गकूं सोधै और प्राणायामोंके उलटे क्रमसें चित्तका शोधन
बनायकर ीको मन थोडेही दिनमें निर्मल होजायहै, जैसे पवन अग्निसे
विद्याको आ दूर करै, धारणासें सब पाप दूर करै प्रत्याहारसें विषय-
वच्छा बनाय दूहत

न्द्रितः ॥ ७ ॥ शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य वि-
गन्धर्वाप्सरसौ प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरे-
कव्यं क्षीरमधुक्षत द्विरजं जितश्वासस्य योगिनः ॥
यीम् ॥ सिद्धिं णाभिश्च किल्बिषान् ॥ प्रत्याहारेण
प्रकल्प्य वत्सं माहितम् ॥ काष्ठां भगवतो ध्याये-
ले क्षतजासवम् लोत्पलदलश्यामं शङ्खचक्रगदाध-
पशवो यवसं क्षी त्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ॥ १४ ॥
दुदुहुः स्वे कलेवरे ॥
हिमवद्वत्सा नान्

र भगवतके स्वरूपकों ध्यान करै तब अपनीं
नाम, शंखचक्रगदाधरको ध्यान करै ॥ १३ ॥
भए ॥ २१ मुक्तोमय माला कंधामें धारे ॥ १४ ॥ मत्त भ्रमरनकी
नाय वनरूप
डको वत्सा बन
हिमाचलकों

इन तथा और उपायोंसें असन्मार्गमें लगे मनकों धीरे धीरे बु
करकै जीतै, तापर मंगलीक आसन बांध बैठे, सूधो शरीर
योगिनो यदवस्थानं स्वस्तिकं तद्विदुर्बुधाः" ॥ ८ ॥ पूरक
करे जिससे फिर चंचल न होय स्थिर करै, चंचल न रहै
तापित हो सुवर्ण मल त्याग शुद्ध होजायहै ॥ १० ॥ प्राणाय

एतैरन्यैश्च पथिभिर्मनो दुष्टमसत्पथम् ॥ बुद्ध
जितासन आसनम् ॥ तस्मिन् स्वस्ति समास
चकैः ॥ प्रतिकूलेन वा चित्तं यथा स्थिर
वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वै मल
संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ११ ॥ य
त्स्वनासाऽग्रावलोकनः ॥ १२ ॥ प्रसन्नवद
रम् ॥ १३ ॥ लसत्पङ्कजकिञ्जल्कपीतकौ
मत्तद्विरेफकलया परीतं वनमालया ॥

नको दूर करै, ध्यानकरकै रागादिक दूर करै ।
नासाग्रभागको देखतो रहै ॥ १२ ॥ कमलसमान
शोभित कमलके केसरसमान पीतांबर पहिरे, श्रीवत्स,
मधुर ध्वनियुक्त वनमाला पहिरे, अमूल्य हार कंकण कि

सब जने अपने
हे कुरूद्वह ! ऐसे र रहै ॥ ७ ॥ पवित्र देशमें रहै, आसन विशेष
तब दुहिताके न हैं कि "उरू जंघांतराधाय पादाग्रे जानुमध्यगे ॥
को लेके य। सूभैडलकं प्राणायामोंके उलटे क्रमसें चित्तका शोधन
ही दिनमें निर्मल होजायहै, जैसे पवन अग्निसे

सर्वे स्वमुख्यवत रणासें सब पाप दूर करै प्रत्याहारसें विषय-
मन्नादाः स्वन्नमा ः ॥ ७ ॥ शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य वि-
तृत्वे चकारेमां प्रे णस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरे-
प्रायश्चक्रे समं वि द्रजं जितश्वासस्य योगिनः ॥
हतः ॥ ३० ॥ ग्रा भिश्च किल्बिषान् ॥ प्रत्याहारेण
प्राक् पृथोरिह नै हितम् ॥ काष्ठां भगवतो ध्याये-
जये पृथुना पृथिवी त्पलदलश्यामं शङ्खचक्रगदाध-
निवास कल्पना करांजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ॥ १४ ॥
वसावते भये दुर्ग. १५ ॥

नहीं थी, परसावधान कर भगवतके स्वरूपकों ध्यान करै तब अपनी
पृथ्वीदोह कमलसम श्याम, शंखचक्रगदाधरको ध्यान करै ॥ १३ ॥
स्तुभ मणि मुक्तामय माला कंधामें धारे ॥ १४ ॥ मत्त भ्रमरनकी
॥ १५ ॥

इन तथा और उपायोंसें असन्मार्गमें लगे मनकों धीरे धीरे बुद्धिसे जीतै, प्राण जीतै, निरालस होकर रहै ॥ ७ ॥ पवित्र देशमें रहै, आसन विशेष करकै जीतै, तापर मंगलीक आसन बांध बैठे, सूधो शरीर करै, अभ्यास करै, । ये स्वस्तिकासन हैं कि ''उरू जंघांतराधाय पादाग्रे जानुमध्यगे ॥ योगिनो यद्वस्थानं स्वस्तिकं तद्विदुर्बुधाः" ॥ ८ ॥ पूरक कुंभक रेचक करकै प्राणके मार्गकूं सोधै और प्राणायामोंके उलटे क्रमसें चित्तका शोधन करे जिससे फिर चंचल न होय स्थिर करै, चंचल न रहै ॥ ९ ॥ श्वास जीतनवारे योगीको मन थोडेही दिनमें निर्मल होजायहै, जैसे पवन अग्निसे तापित हो सुवर्ण मल त्याग शुद्ध होजायहै ॥ १० ॥ प्राणायामकरकै तो वात कफ पित्तके मल दूर करै, धारणासें सब पाप दूर करै प्रत्याहारसें विषय-

एतैरन्यैश्च पथिभिर्मनो दुष्टमसत्पथम् ॥ बुद्ध्या युञ्जीत शनकैर्जितप्राणो ह्यतन्द्रितः ॥ ७ ॥ शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य विजितासन आसनम् ॥ तस्मिन् स्वस्ति समासीन ऋजुकायः समभ्यसेत् ॥ ८ ॥ प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः ॥ प्रतिकूलेन वा चित्तं यथा स्थिरमचञ्चलम् ॥ ९ ॥ मनोऽचिरात्स्याद्विरजं जितश्वासस्य योगिनः ॥ वाय्वग्निभ्यां यथा लोहं ध्मातं त्यजति वै मलम् ॥ १० ॥ प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्च किल्बिषान् ॥ प्रत्याहारेण संसर्गान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ११ ॥ यदा मनः स्वं विरजं योगेन सुसमाहितम् ॥ काष्ठां भगवतो ध्यायेत्स्वनासाऽग्रावलोकनः ॥ १२ ॥ प्रसन्नवदनाम्भोजं पद्मगर्भारुणेक्षणम् ॥ नीलोत्पलदलश्यामं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ १३ ॥ लसत्पङ्कजकिञ्जल्कपीतकौशेयवाससम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभामुक्तकन्धरम् ॥ १४ ॥ मत्तद्विरेफकलया परीतं वनमालया ॥ परार्ध्यहारवलयकिरीटाङ्गदनूपुरम् ॥ १५ ॥

नको दूर करै, ध्यानकरकै रागादिक दूर करै ॥ ११ ॥ जब मन अपनो निर्मल योगसें सुंदर सावधान कर भगवतके स्वरूपकों ध्यान करै तब अपनीं नासाग्रभागको देखतो रहै ॥ १२ ॥ कमलसमान प्रसन्न मन कमलसदृश रक्त नेत्र, नीलकमलसम श्याम, शंखचक्रगदाधरको ध्यान करै ॥ १३ ॥ शोभित कमलके केसरसमान पीतांबर पहिरे, श्रीवत्स, वक्षःस्थलमें दीप्तिमान कौस्तुभ मणि मुक्तामय माला कंधामें धारे ॥ १४ ॥ मत्त भ्रमरनकी मधुर ध्वनियुक्त वनमाला पहिरे, अमूल्य हार कंकण किरीट बाजू नूपुर धारेहै ॥ १५ ॥

हे अंग ! हे मातः ! योगसें वृद्धिकों प्राप्त कोई सिद्धि जब इसको प्राप्त होतीहैं कि जिनके मिलनेका दूसरा कारण नहीं है उनका मायामें जब या सिद्धको चित्त आसक्त नहीं होयहै तब मेरी अनन्य अत्यंत सुखदायिनी गति होयहै, जहां मृत्यु न होयहै ॥ ३० ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां तृती० मोक्षरीतिवर्णनं नाम सप्तविंशतितमोऽध्यायः ॥२७॥ श्रीभगवान् बोले कि हे नृपात्मजे ! बीजसहित योगको लक्षण हम कहैहैं, जा विधिके अनुष्ठानसे प्रसन्न मन सन्मार्गमें प्राप्त होय है ॥ १॥ अपनी सामर्थ्यभर स्वधर्मका आचरण करै पापसे निवृत्त रहै, जो अपनें भाग्यके अनुसार लाभ होय उतनेंमें संतोष करै, आत्मज्ञानीनके चरणको पूजन करै ॥२॥ गंवांरोंके धर्मसे निवृत्त रहै, मोक्षधर्ममें प्रीति करै थोडा महाशुद्ध भोजन करै मित याको नाम

यदा न योगोपचितासु चेतो मायासु सिद्धस्य विषज्जतेऽङ्ग ॥ अनन्यहेतुष्वथ मे गतिः स्यादात्यन्तिकी यत्र न मृत्युहासः ॥३०॥ इति श्रीभा०तृती० कापिलेयोपाख्याने मोक्षरीतिवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥ श्रीभगवानुवाच॥ योगस्य लक्षणं वक्ष्ये सबीजस्य नृपात्मजे ॥ मनो येनैव विधिना प्रसन्नं याति सत्पथम् ॥ १ ॥ स्वधर्माचरणं शक्त्या विधर्माच्च निवर्तनम् ॥ दैवाल्लब्धेन संतोष आत्मविच्चरणार्चनम् ॥ २ ॥ ग्राम्यधर्मनिवृत्तिश्च मोक्षधर्मरतिस्तथा ॥ मितमेध्यादनं शश्वद्विविक्तक्षेमसेवनम् ॥ ३ ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं यावदर्थपरिग्रहः ॥ ब्रह्मचर्यं तपः शौचं स्वाध्यायः पुरुषार्चनम् ॥ ४ ॥ मौनं सदासनजयः स्थैर्यं प्राणजयः शनैः ॥ प्रत्याहारश्चेन्द्रियाणां विषयान्मनसा हृदि ॥ ५ ॥ स्वधिष्ण्यानामेकदेशे मनसा प्राणधारणम् ॥ वैकुण्ठलीलाऽभिध्यानं समाधानं तथात्मनः ॥६॥

है कि " द्वौ भागौ पूरयेदन्नैस्तोयेनैकं प्रपूरयेत् ॥ मारुतस्य प्रचारार्थं चतुर्थमवशेषयेत् ॥ " पेटके दो भाग अन्नसें भरै, एकमें जल, चौथो पवनके जानेआनेको खाली राखै, क्षेमदायक एकांतमें सदा विराजै ॥ ३ ॥ जीव न मारै, सांच बोलै, चोरी न करे, जितनेमें अपनों प्रयोजन होय उतनों संग्रह करै, ब्रह्मचर्य धारै, तप करै, शौच करै, वेदपाठ करै; ईश्वरको पूजन करै ॥ ४ ॥ वृथा न बोलै, आसनपर बैठो रहै, स्थिर रहै, धीरेसे प्राण जीते, विषयनसे मनकरकै हृदयमें इंद्रियोंकों जीते ॥ ५ ॥ सब प्राणोंके स्थान मूलाधार आदि एकदेशमें मनके सहित प्राणकी धारणा करे, और भगवानकी लीलाका ध्यान कर, मनकी आत्माकारताको करे ॥ ६ ॥

तत्वदर्शन करानेहारे ज्ञान अत्यंत वैराग्य तपसहित योगाभ्यास और तीव्र अपनीं समाधिकरकै ॥ २२ ॥ या पुरुषकी माया दिन रात जरकर धीरेसे सब छिप जाय है, जैसे अग्नि काष्ठ जराय लीन होयहै " जैसे अग्निकी आदि कारणभूत लकडी अपनेसे उत्पन्न अग्निसे आप जर भस्म होजायहै तैसेंई साधनदशामें अविद्याके करेभए देहादि अभिमानसे उत्पन्न ज्ञानादि साधनोंसे दह्यमान प्रकृति नष्ट होजायहै " ॥ २३ ॥ भोग भोगकर सदोष दृष्टिसे त्यागीभई प्रकृति अपनी महिमामें स्थित पुरुष ईश्वरको कबीभी अशुभ नहीं करैहैं ॥ २४ ॥ जैसे सोएभएको सोवनो बहुत अनर्थको करवेवारो है सोई वो सोनो जगेभए ज्ञानीको मोहके अर्थ नहीं समर्थ होयहैं ॥ २५ ॥ ऐसे तत्व जाननेवारे आत्मारामको

ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन वैराग्येण बलीयसा ॥ तपोयुक्तेन योगेन तीव्रेणात्मसमाधिना॥ २२ ॥ प्रकृतिः पुरुषस्येह दह्यमाना त्वहर्निशम् ॥ तिरोभवित्री शनकैरग्नेर्योनिरिवारणिः ॥ २३ ॥ भुक्तभोगा परित्यक्ता दृष्टदोषा च नित्यशः ॥ नेश्वरस्याशुभं धत्ते स्वे महिम्नि स्थितस्य च ॥ २४ ॥ यथा ह्यप्रतिबुद्धस्य प्रस्वापो बह्वनर्थभृत् ॥ स एव प्रतिबुद्धस्य न वै मोहाय कल्पते ॥ २५ ॥ एवं विदिततत्त्वस्य प्रकृतिर्मयि मानसम् ॥ युञ्जतो नापकुरुत आत्मारामस्य कर्हिचित् ॥ २६ ॥ यदैवमध्यात्मरतः कालेन बहुजन्मना ॥ सर्वत्र जातवैराग्य आब्रह्मभवनान्मुनिः ॥२७॥ मद्भक्तः प्रतिबुद्धार्थो मत्प्रसादेन भूयसा ॥ निःश्रेयसं स्वसंस्थानं कैवल्याख्यं मदाश्रयम् ॥ २८ ॥ प्राप्नोतीहाञ्जसा धीरः स्वदृशा छिन्नसंशयः ॥ यज्ज्ञात्वा न निवर्तेत योगी लिङ्गाद्विनिर्गमे ॥ २९ ॥

मेरेमें मन लगायवेवारेको प्रकृति कदीभी तिरस्कार नहीं करै है ॥ २६ ॥ बहुत जन्मके काल करकै जब अध्यात्मज्ञानमें याको रुचि होयहै, तब ब्रह्माके लोकपर्यंत सर्वत्रसे याको वैराग्य होजायहै, तब मुनि होयहै ॥ २७ ॥ मेरो भक्त मोक्षभागी मेरी बडी कृपासै मोक्षदायक अपनों स्थान कैवल्य जो मेरे आश्रय है वा वैकुंठकों ॥ २८ ॥ या संसारमें धीर अनायास करकै प्राप्त होयहै, अपनीं दृष्टिसे सब संशय नष्ट होजांयहै, या शरीरकों त्यागकर जहांके गए योगीजन फेर बगदकै नहीं आवैं हैं तहां जाय है ॥ २९ ॥

इसी प्रकार देह इन्द्रिय मनादि जो आत्मासै प्रकाशमान हैं उनपर दृष्टि पड़कर फिर उनके प्रकाश करनेहारे आत्मापर आती है और उसीके आश्रयसे अपना आत्मा जिसमें चेतनका आभास है उस अहंकारात्मक त्रिगुण आत्माका प्रकाशक सत्य चेतनरूप परमात्मा दृष्टिगोचर होता है ॥ १३॥ पंच भूत सूक्ष्म इंद्रिये मनबुद्ध्यादिक या संसारमें निद्रा करकै असतमें लीन होंजायहैं विनिद्र होकर अहंकार सब त्याग देहै ॥ १४ ॥ तब आत्मा नष्ट तो नहीं होय है, परंतु झूठेई नष्टवत् मानै है, अहंकार नष्ट होनेके कारण जैसे कोई मनुष्य धन नष्ट होनेसे व्याकुल हो नष्टसा होजाताहै ॥ १५ ॥ ये जीव ऐसें विचारकै आत्माकों प्राप्त होजायहै अहंकारसहित द्रव्यकी अवस्था मेरी कृपा है ॥ १६ ॥ देवहूति बोली कि हे

एवं त्रिवृदहंकारो भूतेन्द्रियमनोमयैः ॥ स्वाभासैर्लक्षितोऽनेन सदाभासेन सत्यदृक् ॥ १३ ॥ भूतसूक्ष्मेन्द्रियमनोबुद्ध्यादिष्विह निद्रया ॥ लीनेष्वसति यस्तत्र विनिद्रो निरहंक्रियः ॥ १४ ॥ मन्यमानस्तदात्मानमनष्टो नष्टवन्मृषा ॥ नष्टेऽहंकरणे द्रष्टा नष्टवित्त इवातुरः ॥ १५ ॥ एवं प्रत्यवमृश्यासावात्मानं प्रतिपद्यते ॥ साहंकारस्य द्रव्यस्य योऽवस्थानमनुग्रहः ॥ १६ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ पुरुषं प्रकृतिर्ब्रह्मन्न विमुञ्चति कर्हिचित् ॥ अन्योन्यापाश्रयत्वाच्च नित्यत्वादनयोः प्रभो ॥ १७ ॥ यथा गन्धस्य भूमेश्च न भावो व्यतिरेकतः ॥ अपां रसस्य च यथा तथा बुद्धेः परस्य च ॥ १८ ॥ अकर्तुः कर्मबन्धोऽयं पुरुषस्य यदाश्रयः ॥ गुणेषु सत्सु प्रकृतेः कैवल्यं तेष्वतः कथम् ॥ १९ ॥ क्वचित्तत्त्वावमर्शेन निवृत्तं भयमुल्बणम् ॥ अनिवृत्तनिमित्तत्वात्पुनः प्रत्यवतिष्ठते ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अनिमित्तनिमित्तेन स्वधर्मेणामलात्मना ॥ तीव्रया मयि भक्त्या च श्रुतसंभृतया चिरम् ॥ २१ ॥

प्रभो! हे ब्रह्मन्! कदीभी पुरुषकों प्रकृति नहीं त्यागैहै, वो पुरुष प्रकृतिके आसरै है, प्रकृति पुरुषके आधीन है ॥ १७॥ जैसे सुगंध भूमिमेंसें कबी पृथक् नहीं होयहै, गंधमें भूमि, भूमिमें गंध, जल रसमें, रसमें जल, तैसें परमेश्वरमें बुद्धि है ॥ १८ ॥ इससै प्रकृतिके गुण देहादिक कि जिनके निमित्त पुरुषके अकर्ता होनेपरभी कर्म बंधन हुआहै उन गुणोंके रहनेपर यह पुरुष उनसै सर्वथा निर्लेप कैसे होसक्ताहै ॥ १९ ॥ कबी तत्वके विचारनेसे ये अत्यंत तीव्र भय दूर होजायहै परंतु वाको निमित्त नष्ट नहीं होयहै सो फेर ये शंका खडी होजायहै ॥ २० ॥ श्रीभगवान् बोले कि कोई निमित्त होय निमित्तके धर्म और मन निर्मल करनेंसे बहुत दिनकी सुनीभई मोमें तीव्र भक्ति करवेसें ॥ २१ ॥

95

जब इस प्रकार ध्यान छोडते २ मन भगवत्के सगुणरूपरहित होताहै तब वैराग्यके कारण विषय उसमें नहीं आते तब योगीका चित्त शान्त हुए दीपककी समान लय होकर ब्रम्हाकार होजाताहै, तब यह आत्माको आनंदमय एक देखैहै तब संसारसे निवृत्त हो जाय है ॥ ३५ ॥ ये अंतकी मनकी निर्वृत्ति करके सुखदुःखरहित ब्रम्हमें निष्ठा प्राप्त करके योगी प्रथम देखाहुआ सुखदुःखका भोक्तापन अहंकारमें रखकर अपनेको पृथक् देखताहै ॥ ३६ ॥ ऐसी अवस्थावाला सिद्ध अपने देहकोभी नहीं देखता तब सुखदुःख कहांसे देखै जैसे मदिराके मदसे अंध हुए पुरुषको जैसे पहने वस्त्रकाभी भान नहीं रहता चाहैं दैवसे उसका वस्त्र प्राप्तहोय चाहै जातारहै तैसेही भगवतके चिंतवन

मुक्ताश्रयं यर्हि निर्विषयं विरक्तं निर्वाणमृच्छति मनः सहसा यथाऽर्चिः ॥ आत्मानमत्र पुरुषोऽव्यवधानमेकमन्वीक्षते प्रतिनिवृत्तगुणप्रवाहः ॥३५॥ सोऽप्येतया चरमया मनसो निवृत्त्या तस्मिन्महिम्न्यवसितः सुखदुःखबाह्ये ॥ हेतुत्वमप्यसति कर्तरि दुःखयोर्यत्स्वात्मन्विधत्त उपलब्धपरात्मकाष्ठः ॥ ३६ ॥ देहं च तं न चरमः स्थितमुत्थितं वा सिद्धो विपश्यति यतोऽध्यगमत्स्वरूपम् ॥ दैवादुपेतमथ दैववशादपेतं वासो यथा परिकृतं मदिरामदान्धः ॥ ३७॥ देहोऽपि दैववशगः खलु कर्म यावत्स्वारम्भकं प्रतिसमीक्षत एव सासुः ॥ तं सप्रपञ्चमधिरूढसमाधियोगः स्वाप्नं पुनर्न भजते प्रतिबुद्धवस्तुः ॥ ३८ ॥ यथा पुत्राच्च वित्ताच्च पृथक् मर्त्यः प्रतीयते ॥ अप्यात्मत्वेनाभिमताद्देहादेः पुरुषस्तथा ॥ ३९ ॥ यथोल्मुकाद्विस्फुलिङ्गाद्धूमाद्वाऽपि स्वसंभवात् ॥ अप्यात्मत्वेनाभिमताद्यथाग्निः पृथगुल्मुकात् ॥ ४० ॥ भूतेन्द्रियान्तःकरणात् प्रधानाज्जीवसंज्ञितात् ॥ आत्मा तथा पृथग्द्रष्टा भगवान् ब्रह्मसंज्ञितः । ४१ ॥

करवेवारेको सब अनुसंधान भूल जाय है ॥ ३७ ॥ दैववश हुआ देह इंद्रिय सहित प्रारब्ध कर्मतक जीता रहताहै परन्तु समाधीको प्राप्त आत्मज्ञानी योगी स्वप्न अवस्थाके प्रपंच सहित देहको अपना नहीं मान्ता ॥ ३८ ॥ जैसें पुत्र धनसें मनुष्य अपनेंकों पृथक् प्रतीत करैहै, तैसेंही आत्मा भाव मानके अभिमत देहादिकसे ईश्वरको पृथक् माने है ॥ ३९ ॥ जैसे काष्ठ और अग्निसे प्रादुर्भूत हुए धूमको और जलसे काठको अज्ञानसे अग्नि मानै परन्तु जलाने और प्रकाश करनेहारा अग्नि उनसे पृथक् है ॥ ४० ॥ पंचभूत इंद्रियें अंतःकरण प्रधान जीव

अपने भृत्योंके ऊपर कृपा करकै बुद्धिसे मूर्ति धारण करनेहारे भगवान्के मुखकमलको ध्यान करै, दमकतेभए मकरकुंडल चलितौसे प्रकाशित निर्मल कपोलनमें उदार नासिका युक्त ॥ २९ ॥ श्रीजीके स्थान भ्रमरनकरके सेव्यमान, अपने वैभवसे कुटिल कुंतलसमूहयुक्त, दो मीनके आश्रित कमलसे नेत्रयुक्त सुंदर भौंवाले मुखारविंदका कि जिसकी शोभासे कमलभी तिरस्कृत है मनमें आविर्भावकर ध्यान करै ॥ ३० ॥ कृपाकरकै अति घोर तापत्रय नाशके लिये नेत्रोंसें निकसे मनोहर मुसकान संयुक्त बहुत प्रसन्न होयवेवारे बोहोतसी भावनाकरके हृदयमें बोहोत दिनतक भगवतके अवलोकनको ध्यान करै ॥३१॥ प्रणाम करनेहारोंके तीव्रशोकके अश्रुसागर शोषण करनेहारे अतिउदार श्रीहरिकी हांसीको ध्यान करै, अपनी

भृत्यानुकम्पितधियेह गृहीतमूर्तेः संचिन्तयेद्भगवतो वदनारविन्दम्॥यद्विस्फुरन्मकरकुण्डलवल्गितेन विद्योतितामलकपोलमुदारनासम् ॥ २९॥ यच्छ्रीनिकेतमलिभिः परिसेव्यमानं भूत्या स्वया कुटिलकुन्तलवृन्दजुष्टम् ॥ मीनद्वयाश्रयमधिक्षिपदब्जनेत्रं ध्यायेन्मनोमयमतन्द्रित उल्लसद्भ्रु ॥ ३० ॥ तस्यावलोकमधिकं कृपयाऽतिघोरतापत्रयोपशमनाय निसृष्टमक्ष्णोः ॥ स्निग्धस्मितानुगुणितं विपुलप्रसादं ध्यायेच्चिरं विपुलभावनया गुहायाम् ॥३१॥ हासं हरेरवनताखिललोकतीव्रशोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारम् ॥ संमोहनाय रचितं निजमाययाऽस्य भ्रूमण्डलं मुनिकृते मकरध्वजस्य ॥ ३२ ॥ ध्यानायनं प्रहसितं बहुलाधरोष्ठभासाऽरुणायिततनु द्विजकुन्दपङ्क्ति ॥ ध्यायेत्स्वदेहकुहरेऽवसितस्य विष्णोर्भक्त्यार्द्रयार्पितमना न पृथक् दिदृक्षेत् ॥ ३३ ॥ एवं हरौ भगवति प्रतिलब्धभावो भक्त्या द्रवद्धृदय उत्पुलकः प्रमोदात् ॥ औत्कण्ठ्यबाष्पकलया मुहुरर्द्यमानस्तच्चापि चित्तबडिशं शनकैर्वियुङ्क्ते ॥ ३४ ॥

मायाकरकै कामके मोहनेके अर्थ रचित मुनिके मन मोहित करनेहारे मकरध्वजकी भ्रूमंडलको ध्यान करै ॥ ३२ ॥ ध्यानको स्थान, प्रहासित अधरहोठकी कांतिकरकै लाल तनुमें कुंदपंक्ति समान दांतको अपने हृदयाकाशमें ध्यान करै, ध्यान करते समय प्रेमरस भरी भक्तिसे उसीमें चित्त रखकर उस्से पृथक् और किसी पदार्थके देखनेकी इच्छा न करै ॥ ३३ ॥ ऐसे भगवान् हरिमें भाव लोभ भक्ति और द्रवीभूत हृदय तथा अत्यंत आनंदसे योग साधते २ रोमांचित होने और उत्कंठाके कारण अश्रुपातसे वारंवार पीडित होनेसे जो मन ईश्वरके मिलनेके निमित्त मत्स्य वेधनेके कांटेके समान है उसे धीरे २ अंगोंसे उस ध्यानको हटावै ॥ ३४ ॥

97

ग रुडजीके पंखौंपर धरीहुई महापराक्रमी अलसीके पुष्पसमान दोनों ऊरूंको हृदयमें ध्यान करै, फिर गुल्फपर्यन्त लम्बायमान पीताम्बरसै शोभित कटिकांची वेष्टित हौनेसै अतिशोभित भगवानके नितम्बौंका ध्यान करना ॥ २४ ॥ सब भुवनोंका खजाना जिनके उदरमें स्थित उस आत्मयोनि ब्रह्माको स्थान सब लोकात्मक कमल जामैं उत्पन्न हुआ ऐसे नाभिसरोवरको ध्यान करै, उठेभए मरकतमणिमें श्रेष्ठ विशद हारोंकी किरणनसे गौर इन भगवानके दोनों स्तननको ध्यान करै ॥ २५ ॥ सर्व श्रेष्ठ महाविभूति श्रीलक्ष्मीजीको वासस्थान पुरुषनके मन नयनको अत्यंत सुखदायक वक्षःस्थल मनमें ध्यान करै, सब लोकौंसै नमस्कृत तिन ईश्वरके कंठको कौस्तुभ मणि भूषण पहिरायवेके लियें मनमें ध्यान करै २६ ॥ मंदरागिरिके घूमनेसे समुद्रमथनके समय जिन बाहुऔंके कंकण उज्ज्वल हुएहैं जिनमें सबलोकपाल निवास करतेहैं ऐसी बाहुनको ध्यान करै, जाको तेज सह्यो न जाय ऐसे सहस्र आरावारे चक्रराज सुदर्शनजीको चिंतवन करै, तिनके हस्तकमलमें रासहंस समान विराजित शंखको चिंतवन करै ॥ २७ ॥ भगवानको प्यारी शत्रुभटोंके रुधिरके कीचमें लिपटी भगवानकी गदाकों स्मरण करै, भ्रमरनके समूहौंसै गूंज युक्त मालाको ध्यान करै, जीव तत्व, रूप निर्मल कंठमणिको स्मरण करै, सो विष्णुपुराणमें है कि “आत्मानमस्य जगतो निर्लेपमगुणामलम्॥ बिभर्ति कौस्तुभमणिं स्वरूपं भगवान् हरिः”॥२८॥

ऊरू सुपर्णभुजयोरधिशोभमानावोजोनिधी अतसिकाकुसुमावभासौ ॥ व्यालम्बिपीतवरवाससि वर्तमानकाञ्चीकलापपरिरम्भि नितम्बबिम्बम् ॥ २४ ॥ नाभिह्रदं भुवनकोशगुहोदरस्थं यत्रात्मयोनिधिषणाखिललोकपद्मम् ॥ व्यूढं हरिन्मणिवृषस्तनयोरमुष्य ध्यायेद्द्वयं विशदहारमयूखगौरम् ॥ २५ ॥ वक्षोऽधिवासमृषभस्य महाविभूतेः पुंसां मनोनयननिर्वृतिमादधानम् ॥ कण्ठं च कौस्तुभमणेरधिभूषणार्थं कुर्यान्मनस्यखिललोकनमस्कृतस्य ॥ २६ ॥ बाहूंश्च मन्दरगिरेः परिवर्तनेन निर्णिक्तबाहुवलयानधिलोकपालान् ॥ संचिन्तयेद्दशशतारमसह्यतेजः शङ्खं च तत्करसरोरुहराजहंसम् ॥ २७ ॥ कौमोदकीं भगवतो दयितां स्मरेत दिग्धामरातिभटशोणितकर्दमेन ॥ मालां मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टां चैत्यस्य तत्त्वममलं मणिमस्य कण्ठे ॥ २८ ॥

क्षुद्रघंटिकाकरकैं शोभित कटिपश्चाद्भागवारे ब्राह्मण भक्तनके हृदयकमलमें वसनेहारे, दर्शन करवेयोग्योंमै दर्शनयोग्य शांत मन नयनकों आनंद बढावनेवारेकों ध्यान करै ॥ १६ ॥ बहुत सुंदर दर्शनवारे सब लोकवासियौंसै नमस्कृत किशोर अवस्थामें स्थित भृत्योंपर अनुग्रह करवेमें कातर मन ॥ ॥ १७ ॥ तीर्थरूप यश, कीर्तनयोग्य, पुण्यश्लोकनमें यश करवेवारे भगवानके सब अंगको ध्यान करै, अपनी नासाग्रभागको देखतो रहै, जबतक मन और ठौर न जायवेपावै ॥ १८ ॥ बैठे चलते फिरते सोतेमें सर्वज्ञ ईश्वरको शुद्धचित्तके भाव करकै ध्यान करै, उनकी लीला देखवे योग्य है ॥१९॥ मुनि तिनमें चित्तको स्थान देकर सब अवयव सुंदरमें स्थित ईश्वरकों दर्शन कर भगवानके एक अंगमें मन लगावै ॥ २० ॥ वज्र अंकुश ध्वज कमल

काञ्चीगुणोल्लसच्छ्रोणिं हृदयाम्भोजविष्टरम् ॥ दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम् ॥ १६ ॥ अपीच्यदर्शनं शश्वत्सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ सन्तं वयसि कैशोरे भृत्यानुग्रहकातरम् ॥१७॥ कीर्तन्यतीर्थयशसं पुण्यश्लोकयशस्करम् ॥ ध्यायेद्देवं समग्राङ्गं यावन्न च्यवते मनः ॥ १८ ॥ स्थितं व्रजन्तमासीनं शयानं वा गुहाशयम् ॥ प्रेक्षणीयेहितं ध्यायेच्छुद्धभावेन चेतसा ॥ १९ ॥ तस्मिल्लँब्धपदं चित्तं सर्वावयवसंस्थितम् ॥ विलक्ष्यैकत्र संयुज्यादङ्गे भगवतो मुनिः ॥ २० ॥ संचिन्तयेद्भगवतश्चरणारविन्दं वज्राङ्कुशध्वजसरोरुहलाञ्छनाढ्यम् ॥ उत्तुङ्गरक्तविलसन्नखचक्रवालज्योत्स्नाभिराहतमहद्धृदयान्धकारम् ॥२१॥ यच्छौचनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत् ॥ ध्यातुर्मनःशमलशैलनिसृष्टवज्रं ध्यायेच्चिरं भगवतश्चरणारविन्दम् ॥२२॥ जानुद्वयं जलजलोचनया जनन्या लक्ष्म्याऽखिलस्य सुरवन्दितया विधातुः ॥ ऊर्वोर्निधाय करपल्लवरोचिषा यत्संलालितं हृदि विभोरभवस्य कुर्यात् ॥२३॥

चिन्होंसे युक्त, उठे भए रक्त शोभित नख मंडलकी किरणोंकरकै ध्यान करवेवारे महात्मानके हृदयकों अंधकार दूर करवेवारे भगवतके चरणकमलको ध्यान करै ॥ २१ ॥ जिनके चरण क्षालन गंगाजलके तीर्थके मस्तकपर धारवेसे मङ्गलमय शिव औरभी अत्यंत मंगलरूप होतेभए, तैसेही ध्यान करवेवारेको मन पापपर्वत नासकरवेको भगवतके चरणारविंदको बहुत दिनतक ध्यान करै ॥ २२ ॥ सबको विधान करवेवारे ब्रह्माकी माता कमल समान नेत्रवारी सब सुरौंसै वन्दित महालक्ष्मी बडी अपनी जंघाओंपर रखकर करपल्लवकी कांतिसै बडी सावधानीके साथ जिनकी सेवा करती हैं उन भय दूर करनहारे नारायणके दोनौ घुटनौ पर्यन्त जंघाद्वयका हृदयमें ध्यान करना ॥ २३ ॥

होयहै ॥ १७ ॥ ब्रह्मविद्याके सुन्ने, मेरे नामोच्चारण संकीर्तनमें कुटिलता त्यागने, अनाडीनके संग न करनेसें अहंकार त्याग करके मन
शुद्ध होयहै ॥ १८ ॥ मेरे धर्मके इन गुणों करके हृदय शुद्ध होताहै इसीसे केवल मेरे गुणोंके सुन्नेसै पुरुषको मन अनायास करकै मेरे स्वरूपको
प्राप्त होयहै ॥ १९ ॥ जैसे सब स्थानोंसे पवनद्वारा गंध घ्राणमें आवै है, ऐसे योगरत चित्त अविकार आत्मामें स्वयं आनकर प्राप्त होताहै ॥ २० ॥
सब जीवनमें स्थित भूतात्मा मुझै छोडकर केवल अर्चाही कर्ता है और इमें सर्वज्ञ नहीं जान्ता उसकी पूजा विडम्बना मात्र है ॥ २१ ॥ सब प्राणी-

आध्यात्मिकानुश्रवणान्नामसंकीर्तनाच्च मे ॥ आर्जवेऽनार्यसङ्गेन निरहंक्रियया तथा ॥१८॥ मद्धर्मणो गुणैरेतैः परिसं-
शुद्ध आशयः ॥ पुरुषस्याञ्जसाऽभ्येति श्रुतमात्रगुणं हि माम् ॥ १९ ॥ यथा वातरथो घ्राणमावृङ्क्ते गन्ध आशयात् ॥
एवं योगरतं चेत आत्मानमविकारि यत् ॥ २० ॥ अहं सर्वेषु भूतेषु भूतात्माऽवस्थितः सदा ॥ तमवज्ञाय मां मर्त्यः
कुरुतेऽर्चाविडम्बनम् ॥ २१ ॥ यो मां सर्वेषु भूतेषु सन्तमात्मानमीश्वरम् ॥ हित्वार्चां भजते मौढ्याद्भस्मन्येव जुहोति
सः ॥ २२ ॥ द्विषतः परकाये मां मानिनोऽभिन्नदर्शिनः ॥ भूतेषु बद्धवैरस्य न मनः शान्तिमृच्छति ॥ २३ ॥
अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नयाऽनघे ॥ नैव तुष्येऽर्चितोऽर्चायां भूतग्रामावमानिनः ॥ २४ ॥ अर्चादावर्चयेत्तावदी-
श्वरं मां स्वकर्मकृत् ॥ यावन्न वेद स्वहृदि सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥ २५ ॥ आत्मनश्च परस्यापि यः करोत्यन्तरोदरम् ॥
तस्य भिन्नदृशो मृत्युर्विदधे भयमुल्बणम् ॥ २६ ॥

योंमें स्थित सबके आत्मा मुझ ईश्वरको त्यागकर केवल मूढतासै अर्चाही करते हैं वह केवल भस्ममें होम करना है ॥ २२ ॥ जो पराए शरीरमें-
भी विराजमान मुझसै वैर करते हैं अभिमान तथा भेदभावसै प्राणीमात्रसे द्रोह करनेवालौंका मन शांत नहीं होताहै ॥ २३ ॥ हे अनघे! छोटे बड़े
अनेक पदार्थोंकी क्रियासै पूजा करनेपरभी मैं उससे प्रसन्न नहीं होता जो सब जीवौंका निरादर करता है ॥ २४ ॥ बाह्य पूजासै तबतक पूजन करना
चाहिये जबतक सब प्राणीयोंमें विराजमान मुझ ईश्वरका हृदयमें अनुभव न हो ॥ २५ ॥ आपमें परमेश्वरमें जो अंतर करै है, तिस भिन्न दृष्टिवारेको

---

१ यह श्लोक छः प्रसंग विरुद्ध होनेसै प्रक्षिप्त है परन्तु औरोनें लिखा है इस कारण टीकाभी लिखी गई।

विषयनकी चाहकर यश ऐश्वर्यके लिये जो अर्चादिकमें मेरी भावना करै है वो राजसी भक्ति है ॥ ९ ॥ पापक्षयको उद्देश कर वा ईश्वरमें कर्म
समर्पण करनेको उद्देशसै भेदभावसै मूर्ति आदिमें पूजा करनी सात्विकी भक्ति है । नवधा भक्ति सात्विकी राजसी तामसी तीन भेद होनैसै फिर
एकभी सत रज तम मिलनेसै तीन तीन प्रकारकी होतीहै ॥ १० ॥ मेरे गुणके श्रवणमात्रकरकै सर्वांतर्यामी मोमें कदी न ठहरवेहारे मनकी
गति लगावै, जैसे गंगाजल धारा निरन्तर प्रवाहसे समुद्रमें लीन होयहै ॥ ११ ॥ निर्गुण भक्ति योगको ये लक्षण कह्यो है, पुरुषोत्तममें
फलानुसंधान भेदभावरहित भक्ति करै ॥ १२ ॥ मैं यद्यपि अपनें भक्तोंको सालोक्य सार्ष्टि सामीप्य सारूप्य और एकत्व यह पांचौ मुक्ति देताहूं

विषयानभिसंधाय यश ऐश्वर्यमेव वा ॥ अर्चादावर्चयेद्यो मां पृथग्भावः स राजसः ॥९॥ कर्मनिर्हारमुद्दिश्य परस्मि-
न्वातदर्पणम् ॥ यजेद्यष्टव्यमिति वा पृथग्भावः स सात्विकः ॥ १० ॥ मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ॥ मनोगति-
रविच्छिन्ना यथा गङ्गाऽम्भसोऽम्बुधौ॥११॥ लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतम्॥ अहैतुक्यव्यवहिता या भक्तिः
पुरुषोत्तमे॥१२॥सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ॥ दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः॥१३॥ स एव
भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः ॥ येनातिव्रज्य त्रिगुणं मद्भावायोपपद्यते॥१४॥ निषेवितेनानिमित्तेन स्वधर्मेण
महीयसा॥ क्रियायोगेन शस्तेन नातिहिंस्रेण नित्यशः॥१५॥ मद्धिष्ण्यदर्शनस्पर्शपूजास्तुत्यभिवन्दनैः ॥ भूतेषु मद्भा-
वनया सत्त्वेनासंगमेन च॥१६॥ महतां बहुमानेन दीनानामनुकम्पया ॥ मैत्र्या चैवात्मतुल्येषु यमेन नियमेन च॥१७॥

तथापि वे मेरी सेवा बिना और कुछ नहीं लेते ॥ १३ ॥ सो यही अत्यंत भक्तियोग कह्यो है, जा करके तीनोंगुणोंको उलांघके मेरे भावकों प्राप्त
होयहैं ॥ १४ ॥ सुंदर नित्य नैमित्तिक स्वधर्मके अनुष्ठान करके निष्काम नारदपंचरात्रतंत्रोक्त पूजा करनेसे काऊकी हिंसा न करनेसे अंतःकरण
शुद्ध होयहै ॥ १५ ॥ मेरी प्रतिमाके दर्शन स्पर्शन पूजा स्तुति प्रणामादि करके सब जीवमात्रमें मेरी भावना करकै धैर्य करिकै वैराग्य करके
हृदय पवित्र होयहै ॥ १६ ॥ बडोंको बहु मान करनेसे दीनोंपर कृपा करकै अपने बराबरकेनमें मैत्री करनेसे यम नियम करवेसे शरीर शुद्ध

101

परेसे परे ईश्वररूप कालको स्वरूप कहो जिसके भयसे प्राणी पुण्य कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं[1] ॥ ४ ॥ झूठो अभिमान करनेहारे अज्ञानी निराधार अंधकारमें वहुत दिनमें सोए कर्म करते करते श्रांत लोककों जगानेको निरर्गल बुद्धिकरकें योगरूप सूर्य तुम प्रगट होतेभए ॥ ५ ॥ मैत्रयजी बोले कि हे कुरुश्रेष्ठ विदुर! ऐसे माताके मधुर वचनकी सराहना कर महामुनि प्रसन्न होकर वापर कृपाकर बोले ॥ ६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि ॥

कालस्येश्वररूपस्य परेषां च परस्य ते ॥ स्वरूपं बत कुर्वन्ति यद्धेतोः कुशलं जनाः ॥ ४ ॥ लोकस्य मिथ्याभिमतेरचक्षुषश्चिरं प्रसुप्तस्य तमस्यनाश्रये ॥ श्रान्तस्य कर्मस्वऽनुविद्धया धिया त्वमाविरासीः किल योगभास्करः ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति मातुर्वचः श्लक्ष्णं प्रतिनन्द्य महामुनिः ॥ आबभाषे कुरुश्रेष्ठ प्रीतस्तां करुणाऽर्दितः ॥ ६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भक्तियोगो बहुविधो मार्गैर्भामिनि भाव्यते ॥ स्वभावगुणमार्गेण पुंसां भावो विभिद्यते ॥७॥ अभिसंधाय यद्धिंसां दम्भं मात्सर्यमेव वा ॥ संरम्भी भिन्नदृग् भावं मयि कुर्यात्स तामसः ॥ ८ ॥

हे भामिनि मातः! भक्तियोग वहुत विधिको है, वहुत मार्गोंसे प्रकाश होय है, सुभाव गुण मार्ग करकै पुरुषनको भाव भेदकों प्राप्त होयहै ॥ ७ ॥ संकल्प हिंसा दंभ मत्सरतासे क्रोधकर भिन्न दृष्टिके भावसै मुझमें भक्ति करनी तामसी भक्ति है ॥ ८ ॥

---

[1] काल जान्नेपरभी कालसे मुक्त होना कठिन है–एक ब्राह्मणने एक दिन देखा कि एक सर्पने किसीको काटलिया, तब ब्राह्मण उस सर्पके पीछे हुआ, थोडी दूर जाकर वही सर्प मैडक हो छोटे जीवोंको खाने लगा, तब ब्राह्मणने पूछा आप कौन हो, जो इस प्रकारसे प्रजाको कष्ट देतेहो, उसनें कहा मैं सबका संहारकर्ता काल हूं ब्राह्मण बोले मेरी मृत्यु कैसे होंगी, कालने कहा नदीमें तुझे नाका ले जायगा, यह सु[illegible] ब्राह्मण वहांसे मारवाड देशको चलागया, और एक राजाके यहां नौकरी करली कुछ दिनौ उपरांत उस राजाके पुत्र हुआ, जब वह बडा हुआ, एक दिन इस ब्राह्मणको संगले किसी दूर देशको गया, मार्गमें कोई नदी आई, राजकुमार स्नानको उतर और ब्राह्मणसै कही आओ संकल्प करादो, ब्राह्मणने जलमें जाना स्वीकार न किया तब राजकुमारने कहा मैं तुम्हारे आगे गहरे जलमें खडा होताहूं, चारों ओर मेरे आदमी तुम्हारे रक्षामें खडे रहैंगे तुम चार पग जलमें आकर दान लो, ब्राह्मण जब विचारकर जलमें गये, तब राजकुमार बोला, भाई कालसै कौन बचाहै, मैं वही मेंडक हूं जो तुम्है मिलाथा, अब नाका होताहूं यह कह तत्काल नाका बन उन्हे पकड अथाह जलमें लेगया.

संज्ञासें आत्मा पृथक् है, जिन्हें ब्रह्म कहतेहैं ॥ ४१ ॥ सर्वजीवमात्रमें आत्मा व्यापैहैं. और सब जीवमात्र आत्मामें व्यापें है, ऐसे अनन्यभावकरकै सब जीवनमें तदात्मताकरकै जो देखैहै वो सिद्ध है ॥ ४२ ॥ अपनीं योनि काष्ठमें एक अग्निकी ज्योति योनिनकी गुणविषमतासे दीर्घ ह्रस्व भावसे दीखै हैं, तैसे आत्मा प्रकृतिमें स्थित दीखै है ॥ ४३ ॥ तातें इस दैवी माया सद्असद्आत्मिका विचारमें सहजसै न आनेहारी प्रकृतिको भगवानकी कृपासै जीतकर स्वस्वरूपमें स्थित होय है, । कुमति कपट लोभ कुनारी दुष्ट संग हौनैसे जीवको नाश होय है ॥४४ ॥ (१) इति श्रीमन्म-

सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥ ईक्षेतानन्यभावेन भूतेष्विव तदात्मताम् ॥ ४२॥ स्वयोनिषु यथा ज्योतिरेकं नाना प्रतीयते ॥ योनीनां गुणवैषम्यात्तथात्मा प्रकृतौ स्थितः ॥४३॥ तस्मादिमां स्वां प्रकृतिं दैवीं सदसदात्मिकाम् ॥ दुर्विभाव्यां पराभाव्य स्वरूपेणावतिष्ठते ॥ ४४ ॥ इति श्रीभा० तृती० कापिलेयोपाख्याने अष्टाङ्गयोगे साधनानुष्ठानं नामाष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ लक्षणं महदादीनां प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ स्वरूपं लक्ष्यतेऽमीषां येन तत् पारमार्थिकम् ॥१॥ यथा सांख्येषु कथितं यन्मूलं तत्प्रचक्षते ॥ भक्तियोगस्य मे मार्ग ब्रूहि विस्तरशः प्रभो ॥ २ ॥ विरागो येन पुरुषो भगवन्सर्वतो भवेत् ॥ आचक्ष्व जीवलोकस्य विविधा लोकसंसृतीः ॥ ३ ॥

हाभागवतभाषाटीकायां तृतीयस्कंधे कापिलेयोपाख्याने अष्टांगयोगे ध्यानयोगवर्णनं नाम अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ देवहूती बोली कि महदादिकोंको लक्षण और प्रकृति पुरुषको स्वरूप, पारमार्थिक, जैसो होय, जासे इनको ज्ञान होय सो कहो ॥ १ ॥ हे प्रभो ! जैसे सांख्यमें इनकी मूल आपने कही अब तुम भक्तियोगको मार्ग विस्तारसे कहो ॥ २॥ हे भगवन् ! जाकरकै पुरुषकों सबओरसे वैराग्य होय, लोककी अनेक प्रकारकी जन्म मरणकी कथा कहो ॥ ३ ॥

---

१ सो कवित्तमें है ॥ ॥ " कुमतिते जस जाय गर्वते लक्षण जाय कुनारीते कुल जाय जोग जाय संगते । भूकते मर्याद जाय लडाएते पुत्र जाय शोचते शरीर जाय शीलता कुसंगते ॥ कपटते धर्म जाय लोभते बडाई जाय मांगेते मान जाय पाप जाय गंगते । क्रोधते तपस्या जाय नीयतबिन राज्य जाय रजपूताई जाय मुरे संग्रामते ॥"

दहिनें कोखमें घूमें है ॥ ४ ॥ माके खाएभए अन्न पानसे गभ[illegible] सब विक्षिप्त रहतीहैं बालकोंके मनोहर वचन सुन्नेमेंही समय बीतता है ॥ ८ ॥
गर्तमें पडा रहताहै ॥ मार्कंडेय पुराण " नाडी चाप्यायनी नाम नाभ्यां तस्यै निबध्यते करवेको उपाय करैहै और सुख मानेहै ॥ ९ ॥ धन जोर जोरके
भुक्तपीतानि स्त्रीणां गर्भोदरे तथा ॥ [illegible]राप्यायितदेहोसौ जंतुर्वृद्धिमुपैति वै ॥२॥ मार्कंडेयपुराणमें है कि स्त्री[illegible] पुरुष नर्कमें जायहै ॥ १० ॥ कभी जीवका नष्ट
आप्यायनी नाडी बंधी है, स्त्रीन[illegible] खाए पायेसे गर्भ उदरमें उनको पीकै वो जीव बढता है इति " ॥ ५ ॥ सुकुम[illegible] [illegible]भूत हो पराये द्रव्यकी इच्छा करता
काटै है, बहुत क्लेशसें मूर्छा आय जाय है, तहांके वासी क्षुधित होकै याय सतावै है॥६॥ कटु तीक्ष्ण उष्ण लवण रूखो [illegible]म् ॥ ८ ॥ गृहेषु कूटधर्मेषु
[illegible]तस्ततश्च तान् ॥

मातुर्जग्धान्नपानाद्यैरेधद्धातुरसंमते ॥ शेते विण्मूत्रयोर्गर्ते स जन्तुर्जन्तुसंभवे ॥ ५ ॥ कृमिभिः क्षतसर्वाङ्गः सोऽणुभिभूतो
प्रतिक्षणम् ॥ मूर्छामाप्नोत्युरुक्लेशस्तत्रत्यैः क्षुधितैर्मुहुः ॥ ६ ॥ कटुतीक्ष्णोष्णलवणरूक्षाम्लादिभिरुल्बणैः ॥ मातृ
भुक्तैरुपस्पृष्टः सर्वाङ्गोत्थि[illegible]तवेदनः ॥ ७ ॥ उल्बेन संवृतस्तस्मिन्नन्त्रैश्च बहिरावृतः ॥ आस्ते कृत्वा शिरः कुक्षौ भुग्नपृष्ठ-
शिरोधरः ॥ ८ ॥ अशक्तः स्वाङ्गचेष्टायां शकुन्त इव पञ्जरे ॥ तत्र लब्धस्मृतिर्दैवात्कर्म जन्मशतोद्भवम् ॥ ९ ॥
स्मरन्दीर्घमनुच्छ्वासं शर्म किं नाम विन्दते ॥ गर्भवाससमं दुःखं न भूतं न भविष्यति ॥ १० ॥ आरभ्य सप्तमान्मासा-
ल्लब्धबाधोऽपि वेपितः ॥ नैकत्रास्ते सूतिवातैर्विष्[illegible]व सोदरः ॥ ११ ॥ नाथमान ऋषिर्भीतः सप्तवध्रिः कृताञ्जलिः ॥
स्तुवीत तं विक्लवया वाचा येनोदरेऽर्पितः ॥ १२ ॥

खायेभएसे सब अंगमें याके वेदना उठे है ॥ ७ ॥ गर्भाशयके भीतर जेरसै वेष्टित बाहर माताकी आंतोंमें लिपटा हुआ वह प्राणी पीठके वांसे और गर्दनको टेढा करकै कोखके अंदर शिर लगावे पड़ा रहता है॥८॥अपनी अंगकी चेष्टा करवेमें असमर्थ जैसे पींजरेमें पक्षी रहै तैसे रहैहै तहां भाग्यसे सौ जन्मके करे कर्मसे याको स्मृति होय आवे है ॥ ९ ॥ तब याद करै है, दीर्घ श्वांस लेहै, सुख तो नामकोंभी वहां नहीं मिलै है, गर्भवासकी समान दुःख न भयो है न होयगो ॥ १० ॥ सातवें महीनेमें याकों बाधा होय है, कांपै है, एक जगे न रहे है, सूतिकी वातसे विष्ठाके क्रीडानके भाई बंधुके संग रहैहै॥११॥भगवत्कृपा मोपर होय, ये चाहवारो जीव सात धातुनसे बंधो हाथ जोडे व्याकुल वाणीसें उदरमें रखनेहारेकी स्तुति करैहै॥१२॥

केवल अधर्म करकै कुटुंबभरणमें तत्पर जीव अंधतामिस्र तमके स्थानमें जाय हैं ॥ ३३ ॥ नरलोकसे नीचे जो यातनादिक है, उन्हें क्रमसे भोग कर पाप जब क्षीण होय तब फेर शुद्ध होय कर या मनुष्यदेहको प्राप्त होय है (१) ॥३४॥ इति श्रीभा०भा०तृती० कामिनां नरकादिकवर्णनं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥ श्रीभगवान् बोले कि यह प्राणी ईश्वरसै प्रेरित कर्मके प्रतापसै देह प्राप्तीके अर्थ पुरुषके वीर्य कणके आश्रित होकर

केवलेन ह्यधर्मेण कुटुम्बभरणोत्सुकः॥ याति जीवोन्धतामिस्रं चरमं तपसः पदम् ॥३३॥ अधस्तान्नरलोकस्य यावतीर्यातनादयः॥ क्रमशः समनुक्रम्य पुनरत्रावजेच्छुचिः ॥ ३४ ॥ इति श्रीभा० तृती० कापिलेयोपाख्याने कामिनां नरकादिवर्णनं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कर्मणा दैवनेत्रेण जन्तुर्देहोपपत्तये ॥ स्त्रियाः प्रविष्ट उदरं पुंसो रेतःकणाश्रयः ॥१॥ कललं त्वेकरात्रेण पञ्चरात्रेण बुद्बुदम् ॥ दशाहेन तु कर्कन्धूः पेश्यण्डं वा ततः परम्॥२॥ मासेन तु शिरो द्वाभ्यां बाह्वङ्घ्र्याद्यङ्गविग्रहः ॥ नखलोमास्थिचर्माणि लिङ्गच्छिद्रोद्भवस्त्रिभिः ॥ ३ ॥ चतुर्भिर्धातवः सप्त पञ्चभिः क्षुत्तृडुद्भवः ॥ षड्भिर्जरायुणा वीतः कुक्षौ भ्राम्यति दक्षिणे ॥ ४ ॥

दा-

स्त्रीके पेटमें प्रविष्ट होताहै ॥ १ ॥ एक रात तो शुक्रशोणित मिलताहै, पंचरात्रमें बुदबुदासो होय, दश दिनमें बेरके समान ो २२ ॥
पिंडाकार होजाय है ॥२॥ एकमासमें शिर बनेहै, दो मासमें बाहु चरण आदि अंगके आकार बने हैं, तीसरे मासमें ा है ॥ २८ ॥ हे मातः!
छिद्र बनेहैं ॥ ३ ॥ चौथे महीनेमें सातों धातु होती हैं, पांचवेमें भूख प्यास उत्पन्न होय है, छठे महीनेमें गर्भके व छोड मरकर ऐसे पापोंके फल- ॥ ८७ ॥

---

१ एक ताळा ॥ " मनुषजन्म पाय आप करी कहा कमाई ॥ टेर ॥ खर ज्यूं घरभार लदो हार कबू न आ र हसा सब वहां भोगे हैं ॥ ३१ ॥ दैव
दियो नहि दिवाई, श्याम खोर बनत जात वात कर रिझाई ॥ २ ॥ औरनको देत सीख दान का समान व्याकुल होताहै ॥ ३२ ॥
माई, कटुक वचन बोल बोल धर्म वय नसांई ॥ ४ ॥ समुझ सोच कर

मारते हैं न तो कहीं ठहरनेको स्थान और न वहां जल [illegible] इंद्रियें सब विक्षिप्त रहतीहैं बालकोंके मनोहर वचन सुनेमेंही समय वीतता है ॥ ८ ॥
पापीकू अंधकारव्याप्त मार्गमें होकर यमलोकको लेचलै है ॥ २३ ॥ इस [illegible] दूर करनेको उपाय करैहै और सुख मानैहै ॥ ९ ॥ धन जोर जोरके
पहुंचातेहैं वहां अनेक प्रकारकी यातना प्राप्त होती है ॥२४॥ कहीं उसके शरीरको उल्मुक [illegible] पुरुष नर्कमें जायहै ॥ १० ॥ कभी जीवका नष्ट
के हाथसे उसके शरीरका मांस कटवाकर उस्से खवातेहैं ॥ २५ ॥ यमलोकमें गीध कुत्ता जीतेकी आंत वशीभूत हो पराये द्रव्यकी इच्छा करता
दैहै ॥ २६ ॥ कोई जगे शरीर काटतेहैं, कही हाथीसे पिसावते हैं, जीवके शरीरको कहीं पर्वतके शृंगसे पटक दे [illegible] षिणाम् ॥ ८ ॥ गृहेषु कूटधर्मेषु
तत्र तत्र पतञ्छ्रान्तो मूर्छितः पुनरुत्थितः ॥ यथा पापीयसा नीतस्तमसा यमसादनम् ॥२३॥ याज [illegible] हिंसयेतस्ततश्च तान् ॥
वर्तिनेव चाध्वनः॥ त्रिभिर्मुहूर्तैर्द्वाभ्यां वा नीतः प्राप्नोति यातनाः॥२४॥ आदीपनं स्वगात्राणां वेष्टयित्वोल्मु [illegible] ॥ लोभाभिभूतो [illegible] ध्यायन्
आत्ममांसादनं क्वापि [illegible] परतोऽपि वा ॥ २५ ॥ जीवतश्चान्त्राभ्युद्धारः श्वगृध्रैर्यमसादने ॥ सर्पवृश्चिकदंशाद्यैर्दश [illegible]
द्भिश्चात्मवैशसम्॥२६॥कृन्तनं चावयवशो गजादिभ्योऽभिदापनम्॥ पातनं गिरिशृङ्गेभ्यो रोधनं चाम्बुगर्तयोः॥२७॥
यास्तामिस्रान्धतामिस्रा रौ[illegible]ाश्च यातनाः॥ भुङ्क्ते न[illegible]रो वा नारी वा मिथः सङ्गेन निर्मिताः ॥२८॥ अत्रैव नरकः स्वर्ग
इति मातः प्रचक्षते ॥ या यातना वै नारक्यस्ता इहा[illegible]प्युपलक्षिताः ॥ २९ ॥ एवं कुटुम्बं बिभ्राण उदरंभर एव वा ॥ वि-
सृज्येहोभयं प्रेत्य भुङ्क्ते तत्फलमीदृशम् ॥ ३० ॥ एकः प्रपद्यते ध्वान्तं हित्वेदं स्वकलेवरम् ॥ कुशलेतरपाथेयं भूतद्रो-
हेण यद्भृतम् ॥ ३१ ॥ दैवेनासादितं तस्य शमलं निरये पुमान् ॥ भुङ्क्ते कुटुम्बपोषस्य हृतवित्त इवातुरः ॥ ३२ ॥

कहीं गढेमें बंध करै हैं ॥ २७ ॥ जो तामिस्र रौरवादिक पीडा है सो नर नारी भोगै है, जो आपसमें मैथुन करके पैदा करी है ॥ २८ ॥ हे मातः! यहांही नरक स्वर्ग हैं जो जो नरककी पीडा हैं सो सब यहांभी दीखै हैं ॥ २९ ॥ ऐसे कुटुंबधारी उदर भरवेवारो सब छोड मरकर ऐसे पापोंके फलकों भोगैहैं ॥ ३० ॥ या अपने शरीरकों त्याग एकही जीव नरककों जाय है, भूतद्रोह करकै जो पाप करे हैं सो सब वहां भोगै हैं ॥ ३१ ॥ दैव करकै प्राप्त निरयमें पुरुष कष्ट भोगैहैं, कुटुंबपोषणको फल वहां भोगै हैं, धन गवाये पुरुषकी समान व्याकुल होताहै ॥ ३२ ॥

105

तब इसै अनादरसे खायवेकों देते हैं कुत्ताकीसी दर होगई, रोग सब प्रगट भए मंदाग्निसे खायो नहीं जाता नेत्रोंसे दीखता नहीं ॥ १५ ॥ वायुसे नेत्र बाहर निकस आए, कफसे सब नाडी रुक गई, खांसी सांसके करे क्लेशसे कंठमें घुरघुर होनेलगो ॥ १६ ॥ शोच करतेभए यो अपने बंधु चारों ओर घेरे बैठे पुकारै हैं तोहू न बोले है, कालकी फांसीके वशमें होगयो है छोरा कहै हे पितः ! पोता कहै हे दादा ! ऐसे पुकारै है वो चुप्प है ॥ १७ ॥ जो मनुष्य इंद्रियोंको न जीतकर केवल कुटुम्बके भरण पोषणमें लगा रहता है वह कुटुम्बियोंके रोते २ कठिन वेदनासे मरजाताहै ॥ १८ ॥ तब भयंकर नेत्रवारे क्रोध करे यमके दो दूत आते हैं उन्हें देख डरकर

आस्तेऽवमत्योपन्यस्तं गृहपाल इवाहरन् ॥ आमयाव्यप्रदीप्ताग्निरल्पाहारोऽल्पचेष्टितः ॥ १५ ॥ वायुनोत्क्रमतोत्ता-
रकफसंरुद्धनाडिकः ॥ कासश्वासकृतायासः कण्ठे घुरघुरायते ॥ १६ ॥ शयानः परिशोचद्भिः परिवीतः स्वबन्धुभिः ॥ वा-
च्यमानोऽपि न ब्रूते कालपाशवशं गतः ॥ १७ ॥ एवं कुटुम्बभरणे व्याप्टतात्माऽजितेन्द्रियः ॥ म्रियते रुदतां स्वानामुरुवे-
दनयाऽस्तधीः ॥ १८ ॥ यमदूतौ तदा प्राप्तौ भीमौ सरभसेक्षणौ ॥ स दृष्ट्वा त्रस्तहृदयः शकृन्मूत्रं विमुञ्चति ॥ १९ ॥ या-
तनादेह आवृत्य पाशैर्बध्वा गले बलात् ॥ नयतो दीर्घमध्वानं दण्ड्यं राजभटा यथा ॥ २० ॥ तयोर्निर्भिन्नहृदयस्तद्दर्
जातवेपथुः ॥ पथि श्वभिर्भक्ष्यमाण आर्तोऽघं स्वमनुस्मरन् ॥ २१ ॥ क्षुत्तृट्परीतोऽर्कदवानलानिलैः
पथि तप्तवालुके ॥ कृच्छ्रेण पृष्ठे कशया च ताडितश्चलत्यशक्तोऽपि निराश्रमोदके ॥ २२ ॥

विष्ठा मूत्रकर रहताहै ॥ १९ ॥ यातनाकी देहका जो यमराजके लोककी पीड़ा भोगनेको है उसमें जीवको बांधकै बडे दूरके रस्तेकों लेजातेहैं जैसे दंडयोग्य पुरुषकों राजाके सिपाई लेजांयहै ॥ २० ॥ हृदयमें कंपा होजातीहै रस्तामें कुत्ता खाने लगतेहैं तब आर्त होकर अपने सूर्य नीचेसे दावानल और वायुसे संतप्त होनेपर तपे वा

ना इसे ज्ञान

र धर्मको जरा मूलसे खाय ॥

फ़ंदर नाहिं पाती और मेरे घर आइ तो वधाई

ता सिखाय जांऊ नाती और पोतानको अपनो

धि भुस देय ॥

107

खोटी वेश्या स्त्रीनकी एकांतके मैथुनादिक मायासे शरीर इंद्रियें सब विक्षिप्त रहतीहैं बालकोंके मनोहर वचन सुन्नेमेंही समय वीतता है ॥ ८ ॥ धन आदि अनेक अधर्म और दुःख भरे घरोंमें यह गृही आलस त्याग दुःख दूर करवेको उपाय करैहै और सुख मानैहै ॥ ९ ॥ धन जोर जोरके महा हिंसाकरके इधरउधरसे उन कुटुंबीनको पुष्ट करैहै, जिनके पोषणसे उनकी झूठन खायवेवारो पुरुष नर्कमें जायहै ॥ १० ॥ कभी जीवका नष्ट हुई तौ फिर उसके निमित्त उद्यम करता है इस प्रकार करता २ महादुःखी होजाताहै तब लोभके वशीभूत हो पराये द्रव्यकी इच्छा करता

आक्षिप्तात्मेन्द्रियः स्त्रीणामसतीनां च मायया ॥ रहो रचितयाऽऽलापैः शिशूनां कलभाषिणाम् ॥ ८ ॥ गृहेषु कूटधर्मेषु दुःखतन्त्रेष्वतन्द्रितः ॥ कुर्वन् दुःखप्रतीकारं सुखवन्मन्यते गृही ॥ ९ ॥ अर्थैरापादितैर्गुर्व्या हिंसयेतस्ततश्च तान् ॥ पुष्णाति येषां पोषेण शेषभुग्यात्यधः स्वयम् ॥ १० ॥ वार्तायां लुप्यमानायामारब्धायां पुनः पुनः ॥ लोभाभिभूतो निःसत्त्वः परार्थे कुरुते स्पृहाम् ॥ ११ ॥ कुटुम्बभरणाकल्पो मन्दभाग्यो वृथोद्यमः ॥ श्रिया विहीनः कृपणो ध्यायन् श्वसिति मूढधीः ॥ १२ ॥ एवं स्वभरणाकल्पं तत्कलत्रादयस्तदा ॥ नाद्रियन्ते यथापूर्वं कीनाशा इव गोजरम् ॥ १३ ॥ तत्राप्यजातनिर्वेदो भ्रियमाणः स्वयंभृतैः ॥ जरयोपात्तवैरूप्यो मरणाभिमुखो गृहे ॥ १४ ॥

है ॥ ११ ॥ जब वह मंदभागी कुटुम्बके भरण पोषणमें उद्यम वृथा होजानैसे असमर्थ होजाताहै तब श्रीविहीन हो कृपणकी समान वह मूढबुद्धि ध्यान करताहुआ स्वास लेताहै[2] ॥ १२ ॥ अपने भरण पोषणमें असमर्थ इसको जैसे पहिले आदर करते थे इस प्रकार फिर कुटुम्बी स्त्रीआदि आदर नहीं करते जैसे किसान बूढे बैलका आदर नहीं करते[3] ॥ १३ ॥ जिनका पहले इसने लालन पालन कियाथा अब वही इसै पालतेहै तोभी इसै ज्ञान नहीं होता बुढापेसै रूप बिगड जाता है और मरणमुख हो घरमेंही पडा रहता है ॥ १४ ॥

---

[1] जैसा नारीके संगसे मनुष्य भ्रष्ट होय है ऐसा और संगतिसे नहीं ॥ दोहा–आहि विष तौ काटे चढै यह चितवत चढजाय । ज्ञान ध्यान और धर्मको जरा मूलसे खाय ॥

[2] धनहीन मूढ बुद्धि ध्यान करत कृपण श्वांस लेतो भयो,ऐसे कृपणसे लक्ष्मी बोली रगा खर्च तब कृपण बोलो "दाता घर जाती तो कदर नाहिं पाती और मेरे घर आइ तो वधाई वांट बावरी । एक खाने दस खाने तेहेखाने छिपाय राखू होय ना उदास मेरो ये ही चित्त चावरी ॥ खांऊ न खिवाऊ मरजांऊ तो सिखाय जांऊ नाती और पोतानको अपनो सुभावरी । सज्जन संबंधी बहिनि भाईकों न देऊ दामके कृपण हेत लक्ष्मी बैठी गीत गावरी ॥ ४ ॥ "

[3] दोहा–सींग झडे और खुर घिसे पीठ बोझ नहिं लेय । ऐसे बूढे बैलको कान बांध भुस देय ॥

आवरणयुक्त या लोक या देहको विस्तार करै है ॥ ४४ ॥ जिनके भयसे गुणाभिमानी देवता सर्गादिकमैं युगयुगमें वर्ततेहैं, जिनके वश ये चराचर है ॥ ४५ ॥ सो अनंत अंत करवेवारो काल अनादि होनेपरभी जगतको आदि करवेवारो है, अव्यय है, जनोंसे जनोंको जन्माता है और मृत्युसै अंतककोभी मारताहुआ सदा अखंडरूप है ॥ ४६ ॥ इति श्रीम० भा० तृ० बहुविधभक्तियोगवर्णनं नाम एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥ कपिलदेवजी बोले कि इस बली कालको पराक्रम ये जीव नहीं जानै है, जैसे बली वायुसें चलायमान मेघपंक्ति वायुके विक्रमको नहीं जानसकै है॥१॥ सुखके अर्थ जिस जिस अर्थकों ये जीव दुःखकरके ग्रहण करैहैं, वा वा अर्थको भगवान् नाश करते हैं तिसके अर्थ पुमान् शोच करैहै ॥ २ ॥ यह

गुणाभिमानिनो देवाः सर्गादिष्वस्य यद्भयात् ॥ वर्तन्तेऽनुयुगं येषां वश एतच्चराचरम् ॥ ४५ ॥ सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः ॥ जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनान्तकम् ॥ ४६ ॥ इति श्रीभा०तृती०बहुविधभक्तियोगवर्णनं नाम एकोनत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ २९ ॥ कपिल उवाच ॥ तस्यैतस्य जनो नूनं नायं वेदोरुविक्रमम् ॥ काल्यमानोऽपि बलिनो वायोरिव घनावलिः ॥ १ ॥ यं यमर्थमुपादत्ते दुःखेन सुखहेतवे ॥ तं तं धुनोति भगवान्पुमान् शोचति यत्कृते ॥ २ ॥ यदध्रुवस्य देहस्य सानुबन्धस्य दुर्मतिः ॥ ध्रुवाणि मन्यते मोहाद्गृहक्षेत्रवसूनि च ॥ ३ ॥ जन्तुर्वै भव एतस्मिन्यां यां योनिमनुव्रजेत् ॥ तस्यां तस्यां स लभते निर्वृतिं न विरज्यते ॥४॥ नरकस्थोऽपि देहं वै न पुमांस्त्यक्तुमिच्छति ॥ नारक्यां निर्वृतौ सत्यां देवमायाविमोहितः ॥५॥ आत्मजायासुतागारपशुद्रविणबन्धुषु ॥ निरूढमूलहृदय आत्मानं बहु मन्यते ॥ ६ ॥ संदह्यमानसर्वाङ्ग एषामुद्वहनाधिना ॥ करोत्यविरतं मूढो दुरितानि दुराशयः ॥ ७ ॥

दुर्मति नश्वर देहको स्थायी मानैहै मोहसे घर खेत धनादिकोंकोभी स्थिर मानेहै ॥ ३ ॥ निश्चयकरकै ये जीव या संसारमें जा जा योनिको प्राप्त होय है, तिस तिस योनिमें सुखलाभ होयहै, परन्तु वैराग्य नहीं होयहै ॥ ४ ॥ नरकवासीभी पुरुष देह त्याग करवेकी इच्छा न करै है, नरकको आनंद सुख सत्य माने है, देवमायासें विमोहित है ॥ ५ ॥ शरीर, स्त्री, पुत्र, घर, पशु, धन, बंधुओंमें अपनो हृदय अत्यंत फसो है, सो अपनपेकों बहुत मानै है ॥ ६ ॥ अपने कुटुंबियोंके पालन करनेसे सब अंग सदा जरते हैं तथापि वो मूढ हृदयसे सदा बुरे बुरे कर्म करता रहताहै ॥ ७ ॥

109

वमें प्रविशेहै, भगवान् है यह जाने ॥ ३५ ॥ हे मनुपुत्रि ! भक्तियोग और योग मैंने तुमसे कह्यो, इन दोनोंमें एककीभी सेवा करै तो पुरुष परमेश्वरके पास पहुंचजायहै॥३६॥ ये भगवान् परमात्मा ब्रह्मको रूप सबका नियंता प्रकृति पुरुषरूप और उस्से पृथक् जो भगवानका स्वरूप है वह देव कहाताहै ॥ ३७ ॥ रूपभेदके आश्रय होयवेसे दिव्य कालही ईश्वर कहेजायहैं, जासे भिन्न दृष्टिवारे महदादिभूतनको भय होयहै ॥ ३८ ॥ सर्वाधार होकर जो ईश्वर भीतर प्रविष्ट होके सब जीवनको भक्षण करैं हैं सो विष्णु है वोही अधियज्ञ है, काल है, वशी करवेवारेनके प्रभु हैं ॥३९॥ या कालको

भक्तियोगश्च योगश्च मया मानव्युदीरितः ॥ ययोरेकतरेणैव पुरुषः पुरुषं व्रजेत् ॥ ३६ ॥ एतद्भगवतो रूपं ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ परं प्रधानं पुरुषं दैवं कर्म विचेष्टितम् ॥ ३७ ॥ रूपभेदास्पदं दिव्यं काल इत्यभिधीयते ॥ भूतानां महदादीनां यतो भिन्नदृशां भयम् ॥ ३८ ॥ योऽन्तः प्रविश्य भूतानि भूतैरत्त्थाखिलाश्रयः ॥ स विष्णवाख्योऽधियज्ञोऽसौ कालः कलयतां प्रभुः ॥ ३९ ॥ न चास्य कश्चिद्दयितो न द्वेष्यो न च बान्धवः ॥ आविशत्यप्रमत्तोऽसौ प्रमत्तं जनमन्तकृत् ॥ ४० ॥ यद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति यद्भयात् ॥ यद्भयाद्वर्षते देवो भगणो भाति यद्भयात् ॥ ४१ ॥ यद्वनस्पतयो भीता लताश्चौषधिभिः सह ॥ स्वे स्वे कालेऽभिगृह्णन्ति पुष्पाणि च फलानि च ॥ ४२ ॥ स्रवन्ति सरितो भीता नोत्सर्पत्युदधिर्यतः ॥ अग्निरिन्धे सगिरिभिर्भूर्न मज्जति यद्भयात् ॥ ४३ ॥ नभो ददाति श्वसतां पदं यन्नियमाददः ॥ लोकं स्वदेहं तनुते महान् सप्तभिरावृतम् ॥ ४४ ॥

कोई प्यारो नहीं हैं, न वैरी हैं, न बांधव है, अप्रमत्त होके प्रमत्त जनोंको अंत करैहैं ॥ ४० ॥ जिनके भयसे ये पवन चलैहै, जिनके भयसें सूर्य तपें हैं, जिनके भयसे इन्द्र वर्षावतेहै, जिनके भयसें सब तारागण प्रकाश करतेहैं ॥ ४१ ॥ जिनके डरसे डरी वनस्पति लता औषधी सहित अपने अपने समयमें पुष्प फल उत्पन्न करतीहै ॥ ४२ ॥ जिनके डरसे नदियें वहती हैं जिनके भयसे समुद्र मर्यादा नहीं छोडतेहैं, जिनके भयसें अग्नि देदीप्यमान होतीहै जिनके भयसे पर्वतसहित भूमी डूबती नहीं है ॥ ४३ ॥ जिनकी आज्ञासे ये आकाश सब श्वास लेवेवारेको अवकाश देवैहै, महत्तत्त्व सात

---

१ सब तज ये पद हुआ। पर्जन्य राग पद—जग सुखमै सोय रह्यो तू जाग जाग तेरे शिरपर ठाडो कालनाग ॥ टेर ॥ उत्तम वरमैं मनुष्य जन्म भयो, पाप कर्मनसें भाग भाग ॥१॥ मुलक माल जग जाल धरो रहै, संग न चालै तेरे एक धाग ॥ २ ॥ जात जीवन धन रूप अंधरी जगत बडाई जैसी भूते आग ॥ ३ ॥ पुरुषोत्तम कहै समुझ बावरे अभहु भजनमें लाग लाग ॥ ४ ॥

अथ मां सर्वभूतेषु भूतात्मानं कृतालयम् ॥ अर्हयेद्दानमानाभ्यां मैत्र्याऽभिन्नेन चक्षुषा ॥२७॥ जीवाः श्रेष्ठा ह्यजीवानां ततः प्राणभृतः शुभे ॥ ततः सचित्ताः प्रवरास्ततश्चेन्द्रियवृत्तयः ॥२८॥ तत्रापि स्पर्शवेदिभ्यः प्रवरा रसवेदिनः॥ तेभ्यो गन्धविदः श्रेष्ठास्ततः शब्दविदो वराः ॥ २९ ॥ रूपभेदविदस्तत्र ततश्चोभयतोदतः ॥ तेषां बहुपदः श्रेष्ठाश्चतुष्पादस्ततो द्विपात् ॥ ३० ॥ ततो वर्णाश्च चत्वारस्तेषां ब्राह्मण उत्तमः ॥ ब्राह्मणेष्वपि वेदज्ञो ह्यर्थज्ञोऽभ्यधिकस्ततः ॥ ३१ ॥ अर्थज्ञात्संशयच्छेत्ता ततः श्रेयान्स्वकर्मकृत् ॥ मुक्तसङ्गस्ततो भूयानद्रोग्धा धर्ममात्मनः ॥ ३२ ॥ तस्मान्मय्यर्पिताशेषक्रियाऽर्थात्मा निरन्तरः ॥ मय्यर्पितात्मनः पुंसो मयि संन्यस्तकर्मणः ॥ ३३ ॥ न पश्यामि परं भूतमकर्तुः समदर्शनात् ॥ समदर्शिनरा नित्यं वैकुण्ठं तं व्रजन्ति ते ॥ ३४ ॥ मनसैतानि भूतानि प्रणमेद्बहु मानयन् ॥ ईश्वरो जीवकलया प्रविष्टो भगवानिति ॥ ३५ ॥

सदा हम भय देवैं हैं ॥ २६ ॥ याते मोको सब जीवनमें भूतनमें बसवेवारे ईश्वरको दान मानसें पूजे, मित्रता करै, भेदके नेत्रसें न देखै ॥ २७॥ हे शुभे ! अचेतन जीवनमें प्राणधारी जीव श्रेष्ठ हैं, तिनमें प्राणवाले श्रेष्ठ हैं, तिनसे चित्तवाले श्रेष्ठ हैं तिनमेंभी इंद्रियवृत्तिवारे श्रेष्ठ हैं ॥ २८॥ तिनमेंभी स्पर्शज्ञानी श्रेष्ठ हैं, तिनमेंभी रसज्ञानी मत्स्यादि श्रेष्ठ हैं, तिनसें गंधज्ञानी भ्रमरादिक श्रेष्ठ हैं, तिनसे शब्दज्ञानी सर्पादिक श्रेष्ठ हैं ॥ २९॥ रूपभेदवेत्ता काक आदि श्रेष्ठ हैं तिनमें दोनों ओर दंतवारे श्रेष्ठ हैं तिनके मध्यमें बहुपादवारे श्रेष्ठ हैं तिनसे चोपाये श्रेष्ठ हैं तिनते दोपदवारे श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥ द्विपदोंमें चारों वर्ण श्रेष्ठ हैं, तिनमें ब्राह्मण उत्तम है ब्राह्मणोंमेंभी वेदज्ञानी श्रेष्ठ हैं वेदज्ञानीनमें अर्थ जानवेवारो श्रेष्ठ है ॥ ३१ ॥ अर्थ ज्ञानीसे संशयच्छेदी श्रेष्ठ है, तिनसें स्वकर्मकृत् श्रेष्ठ हैं तिनसे मुक्तसंगी श्रेष्ठ हैं, तिनसे ईश्वरके धर्मकर्ता श्रेष्ठ हैं ॥ ३२ ॥ मेरेमें सब क्रिया अर्थ आत्मा निरंतर अर्पण करनेहारे तिनसेंभी श्रेष्ठ हैं मेरेमें आत्मा जाने अर्पी, मेरेमें सब कर्मको संन्यास करो ॥ ३३ ॥ ऐसे समदर्शीके समान और कोई नहीं है, समदर्शी मनुष्य वैकुंठकों जावैं हैं ॥ ३४ ॥ मनसै बहुमान कर इन जीवनको प्रणाम करै, ईश्वर जीवरूप होकर एक कलामात्रसे जी-

जीव रमण करने लगो तौ पूर्वकी नाईं फेर नरकमें जाता है ॥ ३३ ॥ सत्य, शौच, दया, मौन, बुद्धि, श्री, लज्जा, यश, क्षमा, शम, दम, ऐश्वर्य, खोटोंके संगसें सब नाश होगये ॥ ३४ ॥ अशांत मूढ खंडित आत्मा स्त्रियोंके क्रीडामृग (खिलौने) और शोचनीय हीन पुरुषोंकी संगति कदापि नहीं करनी ॥ ३५ ॥ और प्रसंगसें जैसो ये बंधेहै तैसो याकों मोह नहीं होयहै, जैसो स्त्रीके संगसें बंधन न होयहै स्त्रीके संग करवेवारे भडुआनसे याको महादुःख होय है[1] ॥ ३६ ॥ प्रजापति अपनी बेटीकों देख वाके रूपके वश होगए तब वह मृगी होय दौडी, सो आपभी लाज छोड़ मृग बन दौडे ॥ ३७ ॥ जब उनकी यह दशा है तौ उन्हीं ब्रह्माके रचे मरीच्यादिक तिनके रचे कश्यपादिक, तिनके रचे देव मनुष्यादिक स्त्रीरूप माया करकै अखंडित बुद्धिवारो नरनारायण ऋषिके बिना कोई नहीं है ॥ ३८ ॥ मेरी स्त्रीमयी मायाको बल तो देखो कि दिशानके जीतवेवारौ शूरनको भ्रू चलायकर केवल पांवमें लुटाय लेवैहै ॥ ३९ ॥ योगके पार जायवेवारो जीव कभीभी स्त्रीके संग न करै, मेरी सेवा करकै ईश्वरको लाभ होय है योगिराज स्त्रीको नरकको द्वार कहैं हैं या बातपर एक श्लोक है कि ॥ "आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानां, दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम् ॥ स्वर्गद्वारस्य विघ्नं नरकपुरमुखं सर्वमायाकरण्डं, स्त्रीरत्नं केन सृष्टं विषममृतमयं प्राणिनां मोहपाशः॥१॥भाषार्थ—सब संदेहोंको भँवर, अविनयको घर, साहसोंका शहर, दोष भरी, सैकडों कपट युक्त, अविश्वासको खेत, स्वर्गद्वारको विघ्न, नरकपुरको मुख, सब मायाको डब्बा ये स्त्रीरत्न अमृतमय विष है, प्राणियोंकी मोहकी फांस है ॥ १ ॥" ॥ ४० ॥ ईश्वरकी रची यह स्त्रीरूप माया जो धीरे २ निकट आवै

सत्यं शौचं दया मौनं बुद्धिः श्रीर्ह्रीर्यशः क्षमा ॥ शमो दमो भगश्चेति यत्सङ्गाद्याति संक्षयम् ॥ ३४ ॥ तेष्वशान्तेषु
मूढेषु खण्डितात्मस्वऽसाधुषु॥ सङ्गं न कुर्याच्छोच्येषु योषित्क्रीडामृगेषु च ॥ ३५ ॥ न तथाऽस्य भवेन्मोहो बन्धश्चान्यप्रसङ्गतः ॥
योषित्सङ्गाद्यथा पुंसो यथा तत्सङ्गिसङ्गतः ॥ ३६ ॥ प्रजापतिः स्वां दुहितरं दृष्ट्वा तद्रूपधर्षितः ॥ रोहिद्भूतां
सोऽन्वधावदृक्षरूपी हतत्रपः ॥३७॥ तत्सृष्टसृष्टसृष्टेषु कोन्वऽखण्डितधीः पुमान् ॥ ऋषिं नारायणमृते योषिन्मय्येह
मायया ॥ ३८ ॥ बलं मे पश्य मायायाः स्त्रीमय्या जयिनो दिशाम् ॥ या करोति पदाक्रान्तान् भ्रूविजृम्भेण
केवलम् ॥ ३९ ॥ सङ्गं न कुर्यात् प्रमदासु जातु योगस्य पारं परमारुरुक्षुः ॥ मत्सेवया प्रतिलब्धात्मलाभो वदन्ति
या निरयद्वारमस्य॥४०॥योपयाति शनैर्माया योषिद्देवविनिर्मिता॥ तामीक्षेतात्मनो मृत्युं तृणैः कूपमिवावृतम्॥४१॥

---

[1] आहि विष तौ काटेचढे यह चितवत चढजाय । ज्ञान ध्यान और धर्मको जरा मूलसै खाय ॥ १ ॥

तिनकरकै नीचेको पटकोभयो सहसा नीचो शिरकर आतुर कष्टकरकै स्वांस रुकनेसे हतस्मृति होकर वडे कष्टसें वाहर आताहै ॥ २४ ॥ भूमिमें गिरपडा, रुधिर मूत्रमें विष्ठाके कृमीकी नाई चेष्टा करके वारंवार रोयवेलगो ज्ञान जातरह्यो विपरीत गतिकों प्राप्त होगयो ॥ २५ ॥ पराएके अभिप्रायकों न जान जनोंकरके पुष्ट करा जाय है, वे इसके कछु अभिप्राय नहीं जान्ते और यह कहिवेको समर्थ नहीं होता है ॥ २६ ॥ स्वेदज जंतु खटमल आदि जंतुओंसै दूषित अपवित्र शय्यापर सोयाहुआ अपने शरीरकों खुजानेकोभी समर्थ नहीं होता उठ नहीं सकता कुछ चेष्टा नहीं कर सकता ॥ २७ ॥ कच्ची खालमें मछर खटमल काटवेलगे, तव रोनेलगो, ज्ञान सव जाता रहता है जैसे और कीडे दूसरे कीडोंको काटतेहैं तैसेही इसै काटते हैं ॥ २८ ॥ ऐसे वालकपन भोग पौगंड अवस्थामें पढनेंको दुःख सहके अज्ञानसे कुछ न आयो, क्रोध वढो, शोक करवेलगो ॥ २९ ॥ देहके साथ मानकर वढेभए क्रोधसे कामी अपने आत्माके नाशके अर्थ लडाई करवेलगो ॥ ३० ॥ पंचभूतके देहमें वारंवार ये अज्ञानी देही अहं मम असत् वातें ग्रहण करवेलगो, कुमतिसें बुद्धि मारीगई ॥ ३१ ॥ देहके अर्थ कर्म करवेलगो, जा कर्मसें वंधकर संसारको प्राप्त भयो, क्लेश देतोभयो, फेर जन्मो मरो अविद्यासे कर्मवंधनमें फसगयो ॥ ३२ ॥ फेर शिश्न उदरके उद्यम निमित्त असतोंके मार्गमें स्थित यह

तेनावसृष्टः सहसा कृत्वाऽवाक् शिर आतुरः ॥ विनिष्क्रामति कृच्छ्रेण निरुच्छ्वासो हतस्मृतिः ॥ २४ ॥ पतितो भुव्यसृङ्मूत्रे विष्ठाभूरिव चेष्टते ॥ रोरूयति गते ज्ञाने विपरीतां गतिं गतः ॥२५॥ परच्छन्दं न विदुषा पुष्यमाणो जनेन सः ॥ अनभिप्रेतमापन्नः प्रत्याख्यातुमनीश्वरः ॥ २६ ॥ शायितोऽशुचिपर्यङ्के जन्तुः स्वेदजदूषिते ॥ नेशः कण्डूयनेऽङ्गानामासनोत्थानचेष्टने ॥ २७ ॥ तुदन्त्यामत्वचं दंशा मशका मत्कुणादयः ॥ रुदन्तं विगतज्ञानं कृमयः कृमिकं यथा ॥ २८ ॥ इत्येवं शैशवं भुक्त्वा दुःखं पौगण्डमेव च ॥ अलब्धाभीप्सितोऽज्ञानादिद्धमन्युः शुचाऽर्पितः ॥ २९ ॥ सह देहेन मानेन वर्धमानेन मन्युना ॥ करोति विग्रहं कामी कामिष्वन्ताय चात्मनः ॥ ३० ॥ भूतैः पञ्चभिरारब्धे देहे देह्यबुधोऽसकृत् ॥ अहं ममेत्यसद्ग्राहः करोति कुमतिर्मतिम् ॥ ३१ ॥ तदर्थं कुरुते कर्म यद्बद्धो याति संसृतिम् ॥ योऽनुयाति ददत् क्लेशमविद्याकर्मबन्धनः ॥ ३२ ॥ यद्यसद्भिः पथि पुनः शिश्नोदरकृतोद्यमैः ॥ आस्थितो रमते जन्तुस्तमो विशति पूर्ववत् ॥ ३३ ॥

माके देह विवरमें ये देही जठरअग्निसे रुधिर विष्ठा मूत्रके कूपमें अतितप्त होनेके कारण यहांसे बाहिर निकरवेको अपने मास गिने है यूं कहैहै कि भगवान् कब यहांसे निकासेंगे ॥ १८ ॥ हे ईश! दश मासकेको बडी कृपाकरके आपसरीकेने ऐसी गति दई, सो दीननाथ अपने करेसें आपही संतुष्ट हो केवल हाथ जोडनेके विना आपको प्रत्युपकार कौन करसकैहै ॥ १९ ॥ सप्त धातुकी देहवारो ये जीव बुद्धिकरकै शरीरके सुख दुःख और देहमेंभी देखै है, परन्तु मैं तो उनके दिये ज्ञानसे शमदमादि साधन युक्त स्थितिमें हूं उन भोक्ताकी समान अपरोक्ष प्रतीत होतेहुए हृदयके बाहर भीतर परिपूर्ण देखताहूं ॥ २० ॥ हे विभो! सो मैं बहुत दुःखवासमें वसूंहूं, तोहू बाहिर अंधकूपमें गर्भसे नहीं निकसवेकी इच्छा करूंहूं जहां जाते-

देह्यन्यदेहविवरे जठराग्निनाऽसृग्विण्मूत्रकूपपतितो भृशतप्तदेहः ॥ इच्छन्नितो विवसितुं गणयन् स्वमासान् निर्वास्यते कृपणधीर्भगवन् कदा नु ॥ १८ ॥ येनेदृशीं गतिमसौ दशमास्य ईश संग्राहितः पुरुदयेन भवादृशेन ॥ स्वेनैव तुष्यतु कृतेन स दीननाथः को नाम तत्प्रति विनाऽञ्जलिमस्य कुर्यात् ॥ १९ ॥ पश्यत्ययं धिषणया ननु सप्तवध्रिः शारीरके दमशरीर्यपरः स्वदेहे ॥ यत्सृष्टया स तमहं पुरुषं पुराणं पश्ये बहिर्हृदि च चैत्त्यमिव प्रतीतम् ॥ २० ॥ सोऽहं वसन्नपि विभो बहुदुःखवासं गर्भान्न निर्जिगमिषे बहिरन्धकूपे ॥ यत्रोपयातमुपसर्पति देव माया मिथ्यामतिर्यदनु संसृतिचक्रमेतत् ॥ २१ ॥ तस्मादहं विगतविक्लव उद्धरिष्य आत्मानमाशु तमसः सुहृदात्मनैव ॥ भूयो यथा व्यसनमेतदनेकरन्ध्रं मा मे भविष्यदुपसादितविष्णुपादः ॥ २२ ॥ कपिल उवाच ॥ एवं कृतमतिर्गर्भे दशमास्यः स्तुवन्नृषिः ॥ सद्यः क्षिपत्यवाचीनं प्रसूत्यै सूतिमारुतः ॥ २३ ॥

ही ईश्वरकी माया व्यापैगी ताते मिथ्या मति होयके ये संसारचक्रमें सदा रहिवो होगो ॥ २१ ॥ ताते मैं व्याकुलतारहित होके सुहृद आत्माद्वारा तमसे आत्माका उद्धार करूंगा जिस्से फिर अनेक गर्भोंमें निवास करनेरूप दुःख मुझे फिर भोगना न पडे कारण कि विष्णुके चरणोंके आश्रयका यही प्रताप है ॥ २२ ॥ कपिलदेवजी बोले कि ऐसे मतिकर गर्भमें दश मासके स्तुति करते जीवको बाहर निकासनेके निमित्त प्रसूतिका वायु तत्काल उल्टाकर धक्का देताहै ॥ २३ ॥

जीव बोलो कि जगतकी रक्षा करनेको अपनी इच्छासे नानामूर्तिधारी भगवानके भूमिमें चलायमान सब ओरसे भयरहित चरणारविंदकी मैं शरण हूं जिन्होंने मुझ पापीको उचित गर्भवास दियाहै ॥ १३ ॥ जो या संसारमें कर्ममें बंधे भए भूत इंद्रिय अंतःकरणरूप मायाको पाकर ऐसा होरहाहूं वही मैं अब तपायमान हृदयसे विशुद्ध अविकारी अखंडज्ञानी, ईश्वरको नमस्कार करूहूं ॥ १४ ॥ वास्तवमें शरीरहीन होनेपरभी असत्यही इंद्रियगुण पंचमहाभूत और चिदाभासरूपमें जो पांच भूतोंसे उत्पन्न हुए शरीरसे वेष्टित हुआ दीखताहूं वह शरीरसे महा महिमायुक्त प्रकृति पुरुषके नि-

जन्तुरुवाच ॥ तस्योपसन्नमवितुं जगदिच्छयाऽऽत्तनानातनोर्भुवि चलच्चरणारविन्दम् ॥ सोऽहं व्रजामि शरणं ह्यकुतोभयं मे येनेदृशी गदिरदर्श्यसतोऽनुरूपा ॥ १३ ॥ यस्त्वत्र बद्ध इव कर्मभिरावृतात्मा भूतेन्द्रियाशयमयीमवलम्ब्य मायाम् ॥ आस्ते विशुद्धमविकारमखण्डबोधमातप्यमानहृदयेऽवसितं नमामि ॥ १४ ॥ यः पञ्चभूतरचिते रहितः शरीरे छन्नो यथेन्द्रियगुणार्थचिदात्मकोऽहम् ॥ तेनाऽविकुण्ठमहिमानमृषिं तमेनं वन्दे परं प्रकृतिपूरुषयोः पुमांसम् ॥ १५ ॥ यन्माययोरुगुणकर्मनिबन्धनेऽस्मिन् सांसारिके पथि चरंस्तदभिश्रमेण ॥ नष्टस्मृतिः पुनरयं प्रवृणीत लोकं युक्त्या कया महदनुग्रहमन्तरेण ॥ १६ ॥ ज्ञानं यदेतददधात्कतमः स देवस्त्रैकालिकं स्थिरचरेष्वनुवर्तितांशः ॥ तं जीवकर्मपदवीमनुवर्तमानास्तापत्रयोपशमनाय वयं भजेम ॥ १७ ॥

यामक सर्वज्ञ परमात्माको प्रणाम करताहूं ॥१५॥ जिनकी मायासे नष्टस्मृति जीव बहुत गुण कर्म निबंधनवारे संसारमार्गमें दुःखसे विचरता उसके अनुग्रह विना क्या अपने स्वरूपको प्राप्त होसक्ताहै अर्थात् नहीं होसक्ता इस कारण हरिका भजन सेवन मुख्य है ॥१६॥ स्थावर जंगममें अन्तर्यामीरूपसे रहनेहारे देव ईश्वरके विना ये त्रिकालको ज्ञान मोमें कौन धारतोभयो, जीव कर्मपदवीमें वर्तमान हम तापत्रय नाशके अर्थ तिन ईश्वरको भजे है ॥१७॥

---

१ या वातपर महात्मानने पद रचो है ॥ गजल ताल तिताला ॥ करुणाकर प्रभुको नहि गावै क्यौ भूला भाई, हरीको ॥ अस्ताई ॥ गर्भवासमें रक्षा की वहां कौन रही दाई, पेट बिच ॥ १ ॥ पहिलो थनमें दूध कियो फिर जन्म्यो तू आई, सजन् ॥ २ ॥ बडो कियो है सुकृत करनको करत घात घाई, सबन्से ॥ ३ ॥ भीतरको तें कौल विसारो करत्ता इठलाई, धर्मसें ॥ ४ ॥ हरिहित टूक चने नहि दे तू मच्यो माल खाई, मूर्ख तू ॥ ५ ॥ करत हरामी कामी पनकर पकरो तू जाई, उसी दिन ॥ ६ ॥ झूठ कपट छलसे धन जोरो रिरत देख खाई, मूढ तू ॥७ ॥ पुरुषोत्तम कहैं सर्वेश्वर भज अवहू वस जाई, तेरी ॥ ८ ॥

115

याते वह श्वपच श्रेष्ठ है, जाकी जिह्वामें तुम्हारो नाम है, वाने तप होम तीर्थस्नान सब कर लिये वोही बडो है, वाने वेदहू पढ लीनो, जो तुम्हारो नाम ले वाने सब कीनेहैं (१) ॥ ७ ॥ पर ब्रह्म पुरुष सावधान हृदयमें चिंतवन करनेयोग्य अपने तेजके प्रभावसे संसारबंधनको काटनेवाले सर्वव्यापक विष्णु, वेदगर्भ तुम कपिलदेवजीकी मैं वंदना करूं हूं ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि भगवान् परःपुमान् कपिलदेवजी या प्रकार जब स्तुति करेगए तब माताके प्रिय चाहनेवारे गंभीरवाणी मातासे बोले ॥ ९ ॥ कपिलदेवजी बोले कि हे मातः ! सुंदर सेवनयोग्य या मेरे मार्गमें स्थित होयकर थोडेही कालमें मोकों प्राप्त होओगी ॥ १० ॥ इस ब्रह्मवादी मुनियौंसे सेवन कियेहुए इस मेरे मतमें श्रद्धा रखकर सब भयके छुडानेहारे मुझे प्राप्त होगी इसके न जान्नेहारे मृत्युग्रासमें पतित होतेहैं ॥ ११ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि श्रीभगवान् अपनी गति ऐसे दिखायकर ब्रह्मवादिनी अपनी मातासे सत्कृत उसकी आज्ञा पाय श्रीकपिलदेवजी वहांसे चले जातेभए ॥ १२ ॥ वो देवहूतिभी पुत्रके कहेभए मार्गसे योगाभ्यासमें लगकर सब आश्रमोंमें मुकुटतुल्य वा आश्रममें सरस्वतीके तीरपर सावधान होकर (ये स्थान गुजरातमें सीधपुरमें है, वहां सरस्वतीजी वहै है. बिंदुसरोवर है, कपिलदेवजीको आश्रम इत्यादि सब है) ॥ १३ ॥

अहो बत श्वपचोऽतो गरीयान्यज्जिह्वाऽग्रे वर्तते नाम तुभ्यम् ॥ तेपुस्तपस्ते जुहुवुः सस्नुरार्या ब्रह्मानूचुर्नाम गृणन्ति ते ये ॥७॥ तं त्वामहं ब्रह्म परं पुमांसं प्रत्यक्स्रोतस्यात्मनि संविभाव्यम् ॥ स्वतेजसा ध्वस्तगुणप्रवाहं वन्दे विष्णुं कपिलं वेदगर्भम् ॥८॥ मैत्रेय उवाच ॥ ईडितो भगवानेवं कपिलाख्यः परः पुमान् ॥ वाचा विक्लवयेत्याह मातरं मातृवत्सलः ॥ ९ ॥ कपिल उवाच ॥ मार्गेणानेन मातस्ते सुसेव्येनोदितेन मे ॥ आस्थितेन परां काष्ठामचिरादवरोत्स्यसि ॥ १० ॥ श्रद्धत्स्वैतन्मतं मह्यं जुष्टं यद् ब्रह्मवादिभिः ॥ येन मामभवं याया मृत्युमृच्छन्त्यतद्विदः ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच॥ इति प्रदर्श्य भगवान् सतीं तामात्मनो गतिम् ॥ स्वमात्रा ब्रह्मवादिन्या कपिलोऽनुमतो ययौ॥१२॥ सा चापि तनयोक्तेन योगादेशेन योगयुक् ॥ तस्मिन्नाश्रम आपीडे सरस्वत्याः समाहिता ॥ १३ ॥

---

१. राग कजरी " नारायण नारायण नाम रटोरे निस दिन गोविंद गोपाल हरी ॥ टेर ॥ वेद पुराण कहत सब ऐसे नाम लियो सोइ सुफल घरी ॥ १ ॥ बाहिर धोए कहा होत है भीतर कुबुद्धकपास भरी ॥ २ ॥ ऐसे दयालु नहीं कोऊ जगमें भक्त हेतु प्रभु देह धरी ॥ ३ ॥ पुरुषोत्तम कहैं रामनामकी मेरे शिरपर छाप घरी ॥ ४ ॥ "

मैत्रेय उवाच ॥ एवं निशम्य कपिलस्य वचो जनित्री सा कर्दमस्य दयिता किल देवहूतिः ॥ विस्रस्तमोहपटला तमभिप्रणम्य तुष्टाव तत्त्वविषयाङ्कितसिद्धिभूमिम् ॥ १॥ देवहूतिरुवाच ॥ अथाप्यजोऽन्तः सलिले शयानं भूतेन्द्रियार्थात्ममयं वपुस्ते ॥ गुणप्रवाहं यदशेषबीजं दध्यौ स्वयं यज्जठराब्जजातः ॥ २ ॥ स एव विश्वस्य भवान्विधत्ते गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ॥ सर्गाद्यनीहोऽवितथाभिसंधिरात्मेश्वरोऽतर्क्यसहस्रशक्तिः ॥ ३ ॥ स त्वं भृतो मे जठरेण नाथ कथं नु यस्योदर एतदासीत् ॥ विश्वं युगान्ते वटपत्र एकः शेते स्म मायाशिशुरङ्घ्रिपानः ॥४॥ त्वं देहतन्त्रप्रशमाय पाप्मनां निदेशभाजां च विभो विभूतये ॥ यथावतारास्तव सूकरादयस्तथाऽयमप्यात्मपथोपलब्धये ॥ ५ ॥ यन्नामधेयश्रवणानुकीर्तनाद्यत्प्रह्वणाद्यात्स्मरणादपि क्वचित् ॥ श्वादोऽपि सद्यः सवनाय कल्पते कुतः पुनस्ते भगवन्नु दर्शनात् ॥ ६ ॥

मैत्रेयजी बोले कि ऐसे कपिलदेवजीके वचनको सुनकर मोहपटल दूर होनेके कारण कर्दमजीकी स्त्री कपिलदेवकी माता देवहूति तत्वविषयोंके प्रवर्तक सिद्धभूमि कपिलदेवजीकों प्रणाम कर स्तुति करती भई ॥ १ ॥ देवहूति बोली कि अजन्मा आपका शरीर पंचमहाभूत इन्द्रियोंके विषय गुणोंके प्रवाहसै युक्त अहंकारमय बीजरूप प्रलय कालके जलमें शयन किया था उससे उत्पन्न हुए कमलसे प्रादुर्भूत हुए ब्रह्माजीने आपका ध्यान किया तथापि आपका साक्षात् दर्शन न हुआ ॥ २ ॥ सोही आप विश्वकी उत्पत्ति पालन नाश करोहो, संसारके गुणप्रवाह वीर्योंके रूपसै विभाग हुई शक्तिद्वारा जीवौंको भोग भुगानेके निमित्त क्रियारहित होकरभी अनन्त शक्तिमान होनेके कारण जगतको तीनों अवस्थाकूं प्राप्त करो हौ ॥ ३ ॥ हे नाथ! जिनके उदरमें ये सब विश्व है. सो तुमकों मैंने उदरमें धारण किया जो तुम युगके अंतमें एक वटपत्रमें मायाके बालक होये अपनो चरण पान करते भए शयन करो हो ॥ ४ ॥ हे समर्थ! पापीनके नाशके लिये अपनी आज्ञा पालन करवेवारोंके ऐश्वर्य प्राप्तिके अर्थं तुम शरीर धारते भये, जैसे आपके सूकर आदि अवतार भये तैसे आत्मज्ञान प्राप्तिके लिये येभी अवतार धारण करते भये ॥ ५ ॥ जिनके नाम श्रवण कीर्तन प्रणाम स्मरण करनेसे कुत्ताकों खायवेवारो यज्ञ करवेके योग्य होयहै, फिर जानें तुह्मारो दर्शन कीनो वाके शुद्ध होयवेमें कहा संदेह है ॥ ६ ॥

तौ घासके ढके कूपकी समान उसै अपनी मृत्यु जानै ॥ ४१ ॥ मुमुक्षु स्त्रीकोभी पुरुषरूप मेरी माया जिसको मोहसै यह धन संतान और घर दैनेहारा जान्ती है उसकोभी मृत्युरूप समझे जिसके कि पूर्वजन्ममें आप पुरुष था, फिर मरण समयमें स्त्रीके ध्यानसे स्त्रीधर्मको प्राप्त हुवा, इसीही तरह फिर जो पुरुषधर्मको प्राप्त होगा, फिर स्त्रीकी इच्छासे स्त्रीही होगा यह भाव है ॥४२॥ जैसे व्याधका गानश्रवण हरिणकी मृत्युही है इसी प्रकार पतिपुत्ररूप गृहको नारी अपनी मृत्यु जानै ॥ ४३ ॥ जीवरूप करके या देहसे लोकसें और लोकको जातो भयो निरंतर पुरुष कर्मनको भोगतो भयो कर्म करै है॥४४॥ अथवा द्रव्यकी प्राप्तिका स्थान जो यह स्थूल शरीर है जब यह द्रव्यके दर्शन करनेमें अयोग्य होजाताहै तब कहा जाताहै कि जीव-

यां मन्यते पतिं मोहान्मन्मायामृषभायतीम्॥स्त्रीत्वं स्त्रीसंगतः प्राप्तो वित्तापत्यगृहप्रदम्॥४२॥ तामात्मनो विजानीयात् पत्यपत्यगृहात्मकम्॥दैवोपसादितं मृत्युं मृगयोर्गायनं यथा ॥४३॥ देहेन जीवभूतेन लोकाल्लोकमनुव्रजन्॥भुञ्जान एव कर्माणि करोत्यविरतं पुमान्॥४४॥जीवस्यानुगतो देहो भूतेन्द्रियमनोमयः॥तन्निरोधोऽस्तु मरणमाविर्भावस्तु संभवः॥४५॥द्रव्योपलब्धिस्थानस्य द्रव्येक्षाऽयोग्यता यदा॥तत्पञ्चत्वमहंमानादुत्पत्तिर्द्रव्यदर्शनम्॥४६॥यथाऽक्ष्णोर्द्रव्यावयवदर्शनायोग्यता यदा॥तदैव चक्षुषां द्रष्टुर्द्रष्टृत्वायोग्यताऽनयोः॥४७॥ तस्मान्न कार्यः संत्रासो न कार्पण्यं न संभ्रमः॥ बुद्ध्वा जीवगतिं धीरो मुक्तसङ्गश्चरेदिह ॥४८॥ सम्यग्दर्शनया बुद्ध्या योगवैराग्ययुक्तया॥ मायाविरचिते लोके चरेन्न्यस्य कलेवरम्॥४९॥इति श्रीभा० तृती० का० पुण्यपापैर्जीवगतिवर्णनं नाम एकत्रिंशत्तमोऽध्यायः॥३१॥

का मरण हुआ, औरमें ऐसे अभिमानसै जबसे इस स्थूल शरीरका दर्शन होताहै तब जीवकी उत्पत्ती कही जाती है ॥ ४५ ॥ फलित जैसे द्रव्यकी प्राप्तिके स्थान जो नेत्रगोलकादि है वह जब मलादि दोषके कारण रूपादि देखनेमें असमर्थ होते हैं तबही नेत्र इंद्रियोंकी अयोग्यता और जीवके दृष्टत्व विषयमें असमर्थता होती है इस प्रकारसै स्थूल शरीरमें विकलताका होनाही जीवका मरण जाना ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इसकारण यदि वास्तवमें जीवका जन्म है, तब मरण न होनेसै मरणका त्रास जीवनकी दीनता तथा जीवनके निमित्त यत्न करना अनुचित है हे मातः ! बुद्धिमान् यह पुरुष इसप्रकार जीवकी गतिको जान संग छोड़ विचरताहै ॥ ४८ ॥ सुन्दर देखवेवारी बुद्धियोग वैराग्ययुक्त करकै माया विरचित लोकमें शरीरको रख विचरण करै ॥ ४९ ॥ इति श्रीभा० भा० तृती० कापिलेयोपा० नाम एकत्रिंशत्तमोध्यायः ॥ ३१ ॥

118

कपिलदेवजी बोले कि जो कोई गृहस्थी घरमें रहकर धर्मनको करै है, गृहमें काम अर्थ अपने धर्मनकों अनुष्ठान करते हैं, फिरभी उन्ही धर्मोंका अनुष्ठान करतेरहैहै ॥ १ ॥ कोई जीव कामनानमें मूढ होयके भगवद्धर्मसे पराङ्मुख होकै यज्ञोंसे देवता पितरनको श्रद्धासै यजन करै हैं ॥ २ ॥ तिनकी पितृ देवताओंमें श्रद्धा मतिवारे पितृदेवतानके व्रत कर चन्द्रमाके लोकमें जायकर अमृतपान कर पुनर्जन्मकों प्राप्त होवै हैं ॥ ३॥ जब शेषशय्यापर आनंतासन हरि शयन करैं हैं, तब गृहस्थी सब लोग लयको प्राप्त होजाय हैं ॥ ४ ॥ जो धीरलोग काम अर्थके लिये स्वधर्मकों आचरण

कपिल उवाच ॥ अथ यो गृहमेधीयान् धर्मानेवावसन् गृहे॥काममर्थं च धर्मान् स्वान् दोग्धि भूयः पिपर्ति तान्॥ १॥स चापि भगवद्धर्मान् काममूढः पराङ्मुखः ॥ यजते क्रतुभिर्देवान् पितॄंश्च श्रद्धयाऽन्वितः॥२॥ तच्छ्रद्धयाऽऽक्रान्तमतिः पितृदेवव्रतः पुमान् ॥ गत्वा चान्द्रमसं लोकं सोमपाः पुनरेष्यति॥ ३॥ यदा चाहीन्द्रशय्यायां शेतेऽनन्तासनो हरिः॥ तदा लोका लयं यान्ति त एते गृहमेधिनाम् ॥ ४ ॥ ये स्वधर्मान्न दुह्यन्ति धीराः कामार्थहेतवे॥निःसङ्गा न्यस्तकर्माणः प्रशान्ताः शुद्धचेतसः ॥५॥ निवृत्तिधर्मनिरता निर्ममा निरहंकृताः ॥ स्वधर्माख्येन सत्त्वेन परिशुद्धेन चेतसा ॥ ६ ॥ सूर्यद्वारेण ते यान्ति पुरुषं विश्वतोमुखम् ॥ परावरेशं प्रकृतिमस्योत्पत्त्यन्तभावनम् ॥ ७ ॥ द्विपरार्धावसाने यः प्रलयो ब्रह्मणस्तु ते ॥ यावदध्यासते लोकं परस्य परचिन्तकाः ॥ ८ ॥ क्ष्माऽम्भोऽनलाऽनिलवियन्मनइन्द्रियार्थभूतादिभिः परिवृतं प्रतिसंजिहीर्षुः ॥ अव्याकृतं विशति यर्हि गुणत्रयात्मा कालं पराख्यमनुभूय परः स्वयंभूः ॥ ९ ॥

करैहैं वे सब संग, सब कर्म त्याग, अत्यंत शांत शुद्ध चित्तसे भगवल्लोककों जायहै ॥ ५ ॥ जो लोग निवृत्ति धर्ममें लगे हैं, जिनोंनें ममता अहंकार त्यागाहै वे अपने स्वधर्मको सात्विक भावसें आचरण करकै अत्यंत शुद्ध चित्तसे ईश्वरके लोककों जायहैं ॥ ६ ॥ सूर्य द्वारकरकै विश्वमुख पुरुषकों प्राप्त होयहैं, पर अवरके स्वामी प्रकृतिके पति या विश्वकी उत्पत्ति पालन नाश करैं हैं ॥७॥ द्विपरार्द्धके अंतमें ब्रह्माकी प्रलय होय है परमेश्वर दृष्टि करकै जो ब्रह्माको चिंतन करै है, वे प्रलयतक ब्रह्मलोकमें निवास करते हैं ॥ ८ ॥ जब द्विपरार्द्ध लक्षण कालको अनुभव कर पृथिवी जल अग्नि पवन

आकाश मन इंद्रियोंके अर्थ, पंच भूत अहंकार युक्त विश्वके संहारकी इच्छासै तीन गुणमय शरीरवाले ब्रह्माजी परमेश्वरमें लीन होजायहैं ॥ ९ ॥ तब यहांसै ऊपर ऊपर दूर जाकर ब्रह्मामें प्रवेश किये योगीलोग पवन मन जीत वैराग्य लिये ब्रह्माकेही साथ अमृतस्वरूप पुरुष पुराण प्रधान ब्रह्मको प्राप्त होतेहैं तहांतक उनको देहाभिमान निवृत्त नहीं होता इसी कारण वे ब्रह्मासै पहले ब्रह्ममें प्रवेश नहीं करसक्ते ॥ १० ॥ और भगवतकी उपासनावाले तत्काल उसै प्राप्त होतेहैं इस कारण हे प्रकाशरूपिणि! अब सब जीवनके हृदयकमलमें वास करनेंहारे ब्रह्मका स्थान उनको अनुभाव सुन, भावकरकै उन्हींकी शरणजा ॥ ११ ॥ स्थावर जंगमके आद्य मरीचि आदि और योगीश्वर सनकादिक सिद्ध योगप्रवर्तकोंके साथ ब्रह्माजीकरकै ॥ १२ ॥ भेददृष्टिके अभिमानसे निष्काम कर्म करकै कर्ताभाव होयवेसे पुरुषमें श्रेष्ठ सगुण ब्रह्मको ॥ १३ ॥ प्राप्त होय ईश्वररूप कालकरकै संसारमें फिर पूर्वकालकी समान जन्म लेकर निष्काम कर्म करनैसै जैसे पहले थे वैसेही होतेहैं ॥१४॥ हे सति ! भेदभावसै उपासना करनेवाले ब्रह्माजीके ऐश्वर्यको सेवन कर प्रलयमें ईश्वरमें लीन होजाने परभी देहाभिमान रहजानेके कारण गुणोंका संलेश होनेसे फिर जन्मलेते हैं ॥ १५ ॥ और जो लोग या संसारमें आसक्तमन हैं, श्रद्धाकर कर्ममें लगे रहै हैं, सब प्रकार स्वच्छन्दकर्म करतेहै ॥ १६ ॥ रजोगुणसें उनके मन हरे भएहैं कामोंमें आत्मा उनकी लगी हैं, अजित ऐसे अजितेन्द्रिय कामी पुरुष गृहोंकी वासनाके बंधनमें पड़ सदां पितरौंकाही यजन करते रहतेहैं ॥ १७ ॥

एवं परेत्य भगवन्तमनुप्रविष्टा ये योगिनो जितमरुन्मनसो विरागाः ॥ तेनैव साकममृतं पुरुषं पुराणं ब्रह्म प्रधानमुपयान्त्यगताभिमानाः ॥ १० ॥ अथ तं सर्वभूतानां हृत्पद्मेषु कृतालयम् ॥ श्रुतानुभावं शरणं व्रज भावेन भामिनि ॥ ११ ॥ आद्यः स्थिरचराणां यो वेदगर्भः सहर्षिभिः ॥ योगेश्वरैः कुमाराद्यैः सिद्धैर्योगप्रवर्तकैः ॥ १२ ॥ भेददृष्ट्याभिमानेन निःसङ्गेनापि कर्मणा ॥ कर्तृत्वात्सगुणं ब्रह्म पुरुषं पुरुषर्षभः ॥ १३ ॥ स संसृत्य पुनः काले कालेनेश्वरमूर्तिना ॥ जाते गुणव्यतिकरे यथापूर्वं प्रजायते ॥ १४ ॥ ऐश्वर्यं पारमेष्ठ्यं च तेऽपि धर्मविनिर्मितम् ॥ निषेव्य पुनरायान्ति गुणव्यतिकरे सति ॥ १५ ॥ ये त्विहासक्तमनसः कर्मसु श्रद्धयाऽन्विताः ॥ कुर्वन्त्यप्रतिषिद्धानि नित्यान्यपि च कृत्स्नशः ॥ १६ ॥ रजसा कुण्ठमनसः कामात्मानोऽजितेन्द्रियाः ॥ पितॄन्यजन्त्यनुदिनं गृहेष्वभिरताशयाः ॥ १७ ॥

अर्थ धर्म कामकी ओर लगेहुए प्राणी कथन योग्य पराक्रमवाले मधुदैत्यके वैरी जन्म मरण हरण करनेहारी बुद्धिवारे नारायणकी कथासैं विमुख होजातेहैं ॥१८॥ वे निश्चय भाग्यकरकै मारेभए हैं, जो अच्युतकी कथामृतकों त्यागकर खोटी कथा सुनैं हैं, जैसे विष्ठाभोजी विष्ठा खायही सुखी होयहै ॥ १९ ॥ जिनकी गर्भसे लेके श्मशानपर्यंत क्रिया कीनी हैं, वे दक्षिणमार्ग होकै पितृलोकको जांयहैं, फेर अपने पुत्रादिकोंमें आयकै जन्म लेवें हैं ॥ २० ॥ हे सति! पाछै सब सुकृतसे क्षीण होयकै फेर या लोकमेंही विवश हो सब भोगके साधन नष्ट होजानेके कारण देवताकरकै गिरायें जावै हैं ॥ २१ ॥ इस कारण परमेश्वरके भजनीय चरणारविंदोंको सर्वभाव और उनके गुणोंका आश्रय करनेहारी भक्तिके द्वारा

त्रैवर्गिकास्ते पुरुषा विमुखा हरिमेधसः ॥ कथायां कथनीयोरुविक्रमस्य मधुद्विषः ॥ १८ ॥ नूनं दैवेन विहता ये चाच्युतकथासुधाम् ॥ हित्वा शृण्वन्त्यसद्गाथाः पुरीषमिव विड्भुजः ॥ १९ ॥ दक्षिणेन यथाऽर्यम्णः पितृलोकं व्रजन्ति ते ॥ प्रजामनुप्रजायन्ते श्मशानान्तक्रियाकृतः ॥ २० ॥ ततस्ते क्षीणसुकृताः पुनर्लोकमिमं सति ॥ पतन्ति विवशा दैवैः सद्यो विभ्रंशितोदयाः ॥ २१ ॥ तस्मात्त्वं सर्वभावेन भजस्व परमेष्ठिनम् ॥ तद्गुणाश्रयया भक्त्या भजनीयपदाम्बुजम् ॥२२॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ॥ जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यद् ब्रह्मदर्शनम् ॥ २३॥ यदाऽस्य चित्तमर्थेषु समेष्विन्द्रियवृत्तिभिः ॥ न विगृह्णाति वैषम्यं प्रियमप्रियमित्युत ॥ २४ ॥ स तदैवाऽऽत्मनात्मानं निःसङ्गं समदर्शनम् ॥ हेयोपादेयरहितमारूढं पदमीक्षते ॥२५॥ ज्ञानमात्रं परब्रह्म परमात्मेश्वरः पुमान् ॥ दृश्यादिभिः पृथग्भावैर्भगवानेक ईयते ॥२६॥ एतावानेव योगेन समग्रेणेह योगिनः ॥ युज्यतेऽभिमतो ह्यर्थो यदसङ्गस्तु कृत्स्नशः ॥ २७ ॥

भजन करो ॥ २२ ॥ भगवान् वासुदेवमें जो भक्तियोग करै तो शीघ्र वैराग्य ज्ञानसै ब्रह्मदर्शन होजायहै ॥ २३ ॥ जब या भक्तको चित्त इंद्रियोंकी वृत्तिकरकै समान अर्थोंमें प्रिय अप्रियमें विषमभावकों नहीं ग्रहण करै हैं ॥ २४ ॥ तब निःसंग, समदर्शी हो त्याग ग्रहणसै रहित हो यह जोव परमानंद पदको देखै है अर्थात् अपने परमानन्द स्वरूपको प्राप्त होजाताहै ॥ २५ ॥ ज्ञानमात्र परब्रह्म परमात्मा ईश्वर पुरुष मैंही हूं जीव शरीर विषय और इन्द्रिय रूपसै अनेक प्रकारके प्रतीत होतेहैं ॥ २६ ॥ या विश्वमें समग्र योग करकै योगीजन अपनेंको अभिमत अर्थ इतनोंही मानेहैं कि सब प्रकारसे सब संग की निवृत्ति होजाय ॥ २७ ॥

प्रावोचं भक्तियोगस्य स्वरूपं ते चतुर्विधम् ॥ कालस्य चाव्यक्तगतेर्योऽन्तर्धावति जन्तुषु ॥३७॥ जीवस्य संसृतीर्बह्वीरविद्याकर्मनिर्मिताः ॥ यास्वङ्ग प्रविशन्नात्मा न वेद गतिमात्मनः ॥३८॥ नैतत् खलायोपदिशेन्नाविनीताय कर्हिचित् ॥ न स्तब्धाय न भिन्नाय नैव धर्मध्वजाय च ॥ ३९ ॥ न लोलुपायोपदिशेन्न गृहारूढचेतसे ॥ नाभक्ताय च मे जातु न मद्भक्तद्विषामपि ॥४०॥ श्रद्दधानाय भक्ताय विनीतायानसूयवे ॥ भूतेषु कृतमैत्राय शुश्रूषाऽभिरताय च ॥ ४१॥ बहिर्जातविरागाय शान्तचित्ताय दीयताम् ॥ निर्मत्सराय शुचये यस्याहं प्रेयसां प्रियः ॥४२॥ य इदं शृणुयादम्ब श्रद्धया पुरुषः सकृत् ॥ यो वाऽभिधत्ते मच्चित्तः स ह्येति पदवीं च मे ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते म० तृतीयस्कन्धे कापिलेयोपाख्याने संपूर्णवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

भक्तियोगको स्वरूप चारविधको तुमसे कह्यो, अप्रगटगतिवारे कालका वर्णन किया जो सब जीवनपर दौडे है ॥ ३७ ॥ हे मातः ! जीवकी अविद्याकर्मसे निर्मित बहुत गति है जिन गतियोंमें प्रविष्ट होयकैं जीव अपने स्वरूपकों यथार्थ नहीं जान्ता और ईश्वरकी गतिभी नहीं जान्ता ॥३८॥ यह ज्ञान खलको कभी न सुनानों, जो नम्र न होय उसे तथा अहंकारीको न उपदेश करै, दुराचारीको ये ज्ञान न सिखावै, दंभीकों न सुनावै ॥ ३९ ॥ लोभी तथा गृहमें अत्यन्त आरूढ चित्तवालोंकों तथा अभक्त और मेरे भक्तोंसे द्रोह करनेवालोंको न सुनावै ॥ ४० ॥ श्रद्धालु, भक्त, नम्र, किसीकी निन्दा न करनेंहारे सब जीवमात्रसें मैत्री और सबकी शुश्रूषा करनेहारे ॥ ४१ ॥ बाह्य प्रपंचसे सर्वथा वैराग्य युक्त शांतचित्तवारेको ये ज्ञान देवै जो पराएके सुखसे प्रसन्न होय, सदा पवित्र रहैं, जिनको प्यारोंसेभी मैं प्रिय उन्है यह ज्ञान देना ॥ ४२ ॥ हे अंब ! जो पुरुष श्रद्धाकरकै वारंवार याकों श्रवण करै, जो कहैं तथा मुझमें चित्त लगावै सो मेरी पदवीको प्राप्त होगा (१) ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां तृतीयस्कंधे कापिलेयोपाख्याने संपूर्णवर्णनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

---

१ सो लिखा है कि ॥ वे सवाड तिताल “ उस ब्रह्मके विन जानेतेही बहुतसी फजीति है ॥ टेर ॥ वर्णाश्रमकी चाल चलनेसे सबसें मेरी प्रीति है ॥ बिन पढे पंडित हो बैठे ये मायाकी गति है ॥ १ ॥ नारायणकी भक्ति किये बिन बालूकीसी भीति है ॥ पुरुषोत्तम कहैं हरिकी शरण बिना काहूकी नाहि जीति है ॥ २ ॥

बहिर्मुख इंद्रियोंकरकै अर्थरूपसें भ्रांतिके कारण भिन्न २ शब्दादि धर्मवाले पदार्थसे एक ज्ञानरूप निर्गुण बृहत्त्वादि गुण विशिष्ट चैतन्य ब्रह्मही अनेक प्रकारका प्रतीत होताहै ॥ २८ ॥ जिन महत्तत्त्वादिकौंसे जविका शरीररूप यह संसार उत्पन्न हुआहै वे महत्तत्त्व त्रिविध अहंकार पंचमहाभूत ग्यारह इन्द्रिय और जीव यह सब परमात्माहीका रूप है जो प्रथम एक रूप थे ॥२९ ॥ जिसका मन श्रद्धा भक्ति विराग और योगाभ्याससे एकाग्र हो गयोहै वह सबसंगरहित पुरुष इस वार्ताको निश्चय जान्ताहै ॥ ३० ॥ हे मातः! ये ब्रह्मको दर्शन करायवेवारो ज्ञान तुमसें कह्यो, या करके प्रकृतिपुरुषको तत्त्व जानो जाय है ॥ ३१ ॥ मेरेमें निष्ठा कर निर्गुण ज्ञान योग और भक्ति करनी इन दोनोंको एकही अर्थ है, भगवतशब्दलक्षणरूप है ॥ ३२ ॥ जैसें अलग अलग द्वारवारी इंद्रियों करकै रूपरसादि अनेक गुणोंवाला एकही पदार्थ अनेकप्रकारका प्रतीत होता है जैसे आम नेत्रद्वारा हरा जिव्हाद्वारा मीठा इत्यादि ॥ ३३ ॥ अनेक शुभ क्रिया यज्ञोंके करनेसे, तथा दान, तप, वेदपाठ, विचारसे, आत्मा इंद्रिय जीत संन्यास कर कर्मोंके करनें ॥ ३४ ॥ तथा अनेक अंगके योगाभ्यास और भक्तियोगद्वारा सकाम निष्काम धर्मसे प्रवृत्तिनिवृत्ति मार्गमें निष्ठा करके ॥ ३५ ॥ आत्मज्ञानकी निष्ठाद्वारा दृढ वैराग्य करकै सगुण निर्गुण स्वदृक एक भगवानही ज्ञात होतेहै ॥ ३६ ॥

ज्ञानमेकं पराचीनैरिन्द्रियैर्ब्रह्म निर्गुणम् ॥ अवभात्यर्थरूपेण भ्रान्त्या शब्दादिधर्मिणा ॥२८॥ यथा महानहंरूपस्त्रिवृत्पञ्चविधः स्वराट्॥ एकादशविधस्तस्य वपुरण्डं जगद्यतः ॥ २९ ॥ एतद्वै श्रद्धया भक्तया योगाभ्यासेन नित्यशः॥ समाहितात्मा निःसङ्गो विरक्त्या परिपश्यति ॥ ३० ॥ इत्येतत् कथितं गुर्वि ज्ञानं तद् ब्रह्मदर्शनम् ॥ येनानुबुध्यते तत्त्वं प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ ३१ ॥ ज्ञानयोगश्च मन्निष्ठो नैर्गुण्यो भक्तिलक्षणः ॥ द्वयोरप्येक एवार्थो भगवच्छब्दलक्षणः ॥ ३२ ॥ यथेन्द्रियैः पृथग्द्वारैरर्थो बहुगुणाश्रयः ॥ एको नानेयते तद्वद्भगवाञ्छास्त्रवर्त्मभिः ॥ ३३ ॥ क्रियया क्रतुभिर्दानैस्तपःस्वाध्यायमर्शनैः ॥ आत्मेन्द्रियजयेनापि संन्यासेन च कर्मणाम् ॥ ३४ ॥ योगेन विविधाङ्गेन भक्तियोगेन चैव हि ॥ धर्मेणोभयचिह्नेन यः प्रवृत्तिनिवृत्तिमान् ॥ ३५ ॥ आत्मतत्त्वावबोधेन वैराग्येण दृढेन च ॥ ईयते भगवानेभिः सगुणो निर्गुणः स्वदृक् ॥ ३६ ॥

कही लोटा तो काढो तो वे घास खोदवेवारे बोले दो रुपा देओ तो निकसे, या बुद्धिवानने कही लेओ यूं कहि अंटीमेंसे निकास दोनो२रूपया धरे कुआके मंडके ऊपर एक घसखुदा घुसगयो लोटा वाने वा डोरमैं फांसो, या लोटा रस्सी खींच ऊपरसे बोले ले भैया हम जायहै, रुपा तुह्मारे ऊपर धरेहै आयकर लेऊओ, वो बोलो मोको निकासो तो सही तुमने तो दोनो रस्सी ऊपर खींच लीनीं, तब बुद्धिवान् बोले कि तीन पावकी लुटियाकी कढाई तो तूनें मांगे २ रुपा, हम तेरी साढेतीन मनकी लाश निकारेंगे तू कहा देगौ, वाने कही ईश्वरके नामपर मोको निकासो जो कढाई लोटाकी शिरस्ता होय सो दीजो। तब काढो दो आने देकर घर आए तासैं कहिते हैं कि बुद्धिवान् होयहै सो भगवत्में प्रीति करैहै, निर्बुद्धिवानसे कछु न होयहै जैसे उक्त दृष्टांत विचार लीजो, इति। या स्कंधमें जो कुछ भ्रम प्रमादसे रहिगयो होय, वाकों सज्जनलोग क्षमा करैं जैसी हमारी बुद्धि ही तैसो व्याख्यान अष्टादश तिलकनके अनुसार ये हमने बनायोहै, ये सब वेदके तुल्य है अष्टादश पुराणको सार है याके श्रवणसे धन यश विद्या राज्य ऐश्वर्य बुद्धि प्रताप तेज सब मिलैहै, ये स्कंध अत्युत्तम है अध्यात्मविद्याको सार है वेदांतीनको सुखदायक है तीन तापनाशक है अज्ञानको निवर्तक है ब्रह्मपदको दाता है ईश्वरकी प्राप्तिको उपाय है ॥ ३७ ॥ ॥ इति श्रीमद्भागवतस्य वृंदावननिवासिसुप्रसिद्धविद्वद्वरगौडब्राह्मणश्रीनारायणशास्त्रिविरचितपदार्थमुक्तावलीटीकायां श्रीकपिलांतर्द्धानवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः समाप्तः ॥ ३३ ॥ ॥ समाप्तस्तृतीयः स्कंधः ॥ ३ ॥

प्रति अक्षर प्रति चरणको शोधो तिलक मिलाय । तदपि भूल जो होय कछु लीजै आप बनवाय ॥ सदा सर्वगत सब सुखदाता श्रीभगवान ।
द्विज ज्वालाप्रसाद श्रीकृष्णचंद्र सुखदान ॥ शुभमस्तु ॥

---

१ आव तौ श्रीव्रजराज उबारो शरणागत प्रतिपाल दयाकर विरदावली सभारो पऱ्यो आय चरणनमें स्वामी करदीजे निस्तारो ॥१॥ महाअधम पातकी कलंकी एकवार उच्चारो शरणागत हूं कृपाकरो हरि तुरत ताहि उद्धारो ॥ २ ॥ सुध है भूलगये कहा स्वामी जब गजराज पुकारो गरुड छोड धाये ताही छिन धीरज नैक न धारो ॥ ३ ॥ नेक स्मरण करे जिन जबही संकट तुरतहि टारो अष्टादश पुराण षट्दर्शन वेद पुकारत चारो ॥ ४ ॥ चरणशरण तज हौं कहां जाऊं संकट दूर निवारो जन ज्वालाप्रसाद निशिवासर गावत सुयश तिहारो ॥ ५ ॥

भागवततृतीयस्कन्ध भाषाटीकासमेत श्रीकृष्णदासात्मज गङ्गाविष्णुने अपने
"लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" छापाखानेमें छापकर प्रसिद्ध किया. कल्याण–मुम्बई.

देवहूतीको योगसे धुयो मनुष्य देह सरस्वती नदीरूप होतोभयो हे विदुर! वह सब नदीनमें श्रेष्ठ सिद्धि देवेवारी भई, जहां बहुत सिद्ध रहिते भए ॥ ३२ ॥ भगवान् कपिलदेवजी महायोगी पिताके आश्रमते मातासें आज्ञा लेकर पूर्व उत्तरकों अर्थात् ईशानको जातेभए ॥ ३३ ॥ सिद्ध चारण गंधर्व मुनि अप्सरागणोंसे स्तुतिको प्राप्त हों सागरसै पूजा और रहनेके निमित्त स्थानकी प्राप्ति की ॥३४॥ तहां सांख्यके आचार्योंसे स्तुतिको प्राप्त हो त्रिलोकीके शांतके अर्थ सावधान होकर योगमें स्थित होतेभए ॥ ३५ ॥ हे तात! हे पापरहित! जो तुमने हमसें पूछो सो कहो, कपिलदेवजीको देवहूतीजीको ये पवित्र संवाद है ॥ ३६ ॥ श्रीकपिल मुनिके कहे आत्मयोगमें गुह्य मतको जो कोई सुनैगो, जो कहैगो, वो गरुडध्वज भगवान-

तस्यास्तद्योगविधुतमार्त्यं मर्त्यमभूत्सरित् ॥ स्रोतसां प्रवरा सौम्य सिद्धिदा सिद्धसेविता ॥ ३२ ॥ कपिलोऽपि महायोगी भगवान्पितुराश्रमात् ॥ मातरं समनुज्ञाप्य प्रागुदीचीं दिशं ययौ ॥३३॥ सिद्धचारणगन्धर्वैर्मुनिभिश्चाप्सरोगणैः ॥ स्तूयमानः समुद्रेण दत्तार्हणनिकेतनः ॥ ३४ ॥ आस्ते योगं समास्थाय सांख्याचार्यैरभिष्टुतः ॥ त्रयाणामपि लोकानामुपशान्त्यै समाहितः ॥ ३५ ॥ एतन्निगदितं तात यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ॥ कपिलस्य च संवादो देवहूत्याश्च पावनः ॥ ३६ ॥ य इदमनुशृणोति योऽभिधत्ते कपिलमुनेर्मतमात्मयोगगुह्यम् ॥ भगवति कृतधीः सुपर्णकेतावुपलभते भगवत्पदारविन्दम् ॥३७॥ इति श्रीभा० अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां तृ० कपिलान्तर्धानवर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ ॥ समाप्तोऽयं तृतीयः स्कन्धः ॥ ३ ॥

में बुद्धि लगाय भगवत्के चरणारविंदकों प्राप्त होवैहै ॥ “ और जाकी बुद्धि भगवानमें होगी वो संसारमेंभी सुख भोगैगो, निर्बुद्धि क्लेश भोगैगो यापर एक दृष्टांत है कि एक बुद्धिवान एक मूर्ख द्वे पुरविया चले, सो मैदानमें वृक्षके नीचे एक कुंआं था, वहां रसोई करवेलगे उसने, मूर्खकों भेजो कि जल लावो सो जातेही लोटा कुआमें मूर्खने पटक दीनों, वहां घास खोदतेभए लोग खडेथे, उनसे यानें कही कि लोटा निकारो, वे बोले दो रुपा देओ तो लोटा निकसे इस विचारे मूर्खने बगद आयकै वा बुद्धिवानसें सब वृत्तांत कह्यो, ओ बोलो हम निकसवाय लावैंगे, ऐसे कहि कुआं पर आय

कपिल देवजीके बताये जो ध्यानगोचर भगवतके रूपको ध्यान करतीभई प्रसन्न वदनवारे सूतमेंसे चिंता त्यागतीभई ॥ २३ ॥ भक्तिके प्रवाह योगसै बली वैरागसें युक्त होनेके कारण अनुष्ठानसे ब्रह्मज्ञान होता भया ॥ युक्त अनुष्ठान गीतामें कहा है कि "युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ॥ युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा " ॥ २४ ॥ ब्रह्मस्वरूपको प्राप्त करनेवाले ज्ञानसै अत्यन्त शुद्ध हुए अन्तःकरणसै सम्पूर्णमें व्यापक आत्मा जो कि जो अपने स्वरूपके तेजसै मायाके किये गुणोंके परिच्छेदसै रहित हैं ॥ २५ ॥ उन सर्वांतर्यामी भगवान् ब्रह्मका दृढमति लगाकर ध्यान करती भई तब याकी सब आपत्ति दूर भई, क्लेश क्षीण भए, सब सुख प्राप्त होतेभए ॥ २६ ॥ नित्य समाधि लगायसे गुणोंके सब भ्रम दूरभए,

ध्यायन्ती भगवद्रूपं यदाह ध्यानगोचरम् ॥ सुतः प्रसन्नवदनं समस्तव्यस्तचिन्तया ॥ २३ ॥ भक्तिप्रवाहयोगेन वैरा-
ग्येण बलीयसा ॥ युक्तानुष्ठानजातेन ज्ञानेन ब्रह्महेतुना ॥ २४ ॥ विशुद्धेन तदात्मानमात्मना विश्वतोमुखम् ॥ स्वानु-
भूत्या तिरोभूतमायागुणविशेषणम् ॥ २५ ॥ ब्रह्मण्यवस्थितमतिर्भगवत्यात्मसंश्रये ॥ निवृत्तजीवापत्तित्वात् क्षीण-
क्लेशाऽऽप्तनिर्वृतिः ॥२६॥ नित्यारूढसमाधित्वात्परावृत्तगुणभ्रमा॥न सस्मार तदात्मानं स्वप्ने दृष्टमिवोत्थितः ॥ २७ ॥
तद्देहः परतः पोष्योऽप्यकृशश्चाध्यसंभवात्॥बभौ मलैरवच्छन्नः सधूम इव पावकः ॥२८॥स्वांगं तपोयोगमयं मुक्तके-
शं गताम्बरम्॥दैवगुप्तं न बुबुधे वासुदेवप्रविष्टधीः॥२९॥एवं सा कपिलोक्तेन मार्गेणाचिरतः परम्॥आत्मानंब्रह्मनिर्वा-
णं भगवन्तमवाप ह॥३०॥तद्वीराऽऽसीत् पुण्यतमं क्षेत्रं त्रैलोक्यविश्रुतम्॥नाम्ना सिद्धपदं यत्र सा संसिद्धिमुपेयुषी॥३१

ता समय अपने देहको अनुसंधान न रह्यो, जैसे सुपनेमें देखेभएकों उठेभयो नहीं स्मरण करै इस प्रकार देहको स्मरण न करती भई ॥ २७ ॥ उसका देह दूसरोंसे पोषित होनेपरभी मनकी ग्लानि न होनेके कारण कृश नहीं हुआ और मलसै आवृत हुआ उसका शरीर धुयें सहित आगकी समान शोभित था ॥ २८ ॥ तप, योगमय, केश खुले वस्त्र न पहिने वासुदेवमें बुद्धि प्रविष्ट करनेके कारण ईश्वरसै रक्षित हो अपने देहको अनुसंधान भूलगई कपिलजीके कहे मार्गसे थोडे कालमें परब्रह्म आत्माके सुखरूप भगवान्को प्राप्त होतीभई ॥ २९ ॥ ३० ॥ हे विदुर ! जहां देवहूति सिद्धिको प्राप्त भई वह परम पवित्र स्थान सिद्धपद नामसै तीनों लोकमें विदित हुआ ॥ ३१ ॥

तीन बखत स्नान करती भई, पीरी कुटिल अलकनको धारे, कृश शरीर, चीर पहिने अपनपेकों उग्र तप करती भई ॥ १४ ॥ कर्दमप्रजापतिके तपयोगसें वर्द्धित अपने उपमारहित देवतोंसै प्रार्थनीय गृहस्थाश्रमके घरकों ॥ १५ ॥ कि जिसमें दूधके फेनके समान श्वेत और कोमल हाथीदांतकी बनी सेज है सुवर्णके औरभी सब पदार्थ और सुवर्णको आसन स्पर्श योग्य कोमल बिछौनैसे शोभित है ॥ १६ ॥ स्वच्छ स्फटिकोंके आलेमें महामकरत मणी जड रत्नोंके दीपक जहां प्रकाश करे हैं, स्त्रीरत्नसे स्थान भररह्यो है ॥ १७ ॥ घरके बागमें फूलेभए कल्पवृक्षोंसे शोभायमान है जिनमें पक्षियोंके जोडे कूजते और रमणीक पक्षियोंके जोडा मत्तमधुकर गुंजार कररहेहैं ॥ १८ ॥ पहले जहां देवहूतीके जानेपर देवतानके अनुचर जायकै सदां गाते बावडीमेंसै कमलकी सुगंधि आतीथी कर्दमजी उसकी सदा रक्षा करते ॥ १९ ॥ देवहूतिके गृहस्थसुखकी इच्छा इन्द्रकी स्त्रीभी करतीथी उस घरका त्याग करनेके उपरान्त जब देवहूतीको पुत्रका वियोग हुआ तब शोकके कारण आतुरतासै उसका कुछ मुख मलीन होगया ॥ २० ॥ पति जब वनको चलेगए तब पुत्रके विरहमें व्याकुल तत्वज्ञान होनेपरभी बच्छा नष्टवारी गौकी समान वत्सलतासे देवहूती होतीभई ॥ २१ ॥ हे विदुर ! तिन पुत्र कपिलदेव हरिको ध्यान करती, थोडेही कालमें वा घरमेंसें चाहना त्याम करतीभई ॥ २२ ॥

अभीक्ष्णावगाहकपिशान् जटिलान् कुटिलालकान् ॥ आत्मानं चोग्रतपसा बिभ्रती चीरिणं कृशम् ॥ १४ ॥ प्रजापतेः कर्दमस्य तपोयोगविजृम्भितम् ॥ स्वगार्हस्थ्यमनौपम्यं प्रार्थ्यं वैमानिकैरपि ॥ १५ ॥ पयःफेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ॥ आसनानि च हैमानि सुस्पर्शास्तरणानि च ॥ १६ ॥ स्वच्छस्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ॥ रत्नप्रदीपा आभान्ति ललना रत्नसंयुताः ॥ १७ ॥ गृहोद्यानं कुसुमितै रम्यै बह्वमरद्रुमैः ॥ कूजद्विहङ्गमिथुनं गायन्मत्तमधुव्रतम् ॥ १८ ॥ यत्र प्रविष्टमात्मानं विबुधानुचरा जगुः ॥ वाप्यामुत्पलगन्धिन्या कर्दमेनोपलालितम् ॥ १९ ॥ हित्वा तदीप्सिततममप्याखण्डलयोषिताम् ॥ किंचिच्चकार वदनं पुत्रविश्लेषणातुरा ॥ २० ॥ वनं प्रव्रजिते पत्यावपत्यविरहातुरा ॥ ज्ञाततत्त्वाऽप्यभून्नष्टे वत्से गौरिव वत्सला ॥ २१ ॥ तमेव ध्यायती देवमपत्यं कपिलं हरिम् ॥ बभूवाचिरतो वत्स निःस्पृहा तादृशे गृहे ॥ २२ ॥

सूतजी बोले कि जो संन्यास लेकर जाते कर्ममार्ग त्‍कू ... अब कुनको वेदव्यासजी विरहमें व्याकुल होयकें हे पुत्र! हे पुत्र! ऐसे पुकारते भए, तब पिताके स्नेह दूर करवेको वृक्षरूप करकै उत्तर देते ... जानके हृदयमें योगबल करके प्रवेश करै ऐसे श्रीशुकदेवजीको नमस्कार करै हैं ॥२॥ अपने प्रभाव युक्त सब श्रुतीनको एक सार, अध्यात्मविद्याको साक्षात् दीपक समान प्रकाशक संसार तरवेकी इच्छावारे संसारीनके ऊपर कृपा करकै जो शुकदेवजी गोप्य पुराण कहत भए, ऐसे व्यासपुत्र शुकाचार्यकी हम शरण हैं ॥ ३ ॥ नारायण और नरनमें उत्तम नर, तथा देवी सरस्वती और व्यासजी इन सबको नमस्कार करके जय (ग्रंथ) कू वर्णन करै है ॥ ४ ॥ हे मुनिहो ! आपने बहुत सुंदर पूछो, सब लोकको मंगलदायक

...उवाच ॥ यं प्रव्रजन्तमनुपेतमपेतकृत्यं द्वैपायनो विरहकातर आजुहाव ॥ पुत्रेति तन्मयतया तरवोऽभिनेदुस्तं
...दयं मुनिमानतोऽस्मि ॥ २ ॥ यः स्वानुभावमखिलश्रुतिसारमेकमध्यात्मदीपमतितितीर्षतां तमोऽन्धम् ॥
...रुणयाऽऽह पुराणगुह्यं तं व्याससूनुमुपयामि गुरुं मुनीनाम् ॥ ३ ॥ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरो-
...स्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥ ४ ॥ मुनयः साधु पृष्टोऽहं भवद्भिर्लोकमङ्गलम् ॥ यत्कृतः
...यात्मा संप्रसीदति ॥५॥ स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ॥ अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा
...गिध स्मा... वासुदेवे भगवति भक्तियोगः प्रयोजितः ॥ जनयत्याशु वैराग्यं ज्ञानं यत्तदहैतुकम् ॥ ७॥
...णः प्रासूयन्त मधुच्युत... नकथासु यः ॥ नोत्पादयेद्यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥ ८॥

...काः ॥ ९ ॥ इति चाधोक्षजेशस्य ... ार उद्धारहै यासे आत्मा प्रसन्न होवै है ॥ ५ ॥ धर्म दो प्रकारको है स्वर्गादिके अर्थ करोजाय वह
...याधर दैत्य दानव गुह्यक आदिक सुनंदनंद मुखिया श्री ... भक्ति निवृत्ति मार्ग है, वो मोक्षदाता है सोई पुरुषनको परम धर्म है, जाते भगवानमें फल
भगवत्सेवामें मनवारे सब आते भए ॥६॥ हे भारत ! जहां ध... ोय है ॥६॥ वासुदेव भगवानमें भक्तियोग कर्यो भयो शीघ्र ज्ञान और वैराग्य उपनिषदको
पूरण करवेवारे अर्थको देती भई ॥ ७ ॥ क्षीर दधी अन्न गोरस सब ... विष्वक्सेन भगवान्की कथामें जो प्रीति न उत्पन्न करै तो केवल वो परिश्रमही है ॥८॥
रत्नसमूह समुद्र देतेभए, पर्वत चार विध अन्नको देतेभये, लोकपालसहित

127

पदपै अनेक स्वादनकरिकै भरचो है,यातै हमारी तृप्ति होय नहीं,जो एकसो रस होय तो
सेवा करो तब पवित्र करै हैं; क्योंकि गंगाजीके जलतू,धासो तृप्ति ह्वै जाय है॥१९॥पांचमो प्रश्न करे है,श्रीबलराम महाराजकौं संग लैकै केशव भग-
पवित्र करे है अब वे चरण गंगाजीमें धरे नहीं हैं और नहीं व्हैसकें हैं, ते भगवान् कपट करिकें मनुष्याकाररूप धरिके व्रजमें गुप्त क्यों रहे॥२०॥
हू जीव भगवान्के चरित्रनको गाइगाइकर पुण्य और विद्या पढामनो, इत्यादिक कर्मनमें तुम व्यग्र हौ तुमकौं भगवत्के यश श्रवणमें अवकाश
होइ तौ अखिल कलिमलपुंजके नाशक ! घोरकलिकौं आयो जानिकें, याके डरतें वैकुण्ठके जायवेकी इच्छासे या वैष्णव क्षेत्र नैमिषारण्य-
भीलासे हो ब्रह्म रुद्रादि अवतार धारण हैं सा भगवान्की कथा सुननेकौं हीं बैठे हैं ॥ २१ ॥ हे सूतजी ! या समयमें तुह्मारो दर्शन भगवत्कृपातें
सु श्रवण कराओ यहां तिसरे रामेण केशवः ॥ अतिमर्त्यानि भगवान्गूढः कपटमानुषः ॥ २० ॥ कलिमागतमाज्ञाय
भगवान्के मत्स्यम् ॥ आसीना दीर्घसत्रेण कथायां सक्षणा हरेः ॥२१॥ त्वं नः संदर्शितो धात्रा दुस्तरं निस्ति-
तुतस्सत्त्वहरं पुंसां कर्णधार इवार्णवम् ॥२२॥ब्रूहि योगेश्वरे कृष्णे ब्रह्मण्ये धर्मवर्मणि ॥ स्वां काष्ठामधुनो-
शरणं गतः॥२३॥ इति श्रीभागवते प्रथमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ ॥ व्यास उवाच ॥ इति संप्रश्नसं-
प्राणां रौमहर्षणिः ॥ प्रतिपूज्य वचस्तेषां प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

है, क्योंकि अतिधीरवाननके धीरजरूपी सेतुको तोरनवारौ दुस्तर कलि समुद्रके तरनेकी इच्छा हमारे भई, सोई आपको दर्शन भयो,
में दृष्टांत जैसे समुद्रके टापूको जानेवारौ मनुष्य समुद्रके तटपै आवे, और वाही समय जिहाज लियें मल्लाह आवे, वा मलाहको देखिके बडोही
आनन्द होयहै तैसें आपके दर्शनतें आनन्दभयो ॥ २२ ॥ प्रश्न छठवो ॥ कहो सूतजी धर्मके कवचवत् रक्षक ब्रह्मण्य योगेश्वरनके ईश्वर श्रीकृष्ण
भगवान् जब अपने निजधामको पधारे तब धर्म कौनकी शरणगयो, यह छठयो प्रश्न समाप्त भयो ॥ २३॥ इति श्रीभा० महा० प्रथ० भागवत-
सारार्थबोधिनीभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ श्रीवेदव्यासजी बोले कि ऋषिनको ये प्रश्न सुनकर रोमहर्षणके पुत्र उग्रश्रवा उनके वचनकी प्रशंसा
करकै, उनको उत्तर देनेको उद्यतभए ॥ १ ॥

तौ क्षुधा निवृत्त
जहां कि कानक छिद्र खोल
न्न गोरस स
मुद्र य, लोकपालसहित

सेवा करो तब पवित्र करै हैं; क्योंकि गंगाजीके जलकूं [illegible] अवतारमें एक दिन चरणारविंदको स्पर्श भया हो या संबंधते अब तक
पवित्र करे है अब वे चरण गंगाजीमें धरे नहीं हैं और [illegible]नके हृदयमें तो सर्वदा विराजे है यह मुनिनको उत्कर्ष दिखायो ॥ १५ ॥ साधारण
हू जीव भगवान्के चरित्रनको गाइगाइकर पुण्यश्लोक कहाये तिन भगवान्के पावन यशकौ कोन न सुने जो अंतःकरणशुद्धिकी कामना
होइ तौ अखिल कलिमलपुंजके नाशक भगवान्के यशको नित्य श्रवण करै यहां दुसरो प्रश्न समाप्ति भयो ॥ १६ ॥ अपनी
लीलासे हो ब्रह्म रुद्रादि अवतार धारण करनेहारे भगवान्के उदार चरित जो नारदादि मुनियोंके गाये हैं वह आप हम श्रद्धा करनेहारोंके
[illegible] श्रवण कराओ यहां तिसरो प्रश्न समाप्ति भयो ॥ १७ ॥ अब चोथो प्रश्न करे हैं । हे बुद्धिमाननमें शिरोमणि सूत ! जगत् पालनके
[illegible] भगवान्के मत्स्यादिक अवतारकी शुभ कथा हमारे अर्थ कहो, जो ईश्वर अपनी माया करिके यथेष्ट लीलावतारनको धारण करे है ॥१८॥

[illegible] तुतस्तस्य पुण्यश्लोकेड्यकर्मणः ॥ शुद्धिकामो न शृणुयाद्यशः कलिमलापहम् ॥ १६ ॥ तस्य कर्माण्युदा-
[illegible]नि सूरिभिः ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां लीलया दधतः कलाः ॥ १७ ॥ अथाऽऽख्या हि हरेर्धी-
[illegible]ः ॥ लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्याऽऽत्ममायया ॥ १८ ॥ वयं तु न वितृप्याम उत्तम-
[illegible]नां रसज्ञानां स्वादु स्वादु पदे पदे ॥१९॥

॥ ०६ ॥ शंगिध स्माम [illegible] [illegible]ही उनके चरित्रनको प्रश्न व्है गयो, तौ हू अत्यन्त उत्कण्ठा करिके फिरिभी श्रीकृष्णकेही चरित्रनके सुनवे-
[illegible]णः प्रासूयन्त मधुच्युत[illegible] [illegible]नी अतृप्ति दिखामें है। हे सूतजी ! अष्टांग योग अश्वमेधादिकयज्ञ इन्है करत करत तौ हम तृप्त व्है गये
[illegible]काः ॥ ९ ॥ इति चाधोक्षजेशस्य [illegible] खुलिजाय तिन उत्तम श्लोक भगवानके पराक्रमनकूं सुनत सुनत हमारी तृप्ति नहीं होय है। क्यों

[illegible]याधर दैत्य दानव गुह्यक आदिक सुनंदनंद मुखिया [illegible] स्वादते अधिक स्वाद लगे है ॥ अथवा औरनकी चाहै तृप्ति ह्वै जाय परंतु हमारी तृप्ति नहीं
भगवत्सेवामें मनवारे सब आते भए ॥६॥ हे भारत ! जहां [illegible] तौ क्षुधा निवृत्त ह्वै जाय, अथवा रसकौ ज्ञान न होय, अथवा भोजनमें एकही रस होय यहां
पूरण करवेवारे अर्थको देती भई ॥ ७ ॥ क्षीर दधी अन्न गोरस सें [illegible] कि काननके छिद्र खोले हैं, यातें शब्द सुनत सुनत भरे नहीं, और हम रसज्ञ हैं यातें
रत्नसमूह समुद्र देतेभए, पर्वत चार विध अन्नको देतेभये, लोकपालसहित

सकेगो, याते आपुही कृपा करि कहो ॥ १० ॥ हे सूतजी ! बहुतसे शास्त्रनके
कतु विभाग पूर्वक सुनने योग्य शास्त्र हजारन हैं, फिर एक एक शास्त्रमें कहे साधन हजारन
प्र. हे गौरमुख ! या वनमें मैंने निमिषमात्र कालमें दा… करें ताते हे साधो ! सर्व शास्त्रनमें सारभूत जो सिद्धांत होइ सो अपनी बुद्धिते निश्चय
॥ उत्तम होइगो, ऐसो भगवान्के क्षेत्र नैमिषारण्यांततें हमारो बुद्धि शांतिको प्राप्त होइ ॥ यहां शौनकादिकनको प्रथम प्रश्न भयो ॥ ११ ॥
सहस्रवर्ष काल पर्यंत यज्ञ करनेको संत उत्कंठाते सूतजीको आशिर्वाद देइ है। हे सूत! तुमारो कल्याण होय यह तुम जानो हो कि भक्तनके
अग्निहोत्र करिचुके, ताही समम … पुत्र भये सो कोनसो आवश्यक कार्य करनो हो; जा निमित्त अजन्माने जन्म धारण कीनो ॥ १२ ॥
सूतजी सर्व ऋषीनको …तव्यानि विभागशः ॥ अतः साधोऽत्र यत्सारं समुद्धृत्य मनीषया ॥ ब्रूहि नः श्रद्दधानानां
…ी हे निष्पाप ! …ाते ॥ ११ ॥ सूत जानासि भद्रं ते भगवान्सात्वतांपतिः ॥ देवक्यां वसुदेवस्य जातो यस्य
…र॥ तन्नः शुश्रूषमाणानामर्हस्यङ्गाऽनुवर्णितुम् ॥ यस्याऽवतारो भूतानां क्षेमाय च भवाय च ॥ १३॥
…तिं घोरां यन्नाम विवशो गृणन् ॥ ततः सद्यो विमुच्येत यद्बिभेति स्वयं भयम्॥ १४॥ यत्पादसंश्रयाः
…यः प्रशमायनाः ॥ सद्यः पुनन्त्युपस्पृष्टाः स्वर्धुन्यापोऽनुसेवया ॥ १५ ॥
! साधारण हूं भगवत्अवतार भक्तनके पालन और समृद्धिके निमित्त होइ है, तिन भगवान्के पूर्ण अवतारके चरित्रनको हम सुन्यो
…ह हैं, याते हमारे अर्थ कहो ॥ १३ ॥ अब शौनक भगवान्के प्रभावको वर्णन करत भगवान्के यशके श्रवणमें अपनी उत्कंठाको प्रकट करिके
दिखामें हैं ॥ आपन्न इति ॥ जन्म मृत्यु प्रवाहरूप घोर संसारसमुद्रमें प्राप्त भये पराधीन जीव जिस प्रभुके नामको उच्चारण कर वाही क्षण या
संसारते छूटिकर मोक्षकूं प्राप्त होय है ॥ नामको ऐसो प्रभाव है जा भगवन्नामते काल वा यमराज आप डरे है ॥ १४ ॥ हे सूत ! उन
भगवान्के चरणारविंदके आश्रय लेनेवारे और शांतिमार्गमें निष्ठ मुनिनको दर्शनमात्र हू या जीवको है जाइ तो वह मुनिनको दर्शन ताही
क्षण वा जीवको पवित्र करै हैं, क्योंकि उन मुनिनके हृदयमें सर्वकाल भगवच्चरणारविंद वास करे है और गंगाजीको जल तो बहुत काल

यहां धर्म कूरो, …
न्न गोरस सर्व रसी, …

रत्नसमूह समुद्र देतभए, पर्वत चार विध अन्नको देतभये, लोकपालसहित सब भेटें देते भये ॥ १ ॥ … ईश्वर एस पृथुके …

131

हे गौरमुख ! या वनमें मैंने निमिषमात्र कालमें दानवन मारी है, याते या वनको नाम नैमिषारण्य होइगो. ब्राह्मणनकूं तपस्याके योग्य
उत्तम होइगो, ऐसे भगवान्के क्षेत्र नैमिषारण्यमें काहूसमय ८८००० शौनकादिक ऋषिनने स्वर्गलोकस्थित भगवान्को प्राप्तिके निमित्त १०००
सहस्रवर्ष काल पर्यंत यज्ञ करनेको संकल्प कोनो ॥ ४ ॥ वे शौनकादिमुनि एक दिन प्रातःकाल नित्य अग्निहोत्र करिके, जब नैमित्तिक
अग्निहोत्र करिचुके, ताही समय व्यासजीके परमकृपापात्र सूतजी आयकर प्राप्त भये, तब ऋषिनने सूतजीकों आयो देखकर ब्रह्मासन बिछाय दीनो ॥
सूतजी सर्व ऋषीनको प्रणाम करि उनकी आज्ञासो आसनपर बैठे, जब परस्पर कुशल प्रश्न करिचुके तब ऋषी सूतजीसो बोले ॥ ५ ॥
हे निष्पाप ! सर्व शास्त्र पुराण इतिहास तुमने व्यासजो महाराजते पढेहैं, और बांचे हैं ॥ ६ ॥ ज्ञानीनमें शिरोमणि भगवान् व्यासजी

तु मुनयः प्रातर्हुतहुताग्नयः ॥ सत्कृतं सूतमासीनं पप्रच्छुरिदमादरात् ॥ ५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वया खलु
इहासानि चानघ ॥ आख्यातान्यप्यधीतानि धर्मशास्त्राणि यान्युत ॥ ६ ॥ यानि वेदविदां श्रेष्ठो भगवा-
न्ये च मुनयः सूत परावरविदो विदुः ॥ ७ ॥ वेत्थ त्वं सौम्य तत्सर्वं तत्त्वतस्तदनुग्रहात् ॥ ब्रूयुः
धागेश गुरवो गुह्यमप्युत ॥ ८ ॥ तत्र तत्राञ्जसाऽऽयुष्मन्भवता यद्विनिश्चितम् ॥ पुंसामेकान्ततः श्रेयस्तन्नः
शंसितुमर्हसि ॥ प्रायेणाल्पायुषः सभ्य कलावस्मिन्युगे जनाः ॥ मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः ॥ १० ॥
णः प्रासूयन्त मधुच्युतश्च निर्गुण ब्रह्मके उपासक और मुनिभी निज निज शास्त्रनको जाने हैं ॥ ७ ॥ हे सौम्य ! हे सूतजी !
काः ॥ ९ ॥ इति चाधोक्षजेशस्य अर्थ जानो हो, क्यों कि निष्कपट प्रेमी शिष्यको गुरु गुप्त हूं पदार्थको प्रगट करिदेय हैं ॥ ८ ॥
सिद्धांत निश्चय करिके सरल रीतिसो हमको उपदेश करो ॥ जा सिद्धांतको जानिके मुमुक्षु जीव सुगम

धाधर दैत्य दानव गुह्यक आदिक सुनंदनंद मुखिया श्रीह. सूतजी शंका करे कि हे ऋषियो ! तुम बहुत काल ताईं बहुत परिश्रम करिके अपनी
भगवत्सेवामें मनवारे सब आते भए ॥ ६ ॥ हे भारत ! जहां धर्म करो, मोतें कहा पूछो, मैं कहा तुमते हूं अधिक विद्वान् हूं, ताहै कहें हैं, हे साधो ! या
पूरण करवेवारे अर्थको देती भई ॥ ७ ॥ क्षीर दधी अन्न गोरस सर्व रसी, तामें हूं मंदबुद्धी तामें हूं मंदभाग्य, तामें हूं विघ्नके इच्छा इतनेपहू रोग
रत्नसमूह समुद्र देतेभए, पर्वत चार विध अन्नको देतेभये, लोकपालसहित सब भेटैं देते भए ॥ ९ ॥

ईश्वर एस पृथके

भा हे विदुर ! इसी अवसरमें

॥ ो आकर घेरलिया

132

रसकी प्राप्ति होनेंते जीव आनन्दी होय है, यातें हे रसिक हे रसके जाननेवारो, ऐसो फल पृथ्वीमें प्राप्त भयो, यह अलभ्य लाभकी उक्ति है, याते या श्रीभागवत-
ानिसके हैं, क्यों कि छिलका गुठिली त्यागिने परे है ॥ समाधान ॥ यह फल रसरूप है,
, जैसे माखनको लोंदा । जो केवल फलही कहते तो वाको पीमनो नहीं बनसके हो, और
ाकेलिये रसपद कह्यो। और जो केवल रसही कहते तो गिऱ्यो रस फैलि जातो, याते पीनो नहीं
श्रीभागवत अमृत रसको पान जीवन्मुक्ति अवस्थामें हूं त्यागनें योग्य नहीं है, किन्तु पान करनेही
समान त्याज्य नहीं है, किन्तु सेवनही करने योग्य है। अगारी हू यह कहेंगे जिनकी अहंकाररूप गाठि खुलिगई,
ारविंदनमें निष्काम भक्ति करें हैं, भगवान्के ऐसेही गुण हैं ॥ ३ ॥ ऐसे इन तीनि श्लोकनमें कहा कह्यो कि सर्व-

षक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः ॥ सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत ॥ ४ ॥

.भागवतशास्त्रके इष्टदेवको स्मरणपूर्वक प्रारंभ करनो चहिये, अब श्रीभागवत शास्त्रके विषय प्रयोजन संबन्ध अधिकारिनकी
ीयके, और इनके सेवनमें कोई क्लेश नहीं है, ऐसे श्रोतानको सन्मुख करिके शास्त्र को प्रारंभ करे है ॥ नैमिषे इति ॥ ब्रह्माजीके
क्रकी धार कुंठित होइके जहां चक्र गिऱ्यो ता तीर्थको नाम नैमिष है ॥ यह कथा वायुपुराणमें लिखी है, कि काहू समय बहुतसे ऋषी
ाके पास आये, और यह बोले कि हे ब्रह्मन् ! हमकों तपके योग्य उत्तम तीर्थ बताओ कौनसो अति पवित्र है, यह ऋषिनको वचन सुनि
ब्रह्माजी बोले हे ऋषियो ! मैं मनोमय चक्र बनायके छोडो हों, तुम याचक्रके पीछे पीछे चले जाओ, जा भूमिमें या चक्रकी धार कुंठित होइ
गिरि परे वह भूमि तपके योग्य है ॥ ऐसे कहि ब्रह्माजीने मनोमयचक्र छोड्यो, जाको सूर्य सदृश प्रकाश, सो चक्र जहां गिऱ्यो वह तीर्थ वा दिनते
नैमिषारण्य विख्यात भयो ॥ अथवा वाराहपुराणकी कथा ह्यां समझनी चहिये ॥ काहू समय गौरमुख ऋषिके प्रति भगवान्को वाक्यहै ॥

---

१ रसो वै रसः, यं लब्ध्वा ह्यानन्दी भवति इतिश्रुतेः । २ आत्मारामा ...गो निर्ग्रन्थाश्चाप्युरुक्रमे ॥ कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो ... ॥

गोरस सव

लोकपालसहित सव

और उनके साथ
ननिरे भगवद्रूपं शास्
क्तिदायकम् ॥ सन
विधिः कुमारैस्तस्
संयोगः कुत्र तैः
ः शिष्यं जो
॥ कांड इस
॥ २८ ॥ जामें फलकी
। अब श्रीमद्
से शुकार संत याको
इखनेको आ

हे विदुर ! इसी अवसरमें

ो आकर घेरलिया

क्षाकर मनुक्षेत्र ब्रह्मावर्त पूर्ववाहिनी सरस्वतीके देशमें वसते भए ब्रह्मावर्त याको नाम ब्रह्मावर्तं प्रचक्षते" ॥ १ ॥ भगवान इन्द्रने इस कर्मको अपनेसे अधिक समझकर कि यह त्सवको न देखसको ॥ २ ॥ जहां यज्ञपति साक्षात् भगवान्हरि ईश्वर सर्वात्मा सर्व लोक शिव लोकपाल अपने अनुचरों सहित गंधर्व मुनिगण अप्सरा उनका चरित्र गातेथे ॥ ४ ॥ सिद्ध

133

तु हयमेधशतेन सः ॥ ब्रह्मावर्ते मनोः क्षेत्रे यत्र प्राची सरस्वती ॥ १ ॥ तदभिप्रेत्य भ-
शतक्रतुर्न ममृषे पृथोर्यज्ञमहोत्सवम् ॥ २॥ यत्र यज्ञपतिः साक्षाद्भगवान्हरिरीश्वरः ॥
लोकगुरुः प्रभुः॥३॥अन्वितो ब्रह्मशर्वाभ्यां लोकपालैः सहानुगैः ॥ उपगीयमानो गन्धर्वैर्मुनि-
॥ सिद्धविद्याधरा दैत्या दानवा गुह्यकादयः ॥ सुनन्दनन्दप्रमुखाः पार्षदप्रवरा हरेः ॥ ५ ॥ कपि-
योगेशाः सनकादयः ॥ तमन्वीयुर्भागवता ये च तत्सेवनोत्सुकाः ॥ ६ ॥ यत्र धर्मदुघा भूमिः सर्वकाम-
दुग्धि स्माभीप्सितानर्थान्यजमानस्य भारत ॥ ७ ॥ ऊहुः सर्वरसान्नद्यः क्षीरदध्यन्नगोरसान् ॥ तरवो
णः प्रासूयन्त मधुच्युतः ॥ ८ ॥ सिन्धवो रत्ननिकरान्गिरयोऽन्नं चतुर्विधम् ॥ उपायनमुपाजह्रुः सर्वे लोकाः
ठकाः ॥ ९ ॥ इति चाधोक्षजेशस्य पृथोस्तु परमोदयम् ॥ असूयन्भगवानिन्द्रः प्रतिघातमचीकरत् ॥ १० ॥

द्याधर दैत्य दानव गुह्यक आदिक सुनंदनंद मुखिया श्रीहरिके पार्षद आवतेभए ॥ ५ ॥ कपिल देवजी नारद दत्तात्रेय योगेश्वर सनकादिक और जो भगवत्सेवामें मनवारे सब आते भए ॥६॥ हे भारत ! जहां धर्म देवेवारी भूमि, सब कामपूरक पृथिवी गौरूप धार राजा पृथु यजमानको सब मनोरथ पूरण करवेवारे अर्थको देती भई ॥ ७ ॥ क्षीर दधी अन्न गोरस सर्व रसनकों नदियें वहती भई, विस्तृत देहवारे मधुस्रावि वृक्ष खूब फलतेभए ॥ ८ ॥ रत्नसमूह समुद्र देतेभए, पर्वत चार विध अन्नको देतेभये, लोकपालसहित सब भेटैं देते भये ॥ ९ ॥ याप्रकार भगवत जाके ईश्वर ऐसे पृथुके

134

उदयकी ईर्षा करते भगवान् इंद्र विघ्न करते भये ॥ १० ॥ अंतके अश्वमेधमें पृथु यज्ञपतिकी पूजा करवे लगे तब इंद्र स्पर्धाकर यज्ञके
अश्वको छिपकर हर लेजातोभयो ॥ ११ ॥ आकाशमें होकै जाते इन्द्रको भगवान् अत्रि देखतेभये, अधर्ममें धर्मकी भ्रांति करानेहारे पाखंड वेशको
॥ कवचके समान धारेथा ॥ १२ ॥ अत्रि प्रेरित पृथुपुत्र महारथी क्रोधकर मारवेको वाके पाछे दौडे, खडो रहि रहि ऐसे बोलतेभये ॥ १३ ॥ धर्मश-
री जयधारी भस्म लगाये हुई इंद्रकी आकृति देख वापर बाण न चलायो ॥ १४ ॥ जब राजा वधसें निवृत्त हुए तब फिर मारवेको अत्रिने कहा, हे

णाऽश्वमेधेन यजमाने यजुष्पतिम् ॥ वैन्ये यज्ञपशुं स्पर्द्धन्नपोवाह तिरोहितः ॥ ११ ॥ तमत्रिर्भगवानैक्षत्त्वरमाणं
॥ आमुक्तमिव पाखण्डं योऽधर्मे धर्मविभ्रमः ॥१२॥ अत्रिणा चोदितो हन्तुं पृथुपुत्रो महारथः ॥ अन्वधाव-
तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥१३॥ तं तादृशाकृतिं वीक्ष्य मेने धर्मं शरीरिणम् ॥ जटिलं भस्मना च्छन्नं तस्मै बाणं
वधान्निवृत्तं तं भूयो हन्तवेऽत्रिरचोदयत् ॥ जहि यज्ञहनं तात महेन्द्रं विबुधाधमम् ॥ १५ ॥ एवं
माणं विहायसा ॥ अन्वद्रवदभिक्रुद्धो रावणं गृध्रराडिव ॥ १६ ॥ सोऽश्वं रूपं च तद्धित्वा
ट् ॥ वीरः स्वपशुमादाय पितुर्यज्ञमुपेयिवान् ॥ १७ ॥ तत्तस्य चाद्भुतं कर्म विचक्ष्य पर-
॥ २८ ॥ विजिताश्व इति प्रभो ॥ १८ ॥ उपसृज्य तमस्तीव्रं जहाराश्वं पुनर्हरिः ॥ चषालयू-
हनव ॥ १९ ॥

भये ॥ ३० ॥ ग्राम, को मारो ॥ १९ ॥ ऐसे पृथुसुतसे जब कह्यो तो शीघ्र आकाशमार्गमें होकर वाके पाछे दौडे जैसे
हैं बृहस्पतिजीने कहे है और अपनो पाषंडरूप त्याग अंतर्द्धान होगयो, वीर अपनो पशु लेके पिताके यज्ञमें आते
तु प्राणी यथासुख जहां तहां भयरहित ाको विजिताश्व नाम देते भये ॥ १८ ॥ पुनः आयकै अंधेरो कर सुवर्णकी रस्सीसें

र्न नाम अष्टादशोध्यायः ॥ १८ ॥

यो राजा पृथुसै पहले कभीभी नहीं थे यह शंका न करना किन्तु और प्रक.

भा.

॥ १

हे विदुर ! इसी अवसरमें

ने आकर घेरलिया

काम पूरण करवेवारी पृथ्वीकों दूहते भये ॥२६॥

वत्सादि भेद होनेसे वा दूधमेंभी भेद होय गयो ॥ २७ ॥

भावम करते भये ॥ २८ ॥ राजराजविभु अपने धनुषाग्रभागसें गिरिन-

या खंडमें भगवान् पृथु प्रजानके जीवका दाता पिता जहां तहां यथायोग्य

॥ सर्वकामदुघां पृथ्वीं दुदुहुः पृथुभाविताम् ॥ २६ ॥ एवं पृथ्वादयः पृथ्वी-

न क्षीरभेदं कुरूद्वह ॥ २७॥ ततो महीपतिः प्रीतः सर्वकामदुघां पृथुः ॥ दुहि-

॥ २८ ॥ चूर्णयन्स्वधनुष्कोट्या गिरिकूटानि राजराट् ॥ भूमण्डलमिदं वैन्यः

यास्मिन्भगवान्वैन्यः प्रजानां वृत्तिदः पिता ॥ निवासान्कल्पयांचक्रे तत्र तत्र यथा-

नानि दुर्गाणि विविधानि च ॥ घोषान्व्रजान्सशिबिरान्नाकरान्खेटखर्वटान् ॥ ३१ ॥

ग्रामादिकल्पना ॥ यथासुखं वसन्ति स्म तत्र तत्राकुतोभयाः ॥ ३२ ॥ इति श्रीभा० पृथुवि-

हनवर्णनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८॥

भये ॥ ३० ॥ ग्राम, पुर, पत्तन, दुर्ग, अनेक तरहके घोष, व्रज, सेनानिवास, स्थान, खान, करसौंके गांव पर्वतकी तरैटीके गांव

हैं बृहस्पतिजीने कहे है " औदकं पार्वतं वार्क्षमैरीणं धान्वनं तथेति " ॥ ३१ ॥ पृथुसें पहिले ये पुरग्रामादिक कल्पना ऐसी

तु प्राणी यथासुख जहां तहां भयरहित हो रहते थे ❀ (१) ॥ ३२ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभा० चतु० दोहनवत्सादिभेदेन पृथुराज्ञा

र्णनं नाम अष्टादशोध्यायः ॥ १८ ॥

राजा पृथुसै पहले कभीभी नहीं थे यह शंका न करना किन्तु और प्रकारके वासस्थान थे जो वेनके अत्याचारसै नष्ट होगये थे राजा पृथुने फिर बसाये ।

यो

० ॥ जैसे का

और सच्यह
शीघ्र वैकुंठकैं
॥ २० ॥ के
शौनकजी बोल
श्रवण करी और उनके साथ

॥ १८ ॥ मेनिरे भगवद्रूपं शास्त्रं
सर्वथा मुक्तिदायकम् ॥ सनत्
ताहश्रवणविधिः कुमारैस्तस्य
कुतः प्रीतिः संयोगः कुत्र तैः
त प्रोक्तं रहः शिष्यं जो
सुस्तत्र नारदं ॥ काण्ड इस
गमनं तव ॥ ३८ ॥ जामें फलकी
। अब श्रीमद्

जो कुछ मुझसे शुभार संत या
रदजीके देखनेको आ
कहांसे आये हो ॥
का कारण कहो सम

अप्सरा कमलके पात्रमें विश्वावसुको वत्स बनाय गांधर्वमधु सौभग दूहते भये ॥ १७ ॥ महाभगवान् श्राद्धदेवता श्रद्धा करकै अर्यमाको वत्स कच्चे माटीके पात्रमें पितरनके योग्य अन्नरूप क्षीरकों दूहते भये ॥ १८ ॥ कपिलकों बच्छा बनाय सिद्ध लोग संकल्पनामयी सिद्धि काशमें विद्याधरादिक दुहते भए ॥ १९ ॥ और जो मायावी थे वे छिपजाना इत्यादि अद्भुतात्मानकी धारणामयी मायाको मयको भए ॥ २० ॥ यक्ष राक्षस भूत पिशाच जो रुधिरपान करवेवारे थे वे रुद्रको बच्छा बनायकर कपालमें रुधिररूप मदको दूहते

क्षन्पात्रे पद्ममये पयः ॥ वत्सं विश्वावसुं कृत्वा गान्धर्वं मधु सौभगम् ॥ १७ ॥ वत्सेन पितरोऽर्यम्णा
आमपात्रे महाभागाः श्रद्धया श्राद्धदेवताः ॥ १८ ॥ प्रकल्प्य वत्सं कपिलं सिद्धाः संकल्पनाम-
द्यां च ये च विद्याधरादयः ॥ १९ ॥ अन्ये च मायिनो मायामन्तर्द्धानाद्भुतात्मनाम् ॥ मयं
मयीम् ॥ २० ॥ यक्षरक्षांसि भूतानि पिशाचाः पिशिताशनाः ॥ भूतेशवत्सा दुदुहुः कपा-
गो दन्दशूकाः सर्पा नागाश्च तक्षकम् ॥ विधाय वत्सं दुदुहुर्बिलपात्रे विषं पयः ॥२२॥
षम् ॥ अरण्यपात्रे चाधुक्षन्मृगेन्द्रेण च दंष्ट्रिणः ॥२३॥ क्रव्यादाः प्राणिनः क्रव्यं
वाऽचरमेव च ॥ २४ ॥ वटवत्सा वनस्पतयः पृथग्रसमयं पयः ॥ गिरयो

बिलरूप पात्रमें विषजलको दूहतेभये ॥ २२ ॥ सब पशु गौके बैलको बच्छा ब-
यो भगदेवताके नत्र ॥ मांसाहारी प्राणी सिंहको बच्छा बनाय अपने देहमें मांस दूहतेभये गरु-
त्सा कर वनस्पतिये पृथक् रसमय पय दूहते भये, और पर्वत

नोंके संग
तोला ॥ १ ॥ इसके गौरवके सामने और सब्यह
दि यद्भागवत शास्त्रको भगवान्का रूप मान्ते भये जो पढने सुन्नेसे शीघ्र वैकुंठकें
करकै नारदजीके अर्थ पूर्वकालमें कहा है ॥ २० ॥ के
ने वर्णन करीहै ॥ २१ ॥ शौनकजी बोले
प्रीतिपूर्वक विधि श्रवण करी और उनके साथ
र्थः ॥ १८ ॥ मेनिरे भगवद्रूपं शास्त्रं
मुक्तिदायकम् ॥ सनत्
कुमारैस्तस्य

संतनको परमार्थभूत वस्तु जानने योग्य है, वैशेषिकमतवारे द्रव्य गुणादिरूप जैसें वास्तव वस्तु माने है सो नहीं,

॥ ई कि वस्तु ब्रह्मके अंश जीव है, और वस्तुकी शक्ति माया है, और वस्तुको कार्य जगत् है, ए तीन ब्रह्मरूपेहीं

न्नहीं जानिवे योग्य है,याके जाननेते कहा होय है कि परम सुख मिलै है, और अध्यात्म, अधिदैव अधिभूत, इन तीन

ानकांडविषयक शास्त्रनते श्रेष्ठता दिखाई । अब श्रीमद्भागवतके कर्ताहूकी श्रेष्ठता दिखामे हैं कि महामुनि श्रीनारायणने प्रकारके रुद्रानुचरोंने उस यज्ञ- भा.

वृता कांडको श्रेष्ठता दिखामें हैं, अन्य शास्त्र और उनके साधनन करिकें कहा ईश्वरकी हृदयमें शीघ्रही स्थिति होय हैं, और पत्नीशालाकूं तो-

ति होय हैं,और यहां श्रीमद्भागवतके श्रवण करिवेकी इच्छा मात्रते ताहीक्षण भगवानकी हृदयमें स्थिति होय हैं । शंका । घसोडो.

॥१३॥ है तो सब जीव इसहीको श्रवण करिके मोक्षको. क्यों न प्राप्तहो जाय ? तापैं कहैं हैं कि श्रीमद्भागवतकी श्रवणकी रुचि

तथैकेऽग्नीन्विना नहीं होय है, यहां तीनों कांडनके अर्थनको यथार्थ प्रतिपादन कीनों हैं, याते ये श्रीमद्भागवतही सर्व शास्त्र

अपरे जगृहुर्देवालं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम्॥पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः॥३॥

भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीण करिवे योग्य हैं, केवल सर्व शास्त्रनते श्रेष्ठ हैं यातेंही इनको श्रवणादिक वर्णन नहीं कियो, किंतु सर्व

द्रवन् ॥ १८ ॥ जुह्वतः स्रुवहरिके सेवनीय है ॥ २ ॥ भागवत परम आदर करिके सेवन करिवे योग्यहै, यह कहे हैं ॥ निगमेति ॥

भगस्य नेत्रे भगवान्पातितस्य श्रीमद्भागवत शास्त्र है सो श्रीवैकुंठलोकमें वास करे है, परंतु धन्यदयालु श्रीनारदजी कि जिनने

दन्तान्कालिङ्गस्य यथा बलः॥ श्रीनो, मैंनें अपने श्रीशुकदेव पुत्रके मुखमें धर्‍यो, फिर वह श्रीमद्भागवत श्रीशुकदेवजीके मुखतें ॥ ३ ॥

उन्हें पकडा ॥ १६ ॥ मणिमान भृगुको बांधते भे हौले पृथ्वीमें प्राप्त भयो, अर्थात् इतने ऊंचेतें गिर्‍यो फिर फूटचो नहीं । अबही श्रीमद्भा-

सब ऋत्विज सभासद सब देवते शिवके गणोंसे पं हैं, याते व्है गएकीसी नाईं कहै है, श्रीमद्भागवतशास्त्रकी प्रवृत्ति अनागताख्यान

हवन करतेभये भृगुकी मूंछ भगवान्भवगण उखाडलेते ही कहिदियोजाय) याते अमृतके रसके समान मीठे रस करिके युक्त है । लोकमें

यो भगदेवताके नेत्र क्रोधकर भगवान्गण उखाडते भये, ही होय है । यहां साक्षात् शुकरूप श्रीव्यासनन्दन मुनिकी चोंच लगी यातें

137

॥ २० ॥ जस को

138

है लि

दते यह प्रतीति भई कि या पुराणको गायत्रीके मंत्रसे प्रारंभ भयो है यह
यपुराणमें लिख्यो है । "यत्रांधिकृत्येति" । जापुराणमें गायत्रीके आशयकूं लैकें
नारदजो बोले मैं सब लोकोंमें उत्तम पृथ्वी जामें होय, सो श्रीभागवत है तिनकी पुस्तक ललित अक्षरनमें लिखायकरि सुवर्णके
पाक तीर्थोंमें इधर उधर घूमता फिरा ॥ गव ब्राह्मणकों निवेदन करे वह परमपदकूं प्राप्त होय ॥ या पुराणमें । अठारह हजार
सब भेदनका करलीहै ॥ २९॥ अब लोक, बारह स्कंध, नारायणकवचरूप ब्रह्मविद्या वृत्रासुरके वधकी कथा संयुक्त जामें गायत्रीके
तावत्स रुद्धबुद्धिहीन मंद ॥ पद्मपुराणमें हूं अंबरीषके प्रति गौतमऋषिको वचन है । "अम्बरीष शुकप्रोक्त[3] मिति" है अम्ब
जीनें राजापरीक्षितको जो श्रीमद्भागवत सुनायो है ताको श्रवण करि, और अपने मुखते हू पाठ करि
॥१३॥ केचिद्ध निर्मत्सराणां सतां वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम् ॥ श्रीमद्भागवते
तथैकेऽग्नीश्वरः सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात् ॥ २ ॥
अपरे भई की श्रीमद्भागवत शास्त्र यही है, श्रीभागवत कोऊ दूसरे है यह शंका परास्त भई, अर्थात् देवीभागवत जो
भगं बनाई है वह श्रीभागवत नहीं है ॥ १ ॥ अब श्रोतानकी प्रवृत्तिके लिये कर्मकाण्ड और उपासनाकांड और ज्ञानकांड इस
ते श्रीमद्भागवतकी श्रेष्ठता दिखामें हैं । धर्मःप्रोज्झितेति । यहां श्रीमत्सुंदरश्रीभागवतमें वा धर्मको कहें हैं, कि जामें फलकी
को लेश नहीं, मोक्षपर्यंतकी जामें चाहना नहीं, केवल ईश्वरको आराधन रूपही धर्मको निरूपण करे हैं । अब श्रीमद्भ
परम उत्तम हैं, दूसरेकी बढती नहीं सहनेहारो मत्सर जिनके नहीं, ऐसे निर्मत्सर और सर्व जीवनपै कृपा करनहारे संत यातेथं और नदियोंतें १९ ॥
कथनतें कर्मकांडविषयक शास्त्रतें श्रीमद्भागवतकी श्रेष्ठता दिखाई । अब ज्ञानकांडविषयक शास्त्रनते श्रेष्ठता दिखावे कोई सात्क्रियायुक्त मनुष्यपातय-
वेचनेवारी स्त्रियें कलियुगमें हो

---

१ यत्राधिकृत्य गायत्रीं वर्ण्यते धर्मविस्तरः । वृत्रासुरवधोपेतं तद्भागवतमिष्यते । लिखित्वा तच्च यो दद्याद्धेमसिंहसमन्वितम् । प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां
सहस्राणि पुराणं तत्प्रकीर्तितम् । २पुराणान्तरे च ॥ ग्रन्थोष्टादशसाहस्रो द्वादशस्कन्धसंमितः।हयग्रीवब्रह्मविद्या यत्र वृत्रवधस्तथा । गायत्र्या च सम
अम्बरीषं प्रति गौतमोक्तिः ॥ अम्बरीष शुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु । पठस्व स्वमुखेनापि यदीच्छसि भवक्षयम् ॥

भये ॥१७॥
हाथमें लिये
छ दि
९ ॥ पडो भ-
सूच करतोभयो ॥ २० ॥ जैसे का

हे वि

को आव नारदजो बोले मैं सब लोकोंमें उत्तम पृथ्वीको जानकर पुष्कर प्रयाग काशी गोदावरीको
डो यज्ञशाले र्थोंमें इधर उधर घूमता फिरा ॥ २८ ॥ परन्तु कहो मनःसंतोषकारक कोई कल्याणकी बात न देखा
पाकभोजनशाला करलीहै ॥ २९॥ अब सत्य तप शौच दया नहीं है इस कारण जीव तुच्छ झूठ बोलने और केवल कारके रुद्रानुचरोंने उस यज्ञ-
सब भेदनकीनी ॥ बुद्धिहीन मंदभाग्य रोगादिसे पीडित पाषंड निरत लिंगसे विरक्त यतिआदिभी स्त्रीधनसहित है पश्चिम और पत्नीशालाकूं तो-
यजमानको घर तोडो, कोईनें

तावत्स रुद्रानुचरैश्च ॥ अहं तु पृथिवीं यातो ज्ञात्वा सर्वोत्तमामिति ॥ पुष्करं च प्रयागं च कींडो, कोईने वेदी परीखाई
॥१३॥ केचिद्बभञ्जुः क्षेत्रं श्रीरङ्गं सेतुबन्धनम् ॥ एवमादिषु तीर्थेषु भ्रममाण इतस्ततः॥२८॥ नापश्यं विने पकडे जो भाजे
तथैकेऽग्नीननाशयन् ॥ कुलिनाऽधर्ममित्रेण धरेयं बाधिताऽधुना ॥ २९ ॥ सत्यं नास्ति तपः शौचं दया दाऽन्वरुध्यत
अपरे जगृहुर्देवान्प्रत्यासन्नान्नाः कूटभाषिणः॥३०॥ मन्दाः सुमन्दमतयो मन्दभाग्या ह्युपद्रुताः॥पाखण्डनिरतास्त्राणि
भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीत् ॥ १७ ॥ रुणीप्रभुता गेहे शालको बुद्धिदायकः ॥ कन्यायाविक्रयो लोभाद्दम्पतीनां च कल्कनम् ॥
द्रवन् ॥ १८ ॥ जुह्वतः स्रुवहस्तस्य र्णि सरितस्तथा ॥ देवतायतनान्यत्र दुष्टैर्नष्टानि भूरिशः ॥ ३३॥ न योगी नैव सिद्धो
भगस्य नेत्रे भगवान्पातितस्य रुषा भुवि वानलेनाद्य साधनं भस्मतां गतम् ॥ ३४ ॥ अट्टशूला जनपदाः शिवशूला द्विजातयः
दन्तान्कालिङ्गस्य यथा बलः॥ शप्यमाने ति कलाविह ॥ ३५॥

उन्हें पकडा ॥ १६ ॥ मणिमान भृगुको बांधते भए, वीरभद्रपुरुषोंमें क्लेश रहने लगा है ॥ ३२ ॥ आश्रम अर्थात् मठोंमें तीर्थ और नदियोंमें तय-
सब ऋत्विज सभासद सब देवते शिवके गणोंसे पीडित पत्थर दिये हैं ॥३३॥ न योगी न सिद्ध न ज्ञानी न कोई सत्क्रियायुक्त मनुष्य ये ॥१७॥
हवन करतेभये भृगुकी मूंछ भगवान्भवगण उखाडलेते भये, क्षुद्रके मनुष्य वेद पके चनेहारे ब्राह्मण भग वेचनेवारी स्त्रियें कलियुगमें है हाथमें लिये
यो भगदेवताके नेत्र क्रोधकर भगवान्गण उखाडते भये, थाक्तमृषिभिस्तः भिः ॥ पडो भ-
सू
जैसे कलि

धनोंके संग तोला ॥ १ ॥ इसके गौरवके सामने और स
गवत शास्त्रको भगवान्का रूप न्ते भये जो पढने सुन्नेसे शीघ्र वैकुं
हे विदुर ! इसी अवसरमें अनेक आयुध लिये काले पीले मकरकी सम् ह सनकादिकोंने दया करके नारदजीके अर्थ पूर्वकालमें कहा है ॥ २० ॥
को आकर घेरलिया ॥ १३ ॥ शिवजीके किन्ही गणोंने तो यज्ञशाल वण करनेकी विधि सनत्कुमारनें तिनसे वर्णन करीहै ॥ २१ ॥ शौनकजी बोल
डो यज्ञशालाके आगे स्थित सभामंडप किसीने तोडो, सभाके हनेवाले नारदजीनें यह किसप्रकार स्थिर होकर प्रीतिपूर्वक विधि श्रवण करी और उनके साथ
पाकभोजनशाला तोडडारी ॥ १४ ॥ कोईने यज्ञके पात्र फोत इदं महत् ॥ तदा ऋषिगणाः सर्वे विस्मयं परमं ययुः ॥ १८ ॥ मेनिरे भगवद्रूपं शास्
सब भेदनकीनी ॥ १५ ॥ औरोंने मुनीनकों बाधा कीनी, विणात्सद्यो वैकुण्ठफलदायकम् ॥ १९ ॥ सप्ताहश्रवणेनैव सर्वथा मुक्तिदायकम् ॥ सनत्
तावत्स रुद्रानुचरैर्मखो महान्नानायुधैर्वामन्यापरैः ॥ २० ॥ यद्यपि ब्रह्मसंबन्धाच्छ्रुतमेतत्सुरर्षिणा ॥ सप्ताहश्रवणविधिः कुमारैस्तस्य
॥ १३ ॥ केचिद्बभञ्जुः प्राग्वंशं पत्नीशालां च ॥ लोकविग्रहयुक्तस्य नारदस्यास्थिरस्य च ॥ विधिश्रवे कुतः प्रीतिः संयोगः कुत्र तैः स
तथैकेऽग्नीननाशयन् ॥ कुण्डेष्वमूत्रयन् ते कीर्तयिष्यामि भक्तिपुष्टं कथानकम् ॥ शुकेन मम यत् प्रोक्तं रहः शिष्यं
अपरे जगृहुर्देवान्प्रत्यासन्नान्पला
भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीत् ॥ १७ ॥ लायां चत्वार ऋषयोऽमलाः ॥ सत्सङ्गार्थं समायाता ददृशुस्तत्र नारदम् ॥
द्रवन् ॥ १८ ॥ जुह्वतः स्रुवहस्त नमुखः कुतश्चिन्तापरो भवान् ॥ त्वरितं गम्यते कुत्र कुतश्चागमनं तव ॥ २५ ॥ देवं
भगस्य नेत्रे भगवान्पातित यथा जनः ॥ तवेदं मुक्तसङ्गस्य नोचितं वद कारणम् ॥ २६ ॥ नेकधाऽ-
हन्तान्कालिङ्गस्य यथा हीं हुआ ॥ २२ ॥ सूतजी बोले यह भक्तियुक्त कथा मैं आपके प्रति कहूंगा जो कुछ मुझसे शुक न् ॥ १९ ॥
उन्हें पकडा ॥ १६ ॥ मणिम ई ॥ २३ ॥ एक समय बद्रिकाश्रममें वे शुद्ध चारों ऋषि सत्संगके निमित्त नारदजीके देखनेको आ णश्चापातय-
सब ऋत्विज सभासद स नमुख कैसे हो रहे हो तुम्हें क्या चिंता है जलदीसे कहाँको जाओगे और अब कहांसे आये हो ॥ २ कों पकडतेभये ॥ १७ ॥
हवन करतेभये भृगुके किसीका धन खो जाय मुक्तसंग तुममें यह बात अनुचित है इसकारण इसका कारण कहो थे ॥ १८ ॥ स्रुवा हाथमें लिये
यो भगदेवताके ने दिखाके भृगु हसेथे ॥ १९ ॥ पडो भ-
सूचना करतोभयो ॥ २० ॥ जैसे कलिं

141

हे विदुर ! इसी अवसरमें अनेक आयुध लियें काले पीलि मकरकी समान पेट और मुखवाले वामन आदि अनेक प्रकारके रुद्रानुचरोंने उस यज्ञको
आकर घेरलिया ॥ १३ ॥ शिवजीके किन्ही गणोंने तो यज्ञशालाके पूर्व पश्चिमस्तंभके पास प्राग्वंश किन्हीने पश्चिम और पत्नीशालाकूं तोडो
यज्ञशालाके आगे स्थित सभामंडप किसीने तोडो, सभाके आगे अग्नि धरवेकी शाला काऊने तोडी कोईने यजमानको घर तोडो, कोईनें
पाकभोजनशाला तोडडारी ॥ १४ ॥ कोईने यज्ञके पात्र फोडडारे कोईने अग्निनाश करदीनी, कोईने कूंडमें मूतदीनो, कोईने वेदी परीखाई
सब भेदनकीनी ॥ १५ ॥ औरोंने मुनीनकों बाधा कीनी, किसीने स्त्रियोंकों तर्जन किया औरोंने देवता पकडलीने, जो पास हे विने पकडे जो भाजे

तावत्स रुद्रानुचरैर्मखो महान्नानायुधैर्वामनकैरुदायुधैः ॥ पिङ्गैः पिशङ्गैर्मकरोदराननैः पर्याद्रवद्भिर्विदुराऽन्वरुध्यत
॥१३॥ केचिद्बभञ्जुः प्राग्वंशं पत्नीशालां तथापरे ॥ सद आग्नीध्रशालां च तद्विहारं महानसम्॥१४॥रुरुजुर्यज्ञपात्राणि
तथैकेऽग्नीननाशयन् ॥ कुण्डेष्वमूत्रयन् केचिद्बिभिदुर्वेदिमेखलाः ॥१५॥ अबाधन्त मुनीनन्य एके पत्नीरतर्जयन् ॥
अपरे जगृहुर्देवान्प्रत्यासन्नान्पलायितान् ॥ १६ ॥ भृगुं बबन्ध मणिमान्वीरभद्रः प्रजापतिम् ॥ चण्डीशः पूषणं देवं
भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीत ॥ १७ ॥ सर्व एवर्त्विजो दृष्ट्वा सदस्याः सदिवौकसः ॥ तैरर्द्यमानाः सुभृशं ग्रावभिर्नैकधाऽद्रवन् ॥ १८ ॥ जुह्वतः स्रुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान्भवः ॥ भृगोर्लुलुञ्चे सदसि योऽहसच्छ्मश्रु दर्शयन् ॥ १९ ॥
भगस्य नेत्रे भगवान्पातितवस्य रुषा भुवि ॥ उज्जहार सदःस्थोऽक्ष्णा यः शपन्तमसूचयत् ॥ २० ॥ पूष्णश्चापातयद्दन्तान्कालिङ्गस्य यथा बलः ॥ शप्यमाने गरिमणि योऽहसद्दर्शयन्दतः ॥ २१ ॥

उन्हें पकडा ॥ १६ ॥ मणिमान भृगुको बांधते भए, वीरभद्र प्रजापतिको चंडीश पूषाको पकडते भए, नंदीश्वर भगदेवताकों पकडतेभये ॥१७॥
सब ऋत्विज सभासद सब देवते शिवके गणोंसे पीडित पत्थरोंकी मारसे अत्यन्त पीडित हो भागते भये ॥ १८ ॥ स्रुवा हाथमें लिये
हवन करतेभये भृगुकी मूंछ भगवान्भवगण उखाडलेते भये, क्योंकि शिवशापके समय मूछ दिखाके भृगु हसेथे ॥ १९ ॥ पडो भयो
भगदेवताके नेत्र क्रोधकर भगवान्गण उखाडते भये, [illegible] भामें बैठो शाप देती वक्त सूचना करतोभयो ॥ २० ॥ जैसे का

अत्यन्त नाद करते रुद्रपार्षद जाके साथ चले जाय, भयंकर [illegible] जगतकी नाशक मृत्युको नाश करवेवारो त्रिशूल लिये दौडा उससम. उसके चरणके नूपुर शब्द करतेथे ॥ ६ ॥ तब ऋत्विज यजमान सभासद उत्तरकी दिशामें उडी रेणुको देख ये अंधकार कहां है ये रज कहांसूं आई ऐसें द्विज और ब्राह्मणोंकी स्त्रियें चिंतन करती भई ॥ ७ ॥ पवन नहीं चलै है चोरभी नहीं है, कारण कि उग्रदंडदाता प्राचीनबर्हि राजा जीवै है, गौवोंके आगमनको समय नहीं फिर ये उडीभई धूर कहांसे आवै है क्या आज सब लोककी प्रलय होयगी ॥ ८ ॥ प्रसूति आदि स्त्रियें उद्विग्न मनकर बोलीं ये याहीको अपराध है, जो सब बेटीनके देखते देखते निरपराधिनी सुता सतीकी अवज्ञा करतोभयो ॥ ९ ॥ जो शिव

अन्वीयमानः सह रुद्रपार्षदैर्भृशं नदद्भिर्व्यनदत्सुभैरवम् ॥ उद्यम्य शूलं जगदन्तकान्तकं स प्राद्रवद्घोषणभूषणाङ्घ्रिः ॥ ६॥ अथर्त्विजो यजमानः सदस्याः ककुभ्युदीच्यां प्रसमीक्ष्य रेणुम् ॥ तमः किमेतत्कुत एतद्रजोऽभूदिति द्विजा द्विजपत्न्यश्च दध्युः ॥ ७ ॥ वाता न वान्ति न हि सन्ति दस्यवः प्राचीनबर्हिर्जीवति होग्रदण्डः ॥ गावो न काल्यन्त इदं कुतो रजो लोकोऽधुना किं प्रलयाय कल्पते ॥ ८ ॥ प्रसूतिमिश्राः स्त्रिय उद्विग्नचित्ता ऊचुर्विपाको वृजिनस्यैष तस्य ॥ यत्पश्यन्तीनां दुहितॄणां प्रजेशः सुतां सतीमवदध्यावनागाम् ॥ ९ ॥ यस्त्वन्तकाले व्युप्तजटाकलापः स्वशूलसूच्यर्पितदिग्गजेन्द्रः ॥ वितत्य नृत्यत्युदितास्त्रदोर्ध्वजानुच्चाट्टहासस्तनयित्नुभिन्नदिक् ॥ १० ॥ अमर्षयित्वा तमसह्यतेजसं मन्युप्लुतं दुर्विषहं भ्रुकुट्या ॥ करालदंष्ट्राभिरुदस्तभागणं स्यात्स्वस्ति किं कोपयतो विधातुः ॥ ११ ॥ बह्वेवमुद्विग्नदृशोच्यमाने जनेन दक्षस्य मखे महात्मनः ॥ उत्पेतुरुत्पाततमाः सहस्रशो भयावहा दिवि भूमौ च पर्यक् ॥ १२ ॥

अंतकालमें जटासमूह फैलाय अपने त्रिशूलके अग्रसे दिग्गजेंद्रनकों छेदे हैं, सब अस्त्रयुक्त भुजारूप ध्वजाको विस्तारकर नाचते और उच्च अट्टहास करतेहैं जिस हास्यके गर्जनसे दिशायें फटजाती हैं ॥ १० ॥ जिनके क्रोधसे तारामंडल विखरगयाहै क्रोधसे भरी भौं और तीक्ष्ण डाढोंसे दुःसह तथा असह्य तेजस्वी महादेवजीको क्रोध कराकर ब्रह्माकाभी मंगल नहीं होताहै ॥ ११ ॥ महात्मा दक्षके यज्ञमें बहुत जन उद्विग्नदृष्टिकर जब इस प्रकार कहनेलगे उसीसमय महाभयदाता हजारों उत्पात स्वर्गमें भूमिमें सब ओरसें होनेलगे ॥ १२ ॥

॥ इति भाषाटीकायुते श्रीमद्भागवते तृतीयस्कन्धः समाप्तः ॥

भाग-४

॥ अथ भाषाटीकायुतश्रीमद्भागवते चतुर्थस्कन्धप्रारम्भः ॥

यह ग्रन्थ सन १८६७ के ऐक्ट २५ के अनुसार रजिष्टरी करके सब हक ग्रन्थाधिकारीने अपने स्वाधीन रक्खा है.

५

चतुर्थ स्कंधः

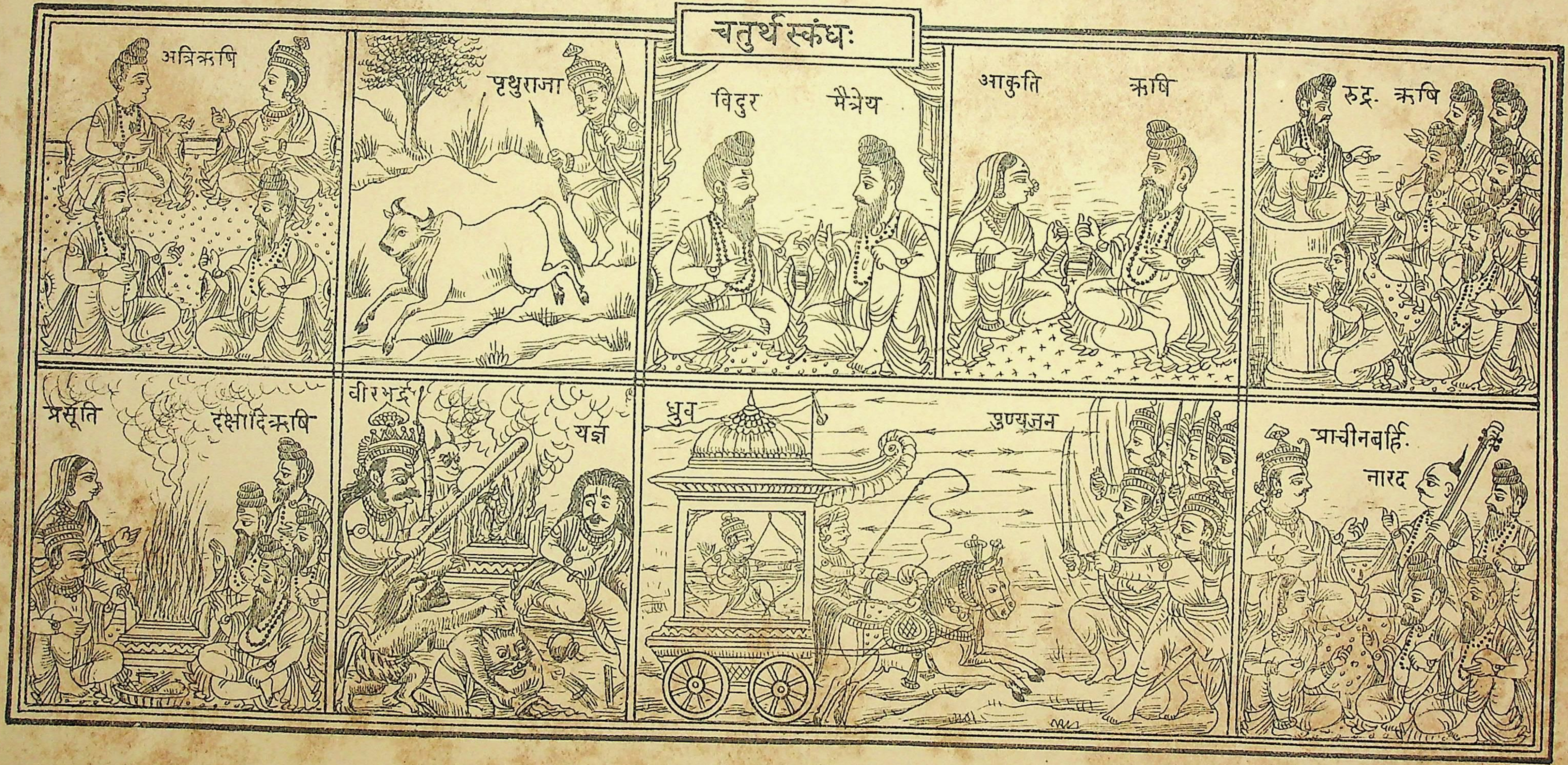
अत्रिऋषि
पृथुराजा
विदुर
मैत्रेय
आकुति
ऋषि
रुद्र.
ऋषि
प्रसूति
दक्षादिऋषि
वीरभद्र
यज्ञ
ध्रुव
पुण्यजन
प्राचीनबर्हिः
नारद

7

तोष, प्रतोष, संतोष, भद्र, शांति, इडस्पति, इध्म, कवि, विभु, स्वन्ह, सुदेव, रोचन ये बारहोंके नाम हैं ॥ ७ ॥ वे स्वायंभुव मन्वंतरमें तुषिता नामक देवता होते भए, मरीचिआदि सप्त ऋषि हुए, यज्ञ भगवान इंद्र हुए । श्रीहरिके छैः प्रकारके अवतार येभी हैं "मन्वंतरं मनुर्देवा मनुपुत्राः सुरेश्वराः॥ ऋषयोंशावतारश्च हरेः षड्विध उच्यते ॥ " ये आगे विस्तृतसें कहेंगे ॥ ८ ॥ राजा मनुके महापराक्रमी प्रियव्रत उत्तानपाद भए, तिनके पुत्र पौत्र नातीनसें मन्वंतर खूब भरगयो ॥ ९ ॥ हे तात ! मनुने देवहूती कर्दमजीको व्याही, ताके संबंधकी कथा आप हमसैं सुनचुकेहैं ॥ १० ॥ ब्रह्मपुत्र

तोषः प्रतोषः सन्तोषो भद्रः शान्तिरिडस्पतिः ॥ इध्मः कविर्विभुः स्वह्नः सुदेवो रोचनो द्विषट् ॥ ७ ॥ तुषिता नाम ते देवा आसन्स्वायंभुवान्तरे ॥ मरीचिमिश्रा ऋषयो यज्ञः सुरगणेश्वरः ॥ ८ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ मनुपुत्रौ महौजसौ ॥ तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणामनुवृत्तं तदन्तरम् ॥ ९ ॥ देवहूतिमदात्तात कर्दमायात्मजां मनुः ॥ तत्संबन्धि श्रुतप्रायं भवता गदतो मम ॥ १० ॥ दक्षाय ब्रह्मपुत्राय प्रसूतिं भगवान्मनुः ॥ प्रायच्छद्यत्कृतः सर्गस्त्रिलोक्यां विततो महान् ॥ ११ ॥ याः कर्दमसुताः प्रोक्ता नव ब्रह्मर्षिपत्नयः ॥ तासां प्रसूतिप्रसवं प्रोच्यमानं निबोध मे ॥ १२ ॥ पत्नी मरीचेस्तु कला सुषुवे कर्दमात्मजा ॥ कश्यपं पूर्णिमानं च ययोरापूरितं जगत् ॥ १३ ॥ पूर्णिमाऽसूत विरजं विश्वगं च परंतप ॥ देवकुल्यां हरेः पादशौचाद्याऽभूत्सरिद्दिवः ॥ १४ ॥ अत्रेः पत्न्यनसूया त्रीञ्जज्ञे सुयशसः सुतान् ॥ दत्तं दुर्वाससं सोममात्मेशब्रह्मसंभवान् ॥ १५ ॥

दक्षको भगवान् मनुने प्रसूति व्याही, जाकी रचनासे त्रिलोकीमें महान् सर्ग बढो ॥११॥ जो कर्दमजीकी पुत्रियें नौ ब्रह्मऋषियोंकी पत्नियें भई तिनमें प्रसूतिके संतानकी परंपरा मुझसे सुनो ॥ १२ ॥ मरीचिकी पत्नी कर्दमकी बेटी कला कश्यप और पूर्णिमानकों उत्पन्न करतीभई, इन दोनोंसें सब जगत भरगयो ॥ १३ ॥ हे शत्रुतापन ! पूर्णिमा विरज विश्वग उत्पन्न करतेभए, देवकुल्यानाम कन्या भई जो हरिके पादशौचते स्वर्गकी गंगा होती भई ॥१४॥ अत्रिकी स्त्री अनसूया सुंदर यशकर्ता तीन सुत जन्माती भई, जो विष्णु शिव ब्रह्माके अंशसे दत्तात्रेय दूर्वासा सोम नामवाले भए॥१५॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ अब चतुर्थस्कंधको प्रारंभ करै है ॥ परमहंसोंकरकै सब ओरसे जिनके चरणकमलके चैतन्यमकरंदका स्वाद लिया जाता है भक्त जनोंके मनमें निवास करनेहारे श्रीराजाधिराज रामचंद्रजीके अर्थ नमस्कार होय ॥ तहां प्रथम अध्यायमें मनुकन्यानके वंश पृथक् वर्णन करैहै जहां मूर्तियों करकै हरिको जन्म भयोहै, अब या चतुर्थमें इकत्तीस अध्याय करकै विसर्ग वर्णन करै हैं, विसर्ग ईश्वरके आधीन है ॥ ब्रह्मा मन्वादिकोंकरकें होय है ॥ मैत्रेयजी बोले कि मनुजी शतरूपा राणीमें विख्यात आकूति देवहूति प्रसूति तीन कन्या उत्पन्न करतेभए दो पुत्र उत्पन्न करते भए ॥ १॥ यद्यपि आकूतीके भाई था तथापि नृप वे आकूती कन्याके शतरूपाकी सन्मतिसै पुत्रिकाधर्मकी रीतिसे रुचि प्रजापतिको व्याह दी पुत्रिकाधर्म या-

श्रीकृष्णाय नमः ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मनोस्तु शतरूपायां तिस्रः कन्याश्च जज्ञिरे ॥ आकूतिर्देवहूतिश्च प्रसूतिरिति विश्रुताः॥ १॥आकूतिं रुचये प्रादादपि भ्रातृमतीं नृपः॥ पुत्रिकाधर्ममाश्रित्य शतरूपानुमोदितः॥२॥प्रजापतिः स भगवान्रुचिस्तस्यामजीजनत्॥ मिथुनं ब्रह्मवर्चस्वी परमेण समाधिना ॥३॥ यस्तयोः पुरुषः साक्षाद्विष्णुर्यज्ञस्वरूपधृक् ॥ या स्त्री सा दक्षिणा भूतेरंशभूताऽनपायिनी॥४॥ आनिन्ये स्वगृहं पुत्र्याः पुत्रं विततरोचिषम्॥ स्वायंभुवो मुदा युक्तो रुचिर्जग्राह दक्षिणाम् ॥५॥ तां कामयानां भगवानुवाह यजुषां पतिः॥ तुष्टायां तोषमापन्नोऽजनयद्द्वादशात्मजान् ॥ ६ ॥

को नाम है कि विनाभाईकी कन्या सब प्रकार भूषित तुह्मै देऊं हूं, यामें जो प्रथम पुत्र होयगो सो मेरो पुत्र होगो ॥ श्लोक है कि ॥ “ अभ्रातृकां प्रदास्यामि तुभ्यं कन्यामलंकृतां ॥ अस्यां यो जायते पुत्रः स मे पुत्रो भवेदिति ” ॥ २ ॥ ब्रह्मतेजस्वी भगवान् रुचि प्रजापति परम समाधिसे तामें एक जोडा उत्पन्नकरते भए ॥ ३ ॥ जो उन दोनोंमें पुरुष साक्षात् विष्णु यज्ञ स्वरूपधारी है, और स्त्री लक्ष्मीकों अंश अनपायिनी दक्षिणा होती भई ॥ ४ ॥ अपनी पुत्रीके पुत्र महाप्रकाशकको प्रसन्न होय स्वायंभुव मनु अपने घर ले आतेभए रुचि प्रजापति दक्षिणाको राखते भए ॥ ५ ॥ उस काम चाहनेवारीको भगवान् यज्ञपति विवाहते भए और आनन्दयुक्त प्रसन्न होकर उसमें द्वादश पुत्र उत्पन्न करते भए ॥ ६ ॥

दोहा–जिनकी कृपाकटाक्षसे मूक होत वाचाल । श्रीव्रजचन्द्रानंदनिधि मोपर होहु दयाल ॥ करहु दया निज जननपर कृष्णकमलदलनैन । अब चतुर्थ शोधन करहुं रीझहु करुणा ऐन ॥

तीनों देवनकी पूजा करते भए ॥ २४ ॥ कृपाके चितवनसें हसतेभए वदनसें शुश्रूषित और तिनकी कांति करकै मिचेभए नेत्रनकों मसल कर ॥ २५ ॥ दोनों हाथ जोड तिनमें मन लगाय कोमल मधुर सुन्दर वाणी करकै सर्वलोकपूज्यनकी स्तुति करते भए ॥ २६ ॥ अत्रि मुनि बोले कि युग युगमें विश्वकी उत्पत्ति पालन नाश करनेको विभाग कर मायागुणोंकरकै जिनोंने देह धारण की हैं, ऐसे ब्रह्मा विष्णु शिव तीनोंको मैं नमस्कार करूंहूं, तिनमेंसे तुम कौन हो जिनको मैंने बुलाए हैं, सो आपहीमेंसे कोई जने या बातको कहो ॥ २७ ॥ मैंने एक भगवान् विविध प्रकारके

कृपाऽवलोकेन हसद्वदनेनोपलम्भितान्॥ तद्रोचिषा प्रतिहते निमील्य मुनिराक्षिणी॥२५॥चेतस्तत्प्रवणं युञ्जन्नस्तावीत्संहताञ्जलिः ॥ श्लक्ष्णया सूक्तया वाचा सर्वलोकगरीयसः ॥ २६ ॥ अत्रिरुवाच ॥ विश्वोद्भवस्थितिलयेषु विभज्यमानैर्मायागुणैरनुयुगं विगृहीतदेहाः ॥ ते ब्रह्मविष्णुगिरिशाः प्रणतोऽस्म्यहं वस्तेभ्यः क एव भवतां म इहोपहूतः॥२७॥ एको मयेह भगवान्विविधप्रधानैश्चित्तीकृतः प्रजननाय कथं नु यूयम् ॥ अत्रागतास्तनुभृतां मनसोऽपि दूराद् ब्रूत प्रसीदत महानिह विस्मयो मे ॥२८॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति तस्य वचः श्रुत्वा त्रयस्ते विबुधर्षभाः ॥ प्रत्याहुः श्लक्ष्णया वाचा प्रहस्य तमृषिं प्रभो ॥२९॥ देवा ऊचुः ॥ यथा कृतस्ते संकल्पो भाव्यं तेनैव नान्यथा ॥ सत्संकल्पस्य ते ब्रह्मन्यद्वै ध्यायति ते वयम्॥३०॥अथास्मदंशभूतास्त आत्मजा लोकविश्रुताः॥भवितारोऽङ्ग भद्रं ते विस्रप्स्यन्ति च ते यशः॥३१

उपाय पूजाकरकै संतानके लिये चित्तमें धारै, सो यहां शरीर धारियोंकै मनसेभी दूर आप तीनौ देवता आकर प्राप्त हुए सो यह आप कृपाकर कहो मोको महा विस्मय है ॥ २८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि वे तीनों देवश्रेष्ठ ऐसैं तिनको वचन सुन हे प्रभो ! ऐसे कोमल वाणीसें हंसकै ऋषिसें बोलै ॥ ॥ २९ ॥ देवता बोले कि जैसो तुमने संकल्प कीनो हो तैसेई हम आए, और प्रकारसे नहीं, तुम्हारो सत्संकल्प हों तुमने हम सबको ध्यान कीनो है ॥ ३० ॥ यातै हे अंग ! तुम्हारो मंगल होय लोकमें विख्यात तीन पुत्र तुम्हारे होंयगे तुम्हारो यश विस्तार करैंगे[1] ॥ ३१ ॥

---

[1] अत्रि मुनिने ॐकार अक्षरको ब्रह्मा विष्णु शिवरूप जानकर इन्हीको अपना पुत्र हौनेको जप किया इसी कारण देवतौने आकर कहा तुह्मारा संकल्प हमने जाना उसीके निमित्त आये हैं इसी कारण तीनौके अंशसे पुत्र हुए ।

विदुरजी बोले कि हे गुरो! देवनमें श्रेष्ठ उत्पत्ति पालन नाशकर्ता कहा करवेकों अत्रिके घरमें जन्मे सो मोसें कहो ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि सृष्टि रचवेकों ब्रह्माकरकै प्रेरित ब्रह्मवेत्तानमें श्रेष्ठ अत्रि स्त्रीसहित कुलाचलपर ऋक्षनामक तीर्थमें जाय तपमें स्थित होतेभए ॥ १७ ॥ तिस कुलाचलपर पुष्पौंके गुच्छेवारे पलाश और अशोकके वनकी शोभा होरही है और निर्विंध्या नाम नदीके पानीके झरनौंका शब्द चारौंओर हो रहाहै ॥ १८ ॥ प्रणायाम करकै मनकों मुनि सौ वर्षतक लगावते भए, एक पांवसे खडे रहे, सुखदुःख सहे, पवन आहार करकै रहे ॥ १९ ॥ उनकी शरण हूं

विदुर उवाच ॥ अत्रेर्गृहे सुरश्रेष्ठाः स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ॥ किंचिच्चिकीर्षवो जाता एतदाख्याहि मे गुरो ॥ १६ ॥
मैत्रेय उवाच ॥ ब्रह्मणा नोदितः सृष्टावत्रिर्ब्रह्मविदां वरः ॥ सह पत्न्या ययौ ऋक्षं कुलाद्रिं तपसि स्थितः ॥ १७ ॥
तस्मिन्प्रसूनस्तबकपलाशाशोककानने ॥ वार्भिः स्रवद्भिरुद्घुष्टे निर्विन्ध्यायाः समन्ततः ॥ १८ ॥ प्राणायामेन संयम्य
मनो वर्षशतं मुनिः ॥ अतिष्ठदेकपादेन निर्द्वन्द्वोऽनिलभोजनः ॥ १९ ॥ शरणं तं प्रपद्येऽहं य एव जगदीश्वरः ॥ प्रजामात्मसमां मह्यं प्रयच्छत्विति चिन्तयन् ॥ २० ॥ तप्यमानं त्रिभुवनं प्राणायामैधसाऽग्निना ॥ निर्गतेन मुनेर्मूर्ध्नः समीक्ष्य प्रभवस्त्रयः ॥ २१ ॥ अप्सरोमुनिगन्धर्वसिद्धविद्याधरोरगैः ॥ वितायमानयशसस्तदाऽऽश्रमपदं ययुः ॥ २२ ॥
तत्प्रादुर्भावसंयोगविद्योतितमना मुनिः ॥ उत्तिष्ठन्नेकपादेन ददर्श विबुधर्षभान् ॥ २३ ॥ प्रणम्य दण्डवद्भूमावुपतस्थेऽर्हणाञ्जलिः ॥ वृषहंससुपर्णस्थान्स्वैः स्वैश्चिह्नैश्च चिह्नितान् ॥ २४ ॥

जो जगतके ईश्वर हैं, वे अपनीसी संतान आप समान मोकों देवैं, ऐसे चिंतवन करतेभए ॥ २० ॥ मुनिके मस्तकसै जिस समय प्राणायामकी बढी हुई अग्नि निकली तब सब जगत तपायमान होगया तब तीनौ देवता तहां आय ॥ २१ ॥ अप्सरा मुनि गंधर्व सिद्ध विद्याधर सर्पोंकरकै विस्तृत यशवारे वा आश्रमपर आते भए ॥ २२ ॥ तिनके प्रकट होयवेकर विद्योतितमन मुनि एक पांवसे ठाडे होकै देवश्रेष्ठनकों देखते भए ॥ २३ ॥ पुष्पादिक अंजलिमैं लैके भूमिमैं दंडवत् प्रणाम कर वृष हंस गरुडपर बैठे अपने अपने त्रिशूल कमंडलु चक्र चिन्होंसें चिन्हित

ऐसै मनोवांछित वर देकै वे सुरेश्वर जाते भये इन दोनोंने सत्कार कीनो दोनो स्त्री पुरुषके देखते देखते वहांसे गए॥३२॥ब्रह्माके अंशसे सोम भए योगवेत्ता दत्तात्रेयजी विष्णुके अंशसे भए दुर्वासा शंकरके अंशसें भए अब अंगिराकी प्रजा सुनो ॥ ३३ ॥ अंगिराकी श्रद्धा पत्नी सिनीवाली, कुहू,राका, चौथी अनुमति ये चार कन्या उत्पन्न करती भई ॥ ३४ ॥तिनके पुत्र दोदो और हैं, जो स्वायंभुव मन्वंतरमैं विख्यात भए,एक तो साक्षात् भगवान् उतथ्य भए दूसरै ब्रह्मज्ञानी बृहस्पतिजी भए ॥३५॥हविर्भूपत्नीमें पुलस्त्यजी अगस्त्यको उत्पन्न करतेभए, वे अगस्त्यजी और जन्ममैं जठराग्निरूप हुए पुलस्त्यके द्वितीय पुत्र महायशस्वी महातपस्वी विश्रवाजी भये ॥३६॥तिस विश्रवासै यक्षपति देवता कुबेर इडविडाके सुत भए,तिसी विश्रवाकी

एवं कामवरं दत्त्वा प्रतिजग्मुः सुरेश्वराः ॥ सभाजितास्तयोः सम्यग् दम्पत्योर्मिषतोस्ततः ॥ ३२ ॥ सोमोऽभूद् ब्रह्मणोंऽशेन दत्तो विष्णोस्तु योगवित् ॥ दुर्वासाः शंकरस्यांशो निबोधाङ्गिरसः प्रजाः ॥३३॥ श्रद्धा त्वङ्गिरसः पत्नी चतस्रोऽसूत कन्यकाः॥सिनीवाली कुहू राका चतुर्थ्यनुमतिस्तथा॥३४॥तत्पुत्रावपरावास्तां ख्यातौ स्वारोचिषेऽन्तरे॥उतथ्यो भगवान्साक्षाद् ब्रह्मिष्ठश्च बृहस्पतिः ॥ ३५ ॥ पुलस्त्योऽजनयत्पत्न्यामगस्त्यं च हविर्भुवि ॥ सोऽन्यजन्मनि दह्नाग्निर्विश्रवाश्च महातपाः ॥ ३६ ॥ तस्य यक्षपतिर्देवः कुबेरस्त्विडविडासुतः ॥ रावणः कुम्भकर्णश्च तथाऽन्यस्यां विभीषणः ॥३७॥ पुलहस्य गतिर्भार्या त्रीनसूत सती सुतान् ॥ कर्मश्रेष्ठं वरीयांसं सहिष्णुं च महामते ॥३८॥ क्रतोरपि क्रिया भार्या वालखिल्यानसूयत ॥ ऋषीन्षष्टिसहस्राणि ज्वलतो ब्रह्मतेजसा ॥ ३९ ॥

केशिनी भार्यानमें रावण कुंभकर्ण विभीषण होते भए ॥ " इन तीनों नामपर एक दृष्टांत है कि कोई थोडे पढे चतुरपंडित किसी बहुत पढै पंडितके यहां गए, उसने कही कहांसे आए तब वे बोले कथामें राभणकी कथा सुन आएहैं,उन्होंने कही पंडित होके राभण अशुद्ध शब्द बोलते हो, तो वे चतुर बोले कि कुंभकर्ण विभीषण दोनोंके नामको दूसरो अक्षर भ है यासे राभणके नाममैंभी भही बनैहै ताको ये श्लोक है॥ "भकारः कुंभकर्णेस्ति भकारोस्ति विभीषणे । तयोर्भ्रातरि ज्येष्ठे च भकारो न कथं भवेत् ॥१॥"॥३७॥ पुलहको गति भार्या सती तीन पुत्र उत्पन्न करती भई, हे महामते ! कर्मश्रेष्ठ,वरीयांस,सहिष्णु,ये तीनके नाम हैं॥३८॥क्रतुकी क्रिया भार्या ब्रह्मतेजसें प्रकाशित साठ हजार वालखिल्य ऋषीनको उत्पन्न करती भई॥३९॥

हे परंतप! वसिष्ठकी ऊर्जा स्त्रीमें चित्रकेतु आदि सात निर्मल ब्रह्मऋषि उत्पन्न होते भए ॥ ४० ॥ चित्रकेतु, सुरोचि, विरज, मित्र, उल्बण, वसुभृद्यान, द्युमान दूसरीमें शक्ति आदि भये ॥ ४१ ॥ अथर्वणकी चित्तिपत्नी धृतव्रत दधीच अश्वशिरा पुत्र जन्मातीभई, अब मोसे भृगुको वंश सुनो ॥ ४२ ॥ हे महाभाग! ख्याती स्त्रीमें भृगुजी धाता विधाता पुत्रोंकों जन्मावते भए, और भगवत्परायण श्रीजी उत्पन्न करते भए ॥ ४३ ॥ आयति नियति दो बेटी मेरुने उन दोनोकों व्याही, उन दोनोंसे उन दोनोंके मृकंड और प्राण भए ॥ ४४ ॥ मृकंडके मार्कंडेय भए, प्राणके वेदशिरा मुनि

ऊर्जायां जज्ञिरे पुत्रा वसिष्ठस्य परंतप ॥ चित्रकेतुप्रधानास्ते सप्त ब्रह्मर्षयोऽमलाः ॥ ४० ॥ चित्रकेतुः सुरोचिश्च विरजा मित्र एव च॥ उल्बणो वसुभृद्यानो द्युमान् शक्त्यादयोऽपरे ॥ ४१ ॥ चित्तिस्त्वथर्वणः पत्नी लेभे पुत्रं धृतव्रतम् ॥ दध्यञ्चमश्वशिरसं भृगोर्वंशं निबोध मे ॥ ४२ ॥ भृगुः ख्यात्यां महाभाग पत्न्यां पुत्रानजीजनत् ॥ धातारं च विधातारं श्रियं च भगवत्पराम् ॥ ४३ ॥ आयतिं नियतिं चैव सुते मेरुस्तयोरदात् ॥ ताभ्यां तयोरभवतां मृकण्डः प्राण एव च ॥ ४४ ॥ मार्कण्डेयो मृकण्डस्य प्राणाद्वेदशिरा मुनिः ॥ कविश्च भार्गवो यस्य भगवानुशना सुतः ॥ ४५ ॥ त एते मुनयः क्षत्तर्लोकान् सर्गैरभावयन् ॥ एष कर्दमदौहित्रसंतानः कथितस्तव ॥ ४६ ॥ शृण्वतः श्रद्दधानस्य सद्यः पापहरः परः ॥ प्रसूतिं मानवीं दक्ष उपयेमे ह्यजात्मजः ॥४७॥ तस्यां ससर्ज दुहितृः षोडशामललोचनाः ॥ त्रयोदशादाद्धर्माय तथैकामग्नये विभुः ॥ ४८ ॥ पितृभ्य एकां युक्तेभ्यो भवायैकां भवच्छिदे ॥ श्रद्धा मैत्री दया शान्तिस्तुष्टिः पुष्टिः क्रियोन्नतिः ॥ ४९ ॥

भए, कवि भार्गवके भगवान् उशना सुत भए ॥ ४५ ॥ हे विदुर! ये मुनि सृष्टि रचकैं लोकको भरतेभए, ये कर्दमजीके दोहितेको संतान तुमसें कह्यो ॥ ४६ ॥ श्रद्धासे सुने तो शीघ्र पापहारक है, ईश्वरकी प्राप्ति करानेहारा है ब्रह्मसुत दक्ष मनुकी प्रसूतिकों व्याहतेभए ॥ ४७ ॥ तामैं कमलनयनी सोरह कन्या रचते भए तेरह धर्मको व्याही, एक विभूने अग्निको व्याही ॥४८॥ मिलेभए पितरनको एक दई, संसारके आवागमन मिटानेवाले शिवको एक व्याही,श्रद्धा, मैत्री, दया, शांति, तुष्टि, पुष्टि, क्रिया, उन्नति, ॥ ४९ ॥

हे तात! ऐसे देवताननें जब भगवान्की स्तुति कीनी, तब भगवान्ने अपने अवलोकनसे उनपर कृपा की और उनका सत्कार कर गंधमादनपर्वतकों जातेभए ॥ ५८ ॥ सोई ये भगवान् हरिके अंश भूभार नाशके अर्थ यादवकुरुनमें श्रेष्ठ अर्जुनकृष्णावतार होतेभए ॥ तदुक्तं तंत्रे " अर्जुने तु नरावेशः कृष्णो नारायणः स्वयम् " ॥ ५९ ॥ स्वाहाभिमानी अग्नि तीन पुत्रनकों उत्पन्न करतीभई पावक पवमान और हुतभोजन शुचि ये होतेभए ॥ ६० ॥ तिनते पैंतालीस अग्नि भई, वेही पितर पितामहके साथ उनचास भई ॥ ६१ ॥ वैदिक कर्ममैं ब्रह्मवादी जिनका नाम लेकर अग्निदेवता संबंधी इष्टियें किया करतेहैं ॥ ६२ ॥ अग्निष्वात्त बर्हिषद सौम्य पितर आज्यपा यह अग्निसहित हैं अग्निकी पत्नी दाक्षायणी स्वधा भई ॥ ६३ ॥ ॥ तिनमें दो कन्या

एवं सुरगणैस्तात भगवन्तावभिष्टुतौ ॥ लब्धावलोकैर्ययतुरर्चितौ गन्धमादनम् ॥५८॥ ताविमौ वै भगवतो हरेरंशाविहागतौ ॥ भारव्ययाय च भुवः कृष्णौ यदुकुरूद्वहौ ॥५९॥ स्वाहाभिमानिनश्चाग्नेरात्मजांस्त्रीनजीजनत् ॥ पावकं पवमानं च शुचिं च हुतभोजनम् ॥ ६० ॥ तेभ्योऽग्नयः समभवंश्चत्वारिंशच्च पञ्च च ॥ त एवैकोनपञ्चाशत् साकं पितृपितामहैः ॥ ६१ ॥ वैतानिके कर्मणि यन्नामभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ आग्नेय्य इष्टयो यज्ञे निरूप्यन्तेऽग्नयस्तु ते ॥ ६२ ॥ अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सौम्याः पितर आज्यपाः ॥ साऽग्नयोऽनग्नयस्तेषां पत्नी दाक्षायणी स्वधा ॥ ६३ ॥ तेभ्यो दधार कन्ये द्वे वयुनां धारिणीं स्वधा ॥ उभे ते ब्रह्मवादिन्यौ ज्ञानविज्ञानपारगे ॥ ६४ ॥ भवस्य पत्नी तु सती भवं देवमनुव्रता ॥ आत्मनः सदृशं पुत्रं न लेभे गुणशीलतः ॥ ६५ ॥ पितर्यऽप्रतिरूपे स्वे भवायानागसे रुषा ॥ अप्रौढैवात्मनात्मानमजहाद्योगसंयुता॥६६॥इति श्रीभा० चतुर्थस्कन्धे मनुकन्यान्वये नरनारायणावतारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १ ॥

वयुना धारिणी स्वधाने उत्पन्न करी, दोनों ये ब्रह्मवादिनी ही ज्ञानविज्ञानमें परायण भई ॥ ६४ ॥ शिवजीकी पत्नी सती भवकी सेवा करती भई, अपने समान गुण शीलवान् पुत्रको नहीं प्राप्त होतीभई ॥ ६५ ॥ कारण कि शिवजीसे विनाही अपराध दक्ष प्रतिकूल होगये इस कारण रोषसे योग धारण करके कुमार अवस्थामैंही सतीने देह त्यागन कर दिया ॥ ६६ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां चतुर्थस्कंधे मनुकन्यान्वये नरनारायणावतारवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

बुद्धि, मेधा, तितिक्षा, ह्री, मूर्ति, ये धर्मकी पत्नियें हैं, श्रद्धा शुभपुत्र, उत्पन्न करती भई, मैत्री प्रसाद, दया, अभय, सुत जनतीभई ॥ ५० ॥ शांति सुख, तुष्टिके मुद, पुष्टिकें गर्व पुत्र होतोभयो, क्रियाके योग उन्नतिके दर्प, बुद्धि अर्थ सुत उत्पन्न करतीभई ॥ ५१ ॥ मेधा स्मृतिकों, तितिक्षा क्षेमको, ह्रीने प्रश्रय सुत जन्मायो, मूर्तिके यहां सब गुणोंके उत्पादक नरनारायण ऋषी भए ॥ ५२ ॥ जिनके जन्मसें ये विश्व सुंदर सुखी भयो, मन सब दिशा, वायु, सरिता, सब पर्वत, अत्यंत प्रसन्न होतेभए ॥ ५३ ॥ दिव्यनगारे बजे पुष्पोंकी वर्षा भई, प्रसन्न हो मुनि स्तुति करतेभए, गंधर्व किन्नर गायवेलगे ॥ ५४ ॥ देवस्त्रियें नृत्य करवेलगीं, परममंगल होतो भयो, ब्रह्मादिक देवता स्तोत्रनसें स्तुति करते भए ॥ ५५ ॥ देवता बोले कि

बुद्धिर्मेधा तितिक्षा ह्रीर्मूर्तिर्धर्मस्य पत्नयः ॥ श्रद्धाऽसूत शुभं मैत्री प्रसादमभयं दया ॥५०॥ शान्तिः सुखं मुदं
तुष्टिः स्मयं पुष्टिरसूयत ॥ योगं क्रियोन्नतिर्दर्पमर्थं बुद्धिरसूयत ॥ ५१ ॥ मेधा स्मृतिं तितिक्षा तु क्षेमं ह्रीः प्रश्रयं
सुतम् ॥ मूर्तिः सर्वगुणोत्पत्तिर्नरनारायणावृषी ॥ ५२ ॥ ययोर्जन्मन्यदो विश्वमभ्यनन्दत्सुनिर्वृतम् ॥ मनांसि
ककुभो वाताः प्रसेदुः सरितोऽद्रयः ॥ ५३ ॥ दिव्यऽवाद्यन्त तूर्याणि पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥ मुनयस्तुष्टुवुस्तुष्टा जगुर्ग-
न्धर्वकिन्नराः ॥ ५४ ॥ नृत्यन्ति स्म स्त्रियो देव्य आसीत्परममङ्गलम् ॥ देवा ब्रह्मादयः सर्वे उपतस्थुरभिष्टवैः ॥ ५५ ॥
देवा ऊचुः ॥ यो मायया विरचितं निजयाऽऽत्मनीदं खे रूपभेदमिव तत्प्रतिचक्षणाय ॥ एतेन धर्मसदने ऋषिमूर्तिनाऽ-
द्य प्रादुश्चकार पुरुषाय नमः परस्मै ॥५६॥ सोऽयं स्थितिव्यतिकरोपशमाय सृष्टान् सत्त्वेन नः सुरगणाननुमेयतत्त्वः॥
दृश्याददभ्रकरुणेन विलोकनेन यच्छ्रीनिकेतममलं क्षिपताऽरविन्दम् ॥ ५७॥

जो भगवान् अपनी निज मायाकरकै आकाशरूपकी नाई अपनेमें या विश्वकों प्रकाश करवेके लिये धर्मके मंदिरमै आद्यऋषि मूर्तिरूप होय प्रगट भए तिन परमेश्वरके अर्थ नमस्कार होय ॥ ५६ ॥ ये भगवान् जगतकी उत्पत्ति पालन नाशकी मर्यादा रखनेके निमित्त सतोगुणसे निर्माण किये अपने लोगोंके सन्मुख विविध करुणायुक्त और लक्ष्मीके निवासभूत निर्मल कमलसेभी अधिक शोभावाली दृष्टि करकै देखा कि शास्त्रसे जिनके स्वरूपका केवल विचार मात्र बनसक्ता है ॥ ५७ ॥

हे ब्रह्मऋषि हो ! हे देवताहो ! हे अग्निसहित सब जनेहो ! सुनो साधुनको जो चालचलन है सो कहूंहूं, कुछ अज्ञानपनसे वा ईर्षासे नहीं कहताहूं ॥९॥ इन निर्लज्ज शिवनै तो लोकपालोंका यश नाश करदिया कारण कि इस अहंकारीने सत्पुरुषोंके चलाये मार्गको दूषित करदिया ॥ १० ॥ ये मेरे जमाई शिष्यभावकों प्राप्त हैं ब्राह्मण अग्निके सामने गायत्री तुल्य मेरी बेटीको साधुकी नांई पाणिग्रहण करते भए ॥ ११ ॥ यह बांदरसम नेत्रवारे इसने मृगछोरांसम नेत्रवारी मेरी सतीको, पाणिग्रहण करकै उठ उठकर नमस्कार करनेके योग्य मेरा वाणीसैभी सत्कार न किया ॥ १२ ॥ सब क्रियाविहीन अपवित्र मानी सेतु तोडनेहारे अभिमानीको इच्छा न रहनेपरभी मैंने ऐसे अपनी कन्या व्याहदी जैसे कोई शूद्रको वेदवाणी

श्रूयतां ब्रह्मर्षयो मे सहदेवाः सहाग्नयः ॥ साधूनां ब्रुवतो वृत्तं नाज्ञानान्न च मत्सरात् ॥ ९ ॥ अयं तु लोकपालानां यशोघ्नो निरपत्रपः ॥ सद्भिराचरितः पन्था येन स्तब्धेन दूषितः ॥ १० ॥ एष मे शिष्यतां प्राप्तो यन्मे दुहितुरग्रहीत् ॥ पाणिं विप्राग्निमुखतः सावित्र्या इव साधुवत् ॥ ११ ॥ गृहीत्वा मृगशावाक्ष्याः पाणिं मर्कटलोचनः ॥ प्रत्युत्थानाभिवादार्हे वाचाऽप्यकृत नोचितम् ॥ १२ ॥ लुप्तक्रियायाऽशुचये मानिने भिन्नसेतवे ॥ अनिच्छन्नप्यदां बालां शूद्रायेवोशतीं गिरम् ॥ १३ ॥ प्रेतावासेषु घोरेषु प्रेतैर्भूतगणैर्वृतः ॥ अटत्युन्मत्तवन्नग्नो व्युप्तकेशो हसन् रुदन् ॥१४॥ चिताभस्मकृतस्नानः प्रेतस्रङ्न्रस्थिभूषणः ॥ शिवापदेशो ह्यशिवो मत्तो मत्तजनप्रियः ॥ १५ ॥ त्रिपुण्ड्रधृक् त्रिशूली च त्रिनेत्रः सर्पभूषणः ॥ पतिः प्रमथभूतानां तमोमात्रात्मकात्मनाम् ॥ १६ ॥

देदे याको दूसरो ये अर्थ है कि परब्रह्म शिव है, याते सब क्रिया लोपीहै, इनसे शुचि कोई नहीं है अमानी है, सेतु सब राखेहै, इन परमेश्वरके योग्य मेरी मानुषी कन्या नहीं है परंतु शिवसें संबंध होय या लाभसे व्याहीथी जैसे धनलोभसे शूद्रकों कोई वेद सिखावे ॥ १३ ॥ घोर मर्घटमें रहनेहारे प्रेत भूतगण साथ रखनेहारे उन्मत्तकी नांई नंगे वार खोले हंसे रोवैहैं ये सब कथा मात्र है ॥ १४ ॥ चिताकी भस्ममें सदा स्नान करैहै प्रेतनकी रुंडमाला पहिने है, हाडनके गहिने पहिने, नामको शिव मंगलदायक है वैसे अमंगलीक हैं, मतवारे हैं, मत्त जन इन्हें बडे प्रिय हैं॥१५॥ त्रिपुंड्रधारी त्रिशूल लिये

विदुरजी बोले कि शीलवारोंमें श्रेष्ठ शिवमें दुहितृवत्सल दक्षप्रजापति क्यों विद्वेष करतो भयो, अपनी सती बेटीको अनादर किस कारण कियो ॥ १ ॥
चराचरके गुरु सबसे वैररहित शांतदेह आत्माराम जगतके महादेवजीसैं क्यों वैर किया ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन्! जवांई ससुरको वैर कैसे पडगयों,
जासै दुस्त्यज प्राण सतीजीने त्यागे ये कहिये ॥ ३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि पहिले विश्व रचवेवारोंके यज्ञमें वसिष्ठ नारदादि परमऋषि सब देवतानके
गण अपने अनुगामीसहित मुनि अग्नि सब मिलकै इकट्ठे होतेभए ॥ ४ ॥ तहां दक्षप्रजापतिको सूर्यसमान प्रकाशमान कांतिसे अंधकार दूरकरते
हुए उस महा सभामें आते देखा ॥ ५ ॥ उन्हें देख सभासद अपने अपने स्थानोंसें अग्निसहित उठतेभए कारण कि दक्षके प्रकाशसे चित्तमें
आक्षेप होगयो परंतु ब्रह्मा शिव ये दोनों न उंठे[1] ॥ ६ ॥ सब सभासदोंने दक्षको बहुत सत्कार कीनों, लोकगुरु ब्रह्माको प्रणाम कर उनकी आज्ञासें
बैठतो भयो ॥ ७ ॥ अपने आयवेसें पहिले शिवको बैठे देखे उनके किये अनादर न सहसको सो तिर्छे नेत्रकर बोलो मानों सबकों जरायदेगो ॥ ८ ॥

विदुर उवाच ॥ भवे शीलवतां श्रेष्ठे दक्षो दुहितृवत्सलः ॥ विद्वेषमकरोत्कस्मादनादृत्यात्मजां सतीम् ॥ १ ॥ कस्तं
चराचरगुरुं निर्वैरं शान्तविग्रहम् ॥ आत्मारामं कथं द्वेष्टि जगतो दैवतं महत् ॥ २ ॥ एतदाख्याहि मे ब्रह्मञ्जामातुः
श्वशुरस्य च ॥ विद्वेषस्तु यतः प्राणांस्तत्यजे दुस्त्यजान्सती ॥ ३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ पुरा विश्वसृजां सत्रे समेताः
परमर्षयः ॥ तथामरगणाः सर्वे सानुगा मुनयोऽग्नयः ॥ ४ ॥ तत्र प्रविष्टमृषयो दृष्ट्वार्कमिव रोचिषा ॥ भ्राजमानं
वितिमिरं कुर्वन्तं तन्महत् सदः ॥ ५ ॥ उदतिष्ठन् सदस्यास्ते स्वधिष्ण्येभ्यः सहाग्नयः ॥ ऋते विरिञ्चं शर्वं च
तद्भासाक्षिप्तचेतसः ॥ ६ ॥ सदसस्पतिभिर्दक्षो भगवान्साधु सत्कृतः ॥ अजं लोकगुरुं नत्वा निषसाद तदाज्ञया ॥ ७ ॥
प्राङ्निषण्णं मृडं दृष्ट्वा नामृष्यत्तदनादृतः ॥ उवाच वामं चक्षुर्भ्यामभिवीक्ष्य दहन्निव ॥ ८ ॥

---

[1] शिवजीनै उठकर दक्षको इस कारण प्रमाण नहीं किया कि वह उस समय समाधिमें थे दूसरी बात यह थी कि दक्षनै अभिमानसै सबका निरादर किया तब इन्हौंने शिवजीसै प्रार्थना की तब शिवजीने कही हम उसका दर्प चूर्ण करैंगे तब यह विचार आप नहीं उठे कि हमारे न उठनेसै यह द्रोह करैगा तौ इसका अभिमान चूर्ण होजायगा ।

बकरामुख होवै ॥२४॥ विद्या बुद्धि अविद्या कर्ममयीमें ये जड होय, जिन्होंने शिवको अपमान कीनो है वे सदा जन्मै मरै ॥ २५ ॥ पुष्पकी समान केवल मनकोही प्रसन्न करनेवाले वेदवाणीके मोह करनेवाले रोचक वाक्यौंमें मूढ हुए महादेवके द्वेषी केवल कर्ममेंही लगे रहैं ॥२६॥ ब्राह्मण भक्षाभक्ष विचाररहित होय सब जगे खाय, जीविकाके अर्थ विद्या तप व्रत करैं, धन शरीर सुखके अर्थ या जगमें सदा मांगते डोलै याचक बनै॥२७॥द्विजकुलकों ऐसे शाप देते सुन महाकठोर ब्रह्मशाप श्रीभृगुजी देतेभए ॥२८॥ जो कोई शिवके व्रत धारै, जो उनके अनुवर्ती होय चलैं वे पाखंडी होंय सतशास्त्रसे

विद्याबुद्धिरविद्यायां कर्ममय्यामसौ जडः ॥ संसरन्त्विह ये चामुमनु शर्वावमानिनम् ॥ २५ ॥ गिरः श्रुतायाः पुष्पिण्या मधुगन्धेन भूरिणा ॥ मथ्ना चोन्मथितात्मानः संमुह्यन्तु हरद्विषः ॥२६ ॥ सर्वभक्षा द्विजा वृत्त्यै धृतविद्यातपोव्रताः ॥ वित्तदेहेन्द्रियारामा याचका विचरन्त्विह ॥ २७ ॥ तस्यैवं ददतः शापं श्रुत्वा द्विजकुलाय वै ॥ भृगुः प्रत्यसृजच्छापं ब्रह्मदण्डं दुरत्ययम् ॥ २८॥ भवव्रतधरा ये च ये च तान् समनुव्रताः॥पाखण्डिनस्ते भवन्तु सच्छास्त्रपरिपन्थिनः॥ २९ ॥ नष्टशौचा मूढधियो जटाभस्मास्थिधारिणः ॥ विशन्तु शिवदीक्षायां यत्र दैवं सुरासवम् ॥ ३० ॥ ब्रह्म च ब्राह्मणांश्चैव यद्यूयं परिनिन्दथ ॥ सेतुं विधारणं पुंसामतः पाखण्डमाश्रिताः ॥ ३१ ॥ एष एव हि लोकानां शिवः पन्थाः सनातनः ॥ यं पूर्वे चानु संतस्थुर्यत्प्रमाणं जनार्दनः ॥ ३२ ॥ तत् ब्रह्म परमं शुद्धं सतां वर्त्म सनातनम् ॥ विगर्ह्य यात पाखण्डं दैवं वो यत्र भूतराट् ॥ ३३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तस्यैवं ददतः शापं भृगोः स भगवान् भवः ॥ निश्चक्राम ततः किंचिद्विमना इव सानुगः ॥ ३४ ॥

भ्रष्ट होय ॥ २९ ॥ नष्टशौची मूढमति जटाभस्मधारी हाडोंकी माल पहिरे शिवदीक्षामें प्रवेश करैं, जहां मद्य मांसही देवताकी नाई मानै हैं ॥३०॥ पुरुषौंकी मर्यादाके रखनेहारे वेद और ब्राह्मणकी जो तुम निंदा करो हो इस्सै पाखंडको आसरो लेओ ॥ ३१ ॥ सनातनको श्रेष्ठमार्ग लोकनको यही है, यामें पहिलेके लोग स्थित भए यामें जनार्दन प्रमाण है ॥ ३२ ॥ सो वो ब्रह्म परम शुद्ध संतोंको सनातनमार्ग है, याकी तुम निंदा करो हो यासे पाखंडी होओ, जहां भूतराज देवता हैं ॥ ३३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि जब भृगुको शाप देते सुन शिव विमन होकै अनुचरांसहित

तीननेत्रवारे सर्प भूषण करै तमोगुणी प्रमथ भूतनके ये पति हैं ॥ १६ ॥ भूतोंके नाथ शौचत्यागी दुर्हृदय शिवकों ब्रह्माके कहेसे मैने महासूधी सती व्याह दीनी, सो बडो खेद है ॥ १७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि अपने अप्रतिकूल बैठे शिवकों ऐसै निंदाकर क्रोधी दक्ष जलसें आचमन कर शाप देतो भयो ॥ १८ ॥ ये शिव देवतानके यज्ञमैं इंद्र विष्णु देवतानके संगमें भाग न लेने पावे, क्यों कि देवगणोंमें ये अधम हैं, अथवा देवगण यासे अधम है यासें पहिले भाग मिलै साथ नहीं ॥ १९ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! सभासदोंमें जो मुख्य थे उनोंने मनेभी कीनों, तौहू दक्षप्रजापति शिवको शाप देकर वहांसे निकसकै अपने निज घरको चलो आतो भयो ॥ २० ॥ शिवको शाप दिया जान शिवजीके शिपाईयोंमें अग्रणी नंदीश्वर क्रोधित हो दारुण शाप दक्षकों देते भए, जो ब्राह्मण शाप देती विरिया दक्षकी बडाई करते हैं उनेभी शाप देते भए ॥ २१ ॥ जो कोई या दक्षकों शाप देतो देख अद्रोही शिवसें द्रोह करेगो, वो अज्ञानी पृथक् दृष्टिवारो तत्वसें विमुख होय ॥ २२ ॥ छलके धर्मवारे गृहोंमें संसारी सुखकी इच्छा करकै जो आसक्त है वे वेदवादोंमें नष्टबुद्धि होकर कर्मको केवल मुख्य मानै ॥ २३ ॥ देहकों जीवकों ईश्वर मानववारी बुद्धिसे पशुवत् ईश्वरकी गति भूल स्त्रीकामी दक्ष थोडे कालमैं

तस्मा उन्मादनाथाय नष्टशौचाय दुर्हृदे ॥ दत्ता बत मया साध्वी चोदिते परमेष्ठिना ॥१७॥ मैत्रेय उवाच ॥ विनिन्द्यैवं स गिरिशमप्रतीपमवस्थितम् ॥ दक्षोऽथाप उपस्पृश्य क्रुद्धः शप्तुं प्रचक्रमे ॥ १८ ॥ अयं तु देवयजन इन्द्रोपेन्द्रादिभिर्भवः ॥ सहभागं न लभतां देवैर्देवगणाऽधमः ॥ १९ ॥ निषिध्यमानः स सदस्यमुख्यैर्दक्षो गिरित्रायविसृज्य शापम् ॥ तस्माद्विनिष्क्रम्य विवृद्धमन्युर्जगाम कौरव्य निजं निकेतनम् ॥ २० ॥ विज्ञाय शापं गिरिशानुगाग्रणीर्नन्दीश्वरो रोषकषायदूषितः ॥ दक्षाय शापं विससर्ज दारुणं ये चान्वमोदंस्तदवाच्यतां द्विजाः ॥ २१ ॥ य एतन्मर्त्यमुद्दिश्य भगवत्यप्रतिद्रुहि ॥ द्रुह्यत्यज्ञः पृथग्दृष्टिस्तत्त्वतो विमुखो भवेत् ॥ २२ ॥ गृहेषु कूटधर्मेषु सक्तो ग्राम्यसुखेच्छया ॥ कर्मतन्त्रं वितनुते वेदवादविपन्नधीः ॥ २३ ॥ बुद्ध्या पराभिध्यायिन्या विस्मृतात्मगतिः पशुः ॥ स्त्रीकामः सोऽस्त्वतितरां दक्षो बस्तमुखोऽचिरात् ॥ २४ ॥

सतीजी बोली कि हे वाम शिव ! आपके प्रजापति ससुरेके यहां यज्ञको महाउत्सव प्रारंभ है, हमभी वहां जांयगी, जहां ये सब देवता जांयहैं ॥ ८ ॥ ता यज्ञमें अपने पति सहित निश्चय सुहृद् देखवेकी इच्छा कर मेरी बहिनें जांयगी, मैंभी आपसहित वहांकी पूजा लेवेको चलवेकी कामना करूंहूं (१) ॥ ९ ॥ तहां निश्चय है कि भर्ता सहित फूफी स्नेहबुद्धिवारी माको देखैगी, हे मृड ! बहुत कालसें उत्कंठा है सो महाऋषियोंकरके करेभए यज्ञध्वजाको देखूंगी ॥ १० ॥ यद्यपि ये आश्चर्यमय आपकी मायासे निर्मित त्रिगुणात्मक जगत तुह्मारेमैं प्रकाश करैहै तथापि हे

सत्युवाच ॥ प्रजापतेस्ते श्वशुरस्य साम्प्रतं निर्यापितो यज्ञमहोत्सवः किल ॥ वयं च तत्राभिसराम वाम ते यद्यर्थिताऽमी विबुधा व्रजन्ति हि ॥ ८ ॥ तस्मिन्भगिन्यो मम भर्तृभिः स्वकैर्ध्रुवं गमिष्यन्ति सुहृद्दिदृक्षवः ॥ अहं च तस्मिन्भवताभिकामये सहोपनीतं परिबर्हमर्हितुम् ॥ ९ ॥ तत्र स्वसॄर्मे ननु भर्तृसंमिता मातृष्वसॄः क्लिन्नधियं च मातरम् ॥ द्रक्ष्ये चिरोत्कण्ठमना: सहर्षिभिरुन्नीयमानं च मृडाध्वरध्वजम् ॥ १० ॥ त्वय्येतदाश्चर्यमजात्ममायया विनिर्मितं भाति गुणत्रयात्मकम् ॥ तथाऽप्यहं योषिदतत्त्वविच्च ते दीना दिदृक्षे भव मे भवक्षितिम् ॥ ११ ॥ पश्य प्रयान्तीरभवान्ययोषितोऽत्यलंकृताः कान्तसखा वरूथशः ॥ यासां व्रजद्भिः शितिकण्ठ मण्डितं नभो विमानैः कलहंसपाण्डुभिः ॥ १२ ॥ कथं सुतायाः पितृगेहकौतुकं निशम्य देहः सुरवर्य नेङ्गते ॥ अनाहुता अप्यभियन्ति सौहृदं भर्तुर्गुरोर्देहकृतश्च केतनम् ॥ १३ ॥ तन्मे प्रसीदेदममर्त्य वाञ्छितं कर्तुं भवान्कारुणिको बताहंति ॥ त्वयात्मनोऽर्धेऽहमदभ्रचक्षुषा निरूपिता माऽनुगृहाण याचितः ॥ १४ ॥

अज ! मैं स्त्री दीन तुह्मारे तत्त्वकी न जाननेवारी अपनी जन्मभूमि देखूंगी सो तुम चलो ॥ ११ ॥ हे संसारनिवर्तक ! हे शितिकंठ ! औरभी पति सखावारी स्त्रियें जांय हैं उन्हें देखो मनोहर हंसवत् श्वेत विमानोंपर बैठकै जाती हैं, जिनके समूहोंसे आकाश शोभित है ॥ १२ ॥ हे सुरवर्य ! पिताके घरके कौतुक सुन वेटीको देह कैसे चलायमान न होयहै, पतिके गुरुके पिताके सुहृत्संबंधी घरपर विना बुलाएभी जांयहै, तौभी कुछ दोष नहीं है ॥ १३ ॥ हे मरणधर्मरहित ! सो मेरे ऊपर प्रसन्न होओ मेरी मनोवांछाको आप पू-

---

१ दोहा–पिताभवन उत्सव परम जो प्रभु आयसु होय । तौ मैं जाऊं कृपायतन सादर देखन सोय ॥

वहांसे चलै जातभए ॥ ३४ ॥ हे विदुर ! वेभी विश्व रचवेवारे सहस्त्र वर्षको यज्ञकर सर्व श्रेष्ठ पूज्य हरिकों पूजते भए ॥ ३५ ॥ गंगायमुनाकै संगममें यज्ञांतस्नानकर निर्मल आत्माकर अपने अपने धामकौं जातेभए ॥ ३६ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषा॰ चतुर्थस्कंधे दक्षशापवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ मैत्रेयजी बोले कि सदा ऐसे वैर करते स्थित रहे श्वशुर जमाईको महाकाल व्यतीत भयो ॥ १ ॥ परमेष्ठी ब्रह्माने जब सब प्रजापतिनके आधिपत्यमें दक्षको अभिषेक कीनो, तो याकों बडो गर्व भयो ॥ २ ॥ सो दक्ष वाजपेय यज्ञ कर ब्रह्मवादियौंका

तेऽपि विश्वसृजः सत्रं सहस्त्रपरिवत्सरान् ॥ संविधाय महेष्वास यत्रेज्य ऋषभो हरिः॥ ३५ ॥ आप्लुत्यावभृथं यत्र गङ्गा यमुनयाऽन्विता ॥ विरजेनात्मना सर्वे स्वं स्वं धाम ययुस्ततः ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे दक्षशापवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सदा विद्विषतोरेवं कालो वै ध्रियमाणयोः ॥ जामातुः श्वशुरस्यापि सुमहानतिचक्रमे ॥ १॥ यदाभिषिक्तो दक्षस्तु ब्रह्मणा परमेष्ठिना ॥ प्रजापतीनां सर्वेषामाधिपत्ये स्म योऽभवत् ॥ २ ॥ इष्ट्वा स वाजपेयेन ब्रह्मिष्ठानभिभूय च॥बृहस्पतिसवं नाम समारेभे क्रतूत्तमम्॥३॥तस्मिन् ब्रह्मर्षयः सर्वे देवर्षिपितृदेवताः॥ आसन् कृतस्वस्त्ययनास्तत्पत्न्यश्च सभर्तृकाः ॥ ४॥ तदुपश्रुत्य नभसि खेचराणां प्रजल्पताम् ॥ सती दाक्षायणी देवी पितुर्यज्ञमहोत्सवम्॥५॥ व्रजतीः सर्वतो दिग्भ्य उपदेववरस्त्रियः ॥ विमानयानाः सप्रेष्ठा निष्ककण्ठीः सुवाससः॥ ६ ॥ दृष्ट्वा स्वनिलयाभ्याशे लोलाक्षीर्मृष्टकुण्डलाः ॥ पतिं भूतपतिं देवमौत्सुक्यादभ्यभाषत ॥ ७ ॥

तिरस्कार कर सब यज्ञोंमें उत्तम बृहस्पतिनामक यज्ञ करतोभयो ॥ ३ ॥ वा यज्ञमैं सब ब्रह्मर्षि देवर्षि पितर देवता सिंगारकरी अपनी स्त्रियोंको संग लेकर आये ॥ ४ ॥ सती दाक्षायणी देवी पिताके यज्ञको महोत्सव परस्पर बातें करते आकाशमार्गमें जाते देवताओंके मुखसै सुनतीभई ॥ ५ ॥ सब दिशानसें देववरकी स्त्रियें विमानपै बैठी प्यारोंको लिये पदक कंठमें पहिने सुंदर वस्त्र धारै जायरहीहैं ॥ ६ ॥ अपने स्थानके समीप उज्ज्वल कुंडल धारणकिये चंचलनेत्रवारी उन देवताओंकी स्त्रियौंको जाते देख सती बडे प्यारसे भूतपति शिवसों बोली ॥ ७ ॥

अहंकार रहित पुरुषोंकी निर्मल कीर्ति और यश देखकर मनमें दाह होनेसे आतुर चित्तवारे पुरुष उनके उत्तम अधिकारपर तौ पहुच नहीं सक्के केवल द्वेष किया करते हैं जैसे राक्षस हरिसें वैर करै है ॥ २१ ॥ हे सुमध्यमे ! अपनेसे बडेकूं देख खडो होनो नम्र होनो प्रणाम करनो ये आपसमें जो सब लोग करे हैं सर्वांतर्यामी परपुरुष गुहाशय ईश्वरको मान करै है, कछु देहमानीकौ नहीं, सो हम वासमै ऐसे करते रहै ॥ २२ ॥ विशुद्ध शुद्ध अंतःकरणको नाम है कारण कि ऐसे अन्तःकरणसे नारायणकी स्पष्ट प्रतीति होय हैं इस कारण ऐसे अन्तःकरणमेंही इन्द्रियोंसे अगोचर भगवान वासुदेवको मैं नमस्कारद्वारा सेवन करूंहूं ॥ व्युत्पत्ति ये है कि " वसंति भूतान्यस्मिन्निति वासुः दीव्यतीति देवः वासुश्चासौ देवश्च वासुदेवः । अथवा वसुभिः पुण्यैर्दीव्यतीति वासुदेवः " ॥ २३ ॥ हे वरोरु ! तुह्मारो देहकर्ता पिता मेरो द्रोही तुह्में देखवे योग्य नहीं है, ताके अनुचरभी सब मोसे वैर करैं हैं जो दक्ष विश्व रचवेवारोंके यज्ञमें निरपराधी मोको दुर्वचनसे तिरस्कार करतो भयो ॥ २४ ॥ जो मेरे वचनकों उल्लंघन कर तुम जाओगी तौ तुह्मारो कल्याण न होयगो, क्यों कि अतिप्रशंसितको अपने सुजनोंसे तिरस्कार सदा मरणके बरावर होयहै ॥ २५ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां चतु० उमारुद्रसंवादवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि श्रीपत्नीके अंगको नाश दोऊ ओरसे चिंतवन कर शिवशं-

पापच्यमानेन हृदातुरेन्द्रियः समृद्धिभिः पूरुषबुद्धिसाक्षिणाम् ॥ अकल्प एषामधिरोढुमञ्जसा पदं परं द्वेष्टि यथाऽसुरा हरिम् ॥ २१ ॥ प्रत्युद्गमप्रश्रयणाभिवादनं विधीयते साधु मिथः सुमध्यमे ॥ प्राज्ञैः परस्मै पुरुषाय चेतसा गुहाशयायैव न देहमानिने ॥ २२ ॥ सत्त्वं विशुद्धं वसुदेवशब्दितं यदीयते तत्र पुमानपावृतः ॥ सत्त्वे च तस्मिन् भगवान्वासुदेवो ह्यधोऽक्षजो मे नमसा विधीयते ॥ २३ ॥ तत्ते निरीक्ष्यो न पिताऽपि देहकृद्दक्षो मम द्विट् तदनुव्रताश्च ये ॥ यो विश्वसृग्यज्ञगतं वरोरु मामनागसं दुर्वचसाऽकरोत्तिरः ॥ २४ ॥ यदि व्रजिष्यस्यतिहाय मद्वचो भद्रं भवत्या न ततो भविष्यति ॥ संभावितस्य स्वजनात्पराभवो यदा स सद्यो मरणाय कल्पते ॥ २५ ॥ इति श्रीभा० महापु० चतुर्थ० उमारुद्रसंवादे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एतावदुक्त्वा विरराम शंकरः पत्न्यङ्गनाशं ह्युभयत्र चिन्तयन् ॥ सुहृद्दिदृक्षुः परिशङ्किता भवान्निष्क्रामती निर्विशती द्विधाऽऽस सा ॥ १ ॥

री करवेको योग्य हो, आपने मोको अपने अर्द्धांगमें दिव्य चक्षुकरके धारणकरी है, सो मैं प्रार्थना करूंहूं तुम मोपर अनुग्रह करो ॥ १४ ॥ श्रीशुकाचार्य बोले कि ऐसे शिवजोसे प्रिया बोली, तब सुहृदप्रिय शिवजी हंसकै बोले, और विश्व रचवेवारोंके सामने कहे मर्मभेदी कुत्सित दक्षके कहे वचनरूपी बाण सब स्मरण करतेभए ॥ १५ ॥ श्रीमहादेवजी बोले कि हे शोभने ! तुह्मारी कही ठीक है कि विना बुलाएबी बंधुओंके यहां जानो, जो वे बली अपने मदके क्रोधसे दोषदृष्टि उत्पन्न न करैं तौ जायवो योग्य है ॥ १६ ॥ विद्या तप धन शरीर अवस्था कुल ये छैः संतोंके गुण जब असत्तम अतिधूर्तोंकरकै प्रेरित होयहैं, तब बुद्धि हत होजायहै, अधिकमान बढ जायहै, तब गर्वीलोग बडोंके धामकों नहीं देखैंहैं ॥ १७ ॥

ऋषिरुवाच ॥ एवं गिरित्रः प्रिययाऽभिभाषितः प्रत्यभ्यधत्त प्रहसन्सुहृत्प्रियः ॥ संस्मारितो मर्मभिदः कुवागिषून् यानाह को विश्वसृजां समक्षतः ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्वयोदितं शोभनमेव शोभने अनाहुता अप्यभियन्ति बन्धुषु ॥ ते यद्यनुत्पादितदोषदृष्टयो बलीयसाऽनात्म्यमदेन मन्युना ॥ १६ ॥ विद्यातपोवित्तवपुर्वयःकुलैः सतां गुणैः षड्भिरसत्तमेरितैः ॥ स्मृतौ हतायां भृतमानदुर्दृशः स्तब्धा न पश्यन्ति हि धाम भूयसाम् ॥ १७ ॥ नैतादृशानां स्वजनव्यपेक्षया गृहान्प्रतीयादनवस्थितात्मनाम् ॥ येऽभ्यागतान् वक्राधियाऽभिचक्षते आरोपितभ्रूभिरमर्षणाक्षिभिः ॥ १८ ॥ तथाऽरिभिर्न व्यथते शिलीमुखैः शेतेऽर्दिताङ्गो हृदयेन दूयता ॥ स्वानां यथा वक्रधियां दुरुक्तिभिर्दिवानिशं तप्यति मर्मताडितः ॥ १९ ॥ व्यक्तं त्वमुत्कृष्टगतेः प्रजापतेः प्रियात्मजानामसि सुभ्रु संमता ॥ अथापि मानं न पितुः प्रपत्स्यसे मदाश्रयात्कः परितप्यते यतः ॥ २० ॥

असावधान चित्तवारौंको संबंधी समझकर उनके घरकी ओरभी न देखैं कारण कि वे लोग घर आएनको टेढी बुद्धि भ्रुकुटी चढी ऐसी क्रोधदृष्टीसे देखै हैं ॥ १८ ॥ तैसो शत्रुकरके मारे बाणोंसे पीडितांग दुःखी हो सोयोभयो व्यथाको नहीं प्राप्त होयहै, जैसो अपने कुटुंबकेनकी टेढी बुद्धियोंके दुर्वचनोंसें पीडित मर्ममें ताडित दिनरात तपैहैं ॥ १९ ॥ हे सुभ्रु ! ये सत्य है कि दक्षकी प्यारी बेटीनमें तुम बहुत प्यारी मानी हों, तथापि पितासें मान नहीं प्राप्त होगो, मोसे दक्षप्रजापति दुःख मानैहै ॥ २० ॥

वा यज्ञमें रुद्रभाग न देख पितासे समर्थ शिवका[1] अनादर किया जान सती सभासदौंको क्रोधसे ऐसे देखनेलगी मानों इन भस्म करदेगी ॥ ९ ॥ वह देवी सती शिवजीके तिरस्कार होनेसै दक्षके मारनेको उठेहुए भूतगणोंकों अपने तेजसै निवारण कर शिवसै वैर करनेहारे कर्ममार्गके अभ्याससै अभिमानी दक्षके सबके सुन्ते रोषकर प्रगट ही धिक्कार देनेलगी ॥ १० ॥ श्रीसतीजी बोली कि सब देहधारिनके प्रिय आत्मा शिवजीको लोकमें न कोई बडो है, न शत्रु है जो समस्तके आत्मा होकर काउसे वैर नहीं करते तिनमें तुमारे बिना कौन वैर करैगो ॥ ११ ॥ हे द्विज ! तुम समान निन्दक असाधु पुरुष दूसरौंके गुणोंमेंसे दोषही लेते हैं और कितने एक मध्यस्थ ज्ञानसै गुण दोष ग्रहण करतेहैं और जो दोष नहीं लेते वे महान

अरुद्रभागं तमवेक्ष्य चाध्वरं पित्रा च देवे कृतहेलनं विभौ ॥ अनादृता यज्ञसदस्यधीश्वरी चुकोप लोकानिव धक्ष्यती रुषा ॥ ९ ॥ जगर्ह साऽमर्षविपन्नया गिरा शिवद्विषं धूमपथश्रमस्मयम् ॥ स्वतेजसा भूतगणान्समुत्थितान्निगृह्य देवी जगतोऽभिशृण्वतः ॥ १० ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ न यस्य लोकेऽस्त्यतिशायिनः प्रियस्तथाऽप्रियो देहभृतां प्रियात्मनः ॥ तस्मिन्समस्तात्मनि मुक्तवैरके ऋते भवन्तं कतमः प्रतीपयेत् ॥ ११ ॥ दोषान्परेषां हि गुणेष्वसाधवो गृह्णन्ति केचिन्न भवादृशा द्विज ॥ गुणांश्च फल्गून्बहुलीकरिष्णवो महत्तमास्तेष्वविदद्भवानघम् ॥ १२ ॥ नाश्चर्यमेतद्यदसत्सु सर्वदा महद्विनिन्दा कुणपात्मवादिषु॥सेर्ष्यं महापूरुषपादपांसुभिर्निरस्ततेजस्सु तदेव शोभनम्॥ १३ ॥यदद्व्यक्षरं नाम गिरेरितं नृणां सकृत्प्रसङ्गादघमाशु हन्ति तत्॥पवित्रकीर्तिं तमलङ्घ्यशासनं भवानहो द्वेष्टि शिवं शिवेतरः॥ १४॥

कहे जाते हैं यही साधु है केवल गुणही ग्रहण करनेहारे महत्तम हैं जो दोषौंका स्वीकार नहीं करते और थोडे गुणौंको बहुत मान्ते हैं ऐसे महात्माका तैंने अपराध किया है ॥ १२ ॥ शरीरमें जीवको मानवेवारे असत पुरुष सदा महात्मानकी निंदा करैं तौ ये आश्चर्य नहीं है, कारण कि ईर्षा करनेसे महापुरुषके चरणोंकी रजसे उनके तेज दूर होगये हैं उन्हें यही उचित है ॥ १३ ॥ जो शिव ये दो अक्षरनाम वाणीसे कहै, तो मनुष्योंके सब पापोंको नाश करैहै जिनकी आज्ञाको कोई उल्लंघन नहीं करसकता उन पवित्रकीर्ति शिवका द्वेष करते हो इससे तुम अमंगलरूप हो ॥ १४ ॥

---

[1] दक्षने अपने यज्ञके स्तंभमें विज्ञापन लगा दियाथा कि जो कोई शिवका नाम उच्चारण करैगा वह चाहै ब्रह्माभी हौ यज्ञसै निकाल दिया जायगा यही देख सतीको क्रोध हुआ।

कर ऐसे कहि चुप्प भए, पिताके देखवेकी इच्छा कर शंकित हो सती कभी शिवके समीपसें बाहर आवै कभी भीतर चलीजाय ऐसे दुब्धामें पड़गई ॥१॥ सुहृदोंकी देखवेके इच्छा नाशसै दुर्मन हो स्नेहसे रोती आंसूं बहाती अति विह्वल कांपतीभई जिनके समान कोई दूसरा नहीं ऐसे शिवको रोषसै भस्म करनेके समान देखनेलगी ॥ २ ॥ तहांते स्वांस लेती निकसकै शिवको त्याग, शोकरोषसे व्यथितहृदय हो स्त्रीस्वभावसें विमूढ बुद्धि, प्रेमसे जिन्होंने अपनो अर्द्धांग दीनो उन संतोंके प्यारे शिवसें विदा होय पिताके घरको जाती भई ॥ ३ ॥ शीघ्र जायवेवारी एक सतीके पीछे त्रिनेत्रके अनुचर हजारों पार्षद यक्ष मणिमन्मदादिक वृषेंद्रको आगे करे शीघ्रतासे व्यथा दूर कर जाते भए ॥ ४ ॥ मैना गैंद दर्पण कमल सुपेत छत्र पंखा

सुहृद्दिदृक्षाप्रतिघातदुर्मनाः स्नेहाद्रुदन्त्यश्रुकलाऽतिविह्वला ॥ भवं भवान्यप्रतिपूरुषं रुषा प्रधक्ष्यतीवैक्षत जातवेपथुः ॥ २ ॥ ततो विनिःश्वस्य सती विहाय तं शोकेन रोषेण च दूयता हृदा ॥ पित्रोरगात्स्त्रैणविमूढधीर्गृहान् प्रेम्णात्मनो योऽर्धमदात्सतां प्रियः ॥ ३ ॥ तामन्वगच्छन्द्रुतविक्रमां सतीमेकां त्रिनेत्रानुचराः सहस्रशः ॥ सपार्षदयक्षा मणिमन्मदादयः पुरोवृषेन्द्रास्तरसा गतव्यथाः ॥४॥ तां सारिकाकन्दुकदर्पणाम्बुजश्वेतातपत्रव्यजनस्रगादिभिः ॥ गीतायनैर्दुन्दुभिशङ्खवेणुभिर्वृषेन्द्रमारोप्य विटङ्किता ययुः ॥ ५ ॥ आब्रह्मघोषोर्जितयज्ञवैशसं विप्रर्षिजुष्टं विबुधैश्च सर्वशः ॥मृद्दार्वयःकाञ्चनदर्भचर्मभिर्निसृष्टभाण्डं यजनं समाविशत् ॥६॥ तामागतां तत्र न कश्चनाऽऽद्रियद्विमानितां यज्ञकृतो भयाज्जनः ॥ ऋते स्वसॄर्वै जननीं च सादराः प्रेमाश्रुकण्ठ्यः परिषस्वजुर्मुदा ॥७॥ सोदर्यसंप्रश्नसमर्थवार्त्तया मात्रा च मातृष्वसृभिश्च सादरम् ॥ दत्तां सपर्यां वरमासनं च सा नादत्त पित्राऽप्रतिनन्दिता सती ॥ ८ ॥

माला आदि लिये गाते भए नगारे शंख वांसुरी लिये सतीको बैलपर बैठाय प्रसन्न होयकर चले ॥ ५ ॥ सबओर वेदध्वनिसे जहां पशु यज्ञकी शोभा बढी है सब ओरसें ब्राह्मण ऋषि देवता साधोंसे परिपूर्ण काष्ठ माटी लोहा सुवर्ण कुश चामके बनाए भए भांडे जहां धरेहैं उस यज्ञशालामें सती प्रवेश करती हुई ॥ ६ ॥ वा आई भईको वहां काऊने दक्षके डरसै आदर न कीनो एक मा बहनतो आदरसे प्रेमके आंशु भर आनंदसे मिली॥७॥ बहनोंकी क्षेम समर्थ वार्तासे मातासे, माकी बेहनोसै बडे आदरपूर्वक आसन सत्कार पाई हुई सती पिताके सत्कार न करनेसै अतिआनंद न भई॥८॥

---

१ पिता भवन जब गई भवानी, दक्षत्रास काहुन सन्मानी । सादर भलेही मिली एक माता, जननी मिली बहुत मुसकाता ॥

सब वेदमें बहुत विचारकै कहाहै रागी अधिकारीको प्रवृत्तिकर्म करना विरक्तको निवृत्ति कर्म करना उचित है और इन कर्मोंको एक साथ करनेसे विरोध पड़ता है परब्रह्म शिवजीमैं तौ दोनों कर्मोंका काम नहीं ॥ २० ॥ हे पितः ! जो पदवी हमकों प्राप्त हैं. वे तुम्हें न मिलैगी, उस पदवीकूं अन्न खावेहारे प्राणपोषी यज्ञशालामें हवनके धूममार्गसे नहीं प्राप्त होते, हमारी पदवी ऐसी है कि जिसकी अप्रगट चिन्ह अवधूत सेवा करैं हैं ॥ २१ ॥ शिवापराधी तुमसे उत्पन्न कुत्सितजन्मके या देहसे घूर्ण मुझै तुमसरीखे दुर्जनसे लाज आवै है, वो जन्म धिक्कार है जो महात्मानकी निंदा करै ॥२२॥ भगवान् शिव वृषध्वजी हांसीमें कभी 'हे दाक्षायणी' ये गोत्र उचारेंगै तौ मेरो महादुर्मन होगो, सो यह नर्म मुसकान शीघ्र दूर करूंगी, तेरेसे जन्म्यो

मा वः पदव्यः पितरस्मदास्थिता या यज्ञशालासु न धूमवर्त्मभिः ॥ तदन्नतृप्तैरसुभृद्भिरीडिता अव्यक्तलिङ्गा अवधूतसेविताः ॥२१॥ नैतेन देहेन हरे कृतागसो देहोद्भवेनालमलं कुजन्मना ॥ व्रीडा ममाभूत्कुजनप्रसङ्गतस्तज्जन्म धिग्यो महतामवद्यकृत् ॥ २२ ॥ गोत्रं त्वदीयं भगवान् वृषध्वजो दाक्षायणीत्याह यदा सुदुर्मनाः ॥ व्यपेतनर्मस्मितमाशु तद्ध्यहं व्युत्स्रक्ष्य एतत्कुणपं त्वदङ्गजम् ॥ २३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यध्वरे दक्षमनूद्य शत्रुहन्क्षितावुदीचीं निषसाद शान्तवाक् ॥ स्पृष्ट्वा जलं पीतदुकूलसंवृता निमील्य दृग्योगपथं समाविशत् ॥ २४ ॥ कृत्वा समानावनिलौ जितासना सोदानमुत्थाप्य च नाभिचक्रतः ॥ शनैर्हृदि स्थाप्य धियोरसि स्थितं कण्ठाद् भ्रुवोर्मध्यमनिन्दिताऽनयत् ॥ २५ ॥ एवं स्वदेहं महतां महीयसा मुहुः समारोपितमङ्कमादरात् ॥ जिहासती दक्षरुषा मनस्विनी दधार गात्रेष्वनिलाग्निधारणाम् ॥ २६ ॥

ये अंग त्याग करूंगी ॥ २३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि हे शत्रुहन् ! ऐसे दक्षसे कहि शांत वाणी हो उत्तरको मुखकर बैठ आचमन कर पीताम्बर धारे नेत्र मूंद सती योगमार्गको अनुसंधान करती भई ॥ २४ ॥ आसन जीतकर प्राण अपानकों बराबर कर नाभिचक्रमें उदानवायुको उठाय बुद्धिसे हृदयमें स्थितकर अनिंदित होय कंठसे भ्रुकुटिके मध्यमें प्राप्त करती भई ॥ २५ ॥ महाबडोंमें बडे शिवजीने जाको आदरसें गोदीमें राख्यो, ऐसें अपने वा देहको त्यागती दक्ष प्रजापतिपर रोषकर मनस्विनी सती अपने देहमें पवन अग्निको धारण करतीभई ॥ २६ ॥

"शिवे शिव रटत संकट कटत दुख सब हटत वैरी घटत वहां नित मालबटत जब शिवाशिव नटत " जिनके चरणकमल ब्रह्मरस मदकी चाहवारोंके मनरूप भ्रमरोंकरके सेवित, लोकके सब अर्थ चाहनेवारोंको आशीर्वाद वर्षनेहारे विश्वके बंधुसे आप द्वेष करोहो ॥ १५ ॥ तुमारे सिवाय क्या ब्रह्मादिक शिवको नहीं जान्तेहैं, क्योंकि श्मशानमें जटा फैलाय मसानकी माल्य भस्म और मनुष्योंके कपालोंकी माला धारें पिशाचोंमें वसें हैं, तोहू उनके चरणकी रज ब्रह्मादिक मस्तकमें धारें हैं वे अमंगलरूप होनेपरभी शिव है ॥ १६ ॥ धर्मरक्षकके सन्मुख निरंकुश होकर जो शिवादिकी निंदा करें जो वा निंदकको मारवेको समर्थ न होय तो, कान मूंदकर वहांसे चला जाय समर्थ होय तो बलपूर्वक उसकी निन्दा करनेहारी कुत्सित जिव्हाको काटै, जो न काट सकै तो प्राणत्याग करै ॥ १७ ॥ याते तोते उत्पन्न ये देह मैं न राखूंगी, कारण कि तू शिवनिंदक है, जो कोई अन्न मोहसें खाय लियो है तो वा अन्नको उच्छार करनो यही विशुद्धि है; वो अन्न निंद्य है ॥ १८ ॥ अपने धर्ममें रहिवेवारे महामुनिकी मति वेदके विधिनिषेध वाक्योंमें नहीं वर्तै है, जैसे देवता मनुष्योंकी गति पृथक् है, ऐसे प्रवृत्ति निवृत्ति लक्षण धर्ममें स्थित जीवको परधर्म वा पर पुरुषकी निंदा करनी उचित नहीं ॥ १९ ॥ प्रवृत्तिकर्म अग्निहोत्रादि निवृत्तिकर्म शमदमादि और सत्य बोलनो रागवैराग्य दोनों चिन्हको आसरो करनो ये

यत्पादपद्मं महतां मनोऽलिभिर्निषेवितं ब्रह्मरसासवार्थिभिः ॥ लोकस्य यद्वर्षति चाशिषोऽर्थिनस्तस्मै भवान्द्रुह्यति विश्वबन्धवे ॥ १५ ॥ किंवा शिवाख्यमशिवं न विदुस्त्वदन्ये ब्रह्मादयस्तमवकीर्य जटाः श्मशाने ॥ तन्माल्यभस्मनृकपाल्यऽवसत्पिशाचैर्ये मूर्धभिर्दधति तच्चरणावसृष्टम् ॥ १६ ॥ कर्णौ पिधाय निरयाद्यदकल्प ईशे धर्मावितर्यसृणिभिर्नृभिरस्यमाने ॥ छिन्द्यात्प्रसह्य रुशतीमसतीं प्रभुश्चेज्जिह्वामसूनपि ततो विसृजेत्स धर्मः ॥१७॥ अतस्तवोत्पन्नमिदं कलेवरं न धारयिष्ये शितिकण्ठगर्हिणः ॥ जग्धस्य मोहाद्धि विशुद्धिमन्धसो जुगुप्सितस्योद्धरणं प्रचक्षते ॥ १८ ॥ न वेदवादाननुवर्तते मतिः स्व एव लोके रमतो महामुनेः ॥ यथा गतिर्देवमनुष्ययोः पृथक् स्व एव धर्मे न परं क्षिपेत्स्थितः ॥ १९ ॥ कर्म प्रवृत्तं च निवृत्तमप्यृतं वेदे विविच्योभयलिङ्गमाश्रितम् ॥ विरोधि, तद्यौगपदैककर्तरि द्वयं तथा ब्रह्माणि कर्म नर्च्छति ॥ २० ॥

लकडी हाथमें लिये सुंदर ब्रह्मतेजसे बढेमें शिव कैसे विधे को मारते भये जिससे वे सब प्रमथ गुह्यक शिवके पार्षद सब दिशानकूं भाग तयोर्दास। ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवतभा० चतुर्थस्कंधे सतीदेहत्यागो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि दक्षप्रजापतिकी तिरस्कार करी भवानीको नाश शिवजी नारदसे सुनकर, और अपनी पार्षदोंकी सेना वा यज्ञके ऋभुनामक देवनसे भगाई सुन शंकरको महाक्रोध आयो ॥ १ ॥ क्रोधकर दांतोंसे होठके पुट दबाय धूर्जटी रुद्र झट उठकर हंसे, और गंभीर नादकर विजुरीकी अग्नि समान वारनकी उग्रकांतिवारी जटाकों भूमिमें उखाडकर पटकतेभये ॥ २ ॥ तब बडो देहधारी शरीरसे स्वर्गतक लंबो, सहस्रबाहु मेघसमान वर्ण, तीन सूर्यसमान नेत्र, कराल डाढा

तैरलातायुधैः सर्वे प्रमथाः सहगुह्यकाः ॥ हन्यमाना दिशो भेजुरुशद्भिर्ब्रह्मतेजसा ॥ ३४ ॥ इति श्रीभाग० चतुर्थ० सतीदेहोत्सर्गो० चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ भवो भवान्या निधनं प्रजापतेरसत्कृताया अवगम्य नारदात् ॥ स्वपार्षदसैन्यं च तदध्वरर्भुभिर्विद्रावितं क्रोधमपारमादधे ॥ १ ॥ क्रुद्धः सुदष्टौष्ठपुटः स धूर्जटिर्जटां तडिद्वह्निसटोग्ररोचिषम् ॥ उत्कृत्य रुद्रः सहसोत्थितो हसन्गम्भीरनादो विससर्ज तां भुवि ॥ २॥ ततोऽतिकायस्तनुवा स्पृशन्दिवं सहस्रबाहुर्घनरुक् त्रिसूर्यदृक् ॥ करालदंष्ट्रो ज्वलदग्निमूर्धजः कपालमाली विविधोद्यतायुधः ॥ ३ ॥ तं किं करोमीति गृणन्तमाह बद्धाञ्जलिं भगवान् भूतनाथः ॥ दक्षं सयज्ञं जहि मद्भटानां त्वमग्रणी रुद्र भटांशको मे ॥४॥ आज्ञप्त एवं कुपितेन मन्युना स देवदेवं परिचक्रमे विभुम् ॥ मेने तदात्मानमसङ्गरंहसा महीयसां तात सहः सहिष्णुम् ॥ ५ ॥

जलती भई अग्निवत् मूडके वार, कपालोंकी माला पहिरे, अनेक उठेभए आयुध लिये खडोभयो ॥ ३ ॥ हे शिव ! कहा करूं ऐसे हाथ जोड खडे हुए उससे भगवान् भूतनाथ बोले यज्ञसहित दक्षकों मारों, हे रुद्र हे भ ! मेरे सब भटोंमें तुम अग्रणी हो, मेरे शसे तुम जन्मे हो ॥ ४ ॥ हे विदुर ! कुपित रुद्रने ऐसे आज्ञा कीनी सो वो वीरभद्र देवदेव शिव समर्थकी परिक्रमा करतोभयो, विस्मय अमल अप्रतिहत वेगसै वह अपनेको दूसरे महाबलवानोंकी के क्ति नाश करनेको पूर्ण जाननेलगा ॥ ५ ॥

तब जगद्गुरु अपने भर्ताके चरणकमलके मदकोही चिंतवन करती हतकल्मष देहकों देख समाधिकी ँध लेते देहकों जरावतीभई ॥ २७ ॥ वा समय देखवेवारोंको भूमिमें आकाशमें महा अद्भुत हाहाकार होतोभयो कि खेदसै पूज्यतम शिवजीकी सुरा दक्षसै कोप कराईभई प्राण त्यागती भई ॥ २८ ॥ अहो प्रजा ! या चराचर प्रजापतिकी दुरात्मता देखो जासै अनादृता बेटी सती सदा पूज्य प्राणनीको त्यागतीभई ॥ २९ ॥ सो ये महाक्रोधी हृदयवारो ब्रह्मद्रोही लोकमें महा अपकीर्तिको प्राप्त होयगो शिवद्रोही दक्ष अपने अपराधसे मरती अपनी कन्याको मने नहीं करतोभयो ॥३०॥

ततः स्वभर्तुश्चरणाम्बुजासवं जगद्गुरोश्चिन्तयती न चापरम् ॥ ददर्श देहो हतकल्मषः सती सद्यः प्रजज्वाल समाधिजाग्निना ॥ २७ ॥ तत्पश्यतां खे भुवि चाद्भुतं महद्धा हेति वादः सुमहानजायत ॥ हन्त प्रिया दैवतमस्य देवी जहावसून्केन सती प्रकोपिता ॥२८॥ अहो अनात्म्यं महदस्य पश्यत प्रजापतेर्यस्य चराचरं प्रजाः ॥ जहावसून्यद्विमतात्मजा सती मनस्विनी मानमभीक्ष्णमर्हति ॥ २९ ॥ सोयं दुर्मर्षहृदयो ब्रह्मध्रुक्च लोकेऽपकीर्तिं महतीमवाप्स्यति ॥ यदङ्गजां स्वां पुरुषद्विडुद्यतां न प्रत्यषेधन्मृतयेऽपराधतः ॥ ३० ॥ वदत्येवं जने सत्या दृष्ट्वाऽसुत्यागमद्भुतम् ॥ दक्षं तत्पार्षदा हन्तुमुदतिष्ठन्नुदायुधाः ॥ ३१ ॥ तेषामापततां वेगं निशम्य भगवान्भृगुः ॥ यज्ञघ्नघ्नेन यजुषा दक्षिणाग्नौ जुहाव ह ॥ ३२ ॥ अध्वर्युणा हूयमाने देवा उत्पेतुरोजसा ॥ ऋभवो नाम तपसा सोमं प्राप्ताः सहस्रशः ॥ ३३ ॥

सब जन ऐसे कहिरहेथे कि सतीको यह अद्भुत देहत्याग देख आयुध उठाय शिवपार्षद दक्षकूं मारवेको उठे ॥ ३१ ॥ उनके आयवेको वेग भगवान् भृगुजी सुनकर यज्ञ नाशकोंको नाशक यजुर्मंत्रकी आहुति दक्षिणकी अग्निमें होमतेभये ॥ ३२ ॥ भृगुके हवन करनेसे अपने तपके बलसे [illegible]त पियेभए हज्जारहों ऋभव नामक देवतें उत्पन्न भए ॥ ३३ ॥

र बांचनेसे [illegible]पतिके कारण रतनसी तजी सती निज देह । लाखन गा[illegible] पतिको छांड सनेह ।

हे भद्र ! जो प

29

ले कि सौतेली माकी कठिन दुरुक्तिसे विंधे, दंडहत सर्पकी समान रोषसै स्वांस लेते मौन बैठे अपने पिताको देख रोतेभए माके समी·
१४ ॥ स्वासलैते अधर होठ फरकते बालककों सुनीति गोदमैं ले पुरवासीनके मुखसे सौतकी बातै कही भई सुन बहुत व्यथित भई
ो वो बाला धैर्यकों त्याग शोकदावाग्नि करके दावानलकी लताकीनाई विलाप करती भई, सौतकी बातै याद करती कमलकांतिसमान
सू गेरती भई ॥ १६ ॥ दीर्घ श्वांस लेती या कष्टके पारकों न देखती बाला बालकसें बोली हे पुत्र ! औरोंमें अपराध मतमानो जो पहिले

उवाच ॥ मातुः सपत्न्याः सुदुरुक्तिविद्धः श्वसन् रुषा दण्डहतो यथाहिः ॥ हित्वा मिषन्तं पितरं सन्नवाचं जगाम
रुदन् सकाशम् ॥ १४ ॥ तं निःश्वसन्तं स्फुरिताधरौष्ठं सुनीतिरुत्सङ्ग उदूह्य बालम् ॥ निशम्य तत्पौरमुखान्निता-
वैव्यथे यद्गदितं सपत्न्याः ॥ १५ ॥ सोत्सृज्य धैर्यं विललाप शोकदावाग्निना दावलतेव बाला ॥ वाक्यं सपत्न्याः
सरोजश्रिया दृशा बाष्पकलामुवाह ॥ १६ ॥ दीर्घं श्वसन्ती वृजिनस्य पारमपश्यती बालकमाह बाला ॥ मा
तात परेष्वमंस्था भुङ्क्ते जनो यत् परदुःखदस्तत् ॥ १७ ॥ सत्यं सुरुच्याऽभिहितं भवान्मे यद्दुर्भगाया उदरे गृ-
॥ स्तन्येन वृद्धश्च विलज्जते यां भार्येति वा वोढुमिडस्पतिर्माम् ॥ १८ ॥ आतिष्ठ तत्तात विमत्सरस्त्वमुक्तं
त्राऽपि यदव्यलीकम् ॥ आराधयाऽधोक्षजपादपद्मं यदीच्छसेऽध्यासनमुत्तमो यथा ॥ १९ ॥ यस्याङ्घ्रिपद्मं परि-
विश्वविभावनायात्तगुणाभिपत्तेः ॥ अजोऽध्यतिष्ठत् खलु पारमेष्ठ्यं पदं जितात्मश्वसनाभिवन्द्यम् ॥ २० ॥

को दुःख दे है सो यहां फल भोगैहै ॥ १७ ॥ सुरुचिने सांच कही कि मोसरीकी दुर्भागिनीके उदरमें तुम जन्मै हो, मेरे स्तनसे तुम बढे हो,
मोको भार्या कहनेमेंभी लज्जित होय है ॥ १८ ॥ हे तात ! ईर्षा छोड निष्कपट होयके जो माताने कह्यो है वामें स्थित हो भगवतके पादप-
आराधन करो जो उत्तमकी नांई राज्य चाहते हो ॥ १९ ॥ सत्त्वगुणी श्रीश्वरके चरणकमलकी परिचर्या कर विश्वके पालनके लिये निश्चय-
कै आत्मा स्वास जीतवेवारोंसे नमस्कृत पारमेष्ठ्यपदको ब्रह्माजी प्राप्त होते भ ॥ २० ॥

---

४ ॥

तयोर्दासः चतुर्विंशाक्षरात्
चविंश आत्मा भवति ॥
अजायंत अकारो उकार
रायण शास्त्रीजीने बनाय
दीर्नाः ॥ कः केदेवारयंः
माला वनके मूल फल अ
सलिलैः शुचिभिम
मर्चां क्षित्यम्ब्वादि
निजमायया ॥ क
दयेनैव प्रयुञ्ज्य
र्यया ॥ ५९ ॥
न करै, सब इंद्रियें
मायासे अवतार ध
सी प्रकार इस मंत्र
वासे भगवान् भक्ति
य है सो दे हैं,

१ ॐ । २

र बांचनेसे द्वादश अक्षर ....

१३ ॥

ई तुह्मारे पितामह मनु एकमतिसे बहु दक्षिणाके यज्ञ करकै जिनको पूजन कर, . . को अप्राप्त भूमि, स्वर्ग, मोक्षके, सब सुखकों प्राप्त होते भए
२१ ॥ हे पुत्र ! जिनको चरणकमलकी पदवीको मुमुक्षु ढूंढै है तिनको तुम आसरो लेओ, अनन्यभावसे निजधर्मसे शोधित मनमें पुरुषको स्थित-
ामन्नारायणको भजन करौ ॥ २२ ॥ कमलनयनके बिना और तुह्मारो दुःखनाशकर्ता मोय कोई मालूम नहीं पडै है, हे अंग ! ब्रह्मादिक
तयोर्दासः चतुर्ा चाहै, हस्तमें कमल लिये श्रीजी जिन्हे नित्य चाहना करै हैं ॥ २३ ॥ मैत्रेयजी बोले कि ऐसे माताको कहिनो अर्थागम वचनको सुनकै मनसे
चविंश आत्मा ों जान ध्रुवजी पिताके पुरते निकसते भए ॥ २४ ॥ नारदजी या बातकों सुनकर वाके करवेकी इच्छा जानकै पापको नाशक हस्तकमलसें
४ ॥ अजायंत अकारो मनुर्वा भगवान् पितामहो यमेकमत्या पुरुदक्षिणैर्मखैः ॥ इष्ट्वाऽभिपेदे दुरवापमन्यतो भौमं सुखं दिव्यमथापव-
रायण शास्त्रीजीन ॥ २१ ॥ तमेव वत्साऽऽश्रय भृत्यवत्सलं मुमुक्षुभिर्मृग्यपदाब्जपद्धतिम्॥ अनन्यभावे निजधर्मभावितो मनस्य-
दीर्नाः ॥ कः केदे ाप्य भजस्व पूरुषम् ॥ २२ ॥ नान्यं ततः पद्मपलाशलोचनाद्दुःखच्छिदं ते मृगयामि कंचन ॥ यो मृग्यते हस्तगृ-
माला वनके मूल ृया श्रियेतरैरङ्ग विमृग्यमाणया ॥ २३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं संजल्पितं मातुराकर्ण्यार्थागमं वचः ॥ संनिय-
सलिलैः शुचि नात्मानं निश्चक्राम पितुः पुरात् ॥ २४ ॥ नारदस्तदुपाकर्ण्य ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् ॥ स्पृष्ट्वा मूर्धन्यघघ्नेन
मर्चां क्षित्यम्ब ा प्राह विस्मितः ॥ २५ ॥ अहो तेजः क्षत्रियाणां मानभङ्गममृष्यताम् ॥ बालोऽप्ययं हृदा धत्ते यत्समातुरसद्व-
निजमायया॥ २६ ॥ नारद उवाच ॥ नाधुनाप्यवमानं ते सन्मानं वापि पुत्रक ॥ लक्षयामः कुमारस्य सक्तस्य क्रीडनादिषु ॥
दयेनैव प्रयुञ्ज । विकल्पे विद्यमानेऽपि न ह्यसंतोषहेतवः ॥ पुंसो मोहमृते भिन्ना यल्लोके निजकर्मभिः ॥ २८ ॥
र्यया ॥ ५९ ॥

न करै, सब इंद्रियें पर हाथ फेर विस्मय करकै बोले ॥ २५ ॥ अहो क्षत्रियोंको तेज ऐसोइ है कि मानभंग नहीं सहन सक्ते, ये बालकभी है तोहू माके
मायासे अवतार धा हृदयमें नहीं सहसक्ता है ॥ २६ ॥ नारदजी बोले कि हे कुमार ! खेलमें आसक्त बालकको कोईने सन्मान कीनो वा अपमान कीनो तौ
सी प्रकार इस मंत्रक कुछ भला बुरा नहीं देखते ॥ २७ ॥ तुझे मान अपमानका विवेक है तौभी असंतोष नहीं रखना चाहिये क्योंकि जो असंतोषके कारण हैं
वासे भगवान् भक्ति न्य हैं किसी प्रकार भिन्न नहीं है या लोकमें सुख दुःख सब अपने कर्मोंसे होय है ॥ २८ ॥
य है सो दे हैं, देहध

ी.

८

। २३ ॥

30

। २४ ॥

---

१ ॐ । २ कनक न । ९

र बांचनेसे द्वादश अक्षर मंत्र बने हे या मंत्रसे देवकी द्रव्यमयी पूजा देशकाल विभाग जानवेवारो। अनेक द्रव्यसे

तयोर्दासः चतुर्विंशाक्षरात्मकः ॥ १ ॥ श्रुतयः अ इति भगवतो नारायणस्य प्रथमाभितम् ॥ उकारस्तदेवाग्निस्तद्वायुरित्यादि ॥ पंचविंशोयं पुरुषः पंचविंश आत्मा भवति ॥ ॐ भूरिति ऋग्वेदादजायत, भुव इति यजुर्वेदादजायत, स्वरिति सामवेदादजायत, तानि शुक्राण्यभ्यपतन्, तेभ्यस्त्रयो वर्णा अजायंत अकारो उकार मकार इति, तानेकधा समभवत्तदेतदोमिति ॥ ब्रह्मा विष्णु शिव ये भी ॐ को अर्थ है ॥ द्वादशाक्षरमंत्रको ये कूटश्लोक नारायण शास्त्रीजीने बनायो है सो ये है ॥ त्र्यंयादौ किं धनं किंभवति मृगमदे को गुणः क्वांद्य माया केंगाधाः क्रिर्मृषीणां जलमलघुं सखं योषितः केनदीर्नाः ॥ कः केदेवारयं किं निमिपुरं रदिति ब्रूहि केषां गंतेत्री कार्कः को वैष्णवास्ये बुध वसति जपो मध्यवर्णः पदानाम् ॥ १ ॥ " ॥ ५४॥ पवित्र जल माला वनके मूल फल आदिक सुंदर अंकुर वस्त्र तुलसी करकै प्रभुकी पूजा करे ॥५५॥ द्रव्यमयी पूजाकर अर्चाकी पृथ्वी जल आदिमें हरिकाही पूजन करै, सब इंद्रियें जीत मुनि शांत हो वाणी जीत वनके कंदमूल फल खायके जीवै ॥ ५६ ॥ उत्तम यशवारे नारायणने अपनी इच्छा और अचिन्त्य मायासे अवतार धारण कर जो चरित्र किये हैं जो करेंगे उन्हें हृदयमें ध्यान करै ॥ ५७ ॥ प्राचीन आचार्योंने जिस प्रकार भगवानकी सेवा की है उसी प्रकार इस मंत्रका उच्चारण कह मंत्र मूर्ति श्रीहरिकी अर्चा करै ॥ ५८ ॥ ऐसे शरीर मन वचन करकै मनोगत ईश्वरकी परिचर्या करै तौ ऐसी सेवासे भगवान् भक्ति करवेवारेको सब कुछ देहैं ॥ ५९ ॥ निष्कपटी सुंदर भजंते भए भाववर्द्धन करवेवारेको ईश्वर जो वाको अभिलषित कल्याण होय है सो दे हैं, देहधारीयोंको धर्मादिकसे जो होय है सो दे हैं ॥ ६० ॥

सलिलैः शुचिभिर्माल्यैर्वन्यैर्मूलफलादिभिः ॥ शस्ताङ्कुरांशुकैश्चार्चेत्तुलस्या प्रियया प्रभुम् ॥५५॥ लब्ध्वा द्रव्यमयीमर्चां क्षित्यम्ब्वादिषु चार्चयेत् ॥ आभृतात्मा मुनिः शान्तो यतवाङ् मितवन्यभुक् ॥५६॥ स्वेच्छावतारचरितैरचिन्त्यनिजमायया॥करिष्यत्युत्तमश्लोकस्तद्ध्यायेद्धृदयङ्गमम् ॥५७॥ परिचर्या भगवतो यावत्यः पूर्वसेविताः॥ता मन्त्रहृदयेनैव प्रयुञ्ज्यान्मन्त्रमूर्तये ॥५८॥ एवं कायेन मनसा वचसा च मनोगतम् ॥ परिचर्यमाणो भगवान् भक्तिमत्परिचर्यया ॥ ५९ ॥ पुंसाममायिनां सम्यग्भजतां भाववर्धनः ॥ श्रेयो दिशत्यभिहितं यद्धर्मादिषु देहिनाम् ॥ ६० ॥

---

१ ॐ । २ कनक । ३ आमोद । ४ शांभवी । ५ सागर । ६ जीवन । ७ कांतेन । ८ प्रवासी । ९ असुराः । १० विदेहे । ११ देवानाम् । १२ वायसः । उनके बीचबीचके अक्षर बांचनेसे द्वादश अक्षर मंत्र बनै है या मंत्रसे देवकी द्रव्यमयी पूजा देशकाल विभाग जानवेवारो अनेक द्रव्यसेसुखका।

हे भद्र! जो प्रकाशक

श्रीवत्सको चिन्ह, धारे मेघवत् श्यामपुरुष, वनमाली शंख चक्र गदा पद्मसे शोभित चतुर्भुज ॥४७॥ किरीटधारी, कुंडल पहिरे केयूर कंकण धारे ग्रीवामें कौस्तुभ आभूषण पीतांबर पहिरे शोभित ॥४८॥ क्षुद्र घंटिका पहिरे सुवर्णके नूपुर धारे, अत्यंत दर्शनयोग्य, शांत, मन नयनको आनंदवर्द्धन ॥ ४९ ॥ नखमणि पंक्तिसे शोभित पूजित चरण हृदयकमलकी कलियोंपर विराजमान जीवात्मामें स्थित ॥ ५० ॥ मुसकाते अनुराग सहित देखते हुए वरदाताओंमे श्रेष्ठ पूर्वकही धारणसे नारायणके स्वरूपका स्थिर हो एकाग्र मनसे ध्यान करना ॥ ५१ ॥ ऐसो मंगल दायक भगवतको रूप ध्यान करवेवारो परम आनंद करके युक्त होय वासे निवृत्त न होना ॥५२॥ हे नृपात्मज! परम गुह्य जपवे योग्य मंत्र सुन, जाको सत रात्र पुरुष पढै तौ आकाशके सब देवतानकों देखे है ॥ ५३ ॥ "अं उ म एतत्रयं मिलित्वा ओमित्यक्षरंभवति। भगो विद्यतेऽस्यास्तीति भगवान् तस्मै भगवते। वसंति भूतान्यस्मिन्निति वासुः दीव्यतीति देवः वासुश्चासौ देवः वासुदेवस्तस्मै वासुदेवाय नमः॥ उत्पत्ति पालन नाशकर्ता षड्गुण ऐश्वर्यवान् भगवान् सब जीवमें निवास करनेहारेके अर्थ नमस्कार होय ॥ पात्रत्रये दधि पूरयित्वा नवनीतोद्धारवत् त्रिभ्यो वेदेभ्यस्त्रीण्यक्षराण्युद्धृतानि ॥ अव रक्षणगतिहिंसादिषु। उत्पत्ति पालन नाश कर्ता अकारवाच्य विष्णु हैं। उ निर्द्धारे, उको अर्थ श्रीजीको है। मन प्राणने। मन ज्ञाने। मदी हर्षे। मन अवबोधने। प्राणस्वरूप ज्ञानस्वरूप हर्षस्वरूप अवबोधनस्वरूप जीवको है, जीव ईश्वर मायातीत ॐमें है॥ अकारवाचको विष्णुः श्रीरुकारेण कथ्यते। मकारस्तु

श्रीवत्साङ्कं घनश्यामं पुरुषं वनमालिनम् ॥ शङ्खचक्रगदापद्मैरभिव्यक्तचतुर्भुजम् ॥ ४७ ॥ किरीटिनं कुण्डलिनं केयूरवलयान्वितम् ॥ कौस्तुभाभरणग्रीवं पीतकौशेयवाससम् ॥ ४८ ॥ काञ्चीकलापपर्यस्तं लसत्काञ्चननूपुरम् ॥ दर्शनीयतमं शान्तं मनोनयनवर्धनम् ॥ ४९ ॥ पद्भ्यां नखमणिश्रेण्या विलसद्भ्यां समर्चताम् ॥ हृत्पद्मकर्णिकाधिष्ण्यमाक्रम्यात्मन्यवस्थितम् ॥ ५० ॥ स्मयमानमभिध्यायेत् सानुरागावलोकनम् ॥ नियतेनैकभूतेन मनसा वरदर्षभम् ॥ ५१ ॥ एवं भगवतो रूपं सुभद्रं ध्यायतो मनः ॥ निर्वृत्या परया तूर्णं संपन्नं न निवर्तते ॥ ५२ ॥ जप्यश्च परमो गुह्यः श्रूयतां मे नृपात्मज ॥ यं सप्तरात्रं प्रपठन् पुमान् पश्यति खेचरान् ॥ ५३ ॥ ॐनमो भगवते वासुदेवाय ॥ मन्त्रेणानेन देवस्य कुर्याद्द्रव्यमयीं बुधः ॥ सपर्यां विविधैर्द्रव्यैर्देशकालविभागवित् ॥ ५४ ॥

---

१ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय । यह मंत्र है ।

हे भद्र! जो प्रकाशक

निश्चय है कि आप भगवान् ब्रह्माके पुत्र हो वीणा बजाते जगतके हितके अर्थ सूर्यवत् विचरो हो ॥ ३८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि श्रीनारदजी वाको ये
कहिनो सुनकर प्रसन्न होयकै सांचे वाक्योंसे वापर कृपाकर बालकसे बोले ॥ ३९ ॥ श्रीनारदजी बोले कि जननीने जो मार्ग तुह्मैं कह्यो सो मोक्ष-
सुखदायक है, भगवान् वासुदेवको सावधान मन करकै भजन करो ॥ ४० ॥ धर्म अर्थ काम मोक्ष तथा अपने कल्याणकी जो इच्छा करै, तौ एक
श्रीहरिके चरणनकी सेवा करनी ही कारण है ॥ ४१ ॥ हे पुत्र ! याते पवित्र यमुनाकिनारो जाओ, तुह्मारो कल्याण हो, पुण्य मधुवन मथुरामें जहां

नूनं भवान् भगवतो योऽङ्गजः परमेष्ठिनः ॥ वितुदन्नटते वीणां हितार्थं जगतोऽर्कवत् ॥ ३८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥
इत्युदाहृतमाकर्ण्य भगवान् नारदस्तथा ॥ प्रीतः प्रत्याह तं बालं सद्वाक्यमनुकम्पया ॥ ३९ ॥ नारद उवाच ॥
जनन्याऽभिहितः पन्थाः स वै निःश्रेयसस्य ते ॥ भगवान् वासुदेवस्तं भज तत्प्रवणात्मना ॥ ४० ॥ धर्मार्थकाममो-
क्षार्थं य इच्छेत् श्रेय आत्मनः ॥ एकमेव हरेस्तत्र कारणं पादसेवनम् ॥ ४१ ॥ तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुना-
यास्तटं शुचिं ॥ पुण्यं मधुवनं यत्र सान्निध्यं नित्यदा हरेः ॥ ४२ ॥ स्नात्वाऽनुसवनं तस्मिन् कालिन्द्याः सलिले
शिवे ॥ कृत्वोचितानि निवसन्नात्मनः कल्पितासनः ॥ ४३ ॥ प्राणायामेन त्रिवृता [illegible]न्द्रियमनोमलम् ॥ शनै-
र्व्युदस्याभिध्यायेन्मनसा गुरुणा गुरुम् ॥ ४४ ॥ प्रसादाऽभिमुखं शश्वत्प्रसन्नवदनेक्षणम् ॥ सुनासं सुभ्रुवं चारुकपोलं
सुरसुन्दरम् ॥ ४५ ॥ तरुणं रमणीयाङ्गमरुणौष्ठेक्षणाधरम् ॥ प्रणताश्रयणं नृम्णं शरण्यं करुणार्णवम् ॥ ४६ ॥

कि नित्य हरि विराजते हैं जाओ ॥ ४२ ॥ रोज वहां स्नान करके कालिंदीके सुंदर जलमें सब नित्य कृत्य कर अपनो आसन कल्पना कर॥४३॥
पूरक रेचक कुंभक तीन वृत्तिवारे प्राणायाम करकै धीरेधीरेसे प्राण इंद्रिय मनके मलको दूरकर महागुरुरूप मन करकै श्रीहरिको ध्यान कर-
ना ॥ ४४ ॥ अपने ऊपर प्रसन्न होयवेमें सुमुख निरंतर प्रसन्न वदनसे नेत्र सुंदर नासिका सुंदर भ्रुकुटि सुंदर कपोलवारे देवनमें सुंदर ईश्वर ॥ ४५ ॥
जिनके तरुण रमणीय अंग, अरुण होठ, देखवे योग्य अधर, नम्रीभूत, आश्रयसुखकारक, शरण्य, करुणाके समुद्र ॥ ४६ ॥

हे भद्र! जो प्रकाशक

हे तात ! ईश्वरके अनुकूल होनेसे उद्यम सफल होताहै ऐसा विचार भाग्यसे जो प्राप्त होय है, तितनेही करकै संतोष करै ॥ २९ ॥ माताके कहे
उपायसे जिसे तुम प्रसन्न करना चाहते हो उनका प्रसन्न करना बहुतही कठिन है यह मैं मानू हूं ॥ ३० ॥ मुनि जब सब संग त्याग जिसे तीव्र योग
समाधिसे ढूंढै है तोहू बहुत जन्म करकै जाकी पदवीकों नहीं जानै है ॥ ३१ ॥ ये जो हठ है याकूं त्यागों, ये हठ विफल होगो, जब सुंदर समय
आवै तब फेर यत्न करियो ॥ ३२ ॥ जाके भाग्यमें लिखो है सो ही सुख दुःख होय है, आत्माको प्रसन्न कर देही तमसे पार मोक्षको प्राप्त होय
है ॥ ३३ ॥ गुण अधिक होय है तो आनंद होय, गुण अधिक न होय है तो तिरस्कार होय है, समान भाव होवे है तो मैत्री होय है, यासे तापोसे

परितुष्येत्ततस्तात तावन्मात्रेण पूरुषः ॥ दैवोपसादितं यावद्वीक्ष्येश्वरगतिं बुधः ॥ २९ ॥ अथ मात्रोपदिष्टेन
योगेनावरुरुत्ससि ॥ यत्प्रसादं स वै पुंसां दुराराध्यो मतो मम ॥ ३० ॥ मुनयः पदवीं यस्य निःसङ्गेनोरुजन्मभिः॥
न विदुर्मृगयन्तोऽपि तीव्रयोगसमाधिना ॥३१॥ अतो निवर्ततामेष निर्बन्धस्तव निष्फलः ॥ यतिष्यति भवान् काले
श्रेयसां समुपस्थिते॥३२॥ यस्य यद्दैवविहितं स तेन सुखदुःखयोः॥आत्मानं तोषयन् देही तमसः पारमृच्छति ॥३३॥
गुणाधिकान्मुदं लिप्सेदनुक्रोशं गुणाधमात् ॥ मैत्रीं समानादन्विच्छेन्न तापैरभिभूयते ॥ ३४ ॥ ध्रुव उवाच ॥
सोऽयं शमो भगवता सुखदुःखहतात्मनाम् ॥ दर्शितः कृपया पुंसां दुर्दर्शोऽस्मद्विधैस्तु यः ॥ ३५ ॥ अथापि
मेऽविनीतस्य क्षात्त्रं घोरमुपेयुषः ॥ सुरुच्या दुर्वचोबाणैर्न भिन्ने श्रयते हृदि ॥ ३६ ॥ पदं त्रिभुवनोत्कृष्टं जिगी-
षोः साधुवर्त्म मे ॥ ब्रूह्यस्मत्पितृभिर्ब्रह्मन्नन्यैरप्यनधिष्ठितम् ॥ ३७ ॥

दुःख न मानै ॥ ३४ ॥ ध्रुवजी बोले कि सुखदुःखहत आत्मा पुरुषनको कृपा करके भगवानने ये उपाय दिखायाहै, हम सरीकेनको दर्शन नहीं
होय सकै है ॥ ३५ ॥ यद्यपि ऐसै है तथापि घोर क्षत्रिय भावकों प्राप्त मुझ दुर्विनीतके मनमें यह वचन नहीं रहसक्ते कारण कि वह सुरुचिके
दुर्वचनरूप बाणोंसे विंधा हुआ है ॥ ३६ ॥ हे ब्रह्मन् ! हमारे पिताआदि करकै वा औरोंकोभी अशक्य त्रिलोकीमें सुंदर पद जीतवेकी
इच्छावारे मोको श्रेष्ठ मार्गका उपदेश करो ॥ ३७ ॥

टी.
०९
334
६ ॥

35

सो ध्रुवजी योगसे पकीभई बुद्धि करकै, हृदय कमलमें प्रकाशित, बिजुरी सम कांतिवारे ईश्वरको अंतर्हित देख एक संगनेत्र खोल, बाहिरस्थित भगवान्‌को देखते भए ॥ २ ॥ तिनके दर्शन करकै संभ्रमसों अंगको नवायकरकै पृथिवीमें दंडवत करतेभए, मानूं दृष्टियोंसे पीवेगो, बालक मुखसे मानो चुंबेगो, भुजासे मानो मिलेगो, ये अवस्था ध्रुवजीकी होती भई[1] ॥ ३ ॥ कहिवेकी इच्छा भई परंतु कहिवो न जाने हाथ जोडे खडे रहे सर्व घटवासी भगवान बालकके हृदयको भाव जान अपना शंख कपोलमें कृपा करकै छुवावते भए ॥ ४ ॥ सो ध्रुवजी ताही समय देववाणीको प्राप्त होय

स वै धिया योगविपाकतीव्रया हृत्पद्मकोशे स्फुरितं तडित्प्रभम् ॥ तिरोहितं सहसैवोपलक्ष्य बहिःस्थितं तदवस्थं ददर्श ॥२॥ तद्दर्शनेनागतसाध्वसः क्षिताववन्दताङ्गं विनमय्य दण्डवत् दृग्भ्यां प्रपश्यन् प्रपिबन्निवार्भकः पिबन्निवास्येन भुजैरिवाश्लिषन् ॥३॥ स तं विवक्षन्तमतद्विदं हरिर्ज्ञात्वास्य सर्वस्य च हृद्यवस्थितः ॥ कृताञ्जलिं ब्रह्ममयेन कम्बुना पस्पर्श बालं कृपया कपोले ॥ ४ ॥ स वै तदैव प्रतिपादितां गिरं दैवीं परिज्ञातपरात्मनिर्णयः ॥ तं भक्तिभावोऽभ्यगृणादसत्वरं परिश्रुतोरुश्रवसं ध्रुवक्षितिः ॥ ५ ॥ ध्रुव उवाच ॥ योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां संजीवयत्यखिलशक्तिधरः स्वधाम्ना ॥ अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन् प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥ ६ ॥ एकस्त्वमेव भगवन्निदमात्मशक्त्या मायाख्ययोरुगुणया महदाद्यशेषम् ॥ सृष्ट्वाऽनुविश्य पुरुषस्तदसद्गुणेषु नानेव दारुषु विभावसुवद्विभासि ॥ ७ ॥

सब प्रकारसे परमात्माको निर्णय जाने ध्रुवस्थान निवासी विख्यात यश भगवानकी भक्ति भावसे स्तुति करते भए ॥ ५ ॥ ध्रुवजी बोले कि जो ईश्वर मेरे भीतर प्रवेशकर ये मेरी सोई भई वाणीको और हस्त चरण कर्ण त्वचा प्राणादिकोंको, अखिलशक्तिधारी अपने तेजसे जिवावते हैं, तिन भगवान पुरुषके अर्थ नमस्कार होय ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! मही अपनी मायारूप बहुगुणवारी आत्मशक्ति करकै महदादिक सब विश्व रचकैं ताके पाछै यामें प्रविष्ट होकर या मायाके एक असत्‌गुणोंमें नानारूप प्रकाशोहो, जैसे काष्ठमें अग्नि नानारूप होयकर प्रकाशै है ॥७॥

---

[1] ध्रुवजी भगवानके दर्शन कर इस कारण मूक होगये कि प्रेमसै उनका कंठ रुद्ध होगया और कुछ कहा नहीं गया इस्से (अतद्विदः) पद दिया.

जा समय एक पांव करकै राजपुत्र स्थित भए, तासमय ताके अंगुष्ठसे पीडित धरती नमती भई, और तिसके गजेन्द्रके नावपर एक पद रखनेकी समान झुकती भई ॥ ७९ ॥ प्राण और प्राणोंके मार्ग रोक आत्माके साथ अभेद दृष्टिसै विश्वके आत्मा भगवानका जब ध्रुव ध्यान करने लगे तौ सब लोक तथा लोकपाल अपना स्वांस रुकनेसै पीडित हो नारायणकी शरणको प्राप्तहुए ॥ ८० ॥ देवता बोले कि हे भगवन् ! सर्वांतरवासी चराचर लोकके प्राण रुकगए सो कारण हम नहीं जाने हैं, या कष्टसे हमे छुडाओ, शरणागत रक्षक आपके हम सब शरण आए हैं ॥८१॥

यदैकपादेन स पार्थिवार्भकस्तस्थौ तदङ्गुष्ठनिपीडिता मही॥ ननाम तत्रार्धमिभेन्द्रधिष्ठिता तरीव सव्येतरतः पदे पदे॥ ७९ ॥ तस्मिन्नभिध्यायति विश्वमात्मनो द्वारं निरुध्याऽसुमनन्यया धिया॥ लोका निरुच्छ्वासनिपीडिता भृशं सलोकपालाः शरणं ययुर्हरिम्॥ ८० ॥ देवा ऊचुः ॥ नैवं विदामो भगवन् प्राणरोधं चराचरस्याखिलसत्वधाम्नः॥ विधेहि तन्नो वृजिनाद्विमोक्षं प्राप्ता वयं त्वां शरणं शरण्यम्॥ ८१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मा भैष्ट बालं तपसो दुरत्ययान्निवर्तयिष्ये प्रतियात स्वधाम॥ यतो हि वः प्राणनिरोध आसीदौत्तानपादिर्मयि संगतात्मा॥ ८२ ॥ इति श्रीमद्भागवते चतुर्थस्कन्धे ध्रुवच० मधुवनसमागमनवर्णनं नाम अष्टमोध्यायः॥८॥मैत्रेय उवाच॥ त एवमुच्छिन्नभया उरुक्रमे कृतावनामाः प्रययुस्त्रिविष्टपम् ॥ सहस्रशीर्षापि ततो गरुत्मता मधोर्वनं भृत्यदिदृक्षया गतः॥ १ ॥

श्रीभगवान बोले कि मत डरो उग्र तपसे बालककों हम निवर्त्त करैंगे, तुम अपने अपने स्थाननकों जाओ, जासे तुह्मारे प्राण रुकभए हैं उत्तानपादके पुत्रके तप करनेसें मेरेमेंभी वाकी आत्मा सम्यक् प्रकार करकै प्राप्त भई है ॥ ८२ ॥ इति श्रीभा० भा० च० ध्रुवस्य मथुरामंडलसमागमनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि उन देवतानको जब ऐसे भय दूर भयो तब भगवान्कों प्रणाम कर स्वर्गको चले जाते भए, सहस्रशिरवारे श्रीभगवान् गरुडपर बैठ अपने भृत्यके देखवेकी इच्छा करकै मधुवनमें आवते भए ॥ १ ॥

37

मैत्रेय उवाच ॥ इति देवर्षिणा प्रोक्तं विश्रुत्य जगतीपतिः ॥ राजलक्ष्मीमनादृत्य पुत्रमेवान्वचिन्तयत् ॥ ७० ॥ त्रिरात्रान्ते त्रिरात्रान्ते तत्राभिषिक्तः प्रयतस्तामुपोष्य विभावरीम् ॥ समाहितः पर्यचरदृष्यादेशेन पूरुषम् ॥ ७१ ॥ कपित्थबदराशनः ॥ आत्मवृत्त्यनुसारेण मासं निन्येऽर्चयन् हरिम् ॥ ७२ द्वितीयं च तथा मासं षष्ठे षष्ठेऽर्भको दिने ॥ तृणपर्णादिभिः शीर्णैः कृतान्नोऽभ्यर्चयद्विभुम् ॥ ७३ ॥ तृतीयं चानयन्मासं नवमे नवमेऽहनि ॥ अब्भक्ष उत्तमश्लोकमुपाधावत् समाधिना ॥ ७४ ॥ चतुर्थमपि वै मासं द्वादशे द्वादशेऽहनि ॥ वायुभक्षो जितश्वासो ध्यायन् देवमधारयत् ॥ ॥ ७५ ॥ पञ्चमे मास्यनुप्राप्ते जितश्वासो नृपात्मजः ॥ ध्यायन् ब्रह्म पदैकेन तस्थौ स्थाणुरिवाचलः ॥ ७६ ॥ सर्वतो मन आकृष्य हृदि भूतेन्द्रियाशयम् ॥ ध्यायन् भगवतो रूपं नाद्राक्षीत् किंचनापरम् ॥ ७७ ॥ आधारं महदादीनां प्रधानपुरुषेश्वरम् ॥ ब्रह्म धारयमाणस्य त्रयो लोकाश्चकम्पिरे ॥ ७८ ॥

मैत्रेयजी बोले कि पृथ्वीपति ये नारदको वचन सुन राजलक्ष्मीको अनादर कर पुत्रकी चिंता करते भए ॥ ७० ॥ तहां ध्रुवजी मथुरामें आये और जिस रात्रिदिनपर पहुंचे उसी दिन स्नानकर रात्रिमें उपवास कर सावधान होय पूजा करते भए, ऋषिकी आज्ञासे पुरुषको भजते भए ॥ ७१ ॥ तीन तीन रात्रिमें तो कैथ बेर खाय खायके रहे, अपने शरीरकी वृत्तिके अनुसार एक मास व्यतीत करते श्रीहरिको पूजन करते भए ॥ ७२ ॥ दूसरे मास में ध्रुवजी छटे छटे दिन तृणपत्ता गिरे भए खाय मास बितायो, हरिको अर्चन करते भए ॥ ७३ ॥ तीसरे मासमें नवमे नवमे दिनमें जलपान करके उत्तमश्लोक ईश्वरकों समाधिसें पूजन करते भए ॥ ७४ ॥ चतुर्थ मासमें द्वादशमें द्वादशमें दिन श्वांस जीतकर वायु भक्षण करते ध्यान करते भए देवको धारण करते भए ॥ ७५ ॥ पांचवों मास जब प्राप्त भयो तो नृपसुत श्वांस जीतके एक पदसे ठाडे होके ब्रह्मको ध्यान करवे लगे, खंभ समान स्थित होते भए ॥ ७६ ॥ ब ओरसे मनको खींचकर हृदय पंचभूत इंद्रिय अंतःकरणमें भगवतके रूपको ध्यान करते भए और कछू न देखते भए ॥ ७७ ॥ तब दादिकोंके आधार प्रधान पुरुषके ईश्वर ब्रह्मके धारण करवेवारेसें त्रिलोकी कांपती भई ॥ ७८ ॥

हे भद्र! जो प्रकाशक ध्रुव

तारे औ

विरक्त होयकै विषय भोगसे बहुत भक्तियोग करकै विमुक्तिके अर्थ साक्षात् आप निरंतर भाव करकै भजै ॥ ६१ ॥ ये कथन सुनकर नृपनंदन ध्रुव नारदकी परिक्रमा प्रणाम कर पुण्यरूप हरिचरणसे शोभित मथुराजीको जाते भए ॥ ६२ ॥ ध्रुवजी तो तपोवनकों गए नारदमुनि राजा उत्तानपादके अंतःपुरमें पहुंचे, राजाने अर्घ आदि पूजाके पदार्थ अर्पण कर आसन दिया तब उसपर बैठ नारदजो बोले ॥ ६३ ॥ नारदजी बोले कि हे राजन् ! तुह्मारो मुख कैसे सूख रह्यो है, भारी चिंता करो हो, कहा काम धर्म अर्थ सहित नष्ट भयो है ॥ ६४ ॥ राजा बोले कि हे ब्रह्मन् ! स्त्रीवश निर्दयी मैनें

विरक्तश्चेन्द्रियरतौ भक्तियोगेन भूयसा ॥ तं निरन्तरभावेन भजेताद्धा विमुक्तये ॥ ६१ ॥ इत्युक्तस्तं परिक्रम्य प्रणम्य च नृपार्भकः ॥ ययौ मधुवनं पुण्यं हरेश्चरणचर्चितम् ॥ ६२ ॥ तपोवनं गते तस्मिन् प्रविष्टोऽन्तःपुरं मुनिः ॥ आर्हितार्हणको राज्ञा सुखासीन उवाच तम् ॥ ६३ ॥ नारद उवाच ॥ राजन् किं ध्यायसे दीर्घं मुखेन परिशुष्यता ॥ किं वा नरिष्यते कामो धर्मो वाऽर्थेन संयुतः ॥ ६४॥ राजोवाच ॥ सुतो मे बालको ब्रह्मन् स्त्रैणेनाऽकरुणात्मना ॥ निर्वासितः पञ्चवर्षः सह मात्रा महान् कविः ॥ ६५ ॥ अप्यनाथं वने ब्रह्मन् मा स्मादन्त्यर्भकं वृकाः ॥ श्रान्तं शयानं क्षुधितं परिम्लानमुखाम्बुजम् ॥ ६६ ॥ अहो मे बत दौरात्म्यं स्त्रीजितस्योपधारय ॥ योऽङ्कं प्रेम्णाऽरुरुक्षन्तं नाभ्यनन्दमसत्तमः ॥ ६७ ॥ नारद उवाच ॥ मा मा शुचः स्वतनयं देवगुप्तं विशांपते ॥ तत्प्रभावमविज्ञाय व्यावृङ्क्ते यद्यशो जगत् ॥ ६८ ॥ सुदुष्करं कर्म कृत्वा लोकपालैरपि प्रभुः ॥ एष्यत्यचिरतो राजन् यशो विपुलयंस्तव ॥ ६९॥

पांच वर्षके बालक महा चतुरको मासहित निकास दीनों ॥ ६५ ॥ हे नारदजी ! भूखे प्यासे मुखकुं मलाये सोये हुए उस बालकको वनमें भेडिये तौ न खा जांयगे ॥ ६६ ॥ मैं बडा स्त्रीके वशमें हूं सो मेरी दुरात्मा तौ देखौ कि महा नीच मैने प्रेमसे बालक गोदमें चढै हो वाय गोदमें न लीनो ॥६७॥ नारदजो बोले कि हे राजन् ! देवरक्षित अपने सुतको शोक मतकरो, वाको प्रताप तुम नही जानों हो, जगतमें वासेही तुम्हारो यश होगो ॥६८॥ वह समर्थ लोकपालौंकोभी अशक्य महाकठिनतर कर्म करकै थोडेही कालमें आवैगो, और तुह्मारो यश बहुत विस्तारेगो ॥ ६९ ॥

हैं भद्र। जो प्रक

जाने है जहां कोई वाद विवाद न करसकैं है ॥ १३ ॥ महाप्रलयमें या विश्वको पेटमें ग्रहणकर सर्वद्रष्टा आप शेषजीकी गोदमें एक पुरुष रूप शयन करो हो, जिनकी नाभि समुद्रसे उत्पन्न सुवर्णमय लोकके कमल प्रकाशी ब्रह्मा भए है तिन भगवान्के अर्थ नमस्कार होय ॥ १४ ॥ तुम नित्य मुक्त सब ओरसे विशुद्ध सदाज्ञानवान् व्यापक, सर्वांतर्यामी, आदिपुरुष, भगवान् त्रिगुणोंके ईश्वर, बुद्धिकी उस अवस्थाको अखंडित अपनी दृष्टि करकै देखो हो, विश्वकी स्थितिमै अतिपूज्य सबसे पृथक् होकै तुम रहो हौ जीवमे यह सब बातै नहीं है ॥ १५ ॥ जामै विरुद्ध गतिवारी विद्यादिक सर्वशक्तियां संक्षेपसे निरंतर उत्पन्न होय है, उस विश्वके उत्पन्न करनेहारे एक अनंत अनाद्य आनंदमात्र अविकारीकी मैं शरण हूं ॥ १६ ॥ हे भ-

कल्पान्त एतदखिलं जठरेण गृह्णञ्छेते पुमान्स्वदृगनन्तसखस्तदन्ते॥यन्नाभिसिन्धुरुहकाञ्चनलोकपद्मगर्भे द्युमान्भगवते प्रणतोऽस्मि तस्मै ॥ १४ ॥ त्वं नित्यमुक्तपरिशुद्धविशुद्ध आत्मा कूटस्थ आदिपुरुषो भगवांस्त्र्यधीशः ॥ यद्बुद्ध्यवस्थितिमखण्डितया स्वदृष्ट्या द्रष्टा स्थितावधिमखो व्यतिरिक्त आस्से ॥१५॥ यस्मिन्विरुद्धगतयो ह्यनिशं पतन्ति विद्यादयो विविधशक्तय आनुपूर्व्यात्॥तद्ब्रह्म विश्वभवमेकमनन्तमाद्यमानन्दमात्रमविकारमहं प्रपद्ये॥१६॥ सत्याऽऽशिषो हि भगवंस्तव पादपद्ममाशीस्तथाऽनुभजतः पुरुषार्थमूर्तेः ॥ अप्येवमार्य भगवान्परिपाति दीनान्वाश्रेव वत्सकमनुग्रहकातरोऽस्मान् ॥ १७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अथाभिष्टुत एवं वै सत्संकल्पेन धीमता ॥ भृत्यानुरक्तो भगवान्प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥ १८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वेदाहं ते व्यवसितं हृदि राजन्यबालक ॥ तत्प्रयच्छामि भद्रं ते दुरापमपि सुव्रत ॥ १९॥

गवन् ! तुह्मारे चरणकमल भजवेवारेको पुरुषार्थमूर्तिके सब आशीर्वाद सत्य हैं, हे आर्य ! भगवान ऐसे है तथापि जैसे नवप्रसूता गौ अपने पुत्रकी रक्षा करै है तैसे अनुग्रहमें कायर हुए आप हमसरीके दीननकी सब ओरसें रक्षा करोहो ॥ १७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि सांचे संकल्पवारे बुद्धिवान् ध्रुवने जब ऐसे स्तुति कीनी, तब भृत्योंपर अनुरागी भगवान वाके प्रति आनंदित होकै बोलै ॥ १८ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे राजपुत्र ! तुह्मारो निश्चय हमने जानलीनो, सो हम तुझे देगे तेरो भद्र होय हे सुव्रत ! ज्यो औरको दुःख करकैभी प्राप्त नहीं है वह तुझै प्राप्त होगा ॥ १९ ॥

हे भद्र! जो प्रकाशात्म

हे नाथ भगवन्! शरणागत ब्रह्मा तुह्मारे दिये भए ज्ञान करकै सोये भयेकी समान जा कर विश्वकों रचैहै हे आर्तबंधो! तुह्मारे उपकारको जानवेवारो मुक्तनकी रक्षा करवेवारे तुह्मारे पादमूलको कैसे विस्मरण करेगो ॥ ८ ॥ निश्चयही तुह्मारी मायाकरकै उनकी नष्टमति है जो जन्ममरणके नाशक कल्पवृक्षरूप तुमकों और कामनाओंके अर्थ पूजै है, क्योंके यादेहके स्पर्शादि विषयजन्य सुख मनुष्यनको नरकमेंभी प्राप्त होय हैं ॥ ९॥ शरीरधारीनको जो आनंद तुह्मारे चरणकमलके ध्यानसे अथवा आपके भक्तजन ब्राह्मणोंके कथा श्रवणसे होय है सो हे नाथ! वह आनंद अपने स्वरूप ब्रह्ममेभी नहीं और अन्तकके खड्गस्वरूप कालसै टुकडे होनेवाले विमानोंमैसै गिरनेवाले देवताओंको कहा प्राप्त होसकै है ॥ १० ॥ हे अनन्त!

त्वद्दत्तया वयुनयेदमचष्ट विश्वं सुप्तः प्रबुद्ध इव नाथ भवत्प्रपन्नः ॥ तस्याऽपवर्ग्यशरणं तव पादमूलं विस्मर्यतेऽकृतविदा कथमार्तबन्धो ॥ ८ ॥ नूनं विमुष्टमतयस्तव मायया ते ये त्वां भवाप्ययविमोक्षणमन्यहेतोः ॥ अर्चन्ति कल्पकतरुं कुणपोपभोग्यमिच्छन्ति यत्स्पर्शजं निरयेऽपि नृणाम् ॥ ९ ॥ या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्मध्यानाद्भवज्जनकथाश्रवणेन वा स्यात् ॥ सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत् किं त्वन्तकासिलुलितात् पततां विमानात् ॥ १० ॥ भक्तिं मुहुः प्रवहतां त्वयि मे प्रसङ्गो भूयादनन्त महताममलाशयानाम् ॥ येनाञ्जसोल्बणमुरुव्यसनं भवाब्धिं नेष्ये भवद्गुणकथाऽमृतपानमत्तः ॥ ११ ॥ ते न स्मरन्त्यतितरां प्रियमीश मर्त्यं ये चान्वदः सुतसुहृद्गृहवित्तदाराः ॥ ये त्वब्जनाभ भवदीयपदारविन्दसौगन्धलुब्धहृदयेषु कृतप्रसङ्गाः ॥ १२ ॥ तिर्यङ्नगद्विजसरीसृपदेवदैत्यमर्त्यादिभिः परिचितं सदसद्विशेषम् ॥ रूपं स्थविष्ठमज ते महदाद्यनेकं नातः परं परम वेद्मि न यत्र वादः ॥ १३ ॥

तुममे सदाभक्ति करवेवारे महान् निर्मल अंतःकरणवारे महात्मानमें मेरो सत्संग होय, जिस्से तुह्मारे गुणोंकी कथारूपअमृतपानसे मत्तमें अनायास बडे व्यसनभरे संसारसमुद्रको उल्लंघन करूंगो ॥ ११ ॥ हे ईश! हे कमलनाभ! आपके चरणकमलकी सुगंधके लोभी हृदयवारोंमें जो सत्संग करै हैं वे अत्यंत प्रियमनुष्यदेहकोभी अनुसंधान नहीं करैहै तथा या देहके पीछै सुत सुहृद घर धन स्त्रीकोभी अनुसंधान नहीं करैहै ॥ १२ ॥ हे ईश! हे परम! पशु पक्षी पर्वत द्विज सर्प देव दैत्य सत् असत् विशेष युक्त महदादि सहित विराटरूपकों हम जानै हैं याते परै परमेश्वरको नहीं

हे भद्र! जो प्रकाशक ध्रुवस्थान है जहां और कोई स्थित नहीं है जहां ग्रहनक्षत्रतारानको अर्पित ज्योतिषोंको चक्र है ॥ २० ॥ जिसमें गृहनक्षत्र तारे और ज्योतिष चक्र मैढी (दीय) में लगे हुए वृषभ समूहोंकी नाईं चारौं ओर फिरते हैं त्रिलोकी नष्ट हौंनेपरभी जो नष्ट नहीं होता धर्म अग्नि कश्यप सर्प वनवासी मुनि ॥ २१ ॥ तारामंडलसहित घूमते भए तुह्मारी परिक्रमा करकै विचरते रहैंगें कहैंगे, कि सबमें सिद्ध ध्रुव उत्तानपादको सुत होतो भयो ॥ २२ ॥ पिता जब तुमको राज्य देकर वनको जायगे, तब तुम जितेन्द्री होकर छत्तीस हजार वर्ष पर्यंत भूमंडलकी रक्षा करोगे ॥ २३ ॥ तुमारो भाई उत्तम शिकार खेलवे जायगो, वहां नष्ट होयगो, तब [illegible] ढूंढती भई दावाग्निमें प्रवेश करेगी ॥ २४ ॥ यज्ञ-

नान्यैरधिष्ठितं भद्र यद्भ्राजिष्णु ध्रुवक्षिति ॥ यत्र ग्रहर्क्षताराणा ज्योतिषां चक्रमाहितम् ॥ २० ॥ मेढ्यां गोचक्रवत्स्थास्नु परस्तात्कल्पवासिनाम् ॥ धर्मोऽग्निः कश्यपः शक्रो मुनयो ये वनौकसः ॥ २१ ॥ चरन्ति दक्षिणीकृत्य भ्रमन्तो यत्सतारकाः ॥ सर्वेषामभवत्सिद्धो ध्रुवोत्तानपदः सुतः ॥ २२ ॥ प्रस्थिते तु वनं पित्रा दत्त्वा गां धर्मसंश्रयः ॥ षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं रक्षिता मण्डलं भुवः ॥ २३ ॥ त्वद्भ्रातर्युत्तमे नष्टे मृगयायां तु तन्मनाः ॥ अन्वेषन्ती वनं माता दावाग्निं सा प्रवेक्ष्यति ॥ २४ ॥ दृष्ट्वा मां यज्ञहृदयं यज्ञैः पुष्कलदक्षिणैः ॥ भुक्त्वा चेहाशिषः सत्या अन्ते मां संस्मरिष्यसि ॥ २५ ॥ ततो गन्तासि मत्स्थानं सर्वलोकनमस्कृतम् ॥ उपरिष्टादृषिभ्यस्त्वं यतो नावर्तते गतः ॥ २६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यर्चितः स भगवानतिदिश्यात्मनः पदम् ॥ बालस्य पश्यतो धाम स्वमगाद्गरुडध्वजः ॥ २७ ॥ सोऽपि संकल्पजं विष्णोः पादसेवोपसादितम् ॥ प्राप्य संकल्पनिर्वाणं नातिप्रीतोऽभ्यगात्पुरम् ॥ २८ ॥

रूप मोको बहुत दक्षिणाके यज्ञ करकै सब सत्य आशीर्वाद यहां भोगकर अंतमें मोको स्मरण करोगे ॥ २५ ॥ तब सब लोकौंसे नमस्कृत सप्तर्षियौंसे ऊपर और ऋषियौंसे स्तुतिको प्राप्त हो मेरे स्थानको प्राप्त होगे जहांको गयो फेर यहां नहीं आवै है ॥ २६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि ऐसे पूजित गरुडध्वज भगवान् अपनो स्थान दिखाय वा बालकके देखते देखते अपने धामकों गए ॥ २७ ॥ सोभी विष्णुके पादसेवासे लब्ध संकल्प मोक्षरूपकूं प्राप्त होयकरभी अधिक प्रसन्न न होय पुरको आवतो भयो ॥ २८ ॥

विदुरजी बोले कि सब अर्थवेत्ता ध्रुव सकाम और मायामें लिप्त पुरुषोंको अति दुर्लभ भगवान् चरणार्चनसे प्राप्त सिद्धिको एकही जन्ममें प्राप्त होनेपर अपनेको अकृतार्थसा क्यों माना ॥ २९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि सौतेली माके वाकरूपी बाणोंसे विधे भए, हृदयमें उनको स्मरण करते, मुक्तिपतिकी मुक्तिकीभी इच्छा न करते भए ॥ ३० ॥ ध्रुवजी बोले कि अनेक जन्म करके समाधिसे नैष्ठिक ब्रह्मचारी सनंदादिकभी जा पदको नहीं प्राप्त होय हैं सो मैं छे मासमें इनके पादच्छायाकों प्राप्त होयकर पृथक् मतिसे फेर संसारके सुखको प्राप्त भयो ॥ ३१ ॥ अहो मंदभागी मेरी दुरात्मा भाव तो देखो कि संसार नाशकके चरणकमलकों प्राप्त होयकर अंतवान पदार्थ मांगे ॥ ३२ ॥ गिरते हुए असहनशील देवतानने मेरी

विदुर उवाच ॥ सुदुर्लभं यत्परमं पदं हरेर्मायाविनस्तच्चरणार्चनार्चितम् ॥ लब्ध्वाप्यसिद्धार्थमिवैकजन्मना कथं स्वमात्मानममन्यतार्थवित् ॥ २९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मातुः सपत्न्या वाग्बाणैर्हृदि विद्धस्तु तान्स्मरन् ॥ नैच्छन्मुक्तिपतेर्मुक्तिं तस्मात्तापमुपेयिवान् ॥ ३० ॥ ध्रुव उवाच ॥ समाधिना नैकपदेन यत्पदं विदुः सनन्दादय ऊर्ध्वरेतसः ॥ मासैरहं षड्भिरमुष्य पादयोश्छायामुपेत्यापगतः पृथङ्मतिः ॥ ३१ ॥ अहो बत ममानात्म्यं मन्दभाग्यस्य पश्यत ॥ भवच्छिदः पादमूलं गत्वा याचे यदन्तवत् ॥ ३२ ॥ मतिर्विदूषिता देवैः पतद्भिरसहिष्णुभिः ॥ यो नारदवचस्तथ्यं नाग्राहिषमसत्तमः ॥ ३३ ॥ दैवीं मायामपाश्रित्य प्रसुप्त इव भिन्नदृक् ॥ तप्ये द्वितीयेप्यसति भ्रातृभ्रातृव्यहृद्रुजा ॥ ३४ ॥ मयैतत्प्रार्थितं व्यर्थं चिकित्सेव गतायुषि ॥ प्रसाद्य जगदात्मानं तपसा दुःप्रसादनम् ॥ ३५ ॥ भवच्छिदमयाचेऽहं भवं भाग्यविवर्जितः ॥ भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न तपःफलम् ॥ ३६ ॥

मति हरलीनी, जो नारदके बचनको मूर्ख मैं मिथ्या मानतो भयो ॥ ३३ ॥ जैसे सोता पुरुष हुआ देवी मायाके आधीन भेददर्शी होय दूसरेके न होनेपरभी स्वप्नमें अपनेसे पृथक अनेक वस्तु भ्राता चाचा इत्यादिको शत्रु मानकर वृथा दुःखी हो ऐसे मैं हृदयके शोकसे संतापको प्राप्त होताहूं ॥ ३४ ॥ मैंने दुष्कर तपस्यासे जगदात्मा भगवानको प्रसन्न कर व्यर्थ वस्तुकी प्रार्थना कीनी, जैसे आयु क्षीणकी चिकित्सा वोह व्यर्थ है वैसे मेरी यह याचना व्यर्थ है ॥ ३५ ॥ हत भाग्य मैंने संसारछेदक हरिसें संसारमें वसनो मागो, सब जगै भाग्य फलै है विद्या तपका फल नहीं होता ॥ ३६ ॥

शिवके भ्राता कुबेरकी यह तुमने अवज्ञा कीनी जो क्रोधके मारे भाईके मारनेहारे पुण्यजनोंको मारा ॥ ३३ ॥ हे वत्स ! नम्रता और सुन्दर वचनसे तिन्हैं प्रसन्न करो, क्यों कि महात्मानको तेज हमारे कुलको तिरस्कार न करै ॥ ३४ ॥ ऐसे स्वायंभुमनु ध्रुव पोतेकों शिक्षा कर ध्रुवसें वंदित ऋषिनको संग लिये अपनें पुरकूं जातो भयो ॥ ३५ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां चतुर्थस्कन्धे मनुना तत्त्वोपदेशेन यक्षवधनिवारणवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ ॥ मैत्रेयजी बोले कि ध्रुवजीको हिंसा क्रोधसे निवृत्त भयो जान भगवान् कुबेरने चारण यक्ष कि-

हेलनं गिरिशभ्रातुर्धनदस्य त्वया कृतम् ॥ यज्जघ्निवान्पुण्यजनान्भ्रातृघ्नानित्यमर्षितः ॥ ३३ ॥ तं प्रसादय वत्साशु सन्नत्या प्रश्रयोक्तिभिः ॥ न यावन्महतां तेजः कुलं नोऽभिभविष्यति ॥ ३४ ॥ एवं स्वायंभुवः पौत्रमनुशास्य मनुर्ध्रुवम् ॥ तेनाभिवन्दितः साकमृषिभिः स्वपुरं ययौ ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे मनुना तत्त्वोपदेशेन यक्षवधनिवारणं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ध्रुवं निवृत्तं प्रतिबुध्य वैशसादपेतमन्युं भगवान् धनेश्वरः ॥ तत्रागतश्चारणयक्षकिन्नरैः संस्तूयमानोऽभ्यवदत्कृताञ्जलिम् ॥ १ ॥ धनद उवाच ॥ भो भोः क्षत्रियदायाद परितुष्टोऽस्मि तेऽनघ ॥ यस्त्वं पितामहादेशाद्वैरं दुस्त्यजमत्यजः ॥ २ ॥ न भवानवधीद्यक्षान्न यक्षा भ्रातरं तव ॥ काल एव हि भूतानां प्रभुरप्ययभावयोः ॥ ३ ॥ अहं त्वमित्यपार्था धीरज्ञानात्पुरुषस्य हि ॥ स्वाप्नीवाभात्यतद्ध्यानाद्यया बन्धविपर्ययौ ॥ ४ ॥

न्नरोंके स्तुति करते वहां आकर हाथ जोडे खडे ध्रुवसै कहा ॥ १ ॥ कुबेर बोले कि हे क्षत्रियनंदन ! हे पापरहित ! हम तुमपर प्रसन्न भए जो तुम पितामहकी आज्ञासे दुस्त्यज वैरको त्यागते भए ॥ २ ॥ न तो आपने यक्षोंको मारा न यक्षोंने आपके भाईको मारो, सब जीवनको उत्पत्ति नाश कर्ता प्रभु काल है ॥ ३ ॥ हम है तुम हो ये जो अज्ञानकी बुद्धि पुरुषको होती है सो स्वप्नकी मायाके समान असतसै उत्पन्न हुए देहके अनुसंधान-

५५

से होती है जिसमें बंध और दुःखादि विपर्यय होते हैं ॥४ ॥ हे ध्रुव ! तुह्मारो मंगल होय अब जाओ, भगवान् अधोक्षज सर्व भूतात्मविग्रह परमेश्वरकों सर्वभावकरके प्राप्त होओ ॥ ५ ॥ सेवन करनेयोग्य चरणवारे संसारके नाशक, शक्ति करकै युक्त, गुणमयी आत्ममाया करके रहित, परमेश्वरको संसार निवृत्तिके अर्थ तुम भजो ॥ ६ ॥ हे उत्तानपाद पुत्र ! निःशंक होयकर जो तुह्मारे मनमें काम होय सो मांगो, वर मांगो तुम वरके योग्य हो, कारण कि हमने सुनाहै कि तुम भगवान्‌के चरणोंके अधिक समीपी हो ॥ ७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि, राजा कुबेरने जब वर मांगो ये कही तब महाभागवत ध्रुव हरिमेंसेभी चलायमान न होनेहारी भक्ति स्मृति मांगते भये, जा करकै दुरत्यय अंधकार विना यत्न तरजाय है ॥ ८ ॥ इड-

तद्गच्छ ध्रुव भद्रं ते भगवन्तमधोक्षजम् ॥ सर्वभूतात्मभावेन सर्वभूतात्मविग्रहम् ॥ ५ ॥ भजस्व भजनीयाङ्घ्रिमभवाय भवच्छिदम् ॥ युक्तं विरहितं शक्त्या गुणमय्यात्ममायया ॥ ६ ॥ वृणीहि कामं नृप जन्मनो गतं मत्तस्त्वमौत्तानपदेऽविशङ्कितः ॥ यतो वरार्होऽम्बुजनाभपादयोरनन्तरं त्वां वयमङ्ग शुश्रुम ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स राजराजेन वराय चोदितो ध्रुवो महाभागवतो महामतिः ॥ हरौ स वव्रेऽचलितां स्मृतिं यया तरत्ययत्नेन दुरत्ययं तमः ॥ ८ ॥ तस्य प्रीतेन मनसा तां दत्त्वैडविडासुतः ॥ पश्यतोऽन्तर्दधे सोऽपि स्वपुरं प्रत्यपद्यत ॥ ९ ॥ अथायजत यज्ञेशं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ द्रव्यक्रियादेवतानां कर्म कर्मफलप्रदम् ॥ १० ॥ सर्वात्मन्यच्युते सर्वे तीव्रौघां भक्तिमुद्वहन् ॥ ददर्शात्मनि भूतेषु तमेवावस्थितं विभुम् ॥ ११ ॥ तमेवं शीलसंपन्नं ब्रह्मण्यं दीनवत्सलम् ॥ गोप्तारं धर्मसेतूनां मेनिरे पितरं प्रजाः ॥ १२ ॥ षट्त्रिंशद्वर्षसाहस्रं शशास क्षितिमण्डलम् ॥ भोगैः पुण्यक्षयं कुर्वन्नभोगैरशुभक्षयम् ॥ १३ ॥

विडाके सुत कुबेर प्रसन्न मनसे उन्हैं भक्ति देकर ध्रुवके देखते देखते अंतर्ध्यान हो अपने धामकों जाते भए ॥ ९ ॥ फिर ध्रुवजी बहुत दक्षिणावाले यज्ञोंसे द्रव्यक्रिया और देवता सम्बन्धी कर्मकर फलरूप साध्य कर्मके फलदाता भगवानको पूजते भये ॥ १० ॥ सबके आत्मा अच्युतमें तीव्र भक्ति करते आत्मा और सब जीवनमें स्थित एक समर्थकोंही देखते भए ॥ ११ ॥ शीलमें सम्पन्न ब्रह्मण्य दीनवत्सल धर्मसेतूनके रक्षक तिन ध्रुवकों सब प्रजा पिता मानती भई ॥ १२ ॥ सो छत्तीस सहस्र वर्ष भूमंडलको शिक्षा करते भए, भोगोंसे पु-

ण्य और अभोगसे अशुभ क्षय करतेभए ॥ १३ ॥ कि ऐसे बहुत कालपर्यंत जितेंद्रिय होय त्रिवर्गकों व्यतीतकर पुत्रकों नृपासन देते भये ॥ ॥ १४ ॥ या विश्वको आत्मामें मायारचित मान जो कि अविद्यारचित स्वप्नवत् गंधर्वनगरसदृश है ॥ १५ ॥ देह स्त्री पुत्र सुहृद सेना ऋद्धि खजाना अंतःपुर रमणीक विहारकी भूमि समुद्रपर्यंत भूमंडलराज्य, ये सब कालकरकैं नष्टप्राय मानकर ध्रुवजी बद्रिकाश्रमको जाते भए ॥ १६ ॥ तामें जाय सब इंद्रियें विशुद्धकर कल्याणरूप जलमें स्नानकर, आसन बांध पवन मन सब इंद्रियोंको जीत स्थूलभगवत्प्रतिमामें मनको लगाय ध्यान कर

एवं बहुसवं कालं महात्माऽविचलेन्द्रियः ॥ त्रिवर्गौपयिकं नीत्वा पुत्रायादान्नृपासनम् ॥ १४ ॥ मन्यमान इदं विश्वं मायारचितमात्मनि ॥ अविद्यारचितं स्वप्नगन्धर्वनगरोपमम् ॥ १५ ॥ आत्मस्त्र्यपत्यसुहृदो बलमृद्धकोशमन्तःपुरं परिविहारभुवश्च रम्याः ॥ भूमण्डलं जलधिमेखलमाकलय्य कालोपसृष्टमिति स प्रययौ विशालाम् ॥ १६ ॥ तस्यां विशुद्धकरणः शिववार्विगाह्य बद्धाऽऽसनं जितमरुन्मनसा हृताक्षः ॥ स्थूले दधार भगवत्प्रतिरूप एतद्ध्यायंस्तदव्यवहितो व्यसृजत्समाधौ ॥ १७ ॥ भक्तिं हरौ भगवति प्रवहन्नजस्रमानन्दबाष्पकलया मुहुरर्द्यमानः ॥ विक्लिद्यमानहृदयः पुलकाञ्चिताङ्गो नात्मानमस्मरदसाविति मुक्तलिङ्गः ॥ १८ ॥ स ददर्श विमानाग्र्यं नभसोऽवतरद् ध्रुवः ॥ विभ्राजयद्दश दिशो राकापतिमिवोदितम् ॥ १९ ॥ तत्रानुदेवप्रवरौ चतुर्भुजौ श्यामौ किशोरावरुणाम्बुजेक्षणौ ॥ स्थिताववष्टभ्य गदां सुवाससौ किरीटहाराङ्गदचारुकुण्डलौ ॥ २० ॥ विज्ञाय तावुत्तमगायकिंकरावभ्युत्थितः साध्वसविस्मृतक्रमः ॥ ननाम नामानि गृणन्मधुद्विषः पार्षत्प्रधानाविति संहताञ्जलिः ॥ २१ ॥

ते निरंतर समाधि लगावते भये ॥ १७ ॥ श्रीहरिभगवान्में निरंतर भक्ति करते आनंदकी बाष्पकलासै वारंवार पीडित, विवशहृदय, और पुलकित अंग, सब मोहत्याग अपनपेकोभी स्मरण न करते भये ॥ १८ ॥ तब आकाशसे उतरता विमान ध्रुवजी देखते भए, जैसे दशो दिशामें प्रकाशै मानू चंद्रको उदय भयोहै ॥ १९ ॥ तहां देवश्रेष्ठ चतुर्भुजी श्याम किशोर रक्तकमलसमान नेत्र गदा लियें खडे, सुंदर वस्त्र पहिने, किरीट हार बाजू सुंदर मकराकृत कुंडल धारे है ॥ २० ॥ उन्हैं नारायणके पार्षद जान ध्रुवजी तत्काल उठकर खडे हुए और संभ्रमके कारण अर्घ्यादिकी

विस्मृति होगई और उन भगवानके प्रधान पार्षदोंको नारायणका नाम उच्चारण कर प्रणाम करने लगे ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णके चरणोंमें मन लगे रहनेके कारण विनयसै शिर झुकाये कर जोडे खडे ध्रुवके निकट जाय मुसकाते हुए भगवानके परममाननीय सुनंद और नंदनाम पार्षदोंनै कहा ॥ २२ ॥ सुनंदनंद बोले कि हे महाराज ! तुमारो भद्र होय सावधान होयकर हमारी वाणी सुनो पंचवर्षके तुमने जिन देवताका आराधन कर उन्हैं तृप्त कियाथा ॥ २३ ॥ तिस सब जगतके धारण पोषण करवेवारे धनुषधारी देव श्रीमन्नारायणके हम पार्षद तुह्मै भगवतके स्थान ले जायवेको यहां

तं कृष्णपादाभिनिविष्टचेतसं बद्धाञ्जलिं प्रश्रयनम्रकन्धरम् ॥ सुनन्दनन्दावुपसृत्य सस्मितं प्रत्यूचतुः पुष्करनाभसंमतौ ॥ २२ ॥ सुनन्दनन्दावूचतुः ॥ भो भो राजन्सुभद्रं ते वाचं नोऽवहितः शृणु ॥ यः पञ्चवर्षस्तपसा भवान्देवमतीतृपत् ॥ २३॥ तस्याखिलजगद्धातुरावां देवस्य शार्ङ्गिणः ॥ पार्षदाविह संप्राप्तौ नेतुं त्वां भगवत्पदम् ॥ २४ ॥ सुदुर्जयं विष्णुपदं जितं त्वया यत्सूरयोऽप्राप्य विचक्षते परम् ॥ आतिष्ठ तच्चन्द्रदिवाकरादयो ग्रहर्क्षताराः परियन्ति दक्षिणम् ॥ २५ ॥ अनास्थितं ते पितृभिरन्यैरप्यङ्ग कर्हिचित् ॥ आतिष्ठ जगतां वन्द्यं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ २६ ॥ एतद्विमानप्रवरमुत्तमश्लोकमौलिना ॥ उपस्थापितमायुष्मन्नधिरोढुं त्वमर्हसि ॥ २७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ निशम्य वैकुण्ठनियोज्यमुख्ययोर्मधुच्युतां वाचमुरुक्रमप्रियः ॥ कृताभिषेकः कृतनित्यमङ्गलो मुनीन्प्रणम्याशिषमभ्यवादयत् ॥ २८ ॥

आये हैं ॥ २४ ॥ जो जीतवेमै न आवै सो विष्णुपद तुमनें जीतो है, जाकों सप्तर्षिभी अप्राप्त हो दूरसे खडे देखते हैं, वहां तुम स्थित रहो, जहां चंद्रमा सूर्यादिक ग्रह नक्षत्र तारा आपकी प्रदक्षिणा करैंगे ॥ २५ ॥ हे ध्रुव ! तुह्मारे कोई पुरखा वा स्थानमें न गयेहैं जगतको वंद्य विष्णुको परमपद है तामैं स्थित होओ ॥ २६ ॥ ये विमान उत्तम महायशस्वी ईश्वरने तुह्मारे वास्ते भेजो है यासें हे आयुष्मन् ! यापैं चढवेको योग्य हो ॥ २७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि वैकुंठमें मुख्य अधिकारवालोंकी मधुचुचातिवाणी भगवत्प्रिय ध्रुव सुन अभिषेक कर, नित्य मंगल कर, मुनी

प्रजामें समान भावसे प्रवेश करनेहारे मृत्युरूप कालपुरुषको न तो कोई अपनो पक्षको है, न शत्रु है, असमर्थ अनाथ होयके यह प्राणीसमूह कालके दौडनेके साथही सब जीव समूह उनके पीछे धावै है, जैसे पवनके संग रज उडै है ॥ २० ॥ जीवकी आयुको घटनो और बढनो यह दोनो कर्माधीन जीवके स्वामी आप करते हैं तथापि आप सदा स्वस्थ और अपचय उपचयसे रहित हैं ॥ २१ ॥ हे नृप! कोई कर्मको ईश्वर कहैं है " वात्स्यायनादिकश्रुतिश्च । कामोऽकार्षीत्कामः करोति कामः कर्ता कामः कारयितेति ॥ " कोई स्वभावकों कहै है, एक आचार्य कालको ईश्वर कहै है, कोई भाग्यको ईश्वर कहै है, कोई और आचार्य कामदेवको ईश्वर माने है ॥ २२ ॥ हे तात ! अप्रगट, प्रमाणसे दूर; नानाशक्तीनके उदयकारी, परमेश्वरकी जो करवेकी इच्छा है सो कोई नहीं जानै है, न उनके जन्मकी खबर पडे है "तथाच श्रुतिः । को अद्धा वेद क इह प्रावोचत्कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथाको वेद यत आबभूव " इत्यादिः ॥ २३ ॥ हे पुत्र! इन कुबेरके यक्षौंने तुह्मारो भाई नहीं मारो है हे तात! जन्ममरण पुरुषके भाग्यसे होय है ॥ २४ ॥ सोई विश्वकों रचे है, सोई रक्षा करै है, यद्यपि ऐसे है तथापि अहंकार न करवेसे गुणकर्म करकै लिप्त नहीं होय है ॥ २५ ॥ ये कालरूप ईश्वर भूतात्मा भूतनके ईश सबके अपनी मायाशक्तिकों लेकै सब जीवमात्रको रचै रक्षा करै संहार

न वै स्वपक्षोऽस्य विपक्ष एव वा परस्य मृत्योर्विशतः समं प्रजाः ॥ तं धावमानमनुधावन्त्यनीशा यथा रजांस्यनिलं भूतसंघाः ॥२०॥ आयुषोऽपचयं जन्तोस्तथैवोपचयं विभुः ॥ उभाभ्यां रहितः स्वस्थो दुःस्थस्य विदधात्यसौ ॥२१॥ केचित्कर्म वदन्त्येनं स्वभावमपरे नृप ॥ एके कालं परे दैवं पुंसः काममुतापरे ॥ २२ ॥ अव्यक्तस्याप्रमेयस्य नानाशक्त्युदयस्य च ॥ न वै चिकीर्षितं तात को वेदाऽथ स्वसंभवम् ॥२३॥ नचैते पुत्रक भ्रातुर्हन्तारो धनदानुगाः॥ विसर्गादानयोस्तात पुंसो दैवं हि कारणम् ॥२४॥ स एव विश्वं सृजति स एवावति हन्ति च॥ अथापि ह्यनहंकारान्नाज्यते गुणकर्मभिः ॥२५॥ एष भूतानि भूतात्मा भूतेशो भूतभावनः ॥ स्वशक्त्या मायया युक्तः सृजत्यत्ति च पाति च ॥२६॥

करै है ॥ २६ ॥ हे तात! मृत्यु, अमृत, भाग्यरूप जगत्परायण सर्वात्माकी शरण जाओ, जाके अर्थ विश्व रचवेवारे बलि दे है, जैसे दामसे बंधे बैल जितकूं चाहै तितकूं चलै है ॥ २७ ॥ जो पांचवर्षके माकू त्याग, सौतेली माके वचनसे मर्म भिदनेसे वनमें गए, तपसे ईश्वरकों आराधन कर त्रिलोकीके मूडपर स्थानको प्राप्त होते भए ॥ २८ ॥ हे अंग ध्रुव! विरोध रहित आत्मामें स्थित निर्गुण एक अक्षर आत्माको विमुक्त आत्माको आत्मद्रष्टा होकर ढूंढो जिसमें यह असद्भेद प्रतीत होय है ॥ २९ ॥ तुम दिव्यदृष्टि करकै भगवान् अनंत आनंदमात्र व्यापक सर्व शक्तिमान ना-

तमेव मृत्युममृतं तात दैवं सर्वात्मनोपैहि जगत्परायणम् ॥ यस्मै बलिं विश्वसृजो हरन्ति गावो यथा वै नसि दामयन्त्रिताः ॥ २७ ॥ यः पञ्चवर्षो जननीं त्वं विहाय मातुः सपत्न्या वचसा भिन्नमर्मा ॥ वनं गतस्तपसा प्रत्यगक्षमाराध्य लेभे मूर्ध्नि पदं त्रिलोक्याः ॥ २८ ॥ तमेनमङ्गात्मनि मुक्तविग्रहे व्यपाश्रितं निर्गुणमेकमक्षरम् ॥ आत्मानमन्विच्छ विमुक्त आत्मदृग् यस्मिन्निदं भेदमसत्प्रतीयते ॥ २९ ॥ त्वं प्रत्यगात्मनि तदा भगवत्यनन्त आनन्दमात्र उपसन्नसमस्तशक्तौ ॥ भक्तिं विधाय परमां शनकैरविद्याग्रन्थिं विभेत्स्यसि ममाहमिति प्ररूढम् ॥ ३० ॥ संयच्छ रोषं भद्रं ते प्रतीपं श्रेयसां परम् ॥ श्रुतेन भूयसा राजन्नगदेन यथाऽऽमयम् ॥ ३१ ॥ येनोपसृष्टात्पुरुषाल्लोक उद्विजते भृशम् ॥ न बुधस्तद्वशं गच्छेदिच्छन्नभयमात्मनः ॥ ३२ ॥

रायणमें पराभक्ति करके धीरेसै मम अहंरूप अविद्याकी ग्रंथि काटोगे (१) ॥ ३० ॥ क्रोध दूर करो, तुह्मारो भद्र होय, ये क्रोध सब मंगलको शत्रु है, जैसे दवासे रोग नाश होय हैं इसी प्रकार शास्त्र सुन्नेका क्रोध न करनाही फल है ॥ ३१ ॥ क्रोधके वशी हौनेसै इस प्राणीसै सब उद्विग्न होते है यासे अपने आत्माको अभय चाहै तो बुद्धिवान् कभी क्रोधके वशमें न होय ॥ ३२ ॥

---

१ या वार्तापर एक महात्माको बनायो पद है ॥ रागिनी भैरवी ॥ नारायणकी भक्ति लिये बिन मुक्ति कोई नहीं पावैगा ॥ टेर ॥ तामस राजस देवाहि पूजै रजतम पुरमें जावैगा ॥ १॥ भैरव भूत प्रेत चंडी हित गंदा भोजन खावैगा ॥ २ ॥ तामस बोली तामसवृत्ति तामस शास्त्र सुहावैगा ॥३॥ यही जान रजतमकों त्यागो हृदयमें पुरुष दिखावैगा ॥ ४॥ देव मनुष्य ऋषि दास हरीके सबसें प्रीत सहावैगा ॥ ५ ॥ भक्ति करैं सो सबसें उत्तम द्विज मुनि यति कहावैगा ॥ ६ ॥ पुरुषोत्तमको दासदास मिलवे परपद पहुंचावैगा ॥ ७॥

भई वो मनोहर रणभूमी वीरोंको आनंद देती भई ॥ १९ ॥ मानव श्रेष्ठके बाणोंसे संग्रामआंगनमें जब अनेक राक्षसोंके शरीर कटगये, तब मरनेसे
बचे सिंघके भगाए हाथीकी समान भागते भए ॥ २० ॥ मानवोंमें उत्तम ध्रुवजीने जब वा महासंग्राममें काउकोंभी शस्त्रधारियोंके मध्यमें न देखो,
तब वैरियोंकी पुरी देखनेको न घुसे, क्यौं कि मायाविनकी जाने कहा करवेकी इच्छा होय ये जानते भए ॥ २१ ॥ विचित्र रथी ध्रुव अपने सार-
थीसे ऐसे कहि वैरियोंके पुनः उद्योगकी शंकाकर यत्नवान थे कि तबतक समुद्रकी गर्जनाकी नाईं शब्द सुनते भए, सब दिशानसे पवनसे रज उ-
डती आती देखतेभए ॥ २२ ॥ एक क्षणमें आकाश मेघ सैनाकी नाईं सब ढकजातो भयो, सब ओरसे सब दिशानमें बिजुरी चमकने लगी,

हतावशिष्टा इतरे रणाजिराद्रक्षोगणाः क्षत्रियवर्यसायकैः ॥ प्रायो विवृक्णावयवा विदुद्रुवुर्मृगेन्द्रविक्रीडितयूथपा इव
॥ २० ॥ अपश्यमानः स तदाततायिनं महामृधे कंचन मानवोत्तमः ॥ पुरीं दिदृक्षन्नपि नाविशद्द्विषां न मायिनां वेद
चिकीर्षितं जनः ॥ २१ ॥ इति ब्रुवंश्चित्ररथः स्वसारथिं यतः परेषां प्रतियोगशङ्कितः ॥ शुश्राव शब्दं जलधेरिवेरितं
नभस्वतो दिक्षु रजोऽन्वदृश्यत ॥ २२ ॥ क्षणेनाच्छादितं व्योम घनानीकेन सर्वतः ॥ विस्फुरत्ताडिता दिक्षु त्रासयन्
स्तनयित्नुना ॥ २३ ॥ ववृषू रुधिरौघासृक्पूयविण्मूत्रमेदसः ॥ निपेतुर्गगनादस्य कबन्धान्यग्रतोऽनघ ॥ २४ ॥ ततः खेऽ-
दृश्यत गिरिर्निपेतुः सर्वतो दिशम् ॥ गदापरिघनिस्त्रिंशमुशलाः साश्मवर्षिणः ॥ २५ ॥ अहयोऽशनिनिःश्वासा वमन्तोऽ-
ग्निं रुषाक्षिभिः ॥ अभ्यधावन्गजा मत्ताः सिंहव्याघ्राश्च यूथशः ॥ २६ ॥ समुद्र ऊर्मिभिर्भीमः प्लावयन्सर्वतो भुवम् ॥
आससाद महाह्लादः कल्पान्त इव भीषणः ॥ २७ ॥

गर्जन शब्दसे सबकों त्रास देते भए ॥ २३ ॥ हे पापरहित ! रुधिरको समूह पीव विष्ठा मूत्र चरबी ये वर्षाते भए, याके आगे आकाशसे कबंध गिर-
ने लगे ॥ २४ ॥ आकाशमें पर्वत दीखवे लगे, सब दिशानसे गदा परिघ निस्त्रिंश मूसल पाषाण गिरते भए ॥ २५ ॥ वज्रपातसे स्वांस लेते सर्प क्रोधसे
आंखोंसे अग्नि वर्षाते भए, मत्त गज सिंह व्याघ्र समूहके समूह दौडते भए ॥ २६ ॥ समुद्र भयंकर लहरोंसें सब भूमिकों डुबावते भए महा घोर श-
ब्द भयानक महाप्रलयसदृश करते भये ॥ २७ ॥

क्रूर प्रवृत्तिवाले यक्षोंने अपनी राक्षसी मायासे कायरोंको भय देनेहारी अनेक प्रकारकी रची ॥ २८॥ असुरोंने ध्रुवजीपै दुस्तर मायानको जब प्रयोगन कीनो, ये सुनकर मुनिलोग आयकर वाको मंगल करते भए ॥ २९ ॥ मुनियों बोले कि हे उत्तानपादके पुत्र ! शार्ङ्गधन्वा देव भगवान् शरणागत प्रतिपालक तुमारे शत्रुनको नाश करैंगे, हे ध्रुव! जिनको नाम लेवेसे सुनवेसे अनायास करकै प्राणी साक्षात् मृत्युकों तर जांय हैं ॥३०॥ इति श्रीम-

एवंविधान्यनेकानि त्रासनान्यमनस्विनाम् ॥ ससृजुस्तिग्मगतय आसुर्या माययाऽसुराः ॥ २८॥ ध्रुवे प्रयुक्तामसुरैस्तां मायामतिदुस्तराम् ॥ निशम्य तस्य मुनयः शमाशंसन्समागताः ॥ २९ ॥ मुनय ऊचुः ॥ औत्तानपादे भगवांस्तव शार्ङ्गधन्वा देवः क्षिणोत्ववनतार्तिहरो विपक्षान् ॥ यन्नामधेयमभिधाय निशम्य चाद्धा लोकोऽञ्जसा तरति दुस्तरमङ्ग मृत्युम् ॥ ३० ॥ इति श्रीभा० चतुर्थ० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ निशम्य गदतामेवमृषीणां धनुषि ध्रुवः ॥ संदधेऽस्त्रमुपस्पृश्य यन्नारायणनिर्मितम् ॥ १ ॥ संधीयमान एतस्मिन्माया गुह्यकनिर्मिताः ॥ क्षिप्रं विनेशुर्विदुर क्लेशा ज्ञानोदये यथा ॥ २ ॥

न्महाभागवतभाषाटीकायां चतुर्थस्कन्धे ध्रुवस्य यक्षैः सह युद्धवर्णनं नाम दशमोध्यायः ॥१०॥ मैत्रेयजी बोले कि, ऋषिनके ऐसे कहे भए वचन सुनकै ध्रुवजी आचमन कर नारायणको निर्मित करो भयो अस्त्र धनुषमें संधान करते भए ॥ १ ॥ हे विदुर! जब धनुषमें याकों संधान कीनो, तब यक्षोंकी करी सब माया शीघ्र नष्ट होगई, जैसे ज्ञानके उदय होयवेसे सब क्लेश दूर होय हैं ॥ २ ॥

---

१ हे ध्रुव तेरो मंगल होय, तो सम जगमें और न कोय ॥ हरिमें पाप दिये सब खोय, तेरे वैरीते प्रीति रोय ॥ १॥ राजनमें तू है शिरताज, तो सम कोउ नाहि जगमें आज ॥ तुम पायो देवतनको राज, श्रीहरिने कीने सब काज ॥ २ ॥ सो या माहात्म्यके भजन है ॥

२ ठुमरी ॥ नारायण नरसिंह नरोत्तम पुरुषोत्तमको ध्यान धरोरे ॥ टेर ॥ गिरवरधर गोपाल गदाधर गरुडध्वज पद हृदय धरोरे ॥ १ ॥ दीनानाथ दीनके बंधु दीनदयाल दामोदर नरहरि, जगन्नाथ जगबंधन गावौ केहसुबुद्ध कुबुद्ध हरोरे ॥ २ ॥ सुखकरण दुखहरण दयानिध नरहरि नाम निरंजन रघुपति, भवभंजन सब जन मनरंजन कृपासिंधु दारिद्र हरोरे॥३॥ परमानंद परमेश्वर स्वामी अंतर्जामी गरुडगजगामी, पांच वर्षके ध्रुवजी जगतमें चरनशरनमें आन परोरे ॥ ४ ॥

जव ध्रुवजीने नारायणास्त्रको प्रयोग कीनो, तव सुवर्णके अंतभागसे मनोहर हंसोंके पंखरूप वस्त्रयुक्त वाण निकस वैरिनकी सेनामें घुसगए जैसे भयंकर शब्दकर मोर वनसे घुसैहै ॥ ३ ॥ पैनी धाराके वाणोंसे हत होय पुण्यजन भागे संग्राममें कुपित आयुध उठाय गरुडजीके मारवेको फण उठायकर सर्पकी समान सन्मुख ध्रुवपर दौडते भए ॥ ४ ॥ सो ध्रुवजी वाणोंसे संग्राममें उनके वाहु, ऊरु, शिर, अधर, कंधा, उदर, काट सूर्यमंडलसे परै लोकमें पहुंचावते भए जैसे ऊर्ध्वरेता आकाशको भेद वैकुंठको जांयं है ॥ ५ ॥ चित्ररथी ध्रुवसे निरपराधी गुह्यकोंको वहुत मारते देख, कृपाकरकै

तस्याऽर्षमस्त्रं धनुषि प्रयुञ्जतः सुवर्णपुङ्खाः कलहंसवाससः ॥ विनिःसृता निर्विविशुर्द्विषद्बलं यथा वनं भीमरवाः शिखण्डिनः ॥ ३ ॥ तैस्तिग्मधारैः प्रधने शिलीमुखैरितस्ततः पुण्यजना उपद्रुताः ॥ तमभ्यधावन्कुपिता उदायुधाः सुपर्णमुन्नद्धफणा इवाहयः ॥ ४ ॥ स तान् पृषत्कैरभिधावतो मृधे निकृत्तबाहूरुशिरोधरोदरान् ॥ निनाय लोकं परमर्कमण्डलं व्रजन्ति निर्भिद्य यमूर्ध्वरेतसः ॥ ५ ॥ तान्हन्यमानानभिवीक्ष्य गुह्यकाननागसांश्चित्ररथेन भूरिशः ॥ औत्तानपादिं कृपया पितामहो मनुर्जगादोपगतः सहर्षिभिः ॥६॥ मनुरुवाच ॥ अलं वत्सातिरोषेण तमोद्वारेण पाप्मना ॥ येन पुण्यजनानेतानवधीस्त्वमनागसः ॥ ७ ॥ नास्मत्कुलोचितं तात कर्मैतत्सद्विगर्हितम् ॥ वधो यदुपदेवानामारब्धस्तेऽकृतैनसाम् ॥ ८ ॥ नन्वेकस्यापराधेन प्रसङ्गाद्बहवो हताः ॥ भ्रातुर्वधाभितप्तेन त्वयाऽङ्ग भ्रातृवत्सल ॥ ९ ॥ नायं मार्गो हि साधूनां हृषीकेशानुवर्तिनाम् ॥ यदात्मानं पराग्गृह्य पशुवद्भूतवैशसम् ॥ १० ॥

मनु पितामह ऋषि सहित आयकर उत्तानपादको पुत्र ध्रुवसें वोले ॥ ६ ॥ मनुजी वोले कि हे पुत्र ! तमके द्वार रोषसे वस करो, या क्रोधसे निरपराधी पुण्यजन तुमने मारे है ॥ ७ ॥ हे पुत्र ! हमारे कुलके उचित ये कर्म नहीं है, कि निरपराधी यक्षोंको ऐसो वध कीनो ॥ ८ ॥ एकके अपराधमें प्रसंगसें वहुत मार डारे, हे भ्रातृवत्सल ! हे अंग ! भाईके वध होनेसै तपित होयकर तुमने ये कर्म कीनोहै ॥ ९ ॥ हृषीकेश भगवानके अनुवर्ती साधुनको ये मार्ग नहीं है, जो तुम आत्मज्ञानको प्राप्त होयकर पशुनकी नाईं जीवहिंसा करोहो ॥ १० ॥

---

१ ध्रुवनें नारायण अस्त्रसै यक्षौंको मारा इस्से वह परमपदको गये दूसरी [illegible] हभी थी कि ध्रुव नारायणके अत्यन्त भक्त थे उनके दर्शन कर यक्षौंकी गति हुई ॥

सब जीवमात्रमें आपसरीको भावकर, सब भूतमें निवास करनेहारे हरिको आराधन कर दुराराध्य विष्णुके परमपदको प्राप्त होतेभए ॥ ११ ॥ सो तुमनें हरिकोभी ध्यान कीनो है, और श्रेष्ठ पुरुषोंकेभी माननीय होकर और सत्पुरुषोंके शिक्षक होकर फिर क्यों ऐसो निन्द्यकर्म करोहो ॥ १२ ॥ सहनशीलता दया मैत्री सब जीवमात्रमें करनी योग्य है, सबमें समताभाव करवेसें भगवान् प्रसन्न होय हैं ॥ १३ ॥ जब भगवान् प्रसन्न होय हैं, तब प्राकृतगुणसें पुरुष मुक्त होयकर जीवन्मुक्त हो ब्रह्मके आनंदको प्राप्त होय है ॥ १४ ॥ पंचभूतसे ये सब स्त्री पुरुष जन्मे है, इन दोनोंके मैथुनसे फेर

सर्वभूतात्मभावेन भूतावासं हरिं भवान् ॥ आराध्याऽऽप दुराराध्यं विष्णोस्तत्परमं पदम् ॥ ११॥ स त्वं हरेरनुध्यातस्तत्पुंसामपि संमतः ॥ कथं त्ववद्यं कृतवाननुशिक्षन्सतां व्रतम् ॥ १२ ॥ तितिक्षया करुणया मैत्र्या चाखिलजन्तुषु ॥ समत्वेन च सर्वात्मा भगवान्संप्रसीदति ॥ १३ ॥ संप्रसन्ने भगवति पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥ विमुक्तो जीवनिर्मुक्तो ब्रह्मानिर्वाणमृच्छति ॥ १४ ॥ भूतैः पञ्चभिरारब्धैर्योषित्पुरुष एव हि ॥ तयोर्व्यवायात्संभूतिर्योषित्पुरुषयोरिह ॥ १५ ॥ एवं प्रवर्तते सर्गः स्थितिः संयम एव च ॥ गुणव्यतिकराद्राजन्मायया परमात्मनः ॥ १६ ॥ निमित्तमात्रं तत्रासीन्निर्गुणः पुरुषर्षभः ॥ व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं यत्र भ्रमति लोहवत् ॥१७॥ स खल्विदं भगवान्कालशक्त्या गुणप्रवाहेण विभक्तवीर्यः ॥ करोत्यकर्तैव निहन्त्यहन्ता चेष्टा विभूम्नः खलु दुर्विभाव्या ॥ १८ ॥ सोऽनन्तोऽन्तकरः कालोऽनादिरादिकृदव्ययः ॥ जनं जनेन जनयन्मारयन्मृत्युनाऽन्तकम् ॥ १९ ॥

छोरा छोरी होय है ॥ १५ ॥ हे राजन् ! परमात्माकी मायाकरकै गुणोंके उलटे पलटे होनेसे उत्पत्ति पालन नाश होय है ॥ १६ ॥ उसमें निर्गुण और पुरुष श्रेष्ठ ईश्वर निमित्त मात्र हैं, जिस कारणसे यह प्रगट अप्रगट विश्व चम्मक पत्थरसे लोहकी नाई घूमता है ॥ १७ ॥ सो भगवान् कालशक्ति करकै गुणोंके क्षोभद्वारा सृष्टि आदि विषय शक्तिको विभागकरकै जगतको रचकरभी आप अकर्ता होयकर रहे हैं अकर्ता होयकै करैहैं, अहंता होयके मारै हैं निश्चय है कि सर्व सामर्थ्यवान् ईश्वरकी चेष्टा जानवेमें न आवै है ॥ १८ ॥ सो अनंत, अंत करवेवारो है, काल अनादि सबकी आदि करवेवारो है, सो जनोंसें जनोंको जन्मावै हैं, मृत्युकरके कालरूप होय मारते हैं ॥ १९ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ प्रजापतेर्दुहितरं शिशुमारस्य वै ध्रुवः ॥ उपयेमे भ्रमिं नाम तत्सुतौ कल्पवत्सरौ ॥ १ ॥ इला-
यामपि भार्यायां वायोः पुत्र्यां महाबलः ॥ पुत्रमुत्कलनामानं योषिद्रत्नमजीजनत् ॥ २ ॥ उत्तमस्त्वकृतोद्वाहो
मृगयायां बलीयसा ॥ हतः पुण्यजनेनाद्रौ तन्माताऽस्य गतिं गता ॥३ ॥ ध्रुवो भ्रातृवधं श्रुत्वा कोपामर्षशुचाऽर्पितः ॥
जैत्रं स्यन्दनमास्थाय गतः पुण्यजनालयम् ॥ ४ ॥ गत्वोदीचीं दिशं राजा रुद्रानुचरसेविताम् ॥ ददर्श हिमवद्द्रोण्यां
पुरीं गुह्यकसंकुलाम् ॥५॥ दध्मौ शङ्खं बृहद[illegible]खं दिशश्चानुनादयन् ॥ येनोद्विग्नदृशः क्षत्तरुपदेव्योऽत्रसन्भृशम्
॥ ६ ॥ ततो निष्क्रम्य बलिन उपदेवमहाभटाः ॥ असहन्तस्तं निनादमभिपेतुरुदायुधाः ॥ ७ ॥ स तानापततो वीर
उग्रधन्वा महारथः ॥ एकैकं युगपत्सर्वानहन् बाणैस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ८ ॥ ते वै ललाटलग्नैस्तैरिषुभिः सर्व एव हि ॥
मत्वा निरस्तमात्मानमाशंसन्कर्म तस्य तत् ॥ ९ ॥

मैत्रेयजी बोले कि शिशुमार प्रजापतिकी भ्रमिनाम्नी कन्यासे ध्रुवजी विवाह करते भए, ताके सुत कल्प वत्सर होतेभए ॥ १ ॥ जो वायुकी कन्या इलास्वभार्यामें महाबली उत्कल नामक पुत्र उत्पन्न करते भए, वो योषितानको रत्न समान भयो ॥ २ ॥ उत्तमने विवाह न कीनो, शिकारको गयो, वहां बली यक्षोंने हिमाचलपर मारदीनो, याकी मा समान गतिको पाय मरती भई ॥३॥ ध्रुवजी भाईको वध सुन कोप अमर्ष शोकमें मग्न होयकै जयप्रद रथमें बैठकर पुण्यजनोंके स्थानको जाते भए ॥ ४ ॥ रुद्रके अनुचरौंसै सेवित उत्तरदिशाको ध्रुवराजा जायकर हिमाचलपर्वतकी गुफामें गुह्यकोंकी सघनपुरी देखते भये ॥ ५ ॥ बड़ी बाहुवारे ध्रुवजी तहां जाय शंख बजाते भए, तब आकाश दिशा सब नादसे भर गई, हे विदुर ! उद्विग्न मन करकै यक्षोंकी स्त्रियें बहुत त्रासित भई ॥ ६ ॥ तब बली उपदेव महाभट निकसकर वा नादको न सहिकर आयुध उठाए भए आये ॥ ७ ॥ सो महारथी उग्र धनुषधारी इनको आये जान एक एकको सबको तीन तीन बाणोंसे एक कालमें मारते भए, उनके ललाटमें जब बाण लगे तब सब अपने

---

१ ध्रुवजी ज्ञानी होकरभी युद्ध करनेको इस कारण चले कि मैं भाईके निमित्त युद्ध न करूंगा तो लोकमें निन्दा होगी ।

आत्माको परास्त मान ध्रुवके कर्मकी प्रशंसा करते भये ॥८॥९॥ परन्तु वे इनको इस प्रकारसे नहीं सहते हुए जैसे सर्प चरण छूनेको नहीं सह सक्ता
तब बदले लेनेकी इच्छासे यक्षोंने एक संग छः छः बाण चलाये ॥ १० ॥ पाछे परिघ निस्त्रिंश फरसी शूल प्रास शक्ति ऋष्टी भूशंडी और विचित्र
पांखैंवारे शरसे मारते भए ॥ ११ ॥ सब रथपर बैठे भए कुपित होके वा रथीपर वर्षा करते भए, तिनसे बदला लेनेको त्रयोदश अयुत बाण चलाये
॥ १२ ॥ ता समय उत्तानपादके पुत्र बहुत शस्त्रोंकी वर्षा होयवेसे ढकगए, दीखे नहीं जैसे धारासंपातसे पर्वत नहीं दीखते ॥ १३ ॥ जो सिद्धलोग
आकाशमेंसें देखेहै, तिनमें हाहाकार मचो, बोले ये मनुवंशीनमें सूर्य पुण्यजनरूप सागरमें मग्न हो मरणको प्राप्त होते है ॥ १४ ॥ जय चाहिवेवारे

तेपि चामुममृष्यन्तः पादस्पर्शमिवोरगाः ॥ शनैरविध्यन्युगपद्विगुणं प्रचिकीर्षवः॥१०॥ततः परिघनिस्त्रिंशैः प्रासशूलपरश्वधैः ॥ शक्त्यृष्टिभिर्भुशुण्डीभिश्चित्रवाजैः शरैरपि ॥ ११ ॥ अभ्यवर्षन्प्रकुपिताः सरथं सहसारथिम् ॥ इच्छन्तस्तत्प्रतीकर्तुमयुतानि त्रयोदश ॥ १२ ॥ औत्तानपादिः स तदा शस्त्रवर्षेण भूरिणा ॥ न उपादृश्यत च्छन्न आसारेण यथा
गिरिः ॥ १३ ॥ हाहाकारस्तदैवासीत्सिद्धानां दिवि पश्यताम् ॥ हतोऽयं मानवः सूर्यो मग्नः पुण्यजनार्णवे ॥ १४ ॥
नदत्सु यातुधानेषु जयकाशिष्वथो मृधे ॥ उदतिष्ठद्रथस्तस्य नीहारादिव भास्करः ॥ १५ ॥ धनुर्विस्फूर्जयन्दिव्यं
द्विषतां खेदमुद्वहन्॥अस्त्रौघं व्यधमद्बाणैर्घनानीकमिवानिलः ॥१६॥ तस्य ते चापनिर्मुक्ता भित्त्वा वर्माणि रक्षसाम्॥
कायानाविविशुस्तिग्मा गिरीनशनयो यथा ॥ १७ ॥ भल्लैः संच्छिद्यमानानां शिरोभिश्चारुकुण्डलैः ॥ ऊरुभिर्हेमतालाभैर्दोर्भिर्वलयवल्गुभिः ॥१८॥ हारकेयूरमुकुटैरुष्णीषैश्च महाधनैः ॥ आस्तृतास्ता रणभुवो रेजुर्वीरमनोहराः ॥ १९ ॥

यातुधान जब संग्राममें नाद करवेलगे, तब कुहरेमेंसे सूर्यकी नाई तिनका रथ पुनः प्रकाशित हुआ ॥ १५ ॥ दिव्य धनुष्यकी टंकार करते और
द्वेष करवेवारेनको खेद कराते भए अपने बाणोंसे अस्त्रसमूहोंको दूर करते मेघसमूहको दूर करनेहारी पवनकी समान प्रगट हुए ॥ १६ ॥ तिनके
धनुषसे निकसे भए पैने बाण राक्षसोंके कवचनको भेद शरीरमें घुसजाते भए, जैसे वज्र पर्वतनको तोड उसमें प्रवेश कर जाते हैं ॥ १७ ॥
सुवर्णकुंडल युक्त शिर भालोंसें छिदे, हेमतालवत् ऊरु, और कंकण पडे भुजदंड कटते भए ॥ १८ ॥ हार केयूर मुकुट पाग महाधनसें ढकी

अपने स्वराज्य देवेवारे ईश्वरसें मूढताते मैंने मान मागो, जैसे पुण्यक्षीण वो निर्धन राजासैं जैसै धाननकी तुष मांग (१) ॥३७॥ मैत्रेयजी बोले कि हे तात ! राजसी आपसरीके जन मुकुंदके पदारविंदकी दास्य भावके विना और अर्थकी चाहना नहीं करैं है क्योंकि मनकी समृद्धि तो यदृच्छासेही प्राप्त हो जाय है ॥३८॥ जैसे मरो भयो फिर अवै [illegible] को आतो सुन राजाने वि श्वास न माना और बोलो मैं अमंगलीक हूं मोको मंगल कहां-

स्वराज्यं यच्छतो मौढ्यान्मानो मे [illegible]क्षितं ब[illegible] ॥ ईश्वरात्क्षीणपुण्येन फलीकारानिवाधनः ॥ ३७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ न वै मुकुन्दस्य पदारविन्दयो रजोजुपस्तात भावदृशा जनाः ॥ वाञ्छन्ति तद्दास्यमृतेऽर्थमात्मनो यदृच्छया लब्धमनःसमृद्धयः ॥ ३८ ॥ आकर्ण्यात्मजमायान्तं संपरेत्य यथागनम् ॥ राजा न श्रद्दधे भद्रमभद्रस्य कुतो मम ॥ ३९ ॥ श्रद्धाय वाक्यं देवर्षेर्हर्षवेगेन धर्षितः ॥ वार्ताहर्तुरतिप्रीतो हारं प्रादान्महाधनम् ॥ ४० ॥ सदश्वं रथमारुह्य कार्तस्वरपरिष्कृतम् ॥ ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च पर्यस्तोऽमात्यबन्धुभिः ॥ ४१ ॥ शङ्खदुन्दुभिनादेन ब्रह्मघोषेण वेणुभिः ॥ निश्चक्राम पुरात्तूर्णमात्मजाभीक्षणोत्सुकः ॥ ४२ ॥ सुनीतिः सुरुचिश्चास्य महिष्यौ रुक्मभूषिते ॥ आरुह्य शिबिकां सार्धमुत्तमेनाभिजग्मतुः ॥ ४३ ॥

से होय ॥३९॥ जब नारदजीने कही सत्यही तुम्हारौ पुत्र आवैहै [illegible] उन वाक्यमें श्रद्धाकर हर्षके वेगसे धर्षित ध्रुवजीके आयवेकी वार्ता कहिवेवारेको वहुत धनको हार देतो भयो ॥ ४०॥ सुवर्ण जटित सुंदर घोडे जुत रथपर बैठे कुलवृद्ध ब्राह्मण मंत्रीसहित ॥४१॥ शंख नगारेके नाद और ब्राह्मणोंके वेदपाठ तथा बांसुरीयोंके वाजे सहित पुत्र दर्शनके हर्षसे राजा शीघ्र पुरसे निकसतो भयो ॥४२ ॥ सुनीति सुरुचि राजाकी राणी सुवर्णमय पालकीमें

---

१ चार ज्योतिषी पंडितौंने राजासैं मिलनैका मुहूर्त बिचारा मु[illegible] [illegible]धीरातका था उसी समय राजाके निकट चले परन्तु महलके द्वार बंद थे तव एक चौमासेके पानी आयवेकी मोरीमेंको घस गये तहां देखै तौ भुसीका ढेर पडाहै पंडितौने कही भैया जो मिलजाय तौ भैंसकेही काममें आवैगी एकनै कही भैया अपवित्र होगये हो शुद्ध होकर राजाके दर्शन करना एकने कही रानीके पैर छूनैसैं पवित्र हो जांयगे सो जहां राजा रानी सोतेथे तहां गये ज्योही रानीके पैर छुए त्यौंही वह जागकर बोले चोर है इन्हैंने कही चोर नहीं हम पंडित हैं तव राजानै समाचार सुनकर कहा कि जो इच्छा हो सो मांगो वह बोले कि यह जो तुह्मारे यहां यह भूसी पडी है सो हमारे भेज दो राजानै यही करी।

सवार होय कर उत्तमको लिये आती भई ॥ ४३॥ अपने बागके पास आतेभएकों देख राजा रथसे शीघ्र उतरकर प्रेमविह्वल होतोभयो ॥४४॥ बहुत दिनमें पुत्रमें मन लगाये रहनेके कारण स्वांस लेते भगवानके चरण स्पर्शसे कर्म बंधन दूर होनेके कारण स्वच्छ अपने पुत्रसे राजा बांहें फैलाकर मिलै ॥ ४५ ॥ वारंवार शिर सूंघ भयो ठंडे नयनके जलसे पुत्रको स्नान कराया इस प्रकार राजा उत्तानपाद पूर्णमनोरथ हुए ॥ ४६ ॥ पिताके चरणकों प्रणाम कर पितासे अशीश पाय दोनो माताकों माथेसे प्रणाम कर सज्जनोंके आगे जायवेवारे ध्रुवजी सत्कार करते भये ॥४७॥ अपने पग-

तं दृष्ट्वोपवनाभ्याश आयान्तं तरसा रथात् ॥ अवरुह्य नृपस्तूर्णमासाद्य प्रेमविह्वलः ॥ ४४ ॥ परिरेभेऽङ्गजं दोर्भ्यां दीर्घोत्कण्ठमनाः श्वसन् ॥ विष्वक्सेनाङ्घ्रिसंस्पर्शहताशेषाघबन्धनम् ॥ ४५ ॥ अथाजिघ्रन्मुहुर्मूर्ध्नि शीतैर्नयनवारिभिः ॥ स्नापयामास तनयं जातोद्दाममनोरथः ॥ ४६ ॥ अभिवन्द्य पितुः पादावाशीर्भिश्चाभिमन्त्रितः ॥ ननाम मातरं शीर्ष्णा सत्कृतः सज्जनाग्रणीः ॥ ४७ ॥ सुरुचिस्तं समुत्थाप्य पादावनतमर्भकम् ॥ परिष्वज्याह जीवेति बाष्पगद्गदया गिरा ॥ ४८ ॥ यस्य प्रसन्नो भगवान्गुणैर्मैत्र्यादिभिर्हरिः ॥ तस्मै नमन्ति भूतानि निम्नमाप इव स्वयम् ॥ ४९ ॥ उत्तमश्च ध्रुवश्चोभावन्योऽन्यं प्रेमविह्वलौ ॥ अङ्गसङ्गादुत्पुलकावस्रौघं मुहुरूहतुः॥५०॥सुनीतिरस्य जननी प्राणेभ्योऽपि प्रियं सुतम् ॥ उपगुह्य जहावाधिं तदङ्गस्पर्शनिर्वृता ॥५१॥ पयः स्तनाभ्यां सुस्राव नेत्रजैः सलिलैः शिवैः ॥ तदाऽभिषिच्यमानाभ्यां वीर वीरसुवो मुहुः ॥ ५२ ॥

में पडै बालकको सुरुचि उठायकर मिलके गद्गद वाणीसे बोली जीओ जीओ ॥ ४८ ॥ जाके ऊपर भगवान् हरि मैत्री आदि गुणोंसे प्रसन्न होयहै ताको सब जीव नमस्कार करै है जैसे जल नीची ओरको वहै है ॥ ४९ ॥ उत्तम, ध्रुव, दोनो प्रेम विवश आपसमें मिलवेसे अश्रुपातोंके समूह छोडते भए ॥ ५०॥ सुनीति तिनकी जननी प्राणोंसेभी प्रिय सुतको मिलकर तिनके अंगस्पर्श कर सुखी भई ॥ ५१ ॥ स्तननसे दूध चूयवे लगो, पवित्र जल नेत्रोंसे गिरो, हे विदुर ! वह अपने वीर पुत्रकों नेत्रोंके जलसे स्नान कराती भई ॥ ५२ ॥

वा राजाकी राणीकी मनुष्य प्रशंसा करतेभए, कि तेरो मंगल भयो जो पीडाहारी पुत्र आयो, यह बहुत दिनतक भूमंडलकी रक्षा करैगो ॥ ५३ ॥ निश्चय है कि भगवान्प्रणतोंके पीडानाशक तुमने पूजे हैं, जिनके सदा ध्यान करवेवारे वीर लोग महा कठिण मृत्युकों जीत जाय है ॥ ५४ ॥ मनुष्यों करकै लाड करे भए भ्राता सहित ध्रुवको नृप प्रसन्न हथिनी पर बैठाय सब जन जाकी स्तुतिको प्राप्त हो पुरमें प्रवेश करतो भयो ॥ ५५ ॥ जिस पुरीमें जहां तहां मरकत मणिसे रचित तोरणसमूह केलानके खंभें सुपारिके छोटे छोटे वृक्ष शोभित हैं ॥ ५६ ॥ आम्रपल्लव वस्त्र माला मोती-

तां शशंसुर्नरा राज्ञीं दिष्ट्या ते पुत्र आर्तिहा ॥ प्रतिलब्धश्चिरं नष्टो रक्षिता मण्डलं भुवः ॥ ५३ ॥ अभ्यर्चितस्त्वया नूनं भगवान्प्रणतार्तिहा ॥ यदनुध्यायिनो वीरा मृत्युं जिग्युः सुदुर्जयम् ॥ ५४ ॥ लाल्यमानं जनैरेवं ध्रुवं सभ्रातरं नृपः ॥ आरोप्य करिणीं हृष्टः स्तूयमानोऽविशत्पुरम् ॥५५॥ तत्र तत्रोपसंक्षिप्तैर्लसन्मकरतोरणैः ॥ सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैश्च तद्विधैः ॥ ५६ ॥ चूतपल्लववासःस्रङ्मुक्तादामविलम्बिभिः ॥ उपस्कृतं प्रतिद्वारमपां कुम्भैः सदीपकैः ॥ ५७ ॥ प्राकारैर्गोपुरागारैः शातकुम्भपरिच्छदैः ॥ सर्वतोऽलंकृतं श्रीमद्विमानशिखरद्युभिः ॥ ५८ मृष्टचत्वररथ्याऽट्टमार्गं चन्दनचर्चितम् ॥ लाजाक्षतैः पुष्पफलैस्तण्डुलैर्बलिभिर्युतम् ॥५९॥ ध्रुवाय पथि दृष्टाय तत्र तत्र पुरस्त्रियः ॥ सिद्धार्थाक्षतदध्यम्बुदूर्वापुष्पफलानि च ॥ ६० ॥ उपजह्रुः प्रयुञ्जाना वात्सल्यादाशिषः सतीः ॥ शृण्वंस्तद्वल्गुगीतानि प्राविशद्भवनं पितुः ॥ ६१

की माला जहां तहां छारहे हैं द्वार द्वार पर दीपोंकी [illegible] जोत होयरही है जलके कुंभ भरे धरें है॥५७॥प्राकार गोपुर घर सुंदर कलशोंसे शोभित हैं सर्व ओरसें श्रीमत् विमान शिखरोंकी कांति करकै शोभित है ॥ ५८ ॥ उज्ज्वल चौराए वीथी अटाली मार्ग चंदनसे चर्चित है, खील चावर पुष्प फल तंडुल भेट जहां तहां धरी हैं ॥ ५९ ॥ मार्गमें ध्रुवजीको देख तहां तहां पुरकी स्त्रियें सरसों अक्षत दही जल दूर्वा पुष्प फल देतीभई ॥ ६० ॥ और वात्सल्यतासे आशीर्वाद देती भई इस प्रकार उनके सुन्दर गीत सुनते पिताके भवनमें प्रवेश करतेभए ॥ ६१ ॥

महामणिनके समूह उत्तमभवनोंमे लगेहै, तहां ध्रुवजी गये और पितासे अनेक सत्कारको प्राप्त हो स्वर्गमें देवतानकी नाईं वसते भए ॥ ६२ ॥ दूधके फेनके समान उज्ज्वल और हाथीदांत तथा सौनेकी सामग्रीसे युक्त शया विछी हैं अमूल्य आसन और सब सुवर्णकी सामग्री है ॥ ६३ ॥ जहां बिल्लोरके और महामरकतके आले है उनमें मणियों दीपक जगरहे हैं स्त्रीरत्न बहुत इकट्ठे हैं ॥ ६४ ॥ जहां रमणीक जहां बाग विचित्र कल्पद्रुम हैं जिंनपै जहां पक्षियोंके मिथुन कूजते और भौंरे गुंजार करते हैं ॥ ६५ ॥ मूगानकी सीढीनकी बावडी हैं, जिनमें कमल खिले हैं हंस सारस बगला

महामणिव्रातमये स तस्मिन्भवनोत्तमे ॥ लालितो नितरां पित्रा न्यवसद्दिवि देववत् ॥ ६२ ॥ पयःफेननिभाः शय्या दान्ता रुक्मपरिच्छदाः ॥ आसनानि महाऽर्हाणि यत्र रौक्मा उपस्कराः ॥ ६३ ॥ यत्र स्फटिककुड्येषु महामारकतेषु च ॥ मणिप्रदीपा आभान्ति ललनारत्नसंयुताः ॥ ६४ ॥ उद्यानानि च रम्याणि विचित्रैरमरद्रुमैः ॥ कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥ ६५ ॥ वाप्यो वैडूर्यसोपानाः पद्मोत्पलकुमुद्वतीः ॥ हंसकारण्डवकुलैर्जुष्टाश्चक्राह्वसारसैः ॥ ६६ ॥ उत्तानपादो राजर्षिः प्रभावं तनयस्य तम् ॥ श्रुत्वा दृष्ट्वाऽद्भुततमं प्रपेदे विस्मयं परम् ॥६७॥ वीक्ष्योढवयसं तं च प्रकृतीनां च संमतम् ॥ अनुरक्तप्रजं राजा ध्रुवं चक्रे भुवः पतिम् ॥ ६८ ॥ आत्मानं च प्रवयसमाकलय्य विशांपतिः ॥ वनं विरक्तः प्रातिष्ठद्विमृशन्नात्मनो गतिम् ॥ ६९ ॥ इति श्रीभागवते चतुर्थ० नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

चकई चकवा जहां बोल रहेहैं ॥ ६६ ॥ उत्तानपाद राजऋषि पुत्रको प्रभाव सुन और देखकर अत्यंत विस्मयकों प्राप्त होतो भयो ॥ ६७ ॥ वृद्धापन आयो देख सब प्रजानकी संमतिसे सबको अनुरागी देख राजा सब राज्यकों पति ध्रुवजीकों करते भए ॥ ६८ ॥ राजा अपनी आत्माको बूढी जानके सबसे विरक्त होयकर आत्माकी गतिको विचारतो वनकों जातो भयो ॥ ६९ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषायां चतु० ध्रुवस्य भगवत्कृपया पुना राज्यप्राप्तिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

हे राजन् ! अपराध करीभई स्त्रीपरभी जीव प्रहार नहीं करै हैं, ताहूं पै तुमसरीखे दयालु दीनवत्सल कैसे मारै है ॥ २० ॥ जामें सब विश्व स्थित ऐसी दृढनावरूप मोको तोडकै अपनपेको और या प्रजाकों कैसे जलपर धारोगे ॥ २१ ॥ पृथु बोले कि हे वसुधे ! तू मेरी आज्ञा नहीं मानती इससे तेरा वध करूंगा यज्ञमें भागती है और धान्यादि द्रव्य नहीं देती ॥ २२ ॥ नित्य घास तौ खाय और दूध न दे तिस दुष्टाको दंड देनो योग्यहो है ऐसेही तुझे दंड दूंगा ॥ २३ ॥ निश्चय है औषधी बीज जो ब्रह्माजी पहिले रचते भए सो तैने अपने भीतर रोक लीने है, मोको मंदधी जान अव-

प्रहरन्ति न वै स्त्रीषु कृतागःस्वपि जन्तवः ॥ किमुत त्वद्विधा राजन्करुणा दीनवत्सलाः ॥२०॥ मां विपाट्याऽजरां नावं यत्र विश्वं प्रतिष्ठितम् ॥ आत्मानं च प्रजाश्चेमाः कथमम्भसि धास्यसि ॥ २१ ॥ पृथुरुवाच ॥ वसुधे त्वां वधिष्यामि मच्छासनपराङ्मुखीम् ॥ भागं बर्हिषि या वृङ्क्ते न तनोषि च नो वसु ॥ २२ ॥ यवसं जग्ध्यनुदिनं नैव दोग्ध्यौधसं पयः ॥ तस्यामेवं हि दुष्टायां दण्डो नात्र न शस्यते ॥ २३ ॥ त्वं खल्वौषधिबीजानि प्राक् सृष्टानि स्वयंभुवा ॥ न मुञ्चस्यात्मरुद्धानि मामवज्ञाय मन्दधीः ॥ २४ ॥ अमूषां क्षुत्परीतानामार्तानां परिदेवितम् ॥ शमयिष्यामि मद्बाणैर्भिन्नायास्तव मेदसा ॥२५॥ पुमान्योषिदुत क्लीब आत्मसंभावनोऽधमः ॥ भूतेषु निरनुक्रोशो नृपाणां तद्वधोऽवधः ॥ २६ ॥ त्वां स्तब्धां दुर्मदां नीत्वा मायागां तिलशः शरैः ॥ आत्मयोगबलेनेमा धारयिष्याम्यहं प्रजाः ॥ २७ ॥ एवं मन्युमयीं मूर्तिं कृतान्तमिव बिभ्रतम् ॥ प्रणता प्राञ्जलिः प्राह मही संजातवेपथुः ॥ २८ ॥ धरोवाच ॥ नमः परस्मै पुरुषाय मायया विन्यस्तनानातनवे गुणात्मने ॥ नमः स्वरूपानुभवेन निर्धुतद्रव्यक्रियाकारकविभ्रमोर्मये ॥ २९ ॥

र उन्हें तू नहीं छोडती ॥ २४ ॥ इन क्षुधित आर्तनको दुःख अपने बाणोंसे भिदी तेरी वसासे दूर करूंगो ॥ २५ ॥ पुरुष स्त्री नपुंसक अपनी आप करनेहारे वो अधम, सब जीवोंमें दयारहित इनका मारना नृपोंको न मारवेकी बराबर है ॥ २६ ॥ तुमसरीकी गर्वीली दुर्मदवारी मायाशरोंसे तिल तिल सम टुक कर अपने योग बल करकै या प्रजाको हम धारेंगे ॥ २७॥ ऐसी क्रोधमयी मूर्ति यमराजकी नांई धारे तिनसै हाथ ख होय धरती कांपती भई बोली ॥ २८ ॥ धरा बोली कि मायासै अनेक प्रकारके शरीर धारण करनेहारे परपुरुषके निमित्त नमस्कार होय

जो जो गुणरूपतासै प्रतीयमान होते और अपने स्वरूपके अनुभवसै द्रव्य क्रिया कारक संबंधी अहंकार और राग द्वेषादि ऊर्मियोंका त्याग करनेहारे आपको मैं प्रणाम करतीहूं ॥ २९ ॥ जिन ब्रह्माने अपने जीवनके लिये मोको रची है जासे ये विश्व भयो सो तुम मोको मारवेको खडे भये अब और कौनकी शरण जाऊं ॥ ३० ॥ आदिमें जो ईश्वर अपने आधीन रहिवेवारी तर्क रहित मायाकरकै चराचरकों रचते भये वाहीसे मेरी रक्षा करवेको उद्यत हो धर्मपरायण तुम मोको मारते हो ॥ ३१ ॥ निश्चय है कि ईश्वरकी चेष्टा, तिनकी दुर्जय मायासे विक्षिप्त चित्तवारे जनोंकरकै जानी नहीं जाती, जो स्वतंत्र और एक होनेपरभी मायासै अनेकरूपवाले स्वतंत्र ईश्वरनै यह जगत बनाया और ब्रह्माद्वाराभी चराचर जगत

येनाहमात्मायतनं विनिर्मिता धात्रा यतोऽयं गुणसर्गसंग्रहः ॥ स एव मां हन्तुमुदायुधः स्वराडुपस्थितोऽन्यं शरणं कमाश्रये ॥ ३० ॥ य एतदादावसृजच्चराचरं स्वमायया ऽऽत्माश्रयया ऽवितर्क्यया ॥ तयैव सोऽयं किल गोप्तुमुद्यतः कथं नु मां धर्मपरो जिघांसति ॥ ३१ ॥ नूनं बतेशस्य समीहितं जनैस्तन्मायया दुर्जयया ऽकृतात्मभिः ॥ न लक्ष्यते यस्त्वकरोदकारयद्योऽनेक एकः परतश्च ईश्वरः ॥ ३२ ॥ सर्गादि योऽस्यानुरुणद्धि शक्तिभिर्द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मभिः ॥ तस्मै समुन्नद्धनिरुद्धशक्तये नमः परस्मै पुरुषाय वेधसे ॥ ३३ ॥ स वै भवानात्मविनिर्मितं जगद्भूतेन्द्रियान्तःकरणात्मकं विभो ॥ संस्थापयिष्यन्नज मां रसातलादभ्युज्जहाराम्भस आदिसूकरः ॥ ३४ ॥ अपामुपस्थे मयि नाव्यवस्थिताः प्रजा भवानद्य रिरक्षिषुः किल ॥ स वीरमूर्तिः समभूद्धराधरो यो मां पयस्युग्रशरो जिघांससि ॥ ३५ ॥

निर्माण कराया है ॥ ३२ ॥ जो परमात्मा महाभूत इंद्रिय देवता बुद्धि और अहंकाररूप अपनी शक्तियोंसै इस विश्वका उत्पत्ति पालन संहार करते हैं उन सम्यक् प्रकार उत्कट निरुध शक्तिवाले विधाता परम पुरुषको मैं प्रणाम करतीहूं ॥ ३३ ॥ हे विभो ! हे अज ! सो आप अपनी आत्मासे रचे भये भूत इंद्रिय अंतःकरणात्म या जगतकों स्थित करवेके लिये आदिवराहरूप होय मोको रसातलसे लाये ॥ ३४ ॥ जलपर मोसरीकी नावमें स्थित प्रजारक्षाकों आप अवतरे हो, वोही वीरमूर्ति पृथ्वीके धारण करनेहारे आप केवल दुग्धके निमित्त कठिन बाण चढाकर मुझे मारनेकी इच्छा करते हो यह बडे आश्चर्यकी बात है ॥ ३५ ॥

जिनके मनरूपी मार्ग आपकी सगुणरूप मायासे मोहित है उन मुझसरीके जनोंके ईश्वर भक्त जनोंकी चेष्टाभी जब नहीं जानी जाती तौ परमात्माकी लीला जाननेकी किसै सामर्थ्य है इस कारण ईश्वरके समान जितेन्द्रिय पुरुषौंके यश दायक उसके भक्तौंकोभी मेरा प्रणाम है ॥ ३६ ॥ इति श्रीम०भा० भा० च० स्कं० पृथुविजये धरित्रीनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ मैत्रेयजी बोले क्रोधसे होठ फरकते पृथुराजकी स्तुति कर भीत पृथिवी बुद्धिसे मनकों सावधान कर फिर बोली ॥ १॥ हे नृप ! क्रोध दूर करो, मेरो कहिनो सुनो, जैसे भौंरा सब ओरसे सार ग्रहण करै है तैसे

नूनं जनैरीहितमीश्वराणामस्मद्विधैस्तद्गुणसर्गमायया ॥ न ज्ञायते मोहितचित्तवर्त्मभिस्तेभ्यो नमो वीरयशस्करेभ्यः ॥ ३६ ॥ इति श्रीभा०चतुर्थ०पृथुविजये धरित्रीनिग्रहो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्थं पृथुमभिष्टूय रुषा प्रस्फुरिताधरम् ॥ पुनराहावनिर्भीता संस्तभ्यात्मानमात्मना ॥ १ ॥ संनियच्छामि भो मन्युं निबोध श्रावितं च मे ॥ सर्वतः सारमादत्ते यथा मधुकरो बुधः ॥ २ ॥ अस्मिँल्लोकेऽथ वामुष्मिन्मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ दृष्टा योगाः प्रयुक्ताश्च पुंसां श्रेयःप्रसिद्धये ॥ ३ ॥ तानातिष्ठति यः सम्यगुपायान्पूर्वदर्शितान् ॥ अवरः श्रद्धयोपेत उपायान्विन्दतेऽञ्जसा ॥ ४ ॥ताननादृत्य यो विद्वानर्थानारभते स्वयम् ॥ तस्य व्यभिचरन्त्यर्था आरब्धाश्च पुनः पुनः ॥ ५ ॥ पुरा सृष्टा ह्योषधयो ब्रह्मणा या विशांपते ॥ भुज्यमाना मया दृष्टा असद्भिरधृतव्रतैः ॥ ६ ॥ अपालिताऽनादृता च भवद्भिर्लोकपालकैः ॥ चोरीभूतेऽथ लोकेहं यज्ञार्थेऽग्रसमोषधीः ॥ ७ ॥

बुद्धिवान् सार ग्रहण करै है ॥ २ ॥ या लोकमें परलोकमें तत्त्वदर्शी मुनि पुरुषोंके कल्याणकी सिद्धिके लिये योग देखे है और प्रयोग करे हैं ॥ ३ ॥ जो पूर्वके लोग उपाय कर गए है, उनको जो कोई करै तौ अबके मनुष्यभी श्रद्धा करनेसे अनायास वा फलको प्राप्त होय है ॥ ४ ॥ उनको अनादर कर जो विद्वान् अर्थको आप प्रारंभ करै तौ वाके वा वारंवार प्रारंभ करे फल सब नष्ट हो जाय हैं ॥ ५ ॥ हे विशांपते ! ब्रह्माकी पहिली रची औषधियें व्रतहीन खोटे लोगोंको भोगते मैने देखी ॥ ६ ॥ तब आपसरीके लोकपालोंने पालन करकै अनादर किया और लोकमें चोरही चोर होगये

तब यज्ञके अर्थ हमने सब औषधी ग्रस लीनी ॥ ७ ॥ निश्चय है कि मोमें वे बहुत कालसे क्षीण होगई है, सो योग करकै आप सब निकासवेको योग्य हो ॥ ८ ॥ हे वीर ! वत्स कल्पना करो, जासे मैं तुह्मारी प्यारी हूं, तुम मेरे अनुसार दोहनी बनाओ, दुग्धरूप होयकै सब कामना पूरूंगी ॥ ९ ॥ हे महाबाहो ! हे भूतभावन ! जो आप जीवोंके मन वांछित और बलदायक अन्न चाहते हो तो एक दुहनेहारा नियत करो ॥ १० ॥ हे विभो हे राजन् ! मोको बराबर करो जलकी ऋतु न होय है तामेंवी देवको वर्षायो जल मेरेमें सदा समीपही वर्तै है ॥ ११ ॥ ये प्रिय हितको वाक्य भूमीको भूपति

नूनं ता वीरुधः क्षीणा मयि कालेन भूयसा ॥ तत्र योगेन दृष्टेन भवानादातुमर्हति ॥ ८ ॥ वत्सं कल्पय मे वीर येनाहं वत्सला तव ॥ धोक्ष्ये क्षीरमयान्कामाननुरूपं च दोहनम् ॥ ९ ॥ दोग्धारं च महाबाहो भूतानां भूतभावन ॥ अन्नमीप्सितमूर्जस्वद्भगवान्वाञ्छते यदि ॥ १० ॥ समां च कुरु मां राजन्देववृष्टं यथा पयः ॥ अपर्त्तावपि भद्रं त उपावर्तेत मे विभो ॥ ११ ॥ इति प्रियं हितं वाक्यं भुव आदाय भूपतिः ॥ वत्सं कृत्वा मनुं पाणावदुहत्सकलौषधीः ॥१२॥ तथापरे च सर्वत्र सारमाददते बुधाः ॥ ततोऽन्ये च यथाकामं दुदुहुः पृथुभाविताम् ॥ १३ ॥ ऋषयो दुदुहुर्देवीमिन्द्रियेष्वथ सत्तम ॥ वत्सं बृहस्पतिं कृत्वा पयश्छन्दोमयं शुचि ॥ १४ ॥ कृत्वा वत्सं सुरगणा इन्द्रं सोममदूदुहन् ॥ हिरण्मयेन पात्रेण वीर्यमोजो बलं पयः ॥ १५ ॥ दैतेया दानवा वत्सं प्रह्लादमसुरर्षभम् ॥ विधायादूदुहन्क्षीरमयःपात्रे सुराऽऽसवम् ॥ १६ ॥

ग्रहण कर मनुकूं वत्स कर हाथमें सब औषधी दोहते भये ॥ १२ ॥ तैसे और बुधलोग सब ओरसे सार ग्रहण करते भये, तापाछै औरभी अपनी इच्छानुसार पृथु करकै वशीकृत गौको दूहते भये ॥ १३ ॥ हे सत्तम ! ऋषियौंने बृहस्पतिको वत्स बनाकर इन्द्रियरूप पात्रमें पवित्र वेदमय दूध दुहा ॥ १४ ॥ देवगण इंद्रकों वत्स बनाय अमृत दूहते भये, सुवर्णमय पात्रमें वीर्य ओज बल पय दुहते भये ॥ १५ ॥ दैतेय दानव असुरश्रेष्ठ प्रन्हादको वत्स बनायकर लोहके पात्रमें सुधा आसव क्षीर दुहते भये ॥ १६ ॥

करो, जब तक हम त्यक्तान्न और बलहान होनेसे नाश न होय तब तक हमारी जीविका विधान करो कारणकि सब् जीविकाके पति लोकपाल तुम हो ॥ ११ ॥ हे कुरुश्रेष्ठ! पृथु प्रजाकी ऐसी करुणा और दुःख सुनके ध्यान करते भए उसको निमित्त विचार जानते भए ॥ १२ ॥ बुद्धिसें ऐसे निश्चय कर धनुषबाण लेकर त्रिपुरासुरपर शिवकी नाई क्रोधकर भूमिके मारवेको बाण चलाते भए ॥ १३ ॥ धरती कांपवेलगी उठाए आयुध राजाको देख डरी भई गौ होय भागी जैसें शिकारीकी मारी हिरणी भागे तैसे पृथिवी भागती भई ॥ १४ ॥ कोपकर लालनेत्रसे पृथु ताके पाछे दौडते भये, शर धनुषमें लगाय जहां पलायमान होती भई तहांही उसके पीछे गये ॥ १५ ॥ सो देवी धरती दिशा विदिशानके मध्यमें दौडती

मैत्रेय उवाच ॥ पृथुः प्रजानां करुणं निशम्य परिदेवनम् ॥ दीर्घं दध्यौ कुरुश्रेष्ठ निमित्तं सोऽन्वपद्यत ॥ १२ ॥ इति व्यवसितो बुद्ध्या प्रगृहीतशरासनः ॥ संदधे विशिखं भूमेः क्रुद्धस्त्रिपुरहा यथा ॥ १३ ॥ प्रवेपमाना धरणी निशम्योदायुधं च तम् ॥ गौः सत्यपाद्रवद्भीता मृगीव मृगयुद्रुता ॥ १४ ॥ तामन्वधावत्तद्वैन्यः कुपितोऽत्यरुणेक्षणः ॥ शरं धनुषि संधाय यत्र यत्र पलायते ॥ १५ ॥ सा दिशो विदिशो देवी रोदसी चान्तरं तयोः ॥ धावन्ती तत्र तत्रैनं ददर्शानूद्यतायुधम् ॥ १६ ॥ लोके नाविन्दत त्राणं वैन्यान्मृत्योरिव प्रजा ॥ त्रस्ता तदा निववृते हृदयेन विदूयता ॥ १७ ॥ उवाच च महाभागं धर्मज्ञाऽऽपन्नवत्सल ॥ त्राहि मामपि भूतानां पालनेऽवस्थितो भवान् ॥ १८ ॥ स त्वं जिघांससे कस्मादीनामकृतकिल्बिषाम् ॥ अहनिष्यत्कथं योषां धर्मज्ञ इति यो मतः ॥ १९ ॥

भई जहां जाये तहां आयुध उठाये पृथुको देखती भई ॥ १६ ॥ लोकमें पृथुके बिना औरकों रक्षक न देखती भई जैसे प्रजाको मृत्युसे बचानैहारा कोई नहीं इसी प्रकार अपना बचानेवाला कोई न देख पृथ्वी दुःखसे तप्त हो पीछेको लौटी ॥ १७ ॥ हे धर्मज्ञ हे आपत्रक्षक ! सब भूतनके पालनमें आप स्थितहो सो मेरी रक्षा करो, ऐसे महाभाग पृथुसे धरती बोलती भई ॥ १८ ॥ दीना निरपराधि मोको कैसे मारो हौ स्त्रीकों कैसे वध करोगे कारण कि तुम धर्मज्ञ कहातेहो ॥ १९ ॥

---

१ राजा पृथुने पृथ्वीपर इस कारण कोप किया कि दूसरे राजा यह जानकर शान्त होजांयगें और प्रजा अच्छी तरह पालन करैंगे कि जब पृथुने पृथ्वीकोही क्षमा नही किया तौ हमको यदि प्रजाको दुःख देंगे तौ कदापि क्षमा नहीं करैंगे दूसरे पृथ्वीका यह अपराध था कि पृथुके धर्मराजमेंभी औषधी अन्न नहीं त्यागे ।

विदुरजी बोले कि धरती बहुरूप धारिणी क्यौ गौरूप धारती भई जाको पृथु दोहते भए, कौन दोहवेके पात्र भए वत्स कौन भयो ॥ ३ ॥ सुभावसे टेढी धरती है, सो राजाने समान कैसै करी, ताको पवित्र घोडा इंद्रदेवता का हेतुते हरतोभयो ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन् ! ब्रह्मवेत्तानमे उत्तम सनत्कुमारसे ज्ञान प्राप्तकर विशेष ज्ञानी होय राजर्षि कौंन गतिकों गयो ॥ ५ ॥ जो और श्रीकृष्णभगवान् प्रभुको सुंदर विख्यात यश पुण्यदायक पूर्वदेवकथाश्रय होय सो आप कहो ॥ ६ ॥ मै अनुरागी आपको तथा भगवतकों भक्त हूं सो मेरे अर्थ, पृथुरूप धार या धरती गौकौ दुहतो भयो सो कहिवेकों योग्य हो ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि विदुरने ऐसै प्रेरणा करी, तब वासुदेव कथाके प्रति प्रशंसाकर प्रसन्न मन हो मैत्रेय बोले ॥ ८ ॥ मैत्रेयजी बोले कि हे अंग ! जब पृथुको ब्राह्मणोंने अभिषेक कीनो जनोंके पालनको आमंत्रण करो तब पृथ्वी जलमे अन्न न होनेसें भूंखसे व्याकुल कृश देह प्रजा प्रजापतिके पास आय बोली ॥ ९ ॥ हे राजन् ! हम जठराग्निसे तप्त हैं जैसे वृक्षमध्यस्थित अग्नि वृक्षकों जरावै तैसै हम खेदित है शरणागतपालक तुह्मारी हम शरण आए है हमारी सब वृत्तियोंको साधन करो ॥ १० ॥ हे नरदेव देवदेव ! क्षुधासे पीडित हमको अन्न देवेके लिये यत्न

विदुर उवाच ॥ कस्माद्दधार गोरूपं धरित्री बहुरूपिणी ॥ यां दुदोह पृथुस्तत्र को वत्सो दोहनं च किम् ॥ ३ ॥ प्रकृत्या विषमा देवी कृता तेन समा कथम् ॥ तस्य मेध्यं हयं देवः कस्य हेतोरपाहरत् ॥ ४ ॥ सनत्कुमाराद्भगवतो ब्रह्मन्ब्रह्मविदुत्तमात् ॥ लब्ध्वा ज्ञानं सविज्ञानं राजर्षिः कां गतिं गतः ॥ ५ ॥ यच्चान्यदपि कृष्णस्य भवान्भगवतः प्रभो ॥ श्रवः सुश्रवसः पुण्यं पूर्वदेवकथाश्रयम् ॥ ६ ॥ भक्ताय मेऽनुरक्ताय तव चाधोक्षजस्य च ॥ वक्तुमर्हसि योऽदुह्यद्वैन्यरूपेण गामिमाम् ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ चोदितो विदुरेणैवं वासुदेवकथां प्रति ॥ प्रशस्य तं प्रीतमना मैत्रेयः प्रत्यभाषत ॥ ८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ यदाभिषिक्तः पृथुरङ्ग विप्रैरामन्त्रितो जनतायाश्च पालः ॥ प्रजा निरन्ने क्षितिपृष्ठ एत्य क्षुत्क्षामदेहाः पतिमभ्यवोचन् ॥ ९ ॥ वयं राजञ्जाठरेणाभितप्ता यथाग्निना कोटरस्थेन वृक्षाः ॥ त्वामद्य याताः शरणं शरण्यं यः साधितो वृत्तिकरः पतिर्नः ॥ १० ॥ तन्नो भवानीहतु रातवेऽन्नं क्षुधार्दितानां नरदेव देव ॥ यावन्न नङ्क्ष्यामह उज्झितोर्जा वार्तापतिस्त्वं किल लोकपालः ॥ ११ ॥

ये अपने स्थानके समीपके उपवनसें जाय सनत्कुमार भगवानको आराधन कर भक्तिसें निर्मल ज्ञानको प्राप्त होंगे जाको परब्रह्म कहे हैं (१) ॥ २५ ॥ जहां तहां तिनतिन वाणियोंसे विख्यात महापराक्रमी अपनी कथा पृथुराज सुनैंगे ॥ २६ ॥ जाकी आज्ञा कोई न रोक सकै, सो सब दिशानको जीतकर अपने तेजसे सब लोकके शूल निकासनेपर सुर असुरके अधिपोंसे इनके चरित्र गाये जायगे इस प्रकार यह भूमिके पति

एष स्वसद्मोपवने समेत्य सनत्कुमारं भगवन्तमेकम् ॥ आराध्य भक्त्याऽलभतामलं तज्ज्ञानं यतो ब्रह्म परं विदन्ति ॥ २५ ॥ तत्र तत्र गिरस्तास्ता इति विश्रुतविक्रमः ॥ श्रोष्यत्यात्माश्रिता गाथाः पृथुः पृथुपराक्रमः ॥ २६ ॥ दिशो विजित्याऽप्रतिरुद्धचक्रः स्वतेजसोत्पाटितलोकशल्यः ॥ सुरासुरेन्द्रैरुपगीयमानमहाऽनुभावो भविता पतिर्भुवः ॥२७॥ इति श्रीभा॰चतु॰मुनिप्रयुक्तसूतादिस्तोत्रवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं स भगवान्वैन्यः ख्यापितो गुणकर्मभिः ॥ छन्दयामास तान्कामैः प्रतिपूज्याभिनन्द्य च ॥१॥ ब्राह्मणप्रमुखान्वर्णान्भृत्यामात्यपुरोधसः ॥ पौराञ्जानपदाञ्छ्रेणीः प्रकृतीः समपूजयत् ॥ २ ॥

होंयगे ॥ २७ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटी॰चतु॰मुनिप्रयुक्तसूतादिकृतस्तोत्रवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि ऐसे भगवान् पृथु गुण कर्मोंसे विख्यात तिनोंको पूजन प्रणाम कर सबको संतुष्ट करते भए ॥ १ ॥ ब्राह्मण प्रमुख वर्ण भृत्य अमात्य पुरोहित पुरवासी देशवासी सब प्रकृती प्रजा राजा पूजते भए ॥ २ ॥

---

१ सो ब्रह्म विना जाने या संसारमें जीवो धिक्कार है, पद रागिनी झंझोटी तिताला ॥ धिकधिक जीवन ब्रह्म न जानो ॥ टेर ॥ हृदयदेशमें सो न उपासो पास दूर करमानो ॥ १ ॥ ज्यूं भिक्षुक गल पारस बांधो घरघर टूक मंगानो, औरनसे धन ठगठग लावत सर्वस आप ठगानो ॥ २ ॥ देशविदेशकी बात बतावत स्वर्गपताल वखानो, भीतरकी कछु खबर न राखी हृदयकमल उलठानो ॥ ३ ॥ कर्म कुकर्म किये बहु जगमें स्वर्गलोकलौ तानो, हम हम कर सब भोगकू भोगै साक्षीकू न पिछानो ॥ ४ ॥ तू है जड कछु समरथ नाही चमकलो ज्यूं न चानो, तू नही करता तू नही भोक्ता सबमें ब्रह्म समानो ॥ ५ ॥ कारणकर्ता सब जगहीके सो उरमाहि समानो, पुरुषोत्तमके सर्वेश्वर विना और न कोई ठिकानो ॥ ६ ॥

सब देहधारियोंमे आत्माकी नाई प्यारै सुहृदोंको आनंद बढावनेवारे सब प्रसंगोंसे संगमुक्त हो असाधुओंकों दंड देनेवाले होगे ॥ १८ ॥ ये तौ साक्षात् भगवान् त्रिगुणी मायाके अधीश, सबमें बसनेहारे आत्माकी कलासे अवतरे हैं जामें अविद्या रचित निरर्थक नानाभावों पंडितजन देखते हैं ॥ १९ ॥ ये नरदेवोंके नाथ उदयाचलसे लेकै भूमंडलके एकरक्षक होंगे जयप्रद रथमें बैठ धनुष बाण लेके दक्षिणसे जैसे सूर्यकी समान पर्यटन करैंगे ॥ २० ॥ लोकपालसहित राजालोग जहां तहां इनके अर्थ बलि देंगे, आदिराज चक्रआयुधीकी स्त्रियें इनके यशको उच्चारण करती भई

देहिनामात्मवत्प्रेष्ठः सुहृदां नन्दिवर्धनः ॥ मुक्तसङ्गप्रसङ्गोऽयं दण्डपाणिरसाधुषु ॥ १८ ॥ अयं तु साक्षाद्भगवांस्त्र्यधीशः कूटस्थ आत्मा कलयाऽवतीर्णः ॥ यस्मिन्नविद्यारचितं निरर्थकं पश्यन्ति नानात्वमपि प्रतीतम् ॥ १९ ॥ अयं भुवो मण्डलमोदयाद्रेर्गोप्तैकवीरो नरदेवनाथः ॥ आस्थाय जैत्रं रथमात्तचापः पर्यस्यते दक्षिणतो यथार्कः ॥ २० ॥ अस्मै नृपालाः किल तत्र तत्र बलिं हरिष्यन्ति सलोकपालाः ॥ मंस्यन्त एषां स्त्रिय आदिराजं चक्रायुधं तद्यश उच्चरन्त्यः ॥ २१ ॥ अयं महीं गां दुदुहेऽधिराजः प्रजापतिर्वृत्तिकरः प्रजानाम् ॥ यो लीलयाऽद्रीन्स्वशरासकोट्या भिन्दन्समां गामकरोद्यथेन्द्रः ॥ २२ ॥ विस्फूर्जयन्नाजगवं धनुः स्वयं यदाचरत्क्ष्मामविषह्यमाजौ ॥ तदा निलिल्युर्दिशि दिश्यऽसन्तो लाङ्गूलमुद्यम्य यथा मृगेन्द्रः॥२३॥ एषोऽश्वमेधाञ्छतमाजहार सरस्वती प्रादुरभावि यत्र॥ अहारषीद्यस्य हयं पुरंदरः शतक्रतुश्चरमे वर्तमाने ॥ २४ ॥

आदिराज मानैंगी ॥ २१ ॥ ये सबके राजा धरतीको दुहैंगे प्रजाकी प्रजापतिकी नाई वृत्ति करैंगे, ये राजा अपने धनुषके अग्रभाग करकै सब पर्वतनको भेदकर समान पृथिवी करैंगे, इंद्रकी नाई पर्वत भेदेंगे ॥ २२ ॥ आजगव धनुष टंकारकर आप जब निर्द्वंद्व होयकर संग्राममें पूछ उठाये सिंहकी समान विचरैंगे तब सब दिशानमेंसे दुष्ट लोग भाग जांयगे ॥ २३ ॥ जहां सरस्वतीजी प्रगट भई है तहां शत अश्वमेध सोवे यज्ञके वर्तमान होनेपर इन्द्र इनका घोडा हर ले जायगा ॥ २४ ॥

यह अप्रगट मार्गवाले और गुप्तकार्यकरनेवाले और गंभीर आशय होंगे इनका धनयुत तथा अनन्त महात्मयुक्त और गुणोंके एक धाम होंगें यह
जितेन्द्रिय प्रचेताकी समान एक प्रकार होंगे ॥ १० ॥ शत्रुको मनसेभी प्राप्त होयवेको अशक्य, शत्रुओंको असह्य पुरुषार्थसें अजीत इनकी कोई
धर्षणा न करसकैगा कारण कि यह वेनरूप अरणीसे प्रगट हुए है ॥ ११ ॥ सबभूतनके बाहिर भीतरके कर्म चारण अर्थात् दूतोंसे देखते भए उ-
दासीन वायु जो सब प्राणियोंका अध्यक्ष और आत्मा है तिसकी समान यह उदासीन रहैंगे ॥ १२ ॥ अदंडचकों ये दंड न देगो, चाहैं वह अपने
शत्रुकाही पुत्र क्यों न हो और अपराध करने यह अपने पुत्रकोभी दंड दैंगे ॥ १३ ॥ या पृथुको अखंड शासन मानस अचलसै लेके जहांतक भग-

अव्यक्तवर्त्मैष निगूढकार्यो गम्भीरवेधा उपगुप्तवित्तः ॥ अनन्तमाहात्म्यगुणैकधामा पृथुः प्रचेता इव संवृतात्मा
॥ १० ॥ दुरासदो दुर्विषह आसन्नोऽपि विदूरवत् ॥ नैवाभिभवितुं शक्यो वेनारण्युत्थितोऽनलः ॥ ११ ॥ अन्तर्बहिश्च
भूतानां पश्यन्कर्माणि चारणैः ॥ उदासीन इवाध्यक्षो वायुरात्मैव देहिनाम् ॥ १२ ॥ नादण्ड्यं दण्डयत्येष सुतमात्म-
द्विषामपि ॥ दण्डयत्यात्मजमपि दण्ड्यं धर्मपथे स्थितः ॥ १३ ॥ अस्याप्रतिहतं चक्रं पृथोरामानसाचलात् ॥ वर्तते
भगवानर्को यावत्तपति गोगणैः ॥ १४ ॥ रञ्जयिष्यति यल्लोकमयमात्मविचेष्टितैः ॥ अथामुमाहू राजानं मनोरञ्जनकैः
प्रजाः ॥ १५ ॥ दृढव्रतः सत्यसंधो ब्रह्मण्यो वृद्धसेवकः ॥ शरण्यः सर्वभूतानां मानदो दीनवत्सलः ॥ १६ ॥ मातृभक्तिः
परस्त्रीषु पत्न्यामर्ध इवात्मनः ॥ प्रजासु पितृवत्स्निग्धः किंकरो ब्रह्मवादिनाम् ॥ १७ ॥

वान् सूर्य अपनी किरणोंसें तपते हैं तहांतक वर्तैगा ॥ १४ यह अपनी चेष्टा करकै सब लोकनकों आनंद करावैगें, याके उपरांत मनके आनंदकारी
वाक्यों करकै सब प्रजा राजी हौनेसै इन्हैं राजा कहैगी ॥ १५ ॥ तुम दृढव्रत सत्यवादी ब्राह्मणोंकी वृद्धोंकी सेवा करवेवारे, शरणागत पालक, सब
जीव मात्रको मानदाता दीनवत्सल हो ॥ १६ ॥ परस्त्रीयोंमें मातासी भक्ति, अपनी पत्नीमै अर्धांगकी नाई हो, प्रजामे पिताकी नाई प्रियकारी,
ब्रह्मवादीनके किंकर हों ॥ १७ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ इति ब्रुवाणं नृपतिं गायका मुनिचोदिताः ॥ तुष्टुवुस्तुष्टमनसस्तद्वागमृतसेवया ॥ १ ॥ नालं वयं ते म-
हिमानुवर्णने यो देववर्योऽवततार मायया ॥ वेनाङ्गजातस्य च पौरुषाणि ते वाचस्पतीनामपि बभ्रमुर्धियः॥ २ ॥ अथा-
प्युदारश्रवसः पृथोर्हरेः कलाऽवतारस्य कथाऽमृताहृताः॥ यथोपदेशं मुनिभिः प्रचोदिताः श्लाघ्यानि कर्माणि वयं वि-
तन्महि ॥ ३ ॥ एष धर्मभृतां श्रेष्ठो लोकं धर्मेऽनुवर्तयन् ॥ गोप्ता च धर्मसेतूनां शास्ता तत्परिपन्थिनाम् ॥ ४ ॥ एष
वै लोकपालानां बिभर्त्येकस्तनौ तनूः ॥ काले काले यथाकालं लोकयोरुभयोर्हितम् ॥ ५ ॥ वसु काल उपादत्ते काले
चायं विमुञ्चति ॥ समः सर्वेषु भूतेषु प्रतपन्सूर्यवद्विभुः ॥ ६ ॥ तितिक्षत्यक्रमं वैन्य उपर्याक्रामतामपि ॥ भूता-
नां करुणः शश्वदार्तानां क्षितिवृत्तिमान् ॥७॥ देवेऽवर्षत्यसौ देवो नरदेववपुर्हरिः ॥ कृच्छ्रप्राणा प्रजा ह्येषः रक्षिष्यत्य-
ञ्जसेन्द्रवत् ॥ ८ ॥ आप्यायत्यसौ लोकं वदनामृतमूर्तिना ॥ सानुरागावलोकेन विशदस्मितचारुणा ॥ ९ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले कि राजा तौ ऐसे कहते रहे परन्तु मुनियौंसे प्रेरित हो किन्तु गानेहारे स्तुतिपाठक उनकी वाणीरूप अमृतके सेवनसैं स्तुतिकरते भए ॥१॥ जो देववर्य मायासे अवतार लेते भए, तिन तुह्मारी महिमा वर्णन करवेको हम समर्थ नही हैं, वेनके अंगसे उत्पन्न भए तुमारे पुरुषार्थोंमे बृहस्पत्यादिकोंभी बुद्धि भ्रमै है ॥ २ ॥ यद्यपि ऐसै है, तथापि उदार कीर्ति श्रीहरिके कलावतार पृथु मूर्ति आपके कथा अमृतमे आदृत मुनियौंसे प्रेरितहो योगवलसै अपने हृदयके प्रकाशानुसार आपका कथनयोग्य चरित्र वर्णन करते हैं ॥ ३ ॥ ये धर्मधारियोमें श्रेष्ठ लोकको धर्ममे चलावैगे धर्मसेतूनके रक्षक धर्मनाशकके शिक्षक होगे ॥ ४ ॥ एक देहमैं लोकपालके तनू धारै हैं कालकालमें यथाभाग दोनोलोकको हित करैहै ॥ ५ ॥ कर लेनेके समय यह धन ग्रहण करैंगे अवर्षण आदिके समय देंगे सब जीवमात्रमें सम सूर्यवत् विभु होंगे ॥ ६ ॥ यह पृथुराजा अपने ऊपर गिरनेहारोंकोभी सहिलेंगे सब भूतोंपर दयालु हो पृथ्वीकी समान सहनशील होंगे ॥७॥ कभी इंद्र न वर्षे तौ यह नरदेव देहधारी श्रीहरि देव कृच्छ्रप्राणसे प्रजाकी इंद्रवत् रक्षा करैंगे ॥ ८ ॥ यह राजा अनुराग सहित चितवन और विशद मंद हास्यसैं सुंदर अमृतकी मूर्तिवाले मुखसैं संसारको तृप्त करैंगे ॥ ९ ॥

69

देख पृथुवैन्य प्रतापवान मेघके समान गर्जनकी वाणीसें ये बोले ॥ २१ ॥ पृथुजी बोले कि हे सूत हे मागध हे सौम्य बंदीजनहो! अभीलोकमें मेरे गुण प्रगट नहीं हैं, काहेको ये स्तव करो हो, तुह्मारी वाणी मिथ्या मेरेमें न होय ॥ २२ ॥ हे सुंदर बोलवेवारे ! ताते जब कोई गुण हमारेमें प्रगट दीखै तब हमारे पाछे स्तोत्र करतें रहो, भगवतगुणानुवादके सामने और मनुष्यके जुगुप्सितके गुण सभासद नहीं गावैं हैं ॥ २३ ॥ हम गुणकी संभावनेसे तुह्मारी स्तुति करै हैं ऐसाभी मत कहो कारण कि जो बड़े पुरुषोंके गुण अपनेमें संपादन करताहै वह अभी विद्यमान नहीं फिर गुणों-

पृथुरुवाच ॥ भोः सूत हे मागध सौम्य बन्दिल्ँलोकोधुनाऽस्पष्टगुणस्य मे स्यात् ॥ किमाश्रयो मे स्तव एष योज्यतां मा मय्यभूवन्वितथा गिरो वः ॥ २२ तस्मात्परोक्षेऽस्मदुपश्रुतान्यलं करिष्यथ स्तोत्रमपीच्यवाचः ॥ सत्युत्तमश्लोकगुणानुवादे जुगुप्सितं न स्तवयन्ति सभ्याः ॥ २३ ॥ महद्गुणानात्मनि कर्तुमीशः कः स्तावकैः स्तावयतेऽसतोऽपि ॥ तेऽस्याभविष्यन्निति विप्रलब्धो जनावहासं कुमतिर्न वेद ॥ २४ ॥ प्रभवो ह्यात्मनः स्तोत्रं जुगुप्सन्त्यपि विश्रुताः॥ ह्रीमन्तः परमोदाराः पौरुषं वा विगर्हितम् ॥ २५ ॥ वयं त्वविदिता लोके सूताद्यापि वरीमभिः ॥ कर्मभिः कथमात्मानं गापयिष्याम बालवत् ॥ २६ ॥ इति श्रीभा० चतु० पृथोरवतारप्रादुर्भाववर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

की संभावनासे कौन अपनी बड़ाई करावै जो वे गुण या जीवमें न होय तौ वो जनोमे उपहास्यको प्राप्त होय है वाको कुमतिवारे न जानै है ॥ २४ ॥ जो लज्जावंत उदार और विख्यात हैं वे अपने सामने अपनी स्तुति करवेकी निंदा करते हैं, जैसे ब्रह्मवध आदि पराक्रमकी निंदा है वैसेही स्तुतिकी है ॥ २५ ॥ हे सूतादिक !हम श्रेष्ठ कर्म करकै अभी लोकमे विख्यात नहीं भए हैं, सो बालककी नाई कैसे अपनी स्तुति करवामै हे सूतादिको ! प्रथम हरिस्मरण करो (१) ॥ २६ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां चतुर्थस्कन्धे पृथुअवतारवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

---

१ ताको ये भजन है ॥ खंभाच ॥ हरिन कहै सो जीवत मरोरे ॥ टेर ॥ वेणुभूप हरि उठायो विप्रननाश करोरे ॥ १ ॥ कंसवंश निर्वंश भयो शठ भक्तन वेर करोरे ॥ २ ॥ दुर्योधन छलबलकर हारो पांडव वैर करोरे ॥ ३ ॥ पुरुषोत्तमकर प्रभु निजदासाचरनन आन परोरे ॥ ४ ॥

सो स्नान करे भए महाराज सुंदर वस्त्रपहिने सुंदर अलंकृत, आर्चि पत्नीसें शोभित दूसरे अग्निवत् शोभित होते भए ॥१३ ॥ वीरवरोंको आसन सुवर्णको कुवेर देतेभए, जलझरनेहारा चंद्रकांति समान छत्र वरुण देते भए ॥ १४ ॥ दो छोटी पंखी वायुनें दीनी, धर्म कीर्तिमयी माला देते भए, बहुत उत्तम किरीट इंद्रने दीनो, सबकों डरायवेवारो दंड यमराज देतेभए ॥ १५ ॥ ब्रह्ममय वखतर ब्रह्माने दीनो, सरस्वती उत्तम हार देतीभई श्रीहरिने सुदर्शन चक्र दीनो, श्रीमहालक्ष्मीजी अखंडित ऐश्वर्य देती भई ॥ १६ ॥ दशचंद्रसमान गोल चंद्रवारी तरवार रुद्रने दीनीं, सौ चंद्रसमान

सोऽभिषिक्तो महाराजः सुवासाः साध्वलंकृतः ॥ पत्न्यार्चिषाऽलंकृतया विरेजेऽग्निरिवापरः ॥१३॥ तस्मै जहार धनदो हैमं वीरवरासनम् ॥ वरुणः सलिलस्रावमातपत्रं शशिप्रभम्॥१४॥ वायुश्च वालव्यजने धर्मः कीर्तिमयीं स्रजम् ॥ इन्द्रः किरीटमुत्कृष्टं दण्डं संयमनं यमः ॥ १५ ॥ ब्रह्मा ब्रह्ममयं वर्म भारती हारमुत्तमम् ॥ हरिः सुदर्शनं चक्रं तत्पत्न्यव्याहतां श्रियम् ॥ १६ ॥ दशचन्द्रमसिं रुद्रः शतचन्द्रं तथाम्बिका ॥ सोमोऽमृतमयानश्वांस्त्वष्टा रूपाश्रयं रथम् ॥ १७ ॥ अग्निराजगवं चापं सूर्यो रश्मिमयानिषून् ॥ भूः पादुके योगमय्यौ द्यौः पुष्पावलिमन्वहम् ॥ १८॥ नाट्यं सुगीतं वादित्रमन्तर्धानं च खेचराः ॥ ऋषयश्चाशिषः सत्याः समुद्रः शङ्खमात्मजम् ॥१९॥ सिन्धवः पर्वता नद्यो रथवीथीर्महात्मनः ॥ सूतोऽथ मागधो बन्दी तं स्तोतुमुपतस्थिरे ॥ २० ॥ स्तावकांस्तानभिप्रेत्य पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ॥ मेघनिह्नादया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ २१ ॥

गोल चिन्हवारी ढाल पार्वती देत भई, अमृतमय घोडे चंद्रमा देते भए, महासुंदर रथ त्वष्टाने दीनो ॥ १७ ॥ मेंढा बैलके सींगको बनो धनुष अग्नि देती भई, सूर्य प्रकाशक बाण देते भये, मन चाहै जहां जाने हारे खडाऊ भूमी देती भई स्वर्ग सदा पुष्पवर्षी हार देते रहै ॥ १८ ॥ नाट्य सुंदर गीत वादित्र अंतर्धान होनो आकाशचारी देवतें देते भए, सांचे आशीर्वाद ऋषी देते भए, समुद्र अपनो पुत्र शंख देतो भयो ॥१९॥ समुद्र पर्वत नदियें महात्माके रथकों मार्ग देते भए, सूत मागध बंदो जन याकी स्तुति करते भए ॥ २० ॥ उन स्तुति करवेवारेनकों अपनी स्तुति करवेकूं आए

मानो है, जो सबवृत्तिदाता पति है ऐसे पतिको त्याग जार पतिकी उपासना करोहो ॥ २४ ॥ जो मूढ, नृपरूपी ईश्वरकी अवज्ञा करैहैं, वे प्रजा या लोकमें परलोकमें कल्याण नहीं भोगे हैं ॥ २५ ॥ यज्ञपुरुष नामक कौन है, जहां तुम्हारी भक्ति है, उसमे तुह्मारी भक्ति ऐसी है जैसे निंदित स्त्री भर्तासे स्नेह तो न करै, जार पुरुषसें प्यार करै ॥ २६ ॥ विष्णु विरिंचि शिव इंद्र उपेंद्र वायु यम सूर्य मेघ कुबेर चंद्र पृथिवी अग्नि सागर ॥ २७ ॥ ये और जो वर शाप दाता देवता है, राजाकी देहमें होय है सर्व देवतामय नृप होय है ॥ २८ ॥ तात हे ब्राह्मण हो ! ईर्षा वैर त्याग सब कर्मसे मोको बलि देओ यज्ञरूप मोय पूजो, मोसे और यज्ञ [illegible] करवेवारे कौन पुरुष है ॥ २९ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि ऐसी उलटी मतिवारे पापी पाषंड

अवजानन्त्यमी मूढा भूपरूपिणमीश्वरम् ॥ नानुविन्दन्ति ते भद्रमिह लोके परत्र च ॥ २५ ॥ को यज्ञपुरुषो नाम यत्र वो भक्तिरीदृशी ॥ भर्तृस्नेहविदूराणां यथा जारे कुयोषिताम् ॥ २६ ॥ विष्णुर्विरिञ्चो गिरिश इन्द्रो वायुर्यमो रविः ॥ पर्जन्यो धनदः सोमः क्षितिरग्निरपांपतिः ॥ २७ ॥ एते चान्ये च विबुधाः प्रभवो वरशापयोः ॥ देहे भवन्ति नृपतेः सर्वदेवमयो नृपः ॥ २८ ॥ तस्मान्मां कर्मभिर्विप्रा यजध्वं गतमत्सराः ॥ बलिं च मह्यं हरत मत्तोऽन्यः कोऽग्रभुक् पुमान् ॥ २९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्थं विपर्ययमतिः पापीयानुत्पथं गतः ॥ अनुनीयमानस्तद्याच्ञां न चक्रे भ्रष्टमङ्गलः ॥ ३० ॥ इति तेऽसत्कृतास्तेन द्विजाः पण्डितमानिना ॥ भग्नायां भव्ययाच्ञायां तस्मै विदुर चुक्रुधुः ॥ ३१ ॥ हन्यतां हन्यतामेष पापः प्रकृतिदारुणः ॥ जीवञ्जगदसावाशु कुरुते भस्मसाद् ध्रुवम् ॥ ३२ ॥ नायमर्हत्यसद्वृत्तो नरदेववरासनम् ॥ योऽधियज्ञपतिं विष्णुं विनिन्दत्यनपत्रपः ॥ ३३ ॥

मतमें स्थित सब मंगलसें भ्रष्ट उसके मुनियौने समझाया और उसमें न माना ॥ ३० ॥ और अपनेको पंडित माननेहारे उस नृपने सब आए ब्राह्मणोंको तिरस्कारा हे विदुर ! तब वे अपनी आज्ञाभंग होनेसै उसपर क्रोध करते भये ॥ ३१ ॥ धाय मारो मारो ये पापीको सुभाव दारुण है, ये निश्चय है कि जो है जीवैगो, तो जगत शीघ्र भस्म समान कर डारैगो ॥ ३२ ॥ ये कुमारगी नरदेवोंके योग्य आसनपर बैठने लायक नहीं है जो सब लाज छोड़ सब यज्ञोंके ईश्वरोंकी ये निंदा करै है ॥ ३३ ॥

72

को वैनं परिचक्षीत वेनमेकमृते॒ऽशुभम् ॥ प्राप्त ईदृशमैश्वर्यं यदनुग्रहभाजनः ॥ ३४ ॥ इत्थं व्यवसिता हन्तुमृषयो रूढमन्यवः ॥ निजघ्नुर्हुंकृतैर्वेनं हतमच्युतनिन्दया ॥ ३५ ॥ ऋषिभिः स्वाश्रमपदं गते पुत्रकलेवरम् ॥ सुनीथा पालयामास विद्यायोगेन शोचती ॥ ३६ ॥ एकदा मुनयस्ते तु सरस्वत्सलिलाप्लुताः॥ हुत्वाऽग्नीन्सत्कथाश्चक्रुरुपविष्टाः सरित्तटे ॥ ३७ ॥ वीक्ष्योत्थितान्महोत्पातानाहुर्लोकभयंकरान् ॥ अप्यभद्रमनाथाया दस्युभ्यो न भवेद्भुवः ॥ ३८ ॥ एवं मृशन्त ऋषयो धावतां सर्वतो दिशम् ॥ पांसुः समुत्थितो भूरिश्चोराणामपि लुम्पताम् ॥३९॥ तदुपद्रवमाज्ञाय लोकस्य वसु लुम्पताम् ॥ भर्तर्युपरते तस्मिन्नन्योऽन्यं च जिघांसताम् ॥४०॥ चोरप्रायं जनपदं हीनसत्त्वमराजकम् ॥ लोकान्नावारयञ्छक्ता अपि तद्दोषदर्शिनः ॥ ४१ ॥

या अशुभ वेनके विना ईश्वरकी कौन निंदा करसकै है, जिनके अनुरागसे यह ऐसे ऐश्वर्यको पात्र भयो है "भाजनशब्दस्य पुंस्त्वमार्षम्" ॥ ३४ ॥ ऐसै विचार महा क्रोधकर सब ऋषि वाकों मारवेको उद्यत भए या वेन नृपको अच्युतकी निंदा करनेसे हुंशब्द कहि मारते भए (हुं ये शब्द मारण प्रयोगमे आवता है) ॥३५॥ ऐसै कर सब ऋषि अपने आश्रमनको गए, तब सुनीथा पुत्रके कलेवरकी रक्षा कराती भई, क्योंकि विद्यायोग ऋषिनको शोचती भई कदाचित् फिर जिवादैं ॥ ३६ ॥ एक समय वे सब मुनिजन सरस्वतीके जलमे स्नान कर अग्निमे हवनकर सरिताके तटपर बैठकर सत् कथा करते थे (श्लोकमे सरस्वतीको जो सरस्वत् पुंवद्भाव आर्ष मानकर शुकाचार्यने कहा है) ॥३७॥ तब लोगोंको भयंकर महा उत्पातनको उठे देख बोलै अनाथ हम लोगोंके अर्थ चोरनसे भूमीपर भय न होय ॥ ३८ ॥ ऐसे ऋषी सब विचारतेथे कि सबकों मारते भए चोरनके दोडवेकी सब दिशानसे धूर बहुत उडती भई देखी ॥ ३९ ॥ लोकके धन चुरावनेवारे राजाके मरवेसे आपसमे मारते भए लोकभरको उपद्रव जानकर ॥ ४० ॥ सब जनपद चौरप्राय होजाय, जीव मरने लगै राजा न रहै तब उनके दोष देखकेभी जो समर्थ लोग लोकनकी रक्षा करै तो सब ब्रह्मतप क्षीण हो जाय है ॥ ४१ ॥

समदर्शी शांत दीनपर कृपा करवेवारे ब्राह्मण रक्षा न करैं तो तिनको ब्रह्मतप सब नष्ट हो जाय है, जैसे फूटे भांडेमेसे दूध निकर जाय है ॥ ४२ ॥ राजर्षि अंगके वंश नष्ट होयवेके योग्य नहीं है, या कारण कि या वंशमे सब राजा केशवके आश्रय रहिवेवारे होते आए हैं ॥ ४३ ॥ ऐसे निश्चय कर ऋषिलोग मरे भए महीपतिके ऊरूकूं शीघ्र मथते भए, तामेंसे छोटे बाहुको नर भयो ॥ ४४ ॥ कौआ समान कारो अति छोटो अंग, बाहु ठोडी बडी, छोटे पांव, गहरी नाकको अग्रभाग, वा ऊंची नाक, लाल नेत्र लाल मूडके बारवारो ॥ ४५ ॥ नम्रीभूत दीन कहा करूं

ब्राह्मणः समदृक् शान्तो दीनानां समुपेक्षकः ॥ स्रवते ब्रह्म तस्यापि भिन्नभाण्डात्पयो यथा ॥ ४२ ॥ नाङ्गस्य वंशो राजर्षेरेष संस्थातुमर्हति ॥ अमोघवीर्या हि नृपा वंशेऽस्मिन्केशवाश्रयाः ॥ ४३ ॥ विनिश्चित्यैवमृषयो विपन्नस्य महीपतेः ॥ ममन्थुरूरुं तरसा तत्रासीद्बाहुको नरः ॥ ४४ ॥ काककृष्णोऽतिह्रस्वाङ्गो ह्रस्वबाहुर्महाहनुः ॥ ह्रस्वपान्निम्ननासाऽग्रो रक्ताक्षस्ताम्रमूर्धजः ॥ ४५ ॥ तं तु तेऽवनतं दीनं किं करोमीति वादिनम् ॥ निषीदेत्यब्रुवंस्तात स निषादस्ततोऽभवत् ॥ ४६ ॥ तस्य वंश्यास्तु नैषादा गिरिकाननगोचराः ॥ येनाहरज्जायमानो वेनकल्मषमुल्बणम् ॥ ४७ ॥ इतिश्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे पृथुचरित्रे निषादोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥छ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अथ तस्य पुनर्विप्रैरपुत्रस्य महीपतेः ॥ बाहुभ्यां मथ्यमानाभ्यां मिथुनं समपद्यत ॥ १ ॥ तद्दृष्ट्वा मिथुनं जातमृषयो ब्रह्मवादिनः ॥ ऊचुः परमसंतुष्टा विदित्वा भगवत्कलाम् ॥ २ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ एष विष्णोर्भगवतः कला भुवनपालिनी ॥ इयं च लक्ष्म्याः संभूतिः पुरुषस्यानपायिनी ॥ ३ ॥

ऐसे कहते भये वासे 'हे तात निषीद' अर्थात् बैठो, वा निषादकृत्य करो, ऋषियोंके ऐसा कहने पर वह निषाद भया ॥ ४६ ॥ ताके वंशमें निषाद भए, जो गिरिवनमें रहे उसने जन्म लेकर सब वेनको कल्मष हर लीनो ॥ ४७ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां चतुर्थस्कन्धे निषादोत्पत्तिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि याके उपरांत अपुत्र महीपतिकी बाहु फेर मंथते भए, तासै एक जोडा उत्पन्न भयो ॥ १ ॥ वा मिथुनकूं जन्मो देख ब्रह्मवादी ऋषि भगवत्कला जान परम सन्तुष्ट हो बोले ॥ २ ॥ ऋषी बोले कि भुवन पालन करवेवारी विष्णु

74

भगवान्‌की ये कला है, ये महालक्ष्मीजी हैं यह पुरुषकी विश्लेष रहित लक्ष्मीजी हैं[1] ॥ ३ ॥ ये तौ सब राजानमें प्रथम पुमान्, यशस्वी, महाराज सर्वत्र प्रकाशमान यशवाले पृथुराज नामक विख्यात होंगे ॥ ४ ॥ ये सुदती देवी गुण भूषणोंसे भूषित है, अर्चिनाम श्रेष्ठ मुखी पृथुकी सेवा करवेवारी हैं ॥ ५ ॥ लोकको रक्षाकरकै ये साक्षात् हरिको अंश जन्म्यो है, विश्लेष रहित इनकी परायण श्रीजीकी नाई ये राणी रहेगी ॥ ६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि तिनकी ब्राह्मणलोग प्रशंसा करवे लगे गंधर्वप्रवर गायवे लगे सिद्ध पुष्पोंकी धारा वर्षावते भए, सब देवस्त्रियें नृत्य करती भईं ॥ ७ ॥ शंख तूर्य मृदंगादिक स्वर्गमें बजे, तहां सब देवऋषि पितृगण आतेभए ॥ ८ ॥ देवनके ईश्वरनको संग लैकै जगद्गुरु ब्रह्मा वहां आकर वैन्य 'वेनस्यापत्यं पुमान्वैन्यः श्रीपृथुमहाराजः' के दक्षिण हस्तमे गदाधारीके चिन्ह देखते भए ॥ ९ ॥ दोनो पांवमें कमलके चिन्ह देख तिनकों हरिकी कला मानते भए अप्रतिहत गति परमेष्ठीको अंश चक्र देखते भए ॥ १० ॥ ब्रह्मवादी ब्राह्मण तिनको अभिषेक आरंभ करते भए, सब ओरसे अभिषेकके पदार्थ सब जन लाते भए ॥ ११ ॥ नदी समुद्र पर्वत नाग गौ खग मृग आकाश पृथिवी सब जीवमात्र सब ओरसे भेटैं लावते भए ॥१२॥

अयं तु प्रथमो राज्ञां पुमान्प्रथयिता यशः ॥ पृथुर्नाम महाराजो भविष्यति पृथुश्रवाः ॥ ४ ॥ इयं च सुदती देवी गुणभूषणभूषणा ॥ अर्चिर्नाम वरारोहा पृथुमेवावरुन्धती ॥ ५ ॥ एष साक्षाद्धरेरंशो जातो लोकरिरक्षया ॥ इयं च तत्परा हि श्रीरनुजज्ञेऽनपायिनी ॥ ६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रशंसन्ति स्म तं विप्रा गन्धर्वप्रवरा जगुः ॥ मुमुचुः सुमनोधाराः सिद्धा नृत्यन्ति स्वःस्त्रियः ॥ ७ ॥ शङ्खतूर्यमृदङ्गाद्या नेदुर्दुन्दुभयो दिवि ॥ तत्र सर्व उपाजग्मुर्देवर्षिपितृणां गणाः ॥ ८ ॥ ब्रह्मा जगद्गुरुर्देवैः सहासृत्य सुरेश्वरैः ॥ वैन्यस्य दक्षिणे हस्ते दृष्ट्वा चिह्नं गदाभृतः ॥ ९ ॥ पादयोररविन्दं च तं वै मेने हरेः कलाम् ॥ यस्याऽप्रतिहतं चक्रमंशः स परमेष्ठिनः ॥ १० ॥ तस्याऽभिषेक आरब्धो ब्राह्मणैर्ब्रह्मवादिभिः ॥ आभिषेचनिकान्यस्मा आजह्रुः सर्वतो जनाः ॥ ११ ॥ सरित्समुद्रा गिरयो नगा गावः खगा मृगाः ॥ द्यौः क्षितिः सर्वभूतानि समाजह्रुरुपायनम् ॥ १२ ॥

---

[1] पापीकी देहसै नारायण क्यों प्रगट हुए उस समय तौ पृथ्वीपर दुःखभी नहीं था। उत्तर यह है कि वेनने बहुत प्रजा नाश करदीथी जीवित प्रजा बहुत दुःखी थी फिर ब्राह्मणोंने मंत्रौद्वारा वेनकी देह शुद्ध करलीथी इससे अवतार हुआ।

पुरुषनका चाहिये कि वाणि मन कायासे धर्मको आचरण करै, तो शोकरहित लोकनको जाय है, जहां सर्व त्यागी जाय है ॥ १६ ॥ हे वीर ! सो ये तुमारो धर्म नाश न होय, यासे प्रजाको क्षेम होय है, धर्म[illegible] होनेसे राजा धर्म ऐश्वर्यसे गिर पडै है ॥ १७ ॥ हे राजन् ! दुष्ट मंत्री चोरादिकसे नृप प्रजाकी रक्षा यथावत् कर लेवें तौ या लोकमें परलोकमें सुखी रहै है ॥ १८ ॥ जा राजाके राज्य पुरमें भगवान् यज्ञपुरुष अपने वर्ण आश्रम धर्म करकै सदा पूजें जाय है ॥ १९॥ हे महाभाग ! जो राजा अपनी निज शिक्षामें स्थित है, वा राजाके ऊपर भगवान् सर्वपालक विश्वात्मा अत्यंत प्र-

धर्म आचरितः पुंसां वाङ्मनःकायबुद्धिभिः॥लोकान्विशोकान्वितरत्यथानन्त्यमसङ्गिनाम्॥ १६॥स ते मा विनशेद्वीर प्रजानां क्षेमलक्षणः ॥ यस्मिन्विनष्टे नृपतिरैश्वर्यादवरोहति ॥ १७ ॥ राजन्नसाध्वमात्येभ्यश्चोरादिभ्यः प्रजा नृपः ॥ रक्षन्यथा बलिं गृह्णन्निह प्रेत्य च मोदते ॥ १८ ॥ यस्य राष्ट्रे पुरे चैव भगवान्यज्ञपूरुषः ॥ इज्यते स्वेन धर्मेण जनैर्वर्णाश्रमान्वितैः ॥ १९ ॥ तस्य राज्ञो महाभाग भगवान्भूतभावनः ॥ परितुष्यति विश्वात्मा तिष्ठतो निजशासने ॥ २० ॥ तस्मिंस्तुष्टे किमप्राप्यं जगतामीश्वरेश्वरे ॥ लोकाः सपाला ह्येतस्मै हरन्ति बलिमादृताः ॥ २१ ॥ तं सर्वलोकामरयज्ञसंग्रहं त्रयीमयं द्रव्यमयं तपोमयम् ॥ यज्ञैर्विचित्रैर्यजतो भवाय ते राजन्स्वदेशाननुरोद्धुमर्हसि ॥ २२ ॥ यज्ञेन युष्मद्विषये द्विजातिभिर्वितायमानेन सुराः कला हरेः ॥ स्विष्टाः सुतुष्टाः प्रदिशन्ति वाञ्छितं तद्धेलनं नार्हसि वीर चेष्टितुम् ॥ २३ ॥ वेन उवाच ॥ बालिशा बत यूयं वा अधर्मे धर्ममानिनः ॥ ये वृत्तिदं पतिं हित्वा जारं पतिमुपासते॥२४॥

सन्न होय है ॥ २० ॥ जगत्के ईश्वरोंके ईश्वर जब तुष्ट होजाय तौ फेर याको अप्राप्य कुछ नहीं है, पालक सहित सब लोक: आदरसे जाके अर्थ बलि देते हैं ॥ २१ ॥ हे राजन् ! सब लोक देवता यज्ञोंसे जो ग्रहण करे जांय, वेदत्रयमिय तपोमय ईश्वरको [illegible]चित्र यज्ञोंकरकै यजन करवेवारे अपने देशनकी समृद्धिके लिये यज्ञोंमें लगावेको योग्य हो ॥ २२ ॥ आपके देशमें ब्राह्मणों करकै विस्तृत यज्ञमें श्रीहरिके कला देवता सम्यक् संतुष्ट होकै सब मनवांछित देंगे, हे वीर ! उन देवनकी अवज्ञा करवेमें तुम मन मत करो ॥ २३ ॥ वेन बोलो तुम सब मूर्ख हो अधर्ममें धर्म

अहो कष्ट दोनो ओरसे लोकको प्राप्त भयो जैसे दोनों ओर काठमें अग्नि लगजाय तो बीचकी चेटी मरजाय तद्वत् पालक चोर एकसरीके होय गये ॥ ८ ॥ कोई राजा न हो याके मारे तो यह अयोग्य हमनें राजा कीनो तोहू अब सब देहधारियनकों भय होय हैं, कैसे मंगल होय ॥ ९ ॥ सर्पकी नाई दूध पीकर अब यह अपने पोषकहीको काटै है, वेन सुभावहीसें खल हो सुनीथाके गर्भसें जन्मो है ॥ १० ॥ यद्यपि इसे प्रजापालक कीनो है और यह प्रजाकों मारैहैं तथापि याकों समझावै तौ हमको पातक न होयगो ॥ ११ ॥ याके पापकों न जान हम सबने याको नृप करो सामदानसे

अहो उभयतः प्राप्तं लोकस्य व्यसनं महत् ॥ दारुण्युभयतो दीप्त इव तस्करपालयोः ॥ ८ ॥ अराजकभयादेष कृतो राजाऽतदर्हणः ॥ ततोऽप्यासीद्भयं त्वद्य कथं स्यात्स्वस्ति देहिनाम् ॥ ९ ॥ अहेरिव पयःपोषः पोषकस्याप्यनर्थभृत् ॥ वेनः प्रकृत्यैव खलः सुनीथागर्भसंभवः ॥ १० ॥ निरूपितः प्रजापालः स जिघांसति वै प्रजाः ॥ तथाऽपि सान्त्वयेमामुं नास्मांस्तत्पातकं स्पृशेत् ॥ ११ ॥ तद्विद्वद्भिरसद्वृत्तो वेनोऽस्माभिः कृतो नृपः ॥ सान्त्वितो यदि नो वाचं न ग्रहीष्यत्यधर्मकृत् ॥ १२ ॥ लोकधिक्कारसंदग्धं दहिष्यामः स्वतेजसा ॥ एवमध्यवसायैवं मुनयो गूढमन्यवः ॥ ॥ १३ ॥ उपव्रज्याब्रुवन्वेनं सान्त्वयित्वा च सामभिः ॥ मुनयो धर्मनिरता सर्वलोकहिते रताः ॥ १४ ॥ मुनय ऊचुः ॥ नृपवर्य निबोधैतद्यत्ते विज्ञापयाम भोः ॥ आयुःश्रीबलकीर्तीनां तव तात विवर्धनम् ॥ १५ ॥

समझावै, जो हमारी वाणी न ग्रहण करैगो तौ ये अधर्मकारी है ॥ १२ ॥ लोगोंके धिक्कारीसे दग्ध याको अपने तेजसें जरावेंगे, ऐसे निश्चय कर भीतर क्रोधमें भरे मुनि याके समीप आय बोले ॥ १३ ॥ धर्ममें निरत सब लोकके हितकारी मुनिलोग वेनके निकट आय साम दान इत्यादि उपायोंसे समझाते बोले (१) ॥ १४ ॥ सब मुनिलोग बोले कि हे नृपवर्य हे पुत्र ! जो हम कहै है, सो तुह्मारी बल कीर्ति बढावनेवारो है, सो तुम सुनो हम कहैं हैं ॥ १५ ॥

---

१ ऐसेही वेताल भट्टने कहा ॥ छप्पै ॥ दया चट्ट होगई धर्म धसगयो धरणिमो ॥ पुण्य गयो पाताल पाप छायो वर्णवर्णमो ॥ घरमें विपरीत लड़ैं सब नर और नारी ॥ राजा करै न न्याय नगरमें मचरही ख्वारी ॥ उलट दान नरपति लियो शील संतोष कहां रह्यो ॥ वैताल कहै सुन विक्रम अब कलियुग प्रगट भयो ॥ १ ॥

77

हे विदुर! प्रजापतिकी पदवी जब न लखाई पडी, तब सब उद्यमसे हार यह सब पुरीमें आय मुनियोंकी सभामें प्रणाम कर रोते २ राजाके खोज न मिलनेके समाचार कहे रहे [illegible] हे विदुर ! राजा न क्यों कि दुष्ट पुत्र सब क्लेशदाता है (१) ॥४९॥ इति श्रीम० भा० टी० चतुर्थस्कन्धे वेनसुतदुःखात् अङ्गनृपवनप्रवेशो नाम [illegible]शोऽध्यायः ॥१३॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि भृगु आदि मुनि लोगोंके क्षेमचिंतक मनुष्योंको पालक विना शिक्षा करनेहारेके मनुष्योंकू पशुसमान हुए [illegible]रते भए ॥ १ ॥ वे ब्रह्मवादी वीरमाता सुनीथाको बुलाय सब प्रजाकी असंमतिसे भूपति वेनको राजतिलक करतेभए ॥२॥ नृपासनपर प्राप्त अति [illegible]प्रशिक्षक वेन राजाको सुन सर्पके डरसे मूसेकी समान सब चोर विलाय गए ॥ ३॥ सो नृपस्थानमें बैठो आठ [illegible]क-

अलक्षयन्तः पदवीं प्रजापतेर्हतोद्यमाः प्रत्युपसृत्य ते पुरीम् ॥ ऋषीन्समेतानभिवन्द्य साश्रवो न्यवेदयन्पौरवभर्तुर्विप्लवम् ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवते चतुर्थस्कन्धे वेनसुतदुःखादङ्गनृपवनप्रवेशो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ भृग्वादयस्ते मुनयो लोकानां क्षेमदर्शिनः ॥ गोप्तर्यसति वै नृणां पश्यन्तः पशुसाम्यताम् ॥ १ ॥ वीरमातरमाहूय सुनीथां ब्रह्मवादिनः ॥ प्रकृत्यसंमतं वेनमभ्यषिञ्चन्पतिं भुवः ॥ २ ॥ श्रुत्वा नृपासनगतं वेनमत्युग्रशासनम् ॥ निलिल्युर्दस्यवः सर्वे सर्पत्रस्ता इवाखवः ॥ ३ ॥ स आरूढो नृपस्थान उन्नद्धोऽष्टविभूतिभिः ॥ अवमेने महाभागान्स्तब्धः संभावितः स्वतः ॥४॥ एवं मदान्ध उत्सिक्तो निरङ्कुश इव द्विपः ॥ पर्यटन्रथमास्थाय कम्पयन्निव रोदसी ॥ ५ ॥ न यष्टव्यं न दातव्यं न होतव्यं द्विजाः क्वचित् ॥ इति न्यवारयद्धर्मं भेरीघोषेण सर्वशः ॥ ६ ॥ वेनस्यावेक्ष्य मुनयो दुर्वृत्तस्य विचेष्टितम् ॥ विमृश्य लोकव्यसनं कृपयोचुः स्म सत्रिणः ॥ ७ ॥

पालोंकी विभूतिसें गर्वित, महा अहंकारी अपनेको महा शूरकी भावना कर महात्मानकी अवज्ञा करतो भयो॥४॥ इस प्रकार निरंकुश गजकी समान मदांध होकर वेन रथमें बैठकर स्वर्ग पृथ्वीको कंपित करते पर्यटन करने लगा ॥५॥ यज्ञ मत करो दान मत करो होम कहींभी मत करो ऐसे भेरीकी घोष करायकै धर्मको निवारण करतो भयो॥६॥दुराचारी वेन नृपकी ये कुचाल देख लोकको कष्ट आयो जान सब मिल मुनि लोग कृपा करकै बोले॥७॥

---

१ दोहा है कि ॥ मिसुरी मेवा कंद रस गूलर वरगत तूत ॥ पेटहीमें पहिचानिये पूत कपूत सपूत ॥ १ ॥ २ राजा वेनको दुष्ट जानकरभी ऋषियोंने इस कारण राज दिया कि कदाचित् राज्यपर बैठ महात्माओंके संगसै सुधर जाय ॥

खेलवेके स्थानमें अपने बराबरके क्रीडा करते बालकनको अति दारुण निर्दयी हट करके पशुमारककी नांई मारतो भयो ॥ ४१ ॥ राजा अपने दुष्ट पुत्रको देख अनेक शिक्षा करने लगे जब शिक्षा करवेको न समर्थ भयो तो अत्यंत दुर्मनी भयो ॥ ४२ ॥ और सोचने लगा जो गृहस्थी संतान रहित है उन्होंने नारायणका भली प्रकार पूजन किया है जिस्से उन्है दुष्ट संतान होनेके कारण कुत्सित दुःख भोगने नहीं पडते ॥ ४३ ॥ अपकीर्ति महाअधर्म, सब मनुष्योंके संग विरोध और अनंत व्याधी जिसके कारण होती है ॥ ४४ ॥ पुत्रनामक आत्माको मोह बंधनकारी है जिसके निमित्त

आक्रीडे क्रीडतो बालान्वयस्यानतिदारुणः ॥ प्रसह्य निरनुक्रोशः पशुमारममारयत् ॥ ४१ ॥ तं विचक्ष्य खलं पुत्रं शासनैर्विविधैर्नृपः ॥ यदा न शासितुं कल्पो भृशमासीत्सुदुर्मनाः ॥ ४२ ॥ प्रायेणाभ्यर्चितो देवो येऽप्रजा गृहमेधिनः ॥ कदपत्यभृतं दुःखं ये न विन्दन्ति दुर्भरम् ॥ ४३ ॥ यतः पापीयसी कीर्तिरधर्मश्च महान्नृणाम् ॥ यतो विरोधः सर्वेषां यत आधिरनन्तकः ॥ ४४ ॥ कस्तं प्रजाऽपदेशं वै मोहबन्धनमात्मनः ॥ पण्डितो बहु मन्येत यदर्थाः क्लेशदा गृहाः ॥ ४५ ॥ कदपत्यं वरं मन्ये सदपत्याच्छुचां पदात् ॥ निर्विद्येत गृहान्मर्त्यो यत्क्लेशनिवहा गृहाः ॥ ४६ ॥ एवं स निर्विण्णमना नृपो गृहान्निशीथ उत्थाय महोदयोदयात् ॥ अलब्धनिद्रोऽनुपलक्षितो नृभिर्हित्वा गतो वेनसुवं प्रसुप्ताम् ॥ ४७ ॥ विज्ञाय निर्विद्य गतं प्रजापतिं पुरोहितामात्यसुहृद्गणादयः ॥ विचिक्युरुर्व्यामतिशोककातरा यथा निगूढं पुरुषं कुयोगिनः ॥ ४८ ॥

दुखदाई घरमें रहना पडताहै कौन पंडित इसका बहुमान करैगो हैं ॥ ४५ ॥ सत् संतान शोकदायकते हम कुत्सित संतानको श्रेष्ठ माने हैं कारण कि कुपुत्रसे मनुष्यको दुखदाई घरमें वैराग्य होयहै ॥ ४६ ॥ ऐसे वैराग्ययुक्त होयकर भागनेवाले नृप प्रातःसमयमें पहिले आधी रातकों उठकर मनुष्यसे अलक्षित वेनकी माको सोई छोडकै घर त्याग चले जाते भए ॥ ४७ ॥ वैराग्यसे प्रजापतिको गया जान पुरोहित अमात्य सुहृदगण आदिक अति शोकसे कादर होयकै पृथ्वीमें ढूंढते भए जैसे भीतर अंतर्यामी पुरुषको कुत्सित योगी ढूंढकर नहीं पाते न पावैं तद्वत् राजा न पाए ॥ ४८ ॥

तब विस्मित होयकर ऋत्विज यजमानसैं बोले कि तुम्हारो हवि हवन करें हैं तोहू देवता नहीं ग्रहण करें हैं ॥ २६ ॥ हे राजन्! ये हवनयोग्य सब सामग्री बहुत शुद्ध हैं, श्रद्धाविधिपूर्वक देते हैं, वेदमंत्रोंके आजतक सार गए नहीं हैं, महाव्रती हम लोगोंने होमे हैं ॥ २७ ॥ हम देवतानकी अणुमात्रभी अवज्ञा नहीं जानें हैं फिर क्यों कर्मोंके साक्षी देवता अपनो अपनो भाग ग्रहण नहीं करैं हैं ॥ २८ ॥ अंग यजमान द्विजनको वचन सुन उ-

तमूचुर्विस्मितास्तत्र यजमानमथर्त्विजः ॥ हवींषि हूयमानानि न ते गृह्णन्ति देवताः ॥ २६ ॥ राजन्हवींष्यदुष्टानि श्रद्धयाऽऽसादितानि ते ॥ छन्दांस्ययातयामानि योजितानि धृतव्रतैः ॥ २७ ॥ न विदामेह देवानां हेलनं वयमण्वपि ॥ यन्न गृह्णन्ति भागान्स्वान्ये देवाः कर्मसाक्षिणः ॥ २८ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अङ्गो द्विजवचः श्रुत्वा यजमानः सुदुर्मनाः ॥ तद्द्रष्टुं व्यसृजद्वाचं सदस्यांस्तदनुज्ञया ॥ २९ ॥ नागच्छन्त्याहुता देवा न गृह्णन्ति ग्रहानिह ॥ सदसस्पतयो ब्रूत किमवद्यं मया कृतम् ॥ ३० ॥ सदसस्पतय ऊचुः ॥ नरदेवेह भवतो नाघं तावन्मनाक्स्थितम् ॥ अस्त्येकं प्राक्तनमघं यदिहेदृक्त्वमप्रजः ॥ ३१ ॥ तथा साधय भद्रं ते आत्मानं सुप्रजं नृप ॥ इष्टस्ते पुत्रकामस्य पुत्रं दास्यति यज्ञभुक् ॥ ३२ ॥

दास भयो उनकी आज्ञासे सभासदोंसे पूछतो भयो ॥ २९ ॥ हे सभासद हो! बुलायेभी देवता नहीं आवैं हैं न यज्ञभाग ग्रहण करैं हैं मैंने कौन पाप कीनो है सो तुम विचारके कहो ॥ ३० ॥ सभासद बोले कि हे नरदेव! या जन्मको तो तुमारो कुछ पाप नहीं है, कोई पूर्वजन्मको पाप है, जासे तुम गुणवान हो[illegible]रभी पुत्ररहित ॥ ३१ ॥ प्रथम पुत्रप्राप्तिके निमित्त यत्न करो और इसीके निमित्त नारायणका यजन क-

---

१ पूर्वजन्मको ये पाप है कि एकस[illegible]ा अंग बालकपनमें मानस सरोवरकी तरैंटीमें विहार करवेको गए थे सो वहां एक वृक्षमें कोई राजहंसके बच्चे खेलतेथे हंस हंसनी थे नहीं उनमेंसे एक बच्चेको पकड मुट्ठीमें बालकपनकी चंचलतासे बंद करो सो वो बच्चा मरगयो जब हंस हंसनी आए तब बालकको न देख सब वृत्तांत सुन बोले कि राजा अंगने जैसे हमारो वंशपालक पुत्र हंस मारो हम निर्वंश भए तैसे राजाभी होय ये शाप सुन हंसिनी बोली हम सरिके पशूनकी कौन चलाई राजासे तो अनेक जीवनको पालन होय है तब वर दीनो यज्ञपुरुषको राजा पूजैगो तासे पुत्र होंगो ये वर दीनो हो सो सुन राजा अंग तैसेही करते भए ।

रो तौ वे तुमको पुत्र दैंगे आपका मंगल होय पुत्र देवेंगे ॥ ३२ ॥ तब अपने अपने भागभी सब देवता ग्रहण करेंगे, जो यज्ञपुरुष भगवान् साक्षात् हरिका संतानके निमित्त यजन करनेसै उनके आनेपर देवताभी साथ आवेंगे ॥ ३३ ॥ भक्तजन जिनजिन कामनानकी चाहना करते हैं तिन तिन कामनानको श्रीहरि देते हैं जैसे पुरुष आराधन करै तैसोही फलको उदय होय है ॥ ३४ ॥ ऐसे निश्चय कर ब्राह्मण सब तिस राजाके प्रजा होयवेके अर्थ सर्वांतर्यामी सर्वव्यापक विष्णुके अर्थ पुरोडाश देते भये पुरोडाश याको नाम है कि एक स्रुवामें इमरती सोमलताके अमृतमें भीजी भई देवेसै सर्वेश्वर प्रसन्न होय है ॥ "विश्वकोशमें है कि ॥ पुरोडाशो हविर्भेदे चमस्यां पिष्टकस्य च। रसे सोमलतायाश्च हुतशेषे प्रकीर्तितः" ॥

तथा स्वभागधेयानि ग्रहीष्यन्ति दिवौकसः ॥ यद्यज्ञपुरुषः साक्षादपत्याय हरिर्वृतः ॥ ३३ ॥ तांस्तान्कामान्हरिर्दद्याद्यान्यान्कामयते जनः ॥ आराधितो यथैवैषां तथा पुंसां फलोदयः ॥ ३४ ॥ इति व्यवसिता विप्रास्तस्य राज्ञः प्रजातये ॥ पुरोडाशं निरवपञ्छिपिविष्टाय विष्णवे ॥ ३५ ॥ तस्मात्पुरुष उत्तस्थौ हेममाल्यमलाम्बरः ॥ हिरण्मयेन पात्रेण सिद्धमादाय पायसम् ॥ ३६ ॥ स विप्रानुमतो राजा गृहीत्वाऽञ्जलिनौदनम् ॥ अवघ्राय मुदा युक्तः प्रादात्पत्न्या उदारधीः ॥ ३७ ॥ सा तत्पुंसवनं राज्ञी प्राश्यतौ पत्युरादधे ॥ गर्भं काल उपावृत्ते कुमारं सुषुवेऽप्रजा ॥ ३८ ॥ स बाल एव पुरुषो मातामहमनुव्रतः ॥ अधर्मांशोद्भवं मृत्युं तेनाभवदधार्मिकः ॥ ३९ ॥ स शरासनमुद्यम्य मृगयुर्वनगोचरः ॥ हन्ति साधून्मृगान्दीनान्वेनोऽसावित्यरौज्जनः ॥ ४० ॥

॥ ३५ ॥ जब ऐसो पुरोड़ाश विष्णुनें पायो, तब वा कुंडमेंसे सुवर्णकी माला पहिने श्वेत वस्त्रधारे एक पुरुष सुवर्णके बडे भारी थारमें सुंदर खीर लिये भये निकसो तिनको सब देखते भए ॥ ३६ ॥ सो राजा ब्राह्मणोंकी संमतिसे हाथसें खीर लेके सूंघकर आनंदित होय उदार बुद्धिकर स्त्रीके अर्थ देते भये ॥ ३७ ॥ सो राणी पुत्र होनेकी खीरको पाय पतिके गर्भको धारती भई, जब समय भयो तब पुत्रवारी पुत्र उत्पन्न करती भई ॥ ३८ ॥ सो बालक मृत्यु अपने नाना नानीके अनुसार भयो, अधर्म मृत्युके अंशसे भयो यासे अधार्मिक भयो ॥ ३९ ॥ सो धनुषबाण लेकर शिकारीकी समान वनमें विचरै, साधु मृग गरीब मारै, ये वेन है ऐसे सब जन पुकारकै कहिते भए ॥ ४० ॥

स्तृत मानतो भयो और आत्माको सब लोकमें पूर्ण मानतो भयो ॥ ७ ॥ ब्रह्म सुखमय शांत देह ज्ञानरस निमग्न सब आनन्दमय आत्माको
मानतो भयो ॥ ८ ॥ अखण्ड योगअग्निसे सम्पूर्ण वासना भस्म होनेके कारण अपने स्वस्वरूपको अनुसंधान कर अपनेसे अन्य कुछ न देखतो
भयो ॥ ९ ॥ जड अंध बधिर उन्मत्त मूंगेकीसी आकृतिकर खोटी मतिवारोंके मार्गमें बालकनकी समान देखते प्रशांत अग्नि समान होते भए
॥ १० ॥ कुलवृद्ध और सब मंत्रियोंने उस जड उन्मत्त और बावरो जान छोटे भ्रमिके पुत्र वत्सरको राज्य दिया ॥ ११ ॥ वत्सरकी प्यारी स्वर्वी-

आत्मानं ब्रह्म निर्वाणं प्रत्यस्तमितविग्रहम् ॥ अवबोधरसैकात्म्यमानन्दमनु संततम् ॥ ८ ॥ अव्यवच्छिन्नयोगाग्नि-
दग्धकर्ममलाशयः ॥ स्वरूपमवरुन्धानो नात्मनोऽन्यं तदैक्षत ॥ ९ ॥ जडान्धबधिरोन्मत्तमूकाकृतिरतन्मतिः ॥ लक्षि-
तः पथि बालानां प्रशान्तार्चिरिवानलः ॥ १० ॥ मत्त्वा तं जडवन्मत्तं कुलवृद्धाः समन्त्रिणः ॥ वत्सरं भूपतिं चक्रुर्यवी-
यांसं भ्रमेः सुतम् ॥ ११ ॥ [illegible]र्वत्सरस्येष्टा भार्याऽसूत षडात्मजान् ॥ पुष्पार्णं तिग्मकेतुं च इषमूर्जं वसुं ज-
यम् ॥ १२ ॥ पुष्पार्णस्य प्रभा भार्या दोषा च द्वे बभूवतुः ॥ प्रातर्मध्यंदिनं सायमिति ह्यासन्प्रभासुताः ॥ १३ ॥
प्रदोषो निशीथो व्युष्ट इति दोषासुतास्त्रयः ॥ व्युष्टः सुतं पुष्करिण्यां सर्वतेजसमादधे ॥ १४ ॥ स चक्षुःसुतमाकू-
त्यां पत्न्यां मनुमवाप ह ॥ मनोरसूत महिषी विरजान्नड्वला सुतान् ॥ १५ ॥ पुरुं कुत्सं त्रितं द्युम्नं सत्यवन्तं धृतव्र-
तम् ॥ अग्निष्टोममतीरात्रं प्रद्युम्नं शिबिमुल्मुकम् ॥ १६ ॥ उल्मुकोऽजनयत्पुत्रान्पुष्करिण्यां षडुत्तमान् ॥ अङ्गं
सुमनसं ख्यातिं क्रतुमाङ्गिरसं गयम् ॥ १७ ॥

थी भार्या छै पुत्र रचती भई, पुष्पार्ण, तिग्मकेतु, इष, ऊर्ज, वसु, जय ॥ १२ ॥ पुष्पार्णकी प्रभा दोषा दो भार्या होती भई, प्रातर मध्यंदिन
सायं ए प्रभाके पुत्र भए ॥ १३ ॥ प्रदोष निशीथ व्युष्ट ये तीन दोषाके सुत हुए, व्युष्टने पुष्करिणीमें सर्वतेजसे सुतको उत्पन्न करो ॥ १४ ॥ चक्षु
आकूती पत्नीमें मनुकूं उत्पन्न करते भए, मनु पट्टराणी नड्वलामें ११ सुत उत्पन्न करते भए, ॥ १५ ॥ पुरु, कुत्स, द्युत, द्युम्न, सत्यवंत, धृतव्रत, अग्नि-
ष्टोम, अतीरात्र, प्रद्युम्न, शिवी, उल्मुक, ॥ १६ ॥ उल्मुक पुष्पकरिणीमें उत्तम छै पुत्र उत्पन्न करतो भयो, अंग, सुमनस, ख्याति, क्रतु, अंगिरा, गय ॥ १७ ॥

अंगकी सुनीथा पत्नी महाभयानक वेनको उत्पन्न करती भई, जाके दुःशीलभावसे राजर्षि अंग वैराग्यमान होयकर पुरसे निकस जातो भयो ॥ १८ ॥ हे विदुर ! कोपकर मुनियोंने वेनकों वाग्वज्ररूप शाप दीनो, जब वाके प्राण निकस गए तब फेर वाको दक्षिणकर मथन करते भए ॥ १९ ॥ जब लोकमें कोई राजा न रह्यो तब चोरोंसें पीडित प्रजा जान नारायणके अंशसे आद्यराज पृथु पृथ्वीश अवतार लेते भए ॥२० ॥ विदुरजी बोले कि महाशीलवान साधु ब्रह्मण्य महात्मा तिस अंगराजकी ऐसी दुष्ट प्रजा कैसे भई जासे विमन होय राजा जातो भयो ॥ २१ ॥

सुनीथाऽङ्गस्य या पत्नी सुषुवे वेनमुल्बणम् ॥ यद्दौःशील्यात्स राजर्षिर्निर्विण्णो निरगात्पुरात् ॥ १८ ॥ यमङ्ग शेपुः कुपिता वाग्वज्रा मुनयः किल ॥ गतासोस्तस्य भूयस्ते ममन्थुर्दक्षिणं करम् ॥ १९ ॥ अराजके तदा लोके दस्युभिः पीडिताः प्रजाः ॥ जातो नारायणांशेन पृथुराद्यः क्षितीश्वरः ॥ २० ॥ विदुर उवाच ॥ तस्य शीलनिधेः साधोर्ब्रह्मण्यस्य महात्मनः ॥ राज्ञः कथमभूद्दुष्टा प्रजा यद्विमना ययौ ॥ २१ ॥ किं वांऽहो वेनमुद्दिश्य ब्रह्मदण्डमयूयुजन् ॥ दण्डव्रतधरे राज्ञि मुनयो धर्मकोविदाः ॥ २२ ॥ नावध्येयः प्रजापालः प्रजाभिरघवानपि ॥ यदसौ लोकपालानां बिभर्त्योजः स्वतेजसा ॥२३॥ एतदाख्याहि मे ब्रह्मन्सुनीथात्मजचेष्टितम् ॥ श्रद्दधानाय भक्ताय त्वं परावरवित्तमः ॥ २४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ अङ्गोऽश्वमेधं राजर्षिराजहार महाक्रतुम् ॥ नाजग्मुर्देवतास्तस्मिन्नाहूता ब्रह्मवादिभिः ॥ २५॥

राजा वेनके कहा पापको देखकै धर्मात्मा मुनि ब्रह्मशापरूप दंड देते भए वह तौ सबके दंडव्रतधारी राजा हो सो औरसे कैसे दंड पावतो भयो ॥ २२ ॥ प्रजापालक पापवानभी होय तौभी प्रजाकरकै वध करवेयोग्य नहीं है क्यों कि जो ये अपने तेज करके लोकपालकनकै तेजकों धारै है ॥ २३ ॥ हे ब्रह्मन् ! सुनीथाके पुत्रकी ये चेष्टा पर अवर वेत्ता तुम श्रद्धालु मोसें कहो मैं तुह्मारो भक्त हूं ॥ २४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि राजऋषि अंगराजा महायज्ञ अश्वमेध करतो भयो, सो ब्रम्हवादियोंके बुलाये उस यज्ञमें देवता नहीं आंये ॥ २५ ॥

---

१ राजा अंग कामभोगमें अत्यन्त आसक्त था और परलोकचिन्ता नहीं करताथा इस कारण देवताओंने उसै पुत्रहीन समझकर यज्ञभाग नहीं लिया तथा और राजा अधिक धर्मात्मा थे इस कारण पुत्रहीन होनेपरभी देवताऔंने उनके यज्ञमें भाग ग्रहण कियाथा ॥

नको प्रणाम कर, आशीर्वाद करावतो भयो ॥ २८॥ विमानकी परिक्रमा दे पूजनकर पार्षदोंको प्रणाम कर वापर चढवेकी जब इच्छा करी तव हिरण्मयरूप धारते भए ॥ २९ ॥ ता समय उत्तानपादको पुत्र मृत्युकों आयो देख मृत्युके मूंडपर पांव देकर अद्भुत विमानपर बैठते भए ।' ३० ॥ तब मृदंग ढोल इत्यादिक नगाडे बजे गंधर्व मुखिया गाते भए, आकाशमेंसे पुष्पनकी वर्षा होती भई ॥ ३१ ॥ जब ध्रुवजी स्वर्गको जायवे लगे तव सुनीती जननीको याद करते भए, वाको अपराध त्याग बोले या दीनाको छोड कैसे मैं स्वर्गको जाऊं ॥ ३२ ॥ ध्रुवजीको यह निश्चय जान पार्षद

परीत्याभ्यर्च्य धिष्ण्याग्र्यं पार्षदावभिवन्द्य च॥ इयेष तदधिष्ठातुं बिभ्रद्रूपं हिरण्मयम्॥२९॥ तदोत्तानपदः पुत्रो ददर्शान्तकमागतम् ॥ मृत्योर्मूर्ध्नि पदं दत्त्वा आरुरोहाद्भुतं गृहम् ॥ ३० ॥ तदा दुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवादयः ॥ गन्धर्वमुख्याः प्रजगुः पेतुः कुसुमवृष्टयः ॥ ३१ ॥ स च स्वर्लोकमारोक्ष्यन् सुनीतिं जननीं ध्रुवः॥ अन्वस्मरदगं हित्वा दीनां यास्ये त्रिविष्टपम्॥३२॥ इति व्यवसितं तस्य व्यवसाय सुरोत्तमौ ॥ दर्शयामासतुर्देवीं पुरो यानेन गच्छतीम् ॥ ३३ ॥ तत्र तत्र प्रशंसद्भिः पथि वैमानिकैः सुरैः ॥ अवकीर्यमाणो ददृशे कुसुमैः क्रमशो ग्रहान् ॥ ३४॥ त्रिलोकीं देवयानेन सोऽतिव्रज्य मुनीनपि ॥ परस्ताद्यद्ध्रुवगतिर्विष्णोः पदमथाभ्यगात् ॥३५ ॥ यद् भ्राजमानं स्वरुचैव सर्वतो लोकास्त्रयो ह्यनुविभ्राजन्त एते ॥ यन्नाव्रजञ्जन्तुषु येऽननुग्रहा व्रजन्ति भद्राणि चरन्ति येऽनिशम् ॥ ३६ ॥ शान्ताः समदृशः शुद्धाः सर्वभूतानुरञ्जनाः ।' यान्त्यञ्जसाऽच्युतपदमच्युतप्रियबान्धवाः ॥ ३७ ॥

सवारीपे बैठी आगे [illegible] दिखावते भए ॥ ३३ ॥ जहां तहां मार्गमें विमानपर बैठे देवता प्रशंसा करै है, क्रमसे सब ग्रह सब देवता पुष्प वर्षाते भए ॥ ३४ ॥ देवयान द्वारा त्रिलोकी उलांघ और मुनिनको उल्लंघन कर ध्रुवजी अचलगतिवारे विष्णुपदको प्राप्त भये ॥ ३५ ॥ जो धाम अपनी कांतिकरके सदा प्रकाशै है, जिसके पीछे तीनो लोक प्रकाश करते हैं, जो मनुष्योंपर दया नहीं करै हैं ते तहां नहीं जाय है, जो लोक दिन रात शुभ कृत्य करते रहते हैं वे वहां जायहै ॥ ३६ ॥ जिनके सुभाव शांत हैं, सबको समान दृष्टिसे देखैं हैं, जो सदा पवित्र रहैं हैं सब जीवमात्रमें

---

१ ध्रुवने ऐसी महा तपस्याभी नहीं की जो महात्माओंकोभी अशक्य कालके शिरपर चरण धर परमपदको गये इसका उत्तर यह है कि ध्रुवका बहुत तपस्या तौ नहीं है परन्तु भगवान करुणाके सागर हैं ध्रुवको बालक और पितासे तिरस्कृत देख अपना भक्त जान बालकपर अत्यंत कृपा की ॥

जो प्रीत करै हैं अच्युतही जिनके प्रिय बांधव है, वे अनायासकरके अच्युतके पदकों जाय है ॥ ३७ ॥ ऐसे उत्तानपादको पुत्र ध्रुव कृष्णपरायण तीनों
लोकनमेंकी चूडामणीकी नांई निर्मल होतो भयो ॥ ३८ ॥ हे कौरव्य ! गंभीर वेगवान यह ज्योतिषचक्र जिसमें लगा हुआ (मेढी) कीलमें लगे बै-
लोके समान आलस्य रहित भ्रमण करता है उस पदको प्राप्त हुआ ॥ ३९ ॥ नारद भगवान ऋषि ध्रुवकी महिमा देखकर वीणा बजाते प्रचेतोंके
यज्ञमें भगवन्माहात्म्य गाती विरिया ध्रुवचरित्रभी गावते भए ॥४०॥ श्रीनारदजी बोले कि पतिव्रता सुनीतिके पुत्रको तपके प्रभावसै वह गति प्राप्त
हुई जिस गतिको वेदवादी अनेक उपाय निर्धारित करनेपरभी नहीं पासक्के फिर और राजोंकी तो बातही क्या है ॥४१॥ जो पंचवर्षके पिताकी स्त्रीके

इत्युत्तानपदः पुत्रो ध्रुवः कृष्णपरायणः ॥ अभूत्त्रयाणां लोकानां चूडामणिरिवामलः ॥ ३८ ॥ गम्भीरवेगोऽनिमिषं
ज्योतिषां चक्रमाहितम् ॥ यस्मिन्भ्रमति कौरव्य मेढ्यामिव गवां गणः ॥ ३९ ॥ महिमानं विलोक्यास्य नारदो भग-
वानृषिः॥आतोद्यं वितुदञ्छ्लोकान्सत्रेऽगायत्प्रचेतसाम् ॥ ४० ॥ नारद उवाच ॥ नूनं सुनितेः पतिदेवतायास्तपःप्रभा-
वस्य सुतस्य तां गतिम् ॥ दृष्ट्वाभ्युपायानपि वेदवादिनो नैवाधिगन्तुं प्रभवन्ति किं नृपाः ॥ ४१ ॥ यः पञ्चवर्षो गुरुदार-
वाक्छरैर्भिन्नेन यातो हृदयेन दूयता ॥ वनं मदादेशकरोऽजितं प्रभुं जिगाय तद्भक्तगुणैः पराजितम् ॥ ४२ ॥ यः क्षत्र-
बन्धुर्भुवि तस्याधिरूढमन्वारुरुक्षेदपि वर्षपूगैः ॥ षट्पञ्चवर्षो यदहोभिरल्पैः प्रसाद्य वैकुण्ठमवाप तत्पदम् ॥ ४३ ॥
मैत्रेय उवाच ॥ एतत्तेऽभिहितं सर्वं यत्पृष्टोहमिह त्वया ॥ ध्रुवस्योद्दामयशसश्चरितं संमतं सताम् ॥ ४४ ॥ धन्यं यश-
स्यमायुष्यं पुण्यं स्वस्त्ययनं महत् ॥ स्वर्ग्यं ध्रौव्यं सौमनस्यं प्रशस्यमघमर्षणम् ॥ ४५ ॥ श्रुत्वैतच्छ्रद्धयाऽभीक्ष्णम-
च्युतप्रियचेष्टितम् ॥ भवेद्भक्तिर्भगवति यया स्यात्क्लेशसंक्षयः ॥ ४६ ॥

वाणीरूपी शस्त्रसे भिदे भए दुःखी हृदयसे वनको जाय मेरी आज्ञासे भक्तोंके गुणोंसे पराजित अजित प्रभुको वश करते भए॥४२॥ जो क्षत्रबंधु भूमिमें
जिनकी पदवीको अनेक वर्षोंमेंभी न जाय सके है सो पाच छै वर्षकेसे थोडेसेही दिनमें भगवानको प्रसन्न कर तिनकी पदवीको प्राप्तहोतेभए ॥ ४३॥
मैत्रेयजी बोले कि जो तुमने हमसे पूछो सो सब कह्यो ध्रुवजीको सुंदर यश संतोंको संमत चरित है ॥४४॥ये ध्रुवचरित्र धनको दाता है यश पुण्य आयु
मंगल स्वर्ग ध्रुवजीको पद सुंदर मन करवेवारो प्रशंसाको दायक पापनाशक है ॥ ४५ ॥ भगवद्भक्तकी इस लीलाको जो श्रद्धासे सुनै तो भ-

गवानमें भक्ति होय जासे क्लेशनाश होय है ॥ ४६ ॥ बडप्पनकी इच्छावारेको साधन तथा शीलादिगुणदाता तेजकी इच्छावारेको तेजदाता है, मनस्वीनको मानको दाता है ॥४७॥ स्नान करके प्रातःसमय ब्राह्मणोंमें बैठ यह कहै वा ध्रुवचरित्र सांझको कहै वोह महायशस्वी है ॥४८॥ पूर्णमासी अमावस द्वादशीमिश्रित एकादशी, श्रवण, दिनक्षय, व्यतीपात, संक्रांति रवीवारको ॥ ४९ ॥ श्रद्धा धारण करवेवारेनको सुनावे, तीर्थ ध्रुवको चरित

महत्त्वमिच्छतां तीर्थं श्रोतुः शीलादयो गुणाः ॥ यत्र तेजस्तदिच्छूनां मानो यत्र मनस्विनाम् ॥ ४७ ॥ संयतः कीर्तयेत्प्रातः समवाये द्विजन्मनाम् ॥ सायं च पुण्यश्लोकस्य ध्रुवस्य चरितं महत् ॥ ४८ ॥ पूर्णमास्यां सिनीवाल्यां द्वादश्यां श्रवणेऽथवा ॥ दिनक्षये व्यतीपाते संक्रमेऽर्कदिनेऽपि वा ॥ ४९ ॥ श्रावयेच्छ्रद्दधानानां तीर्थपादपदाश्रयः ॥ नेच्छंस्तत्रात्मनात्मानं संतुष्ट इति सिध्यति ॥५०॥ ज्ञानमज्ञाततत्त्वाय यो दद्यात्सत्पथेऽमृतम् ॥ कृपालोर्दीननाथस्य देवास्तस्यानुगृह्णते ॥ ५१ ॥ इदं मया तेऽभिहितं कुरूद्वह ध्रुवस्य विख्यातविशुद्धकर्मणः ॥ हित्वार्भकः क्रीडनकानि मातुर्गृहं च विष्णुं शरणं यो जगाम ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे चतुर्थस्कन्धे ध्रुवचरितं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सुनावे तो कुछ इच्छा बाकी नहीं रहै हैं, संतुष्ट हो जाय है, सिद्ध होय है ॥५०॥ जो ज्ञानहीनको सन्मार्गमें अमृततुल्य ज्ञान दे है वा कृपालु दीननाथके ऊपर सब देवता अनुग्रह करै है ॥ ५१ ॥ हे परीक्षित ! विशुद्ध और विख्यात कर्मवारे ध्रुवको ये चरित्र मैंने कह्यो जो बालकपनेमें सब खेल त्याग माताके घरको त्याग हरिके शरण जाते भए ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भा० भा० च० ध्रुवचरिते संपूर्ण वर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

---

१ श्रद्धासे श्रवण करना उचित है, ऐसे नहीं कि जैसे एक बुढिया कथा सुन्ने रोज जायो करेही, और बडे आंसू वहावैही, पंडितजीने और श्रोताऔंने जानी या बुढियाको बडो प्रेम है, यह दक्षिणाभी गहरी चढावैगी, जिस दिन कथा समाप्तिके समय आया, उस दिन बुढिया न आई, पंडितजीने बहुत वाट देखी, अन्तको कथा पूरी होगई पंडितजीने विचारी कि चलो बुढियाके घर तौ होते चलैं, जाने वह कैसे न आई कुछ बीमार तौ न होगई, उसके घर जायकै पुकारे बुढिया चरखा खातेही पंडितजीको बुलायकर प्रणाम करी पंडितजी बोले तू कथामें न आई, बुढियानै कही महाराज घरकाम हैं पंडितजी बोले तुझै तौ बडा प्रेम था, ले हम जांय है कुछ दक्षिणा तौ देदे बुढिया बोली महाराज मेरे पास तौ चरखा पौनीही है मुझे प्रेम तुम्हारी कथाका क्या है मैं तुह्मारी कथामें इस कारण रोवैही कि जैसा तुह्मारी कथाकी पोथी बांधनैका वसना है ऐसा मेरी बेटी चुनियाके लालका पैजामा था उनकी याद आजायही पंडितजी मौन हुए बोले जब ऐसे है तौ कथा गुण करती ॥

सूतजी बोले कि पांच अध्यायमें पाछै ध्रुवचरित कहि अब ग्यारह अध्याय करकै राजा पृथुको चरित्र वर्णन करै है कि मैत्रेय करकै वर्णित ध्रुवजीको वैकुंठ पदमें जायकर रहिनो सुन भगवान् अधोक्षजमें अधिक भाव उत्पन्न होनेसे विदुर फेर पूछवेको प्रारंभ करतेभए ॥१॥ विदुरजी बोले कि हे सुव्रत ! प्रचेतानको कहा नाम हो, कौनके वे संतान हैं, कौनके वंशमें विख्यात भए, यज्ञ कहा करते भए सो कहो ॥ २ ॥ महा भागवत देववत् दर्शनवारे नारदजी परम भक्त है यह मैं मानूहूं कारण कि उन्होंने भगवानकी पूजारूप क्रिया संयुक्त पंचरात्र बनाया है ॥ ३ ॥ अपने स्वधर्ममें

सूत उवाच ॥ निशाम्य कौषारविणोपवर्णितं ध्रुवस्य वैकुण्ठपदाधिरोहणम् ॥ प्ररूढभावो भगवत्यधोऽक्षजे प्रष्टुं पुनस्तं विदुरः प्रचक्रमे ॥ १ ॥ विदुर उवाच ॥ के ते प्रचेतसो नाम कस्यापत्यानि सुव्रत ॥ कस्यान्ववाये प्रख्याताः कुत्र वा सत्रमासत ॥ २ ॥ मन्ये महाभागवतं नारदं देवदर्शनम् ॥ येन प्रोक्तः क्रियायोगः परिचर्याविधिर्हरेः ॥ ३ ॥ स्वधर्मशीलैः पुरुषो भगवान्यज्ञपूरुषः ॥ इज्यमानो भक्तिमता नारदेनेरितः किल ॥ ४ ॥ यास्ता देवर्षिणा तत्र वर्णिता भगवत्कथाः ॥ मह्यं शुश्रूषवे ब्रह्मन्कात्स्न्र्येनाचष्टुमर्हसि ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ ध्रुवस्य चोत्कलः पुत्रः पितरि प्रस्थिते वनम् ॥ सार्वभौमश्रियं नैच्छदधिराजासनं पितुः ॥ ६ ॥ स जन्मनोपशान्तात्मा निःसङ्गः समदर्शनः ॥ ददर्श लोके विततमात्मानं लोकमात्मनि ॥ ७ ॥

शीलवारे पुरुष भगवानको पूजन करै है सो निश्चय करके भक्तिमान नारदनें पूजे है ॥ ४ ॥ जो वहां नारदजीने भगवत्कथा वर्णन करी है सो हे ब्रह्मन् ! सुनवेकी इच्छावारे मेरे अर्थ संपूर्णता करकै वर्णन करो ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि ध्रुवजीका पुत्र उत्कल जब पिता वनको चले गए तब पिताकी सब भूमिकी लक्ष्मी राज्यकी इच्छा न करतो भयो ॥ ६ ॥ सो जन्मसे शांतात्मा संग त्याग समदर्शी लोकमें अपनी आत्माको वि-

तेजस्वीनको अपराध करनो सुन ब्रह्माजी बोले कि तेजवंतको अपराध कर संसारमें बाहुल्यता करकै फेर वो नहीं रहि सके है ॥ ४ ॥ यद्यपि ऐसे है तथापि तुम सब अपराधी हो जो दूरसे यज्ञमें शिवको भाग न दीनो, शीघ्र प्रसन्न होयवेवारे शिवके चरणकमल पकडकर शीघ्र शुद्ध चित्तकर प्रसन्न करो, तो सब क्षमा करेंगे ॥ ५ ॥ हम ये चाहैं हैं कि दक्ष जीवे, यज्ञ फिर होय, जिनके कोपसे लोकपालसहित लोक नष्ट हो जाय है; तिन प्रियारहित देवको शीघ्र प्रसन्न करो, दुष्ट दक्षके वचनोंसे इनको हृदय विध रह्यो है ॥ ६ ॥ हम यज्ञ भगवान्, तुम सब और देहधारी मुनिजन जिनके बलके तत्वको न जाने हैं, न प्रमाण, न बलवीर्य जानैहै, उन अपने आधीनवारेको कौन उपायसे जानसके ॥ ७ ॥ ब्रह्माजी ऐसे देवनसे कहिकर देवता

तदाकर्ण्य विभुः प्राह तेजीयसि कृतागसि ॥ क्षेमाय तत्र सा भूयान्न प्रायेण बुभूषताम् ॥ ४ ॥ अथापि यूयं कृतकिल्बिषा भवं ये बर्हिषो भागभाजं परादुः ॥ प्रसादयध्वं परिशुद्धचेतसा क्षिप्रप्रसादं प्रगृहीताङ्घ्रिपद्मम् ॥५॥ आशासाना जीवितमध्वरस्य लोकः सपालः कुपितेन यस्मिन् ॥ तमाशु देवं प्रियया विहीनं क्षमापयध्वं हृदि विद्धं दुरुक्तैः ॥ ६ ॥ नाहं न यज्ञो न च यूयमन्ये ये देहभाजो मुनयश्च तत्त्वम् ॥ विदुः प्रमाणं बलवीर्ययोर्वा यस्यात्मतन्त्रस्य क उपायं विधित्सेत् ॥ ७ ॥ स इत्थमादिश्य सुरानजस्तैः समन्वितः पितृभिः सप्रजेशैः ॥ ययौ स्वधिष्ण्यान्निलयं पुरद्विषः कैलासमद्रिप्रवरं प्रियं प्रभोः ॥८॥ जन्मौषधितपोमन्त्रयोगसिद्धैर्नरेतरैः ॥ जुष्टं किन्नरगन्धर्वैरप्सरोभिर्वृतं सदा ॥९॥ नानामणिमयैः शृङ्गैर्नानाधातुविचित्रितैः ॥ नानाद्रुमलतागुल्मैर्नानामृगगणावृतैः ॥१०॥ नानाऽमलप्रस्रवणैर्नानाकन्दरसानुभिः ॥ रमणं विहरन्तीनां रमणैः सिद्धयोषिताम् ॥ ११ ॥

पितृ प्रजाके ईश्वरको संग ले, अपने स्थानसे त्रिपुरद्रोही प्रभुके प्रिय श्रेष्ठ पर्वतोत्तम कैलासको जाते भए ॥ ८ ॥ जहां जन्म, औषधि, तप, मंत्र, योग, इन्होंसे सिद्ध देवता किन्नर गंधर्व अप्सरा वास करते हैं ॥ ९ ॥ नानाप्रकारकी मणिमय शृंगयुक्त अनेक प्रकारकी धातुसे विचित्रित, जहां अनेक प्रकारसे वृक्ष और लताओंसे गुच्छे लटक रहे हैं मृगादि क्रीडा कर रहे हैं ॥ १० ॥ जहां नानाप्रकारके निर्मल झरना झरते जहां नानागुफानके समीप भूमिमें विहरती भई पतिसहित सिद्धोंकी स्त्रियोंके विहारस्थान हैं ॥ ११ ॥

राजाके दांत बलदाऊने झाडे, तैसे पूषाके दांत झाडते भए, जब दक्ष शिवको शाप दे रहे थे वा समय यह दांत दिखाकै बहुत हंसे थे ॥ २१ ॥ दक्षकी छातीपर चढ पेनी धारकी तलवारसे त्र्यंबक वीरभद्र वाको शिर काटनेको उद्यत भए तौहू न सामर्थ्य भई ॥ २२ ॥ मंत्रसहित शस्त्रोंसेभी शिवगणद्वारा जब त्वचा उसकी न कट सकी तब बडो विस्मय भयो थोडी देर पशुपतिको ध्यान कीनो ॥ २३ ॥ पशुनके पति वीरभद्र वा यज्ञमें कंठ घोटके दक्षके मारवेको उपाय देखकर यजमान पशुरूप दक्षको शिर पराक्रमपूर्वक देहसे उखाड देते भए ॥ २४ ॥ बहुत अच्छो भयो ये वाके कर्मकी जहां तहां भूतप्रेतपिशाचोंमें प्रशंसा भई, औरनको यही बुरी लगी ॥ २५ ॥ रुद्रगण दक्षिणाग्निमें दक्षको शिर हवन करते भए, क्रोधके मारे

आक्रम्योरसि दक्षस्य शितधारेण हेतिना ॥ छिन्दन्नपि तदुद्धर्तुं नाशक्नोत्त्र्यम्बकस्तदा ॥ २२ ॥ शस्त्रैरस्त्रान्वितैरेवमनिर्भिन्नत्वचं हरः ॥ विस्मयं परमापन्नो दध्यौ पशुपतिश्चिरम् ॥ २३ ॥ दृष्ट्वा संज्ञपनं योगं पशूनां स पतिर्मखे ॥ यजमानपशोः कस्य कायात्तेनाहरच्छिरः ॥२४॥ साधुवादस्तदा तेषां कर्म तत्तस्य शंसताम् ॥ भूतप्रेतपिशाचानामन्येषां तद्विपर्ययः ॥२५॥ जुहावैतच्छिरस्तस्मिन्दक्षिणाग्नावमर्षितः ॥ तद्देवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठद्गुह्यकालयम् ॥ २६ ॥ इति श्रीभा० चतु० वीरभद्रेण दक्षयज्ञविध्वंसनो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥५॥ मैत्रेय उवाच ॥ अथ देवगणाः सर्वे रुद्रानीकैः पराजिताः ॥ शूलपट्टिशनिस्त्रिंशगदापरिघमुद्गरैः ॥ १ ॥ उच्छिन्नभिन्नसर्वाङ्गाः सर्त्विक्सभ्या भयाकुलाः ॥ स्वयंभुवे नमस्कृत्य कार्त्स्न्येनैतन्न्यवेदयन् ॥२॥ उपलभ्य पुरैवैतद्भगवानब्जसंभवः ॥ नारायणश्च विश्वात्मा न कस्याध्वरमीयतुः ॥३॥

वो देव यज्ञ स्थान जरायकर कैलासको चले गए ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां चतुर्थस्कंधे वीरभद्रेण दक्षयज्ञविध्वंसनवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि याके अनंतर रुद्रकी सेनासे पराजित सब देवगण शूल पट्टिश निस्त्रिंश गदा परिघ मुद्गरसे पीडित हो ॥ १ ॥ टूटे कटे सब अंगवारे ऋत्विक् सभासद वहांसे जाय भयभीत ब्रह्माको नमस्कार कर ये सब वृत्तांत कहितेभए ॥ २ ॥ प्रथमसेही ये सब होनहार जान कमलोद्भव ब्रह्मा और विश्वात्मा नारायण दक्षके यज्ञमें नहीं गये थे ॥ ३ ॥

---

१ वीरभद्रके आनेपर ऋषियोंने इस कारण वेदमंत्रोंका आवाहन नहीं किया उन्हौंने सतीको भस्म देख अशुचि होजानेसे जान लिया था कि अब शीघ्र यज्ञ विनष्ट हो जायगा इसी कारण मंत्रोंका विसर्जन कर दिया था ॥

कर्णामें आंतोंवाले पशु, एक पगके जीव, घोडाके समान मुखके जानवर, वृक, कस्तूरीमृग फिर रहे हैं, केराके समूहोंसे रुकी भई कमलिनीकी शोभा होय रही है ॥२१॥ गंगा चारों ओर वहै है, सतीजीके स्नानकी सुगंधसे पुण्यरूप होरही है,भूतेश शिवको देख देवता विस्मय होते भए ॥२२॥ तहां रमणीक अलकानाम्नी पुरी देखते भए, सुगंधित पंकज नामक वन देखतेभए ॥ २३ ॥ नंदा अलकनंदा दो पुरसें बाहर सरिता हैं, श्रीहरिके चरणकमलरजसें वे नदी अत्यंत पवित्र हैं ॥२४॥ हे विदुर ! जहां रतिसे कर्षित हो देवतानकी स्त्रियें अपने स्थानसे उतरकर स्नान करै है,अपने पुरुषनपर जल छिरकती भई खेलै हैं॥२५॥जिनके स्नानके धोवनके नवीन केसरसम पीरे जलको विना प्यासभी गज पीवैं हैं,गज गजीनको प्यावै है॥२६॥

कर्णान्त्रैकपदाश्वास्यैर्निर्जुष्टं वृकनाभिभिः ॥ कदलीखण्डसंरुद्धनलिनीपुलिनश्रियम् ॥ २१ ॥ पर्यस्तं नन्दया सत्याः स्नानपुण्यतरोदया ॥ विलोक्य भूतेशगिरिं विबुधा विस्मयं ययुः ॥२२॥ ददृशुस्तत्र ते रम्यामलकां नाम वै पुरीम्॥ वनं सौगन्धिकं चापि यत्र तन्नाम पङ्कजम् ॥ २३ ॥ नन्दा चालकनन्दा च सरितौ बाह्यतः पुरम् ॥ तीर्थपादपदाम्भोजरजसाऽतीव पावने ॥ २४ ॥ ययोः सुरस्त्रियः क्षत्तरवरुह्य स्वधिष्ण्यतः ॥ क्रीडन्ति पुंसः सिञ्चन्त्यो विगाह्य रतिकर्षिताः ॥ २५ ॥ ययोस्तत्स्नानविभ्रष्टनवकुङ्कुमपिञ्जरम् ॥ वितृषोऽपि पिबन्त्यम्भः पाययन्तो गजा गजीः ॥ २६ ॥ तारहेममहारत्नविमानशतसंकुलाम् ॥ जुष्टां पुण्यजनस्त्रीभिर्यथा खं सतडिद्घनम् ॥ २७ हित्वा यक्षेश्वरपुरीं वनं सौगन्धिकं च तत् ॥ द्रुमैः कामदुघैर्हृद्यं चित्रमाल्यफलच्छदैः ॥ २८ ॥ रक्तकण्ठखगानीकस्वरमण्डितषट्पदम् ॥ कलहंसकुलप्रेष्ठं खरदण्डजलाशयम्॥२९॥वनकुञ्जरसंघृष्टहरिचन्दनवायुना॥अधिपुण्यजनस्त्रीणां मुहुरुन्मथयन्मनः॥३०॥

चांदी सुवर्ण महारत्नके विमान सैंकडो सघन हैं पुण्यजनोंकी स्त्रीन करके सेवित है, जैसे बिजुरी मेघमें शोभित होती है॥२७॥ऐसी कुवेरकी अलकानाम पुरीको त्याग और सुगंधिक वनमें पहुंचे जहां मनोरथ पूरण करवेवारे वृक्षोंसें सघन चित्र विचित्र माला फल पत्र हैं ॥ २८ ॥ लाल कंठवारे पक्षीनके स्वरसे शोभित भ्रमरोंके मनोहर शब्द होयहै, मधुर हंसकुल प्रिय कमलयुक्त जलाशय है ॥ २९ ॥ वनके हाथियों करकै सुन्दर घसे हरित चन्दन वृक्षोंकी वायु करकै यक्षोंकी स्त्रीनके मनकों वारंवार मथैं हैं ॥ ३० ॥

जहां मयूर अपनी केका वाणी बोल रहे हैं, मदांध भौंरे गुंजार रहेहैं कोकिला कुहू शब्द कर रही हैं पक्षी कूजरहेहैं ॥ १२ ॥ वृक्ष कामदायक ऊंची शाखानसें मानो पक्षीनको बुलावै हैं, जातेभए हाथीनको मानो बुलावै हैं, झरनोंकी ध्वनी मानू बातेंसी करती मालूम पडै है ॥ १३ ॥ मंदार पारिजात सालसे शोभित है, तमाल, शाल, ताल, कचनार, असन, अर्जुनसे शोभित कैलास है ॥ १४ ॥ आम, कदम्ब, कल्पवृक्ष, नाग, पुन्नाग, चंपक, पाटल, अशोक, बकुल, कुन्द, कुरबक ॥ १५ ॥ स्वर्ण, अर्ण, शतपत्र श्रेष्ठ वासोंकी जातें हैं, कुब्जक मल्लिका माधवी लतानसें शोभित है ॥ १६ ॥

मयूरकेकाभिरुतं मदान्धालिविमूर्छितम् ॥ प्लाविते रक्तकण्ठानां कूजितैश्च पतत्रिणाम् ॥ १२ ॥ आह्वयन्तमिवोद्धस्तैर्द्विजान्कामदुघैर्द्रुमैः ॥ व्रजन्तमिव मातङ्गैर्गृणन्तमिव निर्झरैः ॥ १३ ॥ मन्दारैः पारिजातैश्च सरलैश्चोपशोभितम् ॥ तमालैः शालतालैश्च कोविदारासनार्जुनैः ॥ १४ ॥ चूतैः कदम्बैर्नीपैश्च नागपुन्नागचम्पकैः ॥ पाटलाशोकबकुलैः कुन्दैः कुरबकैरपि ॥ १५॥ स्वर्णार्णशतपत्रैश्च वरवेणुकजातिभिः ॥ कुब्जकैर्मल्लिकाभिश्च माधवीभिश्च मण्डितम् ॥१६॥ पनसोदुम्बराश्वत्थप्लक्षन्यग्रोधहिङ्गुभिः ॥ भूर्जैरोषधिभिः पूगै राजपूगैश्च जम्बुभिः ॥ १७ ॥ खर्जूराम्रातकाम्राद्यैः प्रियालमधुकेङ्गुदैः ॥ द्रुमजातिभिरन्यैश्च राजितं वेणुकीचकैः ॥ १८ ॥ कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रवनर्द्धिभिः ॥ नलिनीषु कलं कूजत्खगवृन्दोपशोभितम् ॥ १९ ॥ मृगैः शाखामृगैः क्रोडैर्मृगेन्द्रैर्ऋक्षशल्यकैः ॥ गवयैः शरभैर्व्याघ्रै रुरुभिर्महिषादिभिः ॥ २० ॥

ढाक, गूलर, पीपर, पाकर, न्यग्रोध, हींग, भोजपत्र, औषधी, सुपारी,मोटी सुपारी,जामन ॥१७॥ खजूर,आमरे,आम्रातक, प्रियाल,मधूक, इंगुदी और अनेक वृक्ष जात जातके हैं, वेणुकीचकोंसे शोभित है ॥ १८ ॥ कुमुद, उत्पल, कल्हार, शतपत्र, वनमें शोभित है, कमलिनीमें कूजनेहारे मनोहर पक्षी वंदोंसे शोभित है ॥ १९ ॥ मृग, शाखामृग वानर, शूकर, सिंह, ऋक्ष, शेही, गवय, टीडी, भिडिया, रुरु, महिष, आदि पशुओंसे सघन है ॥ २० ॥

ब्रह्मसुखकी समाधिमें स्थित, सबसे विरक्त गिरीश योगज्ञानी सब मनूनके आद्य मनु शिवजीको हाथ जोडकर सब लोकपाल सहित मुनिलोग प्रणामकरते भए ॥ ३९ ॥ सुर असुरोंसे वंदित चरणवारे शिवजी ब्रह्माजीको आयो देख उठ खडे होकर सर्व पूज्य विष्णु वामनजी जैसे कश्यपकों प्रणाम करै तैसे शिवजी ब्रह्माको प्रणाम करते भये ॥ ४० ॥ तैसेही और सिद्धगण महर्षियोंने जो शंकरके निकट बैठे थे ब्रह्माको प्रणाम किया इस प्रकार प्रणामको प्राप्त हो ब्रह्माजीने हास्यपूर्वक चंद्रशेखर महादेवजीसे कहा ॥ ४१ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे ईश! आप जगत्के स्वामी जगत्की शक्ति बीजरूप प्रकृति पुरुषके कारण भेदरहित और निर्विकार हो मैं आपकूं जानता हूं ॥ ४२ ॥ हे भगवन्! स्वरूपधारी शिवशक्तिरूप तुमही हो, विश्वकी रचना पालन संहार ये सब आपही मकडीकी नाई करते हो ॥ ४३ ॥ वेदकी रक्षा करनेके निमित्त आपनेही दक्षके द्वारा यज्ञ करायाथा जगतकी मर्यादा आपहीकी हुई है जिसकों व्रतधारी ब्राह्मण श्रद्धासे धारै हैं ॥ ४४ ॥ हे मंगलरूप ! शुभकर्मकर्ताको स्वर्ग परलोक दाता तुमही हो अशुभ कर्म करवेवारेनको भयंकर अंधतामिस्र तुम देओहो, फिर इस नियमसे विपरीत फल किस प्रकार मिल सक्ता है ॥ ४५ ॥

तं ब्रह्मनिर्वाणसमाधिमाश्रितं व्युपाश्रितं गिरिशं योगकक्षाम् ॥ सलोकपाला मुनयो मनूनामाद्यं मनुं प्राञ्जलयः प्रणेमुः ॥३९॥ स तूपलभ्यागतमात्मयोनिं सुरासुरेशैरभिवन्दिताङ्घ्रिः ॥ उत्थाय चक्रे शिरसाऽभिवन्दनमर्हत्तमः कस्य यथैव विष्णुः ॥ ४० ॥ तथाऽपरे सिद्धगणा महर्षिभिर्ये वै समन्तादनु नीललोहितम् ॥ नमस्कृतः प्राह शशाङ्कशेखरं कृतप्रणामं प्रहसन्निवात्मभूः ॥ ४१ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जाने त्वामीशं विश्वस्य जगतो योनिबीजयोः ॥ शक्तेः शिवस्य च परं यत्तद्ब्रह्म निरन्तरम् ॥ ४२ ॥ त्वमेव भगवन्नेतच्छिवशक्त्योः स्वरूपयोः ॥ विश्वं सृजसि पास्यत्सि क्रीडन्नूर्णपटो यथा ॥ ४३ ॥ त्वमेव धर्मार्थदुघाभिपत्तये दक्षेण सूत्रेण ससर्जिथाध्वरम् ॥ त्वयैव लोकेऽवसिताश्च सेतवो यान्ब्राह्मणाः श्रद्दधते धृतव्रताः ॥ ४४ ॥ त्वं कर्मणां मङ्गलमङ्गलानां कर्तुं स्म लोके तनुषे स्वः परं वा ॥ अमङ्गलानां च तमिस्रमुल्बणं विपर्ययः केन तदेव कस्यचित् ॥ ४५ ॥

मूंगेकी सीढीवाली बावडी कमलनकी मालासे शोभायमान होरही है किंपुरुषदेश देखनेके अनन्तर उन्हौंने अतिनिकट एक वट वृक्ष देखा ॥ ३१ ॥ चारसे कोस ऊंचो वट है, तीनसे कोसमें चौडो, सब ओर सघन छायावाला पक्षिनके घोसलों रहित तापसे वर्जित है ॥ ३२ ॥ ता वटके नीचे महायोगमय मुमुक्षुनके रक्षक क्रोध त्यागे अंतककी समान बैठे शिवको देवता दर्शन करते भये ॥ ३३ ॥ सनंदन आदि शांत शरीरी महासिद्धो शांतस्वरूप शिवकी उपासना करते थे तथा राक्षस यक्षौंके पति कुबेरभी सेवामें तत्पर थे ॥ ३४ ॥ विद्या तप योग मार्गमें स्थित, सबके ईश्वर विश्वके सुहृद, वात्सल्यतासें सब लोकको मंगल दायक ॥ ३५ ॥ तपस्वियोंके प्रार्थनीय चिह्नधारे भस्म लगाए, जटाधारे, गजचर्म ओढे संध्याके मेघ-

वैडूर्यकृतसोपाना वाप्य उत्पलमालिनीः ॥प्राप्तं किंपुरुषैर्दृष्ट्वा त आराद्ददृशुर्वटम् ॥ ३१ ॥ स योजनशतोत्सेधः पादोनविटपायतः ॥ पर्यक्कृताचलच्छायो निर्नीडस्तापवर्जितः ॥ ३२ तस्मिन्महायोगमये मुमुक्षुशरणं सुराः ॥ दद्दशुः शिवमासीनं त्यक्तामर्षमिवान्तकम् ३३ ॥ सनन्दनाद्यैर्महासिद्धैः शान्तैः संशान्तविग्रहम् ॥ उपास्यमानं सख्या च भर्त्रा गुह्यकरक्षसाम् ॥ ३४ ॥ विद्यातपोयोगपथमास्थितं तमधीश्वरम् ॥ चरन्तं विश्वसुहृदं वात्सल्याल्लोकमङ्गलम् ॥ ३५॥ लिङ्गं च तापसाभीष्टं भस्मदण्डजटाजिनम् ॥ अङ्गेन संध्याभ्ररुचा चन्द्रलेखां च बिभ्रतम् ॥ ३६ ॥ उपविष्टं दर्भमय्यां बृष्यां ब्रह्म सनातनम् ॥ नारदाय प्रवोचन्तं पृच्छते शृण्वतां सताम् ॥ ३७ ॥ कृत्वोरौ दक्षिणे सव्यं पादपद्मं च जानुनि ॥ बाहुप्रकोष्ठेऽक्षमालामासीनं तर्कमुद्रया ॥ ३८॥

पंक्तिकी कांतिके समान देह और चंद्रलेखा धारे हैं ॥ ३६ ॥ कुशासनपर बैठे सज्जनोंके सामने पूछते भए नारदके अर्थ शिवजी उस समय सनातन ब्रह्मका उपदेश करते थे ॥ ३७ ॥ वांए पादपद्मको दहिने ऊरूपर धर जांघपर देहनी बाहु करे दहिने बाहुके प्रकोष्ठपर अक्षमालाकरकै तर्कमुद्रा धारे बैठे हैं, सो तर्कमुद्रा योगशास्त्रमें है “ एकपादमथैकस्मिन्विन्यसेदूरुसंस्थितं । इतरस्मिंस्तथा बाहुं वीरासनमिदं स्मृतम् ॥ १ ॥ तर्कमुद्रा चोक्ता ॥ तर्जन्यंगुष्ठयोरग्रे मिथः संयोज्य चांगुलीः ॥ प्रसार्य बंधनं प्राहुस्तर्कमुद्रेति मांत्रिकाः ॥ २ ॥ ” ॥ ३८ ॥

93

या यज्ञका जो उच्छिष्ट[1] है सो आपको यज्ञभाग होय हे यज्ञहन्! रुद्रके भाग करके ये यज्ञ तुम्हारो पूर्ण होय ॥ ५३ ॥ इति श्री० भा० भा० चतुर्थस्कन्धे रुद्रसान्त्वनवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥श्रीमैत्रेयजी बोले कि हे महाबाहो ! ऐसे ब्रह्माने जब प्रार्थना करी तब प्रसन्न हो शिवने जो कह्यो सो तुम सुनो ॥ १ ॥ श्रीमहादेवजी बोले हे प्रजेश ! बालकनको अपराध न तो हम कहें, न चिंतवन करें देवमायासे तिरस्कृत पुरुषोंको मैंने दंड धारण [2]कीनोहै ॥ २ ॥ दक्षप्रजापतिको शिर जराय दीनो है याते बकराको मुख वाके होय, भग देवता मित्रके नेत्रोंसें देखै यज्ञमें भाग लेवै ॥ ३ ॥ पूषा पिसे भएको खाय और यजमानके दांतोंसे भक्षण करै जिन्होंने मोको यज्ञोच्छिष्ट दीनो वे देवता सर्वांगसे पूरे होय ॥ ४ ॥ अश्विनीकुमारके बाहुसे पूषाके हाथको काम होय और अध्वर्यु जैसे पहिले हे तैसे होय भृगुके बकराकीसी डाढी होय॥५॥मैत्रेयजी बोले कि हे विदुर ! तब सब भूतमात्र शिवकी वाणी सुन प्रसन्न भए, साधु साधु बोले॥६॥ ताके उपरांत शिवसे आज्ञा ले ऋषिसहित सब देवता शिवब्रह्माको साथ ले वा देवयजनस्थानको जाते भये॥७॥

एष ते रुद्र भागोऽस्तु यदुच्छिष्टोऽध्वरस्य वै ॥ यज्ञस्ते रुद्रभागेन कल्पतामद्य यज्ञहन् ॥ ५३ ॥ इति श्रीभा० च० रुद्रसान्त्वनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यजेनानुनीतेन भवेन परितुष्यता ॥ अभ्यधायि महाबाहो प्रहस्य श्रूयतामिति ॥ १ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ नाघं प्रजेश बालानां वर्णये नानुचिन्तये ॥ देवमायाऽभिभूतानां दण्डस्तत्र धृतो मया ॥ २ ॥ प्रजापतेर्दग्धशीर्ष्णो भवत्वजमुखं शिरः ॥ मित्रस्य चक्षुषेक्षेत भागं स्वं बर्हिषो भगः ॥ ३ ॥ पूषा तु यजमानस्य दद्भिर्जक्षतु पिष्टभुक् ॥ देवाः प्रकृतसर्वाङ्गा ये म उच्छेषणं ददुः ॥४॥ बाहुभ्यामाश्विनोः पूष्णो हस्ताभ्यां कृतबाहवः ॥ भवन्त्वध्वर्यवश्चान्ये बस्तश्मश्रुर्भृगुर्भवेत् ॥५॥ मैत्रेय उवाच ॥ तदा सर्वाणि भूतानि श्रुत्वा मीढुष्टमोदितम् ॥ परितुष्टात्मभिस्तात साधु साध्वित्यथाब्रुवन् ॥ ६ ॥ ततो मीढ्वांसमामन्त्र्य शुनासीराः सहर्षिभिः ॥ भूयस्तद्देवयजनं समीढ्वद्वेधसो ययुः ॥ ७ ॥

---

[1] उच्छिष्ट शब्द गर्हित नहीं है इसका यह अर्थ है कि चौदह भुवनके नष्ट होनेपरभी जो शेष रहे वा जो सबके ऊपर रहे वह उच्छिष्ट है आनन्दस्वरूप ब्रह्मका नाम उच्छिष्ट है यज्ञ नाम संसारका है संसारके नाश होनेपर जो ब्रह्मानंद शेष रहता है सो उच्छिष्ट है वही शिवका भाग है ॥ [2] दक्षको अभिमानी पापी समझ उसे दंड दे शुद्ध किया ।

तुम्हारे चरणोंमें अर्पित मनआत्मावारे और सब जीवमात्रमें आपको देखनेहारे तथा सब जगतमें अपना रूप देखनेहारे श्रेष्ठ पुरुषोंकाभी बहुधा अज्ञानियोंकी समान क्रोधसे तिरस्कार नहीं हो सक्ता तब आपकी तो कथा ही क्या ॥ ४६ ॥ पृथक् बुद्धिवारे कर्ममें दृष्टि रखनेहारे दुष्ट हृदय पराएकी संपदा देख हृदयमें जलनेहारे औरनको कटुक वचन तथा मर्मभेदी वचन कहनेवाले औरोंको चाहें दुर्वचनोंको पीडित करै परन्तु इन दैवहतोंको आप न मारै वे तो आपही बिचारे मरे पडे हैं ॥ ४७ ॥ जा देशमें जासमय दुरंत कमलनाभकी मायाकरकै पृथक्दृष्टिवारो मोहित हो जाय है, तब तहां साधु उनपर कृपा करै हैं, दैवबलसें उनपै क्रोध नहीं करै है ॥ ४८ ॥ आप तो परम पुरुषकी कठिन मायासे लिप्त नहीं हो समस्तके द्रष्टा

न वै सतां त्वच्चरणार्पितात्मनां भूतेषु सर्वेष्वभिपश्यतां तव ॥ भूतानि चात्मन्यपृथग्दिदृक्षतां प्रायेण रोषोऽभिभवेद्यथा पशुम् ॥ ४६ ॥ पृथग्धियः कर्मदृशो दुराशयाः परोदयेनार्पितहृद्रुजोऽनिशम् ॥ परान् दुरुक्तैर्वितुदन्त्यरुन्तुदास्तान्माऽवधीद्दैववधान् भवद्विधः ॥ ४७ ॥ यस्मिन्यदा पुष्करनाभमायया दुरन्तया स्पृष्टधियः पृथग्दृशः ॥ कुर्वन्ति तत्र ह्यनुकम्पया कृपां न साधवो दैवबलात्कृते क्रमम् ॥ ४८ ॥ भवांस्तु पुंसः परमस्य मायया दुरन्तयाऽस्पृष्टमतिः समस्तदृक् ॥ तया हतात्मस्वनुकर्मचेतःस्वनुग्रहं कर्तुमिहार्हसि प्रभो ॥ ४९ ॥ कुर्वध्वरस्योद्धरणं हतस्य भोस्त्वयाऽसमाप्तस्य मनोः प्रजापतेः ॥ न यत्र भागं तव भागिनो ददुः कुयज्विनो येन मखो निनीयते ॥ ५० ॥ जीवताद्यजमानोऽयं प्रपद्येताक्षिणी भगः ॥ भृगोः श्मश्रूणि रोहन्तु पूष्णो दन्ताश्च पूर्ववत् ॥ ५१ ॥ देवानां भग्नगात्राणामृत्विजां चायुधाश्मभिः ॥ भवतानुगृहीतानामाशु मन्योऽस्त्वनातुरम् ॥ ५२ ॥

परन्तु वा मायाकरकै लिप्त सदा कर्ममें लगे पर हे प्रभो ! तुम कृपा करवे योग्य हो ॥४९॥ हे रुद्र ! वह यज्ञ हे मनु यह यज्ञ (?) जिसमें यज्ञ करनेहारे अज्ञानियोंने यज्ञफलदाता आपको यज्ञका भाग नहीं दिया इसी कारण आपने जिसका विध्वंस किया ऐसे अपूर्ण प्रजापतिके यज्ञका उद्धार करो ॥ ५० ॥ ये हमारो यजमान जीवे, भगकों नेत्र मिले भृगुके मूछै आंवे पूषाके पूर्ववत् दांत निकसै ॥ ५१ ॥ और देवतानके वा ऋत्विजोंके जो जो अंग आयुध पाषाणसें टूटै हैं सो हे मन्यो ! उनपर अनुग्रहकर तुम सबको आरोग्य करो ॥ ५२ ॥

मैत्रेयजी बोले कि ऐसे शिवजीसे क्षमा कराय ब्रह्माकी सलाह कर उपाध्याय ऋत्विज् अग्नि सहित सब कर्म सुंदरतासे विस्तार करतेभए ॥ १६ ॥ तीन कपालको पुरोडाश विष्णुके निमित्त यज्ञ संपूर्णके अर्थ प्रमथादि वीरनकी शुद्धिके लिये द्विजनमें उत्तम देते भए ॥ १७ ॥ हे विदुर ! अध्वर्यु जब यजमानसे विशुद्ध बुद्धिसे हवन कराते भये तब श्रीहरि प्रगट होतेभये ॥ १८ ॥ तासमय अपनी कांति करके दशो दिशाको प्रकाश करते गरुडजीकी पंखोंके शब्दसे सामवेद ध्वनि सहित सबके तेजका ग्रहण करतेभये ॥ १९ ॥ श्यामसुंदर पीत पीतांबर सूर्यसमान किरीटधारी नील

मैत्रेय उवाच ॥ क्षमाप्यैवं स मीढ्वांसं ब्रह्मणा चानुमन्त्रितः ॥ कर्म संतानयामास सोपाध्यायर्त्विगग्निभिः ॥ १६ ॥ वैष्णवं यज्ञसंतत्यै त्रिकपालं द्विजोत्तमाः ॥ पुरोडाशं निरवपन्वीरसंसर्गशुद्धये ॥ १७ ॥ अध्वर्युणाऽऽत्तहविषा यजमानो विशांपते ॥ धिया विशुद्धया दध्यौ तथा प्रादुरभूद्धरिः ॥ १८ ॥ तदा स्वप्रभया तेषां द्योतयन्त्या दिशो दश ॥ मुष्णंस्तेज उपानीतस्तार्क्ष्येण स्तोत्रवाजिना ॥ १९ ॥ श्यामो हिरण्यरशनोऽर्ककिरीटजुष्टो नीलालकभ्रमरमण्डितकुण्डलास्यः ॥ कम्ब्वब्जचक्रशरचापगदाऽसिचर्मव्यग्रैर्हिरण्मयभुजैरिव कर्णिकारः ॥ २० ॥ वक्षस्यऽधिश्रितवधूर्वनमाल्युदारहासावलोककलया रमयंश्च विश्वम्॥ पार्श्वभ्रमद्व्यजनचामरराजहंसः श्वेतातपत्रशशिनोपरिरज्यमानः॥ ॥२१ ॥ तमुपागतमालक्ष्य सर्वे सुरगणादयः ॥ प्रणेमुः सहसोत्थाय ब्रह्मेन्द्रत्र्यक्षनायकाः ॥ २२ ॥ तत्तेजसा हतरुचः सन्नजिह्वाः ससाध्वसाः ॥ मूर्ध्ना धृताञ्जलिपुटा उपतस्थुरधोक्षजम् ॥ २३ ॥

अलक भ्रमरवत शोभित मुखसे, शंख कमल चक्र शर चाप गदा खड्ग ढालधारे सुवर्णमय भुजानसे फूले कनेरकी समान शोभित होते श्रीभगवान् प्रगट भये॥२०॥ वक्षस्थलमें श्रीजी विराजे, वनमाली, उदार हासीयुक्त अवलोक कलाकरके विश्वकों रमाते जिनके पार्श्वमें घूमते भये व्यजन, चमर, और राजहंसवत,श्वेतछत्र, जिनके ऊपर शशिसम शोभायमान है ॥२१॥ तिनकूं आयो देख सब सुरगणादिक शीघ्र उठकर ब्रह्मा इंद्र शिव सहित प्रणाम करतेभये ॥२२॥ तिनके तेजसें सबकी कांति हत भई, गदगद वाणी भई मोहसे अंजलियोंके संपुट शिरपर करके भगवान्‌की स्तुति करवे लगे॥२३॥

तहां संपूर्णतासें यज्ञ कराय जो भगवान् शिवने कह्यो सो कर दियो याज्ञिक पशुकाही शिर दक्षके लगा दिया कारण कि दक्षका शिर जल गयाथा
॥ ८ ॥ शिर जोडकर जब शिवजीने दक्षकी ओर देखा तौ वह सोयेहुए पुरुषकी समान उठ बैठा आगे शिवजीको देखा ॥ ९ ॥ तब शिवके द्वेषसे
कलुषी आत्मा प्रजापति शिवके दर्शनसे शरदकालके सरोवरकी समान निर्मल होतोभयो ॥ १० ॥ शिवस्तोत्र करवेमें मन करै, पर अनुरागसे
सामर्थ्य न भई, उत्कंठासे आसू वहेहैं, मरी सुताकों याद करतेभए ॥ ११ ॥ कष्टसें मनकों जीत, प्रेमविह्वल सुबुद्धिसे कपट त्याग भावनाकरकै
शिवजीकी दक्षप्रजापति स्तुति करतो भयो ॥ १२ ॥ दक्ष बोले कि हे भगवन् ! अहो बडो अनुग्रह आपने मोपे कीनो, मोसे तिरस्कृत हो आपने

विधाय कार्त्स्न्येन च तद्यदाह भगवान्भवः॥संदधुः कस्य कायेन सवनीयपशोः शिरः ॥८॥ संधीयमाने शिरसि दक्षो
रुद्राभिवीक्षितः ॥ सद्यः सुप्त इवोत्तस्थौ ददृशे चाग्रतो मृडम् ॥ ९ ॥ तदा वृषध्वजद्वेषकलिलात्मा प्रजापतिः ॥ शिवाव-
लोकादभवच्छरद्ध्रद इवामलः ॥ १० ॥ भवस्तवाय कृतधीर्नाशक्नोदनुरागतः ॥ औत्कण्ठ्याद्बाष्पकलया संपरेतां सुतां
स्मरन् ॥ ११ ॥ कृच्छ्रात्संस्तभ्य च मनः प्रेमविह्वलितः सुधीः ॥ शशंस निर्व्यलीकेन भावेनेशं प्रजापतिः ॥ १२ ॥ दक्ष
उवाच ॥ भूयाननुग्रह अहो भवता कृतो मे दण्डस्त्वया मयि भृतो यदपि प्रलब्धः॥ न ब्रह्मबन्धुषु च वां भगवन्नवज्ञा तु-
भ्यं हरेश्च कुत एव धृतव्रतेषु॥१३॥ विद्यातपोव्रतधरान्मुखतः स्म विप्रान्ब्रह्मात्मतत्त्वमवितुं प्रथमं त्वमस्राक्‌ ॥ तद्ब्राह्म-
णान्परम सर्वविपत्सु पासि पालः पशूनिव विभो प्रगृहीतदण्डः॥१४॥योऽसौ मयाऽविदिततत्त्वदृशा सभायां क्षिप्तो दु-
रुक्तिविशिखैरगणय्य तन्माम्॥अर्वाक्पतन्तमर्हत्तमनिन्दयाऽपाद्दृष्ट्याऽऽर्द्रया स भगवान् स्वकृतेन तुष्येत् ॥ १५ ॥

मोको दंड दीनो आप और नारायण जब अधम ब्राह्मणोंकी उपेक्षा नहीं करते तौ नियमव्रतधारी श्रेष्ठ ब्राह्मणोंकी तौ कैसे करो ॥ १३ ॥विद्या तप व्रत-
धारी ब्रह्मणोंको अपने वेदमार्गकी रक्षा करवेको मुखसे तुम रचतेभए, ताते हे विभो ! ब्राह्मणनको सब विपत्तमें पालन करोहो, हे परम ! उनको पशुन-
की नाईं दंड देओहो जो तुमारे वेदसे विरुद्ध हैं ॥ १४ ॥ जो तुम्हें मैंने तत्वज्ञान दृष्टि न करकै सभामें दुर्वाक्यरूप बाणनसे मारो हो, सो वो बात कुछ
न गिनकर बडोंकी निंदासे नरकमें पडते भए मोकों कोमलदृष्टिसें रक्षा करतेभए सो भगवान् अपने करेभए उपकारसें आपही संतुष्ट हो ॥ १५ ॥

रुद्र बोले कि हे वरद ! सत् अर्थदायक असक्त मुनियों करकै आदरसे पूजनीय तुह्मारे चरणकमलमें अपने मनको लगायेहूं उसे यह अज्ञानी यद्यपि आचारभ्रष्ट कहतेहैं तथापि आपके अनुग्रहसे मैं उनकी बातौंको नहीं गिन्ता ॥ २९ ॥ भृगुजी बोले कि जिनकी गहेरी मायासे शरीरधारी ब्रह्मादिकभी तममें सोए भये आत्मज्ञान भूले है, अबभी आत्मामें रहिवेवारे तुह्मारे तत्त्वको नहीं जानै है, सो प्रणतोंके आत्मबंधु भगवान् मोपर प्रसन्न होओ ॥ ३० ॥ ब्रह्माजी बोले कि ज्ञान अर्थ गुणाश्रय आप स्वरूप पदार्थभेद ग्रहणवारी इंद्रियों करके ये पुरुष जब देखैहै, तब मायामय

रुद्र उवाच ॥ तव वरद वराङ्घ्रावाशिषेहाखिलार्थे ह्यपि मुनिभिरसक्तैरादरेणार्हणीये ॥ यदि रचितधियं माऽविद्यलोकोऽपविद्धं जपति न गणये तत्त्वत्परानुग्रहेण ॥२९॥ भृगुरुवाच ॥ यन्मायया गहनयाऽपहृतात्मबोधा ब्रह्मादयस्तनुभृतस्तमसि स्वपन्तः ॥ नात्मञ्छ्रितं तव विदन्त्यधुनाऽपि तत्त्वं सोयं प्रसीदतु भवान्प्रणतात्मबन्धुः ॥ ३० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नैतत्स्वरूपं भवतोऽसौ पदार्थभेदग्रहैः पुरुषो यावदीक्षेत् ॥ ज्ञानस्य चार्थस्य गुणस्य चाश्रयो मायामयाद्व्यतिरिक्तो यतस्त्वम् ॥ ३१ ॥ इन्द्र उवाच ॥ इदमप्यच्युत विश्वभावनं वपुरानन्दकरं मनोदृशाम् ॥ सुरविद्विट्क्षपणैरुदायुधैर्भुजदण्डैरुपपन्नमष्टभिः ॥ ३२ ॥ पत्न्य ऊचुः ॥ यज्ञोऽयं तव यजनाय केन सृष्टो विध्वस्तः पशुपतिनाऽद्य दक्षकोपात् ॥ तं नस्त्वं शवशयनाभशान्तमेधं यज्ञात्मन्नलिनरुचा दृशा पुनीहि ॥ ३३ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ अनन्वितं ते भगवन्विचेष्टितं यदात्मना चरसि हि कर्म नाऽज्यसे ॥ विभूतये यत उपसेदुरीश्वरीं न मन्यते स्वयमनुवर्ततीं भवान् ॥ ३४ ॥

पदार्थोंसे पृथक् तुम याको मोक्ष देओहो ॥ ३१ ॥ इंद्र बोले कि हे अच्युत विश्वभावन ! सुरविद्वेषीनके नाशक ऊंचे उठायेहुए शस्त्रौंवाली आठ भुजा युक्त यह आपका स्वरूप मन शरीर और दृष्टिको आनंद करनेवाला है ॥ ३२ ॥ पत्नियें बोलीं कि ये यज्ञ तुह्मारे यजनके अर्थ दक्षने कीनो हो सो पशुपतिने आज कोपसे विध्वंस कीनो, हे कमलनयन हे शांतबुद्धिवारे हे यज्ञात्मन् ! कमलसरीकी दृष्टिसें हमें पवित्र करौ ॥ ३३ ॥ ऋषि बोले कि हे भगवन् ! आपकी विशेष करकै चेष्टा काऊसे न जानी जाय है जा रूपसे आप विचरोहो सो कौन जाने कर्मसें आप लिप्त नहीं हो

जिनकी महिमासे सब वृत्ति विसर गई, ब्रह्मादिकोंकी अनुग्रहके लिये विग्रह धारण करनेहारे ईश्वरकी यथामति सब स्तुति करतेभये " दक्षऋत्विग्सदस्येशभृगुब्रह्मेन्द्रयोषितः ॥ ऋषयश्च तथा सिद्धा यजमानी च लोकपाः ॥ १ ॥ योगिब्रह्माग्निदेवाश्च स्तुवन्ति जगदीश्वरम् ॥ तथा गन्धर्वविद्याध्रब्राह्मणाश्च पृथङ्मतैः ॥ २ ॥ " ॥ २४ ॥ दक्ष पूजन करवेके सब उत्तम उपाय लेकर यज्ञके ईश्वर विश्व रचनेवारोंके परमगुरु सुनंद नंद आदि अनुगोंकरके आनंदसे युक्त, हाथ जोड स्तुति करते भए ॥ २५ ॥ दक्ष बोले शुद्ध जाग्रदादि अवस्थानरहित अद्वितीय भयरहित अपने स्वरूपमें अवस्थान करनेहारे चिन्मात्र हो मायाका तिरस्कार कर यद्यपि आप स्वतंत्र हैं तथापि मनुष्य देहका धारण मायामें रहनेसेभी शुद्ध हो ॥ २६ ॥ सब ऋत्विज

अप्यर्वाग्वृत्तयो यस्य महित्वात्मभुवादयः ॥ यथामति गृणन्ति स्म कृतानुग्रहविग्रहम् ॥ २४ ॥ दक्षो गृहीतार्हणसादनोत्तमं यज्ञेश्वरं विश्वसृजां परं गुरुम्॥सुनन्दनन्दाद्यनुगैर्वृतं मुदा गृणन्प्रपेदे प्रयतः कृताञ्जलिः॥२५॥ दक्ष उवाच॥ शुद्धं स्वधाम्न्युपरताखिलबुद्ध्यवस्थं चिन्मात्रमेकमभयं प्रतिषिध्य मायाम्॥ तिष्ठंस्तयैव पुरुषत्वमुपेत्य तस्यामास्ते भवानपरिशुद्ध इवात्मतन्त्रः ॥ २६ ॥ ऋत्विज ऊचुः॥ तत्वं न ते वयमनञ्जन रुद्रशापात्कर्मण्यवग्रहधियो भगवन्विदामः॥ धर्मोपलक्षणमिदं त्रिवृदध्वराख्यं ज्ञातं यदर्थमाधिदैवमदो व्यवस्था ॥ २७॥ सदस्या ऊचुः ॥ उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेऽन्तकोग्रव्यालान्विष्टे विषयमृगतृष्णात्मगेहोरुभारः॥ द्वन्द्वश्वभ्रे खलमृगभये शोकदावेऽज्ञसार्थः पादौ कस्ते शरणद कदा याति कामोपसृष्टः ॥२८॥

स्तुति करते बोले कि हे उपाधिमलरहित हे भगवन् ! नंदिके शापसे हम कर्ममें सदा लगे रहें हैं, सो आपके तत्त्वको हम नहीं जानैहैं धर्मको उपलक्षण वेदत्रयी प्रतिपाद्य यज्ञरूपही आपके स्वरूपको जानते हैं जासे अध्यात्म अधिभूत अधिदैव ये त्रय अवस्था दूर होय हैं ॥ २७॥ सभासद बोले कि हे शरणद रक्षकहीन ! अनेक क्लेशको गढ, मृत्युरूप सर्पसै युक्त विषयमृगतृष्णामें लीन, सुखदुःखरूप गढैलो संपूर्ण खलमृगोंके भययुक्त शोक दावानलमें मग्न; उत्पत्तिके मार्ग संसारके जो वर्त्तमान है, उसमें गमन करताहुआ तृष्णासे पीडित विषरूप मृगतृष्णाके मलवाले शरीर और गृहके दुस्तर भारका वहन करताहुआ यह अज्ञानियोंका समूह आपके चरणरूप स्थानको कब प्राप्त होगा ॥ २८ ॥

ब्रह्माजी बोले कि सत्त्वावच्छिन्नचैतन्यधारी धर्मादिकोंके उत्पत्तिकर्ता निर्गुणके अर्थ नमस्कार होय, जिनके स्वरूपकों हमभी नहीं जानै हैं न और कोई जान सकै है ॥ ४० ॥ अग्नि बोले कि सुंदर दीप्ततेजवारीमें अग्निके तेज करकै यज्ञोंमें चुचाते घृतको हव्य धारण करूं हूं, ऐसे यज्ञरूप पांच प्रकार करके पंच यजुर्मंत्रों करकै सुंदर यजन योग्य यज्ञमूर्ति भगवानको हम प्रणाम करै है, वे पांचविध ऐतरेय उपनिषद्की श्रुतिमें है। स एष यज्ञः पंचविधो अग्निहोत्रं दर्शपूर्णमासौ चातुर्मास्यानि पशुः सोम इति। तथा च श्रुतिः। "आश्रावयेति चतुरक्षरमस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरं यजेति द्व्यक्षरं ये यजामहे इति पंचाक्षरं द्व्यक्षरो वषट्कारः" ॥ ४१ ॥ देवता बोले कि पहिले महाप्रलयमें अपनो रचो विश्व सब उदरमें कर तुमही पुरुष आद्य वा

ब्रह्मोवाच ॥ नमस्ते श्रितसत्त्वाय धर्मादीनां च सूतये ॥ निर्गुणाय च यत्काष्ठां नाहं वेदापरेऽपि च ॥ ४० ॥ अग्निरुवाच ॥ यत्तेजसाऽहं सुसमिद्धतेजा हव्यं वहे स्वध्वर आज्यसिक्तम् ॥ तं यज्ञियं पञ्चविधं च पञ्चभिः स्विष्टं यजुर्भिः प्रणतोस्मि यज्ञम् ॥ ४१॥ देवा ऊचुः ॥ पुरा कल्पापाये स्वकृतमुदरीकृत्य विकृतं त्वमेवाद्यस्तस्मिन् सलिल उरगेन्द्राधिशयने ॥ पुमांन् शेषे सिद्धैर्हृदि विमृशिताध्यात्मपदविः स एवाद्याक्ष्णोर्यः पथि चरसि भृत्यानवसि नः ॥ ४२ ॥ गन्धर्वा ऊचुः ॥ अंशांशास्ते देव मरीच्यादय एते ब्रह्मेन्द्राद्या देवगणा रुद्रपुरोगाः ॥ क्रीडाभाण्डं विश्वमिदं यस्य च भूमंस्तस्मै नित्यं नाथ नमस्ते करवाम ॥ ४३ ॥ विद्याधरा ऊचुः ॥ त्वन्मायया ऽर्थमभिपद्य कलेवरेऽस्मिन् कृत्वा ममाहमिति दुर्मतिरुत्पथैः स्वैः ॥ क्षिप्तोऽप्यसद्विषयलालस आत्ममोहं युष्मत्कथाऽमृतनिषेवक उद्व्युदस्येत् ॥ ४४ ॥

जलमें शेषशय्यापर सोये हो सिद्धोंने हृदयमें जिनकी आध्यात्म पदवी विचारी सो ईश्वर अस्मदादिकोंके नेत्रगोचर भए, सो अपने दासनकी रक्षा करौ ॥ ४२ ॥ गंधर्व बोले कि हे देव ! मरीचि आदि, ब्रह्मादि देवगण रुद्र जामें मुखिया ये सब आपके अंशके अंश भाग हैं, ये विश्व जाकी क्रीडाको भांड है, हे विभूमन् हे नाथ ! तिन तुह्मे नित्य हम नमस्कार करै हैं ॥ ४३ ॥ विद्याधर बोले कि तुह्मारी मायाकरके धन प्राप्त होयकर या देहमें दुर्मति होय मम अहं आपसे आप उठ कर असद्विषय लालसामें पटक देहै सो आत्माको ये मोह तुह्मारी कथामृतसेवासे सब दूर होय है ॥ ४४ ॥

कारण कि दूसरे प्राणी समृद्धिके निमित्त जिसका भजन करते हैं वे लक्ष्मी आपका अनुसरण करती है तथापि आप उन्हैं आदर नहीं देते ॥ ३४ ॥ सिद्धलोग बोले कि क्लेश दावाग्निसे दग्ध प्यासो ये मनरूप हाथी तुह्मारी कथारूप उज्ज्वल अमृतनदीसे आय न्हाय कर फेर दावाग्निको नहीं स्मरण करैहै, ब्रह्मसंपत्तिवान हो जाय है, फिर फिर इससे नहीं निकलता ॥ ३५ ॥ यजमाननी बोली कि हे सुंदर अए! प्रसन्न हो, हे ईश ! हे श्रीनिवास ! तुह्मारे अर्थ नमस्कार होय, श्रीसहित हमारी रक्षा करो, हे अधीश्वर ! तुह्मारे विना ये यज्ञ शोभा नहीं दे है; जैसे शिरहीन कवन्ध पुरुष शोभा नहीं देता ॥ ३६ ॥ लोकपालक बोले कि असत्पदार्थ ग्रहण करवेवारी इंद्रियोंसे हमने आपको देखा सर्वद्रष्टा आप हो, जा करकै विश्व दीखै है हे भूमन् !

सिद्धा ऊचुः ॥ अयं त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां मनोवारणः क्लेशदावाग्निदग्धः ॥ तृषार्तोऽवगाढो न सस्मार दावं न निष्क्रामति ब्रह्मसंपन्नवन्नः ॥३५॥ यजमान्युवाच ॥ स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः श्रीनिवास श्रिया कान्तया त्राहि नः ॥ त्वामृतेऽधीश नाङ्गैर्मखः शोभते शीर्षहीनः कबन्धो यथा पूरुषः ॥३६॥ लोकपाला ऊचुः ॥ दृष्टः किं नो दृग्भिरसद्ग्रहैस्त्वं प्रत्यग्द्रष्टा दृश्यते येन दृश्यम् ॥ माया ह्येषा भवदीया हि भूमन् यस्त्वं षष्ठः पञ्चभिर्भासि भूतैः ॥३७॥ योगेश्वरा ऊचुः ॥ प्रेयान् न तेऽन्योऽस्त्यमुतस्त्वयि प्रभो विश्वात्मनीक्षेन्न पृथग्य आत्मनः ॥ अथापि भक्त्येश तथोपधावतामनन्यवृत्त्याऽनुगृहाण वत्सल ॥ ३८ ॥ जगदुद्भवस्थितिलयेषु दैवतो बहुभिद्यमानगुणयात्ममायया ॥ रचितात्मभेदमतये स्वसंस्थया विनिवर्तितभ्रमगुणात्मने नमः ॥ ३९ ॥

ये आपकी माया है, जो तुम पांच तत्वोंसे प्रकाश करो हो ॥ ३७ ॥ योगेश्वर बोले कि हे प्रभो हे ईश हे वत्सल ! आप परमात्मासे जो पुरुष अपनी पृथकताको नहीं समझता वासे प्यारो कोई आपको और नहीं है, यद्यपि ऐसे है तथापि अनन्यभक्तिकरकै जो आपकी उपासना करै है उनपर अनुग्रह करो हो ॥ ३८ ॥ दैवसे जगत्की उत्पत्ति स्थिति लयमें वहुत भेद करनेहारी गुणवारी आपकी मायाने आप तीन देवके भेद रचे हैं परन्तु स्वरूपकी स्थिति देखकर जिनमें भेदकी भ्रांति है उसका कारण कुछ नहीं ऐसे आप परमेश्वरको नमस्कार होय ॥ ३९ ॥

101

तिसके वल अद्वितीय परमात्मा ब्रम्हमें ब्रह्मा रुद्रमें सब जीवमें भेद अज्ञानी देखते हैं ॥ ५२ ॥ जैसे पुरुष अपने शिर हाथ आदि अंगमें औरके ये हाथ आदि अवयव हैं ये बुद्धि नहीं करै है ऐसे सब जीवमात्रमें मत्परायण रहै॥५३॥हे ब्रह्मन् ! तीनोंको एक भाव है जो सब जीवमात्रमें भेद नहीं देखते वह मनुष्य शांतिको प्राप्त होयहै ॥ ५४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि ऐसे भगवत्की आज्ञा पाए भए प्रजापतियोंके पति अपने यज्ञसे पूजनकर दोऊ ओरसे देवतानकी पूजा करतेभए, सावधान होयके रुद्रजीको संपूर्ण कर्म पूरण करवेवारे भागकरकै और इतर जो अमृतपान करवेवारे देवता हैं

तस्मिन् ब्रह्मण्यऽद्वितीये केवले परमात्मनि ॥ ब्रह्मरुद्रौ च भूतानि भेदेनाज्ञोऽनुपश्यति ॥ ५२ ॥ यथा पुमान्न स्वाङ्गेषु शिरःपाण्यादिषु क्वचित् ॥ पारक्यबुद्धिं कुरुत एवं भूतेषु मत्परः ॥ ५३ ॥ त्रयाणामेकभावानां यो न पश्यति वै भिदाम् ॥ सर्वभूतात्मनां ब्रह्मन् स शान्तिमधिगच्छति ॥ ५४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं भगवतादिष्टः प्रजापतिपतिर्हरिम् ॥ अर्चित्वा क्रतुना स्वेन देवानुभयतोऽयजत् ॥ ५५ ॥ इन्द्रं च स्वेन भागेन ह्युपाधावत् समाहितः ॥ कर्मणोदवसानेन सोमपानितरानपि ॥ ५६ ॥ उदवस्य सहर्त्विग्भिः सस्नाववभृथं ततः ॥ विप्रेभ्यो दक्षिणां दत्त्वा विरराम यथासुखम् ॥ ५७ ॥ तस्मा अप्यनुभावेन स्वेनैवावाप्तराधसे ॥ धर्म एव मतिं दत्त्वा त्रिदशास्ते दिवं ययुः ॥ ५८ ॥ एवं दाक्षायणी हित्वा सती पूर्वकलेवरम् ॥ जज्ञे हिमवतः क्षेत्रे मेनायामिति शुश्रुम ॥ ५९ ॥ तमेव दयितं भूय आवृङ्क्ते पतिमम्बिका ॥ अनन्यभावैकगतिं शक्तिः सुप्तेव पूरुषम् ॥ ६० ॥

तिन्हैं भागदे पूजनऔर स्तुति करतेभए ॥५५॥५६॥ ऋत्विजों सहित सबको भाग दे पाछै दक्षजी यज्ञांतस्नान करतेभए, विप्रोंके अर्थ दक्षिणा देकर यथाविहार करते भए ॥ ५७ ॥ यद्यपि दक्षको अपने प्रतापसे सब सिद्धि प्राप्त थीं तथापि देवता उसे धर्ममें बुद्धि रहनेका वर दे स्वर्गको गये ॥ ५८॥ ऐसे दक्षकन्या सती पूर्व देहत्याग हिमाचलकी मेनानाम्नी रानीमें जन्मती भई, ये हम सबने सुनो है ॥ ५९ ॥ तिन्हो प्यारे देव शिव पतिको अनन्य भाव एकगति मान अंबिका पार्वतीजी भजती भई, जैसे सोई भई शक्ति पुरुषको भजै है ॥ ६० ॥

ब्राह्मण बोले कि तुम यज्ञ हवि, तुम अग्नि, आपही मंत्ररूप हो तुम समिधा तुम दर्भ पात्र, तुह्मी सभासद तुमही स्त्रीपुरुष तुह्मी ऋत्विग् तुमही देवता तुमही अग्निहोत्र स्वधा सोमवल्ली लता घृत दुग्ध सब रूप आपही हो याते आपको नमस्कार है ॥ ४५ ॥ हे त्रयीगात्र ! तुम पहिले महासूकर होय लीलासे महानाद करते दंष्ट्राकरके रसातलसे पृथिवीको गजेंद्र जैसे पद्मिनीको लावै तैसे लाते भए, योगियोंने स्तुति कीनी, यज्ञरूप क्रतुरूप आपही हो ॥ ४६ ॥ सो तुम हमपर प्रसन्न होओ, सत्कर्मसे परिभ्रष्ट अपने दर्शनकी चाहवारोंको दर्शन देओ, हे यज्ञेश ! मनुष्य तुम्हारो

ब्राह्मणा ऊचुः ॥ त्वं क्रतुस्त्वं हविस्त्वं हुताशः स्वयं त्वं हि मन्त्रः समिद्दर्भपात्राणि च ॥ त्वं सदस्यर्त्विजो दम्पती देवता अग्निहोत्रं स्वधा सोम आज्यं पशुः ॥ ४५ ॥ त्वं पुरा गां रसाया महासूकरो दंष्ट्रया पद्मिनीं वारणेन्द्रो यथा ॥ स्तूयमानो नदल्लीलया योगिभिर्व्युज्जहर्थ त्रयीगात्रयज्ञक्रतुः ॥ ४६ ॥ स प्रसीद त्वमस्माकमाकाङ्क्षतां दर्शनं ते परिभ्रष्टसत्कर्मणाम् ॥ कीर्त्यमाने नृभिर्नाम्नि यज्ञेश ते यज्ञविघ्नाः क्षयं यान्ति तस्मै नमः ॥ ४७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति दक्षः कविर्यज्ञं भद्ररुद्रावमर्शितम् ॥ कीर्त्यमाने हृषीकेशे स निन्ये यज्ञभावने ॥ ४८ ॥ भगवान् स्वेन भावेन सर्वात्मा सर्वभागभुक् ॥ दक्षं बभाष आभाष्य प्रीयमाण इवानघ ॥ ४९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहं ब्रह्मा च शर्वश्च जगतः कारणं परम् ॥ आत्मेश्वर उपद्रष्टा स्वयं दृगविशेषणः ॥ ५० ॥ आत्ममायां समाविश्य सोऽहं गुणमयीं द्विज ॥ सृजन् रक्षन् हरन् विश्वं दध्रे संज्ञां क्रियोचिताम् ॥ ५१ ॥

नाम रटैं तो सब यज्ञके विघ्नक्षय होय हैं ऐसे आपके अर्थ नमस्कार होय ॥ ४७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि हे विदुर ! या प्रकार दक्ष, कवि, रुद्र, वीरभद्र करके विनाशित यज्ञको दक्ष फेर प्रवर्त करतेभए यज्ञभावन हृषीकेशका कीर्तन करतेभए॥४८॥ हे पापरहित भगवन् ! आपनो भाग ले सर्वात्मा सब भागके भोक्ता प्रसन्न होके दक्ष प्रजापतिसे बोले॥४९॥श्रीभगवान् बोले कि आत्मानके ईश्वर, सबके द्रष्टा, स्वयंदर्शी विशेषण रहित हम ब्रह्मा शिव जगतके परम कारण हैं॥५०॥हे द्विज ! अपनी गुणमयी मायामें स्थित होकर रचैहैं, रक्षा करै है नाश करै है विश्वकी क्रियाके योग्य संज्ञा धारै है॥५१॥

निरय जोडा उत्पन्नभयो ॥ " एते ह्यधर्मवृक्षस्य शाखा संसृतिहेतवः ॥ श्रेयस्कामो न सेवेत सुतरामाश्रमोत्तमः " ॥ ४ ॥ हे अनघ ! संक्षेपसे मैने
ये आपसे प्रतिसर्गवर्णन करचो जो पुरुष तीनवार याकों सुने तो शरीरको मल सब नाश होय है ॥ ५ ॥ हे परीक्षित् ! पुण्यकीर्तिवारे श्रीहरिके
अंशांशसे जन्मे स्वायंभु मनुकों वंश कहें हैं ॥ ६ ॥ शतरूपा पति मनुके प्रियव्रत उत्तानपाद दो पुत्र भए, वासुदेवकी कलाकरकैं जगतकी रक्षामें
स्थित होते भए ॥ ७ ॥ उत्तानपाद राजाकी सुनीति सुरुचि दो राणीही सुरुचि पतिको बहुत प्यारी न भई ॥ ८ ॥ एकादिन राजा सुरुचिके
पुत्र उत्तमको गोदमें खिलाय रहेहै, वा समय ध्रुवजी गोदमें चढने लगे, तब राजाने उनका लालन पालन नहीं किया ॥ ९ ॥ जो तब

संग्रहेण मयाऽऽख्यातः प्रतिसर्गस्तवानघ ॥ त्रिः श्रुत्वैतत् पुमान् पुण्यं विधुनोत्यात्मनो मलम् ॥५॥ अथातः कीर्तये
वंशं पुण्यकीर्तेः कुरूद्वह ॥ स्वायंभुवस्यापि मनोर्हरेरंशांशजन्मनः ॥ ६ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ शतरूपापतेः सुतौ ॥
वासुदेवस्य कलया रक्षायां जगतः स्थितौ ॥ ७ ॥ जाये उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिस्तयोः ॥ सुरुचिः प्रेयसी पत्युर्नतरा
यत्सुतो ध्रुवः ॥ ८ ॥ एकदा सुरुचेः पुत्रमङ्कमारोप्य लालयन् ॥ उत्तमं नारुरुक्षन्तं ध्रुवं राजाऽभ्यनन्दत ॥ ९ ॥ तथा
चिकीर्षमाणं तं सपत्न्यास्तनयं ध्रुवम् ॥ सुरुचिः शृण्वतो राज्ञः सेर्ष्यमाहातिगर्विता ॥ १० ॥ न वत्स नृपतेर्धिष्ण्यं
भवानारोढुमर्हति ॥ न गृहीतो मया यत्त्वं कुक्षावपि नृपात्मजः ॥ ११ ॥ बालोसि बत नात्मानमन्यस्त्रीगर्भसंभृतम् ॥
नूनं वेद भवान् यस्य दुर्लभेऽर्थे मनोरथः ॥ १२ ॥ तपसाऽऽराध्य पुरुषं तस्यैवानुग्रहेण मे ॥ गर्भे त्वं साधयात्मानं
यदीच्छसि नृपासनम् ॥ १३ ॥

सुरुचि सौतके पुत्र ध्रुवको जो राजाकी गोदमें चढना चाहते थे उन्हें सुनायकर राजाके सामने ईर्ष्या करकै अतिगर्वसे बोली ॥ १० ॥ हे पुत्र ! राजाके
या राज्यसिंहासनपर आप चढवेकों योग्य नहीं हो नृपपुत्र हो तोभी मेरी कुक्षिमें आपने जन्म नहीं लीनो है ॥ ११ ॥ बालक होनेके कारणही तुझे
इस वार्ताकी सुधि नहीं कि मैं अन्य स्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुआ हूं इसी कारण तू दुर्लभ मनोरथ करता है ॥ १२ ॥ तपसे परमेश्वरपुरुषको आराधन
कर तिनकी कृपाकरके आप जब मेरे गर्भमें जन्म लेओ तौ नृपासनकी इच्छा करो ॥ १३ ॥

दक्षके यज्ञके यज्ञविनाशक भगवान् शंभुको ये कर्म भागवत बृहस्पतिके शिष्य उद्धवजीसे मैंने सुनो, तैसो तुह्मै सुनायो है ॥ ६१ ॥ ये अत्यंत परम
शिव चरित्र यज्ञ आयुको दायक, अनेक पाप समूहको नाशक है, हे कौरव ! जो नित्य भक्ति भावसे सुने कीर्तन करै वाके सब पापनको नाश कर-
वेवोरो है ॥ ६२ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां चतुर्थ० दक्षयज्ञे सर्वदेवकृतस्तुतिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ मैत्रेयजी बोले अब पांच
अध्यायमें ध्रुवचरित्र वर्णन करैहैं, कि सनकादिक नारद ऋभु हंस अरुणि यति ये गृहस्थाश्रम न कर ऊर्ध्वरेता नैष्ठिकब्रह्मचारी भए ॥ १ ॥ अधर्मभी

एतद्भगवतः शम्भोः कर्म दक्षाध्वरद्रुहः ॥ श्रुतं भागवताच्छिष्यादुद्धवान्मे बृहस्पतेः ॥ ६१ ॥ इदं पवित्रं परमीशचे-
ष्टितं यशस्यमायुष्यमघौघमर्षणम् ॥ यो नित्यदाऽऽकर्ण्य नरोऽनुकीर्तयेद्धुनोत्यघं कौरव भक्तिभावतः ॥ ६२ ॥
इति श्री० भा० च० दक्षयज्ञे सर्वदेवकृतस्तुतिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ सनकाद्या नारदश्च
ऋभुर्हंसोऽरुणिर्यतिः ॥ नैते गृहान् ब्रह्मसुता ह्यावसन्नूर्ध्वरेतसः ॥ १ ॥ मृषाऽधर्मस्य भार्यासीद्दम्भं मायां च शत्रुहन् ॥
असूत मिथुनं तत्तु निर्ऋतिर्जगृहेऽप्रजः ॥ २ ॥ तयोः समभवल्लोभो निकृतिश्च महामते ॥ ताभ्यां क्रोधश्च हिंसा च
यद्दुरुक्तिः स्वसा कलिः ॥ ३ ॥ दुरुक्तौ कलिराधत्त भयं मृत्युं च सत्तम ॥ तयोश्च मिथुनं जज्ञे यातना निरयस्तथा ॥ ४ ॥

ब्रह्मको पुत्र है यासे वाको वंशवर्णन करैहै कि अधर्मकी मृषा भार्या होंतीभई हे शत्रुहन् ! उससै दंभ माया ये एक मिथुन उत्पन्न हुआ सौ मृत्युके
पुत्र नहीं था वाने दंभको ग्रहण कीनो ॥ २ ॥ दंभसै मायामें लोभ भयो, और निकृति कन्या भई निकृति शठताको नाम है लोभके निकृतिमें
क्रोधके हिंसा नाम स्त्रीमें कलि हुआ उसकी बहन दुरुक्ति भई ॥ ३ ॥ हे सत्तम ! दुरुक्तिमें कलिने भय मृत्यु उत्पन्न करै, तिनसे यातना

---

१ सो या पदमें है कि एकताला ॥ " हर हर महादेव देव गौरीपति गाओ ॥ टेर ॥ शीश गंग आति उभंग भस्म अंग लगाओ भक्तन शिर ताज महाराज वेद ध्याओ ॥ १ ॥ मंगल उर माल व्याल भूषण सब सजाओ नागचर्म वस्त्र शस्त्र त्रिशूलही सुहाओ ॥ २ ॥ नंदीपर बैठ रहे उमा अंग लगाओ मुद्रा कर ग्यान ध्यान हरिमें लौ लगाओ ॥ ३ ॥ पुरुषोत्तम कहत एक शोक सब वहावो जिनको हरिभक्ति चहै उमारमण ध्याओ " ॥ ४ ॥

जिनकी बुद्धि निंदित है, उनकी करी पूजाकूंभी नहीं ग्रहण करैहै, वे श्रीहरि निर्द्धनके धनदाता, गिरिवरधारी हैं, प्यारे हैं, रसज्ञ हैं, श्रुत धन कुल कर्मके मदसे जो महानिष्किंचन भगवद्भक्तौंका तिरस्कार करैहैं, उनको त्यागे हैं “ जैसे एकसमय दुर्योधन श्रीकृष्णको निमंत्रण कर आए, घरपर रसोईदारनसे बोले कि श्रीकृष्णके कभी न खाए हौंय ऐसे पदार्थ करो, श्रीकृष्ण यह सुनतेहैं सो तनक देरमे विदुर आय निमंत्रण करगए सो श्रीकृष्ण विदुरके घरपर पहुंचे, विदुराणी महाराणी घरमैं बैठाय केलानके छिलका तो खवावतीगई, गैल नीचे पटकतीगई, श्रीकृष्णके श्याम सुंदर रूपमें मग्न हो रही ही विदुरजी देख बोलै अरी पापिके ! क्या करैहै भगवानको छिलका खवावै है यह भगवानको केला खवनन लगे तब भगवान् बोले विदुर ! जो स्वाद छिलकानमें आवतो हो सो इन गैलनमैं नाय आवत है, क्योंकि तुम तो उपायांतर बुद्धिकरकै मोको गैल खवावोहो, विदुराणीके उपायांतर बुद्धि नहीं हैं. ये कहि आचमनकर बाहिर निकसे सो देखें तो सामनेसे दुर्योधन बोलो हे पुंडरीकाक्ष ! भीष्म द्रोण मोको परित्यागकर विदुरशूद्रके

न भजति कुमनीषिणां स इज्यां हरिरधनात्मधनप्रियो रसज्ञः॥ श्रुतधनकुलकर्मणां मदैर्ये विदधति पापमकिञ्चनेषु
सत्सु॥२२॥श्रियमनुचरतीं तदर्थिनश्च द्विपदपतीन्विबुधांश्च यत्स्वपूर्णः॥न भजति निजभृत्यवर्गतन्त्रः कथममुमुद्वि-
सृजेत्पुमान्कृतज्ञः ॥२३ ॥ मैत्रेय उवाच॥इति प्रचेतसो राजन्नन्याश्च भगवत्कथाः॥श्रावयित्वा ब्रह्मलोकं ययौ स्वायं-
भुवो मुनिः ॥ २४ ॥ तेऽपि तन्मुखनिर्यातं यशो लोकमलापहम् ॥ हरेर्निशम्य तत्पादं ध्यायन्तस्तद्गतिं ययुः ॥ २५ ॥

घर जायके फलाहार कीनो धन्य तुह्मै ॥ श्लोक, भीष्मं द्रोणं परित्यज्य मां चैव मधुसूदन । किमर्थं पुंडरीकाक्ष कृतं वृषलिभोजनम्॥१॥ये सुन भगवान बोले भगवद्भक्त शूद्र नहीं है विप्र हैं भागवत कहावैं है, सब वर्णौंमें वे शूद्र है जो जनार्दनके भक्त नहीं हैं ॥ न शूद्रा भगवद्भक्ता विप्रा भागवताः स्मृताः । सर्ववर्णेषु ते शूद्रा ये ह्यभक्ता जनार्दने ॥ २१ ॥ २२ ॥ अपनी सेवा करववारी श्रीमहालक्ष्मी, और लक्ष्मीके चाहवारे ब्रह्मादिकोंको, राजानको देवनको अपने भक्तौंके निमित्त सबको त्यागतेहैं, आप अपनेहीसे पूर्ण है, निजभृत्य समूहमें प्रसन्न रहेहैं, ऐसे परमेश्वरको कौन कृतज्ञ पुरुष त्यागै, अर्थात् कोई न त्यागैहै ॥ २३ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि हे राजन् ! ऐसे प्रचेतानसै औरभी अनेक कथा सुनायकर स्वयभूके पुत्र मुनि नारदजी ब्रह्मलोक को जातभए ॥२४॥वे प्रचेताभी श्रीनारदजीके मुखसे निकसो लोक पापनाशक श्रीहरिको यश सुनकर तिनके चरणको ध्यान करत तिनकी गतिको जातभए॥२५॥

---

१ नारदजीने प्रचेतौंको ज्ञान अभ्यास दृढ हौनेके निमित्त दिया ।

हे विदुरजी ! जो तुमने हमसे पूछो सो प्रचेतानको श्रीनारदकों संवाद जिसमें श्रीहरिको कीर्तन है तुमसे वर्णन कियो ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले
कि ये उत्तानपाद मनुको वंश वर्णन करो, हे नृपसत्तम ! अब प्रियव्रतको वंश सुनो ॥ २७ ॥ जो प्रियव्रत नारदजीसें आत्मविद्या सीख फेर महीपर
आए सब राज्यभोग पीछें पुत्रोंको सब राज विभाग कर ईश्वरके वैकुंठको जातो भयो ॥ २८ ॥ श्रीमैत्रेयजी करकै वर्णित श्रीकृष्णकी ये सत्कथा
विदुरजी सुनकर अत्यन्त भक्तिसै नेत्रोंमें आसूभर श्रीमैत्रेयजीके चरणनकों हृदयसें शिरपर धारण करते भए ॥ २९ ॥ विदुरजी बोले कि हे महायो-
गिन् ! दयालु ! आपने ये आज तमको पार करवेवारो मार्ग दिखायो कि जिससै विरक्त महात्माओंके प्राप्त होंने योग्य नारायणके स्वरूपका मुझे

य एतत्तेऽभिहितं क्षत्तर्यन्मां त्वं परिपृष्टवान् ॥ प्रचेतसां नारदस्य संवादं हरिकीर्तनम् ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
एष उत्तानपदो मानवस्यानुवर्णितः ॥ वंशः प्रियव्रतस्यापि निबोध नृपसत्तम ॥ २७ ॥ यो नारदादात्मविद्यामधि-
गम्य पुनर्महीम् ॥ भुक्त्वा विभज्य पुत्रेभ्य ऐश्वरं समगात्पदम् ॥ २८ ॥ इमां तु कौषारविणोपवर्णितां क्षत्ता निश-
म्याजितवादसत्कथाम् ॥ प्रवृद्धभावाऽश्रुकलाकुलो मुनेर्दधार मूर्ध्ना चरणं हृदा हरेः ॥ २९ ॥ विदुर उवाच ॥ सोऽयम-
द्य महायोगिन्भवता करुणात्मना ॥ दर्शितस्तमसः पारो यत्राकिंचनगो हरिः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यान-
म्य तमामन्त्र्य विदुरो गजसाह्वयम् ॥ स्वानां दिदृक्षुः प्रययौ ज्ञातीनां निर्वृताशयः ॥ ३१ ॥ एतद्यः शृणुयाद्राजन्रा-
ज्ञां हर्यर्पितात्मनाम् ॥ आयुर्धनं यशः स्वस्ति गतिमैश्वर्यमाप्नुयात् ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टाद-
शसाहस्र्यां संहितायां चतुर्थस्कन्धे प्राचेतसोपाख्यानं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ समाप्तोऽयं चतुर्थः स्कन्धः ॥ ४ ॥

ज्ञान हुआ ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि ऐसे नमस्कार कर उनसे आज्ञा ले शान्त अन्तःकरणयुक्त विदुरजी अपने कुटुम्बी जनोंके दर्शनकी
इच्छासै हस्तिनापुरको गये ॥ ३१ ॥ हे राजन् ! हरिमें आत्मा मन लगानेहारे राजाको जो चरित्र सुनै है वो आयु यश धन मंगल कल्याण गति
ऐश्वर्यको प्राप्त होय हैं (१) ॥ ३२ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां चतुर्थस्कन्धे श्रीवृंदावननिवासिसुप्रसिद्धविद्वद्वरगौडब्राह्मणश्रीना-
रायणशास्त्रिविरचितपदार्थमुक्तावलीटीकायां प्राचेतसोपाख्यानवर्णनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥ ७ ॥ समाप्तश्चतुर्थस्कन्धः ॥ ७ ॥

---

१ दया दृष्टिव्रजचंद्रसे, द्विज ज्वालाप्रसाद। शुद्ध कियो स्कंध यह, जन पावहिं अहलाद॥ १॥ भ्रमसंदेह मिटा कर, पद और अर्थ मिलाय। आशय सबको प्रगटकर, शुद्ध कियो मन लाय॥ २॥

घरमें आसक्त होनेके कारण प्राय करकें भूल गये ॥ ६ ॥ सो अध्यात्मज्ञान हमको कहो, जासे तत्त्व अर्थको दर्शन होय जा ज्ञानसें दुस्तर भवसागर
अनायास करकै हम तरैं वो ज्ञान कहो ॥ ७ ॥ मैत्रेयजी बोले कि भगवान्नारदमुनि प्रचेतोंतें ऐसा पूछनेपर भगवान् उत्तमश्लोकमें आवेशित आत्मा-
वारे नारदजी उन नृप प्रचेतानसे बोलै ॥ ८ ॥ नारदजी बोले कि या विश्वमें जिससै विश्वात्मा हरि ईश्वर सेवा करै जाय, वो जन्म, वे कर्म, वो आयु,
वो मन, वो वचन मनुष्योंके श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥ शौक्र[1] सावित्र याज्ञिक इन तीन जन्मसे कहा है, वेदत्रयीके कर्मसें अथवा देवतानके समान आयु हो जाय
तोभी क्या है जो अपने स्वरूप दैनेवाले भगवानका सेवन किया ॥ १० ॥ श्रीकृष्णकी भक्तिके विना बहुत सुननेसे, तपसे, वाणीसे चित्तकी वृत्ति

तन्नः प्रद्योतयाध्यात्मज्ञानं तत्त्वार्थदर्शनम् ॥ येनाञ्जसा तरिष्यामो दुस्तरं भवसागरम् ॥ ७ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति
प्रचेतसां पृष्टो भगवान्नारदो मुनिः ॥ भगवत्युत्तमश्लोक आविष्टात्माऽब्रवीन्नृपान् ॥ ८ ॥ नारद उवाच ॥ तज्जन्म तानि
कर्माणि तदायुस्तन्मनो वचः ॥ नृणां येनेह विश्वात्मा सेव्यते हरिरीश्वरः ॥ ९ ॥ किं जन्मभिस्त्रिभिर्वेह शौक्रसावित्रया-
ज्ञिकैः ॥ कर्मभिर्वा त्रयीप्रोक्तैः पुंसोऽपि विबुधायुषा ॥ १० ॥ श्रुतेन तपसा वा किं वचोभिश्चित्तवृत्तिभिः ॥ बुद्ध्या वा
किं निपुणया बलेनेन्द्रियराधसा ॥ ११ ॥ किं वा योगेन सांख्येन न्यासस्वाध्याययोरपि ॥ किं वा श्रेयोभिरन्यैश्च न
यत्रात्मप्रदो हरिः ॥ १२ ॥ श्रेयसामपि सर्वेषामात्मा ह्यवधिरर्थतः ॥ सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्माऽऽत्मदः प्रियः ॥ १३ ॥
यथा तरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत्स्कन्धभुजोपशाखाः ॥ प्राणोपहाराच्च यथेन्द्रियाणां तथैव सर्वार्हणमच्युतेज्या ॥ १४ ॥

वसकरनैसै बहुत निपुण बुद्धिसे, बलसे जितेंद्रीपनसे कुछ नहीं होता ॥ ११ ॥ योग सांख्य संन्यास वेदपाठ और श्रेय मंगलीक कृत्य करनेसे कुछ
नही होय है जो आत्माके प्रसन्न करवेवारे हरि न प्रसन्न भये तो इनसे कुछ नहीं होयहैं ॥ १२ ॥ सिद्धांत ये है कि शुभ कृत्योंसे भगवान् प्रसन्न होय
सो श्रेष्ठ है सब जीवमात्रके हरि आत्मा आत्मानके दाता प्रिय ईश्वर है ॥ १३ ॥ जैसे वृक्षकी जडमें जल डारवेसें वा वृक्षके सब बडे बडे डुग्गा
शाखा उपशाखा तृप्त होय हैं, जैसें मुखके द्वारा भोजन करनेसे प्राणरूप होय सब इंद्रियोंकी तृप्ति होय है, तैसेई जहां अच्युत भगवानकी पूजा
करी, तो सब देवतामात्रकी पूजा होजायहै ॥ १४ ॥

---

[1] शौक्र शुद्ध माता पितासै जन्म ॥ सावित्र यज्ञोपवीतद्वारा दूसरा जन्म ॥ याज्ञिक-यज्ञकी दीक्षा लैनेका तीसरा जन्म ॥

जैसे जल सूर्यसे उत्पन्न होय है, फेर काल पाय कर वो जल सूर्यमेंही प्रवेश कर जायहै, तैसेंई भूमिमें जितने जीवमात्र है वे और स्थावर जंगम ये सब
संसार श्रीहरिमें लीन होयहै ॥१५॥ जगदात्मा श्रीमन्नारायणको अत्यंत श्रेष्ठ श्रीवैकुंठलोक सदा प्रकाश करैहै, जैसे सूर्यकी प्रभा सदा प्रकाशै है जैसे
जाग्रत अवस्थामें सब प्राण इंद्रियै जागैहैं, सुषुप्ति अवस्थामें सबकी शक्ति सुप्त होय जायहै, तैसेंई द्रव्य,क्रिया, ज्ञान, भेद, भ्रम, इन सबको दिव्य ज्ञा-
न हुयेसै नाश होजायहै ॥१६॥हे प्रचेतो ! आकाशमैं जैसे मेघमंडल, तम प्रकाश, कभी होता है कभी नहीं होता ऐसेही परब्रह्ममें ये रज सत्व तममय
शक्ति होय है, संसार होय है कभी लीन होय है ॥१७॥ इस कारण सबके एक आत्मा, जो काल प्रधान पुरुष परेश, होनेसै सबके कारण है तथा

यथैव सूर्यात्प्रभवन्ति वारः पुनश्च तस्मिन्प्रविशन्ति काले ॥ भूतानि भूमौ स्थिरजंगमानि तथा हरावेव गुणप्रवाहः
॥१५॥एतत्पदं तज्जगदात्मनः परं सकृद्विभातं सवितुर्यथा प्रभा ॥ यथाऽसवो जाग्रति सुप्तशक्तयो द्रव्यक्रियाऽज्ञान-
भिदाभ्रमात्ययः ॥ १६ ॥ यथा नभस्यभ्रतमःप्रकाशा भवन्ति भूपा न भवन्त्यनुक्रमात् ॥ एवं परे ब्रह्मणि शक्तय-
स्त्वमू रजस्तमः सत्त्वमिति प्रवाहः ॥ १७ ॥ तेनैकमात्मानमशेषदेहिनां कालं प्रधानं पुरुषं परेशम् ॥ स्वतेजसा
ध्वस्तगुणप्रवाहमात्मैकभावेन भजध्वमद्धा ॥ १८ ॥ निरस्तसंकल्पविकल्पमद्वयं द्वयात्मवादो परमात्मलम्भनम् ॥
अनादिमध्यान्तमजस्रनिर्वृतिं संज्ञप्तिमात्रं भजथामुया दृशा ॥ १९ ॥ दयया सर्वभूतेषु संतुष्ट्या येन केन वा ॥ सर्वे-
न्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्याशु जनार्दनः॥ २० ॥ अपहतसकलैषणामलात्मन्यविरतमेधितभावनोपहूतः॥निजजन-
वशगत्वमात्मनोऽयन्न सरति छिद्रवदक्षरः सतां हि ॥ २१ ॥

जिनके स्वरूपका ज्ञान हौने पर फिर संसार देखनेमें नहीं आता लय हो जाता है उस परमात्माको अपनेमें जानकर अपरोक्षरीतिसे भजन करो
॥ १८ ॥ संकल्प विकल्प अद्वयसै दूर द्वैत आत्मवादसे उपराम भयो, संकल्प विकल्प रहित अद्वैत स्वरूप द्वैतात्मवादसै रहित अनादि मध्य अंत
निरंतर आनंद मात्र ज्ञानघन ईश्वरको या दिव्यदृष्टिसे भजन करो ॥ १९ ॥ सब जीवमात्रमें तो दया करो, जो कुछ मिलै वामें संतोष करो, इंद्रियों-
की उपशांतिसे जनार्दन भगवान् शीघ्र प्रसन्न होय हैं॥२०॥ लोक धन और पुत्रकी इच्छा निवृत्त हौनेसे उज्ज्वल अन्तःकरणमें निरन्तर वृद्धिको प्रा-
प्त हुई भक्तिसै भावसै बुलाए हुए अपनी भक्तौंकी आधीनता प्रगट करते हुए अपने दासौंके हृदयमेंसे हृदयके आकाशकी समान क्षर नहीं होते॥२१॥

अव प्रचेता समुद्रके जलसें निकस चले तौ आकाशके रुद्धकरनेको मानौ ऊंचे बढेहैं ऐसे विदित होते वृक्षौंसे पृथ्वी ढकी देख उनपर क्रोध करते भये[1] ॥ ४४ ॥ हे राजन्! तब वे क्रोध कर पवनको मुखसे उगलते भए, यह धरतीको निर्वीरुध करवेकों मानो महाप्रलय आती भई ॥ ४५ ॥ भस्म समान वृक्षनकूं करतेभए देख ब्रह्माजी आयकर बर्हिष्मानके पुत्रनको नीतिसे शांत करतेभए॥४६॥ तहां जरवेसे जो वृक्ष बाकी बचे वेभी डरकर ब्रह्माजीके उपदेशतें अपनी कन्या प्रचेतानकों देदेतेभए ॥४७॥ वे ब्रह्माजीकी आज्ञासे वृक्ष कन्यासे व्याह करते भए जिस कन्यामें पूर्व जन्मके ब्रह्मके पुत्र

अथ निर्याय सलिलात्प्रचेतस उदन्वतः॥ वीक्ष्याकुप्यन्द्रुमैश्छन्नां गां गां रोद्धुमिवोच्छ्रितैः ॥४४॥ ततोग्निमारुतौ राजन्नमुञ्चन्मुखतो रुषा ॥ महीं निर्वीरुधं कर्तुं संवर्तक इवात्यये ॥४५॥ भस्मसात्क्रियमाणांस्तान्द्रुमान्वीक्ष्य पि[illegible]हः ॥ आगतः शमयामास पुत्रान्बर्हिष्मतो नयैः ॥४६॥ तत्रावशिष्टा ये वृक्षा भीता दुहितरं तदा ॥ उज्जह्रुस्ते प्रचेतोभ्य उपदिष्टाः स्वयंभुवा ॥ ४७ ॥ ते च ब्रह्मण आदेशान्मारिषामुपयेमिरे ॥ यस्यां महदवज्ञानादजन्यजनयोनिजः ॥ ४८ ॥ चाक्षुषे त्वन्तरे प्राप्ते प्राक्सर्गे कालविद्रुते॥ यः ससर्ज प्रजा इष्टाः स दक्षो दैवचोदितः ॥४९॥ यो जायमानः सर्वेषां तेजस्तेजस्विनां रुचा ॥ स्वयोपादत्त दाक्ष्याच्च कर्मणां दक्षमब्रुवन् ॥५० ॥ तं प्रजासर्गरक्षायामनादिरभिषि[illegible]य च ॥ युयोज युयुजेऽन्यांश्च स वै सर्वप्रजापतीन्॥ ५१ ॥ इति श्रीभा०चतुर्थ० प्रचेतसां गृहे दक्षोत्पत्तिवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

दक्षजी महादेवके अपमानसे क्षत्रियहुए ॥ ४८ ॥ जो शरीर ब्रह्माका पुत्र था यही कालगतिसे नष्ट होकर प्रचेतौंके यहां जन्मा इस दक्षने हरि इच्छासे चाक्षुष मन्वन्तरमें यथायोग्य प्रजा उत्पन्न की ॥ ४९ ॥ सबतेजस्वीनके मध्यमे जन्मतेही अपनी कांतिसे अधिक हुए औरोंकी कांति हरली दक्षता अर्थात् चतुरतासे सबकर्मोंमें सुघड रहे याते सब दक्ष दक्ष कहिते भए ॥ ५० ॥ प्रजाके सर्गकी रक्षामें ब्रह्माजी वाकों अभिषेक करतेभए, वो दक्ष और मरीचिआदि प्रजापतीनको अपने अपने काममें लगावतेभए॥५१॥ इति श्रीभागवतभाषाटीकायां चतुर्थ० दक्षोत्पत्तिवर्णनं नाम त्रिंशोध्यायः॥३०॥

---

१ प्रचेतौंने वृक्षौंपर इस कारण कोप किया कि इस समय वे राजको जाते है इन्हौंने पृथ्वीको घेर लिया मार्ग नहीं देते इस कारण तेजमें स्थित हो क्रोध किया।

२ "और सब श्रीकृष्ण गुण ऐसे गाते भए ॥ सोरठ तिताला ॥ सब तज भजिले नंदकुमार ॥टेर॥ और भजे तेरो काम न सारि है मिटे न भवजंजार ॥ जहां जहां जन्मलियो वह विधिते जुरे सघनके भार ॥ जेहि काटनकू सामृथ हरिको तीक्षण नामकुठार ॥ वेद पुराण भागवत गीता सबको यहै व्रतसार ॥ भवसमुद्र हरिपदनौकाबिन कौन उतारै पार यह जिय जान येही क्षण भजले बीत जाय महासार ॥ ३ ॥ सूरदास यह समोमायनो दुर्लभ यह संसार" ॥ ४ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले कि जब प्रचेतौंको सुख भोगते सहस्रों वर्ष वीत गये तब वे सब भगवद्वचनका स्मरण कर ज्ञानको प्राप्त हो पुत्रनपर स्त्रीकों छोड घरसें संन्यास लेकर चले जाते भए ॥ १॥ सब जीवमात्रमें आत्मज्ञानकी दृष्टि कर ब्रह्मयज्ञमें दीक्षित होयकर पश्चिमकी दिशामें समुद्रतीर पर जाजलि नामक ऋषिसिद्धके स्थलमें जाते भए ॥ २ ॥ प्राण मन वचन जीत दृष्टि आसन जीत, शांत समानविग्रह होय, निर्मल परब्रह्ममें आ-

मैत्रेय उवाच ॥ तत उत्पन्नविज्ञाना आश्वधोक्षजभाषितम् ॥ स्मरन्त आत्मजे भार्यां विसृज्य प्राव्रजन्गृहात् ॥ १ ॥ दीक्षिता ब्रह्मसत्रेण सर्वभूतात्ममेधसा ॥ प्रतीच्यां दिशि वेलायां सिद्धोऽभूद्यत्र जाजलिः ॥२ ॥ तान्निर्जितप्राणमनोवचोदृशो जितासनाञ्छान्तसमानविग्रहान् ॥ परेऽमले ब्रह्मणि योजितात्मनः सुरासुरेड्यो ददृशे स्म नारदः ॥ ३॥ तमागतं त उत्थाय प्रणिपत्याभिनन्द्य च ॥ पूजयित्वा यथादेशं सुखासीनमथास्तुवन् ॥ ४॥ प्रचेतस ऊचुः ॥ स्वागतं ते सुरर्षेद्य दिष्ट्या नो दर्शनं गतः ॥ तव चङ्क्रमणं ब्रह्मन्नभयाय यथा रवेः ॥ ५ ॥ यदादिष्टं भगवता शिवेनाधोऽक्षजेन च ॥ तद्गृहेषु प्रसक्तानां प्रायशः क्षपितं प्रभो ॥ ६ ॥

त्माकूं लगायकर बैठे थे उस समय सुर असुरौंसे स्तुतिको प्राप्त नारदजी उन्हें दिखाई दिये ॥ ३ ॥ तिनकूं आए देख उठ प्रणामकर सराहनासे यथाविधि पूजन करकै सुखसे बैठे नारदजीसे प्रचेता बोले ॥ ४ ॥ प्रचेता बोले कि हे सुरर्षे! आज भले आए, आपको मंगलमय दर्शन भयो, हे ब्रह्मन्! जैसे सूर्यको आगमन अभयके लिये है, तैसे आपको पर्यटन है ॥ ५ ॥ हे प्रभो! शिवजी भगवानने जो ज्ञान हमको दीनो हो, सो हम

स्मरण होयहै ॥ २८ ॥ प्रभुओंके स्मरण करनेसे दीन पुरुषोंकी शांति होजाती है और जब आप क्षुद्र प्राणियोंकेभी हृदयमें विराजते हो तौ हमारे मनोरथोंको क्यों न जानोगे ॥ २९ ॥ हे जगतःपते ! येही वर हमको वांछित है कि हमारे ऊपर अपवर्गदाता गुरु गतिरूप आप प्रसन्न भए ॥ ३० ॥ हे नाथ ! परैसें परै जो आप हो तिनसे ये वर मांगें है कारण कि भक्तोंको देने योग्य आपकी विभूतियोंका अंत नही है इसी कारण आप आनंद नाम प्रसिद्ध हो ॥ ३१ ॥ अनायाससे भ्रमरको जब कल्पवृक्ष मिलजाय तौ वो औरकी सेवा नहीं करै है, तैसेई तुम्हारे चरणकमलकों प्राप्त होयकर जीव साक्षात् कहां कहा वरैगो ॥ ३२ ॥ जबतक तुम्हारी मायाकरकै व्याप्त या संसारमें कर्म करकै घूमैं है, तबतक आपके प्रसंग करवेवारे हमको जन्म

येनोपशान्तिर्भूतानां क्षुल्लकानामपीहताम्॥अन्तर्हितोऽन्तर्हृदये कस्मान्नो वेद नाशिषः॥२९॥ असावेव वरोस्माकमीप्सितो जगतः पते ॥ प्रसन्नो भगवान्येषामपवर्गगुरुर्गतिः॥३०॥ वरं वृणीमहेऽथापि नाथ त्वत्परतः परात् ॥ नह्यन्तस्त्वद्विभूतीनां सोऽनन्त इति गीयसे ॥ ३१ ॥ पारिजातेऽञ्जसा लब्धे सारङ्गोऽन्यं न सेवते ॥ त्वदङ्घ्रिमूलमासाद्य साक्षात् किं किं वृणीमहि ॥ ३२ ॥ यावत् ते मायया स्पृष्टा भ्रमाम इह कर्मभिः ॥ तावद्भवत्प्रसङ्गानां सङ्गः स्यान्नो भवे भवे ॥ ३३ ॥ तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम् ॥ भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥३४॥ नेड्यन्ते कथा मृष्टास्तृष्णायाः प्रशमो यतः ॥ निर्वैरं यत्र भूतेषु नोद्वेगो यत्र कश्चन ॥ ३५ ॥ यत्र नारायणः साक्षाद्भगवान्न्यासिनां गतिः ॥ संस्तूयते सत्कथासु मुक्तसङ्गैः पुनः पुनः ॥ ३६ ॥

जन्ममें श्रीवैष्णवनको संग प्राप्त हो ॥ ३३ ॥ (१) श्रीभगवत्के संग करवेवारेनके लवमात्रसंगकी समान न स्वर्ग है न मोक्ष है तब मनुष्योंके राज्यकी तौ बातही क्या है ॥ ३४ ॥ जा सत्संगमे सुंदर कथानकी स्तुति करी जाय हैं जिनसे तृष्णाको नाश होय है, तथा सब जीवमात्रसें निर्वैरता होती है और कीसी प्रकारका उद्वेग नहीं रहता ॥ ३५ ॥ सब संन्यासीनकी गति देवेवारे साक्षात् भगवान् श्रीमन्नारायण भगवान्की सत्कथानमें मुक्तसंग प्राणी वारंवार भगवानकी स्तुति करते हैं ॥ ३६ ॥

---

१ याको दोहा है कि “ ॥ तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिये तुला एक संग ॥ तुलहि न ताहि सकल मिल, सौ सुख लव सत्संग ॥ १ ॥ ”

उन तुह्मारे भक्तौंका विचरना तीर्थौंके पवित्र करनैकी इच्छासै है संसारसै भय पाये पुरुषौंको उनका समागम क्यौं न अच्छा लगैगा ॥ ३७ ॥ हे आद्य ! आपके साक्षात् प्रिय सखा शिवजीके क्षणमात्र समागमसै जन्म मरणरूप असाध्य दुखौं रोगौंके दूर करने वैद्यरूप आपकी हम शरणको प्राप्त हुएहैं ॥ ३८ ॥ जो हमने पढो गुरुप्रसन्न करै विप्र बूढौंकी सदा सेवा की बडौंको नमस्कार कीनो, सुहृद भ्राता सब जीवमात्रसे वैर न करो यह उसीके फल है ॥ ३९ ॥ हे ईश्वर ! जो हमने सुंदर तप कीनो, अन्न विनखाये रहै, जलमें सोये, यह सब भूमा पुरुषके परितुष्ट करवेके लिये हमने करै

तेषां विचरतां पद्भ्यां तीर्थानां पावनेच्छया॥भीतस्य किं न रोचेत तावकानां समागमः॥३७॥वयं तु साक्षाद्भगवन्भवस्य प्रियस्य सख्युः क्षणसङ्गमेन॥सुदुश्चिकित्स्यस्य भवस्य मृत्योर्भिषक्तमं त्वाऽद्य गतिं गताः स्म॥३८॥यन्नः स्वधीतं गुरवः प्रसादिता विप्राश्च वृद्धाश्च सदानुवृत्त्या॥आर्या नताः सुहृदो भ्रातरश्च सर्वाणि भूतान्यनसूययैव॥३९॥यन्नः सुतप्तं तप एतदीश निरन्धसां कालमदभ्रमप्सु ॥ सर्वं तदेतत्पुरुषस्य भूम्नो वृणीमहे ते परितोषणाय॥४०॥मनुः स्वयंभूर्भगवान्भवश्च येऽन्ये तपोज्ञानविशुद्धसत्वाः ॥ अदृष्टपारा अपि यन्महिम्नः स्तुवन्त्यथो त्वात्मसमं गृणीमः ॥ ४१ ॥ नमः समाय शुद्धाय पुरुषाय पराय च॥ वासुदेवाय सत्त्वाय तुभ्यं भगवते नमः ॥४२॥ मैत्रेय उवाच॥इति प्रचेतोभिरभिष्टुतो हरिः प्रीतस्तथेत्याह शरण्यवत्सलः ॥ अनिच्छतां यानमतृप्तचक्षुषां ययौ स्वधामाऽनपवर्गवीर्यः ॥ ४३ ॥

हैं ॥ ४० ॥ मनु स्वयंभू भगवान् पितामह शिव और जो तप ज्ञानसे विशुद्ध सतोगुणी लोग जिनके पारकों न देखकर स्तुति करते भये, तैसेई अपनी बुद्धिके अनुसार हमभी स्तुति करै हैं ॥ ४१ ॥ सम शुद्ध पुरुषपर वासुदेव सत्वगुणमय भगवान् श्रीमन्नारायणके अर्थ नमस्कार हो ॥ ४२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि ऐसें प्रचेतोंसे स्तुतिको प्राप्तहो शरणागतवत्सल वीर्यवान हरि प्रसन्न हो बहुत अच्छा तुह्मारे सब मनोरथ पूरे होय ऐसे कहि अपने धाम श्रीवैकुंठको पधारे जानेके समय प्रचेता उन्है अतृप्त दृष्टिसै देखतेथे उनकी यह इच्छा नहीं थी कि भगवान यहांसै जांय ॥ ४३ ॥

हे नृपनन्दनो! कंडूऋषिके सकासते प्रम्लोचा अप्सराको कमललोचना कन्या प्राप्त भई ही सो वो वाको वनमें त्याग गई, सो वृक्षोंने ग्रहणकर लीनी "याकी कथा ऐसी है कि एकसमय कंडुऋषि तप करते थे, सो उनके तप नाशके अर्थ इन्द्रकी भेजी प्रम्लोचा अप्सरा कंडुनामक ऋषिको रमण करातीभई, जब वो स्वर्गकूं जानेलगी तो कंडुसे भई बेटीको वृक्षोंमें त्याग चली गई " ॥ १३ ॥ क्षुधासे व्याकुल रोती कन्याके दुखसें दयालु वृक्षोंके राजा चन्द्रमा अमृतभरी कन उगरिया उसै प्यातेभए ॥ १४ ॥ प्रजाके रचवेमें मेरी सेवा करवेवारे तुह्मारे पिताने तुह्मै प्रजाकी सृष्टिके निमित्त आज्ञा की है उस आज्ञाको पूर्ण करनेके निमित्त उस कन्याको की विवाहो शीघ्रता करो ॥१५॥ एकसे धर्मशीली तुम सबके मध्यमें वो एकही सुमध्य-

कण्डोः प्रम्लोचया लब्धा कन्या कमललोचना ॥ तां चापविद्धां जगृहुर्भूरुहा नृपनन्दनाः ॥ १३ ॥ क्षुत्क्षामाया मुखे राजा सोमः पीयूषवर्षिणीम् ॥ देशिनीं रोदमानाया निदधे स दयाऽन्वितः ॥ १४ ॥ प्रजाविसर्ग आदिष्टः पित्रा मामनुवर्तता ॥ तत्र कन्यां वरारोहां तामुद्वहत मा चिरम् ॥ १५ ॥ अपृथग्धर्मशीलानां सर्वेषां वः सुमध्यमा ॥ अपृथग्धर्मशीलेयं भूयात्पत्न्यर्पिताशया ॥ १६ ॥ दिव्यवर्षसहस्राणां सहस्रमहतौजसः ॥ भौमान्भोक्ष्यथ भोगान्वै दिव्यांश्चानुग्रहान्मम ॥ १७ ॥ अथ मय्यनपायिन्या भक्त्या पक्वगुणाशयाः ॥ उपयास्यथ मद्धाम निर्विद्य निरयादतः ॥ १८॥ गृहेष्वाविशतां चापि पुंसां कुशलकर्मणाम् ॥ मद्वार्तायातयामानां न बन्धाय गृहा मताः ॥ १९ ॥ नव्यवद्धृदये यज्ज्ञो ब्रह्मैतद्ब्रह्मवादिभिः ॥ न मुह्यन्ति न शोचन्ति न हृष्यन्ति यतो गताः ॥ २० ॥

मा तुह्मारे समानशील करवेवारी और तुममें मन लगानेहारी होगी उसका धर्म स्वभाव तुमहीसा होगा ॥ १६ ॥ मेरी कृपासे दिव्यसहस्रवर्षौंतक महाबली भूमिके और स्वर्गके भोग भोगोगे और तुह्मारी सामर्थ्य अप्रतिहत रहैगी ॥ १७ ॥ पीछे मुझमें अखंड भक्ति कर काम क्रोधादि वासनाओंको त्याग इस नरकरूप संसारसै वैराग्यको प्राप्त हो मेरे लोकको प्राप्त होगे ॥ १८ ॥ जो प्राणी गृहस्थाश्रममें स्थित होकर ईश्वरार्पण कर्म करै और मेरी कथामें समय व्यतीत करै उन्हें घर बंधन रूप नहीं होता ॥ १९ ॥ जहां ब्रह्मवेत्ता कथा कहते हैं वहां श्रोताओंके अन्तःकरणमें मैं सर्वज्ञ ईश्वर क्षण क्षणमें नवीनकी समान प्रगट होताहूं और मेरी प्राप्ति हौनेसे उन्है मोह शोक और हर्ष नहीं रहता ॥ २० ॥

114

मैत्रेयजी बोले कि सब पुरुषार्थके देनेहारे परम उपकारी सुहृद् भगवानका यह वचन सुन भगवानके दर्शनसे रज तमके मल दूर हो जानेसे शुद्ध मनवाले वे प्रचेता गदगद वाणीसे हाथ जोड़ स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ प्रचेता बोले, कि सब क्लेशके विनाश करनेहारे जिनके उदय मनगुण वेदमें गाये जातेहै तिन ईश्वके अर्थ नमस्कार होय, मन वचनके वेगसे अधिक वेगवारे, सब इंद्रियोंके मार्गसे जिनका मार्ग नहीं जाना जाता उनके अर्थ नमस्कार होय ॥ २२ ॥ अपनी निष्ठाकरके शुद्ध शांत और मनसे, यह मिथ्यारूप संसार भासता है तिनके अर्थ नमस्कार होय,जगत्की उत्पत्ति पालन नाशमें मायागुणकरके विग्रह जिनोने धारे तिनके अर्थ नमस्कार होय॥२३॥विशेष करके शुद्ध सत्वकी देहवारे सब दुःखहारी संसारहारी ज्ञानवारे वासुदेव श्रीकृष्ण सब यादवनके उत्पत्तिकारीके अर्थ नमस्कार होय ॥२४॥ हे कमलेक्षण ! कमलनाभ कमलमाली कमलसम चरणवारे तुम ईश्वरके अर्थ नमस्कार होय ॥२५॥ कमलके केसर समान पीरे निर्मल वस्त्रवारेके अर्थ नमस्कार होय है, सब जीवनमें निवास करनेहारे सबके साक्षीके अर्थ नमस्कारको संयोग होय ॥ २६ ॥ हमसरीके क्लेशीनको जो आपने सब क्लेशके क्षय करवेवारो रूप प्रगट कर्यो सो बडी कृपा करी, अब यासे और कहा कृपा करोगे ॥२७॥ हे अभद्रनाशन ! समर्थोंको दीनके ऊपर ऐसेई करनो योग्य है, जो अपनी बुद्धि करके समय समयमें आपको वारंवार

मैत्रेय उवाच ॥ एवं ब्रुवाणं पुरुषार्थभाजनं जनार्दनं प्राञ्जलयः प्रचेतसः ॥ तद्दर्शनध्वस्ततमोरजोमला गिराऽगृणन्गद्गदया सुहृत्तमम् ॥ २१ ॥ प्रचेतस ऊचुः ॥ नमो नमः क्लेशविनाशनाय निरूपितोदारगुणाह्वयाय ॥ मनोवचोवेगपुरोजवाय सर्वाक्षमार्गैरगताध्वने नमः ॥ २२ ॥ शुद्धाय शान्ताय नमः स्वनिष्ठया मनस्यपार्थं विलसद्द्वयाय ॥ नमो जगत्स्थानलयोदयेषु गृहीतमायागुणविग्रहाय ॥ २३ ॥ नमो विशुद्धसत्त्वाय हरये हरिमेधसे ॥ वासुदेवाय कृष्णाय प्रभवे सर्वसात्वताम् ॥२४॥ नमः कमलनाभाय नमः कमलमालिने ॥ नमः कमलपादाय नमस्ते कमलेक्षण ॥ २५ ॥ नमः कमलकिञ्जल्कपिशङ्गामलवाससे ॥ सर्वभूतनिवासाय नमोऽयुङ्क्ष्महि साक्षिणे ॥२६॥ रूपं भगवता त्वेतदशेषक्लेशसंक्षयम् ॥ आविष्कृतं नः क्लिष्टानां किमन्यदनुकम्पितम् ॥२७॥ एतावदेव प्रभुभिर्भाव्यं दीनेषु वत्सलैः ॥ यदनुस्मर्यते काले स्वबुद्ध्याऽभद्ररन्धन ॥ २८ ॥

उसका लिंगदेहसे विच्छेद नहीं होता ॥ ७३ ॥ गर्भमें बालकपनमें ऐसा स्थूलदेहका अभिमान प्रतीत नहीं होता जैसा तरुणाईमें एकादश इन्द्रियोंसे प्रतीत होताहै जैसे अमावास्यामें चन्द्रमाका चिन्ह होनेपरभी नहीं दीखता ऐसेही बाल और गर्भ अवस्थामें स्थूलदेहका अभिमान विद्यमान होतेभी नहीं दीखता इससे यह सिद्ध है जबतक लिंगशरीर है तबतक स्थूलदेहका अभिमान नहीं मिटता ॥ ७४ ॥ अर्थके विद्यमान होनेमें संसारकी निवृत्ति नहीं होती क्यों कि विषयोंके ध्यान करनेसे स्वप्नमें जैसे अनर्थका आगमन हो जाताहै विना जागे वह नहीं छूटता ऐसे विषयोंके

गर्भे बाल्येप्यऽपौष्कल्यादेकादशविधं तदा ॥ लिङ्गं न दृश्यते यूनः कुह्वां चन्द्रमसो यथा ॥ ७४ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ ७५ ॥ एवं पञ्चविधं लिङ्गं त्रिवृत्षोडश विस्तृतम् ॥ एष चेतनया युक्तो जीव इत्यभिधीयते ॥ ७६ ॥ अनेन पुरुषो देहानुपादत्ते विमुञ्चति ॥ हर्षं शोकं भयं दुःखं सुखं चानेन विन्दति ॥ ७७ ॥ यथा तृणजलूकेयं नापयात्यपयाति च ॥ न त्यजेन्म्रियमाणोपि प्राग्देहाभिमतिं जनः ॥ ७८ ॥

ध्यान छोडे विना संसार नहीं जाता ॥ ७५ ॥ ऐसे पंचभूतात्मक त्रिगुणमय एकादश इंद्रिय पंचतन्मात्राके विकारात्मक यह लिंगदेह बुद्धिकरकै जब चेतनसे युक्त होयहै तब जीव कह्यो जायहै लिंगशरीरके त्यागपर अपने रूपको प्राप्त होताहै ॥ ७६ ॥ या जीव करकै पुरुष देहनकूं प्राप्त होयहै त्यागै है हर्ष शोक भय दुःख सुख लिंगदेहके निमित्तही प्राप्त होयहै ॥ ७७ ॥ यदि कोई कहै कि स्थूल

यावदन्यं न विन्देत व्यवधानेन कर्मणाम् ॥ मन एष मनुष्येन्द्र भूतानां भवभावनम् ॥७९॥ यदाऽक्षैश्चरितान्ध्यायन्कर्माण्याचिनुतेऽसकृत् ॥ सति कर्मण्यविद्यायां बन्धः कर्मण्यनात्मनः ॥ ८० ॥ अतस्तदपवादार्थं भज सर्वात्मना हरिम् ॥ पश्यंस्तदात्मकं विश्वं स्थित्युत्पत्त्यप्यया यतः ॥ ८१ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ भागवतमुख्यो भगवान्नारदो हंसयोर्गतिम् ॥ प्रदर्श्य ह्यमुमामन्त्र्य सिद्धलोकं ततोऽगमत् ॥८२॥ प्राचीनबर्हीं राजर्षिः प्रजासर्गाभिरक्षणे॥ आदिश्य पुत्रानगमत्तपसे कपिलाश्रमम् ॥ ८३ ॥ तत्रैकाग्रमना वीरो गोविन्दचरणाम्बुजम् ॥ विमुक्तसङ्गोऽनुभजन्भक्त्या तत्साम्यतामगात् ॥ ८४ ॥ एतदध्यात्मपारोक्ष्यं गीतं देवर्षिणानघ ॥ यः श्रावयेद्यः शृणुयात्स लिङ्गेन विमुच्यते ॥८५॥

छोडकर जब दूसरे शरीरमें यह प्रवेश करै तब इसकी मुक्ति हो जाय सो नहीं जैसे जोक जबतक दूसरी घासको नहीं पकडती तबतक पहलीको नहीं छोडती इसी प्रकार मरण समयभी जबतक दूसरे देहको प्राप्ति न हो जाय तबतक यह पूर्वदेहके अभिमानको नहीं त्यागन करता इस कारण हे राजन्! यह मनही प्राणियोंको इस संसारका हेतु है ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ जिस समय इन्द्रियोंके आचरण किये कर्मोंके यह मनुष्य वारंवार ध्यान करता कर्म करता है उन्ही कर्मोंके संबंधमें मन संसारका कारण है यद्यपि आत्मा असंग है तथापि अज्ञानके कारण जड़ पदार्थोंके संगमें बंधनसा प्रतीत होता है ॥ ८० ॥ याते इन सबके दूर करवेके लिये सर्वात्मभाव करकै श्रीहरिको भजन करो विश्व भगवद्रूप देखो जाते उत्पत्ति पालन नाश होय हैं ॥ ८१ ॥ मैत्रेयजी बोले कि भागवतोंमें मुख्य भगवान्नारदजी जीव ईश्वरकी गति दिखायकर यासें आज्ञा ले सिद्ध सत्यलोकको जाते भए ॥ ८२ ॥ प्राचीनबर्हि राजर्षि प्रजासर्गकी रक्षा करवेमें सब पुत्रनको लगाय कर तपके अर्थ गंगासागर पर कपिलाश्रममें जाते भये और सब संग त्याग करते भये ॥ ८३ ॥ तहां जाय वह वीर एकाग्र मन कर गोविंदचरणांबुजको भजतो भयो भक्ति करकै भगवत्की समान भावको प्राप्त भयो ॥८४॥ हे अनघ ! ये अध्यात्म पारोक्ष्य देवर्षिने गायो है, जो याकों सुनै सुनावै वो देहसे विमुक्त होय है[1] ॥८५ ॥

---

[1] राजाको नारदजीने गूढ वचनसै इस कारण उपदेश किया कि दृष्टांत दार्ष्टांतसै राजा शीघ्र ज्ञानी होजायगा और सहजमें समझ जायगा इसी कारण राजाको शीघ्र ज्ञान हुआ ।

एतन्मुकुन्दयशसा भुवनं पुनानं देवर्षिवर्यमुखनिःसृतमात्मशौचम्॥यः कीर्त्यमानमधिगच्छति पारमेष्ठ्यं नास्मिन्भवे भ्रमति मुक्तसमस्तबन्धः ॥८६॥ अध्यात्मपारोक्ष्यमिदं मयाऽधिगतमद्भुतम् ॥ एवं स्त्रियाऽऽश्रमः पुंसश्छिन्नोऽमुत्र च संशयः॥८७॥इति श्रीभा०महा०चतुर्थ० प्राचीनबर्हिर्नारदसंवादेऽध्यात्मज्ञानवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥२९॥ विदुर उवाच॥ ये त्वयाऽभिहिता ब्रह्मन्सुताः प्राचीनबर्हिषः ॥ ते रुद्रगीतेन हरिं सिद्धिमापुः प्रतोष्य काम् ॥ १ ॥ किं बार्हस्पत्येह परत्र वाऽथ कैवल्यनाथप्रियपार्श्ववर्तिनः ॥ आसाद्य देवं गिरिशं यदृच्छया प्रापुः परं नूनमथ प्रचेतसः॥ २ ॥ मैत्रेय उवाच॥ प्रचेतसोऽन्तरुदधौ पितुरादेशकारिणः॥ जपयज्ञेन तपसा पुरंजनमतोषयन् ॥३॥ दशवर्षसहस्रान्ते पुरुषस्तु सनातनः ॥ तेषामाविरभूत्कृच्छ्रं शान्तेन शमयन्रुचा ॥ ४ ॥

मुकुन्द यश युक्त भुवनको पवित्र करवेवारो देवर्षिवर्यके मुखसे निकरो भयो मनके शोधक इस ज्ञानको जो कीर्तन करै है, वो ब्रह्मलोकको जाय है, समस्तबन्धसे मुक्त होयकै या संसारमें कभीभी नहीं भ्रमैगा ॥ ८६ ॥ ये अद्भुत अध्यात्म परोक्ष ज्ञान मैंने तुमसे कह्यो, इससै देहाभिमान दूर हो जाता है तथा परलोकमें कर्म फल भोगनेके संदेहकी निवृत्ति होती है “ जबतक याके संशय मोह दूर न होय है तबतक मोक्ष न होय है क्योंकि ऐसे लिखा है श्लोकोयम् ॥ मोहं ब्रह्म विना न याति सततं दुःखं च मित्रं विना मार्तंडेन विना न नश्यति तमः शत्रुश्च भेदं विना॥ संतोषेण विना न लोभलहरी व्याधिश्च पथ्यं विना दारिद्र्यं च तथा न याति सततं श्रीकृष्णतुष्टिं विना ॥ ” ॥ ८७॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां चतुर्थस्कन्धे पुरंजनोपाख्याने अध्यात्मज्ञानसंपूर्णं नाम एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ विदुरजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! प्राचीनबर्हिके पुत्र जो तुमने कहेथे सो वे रुद्रगीत करके श्रीहरिको प्रसन्न कर कौनसी सिद्धिको प्राप्त होते भये ॥ १ ॥ हे बार्हस्पत्य श्रीबृहस्पतिके शिष्य ! कैवल्य नाथके प्रिय, उनके पासके वासी श्रीशिव शंकर देवको यदृच्छासे प्राप्त होयकर निश्चय करके सब प्रचेता वैकुंठकूं गये होंगे ॥ २ ॥ मैत्रेयजी बोले कि समुद्रके मध्यमें पिताकी आज्ञा करवेवारे प्रचेता जपरूप यज्ञसे सब पुरके जनमायवेवारे श्रीहरिको प्रसन्न करते भये ॥ ३ ॥ दससहस्र वर्षके अंतमें सनातन पुरुष तिनके तपके कष्टको शांत रुचिसे शमन करते तिनके मध्यमें प्रगट होते भए ॥ ४ ॥

118

सुमेरुके शृंगपर मेघकी समान गरुडजीके ऊपर बैठे होय पीतवसन पहिरे, कौस्तुभ मणि गलेमें धारे, सब दिशानके अंधकारको नाश करतेभये॥५॥ प्रकाशक कनकवर्ण समान भूषणकरकै कपोल और मुख प्रकाशमान है। दीप्तिमान किरीट आठ आयुध भुजा ओंमें धारे पार्षद मुनि देवताओंसे सेवित और गरुडजी अपने पंखौंके शब्दसे किन्नरौंके संग उनकी कीर्ति गारहे थे ॥ ६ ॥ पुष्ट और विशाल आठ भुजाऔंके बीचमें वनमालाकी शोभा हो रही है इस प्रकार बर्हिष्मान् राजाके शरणागत पुत्रनसे मेघकी गंभीर शब्दसम वाणीसे दयायुक्त अवलोकनसे बोले॥७॥ भगवान् बोले कि हे नृपनंदनहो! वर मांगो, तुह्मारो भद्र होय तुम अपने सुहृदतासे सब येक हो तुह्मारी सुहृदतासें हम तुमपर प्रसन्न हुए ॥ ८ ॥ जो कोई संध्यामें

सुपर्णस्कन्धमारूढो मेरुशृङ्गमिवाम्बुदः ॥ पीतवासा मणिग्रीवः कुर्वन्वितिमिरा दिशः ॥५॥ काशिष्णुना कनकवर्णवि-
भूषणेन भ्राजत्कपोलवदनो विलसत्किरीटः ॥ अष्टायुधैरनुचरैर्मुनिभिः सुरेन्द्रैरासेवितो गरुडकिन्नरगीतकीर्तिः ॥ ६ ॥
पीनायताष्टभुजमण्डलमध्यलक्ष्म्या स्पर्धच्छ्रिया परिवृतो वनमालयाद्यः ॥ बर्हिष्मतः पुरुष आह सुतान्प्रपन्नान्पर्ज-
न्यनादरुतया सघृणावलोकः ॥ ७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वरं वृणीध्वं भद्रं वो यूयं मे नृपनन्दनाः ॥ सौहार्देनाऽपृथ-
ग्धर्मास्तुष्टोऽहं सौहृदेन वः ॥ ८ ॥ योनुस्मरति संध्यायां युष्माननुदिनं नरः ॥ तस्य भ्रातृष्वात्मसाम्यं तथा भूतेषु
सौहृदम् ॥ ९ ॥ ये तु मां रुद्रगीतेन सायं प्रातः समाहिताः ॥ स्तुवन्त्यहं कामवरान्दास्ये प्रज्ञां च शोभनाम् ॥ १० ॥
यद्यूयं पितुरादेशमग्रहीष्ट मुदान्विताः ॥ अथो व उशती कीर्तिर्लोकाननुभविष्यति ॥ ११॥ भविता विश्रुतः पुत्रोऽ-
नवमो ब्रह्मणो गुणैः ॥ य एतामात्मवीर्येण त्रिलोकीं पूरयिष्यति ॥ १२ ॥

दिनरात तुह्मारो स्मरण करै योगिनको भैयानमें प्यार रहैगो, और सब जीवमात्रमें सुहृदभाव होगो ॥ ९ ॥ जो कोई सावधान होयकर रुद्रगीतसो सायंकाल प्रातःकाल स्तुति करैगे, उनको सब मनोरथ हम दैंगे, और सुन्दर उनको बुद्धि दैंगे ॥ १० ॥ जो तुम आनन्दमें युक्त होयकर पिताकी आज्ञा करतेभये, यातैं महासुन्दर कीर्ति तुह्मारी सब लोकनमें होयगी ॥ ११ ॥ गुणोंमें ब्रह्माको समान विख्यात पुत्र तुह्मारा होगा जो अपने वीर्यकरकै या त्रिलोकोको पूरण करैगा ॥ १२ ॥

इस्सै यह कर्ता नहीं हो सक्ता अन्तःकरणही कर्ता होकर दूसरी देहमेंभी जाकर वही भोगताहै ॥ ६४ ॥ सम्पूर्ण इंद्रियोंको अपने विषयोंके संग एक कालमें सम्बंध होनेपरभी उन विषयौंका ज्ञान एकसाथ नहीं होता इस्सै इन्द्रियोंपर अधिकार करनेहारा कोई दूसरा प्रतीत होता है वही चित्त है उसका जब जिस इन्द्रियसै संयोग होता है वह उसीको ग्रहण करता है इसी प्रकार चित्तकी वृत्तिभी एक समय उत्पन्न न होकर क्रमानुसार होतीहैं इसीसै विदित होता है कि चित्तवृत्तिका उत्पादक पूर्व देहका कर्म है जिससमय जो कर्म भोगनेको होताहै चित्तकी वृत्ति उसी प्रकारकी उत्पन्न होती है इससै पूर्व देहके कर्म मानना युक्ति युक्त है ॥६५॥ इस देहमें किसी समय ऐसी वस्तु स्वप्नमें दीखतीहै जो न कभी देखी न सुनी न अनुभव

यथानुमीयते चित्तमुभयैरिन्द्रियेहितैः ॥ एवं प्राग्देहजं कर्म लक्ष्यते चित्तवृत्तिभिः ॥ ६५ ॥ नानुभूतं क्व चानेन देहेनादृष्टमश्रुतम् ॥ कदाचिदुपलभ्येत यद्रूपं यादृगात्मनि ॥ ६६ ॥ तेनास्य तादृशं राजँल्लिङ्गिनो देहसंभवम् ॥ श्रद्धत्स्वानुभूतोर्थो न मनः स्प्रष्टुमर्हति ॥ ६७ ॥ मन एव मनुष्यस्य पूर्वरूपाणि शंसति ॥ भविष्यतश्च भद्रं ते तथैव न भविष्यतः ॥ ६८ ॥

की हो तौ उससै यही माना जाता है कि अवश्य यह अनुभव पूर्वदेहमें हुआ होगा ॥ ६६ ॥ कारण कि विना अनुभवकी वस्तु चित्तमें कदाचित नहीं आती इससै पूर्व देहका और इस देहका लिंग मन एकही हैं और पूर्वजन्मके संस्कार मनमें लगे हैं यह निश्चय और अनुभव है हे राजन्! इस वाक्यमें आप श्रद्धा कीजिये और मनसे स्पष्ट कीजिये ॥ ६७ ॥ इसीसै भूत भविष्य योनियोंका जन्म इस वर्तमानकालके प्राणिका जाना जाता है उसके चित्तकी वृत्ति देखकर शुभ अशुभ देखकर नीच योनिका जन्म प्रतीत होताहै आगेका जन्मभी उसके कृत्य देखकर युक्तिसे जान लिया जाताहै ॥ ६८ ॥

किन्हीका प्रश्न है कि यदि पूर्वजन्मकी अनुभव वार्ताही दीखती है तौ कटाशिर तथा दिनमें नक्षत्र इत्यादि असम्भव वस्तु क्यों देखती है इसका उत्तर यह है कि शिरका कटना प्रतिबिम्बमेंभी दीखता है और तारौंका प्रतिबिम्ब जलमें दीखता है यही वार्ता देशकाल और क्रिया (युद्ध आदि) का निद्राके दोषसै अन्तर दिखाती है इससै शंकाकी अवश्यकता नहीं पूर्वजन्म न माननेवालेकोभी तौ स्वप्ननिद्राका दोष मान्ना पडैगा ॥ ६९ ॥ सम्पूर्णविषय जिनका पुरुष अनुभव करता ध्यान करता है क्रमसै मनमें आते जाते हैं हां मनरहित पुरुषको कुछ भान नहीं हो सक्ता इसकारण विना अनुभवका कुछभी पदार्थ नहीं है किसी सब पदार्थ एक साथही मनमें उदय होते हैं इससै सब लोकौंके सब पदार्थ कभी

अदृष्टमश्रुतं चात्र क्वचिन्मनसि दृश्यते ॥ यथा तथाऽनुमन्तव्यं देशकालक्रियाश्रयम् ॥ ६९ ॥ सर्वे क्रमानुरोधेन
मनसीन्द्रियगोचराः॥आयान्ति वर्गशो यान्ति सर्वे समनसो जनाः ॥७०॥ सत्वैकनिष्ठे मनसि भगवत्पार्श्ववर्तिनि ॥
तमश्चन्द्रमसीवेदमुपरज्यावभासते ॥७१॥ नाहं ममेति भावोऽयं पुरुषे व्यवधीयते॥यावद् बुद्धिमनोऽक्षार्थगुणव्यूहो
ह्यनादिमान् ॥ ७२ ॥ सुप्तिमूर्च्छोपतापेषु प्राणायनविघाततः ॥ नेहतेऽहमिति ज्ञानं मृत्युप्रज्वारयोरपि ॥ ७३ ॥

न कभी देखनेसै अनुभव किये स्वप्नमें आते हैं ॥ ७० ॥ केवल सतोगुणी निष्ठावाला मन भगवानके ध्यानमें होता है उस समय यह सम्पूर्ण विश्व मनमें लगा प्रतीत होताहै जैसे राहु दीखता नहीं परन्तु चन्द्र संयोगसै दीखता है ऐसेही मन शुद्ध होनेपर सिद्ध योगियोंको एक कालमें सब जगत दीखता है ॥ ७१ ॥ बुद्धि मन इंद्रिय और विषयोंके समूह यह अनादि सम्बन्ध जबतक लिंगशरीर है तबतक इस जीवके स्थूल देहकां सम्बन्ध नहीं मिटता इससै स्थूलके न होनेसै लिंग देहमें कर्तृत्व और भोक्तापन रहनेसै उसकी मुक्ति नहीं हो सक्ति क्यों कि लिंगदेहका बुद्धि मनसै सम्बन्ध है ॥ ७२ ॥ सुषुप्ति मूर्छा अत्यंत दुःख मृत्यु ज्वरादिमें इंद्रियोंके व्यग्र होनेसे स्थूल देहका अहंकार जाता रहता है पर सूक्ष्मतासे रहता है उस समय

।२।

जो श्लोक पीछे कह्यो है वाकोही या दण्डकमें व्यासजीने व्याख्यान करो है ॥ पुष्पोंके समान धर्मवाली स्त्रीनके शरणरूप बागमें पुष्पोंकी मधुगन्धकी नाई अत्यन्त तुच्छ, काम्यकर्मके फलसें उत्पन्न, कामसुख लवमात्र जीभके स्वाद, शिश्नके विषयभोग आदिकों ढूंढते स्त्रीके उन विषयनमें मन लगायकर, भ्रमर गणके सुन्दर गीतकी नांई अति मनोहर वनिता आदि जनोंके सम्भाषण करनेमें अत्यन्त लोभित मन, कर्ण, बाला ये जीव आगे भेंडियानके यूथवत् अपनी आयूके हरवेवारे दिनरात कालके लवको न गिनकर घरमें विहार कर रहाहै और गुप्तरूपसे तेरे पीछे लगा हुआ काल भीतरही गुप्त बाणसै तेरा हृदय विदीर्ण करता है सो तुम्है अब अपनी आत्माका विचार करना उचित है ॥ ५६ ॥ सो तुम वा मृगकीसी चेष्टा

दण्डकम् ॥ सुमनःसधर्मणां स्त्रीणां शरण आश्रमे पुष्पमधुगन्धवत्क्षुद्रतमं काम्यकर्मविपाकजं कामसुखलवं जैह्व्यौपस्थ्यादि विचिन्वन्तं मिथुनीभूय तदभिनिवेशितमनसं षडङ्घ्रिगणसामगीतवदतिमनोहरवनितादिजनालापेष्वतितरामतिप्रलोभितकर्णमग्रे वृकयूथस्यात्मन आयुर्हरतोऽहोरात्रान्तान्काललवविशेषानविगणय्य गृहेषु विहरन्तं पृष्ठत एव परोक्षमनुप्रवृत्तो लुब्धकः कृतान्तोऽन्तःशरेण यमिह पराविध्यति तमिममात्मानमहो राजन्भिन्नहृदयं द्रष्टुमर्हसि ॥५६॥ स त्वं विचक्ष्य मृगचेष्टितमात्मनोऽन्तश्चित्तं नियच्छ हृदि कर्णधुनीं च चित्ते ॥ जह्यङ्गनाश्रममसत्तम यूथगाथं प्रीणीहि हंसशरणं विरम क्रमेण॥५७॥ प्राचीनबर्हिरुवाच॥ श्रुतमन्वीक्षितं ब्रह्मन्भगवान्यदभाषत॥ नैतज्जानन्त्युपाध्यायाः किं न ब्रूयुर्विदुर्यदि॥५८॥ संशयोऽत्र तु मे विप्र संछिन्नस्तत्कृतो महान्॥ ऋषयोऽपि हि मुह्यन्ति यत्र नेन्द्रियवृत्तयः ५९

अपने आत्माकी विचारो, और हृदयमें चित्तको आकर्षण कर चित्तमें बहिर्वृत्तिकूं रोध करो परं च असत्तमोंके यूथकी गाथावारे या संसारको त्याग कर जीवनके रक्षक ईश्वरकों प्रसन्न करो, क्रमकरकै सबसे विरामको प्राप्तहो ॥ ५७ ॥ प्राचीनबर्हि बोले कि हे ब्रह्मन् ! हे नारदजी ! जो अपने कह्यो सो हमनें सुनो विचारो परन्तु या ज्ञानको ये उपाध्याय जो [illegible] कर्मका उपदेश करै है वे कहा नहीं जानै है जो जानते है तो मोसे कह्यो क्यौ नहीं ॥५८॥ इस विषयमें उपाध्यायौंने बडा संदेहमें डालदिया था परंतु वह आपने सब दूर किया परन्तु यह एक और संदेह है कि जिससें ऋषिभी मोहको प्राप्त होतेहै और इन्द्रियौंकी वृत्तिभी नहीं जासक्ती ॥ ५९ ॥

जा देह करके पुरुष या जगमें कर्मोंका प्रारंभ करैं है, वा देहकों यहां छोडकर परलोकमें और देह सेवित कर्मनको ये जीव प्राप्त होय है ॥ ६० ॥ ये वेद वेत्तानका वाद जहां तहां सुनवेमै आवैं है तथा आपनेभी कहा कि पुरंजननें कर्मकर दूसरे शरीरसै भोगे मेरा प्रश्न यह है जो करै उसै कर्मका फल मिलना उचित है एक देहके किये कर्मका फल दूसरा देह कैसे भोगताहै जो करे उसै भोगना उचित है, दूसरा प्रश्न यह है कि मनुष्य जो कर्म करताहै वह थोडे समयमें अदृश्य हो जाताहै जो कर्म अदृश्य हो गया उसका फल पोछे मिलना कैसे संभव है ॥ ६१ ॥ श्रीनारदजी बोले कि जिस कर्तृत्व भोक्तृत्व स्थूल देहको नहीं है परन्तु मनकर कर्मोंका आरंभ करताहै अन्तःकरण स्थूल देहके संग नाशको प्राप्त नहीं होय है,

कर्माण्यारभते येन पुमानिह विहाय यम् ॥ अमुत्रान्येन देहेन जुष्टानि स यदश्नुते ॥ ६० ॥ इति वेदविदां वादः श्रूयते तत्र तत्र ह ॥ कर्म यत्क्रियते प्रोक्तं परोक्षं न प्रकाशते ॥ ६१ ॥ नारद उवाच ॥ येनैवारभते कर्म तेनैवामुत्र तत्पुमान् ॥ भुङ्क्ते ह्यव्यवधानेन लिङ्गेन मनसा स्वयम् ॥ ६२ ॥ शयानमिममुत्सृज्य श्वसन्तं पुरुषो यथा ॥ कर्मात्मन्याहितं भुङ्क्ते तादृशेनेतरेण वा ॥ ६३ ॥ ममैते मनसा यद्यदसावहमिति ब्रुवन् ॥ गृहीयात्तत्पुमान्राद्धं कर्म येन पुनर्भवः ॥ ६४ ॥

इस कारण जिस मनने वह कर्म कियाथा वही उसै भोगताहै ॥ ६२ ॥ जैसे सोते समय श्वास लेते हुए इस पुरुषका जाग्रत अवस्थाका अहंकार दूर हो जाताहै और उसमेंभी स्वप्न अवस्थामें वही अनेक सुख दुःख भोगताहै परन्तु जो मन जागृत अवस्थामें था वही स्वप्नमें है जब जीवित अवस्थामें भी अनेक देह प्राप्त होते हैं परन्तु भोक्ता मन एकही है इसी प्रकार दूसरे जन्ममेंभी यही भोगता जो यहां करताहै ॥ ६३ ॥ ये पुत्रादिक मेरे हैं ये हम हैं ऐसे कहताहुआ पुरुष महा अभिमान करताहै तो इस्सै यह जानिये कि मन अंतःकरणके अभिमानका स्थान स्थूल शरीर है परन्तु

कालकी कन्या साक्षात् जरा है जाकी कोईभी इच्छा नहीं करते यवनोंका राजा मृत्यु हौ उसनें लोकनाशके निमित्त जराको अपनी भगिनी बनाय ॥ २३ ॥ आधी व्याधी तिस यवनके सेनाके लोग हैं, सब जीवनके पीडामें शीघ्र वेगवारो प्रज्वारनामक विविधप्रकारको ज्वर है ॥ २४ ॥ ऐसे बहुत प्रकारके अध्यात्मादि त्रितापसे क्लिश्यमान देहमें देही तमोगुणमें होयकर वर्तती भयो ॥ २५ ॥ प्राण इंद्रिय मनके धर्म आत्मामें निश्चयकरकै यह निर्गुणजीव कामके लवमात्र सुखकूं ध्यान करता सोयजाय है मम अहम् कर्म करै है ॥ २६ ॥ जासमय भगवान परमगुरुकी आत्मा न जानकै पुरुष स्वप्रकाशक प्रकृतिके गुणोंमें आसक्त होय है ॥ २७ ॥ तब गुणोंको अभिमानीसे जीव अवश होयकर सात्विक राजस तामस कर्म करै है,

कालकन्या जरा साक्षाल्लोकस्तां नाभिनन्दति ॥ स्वसारं जगृहे मृत्युः क्षयाय यवनेश्वरः ॥२३॥ आधयो व्याधयस्तस्य सानेका यवनाश्वराः ॥ भूतोपसर्गाशुरयः प्रज्वारौ विविधज्वरः ॥ २४ ॥ एवं बहुविधैर्दुःखैर्दवभूतात्मसंभवैः ॥ क्लिश्यमानः शतं वर्षं देहे देही तमोवृतः ॥२५॥ प्राणेन्द्रियमनोधर्मानात्मन्यध्यस्य निर्गुणः ॥ शेते कामलवान्ध्यायन्ममाहमिति कर्मकृत् ॥ २६ ॥ यदात्मानमविज्ञाय भगवन्तं परं गुरुम् ॥ पुरुषस्तु विषज्जेत गुणेषु प्रकृतेः स्वदृक् ॥ २७ ॥ गुणाभिमानी स तदा कर्माणि कुरुतेऽवशः ॥ शुक्लं कृष्णं लोहितं वा यथा कर्माभिजायते ॥ २८ ॥ शुक्लात्प्रकाशभूयिष्ठाँल्लोकानाप्नोति कर्हिचित् ॥ दुःखोदर्कान्क्रियायासांस्तमःशोकोत्कटान्क्वचित् ॥ २९ ॥ क्वचित्पुमान्क्वचिच्च स्त्री क्वचिन्नोभयमन्धधीः ॥ देवो मनुष्यास्तिर्यग्वा यथाकर्मगुणं भवः ॥ ३० ॥ क्षुत्परीतो यथा दीनः सारमेयो गृहं गृहम् ॥ चरन्विन्दति यद्दिष्टं दण्डमोदनमेव वा ॥ ३१ ॥

जैसो कर्म करे तैसो जन्मैहै ॥ २८ ॥ सात्विक कर्म करनेसे महाप्रकाश युक्त लोकनमें जायहै, राजस कर्म करनेसे महादुःखदायक लोकनमें जायहै, क्रियाकरकै उन राजसकर्ममें वडो परिश्रम होयहै, तामसकर्म करनेसे महाशोकभरे लोकोंमें जायहै ॥ २९ ॥ कभी तौ पुरुष कभी स्त्री कभी नपुंसक ऐसी अंधी बुद्धि हो जाय है, देव मनुष्य पक्षी पशु होय है, जैसा कर्म गुण होय वैसो जन्म होय है ॥३०॥ भूंखे दीन और घर २ डोलते कुत्तेकी समान भाग्यसें कहीं मार खाय आवै है कहीं लड्डु खाय आवै है ॥ ३१ ॥

124

तैसे कामासक्तहृदयवारो जीव ऊचे नीचे मार्गमें घूमते ऊपर नीचे मध्यमें जाते हैं, भाग्यसें प्रिय अप्रियको प्राप्त होते है ॥ ३२ ॥ दुःख दूर करनेका सत्य उपाय तो दुर्लभ है जो करै तौभी प्रारब्धसे जीवोंसे शरीरसे होते हुए क्लेशोंमें किसी संकट यह यथार्थ रीतिसे नहीं छुट सक्ता ॥ ३३ ॥ जैसे बहुत बोझके भारको पुरुष शिरपर लेचले है कभी कंधापै धरे है, भार सब शरीरहीपर है, तैसेही सब याकी प्रतिक्रिया जीवपर है ॥ ३४ ॥ हे अनघ! एकांत कर्मसे कर्मको केवल प्रतीकार न होय सकै है या दोनो अविद्यासे हैं, जैसे स्वप्नमें स्वप्न जागेसे मालुम पडे है ॥३५॥ संसार अस-

तथा कामाशयो जीव उच्चावचपथा भ्रमन्॥ उपर्यधो वा मध्ये वा याति दिष्टं प्रियाप्रियम् ॥ ३२ ॥ दुःखेष्वेकतरेणापि दैवभूतात्महेतुषु ॥ जीवस्य न व्यवच्छेदः स्याच्चेत्तत्तत्प्रतिक्रिया ॥ ३३ ॥ यथा हि पुरुषो भारं शिरसा गुरुमुद्वहन्॥ तं स्कन्धेन स आधत्ते यथा सर्वाः प्रतिक्रियाः ॥ ३४ ॥ नैकान्ततः प्रतीकारः कर्मणां कर्म केवलम्॥ द्वयं ह्यविद्योपसृतं स्वप्ने स्वप्न इवानघ ॥ ३५ ॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ मनसा लिङ्गरूपेण स्वप्ने विचरतो यथा ॥ ३६ ॥ अथात्मनोऽर्थभूतस्य यतोऽनर्थपरम्परा ॥ संसृतिस्तद्व्यवच्छेदो भक्त्या परमया गुरौ ॥३७॥ वासुदेवे भगवति भक्तियोगः समाहितः॥ सध्रीचीनेन वैराग्यं ज्ञानं च जनयिष्यति ॥३८॥ सोऽचिरादेव राजर्षे स्यादच्युतकथाश्रयः ॥ शृण्वतः श्रद्दधानस्य नित्यदा स्यादधीयतः ॥ ३९ ॥ यत्र भागवता राजन्साधवो विशदाशयाः ॥ भगवद्गुणानुकथनश्रवणव्यग्रचेतसः ॥ ४० ॥

त्य है तथापि मनमें जबतक विषयोंका ध्यान रहै तबतक नहीं मिट सक्ता जैसे स्वप्न असत्य है परन्तु उपाधिरूप मनकी स्वप्नावस्था न गयेतक वह नहीं मिटता ॥ ३६ ॥ इसकारण अज्ञान कि जिसके हेतु परम पुरुषार्थरूप आत्माके अखंड प्रवाहवाला जगत हुआहै उस अज्ञानकी नष्टता गुरुरूप भगवानकी मतिसे होती है ॥ ३७ ॥ वासुदेव भगवानमें करो भयो भक्तियोग सुन्दरता करके वैराग्य और ज्ञान दोनोंको उत्पन्न करै है ॥३८॥ हे राजर्षे! सो थोरेसेमें अच्युतकी कथा सुनवेसे श्रद्धासे नित्य याके पढनेसे भगवान् प्रसन्न होय है ॥ ३९ ॥ हे राजन्! भागवत साधु निर्मल

अंतःकरणवारे भगवतके गुण कथाश्रवणमें जिनके चित्त सदा लगे हैं वे जहां हों ॥ ४० ॥ तहां मधुनामा दैत्यके मारवेवारे श्रीकृष्णके चरित्रामृतकी नादियें सब ओरसे वहैं हैं, सो हे नृप ! जो गंभीर कर्णोंसे अत्यन्त पान करते है तिनको क्षुधा पिपासा भय शोक मोह नहीं स्पर्श करैं हैं ॥ ४१॥ कारण कि सत्संग विना स्वयं विचारसै ऊपर कहे उपद्रवौंसै आलसके कारण रसकी प्राप्ति कठिन है विना इसके भगवतकथारूप अमृत सागरमें प्रीति होनी कठिन है ॥ ४२ ॥ प्रजाके पतिनके पति साक्षात् भगवान् शिव मनु दक्षादिक प्रजाके अध्यक्ष नैष्ठिक सनकादिक ॥४३ ॥ मरीचि अत्रि अंगिरा

तस्मिन्महन्मुखरिता मधुभिच्चरित्रपीयूषशेषसरितः परितः स्रवन्ति॥ता ये पिबन्त्यवितृषो नृप गाढकर्णैस्तान्न स्पृशन्त्यशनतृड्भयशोकमोहाः ॥ ४१ ॥ एतैरुपद्रुतो नित्यं जीवलोकः स्वभावजैः॥ न करोति हरेर्नूनं कथामृतनिधौ रतिम् ॥ ४२ ॥ प्रजापतिपतिः साक्षाद्भगवान्गिरिशो मनुः॥ दक्षादयः प्रजाध्यक्षा नैष्ठिकाः सनकादयः ॥ ४३ ॥ मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ॥ भृगुर्वसिष्ठ इत्येते मदन्ता ब्रह्मवादिनः॥४४॥अद्यापि वाचस्पतयस्तपोविद्यासमाधिभिः॥पश्यन्तोऽपि न पश्यन्ति पश्यन्तं परमेश्वरम्॥४५॥शब्दब्रह्मणि दुष्पारे चरन्त उरुविस्तरे॥मन्त्रलिङ्गैर्व्यवच्छिन्नं भजन्तो न विदुः परम्॥४६॥यदा यमनुगृह्णाति भगवानात्मभावितः॥स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्॥४७॥

पुलस्त्य पुलह क्रतु भृगु वसिष्ठ ये मोपर्यंत ब्रह्मवादि भगवत्कथामें प्रीति करते हैं ॥ ४४ ॥ परन्तु अबतकभी वाणियोंके वक्ता तप विद्या समाधि करकै सबके देखवेवारे परमेश्वरकों देखतेहुएभी न देखै है ॥ ४५ ॥ अनन्त महाविस्तृत शब्दब्रह्ममें मंत्ररूप चिन्हकरकै विचरते हुए सबमें वासी परमेश्वरको भजन करते हुएभी नहीं जानते ॥ ४६ ॥ जा समय भगवान् आत्मासे भावित हो जापर अनुग्रह करै है, तब वह मनुष्यलोक और वेदमें सदा लगनेहारी बुद्धिको त्याग करै है ॥ ४७ ॥

126

हे बर्हिष्मन् ! ताते अज्ञानसे सत्यकी नाईं विहित होते कर्ममें परमार्थ दृष्टि मत करो वे कर्म श्रोत्रइंद्रियस्पार्शी हैं सिद्धान्त वस्तुके स्पश करवेवारे नहीं
है ॥४८॥ वेदका अभिप्रायको न जानकर जो कहतेहैं कि वेदका तात्पर्य केवल कर्मपर है व यज्ञके धूमसै अपनी बुद्धि मलीन होनेके कारण आत्मतत्त्वके
तात्पर्यवाले ईश्वरहीका कथन करनेहारे वेदके यथार्थ अभिप्रायको नहीं जान्ते ॥ ४९ ॥ पूर्वको अग्रभागवाले कुश बिछायकर सब
भूमंडलपर यज्ञ कर तैनें महागर्व कीनो पशुवधसे मानी हो परमकर्मकूं न जाना ॥ ५० ॥ वोही कर्म है जासे हरि प्रसन्न होय, सोई विद्या है जो ईश्वरमें
बुद्धि लगै, वो वर्ण वो कुल वो आश्रम शुभ होय है ॥ ५१ ॥ श्रीहरि सब देहधारीनके आत्मा है, आप प्रकृतीके ईश्वर है, तिनके चरणकमलकी

तस्मात्कर्मसु बर्हिष्मन्नज्ञानादर्थकाशिषु ॥ माऽर्थदृष्टिं कृथाः श्रोत्रस्पर्शिष्वस्पृष्टवस्तुषु ॥ ४८ ॥ स्वं लोकं न विदुस्ते
वै यत्र देवो जनार्दनः ॥ आहुर्धूम्रधियो वेदं सकर्मकमतद्विदः ॥४९॥ आस्तीर्य दर्भैः प्रागग्रैः कार्त्स्न्येन क्षितिमण्डलम्
॥ स्तब्धो बृहद्वधान्मानी कर्म नावैषि यत्परम् ॥ ५० ॥ तत्कर्म हरितोषं यत्सा विद्या तन्मतिर्यया ॥ तद्वर्णं तत्कुलं
श्रेष्ठ तदाश्रमं शुभं भवेत्॥५१॥हरिर्देहभृतामात्मा स्वयंप्रकृतिरीश्वरः॥तत्पादमूलं शरणं यतः क्षेमो नृणामिह ॥५२॥
स वै प्रियतमश्चात्मा यतो न भयमण्वपि ॥ इति वेद स वै विद्वान्यो विद्वान्स गुरुर्हरिः ॥ ५३ ॥ नारद उवाच ॥ प्रश्न एव
हि संछिन्नो भवतः पुरुषर्षभ ॥ अत्र मे वदतो गुह्यं निशामय सुनिश्चितम् ॥५४॥क्षुद्रं चरं सुमनसां शरणे मिथित्वा रक्तं
षडङ्घ्रिगणसामसु लुब्धकर्णम् ॥ अग्रे वृकानसुतृपोऽविगणय्य यान्तं पृष्ठे मृगं मृगय लुब्धकबाणभिन्नम् ॥ ५५ ॥

शरणागति छे प्रकारकी करनेसे या संसारमें मनुष्यनको क्षेम होय है ॥ ५२ ॥ उनके प्रसन्न करनैमें कुछ कठिनता नहीं है कारण कि वे सबके प्रियतम
आत्मा हैं उनके भजनमें किंचित्भी भय नहीं है जो ऐसा जान्ते हैं वही पंडित है पंडितही गुरु और भगवान है ॥ ५३ ॥ श्रीनारदजी बोले कि
हे पुरुषश्रेष्ठ ! तुह्मारो प्रश्न निश्चय भयो अब मैं इसमें गुह्य गोपनीय निश्चय सो कहूं हूं तुम सुनो ॥ ५४ ॥ " जीवको एक और प्रकारसे वर्णन करै
हैं क्षुद्र पदार्थोंको चरनेहारा एक मृग फूलवाडीमें स्त्रीके संग क्रीड़ा करता है भौरोंके शब्दोंसै उसके कर्ण लुब्ध हैं मुखके सन्मुख भक्षण करनेहारे
वृक खड़े हैं तथापि यह मृग कुछ चिन्ता न कर आगे बढता चला जाता है पीठ व्याधेके बाणसैं विद्ध है हे राजन् ! तुम इसका मर्म विचारो ॥५६॥

क्रियाशक्तिरूप व्यवहार होता है, वा पुरीमें जाको नाश नहीं वो भूत प्रकृति है यामें जो पुरुष है वो शक्तिको अधीश है वो या पुरमें प्रविष्ट है पर जाने नहीं जाते हैं ॥ ५८ ॥ हे प्रभो ! उस पुरीमें तुम उस स्त्रीसे रमण करते रहे अब सुनकरभी तुम्है उसकी स्मृति नहीं आती वाईके संगसे ऐसी पापीयसी दशाको आप प्राप्त होते भये ॥५९॥ न तुम विदर्भकी बेटी हो न ये वीर तुह्मारो सुहृद है, न पुरंजनीके तुम पति हो, या नवमुखके पुरमें तुम रुक रहेहो ॥ ६० ॥ ये माया मैनें रची है, कभी पुरुष कभी स्त्री करतीहै सिद्धांतसे दोनो बात नहीं हैं, हम तुम दोनो शुद्ध हंस है जो अब हम आगे

विपणस्तु क्रियाशक्तिर्भूतप्रकृतिरव्यया ॥ शक्त्यधीशः पुमांस्तत्र प्रविष्टो नावबुध्यते ॥ ५८ ॥ तस्मिंस्त्वं रामया
स्पृष्टो रममाणोऽश्रुतस्मृतिः ॥ तत्सङ्गादीदृशीं प्राप्तो दशां पापीयसीं प्रभो ॥ ५९ ॥ न त्वं विदर्भदुहिता नायं
वीरः सुहृत् तव ॥ न पतिस्त्वं पुरंजन्या रुद्धो नवमुखे यया ॥ ६० ॥ माया ह्येषा मया सृष्टा यत् पुमांसं स्त्रियं सतीम् ॥
मन्यसे नोभयं यद् वै हंसौ पश्यावयोर्गतिम् ॥ ६१ ॥ अहं भवान्न चान्यस्त्वं त्वमेवाऽहं विचक्ष्व भोः ॥ न नौ पश्यन्ति
कवयश्छिद्रं जातु मनागपि ॥ ६२ ॥ यथा पुरुष आत्मानमेकमादर्शचक्षुषोः ॥ द्विधाभूतमवेक्षेत तथैवान्तरमावयोः ॥
॥ ६३ ॥ एवं स मानसो हंसो हंसेन प्रतिबोधितः ॥ स्वस्थस्तद्व्यभिचारेण नष्टामाप पुनः स्मृतिम् ॥ ६४ ॥

कहैं हैं सो सुनो हमारी गति देखो ॥ ६१ ॥ हे जीव ! हम तुम दोनो येक हैं, अन्य नहीं जो पंडित हैं वे कभी हमारे तुम्हारे मैं भेद नहीं देखै है ॥ ॥ ६२ ॥ जो ऐसें है भेद तौ कैसे माने है ताको उत्तर है कि जैसे पुरुष अपने एक आत्माको दर्पणमें चक्षुसे दो रूप देखै है, तैसेई हमारो तुह्मारो विद्याअविद्या उपाधिकृत भेद है, परन्तु वास्तवसे भेद नहीं है, ॥ ६३ ॥ ऐसे वो मानस हंस जीवको मानसहंसवासी ईश्वरने ज्ञान करायो, तब स्वस्थ भयो, और ईश्वकरके वियोगकी बुद्धिरूपस्मृति नष्ट हुई फेर प्राप्त होती भयी ॥ ६४ ॥

हे बर्हिष्मन् ! ये अध्यात्मज्ञान परोक्ष करकै हमने तुमे दिखायो जो परोक्षविधिसै वर्णन करनेके यह कारण है कि जगतपालक नारायण परोक्षरीतिसै बहुत प्रसन्न होते हैं[1] ॥ ६५ ॥ इति श्रीम० भा० च० स्कन्धे पुरंजनोपाख्याने स्त्रीविचिंतया स्त्रीत्वं प्राप्तस्य पुरंजनस्य दैवेन कदाचिन्मुक्तिवर्णनं नाम अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ प्राचीनबर्हि नृप बोले कि ॥ हे भगवन् ! तुह्मारो वचन हमको सुन्दरतासे समझमें न आयो, हम सब कर्मकांडोंसे मोहित हैं, जो वेदांती अध्यात्म ज्ञानी कवि हैं, वे इसै जाने है यासे समझायकै फिरसे कहो ॥ १ ॥ श्रीनारदजी बोले कि “ पुरं जनयतीति पुरंजनो जीवः ” या देहमें पुरंजन पुरुष जीवकूं जानो, जो अपने आत्माके पुरनको प्रगट करै है, जो जीव येक दो तीन चार पांवको होवै है, कभी

बर्हिष्मन्नेतदध्यात्मं पारोक्ष्येण प्रदर्शितम् ॥ यत् परोक्षप्रियो देवो भगवान् विश्वभावनः ॥६५॥ इति श्रीभा०चतुर्थ० पुरंजनोपाख्याने स्त्रीविचिन्तया स्त्रीत्वं प्राप्तस्य पुरंजनस्य दैवेन कदाचिन्मुक्तिवर्णनं नाम अष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ प्राचीनबर्हिरुवाच ॥ भगवंस्ते वचोऽस्माभिर्न सम्यगवगम्यते ॥ कवयस्तद्विजानन्ति न वयं कर्ममोहिताः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ पुरुषं पुरंजनं विद्याद्‍ यद्व्यनक्त्यात्मनः परम् ॥ एकद्वित्रिचतुष्पादं बहुपादमपादकम् ॥ २ ॥ योऽविज्ञाताहृतस्तस्य पुरुषस्य सखेश्वरः ॥ यन्न विज्ञायते पुंभिर्नामभिर्वा क्रियागुणैः ॥ ३ ॥ यदा जिघृक्षुः पुरुषः कार्त्स्न्येन प्रकृतेर्गुणान् ॥ नवद्वारं द्विहस्ताङ्घ्रिं तत्रामनुत साध्विति ॥ ४ ॥ बुद्धिं तु प्रमदां विद्यान्ममाहमिति यत्कृतम् ॥ यामधिष्ठाय देहेऽस्मिन् पुमान् भुङ्क्तेऽक्षभिर्गुणान् ॥ ५ ॥

बहुत पगको होय है, कभी विना पगको होय है ॥ २ ॥ जो अविज्ञातनामक पुरुष जीवका सखा कहा है, वो ईश्वर है, जो ईश्वर नाम क्रियागुणोंसें पुरुषों करकै न जाने जायहैं ॥ ३ ॥ जब संपूर्णता करकैं पुरुष प्रकृतिके गुणनकी ग्रहण करवेकी इच्छा करै है, तब नव द्वारयुक्त दो हाथ पग वारे देहको बहुत सुन्दर मान वसे है ॥ ४ ॥ या देहमें बुद्धिरूप स्त्रीवसे है, वासे मम हम ये जीव करवे लगे हैं, याके आश्रित होयकै या देहमैं पुरुष इन्द्रियोंके द्वारा गुणनकूं भोगे है ॥ ५ ॥

---

[1] याको ये पद है ॥ कालंगडा तिताल ॥ भूलोमनठगियनके संग अटको ॥ टेर ॥ बहुतठगोरे भएइठोरे काहेकूं इनसंग भटको ॥ १ ॥ जीभचटोरीबहुतठगोरीखानपानबहुगटको ॥ नयननिपूतेनेनारदिखाईरूपदेखकरमटको ॥२॥ कौनबातनके छांनकरतहैवेदवचनसबपटको ॥ नाकठगैयानेताकलगाई अतरचाहतहैंटटको ॥ ३ ॥कौडीमिलनकी आसाताकतजायकरतनितलटको ॥ चोरनकेसंगचोरभयो तूकालफांसमैंपटको ॥४॥बहुतजन्मभएकरतठगाईवेदगुरुजीनेहटको ॥ सतसंगतऔरधर्मकाममेंकबहुजायनाहिफटको ॥५॥ पुरुषोत्तमकहैंसर्वेश्वरभजपापपुण्यसबपटको॥६॥

ज्ञान कर्म करवेवारे इन्द्रियों गण याके सखा है, और इन्द्रियोंकी वृत्तियें सखियें हैं, पंचवृत्तिरूप पंचशिरको प्राणरूप यामें सर्प है ॥ ६ ॥ जो वलवान सैनापति कहा गया है वह मन है कारण कि यह मन ज्ञानेंद्रिय और कर्मेंद्रियका स्वामी है पंचेंद्रियका विषय सो पंचाल देश है, जामें नवद्वारको पुर शरीर है ॥७॥ नेत्र नाक मुख कान शिश्न गुदा ये दोदो द्वार बाहिरको निकसे भए है, सो इन इन मार्गोंसे जीव इन्द्रियोंको साथले बाहर जाता है ॥८॥ अक्षिणी २ नाक २ मुख १ ये पांच पूर्वकी ओरके द्वार है दक्षिणकी ओरको दक्षिण कर्ण है उत्तरको उत्तर कर्ण है ॥ ९ ॥ पश्चिम ओर नीचेके दो द्वार गुदा शिश्न देहमें है, खद्योत आविर्मुखी द्वार वरावर निर्माण नेत्र है ॥ १० ॥ जिनसे यह जीव चक्षु इन्द्रिय की सहायतासै इन द्वारोंसै विभ्राजित नाम देश में जाता अर्थात् रूप देखता है नलिनी नालिनी नाक है, जामै सुगंध ज्ञानगंध कहा है ॥ ११ ॥ सौरभ देश गंध है अवधूत मित्र घ्राण इन्द्रिय है मुख्य द्वार मुख है विपण अर्थात् वाणी रसज्ञ अर्थात् रसना इन्द्रिय ये दौनो सखा है ॥ १२ ॥ पितरनके बुलावने वारो दहिना कान है, देवनको बुलायवे वारो वांयो कान है, प्रवृत्तिमार्गको शास्त्र निवृत्तिमार्गको शास्त्र पंचाल देश है ॥ १३ ॥ पितृयान देवयानन सुनवेसे श्रोत्रसे प्राप्त होय है, आसुरी मेढ़ इंद्रि नीचेके द्वारसें मैथुन होय है, जिसमें गाववारोंकी रति होय है ॥ १४ ॥

सखाय इन्द्रियगणा ज्ञानं कर्म च यत्कृतम् ॥ सख्यस्तद्वृत्तयः प्राणः पञ्चवृत्तिर्यथोरगः ॥ ६ ॥ बृहद्बलं मनो विद्यादुभयेन्द्रियनायकम् ॥ पञ्चालाः पञ्च विषया यन्मध्ये नवखं पुरम् ॥७॥ अक्षिणी नासिके कर्णौ मुखं शिश्नगुदाविति॥ द्वे द्वे द्वारौ बहिर्याति यस्तदिन्द्रियसंयुतः ॥८॥ अक्षिणी नासिके आस्यमिति पञ्च पुरः कृताः ॥ दक्षिणा दक्षिणः कर्ण उत्तरा चोत्तरः स्मृतः ॥ ९ ॥ पश्चिमे इत्यधोद्वारौ गुदं शिश्नमिहोच्यते ॥ खद्योताविर्मुखी चात्र नेत्रे एकत्र निर्मिते ॥१०॥ रूपं विभ्राजितं ताभ्यां विचष्टे चक्षुषेश्वरः ॥ नलिनी नालिनी नासे गन्धः सौरभ उच्यते ॥११॥ घ्राणोऽवधूतो मुख्याऽऽस्यं विपणो वाग्रसविद्रसः ॥ आपणो व्यवहारोऽत्र चित्रमन्धो बहूदनम् ॥ १२॥ पितृहूर्दक्षिणः कर्ण उत्तरो देवहूः स्मृतः ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च शास्त्रं पञ्चालसंज्ञितम् ॥ १३ ॥ पितृयानं देवयानं श्रोत्राच्छुतधराद्व्रजेत् ॥ आसुरी मेढ्रमर्वाग्द्वार्व्यवायो ग्रामिणां रतिः ॥ १४ ॥

दुर्मद उपस्थ है निर्ऋति गुदा है लुब्धक पायु इन्द्रिय है वैशसदेश नरक है, अब अंधद्वार वर्णन करते है सो तुम सुनो ॥ १५ ॥ हाथ पांवसे युक्त पुरुष
चलता और कर्म करताहै, अंतःपुर हृदय है, पदार्थोंको अनुवाद करवेवारो मन है ॥ १६॥ जिसके सत्व रज तम गुणसे हृदयमे प्रमाद हर्ष और मोह
होते हैं गुणोंसे आवृत होकर दर्शन स्पर्शनादि जो कार्य बुद्धिं संपादन करती है ॥ १७ ॥ उन सब कर्मोंको अपना किया मानकर स्वप्नमें उसीके
अनुसार अधिकारको प्राप्त हो स्वयं साक्षी होकर भी जीवात्मा जाग्रतमें उसीके अनुसार परिवर्तित होता है ॥ देह रथ है इंद्रिय रूप घोडा इसमैं लगे
है, संवत्सरका वेग इसकी गति है ॥ १८ ॥ पुण्यपापरूप दो पैया है, सत्वादि तीनो गुणोंकी ध्वजा है, पंचप्राणरूप बंधनकी डोरहै, मनरूप र-

उपस्थो दुर्मदः प्रोक्तो निर्ऋतिर्गुद उच्यते ॥ वैशसं नरकं पायुर्लुब्धकोऽन्धौ तु मे शृणु ॥ १५ ॥ हस्तौ पादौ पुमांस्ताभ्यां
युक्तो याति करोति च ॥ अन्तःपुरं च हृदयं विषूचिर्मन उच्यते ॥१६॥ तत्र मोहं प्रसादं वा हर्षं प्राप्नोति तद्गुणैः ॥
यथा यथा विक्रियते गुणाक्तो विकरोति वा ॥ १७ ॥ तथा तथोपद्रष्टात्मा तद्वृत्तीरनुकार्यते ॥ देहो रथस्त्विन्द्रियाश्वः
संवत्सररयो गतिः ॥ १८ ॥ द्विकर्मचक्रस्त्रिगुणध्वजः पञ्चासुबन्धुरः ॥ मनोरश्मिर्बुद्धिसूतो हृन्नीडो द्वन्द्वकूबरः ॥१९॥
पञ्चेन्द्रियार्थप्रक्षेपः सप्तधातुवरूथकः ॥आकूतिर्विक्रमो बाह्यो मृगतृष्णां प्रधावति ॥२०॥ एकादशेन्द्रियचमूः पञ्चसूना
विनोदकृत् ॥ संवत्सरश्चण्डवेगः कालो येनोपलक्षितः ॥ २१ ॥ तस्याहानीह गन्धर्वा गन्धर्व्यो रात्रयः स्मृताः ॥ हरन्त्यायुः
परिक्रान्त्या षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥ २२ ॥

स्सी है, बुद्धिरूप हांकनवारोहै, हृदयरूप रथके मध्यको स्थानहै, सुखदुःखरूप दोनो ओरके जूआ है ॥ १९ ॥ पांचइंद्रियोंके अर्थरूप धुराके वांस
है, सप्तधातु रथके ऊपरके बैठक है, आकूति प्राणोंकी शक्ति रथको पराक्रम है, मृगतृष्णामें ये दौडै है ॥ २० ॥ एकादश इंद्रियरूप सेना है, पंचसुनाही
या रथको आनंदकरवैवारो है, चंडवेग कालरूप संवत्सर है, जासै काल उपलक्षित होय है ॥ २१ ॥ दिनरूप गंधर्व हैं, रात्री गंधर्विनी कही
हैं, जो दिनरात व्यतीत होयकर तीनसे साठ दिनकों व्यतीत करै हैं ॥ २२ ॥

शमको प्राप्त हुआ ॥ ४० ॥ हे नृप ! साक्षात् गुरू भगवान् हरिके कहे भये विशुद्ध ज्ञानदीप करकै विश्वमुख ईश्वरकी स्फूर्ति होय आई ॥ ४१ ॥
परब्रह्ममें तो सब जीवनको मानते भये, परब्रह्मकों सब जीवनमें देखनेहारी दृष्टिसें देखकर या शरीरकों त्यागतो भयो ॥ ४२ ॥ परमधर्मज्ञ पति
मलयध्वजकी प्रेमसें सेवा करती भई, वैदर्भी सब भोग त्याग पतिको देवताके समान मानती भई ॥ ४३ ॥ चीर वस्त्र पहिरे व्रतसे कर्षित एक-
वेणी युक्त वार लिये धूमरहित अग्निकी ज्वाला अग्निके शान्त होनेपर स्वयमेव जैसें शान्त होजाती है ऐसे वह पतिके समीपमें पतिहीकी नाई
शान्त होगई ॥ ४४ ॥ अपने प्रीतमको उपरामको प्राप्त हुआ न जानकर स्थिर ह्वैके आसनपर बैठ पहिलेकी समान सेवन करती भई ॥ ४५ ॥

साक्षाद् भगवतोक्तेन गुरुणा हरिणा नृप॥ विशुद्धज्ञानदीपेन स्फुरता विश्वतोमुखम् ॥ ४१ ॥ परे ब्रह्मणि चात्मानं
परं ब्रह्म तथात्मनि ॥ वीक्षमाणो विहायेक्षामस्मादुपरराम ह ॥ ४२ ॥ पतिं परमधर्मज्ञं वैदर्भी मलयध्वजम् ॥ प्रेम्णा
पर्यचरद्धित्वा भोगान् सा पतिदेवता ॥ ४३ ॥ चीरवासा व्रतक्षामा वेणीभूतशिरोरुहा ॥ बभावुपपतिं शान्ता शिखा
शान्तमिवानलम् ॥४४॥ अजानती प्रियतमं यदोपरतमङ्गना ॥ सुस्थिरासनमासाद्य यथापूर्वमुपाचरत्॥४५॥यदा नो-
पालभेताङ्घ्रावूष्माणं पत्युरर्चती॥ आसीत् संविग्नहृदया यूथभ्रष्टा मृगी यथा॥४६॥आत्मानं शोचती दीनमबन्धुं विक्ल-
वाऽश्रुभिः॥स्तनावासिच्य विपिने सुस्वरं प्ररुरोद सा॥४७॥उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजर्षे इमामुदधिमेखलाम्॥दस्युभ्यःक्षत्रबन्धु-
भ्यो बिभ्यतीं पातुमर्हसि॥४८॥एवं विलपती बाला विपिनेऽनुगता पतिम्॥पतिता पादयोर्भर्तू रुदन्त्यश्रूण्यवर्तयत्४९॥

पतिकी सेवा करनेमें जब चरणोंमें गरमपन न मालूम पडो तब संविग्नहृदय भई यूथभ्रष्ट मृगीकी समान शोक करती हुई ॥ ४६ ॥ अनाथ और
दीन अपने आत्माको शोच करती व्याकुलताके आंसुओंसै स्तनोंको भिजोती ऊंचे स्वरसै रोती हुई ॥ ४७ ॥ हे राजर्षे ! उठो उठो समुद्रपर्य-
तकी डरती भई पृथिवीको क्षत्रीनसे चोरनसे रक्षा करवे योग्य हो ॥ ४८ ॥ ऐसे विलाप करती भई बाला वनमें पतिके पाछे जाती भई, भर्ताके
चरणोंमें पतित हो रोती आंसूं डारती भई ॥ ४९ ॥

काष्ठकी चिता बनाय वामें पतिको देह धर जराय विलाप करती भई, और आपभी मरणमें मन धारती भई ॥ ५० ॥ हे प्रभो! तहां प्राचीन कोई वेदान्ती ब्राह्मण वाके सखा (ईश्वर) आयकर मनोहरवाणीसे सांत्वनाकर रोती भईसे बोले ॥ ५१ ॥ ब्राह्मण बोले कि ॥ तुम कौन हो कौनकी हो ये कौन सोयो है, जाको तुम सोच करो हो, मै तुह्मारो सखा हूं मोकों जानोहो कि नहीं जो पहले तुम हमारे संग विचरतेथे ॥ ५२ ॥ हे सखे ! मैं अविज्ञातनामक तुह्मारो सखा हूं सो मेरी और अपने शरीरकी तुम्हैं कुछ स्मृति है तुम मोको त्यागकर स्थानकी इच्छाकर भूमिके भोगमें रत होगये ॥ ५३ ॥ हे आर्य ! हम तुम दोनो शुद्ध सखा मानसवासी हंस हैं, सो हजार वर्षाको अंतर पडगयो, स्थानके विना तुम जीव हो मैं ईश्वर

चितिं दारुमयीं चित्वा तस्यां पत्युः कलेवरम् ॥ आदीप्य चानुमरणे विलपन्ती मनो दधे ॥ ५० ॥ तत्र पूर्वतरः कश्चित् सखा ब्राह्मण आत्मवान् ॥ सान्त्वयन् वल्गुना साम्ना तामाह रुदतीं प्रभो ॥ ५१ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ का त्वं कस्यासि को वाऽयं शयानो यस्य शोचसि ॥ जानासि किं सखायं मां येनाग्रे विचचर्थ ह ॥ ५२ ॥ अपि स्मरसि चात्मानमविज्ञातसखं सखे ॥ हित्वा मां पदमन्विच्छन् भौमभोगरतो गतः ॥ ५३ ॥ हंसावहं च त्वं चार्य सखायौ मानसायनौ ॥ अभूतामन्तरा वौकः सहस्रपरिवत्सरान् ॥ ५४ ॥ स त्वं विहाय मां बन्धो गतो ग्राम्यमतिर्महीम् ॥ विचरन् पदमद्राक्षीः कयाचिन्निर्मितं स्त्रिया ॥ ५५ ॥ पञ्चारामं नवद्वारमेकपालं त्रिकोष्ठकम् ॥ षट्कुलं पञ्चविपणं पञ्चप्रकृति स्त्रीधवम् ॥ ५६ ॥ पञ्चेन्द्रियार्था आरामा द्वारः प्राणा नव प्रभो ॥ तेजोऽबन्नानि कोष्ठानि कुलमिन्द्रियसंग्रहः ॥ ५७ ॥

हूं ॥ ५४ ॥ हे बन्धो ! गांवके विषयमें तुह्मारी मति ही सो मोको त्याग करके तुम गए, और किसी स्त्रीकी रचीभई पुरीमैं विचरते रहे, ऐसें पृथ्वी पर मैंने तुम्हैं देखा ॥ ५५ ॥ उस पुरीमें पांच (शब्दादि विषय) बाग थे नौ (छिद्ररूप) द्वार थे एक पुरीका पालक (प्राण) था तीन (पृथ्वी जल तेज) किले थे छः (पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन) व्यौपारीथे पांच (कर्मेंद्रिय) दुकानेथी पांचही (पंचभूतोंकी प्रकृति) मूल कारण थे स्त्री (बुद्धि) स्वामी थी ऐसी वह पुरी थी ॥ ५६ ॥ हे प्रभो ! पांच इन्द्रियोंके अर्थ जामें आरामस्थान नव प्राणरूप जामें दर्वाजे हैं, तेज जल अन्न ये कोठे हैं, इन्द्रियोंके संग्रह वामें कुल हैं ॥ ५७ ॥

पहले पुरंजनको अहंकार था इस कारण भगवानने दर्शन नहीं दिया अब अभिमानशून्य हो धर्मयुक्त बैठनेपर भगवानने दर्शन देकर उपदेश किया ।

जो सर्प वाकूं रोके रहताथा वोभी पुरीको त्यागकर जब गयो ताके पीछे सब पुरी विशीर्णहो अपने आप नाश होय अपनी प्रकृतिकों गई ॥ २४ ॥ हठसे बली यवनने जब वाकों खींचो, तो तमोगुणसे आविष्ट हौनेके कारण पुरंजनको अपने पूर्व मित्रका स्मरण न आया ॥ २५ ॥ या दया रहितने जो यज्ञके पशु मारे है सो वे याके अपराधकों स्मरण कर क्रोधित हो कुहाडोंसे उसै छेदने लगे ॥ २६ ॥ अपार तममें स्मृति नष्ट होनेके कारण वा प्रमदाके संगसे दुषितहो बहुत वर्षपर्यंत पीडाकूं भोग कर ॥ २७ ॥ वो पुरंजन वा पुरंजनी स्त्रीकोंही मनमें स्मरण करता रहा यासे राजोंमें श्रेष्ठ विदर्भराजके घरमें जायकर स्त्रीका जन्म पाताहुआ या प्रसंगमें यें जानने कि स्त्रीध्यानसें स्त्री होयं है॥२८॥युद्धमें शत्रुओंको मारकर पांड्य

पुरीं विहायोपगत उपरुद्धो भुजंगमः ॥ यदा तमेवानु पुरी विशीर्णा प्रकृतिं गता ॥ २४ ॥ विकृष्यमाणः प्रसभं यवनेन बलीयसा ॥ नाविन्दत् तमसाऽऽविष्टः सखायं सुहृदं पुरः ॥ २५ ॥ तं यज्ञपशवोऽनेन संज्ञप्ता येऽदयालुना ॥ कुठारैश्चिच्छिदुः क्रुद्धाः स्मरन्तोऽमीवमस्य तत् ॥२६॥ अनन्तपारे तमसि मग्नो नष्टस्मृतिः समाः ॥ शाश्वतीरनुभूयार्तिं प्रमदासङ्गदूषितः ॥ २७ ॥ तामेव मनसा गृह्णन् बभूव प्रमदोत्तमा ॥ अनन्तरं विदर्भस्य राजसिंहस्य वेश्मनि ॥ २८ ॥ उपयेमे वीर्यपणां वैदर्भीं मलयध्वजः ॥ युधि निर्जित्य राजन्यान् पाण्ड्यः परपुरंजयः॥२९॥ तस्यां स जनयांचक्र आत्मजामसितेक्षणाम् ॥ यवीयसः सप्त सुतान् सप्त द्रविडभूभृतः ॥३०॥ एकैकस्याभवत् तेषां राजन्नर्बुदमर्बुदम् ॥ भोक्ष्यते यद्वंशधरैर्मही मन्वन्तरं परम् ॥ ३१ ॥

देशके राजा मलयध्वज वैदर्भीकों व्याहते भए "मलय उपलक्षितदक्षिणदेशध्वज इव दर्शनीयः" वो देश विष्णुकी भक्तिको प्रधान अंश है "पंडानिश्चयबुद्धिस्तामर्हतीति पांड्यः" अर्थात् पुरंजनको भागवतका संग हुआ ॥ २९ ॥ वो मलयध्वज वामै श्रीकृष्णमें रुचीवारी श्रीकृष्णसेवारूप कन्या उत्पन्न करतो भयो द्रविडदेशका राजा श्रवण, कीर्तन, विष्णोः स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्यरूप सप्त तरुण सुतनकों उत्पन्न करतोभयो ॥ ३० ॥ हे राजन् ! उन पूर्वोक्त सप्त श्रवण आदिअर्बुद अर्बुद सुत भए, जो इस पृथ्वीका मन्वन्तरसैभी अधिक पालन करने लगे ॥ ३१ ॥

---

[१] पतिव्रताके ध्यानसै पूर्वजन्मके धर्मके कारण श्रेष्ठाचार विदर्भके वर जन्म हुआ उस धर्मात्मा राजाके संगसै मलयध्वज वैष्णवका संग हुआ उस भक्तिसै वैराग्य हुआ तथा पतिरूप गुरुकी सेवा करनेसै भगवानकी कृपासै ज्ञान प्राप्त हौनेके कारण मुक्तिको प्राप्त हुआ।

134

" अंगानि निष्क्रियाणि स्त्यायति संघातयतीति अगस्त्यो मनः " अगस्त्य मनको नाम है सो मन व्रतधारवेवारी पहिली कृष्णसेवारुचिरूप दुहिताकूं व्याहतो भयो, जामें इध्मवाहात्मज मुनि दृढच्युत श्रीकृष्णप्रीतिरूप विराग भयो (इध्मवाह आत्मजो यस्य सः ॥ तद्विज्ञानार्थं स गुरुमवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठमिति) ॥ ३२ ॥ राजर्षि मलयध्वज पुत्रोंके अर्थ पृथिवीनकों विभागकर श्रीकृष्णकी आराधन करवेकों कुलाचल पर्वतपर जातो भयो ॥ ३३ ॥ मदभरे नेत्रवारी वैदर्भी गृह सुत भोगनकों त्यागकर जैसे चंद्रप्रभा चंद्रके पाछे दौडे तैसे पांड्येशके पीछे जाती भई ॥ ३४ ॥ तहां चंद्रवसा नाम ताम्रपर्णी वटोदका नदियौंके पवित्र जल करकै अन्तःकरण और अपनपेको स्नानकर शुद्ध करती भई ॥ ३५ ॥ कंद कोय मूल फल पुष्प पर्ण तृण जलसे धीरै धीरै पायकर शरीर कृशकर तप करती भई ॥ ३६ ॥ शीत ग्रीष्म पवन वर्षा क्षुधा प्यास प्रिय अप्रिय सुख दुःखकों जीतते भए समदर्शी होते भए ॥ ३७ ॥ तप विद्या यम नियमसे सब कषाय पक गए, इंद्रियें पवन अंतःकरण जीत ब्रह्ममें आत्माकों लगावते भए ॥ ३८ ॥ खंभकी समान एक जगह दिव्यशतवर्ष स्थित रहै, वासुदेव भगवानमें प्रीत करते और कुछ न जानते भए ॥ ३९ ॥ देहादिकोंमें प्रकाश करनैसे आत्मा भिन्न है तथा जड़ वृत्तिवाले अन्तःकरणसेभी शुद्ध है, जैसे स्वप्नमें अपना अनिष्ट देखनैसे जागृत अवस्थामें उन अन्तःकरणकी वृत्तियोंका प्रकाशक आत्मा पृथक् है, इस प्रकार मनमें सम्यक् ज्ञानकर पांड्यराजा सब पदार्थोंसे उप-

अगस्त्यः प्राग्दुहितरमुपयेमे धृतव्रताम् ॥ यस्यां दृढच्युतो जात इध्मवाहात्मजो मुनिः ॥ ३२ ॥ विभज्य तनयेभ्यः क्ष्मां राजर्षिर्मलयध्वजः ॥ आरिराधयिषुः कृष्णं स जगाम कुलाचलम् ॥ ३३ ॥ हित्वा गृहान् सुतान् भोगान् वैदर्भी मदिरेक्षणा ॥ अन्वधावत पाण्ड्येशं ज्योत्स्नेव रजनीकरम् ॥ ३४ ॥ तत्र चन्द्रवसा नाम ताम्रपर्णी वटोदका ॥ तत्पुण्यसलिलैर्नित्यमुभयत्रात्मनो मृजन् ॥ ३५ ॥ कन्दाऽष्टिभिर्मूलफलैः पुष्पपर्णैस्तृणोदकैः ॥ वर्तमानः शनैर्गात्रकर्षणं तप आस्थितः ॥ ३६ ॥ शीतोष्णवातवर्षाणि क्षुत्पिपासे प्रियाप्रिये ॥ सुखदुःख इति द्वन्द्वान्यजयत् समदर्शनः ॥ ३७ ॥ तपसा विद्यया पक्वकषायो नियमैर्यमैः ॥ युयुजे ब्रह्मण्यात्मानं विजिताक्षानिलाशयः ॥ ३८ ॥ आस्ते स्थाणुरिवैकत्र दिव्यं वर्षशतं स्थिरः ॥ वासुदेवे भगवति नान्यद् वेदोद्वहन् रतिम् ॥ ३९ ॥ स व्यापकतयात्मानं व्यतिरिक्ततयात्मनि ॥ विद्वान् स्वप्न इवामर्शसाक्षिणं विरराम ह ॥ ४० ॥

हीन होगया और वे गंधर्व और यवन उसकी पुरीको विध्वंस करने लगे ॥ ६ ॥ अपनी पुरीको टूटी देख आदर हीन अपनेसे प्रतिकूल चलनेहारे पुत्र पौत्र चाकर मंत्री और स्त्रीकोभी सुहृदता त्यागे देखता हुआ (जरा अवस्थामें बुद्धि मलीन होती है) ॥ ७ ॥ अपनी देहको जरा कन्यासे ग्रसित देख और पंचाल देशोंको वैरियोंसे पीडित देख, पुरंजन महाचिन्तामें मग्न हुआ जिसके दूर करनेका उपाय न मिला ॥ ८ ॥ यद्यपि कालकी कन्याके भोगनेसै उसके सब विषय सारहीन होगये थे तथापि दीन पुरंजन उन्हींकी इच्छा करता परलोक कृत्य और इस लोकके पुत्रादि स्नेहसे शून्य-होकरभी पुत्र स्त्रीका लालन करताथा ॥ ९ ॥ गंधर्व यवनोंसे घिरी कालकी कन्या जरासै मर्दित वा पुरीको इच्छा न होनेपरभी पुरंजनरूप जीवराजा त्यागकी इच्छा करते भये ॥ १० ॥ तब भय मृत्युका भ्राता प्रज्वार कालज्वर आय उपस्थित भयो, सो भाईके प्रियकी इच्छा करकै सब यवन वा पुरीकों जरावतो भयो ॥ ११ ॥ पुरवासी सब परिवार सहित जब वो पुरी जरगई, तब कुटुंबी वा कुटुंबिनीके साथ राजा वंश सहित संतापको प्राप्त होतो भयो ॥ १२ ॥ यवनोंकरकै सब स्थान जब रुक गए कालकन्याने पुरी सब ग्रसी, प्रज्वारसें पुरी सब घिरी देख पुरपाल नाग अति ताप करता भया ॥ १३ ॥ यह नाग जब महादुःखसे कंपित होकर जब उस पुरीकी रक्षामें समर्थ न हुआ तब जलते वृक्षमेंसे जैसे सर्प निकलनेकी अभिलाषा करे इसप्रकार उस नगरींसे निकलनेकी इच्छा की ॥ १४ ॥

विशीर्णां स्वपुरीं वीक्ष्य प्रतिकूलाननादृतान् ॥ पुत्रान् पौत्राऽनुगामात्यान् जायां च गतसौहृदाम् ॥ ७ ॥ आत्मानं कन्यया ग्रस्तं पञ्चालानरिदूषितान् ॥ दुरन्तचिन्तामापन्नो न लेभे तत्प्रतिक्रियाम् ॥ ८ ॥ कामानभिलषन् दीनो यातयामांश्च कन्यया ॥ विगतात्मगतिस्नेहः पुत्रदारांश्च लालयन् ॥ ९ ॥ गन्धर्वयवनाक्रान्तां कालकन्योपमर्दिताम् ॥ हातुं प्रचक्रमे राजा तां पुरीमनिकामतः ॥ १० ॥ भयनाम्नोऽग्रजो भ्राता प्रज्वारः प्रत्युपस्थितः ॥ ददाह तां पुरीं कृत्स्नां भ्रातुः प्रियचिकीर्षया ॥ ११ ॥ तस्यां संदह्यमानायां सपौरः सपरिच्छदः ॥ कौटुम्बिकः कुटुम्बिन्या उपातप्यत सान्वयः ॥ १२ ॥ यवनोपरुद्धायतनो ग्रस्तायां कालकन्यया ॥ पुर्यां प्रज्वारसंसृष्टः पुरपालोऽन्वतप्यत ॥ १३ ॥ न शेके सोऽवितुं तत्र पुरुकृच्छ्रोरुवेपथुः ॥ गन्तुमैच्छत् ततो वृक्षकोटरादिव सानलात् ॥ १४ ॥

हे राजन्! जब सब अवयव याके शिथिल भए, गंधर्वोंनें सब बल हरलीनो और शत्रुरूप यवनोंनें जब पुरीको रोकी तब पुरंजन रोतोभयो ॥ १५ ॥ दुहिता पुत्र पौत्र जमाई पार्षद गृह खजानो सब परिवार यामें एक स्वत्वमात्र बाकी रहिगयो, ये मेरे है ये स्वत्वभाव भयो ॥ १६ ॥ अहंता ममतासै अपना माने कुमतिसे घरके भीतर बंधाहुआ गृहस्थी पुरंजन स्त्रीके वियोगके समय विचारने लगा ॥ १७ ॥ मैं जब और लोकांतरकों जाऊं गो, तो अनाथा कुटुंबिनी ये बालकनको सोच करतीभई कैसे वर्तेंगी ॥ १८ ॥ जो मेरे बिनाखाए खाती नहीं मेरे बिनान्हाये न्हाती नहीं, मेरी भक्त जो मेरे रोष करने पर त्रसित होती, मेरे झिडकने पर भयके मारे मौन हो बैठ जाती है ॥ १९ ॥ मेरे व्याकुलहोने पर मुझे बोध करती है मेरे परदेशमें

शिथिलावयवो यर्हि गन्धर्वैर्हृतपौरुषः॥यवनैरिरिभी राजन्नुपरुद्धो रुरोद ह॥१५॥ दुहितॄः पुत्रपौत्रांश्च जामिजामातृपार्षदान्॥ स्वत्वावशिष्टं यत् किंचिद् गृहकोशपरिच्छदम्॥१६॥ अहं ममेति स्वीकृत्य गृहेषु कुमतिर्गृही॥ दध्यौ प्रमदया दीनो विप्रयोग उपस्थिते॥१७॥ लोकान्तरं गतवति मय्यनाथा कुटुम्बिनी॥ वर्तिष्यते कथं त्वेषा बालकाननुशोचती॥ १८॥ न मय्यनाशिते भुङ्क्ते नास्नाते स्नाति मत्परा॥ मयि रुष्टे सुसंत्रस्ता भर्त्सिते यतवाग् भयात् ॥ १९ ॥ प्रबोधयति मामज्ञं व्युषिते शोककर्शिता॥ वर्त्मैतद् गृहमेधीयं वीरसूरपि नेष्यति ॥ २० ॥ कथं नु दारका दीना दारकीर्वा परायणाः॥ वर्तिष्यन्ते मयि गते भिन्ननाव इवोदधौ ॥२१॥ एवं कृपणया बुद्ध्या शोचन्तमतदर्हणम्॥ग्रहीतुं कृतधीरेनं भयनामाऽभ्यपद्यत ॥ २२ ॥ पशुवद्यवनैरेष नीयमानः स्वकं क्षयम्॥ अन्वद्रवन्ननुपथाः शोचन्तो भृशमातुराः ॥ २३ ॥

जाने पर शोकसे कर्षित होतीथी गृहस्थनको येही मार्गहै पुत्रवती ही तोभी मेरे विना मरीसी होजाती थी ॥ २० ॥ ये दीन वालिकी बालक मेरे परायणहैं, मैं जब जाऊंगो तो कैसे वर्तेंगी, जैसे सागरमें नाव टूटनैसे उसके बैठनेवाले व्याकुल होतेहैं ऐसे उन सबकी दशा होतीहै ॥ २१ ॥ ऐसे कृपणबुद्धिसें अयोग्य शोच करतेहुएकूं पकडनेकी बुद्धिकर भयनामक यवनराज आनकर प्राप्तभयो ॥ २२ ॥ पशुकी नाईं यवन याको अपने घर ले जाते भए उनके अनुयायी अत्यंत आतुर होय शोकके मारे उनके कुटुम्बी उसके संग दौडे ॥ २३ ॥

किसी समय पर्यटन करती कामसे मोहित हो वह ब्रह्मलोकसे महीपर प्राप्त हो महाव्रती हमसे बोली कि तुम मुझै वरण करो ॥ २१ ॥ जब मैंने उसै स्वीकार न किया तब मुझै निवृत जा क्रोधकर दुःसह शाप देती भई, बोली, हे मुनि ! मेरी यांचासे तुम विमुख भये सो तुम एकजगै स्थित न रह सकोगे (सो प्रगट है युवा पुरुष एक स्थानपर स्थित नहीं रहते जराग्रस्त पडे रहते हैं) ॥ २२ ॥ जब उसका अभिलाष पूर्ण न हुआ तब वह मेरो आज्ञासे यवनीके अधिपति भयकी वरण करने गई और बोली ॥ २३॥ हे वीर ! मनवांछित पति यवननके ऋषभ तुमकूं मैं वरूंगी, तुमारेमें जीवनके

कदाचिदटमाना सा ब्रह्मलोकान्महीं गतम् ॥ वव्रे बृहद्व्रतं मां तु जानती काममोहिता ॥२१॥ मयि संरभ्य विपुलमदाच्छापं सुदुःसहम् ॥ स्थातुमर्हसि नैकत्र मद्याच्ञाविमुखो मुने ॥२२॥ ततो विहतसंकल्पा कन्यका यवनेश्वरम् ॥ मयोपदिष्टमासाद्य वव्रे नाम्ना भयं पतिम् ॥ २३ ॥ ऋषभं यवनान्. त्वां वृणे वीरेप्सितं पतिम् ॥ संकल्पस्त्वयि भूतानां कृतः किल न रिष्यति ॥२४॥ द्वाविमावनुशोचन्ति बालावसदवग्रहौ ॥ यल्लोकशास्त्रोपनतं न राति न तदिच्छति ॥ २५ ॥ अथो भजस्व मां भद्र भजतीं मे दयां कुरु ॥ एतावान् पौरुषो धर्मो यदार्ताननुकम्पते ॥२६॥ कालकन्योदितवचो निशम्य यवनेश्वरः ॥ चिकीर्षुर्देव गुह्यं स सस्मितां तामभाषत ॥२७॥ मया निरूपितस्तुभ्यं पतिरात्मसमाधिना ॥ नाभिनन्दति लोकोऽयं त्वामभद्रामसंमताम् ॥ २८ ॥

संकल्प नाश न होयगे ॥ २४ ॥ लोक और शास्त्रकी रीतिके अनुसार जो देने योग्य वस्तुको नहीं देता और लैने योग्य वस्तुको नहीं लेता यह दोनौ मूर्ख और असद्ग्राही शोच करते हैं ॥ २५ ॥ अब मोको भजो हे मंगलरूप ! भजती भई मोपर दया करो, पुरुषको येही धर्म है जो आर्तपर कृपा करनी ॥ २६ ॥ कालकन्याको कह्यो वचन सुन यवनेश्वर देवताओंसेभी गुप्त बात करनेकी इच्छासै मुसकाय कर बाते बोलो ॥ २७ ॥ आत्मज्ञानसे मैं तुमको पति निरूपण कर चुकाहूं तू अमंगलरूप लोकौंको अमाननीय है इस्सै प्रार्थना करनेपर तौ कोई तुझे स्वीकार न करैगा ॥ २८ ॥

कर्मसे विनिर्मित्त लोककों तू अप्रगट गतिसे भोग मेरी सेना ले जाओ तो प्रजानाशकों प्राप्त होगी ॥ २९ ॥ ये प्रज्वार गन्धर्व मेरो भाई है, तू मेरी बहनहोजा और भयंकर सेना लेकर जाओ मैंभी तुम्हारे पीछे अप्रगट गति होकर विचरूंगा ॥३०॥ इति श्रीभा॰भा॰ चतुर्थस्कन्धे कालकन्योपाख्यानवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ श्रीनारदजी बोले कि ॥ हे बर्हिष्मन् ! भयनामा यवनके सेनाके लोग रोगप्रज्वार और कालकन्याके सहित या धरतीपर विचरते भए ॥ १ ॥ हे नृप ! वे एक समय वेगसे भूमिके भोगयुक्त, जीर्ण, प्राणरूप सर्पसें पालित, पुरंजनकी पुरीको रोकते भये ॥

त्वमव्यक्तगतिर्भुङ्क्ष्व लोकं कर्मविनिर्मितम् ॥ याहि मे पृतनायुक्ता प्रजानाशं प्रणेष्यसि ॥२९॥ प्रज्वारोऽयं मम भ्राता त्वं च मे भगिनी भव ॥ चराम्युभाभ्यां लोकेऽस्मिन्नव्यक्तो भीमसैनिकः॥३०॥ इति श्रीभा॰चतुर्थ॰पुरञ्जनोपाख्याने कालकन्योपाख्यानवर्णनं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ नारद उवाच ॥ सैनिका भयनाम्नो ये बर्हिष्मन् दिष्टकारिणः ॥ प्रज्वारकालकन्याभ्यां विचेरुरवनीमिमाम् ॥ १ ॥ त एकदा तु रभसा पुरंजनपुरीं नृप ॥ रुरुधुर्भौमभोगाढ्यां जरत्पन्नगपालिताम्॥२॥ कालकन्याऽपि बुभुजे पुरञ्जनपुरं बलात् ॥ ययाऽभिभूतः पुरुषः सद्यो निःसारतामियात् ॥ ३ ॥ तयोपभुज्यमानां वै यवनाः सर्वतो दिशम् ॥ द्वार्भिः प्रविश्य सुभृशं प्रार्दयन् सकलां पुरीम् ॥ ४ ॥ तस्यां प्रपीड्यमानायामभिमानी पुरञ्जनः ॥ अवापोरुविधांस्तापान् कुटुम्बी ममताकुलः ॥५॥ कन्योपगूढो नष्टश्रीः कृपणो विषयात्मकः ॥ नष्टप्रज्ञो हतैश्वर्यो गन्धर्वयवनैर्बलात् ॥ ६ ॥

॥ २ ॥ कालकन्याभी पुरंजनकी पुरीको बलसे भोगति भई, जासे तिरस्कृत पुरुष शीघ्र निस्सारताको प्राप्त होवै हैं ॥ ३ ॥ ता करके भोगे भये यवन द्वारोंमें सब ओरसें प्रविष्ट होकर सब पुरीको पीडा देते भये ॥ ४ ॥ जब वा पुरीमें पीडा भई, तब अभिमानी पुरंजन कुटुंबी ममतामें व्याकुल बहुत तापोंकों प्राप्त होतो भयो ॥ ५ ॥ उस कन्यासै आलिंगन करनेके कारण कृपण तथा कांतिहीन हो पुरंजन अपना ऐश्वर्य गंवाय सामर्थ-

तासे लिपटे मिलै कन्धासे उसै आलिंगनकर कंठ लगाय एकांतमें गुप्त भाषणसे चित वशीभूत होनेके कारण दिनरात दुरत्यय कालवेगको न जानतो भयो, स्त्रीके संगमें दिनरात व्यतीत हुए ॥ ३ ॥ महामदांध महामनस्वी महासेजपै स्त्रीकी भुजाको तकिया लगाये सोता वाहीकों श्रेष्ठ मानता भया, और तमसे तिरस्कृत हो वह वीर अपना परायाभी न मानता भया ॥ ४ ॥ हे राजेन्द्र! कामासक्त हो इस प्रकार उसके साथ विहार करते करते उनकी नवीन अवस्था क्षणार्द्धकी नाई व्यतीत होती भई ॥५॥ पुरंजन पुरंजनीमें इंद्रियोंकी परिणामरूप एकादशसहस्र पुत्र रचतो भयो, आधीआयु

तयोपगूढः परिरब्धकन्धरो रहोऽनु मन्त्रैरपकृष्टचेतनः ॥ न कालरंहो बुबुधे दुरत्ययं दिवा निशेति प्रमदापरिग्रहः ॥३॥ शयान उन्नद्धमदो महामना महार्हतल्पे महिषीभुजोपधिः ॥ तामेव वीरो मनुते परं यतस्तमोऽभिभूतो न निजं परं च यत् ॥ ४ ॥ तयैवं रममाणस्य कामकश्मलचेतसः ॥ क्षणार्धमिव राजेन्द्र व्यतिक्रान्तं नवं वयः ॥ ५ ॥ तस्यामजनयत् पुत्रान् पुरंजन्यां पुरंजनः ॥ शतान्येकादश विराडायुषोऽर्धमथात्यगात् ॥ ६ ॥ दुहितॄर्दशोत्तरशतं पितृमातृयशस्करीः ॥ शीलौदार्यगुणोपेताः पौरंजन्यः प्रजापते ॥७॥ स पञ्चालपतिः पुत्रान् पितृवंशविवर्धनान् ॥ दारैः संयोजयामास दुहितॄः सदृशैर्वरैः ॥ ८ ॥ पुत्राणां च।नवन्पुत्रा एकैकस्य शतं शतम् ॥ यैर्वै पौरंजनो वंशः पञ्चालेषु समेधितः ॥ ९ ॥ तेषु तद्रिक्थहारेषु गृहकोशानुजीविषु ॥ निरूढेन ममत्वेन विषयेष्वन्वबध्यत ॥ १० ॥ ईजे च क्रतुभिर्घोरैर्दीक्षितः पशुमारकैः ॥ देवान् पितॄन् भूतपतीन् नानाकामो यथा भवान् ॥ ११ ॥

सम्राटकी व्यतीत होतीभई ॥ ६ ॥ हे प्रजापते! एकसो दस बेटी भई, वे पितृमातृयशकरवेवारी भई, शीलउदारगुणयुक्त पौरंजन्यवंश भयो ॥ ७ ॥ सो पंचालपति पिताके वंश बढानेवारे पुत्रनको विवाह करतो भयो, समान वरनको बेटी व्याही ॥ ८ ॥ उन पुत्रनके एक एक शतपुत्र भए, जिन करके पौरंजनवंश पंचालदेशमें बढो॥९॥उनके दायभागी गृहखजानेके मालक विन सबोंमें महाममताके वश होयकर विषयोंमें फस जातो भयो ॥१०॥ यह राजाभी तेरी समान दीक्षा लेकर विविध प्रकारकी अभिलाषाओंके भयंकर पशु हिंसावारे यज्ञोंसे देवता पितृ और भूतपतियोंका यजन किया ॥११॥

140

ऐसे योग्य प्रमत्त कुटुंबमें आसक्त चित्तकू वो काल आयके प्राप्त भयो जो योषितानको अप्रिय है, वाको नाम जरापन है ॥१२॥ हे नृप ! चंडवेग(वर्ष) नाम एक गंधर्वोंको अधिपति हो, वाके बली गंधर्व ३६० (दिन) होते भए ॥ १३ ॥ उनकी उतनीही स्त्रियें रात्रि होती भई जो सित असित नामवाली है और बलवान हो जो विचरण करकै इस नगरीको लुटती है ॥ १४ ॥ जब चंडवेगके अनुचर पुरंजनके पुरको हरवेको प्रारंभ करते भये, तब प्राणरूप प्रजागर मनै करतो भयो ॥१५॥ सातसे इक्कीस बली गंधर्वोंसे पुरंजन पुरको अध्यक्ष बलवान नाग सौ वर्ष युद्ध करता हुआ ॥१६॥ जब बहुत जनोंके साथ इकला युद्ध करनेसै यह नाग क्षीण बल होने लगता है तब पुरंजन देश नगर और कुटुम्ब सहित व्याकुल हो चिन्तामें

युक्तेष्वेवं प्रमत्तस्य कुटुम्बासक्तचेतसः ॥ आससाद स वै कालो योऽप्रियः प्रिययोषिताम् ॥ १२ ॥ चण्डवेग इति
ख्यातो गन्धर्वाधिपतिर्नृप ॥ गन्धर्वास्तस्य बलिनः षष्ट्युत्तरशतत्रयम् ॥१३॥ गन्धर्व्यस्तादृशीरस्य मैथुन्यश्च सिता-
सिताः ॥ परिवृत्त्या विलुम्पन्ति सर्वकामविनिर्मिताम् ॥ १४ ॥ ते चण्डवेगानुचराः पुरंजनपुरं यदा ॥ हर्तुमारेभिरे
तत्र प्रत्यषेधत् प्रजागरः ॥ १५ ॥ स सप्तभिः शतैरेको विंशत्या च शतं समाः ॥ पुरंजनपुराध्यक्षो गन्धर्वैर्युयुधे
बली ॥ १६ ॥ क्षीयमाणे स्वसंबन्ध एकस्मिन् बहुभिर्युधा ॥ चिन्तां परां जगामार्तः सराष्ट्रपुरबान्धवः ॥१७॥ स एव
पुर्यां मधुभुक् पञ्चालेषु स्वपार्षदैः ॥ उपनीतं बलिं गृह्णन् स्त्रीजितो नाविदद् भयम् ॥ १८॥ कालस्य दुहिता काचि-
त्त्रिलोकीं वरमिच्छती ॥ पर्यटन्ती न बर्हिष्मन् प्रत्यनन्दत कश्चन ॥ १९ ॥ दौर्भाग्येनात्मना लोके विश्रुता दुर्भगेति
सा ॥ या तुष्टा राजर्षये तु वृताऽदात् पूरवे वरम् ॥ २० ॥

प्राप्त होता है ॥ १७ ॥ परन्तु मधुभोजी स्वपार्षदों सहित पंचाल देशमें प्राप्त बलिको ग्रहण करता स्त्रीजित होनेसै भयकों नही प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ हे राजन्! इसी अवसरमें कालकी कोई दुहिता त्रिलोकीमें वरकी इच्छा करति डोलती भई परन्तु कोई वाको सराहना न करतो भयो किसीने उसके वरणकी इच्छा नही की ॥ १९ ॥ अपनी आत्माकी दुर्भागता करकै लोकमें वह दुर्भगा विख्यात ही, इसका प्रथम पुरु राजानै वरण किया था इस कारण इसने प्रसन्न हो राजाको वर दिया ॥ २० ॥

स्त्रियें बोलीं हे नरनाथ ! हे शत्रुनाशक ! तुमारी प्रियाको जो निश्चय है सो हम नहीं जानै है, परंतु विन बिछाये धरतीपर सोय रही है ॥ १८ ॥ श्रीनारदजी बोले कि पुरंजन अपनी स्त्रीको धरतीमें सोई देखकर ताके संगसे ज्ञान नष्ट होय बडी भारी विवशताको प्राप्त होतो भयो ॥ १९ ॥ मधुर वाणीसें सांत्वना कर दुःखी हृदयसै प्यारीके स्नेहके क्रोधका कोई चिन्हभी न देखा जिस्सै जानता कि प्यारीने यह प्रणयकोप किया है ॥२०॥ नीतिमें चतुर वीर धीरेसे वाके पास जाय गोदमें चरण राख ललित प्रियाके दोनों चरणकों छूयकै बोले ॥ २१ ॥ पुरंजन बोले कि हे शुभे !

रामा ऊचुः ॥ नरनाथ न जानीमस्त्वत्प्रिया यद् व्यवस्यति ॥ भूतले निरवस्तारे शयानां पश्य शत्रुहन् ॥१८॥ नारद उवाच ॥ पुरंजनः स्वमहिषीं निरीक्ष्यावधुतां भुवि ॥ तत्सङ्गोन्मथितज्ञानो वैक्लव्यं परमं ययौ ॥ १९ ॥ सान्त्वयन् श्लक्ष्णया वाचा हृदयेन विदूयता॥ प्रेयस्याः स्नेहसंरम्भालिङ्गमात्मनि नाभ्यगात् ॥२०॥ अनुनिन्येऽथ शनकैर्वीरोऽनुनयकोविदः ॥ पस्पर्श पादयुगलमाह चोत्सङ्गलालितम् ॥ २१ ॥ पुरंजन उवाच ॥ नूनं त्वकृतपुण्यास्ते भृत्या येष्वीश्वराः शुभे ॥ कृतागःस्वात्मसात् कृत्वा शिक्षादण्डं न युञ्जते ॥२२॥ परमोऽनुग्रहो दण्डो भृत्येषु प्रभुणार्पितः ॥ बालो न वेद तत् तन्वि बन्धुकृत्यममर्षणः ॥ २३ ॥ सा त्वं मुखं सुदति सुभ्रनुरागभारव्रीडाविलम्बविलसद्धासितावलोकम् ॥ नीलालककालिभिरुपस्कृतमुन्नसं नः स्वानां प्रदर्शय मनस्विनि वल्गुवाक्यम् ॥ २४ ॥

दास अपराध करैं और उन्है दंड न हो तौ वे मंदभागी जान्ने स्वामियौंका धर्म है कि अपराधी दासौंको शिक्षा करनेके निमित्त दंड दै ॥ २२ ॥ अपने नौकरोंमें जो प्रभु दंड दे हैं, वो परम अनुग्रह है, हे तन्वि ! बालक इस बातको नही जाने है और जो सेवक दंडसे मनमें दुःख मान क्रोध करै उसै मूर्ख जान्ना उचित है ॥ २३ ॥ हे सुदति ! हे सुभ्रु ! हे मनस्विनी ! अनुराग भरे लाजसे शोभित, हसितयुक्त चितवन, नीली अलकपंक्ति उच्चनासिका मनोहर वचन युक्त मुखकों अपनोंको दिखाओ ॥ २४ ॥

तस्मिन् दधे दममहं तव वीरपत्नि योऽन्यत्र भूसुरकुलात् कृतकिल्बिषस्तम् ॥ पश्ये न वीतभयमुन्मुदितं त्रिलोक्यामन्यत्र वै मुररिपोरितरत्र दासात् ॥ २५ ॥ वक्त्रं न ते वितिलकं मलिनं विहर्षं संरम्भभीममविमृष्टमपेतरागम् ॥ पश्ये स्तनावपि शुचोपहतौ सुजातौ बिम्बाधरं विगतकुङ्कुमपङ्करागम् ॥ २६ ॥ तन्मे प्रसीद सुहृदः कृतकिल्बिषस्य स्वैरं गतस्य मृगयां व्यसनातुरस्य ॥ का देवरं वशगतं कुसुमास्त्रवेगविस्रस्तपौंस्नमुशती न भजेत कृत्ये ॥ २७ ॥ इति श्रीभा० च० पुरंजनोपा० षड्विंशः ॥ २६ ॥ नारद उवाच ॥ इत्थं पुरंजनं सम्यग् वशमानीय विभ्रमैः ॥ पुरंजनी महाराज रेमे रमयती पतिम् ॥ १ ॥ स राजा महिषीं राजन् सुस्नातां रुचिराननाम् ॥ कृतस्वस्त्ययनां तृप्तामभ्यनन्ददुपागताम् ॥ २ ॥

हे मोसरीके वीरकी पत्नि ! एक ब्राह्मण और भगवद्दासके बिना और जो कोई तेरो अपराध करवेवारो है, वामें दंड धारैंगे, कारण कि त्रिलोकीमें वा त्रिलोकीसे अन्यत्र मेरा डर न मानकर आनंदसे रहनेहारे कोई मुझे नहीं दिखता ॥ २५ ॥ तिलक शून्य, मलिन, हर्षरहित, कोपसे भयंकर तेरो मुख कभी हमने न देखो, शोकसे लचे सुंदर स्तनभी ऐसे कभी न देखे, कुंकुमकीसी कांतीरहित कंदूरीके फल समान अधर शोकग्रस्त न देखे ॥ २६ ॥ ताते मोपै आप प्रसन्न हो मैं तेरी आज्ञा विना व्यसनमें आतुर होय शिकारको गयो, अब कामवेगसे धैर्यरहित, तथा अपने आधीन मित्र रूप अपने भर्ताकी कामनावाली कौन नारी उचित कृत्यमें न भजै[१] ॥ २७ ॥ इति श्रीमन्महाभा० भा० चतुर्थ० पुरंजनेन स्वापराधक्षमापनवर्णनं नाम षड्विंशतितमोध्यायः ॥ २६ ॥ श्रीनारदजी बोले कि हे महाराज ! या प्रकार पुरंजनी पुरंजनको अपने सुन्दर कटाक्षोंसें मोहित करकै वशकर रमण करातो भई आपभी रमण करती भई ॥ १ ॥ हे राजन् ! सो राजा सुन्दर स्नान करीभई, सुन्दर मुखवारी स्वस्त्ययन युक्त तृप्त अपने निकट रानीको आता देख राजाने उसका बहुत सत्कार किया ॥ २ ॥

---

[१] “ तापे एक पद है ॥ बिहाग ॥ तिताला ॥ तिरिया जो न होत हरिदासी ॥ टेर ॥ सो तिरिया गनिकासम जानो दुखरावाति जगहांसी ॥ १ ॥ परमारथ कबहू नहि जानति आपन परी गलफांसी ॥ २ ॥ कहा भयो रूपगुण सुंदर नाहि न श्याम उपासी ॥ ३ ॥ व्याासदास यह संगत तजिये मिटत है जमकी फांसी ॥ ४ ॥ ”

मनरूप रस्मी बुद्धिरूप सारथी एक हृदयरूप स्थान रथीके बैठवेकी ठौर हैं, दो शोकमोहरूप रथके धुराके बन्धन हैं, पंचकर्मेंद्रिय विक्रम जाकी गति है,सप्त त्वचारूप जामे वरूथ पांच शब्दादि विषय [illegible]कारी हैं ॥२॥सुवर्णके आभरण सुवर्णको बखतर रजोगुणरूपी पहरे अक्षय बाणभरो तर्कस (अनंत वासना), दश सिपाही (दश इन्द्रिय) एक उनका अधिपति (मन) ग्यारह जनोंको संग ले पांचप्रकार (पंचेन्द्रिय) की गतिवाले वनको गया ॥ ३ ॥ धनुषमें राग द्वेषादि बाण चढाय भोगादिरूप स्थानधारी मृगसमानविषयोंके मारने (भोगनेकी) जाकी लालसासे पुरंजनजीव

एकरश्म्येकदमनमेकनीडं द्विकूबरम् ॥ पञ्चप्रहरणं सप्तवरूथं पञ्चविक्रमम् ॥ २ ॥ हैमोपस्करमारुह्य स्वर्णवर्माऽक्षयेषुधिः ॥ एकादशचमूनाथः पञ्चप्रस्थमगाद् वनम् ॥ ३ ॥ चचार मृगयां तत्र दृप्त आत्तेषुकार्मुकः ॥ विहाय जायामतदर्हां मृगव्यसनलालसः ॥ ४ ॥ आसुरीं वृत्तिमाश्रित्य घोरात्मा निरनुग्रहः ॥ न्यहनन्निशितैर्बाणैर्वनेषु वनगोचरान् ॥ ५ ॥ तीर्थेषु प्रतिदृष्टेषु राजा मेध्यान् पशून् वने ॥ यावदर्थमलं लुब्धो हन्यादिति नियम्यते ॥ ६ ॥ य एवं कर्म नियतं विद्वान् कुर्वीत मानवः ॥ कर्मणा तेन राजेन्द्र ज्ञानेन न स लिप्यते ॥ ७ ॥ अन्यथा कर्म कुर्वाणो मानारूढो निबध्यते ॥ गुणप्रवाहे पतितो नष्टप्रज्ञो व्रजत्यधः ॥ ८ ॥

त्यागके अयोग्य विवेकवती बुद्धिकूं त्यागकर शिकार खेलवेकों जाते भए ॥ ४ ॥ आसुरी वृत्तिमें स्थित होयकै घोरात्मा निर्दयी पैने बाणोंसे वनमें वनके जीवनकों हनतो भयो ॥ ५ ॥ तीर्थश्राद्धादिको राजा पवित्र पशूनकों वनमें लुब्धककी नाईं मार लावै, ये नियम है ॥ ६ ॥ जो मनुष्य विद्वान् ऐसे निश्चय कर कर्मनकों करै हैं, हे राजेंद्र! या कर्म करकै ज्ञानसे वो लिप्त न होयगो ॥ ७ ॥ यासे अन्यथा कर्म करै तो मानमें आरूढ होयकर बंधनको प्राप्त होता है, या संसारमें गिर बुद्धि नष्ट होनेसे नर्कमें जाय हैं ॥ ८ ॥

---

[१] शास्त्रमें मांस खानेका मृगयाका विधान नहीं है किन्तु जिनके चित्त हिंसामे आसक्त हैं उनको उस कार्यसे पृथक करनेहीके निमित्त उपदेश है कि सर्वथा हिंसा न करनी, केवल श्राद्धमें सोभी सब पशु नहीं किन्तु जिसकी आज्ञा है सोभी अधिक नहीं जितनी आवश्यकता हो इत्यादि वाक्य हिंसा निवृत्तकेही निमित्त हैं ।

144

उस वनमें विचित्र पंखवाले बाणोंसे भग्न शरीर हो दुःखी मृगौंका नाश हौंने लगा जिसको दयालु पुरुष सहन नहीं करसक्ते ॥ ९ ॥ खगौंश शूकर महिष लीलगाय रुरु शेही पवित्र अपवित्र अनेक पशूनको मारते अपने स्थानको आते भए ॥ १० ॥ तब भूखप्याससे थके भए, बगदके घरपर आए, स्नान भोजन कर सब परिश्रम दूर हौंनेपर शय्यापै आए ॥ ११ ॥ धूप चन्दन मालासे शरीरको शोभित करे सब अंगमें सुन्दर गहिने पहिरे स्त्रीमें मनको लगाये ॥ १२ ॥ तृप्त भए हृष्ट और महा गर्वसे कामविवशचित्त हो राजा महलोंमे गये परन्तु तहां घरका कार्य संपादन करनेहारी रानीको न देखा ॥ १३ ॥ तब अंतःपुरकी स्त्रीनसे पुरंजन पूछते भए हे स्त्रियो ! तुह्मारी कुशल तौ है अपनी स्वामिनी सहित जैसे पहिले विचरतीथी तैसे या समय क्यों नहीं विचरो हो ॥ १४ ॥ गृहमें गृहकी सम्पदा तैसी अब नहीं रुचै है, याको कहा कारण है जिस गृहमें माता वा पतिव्रता स्त्री नहीं होती वह घर विना पहियेके रथकी समान है ऐसे घरमे दुःखी हो कौन पुरुष रहै ॥ १५ ॥ १६ ॥ वो ललना कहां है, जो या व्यसनरूप सागरमें डूबते भये मोकों उबारतीही, और पदपदमें मेरी बुद्धिको प्रकाश करती रहतीही, सो कहां गई ॥ १७ ॥

तत्र निर्भिन्नगात्राणां चित्रवाजैः शिलीमुखैः ॥ विप्लवोऽभूद् दुःखितानां दुःसहः करुणात्मनाम् ॥ ९ ॥ शशान् वराहान् महिषान् गवयान् रुरुशल्यकान् ॥ मेध्यानन्यांश्च विविधान् विनिघ्नन् श्रममध्यगात् ॥ १० ॥ ततः क्षुत्तृट्परिश्रान्तो निवृत्तो गृहमेयिवान् ॥ कृतस्नानोचिताहारः संविवेश गतक्लमः ॥ ११ ॥ आत्मानमर्हयांचक्रे धूपलेपस्रगादिभिः ॥ साध्वलंकृतसर्वाङ्गो महिष्यामादधे मनः ॥ १२ ॥ तृप्तो हृष्टः सुदृप्तश्च कन्दर्पाकृष्टमानसः ॥ न व्यचष्ट वरारोहां गृहिणीं गृहमेधिनीम् ॥ १३ ॥ अन्तःपुरस्त्रियोऽपृच्छद्विमना इव वेदिषत् ॥ अपि वः कुशलं रामाः सेश्वरीणां यथा पुरा ॥ १४ ॥ न तथैतर्हि रोचन्ते गृहेषु गृहसंपदः ॥ यदि न स्याद्गृहे माता पत्नी वा पतिदेवता ॥ १५ ॥ व्यङ्गे रथ इव प्राज्ञः को नामासीत दीनवत् ॥ मदीयं मानसं नित्यं मोहयन्ती पदे पदे ॥ १६ ॥ क्व वर्तते सा ललना मज्जन्तं व्यसनार्णवे ॥ या मामुद्धरते प्रज्ञां दीपयन्ती पदे पदे ॥ १७ ॥

पुरंजन मल त्यागते भए ॥५३॥ इन पुरवासीनके मध्यमें अंधवत् पाद हस्त भए, नेत्रोंको पति पुरंजन इन इंद्रियोंसे जाते भए, कर्म करते भए॥५४॥ सो जब अंतःपुरमें गयो तब पवनसहित मोह प्रसन्नता हर्ष बुद्धि स्त्रीपुत्ररूप इंद्रियोंसे प्राप्त होतोभयो ॥ ५५ ॥ ऐसे कर्ममें आसक्त कामी आत्मा ठगोभयो बुद्धिहीन नृप बुद्धिरूप पटराणीकी आज्ञा मानतो भयो जो वह कहै सो करतो भयो ॥ ५६ ॥ पुरंजन मदमें विह्वल होकर जो पुरंजनी मदि-

अन्धावमीषां पौराणां निर्वाक्पेशस्कृतावुभौ ॥ अक्षण्वतामधिपतिस्ताभ्यां याति करोति च ॥ ५४ ॥ स यर्ह्यन्तःपुरगतो विषूचीनसमन्वितः ॥ मोहं प्रसादं हर्षं वा याति जायात्मजोद्भवम् ॥ ५५ ॥ एवं कर्मसु संयुक्तः कामात्मा वञ्चितोऽबुधः॥महिषी यद्यदीहेत तत्तदेवान्ववर्तत ॥५६॥ क्वचित् पिबन्त्यां पिबति मदिरां मदविह्वलः॥अश्नन्त्यां क्वचिदश्नाति जक्षत्यां सह जक्षति ॥ ५७ ॥

---

१ इस समय तौ स्त्रीकेही वशीभूत बहुत है—एक पंडितजीने कथा बांचनेमें कही कि जो गुरुदीक्षा ले है उसै फिर कुछ कार्य करना शेष नहीं रहता, एक लाला जो बडे धनी है, उनके पुत्रने कही पंडितजी कंठी देदो, पंडितजीनै माला कंठी देदी, तब उस दिनसै वह कथा सुन्नेभी नहीं आया, एक दिन पंडितजीको कहीं मार्गमें मिला तब उन्होंने कही कि कथामें नहीं आते ? यह बोले महाराज ! अब कृतार्थ होगये कंठी लेली अब सुन्नेकी क्या आवश्यकता है, और कलकू हम दूसरे देशको जायगे कभी दर्शन दीजो, पंडितजी दो तीन वर्षके पीछे उसके घर गये, उसने ठहराया, भोजनकी तौ बडी पूछगछ करी, जब तीन चार दिनके पीछे बिदा मांगी, तब लालाजी बोले ठहरो, इसी प्रकार बहुत वार कहतेही रहे, परन्तु दिया कुछ नहीं एक दिन उनकी स्त्रीने उन्हें देखकर पुछवाय, तुम कौन हो कहां रहो हो पंडितजी बोले यह लाला हमारा चेला है, कुछ लेनेको आये हैं, पर यह रोज ठहरनेको कहता है कुछ देता नहीं, स्त्रीने सुनतेही कही महाराज ! तुमारो चेला है तौ तुमारा कहना नहीं मान्ता, अच्छा यह लो, ऐसा कह अपनी पहुंचि पंडितजीको उतार दी और बोली भयरहित इन्हें लो पंडितजीने डरते २ लेली, इधर वह मुख लपेटकर पड़रही, लालाजी घर आकर बोले कैसे पडी हो वह बोली कि पहुंचि खोगई लाला बोले और बनजायगी, वह बोली जब आजायगी जभी भोजन करूंगी, लालाजीनै तुरत बनवादी और बोले अब तौ भोजनादि करो वह उठी और दूसरे दिन पंडितजीको बुलाय नई पहुंची दिखाकर कही कि अब बताओ तुह्मारा चेला है कि मेरा। पंडितजी चुप हुए उसने कही कलकी पहुंची बिदाईमें ले घर आयो, यह कुछ न देगा, पंडितजी वह ले घर आये।

रा पीये है तो आपभी पीवै वो खाय तो वोभी खावै वो भक्षण करै तो वोभी भक्षण करै है ॥ ५७ ॥ वो गावै तौ वोभी गावै है वो रोवै तौ पुरंजनभी रोवै वो हंसै तो वोभी हंसैहै, वो वोले तो वोभी वोलै है ॥ ५८ ॥ पुरंजनी धावै तो पुरंजनभी दौडै है, वा बैठे तो वोभी बैठे है वो सोयजाय तो वोभी सोयजाय है वो वैठी होजाय तो वोभी वैठी होजाय है ॥ ५९ ॥ वो सुनै है तो वोभी सुनै है, वो देखे है तो वोभी देखेहै वो सूंघै तो वोभी सूंघै है वो छुवै तो येभी छुवैहै ॥ ६० ॥ जो अपनी स्त्रीको शोच करती देखैहै तो आपभी दीनकी नाई शोक करैहै, वो हर्षित होय तौ वोभी हर्षित होयहै, वो मुदित होय है तो वोभी मुदित होयहै ॥ ६१ ॥ सब प्रकारसे वाकी स्त्रीने जब वाकूं वस करलियो, तब वह अपने असंगत्वादि स्वभावोंको दूर कर

क्वचिद्गायति गायन्त्यां रुदन्त्यां रुदति क्वचित्॥क्वचिद्धसन्त्यां हसति जल्पन्त्यामनुजल्पति॥५८॥क्वचिद्धावति धावन्त्यां तिष्ठन्त्यामनुतिष्ठति ॥ अनुशेते शयानायामन्वास्ते क्वचिदासतीम् ॥५९॥ क्वचिच्छृणोति शृण्वन्त्यां पश्यन्त्यामनुपश्यति॥क्वचिज्जिघ्रति जिघ्रन्त्यां स्पृशन्त्यां स्पृशति क्वचित् ॥६०॥ क्वचिच्च शोचतीं जायामनुशोचति दीनवत् ॥ अनुहृष्यति हृष्यन्त्यां मुदितामनुमोदते ॥६१॥ विप्रलब्धो महिष्यैवं सर्वप्रकृतिवञ्चितः ॥ नेच्छन्ननुकरोत्यज्ञः क्लैब्यात्क्रीडामृगो यथा ॥ ६२ ॥ इति श्रीभा० चतुर्थ० पुरंजनपुरंजनीरमणचरित्रवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥
॥ नारद उवाच ॥ स एकदा महेष्वासो रथं पञ्चाश्वमाशुगम् ॥ द्वीषं द्विचक्रमेकाक्षं त्रिवेणुं पञ्चबन्धुरम् ॥ १ ॥

अपनी अभिलाषा न होनेपरभी क्रीडामृगके समान भार्याके वचन अनुसार चलता है ॥ ६२ ॥ इति श्रीभा०भा०यां० चतु०पुरंजनपुरंजनीरमणचरित्रवर्णनं नाम पञ्चविंशोध्यायः ॥ २५ ॥ श्रीनारदजी बोले कि एक समय वह पुरंजन जीव बडासा एक धनुष्य (मैंही कर्ता भोक्ता हूं ऐसा अहंकार) धारण कर पञ्चज्ञानेंद्रियरूप शीघ्र जायवेवारे पांच अश्वोंसे युक्त अहंता ममतारूप दो डंडोंसै युक्त पुण्यपापरूप दो पैया लगे मायारूप धरी त्रिगुणरूप तीन वेणु पांचप्राणरूपी पांच वन्धनसै बंधे रथपर बैठ विहार करनेको गया ॥ १ ॥

हे विभो ! इस नवमुखकी पुरीमें तुम वसो मो करके प्राप्त कामभोग सैकडों वर्षतक ग्रहण करो ॥ ३७ ॥ रतिज्ञानहीन मूर्ख परलोक चिंता इस लोकसे वंचित पशु तुल्य पुरुषोंको त्याग आपके सिवाय और किस्से विहार करूंगी ॥ ३८ ॥ इस गृहस्थाश्रममें धर्म अर्थ काम पुत्रसुख अमृत सम यश, शोक और रजोगुण रहित लोक सब मिलते हैं उसे यति नहीं जानते ॥ ३९ ॥ पितर देवता मनुष्य सब जीवमात्रके आत्माको ये गृहाश्रम है या संसारमें क्षेमको देवे'रो है ऐसे कहैं हैं ॥ ४० ॥ वीरोंमें विख्यात उदार प्रियदर्शनदायक तुम सरीखेकू प्राप्त होयकर मोसरीकी ऐसी कौन

इमां त्वमधितिष्ठस्व पुरीं नवमुखीं विभो ॥ मयोपनीतान्गृहाण कामभोगाञ्छतं समाः ॥ ३७ ॥ कं नु त्वदन्यं रमये ह्यरतिज्ञमकोविदम् ॥ असंपरायाभिमुखमश्वस्तनविदं पशुम् ॥ ३८ ॥ धर्मो ह्यत्रार्थकामौ च प्रजानन्दोऽमृतं यशः ॥ लोका विशोका विरजा यान्न केवलिनो विदुः ॥ ३९ ॥ पितृदेवर्षिमर्त्यानां भूतानामात्मनश्च ह ॥ क्षेमं वदन्ति शरणं भवेऽस्मिन्यद्गृहाश्रमः ॥ ४० ॥ का नाम वीरविख्यातं वदान्यं प्रियदर्शनम् ॥ न वृणीत प्रियं प्राप्तं मादृशी त्वादृशं पतिम् ॥ ४१ ॥ कस्या मनस्ते भुवि भोगिभोगयोः स्त्रिया न सज्जेद्भुजयोर्महाभुज ॥ योऽनाथवर्गाधिमलं घृणोद्धतस्मितावलोकेन चरत्यपोहितुम् ॥ ४२ ॥ नारद उवाच ॥ इति तौ दंपती तत्र समुद्य समयं मिथः ॥ तां प्रविश्य पुरीं राजन्मुमुदाते शतं समाः ॥ ४३ ॥ उपगीयमानो ललितं तत्र तत्र च गायकैः ॥ क्रीडन् परिवृतः स्त्रीभिर्ह्रदिनीमाविशच्छुचौ ॥ ४४ ॥ सप्तोपरिकृता द्वारः पुरस्तस्यास्तु द्वे अधः ॥ पृथग्विषयगत्यर्थं तस्यां यः कश्चनेश्वरः ॥ ४५ ॥

नामकी है जो आपको न वरैगी ॥ ४१ ॥ हे महाभुज ! सर्पकी देह समान भुजावारे पुरुषमें कौनको मन आसक्त न होयगो जो तुम अनाथसमूहोंके सब दुःखनको दयायुक्त लज्जाके अवलोकन करके दूर करवेको विचरो हो ॥४२॥ नारदजी बोले कि हे राजन् ! ऐसे वे स्त्रीपुरुष वा समयमें उद्यत हो वा पुरीमें प्रवेश कर शतवर्षतक आनंद करतेभए ॥ ४३ ॥ तहां तहां गायक ललितराग गायरहे हैं, क्रीडा करै हैं स्त्रीसहित हैं, पवित्र पुष्करिणीमें स्नान करतेभए ॥ ४४ ॥ यामें सात तो ऊपरके द्वार हैं और दो नीचेके द्वार हैं (या शरीरमें अलग अलग विषयोंके गत्यर्थ) जिनमें जन निवास

148

करतेहैं (सोई शरीरमें सात नेत्रादि ऊपर है गुदाआदि नीचे दो हैं) ॥४५॥ हे राजन्! उस पुरीके पूर्व दिशामें पांच द्वार हैं एक दक्षिणदिशाको द्वार है, एक उत्तर दिशाको द्वार है पश्चिम दिशाको दो द्वार हैं, इन द्वारनके नाम अब कहताहूं ॥ ४६ ॥ पूर्वकी ओर खद्योता और आविर्मुखी नाम दो द्वार हैं (जो दाहिने बाये नेत्र हैं) यह एक सीधमें है इनमें पुरंजन राजा विभ्राजित देशमें (रूप) द्युमान नामक मित्र (नेत्र इन्द्रिय) के साथ जायहै ॥४७॥ सो द्युमत्सखासे प्राप्तभई नलिनी वामदक्षिण दोनों नाक छिद्र पूर्वको है, वायुसखासे सुगंध याको प्राप्त होती भई ॥ ४८ ॥ बोलनो अनेक अन्नको स्वाद लेनो ये मुख्य मुख प्रथम है या पुरका राजा रसज्ञाता व्यवहारकारी विषयस्वाद लेतो भयो ॥ ४९ ॥ या नृपपुरीमें पितरोंको बुलायवेवारो दहिनो

पञ्चद्वारस्तु पौरस्त्या दक्षिणैका तथोत्तरा ॥ पश्चिमे द्वे अमूषां ते नामानि नृप वर्णये ॥ ४६ ॥ खद्योताविर्मुखी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते ॥ विभ्राजितं जनपदं याति ताभ्यां द्युमत्सखः ॥ ४७ ॥ नलिनी नालिनी च प्राग्द्वारावेकत्र निर्मिते ॥ अवधूतसखस्ताभ्यां विषयं याति सौरभम् ॥ ४८ ॥ मुख्या नाम पुरस्ताद्वास्तयाऽऽपणबहूदनौ ॥ विषयौ याति पुरराड्रसज्ञविपणान्वितः ॥ ४९ ॥ पितृहूर्नृपपुर्या द्वार्दक्षिणेन पुरंजनः ॥ राष्ट्रं दक्षिणपञ्चालं याति श्रुतधरान्वितः ॥ ५० ॥ देवहूर्नाम पुर्या द्वा उत्तरेण पुरंजनः ॥ राष्ट्रमुत्तरपञ्चालं याति श्रुतधरान्वितः ॥ ५१ ॥ आसुरी नाम पश्चाद्वास्तया याति पुरंजनः ॥ ग्रामकं नाम विषयं दुर्मदेन समन्वितः ॥ ५२ ॥ निर्ऋतिर्नाम पश्चाद्वास्तया याति पुरंजनः ॥ वैशसं नाम विषयं लुब्धकेन समन्वितः ॥ ५३ ॥

कर्ण, देवनको बुलायवेवारो वामकर्ण है इन श्रवणसे पुरंजन दक्षिणपंचालराज्यको भोगतो भयो " तैसे लिखा है कि ॥ पितृहूर्दक्षिणः कर्ण उत्तरो देवहूः स्मृतः ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च शास्त्रं पंचालसंज्ञितं ॥ पितृयानं देवयानं श्रोत्राच्छ्रुतधराद्व्रजेदिति " ॥ ५० ॥ देवनको बुलानेवाला द्वार उत्तर ओर वामकर्ण है, श्रवणसे उत्तर पंचालराज्यको सुख पुरंजनको प्राप्त होतो भयो ॥ ५१ ॥ आसुरी सुखदायी शिश्न नामक पच्छमको द्वार है तासे दुर्मदके कारण ग्रामक नामक विषयनको प्राप्त होते भए ॥ ५२ ॥ निर्ऋतिनाम पश्चिमको द्वार गुदा है उससे मलत्याग होयहै पायु इंद्रिय सहित

सुंदर नाक, सुंदर दांत, सुंदर कपोल, श्रेष्ठ मुख बराबरके दोनों कानोंमें कुंडलश्रीकों धारे ॥ २२ ॥ पीरी फरिया पहिने सुंदर कटिपश्चाद्भागवारी श्याम सुवर्णकी कौंदनी धारै, शब्दायमान नूपुरौं देवताकी नाईं मालूम पडती भई ॥ २३ ॥ तरुणाईको प्रगट करनेहारे वर्तुलाकार स्तनौंको लाजके मारे वस्त्रोंसे ढक रहिथीं ॥ २४ ॥ लाज भरे मंद हास्यसै शोभित इस बालेके प्रेमसै ऊपरकी ओर स्फुरायमान भृकुटीरूप धनुष निर्गत हुए स्नेह भरे नैनोंके पंखवाले कटाक्षरूपी बाणोंसै विद्ध हो पुरंजन उससै बोला ॥२५॥ हे कमलनैनी! तुम कौन हो? कौनकी हो? हे सति! कहांते आई

सुनासां सुदतीं बालां सुकपोलां वराननाम् ॥ समविन्यस्तकर्णाभ्यां बिभ्रतीं कुण्डलश्रियम् ॥२२॥ पिशङ्गनीवीं सुश्रोणीं श्यामां कनकमेखलाम् ।पद्भ्यां क्वणद्भ्यां चलतीं नूपुरैर्देवतामिव॥२३॥स्तनौ व्यञ्जितकैशोरौ समवृत्तौ निरन्तरौ॥ वस्त्रान्तेन निगूहन्तीं व्रीडया गजगामिनीम् ॥ २४ ॥ तामाह ललितं वीरः सव्रीडस्मितशोभनाम् ॥ स्निग्धेनापाङ्गपुङ्खेन स्पृष्टः प्रेमोद्भमद्भुवा । २५ ॥ का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कस्यासीह कुतः सति ॥ इमामुपपुरीं भीरु किं चिकीर्षसि शंस मे ॥ २६ ॥ क एतेऽनुपथा ये त एकादश महाभटाः ॥ एता वा ललनाः सुभ्रूः कोऽयं तेऽहिः पुरःसरः ॥ २७ ॥ त्वं ह्रीर्भवान्यस्यथवा रमापतिं विचिन्वती किं मुनिवद्रहो वने ॥ त्वदङ्घ्रिकामाप्तसमस्तकामं क पद्मकोशः पतितः कराग्रात् ॥२८॥

हो? यह उपपुरी किनकी है? कहा करवेकी इच्छा है? सो कहो ॥ २६ ॥ ये ग्यारह महाभट कौन हैं? हे सुभ्रु! ये ललना कौन है? और ये तुह्मारे आगे चलवेवारो महासर्प कौन है ॥ २७ ॥ तुम इस निर्जन वनमें अपने पति धर्मकों ढूंढती लज्जा तौ नहीं हो अथवा शिवको ढूंढती पार्वती वा ब्रह्माको ढूंढती सरस्वती अथवा भगवानको ढूंढती लक्ष्मी हो तुम मुनियौंकी भांति नियम धारे हो जो तुह्मारा पति होगा तुह्मारे चरणौंकी कामनासै उसके सब मनोरथ पूरे होंगे जो लक्ष्मी हो तौ तुम्हारे हाथका कमल कहां गिरगया ॥ २८ ॥

---

(१) ॥ कवित्त ॥ “ जयसैं द्वै पातभयो विरुलाफलफूल रह्यो अपनी रुचिसौं । कोऊ सुंदर नारिके हाथ परोतो कसाय बुनाय धरो गजसौं ॥ नितही तिनतांतकी आंचसहीधो वियाकी पछार सही रुचिसौं । इतनो दुःख पायभयो अंचरा तब कौ कि लोल करै कुचसौं ॥ १ ॥ ”

हे वरोरु ! परन्तु इनके मध्यमें भूमिकी छूयवेवारी तौ कोई नहीं है महा कर्मकारी मुझ वीरवरके साथ या पुरीमें तुम रमण करवेकों योग्य हो, जैसे यज्ञपुरुषके साथ श्रीलक्ष्मी रमण करै ॥ २९ ॥ हे शोभने ! लाजभरी मुसकानकी भ्रूकटाक्षसै खंडित इंद्रियवारे मोको तो करकै रचोभयो भगवान् मनोभव कामदेव बाधा करै है सो तुम कृपा करो ॥ ३० ॥ हे शुचिस्मिते ! लाजसे सामने तू नहीं आती सो सुंदर भ्रूविशाल नेत्र युक्त लंबे लंबे नीले अलकसमूहसे सुंदर वाणीवारे मुखकूं खोलके दिखाओ ॥ ३१ ॥ श्रीनारदजी बोले कि ऐसे पुरंजन नारीको अधीरवत् याचनाकर रहेथे तब वो नारी उसे मोहित हो हसती भई उस वीरकी सराहना करती भई ॥३२॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! हम अपने बनायवेवारेकों जिसने तुम्हारा और हमारा नाम गोत्र किया है अच्छी तरह नहीं जानती ॥ ३३ ॥ याते परे कबसे हमारी आत्मा है सोभी नहीं जानती हे वीर ! जाने ये पुरी निर्माण कीनी और जो इस पुरीका रक्षक है उसेभी नहीं जानती ॥ ३४ ॥ हे मानद ! यह पुरुष तौ मेरे सखा और स्त्रियें सखी हैं जब मैं सो जाती हूं तब यह नाग मेरी रक्षा करता है ॥ ३५ ॥ हे शत्रुनाशक ! तुम यहां आये यह बहुत भली हुई तुम्हारा मंगल हो जो आप संसारी विषयोंके भोगनेकी इच्छा करते हो तौ मैं बंधुओं सहित आपकी सेवा करूंगी ॥ ३६ ॥

नाऽऽसां वरोर्वन्यतमा भुविस्पृक्पुरीमिमां वीरवरेण साकम् ॥ अर्हस्यलंकर्तुमदभ्रकर्मणा लोकं परं श्रीरिव यज्ञपुंसा ॥२९॥ यदेष तेऽपाङ्गविखण्डितेन्द्रियं सव्रीडभावस्मितविभ्रमद्भ्रुवा॥ त्वयोपसृष्टो भगवान्मनोभवः प्रबाधतेऽथानुगृहाण शोभने ॥३०॥ तदाननं सुभ्रु सुतारलोचनं व्यालम्बिनीलालकवृन्दसंवृतम् ॥ उन्नीय मे दर्शय वल्गुवाचकं यद्व्रीडया नाभिमुखं शुचिस्मिते॥३१॥ श्रीनारद उवाच ॥ इत्थं पुरंजनं नारी याचमानमधीरवत्॥अभ्यनन्दत तं वीर हसन्ती वीरमोहिता ॥३२॥ न विदाम वयं सम्यक् कर्तारं पुरुषर्षभ ॥ आत्मनश्च परस्यापि गोत्रं नाम च यत्कृतम् ॥३३॥ इहाद्य सन्तमात्मानं न विदाम ततः परम् ॥ येनेयं निर्मिता वीर पुरी शरणमात्मनः ॥३४॥ एते सखायः सख्यो मे नरा नार्यश्च मानद ॥ सुप्तायां मयि जागर्ति नागोऽयं पालयन्पुरीम् ॥ ३५ ॥ दिष्ट्याऽऽगतोऽसि भद्रं ते ग्राम्यान्कामानभीप्ससे ॥ उद्वहिष्यामि तांस्तेऽहं स्वबन्धुभिररिन्दम ॥ ३६ ॥

कौन पण्डित तुम्हारे भजन विना जीर्ण होते हुए शरीरको देख आपके चरणकमलको त्यागैगो, कि जिस मरणकी शंकासे हमारे गुरु ब्रह्मा और चौदह मनु निश्वासकर भजन करते हैं ॥ ६९ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे परमात्मन् ! रुद्रभयसें ध्वस्त विश्वकी और जान्नेहारे विद्वानोंकी भयनाशक गति आप हो ॥ ७० ॥ हे नृपनन्दनहो ! तुम्हारो भद्र होय तुम याकों जपो, स्वधर्ममें बने रहो, अंतःकरण भगवतमें अर्पित करो ॥ ७१ ॥ जो सबकी आत्मामें स्थित आत्मा है, सब जीव मात्रमें स्थित हैं, तिन्हीको पूजन करो, स्तुति करो ध्यान करो वारंवार श्रीहरिको स्मरण करो ॥ ७२ ॥ योग

कस्त्वत्पदाब्जं विजहाति पण्डितो यस्तेऽवमानव्ययमानकेतनः ॥ विशङ्कयाऽस्मद्गुरुरर्चति स्म यद्विनोपपत्तिं मनवश्चतुर्दश ॥ ६९ ॥ अथ त्वमसि नो ब्रह्मन्परमात्मन्विपश्चिताम् ॥ विश्वं रुद्रभयत्रस्तमकुतश्चिद्भया गतिः ॥ ७० ॥ इदं जपत भद्रं वो विशुद्धा नृपनन्दनाः ॥ स्वधर्ममनुतिष्ठन्तो भगवत्यर्पिताशयाः ॥ ७१ ॥ तमेवात्मानमात्मस्थं सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥ पूजयध्वं गृणन्तश्च ध्यायन्तश्चासकृद्धरिम् ॥ ७२ ॥ योगादेशमुपासाद्य धारयन्तो मुनिव्रताः ॥ समाहितधियः सर्व एतदभ्यसतादृताः ॥ ७३ ॥ इदमाह पुराऽस्माकं भगवान्विश्वसृक्पतिः ॥ भृग्वादीनामात्मजानां सिसृक्षुः संसिसृक्षताम् ॥ ७४ ॥ ते वयं नोदिताः सर्गे प्रजासर्गे प्रजेश्वराः ॥ अनेन ध्वस्ततमसः सिसृक्ष्मो विविधाः प्रजाः ॥ ७५ ॥ अथेदं नित्यदा युक्तो जपन्नवहितः पुमान् ॥ अचिराच्छ्रेय आप्नोति वासुदेवपरायणः ॥ ७६ ॥ श्रेयसामिह सर्वेषां ज्ञानं निःश्रेयसं परम् ॥ सुखं तरति दुष्पारं ज्ञाननौर्व्यसनार्णवम् ॥ ७७ ॥

आज्ञाको करकै मुनिव्रत धारो, सावधान बुद्धि कर सबजने याको अभ्यास आदरसे करो ॥ ७३ ॥ भगवान् विश्व रचवेवारेनके पतिनें भृगु आदि पुत्रनको सब विश्वकी रचवेकी इच्छासै यही उपदेश कियाथा ॥ ७४ ॥ सो हम सब प्रजाके ईश्वर प्रजाके रचवेमें जब प्रेरेगए तब या स्तोत्रपाठसे तमोगुण ध्वस्त भयो, विविध प्रकारकी प्रजा रची ॥ ७५ ॥ अब नित्य सावधान होकर स्नानकर जो याकों जपै तो वो वासुदेवमें परायण होयगो, थोडेही कालमें कल्याणकूं प्राप्त होगो ॥ ७६ ॥ सब कल्याणको कल्याणदायक परमश्रेष्ठ ये ज्ञान है, इसज्ञानरूप नावमें बैठ दुष्पार संसारको सुखसें तरैंहैं ॥ ७७ ॥

जो कोई श्रद्धायुक्त मेरो गीत भगवतको स्तव पाठ करैगो, वो महाकठिनसे आराधन योग्य हरिको शीघ्र प्रसन्न करनेमें समर्थ होयगो ॥ ७८ ॥ इन परमेश्वरसें पुरुष सब वस्तुको प्राप्त होय है, उसपर सम्पूर्ण मंगलोंके प्यारे हरि प्रसन्न होते हैं और उनकी कृपासे उनके मनोभिलषित पूर्ण होते हैं ॥ ७९ ॥ जो कोई प्रातःकालमें उठ हाथ जोड़ श्रद्धायुक्त होकर सुने सुनावै वो सब कर्मके बंधनसे छूटैहै ॥ ८० ॥ हे नरदेवके पुत्रहो! परपुरुष परमात्माको जो ये मैंने स्तव गायो है, सो जपो, एकाग्रमन करकै महातप करो तो अंतमें सब मनोरथको प्राप्त होगे ॥ ८१ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां चतुर्थस्कन्धे रुद्रगीतं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि " अब पुरंजन उपाख्यान वर्णन करै है " ऐसै शिवजी कहिकरकै चुप्प भए तव प्रचेताननें पूजा कीनी तब राजपुत्रनके देखते २ तहांई हर अंतर्द्धान होते भए ॥ १ ॥ रुद्रको गायो भगवतको स्तोत्र सब प्रचेता जपतेभए जलमें दशहज्जार वर्षतक तप करते भए ॥ २ ॥ हे विदुर! कर्ममें आसक्त मन ऐसे प्राचीनबर्हि राजाको कृपालु वेदां-

य इमं श्रद्धया युक्तो मद्गीतं भगवत्स्तवम् ॥ अधीयानो दुराराध्यं हरिमाराधयत्यसौ॥७८॥विन्दते पुरुषोऽमुष्माद्यद्यदिच्छत्यसत्वरम् ॥ मद्गीतगीतात्सुप्रीताच्छ्रेयसामेकवल्लभात्॥७९॥ इदं यः कल्य उत्थाय प्राञ्जलिः श्रद्धयाऽन्वितः॥ शृणुयाच्छ्रावयेन्मर्त्यो मुच्यते कर्मबन्धनैः ॥ ८० ॥ गीतं मयेदं नरदेवनन्दनाः परस्य पुंसः परमात्मनः स्तवम् ॥ जपन्त एकाग्रधियस्तपो महच्चरध्वमन्ते तत आप्स्यथेप्सितम्॥८१॥इति श्रीभा०चतु०रुद्रगीतं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति संदिश्य भगवान्बार्हिषदैरभिपूजितः ॥ पश्यतां राजपुत्राणां तत्रैवान्तर्दधे हरः ॥ १ ॥ रुद्रगीतं भगवतः स्तोत्रं सर्वे प्रचेतसः ॥ जपन्तस्ते तपस्तेपुर्वर्षाणामयुतं जले॥२॥प्राचीनबर्हिषं क्षत्तः कर्मस्वासक्तमानसम् ॥ नारदोऽध्यात्मतत्त्वज्ञः कृपालुः प्रत्यबोधयत् ॥ ३ ॥

ततत्वज्ञाता नारदजी ज्ञान देतेभए ॥ ३॥ हे राजन्! कर्मकरके आत्माकी चेष्टा करवेके अर्थ कितनो कल्याण है दुःखहानी और सुखकी प्राप्तिके लिये यत्न करते हैं पर श्रेय वामेंभी नहीं है ॥ ४ ॥ राजा बोले कि हे महाभाग! परमकर्ममें मेरी बुद्धि विद्ध रही है, सो मै मंगल नही जानूंहूं निर्मल ज्ञान मोसें कहो जासे कर्मसे मुक्त होजाऊं ॥ ५ ॥ छल छिद्रवाले धर्मयुक्त घरोंमें पुत्र दारा धन अर्थ बुद्धि है मूढहूं सो संसारके मार्गमें घूंमूंहूं परमेश्वरकूं जानूं नही हूं ॥ ६ ॥ श्रीनारदजी बोले कि हे राजन्! हे प्रजापते! तुह्मारे मारेभए हजारहीं जीव जो तुमने दया रहित होकर मारे हैं उन्हे देखो ॥ ७ ॥ यह सब तुह्मारे दिये दुःखका स्मरण करते तुह्मारी वाट देखतेहैं सो जब तुह्मारा शरीर छुट जायगा तब यह लोकयंत्रके शृंगोंसे

श्रेयस्त्वं कतमद्राजन्कर्मणात्मन ईयसे ॥ दुःखहानिः सुखावाप्तिः श्रेयस्तन्नेह चेष्यते ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ न जानामि महाभाग परं कर्मापविद्धधीः ॥ ब्रूहि मे विमलं ज्ञानं येन मुच्येय कर्मभिः ॥ ५ ॥ गृहेषु कूटमार्गेषु पुत्रदारधनार्थधीः॥ न परं विन्दते मूढो भ्राम्यन्संसारवर्त्मसु ॥ ६॥ नारद उवाच ॥ भो भोः प्रजापते राजन्पशून्पश्य त्वयाऽध्वरे ॥ संज्ञापिताञ्जीवसंघान्निर्घृणेन सहस्रशः ॥ ७ ॥ एते त्वां संप्रतीक्षन्ते स्मरन्तो वैशसं तव ॥ संपरेतमयः कूटैश्छिन्दन्त्युत्थितमन्यवः ॥ ८ ॥ अत्र ते कथयिष्येऽमुमितिहासं पुरातनम् ॥ पुरञ्जनस्य चरितं निबोध गदतो मम ॥ ९ ॥ आसीत्पुरंजनो नाम राजा राजन्बृहच्छ्रवाः ॥ तस्याविज्ञातनामाऽऽसीत्सखाऽविज्ञातचेष्टितः ॥ १० ॥ सोऽन्वेषमाणः शरणं बभ्राम पृथिवीं प्रभुः ॥ नानुरूपं यदाऽविन्ददभूत्स विमना इव ॥ ११ ॥

तुमको छेदन करैंगे ॥ ८ ॥ इस विषयमें तुमसे पुरातन इतिहास कहितेहै जो पुरंजनको चरित्र है तुम सुनो मैं कहूंहूं ॥ ९ ॥ हे राजन्! बडो यशस्वी पुरंजननाम राजा होतोभयो, ताको अविज्ञातनामक सखा भयो, जो सब चेष्टानकूं जानै ॥ १० " या अध्यायको व्याख्यान आगे अध्यायमें विस्तारसे कहैंगे, परंतु कोईकोई कठिनतरशब्दनको व्याख्यान जहां शब्द आवैगो वहाको वहभी करैंगे जैसै, स्वकर्मभिः पुरं शरीरं जनयतीति पुरंजनो जीवः न विज्ञानं चेष्टितं यस्य स ईश्वरस्तस्य सखा " अविज्ञातन मा पुरंजन जीवको नाम है " अविज्ञातावचेष्टितं नाम ईश्वरको है " सो प्रभु पुरंजन रहि-

---

[१] जीव तौ अपने कर्मानुसार जन्म ले लेतेहै फिर यज्ञके राजासै बदला लैनेको पशुरूप कैसे रहे उत्तर यह है जीव तौ अपने कर्मानुसार योनियोंमें जातेही है जो प्राणी जिस जीवको मारताहै यमराजके दूत उस जीवका रूप धार उसै दुःख देते है वह जीव यह जान्ता है कि जिसै मैंने मारा यह वही है इस कारण वे जीव दीखे ।

वेको स्थान ढूंडते पृथिवीपर घूमते, अपने समान स्थान जब न देखा तब दुर्मनकी नाईं होते भए ॥ ११ ॥ पृथिवीमें जितने पुर हे उनको
अच्छे न मानतो भयो तिस २ विषयकी सिद्धिके निमित्त कामनानकी चाहना करतो भयो ॥ १२ ॥ सो एकसमय हिमाचलकी दाहिनी भूमिके नीचै
नौ दरवाजै युक्त सुंदर सबलक्षण सम्पन्न पुरकूं देखतो भयो ॥ १३ ॥ प्राकार उपवन अटारे खाई इन्द्रियरूप तोरण, सुवर्ण चांदीलोहाके शृंग सब ओर
वने गृहोंसे संकुल ॥ १४ ॥ नील स्फटिक वैडूर्य मुक्ता मरकत अरुण रत्नोंसे रचीभई हर्म्यस्थलोंसे प्रकाशित श्रीसै भागवतीकी समान शोभित ॥ १५ ॥
सभा चौराए राजमार्ग ओरसे खेलवेके स्थान जनोंके विश्रामस्थान ध्वजा पताका, और मूंगाकी वेदीकरकै युक्त ॥ १६ ॥ पुरीके बाहिरके उपवन

न साधु मेने ताः सर्वा भूतले यावतीः पुरः ॥ कामान्कामयमानोऽसौ तस्य तस्योपपत्तये ॥ १२ ॥ स एकदा हिमवतो
दक्षिणेष्वथ सानुषु ॥ ददर्श नवभिर्द्वार्भिः पुरीं लक्षितलक्षणाम् ॥ १३ ॥ प्राकारोपवनाट्टालपरिखैरक्षतोरणैः ॥ स्वर्णरौप्यायसैः
शृङ्गैः संकुलां सर्वतो गृहैः ॥ १४ ॥ नीलस्फटिकवैडूर्यमुक्तामरकतारुणैः ॥ तप्तहर्म्यस्थलीं दीप्तां श्रिया भोगवतीमिव
॥ १५ ॥ सभाचत्वररथ्याभिराक्रीडायतनापणैः ॥ चैत्यध्वजपताकाभिर्युक्तां विद्रुमवेदिभिः ॥ १६ ॥ पुर्यास्तु
बाह्योपवने दिव्यद्रुमलताकुले ॥ नदद्विहङ्गालिकुलकोलाहलजलाशये ॥ १७ ॥ हिमनिर्झरविप्रुष्मत्कुसुमाकरवायुना
॥ चलत्प्रवालविटपनलिनीतटसंपदि ॥ १८ ॥ नानारण्यमृगव्रातैरनाबाधे मुनिव्रतैः ॥ आहूतं मन्यते पान्थो यत्र
कोकिलकूजितैः ॥ १९ ॥ यदृच्छयाऽऽगतां तत्र ददर्श प्रमदोत्तमाम् ॥ भृत्यैर्दशभिरायान्तीमेकैकशतनायकैः ॥ २० ॥
पञ्चशीर्षाहिना गुप्तां प्रतिहारेण सर्वतः ॥ अन्वेषमाणामृषभमप्रौढां कामरूपिणीम् ॥ २१ ॥

दिव्य वृक्षलतासे सघन सरोवरोंके भीतर पक्षी और भौंरोंके नादका कोलाहल था ॥ १७ ॥ शीतल झरनानके कणसें लगीभई वायुसे चलायमान
होनेसे वृक्षोंकी शाखा और पत्रोंको शोभा सरोवरियोंके तटपर पूर्ण हो रही थी ॥ १८ ॥ अनेक वनके मृगसमूह मुनिव्रत धारके किसीको बाधा नहीं
देतेथे जहां कोकिलानकी कूजितसे पांथोंको ये मालुम पडै है कि मानो हमै कोई बुलावै है ॥ १९ ॥ तहां अपनी इच्छासे एक उत्तम स्त्री दश
चाकर सहित एक एक शतनायक लिये आती भई उसे पुरंजनने देखा ॥ २० ॥ पंचशिरके सर्पसे रक्षित हो यह कामरूपधारिणी किशोर
अवस्थामें पूर्ण पतिको ढूंढती थी ॥ २१ ॥

अपनी शुद्धिकी चाहनावारेको ये रूप सदा अनुध्येय है अपने स्वधर्ममें जो स्थित हैं, उनको भक्तियोग अभयको दायक है ॥ ५५ ॥ स्वर्गके राज्य करनेहारे जिसकी इच्छा करते हैं और एकान्त आत्मज्ञानी पुरुषोंके गम्य आप यद्यपि सब देहधारियोंको दुष्प्राप्य हो तौभी भक्तोंको आपकी प्राप्ति सुलभ है ॥ ५६ ॥ सतोंसे दुराराध्य आपको महाकठिन एकांत भक्तिकरकै आराधन करि आपके चरणकमलके विना बाहिर और काऊकी चाहना न करै है ॥ ५७ ॥ जहां प्रताप तथा उत्साहसै अपनी भृकुटी चढानैसै ही जो संसारका विध्वंस करनेहारा काल है वहभी आपके चरणकमलकी शरणमें आये हुऔपर अपना अधिकार नहीं करता ॥ ५८ ॥ आपके भक्तौंकी संगति अर्धक्षणकी समान स्वर्ग मोक्ष नहीं है और मनुष्योंके राज्यादिकी तौ

एतद्रूपमनुध्येयमात्मशुद्धिमभीप्सता ॥ यद्भक्तियोगोऽभयदः स्वधर्ममनुतिष्ठताम् ॥ ५५ ॥ भवान्भक्तिमतां लभ्यो दुर्लभः सर्वदेहिनाम् ॥ स्वाराज्यस्याप्यभिमत एकान्तेनात्मविद्गतिः ॥ ५६ ॥ तं दुराराध्यमाराध्य सतामपि दुरापया । एकान्तभक्त्या को वाञ्छेत्पादमूलं विना बहिः ॥ ५७ ॥ यत्र निर्विष्टमरणं कृतान्तो नाभिमन्यते ॥ विश्वं विध्वंसयन्वीर्यशौर्यविस्फूर्जितभ्रुवा ॥ ५८ ॥ क्षणार्धेनापि तुलये न स्वर्गं नापुनर्भवम् ॥ भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः ॥ ५९ ॥ अथानघाङ्घ्रेस्तव कीर्तितीर्थयोरन्तर्बहिः स्नानविधूतपाप्मनाम् ॥ भूतेष्वनुक्रोशसुसत्त्वशीलिनां स्यात्संगमोऽनुग्रह एष नस्तव ॥ ६० ॥ न यस्य चित्तं बहिरर्थविभ्रमं तमोगुहायां च विशुद्धमाविशत् ॥ यद्भक्तियोगानुगृहीतमञ्जसा मुनिर्विचष्टे ननु तत्र ते गतिम् ॥ ६१ ॥ यत्रेदं व्यज्यते विश्वं विश्वस्मिन्नवभाति यत् ॥ तत्त्वं ब्रह्म परं ज्योतिराकाशमिव विस्तृतम् ॥ ६२ ॥

वार्ताही क्याहै ॥ ५९ ॥ पापहारी तीर्थरूप यशस्वी तुम्हारे चरणकी गंगाके स्नान करवेसे बाहरभीतर पाप रहित हो जीवोंमें दया करनेहारे शीलवान महात्मानको सत्संग सदा होय येही तुह्मारो अनुग्रह होय ॥ ६० ॥ जाके चित्तमैं बाहिर अर्थको भ्रम न होय है, हृदयगुहाके तमको विशुद्धि करवेवारे भक्तियोगसै अनायास प्राप्त आपकी गतिको मुनि ढूंढै है ॥ ६१ ॥ जा ब्रह्ममें ये विश्व प्रकाश करैहै, जो ब्रह्म विश्वमें प्रकाश करैहै, सो तत्त्व परब्रह्म ज्योतिःस्वरूप आकाशवत् विस्तृत है ॥ ६२ ॥

जो ईश्वर बहुरूप धारिणी माया करकें रचे है, धारे है, नाशकरे है, सब विकाररहित क्रिया रहित है, जामें भेदबुद्धि नहीं सत्यकी समान प्रकाशमान अचिंत्यमाया स्वाधीन ईश्वरकी हम शरणागत हैं ॥ ६३ ॥ क्रियाके समूहोंकरकै श्रद्धासहित योगिजन सिद्धिके लिये येही यजन करते हैं कि पञ्च भूत इन्द्रिय अंतःकरणसै लक्षित ईश्वरका योगी श्रद्धासै तथा अनेक क्रियाओंसै मुक्तिके निमित्त पूजन करतेहै उन्हींको हम वेदशास्त्रमें चतुर जानै है ॥ ६४ ॥ तुम एक आद्य पुरुष हो, सुप्तशक्तिकरकैं रज सत्व तमको भेद करै हो, महत्तत्त्व अहंकार आकाश पवन अग्नि मेघ देवता ऋषि भूतगण ये सब ब्रह्मांड जिनसें होय है॥६५॥ अपनी शक्ति करके रचे भए इस विश्व जीवरूपसै प्रविष्ट होयकर अपने आत्माके अंशकरके चार प्रकार अर्थात्

यो माययेदं पुरुरूपयाऽसृजद्बिभर्ति भूयः क्षपयत्यविक्रियः ॥ यद्भेदबुद्धिः सदिवात्मदुस्थया तमात्मतन्त्रं भगवान्प्रतीमहि ॥६३॥ क्रियाकलापैरिदमेव योगिनः श्रधान्विताः साधु यजन्ति सिद्धये ॥ भूतेन्द्रियान्तःकरणोपलक्षितं वेदे च तन्त्रे च त एव कोविदाः ॥ ६४ ॥ त्वमेक आद्यः पुरुषः सुप्तशक्तिस्तया रजःसत्त्वतमो विभिद्यते ॥ महानहं खं मरुदग्निवार्धराः सुरर्षयो भूतगणा इदं यतः ॥ ६५ ॥ सृष्टं स्वशक्त्येदमनुप्रविष्टश्चतुर्विधं पुरमात्मांशकेन ॥ अथो विदुस्तं पुरुषं सन्तमन्तर्भुङ्क्ते हृषीकैर्मधु सावघं यः ॥ ६६ ॥ स एष लोकानतिचण्डवेगो विकर्षसि त्वं खलु कालयानः ॥ भूतानि भूतेरनुमेयतत्त्वो घनावलीर्वायुरिवाऽविषह्यः ॥ ६७॥ प्रमत्तमुच्चैरिति कृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ॥ त्वमप्रमत्तः सहसाऽभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥ ६८ ॥

स्वेदज अंडज जरायुज उद्भिज्ज हो उसमें प्रवेश करते हो इसी कारण यह जीव पुरुष नामसै प्रसिद्ध है जो अपनी इन्द्रियौंसै क्षुद्र सुख भोगता है॥६६॥ प्रचंड वेगवानके चलायमान करनैहारे कालकू तुम वश राखौ हो, पंचभूतोंकरकै भूतनको तत्व अनुमान करो हो, जैसे वायु मेघपंक्तिको न सहकर जहां चाहै तहां खैचले जाता है ऐसेही दूसरे प्राणीयौंसै प्राणियोंको चलायमान कर तुम खैचतेहो इसै कोई नहीं जान्ता ॥ ६७ ॥ प्रमत्त महाचिंतासे प्रवृद्ध लोभ युक्त विषयमें लालसावारे जीवकों तुम अप्रमत्त होयकर शीघ्र कालरूपसें खायलेओ हो जैसो भूखो साप मूसाकूं खाय जाय है ॥ ६८ ॥

सूक्ष्म अनंतमुख अग्निसें लोकदाह करवेवारे अंतक संकर्षणके अर्थ नमस्कार होंय, विश्वके ज्ञानदाता सर्वांतर्यामी प्रद्युम्नके अर्थ नमस्कार होय ॥ ३६ ॥ सब इंद्रियोंके ईश सब इंद्रियोंके आत्मा अनिरुद्धके अर्थ वारंवार नमस्कार होय, परमहंस पूर्ण क्षयवृद्धि रहितके अर्थ नमस्कार होय ॥ ३७ ॥ स्वर्गमोक्षके द्वार नित्यपवित्रके अर्थ नमस्कार होय हिरण्यसम वीर्यवान चातुर्होत्रकर्मकारी यज्ञविस्तारके अर्थ नमस्कार होय ॥ ३८ ॥ पितृके अन्नदाता देवान्नदाता यज्ञवीर्यरूपके अर्थ नमस्कार होय, सब जीवनके तृप्तिदायक सबरसके आत्मानके अर्थ नमस्कार होय ॥ ३९ ॥ सब जीवमात्रके देहरूप विराट्रूप शरीररूप त्रैलोक्यपालक सह ओजबलरूप ईश्वरके अर्थ नमस्कार होय ॥४०॥ अपने शब्द गुणसै सबको नाम देने-

संकर्षणाय सूक्ष्माय दुरन्तायान्तकाय च ॥ नमो विश्वप्रबोधाय प्रद्युम्नायान्तरात्मने ॥ ३६ ॥ नमो नमोऽनिरुद्धाय हृषीकेशेन्द्रियात्मने ॥ नमः परमहंसाय पूर्णाय निभृतात्मने ॥ ३७॥ स्वर्गापवर्गद्वाराय नित्यं शुचिषदे नमः ॥ नमो हिरण्यवीर्याय चातुर्होत्राय तन्तवे ॥ ३८ ॥ नम ऊर्ज इषे त्रय्याः पतये यज्ञरेतसे ॥ तृप्तिदाय च जीवानां नमः सर्वरसात्मने ॥ ३९ ॥ सर्वसत्त्वात्मदेहाय विशेषाय स्थवीयसे ॥ नमस्त्रैलोक्यपालाय सह ओजोबलाय च ॥ ४० ॥ अर्थलिङ्गाय नभसे नमोन्तर्बहिरात्मने ॥ नमः पुण्याय लोकाय अमुष्मै भूरिवर्चसे ॥ ४१ ॥ प्रवृत्ताय निवृत्ताय पितृदेवाय कर्मणे ॥ नमो धर्मविपाकाय मृत्युवे दुःखदाय च ॥ ४२ ॥ नमस्ते आशिषामीश मनवे कारणात्मने ॥ नमो धर्माय बृहते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥ ४३ ॥ पुरुषाय पुराणाय सांख्ययोगेश्वराय च ॥ ब्रह्मणे परिपूर्णाय वैकुण्ठपतये नमः ॥ ४४ ॥ शक्तित्रयसमेताय मीढुषेऽहंकृतात्मने ॥ चेत आकूतिरूपाय नमो वाचोविभूतये ॥ ४५ ॥

हारे बाहर भीतर व्यवहारके आश्रयीभूत आकाशरूप पुण्यलोकरूप तेजस्वीके अर्थ नमस्कार होय॥४१॥ प्रवृत्तिनिवृत्ति मार्गरूप पितृदेवरूप कर्मवारे धर्मफलदायक मृत्युरूप दुःख देवेवारेके अर्थ नमस्कार होय ॥ ४२ ॥ सब आशीर्वादनके ईश्वर, मनुरूप, कारणकी आत्मा, बडेधर्मवारे सदा ज्ञानरूप श्रीकृष्णके अर्थ नमस्कार होय ॥४३॥ पुराणपुरुष सांख्ययोगके ईश्वर, बृहत्त्वादिगुणविशिष्ट चैतन्यपरिपूर्ण श्रीवैकुंठपतिके अर्थ नमस्कार होय ॥ ४४ ॥ तीनरूपशक्तिधारी रुद्ररूपधारी अहंकाररूप आत्माके अर्थ चित्त क्रिया शक्तिरूपवाणीके विभूतिरूपके लिये नमस्कार होय ॥४५॥

भक्तौंके प्यारे सबकी इन्द्रियौंके विषय विषयीरूप भक्तौंसे पूजित अपने स्वरूपका हमे दर्शन दीजिये कारणकि सब इन्द्रिय गुण अंजनरूप आपका दर्शन है ॥ ४६ ॥ सघन वर्षाकालके मेघवत् श्याम सब सुंदरताके संग्रह सुंदर विस्तृत चारबाहु सुंदर रुचिर मुख ॥ ४७ ॥ कमलके समान नेत्र सुंदर भ्रू सुंदर नाक सुंदर दांत सुंदर कपोल युक्त सुशोभित समकर्ण युक्त ॥ ४८ ॥ प्रभुकी चितवन मानो प्रीतिसै हंसती हो ऐसी प्रतीत होतीहै अलकावलीसै शोभायमान प्रकाशमान कमलकी केसरसै पीताम्बर धारे उज्ज्वल कुंडल धारण करे ॥४९॥ दमकते भये किरीट कंकण हार नूपुर क्षुद्रघंटिकाकरकै मंडित शंख चक्र गदा पद्मधारी माला कौस्तुभमणीकी संपदासै समृद्ध ॥ ५० ॥ सिंहकी समान कन्धेकी कांतिसें प्रकाशित सुन्दर ग्रीवामें

दर्शनं नो दिदृक्षूणां देहि भागवतार्चितम् ॥ रूपं प्रियतमं स्वानां सर्वैन्द्रियगुणाञ्जनम् ॥ ४६ ॥ स्निग्धप्रावृड्घनश्यामं सर्वसौन्दर्यसंग्रहम् ॥ चार्वायतचतुर्बाहुसुजातरुचिराननम् ॥ ४७ ॥ पद्मकोशपलाशाक्षं सुन्दरभ्रुवनासिकम् ॥ सुद्विजं सुकपोलास्यं समकर्णविभूषणम् ॥ ४८ ॥ प्रीतिप्रहसितापाङ्गमलकैरुपशोभितम् ॥ लसत्पङ्कजकिञ्जल्कदुकूलं मृष्टकुण्डलम् ॥ ४९ ॥ स्फुरत्किरीटवलयहारनूपुरमेखलम् ॥ शङ्खचक्रगदापद्ममालामण्युत्तमार्द्धिमत् ॥ ५० ॥ सिंहस्कन्धात्विषो बिभ्रत्सौभगग्रीवकौस्तुभम् ॥ श्रियाऽनपायिन्याक्षिप्तनिकषाश्मोरसोल्लसत् ॥ ५१ ॥ पूररेचकसंविग्नवलिवल्गुदलोदरम् ॥ प्रतिसंक्रमयद्विश्वं नाभ्याऽऽवर्तगभीरया ॥ ५२ ॥ श्यामश्रोण्याऽधिरोचिष्णुदुकूलस्वर्णमेखलम् ॥ समचार्वङ्घ्रिजङ्घोरु निम्नजानु सुदर्शनम् ॥ ५३ ॥ पदा शरत्पद्मपलाशरोचिषा नखद्युभिर्नोऽन्तरघं विधुन्वता ॥ प्रदर्शय स्वीयमपास्तसाध्वसं पदं गुरो मार्गगुरुस्तमोजुषाम् ॥ ५४ ॥

कौस्तुभ मणि धारे विश्लेषरहित लक्ष्मीजी स्वर्णरेखांकित पाषाण कसोटीरूप वक्षस्थलमें शोभित है ॥ ५१ ॥ पीपलके पत्रकी समान उदर स्वास प्रस्वास लैनेसे चलायमान त्रिवलीसै शोभायमान है गम्भीर नाभिमैंसे विश्वकी उत्पत्ति भईहै ॥ ५२ ॥ श्याम कटि पश्चाद्भागपर प्रकाशित वस्त्रपर सुवर्णकी तागडी पहिरे है, समान श्रेष्ठ चरण जंघा ऊरुमें, गम्भीर जानु है ॥ ५३ ॥ नखोंकी कांतिकरकै भीतरके पाप नाशक शरद्कालीन कमलपत्रकी कांति करकै शोभित चरणकरकै दर्शनीय हैं, तथा प्रह्लादादि भक्तौंके भय मिटानेहारे अपने स्वरूपका दर्शन दो हे गुरो ! हमसे अज्ञानी लोगोंको मार्ग दिखानेहारे आपही हो अपनेनको मोह दूर करवेवारे चरण हे गुरो ! तमोगुणके सेवीनके मार्गके दिखायवेवारी ईश्वर है ॥ ५४ ॥

भगवान् शिव आत्मारामभी हैं तोभी लोकरक्षाके लिये अपनी घोर शक्तिको पास राखकर भगवान् शिव विचरते हैं ॥ १९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि साधु प्रचेता पिताके वाक्यको शिरपर धारणकर तपमें चित्त लगाय पश्चिमकी दिशाकों जाते भए ॥ २० ॥ समुद्रके समीप विस्तृत एक महाभारी सरोवर देखतेभए जामें महात्मानके मनकीसी नाई स्वच्छ प्रसन्न जल हो मत्स्यादिक बहुत हैं ॥ २१ ॥ नीलकमल रक्तकमल उत्पल अम्भोज कल्हार इन्दीवरसै युक्त हंस सारस चक्राह्व कारंडवौंके शब्दसे व्याप्त ॥ २२ ॥ मत्त भ्रमरोंके सुंदर स्वरसें लता और वृक्षोंके रोम खडेहैं प्रसन्न कम-

आत्मारामोऽपि यस्त्वस्य लोककल्पस्य राधसे ॥ शक्त्या युक्तो विचरति घोरया भगवान्भवः ॥ १९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रचेतसः पितुर्वाक्यं शिरसाऽऽदाय साधवः ॥ दिशं प्रतीचीं प्रययुस्तपस्यादृतचेतसः ॥ २० ॥ समुद्रमुपविस्तीर्णमपश्यन्सुमहत्सरः ॥ महन्मन इव स्वच्छं प्रसन्नसलिलाशयम् ॥ २१ ॥ नीलरक्तोत्पलाम्भोजकह्लारेन्दीवराकरम् ॥ हंससारसचक्राह्वकारण्डवनिकूजितम् ॥ २२ ॥ मत्तभ्रमरसौस्वर्यहृष्टरोमलताङ्घ्रिपम् ॥ पद्मकोशरजो दिक्षु विक्षिपत्पवनोत्सवम् ॥ २३ ॥ तत्र गान्धर्वमाकर्ण्य दिव्यमार्गमनोहरम् ॥ विसिस्म्यू राजपुत्रास्ते मृदङ्गपणवाद्यनु ॥ २४ ॥ तर्ह्येव सरसस्तस्मान्निष्क्रामन्तं सहानुगम् ॥ उपगीयमानममरप्रवरं विबुधानुगैः ॥ २५ ॥ तप्तहेमनिकायाभं शितिकण्ठं त्रिलोचनम् ॥ प्रसादसुमुखं वीक्ष्य प्रणेमुर्जातकौतुकाः ॥ २६ ॥ स तान्प्रपन्नार्तिहरो भगवान्धर्मवत्सलः ॥ धर्मज्ञाञ्छीलसंपन्नान्प्रीतः प्रीतानुवाच ह ॥ २७ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ यूयं वेदिषदः पुत्रा विदितं वश्चिकीर्षितम् ॥ अनुग्रहाय भद्रं व एवं मे दर्शनं कृतम् ॥ २८ ॥

लोंके समूहोंकी परागसें दिशानमें उठी सुगंधित पवन वहरही है ॥ २३ ॥ तहां दिव्य मनोहर गन्धर्वोंको गायन और मृदंग ढोलको शब्द सुन राजपुत्र विस्मय करते भए ॥ २४ ॥ ताही समय वा सरोवरसें निकसे अपने पार्षद सहित देवगण और सेवकोंसे स्तुतिको प्राप्त होते भए ॥ २५ ॥ तपे भए सुवर्ण समूहके समान कांतिमान त्रिनेत्र प्रसन्न होयवेमें संमुख शितिकण्ठ शिवकों देख महा आनन्दसे प्रचेता प्रणाम करते भए ॥ २६ ॥ तबसे शरणागतकी पीडा नाशक धर्मवत्सल शिवजी धर्मज्ञ शीलसंपन्न विन प्रचेतोंसे बोले ॥ २७ ॥ श्रीरुद्र बोलै हे प्राचीन बर्हिके पुत्रो ! तुह्मारी करवे-

की जो इच्छा है सो हमने जानी, तुम्हारो कल्याण होय, तुम्हारो अनुग्रहके लिये मैंने तुझै दर्शन दीनो है ॥ २८ ॥ जो कोई वेगसे परे, साक्षात् त्रिगुणजीवसंज्ञितसे परे भगवान् वासुदेवकी शरणागत है सो मोको प्रिय है ॥ २९ ॥ जो अपने धर्ममें निष्ठा राखे है वो सौ जन्मकरकै ब्रह्मभावको प्राप्त
होयहै; ता पीछे मोको प्राप्त होय है, और भागवत तो मायारहित विष्णुके परमपदको प्राप्त होयहै जैसे सब देवता हम हमारे या अधिकारीके अंतमें
परमेश्वरके लोकको प्राप्त होय हैं, अब हम शिव होकर अधिकारीकी नाई वर्त्तमान हैं ॥ ३० ॥ तुम भगवान्के भक्त होनेके कारण मुझे बहुत प्यारे

यः परं रंहसः साक्षात् त्रिगुणाज्जीवसंज्ञितात् ॥ भगवन्तं वासुदेवं प्रपन्नः स प्रियो हि मे ॥ २९ ॥ स्वधर्मनिष्ठः शतजन्मभिः
पुमान्विरिञ्चतामेति ततः परं हि माम् ॥ अव्याकृतं भागवतोऽथ वैष्णवं परं पदं यद्विबुधाः कलात्यये ॥ ३० ॥
अथ भागवता यूयं प्रियाः स्थ भगवान्यथा ॥ न मे भागवतानां च प्रेयानन्योऽस्ति कर्हिचित् ॥ ३१ ॥ इदं विविक्तं
जप्तव्यं पवित्रं मङ्गलं परम् ॥ निःश्रेयसकरं चापि श्रूयतां तद्वदामि वः ॥ ३२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यनुक्रोशहृदयो
भगवानाह ताञ्छिवः ॥ बद्धाञ्जलीन्राजपुत्रान्नारायणपरो वचः ॥ ३३ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ जितं त आत्मविद्धुर्य
स्वस्तये स्वास्तिरस्तु मे ॥ भवता राधसा राद्धं सर्वस्मा आत्मने नमः॥ ३४ ॥ नमः पङ्कजनाभाय भूतसूक्ष्मेन्द्रियात्मने
॥ वासुदेवाय शान्ताय कूटस्थाय स्वरोचिषे॥ ३५ ॥

हो मोको भागवतनसे प्यारो और कोईभी नाय है ॥ ३१ ॥ जो मंत्र हम तुमको देते हैं ये एकांतमें जपियो, पवित्र परममंगलमय मोक्ष करवेवारो है सो
सुनो हम तुझै कहे हैं ॥ ३२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि ऐसे दयालु नारायणपरायणभगवान् शिव, हाथ जोडे ठाडे राजपुत्रनसें वचन बोले ॥ ३३ ॥
श्रीरुद्र बोले कि आपकी बडाई बडे २ आत्मज्ञानी लोगोंको स्वरूपानंद देती है तो मुझैभी यह आनंद मिलै आप परमानंद और सर्व रूपको मैं
प्रणाम करताहूं ॥ ३४ ॥ कमलनाभ भूतसूक्ष्म इंद्रियोंके आत्मा, सर्वांतर्यामी अपने आप प्रकाशरूप, वासुदेवके अर्थ नमस्कार होय ॥ ३५ ॥

प्रीतिके कारण छोटे भाईनको सब दिशानको राज्य देतो भयो ॥ १ ॥ हर्यक्षको पूर्वदेशाको राज्य दीनो धूम्रकेशको दक्षिणदिशाको दियो वृकसंज्ञकको पश्चिमको राज्य दीनो, उत्तरको द्रविणको राज्य दीनो ॥ २ ॥ छिप जायवेकी गति विजिताश्वने इंद्रसे सीखी ही इस कारण इसै अन्तर्धानभी कहते हैं इसने सुंदर शिखंडिनीमे तीन संतान उत्पन्न करे ॥ ३ ॥ पावक, पावमान, शुचि, ये तीन अग्निके नाम है ये तीन अग्नि पहिले वसिष्ठजीके शापसे उत्पन्न भए फिर योगगतिको गए ॥ ४ ॥ अंतर्धान नामवारो विजिताश्व नभस्वतीस्त्रीमें हविर्धान पुत्र उत्पन्न करतो भयो, जो अश्व चुरायवेवारे इंद्रको जानकरभी न मारते भए ॥ ५ ॥ राजानकी वृत्ति यह है कि कर लेनो, दंड देनो, बेगारपनसे काम करावनो, विजिताश्व यह कर्म दारुण जानके

हर्यक्षायादिशत्प्राचीं धूम्रकेशाय दक्षिणाम् ॥ प्रतीचीं वृकसंज्ञाय तुर्यां द्रविणसे विभुः ॥ २ ॥ अन्तर्धानगतिं शक्राल्लब्ध्वाऽन्तर्धानसंज्ञितः ॥ अपत्यत्रयमाधत्त शिखण्डिन्यां सुसंमतम् ॥३॥ पावकः पावमानश्च शुचिरित्यग्नयः पुरा॥वसिष्ठशापादुत्पन्नाः पुनर्योगगतिं गताः॥४॥ अन्तर्धानो नभस्वत्यां हविर्धानमविन्दत॥ य इन्द्रमश्वहर्तारं विद्वानपि न जघ्निवान् ॥५॥ राज्ञां वृत्तिं करादानदण्डशुल्कादिदारुणाम् ॥ मन्यमानो दीर्घसत्रव्याजेन विससर्ज ह ॥६॥ तत्रापि हंसं पुरुषं परमात्मानमात्मदृक् ॥ यजंस्तल्लोकतामाप कुशलेन समाधिना ॥ ७ ॥ हविर्धानाद्धविर्धानी विदुरासूत षट् सुतान् ॥ बर्हिषदं गयं शुक्लं कृष्णं सत्यं जितव्रतम् ॥८॥ बार्हिषत्सुमहाभागो हाविर्धानिः प्रजापतिः॥ क्रियाकाण्डेषु निष्णातो योगेषु च कुरूद्वह ॥ ९ ॥ यस्येदं देवयजनमनुयज्ञं वितन्वतः ॥ प्राचीनाग्रैः कुशैरासीदास्तृतं वसुधातलम्॥१०॥

दीर्घ यज्ञके बहाने सब त्याग करतो भयो ॥ ६ ॥ तहांभी हंस पुरुष परमात्मा सर्वांतर्यामीको पूजन करते कुशल समाधिसे तिनकी लोक ताको प्राप्त भयो॥७॥ हे विदुर! हविर्द्धानसे हविर्धानी छे सुत उत्पन्न करती भई, बार्हिषद, गय, शुक्ल, कृष्ण, सत्य, जितव्रत ये छैं सुत हैं ॥ ८ ॥ हे परीक्षित ! वे हविर्धानके पुत्रमें ज्येष्ठ पुत्र महाभाग बर्हिषद् राजा कर्मकांडमें पारंगत भए,तथा योग क्रिया तो खूबही जानते भए ॥ ९ ॥ इस राजानै पृथ्वीके किसी स्थलकोभी यज्ञ रहित नहीं रक्खा और पूर्व दिशाकी ओर अग्रभागवाले कुशासैं सब धरातलको छादिया इस कारण इसका नाम प्राचीनबर्हि हुआ॥१०॥

---

१ ब्राह्मणोंके शरीरका नाम वसुधातल है वसुनाम भगवानका उन्हें जो प्रीतिसे धारै उस भगवानकी प्रीतिके तल अर्थात् स्थान ब्राह्मणोंका हृदय है सो इसी वसुधातलको अर्थात सम्पूर्ण देशके ब्राह्मणोंको राजानै कुशके आसनोंपर बैठाये अनेक दान दे तृप्त.कर दिया और संकल्पके समय कुशोंका मुख पूर्वकी ओर करना उचित है ।

सामुद्रीं देवदेवोक्तामुपयेमे शतद्रुतिम् ॥ यां वीक्ष्य चारुसर्वाङ्गीं किशोरीं सुष्ठ्वलंकृताम् ॥ ११ ॥ परिक्रमन्तीमुद्वाहे चकमेऽग्निः शुकीमिव ॥ सप्तर्षिभार्याभ्रान्त्याग्निः स्वाहायां चाप्यरीरमत् ॥ १२ ॥ विबुधासुरगन्धर्वमुनिसिद्धनरोरगाः ॥ विजिताः सूर्यया दिक्षु क्वणयन्त्यैव नूपुरैः ॥१३॥ प्राचीनबर्हिषः पुत्राः शतद्रुत्यां दशाभवन् ॥ तुल्यनामव्रताः सर्वे धर्मस्नाताः प्रचेतसः ॥ १४ ॥ पित्रादिष्टाः प्रजासर्गे तपसेऽर्णवमाविशन् ॥ दश वर्षसहस्राणि तपसाऽर्चंस्तपस्पतिम् ॥ १५ ॥ यदुक्तं पथि दृष्टेन गिरिशेन प्रसीदता ॥ तद्ध्यायन्तो जपन्तश्च पूजयन्तश्च संयताः ॥ १६ ॥ विदुर उवाच ॥ प्रचेतसां गिरित्रेण यथासीत्पथि संगमः ॥ यदुताह हरः प्रीतस्तन्नो ब्रह्मन्वदार्थवत् ॥१७॥ संगमः खलु विप्रर्षे शिवेनेह शरीरिणाम् ॥ दुर्लभो मुनयो दध्युरसङ्गाद्यमभीप्सितम् ॥ १८ ॥

समुद्रकी बेटी ब्रह्माकरके दी भई शतद्रुसे व्याह करतेभए, यह कन्या सब अंगसे सुंदर किशोरी सुंदर सिंगारीभई गहिने पहिने ॥ ११ ॥ जिस समय विवाहमें अग्निको प्रदक्षिणा करतीथी उसे देख अग्नि शुकीकी समान इसपरभी आसक्त हुए " पहले सप्तर्षियोंके यज्ञमें उनकी भार्याको देख अग्नि कामातुर हुएथे तौ अग्निकी भार्या स्वाहाने सप्तर्षिकी भार्याका रूप धारण करकै अग्निको रमण कराया और रमण करनेके पीछे शुकीरूपिणी हो अग्निका तेज शरपतमें रखदिया " इसप्रकार भ्रांतिसे सप्तर्षिकी भार्या जान रमण कियाथा ॥१२॥ विबुध असुर गंधर्व मुनि सिद्ध नर उरग वा नवोढाने दिशानमें नूपुरोंके शब्द करकै जीते ॥ १३ ॥ प्राचीन बर्हिके पुत्र शतद्रुतीमें दश उत्पन्न भए, यह सब एकसे नाम और व्रत धारण करनेहारे धर्ममें निपुण हुए सबका प्रचेता नाम हुआ ॥ १४ ॥ प्रजा रचवेके लिये पिताने आज्ञा करी तब तप करवेके लिये समुद्र तीरपर जाते भए, दशहजार वर्ष तप करकै तपोंके पति श्रीमन्नारायणको पूजन करतेभये ॥ १५ ॥ उनके मार्गमें जाते समय शिवजीने उन्है दर्शन दे प्रीतिसे जिस मंत्रका उपदेश दिया और पूजन बताया वे उसीके अनुसार जितेन्द्रिय हो ध्यान तप जप करने लगे ॥ १६ ॥ विदुरजी बोले कि हे ब्रह्मन् ! प्रचेतानको शिवजीसे जैसे समागम भयो और जो उपदेश करो वह सो सब अर्थवत् वर्णन करो ॥ १७ ॥ हे विप्रर्षे ! शिवजीको और शरीरधारीनको जो संगम है सो दुर्लभ है, वैराग्यवाले मुनि जिन इष्टदेवका केवल ध्यान मात्र करते हैं परन्तु दर्शन नहीं पाते ॥ १८ ॥

देवीयें बोलीं कि अहो ये वधू धन्य है, जो राजानके पति पृथुको सब आत्मभाव करकै भजन करती भई जैसै श्रीमहालक्ष्मी यज्ञेश्वरको भजन करती है ॥ २६ ॥
सो ये सती निश्चय करके पृथुमहाराजके पाछै जाती भई, देखो विचारमें न आवै ऐसे कर्म करकै अस्मदादिकोंको उल्लंघन करगई
॥ २७ ॥ पृथ्वीमें जो प्राणी चंचल आयुको प्राप्त होकर भगवत्पदको प्राप्त करनैवाले आत्मज्ञानको सिद्ध करते हैं उन्हैं कोई वस्तुभी दुर्लभ नहीं
है ॥ २८ ॥ मोक्ष दैनेहारे मनुष्यदेहको प्राप्त होकर जो प्राणी विषयोंमें आसक्त हो उसै वंचित हुआ आत्म द्रोही समझना ॥ २९ ॥ मैत्रेयजी बोले-

देव्य ऊचुः ॥ अहो इयं वधूर्धन्या या चैवं भूभुजां पतिम् ॥ सर्वात्मना पतिं भेजे यज्ञेशं श्रीर्वधूरिव ॥ २६ ॥ सैषा नूनं
व्रजत्यूर्ध्वमनु वैन्यं पतिं सती ॥ पश्यतास्मानतीत्यार्चिर्दुर्विभाव्येन कर्मणा ॥ २७ ॥ तेषां दुरापं किं त्वन्यन्मर्त्यानां
भगवत्पदम् ॥ भुवि लोलायुषो ये वै नैष्कर्म्यं साधयन्त्युत ॥ २८ ॥ स वञ्चितो बतात्मध्रुक् कृच्छ्रेण महता
भुवि ॥ लब्ध्वापवर्ग्यं मानुष्यं विषयेषु विषज्जते ॥ २९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स्तुवन्तीष्वमरस्त्रीषु पतिलोकं गता वधूः॥
यं वा आत्मविदां धुर्यो वैन्यः प्रापाच्युताशयः ॥ ३० ॥ इत्थं भूतानुभावोऽसौ पृथुः स भगवत्तमः ॥ कीर्तितं तस्य
चरितमुद्दामचरितस्य ते ॥ ३१ ॥ य इदं सुमहत् पुण्यं श्रद्धयाऽवहितः पठेत् ॥ श्रावयेच्छृणुयाद्वाऽपि स पृथोः
पदवीमियात् ॥ ३२ ॥ ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी राजन्यो जगतीपतिः ॥ वैश्यः पठन् विट्पतिः स्याच्छूद्रः सत्तमतामि-
यात् ॥ ३३ ॥ त्रिःकृत्व इदमाकर्ण्य नरो नार्यथवाहता ॥ अप्रजः सुप्रजतमो निर्धनो धनवत्तमः ॥ ३४ ॥

कि देवस्त्रियोंसे स्तुतिको प्राप्त हो वोह वधू पति लोककों [illegible]नी भई, जहां आत्मवेत्तानमें धुर्य वैन्य पृथु गयेथे ॥ ३० ॥ महा भगवान् पृथुको ऐसो
पराक्रम है, अत्यंत श्रेष्ठ चरित्रवारेको चरित्र हमने कीर्तन करो ॥ ३१ ॥ सावधान होयकर जो कोई या महापुण्यरूपको पाठ करै, सुनावै, सुनै, वो
पृथुकी पदवीकों प्राप्त होगो ॥३२॥ ब्राह्मण तो ब्रह्मतेजस्वी होगो, क्षत्री पृथिवीपति होगो, वैश्य पाठ करैगो तो व्योपार खूब होय, शूद्र पढै तौ सबमें
श्रेष्ठ होय ॥ ३३ ॥ नर नारी याको तीनवार आदरते सुनै तौ अपुत्राके पुत्र निर्धनके धन होगो ॥ ३४ ॥

164

थोडी कीर्तिवारेकी बहुत कीर्ति फैलेगी मूर्ख पंडित होयगो, ये चरित्र मंगलदायक है, पुरुषनको अमंगलनाशक है ॥ ३५ ॥ धनदायक यश दाता आयु बढावनेवारो स्वर्गदायक कलिमलनाशक है, धर्म अर्थ काम मोक्ष चाहनावारेको सब सिद्धिदायक है ॥ ३६ ॥ श्रद्धा करकै सुनवे योग्य है, चारों वर्णोंको परम कारण है, परमेश्वरके वैकुण्ठलोकको प्राप्त करवेवारो है, मोक्षको दायक है ॥ ३७ ॥ विजयकी चाहवारे राजा या चरित्रको सुनके जिनके ऊपर चढाई करैगो वाके अर्थ सब राजा बलि देंगे, जैसे पृथुकूं देते थे ॥ ३८ ॥ सर्वसंग त्याग भगवतमें निर्मल भक्ति कर पृथुको चरित पुण्यरूप सुनै सुनावै ॥३९॥ हे वैचित्रवीर्य विदुर! यह महा माहात्म्यको सूचक है, सो हमने तुमसें कह्यो, उसे जो मनुष्य मन करकै सुनै सो राजा पृथुकी गतिको प्राप्त होय हैं ॥ ४० ॥ दिनदिनके प्रति या चरित्रकों जो आदरसें सुनै वा पृथुचरितको वाचै वो सब संगसे विमुक्त होगो, संसाररूपी समुद्रमें नावरूप भगवानके चरणमें वह मनुष्य बहुत निपुण प्रीतिकों प्राप्त होगो ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां पृथुचरित्रसंपूर्णवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि इसके उपरान्त महायशस्वी पृथुपुत्र विजिताश्व महाराजा होते भए अत्यन्त

अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः ॥ इदं स्वस्त्ययनं पुंसाममङ्गल्यनिवारणम् ॥ ३५ ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं कलिमलापहम् ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां सम्यक् सिद्धिमभीप्सुभिः ॥ ३६ ॥ श्रद्धयैतदनुश्राव्यं चतुर्णां कारणं परम् ॥ परमेश्वरस्य वैकुण्ठप्रापकं मोक्षदायकम् ॥ ३७ ॥ विजयाभिमुखो राजा श्रुत्वैतदनुयाति यान् ॥ बलिं तस्मै हरन्त्यग्रे राजानः पृथवे यथा ॥ ३८ ॥ मुक्तान्यसङ्गो भगवत्यमलां भक्तिमुद्वहन् ॥ वैन्यस्य चरितं पुण्यं शृणुयाच्छ्रावयेत् पठेत् ॥ ३९ ॥ वैचित्रवीर्याभिहितं महन्माहात्म्यसूचकम् ॥ अस्मिन् कृतमतिर्मर्त्यः पार्थवीं गतिमाप्नुयात् ॥ ४० ॥ अनुदिनमिदमादरेण शृण्वन् पृथुचरितं प्रथयन् विमुक्तसङ्गः ॥ भगवति भवसिन्धुपोतपादे स च निपुणां लभते गतिं मनुष्यः ॥ ४१ ॥ इति श्रीभा० चतुर्थ० पृथुचरित्रसमाप्तिवर्णनं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ विजिताश्वोऽधिराजाऽऽसीत् पृथुपुत्रः पृथुश्रवाः ॥ यवीयेभ्योऽददात् काष्ठा भ्रातृभ्यो भ्रातृवत्सलः ॥ १ ॥

165

श्रद्धासे भगवद्धर्मका आचरण करते उन महात्मा पृथुकी भगवान ब्रह्ममें अनन्यविषया मति होतीभई ॥ १० ॥ सब कर्मसे शुद्धसत्त्वात्मा भगवानकी वारंवार संस्मरणरूप अनुपूर्तीसें विरक्तिमान ज्ञान होतो भयो; जा ज्ञानकरकै संदेहको स्थान निज जीवकोशको काटतेभये ॥ ११ ॥ देहमें आत्माका अभिमान दूर हो जानैसे स्वरूपको प्राप्त हो उपस्थित सिद्धियौंकीभी अभिलाषा त्याग ब्रह्मज्ञानसै शिथिल यत्न कर शनैः उस ज्ञानके यत्नकोभी त्यागकर शान्तहुए यह योगी जवतक नारायणकी कथामें प्रीति नहीं करते तभीतक उनसै सिद्धियौंमें आसक्तिकी भूल होतीहै ॥ १२ ॥ इस प्रकार वह वीरप्रवर आत्मामें मन लगाय ब्रह्मरूप होय दृढ समय पाय कलेवर त्यागते भये ॥ १३ ॥ ब्रह्मोपासना करतेभये पायुकों एढीसे पीडन करकै

भगवद्धर्मिणः साधोः श्रद्धया यततः सदा ॥ भक्तिर्भगवति ब्रह्मण्यनन्यविषयाऽभवत्॥१०॥ तस्यानया भगवतः परिकर्मशुद्धसत्त्वात्मनस्तदनुसंस्मरणानुपूर्त्या ॥ ज्ञानं विरक्तिमदभून्निशितेन येन चिच्छेद संशयपदं निजजीवकोशम् ॥ ११ ॥ छिन्नान्यधीरधिगतात्मगतिर्निरीहस्तत् तत्यजेऽच्छिनदिदं वयुनेन येन ॥ तावन्न योगगतिभिर्यतिरप्रमत्तो यावद्गदाग्रजकथासु रतिं न कुर्यात् ॥ १२ ॥ एवं स वीरप्रवरः संयोज्यात्मानमात्मनि ॥ ब्रह्मभूतो दृढं काले तत्याज स्वं कलेवरम् ॥ १३ ॥ संपीड्य पायुं पार्ष्णिभ्यां वायुमुत्सारयञ्छनैः ॥ नाभ्यां कोष्ठेष्ववस्थाप्य हृदुरःकण्ठशीर्षणि ॥ १४ ॥ उत्सर्पयंस्तु तं मूर्ध्नि क्रमेणावेश्य निःस्पृहः ॥ वायुं वायौ क्षितौ कायं तेजस्तेजस्ययूयुजत् ॥ १५ ॥ खान्याकाशे द्रवं तोये यथास्थानविभागशः ॥ क्षितिमम्भसि तत्तेजस्यदो वायौ नभस्यमुम् ॥ १६ ॥ इन्द्रियेषु मनस्तानि तन्मात्रेषु यथोद्भवम् ॥ भूतादिनाऽमून्युत्क्षिप्य महत्यात्मानि संदधे ॥ १७ ॥

धीरेसें वायुको बंध करके नाभीके कोठोंमें स्थित करते भये, वहांसे हृदय उर कंठ शिरमें प्राप्त करते भये ॥ १४ ॥ सबसे चाहना छोड क्रमकरकै वायुको मूडमें पहुचाय वायुकूं वायुमें, पृथिवीमें शरीरको, तेजमें तेजको लीन करतेभये ॥ १५ ॥ आकाशमें आकाश, जलअंशको जलमें विभागसे जो जाके स्थान है उनमें लगाते भये, पृथिवीकों जलमें तेजकों वायुमें, वायुकों आकाशमें लीन करते भये ॥ १६॥ इंद्रियोंमें मन, इंद्रियोंकूं इंद्रियोंकी मात्रामें, जौ जासे उत्पन्न होयहै वाहीमें वाकूं लगावते भये, अहंकारकरकै सबकों लीन कर महत्तत्त्वको आत्मामें लगावते भये ॥ १७ ॥

सबगुणोंके विन्यास शरीरको मायामयजीवमें धार, जीवको आत्मामें लगाय, पुरुषका मनसें विचार कर ॥ १८ ॥ ज्ञानवैराग्यवीर्यकरकै स्वरूपमें स्थित हो शरीर त्यागतेभये, जब समर्थ हो जाय है तब प्रसन्न आत्मा जीव वैकुंठको जाय है ॥ १९ ॥ अर्चिनाम महाराणी स्त्री जो अतिसुकुमार और चरणसै पृथ्वीको स्पर्श करनेको अयोग्य हौनेपरभी उनके पीछे वनमें गई थी ॥ २० ॥ अत्यंत पतिके व्रतधर्ममें निष्ठा सेवाकरकै ऋषियोंकीसी देहयात्रा करकै अतिकर्षितभी ही तोहूं वा पीडाकों न मान्ती भई, प्यारेके हाथस्पर्शके मानमें महासुख मान्तीभई ॥ २१ ॥ सब चेष्टा रहित अपने प्यारे पृथिवीके पतिको देह देखकै, सो सती कुछेक विलाप करकै वा पर्वतकी निकटवर्ति भूमिमें चिता बनाय वा देहकों धरतीभई ॥ २२ ॥

तं सर्वगुणविन्यासं जीवे मायामये न्यधात् ॥ तं चानुशयमात्मस्थमसावनुशयी पुमान् ॥ १८॥ ज्ञानवैराग्यवीर्येण
स्वरूपस्थोऽजहात् प्रभुः ॥ प्रभुर्भूतः प्रसन्नात्मा वैकुण्ठमधिगच्छति ॥ १९ ॥ अर्चिर्नाम महाराज्ञी तत्पत्न्यनुगता
वनम् ॥ सुकुमार्यतदर्हा च यत् पद्भ्यां स्पर्शनं भुवः ॥ २० ॥ अतीव भर्तुर्व्रतधर्मनिष्ठया शुश्रूषया चारषदेहयात्रया ॥
नाविन्दतार्तिं परिकर्षिताऽपि सा प्रेयस्करस्पर्शनमाननिर्वृतिः ॥ २१ ॥ देहं विपन्नाखिलचेतनादिकं पत्युः पृथिव्या
दयितस्य चात्मनः ॥ आलक्ष्य किंचिच्च विलप्य सा सती चितामथारोपयदद्रिसानुनि ॥ २२ ॥ विधाय कृत्यं ह्रदिनी-
जलाप्लुता दत्त्वोदकं भर्तुरुदारकर्मणः ॥ नत्वा दिविस्थान् त्रिदशांस्त्रिः परीत्य विवेश वह्निं ध्यायती भर्तृपादौ ॥ २३॥
विलोक्यानुगतां साध्वीं पृथुं वीरवरं पतिम् ॥ तुष्टुवुर्वरदा देवैर्देवपत्न्यः सहस्रशः ॥ २४॥ कुर्वत्यः कुसुमासारं तस्मिन्
मन्दरसानुनि ॥ नदत्स्वमरतूर्येषु गृणन्ति स्म परस्परम् ॥ २५ ॥

नदीजलमें स्नान कर, मृतक संस्कार सब करकै उदारकर्मवारे भर्ताको जल देकर स्वर्गमें स्थित देवतानकों नमस्कार कर तीन परिक्रमा करकै अपने भर्तृपादको ध्यान कर वन्हिमें प्रवेश करतीभई ॥ २३ ॥ वीरवर अपने पति महावीर पृथु राजाके पीछे उस पतिव्रता अर्चीको सती होते देख सहस्रौं वरदान दैनेहारी देवताऔंकी स्त्री उसकी प्रसंशा करने लगी ॥ २४ ॥ और वा मंदराचलपर्वतकी भूमिमें पुष्पवृष्टि करती भई, देवता आकाशमें नगारे बजायवे लगै, परस्पर स्तुति करते भये ॥ २५ ॥

अर्थ अच्युतमें मन लगाय मन वाणी वृत्ति और सुंदर गुणों करकै प्रजाको आनन्द देते भए ॥ ५५ ॥ पृथु राजाका दूसरा नाम सोमराजा हुआ सूर्यकी नांई भूमिके धनको त्यागते ग्रहण करते भए ॥ ५६ ॥ तेज करकै अग्निकी नांई दुर्धर्ष होते भए, महा इंद्रकी नांई दुर्जय होते भए, सहन शीलतामैं धरतीकी नांई, और आकाशकी नांई सब मनुष्योंके मनोवांछित दाता होते भए ॥ ५७ ॥ उनके राज्यमें इच्छानुसार मेघ वर्षताथा, इसप्रकार सबकों तृप्त करते समुद्रकी नांई गम्भीर सत्व पराक्रममें पर्वतकी नांई होते भए ॥ ५८ ॥ शिक्षामें धर्मराजकी नांई, आश्चर्यकर्म करवेवारोंमें हिमाचलकी नांई, कुवेरकी नांई खजानोंके मालक भए अर्थ गुप्त राखवेमें वरुणकी नांई भए ॥ ५९ ॥ सब स्थानमैं गमन तथा वल सह परा-

राजेत्यधान्नामधेयं सोमराज इवापरः ॥ सूर्यवद् विसृजन् गृह्णन् प्रतपंश्च भुवो वसु ॥ ५६ ॥ दुर्धर्षस्तेजसेवाग्निर्महेन्द्र इव दुर्जयः ॥ तितिक्षया धरित्रीव द्यौरिवाभीष्टदो नृणाम् ॥ ॥ ५७ ॥ वर्षति स्म यथाकामं पर्जन्य इव तर्पयन् ॥ समुद्र इव दुर्बोधः सत्त्वेनाचलराडिव ॥ ५८ ॥ धर्मराडिव शिक्षायामाश्चर्यें हिमवानिव ॥ कुबेर इव कोशाढ्यो गुप्तार्थें वरुणो यथा ॥ ५९ ॥ मातरिश्वेव सर्वात्मा बलेन सहसौजसा ॥ अविषह्यतया देवो भगवान् भूतराडिव ॥ ६० ॥ कन्दर्प इव सौन्दर्यें मनस्वी मृगराडिव ॥ वात्सल्ये मनुवन्नृणां प्रभुत्वे भगवानजः ॥ ६१ ॥ बृहस्पतिर्ब्रह्मवाद आत्मवत्त्वे स्वयं हरिः ॥ भक्त्या गोगुरुविप्रेषु विष्वक्सेनानुवर्तिषु ॥ ६२॥ (ह्रिया प्रश्रयशीलाभ्यामात्मतुल्यः परोद्यमे) कीर्त्योर्ध्वगीतया पुम्भिस्त्रैलोक्ये तत्र तत्र ह ॥ प्रविष्टः कर्णरन्ध्रेषु स्त्रीणां रामः सतामिव ॥ ६३ ॥ इति श्रीभा० चतु० पृथुचरिते सनत्कुमारेण परमाध्यात्मोपदेशो नाम द्वाविंशोध्यायः ॥ २२ ॥

क्रममें वायुके समान हुए और दुस्सहतामें रुद्रके समान हुए ॥ ६० ॥ कामदेव समान सुंदर मनस्वीपनमें मृगराजसमान, मनुष्योंपर वात्सल्यभावमें मनुवत भए, वडप्पनमें भगवान् ब्रह्माकी नांई भए ॥ ६१ ॥ ब्रह्मवादमें बृहस्पति समान, आत्मज्ञानीयोंमें आप श्रीहरि समान भक्तिकरकै गौ गुरु ब्राह्मण विष्वक्सेनके अनुवर्तियोंमें श्रेष्ठ भए ॥ ६२ ॥ (लज्जा विनय सुशीलता और पराये निमित्त उद्यममें अपनें आत्माके समान हुए.) जहां तहां त्रिलोकीमें सत्पुरुष उच्चस्वरसै उनकी कीर्ति गाते थे इस कारण उनका यश रामचंद्रके समान स्त्रियोंमेंभी श्रवण गोचर होताथा ॥ ६३ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां चतुर्थस्कन्धे पृथुचरिते सनत्कुमारेण परमाध्यात्मज्ञानोपदेशवर्णनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

श्रीमैत्रेयजी बोले कि एक समय आत्मज्ञानी प्रजापति राजा पृथु अपनी आत्माको बूढो जान अपनी रचीहुई अन्नादिकी उत्पत्ति पुर और गांवकी रचनाको वृद्धि करनेहारे ॥ १ ॥ स्थावर जंगम जगत्के सब वृत्तिके दाता, सतोंके धर्मधारी ईश्वरकी आज्ञा मान्नेहारे जिस प्रयोजनसै जगत्में प्रगट हुएथे उसैं सिद्ध कर ॥ २ ॥ विरहसे रोतीहुई अपनी पुत्री धरतीको पुत्रोंको सौंप प्रजासे मन हटाय स्त्रीसहित तपोवनको जाते भए ॥ ३ ॥ तहां नियमनकूं धारणकर वैखानस आश्रममें संमत होय उग्रतप करवेको प्रारंभ कीनो जैसे पहिले धरामंडलके विजयमें प्रवृत्त भए ऐसे नियममें तत्पर भये ॥ ४ ॥ कंद मूल फल आहार कर कभी सूखे पत्ता भोजन कुछ पक्षभर जलपान कर रहे ता पाछें वायु भक्षण करते भए ॥ ५॥ ॥ वीर ग्रीष्ममें पंचाग्नि तापते भए वर्षामें मेघधार सहतेभए मुनि हो शिशिरऋतुमें कंठपर्यंत जलमें ठाडेरहे, जलमें शयन कर रहे ॥ ६ ॥ सहनशीली भए वाणी जीती इंद्रियें जीतीं ऊपरको वीर्य चढायो, पवन जीत लीनी श्रीकृष्णचंद्रकी आराधन करवेको उत्तम तप करते भए ॥ ७ ॥ तिस क्रमकरकैं कर्ममलआशय नाशकर प्राणायामोंसे छहों इन्द्रिय वश होनेके कारण सब कर्म बंधन कट गये ॥ ८ ॥ सनत्कुमार भगवान् जो परम अध्यात्मज्ञान देते भए वाही योगसै पुरुष परमेश्वरको पुरुषश्रेष्ठ पृथु भजते भए ॥ ९ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ दृष्ट्वात्मानं प्रवयसमेकदा वैन्य आत्मवान् ॥ आत्मना वर्धिताशेषस्वानुसर्गः प्रजापतिः ॥ १ ॥ जगतस्तस्थुषश्चापि वृत्तिदो धर्मभृत् सताम् ॥ निष्पादितेश्वरादेशो यदर्थमिह जज्ञिवान् ॥ २ ॥ आत्मजेष्वात्मजां न्यस्य विरहाद् रुदतीमिव ॥ प्रजासु विमनस्स्वेकः सदारोऽगात् तपोवनम् ॥ ३ ॥ तत्राप्यदाभ्यनियमो वैखानससुसंमते ॥ आरब्ध उग्रतपसि यथा स्वविजये पुरा ॥ ४ ॥ कन्दमूलफलाहारः शुष्कपर्णाशनः क्वचित् ॥ अब्भक्षः कतिचित् पक्षान् वायुभक्षस्ततः परम् ॥ ५ ॥ ग्रीष्मे पञ्चतपा वीरो वर्षास्वासारषाण्मुनिः ॥ आकण्ठमग्नः शिशिर उदके स्थण्डिलेशयः ॥ ६ ॥ तितिक्षुर्यतवाग्दान्त ऊर्ध्वरेता जितानिलः ॥ आरिराधयिषुः कृष्णमचरत् तप उत्तमम् ॥ ७ ॥ तेन क्रमानुसिद्धेन ध्वस्तकर्ममलाशयः ॥ प्राणायामैः संनिरुद्धषड्वर्गश्छिन्नबन्धनः ॥ ८ ॥ सनत्कुमारो भगवान् यदाहाध्यात्मिकं परम् ॥ योगं तेनैव पुरुषमभजत् पुरुषर्षभः ॥ ९ ॥

तिनके चरणकमलकी अंगुलियोंकी भक्तिकरकै कर्म आशयरूपा हृदयकी ग्रंथि संत लोग दूर करै हैं; तिनकी नाई निर्विषया मतिवारे यति लोग सब इन्द्रियनकों रोककर वासुदेवकी शरणकों भजोहै ॥ ३९ ॥ यासंसारमें जिनके पास नाव नहीं वे संसारसमुद्रको महाकष्टसें तरै हैं और षड्वर्गरूप मगरनको सुखकष्टसे तरैं है सो तुम भगवानके भजन करवे योग्य चरणकमलरूप नाव करकै दुस्तर कष्टरूप सागरकों तिरो ॥ ४० ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि ो पृथु ऐसे ब्रह्माके पुत्र आत्मज्ञानी सनत्कुमा सुंदर आत्माकी गति देख प्रशंसा कर बोले ॥ ४१ ॥ राजा बोले कि

यत्पाद ङ्कजपलाशविलासभ ा कर्मा ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति सन्तः॥ तद्वन्नरिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्धस्रोतोगणास्त [illegible] भज वासुदेवम् ॥ ३९ ॥ कृ ो महानिह भवार्णवमप्लवेशं षड्वर्गनक्रमसुखेन तितीरषन्ति ॥ तत् त्वं हरेर्भगवतो भजनीयमङ्घ्रिं कृत्वोडुपं ्यसनमुत्तर दुस्तरार्णम् ॥ ४० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स एव ब्रह्मपुत्रेण कुमारेणात्ममेधसा ॥ दर्शितात्मगतिः सम्यक् प्रशस्योवाच तं नृपः ॥ ४१ ॥ राजोवाच ॥ कृतो मेऽनुग्रहः पूर्वं हरिणाऽऽर्तानुकम्पिना ॥ तमापादयितुं ब्रह्मन् भगवन् यूयमागताः ॥ ४२ ॥ निष्पादितं च कात्स्न्र्येन भगवद्भिर्घृणालुभिः ॥ साधूच्छिष्टं हि सर्वं म आत्मना सह किं ददे ॥ ४३ ॥ प्राणा दाराः सुता ब्रह्मन् गृहाश्च सपरिच्छदाः ॥ राज्यं बलं मही कोश इति सर्वं निवेदितम् ॥ ४४ ॥ सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ॥ सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥ ४५ ॥ स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च ॥ तस्यैवानुग्रहेणान्नं भुञ्जते क्षत्रियादयः ॥ ४६ ॥

हे भगवन्! आर्तरक्षक हरिने प्रथमही मोपर अनुग्रह कीनो हो, वाको सिद्ध करवेको आपलोग सब आए ॥ ४२ ॥ दयालु आपलोगोंने संपूर्ण कार्य पूर्ण किया यह मेरा राज्य और शरीरादि सब आपहीका है अब मैं आपको क्या भेट करूं ॥४३॥ हे ब्रह्मन्! प्राण स्त्रियें पुत्र गृह परिवार राज्य मही खजाना ये सब आपको निवेदन कीनो है॥ ४४ ॥ सैनापत्य राज्य दण्ड सबकों प्राप्त करनो सब लोकको स्वामित्व ये वेदशास्त्रज्ञ धारण करैं हैं ॥४५॥ अपना पदार्थही ब्राह्मण भोजन करैहैं, अपनी वस्तु धारैहैं, अपना पदार्थ देतेहै, ब्राह्मणोंकी कृपाकरकै क्षत्रिय आदिक अन्न भोजन करतेहैं ॥ ४६ ॥

जिन निगम जाननेवारोनें एकांतते भगवतकी गति अध्यात्म विचारमें वर्णन करीहै वे महादयालु अपने करे उपकारसे आप प्रसन्न होओ, उनके उपकारको प्रत्युपकारके बल हाथ जोडे विना और कुछ नहीं है ॥ ४७ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि वे आत्मयोगके पति आदिराज श्रीपृथुराजा करके पूजे भए वाके शीलकी प्रशंसा करते सब मनुष्यनके देखते देखते आकाशमार्गमें होके जाते भए ॥४८॥ पृथुमहाराज महात्मानमें बडे अध्यात्मशिक्षामें स्थित होयकर सब कामकी नाई पूर्ण आत्माको मानतो भयो ॥४९॥ जैसो काल जैसो उद्देश जैसो बल जैसो उचित जैसो धन हो तैसेही

यैरीदृशी भगवतो गतिरात्मवाद एकान्ततो निगमिभिः प्रतिपादिता नः ॥ तुष्यन्त्वदभ्रकरुणाः स्वकृतेन नित्यं को नाम तत् प्रतिकरोति विनोदपात्रम् ॥ ४७ ॥ त आत्मयोगमतय आदिराजेन पूजिताः ॥ शीलं तदीयं शंसन्तः खेऽभूवन् मिषतां नृणाम् ॥ ४८॥ वैन्यस्तु धुर्यो महतां संस्थित्याऽध्यात्मशिक्षया ॥ आप्तकाममिवात्मानं मेने आत्मन्यवस्थितः ॥ ४९ ॥ कर्माणि च यथाकालं यथादेशं यथाबलम् ॥ यथोचितं यथावित्तमकरोद् ब्रह्मसात्कृतम् ॥ ५० ॥ फलं ब्रह्मणि विन्यस्य निर्विषङ्गः समाहितः ॥ कर्माध्यक्षं च मन्वान आत्मानं प्रकृतेः परम् ॥ ५१ ॥ गृहेषु वर्तमानोऽपि स साम्राज्यश्रियाऽन्वितः ॥ नासज्जतेन्द्रियार्थेषु निरहंमतिरर्कवत् ॥ ५२॥ एवमध्यात्मयोगेन कर्माण्यनुसमाचरन् ॥ पुत्रानुत्पादयामास पञ्चाऽर्चिष्यात्मसंमतान् ॥ ५३ ॥ विजिताश्वं धूम्रकेशं हर्यक्षं द्रविणं वृकम् ॥ सर्वेषां लोकपालानां दधारैकः पृथुर्गुणान् ॥ ५४ ॥ गोपीथाय जगत्सृष्टेः काले स्वे स्वेऽच्युतात्मकः ॥ मनोवाग्वृत्तिभिः सौम्यैर्गुणैः संरञ्जयन् प्रजाः ॥ ५५ ॥

कर्म करते ब्रह्मको साक्षात्कार करते भए॥५०॥सब फल ब्रह्ममें समर्पण करकै सबसे आसक्तिको त्याग सावधान होयकर सब कर्मका अध्यक्ष मान करके आत्माको प्रकृतिसें परे मानते भए॥५१॥यद्यपि सम्राट्पनेकी लक्ष्मी गृहोंमें वर्तमान है तोभी इन्द्रियोंके अर्थमें आसक्त न होतेभए,अहंकार त्याग सूर्यकी नाई रहते भए॥५२ ॥ ऐसे ब्रह्मज्ञान करकै कर्मोंको करते अर्चिषनाम स्त्रीमें अपने समान पांच पुत्रनको उत्पन्न करते भए ॥ ५३ ॥ विजिताश्व, धूम्रकेश, हर्यक्ष, द्रविण,वृक, जिनके नाम हैं सब लोकपालनके गुणनको पृथु इकले धारण करते भए ॥ ५४ ॥ अपने कालमें जगत्सृष्टीकी रक्षाके

जीवमात्रकी हिंसा न करै, परमहंसोंकीसी नाईं रहै, श्रीमुकुंदके चरितामृत मादक मीठेको सुमरै, यम नियम करै, कामवासना न करै काऊकी निंदा न करै, काऊमें चेष्टा न करै, सुखदुःखको सहै शीत उष्ण सहै ॥ २४ ॥ श्रीहरिके सबके कर्णपूरण करवेवारे वारंवार गुणनामोच्चारण करै अत्यंत भक्तिकरकै सत् असत्में संग न करै, तौ निर्गुण ब्रह्ममें अनायासकरकै प्रीति होय है ॥ २५ ॥ जब गुरुकी सेवा करनेहारे पुरुषोंकी ब्रह्ममें बहुत निष्ठाकी प्रीति होय है तब सो पुरुष ज्ञान वैराग्यके वेगकरकै पंचभूतात्मक जीवके रहिवेको कोश हृदय अवीर्यको जरावै है, जैसे बढीभई अग्नि काष्ठको जरावै है ॥ २६ ॥ अंतःकरण दग्ध होनेसे सबविध गुणोंसे मुक्त पूर्वसे आत्मा परमात्माका व्यवधान नहीं देखकर जैसे पुरुष स्वप्नकी वात स्वप्नविनाशमें नहीं देखताहै, ऐसेही अन्तर वाहर एक परमात्माको देखताहै ॥ २७ ॥ आत्मा इंद्रियोंके अर्थ जीव ईश्वरके भेद अंतःकरणरूप उपाधि होयसे पुमान् देखे है और तरहसे नहीं ॥ २८ ॥ जैसे संसारमें जल और दर्पणादि पदार्थोंमेंही अपना और प्रतिबिम्बका भेद विदित होताहै जब वे पदार्थ न हों तौ नहीं दीखता ॥ २९ ॥ विषयोंकी ओर ध्यान करवेवारेकी मन बुद्धिकी चेतनाको इंद्रिय उसी ओर लेजाती है, जैसे तलावके समीप शैठानको वृक्ष नीचेनीचेही जलकों खैंचताहै ॥ ३० ॥

अहिंसया पारमहंस्यचर्यया स्मृत्या मुकुन्दाचरिताग्र्यसीधुना ॥ यमैरकामैर्नियमैश्चाप्यनिन्दया निरीहया द्वन्द्वतितिक्षया च ॥ २४ ॥ हरेर्मुहुस्तत्परकर्णपूरगुणाभिधानेन विजृम्भमाणया ॥ भक्त्या ह्यसङ्गः सदसत्यनात्मनि स्यान्निर्गुणे ब्रह्मणि चाञ्जसा रतिः ॥ २५ ॥ यदा रतिर्ब्रह्मणि नैष्ठिकी पुमानाचार्यवान् ज्ञानविरागरंहसा ॥ दहत्यवीर्यं हृदयं जीवकोशं पञ्चात्मकं योनिमिवोत्थितोऽग्निः ॥ २६ ॥ दग्धाशयो मुक्तसमस्ततद्गुणो नैवात्मनो बहिरन्तर्विचष्टे ॥ परात्मनोर्यद्व्यवधानं पुरस्तात् स्वप्ने यथा पुरुषस्तद्विनाशे ॥२७॥ आत्मानमिन्द्रियार्थं च परं यदुभयोरपि ॥ सत्याशय उपाधौ वै पुमान् पश्यति नान्यदा ॥२८॥ निमित्ते सति सर्वत्र जलादावपि पूरुषः ॥ आत्मनश्च परस्यापि भिदां पश्यति नान्यदा ॥ २९ ॥ इन्द्रियैर्विषयाकृष्टैराक्षिप्तं ध्यायतां मनः ॥ चेतनां हरते बुद्धेः स्तम्बस्तोयमिव ह्रदात् ॥ ३० ॥

तब स्मृति भ्रष्ट होजाय है, स्मृतिके क्षय होनेसें चित्त ज्ञान दोंनो भ्रंश होते है, उनके रोकनेहींको कवि जन आत्माका वश करना कहेहैं ॥ ३१ ॥ यासे परे पुरुषकों अपनो स्वार्थ नाश नहीं है जिस आत्माके निमित्त यह सब प्रिय लगताहै उसका नाश करना ॥ ३२ ॥ अर्थ, इन्द्रियोंके अर्थकों ध्यान मनुष्यनके सब अर्थको नाश करवेवारो है, ज्ञान विज्ञानसे भ्रष्ट भयो ये जीव स्थावरभावको प्राप्त होवै है ॥ ३३ ॥ तीव्रअंधकारके तरवेकी इच्छावारो कभी कहीं संग न करै, यही धर्म अर्थ काम मोक्षको अत्यन्त नाश करवेवारो है ॥ ३४ ॥ इस पदार्थोंमें मोक्षही सर्वोत्तम पदार्थ गिनाहै कारण कि औरोंमें कालका भय बना रहताहै ॥ ३५ ॥ पर ब्रह्मादिक, अवर अस्मादिक, जो उत्पन्न हुएहैं उनके मनोरथोंको गुणोंके विकारसे काल नष्ट कर

भ्रश्यत्यनुस्मृतिश्चित्तं ज्ञानभ्रंशः स्मृतिक्षये ॥ तद्रोधं कवयः प्राहुरात्मापह्नवमात्मनः ॥ ३१ ॥ नातः परतरो लोके पुंसः स्वार्थव्यतिक्रमः ॥ यदध्यन्यस्य प्रेयस्त्वमात्मनः स्वव्यतिक्रमात् ॥ ३२ ॥ अर्थेन्द्रियार्थाभिध्यानं सर्वार्थापह्नवो नृणाम् ॥ भ्रंशितो ज्ञानविज्ञानाद् येनाविशति मुख्यताम् ॥ ३३ ॥ न कुर्यात् कर्हिचित् सङ्गं तमस्तीव्रं तितीरिषुः ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणां यदत्यन्तविघातकम् ॥ ३४ ॥ तत्रापि मोक्ष एवार्थ आत्यन्तिकतयेष्यते ॥ त्रैवर्ग्योऽर्थो यतो नित्यं कृतान्तभयसंयुतः ॥ ३५ ॥ परेऽवरे च ये भावा गुणव्यतिकरादनु ॥ न तेषां विद्यते क्षेममीशविध्वंसिताशिषाम् ॥ ३६ ॥ तत् त्वं नरेन्द्र जगतामथ तस्थुषां च देहेन्द्रियाऽसुधिषणात्मभिरावृतानाम् ॥ यः क्षेत्रवित्तपतया हृदि विश्वगाविः प्रत्यक् चकास्ति भगवांस्तमवेहि सोऽस्मि ॥ ३७ ॥ यस्मिन्निदं सदसदात्मतया विभाति माया विवेकविधुतिः स्रजि वाऽहिबुद्धिः ॥ तं नित्यमुक्तपरिशुद्धविबुद्धतत्त्वप्रत्यूढकर्मकलिलप्रकृतिं प्रपद्ये ॥ ३८ ॥

देताहै इस कारण वास्तविक सुखको कोई प्राप्त नहीं होता ॥ ३६ ॥ हे नरेंद्र ! जगतके स्थावर जंगम जीवनके देह इन्द्रिय प्राण बुद्धि करकै आवृत क्षेत्र जीवके अंतर्यामी हृदयमें सब प्रकारसे प्रकाशमान सब जगै प्रकाशित भगवान्को तुम यह जानो कि वह मैंही हूं ॥ ३७ ॥ ज्ञानके उत्पन्न होनेपर निवृत्त हो जानेवाला ये संसार सत् असत् भावरूप मालामें सर्पके समान मायारूप प्रतीत होताहै वह परमात्मा नित्य मुक्त शुद्ध सत्य ज्ञानघन और कर्मोंसे मलीनताकू प्राप्त हुई मायाका तिरस्कार करनेहारे आप ईश्वरकी हम शरण हैं ॥ ३८ ॥

पृथु बोले कि हे मंगलायनो ! मैंने कहा मंगल आचरण कीनो हो, जो मोको तुह्मारो दर्शन भयो योगियोंकोभी तुह्मारो दर्शन दुर्लभ है ॥ ७ ॥ उसै यालोक परलोकमें कौन बात दुर्लभ है, जापै विप्र प्रसन्न होय है, वापर शिव विष्णु पार्षदसहित सब प्रसन्न होय है ॥ ८ ॥ लोकौंको पर्यटन करते भये तुम लोकौंको नहीं दीखते हो, जैसे मनुष्य आत्मा और उसके हेतुओंकू नहीं देख सकता ॥ ९ ॥ वे निर्द्धन साधु गृहस्थी धन्य हैं जिनके गृहमें पूज्योंमें श्रेष्ठ लोग जल तृण भूमीसें सत्कार पावे है ॥ १० ॥ जिनके घर तीर्थपादीय श्रीवैष्णवोंके पादतीर्थसें वर्जित है वे घर सर्पके घरसमान हैं,

पृथुरुवाच ॥ अहो आचरितं [illegible] मे मङ्गलं मङ्गलायनाः ॥ यस्य वो दर्शनं ह्यासीद् दुर्दर्शानां च योगिभिः ॥७ ॥ किं तस्य [illegible]तरमिह लोके परत्र च ॥ यस्य विप्राः प्रसीदन्ति शिवो विष्णुश्च सानुगः ॥ ८ ॥ नैव लक्ष्यते लोको लोकान् प[illegible]टतोऽपि यान् ॥ [illegible]र्वदृशः सर्व आत्मानं येऽस्य हेतवः ॥ ९ ॥ अधना अपि ते धन्याः साधवो गृहमेधिनः ॥ यद्गृहा ह्यर्हवर्याम्बुतृणभू[illegible]श्वरावराः ॥ १०॥ व्यालालयद्रुमा वैतेऽप्यरिक्ताखिलसंपदः॥ यद्गृहास्तीर्थपादीयपादतीर्थविवर्जिताः ॥ ११ ॥ स्वागतं वो द्विजश्रेष्ठा यद् व्रतानि मुमुक्षवः ॥ चरन्ति श्रद्धया धीरा बाला एव बृहन्ति च ॥ १२ ॥ कच्चिन्नः कुशलं नाथा इन्द्रियार्थार्थवेदिनाम् ॥ व्यसनावाप एतस्मिन् पतितानां स्वकर्मभिः ॥ १३ ॥ भवत्सु कुशलप्रश्न आत्मारामेषु नेष्यते ॥ कुशलाकुशला यत्र न सन्ति मतिवृत्तयः ॥ १४ ॥ तदहं कृतविश्रम्भः सुहृदो वस्तपस्विनाम् ॥ संपृच्छे भव एतस्मिन् क्षेमः केनाञ्जसा भवेत् ॥ १५ ॥ व्यक्तमात्मवतामात्मा भगवानात्मभावनः ॥ स्वानामनुग्रहायेमां सिद्धरूपी चरत्यजः ॥ १६ ॥

घरके वासी वृक्षवत् है, सब संपदारहित है ॥ ११ ॥ हे द्विजश्रेष्ठो ! आपका आगमन भला हुआ जिनव्रतनकों धीर मुमुक्षु श्रद्धा करकै करें हैं सो व्रत बालक अवस्थानसे तुम करते हो ॥१२॥ हे समर्थ हो ! इंद्रियार्थार्थं जानवेवारे अपने कर्म करकै अनेक व्यसनवारे संसारमें पतित हमभी सब कुशल हैं ॥ १३ ॥ आत्माराम तुममें कुशलको प्रश्न नहीं इष्ट होयहै कुशल होनो न होनो ये सब मतिकी वृत्ति है ॥ १४ ॥ सो हमने तुममें विश्वास कीनो, तुम तपस्वी हमारे सुहृद हो, सो आपसें हम ये पूछे हैं कि या संसारमैं अनायास करकै क्षेम कौन प्रकारसै होइ है सो कहो॥१५॥ निश्चय है कि आत्म-

174

ज्ञानियोंकी आत्मा आत्माके भावन करवेवारे अपनेनके अनुग्रहके अर्थ या धरतीपर सिद्धरूप अज भगवान्‌ही विचरते हैं ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी बोले कि पृथुकी सुन्दर सारकी बातें सुनकर प्रीतिसे मुसकायकर सनत्कुमारजी बोले ॥ १७ ॥ सनत्कुमारजी बोले कि हे महाराज! तब जीवके हितकी आत्मावारे तुमने बहुत अच्छी पूछी, आप विद्वान हैं साधूनकी मति ऐसी होय हे ॥ १८ ॥ निश्चय है कि साधूनको संगम दोनों लोकको सुखकारी है, जिनसे बोलनो जिनसे प्रश्न करनो सबके कल्याणको विस्तार करै है ॥१९॥ हे राजन्! मधुनामक दैत्यके द्वेषी भगवानके पादारविंदके गुणानुवादमें महाकठिन रति प्रीति तुम्हारी है वो नैष्ठिकी मति आत्माके भीतर कोमल कामवासनानको कषायलेपन दूर करै है ॥ २० ॥ मनुष्योंके क्षेमकी वार्ता शास्त्रमें येही निश्चय करी है सब विचारोंका यही हेतु है कि संगरहित सबसें पृथक्, व्यापक,आत्मा निर्गुणब्रह्ममें, खूब दृढ प्रीत होनी; ये सब सिद्धांतकों सिद्धांत है ॥ २१ ॥ भगवच्छ्रद्धाकरके भगवद्धर्मका आचरण करकै भगवत्तत्त्वके जानवेकी इच्छा करकै ब्रह्मविद्या योगमें निष्ठासें योगीश्वरोंकी उपासना करकै सदा पुण्य यशवारे श्रीमन्नारायणकी पुण्यरूप कथासे भगवान् प्रसन्न होय हैं ॥ २२ ॥ धन इंद्रियें बाग गोष्ठीनमें तृष्णा न करै, इनके संमत कामादिकको संग्रह न करै, एकांतमें भगवतके अनुसंधानमें रुचि करकै अतिसंतुष्ट होय है, श्रीहरिके गुणरूप अमृतपानविना आत्मा नहीं प्रसन्न होय है ॥ २३ ॥

मैत्रेय उवाच॥पृथोस्तत् सूक्तमाकर्ण्य सारं सुष्ठु मितं मधु॥स्मयमान इव प्रीत्या कुमारः प्रत्युवाच ह॥१७॥सनत्कुमार उवाच॥साधु पृष्टं महाराज सर्वभूतहितात्मना॥भवता विदुषा चापि साधूनां मतिरीदृशी॥१८॥ सङ्गमः खलु साधूनामुभयेषां च संमतः॥यत्संभाषणसंप्रश्नः सर्वेषां वितनोति शम्॥१९॥ अस्त्येव राजन् भवतो मधुद्विषः पादारविन्दस्य गुणानुवादने॥ रतिर्दुरापा विधुनोति नैष्ठिकी कामं कषायं मलमन्तरात्मनः॥ २० ॥ शास्त्रेष्वियानेव सुनिश्चितो नृणां क्षेमस्य सम्यग्विमृशेषु हेतुः॥असङ्ग आत्मव्यतिरिक्त आत्मनि दृढा रतिर्ब्रह्मणि निर्गुणे च या॥२१॥सा श्रद्धया भगवद्धर्मचर्यया जिज्ञासयाऽध्यात्मिकयोगनिष्ठया॥योगेश्वरोपासनया च नित्यं पुण्यश्रवःकथया पुण्यया च॥२२॥अर्थेन्द्रियारामसगोष्ठ्यतृष्णया तत्संमतानामपरिग्रहेण॥विविक्तरुच्या परितोष आत्मन् विना हरेर्गुणपीयूषपानात्॥२३॥

सब गुणोंके स्थान शील धनी वृद्धोंके आश्रयीको सब संपदा आप वरण करती हैं, ब्राह्मणोंको कुल गौवनको कुल सब मोपर प्रसन्न होओ, जनार्दन अपने पार्षदसहित मोपर प्रसन्न होओ ॥ ४४ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि ऐसे कहिते भये राजासे पितृदेव द्विजाति प्रसन्न मनसे साधुवादकरकै सब स्तुति करते भये ॥ ४५ ॥ पुत्रसे सबलोकको जीतजाय है ये सत्यवती वेद वाणी है ब्राह्मणोंके दण्डसें हनो भयो पापी वेन पृथुके पुत्र होयवेसे नरकसे तरजातोभयो ॥ ४६ ॥ हिरण्यकश्यपभी भगवतकी [illegible] करकै नरकमें पडा परन्तु प्रल्हादके प्रभावसे अंधतमसे पार भयो ॥४७ ॥ हे वीरवर्य पितः ! पृथ्वीपति ! बहुतवर्षतक जीओ, जाकी ऐसी भक्ति सब लोकके एक भर्ता अच्युतमें है ॥४८॥ हे पवित्रकीर्ते ! बडो आनंद है कि तुम सरीके नाथकरकै हम सनाथ भये, मुकुन्द हमारे नाथ हैं, जिन उत्तमश्लोकतम ब्रह्मण्यदेव विष्णुकी कथाकूं तुम करोहो ॥ ४९॥ हे नाथ ! सब जीवमात्रकों शिक्षा करनी ये तुमकों कुछ अति अद्भुत नहीं है दयालु महात्मानको प्रजापर दया करनो स्वभावही है ॥५०॥ हे प्रभो ! नष्ट दृष्टि दैवसंज्ञित

गुणाकरं शीलधरं कृतज्ञं वृद्धाश्रयं संवृणतेऽनु संपदः ॥ प्रसीदतां ब्रह्मकुलं गवां च जनार्दनः सानुचरश्च मह्यम् ॥ ४४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति ब्रुवाणं नृपतिं पितृदेवद्विजातयः ॥ तुष्टुवुर्हृष्टमनसः साधुवादेन साधवः ॥ ४५ ॥ पुत्रेण जयते लोकांनिति सत्यवती श्रुतिः ॥ ब्रह्मदण्डहतः पापो यद्वेनोऽत्यतरत् तमः ॥ ४६ ॥ हिरण्यकशिपुश्चापि भगवन्निन्दया तमः ॥ विविक्षुरत्यगात् सृतः प्रह्लादस्यानुभावतः ॥ ४७ ॥ वीरवर्य पितः पृथ्व्याः समाः संजीव शाश्वतीः ॥ यस्येदृश्यच्युते भक्तिः सर्वलोकैकभर्तरि ॥ ४८॥ अहो वयं ह्यद्य पवित्रकीर्ते त्वयैव नाथेन मुकुन्दनाथाः ॥ य उत्तमश्लोकतमस्य विष्णोर्ब्रह्मण्यदेवस्य कथां व्यनक्ति ॥ ॥ ४९ ॥ नात्यद्भुतमिदं नाथ तव जीव्यानुशासनम् ॥ प्रजानुरागो महतां प्रकृतिः करुणात्मनाम् ॥ ५० ॥ अद्य नस्तमसः पारस्त्वयोपासादितः प्रभो ॥ भ्राम्यतां नष्टदृष्टीनां कर्मभिर्दैवसंज्ञितैः ॥ ५१ ॥

कर्मसें भ्रमते हमको तमसे पार करवेवारे तुम हो ॥ ५१ ॥ महासत्ववान श्रेष्ठ पुरुषके अर्थ नमस्कार होय, जो ब्राह्मण क्षत्रीनमें प्रवेश करकै अपने तेजसे या विश्वकूं धारैं हैं ॥५२॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां चतुर्थस्कन्धे प्रजानामनुशासने ब्राह्मणमाहात्म्यवर्णनं नाम एकविंशोऽध्यायः॥२१॥ मैत्रेयजी बोले कि सब जन पृथुल पराक्रमवारे पृथुकी इस प्रकार स्तुति कर रहे थे कि उसी समय तहां सूर्यके समान तेजस्वी चार मुनि सनकादिक आये ॥ १ ॥ अपने तेजसे लोकोंके पाप नाश करनेहारे सिद्धेश्वरोंको आकाशसे उतरतेहुए राजा, पृथु सब प्रजाके सहित देखते भये ॥ २ ॥ तिनके दर्शनसें प्राण ऊपरको आनेसै महाउत्कण्ठासे सभासद सहित पृथु उठै, जैसे गुणवान् इन्द्रियोंके सन्मुख जीवात्मा उत्सुकतासै जाता है

नमो विवृद्धसत्त्वाय पुरुषाय महीयसे ॥ यो ब्रह्मक्षत्रमाविश्य बिभर्तीदं स्वतेजसा ॥ ५२ ॥ इति श्रीभागवते चतुर्थस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ जनेषु प्रगृणत्स्वेवं पृथुं पृथुलविक्रमम् ॥ तत्रोपजग्मुर्मुनयश्चत्वारः सूर्यवर्चसः ॥ १ ॥ तांस्तु सिद्धेश्वरान् राजा व्योम्नोऽवतरतोऽर्चिषा ॥ लोकानपापान् कुर्वन्तया सानुगोऽचष्ट लक्षितान् ॥ २ ॥ तद्दर्शनोद्गतान्प्राणान् प्रत्यादित्सुरिवोत्थितः ॥ स सदस्यानुगो वैन्य इन्द्रियेशो गुणानिव ॥ ३ ॥ गौरवाद् यन्त्रितः सभ्यः प्रश्रयानतकन्धरः ॥ विधिवत् पूजयांचक्रे गृहीताध्यर्हणासनान् ॥४॥ तत्पादशौचसलिलैर्मार्जितालकबन्धनः ॥ तत्र शीलवतां वृत्तमाचरन् मानयन्निव ॥ ५ ॥ हाटकासन आसीनान् स्वधिष्ण्येष्विव पावकान् ॥ श्रद्धासंयमसंयुक्तः प्रीतः प्राह भवाग्रजान् ॥ ६ ॥

"ऊर्ध्वं प्राणा उत्क्रामंति यूनः स्थविर आयति ॥ प्रत्युत्थानाभिवादाभ्यां पुनस्तान्प्रतिपद्यत इति" ॥ ३ ॥ विनयसै शिर झुकाये राजा पृथुनै गौरवके वश हो आसन अर्घ्य स्वीकार करनेके उपरान्त ऋषियोंका विधिपूर्वक आदर और सत्कार किया ॥ ४ ॥ तिनके पादशौच जलको अपने शिरपर चढाया राजाका यह आचरण शीलवानोंके आचरणोंको मान देनेके निमित्त था ॥ ५ ॥ जैसे अपने स्थानोमें अग्नि तपै तैसे सुवर्णके सिंहासनमें वे शिवजीके भ्राता बैठे, तब तिनसे राजा पृथु श्रद्धासंयम संयुक्त प्रसन्न होयकैं बोलै ॥ ६ ॥

जिनके चरणकमलकी सेवाकी प्रीति प्रति दिन वृद्धिको प्राप्तहो तपस्वियौंके अनेक जन्मके बुद्धिके मलको भगवतके पद अंगुष्टसै निकली गंगाकी समान शीघ्र नाश करती है ॥ ३१ ॥ सब मनके मल दूर हौनेसै वैराग्यके कारण आत्मज्ञानकी सामर्थ्य युक्त यह प्राणी उनके चरण मूलमें रहकर फिर संसारमें नहीं पतित होता ॥ ३२ ॥ कपट त्याग तुम सब कामपूरण करवेवारेके चरणकमलकों आत्माकी वृत्तियोंसे मन वचन काया गुण कर्मौंकरकै भजो, जैसो अधिकार है तैसो अर्थकी सिद्धि प्राप्त होय है ॥ ३३ ॥ यद्यपि भगवान् स्वरूपसै शुद्ध निर्गुण, ज्ञानघन हैं तथापि कर्ममार्गके अनेक पदार्थोंसै संभावित होते वोही यज्ञरूप हैं कारण कि यज्ञमें पृथक पृथक धान्य आदि पदार्थ वर्ण क्रिया मंत्र संकल्प पदार्थौंकी शक्ति

यत्पादसेवाऽभिरुचिस्तपस्विनामशेषजन्मोपचितं मलं धियः ॥ सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती यथा पदाङ्गुष्ठविनिःसृता सरित् ॥ ३१ ॥ विनिर्धुताशेषमनोमलः पुमानसङ्गविज्ञानविशेषवीर्यवान् ॥ यदङ्घ्रिमूले कृतकेतनः पुनर्न संसृतिं क्लेशवहां प्रपद्यते ॥ ३२ ॥ तमेव यूयं भजतात्मवृत्तिभिर्मनोवचःकायगुणैः स्वकर्मभिः ॥ अमायिनः कामदुघाङ्घ्रिपङ्कजं यथाऽधिकारावसितार्थसिद्धयः ॥ ३३ ॥ असाविहानेकगुणोऽगुणोऽध्वरः पृथग्विधद्रव्यगुणक्रियोक्तिभिः ॥ संपद्यतेऽर्थाशयलिङ्गनामभिर्विशुद्धविज्ञानघनः स्वरूपतः ॥ ३४ ॥ प्रधानकालाशयधर्मसंग्रहे शरीर एष प्रतिपद्य चेतनाम् ॥ क्रियाफलत्वेन [illegible]विभाव्यते यथाऽनलो दारुषु तद्गुणात्मकः ॥ ३५ ॥ अहो ममामी वितरन्त्यनुग्रह हरिं गुरुं यज्ञभुजामधीश्वरम् ॥ स्वधर्मयोगेन यजन्ति मामका निरन्तरं क्षोणितले दृढव्रताः ॥ ३६ ॥ मा जातु तेजः प्रभवेन्महर्द्धिभिम्नितिक्षया तपसा विद्यया च॥ देदीप्यमानेऽजितदेवतानां कुले स्वयं राजकुलाद्द्विजानाम्॥३७॥

पृथक् २ नाम और सबसे उत्पन्न होते कर्म सब ईश्वरकेही स्वरूप है ॥ ३४ ॥ माया काल अंतःकरण धर्मसंग्रहमैं ये शरीर चेतनाको प्राप्त होयकर क्रियाफलके भा[illegible] विभुहो प्रकाश करैहैं जैसे अग्नि काष्ठमें वा काष्ठके दीर्घआदि भावमें वाकी आत्मा होकर प्राप्त होती है ॥ ३५ ॥ अहो ये प्रजा ! मोपर बडा अनुग्रह करै है कि यज्ञभोक्तानके ईश्वर श्रीहरि गुरुको अपने धर्मके योगसे पृथिवीमें निरंतर दृढव्रतधारी हो यजन करै है ॥३६॥ अब हरिभक्ति दृढताकेवास्ते ब्राह्मणकी भक्ति प्रथम करनेका उपदेश करतेहैं कि समृद्धिं न हौनेपरभी सुख दुखके सहन करने तथा तप और विद्यासै देदीप्यमान श्रीभगवान्के उपासक ब्राह्मणौं [illegible] वृद्धिको प्राप्त हुआभी राजकुलका तेज अपना प्रभाव न प्रगट करै ॥ ३७ ॥

178

ब्रह्मण्यदेव पुरुष पुरातन हरि नित्य जिनके चरणोंके वंदन करनेसे, अखंडित लक्ष्मी जगत्पवित्र करवेवारो यश बडोमें अग्रगण्यता प्राप्त करते भये ॥ ३८ ॥ जिन ब्राह्मणोंकी सेवा करकै सर्वांतर्यामी स्वराट् ब्राह्मणौंपर प्रीति करनेवाले ईश्वर यथेच्छासे संतुष्ट होयहै याहीते धर्मपरायणोंको सब प्रकारसे ब्राह्मणोंके कुलकी सेवा करनी योग्य है ॥ ३९ ॥ जिनके नित्यसंबंधौकी, (नित्यसंबंध ये है " पिता च रक्षकः शेषो भर्ता ज्ञेयो रमापतिः ॥ स्वाम्याधारो ममात्मा च गोप्ता चेति मनूदितः ॥ ") सेवा करकै अत्यंत प्रसन्न होयवेवारे आत्माको पुरुष शीघ्र प्राप्त होय है, अपनेते सुख शमता प्राप्त होजाय है, यासें परै देवतानकाभी और सुख कौंन है ॥ ४० ॥ ये निश्चय है कि तत्ववेत्तानकरकै श्रद्धासे जाजा देवताके पूज्यनाम कर-

ब्रह्मण्यदेवः पुरुषः पुरातनो नित्यं हरिर्यच्चरणाभिवन्दनात् ॥अवाप लक्ष्मीमनपायिनीं यशो जगत्पवित्रं च महत्तमाग्रणीः ॥ ३८॥ यत्सेवयाऽशेषगुहाशयः स्वराड् विप्रप्रियस्तुष्यति काममीश्वरः ॥ तदेव तद्धर्मपरैर्विनीतैः सर्वात्मना ब्रह्मकुलं निषेव्यताम् ॥ ३९ ॥ पुमाल्लँभेतानतिवेलमात्मनः प्रसीदतोऽत्यन्तशमं स्वतः स्वयम् ॥ यन्नित्यसंबन्धनिषेवया ततः परं किमत्रास्ति मुखं हविर्भुजाम् ॥ ४० ॥ अश्नात्यनन्तः खलु तत्त्वकोविदैः श्रद्धाहुतं यन्मुख इज्यनामभिः ॥ न वै तथा चेतनया बहिष्कृते हुताशने पारमहंस्यपर्यगुः ॥ ४१ ॥ यद् ब्रह्म नित्यं विरजं सनातनं श्रद्धातपोमङ्गलमौनसंयमैः ॥ समाधिना बिभ्रति हार्थदृष्टये यत्रेदमादर्श इवावभासते ॥ ४२ ॥ तेषामहं पादसरोजरेणुमार्या वहेयाधिकिरीटमायुः ॥ यं नित्यदा बिभ्रत आशु पापं नश्यत्यमुं सर्वगुणा भजन्ति ॥ ४३ ॥

के जिन ब्राह्मणोंके मुखमें श्रद्धासें जो भोजन करायो है, वासें अनंत भगवान् भोजन करै हैं ज्ञान रहित अग्निमें हवन करेसे प्रसन्न नहीं होय है विप्रोंकी सेवावारे, पारमहंस्योंकी गतिकों प्राप्त होंयहैं ॥ ४१ ॥ जिसें नित्य निर्मल सनातन ब्रह्ममें यह जगत दर्पणकी नाईं प्रतीत होताहै उसके ज्ञान वेदको यह ब्राह्मण श्रद्धा तप मंगल मौन संयमें समाधिसें निरन्तर धारण कर एकाग्र चित्तसै उसके अर्थको विचारते हैं (मंगल याको नाम है कि " प्रशस्ताचरणं नित्यमप्रशस्तस्य वर्जनं । एताद्धि मंगलं प्रोक्तमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ ") ॥ ४२ ॥ हे श्रेष्ठ! तिन ब्राह्मणोंके चरणकमलकी रज सब आयु पर्यंत किरीटपर मैं धारूहूं यासे सब तुमभी धारो ब्राह्मणोंकी चरनकी कृपासें सब पापनाश होय है, सब गुण या जीवकों प्राप्त होते है ॥ ४३ ॥

हे सत्तम ! एक समय राजाने महायज्ञमें दीक्षा लीनी सो देवता ब्रह्मर्षि राजर्षीनको समाज जुडतो भयो ॥ १३ ॥ जिस सभामें बडे बडे पुरुष थे उनका जब पूजन और सत्कार हो चुका तब उस स्थानमें तारागणोंमें चंद्रमाकी समान राजा उठकर खडे हुए ॥ १४॥ कंधा ऊंचे, मोटी विशाल भुजा, गौर कमलनयन, सुंदर नाक, सुमुख, सौम्य, ऊंचौ वक्षः स्थल, सुंदर दांत, सुंदर मुसकान युक्त है ॥१५॥ विशाल वक्षःस्थल, बृहत कटिपश्चाद्भागवारे उदरमें गोल रेखा. गंभीर नाभि, पराक्रमी, सुवर्णवत् ऊजरे ऊरू, अग्रभागसे उठ चरण ॥ १६ ॥ सूक्ष्म मुख, टेढे चिकणे मूडके वार, शंखवत त्रि-

एकदासीन्महासत्रदी[illegible] तत्र दिवौकसाम् ॥ समाजो ब्रह्मर्षीणां च राजर्षीणां च सत्तम ॥१३॥ तस्मिन्नर्हत्सु सर्वेषु स्वर्चितेषु यथार्ह[illegible]ः ॥ उत्थितः सदसो मध्ये ताराणामुडुराडिव ॥१४॥ प्रांशुः पीनायतभुजो गौरः कञ्जारुणेक्षणः ॥ सुनासः सुमुखः सौम्यः पीनांसः सुद्विजास्मितः ॥ १५ ॥ व्यूढवक्षा बृहच्छ्रोणिर्वलिवल्गुदलोदरः ॥ आवर्तनाभिरोजस्वी काञ्चनोरुरुदग्रपात् ॥ १६ ॥ सूक्ष्मवक्त्रासितस्निग्धमूर्धजः कम्बुकन्धरः ॥ महाधने दुकूलाग्र्ये परिधायोपवीय च ॥ १७ ॥व्यञ्जिताशेषगात्रश्रीर्नियमे न्यस्तभूषणः ॥ कृष्णाजिनधरः श्रीमान्कुशपाणिः कृतोचितः ॥ १८॥ शिशिरः स्निग्धताराक्षः समैक्षत समन्ततः ॥ ऊचिवानिदमुर्वीशः सदः संहर्षयन्निव ॥ १९ ॥ चारुचित्रपदं श्लक्ष्णं मृष्टं गूढमविक्लवम् ॥ सर्वेषामुपकारार्थं तदा अनुवदन्निव ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ सभ्याः शृणुत भद्रं वः साधवो य इहागताः ॥ सत्सु जिज्ञासुभिर्धर्ममावेद्यं स्वमनीषितम् ॥ २१ ॥

रेखांकित गर्दन, महाक्ढमोले वस्त्र पहिरे, यज्ञोपवीत धारे ॥ १७ ॥ सब देहकी प्रगट, श्रीवारे नियमसे सब भूषण त्यागे, कारे मृगचर्म धारे; श्रीमान् कुशा हाथमें लिये उचित कृत्यकूं करते भये ॥ १८ ॥ शीतल मनोहर तारा सम नेत्रोंसें सब ओरकों देखते भए सब सभाकों हर्ष करावत पृथिवीश ये बोले ॥ १९ ॥ श्रेष्ठ विचित्र पदयुक्त मनोहर उज्ज्वल गंभीर सुगमवचन, ता समय सबके उपकारके अर्थ बोले कि ॥ २० ॥ पृथुराजा बोले कि हे सभासद हो ! तुह्मारो कल्याण होय, जो साधु यहां आए हो तो सुनो, मैं सज्जनोंसे मनोरथ धर्म जानवेकी इच्छाकर पूछताहूं ॥ २१ ॥

कर लेवेवारे दंडदाता राजा प्रजाने हमकों करो हैं, रक्षाकी आपको जीविका दीनी, सब धर्मके सुंदर सेतुओंमें अलग अलग सबको स्थापन करें ॥ २२ ॥ इस अनुष्ठानसें मोको वे लोक कामदायक होय, जिन्हें ब्रह्मवादी लोग कहें हैं, जाके ऊपर भाग्यदाता ईश्वर संतुष्ट होय हैं ॥ २३ ॥ जो राजा प्रजासे कर लेवे हैं और प्रजाको धर्मसें न शिक्षा करें तो प्रजाके पापकों भोगें हैं, अपने सब ऐश्वर्यको त्यागें हैं ॥२४॥ तातें प्रजा भर्ता मेरे पिंडके अर्थ स्वार्थके लिये असूया छोडकर अधोक्षजमें बुद्धि करो येही मोपै महाअनुग्रह करोगे ॥ २५ ॥ हे पितृ देवर्षि ! आप निर्मल हो याको सराहना करौ, कर्ता शिक्षक आज्ञा दाताको मरें पै बराबर फल होय है ॥२६॥ हे पूजनीयनमें श्रेष्ठ ! कोईके मतमें तो यज्ञपति नाम भगवान् पूजा योग्य

अहं दण्डधरो राजा प्रजानामिह योजितः ॥ रक्षिता वृत्तिदः स्वेषु सेतुषु स्थापिता पृथक् ॥ २२ ॥ तस्य मे तदनुष्ठानाद्यानाहुर्ब्रह्मवादिनः ॥ लोकाः स्युः कामसंदोहा यस्य तुष्यति दिष्टदृक् ॥ २३ ॥ य उद्धरेत्करं राजा प्रजा धर्मेष्वशिक्षयन् ॥ प्रजानां शमलं भुङ्क्ते भगं च स्वं जहाति सः ॥ २४ ॥ तत्प्रजा भर्तृपिण्डार्थं स्वार्थमेवानसूयवः ॥ कुरुताधोऽक्षजाधियस्तर्हि मेऽनुग्रहः कृतः ॥२५॥ यूयं तदनुमोदध्वं पितृदेवर्षयोऽमलाः ॥ कर्तुः शास्तुरनुज्ञातुस्तुल्यं यत्प्रेत्य तत्फलम् ॥ २६ ॥ अस्ति यज्ञपतिर्नाम केषांचिदर्हसत्तमाः ॥ इहामुत्र च लक्ष्यन्ते ज्योत्स्नावत्यः क्वचिद्ध्रुवः ॥२७॥ मनोरुत्तानपादस्य ध्रुवस्यापि महीपतेः॥ प्रियव्रतस्य राजर्षेरङ्गस्यास्मात्पितुः पितुः॥२८॥ ईदृशानामथान्येषामजस्य च भवस्य च ॥ प्रह्लादस्य बलेश्चापि कृत्यमस्ति गदाभृता ॥ २९ ॥ दौहित्रादीनृते मृत्योः शोच्यान्धर्मविमोहितान् ॥ वर्गस्वर्गापवर्गाणां प्रायेणैकात्म्यहेतुना ॥ ३० ॥

है उन्हें या लोकमें परलोकमें कांतिमति भूमिके ऊपर भोगके शरीर होय हैं ॥ २७॥ मनु उत्तानपादको महीपति ध्रुवको,प्रियव्रत राजऋषिको, और हमारे पिताके पिता राजा अंगको जो करवे योग्य हो सो करते भए ॥ २८ ॥ ब्रह्मा शिव प्रह्लाद बलि और दूसरे पंडित महात्माओंने यह अंगिकार किया है कि कर्म जड होनेसै फल देनेको समर्थ नहीं तासो फलदाता ईश्वर अवश्य है ॥ २९ ॥ शोच करवे योग्य धर्मसे विमोचित मृत्युके दोहिते वेनराजाही हुए कि जिन्होंने परमेश्वरको न माना धर्म अर्थ और काम मोक्ष स्वर्ग प्राप्तिके सम्पूर्ण एक से कारणोंका विचार करा जाय तो ताके कर्म जड होनेसे स्वयं फल नहीं देता इस कारण स्वतंत्रतासै ईश्वरही कर्मफल देता है ॥ ३० ॥

सिद्ध चारण पन्नग किन्नर अप्सरा मनुष्य खग भूत अनेक ॥ ३५ ॥ यज्ञईश्वरकी बुद्धि करकै राजाकी वाणीरूप धनकी अंजलीकी भक्तिसे सत्कार करेभये भगवतके पश्चात सब जातेभये ॥ ३६ ॥ भगवान अच्युतभी राज ऋषि उपाध्याय सहित या राजाको मन हरतेभये अपने धामको जातेभये ॥ ३७ ॥ जिन्होंने अपना दर्शन दिया ऐसे मायासे परे, देवनके देवके नेत्रसे अदृष्ट होनेपर, तिन्हे राजा नमस्कार कर, अपने पुरको जातेभयो ॥ ३८ ॥ इति श्रीभा॰भा॰चतुर्थ॰श्रीविष्णुना पृथोर्यज्ञे अनुशासनवर्णनं नाम विंशोध्यायः ॥ २० ॥ मैत्रेयजी बोले कि मोती पुष्पमाला

यज्ञेश्वरधिया राज्ञा वाग्वित्ताञ्जलिभक्तितः ॥ सभाजिता ययुः सर्वे वैकुण्ठानुगतास्ततः ॥ ३६ ॥ भगवानपि राजर्षेः सोपाध्यायस्य चाच्युतः ॥ हरन्निव मनोऽमुष्य स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ३७ ॥ अदृष्टाय नमस्कृत्य नृपः संदर्शितात्मने ॥ अव्यक्ताय च देवानां देवाय स्वपुरं ययौ ॥ ३८ ॥ इति श्रीभा॰ चतु॰ श्रीविष्णुना पृथोर्यज्ञेनुशासनवर्णनं नाम विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ मौक्तिकैः कुसुमस्रग्भिर्दुकूलैः स्वर्णतोरणैः ॥ महासुरभिभिर्धूपैर्मण्डितं तत्र तत्र वै ॥१॥ चन्दनागुरुतोयार्द्ररथ्याचत्वरमार्गवत्॥ पुष्पाक्षतफलैस्तोकमैर्लाजैरर्चिभिरार्चितम् ॥२॥ सवृन्दैः कदलीस्तम्भैः पूगपोतैः परिष्कृतम् ॥ तरुपल्लवमालाभिः सर्वतः समलंकृतम् ॥ ३ ॥ स्त्रियस्तं दीपबलिभिः संभृताशेषमङ्गलैः ॥ अन्वीयुर्मृष्टकन्याश्च मृष्टकुण्डलमण्डिताः ॥४॥ शङ्खदुन्दुभिघोषेण ब्रह्मघोषेण चर्त्विजाम् ॥ विवेश भवनं वीरः स्तूयमानो गतस्मयः ॥ ५ ॥

वस्त्र सुवर्णके तोरण महा सुंगधिकी धूपौ करकें जहां तहां नगर शोभित हैं ॥ १ ॥ चंदन अगरके जलसें भीजे भये बडे मार्ग चौरहे, पुष्प अक्षत छोटे छोटे फल खीलै दीपकसे सज्जित है ॥ २ ॥ समूहके समूह केलाके खंभ सुपारी आम्रपत्रसे शोभित है, वृक्षोंके पल्लवोंकी मालासे सब ओरसे सुंदर अलंकृत है ॥ ३ ॥ प्रजा राजाको दीप बलि और सब मांगलिक द्रव्यसे पूजते भये, उज्ज्वल कुंडल पहिरे सुंदर कन्या आवती भई ॥ ४ ॥ शंखदुंदुभिके घोष करकै ऋत्विजोंके ब्रह्म घोषसे स्तुतिको प्राप्त हो गर्व रहित, पृथुवीर अपने भवनमें प्रवेश करतेभये ॥ ५ ॥

वह पूजित महायशस्वी जहां तहां पूजित होतेभये, पुरवासी देशवासीसे प्रसन्न हो तिन्हैं वर देते भये ॥ ६ ॥ सो पृथु ऐसे निंदा रहित चेष्टाकर
महान् वडे कर्म करतेभये, यासे महत्तम भये, पृथिवीको शिक्षाकर, निर्मल यश यहां विस्तार करकै श्रीहरिके पदकों जाते भये ॥ ७ ॥ सूतजी
बोले कि हे शौनकजी! तासमय आदिराजको यश विस्तृत संपूर्ण गुणों करकै युक्त सुनकर सभाजित विदुर महाभागवत मैत्रेयजीसे पूजन कर पूछ-
तेभये ॥ ८ ॥ विदुरजी बोले कि सो पृथु ब्राह्मणों करकै अभिषिक्त सब देवनसे पूजा लैके वैष्णवतेज धारण करतेभये, जिन्हौने भुजानसे धरती

पूजितः पूजयामास तत्र तत्र महायशाः ॥ पौराञ्जानपदांस्तांस्तान्प्रीतः प्रियवरप्रदः ॥ ६ ॥ स एवमादीन्यनवद्य-
चेष्टितः कर्माणि भूयांसि महान्महत्तमः ॥ कुर्वञ्छशासावनिमण्डलं यशः स्फीतं निधायारुरुहे हरेः पदम् ॥ ७ ॥
सूत उवाच ॥ श्रुत्वादिराजस्य यशो विजृम्भितं गुणैरशेषैर्गुणवत्सभाजितम् ॥ क्षत्ता महाभागवतः सदस्पते कौषा-
रविं प्राह गृणन्तमर्चयन् ॥ ८ ॥ विदुर उवाच ॥ सोऽभिषिक्तः पृथुर्विप्रैर्लब्ध्वाऽशेषसुरार्हणः ॥ बिभ्रच्च वैष्णवं तेजो
बाह्वोर्याभ्यां दुदोह गाम् ॥ ९ ॥ को न्वस्य कीर्तिं न शृणोत्यभिज्ञो यद्विक्रमोच्छिष्टमशेषभूपाः ॥ लोकाः सपाला
उपजीवन्ति काममद्यापि तन्मे वद कर्म शुद्धम् ॥ १० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ गङ्गायमुनयोर्नद्योरन्तरा क्षेत्रमाव-
सन् ॥ आरब्धानेव बुभुजे भोगान्पुण्यजिहासया ॥ ११ ॥ सर्वत्रास्खलितादेशः सप्तद्वीपैकदण्डधृक् ॥ अन्यत्र
ब्राह्मणकुलादन्यत्राच्युतगोत्रतः ॥ १२ ॥

पालक सहित सब लोकपाल जिनसे जीवते भये
दुही ॥ ९ ॥ कौन अभिज्ञ इनकी कीर्ति न सुनैगो, सब राजा जिनके पराक्रमके उच्छिष्ट भूत हैं, पालक सहित सब लोकपाल जिनसे जीवते भये
सो अबभी आप उनके शुद्ध कर्म मोंसें कहो ॥ १० ॥ मैत्रेयजी बोले कि गंगायमुनानादियोंके बीचके क्षेत्रमें वसते भये पृथुजी, अपने प्रारब्धके
भोग पुण्यकी त्याग करवेकी इच्छा करकै भोगते भये ॥ ११ ॥ वे अप्रतिहत आज्ञावारे सप्तद्वीपके एक दंडधारी भये एक तौ ब्राह्मणकुल दूसरे
अच्युतगोत्री[1] श्रीवैष्णवोंको उन्हौने दंड न दीनो ॥ १२ ॥

---

[1] इन्द्रियौंके विषयौंसे रहित संतुष्ट सबमें नारायणको देखेनवाले महात्माओंको अच्युतगोत्री कहते हैं।

पृथु बोले कि हे विभो ! सब वर देवेवारे ईश्वरसे बुद्धिवान कैसे वर मागेगो, क्यों कि गुणोंकी विक्रियाके देहवारे नरकवासी देहधारीयोंकूंभी वे वर प्राप्त है, यासे कैवल्यपते ! आपसे वर न मागूंगो ॥ २३ ॥ और वर तो क्या मुझे मुक्तिकोभी इच्छा नहीं कारण कि तहां श्रेष्ठ पुरुषोंके भीतर हृदयसे निकले आपके चरणकमलके मकरंदका श्रवणादिक सुख नहीं है इसकारण आपकी कथा सुन्नेको यही कान दो सहस्र कानोंकी समान होंजाय यही वर मांगताहूं ॥ २४ ॥ हे उत्तमश्लोक ! महात्मानके मुखसे निकसी, आपके चरणकमल अमृत कणुकाकी पवन तत्वमार्ग भूलेहुये हमको स्मृति विस्तार करैं हैं, और जो कुत्सित योगी हैं उनकी स्मृती भूलजाय है यासै हमकों वरोंसे कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ २५ ॥ हे सुश्रव !

पृथुरुवाच ॥ वरान्विभो त्वद्वरदेश्वराद् बुधः कथं वृणीते गुणविक्रियात्मनाम् ॥ ये नारकाणामपि सन्ति देहिनां तानीश कैवल्यपते वृणे न च ॥ २३ ॥ न कामये नाथ तदप्यहं क्वचिन्न यत्र युष्मच्चरणाम्बुजासवः ॥ महत्तमान्तर्हृदयान्मुखच्युतो विधत्स्व कर्णायुतमेष मे वरः ॥ २४ ॥ स उत्तमश्लोकमहन्मुखच्युतो भवत्पदाम्भोजसुधाकणानिलः ॥ स्मृतिं पुनर्विस्मृततत्त्ववर्त्मनां कुयोगिनां नो वितरत्यलं वरैः ॥२५॥ यशः शिवं सुश्रव आर्यसंगमे यदृच्छया चोपशृणोति तेऽसकृत् ॥ कथं गुणज्ञो विरमेद्विना पशुं श्रीर्यत्प्रवव्रे गुणसंग्रहेच्छया ॥ २६ ॥ अथो भजे त्वाऽखिलपूरुषोत्तमं गुणालयं पद्मकरेव लालसः ॥ अप्यावयोरेकपतिस्पृधोः कलिर्न स्यात्कृतत्वच्चरणैकतानयोः ॥२७॥ जगज्जनन्यां जगदीश वैशसं स्यादेव यत्कर्मणि नः समीहितम्॥करोति फल्ग्वप्युरुदीनवत्सलः स्व एव धिष्ण्येऽभिरतस्य किं तया॥२८॥

आप मंगलरूप यश बडोंके संगममें वारंवार यदृच्छासे सुनै, आपके गुणौंसे एक पशुके विना कोई विरामको नहीं प्राप्त होय है, गुणसंग्रहकी इच्छा करकै श्रीमहालक्ष्मी आपको वरती भई ॥ २६ ॥ याते सब पुरुषोंमे उत्तम गुणनके स्थान तुमको लालसासे लक्ष्मीकी नाई हम भजे हैं, एकही समयमें एक स्वामीकी एक प्रकारकी सेवा करनेवाले हममें और लक्ष्मीमें क्लेश होना संभव है तथापि मैं जानताहूं मेरा और लक्ष्मीका मन आपके चरणोंमें एकाग्र रहेगा ॥ २७ ॥ हे जगदीश ! जगत जननीके काममें हमारे भाग लैनेकी इच्छा है उसके साथ कदाचित विरोध होगा तथापि आप दीनवत्सलतासै हमारी थोडी सेवाकोभी बहुत मानोगे कारण कि आप अपनें आनंदसे रमण करते हो तुम्ही किसीके पक्षसें क्या है ॥२८॥

या कारणसे मायागुण विभ्रमोंके उदय रहित तुम्हैं साधु लोग भजे हैं, हे भगवन् ! उन सज्जनोंको आपके चरणकमल अनुस्मरणके विना और कुछ निमित्त नही है ये हम जाने हैं ॥ २९ ॥ आपके भजन करवेवारे हमको जो आप कहोहो कि वरदान मागो ये जगतको विशेष करके मोह करवेवारी तुह्मारी वाणी हम माने हैं, आपकी प्रवृत्ति निवृत्तिरूप वाणीरूपी डोरामें जो ये जन बंधो है, जो बंधे न होते तो मोहित होकर वारंवार कर्ममें मोहित हो कर्म कैसे करते ॥ ३० ॥ हे ईश्वर ! साक्षात् तुम्हारी माया करके जन खंडित है, सो सत्य आत्मा तुमते मूर्ख जन और फलकी आशा करै है, और मैंभी इसीमें हूं सो मुझे आप वररूप अज्ञानमें न डालकर जैसे पिता विना प्रार्थना किये बालकपर हित करता है वैसे आप

भजन्त्यथ त्वामत एव साधवो व्युदस्तमायागुणविभ्रमोदयम् ॥ भवत्पदानुस्मरणादृते सतां निमित्तमन्यद्भगवन्न विद्महे ॥ २९ ॥ मन्ये गिरं ते जगतां विमोहिनीं वरं वृणीष्वेति भजन्तमात्थ यत् ॥ वाचा नु तन्त्या यदि ते जनोऽसितः कथं पुनः कर्म करोति मोहितः ॥ ३० ॥ त्वन्माययाऽद्धा जन ईश खण्डितो यदन्यदाशास्त ऋतात्मनोऽबुधः ॥ यथा चरेद्बालहितं पिता स्वयं तथा त्वमेवार्हसि नः समीहितम् ॥ ३१ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यादिराजेन नुतः स विश्वदृक्तमाह राजन्मयि भक्तिरस्तु ते ॥ दिष्ट्येदृशी धीर्मयि ते कृता यया मायां मदीयां तरति स्म दुस्त्यजाम् ॥ ॥ ३२ ॥ तत्त्वं कुरु मयादिष्टमप्रमत्तः प्रजापते ॥ मदादेशकरो लोकः सर्वत्राप्नोति शोभनम् ॥ ३३ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इति वैन्यस्य राजर्षेः प्रतिनन्द्यार्थवद्वचः ॥ पूजितोऽनुगृहीत्वैनं गन्तुं चक्रेऽच्युतो मतिम् ॥ ३४ ॥ देवर्षिपितृगन्धर्वसिद्धचारणपन्नगाः ॥ किन्नराप्सरसो मर्त्याः खगा भूतान्यनेकशः ॥ ३५ ॥

मेरा हित करो ॥ ३१ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि ऐसे आदिराजने विश्वद्रष्टाकी स्तुति कीनी, तब भगवान् बोले कि तुम्हारी भक्ति मेरेमैं होय बडो आनन्द भयो जो ऐसी बुद्धि मेरेमें करी या भक्तिसे महादुस्त्यज मेरी मायाकों ये जीव तरतां है ॥ ३२ ॥ हे प्रजापते ! मेरी आज्ञासे मद छोड जो मैनें कही सो करो, मेरी आज्ञा करवेवारो लोक सब जगे आनन्दको प्राप्त होय है ॥ ३३ ॥ या प्रकार वेनवंश उत्पन्न पृथुराजऋषिके अर्थवद्वचनको सराहना कर पूजित हो अच्युत भगवान यापर अनुग्रह कर जायवेकी मति करते भये ॥ ३४ ॥ देवता ऋषि पितृ गंधर्व

---

१ भगवानने प्रगट होकर विष्णुरूप पृथुकोभी अपनी भक्तिका वर दिया इसका कारण यह है कि पृथु उनके अंशरूप हैं जो पृथ्वीपर प्रजाका दुःख दूर करनेकी अवतार ले आये हैं।

होय है वो मेरे में स्थित हैं ॥ ८ ॥ हे राजन् ! फलचाह त्याग श्रद्धायुक्त होयकै स्वधर्मसे जो मोको भजे है, वाको धीरेसे मन प्रसन्न होय है ॥ ९॥ जब यह प्राणी प्रसन्न चित्त होय है तब गुणोंका त्याग कर ज्ञानी होय शान्तिसे उदासीनता मेरी अवस्थिति रूप मुक्तिको प्राप्त होय है ॥ १० ॥ जो उदासीन इस आत्माकोही देह ज्ञानेन्द्रिय कर्म इन्द्रिय और मनका स्वामी स्थित कूटस्थ आत्माको जानै है वोही मुक्तिको प्राप्त होय है ॥ ११ ॥ द्रव्य क्रिया कारक चेतनके आत्मक इस भिन्न लिंग शरीरको संसार है और जिन्होंने मुझसै प्रीति की है वे तत्वज्ञानी संपत विपत्‌को देख कभी विकारको प्राप्त नही होते ॥१२॥ हे वीर ! समसमान, उत्तम, मध्यम, अधम, सुख, दुःखमें जिसने अपनी इन्द्रिय जीतली है ऐसे तुम मुझसै रचे लोकनको सब लोक-

यः स्वधर्मेण मां नित्यं निराशीः श्रद्धयान्वितः ॥ भजते शनकैस्तस्य मनो राजन्प्रसीदति ॥ ९ ॥ परित्यक्तगुणः सम्यग्दर्शनो विशदाशयः ॥ शान्तिं मे समवस्थानं ब्रह्मकैवल्यमश्नुते ॥ १० ॥ उदासीनमिवाध्यक्षं द्रव्यज्ञानाक्रियात्मनाम् ॥ कूटस्थमिममात्मानं यो वेदाप्नोति शोभनम् ॥११॥ भिन्नस्य लिङ्गस्य गुणप्रवाहो द्रव्यक्रियाकारकचेतनात्मनः॥ दृष्टासु संपत्सु विपत्सु सूरयो न विक्रियन्ते मयि बद्धसौहृदाः ॥ १२ ॥ समः समानोत्तममध्यमाधमः सुखे च दुःखे च जितेन्द्रियाशयः॥ मयोपक्लृप्ताखिललोकसंयुतो विधत्स्व वीराऽखिललोकरक्षणम् ॥१३॥ श्रेयः प्रजापालनमेव राज्ञो यत्सांपराये सुकृतात्षष्ठमंशम् ॥ हर्ताऽन्यथा हृतपुण्यः प्रजानामरक्षिता करहारोऽघमत्ति ॥ १४ ॥ एवं द्विजाग्र्यानुमतानुवृत्तधर्मप्रधानोऽन्यतमोविताऽस्याः ॥ हृस्वेन कालेन गृहोपयातान्द्रष्टासि सिद्धाननुरक्तलोकः ॥ १५ ॥

युक्त होयकर सब लोककी रक्षा करो ॥ १३ ॥ राजाको धर्म है कि प्रजाकी पालना करै, यामें वाको कल्याण होय है, परलोकमें जो सुकृत करैं वाको छठो भाग लेनो, उनपे दुःख पडै तो देनो, जो ऐसे न करै अन्यथा करै तो पुण्यनाश होय, प्रजाकी रक्षा न कर कर सदालेकै जीवे तो सब प्रजाको पाप भोगै है ॥ १४ ॥ ऐसे ब्राह्मणोंमें उत्तमोंने जो धर्म करै हैं उनमें प्रधान होयकर या पृथिवीको रक्षा करो, तौ थोडेही दिननमें अपने घरपर आयेभये सिद्धनको देखोगे. सब लोक आपमें अनुरक्त है ॥ १५ ॥

हे मानवेंद्रवर ! मेरे विना और कुछ मत चाहो, हम गुणशीलोंसे वशीभूत होय रहे हैं, यज्ञसें हम सुलभ नहीं है, न तपसें न योगसें हम मिले हैं परन्तु जो समदर्शी है वासें हम प्रसन्न होय हैं ॥ १६ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि लोकगुरु भगवानने जब ऐसे आज्ञा कीनी सो विश्वविजयी पृथु हरिकी आज्ञाको शिरसे ग्रहण करते भये ॥ १७ ॥ प्रेमसें चरणस्पर्श कर अपने कर्मसे लज्जित इंद्रसें मिलके वैरको त्याग करते भये ॥ १८ ॥ भगवान् विश्वात्माने पृथुको पूजन ग्रहण कियो, तब पृथुने महाभक्तिसे चरणकमल पकडलीने ॥ १९ ॥ भगवान जानेकू उपस्थितभी हुए परन्तु अनुग्रहसे

वरं च मत्कश्चन मानवेन्द्र वृणीष्व तेऽहं गुणशीलयन्त्रितः ॥ नाहं मखैर्वै सुलभस्तपोभिर्योगेन वा यत्समचित्तवर्ती ॥
॥ १६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स इत्थं लोकगुरुणा विष्वक्सेनेन विश्वजित् ॥ अनुशासित आदेशं शिरसा जगृहे हरेः ॥१७॥
स्पृशन्तं पादयोः प्रेम्णा व्रीडितं स्वेन कर्मणा ॥ शतक्रतुं परिष्वज्य विद्वेषं विससर्ज ह ॥ १८ ॥ भगवानथ विश्वात्मा
पृथुनोपहृतार्हणः ॥ समुज्जिहानया भक्त्या गृहीतचरणाम्बुजः ॥ १९ ॥ प्रस्थानाभिमुखोऽप्येनमनुग्रहविलम्बितः ॥
पश्यन्पद्मपलाशाक्षो न प्रतस्थे सुहृत्सताम् ॥ २० ॥ स आदिराजो रचिताञ्जलिर्हरिं विलोकितुं नाशकदश्रुलोचनः ॥
न किंचनोवाच सबाष्पविक्लवो हृदोपगुह्यामुमधादवस्थितः ॥२१॥ अथावमृज्याश्रुकला विलोकयन्नतृप्तदृग्गोचरमाह
पूरुषम् ॥ पदा स्पृशन्तं क्षितिमंस उन्नते विन्यस्तहस्ताग्रमुरङ्गविद्विषः ॥ २२ ॥

विलम्ब करते सज्जनोंके सुहृद कमलनैन पृथुकों देखनेलगे गये नहीं ॥ २० ॥ सो आदिराज पृथु हाथ जोडे खडे रहे श्रीहरिको देखवेको न समर्थ भये, अश्रु नेत्रमेंसे आगये कुछ न बोले, कंठ रुकगयो, बैठके हृदयसे ध्यान कर चिंतवन करतो भयो ॥ २१ ॥ पाछे आसू पोछ आदिपुरुषको देखते २ तृप्त न भये, और श्रीहरिसें बोल्यो यद्यपि देवता भूमिमें पांव नहीं राखै है, परंतु प्रेमसे भगवान पांवसे धरतीपर खडै श्रीगरुडजीके स्कंधापर हस्तको अग्रभाग धरे हैं ॥ २२ ॥

187

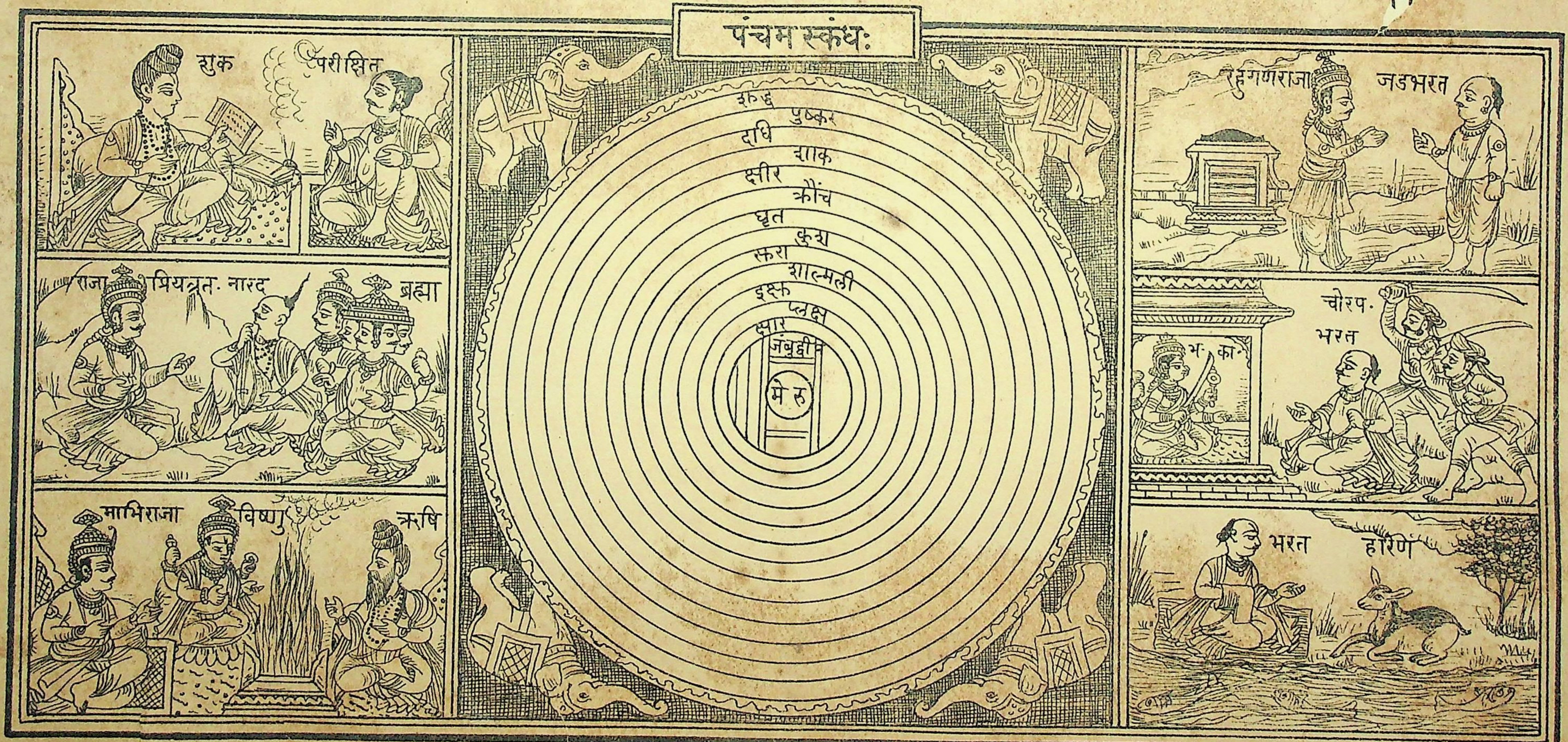
पंचम स्कंधः
शुक
परीक्षित
राजा प्रियव्रत
नारद
ब्रह्मा
नाभिराजा
विष्णु
ऋषि
शुद्ध
पुष्कर
दधि
शाक
क्षीर
क्रौंच
घृत
कुश
सुरा
शाल्मली
इक्षु
प्लक्ष
क्षार
जंबुद्वीप
मेरु
रहूगणराजा
जडभरत
चोरप.
भरत
भ. का.
भरत
हरिणी

मानसे पूजित पितृदेव प्रसन्न होते भए ॥४२॥ वे मनुष्य प्रसन्न पृथुसे पूजित हो आशीर्वाद देते यज्ञकी सराहना करते अपने २ स्थानको गये ॥४३॥ इति श्रीम० भाषाटीकायां चतु० पृथुचरित्रे पाषंडमार्गवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीमैत्रेयजी बोले कि यज्ञभोक्ता भगवान् विभु वैकुंठपति इंद्रके साथ यज्ञोंसें प्रसन्न हो पृथुसे बोलै ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि सोंवों अश्वमेध भंग या इंद्रनें कीनो, सो यापर क्षमा करो, आप याके अपराध क्षमा करवे योग्य हो ॥२॥ हे नरदेव ! सुंदर बुद्धिवारे साधु मनुष्य लोकमें जीवोंसे द्रोह नहीं करै हैं, क्योंकि ये शरीर आत्मा नहीं है ॥ ३ ॥

दत्ताशीर्वचनाः सर्वे पूजिताः पृथुना च ते ॥ स्वं स्वं स्थानं ययुर्हृष्टाः शंसन्तो यज्ञमुत्तमम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीभा० म० चतुर्थ० पृथुचरित्रे इन्द्रकृतपाषण्डमार्गवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ छ ॥ ऋषिरुवाच ॥ भगवानपि वैकुण्ठः साकं मघवता विभुः ॥ यज्ञैर्यज्ञपतिस्तुष्टो यज्ञभुक्तमभाषत ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एष तेऽकारषीद्भङ्गं हयमेधशतस्य ह ॥ क्षमापयत आत्मानममुष्य क्षन्तुमर्हसि ॥ २ ॥ सुधियः साधवो लोके नरदेव नरोत्तमाः ॥ नाभिद्रुह्यन्ति भूतेभ्यो यर्हि नात्मा कलेवरम् ॥ ३ ॥ पुरुषा यदि मुह्यन्ति त्वादृशा देवमायया ॥ श्रम एव परं जातो दीर्घया वृद्धसेवया ॥४ ॥ अतः कायमिमं विद्वानविद्याकामकर्मभिः ॥ आरब्ध इति नैवास्मिन्प्रतिबुद्धोऽनुषज्जते ॥ ॥ ५ ॥ असंसक्तः शरीरेऽस्मिन्नमुनोत्पादिते गृहे ॥ अपत्ये द्रविणे वाऽपि कः कुर्यान्ममतां बुधः ॥ ६ ॥ एकः शुद्धः स्वयंज्योतिर्निर्गुणोऽसौ गुणाश्रयः ॥ सर्वगोऽनावृतः साक्षी निरात्मात्मात्मनः परः ॥ ७ ॥ य एवं सन्तमात्मानमात्मस्थं वेद पूरुषः ॥ नाज्यते प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः स मयि स्थितः ॥ ८ ॥

तुह्मारे सरीखो पुरुष जो देवमायाकरकै द्रोह करै तौ बहुत दिनकी वृद्धोंकी सेवाको श्रमही है ॥ ४ ॥ याते अविद्या कामकर्मों करकै ये देह है, सो यामें मोक्षभागी ज्ञानी आसक्त नहीं होय है ॥ ५ ॥ जो या शरीरमें आसक्त नहीं है, या देहसे उत्पादित घरमें पुत्रमें धनमें कोई बुद्धिवान् ममताकूं नहीं करै है ॥ ६ ॥ एक शुद्ध स्वयंज्योति निर्गुण ब्रह्म गुणोंके आश्रय सर्वगत काऊसे ढके नहीं साक्षी सबसें निराली आत्मा व्यापक सब जीवोंसे परे है ॥ ७ ॥ सब आत्मानमें स्थित सबमें रहिवेवारे ईश्वरको जो पुरुष जाने है, वो मायामें स्थित है तोभी मायाके गुणोंसे लिप्त

इंद्रके रचेभए चित्तके हरनेहारे पाखंडसे हरेभए जनोंको देखो जो यज्ञद्रोही अश्वचोरने प्रगट कीने है ॥ ३६ ॥ जीवोंके समयके अनुसार जो धर्म हैं उनके रक्षा करवेको आपने अवतार लियो है, हे वेनवंशोद्भव पृथो ! वेनके अपराधसें सब चीज लुप्त होगई, तब बाकी देहसें विष्णुकला तुम अवतरेहो ॥ ३७ ॥ हे प्रभो ! हे प्रजापते ! या विश्वकी उत्पत्ति विचार विश्व रचवेवारेनको संकल्प तुम पूरो करो, पाषंडधर्मकी इंद्रकी माया

एभिरिन्द्रोपसंसृष्टैः पाखण्डैर्हारिभिर्जनम् ॥ ह्रियमाणं विचक्ष्वैनं यस्ते यज्ञध्रुगश्वमुट् ॥ ३६ ॥ भवान्परित्रातुमिहावतीर्णो धर्मं जनानां समयानुरूपम् ॥ वेनापचारादवलुप्तमद्य तद्देहतो विष्णुकलाऽसि वैन्य ॥ ३७ ॥ स त्वं निमृश्यास्य भवं प्रजापतेः संकल्पनं विश्वसृजां पिपीपृहि ॥ऐन्द्रीं च मायामुपधर्ममातरं प्रचण्डपाखण्डपथं जहि प्रभो॥३८॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्थं स लोकगुरुणा समादिष्टो विशांपतिः ॥ तथा च कृत्वा वात्सल्यं मघोनाऽपि च संदधे ॥ ३९॥ कृतावभृथस्नानाय पृथवे भूरिकर्मणे ॥ वरान्ददुस्ते वरदा ये तद्बर्हिषि तर्पिताः ॥ ४० ॥ विप्राः सत्याशिषस्तुष्टाः श्रद्धया लब्धदक्षिणाः ॥ आशिषो युयुजुः क्षत्तरादिराजाय सत्कृताः ॥ ४१ ॥ त्वयाऽऽहूता महाबाहो सर्व एव समागताः ॥ पूजिता दानमानाभ्यां पितृदेवर्षिमानवाः ॥ ४२ ॥

प्रबल पाखंड पथ नाश करो ॥ ३८॥ मैत्रेयजी बोले कि या प्रकार लोकगुरुने राजाकूं जब आज्ञा कीनी, तब तैसेंई वात्सल्यभावकर इंद्रसे प्यार करते भए ॥ ३९ ॥ यज्ञांत स्नानकर महाकर्मकारी पृथुके अर्थ यज्ञमें तृप्त भए महात्मा वर देतेभए ॥ ४० ॥ हे विदुर ! सत्य आशीर्वादवारे प्रसन्न हो श्रद्धामें दक्षिणा पाय सत्कृत हो ब्राह्मण लोग आदिराज पृथुके अर्थ आशीर्वाद देतेभए ॥ ४१ ॥ हे महाबाहो ! हम सब तुह्मारे बुलावे आए दान

शीघ्र आकाशमार्गमें होयके जाते भएको अत्रिने दिखायो तवभी कपालखट्वांगधारी देख वीर याय न मारते भए ॥ २० ॥ अत्रिके प्रेरे रोषते फेर बाण मारतेभए वो घोडा और अपनो रूप त्याग इंद्र फिर अंतर्ध्यान होते भए ॥ २१ ॥ वीर घोडाको लेके फेर पिताके यज्ञमें आए वो निंदित इंद्रको रूप ज्ञानहीन ग्रहण करते भए ॥ २२॥ घोडाके हरवेकी विरिया इंद्रने जो रूप धारोहो, वेही पापके चिन्ह लिंगखंड प्रगट भए(१)॥२३॥पृथुके यज्ञनाशकी इच्छा कर जब इंद्रने अश्व हरकर जो चिन्ह त्यागे उन पाखंडोंमें मनुष्योंकी मति लगतीहै ॥ २४ ॥ जो पाखंडधर्म हैं जामें नंगे लोग रहे है, रक्तवस्त्र भगुआ इत्यादि धारें हैं, बडी सुंदर मनोहर वाणियोंसे मन हरें हैं ॥ २५ ॥ भगवान्पृथु महापराक्रमी ये अभिप्राय जान इंद्रके अर्थ कोपकर धनुष उठाय बाण उठातो भयो ॥ २६ ॥ जिनके सामने देखना अति कठिन है ऐसे महावेगवान पृथुका इन्द्रके वधमें अभिप्राय जान ऋत्विज

अत्रिः संदर्शयामास त्वरमाणं विहायसा ॥ कपालखट्वाङ्गधरं वीरो नैनमबाधत ॥ २० ॥ अत्रिणा चोदितस्तस्मै संदधे विशिखं रुषा ॥ सोऽश्वं रूपं च तद्धित्वा तस्थावन्तर्हितः स्वराट् ॥ २१ ॥ वीरश्चाश्वमुपादाय पितृयज्ञमथाव्रजत् ॥ तदवद्यं हरे रूपं जगृहुर्ज्ञानदुर्बलाः ॥ २२ ॥ यानि रूपाणि जगृह इन्द्रो हयजिहीर्षया ॥ तानि पापस्य खण्डानि लिङ्गं खण्डमिहोच्यते ॥२३॥ एवमिन्द्रे हरत्यश्वं वैन्ययज्ञजिघांसया ॥ तद्गृहीतविसृष्टेषु पाखण्डेषु मतिर्नृणाम् ॥२४ ॥ धर्म इत्युपधर्मेषु नग्नरक्तपटादिषु ॥ प्रायेण सज्जते भ्रान्त्या पेशलेषु च वाग्मिषु ॥ २५ ॥ तदभिज्ञाय भगवान्पृथुः पृथुपराक्रमः ॥ इन्द्राय कुपितो बाणमादत्तोद्यतकार्मुकः ॥ २६ ॥ तमृत्विजः शक्रवधाभिसंधितं विचक्ष्य दुःप्रेक्ष्यमसह्यरंहसम् ॥ निवारयामासुरहो महामते न युज्यतेऽत्रान्यवधः प्रचोदितात् ॥ २७ ॥

---

१ या प्रसंगपर एक पद रेखता सोरठका है ॥ ताल पश्तो ॥ हरिना कह्यो मुखगायके तैं कहा कियो जग आयके ॥ आस्ताई ॥ घर त्याग तृष्णा ना मरी कहा करी राख लगायके ॥ लियो भेषते जगठगनको कहा करो चर्स चढायके ॥ १ ॥ नारी निहारी औरकी कहा करो लंगोट लगायकै ॥ उपदेश दियो नहीं धर्मको कहा करो घरघर जायकै ॥ २ ॥ बहुरंग के टीके दिये कहा भयो भक्त कहायकै ॥ चोला मल्मलके पहिनके कहा कियो भगवे रंगायके ॥ ३ ॥ प्रभुको प्रसन्नतें नाहिं कियो कहा कियो जगत रिझायके। पुरुषोत्तम कहे हरिको भजो फिर रहोगे पछितायकै ॥ ४ ॥

२ नग्न (दिगम्बर जैन), रक्तपट (बौद्ध)।

देख बोले अहो महामते ! या यज्ञमें पशुवधके विना औरको वधकरनो योग्य नहीं है ॥ २७ ॥ तुह्मारे यशकरकै हतकांति अनर्थनाशक इंद्रको हम हवन करेंगे हे राजन् ! सारयुक्त वेदमंत्रोंसें हम हठकरकै तेरे वैरीको हवन करैंगे ॥ २८ ॥ हे विदुर ! यज्ञपतिसै ऐसा कह ऋत्विज रोषकर स्रुवा हाथमें ले इंद्रके मारनेको हवन करने लगे तब ब्रह्माजी मने करते भये ॥ २९ ॥ आपलोगोंके वधयोग्य इंद्र नहीं है यज्ञरूप इंद्र भगवत्तनू है, जाको यज्ञसे मारोहो वाकी देह देवता ईश्वरको महाप्रिय है ॥ ३० ॥ हे ब्राह्मणो ! पृथुके इस यज्ञका विध्वंस करने इन्द्रने यह बड़ा धर्मको नाश करनेहारा पाखंड चलायाहै इसे देखो । अब इन्द्रके साथ मित्रता स्थापन करो ॥ ३१ ॥ हे पृथो ! एक कम शत यज्ञोंसेही तुह्मारी महाकीर्ति होयगी तुम्हारे बहुत यज्ञोंसे

वयं मरुत्वन्तमिहार्थनाशनं ह्वयामहे त्वच्छ्रवसा हतत्विषम् ॥ अयातयामोपहवैरनन्तरं प्रसह्य राजञ्जुहवाम तेऽहितम् ॥ २८ ॥ इत्यामन्त्र्य क्रतुपतिं विदुरास्यर्त्विजो रुषा ॥ स्रुग्घस्ताञ्जुह्वतोऽभ्येत्य स्वयंभूः प्रत्यषेधत॥२९॥न वध्यो भवतामिन्द्रो यद्यज्ञो भगवत्तनुः ॥ यं जिघांसथ यज्ञेन यस्येष्टास्तनवः सुराः ॥ ३० ॥ तदिदं पश्यत महद्धर्मव्यतिकरं द्विजाः ॥ इन्द्रेणानुष्ठितं राज्ञः कर्मैतद्विजिघांसता ॥ ३१ ॥ पृथुकीर्तेः पृथोर्भूयात्तर्ह्येकोनशतक्रतुः ॥ अलं ते क्रतुभिः स्विष्टैर्यद्भवान्मोक्षधर्मवित् ॥ ३२ ॥ नैवात्मने महेन्द्राय रोषमाहर्तुमर्हसि ॥ उभावपि हि भद्रं त उत्तमश्लोकविग्रहौ ॥३३॥ माऽस्मिन्महाराज कृथाः स्म चिन्तां निशामयाऽस्मद्वच आदृतात्मा ॥ यद्ध्यायतो दैवहतं नु कर्तुं मनोतिरुष्टं विशते तमोऽन्धम् ॥ ३४ ॥ क्रतुर्विरमतामेष देवेषु दुरवग्रहः ॥ धर्मव्यतिकरो यत्र पाखण्डैरिन्द्रनिर्मितैः ॥३५॥

कहा, तुम तौ मोक्ष धर्मवेत्ता हो ॥ ३२ ॥ अपने अर्थ इंद्रके लिये क्रोध करवेको योग्य नहीं हो दोनोंको मंगल होय तुम दोनो महायशस्वी ईश्वरके विग्रह हो ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! या यज्ञमें विघ्नकी चिंता मत करो हमारो वचन आदरसें सुनो जिस कार्यको दैव बिगाडना चाहताहै उसका मनमें ध्यान करताहै उस पुरुषका मन रोषसे अंधा होकर मोहमें पड़ताहै शांतिको प्राप्त नहीं होता ॥ ३४ ॥ या यज्ञको बस करो देवनमें याको दुराग्रह होय है इसमे इंद्रके रचे पाखंडसें धर्मका नाश होताहै ॥ ३५ ॥

॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां चतुर्थस्कंधः समाप्तः ॥

इदं पुस्तकं श्रीकृष्णदासात्मजेन गंगाविष्णुना कल्याणनगर्यां
स्वकीये " लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " यन्त्रालयेऽङ्कितम् । १८१७ तमे
शकाब्दे तथा १९५२ तमे वैक्रमाब्दे आषाढकृष्णैकादश्याम्

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

'लक्ष्मीवेंकटेश्वर' छापाखाना,

कल्याण--मुंबई.

॥इति भाषाटीकायुते श्रीमद्भागवते चतुर्थस्कन्धः समाप्तः॥

स्क-६

॥ अथ भाषाटीकायुतश्रीमद्भागवते षष्ठस्कन्धप्रारम्भः ॥

यह ग्रन्थ सन् १८६७ के ऐक्ट २५ के अनुसार रजिष्टरी करके सब हक्क यन्त्राधिकारीने अपने स्वाधीन रक्खा है.

2

S

षष्ठस्कंधः

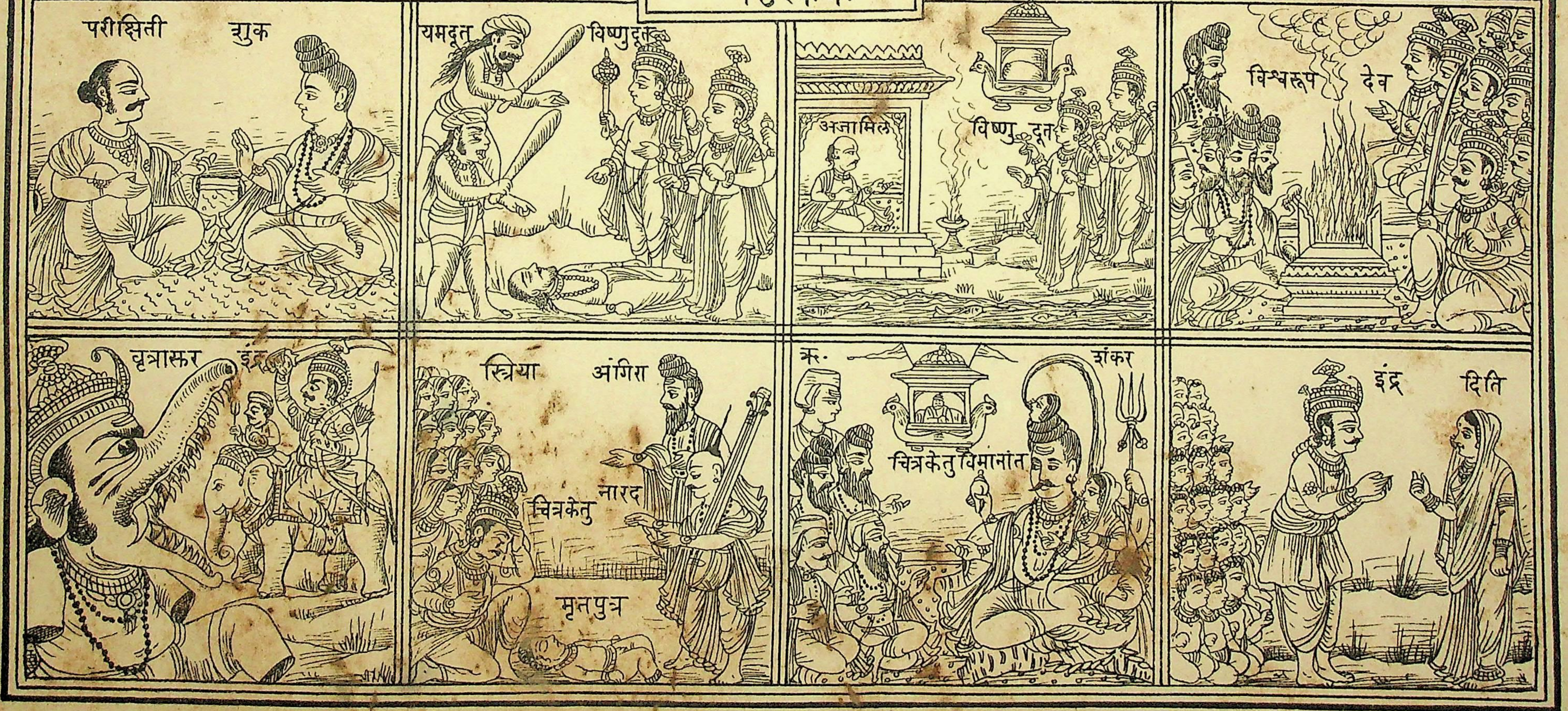
परीक्षिती
शुक
यमदूत
विष्णुदूत
अजामिल
विष्णु दूत
विश्वरूप
देव
वृत्रासुर
इंद्र
स्त्रिया
अंगिरा
चित्रकेतु
नारद
मृतपुत्र
ऋ·
शंकर
चित्रकेतु विमानांत
इंद्र
दिति

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ षष्ठस्कंधस्य पदार्थमुक्तावली टीका लिख्यते ॥ पुण्यरूप वनमैं श्रीलक्ष्मी नृसिंहजीको नामरूप सिंह विराजें है, जिनके नाम उच्चारणसे महापापरूप हाथी भागजाय हैं ॥ या षष्ठस्कंधकी उन्नीस अध्याय हैं ॥ यामैं पोषण लक्षण वर्णन है ॥ और सब मर्यादा उल्लंघन करवेवारे भक्तकी यामैं रक्षा है ॥ मनुष्योंमें महापापी अजामेलकी कथा है ॥ पुत्रके स्नेहके संकेतसें भगवानको नाम लीनो यासे उद्धार भयो, तहां या स्कंधमें तीन अध्यायमें अजामेलकी कथा है ॥ छे अध्यायमे विश्वरूपकी कथा है ॥ आठ अध्यायमैं वृत्रासुरकी कथा है ॥ दो अध्यायमें मरुतोंकी कथा है॥ महानरकोंके भयानक दुःख देख नरक दूर होयवेका सुगम और सबके करवे योग्य उपाय राजाने पूछो है ॥ नरकभयसे डरे भये राजाके नेत्र देख शुकाचार्य अजामेल उपाख्यानके मिसकर नाममाहात्म्य वर्णन करते भये ॥ श्रीराजा परीक्षित पूछे हैं कि पहिले आपने यथावत् निवृत्तिमार्ग कहा

श्रीगणेशाय नमः॥राजोवाच॥ निवृत्तिमार्गः कथित आदौ भगवता यथा॥क्रमयोगोपलब्धेन ब्रह्मणा यदसंसृतिः॥१॥ प्रवृत्तिलक्षणश्चैव त्रैगुण्यविषयो मुने ॥ योसावलीनप्रकृतेर्गुणसर्गः पुनःपुनः ॥ २ ॥ अधर्मलक्षणा नाना नरकाश्चानुवर्णिताः॥मन्वन्तरश्च व्याख्यात आद्यः स्वायंभुवो यतः॥३॥ प्रियव्रतोत्तानपदोर्वंशस्तच्चरितानि च ॥ द्वीपवर्षसमुद्राद्रीन्नद्युद्यानवनस्पतीन् ॥ ४ ॥ धरामण्डलसंस्थानं भागलक्षणमानतः॥ ज्योतिषां विवराणां च यथेदमसृजद्विभुः ॥५॥

जिसके क्रमसै अर्चिरादि लोककी प्राप्ति होकर फिर उस्सै ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है और उसीसै ब्रह्माजीके संग मुक्ति हो जाती है ॥ १ ॥ हे मुने ! प्रवृत्तिमार्ग तीन गुणके सुखको दायक है, जामें प्रकृति लीन नहीं होती और वारंवार देहके निमित्त भोगकी प्राप्ति होती है सो ये गुणनको सर्ग तृतीयमें वारंवार कह्यो ॥ २ ॥ अधर्म करवेके लक्षणसे नानाप्रकारके नरक होयहैं ये वर्णन करो और मन्वंतरका चरित्र वर्णन किया जिसमें स्वायंभू मनु प्रथम हुए ॥ ३ ॥ प्रियव्रत उत्तानपादको वंश, उनके चरित्र, द्वीप, खंड, समुद्र, पर्वत आदि नदी बाग वनस्पतिकी स्थिति आपने कही ॥ ४ ॥ धरामंडलकी स्थिति भाग लक्षण प्रमाण, ज्योतिषको चक्र, भूमीके विवर, जैसै परमेश्वरने रचे हैं सो आपने कहेहैं ॥ ५ ॥

दोहा–व्रजवासिनको प्राण धन माथे मुकुट विशाल । रतनकी माला हिये हिये बसहु नंदलाल ॥ १ ॥ अर्थ धर्म और काम सुख मुक्तिहु चाहत नाहिं। यह मूरति मनमोहिनी नित्त बसे हियमांहि ॥ २ ॥

हे महाभाग ! अब ये जीव जैसें नरककी नानाप्रकारकी उग्र यातनाको नहीं प्राप्त होय सो आप मोसे कहिवेकूं योग्य हो ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि मनुष्य मन वाणी शरीर करकै करेभये पापका मनु आदिको कह्यो भयो प्रायश्चित नहीं करैं है, तो ये निश्चय है कि वो मनुष्य मरकै नरककूं प्राप्त होय है, जिन नरकनमें महा तीक्ष्ण पीडा है, सो हमने आपसे कही है ॥ ७ ॥ तातै विपत्ति जबतक न आवे मृत्यु न होय तबतक सावधान मन करकै शीघ्र पापनको प्रायश्चित करवेमें यत्न करै छोटे मोटे पापको दोष देख वाके अनुसार प्रायश्चित्त करै, जैसै रोगोंकी चिकित्सा जाननेवारो वैद्यराज जैसो रोग होय है तैसी औषधी देवै है, तैसै जैसो पाप करै तैसो प्रायश्चित्त करै ॥ ८ ॥ राजा परीक्षित बोले कि पाप करनेसै

अधुनेह महाभाग यथैव नरकान्नरः ॥ नानोग्रयातनान्नेयात्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ न चेदिहैवापचितिं हतांऽहसः कृतस्य कुर्यान्मनउक्तिपाणिभिः ॥ ध्रुवं स वै प्रेत्य नरकानुपैति ये कीर्तिता मे भवतास्तिग्मयातनाः ॥ ७ ॥ तस्मात्पुरैवाश्विह पापनिष्कृतौ यतेत मृत्योरविपद्यतात्मना ॥ दोषस्य दृष्ट्वा गुरुलाघवं यथा भिषक् चिकित्सेत रुजां निदानवित् ॥८॥ राजोवाच ॥ दृष्टश्रुताभ्यां यत्पापं जानन्नप्यात्मनोऽहितम् ॥ करोति भूयो विवशः प्रायश्चित्तमथो कथम् ॥९॥ क्वचिन्निवर्तते भद्रात्क्वचिच्चरति तत्पुनः ॥ प्रायश्चित्तमतोऽपार्थं मन्ये कुञ्जरशौचवत् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कर्मणा कर्मनिर्हारो न ह्यात्यन्तिक इष्यते ॥ अविद्वदधिकारित्वात्प्रायश्चित्तं विमर्शनम् ॥ ११ ॥

राजा दंड देता है यह देखा है पाप करनेवाले नरकमें जाते हैं यह शास्त्रोंसै सुना है इस्सै जाना जाता है कि पाप अवश्यही अनिष्टकारी है फिर क्यौं जानबूझ कर प्रायश्चित्त करने उपरान्त पुरुष विवश होकर पाप करते हैं तौ द्वादश वर्षके व्रत कैसे प्रायश्चित्त मानै जाय, कारण कि इनसै समूल दोष निवृत्त नहीं होता ॥ ९ ॥ कभी प्रायश्चित्त कर अभद्रसे निवृत्त होय है, कभी फेर वाको करै है, फिर प्रायश्चित्तसे तो कुछ जैसे हाथीकों महावतने न्हवायो वह फेर सूंडसे धूर ऊपर डारलै याते प्रायश्चित्त व्यर्थ हैं यह मैं जान्ताहूं ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि कर्मसें कर्मकों नास होनो ये बात कुछ अत्यंत नहीं हैं क्योंकि अधिकारी विद्वान नहीं हैं, यातें प्रायश्चित्त करवेको विचार नहीं है ॥ ११ ॥

हे राजन्! पथ्य अन्न खायवेवारेकों व्याधियें नहीं हैं, सदा नियम करनेहारौंकौं धीरे २ क्षेमकी प्राप्ति हो जाती है ॥ १२ ॥ तपसा " मनसश्चेंद्रियाणां च ऐकाग्र्यं परमं तपः" अष्टांगयोगमें ये कहाहै " स्मरणं कीर्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम् ॥ संकल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिर्वृत्तिरेव च ॥ एतन्मैथुनमष्टांगं प्रवदंति मनीषिणः ॥ विपरीतं ब्रह्मचर्यमेतदेवाष्टलक्षणमिति ॥" शम दम दान अहिंसा त्याग सत्य शौच यम नियम ॥१३॥ इन सबसे देह वाणी बुद्धिसें करें पापको धर्मज्ञ धीर पुरुष श्रद्धापूर्वक महापापकोभी नाश करै हैं, जैसे तनकसी आंच बांसोंके समूहोंको नाशकर देती है ॥ १४॥ कोई वासुदेवमें परायण जन केवल भक्तिसें सब पाप शांत करै हैं, जैसे सूर्य कुहराकें अंधकारको दूर करै है ॥१५॥ हे राजन्! पापकारी तप आदि करवेसै तैसो

नाऽश्नतः पथ्यमेवान्नं व्याधयोऽभिभवन्ति हि ॥ एवं नियमकृद्राजञ्छनैः क्षेमाय कल्पते ॥ १२ ॥ तपसा ब्रह्मचर्येण शमेन च दमेन च॥त्यागेन सत्यशौचाभ्यां यमेन नियमेन च॥१३॥देहवाग्बुद्धिजं धीरा धर्मज्ञाः श्रद्धयान्विताः ॥ क्षिपन्त्यघं महदपि वेणुगुल्ममिवानलः॥१४॥ केचित्केवलया भक्त्या वासुदेवपरायणाः॥अघं धुन्वन्ति कात्स्न्र्येन नीहारमिव भास्करः ॥ १५ ॥ न तथा ह्यघवान्राजन्पूयेत तपआदिभिः ॥ यथा कृष्णार्पितप्राणस्तत्पूरुषनिषेवया ॥१६॥ सध्रीचीनो ह्ययं लोके पन्थाः क्षेमोऽकुतोभयः ॥ सुशीलाः साधवो यत्र नारायणपरायणाः ॥ १७ ॥ प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम् ॥ न निःपुनन्ति राजेन्द्र सुराकुम्भमिवापगाः ॥१८॥ सकृन्मनः कृष्णपदारविन्दयोर्निवेशितं तद्गुणरागि यैरिह ॥ न ते यमं पाशभृतश्च तद्भटान्स्वप्नेऽपि पश्यन्ति हि चीर्णनिष्कृताः ॥ १९ ॥

नहीं पवित्र होय है, जैसो श्रीकृष्णसे मन लगायवेसे, और उनके भक्तनकी सेवासें पवित्र होय है ॥ १६ ॥ यह भक्तिमार्ग ज्ञानमार्गसेभी अधिक श्रेष्ठ है यह भक्तिमार्गही परम उत्तम है परम कल्याणदायक है इस मार्गमें विघ्नादि नहीं होते सुशील दयालु निष्काम और नारायण परायण साधु इस मार्गमें नित्य वर्तमान हैं ॥ १७ ॥ हे राजन्! जो श्रीमन्नारायणसें विमुख हैं उनकों कोई प्रायश्चित्त पवित्र न करसकै है जैसे मदिराके घटको कोई नदी पवित्र नहीं करसकै है ॥ १८ ॥ या संसारमें श्रीभगवतके गुणानुरागकरकै एकवारभी श्रीकृष्णके चरणकमलमें जिन्होंने मन लगायो है वे यमराजाकूं और यमराजाके दूतनको जो हाथमें फांसो लिये रहतेहैं स्वप्नमेंभी नहीं देखै हैं, वे सब पापके प्रायश्चित्त कर चुकै हैं ॥ १९॥

इस विषयमें एक पुरातन इतिहास तुमसे कहिते हैं श्रीविष्णुके पार्षदनको और यमके दूतनको संवाद है सो मोसें तुम सुनो ॥ २०॥ कान्यकुब्ज देशमें एक ब्राह्मण दासीपति सब आचार नष्टकर, दासीके संगसे महादूषित अजामिल नामक भयो (अजायांमायायां मेलनं यस्य अजामेलः) ॥२१॥ यह ब्राह्मण बंधुओंको पकडै जूआ खेलै, ठगाई चोरी करै, निंदित वृत्तियें करकै जीवे, अपवित्र रहै कुटुंब पोषै सब जीवमात्रकों पीडा देतो भयो सदा दासीमें आसक्त रहै ॥ २२ ॥ एकदिन अजामेल तो वनको जीव मारनेकों गयो पाछै वैष्णव आए शहरमें पूछने लगे यहां कोई सदावर्त है ? कोई हंसीसे बोलै अजामेलके यहां जाओ, वे वैष्णव आये, स्त्रीसें पूछी सदावर्त दै, उस स्त्रीनै उनका बडा स्वागत किया और चलते समय उन महात्माओंसे बोली कि हम पापियोंके उद्धारकीभी कुछ विधि है जो होय सो कृपाकर कहो साधु उसै गर्भवती देख बोले अब जो तेरे पुत्र होगा तू उसका

अत्र चोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ दूतानां विष्णुयमयोः संवादस्तं निबोध मे ॥ २० ॥ कान्यकुब्जे द्विजः कश्चिद्दासीपतिरजामिलः॥ नाम्ना नष्टसदाचारो दास्याः संसर्गदूषितः॥ २१ ॥ बन्द्यक्षकैतवैश्चौर्यैर्गर्हितां वृत्तिमास्थितः॥ बिभ्रत्कुटुम्बमशुचिर्यातयामास देहिनः ॥ २२ ॥ एवं निवसतस्तस्य लालयानस्य तत्सुतान् ॥ कालोऽत्यगान्महान्राजन्नष्टाशीत्यायुषः समाः ॥ २३ ॥ तस्य प्रवयसः पुत्रा दश तेषां तु योऽवमः ॥ बालो नारायणो नाम्ना पित्रोश्च दयितो भृशम् ॥२४॥ स बद्धहृदयस्तस्मिन्नर्भके कलभाषिणि ॥ निरीक्षमाणस्तल्लीलां मुमुदे जरठो भृशम् ॥२५॥ भुञ्जानः प्रपिबन्खादन्बालकस्नेहयन्त्रितः॥ भोजयन्पाययन्मूढो न वेदागतमन्तकम् ॥ २६ ॥

नाम नारायण रखना याहीसे तुम दोनों तरोगै यह कह साधु चले गये काल पायके वाके सुत भयो नारायण नाम धऱ्यो, दिनरात नारायण नारायण चलते फिरते बैठते खाते पीते स्नेहसे पुकारै याहीसे भगवान् प्रसन्न भए, ये कथा और ठौर लिखी है ॥" हे राजन्! ऐसे निवास करते भए पुत्रोंकी लालना करते, बहुत काल व्यतीत भयो, अस्सीवर्ष व्यतीत होगए ॥ २३ ॥ ताके वृद्धावस्थातक दश पुत्र भए, तिनमें जो छोटो बालक हो सो पिताको बहुतही प्यारो हो वाको नारायण नाम हो ॥ २४ ॥ मधुर बोलवेवारे तिस बालकमें मन लगाये स्नेहसे वाकी लीलाको देख आनन्दित होतो भयो ॥ २५ ॥ भोजन करते, जल पीतीवखत, फलादि खाते समय बालकके स्नेहसे वशीभूत भोजन करते प्यावते लाड लडाते

वह मूढ कालको पास आयो न जानतो भयो ॥ २६ ॥ ऐसै वो अज्ञानी रहितो हो सो मृत्युको समय आय कर प्राप्तभयो, तब नारायण नामक बालक पुत्रमें बुद्धि करतोभयो ॥२७॥ फासी हाथमें लिये महाभयानक टेढे मुखवारे ऊपरकों वार खडे अपनेको लेवेकों आए तीन जमके दूत भूतसे देख बोलो ॥ २८ ॥ दूर खेलमें लगोभयो नारायण नामक पुत्रको महा ऊंचे स्वरसे व्याकुल इंद्रिय हो पुकारतो भयो हे पुत्र नारायण ! जल्दी आओ मेरी रक्षा करो ॥ २९ ॥ मरती समय श्रीमन्नारायण हरिको कीर्तन करवेको नाम सुनके भगवतपार्षदोंने जानी कि हमारे श्रीमन्नारायणको पुकारै है

स एवं वर्तमानोऽज्ञो मृत्युकाल उपस्थिते ॥ मतिं चकार तनये बाले नारायणाह्वये ॥२७॥ स पाशहस्तांस्त्रीन्दृष्ट्वा पुरुषान्भृशदारुणान् ॥ वक्रतुण्डानूर्ध्वरोम्ण आत्मानं नेतुमागतान् ॥ २८ ॥ दूरे क्रीडनकासक्तं पुत्रं नारायणाह्वयम् ॥ प्लावितेन स्वरेणोच्चैराजुहावाकुलेन्द्रियः ॥ २९ ॥ निशम्य म्रियमाणस्य ब्रुवतो हरिकीर्तनम् ॥ भर्तुर्नाम महाराज पार्षदाः सहसाऽपतन् ॥ ३० ॥ विकर्षतोऽन्तर्हृदयाद्दासीपतिमजामिलम् ॥ यमप्रेष्यान्विष्णुदूता वारयामासुरोजसा ॥ ३१ ॥ ऊचुर्निषेधितास्तांस्ते वैवस्वतपुरःसराः ॥ के यूयं प्रतिषेद्धारो धर्मराजस्य शासनम् ॥ ३२ ॥ कस्य वा कुत आयाताः कस्मादस्य निषेधथ ॥ किं देवा उपदेवा वा यूयं किं सिद्धसत्तमाः ॥ ३३ ॥ सर्वे पद्मपलाशाक्षा पीतकौशेयवाससः ॥ किरीटिनः कुण्डलिनो लसत्पुष्करमालिनः ॥ ३४ ॥ सर्वे च नूतनवयसः सर्वे चारुचतुर्भुजाः ॥ धनुर्निषङ्गासिगदाशङ्खचक्राम्बुजश्रियः ॥ ३५ ॥

तब पार्षद शीघ्र आए ॥ ३० ॥ अजामेलकी आत्माको भीतर हृदयसै खैंचते हुए यमदूतोंको भगवत्पार्षद बलसै रोकते हुए ॥ ३१ ॥ तब वे यमके दूत पार्षदनसें बोले कि धर्मराजकी आज्ञाको मने करवेवारे आप कौन हैं ॥ ३२ ॥ तुम कौनके हो कहासें आए हो, याके ले जानेसे क्यों निषेध करोहो, कि देव हो कि उपदेव हो अथवा आप सिद्धोंमेंसे कोई अतिश्रेष्ठ हो॥३३॥सब कमलनेत्र हो पीतांबर धारेहो किरीटी कुंडल धारे कमलंमाला पहिरेहो ॥३४॥ सब नवीन अवस्थावारे, सब चार भुजावारे, धनुष्य तर्कस तरवार गदा शंख चक्र कमलकी शोभासे शोभित हो ॥ ३५ ॥

अपनी कांति करकै सब लोकको दिशाको अंधकार दूर करते धर्मराजके चाकरनकों क्यों निषेध करोहों ॥ ३६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि यमदूतोंने पार्षदोंसे जब ऐसै कहीं तब ये सुन मेघवत गंभीरवाणीसें भगवत्पार्षद यमके दूतनसे बोले ॥ ३७ ॥ श्रीविष्णुके पार्षद बोले कि जो तुम धर्मराजकी आज्ञाके करवेवारे हो तो धर्मको तत्व और अधर्मको लक्षण कहो ॥३८॥ दंड प्राणियोंको किस प्रकार दिया जाताहै दंडका वांछित विषय क्या है दंडनीयलोगोंके क्या कर्म हैं कारण कि मनुष्यही कर्म करताहै पशु आदि नहीं करते फिर कर्म करनेवालोंमें किस किसको दंड मिलताहै ॥ ३९ ॥ यम-

दिशो वितिमिरा लोकाः कुर्वन्तः स्वेन रोचिषा ॥ किमर्थं धर्मराजस्य किंकरान्नो निषेधथ ॥ ३६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ते यमदूतैस्तैर्वासुदेवोक्तकारिणः ॥ तान्प्रत्यूचुः प्रहस्येदं मेघनिर्ह्रादया गिरा ॥ ३७ ॥ विष्णुदूता ऊचुः ॥ यूयं वै धर्मराजस्य यदि निर्देशकारिणः ॥ ब्रूत धर्मस्य नस्तत्त्वं यच्च धर्मस्य लक्षणम् ॥ ३८ ॥ कथं स्विद् ध्रियते दण्डः किं वाऽस्य स्थानमीप्सितम् ॥ दण्ड्याः किंकारिणः सर्वे आहोस्वित्कतिचिन्नृणाम् ॥ ३९ ॥ यमदूता ऊचुः ॥ वेदप्रणिहितो धर्मो ह्यधर्मस्तद्विपर्ययः ॥ वेदो नारायणः साक्षात्स्वयंभूरिति शुश्रुम ॥ ४० ॥ येन स्वधाम्न्यमी भावा रजःसत्त्वतमोमयाः ॥ गुणनामक्रियारूपैर्विभाव्यन्ते यथातथम् ॥ ४१ ॥ सूर्योऽग्निः खं मरुद्गावः सोमः संध्याहनी दिशः ॥ कं कुः कालो धर्म इति ह्येते दैह्यस्य साक्षिणः ॥ ४२ ॥ एतैरधर्मो विज्ञातः स्थानं दण्डस्य युज्यते ॥ सर्वे कर्मानुरोधेन दण्डमर्हन्ति कारिणः ॥ ४३ ॥

दूत बोले कि वेदमें जो कह्यो है वो तो धर्म है, और वेदविरुद्ध है वो अधर्म है वेद साक्षान्नारायणस्वरूप है आप भयो है याते स्वयंभू है ॥ ४० ॥ जिन ईश्वरकरकै अपने धाममें राजस तामस सात्त्विक भाव गुण नाम क्रियारूपसै जैसेके तैसे प्रकाश करतेहैं ॥ ४१ ॥ सूर्य अग्नि आकाश पवन देवता चंद्रमा संध्या दिनरात दिशा उदक पृथ्वी काल धर्म ये सब कुछ ये जीव करै है वाके साक्षी हैं ॥ ४२॥ इन सबोंसै जो कोई धर्म करता है वो जाना जाय है स्थानभी दंडको मालूम पडजायहै, पाप पुण्यके करवेवारे जीव स्वकर्मके अनुसार दंडके योग्य होयहैं ॥ ४३ ॥

हे पुण्यरूप ! पाप पुण्य सर्वदा होता रहताहै कभी विपरीतभी होजाय है पुण्यपापके करवेवारेनको गुणोंको संग है, जो देहधारी हैं वो सदा कर्म करतेहै कर्म करेविना तो शरीर नहीं बनता है ॥ ४४ ॥ जा करके जितनो जैसो अधर्म धर्म वेदमें कह्यो है तितनोही या लोकमैं तैसो वाके फलकू भोगैगो ॥ ४५ ॥ जैसे यहां देवतानमें श्रेष्ठ जैसै तीन प्रकारकै मालूम पडै है, तैसेई सब जीवमात्रमें गुणोंकी विचित्रता होय वैसै और जन्म जन्मान्तरमेंभी अनुमान करोजाय हैं ॥ ४६ ॥ जैसे वर्तमान वसन्तादि काल जैसे अतीत अनागत वसन्तादि कालके सम्पूर्ण गुणौंके जतानैवाले हैं वैसेही विद्यमान जन्मभी भूत भविष्य जन्मके धर्माधर्मका बतलानेवाला होता है ॥ ४७ ॥ श्रीयमधर्मराज रूपधारी श्रीमन्नारायण देव यमपुरीमें

संभवन्ति हि भद्राणि विपरीतानि चानघाः ॥ कारिणां गुणसङ्गोऽस्ति देहवान्न ह्यकर्मकृत् ॥ ४४ ॥ येन यावान्यथा धर्मोऽधर्मो वेह समीहितः ॥ स एव तत्फलं भुङ्क्ते तथा तावदमुत्र वै ॥ ४५ ॥ यथेह देवप्रवरास्त्रैविध्यमुपलभ्यते ॥ भूतेषु गुणवैचित्र्यात्तथाऽन्यत्रानुमीयते ॥ ४६ ॥ वर्तमानोऽन्ययोः कालो गुणाभिज्ञापको यथा ॥ एवं जन्मान्ययोरेतद्धर्माधर्मनिदर्शनम् ॥ ४७ ॥ मनसैव पुरे देवः पूर्वरूपं विपश्यति ॥ अनुमीमांसतेऽपूर्वं मनसा भगवानजः ॥ ४८ ॥ यथाऽज्ञस्तमसा युक्त उपास्ते व्यक्तमेव हि ॥ न वेद पूर्वमपरं नष्टजन्मस्मृतिस्तथा ॥ ४९॥ पञ्चभिः कुरुते स्वार्थान्पञ्च वेदाथ पञ्चभिः ॥ एकस्तु षोडशेन त्रीन्स्वयं सप्तदशोऽश्नुते ॥ ५० ॥ तदेतत्षोडशकलं लिङ्गं शक्तित्रयं महत् ॥ धत्तेऽनु संसृतिं पुंसो हर्षशोकभयार्तिदाम् ॥ ५१ ॥

बैठे भए मन करकै इन जीवमात्रके धर्म अधर्मको पूर्वरूप देखते हैं मनसे अजन्मा भगवान सब अपूर्व बात या जीवकी अनुमानसे जानैहै ॥ ४८ ॥ ये जीव अधम करनेसे विवश हो सब जन्मकी स्मृति भूलनेसै पूर्वपरजन्म न जानै हैं, जैसै अज्ञानी तामसगुणमें आयकर मायाकी उपासना करे है ॥ ४९ ॥ पंच ज्ञानेंद्री पंचकर्मेंद्री पंचतन्मात्रा सोलहवा मन सत्रवों जीव तीन शक्तिमें युक्त होकर ज्ञान कर्म इंद्रियको प्राप्त होयहै कर्मेन्द्रियोंसै कर्म करता और ज्ञानेन्द्रियौंसै विषयौंको जान्ताहै ॥ ५० ॥ सो ये सोलै कलाको जीव तीन शक्तिसै युक्त हो हर्ष शोक भय पीडाके देवेवारी संसृतिको पुरुषमें धारे है ॥ ५१ ॥

देही अज्ञानी है, काम क्रोध लोभ मोह मद ईर्षा ये छै वर्ग नही जीतेहै अपनी विना इच्छा कर्म करैहै, जैसे रेशमको कीडा आप रेशमकी कुप्पी लपेटलपेट निकसवेकी उपाय न राख मरै है तैसे ये जीव कर्म करते २ मरता है (१) ईश्वरके आराधन रूप समझ धर्म करेसें मोक्ष है, अपने सुखके अर्थ करेसै जन्मै मरे हैं ॥ ५२ ॥ कभीभी कोई जीव क्षण मात्र विना कुछ कर्म करै नही रहता है, वेवश होयकर स्वाभाविक गुणोंकरकै बलसें कर्म करनाही पडता है ॥ ५३ ॥ भाग्यका निमित्त मान कर वाके अनुसार सूक्ष्म अथवा स्थूल देह प्राप्त होयकर जैसी माकी योनी होय जैसा पिताका वीर्य होय तैसा देह या बलवान स्वभावसे याको प्राप्त होवै है ॥ ५४ ॥ ये प्रकृतिके संगसे पुरुषका उलटा पलटा भाव होता है, वोही भाव ईश्वरमें याको होय तौ माया विलाय जाय है ॥ ५५ ॥ ये अजामेल सब सुनवेमें संपन्न है, शील वृत्तांत सब गुणका घर व्रतधारी कोमल जितेंद्री सत्यवादी मंत्रवेत्ता पवित्र है ॥ ५६ ॥ गुरु अग्नि वृद्धका सेवक, अहंकारहीन सब जीवमात्रका सुहृद साधु, थोडा बोलनेवाला, काऊकी निंदा न करै, ऐसो ये पहिले होतो भयो ॥ ५७ ॥ एकसमय पिताकी आज्ञासे ये ब्राह्मण वनकूं गयो, वहांसे फल पुष्प समिधा कुश लेकै आवतोथो ॥ ५८ ॥ किसी कामी शूद्रको मीठी मदिरा पिये मदसे घूर्णित नेत्र किये दासीके संगमें रमण करते देखतो भयो ॥ ५९ ॥

देह्यज्ञोऽजितषड्वर्गो नेच्छन्कर्माणि कार्यते ॥ कोशकार इवात्मानं कर्मणाऽऽच्छाद्य मुह्यति ॥ ५२ ॥ न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ॥ कार्यते ह्यवशः कर्म गुणैः स्वाभाविकैर्बलात् ॥ ५३ ॥ लब्ध्वा निमित्तमव्यक्तं व्यक्ताव्यक्तं भवत्युत ॥ यथायोनि यथाबीजं स्वभावेन बलीयसा ॥ ५४ ॥ एष प्रकृतिसङ्गेन पुरुषस्य विपर्ययः ॥ आसीत्स एव न चिरादीशसङ्गाद्विलीयते ॥ ५५ ॥ अयं हि श्रुतसंपन्नः शीलवृत्तगुणालयः ॥ धृतव्रतो मृदुर्दान्तः सत्यवान्मन्त्रविच्छुचिः ॥ ५६ ॥ गुर्वग्न्यतिथिवृद्धानां शुश्रूषुर्निरहंकृतः ॥ सर्वभूतसुहृत्साधुर्मितवागनसूयकः ॥ ५७ ॥ एकदाऽसौ वनं यातः पितृसंदेशकृद्द्विजः ॥ आदाय तत आवृत्तः फलपुष्पसमित्कुशान् ॥ ५८ ॥ ददर्श कामिनं कंचिच्छूद्रं सह भुजिष्यया ॥ पीत्वा च मधु मैरेयं मदाघूर्णितनेत्रया ॥ ५९ ॥

---

(१) ॥ दोहा ॥ " को सुखको दुख देत है देत कर्म झकझोर ॥ उरझत सुरझत आपही ध्वजा पवनके जोर ॥ "

उसके लहंगे नीवी खसी जातीथी मतवारी हो वाके संग लाज त्याग क्रीडा करै ही वह शूद्रभी इस ब्राह्मणके सन्मुखही दासीके संग हास्य और गान करनै लगा ॥ ६० ॥ कामासक्त कामीकी भुजासे चिपटी भई विस शूद्रीकूं देख यहभी कामके वस हो एक संग मोहित होगयो ॥ ६१ ॥ मन बुद्धिसैं धैर्य धारण कर शास्त्र अनुसार मनको रोको तौभी कामसे पीडित मनको जीतवेको समर्थ नही होतोभयो ॥ ६२ ॥ वा शूद्रीके निमित्तसे कामरूप महाग्रहके वहानेसे ग्रसो भयो चंचल चित्त हो वा शूद्रीको मनसे ध्यान करतो अपने धर्मको त्याग करतो भयो॥६३॥जितनो पिताको धन हो तासे वाकूं

मत्तया विश्लथन्नीव्या व्यपेतं निरपत्रपम् ॥ क्रीडन्तमनुगायन्तं हसन्तमनयाऽन्तिके ॥६० ॥ दृष्ट्वा तां कामलिप्तेन बाहुना परिरम्भिताम् ॥ जगाम हृच्छयवशं सहसैव विमोहितः ॥ ६१ ॥ स्तम्भयन्नात्मनात्मानं यावत्सत्त्वं यथाश्रुतम् ॥ न शशाक समाधातुं मनो मदनवेपितम् ॥ ६२ ॥ तन्निमित्तस्मरव्याजग्रहग्रस्तो विचेतनः ॥ तामेव मनसा ध्यायन्स्वधर्माद्विरराम ह ॥ ६३ ॥ तामेव तोषयामास पित्र्येणार्थेन यावता ॥ ग्राम्यैर्मनोरमैः कामैः प्रसीदेत यथा तथा ॥ ६४ ॥ विप्रां स्वभार्यामप्रौढां कुले महति लम्भिताम् ॥ विससर्जाचिरात्पापः स्वैरिण्याऽपाङ्गविद्धधीः ॥ ६५ ॥ यतस्ततश्चोपनिन्ये न्यायतोऽन्यायतो धनम् ॥ बभारास्याः कुटुम्बिन्याः कुटुम्बं मन्दधीरयम् ॥ ६६ ॥ यदसौ शास्त्रमुल्लङ्घ्य स्वैरचार्यार्यगर्हितः ॥ अवर्तत चिरं कालमघायुरशुचिर्मलात् ॥ ६७ ॥

प्रसन्न करतोभयो, जितने मनके आनंददायक काम है तिनसे जैसे वो प्रसन्न होय सो करै ॥ ६४ ॥ महाकुलकी अपनी ब्राह्मणी तरुण स्त्रीको यह पापी त्यागतो भयो, वा वेश्याके कटाक्षोंसे विधत भयो ॥ ६५ ॥ न्यायसे अन्यायसे जहां तहांसे धन लाय या वैश्या कुटुंबिनीके कुटुंबकू मंदबुद्धिवारो पोषण करतोभयो ॥ ६६ जो ये शास्त्रको उल्लंघन कर अपने मनकी इच्छासे बडोंके धर्मसे निंदित होगयो पापरूप आपुको अपवित्र मलसे काल व्यवीत करतोभयो[1] ॥ ६७ ॥

---

१ शंका–अजामिल बडा पण्डित था और ज्ञानीभी था, गुरुकी महात्माओंकी, अग्निकी सेवा करनेवालाभी था, ऐसा अजामिल शूद्रीके देखतेही क्षण अपने धर्म कर्मसे भ्रष्ट होगया ? यह बडे आश्चर्यकी बात है क्यों कि कोई मूर्खभी भ्रष्ट होता है तोभी एक क्षणमात्रमें नहीं होता यह इतना चतुर होकर एक क्षणमात्रमें भ्रष्ट हुवा ?

16

तातै याको दंडपाणी यमराजके पास लेजांयगे याने बडे पाप करे हैं उनपापोंको प्रायश्चित नही करो अब यह यमराजसै दंड पाकर शुद्ध होगा ॥ ॥ ६८ ॥ इति श्री भा० भा० षष्ठस्कन्धे अजमिलोपाख्यानवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुकाचार्य बोले कि हे राजन् ! ऐसे वे न्यायमार्गमें महाविद्वान भगवत्पार्षद यमदूतनकी वाणी सुनकरके बोले ॥ १ ॥ श्रीविष्णुके पार्षद बोले कि बडे कष्टकी बात है कि धर्म दृष्टिवारेकी सभामें अधर्म स्पर्श होय रह्यो है, क्यौंकि जहां जो पापी दंडके योग्य नहीं वाको वृथा दंड देतेहैं ॥ २ ॥ प्रजाके पिता शिक्षा करवेवारे साधु समान भाववारेनमें जो

अत एनं दण्डपाणेः सकाशं कृतकिल्बिषम् ॥ नेष्यामोऽकृतनिर्वेशं यत्र दण्डेन शुध्यति ॥ ६८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे अजामिलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ते भगवद्दूता यमदूताभिभाषितम् ॥ उपधार्याऽथ तान्राजन्प्रत्याहुर्नयकोविदाः ॥ १ ॥ विष्णुदूता ऊचुः ॥ अहो कष्टं धर्मदृशामधर्मः स्पृशते सभाम् ॥ यत्रादण्ड्येष्वपापेषु दण्डो यैर्ध्रियते वृथा ॥ २ ॥ प्रजानां पितरो ये च शास्तारः साधवः समाः ॥ यदि स्यात्तेषु वैषम्यं कं यान्ति शरणं प्रजाः ॥ ३ ॥ यद्यदाचरति श्रेयानितरस्तत्तदीहते ॥ स यत् प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते ॥ ४ ॥ यस्याङ्के शिर आधाय लोकः स्वपिति निर्वृतः ॥ स्वयं धर्ममधर्मं वा न हि वेद यथा पशुः ॥ ५ ॥ स कथं न्यर्पितात्मानं कृतमैत्रमचेतनम् ॥ विश्रम्भणीयो भूतानां सघृणो द्रोग्धुमर्हति ॥ ६ ॥

विषम भाव होय तो कहो प्रजा कौंनकी शरणजाय ॥३॥ जो बात श्रेष्ठ लोग आचरण करते हैं, वोही बातको और इतर जनभी वैसेंई करें हैं, वे वाको प्रमाण करे है, लोक सब उन्हींके अनुसार वर्तै हैं ॥ ४ ॥ जाके गोदमें शिर धरके लोग निडर होयके सोवै है; आप धर्म अधर्म पशुकी समान नहीं जाहै तौ निश्चय विश्वासघातकताका दोष लगैगा ॥ ५ ॥ जिसने अपना आत्मा विश्वाससैं अर्पण कर दिया है और मित्रता सबसै कर रक्खी है जो

उत्तर-गंगाकी बीच धारोंमें पराशर मुनि कामकी पीड़ासे महा दुःखी होगये, तब भीलकी कन्याके संग रमण किया उन पराशर मुनिको देखकर अजामिल बहुत हँसा अजामिलको हँसता देखकर पराशरजीने शाप दिया कि हे दुष्ट ! हमारी नांई तूभी किसी समय शूद्रीको देखकर कामसे व्याकुल होकर ब्रह्मकर्मसे भ्रष्ट होजायगा हम तो एकवार भ्रष्ट होकर अपने शरीरको शुद्ध कर लेवेंगे, परन्तु तू किसी प्रकारभी ब्राह्मण न रहैगा एक क्षणमात्रमें चाण्डाल होजायगा, इस शापके कारण अजामिल एक क्षणमात्रमें भ्रष्ट होगया ॥

अचेत है उसका जगतके विश्वास योग्य और दयालु पुरुषको क्या द्रोह करना उचित है ॥ ६ ॥ कोटान कोट जन्मके पापको याने प्रायश्चित्त कीनो है, जो विवश होयकर मंगलदायक श्रीहरीको नाम उच्चारण करतो भयो ॥ ७ ॥ इस पापकारीके पापको इतनेहीमें प्रायश्चित्त होय गयो जब नारायण ये चार अक्षर कहे तब सबको प्रायश्चित्त होय गयो ॥ “ हे नारायण आय ॥ हे नारायण ! आओ ऐसे व्याकरणमें व्युत्पत्ति होयहै ॥ ” ॥श्लोक॥ सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयं ॥ बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥१ ॥ यस्य स्मृत्या च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु ॥ न्यूनं संपूर्णतां याति सद्यो वंदे तमच्युतम् ॥२॥ नाम्नोऽस्य यावती शक्तिः पापनिर्हरणाय वै ॥ तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः ॥३॥ ” भगवन्नामसे

अयं हि कृतनिर्वेशो जन्मकोट्यंहसामपि ॥ यद्व्याजहार विवशो नाम स्वस्त्ययनं हरेः ॥७॥ एतेनैव ह्यघोनोऽस्य कृतं स्यादघनिष्कृतम् ॥ यदा नारायणायेति जगाद चतुरक्षरम् ॥८ ॥ स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग् ब्रह्महा गुरुतल्पगः ॥ स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे ॥९॥ सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ॥ नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ॥ १० ॥ न निष्कृतैरुदितैर्ब्रह्मवादिभिस्तथा विशुध्यत्यघवान् व्रतादिभिः ॥ यथा हरेर्नामपदैरुदाहृतैस्तदुत्तमश्लोकगुणोपलम्भकम् ॥ ११ ॥

सब प्रायश्चित्त हो जाय है सबसें बडो होय है, तप यज्ञ सब क्रिया उनके नामसें संपूर्ण होय है ॥ ८ ॥ चोर, मद्य पीवेवारो, मित्रद्रोही, विप्रको मारवेवारो ब्रह्मद्रोही, वेदद्रोही, ईश्वरनिंदक, गुरुकी शय्यापर सोवनेवारो स्त्री राजा पिता गौको मारवेवारो और जितने पातकी हैं ॥ ९ ॥ सब पापनको यही प्रायश्चित्त है कि श्रीविष्णुको नाम उच्चारण करनो, भगवानमें सदा बुद्धि रहै, अथवा भगवद्विषयमें मति होय ॥ १० ॥ ब्रह्मवादियोंनें कहा है कि पापी व्रत आदि प्रायश्चित्त करके तैसो शुद्ध नहीं होयहै जैसो श्रीहरिके नामपद उच्चारणसे शुद्ध होयहै, श्रीउत्तमश्लोकके गुण एक

---

१ नामका प्रताप ऐसा है एक लालाके यहां व्याह भयो, उनकी काहू वेश्यासे प्रीति ही, जब सब बिरादरीको जिमायो तौ एक परोसा वेश्याहूके घर छिपायके लेचले, जब वाके जीनांपे चढे, तौ पैर फिसलो, कहन लागे ‘ अरी ले ’ मुंहसौं निकरी हरी ले, सौ जैसे गिरे कि वोह प्रसाद भगवतने अंगिकार कर्यो, और वे गिरकर मरे तौ वैकुंठमें वा नामके प्रतापसों गये यासे नाम जैसे लियो जाय वैसेही ठीक है ॥ १ ॥

कथन मात्र है उत्तम यशस्वीके यशको जतायवेवारे भगवतको नाम है ॥११॥ प्रायश्चित अत्यंत शोधक नहीं है, क्योंकि प्रायश्चित्त करे पीछे खोटे मार्गमें मन फेर दौडजायहै, पापनको अत्यंत नाशकी इच्छा करवेवारेको श्रीहरिके गुणानुवाद निश्चय करकै जीवमात्रको शुद्धि करवेवारो है, सब कोई नामकी भावना करै है, सबके योग्य है ॥ १२ ॥ याते सब पापको प्रायश्चित्त याने कीनो है, यासे इसको मत लेजाओ, जो ये मरतीविरिया भगवन्नाम लेतो भयो ॥ १३ ॥ पुत्रादि लालनके संकेतसे हांसीमें गीतालाप पूरे करवेके अर्थ वैकुंठभगवानको नाम सब पापको हरवेवारो जान लीनों ॥

नैकान्तिकं तद् हि कृतेऽपि निष्कृतं मनः पुनर्धावति चेदसत्पथे ॥ तत्कर्मनिर्हारमभीप्सतां हरेर्गुणानुवादः खलु
सत्त्वभावनः ॥ १२ ॥ अथैनं मापनयत कृताशेषाघनिष्कृतम् ॥ यदसौ भगवन्नाम म्रियमाणः समग्रहीत् ॥ १३ ॥
सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा ॥ वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः ॥ १४ ॥ पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः ॥ हरिरित्यवशेनाह पुमान् नार्हति यातनाम् ॥ १५ ॥ गुरूणां च लघूनां च गुरूणि च लघूनि च ॥
प्रायश्चित्तानि पापानां ज्ञात्वोक्तानि महर्षिभिः ॥ १६ ॥ तैस्तान्यघानि पूयन्ते तपोदानजपादिभिः ॥ नाधर्मजं तद्धृदयं
तदपीशाङ्घ्रिसेवया ॥१७॥ अज्ञानादथ वा ज्ञानादुत्तमश्लोकनाम यत् ॥ संकीर्तितमघं पुंसो दहेदेधो यथाऽनलः ॥१८॥

॥ १४ ॥ गिरते, पग खसकते, भग्न शरीर, सर्पादि काटेमैं, ज्वरादिसे तप्त, दंडादिसे मारिते समयभी, श्रीहरि ये नाम विवश होयके ले तोभी पुरुष सब पीडासे छुटै है ॥ १५ ॥ बडे वा छोटे पापनके प्रायश्चित्त महर्षियोंने विचारके पापके अनुसार लिखें हैं ॥ १६ ॥ तिन तप दान जप आदि करनेसे वे सब पाप छूटै जाय है, ईश्वरकी सेवा करनेसें अधर्म जो हृदयमें होय तोभी भगवतके नाम लेनेसे शुद्धि होय हैं ॥ १७ ॥ अनजानमें अथवा जानमें जो उत्तमश्लोकको नाम संकीर्तन करै तो जैसै अग्नि ईंधनको जरावै है तैसै पुरुषके सब पापकौ नाम नाश करै है (१)॥१८॥

---

(१) ताको ये कबित्त है कि॥ " नामके प्रताप नंदलाल भए आप प्रभु नामके प्रताप सुत दशरथको कहायो है। नामके प्रताप टेक राखी प्रहलादजूकी नामके प्रताप दौरो द्वारकासे धायो है ॥ नामके प्रताप अजामेलसे उधारे शीघ्र नामके प्रताप सब संत वाहिधायो है। सोई नाम पास अब आय लगो चरणदास सोई नाम चार वेद विमल विमल गायो है ॥ १ ॥

19

जैसै अति पराक्रमवारी औषधीको अपनी इच्छासे खावे वा अन इच्छासे सेवन करै तो रोग नाशै है, तैसैई मंत्रको जानके जपै वा अन जानकै जपै अपनो गुण करैई है तैसो नाम रूप मंत्र है "हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः ॥ अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः"॥१९॥ हे भटो! या धर्ममें जो संदेह होय तो तुम अपने स्वामी यमकूं पूछो, धर्मकी परम छिपी बात भगवान् यम जानैहै ॥ २० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृप! भागवत धर्मको ऐसैं पार्षद निर्णयकर वा विप्रको यमके दूतोंकी फासीसे छुडायकर मृत्युसे बचातेभए ॥ २१ ॥ हे शत्रुनाशक! ऐसै कहे भए यमके दूत यमके पास जांयकर यमराजासें सब वृत्तांत कहिते भए ॥२२॥ वो ब्राह्मण पाशसे छूटो भयो भयरहित हो अपने स्वभावको प्राप्त हो महा आनंदसे शिर झुकाय विष्णुके पार्षदनको वंदना करतो भयो ॥ २३ ॥ हे अनघ! वाको कुछ कहिनो देख भगवत्पार्षद वाके देखते देखते शीघ्र अंतर्धान होय गए ॥ २४ ॥ अजामेल यमदूत भगवत्पार्षदनकौ धर्म भागवत शुद्ध वेदत्रयीप्रतिपाद्य सब गुणाश्रय सुनतो भयो ॥ २५ ॥

यथागदं वीर्यतममुपयुक्तं यदृच्छया ॥ अजानतोऽप्यात्मगुणं कुर्यान्मन्त्रोप्युदाहृतः ॥ १९ ॥ पातिं वः पृच्छत भटा धर्मेऽस्मिन्यदि संशयः ॥ स वेद परमं गुह्यं धर्मस्य भगवान्यमः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ त एवं सुविनिर्णीय धर्मं भागवतं नृप ॥ तं याम्यपाशान्निर्मुच्य विप्रं मृत्योरमूमुचन् ॥२१॥ इति प्रत्युदिता याम्या दूता यात्वा यमान्तिके ॥ यमराज्ञे यथासर्वमाचचक्षुररिंदम ॥२२॥ द्विजः पाशाद्विनिर्मुक्तो गतभीः प्रकृतिं गतः ॥ ववन्दे शिरसा विष्णोः किंकरान्दर्शनोत्सवः ॥ २३ ॥ तं विवक्षुमभिप्रेत्य महापुरुषकिंकराः ॥ सहसा पश्यतस्तस्य तत्रान्तर्दधिरेऽनघ ॥ २४ ॥ अजामिलोप्यथाकर्ण्य दूतानां यमकृष्णयोः ॥ धर्मं भागवतं शुद्धं त्रैविद्यं च गुणाश्रयम् ॥ २५ ॥

---

१ शंका–नारायणका नाम मरते समय अजामिलने लिया तो उसका पातक सब नष्ट होगया, अजामिल शुद्ध होगया तब भगवान्‌के दूतोंसे कुछ बात करनेकी इच्छा अजामिलने की तो दूतोंने विचार किया कि यह हमसे बोलेगा तो हम सबको पाप लगेगा, ऐसा समझकर क्यों चले गये क्यों कि अजामिल तो सब पापसे छूट गयाथा ॥

उत्तर–नारायणके नामको अजामिलने जब लिया तब उसी नामके प्रभावसे यमराजकी त्राससे अजामिल छूटगया, परन्तु सब पापोंसे नहीं छूटा, क्यों कि जो सब पापोंसे छूट गया होता तो भगवान्‌के दूत अजामिलको एक क्षणमात्रमें वैकुण्ठधामको लेजाते, पृथ्वीपर तपस्या करनेका फिर क्या काम था, दूतोंने अपने मनमें विचार किया कि पापीके साथ बात करनेवाले प्राणीको ब्रह्महत्याका पाप लगता है, ऐसा समझकर भगवान्‌के पार्षद अजामिलको छोडकर चले गये, तब अजामिल पापका नाश करनेके लिये तप करनेको गया ॥

श्रीहरिके माहात्म्य श्रवणकरनेसें भगवानमें शीघ्र भक्ति करतो भयो, अपनो पाप याद कर महा पश्चात्ताप करतो भयो ॥२६॥ मैने अपनो मन नहीं जीतो, मोको परम कष्ट प्रात होतोभयो जो मैने वा शूद्रीको संग कर अपनो ब्रह्मतेज नाश कीनो ॥ २७ ॥ सज्जनोंने मोको धिक्कार दीनो, दुष्ट कर्म करो मैं कुलमें कज्जलरूप हूं अपनी सती बालाकों त्याग मदिरापीवेवारी असतीमें गमन करो याते मोंको धिक्कार हैं ॥ २८ ॥ वृद्ध अनाथ तपस्वी और जाको बंधु नहीं ऐसे माता पिताको मुझ कृतघ्नीनै नीचकी नांई त्यागै ॥ २९ ॥ सो मैं निश्चय महा दारुण नरकमें पडूंगो जहां धर्मके नाशक

भक्तिमान् भगवत्याशु माहात्म्यश्रवणाद्धरेः ॥ अनुतापो महानासीत् स्मरतोऽशुभमात्मनः ॥ २६ ॥ अहो मे परमं कष्टमभूदविजितात्मनः ॥ येन विप्लावितं ब्रह्म वृषल्यां जायतात्मना ॥ २७ ॥ धिङ् मां विगर्हितं सद्भिर्दुष्कृतं कुलकज्जलम् ॥ हित्वा बालां सतीं योऽहं सुरापामसतीमगाम् ॥ २८ ॥ वृद्धावनाथौ पितरौ नान्यबन्धू तपस्विनौ ॥ अहो मयाऽधुना त्यक्तावकृतज्ञेन नीचवत् ॥ २९ ॥ सोऽहं व्यक्तं पतिष्यामि नरके भृशदारुणे ॥ धर्मघ्नाः कामिनो यत्र विन्दन्ति यमयातनाः ॥ ३० ॥ किमिदं स्वप्न आहोस्वित् साक्षाद्दृष्टमिहाद्भुतम् ॥ क्व याता अद्य ते ये मां व्यकर्षन् पाशपाणयः ॥ ३१ ॥ अथ ते क्व गताः सिद्धाश्चत्वारश्चारुदर्शनाः ॥ व्यमोचयन् नीयमानं बद्ध्वा पाशैरधो भुवः ॥ ३२ ॥ अथापि मे दुर्भगस्य विबुधोत्तमदर्शने ॥ भवितव्यं मङ्गलेन येनात्मा मे प्रसीदति ॥ ३३॥ अन्यथा म्रियमाणस्य नाशुचेर्वृषलीपतेः ॥ वैकुण्ठनामग्रहणं जिह्वा वक्तुमिहार्हति ॥ ३४ ॥ क्व चाऽहं कितवः पापो ब्रह्मघ्नो निरपत्रपः ॥ क्व च नारायणेत्येतद्भगवन्नाम मङ्गलम् ॥ ३५ ॥

कामी यमकी पीडाको भोगैहैं ॥ ३० ॥ क्या ये स्वप्न है, अथवा साक्षात् अद्भुत मैने पार्षद देखै, वे कहां गए जो फासी हाथमें लिये मोकों खीचे ले जाते थे ॥ ३१ ॥ और श्रेष्ठ दर्शनवारे चार सिद्ध वे कहां गए, जो पाशसैं बांधकै मोको भूमीसे नीचै लेजाते हैं उनसे छुडावतेभए ॥ ३२ ॥ यद्यपि ऐसी बात है तथापि दुर्भागी मोको उत्तम देवनको दर्शन होयगो, वा मंगलसें मेरो आत्मा प्रसन्न होयगो ॥ ३३ ॥ मरती समय अशुद्ध शूद्रीको पति मोको वैकुण्ठ भगवानकौ नाम ग्रहण जिह्वासें कहिवेको योग्य नहीं हो ॥ ३४ ॥ कपटी पापी ब्रह्मद्रोही निर्लज्ज

मैं कहां, नारायण ये भगवतको नाम मंगलरूप मोको लेनो कहा हो ॥ ३५ ॥ सो मैं चित्त पवन इंद्रियोंको जीत ऐसा यत्न करूंगा जो फिर अंधतममें आत्माको न गिरना पडै ॥ ३६ ॥ अविद्या काम कर्मके बंधको छोडकर सब जीवमात्रमें सुहृदभाव कर मैत्री दया आत्मज्ञान करूंगा ॥ ३७ ॥ स्त्रीरूप धारिणी माया करकै ग्रसित देहको छुडाऊंगो मैं क्रीडामृगकी नाई स्त्रीके वशमें पडा रहा ॥ ३८ ॥ मेरो है, हम है ये मिथ्यापदार्थमें जो यह बुद्धि थी ताहि त्याग शुद्धमनको तिन नारायणके कीर्तनमें लगाऊंगा ॥ ३९ ॥ ऐसै वाको ज्ञान प्राप्तभयो, साधुनके क्षणमात्रके संगको ये

सोऽहं तथा यतिष्यामि यतचित्तेन्द्रियानिलः ॥ यथा न भूय आत्मानमन्धे तमसि मज्जये ॥ ३६ ॥ विमुच्य तामिमं बन्धमविद्याकामकर्मजम् ॥ सर्वभूतसुहृच्छान्तो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥ ३७ ॥ मोचये ग्रस्तमात्मानं योषिन्मय्यात्ममायया ॥ विक्रीडितो ययैवाहं क्रीडामृग इवाधमः ॥ ३८ ॥ ममाऽहमिति देहादौ हित्वा मिथ्याऽर्थधीर्मतिम् ॥ धास्ये मनो भगवति शुद्धं तत्कीर्तनादिभिः ॥ ३९ ॥ इति जातसुनिर्वेदः क्षणसङ्गेन साधुषु ॥ गङ्गाद्वारमुपेयाय मुक्तसर्वानुबन्धनः ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स तस्मिन् देवसदन आसीनो योगमाश्रितः ॥ प्रत्याहृतेन्द्रियग्रामो युयोज मन आत्मनि ॥ ४१ ॥ ततो गुणेभ्य आत्मानं वियुज्यात्मसमाधिना ॥ युयुजे भगवद्धाम्नि ब्रह्मण्यनुभवात्मनि ॥ ४२ ॥ यर्ह्युपारतधीस्तस्मिन्नद्राक्षीत्पुरुषान्पुरः ॥ उपलभ्योपलब्धान्प्राग् ववन्दे शिरसा द्विजः ॥ ४३ ॥ हित्वा कलेवरं तीर्थे गङ्गायां दर्शनादनु ॥ सद्यः स्वरूपं जगृहे भगवत्पार्श्ववर्तिनाम् ॥ ४४ ॥

प्रताप है, श्रीगंगाद्वार हरिद्वार पर जाय सब बंधनसे छुटतो भयो ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि सो वो वा देवस्थानमें योगाभ्यासमें स्थित होकर बैठो, सब इंद्रियोंके ग्रामको जीत मन जीवमें लगावतो भयो ॥ ४१ ॥ तब गुणनते आत्माको अपनी समाधिकरकै जीवको वियोगकर भगवद्धाम ब्रह्म अनुभव आत्मामें जीवात्माको लगावतोभयो ॥ ४२ ॥ सबसें जब निचंत भयो, तब भगवानके पार्षदोंको आगे खडा देखा और शिर झुकाय प्रणाम किया ॥ ४३ ॥ महापुरुषोंके दर्शन कर गंगातीर्थमें देह त्याग भगवतके पासके पार्षदोंको सो रूप शीघ्र धारण करता भया ॥ ४४ ॥

साकं विहायसा विप्रो महापुरुषकिंकरैः ॥ हैमं विमानमारुह्य ययौ यत्र श्रियःपतिः ॥ ४५ ॥ एवं स विप्लावितसर्वधर्मा दास्याः पतिः पतितो गर्ह्यकर्मणा ॥ निपात्यमानो निरये हतव्रतः सद्यो विमुक्तो भगवन्नाम गृह्णन् ॥ ४६ ॥ नातः परं कर्मनिबन्धकृन्तनं मुमुक्षतां तीर्थपदानुकीर्तनात् ॥ न यत्पुनः कर्मसु सज्जते मनो रजस्तमोभ्यां कलिलं ततोऽन्यथा ॥ ४७ ॥ य एवं परमं गुह्यमितिहासमघापहम् ॥ शृणुयाच्छ्रद्धया युक्तो यश्च भक्त्याऽनुकीर्तयेत् ॥ ४८ ॥ न वै स नरकं याति नेक्षितो यमकिंकरैः ॥ यद्यप्यमङ्गलो मर्त्यो विष्णुलोके महीयते ॥ ४९ ॥ म्रियमाणो हरेर्नाम गृणन्पुत्रोपचारितम् ॥ अजामिलोऽप्यगाद्धाम किं पुनः श्रद्धया गृणन् ॥ ५० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धेऽजामिलोपाख्याने भगवन्नाममाहात्म्यवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ राजोवाच ॥ निशम्य देवः स्वभटोपवर्णितं प्रत्याह किं तान्प्रति धर्मराजः ॥ एवं हताज्ञो विहतान्मुरारेर्नैदेशिकैर्यस्य वशे जनोऽयम् ॥ १ ॥ यमस्य देवस्य न दण्डभङ्गः कुतश्चनर्षे श्रुतपूर्व आसीत् ॥ एतन्मुने वृश्चति लोकसंशयं न हि त्वदन्ये इति मे विनिश्चितम् ॥ २ ॥

महापुरुषके पार्षदोंके साथ विप्र आकाशमार्गमें होयकर सुवर्णके विमानपर बैठकर जहां श्रियःपति श्रीलक्ष्मीनारायण है तहां गयो ॥ ४५ ॥ ऐसै सब धर्म रहित दासीपति निंदित कर्मसें गिरोभयो, नरकमें गिरवेयोग्य, सब व्रतहीन अजामेल भगवन्नाम लेवेसे शीघ्र मुक्त होगयो ॥ ४६ ॥ यासे परे कर्मबंधननाशक और कोई नहीं है, मोक्षको देवेवारो श्रीमन्नारायणको कीर्तन है नामसै शुद्ध हुआ मन फिर कर्ममें आसक्त नहीं होय है और प्रायश्चित्तौंसैं रजतमसै मलिन हुआ मन मलीनही रहता है ॥ ४७ ॥ जो कोई या परम गुह्य पापनाशक इतिहासको श्रद्धाकरकै सुनै सुनावै जो भक्तिसे याको पाठ करै ॥ ४८ ॥ वो नरककूं नहीं प्राप्त होयगो, यमके दूत वाकी तरफ न देखैंगे, चाहै भलई अमंगलकी मनुष्य होय, श्रीविष्णुलोकमें जायगो ॥ ४९ ॥ मरतीविरिया श्रीहरिको श्रीमन्नारायण नाम पुत्रके बहानेसै लेनेसै अजामेल वैकुंठगया, और जो लोग श्रद्धाकरकै नित्य हरे कृष्ण गोविंद नारायणनाम लेवैंगे उनकी बडाई कहांतक करैं ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां षष्ठ० अजामिलोपाख्याने भगवन्नाममाहात्म्यवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ राजा परीक्षित बोले कि यमदेव धर्मराज अपने भटोंसै यह कथा सुन, दूतनके प्रति कहा कहिते भए, जाकी आज्ञा मुरारीके दूतनने न मानी जाके वशमें ये सब जन हैं ॥ १ ॥ हे मुने ! यमदेवकी आज्ञा कभी काऊने भंग करी ये हमने पहिले कभी नहीं सुनो

हे ऋषे ! ये लोकको संशय मेरो तुमारे विना दूर करवेकों और कोई समर्थ नहीं है ॥२॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! भगवतके पार्षदोंकरके यमके दूतनके सब उद्यम नष्टभए तब वे संयमिनीपति यमसे जायकर सब कहितेभए ॥ ३ ॥ यमदूत बोले कि हे प्रभो ! या जीवलोकके शिक्षा करवेवारे कितने हैं, फलकी चाहकरकैं तीनप्रकारके कर्म करवेवारोंको फल दैनेहारे कितने हैं ॥ ४ ॥ जब इन लोकनमें दंडधारी बहोत है तो इसमें कौनको मृत्यु होयहै. और कौनको मोक्ष होय है ॥ ५ ॥ बहुत कर्म करनेवारेनके शिक्षक जब बहुत है, तो इसमें अखंड मंडलेश्वरकी शिक्षाके सामने

श्रीशुक उवाच ॥ भगवत्पुरुषै राजन्याम्याः प्रतिहतोद्यमाः ॥ पतिं विज्ञापयामासुर्यमं संयमनीपतिम् ॥ ३ ॥ यमदूता ऊचुः ॥ कति सन्तीह शास्तारो जीवलोकस्य वै प्रभो ॥ त्रैविध्यं कुर्वतः कर्म फलाभिव्यक्तिहेतवः ॥ ४ ॥ यदि स्युर्बहवो लोके शास्तारो दण्डधारिणः ॥ कस्य स्यातां न वा कस्य मृत्युश्चामृतमेव वा ॥ ५ ॥ किंतु शास्तृबहुत्वे स्याद्बहूनामिह कर्मिणाम् ॥ शास्तृत्वमुपचारो हि यथा मण्डलवर्तिनाम् ॥ ६ ॥ अतस्त्वमेको भूतानां सेश्वराणामधीश्वरः ॥ शास्ता दण्डधरो नृणां शुभाशुभविवेचनः ॥ ७ ॥ तस्य ते विहितो दण्डो न लोके वर्ततेऽधुना ॥ चतुर्भिरद्भुतैः सिद्धैराज्ञा ते विप्रलम्भिता ॥ ८ ॥ नीयमानं तवादेशादस्माभिर्यातनागृहान् ॥ व्यमोचयन्पातकिनं छित्त्वा पाशान्प्रसह्य ते ॥ ९ ॥ तांस्ते वेदितुमिच्छामो यदि नो मन्यसे क्षमम् ॥ नारायणेत्यभिहिते मा भैरित्याययुर्द्रुतम् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति देवः स आपृष्टः प्रजासंयमनो यमः ॥ प्रीतः स्वदूतान्प्रत्याह स्मरन्पादाम्बुजं हरेः ॥ ११ ॥

छोटे राजनकी आज्ञा न्यून है, ऐसै तुह्मारी शिक्षा मालूम पडै है ॥६॥ याते ईश्वरसहित जीवनके ईश्वर तुम एक हो; मनुष्योंको शुभ अशुभके विचार करवेवारे दंडदाता शिक्षक आप हो ॥ ७ ॥ सो तुह्मारी आज्ञा संसारमें नहीं वर्ती चार अद्भुतसिद्धोंने तुम्हारी आज्ञा भंगकरी ॥ ८ ॥ हम तुह्मारी आज्ञासै एक जीवको यातना गृहकों लाते है सो हठसे सब फासियें काटकै वे उस पापीको छुडावतेभए ॥९॥ सो आपसे कहिवेकूं आए हैं, जो आप सुनो तो वाने नारायण ये कह्यो, सो वे शीघ्र आय बोले मतडरो ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि प्रजाके दंडदाता यमदेव ऐसै जब पूछे गए तब

प्रसन्न हो यम राजा अपने दूतनसे श्रीहरिके चरणकमलनको स्मरण करते बोले ॥ ११ ॥ यमराज बोले कि हम तो जंगम पापी जीवोंके केवल दंडदाता है, परंतु हमसे परे स्थावर जंगमको स्वामी और है, वस्त्रकी नांई जामें ये विश्व पिरोयो भयो है, जाके अंशते उत्पत्ति पालन नाश होयहै, जैसे बैल नाथके वशमें रहै तैसे ये लोक सब ईश्वरके वशमें है ॥ १२ ॥ जो ईश्वर अपनी वाणीरूपी डोरेमें बैलकी समान सबकों बांधे है: जिनके अर्थ नाम कर्मरूप बंधनमें बंधे सब चकित होयके बलि देवें हैं ॥१३॥ हम, महेंद्र, निर्ऋति, प्रचेता, सोम, अग्नि, ईश, पवन, ब्रह्मा, आदित्य, विश्वेदेव, वसु, साध्य, मरुद्गण, रुद्रगण सब सिद्ध उनके वशमें हैं ॥ १४ ॥ और जो विश्वके रचवेवारे भृगुआदिक देवनके ईश हैं इनको राजस तामस नहीं

यम उवाच ॥ परो मदन्यो जगतस्तस्थुषश्च ओतं प्रोतं पटवद्यत्र विश्वम् ॥ यदंशतोऽस्य स्थितिजन्मनाशा नस्योतवद्यस्य वशे च लोकः ॥१२॥ यो नामभिर्वाचि जनान्निजायां बध्नाति तन्त्यामिव दामभिर्गाः ॥ यस्मै बलिं त इमे नामकर्मनिबन्धबद्धाश्चकिता वहन्ति ॥ १३ ॥ अहं महेन्द्रो निर्ऋतिः प्रचेताः सोमोऽग्निरीशः पवनोऽर्को विरिञ्चः ॥ आदित्यविश्वे वसवोऽथ साध्या मरुद्गणा रुद्रगणाः ससिद्धाः ॥ १४ ॥ अन्ये च ये विश्वसृजोऽमरेशा भृग्वादयोऽस्पृष्टरजस्तमस्काः ॥ यस्येहितं न विदुः स्पृष्टमायाः सत्त्वप्रधाना अपि किं ततोऽन्ये ॥ १५ ॥ यं वै न गोभिर्मनसाऽसुभिर्वा हृदा गिरा वाऽसुभृतो विचक्षते ॥ आत्मानमन्तर्हृदि सन्तमात्मनां चक्षुर्यथैवाकृतयस्ततः परम् ॥१६॥ तस्यात्मतन्त्रस्य हरेरधीशितुः परस्य मायाधिपतेर्महात्मनः ॥ प्रायेण दूता इह वै मनोहराश्चरन्ति तद्रूपगुणस्वभावाः ॥ १७ ॥ भूतानि विष्णोः सुरपूजितानि दुर्दर्शलिङ्गानि महाद्भुतानि ॥ रक्षन्ति तद्भक्तिमतः परेभ्यो मत्तश्च मर्त्यानथ सर्वतश्च ॥ १८ ॥

स्पर्श करे है, मायासे पृथक् हैं, वेभी उनकी चेष्टाको नहीं जानै है, जो सत्त्वप्रधान है उन्हैभी तौ खबर नहीं है औरनकी कहा चलाई है ॥ १५ ॥ जिनको इन्द्रियोंसे मनसे प्राणसे हृदयसे वाणीसे प्राणधारी न जानसकैं हैं वह सब व्यापकनके अंतरहृदयमें हैं जैसे नेत्र आकृतिनको न जानसकै है, तैसे हम उन परमेश्वरकी करवेकी इच्छाकों न जानसकैंहै ॥ १६ ॥ आप स्वाधीन सबके ईश्वर परमेश्वर मायाके स्वामी महात्मा श्रीहरिके या संसारमें मनोहर भगवतकेसे रूपवारे वैसेही गुणस्वभाववारे पार्षद विचरै हैं ॥ १७ ॥ देवता जिन्है पूजे है जिनको दर्शन कठिणसें होयहै

महाअद्भुत श्रीविष्णुके पार्षद अपने श्रीहरिके भक्ति करवेवारेनको सब ओरसे रक्षाके लिये मोसे और शत्रुनसे रक्षार्थ आयकें रक्षा करते हैं ॥ १८ ॥ जो साक्षात् भगवतको कह्यो भयो धर्म है, वाको ऋषिलोग देवता कोई नहीं जानै हैं सिद्धमुखिया असुर मनु कोई न जानै हैं, विद्याधर चारणादिकनकी कहा चलाई है ॥ १९ ॥ स्वयंभु, नारद, शंभु, कुमार, कपिल, मनु, प्रल्हाद, जनक, भीष्मजी, बलिराज, शुकाचार्य और हम ॥ २० ॥ हे भट हो ! ये द्वादशजने हम भागवत धर्मको जानै हैं, छिपोभयो विशुद्ध परिश्रमसे जानने योग्य उस धर्मके जाननेसे मोक्ष होय है ॥ २१ ॥ यालोकमें

धर्मं तु साक्षाद्भगवत्प्रणीतं न वै विदुर्ऋषयो नापि देवाः ॥ न सिद्धमुख्या असुरा मनुष्याः कुतश्च विद्याधरचारणादयः ॥ १९ ॥ स्वयम्भूर्नारदः शम्भुः कुमारः कपिलो मनुः ॥ प्रह्लादो जनको भीष्मो बलिर्वैयासकिर्वयम् ॥ २० ॥ द्वादशैते विजानीमो धर्मं भागवतं भटाः ॥ गुह्यं विशुद्धं दुर्बोधं यं ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥ २१ ॥ एतावानेव लोकेऽस्मिन्पुंसां धर्मः परः स्मृतः ॥ भक्तियोगो भगवति तन्नामग्रहणादिभिः ॥ २२ ॥ नामोच्चारणमाहात्म्यं हरेः पश्यत पुत्रकाः ॥ अजामिलोपि येनैव मृत्युपाशादमुच्यत ॥ २३ ॥ एतावताऽलमघनिर्हरणाय पुंसां संकीर्तनं भगवतो गुणकर्मनाम्नाम् ॥ विक्रुश्य पुत्रमघवान्यदजामिलोपि नारायणेति म्रियमाण इयाय मुक्तिम् ॥ २४ ॥

पुरुषनको परमधर्म परमज्ञान परमप्राप्ति वस इतनी है, कि यह भगवानके नाम लैनेसे उनमें भक्ति योगकी प्राप्ति होती ॥ २२ ॥ हे पुत्रहो ! श्रीहरिके नाम उच्चारणको महात्म्य देखो, अजामेल जिनके नामसे मृत्युकी फांसीसे छूटतो भयो ॥ २३ ॥ पुरुषनके पापनके नाशके अर्थ भगवतके गुणनामनको कीर्तनही मुख्य है; पुत्रके नाम पुकारनेके मिसकरके पापी अजामेल मरती समय नारायण उच्चारण करवेसें मुक्तिको प्राप्त होतो भयो ॥ २४ ॥

शंका—यमराजने अपने दूतोंसे कहा कि हे दूतो ! भागवत रूप धर्मको ऋषि लोगभी नहीं जानते प्रल्हाद और जनकजीको आदि लेकर हम बारह जन भागवत रूप धर्मको जानते हैं, यह बडे आश्चर्यकी बात है कि जिन मुनियोंको भगवान्का दास कहते हैं सो मुनिजन भगवान्के धर्म जाननेंमें प्रल्हादसेभी मूर्ख होगये यह भारी सन्देह है ?

उत्तर—मुनिजन भगवान्सेभी बडे हैं, दूसरे प्राणीसे किसी काममें छोटे क्यों होंगे ? भक्त त्रिलोकीमें सबसे बडे हैं, परन्तु तपस्याके अभिमानसे भागवत रूप धर्मको नहीं देखते और विचारते हैं क्या हमारे तपसे भागवत धर्म बडा है, ऋषिजन तपस्या करके अभिमानी हो रहे हैं इसलिये भागवत धर्मको नहीं जानते और प्रहलाद जनक आदि सीधे साधु हैं इनको भगवान्के सिवाय और कोई दूसरा आधारही नहीं, इसीलिये भागवतधर्म जाननेको यमराज अपने दूतोंसे कहतेथे ॥

प्रायेण वेद तदिदं न महाजनोऽयं देव्या विमोहितमतिर्बत माययाऽलम् ॥ त्रय्यां जडीकृतमतिर्मधुपुष्पितायां वैता-
निके महति कर्मणि युज्यमानः ॥ २५ ॥ एवं विमृश्य सुधियो भगवत्यनन्ते सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम् ॥
ते मे न दण्डमर्हन्त्यथ यद्यमीषां स्यात्पातकं तदपि हन्त्युरुगायवादः ॥ २६ ॥

जो माहात्म्य नामको ऐसो है तो द्वादशाब्दादिव्रत व्यर्थ है तापरै कहै हैं या नामके माहात्म्यको बहुधाकरकै ये महाजन मनुआदि नहीं जानते भये "क्योंकि महाभारी मायादेवीके बलसें अत्यंत विमोहितमतिसे मीठी खिली भई वेदत्रयीकी वाणीमें जडबुद्धि होयरही है याते महाभारी यज्ञादि कर्ममें सदा लगेरहे हैं जो सब नामको माहात्म्य जानलैगें तो सर्व मुक्ति प्रसंग होजायगो, जैसै अमृतसंजीवनी औषधीकौ न जाननेवारे वैद्य रोगनाशके अर्थ निंबआदि दवा बतावै हैं, तैसें स्वयंभू आदि द्वादशाब्दके व्रतकों अतिगुह्य माने हैं, लौकिकमें है कि बडे मंत्रमें तो श्रद्धा, छोटेमें श्रद्धा नहीं यातें याके ग्राहक नहीं है, जैसै अपने आधीन सिंघसे कुत्ता गीदडोंके दूर करवेको इच्छा नहीं करते तैसै अतितुच्छ पापको जान उसके नाशको परममंगलिक श्रीहरिनाम लैना उचित नहीं जान्ते ॥ २५ ॥ ऐसै विचारकरके बहुत सुंदर बुद्धिवारोंने सब प्रकारकै निश्चयसे भाव योग करैं हैं, वे मेरे दंड देवेके योग्य नहीं हैं जो इनमें हैं, तो उनको सब पाप भगवानको नाम उच्चारण नाश करै है ॥ २६॥

---

१ दृष्टांत ॥ एक मुनीश्वर तप कररहे थे इतनेमें कोई कुष्ठी (कोढी) उनकी शरणमें आया और कहा कि हे दीनदयालु! मेरे कुष्ठका आप कुछ उपाय बताईये ॥ परन्तु वह तो ध्यानमें थे, कुछ उन्होने न सुना. उसनें फिर कहा, फिर मुनीने न सुना, फिर उसने तीसरी वार कहा, फिर मुनीने ध्यान न किया, जब फिर वह चौथी वार कहनेको हुआ, तब मुनिके चेलेने अपने मनमें विचारा कि जो इसके गंभीर शब्दसे गुरुजीकी समाधि छूटगई तो मेरे ऊपर बडाभारी क्रोध करैंगे। इसलिये उसने गुरुसे भयमान कुष्ठीसे कहा कि तीनवार रामका नाम ले तेरा कुष्ठ सब जातारहेगा और शरीर शुद्ध होजायगा। उसने जो तीनवार राम राम कहा तो सब कुष्ठ जाता रहा, और शरीर कुन्दन लालकी समान होगया। मुनीश्वर जब समाधिसे जागे तो चेलेकी ओरसे मुँह फेर लिया, और न बोले, तब तो चेलेने अपने मनमें बडा दुःख माना, और मनमें कहने लगा कि ऐसा मुझसे क्या अपराध हुआ जो गुरुजी क्रोधित होगये, फिर चरणोंमें शिर झुका विनतीकर बोला कि हे स्वामिन्! मुझ दीनसे ऐसे क्या अपराध हुआ जो मेरी ओरसे आपने मुख फेर सिया, कृपा करकै मुझसे कहिये जो मेरे मनका संदेह जाय, तब मुनि बोले कि अरे मूर्ख! तैंने रामनामकी महिमाको कुछ न जाना, जिस रामनामके एकवार कहनेसे करोडों कुष्ठी अच्छे हो सकते हैं ऐसे रामनामको तीन वार कहलाकर एक कुष्ठी तैंने अच्छा किया, तैंने रामनामके प्रभावको तुच्छ समझा, अच्छा अब जो किया सो किया फिर कभी ऐसा मत करना, सो रामनामकी महिमाको शेष, शारद, और ब्रह्मा नारदभी नहीं जानते ॥

जो साधु सबदर्शि नारायणको प्राप्त है उनकी पवित्र कथाको देवता और सिद्ध गाते हैं वे साधुलोक समानदर्शी होय हैं, भगवतके प्रपन्न हैं शरणागति धर्मजानै हैं " व्याकरणमें है प्रउपसर्गसे पत्लृ पतने धातुको ये अर्थ है कि सब संबंध देशकाल इत्यादि नियम त्याग हरिके (चरण शरण) अर्थात् चरण रक्षक है ऐसे मानै " उन्हें मेरे यहां मत लाओ, वे श्रीहरिकी गदासे रक्षित हैं, उनके ऊपर कालकी सामर्थ्य नहीं है कि मारसकैं, न हम सब लोग द्वादश देवता दंड देवेको समर्थ हैं ॥ २७ ॥ दंडके योग्य ये हैं इनकों लायो करो जो श्रीमुकुन्दके चरणकमलमकरंदरससे सदा विमुख हैं, उन्हे लाओ, जो खोटे जीव हैं उन्है लाओ, जिनकूं काऊकी चाहना नहीं परमहंसकुल रस जानवेवारोंके निंदकौंको लाओ नरकदायक घरमें जिन्होंने

ते देवसिद्धपरिगीतपवित्रगाथा ये साधवः समदृशो भगवत्प्रपन्नाः ॥ तान्नोपसीदत हरेर्गदयाऽभिगुप्तान्नैषां वयं न च वयः प्रभवाम दण्डे ॥२७॥ तानानयध्वमसतो विमुखान्मुकुन्दपादारविन्दमकरन्दरसादजस्रम् ॥ निष्किञ्चनैः परमहंसकुलै रसज्ञैर्जुष्टाद्गृहे निरयवर्त्मनि बद्धतृष्णान् ॥ २८ ॥ स्वपुरुषमपि वीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ॥ परिहर भगवत्कथाप्रमत्तान्प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥ २९ ॥ जिह्वा न वक्ति भगवद्गुणनामधेयं चेतश्च न स्मरति तच्चरणारविन्दम् ॥ कृष्णाय नो नमति यच्छिर एकदापि तानानयध्वमसतोऽकृतविष्णुकृत्यान् ॥ ३० ॥ तत्क्षम्यतां स भगवान्पुरुषः पुराणो नारायणः स्वपुरुषैर्यदसत्कृतं नः ॥ स्वानामहो न विदुषां रचिताञ्जलीनां क्षान्तिर्गरीयसि नमः पुरुषाय भूम्ने ॥ ३१ ॥

तृष्णा लगाय राखी उन्हें लाओ ॥ २८॥ फांसी हाथमें लिये अपने पुरुषनके कांनमें यमराज धीरैसै बोले कि जो भगवतकी कथामें सदा प्रमत्त हैं उनको मैं प्रभु नहींहूं वैष्णवनको मैं दंडदाता नहीं हूं, और मनुष्यनको दंडदाता मैं हूं, याते भक्तकों मेरे यहां मतलाओ ॥ २९ ॥ जिनकी जीभ भगवतके नाम नहीं लैहैं, चित्त जिनको भगवतके चरणारविंदको नहीं स्मरण करै है, जो शिर श्रीकृष्णको एकवारभी नहीं नमें हैं जीन्होंने कुछभी विष्णुके कृत्य नहींकरे हैं, उन दुष्टनकों लाओ ॥३० ॥ सो पुराणपुरुष नारायण भगवान मेरो अपराध क्षमा करैं, क्योंकि मेरे दूतनने भक्तको तिरस्कार कीनो, जो बडे है वे अपनेनके हाथ जोडनेमात्रहीसै अपराध क्षमा करै हैं, यासे सबसे बडे भूमा पुरुषके अर्थ नमस्कार होय ॥ ३१ ॥

हे कौरव्य ! तातैं जगतके मंगलको करवेवारो सब बडेसे बडे पापको नाशक श्रीविष्णुकों संकीर्त्तन है एकांती भक्तनको सब सुखदाता है यही निश्चय जानो ॥ ३२ ॥ जो श्रीहरिके सुन्दर चरित्रको सुनैहैं, सुन्दर भक्ति करै हैं, तिनकों नाम लेहैं, व्रत आदि करै हैं, इनसे शुद्ध होय जांयहै ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्णके चरण कमलके मधुको स्वाद लेवेवारो फेर मायाके गुण पापदायकोंमें नहीं रमण करैहै, और अभक्त तो कामकरके हन्यो भयो अपनी शुद्धिकी इच्छाकर प्रायश्चितमें लगते है जिससे फिरभी विषयोंमें लग जातेहैं ॥ ३४ ॥ हे राजन् ! ऐसे अपने भर्ताकी वाणी सुन भगवतकी महिमा

तस्मात्संकीर्तनं विष्णोर्जगन्मङ्गलमंहसाम् ॥ महतामपि कौरव्य विद्ध्यैकान्तिकनिष्कृतिम् ॥ ३२ ॥ शृण्वतां गृणतां वीर्याण्युद्दामानि हरेर्मुहुः ॥ यथा सुजातया भक्त्या शुध्येन्नात्मा व्रतादिभिः ॥ ३३ ॥ कृष्णाङ्घ्रिपद्ममधुलिड् न पुनर्विसृष्टमायागुणेषु रमते वृजिनावहेषु ॥ अन्यस्तु कामहत आत्मरजः प्रमार्ष्टुमीहेत कर्म यत एव रजः पुनः स्यात् ॥ ३४ ॥ इत्थं स्वभर्तृगदितं भगवन्महित्वं संस्मृत्य विस्मितधियो यमकिंकरास्ते ॥ नैवाच्युताश्रयजनं प्रतिशङ्कमाना द्रष्टुं च बिभ्यति ततः प्रभृति स्म राजन् ॥ ३५ ॥ इतिहासमिमं गुह्यं भगवान्कुम्भसंभवः ॥ कथयामास मलय आसीनो हरिमर्चयन् ॥ ३६ ॥ इति श्रीभा० षष्ठस्कन्धे अजामिलोपाख्यानसमाप्तिवर्णनपूर्वकं यमेन स्वभटान्प्रति भगवद्भक्तिनाममाहात्म्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सुन वारंवार यादकर विस्मित बुद्धिसे यमके किंकर श्रीअच्युतके आश्रित जनोंसे महा भय शंका मानते वा दिनसे भगवद्दासकी ओर देखवेसेभी डरते भए ॥३५॥ ये पुण्यदायक इतिहास भगवान अगस्त्यजी महाराज मलयाचलपर बैठे भए श्रीहरिको पूजनकर कथा वांच सबको नाममाहात्म्य सुनाय उद्धार करतेभए (१) ॥३६॥ इति श्रीमद्भागवतभाषा० अजामिलोपाख्याने स्वभटान्प्रति यमेन भगवन्नाममाहात्म्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३॥

---

(१) यापर एक पद है ॥ " ठुमरी ॥ हरे राम कहो हरे राम कहो राम राम कहो हरे हरे ॥ हरे कृष्ण कहो हरे कृष्ण कहो कृष्ण कृष्ण कहो हरे हरे ॥ टेर ॥ मीन वराह हरी और कच्छप रामचन्द्र अवतार धरे ॥ परशुराम नरसिंह कृष्ण बल सनकादिक चारौ विचरे ॥ १ ॥ नर नारायण यज्ञपुरुष होय कपिल देव हयग्रीव तरे ॥ दत्तात्रेय ऋषभ मन्वंतर पृथु मोहिनी अति सुधरे ॥ २ ॥ नारद वामन हंस व्यास प्रभु बौद्ध होयकर ज्ञान करे ॥ कल्की कालियुग अंत महि भए यह चौवीसौं रूप धरै ॥ ३ ॥ रंगनाथजी जगन्नाथजी पुरी द्वारकानाथ वरै ॥ गोवर्द्धनके नाथ नाथ जग वद्रीनाथ नरनाथ खरै ॥ ४ ॥ जगदीश्वर परमेश्वर स्वामी सर्वेश्वर सब ठौर सरे ॥ कमलनयन कमलापति केशव कंस केशकर काल करै ॥ ५॥ मदनमोहन मथुरामनमज्जन मन्मथ मुरली मुकुट मुरे ॥ मुरमर्द्दन मुनिमनमतिभज्जन पुरुषोत्तमके नाथ खरे ॥ ६ ॥

राजा परीक्षित बोले कि देवता असुर मनुष्य नाग मृग पक्षीको सृष्टी स्वायंभुवमन्वंतरमें आपनें संक्षेपसे कही ॥ १ ॥ हे भगवन् ! याकी विस्तार पूर्वक सुनवेकी इच्छा है जैसै जा शक्ति करकै भगवान् परमेश्वर फेर सर्ग रचतेभए सो कहो ॥ २ ॥ सूतजी बोले कि हे शौनकादिक ! राजऋषिको ये प्रश्न सुनकरकै बादरायणि महायोगी राजाकी प्रशंसाकर बोलै ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि जब दश प्राचीनबर्हीके पुत्र प्रचेता समुद्रसै बाहर निकले तब द्रुमोसें वृत ढकी पृथ्वी देखते भए ॥ ४ ॥ तपसे प्रकाशित वे प्रचेता वृक्षोंपर क्रोध करतेभए, मुखसें पवन अग्नि उनके जराय-

राजोवाच ॥ देवासुरनृणां सर्गो नागानां मृगपक्षिणाम् ॥ सामासिकस्त्वया प्रोक्तो यस्तु स्वायंभुवेऽन्तरे ॥ १ ॥ तस्यैव व्यासमिच्छामि ज्ञातुं ते भगवन्यथा ॥ अनुसर्गं यथा शक्त्या ससर्ज भगवान्परः ॥ २ ॥ सूत उवाच ॥ इति संप्रश्नमाकर्ण्य राजर्षेर्बादरायणिः ॥ प्रतिनन्द्य महायोगी जगाद मुनिसत्तमः ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यदा प्रचेतसः पुत्रा दश प्राचीनबर्हिषः ॥ अन्तःसमुद्रादुन्मग्ना ददृशुर्गां द्रुमैर्वृताम् ॥ ४ ॥ द्रुमेभ्यः क्रुध्यमानास्ते तपोदीपितमन्यवः ॥ मुखतो वायुमग्निं च ससृजुस्तद्दिधक्षया ॥ ५ ॥ ताभ्यां निर्दह्यमानांस्तानुपलभ्य कुरूद्वह ॥ राजोवाच महान्सोमो मन्युं प्रशमयन्निव ॥ ६ ॥ मा द्रुमेभ्यो महाभागा दीनेभ्यो द्रोग्धुमर्हथ ॥ विवर्धयिषवो यूयं प्रजानां पतयः स्मृताः ॥ ७ ॥ अहो प्रजापतिपतिर्भगवान्हरिरव्ययः ॥ वनस्पतीनोषधींश्च ससर्जोर्जामिषं विभुः ॥ ८ ॥ अन्नं चराणामचरा ह्यपदः पादचारिणाम् ॥ अहस्ता हस्तयुक्तानां द्विपदां च चतुष्पदः ॥ ९ ॥

वेकी इच्छा करकै त्यागते भये ॥ ५ ॥ हे कुरूद्वह ! इनसै दह्यमान तिनवृक्षनको देख राजा महाचंद्रमा क्रोध शांतकर बोलै ॥ ६ ॥ हे महाभागी हो दीनवृक्षोंके अर्थ द्रोह करवेकूं योग्य नहीं हो तुम तो प्रजाके पति कहे गए हो, प्रजाके बढानेवारे हो ॥ ७ ॥ अहो प्रजापतिके पति ! भगवान् हरि अविनाशी विभुने वनस्पति औषधी प्रजाके भक्ष्य अन्न रचेहै ॥ ८ ॥ चलनैहारे जीवोंको तौ स्थावर अन्न है पैरसै चलनेवालोंके वे पैरवाले हाथवालोंको हाथ रहित जीव अन्न हैं दो पैरवालोंके चतुष्पद अंन्न है ॥ ९ ॥

शंका—चन्द्रमाने प्रचेतसके पुत्रोंसे कहा कि मनुष्यका आहार पशु है, यह बडे आश्चर्यकी बात है ?

30

हे पाप रहितहो! देवनके देव पिताने तुम्है आज्ञा कीनी है कि प्रजाके रचवेके लिये तुम हो, सो वृक्षनको जरायवे योग्य नहीं हो ॥ १० ॥ सतोंके मार्गमें स्थित रहो, महाप्रकाशी क्रोधको दूर करो पिता पितामह इत्यादि तुह्मारे पुरषानने ऐसो नहीं करो है ॥ ११ ॥ छोटे बालकोंके पिता माता बंधु हो, जैसे पलक नेत्रोंके रक्षक हैं, स्त्रीको पति बंधु है, प्रजाको राजा बंधु है भिक्षुकके गृहस्थी बंधु है अज्ञानीके बुद्धिवान् सुहृद है ॥ १२ ॥ सब जीवमात्रके अंतर्देहमें भूतात्मा श्रीहरि ईश्वर हैं सबमें भगवानकोही देखो, ऐसो करनेसे आपके ऊपर भगवान् प्रसन्न होंयगे ॥ १३ ॥ जो कोई

यूयं च पित्राऽन्वादिष्टा देवदेवेन चानघाः ॥ प्रजासर्गाय हि कथं वृक्षान्निर्दग्धुमर्हथ ॥ १० ॥ आतिष्ठत सतां मार्गं कोपं यच्छत दीपितम् ॥ पित्रा पितामहेनापि जुष्टं वः प्रपितामहैः ॥ ११ ॥ तोकानां पितरौ बन्धुर्दृशः पक्ष्म स्त्रियाः पतिः ॥ पतिः प्रजानां भिक्षूणां गृह्यऽज्ञानां बुधः सुहृत् ॥ १२ ॥ अन्तर्देहेषु भूतानामात्मास्ते हरिरीश्वरः ॥ सर्वं तद्धिष्णयमीक्षध्वमेवं वस्तोषितो ह्यसौ ॥ १३ ॥ यः समुत्पतितं देह आकाशान्मन्युमुल्बणम् ॥ आत्मजिज्ञासया यच्छेत्स गुणानतिवर्तते ॥ १४ ॥ अलं दग्धैर्द्रुमैर्दीनैः खिलानां शिवमस्तु वः ॥ वार्क्षी ह्येषा वरा कन्या पत्नीत्वे प्रतिगृह्यताम् ॥ १५ ॥ इत्यामन्त्र्य वरारोहां कन्यामाप्सरसीं नृप ॥ सोमो राजा ययौ दत्त्वा ते धर्मेणोपयेमिरे ॥ १६ ॥ तेभ्यस्तस्यां समभवद्दक्षः प्राचेतसः किल ॥ यस्य प्रजाविसर्गेण लोका आपूरितास्त्रयः ॥ १७ ॥

देहरूप आकाशमेंसे उत्पन्न महाक्रोधको परमेश्वरका डर मानकर जीते है, वो सब गुणोंसे उद्धार होजाय है ॥ १४ ॥ जो वृक्ष जरगए हैं, सो खैर, परंतु अब जो बाकी बचे हैं उनकों मत जराओ, वृक्षकी ये श्रेष्ठ कन्या है, याको तुम अपनी स्त्री करो ॥ १५ ॥ हे नृप! वा अप्सराकी श्रेष्ठ कन्याको चंद्रमा राजा प्रचेतानको व्याहकै जातेभये, वे धर्मसे विवाह करतेभये ॥ १६ ॥ तिनसे वा वृक्षकी कन्यामें

---

१ उत्तर–द्विपदानां चतुष्पदः इस श्लोकका अर्थ चन्द्रमाने चतुष्पद अर्थात् चार पदवाले पशुको नहीं कहा, यहां ऐसा अर्थ किया है, कि चार प्रकारके भोजन हैं, भक्ष्य, भोज्य चोष्य, लेह्य, इन चार प्रकारके भोजनोंको चतुष्पद कहा सो चार प्रकारके स्वाद हैं, सोई पुरुषोंको प्रसन्न करनेवाले आहार हैं चार प्रकारके भोजन कहे, यहाँ चतुष्पद चार पांववाले पशुको चन्द्रमाने नहीं कहा ॥

दक्षप्रजापति प्रचेतानसे होते भये, जिन दक्षप्रजापतिकी रची भई प्रजाकी बुद्धिकरकै तीनों लोक सब भरगये ॥ १७ ॥ पुत्रीनको प्रीतिसे चाहवेवारे दक्ष जैसे वीर्यसे मनसे सब जीवनकूं रचतो भयो, सो सावधान होकै मोसै तुम सुनो ॥ १८ ॥ प्रजापति पहले देवतें असुर मनुष्य आदिक नभवासी स्थलवासी जलवासी प्रजाको मनसे रचतेभये ॥ १९ ॥ अंधकार तामसको बढो भयो देखकर प्रजापति विंध्याचलपरवतपर जायकर दुष्कर तप करते भये ॥ २० ॥ तहां अघमर्षण नामक तीर्थ है, सो पापको हरनेवारो है, तामें नित्य स्नान करकै तपसे श्रीहरिको तुष्ट करतेभये ॥ २१ ॥ भगवान् अधोक्षजको हंसगुह्यनामक स्तोत्रसे स्तुति करते भये, जातैं श्रीहरि भगवान् दक्षप्रजापतिपर प्रसन्न भये ॥ २२ ॥ वो हंसगुह्यस्तोत्र यह

यथा ससर्ज भूतानि दक्षो दुहितृवत्सलः ॥ रेतसा मनसा चैव तन्ममावहितः शृणु ॥ १८ ॥ मनसैवासृजत्पूर्वं प्रजापतिरिमाः प्रजाः ॥ देवासुरमनुष्यादीन्नभःस्थलजलौकसः ॥ १९ ॥ तमबृंहितमालोक्य प्रजासर्गं प्रजापतिः ॥ विन्ध्यपादानुपव्रज्य सोऽचरद्दुष्करं तपः ॥ २० ॥ तत्राघमर्षणं नाम तीर्थं पापहरं परम् ॥ उपस्पृश्यानुसवनं तपसाऽतोषयद्धरिम् ॥ २१ ॥ अस्तौषीद्धंसगुह्येन भगवन्तमधोक्षजम् ॥ तुभ्यं तदभिधास्यामि कस्यातुष्यद्यतो हरिः ॥ २२ ॥ प्रजापतिरुवाच ॥ नमः परायावितथानुभूतये गुणत्रयाभासनिमित्तबन्धवे ॥ अदृष्टधाम्ने गुणतत्त्वबुद्धिभिर्निवृत्तमानाय दधे स्वयंभुवे ॥ २३ ॥ न यस्य सख्यं पुरुषोऽवैति सख्युः सखा वसन्संवसतः पुरेऽस्मिन् ॥ गुणो यथा गुणिनो व्यक्तदृष्टेस्तस्मै महेशाय नमस्करोमि ॥ २४ ॥

है ॥ दक्षप्रजापति बोले कि जिन परमेश्वरकी चितशक्ति सत्य हैं जो जीव और माया दोनोंके नियामक हैं इस प्रकार होनेसेभी जिन समस्त जीवोंकेही गुणोंमें तत्व बुद्धि है वह उनका स्वरूप नहीं देख सकते कारण कि उनका परिमाण और सीमा नहीं है वह स्वयं प्रकाश है इसी कारण सिद्ध वस्तु है ऐसे सर्वोत्तम देव ईश्वरके अर्थ नमस्कार होय ॥ २३ ॥ गुण अर्थात् विषय जिस प्रकार गुणीके अर्थात् इन्द्रियादि विषयोंके सख्य अर्थात् प्रकाशत्वकों नही जान्ता उसीप्रकार सख्य जीवभी इस देहरूप पुरमें वास करकै इस स्थानमें वास करनेवाले सखाको उनकी इन्द्रिय प्रवर्तकत्वादिरूप सख्यको नही जानसक्ता कारण कि जीवकी दृष्टि प्रपंचमें बंधी रहती है ऐसे महाऐश्वर्यवाले ईश्वरके अर्थ नमस्कार होय ॥ २४ ॥

32

देह प्राण इन्द्रिय अन्तःकरण पंचभूत पंचतन्मात्रा यह सब आत्माको अर्थात् अपने स्वरूपको और इन्द्रिय वर्गको और इन दौनोंमें श्रेष्ठ देवता वर्गको नहीं जानसक्ते यद्यपि जीव इन तीन और इन तीनके मूलभूत समस्त गुणौंकोभी जान्ते हैं तौ वह ऐसे ज्ञात होकरभी सर्वज्ञ भगवानको नहीं जानसक्ते ऐसे अनन्त भगवानकी मैं स्तुति करूं हूं॥२५॥देखवेकी स्मृतिके चुरानेसें जब नामरूपको मनसे त्याग होजाय है तब केवल अपनी स्थिति करकै जो चेष्टा करे जांय हैं तिन पवित्र स्थानवारेके अर्थ नमस्कार होय॥२६॥महामनस्वी लोग हृदयके भीतर प्रकृति पुरुष महत्तत्त्व अहंकार पंचतन्मात्रारूप नवशक्तियोंकरकै सताईस तत्वोंकरकै अपनी शक्ति द्वारा हृदयमें निश्चल हैं और जो लोग यज्ञ करनेवाले पन्द्रह सामधेनी मंत्रोंसै प्रका-

देहोऽसवोऽक्षा मनवो भूतमात्रा नात्मानमन्यं च विदुः परं यत् ॥ सर्वं पुमान्वेद गुणांश्च तज्ज्ञो न वेद सर्वज्ञमनन्त-
मीडे ॥ २५ ॥ यदोपरामो मनसो नामरूपरूपस्य दृष्टस्मृतिसंप्रमोषात् ॥ य ईयते केवलया स्वसंस्थया हंसाय तस्मै
शुचिसद्मने नमः ॥२६॥ मनीषिणोऽन्तर्हृदि संनिवेशितं स्वशक्तिभिर्नवभिश्च त्रिवृद्भिः ॥ वह्निं यथा दारुणि पाञ्चदश्यं
मनीषया निष्कर्षन्ति गूढम् ॥ २७ ॥ स वै ममाशेषविशेषमायानिषेधनिर्वाणसुखानुभूतिः॥ स सर्वनामा स च विश्व-
रूपः प्रसीदतामनिरुक्तात्मशक्तिः ॥ २८ ॥ यद्यन्निरुक्तं वचसा निरूपितं धियाक्षभिर्वा मनसा वोत यस्य ॥ मा भूत्स्व-
रूपं गुणरूपद्बृंहितं स वै गुणापायविसर्गलक्षणः ॥ २९ ॥

शित होते हैं इस कारण अलौकिक अग्निकी समान अतिशय गूढ होनेके कारण विवेकी पुरुष बुद्धिसै विचार और खैंचकर जिनका ध्यान करते हैं॥२७॥ सो ईश्वर बडै हैं, जिनके असंख्यात विशेषण है जिनके मोक्ष सुखका अनुभव मायाके द्वारा निषेध नहीं होता सोई भगवान् सब नामधारी होयहैं, सोई ईश्वर है, विश्वरूप हैं, जिनके आत्माकी शक्तिको वर्णन कोई न करसकैहैं सो परमेश्वर मोपर प्रसन्न होओ ॥ २८ ॥ जो जो निरुक्तिमैं आवै है वा वचनकरकै कहिवेमैं आवै है, बुद्धि इन्द्रियें मनसे जो विचारो जायहै, वह ईश्वरका स्वरूप नहीं है कारण कि वह गुणोंकाही स्वरूप है ईश्वर तौ गुणौंकी प्रलय और उत्पत्तिसै जाने जाते हैं जो चैतन्यरूप अधिष्ठान न होवै तौ सृष्टि और प्रलय होनेका संभव नहीं हो ॥ २९ ॥

जिस अधिकरणमें जिस अपादानसै जिस कारणसै जिसके सम्प्रदान और जिस कर्मसै जिस्सै जिस प्रकारसै जो कर्म कृत अथवा कारित होताहै वही सबका ब्रह्म है वही सबका कारण है कारण कि वह सबके प्रथम स्वयंसिद्ध हैं वह पर अवर सबके परम कारण हैं तथा विजातीय शून्य हैं ॥३०॥जिनकी शक्तियैं वादविवाद करवेवारे वादियोंके विवादसंवादकी भूमि होंय हैं इन सबके वारंवार आत्माकों मोह करती हैं ऐसे अनंतगुण रूप भूमा पुरुषके अर्थ नमस्कार होय ॥ ३१ ॥ योग शास्त्रमें कहा है उसके पदादि है सांख्यमें कहा है वह अवयवरहित है यह विरुद्ध विवाद ईश्वरके अवयवमें है ईश्वरमें तौ नहीं उन शास्त्रोंके द्वारा जो कुछ प्रतीत होते हैं वह बृहद् वस्तु ब्रह्मविवादमें और अविवादमें आस्पद है इसका विवाद भगवानतक न पहूंचकर अवयवमें रहता है भगवानका स्वरूप विवादका विषय नहीं किन्तु विषयका अधिष्ठान है यह न हो तौ पदादि कल्पना और निषेध नहीं होसक्ता इस कारण जो स्वरूप इन विवादौंको आश्रय देताहै दौनौंके अनुकूल और दौनौंसै भिन्न है और दौनौके समान है वही ब्रह्म है ॥ ३२ ॥ जो अनामरूपी भगवान् अनंत हैं जो भजवेवारेनके अनुग्रहके अर्थ जन्मकर्म करकै नामरूपधारै हैं उन्है हम भजै हैं सो मेरे अर्थ परमेश्वर प्रसन्न होय ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार पवन कमल आदि विशेष २ पुष्पौंकी गंधका आश्रय लेकर अनेक गंध युक्त हो प्रकाश करती है वही पृथ्वीकी रेणुका आश्रय कर काली पीली धुंधली अनेक रूपकी होती है वैसेही भगवान पुरातन उपासनाके मार्गसै मनुष्योंकी वासनाके अनुसार उन उन देवताओंके रूपसें विविध प्रकारसै प्रकाश पाते हैं वे ईश्वर हमारे मनोरथको पूर्ण करो ॥ ३४ ॥

यस्मिन्यतो ये न च यस्य यस्मै यद्यो यथा कुरुते कार्यते च ॥ परावरेषां परमं प्राक्प्रसिद्धं तद्ब्रह्म तद्धेतुरनन्यदेकम् ॥३०॥ यच्छक्तयो वदतां वादिनां वै विवादसंवादभुवो भवन्ति॥कुर्वन्ति चैषां मुहुरात्ममोहं तस्मै नमोऽनन्तगुणाय भूम्ने॥३१॥अस्तीति नास्तीति च वस्तुनिष्ठयोरेकस्थयोर्भिन्नविरुद्धधर्मयोः ॥ अवेक्षितं किंचन योगसांख्ययोः समं परं ह्यनुकूलं बृहत्तत् ॥३२॥ योऽनुग्रहार्थं भजतां पादमूलमनामरूपो भगवाननन्तः॥नामानि रूपाणि च जन्मकर्मभिर्भेजे स मह्यं परमः प्रसीदतु ॥ ३३ ॥ यः प्राकृतैर्ज्ञानपथैर्जनानां यथाशयं देहगतो विभाति ॥ यथानिलः पार्थिवमाश्रितो गुणं स ईश्वरो मे कुरुतान्मनोरथम् ॥ ३४ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि राजन् ! या अघमर्षणमें स्तुतियोग्य जब स्तुति करेगए तब भगवान् भक्तवत्सल प्रसन्न भए ॥ ३५ ॥ गरुडपर विराजमान लंबी अष्टभुजा धारै, चक्र शंख तरवार ढाल बाण धनुष पाश गदा लिये ॥ ३६ ॥ पीतांबर पहिरे, घनश्याम, प्रसन्न मुख, नेत्र, वनमाला लंबी धारै, श्रीवत्स कौस्तुभ भृगुलत्तासै शोभित ॥ ३७ ॥ महाकिरीट कडुआ धारे, दमकते भए मकराकृतकुंडल धारे कांची अंगूठी कंकण नूपुर बाजू पहिने ॥ ३८ ॥ त्रैलोक्यको मोह करायवेवारो रूप त्रिभुवनके ईश्वर धारे नारद नंद सुनंद आदि पार्षद देवनके यूथोंसे वेष्टित ॥ ३९ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ इति स्तुतः संस्तुवतः स तस्मिन्नघमर्षणे ॥ आविरासीत्कुरुश्रेष्ठ भगवान्भक्तवत्सलः ॥ ३५ ॥ कृतपादः सुपर्णांसे प्रलम्बाष्टमहाभुजः ॥ चक्रशङ्खासिचर्मेषुधनुःपाशगदाधरः ॥ ३६ ॥ पीतवासा घनश्यामः प्रसन्नवदनेक्षणः ॥ वनमालानिवीताङ्गो लसच्छ्रीवत्सकौस्तुभः ॥ ३७ ॥ महाकिरीटकटकः स्फुरन्मकरकुण्डलः ॥ काञ्च्यङ्गुलीयवलयनूपुराङ्गदभूषितः ॥ ३८ ॥ त्रैलोक्यमोहनं रूपं बिभ्रत्त्रिभुवनेश्वरः ॥ वृतो नारदनन्दाद्यैः पार्षदैः सुरयूथपैः ॥ ३९ ॥ स्तूयमानोऽनुगायद्भिः सिद्धगन्धर्वचारणैः ॥ रूपं तन्महदाश्चर्यं विचक्ष्याऽऽगतसाध्वसः ॥ ४० ॥ ननाम दण्डवद्भूमौ प्रहृष्टात्मा प्रजापतिः ॥ न किंचनोच्चारयितुमशकत्तीव्रया मुदा ॥ ४१ ॥ आपूरितमनोद्वारैर्ह्रदिन्य इव निर्झरैः ॥ स्तोत्रस्य फलमायातस्तं वन्दे पुरुषोत्तमम् ॥ ४२ ॥ तं तथाऽवनतं भक्तं प्रजाकामं प्रजापतिम् ॥ चित्तज्ञः सर्वभूतानामिदमाह जनार्दनः ॥ ४३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्राचेतस महाभाग संसिद्धस्तपसा भवान् ॥ यच्छ्रद्धया मत्परया मयि भावं परं गतः ॥ ४४ ॥

सिद्ध गंधर्व चारण दौंनो ओर खड़े स्तुतिकर रहेथे ऐसै वो महाआश्चर्यको रूप देख महाप्रीत होतीभई ॥ ४० ॥ अतिप्रसन्न आत्मा प्रजापति भूमिमें दंडवत् नमस्कार करतेभए, तीव्रआनंदके मारे कुछभी बोलवेको समर्थ नहीं होतेभए ॥ ४१ ॥ मनके द्वारा सब पूर्ण होगए, जैसे न्हदिनी झरनासे भरै तद्वत् पूर्ण होगये स्तोत्रका फल आयगयों; पुरुषोत्तमको वंदना करतेभये ॥ ४२ ॥ सबके मनकी जान्नेवारे भगवानने प्रजाकी इच्छा करनेवाले नम्रभूत अपने भक्त दक्षसै इस प्रकारके वचन कहे ॥ ४३ ॥ श्रीभगवान् बोलै कि हे प्राचेतस हे महाभाग ! तपसै आप सिद्ध भये जो

परमश्रद्धा मोमें करकै मेरेमैं परमभाव भयो ॥ ४४ ॥ हे प्रजानाथ! हम तुमपर प्रसन्न भये, जो या विश्वके वृद्धिके अर्थ तुमने तप करो है, सब जीव याही लिये मैनें उत्पन्न करे है, कि मेरी येही कामना है कि सब विभूति अधिक बढै ॥ ४५ ॥ ब्रह्मा शिव आप मनु देवनके ईश्वर ये सब मेरी विभूति हैं, ये सब बराबर है सब जीवमात्रके वृद्धिके हेतु हैं, जो जगत्कों बढावै वे मेरो प्यारै है, बढनेसे सब बात पूर्ण होय है ॥ ४६ ॥ हे ब्रह्मन् ! तप मेरो हृदय है, शरीर विद्या, क्रिया, आकार, अंग, क्रतु, धर्म, आत्मा, प्राण, देवता ये सब मेरे शरीर हैं ॥ ४७ ॥ मोअनंतमें अनंत गुण हैं, गुणोंसे गुणको विग्रह होय है आद्य हम है, हमसै स्वयं ब्रह्मा होतेभये ॥ ४८ ॥ कुछभी बाहरभीतर नही हो तब आगै हमही होतेभए चैतन्य मात्र इन्द्रियौंसै जान्नेसे

प्रीतोऽहं ते प्रजानाथ यत्तेऽस्योद्बृंहणं तपः ॥ ममैष कामो भूतानां यद्भूयासुर्विभूतयः ॥४५॥ ब्रह्मा भवो भवन्तश्च मनवो विबुधेश्वरः ॥ विभूतयो मम ह्येता भूतानां भूतिहेतवः ॥ ४६ ॥ तपो मे हृदयं ब्रह्मंस्तनुर्विद्या क्रियाऽऽकृतिः ॥ अङ्गानि क्रतवो जाता धर्म आत्माऽसवः सुराः ॥ ४७ ॥ मय्यनन्तगुणेऽनन्ते गुणतो गुणविग्रहः ॥ यदासीत्तत एवाद्यः स्वयम्भूः समभूदजः ॥ ४८ ॥ अहमेवासमेवाग्रे नान्यात्किंचान्तरं बहिः ॥ संज्ञानमात्रमव्यक्तं प्रसुप्तमिव विश्वतः ॥ ४९ ॥ स वै यदा महादेवो मम वीर्योपबृंहितः ॥ मेनेऽखिलमिवात्मानमुद्यतः सर्गकर्मणि ॥ ५० ॥ अथ मेऽभिहितो देवस्तपोऽतप्यत दारुणम् ॥ नव विश्वसृजो युष्मान्येनादावसृजद्विभुः ॥ ५१ ॥ एषा पञ्चजनस्याऽङ्ग दुहिता वै प्रजापतेः ॥ असिक्नी नाम पत्नीत्वे प्रजेश प्रतिगृह्यताम् ॥ ५२ ॥ मिथुनव्यवायधर्मस्त्वं प्रजासर्गमिमं पुनः ॥ मिथुनव्यवायधर्मिण्यां भूरिशो भावयिष्यसि ॥ ५३ ॥

अयोग्य सब ओरसे मानो सो रहाहो उस समय ऐसा हमारा स्वरूप था ॥ ४९ ॥ ब्रह्माजी हमारे वीर्यसै वर्द्धित हौनेके कारण सृष्टि उत्पन्न करनेको उद्यत हुए परन्तु उन्हौंने इस कार्यमें जब अपनेको असमर्थ माना ॥ ५० ॥ फिर मैंने देवसे कही कि तुम दारुण तप करो, तब उन्हौंने कठिन तपस्या कर तौ विश्वके रचनेवालौंको उत्पन्न किया ॥ ५१ ॥ हे अंग ! पंचजन प्रजापतिकी ये बेटी है असिक्नी याको नाम है, तुम याको स्त्रीकरकै राखो ॥ ५२ ॥ स्त्रीपुरुषके मैथुन धर्म आश्रय लेकर इन रूपवान धर्मवती कन्यामें तुम अनेक प्रजा उत्पन्न करोगे ॥ ५३ ॥

तुमसें पीछै सब प्रजा ऐसेई मैथुनरूप मायाकरकै मेरी इच्छासो होंयगी,मोको भेट देंगी ॥५४॥श्रीशुकदेवजी बोले कि ऐसे कहिकर उनके देखते देखते
भगवान् विश्वभावन जैसै सुपनेमें काऊको धन मिलै और जागेसै न दीखै तैसे अंतर्धान होगए॥५५॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां षष्ठस्कन्धे प्रचेतसां
दक्षोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि समर्थ दक्षजी श्रीविष्णुकी माया करकै वृद्धित पंचजनीमें हर्यश्व संज्ञाके
दशहजार पुत्र रचते भए ॥१॥ हे नृप ! धर्म शील सबके एकसे हे सब दाक्षायण कहाये जब प्रजा रचवेको पिताने कही तब पिताकी आज्ञासे पश्चिमकी
दिशाकूं जाते भए ॥ २ ॥ तहां सिंधुसमुद्रके बीच नारायणसरतीर्थ संगम है, बडे २ मुनि और सिद्ध रहते हैं ॥ ३ ॥ वामें स्नान पान करनेसे मल

त्वत्तोऽधस्तात्प्रजाः सर्वा मिथुनीभूय मायया ॥ मदीयया भविष्यन्ति हरिष्यन्ति च मे बलिम् ॥ ५४ ॥ श्रीशुक उवाच
॥ इत्युक्त्वा मिषतस्तस्य भगवान्विश्वभावनः ॥ स्वप्नोपलब्धार्थ इव तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥५५॥ इति श्रीभा० षष्ठ०
प्रचेतसां दक्षोत्पत्तिवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्यां स पाञ्चजन्यां वै विष्णुमायोपबृंहितः ॥
हर्यश्वसंज्ञानयुतं पुत्रानजनयद्विभुः ॥ १ ॥ अपृथग्धर्मशीलास्ते सर्वे दाक्षायणा नृप॥पित्रा प्रोक्ताः प्रजासर्गे प्रतीचीं
प्रययुर्दिशम् ॥ २ ॥ तत्र नारायणसरस्तीर्थं सिन्धुसमुद्रयोः ॥ सङ्गमो यत्र सुमहन्मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥ ३ ॥ तदुपस्पर्शनादेव
विनिर्धूतमलाशयाः ॥ धर्मे पारमहंस्ये च प्रोत्पन्नमतयोऽप्युत ॥४॥ तेपिरे तप एवोग्रं पित्रादेशेन यन्त्रिताः ॥
प्रजाविवृद्धये यत्तान्देवर्षिस्तान्ददर्श ह ॥ ५ ॥ उवाच चाथ हर्यश्वाः कथं स्रक्ष्यथ वै प्रजाः ॥ अदृष्ट्वान्तं भुवो यूयं बालिशा
बत पालकाः ॥ ६ ॥ तथैकपुरुषं राष्ट्रं बिलं चादृष्टनिर्गमम् ॥ बहुरूपां स्त्रियं चापि पुमांसं पुंश्चलीपतिम् ॥ ७ ॥

अंतःकरणके सब धूगए, पारमहंस्य धर्ममें उनकी बुद्धि लगाई ॥ ४ ॥ पिताकी आज्ञा मान उग्रतप करते भए, प्रजा बढावनेमें उद्युक्त तिन्है देवर्षी
नारदजी देखते भए ॥ ५ ॥ श्रीनारदजी बोले कि बडेकष्टकी बात है, कि ये मोक्ष मार्गके अधिकारी हैं सो प्रवृत्तिमार्गमें लगके नष्ट हो जायगे
सो कृपा करके गूढ अर्थके वाक्योंसें उपदेश करते भए, हे हर्यश्वहो ! भूमिको अंत देखेविना तुम प्रजा कैसै रचोगे तुम प्रजापालक होकरभी
अज्ञानी हो ॥ ६ ॥ तथा एक पुरुषवाला देश और जिसमें प्रवेश कर न निकला जाय ऐसी बिल बहुरूप धारिणी नारी

पुंश्चलीका पति पुरुष[१] ॥ ७ ॥ दो ओरसे वहवेवारी ऐसी एक नदी है पच्चीसतत्त्वको अद्भुत घर है चित्रविचित्र कथा करता हुआ हंस स्वयं भ्रमण करनेहारा छुरे और वज्रोंसे निर्मित तीक्ष्ण चक्र ॥ ८ ॥ तुम विद्वान् पिताकी आज्ञाको विना विचारे जो अपने योग्य है वाकूं विना जानैसे कैसे सृष्टि रचोगे ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजो बोले कि वे हर्यश्व वा बातकों सुनके अपनी स्वाभाविकबुद्धि करकै नारदजीके कहेभए वाणीके कूटकू बुद्धिसें विचारते भए ॥ १० ॥ नारदजीके कहे दश वाक्य हैं, अनादि आत्माको जन्म देनेवाला लिंग शरीर है वही भूक्षेत्र हैं वा जीव संज्ञावारे लिंग शरीरके नाशक और मोक्ष दायक कर्मोंके विना जानै असत्कर्मसे क्या होय है ॥ ११ ॥ सर्वसाक्षी एकही ईश्वर भगवान् स्वाश्रय परायण हैं, संसार निवर्तक हैं, जो पुरुष इनके विना देखे मरजाय तो असत्कर्म करवेसैं कहा होय है ॥ १२ ॥ जैसे पाताल रूप गुहामें गया हुआ प्राणी फिर लौटकै नहीं आता उनपर ज्योतिरूप परमात्माकोभी प्राप्त होकर कोही नहीं लौटता उस ब्रह्मरूप गुहाके विना जाने नाशवान स्वर्गादिके साधनवाले कर्मोंके करनैसै क्या है ॥ १३ ॥ नानारूप आत्मानके धारवेवारी बुद्धि स्वैरिणी स्त्रीकीनाई अनेक गुण धारै है वाकूं विनाजाने असत्कर्मसे कुछ नहीं होयगो ॥ १४ ॥

नदीमुभयतोवाहां पञ्चपञ्चाद्भुतं गृहम् ॥ क्वचिद्धंसं चित्रकथं क्षौरपव्यं स्वयंभ्रमि ॥ ८ ॥ कथं स्वपितुरादेशमविद्वांसो विपश्चितः ॥ अनुरूपमविज्ञाय अहो सर्गं करिष्यथ ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तन्निशम्याथ हर्यश्वा औत्पत्तिकमनीषया ॥ वाचः कूटं तु देवर्षेः स्वयं विममृशुर्धिया ॥ १० ॥ भूः क्षेत्रं जीवसंज्ञं यदनादि निजबन्धनम् ॥ अदृष्ट्वा तस्य निर्वाणं किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ ११ ॥ एक एवेश्वरस्तुर्यो भगवान्स्वाश्रयः परः ॥ तमदृष्ट्वाऽभवं पुंसः किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १२ ॥ पुमान्नैवेति यद्गत्वा बिलसर्गं गतो यथा ॥ प्रत्यग्धामाऽविद इह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १३ ॥ नानारूपात्मनो बुद्धिः स्वैरिणीव गुणान्विता ॥ तन्निष्ठामगतस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १४ ॥

---

[१] शंका–हर्यश्व जो दक्षके पुत्र हैं सो सब भाई मिलकर सृष्टि रचनेके लिये तपस्या करने लगे तब उन संबको नारदजीने सृष्टि बनानेके लिये निषेध करके योग करनेको क्यों आज्ञा दी ? सृष्टिके उत्पन्न होनेमें नारदजीकी क्या हानि थी ?

उत्तर–दक्षके पुत्रोंकी इच्छा सृष्टिके रचनेकी नहीं थी, योग करनेकी इच्छा थी परन्तु पिताकी आज्ञा मान कर सृष्टि रचनेके मिष तप करनेके लिये गये, तब नारदजी उनके हृदयकी बातको जानकर सृष्टि रचनेका निषेध किया , और योग करनेका उपदेश दिया ॥

तत्सङ्गभ्रंशितैश्वर्यं संसरन्तं कुभार्यवत् ॥ तद्गतीरबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१५॥ सृष्टच्यप्ययकरीं मायां वेलाकूलान्तवेगिताम् ॥ मत्तस्य तामविज्ञाय किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥१६॥ पञ्चविंशतितत्त्वानां पुरुषोऽद्भुतदर्पणम् ॥ अध्यात्ममबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १७ ॥ ऐश्वर्यं शास्त्रमुत्सृज्य बन्धमोक्षानुदर्शनम् ॥ विविक्तपदमज्ञाय किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १८ ॥ कालचक्रं भ्रमिस्तीक्ष्णं सर्वं निष्कर्षयज्जगत् ॥ स्वतन्त्रमबुधस्येह किमसत्कर्मभिर्भवेत् ॥ १९ ॥ शास्त्रस्य पितुरादेशं यो न वेद निवर्तकम् ॥ कथं तदनुरूपाय गुणविश्रम्भ्युपक्रमेत् ॥ २० ॥ इति व्यवसिता राजन्हर्यश्वा एकचेतसः ॥ प्रययुस्तं परिक्रम्य पन्थानमनिवर्तनम् ॥ २१ ॥

ताके संगसे याको ऐश्वर्य भ्रष्ट होय है बुरीभार्याकी नाई जीव या बुद्धिके संगसे संसारकों प्राप्त होय है, बुद्धिकी जो गति है वाको न जाननेवारे अज्ञानीकों असत्कर्मोंसे कुछ नहीं होय है ॥१५॥ उत्पत्ति नाश दोनों कार्य करनेवारी दोनों ओरसे किनारोंको उलांघनोंके वहवेवारी नदी माया है तपस्या और विद्या आदि इस नदीके कूल अर्थात् निर्गम स्थान है तथापि जो पुरुष उसके तेजके विना विचारै कर्मोंको करै उस्सै क्या फल होगा ॥ १६ ॥ पच्चीस तत्त्वोंका जो यह ग्रह बताया इसका तात्पर्य यह है कि अन्तर्यामी पुरुष पच्चीस तत्त्वके आश्चर्यवाले आश्रय है वह कार्य कारण और संघातके अधिष्ठाता हैं उनको जो पुरुष नहीं जान्ता उसको मिथ्या और स्वतंत्रतासै किये कर्मोंसै क्या है ॥ १७ ॥ विचित्र कथा रूप हंस यह है कि ईश्वरके प्रतिपादक शास्त्रौंमें चित्त और जडरूप वस्तु विशेष रूपसै विचारी जाती है इसकारण वह हंस स्वरूप है जैसे दूध जलको अलग करताहै ऐसेही शास्त्र अचेतन और चैतन्य वस्तुको भिन्न भिन्न करदेता है किस कर्मसै बंधन और किस्सै मुक्ति है इसै दिखाताहै इस कारण उसकी सबकथा विचित्र है इस शास्त्रको न जानकै केवल बहिर्मुख कर्मसै क्या होगा ॥ १८ ॥ और तीक्ष्ण चक्रका तात्पर्य यह है कि यह तीक्ष्ण कालचक्र है अपने आप रातदिन घूमता रहता है और सब संसारको संहार करता है इस कारण स्वतंत्र है उस कालचक्रकी गतिको विना जाने असत्कर्मोंसै क्या है ॥ १९॥ अपने पिताकीसी आज्ञा जो शास्त्रकी है जासै मोक्ष होयहै वाको विनाजाने गुणोंमें विश्वास करवेवारो कैसे सृष्टि रचैगो ॥ दसकूट ॥ " मोक्षेशब्रह्मबुद्धीनां जीवमायांतरात्मनां ॥ शास्त्रकालोपदेशानामज्ञाने किमु कर्मभिरिति " ॥२०॥ एक चित्तकर वे हर्यश्व

ऐसे निश्चयकर श्रीनारदजीकी परिक्रमा कर जहांको गयो फेर यहां नहीं आवैहै ऐसे श्रीवैकुंठको जाते भये ॥२१॥ स्वररूप ब्रह्मप्रकाशमान भगवत्के चरणकमलमें अखंड चित्त लगाय नारदजी लोकनमें विचरते भये (१) ॥२२ ॥ महाशीलवारे पुत्रनको नारदजीसे नाश सुन दक्ष बडो शोक करतो भयो, अच्छे पुत्रवालाही शोकका स्थान है फिर भले सर्वश्रेष्ठ संतानके निमित्त दक्षको क्यों न शोक हो ॥ २३॥ फेर ब्रह्माजीके शांत करनेपर पंचजनीमें दक्ष शबलाश्वसंज्ञक हजार पुत्र रचै ॥२४॥ वे पिताकी आज्ञा ले प्रजाके रचवेमें व्रत धार नारायण सरपर तप करवेको जाते भये जहां इनके

स्वरब्रह्मणि निर्भातहृषीकेशपदाम्बुजे ॥ अखण्डं चित्तमावेश्य लोकाननुचरन्मुनिः ॥ २२ ॥ नाशं निशम्य पुत्राणां नारदाच्छीलशालिनाम् ॥ अन्वतप्यत कः शोचन् सुप्रजस्त्वं शुचां पदम् ॥२३॥ स भूयः पाञ्चजन्यायामजेन परिसान्त्वितः ॥ पुत्रानजनयद् दक्षः शबलाश्वान् सहस्रशः ॥ २४ ॥ तेपि पित्रा समादिष्टाः प्रजासर्गे धृतव्रताः ॥ नारायणसरो जग्मुर्यत्र सिद्धाः स्वपूर्वजाः ॥ २५ ॥ तदुपस्पर्शनादेव विनिर्धूतमलाशयाः ॥ जपन्तो ब्रह्म परमं तेपुस्तत्र महत्तपः ॥ २६ ॥ अब्भक्षाः कतिचिन्मासान् कतिचिद् वायुभोजनाः ॥ आराधयन्मन्त्रमिममभ्यस्यन्त इडस्पतिम् ॥ २७॥ ॐनमो नारायणाय पुरुषाय महात्मने ॥ विशुद्धसत्त्वधिष्ण्याय महाहंसाय धीमहि ॥ २८ ॥ इति तानपि राजेन्द्र प्रतिसर्गधियो मुनिः ॥ उपेत्य नारदः प्राह वाचः कूटानि पूर्ववत् ॥ २९ ॥

पहिले भैया तपकर सिद्धभए ॥ २५ ॥ वामें स्नान करनेसे सब मल दूर हो अंतकरण शुद्ध हो गये, परब्रह्मको जप करते महातप करते भये ॥ २६ ॥ कुछ महीना जलपान कर रहे कुछ मास पवन आहार करकैं रहें, यामंत्रको आराधन करते भये, श्रीविष्णुको आराधन करते भये ॥ २७ ॥ ॐकाररूप परब्रह्म महात्मा पुरुष श्रीमन्नारायणके अर्थ नमस्कार होय विशुद्ध सत्त्वस्थानमें रहिवेवारे महाहंसरूपको हम ध्यान करे हैं ॥ २८ ॥ हे राजेंद्र ! सर्ग न बढावनेकी इच्छावारे नारदमुनि पहिलेकी नाई उनसेभी वाणीके कूट आयकर कहिते भये ॥ २९ ॥

---

(१) वो स्वरब्रह्मको ये सरगम भैरवीकी है ॥ तिताला धीमा ॥ टप्पा ॥ " सारेगमधमपगधधपमगमपधमपग ॥ आस्ताई ॥ धधनी साधनिसागरेसानिधरेसानिधपमगरेसासारेगम रेगमपगमप धमप धनिप धनिसा सानिधप निधपम धपमगपमगरेमगरेसा ॥ १ ॥

हे दाक्षायणहो ! मेरो कह्यो भयो उपदेश सुनो हे भैयानके चाहवेवारे, भाई जा पदवीको गए वाको तुमभी जाओ ॥ ३० ॥ जो भैयाकी गतिको भैया जाय वोही धर्मवेत्ता है, वो पुण्यबंधु है, वे मरुतोंके संग आनन्दसें वसै है ॥ ३१ ॥ अमोघदर्शनवारे नारदजी ऐसें कहिकै चलेगए हे परीक्षित् ! भैयानकी पदवी ढूंढ वा वैकुंठकों वेभी जातेभये ॥ ३२ ॥ वहुत सुंदर प्राचीन परमेश्वरके मार्गको जातेभये, जैसे पश्चिमकी गई रात वगदके न आवै तैसे आजतक वे नहीं लोटते भये ॥३३ ॥ इतनेमें प्रजापति वहुत उत्पात देखते भये पहिलेकी नाई नारदने पुत्र नाश करै ये सुनते भये ॥ ३४ ॥ पुत्र शोकसे मूर्छित दो नारदको क्रोधसे कोसतोभयो, रोषसे होठ फरकने लगे सो सामने आते नारदको देख बोलो " श्रीनारदजीने विचारो कि जाके पुत्रनको नैक उपदेशसे ज्ञान लगजाय है सो याके पिताकूं तो शीघ्र ज्ञान हो जायगो यह विचार कर नारदजी आये तव दक्ष कोपकर बोलै " ॥३५ ॥ दक्ष बोले कि हे असाधो ! साधूनके चिन्ह करकै तुमनै वहुत असाधुपन करो, मेरे छोटे बालकोंको भिक्षुनको मार्ग दिखाय दीनो ॥ ३६ ॥ तीनऋणोंसे विनाछूटे कर्मोंकी मीमांसा करेविना हे पापरूप ! तैंनें कल्याणको विघात करो, लोक परलोक दोनों बिगाडे " मनुस्मृतिमें है कि ॥ ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत् ॥ अनपाकृत्य मोक्षं तु सेवमानो व्रजत्यधः ॥ श्रुतिः ॥ जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणैर्ऋणवान् जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः । एष वा अनृणो यः पुत्री यज्वा ब्रह्मचारी वासीति श्रुतेः " ॥ ३७ ॥

दाक्षायणाः संशृणुत गदतो निगमं मम ॥ अन्विच्छतानुपदवीं भ्रातॄणां भ्रातृवत्सलाः ॥ ३० ॥ भ्रातॄणां प्रायणं भ्राता
योऽनुतिष्ठति धर्मवित् ॥ स पुण्यबन्धुः पुरुषो मरुद्भिः सह मोदते ॥ ३१ ॥ एतावदुक्त्वा प्रययौ नारदोऽमोघदर्शनः ॥
तेऽपि चान्वगमन् मार्गं भ्रातॄणामेव मारिषः ॥ ३२ ॥ सध्रीचीनं प्रतीचीनं परस्यानुपथं गताः ॥ नाद्यापि ते निवर्तन्ते
पश्चिमा यामिनीरिव ॥ ३३ ॥ एतस्मिन् काल उत्पातान् बहून् पश्यन् प्रजापतिः ॥ पूर्ववन्नारदकृतं पुत्रनाशमुपाशृणोत् ॥ ३४ ॥ चुक्रोध नारदायासौ पुत्रशोकविमूर्च्छितः ॥ देवर्षिमुपलभ्याऽह रोषाद् विस्फुरिताधरः ॥ ३५ ॥
दक्ष उवाच ॥ अहो असाधो साधूनां साधुलिङ्गेन नस्त्वया ॥ असाध्वकार्यर्भकाणां भिक्षोर्मार्गः प्रदर्शितः ॥ ३६ ॥
ऋणैस्त्रिभिरमुक्तानाममीमांसितकर्मणाम् ॥ विघातः श्रेयसः पाप लोकयोरुभयोः कृतः ॥ ३७ ॥

ऐसे तुम निर्दयी हो, बालकनको मति बिगाडवेवारे श्रीहरिके पार्षदोंके मध्यमें विचरो हो, तुम यशनाशी निर्दयी हो ॥ ३८ ॥ निश्चय है कि तुह्मारे सिवाय भागवत नित्य सब जीवपर अनुग्रह करै है, परंतु तुम मित्रौंसै द्रोह करते हो, जो काउसे वैर न करै उनके वैर करवेवारे तुम हो ॥ ३९ ॥ जो तुम ऐसे मनमें समझतेहो कि स्नेहरूपी पाशको छेदन करनेवाला वैराग्य है तौभी तुमसरीखे झूंठे वैरागियोंका भेष बनाये फिरनेवालोंके उपदेशसै जिसमें ठगई भरी है पुरुषौंका वैराग्य नहीं होता ॥ ४० ॥ जबतक ये काऊ बातको आप अनुभव करैहै तबतक विषयनकी तीक्षणतासे जो आप वैराग्यवान् होय तो ठीक है औरोंके सिखानेसै जो बुद्धिभिन्न कारणसै ज्ञान होता है वह कुछ नहीं है ॥ ४१ ॥ कर्मकांड करवेवारे साधु

एवं त्वं निरनुक्रोशो बालानां मतिभिद् हरेः ॥ पार्षदमध्ये चरसि यशोहा निरपत्रपः ॥ ३८ ॥ ननु भागवता नित्यं भूतानुग्रहकातराः ॥ ऋते त्वां सौहृदघ्नं वै वैरंकरमवैरिणाम् ॥ ३९ ॥ नेत्थं पुंसां विरागः स्यात् त्वया केवलिना मृषा ॥ मन्यसे यद्युपशमं स्नेहपाशनिकृन्तनम् ॥ ४० ॥ नानुभूय न जानाति पुमान् विषयतीक्ष्णताम् ॥ निर्विद्येत स्वयं तस्मान्न तथा भिन्नधीः परैः ॥ ४१ ॥ यन्नस्त्वं कर्मसंधानां साधूनां गृहमेधिनाम् ॥ कृतवानसि दुर्मर्ष विप्रियं तव मर्षितम् ॥ ४२ ॥ तन्तुकृन्तन यन्नस्त्वमभद्रमचरः पुनः ॥ तस्माल्लोकेषु ते मूढ न भवेद् भ्रमतः पदम् ॥ ४३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ प्रतिजग्राह तद्बाढं नारदः साधुसंमतः ॥ एतावान् साधुवादो हि तितिक्षेतेश्वरः स्वयम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे दक्षनारदशापो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततः प्राचेतसोऽसिक्न्यामनुनीतः स्वयंभुवा ॥ षष्टिं संजनयामास दुहितॄः पितृवत्सलाः ॥ १ ॥

गृहस्थीनको तैंनै बडो बुरो कीनो यासे मैं तोपर बडो कुपित हूं ॥ ४२ ॥ हे पुत्रनाशक ! तैंनै बडो अमंगलआचरण करो याते हे मूढ ! तुम एक जगै जो बैठोगे तो शिरमें दर्द होयगो और लोकमें भ्रमण करते २ तुह्मै कहीं ठिकाना न लगैगा ॥ ४३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि साधुनमें संमत नारद बहुत अच्छा ऐसें कहि शाप अंगीकार करतेभये, साधुनकी येही बात है कि ईश्वर समर्थ होयकर आप सहनशील करै वोही धन्य है ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां षष्ठस्कन्धे नारदशापो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि ताके उपरांत दक्षने ब्रह्माजीकी आज्ञासै

असिक्नीस्त्रीमें पिताकूं प्यारी साठ कन्या जन्माई, क्यों कि स्त्रीको एकाएकी ज्ञान नहीं होय है, वह काईमें कम आवै हैं स्त्री मायाका विकार है ॥ १ ॥ दश धर्मकों व्याही कश्यपको १२ दई, चंद्रमाको २७ दीनी, भूतांगिरकृशाश्वकों दो दो दी बाकी गरुडकों व्याही ॥ २ ॥ मोसे पुत्रसहित इनके नाम सुनो जिनकी संतानोंसे त्रिलोकी भरगई ॥ ३ ॥ भानु, लंबा, ककुव, जामि, विश्वा, साध्या, मरुत्वती, वसु, मुहूर्ता, संकल्पा, ये धर्मकी स्त्री हैं इनके पुत्र सुनो ॥ ४ ॥ भानुको देवऋषभ, वाको इंद्रसेन भयो हे नृप ! लंबाको विद्योत भयो, वाको स्तनयित्नु भयो ॥ ५ ॥ ककुभके संकट

दश धर्माय कायेन्दोर्द्विषट् त्रिणव दत्तवान् ॥ भूताङ्गिरःकृशाश्वेभ्यो द्वे द्वे तार्क्ष्याय चापराः॥ २ ॥ नामधेयान्यमूषां त्वं सापत्यानां च मे शृणु ॥ यासां प्रसूतिप्रसवैर्लोका आपूरितास्त्रयः ॥ ३ ॥ भानुर्लम्बा ककुब् जामिर्विश्वा साध्या मरुत्त्वती ॥ वसुर्मुहूर्ता संकल्पा धर्मपत्न्यः सुताञ्छृणु ॥४॥ भानोस्तु देवऋषभ इन्द्रसेनस्ततो नृप ॥ विद्योत आसील्लम्बायास्ततश्च स्तनयित्नवः॥५॥ककुभः संकटस्तस्य कीकटस्तनयो यतः ॥ भुवो दुर्गाणि जामेयः स्वर्गो नन्दिस्ततोऽभवत् ॥ ६ ॥ विश्वेदेवास्तु विश्वाया अप्रजांस्तान् प्रचक्षते ॥ साध्यो गणस्तु साध्याया अर्थसिद्धिस्तु तत्सुतः ॥७॥ मरुत्त्वांश्च जयन्तश्च मरुत्वत्या बभूवतुः ॥ जयन्तो वासुदेवांश उपेन्द्र इति यं विदुः ॥ ८ ॥ मौहूर्तिका देवगणा मुहूर्तायाश्च जज्ञिरे ॥ ये वै फलं प्रयच्छन्ति भूतानां स्वस्वकालजम् ॥ ९ ॥ संकलपायाश्च संकल्पः कामः संकल्पजः स्मृतः ॥ वसवोऽष्टौ वसोः पुत्रास्तेषां नामानि मे शृणु ॥ १० ॥ द्रोणः प्राणो ध्रुवोऽर्कोऽग्निर्दोषो वसुर्विभावसुः ॥ द्रोणस्याभिमतेः पत्न्या हर्षशोकभयादयः ॥ ११ ॥

वाको कीकट पुत्र भयो जामिके भुव दुर्ग भयो, वाके स्वर्ग नंदि भयो ॥ ६ ॥ विश्वाके विश्वेदेवा भये, इनके संतान न भई, साध्याके साध्यगण भए अर्थसिद्धि वाको पुत्र होतो भयो ॥ ७ ॥ मरुत्वान् और जयंत मरुत्वतीमें भये, जयंत वासुदेवको अंश है वाको उपेंद्रभी कहैं है ॥ ८ ॥ मुहूर्तमात्र जितने देवगण हैं ये मुहूर्तके पुत्र भए, जो वे सब जीवनको अपने अपने कालको फल देते हैं ॥ ९ ॥ संकलपाके संकल्प पुत्र भए, सब काम संकल्पसे होय हैं, अष्टवसु वसुके पुत्र हैं, तिनके नाम सुनो ॥ १० ॥ द्रोण, प्राण, ध्रुव, अर्क, अग्नि, दोष, वसु, विभावसु, द्रोणकी अभिमती भार्यामें हर्ष

शोक भय आदि पुत्र होतेभए ॥ ११ ॥ प्राणकी ऊर्जस्वती भार्या, सह आयु, पुरोजव जन्मातीभई, ध्रुवकी धरणी भार्या अनेकपुत्र रचती भई ॥१२॥ अर्ककी वासना भार्या तर्षादिक पुत्र रचती भई, अग्नि वसुकी धारा स्त्री द्रविण आदि पुत्र रचतीभई ॥ १३ ॥ कृत्तिकाके पुत्र स्कंद हुए स्कंदके विशाखा आदि पुत्रभये दोषके शर्वरी नाम भार्यामें भगवानका अंशकला शिशुमार पुत्र हुआ ॥ १४ ॥ वसुके अंगिरा गोत्री पुत्र विश्वकर्मा शिल्पशास्त्रके आचार्य होते भए ॥ १५ ॥ विभावसुकी उषा स्त्री व्युष्ट रोचिष आतप रचतीभई आतपने पांच आयाम भूत जाग्रत कर्ममें साक्षी

प्राणस्योर्जस्वती भार्या सह आयुः पुरोजवः ॥ ध्रुवस्य भार्या धरणिरसूत विविधाः पुरः ॥ १२ ॥ अर्कस्य वासना भार्या पुत्रास्तर्षादयः स्मृताः ॥ अग्नेर्भार्या वसोर्धारा पुत्रा द्रविणकादयः ॥ १३ ॥ स्कदश्च कृत्तिकापुत्रो ये विशाखादयस्ततः ॥ दोषस्य शर्वरीपुत्रः शिशुमारो हरेः कला ॥१४॥ वसोराङ्गिरसी पुत्रो विश्वकर्मा कृतीपतिः ॥ ततो मनुश्चाक्षुषोऽभूद् विश्वे साध्या मनोः सुताः ॥ १५ ॥ विभावसोरसूतोषा व्युष्टं रोचिषमातपम् ॥ पञ्च यामोऽथ भूतानि येन जाग्रति कर्मसु ॥ १६ ॥ सरूपाऽसूत भूतस्य भार्या रुद्रांश्च कोटिशः ॥ रैवतोऽजो भवो भीमो वाम उग्रो वृषाकपिः ॥१७॥ अजैकपादहिर्बुध्न्यो बहुरूपो महानिति॥रुद्रस्य पार्षदाश्चान्ये प्रेतभूतविनायकाः॥१८॥ प्रजापतेराङ्गिरसः स्वधा पत्नी पितॄनथ ॥ अथर्वाङ्गिरसं वेदं पुत्रत्वे चाकरोत् सती ॥ १९॥कृशाश्वोऽर्चिषि भार्यायां धूम्रकेशमजीजनत् ॥ धिषणायां वेदशिरा देवलं वयुनं मनुम्॥२०॥तार्क्ष्यस्य विनता कद्रूः पतङ्गी यामिनी इति॥पतङ्ग्यसूत पतगान् यामिनी शलभानथ ॥ २१ ॥

रचै ॥ १६ ॥ भूतकी सरूपा भार्या कोटानकोट भूत रचती भई, रैवत अज भव वाम उग्र वृषाकपि ॥ १७ ॥ अजैकपात् अहिर्बुध्न्य बहुरूप महान् ये एकादश रुद्र भए, रुद्रके और बहुतपार्षद दूसरी स्त्रीमें घोर विनायक आदिक होते भए ॥ १८ ॥ अंगिरा गोत्री प्रजापतिकी स्वधापत्नी पितरनकों रचतीभई ताकी स्त्री अथर्वा अंगिरसवेदको पुत्रभावमें करतीभई ॥ १९ ॥ कृशाश्वकी अर्चिभार्या धूम्रकेशको उत्पन्न करतीभई, वेदशिरा धिषणामें देवल वयुन मनु उत्पन्न करतीभई ॥ २० ॥ तार्क्ष्य मुनिकी विनता कद्रू पतंगी यामिनी स्त्रियें थी पतंगी पक्षीनको रचतीभई,

यामिनी शलभ टीडी रचती भई ॥ २१ ॥ सुपर्णा साक्षात् यज्ञ ईश्वर वैकुंठनाथके वाहन गरुडजीको रचती भई “ एक समय गरुडजीके गर्व भयो कि सबसे हम शीघ्र चले हैं यासे भगवत्के वाहन भए हमसे जल्दी चलवेवारो कोई जीव विश्वमें नही है ये बात श्रीहरिने सुन कही कि हे गरुड ! केतुमालखंडके समुद्रसें परे एक टापूपर एक ब्राह्मण हमारो भक्त शरीर त्यागेगो वाय यहां शरीर न त्यागे तासे पहिले देहसहित जल्दी जायके लाओ, सो मनसेभी लक्षगुण अधिक एक पलमें गरुड भगे, सो पहिले सूर्य अस्त भयों वा दिन टिके दूसरे दिन टिके तीसरे दिन वा टापूमें मच्छके मुखपर टिके तब वोह मच्छ इन्है देख बोले तुम कौन ? वो बोले गरुड हैं मच्छ बोलो कितो वेग है उननें कही बहुत है, मच्छ बोले कुछभी नहो, तुम पहिले दिन पूंछपर दिनभर चले दूसरे दिन कंधेपे सोए तीसरे दिन मुखपर सांझ भई वो ब्राह्मण तौ वैकुंठमें गयौ तुझमें कुछ शीघ्र चलना नहीं

सुपर्णाऽसूत गरुडं साक्षाद् यज्ञेशवाहनम् ॥ सूर्यसूतमनूरुं च कद्रूर्नागाननेकशः ॥ २२ ॥ कृत्तिकादीनि नक्षत्राणीन्दोः पत्न्यस्तु भारत ॥ दक्षशापात् सोऽनपत्यस्तासु यक्ष्मग्रहार्दितः ॥ २३ ॥ पुनः प्रसाद्य तं सोमः कला लेभे क्षयोदिताः ॥ शृणु नामानि लोकानां मातृणां शंकराणि च ॥ २४ ॥ अथ कश्यपपत्नीनां यत्प्रसूतमिदं जगत् ॥ अदितिर्दितिर्दनुः काष्ठा अरिष्टा सुरसा इला ॥ २५ ॥ मुनिः क्रोधवशा ताम्रा सुरभिः सरमा तिमिः ॥ तिमेर्यादोगणा आसन् श्वापदाः सरमासुताः ॥ २६ ॥

मोको देख, तब गरुडजी हार मान गर्व शांतकर भगवतके चरणोंमें गिरपडे भगवान् बोले भाई अनेक बडे जीव हैं वे तोसौं क्रोडगुणें भागसकै हैं खैर हमारी कृपासै तुम्हेभी यह शक्ति मिली है ” वे गरुडको सुपर्णा उत्पन्न करती भई, और दूसरा सूर्यका सारथी अरुण हुआ कद्रूने अनेक नाग रचै हैं ॥ २२ ॥ हे भारत ! कृत्तिकादि नक्षत्र चंद्रमाकी स्त्री भई दक्षके शापसे चंद्रमा संतानहीन रहे, राजयक्ष्माको रोग भयो ॥ २३ ॥ फेर चंद्रमा क्षय होय बढैं, ऐसी कलानको प्राप्त होतेभये, अब उन मातृनके नाम सुनो जो लोकनकी कल्याण करवेवारी भई ॥ २४ ॥ अब कश्यपकी स्त्रीनकरके ये सब जगत् भयो, अदिति दिति दनु काष्ठा अरिष्ट सुरसा इला ॥ २५ ॥ मुनि, क्रोधवशा, ताम्रा, सुरभि, सरमा, तिमि, तिमिके सब जलमात्रके

जीव भए पशुमात्र सरमाके भएं ॥ २६ ॥ हे नृप ! सुरभीके भैसा बैल और जो दोखुरचिरे जीव, ये सब भये, ताम्राके शिक्रा गीधआदि भए, मुनिस्त्रीके अप्सरानके गण भये ॥ २७ ॥ हे राजन् ! दंदशूकआदि सर्प क्रोधवशाके भए, इलाके सब वृक्ष जन्मै, सुरसाके सब यातुधान राक्षस भए ॥२८॥ अरिष्टाके गंधर्व भए काष्ठाके एकशफके जीव भए दनुके पुत्र इकषट भये, तिनमें प्रधानोंके नाम सुनों ॥ २९ ॥ द्विमूर्द्धा, शंबरासुर, अरिष्ट, हयग्रीव,

सुरभेर्महिषा गावो ये चान्ये द्विशफा नृप ॥ ताम्रायाः श्येनगृध्राद्या मुनेरप्सरसां गणाः ॥ २७ ॥ दन्दशूकादयः सर्पा राजन् क्रोधवशात्मजाः ॥ इलाया भूरुहाः सर्वे यातुधानाश्च सौरसाः ॥ २८ ॥ अरिष्टायाश्च गन्धर्वाः काष्ठाया द्विशफेतराः ॥ सुता दनोरेकषष्टिस्तेषां प्राधानिकान् शृणु ॥ २९ ॥ द्विमूर्धा शम्बरोऽरिष्टो हयग्रीवो विभावसुः ॥ अयोमुखः शङ्कुशिराः स्वर्भानुः कपिलोऽरुणः ॥ ३० ॥ पुलोमा वृषपर्वा च एकचक्रोऽनुतापनः ॥ धूमकेशो विरूपाक्षो विप्रचित्तिश्च दुर्जयः ॥ ३१ ॥ स्वर्भानोः सुप्रभां कन्यामुवाह नमुचिः किल ॥ वृषपर्वणस्तु शर्मिष्ठां ययातिर्नाहुषो बली ॥ ३२ ॥ वैश्वानरसुतायाश्च चतस्रश्चारुदर्शनाः ॥ उपदानवी हयशिरा पुलोमा कालका तथा ॥ ३३ ॥

विभावसु, अयोमुख, शंकुशिर, स्वर्भानु, कपिल, अरुण, ॥ ३० ॥ पुलोमा, वृषपर्वा, एकचक्र, अनुतापन, धूमकेश, विरूपाक्ष, विप्रचित्ति, दुर्जय ॥ ॥ ३१ ॥ स्वर्भानुकी सुप्रभा कन्या नमुचिने व्याही, वृषपर्वाकी शर्मिष्ठा ययाती नाहुषबलीनै व्याही ॥ ३२ ॥ वैश्वानरकी सुंदर चार सुता भई उपदानवी हयशिरा पुलोमा कालका ॥ ३३ ॥

---

१ शंका–कश्यपमुनिकी तिमि सरमा इला, सुरसा आदि स्त्रीयें थीं, जिनके तृण, सर्प, गीध, जलचर, कुत्ते, इत्यादि ऐसे ऐसे पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके ऐसे ऐसे पुत्र हुए सो सब स्त्री जातिकी ब्राह्मणी थी उन्होने श्वानादिक जो पुत्र उत्पन्न किये, सो उनका स्वरूप उनकी माताओंकासा था अथवा और किसी प्रकारका था ? यह मुझको बडा भारी सन्देह है कि ब्राह्मणियोंके उदरसे ऐसी कुत्सित सन्तान क्यों उत्पन्न हुई ?

उत्तर–जैसा सीपमें मोती होताहै, वैसाही हाथीके मस्तकमें गजमोती होता है, जैसे मृगकी नाभिमें कस्तूरी होती है वैसाही गायके कानमें गोरोचन होता है, जैसा वांसमें वंशलोचन होताहै वैसेही ब्रह्माकी इच्छासे तिमि सुरसा इला आदि लेकर कश्यप मुनिकी स्त्री थी, और जातिकी ब्राह्मणीभी थी कुछ पशु, पक्षीरूप नहीं थी, परन्तु विधाताकी गति बडी अपरम्पार है, इसलिये ब्राह्मणियोंके पेटसे सब जीव, जन्तु, पशु, पक्षी उत्पन्न हुए ॥

हिरण्याक्ष उपदानवीको व्याहतो भयो हे नृप! क्रतु हयशिरको व्याहतेभए पुलोमा कालका ये दोनों वैश्वानरकी कन्या कश्यपने व्याही ॥ ३४ ॥ भगवान् कश्यप ब्रह्माकरकै प्रेरित व्याह करतेभए, पौलोम कालकेय दानव युद्धशाली महायुद्ध करवेवारे भए ॥ ३५ ॥ हे राजन्! तुह्मारे पिताके पिता इंद्रके प्रिय करवेवारे जब स्वर्गमें गए तब वे अर्जुन तिन यज्ञके नाशक साठहजारनकों मारते भए ॥ २६ ॥ दितिके सुत हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु भए, हे पुत्रसत्तम! सिंहिका नाम एक कन्या भई ॥ ३७ ॥ विप्राचित्ति सिंहिकामें एक ऊपर सौ पुत्र उत्पन्न करतो भयो, राहु ज्येष्ठ हो, केतु

उपदानवीं हिरण्याक्षः क्रतुर्हयशिरां नृप ॥ पुलोमां कालकां च द्वे वैश्वानरसुते तु कः ॥ ३४ ॥ उपयेमेऽथ भगवान् कश्यपो ब्रह्मचोदितः ॥ पौलोमाः कालकेयाश्च दानवा युद्धशालिनः ॥ ३५ ॥ तयोः षष्टिसहस्राणि यज्ञघ्नांस्ते पितुः पिता ॥ जघान स्वर्गतो राजन्नेक इन्द्रप्रियंकरः ॥ ३६ ॥ दितेः सुतो हिरण्याक्षो हिरण्यकशिपुस्तथा ॥ कन्या च सिंहिका नाम बभूव कुरुसत्तम ॥ ३७ ॥ विप्रचित्तिः सिंहिकायां शतं चैकमजीजनत् ॥ राहुज्येष्ठं केतुशतं ग्रहत्वं य उपागतः ॥ ३८ ॥ अथातः श्रूयतां वंशो योदितेरनुपूर्वशः ॥ यत्र नारायणो देवः स्वांशेनावतरद्विभुः ॥ ३९ ॥ विवस्वानर्यमा पूषा त्वष्टाऽथ सविता भगः ॥ धाता विधाता वरुणो मित्रः शक्र उरुक्रमः ॥ ४० ॥ विवस्वतः श्राद्धदेवं संज्ञासूयत वै मनुम् ॥ मिथुनं च महाभागा यमं देवं यमीं तथा ॥ सा वै भूत्वाऽथ वडवा नासत्यौ सुषुवे भुवि ॥ ४१ ॥ छाया शनैश्चरं लेभे सावर्णिं च मनुं ततः ॥ कन्यां च तपतीं या वै वव्रे संवरणं पतिम् ॥ ४२ ॥

शतवो जो ग्रहभावकों प्राप्त भयो ॥ ३८ ॥ अब अदितीको वंश प्रारंभसे सुनो जहां नारायणदेव विभु अपने अंशसे अवतार लेते भए ॥ ३९ ॥ विवस्वान् अर्यमा पूषा त्वष्टा सविता भग धाता विधाता वरुण मित्र शक्र उरुक्रम ये द्वादश सूर्य हैं अदितीसै उत्पन्न भये ॥ ४० ॥ विवस्वानकी संज्ञा स्त्री श्राद्धदेवमनुकों उत्पन्न करतीभई, महाभगवान्ने एक जोड़ा जन्मायो यमदेव यमीकन्या वोही वडवा घोडी बनके भूमिमें अश्विनीकुमारको रचती भई ॥ ४१ ॥ छायाके शनैश्चर होतो भयो, पाछै सावर्ण मनु भए, और तपती नामनी कन्या भई जो संवरण पतिको व्याहतीभई ॥ ४२ ॥

अर्यमाकी मातृका पत्नी तिनमें चर्षणी नाम पुत्र उत्पन्न हुए जिनमें मनुष्यकी जात ब्रह्माजीने कल्पना करी मनुष्य जाती सबसें उत्तम है ज्ञानके योग्य है मनुष्यसेही सब और जात होती है॥ ४३ ॥ पूषाके पुत्र नहीं हुआ पिष्टको खातो है पहिलेही याके दांत तोड दिये हैं, यह दक्षके वचनौंसै ब्रह्मसमाजमें दांत दिखाकर हंसाथा ॥ ४४ ॥ त्वष्टाकी भार्या रचना नामवाली दैत्योंकी छोटी बहन ही उसके संनिवेश, वीर्यवान् विश्वरूप दो पुत्र भये ॥ ४५॥ वो द्वेष करतो हो तोहूं वा दोहितेकों देवतानने एक समय वर्ण बांध पुरोहित करयो, जब कि विमन होयके अंगिरा गोत्री बृहस्पतीने सब देवतानकी पुरोहिताई दीनीही ॥ ४६ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां षष्ठस्कन्धे दक्षकन्यावंशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

अर्यम्णो मातृका पत्नी तयोश्चर्षणयः सुताः ॥ यत्र वै मानुषी जातिर्ब्रह्मणा चोपकल्पिता ॥ ४३ ॥ पूषाऽनपत्यः पिष्टादो भग्नदन्तोऽभवत् पुरा ॥ योऽसौ दक्षाय कुपितं जहास विवृतद्विजः ॥ ४४ ॥ त्वष्टुर्दैत्यानुजा भार्या रचना नाम कन्यका ॥ सन्निवेशस्तयोर्जज्ञे विश्वरूपश्च वीर्यवान् ॥ ४५ ॥ तं वव्रिरे सुरगणा दौहित्रं द्विषतामपि ॥ विमतेन परित्यक्ता गुरुणाङ्गिरसेन यद् ॥ ४६ ॥ इति श्रीभा० षष्ठ० दक्षकन्यावंशवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ राजोवाच ॥ कस्य हेतोः परित्यक्ता आचार्येणात्मनः सुराः ॥ एतदाचक्ष्व भगवन् शिष्याणामक्रमं गुरौ ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रस्त्रिभुवनैश्वर्यमदोल्लङ्घितसत्पथः ॥ मरुद्भिर्वसुभी रुद्रैरादित्यैर्ऋभुभिर्नृप ॥ २ ॥ विश्वेदेवैश्च साध्यैश्च नासत्याभ्यां परिश्रितः ॥ सिद्धचारणगन्धर्वैर्मुनिभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ ३ ॥ विद्याधराप्सरोभिश्च किन्नरैः पतगोरगैः ॥ निषेव्यमाणो मघवान् स्तूयमानश्च भारत ॥ ४ ॥

राजा परीक्षित् बोले कि हे भगवन्! बृहस्पतिने अपने प्यारे देवता किस हेतुसे त्यागै सो कहो, शिष्योंके कहा अपराध गुरुमें भयो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृप ! इंद्र त्रिभुवनके ऐश्वर्य होनेसे मदांध होयकै सतोंके मार्गकी अवज्ञा करतो भयो, मरुत् अष्टवसु १२ आदित्य ऋभु इनके बीचमें ऊंचेपर बैठो ॥ २ ॥ विश्वेदेवा साध्य अश्विनीकुमार ये बैठे थे, सिद्ध चारण गंधर्व मुनि ब्रह्मवादी बैठे थे ॥ ३ ॥ विद्याधर अप्सरा किन्नर पक्षी उरग ये सब इंद्रकी सेवा करतेथे, हे राजन् ! चारों ओरसे स्तुति होती थी ॥ ४ ॥

सुंदर ललित राग गायो जातो हो, अपने आसनपर बैठो ध्यानमें मग्न हो श्वेतच्छत्र लगो जो चंद्रमंडल समान सुंदर हो ॥ ५ ॥ औरभी महाराजोंके चामर व्यजन आदिक सुख तिन करकै युक्त हो, आधे आसनपर पौलोमीके साथ आनन्दसे विराजमान है ॥ ६ ॥ सो एक समय देवनके और अपने परम आचार्य बृहस्पतिजीकों आए देख उठनो आसन देनो ये सत्कार न करतो भयो ॥ ७ ॥ वाणियोंके पति सुर असुर सब जाकूं नमस्कार

उपगीयमानो ललितमास्थानाध्यासनाश्रितः ॥ पाण्डुरेणातपत्रेण चन्द्रमण्डलचारुणा ॥५॥ युक्तश्चान्यैः पारमेष्ठ्यैश्चामरव्यजनादिभिः ॥ विराजमानः पौलोम्या सहार्धासनया भृशम् ॥ ६ ॥ स यदा परमाचार्यं देवानामात्मनश्च ह ॥ नाभ्यनन्दत संप्राप्तं प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ ७ ॥ वाचस्पतिं मुनिवरं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ नोच्चचालासनादिन्द्रः पश्यन्नपि सभागतम् ॥ ८ ॥ ततो निर्गत्य सहसा कविराङ्गिरसः प्रभुः ॥ आययौ स्वगृहं तूष्णीं विद्वाञ्छ्रीमदविक्रियाम् ॥ ९ ॥ तर्ह्येव प्रतिबुध्येन्द्रो गुरुहेलनमात्मनः ॥ गर्हयामास सदसि स्वयमात्मानमात्मना ॥ १० ॥ अहो बत मयाऽसाधु कृतं वै दभ्रबुद्धिना ॥ यन्मयैश्वर्यमत्तेन गुरुः सदसि कात्कृतः ॥ ११ ॥

करें ऐसें बृहस्पतिकों देखकर इंद्र आसनसे नहीं चलायमान होतोभयो, सभामें आए देखे तोहू बैठो रह्यो ॥ ८ ॥ तब कवि अंगिरागोत्री प्रभु श्रीमदकी विक्रियाकों जान शीघ्र चुप्प होकर घर चले आए ॥ ९ ॥ थोडी देरमें जब इंद्र सावधान भयो विचारो कि मोसे गुरुकी अवज्ञा भई अपने मनसे अपनपेकी सभामें बडी निंदा करतो भयो ॥ १० ॥ अरे थोडो बुद्धिवारे मैनें बडो बूरो कर्म करो, बडेखेदकी

---

१ शंका–तीन लोकका राज्य करते करते इन्द्रको बहुत युग बीत गये और बृहस्पति जो उनके गुरु थे सो नित्य प्रति इन्द्रकी सभामें आतेथे, कभीभी गुरुका निरादर नहीं किया परन्तु उस दिन इन्द्रने गुरुका निरादर क्यों किया ? क्या बुद्धि भ्रष्ट होगई ? यह बडी भारी शंका है ?

उत्तर–राजा बलिको दुःखी देखकर शुक्राचार्य्यने शत्रुको जीतनेके लिये राजा बलिसे यज्ञ कराया और उस यज्ञकी समाप्तिके लिंये जो जो सामग्री इकट्ठी की थी उससे यह आनन्द पूर्वक यज्ञ समाप्त होगया उसी दिन इन्द्रका पुण्य नष्ट होगया, तब बलिके यज्ञके पुण्यसे इन्द्र उन्मत्त अर्थात् पागल होगया, तब बलिकी यज्ञवाले शुक्राचार्यने विचार किया कि जब इन्द्र अपने गुरुका निरादर करेगा तब इन्द्रको राजा बलि पराजय करैंगे, सिवाय इस उपायके इन्द्रको जीतनेका और कोई दूसरा उपाय नहीं पाया जाता, ऐसा विचार कर बलिके शत्रु इन्द्रको मोहित करके इन्द्रसे बृहस्पतिजीका निरादर कराया, इसलिये उस दिन इन्द्रने गुरु बृहस्पतिजीका निरादर करा ॥

वात है कि ऐश्वर्यमें मतवारो होयकर सभामें मैंने गुरुजोको तिरस्कार कीनो ॥ ११ ॥ स्वर्गके पतिकी लक्ष्मीको अब कौन पंडित राख सकैगो जा बुद्धि करकै जा लक्ष्मी करकै देवतानको ईश्वर मैं असुरनकेसे भावकों प्राप्त हो गयो ॥ १२ ॥ जो कोई ब्रह्म ऐश्वर्यके स्थानमेंवी बैठकर कोई वडो आवै वाको खडे होयकै सत्कार करनो आसनादिक दैनो न जानै है वो श्रेष्ठ धर्मको नहीं जानै है ॥ १३ ॥ कुत्सित मार्गकी आज्ञा करवेवारे नरकके अंधकारमें गिरै है, जो उनके वचनकी श्रद्धा करै है वे पाषाणकी नावकी नाईं डूबै है ॥ १४ ॥ अब मैं देवनके आचार्य ब्राह्मण गुरुको जिनकी अगाध बुद्धि है शठभाव छोडकर शिरसे उनके चरणनकों स्पर्श कर प्रसन्न करूंगो ॥१५॥

को गृध्येत् पण्डितो लक्ष्मीं त्रिविष्टपपतेरपि ॥ यथाऽहमासुरं भावं नीतोऽद्य विबुधेश्वरः ॥ १२ ॥ ये पारमेष्ठ्यं धिषणमधितिष्ठन्न कंचन ॥ प्रत्युत्तिष्ठेदिति ब्रूयुर्धर्मं ते न परं विदुः ॥ १३॥ तेषां कुपथदेष्टॄणां पततां तमसि ह्यधः॥ये श्रद्दध्युर्वचस्ते वै मज्जन्त्यश्मप्लवा इव ॥१४॥ अथाहममराचार्यमगाधधिषणं द्विजम् ॥ प्रसादयिष्ये निशठः शीर्ष्णा तच्चरणं स्पृशन् ॥ १५ ॥ एवं चिन्तयतस्तस्य मघोनो भगवान् गृहात् ॥ बृहस्पतिर्गतोऽदृष्टां गतिमध्यात्ममायया ॥ १६ ॥ गुरोर्नाधिगतः संज्ञां परीक्षन् भगवान् स्वराट् ॥ ध्यायन् धिया सुरैर्युक्तः शर्म नालभतात्मनः ॥ १७ ॥ तच्छ्रुत्वैवासुराः सर्वे आश्रित्यौशनसं मतम् ॥ देवान् प्रत्युद्यमं चक्रुर्दुर्मदा आततायिनः ॥ १८ ॥ तैर्विसृष्टेषुभिस्तीक्ष्णैर्निर्भिन्नाङ्गोरुबाहवः ॥ ब्रह्माणं शरणं जग्मुः सहेन्द्रा नतकन्धराः ॥ १९ ॥ तांस्तथाऽभ्यर्दितान् वीक्ष्य भगवानात्मभूरजः ॥ कृपया परया देव उवाच परिसान्त्वयन् ॥ २० ॥

इंद्र ऐसे चिंतवन कर रह्यो हो सो बृहस्पति कोई न जान सकै ऐसे अलक्षित स्थानमें अध्यात्मविद्यासें जाते भये ॥ १६ ॥ जब गुरुजीको पतो न लगो तो इंद्र बुद्धिकरकै देव सहित ध्यान करत अपनो कल्यानकूं नहीं प्राप्त होतो भयो ॥ १७ ॥ ये बात सुनकर सब असुर शुक्राचार्यको आसरो लेकर दुर्मदी महा आतयायी, देवनसे इंद्रलोक छीनवेको उद्यम करते भये ॥ १८ ॥ तिनके मारे भये तीक्ष्ण बाणोंसे अंगके ऊरु बाहू सब कटने लगे, तब देवता इंद्रसहित नीचो कंधा करकै ब्रह्माजीकी शरण जाते भये ॥ १९ ॥ उन देवतानको भगवान् आत्मभू ब्रह्मा पीडित देखकर

50

उनको सांत्वन करते उनपर परम कृपा कर बोले ॥ २० ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि हे देवनमें श्रेष्ठहो ! बडे कष्टकी खेदकी वार्ता है कि महा अमंगल तुमने करो, ब्रह्मिष्ठ ब्राह्मण जितेंद्री गुरुको ऐश्वर्यके मदसे सत्कार न कीनो ॥ २१ ॥ ताको ये दुःख आयो है, कि शत्रुओंसे पराभव भयो देवताओं जब तुम्हारे वैरी नाश होय तो तुम्हारी समृद्धी बनी रहै ॥२२॥ हे इंद्र ! वैरीनकों देखो जो पहले गुरुकी[1] अवज्ञासे क्षीण भए फिर भक्तिसें शुक्राचार्यको आराधन कर या समय वर्तमानमें फेर राक्षस बढगए ॥ २३ ॥ भृगुको देवता जान्नेवाले असुर मेरेभी स्थानको लियोचाहैं हैं, गुरुकी प्रसन्नताकरकै मनुष्यकों कोई पदार्थ दुर्लभ नही हैं सब सुलभ हैं ॥ २४ ॥ भेदनमैं न आवै ऐसै स्वर्गको शिक्षा करे भए भृगुके मंत्र कुछ नहीं गिनै

ब्रह्मोवाच ॥ अहो बत सुरश्रेष्ठा ह्यभद्रं वः कृतं महत् ॥ ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं दान्तमैश्वर्यान्नाभ्यनन्दत ॥ २१ ॥ तस्यायमनयस्यासीत् परेभ्यो वः पराभवः ॥ प्रक्षीणेभ्यः स्ववैरिभ्यः समृद्धानां च यत्सुराः ॥ २२ ॥ मघवन् द्विषतः पश्य प्रक्षीणान् गुर्वतिक्रमात् ॥ संप्रत्युपचितान् भूयः काव्यमाराध्य भक्तितः ॥ २३ ॥ आददीरन् निलयनं ममापि भृगुदेवताः ॥ गुरोः प्रसादमासाद्य न किंचिद्दुर्लभं नृणाम् ॥२४॥ त्रिविष्टपं किं गणयन्त्यभेद्यमन्त्रा भृगूणामनुशिक्षितार्थाः ॥ न विप्रगोविन्दगवीश्वराणां भवन्त्यभद्राणि नरेश्वराणाम् ॥ २५ तद्व विश्वरूपं भजताशु विप्रं तपस्विनं त्वाष्ट्रमथात्मवन्तम् ॥ सभाजितोऽर्थान् स विधास्यते वो यदि क्षमिष्यध्वमुतास्य कर्म ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ त एवमुदिता राजन् ब्रह्मणा विगतज्वराः ॥ ऋषिं त्वाष्ट्रमुपव्रज्य परिष्वज्येदमब्रुवन् ॥ २७ ॥

है जहां विप्र गोविंद गौ ये ईश्वरके समान पूजे जांय ऐसे नरेश्वरनको कदीबी अमंगल नहीं होय है ॥२५॥ ताते शीघ्र विश्वरूप विप्रकों तुम आसरों लेओ, वो तपस्वी त्वष्टाको सुत आत्मज्ञानी है, जो वाको सत्कार करकै राखोगे तो तुह्मारे सब अर्थ पूरे करैगो परंतु वो असुरनको दोहितो है सो वो कोई कर्म तुमसें छिपके करै तौ वाको क्षमा करियो ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! ब्रह्माकरकै ऐसे कहेभए देवनको सब दुख जातो रह्यो तब त्वष्टाको पुत्र विश्वरूप ऋषिके पास जाय वासें मिल ये बोले ॥ २७ ॥

---

[1] गुरुके वचन प्रतीति न जेही, सपनेहु सुलभ न सुखसिधि तेही ॥

देवते बोले कि हम सब तुह्मारे आश्रममें अतिथि प्राप्त हैं, तुह्मारे मंगल होय हे पितः ! हमारो मनोरथ पूरोकरो, जो पिता हैं बडे हैं वे कोई समय गाढी आवै तबही रक्षा करे हैं ॥२८॥ माता पिताकी सेवा करना यही सत्पुत्रोंका परमश्रेष्ठ धर्म है पुत्रवालेकूंभी पिताकी सेवा करना अवश्य है,तौ ब्रह्मचारीके विषेमें क्या कहैं ॥ २९ ॥ आचार्य ब्रह्माकी मूर्ति है, पिता प्रजापतिकी मूर्ति है, भ्राता मरुत्पतिकी मूर्ति है, माता साक्षात् पृथिवीकी मूर्ति है ॥ ३० ॥ दया बहनकी मूर्ति है, धर्मकी मूर्ति अतिथी है, अग्निकी मूर्ति अभ्यागत है, सब जीवमात्रमें परमेश्वर बुद्धि करनी वो ईश्वररूप है ॥ ३१ ॥ तातें

देवा ऊचुः ॥ वयं तेऽतिथयः प्राप्ता आश्रमं भद्रमस्तु ते ॥ कामः सम्पाद्यतां तात पितॄणां समयोचितः ॥ २८ ॥ (पुत्राणां हि परो धर्मः पितृशुश्रूषणं सताम् ॥ अपि पुत्रवतां ब्रह्मन् किमुत ब्रह्मचारिणाम्) ॥ २९ ॥ आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पिता मूर्तिः प्रजापतेः ॥ भ्राता मरुत्पतेर्मूर्तिर्माता साक्षात् क्षितेस्तनुः ॥३०॥ दयाया भगिनी मूर्तिर्धर्मस्यात्माऽतिथिः स्वयम् ॥ अग्नेरभ्यागतो मूर्तिः सर्वभूतानि चात्मनः ॥ ३१ ॥ तस्मात् पितॄणामार्तानामार्तिं परपराभवम् ॥ तपसाऽपनयंस्तात संदेशं कर्तुमर्हसि ॥ ३२ ॥ वृणीमहे त्वोपाध्यायं ब्रह्मिष्ठं ब्राह्मणं गुरुम् ॥ यथाञ्जसा विजेष्यामः सपत्नांस्तव तेजसा ॥३३॥ न गर्हयन्ति ह्यर्थेषु यविष्ठाङ्घ्र्यभिवादनम् ॥ छन्दोभ्योऽन्यत्र न ब्रह्मन् वयो ज्यैष्ठ्यस्य कारणम्॥३४॥ ऋषिरुवाच ॥ अभ्यर्थितः सुरगणैः पौरोहित्ये महातपाः॥स विश्वरूपस्तानाह प्रसन्नः श्लक्ष्णया गिरा॥३५॥

आर्त पितरनको शत्रुनसें तिरस्कार होनो येही परमपीडा है, हे तात! तपसे याको दूर करो ये हमारो संदेशो करवेको योग्य हो॥३२॥ ब्रह्मज्ञानी ब्राह्मण गुरु आपको उपाध्याय हम वरे हैं, तुह्मारे तेजसे वैरीनको अनायास करकै विजय करैंगे॥३३॥ प्रयोजन पड़नेपर छोटेके चरणको प्रमाण करनो निंदित नही है और कार्योंमें तौ अवस्था बडेपनका कारण मानी जाती है परन्तु वेद विद्याके विषयमें अवस्थासे बडप्पन नहीं गिना जाता ॥ ३४ ॥ शुकदेवजी बोले कि पुरोहित हमारे होओ ऐसे जब देवननें प्रार्थना कीनी, तब वो महातपस्वी विश्वरूप प्रसन्न हो मधुरवाणीसे देवनसें बोलो ॥ ३५ ॥

S1

विश्वरूप बोले कि हे नाथहो ! धर्मात्मानने ब्रह्मतेजको नाशक ये पौरोहित्यपन निंद्यो है, परन्तु मोसरीको लोकपालोंके कहे भएको कैसै न करैगो अपनो स्वार्थ सिद्ध होय सो करै वोही शिष्य है ॥ ३६ ॥ जिनकों कुछ चाह नहीं उनको धन शिलोंछनवृत्ति है, वासें सब क्रिया सुंदर होयहै, हे इंद्र ! तुम लोकके ईश्वर होय यह निंदित पुरोहितपन कैसै मैं अंगीकार करूं, जिस्सै दुर्बुद्धि पुरुष प्रसन्न होंय हैं ॥ ३७ ॥ यद्यपि ऐसै है तथापि बडोंने मोसे प्रार्थना कीनी है सो मैं मने नहीं करूंहूं, जो आपने चाह्यो है सो प्राण अर्थोंसे साधूंगो ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि विश्वरूप महातपस्वी देवनसें ऐसें कहिकर परम समाधिसें पुरोहितपनेको वृत करतोभयो ॥ ३९ ॥ देवद्रोहीनकी गुप्त

विश्वरूप उवाच ॥ विगर्हितं धर्मशीलैर्ब्रह्मवर्च उपव्ययम् ॥ कथं नु मद्विधो नाथा लोकेशैरभियाचितम् ॥ प्रत्याख्यास्यति तच्छिष्यः स एव स्वार्थ उच्यते ॥ ३६ ॥ अकिंचनानां हि धनं शिलोञ्छनं तेनेह निर्वर्तितसाधुसत्क्रियः ॥ कथं विगर्ह्यं नु करोम्यधीश्वराः पौरोधसं हृष्यति येन दुर्मतिः ॥ ३७ ॥ तथापि न प्रतिब्रूयां गुरुभिः प्रार्थितं कियत् ॥ भवतां प्रार्थितं सर्वं प्राणैरर्थैश्च साधये ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तेभ्य एवं प्रतिश्रुत्य विश्वरूपो महातपाः ॥ पौरोहित्यं वृतश्चक्रे परमेण समाधिना ॥ ३९ ॥ सुरद्विषां श्रियं गुप्तामौशनस्यापि विद्यया ॥ आच्छिद्यादान्महेन्द्राय वैष्णव्या विद्यया विभुः ॥ ४० ॥ यया गुप्तः सहस्राक्षो जिग्येऽसुरचमूर्विभुः ॥ तां प्राह स महेन्द्राय विश्वरूप उदारधीः ॥ ४१ ॥ इति श्रीभा० म०ष० इन्द्रादिदेवैर्विश्वरूपस्य पौरोहित्याय वरणं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

लक्ष्मी शुक्राचार्यकी विद्याकरकै छेदनकर इंद्रके अर्थ श्रीनारायणकवच करकै समर्थ विश्वरूप देतेभए ॥ ४० ॥ जाकरकै गुप्त हो सहस्राक्ष समर्थ असुरनकी सेनानकों जीतते भए विश्वरूप उदार बुद्धिवारे वाही नारायणकवचको इंद्रसें कहितेभए " इंद्रको सहस्राक्षनाम ऐसे भयो कि गौतमजीकी नारी अहिल्या महारूपवती हो वासें विहार करवेको एकसमय इंद्रको मन चलो, सो चंद्रमा तो मुर्गा बन आयो गौतमके आश्रमपर बोलो इंद्र गौतमको रूप धरआए ऋषि सवेरो भयो जान स्नानको गए गंगाजी बोली अभी अर्धरात्र है घर जाओ, कोई छल है ये सुन गौतम घर आय देखै तो इंद्र चंद्र सो चंद्रमाके धोतीको छीटा मारो सो आजतक लांछन बनोहै, इंद्रकों शाप दीनो कि भगके निमित्त तुम आए सो सहस्र भग तेरे शरी-

रमैं होय सो होगई इंद्रनें प्रार्थना कीनी ऋषि बोले रामावतारमें तुम दर्शनकों जाओगे सो सहस्रनेत्र होय जांयगे यासे तैसेई फेर भयो सहस्राक्ष याको नाम ऐसै भयो ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां षष्ठस्कन्धे इन्द्रादिदेवैर्विश्वरूपस्य पौरोहित्याय वरणं नाम सप्तमोध्यायः ॥७॥ राजा परीक्षित बोले कि जाकरकै गुप्त रक्षितहो इंद्र वाहनसहित वैरिनकों क्रीडा करत जीततो भयो और त्रिलोकीकी लक्ष्मी भोगतो भयो ॥ १ ॥ हे भगवन्! वो नारायणकवच मोसै कहो जासै महाआततताई शत्रुनको कवचसे रक्षित हो इंद्र संग्राममें जीततो भयो[1] ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि त्वष्टाको

राजोवाच ॥ यया गुप्तः सहस्राक्षः सवाहान् रिपुसैनिकान् ॥ क्रीडन्निव विनिर्जित्य त्रिलोक्या बुभुजे श्रियम् ॥ १ ॥ भगवंस्तन्ममाख्याहि वर्म नारायणात्मकम् ॥ यथाततायिनः शत्रून् येन गुप्तोऽजयन्मृधे ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृतः पुरोहितस्त्वाष्ट्रो महेन्द्रायानुपृच्छते ॥ नारायणाख्यं वर्माह तदिहैकमनाः शृणु ॥ ३ ॥ विश्वरूप उवाच ॥ धौताङ्घ्रिपाणिराचम्य सपवित्र उदङ्मुखः ॥ कृतस्वाङ्गकरन्यासो मन्त्राभ्यां वाग्यतः शुचिः ॥ ४ ॥ नारायणमयं वर्म सन्नह्येद्भय आगते ॥ पादयोर्जानुनोरूर्वोरुदरे हृद्यथोरसि ॥ ५ ॥

पुत्र पुरोहित जब वऱ्यो तब पूछतें भए इंद्रसे नारायणकवच कह्यो हो सो एकमन सावधान कर तुम सुनो ॥ ३ ॥ विश्वरूप बोले कि जब भय प्राप्तहो तब पांव हाथ धोयकर आचमन कर पवित्री धार उत्तर मुख कर अंगन्यास करन्यास द्वादशाक्षर तथा अष्टाक्षरमंत्रसे करै वाणी जीतै पवित्र रहै ॥ ४ ॥ जब भय आयकर प्राप्त होय तब नारायणकवचको धारण करै, दोनों पांव जानु ऊरु उदर हृदय वक्षस्थलमें ॥५॥

---

[1] शंका–राजा परीक्षितकी मृत्यु जब समीप आगई तब राजाने भगवान्की कथा तो बूझनी छोडदी, नारायण वर्म क्यों मुनिसे पूछा ? नारायण वर्म तो शरीरकी रक्षा है, सो शरीर राजाका छूटनेवाला, फिर नारायण वर्म्मसे क्या प्रयोजन निकला ?

उत्तर–सज्जन पुरुष अपने सुखके लिये कुछभी कर्म नहीं करते, दूसरेके सुखके लिये अनेक कर्म करते हैं, राजा परीक्षित नदीकों, पर्वतको, वृक्षको, दूसरेका भला होना अच्छा जान पडता है वही स्वभाव राजाने ग्रहण कर रक्खा है जैसे नदी रात दिन जलसे भरी रहती है परन्तु अपने लिये नहीं भरी रहती दूसरे जीवोंके सुख देनेके लिये जलसे भरी रहती है यथा पर्वत चारा, लकडी औषधि इत्याहि अनेक वस्तु अपने ऊपर रखता है परन्तु अपने लिये नहीं, दूसरे प्राणियोंके सुख देनेके लिये जैसे वृक्ष दूसरेके सुखके लिये फल, फूल, पत्र आदि रखते हैं और दूसरेका कार्य सिद्ध करते हैं ऐसेही राजा परीक्षितभी आप तो मरनेके योग्य होगया परन्तु और प्राणियोंके सुखके लिये नारायण वर्म्म बूझा है ॥

54

मुख शिर आदिसें लेकर ओंकार आदिको विन्यास करै ॐ नमो नारायणाय या मंत्रको विपर्यय अर्थात् अथवा पांवसै प्रारंभ करै सो उलटे क्रमसै इन अक्षरों सा उलटे क्रमके अनुसार इन अंगोंमें न्यास करै ॥६॥ द्वादशन अक्षरके मंत्रसै करन्यास करै प्रणवसे आदिलेकै यकार पर्यंत अंगुली अंगुष्ठ पर्वमें करै ॥ ७ ॥ हृदयमें ओंकार धारै विकारकों मूडपर, षकार भ्रूमें णकार शिखामें धारे ॥ ८ ॥ वेकार नेत्रमें योग करै नकार सब संधियोंमें मकार अस्त्रको उद्देशकर बुद्धिमान् मंत्रमूर्ति होय ॥९॥ विसर्ग सहित फट् अंततक सब दिशामें जल फैके ॐविष्णवे नमः ये मंत्र है ॥ १०॥ छ शक्ति

मुखे शिरस्यानुपूर्व्यादोङ्कारादीनि विन्यसेत् ॥ ॐनमो नारायणायेति विपर्ययमथापि वा ॥ ६ ॥ करन्यासं ततः कुर्याद् द्वादशाक्षरविद्यया ॥ प्रणवादियकारान्तमङ्गुल्यङ्गुष्ठपर्वसु ॥ ७ ॥ न्यसेद् हृदयमोङ्कारं विकारमनुमूर्धनि ॥ षकारं तु भ्रुवोर्मध्ये णकारं शिखया दिशेत् ॥८॥ वेकारं नेत्रयोर्युञ्ज्यान्नकारं सर्वसन्धिषु ॥ मकारमस्त्रमुद्दिश्य मन्त्रमूर्तिर्भवेद् बुधः ॥ ९ ॥ सविसर्गं फडन्तं तत् सर्वदिक्षु विनिर्दिशेत् ॥ ॐ विष्णवे नम इति ॥ १० ॥ आत्मानं परमं ध्यायेद् ध्येयं षट्शक्तिभिर्युतम् ॥ विद्यातेजस्तपोमूर्तिमिमं मन्त्रमुदाहरेत् ॥ ११ ॥ ॐ हरिर्विदध्यान्मम सर्वरक्षां न्यस्ताङ्घ्रिपद्मः पतगेन्द्रपृष्ठे ॥ दरारिचर्मासिगदेषुचापपाशान् दधानोऽष्टगुणोष्टबाहुः ॥ १२ ॥ जलेषु मां रक्षतु मत्स्यमूर्तिर्यादोगणेभ्यो वरुणस्य पाशात् ॥ स्थलेषु मायाबटुवामनोऽव्यात् त्रिविक्रमः खेऽवतु विश्वरूपः ॥१३॥ दुर्गेष्वटव्याजिमुखादिषु प्रभुः पायान्नृसिंहोऽसुरयूथपारिः ॥ विमुञ्चतो यस्य महाऽट्टहासं दिशो विनेदुर्न्यपतंश्च गर्भाः ॥ १४ ॥

सहित व्यापक परमेश्वरको ध्यान करै, विद्या तेज तप मूर्ति होय या मंत्रकों उच्चारण करै ॥ ११ ॥ गरुडजीके ऊपर विराजमान भगवान् हरि सब ओरसें मेरी रक्षा करैं, शंख चक्र गदा ढाल तलवार बाण पाश कमल धारे अष्टबाहु अष्टगुणी रक्षा करैं ॥ १२ ॥ वरुणकी फांसीसे जलके जीवनसें जलमें मत्स्य भगवान् मेरी रक्षा करैं स्थलभूमिमें मायासै शरीरधारी वामनजी रक्षा करै, विश्वरूपधारी त्रिविक्रम भगवान् आकाशमें रक्षा करै ॥१३॥ असुरयूथपति हिरण्यकश्यपके नाशक प्रभु नृसिंहजी दुर्गममार्गमें संग्राम आदिमें रक्षा करै जिनके महाअट्टहाससे दिशा गर्जीं और गर्भ गिरते भए॥१४॥

अपनी दंष्ट्राकरकै धराको वाराहरूपसे लानेहारे यज्ञकलपभगवान यज्ञमें मेरी रक्षा करैं, रामचंद्र पर्वतोंमें रक्षा करैं प्रदेशमें श्रीलक्ष्मणजी भरताग्रज समेत रक्षा करै ॥ १५ ॥ उग्रधर्मके प्रमादसे श्रीमन्नारायण मेरी रक्षा करै, हांसीसे नरभगवान रक्षा करै, सब योगीनके नाथ दत्तात्रेय अयोगते रक्षा करै, गुणनके ईश्वर कपिलभगवान् सबकर्म बंधनसें रक्षा करैं ॥ १६ ॥ कामदेवसें सनत्कुमार रक्षा करै श्रीहयग्रीवजी मार्गमें देवताकी अवज्ञासें रक्षा करैं श्रीनारदजी भगवानकी पूजाके विघ्नसै रक्षा करै सब नरकसें कच्छपहरि रक्षा करै ॥ १७ ॥ खायवेके कुपथ्यसें धन्वंतरि रक्षा करै सुखदुःखके भयसे ऋषभदेवजी रक्षा करै इन्होंनेही आत्मा जीतीथी लोकोंकी निंदासें यज्ञभगवान रक्षा करैं मनुष्योंके मारनेसे बलभद्र रक्षा

रक्षत्वसौ माऽध्वनि यज्ञकल्पः स्वदंष्ट्रयोन्नीतधरो वराहः॥ रामोऽद्रिकूटेष्वथ विप्रवासे सलक्ष्मणोऽव्याद् भरताग्रजोऽस्मान् ॥१५॥ मामुग्रधर्मादखिलात् प्रमादान्नारायणः पातु नरश्च हासात्॥ दत्तस्त्वयोगादथ योगनाथः पायाद् गुणेशः कपिलः कर्मबन्धात् ॥ १६ ॥ सनत्कुमारोऽवतु कामदेवाद् हयशीर्षा मां पथि देवहेलनात् ॥ देवर्षिवर्यः पुरुषार्चनान्तरात् कूर्मो हरिर्मां निरयादशेषात् ॥ १७ ॥ धन्वन्तरिर्भगवान् पात्वपथ्याद् द्वन्द्वाद् भयादृषभो निर्जितात्मा ॥ यज्ञश्च लोकादवताज्जनान्ताद् बलो गणात् क्रोधवशादहीन्द्रः ॥ १८ ॥ द्वैपायनो भगवानप्रबोधाद् बुद्धस्तु पाखण्डगणात् प्रमादात् ॥ कल्किः कलेः कालमलात् प्रपातु धर्मावनायोरुकृतावतारः ॥ १९ ॥ मां केशवो गदया प्रातरव्याद् गोविन्द आसङ्गवमात्तवेणुः॥ नारायणः प्राह्ण उदारशक्तिर्मध्यंदिने विष्णुररीन्द्रपाणिः ॥ २० ॥ देवोऽपराह्णे मधुहोग्रधन्वा सायं त्रिधामाऽवतु माधवो माम् ॥ दोषे हृषीकेश उतार्धरात्रे निशीथ एकोऽवतु पद्मनाभः ॥ २१ ॥

करै, क्रोधवश सर्पोंके गणसै शेषजी रक्षा करै ॥ १८ ॥ अज्ञानसे वेदव्यासजी रक्षा करै, प्रमादके पाखंडगणसे बौद्धभगवान रक्षा करै, कालके मलरूप कलिसे कल्किभगवान रक्षा करैं जो धर्मकी रक्षाके लिये बहुत अवतार धारै है ॥ १९ ॥ केशव भगवान् प्रातःसमय गदासें मेरी रक्षा करै, वेणु बजाते गोविंद सबसे रक्षा करै, शक्ति धरनेंहारे नारायण मध्यान्हसे पहिले रक्षा करैं, मध्यानदिनमें चक्रपाणि भगवान रक्षा करैं ॥२०॥ उग्रधनुपधारी मधुहा देव दुपहरपाछैं रक्षा करै त्रिधामा माधव सांझको मेरी रक्षा करै प्रदोषसमैं हृषीकेश रक्षा करै, अर्धरात्रकी निशीथमें

एक पद्मनाभ रक्षा करैं ॥ २१ ॥ श्रीवत्सधाम पिछली रातमें रक्षा करै प्रत्यूषसमैं तरवारधारी जनार्दन ईश्वर रक्षा करैं सब संधिनमें दामोदर रक्षा करै प्रभातमें विश्वेश्वर भगवान् कालमूर्ति रक्षा करैं ॥ २२ ॥ युगांतकी अनलसम तीक्ष्णनेमि युक्त सब ओरसे भ्रमण करनेहारा भगवत्को प्रयोग करौ चक्र हमारे वैरनकी सेनाको शीघ्र नाश करौ नाश करौ, पवन सखा अग्नि जैसे सूखे तृणकों जरावै तैसे जराओ ॥ २३ ॥ वज्रके स्पर्शसे जामेंसे अग्निकेसे कणुका झरैं ऐसी हे गदे ! भगवतको प्यारी हो सो कूश्मांड विघ्नकर्ता यक्ष राक्षस भूत ग्रह इनको पीसो २ वैरीनको चूर्ण करो २ ॥ २४ ॥

श्रीवत्सधामापररात्र ईशः प्रत्यूष ईशोऽसिधरो जनार्दनः॥दामोदरोऽव्यादनुसंध्यं प्रभाते विश्वेश्वरो भगवान् कालमूर्तिः ॥२२॥चक्रं युगान्तानलतिग्मनेमि भ्रमत् समन्ताद् भगवत्प्रयुक्तम्॥दन्दाग्धिन्दन्दग्ध्यरिसैन्यमाशु कक्षं यथा वातसखो हुताशः ॥ २३ ॥ गदेऽशनिस्पर्शनविस्फुलिङ्गे निष्पिण्ढि निष्पिण्ढ्यजितप्रियासि ॥ कूश्माण्डवैनायकयक्षरक्षोभूतग्रहांश्चूर्णय चूर्णयारीन् ॥ २४॥ त्वं यातुधानप्रमथप्रेतमातृपिशाचविप्रग्रहघोरदृष्टीन् ॥ दरेन्द्र विद्रावय कृष्णपूरितो भीमस्वनोऽरेर्हृदयानि कम्पयन् ॥ २५ ॥ त्वं तिग्मधाराऽसिवरारिसैन्यमीशप्रयुक्तो मम छिंन्धि छिन्धि ॥ चक्षूंषि चर्मन् शतचन्द्र छादय द्विषामघोनां हर पापचक्षुषाम् ॥ २६ ॥ यन्नो भयं ग्रहेभ्योऽभूत् केतुभ्यो नृभ्य एव च ॥ सरीसृपेभ्यो दंष्ट्रिभ्यस्तथा अंहोभ्य एव वा ॥ २७ ॥ सर्वाण्येतानि भगवन्नामरूपास्त्रकीर्तनात् ॥ प्रयान्तु संक्षयं सद्यो ये नः श्रेयःप्रतीपकाः ॥ २८ ॥

हे शंख ! भगवानके बजानेसै भयंकर शब्द करकै शत्रुऔंके हृदयको कम्पायमान करता यातुधान प्रमथ प्रेत मातृ पिशाच विप्रके नाशक घोरग्रह घोरडाढावारोंको भगादे ॥ २५ ॥ हे तिग्मधार ! हे असिवर ! शत्रुनकी सेनानके ऊपर परमेश्वरके छूटे भए तुम मेरे शत्रुनको छेदो छेदो, हे ढाल हे शतचंद्रसमान ? मेरे अपराध करवेवारे पापीनके नेत्रनकों ढाकों ढाकों ॥ २६॥ तुम ग्रहोंसे केतुसे मनुष्योंसे सर्पोंसे डाढाके जीवोंसे भूतोंसे पापसे सबसे हमको अभय करो ॥२७॥ हे भगवन् ! ये सब आपके नामरूप अस्त्रके कीर्तनसे जो हमारे आनंद होनेमें विघ्न करवेवारे हैं वे शीघ्र नाश होंय ॥२८॥

स्तोत्रसे स्तुति करै जांय वेदमय प्रभु गरुड भगवान् सब कष्टसें रक्षा करैं, विष्वक्सेनजी अपने नामसें रक्षा करैं ॥ " स्तोत्रैस्तोभ्यत इति स्तोत्रस्तोभः " ॥ २९ ॥ श्रीहरिको नाम सब संकटौसें रक्षा करै, रूप यान आयुध बुद्धि इन्द्रिय मन प्राण हमारेनको पार्षद भूषण रक्षा करैं ॥ ३० ॥ जब कि यथार्थमें यह सब जगत नारायणहीको रूप हैं तौ इस सत्यसै हमारे सब उपद्रव नाश हैं ॥ ३१ ॥ एक आत्माके अनुभव करवेवारेनको भगवान भेद रहित हैं तथापि अपनी मायासै वे भूषण आयुस्वरूप शक्ति धारण करते हैं ॥ ३२ ॥ या सत्यप्रमाणसे सर्वज्ञ सर्वगत सर्वत्रनिवासी

गरुडो भगवान्स्तोत्रस्तोभश्छन्दोमयः प्रभुः ॥ रक्षत्वशेषकृच्छ्रेभ्यो विष्वक्सेनः स्वनामभिः ॥ २९ ॥ सर्वापद्भ्यो हरेर्नामरूपयानायुधानि नः ॥ बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान्पान्तु पार्षदभूषणाः ॥३०॥ यथा हि भगवानेव वस्तुतः सदसच्च यत् ॥ सत्येनानेन नः सर्वे यान्तु नाशमुपद्रवाः ॥ ३१ ॥ यथैकात्म्यानुभावानां विकल्परहितः स्वयम् ॥ भूषणायुधलिङ्गाख्या धत्ते शक्तीः स्वमायया ॥ ३२ ॥ तेनैव सत्यमानेन सर्वज्ञो भगवान्हरिः ॥ पातु सर्वैः स्वरूपैर्नः सदा सर्वत्र सर्वगः ॥ ३३ ॥ विदिक्षु दिक्षूर्ध्वमधः समन्तादन्तर्बहिर्भगवान्नारसिंहः ॥ प्रहापयँल्लोकभयं स्वनेन स्वतेजसा ग्रस्तसमस्ततेजाः ॥ ३४ ॥ भगवन्निदमाख्यातं वर्म नारायणात्मकम् ॥ विजेष्यस्यंञ्जसा येन दंशितोऽसुरयूथपान् ॥ ३५ ॥ एतद्धारयमाणस्तु यं यं पश्यति चक्षुषा ॥ पदा वा संस्पृशेत्सद्यः साध्वसात्स विमुच्यते ॥ ३६ ॥ न कुतश्चिद्भयं तस्य विद्यां धारयतो भवेत् ॥ राजदस्युग्रहादिभ्यो व्याघ्रादिभ्यश्च कर्हिचित् ॥ ३७ ॥

भगवान हरि सब स्वरूपसे सदा हमारी रक्षा करो ॥ ३३ ॥ दिशा विदिशा ऊपर नीचे सब ओरसे बाहिर भीतर भगवान नारसिंहजी लोकके भयकों अपने शब्दकरकै दूर करै हैं, अपने तेजकरकै सब तेज ग्रस लीनै है ॥ ३४ ॥ हे इंद्र ! ये नारायणकवच रूप बखतर आपसें हमने कह्यो अनायास धारि याको असुरनके यूथपतीनको विजय करौगे ॥ ३५ ॥ याके धारवेवारो जा जा मनुष्यकों नेत्रसे देखै पांवसें छूयदे तोभी शीघ्र भले-बुरे छूटजाय ॥ ३६ ॥ वाको कहींसे भय न होयगो, जो या विद्याकों धारैगो, वाको राजा चोर ग्रह आदि व्याघ्रादिकसें कभी भय न होयगो ॥३७॥

या विद्याकूं पहिले कौशिक मुनिने धारण कीनीही, सो वो ब्राह्मण योग धारण करकै मारवाडमैं अपने अंगको त्यागतो भयो ॥ ३८ ॥ ताके ऊपर विमानपैं बैठ जाते भए एकसमय गंधर्वोंके पति चित्ररथ स्त्रियोंकों लिये जहां वो द्विज क्षय भयो वाको देखते भए ॥ ३९ ॥ सो विमानसहित नीचेको शिरकर आकाशसे गिरै, सो वालखिल्यके वचनसे सब हाड ले विस्मय करकै ॥ ४० ॥ पश्चिमवाहिनी सरस्वतीमैं डाल स्नान कर अपने धामकूं जातेभयो ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि जो कोई याकों सुनै जंत्रमें लिखै आदरसे धारे वाकों सब जीवमात्र नमस्कार करै हैं

इमां विद्यां पुरा कश्चित्कौशिको धारयन्द्विजः ॥ योगधारणया स्वाङ्गं जहौ स मरुधन्वनि ॥ ३८॥ तस्योपरि विमानेन गन्धर्वपतिरेकदा ॥ ययौ चित्ररथः स्त्रीभिर्वृतो यत्र द्विजक्षयः ॥ ३९॥ गगनान्न्यपतत्सद्यः सविमानो ह्यवाक्शिराः ॥ स वालखिल्यवचनादस्थीन्यादाय विस्मितः ॥ ४० ॥ प्रास्य प्राचीसरस्वत्यां स्नात्वा धाम स्वमन्वगात् ॥ ४१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ य इदं शृणुयात्काले यो धारयति चादृतः ॥ तं नमस्यन्ति भूतानि मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ४२ ॥ एतां विद्यामधिगतो विश्वरूपाच्छतक्रतुः ॥ त्रैलोक्यलक्ष्मीं बुभुजे विनिर्जित्य मृधेऽसुरान् ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महा० षष्ठ० नारायणवर्मवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्यासन्विश्वरूपस्य शिरांसि त्रीणि भारत ॥ सोमपीथं सुरापीथमन्नादमिति शुश्रुम ॥ १ ॥ स वै बर्हिषि देवेभ्यो भागं प्रत्यक्षमुच्चकैः ॥ अवदद्यस्य पितरो देवाः सप्रश्रयं नृप ॥ २ ॥

और सब भ्रमसे छूटजाय है ॥ ४२ ॥ विश्वरूपसे इंद्र या विद्याकों सीखकर संग्राममें असुरनकों जीत त्रिलोकीकी लक्ष्मीकों भोगतो भयो (१) ॥ ४३ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां षष्ठस्कन्धे नारायणकवचवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि ॥ हे भारत! वा विश्वरूपके तीन शिर है एकसे सोमपान करै, दूसरेसे मद्य, तीसरेसे अन्न खाय, ये हमने सुनो है ॥ १ ॥ हे नृप! सो वो नम्रतासे यज्ञमें

---

१ जाके सामने एक अप्सरा या ठूमरीकों गावति भई ॥ "आनंदकंद वृजकुमुदचंद नंदनंदनही म्हानै हटको ॥टेर॥ वो निडर छैल करै फिरत शैल ताके गैल रहै उतही अटको ॥१॥ एकदेस अलीमैं जात चली उन गली आय गहकर झटको ॥ २ ॥ होंगई डराय अंग थरहराय झटधाय खोल घुंघट पटको ॥ ३ ॥ जब दई अवाज आई सखिसमाज गए भाज तुरत जमुनातटको ॥४ ॥ पनघट न जाय तोहूं बनत नाहि हियमाहि रहै गुरु जन खटको ॥ ५ ॥ संकेत अली छबि देख भली लख चली सुधर नटको ॥ ६ ॥

देवतानकूं भाग प्रत्यक्ष ऊंचेसे नाम लेलेके देवै कारण कि देवता लोक उनके पितृपक्षमें थे ॥ २ ॥ परन्तु माताके स्नेहके वश हो यज्ञ करते २ असुर लोगोंकोभी भाग छिपकर दिया करते ॥ ३ ॥ वाको ये देवनको अनादर करनो देख इन्द्रने डरकर शीघ्र क्रोधके मारे वाके शिर काट डारे ॥ ४ ॥ सोम पीनेवारे शिर कपिंजल पक्षी भयो, सुरा पीनेवारे शिरसे कलविंक, अन्न खानेवारे शिरसे तीतर भयो ॥ ५ ॥ यद्यपि इन्द्र समर्थ हो तथापि ब्रह्महत्या अंजलीसे ग्रहण करतो भयो, एकवर्ष उपरान्त वो पाप सब जीवनके शुद्धिके अर्थ वांट देतो भयो इंद्रनें भूमि जल वृक्ष स्त्री इनको चार भागकर ब्रह्महत्या वांटी ॥ ६ ॥ भूमिने कही कि मेरेमें गढ्ढा अपने आप भरजाय तो ब्रह्महत्या लेऊं वाको वरदान दीनो कि आप भरजायगो

स एव हि ददौ भागं परोक्षमसुरान्प्रति ॥ यजमानोऽवहद्भागं मातृस्नेहवशानुगः॥३॥तद्देवहेलनं तस्य धर्मालीकं सुरेश्वरः ॥ आलक्ष्य तरसा भीतस्तच्छीर्षाण्यच्छिनद्रुषा ॥ ४ ॥ सोमपीथं तु यत्तस्य शिर आसीत्कपिञ्जलः ॥ कलविङ्कः सुरापीथमन्नादं यत्स तित्तिरिः ॥ ५ ॥ ब्रह्महत्यामञ्जलिना जग्राह यदपीश्वरः ॥ संवत्सरान्ते तदघं भूतानां स विशुद्धये ॥ भूम्यम्बुद्रुमयोषिद्भ्यश्चतुर्धा व्यभजद्धरिः ॥६॥भूमिस्तुरीयं जग्राह खातपूरवरेण वै ॥ ईरणं ब्रह्महत्याया रूपं भूमौ प्रदृश्यते ॥ ७ ॥ तुर्यं छेदविरोहेण वरेण जगृहुर्द्रुमाः ॥ तेषां निर्यासरूपेण ब्रह्महत्या प्रदृश्यते ॥ ८ ॥ शश्वत्कामवरेणांहस्तुरीयं जगृहुः स्त्रियः ॥ रजोरूपेण तास्वंहो मासि मासि प्रदृश्यते ॥ ९ ॥ द्रव्यभूयोवरेणापस्तुरीयं जगृहुर्मलम् ॥ तासु बुद्बुदफेनाभ्यां दृष्टं तद्धरति क्षिपन् ॥ १० ॥ हतपुत्रस्ततस्त्वष्टा जुहावेन्द्राय शत्रवे ॥ इन्द्रशत्रो विवर्धस्व मा चिरं जहि विद्विषम् ॥ ११ ॥

ब्रह्महत्याका चिन्ह भूमिमें ऊषरपण दीखै है, ॥ ७ ॥ कोई वृक्ष काटे आप भरजाय फेर शाखा आवै या वरदान लेकै वृक्षोंने ब्रह्महत्या लीनी तिनमें जो गोंद मद निकरै है ये ब्रह्महत्याको रूप दीखै है, ॥८॥ निरंतर काम रहै, या वरकरकै चौथो भाग ब्रह्महत्याको स्त्रियोंने ग्रहण करलीनो स्त्रीधर्म रूप पाप स्त्रीनमें रजोवतीरूप होयकै महिने महिने दीखै है, ॥ ९ ॥ दुग्धादिमें जल मिलनेसें फेर वो द्रव्य बढजाय ये वर लेके जलने ब्रह्महत्या लीनी, जलोंमें बुद्बुदफेनोंसे इंद्रको पाप दीखै हैं, जो फेन फेक दो तो वो जल शुद्ध होय है, ॥ १० जब त्वष्टाको पुत्र मरगयो तब उसने

क्रोधकर इन्द्रको मार डालनेके लिये उसके शत्रुकी उत्पत्ति होनेकी कामनासे होम करना प्रारम्भ कियो ॥ ११ ॥ हे इंद्रशत्रो! तुम बढो शीघ्र वैरीकों मारो, ये सुन हवनकुंडसें घोर दर्शन पुरुष निकसो ॥ " इंद्रशत्रो विवर्द्धस्व " या मंत्रमें आदि उदात्तकर बोले इकार देरतक बोलनेमें देर होगई सोई उलटो अर्थ होगयो कि (इंद्र है शत्रु जिसका) ऐसा पुत्र होय त्वष्टाको मन हो कि इंद्रका मारनेवाला पुत्र होय, अंत्य उदात्त शत्रुपर स्वर देकर उच्चारण होता तो इंद्रका शत्रु बढता, ईश्वरकी इच्छा याकारणमें प्रकृतिकों पूर्वपर होना लिखा है, मंत्र " यदब्रवीत्स्वाहेंद्रशत्रुर्वर्धस्वेति तस्मादस्येंद्रः शत्रुरभवत् ॥ " शिक्षामें है कि मंत्र स्वर वर्णसे बोलनेमें हीन होनेसे मिथ्याप्रयोग होजाय है वो उलटो वाणीरूप वज्र यजमानकूं मारता है जैसे

अथान्वाहार्यपचनादुत्थितो घोरदर्शनः॥ कृतान्त इव लोकानां युगान्तसमये यथा ॥१२॥ विष्वग्विवर्धमानं तमिषुमात्रं दिनेदिने॥ दग्धशैलप्रतीकाशं सन्ध्याऽभ्रानीकवर्चसम् ॥ १३ ॥ तप्तताम्रशिखाश्मश्रुं मध्याह्नार्कोग्रलोचनम् ॥१४॥ देदीप्यमाने त्रिशिखे शूल आरोप्य रोदसी ॥ नृत्यन्तमुन्नदन्तं च चालयन्तं पदा महीम् ॥ १५ ॥

इंद्रशत्रुमें स्वरके अपराध होनेसे उलटा भया ॥ श्लोक ॥ " मंत्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह ॥ स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेंद्रशत्रुः स्वरतोपराधात् " ॥ १२ ॥ युगके अंतमें लोकोंको यमराजकी समान वो दीखै दिन दिन एकवाण जितनी दूर जाय इतनो बढै ❀ ॥ १३ ॥ दग्धपर्वतसमान शरीर, संध्याके बादलकी समान कान्तिमान और तपेभए तांमेके समान शिखा मूछ मध्यान्हके सूर्यसमान उग्रलोचन ॥ १४ ॥ महाप्रकाश त्रिशूलपर मानो द्यावापृथिवीको धरकै नाच रहाहै और पैरोंके आघातसै पृथ्वीको कम्पायमान कर गर्ज रहा था ॥१५॥

❀ शंका–पूर्व, पाश्चिम, दक्षिण, उत्तर इन चारों दिशाओंकी ओर नित्य प्रति चार चार हाथ अर्थात सोलह हाथ चारों ओरको वृत्रासुरका शरीर दिन दिन बढताथा, यह बात बडे आश्चर्यकी है, वरन् एक प्रकारका कौतुक है, क्यों कि वर्ष वर्ष, लेखा लगाया जाय तो कितना मोटा शरीर होसक्ता है, और वृत्रासुर लाखों वर्षतक जीतारहा, तब कैसा शरीर होगया होगा उसकी लम्बाई चौंडाईका जोड आपने लगाया हो तो मुझको बताओ, जिससे मेरे मनका सन्देह जाय ?

उत्तर–इपुमात्र इस श्लोकमें विद्वान् लोग इपुको बाण नहीं कहते क्यों कि विश्वकोश, कमण्डलुकोश आदि कोशोंमें इपुको सीकभी कहते हैं मात्रको मोटाभी कहते हैं, इस प्रमाणसे इपुकामात्र कहिये सीखसरीख जान्ना, वृत्रासुरकी देह नित्य चारों ओर बढती थी, चार हाथ प्रमाण एक धनुषका है, सो धनुष प्रमाण अर्थात् चार हाथ नहीं नित्य देह बढतीथी ॥

गंभीर गुफाकी समान मानो मुखसें आकाशकों पीजायगो जीभसे सब नक्षत्रोंको मानू चाटैगो, मानो सब त्रिलोकीको ग्रस लेगो ऐसो वृत्रासुर भयो ॥ ॥ १६ ॥ महाभयानक डाढै वारंवार जंभाई लेवे वाको देख भयसे डरेभए लोक सब भाग गए ॥ १७ ॥ जिस त्वष्टाके सुतकी तामसी मूर्तिसें सबलोग घिरेगये, याते वा पापीको परम दारुण वृत्रासुरनाम पडो "श्रुति है कि, सइमांल्लोकानावृणोत्तद्वृत्रस्यवृत्रत्वं" ॥ १८ ॥ सब गण सहित देवनके शिरदार अपने अपने दिव्य शस्त्रोंके समूहोंसे वाकों मारवेको आये, पर वो तो सबको ग्रसवेलगो ॥ १९ ॥ तब सब विस्मित और दुखी हो तेज नाश हौनेसे सबको पूजनीय आदि पुरुषकी सब देवता सावधानीसे स्तुति करने लगे सब जाकों पूजै ऐसे आदिपुरुषकी सबदेवतें स्तुति करते भए

दरीगम्भीरवक्त्रेण पिबता च नभस्तलम् ॥ लिहता जिह्वयर्क्षाणि ग्रसता भुवनत्रयम् ॥ १६॥ महता रौद्रदंष्ट्रेण जृम्भमाणं मुहुर्मुहुः ॥ वित्रस्ता दुद्रुवुर्लोका वीक्ष्य सर्वे दिशो दश ॥ १७ ॥ येनावृता इमे लोकास्तमसा त्वाष्ट्रमूर्तिना ॥ स वै वृत्र इति प्रोक्तः पापः परमदारुणः ॥१८॥ तं निजघ्नुरभिद्रुत्य सगणा विबुधर्षभाः ॥ स्वैः स्वैर्दिव्यास्त्रशस्त्रौघैः सोऽग्रसत्तानि कृत्स्नशः ॥ १९ ॥ ततस्ते विस्मिताः सर्वे विषण्णा ग्रस्ततेजसः ॥ प्रत्यञ्चमादिपुरुषमुपतस्थुः समाहिताः ॥२० ॥ देवा ऊचुः ॥ वाय्वम्बराग्न्यप्क्षितयस्त्रिलोका ब्रह्मादयो ये वयमुद्विजन्तः ॥ हराम यस्मै बलिमन्तकोऽसौ बिभेति यस्मादरणं ततोऽस्तु नः ॥ २१ ॥ अविस्मितं तं परिपूर्णकामं स्वेनैव लाभेन समं प्रशान्तम् ॥ विनोपसर्पत्यपरं हि बालिशः श्वलाङ्गुलेनातितितर्ति सिन्धुम् ॥२२॥ यस्योरुशृङ्गे जगतीं स्वनावं मनुर्यथाऽऽबध्य ततार दुर्गम् ॥ स एव नस्त्वाष्ट्रभयाद्दुरन्तात्त्राताश्रितान्वारिचरोऽपि नूनम् ॥ २३ ॥

"महाभये परित्राणमन्यतो न भवेदिति॥ हरिमेव प्रपद्यन्ते सुराः शरणमातुराः" ॥ २० ॥ देवता बोले कि पवन आकाश अग्नि जल पृथिवी और इनके रचे त्रिलोक, इनके स्वामी ब्रह्मादिक और उनसे अर्वाचीन हम भयभीत होकर जिस कालकी पूजा करते हैं वह कालभी जिनसै डरताहै वह भगवान हमारी रक्षा करैं ॥ २१ ॥ विस्मय रहित परिपूर्ण काम, अपने लाभसे समान, शांत ईश्वरको छोड कौन मूर्ख औरकी शरण जायगो, जैसै कोई कुत्ताकी पूंछसे समुद्र तरो चाहै, तो नहीं तैरगो ॥ २२॥ जिन मत्स्यावतारके बडे शृंगमें पृथिवीमयी अपनी नाव-

को सत्यव्रत बांधकर सब दुःखकों तरगए, सोई हमको वृत्रासुरके भयसे रक्षा करो, ये निश्चय है कि जलचर भगवान मत्स्य हैं परंतु जो आसरो लै
है वाकी रक्षा करैं है ॥ २३ ॥ उछलती पवनकी लेहेरोंसे भयंकर प्रलयके जलमैं कमलसे गिरते समयमें भयसे स्वयंभू ब्रह्माजी जिसकी कृपासै अभय
हुए सोई परमेश्वर हमारी रक्षा करै, वोही पार करै ॥ २४ ॥ जो एक ईश्वर अपनी मायासे हम सबको रचतेभए, जा मायासे हम विश्व रचैं हैं
जो हमसै प्रथम अन्तर्यामी रूपसे चेष्टा करते हैं तौभी हम उनका रूप नहीं देखसक्ते क्योंकि हम पृथक् २ ईश्वरमानी हैं॥ २५ ॥ शत्रुओंसे अति
पीडित हम सबकी देवता ऋषि पशु मनुष्यमें नित्य शरीर धारणकर अवतार ले अपनी मायाकरकै अपने वशमें कर युग युगमें रक्षा करते हैं ॥२६॥

पुरा स्वयंभूरपि संयमाम्भस्युदीर्णवातोर्मिरवैः कराले ॥ एकोऽरविन्दात्पतितस्ततार तस्माद्भयाद्येन स नोऽस्तु पारः
॥ २४ ॥ य एक ईशो निजमायया नः ससर्ज येनानुसृजाम विश्वम् ॥ वयं न यस्यापि पुरः समीहतः पश्याम लिङ्गं
पृथगीशमानिनः ॥ २५ ॥ यो नः सपत्नैर्भृशमर्द्यमानान्देवर्षितिर्यङ्नृषु नित्य एव ॥ कृतावतारस्तनुभिः स्वमायया
कृत्वात्मसात्पाति युगे युगे च ॥ २६ ॥ तमेव देवं वयमात्मदैवतं परं प्रधानं पुरुषं विश्वमन्यत् ॥ व्रजाम सर्वे शरणं
शरण्यं स्वानां स नो धास्यति शं महात्मा ॥२७॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति तेषां महाराज सुराणामुपतिष्ठताम् ॥ प्रतीच्यां
दिश्यभूदाविः शङ्खचक्रगदाधरः॥२८॥आत्मतुल्यैः षोडशभिर्विना श्रीवत्सकौस्तुभौ ॥ पर्युपासितमुन्निद्रशरदम्बुरुहेक्षणम् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा तमवनौ सर्व ईक्षणाह्लादविक्लवाः ॥ दण्डवत्पतिता राजञ्छनैरुत्थाय तुष्टुवुः ॥ ३० ॥

विन्ह देवकी हम सब शरण जांयहैं, आत्माके देवता परम प्रधान पुरुष विश्वरूप अनन्य रक्षक शरणागत पालक हैं सो अपनेनको वेही महात्मा कल्याण
सुख देंगै ॥ २७॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज! सब सुर ऐसे जब उपस्थान करतेभए तब पश्चिमकी दिशामें शंख चक्र गदा पद्म लिये
योगीश्वर साक्षान्नारायण वासुदेव प्रगट होते भए ॥२८॥अपने समान षोडशपार्षद सहित श्रीवत्स कौस्तुभ विना लिये शरदकालके कमल समान नेत्रवारे
उपासना करते भए॥२९॥हे राजन्! तिन ईश्वरकों देख सब आनन्दसें विह्वल हो दंडकी नाई भूमिमैं साष्टांग करते भए,धीरे धीरे स्तुति करवे लगे ॥३०॥

देवता बोले कि यज्ञवीर्य अवस्थारूप आपके अर्थ नमस्कार होय, चक्र चलायवेवारे बहुत नामवारेके अर्थ नमस्कार होय ॥ ३१ ॥ हे धातः ! तुम्हारी तीन गतीनके ईशके परम पदको या संसारको अर्वाचीन जीव जानवे योग्य नहीं है ॥ ३२ ॥ ओंकार सहित तुह्मै नमस्कार होय हे भगवन् ! हे नारायण ! हे वासुदेव ! आदिपुरुष ! हे महापुरुष ! हे महानुभाव ! हे परममंगल ! हे परमकल्याण ! हे परमकारुणिक ! हे केवल जगदाधार ! हे लोकनाथ ! हे सर्वेश्वर ! हे लक्ष्मीनाथ ! परमहंस संन्यासी परमआत्मयोग समाधिसे भावना और स्फुटभजन तथा परमहंसधर्मसे अज्ञानरूप कपाट खुलनेके कारण चित्तरूप द्वारमें प्रत्यक्ष प्रतीत होते हुए स्वरूप प्रकाशमें आप प्रतीत होते हो उस सुखके अनुभवरूप आपही हो ॥ ३३ ॥ आप-

देवा ऊचुः ॥ नमस्ते यज्ञवीर्याय वयसे उत ते नमः ॥ नमस्ते ह्यस्तचक्राय नमः सुपुरुहूतये ॥ ३१ ॥ यत्ते गतीनां तिसृणामीशितुः परमं पदम् ॥ नार्वाचीनो विसर्गस्य धातर्वेदितुमर्हति ॥ ३२ ॥ ॐनमस्तेऽस्तु भगवन्नारायण वासुदेवादिपुरुष महानुभाव परममङ्गल परमकल्याण परमकारुणिक केवल जगदाधार लोकैकनाथ सर्वेश्वर लक्ष्मीनाथ परमहंसपरिव्राजकैः परमेणात्मयोगसमाधिना परिभावितपरिस्फुटपारमहंस्यधर्मेणोद्घटिततमःकपाटद्वारे चित्तेऽपावृत आत्मलोके स्वयमुपलब्धनिजसुखानुभवो भवान् ॥ ३३॥ दुरवबोध इव तवयां विहारयोगो यदशरणोऽशरीर इदमनवेक्षितास्मत्समवाय आत्मनैवाविक्रियमाणेन सगुणमगुणः सृजसि पासि हरसि ॥ ३४॥ अथ तत्रभवान्किं देवदत्तवदिह गुणविसर्गपतितः पारतन्त्र्येण स्वकृतकुशलाकुशलं फलमुपाददाति आहोस्विदात्माराम उपशमशीलः समञ्जसदर्शन उदास्त इति ह वाव न विदामः ॥ ३५ ॥

को ये विहारयोग काऊसे जानो न जाय है; कारण कि आश्रय रहित शरीररहित और निर्गुण आप हो हमारी सहायताकी अपेक्षा न करते अपने निर्विकार स्वरूपसे सगुण निर्गुण रचो हो पालोहो नाश करो हो ॥ ३४ ॥ क्या आप देवदत्तकी नाई संसारमें लिप्त हो, परतंत्र होयकै अपनो करो भयो कुशल अकुशल ग्रहण करो हौ, अथवा आत्माराम हो, महाशांतशील हो, समानदर्शी उदासीनकी नाई रहो हौ येभी हम न जानै हैं ॥ ३५ ॥

64

भगवानमें सगुण निर्गुण दो प्रकारको भेद नहीं है, क्योंकि अनगिनती गुणगण ईश्वरमें है, जिनको माहात्म्य जानो न जाय है, इस कारण जिन शास्त्रोंमें विकल्प अर्थात् इसमें क्या उक्ति है इस प्रकारका विचार है विवाद और उसके अनुकूल प्रमाणभास और कुतर्क यह सब दीप्यमान है परन्तु यह सब किसीप्रकारसैभी वस्तुस्वरूपके स्पर्श करनेको समर्थ नहीं है इन ग्रंथोंमें जिन दुराग्रहोंका आश्रय व्याकुलित होताहै ऐसे दुराग्रहौंका आश्रय लेकर जे पुरुष विवाद करते हैं आप उन लोगोंके विवाद स्थानसै परे है आप समस्त मायामें संसारसे अलग और केवल स्वरूप है मायाको मध्यमें रखकर आपमें कौनसा विषय दुर्घट है इस कारण वास्तवमें यदि आपमें कर्तृत्वादि होवै तबही विरोधकी संभावना है सो कदापि नहीं क्यों कि आपके स्वरूप

न हि विरोध उभयं भगवत्यपरिगणितगुणगण ईश्वरे अनवगाह्यमाहात्म्ये अर्वाचीनविकल्पवितर्कविचारप्रमाणाभासकुतर्कशास्त्रकलिलान्तःकरणाश्रयदुरवग्रहवादिनां विवादानवसरे उपरतसमस्तमायामये केवल एवात्ममायामन्तर्धाय को नु अर्थो दुर्घट इव भवति स्वरूपद्वयाभावात् ॥ ३६॥
समविषममतीनां मतमनुसरसि यथा रज्जुखण्डः सर्पादिधियाम् ॥ ३७ ॥
स एव हि पुनः सर्ववस्तुनि वस्तुस्वरूपः सर्वेश्वरः सकलजगत्कारणकारणभूतः सर्वप्रत्यगात्मत्वात्सर्वगुणाभासोपलक्षित एक एव पर्यवशेषितः ॥ ३८॥
अथ ह वाव तव महिमामृतरससमुद्रविप्रुषा सकृदवलीढया स्वमनसि निष्पन्दमानानवरतसुखेन विस्मारितदृष्टश्रुतविषयसुखलेशाभासाः परमभागवता एकान्तिनो भगवति सर्वभूतप्रियसुहृदि सर्वात्मनि नितरां निरन्तरं निर्वृतमनसः कथमु ह वा एते मधुमथन पुनः स्वार्थकुशला ह्यात्मप्रियसुहृदः साधवस्त्वच्चरणाम्बुजानुसेवां विसृजन्ति न यत्र पुनरयं संसारपर्यावर्तः ॥ ३९ ॥

दो नहीं देखे जाते ॥ ३६ ॥ यद्यपि आपका निग्रह अनुग्रह नही है परन्तु जैसे एकही रस्सीका टुकडा पृथक् २ देखनेवालोंकी दृष्टिमें सर्पादि भिन्न २ प्रकारसे प्रतीत होताहै इसी प्रकार एकही आप सम विषम बुद्धिवालौंको अनेक प्रकारकै प्रतीत होते हो ॥ ३७ ॥ सोई आप ईश्वर सब वस्तु हैं, सर्वेश्वर सकल जगत्के कारणोंके कारणरूप सर्वांतर्यामी सगुणोंमें प्रकाशक हो श्रुति आपको एकरूपसै अवशेषित रखती है ॥ ३८ ॥ हे मधुमथन ! महिमारूप अमृत रस समुद्रके एक कणुकाके एकवार स्वाद लेनेसे भक्तजन अपने मनमें अत्यन्त सुखकी प्राप्ति करकै देखे सुने विषय

सुखको भूल जाते हैं जो इस लोक पर लोक संबंधी है ऐसे स्वार्थमें कुशल और केवल आपकोही प्रियबंधु मान्नेवाले आपके भक्त साधु कि जिनका मन सब प्राणीमात्रके प्रियमित्र और सबके आत्मरूप आपमेंहीं निरन्तर लगा रहनेसै जो परम सुखके पात्र होगये हैं वे आपके चरणौंकी सेवाको कैसे छोड़सकै जिस सेवासै संसारका आवागमन मिट जाता है ॥ ३९ ॥ हे दंडधर ! त्रिलोकीके आत्मा आश्रयरूप त्रिविक्रम त्रिनयन ! त्रिलोकीके मन हरवेवारो ! तुह्मारो प्रभाव है यद्यपि देवता असुर दोनों तुह्मारी विभूति हैं, तथापि यह समय उनकै उद्यमका नहीं है यह जानकर अपनी माया-

त्रिभुवनात्मभवन त्रिविक्रम त्रिनयन त्रिलोकमनोहरानुभाव तवैव विभूतयो दितिजदनुजादयश्चापि तेषानुपक्रमसमयोऽयमिति स्वात्ममायया सुरनरमृगमिश्रितजलचराकृतिभिर्यथापराधं दण्डं दण्डधर दधर्थ एवमेनमपि भगवञ्जहि त्वाष्ट्रमुत यदि मन्यसे ॥४०॥ अस्माकं तावकानां तव नतानां तात पितामह तव चरणनलिनयुगलध्यानानुबद्धहृदयनिगडानां स्वलिङ्गविवरणेनात्मसात्कृतानामनुकम्पाऽनुरञ्जितविशदरुचिरशिशिरस्मितावलोकेन विगलितमधुरमुखरसामृतकलया चान्तस्तापमनघार्हसि शमयितुम् ॥४१॥ अथ ह भगवंस्तवास्माभिरखिलजगदुत्पत्तिस्थितिलयनिमित्तायमानदिव्यमायाविनोदस्य सकलजीवनिकायानामन्तर्हृदयेषु बहिरपि च ब्रह्मप्रत्यगात्मस्वरूपेण प्रधानरूपेण च यथा देशकालदेहावस्थानविशेषं तदुपादानोपलम्भकतयाऽनुभवतः सर्वप्रत्ययसाक्षिणः आकाशशरीरस्य साक्षात्परब्रह्मणः परमात्मनः कियानिह वा अर्थविशेषो विज्ञापनीयः स्याद्विस्फुलिङ्गादिभिरिव हिरण्यरेतसः ॥ ४२ ॥

करके सुर नर मृगमें मिलेभए जलजीवनसी आकृतिका अवतार धारण कर अपराधानुसार उन्है जैसे अपने पहले दंड दियाथा उसी प्रकार अबभी इस त्वष्टाके पुत्र वृत्रासुरकों मारो ॥ ४० ॥ हे पितः हे पितामह हे पापरहित परमेश्वर ! तुमको नमस्कार करवेवारे तुह्मारे दौनों चरणकमलके ध्यानसे हृदयमें बंधी सांकलवाले जिन्है अपनी मूर्ति प्रगट कर अपने अपना लिया है उनके अन्तःकरणके तापको दया सहित स्वच्छ सुन्दर और शीतल हास्ययुक्त देखनैसे तथा मुखसै निकली मधुर रस युक्त वाणीरूप अमृतकी कलासै शमन करो ॥ ४१ ॥ हे भगवन् ! आप सब

जगतकी उत्पत्ति पालन नाश निमित्तवाली दिव्य मायाके द्वारा क्रीडा करते हो सब जीवोंके अन्तःकरणौंमें ब्रह्म और अन्तर्यामि स्वरूपसै और बाहर प्रधानरूपसै सबके प्रधान कारणके निमित्त देश काल और देहकी अवस्थाऔंका निश्चय करनेवाले हो सबके विश्वासके साक्षी आकाश शरीर साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हो आपके निकट हम किन २ वस्तुऔंकी प्रार्थना करैं जिस प्रकार अग्निके निकट स्फुलिंगौंको प्रकाश करनैकी आवश्यकता नही इसी प्रकार हमें आपके प्रति अपना कार्य प्रगट करनेकी आवश्यकता नहीं कारण कि आप अन्तर्यामी हो ॥ ४२ ॥ याहीसे आप हमपै अपने चरणकमलकी छाया करो, भगवान्परम गुरुके अनेक कष्ट और संसार परिश्रमोंके नाश करवेवारी छायाको हम जाकाम

अत एव स्वयं तदुपकल्पयास्माकं भगवतः परमगुरोस्तव चरणशतपलाशच्छायां विविधवृजिनसंसारपरिश्रमोपशमनीमुपसृतानां वयं यत्कामेनोपसादिताः ॥ ४३ ॥ अथो ईश जहि त्वाष्ट्रं ग्रसन्तं भुवनत्रयम् ॥ ग्रस्तानि येन नः कृष्ण तेजांस्यस्त्रायुधानि च ॥४४॥ हंसाय दह्रनिलयाय निरीक्षकाय कृष्णाय मृष्टयशसे निरुपक्रमाय ॥ सत्संग्रहाय भवपान्थनिजाश्रमाप्तावन्ते परीष्टगतये हरये नमस्ते ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैवमीडितो राजन्सादरं त्रिदशैर्हरिः ॥ स्वमुपस्थानमाकर्ण्य प्राह तानभिनन्दितः ॥४६॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रीतोऽहं वः सुरश्रेष्ठा मदुपस्थानविद्यया ॥ आत्मैश्वर्यस्मृतिः पुंसां भक्तिश्चैव यया मयि ॥४७ ॥ किं दुरापं मयि प्रीते तथाऽपि विबुधर्षभाः ॥ मय्येकान्तमतिर्नान्यन्मत्तो वाञ्छति तत्त्ववित् ॥ ४८ ॥

करकै प्राप्त हैं सो मनोरथ पूरो करो ॥ ४३ ॥ हे ईश ! इस त्रिलोकीके ग्रसवेवारे वृत्रासुरकों मारो हे कृष्ण ! याने हमारे तेज अस्त्र आयुध सब ग्रसे है ॥ ४४ ॥ हंसरूप हृदयाकाशवासी बुद्ध्यादिके साक्षी उज्ज्वल यशवारे आदिशून्य सब दुःखहारक श्रीकृष्णचंद्रके अर्थ नमस्कार होय " कृषिर्भूवाचकःशब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः ॥ तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥ " ऐसे निरुक्त है ॥४५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! महा-आदरसैं ऐसै जब देवतानने स्तुति कीनी भगवान उनकी स्तुतिसै महाप्रसन्न होयकर देवतानसें बोले ॥ ४६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे देवनमें श्रेष्ठ हो ! तुह्मारी स्तुतिसै हम प्रसन्न है मेरेमें पुरुषनकी भक्ति होनी येही आत्माके ऐश्वर्यकी स्मृति करवेवारी हैं ॥ ४७ ॥ हे देवश्रेष्ठहो ! मेरे प्रसन्न

होंनेसे कौनसी चीज नहीं प्राप्त है, उन्हैं सब प्राप्त है जो तत्ववेत्ता हैं मेरेमैं एकांत मतिवारेको और कुछ चाहना नहीं है ॥ ४८ ॥ कृपण गुणवस्तुका द्रष्टा अपनो श्रेयको नहीं जानै है वाकों वा विषयकी इच्छाको देंनेवारोभी वैसोई है यासे गुणोंके विषयोमें आसक्त मत होओ ॥ ४९ ॥ कर्मको जान्नेवाले विद्वान अज्ञानीको कल्याणकी बात नहीं कहै है, जो सद् वैद्य है वो रोगीको कुपथ्य नहीं देवै है रोगी कुपथ्यकी इच्छा करै हैं ॥ ५० ॥ हे इंद्र ! जाओ तुह्मारो कल्याण होय, दधीचऋषिके पास जायकर विद्यातपव्रतको सार उनको शरीर मांगो देर मत करो ॥ ५१ ॥ उन दधीच मुनीसे अश्विनीकुमार निष्कल्मषब्रह्मको प्राप्त भएहैं वाको अश्वशिरानाम ब्रह्मविद्या है, उस्से वे दोनो देवभावकों प्राप्त होते भये “ या प्रसंगकी एक कथा है ये है कि एकसमय ब्रह्मविद्यामें निपुण अथर्वक्ता चतुर दधीचमुनिके समीप आयकर अश्विनीकुमार बोले हे भगवन् ! हमको ब्रह्मविद्या देओ, ये सुन दधीच बोले कि या समय हम भगवत्के कर्ममें स्थित हैं पाछे आइयो तुह्मारेको सिखावैं गे, अब तुम जाओ जब वे दोने चले गए तब इंद्र आयके बोले हे मुने ! ये अश्विनीकुमार वैद्य हैं, इन्है ब्रह्मविद्या मत देओ, जो हमारो कहो उल्लांघोगे तौ शीघ्र तुह्मारो मूंड काटदेऊंगो यामें संदेह नहीं है ऐसे कहि इंद्र चलोगयो, जब शक्र चलोगयो तौ अश्विनीकुमार आय दधीचसे जो इंद्र कहि गयो वो सुन वे दोनो बोले कि ये मनुष्यको शिर तुह्मारो काटकर हम पहिले घोडेको शिर तुह्मारे लगावै है या अश्वशिरसें हे द्विज ब्रह्मविद्या हमैं शिखाओ फेर इंद्र या घोडेको शिर तुह्मारो काटकर चलो जायगो उपरांत मनुष्यशिर हम लगावैंगे, अपनी दक्षिणामैं ये काम कर जैसे आए हैं तैसें जायंगे, ये सुन उन दोनोंसे अथर्ववक्ता दधीच बोले बहुत अच्छा है ऐसेई दधीचने करी सब उक्त कथा जैसे कही तैसे होती भई ” ॥ ५२ ॥ दधीच अथर्ववेत्ताने मेरी आत्माको श्रीनारायणवर्म

न वेद कृपणः श्रेय आत्मनो गुणवस्तुदृक् ॥ तस्य तानिच्छतो यच्छेद् यदि सोऽपि तथाविधः ॥ ४९ ॥ स्वयं
निःश्रेयसं विद्वान्न वक्त्यज्ञाय कर्म हि ॥ न राति रागिणोऽपथ्यं वाञ्छतो हि भिषक्तमः ॥ ५० ॥ मघवन्यात
भद्रं वो दध्यञ्चमृषिसत्तमम् ॥ विद्याव्रततपःसारं गात्रं याचत मा चिरम् ॥ ५१ ॥ स वा अधिगतो दध्यङ्ङश्विभ्यां ब्रह्म निष्कलम् ॥ यद्वा अश्वशिरो नाम तयोरमरतां व्यधात् ॥ ५२ ॥ दध्यङ्ङाथर्वणस्त्वष्ट्रे वर्माभेद्यं
मदात्मकम् ॥ विश्वरूपाय यत्प्रादात्त्वष्टा यत्त्वमधास्ततः ॥ ५३ ॥

त्वष्टाको दीनो त्वष्टाने विश्वरूपको पढायो, विश्वरूपनें तुह्मै मंत्र द्वारसे नारायणकवच पहिनायो ॥ ५३ ॥ अश्विनीकुमार आदि तुम सब देवता उनके अंगके हाड मांगोगे तो वो धर्मज्ञ तुह्मै देदेगो, फेर विश्वकर्मासे श्रेष्ठ आयुध बन जायगो ॥५४॥ मेरे तेजसै बढे दधीचके हाडके बने वज्रसें वृत्रासुरको शिर कटैंगो, वो जब मरजायगो तब तुम तेज अस्त्र आयुध संपदाको फेर प्राप्त होओंगे मेरेमें जो परायण हैं उनको कोई मार नहीं सकैहै हे राजन् ! मेरे परायण नर चंद्रमाकी नांई प्रकासकरै है ॥५५॥ इतिश्रीमन्महाभा० भा० टी० षष्ठ० इंद्रादिदेवकृतगद्यपद्यात्मकस्तोत्रवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि ॥ इंद्रसे ऐसै कहि भगवान् विश्वभावन देवतानके देखते देखते अंतर्द्धान होगए ॥ १ ॥ हे राजन् ! आथर्व-

युष्मभ्यं याचितोऽश्विभ्यां धर्मज्ञोऽङ्गानि दास्यति ॥ ततस्तैरायुधश्रेष्ठो विश्वकर्मविनिर्मितः ॥ ५४ ॥ येन वृत्रशिरो हर्ता मत्तेजउपबृंहितः ॥ तस्मिन्विनिहते यूयं तेजोस्त्रायुधसंपदः ॥ भूयः प्राप्स्यथ भद्रं वो न हिंसन्ति च मत्परान् ॥ ५५ ॥ इति श्रीभाग० षष्ठ० इन्द्रादिकृतगद्यपद्यात्मकस्तोत्रवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रमेवं समादिश्य भगवान्विश्वभावनः ॥ पश्यतामनिमेषाणां तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥ १ ॥ ततोऽभियाचितो देवैर्ऋषिराथर्वणो महान् ॥ मोदमान उवाचेदं प्रहसन्निव भारत ॥ २ ॥ अपि वृन्दारका यूयं न जानीथ शरीरिणाम् ॥ संस्थायां यस्त्वभिद्रोहो दुःसहश्चेतनापहः ॥ ३ ॥ जिजीविषूणां जीवानामात्मा प्रेष्ठ इहेप्सितः ॥ क उत्सहेत तं दातुं भिक्षमाणाय विष्णवे ॥ ४ ॥ देवा ऊचुः ॥ किं नु तद्दुस्त्यजं ब्रह्मन्पुंसां भूतानुकम्पिनाम् ॥ भवद्विधानां महतां पुण्यश्लोकेड्यकर्मणाम् ॥ ५ ॥ ननु स्वार्थपरो लोको न वेद परसंकटम् ॥ यदि वेद न याचेत नेति नाह यदीश्वरः ॥ ६ ॥

ण ऋषि दधीच तैसैं देवों करकै मांगे गए प्रसन्न होयकर इस ये बोलै ॥ २ ॥ हे देवताहो ! तुम जानो हो कि शरीरधारीनको मृत्युमें जो दुःख है वो बडो दुःखदायक मूर्छाकारण है ॥ ३ ॥ या संसारमें जीववारे जीवनको शरीर बडो प्यारो है जो विष्णुभी एकवार आय भिक्षाकरकैं मांगे तो कोई देवेको योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ देवता बोले कि हे ब्रह्मन् ! सब जीवमात्रपर दयाकरवेवारे आपसरीखे पुरुषको बडोंको जो पुण्यश्लोक श्रीहरिके कर्ममें लगे है उनकों कोई बात दुस्त्यज नहीं है ॥ ५ ॥ ये सब लोक अपने स्वार्थके गरजी हैं, पराएके दुःखको नहीं

जाने हैं, जो ये जानें तो फेर मागे नहीं, जानकर ईश्वरभी याको नांही नहीं करै है ॥ ६ ॥ दधीच बोले कि तुमसें कुछ धर्म सुनवेकी इच्छा करकै मैंनै तुह्मै पहिलै नहीं करी, परंतु अतिप्रिय या शरीरको तुह्मारे उपकारके अर्थ त्याग करूंगो ॥ ७॥ हे नाथ! जो कोई सदा न रहनेहारे या देहसें धर्म यश नहीं करै जो जीवपर दया नहीं करै है, वो स्थावरोंकरकैभी शौच करवेयोग्य है ॥८॥ यही अव्ययधर्म महायशस्वीननें करचौ है, जो जीवके शोकमें शोक करै हर्षमें हर्ष करै ॥९॥ अहो दीनताकी बात है, अहो कष्टकी बात है कुत्ता शृगालआदिसै भक्षणार्थ क्षणभंगुर शरीरसे जो मनुष्य धर्म न करै वो अस्वार्थी अपने जातिमें विग्रह युद्धको प्राप्त होय है ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि ऐसें निश्चय कर आथर्वणदधीच परेसे परे भगवान् ब्रह्ममें

दधीचिरुवाच ॥ धर्मं वः श्रोतुकामेन यूयं मे प्रत्युदाहृताः ॥ एष वः प्रियमात्मानं त्यजन्तं संत्यजाम्यहम् ॥७॥ योऽध्रुवेणात्मना नाथा न धर्मं न यशः पुमान् ॥ ईहेत भूतदयया स शोच्यः स्थावरैरपि ॥ ८ ॥ एतावानव्ययो धर्मः पुण्यश्लोकैरुपासितः ॥ यो भूतशोकहर्षाभ्यामात्मा शोचति हृष्यति ॥ ९ ॥ अहो दैन्यमहो कष्टं पारक्यैः क्षणभङ्गुरैः ॥ यन्नोपकुर्यादस्वार्थैर्मर्त्यः स्वज्ञातिविग्रहैः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं कृतव्यवसितो दध्यङ्ङाथर्वणस्तनुम् ॥ परे भगवति ब्रह्मण्यात्मानं सन्नयञ्जहौ ॥११॥ यताक्षासुमनोबुद्धिस्तत्त्वदृग्ध्वस्तबन्धनः ॥ आस्थितः परमं योगं न देहं बुबुधे गतम् ॥ १२ ॥ अथेन्द्रो वज्रमुद्यम्य निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ मुनेः शुक्तिभिरुत्सिक्तो भगवत्तेजसाऽन्वितः ॥ १३ ॥ वृतो देवगणैः सर्वैर्गजेन्द्रोपर्यशोभत ॥ स्तूयमानो मुनिगणैस्त्रैलोक्यं हर्षयन्निव ॥ १४ ॥ वृत्रमभ्यद्रवच्छेत्तुमसुरानीकयूथपैः ॥ पर्यस्तमोजसा राजन्क्रुद्धो रुद्र इवान्तकम् ॥ १५ ॥

मनको लगायकर शरीरकों त्याग करतेभए ॥ ११ ॥ इंद्री मन प्राण सब जीतकर बुद्धिसें तत्व देख सब बंधन नाशकर परमयोगाभ्यासमें स्थित होयकर शरीर त्यागकी बातभी न जानतेभए ईश्वरमें तदाकारवृत्ति कर लीन होगए देहानुसंधान न रह्यो ॥ १२ ॥ याके उपरांत विश्वकर्माको रचोभयो दधीचके हाडको बनो भगवत्तेजसें युक्त वज्र इंद्र उठावतो भयो ॥ १३ ॥ सब देवगणसहित गजेंद्रपर बैठोभयो मुनिगणोंसै स्तुतिको प्राप्त हो त्रिलोकीको हर्ष करत शोभित होतो भयो ॥ १४ ॥ हे राजन्! असुरोंके यूथपतियोंकरकै युक्त क्रुद्ध रुद्र यमकी नांई स्थित

वृत्रासुरके छेदवेको देवता दौंडै ॥ १५ ॥ सुर असुरनको परमदारुण संग्राम त्रेताके आदि प्रथमयुगमें नर्मदाके तीरपर होतोभयो ॥ १६ ॥ ग्यारह रुद्र आठ वसु वारहे सूर्य दो अश्विनीकुमार वैद्य सब पितर तीनो अग्नि उनपचास मरुत्, ऋभु साध्य विश्वेदेवा इंद्रके संग हो ॥१७॥ हे राजन्! वज्रधारी अपनी लक्ष्मीसें प्रकाशमान इंद्रको देख वृत्रासुर आदि असुर कुछ गणना न करतेभए ॥ १८ ॥ नमुचि शंबर अनर्वा द्विमूर्धा ऋषभ अंबर हयग्रीव शंकुशिरा विप्रचित्ति अयोमुख ॥ १९ ॥ पुलोमा वृषपर्वा प्रहेति हेति उत्कल दैतेय दानव यक्ष राक्षस सैकडों खडे हैं ॥ २० ॥ इल्वल पल्वल

ततः सुराणामसुरै रणः परमदारुणः ॥ त्रेतामुखे नर्मदायामभवत्प्रथमे युगे ॥ १६ ॥ रुद्रैर्वसुभिरादित्यैरश्विभ्यां पितृवह्निभिः ॥ मरुद्भिर्ऋभुभिः साध्यैर्विश्वेदेवैर्मरुत्पतिम् ॥ १७ ॥ दृष्ट्वा वज्रधरं शक्रं रोचमानं स्वमायया ॥ नामृष्यन्नसुरा राजन्मृधे वृत्रपुरःसराः ॥ १८ ॥ नमुचिः शम्बरोऽनर्वा द्विमूर्धा ऋषभोऽम्बरः ॥ हयग्रीवः शङ्कुशिरा विप्रचित्तिरयोमुखः ॥ १९ ॥ पुलोमा वृषपर्वा च प्रहेतिर्हेतिरुत्कलः ॥ दैतेया दानवा यक्षा रक्षांसि च सहस्रशः ॥ २० ॥ इल्वलः पल्वलश्चैव दन्दशूको वृषध्वजः ॥ कालनाभमहानाभौ भूतसंतापनो वृकः ॥२१॥ सुमालिमालिप्रमुखाः कार्तस्वरपरिच्छदाः ॥ प्रतिषिध्येन्द्रसेनाग्र्यं मृत्योरपि दुरासदम् ॥ २२ ॥ अभ्यर्दयन्नसंभ्रान्ताः सिंहनादेन दुर्मदाः ॥ गदाभिः परिघैर्बाणैः प्रासमुद्गरतोमरैः ॥ २३ ॥ शूलैः परश्वधैः खड्गैः शतघ्नीभिर्भुशुण्डिभिः ॥ सर्वतोऽवाकिरञ्छस्त्रैरस्त्रैश्च विबुधर्षभान् ॥ २४ ॥ न तेऽदृश्यन्त संछन्नाः शरजालैः समन्ततः ॥ पुङ्खानुपुङ्खपतितैर्ज्योतींषीव नभोघनैः ॥ २५ ॥

दंदशूक वृषध्वज कालनाभ महानाभ भूतसंतापन वृक ॥ २१ ॥ सुमाली मालि आदि सुवर्णके सब कारवार पहिरे मृत्युसेभी दुरासद इंद्रकी सेनाके आगे चलवेवारेकों मनै करतेभए ॥ २२ ॥ मोहत्याग सिंहनाद कर महामदवारे गदा परिघ वाण फरसा मुद्गर तोमर ॥ २३ ॥ शूल परशा खड्ग शतघ्नी भुशुंडी शस्त्र अस्त्रोंसे जो देवनमें श्रेष्ठ हैं वे सब ओरसे लडतेभए ॥ २४ ॥ बाणोंके जालोंसे सब ओरसे ढकेभए देवता नहीं दीखतेभए, बाणोंपर बाण पडने लगे, जैसे आकाशमें मेघोंसे नक्षत्र सब ढकै तैसें सब देवता राक्षसोंके फैके बाणोंसे ढकजातेभए ॥ २५ ॥

देवसेनानके नायकनको शस्त्र अस्त्र वर्षाके समूहोंसे नहीं जीतसकै, चपल चपल हाथवारे देवतानकरके आकाशमैं सैकडों टूक असुरनके करै ॥२६॥ जब अस्त्र अस्त्रोंके समूह क्षीण भए, तब पर्वत शृंग वृक्ष पाषाणसे देवनकी फौजपर वर्षा करतेभए पहिले किसी नाईं देवनकों काटतेभए॥ २७ ॥ शस्त्रअस्त्रोंके समूहोंसे न मरते देख आनंदित देवतानकों वृत्रनाथादि सुनकै वृक्ष पाषाण अनेक पर्वतोंके शृंगोंसे विनाशते भए इंद्रके सेनापतीनकों त्रास देतेभए ॥ २८ ॥ देवतानके गुणोंमें दैत्योंने जितनी मेहनत करी सब निष्फल भई जैसै श्रीकृष्ण जिनपर अनुकूल ऐसे महात्मानपर तुच्छोंकी वाणी कही निष्फल होय है ॥ २९ ॥ श्रीहरिसें विमुख युद्धमें गर्वनाशके कारण अपने परिश्रम झूठे देख सब वन नाश होनेसे संग्रामके सामनेसे वृत्रा

न ते शस्त्रास्त्रवर्षौघा ह्यासेदुः सुरसैनिकान्॥ छिन्नाः सिद्धपथे देवैर्लघुहस्तैः सहस्रधा ॥ २६ ॥ अथ क्षीणास्त्रशस्त्रौघा गिरिशृङ्गद्रुमोपलैः॥ अभ्यवर्षन्सुरबलं चिच्छिदुस्तांश्च पूर्ववत् ॥ २७॥ तानक्षतान्स्वस्तिमतो निशम्य शस्त्रास्त्रपूगैरथ वृत्रनाथाः॥ द्रुमैर्दृषद्भिर्विविधाद्रिशृङ्गैरविक्षतांस्तत्रसुरिन्द्रसैनिकान् ॥ २८॥ सर्वे प्रयासा अभवन्विमोघाः कृताः कृता देवगणेषु दैत्यैः॥ कृष्णानुकूलेषु यथा महत्सु क्षुद्रैः प्रयुक्ता रुशती रूक्षवाचः ॥ २९ ॥ ते स्वप्रयासं वितथं निरीक्ष्य हरावभक्ता हतयुद्धदर्पाः॥ पलायनायाजिमुखे विसृज्य पतिं मनस्ते दधुरात्तसाराः ॥ ३० ॥ वृत्रोऽसुरांस्ताननुगान्मनस्वी प्रधावतः प्रेक्ष्य बभाष एतत् ॥ पलायितं प्रेक्ष्य बलं च भग्नं भयेन तीव्रेण विहस्य वीरः॥ ३१ ॥ कालोपपन्नां रुचिरां मनस्विनामुवाच वाचं पुरुषप्रवीरः॥ हे विप्रचित्ते नमुचे पुलोमन्मयानर्वञ्छम्बर मे शृणुध्वम्॥ ३२ ॥ जातस्य मृत्युर्ध्रुव एष सर्वतः प्रतिक्रिया यस्य न चेह क्लृप्ता ॥ लोको यशश्चाथ ततो यदि ह्यमुं मृत्युं वरं को न वृणीत युक्तम् ॥ ३३ ॥

सुरकूं छोड भागवेकी इच्छा करते भए ॥ ३० ॥ महामनस्वी वृत्रासुर असुरनकों भागते देख ये बोले तीव्रभयसें भग्न भागेभए बलको देख वह वीर हंसकर बोला ॥ ३१ ॥ पुरुषनमें वीर वृत्र समयके अनुसार रुचिर मनस्वीनकी वाणी बोलो, हे विप्रचित्ते हे नमुचे हे पुलोमन् हे मय हे अनर्वन् हे शंबर! मेरी वाणी सुनो ॥३२॥ जो जन्मों है वाको मृत्यु सब तरहसे निश्चय होयगी, याकी दूर करवेको कोई उपाय आजतक काऊने रचो नहीं जासे लोकमें सुंदर यश होय, स्वर्ग होय ऐसी युद्धमें मरनेकी योग्य मृत्युकौ कौन न चाहै सब चाहैं हैं ॥ ३३ ॥

दोप्रकारकी मृत्यू संमत है, दुःखसे प्राप्त होय है, एक तो ब्रह्मज्ञानसे प्राण त्यागनो. दूसरो सबसे आगे संग्राममें मरनो वीरशय्याको आनंद देखनो "स्मृति॥ द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमंड़लभेदिनौ ॥ परिव्राड्योगयुक्तस्तु रणे चाभिमुखे हत इति(१)॥३४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे ष० वृत्रयुद्धे असुरपराजयवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि ॥ सावधान चित्त न होनेसे वे असुर सब वृत्रासुरको वचन धर्मको कहिनो नहीं ग्रहण करते भए, हे नृप! भयके मारे भागवेमें परायण भए ॥ १ ॥ कालका अनुसरण करनेवाले देवताओंने दैत्योंकी सैना अनाथकी नाई भगादी

द्वौ संमताविह मृत्यू दुरापौ यद्ब्रह्मसंधारणया जितासुः ॥ कलेवरं योगरतो विजह्याद्यदग्रणीर्वीरशयेऽनिवृत्तः ॥ ३४ ॥ इति श्रीभा० षष्ठ० दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ त एवं शंसतो धर्मं वचः पत्युरचेतसः ॥ नैवागृह्णन्भयत्रस्ताः पलायनपरा नृप ॥ १ ॥ विशीर्यमाणां पृतनामासुरीमसुरर्षभः ॥ कालानुकूलैस्त्रिदशैः काल्यमानामनाथवत् ॥ २ ॥ दृष्ट्वाऽतप्यत संक्रुद्ध इन्द्रशत्रुरमर्षितः ॥ तान्निवार्यौजसा राजन्निर्भर्त्स्येदमुवाच ह ॥ ३ ॥ किं व उच्चरितैर्मातुर्धावद्भिः पृष्ठतो हतैः ॥ न हि भीतवधः श्लाघ्यो न स्वर्ग्यः शूरमानिनाम् ॥ ४ ॥ यदि वः प्रधने श्रद्धा सारं वा क्षुल्लका हृदि ॥ अग्रे तिष्ठत मात्रं मे न चेद् ग्राम्यसुखे स्पृहा ॥ ५ ॥ एवं सुरगणान्क्रुद्धो भीषयन्वपुषा रिपून् ॥ व्यनदत्सुमहाप्राणो येन लोका विचेतसः ॥ ६ ॥

अपनी सैनाको छिन्न भिन्न देख ॥ २ ॥ हे राजन् ! इंद्रको शत्रु क्रोधकर उनको पराक्रमसें मने करतो भयो और डरायकर ये बोलो ॥३॥ हे देवताहो! मरेनके पीछे दौडनेवारे तुमसे कहा होगो, माताके तुम विष्ठा हो डरेनके मारनेकी श्लाघा नहीं होवै है, और शूरमानी जो हैं उनको स्वर्ग नहीं होय है ॥ ४ ॥ जो तुह्मारी संग्राममें श्रद्धा सारहृदयमें होय तो हे छोटे हो! मेरे सन्मुख ठाड़े होओ संसारी विषय सुखकी इच्छा होय तो मत खडे रहो ॥ ५ ॥ क्रोधी वैरी सुरगणनको शरीरसें ड़रावते महाप्राणधरी वृत्रासुरनै जब शब्द किया तौ लोक मूर्छित होगये (२) ॥ ६ ॥

---

१ पीलू ॥ हरिविन बनी वात सब बिगरी ॥ टेर ॥ मनुषजन्म भयो उत्तम घरमैं आई चतुराई सगरी ॥ १ ॥ लक्ष चौरासी भटकत हारो भली चांइ तेरी रगरी ॥ २ ॥ वेद गुरु कहि पंडित हारे बुद्धि तेरी नहीं टिगरी ॥ ३ ॥ पुरुषोत्तम सर्वेश्वर गायो होगई हमरी डिगरी ॥ ४ ॥ वृत्रासुर मरती वेर भगवतको अनुसंधान करतो भयो ॥

२ शंका–श्रीशुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहा कि हे राजन्! वृत्रासुरके गम्भीर शब्दसे सब लोक व्याकुल होगये, यह बात सुनकर बडा सन्देह होताहै, क्योंकि लोक तो बहुत

वृत्रासुरके नाद करकै सब देवगण वज्रसे हत हुएके समान मूर्छित हो भूमिमें गिरे ॥ ७ ॥ आतुर देवनकी सेनानको पांवसे मर्दन करते भए आंख मीच रणरूप रंगमें महामदांध उठे भए शूलके पराक्रमसे धरतीकों महामदवाले गजराज जैसै नरसलनके वनको मर्दन करै तैसै करतो भयो ॥ ८ ॥ अतिक्रोधी वज्रधारी इन्द्र अपने शत्रुके ऊपर महाभारी गदाकूं चलावतो भयो, आती भई महादुःसह गदाकों देख वांए हाथसे पकडतो भयो ॥ ९ ॥ हे नृप ! सो इंद्रको शत्रु कुपित वा गदासहित गजराजके कुंभस्थलमें चिल्हाय कर युद्धमें महापराक्रमसे मारतो भयो, वाके या कर्मको सब पूजन करते भए ॥ १० ॥ वृत्रासुरकी गदासे तपित घूमतो भयो वज्रके मारे पर्वतकी मुख टूटनैसे इंद्रको लिये रुधिर मुखसे वमन करता अतिआर्त हो ऐरावत सात धनुष पीछै हटगयो ॥ ११ ॥ खिन्न वाहनवाले इन्द्रपर महात्मा वृत्रासुरनै दूसरी वार गदाका प्रहार नहीं किया और इन्द्र अमृत चुआनेहारे अपने हाथके स्पर्शसै ऐरावतको वेदना रहित कर फिर वृत्रासुर सन्मुख हुआ ॥ १२ ॥

तेन देवगणाः सर्वै वृत्रविस्फोटनेन वै ॥ निपेतुर्मूर्च्छिता भूमौ यथैवाशनिना हताः ॥ ७ ॥ ममर्द पद्भ्यां सुरसैन्यमातुरं
निमीलिताक्षं रणरङ्गदुर्मदः ॥ गां कम्पयन्नुद्यतशूल ओजसा नालं वनं यूथपतिर्यथोन्मदः ॥ ८ ॥ विलोक्य तं वज्रधरोऽत्यमर्षितः स्वशत्रवेऽभिद्रवते महागदाम् ॥ चिक्षेप तामापततीं सुदुःसहां जग्राह वामेन करेण लीलया ॥ ९ ॥ स
इन्द्रशत्रुः कुपितो भृशं तया महेन्द्रवाहं गदयोग्रविक्रमः ॥ जघान कुम्भस्थल उन्नदन्मृधे तत्कर्म सर्वे समपूजयन्नृप
॥ १० ॥ ऐरावतो वृत्रगदाभिमृष्टो विघूर्णितोऽद्रिः कुलिशाहतो यथा ॥ अपासरद्भिन्नमुखः सहेन्द्रो मुञ्चन्नसृक्सप्तधनुर्भृशार्तः ॥ ११ ॥ न सन्नवाहाय विषण्णचेतसे प्रायुङ्क्त भूयः स गदां महात्मा ॥ इन्द्रोऽमृतस्यन्दिकराभिमर्शवीतव्यथः
क्षतवाहोऽवतस्थे ॥ १२ ॥

हैं, वृत्रासुरने ऐसा कैसा शब्द किया कि जिससे सब लोक व्याकुल होगये, यह बडी भारी शंका है, जो सब लोक शब्दसे व्याकुल होगये तो किसीमें विष्णु, किसीमें ब्रह्मा, किसीमें शिव, किसीमें सूर्य, किसीमें चन्द्रमा, किसीमें इंद्रादिक देवता और बड़े बड़े ऋषि, मुनि महात्मा पुरुष रहते हैं, तो यह सब लोग व्याकुल होगये होंगे ?

उत्तर–लोक शब्द मुनियोंने लोकोंके लिये नहीं कहा है, प्रजा लोगकोभी मुनिलोग लोक कहते हैं तब लोकको व्यासजीभी ऐसा कहते हैं कि इन्द्र और वृत्रासुरके युद्धके समय जो चारों ओर लोक बड़े जो प्रजाके लोक सब व्याकुल होगये, सब लोकोंके लिये व्याकुल होनेका व्यासजी महाराजने नहीं कहा है॥

हे नृपेंद्र! शत्रु वज्रायुधलिये भ्रातृके मारववारंकी युद्धकी चाहना देख वाको निंदित पापरूपकर्म याद कर शोक मोहसें हंसता हुआ ॥ १३ ॥ वृत्रासुर बोलै कि बडे भाग्यसें आप मेरे सामने ठाडे हैं हे असत्तम ! शत्रु ब्राह्मणको मारवेवारे, गुरु हननेवारे, भाईकी हिंसा करनेहारे तेरे पाषाण हृदयको अपने शूलसे तोड थोडेही कालमें भाईके ऋणसे छूटूंगो ॥ १४ ॥ जो हमारो भाई आत्मज्ञानी ब्राह्मण गुरु अपापी यज्ञमें दीक्षित हो वाको विश्वास देकर खड्गसें शिर काट्यो तैसै मै तेरा शिर काटूंगो जैसे स्वर्गकी चाहनावारे दया छोड पशुको मारै तैसें करूंगो ॥१५॥ लज्जा दया कीर्तिसे रहित अपने कर्मोंसें राक्षसौंकेभी धिक्कार योग्य तेरी देहको अपने शूलमें छेदकर अग्निसंस्कारहीन करूंगा तब उसै गिद्ध खांयगै ॥ १६ ॥ तुह्मारे

स तं नृपेन्द्राहवकाम्यया रिपुं वज्रायुधं भ्रातृहणं विलोक्य ॥ स्मरंश्च तत्कर्म नृशंसमंहः शोकेन मोहेन हसञ्जगाद
॥ १३ ॥ वृत्र उवाच ॥ दिष्ट्या भवान् मे समवस्थितो रिपुर्यो ब्रह्महा गुरुहा भ्रातृहा च ॥ दिष्ट्याऽनृणोऽद्याहमसत्तम
त्वया मच्छूलनिर्भिन्नदृषद्धृदाऽचिरात् ॥ १४ ॥ यो नोऽग्रजस्यात्मविदो द्विजातेर्गुरोरपापस्य च दीक्षितस्य ॥ विश्रभ्य
खड्गेन शिरांस्यवृश्चत् पशोरिवाऽकरुणः स्वर्गकामः ॥ १५ ॥ ह्रीश्रीदयाकीर्तिभिरुज्झितं त्वां स्वकर्मणा पुरुषादैश्च
गर्ह्यम् ॥ कृच्छ्रेण मच्छूलविभिन्नदेहमस्पृष्टवह्निं समदन्ति गृध्राः ॥ १६ ॥ अन्येऽनु ये त्वेह नृशंसमज्ञा ये ह्युद्यतास्त्राः
प्रहरन्ति मह्यम् ॥ तैर्भूतनाथान् सगणान् निशातत्रिशूलनिर्भिन्नगलैर्यजामि ॥ १७ ॥ अथो हरे मे कुलिशेन वीर हर्ता
प्रमथ्यैव शिरो यदीह ॥ तत्रानृणो भूतबलिं विधाय मनस्विनां पादरजः प्रपत्स्ये ॥ १८ ॥ सुरेश कस्मान्न हिनोषि वज्रं
पुरः स्थिते वैरिणि मय्यमोघम् ॥ मा संशयिष्ठा न गदेव वज्रं स्यान्निष्फलं कृपणार्थेव याच्ञा ॥ १९ ॥

पीछै और जो ये क्रूर अज्ञानी शस्त्र उठाए देवता प्रहार करैं हैं इनको सब गणसहित त्रिशूलसें भिदेभये गलोंसें गणसहित भूतनाथ शिवको यज्ञ करूंगो ॥ १७ ॥ अथवा हे इंद्र ! या संग्राममें जो तुम वज्रसे शिरको हठकरकै हरोगे तो सब ऋणसे छूट भूतबलि देकै मनस्वीनके पादरजकों प्राप्त होऊंगो ॥ १८ ॥ हे देवनके ईश ! आगे ठाढे मो वैरीपर सफल वज्र क्यों न मारोहो ये मत संदेह करो कि गदाकासी नाई वज्रको प्रहारभी विफल जाय सो न होगो, जैसे कृपणसे धन चाहनो व्यर्थ होय ऐसा यह विफल न होगा “ एक कृपणकी नाव गंगामें डूबनेलगी सो वाने

कही गंगा मैया पार लगावै तो सौ ब्राह्मण खवाऊं, नाव चक्रमेंसे निकसी ज्यूंज्यूं किनारेपे आयो त्यूंत्यूं एक ब्राह्मण रहिगयो, सो आय हरेकसे पूछै कितो खाओहो, तो कोई कहे पांचशेर कोई दो सेर कोई मोहोनभोग चाहे, ये सबनाटै, ईश्वरने कही भला कोई चतुर ब्राह्मण पहुचे याने कही कहा खाओगे, ये बोलो येही आधसेर चूंन आधपाव दार दो काकरी सामरकी, वाय घर ले जाय कहि आयो लुगाईसें कि जो ये मागे सो देदै, आप दुकानपर आय बैठो, वाने दससेरको मोहनभोग करनेको बोलो, तेरी सास एक एक ग्रास खाते जब एक एक मोहर देती वहू बोली दोदो लेजाओ ऐसे खाय पी एकसहस्र मोहर दक्षणा ले घर आय सोये, वहूसू कही कि तू रोय जो कोई आवै तो कहियो कि काऊ निपूतेके जैवेंगए सो जहर खवाय दीनो मरोपरो है तितनेमें कृपण घर आय सब खबर ले वा ब्राह्मणके घर आयो लुगाई रोती देख सब हाल सुन दोसे रूपा दे घर आयो कृपणसे यूं

नन्वेष वज्रस्तव शक्र तेजसा हरेर्दधीचेस्तपसा स तेजितः ॥ तेनैव शत्रुं जहि विष्णुयन्त्रितो यतो हरिर्विजयः श्रीर्गुणास्ततः ॥ २० ॥ अहं समाधाय मनो यथा ह संकर्षणस्तच्चरणारविन्दे ॥ त्वद्वज्ररंहोलुलितग्राम्यपाशो गतिं मुनेर्याम्यपविद्धलोकः ॥ २१ ॥ पुंसां किलैकान्तधियां स्वकानां याः संपदो दिवि भूमौ रसायाम् ॥ न राति यद् द्वेष उद्वेग आधिर्मदः कलिर्व्यसनं संप्रयासः ॥ २२ ॥ त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र ॥ ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो यो दुर्लभोऽकिंचनगोचरोन्यैः ॥ २३ ॥

भगवान् लै है" ॥ १९ ॥ हे इंद्र! ये वज्र तेरो श्रीहरिके तेजसै बढो है दधीचीके तपके हाडोंसे तेजित है श्रीविष्णुके वशीभूत होयकर शत्रुकों मारो जहां हरि हैं तहां विजय लक्ष्मी गुण सब होंय है ॥ २० ॥ मैंने श्रीसंकर्षणके चरणारविंदमें मन लगायोहो तब जो मोसे शेषजीने कह्यो सो याद है, तुह्मारे वज्रके वेगसे ग्राम्यके सुखकी पाश कटनेसै यालोकको त्याग मुनियोंकी गतिकों प्राप्त होउंगो ॥ २१ ॥ और यहभी निश्चय है कि एकांत बुद्धिवारे जो आपके भक्त हैं तिनकों स्वर्ग भूमि रसातलकी संपदा वैर करनेसे नहीं प्राप्त होयहैं, क्योंकि वैरसे उद्वेग व्याधि मद क्लेश व्यसन प्रयास होंय हैं ॥ २२ ॥ हे इंद्र! हमारे स्वामी अपने भक्तौंके धर्म अर्थ और काम संबंधी क्लेशौंको दूर कर देते हैं इनके निवृत्त हौनेसैही भगवानकी कृपाका अनुमान होताहै ऐश्वर्य प्राप्त हौना भगवानकी कृपा नहीं उनकी दया अभिमान शून्य पुरुषौंपर होती है औरौंपर नहीं ॥ २३ ॥

हे भगवन्! हम तुम्हारे चरणकमलके दासानुदास होंयहै हे प्राणनाथ! मन आपके स्मरण करै है, वाणी आपको नाम लेवै है शरीर आपके कर्म करै है ॥ २४ ॥ स्वर्ग पारमेष्ठ्य सार्वभौम रसातलको राजयोग सिद्धि अपुनर्जन्म हे सौभाग्यपते! तुम्हारे विरहमें विवश होयकै इनकी काङ्की चाहना न करैं हैं ॥ २५ ॥ जिन पक्षीनके पंख नहीं आए वे जैसे माको चाहै भूखे छोटे बछरा जैसै स्तनके दूधकों चाहै प्यारी प्यारेकूं जैसें चाहै प्रदेशी गएको घरवारे जैसे चाहै तैसै हे अरविंदाक्ष! हमारो मन तुह्मै देखवेकूं चाहै ॥२६॥ अपने कर्मोंकरकै संसाररूप चक्रमें भ्रमूंहूं सो उत्तमश्लोक भगवान्के भ-

अहं हरे तव पादैकमूलदासानुदासो भवितास्मि भूयः ॥ मनः स्मरेतासुपतेर्गुणांस्ते गृणीत वाक् कर्म करोतु कायः
॥ २४ ॥ न नाकपृष्ठं न च पारमेष्ठ्यं न सार्वभौमं न रसाधिपत्यम् ॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा समञ्जस त्वा विरहय्य
काङ्क्षे ॥ २५ ॥ अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः ॥ प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा
मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम् ॥ २६ ॥ ममोत्तमश्लोकजनेषु सख्यं संसारचक्रे भ्रमतः स्वकर्मभिः ॥ त्वन्माययात्मा-
त्मजदारगेहेष्वासक्तचित्तस्य न नाथ भूयात् ॥२७॥इति श्रीभा० षष्ठ० वृत्रासुरेण भगवत्स्तोत्रवर्णनं नाम एकादशोऽ-
ध्यायः ॥ ११ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवं जिहासुर्नृप देहमाजौ मृत्युं वरं विजयान्मन्यमानः ॥ शूलं प्रगृह्याभ्यपतत् सुरेन्द्रं
यथा महापुरुषं कैटभोऽप्सु ॥१॥ ततो युगान्ताग्निकठोरजिह्वमाविध्य शूलं तरसाऽसुरेन्द्रः ॥ क्षिप्त्वा महेन्द्राय विनद्य
वीरो हतोऽसि पापेति रुषा जगाद ॥ २ ॥

क्तजनोंमें सख्यता होय हे नाथ! तुम्हारी मायाकरकै पुत्र स्त्री घरमें आसक्त चित्तवारेको फेर ऐसो योग कभीभी न होयगो ॥ २७ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां षष्ठस्कन्धे वृत्रस्तोत्रवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृप! संग्राममें ऐसै देहके त्यागकी इच्छाकर विजयसें मृत्युको श्रेष्ठ मान शूल लेकै इंद्रपर दौडो,जैसै महाप्रलयके जलमैं मधुकैटभ श्रीविष्णुके पीछे दौडो ॥ १ ॥ तब युगके अंतकी अग्निकी नाईं कठोर जीभसी चमकवारे शूलकों शीघ्र घुमाय इंद्रपर फैंक नादकर हे पापी! तू मरो ऐसै क्रोधसे बोलौ ॥ २ ॥

आकाशसे आतोभयो उल्कापातके ग्रहकी नाईं चलायमान दुष्प्रेक्ष्य वृत्रासुरको शूल लिये आता देख इंद्रने धैर्यतासै तीक्ष्ण वज्र उठाय सर्पराजके फणासमान उनकी भुजा काट डाली ॥ ३ ॥ जब वज्रसे एक बाहु छिन्न भई तब वृत्रासुरने क्रोधसें परिघ ले वज्रधारी इंद्रकी ठोडीमैं मारा और हाथीकोभी ताडन किया तब इंद्रके हाथसे वज्र गिर पडो ॥ ४ ॥ वृत्रासुरके अति महाअद्भुत कर्मकी सुर असुर सिद्ध चारणके समूह बडी सराहना करते भए, इंद्रको ये संकट देख हाहाकार करवे लगे ॥ ५ ॥ फेर इन्द्र वैरीकी समीपतामैं अपने हाथसे गिरेभए वज्रकों लज्जासें नहीं ग्रहण करतो भयो, तब वृत्र वासे बोलो हे इंद्र! अपने शत्रुकों मारो ये समय विषादको नहीं है ॥ ६ ॥ आततायी युद्धकी इच्छा करवेवारेनको सदा जय और पराजय नहीं होती सदां जय तौ ईश्वरके आधीन हैं जो उत्पत्ति विनाश पालन करवेवारे सर्वज्ञ आद्य सनातन पुरुष है ॥७॥ श्वांस लेतेभए सब लोकपाल जिनके वशमैं होकर पक्षीकी नांई बंधेहैं, सो कालही यहां कारण है ॥ ८ ॥ ओज सह बल प्राण अमृत मृत्यु इन सबका कारण काल है उसै न जानकर प्राणी जड़ देहको इनका कारण मान्ते हैं ॥ ९ ॥ हे इंद्र! काठकी पुतरी, जैंसै यंत्रमय मृगपूतरी, नचायवेवारेके वशमें होय है ऐसै ये सब जीव परमेश्वरके वशमें हैं ॥ १० ॥

ख आपतत्ताद्विचलद्ग्रहोल्कवन्निरीक्ष्य दुष्प्रेक्ष्यमजातविक्लवः ॥ वज्रेण वज्री शतपर्वणाऽच्छिनद्भुजं च तस्योरगराजभोगम् ॥ ३ ॥ छिन्नैकबाहुः परिघेण वृत्रः संरब्ध आसाद्य गृहीतवज्रम् ॥ हनौ तताडेन्द्रमथाऽमरेभं वज्रं च हस्तान्न्यपतन्मघोनः ॥४॥ वृत्रस्य कर्मातिमहाद्भुतं तत् सुरासुराश्चारणसिद्धसंघाः ॥ अपूजयंस्तत् पुरुहूतसंकटं निरीक्ष्य हा हेति विचुक्रुशुर्भृशम् ॥ ५ ॥ इन्द्रो न वज्रं जगृहे विलज्जितश्च्युतं स्वहस्तादरिसन्निधौ पुनः ॥ तमाह वृत्रो हर आत्तवज्रो जहि स्वशत्रुं न विषादकालः ॥ ६॥ युयुत्सतां कुत्रचिदाततायिनां जयः सदैकत्र न वै परात्मनाम् ॥ विनैकमुत्पत्तिलयस्थितीश्वरं सर्वज्ञमाद्यं पुरुषं सनातनम् ॥ ७ ॥ लोकाः सपाला यस्येमे श्वसन्ति विवशा वशे ॥ द्विजा इव शिचा बद्धाः स काल इह कारणम् ॥ ८ ॥ ओजः सहो बलं प्राणममृतं मृत्युमेव च ॥ तमज्ञाय जनो हेतुमात्मानं मन्यते जडम् ॥९॥ यथा दारुमयी नारी यथा यन्त्रमयो मृगः ॥ एवं भूतानि मघवन्नीशतन्त्राणि विद्धि भोः ॥ १० ॥

पुरुष प्रकृति अव्यक्त आत्मा पंचभूत इंद्रियें अंतःकरण ये सब सृष्टीके आदिमें जाकी कृपाके विना कुछ कर नहीं सकैं है ॥ ११ ॥ अज्ञानी ये माने हैं कि कोई ईश्वर नहीं हमही है ईश्वर पंचभूतोंसें पञ्चभूतोंको रचै हैं उन्हींसें सब ग्रसेजांय हैं ॥ १२ ॥ आयु कीर्ति ऐश्वर्य आशीर्वाद ये सब समय पाय उनकी इच्छासे होय है, उनकी इच्छा न होय तो उलटे होजांय हैं ॥ १३ ॥ तातें अकीर्ति यश जीत पराजय सुख दुःख मरणो जीवनो इनमें समान भावसें वर्तें ॥ १४ ॥ सतोगुण रजोगुण तमोगुण ये मायाके गुण हैं आत्माके गुण नहीं हैं, जो इन सबके साक्षी आत्माकों मानै है सो

पुरुषः प्रकृतिर्व्यक्तमात्मा भूतेन्द्रियाशयाः ॥ शक्नुवन्त्यस्य सर्गादौ न विना यदनुग्रहात् ॥ ११ ॥ अविद्वानेवमात्मानं मन्यतेऽनीशमीश्वरम् ॥ भूतैः सृजति भूतानि ग्रसते तानि तैः स्वयम् ॥ १२ ॥ आयुः श्रीः कीर्तिरैश्वर्यमाशिषः पुरुषस्य याः ॥ भवन्त्येव हि तत्काले यथानिच्छोर्विपर्ययाः ॥ १३ ॥ तस्मादकीर्तियशसोर्जयापजययोरपि ॥ समः स्यात्सुखदुःखाभ्यां मृत्युजीवितयोस्तथा ॥ १४ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ॥ तत्र साक्षिणमात्मानं यो वेद न स बध्यते ॥ १५ ॥ पश्य मां निर्जितं शक्र वृक्णायुधभुजं मृधे ॥ घटमानं यथाशक्ति तव प्राणजिहीर्षया ॥ १६ ॥ प्राणग्लहोयं समर इष्वक्षो वाहनासनः ॥ अत्र न ज्ञायतेऽमुष्य जयोऽमुष्य पराजयः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रो वृत्रवचः श्रुत्वा गतालीकमपूजयत् ॥ गृहीतवज्रः प्रहसंस्तमाह गतविस्मयः ॥ १८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ अहो दानव सिद्धोऽसि यस्य ते मतिरीदृशी ॥ भक्तः सर्वात्मनात्मानं सुहृदं जगदीश्वरम् ॥ १९ ॥

बंधनमें नहीं आवै है ॥ १५ ॥ हे इंद्र! आयुध और भुजा कटने परभी और अपनी हार हौनेपरभी मैं तेरे प्राण हरनेका उपाय कर रहाहूं सो तू देख जैसी तेरी शक्ति होय तैसी चेष्टा कर जासे तेरे प्राण नहीं हरेजाय ॥ १६ ॥ या संग्राममें प्राणनको दाव है बाणरूप पासे हैं वाहन रूप आसन हैं यहां पुरुषनको जय पराजय न मालूम पडै है ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि इंद्र वृत्रको वचन सुन लज्जा त्याग सत्कार करतो भयो वज्र लिये हंसके विस्मय त्याग बोलो ॥ १८ ॥ इंद्र बोलो कि हे दावन ! सिद्ध तुह्मारी ऐसी बुद्धि है, सब प्रकारसें सुहृद जगदीश्वरके तुम भक्त हो ॥ १९ ॥

सबजनोंकी मोहन करवेवारी वैष्णवी मायाकों तुम तरगये जो असुरपन त्यागकर महापुरुष भावको प्राप्त भए ॥ २० ॥ परंतु एक वडो आश्चर्य है कि राजसी स्वभाववारे तुह्मारी सतोगुणी भगवान वासुदेवमैं ऐसी दृढमति कैसी भई ॥ २१ ॥ सबके मोक्षदायक ईश्वर श्रीहरिभगवानमें जाकी भक्ति हैं वो अमृतके सागरमें क्रीडा करै हैं, तुच्छ गर्तोंके जलसें वाकों कुछ काम नहीं है ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृप! धर्मकी जानवेकी इच्छा कर आपसमैं ऐसैं कहि महापराक्रमी इंद्र और वृत्र योधानके पति दोनों युद्ध करते भए ॥ २३ ॥ हे राजन्! शत्रुदमनकारी वृत्रासुर लोहेको परिघ इंद्रके ऊपर वायें हाथसै फैकतो भयो ॥ २४ ॥ वृत्रके परिघ और हाथीके सूंड समान हाथकौं सौपर्ववारे वज्रसें इंद्र एक संग काटतो भयो ॥ २५ ॥ जडसें दोनौ भुजा काटी उनमेंसें रक्त वहता शोभित भया तब वह असुर पक्ष कटै पर्वतकी समान आकाशमें गिरतो भयो ॥२६॥ नीचैकी ठोड़ी भूमिमैं करकै दैत्य ऊपरकी ठोडी आकाशमें कर गंभीरमुख करकै भयानक जीभसे आकाशकों चाटतो भयो ॥२७॥ कालके समान डाढोंसे तीनों जगत्कों ग्रसतासा अत्यन्त वडे शरीरके वेगसे पर्वतनको आक्षेप करतो भयो ॥ २८ ॥ पर्वतोंके राजाकीनांई पादचारी होय पांवसे पृथिवीको विदारता वृत्रासुर गजराजसहित इंद्रको ग्रसलेतोभयो ॥ २९ ॥

भवानतार्षीन्मायां वै वैष्णवीं जनमोहिनीम् ॥ यद्विहायासुरं भावं महापुरुषतां गतः ॥ २० ॥ खल्विदं महदाश्चर्यं यद्रजःप्रकृतेस्तव ॥ वासुदेवे भगवति सत्वात्मनि दृढा मतिः॥२१॥ यस्य भक्तिर्भगवति हरौ निःश्रेयसेश्वरे॥ विक्रीडतोऽमृताम्भोधौ किं क्षुद्रैः खातकोदकैः॥२२॥श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणावन्योन्यं धर्मजिज्ञासया नृप॥ युयुधाते महावीर्याविन्द्रवृत्रौ युधांपती ॥२३॥ आविध्य परिघं वृत्रः कार्ष्णायसमरिंदमः ॥ इन्द्राय प्राहिणोद्घोरं वामहस्तेन मारिष ॥२४॥ स तु वृत्रस्य परिघं करं च करभोपमम् ॥ चिच्छेद युगपद्देवो वज्रेण शतपर्वणा ॥ २५ ॥ दोर्भ्यामुत्कृत्तमूलाभ्यां बभौ रक्तस्रवोऽसुरः ॥ छिन्नपक्षो यथा गोत्रः खाद्भ्रष्टो वज्रिणा हतः ॥ २६ ॥ कृत्वाऽधरां हनुं भूमौ दैत्यो दिव्युत्तरां हनुम् ॥ नभोगम्भीरवक्त्रेण लेलिहोल्बणजिह्वया॥२७॥ दंष्ट्राभिः कालकल्पाभिर्ग्रसन्निव जगत्त्रयम्॥ अतिमात्रमहाकाय आक्षिपंस्तरसा गिरीन्॥२८॥ गिरिराट् पादचारीव पद्भ्यां निर्जरयन् महीम्॥ जग्रास स समासाद्य वज्रिणं सहवाहनम्२९॥

महाप्राणधारी महापराक्रमी महासर्पकी नांई हाथीको वृत्रासुरकरकै ग्रस्त देख प्रजापतिसहित सब देवता महाकष्टकों प्राप्त होते भये ॥३०॥ सब महर्षि हाय बडो कष्ट भयो ऐसै वैराग्यसे बोलै वृत्रासुरने गिरलीनो तोभी उदरमें इन्द्र न मरतो भयो क्योंकि योगमायाके बलकरकै श्रीनारायणकवचसे रक्षित हो ॥ ३१ ॥ तब समर्थ इन्द्र वज्रसें वाकी कुक्षिको काटलै निकस आए और शत्रुके शिरकों काटते भए, पर्वतको शृंग जैसे गिरै तैसे पराक्रमसें गिरतोभयो ॥ ३२ ॥ वज्र बडे वेगसे वाके कंधाको काटते सब ओर घूमवेलगो जो ज्योतिषियोंको निर्धारित समय वृत्रासुरके मरनेको हो वा अहर्गणमें वो गिरतो भयो ॥ ३३ ॥ तब आकाशमें नगारे बजनेलगे गंधर्व सिद्ध महर्षियोंके समूह वृत्रासुरके मरेजानेके समयके स्तोत्रों करकै स्तुति करते भए मंत्रोंसे आनंदसे पुष्पोंकी वर्षा करवेलगे ॥ ३४ ॥ हे शत्रुनाशक! वृत्रासुरके

महाप्राणो महावीर्यो महासर्प इव द्विपम् ॥ वृत्रग्रस्तं तमालक्ष्य सप्रजापतयः सुराः ॥ ३० हा कष्टमिति निर्विण्णाश्चुक्रुशुः समहर्षयः ॥ निगीर्णोऽप्यसुरेन्द्रेण न ममारोदरं गतः ॥ महापुरुषसन्नद्धो योगमायाबलेन च ॥ ३१ ॥ भित्त्वा वज्रेण तत्कुक्षिं निष्क्रम्य बलभिद्विभुः ॥ उच्चकर्त शिरः शत्रोर्गिरिशृङ्गमिवौजसा ॥३२॥ वज्रस्तु तत्कन्धरमाशुवेगः कृन्तन् समन्तात् परिवर्तमानः ॥ न्यपातयत्तावदहर्गणेन यो ज्योतिषामयने वार्त्रहत्ये ॥ ३३ ॥ तदा च खे दुन्दुभयो विनेदुर्गन्धर्वसिद्धाः समहर्षिसंघाः ॥ वार्त्रघ्नलिङ्गैस्तमभिष्टुवाना मन्त्रैर्मुदा कुसुमैरभ्यवर्षन् ॥३४॥ वृत्रस्य देहान्निष्क्रान्तमात्मज्योतिररिंदम॥ पश्यतां सर्वलोकानामलोकं समपद्यत॥३५॥ इति श्रीभा० ष० वृत्रवधो नाम द्वा०ध्यायः॥१२॥

देहसे निकसी भई ज्योति सब लोकनके देखते देखते श्रीभगवानके लोकको प्राप्त होती भई क्योंकि सबकें वैकुंठलोक जायवेकी मनमें रहै है एक बनिया मरवेलगो सो कुछ दान कभी करेही नहीं पर छोराननें जबरदस्तीकी ५ रूपाकी एक गाय लाय वासू पुण्य कराई पर वो गाय एकघडीबाद मरगई लालाजीभी मर जमपुरी पहुचे गाय बोली कि पुण्य करे पाछे एक घडी ब्राह्मणके यहां मैं जीतीरही सो घडीभर जो चाहो सो काम लेलेओ तब वणिया बोले कि जमराजाकी थौंदमें सींग करदे गौ भागी जमराजभी भयसे सबलोकनमेंसें भगते भगते वैकुंठ पहुचे भगवानसे कही ये गाय मारै है बचाओ सो भगवतके पार्षदनने बचायो बनियाकों धक्का दीनो निकासवेलगे तब बोलो भलो वैकुंठको आयो फेर संसारमें जाय है भलो न्याय है तब

भगवानके लोकमेंही रह्यो बनियो बडे चतुर होय है" ॥ ३५ ॥ इति श्रीभा० भा० ष० वृत्रासुरवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे परीक्षित् ! वृत्रासुरके मरे उपरांत त्रिलोकीमें इंद्रके विना लोकपाल सहित ब्रह्मादिक सब ज्वरोंसे मुक्त होते भये ॥ १ ॥ देवता ऋषि पितर भूत दैत्य देवनके नौकर आप ब्रह्मा शिव इंद्रादिक सब अपने अपने घरको जातेभए ॥ २ ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे मुने ! इंद्रके दुःखको कारण सुनवेकी इच्छा है, जासे सब देवता सुखी भए इंद्रको दुःख कैसें भयो ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि वृत्रासुरके पराक्रमसें डरेभए सब ऋषिसहित देवता वृत्रासुरब्राह्मणके वधसे जो ब्रह्महत्या भई वाके दूर करवेकी इंद्रकी इच्छा न करतेभए ॥ ४ ॥ इंद्र बोले कि ॥ स्त्री भूमी जल वृक्ष इनमें विश्व-

श्रीशुक उवाच ॥ वृत्रे हते त्रयो लोका विना शक्रेण भूरिद ॥ सपाला ह्यभवन् सद्यो विज्वरा निर्वृतेन्द्रियाः ॥ १ ॥ देवर्षिपितृभूतानि दैत्या देवानुगाः स्वयम् ॥ प्रतिजग्मुः स्वधिष्ण्यानि ब्रह्मेशेन्द्रादयस्ततः ॥ २ ॥ राजोवाच ॥ इन्द्रस्य निर्वृतेर्हेतुं श्रोतुमिच्छामि भो मुने ॥ येनासन् सुखिनो देवा हरेर्दुःखं कुतोऽभवत् ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृत्रविक्रमसंविग्नाः सर्वे देवाः सहर्षिभिः ॥ तद्वधायार्थयन्निन्द्रं नैच्छद्भीतो बृहद्वधात् ॥४॥ इन्द्र उवाच ॥ स्त्रीभूजलद्रुमैरेनो विश्वरूपवधोद्भवम् ॥ विभक्तमनुगृह्णद्भिर्वृत्रहत्यां क्व माज्म्र्यहम् ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ऋषयस्तदुपाकर्ण्य महेन्द्रमिदमब्रुवन् ॥ याजयिष्याम भद्रं ते हयमेधेन मा स्म भैः ॥ ६ ॥ हयमेधेन पुरुषं परमात्मानमीश्वरम् ॥ इष्ट्वा नारायणं देवं मोक्ष्यसेऽपि जगद्वधात् ॥ ७ ॥ ब्रह्महा पितृहा गोघ्नो मातृहाऽऽचार्यहाऽघवान् ॥ श्वादः पुल्कसको वाऽपि शुध्येरन् यस्य कीर्तनात् ॥ ८ ॥

रूपके वधको पाप वांटो उन्होंने कृपा करी, परंतु वृत्रासुरकी हत्या कहां जायके शुद्धि करूं ॥ ५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि ऋषिलोग या बातको सुनके इंद्रसे ये बोले कि तेरो कल्याण होयगो, अश्वमेध यज्ञ करायकै ब्रह्महत्या छुडावैंगे तुम डरो मत॥६॥ अश्वमेधयज्ञसे परमात्मा पुरुष ईश्वर श्रीमन्नारायणदेवको यजन करकै जगतके बंधसे तुम मोक्ष होजाओगे॥७॥ ब्राह्मणको मारवेवारो पिताको मारवेवारो गौको मारवेवारो आचारीको मारवेवारो कुत्ताको खायवेवारो शूद्र होय तोभी जिनके कीर्तनसे शुद्ध होय है ॥ ८ ॥

हमारे कराये महाअश्वमेधयज्ञसे परमेश्वरको पूजन करो, तौ ब्राह्मणों सहित चराचरकोंभी मारकर तुम पापमें नही लिप्त होओगे या खलके मारनेसे कहा होय है ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि ऐसै विप्रोंकी प्रेरणासै इंद्र रिपुकूं मारतो भयो, वो ब्रह्महत्या इंद्रसे आयकर बोली ॥ १० ॥ ब्रह्महत्याके संतापसै इन्द्रको सुख नहीं भयो कारण कि लज्जावान निंदाकों प्राप्त होय तौ उसै कोई गुण सुख नहीं देता ॥ ११ ॥ रूपधारिणी चांडालनीकी नाई भागती आतीभई बुढापेसे कंपित अंगवारी राजरोगसे ग्रसित लोहु जाके वस्त्रनमें लिपटरह्यो ऐसी ब्रह्महत्याको देखते भए ॥१२॥ वृद्धापनके वारनकों विखेरे खडे रहो खडे रहो ऐसै बोलतीभई मीन खानेकी दुर्गंधीकी गंधसै मार्गको दूषण करती भई ॥ १३ ॥ इंद्र सब दिशानमें भागतो भयो हे परी-

तमश्वमेधेन महामखेन श्रद्धाऽन्वितोऽस्माभिरनुष्ठितेन ॥ हत्वापि सब्रह्म चराचरं त्वं न लिप्यसे किं खलनिग्रहेण ॥ ९॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संचोदितो विप्रैर्मरुत्वानहनद्रिपुम् ॥ ब्रह्महत्या हते तस्मिन्नाससाद वृषाकपिम् ॥ १० ॥ तयेन्द्रः स्मासहत् तापं निर्वृतिर्नाऽमुमाऽऽविशत् ॥ ह्रीमन्तं वाच्यतां प्राप्तं सुखयन्त्यपि नो गुणाः ॥११॥ तां ददर्शानुधावन्तीं चाण्डालीमिव रूपिणीम् ॥ जरया वेपमानाङ्गीं यक्ष्मग्रस्तामसृक्पटाम् ॥ १२ ॥ विकीर्य पलितान् केशान् तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणीम् ॥मीनगन्ध्यसुगन्धेन कुर्वन्तीं मार्गदूषणम्॥१३॥ नभोगतो दिशः सर्वाः सहस्राक्षो विशांपते॥ प्रागुदीचीं दिशं तूर्णं प्रविष्टो नृप मानसम् ॥ १४ ॥ स आवसन् पुष्करनालतन्तूनलब्धभोगो यदिहाग्निदूतः ॥ वर्षाणि साहस्रमलक्षितोऽन्तः संचिन्तयन् ब्रह्मवधाद्विमोक्षम् ॥ १५ ॥ तावत् त्रिणाकं नहुषः शशास विद्यातपोयोगबलानुभावः ॥ स संपदैश्वर्यमदान्धबुद्धिर्नीतास्तिरश्चां गतिमिन्द्रपत्न्या ॥ १६ ॥

क्षित! आकाशमें गयो, फेर पूर्वसें उत्तरकों होय शीघ्र मानससरोवरमें घुस गयो ॥ १४ ॥ सो कमलकी नालमें अलक्षित होयकर हजारवर्षपर्यंत वसते भए, ब्रह्मवधसै कैसे मोक्ष होय ये चिंतवन करतो भयो अग्नि जलमें नहीं जासक्ता इस कारण यज्ञका भागभी न मिल सका ॥ १५ ॥ विद्या तप योगबलके प्रभावसे तबतक राजा नहुष स्वर्गमें इंद्र होते भए संपदा ऐश्वर्यसें मदांध बुद्धि भई तब इंद्रकी स्त्रीद्वारा तिर्छी चलनेहारी पशुयोनीको प्राप्त भये “ ऐसे कथा लिखी है कि एकसमय राजा नहुष इंद्र भए तब इंद्राणीसे बोले कि अब

हम इंद्र हैं याते तुम मेरी स्त्री हो मोको भजो ये वृत्तांत सुन वाने बृहस्पतिजीसे कह्यो बृहस्पतीजी बोले कि तुम नहुषसें ये कहो कि ब्राह्मणोंको पालकीमें कहारनकीनांई लगाय मेरे यहां तुम आओ तो मै तुह्मैं भजोंगी ऐसै कहि तो ये ब्राह्मणोंके शापसें गिरजायगो जब ऐसे बृहस्पतिकी बात मान नहुषसे इंद्राणीने कही तब नहुष अगस्त्य आदि ऋषीनको पालकीमें लगावतो भयो कामसे अंधो नहुष ता समय शीघ्र सर्प सर्प ऐसे कहिवेलगो, सर्प याको एक अर्थ तो है चलो दूसरो सांपकोभी अर्थ होय है व्याकरणमें सृप्लगतौ धातु गमन अर्थमें हैं, तब अगस्त्यादि कुपित होयकर शाप देते भए कि तूही सर्प अजगर होय सो वो अजगर होतोभयो”॥१६॥ भगवानके ध्यानसै पापका निवारण कर ब्राह्मणौंके आह्वानसै इन्द्र फिर स्वर्गको प्राप्त हुए और जबतक मानस सरमें रहे तबतक तहां ईशान देवता श्रीरुद्र और विष्णुपत्नी लक्ष्मीने इन्द्रकी रक्षा की ॥ १७ ॥ हे भारत! इंद्रके पास सब

ततो गतो ब्रह्मगिरोपहूत ऋतम्भरध्याननिवारिताघः ॥ पापस्तु दिग्देवतया हतौजास्तं नाभ्यभूदवितं विष्णुपत्न्या ॥ १७॥ तं च ब्रह्मर्षयोऽभ्येत्य हयमेधेन भारत ॥ यथावद्दीक्षयां चक्रुः पुरुषाराधनेन ह॥ १८ ॥ अथेज्यमानैः पुरुषे सर्वदेवमयात्मनि ॥ अश्वमेधे महेन्द्रेण वितते ब्रह्मवादिभिः ॥१९॥ स वै त्वाष्ट्रवधो भूयानपि पापचयो नृप ॥ नीतस्तेनैव शून्याय नहिार इव भानुना ॥ २० ॥ स वाजिमेधेन यथोदितेन वितायमानेन मरीचिमिश्रैः ॥ इष्ट्वाधियज्ञं पुरुषं पुराणमिन्द्रो महानास विधूतपापः ॥ २१॥ इदं महाख्यानमशेषपाप्मनां प्रक्षालनं तीर्थपदानुकीर्तनम् ॥ भक्त्युच्छ्रयं भक्तजनानुवर्णनं महेन्द्रमोक्षं विजयं मरुत्वतः ॥ २२ ॥

ब्रह्मऋषि आयकर अश्वमेध यज्ञ करायवेकी दीक्षा कर परमेश्वरको पूजन आराधन करते भए ॥ १८ ॥ सर्व देवमय आत्मा पुरुषकी जब पूजा कीनी तब ब्रह्मवादियोंकरकै इंद्रने महा अश्वमेध कीनो ॥ १९ ॥ हे नृप! येही वृत्रासुरके वधको बडो उपाय है, जैसैं सूर्यकरकै कुहरा नाश होय तैसै इंद्रको पाप वा यज्ञसे शून्य होगयो ॥ २० ॥ जब विधिपूर्वक मरीचि आदि ऋषियोंने अश्वमेध करायो तब यज्ञके स्वामी पुराणपुरुषको यज्ञ कर सब पापरहित हो इंद्र महाप्रसन्न भयो ॥२१॥ सब पापनको धोयवेवारो ये आख्यान है, जामें भगवानको कीर्तन है, भक्तिको बढानेवारो हैं, भक्तजननको यामें वर्णन है इंद्रको यामैं मोक्ष है मरुत्वानइंद्रको यामें विजय है ॥ २२ ॥

सदा बुद्धिवान् या आख्यानको पाठ करै, पर्वपर्वमें याको श्रवण करै तो इंद्रियोंकी शक्ति बढै धन यश बढै सब पाप मोचन होयहै शत्रुसे जीत होय है मंगलको दाता है आयुको बढावनेवारो है ॥२३॥ इति श्रीमन्महाभा०भाषायां षष्ठस्कन्धे इन्द्राश्वमेधयज्ञवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ राजा परीक्षित बोले कि हे ब्रह्मन् ! राजसी तामसी सुभाववारे पापी वृत्रासुरकी नारायणभगवानमें ऐसी दृढ बुद्धि कैसै भई सो याको पूर्व जन्म कहो ॥ १ ॥ शुद्ध सतोगुणी देवतानकी और निर्मल आत्मावारे ऋषीनकी प्रायकरकै मुकुंदके चरणमें भक्ति नहीं होय हैं तामसीकी कहा चलाई ॥ २ ॥ रजोगुण करकै सब जीवमात्र पृथ्वीके विकारसें होय है, तिनमें कोई मनुष्यादिक कल्याणके अर्थ चेष्टा करते हैं वे मुनि मनुष्य हैं

पठेयुराख्यानमिदं सदा बुधाः शृण्वन्त्यथो पर्वणि पर्वणीन्द्रियम्॥ धन्यं यशस्यं निखिलाघमोचनं रिपुंजयं स्वस्त्ययनं तथायुषम्॥२३॥ इति श्रीभा० म० षष्ठ० इन्द्राश्वमेधवर्णनं नाम त्रयोदशोध्यायः ॥१३॥ परीक्षिदुवाच ॥ रजस्तमःस्वभावस्य ब्रह्मन् वृत्रस्य पाप्मनः ॥ नारायणे भगवति कथमासीद् दृढा मतिः ॥१॥ देवानां शुद्धसत्त्वानामृषीणां चामलात्मनाम् ॥ भक्तिर्मुकुन्दचरणे न प्रायेणोपजायते ॥२॥ रजोभिः समसंख्याताः पार्थिवैरिह जन्तवः ॥ तेषां ये केचनेहन्ते श्रेयो वै मनुजादयः ॥ ३ ॥ प्रायो मुमुक्षवस्तेषां केचनैव द्विजोत्तम ॥ मुमुक्षूणां सहस्रेषु कश्चिन्मुच्येत सिध्यति ॥ ४ ॥ मुक्तानामपि सिद्धानां नारायणपरायणः ॥ सुदुर्लभः प्रशान्तात्मा कोटिष्वपि महामुने ॥ ५ ॥ वृत्रस्तु स कथं पापः सर्वलोकोपतापनः ॥ इत्थं दृढमतिः कृष्ण आसीत् संग्राम उल्बणे ॥ ६ ॥ अत्र नः संशयो भूयान् श्रोतुं कौतूहलं प्रभो ॥ यः पौरुषेण समरे सहस्राक्षमतोषयत् ॥ ७ ॥

॥ ३ ॥ हे द्विजोत्तम! प्रायकरकै तिनमें कोई तो मुमुक्षु है मुमुक्षुसहस्रोंमेंभी कोई एक मुक्त होय है, और सिद्ध होय हैं ॥ ४ ॥ हे महामुने ! सिद्ध मुक्तनमेंभी नारायणपरायण महाशांत स्वभाववारे कोंटानकोटमें अत्यंतही दुर्लभ हैं ॥ ५ ॥ सब लोकको ताप देवेवारो तापी वृत्रासुरकी महाघोर संग्राममें ऐसी दृढ मति कैसें होतीभई सो कहो ॥ ६ ॥ हे प्रभो ! यामें मोको महासंदेह है, श्रवण करवेकी महाइच्छा है, जो पुरुषसूक्तके मंत्रोंसे सहस्राक्ष इंद्रको प्रसन्न करतोभयो ॥ ७ ॥

सूत उवाच ॥ परीक्षितोऽथ संप्रश्नं भगवान् बादरायणिः ॥ निशम्य श्रद्दधानस्य प्रतिनन्द्य वचोऽब्रवीत् ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शृणुष्वावहितो राजन्नितिहासमिमं यथा ॥ श्रुतं द्वैपायनमुखान्नारदाद्देवलादपि ॥ ९ ॥ आसीद्राजा सार्वभौमः शूरसेनेषु वै नृप ॥ चित्रकेतुरिति ख्यातो यस्यासीत् कामधुङ् मही ॥ १० ॥ तस्य भार्यासहस्राणां सहस्राणि दशाभवन् ॥ सांतानिकश्चापि नृपो न लेभे तासु संततिम् ॥ ११ ॥

सूतजी बोले कि व्यासनंदन परीक्षितके याप्रश्नको सुनकर महाश्रद्धावारेपर प्रसन्न होय वाकी श्लाघा कर वचन बोलै ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! सावधान होयकर या इतिहासकों सुनों जैसो ये मैंनै द्वैपायन नारद देवलसें सुनो है सो हम कहैं हैं ॥ ९ ॥ हे नृप! शूरसेन देशमें सार्वभौम चित्रकेतुनामक राजा होतो भयो, जाकी धरती सब कामनानकी देवेवारी होती भई ॥ १० ॥ ताके एक क्रोड स्त्री होती भई, परंतु संतानको सुख न भयो काऊमें पुत्र न भयो[1] ॥ ११ ॥

---

[1] शंका—राजा चित्रकेतुके दशलाख १०००००० स्त्री थीं सोई शुकदेवजीने राजा परीक्षितसे कहाथा कि राजा चित्रकेतुकी दशलाख भार्या थीं, उन स्त्रीयोंको रति आदि लेकर पोषण भरण किसप्रकार होताथा यह बडे आश्चर्यकी बात है?

उत्तर—राजा चित्रकेतु चित्र बनानेमें बडा चतुर था इसलिये उसका नाम चित्रकेतु था, उसने दशलाख शयन भवन अत्यन्त मनोहर बना रक्खेथे, और उन्हीं मन्दिरोंमें एक एक स्त्रीका चित्रभी बना रक्खाथा प्रत्येक मन्दिरमें एक स्त्रीका चित्रभी ऐसा मनहरण था मानो साक्षात् स्त्री विराजमान है,राजा चित्रविद्या तो जानताही था परन्तु उसमें एक बात अद्भुत थी चित्रको सजीवन करनेकी विद्याभी जानताथा जब चित्रकेतुकी इच्छा होतीथी अब इसको सजीवन करना चाहिये उसी समय उसको सजीवन करलेताथा, और उनके संग हास्यविलास करके फिर तुरन्त विसर्जन कर देताथा जब राजाका विवाह होताथा उसी समय उस स्त्रीको चित्रकी मूर्ति बना देताथा, विवाहसे प्रथम चित्र नहीं बनताथा, जब राजा चित्रकेतुके पुत्र नहीं हुवा तब तो नित्य स्त्रीयोंको सजीवन करताथा, पुत्रके हुये पीछे पुत्रका मुख देखकर आनन्दमें मग्न होगया तब नित्य स्त्रीयोंको सजीवन नहीं करताथा जब कभी स्मरण होजाय तब पांचवें सातवें दिन किसी स्त्रीको सजीवन करलेताथा, एक दिन चित्रकेतु सब स्त्रियोंको सजीवन करके पहिलेकी सदृश सब काम करने लगा परन्तु दैवयोगसे विसर्जन करना भूल गया, तब सो स्त्रियोंसे उन स्त्रियोंकी झारनेवाली जो दासी थी वह सब कहने लगीं कि जबसे राजाके पुत्र हुवा तबसे हमारा तुम्हारा निरादर कर दिया निरादर क्या नित्य तुमको सजीवन करताथा तो अब पांचवें सातवें दिन सजीवन करताहै, हम तुम सबको नित्य झारती हैं और शुद्ध करती हैं, इस प्रकार दासियोंके वचन सुनकर सब स्त्रियोंने मिल उस बालकको विष देदिया बालक नष्ट होगया, तब राजाने शोक संतापसे दुःखी होकर उन स्त्रियोंको विसर्जन नहीं किया इसलिये वह सब जीती रहगई ब्राह्मणोंनें बालहत्याके शान्त करनेके लिये जो उपाय बताये सो किया, इस प्रकार चित्रकेतुकी दशलाख स्त्री थीं, परन्तु चित्ररूप थीं ॥

रूप उदार अवस्था जन्म विद्या ऐश्वर्य लक्ष्मी इत्यादि करके युक्त सब गुणसहित वंध्यापति चित्रकेतुको चिंता भई ॥ १२ ॥ सब संपदा स्त्रियें सुंदर देखवेवारी राणियें सार्वभौम चित्रकेतुको प्रीतिके कारण नहीं होती भई॥१३॥एक समय अंगिरा भगवान् ऋषि सब लोकमें विचरते भए अपनी इच्छासे राजाके भवनमें आए ॥१४॥ विधिवत् उठकर पूजासे उनकी पूजनकर भोजन कराय सावधान सुखपूर्वक राजाके समीप बैठे॥१५॥ हे महाराज! महर्षि पासमें बैठे नम्रतासें पृथ्वीमें नमें राजाकी प्रशंसा कर ये बोले ॥ १६ ॥ अंगिरा बोले कि तुम्हारे सब आरोग्य है, प्रजामें और तुम्हारे देहमें मंगल है, सप्तप्रकृतियोंसें रक्षित जीव होय तैसे राजाभी स्वामी अमात्य जनपद दुर्ग धनसंचय दंड मित्र इन सप्तसें रक्षित रहै है ॥ १७ ॥ राजा आत्माको साक्षात् प्रजाके ऊपर छोडै तो आनन्दको प्राप्त होवे है, हे राजन्! तैसेंई सब प्रजाको दुःख राजाके आधीन रहै है ॥ १८ ॥ स्त्री प्रजा मंत्री भृत्यश्रेणी अमात्य पुरवासी जनपद भूपलोग अपने वशवर्ती पुत्र ये सब तो तुम्हारे वस हैं ॥ १९ ॥ जाको आत्मा वशमें होयहै वाके सब वशमें होय हैं, निरालस होकर लोकपालक सहित सब लोक वाकों भेद देते हैं ॥ २० ॥ इस समय आप अपने चित्तसे प्रसन्न

रूपौदार्यवयोजन्मविद्यैश्वर्यश्रियादिभिः॥ संपन्नस्य गुणैः सर्वैश्चिन्ता वन्ध्यापतेरभूत्॥ १२ ॥ न तस्य संपदः सर्वा
महिष्यो वामलोचनाः॥ सार्वभौमस्य भूश्चेयमभवन् प्रीतिहेतवः॥१३॥ तस्यैकदा तु भवनमङ्गिरा भगवानृषिः॥ लोकाननुचरन्नैतानुपागच्छद्यदृच्छया॥ १४ ॥ तं पूजयित्वा विधिवत् प्रत्युत्थानार्हणादिभिः ॥ कृतातिथ्यमुपासीदत्
सुखासीनं समाहितः॥१५॥ महर्षिस्तमुपासीनं प्रश्रयावनतं क्षितौ॥ प्रतिपूज्य महाराज समाभाष्येदमब्रवीत्॥१६॥
अङ्गिरा उवाच॥ अपि तेऽनामयं स्वस्ति प्रकृतीनां तथात्मनः॥ यथा प्रकृतिभिर्गुप्तः पुमान् राजापि सप्तभिः ॥ १७ ॥
आत्मानं प्रकृतिष्वद्धा निधाय श्रेय आप्नुयात्॥ राज्ञा तथा प्रकृतयो नरदेवाऽहिताधयः॥ १८॥ अपि दाराः प्रजामात्या भृत्याः श्रेण्योऽथ मन्त्रिणः॥पौरा जानपदा भूपा आत्मजा वशवर्तिनः॥ १९ ॥ यस्यात्मानुवशश्चेत् स्यात्
सर्वे तद्वशगा इमे॥ लोकाः सपाला यच्छन्ति सर्वे बलिमतन्द्रिताः॥२०॥ आत्मनः प्रीतये नात्मा परतः स्वत एव वा॥
लक्षयेऽलब्धकामं त्वां चिन्तया शबलं मुखम् ॥ २१ ॥

नहीं हैं कुछ दुखीसे हैं, अथवा आप किसी दूसरेके निमित्त अप्रसन्न हैं अथवा स्वयंही हैं ऐसा विदित होता है कि आपको कोई तृष्णा है कारण कि आपका मुख चिन्तासैं श्याम और मलीन है ॥ २१ ॥ हे राजन् ! विद्वान्मुनिसे पूछे गए पुत्रकी चाहवारे राजा नम्रतासें प्रणाम कर मुनिसे बोले ॥ २२ ॥ चित्रकेतु बोले कि हे भगवन् ! तप ज्ञान समाधिसे आप सब जानो हो जिन योगिनके पाप नाश भए है वें शरीरधारीनके बाहर भीतरकी सब जानै है ॥ २३ ॥ यद्यपि ऐसे है तथापि हे ब्रह्मन् ! जो मैने विचारो है सो कहो आप तो सब जानो हो तोहूं आपकी आज्ञासे मैं कहूंहूं ॥ २४ ॥ लोकपालों करकै प्रार्थनीय राज्य ऐश्वर्यकी संपदा विना पुत्र मोको नहीं आनन्द देवै है, जैसै भूखेको माला चन्दन सुख

एवं विकल्पितो राजन् विदुषा मुनिनाऽपि सः ॥ प्रश्रयावनतोऽभ्याह प्रजाकामस्ततो मुनिम् ॥२२॥ चित्रकेतुरुवाच॥
भगवन् किं न विदितं तपोज्ञानसमाधिभिः॥ योगिनां ध्वस्तपापानां बहिरन्तः शरीरिषु ॥ २३ ॥ अथापि पृच्छतो
ब्रूयां ब्रह्मन्नात्मनि चिन्तितम् ॥ भवतो विदुषश्चापि चोदितस्त्वदनुज्ञया ॥ २४ ॥ लोकपालैरपि प्रार्थ्याः साम्राज्यैश्वर्यसंपदः ॥ न नन्दयन्त्यऽप्रजं मां क्षुत्तृट्कामभिवापरे ॥ २५ ॥ ततः पाहि महाभाग पुर्वैः सह गतं तमः ॥ यथा तरेम
दुस्तारं प्रजया तद् विधेहि नः ॥ २६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यर्थितः स भगवान् कृपालुर्ब्रह्मणः सुतः ॥ श्रपयित्वा चरुं
त्वाष्ट्रं त्वष्टारमयजद्विभुः॥ २७॥ ज्येष्ठा श्रेष्ठा च या राज्ञो महिषीणां च भारत॥ नाम्ना कृतद्युतिस्तस्यै यज्ञोच्छिष्टमदाद्द्विजः ॥ २८ ॥ अथाह नृपतिं राजन् भवितैकस्तवात्मजः ॥ हर्षशोकप्रदस्तुभ्यमिति ब्रह्मसुतो ययौ ॥ २९ ॥
सापि तत्प्राशनादेव चित्रकेतोरधारयत् ॥ गर्भं कृतद्युतिर्देवी कृत्तिकाऽग्नेरिवात्मजम् ॥ ३० ॥

न दे है ॥ २५ ॥ याते हे महाभाग ! पूरवीनके सहित मैं नरकमैं गयो, जैसें नरकसें मैं तर जाऊं मेरे पुत्र होय सो करो ॥ २६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि सो भगवान्कृपालु ब्रह्माके पुत्र समर्थ मुनि ऐसे सुन त्वाष्ट्रनामक चरु लेके सिद्धकर त्वष्टाकी पूजाकरतेभए ॥ २७ ॥ हे भारत ! राजाकी पट्टराणीनमें जो बडी महाराणी कृतद्युति नाम ही ताके लियैं यज्ञको उच्छिष्ट वे ब्राह्मण देते भए ॥ २८ ॥ और राजासे बोले कि हे राजन् ! तुम्हारे एक पुत्र हर्षशोकको देवेवारो होयगो, ऐसै कहि दोनों ब्रह्माके पुत्र चलेगए ॥ २९ ॥ सो कृतद्युति राणी वाके खानेसें

88

चित्रकेतुके सकासते गर्भवती भई जैसै कृत्तिका अग्निके सकासते पुत्र धारती भई ॥३०॥ हे नृप ! ताको गर्भ दिन दिन शुक्लपक्षके चंद्रमाकीसी नाईं
बढो शूरसेन देसके राजाके तेजसे वो बढो ॥ ३१ ॥ समय पायके कुमार भयो, शूरसेनवासीनको पुत्रजन्म सुन्नेसे परम आनंद देतोभयो ॥ ३२ ॥ राजा
कुमारके जन्मसे प्रसन्न हो पवित्र होयके गहिने पहिन विप्रोंसे आशिष लेतोभयो, स्वस्त्ययन वचाय जातकर्म करावतोभयो ॥ ३३ ॥ विप्रोंके अर्थ
सुवर्ण चांदी वस्त्र आभरण गांम घोडे गज दान करतो भयो, और साठक्रोड गौदान करतो भयो ॥ ३४ ॥ मेघकी नाईं जो जा चाहसे आयो वाको

तस्या अनुदिनं गर्भः शुक्लपक्ष इवोडुपः ॥ ववृधे शूरसेनेशतेजसा शनकैर्नृप ॥ ३१ ॥ अथ काल उपावृत्ते कुमारः
समजायत ॥ जनयञ्छूरसेनानां शृण्वतां परमां मुदम् ॥ ३२ ॥ हृष्टो राजा कुमारस्य स्नातः शुचिरलंकृतः ॥ वाचयित्वाऽऽशिषो
विप्रैः कारयामास जातकम् ॥ ३३ ॥ तेभ्यो हिरण्यं रजतं वासांस्याभरणानि च ॥ ग्रामान् हयान्
गजान् प्रादाद्धेनूनामर्बुदानि षट् ॥ ३४ ॥ ववर्ष काममन्येषां पर्जन्य इव देहिनाम् ॥ धन्यं यशस्यमायुष्यं कुमारस्य
महामनाः ॥ ३५ ॥ कृच्छ्रलब्धेऽथ राजर्षेस्तनयेऽनुदिनं पितुः ॥ यथा निःस्वस्य कृच्छ्राप्ते धने स्नेहोऽन्ववर्द्धत
॥ ३६ ॥ मातुस्त्वतितरां पुत्रे स्नेहो मोहसमुद्भवः ॥ कृतद्युतेः सपत्नीनां प्रजाकामज्वरोऽभवत् ॥ ३७ ॥
चित्रकेतोरतिप्रीतिर्यथा दारे प्रजावति ॥ न तथान्येषु संजज्ञे बालं लालयतोऽन्वहम् ॥ ३८ ॥ ताः पर्यतप्यन्नात्मानं
गर्हयन्त्योऽभ्यसूयया ॥ आनपत्येन दुःखेन राज्ञोऽनादरणेन च ॥ ३९ ॥

सब कुछ दीनो, धन यश आयु बढे ये आशीर्वाद लेकर महाप्रसन्न मन भयो ॥ ३५ ॥ कष्टसे राजर्षिको पुत्र मिलो यासे दिन दिन पिताकी बहुत
प्रीत बढी, जैसै काउको महाकष्टसे धन मिलै तौ वामै स्नेह बढैं है ॥ ३६ ॥ मा कृतद्युतिकों तो पुत्रमें मोहस्नेह बहुतही भयो, परंतु सौतनकों पुत्र
देख बडी डाह भई ॥ ३७ ॥ दिनरात बालकके लालन पालनसे चित्रकेतुको पुत्रवारी राणीमें तो बहुत प्रीत बढी, और राणियोंमें इतनी न बढी
॥ ३८ ॥ वे ईर्षा और पुत्र न होनेके दुःखसै तथा राजाके अनादर करनेके कारण दूसरी रानी अपनेको धिक्कार देती दुख प्रकाश करने लगीं ॥३९॥

॥ ४१ ॥

पापिनी पुत्रहीन और उसके निमित्त पतिके गृहमें तिरस्कृत स्त्रीको धिक्कार है श्रेष्ठ संतानवाली सौत वंध्या सौतका दासीकी समान निरादर करती है ॥४०॥सदा मान पानेवाली स्त्रियें अपने पतिकी सेवा और दास्यपन करनेमेंभी कोई दुख नहीं मान्ती पर हमारा तौ दासियौंकी दासिके समान दुर्भाग्य है ॥ ४१ ॥ ऐसै सौतकी पुत्रकी संपदा देख सब जर मरी, राजाके समानभाव न हो यासे महा वैर होगयो ॥४२॥ वैर करवेसे बुद्धि नष्ट होजायहै, दूसरे स्त्रीनके वैसेई महाकठोर चित्त होय है, क्रोधके मारे राजपुत्रकों सबनें मिल जहर देदीनो ॥ ४३ ॥ सौतनको ये पापकर्म कृतद्युतिनें न जानौ, विचारो कि राजकुमार सोवै है, ऐसे देखकर घरमैं विचरती भई ॥ ४४ ॥ बुद्धिमान् बडी महारानी बहुत देरसैं घोरनिद्रामैं सोये बालककी चिन्ताकरकै

धिगप्रजां स्त्रियं पापां पत्युश्चागृहसंमताम् ॥ सुप्रजाभिः सपत्नीभिर्दासीमिव तिरस्कृताम् ॥ ४० ॥ दासीनां को नु संतापः स्वामिनः परिचर्यया ॥ अभीक्ष्णं लब्धमानानां दास्या दासीव दुर्भगाः ॥ ४१ ॥ एवं संदह्यमानानां सपत्न्याः पुत्रसंपदा ॥ राज्ञोऽसंमतवृत्तीनां विद्वेषो बलवानभूत् ॥ ४२ ॥ विद्वेषनष्टमतयः स्त्रियो दारुणचेतसः ॥ गरं ददुः कुमाराय दुर्मर्षा नृपतिं प्रति ॥ ४३ ॥ कृतद्युतिरजानन्ती सपत्नीनामघं महत् ॥ सुप्त एवेति संचिन्त्य निरीक्ष्य व्यचरद्गृहे ॥ ४४ ॥ शयानं सुचिरं बालमुपधार्य मनीषिणी ॥ पुत्रमानय मे भद्रे इति धात्रीमचोदयत् ॥ ४५ ॥ सा शयानमुपव्रज्य दृष्ट्वा चोत्तारलोचनम् ॥ प्राणेन्द्रियात्मभिस्त्यक्तं हताऽस्मीत्यपतद्भुवि ॥ ४६ ॥ तस्यास्तदाकर्ण्य भृशातुरं स्वरं घ्नन्त्याः कराभ्यामुर उच्चकैरपि ॥ प्रविश्य राज्ञी त्वरयात्मजान्तिकं ददर्श बालं सहसा मृतं सुतम् ॥ ४७ ॥ पपात भूमौ परिवृद्धया शुचा मुमोह विभ्रष्टशिरोरुहाम्बरा ॥ ४८ ॥

अपनी धायसें बोली हे कल्याणकारिणी ! मेरो पुत्र लावो ॥ ४५ ॥ वो धाय शयन करे पुत्रके समीप जाय वाको देखो कि प्राण इन्द्रिय और चैतन्यता रहित है आंखौंकी पुतली ऊपर उठ गई हैं यह देख उसै मरा जान "हाय मैं मरी" यह कह चिल्लाती हुई वह पृथ्वीमें गिरी ॥ ४६ ॥ हाथोंसे छातीको कूटती ऊंचै स्वरसे रौने लगी वाकों शब्द सुन राणी शीघ्र पुत्रके पास जाय मरेभए पुत्रको देखतीभई ॥ ४७ ॥ महाशोचके मारे भूमिमें गिर पडी, मूंडके वार विखरे मोहको प्राप्त होती भई ॥ ४८ ॥

90

तब राजाके अंतःपुरवर्ती नरनारी रोवनेकी अवाज सुनकर आयकै बराबर व्यसन करवेवारी दुखी हो रोने लगीं और अपराधिनी कपटसै मुख बनाय रोयवेलगी ॥ ४९ ॥ पुत्रकी अकस्मात् मृत्यु सुन शोकसे अंधा हो मार्गमें गिरता पड़ता राजा स्नेहके कारण मूर्छित होता सब मंत्री प्रजा ब्राह्मणसहित आयो ॥ ५० ॥ वार और वस्त्र खुले बेसुध राजा मरे बालकके पैरोंमे आय पडो बडी श्वांस लेवै, आसूनके मारे कंठ रुकरह्यो, बोलवैकीभी सामर्थ्य न भई ॥ ५१ ॥ महाशोकग्रस्त पतिको देख और एकलौते पुत्र बालकको मरा देख जनोंकी महाराजेश्वरी सती प्रजाको हृदयको संताप दायक

ततो नृपान्तःपुरवर्तिनो जना नराश्च नार्यश्च निशम्य रोदनम् ॥ आगत्य तुल्यव्यसनाः सुदुःखितास्ताश्च व्यलीकं रुरुदुः कृतागसः ॥ ४९ ॥ श्रुत्वा मृतं पुत्रमलक्षितान्तकं विनष्टदृष्टिः प्रपतन् स्खलन् पथि ॥ स्नेहानुबन्धैधितया शुचा भृशं विमूर्छितोनुप्रकृतिर्द्विजैर्वृतः ॥ ५० ॥ पपात बालस्य स पादमूले मृतस्य विस्रस्तशिरोरुहाम्बरः ॥ दीर्घं श्वसन् बाष्पकलोपरोधतो निरुद्धकण्ठो न शशाक भाषितुम् ॥ ५१ ॥ पतिं निरीक्ष्योरुशुचाऽर्पितं तदा मृतं च बालं सुतमेकसंततिम् ॥ जनस्य राज्ञी प्रकृतेश्च हृद्रुजं सती दधाना विललाप चित्रधा ॥ ५२ ॥ स्तनद्वयं कुङ्कुमगन्धमण्डितं निषिञ्चती साञ्जनबाष्पबिन्दुभिः ॥ विकीर्य केशान्विगलत्स्रजः सुतं शुशोच चित्रं कुररीव सुस्वरम् ॥ ५३ ॥ अहो विधातस्त्वमतीव बालिशो यस्त्वात्मसृष्ट्यप्रतिरूपमीहसे ॥ परेऽनुजीवत्यपरस्य या मृतिर्विपर्ययश्चेत्त्वमसि ध्रुवः परः ॥ ५४ ॥ न हि क्रमश्चेदिह मृत्युजन्मनोः शरीरिणामस्तु तदात्मकर्मभिः ॥ यः स्नेहपाशो निजसर्गवृद्धये स्वयं कृतस्ते तमिमं विवृश्चसि ॥ ५५ ॥

चित्र विचित्रतासें विलाप करती भई ॥ ५२ ॥ कुंकुम सुगंधीसे शोभित अंजन सहित आंसूनकी बूंदनतें दोनों स्तनोंको भिजोती भई, वार विखेरे सब माला खुलगई कुररीकी नांई ऊंचे स्वरसे पुत्रको शोच करती भई ॥ ५३ ॥ हे विधातः! तुम अत्यंत मूर्ख हो, अपनी सृष्टिमें उलटी बात करोहो, पिताके जीते पुत्रको मृत्यु होजाय ये उलटी बात करोहो, यासे तुम निश्चय मूर्ख हो ॥ ५४ ॥ शरीरधारीनकी मृत्युको मरते जन्मनेको कुछ क्रम नहीं है, सब बात कर्मसें होय है, ये स्नेहकी फांसी अपनी सृष्टि बढावनेको तुमने कीनी है याको तुम्ही काटोहो ॥ ५५ ॥

हे पुत्र ! मो कृपण अनाथको शोकतप्त पिताको त्यागवेको योग्य नहीं हो, निपूतेपनको दुख तुमसे अनायास तर गयेथे सो निर्दयी यमराजने हमें यह नर्क दिखायो ॥५६॥ हे पुत्र ! उठो ये तुह्मारी बराबरके बालक तुमसें खेलवेको आए हैं तुमें पुकारेहैं बहुत देरभई भूखे सोएहो, सो खाओ स्तन पीयो, अपनेनको शोक हरो ॥ ५७ ॥ सब मंगल मेरे नष्ट भए, मोहयुक्त तुह्मारो आनंदित मुखकमल न देखूंगी, अब मैं तुम्हारी वाणी नहीं सुन्ती हे पुत्र! क्या तुम परलोकको चले गये जहांसे जाकर फिर लौटना नहीं होता क्या निर्दयी यमराज तुझै लेगया ॥ ५८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि मरे पुत्रके

त्वं तात नार्हसि च मां कृपणामनाथां त्यक्तुं विचक्ष्व पितरं तव शोकतप्तम् ॥ अञ्जस्तरेम भवताऽप्रजदुस्तरं यत् ध्वान्तं न याह्यकरुणेन यमेन दूरम् ॥५६॥ उत्तिष्ठ तात त इमे शिशवो वयस्यास्त्वामाह्वयन्ति नृपनन्दन संविहर्तुम् ॥ सुप्तश्चिरं ह्यशनया च भवान्परीतो भुङ्क्ष्व स्तनं पिब शुचो हर नः स्वकानाम् ॥५७॥ नाहं तनूज ददृशे हतमङ्गला ते मुग्धस्मितं मुदितवीक्षणमाननाब्जम् ॥ किं वा गतोऽस्य पुनरन्वयमन्यलोकं नीतोऽघृणेन न शृणोमि कला गिरस्ते ॥५८॥ श्रीशुक उवाच ॥ विलपन्त्या मृतं पुत्रमिति चित्रविलापनैः ॥ चित्रकेतुर्भृशं तप्तो मुक्तकण्ठो रुरोद ह ॥५९॥ तयोर्विलपतोः सर्वे दम्पत्योस्तदनुव्रताः ॥ रुरुदुः स्म नरा नार्यः सर्वमासीदचेतनम् ॥६० ॥ एवं कश्मलमापन्नं नष्टसंज्ञमनायकम् ॥ ज्ञात्वाङ्गिरा नाम मुनिराजगाम सनारदः ॥ ६१ ॥ इति श्रीभा० म० षष्ठ० चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ऊचतुर्मृतकोपान्ते पतितं मृतकोपमम् ॥ शोकाभिभूतं राजानं बोधयन्तौ सदुक्तिभिः ॥ १ ॥

ऐसे गुण गाय २ माता विलाप करती भई, और चित्रकेतु अत्यंत दुःखी होय चिल्लायके रोतो भयो ॥५९॥ स्त्रीपुरुषके विलाप देख उनके चाकर नर नारी सब रोते २ मरेसे होगए ॥६०॥ ऐसे दुःखको प्राप्त चैतन्यताहीन राजाको जान नारदको साथ ले अंगिरा मुनि आए ॥ जब या जीवपर भगवान कोपै तो ऐसेई शोक होय है ॥ ६१ ॥ इति श्रीमन्म० भा० षष्ठस्कन्धे चित्रकेतुपुत्रमृत्युवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि मृतकके समीप मरेके समान बैठे भए शोकव्याप्त राजाको सद्धुक्तियोंसे वे दौनौ ऋषि बोध करते भए ॥ १ ॥

हे राजेंद्र ! ये तुह्मारो कौन है, जाको तुम शोक करो है, या सृष्टिमें तुम याके कौन है, पहिलै कौन हे, अब कौन हो, आगै कहा होओगे ॥ २ ॥ जैसै प्रवाहके वेग करकै वालु वहे है, रुकै है, तैसै कालके वेग करकै सब देहधारीनको संयोग होय है ॥ ३ ॥ जैसै धानसें धान होय है, कभी नहींभी होय हैं ऐसेई जीवोंमें जीव ईश्वरकी माया करकै प्रेरित होय है, कभी नहीं होय हैं जैसे बीजमें कोई पिता पुत्रका संबंध नहीं ऐसेही प्राणीमेंभी नहीं मायासे यह सब कुछ दीखता है यथार्थमें कुछभी नही ॥४॥ हे राजन् ! हम तुम चर अचर जो इस समय दीखते हैं यह पहले नहींथे आगेभी न रहेंगे इसी प्रकार जानो इस वर्तमानमेंभी नहीं हैं मरना सबके निमित्त साधारण है फिर शोक करना वृथा है ॥५॥ सर्वेश्वर जीवोंसे जीवनकों रचैहै पालै है, नाश करै हैं उनके रचे भए पराधीन बालककी नाईं चाह रहित जीवै है ॥ ६ ॥ हे राजन् ! यह सब मायामयी रचना है जिस प्रकार एक बीजसे दूसरा बीज होताहै ऐसेही मातापिताके शरीर संयोगसे पुत्रका देह होता है जैसे बीजमें पृथ्वी आदि तत्व वही है इसी प्रकार देहमें वही तत्व और वही आत्मा है देहसे देहधारी, देहते देह सब प्रकारसै जन्मै है, जैसे बीजसे बीज तैसै ये जीव सदा कालवर्ती है ॥ ७ ॥ शरीर शरीरिपणको विभाग पहिलेईसें अज्ञानसे करो है, जैसे जाति व्यक्तिको विभाग वस्तुके अनुसार कल्पना करो है ईश्वरही सत्य है शेष कल्पना है ॥ ८ ॥ नाना भाव जन्म नाश क्षय वृद्धि क्रियाफल ये असत्पणेसे द्रष्टामें भासे है, जैसै अग्निकी विक्रिया काष्ठमें भासे है ॥ ९ ॥

कोऽयं स्यात्तव राजेन्द्र भवान्यमनुशोचति ॥ त्वं चास्य कतमः सृष्टौ पुरेदानीमतः परम् ॥२॥ यथा प्रयान्ति संयान्ति
स्रोतोवेगेन वालुकाः ॥ संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते तथा कालेन देहिनः ॥ ३ ॥ यथा धानासु वै धाना भवन्ति न भवन्ति
च ॥ एवं भूतेषु भूतानि चोदितानीशमायया ॥ ४ ॥ वयं च त्वं च ये चेमे तुल्यकालाश्चराचराः ॥ जन्ममृत्योर्यथा
पश्चात्प्राङ् नैवमधुनापि भोः ॥ ५ ॥ भूतैर्भूतानि भूतेशः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥ आत्मसृष्टैरस्वतन्त्रैरनपेक्षोऽपि
बालवत् ॥ ६ ॥ देहेन देहिनो राजन्देहाद्देहोऽभिजायते ॥ बीजादेव यथा बीजं देह्यर्थ इव शाश्वतः ॥७॥ देहदेहिविभागोऽयमविवेककृतः पुरा ॥ जातिव्यक्तिविभागोऽयं यथा वस्तुनि कल्पितः ॥८॥ नानात्वं जन्मनाशश्च क्षयो
वृद्धिः क्रियाफलम् ॥ द्रष्टुश्च भान्त्यतद्धर्मा यथाग्नेर्दारुविक्रिया ॥ ९ ॥

असत्पनसे ये जीव देहके संयोगसे आत्मामें भासें हैं जैसै स्वप्नमें सब भय अभय विदित होताहै वास्तवमें नही ॥ १० ॥ सो या अहंकारके न होनेसे घोर संसारभी प्रकाशमान नही होता इसीप्रकार जीतेभए निरहंकारी विमुक्तको जन्मनाश नहीं है ॥ ११ ॥ ताते मनके विलासमात्र अहंममतारूप अंधकारको त्यागौ, आत्मा ईश्वर वासुदेव भगवानमें मन लगाओ ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि राजा चित्रकेतु ऐसे जब आश्वासन कराएगए तब व्याधिसे मलीन मुखकों पोंछ बोले ॥ १३ ॥ राजा चित्रकेतु बोलै आप ज्ञानसंपन्न कौन हो, बडोंमेंभी वडे हो, अवधूतनकेसे भेष धारकर

त इमे देहसंयोगादात्मन्याभान्त्यसद्ग्रहात् ॥ स्वप्ने यथा तथानन्यद्ध्यायेत्सर्वं भयाभयम् ॥ १० ॥ प्रसुप्तस्यानहंमानान्न घोरा भाति संसृतिः ॥ जीवतोपि यथा तद्वद् विमुक्तस्यानहंकृतेः ॥ ११ ॥ तस्मादन्यन्मनोमात्रं जह्यहंममतातमः ॥ वासुदेवे भगवति मनो धेह्यात्मनीश्वरे ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमाश्वासितो राजा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ॥ प्रमृज्य पाणिना वक्त्रमाधिम्लानमभाषत ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ कौ युवां ज्ञानसंपन्नौ महिष्ठौ च महीयसाम् ॥ अवधूतेन वेषेण गूढाविह समागतौ ॥ १४ ॥ चरन्ति ह्यवनौ कामं ब्राह्मणा भगवत्प्रियाः ॥ मादृशां ग्राम्यबुद्धीनां बोधायोन्मत्तलिङ्गिनः ॥१५॥ कुमारो नारद ऋभुरङ्गिरा देवलोसितः ॥ अपान्तरतमो व्यासो मार्कण्डेयोऽथ गौतमः॥१६॥ वसिष्ठो भगवान्रामः कपिलो बादरायणिः ॥ दुर्वासा याज्ञवल्क्यश्च जातूकर्ण्यस्तथाऽरुणिः ॥ १७ ॥ रोमशश्च्यवनो दत्त आसुरिः सपतञ्जलिः ॥ ऋषिर्वेदशिरा बोध्यो मुनिः पञ्चशिरास्तथा ॥ १८ ॥ हिरण्यनाभः कौशल्यः श्रुतदेव ऋतध्वजः ॥ एते परे च सिद्धेशाश्चरन्ति ज्ञानहेतवः ॥ १९ ॥

छिपेभए यहां आएहो ॥ १४ ॥ हमसरीके ग्रहस्थीनके बोधके लिये उन्मत्तवेषधारी भक्तप्रिय ब्राह्मण पृथिवीमें यथेच्छसैं विचरै है ॥ १५ ॥ आप सनत्कुमार हो, कि श्रीनारद ऋभु अंगिरा देवल असित अपांतरतम व्यास मार्कंडेय गौतम ॥ १६ ॥ वसिष्ठ भगवान् राम कपिल बादरायणि दुर्वासा याज्ञवल्क्य जातूकर्ण्य अरुणि ॥ १७ ॥ रोमश च्यवन दत्तात्रेय आसुरि पतंजलि ऋषि वेदशिरा बोध्यमुनि पंचशिरा ॥ १८ ॥ हिरण्यनाभ कौशल्य श्रुतदेव ऋतध्वज ये सब सिद्धेश हैं ज्ञानके हेतुतें विचरै हैं ॥ १९ ॥

९५

सो तुम दोनो समर्थ मुझ ग्रामीण मूढ बुद्धिवारेको जो कि अज्ञानके अंधकारमें मग्न होताहूं ज्ञानदीप दिखकर उद्धार करो ॥ २० ॥ अंगिरा बोले कि हे नृप ! पुत्रकी चाहवारेकों पुत्र देवेवारे हम अंगिरा हैं ये साक्षात् ब्रह्माके सुत भगवान् नारदऋषि हैं ॥२१॥ पुत्रशोकमें ऐसे मग्न दुस्तर अंधरेमें पडे भए तुमकों ये शोक अयोग्य है याद करो क्या ये महापुरुषनके ध्यान योग्य है ॥ २२ ॥ हे प्रभो ! आपके ऊपर कृपा करके हम यहां आए हैं जो ब्रह्मण्य है भगवान्के भक्त हैं वो कष्ट पायवेकों योग्य नही हैं " क्योंकि एक ब्रह्मण्य भगवद्भक्त वैश्यके घर आयो जासमें ब्राह्मण आयो वाही विरियां वाको सारो आयो सो याकी वहूने सुन्दर पकवान पुरी लडुवा अपने भैयाके लिये कर दो थार परोसे एक थारमें तो नगदमाल दूसरेमें परामठे साग अपने मालकसें कही कि या थारको तो सारेकों परोसियो, याय ब्राह्मणके आगे वाने उलटके थार परामठेको तो सारेको परोसो, और

तस्माद्युवां ग्राम्यपशोर्मम मूढधियः प्रभू ॥ अन्धे तमसि मग्नस्य ज्ञानदीप उदीर्यताम् ॥ २० ॥ अङ्गिरा उवाच ॥
अहं ते पुत्रकामस्य पुत्रदोऽस्म्यङ्गिरा नृप ॥ एष ब्रह्मसुतः साक्षान्नारदो भगवानृषिः ॥ २१ ॥ इत्थं त्वां पुत्रशोकेन
मग्नं तमसि दुस्तरे ॥ अतदर्हमनुस्मृत्य महापुरुषगोचरम् ॥२२॥ अनुग्रहाय भवतः प्राप्तावावामिह प्रभो॥ब्रह्मण्यो भगवद्भक्तो नावसीदितुमर्हति ॥२३॥ तदेव ते परं ज्ञानं ददामि गृहमागतः॥ ज्ञात्वान्याऽभिनिवेशं ते पुत्रमेव ददावहम्
॥ २४ ॥ अधुना पुत्रिणां तापो भवतैवानुभूयते ॥ एवं दारा गृहा रायो विविधैश्वर्यसंपदः ॥२५॥ शब्दादयश्च विषयाश्चला राजविभूतयः ॥ मही राज्यं बलं कोशो भृत्यामात्याः सुहृज्जनाः ॥ २६ ॥

ब्राह्मण भगवद्भक्तको मालको थार, तव वहू बोली कि यहा नाक कटैगी तब बनियां बोलो यहांकी कटी तो जुरसकैगी पर जहांको ये ब्राह्मण भगवतको भक्त हैं वहां भगवान्के यहांकी कटी फिर न जुरैगी याते ऐसो कीनो " ॥ २३ ॥ जब हम प्रथम तुम्हारे घर आये थे उसी समय तुमको ज्ञान दैनेकी हमारी अभिलाषा थी उस समय तुम्हारा चित्त और विषयमें लगाथा यह जानकर उस समय हम तुमको पुत्र दे गयेथे ॥ २४ ॥ पुत्रवानोंको कैसे २ संताप होते हैं वह अब तुम जानचुके स्त्री भवन धन ऐश्वर्य संपदा यह सब इसी प्रकार संतापकी दैनेहारी हैं ॥ २५ ॥ शब्दादिक विषय राज्य विभूतिमें पृथिवीका राज्य फौज खजानों चाकर मंत्री सुहृद सब अपने मतलबके साथी हैं ॥ २६ ॥

हे चित्रकेतु ! सब यह शोक मोह भयके देवेवारें हैं गंधर्वनगरके समान स्वप्नमें जैसे मायासे मनोरथ होंय तैसे यह सब मिथ्या हैं ॥ २७ ॥ हे राजन् ! यह सबही पदार्थ मनसैं उपजे हैं कारण कि सात्विक स्वरूपके विना एक क्षणभर दीखकर फिर अदृश्य हो जातेहैं जो यथार्थ होते तौ उनका आना जाना किसी प्रकार संभव नही हो सक्ता इस कारण मनसैही कल्पना किये सब पदार्थ स्वप्नकी तुल्य मिथ्या हैं कर्मकी वासनाका ध्यान करनेहीसै पुरुषके मनसै कर्म हुआ करते है इस कारण कर्मभी मनसै उत्पन्न है इसीसै कर्मसाध्य विषय मनसैही उत्पन्न कहे जातेहै ॥ २८ ॥ ये जीवको देह द्रव्य ज्ञान क्रिया करनेसे होय है, सो यही देहीको अनेक क्लेश महासंतापके देवेवारे हैं, ऐसै कह्यो है ॥ २९ ॥ तातै स्वच्छ मनसें व्यापक आत्माकी गति विचारो ये पुत्र और हैं, मैं और हूं, ये इस निश्चय करे विश्वासको त्याग शांत भावकू प्राप्तहो ॥ ३० ॥ श्रीनारदजी बोले कि ये मंत्रोंको उपदेशरूप उपनिषद है याको सावधान होयकर धारो, याके सातरात धारनेसें पुरुष संकर्षण प्रभुको देखै हैं ॥ ३१ ॥ हे नरेंद्र ! जिनके चरणारविंदकी शरणको त्यागकर पूर्व ब्रह्मा और शिव आदिकभी द्वैत भ्रमको त्यागकर तत्काल तिनके महाऐश्वर्य युक्त सबसै अधिकस्थानको प्राप्त होते भये, उन्ही परमेश्वर परमात्मा परात्पर पद्मापति पुरुष श्रीकांत सर्वेश्वरकौ थोडेही कालमैं तुमभी प्राप्त हो जाओगै ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां षष्ठस्कन्धे पुत्रशोकातुरचित्रकेतोः अंगिरोज्ञानदानवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

सर्वेंपि शूरसेनेमे शोकमोहभयार्तिदाः॥ गन्धर्वनगरप्रख्याः स्वप्नमायामनोरथाः॥२७॥ दृश्यमाना विनार्थेन न दृश्यन्ते मनोभवाः॥ कर्मभिर्ध्यायतो नानाकर्माणि मनसोऽभवन् ॥ २८ ॥ अयं हि देहिनो देहो द्रव्यज्ञानक्रियात्मकः ॥ देहिनो विविधक्लेशसंतापकृदुदाहृतः ॥२९॥ तस्मात्स्वस्थेन मनसा विमृश्य गतिमात्मनः ॥ द्वैते ध्रुवार्थविश्रम्भं त्यजोपशममाविश ॥ ३० ॥ नारद उवाच ॥ एतां मन्त्रोपनिषदं प्रतीच्छ प्रयतो मम ॥ यां धारयन्सप्तरात्राद्द्रष्टा संकर्षणं प्रभुम् ॥३१॥ यत्पादमूलमुपसृत्य नरेन्द्र पूर्वे शर्वादयो भ्रमामिमं द्वितयं विसृज्य ॥ सद्यस्तदीयमतुलानधिकं महित्वं प्रापुर्भवानपि परं न चिरादुपैति ॥ ३२ ॥ इति श्रीभा० म० ष० पुत्रशोकातुरचित्रकेतोराङ्गिरोज्ञानदानवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथ देवऋषी राजन् संपरेतं नृपात्मजम् ॥ दर्शयित्वेति होवाच ज्ञातीनामनुशोचताम् ॥ १ ॥ ना-
रद उवाच ॥ जीवात्मन्पश्य भद्रं ते मातरं पितरं च ते ॥ सुहृदो बान्धवांस्तप्तांश्छुचा त्वत्कृतया भृशम् ॥ २ ॥
कलेवरं स्वमाविश्य शेषमायुः सुहृद्वृतः ॥ भुङ्क्ष्व भोगान्पितृप्रत्तानधितिष्ठ नृपासनम् ॥ ३ ॥ जीव उवाच ॥ कस्मि-
ञ्जन्मन्यमी मह्यं पितरो मातरोऽभवन् ॥ कर्मभिर्भ्राम्यमाणस्य देवतिर्यङ्नृयोनिषु ॥ ४॥ बन्धुज्ञात्यरिमध्यस्थमित्रो-
दासीनविद्विषः ॥ सर्व एव हि सर्वेषां भवन्ति क्रमशो मिथः ॥५॥ यथा वस्तूनि पण्यानि हेमादीनि ततस्ततः ॥ पर्यटन्ति
नरेष्वेवं जीवो योनिषु कर्तृषु ॥ ६ ॥ नित्यस्यार्थस्य संबन्धो ह्यनित्यो दृश्यते नृषु ॥ यावद्यस्य हि संबन्धो ममत्वं
तावदेव हि ॥ ७॥ एवं योनिगतो जीवः स नित्यो निरहंकृतः ॥ यावद्यत्रोपलभ्येत तावत्स्वत्वं हि तस्य तत् ॥ ८ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जब इसपर राजाका शोक शान्त न हुआ तब वे दोनौ ऋषि उस मृतक राजपुत्रको शोच करते जातिजनोंके बोचमें दिखाकर बोले ॥ १ ॥ श्रीनारदजी बोले कि हे जीवात्मन् ! देखो तुम्हारो भद्र होय यह देखो तुम्हारे माता पिता सुहृद भाई बंधु तुह्मारे शोकके कारण महासन्ताप पायरहे हैं ॥ २ ॥ तुम अपने शरीरमें आयकर सुहृदबंधुनमें शेष आयुको भोगो, और अपने पिताके रक्षित भोगनको नृपासनपर वैठकर भोगो ॥३॥ जीव बोलो कि ये कौन जन्ममें मेरे पिता माता होतेभए, जीव अपने कर्मोंकरके देव पशु पक्षी मनुष्यकी योनियोंमे घूमैं हैं ॥ ४ ॥ बंधु जाति शत्रु मध्यम मित्र उदासीन विद्वेषी ये क्रमसे आपसमें जीवमात्रको होते हैं ॥ ५ ॥ जैसे खरीदनेवेचने योग्य सुवर्ण आदि वस्तु मनुष्योंमें घूमती हैं, ऐसै जीव कर्तापनसे योनियोंमें जन्मे मरै है ॥ ६ ॥ जिस देहमें यह जीव आता है जबतक उस देहमें रहता है तबतक उसका ममत्व रहता है उपरान्त कुछ नहीं रहता जन्मान्तरका संबंध सदा नही रहता और एकही जन्ममें उसका अनित्यपन जाना जाता है जीवित पशु आदिका संबंधभी वेचनेंसै निवृत्त हो जाता है तब शरीर छुटनेपर तौ संबंधकी बातही क्या है ॥ ७ ॥ ऐसै योनियोमें प्राप्त होके जीव वहका वोही बना रहता है पित्रादि संबन्ध हौनेपरभी आप नित्य बना रहता है वास्तवमें यह अहंकार शून्य अर्थात् मैं इसका पुत्र हूं इस वाक्यसैं रहित हैं कर्मवश जबतक पितादिकसे संबंध है तभीतक उनका अधिकार है ॥ ८ ॥

नित्य अविनाशी सूक्ष्म सबके आश्रयभूत स्वप्रकाश समर्थ ये जीव आत्माकी मायाके गुणोंकरकै विश्वकों रचैहै ॥ ९ ॥ याको कोई अतिप्रिय नहीं है, न शत्रु है, न अपनो परायो है, एक सबकी बुद्धिनको देखवेवारो गुणदोषको कर्ता जीव है ॥ १० ॥ आत्मा न तो गुणग्रहण करै है, न दोष न क्रियाफल उदासीनकी नाई परअवरके देखवेवारे ईश्वर स्थित है ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि ऐसै कहिकर वो जीव चलोगयो वासमय वाके सब जातके विस्मित होयकर अपनी स्नेहरूप शृंखलाकूं काटकर शोक त्याग करते भए ॥१२॥ वाकी जातके बालकके उचित मृतकसंस्कार करकै शोकमोहभयकी पीडाको देवेवारो दुस्त्यज स्नेहको त्यागते भए ॥ १३ ॥ तब बालककी मारवेवारी लज्जित भई, बालहत्यासे उनकी सब प्रभा नाश-

एष नित्योऽव्ययः सूक्ष्म एष सर्वाश्रयः स्वदृक् ॥ आत्ममायागुणैर्विश्वमात्मानं सृजते प्रभुः ॥ ९ ॥ नह्यस्यातिप्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा ॥ एकः सर्वधियां द्रष्टा कर्तॄणां गुणदोषयोः ॥ १० ॥ नादत्त आत्मा हि गुणं न दोषं न क्रियाफलम् ॥ उदासीनवदासीनः परावरदृगीश्वरः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युदीर्य गतो जीवो ज्ञातयस्तस्य ते तदा ॥ विस्मिता मुमुचुः शोकं छित्त्वात्मस्नेहशृङ्खलाम् ॥ १२ ॥ निर्हृत्य ज्ञातयो देहं तथा कृत्वोचिताः क्रियाः ॥ तत्यजुर्दुस्त्यजं स्नेहं शोकमोहभयार्तिदम् ॥ १३ ॥ बालघ्न्यो व्रीडितास्तत्र बालहत्याहतप्रभाः ॥ बालहत्याव्रतं चेरुर्ब्राह्मणैर्यन्निरूपितम् ॥ यमुनायां महाराज स्मरन्त्यो द्विजभाषितम् ॥ १४ ॥ स इत्थं प्रतिबुद्धात्मा चित्रकेतुर्द्विजोक्तिभिः ॥ गृहान्धकूपान्निष्क्रान्तः सरःपङ्कादिव द्विपः ॥ १५ ॥ कालिन्द्यां विधिवत्स्नात्वा कृतपुण्यजलक्रियः ॥ मौनेन संयतप्राणो ब्रह्मपुत्राववन्दत ॥ १६ ॥

भई, हे राजन्! ब्राह्मणोंके बताये बालहत्याको व्रतको करतीभई, यमुनापर जो ब्राह्मणने कहा था उसका स्मरण करती भई "वो ये कथा है कि चित्रकेतुकी ये सब रानी पूर्वजन्ममें गिजाई होय एककंडाके नीचै बैठीहीं, चित्रकेतुको सुत हाथी हो, सो इनपर पग पडगयो वे मरगई, सोई या जन्ममें स्त्रीनने मिलकर या पुत्रको एकसंग जहर दैकै मारो अपने पूर्वजन्मको बदलो होगयो, चित्रकेतुके भाग्यमें इतनौही पुत्रसुख लिखो सो याके भयो" ॥१४॥ चित्रकेतु ब्राह्मणोंके कहेसे ज्ञानी होय घररूप अंधकूपसें निकसो, जैसें कीचमेंसे हाथी निकसै ॥१५॥ यमुनामें विधिवत्स्नान कर पुण्यजलक्रिया कर

मौनव्रतसे प्राण जीत ब्रह्माके दोनो पुत्रनकों वंदना करते भए ॥१६॥ शरणागत, भक्त, प्रसन्न वशीभूत चित्त राजाके अर्थ भगवान्नारद प्रसन्न होयकर या विद्याको कहितेभए ॥ १७ ॥ भगवान् वासुदेवको हम ध्यान करै हैं, तिनको नमस्कार होय, प्रद्युम्न अनिरुद्धके अर्थ नमस्कार होय, संकर्षणके अर्थ नमस्कार होय ॥ १८ ॥ विज्ञानमात्र परमानंदमूर्ती आत्माराम शांत द्वैतभावरहितके अर्थ नमस्कार होय ॥ १९ ॥ आत्माके आनंदको अनुभवसै मायासंवंधी राग द्वेषादिके नाश करनेहारे इंद्रियनके स्वामी महात्मा विश्वमूर्ति के अर्थ नमस्कार है ॥ २० ॥ मनके साथ जाको प्राप्त न होयकर वाणी कहिसकैहै, नामरूपरहित, चैतन्यमात्र, सत् असत्सें परै संकर्षणजी हमारी रक्षा करै ॥ २१ ॥ यह जगत्

अथ तस्मै प्रपन्नाय भक्ताय प्रयतात्मने ॥ भगवान्नारदः प्रीतो विद्यामेतामुवाच ह ॥ १७ ॥ ॐनमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः संकर्षणाय च ॥ १८ ॥ नमो विज्ञानमात्राय परमानन्दमूर्तये ॥ आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये ॥१९॥ आत्मानन्दानुभूत्यैव न्यस्तशक्त्यूर्मये नमः ॥ हृषीकेशाय महते नमस्ते विश्वमूर्तये ॥ २० ॥ वचस्युपरते प्राप्य य एको मनसा सह ॥ अनामरूपश्चिन्मात्रः सोऽव्यान्नः सदसत्परः ॥ २१ ॥ यस्मिन्निदं यतश्चेदं तिष्ठत्यप्येति जायते ॥ मृन्मयेष्विव मृज्जातिस्तस्मै ते ब्रह्मणे नमः ॥ २२ ॥ यन्न स्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः ॥ अन्तर्बहिश्च विततं व्योमवत्तं नतोऽस्म्यहम् ॥ २३ ॥ देहेन्द्रियप्राणमनोधियोऽमी यदंशविद्धाः प्रचरन्ति कर्मसु ॥ नैवान्यदा लोहमिवाप्रतप्तं स्थानेषु तद्द्रष्ट्रपदेशमेति ॥ २४ ॥

जिनसै उत्पन्न होकर जिनमें लय होजाताहै और जिनमें रहताहै तथा घटादिक पदार्थोंमें मृत्तिकाके समान जो सबमें व्याप्त हैं उन परब्रह्म परमात्माको हम प्रणाम करते हैं ॥ २२ ॥ मन बुद्धि इंद्रियें जिन्है नहीं जान सकते प्राण जिनको स्पर्श नहीं करसकते आकाशकी नाई वाहिर भीतर जो विस्तृत है, ताहि हम नमस्कार करे है ॥ २३ ॥ देह इंद्रियें प्राण मन बुद्धि ये जिनके चेतन अंशसे विंधेभए कर्ममें विचरैं हैं जैसे अग्निके विना लोहो जराय नहीं सकै है इसी प्रकार सुषुप्ति दशा तथा मूर्छादि अवस्थामें जिनके चैतन्य अंशके विना इन्द्रियसमूह अपना कार्य नहीं कर सक्ते और जाग्रत आदिमें द्रष्टा कहलानेवाला यह जीवभी जिन्है नहीं जान सकता उस परमात्मा प्रभुको नमस्कार है ॥ २४ ॥

हे प्रभो! तुह्मारे चरणारविंद युगल प्रधान प्रधान भक्त समूहके करकमल मुकुल द्वारा सदा उपलालित होते हैं हे परम! हे परमेष्ठिन्! तुह्मारे अर्थ नमस्कार होंय, भगवान् महापुरुष महानुभाव महाविभूतिपतिके अर्थ नमस्कार होय ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे प्रभो! प्रसन्न भक्तको या विद्याके कहिकर अंगिरासहित नारद अपने धामकों जातेभए ॥ २६ ॥ नारदजीकी कही विद्याको जलपान कर सावधान होय चित्रकेतु सातदिनपर्यंत धारण करतेभए ॥२७॥ हे नृप! तापाछै सप्तरात्रके अंतमें वा विद्याके धारणकरनेसें राजा चित्रकेतु विद्याधरोंके निष्कंटक राज्यको प्राप्त होतो भयो ॥ २८ ॥ तब कुछेक दिनोंसे विद्यासे जब मनकीसी गति होगई, तब देवनके देव शेषजीके चरणनके समीप जातो भयो ॥ २९ ॥ श्रीशेषजीको वर्णन करे हैं कमलनालसमान शुक्लवर्ण नीलांबर धारे, दमकते भए किरीट केयूर कडा कंकण धारे, प्रसन्न मुख लालनेत्र महासिद्धेश्वरोंकरके शोभित, महासमर्थ शेषजीकों देखतो भयो ॥ ३० ॥

ॐनमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सकलसात्वतपरिवृढनिकरकरकमलकुड्मलोपलालितचरणारविन्दयुगल परमपरमेष्ठिन्नमस्ते ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भक्तायैतां प्रपन्नाय विद्यामादिश्य नारदः ॥ ययावङ्गिरसा साकं धाम स्वायंभुवं प्रभो ॥ २६ ॥ चित्रकेतुस्तु विद्यां तां यथा नारदभाषिताम् ॥ धारयामास सप्ताहमब्भक्षः सुसमाहितः ॥२७॥ ततश्च सप्तरात्रान्ते विद्यया धार्यमाणया ॥ विद्याधराधिपत्यं स लेभेऽप्रतिहतं नृप ॥२८॥ ततः कतिपयाहोभिर्विद्ययेद्धमनोगतिः ॥ जगाम देवदेवस्य शेषस्य चरणान्तिकम् ॥ २९ ॥ मृणालगौरं शितिवाससं स्फुरत्किरीटकेयूरकटित्रकङ्कणम् ॥ प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनं तं ददर्श सिद्धेश्वरमण्डलैः प्रभुम् ॥ ३० ॥

---

१ शंका–जब सब राजा जिस लोकको गये हैं तब उन सब राजाओंकी स्त्रीभी उनके साथ उसी लोकको गईहैं, ऐसा हमने सब शास्त्रमेंसे सुना है, परन्तु चित्रकेतु तो विद्याधरोंका राजा हुआ तब उसकी स्त्री किस लोकको गई ॥

उत्तर–जैसे सबके देहकी छाया देहके संगको नहीं छोड़ती ऐसेही पतिव्रता स्त्री अपने पतिके संगको नहीं छोडती जहां पति जाताहै उसी स्थानको स्त्रीभी जाती है इस विचारसे चित्रकेतु विद्याधरोंका राजा हुवा तो वह विद्याधरोंकी रानी हुई, ग्रन्थ बहुत बड़ा होजायगा इसलिये व्यासजीने रानियोंकी कथा वर्णन नहीं करी, विचार लिया कि पंडित लोग आप जान जायगे ॥

तिनके दर्शन करनेसे सब पाप नाशभए, स्वच्छ निर्मल अंतःकरण भयो, अत्यंतभक्ति प्रणयसे नेत्रोंसे अश्रुपात होने लगा रोम रोममें प्रसन्नता हुई निकट जाकर आदिपुरुष श्रीसंकर्षणजीकों नमस्कार करतो भयो॥३१॥ सो विद्याधर उत्तमश्लोक शेषजीके चरणकमलके धरवेकें स्थानको वारंवार दर्शन कर प्रेमके अश्रुपातकी धारको वारंवार छोडतो भयो प्रेमकेमारे सब अक्षरमात्रको मुखसे निकसनो बंधहोगयो, सो बहुत देरतक दर्शन करते करते नहीं होतो, न कुछ कहिवेकी सामर्थ्य भई ॥ ३२ ॥ ताके उपरांत बुद्धिसें मनको सावधानकर जब कुछ बोलने योग्य भयो, तब बाह्यकी वर्त्तवेवारी सब इंद्रीनकों जीतकर नारद पंचरात्र अथवा भक्तिशास्त्रमें जिनकी मूर्तिका वर्णन है उन जगद्गुरु भगवानके प्रति राजा इस प्रकार स्तुति करने लगा ॥ ३३ ॥

तद्दर्शनध्वस्तसमस्तकिल्बिषः स्वच्छामलान्तःकरणोऽभ्ययान्मुनिः ॥ प्रवृद्धभक्त्या प्रणयाश्रुलोचनाः प्रहृष्टरोमाऽनमदादिपूरुषम् ॥३१॥ स उत्तमश्लोकपदाब्जविष्टरं प्रेमाश्रुलेशैरुपमेहयन्मुहुः ॥ प्रेमोपरुद्धाखिलवर्णनिर्गमो नैवाशकत्तं प्रसमीडितुं चिरम् ॥ ३२ ॥ ततः समाधाय मनो मनीषया बभाष एतत्प्रतिलब्धवागसौ ॥ नियम्य सर्वेन्द्रियबाह्यवर्तनं जगद्गुरुं सात्वतशास्त्रविग्रहम् ॥ ३३ ॥ चित्रकेतुरुवाच ॥ अजित जितः सममतिभिर्भवाञ्जितात्मभिर्भवता ॥ विजितास्तेऽपि च भजतामकामात्मनां य आत्मदोऽतिकरुणः ॥ ३४ ॥ तव विभवः खलु भगवञ्जगदुदयस्थितिलयादीनि ॥ विश्वसृजस्तेंऽशांशास्तत्र मृषा स्पर्धन्ति पृथगभिमत्या ॥ ३५ ॥ परमाणुपरममहतोस्त्वमाद्यन्तान्तरवर्ती त्रयविधुरः ॥ आदावन्तेऽपि च सत्त्वानां यद्ध्रुवं तदेवान्तरालेऽपि ॥ ३६ ॥

चित्रकेतु बोले कि हे अजित ! समान बुद्धिवारे साधु आत्माके जीतवेवारे आपकों जीते हैं, जो निष्कामसे आपको भजवेवारे हैं, उनको आपने विजय करे हैं सबके आत्मदाता आप अतिदयालु हैं ॥ ३४ ॥ हे भगवन् ! जगतकी उत्पत्ति पालन नाश इत्यादिक तुह्मारो वैभव हैं, ये विश्वके रचवेवारे मिथ्या अभिमान करकै स्पर्धा करैं हैं ये सब आपके अंश हैं ॥ ३५ ॥ परमाणु रूप और सबसे बडे आदि अंत मध्यमें रहनेहारे आपही हो आप आदि अंत मध्य रहित हो जो यथार्थ तत्व कार्यके आदिमें होता है वही मध्यमें है और अंतमेंभी होगा वही अविनाशी तत्व है ॥ ३६ ॥

और येभी निश्चय है कि पृथिवी आदि सप्त आवरणसे दशगुणो उत्तरोत्तर ये अंडकोश परिवेष्टित है, जहां कोटानकोट ब्रह्मांडों करकै अनंत ब्रह्मांड जिनके मूंडपर एक सूक्ष्म अणुकी समान मालूम पडें है ॥ ३७ ॥ विषयोंकी तृष्णावारे नराकार पशु इंद्रादि विभूतीकी उपासना करै है परंतु आपकी जो कि सबके कारण रूप हो उपासना नहीं करते राजाके नाश हौनेसै जैसे उसके सेवकौंके सुख नष्ट हो जाते हैं ऐसेही उनके सुख देवताओंके न रहने पर नष्ट हो जाते हैं ॥ ३८ ॥ हे विभु परमेश्वर ! जिनके चित्त काम वासनामें आसक्त हैं वह प्राणी यदि आपमें अपनी २ कामनाकी रचना करैं अर्थात् आपकी सेवामें प्रीति करै तौ भुने बीजकी समान फिर उनके कोई कामना उत्पन्न न हो इस कारण फिर देहान्तर उत्पात्तिका प्रभाव हो सक्ता है क्यौंकि जीवके गुणगण हैं उनसैही सुख दुःखादि द्वंद्वोंके समूह उत्पन्न होते हैं आप निर्गुण हैं आपकी पूजा कामना सहित करनेसै-

क्षित्यादिभिरेष किलावृतः सप्तभिर्दशगुणोत्तरैराण्डकोशः ॥ यत्र पतत्यणुकल्पः सहाण्डकोटिकोटिभिस्तदनन्तः ॥
॥३७॥विषयतृषो नरपशवो य उपासते विभूतीर्न परं त्वाम्॥ तेषामाशिष ईश तदनु विनश्यन्ति यथा राजकुलम्॥३८॥
कामधियस्त्वयि रचिता न परम रोहन्ति यथा करम्भबीजानि ॥ ज्ञानात्मन्यगुणमये गुणगणतोऽस्य द्वन्द्वजालानि
॥३९॥जितमजित तदा भवता यदाह भागवतं धर्ममनवद्यम् ॥ निष्किञ्चना ये मुनय आत्मारामा यमुपासतेऽपवर्गाय
॥४०॥विषममतिर्न यत्र नृणां त्वमहमिति मम तवेति च यदन्यत्र॥विषमधिया रचितो यः स ह्यविशुद्धः क्षयिष्णुरधर्म-
बहुलः ॥४१॥ कः क्षेमो निजपरयोः कियानर्थः स्वपरद्रुहा धर्मेण॥स्वद्रोहात्तव कोपः परसंपीडया च तथाऽधर्मः॥४२ ॥

भी धीरे २ निर्गुण हो जाता है ॥ ३९ ॥ हे अजित ! जा समय आपने अनिंद्य भागवत धर्म कह्यो वा समयही सबसै उत्कृष्टता उस धर्मकी हुई आपभी सर्व श्रेष्ठमें वर्तमान है निष्किंचन आत्मारामलोग आपकी उपासना मोक्षके अर्थ करै हैं ॥ ४० ॥ हे प्रभो ! और काम्य धर्ममें जिस प्रकार तुम हम तुम्हारा हमारा इस भांतिकी विषय बुद्धि है भागवत धर्ममें ऐसी नहीं यद्यपि काम्य धर्मभी वेदोक्त हैं तोभी विषय बुद्धिसै शत्रु मरणादि कामनामें जो विधान है राग द्वेषकी मूलकता हौनेसै वह अशुद्ध है उसका फल नाशमान है इस कारण इन धर्मोंका क्षय हो जाता है और हिंसादिककी अधिकता हौनेसै अधर्म मूलक है ॥ ४१ ॥ अपने परायेके द्रोह करवेवारे इन धर्मौंसे कहा अर्थ सिद्ध होय है, अपनो परायो

कहा कुशल होय है, कछु न होय है, क्योंकि इसके अनुसार अपने कायाके अत्यंत क्लेश देवेसें आत्मारूप आप परमात्माका क्रोध होता है पराएको पीडा देनोही अधर्म है " सो गीतामें है कि–कर्षयंतः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ॥ मां चैवांतःशरीरस्थं तान् विद्ध्यासुरनिश्चयान् " ॥ ४२ ॥ आपका विचारभी परमार्थकों नहीं त्यागे है जिस विचारसै आपने भागवतोंको धर्म कह्यो है, स्थावर जंगम सबमें समान बुद्धिवारे आर्यलोग जिस भागवत धर्मकी उपासना करै हैं ॥ ४३ ॥ हे भगवन् ! तुह्मारे दर्शनसे मनुष्यनके सब पाप क्षय होंय है ये बात विचित्र नहीं है जिनके एकवार नाम लेनेसे संसारसे महानीच जातिभी मुक्त हो जाय है ॥ ४४ ॥ अब हे भगवन् ! आज आपके दर्शनमात्र करनेसे हमारे

न व्यभिचरति तवेक्षा यया ह्यभिहितो भागवतो धर्मः ॥ स्थिरचरसत्वकदम्बेष्वपृथग्धियो यमुपासते त्वार्याः ॥ ४३ ॥ न हि भगवन्नघटितमिदं त्वद्दर्शनान्नृणामखिलपापक्षयः ॥ यन्नामसकृच्छ्रवणात्पुल्कसकोऽपि विमुच्यते संसारात् ॥ ४४ ॥ अथ भगवन्वयमधुना त्वदवलोकपरिमृष्टाशयमलाः ॥ सुरऋषिणा यदुदितं तावकेन कथमन्यथा भवति ॥ ४५ ॥ विदितमनन्त समस्तं तव जगदात्मनो जनैरिहाचरितम् ॥ विज्ञाप्यं परमगुरोः कियदिव सवितुरिव खद्योतैः ॥ ४६ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते सकलजगत्स्थितिलयोदयेशाय ॥ दुरवसितात्मगतये कुयोगिनां भिदा परमहंसाय ॥ ४७ ॥ यं वै श्वसन्तमनु विश्वसृजः श्वसन्ति यं चेकितानमनुचित्तय उच्चकन्ति ॥ भूमण्डलं सर्षपायति यस्य मूर्ध्नि तस्मै नमो भगवतेऽस्तु सहस्रमूर्ध्ने ॥ ४८ ॥

हृदयके सब मल नाश हो गए, आपके भक्त श्रीनारदऋषिने जो कही सो अन्यथा नहीं होय है ॥ ४५ ॥ हे अनंत महाराज ! यासंसारमें जो जीव करे है सो समस्तजगत्के आत्मारूप आपकों सब विदित है, जैसे सूर्यके निकट पटवीजनेके प्रकाशकी आवश्यकता नहीं ऐसे आपके निकट जो कि परम गुरु हो हमें कुछभी विज्ञापनकी आवश्यकता नही ॥ ४६ ॥ सब जगत्के उत्पत्ति पालन नाशकर्ता कुत्सितयोगियोंकों भेदभावसे अलक्षित गति परमहंसोंकी गति भगवान् संकर्षणजीके अर्थ नमस्कार होय ॥ ४७ ॥ जिन शेषजीके श्वास लेनेमें सब

विश्वके रचवेवारे श्वास लेहैं, जिनके देखवेसे सब ज्ञानेन्द्रियादिक स्वारूढ होयकर देखती हैं हे सहस्रमस्तकवारे भगवान्! तुह्मै नमस्कार है, जाके मूडपर भूमंडल सर्षोंके समान मालूम पडै है ॥ ४८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! जब इस प्रकार चित्रकेतुने स्तुति कही तो अनंत भगवान् उस विद्याधरनके अधिपति चित्रकेतुसे बोले ॥ ४९ ॥ श्रीसंकर्षण भगवान् बोले कि हे राजन्! जो नारद अंगिराने मेरी आज्ञा तुमसें कही वा विद्यासे मेरे दर्शनसे तुम अब सिद्धपुरुष होगए ॥ ५० ॥ हमहीं सब जीवरूप है, जीवमात्रके अंतरात्मा है, सब जीव आप हमारी भावना करै है, वेद और परब्रह्म ये दोनों हमारेही नित्य स्वरूपँ है ॥ ५१ ॥ सब लोकमें हम विस्तृत है, सब लोक हमारेमें विस्तृत हैं, दोनोंमें व्यापकरूप हम हैं, ये दोनों हमनेही करे है ॥ ५२ ॥ जैसे सोयो भयो पुरुष सब विश्वकों अपनी आत्मामें देखै है, आत्मा एक देशमें स्थित है, स्वप्नमें अनेक प्रकार प्रतीत होयहै ॥ ५३ ॥ ऐसेही जागरणआदिक वृत्तियें जीवमें स्थित हैं आत्मामें नहीं, मायामात्र जानकर वाके द्रष्टाको परमेश्वरमें स्मरण करै ॥ ५४ ॥ सोया हुआ प्राणी जिस रूपसें उस समयमें अपने अज्ञानको और निर्गुण सुखको जानैहैं वह ब्रह्म आत्मामेंही हूं यह तुम जानो॥५५॥ यदि कहो कि निद्रा अवस्थामें साक्षी जो वस्तु देखैगा वह साक्षी उसको जाग्रत अवस्थामें किस प्रकार स्मरण करैगा एकका देखा हुआ कभी दूसरा स्मरण नहीं कर सकताहै (उत्तर) निद्रा और जागरण इन दोनों अवस्थाओंका खोज करनेसे निद्रा और जागरणके प्रकाशकत्व रूपमें जो कुछ अन्वि-

श्रीशुक उवाच ॥ संतुस्तो भगवानेवमनन्तस्तमभाषत ॥ विद्याधरपतिं प्रीतश्चित्रकेतुं कुरूद्वह ॥ ४९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यन्नारदाङ्गिरोभ्यां ते व्याहृतं मेऽनुशासनम् ॥ संसिद्धोऽसि तया राजन्विद्यया दर्शनाच्च मे ॥ ५० ॥ अहं वै सर्वभूतानि भूतात्मा भूतभावनः ॥ शब्दब्रह्म परं ब्रह्म ममोभे शाश्वती तनू ॥ ५१ ॥ लोके विततमात्मानं लोकं चात्मनि संततम् ॥ उभयं च मया व्याप्तं मयि चैवोभयं कृतम् ॥ ५२ ॥ तथा सुषुप्तः पुरुषो विश्वं पश्यति चात्मनि ॥ आत्मानमेकदेशस्थं मन्यते स्वप्न उत्थितः ॥ ५३ ॥ एवं जागरणादीनि जीवस्थानानि चात्मनः ॥ मायामात्राणि विज्ञाय तद्द्रष्टारं परं स्मरेत् ॥ ५४ ॥ येन प्रसुप्तः पुरुषः स्वापं वेदात्मनस्तदा ॥ सुखं च निर्गुणं ब्रह्म तमात्मानमवेहि माम् ॥ ५५ ॥ उभयं स्मरतः पुंसः प्रस्वापप्रतिबोधयोः ॥ अन्वेति व्यतिरिच्येत यज्ज्ञानं ब्रह्म तत्परम् ॥ ५६ ॥

त हो और एक दूसरेके अपायतसेभी अपाय न होनेपर कुछ इन दोनोसे अलग है उसी ज्ञानके प्रभावसे ऐसा स्मरण हुआ करता वह ज्ञान नहीं परब्रह्म है इस कारण वाल्यावस्थामें दृष्टि विषय जिस प्रकार यौवनमें दृष्टि गोचर होताहै वैसाही जागनेमें दूसरी अवस्थाके होनेपरभी निद्रा और आनन्दका स्मरणकर कर सक्ता है जो कुछभी हो आशय यही है कि ब्रह्मकोही आत्मा जान्ना ॥ ५६ ॥ जिस कारणसे प्राणी मेरे ब्रह्मरूपको भूल जाताहै तव वह अपने स्वरूपसे पृथक् होनेसे वारंवार जन्म मरणको प्राप्त होताहै ॥ ५७ ॥ या संसारमें जो मनुष्यनकी योनिको प्राप्त होय परमात्माकों जो न जानै है, वाकों कभी सुख नहीं प्राप्त होयहै ये ज्ञान विज्ञान मनुष्ययोनिमें होय है औरमें नहीं ॥ ५८ ॥ प्रवृत्ति मार्गमें क्लेश और

यदेतद्विस्मृतं पुंसो मद्भावं भिन्नमात्मनः ॥ ततः संसार एतस्य देहाद्देहो मृतेर्मृतिः ॥ ५७ ॥ लब्ध्वेह मानुषीं योनिं ज्ञानविज्ञानसंभवाम् ॥ आत्मानं यो न बुध्येत न क्वचिच्छममाप्नुयात् ॥ ५८ ॥ स्मृत्वेहायां परिक्लेशं ततः फलविपर्ययम् ॥ अभयं चाप्यनीहायां संकल्पाद्विरमेत्कविः ॥ ५९ ॥ सुखाय दुःखमोक्षाय कुर्वाते दम्पती क्रियाः॥ततो निवृत्तिरप्राप्तिर्दुःखस्य च सुखस्य च ॥६०॥ एवं विपर्ययं बुद्ध्वा नृणां विज्ञाभिमानिनाम् ॥ आत्मनश्च गतिं सूक्ष्मां स्थानत्रयविलक्षणाम् ॥ ६१ ॥ दृष्टश्रुताभिर्मात्राभिर्निर्मुक्तः स्वेन तेजसा ॥ ज्ञानविज्ञानसंतुष्टो मद्भक्तः पुरुषो भवेत् ॥ ६२ ॥ एतावानेव मनुजैर्योगनैपुण्यबुद्धिभिः ॥ स्वार्थः सर्वात्मना ज्ञेयो यत्परात्मैकदर्शनम् ॥ ६३ ॥ त्वमेतच्छ्रद्धया राजन्नप्रमत्तो वचो मम ॥ ज्ञानविज्ञानसंपन्नो धारयन्नाशु सिध्यसि॥ ६४ ॥

फलकी विपरीतताभी होतीहै और निवृत्तिमें अभय तथा मोक्ष होताहै ऐसा स्मरण रख ज्ञानीको संकल्पसै निवृत्त होना चाहिये ॥ ५९ ॥ सुखके अर्थ मोक्षके लिये दुःख नाशनेको स्त्रीपुरुष अनेक क्रिया करै हैं, परंतु दुःखसुखकी निवृत्ति नहीं होय है ॥ ६० ॥ जिनको ज्ञानको अभिमान है वे सुखदुःखमें वहुत भूलते हैं और आत्माके सूक्ष्म स्वरूपको जो तीनों अवस्थाओंसै विलक्षण है ऐसे जानकर ॥ ६१ ॥ अपने ज्ञानके वलसै इस लोक और परलोककी कामनाओंको त्यागकर ज्ञान विज्ञानमें संतुष्ट होयकर पुरुषको मेरी भक्ति करनी उचित है ॥ ६२ ॥ जो योगमें निपुण मनुष्य है उनको यही सर्वात्माकरकै स्वार्थ है कि परमेश्वरको जीवात्माको एकभावसे दर्शन करनो ॥ ६३ ॥ हे राजन् ! सावधान हो

यकर ये मेरो वचन ज्ञानविज्ञानमें निपुण होयकर धारण करो, यासे शीघ्र शुद्ध होजाओगे ॥ ६४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि जगत्के गुरु श्रीशेषजी चित्रकेतुकों ऐसै ज्ञान देकर वाके देखते देखते विश्वात्मा श्रीहरि संकर्षण भगवान् अंतर्द्धान होगए ॥ ६५ ॥ इति श्रीमद्भा० भा०ष० चित्रकेतुकृतसंकर्षणस्तोत्रवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि जा दिशामें अनंतभगवान् अंतर्द्धान भए वा दिशाको नमस्कार कर विद्याधरनको अतिश्रेष्ठ आधिपत्य करता विद्याधर चित्रकेतु गगनमें विचरतोभयो ॥ १ ॥ वह महायोगी चित्रकेतु इन्द्रियोंके बलसै पूर्ण हो लक्षवर्ष पर्यन्त मुनि और सिद्ध चारणोंसै स्तुतिको प्राप्त होता रहा ॥ २ ॥ अनेक संकल्प सिद्ध कुलाचलपर्वतकी गुफामें श्रीहरिईश्वरके गुण गावतो भयो विद्याधर स्त्रीनके साथ रमण करतो भयो ॥ ३ ॥ श्रीविष्णुके दियेभए प्रकाशक विमानपर बैठकर एकसमय सिद्धचारणोंके मध्यमें बैठेभए शिवशंकरको देखतो भयो ॥ ४ ॥ मुनीनकी सभाके बीच शिवकी गोदीमें बैठी और बाहुसे आलिंगन करी भगवतीको देख उनके निकट ही पार्वतीके सुन्ते ऊंचसै हंसकर बोलो ॥ ५ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ आश्वास्य भगवानित्थं चित्रकेतुं जगद्गुरुः ॥ पश्यतस्तस्य विश्वात्मा ततश्चान्तर्दधे हरिः ॥ ६५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यतश्चान्तर्हितोनन्तस्तस्यै कृत्वा दिशे नमः ॥ विद्याधरश्चित्रकेतुश्चचार गगनेचरः ॥ १ ॥ स लक्षं वर्षलक्षाणामव्याहतबलेन्द्रियः ॥ स्तूयमानो महायोगी मुनिभिः सिद्धचारणैः ॥ २ ॥ कुलाचलेन्द्रद्रोणीषु नानासंकल्पसिद्धिषु ॥ रेमे विद्याधरस्त्रीभिर्गापयन्हरिमीश्वरम् ॥ ३ ॥ एकदा स विमानेन विष्णुदत्तेन भास्वता ॥ गिरिशं ददृशे गच्छन्परीतं सिद्धचारणैः ॥ ४ ॥ आलिङ्ग्याङ्कीकृतां देवीं बाहुना मुनिसंसदि ॥ उवाच देव्याः शृण्वन्त्या जहासोच्चैस्तदन्तिके ॥ ५ ॥

शंका–राजा चित्रकेतु अनेक जन्मका ज्ञानी था, और सब देवताओंका पूजन करनेवाला था नारदजीका चेलाभी था, शेषजीकी कृपा चित्रकेतुके ऊपर बहुत थी, सो सर्व सुलक्षण युक्त होकर राजा चित्रकेतुके जगत्के माता पिता शिव पार्वतीको देखकर क्यों हँसा ?

उत्तर–जैसे राजा बलिने यज्ञ करके इन्द्रका राज्य छुड़ा लिया और आप इन्द्र होगया, तब जिस पुण्यके प्रभावसे इन्द्रासन पाया था वह पुण्य नष्ट नहीं हुवा था थोड़ा रहगया था इसलिये भगवान्ने बामन रूप धरके इन्द्रको राज्य दिया, वैसाही कर्म चित्रकेतुनेभी किया विद्याधरोंके राज्यका पुण्य नष्ट नहीं हुवा था परन्तु चित्रकेतुने मंत्र जपकर विद्याधरोंका राजा हुवा इसीलिये भगवान् अपनी मायाको आज्ञा देकर मायासे चित्रकेतुको मोहित करते महादेवजीसे द्रोह कराके राजा चित्रकेतुको नष्ट किया ॥

चित्रकेतु बोलो कि ये लोकगुरु साक्षात् शरीरधारीनके धर्मके वक्ता सबमें मुख्य होयकर स्त्रीको गोदमें लेकर सभामें बैठे हे ॥ ६ ॥ जटाधारी
तीव्रतप करवेवारे ब्रह्मवादी सभाके पति गोदमें स्त्रीकों लेकर बैठे है जैसे संसारी जीव लज्जा त्याग बैठे तैसेही यह है ॥ ७ ॥ बहुधाकरकै संसारी
जीवभी स्त्रीको एकांतमें धारै हैं, ये महाव्रतधारी होयकै सभामें स्त्रीकों लिये बैठे हैं ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे नृप ! अगाधबुद्धिवारे भगवान
शिवजी सभाके बीच उसके वचन सुन हंसकर चुप होरहे और उनके अनुवर्तीभी चुप्प रहे ॥ ९ ॥ उनके पराक्रमको न जान चित्रकेतु बहुत

चित्रकेतुरुवाच ॥ एष लोकगुरुः साक्षाद्धर्मवक्ता शरीरिणाम् ॥ आस्ते मुख्यः सभायां वै मिथुनीभूय भार्यया ॥ ६ ॥
जटाधरस्तीव्रतपा ब्रह्मवादी सभापतिः ॥ अङ्गीकृत्य स्त्रियं चास्ते गतह्रीः प्राकृतो यथा ॥ ७ ॥ प्रायशः प्राकृताश्चापि
स्त्रियं रहसि बिभ्रति ॥ अयं महाव्रतधरो बिभर्ति सदसि स्त्रियम् ॥ ८ ॥ भगवानपि तच्छ्रुत्वा प्रहस्यागाधधीर्नृप ॥
तूष्णीं बभूव सदसि सभ्याश्च तदनुव्रताः ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यतद्वीर्यविदुषि ब्रुवाणे बह्वशोभनम् ॥ रुषाऽह
देवी धृष्टाय निर्जितात्माभिमानिने ॥ १० ॥ पार्वत्युवाच ॥ अयं किमधुना लोके शास्ता दण्डधरः प्रभुः ॥ अस्मद्विधानां
दुष्टानां निर्लज्जानां च विप्रकृत् ॥ ११ ॥ न वेद धर्मं किल पद्मयोनिर्न ब्रह्मपुत्रा न तु नारदाद्याः ॥ न वै कुमारः
कपिलो मनुश्च ये नो निषेधन्त्यतिवर्तिनं हरम् ॥ १२ ॥ एषामनुध्येयपदाब्जयुग्मं जगद्गुरुं मङ्गलमङ्गलं स्वयम् ॥
यः क्षत्रबन्धुः परिभूय सूरीन् प्रशास्ति धृष्टस्तदयं हि दण्डयः ॥ १३ ॥

अमंगल शब्द बोलौ, तब महाधृष्टात्मा आत्मा जीतनेका अभिमान करनेवाले चित्रकेतु विद्याधरसे क्रोधकर पार्वतीजी बोली ॥ १० ॥
पार्वती बोली कि आज लोकमें दंडधारी समर्थ, हमसरीखे, दुष्ट, निर्लज्जोंको दंड दैनेहारा यही है ॥ ११ ॥ ब्रह्मा ब्रह्माके पुत्र भृगु नारदादिक सनत्कुमार
कपिल मनु क्या यह धर्मके तत्वको यथार्थ नहीं जान्ते जो शास्त्रविरुद्ध कार्य करनेवाले शंकरको निषेध नहीं करते ॥ १२ ॥ इन सबके
ध्यानयोग्य शिवके चरणकमल हैं जगद्गुरु मंगलके मंगल शिवको यह क्षत्रीनमें अधम शिक्षा करै हैं बडो धूर्त है, याते ये अब दंड देवेयोग्य है ॥ १३ ॥

साधुओंसे सेवित श्रीवैकुंठभगवानके चरणकमलके पास जानेको ये योग्य नहीं है याकी बुद्धि अच्छी नहीं है, गर्वी है ॥ १४ ॥ हे दुर्मते! पुत्र! याते आसुरीयोनिकों प्राप्त होओ, जो फिर तुम बडेनको ऐसे अपमान न करोगे ॥ १५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे भारत! चित्रकेतुको जव ऐसे शाप होगयो, तब विमानसे उतरके नम्रमस्तकरों पार्वतीजीकों प्रसन्न करतोभयो ॥ १६ ॥ चित्रकेतु बोले कि हे अंबिके! दोनो हाथसे मैनें आपको शाप मस्तकपर लीनो. मनुष्यको जो कुछ देवता कहैं है, सब प्रारब्धानुसारही होता है ॥ १७ ॥ या संसारचक्रमें घूमतोभयो ये जीव अज्ञानसे

नायमर्हति वैकुण्ठपादमूलोपसर्पणम् ॥ संभावितमतिः स्तब्धः साधुभिः पर्युपासितम् ॥ १४ ॥ अतः पापीयसीं योनिमासुरीं याहि दुर्मते ॥ यथेह भूयो महतां न कर्ता पुत्र किल्बिषम् ॥ १५ श्रीशुक उवाच ॥ एवं शप्तश्चित्रकेतुर्विमानादवरुह्य सः ॥ प्रसादयामास सतीं मूर्ध्ना नम्रेण भारत ॥ १६ ॥ चित्रकेतुरुवाच ॥ प्रतिगृह्णामि ते शापमात्मनोऽञ्जलिनाऽम्बिके ॥ देवैर्मर्त्याय यत्प्रोक्तं पूर्वदिष्टं हि तस्य तत् ॥१७॥ संसारचक्र एतस्मिञ्जन्तुरज्ञानमोहितः ॥ भ्राम्यन्सुखं च दुःखं च भुङ्क्ते सर्वत्र सर्वदा ॥ १८॥ नैवात्मा न परश्चापि कर्ता स्यात्सुखदुःखयोः॥ कर्तारं मन्यते प्राज्ञ आत्मानं परमेव च ॥१९॥ गुणप्रवाह एतस्मिन्कः शापः कोन्वनुग्रहः॥कः स्वर्गो नरकः को वा किं सुखं दुःखमेव वा ॥ २० ॥एकः सृजति भूतानि भगवानात्ममायया॥एषां बन्धं च मोक्षं च सुखं दुःखं च निष्कलः॥२१॥ न तस्य कश्चिद्दयितः प्रतीपो न ज्ञातिबन्धुर्न परो न च स्वः॥समस्य सर्वत्र निरञ्जनस्य सुखेन रागः कुत एव रोषः ॥२२॥

मोहित हो घूमैं है सदा सुख दुःख सब योनियोंमें कर्मके अनुसार भाग्यसे विवश होयकै भोगै है ॥ १८ ॥ सुखदुःखका कर्ता अपना पराया कोई नहीं है, जो मूर्ख हैं सो आत्माको वा दूसरेको कर्ता मानै हैं ॥ १९ ॥ या संसारमें न तो कुछ हम शापकों गिनै हैं, न कृपाको गिनै है, स्वर्ग नरक सुख दुःख कुछभी नहीं है ॥ २० ॥ भगवान् अपनी मायाकरके इकेले सब जीवनकूं रचै है, इनको बंधमोक्ष सुखदुःखके ज्ञान निष्कलमष ईश्वर है ॥२१॥ जो समानभावमैं वर्तै है, ऐसे निरंजन पुरुषको न कोई प्यारो है न कोई शत्रु है, जाति बंधु अपनाया पराया कोई नहीं है न सुखसे राग होय न

तथाऽपि तच्छक्तिविसर्ग एषां सुखाय दुःखाय हिताहिताय ॥ बन्धाय मोक्षाय च मृत्युजन्मनोः शरीरिणां संसृतयेऽवकल्पते ॥२३॥ अथ प्रसादये न त्वां शापमोक्षाय भामिनि॥ यन्मन्यसे असाधूक्तं मम तत्क्षम्यतां सति ॥२४॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति प्रसाद्य गिरिशौ चित्रकेतुररिन्दम ॥ जगाम स्वविमानेन पश्यतोः स्मयतोस्तयोः ॥२५॥ ततस्तु भगवान्रुद्रो रुद्राणीमिदमब्रवीत् ॥ देवर्षिदैत्यसिद्धानां पार्षदानां च शृण्वताम् ॥ २६ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ दृष्टवत्यसि सुश्रोणि हरेरद्भुतकर्मणः ॥ माहात्म्यं भृत्यभृत्यानां निःस्पृहाणां महात्मनाम्॥२७॥नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन विभ्यति ॥ स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः ॥ २८ ॥ देहिनां देहसंयोगाद्द्वन्द्वानीश्वरलीलया ॥ सुखं दुःखं स्मृतिर्जन्म शापोनुग्रह एव च ॥ २९ ॥ अविवेककृतः पुंसो ह्यर्थभेद इवात्मनि ॥ गुणदोषविकल्पश्च भिदेव स्रजिवत्कृतः ॥ ३० ॥ वासुदेवे भगवति भक्तिमुद्वहतां नृणाम् ॥ ज्ञानवैराग्यवीर्याणां नेह कश्चिद्व्यपाश्रयः ॥ ३१ ॥

वाकों रोष होय है ॥ २२ ॥ यद्यपि ऐसे है तथापि तिनकी शक्तिकी रचनाको प्रकार इन सबके सुख दुःख हित अहित बंध मोक्ष मृत्यु जन्म शरीरिनके संसारलिये कल्पना करे हैं ॥ २३ ॥ हे भामिनि ! पार्वती ! शाप छुडायवेकों मै तुह्मै नहीं प्रसन्न करूं हूं; हे सति ! जो कुछ मेरेसे आपको असाधुपनकी बात निकसगई ताको क्षमा करो ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे शत्रुनाशक! चित्रकेतु ऐसे गिरीश और गिरिजाको प्रसन्नकर उन दोनोंके विस्मयपूर्वक देखते देखते अपने विमानपर बैठकर जातोभयो ॥ २५ ॥ तब भगवान् रुद्र देवर्षि, दैत्य, सिद्ध, पार्षद सबके सुनते पार्वतीसै बोले ॥ २६ ॥ श्रीरुद्र बोले कि हे सुश्रोणि ! अद्भुतकर्मा श्रीहरिके निस्पृहावारे महात्मा भगवद्दासनके दासनको महात्म्य देख्यो ॥ २७ ॥ स्वर्ग मोक्ष नरक इन सबकों बराबर मानवेवारे श्रीमन्नारायणके परायण भगवद्भक्त किसीसे नहीं डरैं हैं ॥ २८ ॥ देहधारीनकों देहके संयोगसे सुख दुःख ईश्वरकी लीलासे होंय हैं, सुख दुःख मृत्यु जन्म शाप कृपा ये सब ईश्वरेच्छानुकूल हैं ॥ २९ ॥ अज्ञानसे पुरुषके अर्थको भेद गुण दोष विकल्प आत्मामें होय है, जैसे सर्पकी भ्रांति मालामें होय है ॥ ३० ॥ वासुदेव भगवान्में भक्ति करवेवारे मनुष्यनको और ज्ञान वैराग्य पराक्रम राखवेवारोनको कोईके आश्रयकी इच्छा नहीं है ॥ ३१ ॥

नाहं विरिञ्चो न कुमारनारदौ न ब्रह्मपुत्रा मुनयः सुरेशाः ॥ विदाम यस्येहितमंशकांशका न तत्स्वरूपं पृथगीशमानिनः॥३२॥न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा॥ आत्मत्वात्सर्वभूतानां सर्वभूतप्रियो हरिः॥३३॥तस्य चायं महाभागश्चित्रकेतुः प्रियोऽनुगः॥सर्वत्र समदृक् शान्तो ह्यहं चैवाच्युतप्रियः॥३४॥तस्मान्न विस्मयः कार्यः पुरुषेषु महात्मसु॥महापुरुषभक्तेषु शान्तेषु समदर्शिषु॥३५॥श्रीशुक उवाच॥इति श्रुत्वा भगवतः शिवस्योमाभिभाषितम्॥ बभूव शान्तधी राजन्देवी विगतविस्मया ॥३६॥ इति भागवतो देव्याः प्रतिशप्तुमलंतमः॥ मूर्ध्ना संजगृहे शापमेतावत्साधुलक्षणम् ॥३७॥ जज्ञे त्वष्टुर्दक्षिणाग्नौ दानवीं योनिमाश्रितः॥ वृत्र इत्यभिविख्यातो ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ ३८ ॥

हम ब्रह्मा सनत्कुमार नारद ब्रह्माके पुत्र मुनि सब देवनके इश उनके अंशके अंशसे उत्पन्न हैं तोभी ईश्वरकी कहा करवेकी इच्छा है वाकूं न जाने है, अपनेकों पृथक् ईश्वरपन हमने मान राखो है ॥ ३२ ॥ इनको न कोई प्यारो न शत्रु है न अपनों परायो है सब जीवमात्रके व्यापक ईश्वर हैं, सब जीव श्रीहरिको प्यारो हैं ॥ ३३ ॥ तिन ईश्वरको महाभागवत चित्रकेतु प्यारो भगवद्दास हैं सब ठौर समान दृष्टि है, शांतस्वभाव श्रीअच्युतको प्यारो है ॥ ३४ ॥ तातै महापुरुषके भक्त शांत समदर्शी महात्मापुरुषनमें तुमको विस्मय करनो योग्य नहीं है भगवद्भक्त बडे महात्मा होयहैं ॥३५॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन्! भगवान् शिवजीकी वाणी सुनकै उमा बुद्धि शांत करती भई, सब विस्मय वाकें दूर भए " शिवजी ऐसे दयालु हैं कि एक शिवालयमें काऊने पांच हजारकी सोनेकी घंटा चढाई, सो एक चोरने देख शिवालयमें रातको घंटा उतारनेकी तजवीज करी, सो एक हाथ ऊंचो रह्यो तब चोर वा शिवकी पिंडीपर चढकर घंटा उतारने लगो, तब वरं ब्रूहि अवाज भई, चोर बोलो कौन हो तब सदाशिव बोले हम हैं, क्यों घंटा उतारै हैं, जा उत्तरमें थोरी दूरपर एक शिवको बट है, वाके नीचे वीस हज्जार गडे रुपा तूं निकास मैं प्रसन्न भयो जो कोई नैक पुष्पजल चढावै वाय सब कुछ दे हैं सो तूतो मोपर सबको सब चढ बैठो धन्य तोकूं है यासे भगवान् शिव बडें दयालु है " ॥ ३६ ॥ वो भागवत वा पार्वतीको पुनः शाप देवेकों समर्थ हो, परंतु वा शापको मृडसे ग्रहण कीनो यही साधुनको लक्षण है ॥ ३७ ॥ त्वष्टाकी दक्षिणकी अग्निमें वाने जन्म लीनो दानवकी योनिमें वृत्रासुर वाको नाम भयो, ज्ञान विज्ञानमें निपुण भयो, राजा चित्रकेतु पार्वतीके शापसे वृत्रासुर भए ॥ ३८ ॥

110

हमने तुमसे सब कथा कही जो तुमने हमसे पूछी कि वृत्रासुर असुर जातीकौ भगवानमें मन लगो याकें ये कारण हैं ॥ ३९ ॥ ये पुण्यदायक महात्मा चित्रकेतुकौं इतिहास और विष्णुके भक्तनको माहात्म्य सुननेसे सब बंधसें जीव मुक्त हो जाय है ॥ ४० ॥ श्रद्धासे वाणी जीत कर प्रात समय जो या इतिहासकौ पाठ करैं वो श्रीहरिको स्मरण कर परमगतिकों प्राप्त होय है ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां षष्ठस्कन्धे पार्वतीशापेन चित्रकेतोरसुरभाववर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि सविताकी पत्नी पृश्नि सावित्री व्याहृति त्रयी, अग्निहोत्र, पशु, सोम, चातुर्मास्य, महामख, इनकों उत्पन्न करती भई ॥ १ ॥ हे राजन् ! भगकी सिद्धि भार्या महिमा, विभु, प्रभु, आशिष पुत्र उत्पन्न करती

एतत्ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ वृत्रस्यासुरजातेश्च कारणं भगवन्मतेः ॥ ३९ ॥ इतिहासमिमं पुण्यं चित्रकेतोर्महात्मनः ॥॥ माहात्म्यं विष्णुभक्तानां श्रुत्वा बन्धाद्विमुच्यते ॥ ४० ॥ य एतत्प्रातरुत्थाय श्रद्धया वाग्यतः
पठेत् ॥ इतिहासं हरिं स्मृत्वा स याति परमां गतिम् ॥ ४१ ॥ इति श्रीभागवते षष्ठस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ पृश्निस्तु पत्नी सवितुः सावित्रीं व्याहृतीं त्रयीम् ॥ अग्निहोत्रं पशुं सोमं चातुर्मास्यं महामखान्॥ १ ॥
सिद्धिर्भगस्य भार्याङ्ग महिमानं विभुं प्रभुम् ॥ आशिषं च वरारोहां कन्यां प्रासूत सुव्रताम् ॥ २ ॥ धातुः कुहूः सिनीवाली राका चानुमतिस्तथा॥सायं दर्शमथ प्रातः पूर्णमासमनुक्रमात्॥अग्नीन्पुरीष्यानाधत्त क्रियायां समनन्तरः॥ ३ ॥
चर्षणी वरुणस्यासीद्यस्यां जातो भृगुः पुनः ॥ वाल्मीकिश्च महायोगी वल्मीकादभवात्किल ॥ ४ ॥ अगस्त्यश्च वासिष्ठश्च
मित्रावरुणयोर्ऋषी॥रेतः सिषिचतुः कुम्भ उर्वश्याः सन्निधौ द्रुतम्॥ ५ ॥रेवत्यां मित्र उत्सर्गमरिष्टं पिप्पलं व्यधात् ॥ ६ ॥

भई, वरारोहा सुव्रता कन्या उत्पन्न कीनी ॥ २ ॥ धाताकी कुहू सिनीवाली राका अनुमति क्रमसे सायं दर्श प्रात पूर्णमास ये चारों पुत्र चारौं जन्माती भई ॥ ३ ॥ अग्नी पुरीष्याको क्रियामें समनंतर उत्पन्न करते भए, चर्षणी वरुणकी स्त्री थी जामैं भृगुजी उत्पन्न भए ॥ ४ ॥ वेवईमैंसे महायोगी वाल्मीकजी जन्मते भए, यहभी वरुणके पुत्र कहाये अगस्त्य वशिष्ठकौ मित्रावरुणि ऋषी उर्वशीके समीप घडामें वीर्य डारके शीघ्रजन्माते भये ॥ ५ ॥ रेवतीमें मित्रके उत्सर्ग अरिष्ट पिप्पल तीन पुत्र हुए ॥ ६ ॥

पौलोमीमें इंद्र तीन पुत्र उत्पन्न करते भए, यह सुना है जिनके नाम जयंत, ऋषभ, मीढुष, हुए ॥ ७ ॥ उरुक्रम देवमायासे वामनजी भए, उनके कीर्तिपत्नीमें महाशय भयो, तिनके सौभगादिक उत्पन्न भए ॥ ८ ॥ श्रीवामनजी महाराजाके जो अदितिमें अवतार लेते भए उनके गुण कर्म पराक्रम आगे अष्टमस्कंधमें कहैंगे ॥ ९ ॥ अब कश्यपजीके पुत्र जो दैत्य हैं उन्हे तुह्मारे सामने कहे है जा दैत्यवंशमें भागवत श्रीमान प्रह्लाद बलिराजा होते भए ॥ १० ॥ दितिके दो हिस्सादार भए दैत्य दानव दोनौंको सबने वंदना कीनी हिरण्यकशिपु नामक भयो दूसरो हिरण्याक्ष भयो ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपुकी भार्या कयाधूनाम दानवी जंभकी बेटी ही सो चार पुत्र उत्पन्न करती भई ॥ १२ ॥ संह्लाद पहिले भए, अनुह्लाद ह्लाद प्रह्लाद तिनकी

पौलोम्यामिन्द्र आधत्त त्रीन्पुत्रानिति नः श्रुतम् ॥ जयन्तमृषभं तात तृतीयं मीढुषं प्रभुः ॥७॥ उरुक्रमस्य देवस्य मायावामनरूपिणः ॥ कीर्तिपत्न्यां बृहच्छ्लोकस्तस्यासन्सौभगादयः ॥ ८ ॥ तत्कर्मगुणवीर्याणि काश्यपस्य महात्मनः॥ पश्चाद्वक्ष्यामहेऽदित्यां यथैवावततार ह ॥९॥ अथ कश्यपदायादान्दैतेयान्कीर्तयामि ते ॥ यत्र भागवतः श्रीमान्प्रह्लादो बलिरेव च ॥ १० ॥ दितेर्द्वावेव दायादौ दैत्यदानववन्दितौ ॥ हिरण्यकशिपुर्नाम हिरण्याक्षश्च कीर्तितौ ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपोर्भार्या कयाधुर्नाम दानवी ॥ जम्भस्य तनया दत्ता सुषुवे चतुरः सुतान् ॥ १२ ॥ संह्लादं प्रागनुह्लादं ह्लादं प्रह्लादमेव च ॥ तत्स्वसा सिंहिका नाम राहुं विप्रचितोऽग्रहीत् ॥१३॥ शिरोऽहरद्यस्य हरिश्चक्रेण पिबतोऽमृतम् ॥ संह्लादस्य कृतिर्भार्याऽसूत पञ्चजनं ततः ॥ १४ ॥ ह्लादस्य धमनिर्भार्याऽसूत वातापिमिल्वलम् ॥ योऽगस्त्याय त्वतिथये पेचे वातापिमिल्वलम् ॥ १५ ॥

बहनको नाम सिंहिका हो, तिसमें विप्रचित्त भर्तासैं राहु भयो ॥ १३ ॥ अमृत पीतेसमय जाको शिर चक्रसै श्रीहरिने काट्यो, संह्लादकी कृति स्त्री पंचजनको जन्माती भई ॥ १४ ॥ ह्लादकी धमनीभार्या इल्वल वातापीको उत्पन्न करती भई, जिनके अतिथी होकर अगस्त्यजी इल्वल वातापीकों पचाय गये " श्रीवाल्मीकमें है कि ये इल्वल वातापी दोनों भैया ऋषि बनके बैठैं, एकजनो मार्गसे ऋषिनकों बुलाय लावै एक भैयाको मार रांध उन्है खवाय पाछै पुकारै भैया आवो सो सबके पेटमेंसें फटफटके वो निकस आवै, ऋषि मरजाय, उनके मांस ये खाते रहैं

एकसमय अगस्त्यजी आए, वा मार्गमें उनसेभी ऐसेई करो सो वेतो पचायगए दोनोंको मारो ऐसे अगस्त्यमुनि है तब यो श्लोक भयो “ अगस्त्यं कुभकर्णं च शनिं च वडवानलं ॥ आहारपरिपाकार्थं स्मरेद्भीमं च पंचमम् ॥ १ ॥ आतापी मारितो येन वातापी येन भक्षितः । समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु ॥ २ ॥ ” भोजनकरके ये श्लोक बोल पेटपर हाथ फेरे तो सब खायो पीयो पचजाय है ॥ १५ ॥ अनुन्हादकी सूर्म्या स्त्रीमें बाष्कल महिष उत्पन्न भए, विरोचनकी देवीनाम स्त्रीसे बलि भए ॥ १६ ॥ बलिसे अशनास्त्रीमें बाणासुर जामें बडे ऐसे पुत्रशत उत्पन्न भए, ताको प्रभाव महापुण्यरूप है सो पाछे कहैंगे ॥१७॥ बाणासुर शिवजीको आराधन कर उनके गणोंमें मुख्यताकों प्राप्त होतो भयो, जाके पास आजतक पुरके पालक

अनुह्रादस्य सूर्म्यायां बाष्कलौ महिषस्तथा ॥ विरोचनस्तु प्राह्लादिर्देव्यास्तस्याभवद्बलिः ॥ १६ ॥ बाणज्येष्ठं पुत्रशतमशनायां ततोऽभवत् ॥ तस्यानुभावः सुश्लोक्यः पश्चादेवाभिधास्यते ॥ १७ ॥ बाण आराध्य गिरिशं लेभे तद्गणमुख्यताम् ॥ यत्पार्श्वे भगवानास्ते ह्यद्यापि पुरपालकः ॥ १८ ॥ मरुतश्च दितेः पुत्राश्चत्वारिंशन्नवाधिकाः ॥ त आसन्नप्रजाः सर्वे नीता इन्द्रेण सात्मताम् ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ कथं त आसुरं भावमपोह्यौत्पत्तिकं गुरो ॥ इन्द्रेण प्रापिताः सात्म्यं किं तत्साधु कृतं हि तैः ॥ २० ॥ इमे श्रद्दधते ब्रह्मन्नृषयो हि मया सह ॥ परिज्ञानाय भगवंस्तन्नो व्याख्यातुमर्हसि ॥ २१ ॥ सूतउवाच ॥ तद्विष्णुरातस्य स बादरायणिर्वचो निशम्यादृतमल्पमर्थवत् ॥ समाजयन्संनिभृतेन चेतसा जगाद सत्रायण सर्वदर्शनः ॥ २२ ॥

शिवजी होतेभए ॥ १८ ॥ दितिके पुत्र मरुत उनंचास भए उनके संतान नहीं भए, वे सब इंद्रके साथ चलेगए ॥ १९ ॥ राजा बोले कि वे दितिके पुत्र मरुत अपने स्वाभाविक सुभावसें आसुरभावकों छोडकर कैसे इंद्रकी बराबरीकों पहुचै उन्होने कहा साधुपन कीनो हो॥२०॥ हे ब्रह्मन् ! ये सब ऋषियोंकरकै सहित हम सुनवेकी इच्छासे श्रद्धा करै है, हे भगवन् ! याके ज्ञानके लिये हमसे आप कहिवेकूं योग्य हो ॥ २१ ॥ सूतजी बोले कि हे शौनक ! राजा परीक्षितको आदरपूर्वक अर्थयुक्त वचन सुन शुकाचार्य सावधान चित्तसें वाको सत्कार करते सबके आनंददायक वचन बोले ॥ २२ ॥

M3

श्रीशुक उवाच ॥ हतपुत्रा दितिः शक्रपार्ष्णिग्राहेण विष्णुना ॥ मन्युना शोकदीप्तेन ज्वलन्ती पर्यचिन्तयत् ॥ २३ ॥ कदा नु भ्रातृहन्तारमिन्द्रियाराममुल्बणम् ॥ अक्लिन्नहृदयं पापं घातयित्वा शये सुखम् ॥ २४ ॥ कृमिविड्भस्मसंज्ञासीद्यस्येशाभिहितस्य च ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वार्थं किं वेद निरयो यतः ॥ २५ ॥ आशासानस्य तस्येदं ध्रुवमुन्नद्धचेतसः ॥ मदशोषक इन्द्रस्य भूयाद्येन सुतो हि मे ॥ २६ ॥ इति भावेन सा भर्तुराचचारासकृत्प्रियम् ॥ शुश्रूषयानुरागेण प्रश्रयेण दमेन च ॥ २७ ॥ भक्त्या परमया राजन्मनोज्ञैर्वल्गुभाषितैः ॥ मनो जग्राह भावज्ञा सुस्मितापाङ्गवीक्षणैः ॥ २८ ॥ एवं स्त्रिया जडीभूतो विद्वानपि विदग्धया ॥ बाढमित्याह विवशो न तच्चित्रं हि योषिति ॥ २९ ॥ विलोक्यैकान्तभूतानि भूतान्यादौ प्रजापतिः ॥ स्त्रियं चक्रे स्वदेहार्धं यया पुंसां मतिर्हृता ॥ ३० ॥ एवं शुश्रूषितस्तात भगवान्कश्यपः स्त्रिया ॥ प्रहस्य परमप्रीतो दितिमाहाभिनन्द्य च ॥ ३१ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि इंद्रके पक्षमै होकर विष्णुने जब दितिके पुत्रोंका वध किया तब शोकसे बढे हुए क्रोधके कारण जलती हुई दिति विचार करने लगी ॥ २३ ॥ भाईके मारवेवारे इंद्रियोंमें रमण करवेवारे उल्बण निर्दयी हृदयवारे घोर पापी इंद्रको मरवायकर मैं कब सुखसे सोऊंगी ॥ २४ ॥ कृमि विष्ठा भस्म ये जाकी संज्ञा है ऐसे या देहकों पाय भूतसे द्रोह करवेवारो स्वार्थकों नहीं प्रात होय है, यासे नरक होय है॥२५॥ आशा रखवेवारे उन्नद्ध चित्त मदशोषक इंद्रके मारवेवारे सुत मेरे हो ये मनमें है ॥ २६ ॥ या भावसे अपने भर्ताकी सेवा करती भई, शुश्रूषा और अनुरागके नम्रभावसे इंद्रियनको दमन करकै सेवा करतीभई ॥ २७ ॥ हे राजन्! परमभक्तिसे मनोहर वचनसें सुंदर मुसकानसे तिर्छीं चितवनसे सब भाव जानवेवारी कश्यपको मन वश करतीभई ॥ २८ ॥ इस प्रकार विद्वान् होकरभी कश्यपजी जडवत स्त्रीके वशमें होगये और उसका मनोरथ पूर्ण करना स्वीकार किया स्त्रीमें कुछ विचित्र नहीं है ॥ २९ ॥ आदिमें ब्रह्माजी एकांतमें मैथुन योग्य सब जीवके बढवारके लिये अपने देहकी अर्धांगी स्त्रीकू करते भए, जासे पुरुषनकी बुद्धि हरी जाय है ॥ ३० ॥ हे तात ! भगवान्कश्यपजी स्त्रीसे ऐसें जब शुश्रूषित भये, तब हंसके वाकी प्रशंसा कर दितिसें बोले ॥ ३१ ॥

कश्यपजी बोले कि हे वामोरु ! वर मांगो जो तुह्मारे मनमें होय, जा स्त्रीसे पति प्रसन्न हो जाय है, वाकों सब पदार्थ या संसारमें प्राप्त हो जाय है ॥ ॥ ३२ ॥ नारीनको पतिही परम देवता है, मानसीक पति सब जीवनके वासुदेव रमापति हैं ॥ ३३ ॥ इन्ही भगवानके पृथक् २ नामरूपसै कल्पना की हुई इंद्रादि देवतोंकी मूर्ति पूजी जाती हैं और इन्हैही स्त्री पतिरूपसै पूजती हैं ॥ ३४ ॥ ताते हे सुमध्यमे ! पतिव्रता नारीनके सब काम अच्छे होंय है अनन्यभावसें पतिरूप परमेश्वर पूजे जाय हैं "एक पतिव्रता पतिकी सेवा करै, और कोई तपस्वी जिसने अस्सी हजार वर्षकी तपस्या कर ऊपर पेडपर चिडियानकी और देखो सो सब मर गिरपरी, याने जानी तपस्या सिद्ध भई, इतनेमें सहरमें भिक्षाकूं आए बोले जल्दी लावो, पतिव्रता बोली कि मैं चिडिया नाय हूं, ये सुन गर्व गयो, वाको पतिधर्मसे अधिक जानो " ॥ ३५ ॥ हे भद्रे ! सो हम तुमसे भावभक्तिसे पूजित हौनेके कारण तेरो मनोरथ पूरो करैगै, ये बात छोटी और खोटी स्त्रीनकों दुर्लभ है ॥ ३६ ॥ दिति बोली कि हे ब्रह्मन् ! जो तुम वर देनेवारे हो तो इंद्रको मारवेवारो पुत्र होय ये मैं वर मांगूंहूं, देवताननें मेरे दोनों सुत मारे, यासे मैं मृतपुत्रा हूं ॥ ३७ ॥ ये वचन वाको सुनकर विमन होकर कश्यप ब्राह्मण दुःखित भए, और बोले अहो महान् अधर्म आज मोको आय प्राप्त भयो, क्योंकि इंद्र भगवतरूप है, सुर और असुर मुझे एकसे हैं ॥ ३८ ॥ अहो आज इंद्रियोंमें मैनें बडो सुख भोग्यो, स्त्रीरूप मायासे चित्त मेरो वस भयो, मैं महाकृपण नरकमैं गिरूंगो ॥ ३९ ॥

कश्यप उवाच ॥ वरं वरय वामोरु प्रीतस्तेऽहमानिन्दिते ॥ स्त्रिया भर्तरि सुप्रीते कः काम इह चागमः ॥ ३२ ॥ पतिरेव हि नारीणां दैवतं परमं स्मृतम् ॥ मानसः सर्वभूतानां वासुदेवः श्रियः पतिः ॥ ३३ ॥ स एव देवतालिङ्गैर्नामरूपविकल्पितैः ॥ इज्यते भगवान्पुंभिः स्त्रीभिश्च पतिरूपधृक् ॥ ३४ ॥ तस्मात्पतिव्रता नार्यः श्रेयस्कामाः सुमध्यमे ॥ यजन्तेऽनन्यभावेन पतिमात्मानमीश्वरम् ॥ ३५ ॥ सोऽहं त्वयाऽर्चितो भद्रे ईदृग्भावेन भक्तितः ॥ तत्ते संपादये काममसतीनां सुदुर्लभम् ॥ ३६ ॥ दितिरुवाच ॥ वरदो यदि मे ब्रह्मन्पुत्रमिन्द्रहणं वृणे ॥ अमृत्युं मृतपुत्राऽहं येन मे घातितौ सुतौ ॥ ३७ ॥ निशम्य तद्वचो विप्रो विमनाः पर्यतप्यत ॥ अहो अधर्मः सुमहानद्य मे समुपस्थितः ॥ ३८ ॥ अहो अद्येन्द्रियारामो योषिन्मय्येह मायया ॥ गृहीतचेताः कृपणः पतिष्ये नरके ध्रुवम् ॥ ३९ ॥

अपने स्वभावमें अनुवर्तमान स्त्रीनको कहा अपराध है, वडे खेदकी बात है, मुझ अज्ञानीको धिक्कार है, जो मैं अजितेंद्री हुआ ॥ ४० ॥ जिनका शरतकालके कमल समान मुख काननको अमृत समान वचन छुरेकी धारासमान हृदय है ऐसी स्त्रीनकी चेष्टाकूं कौन जाने हैं ॥ ४१ ॥ अनायास अपने स्वार्थ प्रवीण स्त्रीनकों कोई प्यारो नहीं है, पति पुत्र भैयाकोंभी स्वार्थसे मारडालती है मरवाय देती है ॥ ४२ ॥ परन्तु जो मैंने प्रतिज्ञा करी है सो पूरी करूंगो, मेरो वचन झूठों न होयगो, इंद्र मारवेयोग्य तो नहीं है, तोभी उपाय करैंहै ॥४३॥ हे कुरुनंदन! मरीचिपुत्र भगवान् ये विचार कर अपने आत्माकी निंदा करते किंचित् कोपकर बोले ॥ ४४ ॥ कश्यपजी बोले कि हे भद्रे! इंद्रको मारवेवारो तेरे पुत्र होयगो, देवता वाके बंधु हैं

कोऽतिक्रमोऽनुवर्तन्त्याः स्वभावमिह योषितः ॥ धिङ् मां बताबुधं स्वार्थे यदहं त्वजितेन्द्रियः ॥ ४० ॥ शरत्पद्मोत्सवं वक्त्रं वचश्च श्रवणामृतम् ॥ हृदयं क्षुरधाराभं स्त्रीणां को वेद चेष्टितम्॥४१॥न हि कश्चित्प्रियः स्त्रीणामञ्जसा स्वाशिषात्मनाम्॥ पतिं पुत्रं भ्रातरं वा घ्नन्त्यर्थे घातयन्ति च ॥४२॥ प्रतिश्रुतं ददामीति वचस्तन्न मृषा भवेत् ॥ वधं नार्हति चेन्द्रोऽपि तत्रेदमुपकल्पते ॥ ४३ ॥ इति संचिन्त्य भगवान्मारीचः कुरुनन्दन ॥ उवाच किंचित्कुपित आत्मानं च विगर्हयन् ॥४४॥ कश्यप उवाच॥ पुत्रस्ते भविता भद्रे इन्द्रहा देवबान्धवः ॥ संवत्सरं व्रतमिदं यद्यञ्जो धारयिष्यसि ॥ ४५ ॥दितिरुवाच॥धारयिष्ये व्रतं ब्रह्मन्ब्रूहि कार्याणि यानि मे॥यानि चेह निषिद्धानि न व्रतं घ्नन्ति यानि तु ॥ ४६ ॥ कश्यप उवाच ॥ न हिंस्याद्भूतजातानि न शपेन्नानृतं वदेत् ॥ न च्छिन्द्यान्नखरोमाणि न स्पृशेद्यदमङ्गलम् ॥ ४७॥ नाप्सु स्नायान्न कुप्येत न संभाषेत दुर्जनैः ॥ न वसीताधौतवासः स्रजं च विधृतां क्वचित् ॥ ४८ ॥

परंतु एकवर्षपर्यंन जो तू व्रत करै तो तैसो होय ॥ ४५ ॥ दिति बोली कि हे ब्रह्मन्! वा व्रतकों मैं धारण करूंगी, जो कार्य वामें करवे होय सो कहो जो निषिद्ध हैं जिनसे व्रत नाश होय है वे नियम कहो मैं न करूंगी ॥ ४६ ॥ कश्यपजी बोले कि इकतीस बातै ये न करे इनके करनेंसे सब व्रतमात्र नष्ट होजांय हैं जीवमात्रकी हिंसा न करैं, न शाप दे, न झूठ बोले, नख रोम न काटै, जो अमंगली वस्तु हैं उन्हे न छूवै॥४७॥ नग्न होयके जलमें स्नान न करै, न कोप करै, दुर्जनोंसे बोले नहीं, मैले वस्त्र न पहिरै, पहिली पहिरी माला फेर न पहिरे ॥ ४८ ॥

काऊकी झूठ न खाय, चंडिकाको अन्न न खाय, मांस न खाय, शूद्रको लायो न खाय, जलमें न देखै, दोनो अंजलीसे जल न पीवै ॥ ४९ ॥ जूंठे मुख न सोवे विना कुल्ला करे न सोवै, सांझको मूंडके वार बखेर न सोवै, विना सिंगार करे देहकों न रहै, वाणी जीतै, नंगी न डोलै ॥ ५० ॥ पग विनाधोए न खाय, जागती रहै, गीले पग न सोवै, उत्तरको शिरकर न सोवै, पश्चिमको शिरकर न सोवै, सवेरे सांझ नग्न न रहै ॥ ५१ ॥ ऐसै रहै और ये करवेयोग्य है शुक्लवस्त्र पहिरै, सदा पवित्र रहे, सब मंगलीक वस्तुनकी पूजा करै, प्रातः समय गौ, ब्राह्मण, अग्नि, लक्ष्मी भगवानकी पूजा करै ॥ ५२ ॥ सुहागनोंकी पूजा करै, सुहागपिटारी दे, माला पहिरावै, चंदन लगावै, मिष्टान्नसे भोजन करावै, पतिकी पूजा करै, अपने

नोच्छिष्टं चण्डिकान्नं च सामिषं वृषलाहृतम् ॥ भुञ्जीतोदक्यया दृष्टं पिबेदञ्जलिना त्वपः ॥ ४९ ॥ नोच्छिष्टाऽस्पृष्टसलिला संध्यायां मुक्तमूर्धजा ॥ अनर्चिता संयतवागसंवीता बहिश्चरेत् ॥ ५० ॥ नाधौतपादाऽप्रयता नार्द्रपान्नो उदक्शिराः ॥ शयीत नापराङ्नान्यैर्न नग्ना न च संध्ययोः ॥ ५१ ॥ धौतवासाः शुचिर्नित्यं सर्वमङ्गलसंयुता ॥ पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्गोविप्राञ्छ्रियमच्युतम् ॥ ५२ ॥ स्त्रियो वीरवतीश्चार्चेत्स्रग्गन्धबलिमण्डनैः ॥ पतिं चार्च्योपतिष्ठेत ध्यायेत्कोष्ठगतं च तम् ॥ ५३ ॥ सांवत्सरं पुंसवनं व्रतमेतदविह्रुतम् ॥ धारयिष्यसि चेत्तुभ्यं शक्रहा भविता सुतः ॥ ॥ ५४ ॥ बाढमित्यभिप्रेत्याथ दिती राजन्महामनाः ॥ काश्यपं गर्भमाधत्त व्रतं चाञ्जो दधार सा ॥ ५५ ॥ मातृष्वसुरभिप्रायमिन्द्र आज्ञाय मानद ॥ शुश्रूषणेनाश्रमस्थां दितिं पर्यचरत्कविः ॥ ५६ ॥

कोष्टमें बैठ ये सब करै ॥ ५३ ॥ या व्रतको नाम पुंसवनव्रत है, एक वर्षमें होता है, निरालस होयकर करै जो तुम याकों धारोगी तो इंद्रको मारवेवारो पुत्र तुह्मारे होयगो ॥ ५४ ॥ हे राजन् ! महामनस्विनी दिती बहुत अच्छा ऐसै कहकर कश्यपजीको गर्भ धारण करतीभई, और या पुंसवनव्रतको करती भई; ब्राह्मण ब्राह्मणीनको नित्य जिमावै, तीयलपहिरावै, शय्या दान करै एक दूध देतीभई गौदान करै मिष्टान्नभोजन करावै, रेशमीवस्त्रदान करै, तो निश्चय दिग्विजयी वीर आयुवान् धनी पुत्र होवे है॥५५॥हे मानद ! माताको असुरोंके बढवेको अभिप्राय जान महाचतुर इंद्र उसके

निकट वेष बनाकर गये और उसके आश्रममें रहकर दितिकी सेवा करनेलंगे ॥५६॥नित्य वनसै पुष्प फल कंद मूल समिधा कुशा पत्तै अंकुर माटी जल समयसमयमें लावतो भयो॥५७॥ हे नृप ! ऐसे व्रतमे स्थित दितीको व्रतमें कोई छिद्र पडजाय तो मैं भंग करूं यें चाहना करतो भयो कपटी होयकर इन्द्र परिचर्या करनेलगे जैसै मृगको मारवेवारो चिडी मार समय देखैं है ऐसे इन्द्र समय देखने लगे ॥ ५८ ॥ सदा सेवामें तत्पर रहे पर कभी व्रतमें छिद्र न देखो हे राजन् ! तब इन्है बडी चिंता भई कि कोन प्रकारसें अब मेरो कल्याण होय ॥ ५९ ॥ एक समय भाग्यसे विधाताकरकै मोहित सांझको जूठै मुख व्रतसे कर्षित विना कुल्ला करे विना पगधोये दिति सोय गई ॥ ६० ॥ या अंतरमें इंद्र सोई भई दितिके पेटमें सूक्ष्मरूपसे प्रवेश करतो भयो, योगमाया करकै वो योग जानवेमें महाकुशल हो ॥ ६१ ॥ सुवर्णकी समान कांतिवारे गर्भके सात टुक वज्रसे करतो भयो जब वो रोयवे लगो तो सात टुक करे उनसे बोलो मत रोओ, वे रोए तौ फेर एकएककै सात सात कर डारैं; सातो सत्ता उनंचास वेही उनंचास पवन भए ॥ ६२ ॥

नित्यं वनात्सुमनसः फलमूलसमित्कुशान्॥पत्राङ्कुरमृदापश्च काले काल उपाहरत् ॥५७॥ एवं तस्या व्रतस्थाया व्रतच्छिद्रं हरिर्नृप॥प्रेप्सुः पर्यचरज्जिह्मो मृगहेव मृगाकृतिः॥५८॥नाध्य गच्छद्व्रतच्छिद्रं तत्परोऽथ महीपते॥चिन्तां तीव्रां गतः शक्रः केन मे स्याच्छिवं त्विह ॥ ५९ ॥ एकदा सा तु संध्यायामुच्छिष्टा व्रतकर्शिता ॥ अस्पृष्टवार्यधौताङ्घ्रिः सुष्वाप विधिमोहिता ॥६०॥ लब्ध्वा तदन्तरं शक्रो निद्राऽपहृतचेतसः ॥ दितेः प्रविष्ट उदरं योगेशो योगमायया ॥६१॥ चकर्त सप्तधा गर्भं वज्रेण कनकप्रभम् ॥ रुदन्तं सप्तधैकैकं मा रोदीरिति तान्पुनः ॥ ६२ ॥

---

१ शंका–दितिने इन्द्रके नाश करनेके लिये गर्भको धारण किया, तब इन्द्रने दितिके गर्भके नाश करनेके लिये कपट करके दितिका सेवन करने लगा, परन्तु दितिको क्यों नहीं जान पड़ा कि यह इन्द्र है क्यों कि दिति कुछ मूर्ख नहींथी बडी चतुर थी, यह सन्देह है ?

उत्तर–जब दितिने इन्द्रके नाश करनेका उपाय किया तब भगवान्ने दितिसे निषेध किया कि अम्बाजी अभी इन्द्रका पुण्य बहुत है अभी इन्द्रका नाश किसी प्रकार न होगा,वृथा परिश्रम मत करो, दितिने भगवानकी आज्ञाको नहीं माना इन्द्रके नाश होनेके लिये गर्भ धारण किया, भगवान्के वचनोंको नहीं माना इस कारणसे इन्द्रके कपटको नहीं पहिचाना मूर्ख होगई ॥

हे नृप! हाथ जोड मारे भए वे इंद्रसे बोले हे इंद्र! हम मरुत तुम्हारे भैया हैं हमै मत मारो ॥ ६३ ॥ मत डरो भैया हो तुम मेरेही हो, तुम्हारे साथ हमारा अन्यभाव नहीं है तुम हमारे पार्षद होगे ऐसे जब शक्रने कह्यो,॥६४॥ हे राजन्! यद्यपि इन्द्रने गर्भके ४९ खंड किये परन्तु नारायणकी कृपासै वे मरे नहीं जैसे अश्वत्थामाके अस्त्रसै तुम नहीं मरे ॥६५॥ एक बेर आदिपुरुषकी पुरुष पूजा करे तो उनकी समान भावको प्राप्त होय हैं दितिनै तौ संवत्सरमै कुछेक कमती श्रीहरिकी पूजा कीथी ॥ ६६ ॥ इंद्रके सहित पचास देवता मरुत भए, माताके दोषभावकों त्याग श्रीइंद्रने सोम प्याय

ते तमूचुः पाट्यमानाः सर्वे प्राञ्जलयो नृप॥ नो जिघांससि किं इन्द्र भ्रातरो मरुतस्तव॥६३॥मा भैष्ट भ्रातरो मह्यं यूयमित्याह कौशिकः॥ अनन्यभावान्पार्षदानात्मनो मरुतां गणान् ॥ ६४ ॥ न ममार दितेर्गर्भः श्रीनिवासानुकम्पया ॥ बहुधा कुलिशक्षुण्णो द्रौण्यस्त्रेण यथा भवान् ॥ ६५ ॥ सकृदिष्ट्वादिपुरुषं पुरुषो याति साम्यताम् ॥ संवत्सरं किंचिदूनं दित्या यद्धरिरर्चितः ॥ ६६॥ सजूरिन्द्रेण पञ्चाशद्देवास्ते मरुतोऽभवन् ॥ व्यपोह्य मातृदोषं ते हरिणा सोमपाः कृताः ॥ ६७ ॥ दितिरुत्थाय ददृशे कुमाराननलप्रभान् ॥ इन्द्रेण सहितान् देवी पर्यतुष्यदनिन्दिता ॥ ६८ ॥ अथेन्द्रमाह ताताहमादित्यानां भयावहम्॥ अपत्यमिच्छन्त्यचरं व्रतमेतत्सुदुष्करम्॥६९॥एकः संकल्पितः पुत्रः सप्तसप्ताभवन्कथम्॥ यदि ते विदितं पुत्र सत्यं कथय मा मृषा ॥ ७० ॥ इन्द्र उवाच ॥ अम्ब तेऽहं व्यवसितमुपधार्यागतोऽन्तिकम् ॥ लब्धान्तरोऽच्छिदं गर्भमर्थबुद्धिर्न धर्मवित् ॥७१॥ कृत्तो मे सप्तधा गर्भ आसन्सप्त कुमारकाः ॥ तेऽपि चैकैकशो वृक्णाः सप्तधा नापि मम्रिरे ॥ ७२ ॥

देवता करलिए ॥ ६७ जब अनिंदित दिति जागी तब अग्निसमान इंद्र सहित सब कुमारोंको देख प्रसन्न भई ॥ ६८ ॥ इंद्रसे बोली हे तात! कहो आदित्योंके भय देवेवारो पुत्रकी इच्छाकर महाकठिनतर व्रत ये मैं करती भई ॥ ६९ ॥ पुत्र एकको संकल्प हो उनंचास कैसें भए, जो तुम जानौ हौ तो हे पुत्र! सांच कहो, झूठ मत बोलियो ॥७०॥ इंद्र बोले कि हे माता! तुह्मारो निश्चय जान हम तुम्हारे समीप आए, हम अपने प्रयोजनमें मन राखै है धर्म न जानै है सो तुम्हारे व्रतमें छिद्र देख तेरे गर्भ काटडारै ॥ ७१ ॥ प्रथम सात टूक करे सो सात पुत्र भये वेभी

एकएकके सात सात कीने वे उनंचास मरे नहीं ॥७२॥ ये परम आश्चर्य देख निश्चय भयो कि कोई महापुरुषकी पूजाकी ये सिद्धि है जासे मरे न हैं ॥ ७३ ॥ निष्काम होय जो भगवतका आराधन करते हैं वे और उसके सामने मोक्षकोभी कुछ नहीं समझते वही स्वार्थमें कुशल है ॥ ७४ ॥ आत्माके दाता अपने आत्मा जगदीश्वर देवको आराधन कर कौन बुद्धिमान संसारके सुख चाहैगे क्योंकि संसारी सुख तौ नरकमेंभी मिल जाते हैं॥७५॥ सो ये मेरी दुर्जनता है मोसै महामूढपन भयो, सो तुम क्षमा करो, हे मातः ! बडो भाग्य है कि तुह्मारो मरोभयो गर्भ फेर जीउठे बडो मंगल भयो ॥

ततस्तत्परमाश्चर्यं वीक्ष्याध्यवसितं मया ॥ महापुरुषपूजायाः सिद्धिः काप्यानुषङ्गिणी ॥ ७३ ॥ आराधनं भगवत ईहमाना निराशिषः ॥ ये तु नेच्छन्त्यपि परं ते स्वार्थकुशलाः स्मृताः ॥७४ ॥ आराध्यात्मप्रदं देवं स्वात्मानं जगदीश्वरम् ॥ को वृणीते गुणस्पर्शं बुधः स्यान्नरकेऽपि यत् ॥ ७५ ॥ तदिदं मम दौर्जन्यं बालिशस्य महीयसि॥ क्षन्तुमर्हसि मातस्त्वं दिष्ट्या गर्भो मृतोत्थितः ॥ ७६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रस्तयाऽभ्यनुज्ञातः शुद्धभावेन तुष्टया ॥ मरुद्भिः सह तां नत्वा जगाम त्रिदिवं प्रभुः ॥ ७७ ॥ एवं ते सर्वमाख्यातं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ मङ्गलं मरुतां जन्म किं भूयः कथयामि ते ॥ ७८ ॥ इति श्रीभा० म० ष० मरुद्गणजन्मकथनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ ॥ १८ ॥ ॥ राजोवाच ॥ व्रतं पुंसवनं ब्रह्मन्भवता यदुदीरितम् ॥ तस्य वेदितुमिच्छामि येन विष्णुः प्रसीदति ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शुक्ले मार्गशिरे पक्षे योषिद्भर्तुरनुज्ञया ॥ आरभेत व्रतमिदं सार्वकामिकमादितः॥ निशम्य मरुतां जन्म ब्राह्मणाननुमन्त्र्य च ॥ २ ॥

॥ ७६ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि इंद्र वासें आज्ञा लेकर शुद्धभावसे प्रसन्न होय मरुतोंके साथ दितिको नमस्कार कर स्वर्गको चले जाते भए ॥ ॥७७॥ जो तुमने हमसे पूछो सो हमने तुमसे आख्यान कह्यो, मरुतनको जन्म मंगलदायक है, और अब क्या सुन्नेकी इच्छा है॥७८॥ इति श्रीमद्भागवतभाषायां षष्ठस्कन्धे एकोनपञ्चाशन्मरुज्जन्मवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ या अध्यायमें पुंसवन व्रतको वर्णन है ॥ राजा परीक्षित् बोले कि हे ब्रह्मन् ! पुंसवनव्रत जो आपने कह्यो वाको फेर सुनवेकी इच्छा है, जासें विष्णु प्रसन्न होंय है वाकी विधि कहो ॥ १ ॥ शुकदेवजी बोले

कि अगहनके महीनामें शुक्लपक्षकी प्रतिपदासे पतिकी आज्ञासें स्त्री आदिसें सब कामको दाता ये व्रत प्रारंभ करै ॥ २ ॥ मरुतको जन्म सुन ब्राह्मणनसें आज्ञा लेके दंतधावन कर शुक्ल कपडे पहिरे, गहिने धारे, प्रातसमय श्रीमन्नारायणको पूजन करै ॥ ३ ॥ हे निरपेक्ष ! आपको कहा देऊं तुम पूर्णकामवारे हो, तुम्है नमस्कार होय, महाविभूतिके पति सब काम सिद्धिदायकके अर्थ नमस्कार होय ॥ ४ ॥ हे ईश्वर ! आप दया धैर्य तेज सामर्थ्य और महिमा इत्यादिमें और दूसरे संपूर्ण गुणोंमें यथावत् संतत सेवित हैं इस कारण आप भगवान् कहातेहैं सो हम आपको नमस्कार करै हैं ॥ ५ ॥ फिर लक्ष्मीकी प्रार्थना करै हे विष्णुपत्नि, हे महामाये, हे महापुरुषलक्षणे, हे महाभागे ! मोपर प्रसन्न होवो, हे लोकमातः ! तुह्मारे अर्थ नमस्कार होय ॥ ६ ॥ या मंत्रसे षोडशोपचार पूजा करै, भगवान् महापुरुष महानुभाव महाविभूतिपतिके अर्थ नमस्कार होय, महाविभूतिसहित उन महाविभूतिपति भगवानके निमित्त हम पूजा उपहार देते है या मंत्रसें दिनरात श्रीविष्णुको आवाहन अर्घ्य पाद्य उपस्पर्श स्नान वस्त्र यज्ञोपवीत भूषण चंदन पुष्प धूप दीप उपहार मिष्टान्न भोग ये सब सावधान होय कर करै ॥ ७ ॥ उन उपहारोंके बचे द्रव्यसै घृत सहित हवन करै या मंत्रसै अग्निमें बारह आहुती देवै उन भगवान् महापुरुष महाविभूतिनके स्वामीके अर्थ ये आहुति है स्वाहा, ऐसे होम करै ॥ ८ ॥ श्रीजी श्रीविष्णु दोनों वरदाता है, सब आशिषोंके देवैमें समर्थ हैं, जो सब संपदा चाहै तो भक्तिसें पूजन नित्य करै ॥ ९ ॥

स्नात्वा शुक्लदती शुक्ले वसीताऽलंकृताऽम्बरे ॥ पूजयेत्प्रातराशात्प्राग्भगवन्तं श्रिया सह ॥ ३ ॥ अलं ते निरपेक्षाय पूर्णकाम नमोऽस्तु ते ॥ महाविभूतिपतये नमः सकलसिद्धये ॥ ४ ॥ यथा त्वं कृपया भूत्या तेजसा महिनौजसा ॥ जुष्ट ईश गुणैः सर्वैस्ततोसि भगवान्प्रभुः॥५॥विष्णुपत्नि महामाये महापुरुषलक्षणे ॥ प्रीयतां मे महाभागे लोकमातर्नमोऽस्तु ते ॥ ६ ॥ ॐनमो भगवते महापुरुषाय महानुभावाय महाविभूतिपतये सह महाविभूतिभिर्बलिमुपाहराणीति ॥ अनेनाहरहर्मन्त्रेण विष्णोरावाहनार्घ्यपाद्योपस्पर्शनस्नानवासउपवीतविभूषणगन्धपुष्पधूपदीपोपहाराद्युपचारांश्च समाहिता उपाचरेत् ॥ ७ ॥ हविःशेषं तु जुहुयादनले द्वादशाहुतीः ॥ ॐनमो भगवते महापुरुषाय महाविभूतिपतये स्वाहेति॥८॥श्रियं विष्णुं च वरदावाशिषां प्रभवावुभौ ॥ भक्त्या संपूजयेन्नित्यं यदीच्छेत्सर्वसंपदः ॥९॥

भक्तिसहित चित्तसें भूमिमें दंडवत प्रणाम करै, दशवार मंत्र जपैं तापाछे यह स्तोत्र उच्चारण करै ॥ १० ॥ तुम दोनों विश्वके समर्थ जगत्के परम कारण परमेश्वर हो, ये श्रीजी सूक्ष्म प्रकृति मायाकी कठिन शक्ति है ॥ ११ ॥ ताके ईश्वर साक्षात् तुह्मी पर पुरुष हो, सब यजनके यज्ञोंमें पूजारूप महालक्ष्मी है सबके फल भोक्ता तुम हो ॥ १२ ॥ सब गुणोंकी व्यक्ति श्रीजी हैं सबके प्रकाशक आप हो तुम सर्व शरीरी आत्मा हो, श्रीजी शरीरकी इंद्रिये अंतःकरणरूप हैं नाम रूप सब भगवतीके हैं, सबके विश्वास करायवेवारे आसरोरूप आप हो ॥ १३ ॥ जैसै तुम दोनों त्रिलोकीके वरदाता ब्रह्मांतर्यामी हौ तैसे उत्तम यशवारे मेरे सब मनोरथ सत्य करौ ॥ १४ ॥ वरदाता श्रीनिवासको श्रीजीसहित ऐसे स्तुति कर आचमन

प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ भक्तिप्रह्वेण चेतसा ॥ दशवारं जपेन्मन्त्रं ततः स्तोत्रमुदीरयेत् ॥ १० ॥ युवां तु विश्वस्य विभू जगतः कारणं परम् ॥ इयं हि प्रकृतिः सूक्ष्मा माया शक्तिर्दुरत्यया ॥११॥ तस्या अधीश्वरः साक्षात्त्वमेव पुरुषः परः॥ त्वं सर्वयज्ञ इज्येयं क्रियेयं फलभुग्भवान् ॥ १२ ॥ गुणव्यक्तिरियं देवी व्यञ्जको गुणभुग् भवान् ॥ त्वं हि सर्वशरीर्यात्मा श्रीः शरीरेन्द्रियाशया ॥ नामरूपे भगवति प्रत्ययस्त्वमपाश्रयः ॥१३॥ यथा युवां त्रिलोकस्य वरदौ परमेष्ठिनौ ॥ तथा म उत्तमश्लोक सन्तु सत्या महाशिषः ॥ १४ ॥ इत्यभिष्टूय वरदं श्रीनिवासं श्रिया सह ॥ तन्निःसार्योपहरणं दत्त्वाऽऽचमनमर्चयेत् ॥ १५ ॥ ततः स्तुवीत स्तोत्रेण भक्तिप्रह्वेण चेतसा ॥ यज्ञोच्छिष्टमवघ्राय पुनरभ्यर्चयेद्धरिम् ॥१६॥ पतिं च परया भक्त्या महापुरुषचेतसा ॥ प्रियैस्तैस्तैरुपनमेत्प्रेमशीलः स्वयं पतिः ॥१७॥ बिभृयात्सर्वकर्माणि पत्न्या उच्चावचानि च ॥ कृतमेकतरेणापि दम्पत्योरुभयोरपि ॥ १८॥

कराय निवेदन कीहुई उपहारकी वस्तुको वहांसै हरादे ॥ १५ ॥ तापाछै स्तोत्रौंसे स्तुति कर सावधान चित्तकरकै यज्ञकी शेष सामग्रीको सूंघै फेर श्रीहरीको पूजन करै ॥ १६ ॥ फिर व्रतग्रहण करनेवाली स्त्री आपने पतिको ईश्वर समझकर उसकी प्यारी वस्तु उसै देकर पतिकी सेवा करै उनसे प्रेम करै कारणकि प्रेमशीलरूप स्वयं पति है ॥ १७ ॥ और स्त्रीकेभी ऊंचे नीचे सब काम पति करै दोनो स्त्री पुरुष एक होय प्रेमसै करैंगे तो शीघ्र भगवान प्रसन्न होय है ॥ १८ ॥

जो कदाचित् कोई प्रकारसे स्त्री व्रत करवेयोग्य न होय तौ सावधान होय सब कर्म पतिही करै श्रीविष्णुको ये व्रत कभी नाश न करै ॥ १९ ॥ ब्राह्मणोंको, सुहागवती स्त्रीनको माला चंदन मिष्टान्नसे पूजन करै, उन्है मनइच्छा भोजन करावै, सब नियममें स्थित होयकर दिन रात श्रीहरिकी पूजा करै ॥ २० ॥ देवको विसर्जन करै अपने शयन करावै, जो आगे निवेदन मिष्टान्न भोग लगायो होय वाको आप पावै शरीर शुद्धिके अर्थ और सबकाम प्राप्तिके अर्थ कुछ भोजन करै ॥ २१ ॥ ऐसै पूजाविधिसै बारह मासतक साध्वी स्त्री पूजा करै, पाछै कार्तिकमें देव ऊठनी एकादशीसे पूर्णमासीतक ब्राह्मणादि जिमाय विसर्जन करै ॥ २२ ॥ प्रातसमे स्नान आचमन कर पूर्ववत् श्रीकृष्णको पूजन करै, गर्म दूधमें घृत मिष्टान्न मिलाय

पत्न्यां कुर्यादनर्हायां पतिरेतत्समाहितः ॥ विष्णोर्व्रतमिदं बिभ्रन्न विहन्यात्कथंचन ॥ १९ ॥ विप्रान्स्त्रियो वीरवतीः स्रग्गन्धबलिमण्डनैः ॥ अर्चेदहरहर्भक्त्या देवं नियममास्थितः ॥ २० ॥ उद्वास्य देवं स्वे धाम्नि तन्निवेदितमग्रतः ॥ अद्यादात्मविशुद्ध्यर्थं सर्वकामर्द्धये तथा ॥ २१ ॥ एतेन पूजाविधिना मासान्द्वादश हायनम् ॥ नीत्वाऽथोपचरेत्साध्वी कार्तिके चरमेऽहनि ॥ २२ ॥ श्वोभूतेऽप उपस्पृश्य कृष्णमभ्यर्च्य पूर्ववत् ॥ पयःशृतेन जुहुयाच्चरुणा सह सर्पिषा ॥ २३ ॥ पाकयज्ञविधानेन द्वादशैवाहुतीः पतिः ॥ देदीप्यमाने वह्नौ वै विशेषं जुहुयान्नरः॥२४॥ आशिषः शिरसाऽऽदाय द्विजैः प्रीतैः समीरिताः ॥ प्रणम्य शिरसा भक्त्या भुञ्जीत तदनुज्ञया ॥२५॥ आचार्यमग्रतः कृत्वा वाग्यतः सह बन्धुभिः ॥ दद्यात्पत्न्यै चरोः शेषं सुप्रजास्त्वं सुसौभगम् ॥ २६ ॥ एतच्चरित्वा विधिवद्व्रतं विभोरभीप्सितार्थं लभते पुमानिह ॥ स्त्री त्वेतदास्थाय लभेत सौभगं श्रियं प्रजां जीवपतिं यशो गृहम् ॥ २७ ॥

स्रुवासै हवन करै ॥ २३ ॥ फिर पति पाक यज्ञके विधानसै बारह बारह आहूती देदीप्यमान अग्निमें विशेष हवन करै ॥ २४ ॥ प्रसन्न होकर ब्राह्मणोंने जो आशीर्वाद दियै होय उनको शिरपर ग्रहण करै, उनको जिमाय प्रणाम कर उनकी आज्ञासे फेर आप भोजन करै ॥ २५ ॥ आचार्य गुरुकों आगे कर वाणी जीतकर भाई बंधुसहित स्त्रीके अर्थ चरुको शेष हवन करोभयो खवावै, ये कहै कि सुंदर पुत्रवती तुम होओ, सुहागन होओ ॥ २६ ॥ या संसारमें ये समर्थ ईश्वरको व्रत करै तौ पुरुष मनोवांछित फलको प्राप्त होय स्त्री इस व्रतके करनेसै सुहाग लक्ष्मी पुत्र

पति और गृहको प्राप्त होती है ॥ २७ ॥ कन्यका करै तो सब लक्षणवारो पति मिलै, जवान स्त्री व्रत करै तो वर मिलै, विधवा करै तो मोक्ष होय जा स्त्रीके सन्तान मरें वो करै तो पुत्र जीवै, धनकी चाहसें करै तो धन मिलै, दरिद्री करै तो धन मिलै, कुरूपा करै तो सुंदर रूपवती होय ॥ २८॥ रोगी स्त्रीपुरुषको रोग जाय, मुक्ति चाहै तो मोक्ष हो, सब रोग यासे नास होंय है, शरीरकी सामर्थ्य होय है, कोई घरमें शुभकृत्य होय वामें जो याको पढै

कन्या च विन्देत समग्रलक्षणं वरं त्ववीरा हतकिल्बिषा गतिम् ॥ मृतप्रजा जीवसुता धनेश्वरी सुदुर्भगा सुभगा रूपमग्र्यम् ॥ २८ ॥ विन्देद्विरूपा विरुजा विमुच्यते य आमयावीन्द्रियकल्पदेहम् ॥ एतत्पठन्नाभ्युदये च कर्मण्यनन्ततृप्तिः पितृदेवतानाम् ॥ २९ ॥ तुष्टाः प्रयच्छन्ति समस्तकामान्होमावसाने हुतभुक् श्रीर्हरिश्च ॥ राजन् महन्मरुतां जन्म पुण्यं दितेर्व्रतं चाभिहितं महत्ते ॥ ३० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे षष्ठस्कन्धे पुंसवनव्रतकथनं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ ॥ संपूर्णोऽयं षष्ठः स्कन्धः ॥ ६ ॥

सुनै तो सब सुख होय, पितृ देवता या व्रत करेसें प्रसन्न होय है ॥ २९ ॥ होमके अंतमें अग्नि महालक्ष्मीजी श्रीहरी ये संतुष्ट होय सब काम पूर्ण करैंगे हे राजन्! ये मरुतोंका जन्म महापुण्यदायक दितीके यहां भयो सो हमने तुमसें कह्यो ये बहुतके करवेयोग्य व्रत है ॥ ३० ॥ इति श्रीवृंदावननिवासिगौडब्राह्मणविद्वद्वरश्रीनारायणशास्त्रिविरचितश्रीमद्भागवतषष्ठस्कन्धस्य पदार्थमुक्तावलीटीकायां पुंसवनव्रतवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

---

१ पाछै या कीर्तननको गावै ॥ कालंगडा ॥ "धनधनराम भजै सो बहुरिया ॥ टेर ॥ पतीसासकी सेवा करती और कछू न सहुरिया ॥ १ ॥ सबकी सहै कहै नहि उत्तर चलती है बहुत निहुरिया ॥ २ ॥ पतिके भीतर हरिकों पूजाति नित करती जप हरिया ॥ ३ ॥ पहिले ऊठाति पीछे सोवाति कभहु न देखाति पिहुरिया ॥ ३ ॥ पढत पढावत हरिगुण गावति शील धर्मकी लहुरिया ॥ ५ ॥ घरको धंधो करत थकति नहि याद न कराति पिहुरिया ॥ ६ ॥ पुरुषोत्तम कहै सोइ कुल तराति हरिके चरनमें रहुरिया ॥ ७ ॥ " वसनचोर चितचोर नित, हे प्रभु माखनचोर । व्रजातियवल्लभ सांवरे, लखो हमारी ओर ॥ महाविघ्न संकटहरन, भक्तनके उर चंद । नित ज्वालाप्रसादपर कृपा करहु नँदनंद ॥

दोहा—अक्षर अक्षर सोधकर, श्रीहरिके गुण गाय ॥ पूर्ण कियो यह स्कंध, यदुपति रहैं सहाय ॥ १ ॥

इदं पुस्तकं कल्याणनगर्यां श्रीकृष्णदासात्मज—गङ्गाविष्णुना स्वकीये " लक्ष्मीवेंकटेश्वर " यन्त्रालयेऽङ्कित्वा प्रकाशितम् ॥ संवत् १९५२, शके १८१७.

॥ इति भाषाटीकायुते श्रीमद्भागवते षष्ठस्कन्धः समाप्तः॥

॥ इति भाषाटीकायुते श्रीमद्भागवते षष्ठस्कन्धः समाप्तः॥

D

भाग - ७

॥ अथ भाषाटीकायुतश्रीमद्भागवते सप्तमस्कन्धप्रारम्भः ॥

यह ग्रन्थ सन् १८६७ के ऐक्ट २५ के अनुसार रजिष्टरी करके सब हक्क यन्त्राधिकारीने अपने स्वाधीन रक्खा है.

2

3

सप्तमस्कंधः

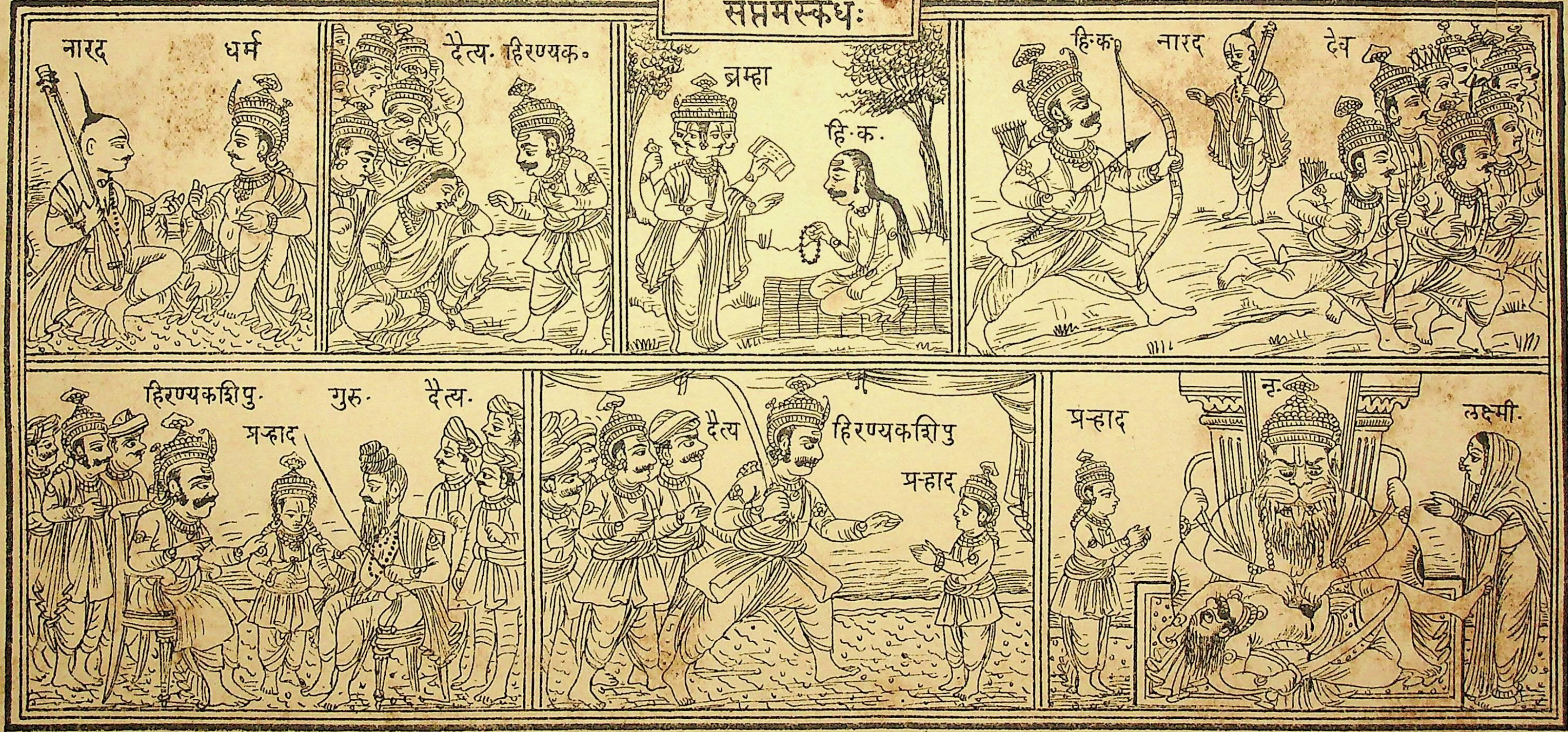
नारद
धर्म
दैत्य· हिरण्यक·
ब्रम्हा
हि·क·
हि·क
नारद
देव
हिरण्यकशिपु·
गुरु·
दैत्य·
प्रऱ्हाद
दैत्य
हिरण्यकशिपु
प्रऱ्हाद
प्रऱ्हाद
नृ·
लक्ष्मी·

6

दोहा—जन भय टारन सुख करन, हन सकल भय शूल । सो ज्वाला प्रसादपर, सदा रहहिं अनुकूल ॥

श्रीश्वरायनमः ॥ “ अपने भक्तिकी पक्ष करैहैं उनके अभक्तनकों मारै है ऐसे परम आनंदरूप श्रीश्वरको प्रणाम है ॥ अब या सप्तममें पंद्रह अध्यायमें ऊति नामक लक्षण कहैं है, ऊति वासनाको नाम है; जैसो कर्म होय है वाकें अनुसार लीला करनी वाको नाम ऊती है । सो लीला दोप्रकारकी है एक शुभ एक अशुभ ये हेतुभेदसें है महात्मानकों कोपरूप तो अशुभ लीला है महात्मानकी कृपा भई वो शुभ लीला है ॥ श्रीहरिके पार्षद वैकुंठमें वसतेभी हे तोहू सनत्कुमारादिकोंके द्वेषसे वो लीला भई सो अशुभवासना कहाई ॥ और दैत्यके गर्भमें स्थित प्रल्हादजीको श्रीनारदजीकी कृपासें विष्णुमें सांची भक्तिकी वासना भई ये लीला शुभवासना कहाई ॥ अपने भक्त वैर करै तोहू ईश्वर रक्षा करै हैं वैर करवेसे तो तीन जन्ममें उद्धार करै है, प्यार करनेसे सात जन्ममें उद्धार होय है ॥ याते बुद्धिमान् महात्मानपर कृपा कर अनुग्रह करैहैं यालिये यह

श्रीगणेशाय नमः॥ राजोवाच ॥ समः प्रियः सुहृद्ब्रह्मन् भूतानां भगवान् स्वयम् ॥ इन्द्रस्यार्थे कथं दैत्यानवधीद्विषमो यथा ॥ १ ॥ न ह्यस्यार्थः सुरगणैः साक्षान्निःश्रेयसात्मनः ॥ नैवासुरेभ्यो विद्वेषो नोद्वेगश्चागुणस्य हि ॥ २ ॥ इति नः सुमहाभाग नारायणगुणान् प्रति ॥ संशयः सुमहान् जातस्तद्भवान् छेत्तुमर्हति ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ साधु पृष्टं महाराज हरेश्चरितमद्भुतम् ॥ यत्र भागवतमाहात्म्यं भगवद्भक्तिवर्धनम् ॥ ४ ॥

ऊतीको लक्षण कह्यो है ॥ तहां प्रथम सप्तममें दश अध्यायसें दैत्य तथा उनके पुत्र महात्मानको कोप सदंसदुर्वासनाभेद कह्यो है ॥ शुद्धचित्तवारे कामसे शुद्ध वासना करै है, सो पांच अध्यायमें धर्मको निर्णय है ॥ तहां प्रथम अध्यायमें हिरण्यकशिपुका विष्णुभक्तपुत्रसै विप्रशापसे विरोध हुआ यह कथा कहैंगे ” ॥ इति ॥ श्रीराजा परीक्षित बोले कि हे श्रीभगवन्! ब्रह्मन्! भगवान सब जीवमात्रपर सम प्रिय सुहृदभावसें वर्तैं है, तोहू इंद्रके अर्थ दैत्यनको क्यों मारते भए यासे विषम भाव ईश्वरमेंभी मालूम पडै है ॥ १ ॥ साक्षात् आनंदरूप आत्मा उनकों न देवतानसें कुछ प्रयोजन है न असुरनसे वैर है, उद्वेगभी नहीं है ईश्वर निर्गुण है ॥ २ ॥ हे सुमहाभाग! श्रीमन्नारायणके गणनमें ये महासंशय हमको उत्पन्न भयोहै, सो आप याको दूर करवेकूं योग्य हो ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे महाराज! श्रीहरिको अद्भुत चरित्र बहुत सुंदर तुमने पूछो जहां भागवतको

8

माहात्म्य है, वो भगवानकी भक्तिको बढावनवारो है ॥ ४ ॥ यह परम पुण्यमय गाथा श्रीनारदआदि ऋषियोंने गायो है सो श्रीवेदाचार्य वेदप्रवर्तक व्यासजीको नमस्कार कर श्रीहरिकी कथा कहै है[1] ॥ ५ ॥ जो कोई जीभ प्राप्त होय कर कीर्तनयोग्य श्रीविष्णुको कीर्तन नहीं करै, वो मोक्षकी सीढीको पायकरभी वापे नांय चढै, वो दुष्टबुद्धिवारो है ॥ ६ ॥ तातें श्रीगोविंदको माहात्म्य आनंदरससहित सुंदर है जो याको सुने कीर्तन करै वो

गीयते परमं पुण्यमृषिभिर्नारदादिभिः ॥ नत्वा कृष्णाय मुनये कथयिष्ये हरेः कथाम् ॥ ५ ॥ जिह्वां लब्ध्वापि यो विष्णुं कीर्तनीयं न कीर्तयेत् ॥ लब्ध्वापि मोक्षनिःश्रेणीं स नारोहति दुर्मतिः ॥ ६ ॥ तस्मात् गोविन्दमाहात्म्यमानन्दरससुन्दरम् ॥ शृणुयात्कीर्तयेन्नित्यं स कृतार्थो न संशयः ॥७॥ तस्माद्धीमान्कथां पुण्यां गोविन्दचरितान्विताम्॥ महापुण्यप्रदां यस्माच्छृणुष्व नृपसत्तम ॥ ८॥ निर्गुणोऽपि ह्यजोऽव्यक्तो भगवान् प्रकृतेः परः ॥ स्वमायागुणमाविश्य बाध्यबाधकतां गतः ॥९॥ सत्त्वं रजस्तम इति प्रकृतेर्नात्मनो गुणाः ॥ न तेषां युगपद् राजन् ह्रास उल्लास एव वा॥१०॥

कृतार्थ है, यामें संदेह नहीं है ॥ ७ ॥ तातैं बुद्धिवान् श्रीगोविंदके चरित्रोंसे भरी भई पुण्यदायक कथाको सुनै हे नृपसत्तम! वो महापुण्यकी देवेवारी है ॥ ८ ॥ अजन्मा निर्गुण अप्रकट प्रकृतीसे परेभी भगवान् है तोभी अपनी मायाके गुणमें प्रवेश कर बाध्यबाधकभावको प्राप्त होय है ॥९॥ हे राजन्! सतोगुण रजोगुण तमोगुण ये प्रकृतीके गुण हैं कुछ आत्माके नांय हैं, तिनमें एक संग कभी कोई गुण बढजाय है कभी घट जाय है॥१०॥

---

[1] शंका–राजा परीक्षित्से श्रीशुकदेवजीने कहा कि व्यासजीको नमस्कार करके हरिकी कथा अब मैं कहूंगा, इस बातके कहनेसे यह विदित होताहै कि सात स्कन्धसे पहिले जो छैः स्कन्ध वर्णन किये उनमें हरि भगवान्की कथा नहीं है ?

उत्तर–श्रीशुकदेवजीने ऐसा विचार करके राजा परीक्षितसे नहीं कहाथा, कि छैः स्कन्धमें भगवान् हरिकी कथा नहीं है, अब हरि भगवान्की कथा मैं कहता हूं, श्रीशुकदेवजीने जान लिया कि प्रह्लादकी रक्षा करनेके लिये हरि भगवान् नृसिंहका रूप धरके प्रगट होंगे, शास्त्रमें सिंहका नाम हरि है इसलिये शुकदेवजीने कहाथा, कि हे राजन्! हरि जो सिंहरूप भगवान है उन हरि भगवान्की कथा अब मैं कहताहूं, श्रीशुकदेवजी महाराजने ऐसा कहाथा ॥

जयके समय सतोगुण बढकर देवऋषीनकों बढावै है, पराजयके समय रजो गुण बढकरकै असुरनको बढावै है तामसगुण बढकर यक्षराक्षस बढै है, जो जो काल जैसो होय है तैसे आप होय है ॥ ११ ॥ जैंसे अग्नि एक रूप है परन्तु काष्ठादि भेदसैं अनेक प्रकारका प्रतीत होताहै ऐसेही परमात्मा एक हैं परन्तु देव दैत्य राक्षसादिमें अनेक रूपसै दीखते हैं तथापि देवतादिकौंके विग्रहसै-प्रत्यक्ष पृथक् नहीं प्रतीत होते आत्मामें स्थित आत्माकों मथन कर कविलोग हृदयमें दर्शन करै हैं ॥ १२ ॥ जैसे भूमियोंके भागोंके संयोगसे मीठो खारी मैलो जल हो जाय है तैसे मायाके संगसें सतोगुण आदि भेदत्रयभावयुक्त परमेश्वर पुरुष होय हैं ॥ १३ ॥ जासमय इन पुरुषकी रचवेकी इच्छा होय है तब अलग अपनी मायाकरकै रजसें

जयकाले तु सत्त्वस्य देवर्षीन् रजसोऽसुरान् ॥ तमसो यक्षरक्षांसि तत्कालानुगुणोऽभजत् ॥ ११ ॥ ज्योतिरादिरि-
वाभाति संघातान्न विविच्यते ॥ विदन्त्यात्मानमात्मस्थं मथित्वा कवयोऽन्ततः ॥ १२ ॥ भूभागसंयोगभवं यथा
स्यान्मृष्टं जलं क्षारमथाविलं च ॥ मायाप्रसङ्गात्पुरुषस्तथात्मा सत्त्वादिभेदत्रयभावयुक्तः ॥ १३ ॥ यदा सिसृक्षुः पुर
आत्मनः परो रजः सृजत्येव पृथक् स्वमायया ॥ सत्त्वं विचित्रासु रिरंसुरीश्वरः शयिष्यमाणस्तम ईरयत्यसौ ॥ १४ ॥
कालं चरन्तं सृजतीश आश्रयं प्रधानपुंभ्यां नरदेव सत्यकृत् ॥ य एष राजन्नपि काल ईशिता सत्त्वं सुरानीकमिवैधय-
त्यजः॥१५॥तत्प्रत्यनीकानसुरान् सुरप्रियो रजस्तमस्कान् प्रमिणोत्युरुश्रवाः ॥ प्रवर्धमानेन तमोगुणेन यः संवर्द्धतेऽ-
सौ खलु यक्षराक्षसान्॥१६॥अत्रैवोदाहृतः पूर्वमितिहासः सुरर्षिणा ॥ प्रीत्या महाक्रतौ राजन् पृच्छतेऽजातशत्रवे॥१७॥

परै देहरूप पुर रचै है, जब विचित्र पुरीयोंमें रमण करवेकी इच्छा मनमें होय हैं तब सतोगुणी होय हैं, जब शयनकी इच्छा होय है तब तमोगुणको अधिक करते हैं ॥ १४ ॥ हे नरदेव ! प्रधानपुरुषसैं सत्य कर्त्ता ईश्वर सबके आश्रय कालकूं रचते है, हे राजन् ! जो ये कालके ईश्वर सतोगुणके वृद्धिके समय देवनको रचकर बढावै हैं ॥ १५ ॥ देवप्रिय महायशस्वी ईश्वर देवनके शत्रु असुरनको रजोगुणके समय बढायकै मारते हैं, यही ईश्वर निश्चयकरकै तमोगुण बढायकर यक्ष राक्षसोंको बढावते हैं संहार करते हैं ॥ १६ ॥ हे राजन् ! एक समय राजसूयमें अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरने ऐसेई प्रश्न कीनो तब प्रीत करकैं श्रीनारदजीने ये इतिहास कह्यो हो ॥ १७ ॥

राजसूय यज्ञमैं महाअद्भुत राजा युधिष्ठिरने देखो कि वासुदेव भगवानमें शिशुपाल सायुज्य मोक्षको प्राप्त होते भये ॥ १८ ॥ वा समय सब मुनीनके सुनते भए राजा पांडुसुत विस्मय मनकर बैठे भए नारद ऋषिसें पूछते भए ॥ १९ ॥ श्रीयुधिष्ठिर बोले कि परमतत्त्व श्रीवासुदेवमें विद्वेषी शिशुपालकी प्राप्ती ये परम एकांतिभक्तोंकोभी अतिदुर्लभ है ॥ २० ॥ हे मुने ! सब हम या बातकी सुनवेकी इच्छा करै हैं कि भगवानकी निंदासें राजा वेनको ब्राह्मणोंनें नरकमें पटक दीनोहो ॥ २१ ॥ और अभीकी वार्ता है कि दमघोषको सुत पापी शिशुपाल बालकपनसे लेकै गोविंदसें क्रोध वैर

दृष्ट्वा महाद्भुतं राजा राजसूये महाक्रतौ ॥ वासुदेवे भगवति सायुज्यं चेदिभूभुजः ॥ १८ ॥ तत्रासीनं सुरऋषिं राजा पाण्डुसुतः क्रतौ ॥ पप्रच्छ विस्मितमना मुनीनां शृण्वतामिदम् ॥ १९ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ अहो अत्यद्भुतं ह्येतद् दुर्लभैकान्तिनामपि ॥ वासुदेवे परे तत्त्वे प्राप्तिश्चैद्यस्य विद्विषः ॥२०॥ एतद् वेदितुमिच्छामः सर्व एव वयं मुने ॥ भगवन्निन्दया वेनो द्विजैस्तमसि पातितः ॥२१॥ दमघोषसुतः पाप आरभ्य कलभाषणात् ॥ संप्रत्यमर्षी गोविन्दे दन्तवक्रश्च दुर्मतिः ॥२२ ॥ शपतोरसकृद् विष्णुं यद् ब्रह्म परमव्ययम् ॥ श्वित्रो न जातो जिह्वायां नान्धं विविशतुस्तमः ॥२३॥ कथं तस्मिन् भगवति दुरवग्राहधामनि ॥ पश्यतां सर्वलोकानां लयमीयतुरञ्जसा ॥ २४॥ एतद् भ्राम्यति मे बुद्धिर्दीपार्चिरिव वायुना ॥ ब्रूह्येतदद्भुततमं भगवांस्तत्र कारणम् ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राज्ञस्तद्वच आकर्ण्य नारदो भगवानृषिः ॥ तुष्टः प्राह तमाभाष्य शृण्वन्त्यास्तत्सदः कथाः ॥ २६ ॥

राखतो हौ और दुर्मति दंतवक्रभी निंदा करतोहो ॥ २२ ॥ वारंवार साक्षात् अविनाशी परब्रह्म विष्णुको गारी देतो हो, वाकी जीभमैं कोढभी तो नाय भई, और नरकमेंभी नहीं गयो ॥ २३ ॥ जाको स्वरूप जानौ न जाय तिन भगवानमें सबके देखते देखते कैसे लीन हो गयो ॥ २४ ॥ या प्रसंगमें हमारी बुद्धि बहुत घूमै हैं जैसे दीपकी लोय पवनसे घूमें या बातकों मोंसे कहो आपही या बातके जानवेमें कारण हो ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि श्रीनारद ऋषि राजा युधिष्ठिरको ये वचन सुनके प्रसन्न होयकर वा सब सभाके सभासदोंको सुनाते भए सुंदर कथा कहिते भए ॥ २६ ॥

श्रीनारदजी बोले कि हे राजन्! निंदा स्तुति सत्कार तिरस्कार इत्यादि जिसके किये हुए माने जाते हैं वह देह प्रकृति पुरुषके अज्ञानसै कल्पित है ॥ २७ ॥ हे पार्थिव! हिंसा अभिमान दंड कठोर बात कहिनी मेरो मै हूं ये बातै तो संसारी जीवोंमें है परमेश्वरमें नहीं है ॥२८॥ जा निमित्तसे यानै अभिमान मानौ है वाही निमितसें प्राणीनकों है, ईश्वरमें यह वार्ता नहीं कारण कि ईश्वर सबको आत्मा है वे देहाभिमानहीन है और इसी कारण उनमें विषमता नही दैत्यौंका वध करनाभी उनके ऊपर कृपाही है वह सबकै शास्ता हैं किसीकी निंदा करनैसै उनमें विषमता नही होती भगवान् जो चाहैं सो करै "यापर एक दृष्टांत है कि कोई गरीब ब्राह्मण निर्धन एक मंदिरमें बैठ रामायणकी कथा रामजीको सुनातो हो, वहां राम लक्ष्मण हनुमान तीन प्रतिमा हतीं, सो कोई सुनवेको न आवै, महा अभिमानी क्रोधी मदांध एक वैश्य कदी कदी दर्शनको आवै सो एकदिन वा बनियाके सामने रामचंद्र हनुमानसें बोले कि याकी कथा पूरी ह्वै चली कितनी भेट चढैगी; तब हनुमान बोले एक हज्जार रूपा चढैगो बनिया व्योपारी ये सुन शीघ्र

नारद उवाच ॥ निन्दनस्तवसत्कारान्यक्कारार्थं कलेवरम् ॥ प्रधानपरयो राजन्नविवेकेन कल्पितम् ॥ २७ ॥ हिंसा तदभिमानेन दण्डपारुष्ययोर्यथा ॥ वैषम्यमिह भूतानां ममाहमिति पार्थिव ॥ २८ ॥ यन्निबद्धोऽभिमानोऽयं तद्वधात् प्राणिनां वधः ॥ तथा न यस्य कैवल्यादभिमानोऽखिलात्मनः ॥ परस्य दमकर्तुर्हि हिंसा केनास्य कल्प्यते ॥२९॥ तस्माद्वैरानुबन्धेन निर्वैरेण भयेन च ॥ ३० ॥

वा ब्राह्मणसे कही तुह्मारी कथा कोई सुने तो है नाय रूपा कौन चढावैगो, मै तुह्मारी भेटको ठेको पांचसो रूपा लाऊं, ब्राह्मण बोलो बहुत अच्छी जिजमान यू कहि समातिके दिन पांचसो रूपा भेट चढाय कहीं हजारतों आए नाए बडी देर भई सो क्रोधके मारे हनुमानके पास जाय बोलो देवताभीं झूठ बोलै है यह कह लात सारी सो हनुमानजीने टांग पकडलीनी फेर तीन प्रहर पीछै रामजी बोले कथा पूरी भई तब वो हनुमान बोले कि पाचसो तो आय गए है पांचसोमें वनियाकी टांग पकडराखी है, रूपा दैगो तो छोडोंगी नाय तौ नाय तो बनियां बोलो जि कहा उनने कही कि हम देवता तो भावके भूखे है धन तुह्मी लोग देवो हो, बनियां पाचसो और भेट चढाय घर गयो कथा पूरीभई यासे अभिमान धनमें न करै यूं नारदजी बोले" ॥२९॥ जौ सबके दमत करवेंवारे है वे परमेश्वर काऊकी निंदा नहीं करै न मारै हैं ताते वैरसे निर्वैरसै भयसें श्रीहरिकों भजै शुभ होय है ॥ ३० ॥

चाहे स्नेहसें कामसें भजे कोई उपायसें भजे तोहू ईश्वर शुभगति दे हैं जैसो कुछ वैरभावसै शीघ्र जीव तिनमें लीन होजाय है ॥ ३१ ॥ तैसो भक्तियोगसे नही ये हमारी निश्चय मति है, जैसै एक कीडाको पकडकर भृंगी जीव लै जावे हैं सो डरके मारे वाहीको स्मरण करै है वाहीको रूप होजाय है ॥ ३२ ॥ ऐसेही क्रोधसे भयसे तिनकी समान भावको जीव प्राप्त हो जाय है, ऐसे श्रीकृष्ण भगवान् मायाकरकै जिन्होंने मनुष्यको अवतार लीनों है तिनमें ॥ ३३ ॥ वैर करकै पापी पवित्र भए उनकी चिंता करकै उनमें लीन होते भए, कामसें वैरसे भयसें स्नेहसें जैसी भक्तिसें ईश्वरमें मन लगावै ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णमैं मन लगायकर वहुत प्राणी उनकी गतिको गए गोपी तो कामसें ईश्वरमें पहुची कंस भयसे मुक्त होगयो शिशुपाल आदि नृप

स्नेहात् कामेन वा युञ्ज्यात् कथंचिन्नेक्षते पृथक् ॥ यथा वैरानुबन्धेन मर्त्यस्तन्मयतामियात् ॥३१॥ न तथा भक्तियोगेन इति मे निश्चिता मतिः ॥ कीटः पेशस्कृता रुद्धः कुड्यायां तमनुस्मरन् ॥ ३२ ॥ संरम्भभययोगेन विन्दते तत्स्वरूपताम् ॥ एवं कृष्णे भगवति मायामनुज ईश्वरे ॥३३॥ वैरेण पूतपाप्मानस्तमीयुरनुचिन्तया ॥ कामाद् द्वेषाद् भयात् स्नेहाद् यथा भक्त्येश्वरे मनः ॥ ३४ ॥ आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्गतिं गताः ॥ गोप्यः कामाद्भयात्कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः ॥ ३५ ॥ संबन्धाद्वृष्णयः स्नेहाद्यूयं भक्त्या वयं विभोः ॥ कतमोऽपि न वेनः स्यात् पञ्चानां पुरुषं प्रति ॥ ॥३६॥ तस्मात् केनाप्युपायेन मनः कृष्णे निवेशयेत् ॥ मातृष्वस्रेयो वश्चैद्यो दन्तवक्त्रश्च पाण्डव ॥ ३७ ॥ पार्षदप्रवरौ विष्णोर्विप्रशापात् पदाच्च्युतौ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ कीदृशः कस्य वा शापो हरिदासाभिमर्शनः ॥ ३८ ॥

वैर करनेसे ईश्वरमें लीन भए ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्णसें संबंध व्याह आदिसे यादव भगवल्लोकको गये हे युधिष्ठिरादिक हो ! आप सब स्नेहसे मुक्त भए विभूकी भक्तिसे हम मुक्त भए, इन सब पांचनमे राजा वेनु तो कुछभी नही हो, वाकी का बात हैं ॥ ३६ ॥ हे पांडव ! तातें कोई उपाय करकै श्रीकृष्णमें मन लगावै तुह्मारो फूफीको पुत्र शिशुपाल और दंतवक्त्र ॥ ३७ ॥ ये दोनों विष्णुको पार्षदोंमें श्रेष्ठ हे, सो विप्रोंके शापसें अपनें स्थानसे गिरपडै, युधिष्ठिरजी बोलै कि श्रीभगवानके दासनको वो शाप कैसै भयो ॥ ३८ ॥

या बातमें हमको कुछ विश्वास नहीं आवै हैं कि श्रीहरिके एकांती भक्तनको जन्म कैसे, वैकुंठ पुरके वासी तो देह इंद्रिय प्राणरहित है, वे सब अप्राकृत हैं ॥ ३९ ॥ विनके देह मायाके नहीं है, सो मायाके देहसंबंध कैसे भए, ये तुम कहो, श्रीनारजी बोले कि एक समय ब्रह्माके पुत्र सनकादिक अपनी इच्छासें विष्णुलोकको जातेभए ॥ ४० ॥ त्रिलोकीमें विचरते भए सनन्दनआदि मुनि वैकुंठमें गए, पांच छै वर्षके बालक है, जो पहिलेसे जन्मे हें वे उन सबसे पहिलेके है ॥ ४१ ॥ दिगंबर वेषधारी नग्न उन बालकौंको भगवानके द्वारवासी जय विजय पार्षद मने करते भए, तो उ-

अश्रद्धेय इवाभाति हरेरेकान्तिनां भवः॥ देहेन्द्रियासुहीनानां वैकुण्ठपुरवासिनाम् ॥ ३९ ॥ देहसंबन्धसंबद्धमेतदाख्यातुमर्हसि ॥ नारद उवाच ॥ एकदा ब्रह्मणः पुत्रा विष्णोर्लोकं यदृच्छया ॥ ४० ॥ सनन्दनादयो जग्मुश्चरन्तो भुवनत्रयम् ॥ पञ्चषड्हायनार्भाभाः पूर्वेषामपि पूर्वजाः ॥ ४१ ॥ दिग्वाससः शिशून् मत्वा द्वास्थौ तान् प्रत्यषेधताम् ॥ अशपन् कुपिता एवं युवां वासं नचार्हथः ॥ ४२ ॥ रजस्तमोभ्यां रहिते पादमूले मधुद्विषः ॥ पापिष्ठामासुरीं योनिं बालिशौ यातमाश्वतः ॥४३॥ एवं शप्तौ स्वभवनात् पतन्तौ तैः कृपालुभिः ॥ प्रोक्तौ पुनर्जन्मभिर्वां त्रिभिर्लोकाय कल्पताम् ॥ ४४ ॥ जज्ञाते तौ दितेः पुत्रौ दैत्यदानववन्दितौ ॥ हिरण्यकशिपुर्ज्येष्ठो हिरण्याक्षोऽनुजस्ततः ॥ ४५ ॥ हतो हिरण्यकशिपुर्हरिणा सिंहरूपिणा ॥ हिरण्याक्षो धरोद्धारे बिभ्रता सौकरं वपुः ॥ ४६ ॥

न्होंने कुपित होयकै शाप दीनो कि तुम वैकुंठके बसवे लायक नहीं हो ॥ ४२ ॥ भगवानके चरणकमल रज तमसें रहित हैं तुम महा पार्षदोंको तमोगुण आयो, हे मूर्खौं ! यातें शीघ्र आसुरीयोनियोंको प्राप्त होओ ॥ ४३ ॥ जब उन कृपालुओंने ऐसै शाप दीनो सो दोनो वे गिरे, तीन जन्म या लोकमें रहै ॥ ४४ ॥ दैत्य दानवोंसें वंदित दितिके पुत्र हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु दो भए, इनमें हिरण्यकशिपु बडे हैं हिरण्याक्ष छोटो ॥ ४५ ॥ सो नरसिंहरूप श्रीहरिने धारणकर हिरण्यकशिपुकों मार्‍यो, और या धरतीके उद्धारती विरिया श्रीवाराहरूप धार हिरण्याक्षकों मार्‍यो ॥ ४६ ॥

हिरण्यकशिपु केशवको प्यारे प्रह्लाद पुत्रको मारवेको मृत्युके हेतु नाना प्रकारकी पीडा देतो भयो ॥ ४७ ॥ सम्पूर्ण प्राणीमात्रके आत्मस्वरूप शांत
सब ठौर ब्रह्म दृष्टि रखनेवाले भगवानके तेज युक्त प्रल्हादके वध करनेके उसने अनेक उपाय किये परन्तु मार न सका ॥ ४८ ॥ वेही दोनों केशि-
नीमें राक्षस होय जन्मे विश्रवाके पुत्र रावण कुंभकर्ण भए सर्व लोकके ताप देवेवारे होते भए ॥ ४९ ॥ तहांभी श्रीराघव रूप होयकर शाप छुडा-
यवेको उन्हे मारते भए हे प्रभो ! मार्कंडेयजीके मुखसे आप रामचरित्र सुनोगे ॥ ५० ॥ वेही दोनो तुम्हारे फूफीके पुत्र होयकर क्षत्री भए है, अबकी

हिरण्यकशिपुः पुत्रं प्रह्लादं केशवप्रियम् ॥ जिघांसुरकरोन्नाना यातना मृत्युहेतवे ॥ ४७ ॥ सर्वभूतात्मभूतं तं प्रशा-
न्तं समदर्शनम् ॥ भगवत्तेजसा स्पृष्टं नाशक्नोत् हन्तुमुद्यमैः ॥ ४८ ॥ ततस्तौ राक्षसौ जातौ केशिन्यां विश्रवस्सुतौ ॥
रावणः कुम्भकर्णश्च सर्वलोकोपतापनौ ॥ ४९ ॥ तत्रापि राघवो भूत्वा न्यहनच्छापमुक्तये ॥ रामवीर्यं श्रोष्यसि
त्वं मार्कण्डेयमुखात् प्रभो ॥ ५० ॥ तावेव क्षत्रियौ जातौ मातृष्वस्रात्मजौ तव ॥ अधुना शापनिर्मुक्तौ कृष्णच-
क्रहतांहसौ ॥ ५१ ॥ वैरानुबन्धतीव्रेण ध्यानेनाच्युतसात्मताम् ॥ नीतौ पुनर्हरेः पार्श्वं जग्मतुर्विष्णुपार्षदौ ॥ ५२ ॥
युधिष्ठिर उवाच ॥ विद्वेषो दयिते पुत्रे कथमासीन्महात्मनि ॥ ब्रूहि मे भगवन् येन प्रह्लादस्याच्युतात्मता ॥ ५३ ॥
इति श्रीभागवते म० सप्तमस्कन्धे जयविजयत्रिजन्मवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ भ्रातर्येवं
विनिहते हरिणा क्रोडमूर्तिना ॥ हिरण्यकशिपू राजन् पर्यतप्यद् रुषा शुचा ॥ १ ॥

समयभी शापसे छूटनेके लिये श्रीकृष्णजीके चक्रसे मरकर पापरहित हुए हैं ॥ ५१ ॥ तीव्र वैर करनेसे ध्यानसे भगवतकी समानताको प्राप्त भए,
फेर विष्णु पार्षद श्रीहरिके पास जायपहुचे ॥ ५२ ॥ श्रीयुधिष्ठिरजी बोले कि हे भगवन्! हिरण्यकशिपुने प्यारे पुत्र महात्मामें कैसें विद्वेष कीनो
प्रह्लादजी तो श्रीअच्युतमें चित्त राखते हे सो मोसे प्रह्लादचरित्र कहो ॥ ५३ ॥ इति श्रीम० भाषायां सप्तमस्कन्धे जयविजयत्रिजन्मवर्णनं नाम प्रथ-
मोऽध्यायः ॥१॥ श्रीनारदजी बोले कि हे राजन्! श्रीवाराहरूपधारी श्रीहरिने मेरे भाईकों मारचो ये सुन क्रोधकर हिरण्यकश्यप शोक करतो भयो॥१॥

आह चेदं रुषा घूर्णः संदष्टदशनच्छदः ॥ कोपोज्ज्वलद्भ्यां चक्षुर्भ्यां निरीक्षन् धूम्रमम्बरम् ॥ २ ॥ करालदंष्ट्रोऽग्रदष्ट्या दुष्प्रेक्ष्यभ्रुकुटीमुखः ॥ शूलमुद्यम्य सदसि दानवानिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥ भो भो दानवदैतेया द्विमूर्धन् त्र्यक्ष शम्बर ॥ शतबाहो हयग्रीव नमुचे पाक इल्वल ॥ ४ ॥ विप्रचित्ते मम वचः पुलोमन् शकुनादयः ॥ शृणुतानन्तरं सर्वे क्रियतामाशु मा चिरम् ॥ ५ ॥ सपत्नैर्घातितः क्षुद्रैर्भ्राता मे दयितः सुहृत् ॥ पार्ष्णिग्राहेण हरिणा समेनाप्युपधावनैः ॥ ६ तस्य त्यक्तस्वभावस्य घृणेर्मायावनौकसः ॥ भजन्तं भजमानस्य बालस्येवास्थिरात्मनः ॥ ७ ॥ मच्छूलभिन्नग्रीवस्य भूरिणा रुधिरेण वै ॥ रुधिरप्रियं दर्पयिष्ये भ्रातरं मे गतव्यथः ॥ ८ ॥ तस्मिन् कूटेऽहिते नष्टे कृत्तमूले वनस्पतौ ॥ विटपा इव शुष्यन्ति विष्णुप्राणा दिवौकसः ॥ ९ ॥ तावद् यात भुवं यूयं विप्रक्षत्रसमेधितान् ॥ सूदयध्वं तपोयज्ञस्वाध्यायव्रतदानिनः ॥१०॥ विष्णुर्द्विजक्रियामूलो यज्ञो धर्ममयः पुमान् ॥ देवर्षिपितृभूतानां धर्मस्य च परायणम् ॥ ११ ॥

क्रोधसे जाके नेत्र घूमै, दांतनसों होटनकों पीस, कोपसे जरते भए नेत्रोंसे धूंधरे आकाशकों देखते ये बोलै ॥ २ ॥ उसकी कराल डाढासे उग्र दृष्टियुक्त भ्रुकुटीयुक्त मुखके सामने कोई नहीं देख सक्ता था वह सभामें शूल उठायकर दानवनसे ये बोलै ॥ ३ ॥ हे दानव दैतैयहो ! हे दो मूडवारे हे तीन आंखवारे हे शंवर हे शतबाहो हे हयग्रीव हे नमुचे हे पाक हे इल्वल ॥ ४ ॥ हे विप्रचित्ते हे पुलोमन् हे शकुनादिकहो ! मेरो वचन सुनो जो मै कहूं सो करो देर मतकरो ॥ ५ ॥ मेरे शत्रुनने युद्धमें मेरो प्यारो भैया मारडारो, एक विष्णुको आसरो लेकर इंद्रने सब करो, कुछ थोरोसो वाको भजन कीनो ॥ ६ ॥ बुरे सुभाववारे निर्दयी वनशूकर है, जो वाको भजै है वाकों वोभी भजैहै, बालककी नाई वाको आत्मा चंचल है ॥ ७ ॥ अपने शूलसे वाकी गर्दन काटकर उसके रुधिर समूहसे रुधिर प्रिय भ्राताको तर्पणकर सब व्यथासे निचंत होऊगो ॥ ८ ॥ कपटी विष्णु जब नष्ट हो जायगो, तो जैसे वनस्पतिके मूल कटैसै वृक्ष सूखजाय तैसे विष्णुके प्राण वे देवताभी आप नष्ट हो जायगे ॥ ९ ॥ तबतक तुम सब ब्राह्मण क्षत्रियोंसे बढी भई भूमीपर जाओ, तप यज्ञ वेदपाठ व्रत दान करवेवारेनको मारो ॥ १० ॥ विष्णु ब्राह्मणोंकी क्रियामें है, यज्ञधर्ममय पुरुष है,

16

देवता ऋषि पितर भूत धर्म इन सबको परायण विष्णु है ॥ ११ ॥ जहां जहां ब्राह्मण गौ वेद वर्णाश्रमके धर्मके कर्ता कर्मकांडी होंय उन उन देशनको जराओ और सबनकों मारो ॥ १२ ॥ ऐसें भर्ताकी आज्ञा शिरसे आदरते मान तैसेंई प्रजानको नाश करवेवारे नाश करते भए ॥ १३ ॥ पुर ग्राम व्रज वन क्षेत्र बाग आश्रम खान किसानोके गांव पर्वत तटके ग्राम शेहर सबको जराते भए ॥ १४ कोई तो कुदारोसे सेतु प्राकार गोपुर तोडते भए, कोई फरसा लिये आजीविकावारे वृक्षोंको काटते भए ॥ १५ ॥ असुर सब प्रजानके घरौंको जरी भई लकडियानसें जराते भए, वेही राक्षस कलियुगमें मनुष्योंके जन्म लेकैं सद्वैदिक धर्मौंकी निंदा करते हैं ॥ १६ ॥ दैत्येंद्रके राक्षसोंने जब ऐसे सब लोकनके तिरस्कार कीनै तब अलक्षित

यत्र यत्र द्विजा गावो वेदा वर्णाश्रमाः क्रियाः ॥ तं तं जनपदं यात संदीपयत वृश्चत ॥ १२ ॥ इति ते भर्तृनिर्देशमादाय शिरसादृताः ॥ तथा प्रजानां कदनं विदधुः कदनप्रियाः ॥ १३ ॥ पुरग्रामव्रजोद्यानक्षेत्रारामाश्रमाकरान् ॥ खेटखर्वटघोषांश्च ददहुः पत्तनानि च ॥ १४ ॥ केचित् खनित्रैर्बिभिदुः सेतुप्राकारगोपुरान् ॥ आजीव्यांश्चिच्छिदुर्वृक्षान् केचित् परशुपाणयः ॥ १५ ॥ प्रादहञ्छरणान्यन्ये प्रजानां ज्वलितोल्मुकैः ॥ त एव मनुजा भूत्वा निन्दन्ति वैदिकान्सदा ॥ १६ ॥ एवं विप्रकृते लोके दैत्येन्द्रानुचरैर्मुहुः ॥ दिवं देवाः परित्यज्य भुवि चेरुरलक्षिताः ॥ १७ ॥ हिरण्यकशिपुर्भ्रातुः संपरेतस्य दुःखितः ॥ कृत्वा कटोदकादीनि भ्रातृपुत्रानसान्त्वयत् ॥ १८ ॥ शकुनिं शम्बरं धृष्टं भूतसंतापनं वृकम् ॥ कालनाभं महानाभं हरिश्मश्रुमथोत्कचम् ॥ १९ ॥

होयकर देवता स्वर्गको त्याग भूमिमें विचरते भए ॥ १७ ॥ हिरण्यकशिपु मरे भाईकी दाहादि क्रिया तर्पणकर भाईके पुत्रनको सांतवन करते भए “ तापर ये दृष्टांत है कि जैसै एक वणिया अपनी वनेनीको सांतवन करत भयो, एक वणिया वनैनीके छोरी भई वाको नाम फजीती धरते भए, कोई समय दैवयोगसें वो छोरी मरगई तब लुगाई रोयवे लगी हाय फजीती मरगई; हाय फजीती हाय फजीती, ये रोवणो सुन वनिया आयो, रोती लुगाईसे बोलो कि रोवे मत हम तू जीते रहैंगे तो बहुतेरी फजीती होयगी, ऐसे कहि सांत्वना करतो भयो ॥ १८ ॥ शकुनि शंबरासुर धृष्ट भूतसंतापन वृक कालनाम हरिश्मश्रु महानाभ और उत्कच ॥ १९ ॥

नाम अपने भाईके पुत्रोंसे तथा उनकी माता रुषाभानु और अपनी माता दितिको मनोहर वाणीसे समझाकर देशकालके जानवेवारे सब असुरजनोंके ईश्वर ये बोले ॥ २० ॥ हिरण्यकशिपु बोले कि हे अंब वधू हे पुत्रो! वा वीरके शोक करवेको आप योग्य नहीं हो, शत्रुके सामनेही शूरनको वध श्लाघनीय है, या बातकों हम बहुत चाहै हैं ॥ २१ ॥ हे सुव्रत! भूतनको जो या संसारमे संग है, सो ऐसो है जैसे प्याऊपर जलपी पीकर सब चले जाय तैसें सब जांय है ॥ २२ ॥ नित्य अविनाशी अव्यय शुद्ध सर्वगत सबको वेत्ता परेसें परे परमेश्वर माया करके गुणनको त्याग कर सबके आत्मानके स्वरूपनको धारै हैं ॥ २३ ॥ जैसे कोई जलमें नावपर वैठके चलै, वाको तीरके सब वृक्ष चलते मालूम पडे है जैसे कोई घूमै है वाके नेत्र घूमनेसे

तन्मातरं रुषाभानुं दितिं च जननीं गिरा ॥ श्लक्ष्णया देशकालज्ञ इदमाह जनेश्वरः ॥२०॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥
अम्बाम्ब हे वधूः पुत्रा वीरं माऽर्हथ शोचितुम् ॥ रिपोरभिमुखे श्लाघ्यः शूराणां वध ईप्सितः ॥ २१ ॥ भूतानामिह
संवासः प्रपायामिव सुव्रते ॥ दैवेनैकत्र नीतानामुन्नीतानां स्वकर्मभिः ॥ २२ ॥ नित्य आत्माऽव्ययः शुद्धः सर्वगः
सर्ववित् परः ॥ धत्तेऽसावात्मनो लिङ्गं मायया विसृजन् गुणान् ॥ २३ ॥ यथाम्भसा प्रचलता तरवोपि चला इव ॥
चक्षुषा भ्राम्यमाणेन दृश्यते चलतीव भूः ॥ २४ ॥ एवं गुणैर्भ्राम्यमाणे मनस्यविकलः पुमान् ॥ याति तत्साम्यतां
भद्रे ह्यलिङ्गो लिङ्गवानिव ॥ २५ ॥ एष आत्मविपर्यासो ह्यलिङ्गे लिङ्गभावना ॥ एष प्रियाप्रियैर्योगो वियोगः
कर्मसंसृतिः ॥२६॥ संभवश्च विनाशश्च शोकश्च विविधः स्मृतः ॥ अविवेकश्च चिन्ता च विवेकस्मृतिरेव च ॥२७॥
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ यमस्य प्रेतबन्धूनां संवादं तं निबोधत ॥ २८ ॥

भूमी घूमती चलती दीखै है ॥२४॥ हे भद्रे! मनमै ऐसे गुणोंके घूमनेसे अविकल पुमान् तिनकी समान भावकों प्राप्त होय है स्वतः ईश्वर शरीर रहित है ॥ २५ ॥ ये आत्माका उलटपलटा होना अशरीरीमें शरीरकी भावना करना ये प्रिय अप्रियपनेको योग वियोग कर्मसे होय है ॥ २६ ॥ उत्पन्न होनो नाश होनो अनेक प्रकारके शोक है अज्ञानाचिंता और स्वरूपका न जानना विवेक स्मृति यह देहाभिमानहीसे होय है ॥ २७ ॥ या प्रसंगमें एक पुरातन इतिहास यमको और प्रेतके पास वैठे भए बंधूनको है वाकों तुम सुनो ॥ २८ ॥

उशीनर देशमें सुयज्ञ नामक राजा होतो भयो शत्रुनने वाको युद्धमें मार्‍यो, जातके वाको सब चारों ओर आय रोवते भए ॥ २९ ॥ रत्नको कवच टूटो, आभरण माला विखरी, बाणोंसे हृदय भिदो शयन करे रुधिर सब शरीरमें लगरह्योहो ॥ ३० ॥ वार विखरे, आंखे निकसी, क्रोधसे दांतसें होठ दाबै, रेतसे मुखकमल ढक रह्यो संग्राममें आयुधसे भुजा कटी ॥ ३१ ॥ विधाताको मार्‍यो उशीनरेंद्र अपने पतिको ताकी महाराणियें देख दुखी हो हे नाथ! हम मरी ऐसे हाथसें छाती कूटती भई, तिनके पदमें पडती भई ॥ ३२ ॥ प्यारेके चरणकमलकों कुचकी कुंकुमसे लगते भए आंसुनसे सी-

उशीनरेष्वभूद्राजा सुयज्ञ इति विश्रुतः ॥ सपत्नैर्निहतो युद्धे ज्ञातयस्तमुपासत ॥ २९ ॥ विशीर्णरत्नकवचं विभ्रष्टाभरणस्रजम् ॥ शरनिर्भिन्नहृदयं शयानमसृगाविलम् ॥ ३० ॥ प्रकीर्णकेशं ध्वस्ताक्षं रभसा दष्टदच्छदम् ॥ रजःकुण्ठमुखाम्भोजं छिन्नायुधभुजं मृधे ॥ ३१ ॥ उशीनरेन्द्रं विधिना तथा कृतं पतिं महिष्यः प्रसमीक्ष्य दुःखिताः ॥ हताः स्म नाथेति करैरुरो भृशं घ्नन्त्यो मुहुस्तत्पदयोरुपापतन् ॥ ३२ ॥ रुदन्त्य उच्चैर्दयिताङ्घ्रिपङ्कजं सिञ्चन्त्य अस्रैः कुचकुङ्कुमारुणैः ॥ विस्रस्तकेशाभरणाः शुचं नृणां सृजन्त्य आक्रन्दनया विलेपिरे ॥ ३३ ॥ अहो विधात्राऽकरुणेन नः प्रभो भवान् प्रणीतो दृगगोचरां दशाम् ॥ उशीनराणामसि वृत्तिदः पुरा कृतोऽधुना येन शुचां विवर्धनः ॥ ३४ ॥ त्वया कृतज्ञेन वयं महीपते कथं विना स्याम सुहृत्तमेन ते ॥ तत्रानुयानं तव वीरपादयोः शुश्रूषतीनां दिश यत्र यास्यसि ॥ ३५ ॥ एवं विलपतीनां वै परिगृह्य मृतं पतिम् ॥ अनिच्छतीनां निर्हारमर्कोऽस्तं संन्यवर्तत ॥ ३६ ॥

चती भई ऊचेसें रोवतीभई केश गहिने विखरे, मनुष्योंको शोक करतीभई रोवती २ बहुत विलाप करतीभई ॥ ३३ ॥ अहो विधाता निर्दयी आपने हमारे प्रभुको दृष्टिसें अलग करे है पहिले जिन उशीनरोंके तुम जीवका देनेहारे थे या समय उनके शोकको बढातेहो ॥ ३४ ॥ हे महीपते ! तुमसरीके कृतज्ञ सुहृद विना हम कहा करेगी हे वीर! अपने चरणकी समीपता बताओ जहा तुम गये हो ॥ ३५ ॥ ऐसै विलाप करती भई मरे पतिको ग्रहण करै बैठी, वाको संस्कार न करनै दिया रोते रोते सूर्य अस्त होगये ॥ ३६ ॥

तब वा मुरदाके पासके बैठेनको रोवनो सुन यमधर्मराज बालक बनकर आयके उनसे बोलै[१] ॥ ३७ ॥ यमराज बोलै हे मनुष्य हो ! ये वृद्धोंको मोह देखो, सब लोकको येही हाल है, जहांसें ये मनुष्य आयो हों वहां गयो, वृथा तुम शोक करोहो ॥ ३८ ॥ हमही तुमसे अत्यंत धन्य हैं, जो मातापिताको त्याग वनमें डोलै है, परंतु काऊकी चिंता नहीं करै है भेडिया इत्यादि हमें कोई नही खाय है जाने गर्भमें रक्षा कीनी ही वोही अब रक्षा करै है ॥ ३९ ॥ जो अविनाशी पुरुष अपनी इच्छा करके या विश्वकूं रचते है, वेही रक्षा करते है, वेही नाश करते है हे स्त्रियो ! वा ईश्वरके

तत्र ह प्रेतबन्धूनामाश्रित्य परिदेवितम् ॥ आह तान् बालको भूत्वा यमः स्वयमुपागतः ॥ ३७ ॥ यम उवाच ॥ अहो अमीषां वयसाधिकानां विपश्यतां लोकविधिं विमोहः ॥ यत्रागतस्तत्र गतं मनुष्यं स्वयं सधर्मा अपि शोचन्त्यपार्थम् ॥ ३८ ॥ अहो वयं धन्यतमा यदत्र त्यक्ताः पितृभ्यां न विचिन्तयामः ॥ अभक्ष्यमाणा अबला वृकादिभिः स रक्षिता रक्षति यो हि गर्भे ॥ ३९ ॥ य इच्छयेशः सृजतीदमव्ययो य एव रक्षत्यवलुम्पते च यः ॥ तस्याबलाः क्रीडनमाहुरीशितुश्चराचरं निग्रहसंग्रहे प्रभुः ॥ ४० ॥ पथि च्युतं तिष्ठति दिष्टरक्षितं गृहे स्थितं तद्विहतं विनश्यति ॥ जीवत्यनाथोऽपि तदीक्षितो वने गृहेऽपि गुप्तोऽस्य हतो न जीवति ॥ ४१ ॥

जीव सब खिलाना है चर अचरके सबके ग्रहण करवेवारे प्रभु ईश्वर है ॥ ४० ॥ जो मार्गमें पडे है भाग्यसे रहित हैं उन्हें कोई मारता नहीं, जिनकी महारक्षा होय है घरमें स्थित है वे मरजाय हैं, जाको कोई मालक नही है वो बनमें सदा आनंद करै है, जाकी घरमें सब रक्षा करै है वो मरजाय है, जीवता नही है ॥ ४१ ॥

---

[१] शंका–प्राणी दुःखी हो चाहै सुखी होय परन्तु तीन लोकमें प्राणियोंको सुख होनेके लिये मुनि लोग उपदेश किया करते थे, ऐसा शास्त्रमें सुना है, परन्तु यमराजने किसीको उपदेश नहीं किया ऐसाभी सुना है, सो यमराजने सुयज्ञकी स्त्रियोंको उपदेश क्यों किया ?

उत्तर–सुयज्ञ राजाकी स्त्री बालावस्थामें यमराजका सेवन करतीथी, इसीलिये रानीको दुःखी देखकर यमराजने रानीके सन्मुख आनकर ज्ञान दिया और सब शोक दूर किया अन्तसमय पतिके लोकको भेज दिया रानी ज्ञान पाकर अपने पतिके पास गई इसलिये यमराजने उसको उपदेश किया ॥

तैसेई सब जीव अपने निजकर्मों करकै समय पायके जन्मते है, कालपाय विनसे है, तहा मायामें स्थित आत्मा है, तोभी मायाके गुणों करकै ईश्वर नहीं बंधे है, जीव बंधनमें आय नष्ट होय है ॥ ४२ ॥ जैसे यो मोहको शरीर भूविकारी घरसें अलग मालूम पडे है, जैसे जलसे जन्मे जलके बबूले पृथिवीसे उत्पन्न घटादि सुवर्णसू उत्पन्न कडाइत्यादि कोई कालमें होय गए है जब उनके विकार न रहे तो सब नाश भए मानै है तैसे जीवकूं जानो ॥ ४३ ॥ जैसै अग्नि काष्ठमें अलग मालूम पडै है, जैसे देहगत पवन पृथक् स्थितसी लगै है, जैसे आकाश सर्वगत है काउमें आसक्त नही होयहै, तैसे ये परमेश्वर पुरुष सब गुणनकै आश्रय होय परेसें परै दीखै है ॥ ४४ ॥ ये राजा सुयज्ञ नही सोवै है, हे मूर्ख हो! जाके पास तुम बैठे रोवो हो जो

भूतानि तैस्तैर्निजयोनिकर्मभिर्भवन्ति काले न भवन्ति सर्वशः ॥ न तत्र ह्यात्मा प्रकृतावपि स्थितस्तस्या गुणैरन्यतमो
निबध्यते ॥४२॥ इदं शरीरं पुरुषस्य मोहजं यथा पृथग् भौतिकमीयते गृहम् ॥ यथोदकैः पार्थिवतैजसैर्जनः कालेन
जातो विकृतो विनश्यति ॥ ४३ ॥ यथाऽनलो दारुषु भिन्न ईयते यथाऽनिलो देहगतः पृथक् स्थितः ॥ यथा नभः सर्व-
गतं न सज्जते तथा पुमान् सर्वगुणाश्रयः परः ॥ ४४ ॥ सुयज्ञो नन्वयं शेते मूढा यमनुशोचथ ॥ यः श्रोता योऽनुवक्तेह
स न दृश्येत कर्हिचित् ॥ ४५ ॥ न श्रोता नानुवक्ताऽयं मुख्योऽप्यत्र महानसुः ॥ यस्त्विहेन्द्रियवानात्मा स चान्यः
प्राणदेहयोः ॥ ४६ ॥ भूतेन्द्रियमनोलिङ्गान् देहानुच्चावचान् विभुः ॥ भजत्युत्सृजति ह्यन्यस्तच्चापि स्वेन तेजसा ॥४७॥
यावल्लिङ्गान्वितो ह्यात्मा तावत्कर्मनिबन्धनम् ॥ ततो विपर्ययः क्लेशो मायायोगोऽनुवर्तते ॥ ४८ ॥

श्रोता या देहमै है जो याको बोलवेवारो है सो कदीभी तुमने न देखो ॥४५॥ न श्रोता है न वक्ता है यामै मुख्य महाप्राण है, जो इंद्रियोंके द्वारा वासना ग्राहक आत्मा है सो तो प्राण देहसे और है ॥ ४६ ॥ यद्यपि आत्मा पृथक् है तथापि प्राण इन्द्रिय और मनके कारण होते हुए भिन्न २ शरीरोंको (मैं हूं) ऐसा जानलेता है जब ज्ञान होताहै तब उसके प्रभावसै मिथ्या अभिमानको त्यागभी देताहै ॥ ४७ ॥ जबतक आत्मामें लिंग शरीरका अभिमान वर्तमान है तबतक उसके कर्म बंधनके हेतु हैं उसी निमित्त शरीरके अधर्म आत्मामें प्रतीत होते हैं सदा क्लेश रहते हैं परन्तु यह विपरीत तो मायामें कल्पित है वास्तवमें नहीं ॥ ४८ ॥

सुखदुःखादि आत्माके धर्म मान्ना असत्य भाव है कारण कि आत्मामें जो इन्द्रिय सम्बन्धी पदार्थ प्रतीत होतेहैं वे सब मनोरथ स्वप्नकी समान मिथ्या हैं ॥ ४९ ॥ जो नित्य अनित्यके विचार करवेवारे है वे नित्यअनित्यको शोच नहीं करै हैं, और शोच करवेवारेनके स्वभावको और तरेहेसें करवेकों कोई समर्थ नही है ॥ ५० ॥ पक्षीनको नाशक कोई एक लुब्धक नामक जीवघाती ईश्वरने रचो हो, सो जाल फैलाय तंडुलोंसो जीवनकी लोभ कराय मारतो भयो ॥ ५१ ॥ सो जिमीकंद खायवेवारो कुलिंगको एक जोडा विचारतो भयो आयो तिनकी कुलिंगी शीघ्र लुब्धकने

वितथोभिनिवेशोऽयं यद्गुणेष्वर्थदृग् वचः ॥ यथा मनोरथः स्वाप्नः सर्वमैन्द्रियकं मृषा ॥ ४९ ॥ अथ नित्यमनित्यं वा नेह शोचन्ति तद्विदः ॥ नान्यथा शक्यते कर्तुं स्वभावः शोचतामिति ॥ ५० ॥ लुब्धको विपिने कश्चित् पक्षिणां निर्मितोऽन्तकः ॥ वितत्य जालं विदधे तत्र तत्र प्रलोभयन् ॥ ५१ ॥ कुलिङ्गमिथुनं तत्र विचरत् समदृश्यत ॥ तयोः कुलिङ्गी सहसा लुब्धकेन प्रलोभिता ॥ ५२ ॥ सासज्जत शिचस्तन्त्यां महिषी कालयन्त्रिता ॥ कुलिङ्गस्तां तथापन्नां निरीक्ष्य भृशदुःखितः ॥ ५३ ॥ स्नेहादकल्पः कृपणः कृपणां पर्यदेवयत् ॥ अहो अकरुणो देवः स्त्रिया करुणया विभुः ॥ ५४ ॥ कृपणं माऽनुशोचन्त्या दीनया किं करिष्यति ॥ कामं नयतु मां देवः किमर्धेनात्मनो हि मे ॥ ५५ ॥ दीनेन जीवता दुःखमनेन विधुरायुषा ॥ कथं त्वजातपक्षांस्तान् मातृहीनान् बिभर्म्यहम् ॥ ५६ ॥ मन्दभाग्याः प्रतीक्षन्ते नीडे मे मातरं प्रजाः ॥ महादुःखेन जीवामि गार्हस्थो मे विनाशितः ॥ ५७ ॥

लुभाई ॥ ५२ ॥ कालविवश वा जालमें वो कुलिंगनी आय फसी वाकूं फसी देख कुलिंग बहुत दुखी भयो ॥ ५३ स्नेहसे छुटायवेमें असमर्थ कृपण वाको दुःख करतो भयो, अहो देव बडे निर्दयी है जो प्रीतिवारी स्त्रीसे वियोग भयो ॥ ५४ ॥ मुझ कृपण शोक करवेवारेको ये गरीबनी कहा करैगी मोकोभी ईश्वर मारै अब आधे शरीरसे कहा करूंगो ॥ ५५ ॥ या दीनपनके दुखपनेके जीवेसे कहा होगो, पंखरहित माताहीन इन बच्चानकों कैसे राखूंगो ॥ ५६ ॥ वे मंदभागी बालक घुसलेमेंसे माकी आयवेकी वाट देख रहेहैं, मैं महादुःखसे जीउंगो मेरो गृहस्थाश्रम सब नष्ट भयो ॥ ५७ ॥

ऐसे प्रियाके वियोगसे आतुर विलाप करते आंसू भरे कुलिंगको काल प्रेरित बाणसे वधिकने झठ मारगिरायो ॥ ५८ ॥ ऐसेई हे मूर्खहो ! तुमभी मरोगे या देहको क्यो शोचो हो, ज्ञानी बनो, या पतिको सौ वर्ष शोक करनेसेभी नहीं प्राप्त होओगे ॥ ५९ ॥ हिरण्यकश्यप बोले कि ये बात वा बालककी सुन वे सब बडे विस्मय भए, सब जातके ये मानते भये, कि ये सब मिथ्या है मत रोवो ॥ ६० ॥ ये कथा सुनाय यमराज अंतर्ध्यान होगए, वा सुयज्ञकी जातके सब वाको मृतक संस्कार करते भये ॥ ६१ ॥ याते तुम सब मत शोक करो आत्मा सबसे परै है, अपनो पराये कछु नायहै ॥ ६२ ॥ अज्ञानसे अपनो परायो या जीवने मान राख्यो है, जो तत्वदर्शी ज्ञानी हैं वे ज्ञानसे आत्माको करै है ॥ ६३ ॥ श्रीनारदजी बोले कि पुत्र वंधु सहित दैत्यपतिको ये वाक्य दिति सुन पुत्रशोक क्षणमें त्याग चित्तकों परमेश्वर तत्वमें धारती भई ॥ ६४ ॥ इति श्रीमन्महाभागवते सप्तमस्कन्धे उशीनराख्याने कुलिङ्गकथया दितिशोकनाशवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीनारदजी बोले कि हे राजन् ! हिरण्यकशिपुनें अपने शरीरको अजर अमर अजेय सबसे अधिक शत्रुरहित चक्रवर्ती बनानेकी इच्छा की ॥ १ ॥

एवं कुलिङ्गं विलपन्तमारात् प्रियावियोगातुरमश्रुकण्ठम् ॥ स एव तं शाकुनिकः शरेण विव्याध कालप्रहितो विलीनः ॥ ५८ ॥ एवं यूयमपश्यन्त्य आत्मापायमबुद्धयः ॥ नैनं प्राप्स्यथ शोचन्त्यः पतिं वर्षशतैरपि ॥ ५९ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ बाल एवं प्रवदति सर्वे विस्मितचेतसः ॥ ज्ञातयो मेनिरे सर्वमनित्यमयथोत्थितम् ॥ ६० ॥ यम एतदुपाख्याय तत्रैवान्तरधीयत ॥ ज्ञातयोऽपि सुयज्ञस्य चक्रुर्यत् साम्परायिकम् ॥ ६१ ॥ ततः शोचत मा यूयं परं चात्मानमेव च ॥ क आत्मा कः परो वाऽत्र स्वीयः पारक्य एव वा ॥ ६२ ॥ स्वपराभिनिवेशेन विना ज्ञानेन देहिनाम् ॥ ज्ञानेनात्मानमीहन्ते ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ६३ ॥ नारद उवाच ॥ इति दैत्यपतेर्वाक्यं दितिराकर्ण्य सस्नुषा ॥ पुत्रशोकं क्षणात् त्यक्त्वा तत्त्वे चित्तमधारयत् ॥ ६४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे कुलिङ्गकथनेन दितिशोकापनयनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ नारद उवाच ॥ हिरण्यकशिपू राजन्नजेयमजरामरम् ॥ आत्मानमप्रतिद्वन्द्वमेकराजं व्यधित्सत ॥ १ ॥

वो हिरण्यकश्यप मंदराचलको गुफामें परम दारुण तप करतो भयो, ऊपरको हाथ कीने, आकाशको देखे, पांवके अंगुष्टसे धरतीपर खडोहो ॥ २ ॥ जटानकी कांतिसे प्रलयके सूर्यकी नाई शोभित हो जब वो तप करबेलगो तब देवता अपने स्थाननकों जाते भए ॥ ३ ॥ धूम सहित तपकी अग्नि वाके मूडसूं उत्पन्न होती भई, तिर्छे ऊपर नीचे सब ओर लोक तपते भए ॥ ४ ॥ नदी समुद्र चलायमान भए सात द्वीपसहित भूमि चली ग्रहसहित तारा गिरे, दशों दिशा ज्वलितभई ॥ ५ ॥ तासे तपित हो देवता स्वर्ग त्याग ब्रह्मके लोकमैं गए, हे देवनके देव हे जगत्पते! ऐसैं ब्रह्माजीसें विनती

स तेपे मन्दरद्रोण्यां तपः परमदारुणम् ॥ ऊर्ध्वबाहुर्नभोदृष्टिः पादाङ्गुष्ठाश्रितावनिः ॥ २ ॥ जटादीधितिभी रेजे संवर्तार्क इवांशुभिः ॥ तस्मिंस्तपस्तप्यमाने देवाः स्थानानि भेजिरे ॥ ३ ॥ तस्य मूर्ध्नः समुद्भूतः सधूमोऽग्निस्तपोमयः॥ तिर्यगूर्ध्वमधोलोकानतपद् विष्वगीरितः ॥ ४ ॥ चुक्षुभुर्नद्युदन्वन्तः सद्वीपाद्रिश्चचाल भूः ॥ निपेतुः सग्रहास्तारा जज्वलुश्च दिशो दश ॥५॥ तेन तप्ता दिवं त्यक्त्वा ब्रह्मलोकं ययुः सुराः ॥ धात्रे विज्ञापयामासुर्देवदेव जगत्पते॥६॥ दैत्येन्द्रतपसा तप्ता दिवि स्थातुं न शक्नुमः॥तस्य चोपशमं भूमन् विधेहि यदि मन्यसे॥७॥ लोका न यावन्नङ्क्ष्यन्ति बलिहारास्तवाभि भोः ॥ तस्यायं दिल संकल्पश्चरतो दुश्चरं तपः ॥ ८॥ श्रूयतां किं न विदितस्तवाथापि निवेदितम्॥सृष्ट्वा चराचरमिदं तपोयोगसमाधिना ॥ ९ ॥ अध्यास्ते सर्वधिष्ण्येभ्यः परमेष्ठी निजासनम् ॥ तदहं वर्धमानेन तपोयोगसमाधिना ॥१०॥ कालात्मनोश्च नित्यत्वात्साधयिष्ये तथात्मनः ॥ अन्यथेदं विधास्येऽहमयथापूर्वमोजसा ॥११॥

करते भए ॥ ६ ॥ दैत्येंद्रके तपसे तप्त स्वर्गमें स्थित होयवेकी हमे सामर्थ्य नहीं है हे समर्थ ! जो आप मानो तो वाकी शांति करो ॥ ७ ॥ जबतक बलि देवेवारी भूमि वासौं नष्ट न होंय तबतक पहलेही उसके तपको शान्त करो उसका संकल्प दुश्चर तप करनेका है ॥ ८ ॥ यद्यपि आप सब जानो हो तथापि उसने जो संकल्पकर तप करना प्रारंभ किया है वह आप हमसै सुनिये ॥ ९ ॥ जैसे सब स्थानसे ऊंचे परमेष्ठी निज आसनपर बैठे हैं सो हमभी बडी भई तप योग समाधिसें तप योगमें अधिक निष्ठा रखकर ब्रह्माजीकी समान अपने आत्माको करूंगा ॥१०॥ यद्यपि थोडी आयु होनेसै

शरीर छुटनेका संभव है तथापि काल और आत्मा नित्य है तो अनेक जन्मौंमे इस कार्यको साधलूंगा अपने सामर्थसै देवतौंको दैत्य दैत्यकों देवता बना दूंगा भक्तौंको अभक्त अभक्तौंको भक्त इस प्रकार उलट पुलट कर दूंगा ॥ ११ ॥ कल्पांतमें वैष्णवादिक कालके खाजे मेरो कहा करैगे ये वाको हठ हमने सुनोहै सो घोरतपमें स्थित है ॥ १२ ॥ हे त्रिभुवनेश्वर ! जो करो सो या कामके उपरांत करियो हे जगत्पते ! ब्राह्मण गौ तुह्मारे स्थान हैं ॥ १३ ॥ उत्पत्तिके अर्थ कल्याणके लिये लक्ष्मीके वास्ते क्षेम विजयके अर्थ तुम हो, वो सब आप चाहै है ये वाको जानो हे नृप ! भगवान्स्वयंभू

किमन्यैः कालनिर्धूतैः कल्पान्ते वैष्णवादिभिः ॥ इति शुश्रुम निर्बन्धं तपः परममास्थितः ॥ १२ ॥ विधत्स्वानन्तरं युक्तं स्वयं त्रिभुवनेश्वर ॥ तवासनं द्विजगवां पारमेष्ठ्यं जगत्पते ॥ १३ ॥ भवाय श्रेयसे भूत्यै क्षेमाय विजयाय च इति विज्ञापितो देवैर्भगवानात्मभूर्नृप ॥ १४ ॥ परीतो भृगुदक्षाद्यैर्ययौ दैत्येश्वराश्रमम् ॥ न ददर्श प्रतिच्छन्नं वल्मीकतृणकीचकैः ॥१५॥ पिपीलिकाभिराचीर्णं मेदस्त्वङ्मांसशोणितम् ॥ तपन्तं तपसा लोकान् यथाऽभ्रापिहितं रविम् ॥१६॥ विलक्ष्य विस्मितः प्राह प्रहसन् हंसवाहनः ॥ ब्रह्मोवाच ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठ भद्रं ते तपःसिद्धोऽसि काश्यप ॥१७॥ वरदोऽहमनुप्राप्तो व्रियतामीप्सितो वरः ॥ अद्राक्षमहमेतत् ते हृत्सारं महदद्भुतम् ॥ १८ ॥

ऐसै जब देवनसे विनति करे गए ॥ १४ ॥ तब भृगु दक्षादि संग ले दैत्येश्वरके आश्रमपर गए ववई तृण कीचकोंसे ढको भयो अलक्षित ॥ १५ ॥चैटी जाकी त्वचा मांस रुधिर सब खायगई, तपसें लोकनको तपाने मेघसे ढके सूर्यकी समान उसै देखा ॥ १६ ॥ देखकर विस्मयसे हंसते भए हंसवाहन बोले ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे कश्यपपुत्र ! तेरो मंगल होय उठ उठ ॥१७॥ वरदाता हम आए जो मनवांछित वर होय सो मांगो तेरे हृदयको जो सार है

---

१ शंका–जिस जिस प्राणीने ब्रह्माजीकी तपस्या की उन सबको ब्रह्माजीने अपनी इच्छानुसार वर दिया, परन्तु देवताओंने ब्रह्माजींकी प्रार्थना नहीं की कि तुम हमको वर दो, परंतु इस हिरण्यकशिपुको देवताओंके कहनेसे वर क्यों दिया ? यह बडा आश्चर्य है ।

उत्तर–हिरण्यकशिपुने अपने अपने मनमें यह विचार कर तप कियाथा कि पहिले वरदान लेकर पीछे भगवान्को बन्धनमें डालूंगा, हिरण्यकशिपुके मनकी बात जानकर ब्रह्माजीने हिरण्यकशिपुको वरदान नहीं दियाथा परन्तु जब देवताओंने ब्रह्माजीसे कहा हम सब लोग दुष्टके तपके तेजसे जले जाते हैं, जब देवताओंको ऐसा दुःखी देखा तब ब्रह्माने हिरण्यकशिपुको वरदान दिया, इसलिये देवताओंकी प्रार्थनासे ब्रह्माने वर नहीं दियाथा ॥

सो हमने देखलीनो ॥१८॥ डासोंने सब देह खाय लई प्राण हाडमात्रमें रहिगये, ये तप पूर्वके ऋषिभी न करतेभए न आगे ऐसो कोई करैगो ॥ १९ ॥ विना जल पीये दिव्य सौ वर्ष कौन प्राण धारैंगो ये तुह्मारो निश्चय बडे मनस्वीनकोंसों है सो बडो दुष्कर है ॥ २० ॥ हे दितिनंदन ! तपमें तूनें निष्ठा राखी यासे मोको जीत लीनो; हे असुरनमें श्रेष्ठ! तुह्मे सांचे आशीर्वाद देऊंगो ॥ २१ ॥ जो कि तेरा शरीर मरणधर्मा है उसै मुझ मरणधर्मरहितका दर्शन हुआ सो वह दर्शन निष्फल न होगा ॥ श्रीनारदजी बोले कि सबते आदि जन्मधारी ब्रह्माजी ऐसे कहि कर चेटीनके खाये उसके पर ॥ २२ ॥ दिव्य अमोघ जा तेजवारे कमंडलके जलको छिडकते भए सो वो वा कीचक वल्मीकतै साहस तेज बल सहित उठतो भयो ॥ २३ ॥ सब अवयवोंमें संपन्न वज्रसमान अंग तरुण तपे सुवर्णसम कांति बढीभई अग्निकी नाई उठ खडो भयो ॥ २४ ॥ आकाशमें देवनमें देव हंसवाहनपर विराजे

दंशभक्षितदेहस्य प्राणा ह्यस्थिषु शेरते ॥ नैतत् पूर्वर्षयश्चक्रुर्न करिष्यन्ति चापरे ॥ १९ ॥ निरम्बुर्धारयेत् प्राणान् को वै दिव्यसमाः शतम् ॥ व्यवसायेन तेऽनेन दुष्करेण मनस्विनाम् ॥ २० ॥ तपोनिष्ठेन भवता जितोऽहं दितिनन्दन ॥ ततस्त आशिषः सर्वा ददाम्यसुरपुङ्गव ॥ २१ ॥ मर्त्यस्य ते अमर्त्यस्य दर्शनं नाफलं मम ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वाऽऽदिभवो देवो भक्षिताङ्गं पिपीलिकैः ॥ २२ ॥ कमण्डलुजलेनौक्षद् दिव्येनामोघराधसा ॥ स तत्कीचकवल्मीकात् सहओजोबलान्वितः ॥ २३ ॥ सर्वावयवसंपन्नो वज्रसंहननो युवा ॥ उत्थितस्तप्तहेमाभो विभावसुरिवैधसः ॥ २४ ॥ स निरीक्ष्याम्बरे देवं हंसवाहमवस्थितम् ॥ ननाम शिरसा भूमौ तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ २५ ॥

देवको देखकर शिरसें भूमिसें नमस्कार करतो भयो तिनकै दर्शनसे महा आनंद भयो “ जैसे एक वनियाको एक ब्राह्मणकी कृपासे दर्शनकर चित्त खुश भयो तैसें जानो एक वणिया शिव प्रसन्नकर वर मांगो कि ऐसो मनुष्यभूत देओ जो सब धंधो सदा करतो रहै तब शिवने एक भूत दीनो वाने कही लालाजी जो कछु काम न बताओगे तो तुह्मौ खाजाऊंगो वणिया बोले भला घर आय कोटिमे बैठो चिट्ठी देआव वासे वही दे आयो पानी भर भर आयो साग लाव ले आयो चून पीस पीस आयो ऐसैं ऐसे करत करत सब मोहोल्ला भरको काम एक घडीमें निपटावै खाली होय वासूं कहै खाऊं तव वणिया सूख जाय, काल पाय दुर्बल हो गयो एक ब्राह्मणसे कही भूतसे ऐसे फस गयो, ब्राह्मण बोलै हे बावरे ! एक वांस चौकमें गाड राख चढ

उतर चढ उतर ऐसो काम बतायदे, जब वो खाली होय वो तो ऐसो काम ले सो आप भागजायगो वाने वैसेई कीनो वणिया सुखी भयो तैसे वाके दर्शन सर्व सुखदायक भए " तैसे ब्रह्माको दर्शन हिरण्यकश्यपको भयो ॥ २५ ॥ उठके हाथ जोड स्तुतिकर दर्शन करै नेत्रसे ब्रम्हाजीको देख हर्षके आंसूनसे पुलकावली हो गद्गदवाणीसे स्तुति करतो भयो ॥ २६ ॥ हिरण्यकश्यप बोले कि कल्पके अंतमें कालके रचे भए अंधे तमसे ढके या जगतको आप अपनी ज्योतिकरकैं प्रकाश करतेहो आपके अर्थ नमस्कार होय ॥ २७ ॥ तीन तीन प्रकारकी आत्मा कर जो या विश्वको रचे है, पालै है नाश करै हैं रज सत्त्व तम तेज रूपपर महानके अर्थ नमस्कार होय ॥ २८ ॥ आद्य बीज ज्ञान विज्ञान मूर्ति प्राण इंद्रिय मन बुद्धि

उत्थाय प्राञ्जलिः प्रह्व ईक्षमाणो दृशा विभुम् ॥ हर्षाश्रुपुलकोद्भेदो गिरा गद्गदयाऽगृणात् ॥ २६ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ कल्पान्ते कालसृष्टेन योऽन्धेन तमसा वृतम् ॥ अभिव्यनग् जगदिदं स्वयंज्योतिः स्वरोचिषा ॥ २७ ॥ आत्मना त्रिवृता चेदं सृजत्यवति लुम्पति ॥ रजःसत्त्वतमोधाम्ने पराय महते नमः ॥ २८ ॥ नम आद्याय बीजाय ज्ञानविज्ञानमूर्तये ॥ प्राणेन्द्रियमनोबुद्धिविकारैर्व्यक्तिमीयुषे ॥ २९ ॥ त्वमीशिषे जगतस्तस्थुषश्च प्राणेन मुख्येन पतिः प्रजानाम् ॥ चित्तस्य चित्तेर्मनइन्द्रियाणां पतिर्महान्भूतगुणाशयेशः ॥ ३० ॥ त्वं सप्ततन्तून्वितनोषि तन्वा त्रय्या चातुर्होत्रकविद्यया च ॥ त्वमेक आत्मात्मवतामनादिरनन्तपारः कविरन्तरात्मा ॥ ३१ ॥ त्वमेव कालोऽनिमिषो जनानामायुर्लवाद्यावयवैः क्षिणोषि ॥ कूटस्थ आत्मा परमेष्ठ्यजो महांस्त्वं जीवलोकस्य च जीव आत्मा ॥ ३२ ॥

विकारिक व्यक्तिकूं धारवेवारेकी हम स्तुति करैहैं ॥ २९ ॥ स्थावर जंगम जगतके ईश तुम हो प्रजाके मुख्य प्राण तुम हो, चित्तके चित्त मन इंद्रियोंके पति महाभूत गुण इनके ईश गुणोंके अंतःकरणके ईश हो ॥ ३० ॥ वेदत्रयीकी चार होता करकै सात यज्ञोंके कर्ता तुम हो तुमही एक आत्मज्ञानियोंके अनादि अनंतपारपंडित सर्वांतर्यामी हो ॥ ३१ ॥ अनिमिष कालरूप तुम्ही हो लव पलक इत्यादि करकै जीवमात्रकी आयुक्षय करोहो कूटमें स्थित आत्मा ब्रम्हांतर्यामी अजन्मा बडे सब जीव लोकके आत्मा तुम हो ॥ ३२ ॥

तुमसे परे कुछभी चलायमान नहीं है न तुमसे अपर है जो चलायमान है सो तुमसे अलग नहीं है, चतुर्दश विद्या षोडश कला ये सब आपके शरीर हैं कारण कि त्रिगुणात्मक संसारसैं परे ब्रह्मांडको गर्भमें रखनेवाले आप हैं ॥ ३३ ॥ हे समर्थ ! येभी प्रगट है कि यह स्थूल शरीर जासे इंद्रिय प्राण मन गुण इनकूं भोगोहो अप्रगट आत्मा पुरुष पुराण ब्रह्मधाममें आप स्थित हो ॥ ३४ ॥ अनंत अव्यक्त रूपसे जासे ये सब विश्व विस्तृत है चित् अचित् शक्ति युक्त तिन भगवानके अर्थ नमस्कार हो ॥ ३५ ॥ हे वरदोत्तम ! जो हमारे मन वांछित वर दो तो ये मांगूं हूं हे प्रभो ! आपकी

त्वत्तः परं नापरमप्यनेजदेजच्च किंचिद्व्यतिरिक्तमस्ति ॥ विद्या कलास्ते तनवश्च सर्वा हिरण्यगर्भोऽसि बृहत्त्रिपृष्ठः ॥ ३३ ॥ व्यक्तं विभो स्थूलमिदं शरीरं येनेन्द्रियप्राणमनोगुणांस्त्वम् ॥ भुङ्क्षे स्थितौ धामनि पारमेष्ठ्य अव्यक्त आत्मा पुरुषः पुराणः ॥ ३४ ॥ अनन्ताव्यक्तरूपेण येनेदमखिलं ततम् ॥ चिदाचिच्छक्तियुक्ताय तस्मै भगवते नमः ॥ ३५ ॥ यदि दास्यस्यभिमतान् वरान् मे वरदोत्तम ॥ भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्मा भून्मम प्रभो ॥३६॥ नान्तर्बहिर्दिवा नक्तमन्यस्मादपि चायुधैः ॥ न भूमौ नाम्बरे मृत्युर्नरैरपि मृगैरपि ॥३७॥ व्यसुभिर्वाऽसुमद्भिर्वा सुरासुरमहोरगैः ॥ अप्रतिद्वन्द्वतां युद्धे ऐकपत्यं च देहिनाम् ॥ ३८ ॥ सर्वेषां लोकपालानां महिमानं यथात्मनः ॥ तपोयोगप्रभावानां यन्न रिष्यति कर्हिचित् ॥३९॥ इति श्रीभागवते म० सप्तमस्कन्धे हिरण्यकशिपोर्वरयाचनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ नारद उवाच ॥ एवं वृतः शतधृतिर्हिरण्यकशिपोरथ ॥ प्रादात् तत्तपसा प्रीतो वरांस्तस्य सुदुर्लभान् ॥ १ ॥

सृष्टिके रचे भये जीवमात्रसे मेरी मृत्यु न होय ॥ ३६ ॥ बाहिर, भीतर, दिनमें, रातमें, और किसी शस्त्रसें, भूमिमें, आकाशमें, मनुष्यसें मृगसे मैं न मरूं ये वर देवो ॥ ३७ ॥ प्राणधारी, विना प्राणधारी, सुर असुर महासर्प इत्यादिसे युद्धमें काऊसें न हारु सबमें एक राज्य मेरोही होय ॥ ३८ ॥ सब लोक पालनकी महिमा मेरी होय, तप योग प्रभाव मेरो कभी नाश न होने पावै ॥३९॥ इति श्रीमद्भागवतभाषायां सप्तमस्कन्धे हिरण्यकशिपोर्वरयाचनवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ श्रीनारदजी बोले कि याके उपरांत ब्रह्माजीसे जब ऐसे वर मांगे तब वाके तपसें प्रसन्न होयकर पिता-

मह उसै महादुर्लभ वर देते भये ॥ १ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि हे तात ! ये वर पुरुषनको महादुर्लभ हैं जिनको तुम मोसे मागो हो तथापि हे प्यारे ! महादुर्लभ वर हम तुह्मै दैंगे ॥ २ ॥ तापाछै हिरण्यकश्यपसै पूजित सफल कृपावाले समर्थ जिनकी प्रजापति स्तुति करते हैं ऐसे ब्रह्माजी उसे वर दे अपने धामको पधारे ॥ ३ ॥ ऐसै जब दैत्यको वर मिलचुके तौ सुवर्णमय शरीर धारतो भयो भाईके वधकों स्मरणकर भगवान्से द्वेष करतो भयो ॥ ४ ॥ सो महासुर सब लोक सब दिशा जीतकर देवता असुर मनुष्य इंद्र गंधर्व गरुड उरग इन्है जीततो भयो ॥ ५ ॥ सिद्ध चारण विद्याधर ऋषि पितर पती मनु यक्ष राक्षस पिशाच ईश प्रेत भूतपती इन सबको जीततो भयो ॥ ६ ॥ विश्वके जीतवेवारो सब जीवमात्रके पतीनकों जीत वश कर लोकपालोंके स्थान तेज सहित हरतोभयो ॥ ७ ॥ देवनके बाग शोभायुक्त स्वर्गमें जायके बैठो, जो महेंद्रको भवन साक्षात् विश्वकर्माने निर्माण कीनो हो ॥ ८ ॥ विश्वकर्माके बनाये त्रिलोककी शोभाके आश्रयरूप सब समृद्धियोंसे परिपूर्ण साक्षात इन्द्रके भवनमें रहने लगा इस प्रकार हिरण्यकश्यप सब संपदा जापै दानवेंद्र महाबली होतोभयो ॥ ९ ॥ जहां मूंगोंकी सीढी, महा मरकतकी भूमी, स्फटिकके और वैडूर्यपंक्तियें खंभोंमें जटित हैं ॥ १० ॥

ब्रह्मोवाच ॥ तातेमे दुर्लभाः पुंसां यान् वृणीषे वरान् मम ॥ तथापि वितराम्यङ्ग वरान् यदपि दुर्लभान् ॥ २ ॥ ततो जगाम भगवानमोघाऽनुग्रहो विभुः ॥ पूजितोऽसुरवर्येण स्तूयमानः प्रजेश्वरैः ॥ ३ ॥ एवं लब्धवरो दैत्यो बिभ्रद्धेममयं वपुः ॥ भगवत्यकरोद्वेषं भ्रातुर्वधमनुस्मरन् ॥ ४ ॥ स विजित्य दिशः सर्वा लोकांश्च त्रीन् महासुरः ॥ देवासुरमनुष्येन्द्रान् गन्धर्वगरुडोरगान् ॥ ५ ॥ सिद्धचारणविद्याध्रानृषीन् पितृपतीन् मनून् ॥ यक्षरक्षःपिशाचेशान् प्रेतभूतपतीनथ ॥ ६ ॥ सर्वसत्त्वपतीन् जित्वा वशमानीय विश्वजित् ॥ जहार लोकपालानां स्थानानि सह तेजसा ॥ ७ ॥ देवोद्यानश्रिया जुष्टमध्यास्ते स्म त्रिविष्टपम् ॥ महेन्द्रभवनं साक्षान्निर्मितं विश्वकर्मणा ॥ ८ ॥ त्रैलोक्यलक्ष्म्यायतनमध्युवासाखिलर्धिमत् ॥ हिरण्यकशिपुर्नाम दानवेन्द्रो महाबलः ॥ ९ ॥ यत्र विद्रुमसोपाना महामारकता भुवः ॥ यत्र स्फाटिककुड्यानि वैडूर्यस्तम्भपङ्क्तयः ॥ १० ॥

जहां विचित्र चंदोवा टंगे पद्मराग मणीके आसन बिछे दूधफेन सम शय्या बिछी मोतीनकी माला लटकरही हैं ॥ ११ ॥ जिनके नूपुर झनकार करैं ऐसी देवियें इतउत डोलती फिरैं हैं, रत्नकी स्थलीनमें सुदती सुन्दर मुखको देखै है ॥ १२ ॥ वा इंद्रके महाभवनमें महाबली महामनस्वी सब लोकको जीतनेवारो एकछत्र राज्यकी पदवी धारण करनेहारा जिसके चरणको देवता नमस्कार करते थे प्रतापके कारण जिसकी तीक्ष्ण आज्ञा वर्तती थी बडे सुखसै रमण करने लगा ॥ १३ ॥ हे राजन् ! मधु सुगंधिसे मत्त विकराल ताम्रसमान नेत्रवारे तप योगबल पराक्रमयुक्त उस दैत्यकी

यत्र चित्रवितानानि पद्मरागासनानि च ॥ पयःफेननिभाः शय्या मुक्तादामपरिच्छदाः ॥ ११ ॥ कूजद्भिर्नूपुरैर्देव्यः शब्दयन्त्य इतस्ततः ॥ रत्नस्थलीषु पश्यन्ति सुदतीः सुन्दरं मुखम् ॥१२॥ तस्मिन् महेन्द्रभवने महाबलो महामना निर्जितलोक एकराट् ॥ रेमेऽभिवन्द्याङ्घ्रियुगः सुरादिभिः प्रतापितैरूर्जितचण्डशासनः ॥ १३ ॥ तमङ्ग मत्तं मधुनोरुगन्धिना विवृत्तताम्राक्षमशेषधिष्ण्यपाः ॥ उपासतोपायनपाणिभिर्विना त्रिभिस्तपोयोगबलौजसां पदम् ॥ १४ ॥ जगुर्महेन्द्रासनमोजसा स्थितं विश्वावसुस्तुम्बुरुरस्मदादयः ॥ गन्धर्वसिद्धा ऋषयोऽस्तुवन् मुहुर्विद्याधरा अप्सरसश्च पाण्डव ॥ १५ ॥ स एव वर्णाश्रमिभिः क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ इज्यमानो हविर्भागानग्रहीत् स्वेन तेजसा ॥ १६ ॥ अकृष्टपच्या तस्यासीत् सप्तद्वीपवती मही ॥ तथा कामदुघा द्यौस्तु नानाश्चर्यपदं नभः ॥ १७ ॥ रत्नाकराश्च रत्नौघांस्तत्पत्न्यश्चोहुरूर्मिभिः ॥ क्षारसिन्धुघृतक्षौद्रदधिक्षीरामृतोदकाः ॥ १८ ॥

सब स्थानोंके रक्षक हाथमें अनेक भेट ले लेके उपासना करते भए, केवल ब्रह्मा विष्णु शिव ये तीन उपासना न करते भए ॥ १४ ॥ हे पांडव ! महेंद्रके आसनपर पराक्रमसें स्थित उसके सन्मुख विश्वावसु तुंबुरु अस्मदादिक गाते भए गंधर्व सिद्ध ऋषि विद्याधर अप्सरा वारंवार स्तुति करती भई ॥ १५ ॥ वो हिरण्यकश्यप वर्ण आश्रमी महादक्षिणावारे यज्ञभागको अपने तेजसै ग्रहण करता हुआ ॥ १६ ॥ सप्तद्वीपकी पृथिवी विना वोए बीज उत्पन्न करती भई, सबका दाता आकाश भयो, नानाप्रकारकी आश्चर्यकी संपदा आवती भई ॥ १७ ॥ रत्नोंकी खानोमें अधिक रत्न होय-

वे लगै, नदियें लेहेरोंसे रत्न बाहिर लाय पटकने लगीं क्षारसिंधुको घृत सहत दधी क्षीर अमृतसम जल होतो भयो ॥ १८ ॥ पर्वत अपनी गुफाओंके भीतर क्रीड़ा करनेकी भूमि देतेथे सब ऋतुनमें सब फल वृक्ष देते भये, सब लोकपालनके पृथक्गुण यह इकेलो धारतो भगो ॥ १९ ॥ सो वो ऐसे सब दिशा जीत एकछत्र राज्य करता अनेक प्रकारके विषय भोगने लगा परन्तु अजितेन्द्रिय होनेके कारण तृप्त न हुआ ॥ २० ॥ ऐसे ऐश्वर्यमें मत्त, गर्वीले पाषंडी हिरण्यकश्यपके भयसें इंद्र एकहत्तर चौकडीभर राज्यभ्रष्ट भयो, वो ब्रह्माकी शापकी चाहको प्राप्त भयो "जब ऐश्वर्यसें मदांध होयहै तब सब बाते जीव भूलजायहै, ब्रह्माको पाय असुर न सुधरो वरसै मदान्ध हो गयो, जैसे एकजगे पंडित कथा वांचै, एक खजुहाई कुतिया वहां वैठे, राजा कथा सुनवे आवै कुतियाको देख राजा कथा सुन्ने न आये, तो पांडितजी बोले कथा सुनवेको न आओ हो, तो राजा बोलो कुतिया खुरखुर करै याते न आवे है कल्ह कुतिया न आवैगी, पंडितजीने वाय तपवलसे इंद्रकीसी अप्सरा करबैठाई, राजा वाय सुन्दर देख पासजाय वैंठो कथा सुन पंडितजीसे वा अप्सराकू मांग घरआय रातकूं सेजपर ले पौढो राजा सो गयो वो कुतिया सब राजमंदिर के दीवा रातको चाटै राजानें एकदिन देखी डरकै पंडितजीके पास पहुचाई, कही कि महाराज यह तौ डाकन है हम नाय राखे तौ पंडित वोले है विच्चोद कुतिया कहा करूं तेरो करम, मैंनै तोई राजासे मिलायदई, तैंने आपनो तेल चाटवेको सुभाव न छोडो तैसेइ तपकर विधातासें हिरण्यकश्यप मिलो तो हूं वाको राक्षसपनेको सुभाव छूटोनाय, ऐसै हिरण्यकश्यप मदमातो भयो पाषंड रचे " ॥ याकी पाषंडकी कथा कहै तो ग्रंथ बढी जाय, ॥ २१ ॥ वाके उग्रदंडसे डरे भए देवता सब लोकपाल सहित कोई रक्षक न देख श्रीअच्युत भगवानकी शरण जाते भए ॥ २२ ॥

शैला द्रोणीभिराक्रीडं सर्वर्तुषु गुणान्द्रुमाः ॥ दधार लोकपालानामेक एव पृथग्गुणान् ॥ १९ ॥ स इत्थं निर्जितककुबेकराड्विषयान्प्रियान् ॥ यथोपजोषं भुञ्जानो नातृप्यदजितेन्द्रियः ॥ २० ॥ एवमैश्वर्यमत्तस्य दृप्तस्योच्छास्त्रवर्तिनः ॥ कालो महान्व्यतीयाय ब्रह्मशापमुपेयुषः ॥ २१ ॥ तस्योग्रदण्डसंविग्नाः सर्वे लोकाः सपालकाः ॥ अन्यत्रालब्धशरणाः शरणं ययुरच्युतम् ॥ २२ ॥

तस्यै नमोऽस्तु काष्ठायै यत्रात्मा हरिरीश्वरः ॥ यद्गत्वा न निवर्तन्ते शान्ताः संन्यासिनोऽमलाः ॥ २३ ॥ इति ते संयतात्मानः समाहितधियोऽमलाः ॥ उपतस्थुर्हृषीकेशं विनिद्रा वायुभोजनाः ॥ २४ ॥ तेषामाविरभूद्वाणी अरूपा मेघनिःस्वना ॥ सन्नादयन्ती ककुभः साधूनामभयंकरी ॥२५॥ मा भैष्ट विबुधश्रेष्ठाः सर्वेषां भद्रमस्तु वः ॥ मद्दर्शनं हि भूतानां सर्वश्रेयोपपत्तये ॥ २६ ॥ ज्ञातमेतस्य दौरात्म्यं दैतेयापसदस्य यत् ॥ तस्य शान्तिं करिष्यामि कालं तावत् प्रतीक्षत ॥ २७ ॥ यदा देवेषु वेदेषु गोषु विप्रेषु साधुषु ॥ धर्मे मयि च विद्वेषः स वा आशु विनश्यति ॥ २८ ॥ निर्वैराय प्रशान्ताय स्वसुताय महात्मने ॥ प्रह्लादाय यदा द्रुह्येद्धनिष्येऽपि वरोर्जितम् ॥ २९ ॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्ता लोकगुरुणा तं प्रणम्य दिवौकसः ॥ न्यवर्तन्त गतोद्वेगा मेनिरे चासुरं हतम् ॥ ३० ॥ तस्य दैत्यपतेः पुत्राश्चत्वारः परमाद्भुताः ॥ प्रह्लादोऽभून्महांस्तेषां गुणैर्महदुपासकः ॥ ३१ ॥ ब्रह्मण्यः शीलसंपन्नः सत्यसंधो जितेन्द्रियः ॥ आत्मवत् सर्वभूतानामेकः प्रियसुहृत्तमः ॥ ३२ ॥

जहां आत्मा हरि ईश्वर है वा दिशाकू नमस्कार होय, जहांके गए शांत निर्मल संन्यासी फेर विश्वमें नही आवै हैं ॥ २३ ॥ ऐसे वे सावधान मनकर बुद्धि निर्मल कर निद्रा त्याग वायुभोजन करनवारे हृषीकेशकी स्तुति करते भए ॥ २४ ॥ तब रूपरहित मेघसमान सब दिशानमें गर्जती साधूनकी अभय करवेवारी आकाशवाणी तिनके मध्यमें होती भई ॥ २५ ॥ हे देवनमें श्रेष्ठहो ! मत डरो, सबको मंगल होगो, तुमकों जो मेरे वाणीको वा मेरो दर्शन है सो सब मंगलको दायक है ॥ २६ ॥ दैत्यनीचको दुष्टपन मैंने जान लीनो है, मै याकी शांति करूंगो, कछु काल तुम धीरज करो ॥ २७ ॥ जासमय देवता वेद गौ ब्राह्मण साधु धर्म और मोमें ये वैर होय है तौ वो शीघ्र नष्ट होजाय है ॥ २८ ॥ जब यह निर्वैर प्रशांत अपने सुत महात्मा प्रल्हादसै द्रोह करैगो यद्यपि यह वर पायै है तौभी इसै मारूंगा ॥ २९ ॥ श्रीनारदजी बोले कि श्रीलोकगुरुकी ये वाणी सुन उनको प्रणाम कर उद्वेग दूर कर वे देवते अपने अपने धामकों गए और असुरको मरो मानते भए ॥ ३० ॥ वा दैत्यपतीके चार परम अद्भुत पुत्र भए, तिन सबमें प्रल्हाद गुणौंमें वडे और महात्माऔंके उपासक थे ॥ ३१ ॥ यह प्रहाद ब्रह्मण्यशीलवारे सत्यवादी जितेंद्री सबमें ईश्वरको मान्ने

वारे अपनी समान आत्माको सब प्राणियौंमें मान्नेवाले अनन्य मित्र हुए ॥ ३२ ॥ दासकी नाई सब बडोंके चरनको प्रणाम करते पिताकी समान दुखियौंपर दया करते बराबरवालौंसै भ्राताकी समान स्नेह रखते गुरुको ईश्वरका रूप समझते थे ॥ ३३ ॥ विद्या धन रूप और कुलसै सम्पन्न थे अभिमान और उद्धताका लेश नही था ॥ ३४ ॥ दुःखसै व्याकुल नहीं होते इस लोक और परलोकके सुखको मिथ्या जान्ते इसीसै इनमें प्रहलादकी कुछ इच्छा न हुई इन्द्रिय प्राण शरीर और बुद्धिको वशमें किये सम्पूर्ण कामनाऔंको शांत रखते थे ॥३५॥ हे राजन्! इनके महागुणौंको कविलोगभी वारंवार ग्रहण करै है, जैसे भगवान् ईश्वरके गुण नहीं विस्मृत होते इसी प्रकार इस समयतकभी प्रल्हादके गुण प्रकाशित हैं ॥ ३६॥

दासवत् संनतार्याङ्घ्रिः पितृवद् दीनवत्सलः॥ भ्रातृवत् सदृशे स्निग्धो गुरुष्वीश्वरभावनः॥३३॥विद्यार्थरूपजन्माढ्यो
मानस्तम्भविवर्जितः ॥३४॥ मोद्विग्नचित्तो व्यसनेषु निःस्पृहः श्रुतेषु दृष्टेषु गुणेष्ववस्तुदृक्॥दान्तेन्द्रियप्राणशरीरधीः
सदा प्रशान्तकामो रहितासुरोऽसुरः ॥३५॥ यस्मान्महद्गुणा राजन् गृह्यन्ते कविभिर्मुहुः ॥ न तेऽधुनापि धीयन्ते यथा
भगवतीश्वरे ॥ ३६ ॥ यं साधुगाथा सदसि रिपवोऽपि सुरा नृप ॥ प्रतिमानं प्रकुर्वन्ति किमुतान्ये भवादृशाः॥३७॥ गुणै-
रलमसंख्येयैर्माहात्म्यं तस्य सूच्यते ॥ वासुदेवे भगवति यस्य नैसर्गिकी रतिः ॥३८॥ न्यस्तक्रीडनको बालो जडवत्
तन्मनस्कया ॥ कृष्णग्रहगृहीतात्मा न वेद जगदीदृशम् ॥३९॥ आसीनः पर्यटन्नश्नञ्छयानः प्रपिबन् ब्रुवन् ॥ नानु-
संधत्त एतानि गोविन्दपरिरम्भितः ॥४०॥ क्वचिद् रुदति वैकुण्ठचिन्ताशबलचेतनः ॥ क्वचिद् हसति तच्चिन्ताह्लाद
उद्गायति क्वचित् ॥ ४१ ॥

हे नृप! जाकी सुंदर गाथा वैरी देवताभी सभामें गाते है और आप सरीके उसकी वार्ता करैं तौं बातही क्या है ॥ ३७ ॥ वामें असंख्य गुण हैं जाकी वासुदेव भगवानमें स्वाभाविकी भक्ति है, वाहीको माहात्म्य बढै है ॥ ३८ ॥ बालकपनसैही सम्पूर्ण खेल त्यागकर नारायणके चरणौंमें अपना मन लगाया उसका चित्त कृष्णरूप ग्रहसै ग्रसित हो गयाथा इस कारण जडकी समान जगतको कछु नहीं जान्ता था ॥ ३९ ॥ बैठते चलते खाते सोते पीते बोलत्तेमें गोविंदको अनुसंधान करै संसारकी कुछ वाय खबर न होती भई ॥ ४० ॥ श्रीवैकुंठपतिकी याद कर कभी रोवै है कभी

तिनकी याद कर हसे है, कभी कभी आल्हादसें गावै है ॥ ४१ ॥ कभी उत्कंठासें पुकारै है लाज छोड नाचे है, कभी तिनकी भावना कर तन्मय होय जाय है ॥ ४२ ॥ कभी चुप्प हो जाय है सबसें अलग होय चुप्प वैठे है स्थिर प्रणय आनंदके जल आनेसे नेत्र मूंदे है ॥ ४३॥ कुछ इच्छा न करनेहारे साधुओंके संगसै प्राप्त हुई भगवतचरणकी सेवाके प्रभावसे अपने चित्तको शांत करते कुसंगसे दुखी हुए पुरुषोंके मनभी शांति देते थे ॥ ४४ ॥ हे राजन् ! ऐसे महाभागवत महात्मा वडभागी सुतमें हिरण्यकश्यप पाप करतो भयो ॥४५॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे नारद हे सुव्रत ! या बातकी सु-

नदति क्वचिदुत्कण्ठो विलज्जो नृत्यति क्वचित् ॥ क्वचित्तद्भावनायुक्तस्तन्मयोऽनुचकार ह ॥४२॥ क्वचिदुत्पुलकस्तूष्णीमास्ते संस्पर्शनिर्वृतः ॥ अस्पन्दप्रणयानन्दसलिलामीलितेक्षणः ॥ ४३ ॥ स उत्तमश्लोकपदारविन्दयोर्निषेवयाऽकिञ्चनसङ्गलब्धया ॥ तन्वन्परां निर्वृतिमात्मनो मुहुर्दुःसङ्गदीनान्यमनः शमं व्यधात् ॥ ४४ ॥ तस्मिन्महाभागवते महामाये महात्मनि ॥ हिरण्यकशिपू राजन्नकरोदघमात्मजे ॥ ४५ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ देवर्ष एतदिच्छामो वेदितुं तव सुव्रत ॥ यदात्मजाय शुद्धाय पिताऽदात्साधवे ह्यघम् ॥ ॥ ४६ ॥ पुत्रान्विप्रतिकूलान्स्वान्पितरः पुत्रवत्सलाः ॥ उपालभन्ते शिक्षार्थं नैवाघमपरो यथा ॥ ४७ ॥ किमुतानुवशान्साधूंस्तादृशान्गुरुदेवतान् ॥ एतत्कौतूहलं ब्रह्मन्नस्माकं विधम प्रभो ॥४८॥ पितुः पुत्राय यद्द्वेषो मरणाय प्रयोजितः ॥ मनो भ्रमति मे विद्वन्नेतस्मिन्संकटे द्विजः॥४९॥इति श्रीभागवते सप्तम० हिरण्यकशिपुदिग्विजयप्रह्लादसाधुभाववर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

नवेकी इच्छा है, कि शुद्ध पुत्र साधुसे पिता कैसे पापभाव करतो भयो ॥ ४६ ॥ चाहै पुत्र अपने अनुकूल न होय तोहूं पिता सूधे वत्सलभाव राखैं हैं शिक्षा करै है पाप बुद्धि वामें न करैं है ॥४७॥ और जो कहीं अपने वंशको गुरुभक्त साधुपुत्र होय तोतो कोई वैर न करै है हे ब्रह्मन् ! हे प्रभो ! यह हमारो संदेह दूरकरो ॥ ४८ ॥ पिता पुत्रको द्वेष तो मृत्युके अर्थ होता है हे विद्वन् हे द्विज नारद ! या बातके संकटमें मेरो मन भ्रमेहै सो आप कहो ॥ ४९ ॥ (१) इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां हिरण्यकशिपुदिग्विजयप्रल्हादसाधुभाववर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४॥

---

[1] या बातपर एक कुंडलिया है कि ॥ दोहा ॥ सांई बेटा बापके बिगरे होत अकाज ॥ हिरण्यकशिपु अरु कंसको गयो दोउनको राज ॥ गयो दोउनको राज बाप बेटाके बिगरे दुश्मन दावेदार भये महि मंडल सगरे ॥ कहि गिरिधर कबिराय उन्है काऊ न बताई ॥ पितापुत्रकी रार लाभ एको नहिं सांई ॥

34

श्रीनारदजी बोले कि एकसमय असुरोंने भगवान् शुक्राचार्य पुरोहित कीने तिनके सुत शंडामर्का दो है वे दैत्यराजगृहके समीप रहे ॥ १ ॥ वे दोनों राजाके भेजे भये बालक नीतिकुशल प्रल्हाद और पढायवेके योग्य असुरोंके बालकोंकों पढावते भये ॥ २ ॥ जो कुछ गुरु कहते वह प्रहलाद श्रवण करते और वैसाही सुना देते परन्तु यह पढाया हुआ अच्छा नहीं समझते कारण कि वे विषय संवाद अपना पराया ऐसा उपदेश करतेहै ॥ ३ ॥ हे पांडव! एक समय असुरराज लालन करते पुत्रकों अंकमें बैठाय बोले हे पुत्र! जो तुह्मै अच्छा लगैसो कहो ॥ ४ ॥ प्रल्हाद बोले कि हे असुरश्रेष्ठ पितः! संसारसें सदा उद्विग्न बुद्धिवारे देहधारी आत्माको नाश करवेवारे गृहरूप अंधकूपको त्याग वनमें

नारद उवाच ॥ पौरोहित्याय भगवन्वृतः काव्यः किलासुरैः ॥ शण्डामर्कौ सुतौ तस्य दैत्यराजगृहान्तिके ॥ १ ॥ तौ राज्ञा प्रापितं बालं प्रह्लादं नयकोविदम् ॥ पाठयामासतुः पाठ्यानन्यांश्चासुरबालकान् ॥ २ ॥ यत् तत्र गुरुणा प्रोक्तं शुश्रुवेऽनुपपाठ च ॥ न साधु मनसा मेने स्वपरासद्ग्रहाश्रयम् ॥ ३ ॥ एकदाऽसुरराट् पुत्रमङ्कमारोप्य पाण्डव ॥ पप्रच्छ कथ्यतां वत्स मन्यते साधु यद्भवान् ॥४॥ प्रह्लाद उवाच ॥ तत् साधु मन्येऽसुरवर्य देहिनां सदा समुद्विग्नधियामसद्ग्रहात् ॥ हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपं वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत ॥ ५ ॥ नारद उवाच ॥ श्रुत्वा पुत्रगिरो दैत्यः परपक्षसमाहिताः ॥ जहास बुद्धिर्बालानां भिद्यते परबुद्धिभिः॥६ ॥ सम्यग्विधार्यतां बालो गुरुगेहे द्विजातिभिः॥ विष्णुपक्षैः प्रतिच्छन्नैर्न भिद्येतास्य धीर्यथा ॥ ७॥ गृहमानीतमाहूय प्रह्लादं दैत्ययाजकाः॥ प्रशस्य श्लक्ष्णया वाचा समपृच्छन्त सामभिः॥ ८॥

जाय श्रीहरिकी शरणागति करे यही सबसे साधु है, अति उत्तम हैं यही हमें अच्छा लगैहै ॥ ५ ॥ श्रीनारदजी बोले कि वो दैत्य शत्रुके पक्षकी आसरो लेवेवारी पुत्रकी वाणी सुनकै हंसकर बोले कि बालकोंकी बुद्धि शत्रुनकी बुद्धिसें भेदको प्राप्त हो जाय है ॥ ६ ॥ इस कारण गुरुके घरमें द्विजातियोंसे इस बालककों बहुत सावधानीसै शिक्षा कराओ जिस्सै विष्णुके भक्त कोई कपट वेष बना वहां आय इसकी बुद्धि न बिगाड दै॥७॥ यह वचन सुन दैत्यौंके पढानेवाले वे दोनों प्रहलादकों घर लाय अत्यन्त मधुरवाणीसै उसकी बडाई कर साम वचनोंसैं पूछने लगे॥८॥

हे वत्स प्रह्लाद! तुह्मारो मंगल होय सत्य कहो झूठ मत कहियो इन और बालकौंकी बुद्धिमें तौ कुछ भेद न पडा परन्तु तेरी बुद्धि यह नारायणके नाममें कैसै लगी सो बता ॥ ९ ॥ हे कुलनंदन! ये बुद्धिको भेद औरके करवेसें भयो है अथवा अपने आप होगयो है, सो सुनवेकी कामनावारे हमको कहो ॥ १० ॥ प्रह्लादजी बोले कि अपनो परायो असतपनको पुरुषनको मोह जा माया करकै हुआ है और वह मायासै मोहित बुद्धिवारे तुमसैही पुरुषौंमें दीखता है तिन मायापति भगवानको मेरा प्रणाम है ॥ ११ ॥ सो परमेश्वर जब पुरुषनके अनुकूल होय है, तब पशुसमान बुद्धि जिसमें मेरा तेरा ऐसा भेद है यह संसारके विषयवाली निवृत्त हो जाती है "ऐसे लिखा है—अंधकः कुब्जकश्चैव त्रिस्तनी राजकन्यका ॥ त्रयोप्यन्यायतः सिद्धाः सन्मुखे च विधातरि ॥ १ ॥ " याका कथा ऐसै है कि जब धाता ईश्वर सन्मुख होय तो अन्यायकरनेसे सिद्धि हो जायहै, जैसै एक अंधो कुबडो तीनस्तनकी राजकन्या ये सब सिद्धभये ॥ एक अंधो क्षत्री, कुबडो ब्राह्मण दोनों मिल एक राजाके बागमें जाय मालीकी खुशामद कर डेरा लगाते भये सो कुबडो तो सवारहोय, आंधो घोडा बने रातको खूब फुल फल खाय पेट भरले, राजानै कही फल अबके कम क्यों आये, माली बोलो महाराज एक आंधो कूबडो रहै हैं, ये सुन नृप जानगयो कि वेही चोर है, छिपके देखो सो फल खाय छिलका वहां जिमीनमें गाडदै पकडकर राजापै लाए, उन्होंने कही विधाताकों दंड तो इन्हें पहिलेसे मिले है, हम कहा दंड दै, क्षमा करो जात पूंछ तीन स्तनकी बेटी, अंधेको व्याहदी राज्यसै बाहर करदिये अंधातौ आनन्द करै कुबडो देखके जरै सो विचारो कि या अंधेकू मारो कहींसें, साप लाय हंडीयामें वाने रांधो अंधो बोलो कछु साग है, कुबडाने कही हांडीमें होयगयो लैलै, सो जो लेवे गयो सो हांडी खोलत सर्पकी वाफसें आंख खुलगई, देखै तो वाकी स्त्री लिये कूबडो विहार करैहो, वाय देख कूबडाके लात दीनी सो कूबडा जातीरही, लुगाईकी छातीमें लात मारी सो तीसरो स्तन छिपगयो, सो प्रल्हाद

वत्स प्रह्लाद भद्रं ते सत्यं कथय मा मृषा ॥ बालानति कुतस्तुभ्यमेष बुद्धिविपर्ययः ॥ ९ ॥ बुद्धिभेदः परकृत उताहो ते स्वतोऽभवत् ॥ भण्यतां श्रोतुकामानां गुरूणां कुलनन्दन ॥ १० ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ स्वः परश्चेत्यसद्ग्राहः पुंसां यन्मायया कृतः ॥ विमोहितधिया दृष्टस्तस्मै भगवते नमः ॥ ११ ॥ स यदानुव्रतः पुंसां पशुबुद्धिर्विभिद्यते ॥ अन्य एष तथाऽन्योऽहमिति भेदगताऽसती ॥ १२ ॥

बोले कि भैया बालगोपालहो ! तुमहू भजो परमेश्वरको; पाछे आंधो राजा भयो, वो राणी भई कूबडो मंत्री भयो सब आनंद करते भये" ॥१२॥ जा ईश्वरके वादमें वेदवादी ब्रह्मादिकभी मोहकू प्राप्त होतैहै वोही ईश्वर मेरी बुद्धिको प्रेरणा करते है जिनका वर्णन करना महा कठिण है उन्हीको अज्ञानी पुरुष अपना और पराया कहैं हैं ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन् ! जैसै चुम्बकपत्थरकी आकर्षणशक्तिसे लोहा स्वयं घूमैं है, तैसे चक्रपाणिकी इच्छासे मेरो चित्त घूमै है यह वाती क्यौं हुई सो मैं नहीं जान्ता ॥ १४ ॥ श्रीनारदजी बोले कि ऐसें ब्राह्मणोंसे कहि महामति प्रहलाद चुप्प होगए तव क्रोधकर वह दीन राजाका सेवक ब्राह्मण प्रहलादकी भर्त्सना करता बोला ॥ १५ ॥ अरे वेत्र लाओ यह तौ हमारा यशनाश करनेहारा है कुलमें अंगाररूप उत्पन्न हुआ है इसै तौ उपायौंमें चौथा दंडही दैना उचित है ॥ १६ ॥ चंदन समान दैत्य कुलके वनमें यह तौ कांटे युक्त बबूलका वृक्ष उत्पन्न हुआ है और चंदनरूपी दैत्य कुलके वनको यह बालक मूलसै काटनेवाले विष्णुरूप कुल्हाडेका साक्षात् दंड है "यापर दृष्टान्त है॥१७॥ काऊ वनमें होयके पंचास गाडे कुहाडियें भरी कहीं जातीथी सो सब वृक्ष चिल्लाकर बोले मौत आई, एक कुराढीसे लाखो वृक्ष कटजांय है सो ये तों हजारो है, तब एक पीपर बोलो कि कोई हमारो घरभेदी तौ नांय जायमिलो वे बोले कि बैंटातो नाय है, तब वोह बोलो विना काठके बैंटा लगें यह कुहाडी कुछ न कर सकैहै, मौज करो"इस प्रकार अनेक उपायौंसै डराकर और तर्जनादिकर प्रल्हादको अर्थ धर्म कामकी उपायवाले शास्त्र सिखावते भए॥१८॥ता पाछै गुरुने जानी

स एष आत्मा स्वपरेत्यबुद्धिभिर्दुरत्ययानुक्रमणो निरूप्यते ॥ मुह्यन्ति यद्वर्त्मनि वेदवादिनो ब्रह्मादयो ह्येष भिनत्ति मे मतिम् ॥ १३ ॥ यथा भ्राम्यत्ययो ब्रह्मन्स्वयमाकर्षसन्निधौ ॥ तथा मे भिद्यते चेतश्चक्रपाणेर्यदृच्छया ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ एतावद् ब्राह्मणायोक्त्वा विरराम महामतिः ॥ तं निर्भर्त्स्याथ कुपितः स दीनो राजसेवकः ॥ १५ ॥ आनीयतामरे वेत्रमस्माकमयशस्करः ॥ कुलाङ्गारस्य दुर्बुद्धेश्चतुर्थोऽस्योदितो दमः ॥ १६ ॥ दैतेयचन्दनवने जातोऽयं कण्टकद्रुमः ॥ यन्मूलोन्मूलपरशोर्विष्णोर्नालायितोऽर्भकः ॥ १७ ॥ इति तं विविधोपायैर्भीषयंस्तर्जनादिभिः ॥ प्रह्लादं ग्राहयामास त्रिवर्गस्योपपादनम् ॥ १८ ॥ तत एनं गुरुर्ज्ञात्वा ज्ञातज्ञेयचतुष्टयम् ॥ दैत्येन्द्रं दर्शयामास मातृमृष्टमलंकृतम् ॥ १९ ॥

कि ये चारों बातें सीखगयो तब प्रहलादकी माताके द्वारा उसै स्नान कराय वस्त्रादिक भूषणौंसे अलंकृत कराय हिरण्यकश्यपके निकट अपना पढाया हुआ शास्त्र सुनवानेको ले गया ॥ १९ ॥ अपने पांवमें पतित बालकको असुर आशीस दे बाहुसै मिलके अत्यन्त प्रसन्न भयो ॥ २० ॥ हे युधिष्ठिर ! पुत्रको गोदमें बैठाय हिरण्यकश्यप अपने नेत्रोंकें जलसै प्रहलादका मस्तक सींचते भये और प्रकाशमान सुखवारे पुत्रसे इसप्रकार बोले ॥ २१ ॥ हिरण्यकश्यप बोले कि हे प्रल्हाद ! हे महाआयुवारे ! हे पुत्र ! इतने समयमें तुमने क्या क्या पढाहै हे पुत्र ! जो कुछ तुमने गुरुसै पढाहै सो सुनाओ ॥ २२ ॥ श्रीप्रल्हादजी बोले कि श्रीविष्णुकी कथा सुनै, विष्णुको नाम ले, हरिको स्मरण करै, परिचर्या पूजा करै, अर्चन वंदन दास्य सख्य अपनपो सौंपनो ये नव प्रकारकी भक्ति करै ॥ नौ भक्तिके नौ भक्त या श्लोकमें हैं “ श्रीविष्णोः स्मरणे परीक्षिदभवद्वैयासकिः कीर्तने प्रल्हादः स्मरणे तदंघ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने ॥ अक्रूरस्त्वभिवंदने कपिपतिर्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूत्कृष्णातिरेषां परा ”॥ २३ ॥ ये पुरुषनकरकै करी नव प्रकारकी भक्ति भगवतमें करनी यही उत्तम पढनेको सार हम मानै है और पढनामैं तो कोई श्रेष्ठ विषय नहीं हैं ॥ २४ ॥ प्रहलादके यह वचन सुन्तेही हिरण्यकश्यपको क्रोध आगया होंठ फड़कने लगे और गुरुपुत्रसै कहने लगा ॥ २५ ॥ हे दुर्मते ब्राह्मणाधम ! तैंने य कहा कीनो जो असत् शत्रुकी असार असार बात सिखायदीनी मेरो इतनो अनादर कीनो हे दुर्मते ॥ २६ ॥

पादयोः पतितं बालं प्रतिनन्द्याशिषासुरः ॥ परिष्वज्य चिरं दोर्भ्यां परमामाप निर्वृतिम् ॥ २० ॥ आरोप्याङ्कमवघ्राय मूर्धन्यश्रुकलाम्बुभिः ॥ आसिञ्चन् विकसद्वक्त्रमिदमाह युधिष्ठिर ॥ २१ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ प्रह्लादानूच्यतां तात स्वधीतं किंचिदुत्तमम् ॥ कालेनैतावतायुष्मन् यदाशिक्षद्‌ गुरोर्भवान् ॥ २२ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ॥ अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥ २३ ॥ इति पुंसार्पिता विष्णौ भक्तिश्चेन्नवलक्षणा ॥ क्रियते भगवत्यद्धा तन्मन्येऽधीतमुत्तमम् ॥ २४ ॥ निशम्यैतत् सुतवचो हिरण्यकशिपुस्तदा ॥ गुरुपुत्रमुवाचेदं रुषा प्रस्फुरिताधरः ॥ २५ ॥ ब्रह्मबन्धो किमेतत् ते विपक्षं श्रयताऽसता ॥ असारं ग्राहितो बालो मामनादृत्य दुर्मते ॥ २६ ॥

जगत्में छलसै वेष बनाकर मित्रता करनेवाले जो विचरतेहै उन दुष्ट पुरुषोंका पाप समयपर प्रगट हो जाताहै जैसे गुप्त पाप रोग होनेसै प्रगट हो जाते है लिखाहै" ब्रह्महा क्षयरोगी स्यात्सुरापः श्यावदंतकः॥ स्वर्णहारी तु कुनखी दुश्चर्मा गुरुतल्पगः" ब्रह्मघातीको क्षय रोग, मदिरा पीनेवालेके काले दांत, सुवर्ण चुरानेवाला कुनखी, गुरुस्त्रीगामी दुश्चर्मरोगवाला होताहै ॥ २७ ॥ गुरुपुत्र बोले हे इंद्रशत्रो ! न मैनें पढायो न औरने सिखायो जो ये बोले हैं सो याकी स्वाभाविकी बुद्धिही ऐसी है, हे राजन् ! क्रोध दूरकर हमारेमें दोष मत लगाओ, यामें आदको आगम वेदमान भयो है, ॥ २८॥ श्रीनारदजी बोले कि गुरुने जब ऐसें कही तब फेर असुरपुत्र बोलो कि हे अभद्र ! जो ये बाते न सीखी तौ ये खोटी बुद्धि तोकूं कहांसे भई॥२९॥

सन्ति ह्यसाधवो लोके दुर्मैत्राश्छद्मवेषिणः ॥ तेषामुदेत्यघं काले रोगः पातकिनामिव ॥ २७ ॥ गुरुपुत्र उवाच ॥ न मत्प्रणीतं न परप्रणीतं सुतो वदत्येष तवेन्द्रशत्रो ॥ नैसर्गिकीयं मतिरस्य राजन् नियच्छ मन्युं कददाः स्म मानः ॥२८॥ नारद उवाच॥ गुरुणैवं प्रतिप्रोक्तो भूय आहासुरः सुतम् ॥ न चेद् गुरुमुखीयं ते कुतोऽभद्राऽसती मतिः ॥ २९ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ मतिर्न कृष्णे परतः स्वतो वा मिथोभिपद्येत गृहव्रतानाम् ॥ अदान्तगोभिर्विंशतां तमिस्रं पुनः पुनश्चर्वितचर्वणानाम्॥ ३० ॥ न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुं दुराशया ये बहिरर्थमानिनः ॥ अन्धा यथान्धैरुपनीयमाना वाचीशतन्त्यामुरुदाम्नि बद्धाः ॥ ३१ ॥ नैषां मतिस्तावदुरुक्रमाङ्घ्रिं स्पृशत्यनर्थापगमो यदर्थः ॥ महीयसां पादरजोभिषेकं निष्किञ्चनानां न वृणीत यावत् ॥ ३२ ॥

श्रीप्रल्हादजी बोले कि जिनोने इंद्रिये नही जीति केवल घरकी चिन्ता रखनेवाले भोगे विषयोंको भोगनेहारे जन्म मरणको प्राप्त होते पुरुषोंकी बुद्धि न तौ स्वयं न किसी अन्यके उपदेशसै न परस्परकी बातोंसै भगवानकी प्राप्तिवाली होती है ॥ ३० ॥ विषयोंकी वासनावाले सकाम कर्मवाली वेदवाणीरूप ईश्वरकी डोरीमें बंधे हुए और इन्ही बातोंसै युक्त पुरुषोंको गुरु मान्नेहारे प्राणी भगवानको नहीं जान्ते वे अंधेको लेजानेहारे अंधेकी समान गर्तमें गिरते हैं ॥ ३१ ॥ जबतक सब प्रकारके अहंकार रहित होकर यह प्राणि बडोंके चरणरजकी सेवा न करै है तबतक याको अनर्थ दूर न होय है याके मनोरथकी प्राप्ति न होयहै न याकी बुद्धि श्रीभगवानके चरणारविंदमें लगैहै ॥ ३२ ॥

इत्युक्त्वोपरतं पुत्रं हिरण्यकशिपू रुषा ॥ अन्धीकृतात्मा स्वोत्सङ्गान्निरस्यत महीतले ॥ ३३ ॥ आहामर्षरुषाविष्टः कषायीभूतलोचनः ॥ वध्यतामाश्वऽयं वध्यो निःसारयत नैर्ऋताः ॥ ३४ ॥ अयं मे भ्रातृहा सोयं हित्वा स्वान् सुहृदोऽधमः ॥ पितृव्यहन्तुर्यः पादौ विष्णोर्दासवदर्चति ॥ ३५ ॥ विष्णोर्वा साध्वसौ किं नु करिष्यत्यसमञ्जसः ॥ सौहृदं दुस्त्यजं पित्रोरहाद् यः पञ्चहायनः ॥ ३६ ॥ परोप्यपत्यं हितकृद्यथौषधं स्वदेहजोप्यामयवत् सुतोऽहितः ॥ छिन्द्यात् तदङ्गं यदुतात्मनोऽहितं शेषं सुखं जीवति यद्विवर्जनात् ॥ ३७ ॥ सर्वैरुपायैर्हन्तव्यः संभोजशयनासनैः ॥ सुहृल्लिङ्गधरः शत्रुर्मुनेर्दुष्टमिवेन्द्रियम् ॥३८॥ नैर्ऋतास्ते समादिष्टा भर्त्रा वै शूलपाणयः ॥ तिग्मदंष्ट्रकरालास्यास्ताम्रश्मश्रुशिरोरुहाः ॥३९॥ नदन्तो भैरवान् नादाञ्छिन्धि भिन्धीति वादिनः ॥ आसीनं चाहनच्छूलैः प्रह्लादं सर्वमर्मसु ॥४०॥ परे ब्रह्मण्यनिर्देश्ये भगवत्यखिलात्मनि ॥ युक्तात्मन्यफला आसन्नपुण्यस्येव सत्क्रियाः ॥ ४१ ॥

हे नृप! ऐसें कहि जब पुत्र चुप रह्यो तब हिरण्यकश्यप क्रोधके मारे गोदीमेसे धरतीपर छोराकूं पटक देतोभयो ॥ ३३ ॥ क्रोध रोषावेशहोय विकराल नेत्रकर बोलो हे राक्षसहो! यह मारवे योग्य है याय मारो शीघ्र याको निकासदो ॥३४॥ येही मेरे भाईको मारवेवारो है, यह अधम अपने सुहृदनकों त्याग चाचाके मारनेवारे विष्णुके पादको दासकी नाईं पूजै है ॥३५॥ ये निंद्य विष्णुको कहा भला करैगो जिसने पांच वर्षकी अवस्थामेंही दुस्त्यज माता पिताका प्यार त्याग दिया आगे न जाने कहा करैगो ॥३६॥ दूसरेका पुत्र हितकारी होयतौ औषधी श्रेष्ठ होयहै, अपनी देहसै उत्पन्न हुआ पुत्र अहितकारी हो तौ वह शत्रु है रोगकी समान है जो हस्त पादादि अपने अंग दुखदाई होतौ उन्है काटकर बचा शरीर सुखपूर्वक रहता है ॥ ३७॥ सब उपायोंसे विषादि खवायकै शयन करायकै आसन करकै या सुहृदचिन्हधारी पुत्रकूं मारो, जैसै मुनि दुष्ट इंद्रियको मारैंहै तैसैं करो ॥३८॥ दैत्येन्द्रकी इस प्रकार आज्ञा पाकर भयंकर डाढौंवाले विकराल मुख और ताम्रकी समान डाढी मूछवाले शूल हाथमें उठाये वे राक्षस॥३९॥भैरवसमान नादकर मारडालो ऐसा कह बैठे भयें प्रल्हादजीके सब मर्मस्थलोंमें शूल मारते भए ॥ ४० ॥ परब्रम्ह सबके अगोचर भगवान् सर्वांतर्यामी जिनका मन लगा है तिन प्रल्हादजीमें सब असुरनके करे प्रहार निष्फल होते हुये जैसे अपुण्यकी सब शक्तिया नाश होय तैसे राक्षसौंके प्रहार नष्ट हुए ॥ ४१ ॥

हे युधिष्ठिर ! जब सब परिश्रम व्यर्थ हुये तब दैत्येंद्रकों बडी शंका भई हठ करकै वाके मारवेके उपाय करतोभयो ॥ ४२ ॥ हाथीसे खुंदवायो, सांपसे कटायो मारण प्रयोग करो पर्वतसे पटको, अनेक माया करी, जहर दीनो महीनन खायवेकों न दीनो ॥ ४३ ॥ जलमें डुवायो, जाडन मार्यो, अग्निसे जरायो, पर्वतोंपे पछाडो तौहू न मरै तब असुरको महाचिंता भई ॥ ४४ ॥ तासमय ढूंढा वाकी बहन मारवेकूं न समर्थ भई तब अत्यंतही चिंता भई, वाकों दूर न करसकौ "याकी एक आख्यायिका है कि ढूंढाको एक मंत्रसिद्धि अग्निकी ऐसी याद ही कि जाको गोदमें लेके लाखो मण ईंधनके भीतर लेजाय बैठै जरतेमे तो मरे नहीं यही उपाय प्रल्हादजीपर कीनी सो ढूंढा मरी प्रल्हाद नमरे पाछे होली नाम वाको विख्यात भयो नृसिंहजीने वर दीनो कि याकी देह मेरे भक्त निमित्त गई सो याय सब विश्व पूजेगे" वा समय प्रहलादनें पितासे कही कि ॥ "रामनाम जपतां कुतो भयं सर्वपापशमनैकभेषजम् ॥ पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना " ॥ ४५ ॥ याके मैंनै बहुत उपाय असाधुपनके करै पर यह मरो नहीं तिन तिन द्रोहोंले असद्धर्मोंसे अपने तेजसें आप मुक्त होयहै ॥ ४६ ॥ यह मेरे निकट रहताहै बालक है तथापि भयत्यागे कुत्तेकी पूंछकी नाई अपने स्वभावको नहीं त्यागता मेरे वैरीको नहीं विस्मरण करता ॥ ४७ ॥ अप्रमेय याको प्रभाव है, क्या यह देवता है याकों कहींसे भय नहीं है निश्चय है कि याके विरोधसें मेरो मृत्यु होयजायगी ॥ ४८ ॥

प्रयासेऽपहते तस्मिन् दैत्येन्द्रः परिशङ्कितः ॥ चकार तद्वधोपायान् निर्बन्धेन युधिष्ठिर ॥ ४२ ॥ दिग्गजैर्दन्दशूकैश्च अभिचारावपातनैः ॥ मायाभिः संनिरोधैश्च गरदानैरभोजनैः ॥ ४३ ॥ हिमवाय्वग्निसलिलैः पर्वताक्रमणैरपि ॥ न शशाक यदा हन्तुमपापमसुराः सुतम् ॥ ४४ ॥ ढूण्ढा च भगिनी तस्मिन्नाशक्नोन्मारितुं तदा ॥ चिन्तां दीर्घतमां प्रातस्तत्कर्तु नाभ्यपद्यत ॥४५॥ एष मे बह्वसाधूक्तो वधोपायाश्च निर्मिताः ॥ तैस्तैर्द्रोहैरसद्धर्मैर्मुक्तः स्वेनैव तेजसा ॥४६॥ वर्तमानो विदूरे वै बालोप्यजडधीरयम् ॥ न विस्मरति मेऽनार्यं शुनः शेप इव प्रभुः ॥४७॥ अप्रमेयाऽनुभावोऽयमकुतश्चिद्भयोऽमरः ॥ नूनमेतद्विरोधेन मृत्युर्मे भविता न वा ॥ ४८ ॥

या चिंतासे उसके मुखकी शोभा मलीन होगई नीचेको मुख करे हिरण्यकश्यपसें शुक्राचार्यके पुत्र शंडामर्को एकांतमें आयकर ये बोलै ॥ ४९ ॥ हे नाथ! आपके भ्रुकुटिके चलनेसें सब तीनों जगत् जीतेगए,सब लोकपाल जीते आपकों कुछ चिंता करनो योग्य नही है बालकोंके गुण दोषोंकी याद मत करो ॥ ५० ॥ याको वरुणकी फांसीसे बांधके घरमें राखो, जामे ये भाग न जाय, यह निश्चय है कि पुरुषकी बुद्धि अवस्थासें और बडोंकी सेवासे सुधरती है जबतक शुक्राचार्यभी आय जावैंगे ॥ ५१ ॥ बहुत अच्छा ऐसे कहि हिरण्यकश्यप इस प्रकार बोलै जो गृहस्थी राजानके धर्म हैं सो याको उपदेश करो ॥ ५२ ॥ हे राजन्! इस प्रकार श्रवणकर वह ब्राह्मण नम्रीभूत प्रल्हादको यथा क्रमसे धर्म अर्थ काम विषय सिखाने लगे ॥ ५३ ॥

इति तं चिन्तया किञ्चिद् म्लानश्रियमधोमुखम् ॥ शण्डामर्कावौशनसौ विविक्त इति होचतुः ॥ ४९ ॥ जितं त्वयैकेन जगत्त्रयं भ्रुवोर्विजृम्भणत्रस्तसमस्तधिष्ण्यपम् ॥ न तस्य चिन्त्यं तव नाथ चक्ष्महे न वै शिशूनां गुणदोषयोः पदम् ॥ ५० ॥ इमं तु पाशैर्वरुणस्य बद्ध्वा निधेहि भीतो न पलायते यथा ॥ बुद्धिश्च पुंसो वयसार्यसेवया यावद्गुरुर्भार्गव आगमिष्यति ॥ ५१ ॥ तथेति गुरुपुत्रोक्तमनुज्ञायेदमब्रवीत् ॥ धर्मा ह्यस्योपदेष्टव्या राज्ञां ये गृहमेधिनाम् ॥ ५२ ॥ धर्ममर्थं च कामं च नितरां चानुपूर्वशः ॥ प्रह्लादायोचतू राजन् प्रश्रयावनताय च ॥ ५३ ॥ यथा त्रिवर्गं गुरुभिरात्मने उपशिक्षितम् ॥ न साधु मेने तच्छिक्षां द्वन्द्वारामोपवर्णिताम् ॥ ५४ ॥ यदाचार्यः परावृत्ता गृहमेधीयकर्मसु ॥ वयस्यैर्बालकैस्तत्र सोपहूतः कृतक्षणैः ॥ ५५ ॥ अथ तान् श्लक्ष्णया वाचा प्रत्याहूय महाबुधः ॥ उवाच विद्वांस्तन्निष्ठां कृपया प्रहसन्निव ॥ ५६ ॥ ते तु तद्गौरवात् सर्वे त्यक्तक्रीडापरिच्छदाः ॥ बाला न दूषितधियो द्वन्द्वारामेरितेहितैः ॥ ५७ ॥

गुरुने श्रम कर वे विषय प्रल्हादको पढाये पर उन्होंने उन्हे अच्छा न माना इसका यह कारण है कि संसार सुखमें राग द्वेषादिसे क्रीडा करनेवाले पुरुषोंका यह विषय कथन किया हुआ है ॥ ५४ ॥ जब आचार्य गृहस्थीपनके कर्ममें लगजांय कहीं बाहर जांय तब वो अवकाशमें अपने पास बराबरके बालकनकों बुलाय लै ॥ ५५ ॥ महाबुद्धिमान् कोमलवाणीसें उनकों बुलायकें कृपा करकें हसते भए विद्वान् प्रल्हादजी उनकूं ज्ञानकी शिक्षा कहिते भए ॥ ५६ ॥ वे सब बालक कि विषयी प्राणियोंके वचनों तथा चेष्टासे जिनकी बुद्धि कुत्सित नही हुईथी प्रल्हादजीके गौरवसे सब

खेल त्याग ॥ ५७ ॥ हे राजेंद्र! प्रहलादजीमें हृदय दृष्टि सब लगाय राखी वे बालक सब ओरसें आयके उपासना करतेभए और वह महादयालु परम भक्त प्रहलाद उन बालकोंसे इस प्रकार कहते ॥५८॥ इति श्रीमद्भागवतभाषायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादेन नवधाभक्तिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ श्रीप्रहलादजी बोले कि जो कुमार अवस्थासें भागवतधर्म या लोकमें आचरण करताहै, वोही महापंडित है, क्योंकि ये मनुष्यको जन्म महादुर्ल्लभ है, सोभी ये स्थित नांय है, परंतु सब अर्थको दायक ये जन्म है ॥ १ ॥ या संसारमें श्रीविष्णुके चरणारविंदकी शरणागति करनी येही पुरुषकी सब बातको सार है, षड्विध शरणागति करै ये ईश्वर सब जीवमात्रके व्यापक आत्मा प्रिय सुहृद हैं ॥२॥ हे दैत्यपुत्रहो! इंद्रियनको जो सुख है, सो

पर्युपासत राजेन्द्र तन्नयस्तद्धृदयेक्षणाः ॥ तानाह करुणो मैत्रो महाभागवतोऽसुरः ॥ ५८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रह्लादेन नवधा भक्तिवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह ॥ दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम् ॥ १ ॥ यथा हि पुरुषस्येह विष्णोः पादोपसर्पणम् ॥ यदेष सर्वभूतानां प्रिय आत्मेश्वरः सुहृत् ॥ २ ॥ सुखमैन्द्रियकं दैत्या देहयोगेन देहिनाम् ॥ सर्वत्र लभ्यते दैवाद्यथा दुःखमयत्नतः ॥ ३ ॥ तत्प्रयासो न कर्तव्यो यत आयुर्व्ययः परम् ॥ न तथा विन्दते क्षेमं मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥ ४ ॥ ततो यतेत कुशलः क्षेमाय भयमाश्रितः ॥ शरीरं पौरुषं यावन्न विपद्येत पुष्कलम् ॥ ५ ॥ पुंसो वर्षशतं ह्यायुस्तदर्धं वाजितात्मनः ॥ निष्फलं यदसौ रात्र्यां शेतेऽन्धं प्रापितस्तमः ॥ ६ ॥

तो देह योगसे देहधारीनको भाग्यसे सब योनियोंमें प्राप्त होताहै, जैसे दुःख विनायत्नसें आयजाय है, परंतु भगवतकी भक्ति प्रपत्ति याही देहसे होयहै औरसें नहीं॥ ३ ॥ जासें व्यर्थ आयु क्षय होय, वामें परिश्रम न करै, जैसो मुकुंदके चरणकमलके भजनसे क्षेम होय है तैसो और साधनौसे नहीं होयहै ॥ ४ ॥ जबतक पुरुषार्थ बनोरहै जबतक यापै कोई विपत्ति न आवै, तबतक डरकर शीघ्र मोक्षके अर्थ यत्न करै ॥ ५ ॥ पुरुषकी शतवर्षकी आयुहै, सो आधी अजितात्मानकी ये आयु रात्रिमें जायहै; तमरूप अंधकारमें पड़कर सोकर वितावैहैं ॥ ६ ॥

मोहयुक्त बालपनमें खेलमें बीसवर्ष जायहैं, असमर्थ जराग्रसित देह हो जाय तब बीस वर्ष जांयहैं ॥७॥ कदी पूरो न होय ऐसे कामसे बली मोहसे आयु व्यर्थ जायहै, शेष प्रमत्त होकै घरमें आसक्त रहै है, वामे आयु खोवै है ॥ ८ ॥ कौन पुरुष घरमें आसक्त होय अजितेंद्री आत्माकों जो दृढ स्नेहरूप फांशीसे बंधी हुई है खोलनेकों समर्थ है कोई नहीं ॥ ९ ॥ प्राणसोंभी प्यारी धनकी तृष्णा काऊसें न त्यागीजाय है, जिसै चोर सेवक और व्यापार करनेहारे अपना जीवन खोना स्वीकार कर उपार्जन करते है ॥ १० ॥ दयालु प्यारी स्त्रीकें संगकी रहस्य सुन्दर सलाह सुहृदोंको शोक बालकोंकी मनोहर वाणी इन सबमें चित्त अनुरक्त है सो स्नेहमें फसकै त्याग नहीं करसकै है ॥ ११ ॥ पुत्रोंकी याद, बेटीनकी याद, भाई बहिन दीन मा बाप घर

मुग्धस्य बाल्ये कौमारे क्रीडतो याति विंशतिः ॥ जरया ग्रस्तदेहस्य यात्यकल्पस्य विंशतिः ॥ ७ ॥ दूरापूरेण कामेन मोहेन च बलीयसा ॥ शेषं गृहेषु सक्तस्य प्रमत्तस्यापयाति हि ॥ ८ ॥ को गृहेषु पुमान् सक्तमात्मानमजितेन्द्रियः ॥ स्नेहपाशैर्दृढैर्बद्धमुत्सहेत विमोचितुम् ॥ ९ ॥ कोन्वर्थतृष्णां विसृजेत् प्राणेभ्योपि य ईप्सितः ॥ यं क्रीणात्यसुभिः प्रेष्ठैस्तस्करः सेवको वणिक् ॥ १० ॥ कथं प्रियाया अनुकम्पितायाः सङ्गं रहस्यं रुचिरांश्च मन्त्रान् ॥ सुहृत्सु च स्नेहसितः शिशूनां कलाक्षराणामनुरक्तचित्तः ॥ ११ ॥ पुत्रान्स्मरंस्ता दुहितॄर्हृदय्या भ्रातॄन्स्वसॄर्वा पितरौ च दीनौ ॥ गृहान्मनोज्ञोरुपरिच्छदांश्च वृत्तीस्तु कुल्याः पशुभृत्यवर्गान् ॥ १२ ॥ त्यजेत कोशस्कृदिवेहमानः कर्माणि लोभादवितृप्तकामः ॥ औपस्थ्यजैह्वयं बहु मन्यमानः कथं विरज्येत दुरन्तमोहः ॥ १३ ॥ कुटुम्बपोषाय वियन्निजायुर्न बुध्यतेऽर्थं विहतं प्रमत्तः ॥ सर्वत्र तापत्रयदुःखितात्मा निर्विद्यते न स्वकुटुम्बरामः ॥ १४ ॥

मनोहर घरकी चीजै, कुलपरंपरामें प्राप्त जीवका पशु, नौकर, इनै कोई काऊ प्रकार न त्याग सकैहै ॥ १२ ॥ रेशमके कीडेकी नाई चेष्टा करते लोभसे कर्म करै है, सो काम तृप्त नहीं होयहै, याते नहीं त्याग सकैहै, शिश्न जीभ इनके विषयनकों बहुमान करते अंतहीन या मोहकों कभी नहीं त्याग सकैहै ॥ १३ ॥ कुटुंबपोषणके लिये जिन आप्तकों व्यर्थ करता प्रमत्त होयकै न जानै है, सर्वथा तीन तापसे याकी आत्मा दुखी रहती है अपने कुटुंबमें रमण करै है, याते वैराग्य याकों कभी नहीं प्राप्त होयहै ॥ १४ ॥

अजितेन्द्रिय हौनैसे याको नित्त चित्त धनमें लगोरहै है, और परायके वित्त हरवेके दोषकूंभी जानै है ऐसा कुटुम्बी मनुष्य तृष्णा शांत न हौनेसै पराया धन हरताही है ॥ १५ ॥ हे दनुजपुत्र हो! ये बात जानै है तोभी कुटुंबको पुष्ट करता वैकुंठ जायवेकी कुछ चाहना न करैहै, अपनो परायो सब भाव छोड मूर्खकीसी नांई नरकमें जाय है ॥ १६ ॥ यह मनुष्य किसी समयमें किसी प्रकारसैभी अपने आत्माके छुडानैको सामर्थ्य नहीं होता कारण कि कामदेवकी दृष्टिवाली स्त्रियौंकी और पुत्र पौत्रादिकी कठिन बेड़ीमें बंधा है उनके निकट यह क्रीडामृगके समान रहता है ॥ १७॥ हे दैत्यबालकहो ! शीघ्र विषयोंकी चाहवारे दैत्यकों संग त्यागकरो, सब देवनके आदिदेव श्रीमन्नारायणके चरणारविंदकी शरणागति करो, कारण

वित्तेषु नित्याभिनिविष्टचेता विद्वांश्च दोषं परवित्तहर्तुः ॥ प्रेत्येह चाथाप्यजितेन्द्रियस्तदशान्तकामो हरते कुटुम्बी
॥ १५ ॥ विद्वानपीत्थं दनुजाः कुटुम्बं पुष्णन् स्वलोकाय न कल्पते वै ॥ यः स्वीयपारक्यविभिन्नभावस्तमः प्रपद्येत
यथा विमूढः ॥ १६ ॥ यतो न कश्चित् क्व च कुत्रचिद् वा दीनः स्वमात्मानमलं समर्थः ॥ विमोचितुं कामदृशां विहारक्रीडामृगो
यन्निगडो विसर्गः ॥ १७ ॥ ततो विदूरात् परिहृत्य दैत्या दैत्येषु सङ्गं विषयात्मकेषु ॥ उपेत नारायणमादिदेवं
विमुक्तसङ्गैरिषितोऽपवर्गः ॥ १८ ॥न ह्यच्युतं प्रीणयतो बह्वायासोऽसुरात्मजाः ॥ आत्मत्वात् सर्वभूतानां
सिद्धत्वादिह सर्वतः ॥ १९ ॥ परावरेषु भूतेषु ब्रह्मान्तस्थावरादिषु ॥ भौतिकेषु विकारेषु भूतेष्वथ महत्सु च ॥ २० ॥
गुणेषु गुणसाम्यं च गुणव्यतिकरे तथा ॥ एक एव परो ह्यात्मा भगवानीश्वरोऽव्ययः ॥ २१ ॥

कि संग त्यागनेवाले पुरुषोंने नारायणके भजनहीका नाम मोक्ष कहाहै ॥ १८ ॥ हे असुरबालकहो ! अच्युतके प्रसन्न करवेमें कुछ बहुत परिश्रम नही होयहै, वो तो सर्व जीवमात्रके व्यापक आत्मा है, सब तरहसे सिद्ध है ॥ १९ ॥ पर अवरजीवमें ब्रह्मांते स्थावर आदिमें पांचभौतिक विकारमें महात्मा जीवमात्रोंमें प्रीत करो ॥ २० तीन गुणोंमें प्रकृति आदि महत्तत्वादि विकारोंमें एक पर अवर आत्मा भगवान् ईश्वरही अविनाशी है उन्हें भजो " गधा पचीसीकी मनुष्यकी आयु है यामें सह्मारों जैसै एक मनुष्य गधा कुत्ती मुर्गा चारोने तप करो ब्रह्माजी आये बोले वर मांगो ये बोले उमर देओ उन्होंने कही लाखवर्षकी आयु देऊ कि दशलाखकी ये चारों बोले नांय ४० वर्षकी देओ मनुष्य तो उम्र ले प्रसन्न भये

ये तीनो जहां गए तहां दुःख भोग हैरान होय बोले कोई याय लेलै वोही मनुष्य अकस्मात्फेर मिलो, वासें कही वानें कही बीसबीसवर्षकी आयु देओ लेलीनी, सो पहिले तो ये जीव गधाकी नांईके वह वह मरैं है, पाछै कुत्ताकी आयु लीनी है सो कुत्ताकी नाई भौकभौक मरै है, कोई याको कह्यो न मानै हे, वृद्धापनमें मुर्गाकी नाई गर्दन डुलावैहै यूही चारो पण याके व्यतीत होयहै, यासे चलते देहसें खूब तो श्रीहरि स्मरण करौ दान करे तीर्थ करौ ब्राह्मणोंकों जिमाओ नवधा भक्ति करौ सुवर्णदान करो वेदपढो पढावों विद्याभ्यास करो ब्रह्मविद्या सीखो क्रोध लोभ मोह ईर्षा निंदा छल बुराई मारना दुष्टता मान मद दर्प हिंसा चोरी इत्यादि त्यागो तो मोक्ष होऔंगे ॥ २१ ॥ सबके आत्मस्वरूप देखवेके योग्य स्वरूपसे आप व्याप्त व्यापक निर्देशके अयोग्य अगोचर संकल्प विकल्पहीन ब्रह्म है ॥ २२ ॥ केवल अनुभवसें आनंदस्वरूप परमेश्वर मायासे सब ऐश्वर्य छिपाय राखे है, गुणोंकी रचवेवारी मायासै जाने जांयहैं ॥ २३ ॥ ताते सब जीवमात्रमें दया करो, सुहृदता करो आसुरभावको त्यागो, जासै भगवान् प्रसन्न होय है ॥ २४ ॥ अनंत आद्य प्रसन्न होजांय तौ सब वस्तु प्राप्त होयहै, जो अपने आप प्राप्त हुए लोकोंकें सिद्धधर्मादिक हैं उनकी हमे इच्छा नहीं तथा मोक्षकी इच्छा नही भगवानकी चरणसेवा करवेवारे गुण गायवेवारे हमको काऊसै कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ २५ ॥ धर्म अर्थ काम ये त्रिवर्ग आत्मा विद्या, वेदत्रयी दंडनीति और अनेक तरहकी वार्ता सो ये सब वेदके सार है, परंतु इनसेंबी सार यह है कि परम पुरुष ईश्वरको अपनो आत्मा समर्पण करनो ये श्रेष्ठतम है ॥ २६ ॥

प्रत्यगात्मस्वरूपेण दृश्यरूपेण च स्वयम् ॥ व्याप्यव्यापकनिर्देश्यो ह्यनिर्देश्योऽविकल्पितः ॥ २२ ॥ केवलानुभवानन्दस्वरूपः परमेश्वरः ॥ माययाऽन्तर्हितैश्वर्य ईयते गुणसर्गया ॥ २३ ॥ तस्मात् सर्वेषु भूतेषु दयां कुरुत सौहृदम् ॥ आसुरं भावमुन्मुच्य यया तुष्यत्यधोक्षजः ॥ २४ ॥ तुष्टे च तत्र किमलभ्यमनन्त आद्ये किं तैर्गुणव्यतिकरादिह ये स्वसिद्धाः ॥ धर्मादयः किमगुणेन च काङ्क्षितेन सारंजुषां चरणयोरुपगायतां नः ॥२५॥ धर्मार्थकाम इति योऽभिहितस्त्रिवर्ग ईक्षा त्रयी नयदमौ विविधा च वार्ता ॥ मन्ये तदेतदखिलं निगमस्य सत्यं स्वात्मार्पणं स्वसुहृदः परमस्य पुंसः ॥ २६ ॥

महाकठिन ये निर्मल ज्ञान नरके सखा श्रीमन्नारायणने श्रीनारदजीसे कह्यो है जो निस्पृह और जो एकांत भक्त देहाभिमानसै रहित है और नारायणकी चरण रजमें न्हाये हुयेहैं उन्हैं यह ज्ञान प्राप्त होताहै ॥ २७ ॥ देवसमान जिनके दर्शन ऐसे श्रीनारदजीस विज्ञान सहित ये ज्ञान और शुद्ध भागवत धर्म पहिले मैंने सुनेथे ॥ २८ ॥ दैत्यपुत्र बोले कि हे प्रहलाद ! तुह्मारे विना औरको गुरु हम नहीं मानै हैं, इन गुरु पुत्रोंके बालकोंके ईश्वरनके तुम ईश्वर हो ॥ २९ ॥ तुम बालक सदा अंतःपुरमें रहितेहो तुमको महात्मानको संग दुःखनाशक कहां भयो, हे सौम्य ! ये संदेह हमारो छेदो, जासे हमारो तुममें घनो विश्वास होय ॥३०॥ इति श्रीमन्म० भा० स० प्रह्लादेन ब्रह्मज्ञानवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥६॥ श्रीनारदजी बोले कि ऐसे

ज्ञानं तदेतदमलं दुरवापमाह नारायणो नरसखः किल नारदाय ॥ एकान्तिनां भगवतस्तदकिञ्चनानां पादारविन्दरजसाप्लुतदेहिनां स्यात् ॥२७॥ श्रुतमेतन्मया पूर्वं ज्ञानं विज्ञानसंयुतम् ॥ धर्मं भागवतं शुद्धं नारदाद्देवदर्शनात् ॥ ॥ २८ ॥ दैत्यपुत्रा ऊचुः ॥ प्रह्लाद त्वं वयं चापि नर्तेऽन्यं विद्महे गुरुम् ॥ एताभ्यां गुरुपुत्राभ्यां बालानामपि हीश्वरौ ॥२९॥बालस्यान्तःपुरस्थस्य महत्सङ्गो दुरन्वयः॥ छिन्धि नः संशयं सौम्य स्याच्चेद् विश्रम्भकारणम्॥३०॥ इति श्रीभा०म०स० प्रह्लादेन बालानां ब्रह्मज्ञानवर्णनं नाम षष्ठोध्यायः॥६॥ नारद उवाच ॥ एवं दैत्यसुतैः पृष्टो महाभागवतोऽसुरः॥उवाच स्मयमानांस्तान् स्मरन् मदनुभाषितम्॥१॥प्रह्लाद उवाच॥पितरि प्रस्थितेऽस्माकं तपसे मन्दराचलम्॥ युद्धोद्यमं परं चक्रुर्विबुधा दानवान् प्रति॥२॥पिपीलिकैरहिरिव दिष्ट्या लोकोपतापनः॥ पापेन पापोऽभक्षीति वादिनो वासवादयः॥३॥ तेषामतिबलोद्योगं निशम्यासुरयूथपाः ॥ वध्यमानाः सुरैर्भीता दुद्रुवुः सर्वतो दिशम् ॥ ४ ॥

दैत्यसुत महाभागवत प्रह्लाद मेरी कही वार्ताको यादकर मुसकायके उन बालकोंसे बोलै ॥ १ ॥ श्रीप्रहलादजी बोले कि हमारे पिता जब मंदराचलकों तपके अर्थ गये, तब दानवनसे युद्धको उद्यम देवता करते भये ॥ २ ॥ जैसै सर्पकों चेटी चिपट जांय ये गति पिताकी भई तब इंद्रादिक बोले बडो मंगल भयो कि सब लोकको ताप देवेवारे पापीको पाप भक्षण कर गयो ॥ ३ ॥ तिनके अति बलको उद्योग देख सुन असुरयूथपती देवतौंके मारेभये डरसे सब दिशानको भागगये ॥ ४ ॥

स्त्री पुत्र मित्र कुटुंबी घर पशु सब सामग्रीनकी ओर न देखत सब प्राण बचायवेको भाजगए ॥ ५ ॥ जयकी चाहवारे देवता राजाके सेनानिवासस्थानको नाश करतेभए, राजकी स्त्री मेरी मा कयाधुदानवीको इंद्र पकडके लेचलो ॥६॥ भयभीत टटीरीकी नांई रोवै ताहि लेजाते भए मार्गमें अनायास नारदजी आय खेदतेभए॥७॥नारदजी बोले हे इंद्र! याय मत लेजाओ हे महाभाग! ये सती है, पराएकी स्त्री निरपराधिनी है,याय छोड छोड याको पति आवैगो जब तुम सब भाजते डोलौगे ॥ ८ ॥ इंद्र बोले कि याके पेटमें असह्य देवद्रोहिके तेज है सो जबतक याको गर्भ बाहर न आवै हमारो

कलत्रपुत्रमित्राप्तान् गृहान् पशुपरिच्छदान् ॥ नावेक्षमाणास्त्वरिताः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥५॥ व्यलुम्पन् राजशिबिरममरा जयकाङ्क्षिणः ॥ इन्द्रस्तु राजमहिषीं मातरं मम चाग्रहीत् ॥ ६ ॥ नीयमानां भयोद्विग्नां रुदतीं कुररीमिव ॥ यदृच्छया गतस्तत्र देवर्षिर्ददृशे पथि ॥ ७ ॥ प्राह मैनां सुरपते नेतुमर्हस्यनागसम् ॥ मुञ्च मुञ्च महाभाग सतीं परपरिग्रहम् ॥ ८ ॥ इन्द्र उवाच ॥ आस्तेऽस्या जठरे वीर्यमविषह्यं सुरद्विषः ॥ आस्यतां यावत्प्रसवं मोक्ष्येऽर्थपदवीं गतः ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ अयं निष्किल्बिषः साक्षान्महाभागवतो महान् ॥ त्वया न प्राप्स्यते संस्थामनन्तानुचरो बली ॥ १० ॥ इत्युक्तस्तां विहायेन्द्रो देवर्षेर्मानयन् वचः ॥ अनन्तप्रियभक्त्यैनां परिक्रम्य दिवं ययौ ॥ ११ ॥ ततो नो मातरमृषिः समानीय निजाश्रमम् ॥ आश्वास्येहोष्यतां वत्से यावत् ते भर्तुरागमः ॥ १२ ॥

मनोरथ न पूर्णहोय तबतक छोडेंगे नहीं ॥९॥ श्रीनारदजी बोले कि याके पेटमें निस्पृह महाभागवत है, सो तुमसे नहीं मरैगा अनंतके दास बली होते है॥१०॥ये सुन नारदको वचन मान वाय छोड देतो भयो, भगवतप्रिय याके भीतर है ये जान वाकी परिक्रमा कर इंद्र स्वर्गको चलो गयो ॥ ११ ॥ तापाछे हमारी माको ऋषि अपने आश्रमपर लाय वाको दम दिलासा देकर बोले हे वत्से! जबतक तेरो भर्ता आवै तबतक तुम यहां वास करो॥१२॥

---

१ शंका–राक्षसोंके बालकोंसे प्रह्लादने कहा कि नारद मुनि मेरी माताको अपने आश्रमपर लेगये, जब मेरी माता नारदजीके आश्रममें विश्राम करती रही जबतक मेरा पिता हिरण्यकशिपु ब्रह्माजीसे वरदान लेकर घरपर न आया, हम लोगोंने ऐसा सुना है शास्त्र और पुराणोंमे कि नारद मुनिका कोई आश्रमही नहींथा और नारद मुनि किसी स्थानपर दो चार घडीसे अधिक ठहरही नहीं सक्ते थे, फिर नारदजीके आश्रमपर प्रल्हादकी माता कैसे बहुत दिनतक ठहरी? यह सन्देह है?

उत्तर–भगवान्के भजन करनेके लिये बद्रिकाश्रममें नारदजीका गुप्त आश्रम है, तीन लोकमें घूमघाम कर नारदजी अपने उसी गुप्त आश्रमपर आनकर भगवान्का भजन करते हैं नारदजीके आश्रपर जो जीव बसते हैं, उनको किसीका भय नहीं होता, इसालिये प्रल्हाद दैत्यौंके बालकोंसे कहतेथे।

जबतक दैत्यपति घोर तपसे न निवर्तभयो तबतक भयरहित हो बहुत अच्छा ऐसें कहि देवऋषिके पास वसतीभई ॥ १३ ॥ गर्भवती सती अपने गर्भकी कुशलता और इच्छापूर्वक पुत्र जन्मके लिये परमभक्तिसे ऋषिकी परिचर्या करतीभई ॥१४॥ दयालु ऋषि मो भक्तकों जान निर्मल दो प्रकारके धर्मको तत्वज्ञान देतेभए ॥ १५ ॥ वो ज्ञान काल पायकर बहुत दिन होनेसे वह तौ स्त्रीपनसे भूलगई, ऋषिकी कृपासे अबतक मोको वो ज्ञान याद् है भूलो नहीहै ॥ १६ ॥ जो मेरे वचनको श्रद्धा करोगे तो आपकोभी श्रद्धा करनेसे मुझसरीके बालक और स्त्रियोंकोभी स्त्रीबालकनकोभी श्रद्धासें ये विशारद बुद्धि होयजायगी ॥१७॥ जन्म होना बढना रूपान्तर होना क्षय नाश ये छे भाव द्रष्टाकों होयहै, देहके व्यापक आत्माकों न होंय है, परन्तु जैंसे वृक्ष होतभी उसके पत्रादि विकार होतेहै इसी प्रकार आत्माके होनेसै यह छ देहमें भासतेहैं ॥ १८ ॥ आत्मा नित्य है "अविनाशी वारे अयमात्मेति श्रुतेः" ॥ अव्ययहै "ऋचोअक्षरे परमे व्योमन्निति श्रुतेः" शुद्धहै "निरवद्यंनिरंजनमितिश्रुतेः" ॥ एकहै "एकमेवाद्वितीयमितिश्रुतेः" ॥ क्षेत्रज्ञहै "विज्ञातारमरेकेनविजानीयादितिश्रुतेः" ॥ आश्रयहै "यस्मिन्द्यौः पृथिवी चांतरिक्षमितिश्रुतेः" अविक्रियहै "निष्क्रियंनिष्कलंशांतामितिश्रुतेः" ॥ स्वदृक्है "आत्मज्योतिः सम्राडितिहोवाचेतिश्रुतेः ॥" सबकेहेतुहैं "सइमांल्लोकानसृजतेतिश्रुतेः" ॥ व्यापकहै "सत्यंज्ञानमनंतमितिश्रुतेः" ॥ "असंगीहै "असंगोह्ययंपुरुष इतिश्रुतेः" अनावृतहै "पूर्णस्य पूर्णमादायपूर्णमेवावशिष्यतइतिश्रुतेः" ॥ उक्त द्वादश विशेषण विशिष्ट बृहत्वादि गुणविशिष्ट चैतन्य ब्रह्म है इस्सै विपरीत शरीरके लक्षण हैं ॥ १९ ॥

तथेत्यवात्सीद्देवर्षेरन्ति साऽप्यकुतोऽभया ॥ यावद्दैत्यपतिर्घोरात्तपसो न न्यवर्तत ॥ १३ ॥ ऋषिं पर्यचरत्तत्र भक्त्या
परमया सती ॥ अन्तर्वत्नी स्वगर्भस्य क्षेमायेच्छाप्रसूतये ॥ १४ ॥ ऋषिः कारुणिकस्तस्याः प्रादादुभयमीश्वरः ॥ धर्मस्य तत्त्वं ज्ञानं च मामप्युद्दिश्य निर्मलम् ॥ १५ ॥ तत्तु कालस्य दीर्घत्वात् स्त्रीत्वान्मातुस्तिरोदधे ॥ ऋषिणाऽनुगृहीतं मां नाधुनाप्यजहात् स्मृतिः ॥ १६ ॥ भवतामपि भूयान्मे यदि श्रद्दधते वचः ॥ वैशारदी धीः श्रद्धातः स्त्रीबालानां
च मे यथा ॥ १७ ॥ जन्माद्याः षडिमे भावा दृष्टा देहस्य नात्मनः ॥ फलानामिव वृक्षस्य कालेनेश्वरमूर्तिना ॥ १८ ॥
आत्मा नित्योऽव्ययः शुद्ध एकः क्षेत्रज्ञ आश्रयः ॥ अविक्रियः स्वदृग्घेतुर्व्यापकोऽसङ्ग्यनावृतः ॥ १९ ॥

आत्माके परेसे परे ये द्वादशलक्षणका विद्वान् अहं मम ये असद्भाव देह आदिमें मोहसे लगायराखें हैं सो इन्है त्याग करै ॥२०॥ जैसै सुवर्णको सब प्रकारसे जानवेवारो सुवर्णकार कसोटीमें लगेभए सुवर्णको तपाय तपायकर निकास लेवैहै तेसें अध्यात्मज्ञानको जानवेवारो शरीरमध्यवर्ती जीवके द्वारा होयकर आत्माको लक्षरूपयोग करकै ब्रह्मकी गतिकों जानैहे ॥ २१॥ मूलप्रकृति महत अहंकार पांच तन्मात्रा ये आठ प्रकृति हैं, तीन वाके गुण हैं, ग्यारह इंद्रियें पंच महाभूत सोलवो जीव ये षोडश विकारोंके होनेसे कपिलाचार्योंने जीव ब्रह्म एक कहा है ॥२२॥ इनचौवीस तत्वोंका संघात शरीर है स्थावर जंगम ये दो उसके भेद हैं इसीमें आत्माको ढूंढना और उसका पाना सुलभ है कारण कि यह आत्मा नही यह आत्मा नही ऐसै जड़ पदा·

एतैर्द्वादशभिर्विद्वानात्मनो लक्षणैः परैः ॥ अहं ममेत्यसद्भावं देहादौ मोहजं त्यजेत् ॥ २० ॥ स्वर्णं यथा ग्रावसु हेमकारः क्षेत्रेषु योगैस्तदभिज्ञ आप्नुयात् ॥ क्षेत्रेषु देहेषु तथात्मयोगैरध्यात्मविद् ब्रह्मगतिं लभेत ॥ २१ ॥ अष्टौ प्रकृतयः प्रोक्तास्त्रय एव हि तद्गुणाः ॥ विकाराः षोडशाचार्यैः पुमानेकः समन्वयात् ॥ २२ ॥ देहस्तु सर्वसंघातो जगत्तस्थुरिति द्विधा ॥ अत्रैव मृग्यः पुरुषो नेति नेतीत्यतत्त्यजन् ॥ २३ ॥ अन्वयव्यतिरेकेण विवेकेनोशतात्मना ॥ सर्गस्थानसमाम्नायैर्विमृशद्भिरसत्वरैः ॥२४ ॥ बुद्धेर्जागरणं स्वप्नः सुषुप्तिरिति वृत्तयः ॥ ता येनैवानुभूयन्ते सोऽध्यक्षः पुरुषः परः ॥ २५ ॥ एभिस्त्रिवर्णैः पर्यस्तैर्बुद्धिभेदैः क्रियोद्भवैः ॥ स्वरूपमात्मनो बुध्येद् गन्धैर्वायुमिवान्वयात् ॥ २६ ॥ एतद्द्वारो हि संसारो गुणकर्मनिबन्धनः ॥ अज्ञानमूलोऽपार्थोऽपि पुंसः स्वप्न इवेष्यते ॥ २७ ॥

र्थोंको पृथक् करनैसै चैतन्य आत्मा शेष रहताहै ॥ २३ ॥ जैसें मणियोंमें सबमें सूत पुयोहै याको नाम अन्वय है, और मणियोंकी सूतसे पृथक्ता हैं याको नाम व्यतिरेक है, या शुद्धज्ञान जानवेवारे मनसे उत्पत्ति पालन नाश निरूपण करनेहारे वेदवाक्योंके विचारसै आत्माको जान्तैहै ॥ २४ ॥ जागृत स्वप्न सुषुप्ति ये तीन बुद्धिकी वृत्ति हैं इनको जो जान्नेहारा है सो सबको साक्षी परपुरुष ईश्वर है ॥ २५ ॥ इन तीन वर्णसे बुद्धिभेद करकै क्रियासें आत्माको स्वरूप जानै जैसै सबमें व्याप्त होयवेतें गंधगुणसे वायु जानी जायहैं ॥२६ ॥ गुण कर्म इनसे बंधन होयहै, यही संसारके द्वार है, अज्ञान मूल मिथ्या है पुरुषकों स्वप्नकी नाई मालूम पडै है ॥ २७॥

तातैं त्रिगुणात्मक कर्मोंके बीजके नाश करवेको तुम योग करौ जिस्सै तीन अवस्था रूप बुद्धिका प्रवाह नष्ट होजाता है ॥ २८ ॥ तहां सहस्र उपायोंमें ये उपाय भगवानने कह्यो है भगवान् ईश्वरमें जैसे होय तैसे प्रीत करे ॥ २९ ॥ गुरुकी शुश्रूषा करवेवारी भक्ति जो लाभ होय सो भगवत्के समर्पण करे, सत्संगसे साधुनकी भक्तिसें ईश्वरको आराधन करै तौ श्रीईश्वर प्रसन्न होयहैं ॥ ३० ॥ भगवत्की कथामें श्रद्धा करे, ईश्वरके गुणकर्मोंका कीर्तन करैं, उनके चरणकमलको ध्यान करै, उन्हीके स्वरूप प्रतिमाकी पूजा दर्शन करै ॥ ३१ ॥ श्रीहरि ईश्वर सब जीव मात्रमें विराजे

तस्माद् भवद्भिः कर्तव्यं कर्मणां त्रिगुणात्मनाम् ॥ बीजनिर्हरणं योगः प्रवाहोपरमो धियः ॥ २८ ॥ तत्रोपायसहस्राणामयं भगवतोदितः ॥ यदीश्वरे भगवति यथा यैरञ्जसा रतिः ॥ २९ ॥ गुरुशुश्रूषया भक्त्या सर्वलब्धार्पणेन च ॥ सङ्गेन साधुभक्तानामीश्वराराधनेन च ॥ ३० ॥ श्रद्धया तत्कथायां च कीर्तनैर्गुणकर्मणाम् ॥ तत्पादाम्बुरुहध्यानात् तल्लिङ्गेक्षाऽर्हणादिभिः ॥ ३१ ॥ हरिः सर्वेषु भूतेषु भगवानास्त ईश्वरः ॥ इति भूतानि मनसा कामैस्तैः साधु मानयेत् ॥ ३२ ॥ एवं निर्मितषड्वर्गैः क्रियते भक्तिरीश्वरे ॥ वासुदेवे भगवति यया संलभते रतिम् ॥ ३३ ॥ निशम्य कर्माणि गुणानतुल्यान् वीर्याणि लीलातनुभिः कृतानि ॥ यदातिहर्षोत्पुलकाश्रुगद्गदं प्रोत्कण्ठ उद्गायति रौति नृत्यति ॥ ३४ ॥ यदा ग्रहग्रस्त इव क्वचिद्धसत्याक्रन्दते ध्यायति वन्दते जनम् ॥ मुहुः श्वसन् वक्ति हरे जगत्पते नारायणेत्यात्ममतिर्गतत्रपः ॥ ३५ ॥

हैं ये जान तिन तिन मनकामसे उनकों मान पूजा करै ॥ ३२ ॥ ऐसै काम क्रोधादि छे शत्रुओंकों जीतकर भगवान् वासुदेव ईश्वरमें भक्ति करै, जासें प्रीत हो जायहैं ॥ ३३ ॥ अतुल गुणकर्म वीर्ययुक्त लीला जो तनु धारकर करै हैं, उन्हे सुनैं, जब अत्यन्त आनन्द प्राप्त हो जाय रोमांच हौंय नेत्रोंमें जल भरि आवै वाणी गद्गद हो मुक्त कंठसैं कभी गाने कभी नाचने कभी रौने लगे ॥ ३४ ॥ जब ग्रहग्रसेकी नाई कभी हसे पुकारे ध्यान करै जीवनको प्रणाम करै वारंवार श्वास ले जब बोले तौ हे हरे ! हे जगत्पते ! हे नारायण ! ये आत्माकी गति होय जाय सब लाज जाती रहै है ॥ ३५ ॥

तदा पुमान् मुक्तसमस्तबन्धनस्तद्भावभावानुकृताशयाकृतिः॥ निर्दग्धबीजानुशयो महीयसा भक्तिप्रयोगेण समेत्यधोक्षजम् ॥ ३६ ॥ अधोक्षजालम्भमिहाशुभात्मनः शरीरिणः संसृतिचक्रशातनम् ॥ तद्ब्रह्मनिर्वाणसुखं विदुर्बुधास्ततो भजध्वं हृदये हृदीश्वरम् ॥ ३७ ॥ कोतिप्रयासोऽसुरबालका हरेरुपासने स्वे हृदि छिद्रवत् सतः ॥ स्वस्यात्मनः सख्युरशेषदेहिनां सामान्यतः किं विषयोपपादनैः ॥ ३८ ॥ रायः कलत्रं पशवः सुतादयो गृहा मही कुञ्जरकोशभूतयः॥ सर्वेर्थकामाः क्षणभङ्गुरायुषः कुर्वन्ति मर्त्यस्य कियत् प्रियं चलाः ॥ ३९ ॥ एवं हि लोकाः क्रतुभिः कृता अमी क्षयिष्णवः सातिशया न निर्मलाः॥ तस्माददृष्टश्रुतदूषणं परं भक्त्यैकयेशं भजतात्मलब्धये ॥४०॥ यदध्यर्थेह कर्माणि विद्वन्मान्यः सकृन्नरः ॥ करोत्यतो विपर्यासममोघं विन्दते फलम् ॥ ४१ ॥ सुखाय दुःखमोक्षाय संकल्प इह कर्मिणः ॥ सदाप्नोतीहया दुःखमनीहायाः सुखावृतः ॥ ४२ ॥

तब पुरुष सब बंधनोंसे छूटकर तिनको भावरूप भावना कर वैसेई करवे लगै है, महाभक्तिप्रयोग करकै सब कामकर्म अंतरसे जरायकर भगवतको प्राप्त होताहै॥३६॥अधोक्षज भगवानका जो स्पर्श होनाहै वो शरीरनके सब अशुभनको नाशक है,संसारचक्रको नाशक है,वोही ब्रह्माको महाआनन्द सुख बुद्धिमान जानैहै, तातै हृदयमें श्रीहरि ईश्वरको तुम सब भजो ॥ ३७ ॥ अपने हृदय छिद्रमें सदा वसनेहारे हरिकी उपासना करवेमे कोई परिश्रम नहीं है वह अपने आत्मा और सब प्राणीमात्रके सखा है सर्व साधारण जीवोंकी नाई विषय प्राप्त करनेसै क्या फल है विषयोंके सेवनसे कुछ नहीं है ॥ ३८ ॥ स्त्री धन पशु पुत्रादिक घर धरती हाथी खजाने विभूतियें यह सब काम क्षणभंगुर आयुवत है, मनुष्यकों कुछ प्यार नहीं करसकै है, ये सब चलायमान है ॥ ३९ ॥ ऐसैही यज्ञोंसे प्राप्त करे भए लोक सब नाशमान हैं, पुण्यकी न्यूनाधिकता है, निर्मल नहीं है तातै सब दोषहित भक्तिके ईश्वर परमेश्वरको आत्माकी प्राप्तिके अर्थ तुम सब भजन करो ॥ ४० ॥ विद्वन्मानी विद्वत्ताके अभिमानसै जो कर्म करते हैं उसका उन्हैं उलटा फल मिलताहै यह अवश्य है कि ॥ ४१ ॥ दुःख दूर करवेको सुखके लिये संकल्प कर या संसारमैं सब कर्मकारी सदा चेष्टा करैहैं, सोई दुःख प्राप्त होयहै चेष्टा न करै तो सुख होयहै ॥ ४२ ॥

सकामिक कर्म करकै जाके अर्थ यहां पुरुष कामनकी चाहना करैहै, सो ये देह परायाहै क्षणभंगुर है कदी प्राप्त हो जाय है कभी नाश हो जायहै॥४३॥ पुत्र स्त्री घर धनादिक राज्य कोश जग मंत्री भृत्य कुटुंब सब ममताके स्थान है, इनसें कुछ नहीं होयहै ॥ ४४ ॥ जो आत्मा आनन्दस्वरूप और अविनाशीहै सुखसागर है उसके तुच्छ और देहके साथ नाश होनेवाले तथा अनर्थकारक होने परभी भ्रमसे पुरुषार्थकी सदृश विदित होते हुये प्रजा संतानादि अनिष्टोंसै प्रयोजन क्या है ॥ ४५ ॥ हे असुरहो ! देहधारीनको कहा यहां क्या स्वार्थ है,जन्मसे लेके मरणपर्यंत अपने कर्मोंसो क्लि-

कामान् कामयते काम्यैर्यदर्थमिह पूरुषः ॥ स वै देहस्तु पारक्यो भङ्गुरो यात्युपैति च ॥ ४३ ॥ किमु व्यवहितापत्यदारागारधनादयः ॥ राज्यं कोशगजामात्यभृत्याप्ता ममतास्पदाः ॥ ४४ ॥ किमेतैरात्मनस्तुच्छैः सह देहेन नश्वरैः ॥ अनर्थैरर्थसंकाशैर्नित्यानन्दमहोदधेः ॥ ४५ ॥ निरूप्यतामिह स्वार्थः कियान् देहभृतोऽसुराः ॥ निषेकादिष्ववस्थासु क्लिश्यमानस्य कर्मभिः ॥ ४६ ॥ कर्माण्यारभते देही देहेनात्मानुवर्तिना ॥ कर्मभिस्तनुते देहमुभयं त्वविवेकतः ॥ ४७ ॥ तस्मादर्थाश्च कामाश्च धर्माश्च यदपाश्रयाः ॥ भजतानीहयात्मानमनीहं हरिमीश्वरम् ॥ ४८ ॥ सर्वेषामपि भूतानां हरिरात्मेश्वरः प्रियः ॥ भूतैर्महद्भिः स्वकृतैः कृतानां जीवसंज्ञितः ॥४९॥ देवोऽसुरो मनुष्यो वा यक्षो गन्धर्व एव च ॥ भजन्मुकुन्दचरणं स्वस्तिमान् स्याद्यथा वयम् ॥ ५० ॥ नालं द्विजत्वं देवत्वमृषित्वं वासुरात्मजाः ॥ प्रीणनाय मुकुन्दस्य न वृत्तं न बहुज्ञता ॥ ५१ ॥

श्यमान रहतेहै ॥ ४६ ॥ अपने आत्माके अनुसार देहसें जीवकर्मोंको आरंभ करै है, कर्मोंसे देह होयहै, पर ये दोनों अज्ञानपनकी बात है ॥ ४७ ॥ तातैं धर्म अर्थ काम जिनके आधीन है उन चेष्टारहित भगवानको क्रियारहित होकर भजो ॥४८॥ सब जीवमात्रके श्रीहरि आत्मा प्रिय ईश्वर हैं पंचमहाभूतोंसे उनके करेभये ये सब जीव हैं ॥ ४९ ॥ देवता असुर मनुष्य यक्ष गंधर्व इत्यादि श्रीमुकुंदके चरणोंको भजते भये स्वस्तिमान भये ॥५०॥ हे असुरबालकहो ! ब्राह्मणपन देवतापन ऋषिभाववृत्त बहुज्ञता ये मुकुंदके प्रसन्न करवेवारे नहीं हैं ॥ ५१ ॥

---

(१) जैसे लिखा है एक जगै वेश्या नाच नाच हाथ उठाय गाय रिझाय रहीथी काऊने पंडितजीसे कही कि या सभामें कहा होय रह्यो है तबको कबित कही उत्तर देतेभए ॥

न दान न तप न पूजा न शौच न व्रत इनसे प्रसन्न नहीं होते श्रीहरि तो केवल निर्मल भक्तिसें प्रसन्न होयहैं, और सब कथनमात्र है ॥ ५२ ॥ हे दावन हो ! याते श्रीहरिमें भक्ति तुम सब मिल करो सब जगै अपनीसी नांई समझो सब दुःखसुखमें और सब जीवनकों ईश्वरमें समझो ॥ ५३ ॥ दैत्य यक्ष राक्षस स्त्रियें शूद्र व्रजवासी खग मृग पापजीवी ये सबभक्ति करकै श्रीअच्युतके भावको प्राप्त होते भए ॥ ५४ ॥ या लोकमें पुरुषको परमस्वार्थ इतनोही है कि श्रीभक्तिमहाराणीको श्रीगोविंदमें सदा करै,और उन्हैही सर्वत्र देखै॥५५॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायां सप्तमस्कन्धे प्रल्हादेन दैत्यपुत्रानुशासने ब्रह्मस्वरूपवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीनारदजी बोले कि अष्टम या अध्यायमें नृसिंहजीको अवतार वर्णन करेहैं याके उपरांत सब दैत्योंके पुत्र प्रहलादजीको वर्णन करोभयो सुनकर दोषरहित भए गुरुकी शिक्षा नहीं ग्रहण करते भए ॥ १ ॥

न दानं न तपो नेज्या न शौचं न व्रतानि च ॥ प्रीयतेऽमलया भक्त्या हरिरन्यद्विडम्बनम् ॥ ५२ ॥ ततो हरौ भगवति भक्तिं कुरुत दानवाः ॥ आत्मौपम्येन सर्वत्र सर्वभूमात्मनीश्वरे ॥ ५३ ॥ दैतेया यक्षरक्षांसि स्त्रियः शूद्रा व्रजौकसः ॥ खगा मृगाः पापजीवाः सन्ति ह्यच्युततां गताः ॥ ५४ ॥ एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसः स्वार्थः परः स्मृतः ॥ एकान्तभक्तिर्गोविन्दे यत् सर्वत्र परीक्षणम् ॥५५॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रह्लादेन दैत्यपुत्रानुशासने ब्रह्मस्वरूपवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ अथ दैत्यसुताः सर्वे श्रुत्वा तदनुवर्णितम् ॥ जगृहुर्निरवद्यत्वात् नैव गुर्वनुशिक्षितम् ॥ १ ॥

पट ऊजरे धारके बैठे सभा बहुरंग न पांग बंसी जितको ॥ सो मृदंग कहै हरिभक्ती विना धिक्है धिक्है धिक्है तिनको ॥ मंजीराने पूछ लई विधिसें किनको किनको किनकों किनको ॥ उठ नायका पाणि पसार कहै इनकों इनकों इनकों इनकों ॥

१ शंका–राक्षसोंके लडकोंने प्रहलादसे ज्ञान सीखा, परन्तु ज्ञानियोंका नाम लोकमें और शास्त्रमें सब प्राणियोंको विदित हो जाताहै, परन्तु उनको नाम शास्त्रमें और लोकमें हमनें नहीं सुना कि वह लडके सुधर गये, छोटे तपस्वियोंका बडे तपस्वियोंका और जो जो नामी तपस्वी हैं अथवा ब्रह्मज्ञानी हैं उन सबका नाम हमने सुना परन्तु प्रल्हादके शिष्योंका नाम हमने कहीं नहीं सुना यह भ्रम है कि प्रहलादसे ज्ञान सीखकर वह लडके किस लोकमें गये ॥

उत्तर–जब प्रहलादका और हिरण्यकशिपुका उत्पात होना आरम्भ हुवा तब शुक्राचार्य उनके पास नहीं थे, पीछे शुक्राचार्यने आनकर सब उत्पात और राक्षसोंके बालकोंको श्रेष्ठ कर्म करता देखकर लडकोंसे शुक्राचार्य बोले, यह कर्म तुम सब जने त्यागदो और जो नहीं त्यागोगे तो हम तुम सबको भस्म करदेंगे, ऐसा डर मानकर वह लड़के फिर राक्षसकर्म

पाछै शुक्राचार्यसुत एकांतमें स्थित उन सबकी बुद्धि देख डरोभयो शीघ्र राजासें निवेदन करतो भयो ॥ २ ॥ पुत्रको असह अप्रिय अन्याय सुनकर दैत्य कोपावेशते चलायमान शरीर हो पुत्रके मारवेको इच्छा मनमे धारतो भयो ॥ ३ ॥ वह दैत्य तिरस्कारके अयोग्य प्रल्हादको कठोर वाणीसै तिरस्कार कर क्रोधभर टेढी आखौंसै तिरछा निहार कर बोला ॥ ४ ॥ जितेन्द्री और नम्रताके कारण हाथ जोड़े खेड़े प्रल्हादसे तक्ष्ण पैरसै कुचले सर्पकी समान फुंकार कर बोला ॥ ५ ॥ हे दुर्विनीत हे मंदात्मन् हे कुलभेदकर हे अधम

अथाचार्यसुतस्तेषां बुद्धिमेकान्तसंस्थिताम् ॥ आलक्ष्य भीतस्त्वरितो राज्ञ आवेदयद्यथा ॥ २ ॥ श्रुत्वा तदप्रियं दैत्यो दुःसहं तनयानयम् ॥ कोपावेशचलद्गात्रः पुत्रं हन्तुं मनो दधे ॥ ३ ॥ क्षिप्त्वा परुषया वाचा प्रह्लादमतदर्हणम्॥ आहेक्षमाणः पापेन तिरश्चीनेन चक्षुषा ॥ ४ ॥ प्रश्रयावनतं दान्तं बद्धाञ्जलिमवस्थितम् ॥ सर्पः पदा हत इव श्वसन्प्रकृतिदारुणः ॥ ५ ॥ हे दुर्विनीत मन्दात्मन् कुलभेदकराधम ॥ स्तब्धं मच्छासनोद्धृतं नेष्ये त्वाऽद्य यमक्षयम् ॥ ६ ॥ क्रुद्धस्य यस्य कम्पन्ते त्रयो लोकाः सहेश्वराः ॥ तस्य मेऽभीतवन्मूढ शासनं किंबलोऽत्यगाः ॥ ७ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ न केवलं मे भवतश्च राजन्स वै बलं बलिनां चापरेषाम् ॥ परेऽवरेऽमी स्थिरजङ्गमा ये ब्रह्मादयो येन वशं प्रणीताः ॥ ८ ॥ स ईश्वरः काल उरुक्रमोऽसावोजःसहःसत्त्वबलेन्द्रियात्मा ॥ स एव विश्वं परमः स्वशक्तिभिः सृजत्यवत्यत्ति गुणत्रयेशः ॥ ९ ॥

गर्वि ! तैने मेरी आज्ञा उल्लांघी, तोको अब यमलोकको पहुँचाऊँगो ॥ ६ ॥ जब मोको क्रोध आवै है, तब त्रिलोकी ईश्वर सहित कांपै है, हे मूढ ! तू मेरी आज्ञाको डर छोड नैक न मानै है सो तुझै किसका बल है ॥ ७ ॥ प्रल्हादजी बोले कि हे राजन् ! जिस परमात्माने पहले और पिछले सब स्थावर और जंगमोंको तथा ब्रम्हादिकौंकोभी अपने वश कर लिया है वही परमात्मा मेरे और तुम्हारे बलस्वरूप हैं और आपहीके और मेरे नहीं किन्तु और बलियौंकेभी बलरूप है ॥ ८ ॥ काल उरुक्रम ओज सह बल इंद्रिय आत्मा सत्व वोही ईश्वर हैं, सो परमेश्वर अपनी

सीखने लगे, वह लडके तपस्या करनेमें कच्चेथे इसलिये उन्हौं डरके मारे श्रेष्ठ कर्म करने छोड दिये और राक्षसकर्म करने लगे, इस कारणसे वह लडके तपस्वी नहीं हुए, विना तप किये उनका नाम प्रसिद्ध कैसे होता ॥

शक्तियोंसें रचै है, रक्षा करै है विश्वकों संहार करै है,तीन गुणोंके ईश है ॥ ९ ॥ ये तुम्हारेमें जो असुरपणो है, याकों त्यागो, मनकों समान करो, कोई काऊको वैरी नाय है, नहीं जीते हुए और उलटे मार्ग चलनेवाले मनके शिवाय और अपना शत्रु नहीं है श्रीअनंत भगवानको महापूजन करो, यामें तुह्मारो भलो है ॥ १० ॥ एक आपसरीके ऐसेभी लोग भए है कि अपनेको छेदनेवारें छे वैरिनको विनाजीते दशों दिशा जीत आए; ऐसा मान्ते हैं परन्तु जाने अपनी आत्मा जीत राखीहै, ऐसे ज्ञानी सब देहधारी मात्रमें समान भावसें वर्तै है, ऐसे साधुको अपने मोहसें भए दुःख नहीं होंयहैं, औरनकी तो कहा है ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपु बोले कि निश्चय मोको भयो कि तू मरवेकी चाहमें है, जो ऐसो निर्द्वंद्व बोले है हे मंदात्मन्!

जह्यासुरं भावमिमं त्वमात्मनः समं मनो धत्स्व न सन्ति विद्विषः ॥ ऋते जितादात्मन उत्पथस्थितात्तद्धि ह्यनन्तस्य महत् समर्हणम् ॥ १० ॥ दस्यून्पुरा षण्न विजित्य लुम्पतो मन्यन्त एके स्वजिता दिशो दश ॥ जितात्मनोऽज्ञस्य समस्य देहिनां साधोः स्वमोहप्रभवाः कुतः परे ॥ ११ ॥ हिरण्यकशिपुरुवाच ॥ व्यक्तं त्वं मर्तुकामोऽसि योऽतिमात्रं विकत्थसे ॥ मुमूर्षूणां हि मन्दात्मन्ननु स्युर्विक्लवा गिरः ॥ १२ ॥ यस्त्वया मन्दभाग्योक्तो मदन्यो जगदीश्वरः ॥ क्वासौ यदि स सर्वत्र कस्मात्स्तम्भे न दृश्यते ॥ १३ ॥ सोऽहं विकत्थमानस्य शिरः कायाद्धरामि ते ॥ गोपायेत हरिस्त्वाद्य यस्ते शरणमीप्सितम् ॥ १४ ॥ एवं दुरुक्तैर्मुहुरर्दयन्रुषा सुतं महाभागवतं महासुरः ॥ खड्गं प्रगृह्योत्पतितो वरासनात् स्तम्भं तताडातिबलः स्वमुष्टिना ॥ १५ ॥ तदैव तस्मिन्निनदोऽतिभीषणो बभूव येनाण्डकटाहमस्फुटत् ॥ यं वै स्वधिष्ण्योपगतं त्वजादयः श्रुत्वा स्वधामाप्ययमङ्ग मेनिरे ॥ १६ ॥

जिनकी मृत्यु नजीक आयजाय है उनकी ऐसी अयोग वाणी निकसै है॥ १२ ॥ हे मंदभागी ! जो तू मुझसे पृथक ईश्वरको बताताहै तो वह कौन हैं प्रह्लाद बोले सर्वत्र हैं हिरण्यकश्यप बोला जो सर्वत्र है तो या खंभमें क्यों नहीं दीसे है ॥ १३ ॥ तुझ अलीक बोलवेवारेको शिर कायासे हरूंगो जो तेरो रक्षक हरि है सो कैसे तेरी रक्षा करैगो, जाकी तू ऽडी शरण चाहै है ॥ १४ ॥ ऐसै दुष्टवचन कह वारंवार क्रोधसे महाभागवत पुत्रको पीडा देत महा असुर तलवार लेकर श्रेष्ठ आसनसे उछलकर अतिबली अपनी मुष्टीसे खंभको मारतो भयो ॥१५॥ हे राजन् ! वाही समय अतिभीषण

स विक्रमन् पुत्रवधेप्सुरोजसा निशम्य निह्रादमपूर्वमद्भुतम् ॥ अन्तःसभायां न ददर्श तत्पदं वितत्रसुर्येन सुरारियूथपाः ॥ १७ ॥ सत्यं विधातुं निजभृत्यभाषितं व्याप्तिं च भूतेष्वखिलेषु चात्मनः ॥ अदृश्यतात्यद्भुतरूपमुद्वहन् स्तम्भे सभायां न मृगं न मानुषम् ॥ १८ ॥ स सत्वमेनं परितो विपश्यन्स्तम्भस्य मध्यादनुनिर्जिहानम् ॥ नायं मृगो नापि नरो विचित्रमहो किमेतन्नृमृगेन्द्ररूपम् ॥ १९॥ मीमांसमानस्य समुत्थितोऽग्रतो नृसिंहरूपं तदलं भयानकम् ॥ प्रतप्तचामीकरचण्डलोचनं स्फुरत्सटाकेसरजृम्भिताननम् ॥ २० ॥

शब्दभयो, जो सब ब्रह्मांडकटाहमें भरपूर होगयो, जा खंभके शब्दको सुनकर ब्रह्मादिक मानते भये कि आज हमारे धामको नाश आय पहुचो॥१६॥ महापराक्रमसे विक्रम करते पुत्रवधकी इच्छा किये दैत्यने यह अपूर्व और अद्भुत शब्द जिस्से कि सभाके सब दैत्य भय खागयेथे सुना परन्तु यह शब्द कहांसे हुआ इस बातके किसीने न सुना ॥ १७ ॥ अपने निजभृत्य प्रल्हादकी कही भईको सत्य करनेको कि “ भौतिकेषुचभावेषुभूतेष्वथ महत्सुचेति प्रल्हादोक्तिः ” कि नारायण सर्वत्र व्यापक हैं ॥ २ ॥ और निज भृत्य सनकादिकके कहिवेको सत्य करवेको ॥ “ त्रिभिर्जन्मभिः शापमोक्षो भवत्विति ” तीन जन्ममें यह शापसे मुक्त होंगे ॥ ३ ॥ और निजभृत्य हिरण्यकश्यपनें ब्रह्मासे जो कही वाके सांच करवेको “ भूतेभ्यस्त्वद्विसृष्टेभ्यो मृत्युर्मा भून्मम प्रभो ” इति ॥ “ नांतर्बहिर्ननरैर्नमृगैरपि” कि मैं तुम्हारे बनाये जीवोंसे न मरूं ॥४॥ निजभृत्य नारदजीने कह्यो वाके सांच करवेको “ अयंमहांस्त्वयासंस्थांनप्राप्स्यति ॥” कि यह कयाधूका गर्भ इन्द्रसे नही मरैगा अपने भक्तको पक्षपात करैहै कि“कौंतेयप्रतिजानीहिनमेभक्तः प्रणश्यति ॥ तेषामहंसमुद्धर्तामृत्युसंसारसागरादिति ” मैं अपने भक्तोंकी रक्षा करताहूं यह दिखानेको निजभृत्योंके वचन सत्य करवेकों, और सब स्थावरजंगममें अपनी व्याप्ति है ये दिखायवेको, अद्भुत रूप धार सभाके खंभमें सर्वव्यापक ईश्वर नृसिंहरूप धार दर्शन देते भए ॥ १८ ॥ स्तंभके चारों ओरसे देखे तो एक जीवविशेष है खंभके मध्यमें गर्जरह्यो है, न ये सिंघ है न मनुष्य है, अहो विचित्र नृसिंहरूप है ॥१९॥ अत्यंतभयानक नृसिंहरूपका ऐसे विचार करताथा तबतक तपे सुवर्णकी समान भयंकर नेत्र फड़कते हुए कंधेके केशरयुक्त जंभाई लेते हुए बडे मुखवाले नृसिंहजीको आगे देखा ॥ २० ॥

जिनकी कराल डाढें मुखमें तरवारवत् चंचल क्षुरा समान जिव्हा भ्रुकुटी सहित भयंकर मुख है गर्वीकीलवत् उठे कान, गिरिकी कंदरावत् विस्तृत मुख नाक कपोल प्रांतके विदारणसे भीषण ठोडीं ॥२१॥ स्वर्गतक व्याप्त शरीर न्हस्व मोटी ग्रीवा, विशाल वक्षःस्थल, पतली कमर चंद्रमाकी किरण समान शरीरके श्वेत वारोंसों व्याप्त सहस्रों हाथ सब दिशाओंमें व्याप रहेथे जो नखायुधके समान शोभित थे ॥ २२ ॥ सबको अप्राप्त सब चक्र वज्र आयुध समूहसे दैत्य दानवोंको दूर भगादिया महामायावी श्रीहरिने मेरे मारवेको ये उपाय कीनोहै, उस स्वरूपको देखकर हिरण्यकश्यप यह विचारने लगा ॥ २३ ॥ यह कहकर वह दैत्य महागर्जना कर गदा हाथमें ले नृसिंहजीके ऊपर चला जैसे अग्निमें पड़कर पतंग अलक्षित होजाताहै ऐसे वह

करालदंष्ट्रं करवालचञ्चलक्षुरान्तजिह्वं भ्रुकुटीमुखोल्बणम्॥स्तब्धोर्ध्वकर्णं गिरिकन्दराद्भुतव्यात्तास्यनासं हनुभेदभीषणम् ॥ २१ ॥ दिवि स्पृशत्कायमदीर्घपीवरग्रीवोरुवक्षःस्थलमल्पमध्यम् ॥ चन्द्रांशुगौरैश्छुरितं तनूरुहैर्विष्वग्भुजानीकशतं नखायुधम् ॥ २२ ॥ दुरासदं सर्वनिजेतरायुधप्रवेकविद्रावितदैत्यदानवम् ॥ प्रायेण मेऽयं हरिणोरुमायिना वधः स्मृतोऽनेन समुद्यतेन किम् ॥ २३ ॥ एवं ब्रुवंस्त्वभ्यपतद्गदायुधो नदन्नृसिंहं प्रति दैत्यकुञ्जरः ॥ अलक्षितोऽग्नौ पतितः पतङ्गमो यथा नृसिंहौजसि सोऽसुरस्तदा ॥ २४ ॥ न तद्विचित्रं खलु सत्त्वधामनि स्वतेजसा योऽनु पुराऽपिबत्तमः ॥ ततोऽभिपद्याभ्यहनन्महासुरो रुषा नृसिंहं गदयोरुवेगया ॥ २५ ॥ तं विक्रमन्तं सगदं गदाधरो महोरगं तार्क्ष्यसुतो यथाऽग्रहीत ॥ स तस्य हस्तोत्कलितस्तदाऽसुरो विक्रीडतो यद्वदहिर्गरुत्मतः ॥ २६ ॥ असाध्वमन्यन्त हृतौकसोऽमरा घनच्छदा भारतसर्वधिष्ण्यपाः ॥ तं मन्यमानो निजवीर्यशङ्कितं यद्धस्तमुक्तो नृहरिं महासुरः॥२७॥

नृसिंहके तेजमें अलक्षित होगया ॥२४॥ यह बात सत्वधाम श्रीनृसिंहजीमें कुछ विचित्र नहीं है, जिन्होंने प्रथम अपने तेजसे अंधकार पीलियाथा, ता पाछे पास आय महाअसुर क्रोधसे महावेगकी गदासे नृसिंहजीके मारतो भयो ॥ २५ ॥ पराक्रम करतेभए गदा लिये वा हिरण्यकश्यपको गदाधारी नृसिंहजी जैसे गरुड सर्पकों पकडै तैसै पकडते भए तासमय वो असुर उनके हाथमेंसे ऐसे निकल गया जैसे खेल करते गरुडके मुखसे सर्प निकल जाय ॥ २६ ॥ जिनके स्थान इस दैत्यने हरलियेथे वे देवता मेघकी ओरमें खडे नृसिंहजीके हाथसे राक्षसका छुटना देख यह असाधु वार्ता मान्ते भये

और भगवान्के हाथसे छुटनेके कारण भगवानको अपने पराक्रमसे डरायमान वह दैत्य श्रम त्याग असिचर्म ले युद्ध करनेको आया ॥ २७ ॥ ढाल तलवार लेकर फेर वेगसे सब परिश्रम जीत संग्राममें आय खडोभयो, पर्वत समान ऊंचा भयभीत लोचन हाथीकी समान शब्दकर चिल्हातो भयो ॥ २८ ॥ शिकराकोसो वेग ढाल तलवार लिये भ्रमणकरता दैदीप्यमान भगवानके चारो ओर सावकाश देखतो भयो, तव नृसिंहजी महा अट्टाट्टहास करके और खरखरो उत्कर्ष उल्वण शब्दकर अपने तेजसै उसकी आंखै मूंद कपटकर पकड़ते हुए ॥ २९ ॥ सर्पके पकडे मूसेकी समान चारौ ओर आतुरतासै तड़फड़ाते वज्रसैभी अभेद्य त्वचावाले हिरण्यकश्यपको भगवान देहलीके बीच अपनी जंघाओंपर पटककर गरुड

पुनस्तमासज्जत खड्गचर्मणी प्रगृह्य वेगेन जितश्रमो मृधे ॥ धराधराभो भयभीतलोचनो ननाद मातङ्गसमानवत्स्वनः ॥ २८ ॥ तं श्येनवेगं शतचन्द्रवर्त्मभिश्चरन्तमच्छिद्रमुपर्यधो हरिः ॥ कृत्वाऽट्टहासं खरमुत्स्वनोल्बणं निमीलिताक्षं जगृहे महाजवः ॥ २९ ॥ विष्वक् स्फुरन्तं ग्रहणातुरं हरिर्व्यालो यथाखुं कुलिशाक्षतत्वचम् ॥ द्वार्यूर आपात्य ददार लीलया नखैर्यथाऽहिं गरुडो महाविषम् ॥ ३० ॥ संरम्भदुष्प्रेक्ष्यकराललोचनो व्यात्ताननान्तं विलिहन् स्वजिह्वया ॥ असृग्लवाक्तारुणकेसराननो यथान्त्रमाली द्विपहत्यया हरिः ॥ ३१ ॥ नखाङ्कुरोत्पाटितहृत्सरोरुहं विसृज्य तस्यानुचरानुदायुधान् ॥ अहन् समन्तान्नखशस्त्रपार्ष्णिभिर्दोर्दण्डयूथोऽनुपथान् सहस्रशः ॥ ३२ ॥ सटावधूता जलदाः परापतन्ग्रहाश्च तद्दृष्टिविमुष्टरोचिषः ॥ अम्भोधयः श्वासहता विचुक्षुभुर्निर्ह्रादभीता दिगिभा विचुक्रुशुः ॥ ३३ ॥

जैसे विषैले सर्पको चीर डालै इसप्रकार लीलासै भगवाननै उसै दिनरातकी संध्यामें चीर डाला ॥ ३० ॥ क्रोधके कारण किसीसै जिनके सामने नहीं देखा जाता ऐसा महाविकराल नेत्रवाले फटे मुखके होटोंको जीभसै चाटते हुए गलेमें आंतौकी माला पहरे हाथीके मारनेवाले सिंह समान सटा और मुख रुधिरके बिंदुऔसै लिपाहुआ लाल हो रहाथा ऐसे भगवान्नै उस दैत्यको जिसके हृदयकमलको नखौंसे चीर डालाथा फैंक कर ॥ ३१ ॥ उसके सहस्रौं अनुचरौंको जो कि उसका पक्षपातकर शस्त्रग्रहणकर लडने आयेथे नखशस्त्र और एडियौंसे मारकर भगा दिया उस समय भगवानके हाथही सैनाके लोग थे ॥ ३२ ॥ नृसिंहजीकी सघन जटासें कंपित हो मेघ सब हटगये, तिनकी दृष्टिसे ग्रहोंकी प्रभा नष्ट हो गई

समुद्र उनके श्वाससे चलायमान भए तिनके दहाडनेके शब्दसें भीत हो दिशानके गज चिल्हाते भए ॥ ३३ ॥ द्यावापृथिवी तिन नृसिंहजीकी उखाडी भई जटानसे व्याप्त होती भई, तिनके पदसें पीडित हो पृथिवी चलायमान भई, इनके तेजके वेगसे शैल उखड गए, और आकाश दिशा शोभाकों प्राप्त नहीं होती भई ॥ ३४ ॥ ता पाछै उत्तम नृप आसनपर विराजमान सब तेजधारे जिनके सामने कोई युद्ध करवेवारो नहीं अति क्रोधी प्रचंडमुख तिन नृसिंहजीके सामने कोईभी जानैको समर्थ न हुआ ॥ ३५ ॥ लोकत्रयके दुख दैनैहारे शिरके शूल समान आदिदैत्यको श्रीहरि नृसिंहजी करके संग्राममें मरोभये सुनकै प्रहर्ष वेगसे प्रफुल्लित मुख हो वारंवार देवतानकी स्त्रियें पुष्पोंकी वर्षाव करतीभई ॥ ३६ ॥ ता समय

द्यौस्तत्सटोत्क्षिप्तविमानसंकुला प्रोत्सर्पत क्ष्मा च पदातिपीडिता ॥ शैलाः समुत्पेतुरमुष्य रंहसा तत्तेजसा खं ककुभो न रेजिरे ॥ ३४ ॥ ततः सभायामुपविष्टमुत्तमे नृपासने संभृततेजसं विभुम् ॥ अलक्षितद्वैरथमत्यमर्षणं प्रचण्डवक्त्रं न बभाज कश्चन ॥ ३५ ॥ निशम्य लोकत्रयमस्तकज्वरं तमादिदैत्यं हरिणा हतं मृधे ॥ प्रहर्षवेगोत्कलितानना मुहुः प्रसूनवर्षैर्ववृषुः सुरस्त्रियः ॥३६॥ तदा विमानावलिभिर्नभस्तलं दिदृक्षतां संकुलमास नाकिनाम् ॥ सुरानका दुन्दुभयोऽथ जघ्निरे गन्धर्वमुख्या ननृतुर्जगुः स्त्रियः ॥ ३७ ॥ तत्रोपव्रज्य विबुधा ब्रह्मेन्द्रगिरिशादयः ॥ ऋषयः पितरः सिद्धा विद्याधरमहोरगाः ॥ ३८ ॥ मनवः प्रजानां पतयो गन्धर्वाप्सरचारणाः ॥ यक्षाः किंपुरुषास्तात वैतालाः सिद्धकिन्नराः ॥ ३९ ॥ ते विष्णुपार्षदाः सर्वे सुनन्दकुमुदादयः ॥ मूर्ध्नि बद्धाञ्जलिपुटा आसीनं तीव्रतेजसम् ॥ ४० ॥ ईडिरे नरशार्दूलं नातिदूरचराः पृथक् ॥ यन्त्रमन्त्रादिभिः स्तोत्रैरष्टकैः कवचैर्हरिम् ॥ ४१ ॥

देखवेको आये स्वर्गवासीके विमानोंकी पंक्तियों करकै आकाशस्थल संकुल होतो भयो; देवता नगारे बजावते भये, गंधर्व मुख्या स्त्रियें गाती नाचती भई॥३७॥ तहां ब्रह्मा इंद्र शिवादिक आए, ऋषि पितर सिद्ध विद्याधर महोरग॥३८॥ हे परीक्षित ! मनु प्रजानके पति गंधर्व अप्सरा चारण यक्ष किंपुरुष वेताल सिद्ध किन्नर आतेभए ॥ ३९ ॥ सब भगवत्पार्षद सुनंद नंदादिक कुमुद कुमुदाक्षादिक अंजलियोंके संपुट मूंडपर कर तीव्रतेजधारे सिंहासनपर बैठे नृसिंहजीके ॥ ४० ॥ सब देवता समीप आयकर पृथक् पृथक् भावसें संसारीजीवनके उपकारके लिये यंत्र मंत्र

स्तोत्र अष्टक कवचसें श्रीनरशार्दूलकी स्तुति करतेभए ॥ ४१ ॥ श्रीब्रह्माजी बोले कि अनंत दुरंत शक्तिधारी विचित्रवीर्यकारी पवित्रकर्मकारी विश्वके उत्पत्ति पालन नाशकों अपनें गुणोंसे लीलाकरकै सुंदर तन धारवेवारे अविनाशी आत्मा श्रीनृसिंहजीके अर्थ हम नमस्कार करैं है ॥४२॥ श्रीमहादेवजी बोले कि आपका कोपका समय तो जगतकी प्रलयही हैं इस कारण अभी तो आपने यह क्षुद्र दैत्य मारा है यह कोप क्षमा करो हे भक्तवत्सल ! याके भक्त प्रल्हाद पुत्रकी तुम क्षमा करो ॥ ४३ ॥ इंद्र बोले कि हे परमश्रेष्ठ नृसिंहजी महाराज, हे नाथ रक्षक ! अपने दैत्योंसे हमारे भागदिवाये, तुह्मारे वसवेको स्थान हमारो हृदयकमल जो दैत्यके भयसे प्राप्त था उसको भय दूर कर विकसित किया जिसका कालसे

ब्रह्मोवाच ॥ नतोऽस्म्यनन्ताय दुरन्तशक्तये विचित्रवीर्याय पवित्रकर्मणे ॥ विश्वस्य सर्गस्थितिसंयमान्गुणैः स्वलीलया संदधतेऽव्ययात्मने ॥ ४२ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ कोपकालो युगान्तस्ते हतोऽयमसुरोऽल्पकः ॥ तत्सुतं पाह्युपसृतं भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ ४३ ॥ इन्द्र उवाच ॥ प्रत्यानीताः परम भवता त्रायता नः स्वभागा दैत्याक्रान्तं हृदयकमलं त्वद्गृहं प्रत्यबोधि ॥ कालग्रस्तं कियदिदमहो नाथ शुश्रूषतां ते मुक्तिस्तेषां न हि बहु मता नारसिंहापरैः किम् ॥ ४४ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ त्वं नस्तपः परममात्थ यदात्मतेजो येनेदमादिपुरुषात्मगतं ससर्ज ॥ तद्विप्रलुप्तमधुनाऽद्य शरण्यपाल रक्षागृहीतवपुषा पुनरन्वमंस्थाः ॥४५॥ पितर ऊचुः ॥ श्राद्धानि नोऽधिबुभुजे प्रसभं तनूजैर्दत्तानि तीर्थसमयेऽपि तिलाम्ब्वसभ्यः ॥ तस्योदरान्नखविदीर्णवपाद्य आर्च्छत्तस्मै नमो नृहरयेऽखिलधर्मगोप्त्रे ॥ ४६ ॥

नाश हो जाता है ऐसा यह राज्य तुह्मारे सेवकौंको क्या है हे नाथ ! तुह्मारे भक्त तो मुक्तिभी नहीं चाहते फिर राज्य तो क्या है ॥४४॥ सब ऋषि बोले कि हे आदिपुरुष! अपने आत्माके तेजरूप तप करवेकी जो आपने आज्ञा दीथी जिससे कि आप अपनेमें रहे हुए विश्वको रचते हो, हे शरणागतपालक ! वह तप या असुरनें सब लोप कीनो सो रक्षाके लिये शरीर धार आपनें फेर तपरूप आज्ञा हमको दी ॥ ४५ ॥ सब पितर बोले कि हमारे पुत्रादिकोंके दिये भए श्राद्ध पिंडभी येही खायगयो और तीर्थोंमें जायकै कही कभी तिलांजली दीनी उसेभी यह बलकर पीगया इस दैत्यके पेटको नखोंसे विदीर्ण कर वह आपने हमें फिर दिया ऐसे सब धर्मके रक्षक श्रीलक्ष्मीनृसिंहजीके अर्थ नमस्कार होय ॥ ४६ ॥

सब सिद्ध बोले कि जो हमने योगसे सिद्धि प्राप्तकरी वह हमारे, अणिमादि सिद्धियोग तपबलसे ये दुष्ट राक्षस हरलेतो भयो, सो याको नाना प्रकारको गर्व आप नखोंसे विदारतभए, हे नृसिंह ! यासे आपको प्रणाम करेहैं ॥ ४७ ॥ विद्याधर बोले कि पृथक् धारणासे प्राप्त अंतर्द्धानादि विद्या बलवीर्यसें गर्वित या अज्ञानीने न हमें करनदीनी, सो आपने संग्राममें इसै पशुवत् मार्‍यो ऐसे मायासै श्रीनृसिंहरूप धारनेहारे आपको हम नित्य प्रणाम करैहै ॥ ४८ ॥ सब नाग बोले कि इस जा पापीने हमारै सब स्त्रीरत्न हर लीने है, सो याके वक्षस्थलके फाडनेसे इन सब स्त्रीनको आनंद दैनेहारे तुह्मारे अर्थ नमस्कार होय ॥ ४९ ॥ सब मनु बोले कि हे नृसिंहदेव! हम सब आपकी आज्ञा करवेवारे मनु हैं, या हिरण्यकश्यपने सब वर्णाश्रम नाश करदीनै सो यह खल आपने मारो हे प्रभो! हम आपके किंकर है हमैं शिक्षा करो कि कहा करै ॥ ५० ॥ सब प्रजापति बोले कि हे परेश! प्रजेश हमको अपने इस कारण रहाहै कि प्रजा रचैं सो इस कार्यको हम जिसके प्रतिषेध करनैसे छोड बैठेथे उस दैत्यका पेट फाड़कार आपने संहार किया अब हम आनंदसै प्रजा रचैंगे हे सत्वमूर्तें! आपका अवतार जगतके मंगलके अर्थ है ॥ ५१ ॥ सब गंधर्व बोले कि हे समर्थ! हम तो आपके नट नाट्य गायक है, जा करकै अपने समान वीर्य बल पराक्रम आपने हममें करेहै सो हमें याने सताये सो या दशाको आपसें

सिद्धा ऊचुः ॥ यो नो गतिं योगसिद्धामसाधुरहारषीद्योगतपोबलेन ॥ नानादर्पं तन्नखैर्निर्ददार तस्मै तुभ्यं प्रणताः स्मो नृसिंह ॥ ४७ ॥ विद्याधरा ऊचुः ॥ विद्यां पृथग्धारणयाऽनुराद्धां न्यषेधदज्ञो बलवीर्यदृप्तः ॥ स येन संख्ये पशुवद्धतस्तं मायानृसिंहं प्रणताः स्म नित्यम् ॥ ४८ ॥ नागा ऊचुः ॥ येन पापेन रत्नानि स्त्रीरत्नानि हृतानि नः ॥ तद्वक्षःपाटनेनासां दत्तानन्द नमोस्तु ते ॥ ४९ ॥ मनव ऊचुः ॥ मनवो वयं तव निदेशकारिणो दितिजेन देव परिभूतसेतवः ॥ भवता खलः स उपसंहृतः प्रभो करवाम ते किमनुशाधि किंकरान् ॥ ५० ॥ प्रजापतय ऊचुः ॥ प्रजेशा वयं ते परेशाभिसृष्टा न येन प्रजा वै सृजामो निषिद्धाः ॥ स एष त्वया भिन्नवक्षा नु शेते जगन्मङ्गलं सत्वमूर्तेंवतारः ॥ ५१ ॥ गन्धर्वा ऊचुः ॥ वयं विभो ते नटनाट्यगायका येनात्मसाद्वीर्यबलौजसा कृताः ॥ स एष नीतो भवता दशामिमां किमुत्पथस्थः कुशलाय कल्पते ॥ ५२ ॥

प्राप्त भयो, जो पाषंडसें स्थित होयहै वाको कुशल कभी न होयहै ॥ ५२ ॥ सब चारण बोले कि हे नृसिंहजी महाराज! संसारसे मोक्ष देवेवारे इन आपको चरणकमलके हम आश्रित है, ये बहुत अच्छो भयो कि ये हृदयछेदी असुर आपने मारो ॥ ५३ ॥ सब यक्ष बोले कि आपके मनके अनुसार कर्म करवेमैं हम मुख्य आपके अनुचर है सो दितिसुतने हमकों अपनो कहार बनायो वो सब जनोंको परिताप देवेवारा हो वाके करे ताप आप जानोहो हे नृसिंह! पच्चीस तत्वके स्वामी आपनै इसै मारा ॥ ५४ ॥ किंपुरुष बोले कि हम किंपुरुष हैं, तुम महापुरुष ईश्वर हो ये कुपुरुष नष्ट भयो, साधुओंने याकों बडो धिक्कार कीनो ॥ ५५ ॥ सब वैताल बोले कि सभानमें यज्ञोंमे आपके निर्मलयशकूं गायकर बडी पूजा हमको प्राप्तभ-

चारणा ऊचुः॥ हरे तवाङ्घ्रिपङ्कजं भवापवर्गमाश्रितः ॥ यदेष साधुहृच्छयस्त्वयाऽसुरः समापितः ॥ ५३ ॥ यक्षा ऊचुः ॥ वयमनुचरमुख्याः कर्मभिस्ते मनोज्ञैस्त इह दितिसुतेन प्रापिता वाहकत्वम् ॥ स तु जनपरितापं तत्कृतं जानता ते नरहर उपनीतः पञ्चतां पञ्चविंश॥५४॥ किंपुरुषा ऊचुः ॥ वयं किंपुरुषास्त्वं तु महापुरुष ईश्वरः॥ अयं कुपुरुषो नष्टो धिक्कृतः साधुभिर्यदा ॥५५॥ वैतालिका ऊचुः ॥ सभासु सत्रेषु तवामलं यशो गीत्वा सपर्यां महतीं लभामहे ॥ यस्तां व्यनैषीद् भृशमेष दुर्जनो दिष्ट्या हतस्ते भगवन्यथाऽमयः॥५६॥ किन्नरा ऊचुः ॥ वयमीश किन्नरगणास्तवानुगा दितिजेन विष्टिममुनाऽनुकारिताः ॥ भवता हरे स वृजिनोऽवसादितो नरसिंह नाथ विभवाय नो भव ॥५७॥ विष्णुपार्षदा ऊचुः॥ अद्यैतद्धरिनररूपमद्भुतं ते दृष्टं नः शरणद सर्वलोकशर्म ॥ सोऽयं ते विधिकर ईश विप्रशप्तस्तस्येदं निधनमनुग्रहाय विद्मः ॥५८॥ इति श्रीभागवते०म०स० प्रह्लादानुचरिते हिरण्यकशिपुदैत्यवधे नृसिंहस्तवो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

ई, ये दुर्जन वा यशको अत्यंत नाश करतोभयो, बडो मंगल भयो जो याय आपने मारो जैसे औषधी रोगको नाश करै तैसो आपने इसै मारे ॥५६॥ सब किन्नर बोले कि हे ईश! हम सब किन्नरगण आपके चाकर हैं, या असुरने हमते बेगार कराई, हे हरे! सो महानष्टरूप आपने मारो हे नराकारसिंह! हे नाथ! आप हमारी समृद्धिके कारण हूजिये ॥ ५७ ॥ श्रीविष्णुके सब पार्षद बोले कि हे शरणद! आज ये नरहरि रूप आपने हमैं दिखायो जो सब लोकको मंगलकारी है हे विधिकर! यह विप्रोंसे शापित था इसका मरण हम अपने अनुग्रहके अर्थ मान्ते

हैं ॥ ५८ ॥ इति श्रीम० भा० भाषाटीकायां सप्तमस्कन्धे प्रल्हादचरिते हिरण्यकशिपुवधनृसिंहावतारसर्वदेवकृतस्तोत्रवर्णनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥८॥
श्रीनारदजी बोले कि इस प्रकार ब्रह्मरुद्रादि मुख्य देवताओंने स्तुति करी परन्तु क्रोधके आवेशसै भयंकर दृष्टिवारे नृसिंहजीके समीप कोईभी जानैको समर्थ न हुए ॥ १ ॥ तब देवताओंने उनका क्रोध शान्त करने निमित्त लक्ष्मीको भेजा जब लक्ष्मीजी उनके निकट जानेलगीं तब उनका अद्भुत और डरावना रूप देख, भयसै उनके निकट जानेको समर्थ न हुई ॥ २ ॥ तब समीप बैठे प्रल्हादजीको ब्रह्माजी भेजते भए और बोले

नारद उवाच ॥ एवं सुरादयः सर्वे ब्रह्मरुद्रपुरःसराः ॥ नोपेतुमशकन् मन्युसंरम्भं सुदुरासदम् ॥ १ ॥ साक्षाच्छ्रीः प्रेषिता देवैर्दृष्ट्वा तन्महदद्भुतम् ॥ अदृष्टाश्रुतपूर्वत्वात् सा नोपेयाय शङ्किता ॥ २ ॥ प्रह्लादं प्रेषयामास ब्रह्मावस्थितमन्तिके ॥ तात प्रशमयोपेहि स्वपित्रे कुपितं प्रभुम् ॥ ३ ॥ तथेति शनकै राजन् महाभागवतोऽर्भकः ॥ उपेत्य भुवि कायेन ननाम विधृताञ्जलिः ॥ ४ ॥ स्वपादमूले पतितं तमर्भकं विलोक्य देवः कृपया परिप्लुतः ॥ उत्थाप्य तच्छीर्ष्ण्यदधात् कराम्बुजं कालाहिवित्रस्तधियां कृताभयम् ॥ ५ ॥ स तत्करस्पर्शधुताखिलाशुभः सपद्यऽभिव्यक्तपरात्मदर्शनः ॥ यत्पादपद्मे हृदि निर्वृतो दधौ हृष्यत्तनुः क्लिन्नहृदश्रुलोचनः ॥ ६ ॥

हे तात! आपके पिताके ऊपर कुपित प्रभुके समीप जायकै तुम क्रोधकी शांति करो[1] ॥ ३ ॥ हे राजन्! बहुत अच्छा ऐसे कहिकर महाभागवत बालक धीरेसे समीप जायकर सांष्टांग दंडवत कर हाथ जोड नमस्कार करते भए ॥ ४ ॥ अपने चरणकमलमें पतित वा बालककों देख श्रीनृसिंहदेव कृपासे परिपूर्ण ह्वैकै वाय उठाय वाके सीसपर कालरूप सर्पके भयसे डरी बुद्धिवारेनकों अभयदायक हस्तकमल धारते भये ॥ ५ ॥ श्रीनृसिंहजीके हस्तस्पर्शसे सब अशुभ मिटनेसै शीघ्र ब्रह्मज्ञानकों प्राप्त हो हर्षित शरीर गीलो हृदय आंसूं वहाते प्रल्हाद

---

[1] शंका–प्रल्हादके ऊपर तो नृसिंह भगवान्‌का परम अनुग्रह था, फिर शीघ्र क्रोधको त्यागकर वरदान क्यों नहीं दिया ? ऐसी प्रीति करके फिर वर देनेमें विलम्ब क्यों किया ?

उत्तर–नृसिंहजीने शीघ्र क्रोध त्याग नहीं किया, और प्रल्हादको शीघ्र वरदानभी नहीं दिया उसका कारण यह है कि लोकमें प्रल्हादकी भक्तिकी प्रशंसा करानेके लिये, क्रोध त्यागनेमें और वरदान देनेंमें विलम्ब किया लोकमें सब ऐसे वचन कहेंगे कि सब देवताओनें नृसिंहजीकी स्तुति की परन्तु क्रोध शान्त नहीं हुवा, जब प्रल्हादने स्तुति की तब उसी समय क्रोधको त्याग दिया ऐसा नृसिंह भगवानको प्रल्हाद प्यारा था, इसलिये क्रोधके त्यागनेमें विलम्ब किया, और इसीलिये तुरन्त वरदानभी नहीं दिया ॥

तिनके चरणकमलको अतिआनंदित हृदयमें धारतो भयो ॥६॥ एकाग्रमनसे सुंदर सावधान होयकर प्रेमकी गद्गदवाणीसे श्रीहरिके हृदयमें दृष्टि लगा
स्तुति करते भए ॥ ७ ॥ श्रीप्रल्हादजी बोले कि ब्रह्मादिक देवतानके गण मुनि सिद्ध कि जिनकी मति सतोगुणी है वह सब वाणियोंके प्रवाहसे
महागुणों करके आजतक जिनके आराधन स्तुति करवेको समर्थ नहीं होते भए, वह उग्ररूपधारी श्रीनृसिंह हरि मोसें कैसे स्तुति करें
जायगे, तोहू उनकी कृपासें स्तोत्र करूंहूं ॥ ८ ॥ धन, जाति, रूप, तप, व्रत, ओज, तेज, प्रभाव, बल, पौरुष, बुद्धि, योग, ये सब परमेश्वरके आराधनके
अर्थ कुछ नहीं करसके हैं, श्रीभगवान भक्तिसें संतुष्ट होतेहैं जैसे गजेन्द्रके ऊपर प्रसन्न हुए तैसे मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥ ९ ॥ ये प्रभु अ-

अस्तौषीद्द हरिमेकाग्रमनसा सुसमाहितः ॥ प्रेमगद्गदया वाचा तन्न्यस्तहृदयेक्षणः ॥ ७ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ ब्रह्मादयः
सुरगणा मुनयोऽथ सिद्धाः सत्त्वैकतानमतयो वचसां प्रवाहैः ॥ नाराधितुं पुरुगुणैरधुना पिपिप्रुः किं
तोष्टुमर्हति स मे हरिरुग्रजातेः ॥ ८ ॥ मन्ये धनाभिजनरूपतपःश्रुतौजस्तेजःप्रभावबलपौरुषबुद्धियोगाः ॥
नाराधनाय हि भवन्ति परस्य पुंसो भक्त्या तुतोष भगवान् गजयूथपाय ॥ ९ ॥ नैवात्मनः प्रभुरयं निजलाभपूर्णो
मानं जनादविदुषः करुणो वृणीते ॥ यद्यज्जनो भगवते विदधीत मानं तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्रीः ॥ १० ॥
तस्मादहं विगतविक्लव ईश्वरस्य सर्वात्मना महि गृणामि यथामनीषम् ॥ नीचोऽजया गुणविसर्गमनुप्रविष्टः पूयेत
येन हि पुमाननुवर्णितेन ॥ ११ ॥

ज्ञानी जीवसे अपने लिये कछु नहीं मागै क्यौं कि वे तो अपने लाभसे पूर्ण हैं दयालु हैं याते सब पदार्थ सबसे चाहैं है प्राणी जो जो भगवतके अर्थ
सत्कार मानसे देतेहै सो वासें याकोही भलो होयहै जैसे मुखकी तिलकादिककी शोभा करै है, तैसे जो भगवतको समर्पै है यासे या जीवकीही शोभा
होय है ॥१०॥ तातेमें जो नीच और मायाके बंधन संसारमें पडाहूं सब उदासीनता दूर कर मैं सब आत्मा ईश्वरकी महिमा जैसी मेरी बुद्धि है तेसो
स्तुति करूंगो, भगवानके स्तोत्र वर्णन करनेसे मनुष्य पवित्र होजाय है यासें मैं स्तुति करूंहूं ॥ ११ ॥

---

१ विप्राद्वि०—यह श्लोक इसी अध्याके ५० वें श्लोकमें लिखा है किसी पुस्तकमें यही लिखा है सो वहां हौनेके कारण यहां नहीं लिखा ।

हे ईश ! हमारीसीनाई सब ये ब्रह्मादिक सत्वधामा आप भगवानके रुचिर अवतारोंका क्रीडा क्षेमके अर्थ और आत्माके सुखके लिये वर्णन करते
उद्वेगको नहीं प्राप्त होयहै ॥ १२ ॥ अब आप क्रोध शांत करो, अब असुर तो आपने मारही लीनो, वृश्चिक सर्पकी हत्यासें साधुभी आनंदित होंय
है, सबलोक अत्यंत आनंदको प्राप्त होते भए, सब आपके समीप आवै हैं, हे नृसिंह ! आपके रूपको जन संसारताप दूर करवेके अर्थ स्मरण करैं
हैं ॥ १३ ॥ हे अतीत ! तुह्मारे अतिभयानक मुख जीभ सूर्य समान नेत्र भ्रुकुटीके चटावनेसे उग्रदाढासें आंतनकी माला पहिरवेसे रुधिरसे भिजे
भये वारसे कलासमान कानसे शब्दकै भयसे दिशानके गजनके चलायमानसे नखके अग्रभागसें हम नहीं डरै हैं ॥ १४ ॥ परन्तु हे कृपणवत्सल !

सर्वे ह्यमी विधिकरास्तव सत्त्वधाम्नो ब्रह्मादयो वयमिवेश न चोद्विजन्तः ॥ क्षेमाय भूतय उतात्मसुखाय चास्य वि-
क्रीडितं भगवतो रुचिरावतारैः ॥ १२ ॥ तद्यच्छ मन्युमसुरश्च हतस्त्वयाद्य मोदेत साधुरपि वृश्चिकसर्पहत्या ॥
लोकाश्च निर्वृतिमिताः प्रतियन्ति सर्वे रूपं नृसिंह विभयाय जनाः स्मरन्ति ॥ १३ ॥ नाहं बिभेम्यजित तेऽतिभयानका-
स्यजिह्वार्कनेत्रभ्रुकुटीरभसोग्रदंष्ट्रात् ॥ अन्त्रस्रजः क्षतजकेसरशङ्कुकर्णान्निर्ह्रादभीतदिगिभादरिभिन्नखाग्रात् ॥ १४ ॥
त्रस्तोऽस्म्यहं कृपणवत्सल दुःसहोग्रसंसारचक्रकदनाद् ग्रसतां प्रणीतः ॥ बद्धः स्वकर्मभिरुशत्तम तेऽङ्घ्रिमूलं प्रीतोऽ-
पवर्गशरणं ह्वयसे कदा नु ॥ १५ ॥ यस्मात् प्रियाप्रियवियोगसयोगजन्मशोकाग्निना सकलयोनिषु दह्यमानः ॥ दुः-
खौषधं तदपि दुःखमतद्धियाहं भूमन् भ्रमामि वद मे तव दास्ययोगम् ॥ १६ ॥ सोऽहं प्रियस्य सुहृदः परदेवताया
लीलाकथास्तव नृसिंह विरिञ्चगीताः ॥ अञ्जस्तितर्म्यनुगृणन् गुणविप्रमुक्तो दुर्गाणि ते पदयुगालयहंससङ्गः ॥ १७ ॥

दुःसह संसारचक्रके दुःसहदुःखसे डरताहूं हिंसक जीवनने घेर राखौ है हे उशत्तम ! अपने कर्मनसे बंधोभयो आपके चरणनको चाहूंहूं सो चरणकी
शरणतारूप मोको मोक्ष कब देओगे, कब समीप बुलाओगे ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! प्रिय अप्रिय वियोग संयोग जन्म शोक अग्निसे सब योनियोंमें जला
करताहूं और संसारके दुख दूर करनेके उपाय है वेभी दुख स्वरूप हैं तौभी मैं देहादि अभिमानमें भटक रहाहूं हे प्रभु ! अब अपने दासको निस्तार
का उपाय बताओ ॥ १६ ॥ प्यारे सुहृद परम देवता आपकी ब्रह्मादिकोंकी सभामें गाई भई लीला कथाको उच्चारण कर अनायाससें तरजाऊंगा,

हे नृसिंह ! गुणोंसे छूटो भयो तुह्मारे चरणयुगालयमें वास करवेवारे भक्त हंसोंके संगसे कठिन दुःखनको तरजाऊंगा ॥१७॥ हे नृसिंह ! बालकके रक्षक पिता माता हैंबी और नहींभी है, रोगीको दवा बचायभी दै मारभी देहै, समुद्रमें डुबते भएकी नाव रक्षकभी होय है नहींभी होय है दुःखसै तप्तकी दवा यहां है और नहीभी है परंतु हे विभो ! शरीरधारी तुह्मारी उपेक्षा करै तौ याको दुःख है, तुह्मारी चाह करै तौ सुख है दुःखियौंको दुख मिटानैको जगतमें जितने साधन हैं जबतक आप उनकी उपेक्षा नहीं करते वे तभीतक काम आते हैं आपकी उपेक्षामें फिर औषधी नौका माता पितादि कोई काम नहीं आते ॥ १८ ॥ जामैं जातै जा कालमें जा हेतुकरकै जाकै संबंधसे जाके अर्थ जाप्रकारसें जिसै उत्पन्न करै है तथा दूसरे

बालस्य नेह शरणं पितरौ नृसिंह नार्तस्य चागदमुदन्वति मज्जतो नौः ॥ तप्तस्य तत्प्रतिविधिर्य इहाञ्जसेष्टस्तावद्वि-
भो तनुभृतां त्वदुपेक्षितानाम् ॥ १८ ॥ यस्मिन् यतो यर्हि येन च यस्य यस्माद्यस्मै यथा यदुत यस्त्वपरः परो
वा ॥ भावः करोति विकरोति पृथक्स्वभावः संचोदितस्तदखिलं भवतः स्वरूपम् ॥१९॥ माया मनः सृजति कर्मम-
यं बलीयः कालेन चोदितगुणानुमतेन पुंसः ॥ छन्दोमयं यदजयाऽर्पितषोडशारं संसारचक्रमज कोऽतितरेत्त्वदन्यः
॥ २० ॥ स त्वं निहत्य विजितात्मगुणः स्वधाम्ना कालो वशीकृतविसृज्यविसर्गशक्तिः ॥ चक्रे विसृष्टमजयेश्वरषोड-
शारे निष्पीड्यमानमुपकर्ष विभो प्रपन्नम् ॥ २१ ॥

रूपको प्राप्त होते हे पृथक् २ स्वभाववाले ब्रह्मादिक और पिता आदि जिसको उत्पन्न करते हैं यह आपका स्वरूप है ॥ १९ ॥ कर्मकारी बलवान वेदोक्त कर्मोंको मुख्य मान्नेवाला अविद्याके करे षोडश विकारके अरे युक्त यह मन है जोकि कालसै प्रेरणा की हुई मायाके गुणौंसै उत्पन्न होता है इससे संसारचक्ररूपी मनको आपकी भक्ति विना कौन तर सक्ता है ॥ २० ॥ सो तुमने अपने स्वधामसे नित्य आत्मस्वभाव जीतो है कालकों वशी कीनोहै रचवेकी सृष्टिकी शक्ति वश कीनी है हे ईश्वर ! मैं मायाकै सोलह विकारवाले संसारचक्रमें पडाहूं और महा पीडित हूं सो आप मुझ शरणागत भक्तके मनको मार अपने निकट खैंचो ॥ २१ ॥

हे विभो ! जा संपदाकों ये जीव इच्छा करेंहैं वह और सब स्थानपालकनकी आयु लक्ष्मी वैभव स्वर्गमें मैने देखेहै सो हमारे पिताके कुपित हासके भ्रूभंगमात्रसे नष्टभए सो पिता आपने मारो ॥ २२ ॥ ताते मैं अज्ञानी इन जीवनके आशीर्वाद आयु श्री विभव ब्रह्मापर्यंतको इंद्रिनके सुखकी इच्छा नही करता कालरूप आपके पराक्रमसे वे सब सुख खंडित है, हे प्रभो ! मुझे तौ आप अपने दासोंके निकट रक्खो ॥ २३ ॥ काननको सुख देवेवारे अंतमें मृगतृष्णारूप इन संसार संबंधी सुखौंमें क्या सार है उसी प्रकार सब रोगौंके अगार इस देहमें क्या सार है प्राणी ऐसा जान्ते हैं तौभी श्रमसें

दृष्टा मया दिवि विभोऽखिलधिष्ण्यपानामायुः श्रियो विभव इच्छति यान् जनोऽयम् ॥ येऽस्मत्पितुः कुपितहासविजृम्भितभ्रूविस्फूर्जितेन लुलिताः स तु ते निरस्तः ॥ २२ ॥ तस्मादमूस्तनुभृतामहमाशिषोज्ञ आयुः श्रियं विभवमैन्द्रियमाविरिञ्चात् ॥ नेच्छामि ते विलुलितानुरुविक्रमेण कालात्मनोपनय मां निजभृत्यपार्श्वम् ॥ २३ ॥ कुत्राशिषः श्रुतिसुखा मृगतृष्णिरूपाः क्वेदं कलेवरमशेषरुजां विरोहः ॥ निर्विद्यते न तु जनो यदपीति विद्वान् कामानलं मधुलवैः शमयन् दुरापैः ॥२४॥ क्काहं रजःप्रभव ईश तमोधिकेऽस्मिन् जातः सुरेतरकुले क्व तवानुकम्पा ॥ न ब्रह्मणो न तु भवस्य न वै रमाया यन्मेऽर्पितः शिरसि पद्मकरः प्रसादः ॥ २५ ॥ नैषा परावरमतिर्भवतो ननु स्याज्जन्तोर्यथात्मसुहृदो जगतस्तथाऽपि ॥ संसेवया सुरतरोरिव ते प्रसादः सेवानुरूपमुदयो न परावरत्वम् ॥ २६ ॥

प्राप्त होते हुए अल्प सुखौंसै कामनारूप अग्निको शान्त करते रहते हैं इस्सै उन्है वैराग्य नहीं होता हे प्रभु ! आपकी मायाकी चेष्टा अपार है ॥ २४ ॥ हे नृसिंहजी महाराज ! रजोगुणसे उत्पन्न तामसी दैत्य कुलमें जन्म लैनेवाला मैं कहां और तुम्हारी कृपा कहां ब्रम्हा शिव लक्ष्मीपर जो कृपा न करी सो कृपा मोपर करी, जो अपनो अभयहस्तकमल मोपर धरो ॥ २५ ॥ यद्यपि अपनी पराई ये बुद्धि जगतके जीवनकी होयहै सबके प्यारे जो आप हो तिनको नही है, तथापि सुंदर सेवा करनेसे कल्पवृक्षकी नांई आपकी कृपा है, सेवाके अनुसार फल देओहो, पर अवर बुद्धि आपमें नहीं है॥२६॥

संसाररूप सर्पके कूपमें ये जीव पडैं हैं, खोटे संगसें कामनको सदा चाहैहै, तासे तपै है, हे भगवन् ! अपनो जान हमपै श्रीनारदजीने कृपा करी सो हम आपके भृत्यनकी सेवा कैसे त्यागैं ॥ २७ ॥ हे अनंत ! आपने मेरे प्राणकी रक्षा करी, पिताकों मारो, अपने भृत्य ऋषि नारदको वाक्य सत्य करवेको अवतार धारो अयोग्य कर्म करना विचार हाथमें तलवार ले बोलो कि मोसें परे कौन ईश्वर तेरी रक्षा करवेवारो है वाय बताजो अभी मारूं नही बतावैगो तो तेरो शिर हरूंगो ॥ २८ ॥ या जगत्के एक तुम्हीं हो, कारण कि जगतके आदि अन्तमें आपही अवशेष रहते हो इस्सै मध्यमेंभी आपही हो अपनी मायाद्वारा गुणोंके परिणाम रूप जगतको रचकर अंतरयामी रूपसै उसमें प्रविष्ट हो और गुणोंके कारण नाना रूपसै प्रतीत होते हो

एवं जनं निपतितं प्रभवाहिकूपे कामाभिकाममनु यः प्रतपन् प्रसङ्गात् ॥ कृत्वात्मसात् सुरर्षिणा भगवन् गृहीतः सोऽहं कथं नु विसृजे तव भृत्यसेवाम् ॥ २७ ॥ मत्प्राणरक्षणमनन्त पितुर्वधश्च मन्ये स्वभृत्यऋषिवाक्यमृतं विधातुम् ॥ खड्गं प्रगृह्य यदवोचदसद्विधित्सुस्त्वामीश्वरो मदपरोऽवतु कं हरामि ॥ २८ ॥ एकस्त्वमेव जगदेतदमुष्य यत्त्वमाद्यन्तयोः पृथगवस्यसि मध्यतश्च ॥ सृष्ट्वा गुणव्यतिकरं निजमाययेदं नानेव तैरवसितस्तदनुप्रविष्टः ॥ २९ ॥ त्वं वा इदं सदसदीश भवांस्ततोऽन्यो माया यदात्मपरबुद्धिरियं ह्यपार्था ॥ यद्यस्य जन्म निधनं स्थितिरीक्षणं च तद्वै तदेव वसुकालवदष्टितर्वोः ॥ ३० ॥ न्यस्येदमात्मनि जगद्विलयाम्बुमध्ये शेषेत्मना निजसुखानुभवो निरीहः ॥ योगेन मीलितदृगात्मनि पीतनिद्रस्तुर्ये स्थितो न तु तमो न गुणांश्च युङ्क्षे ॥ ३१ ॥

॥ २९ ॥ हे ईश्वर ! कार्य कारण रूप जगत आपही हो इससै पृथकभी हो अपने परायेकी बुद्धि मायासै होती है जो मिथ्या है या विश्वको जन्म नाश स्थिति ये आपकी चेष्टा है, जैसो सद वस्तुनके होयवेके समय बीजसें वृक्ष वृक्षसें बीज होता है तैसे आपसे संसार होय है सब आपही हो ॥ ३० ॥ महाप्रलयके जलमें या विश्वको राखके आप निजसुखको अनुभव करते अचेष्टा होयकें योगसे दृष्टिको मीचकर आत्माकी चतुर्थ तुर्या अवस्थामें स्थित होयकै तम और सब गुणनको संयोग त्याग शयन करतेहो ॥ ३१ ॥

जिस समय आप शेषनागकी शैय्यापर शयन करने उपरान्त उठतेहो उससमय जैसे सूक्ष्म बीजसे वटवृक्ष उत्पन्न होताहै इस प्रकार आपकी नाभिसे कमल उत्पन्न होताहै और वह कमल कालशक्तिसे प्रेरणा किये मायामें तुह्मारे शरीरमें प्रलयके समय गुप्त रहताहै जिसमें जगत है ॥ ३२ ॥ ताते भये ब्रह्माजीने कमल विना और कुछ नहीं देखो, तब ब्रह्माजीने बीजरूप आपको अपनेसे बाहर जानकर सौ वर्ष जलमें ढूंढा तोभी पता न पाया यह सत्य है अंकूर उगनेसे बीज नहीं मिलसक्ता ॥ ३३ ॥ सो ब्रह्मा अतिविस्मित होय कमलपर बैठ तप करते भये जब बहुत समय बीतनेपर तपसे शुद्धभाव हुआ तब पृथ्वीमें जैसे गंध रहतीहै तैसे अपने आत्माहीमें अतिसूक्ष्म भूत इंद्रिय अंतःकरणमें ईश्वरको दर्शन करते भये ॥ ३४ ॥ ऐसे

तस्यैव ते वपुरिदं निजकालशक्त्या संचोदितप्रकृतिधर्मण आत्मगूढम् ॥ अम्भस्यनन्तशयनाद्विरमत्समाधेर्नाभेरभूत् स्वकणिकावटवन्महाब्जम् ॥३२॥ तत्संभवः कविरतोऽन्यदपश्यमानस्त्वां बीजमात्मनि ततं स्वबहिर्विचिन्त्य॥ नाविन्ददब्दशतमप्सु निमज्जमानो जातेङ्कुरे कथमु होपलभेत बीजम् ॥ ३३ ॥ स त्वात्मयोनिरतिविस्मित आस्थितोब्जं कालेन तीव्रतपसा परिशुद्धभावः ॥ त्वामात्मनीश भुवि गन्धामिवातिसूक्ष्मं भूतेन्द्रियाशयमये विततं ददर्श ॥ ३४ ॥ एवं सहस्रवदनाङ्घ्रिशिरःकरोरुनासास्यकर्णनयनाभरणायुधाढ्यम् ॥ मायामयं सदुपलक्षितसन्निवेशं दृष्ट्वा महापुरुषमाप मुदं विरिञ्चः॥३५॥ तस्मै भवान्हयशिरस्तनुवं च बिभ्रद्वेदद्रुहावतिबलौ मधुकैटभाख्यौ ॥ हत्वाऽनयत् श्रुतिगणांस्तु रजस्तमश्च सत्त्वं तव प्रियतमां तनुमामनन्ति ॥ ३६ ॥ इत्थं नृतिर्यगृषिदेवझषावतारैर्लोकान् विभावयसि हंसि जगत्प्रतीपान् ॥ धर्मं महापुरुष पासि युगानुवृत्तं छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ सत्वम् ॥ ३७ ॥

सहस्र वदन चरण शिर हाथ ऊरु नाक मुख कर्ण नयन आभरण आयुधयुक्त मायामय साधुओंके देखवे योग्य रूप देख ब्रह्माजीकों महाआनंद प्राप्तभयो ॥ ३५ ॥ श्रीब्रह्मापर अनुग्रह कीनो कि हयग्रीव अवतार धार वेदद्रोही अतिबली मधुकैटभ दोनोको मार श्रुतिगण लाए, रज तम सत्व प्रिय तुह्मारे शरीरको सब प्रणाम करतेभए ॥ ३६ ॥ तुम मनुष्य पशु ऋषि देवते मगरमें अवतार धार लोकनकी रक्षा करोहो, जगतके नाशकनकों मारोहो हे महापुरुष ! सनातन धर्म जब लुप्त होताहै तब उसे उद्धार करोहो परन्तु कलियुगमें आप गुप्त रहतेहो तीन युगमें प्रगट हो इस कारण

त्रियुग कहाओहो ॥ ३७ ॥ हे वैकुंठनाथ ! पापी दुष्ट असाधु मन आपकी कथामैं कभी नहीं लगैहै कामातुर हर्ष शोक भय दृष्टिसे दुखी है फिर ऐसे मनमें मैं दीन आपकी गति कैसैं विचारूं ॥ ३८ ॥ हे अच्युत ! रससै तृप्त न होती जीभ एक ओरकूं खीच लेजायहै, शिश्न विषयको खीचैहै, त्वचा कितकों लेजावै है, पेट भोजन लेजायहै कान शब्दकी ओर जायहै, नाक विषयकी ओर जायहै, दृष्टि रूपकूं धावैहै, सब कर्म शक्तियें या जीवकों छेदै है जैसै बहुत लुगाईवारेकों सब ओरसे सब सौंतें सतावै तैसी या जीवकी गति है ॥३९॥ ऐसै अपने कर्मोंसे संसाररूप वैतरणी नदीमें पडो भयो अनेक जन्म लेते मरते खाते डरते डराते अपने पराएसे वैर मैत्री देखते करते मुझ मूढकों आप पार करो तब उद्धार होय ॥४०॥ हे भगवन् ! उत्पत्ति

नैतन्मनस्तव कथासु विकुण्ठनाथ स प्रीयते दुरितदुष्टमसाधु तीव्रम् ॥ कामातुरं हर्षशोकभयैषणार्तं तस्मिन्कथं तव गतिं विमृशामि दीनः ॥३८॥ जिह्वैकतोऽच्युत विकर्षति माऽवितृप्ता शिश्नोऽन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित् ॥ घ्राणोऽन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्मशक्तिर्बह्व्यः सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति ॥ ३९ ॥ एवं स्वकर्मपतितं भववैतरण्यामन्योन्यजन्ममरणाशनभीतभीतम् ॥ पश्यञ्जनं स्वपरविग्रहवैरमैत्रं हन्तेति पारचर पीपृहि मूढमद्य ॥ ४० ॥ कोन्वत्र तेऽखिलगुरो भगवन्प्रयास उत्तारणेऽस्य भवसंभवलोपहेतोः ॥ मूढेषु वै महदनुग्रह आर्तबन्धो किं तेन ते प्रियजनाननुसेवतां नः ॥ ४१ ॥ नैवोद्विजे पर दुरत्ययवैतरण्यास्त्वद्वीर्यगायनमहाऽमृतमग्नचित्तः ॥ शोचे ततो विमुखचेतस इन्द्रियार्थमायासुखाय भरमुद्वहतो विमूढान् ॥ ४२ ॥ प्रायेण देवमुनयः स्वविमुक्तकामा मौनं चरन्ति विजनेन परार्थनिष्ठाः ॥ नैतान्विहाय कृपणान्विमुमुक्ष एको नान्यं त्वदन्यशरणं भ्रमतोऽनुपश्ये ॥ ४३ ॥

पालन नाशके हेतु आपकों या जीवके उद्धार करवेमें कुछ परिश्रम न पडैगो, हे आर्तबंधो! आप मूढोंपर अतिभोले जीवपर महाकृपा करो हो तो जो तुह्मारी सेवा सदा करैं उन हमसरीकेनपर कृपा करनो यामैं कहा आश्चर्य है ॥ ४१ ॥ तुह्मारे चरित्र गान महाअमृतमै मेरा चित्त मग्न है हे परमेश्वर ! मैं दुरत्यय वैतरणीसे नहीं डरूंहूं परन्तु विमुख चितवारे इंद्रियोंके सुखमें लगे मायासुखके लिये भार उठानेहारे मूढनको मैं शोच करूंहूं॥४२॥ हे देव ! परमार्थमें मन लगानेहारे मुनी अपनी मुक्तिकी कामना करकै एकांतमें मौनव्रत करै है, परन्तु दूसरौंके निमित्त कुछ नहीं इसकारण मैं

इन दोनोको छोडकर इकला मुक्ति नहीं चाहता संसारमें इन लोगोंको जो कि भटक रहे हैं छुडानेवाला आपके सिवाय और कोई नहीं है इस्से मैं आपसे आग्रहसे कहताहूं कि इनपर कृपा करो ॥ ४३ ॥ जैसे हाथमें खाज चली वाय दूसरे हाथसे खुजावैं तो और बढे हैं तैसे ये मैथुनादि सुख गृहस्थीनको तुच्छ है, तासे बहु दुःख भागी कृपण नहीं तृप्त होय है खूजारकी नाई कामके वेगको सहनेवाला कोई धीर पुरुष आपका दास-ही होगा ॥ ४४ ॥ मौन व्रत श्रुत तप अध्ययन स्वधर्म धर्म व्याख्या एकांतमें ध्यान जप समाधी ये सब मोक्षसाधन हैं इनके करवेवारेनको देखकर अजितेंद्री उनकी हांसी करै है, दंभी उनकी नकल करै हैं, महात्मा उनै सराहैं हैं ॥ ४५ ॥ बीजमें अंकुर और अंकुरमें बीजकी नाई प्रवाहवत्

यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छं कण्डूयनेन करयोरिव दुःखदुःखम् ॥ तृप्यन्ति नेह कृपणा बहुदुःखभाजः
कुण्डूतिवन्मनसिजं विषहेत धीरः ॥ ४४ ॥ मौनव्रतश्रुततपोऽध्ययनस्वधर्मव्याख्यारहोजपसमाधय आपवर्ग्याः॥
प्रायः परं पुरुष ते त्वजितेन्द्रियाणां वार्ता भवन्त्युत न वाऽत्र तु दाम्भिकानाम् ॥ ४५ ॥ रूपे इमे सदसती तव वेद-
सृष्टे बीजाङ्कुराविव न चान्यदरूपकस्य ॥ युक्ताः समक्षमुभयत्र विचिन्वते त्वां योगेन वह्निमिव दारुषु नान्यतः स्यात्
॥ ४६ ॥ त्वं वायुरग्निरवनिर्वियदम्बुमात्राः प्राणेन्द्रियाणि हृदयं चिदनुग्रहश्च ॥ सर्वं त्वमेव सगुणो विगुणश्च भूमन्
नान्यत् त्वदस्त्यपि मनोवचसा निरुक्तम् ॥४७॥ नैते गुणा न गुणिनो महदादयो ये सर्वे मनःप्रभृतयः सहदेवमर्त्याः॥
आद्यन्तवन्त उरुगाय विदन्ति हि त्वामेवं विमृश्य सुधियो विरमन्ति शब्दात् ॥ ४८॥

प्रवृत्त होते हुए कार्य और कारण प्रकृतिरूपसे रहित आपहीके रूप हैं पृथक् नहीं है... वेद निरूपण करताहै काष्ठमें अग्नि जैसे मथनेसे प्रगट होती है तैसे इंद्रियोंके जीतनेवारे पुरुषोंके कार्य कारणमें भक्ति योगसे आप देखनेमें आतेहो आपके विना सत् असत्की उत्पत्ति नहीं ॥ ४६ ॥ वायु अग्नि धरती आकाश जल मात्रा प्राण इंद्रियें हृदय चित्त अनुग्रह तुम्हीं हो हे भूमन्! सगुण निर्गुण तुम्हीं हो, मन वचन करके जो कुछ कह्या जायहैं सो सब आपही हो ॥ ४७ ॥ ये सब गुण अवगुण महदादिक मनसे आदिले देव मनुष्य आद्यंतवान हैं आदि अंत रहित आपके स्वरू-

72

तत्तेर्हत्तम नमः स्तुतिकर्म पूजाकर्म स्मृतिश्चरणयोः श्रवणं कथायाम् ॥ संसेवया त्वयि विनेति षडङ्गया किं भक्तिं जनः परमहंसगतौ लभेत ॥ ४९ ॥ विप्राद्विषड्गुणयुतादरविन्दनाभपादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम् ॥ मन्ये तदर्पितमनोवचनेहितार्थप्राणं पुनाति स कुलं न तु भूरिमानः ॥ ५० ॥ नारद उवाच ॥ एतावद् वर्णितगुणो भक्त्या भक्तेन निर्गुणः ॥ प्रह्लादं प्रणतं प्रीतो यतमन्युरभाषत ॥ ५१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रह्लाद भद्र भद्रं ते प्रीतोहं तेऽसुरोत्तम ॥ वरं वृणीष्वाभिमतं कामपूरोऽस्म्यहं नृणाम् ॥ ५२ ॥ मामप्रीणत आयुष्मन् दर्शनं दुर्लभं हि मे ॥ दृष्ट्वा मां न पुनर्जन्तुरात्मानं तप्तुमर्हति ॥ ५३ ॥ प्रीणन्ति ह्यथ मां धीराः सर्वभावेन साधवः ॥ श्रेयस्कामा महाभागाः सर्वासामाशिषां पतिम् ॥ ५४ ॥

पकों नहीं जान्ते हे उरुगाय! ये विचार बुद्धिमान शब्दमात्रके उच्चारणसे विराम कर आपकी उपासना करते हैं ॥ ४८ ॥ तातै हे अत्यंत पूजनीय! नमस्कार स्तुति पूजाकर्म चरणमें स्मृति, कथाका श्रवण षडंगभक्तिकी सेवा विना आप जो परमहंसोंकी गति हैं तिनकी भक्ति लोकोंको किसे प्राप्त हो सकै भक्ति विना मोक्ष और सेवा विना भक्ति नहीं मिलती इसकारण कृपाकर मुझे अपना दास बनालो ॥ ४९ ॥ बारह गुणसे युक्त ब्राह्मण भगवच्चरणारविंदसे विमुख होय तो वासे चांडाल श्रेष्ठ है, भगवतमें अर्पण किये मन वचन चेष्टा प्राण कुल सबको पवित्र करैहै, बडो मान गर्ववाले हरिसै वो आपभी पवित्र न होय सकैहैं "या श्लोकको दूसरो अर्थ बारह गुण युक्त ब्राह्मण श्रीमन्नारायणके चरणकमलमें विशेष सुख मान्नेहारे चांड़ालसै श्रेष्ठ नहीं है जा ब्राह्मणने भगवानमें मन वचन चेष्टा अर्थ प्राण सब लगाएहै वो प्रिय कुल सहित प्राणोंकों पवित्र करै हैं बडो मानी चांडाल कुछ नही है" ॥ ५० ॥ श्रीनारदजी बोले कि भक्तने भक्तिसें जब ऐसे गुण वर्णन करैं, तब क्रोध शांतकर नम्र प्रल्हादपर प्रसन्न होय नृसिंहजी बोलै ॥ ५१ ॥ श्रीभगवान बोले कि हे प्रल्हाद हे भद्र हे असुरोत्तम! तुम्हारो मंगल होय, हम तुमपर प्रसन्न भए जो इच्छा होय सो वर मांगो मैं सब मनुष्यनकी कामना पूरी करवेवारो हूं ॥ ५२ ॥ हे आयुष्मन्! मोको विना प्रसन्न करै मेरो दर्शन नही होयहैं, मोको देखकर जीव कुछ करवे योग्य न रहै हैं ॥ ५३ ॥ धीर साधु सब भावसे मोको प्रसन्न करै हैं मंगल चाहवेवारे बडभागीनको सब कामदाता पति मैं हूं ॥ ५४ ॥

सब लोकके लुभायवेवारे वरोसें ऐसे जब प्रल्हादजीकों लोभ दिवायों तोहू भगवानमें एकांत भक्ति करनेहारे असुरोत्तम वर नहीं चाहतें भए (१) ॥ ९९ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां सप्तमस्कन्धे प्रह्लादकृतभगवत्स्तववर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीनारदजी बोले कि भक्तियोगके ये कामादिक विघ्न जान वो बालक प्रल्हाद मुसकायकर हृषीकेशसें बोले ॥ १ ॥ प्रल्हादजी बोले कि हम तौ जन्मसैंही काम वरोंमे

एवं प्रलोभ्यमानोऽपि वरैर्लोकप्रलोभनैः ॥ एकान्तित्वाद्भगवति नैच्छत् तानसुरोत्तमः ॥ ९९ ॥ इति श्रीभागवते सप्तमस्कन्धे प्रह्लादचरिते भगवत्स्तवो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ नारद उवाच ॥ भक्तियोगस्य तत् सर्वमन्तरायतयाऽर्भकः ॥ मन्यमानो हृषीकेशं स्मयमान उवाच ह ॥ १ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ मा मां प्रलोभयोत्पत्त्या सक्तं कामेषु तैर्वरैः ॥ तत्सङ्गभीतो निर्विण्णो मुमुक्षुस्त्वामुपाश्रितः ॥ २ ॥ भृत्यलक्षणजिज्ञासुर्भक्तं कामेष्वचोदयत् ॥ भवान् संसारबीजेषु हृदयग्रन्थिषु प्रभो ॥ ३ ॥ नान्यथा तेऽखिलगुरो घटेत करुणात्मनः ॥ यस्त आशिष आशास्ते न स भृत्यः स वै वणिक् ॥ ४ ॥ आशासानो न वै भृत्यः स्वामिन्याशिष आत्मनः ॥ न स्वामी भृत्यतः स्वाम्यमिच्छन् यो राति चाशिषः ॥ ५ ॥

आसक्त होयरहेहैं, हमैं आप मत लुभाओ, तिनके संगसें डरकर मुक्तिकी इच्छा कर मैं तुम्हारे शरणागत आयोहूं ॥ २ ॥ हे प्रभो ! दासके लक्षण जानवेकी इच्छा कर आप संसारके बीज हृदयकी गांठरूप कामोंमें प्रेरणा करोहों ॥ ३ ॥ अन्यथा सबके गुरु दयालुमें ये बात नहीं घटै, जो तुमसे कामना चाहैहै वोह दास नहीं वणियां है॥ ४ ॥ जो दास अपनेवास्ते वर चाहैहैं, वो दास कुछ नहींहैं, जो स्वामोसे दासको सेवाके लालचसैं काम वर दे वह

---

१ प्रल्हादजी भजन गावते भए ॥ " ठुमरी ॥ अवतार लिये भक्तन काजा जय जय श्रीनृसिंहराजा ॥ टेर ॥ प्रल्हाद टेक कही राम कहौं, सब छोडरहो कुलकी लाजा ॥ १ ॥ चटशानमें चटपटियां लिखदई श्रीराम राम मुख कहो आजा ॥ २ ॥ बालक सबनकों शिखाय दियो पढाय दियो लिख लिख ताजा ॥ ३ ॥ गुरुजीने जाय कही नृपसें सुनतेई कर शस्त्र लियो भाजा ॥ ४ ॥ जल अग्नि पहाडसें डार पियो सब ठौर राख लियो महाराजा ॥ ५ ॥ जब हार हाथ तरवार लई तेरो राखनवारो कहो आजा ॥ ६ ॥ प्रल्हाद कहै सब ठौर रहै तिहुं पुरमे सजाय सजो साजा ॥ ७ ॥ मोमैं तोमैं खड्ग खंभमैं इतनो कहि खंभ फटो गाजा ॥ ८ ॥ झट कूद हरि हरिणाक्ष धरो वो मरो देख राक्षस भाजा ॥९॥ पुरुषोत्तम जय जय कार कियो तिहुं लोक दियो सुख सुरकाजा ॥ "

सत्य स्वामी नहीं ॥ ५ ॥ हम तो निष्कामी तुम्हारे भक्त हैं तुम निष्काम स्वामी राजा और नौकरोंमें जो स्वार्थ सम्बन्ध है वह आपमें नहीं हम तौ आपके और अपने बीचमें निष्कामता चाहतेहै ॥ ६ ॥ हे वरदर्षभ ! जो कामना तुम सब मोको देओहो सो ठीक है परंतु मेरे हृदयमें कामके बीज उत्पन्न न होय ये वर आपसें मांगूहूं ॥ ७ ॥ इंद्रियें मन प्राण आत्मा धर्म धैर्य मति लाज श्री तेज स्मृति सत्य ये सब कामनाके जन्मसे नाश

अहं त्वकामस्त्वद्भक्तस्त्वं च स्वाम्यनपाश्रयः ॥ नान्यथेहावयोरर्थो राजसेवकयोरिव ॥ ६ ॥ यदि रासीश मे कामान् वरांस्त्वं वरदर्षभ ॥ कामानां हृद्यसंरोहं भवतस्तु वृणे वरम् ॥७॥ इन्द्रियाणि मनः प्राण आत्मा धर्मो धृतिर्मतिः ॥ ह्रीः श्रीस्तेजः स्मृतिः सत्यं यस्य नश्यन्ति जन्मना ॥ ८ ॥ विमुञ्चति यदा कामान्मानवो मनसि स्थितान् ॥ तर्ह्येव पुण्डरीकाक्ष भगवत्त्वाय कल्पते ॥ ९ ॥ नमो भगवते तुभ्यं पुरुषाय महात्मने ॥ हरयेऽद्भुतसिंहाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥१०॥ नृसिंह उवाच ॥ नैकान्तिनो मे मयि जात्विहाशिष आशासतेऽमुत्र च ये भवद्विधाः ॥ अथापि मन्वन्तरमेतदत्र दैत्येश्वराणामनुभुङ्क्ष्व भोगान् ॥ ११ ॥ कथा मदीया जुषमाणः प्रियास्त्वमावेश्य मामात्मनि सन्तमेकम् ॥ सर्वेषु भूतेष्वधियज्ञमीशं यजस्व योगेन च कर्म हिन्वन् ॥ १२ ॥

होजांय हैं ॥ ८ ॥ मनुष्य मनके कामनानकों जब त्याग करैहै तब हे पुंडरीकाक्ष ! भगवतके भावकों प्राप्त होजायहै ॥ ९ ॥ पुरुष महात्मा भगवान् हरि अद्भुत नृसिंह ब्रह्म परमात्माके अर्थ नमस्कार होय ॥ १० ॥ श्रीनृसिंहजी बोले कि आपसरीके मेरे जो एकांती भक्त हैं वे कभीभी कोई प्रकारके वर नहीं चाहते हैं, तथापि या मन्वंतरतक दैत्येश्वरोंका राज्य तुम भोगो ॥ ११ ॥ मेरी प्यारी कथा सेवो, सर्वजीवमात्रमें रहिवेवारो एक

---

१ प्रल्हादजी बोलै और तौ वर नहीं यह वर चाहता हूं कि मेरी सब प्रजा स्वर्गमें जाय भगवान् बोले सबकी इच्छा स्वर्ग जानेकी नहीं होती इस कारण जो जो स्वर्ग चलैं उन्हें तुम बुलालाओ, यह सुनकर प्रल्हाद चले, और मनमें विचारी कि बालक तौ स्वर्गादिकको जान्ते नहीं युवा स्त्रियोंमें आसक्त है इस कारण वृद्धोंसे कहै, मार्गमें एक महावृद्धसे बोले तुम स्वर्ग चलोगे, वह बोला अवश्य चलैंगे, प्रल्हाद बोले चलो बुड्ढा बोला अभी नहीं जब हम पोतेका व्याह करलैंगे तब चलैंगे प्रल्हादने कही तुम महामूर्ख हो, तब वृद्धने कहा जाओ जो अबके स्वर्गका नाम लोगे, तौ लकडीसै खबर लूंगा, प्रल्हादजीने शोचा मनुष्योंमें कोई जीव नहीं चलैगा, तब वहांसै चल शूकरके पास आये, और स्वर्गके सुख सुनाकर चलनेको कहा तब उसने कहा हम अपनी शूकरीसेभी पूछलै तब सम्मति कर प्रल्हादसै पूछा वहां यह हमारा भोजनभी है प्रल्हाद बोले, अरे अज्ञानी ! ऐसी निषिद्ध वस्तुका वहां क्या काम तब वह बोला तौ हम नहीं जांयगे, प्रल्हादने फिर कहा तब वे घुरघुराके दौडे तब प्रल्हादने भगवानसै कहा आपकी माया बड़ी प्रबल है, कोई स्वर्गमें नहीं जाता ॥

मुझै स्मरण करो सबके ईशको यजन करो, योगसें कर्मको त्याग करो ॥ १२ ॥ इस प्रकार करनेसै सुख भोगसै पुण्यका पुण्यसै पापका कालके वेगसे देहका त्याग कर देवताओंके गानै योग्य विशुद्धकीर्ति विस्तारकर सब बंधनसे मुक्त होयकर मोको प्राप्त होओगे ॥ १३ ॥ तुह्मारो गायोभयो मेरो स्तोत्र जो कोई कीर्तन करैगो, जो मृत्युके समयमें तुमकूं अथवा मोको स्मरण करै तो कर्मबंधसें छुट जायहै ॥ १४ ॥ प्रल्हादजो बोले कि हे महेश्वर ! वर दैनेवालौंके ईश्वर आपसै में यह वर मांगताहूं कि आपके ईश्वर संबन्धी ऐश्वर्यके विना जानै जो मेरे पितानै

भोगेन पुण्यं कुशलेन पापं कलेवरं कालजवेन हित्वा ॥ कीर्तिं विशुद्धां सुरलोकगीतां विताय मामेष्यसि मुक्तबन्धः ॥ १३ ॥ य एतत्कीर्तयेन्मह्यं त्वया गीतमिदं नरः ॥ त्वां च मां च स्मरन्काले कर्मबन्धात्प्रमुच्यते ॥ १४ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ वरं वरय एतत्ते वरदेशान्महेश्वर ॥ यदनिन्दत्पिता मे त्वामविद्वांस्तेज ऐश्वरम् ॥ १५ ॥ विद्धामर्षाशयः साक्षात् सर्वलोकगुरुं प्रभुम् ॥ भ्रातृहेति मृषादृष्टिस्त्वद्भक्ते मयि चाघवान् ॥ १६ ॥ तस्मात् पिता मे पूयेत दुरन्तात् दुस्तरादघात् ॥ पूतस्तेपाङ्गसंदृष्टस्तदा कृपणवत्सल ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ त्रिः सप्तभिः पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ ॥ यत्साधोऽस्य गृहे जातो भवान्वै कुलपावनः ॥ १८ ॥ यत्र यत्र च मद्भक्ताः प्रशान्ताः समदर्शिनः ॥ साधवः समुदाचारास्ते पूयन्त्यपि कीकटाः ॥ १९ ॥

आपकी निन्दा की है ॥ १५ तथा क्रोधावेशचित्तसै साक्षात्सर्वलोकके गुरु प्रभु तुह्मै भैयाको मारनवारो जान तुह्मारे भक्तमें मृषा दृष्टि कर पाप विचारो ॥ १६ ॥ हे कृपणवत्सल ! यह हमारे पिता उस दुरंत कठिन पापसै जिस प्रकार तरजाय सो कृपा करो यद्यपि वह पवित्र तौ आपकी दृष्टि पडतेही होगया पर आपभी कृपा करो ॥ १७॥ श्रीभगवान् बोलै कि हे पापरहित ! तुह्मारो पिता इक्कीसकुल सहित पवित्र भयो जो तुम सरीके साधु कुलपावन उसके घरमें जन्मै ॥ १८ ॥ जहां जहां मेरे भक्त प्रशांत समदर्शी साधु सुंदर आचार करवेवारे हैं, वे कीकटदेशकूंभी पवित्र करैहै ॥ १९ ॥

---

१ शंका –प्रल्हादसे नृसिंहजीने कहा कि तेरा बाप इक्कीस पीढीको संग लेकर वैकुण्ठधामको गया, यह बड़े सन्देहकी बात है क्योंकि हिरण्यकशिपु सहित गिनो तो चारी पीढ़ी होतीं हैं ब्रह्मा १ मरीचि २ कश्यप ३ हिरण्यकशिपु ४ फिर भगवान् ने इक्कीस पीढी क्यों कहा ?

उत्तर–चार पीढी तो वीती हुई और सत्तरह पीढ़ी अगाड़ीकी लेकर इस प्रकारसे इक्कीस पीढ़ी भगवानने कही ॥

मेरी भक्तिसै जिनकी कामना क्षीण होगईहै वे भक्त जन छोटे जीवौंकीभी हिंसा नही करते ॥ २० ॥ जो लोकमें तुम्हारे अनुवर्ती लोग होंगे, वे जैसै तुम मेरे सब भक्तनमें प्यारे हो तैसैही वे सब होंयगे ॥ २१ ॥ सब तरहसे पवित्र पिताके मृतक संस्कार करो हे अंग ! मेरे अंगके स्पर्श करकै सपूतपुत्रवारे जिन लोकनको जांयहैं उन लोकनको जायगो ॥ २२ ॥ हे पुत्र ! पिताके स्थानमें स्थित होओ, जो ब्रम्हवादी लोग कहिगएहैं वह मेरेमें मन लगायकर मेरेमें परायण होयकर सब कर्म करौ ॥ २३ ॥ श्रीनारदजी बोले कि भगवानकी आज्ञासै पिताको मृनकक्रिया प्रल्हादजीने

सर्वात्मना न हिंसन्ति भूतग्रामेषु किंचन ॥ उच्चावचेषु दैत्येन्द्र मद्भावेन गतस्पृहाः ॥ २० ॥ भवन्ति पुरुषा लोके मद्भक्तास्त्वामनुव्रताः ॥ भवान्मे खलु भक्तानां सर्वेषां प्रतिरूपधृक् ॥ २१ ॥ कुरु त्वं प्रेतकार्याणि पितुः पूतस्य सर्वशः ॥ मदङ्गस्पर्शनेनाङ्ग लोकान्यास्यति सुप्रजाः ॥ २२ ॥ पित्र्यं च स्थानमातिष्ठ यथोक्तं ब्रह्मवादिभिः ॥ मय्यावेश्य मनस्तात कुरु कर्माणि मत्परः ॥ २३ ॥ श्रीनारद उवाच ॥ प्रह्लादोऽपि तथा चक्रे पितुर्यत् साम्परायिकम् ॥ यथाऽऽह भगवान् राजन्नभिषिक्तो द्विजोत्तमैः ॥ २४ ॥ प्रसादसुमुखं दृष्ट्वा ब्रह्मा नरहरिं हरिम् ॥ स्तुत्वा वाग्भिः पवित्राभिः प्राह देवादिभिर्वृतः ॥ २५ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ देवदेवाखिलाध्यक्ष भूतभावन पूर्वज ॥ दिष्ट्या ते निहतः पापो लोकसंतापनोऽसुरः ॥ २६ ॥ योऽसौ लब्धवरो मत्तो न वध्यो मम सृष्टिभिः ॥ तपोयोगबलोन्नद्धः समस्तनिगमानहन् ॥ २७ ॥ दिष्ट्यास्य तनयः साधुर्महाभागवतोऽर्भकः ॥ त्वया विमोचितो मृत्योर्दिष्ट्या त्वां समितोऽधुना ॥ २८ ॥ एतद्वपुस्ते भगवन् ध्यायतः प्रयतात्मनः ॥ सर्वतो गोप्तृ संत्रासान्मृत्योरपि जिघांसतः ॥ २९ ॥

करी, पाछे द्विजोत्तमौने अभिषेक करो ॥ २४ ॥ अपने ऊपर प्रसन्न सुमुख श्रीनृसिंहजीकों देखकर ब्रह्माजी पवित्रवाणीसें स्तुतिकर देवादिकोंको साथ ले बोलै ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी बोलै कि हे देवदेव हे अखिलाध्यक्ष हे भूतभावन हे पूर्वज ! लोकसंतापी पापी असुर आपने मारो ये वडो मंगल भयो ॥ २६ ॥ जो ये वरकों मोसें प्राप्त भयो कि मेरी सृष्टिके रचेभएसे न मरै तपयोगबलसें बढकै सब वेदनकों नाश करतोभयो ॥२७॥ मंगल भयो कि याको पुत्र साधु महाभागवत बालक है, मृत्युसें आपने छुडायो और अब वाकूं बढायो ॥ २८ ॥ हे भगवन् ! ये आपके अवता-

रको सावधान होयकर ध्यान करै तो मृत्युसें सब प्रकारके त्राससे रक्षा करैहै ॥ २९ ॥ श्रीनृसिंहजी बोले कि हे ब्रह्माजी ! ऐसे वर राक्षसोंकों मत दियोंकरो क्रूरस्वभाववारेको वर सब उलटे होंजांय है जैसे सर्पकों दूध प्याओ सब विषही होजाय है ॥ ३० ॥ श्रीनारजी बोले कि हे युधिष्ठिर ! ऐसै कहिकर भगवान् नृसिंहजी अंतर्द्धान होगए सब जीवनको अदृश्य होगए श्रीब्रह्माजीने पूजा करी “ श्रीब्रह्माजी नृसिंहजीसे जाती बखत बोले कि सबको मोक्ष क्यों न दियो तब नृसिंहजी बोले कि कोई मोक्ष नाय चाहै जो चाहै तो लाओ सो एक बडो साहूकार जाके चारों ओर असामी हाथ जोडे बैठे ब्रह्माजी बोले वैकुंठ चल मोक्ष होगी भगवानकूं हाथ जोडे खडौ रहियो, ये सुन बोलो मैं नांय जाऊं वैकुंठ पराई गुलामी करूं मेरे तो यहांई वैकुंठ ह्व रह्यो है ये सुन सब कथा ब्रह्माजीने नृसिंहजीसे कही तब भगवान् बोले भैया या जीवने जामें जन्म लियो है

नृसिंह उवाच ॥ मैवं वरोऽसुराणां ते प्रदेयः पद्मसंभव ॥ वरः क्रूरनिसर्गाणामहीनाममृतं यथा ॥३०॥ नारद उवाच ॥ इत्युक्त्वा भगवान् राजंस्तत्रैवान्तर्दधे हरिः ॥ अदृश्यः सर्वभूतानां पूजितः परमेष्ठिना ॥ ३१ ॥ ततः संपूज्य शिरसा ववन्दे परमेष्ठिनम् ॥ भवं प्रजापतीन् देवान् प्रह्लादो भगवत्कलाः ॥ ३२ ॥ ततः काव्यादिभिः सार्धं मुनिभिः कमलासनः ॥ दैत्यानां दानवानां च प्रह्लादमकरोत् पतिम् ॥ ३३ ॥ प्रतिनन्द्य ततो देवाः प्रयुज्य परमाशिषः ॥ स्वधामानि ययू राजन् ब्रह्माद्याः प्रतिपूजिताः ॥ ३४ ॥ एवं तौ पार्षदौ विष्णोः पुत्रत्वं प्रापितौ दितेः ॥ हृदि स्थितेन हरिणा वैरभावेन तौ हतौ ॥ ३५ ॥ पुनश्च विप्रशापेन राक्षसौ तौ बभूवतुः ॥ कुम्भकर्णदशग्रीवौ हतौ तौ रामविक्रमैः ॥ ३६ ॥

वाहीमें सुख मान राख्यो है यूं कहिं भगवान् वैकुंठकूं पधारे, जो कुछ बनानेमें चूक भई सो महात्मा क्षमा करै ” ॥ ३१ ॥ ता पाछें ब्रह्माजीको प्रल्हाद शिरसे वंदना करतेभए शिव प्रजापति सबकूं भगवत्कला जान पूजते भए ॥ ३२ ॥ उपरांत शुक्राचार्यादि सहित मुनि सहित कमलासन प्रल्हादकू दैत्य दानवोंको पति करते भए ॥ ३३ ॥ हे राजन् ! सब ब्रम्हादिक देवता सराहना कर परम आशीर्वाद दे पूजा लेलेकर अपने अपने धामकूं जातेभए ॥ ३४ ॥ ऐसे ये विष्णुके पार्षद दितिके पुत्र भए हृदयवासी हरिनै वैरभाव करकै दोनोकों मारै ॥ ३५ ॥ फेर ब्राह्मणोंके शापसे वे दोनों कुंभकर्ण दशग्रीव राक्षस भए तब रामचंद्रजीके पराक्रमसें मारे गए ॥ ३६ ॥

युद्धमें सोए रामके बाणोंसें निर्भिन्न राममें देह लगाय पूर्व जन्मकी नाई रामचंद्रका चितवन उनके हृदयमें रहा ॥ ३७ ॥ फिर वे दोनों दंतवक्त्र और शिशुपाल भए श्रीहरिमें वैर करकै आपके देखते देखते सायुज्य मोक्षको गए ॥ ३८ ॥ जो श्रीकृष्णके वैरी राजा थे जिन्होंने पूर्व अपराध करे हते वे सब तिनमें मन लगायवेसूं लीनभए जैसै भृंगी कीडेकों कसारी लेजायहै वाके ध्यानसें वैसोई रूप होजाय है ॥ ३९ ॥ भगवानसें अभेद करकै जैसी जैसी परमभक्ति शिशुपालादिने भगवानमें कीनी सो श्रीहरिके चितवन करनेसे ईश्वरमें लीन होगए ॥ ४० ॥ जो मोसें तुमने पूछो सो कह्यो

शयानौ युधि निर्भिन्नहृदयौ रामसायकैः ॥ तच्चित्तौ जहतुर्देहं यथा प्राक्तनजन्मनि ॥ ३७॥ ताविहाथ पुनर्जातौ शिशुपालकरूषजौ ॥ हरौ वैरानुबन्धेन पश्यतस्ते समीयतुः ॥ ३८ ॥ एनः पूर्वकृतं यत्तद् राजानः कृष्णवैरिणः ॥ जहुस्तं ते तदात्मानः कीटः पेशस्कृतो यथा ॥ ३९ ॥ यथा यथा भगवतो भक्त्या परमया भिदा ॥ नृपाश्चैद्यादयः सात्म्यं हरेस्तच्चिन्तया ययुः ॥ ४० ॥ आख्यातं सर्वमेतत् ते यन्मां त्वं परिपृष्टवान् ॥ दमघोषसुतादीनां हरेः सात्म्यमपि द्विषाम् ॥ ४१ ॥ एषा ब्रह्मण्यदेवस्य कृष्णस्य च महात्मनः ॥ अवतारकथा पुण्या वधो यत्रादिदैत्ययोः ॥ ४२ ॥ प्रह्लादस्यानुचरितं महाभागवतस्य च ॥ भक्तिर्ज्ञानं विरक्तिश्च याथात्म्यं चास्य वै हरेः ॥ ४३॥ सर्गस्थित्यप्ययेशस्य गुणकर्मानुवर्णनम् ॥ परावरेषां स्थानानां कालेन व्यत्ययो महान् ॥ ४४ ॥ धर्मो भागवतानां च भगवान्येन गम्यते ॥ आख्यानेऽस्मिन्समाम्नातमाध्यात्मिकमशेषतः ॥ ४५ ॥

वैरी दमघोषके पुत्रादिक श्रीहरिमें ऐसे लीनभए ॥ ४१ ॥ ये ब्रम्हण्यदेव श्रीकृष्णचंद्र महात्माकी पुण्यरूप अवतार कथा है यामें आदिदैत्यको वध कह्यो ॥ ४२॥ भगवानके परमभक्त श्रीप्रल्हादको चरित कह्यो श्रीहरिकी भक्ति ज्ञान विरक्ति जैसो ही तैसो कही ॥४३॥ सर्गस्थिति निरोधके स्वामी भगवानका तत्व और उनके गुणकर्मका वर्णन कालके कारण देवता दैत्यौंके स्थानौंका बदलना ॥ ४४ ॥ भागवतनको धर्म जासे भगवानकी प्राप्ति होय, या आख्यानमें हमने संपूर्णतासे अध्यात्म ज्ञान कह्यो है ॥ ४५ ॥

जो कोई ये पुण्यरूप कथा जो श्रीविष्णुके वीर्यसे संवर्द्धित है कीर्तन करै श्रद्धासे सुनै तो सब कर्मकी फांसीसे छुटै है ॥ ४६ ॥ जो कोई आदि पुरुषकी नृसिंहलीलाकों और हिरण्यकशिपुके वधके चरित्रको सावधान होयकर पाठ करै सब सज्जनोंमें श्रेष्ठ श्रीप्रल्हादके चरित्र पुण्यरूपको सुनै तो भयरहित वैकुंठलोककों जायहै ॥ ४७ ॥ या लोकमें आप बडे बडभागी हैं, कि लोकनके पवित्र करवेवारो मुनिजन आपके यहां आवैहैं जिन आपके घरमें साक्षान्नराकाररूप धार श्रीकृष्ण परब्रह्म निवास करैहै, श्रीकृष्ण परमतत्व हैं ईश्वर हैं परात्पर हैं श्रीमन्नारायण हैं येही सर्वेश्वर हैं अविनाशी हैं निरंजनहैं निराकार हैं गोपीजनमनमोहन हैं सर्व अवतारमें आप परिपूर्णतम हैं भक्तवत्सल हैं सर्वोपास्य हैं जगदीश्वर हैं प्रभु हैं परब्रह्म हैं

य एतत् पुण्यमाख्यानं विष्णोर्वीर्योपबृंहितम् ॥ कीर्तयेच्छ्रद्धया श्रुत्वा कर्मपाशाद्विमुच्यते ॥ ४६ ॥ एतद्य आदिपुरुषस्य मृगेन्द्रलीलां दैत्येन्द्रयूथपवधं प्रयतः पठेत ॥ दैत्यात्मजस्य च सतां प्रवरस्य पुण्यं श्रुत्वानुभावमकुतोभयमेति लोकम् ॥ ४७ ॥ यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति ॥ येषां गृहानावसतीति साक्षाद्द् गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् ॥ ४८ ॥ स वा अयं ब्रह्म महद्विमृग्यं कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ॥ प्रियः सुहृद्द् वः खलु मातुलेय आत्माऽर्हणीयो विधिकृद्गुरुश्च ॥ ४९ ॥ न यस्य साक्षाद्द् भवपद्मजादिभी रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम् ॥ मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः प्रसीदतामेष स सात्वतां पतिः ॥ ५० ॥ स एष भगवान्राजन्व्यतनोद्द् विहतं यशः ॥ पुरा रुद्रस्य देवस्य मयेनानन्तमायिना ॥ ५१ ॥ राजोवाच ॥ कस्मिन्कर्मणि देवस्य मयोहन् जगदीशितुः ॥ यथा चोपचिता कीर्तिः कृष्णेनानेन कथ्यताम् ॥ ५२ ॥

निरीह हैं अदृश्य हैं अभक्तनको अदृश्य भक्तनको दृश्य हैं ॥ ४८ ॥ सो ये ब्रह्म महात्मानके ढूंढवेयोग्य कैवल्य मोक्षके सुखके अनुभव करवेवारे प्यारे सुहृद मामाके पुत्र सबके आत्मा पूजनीय तुह्मारे आज्ञानुवर्ती गुरु श्रीकृष्ण हैं ॥ ४९ ॥ जाको रूप साक्षात् शिव ब्रह्मादिकोंकरकैं सिद्धांतसें नही क[illegible] जायहै मौनसे भक्तिसे इंद्रिय जीतकै पूजित ये यादवनके पति मोपर प्रसन्न होओ ॥ ५० ॥ हे राजन् ! जब मय दैत्यने अपनी मायासै एक समय महादेवकी कीर्तिको नष्ट किया उस समय इन्ही भगवाननै उनकै यशको फैलाया ॥ ५१ ॥ राजा बोले कि जगदीश देवकी कीर्ति मयनै

किस कर्मसै नष्ट की और भगवान कृष्णने उसै किस प्रकार विस्तृत किया सो कहो ॥ ५२ ॥ श्रीनारदजी बोले कि एकसमय देवतोंनें युद्धके उपाय करकै सब असुर जीतै, तब सब असुर मायीनके परमआचार्य मयदैत्यकी शरण गए ॥ ५३ ॥ सो समर्थ सुवर्ण चांदि लोहेके तीनप्रकारके पुर बनातोभयो वाके भीतर जायवेको उपाय कोऊको मालुम न भई और उसकी सामग्री किसीको विदित न हुई कि इसमें क्या है ॥ ५४ ॥ हे नृप ! उन पुरनसें असुरसेनापति ईश्वरसहित सब पुरनके नाशकी इच्छासै अलक्षित होयकर पहिले वैरकों याद कर लोकौंका संहार करने लगे ॥ ५५ ॥ हे विभो ! तब लोकपालौंके सहित प्रजाने जाकर महादेवजीकी प्रार्थना करी कि हमारी रक्षा करो त्रिपुरमें रहनेहारे दैत्य हमारा संहार करते है ॥ ५६ ॥ याके

नारद उवाच ॥ निर्जिता असुरा देवैर्युध्यनेनोपबृंहितैः ॥ मायिनां परमाचार्यं मयं शरणमाययुः ॥ ५३ ॥ स निर्माय पुरस्तिस्रो हैमीरौप्यायसीर्विभुः ॥ दुर्लक्ष्यापायसंयोगा दुर्वितर्क्यपरिच्छदाः ॥ ५४ ॥ ताभिस्तेसुरसेनान्यो लोकांस्त्रीन् सेश्वरान् नृप ॥ स्मरन्तो नाशयांचक्रुः पूर्ववैरमलक्षिताः ॥ ५५ ॥ ततस्ते सेश्वरा लोका उपासाद्येश्वरं विभो ॥ त्राहि नस्तावकान् देव विनष्टांस्त्रिपुरालयैः ॥ ५६ ॥ अथानुगृह्य भगवान् मा भैष्टेति सुरान्विभुः ॥ शरं धनुषि संधाय पुरेष्वस्त्रं व्यमुञ्चत ॥ ५७ ॥ ततोऽग्निवर्णा इषव उत्पेतुः सूर्यमण्डलात् ॥ यथा मयूखसंदोहा नादृश्यन्त पुरो यतः ॥ ५८ ॥ तैः स्पृष्टा व्यसवः सर्वे निपेतुः स्म पुरौकसः ॥ तानानीय महायोगी मयः कूपरसेऽक्षिपत् ॥ ५९ ॥ सिद्धामृतरसस्पृष्टा वज्रसारा महौजसः ॥ उत्तस्थुर्मेघदलना वैद्युता इव वह्नयः ॥ ६० ॥

उपरांत देवनपर अनुग्रह कर समर्थ परमेश्वर बौलै मत डरो हमने तुझे अभयदान दीनो है, धनुष्यमें शर लगाय तीनों पुरपर अस्त्र छोडै ॥ ५७ ॥ तब अग्निसमानवर्णके बाणौंसे सूर्यमंडलकी समान प्रभा निकली उनकी किरणोंके समूहके मारै वो पुर दीखे नहीं ॥ ५८ ॥ उन बाणोंके लगनेसे सब पुरकेनके प्राण निकसगए तब उन राक्षसोंकूं महायोगी मय कूपके अमृतमय रसमें पटकतो भयो ॥ ५९ ॥ वा कूपके रसके लगनेंसे वे सिद्ध हो फिर जीवित हुए वज्रवत् शरीर महापराक्रमी हो गए, मेघदलकी नांई उठै, विजुरीकी नाई अग्निकी समान सब असुर स्थित हुए ॥ ६० ॥

तब भगवान् शिवजीको भग्नसंकल्प और विमन देख एक उपाय रचतेभए ॥ ६१ ॥ ब्रह्मा तो बच्चा बने, भगवान् आप गौ भए, कोई समय त्रिपुरमें धसगए, रसकूपमें जो अमृत हो सो पीजाते भये ॥ ६२ ॥ वे असुर देखतेहे सो विमोहित होयके मनै न करते भये या बातकों जानके उसके रक्षक शोक करने लगे तब वह महायोगी उन रसपालकोंसे बोला ॥ ६३ ॥ भाई शोक मत करो, हे शोकपीडितहो! दैवगतिकों याद करो देवता असुर नर और कोई क्यों न हो ॥ ६४ ॥ अपने या दूसरे अथवा दोनोंके मन इच्छित कार्यको जो प्रारब्धमें है मिटानेको कोई समर्थ नहींहै तब उस

विलोक्य भग्नसंकल्पं विमनस्कं वृषध्वजम् ॥ तदाऽयं भगवान्विष्णुस्तत्रोपायमकल्पयत् ॥ ६१ ॥ वत्स आसीत्
तदा ब्रह्मा स्वयं विष्णुरयं हि गौः ॥ प्रविश्य त्रिपुरं काले रसकूपामृतं पपौ ॥ ६२ ॥ तेसुरा ह्यपि पश्यन्तो न न्यषेधन्वि-
मोहिताः ॥ तद्विज्ञाय महायोगी रसपालानिदं जगौ ॥ ६३ ॥ स्वयं विशोकः शोकार्तान् स्मरन्दैवगतिं च ताम् ॥ देवो-
ऽसुरो नरोऽन्यो वा नेश्वरोऽस्तीह कश्चन ॥ ६४ ॥ आत्मनोऽन्यस्य वा दिष्टं दैवेनापोहितुं द्वयोः ॥ अथासौ शक्तिभिः
स्वाभिः शम्भोः प्राधानिकं व्यधात् ॥ ६५ ॥ धर्मज्ञानविरक्त्यर्द्धितपोविद्याक्रियादिभिः ॥ रथं सूतं ध्वजं वाहान्धनुर्व-
र्म शरादि यत् ॥ ६६ ॥ सन्नद्धो रथमास्थाय शरं धनुरुपाददे ॥ शरं धनुषि संधाय मुहूर्तेऽभिजितीश्वरः ॥ ६७ ॥ ददाह
तेन दुर्भेद्या हरोऽथ त्रिपुरो नृप ॥ दिवि दुन्दुभयो नेदुर्विमानशतसंकुलाः ॥ ६८ ॥

समय शंभुकी अपनी शक्तियोंसे प्रधानताई प्रगट करतेभए ॥ ६५ ॥ धर्म ज्ञान विरक्ति ऋद्धि सिद्धि तप विद्या क्रियादिकसे रथ सूत ध्वज वाहन धनुष्य बखतर शरआदि सब सामग्री भगवान्ने निर्माण की ॥ ६६ ॥ तब महादेवजी बखतर पहर रथमें बैठ, धनुषमें बाण लगाय हे नृप। अभिजित् नक्षत्रमें ॥ ६७ ॥ दुर्भेद्य त्रिपुरको शिवजीने भस्म कीनो स्वर्गमें नगारे बजै, सैंकडो विमान सघन होगये ॥ ६८ ॥

देवर्षिपितृसिद्धेशा जयेति कुसुमोत्करैः ॥ अत्राकिरञ्जगुर्हृष्टा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ६९ ॥ एवं दग्ध्वा पुरस्तिस्रो भगवान्पुरहा नृप ॥ ब्रह्मादिभिः स्तूयमानः स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ७० ॥ एवंविधान्यस्य हरेः स्वमायया विडम्बमानस्य नृलोकमात्मनः ॥ वीर्याणि गीतान्यृषिभिर्जगद्गुरोर्लोकान्पुनानान्यपरं वदामि किम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे त्रिपुरविजयो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ श्रुत्वेहितं साधुसभासभाजितं महत्तमाग्रण्य उरुक्रमात्मनः ॥ युधिष्ठिरो दैत्यपतेर्मुदा युतः पप्रच्छ भूयस्तनयं स्वयंभुवः ॥ १ ॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ भगवन् श्रोतुमिच्छामि नृणां धर्मं सनातनम् ॥ वर्णाश्रमाचारयुतं यत्पुमान् विन्दते परम् ॥ २ ॥ भवान् प्रजापतेः साक्षादात्मजः परमेष्ठिनः ॥ सुतानां संमतो ब्रह्मंस्तपोयोगसमाधिभिः ॥ ३ ॥ नारायणपरा विप्रा धर्मं गुह्यं परं विदुः ॥ करुणाः साधवः शान्तास्त्वद्विधा न तथाऽपरे ॥ ४ ॥

देवता ऋषि पितर सिद्धेश जयजय करते भए फूलनकी वर्षा करतेभए, गातेभए प्रसन्न हो अप्सरा नाचतीभईं ॥ ६९ ॥ हे नृप! त्रिपुरारि ऐसें तीनो पुर जराय ब्रम्हादिकों करकै स्तूयमान अपने धामको जातेभए ॥ ७० ॥ अपनी मायाके अनुकरण करवेवारे मनुष्य लोकमें अवतार धारण करनेहारे भगवानके चरित्र जगतको पवित्र करनेवाले है उनके पराक्रमकी कथा ऋषियोंने गाई है अब तुम्हे और क्या सुनावें ॥ ७१ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां सप्तमस्कन्धे त्रिपुरविजयवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि साधु सभामें प्रशंसा युक्त बात सुनकै महत्तमोंमें अग्रगण्य भगवतमें आत्माबारे युधिष्ठिर प्रल्हादचरित्र सुनकर बडे आनंदित होयकर फेर ब्रह्मपुत्र नारदजीसें पूछतेभए ॥ १ ॥ युधिष्ठिरजी बोले कि हे भगवन्! मनुष्योंके सनातन धर्मनकी सुनवेकी इच्छा है, वर्ण आश्रमके आचार कहो, जासे पुरुष परमेश्वरकों प्राप्त होय है ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन्! साक्षात् प्रजापतिके आप सब पुत्रनमें तप योग समाधि करकै बडे पुत्र हो ॥ ३ ॥ जो ब्राह्मण नारायणपरायण हैं, परम छिपेभए धर्मकों जानै है, वे दयालु साधु शांत तुह्मारे समान होयहैं, तैसै और नहीं होयहैं ॥ ४ ॥

श्रीनारदजी बोले कि सब लोकनके धर्मके लिये भगवान् श्रीमन्नारायणकों नमस्कार कर जो श्रीमन्नारायणके मुखसे धर्म सुनो है सो कहै है ॥ ५ ॥ जो आपने आत्माके अंशसे दक्षकी पुत्री मूर्तिमें जन्म लेकर धर्मसें सब लोकनके कल्याणके अर्थ तप करवेकों बद्रिकाश्रममें विराजै है "याज्ञवल्क्यमें है कि ॥ श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ॥ सम्यक्संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम् ॥ मनुजीने कह्यो है कि ॥ वेदोखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदां ॥ आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव चेति" ॥ ६ ॥ धर्मकी मूल भगवान है, सर्व देवमय हरि है, हे राजन्! जो श्रीहरिके जानवेवारे हैं उन्होंने सब स्मरण करो है जासें आत्मा प्रसन्न होयहै ॥ ७ ॥ सत्य बोलनो, दया राखनी, तप करनों, उपवास आदि शौच करना सहनशीलता योग्यायोग्यका ज्ञान मनको जीतें, बाह्य इंद्रियें जीतै, हिंसा न करै, ब्रह्मचर्य धारे, दान करै यथोचित वेद पढै सबसें सूधा रहै ॥ ८ ॥ जो दैवसें मिलै वामें संतोष करै, बडोंकी सेवा करे, ग्राम्यधर्मकी चेष्टा त्यागै, शनै शनै निष्फल क्रिया न करै मौन रहै वृथा बकवाद न करै परमेश्वरकी चिंता कर ॥ ९ ॥ हे पांडव! यथायोग्य अन्नादिक जीवमात्रको दान करतो रहै, तिन जीवनमें परमेश्वर व्यापक है और विशेषकर मनुष्योंको आत्मा और देवरूप जान्ना अन्न वस्त्र घर हाथी घोडा शय्या गौ वासन पुस्तक औषध अभय पृथिवी इत्यादि दान करता रहै ॥ १० ॥ श्रीकृष्णजीकी श्रवणादि नवधा भक्ति करै, नामसंकीर्तन करै, स्मरण करै, महात्मानकी सेवा करै, देवपूजा करकै नम्र रहै, दास्यभाव करै

नारद उवाच ॥ नत्वा भगवतेऽजाय लोकानां धर्महेतवे ॥ वक्ष्ये सनातनं धर्मं नारायणमुखाच्छ्रुतम् ॥ ५ ॥ योऽवतीर्यात्मनोंऽशेन दाक्षायण्यां तु धर्मतः॥ लोकानां स्वस्तयेऽध्यास्ते तपो बदरिकाश्रमे ॥ ६ ॥ धर्ममूलं हि भगवान्सर्वदेवमयो हरिः ॥ स्मृतं च तद्विदां राजन्येन चात्मा प्रसीदति ॥ ७ ॥ सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः॥ अहिंसा ब्रह्मचर्यं च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम् ॥ ८ ॥ संतोषः समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरमः शनैः ॥ नृणां विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम् ॥ ९ ॥ अन्नाद्यादेः संविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हतः ॥ तेष्वात्मदेवताबुद्धिः सुतरां नृषु पाण्डव ॥ १० ॥ श्रवणं कीर्तनं चास्य स्मरणं महतां गतेः ॥ सेवेज्यावनतिर्दास्यं सख्यमात्मसमर्पणम् ॥ ११ ॥

सख्यता परमेश्वरसे करै, अपनपेको परमेश्वरको समर्पण करै ॥ ११ ॥ सब मनुष्यमात्रकों ये परमधर्म है हे राजन् ! यह तीस लक्षणका धर्म सर्वसाधारण धर्म है इस्सै सर्वात्मा भगवान् संतुष्ट होते हैं ॥ १२ ॥ श्रीब्रह्माजीने कह्योहै कि जिनके संस्कार करे जाय उनको द्विज कहैं है, इज्या अध्ययन दान द्विजन्माके वास्ते विहित है, जन्म कर्मसे जो शुद्ध हैं उनको जो आश्रम होय वो क्रिया करै “ श्रुतिश्च ॥ गायत्र्याब्राह्मणमसृजत्त्रिष्टुभाराजन्यम् जगत्यावैश्यम् नकेनचिच्छूद्रं ॥ तथाच स्मृतिः ॥ विवाहमात्रं संस्कारं शूद्रोपिलभतांसदा ॥ नकेनचित्समसृजच्छंदसातंप्रजापतिरिति ” ॥ १३ ॥ विद्या पढनी विद्या पढानी यज्ञ करना यज्ञ कराना दान लेना दान देना ये छै कर्म ब्राह्मणके हैं और तीनो वर्ण विद्या न पढावै दान न लै

नृणामयं परो धर्मः सर्वेषां समुदाहृतः॥ त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति ॥ १२ ॥ संस्कारा यत्राविच्छिन्नाः स द्विजोऽजो जगाद यम् ॥ इज्याध्ययनदानानि विहितानि द्विजन्मनाम् ॥ जन्मकर्मावदातानां क्रियाश्चाश्रमचोदिताः॥१३॥ विप्रस्याध्ययनादीनि षडन्यस्याप्रतिग्रहः॥ राज्ञो वृत्तिः प्रजागोप्तुरविप्राद् वा करादिभिः ॥१४॥ वैश्यस्तु वार्तावृत्तिश्च नित्यं ब्रह्मकुलानुगः॥ शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा वृत्तिश्च स्वामिनो भवेत् ॥१५॥ वार्त्ता विचित्रा शालीनयायावरशिलोञ्छनम्॥ विप्रवृत्तिश्चतुर्धेयं श्रेयसी चोत्तरोत्तरा॥ १६॥ जघन्यो नोत्तमां वृत्तिमनापदि भजेन्नरः॥ ऋते राजन्यमापत्सु सर्वेषामपि सर्वशः ॥१७॥ ऋतामृताभ्यां जीवेत मृतेन प्रमृतेन वा॥ सत्यानृताभ्यां जीवेत न श्ववृत्त्या कथंचन ॥ १८ ॥

यज्ञ न करावैं कोई प्रतिग्रह न लै क्षत्री प्रजाकी रक्षा करै ब्राह्मणसें कर न लै ॥ १४ ॥ वैश्य वार्ता वृत्ति व्यौपार करै नित्य ब्राह्मण कुलकी सेवा करैं शूद्र ब्राह्मणकी सेवा कर स्वामिकी वृत्ति कर जीवै ॥ १५ ॥ खेती करै, डराए विना वस्तु लावै, दिन रात भिक्षा मांगै खेतमें पडो क्षेत्रस्वामीत्यक्त अन्न लावै बजारमें पडें विखरे नाजको उठाय लावै ये चार वृत्तिभी ब्राह्मण आपत्तिमें करै इनमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठतर हैं ॥ १६ ॥ नीचवृत्ति क्षत्री विपत विना न करैं कोई महाआपत आवै तो भलेंई क्षत्री आदि नीच वृत्ति करैं ॥ १७ ॥ ऋतअमृत वृत्तिसे जीवै मृत अमृतसें जीवै, सत्य अनृतसें जीवै अपनी श्ववृत्तिसें कदी न जीवै ॥ १८ ॥

ऋत उंच्छशिलको नाम है,विना मागे मिले वो अमृत है,नित्य मांगके लावै वो मरे बराबर है;किसानी वृत्तिकरै वो प्रमृत है॥१९॥सत्य अनृत ये वाणिज्य वृत्ति है,नीचसेवा श्ववृत्ति है ब्राह्मण इस वृत्तिको त्यागै,क्षत्रीकोंभो ये निंदित है,सब वेदमय विप्र है और सर्व देवमय क्षत्रिय राजा है॥२०॥शम दम तप शौच संतोष क्षांति कोमलता ज्ञान दया ईश्वरमें भक्ति सत्य बोलना ये ब्राह्मणके लक्षण हैं॥२१॥शौर्य वीर्य धीरता तेज दान मनका जीतना, क्षमा राखनी, विप्रमें भक्ति राखै सदा प्रसन्न रहै रक्षा करै ये क्षत्रियके लक्षण हैं॥२२॥देवता गुरु ईश्वरमें भक्ति करै, अर्थ धर्म काममें लगोरहै,सबसे आस्तिक रहै

ऋतमुञ्छशिलं प्रोक्तममृतं यदयाचितम् ॥ मृतं तु नित्ययाच्ञा स्यात्प्रमृतं कर्षणं स्मृतम् ॥ १९ ॥ सत्यानृतं तु वाणिज्यं श्ववृत्तिर्नीचसेवनम् ॥ वर्जयेत्तां सदा विप्रो राजन्यश्च जुगुप्सिताम् ॥ सर्ववेदमयो विप्रः सर्वदेवमयो नृपः ॥ २० ॥ शमो दमस्तपः शौचं संतोषः क्षान्तिरार्जवम् ॥ ज्ञानं दयाच्युतात्मत्वं सत्यं च ब्रह्मलक्षणम् ॥ २१ ॥ शौर्यं वीर्यं धृतिस्तेजस्त्याग आत्मजयः क्षमा ॥ ब्रह्मण्यता प्रसादश्च रक्षा च क्षत्रलक्षणम् ॥ २२ ॥ देवगुर्वच्युते भक्तिस्त्रिवर्गपरिपोषणम् ॥ आस्तिक्यमुद्यमो नित्यं नैपुण्यं वैश्यलक्षणम् ॥ २३ ॥ शूद्रस्य संततिः शौचं सेवा स्वामिन्यऽमायया ॥ अमन्त्रयज्ञो ह्यस्तेयं सत्यं गोविप्ररक्षणम् ॥ २४ ॥ स्त्रीणां च पतिदेवानां तच्छुश्रूषाऽनुकूलता ॥ तद्बन्धुष्वनुवृत्तिश्च नित्यं तद्व्रतधारणम् ॥ २५ ॥ संमार्जनोपलेपाभ्यां गृहमण्डलवर्तनैः ॥ स्वयं च मण्डिता नित्यं परिमृष्टपरिच्छदा ॥ २६ ॥

नित्य उद्यम करै नित्य चतुर रहै ये वैश्यके लक्षण हैं ॥ २३ ॥ शूद्र सबसे सदा नमता रहै, शौच करै कपट छोडकर स्वामीकी सेवा करै, विना मंत्र संस्कार ले चोरी न करै सांच बोलै, गौ विप्रकी सेवा करै, ये शूद्रके लक्षण हैं ॥ २४ ॥ स्त्रीनके पति देवता है वे पतिकी सेवा करैं, अनुकूल रहै देवर जेठकी सेवा करै; इतनेही धर्म है कि नित्य उनकी आज्ञा मानै ॥ २५ ॥ घरके सब पदार्थोंको शुद्ध राखै, सदा लीपपोत घर सफा राखै, देहरी सदा लीपै, चोक पूरै, आपभी सुंदर सिंगरी भई रहै सब घरकी सामग्री पवित्र राखै, वासन वस्त्र गृह शरीर शुद्ध राखै पुत्र ति सास सुसर देवर जेठ सबकी

85

आज्ञा करै सहनशील रहै ॥ २६ ॥ साध्वी स्त्री छोटे मोटे ऊंचे नीचे सब काम करै, नम्र रहै, इंद्रियें जीततीरहै, सांचे प्यारे वचनोंसे प्रेम करके
समय समयमें पतिकी सेवा करै ॥ २७ ॥ जो लाभ होय वामें संतोष करें, भोगोंमें लोलुप न रहै, आलस न राखै, धर्म जानती रहै, प्रिय सत्य बोलै
मदांध न रहै, पवित्र रहै, मधुर रहै, अपतित पतिकी सेवा करै ॥ २८ ॥ जो स्त्री पतिकी हरिभावसे श्रीकी नांई सेवामें तत्पर रहे वह इस भावके
करनैसे हरिके लोकमें पतिसहित श्रीजीकी नांई आनंद करैहै ॥ २९ ॥ संकरजातीके यह धर्म है कि चोरी और पाप न करके अपने कुलपरंपारकी
आजीविकासे निर्वाह करैं चांडाल धोबी आदि इस प्रकार रहै“रजकश्चर्मकारश्च नटो बुरुड एव च ॥ कैवर्तमैंदभिल्लाश्च सप्तैते अंत्यजाः स्मृताः ”॥३०॥

कामैरुच्चावचैः साध्वी प्रश्रयेण दमेन च ॥ वाक्यैः सत्यैः प्रियैः प्रेम्णा काले काले भजेत् पतिम् ॥ २७ ॥ संतुष्टाऽलोलुपा
दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक् ॥ अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत् ॥ २८ ॥ या पतिं हरिभावेन भजेच्छ्रीरिव
तत्परा ॥ हर्यात्मना हरेर्लोके पत्या श्रीरिव मोदते ॥ २९ ॥ वृत्तिः संकरजातीनां तत्तत्कुलकृता भवेत् ॥
अचौराणामपापानामन्त्यजान्तेऽवसायिनाम् ॥ ३० ॥ प्रायः स्वभावविहितो नृणां धर्मो युगे युगे ॥ वेददृग्भिः स्मृतो
राजन्प्रेत्य चेह च शर्मकृत् ॥ ३१ ॥ वृत्त्या स्वभावकृतया वर्तमानः स्वकर्मकृत् ॥ हित्वा स्वभावजं कर्म शनैर्निर्गुणतामियात्
॥ ३२ ॥ उप्यमानं बहु क्षेत्रं स्वयं निर्वीर्यतामियात् ॥ न कल्पते पुनः सूत्यां उप्तं बीजं च नश्यति ॥ ३३ ॥
एवं कामाशयं चित्तं कामानामतिसेवया ॥ विरज्येत यथा राजन्नाग्निवत्कामबिन्दुभिः ॥ ३४ ॥

हे राजन्! प्रायः युगयुगमें मनुष्योंके स्वभावके समान धर्म होयहै, ये वेदपुरुष भगवाननें कहोहै,वा धर्मके करनेसे या लोकमेंभी सुख है और मरेपीछैभी
सुख होय॥३१॥स्वभाव करके करीभई वृत्तिसें जो वर्तमान है, वो स्वकर्मकर्त्ता स्वभावजन्य कर्मकों त्याग धीरे धीरे निर्गुणताकूं प्राप्त होयहै॥३२॥वारं
वार क्षेत्रमें ऊगो भयो बीज आप निर्वीर्यताकूं प्राप्त होयहै फेर ऊग नहीं सकताहै, ऊगो बीज फेर नष्ट होजायहै॥३३॥हे राजन् ! ऐसै कामोंमें लगो भयो
चित्त मनकी अतिसेवासे तृप्त होकर वैराग्यको प्राप्त होजाताहै जैसे जलती अग्नि थोडा घी डालनैसे शान्त नहीं होती बहुत डालनैसे शांत होजातीहै॥३४॥

जिस पुरुषके वर्णको बतानेवाला जो लक्षण कहा है वह दूसरे वर्णके मनुष्योंमे विदित हो तो वह प्राणी उसी वर्णका जान्ना (१) ॥ ३५ ॥ इति श्रीवृंदावननिवासीसु० श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां सप्तमस्कन्धे सदाचारनिर्णये वर्णाश्रमधर्मवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीनारदजी बोले कि ब्रह्मचारी गुरुके कुलमें वस इंद्री जीत गुरुको हितआचरण कर दासकी नाई नीचो रहै, गुरुमें अत्यंत दृढ सौहृद करै ॥ १ ॥ सायंकाल प्रातःकाल गुरु अग्नि सूर्य सब देवताओंकी उपासना करै सबेरे सांझ वाणी जीतकै सनातन ब्रह्मको जाप करै, गायत्री जपै ॥ २ ॥ जब गुरु बुलावै तब वेद पढै,

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम् ॥ यदन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत् ॥ ३५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥ ॥ नारद उवाच ॥ ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन्दान्तो गुरोर्हितम् ॥ आचरन्दासवन्नीचो गुरौ सुदृढसौहृदः ॥ १ ॥ सायं प्रातरुपासीत गुर्वग्न्यर्कसुरोत्तमान्॥ उभे संध्ये च यतवाग् जपन्ब्रह्म सनातनम्॥२॥ छन्दांस्यधीयीत गुरोराहूतश्चेत्सुयन्त्रितः॥उपक्रमेऽवसाने च चरणौ शिरसा नमेत् ॥३॥ मेखलाजिनवासांसि जटादण्डकमण्डलून् ॥ बिभृयादुपवीतं च दर्भपाणिर्यथोदितम् ॥४॥ सायं प्रातश्चरेद् भैक्षं गुरवे तन्निवेदयेत् ॥ भुञ्जीत यद्यनुज्ञातो नो चेदुपवसेत्क्वचित् ॥५॥ सुशीलो मितभुग् दक्षः श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ॥ यावदर्थं व्यवहरेत्स्त्रीषु स्त्रीनिर्जितेषु च ॥ ६ ॥

पढनेके आदि अंतमें तब शिरसे गुरुके चरणनको नमस्कार करै ॥ ३ ॥ मेखला, मृगचर्म, वस्त्र, जटा, दंड, कमंडलु, धारै उपवीत धारै, कुशा हाथमैं लै शास्त्रानुसार वर्तै ॥ ४ ॥ सायंकाल प्रातःकाल जो भीख लावै वो गुरुको निवेदन करै, उनकी आज्ञा लेके पावै, न देवै तो उपवास करै ॥५॥ सुशील रहै थोडो खाय, चतुर रहै श्रद्धा राखै, जितेंद्री रहै, स्त्रियोंमैं और स्त्रीसंग करवेवारोंमें जितनो प्रयोजन होय तितनो व्यवहार राखै ॥ ६ ॥

---

(१) “ क्योंकि ऐसे लिखा है कि एक जगै सदावर्त एक जनो वांटै नीचैकूं निगाह करकै सोये बात कोई महात्मा देखते रहे सो वाके पास जायकर बोले कि तुह्मारे यूं नीचे नैन कैसे रहैं सदाधर्मवालो तब बोलो कि ॥ दोहा ॥ देनेवाला देतहै भेजत है दिन रैन ॥ लोग भर्म मोपर धरै तासैं नीचे नैन ॥

स्त्रीनकी कथा न सुनै, गृहस्थीपना न करे, भारी व्रत धारै, ये इन्द्रिये बडी बलवान है बडे बडे यतीनके मनको हरैहै ॥७॥ बाल बहुत मलके न धोवै उवटना न लगावै, खूब मल नहीं न्हावै अंजनादिक न लगावै, जो गुरुकी स्त्री जवान होय तो वाके संग बात न करै ॥ ८ ॥ ये निश्चय है कि स्त्री अग्निरूप है, पुरुष घृतकुंभसमान है, याते एकांतमें अपनी बेटीके साथभी न बैठै, प्रयोजन मात्र एकांत बैठै ॥ ९ ॥ जबतक इस जीवको ईश्वरका साक्षात्कार नहीं होता तबतक द्वैतकी भावना नहीं मिटती जबतक वह भावना न मिटै तबतक विषयोंमें प्रवृत्त होना असंभव है इस कारण स्त्रीआदिसै दूर रहनेको कहा गया है ॥ १० ॥

वर्जयेत् प्रमदागाथामगृहस्थो बृहद्व्रतः॥इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः ॥७॥ केशप्रसाधनोन्मर्दस्नपनाभ्यञ्जनादिकम्॥गुरुस्त्रीभिर्युवतिभिः कारयेन्नात्मनो युवा॥८॥ नन्वग्निः प्रमदा नाम धृतकुम्भमयः पुमान् ॥ सुतामपि रहो जह्यादन्यदा यावदर्थकृत्॥९॥कल्पयित्वात्मना यावदाभासमिदमीश्वरः॥ द्वैतं तावन्न विरमेत्ततो ह्यस्य विपर्ययः॥१०॥

---

१ इस बातपर एक दृष्टान्त है एक साधु थे बड़े जितेन्द्रिय, आठ प्रहर भगवान्के भजनमें लवलीन रहैं किसीकी ओरको दृष्टि उठाकर न देखैं, कण्ठाग्र जिनको भगवद्गीताके अठारह अध्यायका पाठ, आठ आठ दिनतक भोजन न करें जलही पीपीकर रहजाँय, एक दिन उनके पास पाखण्डी पण्डित आये और गीताका गुटका उनके हाथमें सुन हरी अक्षर चारों ओर रंगीन जदबल खिची हुई, अध्याय अध्यायपर कृष्णभगवान् अर्जुनादिककी मनोहर मूर्ति बनी हुई, वह गुटका साधुकी भेट किया, साधु उस पुस्तकको देखकर मोहित होगये और अपने मनही मनमें कहने लगे कि यह भली सुन्दर पुस्तक मिली बडे यत्नसे एक रेशमी वस्त्रमें बाँधकर रक्खी, दैवयोगसे रातको मूसने उसके तीन चार पत्रे काटडाले तब तो साधु पुस्तकको देखकर बड़े दुःखी हुये क्रोध करके बोले कि उस दुष्ट मूसेको मैं आजही मारडालूंगा, यह कह वह उसी समय एक गाँवमें गये और वहांसे एक बिल्ली लाये तब तो मूसेका निकलना बन्द होगया, परन्तु बिल्ली भूखकी मारी म्याँव म्याँव करनेलगी, साधुने कहा यह बडी भारी हत्या लगी, पाठके रहे न पूजनके उसके लिये गाँवमें नित्य जाते और दूध लाते, कभी मिलता कभी न मिलता हारकर साधुने एक गाय पाली, तब तो दूधकी एक नदी घरमें बहने लगी आप पियें उस और बिल्लीको पिलावें जो बचरहें वह औरोंको पिलादें अब गायकी सानी पानी करनी भारी पडगई, वहाँ गाँवमें एक गोपकी कन्या बाल्यावस्थाकी राडँ रहा करतीथी बाबाजीने उससे कहा हमारी तू गायकी सानी कर जायाकर और गोबर पाथ जायाकर बचा हुआ दूध तुझको देदिया करेंगे, जब वह नवयौवना, चन्द्रमुखी, कोकिलकण्ठी, गजगामिनी बाबाजीके पास आने लगी तब तो बाबाजी कामान्ध होगये,उधर वह बाला मदान्ध थीही उसका घर जानाभी बंद कर दिया निदान उस स्त्रीको आधीन रहा,कुछ दिन पीछे उसके एक सन्तान हुई, तब तो बाबाजीको ज्ञान हुवा, देखो स्त्रीका संग भूलकर न करना थोड़ेही दिनमें एक साधुके दो साधु होगये ॥

एतत्सर्वं गृहस्थस्य समाम्नातं यतेरपि ॥ गुरुवृत्तिर्विकल्पेन गृहस्थस्यर्तुगामिनः ॥ ११ ॥ अञ्जनाभ्यञ्जनोन्मर्दस्त्र्यवलेखामिषं मधु ॥ स्रग्गन्धलेपालंकारांस्त्यजेयुर्ये धृतव्रताः ॥१२॥ उषित्वैवं गुरुकुले द्विजोधीत्यावबुध्य च ॥ त्रयीं साङ्गोपनिषदं यावदर्थं यथाबलम् ॥ १३ ॥ दत्त्वा वरमनुज्ञातो गुरोः कामं यदीश्वरः ॥ गृहं वनं वा प्रविशेत् प्रव्रजेत् तत्र वा वसेत् ॥ १४ ॥ अग्नौ गुरावात्मनि च सर्वभूतेष्वधोक्षजम् ॥ भूतैः स्वधामभिः पश्येदप्रविष्टं प्रविष्टवत् ॥ १५ ॥ एवंविधो ब्रह्मचारी वानप्रस्थो यतिर्गृही ॥ चरन् विदितविज्ञानः परं ब्रह्माधिगच्छति ॥१६॥ वानप्रस्थस्य वक्ष्यामि नियमान् मुनिसंमतान् ॥ यानातिष्ठन्मुनिर्गच्छेदृषिलोकमिहाञ्जसा ॥ १७ ॥ न कृष्टपच्यमश्नीयादकृष्टं चाप्यकालतः ॥ अग्निपक्वमथामं वा अर्कपक्वमुताहरेत् ॥ १८ ॥ वन्यैश्चरुपुरोडाशान्निर्वपेत् कालनोदितान् ॥ लब्धे नवे नवेऽन्नाद्ये पुराणं तु परित्यजेत् ॥ १९ ॥

यह सब धर्म जो ब्रह्मचारीके कहे हैं गृहस्थी और यतीकोभी करने चाहिये परन्तु गृहस्थीको ऋतुकालमें स्त्रीसंग करना और गुरुकी सेवाभी करना उचित है ॥ ११ ॥ अंजन, शिर धोनो, उबटन लगाना, स्त्रीका चित्र देखना, मांस खाना, सहत माला चंदनलेप अलंकार ये सब व्रतधारी त्याग करै ॥ १२ ॥ द्विजगुरुके यहां इस प्रकार वसके और पढके ज्ञान लेकर वेदत्रयी सांगउपनिषद बल और प्रयोजनके अनुसार अर्थ सहित पढै ॥ १३॥ जो समर्थ होय तो गुरुदक्षिणा दे वर लेके अपनी इच्छानुसार घरमें रहै, वा वनमें प्रवेश करै, वा संन्यास लेलै, वा गुरुके घरही वसे ॥ १४ ॥ अग्नि गुरु आत्मा सब जीवमात्रमें अपने अंशरूप जीवोंके संग उनके नियंता होकर प्रवेश कियेहैं ऐसे विदित हौनेपरभी वास्तवमें अप्रवेशित भगवानका विचार ध्यान करना सर्वरूप परमात्मा हौनेसै प्रवेश हौना संभव नहीं ॥ १५ ॥ इसप्रकार ब्रह्मचारी वानप्रस्थ यति गृही विज्ञानको प्राप्त हो विचरै तो परब्रह्मकों प्राप्त होय है ॥ १६ ॥ मुनिनके संमत वानप्रस्थके नियम कहे हैं या संसारमें जिस वानप्रस्थ धर्ममें स्थित होयकर ऋषिलोककों अनायाससें प्राप्त होय है ॥ १७ ॥ जो अकृष्टपच्य है अर्थात् खेतीसै पका है जो अकालसे पकोहै, ये न खाय, अग्निपक्व कच्चो सूर्यसे जो पको होय इनको खाय ॥ १८ ॥ वनके उत्पन्न हुए नीवारादिसै शास्त्रानुसार समय २ पर चरुपुरोडाशादि हौमना जब नवीन

अन्नादि वस्तु मिलजाय तब पुरानैको छोड दैना ॥ १९ ॥ अग्निकी रक्षाहीके निमित्त पर्णशाला वा पर्वतकी कंदरामैं वसै, हिम वायु अग्नि वर्षा सूर्य धूप ये सब आप सहै ॥ २० ॥ बाल, रोम, नख, मूंछ, जटा, कमंडल, मृगचर्म, दंड, छालके वस्त्र, और अग्निहोत्रकी सब सामग्री रखनी उचित है ॥ २१ ॥ मुनि हो वनमें बारह वर्ष वा आठवर्ष चारवर्ष वा दोवर्ष वा एक वर्ष वास करै तपके क्लेशसै बुद्धि विपरीत न होय इसकारण इनमेंसै कोई पक्ष ग्रहण करै ॥ २२ ॥ जब वानप्रस्थ व्याधिसै वा जरासै अपनी क्रिया करनेमें असमर्थ होजाय और ज्ञानका अभ्यास न करसकै तौ अनशन व्रत करै ॥ २३ ॥ अहंकार ममत्व त्याग आत्मामें अग्निको धारण कर उसकी उत्पत्तिके कारणोंका सम्यक प्रकार

अग्न्यर्थमेव शरणमुटजं वाऽद्रिकन्दराम् ॥ श्रयेत हिमवाय्वग्निवर्षार्कातपषाट् स्वयम् ॥ २० ॥ केशरोमनखश्मश्रुमलानि जटिलो दधत् ॥ कमण्डल्वजिने दण्डवल्कलाग्निपरिच्छदान् ॥ २१ ॥ चरेद्वने द्वादशाब्दानष्टौ वा चतुरो मुनिः ॥ द्वावेकं वा यथा बुद्धिर्न विपद्येत कृच्छ्रतः ॥ २२ ॥ यदाऽकल्पः स्वक्रियायां व्याधिभिर्जरयाऽथवा ॥ आन्वीक्षिक्यां वा विद्यायां कुर्यादनशनादिकम् ॥२३॥ आत्मन्यग्नीन् समारोप्य संन्यस्याहंममात्मताम् ॥ कारणेषु न्यसेत् सम्यक् संघातं तु यथाऽर्हतः ॥ २४ ॥ खे खानि वायौ निःश्वासांस्तेजस्यूष्माणमात्मवान् ॥ अप्स्वसृक्श्लेष्मपूयानि क्षितौ शेषं यथोद्भवम् ॥ २५ ॥ वाचमग्नौ सवक्तव्यामिन्द्रे शिल्पं करावपि ॥ पदानि गत्या वयसि रत्योपस्थं प्रजापतौ ॥ २६ ॥ मृत्यौ पायुं विसर्गं च यथास्थानं विनिर्दिशेत् ॥ दिक्षु श्रोत्रं सनादेन स्पर्शमध्यात्मनि त्वचम् ॥ २७ ॥ रूपाणि चक्षुषा राजन् ज्योतींष्यभिनिवेशयेत् ॥ अप्सु प्रचेतसा जिह्वां घ्रेयैर्घ्राणं क्षितौ न्यसेत्॥२८॥

देहका लय करै ॥२४॥ महाकाशमें आकाश लीन करे, वायुमें श्वांसको, तेजमें गर्मीको आत्मज्ञानी लीन करै, जलमें रुधिर थूक पीव आदि लीन करै जो विकार पृथिवीसे उत्पन्न है उन्है पृथिवीमें लीन करै॥२५॥वाणीको अग्निमें वक्तृता सहित लीन करै,शिल्पता सहित हाथ इंद्रियोंको सौंपै गतिसहित पदको अवस्थामें लीन करै,रति उपस्थ प्रजापतिमें लीन करै ॥ २६ ॥ मृत्युमैं पायु इंद्रि और विसर्गको यथास्थान लीन करै,नाद सहित दिशानमें श्रोत्र इंद्रीको लीन करै, स्पर्श सहित त्वचाको वायुमें लीन करै ॥२७॥ हे राजन् ! रूपको चक्षुइंद्रियसहित ज्योतिमें लीन करै, प्रचेतासहित जिव्हाको

जलमें लीन करै, नाकको घ्राण सहित पृथिवीमें लीन करै ॥ २८ ॥ मनोरथसहित मनको चंद्रमामें लीन करै, ज्ञानसे बुद्धिको परब्रह्ममें लगावै अहं ममताक्रियासे कर्मको अध्यात्मज्ञानसहित रुद्रमें लीन करै, सत्व करकै चित्तको क्षेत्रज्ञमें लीन करै, गुणोंसे वैकारिकको परब्रह्ममें लीन करै ॥ २९ ॥ जलमें पृथिवीको, जलको अग्निमें अग्निको वायुमें, वायुको आकाशमें आकाशको महत्तत्त्वमें महत्तत्त्वको मायामें मायाको ब्रह्ममें लीन करै॥३०॥ इस प्रकार अवशेष रहे अक्षर आत्माको परब्रह्म जान अद्वैतभावसै स्थित हो काष्ठ भस्मकर शांत हुए अग्निकी समान विरामको प्राप्त हो ॥ ३१ ॥ इति श्रीभा० म०पुराणे सप्त०भा० आश्रमधर्मवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥ श्रीनारदजी बोले जब इसे संन्यासकी इच्छा हो तब सब वस्तुका त्यागकर

मनो मनोरथैश्चन्द्रे बुद्धिं बोध्यैः कवौ परे ॥ कर्माण्यध्यात्मना रुद्रे यदहंममता क्रिया ॥ सत्त्वेन चित्तं क्षेत्रज्ञे गुणैर्वैकारिकं परे ॥ २९ ॥ अप्सु क्षितिमपो ज्योतिष्यदो वायौ नभस्यमुम् ॥ कूटस्थे तच्च महति तदव्यक्तेऽक्षरे च तत् ॥ ॥ ३० ॥ इत्यक्षरतयात्मानं चिन्मात्रमवशेषितम् ॥ ज्ञात्वाऽद्वयोथ विरमेद् दग्धयोनिरिवानलः॥३१॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे द्वादशोऽध्यायः ॥ १२॥ नारद उवाच ॥ कल्पस्त्वेवं परिव्रज्य देहमात्रावशेषितः ॥ ग्रामैकरात्रविधिना निरपेक्षश्चरेन्महीम् ॥ १ ॥ बिभृयाद् यद्यसौ वासः कौपीनाच्छादनं परम् ॥ त्यक्तं न दण्डलिङ्गादेरन्यत् किंचिदनापदि॥२॥ एक एव चरेद्भिक्षुरात्मारामोऽनपाश्रयः ॥ सर्वभूतसुहृच्छान्तो नारायणपरायणः॥३॥ पश्येदात्मन्यदो विश्वं परे सदसतोऽव्यये ॥ आत्मानं च परं ब्रह्म सर्वत्र सदसन्मये ॥ ४ ॥ सुप्तप्रबोधयोः संधावात्मनो गतिमात्मदृक् ॥ पश्यन्बन्धं च मोक्षं च मायामात्रं न वस्तुतः ॥ ५ ॥

देहमात्र साथ रख सब इच्छा त्याग पृथ्वीमें विचरै एकरात्रि गांवमें वसे अधिक नहीं ॥ १ ॥ जो वस्त्रकी इच्छा हो तौ कौपीन ढकने योग्य अधो वस्त्र धारे परन्तु दंडादि चिन्होंके अतिरिक्त आपत्तिके विना और कुछ पास न रक्खे ॥ २ ॥ इकलो भिक्षुक होयके विचरै, आत्मामें रमै, लोकके आसरै न रहै, सब जीवमात्रसें सुहृदता राखै, शांत स्वभावसे सदा श्रीमन्नारायणपरायण रहै ॥ ३ ॥ पर सत् असत् अव्ययमें या विश्वको और आत्माको देखै आत्मा परब्रह्मको सब जगे सत् असत् ब्रह्ममेंही है ऐसा मानै ॥ ४ ॥ जैसे तमोगुणसे सुषुप्तिमें आत्मस्वरूप

आच्छादित रहताहै और जाग्रत स्वप्नमें विक्षेप होनेसे नहीं विदित होता परन्तु अवस्थाकी संधिमें तमोगुणका विक्षेप न होनैसै उस समय आत्माको लक्ष्यकर आत्मस्वरूपकौ विचारना बंध मोक्षकौ मायामात्र मिथ्या जानकर आत्माको सर्वत्र विचारना ॥ ५ ॥ मृत्युकी चाह न करे न जीवेकी चाह करे, सब जीवनके नाशक पालक कालकी प्रतीक्षा करता रहै ॥ ६ ॥ ये संन्यासीके धर्म हैं, असत् शास्त्रमें आसक्त न होय, किसीको जीविका करकै न रहे, वाद विवाद न करै कोईसे तर्क न करै, किसीके पक्षका आसरा न लेवे ॥ ७ ॥ बहुत शिष्य न इकट्ठे करै बहुत ग्रंथोंको अभ्यास न करै, व्याख्याआदिका कार्य नहीं करना कोई भारी आरंभ न करना ॥ ८ ॥ जबतक ज्ञान उत्पन्न हो तबतक संन्यासके चिन्ह धारणकर

नाभिनन्दे ध्रुवं मृत्युमध्रुवं वाऽस्य जीवितम् ॥ कालं परं प्रतीक्षेत भूतानां प्रभवाप्ययम् ॥ ६ ॥ नासच्छास्त्रेषु सज्जेत नोपजीवेत जीविकाम् ॥ वादवादांस्त्यजेत् तर्कान्पक्षं कंचन संश्रयेत् ॥ ७ ॥ न शिष्याननुबध्नीत ग्रन्थान् नैवाभ्यसेद्बहून् ॥ न व्याख्यामुपयुञ्जीत नारम्भानारभेत्क्वचित् ॥ ८ ॥ न यतेराश्रमः प्रायो धर्महेतुर्महात्मनः ॥ शान्तस्य समचित्तस्य बिभृयादुत वा त्यजेत् ॥ ९ ॥ अव्यक्तलिङ्गोव्यक्तार्थो मनीष्युन्मत्तबालवत् ॥ कविर्मूकवदात्मानं स दृष्ट्या दर्शयेन्नृणाम् ॥१०॥ अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ॥ प्रह्लादस्य च संवादं मुनेराजगरस्य च ॥ ११ ॥ तं शयानं धरोपस्थे कावेर्यां सह्यसानुनि ॥ रजस्वलैस्तनूदेशैर्निगूढामलतेजसम् ॥ १२ ॥ ददर्श लोकान्विचरन् लोकतत्त्वविवित्सया ॥ वृतोऽमात्यैः कतिपयैः प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥ १३ ॥

अन्तःकरणकी शुद्धिके निमित्त नियम धारणकर ज्ञानप्रातिका उद्योग करना ज्ञान प्राप्त होनेपर फिर किसी नियमकी आवश्यकता नहीं शान्त समचित्तवाले संन्यासीके चिन्हकी आवश्यकता नही, रखना न रखना उसके आधीन है ॥ ९ ॥ विद्वानता युक्त आत्माका विचार करता हुआ बाहरके चिन्ह न रखकर लोकौंकी दृष्टिमें उन्मत्त बालककी नाई रहै और चतुर होनेपरभी अपनेको मूककी समान दिखावे ॥ १० ॥ इस विषयमें अजगर वृत्तिवाले मुनि दत्तात्रेय और प्रहलादका इतिहास कहतेहै तुम उनका संवादरूप इतिहास सुनो ॥ ११ ॥ कावेरी नदीके तटपर पर्वतकी भूमिपर सोए रजसे शरीरके अवयव व्याप्त होनेके कारण जिनका निर्मल तेज नहीं दीखताथा॥१२॥उनको लोकमें लोकके तत्वकी जानवेकी

इच्छासे विचरते हुए कुछेक मंत्रीनकूं संग लिये भगवत्प्रिय प्रह्लादजी देखते भए ॥ १३ ॥ कर्म, आकृति, वाणी, चिन्ह, वर्ण आश्रमकरके जिनको
कोई नही जानसकताथा कि ये दत्तात्रेयजी हैं ॥ १४ ॥ तिन्हें नमस्कार कर विधिवत्पूजन कर शिरसे पांवको स्पर्शकर कुछ ज्ञान जानवेकी इच्छासे
महाभागवत असुरवंशजन्य प्रह्लादजी ये पूछते भये ॥ १५ ॥ जो उद्यम करनेवारे भोगी हैं उनकी नांई आपको शरीर पुष्ट है, धन उद्यमवालोंके होयहैं
भोग वित्तवालोंके होताहै, जो भोगी हैं उनकी देह ऐसी पुष्ट रहेहैं, और प्रकारसे नहीं ॥१६॥ हे भगवन् ! कुछ उद्यम नहीं करनेवाले और लोटनेवाले
आपको धन मिलना संभव नहीं धनके विना भोग प्राप्त नहीं होते इस कारण यह विना भोगके आपका शरीर कैसे पुष्ट हुआ सो यदि हमारे

कर्मणाऽऽकृतिभिर्वाचा लिङ्गैर्वर्णाश्रमादिभिः ॥ न विदन्ति जना यं वै सोऽसाविति न वेत्ति च ॥ १४ ॥ तं नत्वाऽभ्यर्च्य
विधिवत् पादयोः शिरसा स्पृशन् ॥ विवित्सुरिदमप्राक्षीन्महाभागवतोऽसुरः ॥ १५ ॥ बिभर्षि कायं पीवानं
सोद्यमो भोगवान्यथा ॥ वित्तं चैवोद्यमवतां भोगो वित्तवतामिह ॥ भोगिनां खलु देहोयं पीवा भवति नान्यथा ॥ १६ ॥
न ते शयानस्य निरुद्यमस्य ब्रह्मन्नुहार्थो यत एव भोगः ॥ अभोगिनोऽयं तव विप्र देहः पीवा यतस्तद्वद
नः क्षमं चेत् ॥ १७ ॥ कविः कल्पो निपुणदृक् चित्रप्रियकथः समः ॥ लोकस्य कुर्वतः कर्म शेषे तद्वीक्षिताऽपि वा ॥
॥ १८ ॥ नारद उवाच ॥ स इत्थं दैत्यपतिना परिपृष्टो महामुनिः ॥ स्मयमा[illegible]स्तमभ्याह तद्वागमृतयन्त्रितः ॥ १९ ॥
ब्राह्मण उवाच ॥ वेदेदमसुरश्रेष्ठ भवान्नन्वार्यसंमतः ॥ ईहोपरमयोर्नृणां पदान्यध्यात्मचक्षुषा ॥ २० ॥ यस्य नारायणो
देवो भगवान् हृद्गतः सदा ॥ भक्त्या केवलयाऽज्ञानं धुनोति ध्वान्तमर्कवत् ॥ २१ ॥

सुन्ने योग्य होय तो कहो ॥ १७ ॥ आप तो विद्वान् चतुर समर्थ निपुणदृष्टि और कथा वार्तासे लोकोंको प्रसन्न करनेवारे हो तोभी शयन करतेहो
लोकोंके कर्मको देखते हो और समान दृष्टि होकर किसीसे प्रयोजन नहीं रखते इसका कारण क्या है ॥ १८ ॥ श्रीनारदजी बोले कि दैत्यपतिने
महामुनिसें जब ऐसे पूछा तब वे महामुनि मुसकायके वाकी अमृतसमान वाणीसे वशीभूत हो बोले ॥ १९ ॥ ब्राह्मण बोले कि हे असुरश्रेष्ठ ! जो
वडोंके संमत हैं सो आप सब जानोहो, ज्ञानचक्षुसें मनुष्यकी चेष्टाका उपराम होनाही श्रेष्ठ है ॥ २० ॥ नारायणदेव भगवान् सदा तुह्मारे

हृदयगत हैं वह जैसै सूर्य अंधकारको दूर करे इस प्रकार आपके अज्ञानको दूर करते हैं॥२१॥हे राजन्! तथापि तुह्मारे प्रश्नको उत्तर देहैं आत्माकी शुद्धि करवेवारेनमें आप प्रशंसा करवेयोग्य हौ ॥२२ ॥ या संसारमें भ्रमायवेवारी तृष्णा हैं, जो योग्य कार्यकोभी पूरा नहीं करने देती कर्म करैहैं परंतु नानायोनियोंमें तृष्णाहीके प्रतापसें जन्मेंहै ॥ २३ ॥ अपने कर्मोंसे भ्रमतोभयो यदृच्छासें या लोकमें जन्म लेहै, ये लोक स्वर्ग अपवर्गको द्वार है कभी यह प्राणी कर्मोंसै पशुपक्षीभी होजाताहै ॥ २४ ॥ या संसारमें स्त्री पुरुष सुखके लिये पुत्रके लिये अनेक कर्म करतेहैं परन्तु उसका फल विपरीत देखनेमें आताहै इस कारण मैने सब कर्म त्याग दिये है ॥ २५ ॥ इसै आत्माका अनुरूप सुख जब प्राप्त होताहै जब यह सब उद्यमको त्याग देता

अथापि ब्रूमहे प्रश्नांस्तव राजन् यथाश्रुतम् ॥ संभावनीयो हि भवानात्मनः शुद्धिमिच्छताम् ॥ २२ ॥ तृष्णया भववाहिन्या योग्यैः कामैरपूरया ॥ कर्माणि कार्यमाणोऽहं नानायोनिषु योजितः ॥ २३ ॥ यदृच्छया लोकमिमं प्रापितः कर्मभिर्भ्रमन् ॥ स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं तिरश्चां पुनरस्य च ॥ २४ ॥ अत्रापि दम्पतीनां च सुखायान्यापनुत्तये ॥ कर्माणि कुर्वतां दृष्ट्वा निवृत्तोऽस्मि विपर्ययम् ॥ २५ ॥ सुखमस्यात्मनो रूपं सर्वेहोपरतिस्तनुः ॥ मनः संस्पर्शजान् दृष्ट्वा भोगान्स्वप्स्यामि संविशन् ॥ २६ ॥ इत्येतदात्मनः स्वार्थं सन्तं विस्मृत्य वै पुमान् ॥ विचित्रामसति द्वैते घोरामाप्नोति संसृतिम् ॥ २७ ॥ जलं तदुद्भवैश्छन्नं हित्वाऽज्ञो जलकाम्यया ॥ मृगतृष्णामुपाधावेद्यथाऽन्यत्रार्थदृक् स्वतः ॥२८॥देहादिभिर्दैवतन्त्रैरात्मनः सुखमीहतः ॥ दुःखात्ययं चानीशस्य क्रिया मोघाः कृताकृताः ॥२९॥

है सब प्रकारके भोगौको मनके कल्पना किये विचार करनेमें उद्यमको छोड़ बैठाहूं ॥ २६ ॥ अपने आत्माको स्वार्थ अपनेहीमें है सो ये पुरुष भूलकर चित्र विचित्र असत् द्वैतभ्रमवारे घोर संसारकों प्राप्त होयहै ॥ २७ ॥ जैसें कोई अज्ञानी जलकी कामना करकै जहां जल उत्पन्नहो वाकूं त्याग मृगतृष्णाकूं दौडैहै ऐसे यह और जगह अर्थकी दृष्टि करकै दौडैहै, परमेश्वरको भजे नहीं है ॥ २८ ॥ परमेश्वरके आधीन ये देहादिक है, इनसे आत्माके सुखकी इच्छा करवेवारे मूर्ख है, दुःखको नाश समझकर निष्फल क्रिया करतो रहैहै, परमेश्वरको नहीं भजे हैं याहीसे सदा दुःख पावै है यासे ईश्वरको भजो सब त्यागो यही हमारी आज्ञा है, षड्विध शरणागति करौ, पारमहंस्य वृत्ति करौ क्रोध लोभ मोह निंदा छल ईर्षा बुराई

तृष्णा बेशर्मी दुष्टता क्लेश इनकों त्यागैगो वो वैकुंठ जायगो और नहीं यह निश्चय जानो ॥ २९ ॥ आध्यात्मिकादिदुःखोंसे जो न छुटोहै जिसके शिरपर मृत्यु प्राप्तहै ऐसा प्राणी यदि कठिनतासै धनकामना प्राप्त करै तौभी उस्सै क्या है कुछ नहीं ॥ ३० ॥ मैं धनी लोभी और अजितेन्द्री पुरुषौंके क्लेशको देखताहूं कि उन्है राजा चोर शुत्रु आदिसै सदा भय बना रहता इसी कारणसै नींद नहीं आती ॥ ३१ ॥ राजासे चोरसे शत्रुसे स्वजनोंसे पशुपक्षिसे मंगतोंसे कालसे अपनेसे नित्यप्राणको धनकी नाई भय है ॥ ३२ ॥ शोक मोह भय क्रोध राग क्लैब्य श्रमादिक यह सब धन है और प्राणकी तृष्णाके कारण मनुष्यौंको होतेहै इस्सै बुद्धिमान इन्है त्याग दे ॥ ३३ ॥ मधुमाखी और अजगर, लोकमें हमारे उत्तम गुरु हैं इनसें वैराग्य और परितोष हमें प्राप्तभयोहै ॥ ३४ ॥ सब कामसे विराग होनो ये भौरासे सीखो है सहतकी नाई महा कष्टसें प्राप्त हुए धनवाले जीवकों मारकर औरही कोई हरके लेजायहै ॥ ३५ ॥ कहीं चेष्टा न करै सदा प्रसन्न रहै भाग्यसें जो कुछ प्राप्तहोय वामें प्रसन्न रहै जो भागसे कुछ न मिलै तो कुछ न चाहैं यह अजगरसै सीखो है यासै हम महाअजगरकी नांई रहैहैं ॥ ३६ ॥ कभी थोडो कभी बहुत अन्न स्वादु वा बहुगुणयुक्त होय अथवा गुणहीन होय तो वाहीकूं खायकै रहूंहूं ॥ ३७ ॥

आध्यात्मिकादिभिर्दुःखैरविमुक्तस्य कर्हिचित् ॥ मर्त्यस्य कृच्छ्रोपनतैरर्थैः कामैः क्रियेत किम् ॥ ३० ॥ पश्यामि धनिनां क्लेशं लुब्धानामजितात्मनाम् ॥ भयादलब्धनिद्राणां सर्वतोऽभिविशङ्किनाम् ॥ ३१ ॥ राजतश्चोरतः शत्रोः स्वजनात् पशुपक्षितः ॥ अर्थिभ्यः कालतः स्वस्मान्नित्यं प्राणार्थवद्भयम् ॥३२॥ शोकमोहभयक्रोधरागक्लैब्यश्रमादयः ॥ यन्मूलाः स्युर्नृणां जह्यात् स्पृहां प्राणार्थयोर्बुधः ॥३३॥ मधुकारमहासर्पौ लोकेऽस्मिन्नो गुरूत्तमौ ॥ वैराग्यं परितोषं च प्राप्ता यच्छिक्षया वयम् ॥३४॥ विरागः सर्वकामेभ्यः शिक्षितो मे मधुव्रतात् ॥ कृच्छ्राप्तं मधुवद्वित्तं हत्वाप्यन्यो हरेत्पतिम् ॥३५॥ अनीहः परितुष्टात्मा यदृच्छोपनतादहम् ॥ नो चेच्छये बह्वहानि महाहिरिव सत्त्ववान् ॥ ॥ ३६ ॥ क्वचिदल्पं क्वचिद्भूरि भुञ्जेऽन्नं स्वाद्वऽस्वादु वा ॥ क्वचिद् भूरिगुणोपेतं गुणहीनमुत क्वचित् ॥ ३७ ॥

कही कोई श्रद्धासे खवायदेहै, कदी मानवर्जित होय दिनमें मिलै वा रातमें मिलै कोई समय मिलजाय तोहूं खायलैहै ॥ ३८ ॥ रेशमीवस्त्र वा मृगचर्म चीर वल्कल अथवा और जैसो हमै प्राप्त होय भाग्यसे तैसोंई संतुष्ट बुद्धिकरकै पहिनलैहैं॥३९॥कभी तौ पृथ्वीमें सोवैहैं कभी तृण पत्ता पाषाण राखमेंही सोजायहै कभी किसी कोईकी इच्छासे चौबारेमें पलंगपर महलोंपै सोवै हैं॥४०॥ हे समर्थ! कभी न्हावैहै कभी माटी लगीरहैहै सुंदर वस्त्र पहिरलैहैं कभी माला कभी गहिने पहिरे हैं, रथ हाथी घोडानपै बैठे हैं कभी नंगे ग्रहके नांई विचरैं है ॥ ४१॥ न तो हम निंदा करैं न किसीकी स्तुति करै है ये

श्रद्धयोपाहृतं क्वापि कदाचिन्मानवर्जितम् ॥ भुञ्जे भुक्त्वाथ कस्मिंश्चिद्दिवानक्तं यदृच्छया ॥ ३८ ॥ क्षौमं दुकूलमजिनं चीरं वल्कलमेव वा ॥ वसेऽऽन्यदपि संप्राप्तं दिष्टभुक्तुष्टधीरहम् ॥३९॥ क्वचिच्छये धरोपस्थे तृणपर्णाश्मभस्मसु ॥ क्वचित्प्रासादपर्यङ्के कशिपौ वा परेच्छया ॥ ४० ॥ क्वचित्स्नातोनुलिप्ताङ्गः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः ॥ रथेभाश्वैश्चरे क्वापि दिग्वासा ग्रहवद्विभो ॥ ४१ ॥ नाहं निन्दे न च स्तौमि स्वभावविषमं जनम् ॥ एतेषां श्रेय आशासे उतैकात्म्यं महात्मनि ॥ ४२ ॥ विकल्पं जुहुयाच्चित्तौ तां मनस्यर्थविभ्रमे ॥ मनो वैकारिके हुत्वा तन्मायायां जुहोत्यनु ॥ ४३ ॥ आत्मानुभूतौ तां मायां जुहुयात्सत्यदृङ् मुनिः ॥ ततो निरीहो विरमेत्स्वानुभूत्यात्मनि स्थितः ॥४४॥ स्वात्मवृत्तं मयेत्थं ते सुगुप्तमपि वर्णितम् ॥ व्यपेतं लोकशास्त्राभ्यां भवान्हि भगवत्प्रियः ॥ ४५ ॥

जीव स्वभावसैही विषम वर्ते है महात्मामें इनको मंगल सदा इच्छा करूं हूं और सबकी एकता चाहताहूं ॥ ४२ ॥ भेदको चित्तवृत्तमें और वृत्तियोंको भ्रमयुक्त चित्तमें हवन करै, मनको सब अर्थनसें हटाय वैकारिकमें होमै, वैकारिककों मायामें होमै ॥ ४३ ॥ सत्य स्वरूपको देखनेवाला मुनि स्वरूपके अनुभवमें मायाको हवन करै फिर निश्चेष्ट होयकर अपने अनुभव स्वरूपको प्राप्तहो विराम करै ॥४४॥ जो हमारो गुप्त सिद्धांतहो सो हमने तुमसे वर्णन करदीनो, यह यद्यापि सब लोक शास्त्रसे असंमत है तथापि तुम भगवानके भक्त हो इस्सै वर्णन किया ॥ ४६ ॥

श्रीनारदजी बोले कि इस प्रकार श्रीप्रल्हाद पारमहंस्य धर्म सुनके प्रसन्न होयकर पूजन कर आज्ञा ले घरको जाते भए (१) ॥४६॥ इति श्रीम०भा० टीकायां सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे प्रल्हादाय दत्तात्रेयेण पारमहंस्यधर्मवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ अब गृहस्थको परम धर्म कहै है श्रीयुधिष्ठिरजी बोले कि हे देवऋषे ! मोसरीके मूढबुद्धिवारे गृहस्थ या पदवीको अनायासकरकै जाविधिसे प्राप्त हो मोक्षकों जाय सो कहो ॥ १ ॥

नारद उवाच ॥ धर्मं पारमहंस्यं वै मुनेः श्रुत्वाऽसुरेश्वरः ॥ पूजयित्वा ततः प्रीत आमन्त्र्य प्रययौ गृहम् ॥ ४६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे युधिष्ठिरनारदसंवादे प्रह्लादाय दत्तात्रेयेण पारमहंस्यधर्मवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥ युधिष्ठिर उवाच ॥ गृहस्थ एतां पदवीं विधिना येन चाञ्जसा ॥ याति देवऋषे ब्रूहि मादृशो गृहमूढधीः ॥ १ ॥ नारद उवाच ॥ गृहेष्ववस्थितो राजन् क्रियाः कुर्वन् गृहोचिताः ॥ वासुदेवार्पणं साक्षादुपासीत महामुनीन् ॥२॥ शृण्वन् भगवतोऽभीक्ष्णमवतारकथाऽमृतम् ॥ श्रद्दधानो यथाकालमुपशान्तजनावृतः ॥३॥ सत्सङ्गाच्छनकैः सङ्गमात्मजायात्मजादिषु ॥ विमुच्येन्मुच्यमानेषु स्वयं स्वप्नवदुत्थितः ॥ ४ ॥ यावदर्थमुदासीनो देहे गेहे च पण्डितः ॥ विरक्तो रक्तवत् तत्र नृलोके नरतां न्यसेत् ॥ ५ ॥

श्रीनारदजी बोले कि हे राजन् ! प्राणी गृहमें स्थित गृहके योग्य क्रिया कर, वासुदेवके अर्पण करै, साक्षान्महामुनीनकी उपासना करै ॥ २ ॥ भगवत्के अवतारकथामृतको वारंवार सुनै,श्रद्धा करै, यथाकाल महाशांत जनोंमें रहै ॥३॥ स्त्री पुत्रादि जो एक दिन छुटनेवारे हैं इनमें सत्संग धीरे धीरे त्यागै आप ऐसा समझै कि मानू स्वप्नमेंसे उठोहूं ॥ ४ ॥ देहगेहमें जितनो प्रयोजन होय तितनो पंडित आसक्त रहै मनमें वैराग्य

---

१ तब फेर दत्तात्रेयजी बोले कि इन बातनकोभी त्याग करना जो या कबित्तमें लिखे है॥ कबित्त॥ दाविने वकार पांच, पांचपुन चूकेमति छाडिदे चकार चार चारनमे रसियै॥१॥ अर्थ–वैर बुराई विसन विकलता वेशर्म । विद्या विनय बडप्पन विवेक बिचार ॥ चिंता चूक चुगली चपलता । चतुराई चेतनता चरित्र चलन ॥१॥ कबित्त ॥ छांड मत दो दकार, छांदे दकार सात तीननमें मिलेमिल अति हीन ग्रसीयै ॥ हाहा चार परिहर तीन हाहा मानिले, भूलि छै मकारमैं कबहूं न रहियै ॥ २ ॥ अर्थ–दया दान, दुर्वासना दरिद्र दीनता दोष दुर्वचन दुष्टता दुर्बुद्धि, हार हीनता हठ हराम, हेत हर्ष हिंमत, मद मांस मद्यपान मत्सरता मान मंदता ॥ २ ॥ कबित्त ॥ गोविंदास दोऊकार, मानिलै भकार तीन ॥ एकहू नकारमाहिं सवार गुन नसियै ॥ ३ ॥ अर्थ–उद्यम उपदेश, भलेपन भलाइ भक्ति, नाहि ॥ ३ ॥

97

धारणकर ऊपरसै आसक्त पुरुषकी नाई पुरुषार्थ करै ॥ ५ ॥ जातके पिता माता पुत्र भैया और सुहृद जो ये कहै जो ये इच्छा चाहै सो करै ॥ ६ ॥ स्वर्गको भूमिको आकाशको जो भगवत्को दियो भयो धन है वाको सबको भोगै बुद्धिवान् आप ऐसे करै ॥ ७ ॥ जितनेमें पेट भरजाय उतनोही देहधारीनको अपनोपन है जो यासे अधिक चाहै अभिमान करै वो चोर है दंडके योग्य है ॥८॥ मृग, ऊट, गधा, उंदर, मूसा, साप, पक्षी, मक्खी, इनमें और अपने पुत्रमें कुछ अंतर न समझै ॥ ९ ॥ घरमें वासकर अत्यन्त कष्टसै धर्म अर्थ कामको नही करना जैसा देश होय जैसा समय जैसा भाग्यसें प्राप्त होय तैसेईमें निर्वाह करै ॥ १० ॥ श्वपच भंगीपर्यंतको यथायोग्य अन्नादि देता रहै, एक अपनी स्त्रीको जो सेवाके लिये है भोजन बनानेके

ज्ञातयः पितरौ पुत्रा भ्रातरः सुहृदोऽपरे ॥ यद् वदन्ति यदिच्छन्ति चानुमोदेत निर्ममः ॥ ६ ॥ दिव्यं भौमं चान्तरिक्षं वित्तमच्युतनिर्मितम्॥ तत् सर्वमुपभुञ्जान एतत् कुर्यात्स्वतो बुधः ॥७॥ यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम् ॥ अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥ ८ ॥ मृगोष्ट्रखरमर्काखुसरीसृप्खगमक्षिकाः ॥ आत्मनः पुत्रवत् पश्येत् तैरेषामन्तरं कियत् ॥ ९ ॥ त्रिवर्गं नातिकृच्छ्रेण भजेत गृहमेध्यपि ॥ यथादेशं यथाकालं यावद्दैवोपपादितम् ॥ १० ॥ आश्वघान्तेऽवसायिभ्यः कामान् संविभजेद् यथा ॥ अप्येकामात्मनो दारान् नृणां स्वत्वग्रहो यतः॥ ११ ॥ जह्याद् यदर्थे स्वप्राणान् हन्याद् वा पितरं गुरुम् ॥ तस्यां स्वत्वं स्त्रियां जह्याद् यस्तेन ह्यजितो जितः ॥ १२ ॥ कृमिविड्भस्मनिष्ठान्तं क्वेदं तुच्छं कलेवरम् ॥ क्व तदीयरतिर्भार्या क्वायमात्मा नभश्छदिः ॥१३॥ सिद्धैर्यज्ञावशिष्टार्थैः कल्पयेद् वृत्तिमात्मनः ॥ शेषे स्वत्वं त्यजन् प्राज्ञः पदवीं महतामियात् ॥ १४ ॥

अतिथि सत्कारमें लगाना ॥ ११ ॥ जा स्त्रीके अर्थ प्राणी अपने प्राणत्याग देहै, पिता गुरुकू मारै है उस स्त्रीमें ममता त्याग करनेवारे भगवानकोभी अपने वशमें करलेते है ॥ १२ ॥ कृमि, विष्ठा भस्म इस तुच्छ कलेवरको होयहै ऐसा तो यह शरीर कहां और देह सुखके निमित्त जिसमें प्रीति की जाती है ऐसी स्त्री कहां तथा सर्वव्यापक संगरहित परमात्माका सच्चिदानंद स्वरूप कहां ॥ १३ ॥ पंचमहायज्ञ करनेपर जो उच्छिष्ट है वासे अपनी वृत्ति करै, उससे जो शेष वचै तौ उसमें ममता न रक्खै पंडित इस प्रकार रहै तौ वडोंकी पदवीको प्राप्त होवै है ॥ १४ ॥

देवता, ऋषी, मनुष्य; भूत पितर आपकों दिनरात अपनी वृत्तिके प्राप्त धनसें पृथक् पृथक् पूजन करै तौ यह नारायणहीकी पूजा है ॥ १५ ॥ जो आत्माके अधिकारादिक है वे सब यज्ञ संपदा प्राप्त होय तौ वैतानिकविधिकरकै अग्निहोत्रादिसें यजन करै ॥१६॥ भगवान् सर्वयज्ञभोक्ता हैं सो अग्निमुखसें सब पावतेहै, घृतसे खूब हवन करै, हे राजन्! परंतु ब्राह्मणोंके मुखके द्वारा हवन करनेसें अर्थात् ब्राह्मणोंको खूब मिष्टान्न मोहनभोग बर्फि मिठाई पेडा लड्डू से भोजन करानेसे भगवान् बहुत प्रसन्न होयहैं ॥ १७ ॥ तातें मनुष्यमें ब्राह्मण देवता हैं इनको यथायोग्य पूजन करै अनेक कामना चाहै तोभी इन्होंको पूजन करै सब जीवमात्रके क्षेत्रोंके जाननेवारे ब्राह्मण हैं ॥ १८ ॥ ब्राह्मण भाद्रपदमें श्राद्ध करै, माता पिताकों यथायोग्य जैसो

देवान् ऋषीन् नृभूतानि पितॄनात्मानमन्वहम् ॥ स्ववृत्त्यागतवित्तेन यजेत पुरुषं पृथक् ॥ १५ ॥ यर्ह्यात्मनोऽधिकाराद्याः सर्वाः स्युर्यज्ञसंपदः ॥ वैतानिकेन विधिना अग्निहोत्रादिना यजेत् ॥ १६ ॥ न ह्यग्निमुखतोऽयं वै भगवान् सर्वयज्ञभुक् ॥ इज्यते हविषा राजन् यथा विप्रमुखे हुतैः॥ १७ ॥ तस्माद् ब्राह्मणदेवेषु मर्त्यादिषु यथार्हतः ॥ तैस्तैः कामैर्यजस्वैनं क्षेत्रज्ञं ब्राह्मणाननु ॥१८॥ कुर्यादापरपक्षीयं मासि प्रौष्ठपदे द्विजः॥ श्राद्धं पित्रोर्यथावित्तं तद्बन्धूनां च वित्तवान् ॥१९॥ अयने विषुवे कुर्याद् व्यतीपाते दिनक्षये॥चन्द्रादित्योपरागे च द्वादशीश्रवणेषु च॥२०॥ तृतीयायां मासि शुक्ले नवम्यामथ कार्तिके ॥ चतसृष्वप्यष्टकासु हेमन्ते शिशिरे तथा ॥ २१ ॥ माघे च सितसप्तम्यां मघाराकासमागमे ॥ राकया चानुमत्या वा मासर्क्षाणि युतान्यपि ॥ २२ ॥

धन होय तैसो करै, जो जो भाई बंधू याद होंय उनकोभी श्राद्ध करै ॥ १९ ॥ दक्षिणायन उत्तरायणमें श्राद्ध तर्पण करै, व्यतीपातमें श्राद्धादि करै, अमावास्याकों श्राद्ध तर्पण करै, चंद्र सूर्यके ग्रहणमें करै. एकादशी द्वादशीयुक्त श्रवणमें श्राद्ध करै ॥ २० ॥ वैशाखके शुक्लपक्षकी अक्षयतृतीयामें, कार्तिकमें, नवमीको, हेमंत शिशिर मार्गशीर्ष कार्तिक इन चारो मासमें पितृसेवा करै ॥ २१ ॥ माघके शुक्लपक्षकी सप्तमीको मघायुक्त पौर्णमासीकों संपूर्णचंद्रा पौर्णमासीकों राकानाम है न्यूनचंद्राकों अनुमति कहैहै मास नक्षत्रयुत पौर्णिमामें पितृयजन करै ॥ २२ ॥

विजयध्वजीमें है कि द्वादशीकों श्रवण होय तो महापुण्य है, अनुराधा तीनो उत्तरा तीन एकादशी जन्मनक्षत्र वामनद्वादशीको श्राद्ध करे ॥ २३ ॥ ये सब श्रेयके काल है, मनुष्यकों कल्याण बढावनेवाले हैं, सबप्रकारसें इनमें शुभकार्य करै, जो अपनो शुभ चाहै बहुत आयुवृद्धि चाहै तौ ॥ २४ ॥ इनमें स्नान जप होम व्रत देवद्विजपूजन करै पितर देव मनुष्य भूतमात्रको दियो भयो सब अक्षय होय है ॥ २५ ॥ स्त्रीके संस्कारका काल पुत्रके और अपनें जन्मदिन मंगल करै हे नृप! और प्रेतदाहादिमें संवत्सरश्राद्ध और पुण्य करै ॥२६ ॥ धर्मादि मंगलके देवेवारे अब हम देश कहैं है

द्वादश्यामनुराधा स्याच्छ्रवणास्तिस्र उत्तराः ॥ तिसृष्वेकादशी वाऽऽसु जन्मर्क्षश्रोणयोगयुक् ॥ २३ ॥ त एते श्रेयसः काला नृणां श्रेयोविवर्धनाः ॥ कुर्यात् सर्वात्मनैतेषु श्रेयोऽमोघं तदायुषः ॥ २४ ॥ एषु स्नानं जपो होमो व्रतं देवद्विजार्चनम् ॥ पितृदेवनृभूतेभ्यो यद् दत्तं तद् ह्यनश्वरम् ॥ २५ ॥ संस्कारकालो जायाया अपत्यस्यात्मनस्तथा ॥ प्रेतसंस्था मृताहश्च कर्मण्यभ्युदये नृप ॥ २६ ॥ अथ देशान्प्रवक्ष्यामि धर्मादिश्रेय आवहान् ॥ स वै पुण्यतमो देशः सत्पात्रं यत्र लभ्यते ॥ २७॥ बिम्बं भगवतो यत्र सर्वमेतच्चराचरम् ॥ यत्र ह ब्राह्मणकुलं तपोविद्यादयान्वितम् ॥ २८॥ यत्र यत्र हरेरर्चा स देशः श्रेयसां पदम् ॥ यत्र गङ्गादयो नद्यः पुराणेषु च विश्रुताः ॥२९॥ सरांसि पुष्करादीनि क्षेत्राण्यर्हाश्रितान्युत ॥ कुरुक्षेत्रं गयशिरः प्रयागः पुलहाश्रमः ॥ ३० ॥ नैमिषं फाल्गुनं सेतुः प्रभासोऽथ कुशस्थली ॥ वाराणसी मधुपुरी पम्पा बिन्दुसरस्तथा ॥३१॥ नारायणाश्रमो नन्दा सीतारामाश्रमादयः ॥ सर्वे कुलाचला राजन्महेन्द्रमलयादयः ॥ ३२ ॥

पुण्यतम देश वो है जहां सुपात्र मिलै ॥ २७॥ सब चराचरके निवासभूत भगवानकी जहां मूर्ति है वो अत्यंत पवित्र देश है तप विद्या दयायुक्त जहां ब्राह्मण है वोभी अत्यंत पुण्यदेश है ॥२८॥ जहां जहां श्रीहरिकी अर्चाविग्रह है वो देश सब कल्याणको स्थान है जो पुराणमें विख्यात हैं जहां गंगादिक नदी है वो पुण्यतम देश है ॥ २९ ॥ पुष्करादि सरोवर जहां उत्तम मनुष्य वसै है कुरुक्षेत्र गया प्रयाग पुलहाश्रम ॥ ३० ॥ नैमिषारण्य अर्जुनक्षेत्र सेतुबंधरामेश्वर प्रभास द्वारका काशी मथुरापुरी पंपा बिंदुसरोवर ॥ ३१ ॥ नारायणाश्रम नंदा सीतारामाश्रमादिक हे राजन्! सब कुलाचल महेंद्र

मलयगिरि आदि ॥ ३२ ॥ ये पुण्यतम देश हैं, श्रीहरिकी अर्चा विग्रहरूप होके वसे हैं जो मंगलकी कामनावारो होय वो इन देशनको सेवन करै वारंवार पुरुषनको धर्मदायक हैं यह सहस्रगुणों अधिक फलदायक है ॥ ३३ ॥ अच्छे पात्रवेत्ता पंडितोंने पात्र यहां कहे हैं हे युधिष्ठिर! सबसे अधिक श्रीनारायणही एक पात्र है कारण कि चराचरमय वासुदेव भगवान् हैं ॥ ३४ ॥ हे राजन्! अंतःपुरमें देवता ऋषि महात्मा ब्रह्माजीके पुत्रादिक सब थे परन्तु वहां अग्रपूजनीय श्रीकृष्णचंद्र महाराजको समझ कर पहले पूजा इन्हीकी हुई ॥ ३५ ॥ सब जीवराशियोंसे भरा यह ब्रह्माण्ड एक महान वृक्ष है भगवान् इसके मूल हैं इस कारण श्रीकृष्णजीके पूजनसे सब जीवात्मानकी तृप्ति और पूजन होयहै ॥ ३६ ॥ सब पुर इन्होंने रचे है, मनुष्य पशु देवता येही श्रीकृष्णजी जीवरूप धार सब जीवनके शरीररूप पुरमें शयन करै है इस कारण इनका नाम पुरुष है ॥ ३७ ॥ हे राजन्! तिनमें भगवान् न्यूनाधिक भावकरके वर्तै है, तातै पात्र परमेश्वर श्रीकृष्ण हैं, जैसी जिसकी आत्मा हैं वैसेही वर्तमान हैं इस कारण तप पूजा प्रार्थनासे जिसमें भगवानका अंश अधिक पाया जाय वही उत्तम पात्र है ॥ ३८ ॥ हे राजन्! जब मनुष्य पात्र और भगवद्भक्त थे तब मनुष्योंके शरीरमें भगवानकी पूजा होती है जब मनुष्योंके मनमें विकार हुआ तब भेद छाया और एक एक अवज्ञा करने लगे तब त्रेतायुगके आदिमें विद्वानोंने भगवानकी अर्चा मूर्तियौंमें करनी प्रारम्भ करदी यद्यपि यह चारों युगसिद्ध है ॥ ३९ ॥

एते पुण्यतमा देशा हरेरर्चाश्रिताश्च ये ॥ एतान् देशान् निषेवेत श्रेयस्कामो ह्यभीक्ष्णशः ॥ धर्मो ह्यत्रेहितः पुंसां सहस्राधिफलोदयः ॥ ३३ ॥ हरिरेवैक उर्वीश यन्मयं वै चराचरम् ॥ पात्रं त्वत्र निरुक्तं वै कविभिः पात्रवित्तमैः ॥ ३४ ॥ देवर्ष्यर्हत्सु वै सत्सु तत्र ब्रह्मात्मजादिषु ॥ राजन्यदग्रपूजायां मतः पात्रतयाच्युतः ॥ ३५ ॥ जीवराशिभिराकीर्ण आण्डकोशाङ्घ्रिपो महान् ॥ तन्मूलत्वादच्युतेज्या सर्वजीवात्मतर्पणम् ॥ ३६ ॥ पुराण्यनेन सृष्टानि नृतिर्यगृषिदेवताः ॥ शेते जीवेन रूपेण पुरेषु पुरुषो ह्यसौ ॥ ३७ ॥ तेष्वेषु भगवान्राजंस्तारतम्येन वर्तते ॥ तस्मात्पात्रं हि पुरुषो यावानात्मा यथेयते ॥ ३८ ॥ दृष्ट्वा तेषां मिथो नृणामवज्ञानात्मतां नृप ॥ त्रेतादिषु हरेरर्चा क्रियायै कविभिः कृता ॥ ३९ ॥

प्रतिमामें श्रीहरिको श्रद्धा करकै पूजासे उपासक उपासना करै हैं, उनके सब अर्थ पूरै होतें हैं और जो पुरुषोंमें द्वेष करै हैं उनको फलप्राप्ति नहीं होती ॥ ४० ॥ हे राजेंद्र! पुरुषोंमें सुपात्र ब्राह्मणको जानो कारण कि यह तपसें विद्यासे संतोषसे श्रीहरिको शरीररूप वेदकूं धारण करै हैं ॥ ४१ ॥ हे राजन्! यह ब्राह्मणोंको सामर्थ्य है जो अपने चरणकी रजसै त्रिलोकीको पवित्र करते है यह ब्राह्मण जगतके आत्मा श्रीकृष्णके परम प्रिय देवता है (१) ॥ ४२ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषा० सप्तमस्कन्धे गृहस्थाश्रमधर्मवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ या पंद्रवी अध्यायमें सब वर्ण आश्रम-

ततोऽर्चायां हरिं केचित् संश्रद्धाय सपर्यया ॥ उपासत उपास्तापि नार्थदा पुरुषद्विषाम् ॥ ४० ॥ पुरुषेष्वपि राजेन्द्र सुपात्रं ब्राह्मणं विदुः ॥ तपसा विद्यया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेस्तनुम् ॥ ४१ ॥ नन्वस्य ब्राह्मणा राजन्कृष्णस्य जगदात्मनः ॥ पुनन्तः पादरजसा त्रिलोकीं दैवतं महत् ॥ ४२ ॥ इति श्रीभागवते म० सप्तमस्कन्धे सदाचारनिर्णये चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ नारद उवाच ॥ कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित् तपोनिष्ठा नृपापरे ॥ स्वाध्यायेऽन्ये प्रवचने ये केचिज्ज्ञानयोगयोः ॥ १ ॥ ज्ञाननिष्ठाय देयानि कव्यान्यानन्त्यमिच्छता ॥ दैवे च तदभावे स्यादितरेभ्यो यथाऽर्हतः ॥ २ ॥ द्वौ दैवे पितृकार्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ॥ भोजयेत् सुसमृद्धोपि श्राद्धे कुर्यान्न विस्तरम् ॥ ३ ॥

के धर्म सार संग्रह कर वर्णन करै हैं ॥ श्रीनारदजी बोले कि हे नृप! कोई ब्राह्मणकी तो कर्ममें निष्ठा है, कोई तपमें निष्ठा करवेवारे है, कोईको मन वेद पढनेमें है कोईको वेद पढावनेमें है, कोईको ज्ञानमें मन है कोई योग साधे है ॥ १ ॥ जो अनंत फलकी इच्छा करै तो ज्ञाननिष्ठावारे ब्राह्मणको श्राद्धान्न देवै, जो इनको अभाव होय तो और कोई ब्राह्मण होय उसको यथायोग्य पूजन करै ॥ २ ॥ देवकार्यमें दो ब्राह्मण जिमावै, पितृकार्यमें तीन द्विज जिमावै, अथवा एक जिमावै, जो बहुत समृद्धि धन होय तोभी श्राद्धमें विस्तार न करै ॥ ३ ॥

---

(१) " ॥ चौपाई ॥ विप्र महात्म सुनहु नरेशा ॥ द्विज सेवा सब सुखकी देशा ॥ द्विजनिंदक नर्कनमें जाई ॥ द्विजपूजक वैकुंठ पठाई ॥ विप्र शरीर बसें सब देवा ॥ विप्रसेइ पावैं सब मेवा ॥ जो कोई द्विजकी निंदा करि है ॥ कल्पकोटिशत नरकमें परि हैं ॥ सदा पूजो विप्रनको भाई ॥ सफल सिद्धि इनहीसे पाई ॥ विप्रविष्णु समवेताई ॥ सफल पुराणे विप्रकों गाई ॥ द्विजनिंदासे सब दुःख पाई ॥ द्विजनिंदक पशु पक्षी कहाई ॥ द्विज पूजै मिष्टान्न आदिसे ॥ वाकों सब सुख मिलै आदिसे ॥ "

रस प्रवाहसे युक्त श्रीशुकदेवजीने यह कथा कही है जो कोई कंठमें धारण करता है इसे वोह वैकुंठका प्रभु होता है ॥ १०१ ॥ हे शौनक ! इस प्रकारसे यह परम गुह्य सब सिद्धान्तोंका सिद्धान्त अनेक शास्त्रोंकी आलोचना कर कहा है जगतमें शुक कथासे निर्मल और कुछ नहीं है परम सुखके कारण द्वादशस्कंधात्मक श्रीमद्भागवत रसको पान कर ॥१०२॥ जो नियमित होकर इस कथाको श्रवण करते और भक्ति प्रीतिसे

रसप्रवाहसंस्थेन श्रीशुकेनेरिता कथा ॥ कण्ठे संबध्यते येन स वैकुण्ठप्रभुर्भवेत् ॥ १०१ ॥ इति च परमगुह्यं सर्वसिद्धान्तसिद्धं सपदि निगदितं ते शास्त्रपुञ्जं विलोक्य ॥ जगति शुककथातो निर्मलं नास्ति किंचित् पिब परसुखहेतोर्द्वादशस्कन्धसारम् ॥१०२॥ एतां यो नियततया शृणोति भक्त्या यश्चैनां कथयति शुद्धवैष्णवाग्रे ॥ तौ सम्यग्विधिकरणात् फलं लभेते याथार्थ्यान्नहि भुवने किमप्यसाध्यम् ॥१०३ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये श्रवणविधिकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ॥ ॥ ॥

शुद्ध वैष्णवोंके आगे सुनाते हैं वे वक्ता श्रोता सम्यक् विधान करनेसे सम्पूर्ण फलको प्राप्त होते हैं सत्य वचनसे संसारमें कोई वस्तुभी असाध्य नहीं हैं ॥ १०३ ॥ इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखंडे श्रीमद्भागवतमाहात्म्ये कान्यकुब्जवंशोद्भवसुखानंदमिश्रसूनुपण्डितज्वालाप्रसादकृतभाषाटीकायां श्रवणविधिकथनं नाम षष्ठोध्यायः ॥ ६ ॥ शुभमस्तु ॥ ॥ भाषाटीकायुतं श्रीमद्भागवतमाहात्म्यं समाप्तम् ॥ ॥ ॥

कवित्त–नित्यप्रति प्रीतिसहित नेम व्रत धारणकर राख विश्वास सुनै कथा मन लगायकै । ताके सब पापके पहार हू बिलाय जात होय तब पवित्र ब्रह्मतीर्थमें न्हायकै ॥ कैसोहू
कार्य अभिलाष हिये माहिं धरो तुरत होय सिद्ध सुख पाइये अघायकै । ज्वालाप्रसाद पाठ कीजिये सदैव जो धर्म अर्थ काम मोक्ष लीजिये बुलायकै ॥ १ ॥

दोहा– श्रीव्रज चन्द्र मुकुन्दको, ध्यान हृदयमें लाय । कियो महातमको तिलक, यदुपति रहैं सहाय ॥

एतच्छ्रीभागवतमाहात्म्यं भाषाटीकासमेतं श्रीकृष्णदासात्मजेन गङ्गाविष्णुना स्वकीये लक्ष्मीवेंकटेश्वरयन्त्रालयेंकितं, शके १८१६, संवत् १९५१.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना– गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास “ लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर ” छापाखाना. कल्याण–मुम्बई.

दिकोंने नारदजीको कब सुनाई यह हमारा संदेह दूर करो ॥९३॥ सूतजी बोले कृष्णचंद्रके परलोक जानेके तीस वर्ष उपरान्त भादोके शुक्ल पक्षकी
नौमीके शुकदेवजीने कथा राजा परीक्षितको सुनाई ॥ ९४ ॥ परीक्षितको कथा सुनानेके दोसो वर्ष उपरान्त आषाढके शुक्ल पक्षमें गोकर्णने कथाका
आरम्भ कियाथा ॥९५॥ तिस्सेभी फिर कलियुगके तीनसो वर्ष व्यतीत होनेमै कार्तिकके शुक्ल पक्षमें सनकादिकोंने कथा सुनाई॥९६॥हे पापरहित!
जो कुछ तुमने पूछा सो मैंनें सुनाया कलियुगमें यह भागवतकी वार्ता संसाररोगकी नाश करनेवाली है ॥ ९७ ॥ कृष्णकी प्यारी सब पापोंकी
नाश करनेहारी मुक्तिकी कारण भक्तिकी लीला करानेहारी यह कथा है जो जो महात्मा आदरसे इस कथाको पान करते हैं उनको और तीर्थोंके

सूत उवाच ॥ आकृष्णनिर्गमात् त्रिंशद्वर्षाधिकगते कलौ ॥ नवमीतो नभस्ये च कथारम्भं शुकोऽकरोत् ॥९४॥
परीक्षिच्छ्रवणान्ते च कलौ वर्षशतद्वये ॥ शुद्धे शुचौ नवम्यां च धेनुजोऽकथयत् कथाम् ॥ ९५ ॥ तस्मादपि कलौ
प्राप्ते त्रिंशद्वर्षगते सति ॥ ऊचुरूर्जे सिते पक्षे नवम्यां ब्रह्मणः सुताः ॥ ९६ ॥ इत्येतत ते समाख्यातं यत् पृष्टोऽहं
त्वयाऽनघ ॥ कलौ भागवती वार्ता भवरोगविनाशिनी ॥ ९७ ॥ कृष्णप्रियं सकलकश्मलनाशनं च मुक्त्यैकहेतु-
मिह भक्तिविलासकारि ॥ सन्तः कथानकमिदं पिबतादरेण लोके हितार्थपरिशीलनसेवया किम् ॥ ९८ ॥ स्वपुरु-
षमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ॥ परिहर भगवत्कथासु मत्तान् प्रभुरहमन्यनृणां न
वैष्णवानाम् ॥ ९९ ॥ असारे संसारे विषयविषसङ्गाकुलधियः क्षणार्धं क्षेमार्थं पिबत शुकगाथाऽतुलसुधाम्॥किमर्थं
व्यर्थं भो व्रजत कुपथे कुत्सितकथे परीक्षित् साक्षी यच्छ्रवणगतमुक्त्युक्तिकथने ॥ १०० ॥

सेवन करनेकी क्या आवश्यकता है ॥ ९८ ॥ यम राजने पाश हाथमें लिये अपने दूतोंके कानमें यह बात कही कि जो भगवत्कथा रसमें मत्त हैं तुम
उनके निकट कभी मत जाइयो मैं औरोंका निकर्ता हूं परन्तु वैष्णवोंका नहीं हूं वे प्रतिदिन भागवतकी सेवा करते हैं ॥ ९९॥इस असारसंसारमें विषयरूपी विषके संसर्गसे व्याकुल बुद्धिवालोंको योग्य है कि आधे क्षणको तौ अतुल अमृतरूपी शुकदेवजीकी गाथाको कल्याणके निमित्त पान करो
अरे कुत्सित कथाके कुमार्गमें क्यों व्यर्थ फिरते हो इस कथाके श्रवण करनेमें निश्चय मुक्ति होती है इस वार्त्तामें महाराज परीक्षित् साक्षी हैं ॥१००॥

देश कालके योग्य श्रद्धा द्रव्य पात्र पूजनका वहुत विस्तार श्राद्धमें करनेसे स्वजनोंके अपर्णकी इच्छासे श्राद्ध सुंदर नही होताहै ॥ ४ ॥ देशकालमें सत्पात्र प्राप्त होय तौ जो शामाक आदि मुनि अन्न भगवानको निवेदन कर श्रद्धासे विधि सहित ब्राह्मणको भोजन करावै तो वह अन्न अक्षय और कामनाका पूरण करनेवाला होजाताहै ॥ ५ ॥ देवता, ऋषि, पितृजीवमात्र और स्वजनोंको अन्नका विभाग करके दे और फिर अपने निमित्त ले और इन सबको ईश्वररूपही जान्ना ॥ ६ ॥ धर्मके तत्वको जानवेवारो मांससे श्रद्धा न करें न खाय, मुनियोंके अन्नसे नारायण प्रसन्न होयहैं कुछ पशुकी हिंसासें नहीं प्रसन्न होयहै ॥ ७ ॥ सद्धर्मकी इच्छा करनेवारे मनुष्यनको याते परे धर्म नही है कि मन वाक शरीरसे किसी जीवकों दंड न

देशकालोचिता श्रद्धा द्रव्यपात्रार्हणानि च ॥ सम्यग् भवन्ति नैतानि विस्तरात् स्वजनार्पणात् ॥४॥ देशे काले च संप्राप्ते मुन्यन्नं हरिदैवतम् ॥ श्रद्धया विधिवत् पात्रे न्यस्तं कामधुगक्षयम् ॥ ५ ॥ देवर्षिपितृभूतेभ्य आत्मने स्वजनाय च ॥ अन्नं संविभजन् पश्येत् सर्वं तत्पुरुषात्मकम् ॥ ६ ॥ न दद्यादामिषं श्राद्धे न चाद्याद्धर्मतत्त्ववित् ॥ मुन्यन्नैः स्यात् परा प्रीतिर्यथा न पशुहिंसया ॥ ७ ॥ नैतादृशः परो धर्मो नृणां सद्धर्ममिच्छताम् ॥ न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य सः ॥ ८ ॥ एके कर्ममयान् यज्ञान् ज्ञानिनो यज्ञवित्तमाः ॥ आत्मसंयमनेऽनीहा जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ ९ ॥ द्रव्ययज्ञैर्यक्ष्यमाणं दृष्ट्वा भूतानि बिभ्यति ॥ एष माऽकरुणो हन्यादतज्ज्ञो ह्यसुतृप् ध्रुवम् ॥ १० ॥ तस्माद् दैवोपपन्नेन मुन्यन्नेनापि धर्मवित् ॥ संतुष्टोऽहरहः कुर्यान्नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ॥ ११ ॥ विधर्मः परधर्मश्च आभास उपमा छलः ॥ अधर्मशाखाः पञ्चेमा धर्मज्ञोऽधर्मवत् त्यजेत् ॥ १२ ॥

दैनो ॥ ८ ॥ आचार्य यज्ञवेत्ता ज्ञानी कर्ममय यज्ञनको आत्माके संयम करवेवारे ज्ञानदीपित मनमें सब चेष्टा होम देहै ॥ ९ ॥ द्रव्ययज्ञोंसे जब यज्ञ किया जाताहै तब उसे देखकर सब जीव डरैहैं कि निर्दयी प्राणपोषक अज्ञानी इन सब जीवनकूं मारैगे ॥ १० ॥ ताते दैवसें प्राप्त मुनि अन्नसें जो आजकाल हम तुम सब पावैहैं नित्यनैमित्तकी क्रिया कर संतुष्ट रहै ॥ ११ ॥ विधर्म परधर्म आभास उपमा छल ये पांच अधर्मकी शाखा है, सो धर्म जाननेवारो अधर्मकी नाई त्यागै ॥ १२ ॥

धर्मकी बाधाको विधर्म कहैंहै, औरको कह्यो परमधर्म है, उपधर्म पाषंड है दंभ अथवा धर्मशास्त्रोंके वाक्यौंका उलटा अर्थ करतेहैं वह छल है
॥ १३ ॥ जो पुरुषौंने अपनी इच्छासें करो है वो आभासहै, ये सब आश्रमोंसें पृथक है जो स्वभावविहितधर्म है वो शांतिके अर्थ सबकों योग्य है
॥ १४ ॥ निर्धन धर्मके अर्थ, यात्राके अर्थ धनकी अपेक्षा न करै कारण कि अजगर वृत्तिवालेको सब यात्रा और धर्मोंका फल घर बैठे मिल
जाताहै ॥ १५ ॥ संतोषी अचेष्टावान् आत्मारामको जो सुख है, सो काम लोभसे धनकी चेष्टा करकै सब दिशानमें दौडनैवालेको वो आनंद नहीं
है ॥ १६ ॥ जिसका सदा संतुष्ट मन है उसकूं सब दिशानमें सुख है, जैसे रेत कांटे आदि बचानेंको पगमें जोडा सुखदायक है ॥ १७ ॥ वह कौनसी

धर्मबाधो विधर्मः स्यात् परधर्मोऽन्यचोदितः ॥ उपधर्मस्तु पाखण्डो दम्भो वा शब्दभिच्छलः ॥ १३ ॥ यस्त्विच्छया कृतः पुंभिराभासो ह्याश्रमात् पृथक् ॥ स्वभावविहितो धर्मः कस्य नेष्टः प्रशान्तये ॥ १४॥ धर्मार्थमपि नेहेत यात्रार्थं वाऽधनो धनम्॥अनीहानीहमानस्य महाहेरिव वृत्तिदा॥ १५॥संतुष्टस्य निरीहस्य स्वात्मारामस्य यत् सुखम्॥
कुतस्तत् कामलोभेन धावतोऽर्थेहया दिशः ॥ १६॥ सदा संतुष्टमनसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ शर्कराकण्टकादिभ्यो
यथोपानत्पदः शिवम् ॥ १७॥ संतुष्टः केन वा राजन् न वर्तेतापि वारिणा ॥ औपस्थ्यजैह्वयकार्पण्याद् गृहपालायते
जनः ॥ १८॥ असंतुष्टस्य विप्रस्य तेजो विद्या तपो यशः ॥ स्रवन्तीन्द्रियलौल्येन ज्ञानं चैवावकीर्यते ॥ १९ ॥ कामस्यान्तं च क्षुत्तृड्भ्यां क्रोधस्यैतत्फलोदयात् ॥ जनो याति न लोभस्य जित्वा भुक्त्वा दिशो भुवः ॥ २० ॥

वस्तु है जिस्सै सन्तोषी पुरुष अपना कार्य सिद्ध नहीं करसक्ता और तौ क्या केवल जलपात्र लेकर उसके सामने उपस्थित हो तौ उसीसै अपना
कार्य सिद्धकर लेताहै और असन्तोषी उपस्थ इन्द्रिय और जिव्हाके भोगार्थ श्वानकी समान घर घर अपमान कराता फिरता है ॥ १८ ॥ जो ब्राह्मण
संतोष नही करैं वाकी इंद्रियोंकी चपलताके मारे तेज विद्या तप यश सब नाश होजाय हैं और ज्ञान सब जातो रहे है ॥ १९ ॥
कामको अंत भूखे प्यासे मरनेंसें होय है क्रोधका अन्त शत्रुओंके जीतनैसै होताहै परन्तु लोभका अन्त किसी प्रकारसै नही होता
चाहै कुबेरका धन और सब पूर्ण पृथ्वी जीतकर जय मिलजाय ॥ २० ॥

हे राजन्! बहुज्ञानी संशय काटनवारे सभाके पति बहुत पंडितलोग संतोष न करनेसे नरकमें चले गए ॥ २१ ॥ संकल्प न करनेसे तो कामकों जीते काम त्यागसे क्रोध जीते, अनर्थ समझके धनकी चाह न करै, ईश्वरतत्त्व याद करकै लोभ भय जीते ॥ २२ ॥ ब्रह्मविद्यासे शोक मोह जीते, महात्मानकी उपासनासे दंभ जीते योगके विघ्न जान मोह न करै, शरीरमें न चेष्टा करकै हिंसाकों जीतै ॥ २३ ॥ कृपा करकै सब जीवनको दुःख दूर करै समाधि करकै भाग्य छोडै, योग वीर्यसे जीवात्माको दुःख त्यागै, निद्राको सात्विक आहारसे जीतै ॥ २४ ॥ सतोगुणसे रज तम जीतै, शांतिसे सतोगुण जीतै, ये सब पुरुष गुरुकी भक्ति करकै अनायाससै जीतै ॥ २५ ॥ जाको साक्षात् भगवान् ज्ञानदीपदाता गुरुमै ये भाव है कि ये

पण्डिता बहवो राजन् बहुज्ञाः संशयच्छिदः ॥ सदसस्पतयोऽप्येके असंतोषात् पतन्त्यधः ॥२१॥ असंकल्पाज्जयेत् कामं क्रोधं कामविवर्जनात् ॥ अर्थानर्थेक्षया लोभं भयं तत्त्वावमर्शनात् ॥ २२ ॥ आन्वीक्षिक्या शोकमोहौ दम्भं महदुपासया ॥ योगान्तरायान् मौनेन हिंसां कायाद्यनीहया ॥ २३ ॥ कृपया भूतजं दुःखं दैवं जह्यात् समाधिना ॥ आत्मजं योगवीर्येण निद्रां सत्वनिषेवया ॥ २४ ॥ रजस्तमश्च सत्त्वेन सत्त्वं चोपशमेन च ॥ एतत् सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत् ॥ २५ ॥ यस्य साक्षाद्भगवति ज्ञानदीपप्रदे गुरौ ॥ मर्त्यासद्धीः श्रुतं तस्य सर्वं कुञ्जरशौचवत् ॥ २६ ॥ एष वै भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः ॥ योगेश्वरैर्विमृग्याङ्घ्रिर्लोको वै मन्यते नरम् ॥ २७ ॥ षड्वर्गसंयमैकान्ताः सर्वा नियमचोदनाः ॥ तदन्ता यदि नो योगानावहेयुः श्रमावहाः ॥२८॥ यथा वार्त्तादयो ह्यर्था योगस्यार्थं न बिभ्रति ॥ अनर्थाय भवेयुस्ते पूर्तमिष्टं तथासतः ॥ २९ ॥

मनुष्य है उसका सब पढा लिखा हार्थीके स्नानकी समान है जैसे हाथी स्नानकर बाहर निकरो फेर मूडपर धूर डारी ॥ २६ ॥ गुरुरूप साक्षात् भगवान् प्रधान पुरुष ईश्वर है, योगेश्वरोंसे जिनको चरण ढूंडै जांय है, तिनें गुरुकों लोग संसारी मनुष्य मानै हैं ॥ २७ ॥ षड्वर्ग अर्थात् छः इन्द्रियौंके जीतनेको सब नियम और सब आज्ञा हैं, उनके नाशके लिये जो ये योग न करै तो सब परिश्रम है ॥ २८ ॥ जैसे कृषि व्यापार आदिके फल मोक्ष जो कि योगका फल है उसै नहीं देसक्के किन्तु उससै विपरीत फल जन्म मरणादि देते हैं इसी प्रकार बहिर्मुख प्राणीके निमित्त वापी कूपादि

निर्माणरूप कर्म जन्म मरण देते हैं ॥ २९ ॥ चित्तके जीतनेमें मन करै तो सब परिग्रहसे संग त्यागै इकलो रहै एकांतमें बैठे भिक्षान्न खावै थोडो खावै ॥ ३० ॥ हे राजन् ! पवित्र देशमें समान आसनपर बैठे, स्थिर समान सुखदायक आसनपर सूधो अंगकर बैठ ॐकारको जप करे ॥ ३१ ॥ प्राण अपान वायुको जीतै, पूरक कुंभक रेचक करकै जबतक मन सब कामनकों त्यागै तबतक अपनी नाकके अग्रभागको देखकर जप करतो रहे “ जपतो नास्ति पातकम् ” (१) ॥ ३२ ॥ अनेक कामहत घूमतो भयो मन जहां जहां जाय वहांसे रोकके हृदयमें धीरे धीरे बुद्धिवान् रोकै ॥ ३३ ॥

यश्चित्तविजये यत्तः स्यान्निःसङ्गोऽपरिग्रहः ॥ एको विविक्तशरणो भिक्षुर्भिक्षामिताशनः ॥ ३० ॥ देशे शुचौ समो
राजन् संस्थाप्यासनमात्मनः ॥ स्थिरं समं सुखं तस्मिन्नासीतर्ज्वङ्ग ओमिति ॥ ३१ ॥ प्राणापानौ सन्निरुन्ध्यात् पूरकुम्भकरेचकैः ॥
यावन्मनस्त्यजेत् कामान् स्वनासाग्रनिरीक्षणः ॥ ३२ ॥ यतो यतो निःसरति मनः कामहतं भ्रमत् ॥
ततस्तत उपाहृत्य हृदि रुन्ध्याच्छनैर्बुधः ॥ ३३ ॥ एवमभ्यसतश्चित्तं कालेनाल्पीयसा यतेः ॥ अनिशं तस्य निर्वाणं
यात्यनिन्धनवह्निवत् ॥ ३४ ॥ कामादिभिरनाविद्धं प्रशान्ताखिलवृत्ति यत् ॥ चित्तं ब्रह्मसुखस्पृष्टं नैवोत्तिष्ठेत
कर्हिचित् ॥ ३५ ॥ यः प्रव्रज्य गृहात् पूर्वं त्रिवर्गावपनात् पुनः ॥ यदि सेवेत तान् भिक्षुः स वै वान्ताश्यपत्रपः ॥ ३६ ॥

ऐसे अभ्यास करनेवारे यतिको चित्त थोडेसे कालमैं निरंतर सुखको प्राप्त हो जाय है, जैसे सब काष्ठ भस्म हो जाय तब अग्नि शांत हो जाती है ॥ ॥ ३४ ॥ कामबन्धनसे अविद्ध सब वृत्तियौंसे शांत होकर जो ब्रह्मानन्दको प्राप्त हो गया फिर ऐसा चित्त कभी ईश्वरसे पृथक् नहीं होता ॥ ३५ ॥ त्रिवर्ग विना साधे जो पहिलेई संन्यासी हो जाय और फिर त्रिवर्गका सेवन करनै लगै तौ वह उगलेहुएको खानैवाला है ॥ ३६ ॥

---

(१) चौपाई ॥ “ जपसे नारद सिद्ध कहाए ॥ जपसे देव विदितहुइगाए ॥ जपसे शुक मुनि संत कहाए ॥ जपसे सनकादिक सब पाए ॥ जपसे व्यास योग सब जानो ॥ जपसे वाल्मीक सब मानो ॥ सब फल जपसे मिलि है भाई ॥ चार वेदमें यह सब गाई ॥ २ ॥ ”

जिन्होंने इस देहको विष्ठा कीडा तथा भस्मरूप अनात्मा और मरणधर्मा माना है वही पीछे अभिमानमें आकर अज्ञानी हो इसै अपना मान इस शरीरकी प्रशंसा कराते हैं ॥ ३७ ॥ गृहस्थ क्रिया कर्मको न छोडै, संन्यासी व्रत न छोडे, तपस्वी गांवमें न वसै, भिखारी इंद्रिये चपल न राखै॥३८॥ ऐसे लोग आश्रमोंके नाशक है और सत्य आश्रमोंका अनुकरण करते हैं देवमायासे मोहित इन मूर्खोंपरभी कृपा करनी चाहिये ॥ ३९ ॥ परम ज्ञानसै विषय वासना दूर कर जो आत्माको जान्ते है फिर वह किस कारण लोलुप लंपट बनकर शरीरका पालन करते हैं ॥ ४० ॥ मुनि लोग शरीरकूं रथ इंद्रियोंको घोडे मनको रश्मी शब्दादि मात्र रथके चलनेके मार्ग विषय उसके पहुंचनेके देश बुद्धिको सारथी चित्तको सबका बंधन

यैः स्वदेहः स्मृतो नात्मा मर्त्यो विट्कृमिभस्मसात् ॥ त एनमात्मसात् कृत्वा श्लाघयन्ति ह्यसत्तमाः ॥ ३७ ॥ गृहस्थस्य क्रियात्यागो व्रतत्यागो बटोरपि ॥ तपस्विनो ग्रामसेवा भिक्षोरिन्द्रियलौल्यता ॥ ३८ ॥ आश्रमापसदा ह्येते खल्वाश्रमविडम्बकाः ॥ देवमायाविमूढांस्तानुपेक्षेताऽनुकम्पया ॥ ३९ ॥ आत्मानं चेद्विजानीयात् परं ज्ञानधुताशयः ॥ किमिच्छन् कस्य वा हेतोर्देहं पुष्णाति लम्पटः ॥ ४० ॥ आहुः शरीरं रथमिन्द्रियाणि हयानभीषून् मन इन्द्रियेशम् ॥ वर्त्मानि मात्रा धिषणां च सूतं सत्त्वं बृहद्बन्धुरमीशसृष्टम् ॥ ४१ ॥ अक्षं दशप्राणमधर्मधर्मौ चक्रेऽभिमानं रथिनं च जीवम् ॥ धनुर्हि तस्य प्रणवं पठन्ति शरं तु जीवं परमेव लक्ष्यम् ॥ ४२ ॥ रागो द्वेषश्च लोभश्च शोकमोहौ भयं मदः ॥ मानोऽवमानोऽसूया च माया हिंसा च मत्सरः ॥ ४३ ॥ रजः प्रमादः क्षुन्निद्रा शत्रवस्त्वेवमादयः ॥ रजस्तमःप्रकृतयः सत्त्वप्रकृतयः क्वचित् ॥ ४४ ॥ यावन्नृकायरथमात्मवशोपकल्पं धत्ते गरिष्ठचरणार्चनया निशातम् ॥ ज्ञानासिमच्युतबलो दधदस्तशत्रुः स्वाराज्यतुष्ट उपशान्त इदं विजह्यात् ॥ ४५ ॥

कहते हैं यह अद्भुत रथ ईश्वरका बनाया है ॥ ४१ ॥ दश प्राण अक्ष, अधर्म धर्म दो पैये जीव अभिमानी रथमें बैठो है, धनुष प्रणव वाणरूप जीव है परमेश्वर लक्ष्य है ॥ ४२ ॥ राग द्वेष लोभ शोक मोह भय मद मान अपमान निंदा माया हिंसा मत्सरता ॥ ४३ ॥ रजोगुण प्रमाद भूख नींद रजतमयुक्त प्रकृति इसको शत्रु है परन्तु किसी समय सतोगुणी प्रकृतिभी शत्रु हो जाती है ॥ ४४ ॥ जिस समयतक इस नरशरीररथके इन्द्रियादिक अंग और आत्मा अपने वशमें है तबतक गुरु महात्माके चरणारविंदकी कृपासे तीक्ष्ण ज्ञानरूप खड्ग लेकर भगवानके बलसे शत्रुओंको मार

110

प्रसन्न और शान्त हो परमात्माकी शरण ले मोक्षरूप यशका प्रकाश कर इस देहको त्याग दे ॥ ४५ ॥ जो ऐसे न करैगो तो प्रमत्त या शरीररूप रथको खोटी इंद्रिये घोडे गाडीवान् विषयरूप चोरनके कुमार्गमें पटक देंगे, वेही चोर घोडा और गाडीवानसमेत याकूं अंधतम संसाररूप कूपमें जहां महामृत्युभय है पटकदेहैं ॥ ४६ ॥ वैदिक दो कर्म है एक तो प्रवृत्तिमार्ग और दूसरा निवृत्तिमार्ग प्रवृत्तिमार्गसें तो संसारमें आनो जानो होयहै, और निवृत्तिमार्गसे मोक्ष प्राप्त होयहै ॥ (१) ॥४७॥ हिंसा यज्ञ, द्रव्यमय यज्ञ, काम्य यज्ञ, अग्निहोत्रादि ये सब अशांतिदाता है, अमावस पूर्णिमा चातुर्मास्य व्रत, पशुयाग सुतयाग ॥ ४८ ॥ वैश्वदेव बलिदानादि कर्म जो पदार्थोंके उपयोगसे होते हैं इष्ट कहाते है और देवालय वापी कूप तडगादि कर्मोंको पूर्त कहते हैं यही सकाम किये जाय तो प्रवृत्त कहाते हैं ॥ ४९ ॥ द्रव्ययज्ञका सूक्ष्म फल होता है इसका करनेवाला पुरुष चरुपुरोडाशादिके किंचित् मात्र उत्पन्न हुए शरीरको धारण करकै धूमके समीप प्राप्त होता है वहांसे रात्रि दिवसके सन्मुख हो कृष्ण पक्षके दिवसके निकट जाता है वहांसे दक्षिणायनके पास होकर सोमके निकट जाता है जब वहां पुण्य क्षीण हो जाता है तब वृष्टिरूप चन्द्रकी किरणोंके द्वारा ओषधि लता और अन्नमें आता है ॥ ५० ॥

नो चेत् प्रमत्तमसदिन्द्रियवाजिसूता नीत्वोत्पथं विषयदस्युषु हि क्षिपन्ति ॥ ते दस्यवः सहयसूतममुं तमोऽन्धे संसारकुप उरुमृत्युभये क्षिपन्ति ॥ ४६ ॥ प्रवृत्तं च निवृत्तं च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥ आवर्तेत प्रवृत्तेन निवृत्तेनाश्नुतेऽमृतम् ॥ ४७ ॥ हिंस्रं द्रव्यमयं काम्यमग्निहोत्राद्यशान्तिदम् ॥ दर्शश्च पूर्णमासश्च चातुर्मास्यं पशुः सुतः ॥ ४८ ॥ एतदिष्टं प्रवृत्ताख्यं हुतं प्रहुतमेव च ॥ पूर्तं सुरालयारामकूपाजीव्यादिलक्षणम् ॥ ४९ ॥ द्रव्यसूक्ष्मविपाकश्च धूमो रात्रिरपक्षयः ॥ अयनं दक्षिणं सोमो दर्श ओषधिवीरुधः ॥ ५० ॥

---

[१] "॥चौपाई ॥ मोक्ष उपाय यज्ञ है भाई ॥ मोक्ष उपाय तपस्या गाई ॥ मोक्ष मिलनकी यहै उपाई ॥ दान मान पूजा कर भाई ॥ प्रतिमापूजक मोक्षको जावै ॥ प्रतिमानिंदक सब दुख पावै ॥ मोक्षके दाता सब संप्रदाया ॥ वेद शास्त्रमें यह सब गाया ॥ संध्यावंदन मोक्ष उपाई ॥ पंच महायज्ञ मोक्ष कराई ॥ यह तब शारीरक भाष्यमें पाई ॥ मन मानें तहां देखो भाई ॥ अष्टादश पुराणमें गाई ॥ सबको सार सकलहित भाई ॥ २ ॥"

हे नृप ! अन्नसे वीर्यमें आताहै फिर जन्म लेताहै इस क्रमसें जीव भूलोकमें आताहै इसीका नाम पितृयान मार्ग हैं ॥ ५१ ॥ जन्मसें लेकै मरण पर्यंत संस्कारसे संस्कृत ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यको यह प्रवृत्ति मार्गका फल है अब निवृत्ति मार्गकौ कहतेहैं महात्मा लोक इन्द्रियोंके व्यापाररूप इष्टापूर्तादि कर्मोंको विज्ञानसे दीप्तिवाली इन्द्रियोंमें हवन करदेते हैं यह धर्म इन्द्रियोंसै भिन्न नही है ऐसा समझतेहैं ॥ ५२ ॥ मनके वेगमें इन्द्रियें लीन करै, वाणीमें वैकारिक मनको लगावै, वाणीकों वर्णोंके समूहमें, वर्णसमूह तममें तमकौ ॐकार स्वरमें लगावै ॐकारको बिंदुमें बिंदुको नादमें नादकूं प्राणमें प्राणकूं ब्रह्ममें लगावै ॥ ५३ ॥ इसप्रकार ज्ञान निष्ठावाला प्राणी प्रथम अग्निके निकट फिर सूर्यके पास वहांसे दिवसके पास फिर सूर्यदेवके निकट वहांसे दिवसके समक्ष वहांसे शुक्लपक्षाभिमानी देवके निकट वहांसे ब्रह्माजीके साम्ने जाताहै वहां कुछ समयतक भोग भोग स्थूल देहके उपाधिवाले विश्वमें जाताहै फिर स्थूल देहको सूक्ष्ममें लीन कर तेजमें जाताहै फिर सूक्ष्मको कारणमें लयकर उसकी उपाधिवाले प्राज्ञमें कारण शरीरको तीनो शरीरोमें व्यापक साक्षस्वरूपमें लीन करकै चौथा सबसे अलग होजाताहै सब दृश्य पदार्थोंका लय होनेसे शुद्ध चित्त होकर मोक्ष होजाताहै॥५४॥ इसकों देवयान कहैं है क्रमसे होंयहोयकर आत्मज्ञानी महाशांत ईश्वरमें स्थितहो वहांसे फिर नही आता ॥ ५५ ॥ वेदके कहे भए ये देवयान पितृदेवनके स्थान शास्त्रके द्वारा जाने जायहैं, जो ये जानेहै सो देहमें स्थित होकरभी मोहकों प्राप्त नहीं होयहै ॥ ५६ ॥

अन्नं रेत इति क्ष्मेश पितृयानं पुनर्भवः ॥ एकैकश्येनानुपूर्वं भूत्वा भूत्वेह जायते ॥५१॥ निषेकादिश्मशानान्तैः संस्कारैः संस्कृतो द्विजः ॥ इन्द्रियेषु क्रियायज्ञान् ज्ञानदीपेषु जुह्वति॥५२॥इन्द्रियाणि मनस्यूर्मौ वाचि वैकारिकं मनः॥ वाचं वर्णसमाम्नाये तमोङ्कारे स्वरे न्यसेत् ॥ ५३ ॥ ओङ्कारं बिन्दौ नादे तं तं तु प्राणे महत्यमुम् ॥ अग्निः सूर्यो दिवा प्राह्णः शुक्लो राकोत्तरं स्वराट् ॥ विश्वश्च तैजसः प्राज्ञस्तुर्य आत्मा समन्वयात् ॥५४॥ देवयानमिदं प्राहुर्भूत्वा भूत्वानुपूर्वशः ॥ आत्मयाज्युपशान्तात्मा ह्यात्मस्थो न निवर्तते ॥ ५५ ॥ य एते पितृदेवानामयने वेदनिर्मिते ॥ शास्त्रेण चक्षुषा वेद जनस्थोऽपि न मुह्यति ॥ ५६ ॥

जनोंके आदि अंतमें वास करनेहारा भोग्य भोक्ता पर अवर बाहर भीतर ज्ञान ज्ञेय वचन वाच्य तमरूप ज्योती इन सबको ज्ञानी पुरुष अपनेसे भिन्न नहीं समझते जिस्से मोह हो ॥५७॥ वृक्षकी छाया कुछ वृक्ष नहीं है तर्कना करनेसे आभास सब प्रकारसे अवास्तविक पाई जाती है तौभी जैसे कोई पदार्थ रूपसे माना जाताहै ऐसे संसार किसी इन्द्रियसे जाना नहीं जाता जैसे वृक्षकी छाया देखनेमें आती परन्तु वह कुछ है नहीं केवल मनका विकार है क्योंकि कभी वृक्षके नीचे होती है कभी दूर होती है ऐसा संसारभी किसी प्रकार निश्चय नहीं होसक्ता तौभी कोई एक पदार्थ है ऐसी कल्पना की जायगी ॥ ५८ ॥ पृथ्वीआदि पंचभूतोंकी छाया (ऐक्यावलंबन) देहादिक संघात आरम्भ परिणाममेंसे इनमें एकभी नही होसक्ता जैसै वृक्षोंके संघातसे वन होताहै वैसे पंचभूतोंके संघातसे नहीं है कारण कि एकदेशके आकर्षणसे सब देह आकर्षित नहीं हो सक्ते एक वृक्ष आकर्षणसे सब बन नहीं खिचसक्ता ऐसा विकार अर्थात् प्रारब्ध अवयवभी अथवा परिणामभी नहीं है कारण कि वह अवयवसे अतिशय पृथक् नहीं है और किसीसे मिलकरभी नहीं रहता इस्से देहादि सब पदार्थ मिथ्या जान्ना ॥ ५९ ॥ देहादिक जिस प्रकार मिथ्या है ऐसेही उनके हेतु पृथ्वी आदिभी मिथ्या है कारण कि सब पंचभूत अवयवी हैं और अवयवों विना कुछ भिन्न निरूपण हो ऐसाभी नही इसकारण यह अवयवी कारणसे कुछ पृथक् पदार्थ नहीं है इसप्रकार अवयवीके असत् और मिथ्या होनेपर अवयवी असत् और मिथ्या होगये किसी प्रकार सिद्ध नहीं हो सके यद्यपि सत्य रीतिसे जो विचार किया जाय तौ परम कारणरूप परमात्माके और कोई पदार्थ सत् नहीं और जब सब पदार्थ असत् हुए तौ उनमें भेद मानना वृथा है अविद्याकी निवृत्तितक भेद रहताहै ॥ ६० ॥ और अवयवीकी सत्ता स्वीकार कर

आदावन्ते जनानां सद्बहिरन्तः परावरम् ॥ ज्ञानं ज्ञेयं वचो वाच्यं तमो ज्योतिस्त्वयं स्वयम् ॥ ५७ ॥ आबाधितोऽपि
ह्याभासो यथा वस्तुतया स्मृतः ॥ दुर्घटत्वादैन्द्रियकं तद्वदर्थविकल्पितम् ॥ ५८ ॥ क्षित्यादीनामिहार्थानां छाया न
कतमापि हि ॥ न संघातो विकारोऽपि न पृथङ् नान्वितो मृषा ॥ ५९ ॥ धातवोऽवयवित्वाच्च तन्मात्रावयवैर्विना ॥ न
स्युर्ह्यसत्यवयविन्यसन्नवयवोऽन्ततः ॥ ६० ॥ स्यात् सादृश्यभ्रमस्तावद विकल्पे सति वस्तुनः ॥ जाग्रत्स्वापौ
यथा स्वप्ने तथा विधिनिषेधता ॥ ६१ ॥

आगमापायी बाल्यादि अवस्थामें यह वही यज्ञदत्त है ऐसा प्रत्यभिमान क्यों होताहै तौ यह समझो कि अविद्याका विकल्प रहनेसे पहले तौ आरोप सादृश्यताके हेतु यह वह नहीं है ऐसा ऐसा भ्रम होता है अविद्यातक यह भ्रम है पश्चात् नहीं जब सब मिथ्या है तौ शास्त्रकी विधि निषेधता कैसे रहसक्तीहै यहभी संदेह मतकरो जैसे स्वप्नमें कभी जाग्रत और निद्राकी व्यवस्था होती है वैसीही शास्त्रकी विधि निषेध हैं ॥ ६१ ॥ भावाद्वैत क्रियाद्वैत द्रव्याद्वैत विचार करकै मननशील योगी आत्मतत्वके अनुभवसे जाग्रदादि तीन अवस्थाओंका निवारण किया करताहै ॥ ६२ ॥ कार्य कारण वस्तुकी एकताका जो विचार है जैसे वस्त्र कोई पदार्थ नहीं पदार्थ सूत है ऐसेही जाग्रत कोई पदार्थ नही ब्रह्म मुख्य

भावाद्वैतं क्रियाद्वैतं द्रव्याद्वैतं यथात्मनः ॥ वर्तयन् स्वानुभूत्येह त्रीन् स्वप्नान् धुनुते मुनिः ॥ ६२ ॥ कार्यकारणवस्त्वैक्यमर्शनं पटतन्तुवत् ॥ अवस्तुत्वाद्विकल्पस्य भावाद्वैतं तदुच्यते ॥ ६३ ॥ यद् ब्रह्मणि परे साक्षात् सर्वकर्मसमर्पणम् ॥ मनोवाक्तनुभिः पार्थ क्रियाद्वैतं तदुच्यते ॥ ६४ ॥ आत्मजायासुतादीनामन्येषां सर्वदेहिनाम् ॥ यत् स्वार्थकामयोरैक्यं द्रव्याद्वैतं तदुच्यते ॥ ६५ ॥ यद् यस्य वा निषिद्धं स्याद् येन यत्र यतो नृप ॥ स तेनेहेत कर्माणि नरो नान्यैरनापदि ॥ ६६ ॥ एतैरन्यैश्च वेदोक्तैर्वर्तमानः स्वकर्मभिः ॥ गृहेऽप्यस्य गतिं यायाद् राजंस्तद्भक्तिभाङ् नरः ॥ ६७ ॥ यथा हि यूयं नृपदेव दुस्त्यजादापद्गणादुत्तरतात्मनः प्रभोः ॥ यत्पादपङ्केरुहसेवया भवानहारषीन्निर्जितदिग्गजः क्रतून् ॥ ६८ ॥

पदार्थ है यही भावना अद्वैताभाव है ॥६३॥ हे पार्थ! जो मन वाणी शरीरसे परब्रह्ममें साक्षात्सर्व कर्मका समर्पण करनेको क्रियाद्वैत कहें हैं॥६४॥ पुत्र स्त्री आप और सब देहधारीयोंमें जो अपने वह सब पंचभूतात्मकतासे एकरूप है और सबका भोक्ता एक परमेश्वर है उन सबका एक देखना द्रव्याद्वैत है॥६५॥जिस यत्नसै जिसके पाससै जिस स्थान पर जिस द्रव्यका जिस मनुष्यको शास्त्रने निषेध नहीं किया उस यत्नसै उसके पाससै उस स्थानपर उस द्रव्यसै वह मनुष्य यह यह कर्म करै जबतक आपत्तिकाल न हो तब तक इन कर्मोंको न छोड़ै ॥ ६६॥ हे राजन्! इन कर्मोंसै और वेदोक्त कर्ममें वर्तमान मनुष्य अपने कर्म करकै घरमें बैठाहुआभी मोक्ष हो जाताहै भक्तजनोंके कार्य भक्ति सिद्ध करतीहै ॥ ६७ ॥ हे राजन् ! आप कैसी कैसी

114

महाविपत्तियौंसै बचे यह सब श्रीकृष्णचंद्रकी कृपा थी और यहभी उन्हींके चरणकमलका प्रताप था जो आपने अनेक दिग्विजय किये और अपनी जय विख्यात करकै अनेक यज्ञ किये ॥ ६८ ॥ हम पहिले महाकल्पमें उपबर्हण नामक गंधर्व थे और गंधर्वोंमें मेरा आदर बहुत था ॥ ६९ ॥ रूप सुंदरता माधुर्य प्रियदर्शन और सुगन्धिके कारण सबमें मेरे दर्शनकी अभिलाषा थी स्त्रियौंको परम प्रिय और कामोद्दीपन करनेवालाथा और मुझसै अधिक कोई लम्पट नहींथा ॥ ७० ॥ एक समय देवयज्ञमें गंधर्व अप्सरानके गण सब श्रीहरिगाथा गायवेको विश्वके रचनेवारोने बुलाये ॥ ७१ ॥ हमभी स्त्रियोंकों लिये वा बातको जान वहां गए, तब विश्वरचकोने मेरी अवज्ञा देख शाप दीनो तुमने हमारे बीचमें ऐसी निर्लज्जता और अवज्ञा करी

अहं पुराऽभवं कश्चिद् गन्धर्व उपबर्हणः ॥ नाम्नाऽतीते महाकल्पे गन्धर्वाणां सुसंमतः ॥ ६९ ॥ रूपपेशलमाधुर्यसौगन्ध्यप्रियदर्शनः ॥ स्त्रीणां प्रियतमो नित्यं मत्तस्तु पुरुलम्पटः ॥ ७० ॥ एकदा देवसत्रे तु गन्धर्वाप्सरसां गणाः ॥ उपहूता विश्वसृग्भिर्हरिगाथोपगायने ॥ ७१ ॥ अहं च गायंस्तद्विद्वान् स्त्रीभिः परिवृतो गतः ॥ ज्ञात्वा विश्वसृजस्तन्मे हेलनं शेपुरोजसा ॥ याहि त्वं शूद्रतामाशु नष्टश्रीः कृतहेलनः ॥ ७२ ॥ तावद् दास्यामहं जज्ञे तत्रापि ब्रह्मवादिनाम् ॥ शुश्रूषयानुषङ्गेण प्राप्तोऽहं ब्रह्मपुत्रताम् ॥ ७३ ॥ धर्मस्ते गृहमेधीयो वर्णितः पापनाशनः ॥ गृहस्थो येन पदवीमञ्जसा न्यासिनामियात् ॥ ७४ ॥ यूयं नृलोके बत भूरिभागा लोकं पुनाना मुनयोऽभियन्ति ॥ येषां गृहानावसतीति साक्षाद् गूढं परं ब्रह्म मनुष्यलिङ्गम् ॥ ७५ ॥ स वा अयं ब्रह्म महद् विमृग्यं कैवल्यनिर्वाणसुखानुभूतिः ॥ प्रियः सुहृद् वः खलु मातुलेय आत्मार्हणीयो विधिकृद् गुरुश्च ॥ ७६ ॥

इस्सै तुमारी श्री नष्ट होय और तुम शूद्र होओ ॥ ७२ ॥ सोई हम एक ब्रह्मवादीकी दासीमें जन्म ले महात्मानके सत्संग और उनकी सेवा करकै श्रीब्रह्माके पुत्र भए ॥ ७३ ॥ पापनाश गृहस्थीनको धर्म तुमसे हमने वर्णन कीनो इनके करनेसै अनायास गृहस्थ वा पदवीको पहुचैहै जा पदवीको संन्यासी जायहै ॥ ७४ ॥ मनुष्यलोकमें तुम बडे बडभागी हो क्योंकि लोकनके पवित्र करवेवारे मुनि सब ओरसे तुह्मारे यहां आवैं है, और जिनके घरमें साक्षात् छिपेभए मनुष्यरूप धार परब्रह्म वसैहै ॥ ७५ ॥ सो ये परब्रह्म महात्मान करकै ढूंढे जायहै मोक्षके आनंदके सुखको अनुभवरू-

प हैं, सो तुह्मारे प्यारे सुहृद हैं मामाके पुत्र कहावैहै, निश्चय यह परमात्मा हैं पूजनीय सब विधिके करवेवारे सबके गुरु यही हैं ॥ ७६ ॥ जिनको साक्षात् स्वरूप शिव और ब्रह्मा इत्यादि अपनी बुद्धिके प्रभावसे ऐसाही है यह वर्णन नहीं करसक्ते उन प्रभुकी हमभी मौनी हो उपशमादि साधन और भक्तिसै पूजा अर्चा करतेहै सो ये यादवोंके पति अथवा भक्तनके पति श्रीकृष्णचंद्र हमपर प्रसन्न होओ ॥ ७७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि ये श्रीनारदजीको कह्यो वचन सुन राजा युधिष्ठिर बहुत प्रसन्न होय प्रेममें विव्हल होयकै श्रीकृष्णजी महाराजकी सब मिलकर पूजन करते भए ॥ ७८ ॥ श्री-

न यस्य साक्षात् भवपद्मजादिभी रूपं धिया वस्तुतयोपवर्णितम् ॥ मौनेन भक्त्योपशमेन पूजितः प्रसीदतामेष स सात्वतां पतिः ॥ ७७ ॥श्रीशुक उवाच ॥ इति देवर्षिणा प्रोक्तं निशम्य भरतर्षभः ॥ पूजयामास सुप्रीतः कृष्णं च प्रेमविह्वलः ॥ ७८ ॥ कृष्णपार्थावुपामन्त्र्य पूजितः प्रययौ मुनिः ॥ श्रुत्वा कृष्णं परं ब्रह्म पार्थः परमविस्मितः ॥ ॥७९॥ इति दाक्षायणीनां ते पृथग्वंशाः प्रकीर्तिताः ॥ देवासुरमनुष्याद्या लोका यत्र चराचराः ॥८०॥ इति श्रीभागवते महापुराणे सप्तमस्कन्धे प्रह्लादानुचरिते युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिरूपणं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

॥ समाप्तोयं सप्तमः स्कन्धः ॥

कृष्णचंद्र और युधिष्ठिरसें आज्ञा पूजा ले नारदमुनि चलेजाते भये, श्रीकृष्णजी परब्रह्म हैं ये सुन राजा युधिष्ठिर बडे विस्मित भये ॥ ७९॥ ये दाक्षायणीको वंश पृथक् वर्णन करै जा वंशमें देव असुर मनुष्य आदि सब चराचर लोक होतेभये ॥ ८० ॥ इति श्रीवृंदावनवासिनारायणशास्त्रिविरचितायां श्रीम०भा०स०स्कन्धे प्रह्लादानुचरिते युधिष्ठिरनारदसंवादे सदाचारनिर्णयो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ ॥ सप्तमस्कन्धः सम्पूर्णः ॥

द्विज ज्वालाप्रसादने निजमतिके अनुसार । शोध्यो सप्तम भागवत अभिमत फल दातार ॥ १ ॥

इदं पुस्तकं कल्याणनगर्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन गङ्गाविष्णुना स्वकीये “ लक्ष्मीवेंकटेश्वर ”
मुद्रणयन्त्रालयेऽङ्कित्वा प्रकाशितम् ॥ संवत् १९५२, शके १८१७। कल्याण-मुंबई.

॥ इति भाषाटीकायुते श्रीमद्भागवते सप्तमस्कंधः समाप्तः ॥

॥ इति भाषाटीकायुते श्रीमद्भागवते सप्तमस्कन्धः समाप्तः ॥

॥ अथ भाषाटीकायुतश्रीमद्भागवते अष्टमस्कन्धप्रारम्भः ॥

यह ग्रन्थ सन् १८६७ के ऐक्ट २५ के अनुसार रजिष्टरी करके सब हक्क यन्त्राधिकारीने अपने स्वाधीन रक्खा है.

2

4

भक्तजन रंजन सदा संकट हरन विशाल ॥ द्विज ज्वालाप्रसादपर द्रवहु नन्दके लाल ॥ १ ॥

श्रीगणेशाय नमः ॥ अब याके अनंतर चौवीस अध्याय युक्त अष्टमस्कंधविषे मनुके पुत्र ऋषि, देवता, इंद्र, हरिके अवतार करिकै सहित मनुको वंश वर्णन करैंगे, मन्वंतर मन्वंतर प्रति मन्वादिक छे ६ न्यारे न्यारे श्रेष्ठ धर्म प्रवृत्त करे हैं, पालन करे हैं, आचरण करेहैं, याते मन्वंतरको सद्धर्म लक्षण कह्यो है, जा धर्मके कियेतें मनुष्य नरकमें नहीं जातेहैं, तहां पहले अध्यायकेविषे स्वायंभुव स्वारोचिष उत्तम तामस, ४ मनुवोंको वर्णन करैंगे स्वायंभुव मन्वंतरके विषे अत्यंत दुस्तर गुणवर्णन सुन आनंदित हो राजा सब मन्वंतरकी स्थिति पूछेहैं महाराजा परीक्षित् श्रीशुकदेवजीसें पूछे है ॥

ॐनमो भगवते वासुदेवाय ॥ राजोवाच ॥ स्वायम्भुवस्येह गुरो वंशोऽयं विस्तराच्छ्रुतः ॥ यत्र विश्वसृजां सर्गो मनून्न्यान्वदस्व नः ॥ १ ॥ यत्र यत्र हरेर्जन्म कर्माणि च महीयसः ॥ गृणन्ति कवयो ब्रह्मंस्तानि नो वद शृण्वताम् ॥ २ ॥ यस्मिन्मन्वन्तरे ब्रह्मन् भगवान्विश्वभावनः ॥ कृतवान्कुरुते कर्ता ह्यतीतेऽनागतेऽद्य वा ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ मनवोऽस्मिन्व्यतीताः षट् कल्पे स्वायम्भुवादयः ॥ आद्यस्ते कथितो यत्र देवादीनां च सम्भवः ॥ ४ ॥ आकूत्यां देवहूत्यां च दुहित्रोस्तस्य वै मनोः ॥ धर्मज्ञानोपदेशार्थं भगवान्पुत्रतां गतः ॥ ५ ॥

हे परमज्ञानी श्रीशुकदेवजी महाराज! अब मैंने स्वायंभुवमनुको वंश विस्तारतें सुन्यो, जामें मरीचितें आदि लेके विश्वके सृजनवारोंको सर्ग होतभयो, अब मनुकी कथा हमारे आगे कहो ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन्! जिस जिस मन्वंतरमें हरिके जन्मकर्म कवि गाते हैं तिन कर्मनको सुनिवेकी इच्छावाले हमारे आगे तुम कहो ॥ २ ॥ हे महाराज! जिस मन्वंतरमें विश्वके पालक भगवान् जो करतभये, जो मन्वंतर नहीं आयो तामें जो करैंगे, वर्तमानमें जो करै हैं सो सब कहो ॥ ३ ॥ शुकदेवजी बोले या कल्पमें स्वायंभुव मन्वंतरतें आदि लेकें छे मनु व्यतीत होतभये तिनमें आद्य मनु चरित्र तौ कह्यो, तामें देवतादिकनकी उत्पत्ति होती भई ॥ ४ ॥ जो स्वायंभुव मनुकी बेटी आकूती और देवहूती थी तिनमें धर्मज्ञानके उपदेशके

---

१ ॥ दोहा ॥ मोरमुकुट शिरपर धरे, कर मुरली गुणखान ॥ इमि ज्वालाप्रसाद नित, धरत कृष्णको ध्यान ॥ १ ॥ जैसे ब्रजवासीनकी, नितप्रति करी सहाय ॥ तैसे कृपाकटाक्ष करि, दीजै मार्ग बताय ॥ २ ॥ प्यारे यह यश आपको, वरणो है शुकदेव ॥ ताकी भाषा शुद्धिको, मोहि बतावहु भेव ॥ ३ ॥

अर्थ भगवान् पुत्र होत भये ॥ ५ ॥ पहिले भगवान् जो कपिलदेवजीने कियो सो तो कह्यो और हे कुरूद्वह ! जो भगवान् यज्ञावतार करतभये सो हम कहैंगे ॥ ६ ॥ कामभोग विलासनमें विरक्त सतरूपाके पति समर्थ स्वायंभुव मनु राज्य छोडिके तप करिवेके लिये स्त्रीसहित वनमें प्रवेश करत भये ॥ ७ ॥ सुनंदानाम नदीके किनारे एक पैरकरिके भूमिको स्पर्श करते भरतवंशमें भये राजा घोर तप करतभये, और यह कहतभये ॥ ८ ॥ जाकरिकें विश्व चैतन्य होताहै, विश्व जिसे चैतन्य नहीं करसक्ता है, या विश्व (संसारके) सोये संते जो जागताहै, यह मनुष्य जिस ईश्वरको नहीं जानें है, सो ईश्वर याहि संसारको जानै है ॥ ९ ॥ या लोकमें जो कछु जगत् भयो है सो विश्वात्मा ईश्वरसे व्याप्त है उस ईश्वरके दिये पदार्थ

कृतं पुरा भगवतः कपिलस्यानुवर्णितम् ॥ आख्यास्ये भगवान्यज्ञो यच्चकार कुरूद्वह ॥ ६ ॥ विरक्तः कामभोगेषु शतरूपापतिः प्रभुः ॥ विसृज्य राज्यं तपसे सभार्यो वनमाविशत् ॥ ७ ॥ सुनन्दायां वर्षशतं पदैकेन भुवं स्पृशन् ॥ तप्यमानस्तपो घोरमिदमन्वाह भारत ॥ ८ ॥ मनुरुवाच ॥ येन चेतयते विश्वं विश्वं चेतयते न यम् ॥ यो जागर्ति शयानेऽस्मिन्नायं तं वेद वेद सः ॥ ९ ॥ आत्मा वास्यमिदं विश्वं यत् किञ्चिज्जगत्यां जगत् ॥ तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ॥ १० ॥ यं न पश्यति पश्यन्तं चक्षुर्यस्य न रिष्यति ॥ तं भूतनिलयं देवं सुपर्णमुपधावत ॥ ११ ॥ न यस्याद्यन्तौ मध्यं च स्वः परो नान्तरं बहिः ॥ विश्वस्यामूनि यद्यस्माद्विश्वं च तदृतं महत् ॥ १२ ॥ स विश्वकायः पुरुहूत ईशः सत्यः स्वयंज्योतिरजः पुराणः ॥ धत्तेऽस्य जन्माद्यजयात्मशक्त्या तां विद्ययोदस्य निरीह आस्ते ॥ १३ ॥

भोगने उचित है काऊ औरके धनकी इच्छा मति करो ॥ १० ॥ जो इस जगतको देख रहा है और यह जगत जिसे नहीं अवलोकन करता जिसका ज्ञान सदा बना रहता है उस संगरहित सब प्राणियोंके आत्मा ईश्वरका भजन करे ॥ ११ ॥ जाको आदि अंत मध्य नहीं, अपनों विरानों नहीं, भीतर बाहिर नहीं जिस्सै इस जगतमें यह सब वार्ता होतीहैं यह विश्व जाको रूप है, सोई सत्य है परिपूर्ण ब्रह्म है ॥ १२ ॥ यह परब्रह्म सत्य स्वयंप्रकाश जन्मरहित ईश्वर पुराणपुरुष अनन्त संसारके स्वरूप हैं सो अपनी मायासे इस संसार उत्पत्ति आदि करते हैं जो अपनी ज्ञानशक्तिसे मायाको दूर-कर आप सदा निर्विकार स्वरूप रहतेहै और कर्म करकैभी निष्क्रिय रहते हैं ॥ १३ ॥

आगे ऋषिलोकभी कर्म त्यागनेका यत्न करते थे कारण कि जो कर्म करता रहताहै वह निष्क्रिय होजाता है ॥ १४ ॥ ईश्वर भगवान् सब करेहैं, परंतु तामें आसक्त नहीं होताहै अपने लाभ कारिके पूर्ण हैं, जो परमेश्वरके अनुवर्ती है वोभी नहीं आसक्त होताहै ॥ १५ ॥ अर्थको आचरण कर निर्विकार निराश्रय पूर्ण दूसरेकी प्रेरणासै रहित मनुष्यके साक्षी निजमार्गमें स्थित सम्पूर्ण धर्मके पालक प्रभुके मैं शरण प्राप्त भयोहूं ॥ १६ ॥ शुकदेवजी बोले मनुजी इसप्रकार उपनिषदके मंत्र सावधान होकर कह रहेथे ताय देखिके असुर और यातुधान भूखसे खायवेकों दौरत भये ॥१७॥ असु-

अथाग्रे ऋषयः कर्माणीहन्तेऽकर्महेतवे ॥ ईहमानो हि पुरुषः प्रायोऽनीहां प्रपद्यते ॥ १४ ॥ ईहते भगवानीशो न हि तत्र विषज्जते ॥ आत्मलाभेन पूर्णार्थो नावसीदन्ति येऽनु तम् ॥ १५ ॥ तमीहमानं निरहंकृतं बुधं निराशिषं पूर्णमनन्यचोदितम् ॥ नॄन् शिक्षयन्तं निजवर्त्मसंस्थितं प्रभुं प्रपद्येऽखिलधर्मभावनम् ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति मन्त्रोपनिषदं व्याहरन्तं समाहितम् ॥ दृष्ट्वाऽसुरा यातुधाना जग्धुमभ्यद्रवन्क्षुधा ॥ १७ ॥ तांस्तथावसितान्वीक्ष्य यज्ञः सर्वगतो हरिः ॥ यामैः परिवृतो देवैर्हत्वाऽशासात्त्रिविष्टपम् ॥ १८ ॥ स्वारोचिषो द्वितीयस्तु मनुरग्नेः सुतोऽभवत् ॥ द्युमत्सुषेणरोचिष्मत्प्रमुखास्तस्य चात्मजाः ॥ १९ ॥ तत्रेन्द्रो रोचनस्त्वासीद्देवाश्च तुषितादयः ॥ ऊर्जस्तम्भादयः सप्त ऋषयो ब्रह्मवादिनः ॥ २० ॥ ऋषेस्तु वेदशिरसस्तुषिता नाम पत्न्यभूत् ॥ तस्यां जज्ञे ततो देवो विभुरित्यभिविश्रुतः ॥ २१ ॥ अष्टाशीतिसहस्राणि मुनयो ये धृतव्रताः ॥ अन्वशिक्षन्व्रतं तस्य कौमारब्रह्मचारिणः ॥ २२ ॥

रोंका ऐसा निश्चय देख सर्वगत हरि यज्ञरूप अपने पुत्र यामनाम देवता सहित दैत्यको मारिकें स्वर्गकूं पालन करत भये ॥ १८ ॥ अग्निको बेटा स्वारोचिष नाम दूसरो मनु होत भयो ताके द्युमान् सुषेण रोचिष्मान् ये मुख्य पुत्र होतभये ॥ १९ ॥ तिनमें रोचननाम इंद्र होतभयो तुषितादिक देवता भये, ऊर्जस्तंभादिक सप्त ऋषि होत भये ॥ २० ॥ वेदशिरा ऋषिकी तुषिता नाम स्त्री होती भई ताके विभु नाम भगवान् जन्म लेतभये॥२१॥ अट्ठासी हजार ८८००० जो मुनिव्रतके धारण करनवारे कौमार अवस्थातें ब्रह्मचारी ता विभुसै व्रत सीखत भये ॥ २२ ॥

तीसरो प्रियव्रतको बेटा उत्तमनाम मनु होत भयो, ताके बेटा पवन सृंजय अग्निहोत्रादिक होत भए ॥ २३ ॥ वसिष्ठके बेटा प्रमोदादिक सप्तऋषी होत भये, सत्या, वेदश्रुता, भद्रा ये देवता भये सत्यजित इंद्र भयो ॥ २४ ॥ धर्मकी सूनृता स्त्रीमें भगवान् पुरुषोत्तम सत्यव्रतनकरिकें सहित जन्म लेत भये, सो सत्यसेन नाम करिकें विख्यात होत भये ॥ २५ ॥ वे असत्यव्रती दुःशील असाधु यक्ष राक्षस भूतद्रोही भूतगणको मारत भये सत्यजित्के सखा भए ॥ २६ ॥ चौथो मनु तामस नाम उत्तमको भैया होत भयो पृथु ख्याती नर केतुकों आदि लेकें तिनके दश पुत्र होतभये ॥ २७ ॥

तृतीय उत्तमो नाम प्रियव्रतसुतो मनुः ॥ पवनः सृञ्जयो यज्ञहोत्राद्यास्तत्सुता नृप ॥ २३ ॥ वसिष्ठतनयाः सप्तऋषयः प्रमदादयः ॥ सत्या वेदश्रुता भद्रा देवा इन्द्रस्तु सत्यजित् ॥ २४ ॥ धर्मस्य सूनृतायां तु भगवान्पुरुषोत्तमः ॥ सत्यसेन इति ख्यातो जातः सत्यव्रतैः सह ॥ २५ ॥ सोऽनृतव्रतदुःशीलानसतो यक्षराक्षसान् ॥ भूतद्रुहो भूतगणांस्त्ववधीत्सत्यजित्सखः ॥ २६ ॥ चतुर्थ उत्तमभ्राता मनुर्नाम्ना च तामसः ॥ पृथुः ख्यातिर्नरः केतुरित्याद्या दश तत्सुताः ॥ २७ ॥ सत्यका हरयो वीरा देवास्त्रिशिख ईश्वरः ॥ ज्योतिर्धामादयः सप्त ऋषयस्तामसेऽन्तरे ॥ २८ ॥ देवा वैधृतयो नाम विधृतेस्तनया नृप ॥ नष्टाः कालेन यैर्वेदा विधृताः स्वेन तेजसा ॥ २९ ॥ तत्रापि जज्ञे भगवान्हरिण्यां हरिमेधसः ॥ हरिरित्याहृतो येन गजेन्द्रो मोचितो ग्रहात् ॥ ३० ॥ राजोवाच ॥ बादरायण एतत्ते श्रोतुमिच्छामहे वयम् ॥ हरिर्यथा गजपतिं ग्राहग्रस्तममूमुचत् ॥ ३१ ॥ तत्कथासु महत्पुण्यं धन्यं स्वस्त्ययनं शुभम् ॥ यत्र यत्रोत्तमश्लोको भगवान्गीयते हरिः ॥ ३२ ॥

सत्यकेतु वीरनाम देवता भए त्रिशिखनाम इंद्र भयो, ज्योतिर्धामादिक सप्तऋषी होतेभये ॥ २८ ॥ विधृतिके पुत्र वैधृतनाम देवता होतभये जो कालसै नष्ट हुए वेदको अपनें तेजकरिकें उद्धार करतभए ॥ २९ ॥ तिस मन्वंतरमें भगवान हरिमेधाकी स्त्री हरिणीनाममें हरीनामसै प्रकटभये तिन्होंनें गजराज ग्राहते छुडायो ॥ ३० ॥ तहां राजा पूछे हैं हे बादरायण! यह तुमते हम सुनिवेकी इच्छा करेंहै जैसे ग्राहनें गजराजको पकऱ्यो भगवान् ताय छुडावतभये ॥ ३१ ॥ सो कथा बडी धन्य है मंगलकी स्थान है शुभ है जिन जिनमें उत्तमश्लोक नारायणका यश

गाया जाता हैं ॥ ३२ ॥ सुतजी शौनकनते कहें हैं अनशनव्रत धारण कर बैठे हुए परीक्षितने जब ऐसे कही तब श्रीशुकदेवजी महाराज राजाकों सन्मान करिकें सभामें मुनियोंके सुन्ते कहते हुए ॥३३॥ इति श्रीमद्भागवते भाषा० अष्टमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥ चौथे मन्वंतरमें हुए गजेंद्रमोक्षणकूं दूसरे अध्यायते आदिलेके तीनि अध्यायनकरिकें विस्तारसूं वर्णन करतेहैं ॥ दूसरे अध्यायमें हथिनीनिकरिके सहित क्रीडा करते गजराजकू दैवयोगतें ग्राहने पकरचो तब हरिको स्मरण कियो सो वर्णन करैंगे ॥ ॥ श्रीशुकदेवजी कहेहैं हे राजन्! त्रिकूट नाम पर्वत पर्वतोंमे श्रेष्ठ है क्षीरसमुद्रकरिकें वेष्टित है लक्ष्मीवान् है दश हज्जार योजन ऊंचो है॥१॥और दश हजार योजनको विस्तार है रूपे लोहे सोनेके तीनि शिखरोंसै समुद्र और

सूत उवाच ॥ परीक्षितैवं स तु बादरायणिः प्रायोपविष्टेन कथासु चोदितः ॥ उवाच विप्राः प्रतिनन्द्य पार्थिवं मुदा मुनीनां सदसि स्म शृण्वताम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीभा० महा० अष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुचरिते प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ आसीद्गिरिवरो राजंस्त्रिकूट इति विश्रुतः ॥ क्षीरोदेनावृतः श्रीमान्योजनायुतमुच्छ्रितः ॥ १ ॥ तावता विस्तृतः पर्यक् त्रिभिः शृङ्गैः पयोनिधिम् ॥ दिशः खं रोचयन्नास्ते रौप्यायसहिरणमयैः॥२॥ अन्यैश्च ककुभः सर्वा रत्नधातुविचित्रितैः ॥ नानाद्रुमलतागुल्मैर्निर्घोषैर्निर्झराम्भसाम् ॥ ३ ॥ स चावनिज्यमानाङ्घ्रिः समन्तात्पयऊर्मिभिः ॥ करोति श्यामलां भूमिं हरिन्मरकताश्मभिः ॥ ४ ॥ सिद्धचारणगन्धर्वविद्याधरमहोरगैः ॥ किन्नरैरप्सरोभिश्च क्रीडद्भिर्जुष्टकन्धरः ॥ ५ ॥ यत्र सङ्गीतसन्नादैर्नदद्गुहममर्षया ॥ अभिगर्जन्ति हरयः श्लाघिनः परशङ्कया ॥ ६ ॥

दिशाओंको प्रकाश करता रहता ॥२॥उसके औरभी शिखर रत्न धातु विचित्र, नाना द्रुमलता,गुल्म,झरनानके जल, शब्द करिके सब दिशानको प्रकाश करते है ॥३॥जिसके चारों ओर क्षीरसमुद्रकी लहैरें लहरा रही है और जिसकी हरित वर्णवाली मणियोंकी कांतिसे और शिलाओंसै पृथ्वी श्यामवर्ण होरहीहै ॥४॥जिसकी गुफाओंमें सिद्ध, चारण, गंधर्व, विद्याधर बडे बडे सर्प किंनर अप्सरा क्रीडा करते है ॥५ ॥ जहां संगितके नादसै शब्दायमान गुफाको शब्द सुनिके उनमें रहनेवाले स्तुति योग्य सिंह दूसरे सिंहके गर्जनेकी शंकासै घोर गर्जना करते हैं ॥ ६ ॥

और नानाप्रकारके वनके पशुऔंके समूहोंसे संकुलित गुफाओंसै अलंकृत विचित्र वृक्षवारे मणि और देवतानके बागौंमें सुंदर पक्षी बोलरहे हैं ॥ ७ ॥
स्वच्छ पवित्र जलवाली नदी सरोवरौंसै युक्त और सुंदर स्वच्छ पवित्र वालुकायुक्त पुलिनोंसै और देवतानकी स्त्रीनिके स्नानसे सुगंधित जल पवनकारिकें
युक्त हैं ॥ ८ ॥ ता पर्वतकी गुफामें भगवान् वरुणको ऋतुमान नाम एक बाग है, सो बाग देवतानकी स्त्रीनिके खेलवेको स्थान है ॥ ९ ॥ जो नित्य
फल फूल युक्त दिव्य वृक्षोंसे सब ओरतें अलंकृत शोभायमान है, मंदारके वृक्ष पारिजात पाटल अशोक चंपा ॥ १० ॥ आंम चिरौंजी कटहर आमरे

नानारण्यपशुव्रातसंकुलद्रोण्यलंकृतः ॥ चित्रद्रुमसुरोद्यानकलकण्ठविहङ्गमः ॥ ७ ॥ सरित्सरोभिरच्छोदैः पुलिनैर्मणिवालुकैः
॥ देवस्त्रीमज्जनामोदसौरभाम्ब्वनिलैर्युतः ॥ ८ ॥ तस्य द्रोण्यां भगवतो वरुणस्य महात्मनः ॥ उद्यानमृतुमन्नाम
आक्रीडं सुरयोषिताम् ॥ ९ ॥ सर्वतोऽलंकृतं दिव्यैर्नित्यं पुष्पफलद्रुमैः ॥ मन्दारैः पारिजातैश्च पाटलाशोकचम्पकैः
॥ १० ॥ चूतैः प्रियालैः पनसैराम्रैराम्रातकैरपि ॥ क्रमुकैर्नारिकेलैश्च खर्जूरैर्बीजपूरकैः ॥ ११ ॥ मधूकैः सालतालैश्च
तमालैरसनार्जुनैः ॥ अरिष्टोदुम्बरप्लक्षैर्वटैः किंशुकचन्दनैः ॥ १२ ॥ पिचुमन्दैः कोविदारैः सरलैः
सुरदारुभिः ॥ द्राक्षेक्षुरम्भाजम्बूभिर्बदर्यक्षाभयामलैः ॥ १३ ॥ बिल्वैः कपित्थैर्जम्बीरैर्वृतो भल्लातकादिभिः ॥
तस्मिन्सरःसु विपुलं लसत्काञ्चनपङ्कजम् ॥ १४ ॥ कुमुदोत्पलकह्लारशतपत्रश्रियोर्जितम् ॥ मत्तषट्पदनिर्घुष्टं शकुन्तैश्च
कलस्वनैः ॥ १५ ॥ हंसकारण्डवाकीर्णं चक्राह्वैः सारसैरपि ॥ जलकुक्कुटकोयष्टिदात्यूहकुलकूजितम् ॥ १६ ॥

सुपारी नारियर खजूर विजौरा ॥ ११ ॥ महुवा साल ताल तमाल पीतसाल अर्जुन साल रीठा गुलरि पिलखन वरढाक चंदन ॥ १२ ॥ नीम कचनार
स्वरूपा सोसो देवदारु दाख ईख केरा जामुनि बेरी बहेरा हरड ॥ १३ ॥ बेल कैथ जंभीरी भिलाये आदि वृक्षौ करिके शोभित है ता पर्वतमें बडे
विशाल एक सरोवरमें पीत कमल फूल रहै हैं ॥ १४ ॥ कुमुद उत्पल कल्हार शतपत्रकी शोभाकरिकें युक्त हैं, सुंदर मतवारे भौंरो उसमें शब्द हो
रहे है ॥ १५ ॥ सुंदर बोलनेहारे पक्षी हंस कारंडवसे आकीर्ण हैं, चकई, चकवा, सारस, जलमुरगावी, पपीहा, दादुरके समूह कूजितेहैं ॥ १६ ॥

मच्छ कच्छके डोलनेसै उसके कमल चलायमान होरहेहै तिनके परागरससे युक्त जल, और कदंब वेत नरसल लोटनकदंब धूलिकदंब विजोरे बेलके वृक्षौंसै वेष्टित है ॥ १७ ॥ कुंद कुरबक अशोक शिरस कुटज गोंदी कुब्जक स्वर्णजुही नागकेशरि पुन्नाग जातिके वृक्षौंसे शोभित है ॥ १८ ॥ जुही, जाई, चमेली, कमल, माधवी, जालक, इन करिकें नित्य सुशोभित है फल फूल समृद्धियुक्त किनारौंपै शोभित वृक्षौंसे सुशोभित हैं ॥१९ ॥ तहां एक दिन, उसी वनपर्वतके आश्रित कोई हाथीनके यूथको पालक हथिनीनकरिकें सहित विचरत प्यासके मारें पीडित अपनो यूथ संग लेके जल पीवेकों

मत्स्यकच्छपसंचारचलत्पद्मरजःपयः ॥ कदम्बवेतसनलनीपवञ्जुलकैर्वृतम् ॥ १७ ॥ कुन्दैः कुरबकाशोकैः शिरीषैः कुटजेङ्गुदैः ॥ कुब्जकैः स्वर्णयूथीभिर्नागपुन्नागजातिभिः ॥ १८ ॥ मल्लिकाशतपत्रैश्च माधवीजालकादिभिः ॥ शोभितं तीरजैश्चान्यैर्नित्यर्तुभिरलं द्रुमैः ॥ १९ ॥ तत्रैकदा तद्गिरिकाननाश्रयः करेणुभिर्वारणयूथपश्चरन् ॥ सकण्टकान्कीचकवेणुवेत्रवद्विशालगुल्मं प्ररुजन्वनस्पतीन् ॥ २० ॥यद्गन्धमात्राद्धरयो गजेन्द्रा व्याघ्रादयो व्यालमृगाश्च खड्गाः॥ महोरगाश्चापि भयाद्द्रवन्ति सगौरकृष्णाः शरभाश्चमर्यः ॥ २१ ॥ वृका वराहा महिषर्क्षशल्या गोपुच्छशालावृकमर्कटाश्च ॥ अन्यत्र क्षुद्रा हरिणाः शशादयश्चरन्त्यभीता यदनुग्रहेण ॥ २२ ॥

सरोवरिके निकट आवतभयो, कांटेनकरिकें सहित पोले वांस और ठोसवांस वेतके समूह और सब वृक्षोंको तोरता विचरताथा ॥२०॥ जिस हाथीकी गंधमात्रसें सिंह, और थोकके हाथी, व्याघ्र, सर्प, मृग, गेंडे, अजगर, गऊ, करसारीथर हरिण, सेह, सुरैगौ यह संपूर्ण भयतें भाजि जांते है॥२१॥ल्यारी, शूकर, भैंसा, रीछ, मेह, लंगूर, कुत्ता, वंदरा, हरिण, शशोंसै आदिलेके क्षुद्र जीव उसकी दृष्टि बचाय उसके अनुग्रहसै निर्भय वनमें विचरते ॥ २२ ॥

---

१. शंका—हाथियोंका अभिमान भंग करनेवाले जो सिंह हैं सो सब सिंहोंने उस गजकी देहकी सुगंधिको सूंघकर बनको छोड इधर उधर भाग गये, बडे आश्चर्यकी बात है, एक सिंहको देखकर हाथियोंके यूथके यूथ भागजाते हैं फिर एक हाथीकी गन्धको सूंघकर सब वनके सिंह क्यों भाग गये ?

उत्तर—आपका कहना बहुत सत्य है सिंहके सामने हाथी नहीं ठहर सक्ते, बरन् सिंहके बनमें हाथी जाताभी नहीं, यह बात जो प्राकृत हाथी होता है उसकी है, और यह हाथी तो तपस्वी था, शापसे हाथी होगयाथा परन्तु इसको रात दिन इसका पूर्व जन्मका तप रक्षा करताथा, उस तपकी अग्निके गन्धसे सब सिंह भागगये ॥

सो गजराज घामकरिकें तप्त हथिनीनकरिकें सहित अंगसें मद चुचाता अपने लहुरे लहुरे बच्चों सहित अपनी देहके बोझकरिकें पर्वतकों कंपाता मदके खानवारे भोंरानके कुल करिकें सेवित ॥ २३ ॥ कमलनके परागसै सुगंधित पवनकूं पासतें सूंघता, मदसै विव्हल नेत्र किये ॥ २४ ॥ ता सरोवरमें स्नान करिकें सुवर्णके अरविन्द उत्पलकें परागसे सुगंधित मीठो निर्मल जल अपनी सूंडिमें लेलेकें पीवतभयो और जलकरिकें अपनी देहकूं न्हवावतभयो, खेद रहित भयो ॥ २५ ॥ अपनी सूंडिमें धारण किये जलसै अपनी हथिनी बच्चोंको न्हवावत जल पीवत कृपण मद-

स घर्मतप्तः करिभिः करेणुभिर्वृतो मदच्युत्कलभैरनुद्रुतः ॥ गिरिं गरिम्णा परितः प्रकम्पयन्निषेव्यमाणोऽलिकुलैर्मदाशनैः ॥ २३ ॥ सरोऽनिलं पङ्कजरेणुरूषितं जिघ्रन्विदूरान्मदविह्वलेक्षणः ॥ वृतः स्वयूथेन तृषार्दितेन तत्सरोवराभ्याशमथागमद् द्रुतम् ॥ २४ ॥ विगाह्य तस्मिन्नमृताम्बुनिर्मलं हेमारविन्दोत्पलरेणुवासितम् ॥ पपौ निकामं निजपुष्करोद्धृतमात्मानमद्भिः स्नपयन्गतक्लमः ॥ २५ ॥ स पुष्करेणोद्धृतशीकराम्बुभिर्निपाययन्संस्नपयन्यथा गृही ॥ घृणी करेणूः कलभांश्च दुर्मदो नाचष्ट कृच्छ्रं कृपणोऽजमायया ॥ २६ ॥ तं तत्र कश्चिन्नृप दैवचोदितो ग्राहो बलीयांश्चरणे रुषाऽग्रहीत् ॥ यदृच्छयैवं व्यसनं गतो गजो यथाबलं सोऽतिबलो विचक्रमे ॥ २७ ॥ तथातुरं यूथपतिं करेणवो विकृष्यमाणं तरसा बलीयसा ॥ विचुक्रुशुर्दीनधियोऽपरे गजाः पार्ष्णिग्रहास्तारयितुं न चाशकन् ॥ २८ ॥ नियुध्यतोरेवमिभेन्द्रनक्रयोर्विकर्षतोरन्तरतो बहिर्मिथः ॥ समाः सहस्रं व्यगमन्महीपते सप्राणयोश्चित्रममंसतामराः ॥ २९ ॥

युक्त गजराज ईश्वरकी मायाकरिकें आयो कष्ट नहीं जानतभयो ॥२६॥ हे परीक्षित ! तिस सरोवरमें दैवको प्रेरचो बडो बली कोई एक ग्राह गजराजके चरणकूं क्रोधकरिकें पकरत भयो, ऐसें अकस्मात् गजराज कष्टकूं प्राप्तभयो तब और अतिबली ग्राह जितो अपनो बल है ताकरिकें छलसूं तितनो पैर खेंचतभयो ॥ २७ ॥ अपने बलवान् यूथपतिको ग्राहके खैंचनेसे आतुर देख वे दीन हथिनी पुकारने लगीं, जे सहायके करनवारे हाथी तेऊ छुडायवेकों समर्थ न होतभये ॥२८॥ ऐसें हाथी और ग्राहको युद्ध होतभयो, परस्पर भीतर बाहिर खेंचे हैं, हे पृथ्वीपति राजा परीक्षित ! तिनको

१ हजार वर्ष युद्ध करते व्यतीत होतभयो, दोऊ प्राणसहित हैं यह देखिकैं देवता आश्चर्य मानतभये ॥ २९ ॥ ताके अनंतर जलमें खिचनें और दुःख पानैसै गजराजको मन बल पराक्रम बहुत कालकरिकें परम ह्रास भयो, और जलवासी ग्राहको बल बढतभयो ॥ ३० ॥ ऐसे देहको धारण करनवारो विवश गजराज अकस्मात् प्राणनको संकट प्राप्त होनेसै अपनेकूं छुडाइवेकूं समर्थ न होतभयो, सो बडी देरताईं चिंतवन करतभयो तापीछे या बुद्धिकूं प्राप्त होतभयो ॥ ३१ ॥ जे मेरी जातिके हाथी थे ते सब मुझ आतुरको छुडायवेके लिये समर्थ न होतभये तो ये मेरी हथिनी भला कहांते होइंगी, देखो विधाताके ग्राहरूप पासमें मैं विध्योहूं, यातें ब्रह्मादिकनके आश्रय परमेश्वरकी मैं शरण जाऊहूं ॥ ३२ ॥ प्रचंडवेग बली सन्मुख

ततो गजेन्द्रस्य मनोबलौजसां कालेन दीर्घेण महानभूद्व्ययः॥विकृष्यमाणस्यजलेऽवसीदतो विपर्ययोऽभूत्सकलं जलौकसः ॥ ३० ॥ इत्थं गजेन्द्रः स यदाप सङ्कटं प्राणस्य देही विवशो यदृच्छया ॥अपारयन्नात्मविमोक्षणे चिरं दध्याविमां बुद्धिमथाभ्यपद्यत ॥ ३१ ॥ नमामि मे ज्ञातय आतुरं गजाः कुतः करिण्यः प्रभवन्ति मोचितुम् ॥ ग्राहेण पाशेन विधातुरावृतोऽप्यहं च तं यामि परं परायणम् ॥ ३२ ॥ यः कश्चनेशो बलिनोऽन्तकोरगात्प्रचण्डवेगादभिधावतो भृशम् ॥ भीतं प्रपन्नं परिपाति यद्भयान्मृत्युः प्रधावत्यरणं तमीमहि ॥ ३३ ॥ इति श्रीभा० महा० अष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुवर्णने गजेन्द्रोपाख्याने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं व्यवसितो बुद्ध्या समाधाय मनो हृदि ॥ जजाप परमं जाप्यं प्राग्जन्मन्यनुशिक्षितम् ॥ १ ॥

दौरते कालरूपी सर्पतें डरपे शरण आयेकी ईश्वर रक्षा करें हैं, तिनकी शरण मैं जाऊं जाके भयतें मृत्युहु भाजेहै ॥ ३३ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां अष्टमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ तीसरे अध्यायमें यह वर्णन करैंगे कि गजेंद्रनें स्तुति की तब हरि भगवान् आयकें ग्राहतें गजराजको उद्धार करत भये, ग्राहकों देवल ऋषिके शापतें उद्धार करत भये यह वर्णन करैंगे ॥ श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजा ! ऐसी बुद्धिसे गजराज निश्चय कर अपने अंतःकरणमें मनकूं सावधान करि पहिले जन्ममें सीखे जप करिवेकों योग्य स्तोत्रकूं जप करतभयो ॥ १ ॥

गजेन्द्र उवाच ॥ नमो भगवते तस्मै यत एतच्चिदात्मकम् ॥ पुरुषायादिबीजाय परेशायाभिधीमहि ॥ २ ॥ यस्मिन्निदं यतश्चेदं येनेदं य इदं स्वयम् ॥ योऽस्मात्परस्माच्च परस्तं प्रपद्ये स्वयंभुवम् ॥ ३ ॥ यः स्वात्मनीदं निजमाययार्पितं क्वचिद्विभातं क्व च तत्तिरोहितम् ॥ अविद्धदृक्साक्ष्युभयं तदीक्षते स आत्ममूलोऽवतु मां परात्परः ॥ ४ ॥ कालेन पञ्चत्वमितेषु कृत्स्नशो लोकेषु पालेषु च सर्वहेतुषु ॥ तमस्तदासीद्गहनं गभीरं यस्यास्य पारेऽभिविराजते विभुः ॥ ५ ॥ न यस्य देवा ऋषयः पदं विदुर्जन्तुः पुनः कोऽर्हति गन्तुमीरितुम् ॥ यथा नटस्याकृतिभिर्विचेष्टितो दुरत्ययानुक्रमणः स मावतु ॥ ६ ॥

गजेंद्र बोलो ॥ तिन भगवान्के अर्थ नमस्कार है, जाते यह देह चैतन्य होयहै जो पुरुषरूप सबके आदिकारण परमेश्वर हैं तिनका हम ध्यान करै है ॥ २ ॥ जिसमें जिसते जिसकरिकें विश्व होवेहै, जो आपु विश्वरूप होवे हैं, जो कार्य कारणतें परे स्वतःसिद्ध हैं, तिनकी शरणमें मैं प्राप्त भयो हूं ॥ ३ ॥ जो आपेमें अपनी मायाकरिकें इस विश्वको धारणकर कभी प्रकाश कभी लीन करते हैं जिनकी दृष्टि कभी लीन नहीं होती सो साक्षी होकर कार्य कारणको देखतेहैं वह स्वयंप्रकाशक भगवान् मेरी रक्षा करो ॥ ४ ॥ जिस समय कालके प्रतापसे यह सम्पूर्ण पंचतत्व सहित महदादिक लोक और लोकपाल सब लीन होजाते हैं उससमय एक महागहन और गंभीर अंधकारही रहताहै और कुछ नहीं उस तमसेही परे विराजनेहारे नारायण हैं ॥ ५ ॥ जाके स्वरूपकों देवता ऋषि नहीं जानते तो और कौन प्राणी जानवेकूं और कहिवेकूं योग्य हैं जैसै मायासे चेष्टा करनेवाले नटके चरित्र जानिवेमें नहीं आते हैं, तैसे दुरत्यय चरित्रवाले मेरी रक्षा करो ॥ ६ ॥

---

१ गजराज बोलो । तोरी गति जानीना परै ॥ टेक ॥ सुर मुनि अगम अगाध अगोचर केहि विधि बुध सचरै ॥ गागरमें सागर कर राखै चहूं दिशि नीर टरै ॥१ ॥ कबहुंक तृण बूढै पानीमें कबहुंक शिला तरै ॥ २ ॥ कबहुंक रंकरंकते राजा नरशिर छत्र धरै ॥ कबहुंक विविध समस्त विमल उर राजै रंक करै ॥ ३ ॥ नरअलीह उद्यम विन आशा अजगर उदर भरै ॥ अतिप्रचण्ड पौरुष बलपावन केहरि भूंख मरै ॥ ४ ॥ कृपानिधान देत छिनहीमें बलसे दानि छरै ॥ कबहुंक जूंठ मूठ सिंहनतें बलकर अजालरै ॥ ५ ॥ हस्ती मार गरदकर डारै तनहाके छत्र धरै ॥ रीतेभरै भरे ढरकावै जब चाहे तब फेर भरै ॥ ६ ॥ ऐसे ख्याल गोपाल लालके को करि सोच मरै ॥ सूरपतित तरजाय छिनकमें जो हरि कृपा करै ॥ ७ ॥

जाके मंगलमय पद देखिवेकी इच्छासे सब संग त्यागी संपूर्ण प्राणिमात्रमें समदृष्टिवारे सबके सुहृद साधु मुनि अछिद्र ब्रह्मचर्यादिक व्रत करे हैं, सो मोकूं गति होहु प्राप्त होहु ॥ ७ ॥ जाको जन्म कर्म नाम रूप गुण दोष नहीं तथापि लोकनके प्रलय जन्मके लिये जो अपनी माया करिकें जन्मादिक धारण करें हैं, ताके अर्थ नमस्कार हैं ॥ ८ ॥ अनंत शक्ति, बहुरूपधारी ब्रह्म स्वरूपरहित आश्चर्यकर्मा परमेश्वरके अर्थ नमस्कार हो ॥ ९ ॥ आपुही प्रकाशक, साक्षी, परमात्मा है वाणी मनसे दूर है ताके अर्थ नमस्कार हैं ॥ १० ॥ जो शुद्ध संन्यास ताकरिकें प्राप्त होते मोक्ष देनैवारे मोक्षानंदके जान्नेहारेके अर्थ नमस्कार है ॥ ११ ॥ शांत, घोर, गूढ गुणधर्मके अनुकरण करनेहारे निर्विशेष, सौम्य, ज्ञानघनके अर्थ नमस्कार करूंहूं,

दिदृक्षवो यस्य पदं सुमङ्गलं विमुक्तसङ्गा मुनयः सुसाधवः ॥ चरन्त्यलोकव्रतमव्रणं वने भूतात्मभूताः सुहृदः स मे गतिः ॥ ७ ॥ न विद्यते यस्य च जन्म कर्म वा न नामरूपे गुणदोष एव वा ॥ तथाऽपि लोकाप्ययसंभवाय यः स्वमायया तान्यनुकालमृच्छति ॥ ८ ॥ तस्मै नमः परेशाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ अरूपायोरुरूपाय नम आश्चर्यकर्मणे ॥ ९ ॥ नम आत्मप्रदीपाय साक्षिणे परमात्मने ॥ नमो गिरां विदूराय मनसश्चेतसामपि ॥ १० ॥ सत्त्वेन प्रतिलभ्याय नैष्कर्म्येण विपश्चिता ॥ नमः कैवल्यनाथाय निर्वाणसुखसंविदे ॥ ११ ॥ नमः शान्ताय घोराय मूढाय गुणधर्मिणे ॥ निर्विशेषाय सौम्याय नमो ज्ञानघनाय च ॥ १२ ॥ क्षेत्रज्ञाय नमस्तुभ्यं सर्वाध्यक्षाय साक्षिणे ॥ पुरुषायात्ममूलाय मूलप्रकृतये नमः ॥ १३ ॥ सर्वेन्द्रियगुणद्रष्ट्रे सर्वप्रत्ययहेतवे ॥ असताच्छाययोक्ताय सदाभासाय ते नमः ॥ १४ ॥ नमो नमस्तेऽखिलकारणाय निष्कारणायाद्भुतकारणाय ॥ सर्वागमाम्नायमहार्णवाय नमोऽपवर्गाय परायणाय ॥ १५ ॥

परब्रह्म परमेश्वर पूर्ण सच्चिदानंदको नमस्कार करूंहूं ॥ १२ ॥ क्षेत्रज्ञ सबनके अध्यक्ष साक्षी पुरुषरूप क्षेत्रजननके मूल कारण प्रकृतिकेभी मूलकारणके अर्थ नमस्कार है ॥ १३ ॥ सब इंद्रियगणके द्रष्टा इंद्रियनकी वृत्तिनमें व्यापक, जैसे प्रतिबिंब बिंबको प्रगट करता है तद्वत् असत् अहंकारादिके प्रगट करनेहारे सद्रूपतासै प्रकाशमानके अर्थ नमस्कार है ॥ १४ ॥ सर्वके कारणरूप स्वयं निष्कारण, अद्भुत कारण सब आगम वेदके महासमुद्र मोक्षरूप उत्तमनके आश्रयके अर्थ नमस्कार है ॥ १५ ॥

गुणही (जे अरणि आग मथनेका काष्ठ) सै जिनकी ज्ञानरूप अग्नि ढकी है जिनका मन सृष्टिके आरंभमें गुणौंके क्षोभसै बहिर्वृत्तिवाला होताहै आत्मतत्वके भावसै विधिनिषेधको दूर करनेंवाले स्वयंप्रकाशके अर्थ नमस्कार है ॥ १६ ॥ मोसरिखे शरण आये पशूके त्रासको छुडामनवारै आप मुक्त है हे करुणासागर! आप आलस्यरहित अपने अंशकरिकें सब देहधारिनके मनमें प्रतीत होते हो सब प्राणीयोंमें अन्तर्यामी रूपसै व्यापक अपरिच्छिन्न भगवान्के अर्थ नमस्कार हैं ॥ १७ ॥ देह पुत्र प्यारे घर धन मनुष्यमें आसक्तोंकों मिलवेकों अशक्य हैं, गुणसंगकरिकें रहित है, मुक्त आत्मावारोंने अपने हृदयमें भावना किये है ऐसे ज्ञानरूप ईश्वरके अर्थ मैं नमस्कार करूंहूं ॥१८॥ धर्म काम अर्थ मुक्ति कामनावारे जाको

गुणारणिच्छन्नचिदूष्मपाय तत्क्षोभविस्फूर्जितमानसाय ॥ नैष्कर्म्यभावेन विवर्जितागमस्वयंप्रकाशाय नमस्करोमि ॥ १६ ॥ मादृक्प्रपन्नपशुपाशविमोक्षणाय मुक्ताय भूरिकरुणाय नमोऽलयाय ॥ स्वांशेन सर्वतनुभृन्मनसि प्रतीतप्रत्यग्दृशे भगवते बृहते नमस्ते ॥ १७ ॥ आत्मात्मजाप्तगृहवित्तजनेषु सक्तैर्दुष्प्रापणाय गुणसङ्गविवर्जिताय ॥ मुक्तात्मभिः स्वहृदये परिभाविताय ज्ञानात्मने भगवते नम ईश्वराय ॥१८॥ यं धर्मकामार्थविमुक्तिकामा भजन्त इष्टां गतिमाप्नुवन्ति ॥ किं त्वाशिषो रात्यपि देहमव्ययं करोति मेऽदभ्रदयो विमोक्षणम् ॥ १९ ॥ एकान्तितो यस्य न कञ्चनार्थं वाञ्छन्ति ये वै भगवत्प्रपन्नाः ॥ अत्यद्भुतं तच्चरितं सुमङ्गलं गायन्त आनन्दसमुद्रमग्नाः ॥ २० ॥ तमक्षरं ब्रह्म परं परेशमव्यक्तमाध्यात्मिकयोगगम्यम् ॥ अतीन्द्रियं सूक्ष्ममिवातिदूरमनन्तमाद्यं परिपूर्णमीडे ॥ २१ ॥ यस्य ब्रह्मादयो देवा वेदा लोकाश्चराचराः ॥ नामरूपविभेदेन फल्ग्व्या च कलया कृताः ॥ २२ ॥

भजनकरिके श्रेष्ठ गतिको प्राप्ति होते है और कामनावालौंको कामानाके दैनेवाले दयासागर मोको मोक्ष करो ॥ १९ ॥ भगवानके शरणागत एकांत भक्त काहू अर्थकी चाहना नहीं करैं हैं, अतिअद्भुत मंगलरूप आपके चरित्र गावै हैं, आनंद समुद्रमें मग्न हैं ॥ २० ॥ सो अक्षर परब्रह्म परमेश्वर अध्यात्मक योगकरिके गम्य है, इंद्रियनकरिकैं नहीं देखे जाते जो सूक्ष्म अतिदुरत्यय, अनंत, आद्य, परिपूर्ण है तिनकी मैं स्तुति करूंहूं ॥ २१ ॥ ब्रह्मादिक देवता वेद चराचरलोकते नामरूप भेदसे जाकी तुच्छ कलाकरिकैं रचेगये हैं ॥ २२ ॥

जैसें अग्निते ज्वाला होवे हैं, सूर्यतें किरण होवे है, फिर तिनहीमें निरंतर प्रवेश करें हैं इसी प्रकार बुद्धि मन इंद्रिय शरीरयुक्त प्राणिसमूहवाला यह संसार उस्से उत्पन्न होकर उसीमें लय हो जाता है ॥ २३ ॥ सो परमेश्वर देवता असुर मनुष्य पशु पक्षी स्त्री पुरुष नपुंसक प्राणीमात्र कर्म कार्य कारण निषेधही है परन्तु निषेध करते जो शेष रहता है जो मायाकरिके सर्वरूप है सो मेरे छुडायवेकू प्रगट होउ ॥ २४ ॥ भीतर बाहर अज्ञानकरिके व्याप्त हाथीकी जाति करिकें कहाहै, मैं जीवेकी कछु इच्छा नहीं करूंहूं,कालकरिकें नाश रहित आत्मलोकके आवरणके मोक्षकी इच्छा करूंहूं ॥ २५ ॥ विश्वको सृजनवारो विश्वरूप विश्वके धनी विश्वके आत्मा अजन्मा ब्रह्मरूप परमपदको मैं प्रणाम करूंहूं ॥ २६ ॥ जिनके कर्मयोग करकें दूर भये है ऐसे योगी योगकरके शुद्ध ह्रदयमें जाय देखें है उस योगेश्वरको मैं नमस्कार करूंहूं ॥ २७ ॥ जो सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषय रूपसै प्रतीत होतेहै शरणमें प्राप्त हुए पुरुषौंकी रक्षा करते हैं खोटी इंद्रियवारे जिनके मार्गको नहीं पा सक्ते वेगवाली तीन शक्तियौंके नियन्ता महाशक्तिमान ईश्वरको मैं प्रणाम करूं हूं ॥ २८ ॥ जाकी मायासे अहंकार करकें आवृत यह जीव अपनो आत्माकूं यह नही जानें हैं ऐसे दुरंत महात्मवारे भगवान्के मैं आश्रय भयोहो ॥ २९ ॥

यथाऽर्चिषोऽग्नेः सवितुर्गभस्तयो निर्यांति संयान्त्यसकृत्स्वरोचिषः ॥ तथा यतोऽयं गुणसंप्रवाहो बुद्धिर्मनः खानि शरीरसर्गः ॥ २३ ॥ स वै न देवासुरमर्त्यतिर्यङ् न स्त्री न षण्ढो न पुमान्न जन्तुः ॥ नायं गुणः कर्म न सन्न चासन्निषेधशेषो जयतादशेषः ॥ २४ ॥ जिजीविषे नाहमिहाऽमुया किमन्तर्बहिश्चावृतयेभयोन्या ॥ इच्छामि कालेन न यस्य विप्लवस्तस्यात्मलोकावरणस्य मोक्षम् ॥ २५ ॥ सोऽहं विश्वसृजं विश्वमविश्वं विश्ववेदसम् ॥ विश्वात्मानमजं ब्रह्म प्रणतोऽस्मि परं पदम् ॥ २६ ॥ योगरन्धितकर्माणो हृदि योगविभाविते ॥ योगिनो यं प्रपश्यन्ति योगेशं तं नतोऽस्म्यहम् ॥ २७ ॥ नमो नमस्तुभ्यमसह्यवेगशक्तित्रयायाखिलधीगुणाय ॥ प्रपन्नपालाय दुरन्तशक्तये कदिन्द्रियाणामनवाप्यवर्त्मने ॥ २८ ॥ नायं वेद स्वमात्मानं यच्छक्त्याऽहंधिया हतम् ॥ तं दुरत्ययमाहात्म्यं भगवन्तमितोऽस्म्यहम् ॥ २९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन् ! जब यह नाम लेकर भगवानकी स्तुति की और नानाप्रकार मूर्तिभेदके अभिमानवारे ब्रह्मादिक न आवतभये, तब सबनके आत्मा सर्वदेवमय हरि भगवान् प्रगट होते भये ॥ ३० ॥ इस प्रकार आर्त (दुःखित) गजराजकूं जानिकें जगतनिवास भगवान् अपनो स्तोत्र सुनिकें स्तुति करते देवतौं सहित वेदमय गरुडपै चढिके चक्र हाथमें लै जहां गजराज था तहां शीघ्रही आवत भये (१) ॥ ३१ ॥ बडे बली ग्राहसे सरोवरिके भीतर पकरे आर्त गजराज चक्र लिये गरुडपैं बैठे आकाशमें हरिकों देखिकें शुण्डसूं कमलको फूल ऊंचों उठा-

श्रीशुक उवाच ॥ एवं गजेन्द्रमुपवर्णितनिर्विशेषं ब्रह्मादयो विविधलिङ्गभिदाऽभिमानाः ॥ नैते यदोपससृपुर्निखिलात्मकत्वात्तत्राखिलामरमयो हरिराविरासीत् ॥३०॥ तं तद्वदार्तमुपलभ्य जगन्निवासः स्तोत्रं निशम्य दिविजैः सह संस्तुवद्भिः ॥ छन्दोमयेन गरुडेन समुह्यमानश्चक्रायुधोऽभ्यगमदाशु यतो गजेन्द्रः ॥३१॥ सोऽन्तः सरस्युरुबलेन गृहीत आर्तो दृष्ट्वा गरुत्मति हरिं ख उपात्तचक्रम् ॥ उत्क्षिप्य साम्बुजकरं गिरमाह कृच्छ्रान्नारायणाखिलगुरो भगवन्नमस्ते ॥ ३२ ॥ तं वीक्ष्य पीडितमजः सहसाऽवतीर्य सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ॥ ग्राहाद्विपाटितमुखादरिणा गजेन्द्रं संपश्यतां हरिरमूमुचदुस्रियाणाम् ॥३३॥ इति श्रीभा० महापुराणे अष्टमस्कन्धे गजेन्द्रमोक्षणे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

इकें कष्टतें नारायणके कर्मके बडाई करतभयो,हे नारायण,हे अखिलगुरु,हे भगवन् ! तुमको नमस्कार है ॥ ३२ ॥ भगवान् पीडित गजराजकूं देखिके गरुड मंदगति है यह जानि गरुडपरते उतरि निकट आई कृपा करिकें ग्राहसहित गजकूं निकासि लेत भये,तबहू ग्राहने नहीं छोडा तब चक्र करिकें ग्राहको मुख चीरिकै सम्पूर्ण देवतानके देखत हरि भगवान् गजराजकूं छुडावतभये[2] ॥३३॥ इति श्रीमद्भागवतभाषा० अष्टमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

(१) कबित्त–गेरिके ग्रस्यो है गजराज गोडगाढ्यो ग्राहगालिम गंभीर नीर चाहै सो गिरायो है। रह्यो नहिं जोर थोरचित योसो चारौं ओर काहूको निहोर नाहिं जीवन दिखायो है ॥ कहै रघुराजसो गिरीन्द्र तजि फंद सब कर अर्बिंद ले गोविंद गुहरायो है। कैधों हरि कंठ होतें करिकरहीतें किधौं कमलतैं कमलको कंत कढिआयो है ॥

२ नारायण उसी स्थानपर प्रगट होजाते परन्तु गजनै वैकुंठनाथ कहकर पुकारा इसका भक्त हृदयकी भक्तिके अनुसार वैकुंठसे आये ॥

चौथे अध्यायके विषे ग्राह गंधर्वताको फेरि प्राप्त भयो गजराजको अपनो पार्षदकरि हरि अपने लोकमें लै जात भये यह वर्णन करैंगे ॥ शुकदेवजी राजा परीक्षितसों कहें हैं ता समय ब्रह्मा महादेव मुख्य देवता ऋषीश्वर गंधर्व फूलनकी वर्षा करत भये ॥ १ ॥ देवतानके नगाडे बाजत भये, गंधर्व नाचत और गावतभये, ऋषि चारण सिद्ध पुरुषोत्तम भगवान्‌की स्तुति करतभये ॥ २ ॥ ग्राह तत्कालपर आश्चर्यरूपको धारण करनवारो होतभयो, देवलऋषीके शापतें छूटत भयो, यह गंधर्वनमें मुख्य उत्तम पहलें हूहूनाम गंधर्व था, सो यह हूहू स्त्रीनकूं संग लेके सरोवरमें क्रीडा करेहो, तब स्नानके लिये जलमें प्रवेशकर देवलको पांउ पकरिकें खेंचत भयो, तब मुनिने क्रोधकर शाप दियो कि अरे दुष्टात्मा दुर्मति विन अपराध तैंनें मोकूं खेंच्यो, तातें तूं ग्राह हो, तब हूहू बडी स्तुति करत भयो ताकी स्तुतिकूं सुनिकें देवल प्रसन्न होतभयो, तब वरदान देतभयो जब तूं गजराजकूं पकरेगो तब उसके छुटाइवेके लिये भगवान् आवेंगे सो तेरो उद्धार करैंगे ॥ ३ ॥ सोई सबनके ईश्वर उत्तम यशी अव्यय यशके धामकूं गुणानुवाद कीर्तन करिवे लायक हैं, जिनके गुण श्रेष्ठ हैं, जिनकी अमृतरूपी कथाको महात्मा कर्णपुटद्वारा पान करते हैं उन भगवानको शिरसें प्रणाम कर उनका यश गानेलगा ॥ ४ ॥ ईश्वर परब्रह्मकी कृपासे जिसके पाप दूर होगये वह हरिकूं प्रणाम करिकें परिक्रमा देकें संपूर्णके देखते अपने गंधर्वलोकको जात भयो ॥ ५ ॥ गजेंद्र भगवान्‌के स्पर्शतें अज्ञान बंधनते मुक्त होत भयो पीताम्बर पहरे चार भुजा धारे साक्षात् भगवान्‌के रूपकों प्राप्त भयो ॥ ६ ॥ सो पहलें पांडुदेशका द्राविड देशमें उत्तम इंद्रद्युम्न विष्णुव्रतधारी नाम राजा होतभयो ॥ ७ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ तदा देवर्षिगन्धर्वा ब्रह्मेशानपुरोगमाः ॥ मुमुचुः कुसुमासारं शंसन्तः कर्म तद्धरेः ॥ १ ॥ नेदुर्दुन्दुभयो दिव्या गन्धर्वा ननृतुर्जगुः ॥ ऋषयश्चारणाः सिद्धास्तुष्टुवुः पुरुषोत्तमम् ॥ २ ॥ योऽसौ ग्राहः स वै सद्यः परमाश्चर्यरूपधृक् ॥ मुक्तो देवलशापेन हूहूर्गन्धर्वसत्तमः ॥ ३ ॥ प्रणम्य शिरसाऽधीशमुत्तमश्लोकमव्ययम् ॥ अगायत यशोधामकीर्तन्यगुणसत्कथम् ॥ ४ ॥ सोऽनुकम्पित ईशेन परिक्रम्य प्रणम्य तम् ॥ लोकस्य पश्यतो लोकं स्वमगान्मुक्तकिल्बिषः ॥ ५ ॥ गजेन्द्रो भगवत्स्पर्शाद्विमुक्तोऽज्ञानबन्धनात् ॥ प्राप्तो भगवतो रूपं पीतवासाश्चतुर्भुजः ॥ ६ ॥ स वै पूर्वमभूद्राजा पाण्ड्यो द्रविडसत्तमः ॥ इन्द्रद्युम्न इति ख्यातो विष्णुव्रतपरायणः ॥ ७ ॥

स एकदाऽऽराधनकाल आत्मवान्गृहीतमौनव्रत ईश्वरं हरिम् ॥ जटाधरस्तापस आप्लुतोऽच्युतं समर्चयामास कुलाचलाश्रमः ॥ ८ ॥ यदृच्छया तत्र महायशा मुनिः समागमच्छिष्यगणैः परिश्रितः ॥ तं वीक्ष्य तूष्णीमकृतार्हणादिकं रहस्युपासीनमृषिश्चुकोप ह ॥ ९ ॥ तस्मा इमं शापमदादसाधुरयं दुरात्माऽकृतबुद्धिरद्य ॥ विप्रावमन्ता विशतां तमोऽन्धं यथा गजः स्तब्धमतिः स एव ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं शप्त्वा गतोऽगस्त्यो भगवान्नृप सानुगः ॥ इन्द्रद्युम्नोऽपि राजर्षिर्दिष्टं तदुपधारयन् ॥११॥ आपन्नः कौञ्जरीं योनिमात्मस्मृतिविनाशिनीम् ॥ हर्यर्चनानुभावेन यद्गजत्वेऽप्यनुस्मृतिः ॥१२॥ एवं विमोक्ष्य गजयूथपमब्जनाभस्तेनापि पार्षदगतिं गमितेन युक्तः ॥ गन्धर्वसिद्धविबुधैरुपगीयमानकर्माऽद्भुतं स्वभवनं गरुडासनोऽगात् ॥ १३ ॥ एतन्महाराज तवेरितो मया कृष्णानुभावो गजराजमोक्षणम् ॥ स्वर्ग्यं यशस्यं कलिकल्मषापहं दुःस्वप्ननाशं कुरुवर्य शृण्वताम् ॥ १४ ॥

सो राजा आराधनके एकसमय मौनव्रत ले मनकूं वश करि तपस्वी हो जटानकों धारण करि त्रिकाल स्नान करिकें मलयाचलमें आश्रम कर ईश्वर हरि अच्युतकी पूजा करतभयो ॥ ८ ॥ तहां बडे यशस्वी शिष्यनकरिकें सहित अकस्मात् अगस्त्यजी आवत भये, तिनें देखिकें चुप होतभयो पूजा न करत भयो एकांतमें बैठ्यो रह्यो ताय देखिकें ऋषि क्रोधायमान होतभये ॥ ९ ॥ ताके अर्थ यह शाप दैतभयो, यह राजा असाधु दुष्टात्मा अकृतबुद्धि है, ब्राह्मणनकी अवज्ञा करै है, अनम्रमति है, जैसे हाथी बैठ्यो होय तैसे बैठ्यो रह्यो, यातें यही शापते यह हाथी होउ ॥ १० ॥ शुकदेवजी परीक्षितसै बोले ॥ ऐसै शाप देकै शिष्यनसहित भगवान् अगस्त्यजी जात भए तब इंद्रद्युम्न राजा अपनें अदृष्टको धारणकर हाथीकी योनिकों प्राप्त होतभयो, जो योनि आत्माके धारणाकी नाश करनवारी है तिसकें पीछे हाथीकी योनिमें जो स्मरण होतभयो सो हरिकी सेवाके प्रभावकरिकें भयो ॥ ११ ॥ १२ ॥ कमलनाभि भगवान् चक्र धारण करैं गजराजको छुडायकें पार्षद गति देतभये, अपनोसो रूप सुंदर शंख चक्र धारण करें पीतांबर जरीके वस्त्र पहने ताय संग लेकें गंधर्व देवता सिद्धोंसें गाये कर्मको सुन्ते गरुडपर बैठ अपने लोककों जातभये ॥ १३ ॥ हे महाराज ! यह गजराजमोक्ष श्रीकृष्णको प्रभाव मैनें तुह्मारे आगे कह्यो, हे कुरुवंशीनमें श्रेष्ठ राजा ! जो याको सुनेंगे तिनका दुःस्वप्ननाश होताहै, स्वर्गकों प्राप्ति

करे हैं, यशकों देहै कलिके पाप नाश करेहैं ॥ १४ ॥ श्रेय कल्याणकी इच्छा करनेहारे जो ब्राह्मण प्रातःकाल उठ पवित्र होके गजेन्द्रमोक्षका पाठ दुःस्वप्नानाश होनेके निमित्त पवित्र होकें दुःस्वप्नादिकनके लियें यथायोग्य कीर्तन करैंगे उनके दुःस्वप्न नाश होंगे ॥ १५ ॥ हे कौरवनमें श्रेष्ठ ! सब प्राणियोंके सुन्ते भगवान् हरि समर्थ जिनका सब प्राणियोंमें निवास है वे प्रसन्न होके गजराजसूं यह कहत भये ॥ १६ ॥ जो हमको तुमको या सरोवरकूं पर्वत कंदरा बनके वेत बांसनके समूह देवतानके वृक्षोंको स्मरण करैंगे ॥१७॥ ब्रह्मा महादेव और मेरे रहनेके धाम इस पर्वतके शिखर प्रिय क्षीर-

यथाऽनुकीर्तयन्त्येतच्छ्रेयस्कामा द्विजादयः॥शुचयः प्रातरुत्थाय दुःस्वप्नाद्युपशान्तये ॥१५॥ इदमाह हरिः प्रीतो गजेन्द्रं कुरुसत्तम॥शृण्वतां सर्वदेवानां सर्वभूतमयो विभुः॥१६॥श्रीभगवानुवाच॥ये मां त्वां च सरश्चेदं गिरिकन्दरकाननम् ॥ वेत्रकीचकवेणूनां गुल्मानि सुरपादपान् ॥१७॥ शृङ्गाणीमानि धिष्ण्यानि ब्रह्मणो मे शिवस्य च ॥ क्षीरोदं मे प्रियं धाम श्वेतद्वीपं च भास्वरम् ॥१८॥ श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां गदां कौमोदकीं मम ॥ सुदर्शनं पाञ्चजन्यं सुपर्णं पतगेश्वरम् ॥ १९ ॥ शेषं च मत्कलां सूक्ष्मां श्रियं देवीं मदाश्रयाम् ॥ ब्रह्माणं नारदमृषिं भवं प्रह्लादमेव च ॥ २० ॥ मत्स्यकूर्मवराहाद्यैरवतारैः कृतानि मे ॥ कर्माण्यनन्तपुण्यानि सूर्यं सोमं हुताशनम् ॥ २१ ॥

समुद्र और मेरे प्यारे श्वेतद्वीपका स्मरण करेंगे ते संपूर्ण पापनतें छुटि जायंगे ॥ १८ ॥ श्रीवत्स कौस्तुभ माला मेरी कौमोदकी गदा सुदर्शन चक्र पांचजन्य शंख पक्षीनको राजा गरुड ॥ १९ ॥ मेरी कला शेष मेरे आश्रय देवी लक्ष्मी ब्रह्मा, नारदऋषी, शिव, प्रल्हाद ॥ २० ॥ मत्स्य कछप वराह आदि अवतारोंके चरित्र जो महापुण्यदायक हैं और सूर्य चंद्रमा अग्नि ॥ २१ ॥

---

१ परन्तु जिमीदार ठाकुरकेसी कथा सुनवेतैं कछु फल नहीं मिलेहै, एक जिमीदारने रामायणकी कथा कहाई, पंडितजीने बडे प्रेमसों वांची पूरि व्हैगई, जब पण्डितजी दक्षिणा लेबिदा भये तब एक ठाकुरने आनकैं कही कि पंडितजीने कथा तौ खूब कही, पर जीमें एक संदेह रहगयो, जिमीदार बोले कहो, तब ठाकुरनैं कही कि यह समजमे न आई, कि राक्षस कौन हो, रावण कि राम, जिमीदारने कही यही संदेह हमें है, सो पंडितजी अभी दूर नांयगयें हैं, अवाज दे लो तब उन्हौंने पंडितजीको पुकारो, उन्हौने जानी कोई दक्षिणावारो पुकारै है सो जल्दीसे लौटे सन्देह पूछनेपर पंडितजी बोले, राम, रावण दोऊ राक्षस नाय या मैं या तू राक्षस है जो मोपै समझाई तेरी समझमें न आई, ऐसे कथा ना सुनै जो समजमेंहू न आवे॥

ओंकार सत्य प्रधान गौ ब्राह्मण अव्यय धर्म और दक्षकी बेटी धर्मकी स्त्री और चंद्रमा कश्यपकी स्त्री ॥ २२ ॥ गंगा सरस्वती नंदा कालिंदी ऐरावत ध्रुव सप्तऋषी और पूर्ण यशवारे मनुष्योंको ॥ २३ ॥ पिछिली रातिके अंतमें उठिकें पवित्र सावधान होकै इन मेरे स्वरूपोंको स्मरण करेंगे ते सगरे पापनते छुटिकें मुक्त होइगें ॥ २४ ॥ हे गजराज ! तेरे किये स्तोत्रसे प्रातःकाल उठिकरिकें जे मेरी स्तुति करेंगे तिनकों मैं मृत्युके समय निर्मल मन बुद्धि देऊंगो ॥ २५ ॥ शुकदेवजी कहे हैं हे राजन् ! ऐसे भगवान् आज्ञा देकें शंख बजाय देवतानके समूहको आनंद देत गरुडपैं चढिकें अपने लोककों जातभए ॥ २६ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां अष्टमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ श्रीशुकदेवजी याके आगे आठ अध्यायनकरिके अमृतको आख्यान वर्णन करैंगे, जा आख्यानविषे हरि अपने भक्तनको पक्षपातकरिकैं स्त्रीको रूप होतभयो, शुकदेवजी राजा परीक्षितसों कहें हैं ॥ हरि भगवान्के चरित्र गजेंद्रमोक्षको माहात्म्य पापको नाश करनवारो तुमते कह्यो ॥ १ ॥ पांचवें रैवतनामक मन्वन्तरको अधिपति तामस मनुको भ्राता रैवतक होत भयो, ताके बलिविंध्यादिक और अर्जुनपूर्वक पुत्र होत भये ॥ २ ॥ विभु इंद्र भयो, भूतरय आदि लेकैं देव भये हिरण्यरोमा वेदशिरा ऊर्ध्वबाव्हादिक सप्तऋषी भये ॥ ३ ॥

प्रणवं सत्यमव्यक्तं गोविप्रान्धर्ममव्ययम् ॥ दाक्षायणीधर्मपत्नीः सोमकश्यपयोरपि ॥ २२ ॥ गङ्गां सरस्वतीं नन्दां कालिन्दीं सितवारणम् ॥ ध्रुवं ब्रह्मऋषीन्सप्त पुण्यश्लोकांश्च मानवान् ॥ २३ ॥ उत्थायापररात्रान्ते प्रयताः सुसमाहिताः ॥ स्मरन्ति मम रूपाणि मुच्यन्ते ह्येनसोऽखिलात् ॥ २४ ॥ ये मां स्तुवन्त्यनेनाङ्ग प्रतिबुध्य निशात्यये ॥ तेषां प्राणात्यये चाहं ददामि विमलां मतिम् ॥ २५ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिश्य हृषीकेशः प्रध्माय जलजोत्तमम् ॥ हर्षयन्विबुधानीकमारुरोह खगाधिपम् ॥ २६ ॥ इति श्रीभा० म० अष्टमस्कन्धे गजेन्द्रमोक्षणं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजन्नुदितमेतत्ते हरेः कर्माघनाशनम् ॥ गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं रैवतं त्वन्तरं शृणु ॥ १ ॥ पञ्चमो रैवतो नाम मनुस्तामससोदरः ॥ बलिविन्ध्यादयस्तस्य सुता अर्जुनपूर्वकाः ॥ २ ॥ विभुरिन्द्रः सुरगणा राजन्भूतरयादयः ॥ हिरण्यरोमा वेदशिरा ऊर्ध्वबाह्वादयो द्विजाः ॥ ३ ॥

शुभ्रकी विकुंठ नाम स्त्रीकेविषे अपनी कलासै पूर्ण वैकुंठनाम देवतौंके साथ वैकुंठनाम भगवान् आप जन्म लेतेभये ॥ ४ ॥ लक्ष्मीनें प्रार्थना कीनी, तब लक्ष्मीके प्रिय करिबेके लिये लोकनकरिकैं नमस्कार योग्य वैकुंठलोक रचतेभये ॥ ५ ॥ उन वैकुंठनाथको प्रभाव कह्यो और परमोदार गुणोंको तौं जो सब पृथ्वीकी रेणु गिने सो वर्णन करनेको समर्थ होसकतेहैं ॥ ६ ॥ छठयो चक्षुको बेटा चाक्षुष नामकरिके मनु होतभयो पुरु व सुद्युम्नतें आदि लेकें तिनके पुत्र होत भये ॥ ७ ॥ ता समय मंत्रद्रुम नाम इंद्र होतभयो, आप्यादिक देव होतभये, हविष्मत् वीरकतें आदि लेकें मुनि होतभये ॥ ८ ॥ ता मन्वंतरमें वैराजकी स्त्री संभूतिके अजितनाम भगवान् जगत्के पति अंशनकरिके युक्त पुत्र होतभये ॥ ९ ॥ जिननें समुद्र मथिकें देवतानको

पत्नी विकुण्ठा शुभ्रस्य वैकुण्ठैः सुरसत्तमैः ॥ तयोः स्वकलया जज्ञे वैकुण्ठो भगवान्स्वयम् ॥ ४ ॥ वैकुण्ठः कल्पितो येन लोको लोकनमस्कृतः ॥ रमया प्रार्थ्यमानेन देव्या तत्प्रियकाम्यया॥५॥तस्यानुभावः कथितो गुणाश्च परमोदयाः॥ भौमान्रेणून्स विममे यो विष्णोर्वर्णयेद्गुणान् ॥ ६ ॥ षष्ठश्च चक्षुषः पुत्रश्चाक्षुषो नाम वै मनुः ॥ पूरुः पुरुषसुद्युम्नप्रमुखाश्चाक्षुषात्मजाः ॥ ७ ॥ इन्द्रो मन्त्रद्रुमस्तत्र देवा आप्यादयो गणाः ॥ मुनयस्तत्र वै राजन्हविष्मद्वीरकादयः ॥ ८ ॥ तत्रापि देवः सम्भूत्यां वैराजस्याभवत्सुतः ॥ अजितो नाम भगवानंशेन जगतः पतिः ॥ ९ ॥ पयोधिं येन निर्मथ्य सुराणां साधिता सुधा ॥ भ्रममाणोऽम्भसि धृतः कूर्मरूपेण मन्दरः ॥ १० ॥ राजोवाच ॥ यथा भगवता ब्रह्मन्मथितः क्षीरसागरः ॥ यदर्थं वा यतश्चाद्रिं दधाराम्बुचरात्मना ॥ ११ ॥ यथाऽमृतं सुरैः प्राप्तं किश्चान्यदभवत्ततः ॥ एतद्भगवतः कर्म वदस्व परमाद्भुतम् ॥ १२ ॥

अमृत प्यायो, जिननें कच्छपरूप धरिकें मंदराचलको धारण कियो ॥ १० ॥ राजा पूछै है हे ब्रह्मन् ! जैसें भगवाननें क्षीरसागर मथ्यो और जा हेतुतें कच्छपरूप धरिके मंदराचलपर्वतको धारण कियो, और जैसें देवतानको अमृत प्यायो, सो कहो अथवा इस विषयमें जो कुछ औरभी कथा हो सो यह भगवानको चरित्र परम अद्भुत कर्म कहो ॥ ११ ॥ भक्तनके पति हरि भगवान्की महिमा तुमनें कही उस्से चित्त अति तृप्त नही होवे, तातें हे मुनि ! यह भगवानको चरित्र परम अद्भुत कहो ॥ १२ ॥

24

यादवनके पति भगवान्‌की महिमा जो तुमने कही है सो महिमा त्रिविध तापनकों नाश करिवेवारी हैं, ता भगवान्‌की कथातें मेरो चित्त नहीं तृप्त
होवे है ॥ १३ ॥ सूतजी शौनकादिकसो कहैं हैं हे ब्राह्मणोहो! ऐसें राजाने पूछे तब व्यासपुत्र भगवान् शुकदेवजी राजाकों सन्मान करिकें हरिके प-
राक्रमकूं कहिवेकूं प्रारंभ करतभये ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी महाराज कहैं हैं तिससमय असुरोंने अपने आयुधोंसैं देवताओंपर प्रहार किया तब वे
देवता प्राणोंसे रहित हो गिरपडे फिर न उठे ॥ १५ ॥ तासमय दुर्वासाके शापकरिकें इंद्रसहित तीनों लोक नष्टश्री होतभए, तब यज्ञादिक्रिया नष्ट
होती भई “ ताकी यह कथा है कि दुर्वासाने काहूसमय मार्गमें चले जाते इंद्रकूं देखिकें अपने कंठकी माला इंद्रकूं दीनी इंद्रनें वह श्रीमदसे अनादर क-

त्वया संकथ्यमानेन महिम्ना सात्वतां पतेः ॥ नातितृप्यति मे चित्तं सुचिरं तापतापितम् ॥ १३ ॥ सूत उवाच ॥ सं-
पृष्टो भगवानेवं द्वैपायनसुतो द्विजाः ॥ अभिनन्द्य हरेर्वीर्यमभ्याचष्टुं प्रचक्रमे ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यदा युद्धेऽसुरै-
र्देवा बाध्यमानाः शितायुधैः ॥ गतासवो निपतिता नोत्तिष्ठेरन्स्म भूयशः ॥ १५ ॥ यदा दुर्वाससः शापात्सेन्द्रा लोका-
स्त्रयो नृप ॥ निःश्री काश्चाभवंस्तत्र नेशुरिज्यादयः क्रियाः ॥ १६ ॥ निशाम्यैतत्सुरगणा महेन्द्रवरुणादयः ॥ नाध्य-
गच्छन्स्वयं मन्त्रैर्मन्त्रयन्तो विनिश्चयम् ॥ १७ ॥ ततो ब्रह्मसभां जग्मुर्मेरोर्मूर्धनि सर्वशः ॥ सर्वं विज्ञापयाञ्चक्रुः प्रण-
ताः परमेष्ठिने ॥ १८ ॥ स विलोक्येन्द्रवाय्वादीन्निःसत्त्वान्विगतप्रभान् ॥ लोकानमङ्गलप्रायानसुरानयथा विभुः
॥ १९ ॥ समाहितेन मनसा संस्मरन्पुरुषं परम् ॥ उवाचोत्फुल्लवदनो देवान्स भगवान्परः ॥ २० ॥

रिकें ऐरावतहाथीके माथेपे डारिदीनी, उन्मत्त हाथीने वा मालाकों पांयनसों चूर्ण करिडाऱ्यो, तब दुर्वासा शाप देतभए तीनों लोकसहित संपत्तिहीन
होउ ” ॥ १६ ॥ इंद्र वरुणतें आदि लेके देवतानके गण सुनिकैं आपु मंत्रणकरिकैं विचार करें हैं तोऊ निश्चयकूं प्राप्त न भए ॥ १७ ॥ तब देवता
संपूर्ण सुमेरूके ऊपर ब्रह्माकी सभामें जातभए, और ब्रह्माकों प्रणाम करिकैं संपूर्ण वृत्तांतकों जनावतभए ॥ १८ ॥ सो ब्रह्मा, और इंद्र वायु आदि-
कोंकूं निःसत्व और कांतिहीन देख और अमंगलयुक्त प्राय सब लोकोंको देखिके असुरोंको बलपुष्टतादिकयुक्त देखि एकाग्रमनसे परमपुरुष नारा-
यणको स्मरण कर प्रफुल्लित मुखकमल भगवान् ब्रह्माजी बोलतभये ॥ १९ ॥ २० ॥

में महादेव असुरादिक मनुष्य पशु पक्षी वृक्ष जरायुज अंडज उद्भिज्ज स्वेदज जाके अवतारकी अंशकलाकरिकें सृजेहैं, सो उन अव्यय भगवानकी हम शरण जाइंगे ॥ २१ ॥ जिसको कोई वधकरिवेको योग्य नहीं, रक्षा करिवेकूं योग्य नहीं, और उपेक्षाके योग्य नहीं, आदरको योग्य नहीं, पक्षपात नहीं तोऊ सर्ग स्थिति संयमके लिये रज सत्व तम समयके विषें धारण करें हैं ॥ २२ ॥ सतोगुणके धारण करनेवाले हरि भगवानका देहधारियौंके कल्याणके निमित्त अभी यह स्थिति और पालन करनेका समय है तातें जगत्के गुरु हरिकी शरण जाइंगे, देवतानके प्यारे हम अपनेंको वे सुखप्राति करेंगे॥२३॥ शुकदेवजी परीक्षितसों बोले कि इसप्रकार देवताओंसे ब्रह्माजी कहकर शत्रुओंके मारनेवाले देवताओंको साथ ले तमतें परे

अहं भवो यूयमथोऽसुरादयो मनुष्यतिर्यग्द्रुमघर्मजातयः ॥ यस्यावतारांशकला विसर्जिता व्रजाम सर्वे शरणं तमव्ययम् ॥२१॥ न यस्य वध्यो न च रक्षणीयो नोपेक्षणीयाऽऽदरणीयपक्षः ॥ अथापि सर्गस्थितिसंयमार्थं धत्ते रजःसत्वतमांसि काले ॥ २२ ॥ अयं च तस्य स्थितिपालनक्षणः सत्त्वं जुषाणस्य भवाय देहिनाम् ॥ तस्माद्व्रजामः शरणं जगद्गुरुं स्वानां स नो धास्यति शं सुरप्रियः ॥ २३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याभाष्य सुरान्वेधाः सह देवैररिन्दम ॥ अजितस्य पदं साक्षाज्जगाम तमसः परम् ॥ २४ तत्रादृष्टस्वरूपाय श्रुतपूर्वाय वै विभो ॥ स्तुतिमब्रूत दैवीभिर्गीर्भिस्त्ववहितेन्द्रियः ॥२५॥ ब्रह्मोवाच ॥ अविक्रियं सत्यमनन्तमाद्यं गुहाशयं निष्कलमप्रतर्क्यम् ॥ मनोऽग्रयानं वचसा निरुक्तं नमामहे देववरं वरेण्यम् ॥ २६ ॥ विपश्चितं प्राणमनोधियात्मनामर्थेन्द्रियाभासमनिद्रमव्रणम्॥ छायातपौ यत्र न गृध्रपक्षौ तमक्षरं खं त्रियुगं व्रजामहे ॥ २७ ॥

अजित भगवान्के साक्षात् स्थानको जातभयो ॥ २४ ॥ तहां जाकर अदृष्टस्वरूप केवल वाणीसे सुनेहुए व्यापक ईश्वरकी इन्द्रिय सावधानकरकै दैवी वाणीसे ब्रह्माजी स्तुति करतेभये ॥ २५ ॥ ब्रह्माजी स्तुति करैं हैं हे देव! तुम विकाररहित सत्य हो, अनंत हो, आद्य हो, अंतर्यामी हो, निरुपाधि हो, कहिवेमें नहीं आओहो, वाणी मनतें बडो वेगवारे, सबनमें श्रेष्ठ, देवतानमें श्रेष्ठ आपको हम नमस्कार करें हैं॥ २६ ॥ प्राण मन बुद्धि आत्माके जाननवारे अर्थ, इंद्रियके प्रकाश करनवारे, निद्रारहित, प्राकृतदेहरहित जीवकी पक्षपात विद्या अविद्यातें हीन, अजर आकाश-

कीसी नांई व्यापक तीनों गुणनमें प्रगट भगवान्की हम शरण आये हैं ॥ २७ ॥ मायासै प्रेरणा किये हुए मनोमय दश इन्द्रिय और पांच प्राण
पन्द्रह आरेवाला शीघ्रगामी त्रिगुणरूपी तीन नाभिवाला विजलीके समान चंचल आठ प्रकृति पुट्टीवाला जो यह जीवका देहादिक रूप चक्र हैं
उसके धुरी रूप सत्व आपकी मैं शरणको प्राप्त हूं ॥ २८ ॥ जो एकवर्ण, मायातें परे, अहश्य, भेदरहित, अंत पाररहित नियंता होकैं जीवके
समीप रत है जाकों योगरूपकारिकें उपासना करें हैं ॥ २९ ॥ जाकी मायाकों कोई नहीं तरें, जा मायाकारिकें जन मोहित होइहैं, जाके स्वरूपकों
नहीं जानते माया और मायाके गुण जीतनेहारे संपूर्ण प्राणीनमें समान रहनेहारे परमेश्वरकूं हम नमस्कार करैं हैं ॥ ३० ॥ यह हम देवता और

अङ्गस्य चक्रं त्वजयेर्यमाणं मनोमयं पञ्चदशारमाशु ॥ त्रिणाभि विद्युच्चलमष्टनेमि यदक्षमाहुस्तमृतं प्रपद्ये ॥ २८ ॥
य एकवर्णं तमसः परं तदलोकमव्यक्तमनन्तपारम् ॥ आसांचकारोपसुपर्णमेनमुपासते योगरथेन धीराः ॥ २९ ॥
न यस्य कश्चातितितर्ति मायां यया जनो मुह्यति वेद नार्थम् ॥ तं निर्जितात्मात्मगुणं परेशं नमाम भूतेषु समं चरन्तम् ॥ ३० ॥ इमे वयं तत्प्रिययैव तन्वा सत्वेन सृष्टा बहिरन्तराविः ॥ गतिं न सूक्ष्मामृषयश्च विद्महे कुतोऽसुराद्या इतरप्रधानाः ॥ ३१ ॥ पादौ महीयं स्वकृतैव यस्य चतुर्विधो यत्र हि भूतसर्गः ॥ स वै महापूरुष आत्मतन्त्रः
प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥ ३२ ॥ अम्भस्तु यद्रेत उदारवीर्यं सिध्यन्ति जीवन्त्युत वर्धमानाः ॥ लोकास्त्रयोऽथाखिललोकपालाः प्रसीदतां ब्रह्म महाविभूतिः ॥ ३३ ॥ सोमं मनो यस्य समामनन्ति दिवौकसां वै बलमन्ध आयुः ॥
ईशो नगानां प्रजनः प्रजानां प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३४ ॥

ऋषि जिस प्रिय देहरूप सतो गुणसै प्रगट हुए हैं वे बाहर भीतर प्रगट रहतेभी जिसके स्वरूपको नहीं जान्ते उससै रजोगुणी तमोगुणी दैत्य कैसै
जाने ॥ ३१ ॥ यह पृथ्वी ताके चरण हैं जा पृथ्वीमें चारि प्रकारके प्राणीनको सर्ग होवेहै सो स्वतंत्र है महापुरुष है ब्रह्मरूप है बडी विभूतिवारे हरि
हमपै प्रसन्न होउ ॥ ३२ ॥ जिनका जल उदार पराक्रमरूपी वीर्य है जिस्सै संपूर्ण लोक जीते हैं जाते तीनों लोक और संपूर्ण लोकपाल
उत्पन्न होकर बढते हैं सो महाविभूतिनके पति हमपै प्रसन्न होउ ॥ ३३ ॥ देवतौंका अन्नरूप बल और वायुरूप वृक्षौंके स्वामी प्रजाकी वृद्धि

करनहारा यह चद्रमा जिसका मन है वे महाविभूति भगवान हमपै प्रसन्न हो ॥ ३४ ॥ जो यागादि कर्मकी प्रवृत्तिके निमित्त उत्पन्न हुआ है धनका उत्पन्न करनेवाला और उदरमें जाठराग्नि रूपसै खाये पिये पदार्थौंका पचानैवाला अग्नि जिनका मुख है वे महाविभूति भगवान हमपर प्रसन्न हो ॥ ३५ ॥ देवतानको मार्ग तिन वेदरूप ब्रह्मकी उपासनाको स्थान है, मुक्तिको द्वार, अमृतरूप मृत्युरूप सूर्य जाको नेत्र है, सो महाविभूति हमपै प्रसन्न होउ ॥ ३६ ॥ जिस वायुके प्राणते चराचरनके प्राण सह बल ओज वायु होते हैं जा प्राणकों हम देवता सेवन करत हैं, जैसें दास राजाको सेवन करेहैं सो महाविभूति हमपें प्रसन्न होउ ॥३७॥ जाके श्रोत्रनमें दिशा भई, हृदयतें छिद्र नाभितें आकाश होतभयो, जो आकाश प्राण इंद्रिय मन

अग्निर्मुखं यस्य तु जातवेदा जातः क्रियाकाण्डनिमित्तजन्मा ॥ अन्तःसमुद्रेऽनुपचन्स्वधातून्प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३५ ॥ यच्चक्षुरासीत्तरणिर्देवयानं त्रयीमयो ब्रह्मण एष धिष्ण्यम् ॥ द्वारं च मुक्तेरमृतं च मृत्युः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३६ ॥ प्राणादभूद्यस्य चराचराणां प्राणः सहो बलमोजश्च वायुः ॥ अन्वास्म सम्राजमिवानुगा वयं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३७ ॥ श्रोत्राद्दिशो यस्य हृदश्च खानि प्रजज्ञिरे खं पुरुषस्य नाभ्याः ॥ प्राणेन्द्रियात्मासुशरीरकेतं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३८ ॥ बलान्महेन्द्रस्त्रिदशाः प्रसादान्मन्योर्गिरीशो धिषणाद्विरिञ्चः ॥ खेभ्यश्च छन्दांस्यृषयो मेढ्रतः कः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ३९॥ श्रीर्वक्षसः पितरश्छाययाऽऽसन्धर्मः स्तनादितरः पृष्ठतोऽभूत् ॥ द्यौर्यस्य शीर्ष्णोऽप्सरसो विहारात्प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४० ॥ विप्रो मुखं ब्रह्म च यस्य गुह्यं राजन्य आसीद्भुजयोर्बलं च ॥ ऊर्वोर्विडोऽजोङ्घ्रिवेदशूद्रौ प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४१॥

और नागकूर्मादिक प्राण शरीरकों आश्रय है, सो महाविभूति हमपै प्रसन्न होउ ॥ ३८ ॥ जाके बलतै इंद्रियां भई, जाके प्रसादतें देवता भये, जाके क्रोधतें रुद्र भयो जाकी बुद्धितें ब्रह्मा भयो जाकी इंद्रियनते छंद ऋषि होतभये,मेढ्रतें प्रजापति भयो, सो महाविभूति हमपै प्रसन्न होहु ॥ ३९ ॥ जाके वक्षस्थलतें लक्ष्मी होती भई, छायाकरिकें पितर भये, स्तनतें धर्म भयो, पीठितें इतर (अधर्म) भयो शिरतें स्वर्ग भयो, जाके उदरतैं आकाश भयो, विहारतें अप्सरा भई, सो महाविभूति हमपर प्रसन्न होउ ॥ ४० ॥ जाके मुखतें ब्राह्मण और वेद भये, जाकी भुजानतें बल क्षत्री भये,

जंघानतें वैश्य होतभये, और जाके पांइनतें शूद्र होतभये; ऐसे महाविभूतिनके पति हमपै प्रसन्न होउ ॥ ४१ ॥ जाके अधर (नीचेके) होठतें लोभ होतभयो, जाके ऊपरके होठतें प्रीति और शील भयो. सो महाविभूति हमपै प्रसन्न होउ ॥ ४२ ॥ जाकी योगमायाकरिकैं द्रव्य काल कर्म गुण भौतिक प्रपंच ये भये, और यही काल कर्म गुण लौकिक प्रपंच जिनका निरूपण करना अशक्य जानकर विद्वान लोग तेज देते हैं सो महाविभूतिनको पति हमपै प्रसन्न होउ ॥४३॥ जिनकी नासिकातें कांति भई स्पर्शकरिकें पशुनकों काम होतभयो, भ्रुकुटीनतें यमराज भयो, पलकनके लगिवेतें काल भयो, ऐसे उपशांत शक्ति और स्वाराज्यके लाभसै पूर्ण आत्मा मायाके गुणमें दर्शनादिसै आसक्तिरहित पवनकीसी लीलावारेके अर्थ नमस्कार है ॥४४॥

लोभोऽधरात्प्रीतिरुपर्यभूद्द्युतिर्नस्तः पशव्यः स्पर्शेन कामः ॥ भ्रुवोर्यमः पक्ष्मभवस्तु कालः प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४२ ॥ द्रव्यं वयःकर्मगुणान्विशेषं यद्योगमायाविहितान्वदन्ति ॥ यद्दुर्विभाव्यं प्रबुधापबाधं प्रसीदतां नः स महाविभूतिः ॥ ४३ ॥ नमोऽस्तु तस्मा उपशान्तशक्तये स्वाराज्यलाभप्रतिपूरितात्मने ॥ गुणेषु मायारचितेषु वृत्तिभिर्न सज्जमानाय नभस्वदूतये ॥ ४४ ॥ स त्वं नो दर्शयात्मानमस्मत्करणगोचरम् ॥ प्रपन्नानां दिदृक्षूणां सस्मितं ते मुखाम्बुजम् ॥४५॥ तैस्तैः स्वेच्छाधृतै रूपैः काले काले स्वयं विभो ॥ कर्म दुर्विषहं यन्नो भगवांस्तत्करोति हि॥४६॥ क्लेशभूर्यल्पसाराणि कर्माणि विफलानि च ॥ देहिनां विषयार्तानां न तथैवार्पितं त्वयि ॥ ४७ ॥ नावमः कर्मकल्पोऽपि विफलायेश्वरार्पितः ॥ कल्पते पुरुषस्यैष स ह्यात्मा दयितो हितः ॥ ४८ ॥

सो तुम हमारी इंद्रियनकों गोचर हो, अपने स्वरूपको दिखाओ, हम मुसिक्यानिसाहित तुमारो मुख देखिवेकी इच्छा करें हैं, तुमारी शरण आये है ॥ ४५ ॥ जो भगवान अपने भक्तौंकी इच्छासै समय २ में उनउन रूपौको धारे हैं और हमसै न बनसके ऐसे ऐसे कर्म करते हैं ॥४६॥ विषयलंपट पुरुष जो कर्म करते हैं वे बहुत क्लेशदायक थोड़े सारवाले वास्तवमें मिथ्याही हैं परन्तु आपमें अर्पण किये कर्म ऐसे नहीं होते ॥ ४७ ॥ थोडा और कर्मके अशरूप कर्मभी ईश्वर अर्पण कियाहुआ निष्फल नहीं होता है कारण कि ईश्वर सर्वभूतका आत्मा और हितकारक है ॥ ४८ ॥

जैसे वृक्षके गुद्दे शाखा सहित जरके सींचेते तृप्ति होयहै, ऐसें विष्णुको आराधन करे तो सबके आत्माको आराधन होवे है ॥ ४९ ॥ दुर्वितर्क्य स्वभावयुक्त निर्गुण गुणनको ईश्वर, सत्वमें स्थित अनंत भगवान्के अर्थ नमस्कार हैं ॥ ५० ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायाम् अष्टमस्कन्धे अमृतमथनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ अब छठे अध्यायके विषें भगवान् प्रगट होयगे तब फेरी देवता स्तुति करेंगे, भगवान्के मंत्रतें असुरनके संग अमृतके लिये बडो उद्यम वर्णन करतें है ॥ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षित प्रति कहैं हैं हे राजन् ! ऐसे देवतानके गणसमूहन करिकैं स्तुति किये भगवान् हरि ईश्वर तिन देवतानमें प्रगट होत भये, जिनका तेज और कांति सहस्रसूर्यकी समान थी ॥ १ ॥ सहसा उनके तेजसै सब देवता

29

यथा हि स्कन्धशाखानां तरोर्मूलावसेचनम् ॥ एवमाराधनं विष्णोः सर्वेषामात्मनश्च हि ॥ ४९ ॥ नमस्तुभ्यमनन्ताय
दुर्वितर्क्यात्मकर्मणे ॥ निर्गुणाय गुणेशाय सत्त्वस्थाय च साम्प्रतम् ॥ ५० ॥ इति श्रीभा० अष्टमस्कन्धेऽमृतमथने
पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं स्तुतः सुरगणैर्भगवान्हरिरीश्वरः ॥ तेषामाविरभूद्राजन्सहस्रार्कोद-
यद्युतिः ॥ १ ॥ तेनैव महसा सर्वे देवाः प्रतिहतेक्षणाः ॥ नापश्यन्खं दिशः क्षोणिमात्मानं च कुतो विभुम् ॥ २ ॥ विरिञ्चो
भगवान्दृष्ट्वा सह शर्वेण तां तनुम् ॥ स्वच्छां मरकतश्यामां कञ्जगर्भारुणेक्षणाम् ॥ ३ ॥ तप्तहेमावदातेन लसत्कौशे-
यवाससा ॥ प्रसन्नचारुसर्वाङ्गीं सुमुखीं सुन्दरभ्रुवम् ॥ ४ ॥ महामणिकिरीटेन केयूराभ्यां च भूषिताम् ॥ कर्णाभरणनिर्भात-
कपोलश्रीमुखाम्बुजाम् ॥ ५ ॥ काञ्चीकलापवलयहारनूपुरशोभिताम् ॥ कौस्तुभाभरणां लक्ष्मीं बिभ्रतीं वनमालिनीम् ॥ ६ ॥

तिरस्कृत हों आकाश दिशा पृथ्वी आत्मा न देखतभये, तौ भगवान्कूं कहांतें देखें ॥ २ ॥ भगवान् ब्रह्मा महादेवसहित भगवान्की स्तुति करत भये, जिनका स्वच्छ शरीर मरकतमणिकीसो नाईं श्याम कमलके गर्भकीसी नाईं अरुण नेत्र ॥ ३ ॥ तप्त सुवर्णसम उज्ज्वल पीतांबर पहरे प्रसन्न सुंदर सब अंग, सुंदर मुख, सुंदर भ्रुकुटी ॥ ४ ॥ महामणिनकरिकैं जटित मुकुट धारे बाजूबंदों करिकैं भूषित कुंडलनकरिकैं प्रकाशित कपोलौंसै शोभायमान मुख ॥ ५ ॥ कांचीके कलाप और कंकणकरिकै शोभायमान दैदोप्यमान हार, सुंदर घुंघुरवारे केशपाशौंसें शोभायमान देदीप्य-

मान प्रकाशित कौस्तुभमणिसे शोभित कंठ, वक्षस्थलमें, लक्ष्मी सुंदर वनमाला पहिरें ताकरिकें शोभायमानं अंग ॥ ६ ॥ मूर्तिमान अपने सुदर्शनादि अस्त्रों करिकें सेवित देवतानमें श्रेष्ठ महादेव और सब देवतान सहित ब्रह्मा सब अंगनकों पृथ्वीमें डारिकें प्रणाम करत भये, प्रणाम करिकें पीछे सावधान होयकें अंजली जोरिकें ब्रह्मा यह बोलत भयो ॥ ७ ॥ सो अब ब्रह्मा कहेहै जन्मस्थिति संयमरहित निर्गुण निर्वाणसुखके समुद्र अति सूक्ष्म, अपरिमित मूर्ति महाप्रभावयुक्त परमात्माके अर्थ नमस्कार है ॥ ८ ॥ हे पुरुषनमें श्रेष्ठ! श्रेयकी इच्छावाले वैदिक तांत्रिक उपायन करिकें यह तुह्मारो रूप पूजन करै हैं हे धातः! मैं अपने सहित तीनो लोक या विश्वमूर्तिमे देखूंहूं ॥ ९ ॥ आगें तुममें विश्व होत भयो, और मध्यमें तुममेंही हो, और अंतमें तुममेंही हो तुम स्वतंत्र हो या संपूर्ण जगत्के आदि अंत मध्य तुमही हौ, जैसे घडाके आदि अंत मध्यमें माटी है ऐसे प्रकृतिते तुम परे हो ॥ १० ॥ अपने आश्रय या विश्वको रचिकै तामें भीतर तुम प्रविष्ट भये, बुद्धिमान शास्त्रके जाननवारे गुणनके परिणाममें निर्गुण तुमको मन करिकें देखेंहै ॥ ११ ॥

सुदर्शनादिभिः स्वास्त्रैर्मूर्तिमद्भिरुपासिताम् ॥ तुष्टाव देवप्रवरः सशर्वः पुरुषं परम् ॥ सर्वामरगणैः साकं सर्वाङ्गैरवनिं गतैः ॥ ७ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अजातजन्मस्थितिसंयमायागुणाय निर्वाणसुखार्णवाय ॥ अणोरणिम्नेऽपरिगण्यधाम्ने महानुभावाय नमो नमस्ते ॥ ८ ॥ रूपं तवैतत्पुरुषर्षभेज्यं श्रेयोर्थिभिर्वैदिकतान्त्रिकेण ॥ योगेन धातः सह नस्त्रिलोकान्पश्याम्यमुष्मिन्नु ह विश्वमूर्तौ ॥ ९ ॥ त्वय्यग्र आसीत्त्वयि मध्य आसीत्त्वय्यन्त आसीदिदमात्मतन्त्रे ॥ त्वमादिरन्तो जगतोऽस्य मध्यं घटस्य मृत्स्नेव परः परस्मात् ॥ १० ॥ त्वं माययात्माश्रयया स्वयेदं निर्माय विश्वं तदनुप्रविष्टः ॥ पश्यन्ति युक्ता मनसा मनीषिणो गुणव्यवायेऽप्यगुणं विपश्चितः ॥ ११ ॥

---

१ शंका–भगवानने हार, नूपुर, कंकण, कुण्डल, भुजबन्द आदिक गहने बालक और स्त्रीके क्यों पहिने ?

उत्तर–ब्रह्मादिक देवताओंको बालकरूप भगवान्की उपासना बडी प्यारी है, इसलिये शीघ्र बालकरूप बनकर अथवा बालकको सब गहना धारण करके ब्रह्मादिकको दर्शन देते हैं, इसलिये बालकको गहना धारण करते हैं।

जैसे काष्ठके विषें अग्नि है गउनके विषें अमृत घृत प्राप्त होताहै, पृथ्वीमें अन्न है जल है, उद्यममें जीविका है परन्तु मनुष्यसे ते उपायकरिकैं प्राप्त होते है, तैसें कवि तुमको बुद्धिकरिकैं गुणनमें प्राप्त करते है ॥ १२ ॥ हे नाथ हे कमलनाभ! आपको प्रगट हुआ देखकर हम सब ऐसे आनन्दको प्राप्त हुए हैं जैसें दावाग्नि करिकें जरे हाथी श्रीगंगाजीको जलपान करिकें आनंदित होते है ॥ १३ ॥ सम्पूर्ण लोकपाल जाके अर्थ तुह्मारे चरणकमलकूं प्राप्त भये हैं, सो तुम करो, हे अंतरात्मन्! सबके साक्षी बाहर भीतरके जाननेहारे तुमको क्या विज्ञापन कियोजाय तुम तो सब जाननवारे हो ॥ ॥ १४ ॥ हे ईश्वर! मैं महादेव, देवता और दक्षादिक अग्निकी चिनगारीके समान आपसे पृथक् प्रतीत होत है और अपने कल्याणको नहीं जानतै

यथाऽग्निमेधस्यऽमृतं च गोषु भुव्यन्नमम्बूद्यमने च वृत्तिम् ॥ योगैर्मनुष्या अधियन्ति हि त्वां गुणेषु बुद्ध्या कवयो वदन्ति ॥ १२ ॥ तं त्वां वयं नाथ समुज्जिहानं सरोजनाभाऽतिचिरेप्सितार्थम् ॥ दृष्ट्वा गता निर्वृतिमद्य सर्वे गजा दवार्ता इव गाङ्गमम्भः ॥ १३ ॥ स त्वं विधत्स्वाखिललोकपाला वयं यदर्थास्तव पादमूलम् ॥ समागतास्ते बहिरन्तरात्मन्किञ्चान्यविज्ञाप्यमशेषसाक्षिणः ॥ १४ ॥ अहं गिरित्रश्च सुरादयो ये दक्षादयोऽग्नेरिव केतवस्ते ॥ किं वा विदामेश पृथग्विभाता विधत्स्व शं नो द्विजदेवमन्त्रम् ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विरिञ्चादिभिरीडितस्तद्विज्ञाय तेषां हृदयं यथैव ॥ जगाद जीमूतगभीरया गिरा बद्धाञ्जलीन्संवृतसर्वकारकान् ॥१६॥ एक एवेश्वरस्तस्मिन्सुरकार्ये सुरेश्वरः ॥ विहर्तुकामस्तानाह समुद्रोन्मथनादिभिः ॥ १७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ हन्त ब्रह्मन्नहो शम्भो हे देवा मम भाषितम् ॥ शृणुतावहिताः सर्वे श्रेयो वः स्याद्यथासुराः ॥ १८॥ यात दानवदैतेयैस्तावत्सन्धिर्विधीयताम् ॥ कालेनानुगृहीतैस्तैर्यावद्वो भव आत्मनः ॥ १९ ॥

यातें ब्राह्मण देवतानकों मंत्र कल्याण तुम करो ॥ १५ ॥ शुकदेवजी परीक्षितसूं कहे हैं ऐसे ब्रह्मादिकनसे स्तुति किये भगवान् तिनके हृदयको अभिप्राय जानिकैं, हाथ जोरें ठाडे सब इंद्रिय रोके जे देवतोंसे मेघसी गंभीर वाणीसे बोलत भये ॥ १६ ॥ एकही ईश्वर देवतानकी कार्यतामें समर्थ हैं, सो समुद्रके मथनादिक करिके विहार करिवेकी इच्छा कर ॥ १७ ॥ तिन देवतानसों बोलत भये भगवान् कहे है, हे ब्रह्मा हे महादेव हे देवताओं! तुम मेरो वचन सावधान ह्वैके सुनो जातें तुह्मारो श्रेय होई ॥ १८ ॥ तुम सम्पूर्ण दैत्यनके पास जाउ,कालकरिकें अनुग्रह किये

32

दानव दैत्योंसे पहले मिलाप करिलेउ, जबताईं तुम्हारी आयुतें वृद्धि होई ॥ १९ ॥ अपना कार्य सिद्ध करनेके लिये शत्रुसैभी मिलना उचित है हे देवताओ! प्रयोजन सिद्ध करकै फिर सर्प मूसेकेसा व्यवहार करना जिस प्रकार पिटारीमें बंद सर्प निकलनेकूं मूससैं मित्रता करताहै और जब मूसा उसमें छिद्र कर देता है तब निकल समयपर उसैभी खा लेता है ॥ २० ॥ अमृतके उत्पत्ति करिवेमें यत्न करो, ढीलमति करो, जाके पीयेतें मृत्युकरिकैं ग्रस्यो प्राणी अमर होवै है ॥ २१ ॥ क्षीरसमुद्रमें सगरी वीरुध तृण लता औषधी डारिकें मंदराचल पर्वतकी रई करि वासुकि सर्पकी नेती करिकै ॥ २२ ॥ मेरी सहायकरिकें आलस्य छोडिकैं मथों, हे देवताओ! दैत्य क्लेशके भोक्ता होइगे, और फलके ग्रहण करिवेवारे तुम होउगो ॥ २३ ॥ हे

अरयोऽपि हि सन्धेयाः सति कार्यार्थगौरवे ॥ अहिमूषकवद्देवा अर्थस्य पदवीं गतैः ॥ २०॥ अमृतोत्पादने यत्नः क्रियतामविलम्बितम् ॥ यस्य पीतस्य वै जन्तुर्मृत्युग्रस्तोऽमरो भवेत् ॥ २१ ॥ क्षिप्त्वा क्षीरोदधौ सर्वा वीरुत्तृणलतौषधीः॥ मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा तु वासुकिम्॥२२॥सहायेन मया देवा निर्मन्थध्वमतन्द्रिताः॥ क्लेशभाजो भविष्यन्ति दैत्या यूयं फलग्रहाः॥ २३ ॥ यूयं तदनुमोदध्वं यदिच्छन्त्यसुराः सुराः ॥ न संरम्भेण सिध्यन्ति सर्वेऽर्थाः सान्त्वया यथा ॥ २४ ॥ न भेतव्यं कालकूटाद्विषाज्जलधिसंभवात् ॥ लोभः कार्यो न वो जातु रोषः कामस्तु वस्तुषु ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति देवान्समादिश्य भगवान्पुरुषोत्तमः॥ तेषामन्तर्दधे राजन्स्वच्छन्दगतिरीश्वरः॥ २६ ॥ अथ तस्मै भगवते नमस्कृत्य पितामहः ॥ भवश्च जग्मतुः स्वं स्वं धामोपेयुर्बलिं सुराः ॥ २७॥

देवताओ! असुर जो इच्छा करैं सो अनुमोदन करो, ऐसे क्रोध करिकें सबरे अर्थ नहीं सिद्धि होवेहैं जैसें शांति करिकैं होवैहैं ॥ २४ ॥ समुद्रते भये कालकूट विषतें भय मति करियो, और जे वस्तु निकरे तिनमें लोभ मति करियो, मथवेतैं क्रोध मति करियो और ईर्षा मति करियो ॥ २५ ॥ शुकदेवजी कहैहै, हे राजन्! ऐसे देवतानकों आज्ञा देकें स्वच्छंदगति भगवान् पुरुषोत्तम तिन देवतानके मध्यमें अंतर्हित होतभये ॥ २६ ॥ ब्रह्मा तिन भगवान्के अर्थ नमस्कार करिकैं महादेव सहित अपनें अपनें धामकौ जातभये, देवता बलिके पास जातभये ॥ २७ ॥

सहज आये वैरीको देखिकैं क्षोभ करनेवाले अपने दैत्यनसै दैत्यनके राजा बलि मने करतभयो, जो बली कीर्तिके योग्य है मिलापको और लराईको समय जानेंहै ॥ २८ ॥ ते देवता असुरनके यूथपालकौंसे रक्षित, परमशोभा युक्त त्रिलोकविजयी विरोचनके वेटा बलिके निकट जातभये ॥ २९ ॥ बडो बुद्धिमान इंद्र सुंदर वाणीनसे सावधान हो पुरुषनमें उत्तम भगवान्‌ते जो सीख्योहै सो सब कहत भयो ॥ ३० ॥ सो बात बलि इंद्रकी मानत भयो, और जे असुरनके पालक ते और सबही मानत भये ॥ ३१ ॥ ताके अनंतर मिलापकर देवता और असुर ते समानभाव करिकैं अमृतके लियें परम उद्यम करतभये ॥ ३२ ॥ महामद युक्त हो देवता दैत्य बल सहित मंदराचल पर्वतको जातभये ता मंदराचलपर्वतकूं बडे बडे वज्रसे हाथोंसे बलि आदि उखारिकरिकैं शब्द करते हुए समुद्रपै लावतभये ॥ ३३ ॥ बडे दुरत्यय भारके ले जाइवेमें इंद्र और बलि आदिकते ता पर्वतके ले जाइवेकूं असमर्थ भये तो मार्गमें छोडिदेते भये ॥३४॥ सो सोनेंको पर्वत देवता दानव तिन्हें बडे भारकरिकैं चूरणकरी डारतभयो भारकरिकैं कणिका मात्रहू न चले ॥ ३५ ॥ हाथ जांघ नारि टूटनैसै भग्नमन देवता और दैत्यकों आर्त दुःखित जानिकैं भगवान् गरुडध्वज आपु प्रकट होतभये ॥३६॥ पर्वतके पटकवेकरिकैं पिचे देवता और दानवोंको देख सब दुख और घाव दूर करनेहारी अपनी दृष्टिकरिकै जिवाय देतभये ॥ ३७ ॥

दृष्ट्वारीनप्यसंयत्तान्जातक्षोभान्स्वनायकान् ॥ न्यषेधद्दैत्यराट्छ्लोक्यः सन्धिविग्रहकालवित् ॥ २८ ॥ ते वैरोचनिमासीनं गुप्तं चासुरयूथपैः ॥ श्रिया परमया जुष्टं जिताशेषमुपागमन् ॥ २९ ॥ महेन्द्रः श्लक्ष्णया वाचा सान्त्वयित्वा महामतिः ॥ अभ्यभाषत तत्सर्वं शिक्षितं पुरुषोत्तमात् ॥ ३० ॥ तदरोचत दैत्यस्य तत्रान्ये येऽसुराधिपाः ॥ शम्बरोऽरिष्टनेमिश्च ये च त्रिपुरवासिनः ॥ ३१ ॥ ततो देवाऽसुराः कृत्वा संविदं कृतसौहृदाः ॥ उद्यमं परमं चक्रुरमृतार्थे परन्तप ॥ ३२ ॥ ततस्ते मन्दरगिरिमोजसोत्पाट्य दुर्मदाः ॥ नदन्त उदधिं निन्युः शक्ताः परिघबाहवः ॥ ३३ ॥ दूरभारोद्वहश्रान्ताः शक्रवैरोचनादयः ॥ अपारयन्तस्तं वोढुं विवशा विजहुः पथि ॥३४॥ निपतन्स गिरिस्तत्र बहूनमरदानवान् ॥ चूर्णयामास महता भारेण कनकाचलः ॥ ३५ ॥ तांस्तथा भग्नमनसो भग्नबाहूरुकन्धरान् ॥ विज्ञाय भगवांस्तत्र बभूव गरुडध्वजः॥३६॥गिरिपातविनिष्पिष्टान्विलोक्यामरदानवान् ॥ ईक्षया जीवयामास निर्जरान्निर्व्रणान्यथा ॥३७॥

लीलाकरिकें सहज सुभाव एक हाथकरिकें पर्वतकों गरुडपै धारिकैं आपु चढिकैं देवता असुर सहित समुद्रपै जातभये ॥ ३८ ॥ पक्षीनमें श्रेष्ठ गरुड
कंधापेतें पर्वतकों उतारि जलकें निकटमें धरिकैं हरि भगवानसे बिदा लेजातभयो ॥ ३९ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायामष्टमस्कन्धे अमृतमथने
मन्दराचलानयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ सप्तमेध्याये इति वर्ण्यते ॥ समुद्रके मथनतें उत्पन्न भये विषके भयकारिकें सगरे जननें स्तुति कीनी सो
महादेवजी कृपाकारिकैं पीवतभए यह वर्णन करेंगे ॥ शुकदेवजी राजा परीक्षितसौं कहैं है ते देवता और दैत्य अमृतको भाग देंगे ऐसें कहिकें
नागनके राजा वासुकीको पर्वतके आसपास लपेटिकैं आनंदयुक्त होइकें समुद्रकों मथतभये ॥ १ ॥ हे राजन्! सब सावधान हो हरि भगवान् अमृत-

गिरिं चारोप्य गरुडे हस्तेनैकेन लीलया ॥ आरुह्य प्रययावब्धिं सुरासुरगणैर्वृतः ॥ ३८ ॥ अवरोप्य गिरिं स्कन्धात्सुपर्णः
पततां वरः ॥ ययौ जलान्त उत्सृज्य हरिणा स विसर्जितः ॥ ३९ ॥ इति श्रीभागवते म० अष्टमस्कन्धेऽमृतमथने
मन्दराचलानयनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ते नागराजमामन्त्र्य फलभागेन वासुकिम् ॥ परिवीय
गिरौ तस्मिन्नेत्रमब्धिं मुदान्विताः ॥ १ ॥ आरेभिरे सुसंयत्ता अमृतार्थं करूद्वह ॥ हरिः पुरस्ताज्जगृहे पूर्वं देवास्ततोऽभवन्
॥ २ ॥ तन्नैच्छन्दैत्यपतयो महापुरुषचेष्टितम् ॥ न गृह्णीमो वयं पुच्छमहेरङ्गममङ्गलम् ॥ ३ ॥ स्वाध्यायश्रुतसंपन्नाः
प्रख्याता जन्मकर्मभिः ॥ इति तूर्ष्णीं स्थितान्दैत्यान्विलोक्य पुरुषोत्तमः ॥ ४ ॥ स्मयमानो विसृज्याग्रं
पुच्छं जग्राह सामरः ॥ कृतस्थानविभागास्त एवं कश्यपनन्दनाः ॥ ५ ॥ ममन्थुः परमायत्ता अमृतार्थं पयोनिधिम्
॥ मथ्यमानेऽर्णवे सोऽद्रिरनाधारो ह्यपोऽविशत् ॥ ६ ॥

के अर्थ पहले सर्पको मुख पकरतभये, तहाँ सब देवता होत भये ॥ २ ॥ महापुरुष भगवानकी चेष्टाकी दैत्यपति नहीं इच्छा करत भये यह कहत
भये कि सर्पकी अमंगल पूंछ हम नहीं ग्रहण करैंगे ॥ ३ ॥ हम स्वाध्याय श्रुत करिकैं संपन्न हैं जन्म कर्मकरिकें विख्यात हैं ऐसें चुप होकें स्थित
भये दैत्योंको देखिके पुरुषोत्तम भगवान् ॥ ४ ॥ हंसिकैं मोडेकूं छोडिकै देवतानकरिकैं सहित पूछकूं पकरतभये स्थान विभागकर कश्यपके
बेटा देवता दैत्यते ॥ ५ ॥ सावधान होकें अमृतके लियें समुद्र मथतभये समुद्र मथतसंते सो पर्वत न आधार होनेसे बलिकें धारण करनेपरभी

बोझतें जलमें प्रवेश करतभयो ॥६॥ बलवान् दैवके प्रभावसे जब उनका पराक्रम नष्ट हुआ तब ते देवता दैत्य खेद मान, मनमें दुख मान्ते भये उनके मुखकी कान्ति नष्ट होगई ॥ ७ ॥ दुरंतपराक्रम सत्य संकल्प ईश्वर विघ्नेश्वरका किया विघ्न देख तासमय अद्भुत बडो कछुवेको रूप धारिकरिके जलमें प्रवेश करतभये और पर्वतकूं उठावतभये ॥ ८ ॥ उठ्यो पर्वत देखिकै देवता दैत्य फेरि मथिवेकूं उठतभये, लाख योजनके विस्तारकी पीठि करिकै भगवान् पर्वत धारण करतभये सो पीठि मानो द्वितीय द्वीप है ॥ ९ ॥ देवता असुरोंकें श्रेष्ठोंके हाथनके बलकरिकै कंपायो पीठिपै भ्रमते पर्वतकूं धारण करते, प्रमाण रहित आदिकच्छप पर्वतके भ्रमणकूं पीठकी खुजरीसी मानत भये ॥ १० ॥ तैसेंई भगवान् असुररूप करिकैं असुरनमें प्रवेशकर उनको बल वीर्य्य बढावतभये, और देवतारूप करिकें देवतानमें प्रवेशकर इनको बल बढावतभये, सर्पमें अबोधरूप करिकैं प्रवेश होत भये ॥ ११ ॥ हजार भुजा भगवान् पर्वतके ऊपर दूसरे पर्वतके समान बैठकर भुजौंसे दाबिके उसै स्थित करते भये आकाशमें ब्रह्मा महादेव इंद्र मुख्य देवता स्तुति करतभये और फूलनकी वर्षा करत भये ॥ १२ ॥ ऊपर नीचे देवता दैत्यके मध्यमें, पर्वतमें, नेतीमें प्रवेश कीयें भगवान् तिनके बढाये बल मदकरिकैं उत्कंठित बडे पर्वतकरिकैं व्याकुल ग्राहनके समूह युक्त समुद्रको उस पर्वतकरिकैं मथतभये ॥ १३ ॥

ध्रियमाणोऽपि बलिभिर्गौरवात्पाण्डुनन्दन ॥ ते सुनिर्विण्णमनसः परिम्लानमुखश्रियः ॥ आसन्स्वपौरुषे नष्टे दैवेनातिबलीयसा ॥ ७ ॥ विलोक्य विघ्नेशविधिं तदेश्वरो दुरन्तवीर्योऽवितथाभिसन्धिः ॥ कृत्वा वपुः काच्छपमद्भुतं महत्प्रविश्य तोयं गिरिमुज्जहार ॥ ८ ॥ तमुत्थितं वीक्ष्य कुलाचलं पुनः समुत्थिता निर्मथितुं सुरासुराः ॥ दधार पृष्ठेन स लक्षयोजनप्रस्तारिणा द्वीप इवापरो महान् ॥ ९ ॥ सुरासुरेन्द्रैर्भुजवीर्यवेपितं परिभ्रमन्तं गिरिमङ्ग पृष्ठतः ॥ बिभ्रत्तदा वर्त्तनमादिकच्छपो मेनेऽङ्गकण्डूयनमप्रमेयः ॥ १० ॥ तथाऽसुरानाविशदासुरेण रूपेण तेषां बलवीर्यमीरयन् ॥ उद्दीपयन्देवगणांश्च विष्णुर्दैवेन नागेन्द्रमबोधरूपः ॥ ११ ॥ उपर्यगेन्द्रं गिरिराडिवान्य आक्रम्य हस्तेन सहस्रबाहुः ॥ तस्थौ दिवि ब्रह्मभवेन्द्रमुख्यैरभिष्टुवद्भिः सुमनोऽभिवृष्टः ॥ १२ ॥ उपर्यधश्चात्मनि गोत्रनेत्रयोः परेण ते प्राविशता समेधिताः ॥ ममन्थुरब्धिं तरसा मदोत्कटा महाद्रिणा क्षोभितनक्रचक्रम् ॥ १३ ॥

पर्वतनके राजा और सर्पनके राजा वासुकिके हजारन कठोर नेत्र और मुखसै निकरे अग्निधुआंसे नष्ट कांति हो असुर पुलोम काल बल इल्वल आदि सब कारे होतभये, जैसें दावाग्निसे सरकंडो कारो होयहै ॥ १४ ॥ ता सर्पके श्वासनकी अग्निसे देवतौंकी कांति नष्ट होगई उनके वस्त्र, माला, जामा, पाग, मुखकी शोभा धूमही होगई तब भगवान्के वशवर्ती मेघ वर्षतभये, समुद्रकी लहरै निकरिकें पवन चलतभई ॥ १५ ॥ देवता असुरनके समूहके मथनेसै समुद्रते जब अमृत न निकसत भयो ,तब अजित भगवान् आपे समुद्र मथत भये ॥ १६ ॥ मेघवत्श्याम अंग, सुवर्णसो पीतांबर, काननमें विजरीके समान प्रकाशमान कुंडल मस्तकपर केशपाश बिखर रहे माला पहिरें, लाल नेत्र, जीतके देनवारे भुजादंड जगतको अभय देनेहारे हस्तकमलसू सर्पकूं पकरिकै पर्वतकी रईसै समुद्रको मथते ऐसे शोभाकों प्राप्त होत भये जैसें दूसरो पर्वत पर्वतकूं मथै है ॥ १७ ॥ मथन करनैसे जिसमें मछली मगर कच्छपादि जलजंतु व्याकुल होरहेहैं तिमि जलके हाथी ग्राह तिमिंगल दुखी होरहे हैं ऐसे सागरको मथते २ प्रथम महाउल्वण विष उत्पन्न हुआ जिसका कुछ उपाय नहीं ॥ १८ ॥ प्रतिकाररहित उस उग्रवेगवाले विषको चारौं ओरसै सब दिशाओंमै फैलता देख उसकी वृद्धिसै लोकपालौं सहित प्रजा कहीं शरण न पाकर भयभीत हो सदाशिवकी शरण गई ॥ १९ ॥

अहीन्द्रसाहस्रकठोरदृङ्मुखश्वासाग्निधूमाहतवर्चसोऽसुराः॥ पौलोमकालेयबलील्वलादयो दवाग्निदग्धाः सरला इवाभवन् ॥ १४ ॥ देवांश्च तच्छ्वासशिखाहतप्रभान्धूम्राम्बरस्रग्वरकञ्चुकाननान् ॥ समभ्यवर्षन्भगवद्वशा घना बवुः समुद्रोर्म्युपगूढवायवः ॥ १५ ॥ मथ्यमाने तदा सिन्धौ देवासुरवरूथपैः ॥ यदा सुधा न जायेत निर्ममन्थाजितः स्वयम् ॥१६॥ मेघश्यामः कनकपरिधिः कर्णविद्योतविद्युन्मूर्ध्नि भ्राजद्विलुलितकचः स्रग्धरो रक्तनेत्रः ॥ जैत्रैर्दोर्भिर्जगदभयदैर्दन्दशूकं गृहीत्वा मथ्नन्मथ्ना प्रतिगिरिरिवाशोभताथो धृताद्रिः ॥ १७ ॥ निर्मथ्यमानादुदधेरभूद्विषं महोल्बणं हालहलाह्वमग्रतः ॥ संभ्रान्तमीनोन्मकरादिकच्छपात्तिमिद्विपग्राहतिमिङ्गिलाकुलात् ॥ १८ ॥ तदुग्रवेगं दिशि दिश्युपर्यधो विसर्पदुत्सर्पदसह्यमप्रति ॥भीताः प्रजा दुद्रुवुरङ्ग सेश्वरा अरक्ष्यमाणाः शरणं सदाशिवम् ॥ १९ ॥

विलोक्य तं देववरं त्रिलोक्या भवाय देव्याऽभिमतं मुनीनाम् ॥ आसीनमद्रावपवर्गहेतोस्तपोजुषाणं स्तुतिभिः प्रणेमुः ॥२०॥ प्रजापतय ऊचुः ॥ देवदेव महादेव भूतात्मन्भूतभावन ॥ त्राहि नः शरणापन्नांस्त्रैलोक्यदहनाद्विषात् ॥२१॥ त्वमेकः सर्वजगत ईश्वरो बन्धमोक्षयोः ॥ तं त्वामर्चन्ति कुशलाः प्रपन्नार्तिहरं गुरुम् ॥ २२ ॥ गुणमय्या स्वशक्त्याऽस्य सर्गस्थित्यप्ययान्विभो ॥ धत्से यदा स्वदृग्भूमन्ब्रह्मविष्णुशिवाभिधाम् ॥२३॥ त्वं ब्रह्म परमं गुह्यं सदसद्भावभावनः ॥ नानाशक्तिभिराभातस्त्वमात्मा जगदीश्वरः ॥ २४ ॥ त्वं शब्दयोनिर्जगदादिरात्मा प्राणेन्द्रियद्रव्यगुणस्वभावः ॥ कालः क्रतुः सत्यमृतं च धर्मस्त्वय्यक्षरं यत्त्रिवृदामनन्ति ॥ २५ ॥ अग्निर्मुखं तेऽखिलदेवतात्मा क्षितिं विदुर्लोकभवाङ्घ्रिपङ्कजम् ॥ कालं गतिं तेऽखिलदेवतात्मनो दिशश्च कर्णौ रसनं जलेशम् ॥२६॥ नाभिर्नभस्ते श्वसनं नभस्वान्सूर्यश्च चक्षूंषि जलं स्म रेतः ॥ परावरात्माश्रयणं तवात्मा सोमो मनो द्यौर्भगवञ्छिरस्ते ॥ २७ ॥

देवतानमें श्रेष्ठ त्रिलोकीके उद्भवके लियें देवी सहित कैलासमें बैठे मुनियोकूं संमत मोक्षके हेतु तपको सेवन करनेहारे सदाशिवको देखिके स्तुतिनकरिकैं प्रणाम करतभये ॥२०॥ प्रजापति ब्रह्मा हरिके पराक्रमनकरिकै सगुण निर्गुण शिवकी स्तुति करें हैं, हे देवनके देव हे महादेव! हे संपूर्ण भूतनके आत्मा हे भूतभावन ! त्रिलोकीकूं जरानेहारे विषसे भयातुर हो हम शरण आये हैं रक्षा करो ॥ २१ ॥ सगरे जगतके तुमही एक ईश्वर हो, बंधमोक्षकें देनवारे हो, शरण आये आर्त हरणवारे गुरु आपकी पूजा करते हैं ॥ २२ ॥ हे विभो ! गुणमयी अपनी शक्ति करिके जगत्के सर्ग स्थिति नाश जब धारण करोहो तब हे भूमन् ! स्वतःसिद्ध ज्ञानवारे तुम ब्रह्मा विष्णु शिव यह नाम धारण करोहो ॥ २३ ॥ तुमहीं परम गुह्य ब्रह्म हो, देवतिर्यगादिरूप धारण करोहो, नानाशक्तिनकरिकैं प्रकाशमान तुमही हो आत्मा हो जगत्के ईश्वर हो, ॥ २४ ॥ तुम वेदके कारण हो, जगतके कारण महत्तत्व अहंकार तुमही हो; प्राण इंद्रिय द्रव्य गुण स्वभाव काल संकल्प सत्य ऋत धर्म तुम हो, त्रिगुणरूप प्रधान तुह्मारे आश्रय हैं ऐसे कहैं हैं अथवा ओंकार तुम हो ॥ २५ ॥ सब देवतानको आत्मा अग्नि तुम्हारो मुख है हे देवलोकभव ! पृथ्वी तुह्मारो चरण है, काल तुम्हारी चेष्टा है,सब देवतानके आत्मा दिशा तुम्हारे कान है और वरुण जीभ है आपकी हम शरण प्राप्त भये हैं ॥२६॥ आकाश तुम्हारी नाभि हैं पवन तुम्हारो श्वास है सूर्य तुह्मारो

नेत्र है, जल तुह्मारो वीर्य रेत है, पर अपर जीवके आश्रय तुह्मारा आत्मा अहंकार है, चंद्रमा मन है, हे भगवन् स्वर्ग तुह्मारो शिर है ॥ २७ ॥ समुद्र तुह्मारी कोख है, पर्वत हाडनकें समूह है, सब औषधी तुह्मारे रोमांच है, छंद (वेद) तुह्मारी सात धातु है, हे वेदत्रयी मूर्ते ! धर्म तुह्मारो हृदय है ॥ २८ ॥ पांच उपनिषद तुह्मारे मुख है, तिन मुखनकरिकै एकसो अडतीस मंत्रनको समूह भयो है,सो जीव नाम परमात्माको तत्व है, स्वप्रकाश तुह्मारी अवस्था है॥२९॥अधर्मकी ऊर्मी (लहरै) आपकी छाया है, जिनकरिकें संहार होताहै सतोगुण रजोगुण तमोगुण ये तुह्मारे नेत्र हैं, सांख्यरूप शास्त्रके करनवारे तुमकों छंदमय वेद विचार है आप वेदकर्ता वेदमय पुरातन ऋषि हो ॥ ३० ॥ हे गिरीश ! तुह्मारी परम ज्योति सब लोकपाल ब्र-

कुक्षिः समुद्रा गिरयोऽस्थिसङ्घा रोमाणि सर्वौषधिवीरुधस्ते ॥ छन्दांसि साक्षात्तव सप्त धातवस्त्रयीमयात्मन्हृदयं सर्वधर्मः ॥ २८ ॥ मुखानि पञ्चोपनिषदस्तवेश यैस्त्रिंशदष्टोत्तरमन्त्रवर्गः ॥ यत्तच्छिवाख्यं परमार्थतत्त्वं देवः स्वयंज्योतिरवस्थितिस्ते ॥ २९ ॥ छाया त्वधर्मोर्मिषु यैर्विसर्गो नेत्रत्रयं सत्त्वरजस्तमांसि ॥ साक्षान्मनुः शास्त्रकृतस्तवेक्षा छन्दोमयो देवऋषिः पुराणः ॥ ३० ॥ न ते गिरित्राखिललोकपाल विरिञ्चवैकुण्ठसुरेन्द्रगम्यम् ॥ ज्योतिः परं यत्र रजस्तमश्च सत्वं न यद्ब्रह्म निरस्तभेदम् ॥ ३१ ॥ कामाध्वरत्रिपुरकालगराद्यनेकभूतद्रुहः क्षपयतः स्तुतये न तत्ते ॥ यस्त्वन्तकाल इदमात्मकृतं स्वनेत्रवह्निस्फुलिङ्गशिखया भसितं न वेद॥३२॥ये त्वात्मरामगुरुभिर्हृदि चिन्तिताङ्घ्रिद्वन्द्वं चरन्तमुमया तपसाभितप्तम् ॥ कत्थन्त उग्रपुरुषं निरतं श्मशाने ते नूनमूतिमविदंस्तव हातलज्जाः ॥३३॥

ह्मा विष्णु इंद्रकोभी गम्य नहीं है जा ज्योतिमें रज तम सत्व नहीं है, निरस्त भेदवारे ब्रह्म तुम हो ॥ ३१ ॥ काम यज्ञ त्रिपुर काल विषयनतें आदि लेके भूतनके द्रोहीयोंको नाश करनेहारे यह तुह्मारी स्तुति नहीं है, तुम अंतकालमें अपने नेत्रकी अग्निसै भस्म हुए इस जगतकों नहीं जानते सर्व सामर्थ युक्त आपसै विष भक्षण करनेको स्तुति करना क्या है ॥ ३२ ॥ आत्मारामनके गुरुजन तुह्मारे चरणारविंदोंका हृदयमें ध्यान करते हैं, आप उमासहित तप करोहो और स्मशानमें वास करोहो, इसलिये जे तुमको कामी उग्र हिंसक बोलते हैं ते मूर्ख निर्लज्ज तुह्मारी लीलाकूं नहीं जाने हैं ऐसे परमगुरु तुह्मारी हम शरणकों प्राप्त भये हैं ॥ ३३ ॥

तातै सत् असत्ते परे कृतिते सबमें श्रेष्ठ तुह्मारे स्वरूप जानिवेंमें अनायास ब्रह्मादिकहू नहीं समर्थ होते हैं, तिनते स्वर्गमें अत्यंत पीछे भये हम तुह्मारी स्तुति करिवेमें समर्थ नहीं होय, यामें कहा कहनो है तोऊ यह स्तुति अपनी सामर्थ्यमात्र है ॥३४॥ हे परमेश्वर ! हम आपके स्वरूपको नहीं जान्ते परमस्वरूपसै अवगत नहीं तथापि हम केवल इतनैहीसै अपनेको कृतार्थ मान्ते है कि आपका चरित्र जो प्रगट है सो लोकौंके सुखके लिये हैं ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी परीक्षित प्रति कहें हैं हे राजन् ! तिनको दुःख देखिकैं कृपा करिकैं अतिपीडित सबरे भूतनके सुहृद् महादेवजी अपनी प्यारी सतीसें यह कहते भए ॥ ३६ ॥ शिवजी कहें हैं अहो भवानी ! यह प्रजानको दुःख देखो, क्षीरसमुद्रको मथनेसे निकसे विषसें यह दुःख उठ्यो है ॥ ३७ ॥ प्राणरक्षाकी इच्छा करनेहारी प्रजा अभय देवेकों विधान योग्य है, जो दीननको पालन करिवो समर्थनको इतनोही अर्थ है जो क्षणभंगुर अपने प्राण करिकें प्राणीनकी रक्षा करैं हैं ॥ ३८ ॥ हे भद्रे ! प्राणियौंके वैरी हरिकी मायासै मोहित प्राणियौंमें कृपा करनैसै सर्वात्मा हरि प्रसन्न होवे हैं ॥ ३९ ॥हरिके प्रसन्न भयेतें चराचर लोक करिके सहित में प्रसन्न होहूं, तातें इस विषकों खाऊंगो प्रजानको मोसों कल्याण होउ ॥ ४० ॥ ऐसें भवानीसों कहिकैं विश्वके पालक भगवान् महादेवजी आज्ञा मांगिकें विषके खायवेको आरंभ करत भये, प्रभावकी जाननवारी

तत्तस्य ते सदसतोः परतः परस्य नाञ्जः स्वरूपगमने प्रभवन्ति भूम्नः ॥ ब्रह्मादयः किमुत संस्तवने वयं तु तत्सर्गसर्गविषया अपि शक्तिमात्रम् ॥ ३४ ॥ एतत्परं प्रपश्यामो न परं ते महेश्वर ॥ मृडनाय हि लोकस्य व्यक्तिस्तेऽव्यक्तकर्मणः ॥ ३५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तद्वीक्ष्य व्यसनं तासां कृपया भृशपीडितः ॥ सर्वभूतसुहृद्देव इदमाह सतीं प्रियाम् ॥ ३६ ॥ शिव उवाच ॥ अहो बत भवान्येतत्प्रजानां पश्य वैशसम् ॥ क्षीरोदमथनोद्भूतात्कालकूटादुपस्थितम् ॥ ३७ ॥ आसां प्राणपरीप्सूनां विधेयमभयं हि मे ॥ एतावान्हि प्रभोरर्थो यद्दीनपरिपालनम् ॥ प्राणैः स्वैः प्राणिनः पान्ति साधवः क्षणभङ्गुरैः ॥ ३८ ॥ बद्धवैरेषु भूतेषु मोहितेष्वात्ममायया ॥ पुंसः कृपयतो भद्रे सर्वात्मा प्रीयते हरिः ॥ ३९ ॥ प्रीते हरौ भगवति प्रीयेऽहं सचराचरः ॥ तस्मादिदं गरं भुञ्जे प्रजानां स्वस्तिरस्तु मे ॥ ४० ॥ श्रीशुकदेव उवाच ॥ एवमामन्त्र्य भगवान्भवानीं विश्वभावनः ॥ तद्विषं जग्धुमारेभे प्रभावज्ञाऽन्वमोदत ॥ ४१ ॥

५०

भवानी अनुमोदन करतभई ॥ ४१ ॥ ताके अनंतर सब ठौर फैले हालाहल विषकूं करतलमें करिकै भूतनके पालक महादेवजी कृपाकरिकै खाईजात भये ॥ ४२ ॥ जलको दोष विष महादेवको बडो पराक्रम दिखावत भयो, गरेमें नील झलकत भयो सो कृपालु महादेवजीको भूषण होत भयो ॥ ४३ ॥ साधुजन बहुधा लोकपाल करिकें तापकों प्राप्त होते है प्राणियोंके दुखसें दुखी होते हैं यही सबनके आत्मा भगवानको परम आराधन है ॥ ४४ ॥ देवनके देव श्रीमहादेव तिनको मर्म देखिकै प्रजापति (दक्ष) की बेटी सती और ब्रह्मा भगवान सब बढाई करत भये

ततः करतलीकृत्य व्यापि हालाहलं विषम् ॥ अभक्षयन्महादेवः कृपया भूतभावनः ॥ ४२ ॥ तस्यापि दर्शयामास स्ववीर्यं जलकल्मषः ॥ यच्चकार गले नीलं तच्च साधोर्विभूषणम् ॥ ४३ ॥ तप्यन्ते लोकतापेन साधवः प्रायशो जनाः ॥ परमाराधनं तद्धि पुरुषस्याखिलात्मनः ॥ ४४ ॥ निशम्य कर्म तच्छम्भोर्देवदेवस्य मीढुषः ॥ प्रजा दाक्षायणी ब्रह्मा वैकुण्ठश्च शशंसिरे ॥ ४५ ॥ प्रस्कन्नं पिबतः पाणेर्यत्किञ्चिज्जगृहुः स्म तत् ॥ वृश्चिकाहिविषौषध्यो दन्दशूकाश्च ये परे ॥ ४६ ॥ इति श्रीभा० म० अष्टम० अमृतमथने सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पीते गरे वृषाङ्केण प्रीतास्तेऽमरदानवाः ॥ ममन्थुस्तरसा सिन्धुं हविर्धानी ततोऽभवत् ॥ १ ॥

॥ ४५ ॥ विष पीवतेमें जो महादेवजीके हाथतें कुछ विष बिखरि पऱ्यों ताको बिछू सर्प विषकी औषधी दंदशूक और जे अन्य तेऊभी ग्रहण करते भये॥४६॥इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायामष्टमस्कन्धे सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ये अष्टमाध्यायमें समुद्र मथनैंसै लक्ष्मी प्रगट भई तिन्हौंने भगवानको वरण कियो और असुरौंनें धन्वंतरसै अमृत हऱ्यो तब मोहनीजी प्रगट भई सो वर्णन करैंगे ॥ सो शुकदेवजी कहै हैं हे राजा परीक्षित! जब मदादेवजीने विष

---

१ देखादेखी काम करवेंसूं दुःख उठानो परे है, जो करनलगै कि शंकरने विष खायो हमहूं खांय, कोऊ एक मनुष्यके पास एक नौकर रहे वोह कछु हकीमी कोऊ लटका जाने, एक समय एक ऊंट सावत बेल निगलगयो और वोह बाकी गरदनमें अटकी गयो, याने पांच रुपैया ठहरायके कही कि एक मूंगरी लाओ सो मूंगरी लेकर ऊंटकी गरदनमें मारी सो वोह टूटगयो और ऊंटका गला साफ व्हैगयो या नौकरने देखतेही सोची कि अब नौकरी करनेसे कहा है, मूंगरी मारदई और रोगीको अच्छो करादियो ५ रुपया मिलगये ना काहूकी नौकरी वौकरी करनी पडै, बस एक मूंगरी केरीमें डाल चलदये, एक बूढिया बीमार मिली बुलायवे पर ५ मांगे, घरवारेनने कही आराम करदेउ पांच रुपैया दैंगे, सो सुनतेही इन्हौंने मूगरी निकार बुढियाके नारमें मारी, वोह लगत प्रमाणही मरी, यह पकरे गये और दंड मिलो यासों रीस करकै काम करनो भलो नहीं ॥

पियो तब प्रसन्न भये देवता और दानव फेर समुद्र मथत भये तातें सुरभी गऊ निकसत भई ॥ १ ॥ अग्निहोत्रकी सिद्धि करनवारी गऊकों ब्रह्मवादी ऋषीश्वर ग्रहण करत भये, ब्रह्मलोकको प्राप्त करनेहारे यज्ञ संबंधी पवित्र हविके लिये ग्रहण कीनी ॥ २ ॥ ता पीछें उच्चैःश्रवा नाम घोडा होत भयो, चंद्रमासे श्वेत उस घोडेको राजा बलि चाहना करत भयो ईश्वरकी शिक्षाकरकैं इंद्रने उसकी अभिलाषा नहीं की ॥ ३ ॥ ता पीछें ऐरावत नाम हाथीनको इंद्र निकस्यो, सो चारि दांत करिकै शोभायमान महादेवके पर्वत कैलास समान शोभायमान था ॥ ४ ॥ हे राजन् ! ताके पीछे कौस्तुभनाम मणि निकरी वा रत्नको हरि भगवान् लेलेते भये, ता मणिकूं कंठमें धारण करत भये, फिर पद्मराग मणि निकसतभई, ता मणिको भगवान् वक्षस्थलमें धारण करत भये उनसैं भगवानका वक्षस्थल अलंकृत हुआ ॥ ५ ॥ ताके पीछें कल्पवृक्ष होतभयो, जो देवतानके लोककूं शोभित करत भयो, जो कछु मनोरथ मांगो तिन सबनको पूर्ण करैहे, जैसे पृथ्वीतलपै तुम सबनको मनोरथ पूर्ण करोहो ॥ ६ ॥ ताके अनंतर अप्सरा होत भई, मणिनकूं कंठमें पहरे सुंदर वस्त्र सुंदर गति लीला चितवनिसै देवतानको रमण करानेहारी हुई ॥ ७ ॥ ताके पीछे साक्षात् भगवत्परायण रमा नाम लक्ष्मी प्रगट हुई जो अपनी कांतिकरिकै दिशानको प्रकाश करती सुदामा पर्वतमें बिजुरीकी समान प्रकाशित हुई ॥ ८ ॥ लक्ष्मीकी देवता असुर मनुष्य सब चाह करत भये, उसके रूप उदारता वय शोभा महिमासै सबके चित्त मोहित होगये ॥ ९ ॥

तामग्निहोत्रीमृषयो जगृहुर्ब्रह्मवादिनः ॥ यज्ञस्य देवयानस्य मेध्याय हविषे नृप ॥ २ ॥ तत उच्चैःश्रवा नाम हयोऽभूच्चन्द्रपाण्डुरः ॥ तस्मिन्बलिः स्पृहां चक्रे नेन्द्र ईश्वरशिक्षया ॥ ३ ॥ तत ऐरावतो नाम वारणेन्द्रो विनिर्गतः ॥ दन्तैश्चतुर्भिः श्वेताद्रेर्हरन्भगवतो महिम् ॥ ४ ॥ कौस्तुभाख्यमभूद्रत्नं पद्मरागो महोदधेः ॥ तस्मिन्हरिः स्पृहां चक्रे वक्षोऽलंकरणे मणौ ॥ ५ ॥ ततोऽभवत्पारिजातः सुरलोकविभूषणम् ॥ पूरयत्यर्थिनो योऽर्थैः शश्वद्भुवि यथा भवान् ॥ ६ ॥ ततश्चाप्सरसो जाता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ॥ रमण्यः स्वर्गिणां वल्गुगतिलीलावलोकनैः ॥ ७ ॥ ततश्चाविरभूत्साक्षाच्छ्री रमा भगवत्परा ॥ रञ्जयन्ती दिशः कान्त्या विद्युत्सौदामनी यथा ॥ ८ ॥ तस्यां चक्रुः स्पृहां सर्वे ससुरासुरमानवाः ॥ रूपौदार्यवयोवर्णमहिमाक्षिप्तचेतसः ॥ ९ ॥

५२

उस लक्ष्मीको इंद्र बडो अद्भुत आसन लावत भयो, मूर्तिमान् नदीनमें श्रेष्ठ सोनेनके कलसानकरिके पवित्र जल लावतिभई ॥ १० ॥ पृथ्वी अभिषेकके योग्य सगरी औषधी लावतिभई, वसंत चैत्र वैशाखमें भये फूल लावत भयो ॥ ११ ॥ ऋषी यथाविधि अभिषेक करावतभये, गंधर्व मंगलगीत गावत भये, नटिनी नृत्य करत गावतिभई ॥ १२ ॥ मेघ देवता बड़े शब्दवारे मृदंग ढोल मुरज नगाडे सहनाई शंख अलगोजा वीणा बजावतभये ॥ १३ ॥ कमल हाथमें लिये श्रेष्ठ देवी लक्ष्मीको दिशानके हाथी पूर्ण कलश लावतभये और ब्राह्मणनने कहे वेदनके मंत्रौंसे स्नान करावतभये ॥ १४ ॥ समुद्र लक्ष्मीको पीले रेसमी वस्त्र देतभयो, वरुण मदसे मतवारे भौरौंसे युक्त वैजयंती माला देतभयो ॥ १५ ॥

तस्या आसनमानिन्ये महेन्द्रो महदद्भुतम् ॥ मूर्तिमत्यः सरिच्छ्रेष्ठा हेमकुम्भैर्जलं शुचि ॥ १० ॥ आभिषेचनिका भूमिराहरत्सकलौषधीः ॥ गावः पञ्च पवित्राणि वसन्तो मधुमाधवौ ॥ ११ ॥ ऋषयः कल्पयांचक्रुरभिषेकं यथाविधि ॥ जगुर्भद्राणि गन्धर्वा नटयश्च ननृतुर्जगुः ॥ १२ ॥ देवा मृदङ्गपणवमुरजानकगोमुखान् ॥ व्यनादयञ्छङ्खवेणुवीणास्तुमुलनिस्वनान् ॥ १३ ॥ ततोऽभिषिषिचुर्देवीं श्रियं पद्मकरां सतीम् ॥ दिगिभाः पूर्णकलशैः सूक्तवाक्यैर्द्विजेरितैः ॥१४॥ समुद्रः पीतकौशेयवाससी समुपाहरत् ॥ वरुणः स्रजं वैजयन्तीं मधुना मत्तषट्पदाम् ॥ १५ ॥ भूषणानि विचित्राणि विश्वकर्मा प्रजापतिः ॥ हारं सरस्वती पद्ममजो नागाश्च कुण्डले ॥ १६ ॥ ततः कृतस्वस्त्ययनोत्पलस्रजं नदद्द्विरेफां परिगृह्य पाणिना ॥ चचाल वक्त्रं सुकपोलकुण्डलं सव्रीडहासं दधती सुशोभनम् ॥ १७ ॥ स्तनद्वयं चातिकृशोदरी समं निरन्तरं चन्दनकुङ्कुमोक्षितम् ॥ ततस्ततो नूपुरवल्गुसिञ्जितैर्विसर्पती हेमलतेव सा बभौ ॥ १८ ॥

चित्रविचित्र अनेक प्रकारके आभूषण विश्वकर्मा देतभयो, सरस्वतीजी हार देतिभई, ब्रह्मा कमल देतभयो, नाग कुंडल देतभये ॥ १६ ॥ ता पीछें स्वस्तिवाचन होनेपर लक्ष्मीजी भौरौंसे शब्दायमान कमलकी माला हाथमें लेके चलतभई, सुंदर कपोल, और कुंडलौंसे शोभित लज्जासहित हास्यसै शोभायमान मुख धारण करे ॥ १७ ॥ निरंतर समान चंदन कुंकुमसे चर्चित स्तनोंसे शोभित कृशोदरी, लक्ष्मी जिससमय चली तब उनके चरणोंके नूपुर बजने लगे और वह सुवर्णलताकी समान शोभित हुई ॥ १८ ॥

नित्य श्रेष्ठ गुणोंके स्थान दोषरहित अपने योग्य आश्रयको ढुंढनें लगी परन्तु गंधर्व यक्ष असुर सिद्ध चारण देवतौंमें अपने योग्य वरको न प्राप्त हुई ॥ १९ ॥ लक्ष्मीने विचार कियो कि दुर्वासा आदि तपस्वी तपकरकैभी क्रोध करतेहैं गुरुशुक्रादि ज्ञानी होकरभी आसक्त हैं ब्रह्मा और चंद्रमा बडे होकरभी कामके वशमें हैं और इन्द्र ईश कहला करभी दूसरेकी सहायताकी इच्छा रखतेंहैं ॥ २० ॥ कहूं परशुरामादिकनमें धर्म है परंतु प्राणिनसूं सुहृदता नहीं, कहूं त्याग है परंतु मुक्तिको कारण नहीं पराक्रमी तौ हैं परन्तु उनकी मृत्युका ठिकाणा नहीं और सनकादिक समाधिनिष्ठ हैं यातें यह वरण योग्य नहीं ॥ २१ ॥ कहूं मार्कंडेयादिकनमें बडी आयु है, परंतु स्वभाव मांगलिक नहीं कहूं भोगकी इच्छाभी

विलोकयन्ती निरवद्यमात्मनः पदं ध्रुवं चाव्यभिचारि सद्गुणम्॥गन्धर्वयक्षासुरसिद्धचारणत्रैविष्टपेयादिषु नान्वविन्दत॥१९॥ नूनं तपो यस्य न मन्युनिर्जयो ज्ञानं क्वचित्तच्च न संगवर्जितम् ॥ कश्चिन्महांस्तस्य न कामनिर्जयः स ईश्वरः किं परतोव्यपाश्रयः॥२०॥धर्मः क्वचित्तत्र न भूतसौहृदं त्यागः क्वचित्तत्र न मुक्तिकारणम् ॥ वीर्यं न पुंसोऽस्त्यजवेगनिष्कृतं न हि द्वितीयो गुणसङ्गवर्जितः ॥ २१ ॥ क्वचिच्चिरायुर्न हि शीलमङ्गलं क्वचित्तदप्यास्ति न वेद्यमायुषः ॥ यत्रोभयं कुत्र च सोऽप्यमङ्गलः सुमङ्गलः कश्च न काङ्क्षते हि माम्॥२२॥ एवं विमृश्याव्यभिचारिसद्गुणैर्वरं निजैकाश्रयतया गुणाश्रयम् ॥ वव्रे वरं सर्वगुणैरपेक्षितं रमा मुकुन्दं निरपेक्षमीप्सितम् ॥२३॥ तस्यांसदेश उशतीं नवकंजमालां माद्यन्मधुव्रतवरूथगिरोपघुष्टाम् ॥ तस्थौ निधाय निकटे तदुरः स्वधाम सव्रीडहासविकसन्नयनेन याता ॥२४॥

है परंतु आयुको ज्ञान नहीं, जहां रुद्रादिकनमें दोनों हैं परन्तु वह अमंगल रूप हैं और जो सुन्दर मंगलरूप दोषरहित हैं वे मुकुन्द भगवान् मेरी इच्छा नही करते ॥ २२ ॥ ऐसा विचार करिकै अव्यभिचारि धर्मज्ञानादि उत्तम गुणोंसे और निरपेक्ष होनेसे सर्वोत्तम प्रकृतिके गुणोंसे परे अणिमादि सम्पूर्ण सिद्धियौंसै संयुक्त निरपेक्ष मन वांछित मुकुंदकू लक्ष्मी वरण करतीभई ॥ २३ ॥ जिसके ऊपर मनोहर स्वरसे मतवाले भौंरे गुंजार रहेहै ऐसी श्रेष्ठ मनोरम कमलौंकी माला भगवानके गलेमें डाल हास्य और लाजसहित विकसित नेत्र हो अपने धाम भगवानके वक्षस्थलकी

इच्छा करती भगवान्के निकट मौन हो खडी रही ॥ २४ ॥ तीनों लोककी माता उत्तम ऐश्वर्यवारी लक्ष्मीकूं जगत्के पिता भगवान् अपनो वक्षस्थल स्थान देतभये, जा वक्षस्थलमें स्थित लक्ष्मी करुणासहित चितवनीसे प्रजा और लोकपालनकरिके सहित तीनो लोकौको बढावत भई ॥ ॥ २५ ॥ शंख तुरहीं मृदंगोके शब्द पृथक् २ होने लगे और स्त्री सहित देवतानके अनुचर न्यारे न्यारे नाचने गाने लगे ॥२६॥ ब्रह्मा रुद्र बृहस्पति ये मुख्य विश्वस्रष्टा हरिके प्रतिपादक सत्य मंत्रोंते हरिकी स्तुति करतभये और पुष्पनकी वर्षा करत भये ॥२७॥ लक्ष्मीसे देखे हुए देवता और प्रजापतिनसहित प्रजा सत्यादिक गुणोंसे संपन्न होके परम आनंदको प्राप्त होतभये ॥ २८ ॥ ता समय लक्ष्मीसें उपेक्षा किये दैत्य दानव सत्वरहित चंचल-

तस्याः श्रियस्त्रिजगतो जनको जनन्या वक्षो निवासमकरोत्परमं विभूतेः ॥ श्रीः स्वाः प्रजाः सकरुणेन निरीक्षणेन यत्र स्थितैधयत साधिपतींस्त्रिलोकान् ॥ २५ ॥ शङ्खतूर्यमृदङ्गानां वादित्राणां पृथुः स्वनः ॥ देवानुगानां सस्त्रीणां नृत्यतां गायतामभूत् ॥ २६ ॥ ब्रह्मरुद्राङ्गिरोमुख्याः सर्वे विश्वसृजो विभुम् ॥ ईडिरेऽवितथैर्मन्त्रैस्तल्लिङ्गैः पुष्पवर्षिणः ॥२७॥ श्रिया विलोकिता देवाः सप्रजापतयः प्रजाः ॥ शीलादिगुणसंपन्ना लेभिरे निर्वृतिं पराम् ॥२८॥ निःसत्त्वा लोलुपा राजन्निरुद्योगा गतत्रपाः ॥ यदा चोपेक्षिता लक्ष्म्या बभूवुर्दैत्यदानवाः ॥ २९ ॥ अथासीद्वारुणी देवी कन्या कमललोचना ॥ असुरा जगृहुस्तां वै हरेरनुमतेन ते ॥ ३० ॥ अथोदधेर्मथ्यमानात्काश्यपैरमृतार्थिभिः ॥ उदतिष्ठन्महाराज पुरुषः परमाद्भुतः ॥३१॥ दीर्घपीवरदोर्दण्डः कम्बुग्रीवोऽरुणेक्षणः ॥ श्यामलस्तरुणः स्रग्वी सर्वाभरणभूषितः ॥३२॥ पीतवासा महोरस्कः सुमृष्टमणिकुण्डलः ॥ स्निग्धकुञ्चितकेशान्तः सुभगः सिंहविक्रमः ॥३३॥

ताहीन निरुद्योगी और लज्जाहीन होगये ॥ २९ ॥ ताकै अनंतर कमलनेत्र कन्या वारुणी देवी प्रगट भई, हरिकी अनुमतिसे तिसको असुर ग्रहण करतभये ॥ ३० ॥ हे राजन् ! अमृतकी चाहना करनेहारे देवता दैत्यौंके मथनेसै समुद्रतें परम अद्भुत पुरुष प्रगट हुआ ॥ ३१ ॥ जिसके लंबे पुष्ट भुजादंड शंखसी ग्रीवा, अरुण नेत्र श्यामवर्ण तरुण माला पहिरें, संपूर्ण आभरणौंसै भूषित ॥ ३२ ॥ पीतवस्त्र पहरे, ऊंचे वक्षस्थलसै शोभित उज्ज्वलमणिनके कुंडल, चीकने घुंघरवारे केशपाश, सुंदर भाग्य, सिंहके समान पराक्रमी ॥ ३३ ॥

अमृतसे पूर्ण कलश धारण करै, कंकणनकरिकैं भूषित पुरुष साक्षात् भगवान् विष्णुके अंशते प्रगट हुआ ॥ ३४ ॥ धन्वंतरि नाम, वैद्यकशास्त्रको करनवारो, यज्ञमार्गके भोक्ता उन महापुरुषको और अमृतके भरे कलशको दैत्य देखकर ॥ ३५ ॥ सबकी सब वस्तु चाहते बलसै कलशा छीनकर भागगये जब अमृतको पात्र कलश असुरनने लेलियो ॥ ३६ ॥ तब सब देवता दुःखी हो हरि भगवान्की शरणागत जातभये ऐसे देवतानको दीन देखिकैं भगवान् भक्तवत्सल भक्तनके कार्य करनवारे बोले, तुम खद मति करो मैं अपनी मायासै दैत्यौंमें क्लेश उपजायगा तुह्मारो अर्थ सिद्ध करूंगो ॥ ३७ ॥ अमृतके लिये खेदित चित्त दैत्यौंमें परस्पर कलह होति भई, यह तौ कहे मैं पहेले पीऊं वह कहे मैं पहेलें पीऊं तूं नहीं मैं पहेले पीऊंगो, ऐसें कलह होती भई ॥ ३८ ॥ तब दुर्बल दैत्य बोले देवताहू अपने भागको योग्य हैं क्योंकि इस कार्यमें इनकाभी तुल्य प्रयास है या यज्ञमें सबको समान फल होय यह सनातन धर्म है ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार मत्सरताको प्राप्तहो दैत्य अपनौंको निषेध करने लगे और दुर्बलौंसै सबल वारंवार कलशको छीननैलगे ॥ ४० ॥ ताही समयमें सर्वात्मा सबके जाननवारे ईश्वर विष्णु भगवान् अनिर्वचनीय परम अद्भुत स्त्रीको स्वरूप धारण करतभये ॥ ४१ ॥

अमृतापूर्णकलशं बिभ्रद्वलयभूषितः ॥ स वै भगवतः साक्षाद्विष्णोरंशांशसंभवः ॥ ३४ ॥ धन्वन्तरिरिति ख्यात आयुर्वेददृगिज्यभाक् ॥ तमालोक्यासुराः सर्वे कलशं चामृताभृतम् ॥ ३५ ॥ लिप्सन्तः सर्ववस्तूनि कलशं तरसाऽहरन् ॥ नीयमानेऽसुरैस्तस्मिन्कलशेऽमृतभाजने ॥ ३६ ॥ विषण्णमनसो देवा हरिं शरणमाययुः ॥ इति तद्दैन्यमालोक्य भगवान्भृत्यकामकृत् ॥ मा खिद्यत मिथोऽर्थं वः साधयिष्ये स्वमायया ॥ ३७ ॥ मिथः कलिरभूत्तेषां तदर्थे तर्षचेतसाम् ॥ अहं पूर्वमहं पूर्वं न त्वं न त्वमिति प्रभो ॥ ३८ ॥ देवाः स्वं भागमर्हन्ति ये तुल्यायासहेतवः ॥ सत्रयाग इवैतस्मिन्नेष धर्मः सनातनः ॥ ३९ ॥ इति स्वान्प्रत्यषेधन्वै दैतेया जातमत्सराः ॥ दुर्बलाः प्रबलान्राजन्गृहीतकलशान्मुहुः ॥ ४० ॥ एतस्मिन्नन्तरे विष्णुः सर्वोपायविदीश्वरः ॥ योषिद्रूपमनिर्देश्यं दधार परमाद्भुतम् ॥ ४१ ॥

देखिवेलायक कमलकी नाईं श्याम सब अंगनमें सुंदर, समान कानौंमें आभरण पहरे सुंदर कपोल ऊची नासिका, सुंदर मुख ॥ ४२ ॥ नवीन यौवनसै परिपूर्णस्तनोंके भारसै कृश उदर और मुखकी सुगंधिसै अनुरक्त भौंरानके शब्दते उद्विग्न नेत्रवाली ॥ ४३ ॥ फूली चमेलीकी माला चोटीमें धारण करे, सुंदर ग्रीवा और सुदर कंठमें आभरण पहिरें, सुंदर बाजूबंदसे भुजा भूषित हैं ॥ ४४ ॥ द्वीपके समान शोभित पृथु नितम्बौपर निर्मल वस्त्र पहरे कौंधनीसै प्रकाशमान चलते चरणौंमें सुन्दर नूपुरौंके शब्द युक्त ॥ ४५ ॥ लज्जा सहित हास्य और चंचल भृकुटीके विलास सहित चितवनीसे दैत्यनके यूथपालकोंके चित्तमें वेर वेर कामको उत्पन्न करने लगी ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायामष्टमस्कन्धेऽष्टमोऽध्यायः॥८॥

प्रेक्षणीयोत्पलश्यामं सर्वावयवसुन्दरम् ॥ समानकर्णाभरणं सुकपोलोन्नसाननम् ॥ ४२ ॥ नवयौवननिर्वृत्तस्तन-
भारकृशोदरम् ॥ मुखामोदानुरक्तालिझंकारोद्विग्नलोचनम् ॥ ४३ ॥ बिभ्रत्स्वकेशभारेण मालामुत्फुल्लमल्लिकाम्॥
सुग्रीवकण्ठाभरणं सुभुजाङ्गदभूषितम् ॥ ४४ ॥ विरजाम्बरसंवीतनितम्बद्वीपशोभया ॥ काञ्च्या प्रविलसद्वल्गुच-
लच्चरणनूपुरम् ॥ ४५ ॥ सव्रीडस्मितविक्षिप्तभ्रूविलासावलोकनैः ॥ दैत्ययूथपचेतस्सु काममुद्दीपयन्मुहुः ॥ ४६ ॥
इति श्रीम० महापुराणेऽष्टमस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तेऽन्योन्यतोऽसुराः पात्रं हरन्तस्त्यक्तसौ-
हृदाः ॥ क्षिपन्तो दस्युधर्माण आयान्तीं ददृशुः स्त्रियम् ॥ १ ॥ अहो रूपमहो धाम अहो अस्या नवं वयः ॥
इति ते तामभिद्रुत्य पप्रच्छुर्जातहृच्छयाः ॥ २ ॥ का त्वं कञ्जपलाशाक्षि कुतो वा किं चिकीर्षसि ॥ कस्यासि
वद वामोरु मथ्नन्तीव मनांसि नः ॥ ३ ॥

नवम अध्यायमें मोहित हो दैत्यौंनै जो दैत्य हैं तिन्हें अमृतको पात्र दियो, तब इनको वंचना करिकै मोहनीजीनें देवतानकों अमृत दियो यह वर्णन करैंगे ॥ शुकदेवजी बोले इसप्रकार वे दैत्य परस्पर पात्र छीनते धक्का धक्की करते स्नेह त्यागे चोरके साधर्म करते उस आतीहुई स्त्रीको देखते भये ॥ १ ॥ अहो अहो देखो तो याको सुंदर रूप, बडो तेज नवीन यौवन हैं, ऐसे परस्परमें कहतभये कामको प्राप्तहो दैत्य पास आइकें तासूं पूछत भये ॥ २॥ हे कमलनैनी ! तुम कौंन हो, कहातें आईहो, कहा करिवेकी इच्छा करोहो, कौनकी हो सो कहो, हेसुंदरि ! सुंदर जंघावारी तुम हमारे मनकों मोहित करोहो ॥ ३ ॥

देवता दैत्य सिद्ध गंधर्व चारणनें तुह्मारो स्पर्श नहीं कियोहै, लोकपालननेही नहीं कियोहै, तो मनुष्य कहांते करैंगे, यह हम जाने हैं ॥ ४ ॥ हे सुभ्रु! सुन्दर शरीर धारण करनेवाली तुमको क्या विधातानै शरीरधारियौंकी मन और संपूर्ण इन्द्रियौंकी प्रीतिके दैनेको कृपा करकै भेजा है ॥ ५ ॥ हे भामिनी! सो तुम एक वस्तुमें स्पर्द्धा करिकैं वैर करतेहुए हम ज्ञातिके सुखशांतिको करो ॥ ६ ॥ जो तुम हमसै पूछो तौ हम कश्यपके बेटा है, परस्परमें भैया है, हमने पराक्रम करकैं अमृतकी प्राप्ति कीहैं अब जिस प्रकार हममें भेद न होय इस प्रकार न्याय करकै हमें अमृत बादटो

न वयं त्वाऽमरैर्दैत्यैः सिद्धगन्धर्वचारणैः ॥ नास्पृष्टपूर्वां जानीमो लोकेशैश्च कुतो नृभिः ॥४॥ नूनं त्वं विधिना सुभ्रूः
प्रेषितासि शरीरिणाम् ॥ सर्वेन्द्रियमनःप्रीतिं विधातुं सघृणेन किम् ॥ ५ ॥ सा त्वं नः स्पर्धमानानामेकवस्तुनि
मानिनि ॥ ज्ञातीनां बद्धवैराणां शं विधत्स्व सुमध्यमे ॥ ६ ॥ वयं कश्यपदायादा भ्रातरः कृतपौरुषाः ॥ विभजस्व
यथान्यायं नैव भेदो यथा भवेत् ॥ ७ ॥ इत्युपामन्त्रितो दैत्यैर्मायायोषिद्वपुर्हरिः ॥ प्रहस्य रुचिरापाङ्गैर्निरीक्षन्निद-
मब्रवीत् ॥ ८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कथं कश्यपदायादाः पुंश्चल्यां मयि संगताः ॥ विश्वासं पण्डितो जातु कामिनीषु
न याति हि॥९॥ सालावृकाणां स्त्रीणां च स्वैरिणीनां सुरद्विषः ॥ सख्यान्याहुरनित्यानि नूत्नं नूत्नं विचिन्वताम्॥१०॥

॥७॥ जब ऐसे दैत्यनने कह्यो तब मायास्त्रीरूप हरि मुसिक्याइ करिकै रुचिर कटाक्ष भौंहकी मरोरीनिसे देखते यह बोलत भये ॥ ८ ॥ कश्यपके पुत्र तुम मुझ व्यभिचारिणीमें कैसें समताको प्राप्त भये पंडित जन कामिनीके विश्वासकूं नहीं प्राप्त होवे है, सो तुमने कैसें विश्वास धारणं कियो॥९॥हे दैत्य हो ! कुत्तानकी और व्यभिचारिणी स्त्रीनकी सख्यता नित्य नहींहै, हमारे विषें विश्वास धारण न करिये व्यभिचारिणी स्त्री नित्य नये

---

१ शका—दैत्यौंके छलनेके लिये भगवान्ने सब रूपको त्यागकर संसारमें अत्यन्त निन्दा योग्य वेश्याको रूप क्यों धारण किया? जो कोई कहै कि राक्षसोंको मोहनेके लिये माया करके वेश्याका रूप धारण किया तोभी अन्याय है क्यों कि क्या और किसी दूसरे रूपसे राक्षसोंको नहीं मोह सक्ते थे? भगवान् बडे बडे महात्माओंको मोह उत्पन्न कर देते हैं तो राक्षसोंको मोह उत्पन्न कर देना क्या बडी बात थी ?

उत्तर—सतयुगमें भगवान् नारदमुनिको माया करकै स्त्री बनादिया, देवी भागवतमें लिखा है कि जब नारदजीको स्त्री बने सहस्रों वर्ष व्यतीत होगये, तब नारद मायासे छूट पुरुष रूप हुये तब भगवान्को शाप दिया कि हे भगवन्! तुमभी कभी हम सरिखे स्त्रीरूप हो जाओगे इसलिये भगवान्ने वेश्याका रूप धारण किया ॥

48

नये पुरुषोंको ढूंढतीहैं ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी राजापरीक्षितप्रति कहैहै, ऐसे श्रीमोहनीजीके परिहाससै विश्वास युक्त चित्तसै असुर गंभीर भावसै
हंसतभये, और अमृतको पात्र देतभये ॥ ११ ॥ हरि भगवान् अमृतको पात्र ग्रहण करिकै कुछेक हास्यसै शोभायमान वाणीसै बोले हे दैत्यो ! जो
तुम मुझै बांटनेको देते हो तो जो कुछ मै भला बुरा करूं उसे तुम अंगीकार करो तो मैं अमृतको बांट करूं ॥ १२ ॥ असुरनमें श्रेष्ठ मोहिनीजीको
ऐसे कह्यो वचन सुनिकै तिनके करिवेकी इच्छाकूं नही जान तैसेंई वचनकों मानिलेतभये ॥ १३ ॥ ताकै अनंतर उपवास करि स्नान करि
अग्निको होम करि गो ब्राह्मण सम्पूर्ण प्राणीनकूं देकै ब्राह्मणोंसै स्वस्ति वाचन कराय ॥ १४ ॥ यथारुचि नये नये वस्त्र पहिरि पूर्वकूं अग्रभाग-

श्रीशुक उवाच ॥ इति ते क्ष्वेलितैस्तस्या आश्वस्तमनसोऽसुराः ॥ जहसुर्भावगम्भीरं ददुश्चामृतभाजनम् ॥ ११ ॥
ततो गृहीत्वाऽमृतभाजनं हरिर्बभाष ईषत्स्मितशोभया गिरा॥ यद्यभ्युपेत क्व च साध्वसाधु वा कृतं मया वो विभजे
सुधामिमाम् ॥ १२ ॥ इत्यभिव्याहृतं तस्या आकर्ण्यासुरपुङ्गवाः ॥ अप्रमाणविदस्तस्यास्तत्तथेत्यन्वमंसत ॥ १३ ॥
अथोपोष्य कृतस्नाना हुत्वा च हविषाऽनलम् ॥ दत्त्वा गोविप्रभूतेभ्यः कृतस्वस्त्ययना द्विजैः ॥ १४ ॥ यथोपजोषं
वासांसि परिधायाऽहतानि ते ॥ कुशेषु प्राविशन्सर्वे प्रागग्रेष्वभिभूषिताः ॥ १५ ॥ प्राङ्मुखेषूपविष्टेषु सुरेषु दितिजेषु
च ॥ धूपामोदितशालायां जुष्टायां माल्यदीपकैः ॥ १६ ॥ तस्यां नरेन्द्र करभोरुरुशदुकूलश्रोणीतटालसगतिर्मदविह्वलाक्षी
॥ सा कूजती कनकनूपुरसिञ्जितेन कुम्भस्तनी कलशपाणिरथाविवेश॥१७॥तां श्रीसखीं कनककुण्डलचारुकर्णनासाकपोलवदनां
परदेवताख्याम्॥संवीक्ष्य संमुमुहुरुत्स्मितवीक्षणेन देवासुरा विगलितस्तनपट्टिकान्ताम्॥१८॥

वारे कुशपे भूषित होयकें बैठतभये ॥ १५ ॥ धूपसे सुगंधित माला दीपकसे युक्त सभामें पूर्वको मुख कर देवता और दैत्य बैठत भये॥१६॥ हे नरेन्द्र
राजापरीक्षित! तब सभाके विषे, केलेकी समान जंघावारी सुन्दर दुकूलसे श्रोणीतट आच्छादन किये मंदगति मदकरिकै विह्वलनेत्र, शब्दायमान
सुवर्णके नूपुर पहरे कलशसे स्तनवारी अमृतको कलश हाथमें लेके मोहिनीजी प्रवेश करत भई ॥ १७ ॥ पर देवतानाम लक्ष्मीकी
सखीकी समान कानोंमें सुवर्णके सुंदर कुंडल धारणकिये सुंदर कपोल सुंदर मुख सुंदरनासिकायुक्त मोहिनीजीको कि जिनके स्तनोंका वस्त्र वारंवार

खसका पडताथा देखकर मंद मुसकान सहित तिरछी चितवनसै सब देवता और दैत्य मोहित होगये ॥ १८ ॥ असुरनको अमृतको दान देनो सर्पको
दूध प्यावनेकी समान है इसप्रकार भगवान दैत्यौंको स्वभावसै क्रूर जानकर उन्है अमृत न देते भये ॥ १९ ॥ जगतके पति भगवान् देवता दैत्यनकी
न्यारी न्यारी पंगति करत भये, पंगति करिकैं अपनो अपनी पंगतिमें बैठावत भये ॥२०॥ कलश उठाये भगवान् बहुत सन्मान प्रियवचनोंसे दैत्यौंको
वंचित करिकै दूरिमें स्थित देवताओंको जरा मृत्युको हरनवालो अमृत पिवावत भये ॥ २१ ॥ ते असुर अपनी प्रतिज्ञा पालन करते स्नेहके
कारण स्त्रीके संग विवाद करना अच्छा नहीं यह विचार चुप हो रहे ॥ २२ ॥ तिन मोहिनीजीमें स्नेह कियै स्नेहके नाशसे भयातुर मोहिनोजीके

असुराणां सुधादानं सर्पाणामिव दुर्नयम् ॥ मत्वा जातिनृशंसानां न तां व्यभजदच्युतः ॥ १९ ॥ कल्पयित्वा पृथ-
क्पङ्क्तिरुभयेषां जगत्पतिः ॥ तांश्चोपवेशयामास स्वेषु स्वेषु च पङ्क्तिषु ॥ २० ॥ दैत्यान्गृहीतकलशो वञ्चयन्नृप संचरैः ॥
दूरस्थान्पाययामास जरामृत्युहरां सुधाम् ॥ २१ ॥ ते पालयन्तः समयमसुराः स्वकृतं नृप ॥ तूष्णीमासन्कृतस्नेहाः
स्त्रीविवादजुगुप्सया ॥ २२ ॥ तस्यां कृतातिप्रणयाः प्रणयापायकातराः ॥ बहुमानेन चाबद्धा नोचुः किंचन विप्रियम्
॥ २३ ॥ देवलिङ्गप्रतिच्छन्नः स्वर्भानुर्देवसंसदि ॥ प्रविष्टः सोममपिबच्चन्द्रार्काभ्यां च सूचितः ॥२४॥ चक्रेण क्षुरधारेण
जहार पिबतः शिरः ॥ हरिस्तस्य कबन्धस्तु सुधयाऽप्लावितोऽपतत् ॥२५॥ शिरस्त्वमरतां नीतमजो ग्रहमचीक्लृपत् ॥
यस्तु पर्वणि चन्द्रार्कावभिधावति वैरधीः ॥ २६ ॥

आदरभावसे बंधे हुए (कियै कृपण देवतौंको नैक अमृत प्यादूं पछि तुम्है बहूत प्याऊंगी तुम क्षणमात्र ठहरो ऐसे स्नेहके वचन सुन) दैत्य कछुहु
न कहत भये ॥ २३ ॥ देवतानके स्वरूप करिकै ढक्यों राहु देवसभामें प्रवेश करिकै अमृत पीवत भयो, तब चन्द्रमा और सूर्य्यने बताई दीनो
॥ २४ ॥ अमृत पीवते राहुके शिरको भगवान् छुराकीसी धारयुक्त चक्रकरिकें काटि लेत भये; अमृतसे स्पर्शरहित धर गिरि परत भयो ॥ २५ ॥
शिर अमर होत भयो, जिसै ब्रह्माजीनै ग्रह बनाया पर्वमें चन्द्रमा और सूर्य्यके सामुहे वैरबुद्धिसो दौरतहै ॥ २६ ॥

देवताननें जब अमृत पीलीनो तब लोकनके पालक भगवान् सगरे असुरनके देखते अपनो पुरुषरूप प्रगट करत भये ॥ २७ ॥ यद्यपि देश काल हेतु, अर्थ, कर्म, मंत्र देवता और असुरोंके समान है परन्तु फलमें भेदको प्राप्त भये, भगवानके चरणारविंदकी रजके आश्रय देवताननें अनायास फल अमृत पायो दैत्यननें न पायो ॥ २८ ॥ प्राण धन मन कर्म वचनसे देह पुत्रादिकके अर्थ भेद दृष्टिसे जो किया जाताहै सो सो व्यर्थ होताहै और तिन प्राणादिकनकरिकैं हरिके निमित्त जो करनो है सो बडे फलको देनवारो होवे है, भगवान् सबमें व्यापक हैं, जैसें वृक्षकी जरकों सींचे

पीतप्रायेऽमृते देवैर्भगवाँल्लोकभावनः ॥ पश्यतामसुरेन्द्राणां स्वं रूपं जगृहे हरिः ॥ २७ ॥ एवं सुराऽसुरगणाः समदेशकालहेत्वर्थकर्ममतयोपि फले विकल्पाः ॥ तत्राऽमृतं सुरगणाः फलमञ्जसापुर्यत्पादपङ्कजरजःश्रयणान्न दैत्याः ॥ २८ ॥ यद्युज्यतेऽसुवसुकर्ममनोवचोभिर्देहात्मजादिषु नृभिस्तदसत्पृथक्त्वात् ॥ तैरेव सद्भवति यत्क्रियतेऽपृथक्त्वात्सर्वस्य तद्भवति मूलनिषेचनं यत् ॥ २९ ॥ इति श्री० म० अष्ट० अमृतमथने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति दानवदैतेया नाविन्दन्नमृतं नृप ॥ युक्ताः कर्माणि यत्ताश्च वासुदेवपराङ्मुखाः ॥ १ ॥

तो गुद्दा शाखा पत्तौआ इनको सींचनो होवेहै ॥२९॥ इति श्रीभा०भा०अष्टमस्कन्धे नवमोध्यायः ॥ ९ ॥ दशवैं अध्यायके विषे मत्सरता करिकें दैत्यननें देवतानके संग संग्रामको आरंभ कियो, तब दैत्यनकी मायाकरिकैं देवता दुःखकों प्राप्तभये तब भगवान प्रगट होत भये अभक्तनको अमृतकी प्राप्ति न भई यह कही अब फिर भक्तनसों मत्सरता करै तो प्राणनकी हानि होय यह वर्णन करैगे ॥ शुकदेवजी बोले हे राजा! दैत्य और

---

१ जब प्रारब्धसे द्रव्य नांय होत तब पारसहू फल नांय देत, और कृपण पुरुष मुफतके धन मिलेहू कृपणता नांय छोडे, एक बाबाजी सारी बस्तीमें फिरे काहुने बात न बूझी, एक बनियांकी दुकानपर गये, वासें चवैना मांगो, वाने कही मेरी दुकान नहीं हैं, बाबाजी चलदिये, बनियेने सोचा कि वृथा झूंठ बोला, मुठ्ठी मुठ्ठीमें कुछ मेरा बिगडा थौडेही जाय है, बाबाजीको बुलाकर चवैना दिया, बाबाजी खा चुके तौ बनियां बोला और कुछ आज्ञा होय तौ कहो, बाबाजीने कही यह सब साधुओंको चवैना बांट दो, वैश्यने सब बांट दिये, साधूजीने एक पारस पत्थर दियो, और कही कि इससे सौना बनाओ, और हम पंद्रह दिनमें इसे लेजांयगे,लालाजी पारस ले बजारमें लोहेका भाव पूछने गये, सो पूछा क्या भाव है लुहार बोला पांच शेर, सोचा भाव तेज है, फिर देखैंगे, दो तीन दिन पीछे गयो, पूछा अब क्या भाव है, दुकानदार बोले चार सेर, फिर दो तीन दिन पीछे गये, तौ तीनशेर इसी रीतिसे महीना भर बीतिगया, साधु आकर अपने पत्थर लेगये, और कही कि जब प्रारब्धमें नाय तौ कहांसे धन मिलै, जब दिन सूंवै होय तौ वैसेही प्राप्त होयजाय, ऐसेही दैत्योंने अमृत खोयो ॥

दानवौंने महा परिश्रम किया कार्यमें लगे रहे परन्तु नारायणसे विमुख हौनेके कारण उन्है अमृत न मिला ॥ १ ॥ हे राजन्! अमृतकूं सिद्धिकरि अपने देवतानकूं प्याइकै सगरे प्राणीनके देखत गरुडवाहन हरि जातभये ॥ २ ॥ दैत्य वैरीनकी परम ऋद्धि देखकै न सहारते भये और आयुधनकों लेकें देवतानके प्रति युद्धके लिये आवतभये ॥ ३ ॥ ताके अनंतर अमृत पीकरिकै बैठे नारायणके चरणके आश्रयी देवतानके गण सगरे शस्त्रनकरिकै युद्ध करतभये ॥ ४ ॥ हे राजन्! तहां महाभयंकर दैवासुर नाम समुद्रके तीरपै घोर युद्ध होतभयो, जा युद्धकों देखिकै रोमांच ठाढे होवैहै ॥ ५ ॥ क्रोधयुक्तमन रणमें परस्पर मिलिकै खड्ग बाण अनेकप्रकारके आयुधनकरिकै मारत भये ॥ ६ ॥ शंख तुरही मृदंग भेरी

साधयित्वाऽमृतं राजन्पाययित्वा स्वकान्सुरान् ॥ पश्यतां सर्वभूतानां ययौ गरुडवाहनः ॥ २ ॥ सपत्नानां परामृद्धिं दृष्ट्वा ते दितिनन्दनाः ॥ अमृष्यमाणा उत्पेतुर्देवान्प्रत्युद्यतायुधाः ॥ ३ ॥ ततः सुरगणाः सर्वे सुधया पीतयैधिताः ॥ प्रतिसंयुयुधुः शस्त्रैर्नारायणपदाश्रयाः ॥ ४ ॥ तत्र दैवासुरो नाम रणः परमदारुणः ॥ रोधस्युदन्वतो राजंस्तुमुलो रोमहर्षणः ॥ ५ ॥ तत्रान्योन्यं सपत्नास्ते संरब्धमनसो रणे ॥ समासाद्यासिभिर्बाणैर्निजघ्नुर्विविधायुधैः ॥ ६ ॥ शङ्खतूर्यमृदङ्गानां भेरीडमरुणां महान् ॥ हस्त्यश्वरथपत्तीनां नदतां निःस्वनोऽभवत् ॥७॥ रथिनो रथिभिस्तत्र पत्तिभिः सह पत्तयः॥ हया हयैरिभाश्चेभैः समसज्जन्त संयुगे ॥८॥ उष्ट्रैः केचिदिभैः केचिदपरे युयुधुः खरैः ॥ केचिद्गौरमृगैर्ऋक्षैर्द्वीपिभिर्हरिभिर्भटाः ॥ ९ ॥ गृध्रैः कङ्कैर्बकैरन्ये श्येनभासैस्तिमिङ्गिलैः ॥ शरभैर्महिषैः खड्गैर्गोवृषैर्गवयारुणैः ॥ १० ॥

डोरूकों हाथमें लेके बडो घोरशब्द करत भये, ऐसेही हाथी घोडा रथ प्यादोंका बडो शब्द होतभयो ॥७॥ रथी रथीनसों प्यादे प्यादेनसो, घोडानके संग घोडा, हाथीनके संग हाथी मिलिकैं संग्राममें लरतभये ॥ ८ ॥ कोई ऊंटनपै बैठिकै प्रहार करै हैं, कोई हाथीनपै बैठके प्रहार करैहै, कोई गधानपै बैठिकें आये कोई एक गौरमृगनपै बैठिकें आये, कोई द्वीपनपै बैठिकें आये, कोई सिंहनपै बैठिकें आये ॥ ९ ॥ कोऊ गिद्धनपै, कोई बगुलानपै, कोई सिकरानपै, कोई एक भैसानपै, कोई एक ग्राहनपै, कोई मत्स्यनपै कोई शरभनपै कोई एक गैंडेनपै कोई बैलनपै, याप्रकार चढिकै आवतभये ॥ १० ॥

कोई रोजनपै, कोई स्यारनपै, चढिकै आवत भये, मूसेनपै बैठिकरिकै गैडनपै चढिकै आवतभये, शशनपे, मनुष्यनपै, बकरानपै कसारीपर, हरिणनपै, हंसनपै शूकरनपै, या प्रकार चढिचढिकै आवत भये ॥ ११ ॥ और है ते जलके स्थलके पक्षीनपै बैठिकै आवतभये हे राजन्! दोऊ सेनानमें आगे आगे प्रवेश करत भये ॥ १२ ॥ हे राजन्! चित्रविचित्र जो ध्वजा पताका श्वेत निर्मल स्वच्छ वस्त्र और बहुमौल्य हीरानकी डांडीके व्यजन और चंवर ॥ १३ ॥ पवननें कंपाये उपरना पाग जामा पटुका कवच और तेजसे प्रकाशित और सूर्यकी किरणनिसे अतिशय प्रकाशित निर्मल शस्त्रौंसे ॥ १४ ॥ देवता दानवनके वीरनकी सेना मालानकरिकै ऐसे शोभित भई, जैसे ग्राहमत्स्यन करिकै समुद्र शोभित होवै है ॥ १५ ॥ विरोचनको बेटा

शिवाभिराखुभिः केचित्कृकलासैः शशैर्नरैः ॥ बस्तैरेके कृष्णसारैर्हंसैरन्ये च सूकरैः ॥ ११ ॥ अन्ये जलस्थलखगैः सत्त्वैर्विकृतविग्रहैः ॥ सेनयोरुभयो राजन्विविशुस्तेऽग्रतोऽग्रतः ॥ १२ ॥ चित्रध्वजपटै राजन्नातपत्रैः सितामलैः ॥ महाधनैर्वज्रदण्डैर्व्यजनैर्बार्हचामरैः ॥ १३ ॥ वातोद्धूतोत्तरोष्णीषैरर्चिर्भिर्वर्मभूषणैः ॥ स्फुरद्भिर्विशदैः शस्त्रैः सुतरां सूर्यरश्मिभिः ॥ १४ ॥ देवदानववीराणां ध्वजिन्यौ पाण्डुनन्दन ॥ रेजतुर्वीरमालाभिर्यादसामिव सागरौ ॥ १५ ॥ वैरोचनो बलिः संख्ये सोऽसुराणां चमूपतिः ॥ यानं वैहायसं नाम कामगं मयनिर्मितम् ॥ १६ ॥ सर्वसांग्रामिकोपेतं सर्वाश्चर्यमयं प्रभो ॥ अप्रतर्क्यमनिर्देश्यं दृश्यमानमदर्शनम् ॥ १७ ॥ आस्थितस्तद्विमानाग्र्यं सर्वानीकाधिपैर्वृतः ॥ वालव्यजनछत्राग्र्ये रेजे चन्द्र इवोदये ॥ १८ ॥ तस्यासन्सर्वतो यानैर्यूथानां पतयोऽसुराः ॥ नमुचिः शम्बरो बाणो विप्रचित्तिरयोमुखः ॥ १९ ॥

असुरकी सेनानको पालक बली संग्राममें वैहायस नाम विमानपर " जहां मन करे तहां चल्यो जाई " जो मयदैत्यका बनायाथा ॥ १६ ॥ संपूर्ण युद्धकी सामानकरिकै युक्त सब आश्चर्यरूप, तर्क करिवेमें न आवे कभी दीखे और कभी न दीखे ॥ १७ ॥ ऐसे विमाननमें श्रेष्ठ विमानमें बैठिकै सब सेनानके पालकौं सहित छत्र चमरसे शोभाको प्राप्त होत भयो, जैसें उदयाचलपै चंद्रमा शोभित होवे है ॥ १८ ॥ ता राजा बलिकी और यूथनके पालक असुर सब ओरते अपनें वाहननपै बैठिके सेनाकूं संग लेके आवतभये ॥ १९ ॥

नमुच शंबर बाण विप्रचित्ति अयोमुख द्विमूर्द्धा कालनाभ प्रहेति इल्वल शकुनि भूतसंतापन वज्रदंष्ट्र विरोचन ॥ २० ॥ हयग्रीव शंकुशिरा कपिल मेघदुंदुभि तारक चक्रदृक् शुंभ निशुंभ जंभ उत्कल ॥ २१ ॥ अरिष्टनेमि मय त्रिपुरको पालक, और पौलोम कालयवन निवातकवच इनते आदि लेके ते ॥ २२ ॥ अमृतको भाग न पानेवारे केवल क्लेशके भजनेवारे बहुत वेर देवताओंके जीतनेवारे दैत्य ॥ २३ ॥ सिंहनादकों करतभये सगरे शंख बजावतभये, इस प्रकार वैरियोंको उद्धत देख महा क्रोधकर ॥ २४ ॥ स्वर्गको राजा इंद्र दिशानके हाथी ऐरावतपै चढिकै आकाशमें शोभित होतभयो, जैसें झरना झरनेवाले उदयाचल पर्वतपै बैठिकै सूर्य्य सुंदर लगे है ऐसें इंद्र शोभाकों प्राप्त होतभयो ॥ २५ ॥ ता इंद्रके सब ओरकों नाना प्रकारके वाहन, ध्वजा आयुध ले सब देवता लोकपाल वायु अग्नि वरुण अपने गुणोंको संग ले शोभित हुये ॥ २६ ॥ ते देवता दैत्य मिलिकै परस्पर नामको लेकें पुकारते आगे प्रवेश करिकै दोदो मिलिकै युद्ध करतभये ॥ २७ ॥ बलि इंद्रके संग युद्ध करतभयो, स्वामिकार्तिक तारकके संग लडतभयो हेतिके संग वरुण युद्ध करत भयो, प्रहेतिके संग मित्र लडतभयो ॥ २८ ॥ कालनाभिसे यम युद्ध करतभयो, मयके संग विश्वकर्मा युद्ध करतभयो, त्वष्टाके संग शंबर युद्ध करतभयो,सूर्यके संग विरोचन लडत भयो ॥ २९ ॥

द्विमूर्धा कालनाभोऽथ प्रहेतिर्हेतिरिल्वलः ॥ शकुनिर्भूतसंतापो वज्रदंष्ट्रो विरोचनः ॥ २० ॥ हयग्रीवः शङ्कुशिराः कपिलो मेघदुन्दुभिः ॥ तारकश्चक्रदृक् शुम्भो निशुम्भो जम्भ उत्कलः ॥ २१ ॥ अरिष्टोऽरिष्टनेमिश्च मयश्च त्रिपुराधिपः ॥ अन्ये पौलोमकालेया निवातकवचादयः ॥ २२ ॥ अलब्धभागाः सोमस्य केवलं क्लेशभागिनः ॥ सर्वे एते रणमुखे बहुशो निर्जितामराः ॥ २३ ॥ सिंहनादान्विमुञ्चतः शङ्खान्दध्मुर्महास्वनान् ॥ दृष्ट्वा सपत्नानुत्सिक्तान्बलभित्कुपितो भृशम् ॥२४॥ ऐरावतं दिक्करिणमारूढः शुशुभे स्वराट् ॥ यथा स्रवत्प्रस्रवणमुदयाद्रिमहर्पतिः ॥२५॥ तस्यासन्सर्वतो देवा नानावाहध्वजायुधाः ॥ लोकपालाः सह गणैर्वाय्वग्निवरुणादयः ॥२६॥ तेऽन्योन्यमभिसंसृत्य क्षिपन्तो मर्मभिर्मिथः ॥ आह्वयन्तो विशन्तोऽग्रे युयुधुर्द्वन्द्वयोधिनः ॥ २७ ॥ युयोध बलिरिन्द्रेण तारकेण गुहोऽस्यत ॥ वरुणो हेतिनाऽयुध्यन्मित्रो राजन्प्रहेतिना ॥ २८ यमस्तु कालनाभेन विश्वकर्मा मयेन वै ॥ शम्बरो युयुधे त्वष्ट्रा सवित्रा तु विरोचनः ॥ २९ ॥

अपराजितके संग नमुचि लडतभयो, वृषपर्वाके संग अश्विनीकुमार लडतभये, बाणासुर आदि सौ बलिके पुत्रौंके संग एक सूर्य्य लडतभयो ॥३०॥
राहुके संग चंद्रमा लडतभयो, पुलोमाके संग पवन लडतभयो, निशुंभशुंभके संग बडी वेगवान देवी भद्रकाली लडतिभई ॥ ३१ ॥ जृंभके संग
वृषाकपि महिषासुरके संग अग्निदेवता लडतभयो, प्रजापतिनके संग वातापीसहित इल्वल लडतभयो ॥ ३२ ॥ कामदेवके संग दुर्मर्ष लडतभयो,
ब्राह्म्यादि मातृनके संग उत्कल लडत भयो, बृहस्पतिके संग शुक्र लडत भयो, नरकासुरके संग शनैश्चर लडतभयो ॥ ३३ ॥ निवातकवचनके संग

अपराजितेन नमुचिरश्विनौ वृषपर्वणा ॥ सूर्यो बलिसुतैर्देवो बाणज्येष्ठैः शतेन च ॥ ३० ॥ राहुणा च तथा सोमः
पुलोम्ना युयुधेऽनिलः ॥ निशुम्भशुम्भयोर्देवी भद्रकाली तरस्विनी ॥ ३१ ॥ वृषाकपिस्तु जम्भेन महिषेण विभावसुः॥
इल्वलः सहवातापिर्ब्रह्मपुत्रैररिंदम ॥ ३२ ॥ कामदेवेन दुर्मर्ष उत्कलो मातृभिः सह ॥ बृहस्पतिश्चोशनसा नरकेण
शनैश्चरः ॥ ३३ ॥ मरुतो निवातकवचैः कालेयैर्वसवोऽमराः ॥ विश्वेदेवास्तु पौलोमै रुद्राः क्रोधवशैः सह ॥ ३४ ॥
त एवमाजावसुराः सुरेन्द्रा द्वन्द्वेन संहत्य च युध्यमानाः ॥ अन्योन्यमासाद्य निजघ्नुरोजसा जिगीषवस्तीक्ष्णशरासितोमरैः ॥ ३५ ॥ भुशुण्डिभिश्चक्रगदर्ष्टिपट्टिशैः शक्त्युल्मुकैः प्रासपरश्वधैरपि ॥ निस्त्रिंशभल्लैः परिघैः समुद्गरैः सभिन्दिपालैश्च शिरांसि चिच्छिदुः ॥ ३६ ॥ गजास्तुरङ्गाः सरथाः पदातयः सारोहवाहा विविधा विखण्डिताः ॥ निकृत्तबाहूरुशिरोधराङ्घ्रयश्छिन्नध्वजेष्वासतनुत्रभूषणाः ॥ ३७ ॥

मरुतगण लडत भयो, कालयवनके संग वास्तुदेवता लडत भये, पुलोमानके संग विश्वेदेवता लडत भये, क्रोधवशनके संग रुद्र लडतभये ॥ ३४ ॥
संग्राममें ते देवता असुर मिलिकै या प्रकार दोदो युद्ध करत भये, परस्पर मिलिकै जीतिवेकी चाहना करै हैं बल पूर्वक पैने बाण खड्ग तोमर मारत
भये ॥ ३५ ॥ और भुशंडी चक्र गदा ऋष्टि पट्टे शक्ति लूहर पाश फरसा खड्ग भाले गेंडा मुद्गर भिंडिपालौंसे शिरनको काटत भये॥ ३६ ॥ हाथी
घोडा रथ प्यादे असवार नाना प्रकार खंडित होत भये, भुजा नारि जंघा चरण कट कट कर गिरने लगे ध्वजा धनुष कवच गहने टूट गये ॥ ३७ ॥

तिनके पांयनको आघात, और रथनके पैया करिकै चूर्ण भई रणकी भूमिसे उडी धूरि दिशा सूर्य आकाशको ढकि लेतिभई, फेरि लोहूकी धारासे भीजे आकाशादिकतें निवृत्त होतभई ॥ ३८ ॥ किरीट मुगुट कुंडल सहित क्रोधयुक्त दृष्टि, दांतनसूं होठ चावते, कटे शिर, आभरण और आयुधनसहित बडी भुजाकी राशी और जंघाओंसे ढकी रणभूमि महा शोभाको प्राप्त होतीभई ॥ ३९ ॥ रुंड अपनें शिरनके नेत्रसे देखते आयुधनकूं हाथनमें लेले योद्धानके सांमुही दौरत युद्ध करतभये ॥ ४० ॥ बलि दशबाणनकरिकैं इंद्रको मारत भयो, तीनि बाणनकरिकैं ऐरावतकूं मार्‍यो, चारि बाणनकरिकैं चारि ऐरावतके रखवारे मारतभयो, एकबाणकरिकैं महावतको मारत भयो ॥ ४१ ॥ इन्द्र उन आतेहुए बाणोंको देख उनके

तेषां पदाघातरथाङ्गचूर्णितादायोधनादुल्बण उत्थितस्तदा ॥ रेणुर्दिशः खं द्युमणिं च छादयन्न्यवर्ततासृक्स्रुतिभिः परिप्लुतात् ॥ ३८ ॥ शिरोभिरुत्कृत्तकिरीटकुण्डलैः संरम्भदृग्भिः परिदष्टदच्छदैः ॥ महाभुजैः साभरणैः सहायुधैः सा प्रास्तृता भूः करभोरुभिर्बभौ ॥ ३९ ॥ कबन्धास्तत्र चोत्पेतुः पश्यन्तः स्वशिरोक्षिभिः ॥ उद्यतायुधदोर्दण्डैराधावन्तो भटान्मृधे ॥ ४० ॥ बलिर्महेन्द्रं दशभिस्त्रिभिरैरावतं शरैः ॥ चतुर्भिश्चतुरो वाहानेकेनारोहमाच्छेयत् ॥ ४१ ॥ स तानापततः शक्रस्तावद्भिः शीघ्रविक्रमः ॥ चिच्छेद निशितैर्भल्लैरसंप्राप्तान्हसन्निव ॥ ४२ ॥ तस्य कर्मोत्तमं वीक्ष्य दुर्मर्षः शक्तिमाददे ॥ तां ज्वलन्तीं महोल्काभां हस्तस्थामच्छिनद्धरिः ॥ ४३ ॥ ततः शूलं ततः प्रासं ततस्तोमरमृष्टयः ॥ यद्यच्छस्त्रं समादद्यात्सर्वं तदच्छिनद्विभुः ॥ ४४ ॥ ससर्जाथासुरीं मायामन्तर्धानं गतोसुरः ॥ ततः प्रादुरभूच्छैलः सुरानीकोपरि प्रभो ॥ ४५ ॥

आनेसे पहलेही हंसते हंसते अपने तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हैं काटतभये ॥ ४२ ॥ इंद्रको उत्तम कर्म देखिकैं असह्य हो तब बलि उल्काकीसी कांतिवाली शक्ति लेतभयो, इन्द्र हाथमें स्थित शक्तिकूं देखिकैं शीघ्र काटत भयो ॥ ४३ ॥ तापीछें त्रिशूल लियो, फेरि पाश लीनी तोमर यष्टीकों आदिलेकें जो जो अस्त्र लिये सोई सोई इंद्रनें सब काटिडारे ॥ ४४ ॥ तब बलि अंतर्द्धान होकैं असुरनकी माया सृजतभयो ता मायाकरिकैं देवतानकी सेनाके ऊपर पर्वत प्रकट होतभयो ॥ ४५ ॥

ता पर्वततें दावाग्निंक जरे वृक्ष गिरत भये, टांकीसी पैनी शिला वैरीकी सेनाकों चूर्ण करतभई ॥ ४६ ॥ बडे बडे सर्प दंदशूक वीछू दौरतभये सिंह
व्याघ्र वराह हाथीनकों मारतभये ॥ ४७ ॥ सैकरान राक्षस त्रिशूल हाथमें लैके आवतभये, और नंगी यक्षणी और राक्षसनके गण इकठौरे होकै मारो
मारो कहतभये ॥ ४८ ॥ तापीछें बडी घंटासम गंभीर शब्द पवनके प्रेरे गर्जते मेघ आकाशते अंगारनकी वर्षा करतभये ॥ ४९ ॥ दैत्यनकों सृज्यो
पवन जाको सहायक, बडो उग्र प्रलयकीसी नाई अग्नि देवतानकी सेनाकूं जरावतभयो ॥ ५० ॥ तापीछें सब ओरतें मर्यादा छोडे समुद्र प्रचंड भयो

ततो निपेतुस्तरवो दह्यमाना दवाग्निना ॥ शिलाः सटङ्कशिखराश्चूर्णयन्त्यो द्विषद्बलम् ॥ ४६ ॥ महोरगाः समुत्पेतुर्दन्दशूकाः
सवृश्चिकाः ॥ सिंहव्याघ्रवराहाश्च मर्दयन्तो महागजान् ॥ ४७ ॥ यातुधान्यश्च शतशः शूलहस्ता
विवाससः ॥ छिन्धि भिन्धीति वादिन्यस्तथा रक्षोगणाः प्रभो ॥ ४८ ॥ ततो महाघना व्योम्नि गम्भीरपरुषस्वनाः
॥ अङ्गारान्मुमुचुर्वातैराहताः स्तनयित्नवः ॥ ४९ ॥ सृष्टो दैत्येन सुमहान्वह्निः श्वसनसारथिः ॥ सांवर्तक
इवात्युग्रो विबुधध्वजिनीमधाक् ॥ ५० ॥ ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्रत्यदृश्यत ॥ प्रचण्डवातैरुद्धूततरङ्गावर्तभीषणः
॥ ५१ ॥ एवं दैत्यैर्महामायैरलक्ष्यगतिभीषणैः ॥ सृज्यमानासु मायासु विषेदुः सुरसैनिकाः ॥ ५२ ॥ न तत्प्रतिविधिं
यत्र विदुरिन्द्रादयो नृप ॥ ध्यातः प्रादुरभूत्तत्र भगवान्विश्वभावनः ॥ ५३ ॥ ततः सुपर्णांसकृताङ्घ्रिपल्लवः
पिशङ्गवासा नवकञ्जलोचनः ॥ अदृश्यताष्टायुधबाहुरुल्लसच्छ्रीकौस्तुभानर्घ्यकिरीटकुण्डलः ॥ ५४ ॥

पवन करिकैं तरंग उठने लगी और भयंकर भंवर पड़नेलगे ॥ ५१ ॥ जब ऐसी बडी माया रची, तब अलक्षित गति भयंकर दैत्योंकी सृजी मायासे
देवता दुःखकूं प्राप्त होतभये ॥ ५२ ॥ हे राजा परीक्षित! इंद्रादिक देवता ता मायाकों उपाय न जानतभये, तब भगवान्कों ध्यान कियो, ध्यानके
करतेही विश्वके पालक हरि भगवान् प्रकट होतेभये ॥ ५३ ॥ गरुडके कंधापै असवार पीतांबर पहरे कमल नेत्र, आठ आयुध भुजानमें लिये लक्ष्मी
कौस्तुभमणि धारे बहुत मोलके किरीट मुकुट कुंडल सुंदर दुकूल वस्त्र पहरे हरि भगवान् दीखतेभये ॥ ५४ ॥

भगवान्के प्रवेश करतसंते असूरोंके कपटते भई माया हरिकी मायाकरिकैं नष्ट होतीभई जैसें जागतेमें स्वप्न जाता रहताहै कारण कि हरि भगवान्का स्मरण संपूर्ण विपत्तिनकूं दूरि करैहै ॥ ५५ ॥ हे नृप ! ता संग्राममें गरुडवाहन भगवान्को देखिकें सिंहवाहन कालनेमि असुर फिराकै त्रिशूल फेंकतभयो गरुडकें माथेपै आते त्रिशूलकू पकड़ भगवान् लीलाहीसे तिसी त्रिशूलकरिकै कालनेमिको मारतभये ॥ ५६ ॥ ताके पीछें अतिबली माली सुमाली युद्धमें आवतभये, तब भगवान्नें चक्र करिकैं दोनोंनके शिर काटिलिये, तब माल्यवान् पैनी गदा गरुडकें मारिवेकूं आयो, तब तांई भगवान्नें चक्र लेकै वैरीको माथो काटिलियो ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां अष्टमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ग्यारहवे अध्यायके

तस्मिन्प्रविष्टेऽसुरकूटकर्मजा माया विनेशुर्महिना महीयसः ॥ स्वप्ना यथा हि प्रतिबोध आगते हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्॥५५॥दृष्ट्वा मृधे गरुडवाहमिभारिवाह आविध्य शूलमहिनोदथ कालनेमिः॥तल्लीलया गरुडमूर्ध्नि पतद्गृहीत्वा तेनाहनन्नृप सवाहमरिं त्र्यधीशः॥५६॥माली सुमाल्यतिबलौ युधि पेततुर्यच्चक्रेण कृत्तशिरसावथ माल्यवांस्तम्॥ आहत्य तिग्मगदयाऽहनदण्डजेन्द्रं तावच्छिरोऽच्छिनदरेर्नदतोऽरिणाऽऽद्यः ॥ ५७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथो सुराः प्रत्युपलब्धचेतसः परस्य पुंसः परयानुकम्पया ॥ जघ्नुर्भृशं शक्रसमीरणादयस्तांस्तान्रणे यैरभिसंहताः पुरा ॥ १ ॥ वैरोचनाय संरब्धो भगवान्पाकशासनः ॥ उदयच्छद्यदा वज्रं प्रजा हाहेति चुक्रुशुः ॥ २ ॥ वज्रपाणिस्तमाहेदं तिरस्कृत्य पुरःस्थितम् ॥ मनस्विनं सुसंपन्नं विचरन्तं महामृधे ॥ ३ ॥ नटवन्मूढ मायाभिर्मायेशान्नो जिगीषासि ॥ जित्वा बालान्निबद्धाक्षान्नटो हरति तद्धनम् ॥ ४ ॥

विषे नारदजी दैत्यनके मारनवारे देवतोंको मनें करतभये, शुक्र मृतकोंको जिवाइ लेतभयो यह वर्णन करैंगे ॥ शुकदेवजी परीक्षितसों कहैहैं परमपुरुष भगवान् परमकृपासे सावधान चित्त हो देवता इंद्र पवनते आदिलेंके रणमें जिनसों पहले युद्ध करैहै तिनें मारतभये ॥ १ ॥ विरोचनके बेटा बलिके अर्थ क्रोध कर भगवान् इंद्र जब वज्र उठावतभये, तब प्रजा हाहाकार करिकै पुकारतभई ॥ २ ॥ वज्र हाथमें लिये इंद्र आगे ठाढे संग्राममें विचरते बडो संपन्न धीर बलिकूं तिरस्कार करिकैं यह कहत भयो ॥३॥ हे मूढ! नटकीसी नाईं मायानकरिकै मायेश्वर हमारे जीतवेकी इच्छा करैहै

जैसे नट मूर्खनकी आंखि बांधिकैं तिने जीतिकैं तिनके धनको हरैहै ॥ ४ ॥ जे स्वर्गमें चढिवेकी इच्छा करैं है, और मायाकरिकैं स्वर्गकों उल्लंघन करिवेको इच्छा करैं हैं, तिन मूर्ख चोरनकों पहिलें स्थानतेहू नीचेकूं पटकि देहैं ॥ ५ ॥ सो मैं तीक्ष्णपर्व वज्रसे दुष्ट मायावी तेरे शिरकों हरूंगो, हे मंदबुद्धे! अपनी जातिनकरिकैं सहित युद्धके लियें यत्न कर ॥ ६ ॥ तब बली बोल्यो देव जिनके कर्मोंको प्रेरण करैहै ऐसे संग्राममें स्थित वीरोंकी हार जीत मृत्यु क्रमसे होती रहतीहै ॥ ७॥ विवेकी जन कालकी डोरितें बंध्यो जगत्को देखिकैं यातें आनंदको नहीं प्राप्त होवैहैं, शोचकों नहीं धारण करै है, ऐसें विवेकमें तुम मूर्ख हो ॥८॥ तुम कीर्ति जयादिकमें आपको साधन मान्तेहो इस कारण तुम साधुपुरुषोंके शोचनीय हो तुह्मारी मर्ममें पीडा

आरुरुक्षन्ति मायाभिरुत्सिसृप्सन्ति ये दिवम् ॥ तान्दस्यून्विधुनोम्यज्ञान् पूर्वस्माच्च पदादधः ॥ ५ ॥ सोऽहं दुर्मायिनस्तेऽद्य वज्रेण शतपर्वणा ॥ शिरो हरिष्ये मन्दात्मन्घटस्व ज्ञातिभिः सह ॥ ६ ॥ बलिरुवाच ॥ संग्रामे वर्तमानानां कालचोदितकर्मणाम् ॥ कीर्तिर्जयोऽजयो मृत्युः सर्वेषां स्युरनुक्रमात् ॥७॥ तदिदं कालरशनं जनाः पश्यन्ति सूरयः ॥ न हृष्यन्ति न शोचन्ति तत्र यूयमपण्डिताः ॥ ८ ॥ न वयं मन्यमानानामात्मानं तत्र साधनम् ॥ गिरो वः साधु शोच्यानां गृह्णीमो मर्मताडनाः ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याक्षिप्य विभुं वीरो नाराचैर्वीरमर्दनः ॥ आकर्णपूर्णैरहनदाक्षेपैराहतं पुनः ॥ १० ॥ एवं निराकृतो देवो वैरिणा तथ्यवादिना ॥ नामृष्यत्तदधिक्षेपं तोत्राहत इव द्विपः ॥ ११ ॥ प्राहरत्कुलिशं तस्मा अमोघं परमर्दनः ॥ सयानो न्यपतद्भूमौ छिन्नपक्ष इवाचलः ॥ १२ ॥

देनेहारी वाणी हम स्वीकार नहीं करैहै ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहैं है हे राजन्! ऐसे वीरनको मारनवालो बलि तिरस्कार करिकै कांन तांई खेंचे बाणौंसै इंद्रको मारतभयो; जो इंद्र पहले तिरस्कार करिकै मारचो हैं ॥ १० ॥ सत्यवादी बलीनें ऐसें जब इंद्रको तिरस्कार कियो, तब सो ताके तिरस्कारकूं नहीं सहारत भयो, जैसै अंकुशकरिकै मारचो हाथी नहीं सहारे है ॥ ११ ॥ वैरीनको मारनेवारो इंद्र बलीके अर्थ सफल अपनो वज्रप्रहार करतभयो, तासे विमान सहित बली पृथ्वीमें गिरि परतभयो जैसे पंख कटनेसे पर्वत गिरि परैहै ॥ १२ ॥

बलीको सखा जंभ अपने सखा बलीकों गिरो देखिकैं गिरे हुए मित्रकाभी सुहृद धर्म पालन करकै इन्द्रके सन्मुख आया ॥ १३ ॥ सिंहवाहन बडो बली जंभ पास आइ गदा उठाइकै इंद्रके हाथीकें मारत भयो॥१४॥ गदाके प्रहारकरिकै दुःखी अतिशयकरिकैं विह्वल हाथी घोटूनकै बल पृथिवीमें गिरिकैं बडे मोहकूं प्राप्त भयो ॥ १५ ॥ ताके अनंतर मातलीसारथीनें हजार घोडानकरिकै युक्त रथ लाइकरिकैं प्राप्तकर दीयो, इंद्र हाथीकों छोडिकै रथमें चढत भयो॥१६॥दानवनमें श्रेष्ठ जंभ सारथीके कर्मकी बडाई करत भयो, और हंसिकैं संग्राममें प्रकाशित त्रिशूलसे मातलीकों मारत

सखायं पतितं दृष्ट्वा जम्भो बलिसखः सुहृत् ॥ अभ्ययात्सौहृदं सख्युर्हतस्यापि समाचरन् ॥ १३ ॥ स सिंहवाह आसाद्य गदामुद्यम्य रंहसा ॥ जत्रावताडयच्छक्रं गजं च सुमहाबलः ॥ १४ ॥ गदाप्रहारव्यथितो भृशं विह्वलितो गजः ॥ जानुभ्यां धरणिं स्पृष्ट्वा कश्मलं परमं ययौ ॥ १५ ॥ ततो रथो मातलिना हरिभिर्दशशतैर्वृतः ॥ आनीतो द्विपमुत्सृज्य रथमारुरुहे विभुः ॥ १६ ॥ तस्य तत्पूजयन्कर्म यन्तुर्दानवसत्तमः ॥ शूलेन ज्वलता तं तु स्मयमानोऽहनन्मृधे ॥ १७॥ सेहे रुजं सुदुर्मर्षां सत्वमालम्ब्य मातलिः ॥ इन्द्रो जम्भस्य संक्रुद्धो वज्रेणापाहरच्छिरः ॥ १८ ॥ जम्भं श्रुत्वा हतं तस्य ज्ञातयो नारदादृषेः ॥ नमुचिश्च बलः पाकस्तत्रापेतुस्त्वराऽन्विताः ॥ १९ ॥ वचोभिः परुषैरिन्द्रमर्दयन्तोऽस्य मर्मसु ॥ शरैरवाकिरन्मेघा धाराभिरिव पर्वतम् ॥ २० ॥ हरीन्दशशतान्याजौ हर्यश्वस्य बलः शरैः ॥ तावद्भिरर्दयामास युगपल्लघुहस्तवान् ॥ २१ ॥ शताभ्यां मातलिं पाको रथं सावयवं पृथक् ॥ सकृत्संधानमोक्षेण तदद्भुतमभूद्रणे ॥ २२ ॥

भयो ॥ १७ ॥ मातलि अपने बलको आश्रयकरिकें दुस्सह पीडा सहत भयो, तब इंद्र क्रोधकरिकैं वज्रते जंभको माथो काटि लेत भयो ॥ १८ ॥ वाकी जातिके नमुचि शंभल पाक नारदजीसै जंभको मारचो सुनिकैं बडे वेगसै आवतभये ॥ १९ ॥ और इंद्रके प्रतिमर्मके पीडा देनेवारे बडे कठोर वाक्य कहते इस प्रकार बाणौंकी वर्षा करनै लगे जैसै मेघ पर्वतपर जल वरसाते हैं ॥२०॥ बलनामा दैत्य लघु हस्ततासे संग्राममें हजार बाणनकरिकै इंद्रके हजार घोडा एक संग मारतभयो ॥ २१ ॥ पाक दैत्य सो बाणनकरिकै मातलिकूं मारतभयो, और न्यारे न्यारे रथके अंगोंमें बाण

मारत भयो एक संग बाण लगाने और चलानेसै बडो अद्भुत चरित्र होतभयो ॥ २२ ॥ नमुचि सोनेके पुंख लगे पुंद्रह बाणसै उसै मारिकैं फेरी संग्राममें जलभरे मेघके गर्जनेकी समान बडी गर्जना करत भयो ॥ २३ ॥ असुर सब ओरतें बाणनके समूहसै रथ सारथी सहित इंद्रको ढांकि देत भये जैसें मेघ वर्षाकालके विषें सूर्यकूं ढाकि देते हैं ॥ २४ ॥ अनुगनकारिकैं सहित देवतानके गण इंद्रकौ न देखिकै अति विव्हल होतभये, और पुकारत भये नायक न हौनैसै शत्रुकी सैनासे हारनेके कारण ऐसे पुकारनै लगे जैसें समुद्रमें जहाज डूबनेसे वणियां पुकारे है ॥ २५ ॥ ताकें अनंतर इंद्र बाणनके विंध्ये पींजरातें घोडे रथ ध्वजा सारथी सहित निकरत भयो, दिशा आकाश पृथ्वीको अपने तेजसै प्रकाश करते शोभित होत भयो

नमुचिः पञ्चदशभिः स्वर्णपुङ्खैर्महेषुभिः॥आहत्य व्यनदत्संख्ये सतोय इव तोयदः॥२३॥सर्वतः शरकूटेन शक्रं सरथसारथिम् ॥छादयामासुरसुराः प्रावृट्सूर्यमिवाम्बुदाः॥२४॥अलक्षयन्तस्तमतीव विह्वला विचुक्रुशुर्देवगणाः सहानुगाः॥ अनायकाः शत्रुबलेन निर्जिता वणिक्पथा भिन्ननवो यथाऽर्णवे ॥ २५ ॥ ततस्तुराषाडिषुबद्धपञ्जराद्विनिर्गतः साश्वरथध्वजाग्रणीः ॥ बभौ दिशः खं पृथिवीं च रोचयन्स्वतेजसा सूर्य इव क्षपात्यये ॥ २६ ॥ निरीक्ष्य पृतनां देवः परैरभ्यर्दितां रणे ॥ उदयच्छद्रिपुं हन्तुं वज्रं वज्रधरो रुषा ॥ २७ ॥ स तेनैवाष्टधारेण शिरसी बलपाकयोः ॥ ज्ञातीनां पश्यतां राजञ्जहार जनयन्भयम् ॥ २८ ॥ नमुचिस्तद्वधं दृष्ट्वा शोकामर्षरुषान्वितः ॥ जिघांसुरिन्द्रं नृपते चकार परमोद्यमम् ॥ २९ ॥ अश्मसारमयं शूलं घण्टावद्धेमभूषणम् ॥ प्रगृह्याभ्यद्रवत्क्रुद्धो हतोऽसीति वितर्जयन् ॥ प्राहिणोद्देवराजाय निनदन्मृगराडिव ॥ ३० ॥

जैसें रात्रिके अंतमें सूर्य निकरे है ॥ २६ ॥ संग्राममें वैरीनसे पीडित अपनी सेना देखिकै इंद्र वैरीकें मारिवेकूं वज्र उठावत भयो ॥ २७ ॥ इंद्रनें आठ धारा युक्त वज्रसै असुरोंके देखते २ और उनकी जातिवालौंकों भय उपजातेहुये बल और पाक दैत्यका शिर काट लिया ॥ २८ ॥ हे नृप ! नमुचि तिनकों वध दैखिकै शोक अमर्ष क्रोधसै युक्त इंद्रके मारिवेकी इच्छा कर परम उद्यम करत भयो ॥ २९ ॥ लोहेको सार पंदरह घंटे बंधे सुवर्णकरिकैं भूषित त्रिशूल धारण करिकैं दौरतभयो, अरे इंद्र मारि लियो, ऐसें गर्जना करत भयो ॥ ३० ॥

इंद्रके ऊपर चलावत भयो सिंहकीसी नांई डुकारत भयो, सांमुहे आकाशमें बडे वेगसै आते त्रिशूलके इंद्र बाणनकरिकैं हजार टूक करत भयो, क्रोधयुक्त स्वर्गको राजा इंद्र शिर काटिवेके लिये नमुचिकी नारिमें वज्र मारत भयो ॥ ३१ ॥ इंद्रसें बलकारिकैं चलायों वज्र नमुचिकी त्वचा (खाल) हूको न काटत भयो यह अद्भुत होत भयो, बडो पराक्रमी वृत्रासुरको मारनवारो वज्र नमुचिकी नारिकी त्वचानें तिरस्कार करि दियो ॥ ३२ ॥ तब इंद्र ता वैरीतें डर्पत भयो, जानें वज्रको तिरस्कार करि दियो, यह दैवयोगकरिकैं कहा भयो, यह संपूर्ण लोकनको मोहित करै है ॥ ३३ ॥ देखो जा वज्र करिकैं मैंने पहेले उन पर्वतनके पंख काटे जो पर्वत परोंसै उड़ पृथ्वीपै गिरकर अपने भारसै प्रजाका नाश करतेथे ॥ ३४ ॥

तदापतद्गगनतले महाजवं विचिच्छिदे हरिरिषुभिः सहस्रधा ॥ तमाहनन्नृप कुलिशेन कंधरे रुषान्वितस्त्रिदशपतिः शिरोऽहरत् ॥ ३१ ॥ न तस्य हि त्वचमपि वज्र ऊर्जितो बिभेद यः सुरपतिनौजसेरितः ॥ तदद्भुतं परमतिवीर्यवृत्रभित्तिरस्कृतो नमुचिशिरोधरत्वचा ॥ ३२ ॥ तस्मादिन्द्रोऽबिभेच्छत्रोर्वज्रः प्रतिहतो यतः ॥ किमिदं दैवयोगेन भूतं लोकविमोहनम् ॥ ३३ ॥ येन मे पूर्वमद्रीणां पक्षच्छेदः प्रजात्यये ॥ कृतो निविशतां भारैः पतत्रैः पततां भुवि ॥ ३४ ॥ तपःसारमयं त्वाष्ट्रं वृत्रो येन विपाटितः ॥ अन्ये चापि बलोपेताः सर्वास्त्रैरक्षतत्वचः ॥ ३५ ॥ सोऽयं प्रतिहतो वज्रो मया मुक्तोऽसुरेऽल्पके ॥ नाहं तदाददे दण्डं ब्रह्मतेजोऽप्यकारणम् ॥ ३६ ॥ इति शक्रं विषीदन्तमाह वागशरीरिणी ॥ नायं शुष्कैरथो नार्द्रैर्वधमर्हति दानवः ॥ ३७ ॥ मयास्मै यद्वरो दत्तो मृत्युर्नैवार्द्रशुष्कयोः॥ अतोऽन्यश्चिन्तनीयस्ते उपायो मघवन्रिपोः ॥ ३८ ॥

तपको सार त्वष्टासै उत्पन्न हुए वृत्रासुरको इसी वज्रसै मारा औरभी बडे बली दैत्य इसीसै मारे जो और अस्त्रोसै नहीं मरेथे ॥ ३५ ॥ तौ अब मैं दंडकी तुल्य इस वज्रको लेकर क्या करूं आश्चर्यकी वार्ता है कि दधीचिकी सामर्थनैभी कुछ कार्य न किया ॥ ३६ ॥ ऐसे खेदको प्राप्त इंद्रसे आकाशवाणी संबोधन देकैं यह कहतिभई, यह दैत्य सूखे और गीलेकरिकैं वधकूं योग्य नहीं है ॥ ३७ ॥ मैनें याकूं वर दियोहै कि सूखे गीले करिकें मृत्यु न होइगी यातें वैरीको और उपाय विचारिवेकूं योग्य हो ॥ ३८ ॥

सावधान इंद्र यह देववाणी सुनिकैं ध्यान करत भयो सूखो नहीं गीलो नहीं ऐसों उपाय न देखत भयो ॥ ३९ ॥ फेरि अपने मनमें विचारिकै जलको फेन बबूला जो न सूखो न गीलो ताकरिकै नमुचिको शिर हरि लेतभयो तब ता इंद्रकी मुनिगण स्तुति करत भये पुष्पनकी इंद्रके ऊपर वर्षा करत भये ॥ ४० ॥ गंधर्वनमें मुख्य विश्वावसु परावसु गावतभये, देवतानके नगाडे वाजतभये, अप्सरा नाचती भई बडे आनंदकरिकैं संयुक्त ॥ ४१ ॥ सगरे जे देवता वायु अग्नि वरुणते आदिलेकें अपने प्रतिद्वंद्वी शत्रुओंको शस्त्रनके समूहन करिकै ऐसे मारते भये जैसे सिंह मृगनकूं मारे है ॥ ४२ ॥ हे राजा परीक्षित ! ब्रह्माके पठाये देवतानमें ऋषीश्वर नारद दानवनको नाश देखिकें देवतानको

तां दैवीं गिरमाकर्ण्य मघवान्सुसमाहितः ॥ ध्यायन्फेनमथापश्यदुपायमुभयात्मकम् ॥ ३९ ॥ न शुष्केण न चार्द्रेण
जहार नमुचेः शिरः ॥ तं तुष्टवुर्मुनिगणा माल्यैश्चावाकिरन्विभुम् ॥ ४० ॥ गन्धर्वमुख्यौ जगतुर्विश्वावसुपरावसू ॥
देवदुन्दुभयो नेदुर्नर्तक्यो ननृतुर्मुदा ॥ ४१ ॥ अन्येऽप्येवं प्रतिद्वन्द्वान्वाय्वग्निवरुणादयः ॥ सूदयामासुरस्त्रौघैर्मृगा-
न्केसरिणो यथा ॥ ४२ ॥ ब्रह्मणा प्रेषितो देवान्देवर्षिर्नारदो नृप ॥ वारयामास विबुधान्दृष्ट्वा दानवसंक्षयम् ॥ ४३ ॥
नारद उवाच ॥ भवद्भिरमृतं प्राप्तं नारायणभुजाश्रयैः ॥ श्रिया समेधिताः सर्व उपारमत विग्रहात् ॥४४॥ श्रीशुक
उवाच ॥ संयम्य मन्युसंरम्भं मानयन्तो मुनेर्वचः ॥ गीयमाना अनुचरैर्ययुः सर्वे त्रिविष्टपम् ॥ ४५ ॥ येऽवशिष्टा
रणे तस्मिन्नारदानुमतेन ते ॥ बलिं विपन्नमादाय अस्तं गिरिमुपागमन् ॥ ४६ ॥ तत्राऽविनष्टावयवान्विद्यमानशिरोध-
रान् ॥ उशना जीवयामास संजीविन्या स्वविद्यया ॥ ४७ ॥

मनें करत भये ॥ ४३ ॥ नारद बोले कि नारायणकी भुजानके आश्रयी तुम अमृत पी करिकें संपत्तिन करिके बढे हो, अब लराईते सगरे निवृत्त होउ ॥४४॥ मुनिको वचन मान और क्रोधके वेगको दूरिकरिकें अनुचर सहित सगरे देवता स्वर्गकों जात भये ॥ ४५ ॥ रणमें बचे दैत्योंकू नारदके अनुग्रहतें बली दैत्य लेकें अस्ताचलपर्वतकूं जात भये ॥ ४६ ॥ तिन दैत्यनमें जिनके अंग नहीं नष्ट भये और जिनकी नाडी विद्यमान थीं उन दैत्योंकू शुक्र संजीवनी अद्भुतविद्यासे जिवावते भये ॥ ४७ ॥

शुक्राचार्य्यसे देहस्पर्श हौनेके कारण बलि दैत्यको फिर स्मृति आगई वह बली दैत्य हारेहू हैं परंतु खेदकूं प्राप्त न होतभयो, क्यों कि लोकतत्वमें चतुर हैं ॥ ४८ ॥ इति अष्ट० एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ मोहनीजीके रूपके विभ्रम देखिवेकी उत्कंठावारे श्रीमहादेवजीकूं हरि भगवान् मोहित कर फेरि सावधान करत भये सो वर्णन करेगें ॥ असुर विष्णुमायाकरिकै मोहित होत भये यह कछु बात अद्भुत नहीं है, यह कहिवेके लिये महादेवजीको मोहन वर्णन करेगें ॥ श्रीशुकदेवजी कहैहैं हे प्यारे परीक्षित ! स्त्रीरूप करिकैं दानवोंको मोहित करिकै हरि देवतानकों अमृत प्यावत भये यह सुनिके महादेव ॥ १ ॥ बैलपै चढिकें सगरे भूतगणनकों संग ले देवी पार्वती करिके सहित तहां देखिवेकों जात भये जहां मधुसूदन भगवान् है ॥ २ ॥

बलिश्चोशनसा स्पृष्टः प्रत्यापन्नेन्द्रियस्मृतिः ॥ पराजितोऽपि नाखिद्यल्लोकतत्त्वविचक्षणः ॥ ४८ ॥ इति श्रीभा० महा० अष्टमस्कन्धे देवासुरसंग्रामवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ बादरायणिरुवाच ॥ वृषध्वजो निशम्येदं योषिद्रूपेण दानवान् ॥ मोहयित्वाऽसुरगणान्हरिः सोममपाययत् ॥ १ ॥ वृषमारुह्य गिरिशः सर्वभूतगणैर्वृतः ॥ सह देव्या ययौ द्रष्टुं यत्रास्ते मधुसूदनः ॥ २ ॥ सभाजितो भगवता सादरं सोमया भवः ॥ सूपविष्ट उवाचेदं प्रतिपूज्य स्मयन्हरिम् ॥ ३ ॥ श्रीमहादेव उवाच ॥ देवदेव जगद्व्यापिञ्जगदीश जगन्मय ॥ सर्वेषामपि भावानां त्वमात्मा हेतुरीश्वरः ॥ ४ ॥ आद्यन्तावस्य यन्मध्यमिदमन्यदहं बहिः ॥ यतोऽव्ययस्य नैतानि तत्सत्यं ब्रह्म चिद्भवान् ॥ ५ ॥ तवैव चरणाम्भोजं श्रेयस्कामा निराशिषः ॥ विसृज्योभयतः सङ्गं मुनयः समुपासते ॥ ६ ॥

भगवान् श्रीकृष्णने पार्वतीसहित आदरपूर्वक सन्मान करा तब सुन्दर आसनपै बैठ श्रीमहादेवजी हरिको पूजन करिकैं हंसिकरिके यह बोलत भये ॥ ॥ ३ ॥ श्रीमहादेवजी बोले हे देवनके देव ! हे जगद्व्यापक ! हे जगत्के ईश्वर ! हे जगत्स्वरूप ! सबरे भावके तुम कारण हो, आत्मा हो, याते ईश्वर हो ॥ ४ ॥ या सम्पूर्ण जगतका आदि अंत मध्य तुमतें होवे है आपके आदि अंत और मध्य कुछभी नहीं है जो दृश्य द्रष्टा भोक्ता मोक्ष है सो सत्य चिद्रूप ब्रह्म अव्यय संपूर्ण तुमही हो ॥ ५ ॥ श्रेयकी कामनावारे निष्काम मुनि या लोक परलोकको संग छोडिकें तुम्हारे चरणारविंदनकी उपासना करै हैं ॥ ६ ॥

तुम ब्रह्म हो, पूर्ण हो, अमृत हो, निर्गुण हो, शोकरहित हो, आनंदमात्र हो, निर्विकार हो, सबतें न्यारेहो तथापि विश्वके उदय स्थिति संयमके कारण हो, जीवोंको पृथक्२फल देतेहो आप किसीकी अपेक्षा नहीं करते आपकी सब जीव अपेक्षा करते हैं॥७॥एक तौ कुण्डलादिके आकारका सुवर्ण एक आकृतिरहित सुवर्ण यह दोनों जैसे एकही हैं इसीप्रकार कार्य कारण द्वैत और उसके परम कारण आपही हो तुममें कोई भेद नहीं लोकोंने अज्ञानसे आपमें भेद कल्पित कियाहै आपके उपाधिरहित स्वरूपमें गुण कल्पित भेद प्रतीत होताहै यथार्थमें नहीं ॥ ८ ॥ कोई तुह्में ब्रह्म कहैं हैं, कोई एक धर्म कहैं हैं, कोई प्रकृतिपुरुषते परे कहैं हैं; कोई पुरुष मानै हैं और कोई तुमें नौ शक्तिनकरिकैं युक्त कहैं हैं; कोई अव्यय स्वतंत्र महापुरुष जाने हैं ॥

त्वं ब्रह्म पूर्णममृतं विगुणं विशोकमानन्दमात्रमविकारमनन्यदन्यत् ॥ विश्वस्य हेतुरुदयस्थितिसंयमानामात्मेश्वरश्च
तदपेक्षतयाऽनपेक्षः ॥ ७ ॥ एकस्त्वमेव सदसद्द्वयमद्वयं च स्वर्णं कृताकृतमिवेह न वस्तुभेदः ॥ अज्ञानतस्त्वयि
जनैर्विहितो विकल्पो यस्माद् गुणैर्व्यतिकरो निरुपाधिकस्य ॥ ८ ॥ त्वां ब्रह्म केचिदवयन्त्युत धर्ममेक एके परं
सदसतोः पुरुषं परेशम् ॥ अन्येऽवयन्ति नवशक्तियुतं परं त्वां केचिन्महापुरुषमव्ययमात्मतन्त्रम् ॥ ९ ॥ नाहं
परायुर्ऋषयो न मरीचिमुख्या जानन्ति यद्विरचितं खलु सत्त्वसर्गाः ॥ यन्मायया मुषितचेतस ईश दैत्यमर्त्यादयः
किमुत शश्वदभद्रवृत्ताः ॥ १० ॥ स त्वं समीहितमदः स्थितिजन्मनाशं भूतेहितं च जगतो भवबन्धमोक्षौ ॥
वायुर्यथा विशति खं च चराचराख्यं सर्वं तदात्मकतयाऽवगमोऽवरुन्त्से ॥ ११ ॥ अवतारा मया दृष्टा रममाणस्य
ते गुणैः ॥ सोऽहं तद्द्रष्टुमिच्छामि यत्ते योषिद्वपुर्धृतम् ॥ १२ ॥

॥९॥ मैं ब्रह्मा मरीच्यादिक ऋषी सतोगुणकरिकैं रचे हुए तुममें रचे विश्वकूं तत्त्वते नहीं जानें हैं, फिर तुमको कहांते जाने हे ईश ! तुह्मारी माया करिकैं जिनके चित्त हरेहै ऐसे राजसी तामसी उत्पत्ति और वृत्तिवारे दैत्य मनुष्यादिक न जाने तौ यामें कहा कहनो है ॥ १० ॥ सो तुम अपनों कियो जगत् स्थिति नाश प्राणीनकी चेष्टा और जगत्को बंधन मोक्ष जानोहो, जैसें चरअचररूप भये आकाशमें पवन प्रवेश करैहै तैसै सबके आत्मा हो ज्ञानरूप तुम सबमें प्रवेश करोहो ॥ ११ ॥ गुणनकरिकैं रमण करो हो, तुह्मारे अवतार मैंनें देखे, अब तुमने

स्त्रीरूप धरचो उसै देखिवेकी इच्छा करूंहूं ॥ १२ ॥ जाकरिकैं दैत्य मोहित किये, और देवतानकूं अमृत प्यायो सो देखिवेकी इच्छा कर हम आये हैं हमकूं बडो आश्चर्य है सो दिखाओ॥१३॥ श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् ! शूलपाणि महादेवसे ऐसें प्रार्थना किये भगवान् विष्णु हँसिकैं महादेवजीसों यह बोलतभये ॥१४॥भगवान् महादेवजीसों कहैं हैं देवतानके कार्य देख मैंनें अमृतको पात्र जब लेलियो तब दैत्यनकी वंचनाकों स्त्रिको भेष धारण कियो ॥ १५ ॥ ते देवतानमें श्रेष्ठ तुम तिस रूपके देखनेकी इच्छा करतेहो सो रूप दिखाऊंगो, जो कामिनको बहुत संमत है, कामको उदयवारो है ॥१६॥ श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन् ! ऐसें भगवान् कहिकैं तहां अंतर्धान होत भये, पार्वतीसहित महादेवजी सबओरकों नेत्र चलावत हेरत रहे॥१७॥

येन संमोचिता दैत्याः पायिताश्चामृतं सुराः ॥ तद्दिदृक्षव आयाताः परं कौतूहलं हि नः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमभ्यर्थितो विष्णुर्भगवाञ्छूलपाणिना ॥ प्रहस्य भावगम्भीरं गिरिशं प्रत्यभाषत ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कौतूहलाय दैत्यानां योषिद्वेषो मया कृतः ॥ पश्यता सुरकार्याणि गते पीयूषभाजने ॥ १५ ॥ तत्तेऽहं दर्शयिष्यामि दिदृक्षोः सुरसत्तम॥कामिनां बहु मन्तव्यं संकल्पप्रभवोदयम् ॥१६॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ब्रुवाणो भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ सर्वतश्चारयंश्चक्षुर्भव आस्ते सहोमया ॥ १७ ॥ ततो ददर्शोपवने वरस्त्रियं विचित्रपुष्पारुणपल्लवद्रुमे ॥ विक्रीडतीं कन्दुकलीलया लसद्दुकूलपर्यस्तनितम्बमेखलाम् ॥१८॥ आवर्तनोद्वर्तनकम्पितस्तनप्रकृष्टहारोरुभरैः पदे पदे ॥ प्रभज्यमानामिव मध्यतश्चलत्पदप्रवालं नयतीं ततस्ततः ॥ १९ ॥ दिक्षु भ्रमत्कन्दुकचापलैर्भृशं प्रोद्विग्नतारायतलोललोचनाम् ॥ स्वकर्णविभ्राजितकुण्डलोल्लसत्कपोलनीलालकमण्डिताननाम् ॥ २० ॥

तापीछें विचित्र फूल अरुण पल्लव वृक्ष युक्त उपवनमें श्रेष्ठ स्त्रीको देखते भये जो गेंदकी लीला करिकै क्रीडा करती सुंदर दुकूलसे ढके नितंब और मेखलासे शोभित है ॥ १८ ॥ गेंदके फेकिवेकरिके ऊंचे नीचे कांपते स्तनमें सुंदर हारके भारसे पगपगमें चलनेसे कटिभंग होजायगी इस प्रकार यह स्त्री चारों ओर अपने सुकुमार चरण रखतीथी ॥ १९ ॥ दिशानमें गेंद फैंकती चंचलभावसे अति उद्विग्न, तारेसे विशाल चंचल नेत्र अपने काननके प्रकाशित कुंडलसे शोभायमान कपोलमें श्याम अलकसे मुख मंडित है ॥ २० ॥

शिथिल दुकूल और खुलीहुई चोटीकू सुंदर वांये हाथसे बांधती दूसरे हाथकरिकै गेंदको फैंकती, अपनी मायाकरिकै जगत्कों मोहित करैहैं ॥ २१ ॥
संपूर्ण दिशानमें महादेवजीनें देखिकै या प्रकार गेंदकी लीलासे और तनक लज्जायुक्त मंद मुसिक्यानि चलाये कटाक्षसे वंचित स्त्रीकों
अपनेमांहीं देखनेसे विव्हल मन हो अपने आत्मा निकटमें ठाढी पार्वतीजी और अपने गणोंकू न जानतभये ॥ २२ ॥ तिन मोहनीजीके हाथतें
जव गेंद दूरि गई तब ताके लेवेके लिये दौरी तब श्रीमहादेवजीके देखते पवन उसकी कांची सहित सूक्ष्म वस्त्र हरि लेतभयो ॥ २३ ॥ उनके देखि-

श्लथद्दुकूलां कबरीं च विच्युतां सन्नह्यतीं वामकरेण वल्गुना ॥ विनिघ्नतीमन्यकरेण कन्दुकं विमोहयन्तीं जगदात्म-
मायया ॥ २१ ॥ तां वीक्ष्य देव इति कन्दुकलीलयेषद्व्रीडास्फुटस्मितविसृष्टकटाक्षमुष्टः ॥ स्त्रीप्रेक्षणप्रतिसमीक्षणविह्व-
लात्मा नात्मानमन्तिक उमां स्वगणांश्च वेद॥२२॥तस्याः कराग्रात्स तु कन्दुको यदा गतो विदूरं तमनुव्रजत्स्त्रियाः ॥
वासः ससूत्रं लघु मारुतोऽहरद्भवस्य देवस्य किलानुपश्यतः ॥२३॥ एवं तां रुचिरापाङ्गीं दर्शनीयां मनोरमाम् ॥ दृष्ट्वा
तस्यां मनश्चक्रे विषज्जन्त्यां भवः किल॥२४॥ तयाऽपहृतविज्ञानस्तत्कृतस्मरविह्वलः ॥ भवान्या अपि पश्यन्त्या गत-
ह्रीस्तत्पदं ययौ ॥२५॥ सा तमायान्तमालोक्य विवस्त्रा व्रीडिता भृशम् ॥ निलीयमाना वृक्षेषु हसन्ती नान्वतिष्ठत
॥ २६ ॥ तामन्वगच्छद्भगवान्भवः प्रमुषितेन्द्रियः ॥ कामस्य च वशं नीतः करेणुमिव यूथपः ॥ २७ ॥

वेलायक और मनोरम रुचिर कटाक्ष इस प्रकार देखिके महादेवजी तिनमें मन करतभये, और वह मोहनजी अपने कटाक्षकरिकें उन्है देखती
चली ॥ २४ ॥ ज्ञान हरलैनेके कारण मोहनीजीकें किये कामसे विव्हल लज्जा रहित महादेवजी भवानीके देखत तिनके पास जातभये ॥ २५ ॥
वे श्रीमहादेवजीको आता देखिके वस्त्र खसकजानेके कारण बहुत लज्जित भई औ वृक्षनमें छिप कर हंसती भई ठाढी न होती भई ॥ २६ ॥
मन हरजानेसे श्रीमहादेवजी तिनके पीछें दौरतभये जैसे कामके वश भयेसे हाथी हाथिनीके पीछै दौरै है ॥ २७ ॥

शंका–महादेवजी कामके नाश करनेवाले हैं।फिर भगवान्का स्त्री रूप देखकर कामके वशीभूत भूतनाथ क्यों होगये ? यह बडे आश्चर्यकी बात है ?

उत्तर–अनेक युग "नमः शिवाय नमः शिवाय" इस मंत्रको जपके माया तप करने लगी तब एक दिन शिवजी बोले कि हे माया! जिस वरकी तुझको इच्छा है वह वर मांग, तब

सो महादेवजी बडे वेगतें पास जाइकें अपनेको नहीं इच्छा करती उस स्त्रीकी चोटी पकरिकैं भुजानकरिकैं आलिंगन करतभये ॥ २८ ॥ जैसें हाथी हथिनीते आलिंगन करैहै तैसे महादेवजीनें आलिंगन कीनी तब वह इत उत छूटिवेके लियें चेष्टा करनै लगीं इस अवसरमें उनका केशपाश खुलगया ॥ २९ ॥ हे राजा परीक्षित्! देवतानमें श्रेष्ठ श्रीमहादेवजीके भुजानके मध्य वह पृथुनितम्बवाली भगवान्की रची माया अपनेको छुटाइके भाजतभई ॥ ३० ॥ जो महादेवजी अद्भुतकर्मा विष्णु भगवान्की पदवी (मार्ग) को प्राप्त भयेहै, तिन्है, वैरी कामदेवनें जीतिलियो ॥ ३१ ॥

सोऽनुव्रज्यातिवेगेन गृहीत्वाऽनिच्छतीं स्त्रियम् ॥ केशबन्ध उपानीय बाहुभ्यां परिषस्वजे ॥ २८ ॥ सोपगूढा भगवता करिणा करिणी यथा ॥ इतस्ततः प्रसर्पन्ती विप्रकीर्णशिरोरुहा ॥ २९ ॥ आत्मानं मोचयित्वाऽङ्ग सुरर्षभभुजान्तरात् ॥ प्राद्रवत्सा पृथुश्रोणी माया देवविनिर्मिता ॥ ३० ॥ तस्याऽसौ पदवीं रुद्रो विष्णोरद्भुतकर्मणः ॥ प्रत्यपद्यत कामेन वैरिणेव विनिर्जितः ॥ ३१ ॥ तस्यानुधावतो रेतश्चस्कन्दामोघरेतसः ॥ शुष्मिणो यूथपस्येव वासितामनुधावतः ॥ ३२ ॥ यत्र यत्रापतन्मह्यां रेतस्तस्य महात्मनः ॥ तानि रूप्यस्य हेम्नश्च क्षेत्राण्यासन्महीपते ॥ ३३ ॥ सरित्सरःसु शैलेषु वनेषूपवनेषु च ॥ यत्र क्वचासन्नृषयस्तत्र सन्निहितो हरः ॥ ३४ ॥ स्कन्ने रेतसि सोऽपश्यदात्मानं देवमायया ॥ जडीकृतं नृपश्रेष्ठ संन्यवर्तत कश्मलात् ॥ ३५ ॥

ताके पीछें दौरते महादेवजीको अमोघवीर्य्य (रेत) वहतभयो, जैसे ऋतुमती हथिनीके पीछें हाथी दौरै है और ताका वीर्य गिरे हैं ॥ ३२ ॥ महात्मा महादेवजीको वीर्य जहां जहां पृथ्वीमें परतभयो तहां तहां हे पृथ्वीके पति परीक्षित! सोने रूपेकी खांनि होती भई ॥ ३३ ॥ तिनके पीछें दौरे श्रीमहादेवजी नदी सरोवर पर्वत वन उपवन जहां कहूं ऋषि हैं तहां तहां प्राप्त होत भये ॥ ३४ ॥ वीर्य्य (रेत) गिरे पीछें श्रीमहादेवजी हरि भगवान्की मायासें जडबुद्धि हुए अपने अपनेको देखतभये हे राजानमें श्रेष्ठ परीक्षित! तवही श्रीमहादेवजी मोहतें निवृत्त होतभये ॥ ३५ ॥

माया बोली कि हे शम्भो ! तीन लोकमें जो देहधारी प्राणी ब्रह्मा, विष्णु, देवता, मनुष्य असुरादिक हैं, सो सब मेरे वश होंय एक आपको छोडकर परन्तु आधी घडीके लिये आपभी मेरे वशमें होंय शिवजीने मायासे कहा कि हम एक क्षण मात्रकोभी तेरे वश होंगे सो इसलिये महादेव कामके वश हुए कुछ कामी होकर कामके वश नहीं हुए ॥

जगत्के आत्मा, नहीं जांनिवेमें आवे है पराक्रम जिनका ऐसे भगवान्के माहात्म्यको जाननेहारे श्रीमहादेवजी अपनेको जडबुद्धि करनेका आश्चर्य न मानतभये ॥ ३६ ॥ भगवान् व्याकुलता और लज्जारहित महादेवजीकूं देखिकै अपनो पुरुषरूप धरिकै परम प्रसन्न व्हैकै बोलतभये ॥ ३७ ॥ भगवान् कहैंहै ॥ हे श्रीमहादेवजी महाराज! हे संपूर्ण देवतानमें श्रेष्ठ! यद्यपि आप मेरी मायासैं मोहित भये परन्तु यह वडी वधाई भई जों तुम अपनी निष्ठाको प्राप्तभये ॥ ३८ ॥ तुम विना कौनसो पुरुष मेरी मायाकूं तरसक्ता है जो माया अनेक प्रकारके भावोंको प्रगट करतीहै जिनका मन वशमें नहीं है वे इस मायाको नहीं तरसक्ते ॥ ३९ ॥ सृष्टिआदि कारण रूप और कालरूप मेरे प्रभावसै घटते और

अथावगतमाहात्म्य आत्मनो जगदात्मनः ॥ अपरिज्ञेयवीर्यस्य न मेने तदुहाद्भुतम् ॥ ३६ ॥ तमविक्लवमव्रीडमालक्ष्य मधुसूदनः ॥ उवाच परमप्रीतो बिभ्रत्स्वां पौरुषीं तनुम् ॥ ३७ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ दिष्ट्या त्वं विबुधश्रेष्ठ स्वां निष्ठामात्मना स्थितः ॥ यन्मे स्त्रीरूपया स्वैरं मोहितोऽप्यङ्ग मायया ॥३८॥ को नु मेऽतितरेन्मायां विषक्तस्त्वदृते पुमान् ॥ तांस्तान्विसृजतीं भावान्दुस्तरामकृतात्मभिः ॥ ३९ ॥ सेयं गुणमयी माया न त्वामभिभविष्यति ॥ मया समेता कालेन कालरूपेण भागशः ॥४०॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवता राजञ्छ्रीवत्साङ्केन सत्कृतः ॥ आमन्त्र्य तं परिक्रम्य सगणः स्वालयं ययौ ॥ ४१ ॥ आत्मांशभूतां तां मायां भवानीं भगवान्भवः ॥ शंसतामृषिमुख्यानां प्रीत्याचष्टाथ भारत ॥ ४२ ॥ अपि व्यपश्यस्त्वमजस्य मायां परस्य पुंसः परदेवतायाः ॥ अहं कलानामृषभो विमुह्ये ययाऽवशोऽन्ये किमुतास्वतन्त्राः ॥ ४३ ॥

वृद्धिको प्राप्त होते रजोगुण आदि अंशसैं मेरे वशमें रहनेहारी मेरी माया तुह्मारा पराभव करनेको समर्थ न होगी ॥ ४० ॥ शुकदेवजी बोलें हे राजन्! श्रीवत्सचिन्ह भगवानसै ऐसे सत्कार किये गणनसहित महादेवजी भगवान्सूं आज्ञा मांगिकै परिक्रमा देकै अपने स्थानको जातभये ॥ ४१ ॥ हे राजन्! भगवान श्रीमहादेवजी ऋषिनमें मुख्योंके सुनते अपने अंशभूत माया भवानी श्रीपार्वतीजीसूं प्रीतिसै या प्रकार बोलतभये ॥ ४२ ॥ हे भवानी! अजन्मा परमपुरुष परमदेवता हरि भगवान्की माया तुमनें देखी जा मायाकरिकै कलानमें श्रेष्ठ मैं परवश होके मोहित भयो, और जे

प्राणी पराधीन है ते मोहित होंइ यामें कहा कहनोहै ॥ ४३ ॥ हजार वर्षको योग तातें निवृत्त भयो जो मेरे निकट आइकै तुम मोसूं पूछतभयी सो यह साक्षात् पुराणपुरुष है जामें काल और वेद प्रवेश नहीं करै है ॥४४॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितसों कहैं हैं, हे तात ! शार्ङ्गधनुष हरि भगवान्को पराक्रम तेरे आगें कह्यो, जिननें समुद्रके मथिवेमें पीठिपै पर्वत धारणकियो ॥ ४५ ॥ जो पुरुष या चरित्रकों कीर्तन करैगे, ताकों उद्यम कबहूं नष्ट नहीं होइगो, उत्तमश्लोक (कीर्ति) वारे भगवान्के गुणनको वर्णन समस्त संसारको परिश्रम नाश करै है ॥ ४६ ॥ भगवान्को भक्तपक्षपात स्मरण करते नमस्कार करैहै जो असाधुनकों न प्राप्त होनेवाले भक्तनकरिकै सेवनीय चरणकमलमें शरण आये देवताओंको समुद्रके मथिवेसें भये

यं मामपृच्छस्त्वमुपेत्य योगात्समासहस्रान्त उपारतं वै ॥ स एष साक्षात्पुरुषः पुराणो न यत्र कालो विशते न वेदः ॥ ४४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति तेऽभिहितस्तात विक्रमः शार्ङ्गधन्वनः ॥ सिन्धोर्निर्मथने येन धृतः पृष्ठे महाचलः ॥ ४५ ॥ एतन्मुहुः कीर्तयतोऽनुशृण्वतो न रिष्यते जातु समुद्यमः क्वचित् ॥ यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनं समस्तसंसारपरिश्रमापहम् ॥ ४६ ॥ असदविषयमाङ्घ्रिं भावगम्यं प्रपन्नानमृतममरवर्यानाशयत्सिन्धुमथ्यम् ॥ कपटयुवतिवेषो मोहयन्यः सुरारींस्तमहमुपसृतानां कामपूरं नतोऽस्मि ॥ ४७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे शंकरमायामोहनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ मनुर्विवस्वतः पुत्रः श्राद्धदेव इति श्रुतः ॥ सप्तमो वर्तमानो यस्तदपत्यानि मे शृणु ॥१॥ इक्ष्वाकुर्नभगश्चैव धृष्टः शर्यातिरेव च ॥ नरिष्यन्तोऽथ नाभागः सप्तमो दिष्ट उच्यते ॥ २ ॥ करूषश्च पृषध्रश्च दशमो वसुमान्स्मृतः ॥ मनोर्वैवस्वतस्यैते दश पुत्राः परंतप ॥ ३ ॥

अमृतकूं प्यावत भये, और जिन्हौंने कपटकरिकै स्त्रीवेष धरि दैत्यनकूं मोहित किया उन शरण आयेनके कामपूरण करनवारे भगवान्कूं मैं नमस्कार करूंहूं ॥ ४७ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां अष्टमस्कन्धे शंकरमोहनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ अब सातते आदिलेकैं जे सगरे मन्वंतर छे प्रकारके न्यारे क्रमते वर्णन करैंगे ॥ शुकदेवजी परीक्षितप्रति कहेहैं हे राजन्! सूर्यको पुत्र श्राद्धदेवनाम सातयों मनु होतभयो जो वर्तमान हैं ताके पुत्रनके नाम मोते सुनो ॥ १ ॥ इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यंत, नाभाग, सातयों दिष्ट ॥ २ ॥ करूष पृषध्र वसुमान ये दश पुत्र हैं,

हे राजा ! ये वैवस्वतमनुके पुत्र होतभये ॥ ३ ॥ आदित्य वसव रुद्र विश्वेदेवा देवता मरुद्गण अश्विनीकुमार भृगु ये देवता भयें, हे राजा ! तिनको इंद्र पुरंदरनाम होतभयो ॥ ४ ॥ कश्यप अत्रि वसिष्ठ विश्वामित्र गौतम जमदग्नि भरद्वाज ये सप्तऋषि होतभये ॥५॥ या मन्वंतरके कश्यपतें अदितिके विषें भगवानकों जन्म होतभयो, बारह आदित्यनमें छोठे भगवान् वामनजीको रूप धारण करत भये ॥ ६ ॥ सो संक्षेपतें मैंने तुह्मारे आगें सात मन्वंतर कहे,भगवान्के अवतारनकरिकैं युक्त और सात होंइगें तिने अब कहूंहूं सो तुम सावधान व्हैकै सुनो ॥७॥ विवस्वत (सूर्य)के दो स्त्री भईं ते दोऊ विश्वकर्माकी बेटी हैं, संज्ञा और छाया, हे राजेंद्र! यह मैंनें पहिलें तुमसों कही॥८॥ कोई एक तीसरी वडवानामकरिकैं भई, सो कहूंहूं ता संज्ञाके

आदित्या वसवो रुद्रा विश्वेदेवा मरुद्गणाः ॥ अश्विनावृभवो राजन्निन्द्रस्तेषां पुरंदरः ॥४॥ कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथ गौतमः ॥ जमदग्निर्भरद्वाज इति सप्तर्षयः स्मृताः ॥ ५ ॥ अत्रापि भगवज्जन्म कश्यपाददितेरभूत् ॥ आदित्यानामवरजो विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥ ६ ॥ संक्षेपतो मयोक्तानि सप्त मन्वन्तराणि ते ॥ भविष्याण्यथ वक्ष्यामि विष्णोः शक्त्यान्वितानि च ॥ ७ ॥ विवस्वतश्च द्वे जाये विश्वकर्मसुते उभे ॥ संज्ञा छाया च राजेन्द्र ये प्रागभिहिते तव ॥ ८ ॥ तृतीयां वडवामेके तासां संज्ञासुतास्त्रयः ॥ यमो यमी श्राद्धदेवश्छायायाश्च सुताञ्छृणु ॥ ९ ॥ सावर्णिस्तपती कन्या भार्या संवरणस्य या ॥ शनैश्चरस्तृतीयोऽभूदश्विनौ वडवात्मजौ ॥ १० ॥ अष्टमेऽन्तर आयाते सावर्णिर्भविता मनुः ॥ निर्मोकविरजस्काद्याः सावर्णितनया नृप ॥ ११ ॥ तत्र देवाः सुतपसो विरजा अमृतप्रभाः ॥ तेषां विरोचनसुतो बलिरिन्द्रो भविष्यति ॥ १२ ॥

तीनि पुत्र भये, यम यमी श्राद्धदेव एक कन्या यमुना होतिभई, यातें पीछे छायाके पुत्र सुनो ॥ ९ ॥ हे राजन् ! सावर्णि सवर्णकी स्त्री तपति नाम कन्या और तीसरो शनैश्चर यह तीन संतान भये और वडवाके पुत्र अश्विनीकुमार भये ॥ १० ॥ आठयो मन्वंतर आवेगो तब सावर्णी मनु होईगो हे राजन् ! निर्मोक विरजस्क इत्यादिक सावर्णीके पुत्र होंइगे ॥ ११ ॥ तहां सुतपा विरजा अमृतप्रभा ये देवता होइगे, तिनके इंद्र विरोचनके बेटा बलि होंइगे ॥ १२ ॥

जो राजा बलि तीनि पेड पृथ्वी मांगिवेको आये विष्णु भगवान्के अर्थ या संपूर्ण पृथ्वीकूं देकें हरिकी कृपाकरिकैं मिले इंद्रपदको छोडिकें सिद्धिकों प्राप्त होइगें ॥ १३ ॥ जो राजा बलि भगवाननें बांध्यो, फेरि स्वर्गतें अधिक सुतलमें प्रवेश कराइकें तहां अबतक इंद्रकीसी नाईं रहैहै ॥ १४ ॥ गालवऋषि दीप्तिमान परशुराम अश्वत्थामा कृप शृंगीऋषि हमारे पिता भगवान् श्रीव्यासदेवजी महाराज ॥१५॥ ये तासमय सप्तऋषि होइगें हे राजन्! यह महात्मा अपने योगते या समय अपने अपने आश्रममंडलमें स्थित रहैं है ॥१६॥ देवगुह्य सरस्वतीके विषे सार्वभौम भगवान् होइगे, सो इंद्रहूते

दत्त्वेमां याचमानाय विष्णवे यः पदत्रयम् ॥ राद्धामिन्द्रपदं हित्वा ततः सिद्धिमवाप्स्यति ॥१३॥ योऽसौ भगवता बद्धः प्रीतेन सुतले पुनः ॥ निवेशितोऽधिके स्वर्गादधुनास्ते स्वराडिव ॥ १४ ॥ गालवो दीप्तिमान्रामो द्रोणपुत्रः कृपस्तथा ॥ ऋष्यशृङ्गः पिताऽस्माकं भगवान्बादरायणः ॥ १५ ॥ इमे सप्तर्षयस्तत्र भविष्यन्ति स्वयोगतः ॥ इदानीमासते राजन्स्वे स्व आश्रममण्डले ॥ १६ ॥ देवगुह्यां सरस्वत्यां सार्वभौम इति प्रभुः ॥ स्थानं पुरंदराद्धृत्वा बलये दास्यतीश्वरः ॥ १७ ॥ नवमो दक्षसावर्णिर्मनुर्वरुणसंभवः ॥ भूतकेतुर्दीप्तिकेतुरित्याद्यास्तत्सुता नृप ॥ १८ ॥ पारामरीचिगर्भाद्या देवा इन्द्रोऽद्भुतः स्मृतः ॥ द्युतिमत्प्रमुखास्तत्र भविष्यन्त्यृषयस्ततः ॥ १९ ॥ आयुष्मतोऽम्बुधारायामृषभो भगवत्कला ॥ भविता येन संराद्धां त्रिलोकीं भोक्ष्यतेऽद्भुतः ॥ २० ॥ दशमो ब्रह्मसावर्णिरुपश्लोकसुतो महान् ॥ तत्सुता भूरिषेणाद्या हविष्मत्प्रमुखा द्विजाः ॥ २१ ॥ तत्रापि जन्म भवति हरेर्विश्वसृजां गृहे ॥ आपूर्तिरिति विख्यातो येनाप्यायत वै जगत् ॥ २२ ॥

स्थानकूं छिनाइकैं बलिराजाको देइगे ॥ १७ ॥ नौंयों वरुणको पुत्र दक्षसावर्णिनाम मनु होइगो, ताकें भूतकेत दीप्तकेत इत्यादिक पुत्र होइगे॥१८॥ पारा मरीचिगर्भादिक देवता होंईगे, अद्भुत इंद्र होइगो, द्युतिमानते आदिलेकें ऋषी होंइगे ॥ १९ ॥ आयुष्मानकी अंबुधारा स्त्रीमें ऋषभ देवनाम भगवान् प्रगट होंइगे, जाकरिकैं त्रिलोकीको अद्भुत इंद्र भोग करेगो ॥ २० ॥ दशयों उपश्लोकको बेटा ब्रह्मसावर्णिनाम मनु होइगो ये ताके पुत्र भूरिसेनादिक होंइगे, हविष्मानतें आदिलेकें ऋषि होंइगे ॥ २१ ॥ तहां विश्वस्रष्टानके घरमें हरिको जन्म होंइगो, आपूर्ति नाम होगा

जिनसै संपूर्ण जगत् सुखकों प्राप्त होंइगो ॥ २२ ॥ हविष्मान सुकृति सत्यंजय मूर्तिमनुके पुत्र हौंगे सुवासन विरुद्धादिक देवता होंइगे और शंभुनाम इंद्र होइगो ॥ २३ ॥ विष्वक्सेन विषूचिके विषें प्रगट व्हैके शंभू इंद्रको पक्ष करेंगे, अपनें अंशकरिकैं विश्वस्रष्टानके घरमें जन्म लैगें ॥ २४ ॥ ग्यारयां मनु धर्मसावर्णिनाम होइगो सत्यधर्म आदिलेके दश ताके पुत्र होंइगे ॥ २५ ॥ विहंगम कामग निर्वाण रुचि ये देवता होंइगे, तिनकों इंद्र वैधृति होइगो, अरुणादिक ऋषि होइगे ॥ २६ ॥ आर्यकको पुत्र धर्मश्वेत नाम हरिके अंशते वैधृताके विषे जन्म लेके त्रिलोकीको धारण करैंगे ॥ २७ ॥

हविष्मान्सुकृतः सत्यो जयो मूर्तिस्तदा द्विजाः ॥ सुवासनविरुद्धाद्या देवाः शंभुः सुरेश्वरः ॥२३॥ विष्वक्सेनो विषूच्यां तु शंभोः सख्यं करिष्यति ॥ जातः स्वांशेन भगवान्गृहे विश्वसृजो विभुः ॥ २४ ॥ मनुर्वै धर्मसावर्णिरेकादशम आत्मवान् ॥ अनागतास्तत्सुताश्च सत्यधर्मादयो दश ॥ २५ ॥ विहङ्गमाः कामगमा निर्वाणरुचयः सुराः ॥ इन्द्रश्च वैधृतिस्तेषामृषयश्चारुणादयः ॥ २६ ॥ आर्यकस्य सुतस्तत्र धर्मसेतुरिति स्मृतः ॥ वैधृतायां हरेरंशस्त्रिलोकीं धारयिष्यति ॥ २७ ॥ भविता रुद्रसावर्णी राजन्द्वादशमो मनुः ॥ देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठादयः सुताः ॥२८॥ ऋतधामा च तत्रेन्द्रो देवाश्च हरितादयः ॥ ऋषयश्च तपोमूर्तिस्तपस्व्याग्नीध्रकादयः ॥ २९ ॥ स्वधामाख्यो हरेरंशः साधयिष्यति तन्मनोः ॥ अन्तरं सत्यसहसः सूनृतायाः सुतो विभुः ॥ ३० ॥ मनुस्त्रयोदशो भाव्यो देवसावर्णिरात्मवान् ॥ चित्रसेनविचित्राद्या देवसावर्णिदेहजाः ॥ ३१ ॥ देवाः सुकर्मसुत्रामसंज्ञा इन्द्रो दिवस्पतिः ॥ निर्मोकतत्त्वदर्शाद्या भविष्यन्त्यृषयस्तदा ॥ ३२ ॥ देवहोत्रस्य तनय उपहर्ता दिवस्पतेः ॥ योगेश्वरो हरेरंशो बृहत्यां संभविष्यति ॥ ३३ ॥

हे राजन् ! वारहों मनु रुद्रसावर्णि होइगो, देववान् उपदेव देवश्रेष्ठादिक ताकें पुत्र होंइगे ॥ २८ ॥ तासमय ऋतधामा इंद्र होइगो, हरितादिक देवता होंइगे, तपोमूर्ति तपस्वी आग्नीध्रते आदिलेके ऋषि होंइगे ॥ २९ ॥ सुधामा नाम हरिको अंश सत्यसहाकी सूनृता स्त्रीमें होकर ता मन्वंतरको पालन करैंगे ॥ ३० ॥ तेरहों मनु देवसावर्णी होंइगो, चित्रसेन विचित्रादिक ताके पुत्र होंइगे ॥ ३१ ॥ सुकर्म सुत्रामादि देवता होंइगे निर्मोक तत्त्वदर्शादिक ऋषि होंइगे ॥ ३२ ॥ देवहोत्रके पुत्र योगेश्वर हरिके अंश बृहतीके विषें जन्म लेके दिवस्पति इंद्र संपादक होंइगे ॥ ३३ ॥

चौदहवो मनु इंद्रसावर्णि नाम आवेगो, उरु गंभीरबुद्धि आदि ताके पुत्र होईंगे ॥ ३४ ॥ पवित्र चाक्षुष देवता होंइगे, शुचिनाम इंद्र होइगो, अग्नि बाहु
शुचि शुद्ध मागध इत्यादिक ऋषि होइगे ॥ ३५ ॥ सत्रायणकी विनता स्त्रीमें बृहद्भानुनाम भगवानका अवतार होगा जो कर्मनका विस्तार करैंगे ॥
॥ ३६ ॥ हे राजन्! त्रिकालमें भये यह चौदह मनु तेरे आगें कहे युगौंकी हजार चौकडीमें चौदह मन्वन्तर बीच जाते हैं चौदह मन्वन्तरके कालको
कल्प कहते हैं ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भा० भा० अ० मन्वन्तरानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ या अध्यायमें सम्पूर्ण मन्वादिकके यथायोग्य
न्यारे न्यारे कर्म वर्णन करैंगे ॥ राजा परीक्षित पूछे हैं हे भगवन्! मन्वन्तरनमें ये मन्वादिक जिस्सै कार्यमें जिस प्रकार नियुक्त किये जातेहैं वह आप

मनुर्वा इन्द्रसावर्णिश्चतुर्दशम एष्यति ॥ उरुगम्भीरबुद्ध्याद्या इन्द्रसावर्णिवीर्यजाः॥३४॥पवित्राश्चाक्षुषा देवाः शुचि-
रिन्द्रो भविष्यति ॥ अग्निर्बाहुः शुचिः शुद्धो मागधाद्यास्तपस्विनः ॥ ३५ ॥ सत्रायणस्य तनयो बृहद्भानुस्तदा हरिः॥
वितानायां महाराज क्रियातन्तून्वितायिता ॥३६॥ राजंश्चतुर्दशैतानि त्रिकालानुगतानि ते॥ प्रोक्तान्येभिर्मितः कल्पो
युगसाहस्रपर्ययः॥३७॥ इति श्रीभा०महा०अष्टमस्कन्धे मन्वन्तरानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥ राजोवाच॥
मन्वन्तरेषु भगवान् यथा मन्वादयस्त्विमे॥ यस्मिन्कर्मणि ये येन नियुक्तास्तद्वदस्व मे ॥१॥ ऋषिरुवाच॥मनवो मनु-
पुत्राश्च मुनयश्च महीपते ॥ इन्द्राः सुरगणाश्चैव सर्वे पुरुषशासनाः ॥ २ ॥ यज्ञादयो याः कथिताः पौरुष्यस्तनवो नृप ॥
मन्वादयो जगद्यात्रां नयन्त्याभिः प्रचोदिताः॥३॥चतुर्युगान्ते कालेन ग्रस्तान्श्रुतिगणान्यथा॥तपसा ऋषयोऽपश्य-
न्यतो धर्मः सनातनः ॥४॥ ततो धर्मं चतुष्पादं मनवो हरिणोदिताः॥ युक्ताः संचारयन्त्यद्धा स्वे स्वे काले महीं नृप ॥५॥

मुझसै कहो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले हे राजा परीक्षित! मनु और मनुके पुत्र ऋषि इंद्र देवता ते सब हरि भगवानके आधीन हैं ॥ २ ॥ यज्ञते
आदिलेकरिकें भगवानके अवतार कहे तिनकरिकें प्रेरे मन्वादिक जगतके जन्मादिक व्यतीत करैं हैं ॥ ३ ॥ ऋषीश्वर चारों युगनके अंतमें कालसै
नष्ट भये वेदनके गुण तपस्याकरिकें प्रगट करैं हैं, तिनतें सनातन धर्म होवे हैं ॥ ४ ॥ हरि भगवानके प्रेरे मुनिजन चारचो पांडके धर्मकूं साक्षात्
अपने अपने समयमें पृथ्वीपै प्रवृत्त करैंहैं ॥ ५ ॥

74

जहां तांई मन्वंतरको अंत होवेहे ताहि प्रजापालक राजा पुत्रपौत्रादिकनके कर्मकरिकैं प्रजानको पालन करैं हैं, देवता यज्ञभाग करैं हैं ॥ ६ ॥ भगवानकी दीनी त्रिलोकीकी बडी संपत्तिको भोग करत इंद्र तीनो लोकनको पालन करैहे वर्षा करै है ॥ ७ ॥ हरि भगवान् युगयुगके विषे सनकादिक सिद्धनके स्वरूप धारण करनवारे ज्ञानकों कहैं हैं और याज्ञवल्क्यादि ऋषिनके रूपको धारण करकै कर्मकों कहै हैं, और दत्तात्रेयादि योगेश्वरके रूपकूं धरिकैं योगकों कहैं हैं ॥ ८ ॥ प्रजेश्वरनके रूपको धारण करिकैं सर्गको करैं हैं, राजाकी मूर्तिकरकैं चोरनकों मारे हैं, और कालरूपकरिकैं सबनको नाश करैं हैं, जिनके नानाप्रकारके गुण हैं ॥ ९ ॥ नाम रूप मायासे मोहित आत्मावालोंको, नानाशास्त्रनकरिकैं स्तुति किये परभी भगवान नहीं देखिवेमें आये ॥ १० ॥ महाकल्पके अंतर्गत यह तुमसै अवान्तर कल्पकी कथा कही जिस कल्पमें चौदह मनु होते हैं ऐसा विद्वान कहते है ॥११॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायामष्टमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ पंद्रही अध्यायके विषे शुक्राचार्य राजाबलि विश्वको जीतनवारो यज्ञ करिकै पूजन करावत भयो, तातें बलि स्वर्गकों जीतत भयो, जाके भयतें देवता दबकतभये यह वर्णन करेंगे ॥ तहां अब नौ अध्यायनकरिकै सुंदर वामनजीको चरित्र कहैंगे तामें निग्रहके छलते बलिराजापै बडो अनुग्रह करतभये ॥ राजा परीक्षित शुकदेवजीप्रति पूछे है हरि भगवान बलितें भूमि पृथ्वीके तीनि पैग काहेतें ईश्वर होकै कृपणकीसी नाई मांगतभये, अर्थकूं प्राप्तहोकर ता बलिकूं काहेतें बांधतभये ॥ १ ॥

पालयन्ति प्रजापाला यावदन्तं विभागशः ॥ यज्ञभागभुजो देवा ये च तत्रान्विताश्च तैः ॥ ६ ॥ इन्द्रो भगवता दत्तां त्रैलोक्यश्रियमूर्जिताम् ॥ भुञ्जानः पाति लोकांस्त्रीन्कामं लोके प्रवर्षति ॥ ७ ॥ ज्ञानं चानुयुगं ब्रूते हरिः सिद्धस्वरूपधृक् ॥ ऋषिरूपधरः कर्मयोगं योगेशरूपधृक् ॥ ८ ॥ सर्गं प्रजेशरूपेण दस्यून्हन्यात्स्वराड्वपुः ॥ कालरूपेण सर्वेषामभावाय पृथग्गुणः ॥ ९ ॥ स्तूयमाना जनैरेभिर्मायया नामरूपया ॥ विमोहितात्मभिर्नानादर्शनैर्न च दृश्यते ॥ १० ॥ एतत्कल्पविकल्पस्य प्रमाणं परिकीर्तितम् ॥ यत्र मन्वन्तराण्याहुश्चतुर्दश पुराविदः ॥ ११ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ राजोवाच ॥ बलेः पदत्रयं भूमेः कस्माद्धरिरयाचत ॥ भूत्वेश्वरः कृपणवल्लब्धार्थोऽपि बबन्ध तम् ॥ १ ॥

हे श्रीशुकदेवजी महाराज! यह संपूर्ण हम जानिवेकी इच्छा करै है, हमारे बडो संदेह है, ईश्वर भगवान परब्रह्मको मांगनो और निरपराधी बलिको बांधनो कैसें कियो ताइ विस्तारतें कहो ॥ २ ॥ या प्रकार राजा परीक्षितको वचन श्रद्धायुक्त सुनिकै श्रीशुकदेवजी महाराज कहतभये ॥ हे राजा! युद्धके विषें इंद्रनें जब राजाबलीकी लक्ष्मी और प्राण हरलिये तब फिर शुक्राचार्यने उसे जिवा लिया तब सबप्रकारसे बलि शुक्रादिकनकें अर्थ द्रव्य निवेदन करिकैं शिष्य व्हैकें सेवन करत भयो ॥ ३ ॥ भृगुवंशनिमें श्रेष्ठ महाप्रभाववारे ब्राह्मण शुक्राचार्य प्रसन्न व्हैकैं स्वर्गके जीतिवेकी इच्छावाले बलिसे विश्व जीतनवारो यज्ञ, विधिपूर्वक पूजासे करावत भये, बडे अभिषेककरिकैं अभिषेक करत भये ॥ ४ ॥ ताके अनंतर हवनकरिकैं इष्ट कियो, तब अग्निकी समान सोनेके पटसे बंध्यो रथ इन्द्रके घोडोंकी समान घोडोंसे युक्त और सिंहके चिन्हसै विराजमान ध्वजायुक्त रथ प्रगट भयो ॥ ॥ ५ ॥ सोने करिकैं बंध्यो दिव्य धनुष्य अक्षय तरकस, दिव्य कवच ये अग्नि देवता देत भयो, प्रलहाद फूलोंकी न कुम्हिलानेवाली कोमल माला देत भयो शुक्र शंख देतभये ॥ ६ ॥ इस प्रकार ब्राह्मणोंने उसके युद्धकी सब सामग्री सब संपादन की तब ब्राह्मणनसें स्वस्तिवाचन कराय बलि शुक्रादिकनकी परिक्रमा देकैं प्रणाम करिकैं आज्ञा मांगिकैं प्रलहादजीकूं नमस्कार करत भयो ॥ ७ ॥

एतद्वेदितुमिच्छामो महत् कौतूहलं हि नः ॥ यज्ञेश्वरस्य पूर्णस्य बन्धनं चाप्यनागसः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पराजितश्रीरसुभिश्च हापितो हीन्द्रेण राजन् भृगुभिः स जीवितः ॥ सर्वात्मना तानभजद् भृगून् बलिः शिष्यो महात्माऽर्थनिवेदनेन ॥ ३ ॥ तं ब्राह्मणा भृगवः प्रीयमाणा अयाजयन् विश्वजिता त्रिणाकम् ॥ जिगीषमाणं विधिनाऽभिषिच्य महाऽभिषेकेण महानुभावाः ॥ ४ ॥ ततो रथः काञ्चनपट्टनद्धो हयाश्च हर्यश्वतुरङ्गवर्णाः ॥ ध्वजश्च सिंहेन विराजमानो हुताशनादास हविर्भिरिष्टात् ॥ ५ ॥ धनुश्च दिव्यं पुरटोपनद्धं तूणावरिक्तौ कवचं च दिव्यम् ॥ पितामहस्तस्य ददौ च मालामम्लानपुष्पां जलजं च शुक्रः ॥ ६ ॥ एवं स विप्रार्जितयोधनार्थस्तैः कल्पितस्वस्त्ययनोऽथ विप्रान् ॥ प्रदक्षिणीकृत्य कृतप्रणामः प्रह्लादमामन्त्र्य नमश्चकार ॥ ७ ॥

भृगुके दिये दिव्य रथपै चढिकैं महारथी माला कवच पहिरै धनुष खड्ग तर्कस बांधिकैं ॥ ८ ॥ सोनेनके बाजूबंदनकरिकैं शोभित भुजा, प्रकाशित काननमें मकराकृत कुंडल पहरे रथमें बैठ्यो बडी शोभाकूं प्राप्त होतभयो, जैसें कुंडमें स्थित अग्नि शोभाको प्राप्त होवेहै ॥ ९ ॥ तुल्य ऐश्वर्य बलवारे दैत्यनके यूथपालक नेत्रनसे आकाशको पीने और दृष्टिसे दिशाओंको जलाने लगे ॥ १० ॥ ऐसे दैत्यनकरिकैं सहित असुरनकी सेना संग लेकैं समर्थ बलि अति समृद्धित इंद्रकी पुरीमें जातभयो, स्वर्ग पृथ्वीकों कंपावत जात भयो ॥ ११ ॥ जो पुरी उपवन उद्यान करिकैं शोभायमान और नंदनादिक वन करिकैं शोभायमान तथा कूजित पक्षीनके जोडासे शोभित हैं जिनमें मत्त भौंरे गुंजारते है ॥ १२ ॥ फल फूल और अंकुरके भारसे कल्पवृक्षकी शाखा झुक रहीहैं और हंस सारस चकवा कारंडवोंके समूह व्याप्त हो रहेहैं ऐसे सरोवरोंमें देवताओं सहित देवांगना क्रीडाकर रहीहैं ॥ १३ ॥ जिसपुरीको परिखाकी नाई आकाशगंगा वेष्टितकर रही है और ऊंचे शिखरोंसे युक्त सुवर्णका परिकोटा उसे वेष्टन कियेथा ॥ १४ ॥ सुवर्णके पत्र जडे कपाटयुक्त द्वार, और स्फटिकमणिनके पुरद्वार करिकै युक्त न्यारे न्यारे राजमार्गोंसे युक्त वह पुरी विश्वकर्माकी रची है ॥ १५ ॥ जो पुरी सभा चौक वीथिसे संपन्न है, दश करोर गंधर्व अप्सराओंसे युक्त और अनंत विमानन करिकैं संयुक्त

अथारुह्य रथं दिव्यं भृगुदत्तं महारथः ॥ सुस्रग्धरोऽथ सन्नह्य धन्वी खड्गी धृतेषुधिः ॥ ८ ॥ हेमाङ्गदलसद्बाहुः
स्फुरन्मकरकुण्डलः ॥ रराज रथमारूढो धिष्ण्यस्थ इव हव्यवाट् ॥ ९ ॥ तुल्यैश्वर्यबलश्रीभिः स्वयूथैर्दैत्ययूथपैः ॥
पिबद्भिरिव खं दृग्भिर्दहद्भिः परिधीनिव ॥ १० ॥ वृतो विकर्षन्महतीमासुरीं ध्वजिनीं विभुः ॥ ययाविन्द्रपुरीं स्वृद्धां
कम्पयन्निव रोदसी ॥ ११ ॥ रम्यामुपवनोद्यानैः श्रीमद्भिर्नन्दनादिभिः ॥ कूजद्विहङ्गमिथुनैर्गायन्मत्तमधुव्रतैः ॥ १२॥
प्रवालफलपुष्पोरुभारशाखामरद्रुमैः ॥ हंससारसचक्राह्वकारण्डवकुलाकुलाः ॥ नलिन्यो यत्र क्रीडन्ति प्रमदाः
सुरसेविताः ॥ १३ ॥ आकाशगङ्गया देव्या वृतां परिखभूतया ॥ प्राकारेणाग्निवर्णेन साट्टालेनोन्नतेन च ॥ १४॥
रुक्मपट्टकपाटैश्च द्वारैः स्फटिकगोपुरैः ॥ जुष्टां विभक्तप्रपथां विश्वकर्मविनिर्मिताम् ॥ १५ ॥ सभाचत्वररथ्याढ्यां विमानैर्न्यर्बुदैर्युताम् ॥ शृङ्गाटकैर्मणिमयैर्वज्रविद्रुमवेदिभिः ॥ १६ ॥

हीरा मूंगाकी वेदीवारे बजारसे युक्त है ॥ १६ ॥ जा पुरीमें नित्य यौवनरूपवाली निर्मल वस्त्र सुंदर अलंकृत गहनन करिकै युक्त स्त्री इस प्रकार प्रकाश करती है जैसै ज्वालान करिकै अग्नि प्रकाशे है ॥ १७ ॥ देवतानकी स्त्रीनके केशनतें गिरी नवीन सुगंधकी मालाकी सुगंध लेकै पवन मार्गमें चले है ॥ १८ ॥ सुवर्णकी जाली झरोखौंसें निकल श्वेत अगरके धुऐंसै ढकै मार्गमें देवतानकी प्यारी अप्सरा चली जायहै ॥ १९ ॥ मोतीनके चंदोवा करिकै संयुक्त, और मणिमय सुवर्णमय ध्वजा नानाप्रकारकी पताकानकरिकै युक्त गोख छज्जोसे आवृत और मोर परेवा भौरोंसे शब्दायमान है, देवतानकी स्त्रियौंके मनोहर गीत और मंगल जहां होरहेहै ॥ २० ॥ मृदंग शंख ढोल नगाडेनकै शब्द और तालसहित वीणा मुरज ऋष्टि वेणु और बाजेनसहित गंधर्वादिकनके गीत नृत्यनसे, तथा अपनी मनोहर कांतिसै इस पुरीनै और पुरौंकी प्रभा हरली है ॥ २१ ॥ जापुरीमें अधर्मी दुष्ट भूत प्राणीनके द्रोही ठग अभिमानी कामी लोभी नहीं वसें है, और गुणनकरिकै हीनभी जाके विषें नहीं है ॥ २२ ॥ ऐसी देवधानी पुरीको सेनापति बलिराजा सेनासै बाहर चारों ओरतें रोकि लेत भयो, आचार्यको दियो बडे शब्दवारो शंख बजावतभयो इंद्रको स्त्रीको भय देतभयो ॥ २३ ॥ इंद्र राजा बलिको परम उद्यम देखिकैं सब देवतानको संग लेकै गुरुनके पास जाइके यह कहत भयो ॥ २४ ॥

यत्र नित्यवयोरूपाः श्यामा विरजवाससः ॥ भ्राजन्ते रूपवन्नार्यो ह्यर्चिर्भिरिव वह्नयः ॥ १७ ॥ सुरस्त्रीकेशविभ्रष्टनवसौगन्धिकस्रजाम् ॥ यत्रामोदमुपादाय मार्ग आवाति मारुतः ॥ १८ ॥ हेमजालाक्षनिर्गच्छद्धूमेनागुरुगन्धिना ॥ पाण्डुरेण प्रतिच्छन्नमार्गे यान्ति सुरप्रियाः ॥ १९ ॥ मुक्तावितानैर्मणिहेमकेतुभिर्नानापताकावलभीभिरावृताम् ॥ शिखण्डिपारावतभृङ्गनादितां वैमानिकस्त्रीकलगीतमङ्गलाम् ॥ २० ॥ मृदङ्गशङ्खानकदुन्दुभिस्वनैः सतालवीणामुरजर्ष्टिवेणुभिः ॥ नृत्यैः सवाद्यैरुपदेवगीतकैर्मनोरमां स्वप्रभया जितप्रभाम् ॥ २१॥ यां न व्रजन्त्यधर्मिष्ठाः खला भूतद्रुहः शठाः ॥ मानिनः कामिनो लुब्धा एभिर्हीना व्रजन्ति यत् ॥ २२ ॥ तां देवधानीं स वरूथिनीपतिर्बहिः समन्ताद्रुरुधे पृतन्यया ॥ आचार्यदत्तं जलजं महास्वनं दध्मौ प्रयुञ्जन् भयमिन्द्रयोषिताम् ॥ २३ ॥ मघवांस्तदभिप्रेत्य बलेः परममुद्यमम् ॥ सर्वदेवगणोपेतो गुरुमेतदुवाच ह ॥ २४ ॥

हे भगवन्! हमारे पहले वैरी बलिको वडो उद्यम भयो है, मै याको वडो आश्चर्य मानूंहूं, कौन कारण करिकै ऐसे तेज करिकै बढ्यो है ॥ २५ ॥ याको कोई कैसेंहू दूर करिवेकों समर्थ नहीं है, मुखसै या जगतको मानो पीई जाईगो दशो दिशानकों मानो जराई देगो ॥ २६ ॥ और नेत्रनकरिकै दिशानको जलाता प्रलयकी अग्नि बढा है मेरे वैरीके दुर्धर्ष होनेका कारण कहो जिस कारण इसके ओज सह बल तेजकी बुद्धि भई है ॥ २७ ॥ बृहस्पतिजी वोले हे इंद्र! वैरीके वृद्धी होनेको कारण में जानूहूं, ब्रह्मवादी शुक्रादिकने उसै तेज दियो है ॥ २८ ॥ भगवान्के विना तुमसरीके या ईश्वर

भगवन्नुद्यमो भूयान् बलेर्नः पूर्ववैरिणः ॥ अविषह्यमिमं मन्ये केनासीत् तेजसोर्जितः ॥२५॥ नैनं कश्चित् कुतो वापि प्रतिव्योढुमधीश्वरः ॥ पिबन्निव मुखेनेदं लिहन्निव दिशो दश ॥ दहन्निव दिशो दृग्भिः संवर्ताग्निरिवोत्थितः ॥ २६ ॥ ब्रूहि कारणमेतस्य दुर्धर्षत्वस्य मद्रिपोः ॥ ओजः सहो बलं तेजो यत एतत्समुद्यमः ॥ २७ ॥ गुरुरुवाच ॥ जानामि मघवन् शत्रोरुन्नतेरस्य कारणम् ॥ शिष्यायोपभृतं तेजो भृगुभिर्ब्रह्मवादिभिः ॥ २८ ॥ भवद्विधो भवान् वापि वर्जयित्वेश्वरं हरिम् ॥ नास्य शक्तः पुरः स्थातुं कृतान्तस्य यथा जनाः ॥ २९ ॥ तस्मान्निलयमुत्सृज्य यूयं सर्वे त्रिविष्टपम् ॥ यात कालं प्रतीक्षन्तो यतः शत्रोर्विपर्ययः ॥ ३० ॥ एष विप्रबलोदर्कः संप्रत्यूर्जितविक्रमः ॥ एषामेवापमानेन सानुबन्धो विनङ्क्ष्यति ॥ ३१ ॥ एवं सुमन्त्रितार्थास्ते गुरुणार्थानुदर्शिना ॥ हित्वा त्रिविष्टपं जग्मुर्गीर्वाणाः कामरूपिणः ॥ ३२ ॥ देवेष्वथ निलीनेषु बलिर्वैरोचनः पुरीम् ॥ देवधानीमधिष्ठाय वशं निन्ये जगत्त्रयम् ॥ ३३ ॥

बलिके आगें ठाढे ह्वैवेको समर्थ नहीं है, जैसें जन कालके आगें ठाढे व्हेवेको समर्थ नहीं होवैहै ॥ २९ ॥ ताते तुम संपूर्ण स्वर्गको छोडकै अदर्शनकों प्राप्त होउ, कालको पैडो देखो, जाकालते वैरीको विपर्यय होइ ॥ ३० ॥ यह अपने बलकरिकै भले प्रकार जिन ब्राह्मणोंके प्रतापसै बढ्यो है, तिन ब्राह्मणनके अपमानकरिके अपने बंधुनसहित नष्ट होईगो ॥ ३१ ॥ ऐसें अर्थ कामके देखनवारे गुरुके बताये कार्यसे देवता स्वर्गको छोडिकै अनेक रूप धारण करिकै छिपतभये ॥ ३२ ॥ जब देव स्वर्गलोक छोडिके गये, तब वो विरोचन पुत्र बलि देवधानी (अमरावती) में रहकर तीनों

लोककों वश करत भयो ॥ ३३ ॥ विश्वको जीतनवारो अपने आज्ञाकारी शिष्यको वात्सल्यताकरिकैं शुक्रादिक सो १०० अश्वमेध यज्ञ करावतभये ॥३४॥ ताके अनंतर शुक्रके प्रभाव करिकै तीनों लोकनमें विख्यात कीर्तिकूं दिशानमें विस्तार करत चंद्रमाकी समान बलि शोभित होतभयो ॥ ३५ ॥ ब्राह्मणोंकों दी बडी समृद्धि भोग करत भयो बलिराजा बडे मनसे आपुको कृतार्थ मानतभयो ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां अष्टमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ इस अध्यायमें पुत्रनके नाशकरिकैं शोच करती अदितिके प्रार्थना करनेसै पति कश्यपजी महाराज पयोव्रत

तं विश्वजयिनं शिष्यं भृगवः शिष्यवत्सलाः ॥ शतेन हयमेधानामनुव्रतमयाजयन् ॥ ३४ ॥ ततस्तदनुभावेन भुवनत्रयविश्रुताम् ॥ कीर्तिं दिक्षु वितन्वानः स रेजे उडुराडिव ॥ ३५ ॥ बुभुजे च श्रियं स्वृद्धां द्विजदेवोपलम्भिताम् ॥ कृतकृत्यमिवात्मानं मन्यमानो महामनाः ॥ ३६ ॥ इति श्रीभा० अष्टमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं पुत्रेषु नष्टेषु देवमाताऽदितिस्तदा ॥ हृते त्रिविष्टपे दैत्यैः पर्यतप्यदनाथवत् ॥ १ ॥ एकदा कश्यपस्तस्या आश्रमं भगवानगात् ॥ निरुत्सवं निरानन्दं समाधेर्विरतश्चिरात् ॥ २ ॥ स पत्नीं दीनवदनां कृतासनपरिग्रहः ॥ सभाजितो यथान्यायमिदमाह कुरूद्वह ॥ ३ ॥

कहतभये, यह प्रसंग वर्णन करैंगे ॥ शुकदेवजी बोले हे राजन्! ऐसे पुत्रनके दुःख पानेसै देवमाता अदिति दैत्यनकें स्वर्ग हरलैनेसै अनाथकीसी नाईं तापको प्राप्त भई ॥ १ ॥ एक दिन उत्सव आनंद रहित, अदितिके आश्रममें बहुतकालमें समाधितें उपरामकों प्राप्त होकर भगवान कश्यपजी आवत भये ॥ २ ॥ आसनकों ग्रहण कर सनमान पानेपर कश्यपजी, दीनमुखी अपनी स्त्रीसूं यह बोलतभये ॥ ३ ॥

शंका–जो मनुष्य और दैत्य अश्वमेध यज्ञ नहीं करते सो प्राणी कभी इन्द्र नहीं होते, फिर विना इन्द्र हुये इन्द्रासनपर नहीं बैठ सक्ता? ऐसा हमनें सब शास्त्रोंमें सुना है, और ऐसाभी हमने सुनाहै कि अनेक वार राक्षसोंको अपने आधीन करलिया है परन्तु यह बडी भारी शंका है कि एक शुक्रकोही पूजकर राजाबलिने इन्द्रका राज्य छीनलिया और विनाही अश्वमेध यज्ञ किये इन्द्रासनपर जा बैठा?

उत्तर–जिस दिन अहल्याके संग इन्द्रने खोटा कर्म किया उसी समय ६० साठ अश्वमेध यज्ञका पुण्य नष्ट होगया केवल ४० चालीस अश्वमेध यज्ञका पुण्य शेष रहगया, तब हिरण्यकशिपु इन्द्रासनपर बैठाया, उसके पीछे राजा बलि इन्द्रासनपर बैठा, फिर जितना पुण्य इन्द्रका अवशेष रहगयाथा उतनीही भगवान्ने इन्द्रकी रक्षा की, इसलिये विना अश्वमेध यज्ञ किये राजा बलिने इन्द्रका इन्द्रासन छीनालिया ॥

हे भद्रे ! या लोकमें ब्राह्मणको अमंगल नहीं आयोहै, और अधर्म नहीं प्राप्त भयोहै, लोक विषें मृत्यु इच्छाचारणी नहीं है ॥ ४ ॥ हे गृहमेधिनी ! तेरे घरमें धर्म अर्थ कामको कछु बिगाड तौ नहीं भयो कि जिन घरमें अयोगिनकूंभी स्वधर्मादिकनते योगके योग्य फल होवै है ॥ ५ ॥ अथवा कुटुंबमें आसक्त तैनें घर आये अतिथिको कछु पूजन नहीं करचो ऐसे अतिथि अभ्यागत तेरे घरतें ऊठिकै चलेगये कहा ॥६॥ जिन घरोंमें अतिथियोंका जलद्वाराभी सत्कार नहीं होता अतिथि विना सत्कार पाये चले जाते है वे घर स्यारोंके बिल समान हैं ॥ ७ ॥ हे सती ! मेरे विदेश जानेमें कभी तैने होमकै समय अग्निमें हविकरिकै उद्विग्न बुद्धिसै क्या कभी होम नहीं करचो ॥ ८ ॥ इस अग्निकी पूजा करिकै गृहस्थ कामनानके पूर्ण करनवारे लोकको जातेहै संपूर्ण देवरूप भगवान्को ब्राह्मण और अग्निही मुख है ॥ ९ ॥ हे मनस्विनि ! तेरे सब पुत्र कुशल तौ हैं लक्षणोंसे तेरा चित्त स्वस्थ नहीं विदित होता ॥ १० ॥ तब अदिति बोली हे ब्रह्मन् ! ब्राह्मणनको गउनको धर्मको मंगल है हे गृहमेधिन् ! घरमें धर्म अर्थ कामका पोषण यथायोग्य हो रहा है ॥ ११ ॥ हे ब्रह्मन् ! मं जो आपका चिन्तन करती रहतीहूं यह उसीका प्रभाव है कि अग्नि अतिथि सेवक भृत्य याचक जो जिस इच्छासै आतें हैं उसमें किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं होती सब संपादन करती हूं ॥ १२ ॥

अप्यभद्रं न विप्राणां भद्रे लोकेऽधुना गतम् ॥ न धर्मस्य न लोकस्य मृत्योश्छन्दानुवर्तिनः ॥ ४ ॥ अपि वा कुशलं किंचिद् गृहेषु गृहमेधिनि ॥ धर्मस्यार्थस्य कामस्य यत्र योगो ह्ययोगिनाम् ॥ ५ ॥ अपि वाऽतिथयोऽभ्येत्य कुटुम्बासक्तया त्वया ॥ गृहादपूजिता याताः प्रत्युत्थानेन वा क्वचित् ॥ ६ ॥ गृहेषु येष्वतिथयो नार्चिताः सलिलैरपि॥ यदि निर्यान्ति ते नूनं फेरुराजगृहोपमाः ॥ ७ ॥ अप्यग्नयस्तु वेलायां न हुता हविषा सति ॥ त्वयोद्विग्नधिया भद्रे प्रोषिते मयि कर्हिचित् ॥ ८ ॥ यत्पूजया कामदुघान्याति लोकान्गृहान्वितः ॥ ब्राह्मणोऽग्निश्च वै विष्णोः सर्वदेवात्मनो मुखम् ॥ ९ ॥ अपि सर्वे कुशलिनस्तव पुत्रा मनस्विनि ॥ लक्षयेऽस्वस्थमात्मानं भवत्या लक्षणैरहम् ॥ १० ॥ अदितिरुवाच ॥ भद्रं द्विजगवां ब्रह्मन्धर्मस्यास्य जनस्य च ॥ त्रिवर्गस्य परं क्षेत्रं गृहमेधिन्गृहा इमे ॥ ११ ॥ अग्नयोऽतिथयो भृत्या भिक्षवो ये च लिप्सवः ॥ सर्वं भगवतो ब्रह्मन्ननुध्यानान्न रिष्यति ॥ १२ ॥

हे भगवन् ! मेरे मनको कौनसो मनोरथ सिद्ध न ही होवे है, जिसे आप प्रजानके अध्यक्ष धर्मका उपदेश करतेहो ॥ १३ ॥ हे मरीचिपुत्र ! तुह्मारे मन शरीरते भई यह प्रजा सत्व रज तमको सेवन करै है, तिन देवतादिकनमें तुम समान दृष्टिवारे हो हे प्रभो ! तोभी वडे लोग भक्तौंका पक्ष करते है ॥ ॥ १४ ॥ हे ईश्वर ! हे सुव्रत ! भजन करनेहारी मेरे कल्याणको विचार करो, हे प्रभो ! वैरीनसें हमारी श्री स्थान हरगया हमारी रक्षा करो ॥ १५ ॥ वैरिनने मुझे निकारि दीनी, दुःखरूपी समुद्रमें मग्न हूं, वली वैरीनने मेरो ऐश्वर्य श्री यश स्थान संपूर्ण हरिलिये ॥ १६ ॥ हे साधु ! जैसें मेरे पुत्रोंको फेरि स्थानकी प्राप्ति होई तैसे हे कल्याणकरनवारेनमें श्रेष्ठ ! अपनी बुद्धिकरिकैं मेरो कल्याण करो ॥ १७ ॥ या प्रकार जब अदितिने प्रार्थना की

को नु मे भगवन्कामो न संपद्येत मानसः ॥ यस्या भवान्प्रजाध्यक्ष एवं धर्मान् प्रभाषते ॥ १३ ॥ तवैव मारीच मनःशरीरजाः प्रजा इमाः सत्त्वरजस्तमोजुषः ॥ समो भवांस्तास्वसुरादिषु प्रभो तथापि भक्तं भजते महेश्वरः ॥ १४ ॥ तस्मादीश भजन्त्या मे श्रेयश्चिन्तय सुव्रत ॥ हतश्रियो हतस्थानान् सपत्नैः पाहि नः प्रभो ॥ १५ ॥ परैर्विवासिता साऽहं मग्ना व्यसनसागरे ॥ ऐश्वर्यं श्रीर्यशः स्थानं हतानि प्रबलैर्मम ॥ १६ ॥ यथा तानि पुनः साधो प्रपद्येरन्ममात्मजाः ॥ तथा विधेहि कल्याणं धिया कल्याणकृत्तम ॥१७॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमभ्यर्थितोऽदित्या कस्तामाह स्मयन्निव ॥ अहो मायाबलं विष्णोः स्नेहबद्धमिदं जगत् ॥१८॥ क्व देहो भौतिकोऽनात्मा क्व चात्मा प्रकृतेः परः ॥ कस्य के पतिपुत्राद्या मोह एव हि कारणम् ॥ १९ ॥ उपतिष्ठस्व पुरुषं भगवन्तं जनार्दनम् ॥ सर्वभूतगुहावासं वासुदेवं जगद्गुरुम् ॥ २० ॥ स विधास्यति ते कामान् हरिर्दीनानुकम्पनः ॥ अमोघा भगवद्भक्तिर्नेतरेति मतिर्मम ॥ २१ ॥

तब श्रीकश्यपजी महाराज हंसकर अदितिसों बोलतभये, अहो विष्णुकी मायाके बलसै यह संपूर्ण जगत् स्नेहसूं बंध्यो है ॥ १८ ॥ पंचमहाभूतकों बन्यो देह कहा, प्रकृतितें परें आत्मा कहा, कौनके पति पुत्रादिक है, केवल मोहही कारण है ॥ १९ ॥ संपूर्ण प्राणीनके अंतर्यामी जगतके गुरु वासुदेव भगवान् जनार्दनकी उपासना कर ॥ २० ॥ सो हरि भगवान् दीननपै कृपा करनवारे है, तेरे संपूर्ण मनोरथ देंइगे, भगवानकी भक्तिही सफल है; और कछू नहीं हैं, यही मेरी बुद्धि है ॥ २१ ॥

तब अदिति बोली हे ब्रह्मन्! जगत्के पति भगवान्को कौंनसी विधिकरिकैं उपासना करूं जातें सत्यसंकल्प हरि मेरे मनोरथनको पूर्ण करैं॥ २२ ॥ हे ब्राह्मणनमें श्रेष्ठ! हरिकी सेवाकी विधिको उपदेश करो, पुत्रनसहित दुःखितको वेगिहीं भगवान् प्रसन्न होइ तैसें कहो ॥ २३ ॥ तब कश्यपजी बोले एकसमय पुत्रकी इच्छा कर मैने भगवान ब्रह्माजीसे पूछो तब जो व्रत उन्होंने कह्यो है, सो व्रत हरि भगवान्को प्रसन्न करनवारो है उसे मैं कहताहूं तू सावधान होकर सुन ॥ २४ ॥ फाल्गुनके शुक्लपक्षके विषें, प्रतिपत्से बारहदिनतक पयोव्रत धारणकरै और परमभक्ति करिकैं युक्त पुरुष कमलसे नेत्रवारे भगवान्की पूजा करे ॥ २५ ॥ प्रथमहीं अमावास्याके दिन वनके शूकरनकी खोदी माटी शरीरमें लगाइकें नदीमें स्नान करे,

अदितिरुवाच ॥ केनाहं विधिना ब्रह्मन् उपस्थास्ये जगत्पतिम् ॥ यथा मे सत्यसंकल्पो विदध्याच्च मनोरथम् ॥ २२ ॥
आदिश त्वं द्विजश्रेष्ठ विधिं तदुपधावनम् ॥ आशु तुष्यति मे देवः सीदन्त्याः सह पुत्रकैः ॥ २३ ॥ कश्यप उवाच ॥
एतन्मे भगवान् पृष्टः प्रजाकामस्य पद्मजः ॥ यथाह ते प्रवक्ष्यामि व्रतं केशवतोषणम् ॥ २४ ॥ फाल्गुनस्यामले पक्षे
द्वादशाहं पयोव्रतः ॥ अर्चयेदरविन्दाक्षं भक्त्या परमयान्वितः ॥ २५ ॥ सिनीवाल्यां मृदाऽऽलिप्य स्नायात्क्रोडविदीर्णया ॥
यदि लभ्येत वै स्रोतस्येतं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ २६ ॥ त्वं देव्यादिवराहेण रसायाः स्थानमिच्छता ॥ उद्धृतासि
नमस्तुभ्यं पाप्मानं मे प्रणाशय ॥ २७ ॥ निर्वर्तितात्मनियमो देवमर्चेत्समाहितः ॥ अर्चायां स्थण्डिले सूर्ये जले
वह्नौ गुरावपि ॥ २८ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महीयसे ॥ सर्वभूतनिवासाय वासुदेवाय साक्षिणे ॥ २९ ॥ नमोऽव्यक्ताय
सूक्ष्माय प्रधानपुरुषाय च ॥ चतुर्विंशद्गुणज्ञाय गुणसंख्यानहेतवे ॥ ३० ॥

और या मंत्रकों उच्चारण करै ॥ २६ ॥ हे देवि! आदिवाराहजीने स्थानकी इच्छा करिकैं रसातलतें तुह्मारा उद्धार कियाहै तोकूं नमस्कार है, मेरे संपूर्ण पापनकूं नाश करि, ऐसे पृथ्वीतें प्रार्थना करे ॥ २७ ॥ नित्य नैमित्तिक कर्मसे निवृत्त हो सावधान व्हैके हरिकी पूजा कर पृथ्वी सूर्य अग्नि जल गुरुनमें जहां इच्छा होइ तहां पूजा करे ॥ २८ ॥ पुरुषरूप सबतें बडे सबप्राणीनमें निवासी वासुदेव साक्षी भगवान्के अर्थ नमस्कार है ॥ २९ ॥ अव्यक्त सूक्ष्म प्रधान पुरुष चौवीस गुणनके जाननेवारे सांख्यशास्त्रके प्रवर्तक आपको नमस्कार है ॥ ३० ॥

यज्ञरूप दो शिर तीन पांव चारशृंगवालेके अर्थ नमस्कार है, फलके विस्तार करनवारे सात हाथवारे त्रयी विद्यामें आत्मारूप तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ ३१ ॥ शिवरूप तुम हो तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, रुद्ररूप तुम तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, शक्ति धारण कर्ता तुम्हारे अर्थ नमस्कार है, संपूर्ण प्राणीनके अधिपति तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ ३२ ॥ हिरण्यगर्भरूप सम्पूर्ण जगत्के प्राणरूप जगत्के आत्मा योगैश्वर्य शरीर योगके कारणके अर्थ नमस्कार है ॥ ३३ ॥ आदिदेव साक्षीभूतके अर्थ नमस्कार है नारायणऋषीरूपी हरिके अर्थ नमस्कार है ॥ ३४ ॥ मरकतमणिकीसी नाई श्याम स्वरूप, लक्ष्मीवान पीतवस्त्र धारण करनेहारेके अर्थ नमस्कार है ॥ ३५ ॥ हे वर देनेवारेनमें श्रेष्ठ ! तुम सबनको वरके देनेवारे हो यातें अपने कल्याणके लिये धीर तुम्हारे चरणरेणुकी उपासना करै हैं ॥ ३६ ॥ जिसै संपूर्ण देवता और लक्ष्मी ऐसे सेवन करे हैं, मानो तिनके चरणारविंदकी सुगंधिकी चाहना करतेहै, सो भगवान मोपै प्रसन्न होउ ॥ ३७ ॥ इन मंत्रनसें आवाहन करिकैं सन्मान करे, इंद्रीनके ईश्वर भगवानको श्रद्धायुक्त ह्वैकैं पाद्य आचमनादिकन करिकैं पूजन करै ॥ ३८ ॥ गंधमाल्यादि करिकैं पूजन करिकै स्नान करावे, वस्त्र यज्ञोपवीत आभरण पाद्य आचमनमें गंध धूपादिकनकरिकें " ॐ नमो भगवते वासुदेवाय" या द्वादशाक्षर विद्याकरिकैं पूजन करै ॥ ३९ ॥

नमो द्विशीर्ष्णे त्रिपदे चतुःशृङ्गाय तन्तवे ॥ सप्तहस्ताय यज्ञाय त्रयीविद्यात्मने नमः ॥ ३१ ॥ नमः शिवाय रुद्राय नमः शक्तिधराय च ॥ सर्वविद्याधिपतये भूतानां पतये नमः ॥ ३२ ॥ नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने ॥ योगैश्वर्यशरीराय नमस्ते योगहेतवे ॥ ३३ ॥ नमस्ते आदिदेवाय साक्षिभूताय ते नमः ॥ नारायणाय ऋषये नराय हरये नमः ॥ ३४ ॥ नमो मरकतश्यामवपुषेऽधिगतश्रिये ॥ केशवाय नमस्तुभ्यं नमस्ते पीतवाससे ॥ ३५ ॥ त्वं सर्ववरदः पुंसां वरेण्य वरदर्षभ ॥ अतस्ते श्रेयसे धीराः पादरेणुमुपासते ॥ ३६ ॥ अन्ववर्तन्त यं देवाः श्रीश्च तत्पादपद्मयोः ॥ स्पृहयन्त इवामोदं भगवान् मे प्रसीदताम् ॥ ३७ ॥ एतैर्मन्त्रैर्हृषीकेशमावाहनपुरस्कृतम् ॥ अर्चयेच्छ्रद्धया युक्तः पाद्योपस्पर्शनादिभिः ॥ ३८ ॥ अर्चित्वा गन्धमाल्याद्यैः पयसा स्नपयेद्विभुम् ॥ वस्त्रोपवीताभरणपाद्योपस्पर्शनैस्ततः ॥ गन्धधूपादिभिश्चार्चेद् द्वादशाक्षरविद्यया ॥ ३९ ॥

दूधमें पक्क खीरके भोगसे भक्ति करिकें सहित पकान्न भोग धरे, घृत सहित गुडसहित देकैं द्वादशाक्षरमंत्र करिकै होम करे ॥ ४० ॥ निवेदन कियो
प्रसाद भक्तके अर्थ देइ, अथवा आपु भोजन करे, आचमन पूजन करके तांबूलकों भगवानके अर्थ निवेदन करे ॥ ४१ ॥ द्वादशाक्षरमंत्रको
एकसो आठवार जप करै, स्तोत्रोंसे प्रभुकी स्तुति करैं परिक्रमा करिकै दंडकीसी नाई भूमिमें गिरिकै प्रणाम करै ॥ ४२ ॥ आनंद सहित भगवानको
प्रसाद माथापै धारण करि भगवानके पदकी वासना करै, यथायोग्य खीरसे दोसें ऊपर ब्राह्मण भोजन करावे ॥ ४३ ॥ सन्मान किये ब्राह्मणोंसे
आज्ञा लेकें कुटुंबके बंधुन सहित शेषअन्न आप भोजन करे ता रात्रीमें ब्रह्मचारि होकै प्रभातके समय पहेले दिनमें ॥ ४४ ॥ जैसी विधि कही तैसें

शृतं पयासि नैवेद्यं शाल्यन्नं विभवे सति ॥ ससर्पिः सगुडं दत्त्वा जुहुयान्मूलविद्यया ॥ ४० ॥ निवेदितं तद् भक्ताय दद्याद्
भुञ्जीत वा स्वयम् ॥ दत्त्वाचमनमर्चित्वा ताम्बूलं च निवेदयेत् ॥४१॥ जपेदष्टोत्तरशतं स्तुवीत स्तुतिभिः प्रभुम्
॥ कृत्वा प्रदक्षिणं भूमौ प्रणमेद् दण्डवन्मुदा ॥ ४२ ॥ कृत्वा शिरसि तच्छेषं देवमुद्वासयेत्ततः ॥ द्व्यवरान् भोजयेद्विप्रान्
पायसेन यथोचितम् ॥ ४३ ॥ भुञ्जीत तैरनुज्ञातः शेषं सेष्टः सभाजितैः ॥ ब्रह्मचार्यथ तद्रात्र्यां श्वोभूते
प्रथमेऽहनि ॥ ४४ ॥ स्नातः शुचिर्यथोक्तेन विधिना सुसमाहितः ॥ पयसा स्नापयित्वार्चेद्यावद्व्रतसमापनम् ॥४५॥
पयोभक्षो व्रतमिदं चरेद्विष्णवर्चनादृतः ॥ पूर्ववज्जुहुयादग्निं ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत् ॥ ४६ ॥ एवं त्वहरहः कुर्याद
द्वादशाहं पयोव्रतः ॥ हरेराराधनं होममर्हणं द्विजतर्पणम् ॥ ४७ ॥ प्रतिपद्दिनमारभ्य यावच्छुक्लत्रयोदशी ॥ ब्रह्मचर्यमधः
स्वप्नः स्नानं त्रिषवणं चरेत् ॥ ४८ ॥

स्नान करे, पवित्र रहै, सावधान रहै जबताई व्रतसमाप्ति होई तबताई गऊके दूधमें भगवानकों स्नान करावे पूजनकों विष्णुकी पूजामें आदर राखें॥४५॥
पयोभक्ष यह व्रत करे, पहिलेंकी नाई नित्य होम करे, ब्राह्मणनकों भोजन करावे ॥ ४६ ॥ या प्रकार बारह दिवसको पयोव्रत करे, भगवानको
आराधन होम पूजन करे, ब्राह्मणनकों भोजन करावे, तर्पण करे या प्रकार व्रत करे ॥ ४७ ॥ परिवाते आदिलेकें जहांताई शुक्लपक्षकी तेरसि आवे
तबतांई ब्रह्मचर्य धारण करे पृथ्वीमें शयन करे, त्रिकाल स्नान करे, या प्रकार आचरण करे ॥ ४८ ॥

असाधुनसो संभाषण न करे, संपूर्ण प्राणिमात्रनसो हिंसा द्वेष न करे सबकों वासुदेवपरायण देखे ॥ ४९ ॥ त्रयोदशीके दिवस पंचामृतसे विष्णु भगवान्कों स्नान करावे, विधिके जाननवारे ब्राह्मणनकी शास्त्रतें बताई विधिसों पूजे ॥ ५० ॥ बडी पूजा करै, धनकी वंचना न करे दूधमें चरुकरिकैं भगवान्के अर्थ निरूपण करे ॥ ५१ ॥ सावधान हो होम करे अतियुक्त हरिकों प्रसन्न करै भगवान्की प्रसन्नताके अर्थ नैवेद्य दे ॥ ५२ ॥ ज्ञानसंपन्न आचार्य्यको वस्त्र आभरण गौसे प्रसन्न करै ऋत्विक्जनकों दक्षिणा देई, या प्रकार भगवान् हरिकों आराधन करै ॥ ५३ ॥ श्रेष्ठ गुणवान

वर्जयेदसदालापं भोगानुच्चावचांस्तथा ॥ अहिंस्रः सर्वभूतानां वासुदेवपरायणः ॥ ४९ ॥ त्रयोदश्यामथो विष्णोः स्नपनं पञ्चकैर्विभोः ॥ कारयेच्छास्त्रदृष्टेन विधिना विधिकोविदैः ॥ ५० ॥ पूजां च महतीं कुर्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः ॥ चरुं निरूप्य पयसि शिपिविष्टाय विष्णवे ॥ ५१ ॥ शृतेन तेन पुरुषं यजेत सुसमाहितः ॥ नैवेद्यं चातिगुणवद्दद्यात् पुरुषतुष्टिदम् ॥५२॥ आचार्यं ज्ञानसंपन्नं वस्त्राभरणधेनुभिः ॥ तोषयेदृत्विजश्चैव तद्विद्ध्याराधनं हरेः ॥ ५३ ॥ भोजयेत् तान् गुणवता सदन्नेन शुचिस्मिते ॥ अन्यांश्च ब्राह्मणान् शक्त्या ये च तत्र समागताः ॥५४॥ दक्षिणां गुरवे दद्यादृत्विग्भ्यश्च यथाऽर्हतः ॥ अन्नाद्येनाऽश्वपाकांश्च प्रीणयेत् समुपागतान् ॥ ५५ ॥ भुक्तवत्सु च सर्वेषु दीनान्धकृपणेषु च ॥ विष्णोस्तत् प्रीणनं विद्वान् भुञ्जीत सह बन्धुभिः ॥ ५६ ॥ नृत्यवादित्रगीतैश्च स्तुतिभिः स्वस्तिवाचकैः ॥ कारयेत्तत्कथाभिश्च पूजां भगवतोऽन्वहम् ॥५७॥ एतत् पयोव्रतं नाम पुरुषाराधनं परम् ॥ पितामहेनाभिहितं मया ते समुदाहृतम् ॥ ५८ ॥

ब्राह्मणनकू सुंदर अन्न भोजन करावे, तहां और आये ब्राह्मणौंकोभी यथाशक्ति देई ॥ ५४ ॥ गुरूके अर्थ बडीसी दक्षिणा देई ऋत्विकजनकों यथा योग्य देई अन्नसे आये चांडालादिकौंकोभी प्रसन्न करे ॥ ५५ ॥ दीन अंधे कृपणके भोजन करानेसे भगवान् प्रसन्न होवे हैं यह जानो पीछें सब बंधुनकरिकै सहित आपुहू भोजन करे ॥ ५६ ॥ नृत्य वादित्र गीत स्वस्तिवाचन और भगवानकी कथासै नित्य हरि भगवान्की पूजा करावे ॥ ५७ ॥ यह हरिके आराधनयुक्त पयोव्रत नाम व्रत मैंने कह्यो, जो पहिलें ब्रह्मानें कहा था ॥ ५८ ॥

हे महाभागे ! तूं या कहे व्रतसे शुद्ध भाव करि अविनाशी केशव भगवान्का भजन कर ॥ ५९ ॥ हे कल्याणी ! यह व्रत सकल यज्ञरूप सब व्रतरूप और तपको सार है यही दानरूप यही ईश्वरको प्रसन्न करै है ॥६० ॥ तेई साक्षात् उत्तम नेम है तप, दान, व्रत, यज्ञ सोई है जाकरिकै भगवान् प्रसन्न होवे ॥ ६१ ॥ हे मंगलरूप ! तुम इस व्रतकूं श्रद्धाकरिकै करो तासे प्रसन्न भये भगवान् शीघ्रही तोकूं वर देंगे ॥ ६२॥ इति श्रीमद्भागवतभाषायामष्टमस्कन्धे पयोव्रतकथनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ सत्रवें अध्यायके विषें सो व्रत अदितिनें जब कियो तब हरि भगवान् कामपूर्ण करिवेके लिये

त्वं चानेन महाभागे सम्यक्चीर्णेन केशवम् ॥ आत्मना शुद्धभावेन नियतात्मा भजाव्ययम् ॥५९॥ अयं वै सर्वयज्ञाख्यः सर्वव्रतमिति स्मृतम् ॥ तपःसारमिदं भद्रे दानं चेश्वरतर्पणम् ॥ ६० ॥ त एव नियमाः साक्षात्त एव च यमोत्तमाः ॥ तपो दानं व्रतं यज्ञो येन तुष्यत्यधोक्षजः ॥ ६१ ॥ तस्मादेतद्व्रतं भद्रे प्रयता श्रद्धयाचर ॥ भगवान् परितुष्टस्ते वरानाशु विधास्यति ॥ ६२ ॥ इति श्रीभा०म० अष्टमस्कन्धेऽदितिपयोव्रतं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ता साऽदिती राजन् स्वभर्त्रा कश्यपेन वै ॥ अन्वतिष्ठद्व्रतमिदं द्वादशाहमतन्द्रिता ॥ १ ॥ चिन्तयन्त्येकया बुद्ध्या महापुरुषमीश्वरम् ॥ प्रगृह्येन्द्रियदुष्टाश्वान् मनसा बुद्धिसारथिः ॥ २ ॥ मनश्चैकाग्रया बुद्ध्या भगवत्यखिलात्मनि ॥ वासुदेवे समाधाय चचार ह पयोव्रतम् ॥ ३ ॥ तस्याः प्रादुरभूत्तात भगवानादिपूरुषः ॥ पीतवासाश्चतुर्बाहुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ४ ॥ तं नेत्रगोचरं वीक्ष्य सहसोत्थाय सादरम् ॥ ननाम भुवि कायेन दण्डवत् प्रीतिविह्वला ॥ ५ ॥

ताके पुत्र होतभये यह वर्णन करैंगे ॥ शुकदेवजी कहै हैं हे राजन् ! अपने भर्ता कश्यपजीके ऐसे कहनेपर अदितिने आलस्य त्यागकर बारह दिवस पर्यन्त पयोव्रत किया ॥ १ ॥ एकाग्र बुद्धिसे महापुरुष ईश्वरको ध्यान करिकैं बुद्धिरूप सारथी द्वारा इन्द्रियरूपी अश्व वशकर लिये ॥ २ ॥ सो एकाग्रबुद्धिसे सबके आत्मा भगवान् वासुदेवमें मन राखिकैं पयोव्रत करातिभई ॥ ३ ॥ हे तात ! ता अदितिकैं आदिपुरुष भगवान् प्रकट होतभये, पीतांबर पहिरें, चारि भुजामें शंख चक्र गदा पद्म धारण करे ॥ ४ ॥ नेत्रनकों अगोचर भगवान् देखिकैं आदरसूं वेगी उठिकै पृथ्वीमें

दंडकीसी नाईं गिरिकैं प्रणाम करती भई ॥ ५ ॥ सो अदिति प्रीतिसहित उठिकैं हाथ जोरि केवल स्तुति करिवेको न समर्थ होती भई, आनंदके जलसे नेत्र आकुल होगये देह पुलकायमान होगई हरिके दर्शनके उत्सवसे शरीरके विषें कंप भई, यासो चुप होतीभई ॥६॥ हे कुरुवंशीनमें श्रेष्ठ राजा! सो देवी अदिति प्रीतिसे गद्गदवाणी हो हरिकी स्तुति करति भई नेत्रनसे लक्ष्मीके पति यज्ञके पती जगत्के पतिको ऐसे देखने लगी मानो पी जायगी ॥ ॥ ७ ॥ अदिति बोली हे यज्ञेश्वर हे यज्ञपुरुष हे अच्युत हे तीर्थपालक हे पुण्यतीर्थकीर्ति हे श्रवणमंगल नामवारे शरण आये जनौके दुःख दूर करनेको अवतार लैनेवाले हे ईश्वर हे भगवन्! हमकूं सुख करो, तुम दीननके नाथ हो ॥ ८ ॥ विश्वरूप विश्वके उत्पन्न पालन संहार करनेहारे अपनी

सोत्थाय बद्धाञ्जलिरीडितुं स्थिता नोत्सेह आनन्दजलाकुलेक्षणा ॥ बभूव तूष्णीं पुलकाकुलाकृतिस्तद्दर्शनात्युत्सवगात्रवेपथुः ॥ ६ ॥ प्रीत्या शनैर्गद्गदया गिरा हरिं तुष्टाव सा देव्यदितिः कुरूद्वह ॥ उद्वीक्षती सा पिबतीव चक्षुषा रमापतिं यज्ञपतिं जगत्पतिम् ॥ ७ ॥ अदितिरुवाच ॥ यज्ञेश यज्ञपुरुषाच्युत तीर्थपाद तीर्थश्रवः श्रवणमङ्गलनामधेय ॥ आपन्नलोकवृजिनोपशमोदयाद्य शं नः कृधीश भगवन्नसि दीननाथः ॥ ८ ॥ विश्वाय विश्वभवनस्थितिसंयमाय स्वैरं गृहीतपुरुशक्तिगुणाय भूम्ने ॥ स्वस्थाय शश्वदुपबृंहितपूर्णबोधव्यापादितात्मतमसे हरये नमस्ते ॥ ९ ॥ आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्यलक्ष्मीर्द्योभूरसाः सकलयोगगुणास्त्रिवर्गः ॥ ज्ञानं च केवलमनन्त भवन्ति तुष्टात्त्वत्तो नृणां किमु सपत्नजयादिराशीः ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अदित्यैवं स्तुतो राजन् भगवान् पुष्करेक्षणः ॥ क्षेत्रज्ञः सर्वभूतानामिति होवाच भारत ॥ ११ ॥

इच्छासै मायाके अनेक गुण धारण करनेहारे व्यापक अच्युत स्वरूप सदा वृद्धिकों प्राप्त पूर्ण ज्ञान स्वरूपसै मायासै निर्मित आत्माके अज्ञान दूर करनेहारे हरि ईशको मेरा प्रणाम है ॥ ९ ॥ जब आप प्रसन्न होतेहो तब ब्रह्माकीसी आयु, सुंदर रूप, अतुल लक्ष्मी, स्वर्ग पृथ्वी सन योगके गुण धर्म अर्थ काम ज्ञान ये मनुष्यनकों देतेहै हे अनंत! फिर वैरीनके विजय करनेकी तुच्छ कामनाऔंकी सिद्धि हौनेकी तौ बातही क्या है ॥ १० ॥ श्रीशुकदेवजी कहैहै हे राजा! अदितिसे स्तुतिकिये कमलसे है नेत्र संपूर्ण प्राणीनके अंतर्यामी भगवान् यह कहत भये ॥ ११ ॥

भगवान बोले हे देवतानकी माता! वैरीनने जिनकी श्री हरि लीनी है ऐसे अपनें धामतें भ्रष्ट तुह्मारी पुत्रसंबंधी इच्छा मैने जानली कि दैत्यौंका राज्य भ्रष्ट हो देवता अपने स्थानको प्राप्तहौं ॥ १२ ॥ दुर्मद असुरोंको संग्राममें जीतिकै जयश्री पाय पुत्रन सहित एकठौर रहिवेकी तुह्मारी इच्छा है ॥ ॥ १३ ॥ ज्येष्ठ इन्द्र सहित अपने पुत्रौंके हाथसे संग्राममें मरे हुए शत्रुओंको और उनकी स्त्रियोंके रौनेके दुःख देखनेकी तू इच्छा करै है ॥ १४ ॥ सुंदर समृद्धियुक्त अपनी यशश्री ग्रहणकर स्वर्गमें वैठिकैं क्रीडा करते अपने पुत्रोंकें देखिवेकी इच्छा करैहै ॥ १५ ॥ असुरनायकका जितना अभी वहुत कठिन है अभी उनपर दैव और ब्राह्मण दोनो अनुकूल है इसीसै वे रक्षितहैं इस समय उनमें पराक्रम करनैसै कुछ फल न होगा ॥१६॥ हे देवी !

श्रीभगवानुवाच ॥ देवमातर्भवत्या मे विज्ञातं चिरकाङ्क्षितम् ॥ यत् सपत्नैर्हतश्रीणां च्यावितानां स्वधामतः ॥ १२ ॥
तान् विनिर्जित्य समरे दुर्मदानसुरर्षभान् ॥ प्रतिलब्धजयश्रीभिः पुत्रैरिच्छस्युपासितुम् ॥ १३ ॥ इन्द्रज्येष्ठैः स्वतनयैर्हतानां
युधि विद्विषाम् ॥ स्त्रियो रुदन्तीरासाद्य द्रष्टुमिच्छसि दुःखिताः ॥ १४ ॥ आत्मजान् सुसमृद्धांस्त्वं प्रत्याहृतयशःश्रियः
॥ नाकपृष्ठमधिष्ठाय क्रीडतो द्रष्टुमिच्छसि ॥ १५ ॥ प्रायोऽधुना तेऽसुरयूथनाथा अपारणीया इति देवि
मे मतिः ॥ यत्तेऽनुकूलेश्वरविप्रगुप्ता न विक्रमस्तत्र सुखं ददाति ॥ १६ ॥ अथाप्युपायो मम देवि चिन्त्यः सन्तोषितस्य
व्रतचर्यया ते ॥ ममार्चनं नार्हति गन्तुमन्यथा श्रद्धानुरूपं फलहेतुकत्वात् ॥१७॥ त्वयार्चितश्चाहमपत्यगुप्तये
पयोव्रतेनानुगुणं समीडितः ॥ स्वांशेन पुत्रत्वमुपेत्य ते सुतान् गोप्ताऽस्मि मारीचतपस्यधिष्ठितः ॥ १८ ॥ उपधाव
पतिं भद्रे प्रजापतिमकल्मषम् ॥ मां च भावयती पत्यावेवंरूपमवस्थितम् ॥ १९ ॥

तोऊ तेरे व्रत करिवे करिकैं मैं प्रसन्न हूं, मैं उपाय विचारूंगा मेरा अर्चन वृथा नहीं जाता, श्रद्धाके अनुरूप फल दू हूं ॥ १७ ॥ तुमनें पयोव्रत करिकै पुत्रनकी रक्षा करिवेके लियें मेरी पूजा करी है, ताहीके अनुरूप जैसें होय तैसे स्तुति कियो हूं, इस्से मैं अपने अंशसै तेरो पुत्र ह्वैकैं कश्यपके तपमें स्थित हौ तेरे पुत्रनकी रक्षा करूंगो ॥ १८ ॥ हे भद्रे! पाप करिकैं रहित अपने पति कश्यपको भजन करि जैसे स्वरूपसै मैं अब स्थित हूं ऐसेही स्वरूपसै तुह्मारे पतिके वीचमें स्थित रहा हूं ऐसेही रूप करिकैं मेरी पतिमें भावना कर ॥ १९ ॥

यह बात कोई तुझसे पूछै तौ किसी औरतें मति कहियो, हे देवी ! देवतानको रहस्य गुप्तही सिद्ध होवे हैं ॥ २० ॥ शुकदेवजी बोले इतनो कहिकै भगवान अंतर्हित होतभये अदिति दुर्लभ हरिको जन्म आपमें पायके परम भक्तिसे कृतकृत्यकीसी नाईं पतिकी सेवा करत भई ॥ २१ ॥ सो सत्यदृष्टि कश्यपजी समाधियोग करिकै आपमैं प्रविष्ट भये हरिके अंशको जानत भये ॥ २२ ॥ हे राजन् ! श्रीकश्यपजी तप करिकै चिरकाल धारण किये वीर्य पराक्रमकूं अतितेज करिकें अदितीके विषें सावधान मन होकर धारण करते भये जैसे पवन काष्ठके विषैं अग्निकों धारण करैं है ॥ २३ ॥ हिरण्यगर्भ ब्रह्मा अदितिके गर्भविषें स्थित भगवान् सनातनकों जानिकैं गुह्य नाम करिकैं स्तुति करत भये ॥ २४ ॥ ब्रह्मा बोले हे उरुगाय ! सर्वो-

नैतत्परस्मा आख्येयं पृष्टयाऽपि कथंचन ॥ सर्वं सम्पद्यते देवि देवगुह्यं सुसंवृतम् ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एतावदुक्त्वा भगवांस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ अदितिर्दुर्लभं लब्ध्वा हरेर्जन्मात्मनि प्रभोः ॥ २१ ॥ उपाधावत् पतिं भक्त्या परया कृतकृत्यवत् ॥ स वै समाधियोगेन कश्यपस्तदबुद्ध्यत ॥ २२ ॥ प्रविष्टमात्मनि हरेरंशं ह्यवितथेक्षणः ॥ सोऽदित्यां वीर्यमाधत्त तपसा चिरसंभृतम् ॥ समाहितमना राजन् दारुण्यग्निं यथाऽनिलः ॥ २३ ॥ अदितेर्धिष्ठितं गर्भं भगवन्तं सनातनम् ॥ हिरण्यगर्भो विज्ञाय समीडे गुह्यनामभिः ॥ २४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ जयोरुगाय भगवन्नुरुक्रम नमोऽस्तु ते ॥ नमो ब्रह्मण्यदेवाय त्रिगुणाय नमो नमः ॥ २५ ॥ नमस्ते पृश्निगर्भाय वेदगर्भाय वेधसे ॥ त्रिनाभाय त्रिपृष्ठाय शिपिविष्टाय विष्णवे ॥ २६ ॥ त्वमादिरन्तो भुवनस्य मध्यमनन्तशक्तिं पुरुषं यमाहुः ॥ कालो भवानाक्षिपतीश विश्वं स्रोतो यथाऽन्तः पतितं गभीरम् ॥ २७ ॥

त्कर्ष आपकी जय हो हे भगवन् हे उरुक्रम ! तुमकों नमस्कार है ब्रह्मण्य देव और तीनि गुणनमें प्रगट तुह्मारे अर्थ नमस्कार है ॥ २५ ॥ पृश्निगर्भके अर्थ वेद है गर्भमें जाकें अथवा वेदमय प्रकाशमान सर्वज्ञ तीनों लोक है नाभिमें जाकें तीनों लोकमें उपस्थित जीवनके अंतर्यामी विष्णुके अर्थ नमस्कार है ॥ २६ ॥ भुवनके आदि मध्य अंत तुमही हो अनंत शक्ति पुरुष तुमही हो, जैसे भीतर गिरचो तृणादिककूं गंभीर नदीप्रवाह आकर्षण करे है तैंसे कालरूपी तुम जगतकों आकर्षण करो हो ॥ २७ ॥

९०

स्थावर जंगम प्रजाके और प्रजापतिनके तुमही उपजावनहारे हो, हे देव ! स्वर्गते भ्रष्टभये देवतानको तुम ऐसे आश्रय हो, जैसे जलमें बूडनवारेनको नावका आश्रय होवे हैं ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते भाषाटीकायां अ॰ सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ अठारहवें अध्यायमें सबसै सत्कारकों प्राप्त हो वामन भगवान बलिके यज्ञमें गये और सत्कारको कर राजानै वर मांगनेको कहा यह वर्णन करैंगे ॥ श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन् ! या प्रकार ब्रह्माने जब प्रभाव कथन किया तब मृत्युजन्म रहित हरि अदितीके विषें प्रकट होत भये चारि भुजा शंख चक्र गदा पद्म आयुधधारे दीप्तिमान पीतांबर वस्त्र पहरे कमलसे विशाल नेत्र ॥ १ ॥ श्यामसुंदर, उज्ज्वल देह मकराकृत कुंडलकी श्रीसे सुंदरमुख, श्रीवत्स वक्षस्थलमें शोभित, बाजूबंदसे शोभायमान, क्रीटमुकुट; कांची क्षुद्रघंटिका सुंदर नूपुर धारे ॥ २ ॥ भौंरानके समूह करिकै शब्दित वनमालासे विराजमान हरि अपनी कांतिसे श्रीकश्यपजीके घरको अंधकार नाश करतेभये; कंठमें कौस्तुभ मणि पहरे प्रगट हुए ॥ ३ ॥ उसी समय संपूर्ण दिशा प्रसन्न होती भई, नदी सरोवर निर्मल होतभयें, संपूर्ण प्रजा प्रसन्न होतिं भई, ऋतु गुणयुक्त होती भई, स्वर्ग आकाश पृथ्वी देवता गऊ ब्राह्मण और हरिभक्तजन संपूर्ण अति प्रसन्न होत भये ॥ ४ ॥ भादोंकै शुक्ल पक्षकी द्वादशी श्रवण नक्षत्रके योगमें अभिजित मुहूर्तमें

त्वं वै प्रजानां स्थिरजङ्गमानां प्रजापतीनामसि संभविष्णुः ॥ दिवौकसां देव दिवश्च्युतानां परायणं नौरिव मज्जतोऽप्सु ॥ २८ ॥ इति श्रीभा॰ महापुराणे अष्टमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं विरिञ्चस्तुतकर्मवीर्यः प्रादुर्बभूवामृतभूरदित्याम् ॥ चतुर्भुजः शङ्खगदाब्जचक्रः पिशङ्गवासा नलिनायतेक्षणः ॥ १ ॥ श्यामावदातो झषराजकुण्डलत्विषोल्लसच्छ्रीवदनाम्बुजः पुमान् ॥ श्रीवत्सवक्षा वलयाङ्गदोल्लसत्किरीटकाञ्चीगुणचारुनूपुरः ॥ २ ॥ मधुव्रतव्रातविघुष्टया स्वया विराजितः श्रीवनमालया हरिः ॥ प्रजापतेर्वेश्मतमः स्वरोचिषा विनाशयन् कण्ठनिविष्टकौस्तुभः ॥ ३ ॥ दिशः प्रसेदुः सलिलाशयास्तदा प्रजाः प्रहृष्टा ऋतवो गुणान्विताः ॥ द्यौरन्तरिक्षं क्षितिरग्निजिह्वा गावो द्विजाः संजहृषुर्नगाश्च ॥ ४ ॥ श्रोणायां श्रवणद्वादश्यां मुहूर्तेऽभिजिति प्रभुः ॥ सर्वे नक्षत्रताराद्याश्चक्रुस्तज्जन्म दक्षिणम् ॥ ५ ॥

प्रभु वामनजी प्रकट होत भये, जिनके जन्मकी सब नक्षत्र तारागण ग्रह उदारता करते भये ॥ ५ ॥ द्वादशीके दिन मध्यान्ह समयमें भगवानका अवतार हुआ इसीसे वह द्वादशी विजयानामसै प्रसिद्ध हुई ॥ ६ ॥ तासमय शंख नगाडे भेरी मृदंग ढोल आनक और विचित्र बाजे तुरहीनको बडो शब्द होत भयो ॥ ७ ॥ ऐसेंही प्रसन्न हो अप्सरा नाचती भई, गंधर्वमें श्रेष्ठ गावतभये, मुनिजन स्तुति करतभये, देवता मनुष्य पितर अग्नि ॥ ८ ॥ सिद्ध विद्याधर किंपुरुष किन्नर चारण यक्ष राक्षस गरुड सर्प गावत भये ॥ ९ ॥ और प्रशंसा करतभये देवतानके अनुचरगण नाचतभये, और अदितिके आश्रममें फूलनकी वर्षा करत भये ॥ १० ॥ अदिति अपनें गर्भतें भये परमपुरुषकू देखिकैं आनंदकों प्राप्त होति-

द्वादश्यां सविता तिष्ठन् मध्यंदिनगतो नृप ॥ विजया नाम सा प्रोक्ता यस्यां जन्म विदुर्हरेः ॥ ६ ॥ शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्मृदङ्गपणवानकाः ॥ चित्रवादित्रतूर्याणां निर्घोषस्तुमुलोऽभवत् ॥७॥ प्रीताश्चाप्सरसोऽनृत्यन् गन्धर्वप्रवरा जगुः ॥ तुष्टुवुर्मुनयो देवा मनवः पितरोऽग्नयः ॥ ८ ॥ सिद्धविद्याधरगणाः सकिंपुरुषकिन्नराः ॥ चारणा यक्षरक्षांसि सुपर्णा भुजगोत्तमाः ॥ ९ ॥ गायन्तोऽतिप्रशंसन्तो नृत्यन्तो विबुधानुगाः ॥ अदित्या आश्रमपदं कुसुमैः समवाकिरन् ॥ १० ॥ दृष्ट्वाऽदितिस्तं निजगर्भसंभवं परं पुमांसं मुदमाप विस्मिता ॥ गृहीतदेहं निजयोगमायया प्रजापतिश्चाह जयेति विस्मितः ॥ ११ ॥ यत्तद्वपुर्भाति विभूषणायुधैरव्यक्तचिद्व्यक्तमधारयद्धरिः ॥ बभूव तेनैव स वामनो बटुः संपश्यतोर्दिव्यगतिर्यथा नटः ॥ १२ ॥ तं बटुं वामनं दृष्ट्वा मोदमाना महर्षयः ॥ कर्माणि कारयामासुः पुरस्कृत्य प्रजापतिम् ॥ ॥ १३ ॥ तस्योपनीयमानस्य सावित्रीं सविताऽब्रवीत् ॥ बृहस्पतिर्ब्रह्मसूत्रं मेखलां कश्यपोऽददात् ॥ १४ ॥

भई, अपनी योगमायासे देह ग्रहण करनेहारे नारायणको देख प्रजापति कश्यप विस्मित होकै जयजय कहतभये ॥ ११ ॥ अव्यक्त चैतन्य स्वरूप अद्भुत चरित्रवाले भगवान शोभा आभूषण और आयुधौंसे युक्त जिस स्वरूपको धारणकर प्रकट हुएथे माता पिताके देखते उसी स्वरूपसै आप वामन रूप होगये जैसे कोई नटवेष धारणकर स्वांग बदलताहै ॥ १२॥ ब्रम्हचारी छोटेसें वामनरूपकू देखिकै प्रसन्न भये ऋषि कश्यपको आगें करिके जातकर्मादि संस्कारनकूं कराते भये ॥ १३ ॥ जब यज्ञोपवीत भयो, तब वामनजीकूं सूर्य गायत्री उपदेश करतभयो, बृहस्पति जनेऊ देतभयो, कश्यप

मेखला देतभयो ॥ १४ ॥ भूमि मृगचर्म देतिभई, वननको पति चंद्रमा दंड देतभयो, हाथमेकूं माता कौपीन देतभई स्वर्ग जगत्पति श्रीवामनजीकूं छत्र देतभयो ॥ १५ ॥ वेदगर्भ ब्रह्मा कमंडलु देतभयो, सप्त ऋषि कुशदाम दैतभये हे महाराज ! सरस्वती अव्यक्त आत्मा हरिकूं अक्षमाला देतीभई ॥ १६ ॥ ऐसें यज्ञोपवीती वामनजीके अर्थ कुबेर भिक्षापात्र देतभये, साक्षात् भगवती उमा अंबिका भिक्षा देतीभई ॥ १७ ॥ ऐसें सत्कार किये ब्रह्मचारी श्रेष्ठ वामनजी अपने ब्रह्मतेजसे ब्रह्मऋषीन करिकैं सहित सभाकू अतिक्रमणकरिकैं शोभित भये ॥ १८ ॥ अग्न्याधानकर अग्निको प्रदीतकर परिसमूहन करिकैं कुसनसूं परिस्तरण पूजनकरि समिधानकरिकैं होम करतभये ॥ १९ ॥ शुक्राचार्यके द्वारा अश्वमेधन करिकै पूजन करते

ददौ कृष्णाजिनं भूमिर्दण्डं सोमो वनस्पतिः ॥ कौपीनाच्छादनं माता द्यौश्छत्रं जगतः पतेः ॥ १५ ॥ कमण्डलुं वेदगर्भः कुशान्सप्तर्षयो ददुः ॥ अक्षमालां महाराज सरस्वत्यव्ययात्मनः ॥ १६ ॥ तस्मा इत्युपनीताय यक्षराट् पात्रिकामदात् ॥ भिक्षां भगवती साक्षादुमाऽदादम्बिका सती ॥ १७ ॥ स ब्रह्मवर्चसेनैवं सभां संभावितो बटुः ॥ ब्रह्मर्षिगणसंजुष्टामत्यरोचत मारिषः ॥ १८ ॥ समिद्धमाहितं वह्निं कृत्वा परिसमूहनम् ॥ परिस्तीर्य समभ्यर्च्य समिद्भिरजुहोद्द्विजः ॥ १९ ॥ श्रुत्वाऽश्वमेधैर्यजमानमूर्जितं बलिं भृगूणामुपकल्पितैस्ततः ॥ जगाम तत्राखिलसारसंभृतो भारेण गां सन्नमयन् पदे पदे ॥ २० ॥ तं नर्मदायास्तट उत्तरे बलेर्यं ऋत्विजस्ते भृगुकच्छसंज्ञके ॥ प्रवर्तयन्तो भृगवः क्रतूत्तमं व्यचक्षताराादुदितं यथा रविम् ॥ २१ ॥ ते ऋत्विजो यजमानः सदस्या हतत्विषो वामनतेजसा नृप ॥ सूर्यः किलायात्युत वा विभावसुः सनत्कुमारोऽथ दिदृक्षया क्रतोः ॥ २२ ॥

राजा बलिकू कि वह यज्ञद्वारा बहुत वृद्धिको प्राप्त हो रहाहै सुनकर सम्पूर्ण बल और सारसे परिपूर्ण पगपगमें पृथ्वीको भारसे कंपाते वहांको गये ॥ २० ॥ नर्मदाके उत्तरतट भृगुकच्छ नाम स्थानमें उत्तम यज्ञ प्रवर्त करते शुक्रादिक ऋत्विज श्रीवामनजीको देखतभये, जैसे समयमें उदयभये सूर्यको देखतेहैं ॥ २१ ॥ हे राजा ! वामनजीके तेजसे नष्टकांति हो ऋत्विज, यजमान, सभासद, यह कहतभये यह सूर्य आवे है कि अग्नि आवे है, अथवा यज्ञके देखिवेकी इच्छाकरिकै सनत्कुमार आवेहैं, ऐसे तर्कना करतभये ॥ २२ ॥

शिष्यनकरिकैं सहित शुक्रादिक अनेक प्रकार तर्कना करतेथे कि इसी समय भगवान् श्रीवामनजी दंडसहित छत्र, जलसहित कमंडलु, धारण
करते अश्वमेधके मंडपमें प्रवेश करतभये ॥ २३ ॥ मूंजकी मेखला पहिरें, यज्ञोपवीत और मृगचर्मरूप उत्तरीय धारण किये, जटाधारे विप्ररूप
वौंना माया करिकैं मनुष्यरूपमें प्रविष्ट भये हरि भगवान् को ॥ २४ ॥ देखिकै शिष्यन सहित शुक्रादिक अग्नि सहित उठिकै ग्रहण करत भये,
वामनजीके तेजसे सब पराभवको प्राप्त होगये ॥ २५ ॥ देखिवे लायक मनोहररूपके अनुकूल अंगवारे श्रीवामनजी महाराजको देखिकैं प्रसन्न हो,
यजमान राजा बलि तिनके अर्थ आसन देतभयो ॥ २६ ॥ और भलें आये महाराज, ऐसैं सन्मान करिकैं भगवानके चरणकमल धोइकैं मुक्तिसं-

इत्थं सशिष्येषु भृगुष्वनेकधा वितर्क्यमाणो भगवान् स वामनः ॥ सदण्डछत्रं सजलं कमण्डलुं विवेश बिभ्रद्ध-
यमेधवाटम् ॥ २३ ॥ मौञ्ज्या मेखलया वीतमुपवीताजिनोत्तरम् ॥ जटिलं वामनं विप्रं मायामाणवकं हरिम् ॥ २४ ॥
प्रविष्टं वीक्ष्य भृगवः सशिष्यास्ते सहाग्निभिः ॥ प्रत्यगृह्णन् समुत्थाय संक्षिप्तास्तस्य तेजसा ॥ २५ ॥ यजमानः
प्रमुदितो दर्शनीयं मनोरमम् ॥ रूपानुरूपावयवं तस्मा आसनमाहरत् ॥ २६ ॥ स्वागतेनाभिनन्द्याथ पादौ
भगवतो बलिः ॥ अवनिज्यार्चयामास मुक्तसङ्गं मनोरमम् ॥ २७ ॥ तत्पादशौचं जनकल्मषापहं स धर्मविद् मू-
र्ध्न्यदधात् सुमङ्गलम् ॥ यद्देवदेवो गिरिशश्चन्द्रमौलिर्दधार मूर्ध्ना परया च भक्त्या ॥ २८ ॥ बलिरुवाच ॥ स्वागतं
ते नमस्तुभ्यं ब्रह्मन् किं करवाम ते ॥ ब्रह्मर्षीणां तपः साक्षान्मन्ये त्वार्य वपुर्धरम् ॥ २९ ॥ अद्य नः पितरस्तृप्ता
अद्य नः पावितं कुलम् ॥ अद्य स्विष्टः क्रतुरयं यद्भवानागतो गृहान् ॥ ३० ॥

गिनके मनकूं रमानेहारे श्रीवामनजीको पूजन करत भयो ॥ २७ ॥ कुलके पापनको नाश करनेहारे, सुंदर मंगलरूप श्रीवामनजीके चरणको जल
धर्मके जान्नेहारे राजा बलि माथेपै धारण करत भयो जिस जलकूं देवनके देव चंद्रमौलि श्रीमहादेवजी महाराज परम भक्तिपूर्वक माथेमें धारण
करतभए ॥ २८ ॥ बलि बोले हे ब्राह्मण ! तुम भलें आये तुमकों नमस्कार हैं आज्ञा करिये तुमारी कहा सेवा करें ब्रह्मऋषीनकी साक्षात्
मूर्तिधरें केवल तपस्वीसेही हो यह मैं तुमें मानूहूं आज मैं अति धन्य भयो ॥ २९ ॥ आज हमारे पितर तृप्त भये, आज हमारो कुल

पवित्र भयो, आज यह यज्ञ सफल भयो जाते तुम घरमें आये ॥ ३० ॥ यथाविधि मेरे अग्नि आज सुंदर होम किये भये हैं हे ब्राह्मणके बालक ! तुह्मारे चरणनके धोवनके जलसे मैं निष्पाप होगया मेरी यह भूमि पृथ्वी तुह्मारे छोटे छोटे चरणकमल करिकैं पवित्र भई ॥ ३१ ॥ हे ब्रह्मचारी ! जो वांछा होइ सो तुम मोतें मांगो, हे ब्राह्मणके बालक ! मैं जानूहूं तुम कुछ मांगिवेको आयेहो; पृथ्वी सुवर्ण गुणवत् स्थान मीठो अन्न अथवा ब्राह्मणकी कन्या समृद्धित ग्राम घोडा हाथी रथ हे पूज्यनमें श्रेष्ठ ! जो इच्छा हो मोतें मांगो ॥ ३२ ॥ इति श्रीम० भा० अष्ट० अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अद्याग्नयो मे सुहुता यथाविधि द्विजात्मज त्वच्चरणावनेजनैः ॥ हतांहसो वार्भिरियं च भूरहो तथा पुनीता तनुभिः पदैस्तव ॥३१॥ यद्यद्बटो वाञ्छसि तत् प्रतीच्छ मे त्वामर्थिनं विप्रसुतानुतर्कये ॥ गां काञ्चनं गुणवद्धाम मृष्टं तथान्नपेयमुत वा विप्र कन्याम् ॥ ग्रामान् समृद्धान् तुरगान् गजान् वा रथांस्तथाऽर्हत्तम संप्रतीच्छ ॥३२॥ इति श्रीभा० बलिवामनसंवादेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति वैरोचनेर्वाक्यं धर्मयुक्तं ससूनृतम् ॥ निशम्य भगवान् प्रीतः प्रतिनन्द्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वचस्तवैतज्जनदेव सूनृतं कुलोचितं धर्मयुतं यशस्करम् ॥ यस्य प्रमाणं भृगवः सम्पराये पितामहः कुलवृद्धः प्रशान्तः ॥ २ ॥ न ह्येतस्मिन् कुले कश्चिन्निःसत्त्वः कृपणः पुमान् ॥ प्रत्याख्याता प्रतिश्रुत्य यो वाऽदाता द्विजातये ॥ ३ ॥ न सन्ति तीर्थे युधि चार्थिनाऽर्थिताः पराङ्मुखा ये त्वमनस्विनो नृपाः ॥ युष्मत्कुले यद्यशसाऽमलेन प्रह्लाद उद्भाति यथोडुपः खे ॥ ४ ॥

उन्नसकी अध्यायके विषे हरिनें तीन पैड पृथ्वी मांगी, तब बलिनें प्रतिज्ञा की और शुक्राचार्य जानिकैं मनें करत भये, यह वर्णन करैंगे ॥ श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् ! ऐसें धर्म युक्त और सुंदर राजा बलिको वाक्य सुनिके भगवान् प्रसन्न होके सन्मान करिकैं यह वचन कहत भये॥ १ ॥भगवान् (दाताकी स्तुति कर्नी आपुकों संतोष करनो जैसो देखोहै तैसो कहनो यह भिखारीनको सिखावत बोलतभये) हे राजन् ! हे देव ! तुह्मारो यह वचन सुंदर और कुलके उचित है, धर्म करिकैं युक्त है, यशकूं करै है जाके परलोकके धर्ममें शुक्र और पितामह प्रल्हाद कुलमें वृद्ध प्रशांत प्रमाण है ॥ ॥२॥या कुलके विषें कोई निःसत्व कृपण पुरुष नहीं भयो,जो ब्राह्मणके अर्थ हां कहकर फिर उसै कुछ न दे॥३॥दानके समय मांगिवेकूं आवे अथवा युद्धमें

युद्ध मांगिवेकू आवें तिनसों बहिर्मुख राजा या कुलमें नहीं भये है, तुम्हारे कुलमें निर्मल यश करिकें प्रल्हाद प्रकाशे है, जैसें आकाशमें चंद्रमा प्रकाशे हैं ॥ ४ ॥ जा कुलमें हिरण्याक्ष होतभयो, सो अकेलोई गदा हाथमें लिये या पृथ्वीपे विचर्यो, दिग्विजयमें ताके सन्मुख दूसरा वीरत्वको नहीं प्राप्त होत भयो ॥ ५ ॥ पृथ्वीके उद्धारके समय आये हिरण्याक्षको विष्णु कष्टकरिकै जीति आपुकों जीत्यो न मानतभये, ताके बडे पराक्रमकों स्मरण करें हैं[१] ॥ ६ ॥ भैया हिरण्यकश्यप भैयाको वध सुनिकै भैयाके मारणवारेके मारिवेकूं हरिके स्थानको जातभयो ॥ ७ ॥ त्रिशूल हाथमें लिये कालकीसी नाई आते दैत्यकू देखिकैं कालको जाननवारो विष्णु मायावीनमें श्रेष्ठ विचार करतभये ॥ ८ ॥ जहां जहां मैं जांउगो तहां तहां यह जाइगो जैसें प्राणीनके संग मृत्यु जाइहै तातें बहिर्दृष्टी इस दैत्यके हृदयमें प्रवेश करूंगो ॥ ९ ॥ ऐसो निश्चय करिकै विष्णु दोरे आवते वैरीके शरीरमें थरथर कांपते छोटासा स्वरूप कर स्वांस लैनेके साथ प्राणके छिद्रद्वारा प्रवेश करगये ॥ १० ॥ तोह स्थानकूं शून्य देखि विचारिके कुपित ह्वै शब्द करतभयो शब्द करने उपरान्त उसने पृथ्वी स्वर्ग दिशा आकाश विवर समुद्रके विषें विष्णुकों ढूंढत न देखत भयो ॥ ११ ॥

यतो जातो हिरण्याक्षश्चरन्नेक इमां महीम् ॥ प्रतिवीरं दिग्विजये नाविन्दत गदायुधः ॥ ५ ॥ यं विनिर्जित्य कृच्छ्रेण विष्णुः क्ष्मोद्धार आगतम् ॥ नात्मानं जयिनं मेने तद्वीर्यं भूर्यनुस्मरन् ॥ ६ ॥ निशम्य तद्वधं भ्राता हिरण्यकशिपुः पुरा ॥ हन्तुं भ्रातृहणं क्रुद्धो जगाम निलयं हरेः ॥ ७ ॥ तमायान्तं समालोक्य शूलपाणिं कृतान्तवत् ॥ चिन्तयामास कालज्ञो विष्णुर्मायाविनां वरः ॥ ८ ॥ यतो यतोऽहं तत्रासौ मृत्युः प्राणभृतामिव ॥ अतोऽहमस्य हृदयं प्रवेक्ष्यामि पराग्दृशः ॥ ९ ॥ एवं स निश्चित्य रिपोः शरीरमाधावतो निर्विविशेऽसुरेन्द्र ॥ श्वासानिलान्तर्हितसूक्ष्मदेहस्तत्प्राणरन्ध्रेण विविग्नचेताः ॥ १० ॥ स तन्निकेतं परिमृश्य शून्यमपश्यमानः कुपितो ननाद ॥ क्ष्मां द्यां दिशः खं विवरान्समुद्रान्विष्णुं विचिन्वन्न ददर्श वीरः ॥ ११ ॥

---

[१] आगे प्रल्हाद बाबा तेरो नृप ऐसो हतो जाके हित राम नरसिंह रूप धार्यो है ॥ जाको यश परम पुनीत तीनो लोक बीच छायो गायो सो भयो भल प्रभूको प्यारो है ॥ १ ॥ तैसेई सपूत भये वैरोचन ताके आप छायो यश जगमें कुल ऐसो तिहारो है ॥ पूजो मनकाम मेरी सुनियेहो राजा बलि याते ये आशिर्वाद तुमको हमारो है ॥ २ ॥

जब कहीं न देखा तब इस प्रकार कहने लगा मैंने यह सब जगत ढूंढा परन्तु उसका कहीं पता न लगा इस्सै विदित होताहै कि मेरे भाईका मारनैवाला वहां गया जहांका गया फिर कोई नहीं लौटता अर्थात् मरगया ॥ १२ ॥ देहधारीनको वैरको बांधनो मृत्युपर्यंत होवैहै अज्ञान निवृत्तिसै पहलै पुरुषार्थका त्याग करनाभी निवलताही है कारणकि क्रोध अज्ञानसै प्रगट होताहै ॥ १३ ॥ तुह्मारे पिता प्रल्हादके बेटा विरोचनकी ब्राह्मणनमें ऐसी

अपश्यन्निति होवाच मयाऽन्विष्टमिदं जगत्॥भ्रातृहा मे गतो नूनं यतो नावर्तते पुमान् ॥ १२ ॥ वैरानुबन्ध एतावानामृत्योरिह देहिनाम्॥अज्ञानप्रभवो मन्युरहंमानोपबृंहितः॥ १३॥पिता प्रह्लादपुत्रस्ते तद्विद्वान्द्विजवत्सलः॥स्वमायुर्द्विजलिङ्गेभ्यो देवेभ्योऽदात् स याचितः॥ १४ ॥ भवानाचरितान्धर्मानास्थितो गृहमेधिभिः ॥ ब्राह्मणैः पूर्वजैः शूरैरन्यैश्चोद्दामकीर्तिभिः ॥ १५ ॥ तस्मात्त्वत्तो महीमीषद्वृणेहं वरदर्षभात् ॥ पदानि त्रीणि दैत्येन्द्र संमितानि पदा मम ॥१६॥

प्रीति थी कि ब्राह्मण वेष धारण करकै आये देवतौंकों जानकरभी उनके मांगनैसै अपनी आयु देदी ॥ १४॥ आपभी अपने शूरवीर पूर्व पुरुष ब्राह्मण और उदारकीर्ति ग्रहस्थोंके अवलम्बन किये धर्मोंका आचरण करतेहो ॥ १५ ॥ तातें वर देनवारेनमें श्रेष्ठ तुमतें थोरिसी पृथ्वी मैं मागूहूं, हे दैत्यनके इंद्र ! मेरे पांइनकरिकैं समान बरोबरि तीनी पैग पृथ्वी देउं ॥ १६ ॥

---

१ विश्वाससे दान करै तो कबहूं घाटो नायहोय, एक सेठजीके हुंडी पुरजेका काम होताथा, सो विगडगये, परदेश जातेमें एक दूसरे सेठ मिले, बोले कहा हाल है इन कही हमारो काम बिगडगयों उन कही हमारी कोठीपर आइयो, यह गये तौ सेठजी बोले कछु रुजगार करोगे इन कही मथुरामें करैंगे, सेठने १०००० दसहजारकी हूंडी लिखकर एक कहार और ब्राह्मण संग करादियो जब मथुरामें पहूंचे और स्नानको गये तौ चौबेने ध्यानकर कही जै यमुनामैयाकी एकगुनोदे हजारगुणो पावै इनने वोह परचा तुरत संकल्प करादियो कहार और ब्राह्मणने कही अब खाओगे कहा अपनो मूंड और छोडकर चलगये सेठजीने कही कैसे आये, इन्हौने कही वे रुपइया तौ उनकी आंखतरे न आये जातेही संकल्प करदीने सेठजी बोले अब कै५०००० पुरचाले जाओ, यह फिर लेगये सेठजीको दियो वे जैसे न्हायवेकू जानेलगे कि चौबननें कही जै यमुनामैयाकी और लालाजी एक गुणादोगे तौं दसगुणो मिलैगो, इन्होने वोई संकल्प करदियो, नौकर चिल्लायकर चलेगये, सेठजी फिर पूछे अब कैसे चले आये, उन्हौंने कही वोऊ परचा पुण्यकर दियो, सेठजी हरि इच्छा कहकर बैठरहे, यहां सेठजीने यमुना किनारे चौवेसे मूली मांगी सो चक्कूसे कतरकर वाय खाने लगे, तब चक्कू पानीमें गिर परचो और सोनेकोव्है गयो सेठजीने जानी यहां पारस है सो टटोलकर पानीसे निकाल लीनो, और लोहा खरीदकर सौना बनाय सेठजीके पास एकलाख रुपयेको भेजदीनो कि यह तौ व्याज है, मूल पीछे भेजेंगे यासो कहत है कि धर्म किये धन नहीं वटत है ॥ ३ ॥

हे राजा जगतके ईश्वर! तुमते और इच्छा नहीं करूंहूं, इतनोंई प्रयोजन है, प्रयोजनमात्र प्रतिग्रहण लेवेवारे विद्वान पापको नहीं प्राप्ति होवे है ॥ १७ ॥ तब बलि बोल्यो हे ब्राह्मणके बालक! तुह्मारी वाणी वृद्धनके संमत है परंतु तुम बालकही हो, मूर्खनकीसी मतिवारे तुम अपने स्वार्थमे अज्ञानी हो ॥ ॥१८॥ लोकनके ईश्वर मुझे वचनसे आराधन करि तीनि पैग मांगोहो, मैं द्वीपको देनवारो हूं यातें तुम बुद्धिमान नहीं हो ॥१९॥ मेरेपास आइकैं पुरुष फेरि मांगिवेकों योग्य नहीं हैं, तातें हे ब्रह्मचारि! जीविकाकी करनवारी भूमि जितनी इच्छा होइ तितनें पाइं पसारिकैं मोतें लेउ, या प्रकार बलिको वचन सुनिकैं भगवान बोलतभये ॥ २० ॥ हे राजन्! जितनो त्रिलोकीके विषें प्रिय विषयादिक हैं वे एक पुरुषको मिल जांय तौभी अजितेन्द्रिय

नान्यत्ते कामये राजन्वदान्याज्जगदीश्वरात् ॥ नैनः प्राप्नोति वै विद्वान्यावदर्थपरिग्रहः ॥ १७॥ बलिरुवाच ॥ अहो
ब्राह्मणदायाद वाचस्ते वृद्धसंमताः ॥ त्वं बालो बालिशमतिः स्वार्थं प्रत्यबुधो यथा ॥ १८ ॥ मां वचोभिः समाराध्य
लोकानामेकमीश्वरम् ॥ पदत्रयं वृणीते योऽबुद्धिमान् द्वीपदाशुषम् ॥ १९ ॥ न पुमान् मामुपव्रज्य भूयो
याचितुमर्हति ॥ तस्माद्वृत्तिकरीं भूमिं बटो कामं प्रतीच्छ मे ॥ २० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यावन्तो विषयाः प्रेष्ठास्त्रिलोक्यामजितेन्द्रियम् ॥ न शक्नुवन्ति ते सर्वे प्रतिपूरयितुं नृप ॥ २१ ॥ त्रिभिः क्रमैरसन्तुष्टो द्वीपेनापि न
पूर्यते ॥ नववर्षसमेतेन सप्तद्वीपवरेच्छया ॥२२॥ सप्तद्वीपाधिपतयो नृपा वैन्यगयादयः ॥ अर्थकामैर्गता नान्तं तृष्णाया
इति नः श्रुतम् ॥ २३ ॥ यदृच्छयोपपन्नेन सन्तुष्टो वर्तते सुखम् ॥ नासन्तुष्टस्त्रिभिर्लोकैरजितात्मोपसादितैः
॥ २४ ॥ पुंसोऽयं संसृतेर्हेतुरसन्तोषोऽर्थकामयोः ॥ यदृच्छयोपपन्नेन सन्तोषो मुक्तये स्मृतः ॥ २५ ॥

पुरुषकी कामना पूरी नहीं होती ॥ २१ ॥ अजी देखो तीनि पैगनकरिकै जो संतुष्ट नहीं सो नवखंडनसहित सप्तद्वीप करिकै पूर्ण नहीं होवे है सात द्वीपनके वरकी इच्छा करिकै कहाहै ॥ २२ ॥ सातो द्वीपनके अधिपति राजा पुरूरवा पृथु गयतें आदिलेकें अर्थन कामनसे तृष्णाके अंतको नहीं प्राप्त होतभये यह हमनें सुनी है ॥ २३ ॥ संतोषी पुरुष यदृच्छासे प्राप्त हुए द्रव्यमें सुखी रहते हैं और अजितेन्द्रिय पुरुषको चाहें त्रिलोकी मिल जाय पर वे संतुष्ट नहीं होते ॥ २४ ॥ अर्थ काममें संतोषका न होना संसारका हेतु है और यदृच्छासे मिलेकरिके जो संतुष्टता है सो

मुक्तिके लिये कह्यो है ॥ २५ ॥ यदृच्छालाभकरिकें संतुष्ट ब्राह्मणको तेज बढैहै, असंतोषते तेज नष्ट होवे है जैसे अग्नि जलकरिकैं बुझैहै और घृतकरिकैं प्रकाशैहै ॥ २६ ॥ ताईकारणतें वरदातानमें श्रेष्ठ तुमते तीनि पैग पृथ्वी मांगोहो, इतनेंई करिकैं हम कृतार्थ हैं, अजी जितनो प्रयोजन तितनोहीं वित्त सुख देहै अधिक नहीं देहैं ॥ २७ ॥ शुकदेवजी बोले राजा बलि हंसिकै बोल्यो जो तुम्हारी वांछा है इच्छापूर्वक सोई ग्रहण करो,

यदृच्छालाभतुष्टस्य तेजो विप्रस्य वर्धते ॥ तत्प्रशाम्यत्यसन्तोषादम्भसेवाशुशुक्षणिः ॥ २६ ॥ तस्मात्त्रीणि पदान्येव वृणे त्वद्वरदर्षभात् ॥ एतावतैव सिद्धोऽहं वित्तं यावत्प्रयोजनम् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तः स हसन्नाह वाञ्छातः प्रतिगृह्यताम् ॥ वामनाय महीं दातुं जग्राह जलभाजनम् ॥ २८ ॥ विष्णवे क्ष्मां प्रदास्यन्तमुशना असुरेश्वरम् ॥ जानंश्चिकीर्षितं विष्णोः शिष्यं प्राह विदां वरः ॥ २९ ॥ शुक्राचार्य उवाच ॥ एष वैरोचने साक्षाद्भगवान् विष्णुरव्ययः ॥ कश्यपाददितेर्जातो देवानां कार्यसाधकः ॥ ३० ॥ प्रतिश्रुतं त्वयैतस्मै यदनर्थमजानता ॥ न साधु मन्ये दैत्यानां महानुपगतोऽनयः ॥ ३१ ॥

ऐसे कहिकै वामनजीके अर्थ पृथ्वी देवेकै अर्थ जलको पात्र ग्रहण करत भयो ॥ २८ ॥ इतनेहीके विषे असुरनके ईश्वर अपनै शिष्यसैं वेदवेत्तानमें श्रेष्ठ शुक्राचार्य विष्णुकी अभिप्राय जानकर यह बोलत भयो ॥ २९ ॥ हे विरोचनके पुत्र! यह साक्षात् विष्णु भगवान अविनाशी है, कश्यपतें अदितिके विषें जन्म लेकै यहां आइकै प्राप्त भयोहै, यह देवतानके कार्यकों सिद्धि करैगो ॥ ३० ॥ प्रयोजनकों विना जाने तैंने याके अर्थ प्रतिज्ञा कीनीहै

शंका—वामनजी भगवान् होकर और ब्रह्मचारी होकर थोड़ेसे कामके लिये इतना झूट क्यों बोला ? क्या बलिको दण्ड देनेका कोई दूसरा उपाय नहींथा ?

उत्तर—धर्मशास्त्रमें ऐसा लिखाहै कि दुष्टके संग जो दुष्टता करते है उनको किसी प्रकारका दोष नहीं होता, राजा बलि कैसा दुष्ट है कि वह अपनें मनमें जानताथा कि इन्द्रका पुण्य अभी है हम राज्य लेंगे किसी प्रभावसे तब भगवान्‌को दुःख भोगना पडैगा ऐसा जानताथा तोभी शुक्राचार्यका पूजन करके इन्द्रका राज्य लेलिया, तब राज्यसे भ्रष्ट इन्द्र भगवान्‌से कहने लगा कि महाराज मैंने १०० सौ अश्वमेध यज्ञ किये हैं तब आपने मुझको इन्द्र बनाया है, कुछ ले देकर इन्द्र नहीं बना दियाहै सौ १०० यज्ञमें मैंने जो राज्य किया सो तो भोग लिया अब जो मेरा शेष पुण्य हो उस पुण्यसे मेरा राज्य दो, और राज्य न दो तो मेरा पुण्य दो, इस प्रकार इन्द्रके वचन सुनकर भगवान् लज्जित हुये और दुःखको प्राप्त होकर विचार किया कि विना छल किये हुवे बलिसे इन्द्रको राज्य नहीं मिलेगा, ऐसा विचारकर झूट बोलकर भगवान्‌ने इन्द्रको इन्द्रासन दिया ॥

सो दैत्यनको भलो नहीं मानूहूं यह बडो अन्याय प्रातभयो ॥ ३१ ॥ यह तेरो स्थान ऐश्वर्य संपत्ती तेज यश इन्हे इंद्रके अर्थ देइगो, इन्हौने मायाकरिकै मनुष्यरूप धारण कियोहै ॥ ३२ ॥ हे राजा बलि ! मैनें यह निश्चय कियोहै कि यह विश्वरूप तीनि पैगकरिकै तीनों लोकनकों नापेगो, सो सर्वस्व विष्णुको देकै मूर्ख तू कैसें वर्तैगो ॥ ३३ ॥ और तेरी प्रतिज्ञाभी पूरी न होगी क्यौंकि यह एक पांव करिकै तो सम्पूर्ण पृथ्वीको नापेगो, दूसरे पैग करिकै स्वर्गको नापेगो, आकाशकों बढे शरीरसै ग्रहण करैगो फिर तीसरा पग कहांसै दियाजाय सो बता ॥ ३४ ॥ अजी जो प्रतिज्ञा

एष ते स्थानमैश्वर्यं श्रियं तेजो यशः श्रुतम् ॥ दास्यत्याच्छिद्य शक्राय मायामाणवको हरिः ॥ ३२ ॥ त्रिभिः क्रमैरिमाँल्लोकान् विश्वकायः क्रमिष्यति ॥ सर्वस्वं विष्णवे दत्त्वा मूढ वर्तिष्यसे कथम् ॥ ३३ ॥ क्रमतो गां पदैकेन द्वितीयेन दिवं विभोः ॥ खं च कायेन महता तार्तीयस्य कुतो गतिः ॥ ३४ ॥ निष्ठां ते नरके मन्ये ह्यप्रदातुः प्रतिश्रुतम् ॥ प्रतिश्रुतस्य योऽनीशः प्रतिपादयितुं भवान् ॥ ३५ ॥ न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते ॥ दानं यज्ञस्तपः कर्म लोके वृत्तिमतो यतः ॥ ३६ ॥ धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च ॥ पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते॥३७॥ अत्रापि बह्वृचैर्गीतं शृणु मेऽसुरसत्तम॥ सत्यमोमिति यत् प्रोक्तं यन्नेत्याहानृतं हि तत्॥३८॥

करिकै न देइ तो अंतसमयमें नरककी निष्ठा होगी तो सुन रे बलि ! प्रतिज्ञा जो तैनें कीनी है ताकी सिद्धि करिवेको तू समर्थ नहीं है ॥ ३५ ॥ अजी जगतमें ता दानकी प्रशंसा नहीं है जा करिकैं जीविका नष्ट होवे है वृत्तियुक्त पुरुष दान यज्ञ तप कर्म सब कछु करसक्ताहै ॥३६॥ धर्म अर्थ यश काम सुजन इन पांचोंनके अर्थ धनकों विभाग करे तो या लोक और परलोकमें आनन्दको प्राप्त होवै है ॥ ३७ ॥ झूट सांचकी व्यवस्थामें जो

---

[१] शुक्र बोले–मतिदे दान जिमिको, याकूं मत तू ब्राह्मण जानै छालिया पुरीको ॥ १ ॥ राजा बोले–दूंगा दान जिमींको जो वामन खाली फिरजैं है विगरे नाम बलीको ॥ २ ॥ वामन बोले–लूंगो दान जिमीको धर्मनीक सुनि आयो राजा लेले नाम हरीको ॥ ३ ॥ शुक्र बोले–याहीने हिरणाकुश मारो बनगयो सिंह वनीको राजा बलि मति दे दान० ॥ ४ ॥ याहीने हरिचंद्र छलो है धरकै भेष मुनीको राजा बलि ॥ ५ ॥ राजा बोले–द्वारे ठाढो झगरत बामन यह फल है करनीको गुरुजी ॥ ६ ॥ वामन बोले–तीन पैड पृथ्वी दे राजा जीतैगो इन्द्रपुरीको ॥ ७ ॥ शुक्र बोले–याहीने हिरणाकुश मारो धरकै भेष जतीको राजा बलि मत दे दान जिमीको ॥ ८ ॥

श्रुतिनैंनें गायो है सो तू सुनु हे असुरनमें श्रेष्ठ ! जो स्वीकार किया हो उसका पालन करना यह तौ सत्य है और अंगीकार कर पालन न करना यह असत्य है ॥ ३८ ॥ देहरूप वृक्षके सत्य फल फूल है, सो देहरूपी वृक्ष वेदनकरिकैं गायो है जब यह देहरूपी वृक्ष न रहै तौ फूल फल नहीं हो सक्के इसकारण देहको असत्य बोलकरभी बचाना चाहिये कारण कि असत्य देहका मूल है ॥ ३९ ॥ जड उखाडनेसे जैसे वृक्ष सूखि जाइ है, फेरि गिरि परै है, तैसे न जीवतसंतें फूल फल नहीं होवे हैं, इसी प्रकार असत्य सम्पूर्णता न रहै तौ शरीर सम्पूर्ण सूख जाय इसमें संदेह नहीं ॥ ४० ॥ हां यह अक्षर धनको दूर ले जानेवाला और धनवानको खाली करनेवाला है कारण कि जो देनेको हां किया जाताहै उस

सत्यं पुष्पफलं विद्यादात्मवृक्षस्य गीयते ॥ वृक्षेऽजीवति तन्न स्यादनृतं मूलमात्मनः ॥ ३९ ॥ तद्यथा वृक्ष उन्मूलः
शुष्यत्युद्वर्ततेऽचिरात ॥ एवं नष्टानृतः सद्य आत्मा शुष्येन्न संशयः ॥४०॥ पराग्रिक्तमपूर्णं वा अक्षरं यत् तदोमिति ॥
यत्किञ्चिदोमिति ब्रूयात् तेन रिच्येत वै पुमान् ॥४१॥ भिक्षवे सर्वमोङ्कुर्वन्नालं कामेन चात्मने ॥ अथैतत्पूर्णमभ्यात्मं
यच्च नेत्यनृतं वचः ॥ सर्वं नेत्यनृतं ब्रूयात्स दुष्कीर्तिः श्वसन्मृतः ॥४२॥ स्त्रीषु नर्मविवाहे च वृत्त्यर्थे प्राणसङ्कटे॥गोब्रा-
ह्मणार्थे हिंसायां नानृतं स्याज्जुगुप्सितम् ॥४३॥ इति श्रीभा०महा०अष्ट०वामनप्रादुर्भाव एकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥
श्रीशुक उवाच ॥ बलिरेवं गृहपतिः कुलाचार्येण भाषितः ॥ तूष्णीं भूत्वा क्षणं राजन्नुवाचावहितो गुरुम् ॥ १ ॥

पदार्थसै देनेवालेको शून्यहोना पड़ताहै ॥ ४१ ॥ भिक्षुकके अर्थ जो सब देना अंगीकार करता है वह अपनेको सुख देनेको समर्थ नहीं होता यातें नहीं यह झूठवचन पूर्ण है औरके द्रव्यकों खेंचें है, धनीको पूर्ण रखताहै तौ सर्वत्र झूठही बोले तहां कहे हैं सबही ठौर झूठ न बोले यामें कीर्ति विगरे है अजी जा पुरुषकी कीर्ति नष्ट भई वह श्वास लेत मर्‍योही है ॥ ४२ ॥ स्त्रीनमें, हास्यमें, विवाहमें, जीविकाके लियें प्राणसंकटमें गौ ब्राह्मणके अर्थमें जहां सत्य बोलनेसै किसीका वध होताहो वा हिंसाके विषे झूठ बोले तौ निंदित नहीं है यह श्रुतिके विषें कहीं है ॥ ४३ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषायां अष्टमस्कन्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ वीसके अध्यायके विषें यह वर्णन करेंगे झूठ करिकै डरप्यो बलि राजा हरिके कपटको

जानकेभी पृथ्वी देतभयो ता पीछें भगवान् अद्भुतरूप बढावत भये ॥ श्रीशुकदेवजी बोले हे राजा परीक्षित ! या प्रकार कुलके आचार्य शुक्रको कह्यो वचन सुनिकरिकैं पृथ्वीको पति बलिराजा एकक्षणभरि चुप व्हैकै फेरि सावधान व्हैकें गुरुसूं बोलत भयो ॥ १ ॥ अब बलि कहे हैं, हे गुरो ! तुमने गृहस्थनको यह धर्म सांच कह्यो जिस्सै अर्थ काम यश जीविकामें बाधा हो वह कार्य न करै ॥ २ ॥ सो मैं धनके लोभ करिकै ब्राह्मणनकूं कैसें नाहिं करूं, मै तौ देउंगो महाराज प्रतिज्ञा करकै जैसै धूर्त्त बनियां नाहीं करै है, ऐसें मैं नाही न करूंगो प्रल्हादके वंशमें भयो हूं॥३॥ सुनो सुनो गुरुदयाल! झूठते परे और अधर्म नहीं है यह पृथ्वी हू कहै है कि सबको बोझ मैं सहूंहूं, परन्तु मोपे झूठको वचन नहीं सहारचो जाइहै ॥४॥ बलि कहै है मैं नरकतें नहीं डरपूंहूं, और दुःखते नहीं डरपूं, स्थान भ्रष्टतें नहीं डरपूंहूं, और दरिद्रताते नहीं डरपूंहूं मृत्युते नहीं डरपूंहूं जैसो ब्राह्मणसै झूंठ बोलेसै डरूंहूं

बलिरुवाच ॥ सत्यं भगवता प्रोक्तं धर्मोऽयं गृहमेधिनाम् ॥ अर्थं कामं यशो वृत्तिं यो न बाधेत कर्हिचित् ॥ २ ॥ सचाहं वित्तलोभेन प्रत्याचक्षे कथं द्विजम् ॥ प्रतिश्रुत्य ददामीति प्राह्लादिः कितवो यथा॥३॥ न ह्यसत्यात्परोऽधर्म इति होवाच भूरियम्॥सर्वं सोढुमलं मन्ये ऋतेऽलीकपरं नरम् ॥४॥ नाहं बिभेमि निरयान्नाधन्यादसुखार्णवात् ॥ न स्थानच्यवनान्मृत्योर्यथा विप्रप्रलम्भनात् ॥ ५ ॥ यद्यद्धास्यति लोकेऽस्मिन्संपरेतं धनादिकम् ॥ तस्य त्यागे निमित्तं किं विप्रस्तुष्येन्न तेन चेत् ॥ ६ ॥ श्रेयः कुर्वन्ति भूतानां साधवो दुस्त्यजासुभिः ॥ दध्यङ्शिबिप्रभृतयः को विकल्पो धरादिषु ॥ ७ ॥ यैरियं बुभुजे ब्रह्मन्दैत्येन्द्रैरनिवर्तिभिः ॥ तेषां कालोऽग्रसील्लोकान्न यशोऽधिगतं भुवि ॥ ८ ॥

॥५॥अजी यह धनादिक पदार्थ या लोकके विषें मरे पुरुष त्याग देते है फिर अपने हाथसै इनका दान क्यौं न करदिया जाय और जो दैनेसै ब्राम्हण प्रसन्न हो तौ वह दिया हुआ दान कुछ नही निष्फल है यातें जितनो मांगे तितनोही देंउगो ॥ ६ ॥ हे शुक्राचार्य महाराज ! वे साधु हैं जो दुस्त्यज प्राणोंको त्यागकर प्राणीनको भलो करै है, देखो दधीचि शिबिमहाराजने अपने प्राण देकर जीवोंका उपकार किया है फिर पृथ्वी धनादिके दैनेमें क्या विचार है ॥ ७ ॥ हे ब्रह्मन् ! संग्राममें नहीं फिरनेहारे जिन दैत्येंद्रने यह पृथ्वी भोग कीनी है, तिनकों और तिनके लोकनकों काल संहार करत भयो, परन्तु भूमिमें प्राप्तभये यशकूं नहीं नाश करतभयो ॥ ८ ॥

हे ब्राह्मणनमें श्रेष्ठ! युद्धमें निवृत्ति न होकर शरीरको छौडनेवाले सुलभ हैं परन्तु सुपात्रमें श्रद्धाकरिकैं धनको त्याग करनेवाले बहुत थोडे है ॥ ९ ॥ जो अर्थिनके कामको पूर्ण करिकैं दुर्गति होय यह दयालु और उदार पुरुषौंके लिये मंगल है तिसमेभी तुम सरीखे ब्रह्मज्ञानी महात्माओंके मनोरथ पूर्ण करनेंमें जो हीन अवस्था होता इसमें बातही क्या है यासें मैं इस ब्रम्हचारीको मन इच्छित पदार्थ दूंगा ॥ १० ॥ वेदकी विधिमें चतुर तुमसे महात्माभी आदरतें जिसका यज्ञन करिकैं पूजन करै है, सो यह वैरको करनवारे विष्णुभी है और वैरीभी है परंतु हे मुने! मैं तो याके अर्थ मनवांछित पृथ्वी देऊंगो ॥ ११ ॥ जो यह अधर्मकरिकैं निरपाधी मुझै बांधेगो, तौभी मै याकी हिंसा नहीं करूंगा कारण कि शत्रु होकर डरके मारे

सुलभा युधि विप्रर्षे ह्यनुवृत्तास्तनुत्यजः ॥ न तथा तीर्थ आयाते श्रद्धया ये धनत्यजः ॥ ९ ॥ मनस्विनः कारुणिकस्य शोभनं यदर्थिकामोदनयेन दुर्गतिः ॥ कुतः पुनर्ब्रह्मविदां भवादृशां ततो बटोरस्य ददामि वाञ्छितम् ॥ १० ॥ यजन्ति यज्ञं क्रतुभिर्यमादृता भवन्त आम्नायविधानकोविदाः ॥ स एष विष्णुर्वरदोऽस्तु वा परो दास्याम्यमुष्मै क्षितिमीप्सितां मुने ॥ ११ ॥ तदप्यसावधर्मेण मां बध्नीयादनागसम् ॥ तथाप्येनं न हिंसिष्ये भीतं ब्रह्मतनुं रिपुम् ॥ १२ ॥ एष वा उत्तमश्लोको न जिहासति यद्यशः ॥ हत्वा मैनां हरेद्युद्धे शयीत निहतो मया ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमश्रद्धितं शिष्यमनादेशकरं गुरुः ॥ शशाप दैवप्रहितः सत्यसन्धं मनस्विनम् ॥ १४ ॥ दृढं पण्डितमान्यऽज्ञः स्तब्धोऽस्यस्मदुपेक्षया ॥ मच्छासनातिगो यस्त्वमचिराद्भ्रश्यसे श्रियः ॥ १५ ॥

ब्राम्हणका रूप धर लिया है ॥ १२ ॥ उत्तम यश यह विष्णु अपने यशकौ त्यागना नहीं चाहते तौ युद्धमें मुझै मारिकै या भूमिकों लेजाते अथवा मैं इन्हैं मारै पृथ्वीमें सुवा देता ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले इस प्रकार जब राजाने अपने गुरुका वचन नहीं माना तब वह सत्य प्रतिज्ञा उदारमन अपने शिष्य बलिकूं दैवको प्रेरचो शाप देतभयो ॥ १४ ॥ शुक्र बोले हे मूर्ख! तूं दृढ आपेकूं मानैहैं आपनपेकूं श्रेष्ठ माने है और पंडितपनों माने है तू बडो मूर्ख है हमारी उपेक्षा करिकैं अनम्र मेरी आज्ञाकों अतिक्रमण करैहै सो तू वेगिही संपत्तितें भ्रष्ट होउ ॥ १५ ॥

याप्रकार गुरु शुक्राचार्यनें शाप दियो तोभी मूर्ख बलि अपनी सत्यता नहीं त्यागन करतभयो, वामनजीके अर्थ पूजनकरिकें जल हाथमें लेकें पृथ्वी देतभयो ॥ १६॥ हे राजा परीक्षित ! उसी समय मोतिनके हार पहरें विंध्यारानी बलिराजाकी स्त्री चरणके धोइवेके लिये जलको भरयो सोनेको कलश लावती भई ॥ १७ ॥ यजमान राजा बलि आपु आनंदकरिकें शोभायमान श्रीवामनजी महाराजके चरण युगल धोईके संपूर्ण विश्वको पवित्र करनवारो जल माथेपै धारण करत भयो ॥ १८ ॥ अरे प्यारे परीक्षित ! ताहि समयके विषे स्वर्गमें देवतानके गण और गंधर्व विद्याधर सिद्ध चारण संपूर्ण असुरनके इंद्र बलिराजाके ऊपर फूलनकी वर्षा करतभये, और संपूर्ण इनके कर्मकी बडाई करतभये ॥ १९ ॥ परम आनंद युक्त

एवं शप्तः स्वगुरुणा सत्यान्न चलितो महान् ॥ वामनाय ददावेनामर्चित्वोदकपूर्वकम् ॥ १६॥ विन्ध्यावलिस्तदाऽऽगत्य पत्नी जालकमालिनी ॥ आनिन्ये कलशं हैममवनेजन्यपां भृतम् ॥ १७ ॥ यजमानः स्वयं तस्य श्रीमत्पादयुगं मुदा ॥ अवनिज्यावहन्मूर्ध्नि तदपो विश्वपावनीः ॥ १८ ॥ तदासुरेन्द्रं दिवि देवतागणा गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ॥ तत्कर्म सर्वेऽपि गृणन्त आर्जवं प्रसूनवर्षैर्ववृषुर्मुदाऽन्विताः ॥ १९ ॥ नेदुर्मुहुर्दुन्दुभयः सहस्रशो गन्धर्वकिम्पूरुषकिन्नरा जगुः ॥ मनस्विनाऽनेन कृतं सुदुष्करं विद्वानदाद्यद्रिपवे जगत्त्रयम् ॥ २० ॥ तं वामनं रूपमवर्धताद्भुतं हरेरनन्तस्य गुणत्रयात्मकम् ॥ भूः खं दिशो द्यौर्विवराः पयोधयस्तिर्यङ्नृदेवा ऋषयो यदासत ॥ २१ ॥ काये बलिस्तस्य महाविभूतेः सहर्त्विगाचार्यसदस्य एतत् ॥ ददर्श विश्वं त्रिगुणं गुणात्मके भूतेन्द्रियार्थाशयजीवयुक्तम् ॥ २२ ॥

होत भये, दुन्दुभी नगाडे बाजे बाजत भए, गन्धर्व किंपुरुष किंनर देवतागण गाते भए, देखो राजा बलि जानिकरिकै वैरीके अर्थ तीनों लोक देत भयो ॥ २० ॥ तब अनंत हरि भगवानको वामनरूप त्रिगुण आत्मावारो अद्भुत प्रकारसै बढतभयो, भूमि आकाश दिशा स्वर्ग पाताल समुद्र पशु पक्षी नर देवता ऋषि जा रूपमैं स्थित होतभये ॥ २१ ॥ और ऋत्विज आचार्य सभासद सहित बलिराजा महाविभूतिनके पति भगवान् हरिके गुणात्मक देहमें त्रिगुण संपूर्ण भूत प्राणी इंद्रिय अर्थ और सब जीवयुक्त यह विश्व देखत भयो (संपूर्ण विश्वरूप भगवानके अंगमें है, ऐसो रूप वामनजी महाराजको देखत भयो) ॥ २२ ॥

रसामचष्टाङ्घ्रितलेऽथ पादयोर्महीं महीध्रान्पुरुषस्य जङ्घयोः ॥ पतत्रिणो जानुनि विश्वमूर्तेरूर्वोर्गणं मारुतमिन्द्रसेनः ॥ २३ ॥ संध्यां विभोर्वाससि गुह्य ऐक्षत्प्रजापतीञ्जघने आत्ममुख्यान् ॥ नाभ्यां नभः कुक्षिषु सप्तसिन्धूनुरुक्रमस्योरसि चर्क्षमालाम् ॥ २४ ॥ हृद्यङ्ग धर्मं स्तनयोर्मुरारेर्ऋतं च सत्यं च मनस्यथेन्दुम् ॥ श्रियं च वक्षस्यरविन्दहस्तां कण्ठे च सामानि समस्तरेफान् ॥ २५ ॥ इन्द्रप्रधानानमरान्भुजेषु तत्कर्णयोः ककुभो द्यौश्च मूर्ध्नि ॥ केशेषु मेघाञ्छ्वसनं नासिकायामक्ष्णोश्च सूर्यं वदने च वह्निम् ॥२६॥ वाण्यां च छन्दांसि रसे जलेशं भ्रुवोर्निषेधं च विधिं च पक्ष्मसु ॥ अहश्च रात्रिं च परस्य पुंसो मन्युं ललाटेऽधर एव लोभम् ॥ २७ ॥ स्पर्शे च कामं नृप रेतसोऽम्भः पृष्टे त्वधर्मं क्रमणेषु यज्ञम् ॥ छायासु मृत्युं हसिते च मायां तनूरुहेष्वोषधिजातयश्च ॥ २८ ॥ नदीश्च नाडीषु शिला नखेषु बुद्धावजं देवगणानृषींश्च ॥ प्राणेषु गात्रे स्थिरजङ्गमानि सर्वाणि भूतानि ददर्श वीरः ॥ २९ ॥

जैसो रूप देख्यो ताहि कहै है चरणतलमें रसातल देख्यो, चरणनमें पृथ्वी देखी, भगवानकी जंघानमें पर्वत देखे, घोटूनमें सब पक्षी देखे, विश्वमूर्ति भगवानकी ऊरूनमें पवनके गण देखे ॥ २३ ॥ भगवानके चक्षु नेत्रमें संध्या देखी, गुह्यमें प्रजापति देख्यो, जंघानमें आपुही जिनमें मुख्य ऐसें असुर देखे, नाभिमें आकाश, कुक्षिमें सातो समुद्र देखे, वामनजीकी छातीमें नक्षत्रमाला देखी हे राजा ! याप्रकार वामनजीके शरीरमें राजा बलि संपूर्ण विश्व देखतभयो ॥ २४ ॥ और हृदयमें धर्म देख्यो हरिके स्तननमें ऋत सत्य देख्यो मनमें चंद्रमा, वक्षस्थलमें कमललिये लक्ष्मी देखी, कंठमें समस्त शब्द देखे ॥ २५ ॥ इंद्रादि देवता भुजानमें देखे, काननके विषें दिशा देखी, माथेमें स्वर्ग देख्यो, केशनमें मेघ देखे. नासिकामें पवन देख्यो, नेत्रनमें सूर्य देख्यो, मुखमें अग्नि देख्यो ॥ २६ ॥ वाणीमें छंद वेद देखे, जिव्हामें वरुण देख्यो, भृकुटीनमें निषेध विधि देखी, पलकनमें दिन राति देखे, ललाटमें क्रोध देख्यो, अधरमें लोभ देख्यो ॥ २७ ॥ हे राजा ! स्पर्शमें काम देख्यो, वीर्य पराक्रममें जल देख्यो, पीठिमें अधर्म देख्यो, चरन धरिवेमें यज्ञ देख्यो, छायामें मृत्यु देख्यो, हास्यमें माया देखी,रोमनपें औषधीनकी जाति देखी॥२८॥ नाडीनमें नदी देखी, नखनमें शिला देखी, श्रीवामनजीकी बुद्धिमें ब्रह्मा देख्यो, प्राणनमें देवगण देखे, ऋषीश्वर गात्रमें देखे, और सबरे

स्थावर जंगम सब प्राणीको उनके अंगोंमें राजा बलि देखत भयो ॥ २९ ॥ हे राजन् ! सर्वात्मा भगवान्‌में संपूर्ण भवन देखिकै सगरे असुर मोहको प्राप्त होतभये, असह्य तेज युक्त सुदर्शन चक्र मेघवत् शब्दवारो शार्ङ्गधनुष ॥ ३० ॥ पांचजन्य शंख बडी वेगवारी कौमोदकी गदा, शत चन्द्र युक्त विद्याधर खड्ग, अक्षय बाणवारे उत्तम दो तर्कस ॥ ३१ ॥ पार्षदनमें श्रेष्ठ लोकपालन करिकै सहित सुनंदादि हरिके निकट आइ ठाढे होतभये प्रकाशमान क्रीट मुकुट बाजूबंद और मकराकृत कुंडल श्रीवत्स कौस्तुभ मणि मेघमाला पीतांबर वस्त्र धारण करें श्रीवामनजी शोभते हैं ॥ ३२ ॥ हे राजन् ! मतवाले भौंरे जिसपर गुंजार रहेथे ऐसी वनमाला धारे भगवान् वामनजी शोभितहुए हे राजा परीक्षित ! राजा बलिकी संपूर्ण पृथ्वी है

सर्वात्मनीदं भुवनं निरीक्ष्य सर्वेऽसुराः कश्मलमापुरङ्ग ॥ सुदर्शनं चक्रमसह्यतेजो धनुश्च शार्ङ्गं स्तनयित्नुघोषम् ॥ ३० ॥ पर्जन्यघोषो जलजः पाञ्चजन्यः कौमोदकी विष्णुगदा तरस्विनी ॥ विद्याधरोऽसिः शतचन्द्रयुक्तस्तूणोत्तमावक्षयसायकौ च ॥ ३१ ॥ सुनन्दमुख्या उपतस्थुरीशं पार्षदमुख्याः सहलोकपालाः ॥ स्फुरत्किरीटाङ्गदमीनकुण्डलः श्रीवत्सरत्नोत्तममेखलाम्बरैः ॥ ३२ ॥ मधुव्रतस्रग्वनमालया वृतो रराज राजन्भगवानुरुक्रमः ॥ क्षितिं पदेकेन बलेर्विचक्रमे नभः शरीरेण दिशश्च बाहुभिः ॥ ३३ ॥ पदं द्वितीय क्रमतस्त्रिविष्टपं न वै तृतीयाय तदीयमण्वपि ॥ उरुक्रमस्याङ्घ्रिरुपर्युपर्यथो महर्जनाभ्यां तपसः परं गतः ॥ ३४ ॥ इति श्रीभा० म० अष्टम० विश्वरूपदर्शनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेन्दुभिर्हतस्वधामद्युतिरावृतोऽभ्यगात् ॥ मरीचिमिश्रा ऋषयो बृहद्व्रताः सनन्दनाद्या नरदेव योगिनः ॥ १ ॥

श्रीवामनजी एक पैगकरिकै नापत भये शरीर करिकै आकाश नापतभये, भुजान करिकै दिशा ग्रहण करत भये ॥ ३३ ॥ दूसरे पैगकरिकै स्वर्गकूं नापत भये हे राजा परीक्षित ! तीसरे पैगकूं कछु बाकी न रह्यो, श्रीवामनजीको तीसरे चरण महर्लोक जनलोक तपलोक सत्यलोकसेभी परे जातभयो ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवते भाषायां अष्टमस्कन्धे विंशोध्यायः ॥ २० ॥ तीसरी पैग पूरी करिवेके मिस करिकें भगवानने बलि राजाको उत्कर्ष लोकमें विख्यात करायवेके लिये बंधन कियो सो सो वर्णन करैंगे ॥ शुकदेवजी कहेहै हे राजा ! सत्यलोकमें प्राप्त श्रीवामनजीको चरण

देखिके, कि जिनके भवनकी कांति भगवानके चरणके नखरूप चंद्रकी कांतिसै फीकी पड़गईथी तथा आपभी नख चंद्रकी कांतिसै ढक गये तत्काल मरीचि आदि मुख्य ऋषि सहित अर्चंत भये पूजन करतभये, और बडे व्रतधारी सनंदनते आदिलैकें योगीजन पूजन करत भये ॥ १ ॥ हे राजन्! वेद उपवेद यम नियम सहित इतिहास अंग पुराण संहिता आदिके जाननवारे आवत भये पूजन करत भये, तथा औरभी जिनके कर्मदोष योगरूपी वायुसै प्रज्वलितहुई ज्ञान अग्निद्वारा भस्म होगयेहैं तथा औरभी निर्मल अन्तःकरणवाले आवत भये और इन सबने कर्मसै प्राप्त न होनेवाले ब्रम्हलोकको जिनके स्मरणके प्रतापसै प्राप्त किया है उन भगवानके चरणको सबने प्रणाम किया ॥ २ ॥ अति ऊंचे भगवानके चरणके

वेदोपवेदा नियमान्विता यमास्तर्कैतिहासाङ्गपुराणसंहिताः ॥ ये चापरे योगसमीरदीपितज्ञानाग्निना रन्धितकर्म-
कल्मषाः ॥ ववन्दिरे यत्स्मरणानुभावतः स्वायंभुवं धाम गता अकर्मकम् ॥ २ ॥ अथाङ्घ्रये प्रोन्नमिताय विष्णो-
रुपाहरत्पद्मभवोऽर्हणोदकम् ॥ समर्च्य भक्त्याऽभ्यगृणाच्छुचिश्रवा यन्नाभिपङ्केरुहसंभवः स्वयम् ॥ ३ ॥ धातुः
कमण्डलुजलं तदुरुक्रमस्य पादावनेजनपवित्रतया नरेन्द्र ॥ स्वर्धुन्यभून्नभसि सा पतती निमार्ष्टि लोकत्रयं भगवतो
विशदेव कीर्तिः ॥ ४ ॥ ब्रह्मादयो लोकनाथाः स्वनाथाय समादृताः ॥ सानुगा बलिमाजह्रुः संक्षिप्तात्मविभूतये ॥ ५ ॥
तोयैः समर्हणैः स्रग्भिर्दिव्यगन्धानुलेपनैः ॥ धूपैर्दीपैः सुरभिभिर्लाजाक्षतफलाङ्कुरैः ॥ ६ ॥

अर्थ ब्रम्हा पूजाको जल देतभयो, पवित्र यश जिनके नाभिकमलते आपु भयोहै सो ब्रम्हा भक्तिकरिकै तिन भगवानके चरणकी पूजाकरिकै स्तुति करतभयो ॥ ३ ॥ ब्रम्हाके कमलकों जल वामनजीके चरण धोइवेकरिकै पवित्र भयो सो स्वर्गकी नदी होती भई, जो आकाशतें गिरचो चरणोदक तीनों लोकनकों पवित्र करैहै, सो भगवान् श्रीवामनजीकी उज्ज्वल कीर्ति है ॥ ४ ॥ ब्रह्माते आदि लेकै लोकनाथ अनुचरों सहित आदरपूर्वक अपने नाथ भगवानके अर्थ भेट देते भये, जिन भगवानने अपना विस्तार समेटकर पहलेकी समान वामनरूप कर लिया है ॥ ५ ॥ और जल उत्तम द्रव्य माला दिव्यगंधका अनुलेपन धूप दीप सुगंध धानकी खील अक्षत फल अंकुरेसे हरिकी पूजा करत भये ॥ ६ ॥

भगवानके चरित्रोंकी महिमावाले दिव्यस्तोत्र जयशब्द नमस्कार शब्द नृत्यवादित्र गीत शंख भेरी नगाडेके शब्दोंसे जय जय शब्दकरिकै पूजा करत
भये ॥ ७ ॥ हे राजा परीक्षित! रीछनके राजा मनकी समान वेगवारे जाम्बवानने भेरी शब्द करिकै दिशानमें बडा आनंदकर विजयकी डौंडी पीटदी
संपूर्ण दिशानमें श्रीवामनजीके यशका प्रकाश कर दिया ॥ ८॥ तीनि पैगके मिससे मांगकर स्वामीकी सगरी पृथ्वी हरिलीनी यह देखिके दीक्षा लि-
ये अपने बलिपर क्रोधकर दैत्य बोलत भये ॥ ९ ॥ यह ब्राह्मण नहीं है मायावीनमें श्रेष्ठ विष्णु है, ब्राह्मणके रूपकरिकै ढक्यो है, यह देवतानके
कार्य करिवेकी इच्छा करैहै ॥ १० ॥ ब्रह्मचारीरूप वैरीनें मांगिकै हमारे स्वामीको सर्वस्व हरिलियो, जिसने कि यज्ञमें सब प्रकारके दंडका त्याग

स्तवनैर्जयशब्दैश्च तद्वीर्यमाहिमाङ्कितैः ॥ नृत्यवादित्रगीतैश्च शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनैः ॥ ७ ॥ जाम्बवानृक्षराजस्तु भेरी-
शब्दैर्मनोजवः ॥ विजयं दिक्षु सर्वासु महोत्सवमघोषयत ॥ ८ ॥ महीं सर्वां हृतां दृष्ट्वा त्रिपदव्याजयाच्ञया ॥ ऊचुः
स्वभर्तुरसुरा दीक्षितस्यात्यमर्षिताः ॥ ९ ॥ नवा अयं ब्रह्मबन्धुर्विष्णुर्मायाविनां वरः ॥ द्विजरूपप्रतिच्छन्नो देवकार्यं
चिकीर्षति ॥ १० ॥अनेन याचमानेन शत्रुणा बटुरूपिणा ॥ सर्वस्वं नो हृतं भर्तुर्न्यस्तदण्डस्य बर्हिषि ॥ ११ ॥
सत्यव्रतस्य सततं दीक्षितस्य विशेषतः ॥ नानृतं भवितुं शक्यं ब्रह्मण्यस्य दयावतः ॥ १२ ॥ तस्मादस्य
वधो धर्मो भर्तुः शुश्रूषणं च नः ॥ इत्यायुधानि जगृहुर्बलेरनुचराऽसुराः ॥ १३ ॥ ते सर्वे वामनं हन्तुं शूल-
पट्टिशपाणयः ॥ अनिच्छतो बले राजन्प्राद्रवञ्जातमन्यवः ॥ १४ ॥ तानभिद्रवतो दृष्ट्वा दितिजानीकपान्नृप ॥
प्रहस्यानुचरा विष्णोः प्रत्यषेधन्नुदायुधाः ॥ १५ ॥

कर दियाहै ॥ ११ ॥ सत्यव्रत निरंतर दीक्षित ब्रह्मण्य दयासागर यह हमारे स्वामी झूंठ नहीं बोल सक्ते ॥ १२ ॥ तातें याके वध करिवेमें हमारो
धर्म है, हमारे स्वामीकी टहल होगई, ऐसे कहिकै बलिके अनुचर असुर आयुधनकों ग्रहण करत भये ॥ १३ ॥ त्रिशूल पट्टे बाण धनुष्य शक्ति अ-
सि चर्म खड्ग अनेक आयुध लेलेकै दौरत भये, ते सगरे श्रीवामनजीके ऊपर मारिवेको बलिराजाकी विना राजी क्रोधकर चले ॥ १४ ॥ हे राजा प-
रीक्षित ! उन दैत्य पतियोंकों दौड़ा आता देखकर भगवानके पार्षदोंने हंसते २ अपने आयुधोंको उठाकर उन्हें रोक दिया ॥ १५ ॥

नंद सुनंद जय विजय प्रबल बल कुमुद कुमुदाक्ष विष्वक्सेन गरुड ॥ १६ ॥ जयंत श्रुतदेव पुष्पदंत सात्वत दशहजार हाथीनके बलवारे वे असुरनकी सेनाकूं मारतभये ॥ १७ ॥ हरिके पार्षदौंसें तिरस्कृत, क्रोधकरिके युक्त अपने दैत्यकू देखिकै शुक्रके शापकों स्मरण करत राजा बलि मनें करत भयो ॥१८॥ हे विप्रचित्ति हे राहु हे नेमे! मेरो वचन तुम सुनो युद्ध मति करो, निवृत्ति होउ, यह काल हमकू अनुकूल नहीं है ॥ १९ ॥ हे दैत्यो ! जो काल सम्पूर्ण प्राणियोंके दुखसुख दैनेमें समर्थ है उस कालको पराक्रमकरिकै दूरि करिवेकों पुरुष समर्थ नहीं होवे है ॥ २० ॥ जो काल पहिले हमारे

नन्दः सुनन्दोऽथ जयो विजयः प्रबलो बलः ॥ कुमुदः कुमुदाक्षश्च विष्वक्सेनः पतत्त्रिराट् ॥ १६ ॥ जयन्तः श्रुतदेवश्च पुष्पदन्तोऽथ सात्वतः ॥ सर्वे नागायुतप्राणाश्चमूं ते जघ्नुरासुरीम् ॥ १७ ॥ हन्यमानान्स्वकान्दृष्ट्वा पुरुषानुचरैर्बलिः ॥ वारयामास संरब्धान्काव्यशापमनुस्मरन् ॥ १८ ॥ हे विप्रचित्ते हे राहो हे नेमे श्रूयतां वचः ॥ मा युध्यत निवर्तध्वं न नः कालोऽयमर्थकृत् ॥ १९ ॥ यः प्रभुः सर्वभूतानां सुखदुःखोपपत्तये ॥ तं नातिवर्तितुं दैत्याः पौरुषैरीश्वरः पुमान् ॥ २० ॥ यो नो भवाय प्रागासीदभवाय दिवौकसाम् ॥ स एव भगवानद्य वर्तते तद्विपर्ययम् ॥ २१ ॥ बलेन सचिवैर्बुद्ध्या दुर्गैर्मन्त्रौषधादिभिः ॥ सामादिभिरुपायैश्च कालं नात्येति वै जनः ॥ २२ ॥ भवद्भिर्निर्जिता ह्येते बहुशोऽनुचरा हरेः ॥ दैवेनर्द्धैस्त एवाद्य युधि जित्वा नदन्ति नः ॥ २३ ॥ एतान्वयं विजेष्यामो यदि दैवं प्रसीदति ॥ तस्मात्कालं प्रतीक्षध्वं यो नोऽर्थत्वाय कल्पते ॥ २४ ॥

भले करिवेके लिये भयो, देवतानके बुरे करिवेके लिये भयो, सोई भगवान आजु विपरीति वर्तें हैं ॥ २१ ॥ बल मंत्रीयौंकी बुद्धि महामंत्र औषधी साम भेदके उपायनकरिकैं जन कालको अतिक्रमण नहीं करसक्ते ॥ २२ ॥ ये हरिके अनुचर तुमने बहुत वेर जीते हैं, परंतु दैवसें बढाये हुए आजु युद्धमें जीतिकै अति शोर करैं हैं ॥ २३ ॥ अरे जब दैव प्रसन्न होइगो, तब हम इनें जीतेंगे, तातें हे दैत्य! कालको पैडो देखो, जब हमारे अनुकूल समय होईगो तब फेरि हम इनें जीतेंगे राज्य करैंगे[1] ॥ २४ ॥

---

[1] बडो कर्म है कि पुरुषार्थ, याके निर्णय करनेको दो पुरुष एक राजापै गये, राजासे पूछी कि महाराज! हमाऱ्यो न्याय करदीजिये, कर्म बडो है कि पुरुषार्थ, राजाने दौनोको अपने

श्रीशुक उवाच ॥ पत्युर्निगदितं श्रुत्वा दैत्यदानवयूथपाः ॥ रसां निविविशू राजन्विष्णुपार्षदताडिताः ॥ २५ ॥ अथ ताक्ष्यंसुतो ज्ञात्वा विराट्प्रभुचिकीर्षितम् ॥ बबन्ध वारुणैः पाशैर्बलिं सौत्येऽहनि क्रतौ ॥ २६ ॥ हाहाकारो महानासीद्रोदस्योः सर्वतो दिशम् ॥ गृह्यमाणेऽसुरपतौ विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २७ ॥ तं बद्धं वारुणैः पाशैर्भगवानाह वामनः ॥ नष्टश्रियं स्थिरप्रज्ञमुदारयशसं नृप ॥ २८॥ पदानि त्रीणि दत्तानि भूमेर्मह्यं त्वयाऽसुर ॥ द्वाभ्यां क्रान्ता मही सर्वा तृतीयमुपकल्पय ॥ २९ ॥ यावत्तपत्यसौ गोभिर्यावदिन्दुः सहोडुभिः ॥ यावद्वर्षति पर्ज्यन्यस्तावती भूरियं तव ॥ ३० ॥ पदैकेन मया क्रान्तो भूर्लोकः खं दिशस्तनोः ॥ स्वर्लोकस्तु द्वितीयेन पश्यतस्ते स्वमात्मना ॥ ३१ ॥

शुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् ! अपने स्वामीको वचन सुनिकैं दैत्य दानवनकें यूथपालक विष्णुपार्षदनके मारे संपूर्ण रसातलमें प्रवेश करत भये ॥२५ ॥ ताके अनंतर पक्षीनके राजा गरुडजी प्रभुकी इच्छा जानिकै यज्ञमें सोमाभिषेकके दिनमें वरुणकी पाशनकरिकै बलिकों बांधत भये ॥ २६ ॥ विष्णुने असुरनके पति बलिको जब बांध्यो तब स्वर्गमें पृथ्वीमें बडो हाहाकार शब्द भयो ॥ २७ ॥ वरुणकी फार्शीन करिकैं बंधे नष्टश्री स्थिरबुद्धि उदारयश राजाबलिसूं भगवान् श्रीवामनजी यह बोलत भये ॥ २८ ॥ हे असुर ! तैनें मोकूं तीनि पैग दियें सो दो पैगकरिकै तो सगरी पृथ्वी नापी अब तीसरो पैग बता ॥ २९ ॥ जहांताई सूर्य अपनी किरणनकरिकै सहित तपैहै और जहांताई चन्द्रमा तारागणनकरिकै सहित अपने तेजकी किरणिन करिकैं प्रकाशैहै और जहांताई मेघमाला वर्षै हैं, तहांताईं तेरी सम्पूर्ण पृथ्वी है ॥ ३० ॥ भगवान् वामनजी कहैं हैं सुन रे राजा बलि ! अब तोकूं क्रम बताऊं, मैंने एक पैग करिकै तो भूलोक नाप्यो दूसरी पैग करिकै आकाश दिशा ग्रहण करिकै तेरे देखते मैनें स्वर्गलोकको

किलामें बंद करवाय दियो, और पाछै तैं दो दूधके लोटाहु एक कोठडीमें धरवादिये, जब दौनौंको भूंख लगी तौ कमवारो तौ हरि इच्छा कहकर बैठरह्यो, और पुरुषार्थीने कही कि पुरुषार्थ करकै ढूंढनो चाहिये, सो वह ढूंढने लगो तौ कोनमे दो दूधके भरेलोटा देख कहने लगो कि अहो पुरुषार्थ बडो है, जो न ढूंढतो तौ यह दूध कहांसे मिलतौ, यह विचार वे दौनौ लोटे लेकर कर्मप्रधानवारेके पास आनकर कही लो यह दूध पियो, देखो पुरुषार्थही बडो है कि नांय जो दूध मिलो, वाने कही भैया कर्मही प्रधान है, जो भागमें होयहै वोह घर बैठेही आय जाय है, यासों कर्मही बडो है, तब दोनोंनें राजासे कही हमारो न्याय हो गयो और चले गये ॥

नाप्यो ॥ ३१ ॥ तीसरे पगकी पृथ्वी प्रतिज्ञा करिकै जो तू न देगो तौ तेरो वास नरकमें होगो ताते गुरुनकरिकै अनुमोदन कियो नरकमें तू प्रवेशकर ॥ ३२ ॥ तेरो मनोरथ वृथा है, स्वर्ग दूरिहै, नीचो गिरैगो जो प्रतिज्ञाकरिकै नहीं देइ सों नीचे नरकमें गिरै है, धनके अभिमानी तैने कही कि देंउगों ऐसें कहिकें मोसूं प्रतिज्ञा कीनी है ॥ ३३ ॥ तातें कोई एकवर्षतांई तू झूठ बोलनेको फल नरकभोग कर या प्रकार श्रीवामनजी बलिते कहत भये ॥ ३४ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषा० अष्टमस्कन्धे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ बाईसमें अध्यायमें प्रसन्न हो राजा बलिको वरदान दे सुतललोकको पठाया परन्तु अपने अनुग्रहको तुच्छमान आप उसके द्वारपर रहे यह वर्णन करेंगे ॥ शुकदेवजी बोले हे राजन्! ऐसें भगवानने बलिको तिरस्कृत किया और सत्यप्रतिज्ञातें चलायमान किया परंतु वह धीरज धारण कर दृढतासै यह बचन बोला ॥ १ ॥ बलिराजा बोल्यो हे उत्तमश्लोक हे देवतानमें श्रेष्ठ! मेरे वचनकों जो तुम झूठ मानोहो तौ मैं सांचो करूंहूं, मेरो वचन झूठ नहीं है हे महाराज! जो यह संपूर्ण पृथ्वी राज्य मेरे शरीरके बल भुजानको कीनो सो तुह्मारे द्वै पैग भयो, कहा यह मेरो देह तुह्मारे एक तीसरे पैगकीऊ बरोबरि नहीं है, यातें हे स्वामी! अपनो चरण मेरे मस्तकपै धरो जातें तुह्मारो तीसरो पैग पूरो होजाइ ॥ २ ॥ यह तुह्मारी कहानि तो न रहै, कछु मैं नरकके परिवेतें नहीं डरपूंहूं, स्थानभ्रष्टते नहीं डरपूंहूं, वरुणकी फांसीके बांधिवेतें नहीं डरपूंहूं, अतिदुःखते नहीं डरपूंहूं, धनके कष्टतें नहीं डरपूंहूं, तुह्मारे डरते कछु

प्रतिश्रुतमदातुस्ते निरये वास इष्यते ॥ विश त्वं निरयं तस्माद्गुरुणा चानुमोदितः ॥ ३२ ॥ वृथा मनोरथस्तस्य दूरे स्वर्गः पतत्यधः ॥ प्रतिश्रुतस्यादानेन योऽर्थिनं विप्रलम्भते॥३३॥विप्रलब्धो ददामीति त्वयाहं चाढ्यमानिना ॥ तद्व्यलीकफलं भुङ्क्ष्व निरयं कतिचित्समाः ॥३४॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टम० बलिनिग्रहो नामैकविंशोऽध्यायः ॥ ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं विप्रकृतो राजन्बलिर्भगवताऽसुरः ॥ भिद्यमानोऽप्यभिन्नात्मा प्रत्याहाविक्लवं वचः॥१॥ बलिरुवाच ॥ यद्युत्तमश्लोक भवान्ममेरितं वचोऽव्यलीकं सुरवर्य मन्यते ॥ करोम्यृतं तन्न भवेत्प्रलम्भनं पदं तृतीयं कुरु शीर्ष्णि मे निजम् ॥ २ ॥ बिभेमि नाहं निरयात्पदच्युतो न पाशबन्धाद्व्यसनाद्दुरत्ययात् ॥ नैवार्थकृच्छ्राद्भवतो विनिग्रहादसाधुवादाद्भृशमुद्विजे यथा ॥ ३ ॥

नहीं डरपूंहूं, जैसो कछु अपकीर्तिते डरपूंहूं ॥ ३ ॥ महत् पुरुषोंका दिया दंडमें अतिशय श्रेष्ठ मान्ताहूं उसै माता पिता भैया सुहृद नहीं करसके ॥ ४ तुम निश्चयकरिकै असुरनके परमगुरु हो, जो अनेक मदकरिकै आंधरे हमकों ज्ञान रूप नेत्र देत भये ॥ ५॥ बडो वैरानुबंध करिकै बहुत दैत्य सिद्धिकों प्राप्त भये, हे प्रभो ! जा सिद्धिकों एकांतमें योगीजन प्राप्त होवै है, ताकूं हम दैत्य तुम्हारे प्रसादकरिकै प्राप्त भये ॥ ६ ॥ बडे कर्मवारे तुमनें मुझे वरुणकी फाशीनकरिकें बांधो सो मैं लज्जा नहीं करूंहूं, व्यथानकों नहीं करूंहूं॥७॥आपने मुझे अपना भक्त प्रहलादका पोता जानकर यह कृपारूप दंड दिया है वैसे तोमें अनुग्रहका पात्र नहींहूं मेरे पितामह प्रहलाद आपके भक्तोंमें मान्य और कीर्तिमान थे उन्है आपका भक्त जान हिरण्य-

पुंसां श्लाघ्यतमं मन्ये दण्डमर्हत्तमार्पितम् ॥ यं न माता पिता भ्राता सुहृदश्च दिशन्ति हि ॥ ४ ॥ त्वं नूनमसुराणां नः पारोक्ष्यः परमो गुरुः ॥ यो नोऽनेकमदान्धानां विभ्रंशं चक्षुरादिशत् ॥ ५ ॥ यस्मिन्वैरानुबन्धेन रूढेन विबुधेतराः ॥ बहवो लेभिरे सिद्धिं यामुहैकान्तयोगिनः ॥ ६ ॥ तेनाहं निगृहीतोऽस्मि भवता भूरिकर्मणा ॥ बद्धश्च वारुणैः पाशैर्नातिव्रीडे न च व्यथे ॥ ७ ॥ पितामहो मे भवदीयसंमतः प्रह्लाद आविष्कृतसाधुवादः ॥ भवद्विपक्षेण विचित्रवैशसं संप्रापितस्त्वत्परमः स्वपित्रा ॥ ८ ॥ किमात्मनाऽनेन जहाति योऽन्ततः किं रिक्थहारैः स्वजनाख्यदस्युभिः ॥ किं जायया संसृतिहेतुभूतया मर्त्यस्य गेहैः किमिहायुषो व्ययः ॥ ९ ॥ इत्थं स निश्चित्य पितामहो महानगाधबोधो भवतः पादपद्मम् ॥ ध्रुवं प्रपेदे ह्यकुतोभयं जनाद्भीतः स्वपक्षक्षपणस्य सत्तम ॥ १० ॥

कश्यपनै अनेक दुख दिये तथापि उसने यह निश्चय कियोकि ॥ ८ ॥ या देहसै कहा है जाको अन्तमें छोड जांयगे फिर यासै कहा प्रयोजन है सम्बंधी रूप चोर जो अन्तमें सब कुछ हरलेतें हैं उनसै क्या है जन्म मरणकी दैनेहारी स्त्रीमें कौन सार है और केवल मनुष्योंकी आयु हरनेहारे घरमें कहा सुख है ॥ ९ ॥ इस प्रकार महाज्ञानी हमारे पितामह प्रलहाद निश्चयकरिकें दैत्योंके मारनेवाले आपके निर्भय और अविचल चरणारविंदकी शरणको प्राप्त भये ॥ १० ॥

112

याते मुझे दैवने बल पूर्वक श्रीरहित करकै तुम वैरीके निकट प्राप्तकरादिया, जिस सम्पत्तिसै पुरुष स्तब्धमति हो मृत्युके निकट हुए इस जीवनको अनित्य नहीं जान्ता ॥ ११ ॥ शुकदेवजी बोले हे कौरवनके वंशमें श्रेष्ठ परीक्षित ! ऐसें राजा बलि कह रहेथे कि ताही समय भगवानके प्यारे प्रल्हादजी उदय हुए पूर्ण चंद्रमाकी समान आये ॥ १२ ॥ इंद्रकीसी सेनावारे राजा बलि अपनें पितामह शोभाकरिकै विराजमान कमलसे विशाल नेत्र, ऊंचो वक्षस्थल, पीरे वस्त्र, श्याम, लंबी भुजावारे भाग्यवाननमें श्रेष्ठ, प्रल्हादजीको देखत भये ॥ १३ ॥ वरुणकी फांसीते बंधे बलि प्रल्हादके अर्थ पहिलेकीसीनाईं पूजा नहीं करतभये, केवल माथोई नवाइकै नमस्कार करतभये, लज्जा करिकें नीचो मुख करतभये ॥१४॥

अथाहमप्यात्मरिपोस्तवान्तिकं दैवेन नीतः प्रसभं त्याजितश्रीः ॥ इदं कृतान्तान्तिकवर्ति जीवितं ययाऽध्रुवं स्तब्धमतिर्न बुध्यते ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्येत्थं भाषमाणस्य प्रह्लादो भगवत्प्रियः ॥ आजगाम कुरुश्रेष्ठ राकापतिरिवोत्थितः ॥ १२ ॥ तमिन्द्रसेनः स्वपितामहं श्रिया विराजमानं नलिनायतेक्षणम् ॥ प्रांशुं पिशङ्गाम्बरमञ्जनत्विषं प्रलम्बबाहुं सुभगं समैक्षत ॥ १३ ॥ तस्मै बलिर्वारुणपाशयन्त्रितः समर्हणं नोपजहार पूर्ववत् ॥ ननाम मूर्ध्नाऽश्रुविलोललोचनः सव्रीडनीचीनमुखो बभूव ह ॥१४॥ स तत्र हासीनमुदीक्ष्य सत्पतिं सुनन्दनन्दाद्यनुगैरुपासितम् ॥ उपेत्य भूमौ शिरसा महामना ननाम मूर्ध्ना पुलकाश्रुविह्वलः ॥ १५ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ त्वयैव दत्तं परमैन्द्रमूर्जितं हृतं तदेवाद्य तथैव शोभनम् ॥ मन्ये महानस्य कृतो ह्यनुग्रहो विभ्रंशितो यच्छ्रिय आत्ममोहनात् ॥ १६ ॥ यया हि विद्वानपि मुह्यते यतस्तत्को विचष्टे गतिमात्मनो यथा ॥ तस्मै नमस्ते जगदीश्वराय नारायणायाखिललोकसाक्षिणे ॥ १७ ॥

प्रल्हादजीने तहां बैठे हुए साधुनके पति सुनंद नंदादिक पार्षद करिकैं उपासनाकिये भगवानको देखिकै शिरसूं प्रणाम करतभये, उस समय उनकी देहमें रोमांच और नेत्रौंमें प्रेमका जल भर रहाथा ॥ १५ ॥ प्रल्हाद बोले हे प्रभो ! तुह्मीने बलिको समृद्धि युक्त इन्द्रका यह दियाथा और आज लेलिया सो अच्छा किया और लक्ष्मीरूप बन्धनसै आपने मेरे पौत्रको छुड़ाया यह इसपर बड़ा अनुग्रह किया ॥ १६ ॥ जाकरिकैं विद्वानभी मोहित होवैहै ता संपत्तिमें कौन पुरुष आत्माको तत्त्व यथायोग्य देखैहै जगतके ईश्वर अखिललोकनके साक्षी नारायणके अर्थ नमस्कार हैं ॥ १७ ॥

शुकदेवजी कहैं हे राजन्! हाथ जोरें प्रल्हादजीके सुनते हिरण्यगर्भ ब्रह्मा मधुसूदन भगवानके प्रति बोलतभयें ॥ १८ ॥ हे राजन्! उसी समय पतिको बंधादेख बलिराजाकी पतिव्रता स्त्री विंध्यावली भयविह्वल हो नीचो मुख कर हाथ जोरें नम्र ह्वैकै श्रीवामनजीप्रति बोलतीभई ॥१९॥ रानी विंध्यावली बोली, हे ईश! अपनें क्रीडाके अर्थ तुमनें यह जगत कियो हैं, हे ईश्वर! उस जगतमें यह दूसरे कुबुद्धि लज्जाहीन पुरुष वृथा अपना स्वामीपन मानैहैं त्रिलोकीके उत्पत्ति पालन नाश करनेहारे तुम्ही हो औरौंको हम स्वतंत्र हैं ऐसा कहनेका अधिकार आपहीसै प्राप्तहैं आपको कुछभी दैना संभव नहीं हो सक्ता कारण कि सब कुछ आपहीको दियाहै ॥ २० ॥ अब ब्रह्मा कहैहैं, हे भूतभावन हे संपूर्ण भूतप्राणीनके ईश्वर हे देव हे संपूर्ण देवतानके देव

श्रीशुक उवाच ॥ तस्यानुशृण्वतो राजन्प्रह्लादस्य कृताञ्जलेः ॥ हिरण्यगर्भो भगवानुवाच मधुसूदनम् ॥ १८ ॥ बद्धं वीक्ष्य पतिं साध्वी तत्पत्नी भयविह्वला ॥ प्राञ्जलिः प्रणतोपेन्द्रं बभाषेऽवाङ्मुखी नृप ॥ १९ ॥ विन्ध्यावलिरुवाच ॥ क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत्कृतं ते स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्युः ॥ कर्तुः प्रभोस्तव किमस्य त आवहन्ति त्यक्तह्रियस्त्वदवरोपितकर्तृवादाः ॥ २० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ भूतभावन भूतेश देवदेव जगन्मय ॥ मुञ्चैनं हतसर्वस्वं नायमर्हति निग्रहम् ॥ २१ ॥ कृत्स्ना तेऽनेन दत्ता भूर्लोकाः कर्मार्जिताश्च ये ॥ निवेदितं च सर्वस्वमात्माऽविक्लवया धिया ॥ २२ ॥ यत्पादयोरशठधीः सलिलं प्रदाय दूर्वाङ्कुरैरपि विधाय सतीं सपर्याम् ॥ अप्युत्तमां गतिमसौ भजते त्रिलोकीं दाश्वानविक्लवमनाः कथमार्तिमृच्छेत्॥२३॥श्रीभगवानुवाच ॥ ब्रह्मन्यमनुगृह्णामि तद्विशो विधुनोम्यहम् ॥ यन्मदः पुरुषः स्तब्धो लोकं मां चावमन्यते ॥ २४ ॥

हे जगन्मय! हृतसर्वस्व बलिको छोडिदेउ, यह दंडके योग्य नहीं है ॥ २१ ॥ यानें संपूर्ण पृथ्वीको दान कियोहै, कर्म करिकैं जीते लोक दिये हे महाराज! याने सर्वस्व निवेदन कीनोहै और अपनों देहभी तुह्मारे चरणनमें शुद्ध बुद्धिसै निवेदन कियोहै ॥ २२ ॥ शठ बुद्धि रहित पुरुष तुह्मारे चरणमें जलदूर्वा अंकूर समर्पण कर उत्तमगतिकूं प्राप्तहोवैहै, तिन तुमकौ यह बलि प्रसन्नह्वैकें त्रिलोकी देतभयो सो फिर दुःखकों कैसे प्राप्त होइगो ॥ २३ ॥ या प्रकार ब्रह्माको वाक्य सुनिकै भगवान् बोले हे ब्रह्मा! मै जापै अनुग्रह करूंहूं ताके धनको नाश करूंहूं, क्योंकि धनको मदधारो पुरुष

मेरे लोककों नहीं प्राप्त होवे है, और मेरे भक्तनकी वह अवज्ञा करैहै ॥ २४ ॥ काहूं समय यह जीवात्मा निजकर्मकरिकें नानाप्रकारकी योनिनमें पुरुषकी गतिकूं प्राप्ति होवैहै ॥ २५ ॥ जन्म कर्म वय रूप विद्या ऐश्वर्य धन करिकै जो या पुरुषके गर्व न होइ, तहांहीं मेरो अनुग्रह है ॥२६॥ जो मेरे भक्त हैं वे मानस्तंभके कारण जन्मादिकको प्राप्त होकरभी उन्है मोहके कारण शत्रुरूप जान उनमें मोहित नहीं होते ॥२७॥ यह बलि दैत्य दानवनमें श्रेष्ठ है, कीर्तीको बढामनवारो है, आज मेरी मायाकूं जीतत भयौहै, खेदको प्राप्त होनेपरभी मोहित नहीं भयोहै॥२८॥ क्षीण धन, स्थानतें भ्रष्ट भयो, तिरस्कार कियो, वैरीननें बांध्यो, जातिके त्यागन कियो यातनाको प्राप्त कियो ॥ २९ ॥ गुरुननें झिझकारचो, और शापहू दियो तोहू यह सत्यव्रत

यदा कदाचिज्जीवात्मा संसरन्निजकर्मभिः ॥ नानायोनिष्वनीशोऽयं पौरुषीं गतिमाव्रजेत् ॥ २५ ॥ जन्मकर्मवयोरूपविद्यैश्वर्यधनादिभिः ॥ यद्यस्य न भवेत्स्तम्भस्तत्रायं मदनुग्रहः ॥ २६ ॥ मानस्तम्भनिमित्तानां जन्मादीनां समन्ततः ॥ सर्वश्रेयःप्रतीपानां हन्त मुह्येन्न मत्परः ॥ २७ ॥ एष दानवदैत्यानामग्रणीः कीर्तिवर्धनः ॥ अजैषीदजयां मायां सीदन्नपि न मुह्यति ॥ २८ ॥ क्षीणरिक्थश्च्युतः स्थानात्क्षिप्तो बद्धश्च शत्रुभिः ॥ ज्ञातिभिश्च परित्यक्तो यातनामनुयापितः ॥ २९ ॥ गुरुणा भर्त्सितः शप्तो जहौ सत्यं न सुव्रतः ॥ छलैरुक्तो मया धर्मो नायं त्यजति सत्यवाक् ॥ ३० ॥ एष मे प्रापितः स्थानं दुष्प्रापममरैरपि ॥ सावर्णेरन्तरस्यायं भवितेन्द्रो मदाश्रयः ॥ ३१ ॥ तावत्सुतलमध्यास्तां विश्वकर्मविनिर्मितम् ॥ यन्नाधयो व्याधयश्च क्लमस्तन्द्रा पराभवः ॥ नोपसर्गा निवसतां संभवन्ति ममेक्षया ॥ ३२ ॥ इन्द्रसेन महाराज याहि भो भद्रमस्तु ते ॥ सुतलं स्वर्गिभिः प्रार्थ्यं ज्ञातिभिः परिवारितः ॥ ३३ ॥

अपनी सत्यता नही छोडत भयो मैनें छलिवे करिकै धर्म कह्यो, तोऊ ता धर्मको यह न छोडतभयो ॥ ३० ॥ इस कारण यह देवतानके दुर्लभ स्थानमें प्राप्त होगा सावर्णि मन्वंतरमें यही इंद्र होइगो मेरे आश्रित रहैगा ॥ ३१ ॥ तबताई विश्वकर्माके रचे सुतललोकमें रहो, जा सुतलमें आधि व्याधि खेद निद्रा पराभव मेरी इच्छाकरिकै वास करनवारेनको नहीं होवे है ॥ ३२ ॥ हे इंद्रसेन हे महाराज! तुह्मारो कल्याण होउ, अपने ज्ञातिनकों संग लेकें देवतानकरिकै प्रार्थना करे सुतल लोकमें प्राप्त होउ ॥ ३३ ॥

लोकपाल तुह्मे पराभव न करैंगे तो और कहांते करैंगे, और जे दैत्य तुह्मारी आज्ञाको न करैंगे तिने मेरो चक्र मारेगो ॥ ३४ ॥ अनुगण भृत्यन
करिकै सहित संपूर्ण सामग्रीन सहित सबते मै तुह्मारी रक्षा करूंगो, हे वीर ! तहां सदा अपने निकट मुझै तुम देखोगे ॥ ३५ ॥ तहां दैत्य
दानवनके संगोंतें तुह्मारो असुरभाव है मेरे प्रभावकों देखिकै तत्कालही नष्ट होईगो ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायामष्टमस्कन्धे
द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ तेईसके अध्यायके विषें प्रल्हादसहित राजा बलिको सुतलमें भेज्यो, तब बलिको सुतलमें गये संते इंद्र श्रीवामनजी
करिकै स्वर्गमें पहलेईसे आनंदको प्राप्त होतभयो यह वर्णन करैंगे ॥ श्रीशुकदेवजी महाराज राजा परीक्षित प्रति वर्णन करैं हैं हे राजा ! महानुभाव

न त्वामभिभविष्यन्ति लोकेशाः किमुतापरे ॥ त्वच्छासनातिगान्दैत्यांश्चक्रं मे सूदयिष्यति ॥ ३४॥ रक्षिष्ये सर्वतोऽहं
त्वां सानुगं सपरिच्छदम् ॥ सदा सन्निहितं वीर तत्र मां द्रक्ष्यते भवान् ॥ ३५ ॥ तत्र दानवदैत्यानां सङ्गात्ते भाव
आसुरः ॥ दृष्ट्वा मदनुभावं वै सद्यः कुण्ठो विनङ्क्ष्यति ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे बलिवामनसंवादो
नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तवन्तं पुरुषं पुरातनं महानुभावोऽखिलसाधुसंमतः ॥
बद्धाञ्जलिर्बाष्पकलाकुलेक्षणो भक्त्युद्गलो गद्गदया गिराऽब्रवीत् ॥ १ ॥ बलिरुवाच ॥ अहो प्रणामाय कृतः समुद्यमः
प्रपन्नभक्तार्थविधौ समाहितः ॥ यल्लोकपालैस्त्वदनुग्रहोऽमरैरलब्धपूर्वोऽपसदेऽसुरेऽर्पितः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
इत्युक्त्वा हरिमानम्य ब्रह्माणं सभवं ततः ॥ विवेश सुतलं प्रीतो बलिर्मुक्तः सहासुरैः ॥ ३ ॥

सब साधुनके संमत योग्य आंसूनकी कलानकरिकै आकुल नेत्र, भक्तिकरिकै उत्कंठित हाथ जोरे राजा बलि ऐसें कहते पुरातन पुरुषसे गद्गद
वाणी करिके बोलतभयो ॥ १ ॥ अब राजा बलि कहैहैं, अहो तुमको प्रणामके लिये जो उद्यम कियाजाताहै वही शरण आये भक्तनके मनोरथ
पूर्ण करनेमें सावधान है जो अनुग्रह लोकपालननें देवताननें पहिले न पायो सो अनुग्रह नीच असुर मैंनें पायो जापैं आपने पद अर्पण कियो ॥ २ ॥
शुकदेवजी कहै हैं हे राजन् ! ऐसें कहिकें हरिकूं महादेव सहित ब्रम्हाको प्रणाम करिकैं असुरनसहित छूट बलि प्रसन्न ह्वैके सुतल लोकमें
प्रवेश करत भयो ॥ ३ ॥

116

एवमिन्द्राय भगवान्प्रत्यानीय त्रिविष्टपम् ॥ पूरयित्वादितेः काममशासत्सकलं जगत् ॥ ४ ॥ लब्धप्रसादं निर्मुक्तं पौत्रं वंशधरं बलिम् ॥ निशाम्य भक्तिप्रवणः प्रह्लाद इदमब्रवीत् ॥ ५ ॥ प्रह्लाद उवाच ॥ नेमं विरिञ्चो लभते प्रसादं न श्रीर्न शर्वः किमुतापरे ते ॥ यन्नोऽसुराणामसि दुर्गपालो विश्वाभिवन्द्यैरपि वन्दिताङ्घ्रिः ॥ ६ ॥ यत्पादपद्ममकरन्दनिषेवणेन ब्रह्मादयः शरणदाश्नुवते विभूतीः ॥ कस्माद्वयं कुसृतयः खलयोनयस्ते दाक्षिण्यदृष्टिपदवीं भवतः प्रणीताः ॥ ७ ॥ चित्रं तवेहितमहोऽमितयोगमायालीलाविसृष्टभुवनस्य विशारदस्य ॥ सर्वात्मनः समदृशो विषमः स्वभावो भक्तप्रियो यदसि कल्पतरुस्वभावः ॥८॥ श्रीभगवानुवाच ॥ वत्स प्रह्लाद भद्रं ते प्रयाहि सुतलालयम् ॥ मोदमानः स्वपौत्रेण ज्ञातीनां सुखमावह ॥ ९ ॥ नित्यं द्रष्टासि मां तत्र गदापाणिमवस्थितम् ॥ मद्दर्शनमहाह्लादध्वस्तकर्मनिबन्धनः ॥१०॥श्रीशुक उवाच॥ आज्ञां भगवतो राजन् प्रह्लादो बलिना सह ॥ बाढमित्यमलप्रज्ञो मूर्ध्न्याधाय कृताञ्जलिः ॥११॥

या प्रकार भगवान् इंद्रके अर्थ स्वर्ग दिवाइकैं अदितिकी कामना पूर्ण करते सब जगतको पालन करत भये ॥ ४ ॥ प्रसाद पाय बंधनतें छूट्यो, वंशको उद्धार करनवारो नाती बलिकूं देखि भक्ति करिकैं नम्र प्रल्हाद याप्रकार बोलत भयो ॥ ५ ॥ प्रल्हादजी बोले इस प्रसादकों ब्रह्मानें न पायो लक्ष्मीनें न पायो, महादेवनें न पायो, तब और कहांते पावेंगे, जिसकारण कि विश्वके पूजित ब्रह्मादिकभी तुम्हारे चरणोंको पूजते हैं वे तुम हमारे द्वारपाल हुए ॥ ६ ॥ हे शरणद हे शरणके आश्रय देनवारे ! आपके चरणारविंदको मकरंद सेवन करिकैं ब्रह्मादिक विभूति भोग करैं हैं, दुष्ट मति हम तुम्हारी कृपादृष्टिकी पदवीको कौन हेतुतें प्राप्त भये ॥ ७ ॥ अनन्त योगमायाकी लीलासै सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके रचनेवाले सर्व व्यापक आपका चरित्र बडा अद्भुत है कारण कि आप संपूर्णके आत्मा और समान दृष्टिवारे हो यद्यपि आपको भक्त प्यारे हैं तथापि आपका स्वभाव विषम नहीं है आपका स्वभाव कल्पवृक्ष सदृश है ॥ ८ ॥ तब भगवान् बोले हे पुत्र प्रल्हाद! तोकों कल्याण होउ, सुतलस्थानको तुम जाओ अपनें नातीकरिकैं सहित जातिकेनको सुख देउ ॥ ९ ॥ तहां गदा हाथमें लिये मुझे नित्यप्रति ठाढो देखोंगे, मेरे दर्शनके आनंद करिकैं कर्मबंधन दूर होंगे ॥ १० ॥ शुकदेवजी बोले हे राजा परीक्षित ! भगवान्की आज्ञा माथेपै धारण करिकै निर्मल बुद्धि हाथ जोरें बलि सहित ॥ ११ ॥

आदिपुरुष हरिकी परिक्रमा देकैं आज्ञा ले सुतलमें प्रवेश करत भये ॥ १२ ॥ हे राजन्! पीछे निकटमें बैठे ऋत्विजनके मध्यमें ब्रह्मवादीनकी सभामें बैठे शुक्राचार्यसूं नारायण हरि बोलत भये ॥ १३ ॥ हे ब्रह्मन्! यज्ञ कर्मको विस्तार करनेहारे तुम्हारे शिष्य बलिको जो छिद्र भयो ताई परिपूर्ण करो जो कर्ममे वैषम्य है सो ब्राह्मणनके देखेंईते समान होवे है ॥ १४ ॥ शुक्राचार्य बोले ताके कर्ममें वैषम्यता कहां जाके कर्मके ईश्वर तुमहो यज्ञके ईश्वर हो, यज्ञपुरुष हो सौम्यभावकरिकै पूजित हो ॥ १५ ॥ मंत्र तंत्र देश कालमात्र वस्तुतें जो छिद्र होयहै ताय तुम्हारो संकीर्त-

परिक्रम्यादिपुरुषं सर्वासुरचमूपतिः ॥ प्रणतस्तदनुज्ञातः प्रविवेश महाबिलम् ॥ १२ ॥ अथाहोशनसं राजन् हरिर्नारायणोऽन्तिके ॥ आसीनमृत्विजां मध्ये सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥ १३ ॥ ब्रह्मन् संतनु शिष्यस्य कर्मच्छिद्रं वितन्वतः ॥ यत् तत् कर्मसु वैषम्यं ब्रह्मदृष्टं समं भवेत् ॥ १४ ॥ शुक्र उवाच ॥ कुतस्तत् कर्मवैषम्यं यस्य कर्मेश्वरो भवान् ॥ यज्ञेशो यज्ञपुरुषः सर्वभावेन पूजितः ॥ १५ ॥ मन्त्रतस्तन्त्रतश्छिद्रं देशकलार्हवस्तुतः ॥ सर्वं करोति निश्छिद्रं नामसंकीर्तनं तव ॥ १६ ॥ तथाऽपि वदतो भूमन् करिष्याम्यनुशासनम् ॥ एतच्छ्रेयः परं पुंसां यत्तवाज्ञाऽनुपालनम् ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अभिनन्द्य हरेराज्ञामुशना भगवानिति ॥ यज्ञच्छिद्रं समाधत्त बलेर्विप्रर्षिभिः सह ॥ १८ ॥ एवं बलेर्महीं राजन् भिक्षित्वा वामनो हरिः ॥ ददौ भ्रात्रे महेन्द्राय त्रिदिवं यत्परैर्हृतम् ॥ १९ ॥ प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा देवर्षिपितृभूमिपैः ॥ दक्षभृग्वङ्गिरोमुख्यैः कुमारेण भवेन च ॥ २० ॥ कश्यपस्यादितेः प्रीत्यै सर्वभूतभवाय च ॥ लोकानां लोकपालानामकरोद्वामनं पतिम् ॥ २१ ॥

न निश्छिद्र करे है ॥ १६ ॥ हे भूमन्! तोऊ तुम्हारी आज्ञा करूंगो पुरुषनको यही परम धर्म श्रेष्ठ है जो तुम्हारी आज्ञाको पालन करनो है॥१७॥ शुकदेवजी राजा परीक्षितसो कहते हैं याप्रकार हरिकी आज्ञाकों सन्मान करिकै ज्ञानवान् शुक्र ब्राह्मणनकरिकै सहित बलिके यज्ञके छिद्रको अनुसंधान करत भये ॥ १८ ॥ हे महाराज! इसप्रकार बलिसें भीक मांगिकै वैरीकें हरे स्वर्गको भैया इंद्रके अर्थ देत भये ॥ १९ ॥ प्रजापतिनको पति ब्रह्मा देव ऋषि पितर राजा दक्ष भृगु अंगिरा सनत्कुमार महादेव करिकै सहित ॥ २० ॥ कश्यप अदितिकी प्रीतिके लिये, और संपूर्ण प्राणीनके

कल्याणके लिये संपूर्ण लोकनके पति श्रीवामनजी महाराजकूं करत भये ॥ २१॥ वेद संपूर्ण देवता धर्म यश श्री मंगलकी वृत्ति और स्वर्ग मोक्षके पालन करिवेके अर्थ॥२२॥ सम्पूर्ण विभूतियोंके पति श्रीवामनजीकों उपेंद्र पदवी इंद्रके ऊपर करतभये हे राजा! तासमय संपूर्ण प्राणी आनंदकों प्राप्त होतभये ॥ २३ ॥ ताके अनंतर इंद्रको ब्रह्माने आज्ञा दी, सो श्रीवामनजीको आगे करिकै आकाश मार्ग हो करिके लोकपालन सहित स्वर्गको जातभयो ॥२४॥ उपेंद्रकी भुजानकरिकैं पालित, भयरहित परम संपत्तिनकरिकै युक्त इंद्र त्रिभुवनकों पाइकै प्रसन्न होतभयो ॥ २५ ॥ ब्रह्मा रुद्र सनत्कुमार भृग्वादिकमुनि पितर सगरे प्राणी सिद्ध ॥२६॥ देवता विष्णुको परम अद्भुत चरित्र गावत भये, और अपने अपने स्थानोंको जातभये

वेदानां सर्वदेवानां धर्मस्य यशसः श्रियः ॥ मङ्गलानां व्रतानां च कल्पं स्वर्गापवर्गयोः ॥ २२ ॥ उपेन्द्रं कल्पयांचक्रे पतिं सर्वविभूतये ॥ तदा सर्वाणि भूतानि भृशं मुमुदिरे नृप ॥ २३ ॥ ततस्त्विन्द्रः पुरस्कृत्य देवयानेन वामनम् ॥ लोकपालैर्दिवं निन्ये ब्रह्मणा चानुमोदितः ॥ २४ ॥ प्राप्य त्रिभुवनं चेन्द्र उपेन्द्रभुजपालितः ॥ श्रिया परमया जुष्टो मुमुदे गतसाध्वसः ॥ २५ ॥ ब्रह्मा शर्वः कुमारश्च भृग्वाद्या मुनयो नृप ॥ पितरः सर्वभूतानि सिद्धा वैमानिकाश्च ये ॥ २६ ॥ सुमहत् कर्म तद्विष्णोर्गायन्तः परमाद्भुतम् ॥ धिष्ण्यानि स्वानि ते जग्मुरदितिं च शशंसिरे ॥ २७॥ सर्वमेतन्मयाख्यातं भवतः कुलनन्दन ॥ उरुक्रमस्य चरितं श्रोतृणामघमोचनम् ॥ २८॥ पारं महिम्न उरुविक्रमतो गृणानो यः पार्थिवानि विममे स रजांसि मर्त्यः ॥ किं जायमान उत जात उपैति मर्त्य इत्याह मन्त्रदृगृषिः पुरुषस्य यस्य ॥ २९ ॥ य इदं देवदेवस्य हरेरद्भुतकर्मणः ॥ अवतारानुचरितं शृण्वन् याति परां गतिम् ॥ ३० ॥

अदितिकी बडाई करत भये ॥ २७ ॥ हे कुरुनंदन! मैनें वामनजीको चरित्र सब तेरे आगें कह्यों जे कोउ नर मनुष्य याको सुनैंगे तिनके पापनाश तुरत होवेंगे ॥ २८ ॥ मनुष्य पृथ्वीके रज चाहैं गिनिलेंई परन्तु भगवानकी महिमाका पार पाना कठिन हैं मंत्रद्रष्टा वसिष्ठजीने कहाहै कि जन्मा हुआ अथवा जन्म लेता हुआ क्या कोई पुरुष श्रीवामनजीकी महिमाका पार पा सक्ता है ॥ २९ ॥ देवनके देव अद्भुतकर्मा हरि भगवानके अवतारको चरित्र जो मनुष्य सुनेगै सो परमश्रेष्ठगतिकूं प्राप्त होंइगे ॥ ३० ॥

देवता पितर मनुष्य सम्बन्धी कर्ममें जो पुरुष इस चरित्रको सुनैंगे वह कर्म परिपूर्ण होंगे उसमें विघ्न न होंगा ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां अष्टमस्कन्धे त्रयोविंशोध्यायः ॥२३ ॥ चौविसवैं अध्यायमें मत्स्यरूप भगवानकी लीला कहैंगे जा लीलाई करिकैं समुद्रके विषें सत्यव्रतकी रक्षा करत भये, पहिले छोटोसो शरीर दिखाइकैं फिरि निज ऐश्वर्य्यको दिखावतभये, याते श्रीवामनजीकीसी उपमावारे मत्स्यको राजा पूछेहैं यह प्रसंग वर्णन करैंगे ॥ राजा परीक्षित् प्रश्न करैहै हे भगवन् ! अद्भुत कर्मा हरिकी मत्स्यावतारकी कथा मैं सुनिवेकी इच्छा करूंहूं ॥ १ ॥ संपूर्ण लोकनके विषे निंदित दुस्सह मत्स्यरूप जाके अर्थ धारण करतभये जिस्सै मानो परमेश्वर कर्ममें बंधे हुएसे प्रतीत होतैहैं ॥ २ ॥ हे भगवन् ! यह

क्रियमाणे कर्मणीदं दैवे पित्र्येऽथ मानुषे ॥ यत्र यत्रानुकीर्त्येत तत्तेषां सुकृतं विदुः ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टमस्कन्धे वामनावतारचरिते त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ भगवन् श्रोतुमिच्छामि हरेरद्भुतकर्मणः ॥ अवतारकथामाद्यां मायामत्स्यविडम्बनम् ॥ १ ॥ यदर्थमदधाद्रूपं मात्स्यं लोकजुगुप्सितम् ॥ तमःप्रकृति दुर्मर्षं कर्मग्रस्तमिवेश्वरः ॥ २ ॥ एतन्नो भगवन् सर्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ उत्तमश्लोकचरितं सर्वलोकसुखावहम् ॥ ३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्युक्तो विष्णुरातेन भगवान् बादरायणिः ॥ उवाच चरितं विष्णोर्मत्स्यरूपेण यत्कृतम् ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोविप्रसुरसाधूनां छन्दसामपि चेश्वरः ॥ रक्षामिच्छंस्तनूर्धत्ते धर्मस्यार्थस्य चैव हि ॥ ५ ॥ उच्चावचेषु भूतेषु चरन् वायुरिवेश्वरः ॥ नोच्चावचत्वं भजते निर्गुणत्वाद्धियो गुणैः ॥ ६ ॥

सब हमारे आगें कहो यथायोग्य कहिवेकूं योग्य हो उत्तमश्लोकको चरित्र सब लोकनकों सुख देइ हैं ॥ ३ ॥ सूतजी नैमिषारण्यमें शौनकते कहै है याप्रकार राजा परीक्षितसें पूछे जाकर भगवान् शुकदेवजीसों मत्स्यरूपकरिकै कियो विष्णुको चरित्र कहत भये ॥ ४ ॥ शुकदेवजी परीक्षितसों कहैं हैं राजा ! गौ ब्राह्मण देवता साधु वेदके ईश्वर हरि धर्म अर्थके हेतु रक्षाकी इच्छा करते निंदितरूपभी धारण करैं हैं ॥ [illegible] बुद्धिके गुण करिकैं ऊंच नीच प्राणीनमें पवनकीसी नाई विचरते, ईश्वर निर्गुण होनेसे ऊंचनीचको नहीं भजें हैं ॥ ६ ॥

120

कालसै वीते कल्पके अंतमें ब्रम्हाकी निद्राके निमित्तकरिकै प्रलय होतीभई तासमयमें भूतादिक समुद्रमें डूबतभये ॥ ७ ॥ कालकरिकै निद्रित ब्रह्माके मुखते निकरे वेदोंको हयग्रीव नाम दैत्य हरिलेत भयो ॥ ८ ॥ दानवेंद्र हयग्रीवकी चेष्टा जानिकैं ईश्वर हरि मछरीको रूपको धारण करत भये ॥ ९ ॥ तहां कोई एक ऋषि नारायणपरायण सत्यव्रत नाम राजा जलकेविषें भजन करत भयो ॥ १० जो राजा या कल्पके विषें सूर्यको पुत्र श्राद्धदेव नामकरिकै विख्यात हुआ जिसै प्रभुने मनुकी पदवी दी ॥ ११ ॥ सो राजा एक दिन कृतमालानदीमें जलसै तर्पण कर्ता

आसीदतीतकल्पान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः॥ समुद्रोपप्लुतास्तत्र लोका भूरादयो नृप॥ ७॥ कालेनागतनिद्रस्य धातुः शिशयिषोर्बली॥ मुखतो निःसृतान् वेदान् हयग्रीवोऽन्तिकेहरत्॥ ८॥ ज्ञात्वा तद्दानवेन्द्रस्य हयग्रीवस्य चेष्टितम्॥ दधार शफरीरूपं भगवान् हरिरीश्वरः॥ ९॥ तत्र राजऋषिः कश्चिन्नाम्ना सत्यव्रतो महान्॥ नारायणपरोऽतप्यत् तपः स सलिलाशनः॥१०॥ योऽसावस्मिन् महाकल्पे तनयः स विवस्वतः॥ श्राद्धदेव इति ख्यातो मनुत्वे हरिणाऽर्पितः॥ ॥ ११ ॥ एकदा कृतमालायां कुर्वतो जलतर्पणम्॥ तस्याञ्जल्युदके काचिच्छफर्येकाऽभ्यपद्यत ॥ १२ ॥ सत्यव्रतोऽञ्जलिगतां सह तोयेन भारत॥ उत्ससर्ज नदीतोये शफरीं द्रविडेश्वरः॥१३॥तमाह साऽतिकरुणं महाकारुणिकं नृपम्॥ यादोभ्यो ज्ञातिघातिभ्यो दीनां मां दीनवत्सल॥ कथं विसृजसे राजन् भीतामस्मिन् सरिज्जले॥१४॥ तमात्मनोऽनुग्रहार्थं प्रीत्या मत्स्यवपुर्धरम् ॥ अजानन् रक्षणार्थाय शफर्याः स मनो दधे॥ १५ ॥ तस्या दीनतरं वाक्यमाश्रुत्य स महीपतिः ॥ कलशाप्सु निधायैनां दयालुर्निन्य आश्रमम् ॥ १६ ॥

था तहां ताकी अंजुलीके जलमें कोई एक मच्छी प्राप्त होतीभई ॥ १२ ॥ हे राजन्! सो राजा सत्यव्रत अपने हातकी अंजुलीमें आई मच्छीकू जलसहित नदीके जलमें डारिदेत भयो॥ १३ ॥ महाकरुणावान् सत्यव्रतकें प्रति मछरी बोलतिभई हे दीनवत्सल! जातिकेनके मारणवारे ग्राहनतें डरपी दीन मुझै जलके विषें कैंसें त्यागोहो॥१४॥ मुझे पर अनुग्रहके लिये प्रीतिसै भगवानने मत्स्यरूप धरचोहै,या प्रकार भगवानको न जानकर राजा मछरीकी रक्षाके लियें मन करतभयो॥१५॥ता मछरीको अति दीनतर वाक्य सुनिकरिकै कलशके जलमें धरिकै दयालु राजा अपने आश्रमके विषें

ले आवतभयो ॥ १६ ॥ वह मछली एक रात्रिमेंही कमंडलुमें इतनी बढी कि उसै रहनेको अवकाश न रहा तब सत्यव्रतसै बोली ॥ १७ ॥ हे राजन्! या कमंडलुमें वसिवेकी नहीं इच्छा करूंहूं कोई बडो स्थान बताओ जामें मैं सुखसों वास करों ॥ १८ ॥ सो राजा तहांते मछरीकों लेकैं मटकेके जलमें डुबावतभयो तहां डारी मछरी दो घडीकरिकैं तीनि हात बढति भई और बोली ॥ १९ ॥ हे राजन्! यह स्थान सुखपूर्वक मेरे वसिवेकों नहीं मेरे अर्थ बडो स्थान तू दे मै तैरी शरण आईहूं ॥ २० ॥ तहांते लेकै राजाने सरोवरमें डारी, सो अपने देहके फिरिवेई करिकै संध्याताई बहुत बढतिभई, और बोली हे राजन्! यह जल जलवासी मैरे कल्याणकै अर्थ नहीं होवे है ॥२१॥ हे राजन्! ताते मेरे कल्याणके अर्थ मेरी रक्षाके निमित्त

सा तु तत्रैकरात्रेण वर्धमाना कमण्डलौ ॥ अलब्ध्वात्मावकाशं वा इदमाह महीपतिम् ॥ १७ ॥ नाहं कमण्डलावस्मिन् कृच्छ्रं वस्तुमिहोत्सहे ॥ कल्पयौकः सुविपुलं यत्राहं निवसे सुखम् ॥ १८ ॥ स एनां तत आदाय न्यधादौदञ्चनोदके ॥ तत्र क्षिप्ता मुहूर्त्तेन हस्तत्रयमवर्धत ॥ १९ ॥ न म एतदलं राजन् सुखं वस्तुमुदञ्चनम् ॥ पृथु देहि पदं मह्यं यत्त्वाऽहं शरणं गता ॥ २० ॥ तत आदाय सा राज्ञा क्षिप्ता राजन् सरोवरे ॥ तदावृत्त्यात्मना तोयं महामीनोऽन्ववर्धत ॥ २१ ॥ नैतन्मे स्वस्तये राजन्नुदकं सलिलौकसः ॥ निधेहि रक्षायोगेन ह्रदे मामविदासिनि ॥ २२ ॥ इत्युक्तः सोऽनयन् मत्स्यं तत्र तत्राविदासिनि ॥ जलाशये संमितं तं समुद्रे प्राक्षिपज्झषम् ॥ २३ ॥ क्षिप्यमाणस्तमाहेदमिह मां मकरादयः ॥ अदन्त्यतिबला वीर मां नेहोत्स्रष्टुमर्हसि ॥ २४ ॥ एवं विमोहितस्तेन वदता वल्गुभारतीम् ॥ तमाह को भवानस्मान्मत्स्यरूपेण मोहयन् ॥ २५ ॥

जल जाको न घटे ऐसे स्थानमें मोकों राख ॥ २२ ॥ जब याप्रकार कह्यो तो राजा ता मत्स्यको बडे जलके स्थानमे प्राप्त करत भयो जब सब स्थान भरे पाये तब समुद्रमे डारतभयो ॥२३॥ जब समुद्रमें डारचो तब वह मत्स्य राजासूं यह कहतभयो हे राजन्! या समुद्रके विषें अतिबलात्कारी मकरादिक मोकों भक्षण करी लेंइगे, हे वीर! याते या स्थानमें मोकूं छोडिवेकों नहीं योग्य हो ॥ २४ ॥ याप्रकार सुंदर वाणीनकरिकै कहते मत्स्यसे मोहित कियौ राजा ता मत्स्यसो बोलतभयो, अब राजा सत्यव्रत बोले हे महाराज! तुम कौन हो सो मत्स्यरूपकरिकै मोको मोह उत्पादन करोहो?

ले आवतभयो ॥ १६ ॥ वह मछली एक रात्रिमेंही कमंडलुमें इतनी बढी कि उसै रहनेको अवकाश न रहा तब सत्यव्रतसै बोली ॥ १७ ॥ हे राजन्! या कमंडलुमें वसिवेकी नहीं इच्छा करूंहूं कोई बडो स्थान बताओ जामें मैं सुखसों वास करों ॥ १८ ॥ सो राजा तहांते मछरीकों लेंकैं मटकेके जलमें डुबावतभयो तहां डारी मछरी दो घडीकरिकैं तीनि हात बढति भई और बोली ॥ १९ ॥ हे राजन्! यह स्थान सुखपूर्वक मेरे वसिवेकों नहीं मेरे अर्थ बडो स्थान तू दै मै तैरी शरण आईहूं ॥ २० ॥ तहांते लेकै राजाने सरोवरमें डारी, सो अपने देहके फिरिवेई करिकै संध्याताई बहुत बढतिभई, और बोली हे राजन्! यह जल जलवासी मैरे कल्याणकै अर्थ नहीं होवे है ॥२१॥ हे राजन्! ताते मेरे कल्याणके अर्थ मेरी रक्षाके निमित्त

सा तु तत्रैकरात्रेण वर्धमाना कमण्डलौ ॥ अलब्ध्वात्मावकाशं वा इदमाह महीपतिम् ॥ १७ ॥ नाहं कमण्डलावस्मिन् कृच्छ्रं वस्तुमिहोत्सहे ॥ कल्पयौकः सुविपुलं यत्राहं निवसे सुखम् ॥ १८ ॥ स एनां तत आदाय न्यधादौदञ्चनोदके ॥ तत्र क्षिप्ता मुहूर्त्तेन हस्तत्रयमवर्धत ॥ १९ ॥ न म एतदलं राजन् सुखं वस्तुमुदञ्चनम् ॥ पृथु देहि पदं मह्यं यत्त्वाऽहं शरणं गता ॥ २० ॥ तत आदाय सा राज्ञा क्षिप्ता राजन् सरोवरे ॥ तदावृत्त्यात्मना तोयं महामीनोऽन्ववर्धत ॥ २१ ॥ नैतन्मे स्वस्तये राजन्नुदकं सलिलौकसः ॥ निधेहि रक्षायोगेन ह्रदे मामविदासिनि ॥ २२ ॥ इत्युक्तः सोऽनयन् मत्स्यं तत्र तत्राविदासिनि ॥ जलाशये संमितं तं समुद्रे प्राक्षिपज्झषम् ॥ २३ ॥ क्षिप्यमाणस्तमाहेदमिह मां मकरादयः ॥ अदन्त्यतिबला वीर मां नेहोत्स्रष्टुमर्हसि ॥ २४ ॥ एवं विमोहितस्तेन वदता वल्गुभारतीम् ॥ तमाह को भवानस्मान्मत्स्यरूपेण मोहयन् ॥ २५ ॥

जल जाको न घटे ऐसे स्थानमें मोकों राख ॥ २२ ॥ जब याप्रकार कह्यो तो राजा ता मत्स्यको बडे जलके स्थानमे प्राप्त करत भयो जब सब स्थान भरे पाये तब समुद्रमे डारतभयो ॥२३॥ जब समुद्रमें डार्यो तब वह मत्स्य राजासूं यह कहतभयो हे राजन्! या समुद्रके विषें अतिबलात्कारी मकरादिक मोकों भक्षण करी लेंइगे, हे वीर! याते या स्थानमें मोकूं छोडिवेकों नहीं योग्य हो ॥ २४ ॥ याप्रकार सुंदर वाणीनकरिकै कहते मत्स्यसे मोहित कियौ राजा ता मत्स्यसो बोलतभयो, अब राजा सत्यव्रत बोले हे महाराज! तुम कौन हो सो मत्स्यरूपकरिकै मोको मोह उत्पादन करोहो?

हे राजन्! प्रलयके जलमें त्रिलोकी लीनभये संतें उसी समयके विषें मेरी प्रेरणा करी कोई एक बडी विशाल नौका तुझें प्राप्त होइगी ॥३३॥ सो तुम तबताईं सगरी औषधीनके छोटे बडे बीज लेके सप्तऋषि और सब प्राणीनकरिकैं सहित ॥ ३४ ॥ चली आती उस बडी नावपै चढिकरिकैं विनाखेद निरालोक एक समुद्रमें ऋषिनके तेजकरिकैं तू विचरेंगो ॥ ३५ ॥ बलवान् पवन करिकैं प्रेरणा कीनीं नावकूं ताकें निकट प्राप्त भये मेरे सींगमें वासुकि सर्प करिकैं बांधि दीजो ॥ ३६ ॥ सो मैं ऋषिन सहित तुझे नावसहित समुद्रमें खेचत विचरूंगों जबताईं ब्रह्माकी रात्रि रहेंगी ॥ ३७ ॥ मेरी महिमा, जो ब्रह्मनामसै विख्यात है उसके विषे तुम प्रश्न करैगा पीछे मेरे उत्तर देंनेसै तेरे संदेह दूर हौंगे और मेरे अनुग्रहसै वह ज्ञान तेरे हृदयमें प्रकाश करैगा ॥ ३८ ॥ या प्रकार राजासै कहिकरि भगवान अंतर्हित होतभये, जासमयकों भगवान कहि गये हैं ताईको राजा पैंडो देखत भयो ॥ ३९ ॥ पूर्वको अग्रभागवारे कुश बिछाइकैं पूर्वउत्तरको मुख कर राजऋषि सत्यव्रत मत्स्यरूपी भगवान्के चरणनकों चिंतवन करत भयो और एकाग्रचित्त करिकैं बैठत भयो ॥ ४० ॥ ताके अनंतर मर्यादा छोड वर्षते बडे मेघौंसै बढायो समुद्र सब ओरतें पृथ्वीकों डुबावतसों दीखत भयो ॥ ४१ ॥

त्रिलोक्यां लीयमानायां संवर्ताम्भसि वै तदा ॥ उपस्थास्यति नौः काचिद्विशाला त्वां मयेरिता ॥ ३३ ॥ त्वं तावदोषधीः सर्वा बीजान्युच्चावचानि च ॥ सप्तर्षिभिः परिवृतः सर्वसत्त्वोपबृंहितः ॥ ३४ ॥ आरुह्य महतीं नावं विचरिष्यस्यविक्लवः ॥ एकार्णवे निरालोके ऋषीणामेव वर्चसा ॥ ३५ ॥ दोधूयमानां तां नावं समीरेण बलीयसा ॥ उपस्थितस्य मे शृङ्गे निबध्नीहि महाहिना ॥३६॥ अहं त्वामृषिभिः साकं सहनावमुदन्वति ॥ विकर्षन्विचरिष्यामि यावद्ब्राह्मी निशा प्रभो ॥ ३७ ॥ मदीयं महिमानं च परं ब्रह्मेति शब्दितम् ॥ वेत्स्यस्यनुगृहीतं मे संप्रश्नैर्विवृतं हृदि ॥ ३८ ॥ इत्थमादिश्य राजानं हरिरन्तरधीयत ॥ सोऽन्ववैक्षत तं कालं यं हृषीकेश आदिशत् ॥ ३९ ॥ आस्तीर्य दर्भान् प्राक्कूलान् राजर्षिः प्रागुदङ्मुखः ॥ निषसाद हरेः पादौ चिन्तयन् मत्स्यरूपिणः ॥ ४० ॥ ततः समुद्र उद्वेलः सर्वतः प्लावयन् महीम् ॥ वर्धमानो महामेघैर्वर्षद्भिः समदृश्यत ॥ ४१ ॥

भगवानकी आज्ञाको ध्यान कर एक नाव आती देखतभयो, सो संपूर्ण ओषधी वीरुध वनस्पती लेकैं सप्तऋषिन करिकैं सहित ता नावपै चढत भयो ॥ ४२ ॥ प्रसन्न हो मुनीश्वर राजासों बोलतभये हे राजा! तुम केशव नारायणको ध्यान करो सोई या संकटतें सहाय करैंगे और सुख देंइगे॥४३॥ सो राज़ा सत्यव्रत जब ध्यान करत भयो तब मत्स्यदेव भगवान् एक शृंगको धारण करें सोनेकेसो देह एक लाख योजन लंबे समुद्रमें प्रगट होते भये ॥ ४४ ॥ पेहेले जैसें हरिनें कह्यो है तैसेंई सत्यव्रत राजा तिन भगवान् मत्स्यरूपके सींगमें वासुकि सर्पकी रस्सी करिकैं नावमें बांधिकें मधुसूदन भगवानकी स्तुति करतभयो ॥ ४५ ॥ समुद्रकों तारनेहारे भगवानकी सत्यव्रत राजा संसाररूपी सागर तरिवेकी इच्छासै, गुरुभावकरिकैं मधुसूदन

ध्यायन् भगवदादेशं ददृशे नावमागताम् ॥ तामारुरोह विप्रेन्द्रैरादायौषधिवीरुधः ॥ ४२ ॥ तमूचुर्मुनयः प्रीता राजन् ध्यायस्व केशवम् ॥ स वै नः संकटादस्मादविता शं विधास्यति ॥ ४३ ॥ सोऽनुध्यातस्ततो राज्ञा प्रादुरासीन्महार्णवे ॥ एकशृङ्गधरो मत्स्यो हैमो नियुतयोजनः ॥ ४४ ॥ निबध्य नावं तच्छृङ्गे यथोक्तो हरिणा पुरा ॥ वरत्रेणाहिना तुष्टस्तुष्टाव मधुसूदनम् ॥ ४५ ॥ राजोवाच ॥ अनाद्यविद्योपहतात्मसंविदस्तन्मूलसंसारपरिश्रमातुराः ॥ यदृच्छयेहोपसृता यमाप्नुयुर्विमुक्तिदो नः परमो गुरुर्भवान् ॥ ४६ ॥ जनोऽबुधोयं निजकर्मबन्धनः सुखेच्छया कर्म समीहतेऽसुखम् ॥ यत्सेवया तां विधुनोत्यसन्मतिं ग्रन्थिं स भिन्द्याद्धृदयं स नो गुरुः ॥ ४७ ॥ यत्सेवयाऽग्नेरिव रुद्ररोदनं पुमान् विजह्यान्मलमात्मनस्तमः ॥ भजेत वर्णं निजमेष सोऽव्ययो भूयात्स ईशः परमो गुरोर्गुरुः ॥ ४८ ॥

भगवानकी आठ श्लोकनकरिके स्तुति करैहै ॥ राजा सत्यव्रत बोले अनादि अविद्याकरिकैं नष्ट ज्ञान तममूल संसारके परिश्रममें खेदकरिकैं आतुर मनुष्य अकस्मात् आश्रयकर जिसे प्राप्त होवे हैं, सो तुम हमारे परमगुरु मुक्तिके देनवारे हो ॥ ४६ ॥ यह अज्ञानीजन संग्रहरूपी निजकर्मनकरिकैं बंधेहै, सुखकी इच्छाकरिकै कर्म करैहै और सुखको नहीं पावैंहै जाकी सेवासैं दुःखकी वांछा रूप दुर्बुद्धि नष्ट होजातीहै वे भगवान हमारे गुरु होकर हृदयकी अज्ञानरूपी ग्रंथीकूं काटिडारो ॥ ४७ ॥ जिन भगवानकी सेवाकरिकै पुरुष अज्ञानतें भये मलकूं त्यागन करैहै जैसें अग्निके सेवनतें सुवर्ण अपनें मैलका त्यागन करै है, अपने वर्णको भजैहै, सो तुम अव्यय ईश्वरहो तुम हमारे गुरूनके गुरु हो ॥ ४८ ॥

जिनकी कृपाके दशहजार भागके लेशकूभी देवता गुरु जन तुह्मारी कृपाविना करनेको समर्थ नहीं होते उन ईश्वरकी शरणमें प्राप्त भयो हूं ॥ ४९ ॥ अज्ञानीको अज्ञानी गुरु करना अंधेको अंधेके मार्ग बतानैकी समान है और आप सूर्यरूपी दृष्टिसै सब दिशाओंको देखनेवाले हैं इस कारण अपने स्वरूप जान्नेकी इच्छा करकै हमने आपको गुरु कियाहै कारण कि आप सब इन्द्रियोंके प्रकाशक हो ॥ ५० ॥ मनुष्य मनुष्यनको खोटी मति देते है ताकरिकै दुरत्यय संसारमें यह प्राणी पड़ताहै और आप अव्यय हो सफल ज्ञान देतेहो जा ज्ञान करिकै जन तुमारे पदकूं प्राप्त होतेहै ॥ ५१ ॥ तुम सगरे लोकनके सुहृद प्यारे ईश्वर आत्मा गुरु ज्ञान वांछित सिद्ध हो तोभी अंध बुद्धिवारे मनुष्य हृदयमें वर्तमान तुम्हे नहीं जानें हैं ॥ ५२ ॥ देवतानमें श्रेष्ठ उत्तम ईश्वर तुम्हारी ज्ञानके लियें मै शरण प्राप्त भयोहूं, हे भगवन्! परमार्थप्रकाश करनवारे वचन करिकै हृदयकी गांठि खोलो अहंकारादिक काटो अपनो स्वरूप प्रकाश करो ॥ ५३ ॥ शुकदेवजी बोले हे राजन्! मत्स्यरूपी भगवान आदिपुरुष प्रलयके जलमें विहार करते या प्रकार कहत राजा सत्यव्रतकूं तत्वको उपदेश करतभये ॥ ५४ ॥ सांख्ययोगकी क्रियासै युक्त दिव्य मत्स्यपुराण सत्यव्रत राजाके प्रति कहतभये ॥ ५५ ॥

न यत्प्रसादायुतभागलेशमन्ये च देवा गुरवो जनाः स्वयम् ॥ कर्तुं समेताः प्रभवन्ति पुंसस्तमीश्वरं त्वां शरणं प्रपद्ये ॥ ४९ ॥ अचक्षुरन्धस्य यथाग्रणीः कृतस्तथा जनस्याविदुषोऽबुधो गुरुः ॥ त्वमर्कदृक् सर्वदृशां समीक्षणो वृतो गुरुर्नः स्वगतिं बुभुत्सताम् ॥ ५० ॥ जनो जनस्यादिशतेऽसतीं मतिं यया प्रपद्येत दुरत्ययं तमः ॥ त्वं त्वव्ययं ज्ञानममोघमञ्जसा प्रपद्यते येन जनो निजं पदम् ॥ ५१ ॥ त्वं सर्वलोकस्य सुहृत् प्रियेश्वरो ह्यात्मा गुरुर्ज्ञानमभीष्टसिद्धिः ॥ तथापि लोको न भवन्तमन्धधीर्जानाति सन्तं हृदि बद्धकामः ॥ ५२ ॥ तं त्वामहं देववरं वरेण्यं प्रपद्य ईशं प्रतिबोधनाय ॥ छिन्ध्यर्थदीपैर्भगवन् वचोभिर्ग्रन्थीन् हृदय्यान् विवृणु स्वमोकः ॥ ५३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तवन्तं नृपतिं भगवानादिपूरुषः ॥ मत्स्यरूपी महाम्भोधौ विहरंस्तत्त्वमब्रवीत् ॥ ५४ ॥ पुराणसंहितां दिव्यां सांख्ययोगक्रियावतीम् ॥ सत्यव्रतस्य राजर्षेरात्मगुह्यमशेषतः ॥ ५५ ॥

ऋषीनकरिकै सहित राजा भगवानको कह्यो संदेहरहित सनातन ब्रह्म आत्माको तत्व सुनत भयो ॥ ५६ ॥ पहले भई प्रलयके अंतमें उठे ब्रह्माके अर्थ हरि हयग्रीव असुरको मारिकैं वेद लाइ देतभये ॥ ५७ ॥ सत्यव्रत राजा ज्ञानविज्ञान करिकैं युक्त विष्णु भगवान्‌की कृपासे या कल्पके विषें वैवस्वत मनु होतभयो ॥ ५८ ॥ राजऋषिनके विषें योग्य सत्यव्रत बडे महात्मा राजाकों और माया करिकैं मत्स्यावतारधारी भगवान्‌को संवाद कह्यो, इस बड़े आख्यानके सुन्नेसै मनुष्य सब पापोंसे छूट जाते हैं ॥५९॥ हरि भगवान्‌के मत्स्यरूपी अवतारके चरित्रको नित्यही जो मनुष्य कीर्तन

अश्रौषीदृषिभिः साकमात्मतत्त्वमसंशयम् ॥ नाव्यासीनो भगवता प्रोक्तं ब्रह्म सनातनम् ॥५६॥ अतीतप्रलयापाय उत्थिताय स वेधसे ॥ हत्वाऽसुरं हयग्रीवं वेदान् प्रत्याहरद्धरिः ॥ ५७ ॥ स तु सत्यव्रतो राजा ज्ञानविज्ञानसंयुतः ॥ विष्णोः प्रसादात् कल्पेऽस्मिन् आसीद्वैवस्वतो मनुः ॥ ५८ ॥ सत्यव्रतस्य राजर्षेर्मायामत्स्यस्य शार्ङ्गिणः ॥ संवादं महदाख्यानं श्रुत्वा मुच्येत किल्बिषात् ॥ ५९ ॥ अवतारो हरेर्योऽयं कीर्तयेदन्वहं नरः ॥ संकल्पास्तस्य सिध्यन्ति स याति परमां गतिम् ॥ ६० ॥ प्रलयपयसि धातुः सुप्तशक्तेर्मुखेभ्यः श्रुतिगणमुपनीतं प्रत्युपादत्त हत्वा ॥ दितिजमकथयद्यो ब्रह्म सत्यव्रतानां तमहमखिलहेतुं जिह्ममीनं नतोऽस्मि ॥ ६१ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे अष्टमस्कन्धे मत्स्यावतारचरितानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ अष्टमस्कन्धः समाप्तः ॥ ॥

करेगे या माहात्म्यकरिकैं तिनके मनके संपूर्ण संकल्प सिद्ध होंइगें, और परम श्रेष्ठ गतिकूं प्राप्त होंइगे ॥ ६० ॥ प्रलयके जलमें सुप्तशक्ति ब्रह्माके मुखतें निकरे वेदके गण दैत्यको मारिकरिकै लाकर देते भये और सत्यव्रतराजाकों ज्ञान उपदेश करतभये, सबके कारण मायासै मत्स्यरूप धारण करनेहारे हरि भगवान्‌कों मैं नमस्कार करोंहों (१) ॥ ६१ ॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायां पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रेण संशोधितायामष्टमस्कन्धे चतुर्विंशोध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ इत्यष्टमः स्कन्धः सम्पूर्णः ॥

दोहा—श्रीव्रजचंद्र मुकुंदको ध्यान हृदयमें धारि ॥ शुद्धकियो स्कंध यह निजमतिके अनुसार ॥ १ ॥ व्रजवासिनके प्राणधन हृदयरत्न व्रजबाल ॥ जन ज्वालाप्रसादपर कृपा करहु नन्दलाल ॥ २ ॥ मुरलीधर राधारमण श्रीहरि चरण मनाय ॥ सब टीका शोधन करी लखहिं संत सुख पाय ॥ ३ ॥

127

१ परन्तु पल्लेझाड कथा न सुनै कि जैसे एक लाला कथा सुनने जायाकरतेथे, सो एक दिन उनको छोराहु कथा सुनवे चलोगयो, वा दिन कथामें यह प्रसंग आयो कि गौ ब्राह्मण अपराधहू करै तौहू इन्हैं दंड देवो उचित नहीं, छोरा सुनकर दुकानपर आय बैठो, हलवाईकी दुकान थी जलेबीके थालमें गौने मूंह डारादियो, बा छोराने कही कथामें गउके मारनेको बडो पाप लिखोहै, यासे वा गैयासों कछु न कही, पाछेसे लाला आये, और गैयाको जलेबी खातेदेख बडेक्रोधसे पुत्रसे बोले मनै नाय करचो जात, गैया जलेबी खाये जाय है वाने कही कथामें तौ गऊको हाथ छुआनोभी मनेलिखोहै, यह बोले मूर्ख ! पल्लेझाड कथा सुन्योकर, उसने कही लालाजी पल्लेझाड कथा कैसी होयहै ? तब यह बोले पण्डितके सामने अंगरखेको दामन बिछाकर बैठगये और जो कुछ पंडितजीके मुखसैं निकरी सो अब अंगोंके पल्लाहीपर लई जब होचुके तौ पल्लाझाड चलदिये बेटाने कही अब ऐसेही करूंगा ॥

॥ अथाच्युताष्टकम् ॥

अच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्णदामोदरं वासुदेवं भजे ॥ श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकीनायकं रामचन्द्रं हरिम् ॥ १ ॥ अच्युतं केशवं सत्यभामाधवं माधवं श्रीधरं राधिकाराधनम् ॥ इन्दिरामन्दिरं चेतसा सुन्दरं देवकीनन्दनं नन्दजं संदधे ॥ २ ॥ विष्णवे जिष्णवे शङ्खिने चक्रिणे रुक्मिणीरागिणे जानकीजानये ॥ बल्लवीवल्लभायाजितायात्मने कंसविध्वंसिने वंशिने ते नमः ॥ ३ ॥ कृष्ण गोविन्द हे राम नारायण श्रीपते वासुदेवार्चित श्रीनिधे ॥ अच्युतानन्त हे माधवाधोक्षज द्वारकानायक द्रौपदीरक्षक ॥४॥ राक्षसक्षोभितः सीतया शोभितो दण्डकारण्यभुक्पुण्यताकारणम् ॥ लक्ष्मणेनान्वितो वानरैः सेवितोऽगस्तिना पूजितो राघवः पातु माम् ॥ ५ ॥ धेनुकारिष्टकानिष्टकृद्द्वेषिणां केशिहा कंसहृद्वंशिकावादकः ॥ पूतनाशोषकः सूरजाखेलनो बालगोपालकः पातु मां सर्वदा ॥ ६ ॥ वैद्युतद्योतकासंस्फुरद्वाससा प्रावृडम्भोदवत्प्रोल्लसद्विग्रहम् ॥ वैजयन्तीप्रभाशोभितोरस्थलं लोहिताङ्घ्रिद्वयं वारिजाक्षं भजे ॥७॥ कुञ्चितैः कुन्तलैर्भ्राजमानाननं रत्नमौलिं लसत्कुण्डलं गण्डयोः॥ हारकेयूरिणं किङ्किणीजाज्वलं किङ्किणीमञ्जुलं श्यामलं भावये ॥ ८ ॥ अच्युतस्याष्टकं यः पठेत् प्रत्यहं प्रेमतः प्रत्यहं सर्वतः सन्नहम् ॥ सर्वतः सुन्दरं कर्तृविश्वंभरस्तस्य वश्यो हरिर्जायते सत्वरम् ॥९॥

॥ इति श्रीमदच्युताष्टकं संपूर्णम् ॥

इदं पुस्तकं कल्याणनगर्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन गङ्गाविष्णुना स्वकीये “ लक्ष्मीवेंकटेश्वर ”
मुद्रणयन्त्रालयेऽङ्कित्वा प्रकाशितम् ॥ संवत् १९५२, शके १८१७. कल्याण-मुंबई.

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते अष्टमस्कन्धः स० ॥

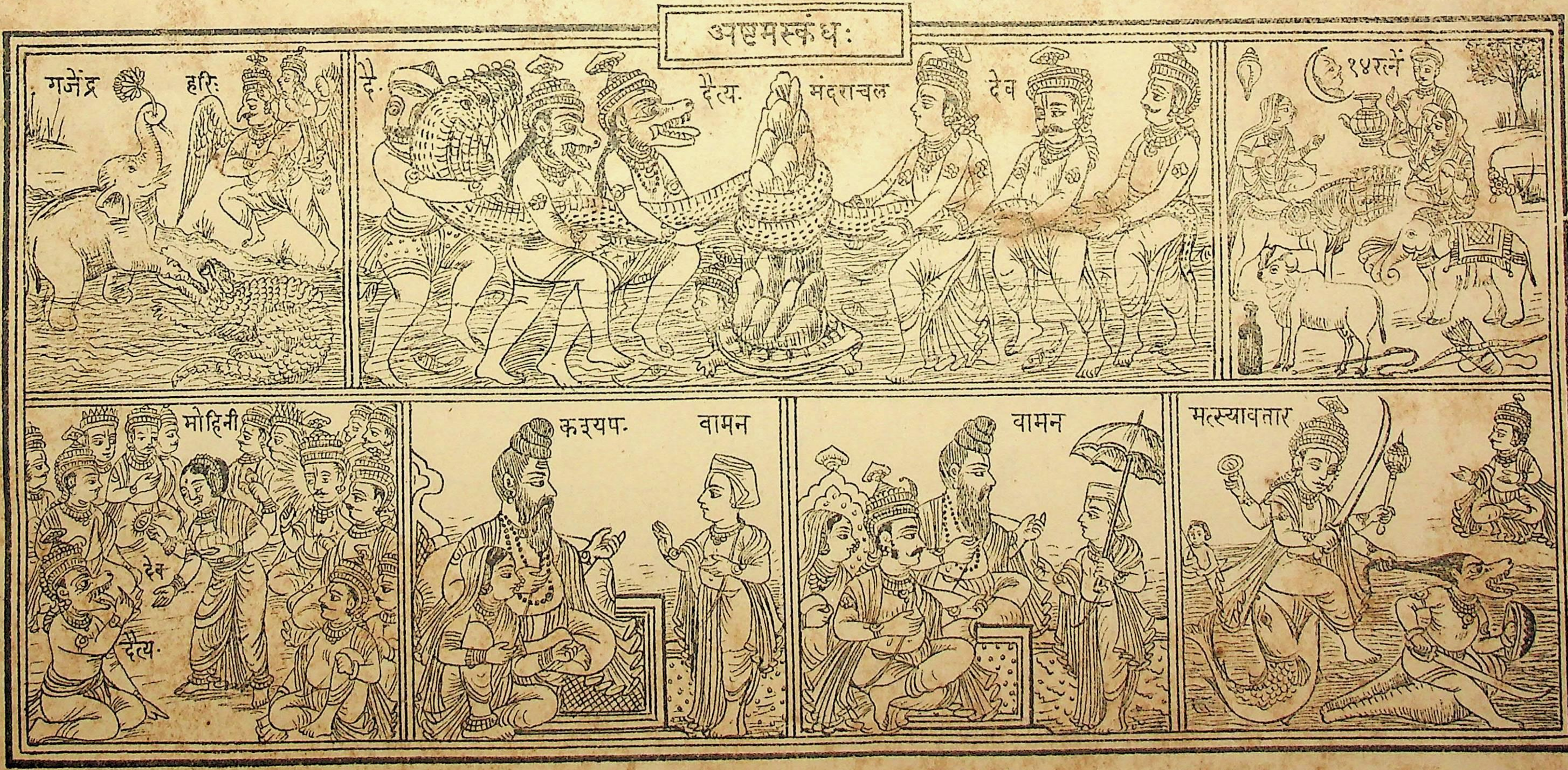
अष्टमस्कंधः
गजेंद्र
हरिः
दै.
दैत्य.
मंदराचल
देव
१४रत्नें
मोहिनी
देव
दैत्य.
कश्यप.
वामन
वामन
मत्स्यावतार

॥ अथ भाषाटीकायुतश्रीमद्भागवते नवमस्कन्धप्रारम्भः ॥

यह ग्रन्थ सन् १८६७ के ऐक्ट २५ के अनुसार रजिष्टरी करके सब हक्क ग्रन्थाधिकारीने अपने स्वाधीन रक्खा है.

भाव

3

[illegible] वो देवभाव

S

नवम स्कंधः

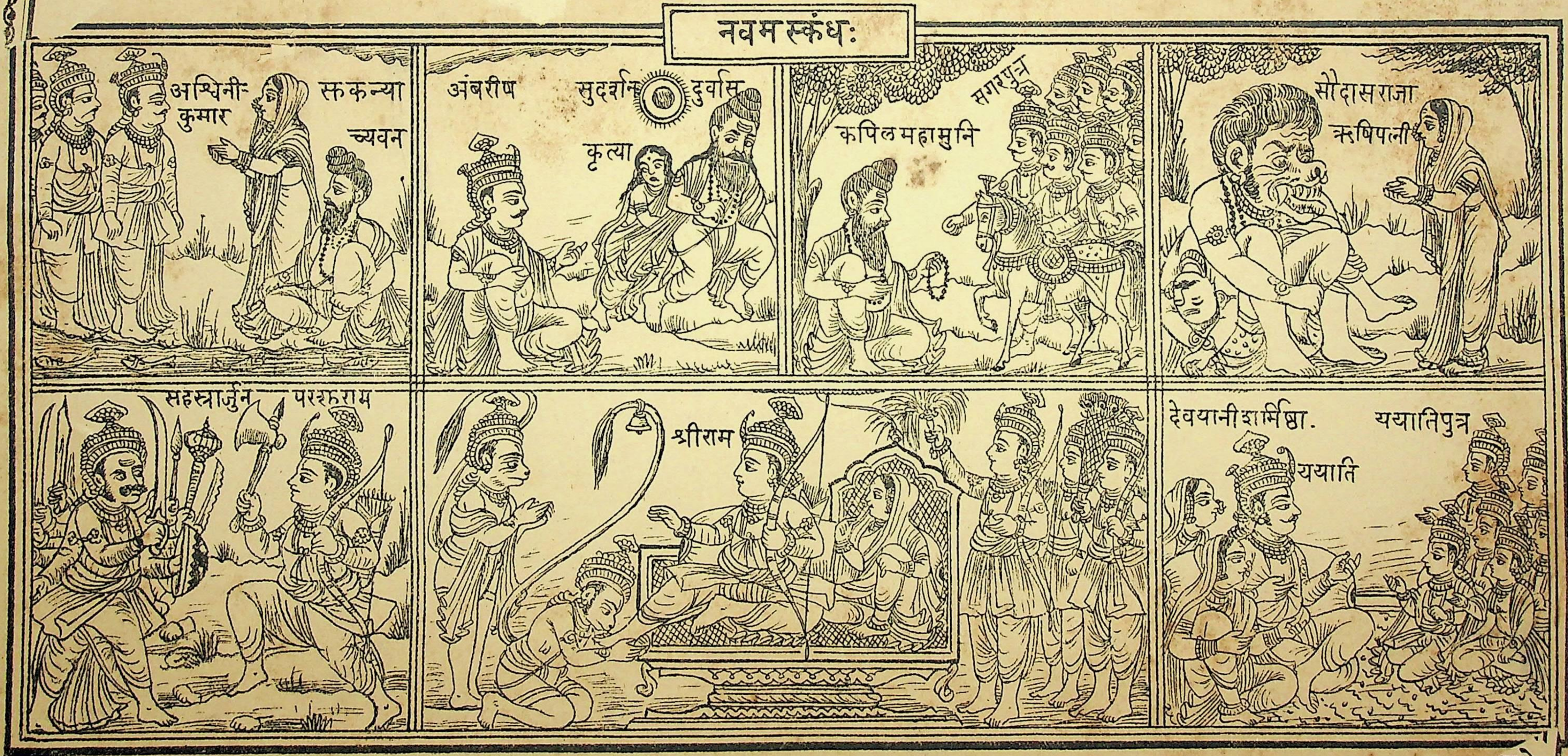
अश्विनीकुमार
सुकन्या
च्यवन
अंबरीष
सुदर्शन
दुर्वासा
कृत्या
कपिल महामुनि
सगरपुत्र
सौदास राजा
ऋषिपत्नी
सहस्रार्जुन
परशुराम
श्रीराम
देवयानी
शर्मिष्ठा.
ययातिपुत्र
ययाति

6

भयो,

भये चरित्र

मनको कहे

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ गुण गुणकी प्राप्तिके लिये जिसे वर्णन करैं है उस करुणानिधि परमानंद माधवकी मैं शरण हूं ॥ १ ॥ नवमस्कंधमें चौवीस अध्यायन करिकै वैवस्वत मनुके बेटानको वंश श्रीकृष्णकी सत्कीर्तिके प्रसंगके लिये वर्णन करे हैं ॥ २ ॥ ऐसै अष्टमस्कंधमें सत्व सोपाधिक सद्धर्म कर्त्ता पालक वक्तातें आदिलेके मन्वादिकको निरूपणकरिकैं कह्यो ॥ ३ ॥ सद्धर्मसे शुद्ध सत्वको अंतरंग ईश्वरकी सत् कथाते सूर्य चन्द्रमा वंशसे संगति भई सो अब कहे है ॥ ४ ॥ तहां तेरह अध्याय करिकै सूर्यवंश वर्णन करैंगे, ताते परे ग्यारह अध्यायन करिकै चंद्रमाको वंश कहैंगे ॥ ५ ॥ तहां पहिले अध्यायमें वैवस्वतमनुके पुत्रनको वंश चन्द्रमाके वंशके प्रवेशके कहिवेके लिये सुद्युम्नकों स्त्रीभाव कहें है ॥६॥ राजा परीक्षित बोले हे भ-

श्रीगणेशाय नमः ॥ राजोवाच ॥ मन्वन्तराणि सर्वाणि त्वयोक्तानि श्रुतानि मे ॥ वीर्याण्यनन्तवीर्यस्य हरेस्तत्र कृतानि च ॥ १ ॥ योऽसौ सत्यव्रतो नाम राजर्षिर्द्रविडेश्वरः ॥ ज्ञानं योऽतीतकल्पान्ते लेभे पुरुषसेवया ॥ २ ॥ स वै विवस्वतः पुत्रो मनुरासीदिति श्रुतम् ॥ त्वत्तस्तस्य सुताश्चोक्ता इक्ष्वाकुप्रमुखा नृपाः ॥ ३ ॥ तेषां वंशं पृथक्क ब्रह्मन्वंश्यानुचरितानि च ॥ कीर्तयस्व महाभाग नित्यं शुश्रूषतां हि नः ॥ ४ ॥ ये भूता ये भविष्याश्च भवन्त्यद्यतनाश्च ये ॥ तेषां नः पुण्यकीर्तीनां सर्वेषां वद विक्रमान् ॥ ५ ॥

गवन् ! तुह्मारे कहे सब मन्वन्तर मैनें सुनें, और अनन्तर हरिनें मन्वंतरनमें जो पराक्रम किये ते सुने ॥ १ ॥ और राजर्षि द्रविड देशको राजा सत्यव्रत नाम कह्यो सो वीतेभये कल्पके अंतमें हरिकी सेवाकरिके ज्ञानको प्राप्तभयो यह हमने तुमसें सुनी ॥ २ ॥ वही सूर्यको पुत्र मनु होत भयो, और जाके इक्ष्वाकु आदि पुत्र होतभए सो सुने ॥ ३ ॥ अब हे ब्रह्मन् ! ताके पुत्र इक्ष्वाकुते आदिलेकें राजनको न्यारो न्यारो वंश और वंशमें भये चरित्र कहो, हे महाभाग ! हम सुनिवेकी इच्छा करैं है॥४॥ जे राजा ह्वैगये और जो जो होंइगे तथा जे वर्तमान हैं ऐसे पुण्यकीर्ति राजानके पराक्रमनको कहो ॥५॥

दोहा–मोरमुकुटकी लटक शुभ चटकसुवसनसुरंग । तिरछानैननकी मटक लाजतलखतअनंग ॥ १ ॥

सूतजी कहै हैं हे शौनक ! ऐसें ब्रह्मवादीनकी सभामें राजा परीक्षितने पूछे तव परम [illegible]
शुकदेवजी कहै हैं हे परंतप ! मनुको वंश संक्षेपतें सुनो, विस्तारतें सौं वर्षहू करिकें कहिवेको शक्य नही है ॥ ७ ॥ पर अवर भूतनक [illegible]
मपुरुष श्रीनारायणसें कल्पान्तमें यह विश्व होत भये, ताके शिवाय और कछु न होत भयो ॥ ८ ॥ ता नारायणकी नाभिते हिरण्मय कमलकोश
होत भयो तामें हे महाराज ! चारि मुखको ब्रह्मा होतभयो ॥ ९ ॥ ब्रह्माके मनते मरीचि होत भयो, मरीचिके कश्यप भयो, कश्यपते दक्षकी बेटी

सूत उवाच ॥ एवं परीक्षिता राज्ञा सदसि ब्रह्मवादिनाम् ॥ पृष्टः प्रोवाच भगवान् शुकः परमधर्मवित् ॥ ६ ॥ श्रीशुक
उवाच ॥ श्रूयतां मानवो वंशः प्राचुर्येण परंतप ॥ न शक्यते विस्तरतो वक्तुं वर्षशतैरपि ॥ ७ ॥ परावरेषां भूतानामा-
त्मा यः पुरुषः परः ॥ स एवासीदिदं विश्वं कल्पान्तेऽन्यन्न किंचन ॥ ८ ॥ तस्य नाभेः समभवत् पद्मकोशो हिरण्मयः ॥
तस्मिन् जज्ञे महाराज स्वयंभूश्चतुराननः ॥ ९ ॥ मरीचिर्मनसस्तस्य जज्ञे तस्यापि कश्यपः ॥ दाक्षायण्यां ततोदि-
त्यां विवस्वानभवत् सुतः ॥ १० ॥ ततो मनुः श्राद्धदेवः संज्ञायामास भारत ॥ श्रद्धायां जनयामास दश पुत्रान्स
आत्मवान् ॥ ११ ॥ इक्ष्वाकुनृगशर्यातिदिष्टधृष्टकरूषकान् ॥ नरिष्यन्तं पृषध्रं च नभगं च कविं विभुः ॥ १२ ॥
अप्रजस्य मनोः पूर्वं वसिष्ठो भगवान्किल ॥ मित्रावरुणयोरिष्टिं प्रजार्थमकरोत्प्रभुः ॥ १३ ॥ तत्र श्रद्धा मनोः
पत्नी होतारं समयाचत ॥ दुहित्रर्थमुपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता ॥ १४ ॥ प्रेषितोऽध्वर्युणा होता यत्तया सुसमा-
हितः ॥ हविषि व्यचरत्तेन वषट्कारं गृणन्द्विजः ॥ १५ ॥

अदितिमें सूर्य पुत्र होत भयो ॥ १० ॥ हे भारत ! सूर्यते संज्ञामें श्राद्धमनु देव भयो, मनु श्रद्धामें दशपुत्र उपजावत भयो ॥ ११ ॥ जैसै इक्ष्वाकु,
नृग, सरियाति, दिष्ट, धृष्ट, करूषक, नरिष्यंत, पृषध्र, नभग, कवि ये दश पुत्र भये ॥ १२ ॥ पहले अपुत्र मनुकूं वसिष्ठ भगवान पुत्रके लिये मित्रा-
वरुणकी इष्टी करावत भये ॥ १३ ॥ तब दूधको आहार करनवारी मनुकी स्त्री श्रद्धा होताके निकट आईके प्रणाम करिकें मेरे बेटी होई ऐसें याच-
ना करत भई ॥ १४ ॥ अध्वर्युसे प्रेरित होता कन्याको ध्यान करत पूजत भयो, वाणिन करिके वषट्कार कहते वौषट् उच्चारण करत भयो ॥ १५ ॥

होताके व्यभिचारसै इलानाम कन्या होती भई, ताइ देखिकैं अप्रसन्न मन हो मनु गुरुनसों बोल्यो ॥ १६ ॥ हे भगवन् ! यह कहा भयो ब्रम्हवादीनको कर्म विपरीत होतभयो, वेदके मंत्रमें ऐसें विकार मतिहोउ बडो कष्ट है ॥ १७ ॥ तुम मंत्रके जाननवारे योग्य हो तप करिकें पाप रहितहो संकलपको विषमभाव कैसे भयो, कहा देवतानमें हूं झूंठ प्रवृत्त ह्वै गयो ॥ १८ ॥ ता राजाको वचन सुनिकै ज्ञानवान वसिष्ठजी होताको व्यतिक्रम जानिकै सूर्यके पुत्रते बोलत भये ॥ १९ ॥ हे राजन् ! तेरे होताके व्यभिचारते यह संकलपको विषमभाव भयो, तोऊ अपनें तेजकारिकै सुंदरपुत्र सिद्ध

होतुस्तद्व्यभिचारेण कन्येला नाम साऽभवत् ॥ तां विलोक्य मनुः प्राह नातिहृष्टमना गुरुम् ॥ १६ ॥ भगवन् किमिदं जातं कर्म वो ब्रह्मवादिनाम् ॥ विपर्ययमहो कष्टं मैवं स्याद्ब्रह्मविक्रिया ॥ १७ ॥ यूयं मन्त्रविदो युक्तास्तपसा दग्धकिल्बिषाः ॥ कुतः संकल्पवैषम्यमनृतं विबुधेष्विव ॥ १८ ॥ तन्निशम्य वचस्तस्य भगवान्प्रपितामहः ॥ होतुर्व्यतिक्रमं ज्ञात्वा बभाषे रविनन्दनम् ॥ १९ ॥ एतत् संकल्पवैषम्यं होतुस्ते व्यभिचारतः ॥ तथाऽपि साधयिष्ये ते सुप्रजस्त्वं स्वतेजसा ॥ २० ॥ एवं व्यवसितो राजन् भगवान् सुमहायशाः ॥ अस्तौषीदादिपुरुषमिलायाः पुंस्त्वकाम्यया ॥ २१ ॥ तस्मै कामवरं तुष्टो भगवान् हरिरीश्वरः ॥ ददाविलाऽभवत्तेन सुद्युम्नः पुरुषर्षभः ॥ २२ ॥ स एकदा महाराज विचरन् मृगयां वने ॥ वृतः कतिपयामात्यैरश्वमारुह्य सैन्धवम् ॥ २३॥ प्रगृह्य रुचिरं चापं शरांश्च परमाद्भुतान् ॥ दंशितोऽनुमृगं वीरो जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २४ ॥ स कुमारो वनं मेरोरधस्तात्प्रविवेश ह ॥ यत्रास्ते भगवान् रुद्रो रममाणः सहोमया ॥ २५ ॥

करेंगे ॥ २० ॥ ऐसे विचारकर यशस्वी भगवान् वसिष्ठ इलाके पुरुष करिवेके लिये आदि पुरुष भगवानकी स्तुति करतभये ॥ २१ ॥ ईश्वर हरि प्रसन्न व्हैके कामवर देतभये, ता वरके प्रभावसे इला पुरुषनमें श्रेष्ठ सुद्युम्न नाम होतभयो ॥ २२ ॥ हे महाराज ! एक दिन सुद्युम्न वनमें शिकार खेलिवेके लिये, कितनेक मंत्रीनकूं संगलेकें सिंधुदेशके घोडापर चढिकें ॥ २३ ॥ रुचिर धनुष बाण अद्भुत लेकैं कवच पहिरिकें मृगके पीछें उत्तर दिशाको जातभयो ॥ २४ ॥ सो राजकुमार सुमेरुके नीचे वनमें प्रवेश करतभयो जा वनमें महादेव पार्वतीके संग

शत्रुनको मारनवारो सुद्युम्न ता वनमें प्रवेश करतही आपेकूं स्त्रीरूप देखतभयो और हे नृप ! घोडाकूं घोडी देखत भयो ॥ २६ ॥ [illegible] मनुष्य आपकूं स्त्रीरूप परस्पर देखत विमन होतभये ॥२७॥ यह सुनके राजा पूछैहै हे भगवन् ! ऐसो गुण देशको कैसेहै कौननें कियो, यह प्रश्न कहो हमारे बडा कौतूहल है॥२८॥ शुकदेवजी कहैहैं एकसमय ऋषीश्वर व्रतधारी अपनी कान्तिओंसे दिशाओंके अन्धकार दूर करते हुए महादेवजीको देखिवेको आवतभये ॥ २९ ॥ विना वस्त्र अंबिकादेवी उन्हें देखिकैं लज्जित हो भर्त्ताके गोदतें उठिकैं वेगिही नीवी (वस्त्रको) पहरतभई ॥ ३० ॥

तस्मिन् प्रविष्ट एवासौ सुद्युम्नः परवीरहा ॥ अपश्यत् स्त्रियमात्मानमश्वं च वडवां नृप ॥ २६ तथा तदनुगाः सर्वे आत्मलिङ्गविपर्ययम् ॥ दृष्ट्वा विमनसोऽभूवन् वीक्ष्यमाणाः परस्परम् ॥२७॥ राजोवाच ॥ कथमेवंगुणो देशः केन वा भगवन् कृतः ॥ प्रश्नमेनं समाचक्ष्व परं कौतूहलं हि नः॥२८॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा गिरिशं द्रष्टुमृषयस्तत्र सुव्रताः॥ दिशो वितिमिराभासाः कुर्वन्तः समुपागमन् ॥ २९ ॥ तान् विलोक्याम्बिका देवी विवासा व्रीडिता भृशम् ॥ भर्तुरङ्कात् समुत्थाय नीवीमाश्वथ पर्यधात् ॥ ३० ॥ ऋषयोऽपि तयोर्वीक्ष्य प्रसङ्गं रममाणयोः॥ निवृत्ताः प्रययुस्तस्मान्नरनारायणाश्रमम् ॥ ३१ ॥ तदिदं भगवानाह प्रियायाः प्रियकाम्यया ॥ स्थानं यः प्रविशेदेतत् स वै योषिद्भवेदिति ॥ ३२ ॥ तत ऊर्ध्वं वनं तद्वै पुरुषा वर्जयन्ति हि ॥ सा चानुचरसंयुक्ता विचचार वनाद्वनम् ॥ ३३ ॥ अथ तामाश्रमाभ्याशे चरन्तीं प्रमदोत्तमाम् ॥ स्त्रीभिः परिवृतां वीक्ष्य चकमे भगवान् बुधः ॥ ३४ ॥ सापि तं चकमे सुभ्रूः सोमराजसुतं पतिम् ॥ स तस्यां जनयामास पुरूरवसमात्मजम् ॥ ३५ ॥

ऋषीभी उमाशिवको रमण प्रसंग देखिकैं ता स्थानमें स्त्रीप्रसंगरहित बद्रिकाश्रममें नरनारायणके आश्रमको जातभये ॥ ३१ ॥ प्यारीकी प्रिय कामना करिकै श्रीशिव यह कहतभये कि जो या स्थानमें प्रवेश करैगो, सो निश्चय स्त्रीरूप व्है जाइगो, तादिनतें वा वनमें पुरुष नहीं जायहैं ॥ ३२ ॥ फिर पूर्वोक्त सुद्युम्नको चरित्र कहे है अनुचरन करिकै सहित सो स्त्री वा वनते दूसरे वनमें विचरति भई ॥ ३३ ॥ ताके अनंतर आश्रमके समीप सखियोंके संगमें विचरती उस उत्तम स्त्रीको देखिकैं बुध चाहना करतभयो ॥ ३४ ॥ सोभी सुभ्रु चंद्रमाके बेटा बुधकूं अपनो पति

10

अध्यायकरकै नीचे भुवनवर्णन करैहैं, कोई आचार्य ऐसै कहिते हैं कि सूर्यसे दशहजार योजन नीचै राहु नक्षत्रकी नांई विचरै है, जो वो देवभाव और ग्रहपनको प्राप्त होतो भयो ये सब भगवतकी कृपाकी बात है, परंतु वैसे वो आप सब असुरोंमें नीच है, सिंहिकाराक्षसीको सुत है अयोग्य है, हे परीक्षित् ! वाको जन्मकर्म अष्टमस्कन्धमैं कहैंगे ॥ १ ॥ राहुके अधोभाग रहकर सूर्यनारायण तपते हैं और वे यहभी कहते हैं कि सूर्यमंडलका विस्तार दशसहस्र योजन चंद्रमण्डलका द्वादशसहस्र योजन परन्तु राहुमंडल इन दोनोंसे बड़ा तेरहसहस्र योजन है पर्वमें सूर्यचंद्रमापर धावमान

यददस्तरणेर्मण्डलं प्रतपतस्तद्विस्तरतो योजनायुतमाचक्षते द्वादशसहस्रं सोमस्य त्रयोदशसहस्रं राहोर्यः पर्वणि तद्व्यवधानकृद्वैरानुबन्धः सूर्यचन्द्रमसावभिधावति ॥ २ ॥ तन्निशम्योभयत्रापि भगवता रक्षणाय प्रयुक्तं सुदर्शनं नाम भागवतं दयितमस्त्रं तत्तेजसा दुर्विषहं मुहुः परिवर्तमानमभ्यवस्थितो मुहूर्तमुद्विजमानश्चकितहृदय आरादेव निवर्तते तदुपरागमिति वदन्ति लोकाः ॥३ ॥ ततोऽधस्तात् सिद्धचारणविद्याधराणां सदनानि तावन्मात्र एव ॥ ४ ॥

होताहै उनके किये वैरकूं याद करताहै ॥ २ ॥ या बातको सुनकर उन दोनोंकी रक्षाके लिये भगवान् सुदर्शननाम भागवतोंके प्यारे अस्त्रका प्रयोग करतेहैं इसका तेज असह्य है और वह सदा घूमता रहताहै उस चक्रको घूमता देखकर राहु सूर्यचंद्रमाके पकडनेको एक मुहूर्तमात्रतक खडा होताहै और पीछेसे डरकर दूरसे पीछेको लौट जाताहै इस प्रकार सूर्यचंद्रमाके अन्तरमें जितनी देर राहु खड़ा रहताहै उतनेही कालको लोग ग्रहण कहतेहैं ॥ ३ तिनते नीचै सिद्ध चारण विद्याधर लोगोंके स्थान उतनेही प्रमाण अर्थात् दशहजार योजन नीचे हैं ॥ ४ ॥

शंका–राहु और केतु, सूर्य चन्द्रमाको अत्यन्त पीडा देते हैं और इन दोनों सूर्य चन्द्रमाकी रक्षा करनेके लिये भगवान् चक्र सुदर्शनको लेकर आते हैं, वारवारके आने जानेमें चक्र सुदर्शनकोभी महाकष्ट होताहै, फिर ऐसे दुःख देनेवाले राहु केतुको भगवान् वासुदेव क्यों नहीं मारकर विध्वंस करते जो फिर किसीको दुःख न हो ? इसका उत्तर जो कोई दे कि राहु केतु अमृत पी गयेथे, इसलिये यह किसीके मारनेसे नहीं मरसक्ते तो सत्य है, परन्तु अमृतभी तो भगवान्हीका बनाया है जिसको भगवान् मारना चाहते हैं तौ उसकी रक्षा भगवानभी नहीं कर सक्ते ॥

उत्तर–भगवान्ने सुदर्शन चक्रसे केतुको माराथा, तबसे राहु केतु सुदर्शनचक्रको स्पर्श करनेसे पवित्र होगया, इसलिये भगवान् सुदर्शन चक्रसे पवित्र राहु केतुको नहीं मार सक्ते, दोनोंके शरीरमें सुदर्शन चक्रका जो चिन्ह उपस्थित है उसको देखकर भगवान् राहुके ऊपर प्रसन्न होगये ॥

तिनते नीचे यक्ष राक्षस पिशाच प्रेत भूतगणनको विहारको आंगण अंतरिक्ष है, (१) जहांतक हंस भास शिकरे गरुड आदि पक्षिराज उडैं है॥५॥६॥भूमिके ऊपरको जो कुछ हो सो हमने वर्णन करो,अब धरतीसे नीचै सात भूविवर हैं,एकएक दसहज्जार योजनके मध्यमै विस्तारसें रचे हैं,अतल वितल सुतल तलातल महातल रसातल पाताल ये हैं, इनके मार्ग होयकर भूमिके भीतर जानेकी ठौर है ॥ ७ ॥ इन विलोंमें स्वर्गसेभी अधिक कामभोग ऐश्वर्य आनंद विभूतियों करकै सुंदर समृद्ध भवन उद्यान बाग विहार स्थानोंमें दैत्य दानव कद्रुसुत नित्य प्रसन्न हो अनुरक्त स्त्री पुत्र बंधु सुहृद नौकर सेवकों

ततोऽधस्तात् यक्षरक्षःपिशाचप्रेतभूतगणानां विहाराजिरमन्तरिक्षं यावद्वायुः प्रवाति यावन्मेघा उपलभ्यन्ते ॥५॥ ततोऽधस्ताच्छतयोजनान्तर इयं पृथिवी यावद्धंसभासश्येनसुपर्णादयः पतत्रिप्रवरा उत्पतन्तीति॥६॥उपवर्णितं भूमेर्यथा संन्निवेशावस्थानमवनेरप्यधस्तात् सप्त भूविवरा एकैकशो योजनायुतान्तरेणायामविस्तारेणोपक्लृप्ता अतलं वितलं सुतलं तलातलं महातलं रसातलं पातालमिति॥७॥ एतेषु हि बिलस्वर्गेषु स्वर्गादप्याधिककामभोगैश्वर्यानन्दविभूतिभिः सुसमृद्धभवनोद्यानाक्रीडविहारेषु दैत्यदानवकाद्रवेया नित्यप्रमुदितानुरक्तकलत्रापत्यबन्धुसुहृदनुचरा गृहपतय ईश्वरादप्यप्रतिहतकामा मायाविनोदा निवसन्ति॥८॥येषु महाराज मयेन मायाविना विनिर्मिताः पुरो नानामणिप्रवरप्रवेकविरचितविचित्रभवनप्राकारगोपुरसभाचैत्यचत्वरायतनादिभिर्नागासुरमिथुनपारावतशुकसारिकाकीर्णकृत्रिमभूमिभिर्विवरेश्वरगृहोत्तमैः समलंकृताश्चकासति ॥ ९ ॥

सहित रहते और आनंद करतेहैं अधिकाईसे ईश्वरसे उनका कोई अभिलाष कभी अधूरा नहीं जांता वह सदाही मायासे आनंद उत्सव करते हैं॥८॥ हे महाराज ! इन सब पातालौंमें मायासै मयदानवकी बनाई हुई श्री अनेक पुरियैं सदा दीप्तिमान रहती हैं वहांके भवन प्राकार गोपुर चित्रसारी अटारी सुचित स्थान सभा चौराहे और बड़ेबड़े स्थान मणियौंसै बने शोभित होरहे हैं वहां विवरेश्वर गणौंके बड़ेबड़े गृहोंके भूभाग नाग असुर कपौतौंके जोड़े तोते मैना आदि पक्षियौंसें परिपूर्ण हैं इस कारण यह सब पाताल मानो इन सब पाताल वस्तुऔंसै सजकर विराज रहे हैं ॥ ९ ॥

वहांको वाटिकाओंमें अनेक प्रकारके पुष्प लतायें पुष्पौंसे पूरित ऊंचे ऊंचे वृक्षौंसे आलिंगन कर रही है उन वृक्षौंको शाखायें कोमल हरि लाल कोपलौं और फूल फूलौंके भारसै नीचेको झुकी जातीहै निर्मल जलसे भरे सरोवरोंके बीचमें अनेक प्रकारके पक्षियोंके जोडोंकी शोभा हो रही है मछलियोंके उछलनेसे उनके जलोंमें महाशोभा और हलचली होरही है उन जलाशयोंमें कमल कुमुद कुवलय कल्हार नील उत्पल लालकमलादिके वनौंमें विहार करनेहारे पक्षियोंसे आकुल मनोहर अनेक प्रकारके शब्दोंसै इन्द्रियोंको महासुख मिलता है ॥ १० ॥ जहां दिनरातके काल विभागको

उद्यानानि चातितरां मनइन्द्रियानन्दिभिः कुसुमफलस्तवकसुभगकिसलयावनतरुचिरविटपविटपिनां लताङ्गाऽलिङ्गितानां श्रीभिः समिथुनविविधविहंगमजलाशयानाममलजलपूर्णानां झषकुलोल्लङ्घनक्षुभितनीरनीरजकुमुदकुवलयकह्लारनीलोत्पललोहितशतपत्रादिवनेषु कृतनिकेतनानामेकविहाराकुलमधुरविविधस्वनादिभिरिन्द्रियोत्सवैरमरलोकश्रियमतिशयितानि॥१०॥यत्र ह वाव न भयमहोरात्रादिभिः कालविभागैरुपलक्ष्यते ॥११॥ यत्र हि महाहिप्रवरशिरोमणयः सर्वे तमः प्रबाधन्ते ॥ १२ ॥ न वा एतेषु वसतां दिव्यौषधिरसरसायनान्नपानस्नानादिभिराधयो व्याधयो वलीपलितजरादयश्च देहवैवर्ण्यदौर्गन्ध्यस्वेदक्लमग्लानिरिति वयोऽवस्थाश्च भवन्ति ॥१३॥न हि तेषां कल्याणानां प्रभवति कुतश्च न मृत्युर्विना भगवत्तेजश्चक्रापदेशात् ॥ १४ ॥ यस्मिन्प्रविष्टेऽसुरवधूनां प्रायः पुंसवनानि भयादेव स्रवन्ति पतन्ति च ॥ १५ ॥

भय नहीं है ॥ ११ ॥ जहां महासर्पराज शिरकी मणियोंकरकै सब अंधकार दूर करै हैं ॥ १२ ॥ इनमें वसनेवालोंको दिव्य औषधिरस अन्नपान स्नान आदि करकै मानसी व्यथा ऊपरके दुःख देहविवर्ण बुढापन शरीरशिथिल दुर्गंधी पशीना परिश्रम ग्लानि अवस्थाविशेष नहीं होय है ॥ १३ ॥ भगवत्तेजसुदर्शनचक्रके विना वहांके कल्याणरूप वासियोंको और कहांसेभी भय नहीं होय है ॥ १४ ॥ जिस सुदर्शनचक्रके प्रविष्ट होयवेसे प्रायकरकै असुरनकी वधूनके गर्भ भयके मारे झरकर गिर जातेहैं “ आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोरिति ” ॥ १५ ॥

याके उपरांत अतललोकमें मयको पुत्र असुर बलराजा निवास करते हैं, जिस मयदैत्यकी रचीभई छियानवे माया कोई एक मायावी लोग अबभी धारण करते हैं जाके जंभाई लेनेसे मुखते तीन स्त्रीके गण उत्पन्नभए, स्वैरिणी, कामिनी, पुंश्चली, ये स्त्रियें अपने बिलमें प्रविष्ट पुरुषको हाटक नामक सुवर्णके रससे सिद्धकर अपने विलासके योग्य अवलोकन मुसकान बोलन शरीरसें मिलनो इत्यादिक करकै अपने मनके अनुसार रमण करावै हैं, जिन स्त्रीनके सुखसे युक्त पुरुष ये मानैहैं कि हम सिद्ध है, ईश्वर है दशहज्जार महागजोंके बलके समान अपने आत्माको मान मदांधकीनांई

अथातले मयपुत्रोऽसुरो बलो निवसति येन ह वा इह सृष्टाः षण्णवतिर्मायाः काश्चनाद्यापि मायाविनो धारयन्ति॥ यस्य च जृम्भमाणस्य मुखतस्त्रयः स्त्रीगणा उदपद्यन्त स्वैरिण्यः कामिन्यः पुंश्चल्य इति या वै बिलायनं प्रविष्टं पुरुषं रसेन हाटकाख्येन साधयित्वा स्वविलासावलोकनानुरागस्मितसंलापोपगूहनादिभिः स्वैरं किल रमयन्ति यस्मिन्नुपयुक्ते पुरुष ईश्वरोऽहं सिद्धोऽहमिति अयुतमहागजबल आत्मानमभिमन्यमानः कत्थते मदान्ध इव ॥ १६ ॥ ततोऽधस्ताद्वितले हरो भगवान् हाटकेश्वरः स्वपार्षदभूतगणावृतः प्रजापतिसर्गोपबृंहणाय भवो भवान्या सह मिथुनीभूत आस्ते यतः प्रवृता सरित्प्रवरा हाटकी नाम भवयोर्वीर्येण यत्र चित्रभानुर्मातरिश्वना समिध्यमान ओजसा पिबति ॥ तन्निष्ठ्यूतं हाटकाख्यं सुवर्णं भूषणेनासुरेन्द्रावरोधेषु पुरुषाः सह पुरुषीभिर्धारयन्ति ॥ १७ ॥

होयके कथन करै है, उन्मत होजाय है ॥ १६ ॥ ताते नीचे वितललोकमें हाटकेश्वर शिव हर भगवान् ईश्वर अपने भूतगणपार्षदोंकरकै सहित प्रजापतिकी सृष्टि बढायवेको भव भवानींसाहित मिथुनीभावको प्राप्त होय रहे हैं, जहांते सारिताश्रेष्ठ प्रवृत्त भई है, हाटकी नाम है, शिवके वीर्यसै भई है, जहां चित्रभानु नामक अग्नि पवनके उत्तेजनसे इस वीर्यको पराक्रम द्वारा पीजाता है और पीकर जब उगलता है उससै हाटक नामक सुवर्ण असुरनमें इंद्र पुरुष अपनी स्त्रियोंकरकै अपने मेहेलोंमें वा सुवर्णके भूषण धारै हैं ॥ १७ ॥

तातें नीचे सुतललोकमें उदार यशवारो महायशस्वी विरोचनको पुत्र बलि रहता है भगवान् इंद्रके प्रिय करवेकी इच्छा करकै अदितिमें वामनरूप धार उसके सब लोक हरलीने फिर भगवत्कृपा करके वा लोकमें प्रवेश कर इंद्रादिकोभी दुर्लभ लक्ष्मीसहित स्वधर्मसे पूजा योग्य तिन भगवान् वामनजीका आराधन करता हुआ स्वधर्मसे आजतक वहां निवास करता है॥१८॥सब जीवसमूहोंके जीवभूत रूप परमात्मा वासुदेव अत्यंत तीर्थतम सुपात्र जब प्राप्त भए तब परमश्रद्धा परम आदरसे सावधान मन कर सम्यक् प्रकारसे पृथ्वीका दान कर दिया जो साक्षात् मोक्षको द्वार है जो भूमिदान करनेको यही फल नहीं है कि या बिलके स्थानको ऐश्वर्य प्राप्त होय याको औरभी अधिक फल है यासे भूमिदान समान और दान नहीं

ततोऽधस्तात्सुतल उदारश्रवाः पुण्यश्लोको विरोचनात्मजो बलिर्भगवता महेन्द्रस्य प्रियं चिकीर्षमाणेनादितेर्लब्धकायो भूत्वा बटुवामनरूपेण पराक्षिप्तस्वलोकत्रयो भगवदनुकम्पयैव पुनः प्रवेशित इन्द्रादिष्वविद्यमानया सुमृमृद्धया श्रियाऽभिजुष्टः स्वधर्मेणाराधयंस्तमेव भगवन्तमाराधनीयमपगतसाध्वस आस्तेऽधुनापि ॥ १८॥ नो एवैतत्साक्षात्कारो भूमिदानस्य यत् तद्भगवत्यशेषजीवनिकायानां जीवभूतात्मभूते परमात्मनि वासुदेवे तीर्थतमे सर्वजीवनियन्तर्यात्मारामे पात्र उपपन्ने परया श्रद्धया परमादरसमाहितमनसा संप्रतिपादितस्य साक्षादपवर्गद्वारस्य यद्बिलनिलयैश्वर्यम् ॥ १९ ॥ यस्य ह वाह क्षुत्पतनप्रस्खलनादिषु विवशः सकृन्नामाभिगृणन् पुरुषः कर्मबन्धनमञ्जसा विधुनोति यस्य हैव प्रतिबाधनं मुमुक्षवोऽन्यथैवोपलभन्ते ॥ २० ॥ तद्भक्तानामात्मवतां सर्वेषामात्मन्यात्मद आत्मतयैव ॥ २१ ॥ न वै भगवान् नूनममुष्यानुजग्राह ॥ यदुत पुनरात्मानुस्मृतिमोषणं मायामयभोगैश्वर्यमेवातनुतेति ॥ २२ ॥

है॥ १९ ॥ जिन श्रीमन्नारायणको नाम छीकते गिरते पडते इत्यादि दुःखस्थानमें विवश होयकर एकवारभी ग्रहण करै तौ पुरुष कर्मबंधनको नाश करै है जिसके तोडनेके मनुष्य और उपाय कर अनेक दुःख उठाते हैं ॥ २० ॥ वे प्रभु आत्मज्ञानी भक्तोंको आत्माका स्वरूप देते हैं विवेकियोंको विवेक तथा अत्यन्त प्रिय भक्तोंको पृथ्वीदान करनेका फल मुक्ति होनाही उचित है ॥ २१ ॥ यथार्थमें बलिराजापै भगवानने अनुग्रह नहीं किया कारण कि मायामय राज्यका ऐश्वर्य जो आत्माके स्वरूपका ध्वंस करनेहारा है वह बलिको दिया “ वासुदेवे मनो यस्य

जपहोमार्चनादिषु॥तस्यान्तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फलमिति"॥२२॥श्रीभगवानके मनमें ये आई कि मांगवेके विना और उपायसे राजा बलि वशमें न होयगो मांगवेको ये एक उपाय करकै सब लेके शरीरमात्र याको बाकी छोड वरुणकी पाशीसै छुड़ाय कर पर्वतकी गुफामेंसे निकासो, या लोकमें बसायो, तब वो ये कहितोभयो ॥ २३ ॥ इन्द्रने यद्यपि अपने विचारके निमित्त गुरुको स्थापित किया है तथापि वह अपने सत्य स्वार्थमें चतुर नहीं है कारण कि भगवानहीको मांगलेता उसके बदले त्रिलोकीनाथको मेरे पास भेज कर भगवानसे राज्य सुखकी प्रार्थना की, एक मन्वंतरमें जाते रहनेवाला राज्य इन्द्रको इतने परिश्रमसै प्राप्त हुआ वह महावेगवान कालचक्रके सामने क्या पदार्थ है ॥ २४ ॥ इस कारण हमारे दादा

यद्भगवताऽनधिगतान्योपायेन याच्ञाछलेनापहृतस्वशरीरावशेषितलोकत्रयो वरुणपाशैश्च संप्रति मुक्तो गिरिदर्यां चापविद्ध इति होवाच ॥ २३ ॥ नूनं बतायं भगवानर्थेषु न निष्णातो योऽसाविन्द्रो यस्य सचिवो मन्त्राय वृत एकान्ततो बृहस्पतिस्तमतिहाय स्वयमुपेन्द्रेणात्मानमयाचत ॥ आत्मनश्चाशिषो नो एव तद्दास्यमिति गम्भीरवयसः कालस्य मन्वन्तरपरिवृत्तं कियल्लोकत्रयमिदम् ॥ २४ ॥ यस्यानुदास्यमेवास्मत्पितामहः किल वव्रे नतु स्वपित्र्यं यदुताकुतोभयं पदं दीयमानं भगवतः परमिति भगवतोपरते खलु स्वपितरि ॥ २५ ॥ तस्य महानुभावस्यानुपथममृजितकषायः को वास्मद्विधः परिहीणभगवदनुग्रह उपजिगमिषतीति ॥ २६ ॥ अथ तस्यानुचरितमुत्तरस्माद्विस्तरिष्यते यस्य भगवान् स्वयमखिलजगद्गुरुर्नारायणो द्वारि गदापाणिरवतिष्ठते निजजनानुकम्पितहृदयो येनाङ्गुष्ठेन पदा दशकन्धरो योजनायुतायुतं दिग्विजय उच्चाटितः ॥ २७ ॥

प्रहलादने भगवानसै दासपनहीकी भिक्षा मांगी थी जब प्रह्लादके पिता हिरण्यकश्यप मरे तब भगवान उन्हें उनके पिताका कंटकहीन राज दैने लगे उसके लैनेमें कुछ भयकी संभावना नहीं थी तौभी यह भगवानसै अलग है ऐसा विचार कर हमारे दादाने उसे ग्रहण न किया ॥ २५ ॥ परंतु हम सरीखे पुरुष कि जिनके रागादि क्षीण नहीं हुए ऐसे लोग जिनपर भगवानकी कृपा नहीं प्रह्लादजीके मार्ग पर चलनेकी कैसे इच्छा करैं॥२६॥ वा बलिको चरित्र आगै अष्टमस्कंधमें विस्तार करैंगे, जा राजाबलिके द्वारपर अखिल जगद्गुरु भगवान नारायण गदा लिये आप बैठे हैं अपने निज

जनोंपर अनुकंपित हृदयवारे जिन श्रीहरिने पांवके अंगुष्ठसे दिग्विजयको आएभए रावणको दशहज्जार कोसपर फैंक दियो ॥ २७ ॥ तिनसे नीचै तलातलमें त्रिपुराधिपति मयनामक दानवेंद्र रहताहै जब भगवान् त्रिपुरारिनें त्रिलोकीके मंगल करवेकी इच्छाकरकै वाके त्रिपुर जराय दिये पीछै कृपाकरकै उसै यह स्थान दे दिया जहां वह सब मायावीनको आचार्य महादेव करकै रक्षित सुदर्शनचक्रको भय न करकै आनन्दसे वसे है ॥ २८ ॥ इसके नीचे महातलमें कद्रूके पुत्र अनेक शिरके सर्प क्रोधवशनामक गण कुहक तक्षक कालिय सुषेण आदि प्रधान महाफणवारे श्रीभगवत्के वाहन गरुड़जीसे सदा उद्विजमान रहते हैं तौभी किसी समय अपनी स्त्री पुत्र सुहृद कुटुम्बके संग करकै प्रमत्त होय विहार करै हैं ॥ २९ ॥ ताते

ततोऽधस्तात्तलातले मयो नाम दानवेन्द्रस्त्रिपुराधिपतिर्भगवता पुरारिणा त्रिलोकीशंचिकीर्षुणा निर्दग्धस्वपुरत्रयस्तत्प्रसादाल्लब्धपदो मायाविनामाचार्यो महादेवेन परिरक्षितो विगतसुदर्शनभयो महीयते ॥ २८ ॥ ततोऽधस्तान्महातले काद्रवेयाणां सर्पाणां नैकशिरसां क्रोधवशो नाम गणः कुहकतक्षककालियसुषेणादिप्रधाना महाभोगवन्तः पतत्रिराजाधिपतेः पुरुषवाहादनवरतमुद्विजमानाः स्वकलत्रापत्यसुहृत्कुटुम्बसङ्गेन क्वचित् प्रमत्ता विहरन्ति ॥२९॥ ततोऽधस्ताद्रसातले दैतेया दानवाः पणयो नाम निवातकवचाः कालेया हिरण्यपुरवासिन इति विबुधप्रत्यनीका उत्पत्त्या महौजसो महासाहसिनो भगवतः सकललोकानुभावस्य हरेरेव तेजसा प्रतिहतबलावलेपा बिलेशया इव वसन्ति ॥ ये वै सरमयेन्द्रदूत्या वाग्भिर्मन्त्रवर्णाभिरिन्द्राद्बिभ्यति ॥ ३० ॥

नीचै रसातलमें दैतेय दानव पणि नामक निवातकवच कालेया और हिरण्यपुरवासी रहते हैं ये देवनके वैरी स्वभावसे महापराक्रमी महासाहसी है परन्तु सब लोकमें प्रभाववारे भगवान् श्रीहरिके तेजसेही इनका तेज और अभिमान हृत होजाताहै वह बिलमें शयन करवेवारेकीसी नांई वसैहै, इंद्रकी दूती सरमाके वाणीरूप मंत्र वर्णोंसे इंद्रते डरै है ॥ “ ऐसै वैदिक आख्यान है पणिनाम दैत्यौंनें जब गायैं छिपालीं तब इन्द्रने एक सरमा नाम देवशुनी उनके ढूंढनेको भेजी सन्धि करनेकी इच्छासै दैत्योंने उससै कहा तेरी क्या इच्छा है तब संधिकी इच्छा न करके सरमा इन्द्रकी

18

स्तुति करती असुरोंसे कठोर वचनसे बोली कि हे पणियो ! इन्द्रके मारे भए तुम सोओगे वे यह वचन सुन डरते भए, वो वा समयको वाणीरूप मंत्र ये है कि ॥ " हता इन्द्रेण पणयः शयध्वमित्यादिमंत्रोस्तीति " ॥ ३० ॥ ताते नीचे पातालमें नागलोकके पति वासुको आदि शंख कुलिक महाशंख श्वेत धनंजय धृतराष्ट्र शंखचूड कंबलाश्वतर देवदत्तादिक महाभोगवारे महाक्रोधी वसैं हैं जिनके पांच सात दश शत सहस्र शिरके फणोंमें महामणि जटित हैं, महाप्रकाश हैं, पातालके छिद्रके अंधकार समूहको अपनी कांति करकै नाश करैं हैं " इन सर्पोंकी जातको एक महाधनी नाग या मनुष्य लोकमें रहै सो एक ब्राह्मण रोज वाय दूध प्याय आवै, मोहर ले आवै, ऐसे बहुत दिन होगए वो जगन्नाथयात्राकों गयो, छोरासे कहिगयो सर्पको दूध प्याय आइयो, छोरा रोज ऐसै करैं एक दिन बोले कि या सांपकों मार सब मोहर लेचलूं, रोज रोज वृथा आनो पडै हैं, वाही दिन तो याने

ततोऽधस्तात् पाताले नागलोकपतयो वासुकिप्रमुखाः शङ्खकुलिकमहाशङ्खश्वेतधनंजयधृतराष्ट्रशङ्खचूडकम्बलाश्वतरदेवदत्तादयो महाभोगिनो महामर्षा निवसन्ति तेषामु ह वै पञ्चसप्तदशशतसहस्रशीर्षाणां फणासु विरचिता महामणयो रोचिष्णवः पातालविवरतिमिरनिकरं स्वरोचिषा विधमन्ति ॥ ३१ ॥ इति श्रीभा० म० पञ्चम० अतलादिबिलवर्णनं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तस्य मूलदेशे त्रिंशद्योजनसहस्रान्तर आस्ते या वै कला भगवतस्तामसी समाख्याताऽनन्त इति सात्वतीया द्रष्टृदृश्ययोः संकर्षणमहमित्यभिमानलक्षणं यं संकर्षणमित्याचक्षते ॥ १ ॥

सांपके मूडमें डंडा मारो वाई समय सांपने छोराको काट्यो वाही विरिया पिता आय छोरा लेकर सांपकी बांबीपै जाय स्तुति करी, तो वो सर्पराज बोले ॥ दोहा ॥ चित्त फटै जा मीतसें, जुरै न कोटि उपाव ॥ तुह्मै पुत्रको शोक हैं, हमैं शीसको घाव ॥ १ ॥ ये सुन विप्र घर गए ॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषा० पञ्चमस्कन्धे अतलादिस्वर्गे बिले ये निवसन्ति तेषां वर्णनं मर्यादानिरूपणं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि पातालके मूलदेशमें तीसहज्जार योजनमें भगवानकी तामसी कला स्थित है उसै अनंत कहैं यह अहंकारके अधिष्ठाता देवता हैं तंत्रवेत्ता इनको तथा भगवद्भक्त इनको संकर्षण कहा करते हैं इसका कारण यह है कि अहं अभिमान जो मायाका चिन्ह है उस अहंकार

द्वारा वह द्रष्टा और दृश्यको खेंचते अर्थात् एकमें मिलाते हैं ॥ १ ॥ जिन भगवान् अनंतमूर्ति सहस्रशिरवारे शेषजीके एक शिरके ऊपर धरोभयो ये सब भूमंडल एकसरसौंकी समान मालूम पडै है ॥ २ ॥ कालकरकै जब या सब विश्वके संहार करवेकी इच्छा करैहै, तो क्रोधसे कुटिल रुचिर घूमतीभई भ्रूसे संकर्षणनाम रुद्रके एकादशव्यूह जिनके तीन नेत्र तीन शिखा त्रिशूल उठाएभये उत्पन्न होते है जैसे भगवान्के चतुर्व्यूह अवतार हैं तैसै शेषजीके एकादश रुद्र व्यूह अवतार हैं ॥ ३ ॥ जिनके चरणकमलयुगल लाल विशाल नखमणि खंडमण्डलमें सर्पोंके पति एकांतभक्तियोगसे

यस्येदं क्षितिमण्डलं भगवतोऽनन्तमूर्तेः सहस्रशिरस एकस्मिन्नेव शीर्षणि ध्रियमाणं सिद्धार्थ इव लक्ष्यते ॥२॥ यस्य ह वा इदं कालेनोपसंजिहीर्षतोऽमर्षविरचितरुचिरभ्रमद्भ्रुवोरन्तरेण संकर्षणो नाम रुद्र एकादशव्यूहस्त्र्यक्षस्त्रिशिखं शूलमुत्तम्भयन्नुदतिष्ठत् ॥ ३ ॥ यस्याङ्घ्रिकमलयुगलारुणविशदनखमणिखण्डमण्डलेष्वहिपतयः सह सात्वतर्षभैरेकान्तभक्तियोगेनावनमन्तः स्ववदनानि परिस्फुरत्कुण्डलप्रभामण्डलमण्डितगण्डस्थलान्यतिमनोहराणि प्रमुदितमनसः खलु विलोकयन्ति ॥४॥ यस्यैव हि नागराजकुमार्य आशिष आशासानाश्चार्वङ्गवलयविलसितविशदविपुलधवलसुभगरुचिरभुजरजतस्तम्भेष्वगरुचन्दनकुङ्कमपङ्कानुलेपेनावलिम्पमानास्तदभिमर्शनोन्मथितहृदयमकरध्वजावेशरुचिरललितस्मितास्तदनुरागमदमुदितमदविघूर्णितारुणाऽवलोकनयनवदनारविन्दं सव्रीडं किल विलोकयन्ति ॥ ५ ॥ स एव भगवाननन्तोऽनन्तगुणार्णव आदिदेव उपसंहृतामर्षरोषवेगो लोकानां स्वस्तय आस्ते ॥ ६ ॥

प्रणाम कर दमकतेभये कुंडलप्रभासे शोभित गंडस्थलसे मनोहर अपने मुखके प्रतिबिम्बको महाआनंदित मनसे उनकी मणियौंमें देखते हैं ॥ ४ ॥ नागकन्याए विविध सुखकी इच्छासै जिन शेष भगवानके कंकणसै शोभित स्वच्छ सुंदर विशाल उज्ज्वल रुचिर भुजारूपी चांदीके स्तंभोमें अगर लालचंदन केशरपंक लगानेके समय उनके छूतेही हृदयमें विकार उत्पादक कामदेवके उत्पन्न होनेसै परम लज्जासै मंदमंद हास्य करती हुई उनके मुखको देखती हैं जो कि उनका मुख प्रेम और मदसै आनंदित तथा मदघूर्णित रक्ततायुक्त करुणामय दृष्टिवाला है ॥ ५ ॥ सोई भगवान् अनंत-

20

अनंतगुणार्णव आदिदेव शेषजी क्रोध दूरकर लोकनके मंगलके अर्थ स्थित हैं ॥ ६ ॥ सुर असुर सर्प सिद्ध गंधर्व विद्याधर मुनिगणौंकरकै सदा ध्यान योग्य है सदा मदसे मुदित विकारको प्राप्त विह्वल आनन्दभरे नेत्र हैं सुंदर ललितमुखके अमृतसमान वचनसें अपने पार्षददेवतानके यूथोंके पतीनकौ भगवत्तत्वका उपदेश करते हैं नीलवर्णके वस्त्र धारण किये कानमें एक कुंडल विराजमान सुभग और सुन्दर अपना हाथ हलके ऊपर धरे क्षुद्रघंटिका पहरे हैं यह महानुभाव शेषजी इन्द्रका हाथी जैसे सुवर्णकी वरत धारण करकै शोभित होतेहै ऐसैही जिसकी कांति कभी न्यून नहीं होती और नई तुलसीके सुगन्धभरे मकरंदसे मदविह्वल होते हुए भौरोंके मधुर गानसै शोभायुक्त वैजयन्ती मालाको धारण करते हैं ॥ ७ ॥ जो कोई

ध्यायमानः सुरासुरोरगसिद्धगन्धर्वविद्याधरमुनिगणैरनवरतमदमुदितविकृतविह्वललोचनः सुललितमुखरिकाऽमृतेनाप्यायमानः स्वपार्षदविबुधयूथपपतीनपरिम्लानरागनवतुलसिकामोदमध्वासवेन माद्यन्मधुकरव्रातमधुरगीतश्रियं वैजयन्तीं स्वां वनमालां नीलवासा एककुण्डलो हलककुदि कृतसुभगसुन्दरभुजो भगवान् माहेन्द्रो वारणेन्द्र इव काञ्चनीं कक्षामुदारलीलो बिभर्ति ॥ ७ ॥ य एष एवमनुश्रुतो ध्यायमानो मुमुक्षूणामनादिकालकर्मवासनाग्रथितमविद्यामयं हृदयग्रन्थिं सत्वरजस्तमोमयमन्तर्हृदयं गत आशु निर्भिनत्ति तस्यानुभावान् भगवान् स्वायंभुवो नारदः सह तुम्बरुणा सभायां ब्रह्मणः संश्लोकयामास ॥ ८ ॥ उत्पत्तिस्थितिलयहेतवोऽस्य कल्पाः सत्वाद्याः प्रकृतिगुणा यदीक्षयाऽऽसन् ॥ यद्रूपं ध्रुवमकृतं यदेकमात्मन् नानाधात् कथमु ह वेद तस्य वर्त्म ॥ ९ ॥

याको सुनै ध्यान करै तो मुमुक्षुनको अनादि कालकी कर्मवासनासे ग्रसीभई अविद्यामय हृदयकी गांठ सतोगुण रजोगुण तमोगुणको हृदयके भीतर प्राप्त होयकर शीघ्र नाश करै है, तिन शेषजीको प्रभाव भगवान् स्वयंभूपुत्र श्रीनारदजी तुंबरु गंधर्वसहित ब्रह्माकी सभामें श्लोकोंसै गावते हैं ॥८॥ उत्पत्ति पालन नाश सत्वादिक कल्पप्रकृतिके गुण जिनकें कटाक्षसै अपने कार्य करनैको समर्थ हुए जिनका स्वरूप अनादि और अनंत है जिन्हौने एक मात्र वस्तु स्वरूप होकर आत्मामें अनेक प्रकारके प्रपंच लगादिये हैं उनपर ब्रह्म शेष भगवानके तत्वको यह लोग कैसे जान सक्ता है ॥ ९ ॥

जिनसे यह सत् असत् प्रगट होताहै और जो हमसे भक्तजनोंके ऊपर प्रसन्न होकर विशुद्ध सत्वमूर्ति धारण करतेहैं अपने भक्तजनोंका मन वश
करनेके लिये जिनको करीहुई लीलाओंसे महाबलवान पराक्रमी सिंह शिक्षा पातेहै ऐसे परम उदार अनंत बलवान सहस्र शिरवाले शेषभगवानको
त्यागकर और किसकी आशा करैं ॥ १० जिनका नाम औरके मुखसे सुनकर आरत अथवा पतित मनुष्य अकस्मात् अथवा हँसीसे एकवारभो
उच्चारणकर लेताहै तौ उसके और सुननेवाले पुरुषोंके सब पाप नाशकर देताहै उन शेषभगवानको छोडकर मुमुक्षु जन और किसकी शरण
जाय ॥ ११ ॥ जिन सहस्रशिरवारेके मूंडपर पर्वत नदी समुद्र जीवसहित भूगोल अणुवत मालुम पडै है, जो अनंत है जिनके पराक्रमको कोई नही

मूर्तिं नः पुरुकृपया बभार सत्वं संशुद्धं सदसदिदं विभाति यत्र ॥ यल्लीलां मृगपतिराददेऽनवद्यामादातुं स्वजनमनांस्युदारवीर्यः
॥१०॥ यन्नाम श्रुतमनुकीर्तयेदकस्मादार्तो वा यदि पतितः प्रलम्भनाद्व वा ॥ हन्त्यंहः सपदि नृणामशेषमन्यं
कं शेषाद्भगवत आश्रयेन्मुमुक्षुः ॥ ११ ॥ मूर्धन्यर्पितमणुवत् सहस्रमूर्ध्नो भूगोलं सगिरिसरित्समुद्रसत्त्वम् ॥
आनन्त्यादनिमितविक्रमस्य भूम्नः को वीर्याण्यधिगणयेत्सहस्रजिह्वः ॥ १२ ॥ एवंप्रभावो भगवाननन्तो दुरन्तवीर्योरुगुणानुभावः
॥ मूले रसायाः स्थित आत्मतन्त्रो यो लीलया क्ष्मां स्थितये बिभर्ति ॥१३॥ एता ह्येवेह नृभिरुपगन्तव्या
गतयो यथाकर्मनिर्मिताः यथोपदेशमनुवर्णिताः कामान् कामयमानैः ॥ १४ ॥

गिन सक्ता जो समर्थ है सहस्रजिह्वायुक्त है उनके वीर्योंकी गिनती कौन करसकै है ॥ १२ ॥ भगवान अनंतको ऐसो प्रभाव है जिनको कोई न जाने
है वह अनन्त बलवान स्वतंत्र और अनेक गुण प्रभाव युक्त है पाताल मूलमें विराजमान हो लोकोंके हितके निमित्त लीलासे पृथ्वीको धारण करते हैं
उनका आधार कोई नहीं यह आपहीं अपने आधार हैं ॥ १३ ॥ इतनीही मनुष्योंके जायवे योग्य गति है, सो जैसै कर्म करैं है तैसी निर्माण करी है,
सो जैसी ही तैसी हमने कही, जैसी कामना चाहै उन्है तैसी मिलै है ॥ १४ ॥

हे राजन्! प्रवृत्ति मार्गमें लगेभए पुरुषकों धर्मके विपाककी ऊंची नीची समान गति इतनीही है तुमने जो प्रश्न कीनो तैसो हमने कह्यो अब और कहा कहै " परंतु या प्रवृत्ति मार्गमें लक्ष्मीमदमें सब अंधे होजांय हैं दृष्टांत, एक बनिया रोटी खायवे बैठे तब मूसा थारीपर होके रौज कूदे, तब वो बोले कि याके बिलैमें धन है, यासे ये कूदे है बिल खोद्यो तो २०००० हज्जार रुपा निकरै, यासे मुसा कूदै है ऐसेही धनसे सब संसार कूदे है निर्धनसे चलोभी न जायहै " ॥ १९ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां पञ्चमस्कन्धे श्रीशेषस्वरूपवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५॥ राजा परीक्षित बोले कि हे महर्षे! लोकोंकी यह विचित्र गति क्यों होती है ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि कर्ताको त्रिगुण होनेसे और श्रद्धाकी विभिन्नतासे

एतावतीर्हि राजन् पुंसः प्रवृत्तिलक्षणस्य धर्मस्य विपाकगतय उच्चावचा विसदृशा यथाप्रश्नं व्याचख्ये किमन्यत् कथयाम इति ॥ १९ ॥ इति श्रीभा० महा० पञ्चम० शेषमहाराजस्वरूपवर्णनं नाम पञ्चविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥ राजोवाच ॥ महर्ष एतद् वैचित्र्यं लोकस्य कथमिति ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ त्रिगुणत्वात् कर्तुः श्रद्धया कर्मगतयः पृथग्विधाः सर्वा एव सर्वस्य तारतम्येन भवन्ति ॥ २ ॥ अथेदानीं प्रतिषिद्धलक्षणस्य धर्मस्य तथैव कर्तुः श्रद्धया वैसादृश्यात् कर्मफलं विसदृशं भवति ॥ या ह्यनाद्यविद्यया कृतकामानां तत्परिणामलक्षणाः सृतयः सहस्रशः प्रवृत्तास्तासां प्राचुर्येणानुवर्णयिष्यामः ॥ ३ ॥ राजोवाच ॥ नरका नाम भगवन् किं देशविशेषा अथवा बहिस्त्रिलोक्या आहोस्विदन्तराल इति ॥ ४ ॥

कर्मकी गतियें अलग अलग सबको न्यूनाधिकभावकरकै होती हैं, सात्विक श्रद्धा सात्विककर्मसे सुख होय है, राजससे दुःख होयहै तामससे मूढपन होयहै ॥ २ ॥ इस कारण अधर्म होय (कि जिसका निषेध है) करनेवालेके तमोगुणमें भेद और श्रद्धाका विपरीताचरण कर्म फल होताहै इस कारण अनादि अविद्याकृत सब वासनाओंके परिणाम स्वरूप वह सहस्र २ प्रकारके नरककी गति होतीहै उनमेंसे प्रधान २ नरकोंको वर्णन करते हैं ॥३॥ राजा परीक्षित बोले कि हे भगवन्! नरक जिनको नाम है, सो कोई देशविशेष हैं, अथवा त्रिलोकीसे बाहिर हैं वा बीचमें है सो कहिये ॥४॥

23

श्रीशुकदेवजी बोले कि नरक त्रिलोकीके भीतर दक्षिणकी ओर भूमिके नीचे जलके ऊपर हैं अग्निष्वात्तादि पितृगण उसी दिशामें वास करके परम योग समाधिसे अपने वर्णवाले पुरुषोंकी मंगलकामना किया करते हैं ॥ ५ ॥ जहां भगवान् पितृराजा वैवस्वत यमधर्मराज अपने यहां आए दूतों द्वारा लाये भये मरे जीवनको उनके कर्मानुसार दोषादोषका विचारकर भगवतकी आज्ञा उल्लंघन न करनेहारे उन जीवोंका अपने गणसहित दंड धारण करतेहै ॥ ६ ॥ हे राजन्! कोई आचार्य नरक इक्कीसही गिनते हैं नाम रूप लक्षणसे उन नरकोंको हम वर्णन करैं हैं, तामिस्र, अंधतामिस्र,

ऋषिरुवाच ॥ अन्तराल एव त्रिजगत्यास्तु दिशि दक्षिणस्यामधस्ताद् भूमेरुपरिष्टाच्च जलाद् यस्यामग्निष्वात्तादयः पितृगणा दिशि स्वानां गोत्राणां परमेण समाधिना सत्या एवाशिष आशासाना निवसन्ति ॥ ५ ॥ यत्र ह वाव भगवान् पितृराजो वैवस्वतः स्वविषयं प्रापितेषु स्वपुरुषैर्जन्तुषु संपरेतेषु यथाकर्मावद्यं दोषमेवानुल्लङ्घितभगवच्छासनः सगणो दमं धारयति ॥ ६ ॥ तत्र हैके नरकानेकविंशतिं गणयन्ति अथ तांस्ते राजन् नामरूपलक्षणतोऽनुक्रमिष्यामः ॥ तामिस्रोन्धतामिस्रो रौरवो महारौरवः कुम्भीपाकः कालसूत्रमसिपत्रवनं सूकरमुखमन्धकूपः कृमिभोजनः संदंशस्तप्तसूर्मिर्वज्रकण्टकशाल्मलीवैतरणीपूयोदः प्राणरोधो विशसनं लालाभक्षः सारमेयादनमवीचिरयःपानमिति ॥ किं च ॥ क्षारकर्दमो रक्षोगणभोजनः शूलप्रोतो दन्दशूक अवटनिरोधनः पर्यावर्तनः सूचीमुखमित्यष्टाविंशतिर्नरका विविधयातनाभूमयः ॥ ७ ॥

रौरव, महारौरव, कुंभोपाक, कालसूत्र, असिपत्रवन, सूकरमुख, अंधकूप, कृमिभोजन, संदंश, तप्तसूर्मि, वज्रकंटक, शाल्मली, वैतरणी, पूयोद, प्राणरोध, विशसन, लालाभक्ष, सारमेयादन, अवीचि, अयःपान ये हैं शेष क्षारकर्दम, रक्षोगणभोजन, शूलप्रोत, दंदशूक, अवटनिरोधन, पर्यावर्तन, सूचीमुख ये सब मिलकर अट्ठाईस नरक अनेक यातना देवेके स्थान हैं ॥ ७ ॥

तहां जो कोई परायो धन पुत्र स्त्री चुरावै है, सो कालकी पाशसें बंधोभयो अतिभयानक यमके पुरुषोंकरकै बंधोभयो बलसे तामिस्रनामक नरकमें पटको जायहै, जहां कुछ खानेको न मिलैहै, न पीनेको जल देहैं, दंडसे ताडन करैहैं डरावैहैं इत्यादि पीडा करकै पीडित जीव तहां महाकष्टकों प्राप्त हो वा तामिस्र नरकमें एक संग मूर्छित हो जाय है ॥ ८ ॥ ऐसेई दुःख अंधतामिस्रमें है, कि जो कोई स्त्रीके पुरुषसे छलकर उसकी स्त्रीकूं भोगै है, वो तहां नरकमैं पटकोजायहै सब दुःख भोगैहैं दुःखसै सब याद भूलजायहै दृष्टि नष्ट होय है जैसें कोई वनस्पतिको जडसै काटै तैसेई वहां जीव चीरे फाडे जायहैं यासे वाको नाम अन्धतामिस्र कहैं हैं ॥ ९ ॥ जो कोई ये कहै है कि ये सब मेरा है, हम है, ऐसे जीवनसे द्रोहकर केवल अपने कुटुंबको-

तत्र यस्तु परवित्तापत्यकलत्राण्यपहरति स हि कालपाशबद्धो यमपुरुषैरतिभयानकैस्तामिस्रे नरके बलान्निपात्यते ॥ अनशनानुदपानदण्डताडनसंतर्जनादिभिर्यातनाभिर्यात्यमानो जन्तुर्यत्र कश्मलमासादित एकदैव मूर्छामुपयाति तामिस्रप्राये॥८॥ एवमेवान्धतामिस्रे यस्तु वञ्चयित्वा पुरुषं दारादीनुपयुङ्क्ते ॥ यत्र शरीरी निपात्यमानो यातनास्थो वेदनया नष्टमतिर्नष्टदृष्टिश्च भवति यथा वनस्पतिर्वृश्च्यमानमूलस्तस्मादन्धतामिस्रं तमुपदिशन्ति ॥ ९ ॥ यस्त्विह वा एतदहमिति ममेदमिति भूतद्रोहेण केवलं स्वकुटुम्बमेवानुदिनं प्रपुष्णाति स तदिह विहाय स्वयमेव तदशुभेन रौरवे निपतति ॥१०॥ ये त्विह यथैवामुना विहिंसिता जन्तवः परत्र यमयातनामुपगतं तत एव रुरवो भूत्वा तथा तमेव विहिंसन्ति तस्माद् रौरवमित्याहुः ॥ रुरुरिति सर्पादतिक्रूरसत्त्वस्यापदेशः ॥११॥ एवमेव महारौरवो यत्र निपतितं पुरुषं क्रव्यादा नाम रुरवस्तं क्रव्येण घातयन्ति यः केवलं देहंभरः ॥ १२ ॥

ही दिनरात पालैहै, सो वो सब यहांई छोडकर महा अपवित्र रौरव नामक नरकमें गिरायोजाय है ॥ १० ॥ जो कोई यहां जीवनकूं मारतेहैं, वे परलोकमैं यमके यहां मारे जांयहैं वेही आप एक रुरुनामक जीव बनकै आप सब आपसमें आपको खाय जाय है, रुरुजीव सर्पसेभो महाक्रूर महाभारी एक जीवविशेष है, याते या नरकको नाम रौरवनरक है ॥ ११ ॥ ऐसेई महारौरवमें पटकेजाय हैं, जहांके पडे जीव मांसभोजन करवेवारे हैं, उनीको रुरु कहैं हैं वे मांसके निमित्त उन्है मारतेहै जो केवल अपने शरीरको पुष्ट करैहै वाकों यमपुरीमें मांस खवावै हैं ॥ १२ ॥

जो कोई महा उग्र मनुष्य जीते पक्षीनको प्राणसे रांधते हैं, उन अपराधीनको मांस खायवेवारे राक्षस, यमके नौकर कुंभीपाक नरकमें जहां कि तेल उबलता रहता है इन निन्दित कर्म करनेवालोंको उबलते तेलमें डालदेते हैं ॥ १३ ॥ जो कोई यहां पिता माता ब्राह्मण परब्रह्मसें द्रोह करै है, वो दसहज्जार योजनके विस्तार युक्त ताम्रकी धरती महा गरममें जहां ऊपरसे सूर्य तपै नीचै अग्निसे तपै ऐसे कालसूत्रनाम नरकमैं पडै है, इसमें पडे हुए प्राणीका भूख प्यास शरीरको बाहर भीतर दग्ध करते कभी चेष्टा करते खडे रहते बैठते लौटते दौडते रहते हैं घोडा बकरा हरिण आदि पशूनको

यस्त्विह वा उग्रः पशून् पक्षिणो वा प्राणत उपरन्धयति तमपकरुणं पुरुषादैरपि विगर्हितममुत्र यमानुचराः कुम्भीपाके तप्ततैल उपरन्धयन्ति ॥१३॥ यस्त्विह पितृविप्रब्रह्मध्रुक् स कालसूत्रसंज्ञके नरकेऽयुतयोजनपरिमण्डले ताम्रमये तप्तखले उपर्यधस्तादग्न्यर्काभ्यामतितप्यमानेऽभिनिवेशितः क्षुत्पिपासाभ्यां च दह्यमानान्तर्बहिःशरीर आस्ते शेते चेष्टतेऽवतिष्ठति परिधावति च यावन्ति पशुरोमाणि तावद्वर्षसहस्राणि ॥ १४ ॥ यस्त्विह वै निजवेदपथादनापद्यपगतः पाखण्डं चोपगतस्तमसिपत्रवनं प्रवेश्य कशया प्रहरन्ति तत्र हासादित इतस्ततो धावमान उभयतोधारैस्तालवनासिपत्रैश्छिद्यमानसर्वाङ्गो हा हतोऽस्मीति परमया वेदनया मूर्छितः पदेपदे निपतति स्वधर्महा पाखण्डानुगतं फलं भुङ्क्ते ॥ १५ ॥

मारता है वह पशुके जितने रोम होते हैं उतने सहस्रवर्ष पर्यन्त वह कालसूत्र नरकमें पड़ता है ॥ १४ ॥ जो कोई निज वेदमार्ग छोड आपत विना आए पाखंडमार्गमें लगै है, वाको तरवारकेसे पैने पत्रवारे वृक्षोंके वनमें प्रवेश करा कर कोडा मारते हैं, तहां ये इत उतकों डोलता है दुधार धारके ताडपत्रोंसे सब अंग छिद्यमान हो जाते हैं हाय मैं मरा हाय मैं मरा इस प्रकार कहता महापीडासे मूर्छित हो एक एक पैंडमें गिरता है, जो अपने धर्मका नाश करनेवाला है, वो महापाषंडके अनुकूल प्राप्त दुःख भोगै है ॥ १५ ॥

---

१ कबित्त–धरोही रहै गोधन धरनी और धवलधाम वृथा है लगानो नेह गेह देह धरनीसे। ऊंचे २ अटा और अटारी सारी न्यारी होत धरनीमें समाय और प्रगट होत धरनी से ॥ क्षणको भरोसो नांय वरसौंकी सामाकरै कोउन अवात इस माया मनहरनीसे । काम नहीं आवत कोऊ अन्त समय शालिग्राम गैयाही तारत वनतरनी वैतरनीसे ॥ १ ॥

26

यस्त्विह वै राजा राजपुरुषो वा अदण्ड्ये दण्डं प्रणयति ब्राह्मणे वा शरीरदण्डं स पापीयान् नरकेऽमुत्र सूकरमुखे निपतति तत्रातिबलैर्विनिष्पिष्यमाणावयवो यथैवेहेक्षुखण्ड आर्त्तस्वरेण स्वनयन् क्वचिन्मूर्छितः कश्मल उपगतो यथैवेहादृष्टदोषा उपरुद्धाः ॥ १६ ॥ यस्त्विह वै भूतानामीश्वरोपकल्पितवृत्तीनामविविक्तपरव्यथानां स्वयं पुरुषोपकल्पितवृत्तिर्विविक्तपरव्यथो व्यथामाचरति स परत्रान्धकूपे तदभिद्रोहेण निपतति ॥ तत्र हासौ तैर्जन्तुभिः पशुमृगपक्षिसरीसृपैर्मशकयूकामत्कुणमक्षिकादिभिर्ये केचाभिद्रुग्धास्तैः सर्वतोऽभिद्रुह्यमाणस्तमसि विहतनिद्रानिर्वृतिरलब्धावस्थानः परिक्रामति यथा कुशरीरे जीवः ॥१७॥ यस्त्विह वा असंविभज्याश्नाति यत्किंचनोपनतमनिर्मितपञ्चयज्ञो वायससंस्तुतः स परत्र कृमिभोजने नरकाधमे निपतति तत्र शतसहस्रयोजने कृमिकुण्डे कृमिभूतः स्वयं कृमिभिरेव भक्ष्यमाणः कृमिभोजनो यावत्तदप्रत्ताप्रहुतादोऽनिर्वेशमात्मानं यातयते ॥ १८ ॥

जो कोई जीवमात्र अथवा राजा वा राजाके नौकर जो दंडयोग्य नहीं है वाकों प्राण दंड देते हैं,वा ब्राह्मणकों शरीरदंड देते है, वे पापी सूकरमुख नरकमें पडते हैं, परलोकमें अतिबली दूत याकी देहके सब अवयव निचोड डारते है जैसे यहां गन्ने पेरे जांय है, तैसे वा जीवकू पेरे है, आर्तस्वरसे चिल्हावै है, कभी मूर्छा होय है, महाकष्ट भोगे है, जिन निरपराधियोंको यहां कैद कर जो दुःख देते हैं उन्हे वैसाही वहां दुःख मिलता है ॥ १६ ॥ जो प्राणी परमात्माके नियत किये हुए धर्मवाला पराये दुःखको जानकरभी खटमलादि जन्तु जिनका रुधिर पीनेका स्वभाव ईश्वरसे कल्पित है उन्हे व्यथा देता है वा जिसकी आजीवका कही लगी है उसै जो छुडाता है और दुःख देता है वह मरे पीछे उन सबके द्रोहसे अंधकूपमें गिरै है और वहां पशु मृग पक्षी सर्पादि मच्छर जूंए खटमल मक्खी इनके मारनेवारेको सब ओरसे यही खांय है, अंधेरेमें नींद न आवै है, तनक सुख न पावै है, घूमै है जैसे कुत्सित शरीरमैं जीव दुःख पावै, तैसी गति वा जीवकी होय है ॥ १७ ॥ जो कोई विनावाटे इकेलोई चीज खावै है, जो प्राप्तपदार्थोंकू पंचमहायज्ञविधि वलि वैश्वदेव कृत्य विना करे खायहै, वो जीव कौआके समान है, वाकी काक स्तुति करैं है, वो मरके कृमीभोजन जामें कराए जांय ऐसे नरकअधममें गिरताहै, वहां सौहज्जार योजनको कृमीनको कुंड है, आपभी वो जीव कृमि होकर कृमिका भोजन होताहै

जितने योजनमें कृमिकुंड है उतने हज्जार वर्षतक विना वांटके खानेवारो इकलखुरो जीव अनेक दुःखनको भोगै है ॥ १८ ॥ जो कोई चोरी करके अथवा बलात्कारसे ब्राह्मणका सुवर्ण ग्रहण करै अथवा विना आपदाके औरका चुराताहै वह मरण उपरान्त दंशन नरकमें पड़ताहै वहां उसकी त्वचाको यमराजके दूत अग्निमें गरम किये चीमटोंसे खेंचते हैं ॥ १९ ॥ जो कोई यहां संसारमें जो स्त्री गमन करने लायक नहीं है वासे मैथुन करै हैं, वो और जो पुरुष गमनके योग्य न है वासे स्त्री मैथुन करै, ये दोनों मरे पीछे कोडेसे मारे जाते हैं, पाछे महाअग्निसे तपी लोहेकी गर्म प्रतिमा स्त्रीकी है वासे पुरुषको चिपटाते हैं, एक गर्म पुरुषकी लोहेको अग्नितपी प्रतिमा है वासें स्त्रीको चिपटातें है दोनो मरै हैं ॥ २० ॥ जो कोई

यस्त्विह वै स्तेयेन बलाद् वा हिरण्यरत्नादीनि ब्राह्मणस्य वापहरति अन्यस्य वाऽनापदि पुरुषस्तममुत्र राजन् यमपुरुषा अयस्मयैरग्निपिण्डैः संदंशैस्त्वचि निष्कुषन्ति ॥ १९ ॥ यस्त्विह वा अगम्यां स्त्रियमगम्यं वा पुरुषं योषिदभिगच्छति तावमुत्र कशया ताडयन्तस्तिग्मया सूर्म्या लोहमय्या पुरुषमालिङ्गयन्ति स्त्रियं च पुरुषरूपया सूर्म्या ॥ २० ॥ यस्त्विह वै सर्वाभिगमस्तममुत्र निरये वर्तमानं वज्रकण्टकशाल्मलीमारोप्य निष्कर्षन्ति ॥२१॥ ये त्विह वै राजन्या राजपुरुषा वा अपाखण्डा धर्मसेतून् भिन्दन्ति ते संपरेत्य वैतरण्यां निपतन्ति भिन्नमर्यादास्तस्यां निरयपरिखाभूतायां नद्यां यादोगणैरितस्ततो भक्ष्यमाणा आत्मना न वियुज्यमानाश्चासुभिरुह्यमानाः स्वाघेन कर्मपाकमनुस्मरन्त उपतप्यन्तो विण्मूत्रपूयशोणितकेशनखास्थिमेदोमांसवसावाहिन्यामुपतप्यन्ते ॥ २२ ॥

सबसे मैथुन करै है, वा पशुसे मैथुन करते हैं वाको मरे पीछे नरकमें वर्त्तमान वज्रकंटक शालमलीके वृक्षपर धरकर घसीटै हैं ॥ २१ ॥ जो राजालोग वा राजा जो पाषंडी नहीं है उन्हे मारै हैं, धर्मके सेतुनको भेदते है, वे मरके यमद्वारकी नदी वैतरणीमें पडै है, मर्यादाके तोडनवारे तिस नरककी परिखाभूत नदीमै जलके जीवोंसे भक्षण करेभये इतउत डोलैहै एक स्थानमें नहीं ठहरते प्राण नहीं निकलते इसीकारण वे प्राणी जीवनके निमित्त इस नदीमें वारंवार इधर उधर आकर्षित होते हैं वहां अपने किये पाप कर्मको स्मरणकर विष्ठा, मूत्र, केश, पीप, रुधिर, नख, हाड, मेदा, मांस, चर्वी भरी नदीमें तपैहैं ॥ २२ ॥

28

जो कोई शूद्रीके पति होजाते हैं वे शौच आचार नियम नष्टकर लाज छोड पशुकी नांई विचरैं हैं, वेभी मरकर विष्ठा मूत्र थूंक मलसें पूर्ण समुद्रमें गिरकर वोही भयानक वस्तु फेर खाते हैं ॥ २३ ॥ जो लोग ब्राह्मणादि कुत्ता पालते हैं गधापर चढते हैं मृगकी शिकार करैं हैं यज्ञविना मृगोंकूं मारते हैं उनकों मरे पीछे उन्हीको निशानोकर यमके दूत बांणोंसे वेधते हैं ॥२४॥ जो लोग दंभी हैं दंभयज्ञमें पशूनकूं मारते हैं उन्हें पीछे

ये त्विह वै वृषलीपतयो नष्टशौचाचारनियमास्त्यक्तलज्जाः पशुचर्यां चरन्ति ते चापि प्रेत्य पूयविण्मूत्रश्लेष्ममलापूर्णार्णवे निपतन्ति तदेवातिबीभत्सितमश्नन्ति ॥२३॥ ये त्विह वै श्वगर्दभपतयो ब्राह्मणादयो मृगयाविहारा अतीर्थे च मृगान् निघ्नन्ति तानपि संपरेताँल्लक्ष्यभूतान् यमपुरुषा इषुभिर्विध्यन्ति ॥२४॥ ये त्विह वै दाम्भिका दम्भयज्ञेषु पशून् विशसन्ति तानमुष्मिँल्लोके वैशसे नरके पतितान् निरयपतयो घातयित्वा विशसन्ति ॥ २५ ॥ यस्त्विह वै सवर्णां भार्यां द्विजो रेतः पाययति काममोहितस्तं पापकृतममुत्र रेतःकुल्यायां पातयित्वा रेतः संपाययन्ति ॥ २६ ॥ ये त्विह वै दस्यवोऽग्निदा गरदा ग्रामान् सार्थान् वा विलुम्पन्ति राजानो राजभटास्तांश्चापि हि परेत्य यमदूता वज्रदंष्ट्राः श्वानः सप्तशतानि विंशतिश्च सरभसं खादन्ति ॥ २७ ॥

वैशसनरकमें पटककर यमदूत महापीडा देकर मारते हैं या नरकमें गडासासे जीव कूटे जाते हैं ॥ २५ ॥ जो काममोहित होयकर अपनी वरणकी विना आपसे व्याही स्त्रीनमें वीर्य पटकै हैं वा पाप करवेवारेको पापी यमदूत वीर्यकी नदीमें पटककै वीर्यही पियावते हैं ॥ २६ ॥ जो चोर अग्नि लगावनेवारे जहर देनेवारे, ग्रामनको शहरनको नाश करते हैं, राजा होंय वा राजाके भट होय इन

---

१ शंका—हम सबने ऐसा कभी नहीं सुना कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य; श्वान, गर्दभ आदि लेकर और जो पशु हैं, उनके पति होते हैं शुकदेवजीने ऐसे वचन क्यों कहे ?

उत्तर—श्वानका पति होना तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यके लिये प्रगटही है, क्यों कि उस श्वानको तीन वर्ण पालते हैं, और गर्दभका पति होना तीनों वर्णोंको नहीं चाहिये. किसी किसी देशमें बकरेकोभी गर्दभ कहते हैं, और बकरेका पालना ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यका चारों युगमें चला आया है, कोई यज्ञके लिये, कोई जीवकी दया मानके, इन आदि कारणोंसे बकरेको पालतेथे, इसलिये व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजीने तीनों वर्णोंको श्वान गर्दभका पति कहा, क्योंकि तीन वर्णोंको, कुत्ता, बकरा, पालना धर्मशास्त्रमें अत्यन्त बुरा लिखा है, परन्तु जो प्राणी प्रमादमें उनको पालन करते हैं वह अत्यन्त दुःख भोगते हैं ॥

सबनको सारमेयादन नरकमें वज्रकेसे डाढौंवाले ७२० कुत्ते उसैं बडे वेगसै फाडकर खा जातेहैं ॥ २७ ॥ जो कोई या संसारमै गवाहींमे अनेक द्रव्योंके वेचने खरीदनेमें दान करनेंमैं अथवा किसीबातमें झूट बोलते हैं, वे मरके अवीचिमति नामक नर्कमें नीचैकूं मूढकरकै गिरता है जहां कुछभी आश्रय नहींहै उस नरकमै चारसे कोस ऊंचे पर्वतकै मूडपरसै उलटाशिर कर नीचेको पटकतेहैं इस नरकमै पत्थरकी बनी पृथ्वी जलसी दीखतीहै इसी कारण इस नरकका नाम अवीचि है यहां गिरनैसै शरीरके तिलकी समान खंड होजाते हैं मरता नहीं है फेर वाको ऊंचो लेजाय है फिर पटक दैहै ऐसै असंख्यात वार जीवकूं दुःख दैंहैं ॥ २८ ॥ जो कोई ब्राह्मण क्षत्री वैश्य मद्य पीवै है अथवा जो स्त्री मद्यपान करेहै, व्रतको त्यागैं प्रमादसै जो

यस्त्विह वा अनृतं वदति साक्ष्ये द्रव्यविनिमये दाने वा कथंचित् स वै प्रेत्य नरकेऽवीचिमत्यधःशिरा निरवकाशे योजनशतोच्छ्रयाद् गिरिमूर्ध्नः संपात्यते यत्र जलमिव स्थलमश्मपृष्ठमवभासते तदवीचिमत्तिलशो विशीर्यमाणशरीरो न म्रियमाणः पुनरारोपितो निपतति ॥ २८ ॥ यस्त्विह वै विप्रो राजन्यो वैश्यो वा सोमपीथस्तत्कलत्रं वा सुरां व्रतस्थोऽपि वा पिबति प्रमादतस्तेषां निरयभीतानामुरसि पदाक्रम्यास्ये वह्निना द्रवमाणं कार्ष्णायसं निषिञ्चन्ति ॥ २९ ॥ अथ च यस्त्विह वा आत्मसंभावनेन स्वयमधमो जन्मतपोविद्याचारवर्णाश्रमवतो वरीयसो न बहु मन्येत स मृतक एव मृत्वा क्षारकर्दमे निरयेऽवाक्शिरा निपातितो दुरन्ता यातना ह्यश्नुते ॥ ३० ॥

मद्य पीवता है अथवा जो सोमरस यज्ञके सिवाय और अवस्थामें पीवैं उनको नरकमें लेजायकर छातीपर पद् रखकर अग्निसे तपोभयो लोहो मुखमैं प्याते हैं, वा पर छिडकते हैं ॥ २९ ॥ अथवा जो या संसारमैं अधम पुरुष गर्व अहंकारसे अपनेको बड़ा कहतेहै और जन्म तप विद्या आचार वर्ण आश्रमवाले अपनेसै उच्चवर्णोंकी निंदा करतेहै बडौका बहुमान नहीं करते हैं, वो मरेके समान है; पाछै मरके क्षारकी कीचवाले नरकमैं नीचेकूं शिर कर गिरतेहै और अपारयातनाको प्राप्त होतेहैं ॥ ३० ॥

जो पुरुष पुरुषके हवनको यज्ञ करै है, जो स्त्रियें मनुष्यका मांस वा और कोई पशुका मांस खातीहै वे रक्षोगणभोजन नरकमें पड़तहें उनको वेही पशु यमलोकमें मारके पीडा देते हैं, वे राक्षसोंके गण कसाईको नाई अपने छुरोंसे काटकै वा जीवके रुधिरको पीतेहैं, नाचते हैं, गावते हैं, प्रसन्न होते हैं जैसे राक्षस तैसे वे हैं ॥ ३१ ॥ जो लोग निरपराध वनके ग्रामके जीवनेकी इच्छा करवेवारे जीवमात्रनको विश्वासके उपायोंसे विश्वास कराय शूलसे छेदते है, पोवते है खेल समझके किसी जीवकूं पीडा देते हैं, उनके मरनेपर यमकी यातनानमें यमके दूत शूलादिमै उनको प्रोतेहै भूखे प्यासे मरतेहै

ये त्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजन्ते याश्च स्त्रियो नृपशून् खादन्ति तांश्च ते पशव इव निहता यमसदने यातयन्तो रक्षोगणाः सौनिका इव स्वधितिनाऽवदायासृक् पिबान्ति नृत्यन्ति गायन्ति च हृष्यमाणा यथेह पुरुषाः ॥ ३१ ॥ ये त्विह वा अनागसोऽरण्ये ग्रामे वा वैश्रम्भिकैरुपसृतानुपविश्रम्भय्य जिजीविषून् शूलसूत्रादिषूपप्रोतान् क्रीडनकतया यातयन्ति तेऽपि च प्रेत्य यमयातनासु शूलादिषु प्रोतात्मानः क्षुत्तृड्भ्यां वाऽभिहताः कङ्कवटादिभिश्चेतस्ततस्तिग्मतुण्डैराहन्यमाना आत्मशमलं स्मरन्ति ॥ ३२ ॥ ये त्विह वै भूतान्युद्वेजयन्ति नरा उल्बणस्वभावा यथा दन्दशूकास्तेऽपि प्रेत्य नरके दन्दशूकाख्ये निपतन्ति यत्र नृप दन्दशूकाः पञ्चमुखाः सप्तमुखा उपसृत्य ग्रसन्ति यथा बिलेशयान् ॥ ३३ ॥ ये त्विह वा अन्धावटकुशूलगुहादिषु भूतानि निरुन्धन्ति तथाऽमुत्र तेष्वेवोपवेश्य सगरेण वह्निना धूमेन निरुन्धन्ति ॥ ३४ ॥

कौआ वटेर इत्यादिकोंसे इतउत पैनी चौंचोंसे मरेभये अपने पापको याद करते हैं ॥३२॥ जो तीक्ष्ण स्वभाववारे मनुष्य सर्पकी समान जीवोंको दुख देते हैं डरातेहैं वे मरकै दंदशूकनामक नरकमें पडते हैं, हे राजन् ! जहां सर्प पंचमुख सप्तमुखके आयकै या जीवको खावै हैं जैसे मूसानको सर्प खाय ऐसे भक्षण करजातेहै ॥ ३३ ॥ जो लोग अंधावटमें कुशूलोंमें गुफामें जीवोंको रोकै हैं, तैसे वेभी अवटनिरोधन नरकमें पडकर विषैली अग्निके धूमसै रोके जाते हैं ॥ ३४ ॥

जो कोई अतिथि अभ्यागतोंको गृहस्थी वारंवार क्रोधदृष्टिसे मानू खायजायगै ऐसै देखै है, नरकमें पापदृष्टिसे वज्रकेसे तुण्डवारे गीध कंक कौवा वटेर इत्यादिक उनके नेत्रोंको बलसे उखाडते हैं ॥ ३५ ॥ जो लोग महागर्वी अहंकारी तिर्छी दृष्टिवारे सबसै अनेकशंका रखनेवारे, धनके व्यय और नाशकी चिंतासै जिनका हृदय और मुख सूख रहा है ऐसे मनुष्य शांतिको न पाकर यक्षोंकी सदृश धनरक्षा करते हैं वे मरकै महादुःखदायक सूचीमुखनरकमें गिरते हैं, जहां धन ग्रहण करवेवारे पापी पुरुषको धर्मराजके दूत दर्जी जैसै कपडेको सींवै है तैसै सूत्र लेकै सब अंगमैं पोवैं है ॥ ३६ ॥ हे पृथ्वीपते ! ऐसे सैंकडो हज्जारौं नरक यमके स्थानमै हैं, उन सबमैं जो हमने कहे है जो नहीं कहे हैं वे सब अधर्मकारी जाते हैं तैसेई धर्मात्मालोग स्वर्गादिमें जाय हैं परन्तु जिन पुरुषौंके भोगद्वारा धर्म अधर्मका अन्त होता है वह फिर जन्म ग्रहण करनेको मनुष्य लोकमें आकर प्रवेश करते हैं॥३७॥जो निवृत्तिलक्षणमार्ग है सो आपसे आगेही द्वितीयस्कन्धमें कहि आए हैं, ये ब्रह्मांड इतनो है जो पुराणोंमें चौदह प्रकार-

यस्त्विह वा अतिथीनभ्यागतान् वा गृहपतिरसकृदुपगतमन्युर्दिधक्षुरिव पापेन चक्षुषा निरीक्षते तस्य वाऽपि निरये पापदृष्टेरक्षिणी वज्रतुण्डा गृध्राः कङ्ककाकवटादयः प्रसह्योरुबलादुत्पाटयन्ति ॥३५॥ यस्त्विह वा आढ्याभिमतिरहंकृतिस्तिर्यक्प्रेक्षणः सर्वतोऽभिविशङ्की अर्थव्ययनाशाचिन्तया परिशुष्यमाणहृदयवदनो निर्वृत्तिमनवगतो ग्रह इवार्थमभिरक्षति स चापि प्रेत्य तदुत्पादनोत्कर्षणशमलग्रहः सूचीमुखे नरके निपतति यत्र ह वित्तग्रहं पापं पुरुषं धर्मराजपुरुषा वायसा इव सर्वतोऽङ्गेषु सूत्रैः परिवयन्ति ॥ ३६ ॥ एवंविधा नरका यमालये सन्ति शतशः सहस्रशस्तेषु सर्वेषु च सर्व एवाधर्मवर्तिनो ये केचिदिहोदिता अनुदिताश्चावनिपते पर्यायेण विशन्ति तथैव धर्मानुवर्तिन इतरत्र इह तु पुनर्भवे त उभयशेषाभ्यां निविशन्ति ॥३७॥ निवृत्तिलक्षणमार्ग आदावेव व्याख्यातः ॥ एतावानेवाण्डकोशो यश्चतुर्दशधा पुराणेषु विकल्पित उपगीयते यत् तद् भगवतो नारायणस्य साक्षान्महापुरुषस्य स्थविष्ठं रूपमात्ममायागुणमयमनुवर्णितमादृतः पठति शृणोति श्रावयति स उपगेयं भगवतः परमात्मनोऽग्राह्यमपि श्रद्धाभक्तिविशुद्धबुद्धिर्वेद ॥ ३८ ॥

से कल्पना किया है सो हमने वर्णन किया यही महापुरुष भगवान वासुदेवकी मायाके गुणोंका स्थूलरूप है इसै आदरसे सुनै सुनावै श्रद्धा भक्तिसे उनकी बुद्धि शुद्ध हो जाती है और वह भगवान् परमात्माके गूढ उपनिषद सम्बन्धी विषयको जान जाते हैं ॥ ३८ ॥ भगवानको स्थूल सूक्ष्म रूप जैसो है तैसो यति सुनकर प्रथम स्थूल रूपमें मन लावै फिर उससे धीरे धीरे सूक्ष्मरूपकों बुद्धिसें प्राप्त होयगो ॥ ३९ ॥ हे नृप! भूमी, द्वीप, खंड, नदियें, पर्वत, आकाश, समुद्र, पाताल, दिशा, नरक, नक्षत्रोंको गण, इत्यादि लोककी रचना जिस प्रकार हुई है वह सब हमने तुमसैं वर्णन की यह सम्पूर्ण लोकरचना भगवानका स्थूल रूप है, जो सब जीव समूहोंका आश्रय हैं ॥ ४० ॥ " परन्तु श्रीहरिगुण गावनेवारेको सब पदार्थ प्राप्त

श्रुत्वा स्थूलं तथा सूक्ष्मं रूपं भगवतो यतिः॥स्थूले निर्जितमात्मानं शनैः सूक्ष्मे धिया नयेदिति ॥३९॥ भूद्वीपवर्षसरिदद्रिनभः समुद्रपातालदिङ्नरकभागणलोकसंस्था ॥ गीता मया तव नृपाद्भुतमीश्वरस्य स्थूलं वपुः सकलजीवनिकायधाम ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे अष्टादशसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमस्कन्धे नरकानुवर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः॥ २६ ॥ समाप्तोऽयं पञ्चमः स्कन्धः ॥ ५ ॥

होते हैं (१) " ॥ इति श्रीवृन्दावननिवासिसुप्रसिद्धविद्वद्वरगौडब्राह्मणश्रीनारायणशास्त्रिविरचितायां श्रीमद्भागवतस्य पदार्थमुक्तावलीटीकायां अष्टाविंशतिनरकानुवर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः॥ २६ ॥ ॥ पञ्चमः स्कन्धः समाप्तः ॥ ५ ॥

दोहा—प्रतिपद अक्षर ध्यान दे शोध्यो भली प्रकार, भूल चूक भ्रम दूरकर निजमतिके अनुसार ॥
देखहिं सज्जन कृपाकर भक्ति करैं भगवान, सोई ज्वालाप्रसादके कृष्णचंद्र सुखदान ॥१॥

---

१ याके ऊपर एक पद है ॥ देख कचेहेरी अंधे बेहेरी हरिगुण क्यों नहिं गाते हैं ॥ टेर ॥ नजर बचाकर परधन छीनत सोइ सोइ चोर कहाते हैं ॥ करजकर कुतवाली पहुच वेत पीठपर खाते हैं ॥ १ ॥ ऐसेही जानो धर्मराजको दूत पकर ले जाते हैं ॥ जो जो कर्म करै छिपाछिपकर सो सो फल वहां पाते हैं ॥ २॥ सबसें कटुक वचन यहां बोले शीशै गर्म पिलाते हैं ॥ झूठगवाइयांदी बहुतेरी गोलालाल लगिटाते हैं ॥ ३ ॥ झूंठे सांच होनकों मूरख गंगाजली उठाते हैं ॥ ताते तेल तुरतके औटे उनसे वहीं न्हवाते हैं ॥४॥ झूठे कागज लिखवै नामा परघर तुरत छिनाते हैं ॥ होत दरिद्री कोडी अंधे घर घर धक्के खाते हैं ॥ ५ ॥ जहर खवावै मार वहावै सो यहां फांसी पाते हैं ॥ जाल करै पर माल हरै सो सडक खोद घर आते हैं ॥ ६ ॥ कर वदमन्सी शोदे बनकर हाकमसे इठलाते हैं ॥ गधे बैल वन भूख मरै नित जंगलसे लठलाते हैं॥ ७ ॥ मतकर सेखी करले नेकी

करनेको इच्छा करतभई सो बुध तामें पुरूरवानाम पुत्र उपजावतभयो ॥ ३५ ॥ हे राजन्! ऐसें मनुको बेटा सुद्युम्न स्त्रीभावकूं प्राप्तभयो अपनें कुलके आचार्य वसिष्ठको स्मरण करत भयो यह हमनें सुनी हैं ॥३६॥ वशिष्ठजी ताकी यह दशा देखिकै पीडित सुद्युम्नकूं पुरुष करिवेकी इच्छा करते महादेवको तप करत भये ॥ ३७ ॥ सो महादेव तिन ऋषिके अर्थ प्रसन्न व्हैकैं प्रिय करिवेके लियें अपनी वाणी सांच करिवेके लिये यह कहतभये ॥३८॥ तुम्हारो शिष्य यह एक महीना पुरुष होइगो, और एक महीना स्त्री होईगो, या व्यवस्था करिकैं सुद्युम्न पृथ्वीको पालन करो ॥ ३९ ॥ आचार्यके

एवं स्त्रीत्वमनुप्राप्तः सुद्युम्नो मानवो नृपः ॥ सस्मार स्वकुलाचार्यं वसिष्ठमिति शुश्रुम ॥ ३६ ॥ स तस्य तां दशां दृष्ट्वा कृपया भृशपीडितः ॥ सुद्युम्नस्याशयं पुंस्त्वमुपाधावत शंकरम् ॥ ३७ ॥ तुष्टस्तस्मै स भगवानृषये प्रियमावहन् ॥ स्वां च वाचमृतां कुर्वन्निदमाह विशां पते ॥ ३८॥ मासं पुमान् स भविता मासं स्त्री तव गोत्रजः ॥ इत्थं व्यवस्थया कामं सुद्युम्नोऽवतु मेदिनीम् ॥ ३९ ॥ आचार्यानुग्रहात् कामं लब्ध्वा पुंस्त्वं व्यवस्थया ॥ पालयामास जगतीं नाभ्यनन्दन् स्म तं प्रजाः ॥४०॥ तस्योत्कलो गयो राजन् विमलश्च सुतास्त्रयः ॥ दक्षिणापथराजानो बभूवुर्धर्मवत्सलाः॥४१॥ ततः परिणते काले प्रतिष्ठानपतिः प्रभुः ॥ पुरूरवस उत्सृज्य गां पुत्राय गतो वनम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे नवमस्कन्धे इलोपाख्याने प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं गतेऽथ सुद्युम्ने मनुर्वैवस्वतः सुते ॥ पुत्रकामस्तपस्तेपे यमुनायां शतं समाः ॥ १ ॥

अनुग्रहतें पुरुषपनो पाइकै या व्यवस्थासे पृथ्वीको पालन करते महिनाकी महिना स्त्रीरूपतै महलमें छिप्योरहै, यही कारणते प्रजा प्रसन्न न भई ताको आदर न करत भई ॥ ४० ॥ हे राजन्! ता सुद्युम्नके उत्कल, गय, विमल, ये तीन पुत्र भये, ते दक्षिण देशके राजा बडे धर्मात्मा भये ॥४१॥ प्रतिष्ठान[1]को पति सुद्युम्न वृद्धावस्थामें पुरूरवाकूं राज देकै वनमें जातभयो ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां नवमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ ॥ १ ॥ दूसरे अध्यायमें मनुके पुत्रोंमे दो वैराग्यते अपुत्र होतभए, करुषते आदिलेकें पांच पुत्रके वंश संक्षेपते कहै है ॥ अब श्रीशुकदेवजी

---

[1] वही झूसी या नामकरके प्रसिद्ध गाम प्रयागमें गंगापार अब प्रसिद्ध है ॥

कहें हैं कि हे राजन्! ऐसे सुद्युम्नके जाने उपरान्त वैवस्वत मनु यमुनाके तीर पुत्रकी इच्छा करत सौ वर्ष तप करतभये ॥ १ ॥ और पुत्रके अर्थ हरिकी पूजा करतभये ता तपके प्रभावसो इक्ष्वाकु आदि अपनें समान दश पुत्र प्राप्त करतेभये ॥ २ ॥ मनुको पुत्र पृषध्रको गुरुननें गायनको पालक कियो, सो सावधान ह्वैकें रात्रिमें जागत खड्ग हाथमें लेकें गायनको पालन करतभयो ॥ ३ ॥ एकदिन रातिमें वर्षाके समय एक सिंह आवतभयो, सो गौ सोवतते उठिके डरपी खिरकमें भाजतभई ॥ ४ ॥ बलवान् सिंह एक गायको पकरिलेतभयो, सो भय करिकै आतुर पुकारतभई, ताको शब्द सुनिकैं पृषध्र दौरत भयो ॥ ५ ॥ लीन तारोंवाली रातिमें खड्ग लेकैं शीघ्र पृषध्र सिंहकी शंकाकरिकै विना जानें गायको शिर काटत-

ततोऽयजन्मनुर्देवमपत्यार्थं हरिं प्रभुम् ॥ इक्ष्वाकुपूर्वजान् पुत्रान् लेभे स्वसदृशान् दश ॥ २॥ पृषध्रस्तु मनोः पुत्रो गोपालो गुरुणा कृतः ॥ पालयामास गा यत्तो रात्र्यां वीरासनव्रतः ॥ ३ ॥ एकदा प्राविशद्गोष्ठं शार्दूलो निशि वर्षति ॥ शयाना गाव उत्थाय भीतास्ता बभ्रमुर्व्रजे ॥ ४ ॥ एकां जग्राह बलवान् सा चुक्रोश भयातुरा ॥ तस्यास्तत्क्रन्दितं श्रुत्वा पृषध्रोऽभिससार ह ॥ ५ ॥ खड्गमादाय तरसा प्रलीनोडुगणे निशि ॥ अजानन्नहनद्बभ्रोः शिरः शार्दूलशङ्कया ॥६॥ व्याघ्रोऽपि वृक्णश्रवणो निस्त्रिंशाग्राहतस्ततः॥निश्चक्राम भृशं भीतो रक्तं पथि समुत्सृजन् ॥७॥ मन्यमानो हतं व्याघ्रं पृषध्रः परवीरहा॥ अद्राक्षीत्स्वहतां बभ्रुं व्युष्टायां निशि दुःखितः॥८॥तं शशाप कुलाचार्यः कृतागसमकामतः॥ न क्षत्रबन्धुः शूद्रस्त्वं कर्मणा भवितामुना ॥९॥ एवं शप्तस्तु गुरुणा प्रत्यगृह्णात्कृताञ्जलिः॥ अधारयद् व्रतं वीर ऊर्ध्वरेता मुनिप्रियम् ॥१०॥वासुदेवे भगवति सर्वात्मनि परेऽमले॥एकान्तित्वं गतो भक्त्या सर्वभूतसुहृत्समः॥११॥

भयो ॥ ६ ॥ खड्गके अग्र करिकें कान कटनेस सिंह बहुत डरप्यो, मार्गमें लोहूकूं डारत भाजगयो ॥ ७ ॥ पृषध्र सिंहको मार्यो मानतभयो, सवेरेके समय आप करिकै मारीगाय देखिकैं दुःखी भयो ॥ ८ ॥ कुलके आचार्य वसिष्ठ विना इच्छा पाप करनेवाले पृषध्रकूं शाप देतभये तू क्षत्रीनमें नीचहू न होइगो, या कर्म करिकै शूद्र होईगो ॥ ९ ॥ ऐसें गुरुने शाप दियो सो हाथ जोरिकें ता शापको ग्रहण करतभयो ब्रह्मचारि ह्वैकै मुनिनको प्यारो व्रत धारण करतभयो ॥ १० ॥ सबनके आत्मा भगवान् वासुदेवमें भक्ति करिकै एकांतभावकूं प्राप्त होतभयो, सब भूतनको सुहृद समान ॥ ११ ॥

संग त्याग कर शांत आत्मा, इन्द्रीयोंको जीत संग्रहरहित अकस्मात् जो मिल्यो ता करिकै अपनी जीविका करतभयो ॥ १२ ॥ परमात्मामें आत्मा राखिकै ज्ञान करिकै तृप्त सावधान जड आंधरे बहरेकोसो आकार ह्वैकें या पृथ्वीमें विचरतभयो ॥ १३ ॥ ऐसो व्रत ले सो वनमें जाइकें उठो दावानल देखिकें तामे जरिगयो, सो ब्रह्मकूं प्राप्त होतभयो ॥ १४ ॥ सबनमें छोटो कवि नामभी विषयनमें निस्पृह भयो बंधुनसहित राज्य छोडिकै चित्तमें स्वप्रकाश हरिको राखिकें किशोर अवस्थाहीमें परमेश्वरकूं प्राप्तभयो ॥ १५ ॥ मनुके बेटा करूषसै कारूषनाम क्षत्रीनकी जातिभई, उत्तर देशके राजा ब्रह्मनीक धर्मवत्सल होतभये ॥ १६ ॥ धृष्टते धार्ष्टनाम क्षत्री कुल होत भयो, सो पृथ्वीमें ब्राम्हणपनेको प्राप्तभयो, नृगको बेटा

विमुक्तसङ्गः शान्तात्मा संयताक्षोऽपरिग्रहः॥यदृच्छयोपपन्नेन कल्पयन् वृत्तिमात्मनः ॥१२॥आत्मन्यात्मानमाधाय ज्ञानतृप्तः समाहितः॥विचचार महीमेतां जडान्धबधिराकृतिः॥१३॥एवं वृत्तो वनं गत्वा दृष्ट्वा दावाग्निमुत्थितम्॥तेनोपयुक्तकरणो ब्रह्म प्राप परं मुनिः ॥ १४ ॥ कविः कनीयान् विषयेषु निःस्पृहो विसृज्य राज्यं सह बन्धुभिर्वनम्॥निवेश्य चित्ते पुरुषं स्वरोचिषं विवेश कैशोरवयाः परं गतः॥१५॥करूषान्मानवादासन् कारूषाः क्षत्रजातयः॥ उत्तरापथगोप्तारो ब्रह्मण्या धर्मवत्सलाः ॥ १६ ॥ धृष्टाद्धार्ष्टमभूत् क्षत्रं ब्रह्मभूयं गतं क्षितौ ॥ नृगस्य वंशः सुमतिर्भूतज्योतिस्ततो वसुः ॥ १७ ॥ वसोः प्रतीकस्तत्पुत्र ओघवानोघवत्पिता ॥ कन्या चौघवती नाम सुदर्शन उवाह ताम् ॥ १८ ॥ चित्रसेनो नरिष्यन्तादृक्षस्तस्य सुतोऽभवत् ॥ तस्य मीढ्वांस्ततः कूर्च इन्द्रसेनस्तु तत्सुतः ॥ १९ ॥ वीतिहोत्रस्त्विन्द्रसेनात्तस्य सत्यश्रवा अभूत् ॥ उरुश्रवाः सुतस्तस्य देवदत्तस्ततोभवत् ॥ २० ॥

सुमति भयो ताके भूतज्योति, ताकें वसु भयो ॥ १७॥ वसुतें प्रतीक ताके ओघवान ताको बेटाऊ ओघवान भयो, ओघवती कन्या भई ताय सुदर्शन व्याहतभयो ॥ १८ ॥ (तीन श्लोकनकरके करूष धृष्ट और नृगराजाके वंशको कहिके अब मनुके सातवे पुत्र नरिष्यंतकी वंशावली कहैहैं) नरिष्यंतते चित्रसेन भयो, ताके ऋक्षपुत्र होतभयो ताके मीढ्वान ताके कूर्च ताके इंद्रसेन भयो ॥ १९ ॥ इंद्रसेनते वीतिहोत्र भयो, ताके सत्यश्रवा भयो, ताको पुत्र उरुश्रवा भयो, तातें देवदत्त भयो ॥ २० ॥

36

तातें अग्निवेश्य पुत्र आप भगवान अग्निही भये, कन्यामें जन्में इस्सै कानीन कहायै इन्हीं अग्निवेश्यका नाम महात्मा जातुकर्णभी था ॥ २१ ॥
तातें अग्निवैश्यायन नाम ब्रह्म कुल होत भयो, नरिष्यंतको वंश कह्यो याते परे मनुके चतुर्थ पुत्र दिष्टको वंश सुनो ॥ २२ ॥ दिष्टको पुत्र नाभाग
भयो, सो नाभाग कर्म करिकै वैश्य होतभयो ताको पुत्र भलंदन भयो तातें वत्सप्रीति भयो ॥ २३ ॥ वत्सप्रीतिकें प्रांशु पुत्र भयो, ताको पुत्र प्रमिति
भयो, ताकें खनित्र भयो, तातें चाक्षुष, ताकें विविंशति भयो ॥ २४ ॥ विविंशतिको पुत्र रंभ भयो, याके धर्मात्मा खनिनेत्र भयो, हे महाराज! ताको

ततोऽग्निवेश्यो भगवानग्निः स्वयमभूत् सुतः ॥कानीन इति विख्यातो जातूकर्ण्यो महानृषिः ॥२१॥ ततो ब्रह्मकुलं जा-
तमाग्निवेश्यायनं नृप ॥ नरिष्यन्तान्वयः प्रोक्तो दिष्टवंशमतः शृणु ॥ २२ ॥ नाभागो दिष्टपुत्रोऽन्यः कर्मणा वैश्यतां
गतः ॥ भलन्दनः सुतस्तस्य वत्सप्रीतिर्भलन्दनात् ॥२३॥ वत्सप्रीतेः सुतः प्रांशुस्तत्सुतं प्रमतिं विदुः ॥ खनित्रः प्रम-
तेस्तस्माच्चाक्षुषोऽथ विविंशतिः ॥ २४ ॥ विविंशतिसुतो रम्भः खनिनेत्रोऽस्य धार्मिकः ॥ करंधमो महाराज तस्या-
सीदात्मजो नृपः ॥ २५ ॥तस्यावीक्षित्सुतो यस्य मरुत्तश्चक्रवर्त्यभूत् ॥ संवर्तोऽयाजयद्यं वै महायोग्यङ्गिरःसुतः ॥
२६ ॥ मरुत्तस्य यथा यज्ञो न तथाऽन्यस्य कश्चन ॥ सर्वं हिरण्मयं त्वासीद्यत्किंचिच्चास्य शोभनम् ॥ २७ ॥ अ-
माद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः ॥ मरुतः परिवेष्टारो विश्वेदेवाः सभासदः ॥ २८ ॥ मरुत्तस्य दमः पुत्र-
स्तस्यासीद्राज्यवर्धनः ॥ सुधृतिस्तत्सुतो जज्ञे सौधृतेयो नरः सुतः ॥२९॥ तत्सुतः केवलस्तस्माद्बन्धुमान् वेगवांस्त-
तः ॥ बन्धुस्तस्याभवद्यस्य तृणबिन्दुर्महीपतिः ॥ ३० ॥

पुत्र करंधम राजा होतभयो ॥ २५ ॥ ताके अवीक्षित् पुत्र भयो, जाके चक्रवर्ती मरुत होतभयो, अंगिराके पुत्र महायोगी संवर्त्त भयो जो मरुतको
यज्ञ करावतभये ॥ २६ ॥ जैंसो मरुतको यज्ञ भयो, तैसो कोऊ राजाको न भयो, जाके जो कछु लोटा थाली आदि पात्र हे सों सब सुंदर सोनेईके भए
॥ २७ ॥ जाके यज्ञमें सोम करिकै इंद्र प्रमत्त भयो, दक्षिणानकरिकै ब्राह्मण प्रसन्न किये, मरुत परोशनवारे भये विश्वेदेवा सभासद भये
॥ २८ ॥ मरुतको पुत्र दम, ताके राज्यवर्द्धन, ताके सुधृति, ताको बेटा नर भयो ॥ २९ ॥ ताको बेटा केवल भयो ताके बंधुमान, ताके बेटा

वेगवान, ताकें बुध बुधके राजा तृणविंदु भयो ॥ ३० ॥ गुणनको स्थान तृणविंदूकू अलंवुषादेवी अप्सरा भजतभई, जा अप्सरातें पुत्र भये इडविडा कन्या भई ॥ ३१ ॥ जा इडविडामें विश्रवा कुवेर पुत्र उपजावत भयो, पितासें परम विद्या लेकै योगेश्वर ऋषि होतभयो ॥ ३२ ॥ विशाल, शून्यवंधु, धूम्रकेतु, ये तृणविंदुके वेटा भये, विशाल वंशको करनवारो राजा भयो जाने वैशाली नाम पुरी रची ॥ ३३ ॥ ताके हेमचंद्र पुत्र भयो, ताके धूम्राक्ष पुत्र भयो, ताके संयम भयो, तामें देवजकरिकैं सहित कृशाश्व भयो ॥ ३४ ॥ कृशाश्वते सोमदत्त भयो, जो सोमदत्त अश्वमेधन करिकैं भगवानकी पूजाकरिकै योगीश्वरोंकी शरण ले उत्तम गतिकूं प्राप्तहोतभयो ॥ ३५ ॥ सोमदत्तको वेटा सुमति भयो, ताकें जनमेजय भयो,

तं भेजेऽलम्बुषा देवी भजनीयगुणालयम् ॥ वराप्सरा यतः पुत्राः कन्या चेडविडाऽभवत् ॥ ३१ ॥ तस्यामुत्पादयामास विश्रवा धनदं सुतम् ॥ प्रादाय विद्यां परमामृषिर्योगेश्वरात्पितुः ॥ ३२॥ विशालः शून्यबन्धुश्च धूम्रकेतुश्च तत्सुताः॥ विशालो वंशकृद्राजा वैशालीं निर्ममे पुरीम् ॥ ३३ ॥ हेमचन्द्रः सुतस्तस्य धूम्राक्षस्तस्य चात्मजः॥ तत्पुत्रात्संयमादासीत्कृशाश्वः सहदेवजः ॥ ३४ ॥ कृशाश्वात्सोमदत्तोऽभूद्योऽश्वमेधैरिडस्पतिम् ॥ इष्ट्वा पुरुषमापाग्र्यां गतिं योगेश्वराश्रितः ॥ ३५ ॥ सौमदत्तिस्तु सुमतिस्तत्सुतो जनमेजयः ॥ एते वैशालभूपालास्तृणबिन्दोर्यशोधराः ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ शर्यातिर्मानवो राजा ब्रह्मिष्ठः स बभूव ह ॥ यो वा अङ्गिरसां सत्रे द्वितीयमह ऊचिवान् ॥ १ ॥ सुकन्या नाम तस्यासीत् कन्या कमललोचना ॥ तया सार्धं वनगतो ह्यगमच्च्यवनाश्रमम् ॥ २ ॥

ए विशालके वंशके राजा भये, तृणविंदुके यशके करनवारे है ॥ ३६ ॥ इति भा॰भा॰नव॰ द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ तीसरे अध्यायमें मनुके तीसरे पुत्र शर्यातिको वंश कहैं हैं जा वंशमें सुकन्याको और रेवतीको वडो अद्भुत आख्यान है ॥ तहां शुकदेवजी कहैं हैं मनुके वेटा शर्य्याति राजा भयो वेदके अर्थको जाने हैं जो शर्याति अंगिरानको यज्ञमें दूसरे दिन करिवेयोग्य कर्म कहतभयो ॥ १ ॥ ताकें सुकन्यानाम कमलनेत्रा कन्या भई वे ताके सहित वनमें च्यवनऋषिके आश्रमकूं जात भये ॥ २ ॥

सो कन्या सखीनके सहित वनमें वृक्षनको देखत डोलती वामीके छेदमें पटवीजनासी दो ज्योति देखति भई ॥ ३ ॥ दैवकी प्रेरी कन्या कांटेते भोरे भाव करिकै ज्योतियौंकू छेदत भई तिनतें बहुत रुधिर वहतभयो ॥ ४ ॥ सेनाके लोकनकों ताई क्षणमें विष्ठा मूत्र बंद होतभयो, ताई देखिकैं शर्याति राजा विस्मित हो पुरुषोसे पूछतभयो ॥ ५ ॥ तुमनें भृगुकुलमें भये च्यवन ऋषिको अपराध तो नहींकियो काऊने तिनके आश्रमकों दूषन कियोहै ॥ ॥ ६ ॥ पीछें सो कन्या पितासों बोली कि हे पिता! यह अपराध मैंने कियोहै, विना जानें दो ज्योति कांटेनकरिकैं छेदीहैं ॥ ७ ॥ बेटीको वचन सुनिकैं

सा सखीभिः परिवृता विचिन्वन्त्यङ्घ्रिपान्वने ॥ वल्मीकरन्ध्रे ददृशे खद्योते इव ज्योतिषी ॥ ३ ॥ ते दैवचोदिता बाला ज्योतिषी कण्टकेन वै ॥ अविध्यन्मुग्धभावेन सुस्रावासृक् ततो बहु ॥ ४ ॥ शकृन्मूत्रनिरोधोऽभूत सैनिकानां च तत्क्षणात् ॥ राजर्षिस्तमुपालक्ष्य पुरुषान् विस्मितोऽब्रवीत् ॥ ५ ॥ अप्यभद्रं न युष्माभिर्भार्गवस्य विचेष्टितम् ॥ व्यक्तं केनापि नस्तस्य कृतमाश्रमदूषणम् ॥ ६ ॥ सुकन्या प्राह पितरं भीता किंचित् कृतं मया ॥ द्वे ज्योतिषी अजानन्त्या निर्भिन्ने कण्टकेन वै ॥ ७ ॥ दुहितुस्तद्वचः श्रुत्वा शर्यातिर्जातसाध्वसः ॥ मुनिं प्रसादयामास वल्मीकान्तर्गतं शनैः ॥ ८ ॥ तदभिप्रायमाज्ञाय प्रादाद्दुहितरं मुनेः ॥ कृच्छ्रान्मुक्तस्तमामन्त्र्य पुरं प्रायात्समाहितः ॥९॥ सुकन्या च्यवनं प्राप्य पतिं परमकोपनम् ॥ प्रीणयामास चित्तज्ञा अप्रमत्ताऽनुवृत्तिभिः ॥ १० ॥ कस्य चित्त्वथ कालस्य नासत्यावाश्रमागतौ ॥ तौ पूजयित्वा प्रोवाच वयो मे दत्तमीश्वरौ ॥ ११ ॥

बडो भयमान शर्याति वामीके भीतर अंतरहित मुनिकूं हौलें हौलें प्रसन्न करतभयो ॥ ८ ॥ मुनिको अभिप्राय जानिकैं तिनकूं कन्या देतभयो, कष्टतें छूट, तिनसूं आज्ञा मांगिकैं अपनें घरको जात भयो ॥ ९ ॥ सुकन्या परमक्रोधी च्यवन पतिकूं पाइकैं चित्तकी जाननवारी सावधान ह्वैकैं सेवाकरिकैं तिनें प्रसन्न करतभई ॥ १० ॥ कोई एकसमयमें अश्विनीकुमार आश्रममैं आये, तिने पूजि करिकैं बोले हे सद्वैद्यहो ! मोंको

---

१ जब राजा च्यवन ऋषिके समीप जायके बोल्यो कि महाराज मेरी कन्या भोरिने यह अपराध आपको विनाजाने करयो है, सो क्षमा करो तब तो च्यवन ऋषि बोले कि राजा तेरी कन्याकी कितनी अवस्था है और अभी विवाह भयोहै या नही इत्यादि वाक्यनसो राजा जानगयो कि विवाहकी इच्छा है ॥·

तरुण वयक्रम देउ ॥ ११ ॥ यज्ञमें सोमपान करिकैं रहित तुमको सोम पात्र देउगो, स्त्रीनके वांछित रूप और अवस्था मेरो करिदेउ ॥ १२ ॥ वैद्योंमें श्रेष्ठ अश्विनीकुमार ऐसेंई करैंगे ऐसें कहवाले सिद्धिन करिकै रचे इस सरोवरमें तुम स्नान करो ॥ १३ ॥ ऐसे कहि जरासै ग्रस्यो देह जिनकी नस दिखाईदे हैं, गुजलट श्वेत केशोंसै विप्रिय च्यवनको अश्विनीकुमारनें उठाइकै सरोवरमें प्रवेश कराया ॥ १४ ॥ स्त्रीनकूं प्यारे, सुंदर कमलकी माला धारे, सुंदर वस्त्र पहरे तुल्य रूप तीन्यो पुरुष सरोवरतै निकरतभये ॥ १५ ॥ सुकन्या समान रूप सूर्यकोसो तेज तीनोनको देखिकैं अपने पतिकूं न जानत अश्विनीकुमारके शरण जातिभई ॥ १६ ॥ ताके पातिव्रत धर्म करिकै प्रसन्नभये अश्विनीकुमार ताके अर्थ पतिकूं दिखाइके ऋषी-

ग्रहं ग्रहीष्ये सोमस्य यज्ञे वामप्यसोमपोः ॥ क्रियतां मे वयो रूपं प्रमदानां यदीप्सितम् ॥ १२ ॥ बाढमित्यूचतुर्विप्रमभिनन्द्य भिषक्तमौ ॥ निमज्जतां भवानस्मिन् ह्रदे सिद्धविनिर्मिते ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वा जरया ग्रस्तदेहो धमनिसन्ततः ॥ ह्रदं प्रवेशितोऽश्विभ्यां वलीपलितविप्रियः ॥ १४ ॥ पुरुषास्त्रय उत्तस्थुरपीच्या वनिताप्रियाः ॥ पद्मस्रजः कुण्डलिनस्तुल्यरूपाः सुवाससः ॥ १५ ॥ तान्निरीक्ष्य वरारोहा सरूपान् सूर्यवर्चसः ॥ अजानती पतिं साध्वी अश्विनौ शरणं ययौ ॥ १६ ॥ दर्शयित्वा पतिं तस्यै पातिव्रत्येन तोषितौ ॥ ऋषिमामन्त्र्य ययतुर्विमानेन त्रिविष्टपम् ॥ १७ ॥ यक्ष्यमाणोऽथ शर्यातिश्च्यवनस्याश्रमं गतः ॥ ददर्श दुहितुः पार्श्वे पुरुषं सूर्यवर्चसम् ॥ १८ ॥ राजा दुहितरं प्राह कृतपादाभिवन्दनाम् ॥ आशिषश्चाप्रयुञ्जानो नातिप्रीतमना इव ॥ १९ ॥ चिकीर्षितं ते किमिदं पतिस्त्वया प्रलम्भितो लोकनमस्कृतो मुनिः ॥ त्वं यज्जराग्रस्तमसत्यसंमतं विहाय जारं भजसेऽमुमध्वगम् ॥ २० ॥

श्वरसूं आज्ञा मांगि प्रणाम करिकें स्वर्गकूं जातभये ॥ १७ ॥ इतनेंहीमें यज्ञ करनेको इच्छा कर शर्याति राजा च्यवनऋषिके आश्रममें आय बेटीके पास सूर्यसो तेजवान पुरुष देखतभयो ॥ १८ ॥ राजा चरणमें प्रणाम करती अपनी बेटीकू आशीर्वाद न देतभयो अति अप्रसन्न मन भयो ॥ १९ ॥ हे असति ! तैनें यह कहा कियो, लोकन करिकैं नमस्कृत मुनि तैंनें वंचित कियो, हे असति ! जरा करिकैं ग्रस्यो असंमत मुनिकूं छौडिकैं मार्गमें चल्योआयो जार पुरुष तू सेवन करैहै ॥ २० ॥

40

हे सतांकुलप्रसूते ! तेरी मति और प्रकारकी कैसें भई, यह कुलको दूषण है, निर्लज्ज जो तू जार पुरुषको सेवन करैहै, भर्ताको और पिताको कुल तू नरकमें डारेगी ॥ २१ ॥ ऐसें कहते पिता तासूं हँसती सुंदर मुसिक्यांनि युक्त सुकन्या बोली हे पिता ! अच्छे भृगुकुलमें जन्म्यो यही तुमारो जमाई है ॥ २२ ॥ पतिके रूप यौवनकी प्राप्ति सब पितासों कहति भई, तब राजा विस्मित व्हैके प्रसन्न व्है बेटीसो मिलत भयो ॥ २३ ॥ वीर राजाकूं सोम करिकै यज्ञ करावत सोमको पूर्णपात्र अपने तेज करिकैं च्यवन ऋषि सोम रहित अश्विनीकुमारको देतभयो ॥ २४ ॥ तत्काल क्रोधसे

कथं मतिस्तेऽवगतान्यथा सतां कुलप्रसूते कुलदूषणं त्विदम् ॥ बिभर्षि जारं यदपत्रपाकुलं पितुश्च भर्तुश्च नयस्यधस्तमः ॥ २१ ॥ एवं ब्रुवाणं पितरं स्मयमाना शुचिस्मिता ॥ उवाच तात जामाता तवैष भृगुनन्दनः ॥ २२ ॥ शशंस पित्रे तत्सर्वं वयोरूपाभिलम्भनम् ॥ विस्मितः परमप्रीतस्तनयां परिषस्वजे ॥ २३ सोमेन याजयन् वीरं ग्रहं सोमस्य चाग्रहीत् ॥ असोमपोरप्यश्विनोश्च्यवनः स्वेन तेजसा ॥२४॥ हन्तुं तमाददे वज्रं सद्यो मन्युरमर्षितः ॥ सवज्रं स्तम्भयामास भुजमिन्द्रस्य भार्गवः ॥ २५ ॥ अन्वजानंस्ततः सर्वे ग्रहं सोमस्य चाश्विनोः ॥ भिषजाविति यत्पूर्वं सोमाहुत्या बहिष्कृतौ ॥ २६ ॥ उत्तानबर्हिरानर्तो भूरिषेण इति त्रयः ॥ शर्यातेरभवन् पुत्रा आनर्ताद्रेवतोऽभवत् ॥ २७ ॥ सोऽन्तः समुद्रे नगरीं विनिर्माय कुशस्थलीम् ॥ आस्थितोऽभुङ्क्त विषयानानर्तादीनरिंदम ॥ २८ ॥ तस्य पुत्रशतं जज्ञे ककुद्मिज्येष्ठमुत्तमम् ॥ ककुद्मी रेवतीं कन्यां स्वामादाय विभुं गतः ॥ २९ ॥

अधीर हो इंद्र ऋषिके मारिवेको वज्र लेतभयो, तब च्यवन ऋषि वज्रसहित इंद्रको हाथ स्तंभन करत भये ॥ २५ ॥ ताके अनंतर सगरे देवगण अश्विनीकुमारकों सोमको पात्र जानतभये, पहले ये वैद्य हैं यह जानिके सोमकी आहूति करिकैं बाहिर कियेथे ॥ २६ ॥ उत्तानबर्हि आनर्त्त भूरिषेण ये तीनि पुत्र शर्याति राजाके भये, आनर्त्तके रैवत होतभयो ॥ २७ ॥ सो रैवतराजा समुद्रके मध्यमें कुशस्थली नामक नगरी वसाइकैं तामें बैठिकैं आनर्त्तादिक देशोंको भोग करत भयो ॥२८॥ ता रैवतके ककुद्मी आदि सो पुत्र भये ककुद्मी अपनी रेवती नाम कन्याको लेकै ॥२९॥

ब्रह्मासूं वेटीको वर पूछिवेके लियें ब्रह्मलोकमें जातभये, तहां रागरंग देखिकैं पूछिवेको अवसर न पाय एक क्षण बैठत भयो ॥ ३० ॥ रागके अंतमें ब्रह्माके निकट जाइकैं नमस्कारकरिकैं अपनो अभिप्राय कहतभयो, अर्थात् यह रेवती बेटीको कौनकूं व्याह करूं ॥ ३१ ॥ भगवान् ब्रह्मा श्रवणकर हँसिकैं तार कहतभये, हे रा[illegible] तुम्हारे हृदयमें विचारे सगरे राजा कालनें नाश किये, तिनके बेटा नाती पांतीके गोत्रजभी सुननेमें नहीं आतें ॥ ३२ ॥ सत्ताईस चौ[illegible] अर्थात् चारचो युगन करिकैं रच्यो काल व्यतीतभये, तातें हे राजन्! तू पृथ्वीमें जायके देवनके देव श्रीकृष्णके अंश म-

कन्यावरं परिप्रष्टुं ब्रह्मलोकमपावृतम् ॥ आवर्तमाने गान्धर्वे स्थितोऽलब्धक्षणः क्षणम् ॥ ३० ॥ तदन्त आद्यमानम्य स्वाभिप्रायं न्यवेदयत् ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा प्रहस्य तमुवाच ह ॥ ३१ ॥ अहो राजन् निरुद्धास्ते कालेन हृदि ये कृताः ॥ तत्पुत्रपौत्रनप्तॄणां गोत्राणि च न शृण्महे ॥ ३२ ॥ कालोभियातस्त्रिणवचतुर्युगविकल्पितः ॥ तद्गच्छ देवदेवांशो बलदेवो महाबलः ॥ ३३ ॥ कन्यारत्नमिदं राजन् नररत्नाय देहि भोः ॥ भुवो भारावताराय भगवान् भूतभावनः ॥ ३४ ॥ अवतीर्णो निजांशेन पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ इत्यादिष्टोऽभिवन्द्याजं नृपः स्वपुरमागतः ॥ ३५ ॥ त्यक्तं पुण्यजनत्रासाद्भ्रातृभिर्दिक्ष्ववस्थितैः ॥ सुतां दत्त्वाऽनवद्याङ्गीं बलाय बलशालिने ॥ बदर्याख्यं गतो राजा तप्तुं नारायणाश्रमम् ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

हाबली ॥ ३३ नरनमें रत्न बलदेवके अर्थ यह कन्या रत्न देउ, भूमिके भार उतारिवेके लिये भूतनके पालक भगवान् ॥ ३४ ॥ पवित्र श्रवण और कीर्तनवारे भगवान् निज अंश करिकैं अवतार ले आये है ऐसें आज्ञा दियो ककुद्मी राजा ब्रह्माको नमस्कार करिकैं अपने पुरमें आवतभये ॥ ३५ ॥ जिस पुरको यक्षनके डरतें तिसके भैया त्यागन कर दिशाओंमें चले गथेये निर्दूषित अंग अपनी बेटीको बलीनमें श्रेष्ठ बलदेवजीके अर्थ देकें आप तप करिवेके लिये नारायणको आश्रम बदरिकाश्रममें जातभये ॥ ३६ ॥ इति श्रीमहाभागवतभाषायां नवमस्कन्धे तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चौथे अध्यायमें मनुको पुत्र नभगकी कथा कहें हैं ता नभगके बेटा नाभाग और अंबरीषकी कथा कहें हैं, जाने कृत्याको नाश कीनो ॥
श्रीशुकदेवजी कहें हैं हे राजन् ! नभगको बेटा नाभाग भयो, यह गुरुके घर विद्या पढने गये तब दूसरे भाइयोंने यह जाना कि यह ब्रह्मचारी होगा
इस कारण उसे कुछ रखकर पिताका धन आप सब वांटलिया ॥ १ ॥ जब नाभाग गुरुके पासते पढके आयो तो कहा देखे है कि जितनो पिताको
द्रव्य है सो भैयानने बाँटलियो है तब नाभाग भैयानसो बोल्यो कि हे भैयाओ ! मेरे अर्थ कहा भाग राख्यो है, भैया बोले तू पिताको ग्रहण कर
तब वह पितापै जाइके बोल्यो हे तात ! मेरे बडे भैया तुमें भाग करत भये, तब पिता बोले तिनके कहेको आदर मतिकर ॥ २ ॥ जो मैं भागमें

श्रीशुक उवाच ॥ नाभागो नभगापत्यं यततं भ्रातरः कविम् ॥ यविष्ठं व्यभजन् दायं ब्रह्मचारिणमागतम् ॥ १ ॥
भ्रातरोऽभाक्त किं मह्यं भजाम पितरं तव ॥ त्वां ममार्यास्तताभाक्षुर्मा पुत्रक तदादृथाः ॥ २ ॥ इमे अङ्गिरसः सत्र-
मासतेऽद्य सुमेधसः ॥ षष्ठं षष्ठमुपेत्याहः कवे मुह्यन्ति कर्माणि ॥ ३ ॥ तांस्त्वं शंसय सूक्ते द्वे वैश्वदेवे महात्मनः ॥
ते स्वर्यन्तो धनं सत्रपरिशेषितमात्मनः ॥४॥ दास्यन्त्यथ ततो गच्छ तथा स कृतवान् यथा ॥ तस्मै दत्त्वा ययुः स्वर्गं
ते सत्रपरिशेषितम् ॥ ५ ॥ तं कश्चित्स्वीकरिष्यन्तं पुरुषः कृष्णदर्शनः ॥ उवाचोत्तरतोऽभ्येत्य ममेदं वास्तुकं वसु
॥ ६ ॥ ममेदमृषिभिर्दत्तमिति तर्हि स्म मानवः ॥ स्यान्नौ ते पितरि प्रश्नः पृष्टवान् पितरं तथा ॥७॥ यज्ञवास्तुगतं
सर्वमुच्छिष्टमृषयः क्वचित् ॥ चक्रुर्विभागं रुद्राय स देवः सर्वमर्हति ॥ ८ ॥

दियोहू तो तोकूं जीविकाको उपाय बताऊं ये अंगिराके गोत्रके यज्ञ करैं हैं, सुंदर बुद्धिमान् कविभी छठो दिन पाइकैं कर्ममें मोहित होयहै ॥ ३ ॥
तहां तू विश्वेदेवतानकी दो सूक्ति तहां कहते स्वर्गकू जांईगे तब अपने यज्ञपें बाकी रह्यो धन तोकूं देजाइगे ॥ ४ ॥ ताते तिनके पास जा, यह सुन
नाभाग तैसेंई करत भयो ते यज्ञमें शेष रह्यो धन ताहि देकै स्वर्गको जातभयो ॥ ५ ॥ ता द्रव्यके लेते समय कोई एक कारे शरीरका पुरुष उत्तर
दिशातें आइकैं बोल्यो यज्ञको द्रव्य मेरो है ॥ ६ ॥ मनुको बेटा नाभाग तासमय बोल्यो यह ऋषिननें मोकूं दियो है, तब वह पुरुष बोल्यो हमारे
तेरे या विवादमें तेरें पिताकूंही पूछ, तब नाभाग पितासूं पूछतभयो ॥ ७ ॥ पिता बोल्यो ऋषिननें यज्ञकी भूमिमें शेष द्रव्य महादेवजीके अर्थ

भाग कियोहै, तातें यह सर्व द्रव्य उन्ही शिवको भाग है ॥ ८ ॥ तब नाभाग शिवके समीप आय तिनें दंडवत करिकैं बोल्यो हे ईश! यह सब तुह्मारोई है, यह मेरे पिता कहतभये हैं हे ब्रह्मन्! मै शिरकरिकैं तुमें प्रसन्न करूं हूं ॥ ९ ॥ रुद्र बोले तेरो पिता धर्म कहतभयो तूंहू सांच बोल्यो तातें मंत्रद्रष्टा तोकूं ज्ञानरूप सनातन ब्रह्म देउंगो ॥ १० ॥ और यज्ञमें शेष रह्यो द्रव्य मेंनें दियो तू ग्रहण करि ऐसें कहिकैं भगवान् भक्तवत्सल रुद्र अंतरध्यान होतभये॥ ११ ॥ अब या कथा पढने सुननेको फल कहै है कि जो पुरुष सावधान ह्वैकें सवेरे सांझ या चरित्रकों स्मरण करैंगो सो कवि मंत्रज्ञ होइगो आत्माकी गतिको प्राप्त होईगो ॥ १२ ॥ नाभागतें महाभाग सुकृती अंबरीष होतभयो, जिस अम्बरीषको कही नष्ट न होनेवाला

नाभागस्तं प्रणम्याह तवेश किल वास्तुकम्॥इत्याह मे पिता ब्रह्मन् शिरसा त्वां प्रसादये ॥९॥ यत्ते पिताऽवदद्धर्मं त्वं तु सत्यं प्रभाषसे॥ददामि ते मन्त्रदृशे ज्ञानं ब्रह्म सनातनम् ॥१०॥ गृहाण द्रविणं दत्तं मत्सत्रे परिशेषितम् ॥ इत्युक्त्वान्तर्हितो रुद्रो भगवान् सत्यवत्सलः ॥ ११ ॥ य एतत् संस्मरेत् प्रातः सायं च सुसमाहितः ॥ कविर्भवति मन्त्रज्ञो गतिं चैव तथात्मनः ॥१२॥ नाभागादम्बरीषोऽभून्महाभागवतः कृती ॥ नास्पृशद् ब्रह्मशापोऽपि यं न प्रतिहतः क्वचित् ॥१३॥ राजोवाच ॥ भगवन् श्रोतुमिच्छामि राजर्षेस्तस्य धीमतः ॥ न प्राभूद् यत्र निर्मुक्तो ब्रह्मदण्डो दुरत्ययः ॥१४॥ श्रीशुक उवाच ॥ अम्बरीषो महाभागः सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥ अव्ययां च श्रियं लब्ध्वा विभवं चातुलं भुवि ॥१५॥ मेनेऽतिदुर्लभं पुंसां सर्वं तत्स्वप्नसंस्तुतम् ॥ विद्वान् विभवनिर्वाणं तमो विशति यत्पुमान् ॥ १६ ॥

ब्राह्मणोंका शापभी स्पर्श न करता हुआ ॥१३॥ यह सुनके राजा बोल्यो हे भगवन्! बुद्धिमान् राजऋषि अंबरीषको चरित्र मैं सुनिवेकी इच्छा करूंहूं जा अंबरीषपर चलायो दुरत्यय ब्रह्मदंड समर्थ न होतभयो ॥१४॥ शुकदेवजी कहैं हैं महाभाग अंबरीष सातो दीपनकरिकैं युक्त पृथ्वी और नाशरहित संपत्ति अतुल वैभव पाइकैं ॥ १५ ॥ जो दूसरे पुरुषौंको मिलना दुर्लभ है ऐसे वैभवको प्राप्त होकरभी उसै नाशवान और स्वप्नकी समान जान्ते कारण कि वैभवसै मनुष्य मोहमें प्राप्त होयहै ॥ १६ ॥

भगवान् वासुदेवमें और तिनको भक्त साधुनमें परमभावकों प्राप्तभये अंबरीष या भावकरिकैं विश्वको मृत्तिकाकी समान जानत भये ॥ १७ ॥ सो अंबरीष कृष्णचरणारविंदनमें मन करत भये भगवान्के गुण वर्णन करिवेमें वचन करतभये, हाथ हरिके मंदिरको मार्जनादिकनमें करतभये, कान हरिकी कथाके सुनिवेमें करतभये ॥ १८ ॥ मुकुंदके स्वरूप स्थानके दर्शनमें नेत्र करतभये, तिनके भक्तनके गात्र स्पर्शनमें अंगसंग करतभये, तिनके चरणनमें चढी तुलसीकी सुगंधमें नाशिका करतभये, हरिके अर्पण किये प्रसादमें जीभ करतभये ॥ १९ ॥ हरिके क्षेत्र जाइवेके लिये अपने चरण करतभये, हरिके चरणनके प्रणाममें अपनो शिर करतभये, माला चंदनादिक सेवा दासभावमें करतभये, विषय इच्छा करिकैं नहीं करतभये, वह सब कार्य ऐसे करते जैसे हरि भक्तौंके साथ प्रीति बढै ॥२०॥ ऐसें कर्मनको समूह भगवान्में अर्पण करते तन्निष्ठ ब्राह्मणनते शिक्षा लेते यह पृथ्वी पालन करतभयो ॥ २१ ॥ इस नृपतिने वशिष्ठ गौतम और असित ऋषियौंसे प्रयोग कराकर निर्जल देशमें सरस्वतीके तट पर बहुतसे अश्वमेधौंसे यज्ञेश्वर भगवानका पूजन किया और ऐश्वर्यशाली होनेके कारण उन यज्ञौंमें अंग और दक्षिणाका बहुत विस्तार किया ॥२२॥ जाके यज्ञनमें सदस्य और ऋत्विजादिजन देवतानके समान तुल्य रूप और आश्चर्यसे देखनेके कारण उनके नेत्रभी निमेष रहित विदित होतेथे ॥ २३ ॥

वासुदेवे भगवति तद्भक्तेषु च साधुषु ॥ प्राप्तो भावं परं विश्वं येनेदं लोष्ठवत्स्मृतम् ॥ १७ ॥ स वै मनः कृष्णपदारविन्दयोर्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने ॥ करौ हरेर्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥ १८ ॥ मुकुन्दलिङ्गालयदर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रस्पर्शेङ्गसङ्गम् ॥ घ्राणं च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥ १९ ॥ पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने ॥ कामं च दास्ये न तु कामकाम्यया यथोत्तमश्लोकजनाश्रया रतिः ॥२०॥ एवं सदा कर्मकलापमात्मनः परेऽधियज्ञे भगवत्यधोक्षजे ॥ सर्वात्मभावं विदधन्महीमिमां तन्निष्ठविप्राभिहितः शशास ह ॥ २१ ॥ ईजेऽश्वमेधैरधियज्ञमीश्वरं महाविभूत्योपचिताङ्गदक्षिणैः ॥ ततैर्वसिष्ठासितगौतमादिभिर्धन्वन्यभिस्रोतमसौ सरस्वतीम् ॥२२॥ यस्य क्रतुषु गीर्वाणैः सदस्या ऋत्विजो जनाः ॥ तुल्यरूपाश्चानिमिषा व्यदृश्यन्त सुवाससः ॥ २३ ॥

जा अंबरीष राजाकी प्रजाने देवतानको प्यारो स्वर्ग प्रार्थना न कियो, भगवानकी कथा सुनै गामें मुकुंदको हृदयमें देखैहैं (१) ॥ २४ ॥ जो हृदयमें नारायणको देखतैहैं उन्है उन्है सिद्धौंकी दुर्लभ विषयभी प्रसन्न नहीं कर सक्के जिन्है स्वरूपका लाभ होगया हैं उन्है विषयसुख क्या है ॥ २५ ॥ ऐसै तपकरिकै युक्त भक्तियोग सुधर्मसे हरिको प्रसन्न करत अंबरीष हौले हौले संपूर्ण संग त्यागत भयो ॥ २६ ॥ घरन स्त्री पुत्रन बंधु हाथी रथ उत्तम घोडा और वस्तु अक्षयरत्न आभरण आयुधादिक अनंत खजानें झूंठो जानतभयो ॥ २७ ॥ एकांत भक्तिभाव करिकैं प्रसन्न भये हरि वैरीनको

स्वर्गो न प्रार्थितो यस्य मनुजैरमरप्रियः ॥ शृण्वद्भिरुपगायद्भिरुत्तमश्लोकचेष्टितम् ॥ २४ ॥ समर्धयन्ति तान्कामाः स्वाराज्यपरिभाविताः ॥ दुर्लभा नापि सिद्धानां मुकुन्दं हृदि पश्यतः ॥२५॥ स इत्थं भक्तियोगेन तपोयुक्तेन पार्थिवः ॥ स्वधर्मेण हरिं प्रीणन् सङ्गान्सर्वान् शनैर्जहौ ॥ २६ ॥ गृहेषु दारेषु सुतेषु बन्धुषु द्विपोत्तमस्यन्दनवाजिपत्तिषु ॥ अक्षय्यरत्नाभरणायुधादिष्वनन्तकोशेष्वकरोदसन्मतिम् ॥ २७ ॥ तस्मा अदाद्धरिश्चक्रं प्रत्यनीकभयावहम् ॥ एकान्तभक्तिभावेन प्रीतो भृत्याभिरक्षणम् ॥ २८ ॥ आरिराधयिषुः कृष्णं महिष्या तुल्यशीलया ॥ युक्तः सांवत्सरं वीरो दधार द्वादशीव्रतम् ॥ २९ ॥ व्रतान्ते कार्तिके मासि त्रिरात्रं समुपोषितः ॥ स्नातः कदाचित्कालिन्द्यां हरिं मधुवनेऽर्चयत ॥ ३० ॥ महाभिषेकविधिना सर्वोपस्करसम्पदा ॥ अभिषिच्याम्बराकल्पैर्गन्धमाल्यार्हणादिभिः ॥ ॥३१ ॥

भयदायक भक्तनकी रक्षा करनेहारो चक्र अंबरीषके अर्थ देतभये ॥ २८ ॥ तुल्य शील रानी सहित कृष्णके आराधनकी इच्छासे वीर अंबरीष एकवर्षताई अखंड एकादशीव्रत धारण करतभये ॥ २९ ॥ तदनंतर मथुरा पधारे और व्रतके अंतमें कार्तिक महिनामें तीन दिन उपवास कियो, और कालिंदीमें स्नान कर मधुवनमें हरिकी पूजा करतभये ॥ ३० ॥ महाभिषेककी विधि करिकैं सब सामग्रीनकी संपत्ति करिकैं वस्त्र भूषण गंध फूलमालासे ॥ ३१ ॥

---

(१) सब कोई कथामै प्रेमसों अश्रुपात कैरहैं, परन्तु वक्ताके नहीं निकरैं हैं, एक पंडितजी बडी सुन्दर कथा वांचेहे सब श्रोता प्रेमके मारे रौवनलगै, पर पंडितजीके आंसू न निकरै एक बोलउठ्यो पंडितजी तुम कथामें कबहूं नाय रोवत कहा तुम्है प्रेम नहीं आवै है, तब पंडितजी बोले भैया ! मैं वा दिन रोऊंगो जा दिन या कथामें कछू नाई चढैगो ॥

तिनहीमें चित्त लगाये केशव भगवानको पूजन करत भयो और बडो भाग्यवान् सिद्ध अर्थ ब्राम्हणोंके पूजन करत भयो ॥ ३२ ॥ सोनेके सींग रुपेके खुर सुंदर वस्त्र दूधकी दुधार रूप अवस्था बछरा दोहनी संपत्ति सहित ॥ ३३ ॥ साठि किरोड गौनको ब्राम्हणनके अर्थ घरनमें पठावतभयो पहेले गुणवान स्वादपूर्वक अन्न ब्राम्हणनकूं भोजन करावतभयो ॥ ३४ ॥ प्राप्तकाम ब्राम्हणोंकी आज्ञा पाय राजा पारणो करिवेकूं आरंभ करतभयो ताई समय दुर्वासा अतिथी आवतेभये ॥ ३५ ॥ राजा दुर्वासऋषि अतिथिको उठिकैं आसन अर्घसै पूजा करतभयो चरणमूलमें गिरिकैं भोजनके लियें प्रार्थना करतभयो ॥ ३६ ॥ तब दुर्वासा राजाकी प्रार्थना मानिकैं मध्याह्नसंध्या करिवेके लिये गए, कालिंदीके पवित्र जलमें स्नान करतभये,

तद्गतान्तरभावेन पूजयामास केशवम् ॥ ब्राह्मणांश्च महाभागान् सिद्धार्थानपि भक्तितः ॥ ३२ ॥ गवां रुक्मविषाणीनां रूप्याङ्घ्रीणां सुवाससाम् ॥ पयःशीलवयोरूपवत्सोपस्करसंपदाम् ॥ ३३ ॥ प्राहिणोत्साधुविप्रेभ्यो गृहेषु न्यर्बुदानि षट् ॥ भोजयित्वा द्विजानग्रे स्वाद्वन्नं गुणवत्तमम् ॥ ३४ ॥ लब्धकामैरनुज्ञातः पारणायोपचक्रमे ॥ तस्य तर्ह्यतिथिः साक्षाद्दुर्वासा भगवानभूत् ॥ ३५ ॥ तमानर्चातिथिं भूपः प्रत्युत्थानासनार्हणैः ॥ ययाचेऽभ्यवहाराय पादमूलमुपागतः ॥ ३६ ॥ प्रतिनन्द्य स तद्याच्ञां कर्तुमावश्यकं गतः ॥ निममज्ज बृहद्ध्यायन्कालिन्दीसलिले शुभे ॥ ३७ ॥ मुहूर्तार्धावशिष्टायां द्वादश्यां पारणं प्रति ॥ चिन्तयामास धर्मज्ञो द्विजैस्तद्धर्मसंकटे ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणातिक्रमे दोषो द्वादश्यां यदपारणे ॥ यत्कृत्वा साधु मे भूयादधर्मो वा न मां स्पृशेत् ॥ ३९ ॥ अम्भसा केवलेनाथ करिष्ये व्रतपारणम् ॥ प्राहुरब्भक्षणं विप्रा ह्यशितं नाशितं च तत् ॥ ४० ॥

ब्रह्मका ध्यान करतभये ॥ ३७ ॥ घडीभरि बाकीरही द्वादशीमें पारनो करिवेकूं राजा धर्मको जाननवारो ब्राह्मण करिकैं सहित धर्म संकटमें चिंता करतभये ॥ ३८ ॥ ब्राह्मणके अतिक्रममें दोष है, वा द्वादशीमें पारनो न करै तो दोष है, ज्या करिकैं मेरो भलो होई अधर्म मोकूं स्पर्श न करे सो हे ब्राह्मणहो कहो ॥ ३९ ॥ ब्राह्मणनके संग विचारिकै निश्चय कर बोले हे ब्राह्मणो ! केवल जल करिकैं पारनो करूंगो, जलके भक्षणको भोजन कहैंभी है और नहीभी कहें है ॥ ४० ॥

हे कुरुश्रेष्ठ ! ऐसे अंबरीष जल पीकै मनसे हरिको चिंतवन करत ब्राह्मणके आईवेको पैंडों देखतभयो ॥ ४१ ॥ अवश्यक कर्मकर दुर्वासा यमुनाकूलतें आये, राजाने आदर किये, राजाकी चेष्टा बुद्धिसे जानतभये, अर्थात् याने कछु पारनो करलियो है अतएव याकी चेष्टा डहडही है ॥ ४२ ॥ तब क्रोध करिकैं कांपत शरीर भ्रुकुटी कुटिल मुख, अति भूखो दुर्वासा हाथ जोरे राजासूं बोलत भयो ॥ ४३ ॥ यह क्रूर संपत्तिकरिकें मतवारो विष्णु-[illegible] आपको ईश्वर माननेहारे इस राजाके धर्मको व्यतिक्रम तौ देखो ॥ ४४ ॥ यह राजा मुझ आये अतिथिको भोजनके लिये न्योतिकै विना भोजन दिये आप भोजन करतभयो, ताको फल तोकूं तत्काल दिखाऊंगो ॥ ४५ ॥ ऐसे कहि क्रोधसै जरते दुर्वासा एक जटा उखारिके तासे

इत्यपः प्राश्य राजर्षिश्चिन्तयन्मनसाऽच्युतम् ॥ प्रत्याचष्ट कुरुश्रेष्ठ द्विजागमनमेव सः ॥ ४१ ॥ दुर्वासा यमुनाकूलात्कृतावश्यक आगतः ॥ राज्ञाऽभिनन्दितस्तस्य बुबुधे चेष्टितं धिया ॥ ४२ ॥ मन्युना प्रचलद्गात्रो भ्रुकुटीकुटिलाननः ॥ बुभुक्षितश्च सुतरां कृताञ्जलिमभाषत ॥ ४३ ॥ अहो अस्य नृशंसस्य श्रियोन्मत्तस्य पश्यत ॥ धर्मव्यतिक्रमं विष्णोरभक्तस्येशमानिनः ॥ ४४ ॥ यो मामतिथिमायातमातिथ्येन निमन्त्र्य च ॥ अदत्त्वा भुक्तवांस्तस्य सद्यस्ते दर्शये फलम् ॥ ४५ ॥ एवं ब्रुवाण उत्कृत्य जटां रोषविदीपितः ॥ तया स निर्ममे तस्मै कृत्यां कालानलोपमाम् ॥ ४६ ॥ तामापतन्तीं ज्वलतीमसिहस्तां पदा भुवम् ॥ वेपयन्तीं समुद्वीक्ष्य न चचाल पदान्नृपः ॥ ४७ ॥ प्राग्दिष्टं भृत्यरक्षायां पुरुषेण महात्मना ॥ ददाह कृत्यां तां चक्रं क्रुद्धाहिमिव पावकः ॥ ४८ ॥ तदभिद्रवदुद्वीक्ष्य स्वप्रयासं च निष्फलम् ॥ दुर्वासा दुद्रुवे भीतो दिक्षु प्राणपरीप्सया ॥ ४९ ॥

राजाके अर्थ कालअग्निकीसी उपमा कृत्यानल अग्नि रचतभयो ॥ ४६ ॥ खड्ग हाथमें लिये भूमिको कंपाती प्रकाशीत चली आती उस राक्षसीको देखिके राजा स्थानते चलायमान न भये ॥ ४७ ॥ महात्मा भगवान्ने भक्तकी रक्षाके लिये पहिलेई आज्ञा दियो चक्र ता कृत्यानल अग्निको जराई देत भयो, जैसें क्रोधी सर्पको दावाग्नि जराइदे है ॥ ४८ ॥ अपनो प्रयास निष्फल गयो देखिकैं औ चक्र पीछे आता देख भयातुर प्राण बचाइवेके लिये दुर्वासा दिशानमें भाजतभये ॥ ४९ ॥

भगवानको चक्र ताके पीछेंई दौरत भयो जैसें उन्नत ज्वाला दावाग्नि सापके पीछें दौरै है, तैसे पीछेते आवत चक्र देखिकैं दुर्वासा सुमेरुकी गुफामें प्रवेश करिवेके लिये जातभयो ॥ ५० ॥ दिशा आकाश पृथ्वी विवर समुद्र पालकनसहित लोक स्वर्ग आदि जहां गयो जहां जहां दौरचो तहां तहां भगवान्को सुदर्शन देखत भयो ॥ ५१ ॥ जब कहूं नहीं रक्षा करनेवारो पायो तब भयभीत चित्त शरणको ढूंढते ब्रह्माके पास जातभयो, और ब्रह्मलोकमें जायके ब्रह्माते बोल्यो हे विधाता ! हरिके चक्रतें मेरी रक्षा करो ॥ ५२ ॥ तब ब्रह्मा बोले विश्वकरिकैं सहित यह मेरो स्थान नाश करिवेकी इच्छा करते कालरूपी भगवान्के क्रीडा करते जब दो परार्द्धको अन्त होगो तब भ्रुकुटीके भंगमात्र करिकै नष्ट ह्वै जाइगो ॥ ५३ ॥ मैं रुद्र दक्ष भृगु आदि प्रजानके ईश भूतनके ईश देवतानके ईश मुख्य २ सब हम जा भगवानकी माथेपैं अर्पण करी आज्ञाकूं प्राप्तव्हैकैं लोकनको हित जैसें होई तैसें आज्ञाकूं धारण करेहै तिनके चक्रसै कौन बचावै ॥ ५४ ॥ ब्रह्मानें नहीं कियो तब विष्णुचक्रसो तापित दुर्वासा ऋषि कैलासवासी महादेवकी शरण जात भयो ॥ ५५ ॥ महादेव बोले हे तात ! हम सबनतें बडो परमेश्वर है तामें हम नहीं प्रभाव करि सकैं हैं जिन व्यापक रूप ईश्वरमें यह ब्रह्माण्ड और ब्रह्मारूप जीवोंके शरीररूप सहस्रों ब्रह्माण्ड उत्पन्न होते हैं जिनकी समयपर उत्पत्ति और लीनता होतीहै

तमन्वधावद्भगवद्रथाङ्गं दावाग्निरुद्धूतशिखो यथाऽहिम् ॥ तथानुषक्तं स निरीक्षमाणो गुहां विविक्षुः प्रससार मेरोः
॥ ५० ॥ दिशो नभः क्ष्मां विवरान् समुद्रान् लोकान् सपालान् त्रिदिवं गतः सः ॥ यतो यतो धावति तत्र तत्र सुदर्शनं
दुःप्रसहं ददर्श ॥ ५१ ॥ अलब्धनाथः स यदा कुतश्चित्संत्रस्ताचित्तोऽरणमेषमाणः ॥ देवं विरिञ्चं समगाद्विधातस्त्राह्या-
त्मयोनेऽजिततेजसो माम् ॥ ५२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ स्थानं मदीयं सहविश्वमेतत् क्रिडावसाने द्विपरार्धसंज्ञे ॥ भ्रूभङ्गमा-
त्रेण हि संदिधक्षोः कालात्मनो यस्य तिरोभविष्यति ॥ ५३ ॥ अहं भवो दक्षभृगुप्रधानाः प्रजेशभूतेशसुरेशमुख्याः ॥
सर्वे वयं यन्नियमं प्रपन्ना मूर्ध्न्यर्पितं लोकहितं वहामः ॥ ५४ ॥ प्रत्याख्यातो विरिञ्चेन विष्णुचक्रोपतापितः ॥ दुर्वासाः
शरणं यातः शर्वं कैलासवासिनम् ॥ ५५ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ वयं न तात प्रभवाम भूम्नि यस्मिन् परेऽन्येऽप्यजजी-
वकोशाः ॥ भवन्ति काले न भवन्ति हीदृशाः सहस्रशो यत्र वयं भ्रमामः ॥ ५६ ॥

लोकपालनका अभिमान करनेवालेभी जिनकी मायासै मोहित होते हैं उनके कार्यमें हम कुछ नहीं करसकैं है ॥ ५६ ॥ मैं सनत्कुमार नारद ब्रह्मा कपिल अपांतरतम देवल धर्म आसुरी ॥ ५७ ॥ मरीचि आदि मुख्य और सिद्धनके ईश्वर पारके देखनेवारे सब हम जाकी मायाकूं नहीं जानें हैं मायानें घेरे हैं ॥ ५८ ॥ सो विश्वेश्वर भगवान्‌के इस शस्त्रको हमभी नही सह सक्ते इस्से तुम उन्हींके शरण जाओ हरि तोकूं सुख करैंगे ॥ ५९ ॥ तब निराश हो दुर्वासा भगवानका स्थान वैकुंठको जात भयो जहां श्रीनिवास लक्ष्मीसहित रहैं हैं ॥ ६० ॥ भगवानके शस्त्रकी अग्निसे जरे कंपित शरीर हरिके चरणमूलमें गिरतभयो, और वह कहत भयो, हे अच्युत हे अनंत हे साधुनको वांच्छित हे प्रभो हे विश्वभावन! अपराधी मेरी क्षमा करो ॥ ६१ ॥ मैं तुह्मारे प्रभावको नहीं जानूहूं मैंने तुह्मारे प्यारेनको अपराध कीनो, सो अब याकौ प्रायश्चित्त करो, तुह्मारे नाम लियेते नरकमे स्थितभी मुक्त होयहैं ॥ ६२ ॥ अब भगवान् बोले मैं भक्तनके पराधीन हूं स्वतंत्र नहींहूं, मेरा हृदय भक्तौंनें ग्रहणकर लियाहै मैं उनका प्रिय हूं ॥६३॥ हे दुर्वासा! जिन साधु जनौंकी मेंही परमगति हूं उन अपने भक्तौंको छोडकर न तौ मैं अपनें शरीर और न अत्यन्त समीप रहनेवाली लक्ष्मीकी इच्छा करूंहूं ॥ ६४ ॥

अहं सनत्कुमारश्च नारदो भगवानजः ॥ कपिलोऽपान्तरतमो देवलो धर्म आसुरिः ॥ ५७ ॥ मरीचिप्रमुखाश्चान्ये सिद्धेशाः पारदर्शनाः ॥ विदाम न वयं सर्वे यन्मायां मायया वृताः ॥ ५८ ॥ तस्य विश्वेश्वरस्येदं शस्त्रं दुर्विषहं हि नः ॥ तमेव शरणं याहि हरिस्ते शं विधास्यति ॥ ५९ ततो निराशो दुर्वासाः पदं भगवतो ययौ ॥ वैकुण्ठाख्यं यदध्यास्ते श्रीनिवासः श्रिया सह ॥ ६० ॥ स दह्यमानोऽजितशस्त्रवह्निना तत्पादमूले पतितः सवेपथुः ॥ आहाच्युतानन्त सदीप्सित प्रभो कृतागसं माऽव हि विश्वभावन ॥ ६१ ॥ अजानता ते परमानुभावं कृतं मयाघं भवतः प्रियाणाम् ॥ विधेहि तस्यापचितिं विधातर्मुच्येत यन्नाम्न्युदिते नारकोऽपि ॥ ६२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज ॥ साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तैर्भक्तजनप्रियः ॥ ६३ ॥ नाहमात्मानमाशासे मद्भक्तैः साधुभिर्विना ॥ श्रियं चात्यन्तिकीं ब्रह्मन् तेषां गतिरहं परा ॥ ६४ ॥

जे भक्त स्त्री घर पुत्र प्यारे प्राण धन यह लोक परलोक छोडिकैं मेरें शरण आये तिनें कैसे छोडू ॥ ६५ ॥ मुझमें मन लगानेहारे समदर्शी साधु भक्ति करिकैं मोहिं वश करैं हैं, जैसें उत्तम स्त्री अपने पतिकूं वश करै हैं ॥ ६६ ॥ वे मेरी सेवा करिकैं प्राप्त भई सालोक्यादिक चारि मुक्तिकोभी नहीं इच्छा करैं हैं, फिर कालसै नाश होंनेवाले दूसरे पदार्थोंकी तौ बातही क्या है ॥ ६७ ॥ साधु मेरे हृदय हैं, मैं साधुनको हृदय हूं मोतें औरको ते नहीं जानें, मैं तिनतें औरको नहीं जानूं हूं ॥ ६८ ॥ जापै तैंने अभिचार कियो ताई राजाके शरण जा चलायों तेज प्रहार करनवारेकों अमंगल करैं है

ये दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम् ॥ हित्वा मां शरणं याताः कथं तांस्त्यक्तुमुत्सहे ॥ ६५ ॥ मयि निर्बद्धहृदयाः साधवः समदर्शनाः॥ वशे कुर्वन्ति मां भक्त्या सत्स्त्रियः सत्पतिं यथा ॥ ६६ ॥ मत्सेवया प्रतीतं च सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥ नेच्छन्ति सेवया पूर्णाः कुतोऽन्यत्कालविद्रुतम् ॥६७॥ साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ॥ मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि॥६८॥ उपायं कथयिष्यामि तव विप्र शृणुष्व तत् ॥ अयं ह्यात्माभिचारस्ते यतस्तं यातु वै भवान् ॥६९॥ साधुषु प्रहितं तेजः प्रहर्तुः कुरुतेऽशिवम् ॥ तपो विद्या च विप्राणां निःश्रेयसकरे उभे ॥ त एव दुर्विनीतस्य कल्पेते कर्तुरन्यथा ॥ ७० ॥ ब्रह्मंस्तद्गच्छ भद्रं ते नाभागतनयं नृपम् ॥ क्षमापय महाभागं ततः शान्तिर्भविष्यति ॥ ७१ ॥ इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे अम्बरीषचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं भगवतादिष्टो दुर्वासाश्चक्रतापितः ॥ अम्बरीषमुपावृत्य तत्पादौ दुःखितोऽग्रहीत् ॥ १ ॥ तस्य सोद्यमनं वीक्ष्य पादस्पर्शविलज्जितः ॥ अस्तावीत्तद्धरेरस्त्रं कृपया पीडितो भृशम् ॥ २ ॥

॥ ६९ ॥ तप विद्या ब्राह्मणनको श्रेय करैहै, तेइ अनम्र ब्राह्मणको अमंगल करै है ॥ ७० ॥ हे ब्राह्मण ! तातें जा तेरो कल्याण होउ नाभागके बेटासे क्षमा करो तातें शांति होइगी ॥ ७१ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषायां नवमस्कन्धे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ पांचवे अध्यायमें विष्णुचक्रको प्रसन्न करिकै प्राण संकटते दुर्वासाको अंबरीषनें रक्षा कियो यह वर्णन करैंगे ॥ श्रीशुकदेवजी कहैं हैं ऐसें भगवानसे आज्ञा दियौ, चक्रनै तपाये दुर्वासा अंबरीषके निकट जाइकैं दुखित व्हैकैं ताके चरणनको ग्रहण करतभयो ॥ १ ॥ ताको उद्यम देखिकै चरणके स्पर्श करिकैं पीडित अंबरीष हरि

अस्त्रकी स्तुति करतभयो ॥ २ ॥ अम्बरीष बोले हे सुदर्शन चक्र! तुम अग्नि हो, तुमहीं भगवान सूर्य हो जोतिनकों पति चंद्रमा हो, जल हो, पृथ्वी तुम हो, आकाश पवन तुम हो, मात्रा इंद्रिय तुमहो ॥ ३ ॥ हे सुदर्शन हजार धारायुक्त! हे हरिके प्यारे! हे सब अस्त्रनके नाश करनवारे! हे पृथ्वीके पति! तुह्मारे अर्थ नमस्कार है ब्राह्मणको शरण होउ ॥ ४ ॥ धर्म तुमहो, ऋतु तुमहो, सत्य तुमहो, यक्ष तुमहो, सब यज्ञके भोक्ता तुमहो, लोकपाल तुमहो, सर्वात्मा तुमहो, ईश्वरको परम तेज तुमहो ॥ ५ ॥ हे सुनाभ! तुमको नमस्कार है, अखिल धर्मकी मर्यादा अधर्मशील असुरनके जरावनवारे त्रिलोकीके पालक विशुद्ध तेज मनसे वेगवान अद्भुत कर्मवारे तुह्मारे अर्थ नमस्कार है ॥ ६ ॥ धर्ममय तुम्हारो तेजसे अंधकार दूर होताहै

अम्बरीष उवाच ॥ त्वमग्निर्भगवान् सूर्यस्त्वं सोमो ज्योतिषां पतिः ॥ त्वमापस्त्वं क्षितिर्व्योम वायुर्मात्रेन्द्रियाणि च ॥ ३ ॥ सुदर्शन नमस्तुभ्यं सहस्राराच्युतप्रिय ॥ सर्वास्त्रघातिन् विप्राय स्वस्ति भूया इडस्पते ॥ ४ ॥ त्वं धर्मस्त्वमृतं सत्यं त्वं यज्ञोऽखिलयज्ञभुक् ॥ त्वं लोकपालः सर्वात्मा त्वं तेजः पौरुषं परम् ॥ ५ ॥ नमः सुनाभाखिलधर्मसेतवे ह्यधर्मशीलासुरधूमकेतवे ॥ त्रैलोक्यगोपाय विशुद्धवर्चसे मनोजवायाद्भुतकर्मणे गृणे॥६ ॥ त्वत्तेजसा धर्ममयेन संहृतं तमः प्रकाशश्च धृतो महात्मनाम् ॥ दुरत्ययस्ते महिमा गिरां पते त्वद्रूपमेतत् सदसत्परावरम् ॥ ७ ॥ यदा विसृष्टस्त्वमनञ्जनेन वै बलं प्रविष्टोऽजित दैत्यदानवम् ॥ बाहूदरोर्वङ्घ्रिशिरोधराणि वृकणन्नजस्रं प्रधने विराजसे ॥ ८ ॥ स त्वं जगत्त्राणखलप्रहाणये निरूपितः सर्वसहो गदाभृता ॥ विप्रस्य चास्मत्कुलदैवहेतवे विधेहि भद्रं तदनुग्रहो हि नः ॥ ९ ॥ यद्यस्ति दत्तमिष्टं वा स्वधर्मो वा स्वनुष्ठितः ॥ कुलं नो विप्रदैवं चेद्द्विजो भवतु विज्वरः ॥ १० ॥

सूर्यादिकनको प्रकाश तुम्हारे तेजसे होयहै, तुम्हारी महिमा दुरत्यय है, हे वाणीनके पति! स्थूल सूक्ष्म पर अवर यह जगत् तुमनेई प्रकाश कियो है ॥ ७ ॥ हे अजित! हरिने जब तुह्मे चलाये, तब दैत्य दानवनकी सेनामें प्रविष्ट व्हैके तिनकी भुजा उदर ऊरू चरण ग्रीवा काटते विराजोहो ॥ ८ ॥ हे जगतके रक्षक! भगवानने तुम दुष्टनके नाशके लिये प्रेरेहो, हमारे कुलके भाग्यके लिये ब्राह्मणको मंगल करो सोई हमपै अनुग्रह है ॥ ९ ॥ जो हमारे दान है, इष्ट है, सुधर्म कियोहै, जो ब्राह्मण हमारे देवता है ब्राह्मणपरायण हमारा कुल है तौ यह ब्राह्मण ताप करिकैं रहित होउ ॥ १० ॥

52

सब गुणनको आश्रय एक भगवान् सगरे भूतप्राणीनमें आत्मभाव करिकैं हमपे प्रसन्नभयें तो ब्राह्मणको तापजाई ॥ ११ ॥ शुकदेवजी परीक्षितसौं कहैं हैं ऐसें राजाको स्तुति करत संतें विष्णुचक्र सुदर्शन ब्राह्मणको जरावेहो पर राजाकी प्रार्थना करिकैं शांत होत भयो ॥ १२ ॥ अस्त्रकी अग्निके ताप करिकैं छूट्यो कल्याणयुक्त दुर्वासा परम आशीर्वाद देकैं राजा अम्बरीषकी बड़ाई करतभयो ॥ १३ ॥ दुर्वासा कहैहै हरिके दासनको महत्व मैंने आज देख्यो, जिन दासनते अपराध करनवाराऊ मंगलकूं प्राप्तहोयहै ॥ १४ ॥ साधुनको दुष्कर कहा है महात्मानको दुस्त्यज कहाहै, जिननें सात्वतनमें श्रेष्ठ भगवान् हरि वश कियेहैं ॥ १५ ॥ जाके नामके श्रवणमात्रकरिकैं पुरुष निर्मल होयहै, ऐसे तीर्थपाद भगवान्के दासनको कहा बाकी रहैहै ॥ १६ ॥ हे राजा! करुणात्मा तुमने हमपर अनुग्रह कियो मेरे अपराधको पीछैं करिकैं मेरे प्राण रक्षा किये ॥ १७॥ ब्राह्मणके आइवेकी इच्छाकरिकैं आहार त्याग राजा अम्बरीष चरणनमें गिरि प्रसन्नकरिकैं भोजन करावत भये ॥ १८ ॥ सोई दुर्वासा आदरते सब काम प्राप्त आतिथ्य पूर्वक भोजनकरिकैं तृप्त आत्मा राजासो आदरसहित बोले तुमहूं भोजन करो ॥१९॥ तुम भागवतके दर्शन स्पर्शन आलाप करिकैं देह पवित्र करी,

यदि नो भगवान् प्रीत एकः सर्वगुणाश्रयः ॥ सर्वभूतात्मभावेन द्विजो भवतु विज्वरः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति संस्तुवतो राज्ञो विष्णुचक्रं सुदर्शनम् ॥ अशाम्यत् सर्वतो विप्रं प्रदहद्राजयाच्ञया ॥ १२ ॥ स मुक्तोऽस्त्राग्नितापेन दुर्वासाः स्वस्तिमांस्ततः ॥ प्रशशंस तमुर्वीशं युञ्जानः परमाशिषः ॥ १३ ॥ दुर्वासा उवाच ॥ अहो अनन्तदासानां महत्त्वं दृष्टमद्य मे ॥ कृतागसोऽपि यद्राजन्मङ्गलानि समीहसे ॥ १४ ॥ दुष्करः को नु साधूनां दुस्त्यजो वा महात्मनाम् ॥ यैः संगृहीतो भगवान् सात्वतामृषभो हरिः ॥ १५ ॥ यन्नामश्रुतिमात्रेण पुमान्भवति निर्मलः ॥ तस्य तीर्थपदः किं वा दासानामवशिष्यते ॥१६॥ राजन्ननुगृहीतोऽहं त्वयाऽतिकरुणात्मना ॥ मदघं पृष्ठतः कृत्वा प्राणा यन्मेऽभिरक्षिताः ॥ १७॥ राजा तमकृताहारः प्रत्यागमनकाङ्क्षया ॥ चरणावुपसंगृह्य प्रसाद्य समभोजयत् ॥ १८॥ सोऽशित्वाऽऽहृतमानीतमातिथ्यं सार्वकामिकम् ॥ तृप्तात्मा नृपतिं प्राह भुज्यतामिति सादरम् ॥ १९ ॥ प्रीतोऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि तव भागवतस्य वै ॥ दर्शनस्पर्शनालापैरातिथ्येनात्ममेधसा ॥ २० ॥

अन्नसे मै प्रसन्नभयों और मोपे अनुग्रह कियो ॥ २० ॥ तुह्मारो यह उज्ज्वल कर्म स्वर्गकी स्त्री वेरवेर गावेंगी, भूमिमें तुह्मारी परमपुण्य कीर्ति गावेंगी ॥ २१ ॥ शुकदेवजी कहैंहैं ऐसे प्रसन्न हो दुर्वासा राजाकी स्तुतिकरिकैं आज्ञा मांगि आकाशमार्गकरिकैं ब्रह्मलोकको जातभये ॥ २२ ॥ चक्रके भयसे भागते मुनि जवतक न आये तितनमें एक वर्ष जातभयो, राजा दर्शनकी इच्छा करत जलपानकरिकैं वर्ष दिनातांई रहतभयो ॥ २३ ॥ सो अम्बरीष दुर्वासाके गये पीछें ब्राह्मणनके भोजनकरिकैं अतिपवित्र ब्राह्मणको वचो अन्न आपु भोजन करतभयो, ऋषिको दुःख छूट्यो ताइ देखिकैं अपनो वी-

कर्मावदातमेतत्ते गायन्ति स्वःस्त्रियो मुहुः ॥ कीर्तिं परमपुण्यां च कीर्तयिष्यति भूरियम् ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संकीर्त्य राजानं दुर्वासाः परितोषितः ॥ ययौ विहायसाऽऽमन्त्र्य ब्रह्मलोकमहैतुकम् ॥२२॥ संवत्सरोऽत्यगात्तावद्यावता नागतो गतः ॥ मुनिस्तद्दर्शनाकाङ्क्षी राजाऽब्भक्षो बभूव ह ॥ २३ ॥ गते च दुर्वाससि सोऽम्बरीषो द्विजोपयोगातिपवित्रमाहरत् ॥ ऋषेर्विमोक्षं व्यसनं च बुद्ध्वा मेने स्ववीर्यं च परानुभावम् ॥२४॥ एवंविधानेकगुणः स राजा परात्मनि ब्रह्मणि वासुदेवे ॥ क्रियाकलापैः समुवाह भक्तिं ययाऽऽविरिञ्चान्निरयांश्चकार ॥ २५ ॥ अथाम्बरीषस्तनयेषु राज्यं समानशीलेषु विसृज्य धीरः ॥ वनं विवेशात्मनि वासुदेवे मनो दधत् ध्वस्तगुणप्रवाहः ॥ २६ ॥ इत्येतत्पुण्यमाख्यानमम्बरीषस्य भूपतेः ॥ संकीर्तयन्ननुध्यायन् भक्तो भगवतो भवेत् ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते म० नवमस्कन्धे अम्बरीषचरिते पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

र्यादिक देखिकैं भगवान्‌को प्रभाव मानत भये ॥ २४ ॥ ऐसे अनेक गुणयुक्त राजा अम्बरीष परमात्मा ब्रह्म वासुदेवमें क्रियाकलापनकरिकैं भक्ति करतभये, जा भक्तिकरिकैं ब्रह्माके लोकतांई भोग नरक तुल्य देखत भये ॥ २५ ॥ पीछे समान शीलवारे पुत्रोंको राज्य देकैं धीर अंबरीष वनमें प्रवेश करतभयो, आत्मा वासुदेवमें मन धारण करते, संसारसे रहित होगये ॥ २६ ॥ जो अंबरीष राजाको यह पुण्यचरित्र कहेगो, स्मरण करेगो सो भगवान्‌को भक्त होइगो ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवतभाषाटीकायां नवमस्कन्धे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

छठवे अध्यायके आरंभमें अंबरीषको वंश कहिके ताते परें छःते आदिलेकें आठ अध्याय करिकै इक्ष्वाकूको वंश कहैंगे इनमें छठे अध्यायमें शशादतें आदिलेकें मांधाता पर्यंत वंश कहैंगे प्रसंगतें मांधाताकी बेटीनको पति सौभरिऋषिको चरित्र कहैंगे ॥ शुकदेवजी कहैंहैं विरूप केतुमान शंभु ये तीनि अंबरीषके बेटा भये, विरूपतें पृषदश्व भयो, ताको पुत्र भगीरथ भयो ॥ १ ॥ अपुत्र रथीतरके संतानके लियें प्रार्थना किये अंगिरा ऋषि ब्रम्हतेजकरिकै युक्त पुत्र उपजावतभयो॥२॥ जे रथीतरके क्षेत्रमें उपजे अंगिराते भये यातें आंगिरस कहाये, रथीतरके गोत्रमें मुख्य भये ब्राम्हण होतभये ॥ ३ ॥ छींक लेत मनुके घ्राणते इक्ष्वाकू पुत्र होतभयो, ताके सौ बेटानमें जेठे विकुक्षि निमि दंडक होतभये ॥ ४ ॥ तिन सौनमें आर्यावर्तमें

श्रीशुक उवाच ॥ विरूपः केतुमान् शंभुरम्बरीषसुतास्त्रयः ॥ विरूपात्पृषदश्वोऽभूत्तत्पुत्रस्तु रथीतरः ॥ १ ॥ रथीतरस्याप्रजस्य भार्यायां तन्तवेऽर्थितः ॥ अङ्गिरा जनयामास ब्रह्मवर्चस्विनः सुतान् ॥ २ ॥ एते क्षेत्रे प्रसूता वै पुनस्त्वाङ्गिरसाः स्मृताः ॥ रथीतराणां प्रवराः क्षत्रोपेता द्विजातयः ॥३॥ क्षुवतस्तु मनोर्जज्ञे इक्ष्वाकुर्घ्राणतः सुतः ॥ तस्य पुत्रशतज्येष्ठा विकुक्षिनिमिदण्डकाः ॥ ४॥ तेषां पुरस्तादभवन्नार्यावर्ते नृपा नृप ॥ पञ्चविंशतिः पश्चाच्च त्रयो मध्ये परेऽन्यतः ॥ ५ ॥ स एकदाऽष्टकाश्राद्ध इक्ष्वाकुः सुतमादिशत् ॥ मांसमानीयतां मेध्यं विकुक्षे गच्छ मा चिरम् ॥ ६ ॥ तथेति स वनं गत्वा मृगान्हत्वा क्रियार्हणान् ॥ श्रान्तो बुभुक्षितो वीरः शशं चाददपस्मृतिः ॥ ७ ॥ शेषं निवेदयामास पित्रे तेन च तद्गुरुः ॥ चोदितः प्रोक्षणायाह दुष्टमेतदकर्मकम् ॥ ८ ॥

पूर्वओरको समुद्रपर्यंत पच्चीस राजा होतभये, पच्चीस पश्चिममें भये, तीनि मध्यमें और बाकीके उत्तर दक्षिणके राजा होतभये॥ ५ ॥ सो इक्ष्वाकु एक दिना अष्टकाश्राद्धमें पुत्रकूं आज्ञा देतभयो हे विकुक्षे! जा ढीलमतकरे पवित्र मांस लेआ ॥ ६ ॥ सो विकुक्षी वनमें जाइकै श्राद्धके योग्य मृग मारिकैं श्रमकूं प्राप्तभयो, और भूख लगनेसे सो वीर एक शशेको खाईगयो, पहिलें मोंकूं नहीं खानो योग्य है, यह सुधि भूलिगई ॥ ७ ॥ बाकी मांस पिताके अर्थ देतभयो, पितासें श्राद्धके लिये प्रेरे गुरु बोले, यह मांस दुष्ट है, कर्मके लायक नहीं है ॥ ८ ॥

पुत्रको गुरुनें कह्यौ कर्म जानिके क्रोध करिकै शास्त्रकी आज्ञा उल्लंघन करनेहारे अपने पुत्रको देशते निकारि देतभयो ॥ ९ ॥ सो इक्ष्वाकू ब्राह्मण वसिष्ठसे संवाद करत व्हैकैं योगसे शरीर छोडि परतत्त्वकूं प्राप्त भयो ॥ १० ॥ पिताके वनमें गये पीछे विकुक्षि अपने घर आइके पृथ्वीकों पालन करतभयो, यज्ञकरिकै हरिकी पूजा करत,शशाद नामकरिकै विख्यात भयो ॥ ११ ॥ ता शशादको बेटा पुरंजय भयो उसके इंद्रवाह और ककुत्स्थ कर्मन करिकैं यै नाम भये तिनै सुनो ॥ १२ ॥ विश्वके नाशक दानवनके संग देवतानको संग्राम होत भयो, दैत्यनसे हारे देवतौंनें राजाते सहाय मांगी ॥ १३ ॥ याने कही इंद्र मेरो वाहन होई तो दैत्यनको मारूं, तब इंद्र लाज करिकैं अंगीकार न करतभयो, तब देवनके

ज्ञात्वा पुत्रस्य तत्कर्म गुरुणाऽभिहितं नृपः ॥ देशान्निःसारयामास सुतं त्यक्तविधिं रुषा ॥ ९ ॥ स तु विप्रेण संवादं जापकेन समाचरन् ॥ त्यक्त्वा कलेवरं योगी स तेनावाप यत्परम् ॥ १० ॥ पितर्युपरतेऽभ्येत्य विकुक्षिः पृथिवीमिमाम् ॥ शासदीजे हरिं यज्ञैः शशाद इति विश्रुतः ॥ ११ ॥ पुरंजयस्तस्य सुत इन्द्रवाह इतीरितः ॥ ककुत्स्थ इति चात्युक्तः शृणु नामानि कर्मभिः ॥ १२ ॥ कृतान्त आसीत्समरो देवानां सह दानवैः ॥ पार्ष्णिग्राहो वृतो वीरो देवैर्दैत्यपराजितैः ॥ १३ ॥ वचनाद्देवदेवस्य विष्णोर्विश्वात्मनः प्रभोः ॥ वाहनत्वे वृतस्तस्य बभूवेन्द्रो महावृषः ॥ १४ ॥ स संनद्धो धनुर्दिव्यमादाय विशिखान् शितान् ॥ स्तूयमानः समारुह्य युयुत्सुः ककुदि स्थितः ॥ १५ ॥ तेजसाऽऽप्यायितो विष्णोः पुरुषस्य परात्मनः ॥ प्रतीच्यां दिशि दैत्यानां न्यरुणत्त्रिदशैः पुरम् ॥ १६ ॥ तैस्तस्य चाभूत्प्रधनं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ यमाय भल्लैरनयद्दैत्यान् येऽभिययुर्मृधे ॥ १७ ॥

देव विश्वके आत्मा विष्णुके वचनते ता राजाके लिये इंद्र बडो बैल होतभयो ॥ १४ ॥ सो राजा कवच पहरिकै, दिव्य धनुष्य पैनें बाण लेकैं देवतानसे स्तुतिको प्राप्त हो युद्ध करिवेके लिये वा बैलकी टाँटपैं बैठतभयो ॥ १५ ॥ विष्णुके तेजकरिकै युक्त राजा पश्चिम दिशामें दैत्यनकी पुरी देवतानकरिकै घेरतभयो ॥ १६ ॥ दैत्यनके संग ताको भयंकर संग्राम होतभयो, जे अपने सन्मुख आये तिन दैत्यौंकों बाणनकरिकैं देह सहितही यमके लोकमें पहुंचावत भयो ॥ १७ ॥

प्रलयकी अग्निकी समान उल्वण ताके बाणकों उत्पात देखिकै रण छोडिकै मारे डरकै बाकीके दैत्य पातालको भाजतभये ॥ १८ ॥ पुर जीतिकै
संपूर्ण धन इंद्रकों देतभयो, सो राजा कर्मसे इन नामन करिकै विख्यात भयो पुरकू जीतो यासे पुरंजय इन्द्र वाहन होनेसे इन्द्रवाह ककुदपर बैठनेके
कारण ककुत्स्थ नाम हुआ ॥ १९ ॥ पुरंजयको पुत्र अनेना भयो, ताके पृथु भयो, ताकें विश्वरंधी भयो, ताकें चंद्र भयो, ताकें युवनाश्व भयो ॥
॥ २० ॥ ताकें शाबस्त भयो, जाने शाबस्ती नाम पुरी रची, ताकें बृहदश्व भयो,ताकें कुवलयाश्व भयो ॥ २१ ॥ जो कुवलयाश्व उतंक ऋषिके

तस्येषुपाताभिमुखं युगान्ताग्निमिवोल्बणम् ॥ विसृज्य दुद्रुवुर्दैत्या हन्यमानाः स्वमालयम् ॥ १८ ॥ जित्वा पुरं
धनं सर्वं सश्रीकं वज्रपाणये ॥ प्रत्ययच्छत्स राजर्षिरिति नामभिराहृतः ॥१९॥ पुरंजयस्य पुत्रोऽभूदनेनास्तत्सुतः
पृथुः ॥ विश्वरन्धिस्ततश्चन्द्रो युवनाश्वश्च तत्सुतः ॥ २० ॥ शाबस्तस्तत्सुतो येन शाबस्ती निर्ममे पुरी ॥ बृहदश्वस्तु
शाबस्तिस्ततः कुवलयाश्वकः ॥ २१ ॥ यः प्रियार्थमुतङ्कस्य धुन्धुनामाऽसुरं बली ॥ सुतानामेकविंशत्या सहस्रैर-
हनद् वृतः ॥ २२ ॥ धुन्धुमार इति ख्यातस्तत्सुतास्ते च जज्वलुः ॥ धुन्धोर्मुखाग्निना सर्वे त्रय एवावशेषिताः
॥ २३ ॥ दृढाश्वः कपिलाश्वश्च भद्राश्व इति भारत ॥ दृढाश्वपुत्रो हर्यश्वो निकुम्भस्तत्सुतः स्मृतः ॥ २४ ॥
बर्हणाश्वो निकुम्भस्य कृशाश्वोऽथास्य सेनजित् ॥ युवनाश्वोऽभवत्तस्य सोऽनपत्यो वनं गतः ॥ २५ ॥ भार्या-
शतेन निर्विण्ण ऋषयोऽस्य कृपालवः ॥ इष्टिं स्म वर्तयांचक्रुरैन्द्रीं ते सुसमाहिताः ॥ २६ ॥ राजा तद्यज्ञसदनं
प्रविष्टो निशि तर्षितः ॥ दृष्ट्वा शयानान् विप्रांस्तान् पपौ मन्त्रजलं स्वयम् ॥ २७ ॥

प्रिय करिवेके लियें इक्कीस हजार बेटानको संगलेके धुंधुनाम असुरकूं मारत भयो ॥ २२ ॥ यातें धुंधुमार नाम होत भयो, ता कुवलयाश्वके बेटा
धुंधुके मुखकी अग्नि करिकै सगरे जरिगये ॥ २३ ॥ तीनि बाकी रहिगये, दृढाश्व, कपिलाश्व, भद्राश्व ॥२४॥ दृढाश्वको पुत्र हर्यश्व भयो ताके निकुंभ
भयो, ताकें बार्हिणाश्व भयो ताकें कृशाश्व; ताकें सेनजित ॥ २५ ॥ ताकें युवनाश्व भयो सो अपुत्र है याते दुःखित व्हैकें रानीनको संग लेकें वनमैं
गयो, तब याकें पुत्रके लियें कृपालु ऋषि इंद्रकी इष्टी करत भये ॥ २६ ॥ राजा रातिमें प्यासके मारें जल ढुंढिवेकों यज्ञके

स्थानमें प्रविष्ट भयो, सो ब्राह्मणनको सोवत देखिकैं स्त्रीके पीनैको मंत्रित जल आपु पी गयो ॥ २७ ॥ मुनि उठकर कलश खाली देख पूंछत भये कि कौनको यह कर्म है, पुत्रको उपजावनवारो जल पीलियो॥२८॥ ईश्वरको प्रेऱ्यो राजा तानें पियो जानि करिकैं ईश्वरके अर्थ नमस्कार करत भये, अहो ईश्वरको बलही मुख्य बल है, पुरुषको कछु नहीं ॥ २९ ॥ ता पीछें समय प्राप्ति भये संतें युवनाश्वकी दाहिनी कूंखि फारिकैं चक्रवर्ती पुत्र होत भयो ॥ ३० ॥ यह बालक क्या पीवेगो, स्तनके लिये रोवे है, ऐसे ब्राह्मणने कही तब इंद्र बोल्यो मोहिं पीवेगो, हे पुत्र ! रोवे मतीं ऐसें कहिकैं अपनी तर्जनी अंगुरिया ताके मुखमें देत भयो ॥ ३१ ॥ विप्र देवतानकी कृपातें ताको पिता मऱ्यो नहीं, युवनाश्वभी तप करिकैं सिद्धिको प्राप्तभयो ॥३२॥

उत्थितास्ते निशम्याथ व्युदकं कलशं प्रभो ॥ पप्रच्छुः कस्य कर्मेदं पीतं पुंसवनं जलम् ॥ २८ ॥ राज्ञा पीतं विदित्वाथ ईश्वरप्रहितेन ते ॥ ईश्वराय नमश्चक्रुरहो दैवबलं बलम् ॥ २९ ॥ ततः काल उपावृत्ते कुक्षिं निर्भिद्य दक्षिणम् ॥ युवनाश्वस्य तनयश्चक्रवर्ती जजान ह ॥ ३० ॥ कं धास्यति कुमारोऽयं स्तन्यं रोरूयते भृशम् ॥ मां धाता वत्स मा रोदीरितीन्द्रो देशिनीमदात् ॥ ३१ ॥ न ममार पिता तस्य विप्रदेवप्रसादतः ॥ युवनाश्वोऽथ तत्रैव तपसा सिद्धिमन्वगात् ॥ ३२ ॥ त्रसद्दस्युरितीन्द्रोऽङ्ग विदधे नाम तस्य वै ॥ यस्मात्त्रसन्ति ह्युद्विग्ना दस्यवो रावणादयः ॥ ३३ ॥ यौवनाश्वोथ मांधाता चक्रवर्त्यवनीं प्रभुः ॥ सप्तद्वीपवतीमेकः शशासाच्युततेजसा ॥ ३४ ॥ ईजे च यज्ञं क्रतुभिरात्मविद्भूरिदक्षिणैः ॥ सर्वदेवमयं देवं सर्वात्मकमतीन्द्रियम् ॥ ३५ ॥ द्रव्यं मन्त्रो विधिर्यज्ञो यजमानस्तथर्त्विजः ॥ धर्मो देशश्च कालश्च सर्वमेतद्यदात्मकम् ॥ ३६ ॥

अब मांधाताकी महिमाको कहे हैं, हे राजेन्द्र! इंद्र ताको नाम त्रसद्दस्यु धरत भयो, जाते चोर रावणादिक कांपते और भयभीत रहते थे ॥ ३३ ॥ युवनाश्वको बेटा चक्रवर्ती मांधाता सातो द्वीपन सहित पृथ्वी हरिके तेज करिकैं एकही पालन करत भयो ॥ ३४ ॥ आत्माको जाननवारो मांधाता बहुत दक्षिणायुक्त यज्ञनकरिकैं सर्व देवमय सर्वात्मा इंद्रीनकरिकैं न दीखनेहारे विष्णुको पूजत भयो ॥ ३५ ॥ द्रव्य मंत्रविधि यज्ञ यजमान ऋत्विज धर्म देश काल यह सब तदात्मक हैं ॥ ३६ ॥

जहांताईं सूर्य उदय होय हैं जहांताईं अस्त होयहैं सो सब मांधाताको क्षेत्र कहैं हैं ॥ ३७ ॥ मांधाता शशबिंदुकी बेटी बिंदुमतीमें पुरुकुत्स अंबरीष योगी मुचुकुंद ये तीन पुत्र उपजावत भयो ॥ ३८ ॥ तिनकें पचास बहनि भई ते सौभरी ऋषिको व्याही गई ॥ ३९ ॥ कदाचित् राजा प्रश्न करे कि हे महाराज ! महातपस्वीको कैसें विवाह भयो, और अंत्यंत जर्जरीभूत देह बूढेको वो मांधाताकी बेटी कैसें वरत भई तहां कहैं है हे रारान् ! यमुनाजीके भीतर बैठिकैं बडो तप करतेथे मैथुनधर्मी मत्स्यराज मत्स्यको सुख देखिकैं सौभरीऋषिकें व्याह करवेकी चाहना भई, तब मांधातासूं एक कन्या मांगतभयो ॥४०॥ सो मांधाता बोले हे ब्रह्मन्! स्ययंवरमें जो कन्या तुह्मे वरे ताइ ग्रहणकरो ॥४१॥ तब सौभरी ऋषि जानगये कि

यावत्सूर्य उदेति स्म यावच्च प्रतितिष्ठति ॥ सर्वं तद्यौवनाश्वस्य मांधातुः क्षेत्रमुच्यते ॥ ३७ ॥ शशबिन्दोर्दुहितरि बिन्दुमत्यामधान्नृपः ॥ पुरुकुत्समम्बरीषं मुचुकुन्दं च योगिनम् ॥३८॥ तेषां स्वसारः पञ्चाशत्सौभरिं वव्रिरे पतिम् ॥ यमुनाऽन्तर्जले मग्नस्तप्यमानः परंतपः ॥ ३९ ॥ निर्वृतिं मीनराजस्य वीक्ष्य मैथुनधर्मिणः ॥ जातस्पृहो नृपं विप्रः कन्यामेकामयाचत ॥४०॥ सोऽप्याह गृह्यतां ब्रह्मन्कामं कन्या स्वयंवरे ॥ स विचिन्त्याप्रियं स्त्रीणां जरठोऽयमसंमतः ॥ ४१ ॥ वलीपलित एजत्क इत्यहं प्रत्युदाहृतः ॥ साधयिष्ये तथात्मानं सुरस्त्रीणामपीप्सितम् ॥ किं पुनर्मनुजेन्द्राणामिति व्यवसितः प्रभुः ॥ ४२ ॥ मुनिः प्रवेशितः क्षत्रा कन्यान्तःपुरमृद्धिमत् ॥ वृतश्च राजकन्याभिरेकः पञ्चाशता वरः ॥ ४३ ॥ तासां कलिरभूद्भूयांस्तदर्थेऽपोह्य सौहृदम् ॥ ममानुरूपो नायं व इति तद्गतचेतसाम् ॥४४॥

स्त्रीनको कुप्यारो मेरो रूप है, वृद्ध और सुपेदवार जानके या राजाने मोको ढकी नाही करीहै, यातै अब मैं ऐसो रूप करोंगो जो देवतानकी स्त्रीनको वांछित होई, राजानकी स्त्रीनको वांछितहोई, यामें कहा कहनोहैं, ऐसें विचार सोई करत भये ॥ ४२ ॥ द्वारपालकने मुनिको कन्यानके अंतःपुरमें प्रवेश करायो, पचास कन्याननें कही कि इनेही वर हम करेंगीं ॥४३॥ ता सौभरी ऋषिके अर्थ तिन कन्यानमें बडो कलेश होतभयो, सौहृदको छोडिकै यह मेरे अनुरूप हैं तेरे नहीं है ऐसें लरतिभई, तितहींमें चित्तकर सौभरी ऋषि बोले कि तुम क्यौं लडो हो, तब सब बोली कि तुह्मारे हेत हम लडेहै, तब ऋषि बोले आओ तुम सब चली आओ, ऐसें पचासहूंसो विवाह करतभये ॥ ४४ ॥

विषयौंकोही पुरुषार्थ माना ॥ ५२ ॥ ऐसें घरमें बसते कोई समय विरक्त व्हैकै संग छोडि वनमें जात भये, पतिदेवता ताकी स्त्री ताकें पीछे जातीभई ॥ ५३ ॥ वनमें देहको सुखानेहारे तीक्ष्ण तप करिकैं अग्नि सहित आत्मा परमात्मामैं मिलावत भये ॥ ५४ ॥ हे महाराज ! ते स्त्री अपने पतिकी अध्यात्मकी गति देखिके तत्प्रभाव करिकैं पीछेंही जातीभई जैसें अग्नि शान्त होने पर उसकी ज्वाला उसके साथ जातीहै॥५५॥इति श्रीमद्भा० भाषा० नवमस्कन्धे षष्ठोध्यायः ॥ ६ ॥ सातवें अध्यायमें मांधाताको वंश कहैंगे जावंशमें पुरुकुत्सको और हरिश्चंद्रराजाको उत्तम आख्यान गायो गयोहै ॥ शुकदेवजी कहैहैं हे राजा ! मांधाताकौ श्रेष्ठ पुत्र अंबरीष युवनाश्वने पुत्र भावकरिकैं गोदलियो ॥ १ ॥ अंबरीषको बेटा हारीत भयो,

एवं वसन्गृहे कालं विरक्तो न्यासमास्थितः ॥ वनं जगामानुययुस्तत्पत्न्यः पतिदेवताः ॥ ५३ ॥ तत्र तप्त्वा तपस्तीक्ष्णमात्मकर्षणमात्मवान् ॥ सहैवाग्निभिरात्मानं युयोज परमात्मनि ॥ ५४ ॥ ताः स्वपत्युर्महाराज निरीक्ष्याध्यात्मिकीं गतिम् ॥ अन्वीयुस्तत्प्रभावेण अग्निं शान्तमिवार्चिषः ॥५५॥ इति श्रीभा० म० नवमस्कन्धे षष्ठोध्यायः ॥६॥

श्रीशुक उवाच ॥ मांधातुः पुत्रप्रवरो योऽम्बरीषः प्रकीर्तितः ॥ पितामहेन प्रवृतो यौवनाश्वश्च तत्सुतः ॥ १ ॥ हारीतस्तस्य पुत्रोऽभून्मांधातृप्रवरा इमे ॥ नर्मदा भ्रातृभिर्दत्ता पुरुकुत्साय योरगैः ॥ २ ॥ तया रसातलं नीतो भुजगेन्द्रप्रयुक्तया ॥ गन्धर्वानवधीत्तत्र वध्यान्वै विष्णुशक्तिधृक् ॥३॥ नागाल्लब्धवरः सर्पादभयं स्मरतामिदम् ॥ त्रसद्दस्युः पौरुकुत्सो योऽनरण्यस्य देहकृत् ॥ ४ ॥ हर्यश्वस्तत्सुतस्तस्मादरुणोऽथ निबन्धनः ॥ तस्य सत्यव्रतः पुत्रस्त्रिशङ्कुरिति विश्रुतः ॥ ५ ॥ प्राप्तश्चाण्डालतां शापाद्गुरोः कौशिकतेजसा ॥ सशरीरो गतः स्वर्गमद्यापि दिवि दृश्यते ॥ ६ ॥

सो मांधाताके गोत्रमें प्रवर होतभयो ॥ २ ॥ पुरुकुत्सके अर्थ सर्पननें भैन नर्मदा दीनी वासुकीकी आज्ञासैं नर्मदा अपने पति पुरुकुत्सको रसातलमें लेगई विष्णुशक्तिके धारण करनवारो पुरुकुत्सने वहां वधके योग्य गंधर्वौंको मारा ॥ ३ ॥ नागनतें वर पायो कि जो कोऊ या चरित्रकों स्मरण करेगो ताको सर्पनते भय नहीं होइगो, पुरुकुत्सको बेटा त्रसद्दस्यु भयो, ताके अनरण्य भयो ॥ ४ ॥ ताके हर्यश्व भयो, ताके अरुण ताके निबंधन भयो,ताके सत्यव्रत भयो,सो त्रिशंकुनामसे विख्यात भयो ॥५॥ गुरु वसिष्ठके शापते चांड़ालभावको प्राप्त भयो,विश्वामित्रकें तेजकरिकै शरीरसहित

सो सौभरी ऋषि वेदके पठनवारे अपार तपकी समृद्धिकरिकैं वहुमोल्य सामग्री युक्त नानाप्रकारके उपवन निर्मल जल सुगंधके कमल ॥ ४५ ॥ वहुमोल्य शय्या आसन भूषण वस्त्र स्नान चंदन भोजन मालासै युक्त अलंकृत स्त्री पुरुषौंके सुन्दर गानसै मनोहर पक्षी भौंरा वंदीजन युक्त घरनमें तिनकन्यानकरिकै सहित रमतभये ॥ ४६ ॥ सप्तद्वीपवती पृथ्वीको पति मांधाता सौभरीको गृहस्थाश्रम देखिकै विस्मित चक्रवर्ती संपत्तिकरिकैं युक्त गर्व त्याग करत भयो ॥ ४७ ॥ ऐसें घरनमें रति मान सौभरीऋषि नानासुखन करिकैं विषयनको सेवन करत तृप्त न होत भयो, जैसें अग्नि घीकी बूंदनकरिकैं नही तृप्तहोवेंहैं ॥ ४८ ॥ सो मुनि काहू समय बैठे मीनसंगतै उठे रागके कारणतैं अपने तपको नाश देख पश्चात्ताप करतभयो

स बह्वृचस्ताभिरपारणीयतपःश्रियाऽनर्घ्यपरिच्छदेषु ॥ गृहेषु नानोपवनामलाम्भःसरस्सु सौगन्धिककाननेषु ॥४५॥ महाऽर्हशय्यासनवस्त्रभूषणस्नानानुलेपाभ्यवहारमाल्यकैः॥ स्वलंकृतस्त्रीपुरुषेषु नित्यदा रेमेऽनुगायद्द्विजभृङ्गबन्दिषु ॥४६॥यद्गार्हस्थ्यं तु संवीक्ष्य सप्तद्वीपवतीपतिः ॥ विस्मितः स्तम्भमजहात्सार्वभौमाश्रियान्वितम् ॥ ४७ ॥ एवं गृहेष्वभिरतो विषयान्विविधैः सुखैः ॥ सेवमानो न चातुष्यदाज्यस्तोकैरिवानलः ॥४८॥ स कदाचिदुपासीन आत्मापह्नवमात्मनः॥ ददर्श बह्वृचाचार्यो मीनसङ्गसमुत्थितम्॥४९॥अहो इमं पश्यत मे विनाशं तपस्विनः सच्चरितव्रतस्य॥अन्तर्जले वारिचरप्रसङ्गात्प्रच्यावितं ब्रह्म चिरं धृतं यत् ॥५०॥ सङ्गं त्यजेत मिथुनव्रतिनां मुमुक्षुः सर्वात्मना न विसृजेद्बहिरिन्द्रियाणि॥ एकश्चरन्रहसि चित्तमनन्त ईशे युञ्जीत तद्व्रतिषु साधुषु चेत्प्रसङ्गः ॥५१॥ एकस्तपस्व्यहमथाम्भसि मत्स्यसङ्गात्पञ्चाशदासमुत पञ्चसहस्रसर्गः॥नान्तं व्रजाम्युभयकृत्यमनोरथानां मायागुणैर्हृतमतिर्विषयेऽर्थभावः॥५२॥

जो सौभरी ऋग्वेदीनके आचार्य हैं ॥ ४९ ॥ अहो तपस्वी सुंदर व्रतयुक्त मेरो विनाश देखो. जलकै भीतर मत्स्यकें प्रसंगतें वहुतकालसूं धारण कियो तप भ्रष्ट होतभयो ॥ ५० ॥ मुक्त हैवेकी इच्छा करनेवाले दांपत्य धर्मवालौंके संगका सर्वथा त्याग करैं इंद्रियनको विषयनमें न छोडे, एकही विचरे, एकांतमें रहे ईश्वरमें चित्त लगावे ईश्वरमें मनवारे साधुनमें प्रसंग करे ॥ ५१ ॥ में जलमें एक समयमें तपस्या करेहो, सो मत्स्यके संगते पचास स्त्री होतीभई; फेरि पांच हजार बेटा भये या लोक परलोकके मनोरथके अंतको नहीं प्राप्त होऊहूं मायाके गुणनमें मति हरगई

स्वर्गमें गयो सो अबहू स्वर्गमें दीखैहैं ॥ ६ ॥ देवताननें नीचेको मूंड करिकैं पटक्यो, परि विश्वामित्रनें बलकरिकैं वही थामिदियो, त्रिशंकुको बेटा हरिश्चंद्र भयो, जाके निमित्त विश्वामित्र और वसिष्ठमें युद्ध होत भयो, विश्वामित्रने राजसूययज्ञकी दक्षिणाके छलकरिकैं हरिश्चन्द्रराजाको सर्वस्व लेलियो,सो सुनिकैं क्रोध भये वसिष्ठ विश्वामित्रको शाप देतभये तू आडी होउ तब विश्वामित्रने वसिष्ठको शाप दियो तू बगुला हो ऐसे पक्षी व्हैकैं बहुत वर्ष लडे ॥ ७ ॥ सो हरिश्चंद्र अपुत्र भयो तब नारदके उपदेशते वरुणके शरण गयो हे प्रभो ! मेरे जो पुत्र होइगो तों ताही पुत्रकरिकैं तुह्मारी पूजा करूंगो, ऐसे शरण गयो ॥ ८ ॥ वरुणनें कही तेरे पुत्र होउ तब रोहित नाम पुत्र भयो ॥ ९ ॥ तब वरुण बोल्यो तेरे बेटा भयो है, राजा या करिकैं

पातितोऽवाक्शिरा देवैस्तेनैव स्तम्भितो बलात् ॥ त्रैशङ्कवो हरिश्चन्द्रो विश्वामित्रवसिष्ठयोः ॥ यन्निमित्तमभूद्युद्धं पक्षिणोर्बहुवार्षिकम् ॥ ७ ॥ सोऽनपत्यो विषण्णात्मा नारदस्योपदेशतः ॥ वरुणं शरणं यातः पुत्रो मे जायतां प्रभो ॥ ॥ ८ ॥ यदि वीरो महाराज तेनैव त्वां यजे इति ॥ तथेति वरुणेनास्य पुत्रो जातस्तु रोहितः ॥ ९ ॥ जातः सुतो ह्यनेनाङ्ग मां यजस्वेति सोऽब्रवीत् ॥ यदा पशुर्निर्दशः स्यादथ मेध्यो भवेदिति ॥ १० ॥ निर्दशे च स आगत्य यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् ॥ दन्ताः पशोर्यज्जायेरन्नथ मेध्यो भवेदिति ॥ ११ ॥ जाता दन्ता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ॥ यदा पतन्त्यस्य दन्ता अथ मेध्यो भवेदिति ॥ १२ ॥ पशोर्निपतिता दन्ता यजस्वेत्याह सोऽब्रवीत् ॥ यदा पशोः पुनर्दन्ता जायन्तेऽथ पशुः शुचिः ॥ १३ ॥

मेरी पूजा कर, तब हरिश्चंद्र बोल्यो जब यह पशु दश दिनाकी होइ तब पवित्र होइगो ॥ १० ॥ दश दिना गये पीछें वरुण आइकैं कहत भयो अब पूजा करि, तब राजा हरिश्चंद्र बोले याकें दांत निकरें जब पवित्र होइगो ॥ ११ ॥ जब दांत भये, तब वरुण बोल्यो अब पूजा कर, तब राजा हरिश्चंद्र बोल्यो भगवन् ! जब याके दांत गिरेंगे तब यह अति पवित्र होइगो ॥ १२ ॥ जब पशुके दांत गिरे तब वरुण बोल्यो पूजा कर, तब राजा बोल्यो या पशुकें फेरी दांत आंवेगे तब पवित्र होइगो ॥ १३ ॥

फेरि दांत जब भये तब वरुण बोल्यो अब पूजाकर तब राजा बोल्यो हे वरुण ! जब कवच बखतर पहरिवेके योग्य होइयो तब यह पशु पवित्र होइगो ॥ १४ ॥ ऐसेई पुत्रमें अनुराग स्नेहकरिकै वशीभूतचित्त राजा ता ता कालकी वंचना करता रहा राजासे छल्यो वरुण ताई २ कालको पैडों देखत भयो ॥ १५ ॥ रोहितभी मोकरिकै वरुणकी पूजा करैगो यह पिताको कर्म जानिकैं प्राण बचाइवेके लिये धनुष हाथमें लेकैं वनमें जातभयो ॥ १६ ॥ तब क्रोध कर वरुणने राजाके जलोदरका रोग करदिया पिताकूं रोगी सुनिकै रोहित ग्राममें आवन लग्यो तभी इंद्र मनें करतभयो ॥ १७ ॥ तीर्थ क्षेत्रके सेवन करिकैं भूमिमें पुण्य करत डोल ऐसे इंद्र रोहितके अर्थ उपदेश करत भयो, सो रोहित वनमें एक वर्ष वसत भयो॥ १८ ॥ ऐसेई दूसरे

पुनर्जाता यजस्वेति स प्रत्याहाथ सोऽब्रवीत् ॥ सान्नाहिको यदा राजन्राजन्योऽथ पशुः शुचिः ॥ १४ ॥ इति पुत्रानुरागेण स्नेहयन्त्रितचेतसा ॥ कालं वञ्चयता तं तमुक्तो देवस्तमैक्षत ॥ १५ ॥ रोहितस्तदभिज्ञाय पितुः कर्म चिकीर्षितम्॥ प्राणप्रेप्सुर्धनुष्पाणिररण्यं प्रत्यपद्यत ॥ १६॥ पितरं वरुणग्रस्तं श्रुत्वा जातमहोदरम्॥ रोहितो ग्राममेयाय तमिन्द्रः प्रत्यषेधत ॥ १७ ॥ भूमेः पर्यटनं पुण्यं तीर्थक्षेत्रनिषेवणैः ॥ रोहितायादिशच्छक्रः सोऽप्यरण्येवसत्समाम्॥ १८ ॥एवं द्वितीये तृतीये चतुर्थे पञ्चमे तथा ॥ अभ्येत्याभ्येत्य स्थविरो विप्रो भूत्वाह वृत्रहा॥ १९ ॥ षष्ठं संवत्सरं तत्र चरित्वा रोहितः पुरीम् ॥ उपव्रजन्नजीगर्तादक्रीणान्मध्यमं सुतम् ॥२०॥ शुनःशेपं पशुं पित्रे प्रदाय समवन्दत ॥ ततः पुरुषमेधेन हरिश्चन्द्रो महायशाः॥ २१ ॥ मुक्तोदरोऽयजद् देवान् वरुणादीन् महत्कथः॥ विश्वामित्रोऽभवत् तस्मिन् होता चाध्वर्युरात्मवान् ॥२२॥ जमदग्निरभूद्ब्रह्मा वसिष्ठोऽयास्यसामगः॥ तस्मै तुष्टो ददाविन्द्रः शातकौम्भमयं रथम् ॥२३॥

वर्ष तीसरे चौथे पांचवे वर्ष बूढो ब्राह्मण बनिकैं इंद्र आइकैं मने करत भयो ॥ १९ ॥ रोहित छटो वर्ष वनमें व्यतीत करिकैं अजीगर्तते मध्यम पुत्र मोल लेकैं पुरीमें आवत भयो ॥२०॥ शुनःशेप नाम पशु पिताके अर्थ देकैं नमस्कार करत भयो, तब हरिश्चंद्र पुरुषमेध यज्ञ करिकैं वरुणादिक देवताको पूजत भयो ॥ २१ ॥ तब वरुणनें उदर छोड्यो, रोग दूर होतभयो, ता यज्ञमें विश्वामित्र होता भयो, जमदग्नि अध्वरी भये ॥२२ ॥ वसिष्ठ ब्रह्मा होतभये अयास्य मुनि सामगा होतभये इंद्र प्रसन्न ह्वैकै हरिश्चंद्र राजाको सोनेको रथ देतभयो ॥ २३ ॥

शुनःशेपको माहात्म्य आगे कहैंगे भार्यासहित राजाको सत्य सार धैर्य युक्त देखिकैं विश्वामित्र बहुत प्रसन्न होकैं ॥ २४ ॥ ब्रह्मज्ञान देतभये, राजाने उसके प्रभावसे मन पृथ्वीमें धारण कियो, पृथ्वीकों जलमें मिलाइ जलको तेजमें तेजको पवनमें ॥ २५ ॥ पवनको आकाशमें आकाशको अहंकारमें, अहंकारको महत्तत्त्वमें मिलाइकैं तामें ज्ञान कलाको ध्यान करिकैं ताकरिकैं अज्ञान नाशकर ॥ २६ ॥ ता ज्ञानकलाको छोडिकै निर्वाणसुखकी संपत्ति करिकैं मुक्तबंधन ह्वैकै अनिर्देश्य अप्रतर्क्य स्वरूपसे स्थित होतभयो ॥ २७ ॥ इति श्रीमद्भागवते नवमस्कन्ध० भा० सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

आठयें अध्यायमें रोहितको वंश कहैं है, जा वंशमें सगर राजा भयो, जाके बेटा कपिलदेवजीके अपराधते जरिगये ॥ शुकदेवजी कहैं हैं रोहितको बेटा हरित भयो, तातें चंप भयो, जानें चंपापुरी वसाई ता चंपकतें विजय भयो ॥१॥ ताकें भरुक भयो, तातें वृक भयो, ताके बाहुक भयो, सो बाहुककी वैरीनने भूमि हरिलीनी, तब भार्यानको संग लेकें वनमें प्रवेश करतभयो ॥ २ ॥ वृद्ध ह्वैकैं मृत्युको प्राप्त भयो, तब रानी पीछें मरन लगी तब और्वऋषिनें जाइकें गर्भवती जानिकैं मनें करी ॥ ३ ॥ जाकी सौतिनें गर्भ जांनिकैं अन्नमें मिलाइकैं विष दियो, सो बालक विष करिकैं सहित जन्म लेतभयो, याते वाको नाम सगर होत भयो, बड़ो यशस्वी भयो ॥ ४ ॥

शुनःशेपस्य माहात्म्यमुपरिष्टात् प्रचक्षते ॥ सत्यसारां धृतिं दृष्ट्वा सभार्यस्य च भूपतेः ॥ २४ ॥ विश्वामित्रो भृशं प्रीतो ददावविहितां गतिम् ॥ मनः पृथिव्यां तामद्भिस्तेजसाऽऽपोऽनिलेन तत् ॥२५॥ खे वायुं धारयंस्तच्च भूतादौ तं महात्मनि ॥ तस्मिन् ज्ञानकलां ध्यात्वा तयाऽज्ञानं विनिर्दहन् ॥२६॥ हित्वा तां स्वेन भावेन निर्वाणसुखसंविदा ॥ अनिर्देश्याप्रतर्क्येण तस्थौ विध्वस्तबन्धनः ॥२७॥ इति श्रीभागवते म० नवमस्कन्धे हरिश्चन्द्रोपाख्यानं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हरितो रोहितसुतश्चम्पस्तस्माद्विनिर्मिता ॥ चम्पापुरी सुदेवोऽतो विजयो यस्य चात्मजः ॥ १ ॥ भरुकस्तत्सुतस्तस्माद्वृकस्तस्यापि बाहुकः ॥ सोऽरिभिर्हृतभू राजा सभार्यो वनमाविशत् ॥ २ ॥ वृद्धं तं पञ्चतां प्राप्तं महिष्यनुमरिष्यती ॥ और्वेण जानतात्मानं प्रजावन्तं निवारिता ॥ ३ ॥ आज्ञायास्यै सपत्नीभिर्गरो दत्तोऽन्धसा सह ॥ सह तेनैव संजातः सगराख्यो महायशाः ॥ ४ ॥

सगर चक्रवर्ती होत भयो जाके बेटानने सागर कियो, जो सगर तालजंघ व म्लेछ शक हैहय बरबर ॥ ५ ॥ इनें गुरुके वचनकरिकें न मारतभयो कितनेनको मारिकैं विकृत वेष करतभयो, कोई तो मंडित किये कोई डाढीमूछनके धरनवारे किये, कोईएक खुले केश कोई एक अर्द्धमंडित किये ॥ ६ ॥ कोई एक नहीं भीतर है वस्त्र जिनकें ऐसे किये,नहीं बाहिर हैं वस्त्र जिनके ऐसे किये ॥७॥ सो सगर और्वके उपदेश किये योगसे अश्वमेधन करिकैं सब देवतारूप आत्मा हरिकी पूजा करत भयो, ताके यज्ञमें छोडचो घोडा इंद्र हरतभयो ॥ ८ ॥ सुमतीके बेटा पिताकी आज्ञाके करनवारे गर्व युक्त घोडा ढूंढिबेको गये, चारों ओर शस्त्रनकरिकैं पृथ्वीको खोदतभये ॥ ९ ॥ पूर्व उत्तर दिशाको कोनेमें कपिलदेवजीके निकटमें घोडा

सगरश्चक्रवर्त्यासीत् सागरो यत्सुतैः कृतः ॥ यस्तालजङ्घान् यवनान् शकान् हैहयबर्बरान् ॥ ५ ॥ नावधीद् गुरुवाक्येन चक्रे विकृतवेषिणः ॥ मुण्डान् श्मश्रुधरान् कांश्चिन्मुक्तकेशार्धमुण्डितान् ॥ ६ ॥ अनन्तर्वाससः कांश्चिदबहिर्वाससोऽपरान् ॥ सोऽश्वमेधैरयजत सर्ववेदसुरात्मकम् ॥ ७ ॥ और्वोपदिष्टयोगेन हरिमात्मानमीश्वरम् ॥ तस्योत्सृष्टं पशुं यज्ञे जहाराश्वं पुरंदरः ॥ ८ ॥ सुमत्यास्तनया दृप्ताः पितुरादेशकारिणः ॥ हयमन्वेषमाणास्ते समन्तान्न्यखनन् महीम् ॥ ९ ॥ प्रागुदीच्यां दिशि हयं ददृशुः कपिलान्तिके ॥ एष वाजिहरश्चौर आस्ते मीलितलोचनः ॥ १० ॥ हन्यतां हन्यतां पाप इति षष्टिसहस्रिणः ॥ उदायुधा अभिययुरुन्मिमेष तदा मुनिः ॥ ११ ॥ स्वशरीराग्निना तावन्महेन्द्रहृतचेतसः ॥ महद्व्यतिक्रमहता भस्मसादभवन् क्षणात् ॥ १२ ॥ न साधुवादो मुनिकोपभर्जिता नृपेन्द्रपुत्रा इति सत्त्वधामनि ॥ कथं तमोरोषमयं विभाव्यते जगत्पवित्रात्मनि खे रजो भुवः ॥ १३ ॥

देखत भये, यह घोडाको हरनवारो चौर है आंखि मूदिकैं बैठ्यो है॥१०॥याको मारो मारो ऐसें कहत साठिहजार आयुध लेकैं दोरतभये,ता समय मुनि कपिलदेव आंखै खोलतभये ॥ ११ ॥ इंद्रनें उनका चित्त हरलिया था बडेनके अपराधसै नष्ट सगरके बेटा अपने शरीरते निकरी अग्निसे क्षणमात्रमें भस्म होतभये ॥ १२ ॥ हे राजा ! सगरके बेटा कपिलदेवजीके कोप करिकै जरे यह साधुवाद नहीं हैं, शुद्धसत्व मूर्ति जगत्को पवित्रकारी आत्मामें रोषमय तम होना संभव नहीं जैसे आकाशमें भूमिकी रज होना संभव नहीं ॥ १३ ॥

जिनने सांख्यमय दृढ नौका रची है, जाकरिकै मुमुक्षु पुरुष दुरत्यय मृत्युको मार्ग संसार समुद्रको तरैं सो सर्वज्ञ सबनके आत्माके वैरी मित्र यह भेददृष्टि
कैसे होसके है ॥ १४ ॥ सगरकी दूसरी रानी केशनीके असमंजस हुआ असमंजसके अंशुमान हुआ जो सगरके हितमें सदा रहताथा ॥ १५ ॥
असमंजस आत्मा दिखावैहै याते असमंजस है, वह पहिले जन्ममें योगी हो संगते भ्रष्ट ह्वैगयो अब पहिलो स्मरण कर संग दूरि करिवेके लिये
॥ १६ ॥ प्राणीनको उद्वेग देता लोकनमें निंद ज्ञातिनको विप्रिय कर्म आचरण करता खेलते बालकौंको लेकरिकै सरयूमें फेंकत भयो

यस्येरिता सांख्यमयी दृढेह नौर्यया मुमुक्षुस्तरते दुरत्ययम् ॥ भवार्णवं मृत्युपथं विपश्चितः परात्मभूतस्य कथं पृथङ्मतिः
॥ १४ ॥ योऽसमञ्जस इत्युक्तः स केशिन्यां नृपात्मजः ॥ तस्य पुत्रोंऽशुमान् नाम पितामहहिते रतः ॥ १५ ॥
असमञ्जस आत्मानं दर्शयन्नसमञ्जसम् ॥ जातिस्मरः पुरा सङ्गाद्योगी योगाद्विचालितः ॥ १६ ॥ आचरन् गर्हितं लोके
ज्ञातीनां कर्म विप्रियम् ॥ सरय्वां क्रीडतो बालान् प्रास्यदुद्वेजयन् जनम् ॥ १७ ॥ एवंवृत्तः परित्यक्तः पित्रा स्नेहमपोह्य
वै ॥ योगैश्वर्येण बालांस्तान् दर्शयित्वा ततो ययौ ॥ १८ ॥ अयोध्यावासिनः सर्वे बालकान् पुनरागतान् ॥ दृष्ट्वा
विसिस्मिरे राजन् राजा चाप्यन्वतप्यत ॥ १९ ॥ अंशुमांश्चोदितो राज्ञा तुरङ्गान्वेषणे ययौ ॥ पितृव्यखातानुपथं भस्मान्ति
ददृशे हयम् ॥ २० ॥ तत्रासीनं मुनिं वीक्ष्य कपिलाख्यमधोक्षजम् ॥ अस्तौत् समाहितमनाः प्राञ्जलिः प्रणतो
महान् ॥ २१ ॥ अंशुमानुवाच ॥ न पश्यति त्वां परमात्मनोऽजनो न बुध्यतेऽद्यापि समाधियुक्तिभिः ॥ कुतोऽपरे तस्य
मनःशरीरधीविसर्गसृष्टा वयमप्रकाशाः ॥ २२ ॥

॥ १७ ॥ ऐसो आचरण देख स्नेह त्याग असमंजसको पितानें त्याग कियो, तब योगैश्वर्य्य करिकै जे बालक डुबाये तिनें दिखाईके जातभयो ॥ १८ ॥
सगरे अयोध्यावासी फेरि आये बालकौंको देखिकैं विस्मयको प्राप्तभये, राजा दुःखको प्राप्तभयो ॥ १९ ॥ घोडा ढूंढिवेके लियें प्रेरचो अंशुमान
काकाके खोदे गढलाके मार्गसे जातभयो, भस्मके समीपमें घोडा देखतभयो ॥ २० ॥ तहां बैठे कपिलमुनि भगवानको देखिकैं सावधान मन ह्वैके हाथ
जोरिकैं नम्रह्वैकैं स्तुति करतभयो ॥ २१ ॥ अंशुमान बोले ब्रह्माभी समाधिकी युक्ति करिकैं आपुतें परें परमेश्वर तुमको अबतकभी नहीं देखें हैं,

और कहांतें तुमको देखेंगे, जे ब्रह्माके मन शरीर बुद्धि करिकैं नानासर्गमें सृजेहैं तिनमें मूर्ख हम कहांते देखेंगे ॥ २२ ॥ जो प्राणी बुद्धि परतन्त्र और बाहरके ज्ञानवाले हैं वे तुह्मारी मायासै मोहित हो जाग्रत स्वप्नावस्थामें केवल विषयौंकोही देखतें हैं सुषुप्तिमें उन्है अज्ञान रहताहै परन्तु अपने स्वरूपमें विराजमान आपको वे नहीं जान्ते ॥ २३ ॥ स्वभावसे मायागुणनिमित्तके भेद, तथा मोहके नाश करनेहारे सनंदनादिक मुनि जिनका ध्यान करतें हैं ऐसे शुद्ध ज्ञानमूर्ति तुमको मैं मूर्ख कैसें विचार करसक्ते हैं ॥ २४ ॥ हे प्रशांत ! आप मायाके गुण और कर्मौंसे जान्ने योग्य नाम रूप रहित पुण्य पापसे हीन हो आपने ज्ञानके उपदेशके लियें देह धारनेहारे पुराणपुरुष तुमकूं हम नमस्कार करैं हैं ॥ २५ ॥ तुह्मारी मायाकरिकैं रचे

ये देहभाजस्त्रिगुणप्रधाना गुणान् विपश्यन्त्युत वा तमश्च ॥ यन्मायया मोहितचेतसस्ते विदुः स्वसंस्थं न बहिः-
प्रकाशाः ॥ २३ ॥ तं त्वामहं ज्ञानघनं स्वभावप्रध्वस्तमायागुणभेदमोहैः ॥ सनन्दनाद्यैर्मुनिभिर्विभाव्यं कथं हि मूढः
परिभावयामि ॥ २४ ॥ प्रशान्तमायागुणकर्मलिङ्गमनामरूपं सदसद्विमुक्तम् ॥ ज्ञानोपदेशाय गृहीतदेहं नमामहे त्वां
पुरुषं पुराणम् ॥ २५ ॥ त्वन्मायारचिते लोके वस्तुबुद्ध्या गृहादिषु ॥ भ्रमन्ति कमलोभेर्ष्यामोहविभ्रान्तचेतसः॥२६॥
अद्य नः सर्वभूतात्मन् कामकर्मेन्द्रियाशयः ॥ मोहपाशो दृढश्छिन्नो भगवंस्तव दर्शनात् ॥ २७॥ श्रीशुक उवाच॥
इत्थं गीतानुभावस्तं भगवान् कपिलो मुनिः ॥ अंशुमन्तमुवाचेदमनुगृह्य धिया नृप॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥
अश्वोऽयं नीयतां वत्स पितामहपशुस्तव ॥ इमे च पितरो दग्धा गङ्गाऽम्भोर्हन्ति नेतरत्॥२९॥तं परिक्रम्य शिरसा
प्रसाद्य हयमानयत् ॥ सगरस्तेन पशुना क्रतुशेषं समापयत् ॥ ३० ॥

लोकमें काम लोभ ईर्षा मोहसै भ्रांत चित्त प्राणी घर आदिकौंमै तत्व बुद्धि करकै भ्रमते रहते हैं ॥ २६ ॥ हे सर्वभूतात्मन् हे सब प्राणीनके आत्मा हे भगवन् ! काम कर्म इंद्रियके आश्रय दृढ हमारो मोहपाश तुह्मारे दर्शनतें कटिगयो ॥ २७ ॥ अब श्रीशुकदेवजी महाराज राजा परीक्षितसों कहै हैं, हे राजा ! विख्यात प्रभाव भगवान् कपिलमुनि बुद्धिकरिकैं अंशुमानपै अनुग्रहकरि यह बोलतभये ॥२८॥ हे बेटा ! यह घोडा लेजा तेरो दादा सगरको है, जे तेरे पितर जरेहैं वे गंगाजलके योग्य हैं और जलके योग्य नहीं उससै तरैंगे ॥ २९ ॥ अंशुमान कपिलदेवजीकी परिक्रमा देकैं शिरसै प्रसन्न

करिकैं घोडा ले आवतभये, सगर ता घोडाकरिकै यज्ञको शेष समाप्त करतभयो ॥ ३० ॥ मुक्तबंधन निःस्पृह सगर अंशुमानको राज्य दैकैं और्वऋषिकें उपदेशकियो मार्गसे उत्तम गतिकूं प्राप्तभये ॥ ३१ ॥ इति श्रीम० नवमस्कन्धे अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ अब नौवे अध्यायमै अंशुमानको वंश खट्वांग राजा ताई वर्णन करे हैं, जाको नाती भगीरथ भूतलमें गंगा लावतभयो ॥ शुकदेवजी कहैं हैं अंशुमान गंगा लाइवेके लियै बहुत वर्षताइ तप करत भयो, परि गंगाके लाइवेको समर्थ न भयो कालकरिकै मरचौ ॥ १ ॥ तैसेंई ताको बेटा दिलीप असमर्थ भयो कालको प्राप्त भयो, ताको पुत्र भगीरथ भयो, सो बडो तप करत भयो ॥ २ ॥ ता भगीरथ प्रति देवी गंगा प्रसन्न ह्वैके दर्शन देतिभई तू वर मांग ऐसे गंगानै कह्यो तब राजा

राज्यमंशुमति न्यस्य निःस्पृहो मुक्तबन्धनः ॥ औवोंपदिष्टमार्गेण लेभे गतिमनुत्तमाम् ॥३१॥ इति श्रीभा०म०नवमस्कन्धे सगरोपाख्यानेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अंशुमांश्च तपस्तेपे गङ्गानयनकाम्यया ॥ कालं महान्तं नाशक्नोत् ततः कालेन संस्थितः ॥१॥ दिलीपस्तत्सुतस्तद्वदशक्तः कालमेयिवान् ॥ भगीरथस्तस्य पुत्रस्तेपे स सुमहत् तपः ॥ २ ॥ दर्शयामास तं देवी प्रसन्ना वरदाऽस्मि ते ॥ इत्युक्तः स्वमभिप्रायं शशंसावनतो नृपः ॥ ३ ॥ कोऽपि धारयिता वेगं पतन्त्या मे महीतले ॥ अन्यथा भूतलं भित्त्वा नृप यास्ये रसातलम् ॥ ४ ॥ किंचाहं न भुवं यास्ये नरा मय्यामृजन्त्यघम् ॥ मृजामि तदघं कुत्र राजंस्तत्र विचिन्त्यताम् ॥ ५ ॥ भगीरथ उवाच ॥ साधवो न्यासिनः शान्ता ब्रह्मिष्ठा लोकपावनाः ॥ हरन्त्यघं तेऽङ्गसङ्गात् तेष्वास्ते ह्यघभिद्धरिः ॥ ६ ॥ धारयिष्यति ते वेगं रुद्रस्त्वात्मा शरीरिणाम् ॥ यस्मिन्नोतमिदं प्रोतं विश्वं शाटीव तन्तुषु ॥ ७ ॥

भगीरथ अपनो अभिप्राय कहत भये ॥ ३ ॥ तब गंगा बोली आकाशते मेरे वेगको पृथ्वीतलमें कौन धारण करेगो अन्यथा हे राजा ! भूतलको फोरिकै रसातलको जाऊंगी ॥ ४ ॥ और मैं भूमिमें न आऊंगी पापी लोक मोमें पाप धोमेंगे ता पापको मैं कैसें धोऊंगी तामें उपाई विचारो ॥ ५ ॥ तब भगीरथ बोले सर्व त्यागके करनवारे शांत ब्रह्मनिष्ठ लोकनकौ पवित्र करनवारे साधु अंगसंगतें तेरो पापताप हरेंगे, तिन साधुनमें पापके नाश करनवारे हरि हैं ॥ ६ ॥ शरीर धारिनके आत्मा रुद्र तेरे वेगको धारण करेगे जिनमें विश्व ओतप्रोत है, जैसे तंतुनमें वस्त्र ओत प्रोत है ॥ ७ ॥

ऐसें कहिकैं राजा भगीरथ तप करिकै महादेवको प्रसन्नकरत भये, ता भगीरथपै थोरेई कालमें शिवजी प्रसन्न होत भये ॥ ८ ॥ राजाने कह्यो ताइ अंगीकार करिकैं सब लोकनके हितकारी शिवजी सावधान व्हैकें हरिके चरण करिकै पवित्र जल श्रीगंगाजीको माथेपै धारण करत भये ॥ ९ ॥ राजऋषि भगीरथ भुवनपावनी गंगाकूं लगावतभयो जहां पितरनके देह भस्म भये परे है ॥ १० ॥ पवनकेसे वेगवारे रथपैं जाते भये भगीरथके पीछे दौरी जाति गंगा देशनको पवित्र करती जरेहुए सगरके बेटोंको सींचति भई ॥ ११ ॥ जा गंगाजलके स्पर्श मात्रसें ब्रह्ममें अपराध करनेवारे मरे सगरके बेटा केवल देहकी भस्म करिकैंई स्वर्गको जातभये ॥ १२ ॥ भस्मीभूत अंगके संग करिकैं सगरके बेटा स्वर्गको गये, जे कोऊ

इत्युक्त्वा स नृपो देवं तपसाऽतोषयच्छिवम् ॥ कालेनाल्पीयसा राजंस्तस्येशः समतुष्यत ॥ ८ ॥ तथेति राज्ञाभिहितं सर्वलोकहितः शिवः ॥ दधारावहितो गङ्गां पादपूतजलां हरेः ॥ ९ ॥ भगीरथः स राजर्षिर्निन्ये भुवनपावनीम् ॥ यत्र स्वपितॄणां देहा भस्मीभूताः स्म शेरते ॥ १० ॥ रथेन वायुवेगेन प्रयान्तमनुधावती ॥ देशान्पुनन्ती निर्दग्धानासिञ्चत्सगरात्मजान् ॥११॥ यज्जलस्पर्शमात्रेण ब्रह्मदण्डहता अपि ॥ सगरात्मजा दिवं जग्मुः केवलं देहभस्मभिः ॥१२॥ भस्मीभूताङ्गसङ्गेन स्वर्याताः सगरात्मजाः ॥ किं पुनः श्रद्धया देवीं ये सेवन्ते धृतव्रताः ॥१३॥ न ह्येतत् परमाश्चर्यं स्वर्धुन्या यदिहोदितम् ॥ अनन्तचरणाम्भोजप्रसूताया भवच्छिदः ॥ १४ ॥ संनिवेश्य मनो यस्मिन् श्रद्धया मुनयोऽमलाः ॥ त्रैगुण्यं दुस्त्यजं हित्वा सद्यो यातास्तदात्मताम् ॥ १५ ॥ श्रुतो भगीरथाज्जज्ञे तस्य नाभोऽपरोऽभवत् ॥ सिन्धुद्वीपस्ततस्तस्मादयुतायुस्ततोऽभवत् ॥ १६ ॥

श्रद्धाकरि व्रत धारण करिकैं श्रीगंगादेवीको सेवन करैं हैं ते स्वर्गको जाइ तौ यामें कहा कहनो है ॥ १३ ॥ गंगाजीके माहात्म्यमें यह आश्चर्य नहीं है क्यौंकि यह गंगा उन हरिके चरणारविंदते भई है हरि साक्षात् संसारके काटनवारे हैं ॥ १४ ॥ जिन भगवानमें श्रद्धाकरिकै मन प्रवेश करिकै निर्मल मुनि दुस्त्यज देह सम्बध छोडिकै तत्काल तिनके रूपको प्राप्त होत भये ॥ १५ ॥ भगीरथतै श्रुति होत भयो, नाभ होत भयो, ताके सिंधुद्वीप होत भयो, तातें अयुतायु भयो ॥ १६ ॥

ताकें नलको सखा ऋतुपर्ण भयो, जो नलते घोड़ानकी विद्या सीखत भयो, नलके अर्थ चौपरि खेलिवेकी विद्या देतभयो, ता ऋतुपर्णको बेटा सर्वकाम भयो ॥ १७ ॥ तातें सुदास भयो, हे राजा! ताको बेटा सौदास भयो, सो मदयंतीको पति है, जाको मित्रसह कहें हैं, कोउ एक वाकू कल्माषांघ्रि कहैंहैं, वसिष्ठके शापतें राक्षस होत भयो, अपनें कर्म करिकै अपुत्र भयो ॥ १८ ॥ राजा पूंछे हैं हे महाराज श्रीशुकदेवजी! महात्मा सौदासको कौन निमित्त गुरुको शाप भयो यह हम जानिवेकी इच्छा करे हैं जो रहस्य न होई तौ कहो ॥ १९ ॥ शुकदेवजी कहै हैं सौदास शिकार खेलत कोइ एक राक्षसको मारतभयो, ताके भैयाको पकरिकै छोडि देतभयो सो भैया राजासू अपने भैयाको पलटो लेवेकी इच्छा करिकै

ऋतुपर्णो नलसखो योऽश्वविद्यामयान्नलात् ॥ दत्त्वाऽक्षहृदयं चास्मै सर्वकामस्तु तत्सुतः ॥ १७॥ ततः सुदासस्तत्पुत्रो मदयन्तीपतिर्नृप ॥ आहुर्मित्रसहं यं वै कल्माषाङ्घ्रिमुत क्वचित् ॥ वसिष्ठशापाद् रक्षोऽभूदनपत्यः स्वकर्मणा ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ किंनिमित्तो गुरोः शापः सौदासस्य महात्मनः ॥ एतद्वेदितुमिच्छामः कथ्यतां न रहो यदि ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सौदासो मृगयां किंचिच्चरन्रक्षो जघान ह ॥ मुमोच भ्रातरं सोऽथ गतः प्रतिचिकीर्षया ॥ २० ॥ स चिन्तयन्नघं राज्ञः सूदरूपधरो गृहे ॥ गुरवे भोक्तुकामाय पक्त्वा निन्ये नरामिषम् ॥ २१ ॥ परिवेक्ष्यमाणं भगवान् विलोक्याभक्ष्यमञ्जसा ॥ राजानमशपत्क्रुद्धो रक्षो ह्येवं भविष्यसि ॥ २२ ॥ रक्षःकृतं तद्विदित्वा चक्रे द्वादशवार्षिकम् ॥ सोऽप्यपोऽञ्जलिनादाय गुरुं शप्तुं समुद्यतः ॥ २३ ॥ वारितो मदयन्त्यापो रुशतीः पादयोर्जहौ ॥ दिशः खमवनीं सर्वं पश्यञ्जीवमयं नृपः ॥ २४ ॥

गयो ॥ २० ॥ सो राजाके बुरे करिवेके लिये रसोईयाको रूपधरिकै घरमें रहतभयो, एक समय भोजनकी इच्छा करनेहारे गुरुके अर्थ मनुष्यको मांस पकाइकै लावतभयो ॥ २१ ॥ खाइवेके अयोग्य वह मनुष्यमांस परोस्यो देखिकैं क्रोधकर वशिष्ठ राजाको शाप देत भये, तू मनुष्यमांस खवावे है यातें राक्षस होईगो ॥ २२ ॥ फिर वह कर्म राक्षसका किया जानिकै ता शापकों बारह वर्षकों करतभयो सोऊ राजा हाथमें जल लेकैं गुरुकूं शाप देवेकै उद्यत होत भयो ॥ २३ ॥ तब मदयंती रानीनें मने कियो शापको जल अपनें पायनमें डारतभयो दिशा आकाश पृथ्वी

70

सब जीवमय है यातें और ठौर न डारचो उस जलके गिरानैसै उसके पैर कालें होगये ॥ २४ ॥ राक्षसभावको प्राप्तभयो और चरणौंमें कल्माषताकूं प्राप्तभयो, एक समय मैथुनके समयमें वनमें वसे ब्राह्मण ब्राह्मणीको देखतभयो ॥ २५ ॥ भूखो राजा ब्राह्मणको पकरि लेत भयो ब्राह्मणी दीन व्हैकैं बोलतिभई ॥ २६ ॥ तुम राक्षस नहींहो, साक्षात् इक्ष्वाकुकुलमें महारथी हो मदयंतीके पति हो हे वीर ! अधर्म करिवेको योग्य नहीं हो, पुत्रकी इच्छासे मेरी रति समाप्त नहीं भई, सो तुम मेरा पति ब्राह्मण देउ ॥ २७ ॥ हे वीर हे राजन् ! यह मनुष्य देह पुरुषके सब अर्थको दैनवारो है तातें याकौ वध सर्वार्थको वधकरनो हैं ॥ २८ ॥ यह ब्राह्मण विद्वान है तपशील गुण युक्त है महा पुरुष ब्रह्मके आराधन करिवेकी इच्छा करै है

राक्षसं भावमापन्नः पादे कल्माषतां गतः ॥ व्यवायकाले ददृशे वनौकोदम्पती द्विजौ ॥ २५ ॥ क्षुधार्तो जगृहे विप्रं तत्पत्न्याऽऽहाऽकृतार्थवत् ॥ न भवान्राक्षसः साक्षादिक्ष्वाकूणां महारथः ॥ २६ ॥ मदयन्त्याः पतिर्वीर नाधर्मं कर्तुमर्हसि ॥ देहि मेऽपत्यकामाया अकृतार्थं पतिं द्विजम् ॥२७॥ देहोऽयं मानुषो राजन्पुरुषस्याखिलार्थदः ॥ तस्मादस्य वधो वीर सर्वार्थवध उच्यते ॥ २८ ॥ एष हि ब्राह्मणो विद्वांस्तपःशीलगुणान्वितः ॥ आरिराधयिषुर्ब्रह्म महापुरुषसंज्ञितम् ॥ सर्वभूतात्मभावेन भूतेष्वन्तर्हितं गुणैः ॥ २९ ॥ सोऽयं ब्रह्मर्षिवर्यस्ते राजर्षिप्रवराद्विभो ॥ कथमर्हति धर्मज्ञ वधं पितुरिवात्मजः ॥ ३० ॥ तस्य साधोरपापस्य भ्रूणस्य ब्रह्मवादिनः ॥ कथं वधं यथा बभ्रोर्मन्यते संमतो भवान् ॥ ३१ ॥ यद्ययं क्रियते भक्षस्तर्हि मां खाद पूर्वतः ॥ न जीविष्ये विना येन क्षणं च मृतकं यथा ॥ ३२ ॥ एवं करुणभाषिण्या विलपन्त्या अनाथवत् ॥ व्याघ्रः पशुमिवाखादत्सौदासः शापमोहितः ॥ ३३ ॥

जो ब्राह्मण सगरे प्राणिनमें आत्मभाव करिकैं गुणकरकै अंतर्हित है ॥ २९ ॥ सो यह ब्रह्मऋषिमें श्रेष्ठ राजऋषिनमें उत्तम तुमसें कैसें वधकूं योग्य है, हे धर्मज्ञ ! जैसें पुत्र पिताके वध करिवे योग्य नहीं होता ऐसे यह वधयोग्य नहीं है॥३०॥सो इस साधु निष्पाप तीनि वेदनके वक्ताके वधको आप कैसे संमत मानें हैं, जैसे गायके वधको संभव नही हो सकै है ॥ ३१ ॥ जो याको भक्षण करोहो तौ पहिले मोंकूं खाइलेय मेरे प्राणको प्यारो हैं या विना मैं एक क्षण नहीं जीऊंगी ॥ ३२ ॥ ऐसे करुणामान वचन कहती अनाथसी विलाप करतीके देखते शापसूं मोहित सौदास उसे खाइजात भयो

जैसे वाघ पशुको खाइजाइहै ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणी गर्भाधानके करणवारे पतिकूं राक्षससे भक्षण कियो देखिके अपनो सोच करते क्रोध करिकै राजाको शाप देतिभई ॥ ३४ ॥ हे पापी ! काम करिके आर्त मेरो पति तैंने खाई लियो इस कारण हे मूर्ख ! स्त्री प्रसंग करतेही तेरी मृत्युभी होगी ॥ ३५ ॥ ऐसे मित्रसहको शाप देकै पतिलोक आश्रयवती ब्राह्मणी ब्राह्मणकी अस्थि एकट्ठि कर जराई अग्निमें डारिके भर्ताकी गतिकूं प्राप्तभई ॥ ३६ ॥ बारहवर्ष पीछें गतशाप राजा मैथुन करवेको उद्यतभयो, तव रानीनें ब्राह्मणीको शाप जानिकै मनें कियो ॥ ३७ ॥ तातें पीछें राजा स्त्रीसुखको त्याग करतभयो, ऐसे कर्म करिकैं अपुत्र भयो, तव राजासें आज्ञा दिये वशिष्ठ मदयंतीमें गर्भ राखतभये ॥ ३८ ॥ सो रानी सातवर्ष तांई गर्भको धारण करतिभई, बालक नहीं भयो तव वसिष्ठजी रानीके उदरको पत्थरसै मारतभये, तव लरिका भयो सो अश्मक नाम कहायो ॥ ३९ ॥ अश्मककें मूलक होतभयो, जो स्त्रीननें दवकाइकें रक्षा कियो यातें नारीकवच नाम होतभयो, निक्षत्री पृथ्वीमें क्षत्रीनको मूल भयो यातें मूलक कह्यो ॥ ४० ॥ ताते दशरथ भयो, तातें ऐडविड पुत्र भयो, ताकें राजा विश्वसह भयो, जाके चक्रवर्ती खट्वांग भयो ॥ ४१॥ जो खट्वांग देवतानकी प्रार्थनासै दैत्यनको मारतभयो, युद्धमें दुर्जय भयो, दो घडी अपनी आयु जानिके पुरमें आईकैं परमेश्वरमें मन धारण करतभयो ॥ ४२ ॥

ब्राह्मणी वीक्ष्य दिधिषुं पुरुषादेन भक्षितम् ॥ शोचन्त्यात्मानमुर्वीशमशपत्कुपिता सती ॥३४॥ यस्मान्मे भक्षितः पाप कामार्तायाः पतिस्त्वया ॥ तवापि मृत्युराधानादकृतप्रज्ञ दर्शितः ॥३५॥ एवं मित्रसहं शप्त्वा पतिलोकपरायणा ॥ तदस्थीनि समिद्धेऽग्नौ प्रास्य भर्तुर्गतिं गता ॥ ३६ ॥ विशापो द्वादशाब्दान्ते मैथुनाय समुद्यतः ॥ विज्ञाय ब्राह्मणीशापं महिष्या स निवारितः ॥३७॥ तत ऊर्ध्वं स तत्याज स्त्रीसुखं कर्मणाऽप्रजाः ॥ वसिष्ठस्तदनुज्ञातो मदयन्त्यां प्रजामधात् ॥ ३८॥ सा वै सप्त समा गर्भमबिभ्रन्न व्यजायत ॥ जघ्नेऽश्मनोदरं तस्याः सोऽश्मकस्तेन कथ्यते ॥ ३९ ॥ अश्मकान्मूलको जज्ञे यः स्त्रीभिः परिरक्षितः ॥ नारीकवच इत्युक्तो निःक्षत्रे मूलकोऽभवत् ॥ ४० ॥ ततो दशरथस्तस्मात् पुत्र ऐडविडस्ततः ॥ राजा विश्वसहो यस्य खट्वाङ्गश्चक्रवर्त्यभूत् ॥ ४१ ॥ यो देवैरर्थितो दैत्यानवधीद् युधि दुर्जयः ॥ मुहूर्तमायुर्ज्ञात्वैत्य स्वपुरं संदधे मनः ॥ ४२ ॥

राजानें विचारो कि मोको कुलदेव ब्राह्मणतें अपनें प्राण प्यारे नहीं, पुत्र प्यारे नहीं, संपत्ति पृथ्वी राज्य स्त्री ये प्यारी नहीं ॥ ४३ ॥ बालक अवस्थामें
अधर्ममें मेरी मति कबहूं नहीं भई हैं, उत्तम यश हरिते परे और कछु वस्तु नहीं देखताहूं ॥ ४४ ॥ त्रिलोकीके ईश्वर देवतौंने मोको कामवर दैनेको
कही पर मेरा मन वरदानकी इच्छा नहीं करता कारण कि मेरे मनमें नारायणको प्रेम जागेहै ॥ ४५ ॥ विक्षिप्त इंद्रिय बुद्धिवारे देवता अपनें हृदयमें
स्थित प्यारे आत्मा हरिकूं नहीं जानेहैं, और कहांते जानेगो ॥ ४६ ॥ ईश्वरकी मायाके रचे गंधर्व पुरकीसी उपमावारे विषयनमें स्वभावकरिकैं
बढते संगको ईश्वरके भावकरिकैं छोडिकैं परमेश्वरके शरण प्राप्त होऊंगो ॥ ४७ ॥ ऐसे नारायणमें बुद्धि लगाय निश्चयकर खट्वांगराजा देहादिकमें

न मे ब्रह्मकुलात्प्राणाः कुलदैवान्न चात्मजः ॥ न श्रियो न मही राज्यं न दाराश्चातिवल्लभाः ॥४३॥ न बाल्येऽपि मति-
र्मह्यमधर्मे रमते क्वचित् ॥ नापश्यमुत्तमश्लोकादन्यत्किंचन वस्त्वहम् ॥४४॥ देवैः कामवरो दत्तो मह्यं त्रिभुवनेश्वरैः ॥
न वृणे तमहं कामं भूतभावनभावनः ॥४५॥ ये विक्षिप्तेन्द्रियधियो देवास्ते स्वहृदि स्थितम् ॥ न विन्दन्ति प्रियं
शश्वदात्मानं किमुतापरे ॥ ४६ ॥ अथेशमायारचितेषु सङ्गं गुणेषु गन्धर्वपुरोपमेषु ॥ रूढं प्रकृत्याऽऽत्मनि विश्व-
भर्तुर्भावेन हित्वा तमहं प्रपद्ये ॥ ४७ ॥ इति व्यवसितो बुद्ध्या नारायणगृहीतया ॥ हित्वाऽन्यभावमज्ञानं ततः
स्वं भावमाश्रितः ॥४८॥ यत्तद्ब्रह्म परं सूक्ष्ममशून्यं शून्यकल्पितम् ॥ भगवान्वासुदेवेति यं गृणन्ति हि सात्वताः
॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे सूर्यवंशानुवर्णने नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ खट्वाङ्गा-
द्दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात्पृथुश्रवाः ॥ अजस्ततो महाराज तस्माद्दशरथोऽभवत् ॥ १ ॥

अभिमानरूप अज्ञान छोडिकैं अपनें भावके आश्रित होतभयो ॥ ४८ ॥ जिस स्वरूप भक्तजन वासुदेव नामसे पुकारतेहैं वह रूप परम सूक्ष्म और
शून्य न होकरभी शून्यके समान प्रतीत होयहै उसेही ब्रह्म कहैं हैं ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां नवमस्कन्धे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥
दशको अध्यायमें खट्वांगके वंशमें श्रीरामचंद्रजीको जन्म और रावणमारिकै अयोध्यामें आये तहां ताई चरित्र कहैं है ॥ श्रीशुकदेवजी कहैं हैं
खट्वांगते दीर्घबाहु भयो, तातें रघु भयो, तातें अज भयो, तातें महाराज दशरथ होतभये ॥ १ ॥

देवताओंके प्रार्थना करनेपर तिन दशरथकें साक्षात् ब्रह्ममय हरिसों अंशांश करिकैं चारि भागकरकै पुत्र होतभये राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न नाम भये ॥ २ ॥ तिनको चरित्र ऋषि वाल्मीकादिकनने बहुत वर्णन कियेहैं, जो तैनें वेर वेर सुन्यो तोऊ संक्षेपते कहैं है ताइ सुनो ॥ ३ ॥ दशरथके अर्थ राज्य छोड सीताजीके हाथके स्पर्शको नहीं सहारनेहारे कमलसे कोमल चरणौंसे वनवनमें डोलतभये हनूमान लक्ष्मण जिनके मार्गका श्रम दूर किया विरूपकरी शूर्पणखासें लोभित हुए रावण द्वारा हरी सीताके विरहसे क्रोध करिकैं भ्रुकुटी चढाकर सागरको डरा उसपर सेतु बांध, दुष्ट रावणरूपी वनके जरावनवारे अयोध्याके राजा हमारी रक्षा करे ॥ ४ ॥ ऐसे संक्षेपसे एक श्लोकमें रामचरित्र अब दो अध्यायमें विस्तार

तस्यापि भगवानेष साक्षाद्ब्रह्ममयो हरिः ॥ अंशांशेन चतुर्धाऽगात्पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः ॥ २ ॥ रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया ॥ तस्यानुचरितं राजन्नृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेर्मुहुः ॥ ३ ॥ गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम् ॥ वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषा रोषितभ्रूविजृम्भत्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोशलेन्द्रोऽवतान्नः ॥ ४ ॥ विश्वामित्राध्वरे येन मारीचाद्या निशाचराः ॥ पश्यतो लक्ष्मणस्यैव हता नैर्ऋतपुङ्गवाः ॥ ५ ॥ यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं सीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम् ॥ आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये ॥ ६ ॥ जित्वानुरूपगुणशीलवयोऽङ्गरूपां सीताऽभिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम् ॥ मार्गे व्रजन्भृगुपतेर्व्यनयत्प्ररूढं दर्पं महीमकृत यस्त्रिरराजबीजाम् ७

पूर्वक कहै हैं, जिन श्रीरामचंद्रने विश्वामित्रके यज्ञमें मारीचतें आदि लेके राक्षस लक्ष्मणके देखते मारे ॥ ५ ॥ जो राम लोककें वीरनके समाजमें सीताके स्वयंवर घरमें धरचो जिसे तीनसें मनुष्य उठाइके लाये बडो कठोर महादेवको धनुष देख बालक हाथीकी समान लीला करकै ईखकी लठियाकीसी नाईं उठाइकैं चढाइकै खैंचिकैं तोरतभये ॥ ६ ॥ अपनें अनुरूप गुण शील वय अंगरूप युक्त जानकी जो कि अपने वक्षस्थलमें रहकर सन्मान की हुई लक्ष्मीकाही अवतार थी उनका विवाह कर चले तब धनुषको भंग सुनिकैं क्रोधभए परशुरामको बडो गर्वनाश करत भये जिन परशुरामनें इक्कीशवेर राजानके बीजकरिकै शून्य पृथ्वी करदीथी ॥ ७ ॥

सत्यपाशकरिकैं बंधे, कैकेईके आधीन पिताकी आज्ञा शिरसै ग्रहणकर राज्य संपत्ति प्यारे सुहृद घर छोडिकैं सीता सहित वनको जातभये, जैसें मुक्तसंग योगी अपनें प्राणनकूं छोडिकै जाइहै ॥ ८ ॥ रावणकी बहिनी अशुद्धबुद्धिके कान नाक काटिके विरूप करतभये शूर्पणखाके बंधु खर त्रिशिरा दूषणादि चौदहहजार राक्षसोंको मारतभये, धनुष हाथमें ले वनमें डोलते कष्टकरिकैं वसतभये ॥ ९ ॥ सीताकी कथा सुन कामातुर रावणके पठाये अद्भुत हरिणको रूप धरनेहारे और आश्रमतें अपनेको दूरि लेजानेवाले मारीचकूं रामचंद्र मारतभये जैसें महादेव दक्षकूं मारतभये ॥१०॥

यः सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशं स्त्रैणस्य चापि शिरसा जगृहे सभार्यः ॥ राज्यं श्रियं प्रणयिनः सुहृदो निवासं त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसङ्गः ॥ ८ ॥ रक्षःस्वसुर्व्यकृत रूपमशुद्धबुद्धेस्तस्याः खरत्रिशिरदूषणमुख्यबन्धून ॥ जघ्ने चतुर्दशसहस्रमपारणीयकोदण्डपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम् ॥ ९ ॥ सीताकथाश्रवणदीपितहृच्छयेन सृष्टं विलोक्य नृपते दशकन्धरेण ॥ जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाऽऽश्रमतोऽपकृष्टो मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्रः ॥ १० ॥ रक्षोधमेन वृकवद्विपिने समक्षं वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम् ॥ भ्रात्रा वने कृपणवत् प्रियया वियुक्तः स्त्रीसङ्गिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार ॥११॥ दग्ध्वात्मकृत्यहतकृत्यमहन् कबन्धं सख्यं विधाय कपिभिर्दयितागतिं तैः ॥ बुद्ध्वाथ वालिनि हते प्लवगेन्द्रसैन्यैर्वेलामगात्स मनुजोऽजभवार्चिताङ्घ्रिः ॥ १२ ॥

राक्षसनमें नीच रावणनें ल्यारीकीसी नाई सूनेमें विदेहराजाकी बेटी सीता हरी, तब भैया सहित वनमें कृपणकी समान प्यारीसे वियुक्त स्त्रीसंगीनको दुःखकी गति विख्यात करते डोलत भये ॥ ११ ॥ अपनें लिये रावणसूं युद्धकरिकैं मरे जटायुकू पुत्र जैसें पिताको दाह करे तैसें जराइकें, आगें अपनें पकरिवेकों हाथ फैलाये राक्षस कवंधकूं मारतभये, फेरि सुग्रीवसूं मित्रता करिकैं वालिको मारिकैं, बंदरोंसे सीताजीकी गति जानिकैं बंदरनकी सेना संग लेकें लक्ष्मण सहित समुद्रके तीर आवतभये, जिनके चरणोंको ब्रह्मा महादेव पूजते हैं ॥ १२ ॥

---

१ सवैया—दीनमलीन अधीन है अंगविहंग परचो क्षिति खिन्न दुखारी । राघव दीनदयाल कृपालको देख दुखी करुणा भइ भारी ॥ गीधको गोदमें राखि कृपानिधि नैनसरोजनमै भरि वारी । वारहि वार सुधारत पंख जटायुकी धूरि जटानसौ झारी ॥

तहां तीनि राति उपवास करिकैं पैडो देख्यो तोऊ समुद्र जब न आयो, तब रामचंद्रके क्रोधकी लीला करिकैं चलाये कटाक्षसै संभ्रांत ग्राह मकर, भयके मारें निश्शब्द हो समुद्र मनुष्यरूप धरिकैं पूजाको पात्र शिरपै धरिकैं चरणनमें गिरिकैं यह कहतभयो ॥ १३ ॥ हे भूमन् ! जडबुद्धिवारे हम निर्विकार आदिपुरुष जगत्के ईश्वर तुह्मै नहीं जानें हैं, यातें सतोगुणतें देवतानके गण होय हैं, रजोगुणतें प्रजापति होवेहैं, क्रोधतें भूतपति होयहैं, सो तुम गुणनके ईश्वर हो ॥ १४ ॥ तुम यथेच्छ जाउ,विश्रवाकी विष्ठातुल्य त्रिलोकीको रुवावनवारे रावणको मारो सीताको प्राप्तहोउ, हे वीर ! तुमको जल रोकनवारो नहीं है, तोऊ यशविस्तार करिवेके लियें यहां सेतु बांधो जा सेतुपै आइकैं राजा तुह्मारे यशको गावेंगे, यह कहिके समुद्र श्रीरघुना-

यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपातसंभ्रान्तनक्रमकरोभयगीर्णघोषः॥ सिन्धुः शिरस्यर्हणं परिगृह्य रूपी पादारविन्दमुपगम्य बभाष एतत् ॥ १३ ॥ न त्वां वयं जडधियो नु विदाम भूमन् कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम् ॥ यत्सत्त्वतः सुरगणा रजसः प्रजेशा मन्योश्च भूतपतयः स भवान् गुणेशः ॥ १४ ॥ कामं प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहं त्रैलोक्यरावणमवाप्नुहि वीर पत्नीम् ॥ बध्नीहि सेतुमिह ते यशसो वितत्यै गायन्ति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः ॥१५॥ बद्धोदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः सेतुं कपीन्द्रकरकम्पितभूरुहाङ्गैः ॥ सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकैर्लङ्कां बिभीषणदृशाऽविशदग्रदग्धाम् ॥१६॥ सा वानरेन्द्रबलरुद्धविहारकोष्ठश्रीद्वारगोपुरसदोवलभीविटङ्का ॥ निर्भज्यमानधिषणध्वजहेमकुम्भशृङ्गाटका गजकुलैर्ह्रदिनीव घूर्णा ॥ १७॥ रक्षःपतिस्तदवलोक्य निकुम्भकुम्भधूम्राक्षदुर्मुखसुरान्तनरान्तकादीन् ॥ पुत्रं प्रहस्तमतिकायविकम्पनादीन् सर्वानुगान्समहिनोदथ कुम्भकर्णम् ॥ १८ ॥

थते बिदा होत भयो ॥ १५ ॥ रघुनाथ बंदरानके इंद्रनके हाथनसै कंपित वृक्षौंके शिखरवाले अनेक पर्वतनके शिखरौंसैं सेतु बांधिकै, सुग्रीव नील हनुमानादि सेनासहित विभीषणकी बुद्धिसै लंकामें प्रवेश करतभये, जो लंका आगें हनूमाननें जराई हैं ॥ १६ ॥ वानरेन्द्रौंकी सेनासै विहार, कोठे, खजाने, द्वार, पुरके द्वार, सभा, गोख, छज्जाके रुकनेसै और स्थान ध्वजा सोनेनके कलश चौहटी टूटनैसे लंका घूमतिभई, जैसें हाथी करिकैं सरोवर घूमें हैं ॥ १७ ॥ राक्षसनको पति रावण ऐसी लंका देखिकैं निकुम्भ कुंभ धूम्राक्ष दुर्मुख सुरांतक नरांतक इंद्रजीत

प्रहस्त अतिकाय विकंपनतें आदिलेंकें और राक्षस पठावतभयो, तापीछें कुंभकर्णकूं भेजतभयो ॥ १८ ॥ खड्ग त्रिशूल धनुष प्रास ऋष्टि शक्ति वाण तोमर खड्गसे दुर्ग राक्षसनकी सेनाके सन्मुख सुग्रीव लक्ष्मण हनूमान गंधमादन नील अंगद जांबवान पनस इन सहित रामचंद्र जातभये ॥ १९ ॥ हे राजन्! रघुनाथकी सेनाके पालक अंगदादिक सगरे रावणके हाथी घोडा प्यादे रथौंसे सेनामें द्वंद्व होकरिकैं वृक्ष पर्वत गदा, वाण करिकैं सीताके अभिमर्श करिकें नष्टमंगल रावणके राक्षसोंको मारतभये ॥ २० ॥ रावण अपनी सैनाको नाश देखिकै क्रोधकर पुष्पकविमानपै बैठिकै श्रीरामचंद्र महाराजके सन्मुख आवतभयो, मातली सारथीकें लाये प्रकाशित इंद्रके रथमें विराजे श्रीरामचंद्रजीपर तीक्ष्ण बाणोंसे प्रहार करतभयो ॥ २१ ॥ श्रीरामचंद्र रावणसूं बोले हे राक्षसनके विष्ठातुल्य ! तैंनें मेरे पीछें हमारी कांता हरिलीनी, जैसें सूनें घरमें जाइकें कुत्ता कछु लेभजे, तातें निंदित कर्मके करनवारे तोकूं आज कालसों अलंघ्यपराक्रम मैं फल देउंगो ॥ २२ ॥ ऐसें तिरस्कार करि राम धनुषमें बाण लगाइकै छोडतभए, सो बाणवज्र रावणके हृदयको वेधतभयो, सो रावण दसमुखन करिके लोहुको डारत विमानतें गिरतभयो, तासमें लोक हाहाकार करत भये, क्षीण पुण्य सुकृती जैसें स्वर्गते गिरे तैसें गिरचो ॥ २३ ॥ ताके अनंतर हजारनराक्षसी मंदोदरीकरिकैं सहित लंकातें निकरिकै

तां यातुधानपृतनामसिशूलचापप्रासर्ष्टिशक्तिशरतोमरखड्गदुर्गाम् ॥ सुग्रीवलक्ष्मणमरुत्सुतगन्धमादनीलाङ्गदर्क्षपनसादिभिरन्वितोऽगात् ॥ १९ ॥ तेऽनीकपा रघुपतेरभिपत्य सर्वे द्वन्द्वं वरूथमिभपत्तिरथाश्वयोधैः ॥ जघ्नुर्द्रुमैर्गिरिगदेषुभिरङ्गदाद्याः सीताऽभिमर्शहतमङ्गलरावणेशान् ॥ २० ॥ रक्षःपतिः स्वबलनष्टिमवेक्ष्य रुष्ट आरुह्य यानकमथाभिससार रामम् ॥ स्वःस्यन्दने द्युमति मातलिनोपनीते विभ्राजमानमहनन्निशितैः क्षुरप्रैः ॥ २१ ॥ रामस्तमाह पुरुषादपुरीष यन्नः कान्ताऽसमक्षमसताऽपहृता श्ववत् ते ॥ त्यक्तत्रपस्य फलमद्य जुगुप्सितस्य यच्छामि काल इव कर्तुरलङ्घ्यवीर्यः ॥ २२ ॥ एवं क्षिपन् धनुषि सन्धितमुत्ससर्ज बाणं स वज्रमिव तद्धृदयं बिभेद ॥ सोऽसृग्वमन् दशमुखैर्न्यपतद् विमानाद् हा हेति जल्पति जने सुकृतीव रिक्तः ॥ २३ ॥ ततो निष्क्रम्य लङ्काया यातुधान्यः सहस्रशः ॥ मन्दोदर्या समं तस्मिन् प्ररुदत्य उपाद्रवन् ॥ २४ ॥

रोवत ता स्थानमें आवतीभई ॥ २४ ॥ लक्ष्मणजीके बाणन करिकै मारे अपने अपने बंधुसे मिलिकै वडे स्वरसूं रोवत भईं हाथनसूं माथेकूं पीटने लगीं ॥ २५ ॥ हे नाथ हे लोकनके रुवावनवारे हे रावण ! हम मरी; वैरीननें मारी तुम करिकै हीन यह लंका अब कौनके शरणजाइगी ॥ २६॥ हे महाभाग ! तुम कामके वशभये, सीताके तेजको प्रभाव न जान्यो, तानें या दशाको प्राप्त किये ॥ २७ ॥ हे कुलनंदन ! यह लंका और हम विधवा कीनी, देह गीधनको अन्न कियो, आत्मा नरक भोगिवेके लिये कियो॥२८॥ शुकदेवजी कहैहै अयोध्याके राजा रामचंद्रसें प्रेरचो बिभीषण पितृश्राद्धविधि करिकै अपनेनकी परलोककी क्रिया करतभयो ॥ २९ ॥ तापीछै भगवान् अशोकवनके आश्रममें शीसोंकें वृक्षके नीचे बैठी विरहकें दुःख-

स्वान् स्वान् बन्धून् परिष्वज्य लक्ष्मणेषुभिरर्दितान् ॥ रुरुदुः सुस्वरं दीना घ्नन्त्य आत्मानमात्मना ॥ २५ ॥ हा हताः स्म वयं नाथ लोकरावण रावण ॥ कं यायाच्छरणं लङ्का त्वद्विहीना परार्दिता ॥ २६ ॥ नैवं वेद महाभाग भवान् कामवशं गतः ॥ तेजोऽनुभावं सीताया येन नीतो दशामिमाम् ॥२७॥ कृतैषा विधवा लङ्का वयं च कुलनन्दन॥ देहः कृतोऽन्नं गृध्राणामात्मा नरकहेतवे ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्वानां बिभीषणश्चक्रे कोशलेन्द्रानुमोदितः ॥ पितृमेधविधानेन यदुक्तं साम्परायिकम् ॥ २९ ॥ ततो ददर्श भगवानशोकवनिकाश्रमे ॥ क्षामां स्वविरहव्याधिं शिंशपामूलमास्थिताम् ॥ ३० ॥ रामः प्रियतमां भार्यां दीनां वीक्ष्यान्वकम्पत ॥ आत्मसंदर्शनाह्लादविकसन्मुखपङ्कजाम् ॥ ३१ ॥ आरोप्यारुरुहे यानं भ्रातृभ्यां हनुमद्युतः॥ बिभीषणाय भगवान् दत्त्वा रक्षोगणेशताम् ॥ ३२ ॥ लङ्कामायुश्च कल्पान्तं ययौ चीर्णव्रतः पुरीम् ॥ अवकीर्यमाणः कुसुमैर्लोकपालार्पितैः पथि ॥ ३३ ॥

से सूखिरही सीताको देखतभये ॥ ३० ॥ रामचन्द्र दीन अतिप्यारी अपनी भार्य्याकू देखिके अनुकंपा करतभये, अपने दर्शनके आनंदसे प्रसन्नमुखकमल सीताको ॥ ३१ ॥ पुष्पक विमानपे बैठारिकें लक्ष्मण सुग्रीव सहित हनुमानकरिकै युक्त आप चढतभये, भगवान् बिभीषणके अर्थ राक्षसनको राज्य ॥ ३२ ॥ लंका और कल्पताई आयु देकैं वनवासकी अवधि पूर्ण हौनेसै श्रीरामचंद्रजी अपनी पुरीको जातभये, तब लोकपालनने मार्गमें फूलनकी वर्षा करी ॥ ३३ ॥

ब्रम्हादिक आनंद कर उनका चरित्र गारहेथे और गोमूत्रमें रांधकर यव खाते वल्कल वस्त्र पहरे जटाधारे ॥ ३४ ॥ पृथ्वीमें सोते भैया भरतकूं सुनिकें रामचंद्रजी बहुत दुःखी हुए भरतजी रामचंद्रजीको आगमन सुनिकैं पुरलोक मंत्री पुरोहित सहित रामचंद्रकी पादुका शिरपै धरिकैं भ्राताके सन्मुख जातभये ॥ ३५ ॥ अपनो डेरा नंदिग्रामतें गीत वादित्रके शब्द सहित भरतजी चले उस समय ब्राम्हण वेद पाठ करते थे ॥३६॥ सोनेंकी पताका सोनेंके रथौंमें सुंदर घोडे जुते जिनपर विचित्र ध्वजा फहराती थी सोनेके कवच पहिरे योद्धा ॥३७॥ भृत्य परिचर सेवक राजाके योग्य छत्र चमरादि पदार्थ औरभी छोटी बडी सामग्री ले चले उस समय वेश्या नृत्य करती थी ॥ ३८ ॥ इस प्रकार प्रेमसै द्रवीभूत हृदय और नेत्रौंमें जल भरे भरतजी

उपगीयमानचरितः शतधृत्यादिभिर्मुदा ॥ गोमूत्रयावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलाम्बरम् ॥ ३४ ॥ महाकारुणिकोऽतप्यत् जटिलं स्थण्डिलेशयम् ॥ भरतः प्राप्तमाकर्ण्य पौरामात्यपुरोहितैः ॥ पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रत्युद्यतोऽग्रजम् ॥ ३५ ॥ नन्दिग्रामात् स्वशिबिराद् गीतवादित्रनिःस्वनैः ॥ ब्रह्मघोषेण च मुहुः पठद्भिर्ब्रह्मवादिभिः ॥३६॥ स्वर्णकक्षपताकाभिर्हैमैश्चित्रध्वजै रथैः ॥ सदश्वै रुक्मसन्नाहैर्भटैः पुरटवर्मभिः ॥ ३७॥ श्रेणीभिर्वारमुख्याभिर्भृत्यैश्चैव पदानुगैः ॥ पारमेष्ठ्यान्युपादाय पण्यान्युच्चावचानि च ॥ ३८ ॥ पादयोर्न्यपतत् प्रेम्णा प्रक्लिन्नहृदयेक्षणः ॥ पादुके न्यस्य पुरतः प्राञ्जलिर्बाष्पलोचनः ॥ ३९ ॥ तमाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन्नेत्रजैर्जलैः ॥ रामो लक्ष्मणसीताभ्यां विप्रेभ्यो येऽर्हसत्तमाः ॥ ४० ॥ तेभ्यः स्वयं नमश्चक्रे प्रजाभिश्च नमस्कृतः ॥ धुन्वन्त उत्तरासङ्गान् पतिं वीक्ष्य चिरागतम् ॥ ४१ ॥

जायकर रामन्द्रके चरणौंमें गिरत भये और पादुका आगे धरिकैं हात जोरकैं नेत्रनमेंतें आंसूनको डारतभये ॥ ३९ ॥ रामचंद्र दोऊ भुजानकरिकैं भरतजीसूं बहुतवेरताई मिलिकैं नेत्रनतें निकरे जलसै उन्है न्हवावत भये लक्ष्मणजीसै मिले जानकीनै स्पर्श किया तथा उस समय जो ब्राम्हण और दूसरे योग्य पुरुष थे ॥ ४० ॥ और कुलवृद्ध हे तिनके अर्थ आप नमस्कार करतभये, प्रजानने आपु नमस्कार किये, अयोध्यावासी बहुत कालमें आये अपनें पतिकूं देखिकें अपनें उपरनानको फिरावत ॥ ४१ ॥

नाचत भये, फूलनकी वर्षा करतभये, भरत पादुका लेतभये, चमर और वीजना ॥ ४२ ॥ विभीषण सुग्रीव लेतभये, पवनको पुत्र हनूमान् श्वेत छत्र लेतभयो; धनुष और तर्कश शत्रुघ्न लेतभये, सीताजीनें कमंडलु लियो ॥ ४३ ॥ अंगदनें खङ्ग लेलियो, सोनेके फूलवारी ढाल जांबवान उठाइ लेतभये, पुष्पकपै बैठे स्त्रीनकरिकैं सहित बंदीजननसें स्तुति किये ॥ ४४ ॥ भगवान् राम सुंदर लगतभये, जैसें ग्रहनकरिकैं सहित उदयभयो चंद्रमा सुंदर लगै है, भैयासें सनमान किये राम उत्सवसहित पुरीमें प्रवेश करतभये ॥४५॥ राजभवनमें प्रवेशकरिकैं कैकयीते आदिलेके पिताकी स्त्री अपनी मैया गुरु सखा आपुते छोटे सबको सत्कार करतभये ॥ ४६ ॥ सीता लक्ष्मण सबसूं यथायोग्य मिलतभये, माता पुत्रनको देखिकै उठतिभई

उत्तराः कोशला माल्यैः किरन्तो ननृतुर्मुदा ॥ पादुके भरतोऽगृह्णात् चामरव्यजनोत्तमे ॥ ४२ ॥ बिभीषणः ससुग्रीवः श्वेतच्छत्रं मरुत्सुतः॥ धनुर्निषङ्गान् शत्रुघ्नः सीता तीर्थकमण्डलुम्॥४३॥ अबिभ्रदङ्गदः खङ्गं हैमं चर्मर्क्षराट् नृप ॥ पुष्पकस्थोऽन्वितः स्त्रीभिः स्तूयमानश्च बन्दिभिः ॥ ४४ ॥ विरेजे भगवान् राजन् ग्रहैश्चन्द्र इवोदितः ॥ भ्रातृभिर्नन्दितः सोऽपि सोत्सवां प्राविशत् पुरीम् ॥ ४५ ॥ प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः स्वमातरम् ॥ गुरून् वयस्यावरजान् पूजितः प्रत्यपूजयत् ॥४६॥ वैदेही लक्ष्मणश्चैव यथावत्समुपेयतुः॥ पुत्रान्स्वमातरस्तास्तु प्राणांस्तन्व इवोत्थिताः॥ आरोप्याङ्केऽभिषिञ्चन्त्यो बाष्पौघैर्विजहुः शुचः ॥४७॥ जटा निर्मुच्य विधिवत कुलवृद्धैः समं गुरुः ॥ अभ्यषिञ्चद्यथैवेन्द्रं चतुःसिन्धुजलादिभिः ॥४८॥ एवं कृताशिरःस्नानः सुवासाः स्रग्व्यलङ्कृतः ॥ स्वलङ्कृतैः सुवासोभिर्भ्रातृभिर्भार्यया बभौ ॥४९॥ अग्रहीदासनं भ्रात्रा प्रणिपत्य प्रसादितः ॥ प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः ॥५०॥

जैसें प्राणनको आयें देखिकै शरीर उठै हैं, गोदमें बैठारिकैं आंसूनके समूह करिकैं सींचती, शोक छोडतभई ॥ ४७ ॥ जटानको त्यागिकै गुरु वसिष्ठ कुलवृद्धनको संग लेकैं विधिसूं चाऱ्यो समुद्रनकै जल करिकैं अभिषेक करतभये, जैसें आगें बृहस्पतिजीनें इंद्रको कियो ॥ ४८ ॥ ऐसें शिरसूं स्नानकर सुन्दर वस्त्र माला पहिरें अलंकृत राम सुन्दर अलंकृत भैया भार्यासहित शोभाको प्राप्त भये ॥ ४९ ॥ भरतने प्रणाम कर रामको प्रसन्न किया तब रामचंद्र राज्यसिंहासनकों ग्रहण करत भये, अपने धर्ममें रत वर्ण आश्रमके गुणयुक्त प्रजाको ॥ ५० ॥

पिताकीसी नाईं पालन करत भये, तिनहींको सब पिता मानत भये वर्त्तमान त्रेतामें धर्मज्ञ सर्व भूतनको सुखके देनवारे राम राजा भये तब सत्ययुगके समान समय होतभयो ॥ ५१ ॥ हे भरतवंशनिमें श्रेष्ठ ! सर्व प्राणिनके सुख देनेवारे धर्मज्ञ ऐसे श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें वन नदी पर्वत खंड द्वीप समुद्र ॥ ५२ ॥ ये सब प्रजानके मनोरथके पूरण करनवारे होतभये आधि व्याधि जरा ग्लानि दुःख शोक भय खेद ॥ ५३ ॥ और विना इच्छा किये मृत्यु न होतभई, एक स्त्रीको व्रत धारण करतभये, राजऋषिनकेसा आचरण करत भये ॥ ५४ ॥ गृहस्थनको धर्म आप आचरण करते औरनकूं शिखावतभये, प्रेम सेवा शील बुद्धि लज्जासे भावकों जाननवारी सीता भर्ता रामके मनकूं हरती भई ॥ ५५ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीका-

जुगोप पितृवद्रामो मेनिरे पितरं च तम् ॥ त्रेतायां वर्त्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत् ॥५१॥ रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे ॥ वनानि नद्यो गिरयो वर्षाणि द्वीपसिन्धवः ॥५२॥ सर्वे कामदुघा आसन् प्रजानां भरतर्षभ ॥ नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः ॥५३॥ मृत्युश्चानिच्छतां नासीद्रामे राजन्यधोक्षजे ॥ एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः ॥५४॥ स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन् स्वयमाचरन् ॥ प्रेम्णानुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती ॥ धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीताऽहरन्मनः ॥५५॥ इति श्रीभा०म० नवमस्कन्धे श्रीरामचरिते दशमोऽध्यायः ॥१०॥

श्रीशुक उवाच ॥ भगवानात्मनात्मानं राम उत्तमकल्पकैः ॥ सर्वदेवमयं देवमीज आचार्यवान्मखैः ॥ १ ॥ होत्रेऽददाद् दिशं प्राचीं ब्रह्मणे दक्षिणां प्रभुः ॥ अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामगाय सः ॥ २ ॥ आचार्याय ददौ शेषां यावती भूस्तदन्तरा ॥ मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हति निःस्पृहः ॥ ३ ॥

यां नवमस्कन्धे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ ग्यारहवें अध्यायमें राम भैयान सहित अयोध्यामें वसत यज्ञादिक करत भये सो वर्णन करैं हैं ॥ श्रीशुकदेवजी कहैं है भगवान राम उत्तम सामग्रीयुक्त यज्ञ करिकैं सर्वदेवमय आत्माको पूजन करतभये आचार्य्य करिकै युक्त ॥ १ ॥ पूर्वदिशा होताके अर्थ देत भये, दक्षिणदिशा ब्रह्माको देत भये पश्चिमदिशा अध्वर्युको देत भये, उत्तरदिशा उद्गाताको दीनी ॥ २ ॥ दिशानके मध्यकी भूमि आचार्यके अर्थ देत भये कारण यह कि रामचन्द्र यह जान्ते थे कि यह सब राज्य ब्राह्मणोंकेंही योग्य है ॥ ३ ॥

ऐसें निस्पृह हो रामचन्द्रजी केवल आभूषण और वस्त्र मात्रही शेष रखकर शेष सब दान करतेभये और जानकीजीनैभी अपने सौभाग्यके भूषण वस्त्रौंके सिवाय अपने पास कुछ न रक्खा॥४॥ब्रह्मण्यदेव श्रीरामचन्द्रजी महाराजको वात्सल्य देखिकैं प्रसन्नभये,कोमल बुद्धिसै यह सब राज्य रामहीकूं देकें बोलतभये ॥ ५ ॥ हे भगवन् हे भुवनके ईश्वर ! आज आपने हमें क्या नहीं दिया आपने अपने स्वरूपसै हमारे अन्तःकरणमें प्रवेश करकै हमारे अज्ञानरूपी अंधकारको दूर किया॥६॥ब्रह्मण्य,अकुंठबुद्धि, उत्तमश्लोकनमें श्रेष्ठ, ब्राह्मणौंके अभय दैनेहारे पुरुषौंके मनमें चरण रखनेवाले श्रीरामके अर्थ नमस्कार है॥७॥काऊ समय रामचंद्र लोक वृत्तांतके जानिवेकी इच्छासे गूढगति रातमें विचरते स्त्रीसे द्वेष कर कहते काहूकी कही वाणी सुनतभये ॥ ८ ॥

इत्ययं तदलंकारवासोभ्यामवशेषितः ॥ तथा राज्ञ्यपि वैदेही सौमङ्गल्यावशेषिता ॥ ४ ॥ ते तु ब्रह्मण्यदेवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतम् ॥ प्रीताः क्लिन्नधियस्तस्मै प्रत्यर्प्येदं बभाषिरे ॥ ५ ॥ अदत्तं नस्त्वया किन्नु भगवन् भुवनेश्वर ॥ यन्नोऽन्तर्हृदयं विश्य तमो हंसि स्वरोचिषा ॥ ६ ॥ नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठमेधसे ॥ उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये ॥ ७ ॥ कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढो रात्र्यामलक्षितः ॥ चरन् वाचोऽशृणोद् रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित् ॥ ८ ॥ नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम् ॥ स्त्रीलोभी बिभृयात् सीतां रामो नाहं भजे पुनः ॥ ९ ॥ इति लोकाद् बहुमुखाद् दुराराध्यादसंविदः ॥ पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम् ॥ १० ॥ अन्तर्वत्न्यागते काले यमौ सा सुषुवे सुतौ ॥ कुशो लव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रिया मुनिः ॥ ११ ॥ अङ्गदश्चित्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजौ स्मृतौ ॥ तक्षः पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपते ॥ १२ ॥

तू दुष्ट असती है पराये घरमें वसीहै मैं तोकूं नहीं राखूंगो स्त्रीको लोभी तो राम है, वह चाहैं जानकीको रखैं परन्तु मैं अब तुझे नहीं रखूंगा ॥ ९ ॥ ऐसें बहुत लोकोंके मुखसे सुन दुराराध्य अपवादसे डरकर रामनें सीता त्यागकरी, सो वाल्मीकीके आश्रममें प्राप्तभई ॥ १० ॥ गर्भिणी सीता समय प्राप्तभये संते दो पुत्र उपजावत भई जो कुश लव विख्यात भये, वाल्मीकि तिनकी जातकर्मादिक क्रिया करतभये ॥ ११ ॥ अंगद चित्रकेतु दो लक्ष्मणके बेटा होतभये तक्ष, पुष्कल भरतके भये ॥ १२ ॥

सुवाहु और श्रुतसेन शत्रुघ्नके होतभये भरत दिग्विजयमें किरोरन गन्धर्वनको मारतभये, तिनको धन लाइकै सब राजा श्रीरामचंद्रजीके अर्थ देतभये ॥१३॥ शत्रुघ्न मधुको वेटा लवण नाम राक्षसको मधुवनमें मारिकैं मथुरा नाम पुरी करतभये ॥१४॥ भर्त्तानें निकारी सीताजी वाल्मीकी मुनिकूं दोऊ वेटा सौंपिकै रामचंद्रजीके चरणनको ध्यान करत नखसूं पृथ्वी लिखति ताके छिद्रमें प्रवेश करतभई ॥१५॥ भगवान् रामचंद्र सीताजीको प्रवेश सुनि बुद्धिकरिकैं शोक रोका परन्तु तिनके तिन गुणनको स्मरण करते रोकिवेको समर्थ न होतभये ॥१६॥ स्त्री पुरुषनको प्रसंग ऐसोई है, ईश्वरहूको त्रास

सुबाहुः श्रुतसेनश्च शत्रुघ्नस्य बभूवतुः ॥ गन्धर्वान् कोटिशो जघ्ने भरतो विजये दिशाम् ॥ १३ ॥ तदीयं धनमानीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत् ॥ शत्रुघ्नश्च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसम् ॥ १४ ॥ हत्वा मधुवने चक्रे मथुरां नाम वै पुरीम् ॥ मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता ॥ १५ ॥ ध्यायन्ती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान् रामो रुन्धन्नपि धिया शुचः ॥१६॥ स्मरंस्तस्या गुणांस्तांस्तान् नाशक्नोद् रोद्धुमीश्वरः ॥ स्त्रीपुंप्रसङ्ग एतादृक् सर्वत्र त्रासमावहः ॥ १७ ॥ अपीश्वराणां किमुत ग्राम्यस्य गृहचेतसः ॥ तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन्नजुहोत् प्रभुः ॥ त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखण्डितम् ॥ १८ ॥ स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः ॥ स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात् ततः ॥ १९ ॥ नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयात्तलीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः ॥ रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपूगैः किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः ॥ २० ॥

देयहै घरमें चित्तवारे गृहस्थीनको दुःख देई यामें कहा कहनो हैं ॥ १७ ॥ जानकीके विवरमें प्रवेश करनेपर प्रभु राम ब्रह्मचर्यकों धारणकरते एक हजार तेरह वर्ष ताईं अखंडित अग्निहोत्र होमतभये ॥ १८ ॥ दंडकवनके कांटेनकरिकैं विध्यो अपनो चरणपल्लव स्मरण करणवारेनके हृदयमें राखिकैं अपने निजधामकूं जातभये ॥१९ ॥ देवतानकी प्रार्थनासै लीलातनु धारण करनेहारे रामचंद्र कि जिनकी समान किसी दूसरेका प्रभाव नहीं है उन्हौंने शस्त्रकरिके राक्षसौंको मारा, समुद्रमें सेतु बांधा यह कोई बडी बात नहीं हैं और शत्रु संहारके निमित्त वानरौंकी सहायता ली यहभी लीलामात्र है

जिन रामचंद्रके चरणौंको ॥ २० ॥ जिनको पापको नाश करनवारो निर्मल यश राजानकी सभामें ऋषि गावेहैं, जो यह यश दिशानकें हाथीनको आभरण है स्वर्गकें पालक देवता पृथ्वीके पालक राजा, अपने मुकुटौंसैं सेवन करतें हैं उन रघुनाथकी मैं शरण हूं ॥ २१ ॥ रामचंद्रका जिन्हौने उन्हे स्पर्श किया जिन्हौने देखा जो उनके संग बैठे जो पीछै चले वे सब अयोध्यावासी उसस्थानको प्राप्त हुए जहां योगी जाते हैं ॥ २२ ॥ हे राजा ! पुरुष रामचरित्रकूं काननकरिकै धारण करनेसे उपशमनिष्ठ होकें कर्मबंधनकरिकैं मुक्तहोयहै ॥ २३ ॥ राजा पूछेहै सो रामचंद्रजी वनते आयकै सर्व भैयानप्रति कैसें वर्त्तें, ता ईश्वरमें भैया प्रजा पुरकें लोक कैसें वर्त्तें सो कहो ॥ २४ ॥ शुकदेवजी कहैं हैं राजसिंहासनपै बैठे पीछें

यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम् ॥ तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्टपादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥ २१ ॥ यैः संस्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा ॥ कोशलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥ २२ ॥ पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन् ॥ आनृशंस्यपरो राजन्कर्मबन्धैर्विमुच्यते ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ कथं स भगवान् रामो भ्रातॄन्वा स्वयमात्मनः ॥ तस्मिन्वा तेऽन्ववर्तन्त प्रजाः पौराश्च ईश्वरे ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथादिशद् दिग्विजये भ्रातॄंस्त्रिभुवनेश्वरः ॥ आत्मानं दर्शयन् स्वानां पुरीमैक्षत सानुगः ॥ २५ ॥ आसिक्तमार्गां गन्धोदैः करिणां मदसीकरैः ॥ स्वामिनं प्राप्तमालोक्य मत्तां वा सुतरामिव ॥ २६ ॥ प्रासादगोपुरसभाचैत्यदेवगृहादिषु ॥ विन्यस्तहेमकलशैः पताकाभिश्च मण्डिताम् ॥ २७ ॥ पूगैः सवृन्दै रम्भाभिः पट्टिकाभिः सुवाससम् ॥ आदर्शैरंशुकैः स्रग्भिः कृतकौतुकतोरणाम् ॥ २८ ॥

त्रिलोकीके ईश्वर राम भैयानको दिग्विजयमें भेजतभये अपनेंनकूं अपनो दर्शन देवेके लियें अनुगण सहित पुरी देखतेभये ॥ २५ ॥ गंधके जल और हाथीनके मदकी बुंदौंसै जिसके मार्गौंमें छिडकाव होरहा है जैसे स्वामीकों देखकर गौ मदमत्त होती हैं ऐंसे वह पुरी रामचंद्रको देख मदमत्त थी ॥ २६ ॥ महल पुरके द्वार सभा चैत्य देवतानके घरपै राखे सोनेनके कलस और पताकासैं मंडित ॥ २७ ॥ सुपारिनके गुच्छा करिकैं सहित वृक्ष और केलेके वृक्षौंसै शोभित सुन्दर वस्त्र बिछाये गये थे काच माला और तोरण वंदनवारौंसैं महाशोभा थी ॥ २८ ॥

जहां जहां पुरके लोग हाथनमें भेट लेकें रामचन्द्रजीके पास आवत भये, हे देव ! पहिलें तुमनें वाराहरूप धरिकै यह पृथ्वी उद्धार कीनी अवभी इस पृथ्वीका पालन करो ऐसें आशीर्वाद देत भये ॥ २९ ॥ प्रजा बहुत दिनानमें आये अपने पति रामको देखिकैं देखिवेकी इच्छा करिकैं घर छोड नर नारी महलनपैं चढिकैं अतृप्त नेत्र फूलनकरिकैं श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर वर्षा करतभये ॥ ३० ॥ इसके उपरांत रामचन्द्र अपने पुरुषौंसै सेवित घरमें आये जिनमें अनन्त खजानै रत्न और बहुमूल्यकी सामग्री धरी हैं ॥ ३१ ॥ मूंगानकी देहरी युक्त द्वार वैडूर्यमणिके

तमुपेयुस्तत्र तत्र पौरा अर्हणपाणयः ॥ आशिषो युयुजुर्देव पाहि मां प्राक् त्वयोद्धृताम् ॥ २९ ॥ ततः प्रजा वीक्ष्य पतिं चिरागतं दिदृक्षयोत्सृष्टगृहाः स्त्रियो नराः ॥ आरुह्य हर्म्याण्यरविन्दलोचनमतृप्तनेत्राः कुसुमैरवाकिरन् ॥ ३० ॥ अथ प्रविष्टः स्वगृहं जुष्टं स्वैः पूर्वजादिभिः ॥ अनन्ताखिलकोशाढ्यमनर्घ्योरुपरिच्छदम् ॥ ३१ ॥ विद्रुमोदुम्बरद्वारैर्वैडूर्यस्तम्भपङ्क्तिभिः ॥ स्थलैर्मारकतैः स्वच्छैर्भ्राजत्स्फटिकभित्तिभिः ॥ ३२ ॥ चित्रस्रग्भिः पट्टिकाभिर्वासोमणिगणांशुकैः ॥ मुक्ताफलैश्चिदुल्लासैः कान्तकामोपपत्तिभिः ॥ ३३ ॥ धूपदीपैः सुरभिभिर्मण्डितं पुष्पमण्डितैः ॥ स्त्रीपुम्भिः सुरसंकाशैर्जुष्टं भूषणभूषणैः ॥ ३४ ॥ तस्मिन् स भगवान्रामः स्निग्धया प्रिययेष्टया ॥ रेमे स्वाराममधीराणामृषभः सीतया किल ॥ ३५ ॥ बुभुजे च यथाकालं कामान्धर्ममपीडयन् ॥ वर्षपूगान्बहून् नृणामभिध्याताङ्घ्रिपल्लवः ॥ ३६ ॥

इति श्रीभागवते म० नवमस्कन्धे श्रीरामोपाख्यान एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

स्तम्भनकी पंक्ति मरकतमणिके स्वच्छ स्थल, प्रकाशित स्फटिक मणिकी भीति ॥ ३२ ॥ चित्रमाला पट्टिका वस्त्र और मणिगणकी किरिनि चैतन्यसे उज्ज्वल मुक्ताफल कमनीय भोगके साधन मालादिक ॥ ३३ ॥ धूप दीप सुंगधिफूलनके मंडलौंसैं मंडित देवतानकीसी कांतिवारे भूषणनके भूषणयुक्त स्त्री पुरुष करिकै मंडित है ॥ ३४ ॥ जिनके चरणारविंदका भक्तजन ध्यान करते है वह आत्माराम धीरनमें श्रेष्ठ भगवान् रामचन्द्र अपनी प्यारी सीता सहित रमते भये ॥ ३५ ॥ और जिस प्रकार धर्ममैं बाधा न हों इस प्रकार बहुत समयतक राज्य कर सुख पावते रहे ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भा-

---

१ दोहा—प्रजापाल श्रीराम सम पतिव्रत धर्मसी सीय । भयो नहै कोई होयगो कीरति अतिकमनीय ॥

गवतभा० नव० एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ बारहवे अध्यायमें रामके पुत्र कुशको वंश कहैंगे इसप्रकार इक्ष्वाकु पुत्र शशादिको वंश पूर्ण कहैंगे ॥ शुकदेवजी कहें हैं कुशको बेटा अतिथि भयो, तातें निषध भयो, ताको पुत्र नभ भयो, ताके पुंडरीक, ताके क्षेमधन्वा भयो ॥ १ ॥ तातें देवानीक ताके अहीन ताको बेटा पारिजात तातें बल तातें स्थल ताके वज्रनाभ सूर्यके अंशतें भयो ॥ २ ॥ ताको बेटा सुगण तातें विधृत भयो तातें हिरण्यनाभ भयो, सो जैमिनिको शिष्य योगको आचार्य्य भयो ॥ ३ ॥ कौशलदेशमें भये याज्ञवल्क्यसे बडी सिद्धि युक्त हृदयकी गांठिके काटनेहारे योगकूं प्राप्त भयो ॥ ४ ॥ हिरण्यनाभको पुत्र पुष्य भयो, जाकें ध्रुवसंधि भयो, ताके सुदर्शन, ताकें अग्निवरण ताके शीघ्र

श्रीशुक उवाच ॥ कुशस्य चातिथिस्तस्मान्निषधस्तत्सुतो नभः॥ पुण्डरीकोऽथ तत्पुत्रः क्षेमधन्वाऽभवत् ततः ॥ १ ॥ देवानीकस्ततोऽनीहः पारियात्रोऽथ तत्सुतः ॥ ततो बलः स्थलस्तस्माद्वज्रनाभोऽर्कसम्भवः ॥ २ ॥ सुगणस्तत्सुतस्तस्माद्विधृतिश्चाभवत्सुतः ॥ ततो हिरण्यनाभोऽभूद्योगाचार्यस्तु जैमिनेः ॥ ३ ॥ शिष्यः कौशल्य अध्यात्मं याज्ञवल्क्योऽध्यगाद्यतः॥ योगं महोदयमृषिर्हृदयग्रन्थिभेदकम् ॥४॥ पुष्यो हिरण्यनाभस्य ध्रुवसन्धिस्ततोऽभवत्॥ सुदर्शनोऽग्निवर्णश्च शीघ्रस्तस्य मरुः सुतः ॥५॥ योऽसावास्ते योगसिद्धः कलापग्राममाश्रितः ॥ कलेरन्ते सूर्यवंशं नष्टं भावयिता पुनः ॥ ६ ॥ तस्मात्प्रसुश्रुतस्तस्य सन्धिस्तस्याप्यमर्षणः ॥ सहस्वांस्तत्सुतस्तस्मात् विश्वसाह्वोऽन्वजायत ॥ ततः प्रसेनजित् तस्मात् तक्षको भविता पुनः ॥ ७ ॥ ततो बृहद्बलो यस्तु पित्रा ते समरे हतः ॥ एते हीक्ष्वाकुभूपाला अतीताः शृण्वनागतान् ॥८॥ बृहद्बलस्य भविता पुत्रो नाम बृहद्रणः ॥ उरुक्रियस्ततस्तस्य वत्सवृद्धो भविष्यति ॥९॥

ताके मरु भयो ॥ ५ ॥ जो मरु योग कर सिद्धिको प्राप्तहो कलाप ग्राममें बैठ्योहै कलियुगके अंतमें नष्टभये सूर्यवंशको फेरि प्रवर्त करैगो ॥ ६ ॥ ताते प्रसुश्रुत भयो ताकें संधि ताके अमर्षण ताके सहस्वान् ताकें विश्वबाहु होतभयो, तातें प्रसेनजित् तातें तक्षक ॥ ७ ॥ तातें बृहद्बल भयो, जो बृहद्बल तेरे पिता अभिमन्युनें युद्धमें मार्‍यो ये इक्ष्वाकुके वंशमें भये राजा तो व्हैगये जे होईंगे तिनें सुन ॥ ८ ॥ बृहद्बलको बेटा बृहद्रण होइगो ताकें उरुक्रम ताकें वत्सवृद्ध होईगो ॥ ९ ॥

86

तातें प्रतिव्योम, तातें भानु, तातें दिवाक ताकें वाहिनीपति ताकें सहदेव ताकें वीर ताकें बृहदश्व ताकें भानुमान् ॥ १० ॥ ताकें प्रतीकाश्व ताकें
सुप्रतीक ताकें मरुदेव ताके सुनक्षत्र ताकें पुष्कर होइगो ॥ ११ ॥ ताके अंतरिक्ष ताको बेटा सुतपा ताकें अमित्रजित ताकें बृहद्भानु ताके बर्हि
होइगो ताके कृतंजय ॥ १२ ॥ ताकें रणंजय, ताको बेटा संजय होईगो, ताकें शक्य ताकें शुद्धोद ताको बेटा लांगल होयगो ॥ १३ ॥ तातें प्रसेनजित तातें क्षुद्रक होइगो तातें करण होइगो ॥१४॥ ताकें सुरथ होईगो, ताके सुमित्र होइगो सो या वंशकी स्थितिको अंत सुमित्रसै होयगो यह बृहद्द-

प्रतिव्योमस्ततो भानुर्दिवाको वाहिनीपतिः ॥ सहदेवस्ततो वीरो बृहदश्वोऽथ भानुमान् ॥१०॥ प्रतीकाश्वो भानु-
मतः सुप्रतीकोऽथ तत्सुतः ॥ भविता मरुदेवोऽथ सुनक्षत्रोऽथ पुष्करः ॥ ११ ॥ तस्यान्तरिक्षस्तत्पुत्रः सुतपास्तद-
मित्रजित् ॥ बृहद्राजस्तु तस्यापि बर्हिस्तस्मात्कृतञ्जयः ॥ १२ ॥ रणञ्जयस्तस्य सुतः संजयो भविता ततः ॥
तस्माच्छाक्योऽथ शुद्धोदो लाङ्गलस्तत्सुतः स्मृतः ॥ १३ ॥ ततः प्रसेनजित् तस्मात्क्षुद्रको भविता ततः ॥ रण-
को भविता तस्मात्सुरथस्तनयस्ततः ॥ १४ ॥ सुमित्रो नाम निष्ठान्त एते बार्हद्बलान्वयाः ॥ इक्ष्वाकूणामयं वंशः
सुमित्रान्तो भविष्यति ॥ यतस्तं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ १५ ॥ इति श्रीभागवते म० नवमस्क-
न्धे श्रीरामचरितवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निमिरिक्ष्वाकुतनयो वसिष्ठमवृतर्त्वि-
जम् ॥ आरभ्य सत्रं सोऽप्याह शक्रेण प्राग् वृतोऽस्मि भोः ॥ १ ॥ तं निर्वर्त्यागमिष्यामि तावन्मां प्रतिपालय ॥
तूष्णीमासीद् गृहपतिः सोपीन्द्रस्याकरोन्मखम् ॥ २ ॥

लके वंशके राजा कहे यह इक्ष्वाकुको वंश सुमित्रांत होइगो सुमित्रको पाइके कलियुगमें नाशको प्राप्त होइगो ॥ १५ ॥ इति भा० भा० नव० द्वादशो-
ऽध्यायः ॥ १२ ॥ तेरहके अध्यायमें इक्ष्वाकुपुत्र निमिको वंश वर्णन करैहै, जा वंशमें ब्रह्मज्ञानी जनकादिक राजा होतभये ॥ श्रीशुकदेवजी कहे
हैं इक्ष्वाकुको पुत्र निमि यज्ञको आरंभ करिकैं वसिष्ठको ऋत्विज वरण करतभये, सो वसिष्ठ बोले हे राजन्! इंद्रने मुझे पहिले वर्ण कियोहै ॥ १ ॥ ता
यज्ञकूं निवर्त्त करिकैं मैं आऊं तब ताई पैडों देख निमि सुनिकैं चुप होतभयो, वसिष्ठ इंद्रको यज्ञ करावत भये ॥ २ ॥

विद्वान निमि जीवनको चंचल मानिकैं, और ऋत्विजनको बुलाइकैं जब ताईं गुरु न आये तबताईं यज्ञको आरंभ करत भये ॥ ३ ॥ इंद्रको यज्ञकरि-
कैं आये गुरु शिष्यको अन्याय देखिकैं यह पंडितमानी निमिको देह गिरै ऐसे शाप देतभये ॥ ४ ॥ निमिभी अधर्ममें वर्तित गुरुके अर्थ शाप देत-
भये तुह्मारोहू देह गिरो जो लोभतें धर्मको नहि जान्यो कि यजमानको छोड इन्द्रके यज्ञ कराने चले गये ॥५॥ ज्ञानमें चतुर निमि अपने देहको त्याग
करत भयो, वसिष्ठ मित्रावरुणतें उर्वशीमें जन्म लेतभये ॥ ६ ॥ मुनिनमें उत्तम ऋषि निमिको देह सुगंध की वस्तुनमें धरिकैं यज्ञ समाप्तकरिकै

निमिश्चलमिदं विद्वान् सत्रमारभतात्मवान् ॥ ऋत्विग्भिरपरैस्तावन्नागमद् यावता गुरुः ॥ ३ ॥ शिष्यव्यतिक्रमं
वीक्ष्य निर्वर्त्य गुरुरागतः ॥ अशपत्पतताद् देहो निमेः पण्डितमानिनः ॥ ४ ॥ निमिः प्रतिददौ शापं गुरवेऽधर्मवर्ति-
ने ॥ तवापि पतताद् देहो लोभाद् धर्ममजानतः ॥५॥ इत्युत्ससर्ज स्वं देहं निमिरध्यात्मकोविदः॥ मित्रावरुणयोर्जज्ञे
उर्वश्यां प्रपितामहः ॥ ६ ॥ गन्धवस्तुषु तद्देहं निधाय मुनिसत्तमाः ॥ समाप्ते सत्रयागेऽथ देवानूचुः समागतान्
॥ ७ ॥ राज्ञो जीवतु देहोऽयं प्रसन्नाः प्रभवो यदि ॥ तथेत्युक्ते निमिः प्राह मा भून्मे देहबन्धनम् ॥ ८ ॥ यस्य योगं न
वाञ्छन्ति वियोगभयकातराः ॥ भजन्ति चरणाम्भोजं मुनयो हरिमेधसः ॥ ९ ॥ देहं नावरुरुत्सेहं दुःखशोकभयाव-
हम् ॥ सर्वत्रास्य यतो मृत्युर्मत्स्यानामुदके यथा ॥ १० ॥ देवा ऊचुः ॥ विदेह उष्यतां कामं लोचनेषु शरीरिणाम् ॥
उन्मेषणनिमेषाभ्यां लक्षितोऽध्यात्मसंस्थितः ॥ ११॥ अराजकभयं नृणां मन्यमाना महर्षयः॥ देहं ममन्थुः स्म निमेः
कुमारः समजायत ॥ १२ ॥

यज्ञमें आये देवतानसूं बोले ॥ ७ ॥ जो तुम प्रसन्न भये हों और समर्थ हो तो यह राजाको देह जिवाओ देवता बोले तथास्तु तब निमि बोल्यो
मोकूं देहबंधन मतिहोउ ॥ ८ ॥ देहिको वियोगके भयके कारण लोक या देहके योगकी नहीं वांछा करै है हरिमें बुद्धिवारे मुनि मोक्षके लिये ह-
रिके चरणारविंदको भजन करे है ॥ ९ ॥ दुःखशोक भयको दैनवारै देहकी मैं नहीं इच्छा करूहूं, या देहको सर्वत्र मृत्यु है जैसें जलमें मछरीनकों
मृत्यु है ॥१०॥ देवता बोले तु विनादेही शरीरधारीनके नेत्रनमें यथेच्छ वसो, पलकनकै लगाइवै उघारिवेमें लखोगे ॥११॥ मनुष्यनको विना राजा

भय होयगो ऐसा विचार वे ऋषि निमिको देह मथतभये तातें बालक होतभयौ ॥ १२ सो जन्म करिकै जनकनाम भयो, मरे देहते भयो याते विदेह भयो, माथिवेतें भयो यासूं मिथिल नाम भयो, जानें मिथिलापुरी वसाई ॥ १३ ॥ जा मिथिलते उदावसु भयो, ताकें पुत्र नंदिवर्द्धन भयो तातें सुकेतु, ताके देवरात॥१४॥ तातें बृहद्रथ भयो, ताके महावीर्य, ताके सुधृत ताकें धृष्टकेतु, तातें हर्यश्व तातें मरु भयो ॥१५॥ मरुते प्रतीप, तातें कृतिरथ, ताकें देवमीढ ताकें विश्रुत ताकें महाधृति भयो ॥१६॥ ताकें कृतिरात ताते महारोमा, ताकें स्वर्णरोमा ताकें ह्रस्वरोमा होत भयो ॥ १७ ॥

जन्मना जनकः सोऽभूद्वैदेहस्तु विदेहजः ॥ मिथिलो मथनाज्जातो मिथिला येन निर्मिता ॥ १३ ॥ तस्मादुदावसुस्तस्य पुत्रोऽभून्नन्दिवर्धनः ॥ ततः सुकेतुस्तस्यापि देवरातो महीपते ॥ १४ ॥ तस्माद्बृहद्रथस्तस्य महावीर्यः सुधृत्पिता ॥ सुधृतेर्धृष्टकेतुर्वै हर्यश्वोऽथ मरुस्ततः ॥ १५ ॥ मरोः प्रतीपकस्तस्माज्जातः कृतिरथो यतः ॥ देवमीढस्तस्य सुतो विश्रुतोऽथ महाधृतिः ॥ १६ ॥ कृतिरातस्ततस्तस्मान्महारोमाथ तत्सुतः ॥ स्वर्णरोमा सुतस्तस्य ह्रस्वरोमा व्यजायत ॥ १७ ॥ ततः सीरध्वजो जज्ञे यज्ञार्थं कर्षतो महीम् ॥ सीता सीराग्रतो जाता तस्मात्सीरध्वजः स्मृतः ॥ १८ ॥ कुशध्वजस्तस्य पुत्रस्ततो धर्मध्वजो नृपः ॥ धर्मध्वजस्य द्वौ पुत्रौ कृतध्वजमितध्वजौ ॥ ॥ १९ ॥ कृतध्वजात्केशिध्वजः खाण्डिक्यस्तु मितध्वजात् ॥ कृतध्वजसुतो राजन्नात्मविद्याविशारदः ॥ २० ॥ खाण्डिक्यः कर्मतत्त्वज्ञो भीतः केशिध्वजात् द्रुतः ॥ भानुमांस्तस्य पुत्रोऽभूच्छतद्युम्नस्तु तत्सुतः ॥ २१ ॥ शुचिस्तत्तनयस्तस्मात्सनद्वाजस्ततोऽभवत् ॥ ऊर्ध्वकेतुः सनद्वाजादयोऽथ पुरुजित्सुतः ॥ २२ ॥

तातें सीरध्वज भयो, जिनके यज्ञके अर्थ पृथ्वी खोदतेमें हलके अग्रतें सीता कन्या होतिभई अत एव सीरध्वज नाम भयो ॥ १८ ॥ ताको पुत्र कुशध्वज भये, ताकें धर्मध्वज भयो धर्मध्वजकें दो बेटा भये, कृतध्वज, मितध्वज ॥ १९ ॥ कृतध्वजतें केशिध्वज भयो, मितध्वजतें खांडिक्य भयो, हे राजन् ! कृतध्वजको बेटा आत्मविद्यामें पारंगत भयो ॥ २० ॥ खांडक्य कर्मतत्वको जाननवारो भयो, सो केशिध्वजके डरते भाजिगयो, केशिध्वजको भानुमान् भयो, ताको पुत्र शतद्युम्न भयो ॥ २१ ॥ ताके शुचि ताकें सनद्वाज भयो ताकें ऊर्ध्वकेतु ताके पुरुजित ॥ २२ ॥

ताकें अरिष्टनेमि, ताकें श्रुतायु, ताकें सुपार्श्वक भयो, ताकें चित्ररथ ताकें क्षेमधी ॥ २३ ॥ तातें समरथ, तातें सत्यरथ भयो, तातें उपगुरु
भयो, ताकें अग्निके अंशतें उपगुप्त भयो ॥ २४ ॥ ताकें वस्वनंत, ताकें युयुधान, तातें सुभाषण, तातें जय, तातें विजय, तातें ऋत भयो ॥ २५ ॥
ताको बेटा शुनक भयो, याकें वीतहव्य, तातें धृत भयो धृतके बहुलाश्व भयो ताकें कृत भयो, यह बडो जितेंद्रिय भयो ॥ २६ ॥ ये मिथिलके
वंशके राजा कहे, यह सब आत्मविद्यामें चतुर भये, योगेश्वरनके प्रसाद करिकैं सुखदुःखादिसै रहित हो घरनमेंही मुक्त होतभये ॥ २७ ॥ इति
श्रीमहाभागवतभाषाटीकायां नवमस्कन्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ चौदहते आदिले समाप्तताई चंद्रमाको वंश कहैं हैं, जावंशमें पुरूरवाते आदि

श्रीमहा...

अरिष्टनेमिस्तस्यापि श्रुतायुस्तत्सुपार्श्वकः॥ततश्चित्ररथो यस्य क्षेमधिर्मिथिलाधिपः॥२३॥तस्मात्समरथस्तस्य सुतः
सत्यरथस्ततः ॥ आसीदुपगुरुस्तस्मादुपगुप्तोऽग्निसंभवः ॥ २४ ॥ वस्वनन्तोऽथ तत्पुत्रो युयुधानः सुभाषणः ॥
श्रुतस्ततो जयस्तस्माद् विजयोऽस्मादृतः सुतः ॥ २५ ॥ शुनकस्तत्सुतो जज्ञे वीतहव्यो दृतिस्ततः ॥ बहुलाश्वो
दृतेस्तस्य कृतिरस्य महावशी ॥ २६ ॥ एते वै मिथिला राजन्नात्मविद्याविशारदाः ॥ योगेश्वरप्रसादेन द्वन्द्वैर्मुक्ता गृहेष्वपि ॥ २७ ॥ इति श्रीभागवते म॰नवमस्कन्धे निमिवंशानुवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ श्री-
शुक उवाच ॥ अथातः श्रूयतां राजन् वंशः सोमस्य पावनः ॥ यस्मिन्नैलादयो भूपाः कीर्त्यन्ते पुण्यकीर्तयः ॥१॥
सहस्रशिरसः पुंसो नाभिह्रदसरोरुहात् ॥ जातस्यासीत्सुतो धातुरत्रिः पितृसमो गुणैः ॥ २ ॥ तस्य दृग्भ्योऽभवत्पुत्रः सोमोऽमृतमयः किल ॥ विप्रौषध्युडुगणानां ब्रह्मणा कल्पितः पतिः ॥ ३ ॥

लेके पुण्यकीर्ति राजा कहेहैं चौदहके अध्यायमें गुरुकी स्त्री तारामें चंद्रमातें बुध भयो तातें पुरूरवा भयो, ताके उर्वशीमें छै बेटा होतभये, सो वर्णन
करै हैं ॥ शुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् ! यातें आगे चंद्रमाको पवित्र वंश सुनो, जावंशमें पुरूरवाते आदिलेके पुण्यकीर्ति राजा कीर्त्तन करे जांयगे
॥ १ ॥ सहस्रौ शिरवारो नारायणकी नाभिकमलते ब्रह्मा होतभयो, ताकें पुत्र अत्रि होतभयो, जो गुणन करिकैं ब्रह्मके समान हैं ॥ २ ॥ अत्रिके नेत्रनते अमृतमय चंद्रमा पुत्र होत भयो, सो ब्रह्मानें ब्राह्मण औषधी तारागणको पति कियो ॥ ३ ॥

सो चंद्रमा तीनो भुवन जीतिकैं राजसूययज्ञ करिकैं पूजा करतभयो, और बृहस्पतिकी स्त्री ताराकूं जोरावरी हरिलेतभयो ॥ ४ ॥ देवतानके गुरु बृहस्पतिनें बेरेबेर चंद्रमासो याचनाहू करी पर मदतें ताराको न देतभयो, ताके निमित्त देवता दावनको युद्ध भयो ॥ ५ ॥ देवासुर संग्रामको कारण कहे हैं बृहस्पतीसै वैर होनेके कारण असुरनसहित शुक्र चंद्रमाको ग्रहण करतभये, संपूर्ण भूतगणनको संग लेके महादेव स्नेहतें गुरुपुत्र बृहस्पतीको पक्ष ग्रहण करतभये ॥ ६ ॥ सब देवतागणनकों संग लेके इंद्र गुरुकी ओर जात भयो, तब देवता असुरनका नाशकारक तारकासुरसंग्राम होतभयो ॥७॥ तब अंगिरानें ब्रह्मासूं कही, तब ब्रह्माजी चंद्रमाको झिझकारिकैं ताराको बृहस्पतिके अर्थ दिवाइ देतभये ॥ ८ ॥ बृहस्पति ताराको गर्भिणी जानके

सोऽयजद् राजसूयेन विजित्य भुवनत्रयम् ॥ पत्नीं बृहस्पतेर्दर्पात् तारां नामाहरद् बलात् ॥ ४ ॥ यदा स देवगुरुणा याचितोऽभीक्ष्णशो मदात् ॥ नात्यजत् तत्कृते जज्ञे सुरदानवविग्रहः ॥ ५ ॥ शुक्रो बृहस्पतेर्द्वेषादग्रहीत्सासुरोडुपम् ॥ हरो गुरुसुतं स्नेहात् सर्वभूतगणावृतः ॥ ६ ॥ सर्वदेवगणोपेतो महेन्द्रो गुरुमन्वयात् ॥ सुरासुरविनाशोऽभूत्समरस्तारकामयः ॥ ७ ॥ निवेदितोऽथाङ्गिरसा सोमं निर्भर्त्स्य विश्वकृत् ॥ तारां स्वभर्त्रे प्रायच्छदन्तर्वत्नीमवैत्पतिः ॥८॥ त्यज त्यजाशु दुष्प्रज्ञे मत्क्षेत्रादाहितं परैः॥ नाहं त्वां भस्मसात्कुर्यां स्त्रियं सान्तानिकः सति॥९॥ तत्याज व्रीडिता तारा कुमारं कनकप्रभम्॥ स्पृहामाङ्गिरसश्चक्रे कुमारे सोम एव च ॥ १० ॥ ममायं न तवेत्युच्चैस्तस्मिन् विवदमानयोः ॥ पप्रच्छुर्ऋषयो देवा नैवोचे व्रीडिता तु सा ॥ ११ ॥ कुमारो मातरं प्राह कुपितोऽलीकलज्जया ॥ किं नावोचस्यऽसद्वृत्ते आत्मावद्यं वदाऽऽशु मे ॥ १२ ॥

बोले, हे दुष्टबुद्धिवारी ! औरनें मेरे क्षेत्रमें गर्भ राख्यो ताइ वेगि डारिदे, हे असति ! संतानकी इच्छावारो मैं तोको भस्म नहीं करताहूं अन्यथा तोको भस्म करदेउंगो ॥ ९ ॥ लज्जितभई तारा सोनेकीसी कांतिवारे बालककूं त्याग करति भई, ता बालककी बृहस्पति और चंद्रमा दोऊ चाहना करतभये ॥ १० ॥ यह मेरो बालक तेरो नहीं है, ऐसे दोऊ झगरनलगे, तब ऋषि देवता पूछतभये, लज्जित तारा न बोलति भई ॥ ११ ॥ बालक क्रोध करिकैं मातासूं बोल्यो हे अशुभे ! अपनो दोष क्यों नहीं कहैहै कौनको हूं कहिदे ॥ १२ ॥

ब्रह्मा ताराकौ एकांतमें बुलायके सावधान करके धीरेसे पूछतभये तब तारा कहति भई किं चंद्रमाको पुत्र है, तब चंद्रमा ताहि ग्रहण करतभयो॥१३॥ ब्रह्मा ता बालकको बुध नाम करत भये गंभीर बुद्धि देखिकैं, बुधकारिकैं चंद्रमा आनंदकों प्राप्त होतभयो ॥ १४ ॥ तातें इलामें पुरूरवा भयो, जो पहिले कहिंआये है ताको रूप गुण उदारता शील द्रव्य पराक्रम ॥ १५ ॥ इंद्रके घरमें नारदने गाये, तिने सुनिकैं उर्वशी कामबाणकारिकै पीडत हो ताके पास आवतिभई ॥ १६ ॥ कदाचित् कोऊ प्रश्न करे कि उर्वशी अप्सरा मनुष्यके पास कैसै आवतभई, तहां कहेहै कि मित्रावरुणके शापसै मनुष्यलोकको प्राप्तहो पुरुषनमें श्रेष्ठ कंदर्पसै रूपवान् पुरूरवाकूं देखिकैं धैर्यसै ताके निकट ठाढी होतीभई ॥ १७ ॥ आनंदकारिकै प्रफुल्लित नेत्र

ब्रह्मा तां रह आहूय समप्राक्षीच्च सान्त्वयन् ॥ सोमस्येत्याह शनकैः सोमस्तं तावदग्रहीत् ॥ १३ ॥ तस्यात्मयोनिरकृत बुध इत्यभिधां नृप ॥ बुद्ध्या गम्भीरया येन पुत्रेणापोडुराण्मुदम् ॥ १४ ॥ ततः पुरूरवा जज्ञे इलायां य उदाहृतः ॥ तस्य रूपगुणौदार्यशीलद्रविणविक्रमान् ॥ १५ ॥ श्रुत्वोर्वशीन्द्रभवने गीयमानान् सुरर्षिणा ॥ तदन्तिकमुपेयाय देवी स्मरशरार्दिता ॥ १६ ॥ मित्रावरुणयोः शापादापन्ना नरलोकताम् ॥ निशम्य पुरुषश्रेष्ठं कन्दर्पमिव रूपिणम् ॥ १७ ॥ धृतिं विष्टभ्य ललना उपतस्थे तदन्तिके ॥ स तां विलोक्य नृपतिर्हर्षेणोत्फुल्ललोचनः ॥ उवाच श्लक्ष्णया वाचा देवीं हृष्टतनूरुहः ॥ १८ ॥ राजोवाच ॥ स्वागतं ते वरारोहे आस्यतां करवाम किम् ॥ संरमस्व मया साकं रतिर्नौ शाश्वतीः समाः ॥ १९ ॥ उर्वश्युवाच ॥ कस्यास्त्वयि न सज्जेत मनो दृष्टिश्च सुन्दर ॥ यदङ्गान्तरमासाद्य च्यवते ह रिरंसया ॥ २० ॥ एतावुरणकौ राजन् न्यासौ रक्षस्व मानद ॥ संरंस्ये भवता साकं श्लाघ्यः स्त्रीणां वरः स्मृतः ॥ २१ ॥

राजा ता देवीकों देखकैं सुंदर वाणी करिकें बोलतभयो ॥ १८ ॥ सुंदर आइवो भयो, बैठि, मैं कहा करूं मेरे संग रमणकरि, हमारी तुह्मारी रति बहुत वर्षन ताइ होयगी ॥ १९ ॥ उर्वशी बोली हे सुंदर! कोनसी ऐसी स्त्री है जाको मन दृष्टि तुममें आसक्त नहीं होयहै, तेरे अंगको मध्य पाइकै रमिवेकी इच्छाकरिकैं मन नहीं छूटेहै ॥ २० ॥ हे राजा ! ये दो मेंढा तेरे ह्यां राखूं हूं इनकी रक्षा कर, हे मानके देनवारे ! मैं तेरे संग रमूंगी स्त्रीनकूं जो श्लाघ्य है सोई वर कह्योहैं ॥ २१ ॥

हे वीर ! मैं घृत खाऊंगी, और मैथुनते और समय तोको नंगो न देखूंगी पुरूरवा सब बात तैसेंही अंगीकार करतभयो ॥ २२ ॥ बडो सुंदररूप बडो
भाव नरलोकको मोहित करेहै कौन मनुष्य आपते आई देवी तुझै सेवन न करे ॥ २३ ॥ पुरुषनमें श्रेष्ठ पुरूरवा रमनके योग्य उर्वशी करिकैं यथेष्ट
देवतानके विहार करिवेके चैत्ररथादिक वनके योग्य वनमें विहार करतभये ॥ २४ ॥ कमलके केशरसी गंधवारी देवीके संग रमण करता राजा
उसके मुखकी सुगन्धिसै ऐसा प्रसन्न हुआ कि बहुत दिन बीतनेपरभी उस्सै कुछ सुध न हुई ॥ २५ ॥ इंद्र उर्वशीको न देखत गंधर्वनको पठावत
भयो, उर्वसी करिकैं रहित मेरो स्थान अति शोभा नहीं देय है ॥ २६ ॥ ते गंधर्व आधी रातिके समय अंधेरेमें आइके राजाके पास राखे उर्वशीके

घृतं मे वीर भक्ष्यं स्यान्नेक्षे त्वाऽन्यत्र मैथुनात् ॥ विवाससं तत्तथेति प्रतिपेदे महामनाः ॥२२॥ अहो रूपमहो भावो
नरलोकविमोहनम् ॥ को न सेवेत मनुजो देवीं त्वां स्वयमागताम् ॥२३॥ तया स पुरुषश्रेष्ठो रमयन्त्या यथार्हतः॥
रेमे सुरविहारेषु कामं चैत्ररथादिषु ॥ २४ ॥ रममाणस्तया देव्या पद्मकिञ्जल्कगन्धया ॥ तन्मुखामोदमुषितो मुमुदेऽहर्गणान्बहून् ॥ २५ ॥ अपश्यन्नुर्वशीमिन्द्रो गन्धर्वान्समनोदयत् ॥ उर्वशीरहितं मह्यमास्थानं नातिशोभते ॥२६॥
त उपेत्य महारात्रे तमसि प्रत्युपस्थिते॥उर्वश्या उरणौ जह्रुर्न्यस्तौ राजनि जायया ॥२७॥ निशम्याक्रन्दितं देवी पुत्रयोर्नीयमानयोः॥हतास्म्यहं कुनाथेन नपुंसा वीरमानिना ॥२८॥ यद्विश्रम्भादहं नष्टा हृतापत्या च दस्युभिः॥ यः शेते
निशि संत्रस्तो यथा नारी दिवा पुमान् ॥ २९ ॥ इति वाक्सायकैर्विद्धः प्रतोत्रैरिव कुञ्जरः॥ निशि निस्त्रिंशमादाय विवस्त्रोऽभ्यद्रवद्रुषा ॥३०॥ ते विसृज्योरणौ तत्र व्यद्योतन्त स्म विद्युतः ॥ आदाय मेषावायान्तं नग्नमैक्षत सा पतिम् ॥३१॥

मेढा हरत भये ॥ २७ ॥ लिये जात पुत्रनको पुकारिवो सुनिकै उर्वशी बोली कुनाथ नपुंसक आपुको वीर माननेहारे ॥ २८ ॥ इस राजाने मेरा नाश
किया, याके विश्वासते मैं नष्ट भई, चोरननें मेरे पुत्र हारि लिये, दिनमें यह पुरुष है रातिमें स्त्रीसों डरप्यो भयो सोवैहै ॥ २९ ॥ ऐसे उर्वशीके वचनबाणसै अंकुशसै हार्थीकी समान विद्ध हो राजा रातिमें खड्ग लेके नंगोई क्रोध करिकैं दौरत भयो ॥ ३० ॥ ते गंधर्व याको देखिकैं मेढानको छोडिकै
विजुरीकोसो प्रकाश करत भये, मेढानकों लेकैं आते नंगो अपनो पति देख उर्वशी छोडिकै चलीगई ॥ ३१ ॥

तब पुरूरवा उसे शय्यापै न देखत विमन होतभयो, ताहीमें चित्त लगाय विव्हल व्हैकै शोच करते उन्मत्तसों पृथ्वीमें डोलत भयो ॥ ३२ ॥ सो कुरुक्षेत्रमें न्हाइवेको आई उर्वशी और ताकी पांच सखीको देखिकैं सुंदर वचन कहत भयो ॥ ३३ ॥ हे जांये! ठाढी हों ठाढी हों हे घोररूप! मोको छोडिवेकूं तू योग्य नहीं है, मुझै सुख दिये विना मत जा अब तू मेरे संग रह, हम तुम गोष्टी करेंगे ॥ ३४ ॥ हे देवी! मेरा यह सुंदर देह जो तेरे निमित्त इतनी दूर प्राप्त हुआ है यही छुट जायगा या देहको ल्यारी गीध खांइगे कारण कि तू कृपा नहीं करती ॥ ३५ ॥ यह राजाके वचन सुन उर्वशी बोली तू मरे मति, तू पुरुष है, धैर्य्य कर, यह ल्यारी तोकूं मति खाऊ, स्त्रीनको सख्य कहू नहीं है जैसा ल्यारीनको हृदय है तैसे सो स्त्रीनको हृदय है ॥ ३६ ॥ स्त्री निर्दयी क्रूर हैं असहन प्यारेसूं साहस करें थोरेसे द्रव्यपै द्रव्यके अर्थ विश्वास देकें पतिको भैयाको मारे है ॥ ३७ ॥ झूठो विश्वास देकै मूर्खनको सौहृदनको त्यागकर यथेच्छ मतिवारी व्यभिचारिणी नये नये पुरुषनकी इच्छा करै हैं ॥३८॥ जब राजा बहुत दीनता दिखामन लग्यो तब उर्वशी बोली कि वर्ष दिना पीछे एकराति मेरे संग तू वसेगो, तेरे श्रेष्ठ पुत्र होंइगे ॥ ३९ ॥

ऐलोऽपि शयने जायामपश्यन्विमना इव ॥ तच्चित्तो विह्वलः शोचन्बभ्रामोन्मत्तवन्महीम् ॥३२॥ स तां वीक्ष्य कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यां च तत्सखीः ॥ पञ्च प्रहृष्टवदनाः प्राह सूक्तं पुरूरवाः ॥ ३३ ॥ अहो जाये तिष्ठ तिष्ठ घोरे न त्यक्तुमर्हसि ॥ मां त्वमद्याप्यनिर्वृत्य वचांसि कृणवावहै ॥ ३४॥ सुदेहोऽयं पतत्यत्र देवि दूरं हृतस्त्वया ॥ खादन्त्येनं वृका गृध्रास्त्वत्प्रसादस्य नास्पदम् ॥ ३५ ॥ उर्वश्युवाच ॥ मा मृथाः पुरुषोसि त्वं मा स्म त्वाद्युर्वृका इमे ॥ क्वापि सख्यं न वै स्त्रीणां वृकाणां हृदयं यथा ॥ ३६ ॥ स्त्रियो ह्यकरुणाः क्रूरा दुर्मर्षाः प्रियसाहसाः ॥ घ्नन्त्यल्पार्थेऽपि विश्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत ॥ ३७ ॥ विधायालीकविश्रम्भमज्ञेषु त्यक्तसौहृदाः ॥ नवं नवमभीप्सन्त्यः पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः ॥ ३८ ॥ संवत्सरान्ते हि भवानेकरात्रं मयेश्वर ॥ वत्स्यत्यपत्यानि च ते भविष्यन्त्यपराणि भोः ॥ ३९ ॥

---

१ पद–निबाहीप्रीतिनतुमनेनारि पहलेतौ अपनायलियोमनअबयोदियोविसारि, जोऐसीकरनीथीप्यारीतौक्योमिलीअगारि, तनमनधनजीवनसबतुमको अर्पनदियोविचारि, हायप्रियेतजजातकहांतजनैकलाजजियधारि, व्याकुलवनवनाफिरतअकेलोमेरीदिशानिहारि, प्रीतिनिभानीमिश्रकठिनहैहोतअन्तकोखारि ॥

94

सो पुरूरवा उर्वशीको गर्भिणी देखिकैं घरको जातभयो, फेरि वर्ष दिनाकें अंतमें उर्वशी राजाके पास आवतभई, वीरनकी माता उर्वशीको ॥ ४०॥ पायके आनंदयुक्त व्हैकैं ताके संग एक राति वसतभयो, तापीछे उर्वशी कृपण विरहसैं आतुर राजाको देखिकै बोली कि ॥ ४१ ॥ इन गंधर्वकी सेवा करिये तोको मोहि दें जांइगे, तब हे परीक्षित! राजाने गंधर्वनकी स्तुति कीनी, तब वे प्रसन्न व्हैकैं अग्निस्थाली टोकनी देतभये, यह राजा उर्वशीको मानिकैं ताय बगलमें दबायके वनमें विचरत भयो ॥ ४२ ॥ जब वह टोकनी बगलमें चुभनलगी, तब राजाने जानी कि यह उर्वशी नहीं टोकनी है तब वनमें ता टोकनीको फैंककर घरमें आइकैं रातिमें उर्वशीको ध्यान करनेलगा तब पुरूरवाके मनमें त्रेतायुगके विषें कर्मकाण्डयुक्त तीनि वेद

अन्तर्वत्नीमुपालभ्य देवीं स प्रययौ पुरम् ॥ पुनस्तत्र गतोऽब्दान्ते उर्वशीं वीरमातरम् ॥४०॥ उपलभ्य मुदा युक्तः
समुवास तया निशाम् ॥ अथैनमुर्वशी प्राह कृपणं विरहातुरम् ॥४१॥ गन्धर्वानुपधावेमांस्तुभ्यं दास्यन्ति मामिति ॥
तस्य संस्तुवतस्तुष्टा अग्निस्थालीं ददुर्नृप ॥ उर्वशीं मन्यमानस्तां सोऽबुध्यत चरन् वने ॥४२॥ स्थालीं न्यस्य वने गत्वा
गृहानाध्यायतो निशि ॥ त्रेतायां संप्रवृत्तायां मनसि:त्रय्यवर्तत ॥४३॥ स्थालीस्थानं गतोऽश्वत्थं शमीगर्भं विलक्ष्य
सः ॥ तेन द्वे अरणी कृत्वा उर्वशीलोककाम्यया ॥४४॥ उर्वशीं मन्त्रतो ध्यायन्नधरारणिमुत्तराम् ॥ आत्मानमुभयोर्मध्ये यत् तत् प्रजननं प्रभुः ॥४५॥ तस्य निर्मन्थनाज्जातो जातवेदा विभावसुः ॥ त्रय्या स विद्यया राज्ञा पुत्रत्वे
कल्पितस्त्रिवृत् ॥ ४६ ॥ तेनायजत यज्ञेशं भगवन्तमधोक्षजम् ॥ उर्वशीलोकमन्विच्छन् सर्वदेवमयं हरिम् ॥ ४७ ॥

प्रगट होतभये ॥ ४३ ॥ तब जहां टोकनी गिरी तहां गयो, जायके कहा देखे है कि वा टोकनीमें छौंकर और पीपर उपजरहे हैं उन पीपर छोकरकू देखिकैं ताकी दो अरणी करिकैं उर्वशीके लोकको इच्छासै ॥ ४४ ॥ मंत्रते नीचेकी अरणीमें उर्वशीको ध्यान करत ऊपरकी अरणीमें अपनो ध्यान करत दोनोंनके मध्यमें काष्ठकूं पुत्रको ध्यान करत मथतभयो ॥ ४५ ॥ ताके मथेतें अग्नि होतभयो, कर्म फलको देनवारो सो अग्नि त्रैविद्याकरिकैं तीनि प्रकारका आहवनीय गार्हपत्य दक्षिणाग्नि नामसै प्रगट हुआ उसै पुरूरवाने अपना पुत्र माना ॥ ४६ ॥ ता अग्निसै यज्ञके ईश्वर भगवान्

सर्व देवमयको उर्वशीके लोक जाइवेके लिये राजा पूजा करतभयो ॥ ४७ ॥ पहिलें सतयुगमें सब वाणीनको बीजरूप ओंकार एकही वेद हो नारायणही एक देवता हो, अग्नि एकही हो, वर्ण एकही हो ॥४८॥ हे राजा! त्रेताके आरंभमें पुरूरवातें वेदत्रयी होत भई पुरूरवा अग्निहोत्र पुत्र करिकें गंधर्वनके लोकको प्राप्त भयो ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां नवमस्कन्धे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ पंद्रहवे अध्यायमें पुरूरवाके पुत्रनके वंशमें गाधि होतभयो, जाकी बेटीके बेटा परशुराम भये, सो क्रोध करिकैं सहस्रबाहुको मारतभये ॥ पुरूरवाकें उर्वशीके गर्भतें आयु श्रुतायु सत्यायु रय विजय और जय ये छै पुत्र होतभए ॥ १ ॥ श्रुतायुकें वसुमान भयो, सत्यायुके श्रुतंजय भयो रयको बेटा एक नाम भयो, जयको पुत्र अमित भयो ॥ २ ॥ विजयके भीम भयो, ताकें कांचन भयो, ताकें होत्रक, ताकें जन्हु भयो जो जन्हु गंगाजीको चुल्लू करिकैं पीगयो, जन्हुको पुत्र पुरू भयो, ताके बलाहक ताकें अज ॥ ३ ॥ ताकें कुश कुशकें कुशांबु मूर्त्तय वसु कुशनाभ चारिपुत्र भये, कुशांबुको बेटा गाधि भयो ॥ ४ ॥ ता गाधिकी कन्या सत्यवती भई उसे ऋचीक ब्राह्मण मांगत भये, गाधि अनुरूप वर न जानिकैं भृगुकुलमें भये ऋचीकसूं बोलत भये ॥ ५ ॥ एक कान कारे चन्द्रमासे उज्ज्वल हजार घोड़ा कन्याको मोल देउ, तो हम कन्या देय, क्यों कि हम कुशके वंशके हैं, हमारे वंशमें यही परंपरा

एक एव पुरा वेदः प्रणवः सर्ववाङ्मयः ॥ देवो नारायणो नान्य एकोऽग्निर्वर्ण एव च ॥ ४८ ॥ पुरूरवस एवासीत् त्रयी त्रेतामुखे नृप ॥ अग्निना प्रजया राजा लोकं गान्धर्वमेयिवान् ॥ ४९ ॥ इति श्रीभागवते म० नवमस्कन्धे ऐलोपाख्याने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ऐलस्य चोर्वशीगर्भात् षडासन्नात्मजा नृप ॥ आयुः श्रुतायुः सत्यायू रयोऽथ विजयो जयः ॥ १ ॥ श्रुतायोर्वसुमान् पुत्रः सत्यायोश्च श्रुतंजयः ॥ रयस्य सुत एकश्च जयस्य तनयोऽमितः ॥ २ ॥ भीमस्तु विजयस्याथ काञ्चनो होत्रकस्ततः ॥ तस्य जह्नुः सुतो गङ्गां गण्डूषीकृत्य योऽपिबत् ॥ जह्नोस्तु पूरुस्तत्पुत्रो बलाकश्चात्मजोऽजकः ॥ ३ ॥ ततः कुशः कुशस्यापि कुशाम्बुर्मूर्तयो वसुः ॥ कुशनाभश्च चत्वारो गाधिरासीत् कुशाम्बुजः ॥ ४ ॥ तस्य सत्यवतीं कन्यामृचीकोऽयाचत द्विजः ॥ वरं विसदृशं मत्वा गाधिर्भार्गवमब्रवीत् ॥ ५ ॥ एकतः श्यामकर्णानां हयानां चन्द्रवर्चसाम् ॥ सहस्रं दीयतां शुल्कं कन्यायाः कुशिका वयम् ॥ ६ ॥

96

चली आवे है, कि कन्याके मोल लेके देनी ॥ ६ ॥ ऐसे कहे ऋचीक राजाको मत जानिकै वरुणकै पास गयें, वरुणते हजार घोडा लाईकें गाधिको देकें ता कन्याको व्याहत भये ॥ ७ ॥ उन ऋषिसें स्त्रीनें और सासुनें पुत्रकी इच्छा करिकैं प्रार्थना की, सो ब्राह्मणके मंत्र कारिकैं स्त्रीके लिये और क्षत्रीके मंत्र करिकैं सासुके लियें चरु करिकै न्हाईवेको जातभये ॥ ८ ॥ जब ताइ न्हाइकें मुनि न आये तब ताइ सत्यवतीको चरु श्रेष्ठ मानिकैं मातानें मांग्यों, ताने सो चरु माताको दियो, माताको चरु आपु खाइ गई ॥ ९ ॥ मुनि ता वृत्तान्तको जानिकैं स्त्रीसों बोले, तैनें बडो निंदित कर्म कियो, तेरे घोर दंडको धारन करनवारो पुत्र होइगो तेरो भैया ब्रह्मवेत्तानमें श्रेष्ठ होइगो ॥ १० ॥ सत्यवतीनें ऋचीक ऋषिको प्रसन्न करिकै

इत्युक्तस्तन्मतं ज्ञात्वा गतः स वरुणान्तिकम् ॥ आनीय दत्त्वा तानश्वानुपयेमे वराननाम् ॥ ७ ॥ स ऋषिः प्रार्थितः
पत्न्या श्वश्र्वा चापत्यकाम्यया ॥ श्रपयित्वोभयैर्मन्त्रैश्चरुं स्नातुं गतो मुनिः ॥ ८ ॥ तावत् सत्यवती मात्रा स्वचरुं
याचिता सती ॥ श्रेष्ठं मत्वा तयाऽयच्छन्मात्रे मातुरदात्स्वयम् ॥ ९ ॥ तद् विज्ञाय मुनिः प्राह पत्नीं कष्टमकारषीः ॥
घोरो दण्डधरः पुत्रो भ्राता ते ब्रह्मवित्तमः ॥ १० ॥ प्रसादितः सत्यवत्या मैवं भूदिति भार्गवः ॥ अथ तर्हि भवेत्पौत्रो
जमदग्निस्ततोऽभवत् ॥ ११ ॥ सा चाभूत्सुमहापुण्या कौशिकी लोकपावनी ॥ रेणोः सुतां रेणुकां वै जमदग्निरुवाह
याम् ॥ १२ ॥ तस्यां वै भार्गवऋषेः सुता वसुमदादयः ॥ यवीयाञ्जज्ञ एतेषां राम इत्यभिविश्रुतः ॥ १३ ॥ यमाहुर्वा-
सुदेवांशं हैहयानां कुलान्तकम् ॥ त्रिःसप्तकृत्वो य इमां चक्रे निःक्षत्रियां महीम् ॥ १४ ॥ दुष्टं क्षत्रं भुवो भारमब्रह्म-
ण्यमनीनशत् ॥ रजस्तमोवृतमहन्फल्गुन्यपि कृतेंऽहसि ॥ १५ ॥

कही ऐसें मति होउ, तब ऋषि बोले तो तेरो नाती घोर होइगो, तातें जमदग्नि पुत्र भये ॥ ११ ॥ सो सत्यवती बडी पुण्यलोकनकी पवित्र करनवारी कौशिकी नाम नदी होति भई जमदग्नि रेणुकी बेटी रेणुकाको व्याहत भये ॥ १२ ॥ तामें जमदग्नितें वसुमानतें आदि लेकें पुत्र होत भये, इनमें छोटे परशुराम होत भये ॥ १३ ॥ जिनको वासुदेवको अंश कहें हैं हैहयनके नाश करनवारे परशुराम इक्कीस वेर निःक्षत्री पृथ्वी करत भये ॥ १४ ॥ अब्रह्मण्य अधर्मी रज तम करिकैं युक्त पृथ्वीको भाररूप क्षत्रीकुल थोरेई अपराधपै नाश करत भये ॥ १५ ॥

राजोवाच ॥ किं तदंहो भगवतो राजन्यैरजितात्मभिः ॥ कृतं येन कुलं नष्टं क्षत्रियाणामभीक्ष्णशः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ हैहयानामधिपतिरर्जुनः क्षत्रियर्षभः ॥ दत्तं नारायणस्यांशमाराध्य परिकर्मभिः ॥ १७ ॥ बाहून्दशशतं लेभे दुर्धर्षत्वमरातिषु ॥ अव्याहतेन्द्रियौजःश्रीस्तेजो वीर्यं यशो बलम् ॥ १८ ॥ योगेश्वरत्वमैश्वर्यं गुणा यत्राणिमादयः ॥ चचाराव्याहतगतिर्लोकेषु पवनो यथा ॥ १९ ॥ स्त्रीरत्नैरावृतः क्रीडन्रेवाम्भसि मदोत्कटः ॥ वैजयन्तीं स्रजं बिभ्रद् रुरोध सरितं भुजैः ॥ २० ॥ विप्लावितं स्वशिबिरं प्रतिस्रोतःसरिज्जलैः ॥ नामृष्यत् तस्य तद्वीर्यं वीरमानी दशाननः ॥ २१ ॥ गृहीतो लीलया स्त्रीणां समक्षं कृतकिल्बिषः ॥ माहिष्मत्यां सन्निरुद्धो मुक्तो येन कपिर्यथा ॥ २२ ॥ स एकदा तु मृगयां विचरन्विपिने वने ॥ यदृच्छयाऽऽश्रमपदं जमदग्नेरुपाविशत् ॥ २३ ॥ तस्मै स नरदेवाय मुनिरर्हणमाहरत् ॥ ससैन्यामात्यवाहाय हविष्मत्यास्तपोधनः ॥ २४ ॥

राजा पूछैहै तिननें परशुराम भगवान्‌को कहा अपराध कियो, जो क्षत्रीनके निरंतर कुलको नाश कियो ॥ १६ ॥ शुकदेवजी कहैं हैं हैहयनको अधिपति क्षत्रीनमें श्रेष्ठ अर्जुनकूं नारायणके अंश दत्तात्रेयकी सेवा करिकैं ॥१७॥ हजार भुजा प्राप्तभई वैरिनमें दुर्धर भयो नष्ट न होनेवारी इंद्रिय और श्री तेज वीर्य यश ताय प्राप्तभयो जामें ॥ १८ ॥ अणिमादिक गुणयुक्त ऐश्वर्य और योगेश्वरत्वकूं उन्हीकी कृपासै प्राप्त भयो पवनकी समान अप्रतिहत गति अर्जुन लोकनमें विचरत भयो ॥ १९ ॥ स्त्रीरत्नन करिकै युक्त नर्मदाके जलमें क्रीडा करते वैजयंती माला धारणकर मदसै उत्कट सहस्रबाहु भुजासे नर्मदाको रोकतभयो ॥ २० तब उलटकर चलनेवाले नदीके जलसे रावणका डेरा बहगया तब वीरताको अभिमानी रावण ता राजाके पराक्रमको न सहारत युद्ध करत भयो ॥ २१ ॥ अपराधकारी रावणको स्त्रीनके समक्ष लीला करिकैं पकरी लियो, माहिष्मतीपुरीमें वंदरकीसी नाई रोकि दियो फेरि अवज्ञा करिकैं यानें छोडि दियो ॥ २२ ॥ सो अर्जुन येक दिना निर्जन वनमें शिकार खेलत अकस्मात् जमदग्निके आश्रममें प्रवेश करतभयो॥२३॥तपोधन मुनि सेना मंत्री वाहन करिकै सहित सहस्रबाहु राजाके अर्थ कामधेनु द्वारा भोजनादिक सन्मान करतभये ॥२४॥

अपने ऐश्वर्य्यतें अधिक ऋषीनको प्रभाव दिखकैं वीर अर्जुन आदर न करतभयो, हैहयनकरिकैं सहित राजा कामधेनुकी इच्छा करत भयो ॥२५॥ गर्वते ऋषीकी गौ हरिवेके लियें लोगनको प्रेरतभयो, ते जोरावरी वछरा सहित रह्मातो गौको माहिष्मती पुरीमें लेगयो ॥ २६ ॥ राजाके गये पीछें राम आश्रममें आये राजाको दुष्टपनो सुनिकैं क्रोध करत भये, जैसें ठोकरसू मार्यो साँप क्रोध करेहै ॥ २७ ॥ घोर फरशा लेकैं तर्कससहित धनुष लेकैं ढाल तलवार लेकैं राजाके पीछे दौरतभये, जैसें हाथीके मारिवेको सिंह दौरे है ॥ २८ ॥ भृगुकुलमें श्रेष्ठ बलसे धावमान धनुष धारे बाण फरसा आयुध लियें मृगचर्म वस्त्र धारे सूर्यकी समान तेजवान् जटा करिकैं युक्त परशुरामजीको पुरीमें प्रवेश करत राजा देखतभयो ॥ २९ ॥ हाथी रथ

स वीरस्तत्र तद्द्दृष्ट्वा आत्मैश्वर्यातिशायनम् ॥ तन्नाद्रियताग्निहोत्र्यां साभिलाषः स हैहयः ॥ २५ ॥ हविर्धानीमृषेर्दर्पान्नरान्हर्तुमचोदयत् ॥ ते च माहिष्मतीं निन्युः सवत्सां क्रन्दतीं बलात् ॥ २६ ॥ अथ राजनि निर्याते राम आश्रम आगतः ॥ श्रुत्वा तत् तस्य दौरात्म्यं चुक्रोधाहिरिवाहतः ॥ २७ ॥ घोरमादाय परशुं सतूणं चर्म कार्मुकम् ॥ अन्वधावत दुर्धर्षो मृगेन्द्र इव यूथपम् ॥ २८ ॥ तमापतन्तं भृगुवर्यमोजसा धनुर्धरं बाणपरश्वधायुधम् ॥ ऐणेयचर्माम्बरकर्मधामभिर्युतं जटाभिर्ददृशे पुरीं विशन् ॥ २९ ॥ अचोदयद्द् हस्तिरथाश्वपत्तिभिर्गदासिबाणर्ष्टिशतघ्निशक्तिभिः ॥ अक्षौहिणीः सप्तदशातिभीषणास्ता राम एको भगवानसूदयत् ॥ ३० ॥ यतो यतोऽसौ प्रहरत्परश्वधो मनोनिलौजाः परचक्रसूदनः ॥ ततस्ततश्छिन्नभुजोरुकन्धरा निपेतुरुर्व्यां हतसूतवाहनाः ॥ ३१ ॥ दृष्ट्वा स सैन्यं रुधिरौघकर्दमे रणाजिरे रामकुठारसायकैः ॥ विवृक्णचर्मध्वजचापविग्रहं निपातितं हैहय आपतद्द् रुषा ॥ ३२ ॥

घोडा प्यादोंसे गदा खड्ग बाण ऋष्टी शतघ्नी शक्ति करिकैं अतिभयंकर सत्रह अक्षौहिणी भेजत भयो, एकही भगवान् परशुरामजी तिन अक्षौहिणी सैन्य दलको नाश करतभये ॥ ३० ॥ फरशेसे प्रहार करते पवनकी समान पराक्रमी वैरीकी सेनाके नाश करनवारे परशुराम जहां जहां जातभये, तहां तहां भुजा ऊरू कटनेसे मरकर सारथी वाहन सहित वीर भूमिमें गिर परतभये ॥३१ ॥ रुधिरके समूहकी कीचयुक्त रणके आंगनमें परशुरामके कुठारबाणसे ढाल ध्वजा धनुष शरीर कटनेसे अपनी सैन्य गिरी देखिकैं क्रोधकरिकैं सहस्रबाहु आवतभयो ॥ ३२ ॥

अर्जुन पांचसे धनुषमें एक संग वाण लगाइके परशुरामके ऊपर चलावतभयो, शस्त्रधारीनमें श्रेष्ठ एक धनुषधारी राम वाणकरिकैं एक संग तिन धनुषनको काटत भये ॥ ३३ ॥ फेरी अपनें हाथनकरिकैं पर्वत वृक्ष उखारिकैं युद्धमें दौरते अर्जुनकी भुजा राम कठोर धारवारे फरसासे काटतभये जैसें साँपके फणनको काटेहैं ॥ ३४॥ और फिर अर्जुनके शिरको काटि लेतभये, जैसें पर्वतके शिखरको काटे है, पिताके मरेसंते उसके दश हजार पुत्र भयते भाजिगये ॥ ३५ ॥ वैरीनके मारणवारे परशुराम वछरासहित गौ लाइकैं आश्रममें आइकैं पिताको देतभये ॥ ३६॥ अपनो कियो कर्म पिता

अथार्जुनः पञ्चशतेषुबाहुभिर्धनुःषु बाणान्युगपत्स संदधे॥रामाय रामोऽस्त्रभृतां समग्रणीस्तान्येकधन्वेषुभिराच्छिनत्समम् ॥ ३३ ॥ पुनः स्वहस्तैरचलान्मृधेऽङ्घ्रिपानुत्क्षिप्य वेगादभिधावतो युधि ॥ भुजान्कुठारेण कठोरनेमिना चिच्छेद रामः प्रसभं त्वहेरिव ॥ ३४ ॥ कृत्तबाहोः शिरस्तस्य गिरेः शृङ्गमिवाहरत् ॥ हते पितरि तत्पुत्रा अयुतं दुद्रुवुर्भयात् ॥ ३५ ॥ अग्निहोत्रीमुपावर्त्य सवत्सां परवीरहा ॥ समुपेत्याश्रमं पित्रे परिक्लिष्टां समर्पयत् ॥ ३६ ॥स्वकर्म तत्कृतं रामः पित्रे भ्रातृभ्य एव च ॥ वर्णयामास तच्छ्रुत्वा जमदग्निरभाषत ॥ ३७ ॥ राम राम महाबाहो भवान्पापमकारषीत् ॥ अवधीन्नरदेवं यत्सर्वदेवमयं वृथा ॥ ३८ ॥ वयं हि ब्राह्मणास्तात क्षमयार्हणतां गताः ॥ यया लोकगुरुर्देवः पारमेष्ठ्यमियात्पदम् ॥ ३९ ॥ क्षमया रोचते लक्ष्मीर्ब्राह्मी सौरी यथा प्रभा ॥ क्षमिणामाशु भगवांस्तुष्यते हरिरीश्वरः॥ ॥ ४० ॥ राज्ञो मूर्धाऽवसिक्तस्य वधो ब्रह्मवधाद् गुरुः ॥ तीर्थसंसेवया चांहो जह्यङ्गाच्युतचेतनः ॥ ४१॥ इति श्रीभा०महा० नवमस्कन्धे पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

भैयासूं कहत भये, ताय सुनिकैं जमदग्नि वोलतभये॥३७॥हे राम हे राम हे महावाहु ! तुम पाप करत भये, सर्वदेवमय राजाको वृथा मारचो॥३८॥हेपुत्र ! हम ब्राह्मण क्षमा करिकैं पूज्य भयेहैं, जा क्षमाकरिकैं लोकनको गुरु ब्रह्मा पारमेष्ठ्यपदको प्राप्तभयो ॥ ३९ ॥ क्षमा करिकैं ब्राह्मणकी लक्ष्मी सूर्यकी कान्तिसमान शोभित होयहैं, जैसें क्षमा करनवारेनपै भगवान् ईश्वर हरि प्रसन्न होयहैं ॥ ४० ॥ चक्रवर्त्ती राजाको वध ब्राह्मणके वधतें वडो है, यातें तीर्थसेवन करिकें हरिमें चित्त लगाइकें हे पुत्र ! या पापको नाश करो ॥ ४१ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां नवमस्कन्धे पञ्चदशोध्यायः॥ १५ ॥

सोलहमें अध्यायमें अर्जुनके पुत्रोनें जमदग्नि जब मारचो तब रामनें वेर वेर क्षत्रीनको नाश कियो सो वर्णन करैहै और विश्वामित्रको वंश कहै हैं ॥ श्रीशुकदेव बोले हे राजन् ! पिताकी आज्ञा पाय परशुराम वर्षदिना ताईं तीर्थसेवन करिकैं आश्रममें आवतभये ॥ १ ॥ काऊ समय रेणुका गंगामें जल लेवेको गई सौ वहां कमलकी माला पहिरे अप्सरानके संग क्रीडा करते गंधर्वनके राजाकूं देखत भई ॥ २ ॥ जलके लिये नदीको गई रेणुका वाकी क्रीडा देखिकैं होमकी वेर स्मरण न करतभई, कछु चित्ररथमें चाह करतीभई ॥ ३ ॥ कालको नाश देखिकैं मुनिके शापकरिकै शंकित आइकैं कलश आगें धरिकें हाथ जोरिकें ठाडी होतिभई ॥ ४ ॥ मुनि स्त्रीको मानसिक व्यभिचार जानिकैं कुपित ह्वैकैं बोले, हे पुत्रो ! या पापिनी

श्रीशुक उवाच ॥ पित्रोपशिक्षितो रामस्तथेति कुरुनन्दन ॥ संवत्सरं तीर्थयात्रां चरित्वाश्रममाव्रजत् ॥ १ ॥ कदाचिद्रेणुका याता गङ्गायां पद्ममालिनम् ॥ गन्धर्वराजं क्रीडन्तमप्सरोभिरपश्यत ॥ २ ॥ विलोकयन्ती क्रीडन्तमुदकार्थं नदीं गता ॥ होमवेलां न सस्मार किंचिच्चित्ररथस्पृहा ॥ ३ ॥ कालात्ययं तं विलोक्य मुनेः शापविशङ्किता ॥ आगत्य कलशं तस्थौ पुरोधाय कृताञ्जलिः ॥ ४ ॥ व्यभिचारं मुनिर्ज्ञात्वा पत्न्याः प्रकुपितोऽब्रवीत् ॥ घ्नतैनां पुत्रकाः पापामित्युक्तास्ते न चक्रिरे ॥५॥ रामः संबोधितः पित्रा भ्रातॄन् मात्रा सहावधीत् ॥ प्रभावज्ञो मुनेः सम्यक् समाधेस्तपसश्च यः ॥६॥ वरेण छन्दयामास प्रीतः सत्यवतीसुतः ॥ वव्रे हतानां रामोऽपि जीवितं चास्मृतिं वधे ॥७॥ उत्तस्थुस्ते कुशलिनो निद्रापाय इवाञ्जसा ॥ पितुर्विद्वांस्तपोवीर्यं रामश्चक्रे सुहृद्वधम् ॥८॥ येऽर्जुनस्य सुता राजन् स्मरन्तः स्वपितुर्वधम् ॥ रामवीर्यपराभूता लेभिरे शर्म न क्वचित् ॥ ९ ॥

अपनी माताको मारो ऐसें कहने पर ते न करतभयो ॥ ५ ॥ पिताके प्रेरे राम मातासहित भैयानको मारतभये, कारण कि मुनिके तप समाधिको प्रभाव जानैहै ॥ ६ ॥ सत्यवतीके बेटा जमदग्नि प्रसन्न ह्वैकै कहतभये वर मांग तब परशुराम मरेनको जीवन, वधको विस्मरण मांगतभये ॥ ७ ॥ ते कुशलसो अनायास उठतभये, जैसे निद्राके गये पीछे उठेहै, परशुराम पिताके तपको पराक्रम जानें है यातें सुहृदनको वध कियो ॥ ८ ॥ अर्जुनके बेटा अपने पिताको वध स्मरण कर परशुरामकरिकें पराक्रमकारिकैं पराभव कियेते कहूं सुखको नहीं प्राप्त होतभये ॥ ९ ॥

एक दिन परशुराम भैयानसहित वनको गये तब अपनो वैर लेवेकी इच्छाकर समय पाय आवत भये ॥ १० ॥ अग्न्यागारमें बैठे उत्तमश्लोक भगवान्में बुद्धि लगाये मुनिको देखिकै निश्चयवारे ते मारतभये ॥ ११ ॥ कृपण रामकी माताके याचना करनेपरभी अति भयंकर क्षत्रीनमें नीच ते जोरावरी शिर काटिकैं लेजात भये ॥१२॥ दुःख शोक करिकैं आर्त्त अपनो शिर छाती कूटती रेणुका हे राम हे राम हे तात! ऐसें ऊँचे स्वर करिकैं पुकारत भई ॥ १३ ॥ दूरमें स्थित परशुराम हा राम यह दुःखयुक्त शब्द सुनिकै आश्रममें शीघ्र आइकैं मरचो पिता देखतभये ॥ १४ ॥ दुःख

एकदाऽऽश्रमतो रामे सभ्रातरि वनं गते ॥ वैरं सिसाधयिषवो लब्धच्छिद्रा उपागमन् ॥ १० ॥ दृष्ट्वाग्न्यगार आसीनमावेशितधियं मुनिम् ॥ भगवत्युत्तमश्लोके जघ्नुस्ते पापनिश्चयाः ॥ ११ ॥ याच्यमानाः कृपणया राममात्राऽतिदारुणाः ॥ प्रसह्य शिर उत्कृत्य निन्युस्ते क्षत्रबन्धवः ॥ १२ ॥ रेणुका दुःखशोकार्ता निघ्नन्त्यात्मानमात्मना ॥ राम रामेहि तातेति विचुक्रोशोच्चकैः सती ॥ १३ ॥ तदुपश्रुत्य दूरस्थो हा रामेत्यार्तवत् स्वनम् ॥ त्वरयाऽऽश्रममासाद्य ददृशे पितरं हतम् ॥ १४ ॥ तद्दुःखरोषामर्षार्तिशोकवेगविमोहितः ॥ हा तात साधो धर्मिष्ठ त्यक्त्वाऽस्मान् स्वर्गतो भवान्॥१५॥ विलप्यैवं पितुर्देहं निधाय भ्रातृषु स्वयम् ॥ प्रगृह्य परशुं रामः क्षत्रान्ताय मनो दधे ॥ १६ ॥ गत्वा माहिष्मतीं रामो ब्रह्मघ्नं विहतश्रियम् ॥ तेषां स शीर्षभी राजन् मध्ये चक्रे महागिरिम् ॥ १७॥ तद्रक्तेन नदीं घोरामब्रह्मण्यभयावहाम् ॥ हेतुं कृत्वा पितृवधं क्षत्रेऽमङ्गलकारिणि ॥ १८ ॥

रोष अमर्ष आर्ति शोकके मोह करिकैं मोहित होतभये, हा तात हे साधु हे धर्मिष्ठ ! तुम हमे छोडिकैं स्वर्गको गये ॥ १५ ॥ ऐसे विलाप करिकैं पिताको देह भैयानके निकट धरिकै आप फरशा लेकै परशुराम क्षत्रीनके नाश करिवेको मन करतभये ॥ १६ ॥ परशुराम ब्रह्महत्या करिकैं नष्ट शोभावारी माहिष्मतीपुरीमे जाइ करिकें हे राजन् ! माहिष्मतीके मध्यमें तिनके शिरन करिकैं बडो पर्वत करत भये ॥ १७ ॥ तिनके रक्त करिकैं अब्रह्मण्यनकों भयकी देनवारी घोर नदी करतभये अन्यायको करनवारो क्षत्रीनको कुल पिताको वधके हेतु करिकै ॥ १८ ॥

इक्कीस वेर निक्षत्र पृथ्वी करिकै स्यमंतपंचक क्षेत्रमें रुधिरके नौ ह्रद करत भये ॥ १९ ॥ पिताको शिर लाइकै शरीरसों लगाइकै यज्ञमें यजन करिकै सर्व देवमय आत्मा हरिकी पूजा करतभयो ॥ २० ॥ पूर्व दिशा होताके अर्थ देत भये, दक्षिण दिशा ब्रह्माके अर्थ दीनीं अध्वर्युके अर्थ पश्चिम दिशा दीनी उद्गाताके अर्थ उत्तर दिशा दीनी ॥ २१ ॥ औरनके अर्थ अवांतर दिशा दीनी, कश्यपके अर्थ मध्यम दिशा देतभये आर्य्यावर्त्त उपद्रष्टाको देतभये, ताते परें पृथ्वी सभासदनको देत भये ॥२२॥ ताके अनंतर यज्ञांत स्नान करिकै अशेष पाप दूरकर परशुराम ब्रह्मनदी सरस्वतीमें

त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं कृत्वा निःक्षत्रियां प्रभुः ॥स्यमन्तपञ्चके चक्रे शोणितोदान् ह्रदान् नव॥१९॥ पितुः कायेन संधाय शिर आदाय बर्हिषि ॥ सर्वदेवमयं देवमात्मानमयजन्मखैः ॥ २० ॥ ददौ प्राचीं दिशं होत्रे ब्रह्मणे दक्षिणां दिशम् ॥ अध्वर्यवे प्रतीचीं वै उद्गात्रे उत्तरां दिशम् ॥ २१ ॥ अन्येभ्योऽवान्तरदिशः कश्यपाय च मध्यमाम् ॥ आर्यावर्तमुपद्रष्ट्रे सदस्येभ्यस्ततः परम् ॥ २२ ॥ ततश्चावभृथस्नानविधूताशेषकिल्बिषः ॥ सरस्वत्यां ब्रह्मनद्यां रेजे व्यभ्र इवांशुमान् ॥ २३ ॥ स्वदेहं जमदग्निस्तु लब्ध्वा संज्ञानलक्षणम् ॥ ऋषीणां मण्डले सोऽभूत् सप्तमो रामपूजितः ॥२४॥ जामदग्न्योऽपि भगवान् रामः कमललोचनः ॥ आगामिन्यन्तरे राजन् वर्तयिष्यति वै बृहत् ॥ २५ ॥ आस्तेऽद्यापि महेन्द्राद्रौ न्यस्तदण्डः प्रशान्तधीः ॥ उपगीयमानचरितः सिद्धगन्धर्वचारणैः ॥ २६ ॥ एवं भृगुषु विश्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः ॥ अवतीर्य परं भारं भुवोऽहन् बहुशो नृपान् ॥ २७ ॥

स्नान करिकैं शोभाको प्राप्त होतभये, विना वादरके आकाशमें सूर्यसमान शोभित हो सुंदर लगत भये ॥ २३ जमदग्नि संज्ञालक्षण अपनो देह पाइकै सप्तऋषिनके मंडलमें राम करिकै पूजित एक ऋषि होतभये ॥ २४ ॥ कमलदलनेत्र जमदग्निके बेटा परशुराम आगे आनेवारे मन्वंतरमें सप्तऋषि होइगे ॥ २५ या समय दंड त्याग प्रशांत बुद्धि किये सिद्ध गंधर्व चारणौंसे अपनो चरित्र सुन्ते परशुराम महेंद्रनाम पर्वतमें रहे हैं ॥ २६ ॥ ऐसें विश्वके आत्मा भगवान् हरि ईश्वर भृगुकुलमें अवतार लेके पृथ्वीकै बहुत राजा मारत भये ॥ २७ ॥

गाधिके बडे तेजस्वी विश्वामित्र नाम पुत्र होतभये, जैसें काठतें बडो अग्नि होय है ऐसे विश्वामित्र तप करिकैं क्षत्रीपनेको छोडिके ब्रह्मतेजको प्राप्त होतभये ॥ २८ ॥ हे राजा! विश्वामित्रके एक ऊपर सौ पुत्र होतभये मध्यमको पुत्र मधुछंदा भयो, ताके संगते ते संपूर्ण मधुछंदा कहाये ॥ २९ ॥ विश्वामित्र देवतानके दिये भृगुकुलमें भये अजीगर्त्तके बेटाको अपनो पुत्र करिकै पुत्रनसों बोले याको अपनो जेठो भैया करो ॥ ३० ॥ जो शुनःशेप हरिश्चंद्रकै यज्ञमै विककर पुरुषरूप पशु हो वरुणादिक देवतानकी स्तुति करिकै पाश बंधनते मुक्त होतभयो ॥ ३१ ॥ जो देवताननें रक्षा करचो यातें गाधिकें वंशमें देवरात नाम विख्यात भयो, जो शुनश्शेप पहिले भृगुकुलमें भयो हो ॥ ३२ ॥ मधुछंदाते आदिले जो पचास

गाधेरभून्महातेजाः समिद्ध इव पावकः ॥ तपसा क्षात्रमुत्सृज्य यो लेभे ब्रह्मवर्चसम् ॥ २८ ॥ विश्वामित्रस्य चैवासन्
पुत्रा एकशतं नृप ॥ मध्यमस्तु मधुच्छन्दा मधुच्छन्दस एव ते ॥ २९ ॥ पुत्रं कृत्वा शुनःशेषं देवरातं च भार्गवम् ॥
आजीगर्तं सुतानाह ज्येष्ठ एष प्रकल्प्यताम् ॥ ३० ॥ यो वै हरिश्चन्द्रमखे विक्रीतः पुरुषः पशुः॥ स्तुत्वा देवान् प्रजेशादीन्
मुमुचे पाशबन्धनात् ॥ ३१ ॥ यो रातो देवयजने दैवैर्गाधिषु तापसः ॥ देवरात इति ख्यातः शुनःशेपः स भार्गवः
॥ ३२ ॥ ये मधुच्छन्दसो ज्येष्ठाः कुशलं मेनिरे न तत् ॥ अशपत् तान् मुनिः क्रुद्धो म्लेच्छा भवत दुर्जनाः॥ ३३ ॥ स
होवाच मधुच्छन्दाः सार्धं पञ्चाशता ततः ॥ यन्नो भवान् संजानीते तस्मिंस्तिष्ठामहे वयम्॥३४॥ज्येष्ठं मन्त्रदृशं चक्रुस्त्वामन्वञ्चो
वयं स्म हि ॥ विश्वामित्रः सुतानाह वीरवन्तो भविष्यथ॥ये मानं मेऽनुगृह्णन्तो वीरवन्तमकर्त माम्॥३५॥

जेठे हैं ताको ज्येष्ठत्व नहीं मानत भये, तब क्रोध भये मुनि विश्वामित्र तिने शाप देत भयौ, हे दुर्जनो! तुम म्लेच्छ होउ ॥ ३३ ॥ मधुछंदा पचासते छोटोंको संग लेके बोल्यो पिता जो तुम मानोहो हम ताही वचनमें स्थित होंइगे ॥ ३४ ॥ मंत्रको देखनवारे देवरातको जेठो करत भये यह कहत भये हम सगरे तोतें छोटे होइगे, तब प्रसन्न भये विश्वामित्र पुत्रनसूं कहतभये तुम पुत्रवान् होउ, जो तुम मेरे मानकौ ग्रहण कर, मोकूं पुत्रवान् करतभये ॥ ३५ ॥

हे कुशिक ! यह वीर देवरात तुह्मारो भैयाही है, जाते मेरो श्रेष्ठ पुत्र है याके पीछें तुम संपूर्ण वर्त्तौं, ऐसें कहत भये औरहू अष्टक हारीत जय क्रतुमदादितें आदि लेंके ताके पुत्र होतभये ॥ ३६ ॥ ऐसे कुशिकको गोत्र विश्वामित्रको बेटानें नानाप्रकार प्रवरांतक्को प्राप्त कियो देवरातको ज्येष्ठ करिकैं रच्यो ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां नवमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ सत्रेके अध्यायमें पुरूरवाको जेठो पुत्र आयुकें पांच पुत्र तिनमें चारिनकौ वंश वर्णन करै हैं ॥ तहां श्रीशुकदेवजी कहै है हे राजा ! पुरूरवाको पुत्र जो आयु ताकें नहुष क्षत्रवृद्ध रजी रंभ अनेना ये पुत्र होतभये ॥ १ ॥ हे राजेंद्र ! क्षत्रवृद्धको वंश सुनो क्षत्रवृद्धको सुहोत्र ताके काश्य कुश गृत्समद ए तीनि पुत्र होतभये, गृत्समदतें सनक भयो

एष वः कुशिका वीरो देवरातस्तमन्वित ॥ अन्ये चाष्टकहारीतजयक्रतुमदादयः ॥ ३६ ॥ एवं कौशिकगोत्रं तु वैश्वामित्रैः पृथग्विधम् ॥ प्रवरान्तरमापन्नं तद्धि चैवं प्रकल्पितम् ॥ ३७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ यः पुरूरवसः पुत्र आयुस्तस्याभवन्सुताः ॥ नहुषः क्षत्रवृद्धश्च रजी रम्भश्च वीर्यवान् ॥ १ ॥ अनेना इति राजेन्द्र शृणु क्षत्रवृधोऽन्वयम् ॥ क्षत्रवृद्धसुतस्यासन्सुहोत्रस्यात्मजास्त्रयः ॥ २ ॥ काश्यः कुशो गृत्समद इति गृत्समदादभूत् ॥ शुनकः शौनको यस्य बह्वृचप्रवरो मुनिः ॥ ३ ॥ काश्यस्य काशिस्तत्पुत्रो राष्ट्रो दीर्घतमः पिता ॥ धन्वन्तरिर्दैर्घ्यतम आयुर्वेदप्रवर्तकः ॥ ४ ॥ यज्ञभुग्वासुदेवांशः स्मृतमात्रार्तिनाशनः ॥ तत्पुत्रः केतुमानस्य जज्ञे भीमरथस्ततः ॥ ५ ॥ दिवोदासो द्युमांस्तस्मात्प्रतर्दन इति स्मृतः ॥ स एव शत्रुजिद्वत्स ऋतध्वज इतीरितः ॥ तथा कुवलयाश्वेति प्रोक्तोऽलर्कादयस्ततः ॥ ६ ॥

जाकें ऋग्वेदीनमें श्रेष्ठ शौनक मुनि होत भये ॥ २ ॥ ३ ॥ काश्यकें काशीनाम पुत्र भयो ताको पुत्र राष्ट्र भयो ताकें दीर्घतम भयो दीर्घतमकें धन्वंतर भये सो आयुर्वेदके प्रवर्त्त करनवारे है ॥ ४ ॥ यज्ञभोक्ता वासुदेवको अंश है स्मरणमात्र करिकै रोगको नाश करै है, ताको पुत्र केतुमान् भयो ताकें भीमरथ भयो ॥ ५ ॥ ताके दिवोदास ताकें द्युमान् भयो जो प्रतर्दन शत्रुजित वत्स ऋतध्वज कुवलयाश्व इन नामनसै विख्यात हुए ताकें अलर्कादिक पुत्र भये ॥ ६ ॥

अलर्क साठिहजार साठिसैं वर्ष पृथ्वीको भोग करतभयो हे राजन् ! अलर्कके सिवाय युवा होकर किसीनै राज्य नहीं किया ॥ ७ ॥ अलर्कते संतति भयो, तातें सुनीथ भयो, ताके सुकेतन ताकें धर्मकेत ताकें सत्यकेत होत भयो ॥ ८ ॥ तातें धृष्टकेत भयो, ताते सुकुमार भयो, ताकें वीतहोत्र भयो, ताकें भार्गभूमि भयो॥९॥ हे राजा ! ये काशिके वंशमे भयें क्षत्रवृद्धको वंश प्रातहैं रंभको बेटा रभस भयो, ताकें गंभीर ताकें अक्रिय भयो॥१०॥ ताके वंशमें ब्राह्मण होतभये अनेनसको वंश सुनो अनेनसकें शुद्ध भयो ताकें शुचि भयो ताकें त्रिककुत् ताके धर्मसारथी ॥ ११ ॥ ताकें शांत-

षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिर्वर्षशतानि च ॥ नालर्कादपरो राजन्मेदिनीं बुभुजे युवा ॥७॥ अलर्कात्संततिस्तस्मात्सुनीथोऽथ सुकेतनः ॥ धर्मकेतुः सुतस्तस्मात्सत्यकेतुरजायत ॥८॥ धृष्टकेतुः सुतस्तस्मात्सुकुमारः क्षितीश्वरः ॥ वीतिहोत्रस्य भर्गोऽतो भार्गभूमिरभून्नृपः ॥९॥ इतीमे काशयो भूपाः क्षत्रवृद्धान्वयायिनः ॥ रम्भस्य रभसः पुत्रो गम्भीरश्चाक्रियस्ततः ॥१०॥ तस्य क्षेत्रे ब्रह्म जज्ञे शृणु वंशमनेनसः॥ शुद्धस्ततः शुचिस्तस्मात् त्रिककुद्धर्मसारथिः॥११॥ ततः शान्तरयो जज्ञे कृतकृत्यः स आत्मवान्॥ रजेः पञ्च शतान्यासन्पुत्राणाममितौजसाम्॥१२॥ देवैरभ्यर्थितो दैत्यान्हत्वेन्द्रायाददाद्दिवम्॥ इन्द्रस्तस्मै पुनर्दत्त्वा गृहीत्वा चरणौ रजेः॥१३॥ आत्मानमर्पयामास प्रह्लादाद्यरिशङ्कितः॥ पितर्युपरते पुत्रा याचमानाय नो ददुः॥१४॥ त्रिविष्टपं महेन्द्राय यज्ञभागान्समाददुः॥ गुरुणा हूयमानेऽग्नौ बलभित्तनयान्रजेः॥१५॥

रय सो कृतकृत्य भयो ज्ञानी भयो यातें पुत्र न उपजायो रजकें बडे बली पांचसै पुत्र होतभये ॥ १२ ॥ देवतानसें प्रार्थना कियो रज दैत्यनको मारिकैं इंद्रके अर्थ स्वर्गको देतभयो, इंद्र रजकै चरणनको ग्रहण करिकैं ॥ १३ ॥ प्रल्हादादि वैरियोंके डरसै ताईके अर्थ फेरि स्वर्ग देकें अपनपेको अर्पण करतभयो रजके बेटा पिताके मरे पीछें स्वर्गको मांगने पर इंद्रके अर्थ नहीं देतभये ॥ १४ ॥ यज्ञके भाग ग्रहण करतभये तिनकी मति भ्रष्ट करिवेके लिये बृहस्पतिने अग्निमें होम कियो ॥ १५ ॥

तब धर्ममार्गते भ्रष्ट हुए रजके बेटौंको इंद्र मारत भयो, तिनमें कोई बाकी न रह्यो, क्षत्रवृद्धको नाती कुश तातें प्रति भयो, ताकें संजय भयो ताकें जय भयो ॥ १६ ॥ ताकें कृत भयो, ताकें हरियवन होतभयो, ताते सहदेव भयो, ताकें अहीन, ताकें जयसेन ॥ १७ ॥ ताकें संस्कृति ताकें जय ताके क्षत्रधर्म ताके महारथ भयो, ये राजा क्षत्रवृद्धके वंशके कहे, अब नहुषवंशके राजा सुनो ॥ १८ ॥ इति श्रीभागवतभाषाटीकायां नवमस्कन्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ अठारवे अध्यायमें नहुषके बेटा ययातिकी कथा कहैहै, जाकी पांच बेटानमें छोटेनें जरा अवस्थाको ग्रहण

अवधीद् भ्रंशितान्मार्गान्न कश्चिदवशेषितः ॥ कुशात्प्रतिः क्षात्रवृद्धात्संजयस्तत्सुतो जयः ॥ १६ ॥ ततः कृतः कृतस्यापि जज्ञे हर्यवनो नृपः ॥ सहदेवस्ततोऽहीनो जयसेनस्तु तत्सुतः॥१७॥संस्कृतिस्तस्य च जयः क्षत्रधर्मा महारथः॥ क्षत्रवृद्धान्वया भूपाः शृणु वंशं च नाहुषात् ॥ १८ ॥ इति श्रीभा० म०नव०चन्द्रवंशानुवर्णने सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥ श्रीशुक उवाच ॥ यतिर्ययातिः संयातिरायतिर्वियतिः कृतिः॥ षडिमे नहुषस्यासन्निन्द्रियाणीव देहिनाम् ॥१॥ राज्यं नैच्छद् यतिः पित्रा दत्तं तत्परिणामवित् ॥ यत्र प्रविष्टः पुरुष आत्मानं नावबुध्यते ॥ २ ॥ पितरि भ्रंशिते स्थानादिन्द्राण्या धर्षणाद् द्विजैः ॥ प्रापितेऽजगरत्वं वै ययातिरभवन्नृपः ॥३॥ चतसृष्वादिशद् दिक्षु भ्रातॄन् भ्राता यवीयसः॥ कृतदारो जुगोपोर्वीं काव्यस्य वृषपर्वणः ॥ ४ ॥

करी ॥ शुकदेवजी कहैहै नहुषके यति ययाति संयाति आयति वियति कृति ये छै पुत्र होतभये, जैसे जीवकै इंद्री होयहै ॥ १ ॥ यति पिताकें दिये राज्यकी नहीं इच्छा करतभयो, राज्यको परिणाम जानैंहो कि राज्यमें प्रविष्ट पुरुष आत्माको नहीं जानैहै ॥ २ ॥ पिता नहुष स्वर्गतें भ्रष्ट भये संते इंद्रानीकी धर्षणतें ब्राह्मणनें अजगर योनिको प्राप्ति किये, तब ययाति राजा होतभयो ॥ ३ ॥ छोटे चारो भैयाको चारों दिशा देत भयो शुक्र और वृषपर्वाकी कन्यानको स्त्री कर ययाति पृथ्वीको पालन करत भये ॥ ४ ॥

राजा पूछेहैं हे भगवन् ! शुक्र तो ब्राह्मण ऋषि हैं ययाति क्षत्री है क्षत्री और ब्राह्मणमें उलटो व्याह कैसें भयो ॥ ५ ॥ तहां श्रीशुकदेवजी कहैं हैं एक दिन दानवके इंद्र वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठा हजार सखीनको संग लेकें गुरुकी बेटी ॥ ६ ॥ देवयानीसहित फूले वृक्षोंसे पूर्ण जहां गान करती भईं भोरीं डोलरहीं ऐसे सुन्दर सरोवरनको पुलिनयुक्त पुरके बागमें विचरति भईं ॥ ७ ॥ कमलसे नेत्रवारी कन्या, ते तीरपै अपनें वस्त्र धरिकैं परस्पर सींचित विहार करत भईं ॥ ८ ॥ पार्वती सहित बैलपै बैठे महादेव चले जाई हैं तिनें देखिकैं शीघ्रही जलमेंतें निकरिकैं लज्जित भईं

राजोवाच ॥ ब्रह्मर्षिर्भगवान् काव्यः क्षत्रबन्धुश्च नाहुषः ॥ राजन्यविप्रयोः कस्माद् विवाहः प्रतिलोमकः ॥ ५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा दानवेन्द्रस्य शर्मिष्ठा नाम कन्यका ॥ सखीसहस्रसंयुक्ता गुरुपुत्र्या च भामिनी ॥ ६ ॥ देवयान्या पुरोद्याने पुष्पितद्रुमसंकुले ॥ व्यचरत् कलगीतालीनलिनीपुलिनेऽबला ॥ ७ ॥ ता जलाशयमासाद्य कन्याः कमललोचनाः ॥ तीरे न्यस्य दुकूलानि विजह्रुः सिञ्चतीर्मिथः ॥ ८ ॥ वीक्ष्य व्रजन्तं गिरिशं सह देव्या वृषस्थितम् ॥ सहसोत्तीर्य वासांसि पर्यधुर्व्रीडिताः स्त्रियः ॥ ९ ॥ शर्मिष्ठाऽजानती वासो गुरुपुत्र्याः समव्ययत् ॥ स्वीयं मत्वा प्रकुपिता देवयानीदमब्रवीत् ॥ १० ॥ अहो निरीक्ष्यतामस्या दास्याः कर्म ह्यसाम्प्रतम् ॥ अस्मद्धार्यं धृतवती शुनीव हविरध्वरे ॥ ११ ॥ यैरिदं तपसा सृष्टं मुखं पुंसः परस्य ये ॥ धार्यते यैरिह ज्योतिः शिवः पन्थाश्च दर्शितः ॥ १२ ॥

कन्या वस्त्रनको पहरती भईं ॥ ९ ॥ शर्मिष्ठा विना जानें गुरुकी बेटी देवयानीके वस्त्र अपनें मानिकैं पहरत लेत भई, तब क्रोध भई देवयानी यह वचन बोली ॥ १० ॥ अहो या दासीको अन्याय कर्म देखो, हमारे धारण करिवेको वस्त्र आप पहरत भई, जैसें यज्ञमें कुतिया घीको लेलें है ॥ ११ ॥ जिन ब्राह्मणतें तपकरिकैं यह जगत् सृज्यो है, जे ब्राह्मण परमपुरुष भगवान्के मुख हैं, जिननें ब्रह्मकों धारण कियो है, कल्याणरूप वेद मार्ग दिखायो है ॥ १२ ॥

लोकनाथ देवतानके ईश्वर जिन ब्राह्मणनमें नमस्कार करैं है उपासना करैं हैं विश्वके आत्मा सबके पवित्र करनवारे लक्ष्मीके स्थान भगवान्हू जिनकी पूजा करे है ॥ १३ ॥ तिन ब्राह्मणनमें हम हैं सो भृगुवंशी हैं याको पिता असुर हमारो शिष्य है, हमारे धारण करिवेको वस्त्र पहरत भई जैसें शूद्र वेदको धारण करे ॥ १४ ॥ ऐसें तिरस्कार करी शर्मिष्ठा गुरुकी बेटीसे क्रोधकरिकैं सर्पिनीकीसी नाईं श्वास लेती होठ चबाती बोली ॥ १५ ॥ हे भिखारिनी ! अपनी वृत्ति न जानिकै तू बहुत बके है, हमारे घरमें क्या तू कुत्तेकी समान टूककी इच्छा नहीं करती ॥ १६ ॥ ऐसे या प्रकारके कठोर वचन करिकैं आचार्यकी बेटीको तिरस्कार करिकै शर्मिष्ठा क्रोध करिकै वस्त्र ले कूआमें ढकेलि देतिभई ॥ १७ ॥ शर्मिष्ठा अपने घर गई, तब यया-

यान् वदन्त्युपतिष्ठन्ते लोकनाथाः सुरेश्वराः ॥ भगवानपि विश्वात्मा पावनः श्रीनिकेतनः ॥ १३ ॥ वयं तत्रापि भृ-
गवः शिष्योऽस्या नः पिताऽसुरः ॥ अस्मद्धार्यं धृतवती शूद्रो वेदमिवासती ॥ १४ ॥ एवं शपन्तीं शर्मिष्ठा गुरुपुत्रीम-
भाषत ॥ रुषा श्वसन्त्युरङ्गीव धर्षिता दष्टदच्छदा ॥ १५ ॥ आत्मवृत्तमविज्ञाय कत्थसे बहु भिक्षुकि ॥ किं न प्रती-
क्षसेऽस्माकं गृहान् बलिभुजो यथा ॥ १६ ॥ एवंविधैः सुपरुषैः क्षिप्त्वाचार्यसुतां सतीम् ॥ शर्मिष्ठा प्राक्षिपत् कूपे
वास आदाय मन्युना ॥ १७ ॥ तस्यां गतायां स्वगृहं ययातिर्मृगयां चरन् ॥ प्राप्तो यदृच्छया कूपे जलार्थी तां दद-
र्श ह ॥ १८ ॥ दत्त्वा स्वमुत्तरं वासस्तस्यै राजा विवाससे ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिमुज्जहार दयापरः ॥ १९ ॥ तं वी-
रमाहौशनसी प्रेमनिर्भरया गिरा ॥ राजंस्त्वया गृहीतो मे पाणिः परपुरंजय ॥ २० ॥ हस्तग्राहोऽपरो मा भूद् गृही-
तायास्त्वया हि मे ॥ एष ईशकृतो वीर संबन्धो नौ न पौरुषः ॥ २१ ॥

ति राजा शिकार खेलत अकस्मात् जल पीवेके लिये प्राप्त होतभये, कुआमें देवयानीको देखत भये ॥ १८ ॥ राजा दयासे विनावस्त्र देवयानीके अर्थ अपनो उपरना देकै हाथसों हाथ पकरिकैं निकारि लेतभये ॥ १९ ॥ शुक्रकी बेटी प्रेम करिकैं युक्त वाणीसे वीर राजासूं कहतभई हे वैरीनके पुर जीतनवारे हे राजा ! तुमने मेरे हाथको ग्रहण कियो है ॥२०॥ तुमने मुझे ग्रहण करो सो मेरा दूसरा पति मति होउ, हे वीर ! हमारो तुह्मारो संबंध ईश्वरको किया है पुरुषको कियो नहीं ॥ २१ ॥

जातें कुआमें परी मोकू तुह्मारे दर्शन होतभये, कदाचित् राजा कहे कि तू ब्राह्मणके बालकको वर मैं क्षत्री हो तहां देवयानी कहैहै हे महाभुज! ब्राह्मण मेरो पति नहीं होयगो, बृहस्पतिको बेटा कच शुक्रतें मृतसंजीवनी विद्या पढते मैनें कही मेरो पति होउ, सो बोल्यो तूं मेरे गुरूकी बेटी है; पूज्य है मैं तोकूं नहीं व्याहूं तब मैनें क्रोध करिकै शाप दियो तेरी विद्या निष्फल होउ, तब वानें मोकूं शाप दियो तेरो ब्राह्मण पति नहीं होईगो ॥२२॥ ययाति आपकूं योग्य नहींहै परि ईश्वरने प्राप्ति कियो संबंध आपसूं जानिकैं तामें सकाम भयो, अपनो मन जानिकै ताके वचनको ग्रहण करतभयो ॥ २३ ॥ वीर राजाके गये संतें देवयानी रोवत घरमें आइकै शर्मिष्ठाने जो वचन कह्यो जो कर्म कियो सो सब पिताके आगें कहतभई ॥ २४ ॥ तब रुष्ट हो क

यदिदं कूपलग्नाया भवतो दर्शनं मम ॥ न ब्राह्मणो मे भविता हस्तग्राहो महाभुज ॥ कचस्य बार्हस्पत्यस्य शापाद्यमशपं पुरा ॥ २२ ॥ ययातिरनभिप्रेतं दैवोपहतमात्मनः ॥ मनस्तु तद्गतं बुद्ध्वा प्रतिजग्राह तद् वचः ॥ २३ ॥ गते राजनि सा वीरे तत्र स्म रुदती पितुः ॥ न्यवेदयत् ततः सर्वमुक्तं शर्मिष्ठया कृतम् ॥ २४ ॥ दुर्मना भगवान् काव्यः पौरोहित्यं विगर्हयन् ॥ स्तुवन् वृत्तिं च कापोतीं दुहित्रा स ययौ पुरात् ॥ २५ ॥ वृषपर्वा तमाज्ञाय प्रत्यनीकविवक्षितम् ॥ गुरुं प्रसादयन् मूर्ध्ना पादयोः पतितः पथि ॥ २६ ॥ क्षणार्धमन्युर्भगवान् शिष्यं व्याचष्ट भार्गवः ॥ कामोऽस्याः क्रियतां राजन् नैनां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ २७ ॥ तथेत्यवस्थिते प्राह देवयानी मनोगतम् ॥ पित्रा दत्ता यतो यास्ये सानुगा यातु मामनु ॥ २८ ॥

र शुक्र पुरोहिताईकी निंदा करत अपनी भिक्षावृत्तिकी स्तुति करते बेटीको संग लेके पुरसूं निकरि जातभये ॥ २५ ॥ वृषपर्वा रूठिकैं गये गुरुको जानिकैं देवतानको जय करैंगे यह अभिप्राय जानिकैं मार्गमें गुरुके चरणनमें गिरिकैं प्रसन्न करतभयो ॥ २६ ॥ अर्द्धक्षण क्रोधवारे भगवान् शुक्र अपने शिष्यसो बोले हे राजा! देवयानीकी इच्छा पूरी करो मैं याकूं छोडिवेकूं उत्साह नहीं करूंहूं ॥ २७ ॥ वृषपर्वानें वचनको अंगीकार कियो तब देवयानी अपने मनको अभिप्राय कहत भई, पिताकी दीनी जहां मैं जाउ, तहां तेरी बेटी सखीनको संग लेकैं शर्मिष्ठा मेरी दासी ह्वैकैं संग चले ॥ २८ ॥

हे राजा ! अपनेनको शुक्रके निकरेते संकट देख रहेंते गौरव देख स्त्रीनकूं संग लेकैं शर्मिष्ठा दासीकीसी नाई देवयानीकी सेवा करतभई ॥ २९ ॥ शुक्र शर्मिष्ठासहित अपनी बेटी ययातिके अर्थ देकें तासूं कहतभये हे राजा ! शर्मिष्ठाकूं अपनी सेजपै कबहू धारण मति करियो ॥ ३० ॥ हे राजा ! काहू समय सुंदर पुत्रवारी शुक्रकी बेटीको देखीकै शर्मिष्ठा एकांतमें ऋतुके समय सखीके पति राजाकी इच्छा करतभई ॥ ३१ ॥ पुत्रकी चाहके लियें प्रार्थना किये धर्म देखिकै शुक्रके वचनको स्मरण करत समयमें दैवकें वश राजा ताके संगको प्राप्त होतभयो ॥ ३२ ॥ देवयानी यदु तुर्वसुको उपजावत भई, शर्मिष्ठा द्रुह्यु अनु पुरुको उपजावत भई ॥ ३३ ॥ असुरकी बेटीमें अपनें भर्त्तांते गर्भको संभव जानि-

स्वानां तत् संकटं वीक्ष्य तदर्थस्य च गौरवम् ॥ देवयानीं पर्यचरत् स्त्रीसहस्रेण दासवत् ॥ २९ ॥ नाहुषाय सुतां दत्त्वा सह शर्मिष्ठयोशना ॥ तमाह राजन् शर्मिष्ठामाऽऽधास्तल्पे न कर्हिचित् ॥ ३० ॥ विलोक्यौशनसीं राजन् शर्मिष्ठा सप्रजां क्वचित् ॥ तमेव वव्रे रहसि सख्याः पतिमृतौ सती ॥३१॥ राजपुत्र्यार्थितोऽपत्ये धर्मं चावेक्ष्य धर्मवित् ॥ स्मरन् शुक्रवचः काले दिष्टमेवाभ्यपद्यत ॥ ३२ ॥ यदुं च तुर्वसुं चैव देवयानी व्यजायत ॥ द्रुह्युं चानुं च पूरुं च शर्मिष्ठा वार्षपर्वणी ॥ ३३ ॥ गर्भसंभवमासुर्या भर्तुर्विज्ञाय मानिनी ॥ देवयानी पितुर्गेहं ययौ क्रोधविमूर्छिता ॥ ३४ ॥ प्रियामनुगतः कामी वचोभिरुपमन्त्रयन् ॥ न प्रसादयितुं शेके पादसंवाहनादिभिः ॥ ३५ ॥ शुक्रस्तमाह कुपितः स्त्रीकामानृत पूरुष ॥ त्वां जरा विशतां मन्द विरूपकरणी नृणाम् ॥ ३६ ॥ ययातिरुवाच ॥ अतृप्तोऽस्म्यद्य कामानां ब्रह्मन् दुहितरि स्म ते ॥ व्यत्यस्यतां यथाकामं वयसा योभिधास्यति ॥ ३७ ॥

कैं देवयानी क्रोधकरिकै मूर्छित भई पिताके घरको जातभई ॥ ३४ ॥ कामी राजा वचनकरिकैं प्रार्थना करत प्यारीके पीछें जात भयो, पावनकूं दाबें अनेक यत्न किये परंतु प्रसन्न करिवेकों समर्थ न भयो ॥ ३५ ॥ क्रोधकर शुक्र राजासूं बोले हे स्त्रीकामी झूठ पराक्रमी हे मंद ! मनुष्यनको विरूप करनवारी जरावस्था तोमें प्रवेशकरी ॥ ३६ ॥ ययाति बोले हे ब्रह्मन् ! तुम्हारी बेटीमें मैं कामनकरिकैं तृप्त नहीं भयो तब शुक्र बोले जो तेरी जराअवस्था लेकैं तोय तरुण अवस्था देय ताको बदलको करिले ॥ ३७ ॥

ऐसें व्यवस्था पाय पुत्रसों बोल्यो कि हे तात यदु ! या जराकों ग्रहणकर अपनो निज वय मोंको दे ॥ ३८ ॥ हे बेटा ! तेरे नानानें यह अवस्था कीनी हैं विषयमें मैं तृप्त नहीं भयोहूं तेरे वय क्रमकरिकै कुछ वर्षन ताईं रमूंगो ॥ ३९ ॥ यदु बोले बीचमें प्राप्तभई जरा करिकैं स्थिति होवेकी मैं इच्छा नहीं करूं विषयको सुख न जानिकैं पुरुष वैराग्यको नहीं प्राप्त होयहै ॥ ४० ॥ पिताके प्रेरे तुर्वसु द्रुह्यु अनुहू नाहीं करतभये धर्मको नहीं जान अनित्य देहमें नित्य बुद्धि कर पिताको तरुणाई न दी ॥ ४१ ॥ ययाति वयकरिकै छोटो गुणकरिकै अधिक बेटा पूरूसे पूछत भये हे पुत्र ! बडे भैयानकोसी नाईं मोसूं नाहीं करिवेकूं तू योग्य नहीं है ॥ ४२ ॥ पूरू बोल्यो हे मनुष्यनके इंद्र ! देहको करनवारे पिताके प्रत्युपकार करिवेके लिये

इति लब्धव्यवस्थानः पुत्रं ज्येष्ठमवोचत ॥ यदो तात प्रतीच्छेमां जरां देहि निजं वयः ॥ ३८ ॥ मातामहकृतां वत्स न तृप्तो विषयेष्वहम् ॥ वयसा भवदीयेन रंस्ये कतिपयाः समाः ॥ ३९ ॥ यदुरुवाच ॥ नोतसहे जरसा स्थातुमन्तरा प्राप्तया तव ॥ अविदित्वा सुखं ग्राम्यं वैतृष्ण्यं नैति पूरुषः ॥ ४० ॥ तुर्वसुश्चोदितः पित्रा द्रुह्युश्चानुश्च भारत ॥ प्रत्याचख्युरधर्मज्ञा ह्यनित्ये नित्यबुद्धयः ॥ ४१ ॥ अपृच्छत् तनयं पूरुं वयसोनं गुणाधिकम् ॥ न त्वमग्रजवद्वत्स मां प्रत्याख्यातुमर्हसि ॥ ४२ ॥ पूरुरुवाच ॥ को नु लोके मनुष्येन्द्र पितुरात्मकृतः पुमान् ॥ प्रतिकर्तुं क्षमो यस्य प्रसादाद्विन्दते परम् ॥ ४३ ॥ उत्तमश्चिन्तितं कुर्यात्प्रोक्तकारी तु मध्यमः ॥ अधमोऽश्रद्धया कुर्यादकर्तोच्चरितं पितुः ॥४४॥ इति प्रमुदितः पूरुः प्रत्यगृह्णाज्जरां पितुः ॥ सोऽपि तद्वयसा कामान्यथावज्जुजुषे नृप ॥ ४५ ॥ सप्तद्वीपपतिः सम्यक् पितृवत्पालयन्प्रजाः ॥ यथोपजोषं विषयाञ्जुजुषे व्याहतेन्द्रियः ॥ ४६ ॥

कौन पुरुष समर्थ है, जाके प्रसादतें परमेश्वरको प्राप्त होयहै ॥ ४३ ॥ पिताको विचार करे सो तो उत्तम जो कहेते करे सो मध्यम जो विना श्रद्धा करे सो अधम जो पिताकी इच्छा न करे सो महानीच अधम जानियें ॥ ४४ ॥ ऐसें कहिकै प्रसन्न भयो पूरू पिताकी जराअवस्थाको ग्रहण करत भयो हे राजा ! ययातिभी ताके वयकरिकैं यथायोग्य विषयनको सेवन करत भयो ॥ ४५ ॥ सप्तद्वीपको राजा ययाति पिताकीसीनाईं प्रजाको पालन करत जैसी प्रीति तैसें विषयनको सेवन करत भये उसकी इन्द्रियें प्रबल बनी रही ॥ ४६ ॥

देवयानी नित्य नित्य मन वचन देह वस्तुसैं एकांतमें प्यारेको परम प्रीति देत भई ॥ ४७ ॥ बहुत दक्षिणावारे यज्ञ करिकै यज्ञपुरुषकी पूजा करत भये, जो यज्ञपुरुष सर्व देवमयहै सर्ववेदमयहै ॥ ४८ जिन भगवान्के स्वरूपमें आकाशमें मेघके समान रचाहुआ और स्वप्नमें मायाकै संकल्पके समान यह विश्व पृथक्सा भासता है और इन्द्रियोके शांत होनेपर नहीं भासता ॥ ४९ ॥ सो अंतर्यामी नारायण सूक्ष्मरूप वासुदेवकू हृदयमें राखिकै निष्काम ह्वैकें पूजा करतभयो ॥ ५० ॥ ऐसे हजार वर्ष ताई चक्रवर्ती ययाति इन्द्री और छटे मनसै काम भोगको सेवन करनैपरभी तृप्त न

देवयान्यप्यनुदिनं मनोवाग्देहवस्तुभिः ॥ प्रेयसः परमां प्रीतिमुवाह प्रेयसी रहः ॥ ४७ ॥ अयजद् यज्ञपुरुषं क्रतुभिर्भूरिदक्षिणैः ॥ सर्वदेवमयं देवं सर्ववेदमयं हरिम् ॥ ४८ ॥ यस्मिन्निदं विरचितं व्योम्नीव जलदावलिः ॥ नानेव भाति नाभाति स्वप्नमायामनोरथः ॥ ४९ ॥ तमेव हृदि विन्यस्य वासुदेवं गुहाशयम् ॥ नारायणमणीयांसं निराशीरयजत् प्रभुम् ॥ ५० ॥ एवं वर्षसहस्राणि मनःषष्ठैर्मनःसुखम् ॥ विदधानोऽपि नातृप्यत् सार्वभौमः कदिन्द्रियैः॥५१॥ इति श्रीभागवते म०नवमस्कन्धे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इत्थमाचरन् कामान् स्त्रैणोपप्लवमात्मनः ॥ बुद्ध्वा प्रियायै निर्विण्णो गाथामेतामगायत ॥ १ ॥ शृणु भार्गव्यमूं गाथां मद्विधाचरितां भुवि ॥ धीरा यस्यानुशोचन्ति वने ग्रामनिवासिनः ॥ २ ॥

होतभयो ॥ ५१ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां नवमस्कंधे अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ छ ॥ ॥ उन्नीसके अध्यायमें ययाति बकराकीसी उपमावारी अपनी चेष्टा करिकै देवयानीको सुनाइकै विरक्त ह्वैकै मुक्तिको प्राप्तभयो सो वर्णन करै है ॥ १ ॥ भोगभोगी बकरियाको त्यागन करते बकराकी समान अपनो वृत्तांत विडंबन करते प्यारीको निर्वेद कराइवेके लिये कहतभयो ॥ २ (१) शुकदेवजी कहैं है सो ययाति ऐसैं स्त्रीमें आसक्त व्हैकें विषयनको सेवन करते अपनो नाश जानिकै प्यारीके अर्थ निर्वेद करिकैं यह कथा गावतभये ॥ १ ॥ हे भृगुकी बेटी! मोसारिखे आचरण करनेवाले कामी ग्रामीणका वनमें रहनेहारे धीर पुरुष शोच कियो करै हैं उसके आचरणके

---

१ सबै दिनएक से नहिजात सुमिरन भजन करो कि न हरिको जबलग तनक सिरात ॥ १ ॥ यादमयेकोगर्व गर्वधन जोबनके मतमात हमही बडे करे ब्रह्माने सुधेकहतनबात ॥ २ ॥

विषयमें यह गाथा सुनो ॥ २ ॥ कोई एक बकरा वनमें अपनो प्रियको ढूंढत कूआमें गिरिकै अपने कर्मके वश बकरिया देखत भयो ॥ ३ ॥ कामी बकरा ताके निकारिवैको उपाय विचारत सींगनके अग्रकरिकै माटी खोदि खोदिकै निकरिवेको मार्ग करतभयो ॥ ४ ॥ सो बकरिया कुंआतें निकरिकें ताहीकी चाह करतभई उसके संग उसै देखकै पतिकी इच्छावारी बहुत बकरिया चाह करत भइ, जो बकरा बडा पुष्ट डाढी मूछन करिकैं युक्त मैथुन करिवेमें चतुर वीर्यको सींचनवारो है ॥ ५ ॥ बकरानमें श्रेष्ठ एकही वह बहुत बकरियौंकी रतिकौ बढावनवारो कामसें ग्रस्यो रमतभयो,

बस्त एको वने कश्चिद विचिन्वन् प्रियमात्मनः ॥ ददर्श कूपे पतितां स्वकर्मवशगामजाम् ॥ ३ ॥ तस्या उद्धरणोपायं बस्तः कामी विचिन्तयन् ॥ व्यधत्त तीर्थमुद्धृत्य विषाणाग्रेण रोधसी ॥४॥ सोत्तीर्य कूपात् सुश्रोणी तमेव चकमे किल॥ तया वृतं समुद्वीक्ष्य बह्वयोऽजाः कान्तकामिनीः॥पीवानं श्मश्रुलं श्रेष्ठं मीढ्वांसं याभकोविदम् ॥५॥ स एकोऽजवृषस्तासां बह्वीनां रतिवर्धनः ॥ रेमे कामग्रहग्रस्त आत्मानं नावबुध्यत ॥ ६ ॥ तमेव प्रेष्ठतमया रममाणमजाऽन्यया ॥ विलोक्य कूपसंलग्ना नामृष्यद् बस्तकर्म तत् ॥७॥ तं दुर्हृदं सुहृद्रूपं कामिनं क्षणसौहृदम् ॥ इन्द्रियाराममुत्सृज्य स्वामिनं दुःखिता ययौ ॥ ८ ॥ सोऽपि चानुगतः स्त्रैणः कृपणस्तां प्रसादितुम् ॥ कुर्वन्निडविडाकारं नाशक्नोत्पथि सन्धितुम् ॥ ९ ॥ तस्यास्तत्र द्विजः कश्चिदजास्वाम्यच्छिनद् रुषा ॥ लम्बन्तं वृषणं भूयः संदधेऽर्थाय योगवित् ॥ १० ॥

अपनी आत्माको न जानत भयो ॥ ६ ॥ कुआते निकरी बकरिया और बकरियानके संग रमतै बकरेको देखिकै ता बकराके कर्मको न सहारतभई ॥ ७ ॥ दुष्ट हृदय, सुहृदरूप, कामी क्षणमात्र सौहृद करनेवारें इन्द्रीनमैं आराम मानवेवारे बकराको छोडिकैं दुखित भई अपने स्वामीके पास जातिभई ॥ ८ ॥ सोऊ स्त्रीलंपट कृपण उसै प्रसन्न करिवेके लिये पीछें जातभयो, और अपनी जातिके समान वैवै शब्द करतभयो परन्तु मार्गमे प्रसन्न करिवेको नहीं समर्थ भयो ॥९॥ ता बकरियाकौ कोई एक स्वामी ब्राह्मण क्रोधकरिकैं बकराको लंबो वृषण काटतभयो फेरी कामभोगके लिये उपायको

कबहूं कभीकछुहौं रसविलसततन मनमें न अघात, कबहूंक आनपरो सरभोजन कौंकौंकर विल्लात ॥ ३ ॥ बाल विनोदजुवाजोति रतिबोलतखेलतखात, नासत तनकध्यान जनपूजा वृद्ध भये पछितात ॥ ४ ॥ तातै कहत सभारोरे मन कांहे को इतरात, सूरदास भगवंत भजन बिन कबहूं नहीं अघजात ॥ ५ ॥

जाननवारो जोरि देत भयो ॥ १० ॥ वृषण प्राप्त हौनेसै बकरा कुआँतें मिलि बकरीके संग बहुत वर्षौंतक रमण करत भयो परन्तु कामभोगसे संतुष्ट न भयो ॥ ११ ॥ हे शुक्रकी बेटी! तैसेंई कृपण मै तेरे प्रेमके आधीन भयो हूं तेरी मायाकरिके मोहित भयो आत्माको न जानत भयो ॥१२॥ जा पृथ्वीमें धान यव सुवर्ण पशु स्त्री कामकरिके नष्ट पुरुषके मनको प्रीति नहीं देहै॥१३॥यह काम कामनके भोगसे कबहूं शांत नहीं होयहै परन्तु वृद्धिकोही प्राप्त होयहै जैसे घी डालनैसै अग्नि वृद्धिकोही प्राप्त होती है ॥ १४ ॥ जिस समय यह प्राणी समान दृष्टिसै सम्पूर्ण प्राणियौंसे अमंगल भाव

संबद्धवृषणः सोऽपि ह्यजया कूपलब्धया ॥ कालं बहुतिथं भद्रे कामैर्नाद्यापि तुष्यति ॥ ११ ॥ तथाहं कृपणः सुभ्रु भवत्याः
प्रेमयन्त्रितः ॥ आत्मानं नाभिजानामि मोहितस्तव मायया ॥ १२ ॥ यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः
स्त्रियः ॥ न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥ १३ ॥ न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ॥ हविषा
कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥ १४ ॥ यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमङ्गलम् ॥ समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया
दिशः ॥ १५ ॥ या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते ॥ तां तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥ १६ ॥
मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ॥ बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ १७ ॥ पूर्णं वर्षसहस्रं
मे विषयान् सेवतोऽसकृत् ॥ तथाऽपि चानुसवनं तृष्णा तेषूपजायते ॥ १८ ॥ तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्याधाय
मानसम् ॥ निर्द्वन्द्वो निरहंकारश्चरिष्यामि मृगैः सह ॥ १९ ॥

त्याग देता है उस समय इसको सम्पूर्ण दिशा इसे सुखदायक होती है ॥ १५ ॥ दुष्टमति दुस्त्यज पुरुषके जीर्ण होनेपरभी जो जीर्ण न होती ऐसी इस दुःखकी देनवारी तृष्णाकू सुखकी इच्छा करनेहारा शीघ्र त्याग करै ॥ १६ ॥ माता बहिनि बेटीके सहितभी एकांतसें नहीं बैठे, इंद्रियनको समूह बलवान् है पंडितको हू आकर्षण करे है ॥ १७ ॥ पूरण हजार वर्ष मैंनें निरंतर विषयनको सेवन कियो तोऊ तिनमें नित्य नित्य तृष्णाही उपजे है ॥ १८ ॥ ताते मैं या तृष्णाको छोडिके ब्रह्ममें मन लगाइके निर्द्वंद्व निरहंकार होके मृगनके संग विचरूंगो ॥ १९ ॥

जो विषय देख्यो सुन्यो है सो जूठो है, यह जानिके इनका ध्यान न करे भोग न करे संसारका आवागमन और इसमें अपना नाश देखकर विद्वानको आत्माका विचार करै ॥ २० ॥ ययाति ऐसे स्त्रीसूं कहिके पूरूकी वय पूरूके अर्थ देकै अपनी जरा अवस्था ग्रहण करत भये ॥ २१ ॥ हे चतुर राजापरीक्षित! पूर्व दिशामें द्रुह्युको राज्य दियो दक्षिणदिशामे यदुको दियो पश्चिममें तुर्वसुको दियो उत्तरमें अनुकू राज्य दियो ॥ २२ ॥ संपूर्ण भूमंडलको राजा पूरुकू अभिषेक करिकें ताके बडे भैयानकूं ताहीके वस करिकें आपु वनकूं जातभये ॥ २३ ॥ बहुत वर्षन तांई विषयनमें सेवन कियो, छः इंद्रीनकों सुख राजा एक क्षणमै त्याग करत भये जैसे पंखवारे पक्षी घोसुआके त्याग करें हैं ॥ २४ ॥ समस्त संगत्याग आत्माके अनुभव करिके

दृष्टं श्रुतमसद् बुद्ध्वा नानुध्यायेन्न संविशेत् ॥ संसृतिं चात्मनाशं च तत्र विद्वान् स आत्मदृक् ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा नाहुषो जायां तदीयं पूरवे वयः ॥ दत्त्वा स्वां जरसं तस्मादाददे विगतस्पृहः ॥ २१ ॥ दिशि दक्षिणपूर्वस्यां द्रुह्युं दक्षिणतो यदुम् ॥ प्रतीच्यां तुर्वसुं चक्र उदीच्यामनुमीश्वरम् ॥ २२ ॥ भूमण्डलस्य सर्वस्य पूरुमर्हत्तमं विशाम् ॥ अभिषिच्याग्रजांस्तस्य वशे स्थाप्य वनं ययौ ॥ २३ ॥ आसेवितं वर्षपूगान् षड्वर्गं विषयेषु सः ॥ क्षणेन मुमुचे नीडं जातपक्ष इव द्विजः ॥ २४ ॥ स तत्र निर्मुक्तसमस्तसङ्ग आत्मानुभूत्या विधुतत्रिलिङ्गः ॥ परेऽमले ब्रह्मणि वासुदेवे लेभे गतिं भागवतीं प्रतीतः ॥ २५ ॥ श्रुत्वा गाथां देवयानी मेने प्रस्तोभमात्मनः ॥ स्त्रीपुंसोः स्नेहवैक्लव्यात् परिहासमिवेरितम् ॥ २६ ॥ मा सन्निवासं सुहृदां प्रपायामिव गच्छताम् ॥ विज्ञायेश्वरतन्त्राणां मायाविरचितं प्रभोः ॥ २७ ॥ सर्वत्र सङ्गमृत्सृज्य स्वप्नौपम्येन भार्गवी ॥ कृष्णे मनः समावेश्य व्यधुनोल्लिङ्गमात्मनः ॥ २८ ॥

त्रिगुणरूप लिंगदेहको निरस्तकर विख्यात ययाति निर्मल परब्रह्म वासुदेवमें भागवती गतिको प्राप्ति होतभये॥२५॥ स्त्री पुरुष सम्बन्धी प्रेमके कारण कृपणताके वचन जान देवयानी या गाथाको सुनिकै परिहास मानतभई परन्तु पछिं अभिप्राय जान ज्ञानको प्राप्त हुई ॥ २६ ॥ जिस प्रकार पथिकजन प्याऊपै इकट्ठे होजाय है या प्रकार ईश्वरके आधीन हो सम्बन्धी कुटुम्बी मायाकी रचनासै सम्मिलित होय है ऐसा निश्चय करकै ॥ २७ ॥ स्वप्नकी समान यह मायाजाल जान सबसै स्नेह त्याग देवयानीनैभी अपना लिंगदेह त्याग किया ॥ २८ ॥

उन सर्वव्यापक भगवान्, सर्वज्ञ, सब भूतनमें वास करनेवारे शांत ब्रम्हरूप वासुदेवके अर्थ नमस्कार है ॥ २९॥ इति श्रीभागवते नवमस्कन्धे भाषाटीकायां एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ वीसके अध्यायमे पिताके प्रसादते राज्यासनको बडो वैभव पाय पूरूके वंशमें दुष्यंतके बेटा भरतको यश वर्णन करे हैं ॥ शुकदेवजी कहैंहैं हे भारत ! पूरूका वंश मैं कहूंहूं, जामें तुम भयेहो जा वंशमें राजऋषिनके वंश ब्राह्मणके वंशते होत भये ॥ १ ॥ पुरूकों बेटा जनमेजय भयो, ताके प्रचिन्वान भयो, ताके प्रवीर भयो, ताके नमस्यु भयो, ताके चारुपद होत भये ॥ २ ॥ ताके सुद्युम्न पुत्र भयो,

नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ सर्वभूताधिवासाय शान्ताय बृहते नमः ॥ २९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नव०एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ पूरोर्वंशं प्रवक्ष्यामि यत्र जातोऽसि भारत ॥ यत्र राजर्षयो वंश्या ब्रह्मवंश्याश्च जज्ञिरे ॥ १ ॥ जन्मेजयो ह्यभूत् पूरोः प्रचिन्वांस्तत्सुतस्ततः ॥ प्रवीरोऽथ नमस्युर्वै तस्माच्चारुपदोऽभवत् ॥ २ ॥ तस्य सुद्युरभूत् पुत्रस्तस्माद् बहुगवस्ततः ॥ संयातिस्तस्याहंयाती रौद्राश्वस्तत्सुतः स्मृतः॥३॥ ऋतेयुस्तस्य कुक्षेयुः स्थण्डिलेयुः कृतेयुकः ॥ जलेयुः संततेयुश्च धर्मसत्यव्रतेयवः ॥ ४ ॥ दशैतेऽप्सरसः पुत्रा वनेयुश्चावमः स्मृतः ॥ घृताच्यामिन्द्रियाणीव मुख्यस्य जगदात्मनः ॥ ५ ॥ ऋतेयो रन्तिभारोऽभूत् त्रयस्तस्यात्मजा नृप ॥ सुमतिर्ध्रुवोऽप्रतिरथः कण्वोऽप्रतिरथात्मजः ॥ ६ ॥ तस्य मेधातिथिस्तस्मात् प्रस्कण्वाद्या द्विजातयः ॥ पुत्रोऽभूत्सुमते रैभ्यो दुष्यन्तस्तत्सुतो मतः ॥ ७ ॥

ताके संयात भयो, ताके अहंयात भयो, ताकें रौद्राश्व भयो ॥ ३ ॥ ताके ऋतेयु, कुक्षेयु,स्थंडिलेयु,कृतेयु,जलेयु,संततेयु,धर्मेयु, सत्येयु, व्रतेयु, ॥ ४ ॥ छोटो वनेयु, ये दश पुत्र घृताची अप्सरामें भए, जैसे जगतके प्राणके दशइंद्रिय होय है ॥ ५ ॥ ऋतेयुके रंतिभार भयो, ताके सुमति, ध्रुव, प्रतिरथ; तीनि पुत्र होतभये, प्रतिरथको बेटा कण्व भयो ॥ ६ ॥ ताके मेधातिथि भयो, ताते प्रस्कण्वादिक ब्राह्मण होत भये, सुमतिको बेटा रैभ्य भयो, ताको बेटा दुष्यंत भयो ॥ ७ ॥

दुष्यंत शिकार खेलिवेको कण्वके आश्रममें गयो, तहां आश्रमको अपनी कांतिसै शोभित करती लक्ष्मीकीसी नाई शकुंतलाको देखिके तत्काल मोहित होति भयो, देवमायाकी समान इस स्त्रीको देख ॥ ८ ॥ कुछ योधाओंसहित उसकें दर्शन मात्रसे गतश्रम हो आनंदपूर्वक राजा उस शोभन जंघायुक्त स्त्रीसों बोले ॥ ९ ॥ काम करिकैं तप्त राजा कोमल वाणीसै पूछतभयो, हे कमलपत्राक्षि हे हृदयको आनंद देनवारी ! तू कौन है, कौनकी बेटीहै ॥ १० ॥ कहा करिवेकी इच्छा है, या निर्जन वनमें क्यों रहै है, सुंदर कटियुक्त तू निश्चय क्षत्रीकी बेटी है यह मैं जानूंहूं कारण कि पूरूके वंशमें भयेनको चित्त कबहूं अधर्ममें नहीं रमें हैं ॥ ११ ॥ तब शकुंतला बोली मैं विश्वामित्रकी बेटी हूं, मेनका अप्सरामें भईहूं, मा जब स्वर्गको चली तब मोको यहां डारिगई, या बातको ये कण्वऋषि जानेहैं हे वीर ! तुम्हारो कहा प्रिय करूं ॥ १२ ॥ हे कमलनेत्र ! ह्यां बैठो, हमारी पूजाको ग्रहणकरो, वनके अन्न मेरे है, तिनें भोजन करो, जो तुमें रुचे तो या रात्रि ह्यांई रहो ॥ १३ ॥ दुष्यंत बोले सुंदर भ्रुकुटीवारी कुशिकके वंशमें भई तोको यही योग्य है, राजानकी कन्या अपनें समान वर आपुही वरें हैं ॥ १४ ॥ अवश्य मै वरूंगो इसप्रकार कह राजा धर्मपूर्वक गंधर्व विवाहसे शकुंतलाको व्याहत भयो, कारण कि यह राजा देशकालके विधानको जानेहैं ॥ १५ ॥

दुष्यन्तो मृगयां यातः कण्वाश्रमपदं गतः ॥ तत्रासीनां स्वप्रभया मण्डयन्तीं रमामिव ॥ विलोक्य सद्यो मुमुहे देवमायामिव स्त्रियम् ॥ ८ ॥ बभाषे तां वरारोहां भटैः कतिपयैर्वृतः ॥ तद्दर्शनप्रमुदितः सन्निवृत्तपरिश्रमः ॥ ९ ॥ पप्रच्छ कामसंतप्तः प्रहसन् श्लक्ष्णया गिरा ॥ का त्वं कमलपत्राक्षि कस्यासि हृदयंगमे ॥ १० ॥ किं वा चिकीर्षितं त्वत्र भवत्या निर्जने वने ॥ व्यक्तं राजन्यतनयां वेद्म्यहं त्वां सुमध्यमे ॥ न हि चेतः पौरवाणामधर्मे रमते क्वचित् ॥ ११ ॥ शकुन्तलोवाच ॥ विश्वामित्रात्मजैवाहं त्यक्ता मेनकया वने ॥ वेदैतद् भगवान् कण्वो वीर किं करवाम ते ॥ १२ ॥ आस्यतां ह्यरविन्दाक्ष गृह्यतामर्हणं च नः ॥ भुज्यतां सन्ति नीवारा उष्यतां यदि रोचते ॥ १३ ॥ दुष्यन्त उवाच ॥ उपपन्नमिदं सुभ्रु जातायाः कुशिकान्वये ॥ स्वयं हि वृणुते राज्ञां कन्यकाः सदृशं वरम् ॥ १४ ॥ ओमित्युक्ते यथाधर्ममुपयेमे शकुन्तलाम् ॥ गान्धर्वविधिना राजा देशकालविभागवित् ॥ १५ ॥

सफलवीर्य राजऋषि रानीमें वीर्य धारण करत भयो, सवेरेही अपने पुरकूं जात भयो, शकुंतलाभी समयकरिकैं पुत्रको उपजावत भई ॥ १६ ॥ कण्व बालककी जातकर्मादिक क्रिया करतभये, सो बालक सिंहनको बांधिकै तिनके संग बलकारिकैं खेलतभयो ॥ १७ ॥ दुरत्यय पराक्रम हरिके अंशके अंशतें भयो पुत्र लेकैं स्त्रीनमें उत्तम शकुंतला भर्त्ताके निकट जातिभई ॥ १८ ॥ राजा अनिंदिता अपनी स्त्री और पुत्रको जब नही ग्रहण करत भयो, तब शरीररहित आकाशवाणी सब प्राणियौंके सुन्ते यह कहतभई ॥ १९ ॥ माता तो आधारमात्र है, यथार्थमें पुत्र तौ पिताकाही होता है जो जिस्सै उत्पन्न है वह उसीका रूप है इस कारण हे दुष्यंत! यह तेरा पुत्र है, याको पालन करि, शकुंतलाकी अवज्ञा मतकरे ॥ २० ॥ वंशको बढावनवारो पुत्र यमकें लोकतें पिताको तारेहै, तू याको पिता है गर्भको धरनवारो है, शकुंतला सांच कहेहै ॥ २१ ॥ तब राजा स्त्री पुत्रको ग्रहण करत भयो, पिताके मरेपीछें सोई बालक बडो यशी चक्रवर्त्ती भयो उस नारायणके अंशसै भये राजाकी महिमा पृथ्वीमें गाई जाती है ॥ २२ ॥ जाके दाहिनें हाथमें चक्रके चिन्ह पाउनमें कमलको चिन्ह है, सो महाभिषेककरिकै अभिषेक कियो राजाधिराज होत भयो, गंगापै पचपन अश्वमेध यज्ञकरिकै हरिकी पूजा करतभयो ॥ २३ ॥

अमोघवीर्यो राजर्षिर्महिष्यां वीर्यमादधे ॥ श्वोभूते स्वपुरं यातः कालेनासूत सा सुतम् ॥ १६ ॥ कण्वः कुमारस्य वने चक्रे समुदिताः क्रियाः ॥ बद्ध्वा मृगेन्द्रांस्तरसा क्रीडति स्म स बालकः ॥ १७ ॥ तं दुरत्ययविक्रान्तमादाय प्रमदोत्तमा ॥ हरेरंशांशसंभूतं भर्तुरन्तिकमागमत् ॥ १८ ॥ यदा न जगृहे राजा भार्यापुत्रावनिन्दितौ ॥ शृण्वतां सर्वभूतानां खे वागाहाशरीरिणी ॥१९॥ माता भस्त्रा पितुः पुत्रो येन जातः स एव सः ॥ भरस्व पुत्रं दुष्यन्त माऽवमंस्थाः शकुन्तलाम् ॥ २० ॥ रेतोधाः पुत्रो नयति नरदेव यमक्षयात् ॥ त्वं चास्य धाता गर्भस्य सत्यमाह शकुन्तला ॥ २१ ॥ पितर्युपरते सोऽपि चक्रवर्ती महायशाः॥ महिमा गीयते तस्य हरेरंशभुवो भुवि ॥२२॥ चक्रं दक्षिणहस्तेऽस्य पद्मकोशोऽस्य पादयोः ॥ ईजे महाभिषेकेण सोऽभिषिक्तोऽधिराड् विभुः ॥ २३ ॥

मामतेय ऋषिकू पुरोहितकरिकैं यमुनाके तीर अठत्तरि यज्ञके लियें घोडा बांधत भयो और बहुत धन देत भयो ॥ २४ ॥ दुष्यंतके पुत्र भरतके सुंदर देशमें अग्निचयन करकै सहस्र ब्राह्मणौंको एक एक बद्व संख्याक गौदानकी एक बद्व १३०८४ को होय है ॥ २५ ॥ सो भरत १३३ एक सौ तैतीस घोडा यज्ञके लियें बांधिके राजनको आश्चर्य्य देतभयो, देवतानके वैभवको अतिक्रमण करतभयो, कारण कि यह हरि भगवानको प्राप्त हुआ था ॥ २६ ॥ सुपेद दांतवारे कारे कृष्णवर्ण सौनेंसै अलंकृत मृग जातिके चौदह लाख हाथी मष्णार नाम कर्ममें दान किये ॥ २७ ॥ भरतके किये इस बडे कर्मको पहिलेभये राजा नहीं प्राप्त भये, और आगे होंइगे ते नही पावेंगे, जैसें हाथन करिकैं स्वर्गको कोऊ न पाय सकै है ॥ २८ ॥ किरात हूण

पञ्चपञ्चाशता मेध्यैर्गङ्गायामनु वाजिभिः ॥ मामतेयं पुरोधाय यमुनायामनु प्रभुः ॥ २४ ॥ अष्टसप्ततिमेध्याश्वान् बबन्ध प्रददद्वसु ॥ भरतस्य हि दौष्यन्तेरग्निः साचीगुणे चितः ॥ सहस्रं बद्वशो यस्मिन् ब्राह्मणा गा विभेजिरे ॥२५॥ त्रयस्त्रिंशच्छतं ह्यश्वान् बद्ध्वा विस्मापयन् नृपान् ॥ दौष्यन्तिरत्यगान्मायां देवानां गुरुमाययौ ॥ २६ ॥ मृगान् शुक्कदतः कृष्णान् हिरण्येन परीवृतान् ॥ अदात् कर्मणि मष्णारे नियुतानि चतुर्दश ॥२७॥ भरतस्य महत् कर्म न पूर्वे नापरे नृपाः॥ नैवापुर्नैव प्राप्स्यन्ति बाहुभ्यां त्रिदिवं यथा ॥२८॥ किरातहूणान् यवनानन्ध्रान् कङ्कान् कशाञ्छकान् ॥ अब्रह्मण्यान् नृपांश्चाहन् म्लेच्छान् दिग्विजयेऽखिलान्॥२९॥ जित्वा पुराऽसुरा देवान् ये रसौकांसि भेजिरे ॥ देवस्त्रियो रसां नीताः प्राणिभिः पुनराहरत् ॥ ३० ॥ सर्वकामान् दुदुहतुः प्रजानां तस्य रोदसी ॥ समास्त्रिणवसाहस्रीर्दिक्षु चक्रमवर्तयत् ॥३१॥ स सम्राट् लोकपालाख्यमैश्वर्यमधिराड्श्रियम् ॥ चक्रं चास्खलितं प्राणान् मृषेत्युपरराम ह ॥ ३२ ॥

यवन मद्र कंक खश शक अब्रह्मण्य राजा और म्लेच्छौंको दिग्विजयमें मारतभयो ॥ २९ ॥ पहिले देवतानको जीतिकैं जो बली दैत्य देवतानकी स्त्री रसातलमें लेगये थे, तिन्हे फेरि राजा भरत लाइ देतभये ॥ ३० ॥ ताकी प्रजानको संपूर्ण काम यह पृथ्वी पूरण करत भई, सत्ताईस हजार वर्षतक दिशाओंमें उस चक्रवर्ती राजाकी आज्ञा प्रचलित रही ॥ ३१ ॥ सो चक्रवर्ती भरत लोकपालौंके ऐश्वर्य राजाधिराजकी सम्पत्ति अस्खलन आज्ञा औ प्राण ये सब झूठे विचारिकै उनसै उपरामको प्राप्त होत भयो ॥ ३२ ॥

120

हे राजा ! उस भरतके विदर्भदेशके राजाकी बेटी उसकी आज्ञाकारिणी तीनि स्त्री होतभई उनसै राजाने कही तुह्मारे पुत्र मेरी समान नहीं यह सुनिकै कहूं राजा व्यभिचारकी शंकासै हमें त्यागन करदें या भयतें पुत्रोंको मारति भई ॥ ३३ ॥ ताको वंश व्यर्थ भयो, तब पुत्रके लिये मरुत सोमयज्ञ करिकै पूजा करत भयो, तब मरुत भरद्वाज नाम पुत्र देतभये ॥ ३४ ॥ भरद्वाजके जन्मकी कथा कहै है, एक समय उतथ्य भाईकी गर्भिणी स्त्रीमें बृहस्पति मैथुन करनैमें चोरीसै प्रवृत्त हुए तब गर्भके बालकनै कही यहां दूसरेके रहनेको ठौर नहीं तुम ऐसा मत करो तब क्रोधकर बृहस्पतिने शाप दिया तू अंधा हो ऐसा कहकर अपना वीर्य उसमें धारण किया ॥ ३५ ॥ तब वानै बृहस्पतिके वीर्यको एडीके प्रहारसै बाहर निकार्‍यो, वह भूमिमे गिर्‍यो और तत्काल बालक होगयो, जब अपनें स्वामीके त्यागनैके भयसैं ममता उसके त्याग करनेकी इच्छा करनेलगी तब देवता बालकके नामकरणको श्लोक कर गावत भये ॥ ३६ ॥ पुत्र छोडिकैं चली ममता तासूं बृहस्पति बोले हे मूढे! या पुत्रको (भर) पोषण कर क्योंकि (द्वाज) हमतें औ तोतें भयोहै तब ममता बोली हे बृहस्पति! तुमही याको पालन करो मोतें तोतें दोनोंनतें अन्यायतें भयौहै, मै अकेली नहीं करेंगी ऐसें कहिकैं दोनो पुत्रको छोडिकैं चलेगये यातें वाकों नाम भरद्वाज भयो ॥ ३७ ॥ ऐसे देवताऔंने प्रार्थना की तथापि वह पुत्रको वृथा समझ छोड गई तब मरुतौंनै उसै पालकर बड़ा करा और भरतवंशको नष्ट होता देख उसै भरतको दिया ॥३८॥ इति श्रीमद्भा०भा०नवमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

तस्यासन् नृप वैदर्भ्यः पत्न्यस्तिस्रः सुसंमताः ॥ जघ्नुस्त्यागभयात् पुत्रान् नानुरूपा इतीरिते ॥३३॥ तस्यैवं वितथे
वंशे तदर्थं यजतः सुतम् ॥ मरुत्सोमेन मरुतो भरद्वाजमुपाददुः ॥ ३४ ॥ अन्तर्वत्न्यां भ्रातृपत्न्यां मैथुनाय बृहस्पतिः॥
प्रवृत्तो वारितो गर्भं शप्त्वा वीर्यमवासृजत् ॥ ३५ ॥ तं त्यक्तुकामां ममतां भर्तृत्यागविशङ्किताम् ॥ नामनिर्वचनं तस्य
श्लोकमेनं सुरा जगुः॥३६॥मूढे भर द्वाजमिमं भर द्वाजं बृहस्पते ॥ यातौ यदुक्त्वा पितरौ भरद्वाजस्ततस्त्वयम् ॥ ३७॥
चोद्यमाना सुरैरेवं मत्वा वितथमात्मजम् ॥ व्यसृजन्मरुतोऽबिभ्रन् दत्तोऽयं वितथेऽन्वये ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते
महापुराणे नवमस्कन्धे विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

इकीसके अध्यायमें दुष्यंतके पुत्र भरतको वंश कहैं हैं, जा वंशमें रंतिदेव अजमीढादिककी कीर्ति विस्तारतें कहैंगे ॥ श्रीशुकदेवजी कहै हैं वंश व्यर्थ हौनेपर दियागया इसकारण उसका नाम वितथ भया वितथको बेटा मन्यु ताते बृहत्क्षेत्र जय महावीर्य नर गर्ग ये पांच पुत्र होत भये ॥ १ ॥ हे पांडुनंदन ! नरके बेटा संकृतिके गुरु और रंतिदेव दो पुत्र भये रंतिदेवको यश या लोक और परलोकमें गायो जाय है ॥ २ ॥ अकस्मात् जो द्रव्य मिलजाय उसीसे यह राजा निर्वाह करता जो पास होता उसे दान करदेतें जो नवीन प्राप्त होता उसै भोगता तथापि धीरजका त्याग न करता एक समय कुटुम्बसहित महादुखी भये ॥ ३ ॥ एक समय राजाको विना जलपियें अडतालीसदिन व्यतीत होत भये अगले दिन प्रा-

श्रीशुक उवाच ॥ वितथस्य सुतो मन्युर्बृहत्क्षत्रो जयस्ततः ॥ महावीर्यो नरो गर्गः संकृतिस्तु नरात्मजः ॥ १ ॥ गुरुश्च रन्तिदेवश्च संकृतेः पाण्डुनन्दन ॥ रन्तिदेवस्य हि यश इहामुत्र च गीयते ॥ २॥ वियद्वित्तस्य ददतो लब्धं लब्धं बुभुक्षतः ॥ निष्किञ्चनस्य धीरस्य सकुटुम्बस्य सीदतः ॥ ३॥ व्यतीयुरष्टचत्वारिंशदहान्यपि गतः किल ॥ घृतपायससंयावं तोयं प्रातरुपस्थितम् ॥ ४ ॥ कृच्छ्रप्राप्तकुटुम्बस्य क्षुत्तृड्भ्यां जातवेपथोः ॥ अतिथिर्ब्राह्मणः काले भोक्तुकामस्य चागमत् ॥ ५ ॥ तस्मै संव्यभजत् सोऽन्नमादृत्य श्रद्धयान्वितः ॥ हरिं सर्वत्र संपश्यन् स भुक्त्वा प्रययौ द्विजः ॥ ६॥ अथान्यो भोक्ष्यमाणस्य विभक्तस्य महीपते ॥ विभक्तं व्यभजत् तस्मै वृषलाय हरिं स्मरन् ॥ ७ ॥ याते शूद्रे तमन्योऽगाददतिथिः ॥ श्वभिरावृतः राजन् मे दीयतामन्नं सगणाय बुभुक्षिते ॥ ८ ॥

तःकाल घृत खीर लपसी जल यह अकस्मात् प्राप्त भये ॥ ४ ॥ इसका कुटुम्ब उस समय भूंख प्याससै व्याकुल महाकष्ट भोग रहाथा कांप रहाथा कुटुम्बसहित रंतिदेवनै भोजन बनाया भोजनकी इच्छा करतेहीं भोजनके समय एक अतिथि ब्राह्मण आवतभयो ॥ ५ ॥ सो राजा श्रद्धा करिकैं युक्त आदरसै ता ब्राह्मणके अर्थ अपनो अन्न देत भयो कारण कि यह राजा सबमें भगवत्दृष्टि रखताथा जब ब्राह्मण भोजनकर चला गया ॥ ६ ॥ ता पीछें भोजनकी इच्छाकर कुटुंबके अर्थ अन्नादिकको भाग करै हैं तब और एक शूद्र अतिथि आवतभयो, राजा वांटकियो अन्न शूद्रकै अर्थ हरिको स्मरण करत देतभयौ ॥७॥ शूद्रके गये संते और अतिथि कुत्तानकरिकै सहित आवत भयौ, और बोले हेराजा ! कुत्तान सहित मैं

भूखोहूं मुझे अन्न दे ॥ ८ ॥ सो राजा आदरकरिकै बहुत सनमानसूं बाकीको अन्न ताइ देकरिकै कुत्तानके अर्थ और कुत्तानको पतिके अर्थ नमस्कार करत भयो ॥९॥ एक प्राणी जासूं तृप्त होई इतनों पानीमात्र बाकी रह्यो ताइ पीवेकी इच्छा करते समय एक चांडाल आवतभयो हे राजा ! में प्यासोहूं मेरे अर्थ जल देउ ॥ १० ॥ ताकी करुणा वाणी सुनिकै बहुत श्रमहोइ तैसें कृपाकरिकै संतप्त राजा यह अमृतसो वचन कहतभयो ॥ ११ ॥ ईश्वरतें मैं अणिमादिक अष्टसिद्धि युक्त सिद्धि और मोक्ष नहीं इच्छा करूंहूं केवल यही प्रार्थना है कि में सब प्राणियोंके उदरमें रहकर सबको दुःखभोग करूं जिस्सै सब सुखी हौंय जीवोंकी दुःख निवृत्तिमें मुझें सुख है ॥ १२ ॥ भूख प्यास श्रम शरीरको परिश्रम दैन्य क्लम शोक खेद मोहते सगरे

स आदृत्यावशिष्टं यद् बहुमानपुरस्कृतम् ॥ तच्च दत्त्वा नमश्चक्रे श्वभ्यः श्वपतये विभुः ॥ ९ ॥ पानीयमात्रमुच्छेषं तच्चैकपरितर्पणम् ॥ पास्यतः पुल्कसोऽभ्यागादपो देह्यशुभस्य मे ॥ १० ॥ तस्य तां करुणां वाचं निशम्य विपुलश्रमाम् ॥ कृपया भृशसंतप्त इदमाहामृतं वचः ॥ ११ ॥ न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परामष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा ॥ आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजामन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखाः ॥ १२ ॥ क्षुत्तृट्श्रमो गात्रपरिश्रमश्च दैन्यं क्लमः शोकविषादमोहाः ॥ सर्वे निवृत्ताः कृपणस्य जन्तोर्जिजीविषोर्जीवजलार्पणान्मे ॥ १३ ॥ एवं प्रभाष्य पानीयं म्रियमाणः पिपासया ॥ पुल्कसायाददाद्धीरो निसर्गकरुणो नृपः ॥ १४ ॥ तस्य त्रिभुवनाधीशाः फलदाः फलमिच्छताम् ॥ आत्मानं दर्शयांचक्रुर्मायाविष्णुविनिर्मिताः ॥ १५ ॥ स वै तेभ्यो नमस्कृत्य निःसङ्गो विगतस्पृहः ॥ वासुदेवे भगवति भक्त्या चक्रे नमः परम् ॥ १६ ॥

कृपण जीवेकी इच्छा करनेवारे प्राणीको जीवन दाता मेरे जल अर्पणते निवृत्त होत भये ॥ १३ ॥ ऐसें कहिकै प्यासके मारें मरते स्वभावकरिकै दयावान राजा चांडालके अर्थ जल देतभयो ॥ १४ ॥ त्रिलोकीके ईश्वर फल चाहनेवारोंको फलके देनवारे ब्रह्मा विष्णु रुद्र जिन्हौंने मायासै ब्राह्मणादिका रूप धारण कियाथा राजाको अपनें स्वरूपको दिखावतभये ॥ १५ ॥ राजा तिनके अर्थ नमस्कार करिकैं निःसंग निःस्पृह व्हैकैं भक्तिकरिकैं केवल वासुदेवमें मन करतभयो ॥ १६ ॥

हे राजन्! ईश्वरालंबन चित्त कर ईश्वर विना और फलकी इच्छा नहीं करनेहारे राजाकी गुणमयी माया स्वप्नकीसी नाई लीनहोतिभई ॥ १७ ॥ ताके प्रसंगके प्रभाव करिकैं रंतिदेवकें अनुवर्ती सब लोग योगी और नारायण आश्रय होतभये ॥ १८ ॥ गर्गतें शिनि होतभये, सिनितें गार्गनाम ब्रम्हकुल प्रवर्त्त होत भयो, महावीर्य्यतें दुरितक्षय भयो, तातें त्रय्यारुण कवि पुष्करारुण ये तीनि होंतभये, तेऊ ब्राम्हण गतिको प्राप्त भये, बृहत्क्षत्रको पुत्र हस्ति भयो जानें हस्तिनापुर कियो ॥१९॥२०॥ अजमीढ द्विमीढ पुरुमीढ ये हस्तीके पुत्र होतभये, अजमीढके वंशमे भये प्रियमेधते आदिलेकें ब्राह्मण होतभये ॥ २१ ॥ अजमीढते और बृहदिषुनाम पुत्र होतभयो ताकें पुत्र बृहद्धनु भयो, ताकें बृहत्काय भयो ताकें पुत्र जयद्रथ भयो ॥ २२ ॥ ताको पुत्र विशद भयो ताकै सेनाजित् भयौ, ताकें रुचिराश्व दृढहनु काश्यवत्स पुत्र भये ॥ २३ ॥ रुचिराश्वको पुत्र पार भयो, पारको पुत्र पृथुसेन भयो पारको दूसरो पुत्र नीप भयो ताकें सौ पुत्र भये ॥ २४ ॥ सोई नोप शुककी कन्या कृतुमें ब्रह्मदत्त छत्र उपजावत भयो, योगी ब्रह्मदत्त सरस्वती भार्य्यामे विष्वक्सेन नाम पुत्र उपजावत भयो ॥ २५ ॥ सोई जैगीषव्यको उपदेश करिकैं योगतन्त्र करत भयो ताको

ईश्वरालम्बनं चित्तं कुर्वतोऽनन्यराधसः ॥ माया गुणमयी राजन् स्वप्नवत् प्रत्यलीयत ॥ १७॥ तत्प्रसङ्गानुभावेन रन्तिदेवानुवर्तिनः ॥ अभवन् योगिनः सर्वे नारायणपरायणाः ॥ १८ ॥ गर्गाच्छिनिस्ततो गार्ग्यः क्षत्राद् ब्रह्म ह्यवर्तत ॥ दुरितक्षयो महावीर्यात् तस्य त्रय्यारुणिः कविः ॥ १९ ॥ पुष्करारुणिरित्यत्र ये ब्राह्मणगतिं गताः ॥ बृहत्क्षत्रस्य पुत्रोऽभूद्धस्ती यद्धस्तिनापुरम् ॥ २० ॥ अजमीढो द्विमीढश्च पुरुमीढश्च हस्तिनः ॥ अजमीढस्य वंश्याः स्युः प्रियमेधादयो द्विजाः ॥ २१ ॥ अजमीढाद् बृहदिषुस्तस्य पुत्रो बृहद्धनुः ॥ बृहत्कायस्ततस्तस्य पुत्र आसीज्जयद्रथः ॥ २२ ॥ तत्सुतो विशदस्तस्य सेनजित् समजायत ॥ रुचिराश्वो दृढहनुः काश्यो वत्सश्च तत्सुताः ॥ २३ ॥ रुचिराश्वसुतः पारः पृथुसेनस्तदात्मजः ॥ पारस्य तनयो नीपस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥ २४ ॥ स कृत्व्यां शुककन्यायां ब्रह्मदत्तमजीजनत् ॥ स योगी गवि भार्यायां विष्वक्सेनमधात् सुतम् ॥ २५॥ जैगीषव्योपदेशेन योगतन्त्रं चकार ह ॥ उदक्स्वनस्ततस्तस्माद् भल्लादो बार्हदीषवः ॥ २६ ॥

यवीनरो द्विमीढस्य कृतिमांस्तत्सुतः स्मृतः ॥ नाम्ना सत्यधृतिर्यस्य दृढनेमिः सुपार्श्वकृत् ॥ २७ ॥ सुपार्श्वात् सुमतिस्तस्य पुत्रः सन्नतिमांस्ततः ॥ कृती हिरण्यनाभाद् यो योगं प्राप्य जगौ स्म षट् ॥ २८ ॥ संहिताः प्राच्यसाम्नां वै नीपो ह्युग्रायुधस्ततः ॥ तस्य क्षेम्यः सुवीरोऽथ सुवीरस्य रिपुंजयः ॥ २९ ॥ ततो बहुरथो नाम पुरुमीढोऽप्रजोऽभवत् ॥ नलिन्यामजमीढस्य नीलः शान्तिसुतस्ततः ॥ ३० ॥ शान्तेः सुशान्तिस्तत्पुत्रः पुरुजोऽर्कस्ततोऽभवत् ॥ भर्म्याश्वस्तनयस्तस्य पञ्चासन्मुद्गलादयः ॥ ३१ ॥ यवीनरो बृहदिषुः काम्पिल्यः सृंजयः सुताः ॥ भर्म्याश्वः प्राह पुत्रा मे पञ्चानां रक्षणाय हि ॥ ३२ ॥ ॥ विषयाणामलमिमे इति पञ्चालसंज्ञिताः ॥ मुद्गलाद्ब्रह्म निर्वृत्तं गोत्रं मौद्गल्यसंज्ञितम् ॥ ३३ ॥ मिथुनं मुद्गलाद् भार्म्याद् दिवोदासः पुमानभूत् ॥ अहल्या कन्यका यस्यां शतानन्दस्तु गौतमात् ॥ ३४ ॥ तस्य सत्यधृतिः पुत्रो धनुर्वेदविशारदः ॥ शरद्वांस्तत्सुतो यस्मादुर्वशीदर्शनात् किल ॥ ३५ ॥

पुत्र उदक्स्वन भयो, तातें भल्लाद होत भयो ये बृहदिषुके वंशके भये ॥ २६ ॥ द्विमीढकों बेटा यवीनर होतभयो; ताकें कृतमान भयो, ताकें सत्यधृत भयो, ताकें दृढनेम भयो ताकें सुपार्श्व भयो ॥ २७ ॥ तातें सुमत भयों, तातें संनतिमान भयो, तातें कृती भयो, जो कृती हिरण्यनाभिते योग पाइके प्राच्यसामवेदकी छै संहिता पढावत भयो ताको बेटा नीप भयो, ताकें उग्रायुध भयो ताकें क्षेम्य भयो, ताकें स्ववीर, ताके रिपुंजय ॥ २८ ॥ २९ ॥ ताकें बहुरथ होत भयो, पुरमीढके पुत्र न भयो अजमीढकी स्त्री नलिनीमें नील भयो ताको बेटा शांति भयो ॥ ३० ॥ शांतिके सुशांति भयो, ताको पुत्र पुरुज भयो, ताके अर्क भयो, भर्म्याश्वके बेटा पांच मुद्गलते आदि लेकें भये ॥ ३१ ॥ यवीनर बृहदिषु कांपिल्य सृंजय भये, भर्म्याश्व पुत्रनते कहतभयो कि तुम मेरे देशोंकी रक्षा करनेमें समर्थ हो ॥ ३२ ॥ वे उन पांचो देशोंके पालनेमें समर्थ हुए यातें उन देशोंकी संज्ञा पांचाल होती भई, मुद्गलतें ब्रह्मकुल होतभयो मौद्गल्य संज्ञाका गोत्र भयो ॥ ३३ ॥ भर्म्याश्वको बेटा मुद्गल, तातें मिथुन होतभयो, दिवोदास नाम पुत्र होत भयो, अहल्या कन्या भई, जामें गौतमके पुत्र शतानंद होत भये ॥ ३४ ॥ ताकें सत्यधृत भयो, सो धनुष विद्यामें पारंगत भयो, ताको बेटा शरदवान भयो, जाको वीर्य उर्वशीके दर्शनतें सरकंडेनके समूहमें गिरत भयो, ताते शुभमिथुन होतभयो ॥ ३५ ॥

शंतनु राजा शिकार खेलत वनमें ता मिथुनको देखिकैं कृपा करिके ग्रहण करतभये, तामें बालक भयो सो कृपाचार्य भये कन्या भई सो द्रोणकी स्त्री कृपी भई ॥ ३६ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां नवमस्कन्धे एकाविंशोऽध्यायः ॥२१॥ बाईसके अध्यायमें दिवोदासको वंश कहिकैं ऋक्षके वंशमें जरासंध युधिष्ठिरादिक दुर्योधनादिकके वंश वर्णन करेंहै ॥ शुकदेवजी कहैं हैं दिवोदासते मित्रायु भयो, ताको पुत्र च्यवन भयो, ताकें सुदास भयो, ताके सहदेव, ताके सोमक, ताकें जंतु भयो ॥ १ ॥ ताकें सौ पुत्र भये, तिनमें छोटो पृषत भयो, पृषतके द्रुपद भयो, ताकें द्रौपद्री कन्या भई धृष्टद्युम्नादिक पुत्र भये ॥ २ ॥ धृष्टद्युम्नके धृष्टकेतु भयो, ये भर्माश्वके वंशके कहे ये पंजाबके राजा भये, जो अजमीढको बेटा ऋक्ष कह्यो ताकें संवरन भयो ॥ ३ ॥ तातें सूर्यकी कन्या तपतीमें कुरुक्षेत्रके पति कुरु होत भये, कुरूके परीक्षित् सुधनु जन्हु निषध ये पुत्र होतभये ॥ ४ ॥ सुधनुके सुहोत्र भयो, ताकें च्यवन भयो ताकें कृती भयो, ताकें उपरिचर नाम वसु भयो, ताकें बृहद्रथादि ॥ ५ ॥ कुशांब मत्स्य प्रत्यग्र चेदिप ये पुत्र भये ते चंदेलीके राजा भये, बृहद्रथतें कुशाग्र भयो, ताकें ऋषभ भयो ॥ ६ ॥ ताको पुत्र सत्यहित भयो, ताकें पुष्पवान भयो ताको बेटा जहु भयो, और एक स्त्रीमें बृहद्रथतै बालककी दो फांक होती भई ॥ ७ ॥

शरस्तम्बेपतद्रेतो मिथुनं तदभूच्छुभम् ॥ तद् दृष्ट्वा कृपयाऽगृह्णाच्छन्तनुर्मृगयां चरन् ॥ कृपः कुमारः कन्या च द्रोणपत्न्यभवत् कृपी ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महा० न० एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ मित्रेयुश्च दिवोदासाच्च्यवनस्तत्सुतो नृप ॥ सुदासः सहदेवोऽथ सोमको जन्तुजन्मकृत् ॥ १ ॥ तस्य पुत्रशतं तेषां यवीयान् पृषतः सुतः ॥ द्रुपदो द्रौपदी तस्य धृष्टद्युम्नादयः सुताः ॥ २ ॥ धृष्टद्युम्नाद् धृष्टकेतुर्भार्म्याः पञ्चालका इमे ॥ योऽजमीढसुतो ह्यन्य ऋक्षः संवरणस्ततः ॥ ३ ॥ तपत्यां सूर्यकन्यायां कुरुक्षेत्रपतिः कुरुः ॥ परीक्षित्सुधनुर्जह्नुर्निषधाश्वः कुरोः सुताः ॥४॥ सुहोत्रोऽभूत् सुधनुषश्च्यवनोथ ततः कृती ॥ वसुस्तस्योपरिचरो बृहद्रथमुखास्ततः ॥ ५ ॥ कुशाम्बमत्स्यप्रत्यग्रचेदिपाद्याश्च चेदिपाः॥बृहद्रथाद् कुशाग्रोऽभूदृषभस्तस्य तत्सुतः ॥६॥ जज्ञे सत्यहितोऽपत्यं पुष्पवांस्तत्सुतो जहुः॥ अन्यस्यां चापि भार्यायां शकले द्वे बृहद्रथात् ॥ ७ ॥

ते मातानें बाहर डारिदिये, जरा राक्षसी उसै मिलाइ जीव जीव ऐसें क्रीडा करत भई, तब सो जरासंध नाम पुत्र होतभयो ॥ ८ ॥ ताते सहदेव भयो, ताकें सोमापि, ताकें श्रुतश्रवा भयो, परीक्षित् अपुत्र भयो जह्नुको बेटा सुरथ होतभयो ॥ ९ ॥ तातें विदूरथ भयो, तातें सार्वभौम भयो, ताको बेटा जयसेन भयो, तातें राधिक भयो, तातें अयुतायु भयो ॥ १० ॥ ताते क्रोधन भयो, तातें देवातिथि भयो, ताकें ऋष्य, ताकें दिलीप, ताकें प्रतीप भयो ॥ ११ ॥ ता प्रतीपके देवापि शंतनु बाल्हीक ये तीनि होतभये देवापि पिताकों राज्य छोडिकै वनमें गयो ॥ १२ ॥ तब शंतनु राजा होतभये, जो शंतनु पहिले जन्ममें महाभिष नाम होतभये, जाजाकू हाथ करिकै छुयै सो बूढोभी मनुष्य नवीन यौवनको प्राप्त होय ॥ १३ ॥

ते मात्रा बहिरुत्सृष्टे जरया चाभिसंधिते ॥ जीव जीवेति क्रीडन्त्या जरासन्धोऽभवत् सुतः ॥ ८ ॥ ततश्च सहदेवोऽभूत् सोमापिर्यच्छ्रुतश्रवाः ॥ परीक्षिदनपत्योऽभूत् सुरथो नाम जाह्नवः ॥ ९ ॥ ततो विदूरथस्तस्मात् सार्वभौमस्ततोऽभवत् ॥ जयसेनस्तत्तनयो राधिकोऽतोऽयुतो ह्यभूत् ॥ १० ॥ ततश्च क्रोधनस्तस्माद्देवातिथिरमुष्य च ॥ ऋष्यस्तस्य दिलीपोऽभूत्प्रतीपस्तस्य चात्मजः ॥ ११ ॥ देवापिः शंतनुस्तस्य बाह्लीक इति चात्मजाः ॥ पितृराज्यं परित्यज्य देवापिस्तु वनं गतः ॥ १२ ॥ अभवच्छन्तनू राजा प्राङ्महाभिषसंज्ञितः ॥ यं यं कराभ्यां स्पृशति जीर्णं यौवनमेति सः ॥ १३ ॥ शान्तिमाप्नोति चैवाग्र्यां कर्मणा तेन शन्तनुः ॥ समा द्वादश तद्राज्ये न ववर्ष यदा विभुः ॥ ॥ १४ ॥ शन्तनुर्ब्राह्मणैरुक्तः परिवेत्ता त्वमग्रभुक् ॥ राज्यं देह्यग्रजायाशु पुरराष्ट्रविवृद्धये ॥ १५ ॥ एवमुक्तो द्विजैर्ज्येष्ठं छन्दयामास सोऽब्रवीत् ॥ तन्मन्त्रिप्रहितैर्विप्रैर्वेदाद्विभ्रंशितो गिरा ॥ १६ ॥

जिस कारण कि उनसै मनुष्योंको शांति प्राप्त होतीथी इसी कर्मसै वे शंतनु नाम होत भये, तिनके राज्यमें बारह वर्ष ताई इंद्रने वर्षा न करी ॥ १४ ॥ ब्राह्मणनने शंतनुसूं कही तुम बडे भैयाके रहित राज्यभोग करोहो, तातें पुर देशके बढाइवेके लिये बडेको राज्य देउ ॥ १५ ॥ ब्राह्मणसे ऐसे सुन शंतनु वनमें जायकें राजाको प्रजापालिवो बडो धर्म है राज्यको स्वीकार करो ऐसें प्रार्थना करी इस्सै पहलैही शंतनुके मंत्रियौंने यह वार्ता अच्छी न समझकर कुछेक ब्राम्हणौंको भेजकर उसै पाखण्ड मतका उपदेश कराकर नास्तिक करादियो जिससै वह राज्यके योग्य न रहा ॥ १६ ॥

वेदकी निंदा करी तब शंतनुको दोष गयो, इंद्रने वर्षा करी देवापि योगमें स्थित ह्वैकें कलापग्राममें वसत भयों ॥ १७ ॥ कलियुगमें चंद्रवंश नष्ट होइगो तब सत्ययुगकी आदिमें फेरी यही वंश चलावेगो बाल्हीकतें सोमदत्त भयो, तातें भूरि भूरिश्रवा ॥ १८ ॥ शल होतभये, शंतनुके गंगामें ज्ञानवान् भीष्म होतभये, जो सब धर्मवेत्तानमें श्रेष्ठ महाभागवत कवि भये ॥ १९ ॥ वीरनके यूथमें श्रेष्ठ जिन्होने युद्धमें परशुरामको प्रसन्न कियो, शंतनुकें दाशकन्यामें चित्रांगद पुत्र होतभयो ॥ २० ॥ छोटो विचित्रवीर्य्य होत भयो, चित्रांगदको चित्रांगद नाम गंधर्वनें मारचो, जा सत्यवतीमे साक्षात् हरिकी कला ॥ २१ ॥ वेदके रक्षक मुनिकृष्णनाम श्रीव्यासजी महाराज होत भयो, जिनते मैं भयोहूं, और यह श्रीभागवत पठतभयो, भगवान् व्यासजी अपनें शिष्य पैलादिकौंको छोडिकै ॥ २२ ॥ मुझ शांत पुत्रके अर्थ परम गोप्य यह श्रीमद्भागवत पुराण गावत भये, अर्थात् सिखावत भये, स्वयंवरतें भीष्मजीसें बलतें हरी हुई काशीराजकी बेटी अंबिका अंबालिकाको विचित्रवीर्य्य व्याहत भयो, तिनमें आसक्त हृदय भयो क्षयरोगनें ग्रस्यो ताहीरोग करिकै मरचो ॥ २३ ॥ २४ ॥ अपुत्र भैयाके क्षेत्रमें माताकी आज्ञासें व्यासदेवजी धृतराष्ट्र पांडु विदुर ये पुत्र उपजावत भये ॥ २५ ॥ धृतराष्ट्रकें गांधारीमें सौ पुत्र होतभये तिनमें दुर्योधन जेठो भयो दुःशला कन्या भई ॥ २६ ॥

वेदवादातिवादान्वै तदा देवो ववर्ष ह ॥ देवापिर्योगमास्थाय कलापग्राममाश्रितः ॥ १७ ॥ सोमवंशे कलौ नष्टे कृतादौ स्थापयिष्यति ॥ बाह्लीकात्सौमदत्तोऽभूद्भूरिर्भूरिश्रवास्ततः ॥ १८ ॥ शलश्च शन्तनोरासीद्गङ्गायां भीष्म आत्मवान् ॥ सर्वधर्मविदां श्रेष्ठो महाभागवतः कविः ॥ १९ ॥ वीरयूथाग्रणीर्येन रामोऽपि युधि तोषितः ॥ शन्तनोर्दाशकन्यायां जज्ञे चित्राङ्गदः सुतः ॥ २० ॥ विचित्रवीर्यश्चावरजो नाम्ना चित्राङ्गदो हतः ॥ यस्यां पराशरात्साक्षादवतीर्णो हरेः कला ॥२१ ॥ वेदगुप्तो मुनिः कृष्णो यतोऽहमिदमध्यगाम् ॥ हित्वा स्वशिष्यान्पैलादीन् भगवान्बादरायणः ॥२२॥ मह्यं पुत्राय शान्ताय परं गुह्यमिदं जगौ ॥ विचित्रवीर्योऽथोवाह काशिराजसुते बलात् ॥२३॥ स्वयंवरादुपानीते अम्बिकाऽम्बालिके उभे ॥ तयोरासक्तहृदयो गृहीतो यक्ष्मणा मृतः ॥२४॥ क्षेत्रेऽप्रजस्य वै भ्रातुर्मात्रोक्तो बादरायणः ॥ धृतराष्ट्रं च पाण्डुं च विदुरं चाप्यजीजनत ॥२५॥ गान्धार्यां धृतराष्ट्रस्य जज्ञे पुत्रशतं नृप ॥ तत्र दुर्योधनो ज्येष्ठो दुःशला चापि कन्यका ॥ २६ ॥

वनमै मृगके शापतें मैथुनते रुके पांडुकी स्त्री कुंतीमें धर्म पवन इंद्रतें युधिष्ठिरादि तीनि पुत्र भये ॥ २७ ॥ माद्रीमें अश्विनीकुमारतें नकुल,सहदेव होतभये, पांचो युधिष्ठिरादिकतें द्रौपदीमें पांच पुत्र होतभये जो तुह्मारे पितर थे ॥ २८ ॥ युधिष्ठिरतैं प्रतिविंध्य भयो, भीमसेनतें श्रुतसेन भयो, अर्जुनतें श्रुतकीर्ति भयो, नकुलके शतानीक भयो ॥ २९ ॥ सहदेवको बेटा श्रुतिकर्मा भयो, ऐसेंई पांचोंनकी और स्त्री हैं तिनमें भये युधिष्ठिरतें पौरवीमें देवक भयो भीमसेनतें हिडंबामें घटोत्कच भयो, भीमसेनतें कालीमें सर्वगत भयो, सहदेवतें सुहोत्रकू या पर्वतकी बेटी विजया उपजावतभई

शापान्मैथुनरुद्धस्य पाण्डोः कुन्त्यां महारथाः ॥ जाता धर्मानिलेन्द्रेभ्यो युधिष्ठिरमुखास्त्रयः ॥ २७ ॥ नकुलः सहदेवश्च माद्र्यां नासत्यदस्रयोः ॥ द्रौपद्यां पञ्च पञ्चभ्यः पुत्रास्ते पितरोऽभवन् ॥ २८ ॥ युधिष्ठिरात् प्रतिविन्ध्यः श्रुतसेनो वृकोदरात् ॥ अर्जुनाच्छ्रुतकीर्तिस्तु शतानीकस्तु नाकुलिः ॥ २९ ॥ सहदेवसुतो राजन् श्रुतकर्मा तथाऽपरे ॥ युधिष्ठिरात्तु पौरव्यां देवकोऽथ घटोत्कचः ॥ ३० ॥ भीमसेनाद्धिडिम्बायां काल्यां सर्वगतस्ततः ॥ सहदेवात्सुहोत्रं तु विजयाऽसूत पार्वती ॥ ३१ ॥ करेणुमत्यां नकुलो निरमित्रं तथार्जुनः ॥ इरावन्तमुलूप्यां वै सुतायां बभ्रुवाहनम् ॥ मणिपूरपतेः सोऽपि तत्पुत्रः पुत्रिकासुतः ॥ ३२ ॥ तव तातः सुभद्रायामभिमन्युरजायत ॥ सर्वातिरथजिद्वीर उत्तरायां ततो भवान् ॥३३॥ परिक्षीणेषु कुरुषु द्रौणेर्ब्रह्मास्त्रतेजसा ॥ त्वं च कृष्णानुभावेन सजीवो मोचितोऽन्तकात् ॥ ३४ ॥ तवेमे तनयास्तात जनमेजयपूर्वकाः ॥ श्रुतसेनो भीमसेन उग्रसेनश्च वीर्यवान् ॥ ३५ ॥

॥ ३० ॥ ३१ ॥ करेणुमतीमें नकुल निरमित्र उपजावत भयो, ऐसें अर्जुन उलूपीमें इरावंत उपजावत भयो, तैसेंई मणिपूरपतिकी बेटीमें बभ्रुवाहनको उपजावत भयो, सो बभ्रुवाहन अर्जुनको बेटा है, पर नानाने गोदलियो यातें मणिपूरपतिको पुत्र कहायो ॥ ३२ ॥ तेरो पिता अभिमन्यु सुभद्रामें होतभयो, सो संपूर्ण अथिरथीनको जीतनवारो भयो, तातें हे राजापरीक्षित ! उत्तरामें तुम भये ॥ ३३ ॥ कौरवनके नष्टभये संते अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रके तेज करिकैं श्रीकृष्णके प्रभाव करिकैं जीवसहित मृत्युतें तुम छूटे ॥ ३४ ॥ हे तात! तेरे ये पुत्र हैं जनमेजय बडो श्रुतसेन पराक्रमी उग्रसेन ॥ ३५ ॥

जनमेजय तक्षकतें तुह्मारी मृत्यु भई सुनिकैं क्रोधयुक्त सर्पयज्ञकी अग्निमें सर्पोंको होम करैगो ॥ ३६ ॥ कवषको बेटा तुर नाम पुरोहित करिकैं सब पृथ्वी जीतिकैं यज्ञन करिकैं पूजन करैगो, अश्वमेध यज्ञ करैगो ॥ ३७ ॥ ताको पुत्र शतानीक होइगो, सो याज्ञवल्क्यतें तीनों वेद पढैगो, उसै अस्त्रज्ञान और क्रियाज्ञान शौनकतें प्राप्त होइगो ॥ ३८ ॥ ताको बेटा सहस्रानीक होइगो, ताकें अश्वमेधज होइगो, ताके असीमकृष्ण होइगो ताकें नेमिचक्र होइगो ॥ ३९ ॥ गंगासै हस्तिनापुर जब वहि जायगो तब यह निमिचक्र कौशांबी पुरीमें वसेगो, तातें चित्ररथ होइगो तातें कविरथ

जनमेजयस्त्वां विदित्वा तक्षकान्निधनं गतम् ॥ सर्पान् वै सर्पयागाग्नौ स होष्यति रुषाऽन्वितः ॥३६॥ कावषेयं पुरोधाय तुरं तुरगमेधयाट्॥ समन्तात्पृथिवीं सर्वां जित्वा यक्ष्यति चाध्वरैः ॥३७॥ तस्य पुत्रः शतानीको याज्ञवल्क्यात्त्रयीं पठन् ॥ अस्त्रज्ञानं क्रियाज्ञानं शौनकात्परमेष्यति ॥ ३८ ॥ सहस्रानीकस्तत्पुत्रस्ततश्चैवाश्वमेधजः ॥ असीमकृष्णस्तस्यापि नेमिचक्रस्तु तत्सुतः ॥ ३९ ॥ गजाह्वये हृते नद्यां कौशाम्ब्यां साधु वत्स्यति ॥ उक्तस्ततश्चित्ररथस्तस्मात्कविरथः सुतः॥४०॥ तस्माच्च वृष्टिमांस्तस्य सुषेणोऽथ महीपतिः ॥ सुनीथस्तस्य भविता नृचक्षुर्यत्सुखीनलः ॥ ४१ ॥ परिप्लवः सुतस्तस्मान्मेधावी सुनयात्मजः ॥ नृपंजयस्ततो दूर्वस्तिमिस्तस्माज्जनिष्यति ॥ तिमेर्बृहद्रथस्तस्माच्छतानीकः सुदासजः ॥ ४२ ॥ शतानीकाद्द् दुर्दमनस्तस्यापत्यं बहीनरः ॥ दण्डपाणिर्निमिस्तस्य क्षेमको भविता नृपः ॥ ४३ ॥ ब्रह्मक्षत्रस्य वै प्रोक्तो वंशो देवर्षिसत्कृतः ॥ क्षेमकं प्राप्य राजानं संस्थां प्राप्स्यति वै कलौ ॥ ४४ ॥ अथ मागधराजानो भवितारो वदामि ते ॥ भविता सहदेवस्य मार्जारिर्यच्छ्रुतश्रवाः ॥ ४५ ॥

होइगो ॥ ४० ॥ तातें वृष्टिमान् ताकें सुषेण ताको सुनीथ राजा होइगो, ताके नृचक्षु ताकें सुखीनल ॥ ४१ ॥ तातें पुत्र पारिप्लव होइगो, ताके सुनय, ताकें मेधावी, ताकें नृपंजय ताकें दूर्व तातें तिमि होइगो, तिमिकें बृहद्रथ तातें सुदास ताकें शतानीक ॥ ४२ ॥ तातें दुर्दमन ताको बेटा बहीनर, ताकै दंडपाल ताके निमि ताके क्षमक होइगो ॥ ४३ ॥ ब्रह्म क्षत्रको यह वंश कह्यो याको देवता ऋषिनने सत्कार कियो, यह क्षेमक राजाको पाइकैं कलियुगमें यह वंश समाप्तिको प्राप्त होइगो ॥ ४४ ॥ याके अनंतर होनहार मगधके वंशके राजा तेरे अर्थ कहूंहूं सहदेवकें

मार्जार होइगो, जाकें श्रुतश्रवा होइगो ॥ ४५ ॥ तातें अयुतायु ताकें निरमित्र, ताकें सुनक्षत्र, तातें बृहत्सेन, ताकें कर्मजित् ॥ ४६ ॥ तातें सृतंजय, ताकें विप्र, ताकें शुचि, ताके क्षेम, ताके सुव्रत, ताकें धर्मसूत्र, ताकें शम होइगो ॥४७॥ ताकें द्युमत्सेन, ताकें सुमति, ताकें सुबल ताकें सुनीत, ताकें सत्यजित, ताकें विश्वजित, ताकें रिपुंजय ये बृहद्रथके वंशके राजा कहे कलियुगके हजार वर्षमें होनहार हैं ॥ ४८ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां नवमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥ तेईसके अध्यायमें अनुद्रुह्यु तुर्वसुको वंश क्रमसों वर्णन करैं हैं, और यदुको वंश ज्यामघकी उत्पत्तितक कहैं हैं ॥ पूरुको वंश तो कह्यो अब चौथे अनुको वंश शुकदेवजी कहैं हैं अनुकें सभानर चक्षु परोक्ष ये तीनी पुत्र होतभये, सभानरतें कालनर भयो, ताको पुत्र

ततोऽयुतायुस्तस्यापि निरामित्रोऽथ तत्सुतः ॥ सुनक्षत्रः सुनक्षत्राद् बृहत्सेनोऽथ कर्मजित्॥४६॥ ततः सृतंजयाद् विप्रः शुचिस्तस्य भविष्यति ॥ क्षेमोऽथ सुव्रतस्तस्माद् धर्मसूत्रः शमस्ततः ॥४७॥ द्युमत्सेनोऽथ सुमतिः सुबलो जनिता ततः ॥ सुनीथः सत्यजिदथ विश्वजिद् यद्रिपुंजयः ॥ बार्हद्रथाश्च भूपाला भाव्याः साहस्रवत्सरम् ॥४८॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अनोः सभानरश्चक्षुः परोक्षश्च सुतास्त्रयः॥ सभानरात् कालनरः सृंजयस्तत्सुतस्ततः ॥ १ ॥ जनमेजयस्तस्य पुत्रो महाशीलो महामनाः ॥ उशीनरस्तितिक्षुश्च महामनस आत्मजौ ॥ शिबिर्वनः शमिर्दक्षश्चत्वारोशीनरात्मजाः ॥ २ ॥ वृषादर्भः सुवीरश्च भद्रः कैकेय आत्मजाः ॥ शिबेश्चत्वार एवासंस्तितिक्षोश्च रुशद्रथः॥३॥ततो हेमोऽथ सुतपा बलिः सुतपसोऽभवत्॥अङ्गवङ्गकलिङ्गाद्याः सुह्मपुण्ड्रान्ध्रसंज्ञिताः ॥ ४ ॥ जज्ञिरे दीर्घतमसो बलेः क्षेत्रे महीक्षितः ॥ चक्रुः स्वनाम्ना विषयान्षडिमान्प्राच्यकांश्च ते ॥ ५ ॥

सृंजय भयो ॥ १ ॥ ताकें जनमेजय, ताकें महाशील ताके महामना भयो, उशीनर तितिक्षु ये महामनाके पुत्र होतभये, शिबि बल शमी दक्ष ये चारि उशीनरकें पुत्र भये ॥ २ ॥ वृषादर्भ सुवीर भद्र कैकय ये चारि शिबिके बेटा भये तितिक्षुकें उशद्रथ भयो ॥ ३ ॥ तातें हेम भयो, ताकें सुतपा भयो सुतपाकें बल भयो, अंग वंग कलिंग इनतें आदि लैकें सुह्म पुंड्र अंध्र ये संज्ञाके राजा बलके क्षेत्रमें दीर्घतमातें होतभये, ते राजा पूर्वमें अपने अपने नामके छै देश करत भये ॥ ४ ॥ ५ ॥

अंगतें खनपान, तातें दिविरथ, ताको बेटा धर्मरथ भयो, ताकें चित्ररथ भयो, सो संतानकरिकैं हीन भयो ॥ ६ ॥ वही राजा रोमपाद विख्यात भयो, ताके अर्थ दशरथ सखा अपनी कन्या शांता देतभयो, ताय शृंगीऋषि व्याहतभये ॥ ७ ॥ इंद्रके नवर्षेते हिरनीके बेटा शृंगीऋषिकू स्त्री नात्य संगीत वादित्र विभ्रम आलिंगन पूजन करिकैं लावतभई ॥ ८ ॥ सो शृंगीऋषि अपुत्र राजाको इंद्रकी इष्टिकरिकैं पुत्र देतभये, जाकरिकैं अपुत्र दशरथ पुत्रोंको प्राप्तहोतभये ॥ ९ ॥ रोमपादतें चतुरंग भयो, ताके पृथुलाक्ष भयो ताके बृहद्रथ, बृहत्कर्मा, बृहद्भानु, ये पुत्र भये ॥ १० ॥ बृहद्रथतें

खनपानोऽङ्गतो जज्ञे तस्माद्दिविरथस्ततः ॥ सुतो धर्मरथो यस्य जज्ञे चित्ररथोऽप्रजः ॥६॥ रोमपाद इति ख्यातस्तस्मै दशरथः सखा ॥ शान्तां स्वकन्यां प्रायच्छदृष्यशृङ्ग उवाह ताम् ॥७॥ देवेऽवर्षति यं रामा आनिन्युर्हरिणीसुतम् ॥ नात्यसङ्गीतवादित्रैर्विभ्रमालिङ्गनार्हणैः ॥ ८ ॥ स तु राज्ञोऽनपत्यस्य निरूप्येष्टिं मरुत्वतः ॥ प्रजामदाद्दशरथो येन लेभेऽप्रजः प्रजाः ॥ ९ ॥ चतुरङ्गो रोमपादात्पृथुलाक्षस्तु तत्सुतः ॥ बृहद्रथो बृहत्कर्मा बृहद्भानुश्च तत्सुताः ॥ १० ॥ आद्याद्बृहन्मनास्तस्माज्जयद्रथ उदाहृतः ॥ विजयस्तस्य संभूत्यां ततो धृतिरजायत ॥ ११ ॥ ततो धृतव्रतस्तस्य सत्कर्माऽधिरथस्ततः ॥ योऽसौ गङ्गातटे क्रीडन्मञ्जूषाऽन्तर्गतं शिशुम् ॥ १२ ॥ कुन्त्यापविद्धं कानीनमनपत्योऽकरोत् सुतम् ॥ वृषसेनः सुतस्तस्य कर्णस्य जगतीपतेः ॥ १३ ॥ द्रुह्योश्च तनयो बभ्रुः सेतुस्तस्यात्मजस्ततः ॥ आरब्धस्तस्य गान्धारस्तस्य धर्मसुतो धृतः ॥ १४ ॥ धृतस्य दुर्मनास्तस्मात्प्रचेताः प्राचेतसं शतम् ॥ म्लेच्छाधिपतयोऽभूवन्नुदीचीं दिशमाश्रिताः ॥ १५ ॥

बृहन्मना भयो, ताकें जयद्रथ भयो, ताकें संभूतीमें धृत होतभयो ॥ ११ ॥ तातें धृतव्रत भयो ताकें सत्यकर्मा, ताकें अधिरथ भयो, क्रीडा करते अधिरथ गंगातीरमें संदूकके भीतर एक बालक देखतभये जिसै कुंतीनें कन्यापनमें हौंनेके कारण त्याग किया अपुत्र अधिरथ तिसे पुत्र करत भयो ताकर्णकें वृषसेन भयो ॥ १२ ॥ १३ ॥ ययातिके पुत्र द्रुह्युके बभ्रु होतभयो, ताकें सेतु भयो, ताकें आरब्ध ताकें गांधार ताकें धर्म ताके धृत ॥ १४ ॥ धृतकें दुर्दम भयो, ताकें प्रचेता भयो, प्रचेताकें पुत्र म्लेच्छनके राजा उत्तर दिशामें वसतभये ॥ १५ ॥

तुर्वसूको बेटा वन्ही भये, ताकें भर्ग भयो ताकें भानुमान ताकें त्रिभानु ताको पुत्र करंधम उदारबुद्धि भयो ॥ १६ ॥ ताको बेटा मरुत भयो सो अपुत्र भयो या कारण पुरुके वंशमें भये दुष्यंतकूं पुत्र मानत भयो सो दुष्यंत राजा कामनासै पीछे अपने वंशकूं प्राप्त होत भयो ॥ १७ ॥ हे राजन्! अब ययातिको जेठो बेटे यदुको वंश वर्णन करूंहूं, हे नरनमें श्रेष्ठ! जो वंश मनुष्यनके सब पापनको हरैहै बडो पवित्र है ॥१८॥ मनुष्य यदुको वंश सुनिकैं संपूर्ण पापनकरिकैं मुक्त होयहै, जा वंशमें भगवान् परमात्मा नराकृति अवतार लेतभये ॥ १९ ॥ यदुके सहस्रजित, क्रोष्टा, अनल, रिपु ये चारि बेटा भये तिनमें सहस्रजित्को बेटा शतजित् भयो ॥ २० ॥ ताकें महाहय वेणुहय हैहय होतभये हैहयको बेटा धर्म भयो, ताके नेत्र भयो, ताकें कुंत ताकें सोहंजी, ताकें महिष्मान् ताके भद्रसेन ॥ २१ ॥ ताकें दुर्मद ताकें धनक भयो, कृतवीर्य्य कृताग्नी कृतवर्मा कृतौजा ये धनकके बेटा भये ॥ २२ ॥ कृतवीर्य्यको बेटा अर्जुन भयो, सो सातों द्वीपको पति भयो, जिसने हरिके अंश दत्तात्रेयतें योग और महागुण पाये ॥ २३ ॥ कृतवीर्य्यके बेटा अर्जुनकी गतिको कोईभी राजा यज्ञ दान तप योगी श्रुति वीर्य्य जयादिक इन करिकैं नहीं प्राप्त भये ॥ २४ ॥

तुर्वसोश्च सुतो वह्निर्वह्नेर्भर्गोऽथ भानुमान् ॥ त्रिभानुस्तत्सुतोऽस्यापि करंधम उदारधीः ॥ १६ ॥ मरुतस्तत्सुतोऽपुत्रः
पुत्रं पौरवमन्वभूत् ॥ दुष्यन्तः स पुनर्भेजे स्ववंशं राज्यकामुकः ॥ १७ ॥ ययातेर्ज्येष्ठपुत्रस्य यदोर्वंशं नरर्षभ ॥ वर्णयामि
महापुण्यं सर्वपापहरं नृणाम् ॥ १८ ॥ यदोर्वंशं नरः श्रुत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ यत्रावतीर्णो भगवान् परमात्मा
नराकृतिः ॥ १९ ॥ यदोः सहस्रजित्क्रोष्टा नलो रिपुरिति स्मृताः ॥ चत्वारः सूनवस्तत्र शतजित्प्रथमात्मजः
॥ २० ॥ महाहयो वेणुहयो हैहयश्चेति तत्सुताः ॥ धर्मस्तु हैहयसुतो नेत्रः कुन्तेः पिता ततः ॥ सोहंजिरभवत्कुन्तेर्महिष्मान्
भद्रसेनकः ॥ २१ ॥ दुर्मदो भद्रसेनस्य धनकः कृतवीर्यसूः ॥ कृताग्निः कृतवर्मा च कृतौजा धनकात्मजः ॥
॥ २२ ॥ अर्जुनः कृतवीर्यस्य सप्तद्वीपेश्वरोऽभवत् ॥ दत्तात्रेयाद्धरेरंशात् प्राप्तयोगमहागुणः ॥ २३ ॥ न नूनं कार्तवीर्यस्य
गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः ॥ यज्ञदानतपोयोगश्रुतवीर्यजयादिभिः ॥ २४ ॥

बल और चित्तकी पूर्ण सामर्थ्यसे सहस्रबाहु पचासी हजार वर्षताई अक्षय छै इंद्रीनको विषयभोग करतभयो और जाने याको स्मरण कियो ताके धनको नाश न भयो ॥ २५ ॥ ताकें हजार पुत्र भये, तिनमें संग्राममें पांच बचे जयध्वज सूरसेन वृषभ मधु ऊर्जित पांच बचे ॥ २६ ॥ जयध्वजतें तालजंघ भयो, ताकें सौ पुत्र भये, तालजंघ क्षत्रीनको कुल और्वऋषीके तेजकरिकै सगरनें संग्राममें नाशकियो ॥ २७ ॥ तिनमें बडो वीतिहोत्र ताकें मधुर भयो ताकें वृष्णि भयो ताकें सौ पुत्र भये तिनमें वृष्णी जेठो भयो, जातें यह कुल चल्यो ॥ २८ ॥ हे राजा! यदु मधु और वृष्णीके नामसे उनके

पञ्चाशीतिसहस्राणि ह्यव्याहतबलः समाः ॥ अनष्टवित्तस्मरणो बुभुजेऽक्षय्यषट्वसु ॥ २५ ॥ तस्य पुत्रसहस्रेषु पञ्चैवोर्वरिता मृधे ॥ जयध्वजः शूरसेनो वृषभो मधुरूर्जितः ॥ २६ ॥ जयध्वजात् तालजङ्घस्तस्य पुत्रशतं त्वभूत् ॥ क्षत्रं यत् तालजङ्घाख्यमौर्वतेजोपसंहृतम् ॥ २७ ॥ तेषां ज्येष्ठो वीतिहोत्रो वृष्णिः पुत्रो मधोः स्मृतः ॥ तस्य पुत्रशतं त्वासीद् वृष्णिज्येष्ठं यतः कुलम् ॥ २८ ॥ माधवा वृष्णयो राजन् यादवाश्चेति संज्ञिताः ॥ यदुपुत्रस्य च क्रोष्टोः पुत्रो वृजिनवांस्ततः ॥ २९ ॥ श्वाहिस्ततो रुशेकुर्वै तस्य चित्ररथस्ततः ॥ शशबिन्दुर्महायोगी महाभोजो महानभूत् ॥ ३० ॥ चतुर्दशमहारत्नश्चक्रवर्त्यपराजितः ॥ तस्य पत्नीसहस्राणां दशानां सुमहायशाः ॥ ३१ ॥ दशलक्षसहस्राणि पुत्राणां तास्वजीजनत् ॥ तेषां तु षट् प्रधानानां पृथुश्रवस आत्मजः ॥ ३२ ॥ धर्मो नामोशनास्तस्य हयमेधशतस्य याट् ॥ तत्सुतो रुचकस्तस्य पञ्चाशन्नात्मजाः शृणु ॥ पुरुजिद्रुक्मरुक्मेषुपृथुज्यामघसंज्ञिताः ॥ ३३ ॥

वंशके यादव माधव और वृष्णी कहाये यदुके पुत्र क्रोष्टाकें वृजिनवान होतभयो ॥ २९ ॥ ताकें स्वाहित, ताकें रुशेकु, ताकें चित्ररथ, ताकें शशिबिंदु, सो बडो योगी भयो ताकें महाभोज होतभयो ॥ ३० ॥ याके पास चौदह महारत्न हे यह चक्रवर्ती सबको जीतनवारो भयो, ताकें दशहजार स्त्री भई ॥ ३१ ॥ तिनमें दश लाखहजार बेटा भये, तिनमें छः उत्तम भये, तिनमें पृथुश्रवाकें ॥ ३२ ॥ धर्म नामक पुत्र भयो, ताके सौ अश्वमेध यज्ञ करनवारे उशना भये; ताको बेटा रुचक भयो, ताके पांच पुत्र भये, तिनें सुनो पुरुजित रुक्म रुक्मेषु पृथु ज्यामघ ॥ ३३ ॥

ज्यामघ अपुत्र भयो अपनी शैब्या रानीके भयतें और भार्य्याके संग विवाह न करसक्यो एकदिना स्वयंवरमें शत्रुका तिरस्कार करवाके घरतें भोज्या नाम कन्या हरतभयो ॥३४॥ रथमें बैठी कन्याको देखिकैं क्रोधकरिकैं शैब्या पतिसों बोली, हे कपटी ! यह कौन है, मेरे बैठिबेके रथमे बैठी है ॥३५॥ तब ज्यामघ बोल्यो यह तेरे बेटाकी वहू है, तब शैब्या हँसिकैं पतिसों बोली मैं वांझ हूं मेरे सौति नही जाको बेटा होइ, यह बेटाकी वहू कैसें होसके ॥ ॥३६॥ ज्यामघ बोल्यो हे रानी! जापुत्रको तू उपजावेगी, ताकी यह वहू होइगी, ऐसें स्त्रीके भयके मारे कंपित अंग राजाको प्राण संकट देखिके पहिले पूजे विश्वेदेवता पितर राजाके पुत्र होइ ऐसे अनुमोदन करतभये ॥ ३७ ॥ शैब्या गर्भको धारण करत भई समयमें पुत्र उपजायो, सो विदर्भ नाम

ज्यामघस्त्वप्रजोऽप्यन्यां भार्यां शैब्यापतिर्भयात् ॥ नाविन्दच्छत्रुभवनाद् भोज्यां कन्यामहारषीत् ॥३४॥ रथस्थां
तां निरीक्ष्याह शैब्या पतिममर्षिता ॥ केयं कुहक मत्स्थानं रथमारोपितेति वै ॥ ३५ ॥ स्नुषा तवेत्यभिहिते स्मयन्ती
पतिमब्रवीत् ॥ अहं वन्ध्याऽसपत्नी च स्नुषा मे युज्यते कथम् ॥ ३६ ॥ जनयिष्यसि यं राज्ञि तस्येयमुपयुज्यते ॥
अन्वमोदन्त तद् विश्वेदेवाः पितर एव च ॥ ३७ ॥ शैब्या गर्भमधात् काले कुमारं सुषुवे शुभम् ॥ स विदर्भ इति प्रोक्त
उपयेमे स्नुषां सतीम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे नवमस्कन्धे यदुवंशानुवर्णने त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ तस्यां विदर्भोऽजनयत् पुत्रौ नाम्ना कुशक्रथौ ॥ तृतीयं रोमपादं च विदर्भकुलनन्दनम् ॥ १ ॥
रोमपादसुतो बभ्रुर्बभ्रोः कृतिरजायत ॥ उशिकस्तत्सुतस्तस्माच्चेदिश्चैद्यादयो नृप ॥ २ ॥ क्रथस्य कुन्तिः पुत्रोऽभूद्
धृष्टिस्तस्याथ निर्वृतिः ॥ ततो दशार्हो नाम्नाऽभूत् तस्य व्योमः सुतस्ततः ॥ ३ ॥

कह्यो, सो वा भोज्याको व्याहत भयो सौ पुत्रवधूही भई ॥ ३८ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां नवमस्कन्धे त्रयोविंशोध्यायः ॥ ॥ २३ ॥ चोविसके अध्यायमें विदर्भके तीनि पुत्र होतभये तिनके नाना प्रकारके वंश रामकृष्णके जन्म ताई वर्णन करैं हैं ॥ शुकदेवजी कहै हैं विदर्भ भोज्यामें कुश और क्रथ ये दो पुत्र उपजावतभयो, तीसरो रोमपाद भयो, सो विदर्भ कुलको आनंद देनवारो भयो ॥ १ ॥ रोमपादको बेटा बभ्रु भयो, बभ्रुके कृत भयो, कृतके उशीक भयो, ताके दमघोषादिक राजा भये ॥ २ ॥ क्रथके कुंत भयो, ताके धृष्टी भयो

ताके निर्वृति भयो, ताते दशार्ह नाम भयो ताके व्योम भयो ॥ ३ ॥ ताके जीमूत भयो, ताके विकृत भयो, ताके भीमरथ भयो, ताते नवरथ भयो
ताके दशरथ भयो ॥ ४ ॥ ताके शकुनि भयो, ताकें करंभी, ताको बेटा देवरात भयो, ताकें देवक्षत्र भयो, ताके मधु, ताके कुरुवश, ताके अनु भयो
॥ ५ ॥ अनुकें पुरुहोत्र भयो, ताकें आयु, ताके सात्वत सात्वतके भजमान, भजि, द्रव्य; वृष्णी, देवावृध, अंधक और महाभोज ये सात पुत्र
भये, भजमानके निम्लोची भयो, किंकिण वृष्णी ये एक स्त्रीमें भये ॥ ६ ॥ ७ ॥ दूसरीमें शताजित सहस्राजित अयुताजित ये तीनि भये ॥ ८ ॥

जीमूतो विकृतिस्तस्य यस्य भीमरथः सुतः ॥ ततो नवरथः पुत्रो जातो दशरथस्ततः ॥ ४ ॥ करम्भिः शकुनेः पुत्रो
देवरातस्तदात्मजः ॥ देवक्षत्रस्ततस्तस्य मधुः कुरुवशादनुः ॥ ५ ॥ पुरुहोत्रस्त्वनोः पुत्रस्तस्यायुः सात्वतस्ततः ॥
भजमानो भजिर्दिव्यो वृष्णिर्देवावृधोऽन्धकः ॥ ६ ॥ सात्वतस्य सुताः सप्त महाभोजश्च मारिष ॥ भजमानस्य निम्लोचिः किंकिणो वृष्णिरेव च ॥ ७ ॥ एकस्यामात्मजाः पत्न्यामन्यस्यां च त्रयः सुताः ॥ शताजिच्च सहस्राजिदयुताजिदिति प्रभो ॥ ८ ॥ बभ्रुर्देवावृधसुतस्तयोः श्लोकौ पठन्त्यमू ॥ यथैव शृणुमो दूरात् संपश्यामस्तथाऽन्तिकात् ॥ ९ ॥ बभ्रुः श्रेष्ठो मनुष्याणां देवैर्देवावृधः समः ॥ पुरुषाः पञ्चषष्टिश्च षट्सहस्राणि चाष्ट च ॥ १० ॥ येऽमृतत्वमनुप्राप्ता बभ्रोर्देवावृधादपि ॥ महाभोजोऽपि धर्मात्मा भोजा आसंस्तदन्वये ॥ ११ ॥ वृष्णेः सुमित्रः पुत्रोऽभूद् युधाजिच्च परंतप ॥ शिनिस्तस्यानमित्रश्च निम्नोऽभूदनमित्रतः ॥ १२ ॥ सत्राजितः प्रसेनश्च निम्नस्याप्यासतुः सुतौ ॥ अनमित्रसुतो योन्यः शिनिस्तस्याथ सत्यकः ॥ १३ ॥

देवावृद्धको बेटा बभ्रु भयो, तिन दोनोनके ये श्लोक गाये हैं, जैसे दूरितें हम देवावृध और बभ्रुको सुन्तै थे वैसेही निकटमें देखते हैं ॥ ९ ॥ बभ्रु
मनुष्यनमें श्रेष्ठ है देवावृध देवतानके समान है छः हजार और तिहत्तर ॥ १० ॥ बभ्रु और देवावृधके उपदेशसै मोक्षकौ प्राप्त भये सात्वतका सप्तम
पुत्र महाभोज महाधर्मात्मा भयो जाके वंशमें भोज नामक कुल भयो ॥ ११ ॥ वृष्णीको बेटा सुमित्र भयो, ताके युधाजित भयो, हे वैरिनके
नाश करनवारे राजा! ताकें सिनि भयो, ताके अनमित्र भयो, ताकें निम्न भयो ॥ १२ ॥ निम्नकें सत्राजित, और प्रसेन भए अनमित्रको बेटा दूसरो

सिनि भयो, तातें सत्यक भयो ॥ १३ ॥ सत्यकको बेटा युयुधान, ताकै जय, ताके कुणी, ताकें युगंधर, अनमित्रको तीसरे पुत्र वृष्णोके ॥ १४ ॥ श्वफल्क चित्ररथ भये, श्वफल्कतै गांदिनीमें एक अक्रूर विख्यात और बारह पुत्र और होत भये ॥ १५ ॥ तिनके नाम ये हैं आसंग, सारमेय, मृदुर, मृदवित्, गिरि, धर्मवृद्ध, सुकर्मा, क्षेमोपेक्ष, अरिमर्दन, ॥ १६ ॥ शत्रुघ्न, गंधमाद, प्रतिबाहु, ये बारह भये, तिनकी बहनि सुचीरा भई, और अक्रूरके दो बेटा भये ॥ १७ ॥ देववान उपदेव पृथु विदूरथते आदि लैकें चित्ररथके बेटा भये, ऐसें बहुत वृष्णीके पुत्र होतभये ॥ १८ ॥ कुकुर,

युयुधानः सात्यकिर्वै जयस्तस्य कुणिस्ततः ॥ युगन्धरोऽनामित्रस्य वृष्णिः पुत्रोपरस्ततः ॥ १४ ॥ श्वफल्कश्चित्ररथश्च
गान्दिन्यां च श्वफल्कतः ॥ अक्रूरप्रमुखा आसन् पुत्रा द्वादश विश्रुताः ॥ १५ ॥ आसङ्गः सारमेयश्च मृदुरो
मृदुविद्गिरिः ॥ धर्मवृद्धः सुकर्मा च क्षेत्रोपेक्षोऽरिमर्दनः ॥ १६ ॥ शत्रुघ्नो गन्धमादश्च प्रतिबाहुश्च द्वादश ॥ तेषां
स्वसा सुचीराख्या द्वावक्रूरसुतावपि ॥ १७ ॥ देववानुपदेवश्च तथा चित्ररथात्मजाः ॥ पृथुर्विदूरथाद्याश्च बहवो वृष्णिनन्दनाः
॥ १८ ॥ कुकुरो भजमानश्च शुचिः कम्बलबर्हिषः ॥ कुकुरस्य सुतो वह्निर्विलोमा तनयस्ततः ॥ १९ ॥ कपोतरोमा
तस्यानुः सखा यस्य च तुम्बुरुः ॥ अन्धको दुन्दुभिस्तस्मादरिद्योतः पुनर्वसुः ॥ २० ॥ तस्याहुकश्चाहुकी च कन्या
चैवाहुकात्मजौ ॥ देवकश्चोग्रसेनश्च चत्वारो देवकात्मजाः ॥ २१ ॥ देववानुपदेवश्च सुदेवो देववर्धनः ॥ तेषां स्वसारः
सप्तासन् धृतदेवादयो नृप ॥ २२ ॥ शान्तिदेवोपदेवा च श्रीदेवा देवरक्षिता ॥ सहदेवा देवकी च वसुदेव उवाह ताः ॥ २३ ॥
कंसः सुनामा न्यग्रोधः कङ्कः शङ्कुः सुहुस्तथा ॥ राष्ट्रपालोऽथ सृष्टिश्च तुष्टिमानौग्रसेनयः ॥ २४ ॥

भजमान, शुचि, कंबल, बर्हिष, ये अंधकके पुत्र भये, कुकुरके पुत्र वृष्णी भयो, ताके विलोमा भयो ॥ १९ ॥ ताके कपोतरोमा भयो ताके अनु भयो जाको तुंबरु नाम गंधर्व सखा होतभयो अंधकते दुंदुभी भयो ताके अरिद्योत भयौ ताके पुनर्वसु भयो ॥ २० ॥ ताके आहुक पुत्र भयो आहुकी कन्या भई आहुकके देवक उग्रसेन दो पुत्र भये देवककैं देववान उपदेव सुदेव देववर्द्धन ये चारि पुत्र भये तिनके सात बहिनी भई ॥ २१ ॥ २२ ॥ धृतदेवा शांतदेवा उपदेवा देवरक्षिता सहदेवा देवकी सो वसुदेवजीने व्याही ॥ २३ ॥ कंस सुनामा न्यग्रोध कंक शंकु सुहु राष्ट्रपाल सृष्टी तुष्टिमान

ये उग्रसेनके बेटा भये ॥२४॥ कंसा, कंसवती,कंका,सुरभू,राष्ट्रपालिका ये उग्रसेनकी बेटी भई; ते वसुदेवके छोटेभैयानकी स्त्री भई ॥ २५ ॥ भजमानकें पुत्र विदूरथ भयो तातें सूर भयौ ताकें शिनि भयो ताकें स्वयंभोज भयो ताको पुत्र हृदीक भयो ॥ २६ ॥ हृदीकके देववाहु शतधनू कृतिवर्मा ये पुत्र भये हृदीकके देवमीढ भयो ताके सूर भये तिनकी मारिषानाम स्त्री भई ॥ २७ ॥ तामें निरपराध दशपुत्र उपजाये वसुदेव देवभाग देवश्रव आनक ॥ २८ सृंजय, श्यामक, कंक, शमकि, वत्सक, वृक भये जा वसुदेवके जन्ममे देवता नगारो ढोल वजावतेभये ॥ २९ ॥ जो वसुदेव साक्षात् हरिभगवानके स्थान है याते इनको नाम आनकदुंदुभी कहै है पृथा श्रुतदेवा श्रुतकीर्ति श्रुतश्रवा ॥ ३० ॥ राजाधिदेवी ये पांच कन्या वसुदेवादिकनकी वहिन भई इनके पिता सूर अपुत्र अपने सखा कुंतको पृथा देतभये ॥ ३१ ॥ सो पृथा सेवा करकै प्रसन्न किये दुर्वासाते देवतानके बुलाइवेकी विद्याकूं प्राप्तभई ताविद्याके पराक्रम परीक्षाके लिये पवित्र होकैं सूर्यकू बुलावतिभई ॥ ३२ ॥ ताई समय आये सूर्यकू देखिकैं विस्मित मन कुंती बोली मैंने विद्याकी परीक्षाके लिये विद्याप्रयोग करचो तुमसूं कछु काम नहीं अपने स्थानकौ जाउ मेरे अपराधको क्षमा करो ॥३३॥ तब सूर्य बोले देवतानको दर्शन सफल है मैं तोमें पुत्र धारण करूंगो तब कुंती बोली मैं कन्या हूं सूर्य बोलो जैसे तेरी योनि दूषित न होइ तैसे हम करेंगे ॥३४॥

कंसा कंसवती कङ्का शूरभू राष्ट्रपालिका ॥ उग्रसेनदुहितरो वसुदेवानुजस्त्रियः ॥२५॥ शूरो विदूरथादासीद् भजमानः सुतस्ततः ॥ शिनिस्तस्मात् स्वयंभोजो हृदीकस्तत्सुतो मतः ॥ २६ ॥ देवबाहुः शतधनुः कृतवर्मेति तत्सुताः ॥ देवमीढस्य शूरस्य मारिषा नाम पत्न्यभूत् ॥ २७ ॥ तस्यां स जनयामास दश पुत्रानकल्मषान् ॥ वसुदेवं देवभागं देवश्रवसमानकम् ॥२८॥ सृञ्जयं श्यामकं कङ्कं शमीकं वत्सकं वृकम् ॥ देवदुन्दुभयो नेदुरानका यस्य जन्मनि ॥२९॥ वसुदेवं हरेः स्थानं वदन्त्यानकदुन्दुभिम् ॥ पृथा च श्रुतदेवा च श्रुतकीर्तिः श्रुतश्रवाः ॥३०॥ राजाधिदेवी चैतेषां भगिन्यः पञ्च कन्यकाः ॥ कुन्तेः सख्युः पिता शूरो ह्यपुत्रस्य पृथामदात् ॥३१॥ साऽऽप दुर्वाससो विद्यां देवहूतिं प्रतोषितात् ॥ तस्या वीर्यपरीक्षार्थमाजुहाव रविं शुचिम् ॥३२॥ तदैवोपागतं देवं वीक्ष्य विस्मयमानसा ॥ प्रत्ययार्थ प्रयुक्ता मे याहि देव क्षमस्व मे ॥ ३३ ॥ अमोघं दर्शनं देवि आधत्से त्वयि चात्मजम् ॥ योनिर्यथा न दुष्येत कर्ताऽहं ते सुमध्यमे ॥ ३४ ॥

138

ऐसे कहिकैं सूर्य तामे गर्भ धरिकै स्वर्गको गये तब तत्काल बालक भयो मानो दूसरो सूर्यही भयो ॥ ३५ ॥ सो कुंती लोकापवादते डरपि बालकको संदूकमे धरिकैं नदीमे वहाइ देतिभई सत्य पराक्रमी तेरो परदादो पांडु ता कुंतीको व्याहतभये ॥ ३६ ॥ करूषदेशको राजा वृद्धशर्मा श्रुतदेवाको व्याहत भयो जामै सनकादिकके शापसे दितिको पुत्र जन्म लेकर दंतवक्र होतभयो ॥ ३७ ॥ कैकयदेशको राजा धृष्टकेतु श्रुतकीर्तिकूं प्राप्तभयो ताके संतर्दनतें आदिलेकैं पांच पुत्र भये ॥ ३८ ॥ उज्जेनके राजा जयसेन अधिदेवीमे विंद अनुविंद दो पुत्र उपजावत भयो, चेदीको

इति तस्यां स आधाय गर्भं सूर्यो दिवं गतः ॥ सद्यः कुमारः संजज्ञे द्वितीय इव भास्करः ॥ ३५ ॥ तं साऽत्यजन्नदीतोये
कृच्छ्राल्लोकस्य बिभ्यती॥प्रपितामहस्तामुवाह पाण्डुर्वै सत्यविक्रमः ॥३६॥ श्रुतदेवां तु कारूषो वृद्धशर्मा समग्रहीत्
॥ यस्यामभूत् दन्तवक्त्र ऋषिशप्तो दितेः सुतः ॥ ३७ ॥ कैकेयो धृष्टकेतुश्च श्रुतकीर्तिमविन्दत ॥ सन्तर्दनादयस्तस्यां
पञ्चासन् कैकयाः सुताः ॥ ३८ ॥ राजाधिदेव्यामावन्त्यौ जयसेनोऽजनिष्ट ह ॥ दमघोषश्चेदिराजः सुतश्रवसमग्रहीत्
॥३९॥ शिशुपालः सुतस्तस्याः कथितस्तस्य संभवः ॥ देवभागस्य कंसायां चित्रकेतुबृहद्बलौ ॥ ४० ॥
कंसावत्यां देवश्रवसः सुवीर इषुमांस्तथा ॥ कङ्कायामानकाज्जातौ सत्यजित् पुरुजित् तथा॥४१॥ सृंजयो राष्ट्रपाल्यां
च वृषदुर्मर्षणादिकान् ॥ हरिकेशहिरण्याक्षौ शूरभूम्यां च श्यामकः ॥ ४२ ॥ मिश्रकेश्यामप्सरसि वृकादीन् वत्सकस्तथा
॥ तक्षपुष्करशालादीन् दुर्वाक्ष्यां वृक आददे ॥ ४३ ॥ सुमित्राऽर्जुनपालादीन् शमीकात् तु सुदामिनी ॥
कङ्कश्च कर्णिकायां वै ऋतधामजयावपि ॥ ४४ ॥

राजा दमघोष श्रुतिश्रवाकूं ग्रहण करतभयो ॥ ३९ ॥ ताके बेटा शिशुपाल भयो ताको जन्म पहिले कहिआये है देवभागकी कंसा स्त्रीमे चित्रकेतु बृहद्बल भये ॥ ४० ॥ देवश्रवाके कंसवतीमे सुवीर इषुमान् भये, आनकते कंकामे सत्यजित् पुरुजित् भये ॥ ४१ ॥ सृंजय राष्ट्रपालीमे वृष दुर्मर्षणादिक उपजावत भयो श्यामक शूरभूमिमै हरिकेश हिरण्याक्ष उपजावतभयो ॥ ४२ ॥ वत्सक मिश्रकेशी अप्सरामे वृकादिक उपजावत भयो वृक दुर्वाक्षीमे तक्ष पुष्कर शालादिक धारण करतभयो ॥ ४३ ॥ शमीकते सुदामिनी सुमित्र अर्जुन पालादिक उपजावतभई, कंक कर्णिकामे ऋतधाम

जय उपजावत भयो ॥ ४४ ॥ पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा रोचना इला और देवकीतें आदिलेकें वसुदेवजीकी स्त्री होत भई ॥ ४५ ॥ बलदेव गद सारण दुर्मद विपुल ध्रुव कृत इनतें आदिलेके पुत्र वसुदेव रोहिणीमें उपजावत भये ॥ ४६ ॥ सुभद्र भद्रबाहु दुर्मद भद्र भूततें आदिलेकें बारह पौरवीके पुत्रभये ॥ ४७ ॥ नंद उपनंद कृतक सूरतें आदिलेकें मदिराके पुत्र भये; कौशल्या कुलको आनंद देनवारो केशीनाम एक पुत्र उपजावतभई ॥ ४८ ॥ हस्त हेमांगदतें आदिलेकें रोचनामें होतभये, यदु उरुवल्क आदि इलामें होतभये ॥४९॥ आनकदुंदुभी वसुदेवतें धृतदेवामें विपृष्ट नाम एक

पौरवी रोहिणी भद्रा मदिरा लोचना इला ॥ देवकीप्रमुखा आसन् पत्न्य आनकदुन्दुभेः ॥ ४५ ॥ बलं गदं सारणं च दुर्मदं विपुलं ध्रुवम् ॥ वसुदेवस्तु रोहिण्यां कृतादीनुदपादयत् ॥४६॥ सुभद्रो भद्रबाहुश्च दुर्मदो भद्र एव च ॥ पौरव्यास्तनया ह्येते भूताद्या द्वादशाभवन् ॥ ४७ ॥ नन्दोपनन्दकृतकशूराद्या मदिरात्मजाः ॥ कौशल्या केशिनं त्वेकमसूत कुलनन्दनम् ॥ ४८ ॥ रोचनायामतो जाता हस्तहेमाङ्गदादयः ॥ इलायामुरुवल्कादीन् यदुमुख्यानजीजनत् ॥४९॥ विपृष्टो धृतदेवायामेक आनकदुन्दुभेः ॥ शान्तिदेवात्मजा राजन् श्रमप्रतिश्रुतादयः ॥ ५० ॥ राजानः कल्पवर्षाद्या उपदेवासुता दश ॥ वसुहंससुवंशाद्याः श्रीदेवायास्तु षट् सुताः ॥ ५१ ॥ देवरक्षितया लब्धा नव चात्र गदादयः ॥ वसुदेवः सुतानष्टावादधे सहदेवया ॥ ५२ ॥ पुरुविश्रुतमुख्यांस्तु साक्षाद् धर्मो वसूनिव ॥ वसुदेवस्तु देवक्यामष्ट पुत्रानजीजनत् ॥ ५३ ॥ कीर्तिमन्तं सुषेणं च भद्रसेनमुदारधीः ॥ ऋजुं संमर्दनं भद्रं संकर्षणमहीश्वरम् ॥ ५४ ॥ अष्टमस्तु तयोरासीत् स्वयमेव हरिः किल ॥ सुभद्रा च महाभागा तव राजन् पितामही ॥ ५५ ॥

पुत्र होत भयो, हे राजन् ! श्रम प्रतिश्रुततें आदिलेकें शांतदेवाके पुत्र भये ॥ ५० ॥ कल्प,और वर्ष आदि उपदेवाके दश पुत्र भये वसु हंस सुवंश्यतें आदिलेके छै पुत्र श्रीदेवाके भये ॥५१॥ गदतें आदि लेकें नों देवरक्षिताके बेटा भये, वसुदेवके सहदेवा स्त्रीमें पुर विश्रुत आदि आठ पुत्र भये॥५२॥ जैसें धर्म साक्षात् वसुनको उपजावतभयो ऐसे वसुदेव देवकीमें आठ पुत्र उपजावतभये, कीर्तिमान सुषेण भद्रसेन ऋजु संमर्द्दन भद्र और सर्पनके ईश्वर संकर्षण ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ और आठवे स्वयं हरि आपुही पुत्र होतभये, हे राजा ! तेरी दादी बडो भाग्यवती सुभद्रा उनकी कन्या भई ॥ ५५ ॥

जब जब धर्मको नाश होयहैं पापकी वृद्धि होयहै तब तब भगवान् ईश्वर हरि आत्माकूं प्रगट करैहैं ॥ ५६ ॥ हे पृथ्वीके पति राजा ! सबके द्रष्टा असंग आत्मा परमेश्वरको जन्म कर्मको कारण अपनी माया विना नहीं है ॥ ५७ ॥ जाकी मायाकी चेष्टा पुरुषकें स्थिति उत्पत्तिनाशके अर्थ हैं उन भगवान्को अनुग्रह मायाको दूरकर मोक्षके लिये होयहै ॥ ५८ ॥ अक्षौहिणीनके पति राजानको चिन्ह धारे अतर्क्य असुरनकरिकैं दबी भूमिके भार दूरि करिवेके लिये उद्यम कर भगवान् मधुसूदन देवतानके ईश्वरने बलदेवजीको साथले देवताओंके मनसैभी अतर्क्य ऐसे २ कार्य किये ॥ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ होनेहारे कलियुगके जीवौंके दुःख शोक तम भगवानके नाश करनवारो अतिपवित्र अपनो यश भक्तनपै अनुग्रह करिवेके लिये

यदा यदेह धर्मस्य क्षयो वृद्धिश्च पाप्मनः ॥ तदा तु भगवानीश आत्मानं सृजते हरिः ॥५६॥ न ह्यस्य जन्मनो हेतुः कर्मणो वा महीपते ॥ आत्ममायां विनेशस्य परस्य द्रष्टुरात्मनः ॥५७॥ यन्मायाचेष्टितं पुंसः स्थित्युत्पत्त्यप्ययाय हि ॥ अनुग्रहस्तन्निवृत्तेरात्मलाभाय चेष्यते ॥ ५८॥ अक्षौहिणीनां पतिभिरसुरैर्नृपलाञ्छनैः॥ भुव आक्रम्यमाणाया अभाराय कृतोद्यमः ॥ ५९ ॥ कर्माण्यपरिमेयानि मनसाऽपि सुरेश्वरः ॥ सहसंकर्षणश्चक्रे भगवान् मधुसूदनः ॥६०॥ कलौ जनिष्यमाणानां दुःखशोकतमोनुदम् ॥ अनुग्रहाय भक्तानां सुपुण्यं व्यतनोद् यशः ॥ ६१ ॥ यस्मिन् सत्कर्णपीयूषे यशस्तीर्थवरे सकृत् ॥ श्रोत्राञ्जलिरुपस्पृश्य धुनुते कर्मवासनाम् ॥ ६२ ॥ भोजवृष्ण्यन्धकमधुशूरसेनदशार्हकैः॥ श्लाघनीये हितः शश्वत् कुरुसृञ्जयपाण्डुभिः ॥ ६३ ॥ स्निग्धस्मितेक्षितोदारैर्वाक्यैर्विक्रमलीलया ॥ नृलोकं रमयामास मूर्त्या सर्वाङ्गरम्यया ॥ ६४ ॥

विस्तार करत भये ॥ ६१ ॥ साधुनके काननको अमृततुल्य श्रेष्ठ यशरूप कीर्तिके तीर्थमें जो पुरुष एकवारभी कर्णरूप अंजलीसे आचमन मात्र करै तौ कर्म वासना नाश हो ॥ ६२ ॥ भोज वृष्णि अंधक मधु शूरसेन दशार्ह जिनके चरित्रोंकी श्लाघा करते हैं कुरु सृंजय पांडु निरन्तर जिनकी लीला गाते हैं ॥ ६३ ॥ ऐसे श्रीकृष्ण स्नेहयुक्त मुसिकानि पूर्वक चितवनि और उदार वचन पराक्रम लीलासै और सब अंगौंसै सुंदर मूर्ति धारणकर मनुष्य लोककूं रमावतभये ॥ ६४ ॥

प्रकाशित कपोल, सुंदर मकराकृत कुंडल, मनोहर विलास सहित हास्य और नित्य उत्सव युक्त श्रीकृष्णको मुख नैनौंसे पान करते नर नारी तृप्त न होतभये, आनंदको प्राप्तभये; पलकनको लगिवो देखिकैं ऊनपै क्रोध करतभये ॥ ६५ ॥ यह भगवान प्रथम अपने निजरूपसे प्रगट हो पीछे मनुष्यरूपधार पिताके घरसै व्रजमें गये तहां व्रजवासीनके मनोरथ पूर्णकर शत्रुनको मार सहस्रौं स्त्रीनको व्याहत भये उनमें असंख्य पुत्र उपजाय पुरुषौंमें अपनो वेदमार्ग प्रचारनेके निमित्त बहुत यज्ञौंसै अपने स्वरूपको पूजन करतेभये ॥ ६६ ॥ कौरवनमें कलह उपजायकर ताके मिषसे पृथ्वीको बडो भार नाशकर युद्धमें दृष्टिसे राजानकी सेना नाश करिकैं अर्जुनको विजय देकै उद्धवके अर्थ परमतत्वको उपदेशकरि उसी स्वरूपसे अपने धामकू जात भये ॥ ६७ ॥ नौ लक्षण करिके लक्ष नौ प्रकारकी भक्ति करिकै लक्षित परमानंद स्वरूप परब्रह्मकूं हम नमस्कार करैंहै ॥ १ ॥

इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रसंशोधितायां नवमस्कन्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ नवमस्कन्धः समाप्तः ॥

यस्याननं मकरकुण्डलचारुकर्णभ्राजत्कपोलसुभगं सुविलासहासम् ॥ नित्योत्सवं न ततृपुर्दृशिभिः पिबन्त्यो नार्यो नराश्च मुदिताः कुपिता निमेश्च ॥ ६५ ॥ जातो गतः पितृगृहाद्व्रजमेधितार्थो हत्वा रिपून्सुतशतानि कृतोरुदारः ॥ उत्पाद्य तेषु पुरुषः क्रतुभिः समीजे आत्मानमात्मानिगमं प्रथयञ्जनेषु ॥ ६६ ॥ पृथ्व्याः स वै गुरुभरं क्षपयन्कुरूणामन्तः समुत्थकलिना युधि भूपचम्वः ॥ दृष्ट्या विधूय विजये जयमुद्विघोष्य प्रोच्योद्धवाय च परं समगात्स्वधाम ॥ ६७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायामष्टादशसाहस्र्यां वैयासिक्यां नवमस्कन्धे श्रीसूर्यसोमवंशानुकीर्तने यदुवंशानुवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ नवमस्कन्धः समाप्तः ॥ ॥

दोहा—वासुदेवको ध्यान धर श्रीगुरुदेव मनाय । द्विजज्वालाप्रसादने शोध्यो अतिमन लाय ॥

इदं पुस्तकं कल्याणनगर्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन गङ्गाविष्णुना स्वकीये “ लक्ष्मीवेंकटेश्वर ”
मुद्रणयन्त्रालयेऽङ्कित्वा प्रकाशितम् ॥ संवत् १९५२, शके १८१७. कल्याण—मुंबई.

142

॥ इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते नवमस्कन्धः स० ॥

1414
143

॥ इति भाषाटीकायुते श्रीमद्भागवते नवमस्कन्धः समाप्तः॥

॥ इति भाषाटीकायुते श्रीमद्भागवते पञ्चमस्कन्धः स० ॥

2

3

श्रीशुकदेवजी बोले राजन् ! आपने सत्य कह्यो कि भगवान् उत्तमश्लोकके श्रीमान चरणारविंदकी मकरंद रसमें आवेशित चित्तवारे भागवत श्रीवैष्णवजन कोई विघ्नसे तिरस्कृत होयहैं, तौभी बहुधाकरकै अपनी अत्यंत कल्याणरूप देवेवारी पदवी परमहंसोंको प्रिय श्रीकृष्णचंद्रकी कथा त्याग नहीं करैं है ॥ ५ ॥ हे राजन् ! जिस समय देवर्षि नारदजीके चरणोंको आराधन करकै उनको आत्मतत्व भली भांति ज्ञात होगयाथा इस्सै उन्हौने मनमें विचाराथा कि अध्यात्मरूप कार्यके द्वारा नियम ग्रहण करैंगे और इसी कारण उन्हौने चित्तको एकाग्रकर भगवान् वासुदेवमें सब इन्द्रियोंका क्रिया कलाप अर्पण करदिया था उस समय मनुजीने अपने पुत्र प्रियव्रतको राजनीतिमें कहे सब प्रधान प्रधान गुणोंका आश्रय जानकर पृथ्वीके राज्य पालनमें नियुक्त करना चाहा परन्तु इन्हौनें यह विचारकर कि पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करना अनुचित जानकरभी उन्हौने यह विचार कियाथा कि राज्याधिकार मिथ्या है और इस्सै पराभव होनेकी संभावना है इसी कारण उन्हौने प्रथम राज्यका लैना नहीं चाहा ॥ ६ ॥ याके उपरांत भगवान आदिदेव या विश्वके गुणोंके बढायवेके अर्थ वारंवार ध्यानके निश्चयसे सब जगतको अभिप्राय जानकै सब मूर्तिधारी वेद संगलिये मरीच्यादि निजगणोंसे शोभित श्रीब्रह्माजी सत्य लोकसे उतरे ॥ ७ ॥ सो ब्रह्माजी जहां तहां आकाशमें

श्रीशुक उवाच ॥ बाढमुक्तं भगवत उत्तमश्लोकस्य श्रीमच्चरणारविन्दमकरन्दरस आवेशितचेतसो भागवतपरमहंसदयितकथां किंचिदन्तरायविहतां स्वः शिवतमां पदवीं न प्रायेण हिन्वन्ति ॥ ५ ॥ यर्हि वाव हे राजन्स राजपुत्रः प्रियव्रतः परमभागवतो नारदस्य चरणोपसेवयाऽञ्जसाऽवगतपरमार्थसतत्त्वो ब्रह्मसत्रेण दीक्षिष्यमाणोऽवनितलपरिपालनायाम्नातप्रवरगुणगणैकान्तभाजनतया स्वपित्रोपामन्त्रितो भगवति वासुदेव एवाव्यवधानसमाधियोगेन समावेशितसकलकारकक्रियाकलापो नैवाभ्यनन्दद्यद्यपि तत् प्रत्याम्नातव्यं तदधिकरण आत्मनोऽन्यस्मादसतोऽपि पराभवमन्वीक्षमाणः ॥ ६ ॥ अथ ह भगवानादिदेव एतस्य गुणविसर्गस्य परिबृंहणानुध्यानव्यवसितसकलजगदभिप्राय आत्मयोनिरखिलनिगमनिजगणपरिवेष्टितः स्वभवनादवततार ॥ ७ ॥ स तत्र तत्र गगनतल उडुपतिरिव विमानावलिभिरनुपथममरपरिवृढैरभिपूज्यमानः पथि पथि च वरूथशः सिद्धगन्धर्वसाध्यचारणमुनिगणैरुपगीयमानो गन्धमादनद्रोणीमवभासयन्नुपससर्प ॥ ८ ॥

दोहा—गोपीजन मन भय हरन, करन सकल आनंद । करहु कृपा सुखदान प्रभु, कृष्ण चन्द्र जग वंद ॥

अथ पञ्चमस्कन्धप्रारम्भः ॥ राजोवाच ॥ प्रियव्रतो भागवत आत्मारामः कथं मुने ॥ गृहेऽरमत यन्मूलः कर्मबन्धः पराभवः ॥ १ ॥ न नूनं मुक्तसङ्गानां तादृशानां द्विजर्षभ ॥ गृहेष्वभिनिवेशोऽयं पुंसां भवितुमर्हति ॥ २ ॥ महतां खलु विप्रर्ष उत्तमश्लोकपादयोः ॥ छायानिर्वृत्तचित्तानां न कुटुम्बे स्पृहा मतिः ॥ ३ ॥ संशयोऽयं महान्ब्रह्मन्दारागारसुतादिषु ॥ सक्तस्य यत्सिद्धिरभूत्कृष्णे च मतिरच्युता ॥ ४ ॥

श्रीमान् परमहंसोंसे जिनके चरणकमलका चैतन्य मकरंदरस पान किया गया भक्तजनोंके मनमें उन निवास करनेहारे श्रीरामचंद्रके अर्थ नमस्कार होय ॥ अब पंचमस्कंधकी व्याख्या करै है, यामैं अनेक विषय हैं, या स्कंधमें प्रियव्रतको वंश प्रसंग सहित वर्णन करैंगे ॥ १ ॥ छव्वीस अध्यायसे पंचममें स्थान लक्षण कहे हैं, लोक द्वीप आदि मर्यादा पालित अनेक प्रकारसे वर्णन करी है ॥ २ ॥ पृथिवीके ऊपर नीचैकी लोक मर्यादा तीनतरहसे कहीहै, फिर एकएकसे मर्यादा बहुधा कही ॥ ३ ॥ भूमिमें द्वीपादि मर्यादा राजोंसे पालित है और भूमिके ऊपर देवादिकोंसे रक्षित है, नीचे असुरादिसें रक्षित है ॥ ४ ॥ तहां वीस अध्यायसे प्रियव्रतके आगे जो भये उन करकै भूमिमें द्वीप आदि मर्यादा पालित है, ऐसे वर्णन करैंगे ॥ ५ ॥ तीन अध्यायसे सूर्यादि ज्योतिश्चक्र कहा अतलादिकोंमें दैत्यादिकी पालित पुरी तीन अध्यायसे वर्णित है ॥ ६ ॥ तहां प्रथम अध्यायमैं ज्ञानीको राज्यसे निवृत्ति, और ज्ञानमें निष्ठा, ये प्रियव्रतकी अद्भुत कथा है ॥ ७ ॥ प्रियव्रतको प्रथम वैराग्य भयो, फेर गृहस्थी करी, फिर सब संग त्याग मोक्ष भई, यामें विस्मयकर परीक्षित पूछै हैं ॥ राजा परीक्षित बोले कि हे मुने ! महात्मा प्रियव्रत तौ परमभक्त थे इस कारण उनकी प्रीति आत्मामेंही हो सक्ती है यह किस कारण गृहाश्रममें रत हुए यह आश्रम दोष रहित नहीं है कारण कि यह कर्मसे बंधा हुआ है और अपने रूपके तिरस्कारका कारण है ॥ १ ॥ और गृहस्थाश्रममें प्रीति उसके विषयमें मन लगानेसे होती है सो मुक्त संगी भागवत पुरुषोंका तो कभी घरमें अभिनिवेशही नहीं हो सक्ता ॥ २ ॥ हे विप्रर्षे ! उत्तम श्लोकके चरणकी छायाके सुखसे आनंदित चित्त महात्मानको कुटुंबमें चाहनाकी बुद्धि न होयहै ॥ ३ ॥ हे ब्रह्मन् ! स्त्री घर पुत्रादिमें आसक्तकी श्रीकृष्णमें फलानुसंधान रहित मति भई तथा सिद्धि प्राप्तभई ये मुझै महा संदेह है सो कहो ॥ ४ ॥

5

ऐसे वलि देवेहैं जैसे नाथमें नथेभए चौपाये वैल आदिक दो पदवारे पुरुषके अर्थ काम देतेहैं ॥१४॥ हे अंग प्रियव्रत! गुणकर्मोंके संगसे ईश्वरसै दि-
ये हुए सुख वा दुःखकू हम भोगैहै, ईश्वर जो युक्त वा अयुक्त योनि देहै, वामे स्थित होके हमारी गति ऐसी है जैसे नेत्रवाला पुरुष अंधेको धूप
छाया जहां चाहै तहां लेजाता है ॥ १५ ॥ अभिमान त्यागकर अपने प्रारब्धपर्यंत मुक्तभी देहकूं धारै हैं, जैसै सुपनेमें जो अनुमानकियो भयो है
वाको जागो भयो अभिमान त्याग कर स्मरण करैहै, परंतु और देहांतरके देवेवारे कर्मवासनानको नहीं भजैहै ॥ १६ ॥ मन बुद्धि चित्त अहंकार
आदि छै वैरीके समीपवर्ती प्रमत्तको वनमैंभी भय होय है, जितेंद्री आत्मज्ञानी बुद्धिमानको गृहस्थाश्रमभी कुछ दोष नहीं करसकै है ॥ १७ ॥

ईशाऽभिसृष्टं ह्यवरुन्ध्महेऽङ्ग दुःखं सुखं वा गुणकर्मसङ्गात् ॥ आस्थाय तत्तद्यदयुङ्क्त नाथश्चक्षुष्मताऽन्धा इव नीय-
मानाः ॥ १५ ॥ मुक्तोपि तावद्बिभृयात्स्वदेहमारब्धमश्नन्नभिमानशून्यः ॥ यथाऽनुभूतं प्रतियातनिद्रः किं त्व-
न्यदेहाय गुणान्न वृङ्क्ते ॥ १६ ॥ भयं प्रमत्तस्य वनेष्वपि स्याद्यतः स आस्ते सहषट्सपत्नः ॥ जितेन्द्रियस्यात्मरते-
र्बुधस्य गृहाश्रमः किं नु करोत्यवद्यम् ॥ १७ ॥ यः षट् सपत्नान्विजिगीषमाणो गृहेषु निर्विश्य यतेत पूर्वम् ॥ अत्ये-
ति दुर्गाश्रित ऊर्जितारीन्क्षीणेषु कामं विचरेद्विपश्चित् ॥ १८ ॥ त्वं त्वब्जनाभाङ्घ्रिसरोजकोशदुर्गाश्रितो निर्जितषट्-
सपत्नः ॥ भुङ्क्ष्वेह भोगान्पुरुषातिदिष्टान्विमुक्तसङ्गः प्रकृतिं भजस्व ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति समभिहितो म-
हाभागवतो भगवतस्त्रिभुवनगुरोरनुशासनमात्मनो लघुतयाऽवनतशिरोधरो बाढमिति स बहुमानमुवाह ॥ २० ॥

जो कोई छै इंद्रियरूप वैरीनको जीतो चाहै, तो गृहस्थाश्रममें होयकर उनको जीतनेके निमित्त यत्न करना उचित है क्योंकि किलेमें बैठा शत्रुओं-
को जीतलेता है जब सब काम याके क्षीण होजाय तव यह विद्वान् चाहै जहां विचरै क्योंकि गृहस्थाश्रम किलेकी लडाइ है और आश्रम मैदान-
की लडाई है ॥ १८ ॥ तुमने तो कमलनाभके चरणकमलरूप किलेके आश्रित होके छै वैरी जीतेहैं ईश्वरके दियेभये भोग भोगो सबसंगसे मुक्त हो-
यकर अपनो स्वरूप रूपभूत परमेश्वरको भजन करो ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि जब त्रिभुवनगुरु ब्रह्माजीने उन महाभागवतसै ऐसे कह्यो
तव वह भगवान विरिंचिकी आज्ञाकों बहुमानसै नीचेकूं शिरकर बहुत अच्छा ऐसे बहुमानसै अंगीकार करते भए ॥ २० ॥

तत्र ह वा एनं देवर्षिर्हंसयानेन पितरं भगवन्तं हिरण्यगर्भमुपलभमानः सहसैवोत्थायार्हणेन सह पितापुत्राभ्यामवहिताञ्जलिरुपतस्थे ॥ ९ ॥ भगवानपि भारत तदुपनीतार्हणः सूक्तवाकेनातितरामुदितगुणगणावतारसुजयः प्रियव्रतमादिपुरुषस्तं सदयहासावलोक इति होवाच ॥ १० ॥ श्रीब्रह्मोवाच ॥ निबोध तातेदमृतं ब्रवीमि माऽसूयितुं देवमर्हस्यप्रमेयम् ॥ वयं भवस्ते तत एष महर्षिर्वहाम सर्वे विवशा यस्य दिष्टम् ॥ ११ ॥ न तस्य कश्चित्तपसा विद्यया वा न योगवीर्येण मनीषया वा ॥ नैवार्थधर्मैः परतः स्वतो वा कृतं विहन्तुं तनुभृद्विभूयात् ॥ १२ ॥ भवाय नाशाय च कर्म कर्तुं शोकाय मोहाय सदा भयाय ॥ सुखाय दुःखाय च देहयोगमव्यक्तदिष्टं जनताऽङ्ग धत्ते ॥ १३ ॥ यद्वाचि तन्त्यां गुणकर्मदामभिः सुदुस्तरैर्वत्स वयं सुयोजिताः ॥ सर्वे वहामो बलिमीश्वराय प्रोता नसीव द्विपदे चतुष्पदः ॥ १४ ॥

चंद्रमाकी नाई शोभायमान मार्ग मार्गमें विमानोंकी पंक्तियोंसे शोभित देवसमूहोंसे पूजित होते मार्ग मार्गमें यूथके यूथ सिद्ध गंधर्व साध्य चारण मुनिगणोंकरके गाये जाते यशको श्रवण करते गंधमादन पर्वतकी गुफाको प्रकाशमान करते प्रियव्रतके निकट आये ॥ ८ ॥ तहां हंसवाहन पर विराजमान, इन पिता भगवान हिरण्यगर्भको आए जान, शीघ्र उठकर प्रियव्रत मनुसहित हाथ जोड श्रीनारदजी खडे हुए गंधमादन पर्वतकी गुफामें बैठे नारदजी प्रियव्रतको उपदेश देतेथे उसी समय ब्रह्माजी उन्हें लैनको आये ॥ श्लोकोयम् ॥ “नारदो मंदरद्रोण्यां प्रियव्रतमुपादिशत् ॥ मनुस्तं नेतुमायातो ज्ञातव्यमिति कथ्यते” ॥ ९ ॥ हे भारत ! भगवान् स्वयंभू तिनसे पूजा ले उनके मीठे वचन और वेदोंके सूक्तोंसे अपने पुण्ययश और सर्वोत्कृष्टताका वर्णन सुन आदिपुरुष, दयायुक्त, हांसीके कटाक्षोंसे देखते भए प्रियव्रतसे ये बोले ॥ १० ॥ भगवान् ब्रह्माजी बोले कि हे पुत्र! सुनो हम सत्य कहैं है, उसकूं दोषारोपण करके देखवेकों योग्य नहीं हो अप्रमेय देवकी आज्ञा हम सब विवश होके धारै है, शिव, तुम्हारे पिता और ये नारदजीभी तथा सब हम उनकी आज्ञा पालैं हैं ॥ ११ ॥ तिन ईश्वरके करेभएकों तपसे, विद्यासे, योगवीर्य करकै, बुद्धिसे, धनसे, धर्मादि चारोंसे औरसे अपनेते कोई शरीरधारी जीवमात्र दूर करवेकों समर्थ नही होय है ॥१२॥ हे प्रियव्रत ! सब लोकोंमें उत्पत्ति नाश शोक मोह भय सुख दुःख इन सबके निमित्त कर्म करनेको परमेश्वरका दिया यह देह सबही जीव धारण करते हैं उसके अन्यथा करनेकी कोई सामर्थ्य नहीं रखता ॥ १३ ॥ हे पुत्र! जिनकी वेदलक्षण वाणीरूप डोरमें अति दुस्तर गुणकर्मोंकरकै बंधेभए हम सब ईश्वरके अर्थ

6

इन सबमें कवि महावीर सवन ये तीनो उर्ध्वरेता भए, ये ब्रह्मविद्यामें बालकपनसेही निष्ठा कर अत्यंत परिश्रम कर परमहंसोंके आश्रमको धारण करते भए ॥ २६ ॥ तिस परमहंस आश्रममें महाशीलवारे महाश्रेष्ठ व ऋषि सब जीव समूहके निवासभूत और भयभीत दासनके शरणदाता श्रीमान् वासुदेवके चरणारविंदके निरन्तर स्मरण और अखंडित भक्तियोगके प्रभावसे शोधित अंतःकरणमें प्राप्त भगवान् सब जीवमात्रके आत्मभूत, सर्वांतर्यामी, व्यापक आत्मामें विशेष करके अपनो ईश्वरको एक भावकर, अर्थात् जीव ब्रह्मरूप समझकर भगवतके रूपको प्राप्त होते भए ॥ २७ ॥ और स्त्रीनमेंभी तीन पुत्र होते भए, उत्तम, तामस, रैवत, येही मन्वंतरोंके पति होते भए ॥ २८ ॥ इस प्रकार जब पुत्र परमहंस गतिको प्राप्त

एतेषां कविर्महावीरः सवन इति त्रय आसन्नूर्ध्वरेतसस्त आत्मविद्यायामर्भभावादारभ्य कृतपरिचयाः पारमहंस्यमेवाश्रममभजन् ॥ २६ ॥ तस्मिन्नु ह वा व उपशमशीलाः परमर्षयः सकलजीवनिकायावासस्य भगवतो वासुदेवस्य भीतानां शरणभूतस्य श्रीमच्चरणारविन्दाविरतस्मरणाविगलितपरमभक्तियोगानुभावेन परिभावितान्तर्हृदयाधिगते भगवति सर्वेषां भूतानामात्मभूते प्रत्यगात्मन्येवात्मनस्तादात्म्यमविशेषेण समीयुः ॥ २७ ॥ अन्यस्यामपि जायायां त्रयः पुत्रा आसन् ॥ उत्तमस्तामसो रैवत इति मन्वन्तराधिपतयः ॥ २८ ॥ एवमुपशमायनेषु स्वतनयेष्वथ जगतीपतिर्जगतीमर्बुदान्येकादश परिवत्सराणामव्याहताखिलपुरुषकारसारसंभृतदोर्दण्डयुगलापीडितमौर्वीगुणस्तनितविरमितधर्मप्रतिपक्षो बर्हिष्मत्याश्चानुदिनमेधमानप्रमोदप्रसरणयौषिण्यव्रीडाप्रमुषितहासावलोकरुचिरक्ष्वेल्यादिभिः पराभूयमानविवेक इवानवबुध्यमान इव महामना बुभुजे ॥ २९ ॥

हुए, तब यह महात्मा ग्यारह अरब वर्षतक पृथ्वीका पालन करते रहे इनमें अखंड बलपूर्ण था जब यह पूर्ण बलसे धनुषको टंकार करते तौ विना युद्धकेही धर्मके द्रोही पुरुषोंका नाश हो जाता भोगविलासभी इनका थोडा नहींथा परम प्यारी माहिष्मती नारीके संग नित्य प्रति आमोद प्रमोद करते उसने मानो विज्ञान और विवेकको पराजित कर दियाथा इस कारण वह विषयोंमें आसक्ति करनेके समय ऐसा प्रतीत होताथा मानो आत्माको भूल गया हो ॥ २९ ॥

ऐसा होनेसे मनुजीको वहुत संतोष हुआ उन्हौंने आनंदित चित्तसै ब्रह्माजीकी पूजा की ब्रह्माजी उसै ग्रहणकर प्रियव्रत और नारदजीके सन्मुख अपने लोकको जो मन और वाणीके अगोचर हौनेसे व्यवहार शून्य है जानेको अंतर्ध्यान हुए मेरे द्वारा प्रियव्रतका योगभ्रष्ट हौने और नारदजीका एक शिष्य निकल जानेसै यह दोनौ जानेके समय हमें कुटिल दृष्टिसे देखैंगे यह ब्रह्माजीने विचाराथा परंतु ऐसा नहीं हुआ परंतु प्रियव्रत और नारदजी उन्हैं एकटक लोचनसै देखत रहे ॥ २१ ॥ श्रीमनुजीभी ब्रह्माके उपदेशते अपनो मनोरथ पूरो कर श्रीनारदजीकी संमतिसे अपने पुत्रको सकल धरामंडलकी रक्षाके लिये स्थित करकै, आप अतिकाठिण विषयरूप विषके जलाशयकी आशाते निवृत्त होते भए ॥ २२ ॥ ऐसे प्रियव्र

भगवानपि मनुना यथावदुपकल्पितापचितिः प्रियव्रतनारदयोरविषममभिसमीक्षमाणयोरात्मसमवस्थानमवाङ्मनसं क्षयमव्यवहृतं प्रवर्तयन्नगमत् ॥ २१ ॥ मनुरपि परेणैवं प्रतिसंधितमनोरथः सुरर्षिवरानुमतेनात्मजमखिलधरामण्डलस्थितिगुप्तये आस्थाप्य स्वयमतिविषमविषयविषजलाशयाशाया उपरराम ॥२२॥ इति ह वाव स जगतीपतिरीश्वरेच्छयाऽधिनिवेशितकर्माधिकारोऽखिलजगद्बन्धध्वंसनपरानुभावस्य भगवत आदिपुरुषस्याङ्घ्रियुगलानवरतध्यानानुभावेन परिरान्धितकशायाशयोऽवदातोऽपि मानवर्धनो महतां महीतलमनुशशास ॥ २३ ॥ अथ च दुहितरं प्रजापतेर्विश्वकर्मण उपयेमे बर्हिष्मतीं नाम तस्यामुह वाव आत्मजानात्मसमानशीलगुणकर्मरूपवीर्योदारान्दश भावयाम्बभूव कन्यां च यवीयसीमूर्जस्वतीं नाम ॥ २४ ॥ आग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुमहावीरहिरण्यरेतोघृतपृष्ठसवनमेधातिथिवीतिहोत्रकवय इति सर्व एवाग्निनामानः ॥ २५ ॥

पृथिवीपति, ईश्वरकी इच्छा करकै सब कर्मको अधिकार कर, सब जगतके बंधन नाशकके प्रभाव युक्त भगवान आदिपुरुषके दोनों चरण कमलको निरंतर ध्यान करकै, सब अंतःकरणके कषाय जिनके दूर कर अति उदार महात्मानको मान बढावनेवारे पृथिवीकी रक्षा करते भये ॥ २३ ॥ याके उपरांत विश्वकर्मा प्रजापतिकी बेटी बार्हिष्मतीकों व्याहते भए, तामैं अपने समान शील गुण कर्म रूप वीर्य उदारादि गुणयुक्त दश पुत्र उत्पन्न करते भए, और ऊर्जस्वती नाम एक छोटी कन्या उत्पन्न करते भए ॥ २४ ॥ आग्नीध्र, इध्मजिह्व, यज्ञबाहु, महावीर, हिरण्यरेता, घृतपृष्ठ, सवन, मेधातिथि, वीतिहोत्र, कवि अग्निके नाम परही इनके नाम हुए ॥ २५ ॥

उन द्वीपोंके, जंबू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौंच, शाक, पुष्कर नाम भये, एकसे एक यथाक्रम दुगने सागरसै बाहर चारौं ओर बनाये गये हैं ॥ ३२ ॥
खारी समुद्र, गन्नेके रसको अब्धि, मदिराको सिंधु, घृतको अर्णव, क्षीरसागर, मंठेको पारावार, शुद्ध जलको सरित्पति, ये सात समुद्र भये सातों द्वी-
पोंकी खाईकी नांई यह सब द्वीप जो कि समुद्रौंसे घिरे है इनका प्रमाण ऐसा है कि उसकेही तुल्य यथाक्रमसै पहले एक समुद्र फिर उस समुद्रसै आगे
एक द्वीप समुद्रका प्रमाणकी बराबर यह सब द्वीप पृथक पृथक असंकीर्णरूपसै बाहरी भागमेंही व्याप्त हो रहे हैं भीतर नहीं फैले है तिन जंबू आदि

जम्बूप्लक्षशाल्मलिकुशक्रौञ्चशाकपुष्करसंज्ञास्तेषां परिमाणं पूर्वस्मात् पूर्वस्मादुत्तरोत्तरं यथासङ्ख्यं द्विगुणमानेन
बहिः समन्तत उपक्लृप्ताः ॥ ३२ ॥ क्षारोदेक्षुरसोदसुरोदघृतोदक्षीरोददधिमण्डोदशुद्धोदाः सप्त जलधयः सप्तद्वीपप-
रिखा इवाभ्यन्तरद्वीपसमाना एकैकश्येन यथापूर्वं सप्तस्वपि बहिर्द्वीपेषु पृथक् परित उपकल्पितास्ते जम्ब्वा-
दिषु बर्हिष्मतीपतिरनुव्रतानात्मजानाग्नीध्रेध्मजिह्वयज्ञबाहुहिरण्यरेतोघृतपृष्ठमेधातिथिवीतिहोत्रसंज्ञान् यथासं-
ङ्ख्येनैकैकस्मिन्नेकमेवाधिपतिं विदधे ॥ ३३ ॥ दुहितरं चोर्जस्वतीं नामोशनसे प्रायच्छद्यस्यामासीद्देवयानी
नाम काव्यसुता॥३४॥श्लोकः॥नैवंविधः पुरुषकार उरुक्रमस्य पुंसां तदङ्घ्रिरजसा जितषड्गुणानाम्॥चित्रं विदूरविगतः
सकृदाददीत यन्नामधेयमधुना स जहाति बन्धम् ॥ ३५ ॥

खंडोंमें बर्हिष्मतीके पतिने अपने अनुवर्ति आग्नीध्र इध्मजिव्ह यज्ञबाहु हिरण्यरेता घृतपृष्ठ मेधातिथि वीतिहोत्र इन नामनके पुत्रनको क्रमके अनुसार
एक एक खंडमें राजा करते भये ॥ ३३ ॥ ऊर्जस्वतीनाम बेटीको शुक्राचार्यको दीनी जामें देवयानी नाम शुक्राचार्यकी बेटी भई ॥ ३४ ॥
श्लोक–जो पुरुष श्रीमन्नारायणके भक्त हैं और उन्होंने भगवानकी चरणरेणु द्वारा अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है उनमें इस प्रकारका पौरुष होना

सारथी हुए और राजाने नहीं जाना कि मेरे सारथीको उठकर दूसरे स्थानपर बैठाय दिया और आप सारथी बनकर अपनी इच्छासे रथकी लम्बाई चौडाई तथा रथके पहियोंको
जितना बडा करना चाहतेथे उतनाही बडा कर लेतेथे और घोडोंको अपनी इच्छानुसार चलाकर एक वारमें दूना, दूसरी वारमें तिगुणा, तीसरी वारमें चौगुणा, इसी प्रकार समुद्र
और द्वीप एकसे एक दुगुणा दुगुणा जैसे पृथग थे वैसेही बनाकर वैकुण्ठ धामको चले गये, इसी कारण समुद्र अथवा द्वीप दूने दूने हुए ॥

जबतक भगवान् सूर्यनारायण सुमेरुपर्वतकी परिक्रमा करते दिनमें तपते और रातमें अस्त होकर आधे आधे समय प्रकाश और अंधकार करते है, सो दिनमें भगवत आराधनसे वृद्धित प्रभाव पुरुषोंको रात्रिमें अंधकार होनेसैं दुःखित जान सूर्य समानवेग ज्योतिर्मयरथमें चढकर रात्रिकोभी

यावदवभासयति सुरगिरिमनुपरिक्रमन्भगवानादित्यो वसुधातलमर्धेनैव प्रतपत्यर्धेनावच्छादयति तदा हि भगवदुपासनोपचितातिपुरुषप्रभावस्तदनभिनन्दन्समजवेन रथेन ज्योतिर्मयेन रजनीमपि दिनं करिष्यामीति सप्तकृत्वस्तरणिमनुपर्यक्रामद्द्वितीय इव पतङ्गः ॥ ३० ॥ ये वा उ ह तद्रथचरणनेमिकृतपरिखातास्ते सप्त सिन्धव आसन्यत एव कृताः सप्त भुवो द्वीपाः ॥ ३१ ॥

दिन करनेकी इच्छासे तवतक सूर्यकी सातवार परिक्रमाते दुसरे सूर्यकी नाई उदय हुये भगवतकी कृपासै असंभवभी संभव होताहे ॥ ३० ॥ जो वे उनके रथके पैये करके करीभई लकीरकी खाई भई वेही सप्त समुद्र भए उनके बीचकी भूमीपर सप्तद्वीप भये (१) ॥ ३१ ॥

---

१ शंका—राजा प्रियव्रतका एकरथ, जिसमें बैठकर रात्रिके नाश करनेके लिये और आठ प्रहरका दिन करनेके लिये सूर्यके पीछे पीछे राजा प्रियव्रत् क्यों घूमता फिरा ? राजा प्रियव्रतने रात्रिका नाश किया तथा दिनका क्यों नहीं किया ? फिर रात क्यौं की ? राजा प्रियव्रत रथमें बैठकर आकाशमें घूमा करताथा फिर रथके पहियोंसे पृथ्वीमें सात समुद्र कैसे होगये ? जो पृथ्वीपर रथ घूमता तो निःसन्देह पहियोंके चिन्हसे समुद्र हो जाते और कुछ शंका न होती, परन्तु आकाशमें रथ चलनेसे पृथ्वीमें पहियोंसे सात समुद्र, सात द्वीप, होगये यह बड़े आश्चर्यकी बात है, तथा रथ तो एक और चौडाई लम्बाई एक प्रकारकी फिर क्या कारण कि एकसे दूना दूसरा, दूसरेसे दूना तीसरा, तीसरेसे दूना चौथा चौथेसे दूना पांचवाँ पांचवेंसे दूना छठा, छठेसे दूना सातवाँ समुद्र और सातवा द्वीप हुवा, यह बड़ी भारी शंका है ?

उत्तर—पाहिले तो प्रियव्रतने अपने तपके अभिमानसे विचार किया कि रात्रिका मैं नाश करदूंगा केवल अकेला दिनही रक्खूंगा क्योंकि यह रात्रिका अन्धकार महादुःखदायक है, ऐसा मनमें विचार किया, और अपने तपके तेज प्रकाशसे अन्धकार न होने दिया और सूर्यनारायणके रथके पीछे पीछे अपना रथ कर लिया, परन्तु फिर पीछे राजाको ज्ञान हुवा, समझा कि दिन रातकी मर्यादा भगवान्की की हुई है जो मैं रात्रिको नष्ट करूंगा तो भगवान् मेरे ऊपर अत्यन्त कोप करके मुझको दण्ड देंगे, इस प्रकार अपने मनमें भय मान रात्रिका नाश नहीं किया, दूसरी शंका -- राजा प्रियव्रत तपके बलसे आकाशमें घूमता फिरे करेथा, तथा कभी कभी भूमिपरभी घूमताथा कुह्मारके चक्रकी समान रथको फिरताथा, जब भूमिमें रथको फेरने लगा तब बडे वेगसे जो रथ घूमताथा उसके पहियोंके चिन्ह पृथ्वीसे सात समुद्र होगये और सात द्वीप होगये, सातचक्र पृथ्वीके राजाने दियेथे, श्रीलक्ष्मीपति भगवान्ने पृथ्वी पर अपनी बनाई सनातनकी जो मर्यादा सात समुद्र, सात द्वीप एकसे एक दूना उनको नष्ट देखकर जो पृथ्वीपर सदासे चले आये हैं वह सात समुद्र और सात द्वीप पृथ्वीपर क्यों नहीं; मैं जानताहूं कि ब्रह्मा, स्वायंभू मनुसे जो सृष्टिकी रचना कराई तब उन्होने सात समुद्र और द्वीप नहीं बनाये, इसलिये अपनी माया करके वासुदेव भगवान् राजा प्रियव्रतके

हरिभक्तोंके प्यारे प्रियव्रतनै भूमिका स्वर्गका मनुष्यका और योगकर्मसे उत्पन्न हुए ऐश्वर्य्यको नरककी समान समझाथा उस परम भक्तकी समत कौन कर सक्ताहै किसकी सामर्थ्य है ॥४१॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषायां पञ्चमस्कन्धे प्रियव्रतस्य प्रथमवैराग्यपश्चाद्गृहस्थाश्रमः पुनर्वैराग्येण मोक्षप्राप्तिवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि जब पिता ऐसे वैराग्यवान भए तब तिनकी आज्ञामें वर्तमान जंबूद्वीपवासी प्रजाको आग्नीध्र सद्धर्म आचरण कर रक्षा करते भए ॥ १ ॥ सो वह आग्नीध्र तपस्वी कोई समय पितृलोककी पुत्रकी कामना कर देवांगनाके क्रीडा-

भौमं दिव्यं मानुषं च महित्वं कर्मयोगजम् ॥यश्चक्रे निरयौपम्यं पुरुषानुजनप्रियः॥ ४१॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने प्रियव्रतविजये प्रथमोऽध्यायः ॥ १॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं पितरि संप्रवृत्ते तदनुशासने वर्तमान आग्नीध्रो जम्बूद्वीपौकसः प्रजा औरसवद्धर्मावेक्षमाणः पर्यगोपायत् ॥ १ ॥ स कदाचित् पितृलोककामः सुरवरवनिताक्रीडाचलद्रोण्यां भगवन्तं विश्वसृजां पतिमाभृतपरिचर्योपकरण आत्मैकाग्र्येण तपस्वी आराधयाम्बभूव ॥ २ ॥ तदुपलभ्य भगवानादिपुरुषः सदसि गायन्तीं पूर्वचित्तिं नामाप्सरसमभियापयामास॥ ३ ॥ सा च तदाश्रमोपवनमतिरमणीयं विविधनिबिडविटपिविटपनिकरसंश्लिष्टपुरटलतारूढस्थलविहङ्गममिथुनैः प्रोच्यमानश्रुतिभिः प्रतिबोध्यमानसलिलकुकुटकारण्डवकलहंसादिभिर्विचित्रमुपकूजितामलजलाशयकमलाकरमुपबभ्राम ॥ ४ ॥

पर्वत मंदराचलकी गुफामें विश्व रचवेवारोंके पति भगवानके पूजा करवेकी सामग्री संग्रह कर आप एकाग्र मन करके आराधन करतो भयो ॥ २ ॥ या बातको देखकर भगवान् आदिपुरुष श्रीब्रह्माजी सभामें गावती भई पूर्व चिति नाम्नी अप्सराको भेजते भए ॥ ३ ॥ ता समय उस आग्नीध्रके आश्रमके समीपके अति रमणीय अनेक प्रकारके सघन वृक्षसमूहपर चढी भई सुवर्णलता जिनपर मोरोंके जोडे बैठे और

---

(१) सो भक्तजन ब्रह्मके उपासक हैं जिनको एक ये भजन है ॥ सोरठ ॥ धन धन ब्रह्मउपासक प्राणी ॥ टेर ॥ श्रवण मनन निदिध्यास सब क्रिये आत्मज्योति पहिचानी ॥ १ ॥ नित्य निरीह अखंड स्वरूप लखि मगन भयो सहलानी ॥२॥ सविशेषीके गुणगुण गिनते भूल्यो सब कर्मकहानी ॥३॥ वात्सल्याश्रित सौशील्यादिक सौलभ्य और स्वामी ॥४॥ शक्तिपूरण प्राप्त सदागुण करुणा गांठ घुलानी ॥ ५ ॥ ब्रह्मादिक सुखतृणसम लागत मूलक्ताति लौ नादानी ॥ ६ ॥ पुरुषोत्तम सांची यही नवनिधि नवगुण मन अभिमानी ॥ ७ ॥

असंभव नहीं कारण कि अत्यंत चांडाल पुरुषभी भगवानका नाम एकवार उच्चारण कर पवित्र हो जाताहै और संसार वंधनसै छूट जाता है ॥ ३५ ॥ जो कुछ हो राजा प्रियव्रत देवर्षि नारदजीके श्रीचरण आश्रय करनेके समय जो राज्यादि प्रपंच आ पडा उसके संबन्धमें अपने आत्माको अनिष्ट समान मान्ता मनमें वैराग्यको प्राप्त होय यह वचन बोला ॥ ३६ ॥ हाय मैंने अच्छा नहीं किया जो अविद्या रचित विषयरूप विषम अंधकूपमें इन्द्रियोंके वश होकर गिरा सवही वृथा है अहो मैं अपनी स्त्रीका क्रीडामृग बना मुझै धिक्कार है यह कह राजा अपनी बहुत निन्दा करनें लगा ॥ ३७ ॥ श्रीमन्नारायणकी कृपासें ब्रह्मज्ञानको प्राप्त हो प्रियव्रत वा समय आज्ञाकारी समीप आये पुत्रोंको या पृथिवीको विभागकर सब

स एवमपरिमितबलपराक्रम एकदा तु देवर्षिचरणानुशयनानुपतितगुणविसर्गसंसर्गेणानिर्वृतमिवात्मानं मन्यमान आत्मनिर्वेद इदमाह ॥ ३६॥ अहो असाध्वनुष्ठितं यदभिनिवेशितोऽहमिन्द्रियैरविद्यारचितविषमविषयान्धकूपे तदलमलममुष्या वनिताया विनोदमृगं मां धिग् धिगिति गर्हयांचकार ॥ ३७ ॥ परदेवतायाः प्रसादाधिगतात्मप्रत्यवमर्शेनानुप्रवृत्तेभ्यः पुत्रेभ्य इमां यथादायं विभज्य भुक्तभोगां च महिषीं मृतकमिव सहमहाविभूतिमपहाय स्वयं निहितनिर्वेदो हृदि गृहीतहरिविहारानुभावो भगवतो नारदस्य पदवीं पुनरेवानुससार ॥ ३८ ॥ तस्य ह वा एते श्लोकाः ॥ प्रियव्रतकृतं कर्म को नु कुर्याद्विनेश्वरम् ॥ यो नेमिनिम्नैरकरोच्छायां घ्नन्सप्त वारिधीन् ॥ ३९ ॥ भूसंस्थानं कृतं येन सरिद्गिरिवनादिभिः ॥ सीमा च भूतनिर्वृत्त्यै द्वीपे द्वीपे विभागशः ॥ ४० ॥

भोग भुक्त पटराणीको मृतककी नाई त्याग, महा विभूतिकों छोड हृदयको वैराग्यसै पूर्णकर श्रीहरिकी लीलाके प्रभावसे हृदयमें निश्चय ग्रहणकर भगवान्नारदके उपदेशके अनुसार वर्तने लगा ॥ ३८ ॥ ताके ये श्लोक हैं, ईश्वरके विना प्रियव्रतके करे कर्मको कौन करसकैगो, रात्रीको दूर करते जो प्रियव्रत अपने रथकी नेमिसे सप्त समुद्र करतो भयो ॥३९॥ जाने नदी पर्वत वन आदि करके भूमीकी स्थिति कीनी और जीवनके सुखके अर्थ द्वीपद्वीपमें विभागसे सीमा बांधी है ॥ ४० ॥

13

विनाहीं अतिशय कठिन दृष्टि आतेहैं विनाफोंकके रुचिर, अति पैने दोनो ये वाण कौनपर छाडगी, या वनमें विचरत हमसरीके जड बुद्धिवारेनपर तुह्मारो पराक्रम क्षेमके अर्थ होय ॥ ८ ॥ ताके अंगकी सुगंधसे लोभी पाछै आते गूंजते भौंरोंको देख बोले कि आप भगवत्सरीके हो सो तुह्मारे ये शिष्य सब ओरसे रहस्य सहित निरंतर श्रीश्वरप्रतिपादक सामवेद पढते हैं, गावते हैं, तुह्मारे शिरसे गिरी सुमनवृष्टिको यह सब भ्रमर ऐसे सेवन करते हैं जैसे ऋषि लोग वेदोंकी शाखाओंका सेवन करतेहैं ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपके चरणरूप पींजरेके तीतरनकी अतिप्रगट रूपरहित वाणी हम सुनै हैं, कदंबसमान रुचिर उत्तम (पीले वर्णके पहरनैके वस्त्रको नितम्बकी कांति समझकर कहताहै कि) तुमने अपने सुन्दर नितम्बौंमें यह कदम्बके फूलौंकी कांति कहां पाई (फिर मेखलाको देखकर कहा) जिसमें अंगारौंकी लङ्गार दृष्टि आती है और दीपमालिका चक्रसा जोवन रहा है यह

शिष्या इमे भगवतः परितः पठन्ति गायन्ति साम सरहस्यमजस्रमीशम् ॥ युष्मच्छिखाविलुलिताः सुमनोभिवृष्टीः
सर्वे भजन्त्यृषिगणा इव वेदशाखाः ॥ ९ ॥ वाचं परं चरणपञ्जरतित्तिरीणां ब्रह्मन्नरूपमुखरां शृणवाम तुभ्यम् ॥ लब्धा
कदम्बरुचिरङ्कविटङ्कबिम्बे यस्यामलातपरिधिः क्व च वल्कलं ते ॥ १० ॥ किं संभृतं रुचिरयोर्द्विज शृङ्गयोस्ते
मन्ये कृशो वहसि यत्र दृशिः श्रिता मे ॥ पङ्कोरुणः सुरभिरात्मविषाण ईदृग्येनाश्रमं सुभग मे सुरभीकरोषि ॥
॥ ११ ॥ लोकं प्रदर्शय सुहृत्तम तावकं मे यत्रत्य इत्थमुरसाऽवयवावपूर्वौ ॥ अस्मद्विधस्य मन उन्नयनौ बि-
भर्ति बह्वद्भुतं सरसराससुधाधिवक्त्रे ॥ १२ ॥

क्या है और तुह्मारा वल्कला क्या हुआ ॥ १० ॥ हे द्विज ! रुचिरस्तनरूप शृंगनमें कहा भरोहै मैं इस कारण देखताहूं कि तुम मध्य भागमें दुर्वल होकर कष्टसै जिनको धारण करती हो इसी भावको देखकर मुझै इस बातका अनुमान होताहै और हमारी दृष्टि केवल इन्ही दौनोके ऊपर लग रही है (फिर दौनेपर कुमकुम लगा देख बोले) कि तुमने अपने दौनो शृंगौंपर यह अति सुंदर लाल लाल पंक क्या लगाया है जिससै मेरे इस आश्रमको पवित्र करते हो ॥ ११ ॥ हे सुहृत्तम ! आप अपनो लोक हमकों दिखाओ, जहांके जन अपने हृदय ऐसे अद्भुत अवयवको धारण करते हैं तुम इनके दिखानेसै हमसरीकेनके मनको महाचाह चढाओहो, और केवल यही नहीं किन्तु तुह्मारे मुखमें मधुर आलाप और विलास सहित

उनके षड्जादिस्वरों और जलमृग कारंडव हंसौंके मनोहर स्वरसें विचित्र शब्दायमान, तथा जलाशयमें कमलनके समूह शोभायमान हो रहे है तहां उस उपवनमें वह अप्सरा आई विचरतीभई ॥ ४ ॥ सुंदर ललित चलवेके समय चरणधरवेकी गतिसै उसके चरणके आभूषणनको क्षण क्षणमें खनखनाहट सुनकर राजकुमार समाधियोगसै मूंदे भये नयनकमलरूप कलियनको तनक खोल देखते भये ॥ ५ ॥ समीपमें भँवरीकी नांई पुष्पकों सूंघवेवारी, देवता मनुष्यके मन नयनको आनंदसे भरे भये, गमन, विहार, लज्जा विनययुक्त चितवन, और सुंदर स्वरीले अक्षरोंके मुखसे निकसें वचनौंसे मनुष्योंके मनमें कामदेवके अवसरोंको प्रगट करती भई, निज मुखसे हांसी सहित वचन बोलनेके समय निकसी अमृत सम

तस्याः सुललितगमनपदविन्यासगतिविलासायाश्चानुपदं खणखणायमानरुचिरचरणाभरणस्वनमुपाकर्ण्य नरदेवकुमारः समाधियोगेनामीलितनयननलिनमुकुलयुगलमीषद्विकचय्य व्यचष्ट ॥ ५ ॥ तामेवाऽविदूरे मधुकरीमिव सुमनस उपजिघ्रन्तीं दिविजमनुजमनोनयनाह्लाददुघैर्गतिविहारं विनयावलोकसुस्वराक्षरावयवैर्मनसि नृणां कुसुमायुधस्य विदधतीं विवरम् निजमुखविगलितामृतासवसहासभाषणामोदमदान्धमधुकरनिकरोपरोधेन द्रुतपदविन्यासेन वल्गुस्पन्दनस्तनकलशकबरभाररशनां देवीं तदवलोकनेन निवृतावसरस्य भगवतो मकरध्वजस्य वशमुपनीतो जडवदिति होवाच ॥ ६ ॥ श्लोकाः ॥ का त्वं चिकीर्षसि च किं मुनिवर्य शैले मायाऽसि कापि भगवत्परदेवतायाः ॥ विज्ये बिभर्षि धनुषी सुहृदात्मनोऽर्थे किं वा मृगान् मृगयसे विपिने प्रमत्तान् ॥७॥ बाणाविमौ भगवतः शतपत्रपत्रौ शान्तावपुङ्खरुचिरावतितिग्मदन्तौ ॥ कस्मै युयुङ्क्षसि वने विचरन्न विद्मः क्षेमाय नो जडधियां तव विक्रमोऽस्तु ॥ ८ ॥

मादककी सुगंधिके मदसे अंधे मधुकरोंके समूहके रोकनेसे शीघ्र शीघ्र पग धरवेसे किंचित् स्तनकलश चलनेसे जूडाके भारसै नम्र महाप्रकाशित पूर्वचित्ति अप्सराको देखतेही भगवान कामदेवके वशमें होयकर जडकीसी नाई राजा आग्नीध्र यूं बोले ॥ ६॥ हे मुनिवर्य ! तुम कौन हो या पर्वतपर कहा करवेकी तुह्मारी इच्छा है क्या तुम परमेश्वरकी माया हो हे सुहृत्सखे ! तुम निर्गुणधनुषधारे हो सो या वनमें हम सरीके प्रमत्त मृगनको अपनेलिये ढूंढोहो ॥ ७ ॥ वाके कटाक्ष देख बोले कि तुह्मारे दौनो कमल नेत्रही जिनके पिच्छ हैं और दौनौही विभ्रमके कारण शान्त है तथापि पंखौंके

15

आग्नीध्रनें ग्राम्य जनोंके भीतर चतुरवाली परिपूर्ण भाषाके द्वारा उस अप्सराका भलीभांति आदर कर उसै मनाया ॥ १७ ॥ वह अप्सरा उस वीर यूथपति राजाके बुद्धि, शील, रूप, अवस्था, श्री, उदारतासै मोहित हो दसहज्जार वर्ष पर्यंत तक वा जंबूद्वीपपति आग्नीध्रके संग भूमि स्वर्गके भोगनको भोगती भई ॥ १८ ॥ सो राजवर तामें आग्नीध्र, नाभि, किंपुरुष, हरिवर्ष, इलावृत, रम्यक, हिरण्मय, कुरु, भद्राश्व, केतुमाल, नामक नौ पुत्र उत्पन्न करते भए " पुन्नाम्नो नरकात् त्रायंत इति व्युत्पत्तिरास्ति " ॥१९॥ वो अप्सरा एक एक वर्षमें एक एक ऐसे नव पुत्रकों उत्पन्न कर घरमें छोड फिर ब्रह्माजीके पास चली जाती भई ॥ २० ॥ वे आग्नीध्रके पुत्र माताकी कृपासे अपने स्वाभाविक सुभावसे दृढअंग बल युक्त भए,

सा च ततस्तस्य वीरयूथपतेर्बुद्धिशीलरूपवयःश्रियौदार्येण पराक्षिप्तमनास्तेन सहायुतायुतपरिवत्सरोपलक्षणं कालं जम्बूद्वीपपतिना भौमस्वर्गभोगान् बुभुजे ॥ १८ ॥ तस्यामु ह वा आत्मजान् स राजवर आग्नीध्रो नाभिकिंपुरुषहरिवर्षेलावृतरम्यकहिरण्मयकुरुभद्राश्वकेतुमालसंज्ञान् नव पुत्रानजनयत् ॥ १९ ॥ सा सूत्वाऽथ सुतान् नवानुवत्सरं गृह एवापहाय पूर्वचित्तिर्भूय एवाजं देवमुपतस्थे ॥ २० ॥ आग्नीध्रसुतास्ते मातुरनुग्रहादौत्पत्तिकेनैव संहननबलोपेताः पित्रा विभक्ता आत्मतुल्यनामानि यथाभागं जम्बूद्वीपवर्षाणि बुभुजुः ॥ २१ ॥ आग्नीध्रो राजाऽतृप्तः कामानामप्सरसमेवानुदिनमधिमन्यमानस्तस्याः सलोकतां श्रुतिभिरवारुन्धे यत्र पितरो मादयन्ते ॥ २२ ॥ संपरेते पितरि नव भ्रातरो मेरुदुहितॄर्मेरुदेवीं प्रतिरूपामुग्रदंष्ट्रीं लतां रम्यां श्यामां नारीं भद्रां देववीतिमितिसंज्ञा नवोदवहन् ॥ २३ ॥ इति श्रीभा० पञ्चम० आग्नीध्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

पिताका विभाग कराभया सब राज अपने समान नामविस्तार कर सब जंबुद्वीपके खंडनको भोगते भए ॥२१ ॥ राजा आग्नीध्रकी कामसे तृप्ति न भई यासे दिनरात अप्सराकी चिंता करकै वाको अधिकमान श्रुतियोंसे निर्दिष्ट यज्ञ कर उसी लोककों प्राप्त भए, जहां पितर आनंद करै है विजयध्वजीमै है कि अप्सरालोकही पितृलोक है ॥ २२ ॥ जब पिता वैकुंठको गए तब नव भाई मेरुदुहितृ मेरुदेवी, प्रतिरूपा, उग्रदंष्ट्री, लता: रम्या, श्यामा, नारी, भद्रा, देववीती, इन नवनको व्याहते भए ॥२३॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषायां पञ्चमस्कन्धे आग्नीध्रचरित्रवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

अद्भुत-अधरामृतभी है॥१२॥ हे अंग मित्र! तुह्मारे लोकमें खायवेकी क्या वस्तु है, जाके पावनेसे ऐसी मुखसें सुगंधि आवे है, क्या तुम विष्णुकी कला हो जिसै विना भोजन ऐसी कांति है तुह्मारे दोनौ कानोमें विष्णुजीकी नाईं दो मकराकृत कुंडल दीप्तिमान हो रहे हैं तिनके निकटही निमेष शून्य दो नेत्र शोभा विस्तार कर रहे हैं तुह्मारा मुख मानो सरोवर है इसमें दो चंचल नेत्र मीनकी समान क्रीडा करते हैं और मुखके भीतर दांतोंकी पंक्ति राजहंसौंकी पंक्तिकी समान शोभा विस्तार करतीहै और यह केशकलाप अलिकुलकी नाईं शोभा विस्तार कर रहे हैं ॥ १३ ॥ जो ये गेंद तुह्मारे हस्तकमलसें फैंकोगयोहै ये दिशानमें घूमैं है, सो देख कर मेरी दृष्टिको चंचल करती है तुह्मारे यह वेणीबंधन खसै पडते हैं सो क्या तुह्मै

का वात्मवृत्तिरदनाद्धविरङ्ग वाति विष्णोः कलास्यनिमिषोन्मकरौ च कर्णौ ॥ उद्विग्नमीनयुगलं द्विजपङ्क्तिशोचिरासन्नभृङ्गनिकरं सर इन्मुखं ते ॥ १३ ॥ योऽसौ त्वया करसरोजहतः पतङ्गो दिक्षु भ्रमन् भ्रमत एजयतेऽक्षिणी मे ॥ मुक्तं न ते स्मरसि वक्रजटावरूथं कष्टोऽनिलो हरति लम्पट एष नीवीम् ॥ १४ ॥ रूपं तपोधन तपश्चरतां तपोघ्नं ह्येतत्तु केन तपसा भवतोपलब्धम् ॥ चर्तुं तपोर्हसि मया सह मित्र मह्यं किं वा प्रसीदति स वै भवभावनो मे ॥ १५ ॥ न त्वां त्यजामि दयितं द्विजदेवदत्तं यस्मिन् मनो दृगपि नो न वियाति लग्नम् ॥ मां चारुशृङ्ग्यर्हसि नेतुमनुव्रतं ते चित्तं यतः प्रतिसरन्तु शिवाः सचिव्यः ॥ १६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति ललनाऽनुनयातिविशारदो ग्राम्यवैदग्ध्यया परिभाषया तां विबुधवधूं विबुधमतिरधिसभाजयामास ॥ १७ ॥

इनकी सुधि नहीं है अरी यह धूर्त लंपट पवन तेरी नीवीको हरण करताहै क्या इसैभी नहीं संभालती ॥ १४ ॥ हे तपोधन! तप करवेवारेनके तपको नाश करवेवारो ये रूप तुमको कौन तपकरकै मिलो है, हे मित्र! मेरे संग तप करो, जो हमारे ऊपर प्रसन्न होकर भगवान ब्रह्माजी तुह्मै हमारी स्त्री करदैं ॥ ॥ १५ ॥ हमें समझ पडता है कि भगवान ब्रह्माजीनें तुमको हमारे निमित्त भेजाहै इस कारण हम तुह्मै अब नहीं छोडैंगे मेरे दृष्टि और मन तुममें लगा हुआ है इस कारण हे श्रेष्ठ शृंगवाली! जहां तुह्मारा मन चाहै तहां हमें लेचलो हम तुह्मारे आधीन है और सखियोंकोभी कहदे कि यह अनुकूल हो हमारे साथ रहैं ॥ १६ ॥ श्रीशुकाचार्य बोले कि या प्रकार ललनाकी चतुराईमें चतुर देवताओंकी समान बुद्धिमान स्त्रियोंके मनानेमें चतुर

ऋत्विक् बोले कि हे पूज्यतम ! तुम परिपूर्ण हो तौभी हम सरीखे भृत्यजनोंकी पूजा वारंवार ग्रहण करनेके योग्य हो हे प्रभो ! हममें इतनी सामर्थ्य नहीं है जो आपकी स्तुति करसकै आपका स्वरूप जान्ना महा दुर्लभ है इस कारण हमने सत्पुरुष साधु महात्माओंके निकट केवल 'नमस्कार' 'नमस्कार' इतनीही स्तुति करनी सीखी है क्योंकि प्रपंचकी बुद्धिवाला असमर्थ पुरुष प्रपंचकी अन्तर्भूत नामरूप आकार प्रकृतिसे परे आपके स्वरूपका निरूपण कर सक्ताहै' ॥ ४ ॥ सब जीव समूहों पापनाशक, अत्यंत कल्याणदायक, श्रेष्ठ गुणगणोंके कहिवेके विना और प्रकारसे कोई

ऋत्विज ऊचुः॥अर्हसि मुहुरर्हत्तमार्हणमस्माकमनुपथानां नमो नम इत्येतावत्सदुपाशिक्षितं कोऽर्हति पुमान् प्रकृतिगुणव्यतिकरमतिरनीश ईश्वरस्य परस्य प्रकृतिपुरुषयोरर्वाक्तनाभिर्नामरूपाकृतिभी रूपनिरूपणम् ॥ ४ ॥ सकलजननिकायवृजिननिरसनशिवतमप्रवरगुणगणैकदेशकथनादृते ॥५॥ परिजनानुरागविरचितशबलसंशब्दसलिलसितकिसलयतुलसिकादूर्वाङ्कुरैरपि संभृतया सपर्यया किल परम परितुष्यसि ॥६॥ अथानयाऽपि न भवत इज्ययोरुभारभरया समुचितमर्थमिहोपलभामहे ॥७॥ आत्मन एवानुसवनमञ्जसा व्यतिरेकेण बोभूयमानाशेषपुरुषार्थस्वरूपस्य किंतु नाथाशिष आशासानानामेतदभिसंराधनमात्रं भवितुमर्हति ॥८॥

न जानसके हैं ॥ ५ ॥ हे परम ! आपके भक्त लोक प्रीतिपूर्वक गद्गदाक्षर उच्चारण कर जो आपकी स्तुति करतेहैं और शुद्ध जल पल्लव तुलसी दूर्वाके अंकुर आदि तयार करकै पूजन करतेहैं आप उससेभी प्रसन्न होजातेहौं ॥ ६॥ और प्रीतिके विना तौ अनेक सामग्री युक्त अंगोंसे पूर्णभी यज्ञ किया जाय सो इससै मन चाहा कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता ॥ ७ ॥ आप सदा स्वतंत्र साक्षात् स्वयंही प्रगट हुएहो संपूर्ण पराक्रम स्वरूपभूत परमानंद

---

१ शंका–राजा नाभिने अपने यज्ञमें प्रगट भगवान वासुदेवको देखा, फिर उनको नमस्कार और स्तुति क्यों नहीं की ? इसका क्या कारण ? और जो यज्ञमें ऋषीश्वर मुनीश्वर थे उन्होंने भगवानको अनेक अनेक प्रकारसे नमस्कार और स्तुति की,और राजा नाभि दूसरे मनुष्यकी समान सन्मुख खडे रहे जैसे कुछ यज्ञमें इनका कुछ नहीं यह वडी भारी शंका है ?

उत्तर–राजा नाभि अपनें यज्ञमें भगवानको देखके स्त्रीसहित अपने नेत्रोंमें जल भरलाया, और भगवानके दर्शन करकै ध्यान मग्न होगये, जब राजा नाभि स्त्री समेत बोल नहीं सके, पृथ्वीपर गिर पडे प्रेमके वशीभूत हो शरीरके रोमांच खडे होगये, इस प्रकार राजाको प्रेमातुर देखकर ऋषियौंने राजा नाभिकी ओरसे भगवान वासुदेवकी स्तुति की, इसलिये नाभि राजाने भगवानको नमस्कार तथा स्तुति नहीं की ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि सन्तान रहितराजा नाभि पुत्रकी चाहना करकै मेरुदेवी सहित श्रीभगवान् यज्ञ पुरुषको सावधान होयकर यज्ञ करतो भयो ॥ १ ॥ “ या अध्यायमें सबके शिरोमणि सर्वज्ञ श्रीजैनमत प्रवर्तक भगवान ऋषभदेवजी भए जाको चौवीस अवतारोंमें वर्णन हैं ” नाभिराजा श्रद्धाकरकै विशुद्धभावसै यजन कर प्रवर्ग्य नामक कर्म कर रहेथे उस समय यद्यपि भगवान द्रव्य देश काल मंत्र ऋत्विक् दक्षिणा और विधि इन उपायौंसैभी प्राप्त नहीं होते तौभी भक्तोंके ऊपर दया करनैको स्वयं सुंदर शरीर धारण कर उसके सामने अपने रूपको प्रगट किया स्वरूप धारणका यही कारण है कि भक्तजनोंकी मनोकामना हो जाय जब भक्तने वासना की कि उनका चित्त आकर्षित होगया नारायण जिस मूर्तिसै प्रगट हुए

श्रीशुक उवाच ॥ नाभिरपत्यकामोऽप्रजया मेरुदेव्या भगवन्तं यज्ञपुरुषमवहितात्माऽयजत् ॥ १ ॥ तस्य हवाव श्रद्धया विशुद्धभावेन यजतः प्रवर्ग्येषु प्रचरत्सु द्रव्यदेशकालमन्त्रर्त्विग्दक्षिणाविधानयोगोपपत्त्या दुरधिगमोऽपि भगवान् भागवतवात्सल्यतया सुप्रतीक आत्मानमपराजितं निजजनाभिप्रेतार्थविधित्सया गृहीतहृदयो हृदयंगमं मनोनयनानन्दनावयवाभिराममाविश्चकार ॥ २ ॥ अथ ह तमाविष्कृतभुजयुगलद्वयं हिरण्मयं पुरुषविशेषं कपिशकौशेयाम्बरधरमुरसि विलसच्छ्रीवत्सललामं दरवरवनरुहवनमालाऽच्छूर्यमृतमणिमदादिभिरुपलक्षितं स्फुटकिरणप्रवरमणिमयमुकुटकुण्डलकटककटिसूत्रहारकेयूरनूपुराद्यङ्गभूषणविभूषितमृत्विक्सदस्यगृहपतयोऽधना इवोत्तमधनमुपलभ्य सबहुमानमर्हणेनावनतशीर्षाण उपतस्थुः ॥ ३ ॥

वह स्वतंत्र थी सब अंग मन और नेत्रोंके आनंद दायक थे वह मूर्ति सुन्दर और सुखदायक थी ॥ २ ॥ याके उपरांत चतुर्भुज धारी सुवर्णमय पुरुषनमें विशेष, पितांबर धारी, वक्षस्थलमें श्रीमहालक्ष्मीको चिन्ह शोभित, शंख कमल वनमाला चक्र कौस्तुभमणि गदादिसें शोभित और श्रेष्ठ मुकुट कुंडल कडा कटिसूत्र हार केयूर नूपुर आदि अंगभूषणौंसे की मनोहर किरणोंकी झलक उस मूर्तिका सब शरीर जगमगा रहाथा उस समय ऋत्विक सभासद और यजमान सबनै ऐसा मनोहर अद्भुत शृंगार किये विष्णु भगवानका सुंदर स्वरूप देख उनके बहुत आराधन कर शिर झुकाय विविध भांतिके उपहारद्वारा पूजन कर जिस प्रकार दरिद्री संपदाको देख प्रसन्न हो उसका सन्मान करता है उस प्रकार ऋत्विक प्रसन्न हो बोले ॥ ३ ॥

इच्छा करता है जैसे कोई मनुष्य धनवानसे नाजके ऊपरकी भुस्सी मांगे ऐसे इस लोकके फल आप समान पुत्रकी प्रार्थना करताहै कारण कि यह संतानकोही पुरुषार्थ समझताहै इस कारण आपसे प्रार्थना कीहै ॥ १३ ॥ इसकी यह प्रार्थना असंगतभी नहीं क्योंकि यासंसारमें सबके पराजय करवेवारी तुह्मारी मायासे सब पराजित होयहै, उसकी पदवी नहीं जानी जाती महापुरुषके चरणोंकी उपासना नहीं करनेसे किसकी बुद्धि विषयरूप विषके वेगसे नहीं घिर जाती है ॥ १४ ॥ हे वहुकार्यकारिन्! जो आपकों थोडेसे कार्यके लिये हमने बुलाया यह हमने वडी मूर्खता की हम पुत्रकोही परम पुरुषार्थ मान्ते हैं हे देवदेव! आपके प्रति जो यह हमने अपना खेलसा प्रकाश किया इस अवज्ञाको आप सहनेके योग्य हैं

को वा इह तेऽपराजितोऽपराजितया माययाऽनवासितपदव्याऽनावृतमतिर्विषयविषरयानावृतप्रकृतिरनुपासितमहच्चरणः ॥ १४ ॥ यदु ह वाव तव पुनरदभ्रकर्तरिह समाहूतस्तत्रार्थधियां मन्दानां नस्तद्यद् देवहेलनं देवदेवार्हसि साम्येन सर्वान् प्रतिवोढुमविदुषाम् ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति निगदेनाभिष्टूयमानो भगवाननिमिषर्षभो वर्षधराभिवादिताभिवन्दितचरणः सदयमिदमाह ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अहो बताहमृषयो भवद्भिरवितथगीर्भिर्वरमसुलभमभियाचितो यदमुष्य आत्मजो मया सदृशो भूयादिति ममाहमेवाभिरूपः कैवल्यादथापि ब्रह्मवादो न मृषा भवितुमर्हति ममैव हि मुखं यद् द्विजदेवकुलम् ॥ १७ ॥ तत आग्नीध्रीयेंऽशकलयावतरिष्यामि आत्मतुल्यमनुपलभमानः ॥ १८ ॥

कारण कि आप सब पर समान भाव रखते हो ॥ १५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि या गद्यात्मक स्तुतिको सुन, भारत वर्ष पति नाभी करकै वंदित चरण, ऐसे ऋत्विजोंसे स्तुति किये हुए भगवान दयालु हो बोले ॥ १६ ॥ श्रीभगवान् बोले कि अहो बडे आश्चर्यकी वार्ता है कि हे ऋषिहो! आपने सत्यवाणींसे अति कठिणतर वर मांगो कि याके पुत्र मेरे समान होय, कैवल्यदायक मेरे समान तो मैही हूं, तथापि ब्राह्मणोंकी वाणी मिथ्या होयवेकों योग्य नहीं है, कारण कि उत्तम ब्राह्मणनकी कुल मेरो मुख है, ऐसे वेदमें है ॥ १७ ॥ ताते या नाभि राजाके यहां अंश कला करकै अवतार लेंगे, क्यों कि अपनी आत्माके तुल्य और कोई नहीं है, सो हमही प्रगट होयगें ॥ १८ ॥

ब्रह्मस्वरूप हो परन्तु हम कामनावाले भक्तोंके निमित्त केवल आपकी उपासना मात्र बन सकती है ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! मूर्ख पुरुष स्वयं आपकी श्रेष्ठताको नहीं जान्ते सो उनके निकट अत्यन्त गुणवाली दया द्वारा मोक्ष नाम अपनी महिमा तथा उनकी अभिलाषा सिद्ध करनेको तुम पूजित न होकरभी और दूसरे सापेक्ष पुरुषकी समान दर्शन दियाहै इस कारण हमारी पूजासे आपका कुछ उपकार न होगा आपने दास जान हमको दर्शन दियाहै ॥ ९ ॥ यद्यपि तुम वर देवेकूं आविर्भूत भए हो, तथापि हे पूजनीय! यही वर है कि या राजर्षिके यज्ञमें वरदाता आप आपने भक्तनके नेत्रके सन्मुख भये ॥ १० ॥ सबसंग रहित होनेके कारण तीक्ष्णज्ञानरूप अग्निसे जिनके सब मल धूगए, आपमें स्वभाव धारनेहारे

तद् यथा बालिशानां स्वयमात्मनः श्रेयः परमार्विदुषां परमपरमपुरुष प्रकर्षकरुणया स्वमहिमानं चापवर्गाख्यमुपकल्पयिष्यन् स्वयं नापचित एवेतरवदिहोपलक्षितः॥९॥अथायमेव वरो ह्यर्हत्तम यर्हि बर्हिषि राजर्षेर्वरदर्षभो भवन्निजपुरुषेक्षणविषय आसीत् ॥१०॥ असङ्गनिशितज्ञानानलविधूताशेषमलानां भवत्स्वभावानामात्मारामाणां मुनीनामनवरतपरिगुणितगुणगणपरममङ्गलायनगुणगणकथनोऽसि॥११॥अथ कथंचित् स्खलनक्षुत्पतनजृम्भणदुरवस्थानादिषु विवशानां नः स्मरणाय ज्वरमरणदशायामपि सकलकश्मलनिरसनानि तव गुणकृतनामधेयानि वचनगोचराणि भवन्तु ॥ १२ ॥ किं चायं राजर्षिरपत्यकामः प्रजां भवादृशीमाशासान ईश्वरमाशिषां स्वर्गापवर्गयोरपि भगवन्तमुपधावति प्रजायामर्थप्रत्ययो धनदमिवाधनः फलीकरणम् ॥ १३ ॥

आत्माराम, मुनिजन आपके गुणगणोंका सदा अभ्यास करते रहतेहैं ऐसे महात्माभी आपके मंगलदायक गुणोंका वर्णन करते आपकी स्तुति करतेहैं परन्तु दर्शन तो बहुतही दुर्लभ है ॥ ११ ॥ हे प्रभो ! हम यही वर मांगतेहैं कि भूख लगने गिरने जंभाई लैने और दुरवस्थाके समय जब कि हम आपको स्मरण करनेमें असमर्थ हो उस कालमें तथा ज्वर और मृत्युके समयभी आपका गुणसहित नाम हमारी वाणीसे निकलता रहै जो आपके नाम संपूर्ण पापोंके दूर करनेहारे है ॥ "हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम् ॥ कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा" ॥ १२ ॥ हे देव! हमारी औरभी प्रार्थना है आप स्वर्ग और अपवर्गके स्वामी हो आपके निकट पुत्र चाहनेहारा यह राजर्षि आपकी समान पुत्रकी

तस्य हीन्द्रः स्पर्धमानो भगवान्वर्षे न ववर्ष तदवधार्य भगवानृषभदेवो योगेश्वरः प्रहस्यात्मयोगमायया स्ववर्षमजनाभं
नामाभ्यवर्षत् ॥३॥ नाभिस्तु यथाऽभिलषितं सुप्रजस्त्वमवरुध्यातिप्रमोदभरविह्वलो गद्गदाक्षरया गिरा स्वैरं
गृहीतनरलोकसधर्मं भगवन्तं पुराणपुरुषं मायाविलसितमतिर्वत्स तातेति सानुरागमुपलालयन्परां निर्वृतिमुपगतः
॥ ४ ॥ विदितानुरागमापौरप्रकृति जनपदो राजा नाभिरात्मजं समयसेतुरक्षायामभिषिच्य ब्राह्मणेषूपनिधाय सह
मेरुदेव्या विशालायां प्रसन्ननिपुणेन तपसा समाधियोगेन नरनारायणाख्यं भगवन्तं वासुदेवमुपासीनः कालेन तन्महिमानमवाप ॥ ५ ॥ यस्य ह पाण्डवेय श्लोकावुदाहरन्ति ॥ को नु तत्कर्म राजर्षेर्नाभेरन्वाचरेत्पुमान् ॥
अपत्यतामगाद्यस्य हरिः शुद्धेन कर्मणा ॥ ६ ॥ ब्रह्मण्योऽन्यः कुतो नाभेर्विप्रा मङ्गलपूजिताः ॥ यस्य बर्हिषि
यज्ञेशं दर्शयामासुरोजसा ॥ ७ ॥

तिनके ऊपर इंद्र भगवान स्पर्धा कर वा खंडमें वर्षा नहीं करते भए ये जान योगीश्वर भगवान् ऋषभदेवजी हंसकर अपनी आत्मयोगकी मायासे अपने अजनाभ खंडमें वर्षा की ॥ ३ ॥ नाभि तो अपने मनोरथ और सुंदर प्रजाकों प्राप्त होयकर अति आनंदसे विह्वल अक्षर गद्गद वाणीसे अपनी इच्छासे मनुष्य लोक समान धर्म ग्रहण करनेहारे भगवान पुराणपुरुषको मायाविलसितमति राजा 'हे पुत्र हे प्यारे' ऐसे अनुरागसे अतिलालन करते परम आनंदको प्राप्त होतेभये ॥ ४ ॥ सब पुरकी प्रजा देशको अनुराग जान राजा नाभी अपने पुत्रकी धर्ममर्यादारक्षाके अर्थ अभिषेक कर ब्राह्मणोंके ऊपर छोडकर मेरुदेवीकों संग ले बदरिकाश्रममें जाय प्रसन्नमनसे सुंदर तप समाधियोगकरकै नरनारायणभगवान् वासुदेवकी उपासना कर कालकरकै जीवन्मुक्त होय तिनकी महिमाको प्राप्त होते भए ॥ ५ ॥ हे परीक्षित् ! जा नाभिराजाके दो श्लोक हैं ॥ कौन पुरुष नाभिके समान कर्म करैगो, क्योंकि जाके शुद्धकर्मकरकैं श्रीहरिभगवान पुत्रभावकों प्राप्त होते भए ॥६॥ नाभिसे और ब्रह्मण्य कौन है जाने विप्रनकी मंगलमें पूजा कीनी जाके यज्ञमें पराक्रम करकै यज्ञेश दर्शन देतेभए ॥ ७ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि ऐसे सुनती भई मेरुदेवीके सामने वाके पतिसे ऐसे कहि भगवान् अंतर्धान होते भए ॥ १९ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! वा यज्ञमें परमऋषियों करके प्रसन्न हो भगवान् नाभीके प्रिय करवेकी इच्छासे वाके अंतःपुरमें मेरुदेवीमें धर्म दिखायवेकी कामना करके दिगंबर रहिवेवारे तपस्वी ज्ञानी नैष्ठिक ब्रह्मचारी, ऊर्ध्वरेता ऋषियोंको उपदेश देनेको शुक्ल वर्णकी देह धार श्रीऋषभदेव नामक अवतार लिया ॥ २० ॥ इतिश्री० भा० पञ्चमस्कन्धे नाभिनृपस्य मेरुदेव्यां ऋषभावतारवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि श्रीऋषभदेवजीके उत्पन्न

॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति निशामयन्त्यां मेरुदेव्यां पतिमभिधायान्तर्दधे भगवान् ॥१९॥ बर्हिषि तस्मिन्नेव विष्णुदत्त-भगवान् परमर्षिभिः प्रसादितो नाभेः प्रियचिकीर्षया तदवरोधायने मेरुदेव्यां धर्मान् दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तनुवाऽवततार ॥ २० ॥ इति श्रीभा० पञ्चम० तृतीयोऽध्यायः ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ ह तमुत्पत्त्यैवाभिव्यज्यमानभगवल्लक्षणं साम्योपशमवैराग्यैश्वर्यमहाविभूतिभिरनुदिनमेधमानानुभावं प्रकृतयः प्रजा ब्राह्मणा देवताश्चावनितलसमवनायातितरां जगृधुः ॥ १ ॥ तस्य ह वा इत्थं वर्ष्मणा वरीयसा बृहच्छ्लोकेन च ओजसा बलेन श्रिया यशसा वीर्यशौर्याभ्यां च पिता ऋषभ इतीदं नाम चकार ॥ २ ॥

होतेही उनके अंगमें भगवानके सब लक्षण थे और समभाव वैराग्य शांति ऐश्वर्य और महा संपत्तियोंसे उनका प्रभाव प्रतिदिन दीखने लगा उनको पृथ्वीतलका पालन करनेके लिये प्रजा राजमंत्री और ब्राह्मण सबकी इच्छा हुई ॥ १ ॥ अति श्रेष्ठतम विपुल, ओज, बल, लक्ष्मी, यश, वीर्य, शौर्य, देखकर तिनके पिता ऋषभ[१] नाम करते भये ॥ २ ॥

---

[१] शंका–हमने शास्त्र और पुराणोंमें ऐसा लिखा देखाहै कि क्षात्रिय कुलमें जो बालक जन्म लेताहै तो उसका नाम ब्राह्मण रखते हैं, वेदकी रीतिसे, परन्तु राजानाभिने अपने पुत्रोंका नाम आप क्यों रक्खा ?

उत्तर–सतयुग,त्रेता, द्वापरमें सब प्राणी अपने बालकोंके दो नाम रखतेथे वेदकी रीतिसे तो ब्राह्मणोंसे नाम रखवाते थे और बालकोंके कर्म देखकर उनका नाम आप रखतेथे· ब्राह्मणोंकी आज्ञा लेकर, अपने पुत्रोंके कर्म देखकर दान करके, ब्राह्मणोंको प्रसन्न करके तब राजानाभिने अपने पुत्रोंका नाम आप रक्खा कुछ अभिमान करके वेदकी रीति नहीं त्यागी ॥

केवल आनंद अनुभवी ईश्वरही थे,तथापि अनीश्वरकी भांति कर्मको प्रारंभ कर जो वा बातकूं नहीं जानैहै,तिनको कालके अनुसार धर्माचरण शिक्षा करते समभावमें रहे, महाशांत मैत्र दयालु ऋषभ देवजी धर्म अर्थ यश संतान और मोक्ष संग्रहके सहित लोगोंको घरमें चलातेथे॥ १४ ॥ जो महाश्रेष्ठ लोग आचरण करैहै वाके समान लोगभी करवे लगैहैं ॥ १५ ॥ अपनेको विदित सकलधर्म जो ब्रह्मसंबंधी हो, सो ब्राह्मणोंके दिखायेभए मार्गसे साम आदि उपायोंसे सब जनसमूहोंको शिक्षा करतेभए ॥१६॥ द्रव्य, देश, काल, अवस्था,श्रद्धा, ऋत्विजों करकै अनेक प्रकारसे सब यज्ञोंकरकै बढे भए कर्मसे जैसो उपदेश हो तैसो शतवार अश्वमेधयज्ञ करते भए ॥१७॥ भगवान् ऋषभदेवजी इस भारत वर्षके स्वामी होकर सब प्रकारसै इस देशकी रक्षा करने लगे उस समय

यद्यच्छीर्षण्याचरितं तत्तदनुवर्तते लोकः ॥ १५ ॥ यद्यपि स्वविदितं सकलधर्मं ब्राह्मं गुह्यं ब्राह्मणैर्दर्शितमार्गेण सामादिभिरुपायैर्जनतामनुशशास ॥ १६ ॥ द्रव्यदेशकालवयःश्रद्धर्त्विग्विविधोद्देशोपचितैः सर्वैरपि क्रतुभिर्यथोपदेशं शतकृत्व इयाज ॥ १७ ॥ भगवतर्षभेण परिरक्ष्यमाण एतस्मिन्वर्षे न कश्चन पुरुषो वाञ्छत्यविद्यमानमिवात्मनोऽन्यस्मात्कथंचन किमपि कर्हिचिदवेक्षते भर्तर्यनुसवनं विजृम्भितस्नेहातिशयमन्तरेण ॥ १८ ॥ स कदाचिदटमानो भगवानृषभो ब्रह्मावर्तगतो ब्रह्मर्षिप्रवरसभायां प्रजानां निशामयन्तीनामात्मजानवहितात्मनः प्रश्रयप्रणयभरसुयन्त्रितानप्युपशिक्षयन्निति होवाच॥१९॥इति श्रीभाग०पञ्चमस्कन्धे ऋषभदेवानुचरिते चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

किसी पुरुषकी दूसरे किसी पुरुषसै अपने लिये आकाशपुष्पकी नाई कुछभी प्रार्थना करनेकी इच्छा नहीं हुई कोई पुरुष किसी दूसरेकी वस्तुपर दृष्टि नहीं करताथा अधिक क्या कहैं ऋषभदेवजीके राज्यके समय प्रजाओंकी अपने स्वामीके लिये क्षण क्षण वृद्धिशील स्नेह उद्रेकके सिवाय और कुछ इच्छा नहीं थी ॥ १८ ॥ सो कोई समय विचरते भए ऋषभदेवजी ब्रह्मावर्तमें आए, तहां ब्रह्मऋषि प्रवरोंकी सभामें प्रवेश करकै देखा कि हमारे पुत्रगणभी बैठे हैं यद्यपि वह संमत चित्त थे विनयनम्र और प्रयणद्वारा वशीभूतचित्त थे तौभी प्रजाके उपदेशके निमित्त उन सबके सन्मुख शिक्षा प्रदान करकै यह वक्ष्यमाण वचन बोले ॥ १९ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां पंञ्चमस्कन्धे ऋषभदेवस्य शतसंतानवर्णनं नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

---

(१) भैरवी ॥ " प्रभु मोहि अपनी ओर लगावो ॥ टेर ॥ गर्भवासमें रक्षा कीनी अतिदुःखसे ले बचावो ॥ १ ॥ लखचौरासी भटकत हार्‍यो नर्कस्वर्ग थकआओ ॥ २॥ पलक एक विश्राम न पायो विषयसंग बहुधावो ॥ ३ ॥ काम क्रोध मोहि मारे पछार्‍यो अबमें बहुत डरावो ॥ ४ ॥ पुरुषोत्तम कहै समुझो प्रभुको अब मत नाम धरावो ॥ ५ ॥

अथ ह भगवानृषभदेवः स्ववर्षं कर्मक्षेत्रमनुमन्यमानः प्रदर्शितगुरुकुलवासो लब्धवरैर्गुरुभिरनुज्ञातो गृहमेधिनां धर्माननुशिक्षमाणो जयन्त्यामिन्द्रदत्तायामुभयलक्षणं कर्म समाम्नायाम्नातमभियुञ्जन्नात्मजानामात्मसमानानां शतं जनयामास ॥ ८ ॥ येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद् येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति ॥ ९ ॥ तमनु कुशावर्त इलावर्तो ब्रह्मावर्तो मलयः केतुर्भद्रसेन इन्द्रस्पृग् विदर्भः कीकट इति नव नवतिप्रधानाः ॥ १० ॥ कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः॥ आविर्होत्रोथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ॥ ११ ॥ इति भागवतधर्मदर्शना नव महाभागवतास्तेषां सुचरितं भगवन्महिमोपबृंहितं वसुदेवनारदसंवादमुपशमायनमुपरिष्टाद्वर्णयिष्यामः ॥ १२ ॥ यवीयांस एकाशीतिर्जायन्तेयाः पितुरादेशकरा महाशालीना महाश्रोत्रिया यज्ञशीलाः कर्मविशुद्धा ब्राह्मणा बभूवुः ॥ १३ ॥ भगवानृषभसंज्ञ आत्मतन्त्रः स्वयं नित्यनिवृत्तानर्थपरम्परः केवलानन्दानुभव ईश्वर एव विपरीतवत्कर्माण्यारभमाणः कालेनानुगतं धर्ममाचरणेनोपशिक्षयन्नतद्विदां सम उपशान्तो मैत्रः कारुणिको धर्मार्थयशःप्रजानन्दामृतावरोधेन गृहेषु लोकं न्ययमयत् ॥ १४ ॥

अब भगवान् ऋषभदेव अपने खंडको कर्मक्षेत्र मानकर गुरुकुलमें वासकर गुरुसें वर और आज्ञा लेकर गृहस्थीनके धर्मनकी शिक्षा करते इंद्रकी दीभई जयंतीभार्यामें अपने समान, शतपुत्रनकों उत्पन्न करतेभये, श्रुतिस्मृति विहित दोप्रकारके कर्म कहिकर वेदकी शिक्षा करते भए ॥ ८ ॥ जिनमें महायोगी भरतजी ज्येष्ठ श्रेष्ठगुणी होते भए जिनके नामसे ये भारतवर्ष कहावैहै ॥ ९ ॥ तिनके पीछै कुशावर्त इलावर्त ब्रह्मावर्त मलयकेतु, भद्रसेन, इंद्रस्पृक्, विदर्भ, कीकट ये नौ पुत्र थे जो भए ये नव्वेमें प्रधान भये ॥ १० ॥ उनसै छोटे कवि हरि अंतरिक्ष प्रबुद्ध पिप्पलायन आविर्होत्र और द्रुमिल चमस करभाजन ॥ ११ ॥ ये नौ योगेश्वर हुये जो परम भक्त थे तिनको सुंदर चरित्र भगवतकी महिमाकरकै बढो भयो, वसुदेव नारदजीके संवादमैं, सबकी शांति करवेवारो आगे एकादशस्कन्धमैं वर्णन करैंगे ॥ १२ ॥ छोटे इक्यासी जयंतीके पुत्र, पिताकी आज्ञा करवेवारे, महाशीलवान महाश्रोत्रिय यज्ञशील सदा विशुद्धकर्म कर ब्राह्मण होते भये ॥ १३ ॥ भगवान् ऋषभ आप स्वतंत्र सब अनर्थोंकी परंपरा निवृत्ति करनेहारे

जब जैसे गुण है तैसै उनकी चेष्टाके न देखे है, तब अपने स्वार्थमें प्रमत्त होय सहसा विद्वान् सब स्मृति भूल अज्ञानी होय मैथुन्य सुख प्रधान घरको प्राप्त होयकर तहां अनेक तापनको प्राप्त होय है ॥ ७ ॥ इन दोनों स्त्रीपुरुषको आपसमैं पुरुषकों स्त्री करके जो ये मैथुनभाव है सोई हृदयकी ग्रंथि हैं, याते घर क्षेत्र, पुत्र कुटुंब, धनकरकै जीवको हम मम ये सब मोह होयहै ॥ ८ ॥ जब कर्म द्वारा बंधी हुई यह मनरूपी दृढ हृदयकी ग्रंथी शिथिल हो जाय है तब ये जीव संसारसे छूटे है मुक्त होयकर सब हेतुनको त्यागकर परमेश्वरके लोकको प्राप्त होय है ॥ ९ ॥ अहंकार त्याग करनेके साधन कहे हैं ईश्वरकी भक्ति गुरुकी सेवा करना तृष्णाका त्याग दुःख सुखका सहना लोकान्तरमेंभी दुःख है यह जानना तत्वजिज्ञासा काम्यकर्मका सर्वथा

यदा न पश्यत्ययथागुणेहां स्वार्थे प्रमत्तः सहसा विपश्चित् ॥ गतस्मृतिर्विन्दति तत्र तापानासाद्य मैथुन्यमगारमज्ञः ॥ ७ ॥ पुंसः स्त्रिया मिथुनीभावमेनं तयोर्मिथो हृदयग्रन्थिमाहुः ॥ अतो गृहक्षेत्रसुताप्तवित्तैर्जनस्य मोहोऽयमहं ममेति ॥ ८ ॥ यदा मनोहृदयग्रन्थिरस्य कर्मानुबद्धो दृढ आश्लथेत ॥ तदा जनः संपरिवर्ततेऽस्मान्मुक्तः परं यात्यतिहाय हेतुम् ॥ ९ ॥ हंसे गुरौ मयि भक्त्याऽनुवृत्त्या वितृष्णया द्वन्द्वतितिक्षया च ॥ सर्वत्र जन्तोर्व्यसनावगत्या जिज्ञासया तपसेहानिवृत्त्या ॥ १० ॥ मत्कर्मभिर्मत्कथया च नित्यं मद्देहसङ्गाद् गुणकीर्तनान्मे ॥ निर्वैरसाम्योपशमेन पुत्रा जिहासया देहगेहात्मबुद्धेः ॥ ११ ॥ अध्यात्मयोगेन विविक्तसेवया प्राणेन्द्रियात्माभिजयेन सम्यक् ॥ सच्छ्रद्धया ब्रह्मचर्येण शश्वदसंप्रमादेन यमेन वाचम् ॥ १२ ॥ सर्वत्र मद्भावविचक्षणेन ज्ञानेन विज्ञानविराजितेन ॥ योगेन धृत्युद्यमसत्त्वयुक्तो लिङ्गं व्यपोहेत् कुशलोऽहमाख्यम् ॥ १३ ॥

25

त्याग तप करना ॥ १० ॥ हे पुत्रो ! मेरे अर्थ कर्म करना, नित्य मेरी कथा करना, मेरे भक्तौकी संगति करना मेरे गुणकीर्तन करना किसीसे वैर न करना, अपने समान सबको समझना, इंद्रियनकी चाहकों त्यागना, देहगेहसें आत्माकी बुद्धिको त्याग करना ॥ ११ ॥ वेदांतशास्त्रका विचार करना, एकांतमें सदा रहना सदा प्राण इंद्रियें आत्माको जीतना, सतशास्त्रमें श्रद्धा कर सदा ब्रह्मचर्य धारना, कर्तव्य कर्मको न त्यागना, वाणीको नियम धारण करना ॥ १२ ॥ सब जगै मेरी भावनासै दृढ हुए अनुभव पर्यन्त ज्ञान और समाधि योगाभ्यास, धैर्य

श्रीऋषभदेवजी बोले कि हे पुत्रहो ! या मनुष्यलोकमें देहधारिनके बीचमें ये देह कष्टदायक कामनानके भोगवेके योग्य नहीं हैं, वे कष्टकाम विष्टाखानवारे कीडेभी करसकैहै यासे दिव्य तप करो, जासे सत्वशुद्धि हो, वाहीसे अनंत ब्रह्मसौख्य होवे है ॥ १ ॥ विमुक्तिद्वार तो महात्मानकी सेवा है, तमोगुणको द्वार स्त्रीनको संग है भगवानको संग है वे महात्मा हैं, जो समदर्शी प्रशांत, क्रोधत्यागी, सुहृद् साधु है ॥२॥ जो कोई सबमें व्यापक मुझ ईश्वरमें सौहृदता करकै देहकै भरवैवारे विषयीजन घर स्त्री पुत्र मित्रमें प्रीतियुक्त नहीं होयहैं, और जो लोकमें देहयात्रा निर्वाह करनेके व्यतिरिक्त अधिक धनमें इच्छा नहीं करते वही मनुष्य महात्मा है ॥ ३ ॥ हे पुत्रो! यह मनुष्य चतुर होकर जब इन्द्रियोंकी प्रीतिके लिये परिश्रम करताहै तब निश्चय मतवालासा होकर पापकर्म करता है एकवारके विरुद्धकर्म करनेसै तौ आत्माको दुःखदायक यह देह उत्पन्न हुआ है भला फिरभी उस विरुद्ध कर्मका वारंवार करना क्या अच्छा है हम तौ इसै अच्छा नहीं समझते ॥ ४॥ जबतक आत्मतत्त्व नहीं जानै है, तबतक अज्ञानसे तिरस्कार होयहै जबतक ये जीव कर्मकांड करतो रहै है, तबतक सब कर्मोंकी आत्मा मन और शरीर बंध होय है ॥ ५ ॥ जबतक क्रिया रहती है तबतक यह मन कर्ममें लगा रहताहै और वह कर्म स्वभावसैही शरीरके बंधनका कारण है इससै पहला कियाहुआ कर्मही मनको फिरभी कर्ममें लगाताहै जबतक अविद्यासै उपाधियुक्त आत्मस्वरूप मुझ वासुदेवमें प्रीति नहीं करता तबतक देहके इस संबन्धसै जीव नहीं छूटता ॥ ६ ॥

ऋषय ऊचुः ॥ नायं देहो देहभाजां नृलोके कष्टान्कामानर्हते विड्भुजां ये॥ तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं शुध्येद्यस्माद्
ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम् ॥१॥ महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तेस्तमोद्वारं योषितां सङ्गिसङ्गम् ॥ महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता
विमन्यवः सुहृदः साधवो ये ॥२॥ ये वा मयीशे कृतसौहृदार्था जनेषु देहंभरवार्तिकषु ॥ गृहेषु जायात्मजरातिमत्सु न
प्रीतियुक्ता यावदर्थाश्च लोके ॥ ३ नूनं प्रमत्तः कुरुते विकर्म यदिन्द्रियप्रीतय आपृणोति ॥ न साधु मन्ये यत आत्म-
नोऽयमसन्नपि क्लेशद आस देहः ॥ ४ ॥ पराभवस्तावदबोधजातो यावन्न जिज्ञासत आत्मतत्त्वम् ॥ यावत्क्रियास्ता-
वदिदं मनो वै कर्मात्मकं येन शरीरबन्धः ॥ ५ एवं मनः कर्मवशं प्रयुङ्क्ते अविद्ययात्मन्युपधीयमाने ॥ प्रीतिर्न
यावन्मयि वासुदेवे न मुच्यते देहयोगेन तावत् ॥ ६ ॥

धारो है, कुछ हम प्राकृत मनुष्य नहीं हैं, सत्व मेरे हृदयमें है, जहां धर्म है, और अधर्म मैंने दूरसैंही पीठ पर करलियो है, यासे जो आर्यलोग या आर्यावर्तमें भए हैं वो मोको श्रेष्ठ कहते हैं शास्त्रमें ऋषभका अर्थ श्रेष्ठ है ॥ २० ॥ तातैं तुम सब मेरे हृदयसे जन्मै हो सो सब मिलकर क्लेशरहित बुद्धि करकै मत्सरता छोड अपने बडे सहोदर भाई श्रीभरतजीको भजन करो सब प्रजाका भरण पोषण करो यही मेरी शुश्रूषा है ॥ २१ ॥ अब ब्राह्मणोंकी सेवा करनी यासे वैकुंठ होय है सो पंचश्लोकसे कहै ॥ चेतनअचेतनोंमें तो सब स्थान वृक्ष श्रेष्ठ हैं उनसे सर्प श्रेष्ठ है उनसे ज्ञानवान जीव श्रेष्ठ हैं,तिनमें मनुष्य असुरोंसे देवता श्रेष्ठ हैं,उनमें भूतादिक श्रेष्ठ हैं,उनसे गंधर्व श्रेष्ठ हैं,उनसे सिद्ध श्रेष्ठ हैं,उनसे किन्नरादिक श्रेष्ठ हैं ॥२२॥ तिनते असुर श्रेष्ठ हैं,असुरोंसे देवता श्रेष्ठ हैं,देवतानमें इंद्रादिक श्रेष्ठ हैं,उनते दक्षादिक श्रेष्ठ है,तिनमें ब्रह्माके सुत श्रेष्ठ है उनमें शिव श्रेष्ठ है,वो भव ब्रह्माके वीर्यसे हैं

तस्माद्भवन्तो हृदयेन जाताः सर्वे महीयांसममुं सनाभम् ॥ अक्लिष्टबुद्ध्या भरतं भजध्वं शुश्रूषणं तद्भरणं प्रजानाम् ॥२१॥ भूतेषु वीरुद्भ्य उदुत्तमा ये सरीसृपास्तेषु सबोधनिष्ठाः ॥ ततो मनुष्याः प्रमथास्ततोऽपि गन्धर्वसिद्धा विबुधानुगा ये ॥ २२॥ देवासुरेभ्यो मघवत्प्रधाना दक्षादयो ब्रह्मसुतास्तु तेषाम् ॥ भवः परः सोथ विरिञ्चवीर्यः स मत्परोऽहं द्विजदेवदेवः ॥ २३ ॥ न ब्राह्मणैस्तुलये भूतमन्यत्पश्यामि विप्राः किमतः परं तु ॥ यस्मिन्नृभिः प्रहुतं श्रद्धयाऽहमश्नामि कामं न तथाऽग्निहोत्रे ॥ २४ ॥ धृता तनूरुशती मे पुराणी येनेह सत्वं परमं पवित्रम् ॥ शमो दमः सत्यमनुग्रहश्च तपस्तितिक्षाऽनुभवश्च यत्र ॥ २५ ॥

उनसे ब्रह्मा श्रेष्ठ है, ब्रह्मा मेरो भजन करैहै, मेरे सब ब्राह्मण देवनकी नाईं पूज्य हैं ॥ २३ ॥ ब्राह्मणके बराबर कोई जीवमात्र नहीं है, ऐसा हम देखतेहै, हे विप्रहो! याते परे और कहाहै, जिनब्राह्मणोंमें श्रद्धाकरके सुंदर मुखरूप अग्निमें मिष्टान्न हवन करे है, अर्थात् जानै ब्राह्मणभोजन कराए हैं उनमें हम भोजन करैहै, ऐसो हम आग्निहोत्रमें होमेको नहीं पावैहै, जैसो ब्राह्मणोंको भोजन करावनेसे प्रसन्न होय हैं इन ब्राह्मणोंकी वेदमें ऐसी प्रशंसा लिखीहै कि "येषां मूर्ध्नि परं पदं श्रुतिपुटे तीर्थानि भालेथवा वाणी वाचि करेऽनलो हृदि हरिः कुक्षौ तु वेदास्त्रयः ॥ नाभ्यां पंकजसंभवः सुरगणा यद्रोमकूपे स्थितास्तेमी भूमिसुराः शिरोभिरनिशं वंद्या न निंद्याः क्वचित् ॥ १ ॥ "॥ २४ ॥ इन ब्राह्मणोंने बहुत सुंदर वेदरूप मेरो पुरात-

उद्यमसे युक्त कुशल होयके अहंकाररूप लिंगको त्याग करै ॥ १३ ॥ अविद्या करकै प्राप्त कर्माशय हृदयकी ग्रंथिको जो बंध है, सो या योगकरकै
जैसो हमने उपदेश कीनो है अच्छे प्रकारसे विचार, सर्व त्याग, योगसें उपाराम करै ॥१४॥ पिता पुत्रनको, गुरु शिष्यको, नृप प्रजाको, बडे छोटेन-
को, मेरे लोककी कामनासे क्रोध त्याग मेरे अनुग्रहरूप अर्थकी शिक्षा करैं, जो कर्ममें मूढ है, उन अज्ञानियौंको कर्ममेंही न लगादैना चाहिये ॥ १५॥
जाके नेत्र नहीं है ऐसे अंधेको गढेमें पटकनेसे मनुष्य कौन अर्थकूं प्राप्त होयगो, ऐसेही सब जीवनको विषयोंमें जो चाहना है वोही अंधकूपसमान
नर्कमें या जीवकूं पटकैहै ऐसेही सकामकर्म करनेवालौंको कर्ममें छोडना उचित नहीं ॥ १६ ॥ यह प्राणी सकाम कर्मसै नष्ट दृष्टि हो अपने कल्याणको
कुछभी नहीं जान्ते कारण कि यही धनादिके लोभसै मूर्खतासै परस्पर वैर करते हैं फिर तुच्छ सुखके निमित्त उद्यम करताहै कि अपार दुःख
आपडता है ॥ १७ ॥ जो अविद्यामें वर्तमान कुबुद्धि रस्ता छोड और रस्ता चलै ऐसे अंधेको सब ओरकी जानवेवारे दयालु विद्वान वाको कुमार्गमें
कभी नहीं चलनै देते हैं ॥ १८ ॥ वो गुरु नहीं है, वो पिता नहीं है, वो सुजन नहीं है, वो स्वजन नहीहैं, वो माता नही है, वो देवता नही है, वो पति
नही है, जो आईभई मृत्युको न छुडावै वो कुछ नहीं है ॥ १९ ॥ ये मनुष्यकासा आकारका ये शरीर तर्क करवेयोग्य नहीं है, अपनी इच्छासे मैंने

कर्माशयं हृदयग्रन्थिबन्धमविद्ययाऽऽसादितमप्रमत्तः ॥ अनेन योगेन यथोपदेशं सम्यक् व्यपोह्योपरमेत योगात्
॥ १४ ॥ पुत्रांश्च शिष्यांश्च नृपो गुरुर्वा मल्लोककामो मदनुग्रहार्थः ॥ इत्थं विमन्युरनुशिष्यादतज्ज्ञान्न योजयेत्कर्मसु
कर्ममूढान् ॥ १५ ॥ कं योजयन्मनुजोऽर्थं लभेत निपातयन्नष्टदृशं हि गर्ते ॥ एवं नराणां विषयस्पृहा च निपातयान्निर-
ये त्वन्धकूपे ॥ १६ ॥ लोकः स्वयं श्रेयसि नष्टदृष्टिर्योऽर्थान्समीहेत निकामकामः ॥ अन्योऽन्यवैरः सुखलेशहेतोरनन्त-
दुःखं च न वेद मूढः ॥ १७ ॥ कस्तं स्वयं तदभिज्ञो विपश्चिदविद्यायामन्तरे वर्तमानम् ॥ दृष्ट्वा पुनस्तं सघृणः कुबु-
द्धिं प्रयोजयेदुत्पथगं यथान्धम् ॥ १८ ॥ गुरुर्न स स्यात्स्वजनो न स स्यात्पिता न स स्याज्जननी न सा स्यात् ॥
दैवं न तत्स्यान्न पतिश्च स स्यान्न मोचयेद्यः समुपेतमृत्युम् ॥ १९ ॥ इदं शरीरं मम दुर्विभाव्यं सत्त्वं हि मे हृदयं यत्र
धर्मः ॥ पृष्ठे कृतो मे यदधर्म आरादतो हि मामृषभं प्राहुरार्याः ॥ २० ॥

जडवत् अंधे गूंगे वहिरे पिशाचवत् उन्मादीकी समान अवधूतवेष धारै कोई पुकारै तोभी जीवनके मध्यमें मौनव्रतकूं ग्रहणकर चुप्प होजाते भए ॥ ॥३०॥ जहां तहां पुर, गांव, खान, किसानोंके गांव, पुष्पादिवाटिका पर्वतके नीचेके ग्राम, सेनानिवासस्थान,गोवनके स्थान,गोपनके स्थान जात्रियोंके समूह, जहां गिरी, वन, ऋषीनके आश्रम, इत्यादिकोंमें, मार्गमार्गमें दुर्जनोंकरकै तिरस्कृत होते जैसे वनका हाथी मक्खियोंको कुछ नहीं गिन्ता तैसे उसै कुछ न गिन्ते दुर्जन करते भये कोई डरावै, ताडै, कोई ऊपर मूतजाय, थूकै, पत्थर फेंकै धूर पटकै, पादजाय, बुरा कहजाय इन सवको कुछ न गिनते भए ये देह असत्पदार्थोंका स्थान है सत् नाममात्र है यामें सत् असत्को अनुभव करकै अपनी महिमाकी स्थिति देख अहंकार, ममकार,

जडान्धमूकबधिरपिशाचोन्मादकवदवधूतवेषोऽभिभाष्यमाणोऽपि जनानां गृहीतमौनव्रतस्तूष्णीं बभूव ॥ ३० ॥ तत्र पुरग्रामाकरखेटवाटशिबिरव्रजघोषसार्थगिरिवनाश्रमादिष्वनुपथमवनिचरापसदैः परिभूयमानो मक्षिकाभिरिव वनगजस्तर्जनताडनावमेहनष्ठीवनग्रावशकृद्रजःप्रक्षेपपूतिवातदुरुक्तैस्तदविगणयन्नेवासत्संस्थान एतस्मिन्देहोपलक्षणे सदपदेश उभयानुभवस्वरूपेण स्वमहिमावस्थानेनासमारोपिताहंममाभिमानत्वादविखण्डितमनाः पृथिवीमेकचरः परिबभ्राम ॥ ३१ ॥ अतिसुकुमारकरचरणोरःस्थलविपुलबाहंसगलवदनाद्यवयवविन्यासः प्रकृतिसुन्दरस्वभावहाससुमुखो नवनलिनदलायमानशिशिरताराऽरुणायतनयनरुचिरः सदृशसुभगकपोलकर्णकण्ठनासो विगूढस्मितवदनमहोत्सवेन पुरवनितानां मनसि कुसुमशरासनमुपदधानः परागवलम्बमानकुटिलजटिलकपिशकेशभूरिभारोऽवधूतमलिननिजशरीरेण ग्रहगृहीत इवादृश्यत ॥ ३२ ॥

अभिमान न करकै मनको खंडित न करके एकले पृथिवी परिभ्रमण करते भए ॥ ३१ ॥ अति सकुमार हाथ पांव, हृदयस्थल, विशाल भुजा, कन्धा,गलो, वदन आदि अवयव स्वभावहीसे सुन्दर स्वभावकी हांस सुन्दरमुख, नवीन कमलदल समान शीतल तापहारक सुन्दर अरुणनेत्र, बराबर सुन्दर कहोल, कर्ण, कंठ, नासिका अत्यंत मुसकानयुक्त मुखके महोत्सवको देखकर चतुर वनितानके मनमें काम उद्दीपन होताथा तथापि आगेसे लंबे कुटिल जटा पीरे केशनके बहुभारसे शोभित अवधूत मलिन अपने शरीरसै जिसके उन्है संभाल नहींथी ग्रह ग्रसेहुएकी समान दृष्टि आतेथे ॥ ३२ ॥

न शरीर धारचो है जिनमें ये आठ गुण हैं पहिलो तो परम पवित्र सत्वगुण चाहिये, शम दम, सत्य अनुग्रह, तप, सहनशीलता, अनुभवजन्यज्ञान, ये सब ब्राह्मणोंमें रहैहै इनसे और कोई बडो नही है ॥२५॥ मोमें भक्ति करवेवारे काऊ वस्तुको जिने चाह नही ऐसे ब्राह्मणनको, स्वर्ग अपवर्गके स्वामी अनंत, परेसे परे मेरे विन औरसे उनको कुछभी चाहवे योग्य नही है ॥२६॥ हे पुत्रहो! सब स्थावरजंगम जीवमात्रनको मेरा निवास समझ कर मत्सर रहित दृष्टिसै क्षण क्षणमें उनका सन्मान करो प्राणियौंका सत्कार करना येही मेरो पूजन है ॥ २७ ॥ मन वचन दृष्टी और जितनी इंद्रीनकी चेष्टा है, उनकरकै मेरोही आराधन करनो यही साक्षात्फल है मेरे आराधनके विना मोहसे यमधर्मराजकी फांसीसें छूटवेको समर्थ नहीं है ॥२८॥ श्रीशुकदेव-

मत्तोप्यनन्तात्परतः परस्मात्स्वर्गापवर्गाधिपतेर्न किंचित् ॥ येषां किमु स्यादितरेण तेषामकिंचनानां मयि भक्तिभाजाम्॥२६॥सर्वाणि मद्धिष्ण्यतया भवद्भिश्चराणि भूतानि सुता ध्रुवाणि ॥ संभावितव्यानि पदे पदे वो विविक्तदृग्भिस्तदुदार्हणं मे ॥२७॥ मनोवचोदृक्करणेहितस्य साक्षात्कृतं मे परिबर्हणं हि ॥ विना पुमान्येन महाविमोहात्कृतान्तपाशान्न विमोक्तुमीशेत् ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमनुशास्यात्मजान्स्वयमनुशिष्टानपि लोकानुशासनार्थं महानुभावः परमसुहृद्भगवानृषभापदेश उपशमशीलानामुपरतकर्मणां महामुनीनां भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणं पारमहंस्यधर्ममुपशिक्षमाणः स्वतनयशतज्येष्ठं परमभागवतं भगवज्जनपरायणं भरतं धरणिपालनायाभिषिच्य स्वयं भवन ऐवोर्वरितशरीरमात्रपरिग्रह उन्मत्त इव गगनपरिधानः प्रकीर्णकेश आत्मन्यारोपिताहवनीयो ब्रह्मावर्तात्प्रवव्राज ॥ २९ ॥

जी बोले कि ऐसे पुत्रनकों शिक्षा कर जो अपनेसे शिक्षित लोक है उनके शिक्षाके अर्थ महाभारी प्रभाववारे परमसुहृत् भगवान् ऋषभदेवजी महाशीलवारे सबकर्मसे विरक्त महामुनीनको भक्तिज्ञानवैराग्यलक्षणयुक्त परमहंसनके धर्मकी शिक्षा कर, अपने सौ पुत्रनमें बडे परमभागवत भगवज्जनमें परायण श्रीभरतजी महाराजको पृथिवीको रक्षाके लिये अभिषेक कर, घरके अग्निहोत्रकू आत्मामें आरोपणकर उन्मत्तकी नांई दिगंबर वेष सब केश खोले कुछ कर्तव्यको अपनी आत्मामें आरोपण कर ब्रह्मवेत्ता विठूरदेशसे संन्यस्त होयकर चलै जातै भए ॥ २९ ॥

इस प्रकार ऋषभदेवजी गौ मृग काककी समान चेष्टा करते बैठते स्थित होते सोते पीते खाते मूत्र करतेथे ॥ ३५ ॥ हे परीक्षित्! या प्रकार नानाप्रकारकी योगचर्याकर आचरणकर भगवान् कैवल्यपति ऋषभदेवजी निरंतर परम महाआनंदको अनुभवकर सर्वव्यापक सब जीवनके आत्मा भगवान् वासुदेवमें अपने आत्माको एकभावकरकै सिद्ध अर्थसें परिपूर्ण आकाशमें विचरते मनकी नाई देहको वेग होनो दूरको देख लेनो, छिपजानो, औरके कायामें प्रवेश करनो दूरवस्तुको ग्रहण करनो; अपनी इच्छासें चाहै जहां चले जानो ये योगिन ऐश्वर्य आप साक्षात्प्राप्त

एवं गोमृगकाकचर्यया व्रजंस्तिष्ठन्नासीनः शयानः काकगोमृगचरितः पिबति खादत्यवमेहति स्म ॥ ३५ ॥ इति नानायोगचर्याचरणो भगवान्कैवल्यपतिर्ऋषभोऽविरतपरममहानन्दानुभव आत्मनि सर्वेषां भूतानामात्मभूते भगवति वासुदेव आत्मनोऽव्यवधानान्तरोदरभावेन सिद्धसमस्तार्थपरिपूर्णो योगैश्वर्याणि वैहायसमनोजवान्तर्धानपरकायप्रवेशदूरग्रहणादीनि यदृच्छयोपगतानि नाञ्जसा नृप हृदयेनाभ्यनन्दत् ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते प० ऋषभदेवानुचरिते पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ राजोवाच ॥ न नूनं भगवत आत्मारामाणां योगसमीरितज्ञानावभर्जितकर्मबीजानामैश्वर्याणि पुनः क्लेशदानि भवितुमर्हन्ति यदृच्छयोपगतानि ॥ १ ॥ ऋषिरुवाच ॥ सत्यमुक्तं किंत्विह वा एके न मनसोऽद्धा विश्रम्भमनवस्थानस्य शठकिरात इव संगच्छन्ते ॥ २ ॥ तथा चोक्तम् ॥ न कुर्यात्कर्हिचित्सख्यं मनसि ह्यनवस्थिते ॥ यद्विश्रम्भाच्चिराच्चीर्णं चस्कन्द तप ऐश्वरम् ॥ ३ ॥

होने परभी उनकी सराहना न करते भए ॥ ३६ ॥ इति श्रीमन्महाभा० भा० टी० पञ्चमस्कन्धे श्रीऋषभदेवानुचरित्रवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ राजा परिक्षित् बोले कि हे भगवन्! आत्माराम मुनिजन कि जिनके जिनके राजद्वेषादि कर्मबीज योगसमाधिसै प्रदीप्त ज्ञानरूप अग्निमें भस्म होगये हों उन्हें अपनी इच्छासै प्राप्त हुईभी सिद्धि अहंकारादि उत्पन्न नहीं करती फिर ऋषभ देवजीने उनका अनादर क्यौं किया ॥ १ ॥ श्रीशुक ऋषि बोले कि आपने सत्य कह्यो, क्योंकि कोई एक बुद्धिमान्साक्षात् चंचल मनको विश्वास नहीं करे हैं, जैसे शठ किरात भील विश्वास कराय जीव हनै है, तद्वत् मनका विश्वास करनेसे मारो जाय है ॥ २ ॥ तैसेई कहा है कि ये मन सावधान नहीं है, यासे कभीभी किसीको संग न

जासमय भगवान् ऋषभदेवजी लोकको आप साक्षात् विपरीतकी नाई योग करतेभए, तिनकी जो कुछ क्रिया कर्म हो सो बडो भयानक भयो, ऐसे अजगरोंकेसे व्रतमें स्थित होते भए, शयन करते भोजन करलैं, जल पीवैं, खावैं, सोए सोए मूत दैं, विष्टाकरकै विष्टामैं पडैपडै चेष्टा करैं, लोटैं वा विष्टा करकै सब देहके अवयव लिप्त होते भए॥श्लोकः“ स्थित्वैकत्रैव यो धीरो भुक्त्वा प्रारब्धकर्म तत्॥ देहादिकं सुखं त्यक्त्वा व्रतमाजगरे स्थितः॥१॥

यर्हि वाव स भगवाल्लोँकमिमं योगस्याद्धा प्रतीपमिवाचक्षाणस्तत्प्रतिक्रियाकर्म बीभत्सितमिति व्रतमाजगरमास्थितः शयान एवाश्नाति पिबति खादत्यवमेहति हदति स्म चेष्टमान उच्चरित आदिग्धोद्देशः ॥ ३३ ॥ तस्य ह यः पुरीषसुरभिसौगन्ध्यवायुस्तं देशं दशयोजनं समन्तात्सुरभिं चकार ॥ ३४ ॥

अर्थ–आजगरव्रत याको कहैं है कि जो धीर एकजगै स्थित होयकर प्रारब्धकर्म भोग सब देहादिकके सुखको त्याग आजगरव्रतमें स्थित रहैं” ॥३३॥ बडे आश्चर्यकी और हर्षकी बात है कि तिन ऋषभदेवजीके विष्टाकी सुरभी सुगंधताकी वायु वा देशको ४० कोशतक सुगंधित करती भई ॥ ३४ ॥

---

१ शंका आजतक हमने शास्त्र और पुरान बहुत सुने परन्तु किसी मनुष्यके पुरीषकी प्रशंसाका वर्णन किसी कविने नहीं किया, भगवान्के अनेक अवतारभी हुए उनकेभी पुरीषकी प्रशंसा किसीने नहीं की और यहां लिखा है कि ऋषभदेवजीके पुरीषकी सुगंधी पवनके प्रसंगसे दशयोजन अर्थात् ४० चालीस कोसके घेरेमें चारों ओर सदृश सब दिशाओंको महकाती रहतीथी, यह आश्चर्यमें आश्चर्य होताहै कि मलमें सुगन्ध किस प्रकार हुई । जैसे कि कीडा अपनी पीठकर पर्वतको धरकर चलै, मच्छर, माखी, डांस, यह सब समुद्रके जलको सोखजाँय, यह आश्चर्यमय बातें हैं, परन्तु यह सबसे बढकर आश्चर्ययुक्त बात हे कि पुरुषके पुरीषमें सुगन्धि कभी नहीं होसक्ती, यह सब शंकाओंसे बढा कर शंका है ?

उत्तर–जैसे बालकोंके लिये रोग दूर करनेको, माता, पिता, भाई, भौजाई प्रभृति अनेक उपाय करते हैं कि किसी प्रकार औषधि खाले. परन्तु जब वह औषधि नहीं खाता तो उसको प्यार करके मीठी मीठी वस्तुका लोभ दिखाते हैं कि ले बेटा यह अमृती हैं, यह बतासे हैं, यह हम अपने बेटेको पेडा देते हैं, परन्तु वह होती कडवी दवाई है, और मीठे पदार्थोंका नाम इसलिये लिया जाता है कि किसी प्रकार पुत्रका रोग जातारहै, तैसेही सब संसारके जीव भ्रष्ट हो रहे हैं, उन प्राणियोंको मोक्ष देनेके लिये भगवान् लोभ दिखाते हैं ऋषभ देव भगवान् मोक्ष मार्गको नष्ट देखकर जीवोंको लोभ दिखानेके लिये विचार किया कि हमको तौ बहुत दिन मृत्युलोकमें रहनाही नहीं, और विना बहुत दिनके सत्संगसे मोक्ष मार्ग प्रगट नहीं होसक्ता ऐसा विचार कर जीवोंको लोभ दिखानेके लिये विष्ठामें सुगंधि उत्पात्ति करके जगत्को दिखाया कि सत्संगमें ऐसा चमत्कार है, ऐसे अद्भुत चमत्कारको देखकर सब संसारके लोग इस लोभमें फसँ जायँगे और इससे आधिक और कोई उत्तम उपाय नहीं है, यह लालच दिखाय लोगोंसें कहने लगे कि हे भाइयो ! मोक्ष मार्गका सेवन करो, देखो ऋषभ देव मोक्ष मार्गका सेवन करते हैं तो जिनके मलमें चालीस कोसतक अतर फुलेलकेसी सुगन्धि आने लगी तो उनको यमका भय क्यों होगा ? आप लोकभी मोक्ष मार्गका सेवन करेंगे तो आपकीभी ऐसींही कीर्ति होगी ऐसा विचार कर सब लोग मोक्षमें आनन्द करने लगे ॥

जिनको चरित्र सुनकर कोंक वेंक कुटक देशनको राजा श्रीअर्हन् नामक उनकी शिक्षा लेकर पूर्व कर्मसे कलियुगमें अधर्म जव वहुत होयजायगो तव स्वधर्मको भयरहित मार्ग त्यागकर, कुपथ पाषंड सवके विरुद्ध पंथको अपनी बुद्धि करकै ये मंद प्रवर्तन करैगो ॥ ९ ॥ जो वो पथ प्रवर्त करैगो वा करकै कलियुगमें तुच्छ मनुष्य देवमायासे विमोहित अपने मन सुखी विधियोगसे शौचआचारविहीन ईश्वरकी अवज्ञावारे व्रत अपनी इच्छासे ग्रहण कर न स्नान न आचमन न शौच करैंगे केशको नोचनोचकर उखाडैंगे औरभी कुत्सितव्रत करैं, अधर्मसे पूर्णकलियुगके प्रभावसे बुद्धि नष्ट होनेके कारण बृहत्त्वादि गुणविशिष्ट चैतन्य ब्रह्म,ब्राह्मण यज्ञपुरुष लोक इन सवके निंदक प्रायकरकै होयगै ॥ १० ॥ यह लोग अंध परंपराके तुल्य

यस्य किलानुचरितमुपाकर्ण्य कोङ्कवेङ्ककुटकानां राजाऽर्हन्नामोपशिक्ष्य कलावधर्म उत्कृष्यमाणे भवितव्येन विमोहितः ॥ स्वधर्मपथमकुतोभयमपहाय कुपथपाषण्डमसमञ्जसं निजमनीषया मन्दः संप्रवर्तयिष्यते ॥ ९ ॥ येन ह वाव कलौ मनुजापसदा देवमायामोहिताः स्वविधिनियोगशौचचारित्रविहीना देवहेलनान्यपव्रतानि निजेच्छया गृह्णाना अस्नानाचमनाशौचकेशोल्लुञ्चनादीनि कलिनाऽधर्मबहुलेनोपहतधियो ब्रह्मब्राह्मणयज्ञपुरुषलोकविदूषकाः प्रायेण भविष्यन्ति ॥ १० ॥ ते च ह्यर्वाक्तनया निजलोकयात्रयाऽन्धपरम्परयाश्वस्तास्तमस्यन्धे स्वयमेव प्रपतिष्यन्ति ॥ ११ ॥ अयमवतारो रजसोपप्लुतकैवल्योपशिक्षणार्थः ॥ तस्यानुगुणाञ्छ्लोकान्गायन्ति ॥ १२ ॥ अहो भुवः सप्तसमुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत् ॥ गायन्ति यत्रत्यजना मुरारेः कर्माणि भद्राण्यवतारवन्ति ॥ १३ ॥ अहो नु वंशो यशसाऽवदातः प्रैयव्रतो यत्र पुमान्पुराणः ॥ कृतावतारः पुरुषः स आद्यश्चचार धर्मं यदकर्महेतुम् ॥ १४ ॥

अवेदमूलक इस प्रकारकी इच्छानुसार प्रवृत्तिका विश्वास आपही घोर अंधतम नरकमें गिरेंगे ॥ ११ ॥ यद्यपि ये अवतार राजस है तथापि जो पुरुष रजोगुणमें व्याप्त है उनके शिक्षाके निमित्त है इस कारण पंडित लोग इस अवतारका वर्णन करते यह श्लोक गातेहैं ॥ १२ ॥ सप्तसमुद्रवती भूमीपर सव द्वीपनमें ये भरतखंड अधिक पुण्यदायक है क्योंकि या भारतवर्षके जन श्रीमुरारीके मंगलदायक कर्मनकों गावैं हैं, जो जो अवतारचरित्र है तिन्है गावै है ॥ १३ ॥ ये वंश यशसे उज्वल भयो, जहां प्रियव्रतके सुत पुमान् पुरुष अवतार लेतेभए, सो आद्यपुरुष कर्मनाशक

करै, या मनके विश्वास करनेसे बहुत दिनको करोभयो तप स्खलित होय जाय है ॥ ३ ॥ कामको नित्य अवकाश देता है, जो वाके पीछै रहै उनकोंभी अवकाश देता है, संग करनेवाले योगियौंका मन विगाड देता है जैसे पुंश्चली छिनार स्त्री जारनको सावकाश बताय पतिकों मरवाय देती है तैसे मनभी काम आदिकर योगियौंको भ्रष्ट करताहै ॥ ४ ॥ काम क्रोध मद लोभ शोक मोह भयादिक सब कर्म बंधको मूल मनको कौन बुद्धिवान वश न करैगो ॥ ५ ॥ याके उपरांत सकल लोकपालनमें मंडन, जडवत अवधूत वेष भाषा और आचरणोंसे जिनका भगवत्प्रभाव लखाई नहीं पडताथा योगियौंको देह त्याग विधिकी शिक्षा करते, अपने शरीरके त्यागकी इच्छासै आत्मामें आत्माको ध्यातृध्येयभाव त्याग अभेदबुद्धि करकै

नित्यं ददाति कामस्य च्छिद्रं तमनु येऽरयः ॥ योगिनः कृतमैत्रस्य पत्युर्जायेव पुंश्चली ॥ ४ ॥ कामो मन्युर्मदो लोभः शोकमोहभयादयः ॥ कर्मबन्धश्च यन्मूलः स्वीकुर्यात्को नु तद्बुधः ॥ ५ ॥ अथैवमखिललोकपालललामो विलक्षणैर्जडवदवधूतवेषभाषाचरितैरविलक्षितभगवत्प्रभावो योगिनां साम्परायविधिमनुशिक्षयन्स्वकलेवरं जिहासुरात्मन्यात्मानमसंव्यवहितमनर्थान्तरभावेनान्वीक्षमाण उपरतानुवृत्तिरुपरराम ॥ ६ ॥ तस्य ह वा एवं मुक्तलिङ्गस्य भगवत ऋषभस्य योगमायावासनया देह इमां जगतीमभिमानाभासेन चङ्क्रममाणः कोङ्कवेङ्ककुटकान्दक्षिणकर्णाटकान्देशान्यदृच्छयोपगतः कुटकाचलोपवन आस्यकृताश्मकवल उन्माद इव मुक्तमूर्धजोऽसंवीत एव विचचार ॥ ७ ॥ अथ समीरवेगविधूतवेणुविकर्षणजातोग्रदावानलस्तद्वनमालेलिहानः सह तेन ददाह ॥ ८ ॥

देखते सब वृत्तियौंसे उपरामकों प्राप्त होते भए ॥ ६ ॥ यद्यपि उनका देहाभिमान निवृत्त होगयाथा तथापि योगमाया और वासनाद्वारा उनका देह जिस प्रकार कुह्मारका चाक एकवार चलानैसे देर तक घूमा करता है वैसेही संस्कारके वश हो वारंवार भ्रमण करते कोंक वेंकट और कुटक तथा दक्षिण कार्नाटकमें अपनी इच्छासे पहुचै कुटकाचल पर्वतके उपवनमें मुखमें पाषाण कवलको नाई दिये उन्मत्तकी नाई वार खोले नग्न विचरते भए ॥ ७ ॥ याके उपरांत पवनके वेगसें कंपित, वांसोंके घसनेसे उत्पन्न उग्रदावानल, वांसके वनको ग्रसती भई, वाहीमें अग्निके संग वा देहकों भस्म करते भए. आप अग्निमें प्रवेश कर गए, अग्निसंस्कारसे शुभगति होय है ॥ ८ ॥

33

वुद्धि सदां सोई रहतीथी उन लोकके जोवनके ऊपर करुणा करकै निर्भय आत्माको स्वरूप कहिते भए तिन भगवान् ऋषभदेवजी महाजनके अर्थ नमस्कार होय “ या मतमें कोई मनुष्य तो महाश्रेष्ठ भए कोई जो मूर्ख भए उन्होंने ऐसे आचरण करै यासे लोकमें प्रशंसा करते भएं ” ॥ १९ ॥ इ० भा० भा० प० श्रीऋषभदेवतानुचरित्रवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी वोले कि भरतजी महाराज महाभागवतको जव भगवान ऋषभदेवजीने पृथिवीकी रक्षाके लिये कहा तव उनकी आज्ञामें परायण होय विश्वरूपकी वेटी पञ्चजनीसे व्याह करतेभए ॥ १ ॥ तामें सम्पूर्णता करकै अपने समान पांच पुत्र उत्पन्न करतेभए जैसे अहंकार पंचभूत सूक्ष्मनकूं रचै है ॥ २ ॥ सुमति राष्ट्रभृत् सुदर्शन आवरण धूम्रकेतु ये पांच पुत्रनके नाम हैं, हे राजन्! पहले इस वर्षका नाम अजनाभ था परन्तु जवसै भरत हुए तवसै इसका नाम भारतवर्ष प्रसिद्ध हुआ ॥ ३ ॥ सो राजा वहुत वातोंका जाननेवाला अपने पर दादेके समान वहुत दयालु अपने अपने कर्ममें वर्तमान प्रजाको अपने स्वधर्मसे वर्त्तमान करते सव ओरसे रक्षा करते भए ॥ ४ ॥ यज्ञरूप भगवानको यजन करतेभए, उचै नीचे यज्ञकरकै श्रद्धासेकै अग्निहोत्र, दर्श, अमावास्याको इष्टि तर्पण, पूर्णमासीको इष्टिआदि व्रत करते, जातुर्मास्यव्रत, पशु सोमयाग, चातुर्होत्र, विधिकरकै अनेक प्रकृतिनकी विकृति (सर्वांग और विकलांग)

श्रीशुक उवाच ॥ भरतस्तु महाभागवतो यदा भगवताऽवनितलपरिपालनाय सञ्चिन्तितस्तदनुशासनपरः पञ्चजनीं विश्वरूपदुहितरमुपयेमे ॥ १ ॥ तस्यामु ह वा आत्मजान्कात्स्न्र्येनानुरूपानात्मनः पञ्च जनयामास भूतादिरिव भूतसूक्ष्माणि ॥ २ ॥ सुमतिं राष्ट्रभृतं सुदर्शनमावरणं धूम्रकेतुमिति ॥ अजनाभं नामैतद्वर्षं भारतमिति यत आरभ्य दिशन्ति ॥ ३ ॥ स बहुविन्महीपतिः पितृपितामहवदुरुवत्सलतया स्वे स्वे कर्मणि वर्तमानाः प्रजाः स्वधर्ममनुवर्तमानः पर्यपालयत् ॥ ४ ॥ ईजे च भगवन्तं यज्ञक्रतुरूपं क्रतुभिरुच्चावचैः श्रद्धयाहृताग्निहोत्रदर्शपूर्णमासचातुर्मास्यपशुसोमानां प्रकृतिविकृतिभिरनुसवनं चातुर्होत्रविधिना ॥ ५ ॥

---

(१) ॥ कवित्त ॥ “ दयाअतिढुंढमतउलटनरकीभए स्नानजपदानसवदयानेखाए । उठेदुर्गंधमखदन्तधावनविनादेहविकरालज्यूप्रेतआए ॥ मलिनजलपानअरुझूटभक्षणकरै दयाने मारकेकुतेवनाए । कहेते मुकुन्दविचारविनकयादयाजीवतेजीनकमेंदयानेपठाये ॥ १ ॥

धर्मकूं करतेभए ॥ १४ ॥ संसारनिवर्तक श्रीऋषभदेवजीकी दशाको और कौन पुरुष पहुंचैगो, जो योगमायाकी ऋद्धि सिद्धिकोभी असत् समझकर त्यागतेभए, जाके लिये आजकालके योगी यत्न करैं हैं ॥१५॥ ये सकल वेद लोक देव ब्राह्मण गौके परमगुरु श्रीभगवान् ऋषभदेवको चरित्र अत्यंत विशुद्ध कह्योहै, सो पुरुषनके सब दुष्टचरितनको हरवेवारो है, परम महामंगलदायक या चरितको अत्यंत श्रद्धाकरकै जो कोई सावधान होयकर सुनै सुनावै वो भगवान् वासुदेवमें एकांत भक्तिको प्राप्त होवै है ॥ १६॥ जिस भक्तिमें कविजन निरन्तर आत्माकूं और अनेकप्रकारके संसारके पापतापसे

कोन्वस्य काष्ठामपरोनुगच्छेन्मनोरथेनाप्यभवस्य योगी ॥ यो योगमायाः स्पृहयत्युदस्ता ह्यसत्तया येन कृतप्रयताः ॥१५॥ इति ह स्म सकलवेदलोकदेवब्राह्मणगवां परमगुरोर्भगवत ऋषभाख्यस्य विशुद्धाचरितेरितं पुंसां समस्तदुश्चरिताभिहरणं परममहामङ्गलायनमिदमनुश्रद्धयोपाचितयाऽनुशृणोत्याश्रावयति वाऽवहितो भगवति तस्मिन्वासुदेव एकान्ततो भक्तिरनयोरपि समनुवर्तते ॥ १६ ॥ यस्यामेव कवय आत्मानमविरतं विविधवृजिनसंसारपरितापोपतप्यमानमनुसवनं स्नापयन्तस्तयैव पराय निर्वृत्या ह्यपवर्गमात्यन्तिकं परमपुरुषार्थमपि स्वयमासादितं नो एवाद्रियन्ते भगवदीयत्वेनैव परिसमाप्तसर्वार्थाः ॥ १७ ॥ राजन्पतिर्गुरुरलं भवतां यदूनां दैवं प्रियः कुलपतिः क्व च किंकरो वः ॥ अस्त्वेवमङ्ग भगवान्भजतां मुकुन्दो मुक्तिं ददाति कर्हिचित्स्म न भक्तियोगम् ॥ १८ ॥ नित्यानुभूतनिजलाभनिवृत्ततृष्णः श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः ॥ लोकस्य यः करुणयाभयमात्मलोकमाख्यान्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै ॥ १९ ॥ इति श्रीभा०म०पञ्चम०ऋषभदेवानुचरितवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

तापित हो निशिदिन तपते रहतेहैं ऐसे मनौकूं स्नान कराकर परम पुरुषार्थसे प्राप्त परमानंददायक अपवर्गकाभी नहीं आदर करतेहैं सर्वभावसे सब पुरुषार्थ भगवतमेंही समाप्तकर सब कुछ भगवत कोई मान्ते हैं ॥ १७ ॥ हे राजन्! तुह्मारे यादवनके पति गुरु देवता प्यारे कुलपति किंकर श्रीकृष्ण हैं, उनमें हमारी भक्ति होय हे अंग! भजन करवेवारेनकों भगवान् मुकुन्द मुक्ति देवैं है परन्तु भक्तियोग किसीको नहीं देवै है ॥ १८ ॥ नित्य अनुभव करे भये निजलाभनिवृत्ततृष्णावाले ऋषभदेवजी देहादि नित्य मनोरथ हेतु कल्याणके विषयमें जिन पुरुषोंकी

57

ननकी वात्सल्यताकरके अपनी इच्छारूप धार सुंदरतासे रहैं हैं ॥ ९ ॥ उस आश्रममें गंडकी नाम परम उत्तम नदी है जिसको चक्रभी कहते हैं वहां विद्याधरकुंड है जिसकी शिलाओंके ऊपर नींचे हिरण्यगर्भनाभिवाले चक्र उत्पन्न होते हैं उनका नाम शालिग्राम है जो अपने चक्रोंसे आश्रमके ग्राम और प्रदेशको चारौं ओर पवित्र करती हैं (१) ॥ १० ॥ तामैं निश्चयकरकै इकले पुलहाश्रमके उपवनमें अनेक प्रकारके पुष्प पत्र तुलसी जल कंद मूल फलसैं पूजनकर भगवानको आराधन एकांतमें करते, सब विषयनकी अभिलाषा निवृत्तकर शमताकूं प्राप्त हो अत्यन्त

यत्राश्रमपदान्युभयतोनाभिभिर्दृषच्चक्रैश्चक्रनदी नाम सरित्प्रवरा सर्वतः पवित्रीकरोति ॥ १० ॥ तस्मिन् वाव किल स एकलः पुलहाश्रमोपवने विविधकुसुमकिसलयतुलसिकाऽम्बुभिः कन्दमूलफलोपहारैश्च समीहमानो भगवत आराधनं विविक्त उपरतविषयाभिलाष उपभृतोपशमः परां निर्वृतिमवाप ॥ ११ ॥ तयेत्थमविरतपुरुषपरिचर्यया भगवति प्रवर्धमानानुरागभरद्रुतहृदयशैथिल्यः प्रहर्षवेगेनात्मन्युद्भिद्यमानरोमपुलककुलक औत्कण्ठ्यप्रवृत्तप्रणयबाष्पनिरुद्धावलोकनयन एवं निजरमणारुणचरणारविन्दानुध्यानपरिचितभक्तियोगेन परिप्लुतपरमाह्लादगम्भीरहृदयह्नदावगाढधिषणस्तामपि क्रियमाणां भगवत्सपर्यां न सस्मार ॥ १२ ॥

आनंद सुखकूं प्राप्त होत भए ॥ ११ ॥ या प्रकार नित्य पुरुषकी परिचर्या भक्ति करकै भगवान्में अत्यन्त वर्द्धमान अनुरागके भारसे शीघ्र हृदयकी शिथिलता भई, प्रहर्षके वेग करकै देहमें रोमांचकी पुलकावली हो आई उत्कंठताके हेतु वारंवार आते हुए स्नेहके आंसुओं करकै नेत्रकी दर्शनशक्ति बंध गई अपनेको प्रीतिदायक भगवानके अरुण चरणारविंदके ध्यानसे बढे हुये भक्तियोगसे सब ओर व्याप्त होते हुये परम आनंदरूप

---

१ राग भैरव “ शालिग्राम कृपाके सागर मन तू क्यों नहि ध्यावत है ॥ टेर ॥ सतयुग द्वापर त्रेता कलिमें एकहि रूप पुजावत है ॥ शुद्ध हिमालय पर्वत भीतर मुक्तिक्षेत्र कहावत है ॥ १ ॥ एकवार चरणामृत ले कोई सो फिर जन्म न पावत है ॥ भक्त होयकर भोग लगावे पाय स्वर्गमें आवत है ॥२॥ हरिप्रसाद देवनको दुर्लभ शुद्ध देह हुइ जावत है ॥ जन्मजन्मके पाप कटत है पार्षद होय सुख पावत है ॥ ३ ॥ चार कोशलो शुद्धि करै भूशालिग्राम रहावत है ॥ धूपदीपनैवेद्य शंखधुनि सुनि राक्षसगत पावत है ॥४॥ भोग लगाये बिन कोई खावै सो नर नर्कमें जावत है ॥ तुलसीपत्र चढाय स्वर्ग चढ पुरुषोत्तम गुण गावत है ” ॥ ५ ॥

२ मनसेही सब पूजन करतेथे ॥

करकै यज्ञ करतेभए ॥ ५ ॥ नानाप्रकारके यागविरचित अंग क्रिया जामै ऐसै याग सुन्दर प्रचार करतेभए, अपूर्व जो क्रियाफलरूप धर्म सो परब्रह्म यज्ञपुरुषमें सब देवतानके चिन्ह मंत्र अर्थ इनकी नियामकतासै साक्षात्पर देवता भगवान्वासुदेवमें भावना करते, अपनी निपुणतासै सब कषाय दूर कर अध्वर्यु लोगोंके हवि ग्रहण करनेके समय वो यजमान यज्ञकर्ता उन सब देवतानको परमेश्वरके अवयवोंमें मान भाग देतोभयो. ध्यान करतोभयो ॥६॥ ऐसे विशुद्धकर्मसे जब अन्तःकरण शुद्ध हुआ तौ उससै ह्रदयके बीचमें स्थित आकाश अपने पहचाने हुए स्थानमें परब्रह्म भगवान वासुदेवका महापुरुष रूपसै दर्शन होताथा जो महापुरुषके आकार श्रीवत्स कौस्तुभ वनमाला शंख चक्र और गदा इत्यादि धारण करकै विराजमान हो

संप्रचरत्सु नानायोगेषु विरचिताङ्गक्रियेष्वपूर्वं यत्तत्क्रियाफलं धर्माख्यं परे ब्रह्मणि यज्ञपुरुषे सर्वदेवतालिङ्गानां मन्त्राणामर्थनियामकतया साक्षात्कर्तरि परदेवतायां भगवति वासुदेव एव भावयमान आत्मनैपुण्यमृदितकषायो हविःष्वध्वर्युभिर्गृह्यमाणेषु स यजमानो यज्ञभाजो देवास्तान्पुरुषावयवेष्वभ्यध्यायत् ॥ ६ ॥ एवं कर्मविशुद्धया विशुद्धसत्त्वस्यान्तर्हृदयाकाशशरीरे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवे महापुरुषरूपोपलक्षणे श्रीवत्सकौस्तुभवनमालाऽरिदरगदादिभिरुपलक्षिते निजपुरुषहृल्लिखितेनात्मनि पुरुषरूपेण विरोचमान उच्चैस्तरां भक्तिरनुदिनमेधमानरया अजायत ॥७॥ एवं वर्षायुतसहस्रपर्यन्तावसितकर्मणावसरोऽधिभुज्यमानं स्वतनयेभ्यो रिक्थं पितृपैतामहं यथादायं विभज्य स्वयं सकलसम्पन्निकेतात्स्वनिकेतात्पुलहाश्रमं प्रवव्राज ॥ ८॥ यत्र ह वाव भगवान्हरिरद्यापि तत्रत्यानां निजजनानां वात्सल्येन संनिधाप्यत इच्छारूपेण ॥ ९ ॥

रहै हैं और अपने भक्त नारदादिकौंके ह्रदयमें चित्रित तुल्य पुरुष रूपसे अपने आपही देदीप्यमान हैं उन परब्रह्म भगवान वासुदेवमें राजा भरतको वडी भक्ति उत्पन्न हुई उस और भक्तिका वेग दिन दिन बढने लगा ॥ ७ ॥ ऐसे दसहज्जार वर्षपर्यंत कर्मके करनेका समय निश्चय कर सहस्रो वर्ष राज्य भोगा जब वह समय बीत गया और अन्त समय प्राप्त हुआ तब पितृपितामहको हिस्सा अपने सब पुत्रनको यथायोग्य विभाग कर सकलसंपदोंसे भरे पुरे घरको छोड़ पुलस्त्यऋषिके आश्रमको जातेभए हरिक्षेत्रमें वो आश्रम है ॥ ८ ॥ जहां भगवान्हरि आजतक तहांके होनेवारे निजज-

स्वस्थ मनसे भरतखण्डके पति वा बालकको आशीर्वाद देते हैं, हे पुत्र ! तुह्मारी सब प्रकार स्वस्ति होय ॥ १४ ॥ कोई समय वो हरिण बालक अलक्षित होजाय है, तो अत्यंत उद्विग्नमनकर जैसे काऊको द्रव्य नष्ट होजाय, तैसे कृपण होय महादयासे अतिहर्षसों हरिणबालकके विरहमें विह्वल हृदयसें संताप हो वाहीको शोच करते मोहमें प्राप्त होयकर ऐसे बोलते ॥ १५ ॥ अहह यह विचारा दीन मृतक माताका बच्चा मृग है यद्यपि मैं अनार्य भाग्यहीन और सठ हूं और किरातकी समान मेरी मति चलनेवाली और अति टेढी है तौभी उस हरिणके

अन्यदा भृशमुद्विग्नमना नष्टद्रविण इव कृपणः सकरुणमतिहर्षेण हरिणकुणकविरहविह्वलहृदयसंतापस्तमेवानुशोचन्किल कश्मलं महदभिरम्भित इति होवाच ॥ १५ ॥ अपि बत स वै कृपण एणबालको मृतहरिणीसुत अहो ममानार्यस्य शठकिरातमतेरकृतसुकृतस्य कृतविस्रम्भ आत्मप्रत्ययेन तदविगणयन्सुजन इवागमिष्यति किम् ॥ १६ ॥ अपि क्षेमेणास्मिन्नाश्रमोपवने शष्पाणि चरन्तं देवगुप्तं द्रक्ष्यामि॥१७॥अपि च न वृकः सालावृकोऽन्यतमो वा नैकचर एकचरो वा भक्षयति ॥१८॥

बच्चेने मेरा विश्वास किया इस कारण सुजनकी समान अपना चित्त निर्मल होनेसे वह हमारे अपराध न गिनकर क्या नहीं आवैगा ॥ १६ ॥ निश्चय है कि क्षेमसे आश्रमके उपवनमें घा चरते भए देवरक्षित मृगबालकको देखैंगे ॥ १७ ॥ कोई भिडिया कुत्ता कोई और पशु व्याघ्रादिक न खाय जाय ॥ १८ ॥

---

१ शंका–राजा भरतने जिन भगवानकी पूजा भक्ति करनेके लिये अपने राज्यको त्याग दिया, और बनको चले गये, सो ऐसा श्रेष्ठ पूजन और हरिभक्ति और अपना क्रिया कर्म मृगीके बच्चेके लिये क्यों छोड दिया? कोई कहै कि मृगीके बच्चेके मोहसे व्याकुल होकरके हीन पुरुषोंकी नाई भगवान्का पूजन त्याग दिया, तोभी बडा भारी आश्चर्य होता है, क्यों कि राज्य और कुटुम्बका मोह छोड दिया, और पशुके मोहमें व्याकुल होना जान पडता है जैसे पुरुषका पर्वतपर चढ जाना कदापि नहीं होसक्ता यह हमको बडा भारी आश्चर्य विदित होता है?

उत्तर–जब राजा भरत एक दिन वनको गये तो बनमें जाकर क्या देखते हैं? कि धवलमुनि संसारकी लज्जासे आप मृगस्वरूप धारण करके और अपनी सुन्दर स्त्रीको मृगी बनाकर रमण कर रहे हैं उनको देखकर राजा भरत हसे, तब उसी समय राजा भरतको धवल मुनिने शाप दिया, कि हे दुष्ट! मृगीके बालककी तू रक्षा करेगा; उस मृगीके बच्चेकी रक्षासे तेरी एक जन्ममें मोक्ष नहीं होगी, तीन जन्म बीत जायगे तब मुक्ति होगी, इस शापसे भरतने कौतूहल समान मृगछौनामें मन लगाकर उसीका मोहमें भगवानके पूजन आदि त्याग दिया था ॥

40

बँडे आश्चर्यकी बात है कि ये हिरणको छोना महासूधो ईश्वरके कालचक्रके वेगसें अपने गणसे बिछुडो मेरी शरण आयो मोहिको माता पिता भ्राता जातको यौथिक मानकर और काहूको नहीं जानै है मुझमें अत्यंत विश्वास करता है इस्से मुझै अपने परायणका पोषण पालन प्रीणन लालन असूया त्यागकर शरणागतकी उपेक्षामें दोष जान इसकी रक्षा करनी योग्य है ॥ ९॥ ये निश्चय है कि जो आर्यसाधु शांत स्वभाव दीनबंधु होते हैं वे ऐसे कार्यमें अपने बडे स्वार्थकीभी बहुत परवा नहीं करै हैं ॥१०॥ ऐसे वामें आसक्ति कर आसन शयन अटन स्थान भोजन आदिमें वा मृगबालकके

अहो बतायं हरिणकुणकः कृपण ईश्वररथचरणपरिभ्रमणरयेण स्वगणसुहृद्बन्धुभ्यः परिवर्जितः शरणं च मोपसादितो मामेव मातापितरौ भ्रातृज्ञातीन्यौथिकांश्चैवोपेयाय नान्यं कंचन वेद मय्यतिनिस्रब्धश्च ॥ अत एव मया मत्परायणस्य पोषणपालनप्रीणनलालनमनसूयुनाऽनुष्ठेयं शरण्योपेक्षादोषविदुषा ॥ ९ ॥ नूनं ह्यार्याः साधव उपशमनशीलाः कृपणसुहृद एवंविधार्थे स्वानर्थानपि गुरुतरानुपेक्षन्ते ॥ १० ॥ इति कृतानुषङ्ग आसनशयनाटनस्थानाशनादिषु सह मृगजहुना स्नेहानुबद्धहृदय आसीत् ॥ ११ ॥ कुशकुसुमसमित्पलाशफलमूलोदकान्याहरिष्यमाणो वृकसालावृकादिभ्यो भयमाशंसमानो यदा सह हरिणकुणकेन वनं समाविशति ॥ १२ ॥ तदा पथिषु च मुग्धभावेन तत्र तत्र विषक्तमतिप्रणयभरहृदयः कार्पण्यात्स्कन्धेनोद्वहति एवमुत्सङ्ग उरसि चाऽऽधायोपलालयन्मुदं परमामवाप ॥ ॥ १३ ॥ क्रियायां निर्वर्त्यमानायामन्तरालेषूत्थायोत्थाय यदैनमभिचक्षीत तर्हि वाव स वर्षपतिः प्रकृतिस्थेन मनसा तस्मा आशिष आशास्ते स्वस्ति स्ताद्वत्स ते सर्वत इति ॥ १४ ॥

साथ अत्यंत स्नेहसे हृदयकों लगावते भए ॥ ११ ॥ कुशा पुष्प समिधा पलाश फल मूल जल ये लेवेकों जाय तब भिडिया कुत्ताके भयकी शंकाकर वा हिरणके बालककौं संग लेकर वनमैं जातेभए ॥ १२ ॥ मार्गमें जब वह बच्चा इधर उधर आसक्त होता तो महामोहके मारे हरवखत वामें मतिकों लगायकर अत्यंत प्यारके भारके हृदयसे वाय बहुत कृपण समझकर स्कंधेपर उठायकर ले चलै हैं, कभी गोदीमें लेलै, कभी छातीसे लगावें, बहुत लाड करते अत्यंत आनंदको प्राप्त होतेभए ॥ १३ ॥ पूजा करते २ बीचमें उसे उठकर देखते हैं और देखकर

जब वाने जल पीलीनो, तब समीपमें नाद करतेभए सिंहको दहाडवेको लोकभयंकर शब्द होतो भयो ॥ ३ ॥ वा शब्दको सुनकर वो मृगवधू हिरणी स्वभावसे व्याकूल इतउत देखकर अत्यन्त सिंहके भयसें उद्विग्न हृदया हो चकित दृष्टिसै देखने लगी और भयसै एक संग नदीको उलांघती भई ॥ ४ ॥ जब वो गर्भवती हिरणी कूदी, तब वा गर्भवतीकों महा भयसे निकसो भयो गर्भ योनिमार्गसे वा नदी प्रवाहमें गिरतो भयो ॥ ५ ॥ वा गर्भ गिरनेसे वा नाहरके दहाडनेसें खेदमें आतुर, अपने गणसे बिछडीभई, कोई गुफामें कृष्णसारहिरणी गिरपडी, और मरगई ॥ ६ ॥ वो हिरणीको बालक सूधो नदीमें बह्यो, बंधुओंसे त्यक्त, वाय देख पिताकी नाई कृपाकर राजऋषि भरतजी वाय लेके विचारतेभए, याकी मा मरगई तब अपने आश्रमको लेआतेभए ॥ ७ ॥ तिस मृगके बच्चामें महा अभिमान स्नेह कर दिनरात पोषण पालन लालन प्रीणन इत्यादि करकै वाके दिन रात ध्यान कर अपने स्नानादि सब नियम और अहिंसादिक श्रीश्वरपुरुषकी परिचर्यादिक ये सब एक एक कुछेक दिनमैं थोडे थोडे त्यागकर कोई कालमें सब त्याग देतेभए ॥ ८ ॥

तया पेपीयमान उदके तावदेवाविदूरेण नदतो मृगपतेरुन्नादो लोकभयंकर उदपतत् ॥ ३ ॥ तमुपश्रुत्य सा मृगवधूः प्रकृतिविक्लवा चकितनिरीक्षणा सुतरामपि हरिभयाभिनिवेशव्यग्रहृदया पारिप्लवदृष्टिरगततृषा भयात्सहसैवोच्चक्राम ॥ ४ ॥ तस्या उत्पतन्त्या अन्तर्वत्न्या उरुभयावगलितो योनिनिर्गतो गर्भः स्रोतसि निपपात ॥ ५ ॥ तत्प्रसवोत्सर्पणभयखेदातुरा स्वगणेन वियुज्यमाना कस्यांचिद्दर्यां कृष्णसारसती निपपात ॥ अथ च ममार ॥ ६ ॥ तं त्वेणकुणकं कृपणं स्रोतसाऽनूह्यमानमभिवीक्ष्यापविद्धं बन्धुरिवानुकम्पया राजर्षिर्भरत आदाय मृतमातरमित्याश्रमपदमनयत् ॥ ७॥ तस्य ह वा एणकुणक उच्चैरेतस्मिन्कृतनिजाभिमानस्याहरहस्तत्पोषणपालनलालनप्रीणनानुध्यानेनात्मनियमाः सहयमाः पुरुषपरिचर्यादय एकैकशः कतिपयेनाहर्गणेन वियुज्यमानाः किल सर्व एवोदवसन् ॥ ८ ॥

५।

गंभीर हृदयरूप तलावमें बुद्धि मग्न होजानेसै प्रतिदिन करनेमें आती भगवान्की पूजाकाभी उन्हैं स्मरण नहीं रहताथा ॥ १२ ॥ ऐसे भगवद्व्रतमें तत्पर हो मृगचर्म धारे, निजवस्त्रसे "एण्या हरिण्या अजिनं ऐणेयम्" नित्यके स्नानसे गीले पीरे कुटिलजटानके समूहसे प्रकाशमान भरतजी प्रातःकाल जब सूर्य मंडल पृथ्वीसै बाहर होकर दीखाताथा उस समय उसके सन्मुख खडे हो उसमें विद्यमान सुवर्णसै तेजवान नारायण भगवान्के आगे लिखे मंत्रसे प्रार्थना करते थे ॥ १३ ॥ "षूङ् प्राणिप्रसवे" धातुको ये प्रयोग है यह "सवितुः" सबजगत्के उत्पत्ति कर्त्ता प्रकाशात्मक परमेश्वरको रजोगुणसै परे सब कर्म फलदायक जो तेज है, सो मनसें या विश्वकों उत्पन्न करतो भयो, फेर या विश्वमें अपनी चित्शक्तिसें प्रवेश कर

इत्थं धृतभगवद्व्रत ऐणेयाजिनवाससाऽनुसवनाभिषेकार्द्रकपिशकुटिलजटाकलापेन च विरोचमानः सूर्यर्चा भगवन्तं हिरण्मयं पुरुषमुज्जिहाने सूर्यमण्डलेऽभ्युपतिष्ठन्नेतदु होवाच ॥१३॥ परोरजः सवितुर्जातवेदो देवस्य भर्गो मनसेदं जजान ॥ सुरेतसाऽदः पुनराविश्य चष्टे हंसं गृध्राणं नृषद्रिङ्गिरामिमः ॥ १४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे भरतचरित्रे भगवत्परिचर्यायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा तु महानद्यां कृताभिषेकनैयमिकावश्यको ब्रह्माक्षरमभिगृणानो मुहूर्तत्रयमुदकान्त उपविवेश ॥ १ ॥ तत्र तदा राजन्हरिणी पिपासया जलाशयाभ्याशमेकैवोपजगाम ॥ २ ॥

रक्षाकी चाहना करवेवारे जीवकों पालनेवाले और मनुष्योंमें रहनेवाली बुद्धि वृत्तिके उपजानेवाले सूर्यनारायणके आत्मरूपवाले तेजकी हम शरण हैं "नृषद्रिंगिराम् , याकी ऐसी व्युत्पत्ति है–नृषु सीदति उपाधितया तिष्ठतीति नृषद्बुद्धिस्तस्या रिंगिं रिंगणं राति ददातीति नृषद्रिंगिराम्" ॥ ॥ १४ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभा० पञ्चमस्कन्धे श्रीभरतकृतहरिक्षेत्रपूजनशालिग्रामोत्पत्तिगण्डकीमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि एकसमय गंडकीमहानदीमें स्नानकर नित्य नैमित्तिक आवश्यक कृत्यकरकै ओंकारकों जपते तीन मुहूर्त वा नदीके तीरपर बैठतेभए ॥ १ ॥ हे राजन्! तहां वा समय एक प्यासी हिरणी जलाशयके समीप इकेली आवती भई ॥ २ ॥

42

सब भैया परमेश्वरकी विद्याकूं न जान याकी जडमति देख वाको अच्छी शिक्षा करनेमें मन न लगावते भये ॥ ८ ॥ सो वो जडभरतजी प्राकृत दोपदके मूर्खजीवोंकरकै उन्मत्त जड बैहिरे पुकारेजाते जैसे वे बोलै, तैसै ये बोलै कोई जो काम करावै सोई करवे लगै, परमेश्वरकी बुद्धिकरके सबके काम करै, वेगारसे काम करै, पैसा लेकै करै अथवा कोई खुसामद कर काम करावै तोहू करदै, भगवतकी इच्छासे जो मिलै थोडो बहुत मीठो कुत्सित अन्न ताहि खायलेवैं, परंतु कुछ इंद्रियोंके स्वादसै न खांय, जैसो मिले तैसोई खाय लेवैं, जिसका कोई उत्पन्न तथा प्रगट करनेवाला नहीं ऐसे शुद्ध अनुभवरूप परमानंद आत्माकी उसै प्राप्ति होगई थी इसकारण सन्मान अपमान आदिके हेतु सुखदुःखसे देहाभिमानकी

स च प्राकृतैर्द्विपदपशुभिरुन्मत्तजडबाधिरेत्यभिभाष्यमाणो यदा तदनुरूपाणि प्रभाषते कर्माणि स च कार्यमाणः परेच्छया करोति विष्टितो वेतनतो वा याच्ञया यदृच्छया वोपसादितमल्पं बहु मिष्टं कदन्नं वाऽभ्यवहरति परं नेन्द्रियप्रीतिनिमित्तम् ॥ नित्यनिवृत्तनिमित्तस्वसिद्धविशुद्धानुभवानन्दस्वात्मलाभाधिगमः सुखदुःखयोर्द्वन्द्वनिमित्तयोरसंभावितदेहाभिमानः ॥ ९ ॥ शीतोष्णवातवर्षेषु वृष इवानावृताङ्गः पीनः संहननाङ्गः स्थण्डिलसंवेशनानुन्मर्दनामज्जनरजसा महामणिरिवानभिव्यक्तब्रह्मवर्चसः कुपटावृतकटिरुपवीतेनोरुमषिणा द्विजातिरिति ब्रह्मबन्धुरिति संज्ञयाऽतज्ज्ञजनावमतो विचचार ॥ १० ॥ यदा तु परत आहारं कर्मवेतनत ईहमानः स्वभ्रातृभिरपि केदारकर्मणि निरूपितस्तदपि करोति किं तु न समविषमन्यूनमधिकमिति वेद कणपिण्याकफलीकरणकुल्माषस्थालीपुरीषादीन्यप्यमृतवदभ्यवहरति ॥ ११ ॥

भावना सब दूर भई, ऐसै जडभरत ब्राह्मण रहते भये ॥ ९ ॥ शीत उष्ण वात वर्षामें वृषकी नाईं नग्न रहैं, स्थूल पुष्ट कठिन सब शरीर रहै धरतीमें सोवैं; शरीर मसलके न धोवैं स्नान न करैं रजमें लिपटे रहैं मलीन महामणिकीनाईं उनका ब्रह्मतेज प्रगट नहीं दीखता था फटा वस्त्र कमरमें लपेटे अतिशय मैले यज्ञोपवीतको देखकर मूर्ख मनुष्य उन्हे ब्राह्मणोंमै अधम और जातिब्राह्मण कहते और उन अज्ञोंसे अपमानित होकर वह विचरण करतेथे ॥ १० ॥ जब इस प्रकारसै भरतने वेगार और मूल्य लेकर काम करना प्रारंभ किया तब उसके भ्राताओंने उसै भोजनका लोभ देकर

महाहर्षसें तिस पुत्रकों पुत्रस्नेहके मारे विप्र यज्ञोपवीतसे लेकर सब संस्कारनको यथा उपदेश विधान करते भए, जब जनेऊ होगई तब फिर शौच आचमन आदि कर्मनियम जो याके योग्य हैं उनकी शिक्षा करतो भयो, क्योंकि शिक्षायोग्य पुत्रके प्रति पिताको शिक्षा दैनी योग्यही है ॥ ४ ॥ सो जडभरत पिताके समीपमें सुंदर कर्म न करते भए, पितानैं वेद व्रतादिकी आदिमें श्रावणादि मासमें इनको प्रणव सहित त्रिपदा गायत्री मंत्र पढावैंगे ऐसा विचार किया तथा वसन्त और ग्रीष्म ऋतुमेंभी ओंकार तथा व्याहृति सहित गायत्री मंत्र सिखानैकी चेष्टा की तथापि उसके मनोरथ

तस्यापि ह वा आत्मजस्य विप्रः पुत्रस्नेहानुबद्धमना आसमावर्तनात्संस्कारान्यथोपदेशं विदधान उपनीतस्य च पुनः शौचाचमनादीन्कर्मनियमाननभिप्रेतानपि समशिक्षयत् अनुशिष्टेन हि भाव्यं पितुः पुत्रेणेति ॥ ४ ॥ स चापि तदु ह पितृसन्निधावेवासध्रीचीनमिव स्म करोति छन्दांस्यध्यापयिष्यन्सह व्याहृतिभिः सप्रणवशिरस्त्रिपदीं सावित्रीं ग्रैष्मवासन्तिकान्मासानधीयानमप्यसमवेतरूपं ग्राहयामास ॥ ५ ॥ एवं स्वतनुज आत्मन्यनुरागावेशितचित्तः शौचाध्ययनव्रतनियमगुर्वनलशुश्रूषणाद्यौपकुर्वाणककर्माण्यनभियुक्तान्यपि समनुशिष्टेन भाव्यमित्यसदाग्रहः पुत्रमनुशास्य स्वयं तावदनधिगतमनोरथः कालेनाप्रमत्तेन स्वयं गृह एव प्रमत्त उपसंहृतः ॥६॥ अथ यवीयसी द्विजसती स्वगर्भजातं मिथुनं सपत्न्यामुपन्यस्य स्वयमनुसंस्थया पतिलोकमगात्॥७॥पितर्युपरते भ्रातर एनमतत्प्रभावविदस्त्रय्यां विद्यायामेव पर्यवसितमतयो न परविद्यायां जडमतिरिति भ्रातुरनुशासननिर्बन्धान्न्यवृत्सत ॥ ८ ॥

सिद्ध न हुए अर्थात् यह न पढे ॥ ५ ॥ पवित्रता वेद पढना व्रत नियम गुरु और अग्निसेवा आदि ब्रह्मचारीके कर्म यद्यपि जडभरतको प्रिय नहीं थे तौभी संतानको प्रेमसे पढाना चाहिये इस दुराग्रहसै उनका पिता पढाता रहा तौभी पुत्रको विद्वान बनानैकी आशा पूर्ण न हुई घरमें असावधानीसै रहनेहारा यह ब्राह्मण सदा सावधान रहनेहारा कालधर्मको प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ वो बडी द्विजकी स्त्री अपने गर्भसे जन्मोभयो जोडा सौतको सोंपकर आप पतिके संग सती होती भई पतिके संग जरगई ॥ ७ ॥ जब पिता मरगए, तब वेदत्रयीकी विद्या पढेभए, याके प्रभावको न जानवेवारे

सकल जगतके क्षेमके अर्थ जिनको हृदय, ऐसे भगवान् वेदत्रयीरूप सूर्य अस्त भए, परन्तु अभीतक मृग वधूका धरोहर स्वरूप वह मृगका वच्चा यहां न आयो ॥ १९ ॥ अथवा असुकृतकारी मोको हरिणराजकुमार सुख देवैगो, अनेक रुचिर दर्शनीय अपने मृगबालकपनके आनंदसे अपनेनको संतोष करैगो ॥ २० ॥ अहो खेलनैके समय झूठ स्नेहके कोपके मिससे जब मैं दोनो नेत्र मूंदलेता तब वह मृगछौना मेरे चारों ओर फिरता और चकित होकर कोमल सींगोंके अग्रभागसे मुझे स्पर्श करता ॥ २१ ॥ कुशोंके ऊपर जो मैं होम करनैकी सामग्री धरदेता तब वह हरिणीसुत खेलने २ चपलताके वश हो दातोंसे कुश पकड यद्यपि उसे दूषित कर देता परन्तु जैसैही मैं क्रोध प्रकाश करता कि उस क्रोधसे वह अत्य-

निम्लोचति ह भगवान्सकलजगत्क्षेमोदयस्त्रय्यात्माऽद्यापि मम न मृगवधून्यास आगच्छति॥ १९ ॥ अपिस्विदकृतसुकृतमागत्य मां सुखयि[illegible]णराजकुमारो विविधरुचिरदर्शनीयनिजमृगदारकविनोदैरसंतोषं स्वानामपनुदन् ॥ २०॥ क्ष्वेलिकायां मां मृषासमाधिनाऽऽमीलितदृशं प्रेमसंरम्भेण चकितचकित आगत्य पृषदपरुषविषाणाग्रेण लुठति ॥ २१॥ आसादितहविषि बर्हिषि दूषिते मयोपालब्धो भीतभीतः सपद्युपरतरास ऋषिकुमारवदवहितकरणकलाप आस्ते ॥२२॥ किं वा अरे आचरितं तपस्तपस्विन्याऽनया यदियमवनिः सविनयकृष्णसारतनयतनुतरसुभगशिवतमाखरखुरपदपङ्क्तिभिर्द्रविणविधुरातुरस्य कृपणस्य मम द्रविणपदवीं सूचयन्त्यात्मानं च सर्वतः कृतकौतुकं द्विजानां स्वर्गापवर्गकामानां देवयजनं करोति ॥ २३॥अपि स्विदसौ भगवानुडुपतिरेनं मृगपतिभयान्मृतमातरं मृगबालकं स्वाश्रमपरिभ्रष्टमनुकम्पया कृपणजनवत्सलः परिपाति ॥ २४ ॥

न्त भयभीत होकर उसी समय ऋषिकुमारकी समान क्रीडा कर निश्चल हो नीचे मुख कर लेता ॥ २२ ॥ या तपस्वीनी पृथिवीनै कहा तप कोनो है जो ये धरती विनयसहित कृष्णसार मृगसुतकी अतिसूक्ष्मतर सुंदर मंगलदायक खरखरे पदपंक्तियोंसें मृगरहित दुःखित मोको मृगकी पदवीकी सूचना करती है और अपनेकोभी उन चरण चिन्होंसे भूषित कर ब्राह्मणोंके यज्ञ करनेका स्थान बताती है हम उसके विना बहुत दुःखित थे सो अब इन खुरोंके चिन्होंको पृथ्वीमें अंकित हुआ देख कुछ धैर्य हुआ ॥ २३ ॥ चंद्रमाको उदय हुआ देख बोले अथवा

46

ये भगवान् तारानके पति चंद्रमा सिंहके भयसे मृतकमावाले अपने आश्रमसें परिभ्रष्ट मृगबालको कृपाकरके कृपणजन वत्सल रक्षा करतेहैं॥ २४ ॥ चंद्रमाकी किरणनके स्पर्शको सुख देख बोलै कि, मृगसुतके वियोगजन्म, ज्वरदावदहनरूप अग्निकी शिखासें तपे भये मेरे हृदय स्थलकमलको वो मृगीसुत मेरे पास आयकर शीतल शांत अनुराग वार्धित निजमुख जल अमृतमय किरणनसे अमृततुल्य सुख देवैगो, लोकमैं ये प्रसिद्ध है कि मुखकमलके जलसैं तापकी शांति होती है ॥ २५ ॥ ऐसे चेष्टा करते, मनोरथमें व्याकुल हृदय, मृगबालकके बहाने प्रारब्धकर्म तथा भगवानकी आराधना रूप कर्म और योग आरंभसे विभ्रंशित होगये महाराज अपने कर्ममेंही उनकी आराधना और योग नष्ट हुआ जो ऐसा न होता तौ जिस

किं वात्मजविश्लेषज्वरदवदहनशिखाभिरुपतप्यमानहृदयस्थलनलिनीकं मामुपसृतमृगीतनयं शिशिरशान्तानुरागगुणितनिजवदनसलिलामृतमयगभस्तिभिः स्वधयतीति च ॥ २५ ॥ एवमघटमानमनोरथाकुलहृदयो मृगदारकाभासेन स्वारब्धकर्मणा योगारम्भणतो विभ्रंशितः स योगतापसो भगवदाराधनलक्षणाच्च कथमितरथा जात्यन्तर एणकुणक आसङ्गः साक्षान्निःश्रेयसप्रतिपक्षतया प्राक्परित्यक्तदुस्त्यजहृदयाभिजातस्य तस्यैवमन्तरायविहतयोगारम्भणस्य राजर्षेर्भरतस्य तावन्मृगार्भकपोषणपालनप्रीणनलालनानुषङ्गेणाविगणयतआत्मानमहिरिवाखुबिलं दुरतिक्रमः कालः करालरभस आपद्यत ॥ २६ ॥ तदानीमपि पार्श्ववर्तिनमात्मजमिवानुशोचन्तमभिवीक्षमाणो मृग एवाभिनिवेशितमना विसृज्य लोकमिमं सह मृगेण कलेवरं मृतमनु मृतजन्मानुस्मृतिरितरवन्मृगशरीरमवाप ॥२७॥

पुरुषनै पहले मुक्तिमें विघ्न जानकर अमात्य पुत्रोंकोभी त्यागकर दियाथा उसै फिर दूसरी जातके मृगके बच्चेमें सहसा अपने पुत्रकी समान आसक्ति क्यों होती जोही इस प्रकारके विघ्न होनेसै योगभ्रष्ट हुए आत्माकी चिन्ताको त्यागे राजर्षि भरतजी उस मृगके लालन पालनमें नियुक्त होगये तौ इसी अवसरमें सर्प जिस प्रकार चूहेके भट्टक प्राप्त होता है उसी प्रकार तीक्ष्ण वेगवाले टालनेसै न टलनेवाले मृत्युने आक्रमण किया ॥ २६॥ उस समयभी वह ध्यान योगमें देख रहेथे कि मानो वह मृगका बच्चा पुत्रकी नाईं बगलमें बैठ कर शोक करता है इस कारण मृगमेंही अनुरागी और आसक्त चित्त होनेसे उस मृगशावककोही देखते हुए अपनी देहत्याग कर साधारण पुरुषौंकी समान मृग शरीरको प्राप्त हुए परन्तु उनको पहिले

जन्मकी स्मृति देहके संग नाशको नहीं प्राप्त हुई ॥ २७ ॥ वा मृगदेहमेंभी अपनेको मृग होनेको कारण और भगवदाराधनको सुंदर भाव याद कर अत्यंत तपित होयकें बोले ॥ २८ ॥ अहो कष्ट भयो मैं आत्मज्ञानियोंके मार्गते भ्रष्ट हुआ जो सबसंग त्याग करभी एकांतमें पुण्यरूप वनमें वस कर आत्मज्ञानियोंके आत्मा, भगवानवासुदेवमें मनको स्थापितकर धीर भावसै सदा उनके श्रवण मनन संकीर्तन आराधन स्मरणमें लगा रहताथा

तत्रापि ह वा आत्मनो मृगत्वकारणं भगवदाराधनसमीहानुभावेनानुस्मृत्य भृशमनुतप्यमान आह ॥ २८ ॥ अहो कष्टं भ्रष्टोऽहमात्मवतामनुपथाद्याद्विमुक्तसमस्तसङ्गस्य विविक्तपुण्यारण्यशरणस्यात्मवत आत्मनि सर्वेषामात्मनां हितं कार्त्स्न्येन मनस्तत्तु पुनर्ममाबुधस्यारान्मृगसुतमनु परिसुस्राव ॥ २९ ॥ इत्येवं निगूढनिर्वेदो विसृज्य मृगीमातरं पुनर्भगवत्क्षेत्रमुपशमशीलमुनिगणदयितं शालग्रामं पुलस्त्यपुलहाश्रमं कालंजरात्प्रत्याजगाम ॥ ३० ॥

एकक्षणभी वृथा नहीं खोता सो अपने अज्ञानपनसै उस मृगके संगसै एक साथही उस विषयसै निकल गया मैं बडा मूर्ख हूं इसी कारण फिर मृग हौना पडा[१] ॥ २९ ॥ इस प्रकार गूढ ज्ञान होनेके कारण निर्वेदको प्राप्त हो मृगीमाताको त्याग कालिंजर स्थानसै फेर भगवत्को क्षेत्र अत्यंत शमशीलस्वभाववारे मुनिगणोंके प्यारे शालिग्रामतीर्थपुलस्त्यपुलहाश्रमको जातेभए ॥ ३० ॥

---

[१] "बोले कि श्रीमन्नारायणसें विमुखनको संग न करै याते हमारीसी गति होगयी सत्संगको पद ॥ सोरठ ॥ तजो मन हरिविमुखनको संग ॥ टेर ॥ जाकी संगतिसे कुमति बढत है परत भजन मैं भंग ॥ १ ॥ कहा भयो पयपान पिलायो विष नहि तजत भुजंग ॥ २ ॥ निंबबीज कहिं मिष्ट न होवैगो परखो मधुढंग ॥ ३ ॥ कहा भयो काग कपूर चुगाय स्वान न्हवाये गंग ॥ ४ ॥ खरकू कहा अरगजा लेपन मर्कट भूषण अंग ॥ ५ ॥ पतित पाषाण बाण नहि भेदत खाली भए निखंग ॥ ६ ॥ ऐसी है पतितनकी शोभा कहा करै सतसंग ॥ ७ ॥ सूरदासप्रभु कारी कमरिया चढत न दूजो रंग ॥ ८ ॥

वा तीर्थमें काल प्राप्त हौनेकी चाह करतेरहे, संगसें अत्यंत उद्विग्न मन कर अपने मृगशरीर सहित सूखे पत्ती तृण वेल खायकर रहै, मृगभावके निमित्त-
को अंत गिनते रहे कुछ समयपर कालके आनैसै गंडकी नदीके प्रवाहमें खडे होकर मृग शरीरका त्याग किया ॥ ३१ ॥ इति श्रीभा० भा० टी० पं०
भरतेन मनुष्यदेहत्यागपूर्वकमृगत्वशरीरप्राप्तिवर्णनं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि कोई ब्राह्मण उत्तम अंगिरागोत्रीनमें श्रेष्ठ शम दम
स्वाध्याय अध्ययन त्याग संतोष सहनशीलता नम्रता विद्या अनसूया आत्मज्ञान आनंदसहित हो ताके अपने समान श्रुतशील आचाररूप उदारता
गुण भरे नव पुत्र होतेभये यह तौ एक स्त्रीमें जन्में और छोटी भार्यामें एक जोडा स्त्रीपुरुषको उत्पन्न भयो ॥ १ ॥ जो वहां वा मिथुनमें पुरुष है वे पर-

तस्मिन्नपि कालं प्रतीक्षमाणः सङ्गाच्च भृशमुद्विग्न आत्मसहचरः शुष्कपर्णतृणवीरुधा वर्तमानो मृगत्वनिमित्तावसा-
नमेव गणयन्मृगशरीरं तीर्थोदकक्लिन्नमुत्ससर्ज ॥ ३१ ॥ इति श्रीभा० महा० पञ्चम० भरतचरिते मनुष्यदेहत्याग-
पूर्वकमृगत्वशरीरप्राप्तिवर्णनं नामाऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ कस्यचिद्द्विजवरस्याऽऽङ्गिरःप्रवरस्य
शमदमतपःस्वाध्यायाध्ययनत्यागसंतोषतितिक्षाप्रश्रयविद्याऽनसूयात्मज्ञानानन्दयुक्तस्यात्मसदृशश्रुतशीलाचा-
ररूपौदार्यगुणा नव सोदर्या अङ्गजा बभूवुः ॥ मिथुनं च यवीयस्यां भार्यायाम् ॥ १ ॥ यस्तु तत्र पुमांस्तं परमभागवतं
राजर्षिप्रवरं भरतमुत्सृष्टमृगशरीरं चरमशरीरेण विप्रत्वं गतमाहुः ॥ २ ॥ तत्रापि स्वजनसङ्गाच्च भृशमुद्विजमानो भ-
गवतः कर्मबन्धविध्वंसनश्रवणस्मरणगुणविवरणचरणारविन्दयुगलं मनसा विदधदात्मनः प्रतिघातमाशङ्कमानो भ-
गवदनुग्रहेणानुस्मृतस्वपूर्वजन्मावलिरात्मानमुन्मत्तजडान्धबधिरस्वरूपेण दर्शयामास लोकस्य ॥ ३ ॥

मभागवत राजर्षिश्रेष्ठ भरतजी भए, जो मृगशरीर त्याग अंतमें विप्रभावकों प्राप्त भए, ऐसा सबही कहते हैं ॥ २ ॥ राजर्षि भरत ब्राह्मणकुलमें जन्म
ग्रहण करकैभी यह विचार कर कि कहीं संगदोषसै फिर अपना पतन न हो जाय इस कारण भगवानके युगल चरणारविंदका स्मरण और गुणवर्णन करनेमें
कर्म बंधनोंका नाश होता है यह भली भांतिसै मतमें विचार सब लोगोंके निकट अपनेको उन्मत्त मूर्ख अंधा बहरासा जतातेथे उनके मनमें आत्मभ्रं-
शभय उत्पन्न हौनेका कारण यह था कि भगवानके अनुग्रहसे और देह पाकरभी इनको अपने पूर्व जन्मोंकी याद आतीथी ॥ ३ ॥

इन सब तस्करौंका स्वभाव रजोगुण तमोगुणसैं पूर्ण था और उनका मनभी धनमदके कारण मर्यादाहीन होगयाथा इस कारण वह भगवानकी कलायुक्त ब्राह्मणकुलका अपमानकर अपनी इच्छासैं उलटे मार्गपर चले जब यह भयंकर कार्यमें लगे परन्तु क्या भद्रकाली देवी उनकी पूजा ग्रहण करसक्ती है कारण कि ब्रह्मर्षिकी संतान किसीसै वैरभाव न रखनेवाले सब प्राणियोंके मित्र आपद कालके समय लौकिकी हिंसामेंभी जिनके मारनेकी आज्ञा नहीं हो सक्ती उनका शिरकाट बलिदान दैना देवीजी सामने होकर नहीं देखसकती इस बातकी तयारी देख महाब्रह्मतेजसै देवीजीका हृदय जलनेलगा इसकारण भद्रकाली प्रतिमा त्याग कर बाहर चली आई ॥ १७ ॥ अत्यंत भगवद्भक्तके अपराधके असहनसे

इति तेषां वृषलानां रजस्तमःप्रकृतीनां धनमदरजउत्सिक्तमनसां भगवत्कलावीरकुलं कदर्थीकृत्योत्पथेन स्वैरं विहरतां हिंसाविहाराणां कर्मातिदारुणं यद्ब्रह्मभूतस्य साक्षाद्ब्रह्मर्षिसुतस्य निर्वैरस्य सर्वभूतसुहृदः सूनायामप्यननुमतमालम्भनं तदुपलभ्य ब्रह्मतेजसा अतिदुर्विषहेण दन्दह्यमानेन वपुषा सहसोच्चचाट सैव देवी भद्रकाली ॥ १७ ॥ भृशममर्षरोषावेशरभसविलसितभ्रुकुटिविटपकुटिलदंष्ट्रारुणेक्षणाटोपातिभयानकवदना हन्तुकामेवेदं महाऽट्टहासमतिसंरम्भेण विमुञ्चन्ती तत उत्पत्य पापीयसां दुष्टानां तेनैवासिना विवृक्णशीर्ष्णां गलात् स्रवन्तमसृगासवमत्युष्णं सह गणेन निपीयातिपानमदविह्वलोच्चैस्तरां स्वपार्षदैः सह जगौ ननर्त च विजहार च शिरःकन्दुकलीलया ॥ १८॥ एवमेव खलु महदभिचारातिक्रमः कात्स्न्र्येनात्मने फलति ॥ १९ ॥

क्रोधावेशसे उठीभई भ्रुकुटिशाखा कुटिल दंष्ट्रा कराल लालदृष्टिके संभ्रमसें अतिभयानक मुख भगवती, मारवेकी कामनासे महाअट्टहासको त्याग करती भई वा स्थानसे उछलकर पापी दुष्टनके शिर उनहीके वाही खड्गसे काटे उनसै गिरो गर्म गर्म रुधिर अपने गणसहित पीकर अतिपानमदसे विह्वल अत्यंत ऊंचेस्वरसे अपने पार्षदोंकरकै सहित गाती नृत्य करती शिर काटतीभई,और गेंदकी समान उन्है उछालकर लीला करती भई॥१८॥ बडे पुरुषोंके साथ अत्याचार करनेसे वह इसी प्रकारसै बहुधा अपने आपही बुरे पुरुषोंका बुरा हो जायाकरता है यह निश्चय जानो ॥ १९ ॥

धानके खेतौमें क्यारी बनानैका काम सौंपा उसै यह करने लगे परन्तु यह क्यार बनाना न जान कर मनमानी मट्टी डालते कही अधिक कर देते भाईनकी बहुके दियेभए चूर्णतंडुल खल पेना तुष कुथ्थी बटलोईमें लगो भयो जरो अन्न इन सबकों अमृतसम मान भोजन करते भए ॥ ११ ॥ याके उपरांत कोई समय कोई सामंत नामक शूद्रोंका राजा भद्रकालिके अर्थ पुत्र प्राप्तिकी इच्छासै एक पुरुषके चढानैकी तयारी करनैलगा ॥१२॥ जिस नरपशुको उन्हौंनै बांध कर रख्खाथा वह दैववश बंधनसै छूट भागगया तो या पशुकी पदवीको वाके अनुचर शिपाईलोग दौडतेभए, रातमें अर्द्धरात्रिके समय अंधकारसे व्याप्त सब होरह्यो सो वो पशु तौ न मिलो, अकस्मात् विधिसे धानोंमें वीरासनसे बैठे मृगशूकरादिकोंसे रक्षा करते

अथ कदाचित्कश्चिद्वृषलपतिर्भद्रकाल्यै पुरुषपशुमालभतापत्यकामः ॥१२॥ तस्य ह दैवमुक्तस्य पशोः पदवीं तदनुचराः परिधावन्तो निशि निशीथसमये तमसा वृतायामनधिगतपशव आकस्मिकेन विधिना केदारान्वीरासनेन मृगवराहादिभ्यः संरक्षमाणमाङ्गिरःप्रवरसुतमपश्यन् ॥ १३ ॥ अथ त एतमनवद्यलक्षणमवमृश्य भर्तृकर्मनिष्पत्तिं मन्यमाना बद्ध्वा रशनया चण्डिकागृहमुपनिन्युर्मुदा विकसितवदनाः ॥१४॥ अथ पणयस्तं स्वविधिनाऽभिषिच्याऽहतेन वाससाऽऽच्छाद्य भूषणालेपस्रक्तिलकादिभिरुपस्कृतं भुक्तवन्तं धूपदीपमाल्यलाजकिसलयाङ्कुरफलोपहारोपेतया वैशससंस्थया महता गीतस्तुतिमृदङ्गपणवघोषेण च पुरुषपशुं भद्रकाल्याः पुरत उपवेशयामासुः ॥ १५ ॥ अथ वृषलराजपणिः पुरुषपशोरसृगासवेन देवीं भद्रकालीं यक्ष्यमाणस्तदभिमन्त्रितमसिमतिकरालनिशितमुपाददे॥१६॥

अंगिरागोत्री ब्राह्मणके सुतकों देखतेभए ॥ १३ ॥ याके उपरांत वामें अच्छे लक्षण जान अपने भर्ताके कर्मकी सिद्धि मानकर रस्सोसै बांध चंडिकाके घरमें उसकूं लातेभए आनंदसे उनके मन बहुत प्रसन्न हुए ॥ १४ ॥ फेर वे चोर अपनी विधिसे उनका अभिषेक कर सुपेद कपडासे वाय ढककै गहिने चंदन माला तिलकादिसे शोभितकर भोजन कराय धूप दीप माल्य खील कोमलपत्ते अंकूर फल अनेक भेट लिये बलिदानकी क्रियामें स्थितकर महागीत स्तुति मृदंग ढोलके घोषकरकै वा पुरुषपशुको भद्रकालिके आगे ठाडो करते भए ॥१५॥ शूद्रराज चोर वा पुरुषपशुके रुधिररूप मादक रसकरकै भद्रकालीदेवीकी पूजन करवेकी इच्छा कर भद्रकालीके मंत्रोंसे अभिमंत्रित अतिकराल पैंनो खड्ग हाथमें लेतेभए ॥१६॥

S1

कीनो तब ब्रह्मभूत अहंकाररहित सम्पूर्ण जीवौंके सखा सबके आत्मस्वरूप योगीश्वरौंकी गतिमें परिपूर्ण ज्ञानवाले जडभरत हँसकर पंडित मान, राजासैं यह वचन कहे ॥८॥ जडभरत ब्राह्मण बोले कि हे रहूगणवीर ! तुम्हारो कहिनो सत्य है, झूठो नहीं है क्योंकि ये भार देहको है, सो भार मारगो चलवेवारेको नहीं है, स्थूल होनो सब जीवौंमें ये वेदवेत्तानकी बात नहीं है, देह मोटो छोटो होय है कुछ हम घटैं बढै नहीं है ॥ ९ ॥ स्थूलता, कृशता, व्याधी, मानसी व्यथा, भूख, प्यास, भय, कलेश, इच्छा, बुढापो, निद्रा, मैथुन, क्रोध, अहंकार, शोक ये देहके जन्मसे देहकों होय हैं, कुछ मोको नहीं होय हैं ॥ १० ॥ हे राजन् ! मेराही नही किन्तु सम्पूर्ण आदिअंतवान विकारी शरीरको जीवनो मरनो होय है, हे स्तुतियोग्य ! जो

ब्राह्मण उवाच ॥ त्वयोदितं व्यक्तमविप्रलब्धं भर्तुः स मे स्याद् यदि वीर भारः॥ गन्तुर्यदि स्यादधिगम्यमध्वा पीवेति राशौ न विदां प्रवादः॥९॥ स्थौल्यं कार्श्यं व्याधय आधयश्च क्षत्तृट् भयं कलिरिच्छा जरा च ॥ निद्रा रतिर्मन्युरहंमदः शुचौ देहेन जातस्य हि मे न सन्ति ॥ १० ॥ जीवन्मृतत्वं नियमेन राजन्नाद्यन्तवद्यद्विकृतस्य दृष्टम् ॥ स्वस्वाम्यभावो ध्रुव ईड्य यत्र तर्ह्युच्यतेऽसौ विधिकृत्ययोगः॥ ११ ॥ विशेषबुद्धेर्विवरं मनाक् च पश्यामि यन्न व्यवहारतोऽन्यत् ॥ क ईश्वरस्तत्र किमीशितव्यं तथापि राजन् करवाम किं ते ॥ १२ ॥ उन्मत्तमत्तजडवत् स्वसंस्थां गतस्य मे वीर चिकित्सितेन॥अर्थः कियान्भवता शिक्षितेन स्तब्धप्रमत्तस्य च पिष्टपेषः ॥१३॥ श्रीशुक उवाच॥ एतावदनुवादपरिभाषया प्रत्युदीर्य मुनिवर उपशमशील उपरतानात्म्यनिमित्त उपभोगेन कर्मारब्धं व्यपनयन्राजयानमपि तथोवाह ॥ १४ ॥

स्वामी और दासभाव अचल होय तौ तेरी आज्ञाका मुझै संपादन करना बन सक्ता है परन्तु यह अविचल नहीं यदि इसके विपरीत हो जाय तौ मेरी आज्ञा तुम्है मान्नी है ॥ ११ ॥ विशेषबुद्धिको जो ये एक छिद्रपनको थोडोसो भाव हम देखैंहैं, सो व्यवहारके विना नहीं है कौन तो ईश्वर है, कौन नृप है, कौन भृत्य है तोभी हे राजन् ! जो कहोगे सो करैंगे ॥ १२ ॥ उन्मत्त मत्त जडवत् ब्रह्मभावको प्राप्त गर्विले मदांध हमसरीकेनको चिकित्सा करकै तुम्हारी शिक्षासे कौन प्रयोजन है, पिसे भएको क्या पीसनो है, जिनको जडस्वभाव है वाको शिक्षा करकै कदीभी चतुर करवेको कोई समर्थ नहीं है ॥ १३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि ऐसो शास्त्रार्थ करकै, वह मुनिवर महाशीलवान् देहात्मबुद्धिसै रहित भाग्य करकै प्रारब्ध

को सुनकर वृद्धोंकी सेवा करवेवारो राजा रहूगण राजसी और राज्यके स्वभावके कारण कुछेक क्रोधकर वलात्कारसै पालकीमें लगाये जडभरतसै कि जिनका तेज राखसै ढकी हुई अग्निकी समान दीखता नहीं था इस प्रकार हास्यके वचन वोले ॥ ५ ॥ हे भैया ! वडे कष्टकी वात है कि तुम वहुत थके हो वहुत दूरसै लंवो रस्तामें तुम्ही एकले पालकी लिये आतेहो, न तो तुम अति मोटेहो, न पुष्ट हो, वूढापेसें तुम ग्रसित हो हे सखे ! ये और तुम्हारे साथके ऐसे नहीं है, ऐसे वहुत टेढीवोलीसे हास्य कीनो तोभी जडभरतके अपने अन्त कलेवररूप कि जो अवस्तु संस्थान

अहो कष्टं भ्रातर्व्यक्तमुरु परिश्रान्तो दीर्घमध्वानमेक एव ऊहिवान् सुचिरं नातिपीवा न संहननाङ्गो जरसा चोपद्रुतो भवान् सखे नो एवापर एते संघट्टिन इति बहुविप्रलब्धोऽप्यविद्यया विहितद्रव्यगुणकर्माशयस्वचरमकलेवरेऽवस्तुनि संस्थानविशेषेऽहं ममेत्यनवध्यारोपितमिथ्याप्रत्ययो ब्रह्मभूतस्तूष्णीं शिबिकां पूर्ववदुवाह ॥६॥ अथ पुनः स्वशिबिकायां विषमगतायां प्रकुपित उवाच रहूगणः किमिदमरे त्वं जीवन्मृतो मां कदर्थीकृत्य भर्तृशासनमतिचरसि प्रमत्तस्य च ते करोमि चिकित्सां दण्डपाणिरिव जनताया यथा प्रकृतिं स्वां भजिष्यस इति॥७॥ एवं बह्वबद्धमपि भाषमाणं नरदेवाभिमानं रजसा तमसाऽनुविद्धेन मदेन तिरस्कृताशेषभगवत्प्रियनिकेतं पण्डितमानिनं स भगवान् ब्राह्मणो ब्रह्मभूतः सर्वभूतसुहृदात्मा योगेश्वरचर्यायां नातिव्युत्पन्नमतिः स्मयमान एव विगतस्मय इदमाह ॥८॥

विशेष पंचमहाभूत इन्द्रिय कर्म और अन्तःकरणरूप मायाहीके पदार्थौंसे निर्मित है उसमें अहं मम युक्त मिथ्या प्रतीत नहीं थी इस कारण ब्रह्मस्वरूपभूत जडभरत तूष्णीं होयकर पहिलेकीसी नाई पालकी लेचले ॥ ६ ॥ याके उपरांत जव फेर पालकी टेढी भई, तव अत्यंत कोप करके रहूगण वोलौ, क्यों रे तू ताही मरेके समान है मेरो तिरस्कार करै है मुझ स्वामीकी आज्ञा उल्लंघन करनेहारे मदांधकी मैं शिक्षा करूंगा तौ तू सीधा होजायगा जैसे जीवसमूहनको यमराज शिक्षा करै है ॥ ७ ॥ ऐसे वहुत असंगत वोल कर राजापनेके आभिमानीने, राजस तामस मदसे जव तिरस्कार

पैरके नीचे कोई जीव न आ जाय ऐसा विचारकर जव यह एकवाणकी जगह देखकर चलतेथे इस्सै दूसरे कहारौंकी चाल वरावर न होनेसै राजाकी पालकी टेढी हुई तौ रहूगण पालकी उठानेवारे पुरुषनसे बोलो कि हे कहारहो! मेरी अवज्ञा करोहौ, क्यौं ये पालखी टेढी मेढी चलैहै ॥ २ ॥ यो आक्षेपको नृपको वचन सुन वे कहार चौथे दंडकी उपायसे शंकित होयकर वा राजाकी विनती करतेभए ॥ ३ ॥ हे नरदेव!

यदा हि द्विजवरस्येषुमात्रावलोकानुगतेर्न समाहिता पुरुषगतिस्तदा विषमगतां शिबिकां रहूगण उपधार्य पुरुषानधिवहत आह ॥ हे वोढारः साध्वतिक्रमत किमिति विषममुह्यते यानमिति ॥ २ ॥ अथ त ईश्वरवचः सोपालम्भमुपाकर्ण्योपायतुरीयाच्छङ्कितमनसस्तं विज्ञापयाम्बभूवुः ॥ ३ ॥ न वयं नरदेव प्रमत्ता भगवन्नियमानुपथाः साध्वेव वहामः॥ अयमधुनैव नियुक्तोऽपि न द्रुतं व्रजति नानेन सह वोढुमु ह वयं पारयाम इति ॥ ४ ॥ सांसर्गिको दोष एव नूनमेकस्यापि सर्वेषां सांसर्गिकाणां भवितुमर्हतीति निश्चित्य निशम्य कृपणवचो राजा रहूगण उपासितवृद्धोऽपि निसर्गेण बलात्कृत ईषदुत्थितमन्युरविस्पष्टब्रह्मतेजसं जातवेदसमिव रजसाऽऽवृतमतिराह ॥ ५ ॥

हम मत्त नहीं हैं, आपकी आज्ञारूप नियममें हैं, वहुत अच्छी तरह पालकी लेचलैंहैं, ये जो अभी कहार लगायो है, सो न तो ये शीघ्र चलै है न याके साथ हम लेचलवेको पार होंय हैं ॥ ४ ॥ ये संगको दोष है, क्योंकि एकके करनेसे सब संगकेनको होनेको योग्य है ये निश्चय उन गरीबन-

---

समाधान–राजा रहूगणके यहां सहस्रों कहार पालकी ले चलनेवाले थे, एक हारगया तो दूसरा उपस्थित था, और वहभी हारा तो तीसरा उपस्थित था, इसी प्रकार अनेक कहार पालकीमें लगाये परन्तु भरतके मुखारविन्दसे राजाको ज्ञान प्राप्त होना लिखाथा, इसलिये जिसको पालकी ले चलनेकी आज्ञा दीजाय वही दुःखी होजाय सात आदमी तो अच्छे रहैं उनमेंसे एक मनुष्य दुःखी होजाय, राजाने अनेक उपाय किये परन्तु सात कहार तो सुखी रहैं आठवां दुःखी होजाय, पालकीमें कन्धा दिया और कहारको रोगने ग्रसित किया, और राजाको तीर्थके जानेकी अत्यंत शीघ्रता थी इसलिये जब पालकी चलानेके लिये कोई कहार शेष नहीं रहा, तब और मनुष्यका अनुसरण किया दैवयोगसे जडभरत मिलगये इसीलिये विघ्न होता था सो काम होगया, इसीलिये दूसरे पुरुषका अनुसरण कियाथा, राजा रहूगण कुछ दरिद्री और कङ्गाल नहींथा ॥

हे विष्णुदत्त परीक्षित्! परमहंस महावैष्णवौंको अपने शिरछेदन होनेके समयभी मोह नहीं होता यह कोई आश्चर्यकी वात नहीं है कारण कि देहादि जड पदार्थौंको आत्मा मान्नेरूप अंतःकरणकी दृढ ग्रंथीको वे त्याग देते हैं तथा प्राणीमात्रके मित्र आत्मस्वरूप वैरहीन भगवानके भयरहित चरणारविंदके मूलमें निवास करनेहारे इन लोकोंकी स्वयं भगवान नारायणही अपने जाग्रत कालरूपी चक्रद्वारा तथा औरभी वस्तुऔंसैं रक्षा करते हैं ॥ २० ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां पञ्चमस्कन्धे जडभरतस्य बलिप्रदानान्मुक्तत्ववर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले

न वा एतद्विष्णुदत्त महदद्भुतं यदसंभ्रमः स्वशिरश्छेदन आपतितेऽपि विमुक्तदेहाद्यात्मभावसुदृढहृदयग्रन्थीनां सर्वसत्वसुहृदात्मनां निर्वैराणां साक्षाद्भगवता अनिमिषारिवरायुधेनाप्रमत्तेन तैस्तैर्भावैः परिरक्ष्यमाणानां तत्पादमूलमकुतश्चिद्भयमुपसृतानां भागवतपरमहंसानाम् ॥ २० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पञ्चमस्कन्धे जडभरतचरिते जडभरतस्य बलिप्रदानान्मुक्तिवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः॥९॥ श्रीशुक उवाच॥अथ सिन्धुसौवीरपते रहूगणस्य व्रजत इक्षुमत्यास्तटे तत्कुलपतिना शिबिकावाहपुरुषान्वेषणसमये दैवेनोपसादितः स द्विजवर उपलब्ध एष पीवा युवा संहननाङ्गो गोखरवद्धुरं वोढुमलमिति पूर्वविष्टिगृहीतैः सह गृहीतः प्रसभमतदर्ह उवाह शिबिकां स ह महानुभावः॥१॥

कि अब सिंधुसौवीरपति रहूगण कपिल देवजीके आश्रमपर जातेथे मार्गमें इक्षुमती नदीतीरपर सब कहारनको मालक शिबिका लेजानेवारे कहार ढूंढनेके समयमें भाग्यसे प्राप्त ब्राह्मणश्रेष्ठको पुष्ट तरुण और समर्थ देखकर बैल और गधेके समान भार उठानेमें समर्थ है ऐसा सोचकर दूसरे वगारी कहारौंके साथ इन्हैंभी पकडलिया यद्यपि यह कार्य इनके उचित नहीं था तथापि महाज्ञानी होनेसैं उनके साथ पालकी लेचले (१)॥ १ ॥

---

१ शंका–राजा रहूगण पालखीके ले चलनेवाले आठही कहार क्यों लिया क्या और पालकी ले, चलनेवाले नहीं थे जो राजा होकर एक आदमी अधिक नहीं रक्खा, जो गूंगा कुछ बात कहै तो लोगोंको आश्चर्य ज्ञान होताहै, ऐसे यहभी आश्चर्य है, क्योंकि बडाही दरिद्रि और जो लोभीभी राजा होगा उसके यहांभी पालकी ले चलनेवाले कहार बहुत होंगे, फिर क्या कारण जो रहूगणके यहां कहार एकभी अधिक नहीं था कि जो एक कहारके हार जानेसे पालकी जंगलमें पडी रही? जब दूसरे मनुष्यको पकडकर मँगाया तो पालकी चली यह बडे आश्चर्यकी बात है?

भयो अंधीबुद्धिवारो मैं योगेश्वरनकी गतिको कैसे जानूं ॥ २० ॥ अपने कहा हमें श्रम कुछ नहीं सो यह बात मेरे विचारमें नहीं आती क्यों कि जबमें कोई कार्य करताहूं तौ श्रमित होजाताहूं इसी अनुमानसे तुम्हें श्रमित मानताहूं परन्तु तुम व्यवहारको मिथ्या कहतेहो जैसे असत घटसे जलके लाने आदिका कोई कार्य नहीं होता ऐसेही यदि व्यवहार मिथ्या हो तौ इस्से कुछभी कार्य न होना चाहिये और व्यवहारसे अनेक पदार्थ होतेहैं तौ वह असत कैसे ॥ २१ ॥ और जो सुख दुःख धर्म आत्माके न मानकर देहके कहतेहो तौ इसमेंभी यह संदेह है कि जैसे बटलोईमें अग्निसे तापसैं जल गर्म होय है, वाके तापसे चावलोंके गर्भ रंधजायहै, ऐसेही देह इंद्रिय प्राण अंतःकरणकी समीपता होनेसे पुरुषके अनुरोधते संसारके

दृष्टः श्रमः कर्मत आत्मनो वै भर्तुर्गन्तुर्भवतश्चानुमन्ये ॥ यथाऽसतो दानमानाद्यभावात् समूल इष्टो व्यवहारमार्गः ॥ २१ ॥ स्थाल्यग्नितापात् पयसोऽभितापस्तत्तापतस्तण्डुलगर्भरन्धिः ॥ देहेन्द्रियास्वाशयसन्निकर्षात्तत्संसृतिः पुरुषस्यानुरोधात् ॥ २२ ॥ शास्ताऽनुगोप्ता नृपतिः प्रजानां यः किंकरो वै न पिनष्टि पिष्टम् ॥ स्वधर्ममाराधनमच्युतस्य यदीहमानो विजहात्यघौघम् ॥ २३ ॥ तन्मे भवान्नरदेवाभिमानमदेन तुच्छीकृतसत्तमस्य ॥ कृषीष्ट मैत्रीदृशमार्तबन्धो यथा तरे सदवध्यानमंहः ॥ २४ ॥ न विक्रिया विश्वसुहृत्सखस्य साम्येन वीताभिमतेस्तवापि ॥ महद्विमानात् स्वकृताद्धि मादृक् नङ्क्ष्यत्यदूरादपि शूलपाणिः ॥ २५ ॥ इति श्रीभा० महापु० पञ्चम० रहूगणजडभरतसंवादो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

धर्म जीवविशिष्ट ईश्वरमेंभी होतेहैं अर्थात् वही दुःख क्रमसे आत्माकोभी प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥ आपने कहा कि शिक्षक रक्षक अचल नहीं है परन्तु जिसकालमें जो राजा होताहै तब वह प्रजाकी शिक्षाकर रक्षा करताहै यह सत्यहीं है जो नरपाति अच्युत भगवान्का पूजन करते योग्यतासे राज्यको प्राप्त हो असावधानीसे प्रजाकी रक्षा करै तौ वह पिष्टपेषण किस प्रकार है मेरी संमतिमें तौ जो नारायणकी भक्तिसे प्रजाका पालन करै तौ उसके पापसमूह नष्ट होजाते हैं ॥ २३ ॥ हे दीनबंधु ! ताते राजापनके अभिमानसे अत्यंत सज्जनोंको तुच्छ समझनेवारे मुझपर कृपाकी दृष्टि करो जिस्से श्रेष्ठ पुरुषोंके अपमान करनेके पापसे छुट जाऊं ॥ २४ ॥ विश्वके सुहृत् सखा सबमें समान भावसे अभिमान रहित हो इस्से तुमको

भ

कर्मको व्यतीत करते राजाकी पालकी पहिलेकीसीनांई लेचलै ॥ १४ ॥ हे पांडवेय परीक्षित ! सो सिंधुसौवीरपति जिसै तत्त्व जानवेकी इच्छासे सुंदर श्रद्धाका अधिकार मिलचुका है हृदयकी ग्रंथिमोचन उन ब्राह्मणको वचन जो योगग्रंथोंके संमत थे सुन्तेही शीघ्र पालकीसे उतर, शिरसे चरण-कमलमें पडकर अपराध क्षमा करावत राजपनेको गर्व दूर कर रहूगण बोलै ॥ १५ ॥ तुम कौन हो, ब्राह्मणोंमें छिपे भए विचरो हो, यज्ञोपवीत धारे हो कौन अवधूत हौ, कौनके हो, कहांके वासी हो, यहां कहांसे आए हो, क्या हमारे क्षेमके लिये कपिलमुनि होय आए हो ॥ १६ ॥ “ हे राजन् ! ये चिंता क्यों करोहो पालकी तो तुम्हारी हम लेई चलै है ये सुन रहूगण नृप बोलै ” इंद्रके वज्रसे हम न डरै हैं, तीननेत्रवारे शिवके

स चापि पाण्डवेय सिन्धुसौवीरपतिस्तत्त्वजिज्ञासायां सम्यक् श्रद्धयाऽधिकृताधिकारस्तद्धृदयग्रन्थिविमोचनं द्विजवच आश्रुत्य बहुयोगग्रन्थसंमतं त्वरयाऽवरुह्य शिरसा पादमूलमुपसृतः क्षमापयन् विगतनृपदेवस्मय उवाच ॥ १५ ॥ कस्त्वं निगूढश्चरसि द्विजानां बिभर्षि सूत्रं कतमोऽवधूतः ॥ कस्यासि कुत्रत्य इहापि कस्मात् क्षेमाय नश्चेदसि नोत शुक्लः ॥ १६ ॥ नाहं विशङ्के सुरराजवज्रान्न त्र्यक्षशूलान्न यमस्य दण्डात् ॥ नाग्न्यर्कसोमानिलवित्तपास्त्राच्छङ्के भृशं ब्रह्मकुलावमानात् ॥ १७ ॥ तद्ब्रूह्यसङ्गो जडवन्निगूढविज्ञानवीर्यो विचरस्यपारः ॥ वचांसि योगग्रथितानि साधो न नः क्षमं ते मनसाऽपि भेत्तुम् ॥ १८॥ अहं च योगेश्वरमात्मतत्त्वविदां मुनीनां परमं गुरुं वै ॥ प्रष्टुं प्रवृत्तः किमिहारणं तत् साक्षाद्धरिं ज्ञानकलाऽवतीर्णम् ॥ १९ ॥ स वै भवाल्लोकनिरीक्षणार्थमव्यक्तलिङ्गो विचरत्यपि स्वित् ॥ योगेश्वराणां गतिमन्धबुद्धिः कथं विचक्षीत गृहानुबन्धः ॥२०॥

त्रिशूलसे न डरै है, न यमके दंडसे, न अग्निसे, न सोमसे, न सूर्यसे, न पवनसे, न कुबेरके पाशसे ड़रै है, परन्तु एक ब्राह्मणकुलके अपमानसे हम बहुत डरैं हैं ॥ १७ ॥ असंग जडवत् विज्ञानवीर्य छिपाये तुम अनंतमहिमासे विचरोहो, हे साधो ! योगसे ग्रसेभए तुम्हारे वचन हमारेको मनकरकै भी भेदन करवेको समर्थ नहीं है ॥ १८ ॥ योगीश्वर आत्मतत्त्वज्ञानी मुनीनके परमगुरु साक्षात् ज्ञानकलासे अवतरे कपिलदेवजीसे शरण रक्षक किसको जानतो यह पूछवेको जाऊहूं ॥ १९ ॥ सो आप लोककी रक्षाके अर्थ अप्रकट चिन्हसे विचरोंहो, सो कपिलदेवजी तौ नहीं हो गृहमें फसो

56

यह मन संसार चक्रके छलसै मायासै शरीरौंकी रचना करके अपनी आत्माकों आलिंगन करता हुआ सुख दुःख मोह जो अपने कर्मकी काल प्राप्तिका अनिवार्य समय है उसकोभी सब प्रकार सृजन करता है यह मनही जीवको अनेक उपाधि करता है इस्से यही जीवको अपने भीतर मिथ्या अध्यात्म करा कर मैंही मनहूं इस प्रकार दरसा कर भवसागरकी लहरूंमें ग्राम कंटककी नाईं छलकर इधर उधर घूमता है ॥ ६ ॥ जबतक मन है तबतक ये व्यवहार सदा प्रकाशमान है, क्षेत्रज्ञको साक्षी स्थूल सूक्ष्म होवैहै, ताते निर्गुण सगुण पर अवर ईश्वरके जीवको मन कारण कह्यो है ॥७ ॥ या जीवकौ मन गुणमें अनुरक्त होय तौतो अनेक दुःख होय है, और निर्गुणमें मन लगै तो याको क्षेम होयहै, जैसै दीपक घृतवर्तिके द्वारा जरतोभयो धूमसहित शिखाको प्रकाशित करै है, जब दोनो न रहै तो अपने स्वस्वरूपमें लीन होयहै ॥ ८ ॥ इस प्रकार जबतक मन विषय कर्मौंकी ओर लगा रहता है तभीतक उसमें ग्यारह वृत्ति दृष्टिगोचर होती हैं जब विषय और कर्मौंसै छुट जाताहै तब ब्रह्माकार होता है मनकी एकादश वृत्तियौंमें पांच तौ क्रियाके आकार पांच ज्ञाताके आकार और एक अभिमान है ॥ ९ ॥ शब्द स्पर्श रूप रस गंध यह पांच ज्ञानेन्द्रियद्वारा ज्ञानाकार सबकी वृत्तियौंके विषय होते हैं और कभी ग्रहण गमन मलत्याग रमण यह पांच विषय कर्मेन्द्रिय द्वारा कर्माकार वृत्तियौंके विषय होते हैं ॥ १० ॥ यह शरीर ग्यारह वृत्तियोंकी भूमि है यही मेरा है इस प्रकारके भोगायतनरूपमें अभिमानका विषय हो जाताहै कोई कहते हैं अहंकार नामक मनकी

दुःखं सुखं व्यतिरिक्तं च तीव्रं कालोपपन्नं फलमाव्यनक्ति ॥ आलिङ्ग्य मायारचितान्तरात्मा स्वदेहिनं संसृतिचक्रकूटः ॥६ ॥ तावानयं व्यवहारः सदाविः क्षेत्रज्ञसाक्ष्यो भवति स्थूलसूक्ष्मः ॥ तस्मान्मनो लिङ्गमदो वदन्ति गुणागुणत्वस्य परावरस्य ॥ ७ ॥ गुणानुरक्तं व्यसनाय जन्तोः क्षेमाय नैर्गुण्यमथो मनः स्यात् ॥ यथा प्रदीपो घृतवर्तिमश्नञ्छिखाः सधूमा भजति ह्यन्यदा स्वम् ॥ ८ ॥ पदं तथा गुणकर्मानुबद्धं वृत्तीर्मनः श्रयतऽन्यत्र तत्त्वम् ॥ तत्वं परं ब्रह्म वदन्ति विज्ञा ब्रह्मात्मभावेन चरन्त्यनिर्वृताः ॥ ९ ॥ एकादशासन्मनसो हि वृत्तय आकूतयः पञ्च धियोऽभिमानः ॥ मात्राणि कर्माणि पुरं च तासां वदन्ति हैकादश वीर भूमीः ॥ १० ॥ गन्धाकृतिस्पर्शरसश्रवांसि विसर्गरत्यर्त्यभिजल्पशिल्पाः ॥ एकादशं स्वीकरणं ममेति शय्यामहं द्वादशमङ्ग आहुः ॥ ११ ॥

57

कुछ विक्रिया नहीं है, तुमसे महात्मानके अपमानसे शूलपाणीकी समान सामर्थ्यवाले पुरुषभी नाश हुये विना वही नहीं रहसक्ते नष्ट होजाय हैं (१) ॥२८॥ इति श्रीम० भाषाटीकायां पञ्चमस्कन्धे रहूगणजडभरतसंवादो नाम दशमोऽध्यायः॥१०॥ श्रीब्राह्मण जडभरतजी बोले कि तुम विद्वान नहींहो, परंतु विद्वानोंकेसे वाद बोलो हो, अतिविद्वानोंमें वरिष्ठ नहीं हो, जो महाविद्वान है, वे या व्यवहारको तत्वोंके विचार करकै नही मानतेहैं ॥ १ ॥ हे राजन् ! तैसेई बहुत गृहस्थाश्रमके यज्ञविस्तारके विषयकी विद्यामें अधिक विलसित वेदवादमें तत्त्ववाद प्राय करकै सुंदर शुद्ध नहीं प्रकाश करैहै ॥२॥ तथापि वेदांत सुनकर किसी २ पुरुषकी कर्ममें प्रवृत्ति देखी जाती है यह कुछ वैदिक धर्मकी सत्यताका प्रमाण नहीं है कारण कि जिस प्रकार स्वप्नका सुख दिखाया अनित्य होनेसै त्याग करने योग्य है इसी प्रकार गृहस्थीका सुखभी दृश्य और अनित्य होनेसै ग्रहणके योग्य नहीं ऐसा जिसने मनमें

ब्राह्मण उवाच ॥ अकोविदः कोविदवादवादान्वदस्यथो नातिविदां वरिष्ठः ॥ न सूरयो हि व्यवहारमेतं तत्त्वावमर्शेन सहामनन्ति ॥१॥ तथैव राजन्नुरुगार्हमेधवितानविद्योरुविजृम्भितेषु ॥ न वेदवादेषु हि तत्त्ववादः प्रायेण शुद्धो नु चकास्ति साधुः ॥२॥ न तस्य तत्त्वग्रहणाय साक्षाद् वरीयसीरपि वाचः समासन् ॥ स्वप्ने निरुक्त्या गृहमेधिसौख्यं न यस्य हेयानुमितं स्वयं स्यात् ॥ ३ ॥ यावन्मनो रजसा पूरुषस्य सत्वेन वा तमसा वाऽनुरुद्धम् ॥ चेतोभिराकूतिभिरातनोति निरङ्कुशं कुशलं चेतरं वा ॥४॥ स वासनात्माविषयोपरक्तो गुणप्रवाहो विकृतः षोडशात्मा ॥ बिभ्रत्पृथङ्नामभि रूपभेदमन्तर्बहिष्ट्वं च पुरैस्तनोति ॥५॥

निश्चय किया उसे वेदान्त वाक्य यद्यपि तत्त्व ज्ञानके अर्थ बहुत श्रेष्ठ हैं तौभी उसै तत्वज्ञान नहीं देसकते ॥ ३ ॥ जबतक पुरुषको मन राजस तामस सात्विकसे वश होय है, तबतक ज्ञानइंद्रिय कर्मइंद्रियोंकरकै अंकुश रहित वो मन पुण्य वा पापकूं करै है ॥ ४ ॥ यह मनही पापपुण्यकी वासनायुक्त है और यही आत्माके शरीर धारणका हेतु आत्मस्वरूप है इस्सै यह सब विषयोंमें रंग जाताहै उन्हींसै चलायमान हो कामादि परिणाम युक्त होजाता है परंतु यह मन पंचमहाभूत और इन्द्रियोंकी सोलह कलाओंके बीचमें मुख्य है वही पृथक् २ नाम सहित पशु पक्षी आदि विशेष २ देह धारण करता है और उन देहोंके कारणोंसै आत्माकी श्रेष्ठता या नीचता प्रगट होती है ॥ ५ ॥

---

१ यासे ये प्रभुकों चोर है ॥ भैरवी " प्रभुजी मै सबबिध चोर तुह्मारो ॥ टेर ॥ जो कोई निंदित कर्म जगतमें करत करत नहीं हारो ॥ १ ॥ जन्म अनेक पापही कीन्है जप्यो न नाम तिहारो ॥ २ ॥ आज्ञाभंग करी अनगिनती वेद विचारो हारो ॥ ३ ॥ पुरुषोत्तमकी एकहि विनती माफ करो तो उधारो ॥ ४ ॥ "

बारहवीं वृत्तिभी हैं उनमेंभी यह शरीर शय्या नाम करकै विषय हो जाता है शरीरका नाम पुर है उसमें जीव अहंकारद्वारा शयन करनेसै पुरुष कहा जाता है पंचज्ञानेन्द्रियोंके विषयरूप शब्द विसर्गआदिक पंचकर्मेंद्रियद्वारा कर्माकारवृत्तीनके विषय भोग गति बोलनो शिल्प ग्यारवो स्वीकार करनो कि यह ममकार है, और शय्या अहंकार बारहवां है ये एक आचार्योंने कह्यो है ॥ ११ ॥ द्रव्य स्वभाव अंतःकरण कर्म काल ये सब मिलके ग्यारह ११ मनके विकार हैं हजारो सैकडो कोटनकोट जीवसे विकार होंय हैं न आपसे होय न अपनेसे होय हैं ॥१२॥ जीवके क्षेत्रज्ञमें ये मायासे रची-

द्रव्यस्वभावाशयकर्मकालैरेकादशामी मनसो विकाराः ॥ सहस्रशः शतशः कोटिशश्च क्षेत्रज्ञतो न मिथो न स्वतः स्युः ॥ १२ ॥ क्षेत्रज्ञ एता मनसो विभूतीर्जीवस्य मायारचितस्य नित्याः ॥ आविर्हिताः क्वापि तिरोहिताश्च शुद्धो विचष्टे ह्यविशुद्धकर्तुः ॥ १३ ॥ क्षेत्रज्ञ आत्मा पुरुषः पुराणः साक्षात्स्वयंज्योतिरजः परेशः ॥ नारायणो भगवान्वासुदेवः स्वमाययात्मन्यवधीयमानः ॥ १४ ॥ यथाऽनिलः स्थावरजङ्गमानामात्मस्वरूपेण निविष्ट ईशेत् ॥ एवं परो भगवान्वासुदेवः क्षेत्रज्ञ आत्मेदमनुप्रविष्टः ॥ १५ ॥

भई मनकी वृत्ति नित्य है, कभी प्रकाश होजायहैं कभी ढकजांयहै, जो विशुद्धकर्ता नहीं है वो शुद्ध होय चेष्टा करैहै ❀ ॥ १३ ॥ क्षेत्रज्ञ दो प्रकारका है एक जीव दूसरा ईश्वर जीवका स्वरूप कह चुकै हैं ईश्वरका सुनो आत्मा पुरुष पुराण साक्षात्स्वयंज्योति रजोगुणसे परे ईश्वर है वो श्रीमन्नारायण भगवान्वासुदेव है, अपनी मायाकरकै जीवमें स्थित है ॥ १४ ॥ जैसे पवन स्थावरजंगमनमें प्रवेश करकै अपने स्वरूपसे

❀ शंका-राजा रहूगणसे जडभरतने कहा कि मायासे जो बनाया हुवा जीव उसको जितने मनके पदार्थ हैं सो सब होते हैं, उनहीं पदार्थोंको जीव भोगता है, परन्तु भरतने जीवको मायासे बनाया क्यों कहा ? जीव माया करके रचित नहीं है, जीव भगवानका अंश है परन्तु मायाके वशीभूत होरहा है, भरतने जीवको मायारचित क्यों कहा ?

उ०-जो प्राणी जिससे भय मानता है वह प्राणी अपना त्रास देनेंवाला छोटाभी होगा तोभी उसको सबसे बडा करके मानेगा, ज्ञानी पुरुषोंके सन्मुख माया सबसे छोटी है, परन्तु जडभरतको बारम्बार माया दुःख देती है, जब मायासे भरत डरगये तब सब पदार्थोंको भरतने बडा माना, जडभरतने अपने आपको मायासे दुःखी देखकर मायासे बहुत डरे इसी डरसे जीवको माया करके बनाया कहा है, क्योंकि उस समय भरत ऐसे मायासे डरे थे कि अपने मनमें विचारते थे कि ब्रह्मा, विष्णु और मदादेव मायासे बडे नहीं हैं, माया सबसे बडी है ॥

विचरैहै, ऐसे परभगवान्वासुदेव क्षेत्रज्ञमें व्यापक होयके सबमें प्रविष्ट रहै है ॥१५॥ हे नरेंद्र ! जबतक ये शरीरधारी ज्ञानके उदय करकै या मायाको विशेषकरकै दूरकर सब संग त्याग छै वैरीनको जीत आत्मतत्त्वको न जानैहै, तबतक या संसारमें घूमैहै ॥ १६ ॥ एक आचार्य ऐसै कहै है कि जबतक आत्माको उपाधि करवेवारे संसारतापको जन्मायवेवारो जीवको मनही शोक मोह रोग राग लोभ वैर ममता उत्पन्न करता है तबतक परमेश्वरकों नहीं जानैहै ॥ १७ ॥ इस कारण तुम अपने गुरुरूप हरिके चरणौंकी उपासनारूप शस्त्र चलाकर सावधान हो इस मनका नाश करो हे राजन् ! यह मन महा पराक्रमी और प्रबल शत्रु है उपेक्षा करनैसै यह बढता है यद्यपि वास्तवमें यह मिथ्या स्वरूप है तौभी स्वरूपज्ञानका नाश कर

न यावदेतां तनुभृन्नरेन्द्र विधूय मायां वयुनोदयेन॥विमुक्तसङ्गो जितषट्सपत्नो वेदात्मतत्त्वं भ्रमतीह तावत् ॥ १६ ॥
न यावदेतन्मन आत्मलिङ्गं संसारतापावपनं जनस्य॥यच्छोकमोहामयरागलोभवैरानुबन्धं ममतां विधत्ते॥ १७॥भ्रा-
तृव्यमेनं तददभ्रवीर्यमुपेक्षयाऽध्येधितमप्रमत्तः॥गुरोर्हरेश्चरणोपासनास्त्रो जहि व्यलीकं स्वयमात्ममोषम्॥१८॥इति
श्रीभा०प० भरतचरिते भरतरहूगणसं० रहूगणाय मनोविजयवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥११॥ रहूगण उवाच ॥
नमो नमः कारणविग्रहाय स्वरूपतुच्छीकृतविग्रहाय ॥ नमोऽवधूतद्विजबन्धुलिङ्गनिगूढनित्यानुभवाय तुभ्यम् ॥ १ ॥
ज्वरामयार्तस्य यथाऽगदं सन्निदाघदग्धस्य यथा हिमाम्भः॥ कुदेहमानाहिविदष्टदृष्टेर्ब्रह्मन्वचस्तेऽमृतमौषधं मे॥२॥

देताहै इस कारण इसै नाश करो (१) ॥ १८ ॥ इति श्रीभा०भा०टी०प० रहूगणाय मनोविजयवर्णनं नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ राजा रहूगण बोले कि कारणके लिये विग्रहस्वरूपसे सब विग्रह तुच्छ करनेहारेके अर्थ नमस्कार होय अवधूत ब्राह्मण श्रेष्ठोंके चिन्हमें छिपे भये नित्य अनुभव करवेवारे तुह्मारे अर्थ नमस्कार होय ॥ १ ॥ ज्वररूप रोगसें ग्रसे भएको जैसे अच्छी औषधी सुखदायक होती है ग्रीष्मसे दग्धको जैसे हिमको जल शुभदायक हैं, हे ब्रह्मन् ! बुरेदेहमें मानरूपसर्पसे डसे भयेको अमृत औषधरूप तुह्मारे वचन हैं ॥ २ ॥

---

१ तापर एक महात्माकी वाणी है ॥ राग पर्ज ॥ " मेरो मन पाजी राजी मै कैसे केकरूं ॥ टेर ॥ मै कहूं चल सत संग शीतल तयो कहै आगी मै जरूं ॥ १ ॥ मै कहूं आजराम मुख कहिरे यो कहै कहूंगो परूं ॥ २ ॥ मै कहूं धन हरिहित कछु देरे, यो कहै औरोको हरूं ॥ ३ ॥ मै कहूं पापकोश खालीकर यो कहै अटूट भरूं ॥ ४ ॥ मै कहूं सबसें प्रीतिरीत कर यो कहै हरिसें लरूं ॥ ५ ॥ या मनने बहुजन्म विगारे ताते बहुत डरूं ॥ ६ ॥ मै कहुं कथा कीर्तनमें चलरे यो कहै कोश नटरूं ॥७॥ पुरुषोत्तम कहै और न उपाय हरिके चरण लेधरूं ॥८॥"

61

तस्माद्भवन्तं मम संशयार्थं प्रक्ष्यामि पश्चादधुना सुबोधम् ॥ अध्यात्मयोगग्रथितं तवोक्तमाख्याहि कौतूहलचेतसो मे ॥ ३ ॥ यदाह योगेश्वर दृश्यमानं क्रियाफलं सद्व्यवहारमूलम् ॥ न ह्यञ्जसा तत्त्वविमर्शनाय भवानमुष्मिन् भ्रमते मनो मे ॥ ४ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ अयं जनो नाम चलन् पृथिव्यां यः पार्थिवः पार्थिव कस्य हेतोः ॥ तस्यापि चाङ्घ्र्योरधिगुल्फजङ्घाजानूरुमध्योरशिरोधरांसाः ॥ ५ ॥ अंसेऽधि दार्वी शिबिका च यस्यां सौवीरराजेत्यपदेश आस्ते ॥ यस्मिन् भवान् रूढनिजाभिमानो राजाऽस्मि सिन्धुष्विति दुर्मदान्धः ॥ ६ ॥ शोच्यानिमांस्त्वमधिकष्टदीनान् विष्ट्या निगृह्णन् निरनुग्रहोऽसि ॥ जनस्य गोप्ताऽस्मि विकत्थमानो न शोभसे वृद्धसभासु धृष्टः ॥ ७ ॥

तातें आपसे ये पूंछूंहू कि मेरे संशयनाशके अर्थ जैसे मोको बोध होय तैसें कहो, क्योंकि आपको वचन वेदांत अध्यात्मज्ञानमें ग्रथित है, यासें मेरे मनको आनंदसे समझमें आवै तैसें कहो ॥ ३ ॥ हे योगीश्वर ! आपने जो कहा कि वहनादि क्रिया और उसका फल श्रम होना आदि प्रत्यक्ष देखनेपरभी कुछ नहीं है अर्थात् कारण हौनेपरभी यथार्थ रूपसै तत्व विचारमें कुछ नहींहै इससै मेरे मनमें बहुत भ्रांति है सो आप कहिये ॥४॥ ब्राह्मण बोले कि हे पार्थिव ! पृथ्वीनिर्मित पदार्थ जो किसी कारण पृथ्वीपर गति करताहै उन्हें आप कहारादि नामौंसै पुकारते हैं जो नहीं चलते वे स्थावर हैं वास्तवमें इनमें कुछ भेद नहीं पाषाण जड हौनेसै परिश्रम वा भार नहीं उठाता ऐसेही कहारका भार उठाना वा परिश्रम समझना वृथा है इसैभी जड जानौ कारण कि जिसे परिश्रम होताहै उसका यथार्थ निरूपण हो सक्ता हो तौ निश्चय अपनेको वा और परिश्रम होना सत्यभी मानलेना परन्तु उसका सत्य होना असंभवहै कारण कि अंगौंके आतिरिक्त अंगौंका निरूपणही किसी प्रकार नहीं हो सक्ता प्रथम यह तौ निश्चय करो कि इन कहारौंकी देहमें क्या अंग है देखो जो यह पृथ्वीसे उत्पन्न हुआ कहार है उसके पृथ्वीपरही पाव है पावौ पर गुल्फ गुल्फ पर जंघा जंघापर जानू जानूपर साथल साथलोपर कमर मध्यदेशपर छाती छातीपर ग्रीवा उसपर शिर है इधर उधर कंधे है॥५॥हमारे कंधैपे काष्ठकी पालकी धरी है, जामैं मट्टीके विकार सौवीरराजा रहूगण बैठें हैं, जामें बैठभये आपको महा अभिमान है कि सिंधुदेशके हम राजा हैं या दुर्मदसे अंधे होकर ॥६॥ शोकयोग्य ये कहार जो वेगारसे पकडे हैं, कष्टसे चलेहैं, यासै तुम निर्दयी मालूम पडोहो, जो तुम कहो कि मैं जीवनकी रक्षा करवेवारो हूं सो महाधृष्ट वृद्धोंकी सभामें

तुम सोभा नहीं पाओगे ॥ ७ ॥ जब स्थावर जंगम सबकी उत्पत्ति नाश नित्य पृथिवीमेंसे हैं ये जाने है तो और नाम केवल व्यवहारमें कहिवेमात्र हैं, जो साचीक्रियासे अनुमान करो होय सो हमसे कहो क्योंकि श्रुति है “ वाचारंभणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यमिति ” ॥८॥ ऐसे पृथिवीशब्दकी व्याख्या है इनके न होनेसे जो परमाणू हैं वे अविद्यासे मनसे कल्पना करेभए हैं, जिनके समूहसें ये सब विशेष विश्व रचो है ॥ ९ ॥ ऐसेही दुर्वल पुष्ट सूक्ष्म, बृहत्, असत्, कभी कार्य कभी कारण यह सब मायानेही द्वैत कर दियाहै और द्रव्य स्वभाव अंतःकरण काल कर्म यह सब मायाहीके नामान्तर जानो ॥ १० ॥ हे राजन् ! विशुद्ध जिसके बाहर भीतर दूसरा कुछ नहीं है अपरिपूर्ण परिच्छिन्न निर्विकार जो ज्ञान है वही

यदा क्षितावेव चराचरस्य विदाम निष्ठां प्रभवं च नित्यम् ॥ तन्नामतोऽन्यद्व्यवहारमूलं निरूप्यतां सत्क्रिययाऽनुमेयम् ॥ ८ ॥ एवं निरुक्तं क्षितिशब्दवृत्तमसन्निधानात् परमाणवो ये ॥ अविद्यया मनसा कल्पितास्ते येषां समूहेन कृतो विशेषः ॥ ९ ॥ एवं कृशं स्थूलमणुर्बृहद्यदसच्च सज्जीवमजीवमन्यत् ॥ द्रव्यस्वभावाशयकालकर्मनाम्नाऽजयाऽवेहि कृतं द्वितीयम् ॥ १० ॥ ज्ञानं विशुद्धं परमार्थमेकमनन्तरं त्वबहिर्ब्रह्म सत्यम् ॥ प्रत्यक् प्रशान्तं भगवच्छब्दसंज्ञं यद्वासुदेवं कवयो वदन्ति ॥ ११ ॥ रहूगणैतत्तपसा न याति न चेज्यया निर्वपणाद्गृहाद्वा ॥ न च्छन्दसा नैव जलाऽग्निसूर्यैर्विना महत्पादरजोऽभिषेकम् ॥ १२ ॥ यत्रोत्तमश्लोकगुणानुवादः प्रस्तूयते ग्राम्यकथाविघातः ॥ निषेव्यमाणोऽनुदिनं मुमुक्षोर्मतिं सतीं यच्छति वासुदेवे ॥१३॥ अहं पुरा भरतो नाम राजा विमुक्तदृष्टश्रुतसङ्गबन्धः ॥ आराधनं भगवत ईहमानो मृगोऽभवं मृगसङ्गाद्धतार्थः ॥ १४ ॥

परमार्थ सत्य है उसी ज्ञानको भगवान् कहते है वही ज्ञान पंडितोंसै वासुदेवरूप कहा जाताहै ॥ ११ ॥ हे रहूगण ! तप यज्ञ संन्यास गृहत्याग वेदपाठ जल अग्नि सूर्य पूजनसे ये ज्ञान प्राप्त नहीं होयहै, महात्मानके पादरजके अभिषेकसे प्राप्त होयहैं ॥ १२ ॥ जिन महात्मानमें संसारकी कथाको नाशक भगवद्गुणानुवाद कह्यो जायहै, जो सदा कथा सुनै तो मुमुक्षुकी सुन्दर बुद्धि वासुदेवमें होय है ॥ १३ ॥ हम पहिलै भरत नामक राजा थे प्रथमही देखने सुन्नेसें संगकी बंधनसे अलग हो गयाथा और भगवतका आराधन करता था परंतु मृगके संगसे सब अर्थ हमारे नष्ट हो गये

63

बडे मनस्वी शूरलोक जो सब दिशानके दिग्गजेंद्रतक जीत ये सब भूमी मेरी है ऐसे मान वैर बांध मरकर संग्राममें सोते हैं इस कारण निर्वैर संन्यासी लोक विष्णुके परम पद वैकुंठको प्राप्त होते हैं वे लोग द्वेष करनेवाले नहीं जाते ॥ १५ ॥ कहीं स्त्रीकी लतारूप भुजाके आश्रय होयकर आसक्त होय है, विन स्त्रीनके कोमल संभाषण छोरानके तोतरे वचनमें फसे है, कभी कोई समय श्रीहरिके कालचक्रसे त्रसित हो कौवा बक और गृद्धोंकी समान पाषंडियोंसें मैत्री करेहै ॥ १६ ॥ परन्तु उनसै ठगे जानेके कारण पीछे आपही हंसरूपी ब्राह्मणोंके कुलमें प्रवेश करताहै पीछे उनकाभी आचार व्यौहार प्रिय न समझकर वानरोंमें मेल करताहै और जातिके खेल कूदमें अपनी सब इन्द्रियोंको प्रसन्नकर परस्पर एक दूसरेका मुख देखनेसे मोहित

मनस्विनो निर्जितदिग्गजेन्द्रा ममेति सर्वे भुवि बद्धवैराः ॥ मृधे शयीरन् नतु तद्व्रजन्ति यन्न्यस्तदण्डो गतवैरोऽभिया-
ति ॥ १५ ॥ प्रसज्जति क्वापि लताभुजाश्रयस्तदाश्रयाव्यक्तपदाद्विजस्पृहः ॥ क्वचित् कदाचिद्धरिचक्रतस्त्रसन् सख्यं
विधत्ते बककङ्कगृध्रैः ॥ १६ ॥ तैर्वञ्चितो हंसकुलं समाविशन् न रोचयन् शीलमुपैति वानरान् ॥ तज्जातिरासेन सुनि-
र्वृतेन्द्रियः परस्परोद्वीक्षणविस्मृतावधिः॥१७॥द्रुमेषु रंस्यन् सुतदारवत्सलो व्यवायदीनो विवशः स्वबन्धने ॥ क्वचित्
प्रमादाद् गिरिकन्दरे पतन् वल्लीं गृहीत्वा गजभीत आस्थितः ॥ १८ ॥ अतः कथंचित् स विमुक्त आपदः पुनश्च सार्थं
प्रविशत्यरिन्दम ॥ अध्वन्यमुष्मिन्नजया निवेशितो भ्रमञ्जनोऽद्यापि न वेद कश्चन ॥१९॥ रहूगण त्वमपि ह्यध्वनोऽ-
स्य संन्यस्तदण्डः कृतभूतमैत्रः ॥ असज्जितात्मा हरिसेवया शितज्ञानासिमादाय तरातिपारम् ॥ २० ॥

होकर अपने जीवन समयको भूल जाता है ॥१७॥ कभी वृक्षवत् घरमैं पुत्रस्त्रीमैं आसक्त होय है, विवश मैथुनमें दीन होय कर आप बंधनमें आय जाय है, कभी प्रमादसे गिरिकी गुंफातुल्य रोगादिकमें गिरोभयो, गुंफाके पासके गजतुल्य मृत्युसे भीत हो, प्राचीनकर्मोंके आश्रयरूप वेलकों पकड स्थितरहे हैं ॥ १८ ॥ हे शत्रुनाशक ! याते कभी आपदमें मुक्त होय तौ फेर प्रवृत्तिमार्गमें लगै है, या संसारमार्गमें मायामें प्रविष्ट हो घूमतो भयो प्राणी आजतक कुछभी नहीं जानैहै ॥ १९ ॥ हे रहूगण ! तुम सब त्याग सबसे मैत्री कर सर्वसंग त्याग श्रीहरिकी सेवाकरके तीक्ष्णज्ञानरूप खड्ग लेकर या मार्गके पार होओ, ये हमारो उपदेश है ॥२० ॥

कभी अजगररूप सर्पसे ग्रसोभयो डसोभयो कोई जीव वनमें सोवै है, कहीं दंदशूकोंकरके क्लेशित अंधतामिस्रवत् कूपमें गिरपडै है ॥ ९ ॥ कभी क्षुद्ररसनकी चिंता करते मक्खियोंके काटनेसै दुःखी और विमन होयहै और जो कहीं बडे कष्टसै मान पाया अर्थात् शहत मिलगया तौ उसका भोग नहीं कर सक्ते दूसरे बलवान उनसै छीन लेते हैं ॥१०॥ कभी शीत धूप वात वर्षाके क्लेश दूर करवेको असमर्थ होयके रहै है, कभी आपसमें व्यवहार करकै फिर शठतासें वैर करै हैं ॥ ११ ॥ जब कभी याको धन क्षीण होजाय है, तो सेज आसनके विहारसें हीन होय औरसे फेर अनेक वस्तु चाहै

क्वचिन्निगीर्णोऽजगराहिना जनो नावैति किञ्चिद्विपिनेऽपविद्धः॥ दष्टः स्म शेते क्व च दन्दशूकैरन्धोऽन्धकूपे पतितस्तमिस्रे ॥९॥ कर्हि स्म चित् क्षुद्ररसान् विचिन्वंस्तन्मक्षिकाभिर्व्यथितो विमानः ॥ तत्रातिकृच्छ्रात्प्रतिलब्धमानो बलाद्विलुम्पत्य थ तं ततोऽन्ये ॥ १० ॥क्वचिच्च शीतातपवातवर्षप्रतिक्रियां कर्तुमनीश आस्ते ॥ क्वचिन्मिथो विपणन् यच्च किंचिद्विद्वेषमृच्छत्युत वित्तशाठ्यात् ॥ ११ ॥ क्वचित् क्वचित् क्षीणधनस्तु तस्मिन् शय्यासनस्थानविहारहीनः॥याचन् परादप्रतिलब्धकामः पारक्यदृष्टिर्लभतेऽवमानम् ॥१२॥ अन्योऽन्यवित्तव्यतिषङ्गवृद्धवैरानुबन्धो विवहन् मिथश्च ॥ अध्वन्यमुष्मिन्नुरुकृच्छ्रवित्तबाधोपसर्गैर्विहरन् विपन्नः ॥१३॥ तांस्तान् विपन्नान् स हि तत्र तत्र विहाय जातं परिगृह्य सार्थः ॥ आवर्ततेऽद्यापि न कश्चिदत्र वीराध्वनः पारमुपैति योगम् ॥ १४ ॥

है जब कामना पूरी नहीं होय है तब पराई वस्तु लेनेकी इच्छासे अवमानको प्राप्त होय है (१)॥१२॥ कोई आपसमें लेन देन करनेसे परस्पर वैरभी बढालेते हैं कोई उनके साथ विवाहादि संबंध करै है, कोई या संसाररूप मार्गमें बडे कष्टसे धन जोड कर उसकी बाधा करवेवारोंसें द्वेष करकै मृतकसमान होय जाय है ॥ १३ ॥ जो जो मरे भये हैं उनको तो तहां तहां त्याग अपने अर्थ जो जन्मे हैं उनको ग्रहण करे है, परंतु आजतकभी कोई लौटकर नहीं आये इस प्रकार जहांसै इनका आरंभ हुआ है उसतक कोई नहीं जाता इस मार्गके पार जो योग है उसै कोई नहीं पहुंचता ॥ १४ ॥

---

१ कवित्त–दाताको महीप मान्धाता और दिलीप ऐसे जिनके यश अजहूंलो दीपदीप छाये हैं। बलि ऐसो बलवानको भयो जहां न वीच रावन समान को प्रतापी जगजाये है॥ वानकी कलानमें सुजान द्रोणपारथसे जाकै गुन दीन दयाल भारतमें गाये हैं। कैसे केसे शूर रचे चातुरी विरंचिजू फेर चकचूर कर धूरमें मिलाये हैं ॥ १ ॥

उनको कहीं कहीं यहांभी कहैंगे ॥२॥ इस अटवीमें अनेक वृक्ष लता घास और गुच्छोंसै गंभीर स्थलमें विश्राम करवे वणिक भयंकर डांस और मच्छरौंका वडा उपद्रव पाते हैं कहीं पर यह आश्चर्यसै गंधर्व पुरीको देखते हैं कहीं उल्मुकके आकार घर देख उसे सौना जान लेनेकी इच्छा करते हैं ॥ ३ ॥ निवास स्थान जल धनमें आत्मबुद्धि कर इत उतको संसाराटवीमें धावै है, कहीं पवनसे उठी भई धूरसे धूम्र समान भई दिशानको धूरसे धूंधरी दृष्टीसे नहीं जानै है ॥ ४ ॥ कहीं झींघर बोल रहे हैं परन्तु देखनेमें नहीं आते उनकी झनकारसै उनके कानोंमें दर्द होता है कहीं उल्लुओंके शब्दसे मन व्याकुल होता है हे वीर ! यह सब वणिक जब खिन्न होकर भूंखे होते हैं तब जिनकी छायाभी पापका कारण हैं उन वृक्षोंका आश्रय करते हैं कहीं मृगमरीचिकाके जलको दौडते हैं ॥५॥ कभी जलहीन नदीनमें जाय है, कहीं परस्पर अन्नकी चाहना करै है कभी दावानलके निकट पहुंच कर् अग्निसै तप्त होतेहैं कहीं यक्षलोग इनके प्राण हरण करनेको उद्यत होते हैं तब यह महादुःखी होते हैं ॥ ६ ॥ कहीं शूरलोग इनको धन हरले हैं, तो चित्त वैराग्यमान होय है, शोच करते मोह करते कष्टको प्राप्त होय है, कभी गंधर्वपुरमें प्रविष्ट होय आनंदकीनाई मुहूर्त मात्र आनंदित होय है ॥ ७ ॥ जब चलै है तौ कंटकधूर पगमें लगै है, कभी दुःखी मनकर पर्वतपर चढैं हैं, क्षण क्षणमें भीतरकी जठराग्निसें पीडित कुटुंबी जीवमात्रपर क्रोध करै हैं ॥ ८ ॥

प्रभूतवीरुत्तृणगुल्मगह्वरे कठोरदंशैर्मशकैरुपद्रुतः॥क्वचित्तु गन्धर्वपुरं प्रपश्यति क्वचित् क्वचिच्चाशुरयोल्मुकग्रहम्॥३॥
निवासतोयद्रविणात्मबुद्धिस्ततस्ततो धावति भो अटव्याम् ॥ क्वचिच्च वात्योत्थितपांसुधूम्रा दिशो न जानाति रजस्वलाक्षः ॥ ४ ॥ अदृश्यझिल्लीस्वनकर्णशूल उलूकवाग्भिर्व्यथितान्तरात्मा ॥ अपुण्यवृक्षाञ्छ्रयते क्षुधाऽर्दितो मरीचितोयान्यभिधावति क्वचित् ॥ ५॥ क्वचिद् वितोयाः सरितोऽभियाति परस्परं चालषते निरन्धः ॥ आसाद्य दावं क्वचिदग्नितप्तो निर्विद्यते क्व च यक्षैर्हृतासुः ॥ ६ ॥ शूरैर्हृतस्वः क्व च निर्विण्णचेताः शोचन् विमुह्यन्नुपयाति कश्मलम् ॥ क्वचिच्च गन्धर्वपुरं प्रविष्टः प्रमोदते निर्वृतवन्मुहूर्तम् ॥ ७ ॥ चलन् क्वचित् कण्टकशर्कराऽङ्घ्रिर्नगारुरुक्षुर्विमना इवास्ते॥पदे पदेऽभ्यन्तरवह्निनाऽर्दितः कौटुम्बिकः क्रुध्यति वै जनाय ॥ ८॥

मृग होकर फिर ब्राह्मण हुए इससै विषयका संग योगका भ्रष्ट करनेवाला है यह जानो ॥ १४ ॥ हे वीर ! सो वो श्रीकृष्णचन्द्रके पूजनसे उत्पन्न भई बुद्धि स्मृति मृगदेहमेंभी मोको न त्यागती भई, याते हम सब जनोंके संगसे शंकित होके छिपे भये विचरैहैं ॥१५॥ इससै मनुष्य किसीसै संग न करै श्रेष्ठ सत्संगसे भये ज्ञानखड्गसें मोहको काटकर श्रीहरिकी लीला कथन श्रवणसे सुन्दर स्मृतिको प्राप्त होयकर श्रीहरिको प्राप्त होय या संसारमार्गसे, पार जाय है (१)॥ १६ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषा० पं० रहूगणाय जडभरतब्राह्मणेन श्रीभगवत्कथास्वरूपवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ श्री-

सा मां स्मृतिर्मृगदेहेऽपि वीर कृष्णार्चनप्रभावं नो जहाति ॥ अथो अहं जनसङ्गादसङ्गो विशङ्कमानोऽविवृतश्चरामि ॥१५॥ तस्मान्नरोऽसङ्गसुसङ्गजातज्ञानासिनेहैव विवृक्णमोहः ॥ हरिं तदीहाकथनस्मृतिभ्यां लब्धस्मृतिर्यात्यतिपारमध्वनः ॥ १६ ॥ इति श्रीभा० महा० पञ्चमस्कन्धे ब्राह्मणरहूगणसंवादे श्रीभगवत्कथास्वरूपनिरूपणवर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥ ब्राह्मण उवाच ॥ दुरत्ययेऽध्वन्यजया निवेशितो रजस्तमःसत्वविभक्तकर्मदृक् ॥ स एष सार्थोऽर्थपरः परिभ्रमन् भवाटवीं याति न शर्म विन्दति ॥ १ ॥ यस्यामिमे षण्नरदेव दस्यवः सार्थं विलुम्पन्ति कुनायकं बलात् ॥ गोमायवो यत्र हरन्ति सार्थिकं प्रमत्तमाविश्य यथोरणं वृकाः ॥ २ ॥

ब्राह्मण बोले कि संसार मार्ग बड़ा दुर्गम है उसमें प्रविष्ट होकर सत् रज तम गुणमें विभाग करी हुई जिसकी दृष्टि और कर्म हैं उन सबकोही कार्य समझकर देखतै हुये वैश्यकी समान धनके बटोरनेकी चाहनासै चारों ओर घूमताहै और जंगलमें चला जाताहै और किसी प्रकार सुखको नहीं प्राप्त होता ॥१॥ हे राजन् ! जा संसाररूप अटवीमें छः चोर हैं सो बलसे कुत्सित नायक मनरूप संघको छेदन करे है गीदडके तुल्य स्त्री पुत्रादिक या जीवकूं हरै है, जैसे मेंढाको भेडिया पकडै है या अध्यायको व्याख्यान आगेकी अध्यायमें विस्तारसै करेंगे परंतु जो जो कठिन शब्द हैं

---

(१) याको पद है ॥ जंगला ॥ तूकाहेको करत अबारनदियांपारजानाहै ॥ टेर ॥ यहसंसारधारअनपारीटूटीनावजलभरतबिमारी ॥ पापप्रवाहबढतानितप्रतिक्षणक्योंदिनकोंचढाना है ॥ १ ॥ लोभमोहदोउऔरकिनारातृष्णाजलसुखदुखातिरारा ॥ मत्सरमगरमगरसबरोकतअघकाथानाहै ॥ २ ॥ जन्ममरनअतिभ्रमरजालमेंफिराफिरआवतबहुकालमें ॥ वेदवचनपतवारानवांघासहीपालनताना है ॥ ३ ॥ शोकउजारअपारअनीतिघरसुखबहुद्रुमफूलफजीती ॥ भाई भिल्लवचनशरमारैपीनानखानाहै ॥ ४ ॥ हरिजनमलहाउपदेशमलहरित्यागवैराग्यदई ॥ उतराई नावपरबैठानि वरकी जगझूटाजानाहै ॥ ५ ॥ मनएतवारासूधविचाराशीलपालहरिकृपावधारा ॥ पुरुषोत्तम कहैं पारउतरकै हरिहारि २ गानाहै ॥ ६ ॥

अपमान किया तौभी ब्रह्मर्षि पुत्र महानुभाव जडभरतजीनै परम करुणा और दयासै उसै ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया, जब राजा रहूगणने उनके चर-
णौंकी वंदना की तब फिर जडभरत कि जिनके अन्तःकरणकी तरंग स्थिर और भरपूर सागरके समान शान्त थी पृथ्वीमें पूर्वकी नाई विचरने लगे॥२४॥हे
नृप! सुवीरदेशपति रहूगणभी सब परमात्मतत्व जान आत्मामें अविद्यासे आरोपण करी देहात्मबुद्धिको त्यागतेभए, भगवतके आश्रितोंके आश्रितौंको
ऐसे प्रभाव है॥२५॥ राजा परीक्षित बोले कि हे महाभागवत! बहुतवेत्ता जो आपने परोक्ष वचनोंसे वणिकसार्थ सहित रूपके संसार अटवीमार्गका वर्णन

सौवीरपतिरपि सुजनसमवगतपरमात्मसतत्त्व आत्मन्यविद्याऽध्यारोपितां देहात्ममतिं विससर्ज ॥ एवं हि नृप भग-
वदाश्रिताश्रितानुभावः॥२५॥राजोवाच॥यो ह वा इह बहुविदा महाभागवत त्वयाऽभिहितः पारोक्ष्येण वचसा जीवलो-
कभवाध्वा स ह्यार्यमनीषया कल्पितविषयो नाञ्जसाऽव्युत्पन्नलोकसमधिगमः ॥ अथ तदेवैतद्दुरवगमं समवेतानुकू-
ल्येन निर्दिश्यतामिति ॥ २६ ॥ इति श्रीभा० महापु० पञ्चम० रहू० सूक्ष्मभवाटव्युपवर्णनं नाम त्रयोदशोऽध्यायः
॥ १३ ॥ स होवाच ॥ य एष देहात्ममानिनां सत्त्वादिगुणविशेषविकल्पितकुशलाकुशलसमवहारविनिर्मितविविध-
देहावलिभिर्वियोगसंयोगाद्यनादि संसारानुभवस्य द्वारभूतेन षडिन्द्रियवर्गेण तस्मिन् दुर्गाध्ववदसुगमेऽध्वन्याप-
तित ईश्वरस्य भगवतो विष्णोर्वशवर्तिन्या मायया जीवलोकोऽयं यथा वणिक्सार्थोऽर्थपरः स्वदेहनिष्पादितकर्मा-
नुभवः श्मशानवदशिवतमायां संसाराटव्यां गतो नाद्यापि विफलबहुप्रतियोगेहस्तत्तापोपशमनीं हरिगुरुचरणारवि-
न्दमधुकरानुपदवीमवरुन्धे । यस्यामु ह वा एते षडिन्द्रियनामानः कर्मणा दस्यव एव ते ॥ १ ॥

किया ज्ञानी पुरुषोंकी बुद्धिसै इसका विषय कल्पित होसक्ता है परन्तु थोडी बुद्धिवाले इसे नहीं समझ सकते इस कारण इस विषयको संसारके विषयके
साथ अनुरूप कल्पना करकैसमझाओ जिससे हम स्पष्ट रीतिसै समझ जांय॥२६॥इति श्रीमद्भा० भा० पं० रहूगणाय सूक्ष्मभवाटवीवर्णनं नाम त्रयोदशोऽ-
ध्यायः ॥१३॥ जो परीक्षितने पूछो सोई शौनकने पूछो यासें शुकदेवजी और सूतजी दोनो संग उत्तर देतेभए ये सहोवाचको अर्थ है ॥शुकदेवजी बोले
कि इस संसारमें जीवगण धन उपार्जनमें तत्पर वणिकौंके तुल्य हैं, यह भगवानकी मायासै संसारी मार्गमें गिरेहैं, इस कारण गुरु भगवान हरिके

67

राजा बोले कि अहो ये मनुष्यको जन्म सब जन्मसैं उत्तम है, और जन्मोंसें कहा है ? स्वर्गमें यदि आप सरीके महात्माओंका सत्संग न मिलै तौ कुछ
नहीं है हे भगवन् ! हृषीकेशके यशसै शुभआत्मावारे आप महात्मानको सदा समागम परम मंगलरूप है, जो सत्संग न करै तो मनुष्यजन्म वृथा
है ॥ २१ ॥ जो तुह्मारे चरणकमलकी रेणुसै पाप नाश होकर प्राणियौंकी भगवानमें निर्मल भक्ति होतीहै ये कुछ अद्भुत नहीं है आपके तौ

राजोवाच ॥ अहो नृजन्माखिलजन्मशोभनं किं जन्मभिस्त्वपरैरप्यमुष्मिन् ॥ न यद् हृषीकेशयशःकृतात्मनां म-
हात्मनां वः प्रचुरः समागमः ॥२१॥न ह्यद्भुतं त्वच्चरणाब्जरेणुभिर्हतांहसो भक्तिरधोक्षजेऽमला॥ मौहूर्तिकाद्यस्य समा-
गमाच्च मे दुस्तर्कमूलोऽपहतोऽविवेकः ॥ २२॥ नमो महद्भ्योऽस्तु नमः शिशुभ्यो नमो युवभ्यो नम आ बटुभ्यः ॥ ये
ब्राह्मणा गामवधूतलिङ्गाश्चरन्ति तेभ्यः शिवमस्तु राज्ञाम् ॥२३॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्येवमुत्तरामातः स वै ब्रह्मर्षिसुतः
सिन्धुपतय आत्मसतत्त्वं विगणयतः परानुभावः परमकारुणिकतयोपदिश्य रहूगणेन सकरुणमभिवन्दितचरण
आपूर्णार्णव इव निभृतकरणोर्म्याशयो धरणिमिमां विचचार ॥ २४ ॥

एक मुहूर्तमात्रके समागमसें मेरा दुष्टतर्कका मल अज्ञान सब नाश हुआ ॥ २२ ॥ सबसें बडेनको नमस्कार होय सब बालकनको नमस्कार होय, सब
जवान ब्राह्मणनकों नमस्कार होय जो क्रीडामें परायण बटुक द्विजके अर्थ नमस्कार होय जो ब्राह्मणलोग अवधूतकेसे चिन्ह धारण कर पृथिवीपर वि-
चरै हैं उनको मंगल होय और सब राजानको कल्याण होय ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि हे उत्तरा माके सुत[1] ! सिंधुदेशपति रहूगण राजानै

---

[1] शंका—श्रीशुकदेवजी महाराजने श्रीमद्भागवतके चार स्कन्ध वर्णन किये तथा राजाभी चारों स्कन्धोंको सुनतागया, परन्तु शुकदेवजीने राजाको ऐसा दुलार वचन क्यों कहा?
और दुलारनाम लेकर चारों स्कन्धमें क्यों वर्णन किया ! हे राजन् ! हे राजशार्दूल ! हे नृपशिरोमणे ! हे कौरवोत्तम ! हे कुरुकुलभूषण ! ऐसा आदि लेकर अनेक प्रकारके सम्बोधनोंसे दुला-
र करके कथा कही परन्तु पंचम स्कन्धके १३ तेरहवें अध्याय और चौवीसवें श्लोकमें परीक्षितकों उत्तरामात क्यों कहा? उत्तरामाताका अर्थ यह है कि उत्तरा है तुम्हारी माता, ऐसे हे परी-
क्षित ! यह बडी शंका होती है कि जो और कभी परीक्षितकी माताका नाम लेकर राजाका दुलार शुकदेवजी करते तो शंका नहीं होती.

उत्तर—शुकदेवजीने परीक्षितको भगवान्के कीर्तनमें अत्यन्त लोभी जानकर तथा देहनाश होनेकी चिन्ताको त्यागकर बारम्बार भगवान्के चरित्रोंको बूझरहे हैं, वासुदेव भगवान्में प-
रीक्षितको ऐसा प्रीतिवान जानके श्रीशुकदेवजीनें विचार किया कि परीक्षितकी माता जो उत्तरा है उसको धन्य है, जिस उत्तराने परीक्षितको उत्पन्न किया सो धन्य है, ऐसा हर्ष करके राजा-
को उत्तरामात इस पदसे दुलार करके श्रीशुकदेवजीने कथा वर्णन की ॥

खेतमें प्रति वर्ष हल चलाया जाय तौ उस खेतका बीज जल नहींजाता परन्तु फिर वह बोनेके समय तृण लता गुल्म उपजनैसे गढकी समान होजाताहै ऐसेही ये गृहस्थाश्रम कर्मक्षेत्र है, यामें यहां कर्म ऊगैं हैं, जो ये सब कामको डब्बा है, सब आश्रमरूप है, जैसे कपूरके पात्रमें कपूर क्षय होय है तोहू सुगंधि क्षीण न होय हैं, ऐसे यहां वासना क्षीण न होनेसें सदा कर्म ऊगतेरहे हैं ॥ ४ ॥ इस गृहस्थाश्रममें जो प्रीति करते हैं उसका प्राण धन संपत्ति डांस मच्छरतुल्य नीच मनुष्य टीढी पक्षी चोर चूहोंके तुल्य तस्कर लोक पीडा देकर छीनलेते हैं तौभी यह गृहाश्रम मार्गमें घूमनैसे शान्त नहीं होता वरन मिथ्यादृष्टि होनेसै अविद्या काम कर्मोंसे रंगेहुए मनके कारण गन्धर्वनगरतुल्य अघटमान नर लोकको सत्यरूप देखता है

तत्र गतो दंशमशकसमापसदैर्मनुजैः शलभशकुन्ततस्करमूषकादिभिरुपरुध्यमानो बहिःप्राणः क्वचित् परिवर्तमानोऽस्मिन्नध्वन्यऽविद्याकामकर्मभिरुपरक्तमनसाऽनुपपन्नार्थं नरलोकं गन्धर्वनगरमुपपन्नमिति मिथ्यादृष्टिरनुपश्यति ॥५॥ तत्र च क्वचिदातपोदकनिभान् विषयानुपधावति पानभोजनव्यवायादिव्यसनलोलुपः ॥ ६ ॥ क्वचिच्चाशेषदोषनिषदनं पुरीषविशेषं तद्वर्णगुणनिर्मितमतिः सुवर्णमुपादित्सत्यग्निकामकातर इवोल्मुकपिशाचम् ॥ ७ ॥ अथ कदाचिन्निवासपानीयद्रविणाद्यनेकात्मोपजीवनाभिनिवेश एतस्यां संसाराटव्यामितस्ततः परिधावति ॥ ८ ॥ क्वचिच्च वात्यौपम्यया प्रमदयाऽऽरोहमारोपितस्तत्कालरजसा रजनीभूत इवासाधुमर्यादो रजस्वलाक्षो दिग्देवता अतिरजस्वलमतिर्न विजानाति ॥ ९ ॥

॥ ५ ॥ वा गंधर्व पुरमें कभी धूपके जलसमान विषयनको धावै है, पान भोजन मैथुनआदि व्यसनोंमें लोलुप होय है ॥६॥ कभी सब दोषनको स्थान अग्निकी विष्ठाके समान वर्णगुणमें मति लगायकर सुवर्णकूं चाहैहैं, जिस प्रकार शीत निवारण करनेको अग्निकी चाहना करनेवाले लोग वनमें अग्निकी समान चमकते हुए पिशाच विशेषको देखकर उसके पीछे २ दोड़ते हैं ऐसेही सुवर्णको दोडते हैं ॥ ७॥ याके उपरांत कभी निवास स्थान जल द्रव्य आदि अनेक आत्माके उपजीवनके सदृशनकों संसाररूप अटवीमें ग्रहणकों इत उत डोलै हैं ॥ ८ ॥ कहीं यह पुरुष पवनकी समान स्त्रीकी गोदीमें चढ बैठता है गोदीमें बैठनेसै जो अनुराग होता है उस राजसी धूल पड़ेहुए नेत्रोंकी समान होकर मर्यादाको छोड देताहै और रात्रि-

चरणकमल सेवा करनेहारौंकी पदवीको अबतक प्राप्त नहीं होता, संसारी मार्ग सुगम नहीं है, जो पुरुषदेहमें आत्माभिमान करतेहैं , उनके
सत्वादि विशेष गुणसैं विभक्त सब कर्म मंगल अमंगल दोनोंमेंही मिल जाते हैं उनके द्वारा अनेक देह रचीजानैसै उनसै संयोग वियोगादिरूप संसार
होता है, संसार अनुभवके छः द्वाररूप इन्द्रिय हैं उनसे यह संसार दुर्गम मार्गकी तुल्य बहुत कठिन होगयाहै, इस प्रकारके दुर्गम मार्गमें पग धरनेकी
किसीकी प्रवृत्ति नहीं होती ऐसा हम नहीं कह सक्ते भगवान विष्णुकी मायासै अवश होकर सबही उसमें वास करतेहैं, और अपनी देहसै रचे कार्यों-
का फल उसमें भोगते हैं, उनकी चेष्टा कभी सफल और कभी विघ्नोंसै विफल होतीहै, इस प्रकार इस संसार अटवीमें अनेक ताप हैं उनको नारायणके
भक्तोंके चरणकी पदवीही शान्त कर सक्ती है, परन्तु भगवानकी मायासै वह पदवी जीवौंको सहजमें प्राप्त नहीं होती इस संसार अटवीमें छः इन्द्रिय हैं

तद् यथा पुरुषस्य धनं यत्किंचित् साक्षाद्धर्मौपायिकं बहुकृच्छ्राधिगतं साक्षात् परमपुरुषाराधनलक्षणो योऽसौ ध-
र्मस्तं तु सांपराय उदाहरन्ति ॥ तद् धर्म्यं धनं दर्शनस्पर्शनश्रवणास्वादनावघ्राणसंकल्पव्यवसायगृहग्राम्योपभो-
गेन कुनाथस्याजितात्मनो यथा सार्थस्य तथाऽजितात्मनो विलुम्पन्ति ॥ २ ॥ अथ च यत्र कौटुम्बिका दारापत्याद-
यो नाम्ना कर्मणा वृकसृगाला एव अनिच्छतोऽपि कदर्यस्य कुटुम्बिन उरणकवत् संरक्ष्यमाणं मिषतोऽपहरन्ति
॥ ३ ॥ यथा ह्यनुवत्सरं कृष्यमाणमप्यदग्धबीजं क्षेत्रं पुनरेवावपनकाले गुल्मतृणवीरुद्भिर्गह्वरमिव भवति ॥ एवमेव
गृहाश्रमः कर्मक्षेत्रं यस्मिन् न हि कर्माण्युत्सीदान्ति यदयं कामकरण्ड एष आवसथः ॥ ४ ॥

वही कर्मोंके द्वारा महाप्रबल छः चोर हैं ॥ १ ॥ कष्टसे उपार्जन किया पुरुषका परलोकके निमित्त नारायणके आराधन करने रूप धर्ममें लगानेके योग्य
है उसको यह दर्शन स्पर्शन श्रवण आस्वादन सूंघना संकल्प विकल्प इत्यादि गृह संबंधी तुच्छ पदार्थोंमें लगाकर यह इन्द्रियरूपी चोर हरलेते हैं
वह पुरुष अजितेन्द्रिय और घरमें ग्राम्यवस्तुओंके भोग्य करनेमें आसक्त रहता है इस्सै अपना धन लेजानेवाली इन्द्रियोंको नहीं जान्ता और इस-
की असावधानीमें इसके संगी इसका धनहरण करलेते हैं ॥ २ ॥ और प्रकारसे कहे हैं, कि जिस भवाटवीमें कुटुंबके स्त्री पुत्रादिक नाम कर्मकरके
भेडिया गीदड समान है विनाइच्छावारे अतिलोभी कुटुंबीको मेंढाके समान सुंदर रक्षा करोभयो धन याके देखतेर सब हरले है ॥ ३ ॥ जिस प्रकार

70

करता है परन्तु कोईभी उस चक्रका प्रतिकार करनेको समर्थ नहीं होता कारण कि वह चक्र सब प्रकार अप्रमत्त है इसकारण पुरुष कारणपुरुष
कालस्वरूप हरिके चक्रसै उठकर यह कालचक्रही जिनका आयुध है वह ईश्वर साक्षात् भगवान् यज्ञपुरुष हैं उनका अनादर करता हुआ कि जो
पाखण्डीदेवता काक गिद्ध वक बटेर पक्षीके समान श्रेष्ठजनोंके आचारौंसै वर्जित है उनकोही पाखण्डशास्त्रकी रीतिके अनुसार भजने लगता है
॥ २९ ॥ जब पाषण्डी अपनेको ठगवेवारों करकै बहुत ठगोभयो ब्रह्मकुलमें प्रवेशकर तिनके शील यज्ञोपवीतादि श्रौतस्मार्त कर्मके अनुष्टान करके
भगवान् यज्ञपुरुषके आराधनमें रुचि न करतोभयो तो शूद्रकुल होजाय है, और वेदोक्त आचारसें अशुद्ध होजाय हैं, तब यह वानर जातिकी समान

यदा पाखण्डिभिरात्मवञ्चितैस्तैरुरुवञ्चितो ब्रह्मकुलं समावसंस्तेषां शीलमुपनयनादिश्रौतस्मार्तकर्मानुष्ठानेन भगव-
तो यज्ञपुरुषस्य आराधनमेव तदरोचयच्छूद्रकुलं भजते निगमाचारेऽशुद्धितो यस्य मिथुनीभावः कुटुम्बभरणं य-
था वानरजातेः ॥ ३० ॥ तत्रापि निरवरोधः स्वैरेण विहरन्नतिकृपणबुद्धिरन्योन्यमुखनिरीक्षणादिना ग्राम्यकर्मणैव
विस्मृतकालावधिः ॥ ३१ ॥ क्वचिद् द्रुमवदैहिकार्थेषु रंस्यन् यथा वानरः सुतदारवत्सलो व्यवायक्षणः ॥ ३२ ॥ ए-
वमध्वन्यवरुन्धानो मृत्युगजभयात्तमसि गिरिकन्दरप्राये ॥३३॥ क्वचिच्छीतवाताद्यनेकदैविकभौतिकात्मीयानां दुः-
खानां प्रतिनिवारणे अकल्पो दुरन्तविषयविषण्ण आस्ते ॥ ३४ ॥ क्वचिन्मिथो व्यवहरन् यत् किंचिद् धनमुपयाति
वित्तशाठ्येन ॥ ३५ ॥

केवल स्त्रीसंग और कुटुम्बका लालन पालन करै है ॥ ३० ॥ तहांभी प्रतिबंधरहित हो अपनी इच्छानुसार विहार करता अतिकृपण बुद्धिसै
आपसमें मुख देखनेसै गंवांरनकीनाईं कर्म करकै कालके आयवेकी समय भूलजाय है ॥ ३१ ॥ कभी वृक्षकी नाईं या लोकके प्रयोज-
नको साधक घरमें रमण करता जैसे वानर पुत्र स्त्रीपरायण केवल मैथुनमें लगोरहै तैसे ये जीव रहता है ॥ ३२ ॥ ऐसे संसाररूप मार्गमें रुको-
भयो मृत्युरूप गजके भयसे पर्वतनकी कंदरानमें गिरै है ॥ ३३ ॥ कभी शीत, वातादि अनेक दैविक, भौतिक, शारीरिकदुःखसे पीडित होके
इनके निवारण करनेका यत्न करनेमें अतिशय दुरंत विषयसे खिन्न रहता है ॥ ३४ ॥ कभी परस्पर व्यवहार करते कृपणतासे धनको प्राप्त

कपटसे बचै तौ तब दूसरा पुरुष बलसै उसै छीन लेताहै उससै बचै तौ विष्णुमित्र हर लेताहै इसप्रकार धारावाहिक होता रहताहै इसकारण अव्यवस्था होजाती है ॥ २४ ॥ कभी शीत पवन आदि अनेक आधिदैविक आधिभौतिक आदि अपने कुटुम्बकेनकी दशा निवारणमें असमर्थ महाचिंताकरके विरागयुक्त होरहै ॥ २५ ॥ कभी आपसमें व्यवहार करता कुछ धन औरसें अथवा वणियासे लेते देतेमें धनकी शठतासे वीस कौडीमात्रपर कुछेक वैरको प्राप्त होयहै ॥ २६ ॥ इस जगतमें और तौ कष्ट रहितेही हैं परन्तु ये महादुःखदायी है, सुख, दुःख, राग, द्वेष, भय, अभिमान,

क्वचिच्च शीतवाताद्यनेकाधिदैविकभौतिकात्मीयानां दशानां प्रतिनिवारण अकल्पो दुरन्ताचिन्तया विषण्ण आस्ते ॥ ॥ २५ ॥ क्वचिन्मिथो व्यवहरन् यत्किंचिद् धनमन्येभ्यो वा काकिणिकामात्रमपहरन् यत्किंचिद् वा विद्वेषमेति वितशाठ्यात्॥२६॥अध्वन्यमुष्मिन्निम उपसर्गास्तथा सुखदुःखरागद्वेषभयाभिमानप्रमादोन्मादशोकमोहलोभमात्सर्येर्ष्याऽवमानक्षुत्पिपासाधिव्याधिजन्मजरामरणादयः॥ २७ ॥ क्वापि देवमायया स्त्रिया भुजलतोपगूढः प्रस्कन्नविवेकविज्ञानो यद्विहारगृहारम्भाकुलहृदयस्तदाश्रयावसक्तसुतदुहितृकलत्रभाषितावलोकविचेष्टितापहृतहृदय आत्मानमजितात्माऽपारेऽन्धे तमसि प्रहिणोति ॥ २८ ॥ कदाचिदीश्वरस्य भगवतो विष्णोश्चक्रात् परमाण्वादिद्विपरार्धापवर्गोपलक्षणात् परिवर्तितेन वयसा रंहसा हरत आब्रह्मतृणस्तम्बादीनां भूतानामनिमिषतो मिषतां वित्रस्तहृदयस्तमेवेश्वरं कालचक्रं निजायुधं साक्षाद् भगवन्तं यज्ञपुरुषमनादृत्य पाखण्डदेवताः कङ्कगृध्रबकवटप्राया आर्यसमयपरिहृताः साङ्केत्येनाभिदत्ते ॥ २९ ॥

प्रमाद, उन्माद, शोक, मोह, लोभ, मत्सरता, ईर्षा, अपमान, क्षुधा, पिपासा, व्याधि, जन्म, बुढापा, मरणादिक ये जीवके बाधक हैं ॥२७ ॥ हे अजित ! कहीं देवताकी मायारूप स्त्रीकी भुजालतामें सोएभए विवेक विज्ञान नष्ट होनेसे विहारके घर बनानेमें हृदय लगा रहताहै वा घरके वासी पुत्र पुत्री स्त्रीकी बोली और देखनेसै हृदय हरजानेसै अपने आत्माको अपार अंधतममें पटक दे है ॥ २८ ॥ कोई समय भगवान् ईश्वर विष्णुके परमाणु आदि द्विपरार्ध अपवर्गकालके उपलक्षणवाले चक्रके फिरनेसै जो कि तृणस्तंभसै लेकर ब्रह्मादि समस्त प्राणियोंको अपने वेगसै हरण

73

करलेते हैं उससै पुरुषोंको मृतककी तुल्य जीवन लक्षणरहित होकर रहना पड़ता है ॥ १६ ॥ यह पुरुष कभी बाप दादे जीतेहुओंकी चिन्ताको प्राप्त होकर उनको और उनके असत् धनको सन्मान कर कि वह लोग मानो वर्तमान हैं इस प्रकारसै मनमें समझताहुआ क्षणभरकेलिये स्वप्नकेसा सुख प्राप्त करलेता है यही गन्धर्वनगर है ॥ १७ ॥ कभी गृहस्थाश्रममें कर्म करवेकी अज्ञानरूप अतिभारी पर्वतपर चढवेकी इच्छावारो लोकके व्यसनसें कर्षित मन हो कांटे, रेतयुक्त खेतमें प्रवेशकर कष्टको प्राप्त होय है ॥ १८ ॥ कभी दुःसह शरीरके भीतर रहिवेवारी जठराग्निसें पीडित होनेके कारण

कदाचिन्मनोरथोपगतपितृपितामहाद्यसत् सदिति स्वप्ननिर्वृतिलक्षणमनुभवति ॥१७॥ क्वचित् गृहाश्रमकर्मचोदनाऽतिभरगिरिमारुरुक्षमाणो लोकव्यसनकर्षितमनाः कण्टकशर्कराक्षेत्रं प्रविशन्निव सीदति ॥१८॥ क्वचिच्च दुःसहेन कायाभ्यन्तरवह्निना गृहीतसारः स्वकुटुम्बाय क्रुध्यति ॥ १९ ॥ स एव पुनर्निद्राऽजगरगृहीतोऽन्धेतमसि मग्नः शून्यारण्य इव शेते नान्यत् किंचन वेद शव इवापविद्धः ॥ २० ॥ कदाचिद् भग्नमानदंष्ट्रो दुर्जनदन्दशूकैरलब्धनिद्राक्षणो व्यथितहृदयेनानुक्षीयमाणविज्ञानोऽन्धकूपेऽन्धवत् पतति ॥२१॥ कर्हि स्म चित् काममधुलवान् विचिन्वन् यदा परदारपरद्रव्याण्यवरुन्धानो राज्ञा स्वामिभिर्वा निहतः पतत्यपारे निरये ॥ २२ ॥ अथ च तस्मादुभयथाऽपि हि कर्मास्मिन्नात्मनः संसारावपनमुदाहरन्ति ॥ २३ ॥ मुक्तस्ततो यदि बन्धाद् देवदत्त उपाच्छिनत्ति तस्मादपि विष्णुमित्र इत्यनवस्थितिः ॥ २४ ॥

निस्सार होकर अपने कुटुंबके लोगोंपर क्रोध किया करता है ॥ १९॥ सोई वो जीव निद्रारूपी अजगरसे ग्रसित अंधतममें मग्न हो शून्यवनकी नाई सोवै हैं और कुछ नहीं जान है मुर्दाकी नाई पडो रहै है ॥ २० ॥ कभी मानरूप दंष्ट्रा भग्न होनेसैं दुर्जनरूप दंदशूक उसै निद्रा नहीं लैने देते इसकारण हृदय व्यथित होनेसै उसके ज्ञानका क्षय हो जाताहै. तब वह अंधेकी नाई अंधकूपमें गिर पडता है ॥ २१ ॥ कभी काम मधुको लवमात्र चिंतवन करता पराई स्त्री परायो धनकूं रोकै है, तब राजा करकै अथवा स्त्रीके स्वामीकरकै मारो भयो अपार निरयमें गिरै है ॥ २२ ॥ इस कारण पंडित कहते हैं कि प्रवृत्तिमार्गमें अपना कर्मही इसकाल और परकालमें संसार जन्म होनेका क्षेत्र है ॥ २३ ॥ यदि धन किसी एकके

क्वचित् सकृदवगतविषयवैतथ्यः स्वयं पराभिध्यानेन विभ्रंशितस्मृतिस्तयैव मरीचितोयप्रायांस्तानेवाभिधावति ॥ १० ॥ क्वचिदुलूकझिल्लीस्वनवदतिपरुषरभसाटोपं प्रत्यक्षं परोक्षं वा रिपुराजकुलनिर्भर्त्सितेनातिव्यथितकर्णमूलहृदयः ॥११॥ स यदा दग्धपूर्वसुकृतस्तदा कारस्करकाकतुण्डाद्यपुण्यद्रुमलताविषोदपानवदुभयार्थशून्यद्रविणान् जीवन्मृतान् स्वयं जीवन् म्रियमाण उपधावति ॥ १२ ॥ एकदाऽसत्प्रसङ्गान्निकृतमतिर्व्युदकस्रोतःस्खलनवदुभयतोऽपि दुःखदं पाखण्डमभियाति ॥ १३ ॥ यदा तु परबाधयाऽन्ध आत्मने नोपनमति तदा हि पितृपुत्रबर्हिष्मतः पितृपुत्रान् वा खलु भक्षयति ॥ १४ ॥ क्वचिदासाद्य गृहं दाववत् प्रियार्थविधुरमसुखोदर्कं शोकाग्निना दह्यमानो भृशं निर्वेदमुपगच्छति ॥ १५ ॥ क्वचित् कालविषमितराजकुलरक्षसाऽपहृतप्रियतमधनासुः प्रमृतक इव विगतजीवलक्षण आस्ते ॥ १६ ॥

कालके भूतकी समान दिशाओंके देवता जो अच्छे बुरे कर्मके साक्षी हैं उन्हें जानता है ॥ ९ ॥ कोई समय एकवार विषयकी चाह भई तो आपने पराएको ध्यान न करके स्मृति भ्रष्ट होनेके कारण वा भ्रष्टमतिसे मृगमरीचिकाके जलप्राय विषयनको धावै है ॥ १० ॥ कहीं उलूक झींगरके शब्दकी समान कठोर विषयोंमें उत्साहके निमित्त प्रत्यक्ष और परोक्ष शत्रुपक्षकी और राजकुलकी फटकारसे इसके कर्णमें शूल और हृदयमें व्यथा होती है ॥ ११ ॥ संसारमें जब पुरुषके पहले किये सुकृत क्षीण होजाते हैं तब विष तिन्दुक इत्यादि अपुण्य वृक्षलता और विषकूप समान इस लोक और परलोकके प्रयोजनके निमित्त धन खोकर स्वयं मृतककी तुल्य होजाते हैं और जीवनमृत मनुष्योंके निकट दौडते फिरते हैं ॥ १२ ॥ किसी समय खोटोंके प्रसंगसे जब याकी मति वंचित होयहै तब जलहीन स्रोतमें गिरवेके समान दोनो ओरसे दुःखदायक पाखंडमार्गको प्राप्त होय है, जैसे जलरहित गढेमें गिरनेसे शिर फटजाय है पीछे वाकी वेदना होयहै ऐसैंई विषयसे पीछे दुःख होयहै ॥ १३ ॥ जब परबाधासे अन्न अपने अर्थ न मिले हैं,तब पिता पुत्र बर्हिष्मत प्राचीनबर्हिके पिताको पुत्र जैसे दुःखित करते भये, तैसेंई या जीवको ये सब कुटुंबके खायवेवारे हैं ॥ १४ ॥ कभी दावानलकी नाईं प्रियअर्थ दुःखसे प्राप्त होनेयोग्य महादुःखदायक घरको प्राप्त होयकर शोकरूप अग्निसें जरोभयो अत्यंत वैराग्यको प्राप्त होय हैं ॥ १५ ॥ कभी राजा लोग कालके वशमें पड प्रतिकूल हो राक्षसौंकी समान व्यवहार करते हैं प्रियतम धनरूप प्राण हरण

75

तातें उत्कलामें मरीचि, मरीचिसे बिंदुमतीमें बिंदुमान् पुत्र भयो, ताते सरघामैं मधुनामक भयो, मधुते सुमनास्त्रीमें वीरव्रत ताते भोजास्त्रीमैं मंथू प्रमंथू दो संतान भये, मंथूसें सत्यामै भौवन, ताते दूषणामें त्वष्टा भयो त्वष्टाकी विरोचनामें विरज विरजके विषूचीमें शतजित्से आदिले शत पुत्र भए, एक कन्या होती भई ॥ १५ ॥ तहां ये श्लोक है ये कि प्रियव्रतके वंशमें सबसै पीछे विरज हुआ सो अपनी कीर्तिकरकै सबको शोभित करतो भयो जैसे विष्णु देवतानके गणकों कीर्तिसें शोभित करतेहै ॥ १६ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां प० प्रियव्रतवंशवर्णनं नाम पञ्चदशोऽ-

तत उत्कलायां मरीचिः मरीचेर्बिन्दुमत्यां बिन्दुमानुदपद्यत तस्मात् सरघायां मधुनामाऽभवत्॥ मधोः सुमनसि वीरव्रतः॥ ततो भोजायां मन्थुप्रमन्थू जज्ञाते मन्थोः सत्यायां भौवनः॥ ततो दूषणायां त्वष्टाऽजनिष्ट ॥ त्वष्टुर्विरोचनायां विरजः ॥ विरजस्य शतजित्प्रवरं पुत्रशतं कन्या च विषूच्यां किल जातम् ॥ १५ ॥ तत्रायं श्लोकः ॥ प्रैयव्रतं वंशमिमं विरजश्चरमोद्भवः ॥ अकरोदत्यलं कीर्त्या विष्णुः सुरगणं यथा ॥ १६ ॥ इति श्रीभा०म० पञ्च० प्रियव्रतवंशानुकीर्तनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ राजोवाच ॥ उक्तस्त्वया भूमण्डलायामविशेषो यावदादित्यस्तपति यत्र चासौ ज्योतिषां गणैश्चन्द्रमा वा सह दृश्यते ॥ १ ॥ तत्रापि प्रियव्रतरथचरणपरिखातैः सप्तभिः सप्त सिन्धव उपक्लृप्ताः ॥ यत एतस्याः सप्तद्वीपविशेषविकल्पस्त्वया भगवन् खलु सूचितः ॥ एतदेवाखिलमहं मानतो लक्षणतश्च सर्वं विजिज्ञास्यामि ॥ २ ॥ भगवतो गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनो ह्यगुणेऽपि सूक्ष्मतम आत्मज्योतिषि परे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवाख्ये क्षममावेशितुं तदु हैतद् गुरोऽर्हस्यनुवर्णयितुमिति ॥ ३ ॥

ध्यायः ॥ १५ ॥ राजा परीक्षित बोले कि आपने भूमंडलको विस्तार कह्यो सो विशेष जानवेकी इच्छा है, जहांतक सूर्य तपते हैं जहां तारामंडलसहित चंद्रमा दीखैहैं सो कहो ॥ १ ॥ हे भगवन्! तहांभी प्रियव्रतके रथके पैयाके खुदनेसे सात समुद्र भए, तिसके मध्यमें सप्तद्वीप आ- तुमने सूचना कराए,येही बातमें सब प्रमाण लक्षणसे विस्तारपूर्वक जानवेकी इच्छा करूंहूं सो कृपाकरकै पुरातन मनुष्य गावते चले आवैहैं ॥८॥

कर्मादिकसै उनकी बराबरी करसकैंगा वह भगवानके अंश हौनेसै आपही अपनी समता करसक्त है ॥ ९ ॥
सत्य आशीर्वाद दे जलसे जिनको अभिषेक करती भई, जिनके कल्याण विषयमें निराकांक्षी हौनेपरभी गुणरूप वत्सद्वारा स्तन पसा आनसे
धरणीने जिनकी प्रजागणौंके लिये अनेक कल्याण स्वयंही दोहन कर दियेथे भला कर्मोंमें उनकी बराबरी कौन करसकैगा ॥१०॥ निष्काम राजा-
को वेद सब कामना देतेभए, सब नृप बलि देतेभए, धर्मयुद्धमें सब राजोंको जीततो भयो, ब्राह्मण लोग पालन और दक्षिणादिक पाकर पूजा अपने-

गयं नृपः क प्रतियाति कर्मभिर्यज्वाऽभिमानी बहुविद्धर्मगोप्ता ॥ समागतश्रीः सदसः पतिः सतां सत्सेवकोऽन्यो भ-
गवत्कलामृते ॥ ९ ॥ यमभ्यषिञ्चन्परया मुदा सतीः सत्याशिषो दक्षकन्याः सरिद्भिः ॥ यस्य प्रजानां दुदुहे धराशि-
षो निराशिषो गुणवत्सस्नुतोधाः ॥१०॥ छन्दांस्यकामस्य च यस्य कामान् दुदूहुराजह्रुरथो बलिं नृपाः ॥ प्रत्यञ्चिता
युधि धर्मेण विप्रा यदाशिषां षष्ठमंशं परेत्य ॥११॥ यस्याध्वरे भगवानध्वरात्मा मघोनि माद्यत्युरुसोमपीथे ॥ श्रद्धा-
विशुद्धाचलभक्तियोगसमर्पितेज्याफलमाजहार ॥ १२ ॥ यत्प्रीणनाद्बर्हिषि देवतिर्यग्मनुष्यवीरुत्तृणमा विरिञ्चात् ॥
प्रीयेत सद्यः सहविश्वजीवः प्रीतः स्वयं प्रीतिमगाद्गयस्य ॥१३॥ गयाद् गयन्त्यां चित्ररथः सुगतिरवरोधन इति त्रयः
पुत्रा बभूवुश्चित्ररथादूर्णायां सम्राडजनिष्ट ॥ १४ ॥

धर्म और पुण्यके छठे भागको जिसे देतेथे आशीर्वाद देतेथे उसकी बराबर कौन होगा "पुण्यषड्भागमादत्ते न्यायेन परिपालयन्" ॥ ११ ॥
जाके यज्ञमें भगवान् यज्ञात्मा इंद्र सोमपान करकै अत्यन्त मत्त होगयेथे और उसकी श्रद्धा विशुद्ध अचलभक्तियोगसें करीभई पूजा फलको
भगवान् ग्रहण करते भये ॥ १२ ॥ जिनभगवान्के प्रसन्न होयवेसे यज्ञमें देवता मनुष्य वेल तृण ब्रह्मापर्यंत प्रसन्न होतेहैं सो विश्वके अंतर्यामी
आप साक्षात् गयराजासो प्रसन्न होयकर बोले कि हम तुह्मारे यज्ञमें प्रसन्न भये ॥ १३ ॥ गयसें गयंतीमें चित्ररथ, सुगति, अवरोधन, ये तीन पुत्र भए,
चित्ररथसें ऊर्णामें सम्राट् उत्पन्न होतोभयो ॥ १४ ॥

परमेष्ठीसुत, तिनकी सुवर्चलामें प्रतीह, उत्पन्न होतेभए ॥ ३ ॥ जो प्रतीह आत्मविद्या कहिकर आप शुद्ध होयकर महापुरुषको स्मरण करतोभयो ॥ ४ ॥ प्रतीहसे सुवर्चलामैं प्रतिहर्त्रादिक तीन पुत्र होतेभए वे यज्ञ करायवेमै बडे पंडित भए, प्रतिहर्ताकी स्तुति स्त्रीमैं अज भूमा दो पुत्र भए ॥५॥ ऋषिकुल्यामें उद्गीथ ताते देवकुल्यामैं प्रस्ताव, प्रस्तावसे नियुत्सामें हृदयज सुत भयो, विभुको रती स्त्रीमें पृथुषेण ताते आकूतीमें नक्त भयो, नक्तसे द्रुतिको पुत्र गय राजर्षिनमें श्रेष्ठ महायशस्वी होते भए, जो कि जगतकी रक्षा करनेको वासनासे सतगुण धारण कियेहैं साक्षात् उन भगवान्

य आत्मविद्यामाख्याय स्वयं संशुद्धो महापुरुषमनुसस्मार ॥ ४ ॥ प्रतीहात्सुवर्चलायां प्रतिहर्त्रादयस्त्रय आसन्निज्याकोविदाः सूनवः प्रतिहर्तुः स्तुत्यामजभूमानौ अजनिषाताम् ॥ ५ ॥ भूम्न ऋषिकुल्यायामुद्गीथस्ततः प्रस्तावो देवकुल्यायां प्रस्तावान्नियुत्सायां हृदयज आसीद्विभुः ॥ विभो रत्यां च पृथुषेणस्तस्मान्नक्त आकूत्यां जज्ञे नक्ताद्द्रुतिपुत्रो गयो राजर्षिप्रवर उदारश्रवा अजायत साक्षाद्भगवतो विष्णोर्जगद्रिरक्षिषया गृहीतसत्त्वस्य कलात्मवत्त्वादिलक्षणेन महापुरुषतां प्राप्तः ॥ ६ ॥ स वै स्वधर्मेण प्रजापालनपोषणप्रीणनोपलालनानुशासनलक्षणेनेज्यादिना च भगवति महापुरुषे परावरे ब्रह्मणि सर्वात्मन्यर्पितपरमार्थलक्षणेन ब्रह्मविच्चरणानुसेवयापादितभगवद्भक्तियोगेन चाभीक्ष्णशः परिभावितातिशुद्धमतिरुपरतानात्म्ये आत्मनि स्वयमुपलभ्यमानब्रह्मात्मानुभवोऽपि निरभिमान एवावनिमजूगुपत् ॥ ७ ॥ तस्येमां गाथां पाण्डवेय पुराविद उपगायन्ति ॥ ८ ॥

विष्णुकी कलासे उत्पन्न होनेके कारण यह राजा ज्ञानीपन आदि लक्षणोंमें महापुरुषताको प्राप्त हुए ॥ ६ ॥ सो वो गय स्वधर्मसें प्रजाका पालन पोषण प्रीणन अतिलालन आज्ञा लक्षणोंसे यज्ञादिक करकै भगवान महापुरुष परअवरब्रह्ममें सब प्रकारसे आत्मद्वारा परमार्थसे सब कर्म समर्पण कर ब्रह्मवेत्तानके चरणनकी सेवा करकै भगवतकी भक्तियोगकरके वारंवार अतिशुद्धमति आत्मा अनात्माकों विचार कर अपने आप ब्रह्मके आत्माको अनुभव कर सब प्रकारको अभिमान त्याग पृथ्वीकी रक्षा करतो भयो॥७॥हे पांडुनंदन! ताकी ये कथा पुरातन मनुष्य गावते चले आवै हैं ॥८॥

जो कोई ये भागवतों करकै सत्कृत उज्वल राजर्षि भरतजीको मंगलदाता आयु धन यश स्वर्ग मोक्षदायक चरित्र सुनै कहै सराहना करै है, वाकों सब मनोरथ अपनी आत्मासें प्राप्त होय है और काहूसे नहीं ॥ "सबमैं ब्रह्म देखै तब आत्मज्ञान होय है एक गुरु दो चेलाको ब्रह्मविद्या पढाई एक तो ज्ञान ले बद्रिकाश्रममें गयो, दूसरो घर घर डोलै, सो सबमें ब्रह्म माने, एक गांवमें कहीसे मस्त हाथी चलो आयो सो काऊ गृहस्थीने कही बाबा ऊपर आयजाओ वो बोलो यामें का ब्रह्म नही है ठाडे रहै; हाथीने फाड फैकदीने मरकै ब्रह्मराक्षस हो गुरुकी छातीपर चढ बोले, तब गुरुने कही तो-

इदं भागवतसभाजितावदातगुणकर्मणो राजर्षेर्भरतस्यानुचरितं स्वस्त्ययनमायुष्यं धन्यं यशस्यं स्वर्ग्यापवर्ग्यं वाऽनुशृणोत्याख्यास्यति अभिनन्दति च सर्वा एवाशिष आत्मन आशास्ते न कांचन परत इति ॥ ४६ ॥ इति श्रीभा० म० पञ्च० भरतोपाख्याने ब्राह्मणरहूगणसंवादे पारोक्ष्यविवरणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ भरतस्यात्मजः सुमतिर्नामाभिजितो यमु ह वाव केचित्पाखण्डिन ऋषभपदवीमनुवर्तमानं चानार्या अवेदसमाम्नातां देवतां स्वमनीषया पापीयस्या कलौ कल्पयिष्यन्ति ॥ १ ॥ तस्माद्वृद्धसेनायां देवताजिन्नाम पुत्रोऽभवत् ॥ २ ॥ अथासुर्यां तत्तनयो देवद्युम्नस्ततो धेनुमत्यां सुतः परमेष्ठी तस्य सुवर्चलायां प्रतीह उपजातः ॥ ३ ॥

सरीके मैं तो तैने ब्रह्म न माने पशुमें ब्रह्म मानों, मनमे ज्ञान नही कियो यासे देरमें मुक्त होओगे" ॥४६॥ इति श्रीमद्भागवतभाषा० पञ्चमस्कन्धे भरतोपाख्याने भवाटवीपारोक्ष्यविवरणवर्णनं नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि श्रीभरतजीके सुमतिनामक पुत्र होतेभए, जिनकों कोई[1] पाखंडी ऋषभपदवीमें वर्तमान साक्षात् ऋषभवत् मानते भए, जो देवता वेदमें नही उनको अपनी बुद्धिकरकै पापी कलियुगमैं देवता कल्पना करैंगे ॥ १ ॥ ताते वृद्धसेनामें देवताजित् नाम पुत्र होतो भयो ॥ २ ॥ याके उपरांत असुरीमैं ताको तनय देवद्युम्न, ताते धेनुमतीमें

---

[1] शंका–शास्त्रमें तथा लोकमें मुनियोंने शुकदेवजीको समदृष्टि कहाहै, कि शुकदेवजी अच्छें बूरेको एक सम देखते हैं, ऐसे परमहंस होकर श्रीशुकदेवजीने दूसरे प्राणीको पाखण्डी क्यों कहा?

उत्तर–शुकदेवजीने अपने मनमें विचार किया कि सतयुग, त्रेता, द्वापर, में चारों वेदोंका राक्षस नाश करते हैं, परन्तु कलियुगमें पाखण्डी लोग निश्चय चारों वेदोंका नाश करेंगे, कलियुगमें जो प्राणी उत्पन्न होंगे उन प्राणियोंकों सिखानेके लिये तथा चतुर करनेके लिये कलिकालके प्राणी विद्वान् होंगे तो वेदकी रक्षा होयगी, इसलिये दूसरेको पाखण्डी कहा, क्यों कि अपने धर्मकी रक्षा करनेके लिये थोडा भेद करते हैं ॥

कर्मरूप वेलको आसरो लेकर फेर आपति भोगै है, कभी नरकसें मुक्त हो फिरभी ऐसेई या संसाररूप मार्गमैं वर्तमान नरलोकमें जन्मै हैं ऐसेई ऊपरके लोगनकी वार्ता है ॥ ४१ ॥ तिनके ये श्लोक गावै हैं, ऋषभावतारके वंशके राजर्षिमहात्मानके अनुसार कोई राजा न चलसको, जैसै कोई मक्खी गरुड़जीकी बराबरी नही करसकतीहै ॥ ४२ ॥ जो ऋषभदेवजी दुस्त्यज स्त्री पुत्र सुहृद् राज्य हृदयके स्पर्श करवेवारौंकों जवानपनमेंही उत्तमश्लोकमें लालसा कर त्यागतेभये ॥४३॥ उनके चित्तकी भक्ति भगवद्भक्तिके निमित्त प्रबल थी इससै उन्होने जो अत्याज्य राज्य पुत्र कलत्र और धन जन

कर्मवल्लीमवलम्ब्य तत आपदः कथंचिन्नरकाद् विमुक्तः पुनरप्येवं संसाराध्वनि वर्तमानो नरलोकसार्थमुपयाति एवमुपरिगतोऽपि ॥ ४१ ॥ तस्येदमुपगायन्ति ॥ आर्षभस्येह राजर्षेर्मनसाऽपि महात्मनः ॥ नानुवर्त्मार्हति नृपो मक्षिकेव गरुत्मतः ॥ ४२ ॥ यो दुस्त्यजान् दारसुतान् सुहृद्राज्यं हृदिस्पृशः ॥ जहौ युवैव मलवदुत्तमश्लोकलालसः ॥ ४३ ॥ यो दुस्त्यजान् क्षितिसुतस्वजनार्थदारान् प्रार्थ्यां श्रियं सुरवरैः सदयावलोकाम् ॥ नैच्छन्नृपस्तदुचितं महतां मधुद्विट्सेवाऽनुरक्तमनसामभवोऽपि फल्गुः ॥ ४४ ॥ यज्ञाय धर्मपतये विधिनैपुणाय योगाय सांख्यशिरसे प्रकृतीश्वराय ॥ नारायणाय हरये नम इत्युदारं हास्यन् मृगत्वमपि यः समुदाजहार ॥ ४५ ॥

इत्यादिमें और श्रेष्ठ देवताओंकी प्रार्थनीय लक्ष्मी जो द[illegible]जन होनेके निमित्त उनकी ओर दीनतासै देखतीथी उसमेंभी अनिच्छा प्रगट करते हुये यह कर्म उनके योग्य ही हुआ कारण कि जिन महात्माओंका मन भगवानकी सेवामें लगा है उनके निकट परम पुरुषार्थवाली मुक्तिभी तुच्छ है ॥ ४४ ॥ जिन्होंने यज्ञरूप धर्मपति विधिमें निपुण योगशास्त्रज्ञानी सांख्यके और प्रकृतिके ईश्वर नित्यवस्तुके निवास नारायणरूप सर्वदुःखहारक श्रीहरिके अर्थ नमस्कार होय, ये [illegible] मृगशरीर त्यागनके समय उच्चारण कियेथे उनके मार्गका अनुसरण करनेको कौन समर्थ होगा ॥ ४५ ॥

करता है कभी याको धन क्षीण होजाय है तो शय्या आसन आदि उपभोगसें विहीन हो मनोरथके द्वारा वांछितको सदुपायसै उनको न पाकर फिर उनको बुरे कर्मोंसे लाभ करनेका मनमें विचार करता है तब बुद्धिसें निश्चय कर जहां तहां आदमियोंसें अपमानआदिक लाभ होय है ॥ ३९ ॥ परन्तु आश्चर्यकी बात है कि धनकी आसक्तिसे परस्पर बैरभी बढाते हैं पर तौभी पुरुष एक दूसरेसै लैन दैन करताही रहता है ॥ ३६ ॥ या संसारमार्गमें नानाक्लेशसे पीडित दुःखको प्राप्त नष्ट हो जहां तहां मरेनकों त्याग, जन्मे जन्मेनको राखकर शोच मोह विवाद करते कभी कोलाहल करते कभी भय कभी सिंहनाद कभी विवाह कभी हर्ष करते कभी गाते कभी चिल्लाते हैं इस प्रकार संसारमें अधिक बंध जानैसै साधु पुरुषके सिवाय

क्वचित् क्षीणधनः शय्यासनाशनाद्युपभोगविहीनो यावदप्रतिलब्धमनोरथोपगतादानेऽवसितमतिस्ततस्ततोऽवमानादीनि जनादपि लभते ॥ ३६ ॥ एवं वित्तव्यतिषङ्गविवृद्धवैरानुबन्धोऽपि पूर्ववासनया मिथ उद्वहत्यथापवहति ॥ ३७ ॥ एतस्मिन् संसाराध्वनि नानाक्लेशोपसर्गबाधित आपन्नविपन्नो यस्तमु ह वावेतरस्तत्र विसृज्य जातं जातमुपादाय शोचन् मुह्यन् बिभ्यद् विवदन् क्रन्दन् संहृष्यन्गायन्नह्यमानः साधुवर्जितो नैवावर्ततेऽद्यापि यत आरब्ध एष नरलोकसार्थो यमध्वनः पारमुपदिशन्ति ॥ ३८ ॥ यदिदं योगानुशासनं न वा एतदवरुन्धते यन्न्यस्तदण्डा मुनय उपशमशीला उपरतात्मानः समवगच्छन्ति ॥ ३९ ॥ यदपि दिगिभजयिनो यज्विनो ये वै राजर्षयः किं तु परं मृधे शयीरन् ॥ अस्यामेव ममेयमिति कृतवैरानुबन्धा यान्ति विसृज्य स्वयमुपसंहृताः ॥ ४० ॥

कोई अबतक इस संसार मार्गसे नहीं लौटा जिस मार्गमें यह नरलोकसमूह बंधा हुआ है पंडितजन उस मार्गसे पार होनैका सदाही उपदेश किया करते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ योगानुष्ठानसैंभी यह मार्ग नहीं रुकसकता शांतिशील और मनको वशमें रखनेवाले जिन मुनियौने दंडवत छोड दिया है वह इस मार्गको जान्ते हैं वरन उनमेंभी अनेक इस मार्गके रोकनेमें असमर्थ हुए हैं ॥ ३९ ॥ जो दिग्विजयी राजा यज्ञ किया करते हैं वहभी इस मार्गके रोकनेमें समर्थ नहीं हुयें इसी पृथ्वीके मोहमें फंसकर प्रत्येक मनुष्यौंसै अनेक प्रकार वैरकर (यह भूमि हमारी है) ऐसा समझ कर संग्राम स्थलमें प्राण दे रणसेजपर सोये और इसै छोड़ गये ॥ ४० ॥

ऐसे इलावृतके दक्षिणकी ओर निपध, हेमकूट, हिमालय ये पर्वत पूर्वसे लंबे हैं जैसें नीलआदि पर्वत दस हज्जार योजन ऊंचे हैं, हरिवर्ष, किंपुरुष, भारतके यथासंख्या मर्यादागिरि हैं ॥ ९ ॥ तैसेई इलावृत खंडके पूर्व पश्चिममें माल्यवत्, गन्धमादन, नीलपर्वत, निषधतक दोहज्जार योजन विस्तृत हैं, केतुमाल भद्राश्वकी सीमाकों विधान करैहैं ॥ १० ॥ मंदर, मेरुमंदर, सुपार्श्व, कुमुद ये दशहज्जार योजन विस्तृत और ऊंचे हैं मेरुके चारों दिशानमें वाके सहारेके पर्वत रचैहैं ॥ ११ ॥ इन चारोंमें आम, जामुन, कदंब, वट ये चार वृक्ष श्रेष्ठ पर्वतकी ध्वजाके समान है ग्यारह ह-

एवं दक्षिणेनेलावृतं निषधो हेमकूटो हिमालय इति प्रागायता यथा नीलादय अयुतयोजनोत्सेधा हरिवर्षकिंपुरुषभारतानां यथासङ्ख्यम् ॥ ९ ॥ तथैवेलावृतमपरेण पूर्वेण च माल्यवद्गन्धमादनावानीलनिषधायतौ द्विसहस्रं पप्रथतुः केतुमालभद्राश्वयोः सीमानं विदधाते ॥ १० ॥ मन्दरो मेरुमन्दरः सुपार्श्व कुमुद इति अयुतयोजनविस्तारोन्नाहा मेरोश्चतुर्दिशमवष्टम्भगिरय उपक्लृप्ताः॥ ११॥ चतुर्ष्वेतेषु चूतजम्बूकदम्बन्यग्रोधाश्चत्वारः पादपप्रवराः पर्वतकेतव त्वाधिसहस्रयोजनोन्नाहास्तावद्विटपविततयः शतयोजनपरिणाहाः ॥ १२ ॥ ह्रदाश्चत्वारः पयोमध्विक्षुरसमृष्टजला यदुपस्पर्शिन उपदेवगणा योगैश्वर्याणि स्वाभाविकानि भरतर्षभ धारयन्ति ॥ १३ ॥ देवोद्यानानि च भवन्ति चत्वारि नन्दनं चैत्ररथं वैभ्राजकं सर्वतोभद्रमिति ॥ १४ ॥ येष्वमरपरिवृढाः सहसुरललनाललामयूथपतय उपदेवगणैरुपगीयमानमहिमानः किल विहरन्ति ॥ १५॥

ज्जार योजन ऊंचे है, तितनोही उन वृक्षोंकी शाखाओंका विस्तार है ॥ १२ ॥ हे भरतवंशमें श्रेष्ठ! तहां चार तलाव हैं दूध शेहेत गन्नेको रस शुद्धजलसें भरे हैं, इनमें स्नान करनेसे यक्षलोक स्वाभाविक योगके ऐश्वर्य धारतेहैं ॥ १३ ॥ तहां चार देवतानके वाग है नंदन, चैत्ररथ, वैभ्राजक, सर्वतोभद्र ये नाम हैं ॥ १४ ॥ इन उद्यानोंमें प्रधान देवता और देवांगनाओंमें रत्न स्त्रियोंके पति अपनी अपनी स्त्रियोंके साथ मिलकर विहार करतेहैं और उस समय गंधर्व उनकी महिमा गातेहैं ॥ १५ ॥

श्रीशुकऋषि बोले कि हे महाराज ! मायागुणविभूतिवारे भगवान्की विभूतिके देवनकीसी आयु होजाय तौ मन वचनसे अंत जानवेकूं मनुष्य समर्थ नहीं है तातें प्रधानता करकै भूगोलको विशेष नाम रूप मान लक्षणसे व्याख्या करै है ॥ ४ ॥ जो ये जंबूद्वीप है सो भूमंडलमें कमलसमान एकलक्ष योजनको विस्तार है, समानगोल कमलपत्रकी समान है ॥ ५ ॥ या जंबूद्वीपमें नौ सहस्र योजनके विस्तारके नवखंड है आठमर्यादाके पर्वत विभागके हैं ॥ ६ ॥ इनके मध्यमें इलावृतनाम खंड याकी नाभीमें स्थित है, सब ओरसे सुवर्णको सुमेरु पर्वतोंको राजा है, यह एकलाख योजन ऊंचो है, याकी कलीरूप चोंच ऊपरसे बत्तीस हज्जार योजन विस्तृत है, मूलमें सोलै सहस्र योजन विस्तृत है, उतनोंही भूमिमें प्रविष्ट है, चौराशी योजन प्रमाणको बाहिर दीखे है, ऐसै लाखयोजन ऊंचो है ॥ ७ ॥ इलावृतके उत्तरकी ओर नील, श्वेत, शृंगवान् ये तीन रम्यक हिरण्मय कुरु खंडोंके मर्यादापर्वत है, पूर्वकी ओरसे दीर्घ है दोनों ओरसे खारीसमुद्रतक हैं दो हज्जार योजन लंबे हैं एकएक पूर्वसें पूर्व उत्तरोत्तर दशगुणे अधिक दीर्घ है लम्बाईमें दशांशसै कुछ अधिक भागमें कम है ॥ ८ ॥

ऋषिरुवाच॥ न वै महाराज भगवतो मायागुणविभूतेः काष्ठां मनसा वचसा वाऽधिगन्तुमलं विबुधायुषाऽपि पुरुषस्तस्मात् प्राधान्येनैव भूगोलकविशेषं नामरूपमानलक्षणतो व्याख्यास्यामः ॥४॥ यो वाऽयं जम्बुद्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यन्तरकोशो नियुतयोजनविशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम् ॥५॥ यस्मिन् नव वर्षाणि नवयोजनसहस्रायामान्यष्टभिर्मर्यादागिरिभिः सुविभक्तानि भवन्ति ॥ ६ ॥ एषां मध्ये इलावृतं नामाभ्यन्तरवर्षं यस्य नाभ्यामवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो मेरुर्द्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूतः कुवलयकमलस्य मूर्धनि द्वात्रिंशत्सहस्रयोजनविततो मूले षोडशसहस्रं तावताऽन्तर्भूम्यां प्रविष्टः॥७॥ उत्तरोत्तरेणेलावृतं नीलः श्वेतः शृङ्गवानिति त्रयो रम्यकहिरणमयकुरूणां वर्षाणां मर्यादागिरयः प्रागायता उभयतः क्षारोदावधयो द्विसहस्रं पृथव एकैकशः पूर्वस्मात् पूर्वस्मादुत्तर उत्तरो दशांशाधिकांशेन दैर्घ्येण ह्रसन्ति ॥ ८ ॥

83

श्रीशुकदेवजी बोले कि या अध्यायमें गंगामाहात्म्यकी कथा है; साक्षात् भगवान् यज्ञपुरुषने जब वामन अवतार लिया तब उनके बलिसै पृथ्वी मांगनेपर बडा रूप धारणकर जब दक्षिण चरणसै पृथ्वीको दबाकर वामचरण ऊंचा किया तब उस चरण अंगुष्ठके नखसै ब्रह्माण्डका उपरिभाग विदीर्ण होनेसे उस छिद्रमें बाह्यके आवरणकी नीरधारा जो भीतर आई वह सहस्र युग पर्यंतके महा समयसै स्वर्गके ऊपर उतरी वामनजीका चरण धूलनेके कारण चरण सम्बन्धी लालकेसरसै वह धारा रंग गई इसीकारण उस धाराका स्पर्श जगत्के पापनाशक था स्वयं महापवित्र थी

श्रीशुक उवाच॥ तत्र भगवतः साक्षाद यज्ञलिङ्गस्य विष्णोर्विक्रमतो वामपादाङ्गुष्ठनखनिर्भिन्नोर्ध्वाण्डकटाहविवरेणान्तः प्रविष्टा या बाह्यजलधारा तच्चरणपङ्कजावनेजनारुणकिञ्जल्कोपरञ्जिताखिलजगदघमलापहोपस्पर्शनाऽमला साक्षाद् भगवत्पदीत्यनुपलक्षितवचोऽभिधीयमानाऽतिमहता कालेन युगसहस्रोपलक्षणेन दिवोमूर्द्धन्यवततार ॥ १ ॥ यत् तद् विष्णुपदमाहुः ॥ यत्र ह वाव वीरव्रत औत्तानपादिः परमभागवतोऽस्मत्कुलदेवताचरणारविन्दोदकमिति यामनुसवनमुत्कृष्यमाणभगवद्भक्तियोगेन दृढं क्लिद्यमानान्तर्हृदय औत्कण्ठ्यविवशामीलितलोचनयुगलकुड्मलविगलितामलबाष्पकलयाऽभिव्यज्यमानरोमपुलकोऽधुनाऽपि परमादरेण शिरसा बिभर्ति ॥ २ ॥

प्रथम तौ यह विष्णुपदी नामसै विख्यात हुई वही स्वर्गका मस्तक है (१) ॥ १ ॥ जहां वीरव्रत कर्त्ता उत्तानपादके पुत्र परम भागवत ध्रुवजी यह हमारे कुलदेवता श्रीमन्नारायणके चरणारविंदको जल है ऐसे विचार परम आदरसै शिरपर धारण करते हैं और क्षण क्षणमें बढीभई भगवद्भक्तियोगसै द्रढ और द्रवीभूत हृदय हो अति उत्कंठतासै विवश हो नेत्र मूंदे मग्न होते है तब उनके नेत्रौंमेसै आनन्दाश्रुकी वर्षा होती है शरीरमें रोमांच होजातेहैं॥ २॥

---

(१) " श्रीगंगाजीकी ठुमरी ॥ जगतरणि हरणि सुखकरणि सकलसुखधरणि शरणि भई रे श्रीगंगे ॥ टेर ॥ बलिबलदलन छलन वामन भए खलन मलन प्रभुचलन वचन भए अचल भवन पदसचल कियो विधि जल ले शर्णि भई रे ॥ १ ॥ अंडकटाकू हटाके झटाकर चरणपरधार सटाकर दिनकर ब्रह्मकमंडल निकस परी शिवशिरको सींचत भई रे ॥ २ ॥ तुंगौ छरणि करणि करणि रणि वेदोच्चरणि धरणि सुरमणि गणि; कणि कणि क्षणि क्षणि पदज जणि भवजजणि अजाणि भई रे ॥ ३ ॥ टरणि पापत्रयतापहरणि भई जन्ममरणि गई तरणि सुभग भई पारकरणि जमडरणि गई हरशिरणि महत भई रे ॥४॥ अगणित अघगणि गणिनगणाणि भई भणणि वेदजणिजाणिकी सुमणि दई, पुरुषोत्तम जेही पदसरणी सब भवकी डरणि गई रे॥५॥"

जठर, देवकूट, दो पर्वत सुमेरुके पूर्वकी ओर अठारह हज्जार योजन ऊंचे दो हज्जार योजन चौडे है, और पवन पारियात्र दक्षिणकी ओर है कैलास करवीर पश्चिमकी ओरसे विस्तृत है, उत्तरकी ओर त्रिशृंग मकर इन आठ पर्वतोंसे घिरो भयो अग्निकी नाई सुमेरुपर्वत सब ओरसे प्रकाश कर रह्यो है ॥ २७ ॥ सुमेरुके मूढपर भगवान् ब्रह्माजीकी बीचसें रची भई दसहज्जार योजन लंबी चौडी चारहजार योजन चौडी पुरी सौनेकी बनी है जिसके चारों कोने बराबर हैं ऐसा पंडित कहते हैं ॥ २८ ॥ इस पुरीके ऊपर भागमें पूर्वादि सब दिशाऔंमें क्रमसै उत्तरादि आठ लोकपालोंकी आठ पुरी बनी हैं इनके वर्ण उनमें रहतेहुये लोकपालौंकी समान है औ ढाई हज्जार योजनका प्रत्येकका विस्तार है ॥ जो कुछ अन्यथा हमने वर्णन कराहै वो कल्पांतर भेदसे जानना योग्य है ॥ यथोक्तम् ॥ " मेरौ नवपुराणि स्युर्मनोवत्यमरावती ॥ तेजोवती संयमनी तथा कृष्णांगनापरा ॥ १ ॥

जठरदेवकूटौ मेरुं पूर्वेणाष्टादशयोजनसहस्रमुदगायतौ द्विसहस्रं पृथुतुङ्गौ भवतः ॥ एवमपरेण पवनपारियात्रौ दक्षिणेन कैलासकरवीरौ प्रागायतौ ॥ एवमुत्तरतस्त्रिशृङ्गमकरौ अष्टाभिरेतैः परिस्तृतोऽग्निरिव परितश्चकास्ति काञ्चनगिरिः ॥ २७ ॥ मेरोर्मूर्धनि भगवत आत्मयोनेर्मध्यत उपक्लृप्तां पुरीमयुतयोजनसाहस्रीं समचतुरस्रां शातकौम्भीं वदन्ति ॥ २८ ॥ तामनु परितो लोकपालानामष्टानां यथादिशं यथारूपं तुरीयभागेन पुरोऽष्टावुपक्लृप्ताः ॥ २९ ॥ इति श्रीभा० पञ्चभुवनकोशवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

श्रद्धावती गंधवती तथा चान्या महोदया ॥ यशोवती च ब्रह्मेंद्रवह्न्यादीनां यथाक्रममिति " ॥ २ ॥ ये यह अग्नि आदि लोकपाल हैं, येक समय यह सब अपनी २ बड़ाई करते थे तब भगवान्‌ने यक्षका रूप धार एक तृण स्थापन किया और कहा इसै जलाओ तब अग्निने जाय वा ब्रह्मतेजसै प्रार्थना कीनी कि तुममें कहा पराक्रम है, तब यज्ञरूपधारी ब्रह्मतेजने कही हमारा तौ पराक्रम हैही परन्तु हम येक तृण स्थापन करते हैं तुम इसको जलाओ सो वोहो तृण अग्निसें नहीं जला, वायुसै नहीं उडा, वज्रसे नहीं टूटा, तब देवताओंका अभिमान गया, और जाना कि ब्रह्मतेजंसेही सब दीतिमान है वोह सब कुछ करताहै, हमारा करा कुछ नहीं हो सक्ता यासे ब्रह्मतेज बडो है, अग्नि आदिको तेज छोटो है ॥ २९ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां पञ्चमस्कन्धे भुवनकोशवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

द नाम सुवर्ण होता है ॥ २० ॥ सब देवता इत्यादिक अपनी स्त्रीयें सहित जिस सौनेके मुकुट, कडा, कौंदनी, इत्यादिक आभरण वनाकै धारण करैहैं ॥ २१ ॥ सुपार्श्व पर्वतकी कक्षामें महा कदम्बक नामक जो बड़ा भारी कदम्बका पेड़ है उसके समस्त कोटरौंसै पांच पांच मधुकी धारा उस पर्वतसै निकलकर पश्चिमकी ओरमें इलावृत वर्षको अपनी सुगंधिसै चारौं ओर सौ योजनतक सुवासित कर देतीहै ॥ २२ ॥ जो इस पर्वतकी मधुधाराओंका सेवा करतेहै उनके वदनकी सुगंधिके स्पर्शसै वायु सुगंधित होकर अपनी सुगंधिसै सौ योजनतक महका देतीहै ॥ २३ ॥ ऐसे कुमुद पर्वतपर शतवल्शनामक वट है, वाके स्कंधौंसै नीचे दूध दधि सहत गुड अन्नादिक श्रेष्ठ शैय्या आसन आभरण आदिक सब मनोवांछित

यदु ह वाव विबुधादयः सह युवतिभिर्मुकुटकटककटिसूत्राद्याभरणरूपेण खलु धारयन्ति॥२१॥यस्तु महाकदम्बः सुपार्श्वनिरूढो यास्तस्य कोटरेभ्यो विनिःसृताः पञ्चायामपरिणाहाः पञ्च मधुधाराः सुपार्श्वशिखरात् पतन्त्योऽपरेणात्मानमिलावृतमनुमोदयन्ति॥२२॥या ह्युपयुञ्जानानां मुखनिर्वासितो वायुः समन्ताच्छतयोजनमनुवासयति ॥२३॥ एवं कुमुदनिरूढो यः शतवल्शो नाम वटस्तस्य स्कन्धेभ्यो नीचीनाः पयोदधिमधुघृतगुडान्नाद्यम्बरशय्यासनाभरणादयः सर्व एव कामदुघा नदाः कुमुदाग्रात् पतन्तस्तमुत्तरेणेलावृतमुपयोजयन्ति॥ २४ ॥ यानुपजुषाणानां न कदाचिदपि प्रजानां वलीपलितक्लमस्वेददौर्गन्ध्यजरामयमृत्युशीतोष्णवैवर्ण्योपसर्गादयस्तापविशेषा भवन्ति॥ यावज्जीवं सुखं निरतिशयमेव ॥ २५ ॥ कुरङ्गकुररकुसुम्भवैकङ्कत्रिकूटशिशिरपतङ्गरुचकनिषधशिनीवासकपिलशङ्खवैदूर्यजारुधिहंसर्षभनागकालञ्जरनारदादयो विंशतिगिरयो मेरोः कर्णिकाया इव केसरभूता मूलदेशे परित उपक्लृप्ताः ॥२६॥

फलदायक जो नद इस कुमुदके अग्रभागसे निकलकर उत्तरके इलावृतमें होयकर समुद्रमें मिलै हैं ॥ २४ ॥ जिन नदनदीनमें स्नान करवेवारी वहांकी प्रजाको बुढापो परिश्रम पशीना दुर्गंध जरा मृत्यु शीत उष्ण विवर्णता और विघ्नादिक तापविशेष कभी नहीं होते हैं जवतक जीवे हैं तबतक अत्यंत सुख भोगैहैं ॥ २५ ॥ कुरंग कुरर कुसुंभ वैकंक त्रिकूट शिशिर पतंग रुचक निषध शिनिवास कपिल शंख वैडूर्य जारुधि हंस ऋषभ नाग कालंजर नारद आदि वीस सुमेरुपर्वतके कलीरूप हैं, केसरभूत सुमेरु है, मूलदेशमें सब ओरसे रचेभद हैं ॥ २६ ॥

मंदराचलके मध्यमें ग्यारह हज्जार योजन ऊंचो देवतानको एक आमको वृक्ष है उस्सै वासी पर्वतके शिखरसमान मोटे अमृतसमान मीठे फल गिरै हैं उन फलोंको प्रमाण वायुपुराणमें आठसे इकसठ हाथ लंबा है श्लोकोयं ॥ "अरत्नीनां शतान्यष्टावेकषष्ट्यधिकानिच ॥ फलप्रमाणमाख्यातमृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः" ॥ १६ ॥ तिनके टूटनेसें अतिमधुर सुरभी सुगंध बहुत फैले है वाके लालूसके जलसे अरुणोदानाम नदी मंदराचलके ऊपरके शिखरसे गिरतीभई इलावृतके पूर्व ओर वहती जायहै ॥ १७ ॥ जामें स्नान करनेंसे भवानीकी अनुचरी यक्षोंकी स्त्रियोंके शरीरके स्पर्शसे

मन्दरोत्सङ्ग एकादशशतयोजनोत्तुङ्गदेवचूतशिरसो गिरिशिखरस्थूलानि फलान्यमृतकल्पानि पतन्ति ॥ १६ ॥ तेषां विशीर्यमाणानामतिमधुरसुरभिसुगन्धिबहुलारुणरसोदेनारुणोदा नाम नदी मन्दरगिरिशिखरान्निपतन्ती पूर्वेणेलावृतमुपप्लावयति ॥ १७ ॥ यदुपजोषणाद्भवान्या अनुचरीणां पुण्यजनवधूनामवयवस्पर्शसुगन्धवातो दशयोजनं समन्तादनुवासयति ॥ १८ ॥ एवं जम्बूफलानामत्युच्चनिपातविशीर्णानामनस्थिप्रायाणामिभकायनिभानां रसेन जम्बू नाम नदी मेरुमन्दरशिखरादयुतयोजनादवनितले निपतन्ती दक्षिणेनात्मानं यावदिलावृतमुपस्यन्दयति ॥ १९ ॥ तावदुभयोरपि रोधसोर्या मृत्तिका तद्रसेनानुविध्यमाना वाय्वर्कसंयोगविपाकेन सदाऽमरलोकाभरणं जाम्बुनदं नाम सुवर्णं भवति ॥ २० ॥

सुगंधकी वायु चालीसकोसतक सब ओरसें सुगंधित करैहै ॥ १८ ॥ ऐसेई गुठली रहित हाथीके देहके समान मोटे जामुनके फलनको अतिऊंचेसै गिरकर टूटनेसे इनके रससे जंबूनाम नदी मेरुमंदरके शिखरसे दसहज्जार योजनसें धरतीमें गिरतीभई दक्षिणकी ओर अपने आत्माको इलावृतके तरफ वहती है ॥ १९ ॥ इस नदी दोनों किनारोंकी मृत्तिका उसके रससेभी पवन, और सूर्यके संयोगसे पककै देवलोकके आभरण योग्य जांबून-

---

१ शंका—कदम्ब, आम्र, जामुन बड इन वृक्षोंका चरित्र सुनके तथा इन वृक्षोंसे उत्पन्न हुये जो नदी तथा कुण्ड सब पदार्थोंको देनेवाले सुनिके हमारा चित्त अत्यन्त चकित होरहाहै, और कांपता है, शंका करके शंकासे डरके शंकाके भयसे छिपगया, क्योंकि आजतक ऐसी बात सुननेमें नहीं आई, कि नदीमें और कुण्डमें सब पदार्थ भर रहे हैं ?

उत्तर—जब ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब अपने अपने धर्ममें और वेदके मार्गमें दृढ और स्थित थे तब नदियोंका, कुण्डोंका, वृक्षोंका जो जो प्रभाव श्रीमद्भागवतमें लिखा है सो सब सत्य था, जब चारों वर्णोंने कलियुगमें अपने अपने धर्मको और वेदमार्गको त्यागदिया और पाखण्डी बन पाखण्डमतको ग्रहण किया, तब भगवान्ने समझा कि यह दुष्ट इन स्थानोंकोभी भ्रष्ट करेंगे यह विचार कर उन कुण्ड और वृक्षोंको गुप्त कर दिया और किसी किसीका प्रभाव हरलिया ॥

[illegible] जानवेवार ध्रुवपास नीचे रहनेहारे सप्तऋषि निश्चयकरकै तपकी अत्यंत सिद्धि देवेवारी यही है ऐसा निश्चय कर अपनी जटासमूहमें इनको धारण करते हैं वह जानते हैं कि सबके आत्मस्वरूप भगवान वासुदेवमें एकान्तिक भक्तियोग प्राप्त करनेसै और दूसरे पुरुषार्थ और ज्ञानमें आस्थारहित होकर निर्लोभी मनुष्य मुमुक्षु जैसे मुक्तिको धारण करते हैं उन्हीकी समान परम यत्न और आदर सत्कारसै गंगाको धारण करते हैं ॥ ३ ॥ तहांसै अनेक सहस्रकोटि विमान समूहोंसें सघन देवमार्गसे उतरती भई चंद्रमंडलकों भिजोयकर ब्रह्माके स्थानमें गिरती भई ॥ ४ ॥ तहां चार प्रकारसे धार भई हुई, चार नामसे चारों दिशामें वहती भई तलाव नदीनके पति समुद्रमें प्रवेश करती भई, सीता, अलकनंदा, चक्षु,

ततः सप्त ऋषयस्तत्प्रभावाभिज्ञायां ननु तपस आत्यन्तिकी सिद्धिरेतावती भगवति सर्वात्मनि वासुदेवेऽनुपरतभक्तियोगलाभेनैवोपेक्षितान्यार्थात्मगतयो मुक्तिमिवागतां मुमुक्षव इव सबहुमानमद्यापि जटाजूटैरुद्वहन्ति ॥ ३ ॥ ततोऽनेकसहस्रकोटिविमानानीकसंकुलदेवयानेनावतरन्तीन्दुमण्डलमावार्य ब्रह्मसदने निपतति ॥४॥ तत्र चतुर्धा भिद्यमाना चतुर्भिर्नामभिश्चतुर्दिशमभिस्पन्दती नदनदीपतिमेवाभिनिविशति ॥ ५॥ सीताऽलकनन्दा चक्षुर्भद्रेति ॥ सीता तु ब्रह्मसदनात् केसराचलादिगिरिशिखरेभ्योऽधोऽधः प्रस्रवन्ती गन्धमादनमूर्धसु पतित्वा अन्तरेण भद्राश्ववर्षं प्राच्यां दिशि क्षारसमुद्रमभिप्रविशति ॥६॥ एवं माल्यवच्छिखरान्निष्पतन्ती ततोऽनुपरतवेगा केतुमालमभिचक्षुः प्रतीच्यां दिशि सरित्पतिं प्रविशति ॥७॥ भद्रा चोत्तरतो मेरुशिरसो निपतिता गिरिशिखरात् गिरिशिखरमतिहाय शृङ्गवतः शृङ्गादवस्पन्दमाना उत्तरांस्तु कुरूनभित उदीच्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति ॥ ८ ॥

भद्रा भई ॥ ५ ॥ सीतानाम्नी जो श्रीगंगाजीकी धार ही सो ब्रह्माके स्थानसें केसराचल आदि पर्वतशिखरोंसे नीचेको वहतीभई गन्धमादनके मूंडपर गिरकर भद्राश्वखंडके पास होती भई पूर्वकी दिशाके क्षारसमुद्रमें प्रवेश होती है ॥६॥ ऐसे माल्यवान पर्वतके शिखरसे गिरतीभई महावेगवती केतुमालखंडके सामने होती भई चक्षुसंज्ञा श्रीगंगाजीकी धारा पश्चिम दिशाके समुद्रमें प्रवेश करती है ॥ ७ ॥ भद्रा उत्तरसें सुमेरुके ऊपरसें गिरी भई पर्वतके शिखरोंसे पर्वतके शिखरनको उल्लंघन करती भई शृंगवानपर्वतोंके शृंगोंसे वहतीभई कुरुखंडके उत्तरकी ओर होतीभई उत्तर दि-

88

शाके समुद्रमैं प्रवेश करती है ॥ ८ ॥ तैसेंई अलकनंदा दक्षिणकी ओरसे आतीभई ब्रह्माजीके स्थानसे बहुतसे पर्वतोंके समूहोंको उल्लंघन करती भई सुवर्णोंके पर्वतोंको अतिवेगसें वहाती भई भरतखंडके समीप होती भई दक्षिण दिशाके समुद्रमें प्रवेश करती भई जाके स्नानार्थ पा-

तथैवालकनन्दा दक्षिणेन ब्रह्मसदनाद् बहूनि गिरिकूटान्यतिक्रम्य हेमकूटाद् हेमकूटान्यतिरभसतररंहसा लुठन्ती भारतमभिवर्षं दक्षिणस्यां दिशि जलधिमभिप्रविशति यस्यां स्नानार्थं पानार्थं चागच्छतः पुंसः पदे पदेऽश्वमेधराजसूयादीनां फलं न दुर्लभमिति ॥९॥ अन्ये च नदा नद्यश्च वर्षे वर्षे सन्ति बहुशो मेर्वादिगिरिदुहितरः शतशः ॥१०॥ तत्रापि भारतमेव वर्षं कर्मक्षेत्रमन्यान्यष्टवर्षाणि स्वर्गिणां पुण्यशेषोपभोगस्थानानि भौमानि स्वर्गपदानि व्यपदिशन्ति ॥११॥

नार्थ आयवेवारे पुरुषकों पदपदमें अश्वमेध राजसूययज्ञको फल प्राप्त होय है ॥ ९ ॥ औरभी तलाव नदियें खंडखंडमें बहुत हैं, सुमेरुआदि पर्वतोंकी सैकडों नदियें पुत्रीरूप होतीभई ॥ १० ॥ तहांभी ये भारतखंड कर्मक्षेत्र है, और जो आठ खंड हैं, सो स्वर्गवासियोंके पुण्यभोगस्थान

---

१ परन्तु विश्वास पूर्वक गंगाही स्नान करने जाय तौ पद पद पर सौ अश्वमेधका फल होताहै, एकसमय महादेवजी पार्वतीजीको लेकर मकरकी संक्रान्तिमें प्रयागराजमें स्नान करनेको जातेथे, तब मार्गमें बहुतसे मनुष्योंको पार्वतीजीने स्नान करनेको जाते देख शिवजीसे गंगास्नानका माहात्म्य पूछा, तब शिवजी बोले जो गंगास्नानको आते हैं, उनको एक एक पगपर सौ अश्वमेधकी बराबर फल होता है, करोडों जन्मके पाप दूर होजाते हैं, वोह देवतासमान होजाताहै, यह सुन पार्वतीजी बोली लाखों मनुष्य ब्राह्मण शूद्रादिक स्नानकर चले आते हैं, इनकी कुरूपताभी न गई, देवता तौ कहांसे होंगे, तुम कहते हैं ऐसा फल होगा. सो मैं सत्य कैसे जानूं, महादेवजी बोले हम प्रत्यक्ष दिखातेहैं, यह कह शिवजी कुष्ठीका रूप बना यात्रियोंके मार्गमें बैठगये, पार्वतीसे कहा तुम इसी सुंदर शरीर धारे मेरी मक्खी उडावो, जो कोई वृत्तान्त बूझै तौ कहदीजो कि कर्मविपाकमें इनकूं बताया हैं, जिसने सौ अश्वमेध यज्ञ किये हैं, उसके छूनेसे शरीर अच्छा होगा; सो यहां लक्षो मनुष्य हैं, किसीने तौ यज्ञ किये होंगे, पार्वतीने वैसाही किया, उनको दिव्यरूप देखकर सैकडों मनुष्य इकठे होगये, कोई तौ उनमें मोहित हो कोई अपने संग चलनेको कहने लगे, कोई हंसी करने, कोई द्रव्यका लोभ दैने लगे, ज्ञानी लोगोंने सराहना करी कि स्त्रीको धन्य है जो ऐसी दशामेंभी पतिकी सेवा करतीहै उसी समय एक कंगाल ब्राह्मणने आनकर पूछा, माता तुम यहां किस कारण बैठीहो, कहीं एकान्तमें लेजाकर बैठो, पार्वतीने अपने बैठनेका कारण कह सुनाया, यह सुनकर ब्राह्मण बोला तुम १०० अश्वमेधको कहती हो मैंने लाखों किये हैं यह कहकर महादेवजीके अंगसे हाथ लगाया, और शरीर अच्छा होगया मनुष्य बडे आश्चर्यमें हुए, कि प्रतिवर्ष एक अश्वमेधयज्ञ होताहै, इस कंगालने लाखों कहांसे किये, तब वोह बोले कि जो एक पग गंगाकूं चलताहै, सो एक यज्ञका फल प्राप्त होताहै, मैं बीसियों बार स्नान करने पैरोंही आयाहूं, इसकारण सहस्रों यज्ञ किये हैं [illegible] महादेवजीने कहा कि पार्वती [illegible]नोंमें यह स्नान करने आयाहै, जो ऐसा विश्वासी है इससे जो ऐसे विश्वाससे स्नान करता है वोही फललाभ करताहै.

हैं वेभी भूमिके विकार हैं, स्वर्ग नामकरकै विदित हैं ॥ ११ ॥ इन खंडोंमें दसहज्जार वर्षकी आयुके देवतोंकी समान पुरुष रहतेहैं जिनमें दसहजार हाथीका वल है वज्रसा शरीर है बल अवस्था और प्रसन्नता सहित स्त्रीपुरुष भोग भोगते रहते हैं मैथुनके अंतमें जब आयुका एक वर्ष रहजाताहै तब उनकी स्त्री गर्भ धारण करती हैं त्रेतायुगके समान वहांके वासी होतेहैं वैसाही समय रहता है ॥ १२ ॥ इन खण्डोंके रहनेहारे देवपति अपने अपने योग्य स्थानोंमें अपने २ मुख्य सेवकोंसे पूजित हो अपनी २ इच्छानुसार बडे २ महात्मा पुरुष आश्रमोंमें पर्वतोंमें कन्दरोंमें निर्मल जलाशयोंमें अनेक प्रकारके जलविहार करते रहतेहैं और छहो ऋतुओंमें वहां वृक्षोंकी शाखाओंमें फूल फूलते हरे पत्तोंके समीप कोमल कौंपलोंसे अत्यन्त झुकीहुई शाखा

एषु पुरुषाणामयुतं पुरुषायुर्वर्षाणां देवकल्पानां नागायुतप्राणानां वज्रसंहननबलवयोमोदप्रमुदितमहासौरतमिथुनव्यवायापवर्गवर्षधृतैकगर्भकलत्राणां तत्र तु त्रेतायुगसमः कालो वर्तते ॥१२॥ यत्र ह देवपतयः स्वैः स्वैर्गणनायकैर्विहितमहाऽर्हणाः सर्वर्तुकुसुमस्तबकफलकिसलयश्रियानम्यमानविटपलताविटपिभिरुपशुम्भमानरुचिरकाननाश्रमायतनवर्षगिरिद्रोणीषु तथा चामलजलाशयेषु विकचविविधनववनरुहामोदमुदितराजहंसजलकुक्कुटकारण्डवसारसचक्रवाकादिभिर्मधुकरनिकराकृतिभिरुपकूजितेषु जलक्रीडादिभिर्विचित्रविनोदैः सुललितसुरसुन्दरीणां कामकलिलविलासहासलीलाऽवलोकाकृष्टमनोदृष्टयः स्वैरं विहरन्ति ॥१३॥ नवस्वपि वर्षेषु भगवान् नारायणो महापुरुषः पुरुषाणां तदनुग्रहायात्मतत्त्वव्यूहेनात्मनाऽद्यापि सन्निधीयते ॥ १४ ॥

और नेगवाले वृक्षोंसे शोभा छारही है खिले हुए नवीन कमलोंकी सुगंधिसे प्रसन्न हो राजहंस जलमुर्गावि कारंडव सारस और [illegible]वा आदि अनेक प्रकारके पक्षी और भौरों सरोवरोंमें शब्द करतेहैं सुंदर अंगनाओंका कामदेवसे क्षुभित विलास हास और लीलापूर्वक चितवनसे वहां विहरनेहारोंके मन और नेत्रोंकी खैचा खैची होतीरहतीहै ॥ १३ ॥ नवखंडोंमें भगवान्नारायण महापुरुष उन खंडवासी पुरुषनके अनुग्रहके लिये अपने आत्माके तत्त्वकी मूर्तिके समूहकरकै अद्यापि सम्यक् प्रकारकरकै निवास करै हैं ॥ १४ ॥

90

इलावृतखंडमें तो भगवान् श्रीमहादेवजी एकही पुरुष है, और कोई पुरुष वहां नहीं प्रवेश करै है, याको स्त्रीभाव नवमस्कंधमें कहेंगे, भवानीके शापको निमित्त जहां प्रवेश करतेही पुरुष स्त्री होजाय है ॥ १५ ॥ असंख्यातसहस्र अर्बुद स्त्रीगणसहित भवानीनाथ शिवासे सेवित रहते हैं तहां शिवजी शेष भगवान्की आराधना करते हैं वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन नामकी चार मूर्तिवाले महापुरुष भगवान्की तमोगुणी चौथी संकर्षण नाम मूर्तिकी कि जिससे स्वयं उत्पन्न हुएहै आराधना करते और स्वरूपको समीपमें स्थापित कर यह मंत्र जपते हैं ॥ १६ ॥ श्रीशंकरजी बोले उत्पत्ति पालन नाशकर्ता षड्गुण ऐश्वर्यवान महापुरुष सर्व गुणप्रकाशक अनंत अव्यक्त श्रीसंकर्षण भगवानके अर्थ नमस्कार होय ॥ १७ ॥ हे भजनीय !

इलावृते तु भगवान् भव एक एव पुमान् न ह्यन्यस्तत्रापरो निर्विशति भवान्याः शापनिमित्तज्ञः ॥ यत् प्रवेक्ष्यतः स्त्रीभावस्तत् पश्चाद् वक्ष्यामि ॥ १५ ॥ भवानीनाथैः स्त्रीगणार्बुदसहस्रैरवरुध्यमानो भगवतश्चतुर्मूर्तेर्महापुरुषस्य तुरीयां तामसीं मूर्तिं प्रकृतिमात्मनः संकर्षणसंज्ञामात्मसमाधिरूपेण सन्निधाप्यैतदभिगृणन् भव उपधावति ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॐ नमो भगवते महापुरुषाय सर्वगुणसंख्यानायानन्तायाऽव्यक्ताय नम इति ॥१७॥ भजे भजन्यारणपादपङ्कजं भगस्य कृत्स्नस्य परं परायणम् ॥ भक्तेष्वलं भावितभूतभावनं भवापहं त्वा भवभावमीश्वरम् ॥ १८ ॥ न यस्य मायागुणचित्तवृत्तिभिर्निरीक्षतो ह्यण्वपि दृष्टिरज्यते ॥ ईशे यथा नोऽजितमन्युरंहसां कस्तं न मन्येत जिगीषुरात्मनः ॥ १९ ॥

संपूर्ण ऐश्वर्यके दायक परमस्थान भक्तोंमें स्वरूप प्रकट करनेहारे संसारनाशक सब संसारसे भावना करै हुए ईश्वरके शरणागत रक्षक चरणकों हम भजै हैं ॥ १८ ॥ मायाके गुण चित्तकी वृत्तिसे देखतेभी जिसकी अणुमात्र दृष्टि लिप्त नहीं होय है, जैसे हम लोग क्रोधके वेगको जीतनेकी सामर्थ्य नहीं रखते इस कारण हमको इस संसारसागरसै बचना कठिन है आपही अपनी आत्माको जीतकर वशमें रखते हैं इस कारण जो अपनी आत्माको जीतकर मोक्षकी इच्छा करै तौ वह कौन पुरुष आपका भजन करै अर्थात् आपहीका करैं ॥ १९ ॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि तैसैंई भद्रश्रवानामक धर्मको पुत्र तिस कुलके पतिलोग पुरुष सब भद्राश्वखंडमें साक्षाद्भगवान्वासुदेवकी धर्ममयी प्रियदेह श्रीहयग्रीवजी महाराजको परमसमाधिसे ध्यानकर ये कहते स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ भद्रश्रवा बोले कि उत्पत्तिपालननाशकर्ता षड्गुणऐश्वर्यवान् आत्माके शोधन करवेवारे धर्मके अर्थ वारंवार नमस्कार होय ॥ २ ॥ श्रीभगवानकी चेष्टा बडी विचित्र है; कि या जनकों काल मारे है तोभी वह ईश्वरकों न देखै है, असत् कुकर्मोंके सेवन करनेको ध्यान करै हैं पिता पुत्र इत्यादिकोंको जरायकर फेरभी आप जीवेकी इच्छा करै है ॥ ३ ॥ कविलोग व: विश्वको मिथ्या कहैं हैं, और अध्यात्मवेत्ता विद्वान याको समाधिसे प्रत्यक्ष नाशवान देखते हैं तोभी हे अज ! तुह्मारी माया करकै

श्रीशुक उवाच ॥ तथा भद्रश्रवा नाम धर्मसुतस्तत्कुलपतयः पुरुषा भद्राश्ववर्षे साक्षाद् भगवतो वासुदेवस्य प्रियां तनूं धर्ममयीं हयशीर्षाभिधानीं परमेण समाधिना सन्निधाप्येदमभिगृणन्त उपधावन्ति ॥ १॥ भद्रश्रवस ऊचुः ॥ ॐनमो भगवते धर्मायात्मविशोधनाय नम इति ॥२॥ अहो विचित्रं भगवद्विचेष्टितं घ्नन्तं जनोऽयं हि मिषन्न पश्यति ॥ ध्यायन्नसद् यर्हि विकर्म सेवितुं निर्हृत्य पुत्रं पितरं जिजीविषुः॥३॥ वदन्ति विश्वं कवयः स्म नश्वरं पश्यन्ति चाध्यात्मविदो विपश्चितः॥ तथाऽपि मुह्यन्ति तवाऽज मायया सुविस्मितं कृत्यमजं नतोऽस्मि तम् ॥ ४ ॥ विश्वोद्भवस्थान निरोधकर्म ते विकर्तुरङ्गीकृतमप्यपावृतः ॥ युक्तं न चित्रं त्वयि कार्यकारणे सर्वात्मनि व्यतिरिक्ते च वस्तुतः ॥५॥ वेदान् युगान्ते तमसा तिरस्कृतान् रसातलाद् यो नृतुरंगविग्रहः॥प्रत्याददे वै कवयेऽभियाचते तस्मै नमस्तेऽवितथे हिताय त इति॥६॥

मोहित हैं ये आपको वडो विस्मय करायवेवारो कृत्य है, याते जन्मरहित अजन्मा तुमको हम नमस्कार करै हैं ॥ ४ ॥ आवरणरहित अकर्ता तुमनें विश्वकी उत्पत्ति पालन नाश अंगीकार करै हैं, सबकी आत्मा, सब वस्तुसें व्यतिरिक्त कार्य कारणरूप तुममें यह कुछ विचित्र नहीं है, ये युक्तही है ॥ ५ ॥ प्रलय समयमें तमरूप दैत्यसैं हरण किये वेदौंको देख आप हयग्रीवरूप धारकर रसातलसे लातेभए, ब्रह्माके प्रार्थना करनेपर उनको दिये ऐसे सत्यसंकल्प सबके हितकारी तुह्मारे अर्थ नमस्कार होय ॥ ६ ॥

क्रूर दृष्टिवाले पुरुषोंको आप मदमत्तके समान भयदायक मदिरा और आसवसै लाल नेत्र किये मायाद्वारा प्रतीत होतेहो कारण कि आपके चरणस्पर्शसै कामातुर हो नागोंकी वधू लज्जाके मारे आपका पूजनभी संपूर्णतासै नहीं करसक्ती डरती तौसौं हैं कि कहीं भस्म न करदे और कहीं फूलकी पखरी चरणोंमें न लगजाय इससैं पूजा करते डरती हैं ॥ २० ॥ ऋषि और वेदमंत्र या विश्वकी उत्पत्ति पालन नाश करनेहारे आपको अनंत और उत्पत्ति पालन प्रलयसे रहित कहते हैं सहस्रों मस्तकोंमेंसे किसी एक मस्तकपर सरसौंकी समान आप भूमंडल धारण करते हैं और उसके बोझको कुछ नहीं जानते ऐसे आपके निमित्त नमस्कार हो ॥ २१ ॥ जिनके आद्य सत्त्वगुणी महाविज्ञानरूपसै वासुदेव होते भये, उनसै भगवान ब्रह्मा भये

असद्दृशो यः प्रतिभाति मायया क्षीबेव मध्वासवताम्रलोचनः॥न नागवध्वोऽर्हण ईशिरे ह्रिया यत्पादयोः स्पर्शनधर्षितेन्द्रियाः ॥ २० ॥ यमाहुरस्य स्थितिजन्मसंयमं त्रिभिर्विहीनं यमनन्तमृषयः ॥ न वेद सिद्धार्थमिव क्वचित् स्थितं भूमण्डलं मूर्धसहस्रधामसु ॥ २१ ॥ यस्याद्य आसीद् गुणविग्रहो महान् विज्ञानधिष्ण्यो भगवानजः किल ॥ यत्संभवोऽहं त्रिवृता स्वतेजसा वैकारिकं तामसमैन्द्रियं सृजे ॥ २२ ॥ एते वयं यस्य वशे महात्मनः स्थिताः शकुन्ता इव सूत्रयन्त्रिताः ॥ महानहं वैकृततामसेन्द्रियाः सृजाम सर्वे यदनुग्रहादिदम् ॥२३॥ यन्निर्मितां कर्ह्यपि कर्मपर्वणीं मायां जनोऽयं गुणसर्गमोहितः ॥ न वेद निस्तारणयोगमञ्जसा तस्मै नमस्ते विलयोदयात्मने ॥ २४ ॥ इति श्रीभागवते म० पञ्चमस्कन्धे इलावृतखण्डे भगवत्संकर्षणवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

जिनसें हम रुद्र भये मैं त्रिगुणात्मक अहंकारसे देवता पंचमहाभूत और इन्द्रियवर्गको प्रगट करताहूं ॥ २२ ॥ जैसे कीट विहंग रस्सीसै बंध कर पराये वशमें हो जाते हैं इसी प्रकार आपके वशमें होकर यह हम सब महत्तत्व देवता भूत और इन्द्रियगण होरहे हैं जिनके अनुग्रहसै हम सब ब्रह्माण्डको सृजतेहैं और आपको सृजनहार कहतेहैं ॥ २३ ॥ जिनकी रचीभई कर्मोंकी पर्वरूपधारिणी मायाके गुणसर्गोंसे मोहित होय ये जन अनायाससै निस्तारणके योगको नहीं जानते ऐसे उत्पत्ति पालन नाशकर्ता भगवानके अर्थ नमस्कार होय ॥२४॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां पञ्चम० इलावृतखण्डे भगवत्संकर्षणवर्णनं नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

घर स्त्री पुत्र धन बंधुमें हमारो संग न होय, जो संग होय तो भगवत्प्रियोंमें होय, क्योंकि जो प्राणकी वृत्तिसे परितुष्ट होनेवाले आत्मवान् ज्ञानी जैसे तत्काल सिद्ध होजाते हैं ऐसे इन्द्रियोंका प्रसन्न रखनेवाला कभी नहीं होता ॥ १०॥ भगवद्भक्तोंके सत्संगसै पुरुष मुकुंद भगवानके चरित्र और पराक्रमको जान जाता है उनके प्रभावको सुनकर जो पुरुष उनकी सेवा करते हैं भगवान श्रवणद्वारा उनके हृदयमें प्रवेशकर उनके हृदयका मल हरलेतेहैं ऐसे गंगादि तीर्थ तौ शरीरका मल हरते हैं इस कारण भक्तौंकी संगति कौन न करै याते मुकुंदके चरित्रको सब कोई श्रवण करै हैं ॥ ११ ॥ जाकी भक्ति फलकी चाह रहित भगवानमें है, वहां सबगुणसहित सबदेवता आवै हैं, जो हरिमें भक्तिरहित है वामें बडे गुण नहीं आवै हैं, वह मनोरथ-

माऽगारदारात्मजवित्तबन्धुषु सङ्गो यदि स्याद्भगवत्प्रियेषु नः ॥ यः प्राणवृत्त्या परितुष्ट आत्मवान् सिध्यत्यदूरान्न तथेन्द्रियप्रियः॥ १०॥ यत्सङ्गलब्धं निजवीर्यवैभवं तीर्थं मुहुः संस्पृशतां हि मानसम् ॥ हरत्यजोऽन्तः श्रुतिभिर्गतोऽङ्गजं को वै न सेवेत मुकुन्दविक्रमम् ॥ ११ ॥ यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः ॥ हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा मनोरथेनासति धावतो बहिः ॥ १२ ॥ हरिर्हि साक्षाद् भगवाञ्छरीरिणामात्मा झषाणामिव तोयमीप्सितम् ॥ हित्वा महांस्तं यदि सज्जते गृहे तदा महत्त्वं वयसा दम्पतीनाम् ॥ १३ ॥ तस्माद् रजोरागविषादमन्युमानस्पृहाभयदैन्याधिमूलम् ॥ हित्वा गृहं संसृतिचक्रवालं नृसिंहपादं भजताऽकुतोभयमिति ॥ १४ ॥ केतुमालेऽपि भगवान् कामदेवस्वरूपेण लक्ष्म्याः प्रियचिकीर्षया प्रजापतेर्दुहितॄणां पुत्राणां तद्धर्पतीनां पुरुषायुषाऽहोरात्रपरिसंख्यानानां यासां गर्भा महापुरुषमहास्त्रतेजसोद्वेजितमनसां विध्वस्ता व्यसवः संवत्सरान्ते विनिपतन्ति ॥१५॥

कर असत्पदार्थोंमें बाहिर दौडतो फिरे है ॥१२॥ श्रीहरि भगवान् साक्षात् शरीरधारीनके आत्मा है, जैसे मत्स्यनको जल सदा अभिलषित है, यासे बडे लोग भक्ति त्याग जो घरमें आसक्त होजाय तौ उसका बडप्पन ऐसा है कि जैसे साधारण स्त्री पुरुषौंका बडप्पन अवस्थासै गिना जाता है भगवानकी भक्ति करनाही बडप्पन है ॥ १३ ॥ ताते रजोगुण राग विषाद क्रोध चाहना भय दीनताको मूल संसार, और सबको डुबानेवारों भंवररूप घरकों त्याग भयरहित नृसिंहजीके पादकों भजो ॥ १४ ॥ केतुमालखंडमें भगवान् कामदेवके स्वरूपकरकै श्रीमहालक्ष्मीजीके प्रियकी इच्छाकर सदा

हरिवर्षखंडमें भगवान् नृसिंहरूप धार कर रहैहै, तिनके रूपग्रहणको निमित्त सप्तम स्कंधमें कहैंगे, तिनको प्रियरूप महापुरुषगुणको पात्र महाभागवत दैत्यदानवकुलको पवित्र करवेवारो शील आचरणवान प्रल्हादजी फल संकल्परहित अनन्यभक्तियोगकरकै वा खंडके सब पुरुषसहित उपासना कर ये उच्चारण करैं है[१] ॥ ७ ॥ ॐकारसहित भगवान् नरसिंहके अर्थ नमस्कार होय, आप तेजकेभी तेजरूप हो प्रगट हो २ वज्रसमान नख व-

हरिवर्षे चापि भगवान् नरहरिरूपेणास्ते तद्रूपग्रहणनिमित्तमुत्तरत्राभिधास्ये ॥ तद्दयितं रूपं महापुरुषगुणमहाभागवतो दैत्यदानवकुलतीर्थीकरणशीलाचरितः प्रह्लादोऽव्यवधानानन्यभक्तियोगेन सह तद्वर्षपुरुषैरुपास्ते चोदाहरति ॥ ७ ॥ ॐनमो भगवते नरसिंहाय नमस्तेजस्तेजसे ॥ आविराविर्भव वज्रनख वज्रदंष्ट्र कर्माशयान् रन्धय रन्धय तमो ग्रस ग्रस ॐस्वाहा अभयमयात्मनि भूयिष्ठाः ॐक्ष्रौम् ॥ ८॥ स्वस्त्यस्तु विश्वस्य खलः प्रसीदतां ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया ॥ मनश्च भद्रं भजतादधोऽक्षज आवेश्यतां नो मतिरप्यहैतुकी ॥ ९ ॥

ज्रसदृश डाढसे, कर्मोंकी वासनाका भस्म करो अंधकारको ग्रसो ग्रसो ॐके अर्थ स्वाहा है, आत्मामें अभय करो २ ॐक्ष्रौं ये बीजमंत्र है ॥ ८ ॥ संसारका मंगल होय दुष्ट अपनी क्रूरता छोडैं और सब जीव आपसमें बुद्धिसे मंगलको ध्यान करो, मन कल्याणको भजै, भगवानमें हमारी फलानुसंधानरहित बुद्धि लगै ॥ ९ ॥

---

[१] प्रहलादजीने भगवानसे वरदान मांगा कि महाराज मैं चाहता हूं मेरी सब प्रजा सुमार्गमें चले, वैकुंठको जाय, नृसिंहजी बोले सब जीवोंको वैकुंठकी इच्छा नहीं होती, और वर मांगो, अथवा वैकंठ जो चले उसे संग लिवालाओ, प्रहलाद तथास्तु कहकर ढूंढने चले, सोचने लगे बालक तौ अज्ञानी, युवा विषयी,वृद्धोंकी स्वर्गकी इच्छा होती है, एक महावृद्धसे पूछा स्वर्ग चलोगे, उसने कहा चलैंगे, यह बोले तौ चलो वोह बोला जी अभी नही, अभीतौ पोती और पोतेका विवाह देखलें, प्रहलाद बोले तुम बडे मूर्ख हो; जो स्वर्गजानेमें टालवाल करतेहो वृद्धने कही चलो जाओ अपने घरकूं, बस तुम्हारे कहेसे अभी प्राणत्याग न कर दैं, जाओ नहीं तौ हमारे पुत्र सुनैंगे तौ दंड दैंगे, प्रहलाद वहांसे चले, और विचारने लगे मनुष्य कोई नहीं जायगा, किसी महानिकृष्ट पशुके पास चलें, सो शूकरके पासजा उसे स्वर्ग चलनेको कहा, और स्वर्गके पदार्थोंका वर्णन किया उसने कहा मैं स्त्रीसे सम्मति करलूं, यह खडे रहे, और वोह शूकरीसे पूछकर आ इनसे कहने लगा कि महाराज वहां विष्ठाभी है ? प्रहलाद बोले बडे मूर्ख हो, वहां यह वस्तु नहीं, और सब कुछ है वह सुन वोह घुरघुरांकै इन्हें देखने लगा, तब प्रहलादने निराश हो भगवान्से कहा महाराज! आपकी माया बडी प्रबलहै सब जगतको मोह रखा है आपने चोलेमें सब प्रसन्न है विना सत्संग और तुम्हारी कृपाके किसीको वैकुंठकी प्राप्ति नहीं होती तुम्हारी माया बडी प्रबल है इसप्रकार स्तुति करते हैं.

धारते भए, तेज पराक्रम जगत्के प्राणिगणकी आत्मारूप आपके अर्थ नमस्कार होय ॥ २८ ॥ हिरण्मयखंडमें भगवान् कच्छपरूप धार निवास करते हैं तिनकों तिनके प्रियतम शरीरकों वा खंडके पुरुषोंके सहित अर्यमा पितृगणको स्वामी स्तुति करते या मंत्रकों जपै हैं ॥ २९ ॥ कच्छरूपधारी भगवानके अर्थ नमस्कार होय,सब सत्त्वगुणी विशेषणरूप जिनको स्थान जाननेमें नहीं आता तिनके अर्थ नमस्कार होय सब मनोरथ वर्षावनेवारे बडे सबके आधाररूप तुह्मारे अर्थ नमस्कार होय नमस्कार होय ॥ ३० ॥ आपकी मायासै बनोभयो अर्थरूप बहुरूपधारी यह पृथ्वी आदि सकल दृश्य आपका रूपही है तुमसे पृथक् नहीं है तथा असत् होनेपरभी दीखनेसै मृगतृष्णाके जलकी नाई इसकी किसी प्रकार संख्या नहीं हो सक्ती इस

हिरण्मयेऽपि भगवान् निवसति कूर्मतनुं बिभ्राणस्तस्य तत्प्रियतमां तनुमर्यमा सह वर्षपुरुषैः पितृगणाधिपतिरुपधावति ॥ मन्त्रमिमं चानुजपति ॥ २९॥ ॐ नमो भगवते अकूपाराय सर्वसत्त्वगुणविशेषणाय नोपलक्षितस्थानाय नमो वर्ष्मणे भूम्ने नमो नमोऽवस्थानाय नमस्ते ॥ ३० ॥ यद्रूपमेतन्निजमाययाऽर्पितमर्थस्वरूपं बहुरूपरूपितम् ॥ संख्या न यस्यास्त्ययथोपलम्भनात् तस्मै नमस्तेऽव्यपदेशरूपिणे ॥३१॥जरायुजं स्वेदजमण्डजोद्भिदं चराचरं देवर्षिपितृभूतमैन्द्रियम् ॥ द्यौः खं क्षितिः शैलसरित्समुद्रद्वीपग्रहर्क्षेत्यभिधेय एकः ॥३२॥ यस्मिन्नसङ्ख्येयविशेषनामरूपाकृतौ कविभिः कल्पितेयम् ॥ सङ्ख्या यया तत्त्वदृशाऽपनीयते तस्मै नमः साङ्ख्यनिदर्शनाय त इति ॥ ३३ ॥ उत्तरेषु च कुरुषु भगवान् यज्ञपुरुषः कृतवराहरूप आस्ते तं तु देवी हैषा भूः सह कुरुभिरस्खलितभक्तियोगेनोपधावति ॥ इमां च परमामुपनिषदमावर्तयति ॥ ३४ ॥

कारण अनिर्वाच्य जगतरूप आपको नमस्कार है ॥३१॥जरायुज स्वेदज अंडज उद्भिज्ज चर अचर देवता ऋषि पितर भूत इंद्रियोंको सुख द्यावापृथिवी आकाश धरती पर्वत नदी समुद्र द्वीप ग्रह नक्षत्र ये सब नामरूपधारी एक आपही हो ॥ ३२ ॥ असंख्यात विशेषण नामरूप आकृति जिन ईश्वरमें कवियोंसै कल्पित करी भई संख्या जा तत्वदृष्टिसे दूर करी जाय है, तिन सांख्यदर्शक आपके अर्थ नमस्कार होय ॥ ३३ ॥ उत्तर कुरुखंडमें भगवान् यज्ञपुरुष वाराह रूप धारे बैठे हैं, तिनको भूदेवी अखंड भक्तियोगसें सब कुरुवासियों करके सहित आराधन करै है, ये परम

हे अच्युत ! सो तुम हस्तकमल मेरे मस्तकपर धारो सुरवंदित हस्तकमल आप यादवनपर भक्तनपर धारो हो हे वरेण्य ! मोको चिह्नरूपसे वक्षस्थलमें धारोहो ईश्वरकी चेष्टाकों कहिवेको कौन समर्थ है ॥ २३ ॥ रम्यकखंडमें भगवान् मत्स्यरूपसे विराजते हैं कि जो स्वरूप इस खंडके अधिपति मनुजीको पहले दिखाया गयाथा श्राद्धदेव मनु आजतक अत्यन्त भाव भक्तिसे जिनका जिनका आराधन कर इस प्रकारकी स्तुति करते हैं ॥ २४ ॥ मुख्यतम भगवानके अर्थ नमस्कार होय, सत्व प्राण ओज सह वलरूप महामत्स्यावतारके अर्थ नमस्कार होय ॥ २५ ॥ आप सबके भीतर बाहर

स त्वं ममाप्यच्युत शीर्ष्णि वन्दितं कराम्बुजं यत्त्वदधायि सात्वताम् ॥ बिभर्षि मां लक्ष्म वरेण्य मायया क ईश्वरस्येहितमूहितुं विभुरिति ॥ २३ ॥ रम्यके च भगवतः प्रियतमं मात्स्यमवताररूपं तद्वर्षपुरुषस्य मनोः प्राक् प्रदर्शितम् ॥ स इदानीमपि महता भक्तियोगेनाराधयतीदं चोदाहरति ॥ २४ ॥ ॐ नमो भगवते मुख्यतमाय नमः सत्त्वाय प्राणायौजसे सहसे बलाय महामत्स्याय नम इति ॥ २५ ॥ अन्तर्बहिश्चाखिललोकपालकैरदृष्टरूपो विचरस्युरुस्वनः ॥ स ईश्वरस्त्वं य इदं वशे नयन् नाम्ना यथा दारुमयीं नरः स्त्रियम् ॥ २६ ॥ यं लोकपालाः किल मत्सरज्वरा हित्वा यतन्तोऽपि पृथक् समेत्य च ॥ पातुं न शेकुर्द्विपदश्चतुष्पदः सरीसृपं स्थाणु यदत्र दृश्यते ॥२७॥ भवान् युगान्तार्णव ऊर्मिमालिनि क्षोणीमिमामोषधिवीरुधां निधिम् ॥ मयासहोरुक्रम तेऽज ओजसा तस्मै जगत्प्राणगणात्मने नम इति ॥२८॥

घूमते हो लोकपाल तुम्हारे रूपको नहीं जान्ते आपका वेद रूपी वडा शब्द है जैसे मनुष्य कठपुतलीको अपने वशमें कर रखता है इसी प्रकार आपनेभी विधिनिषेध वाक्योंसे जगतको अपने वशमें कर रक्खा है आपही ईश्वर हो ॥ २६ ॥ ईर्षाके मारे लोकपाल जहां तहां तुमकों त्यागकर यत्न कर करकै अलग और मिलकरभी इस जगतकी रक्षा करनेका यत्न करने लगे परन्तु मनुष्य चौपाये सर्प स्थावरादिकी रक्षा करवेकूं समर्थ न हुए ॥ २७ ॥ हे उरुक्रम ! महातरंगोंसे व्याप्त महाप्रलयके समुद्रमें सब औषधी और वेलयुक्त पृथिवीको मेरे सहित

97

स्वतंत्र नहीं हैं, तुह्मारे आधीन हैं ॥ १९ ॥ इस कारणसै वह सब पति पतिही नहीं है पति तौ ऐसा होना चाहिये जो स्वयं निर्भय हो और भयातुरकी सब प्रकारसै रक्षा करसकै ऐसे पति तौ केवल आपही हो कारण कि आप अपने स्वरूपके लाभकी अपेक्षा दूसरे किसीको अधिक नहीं मान्ते जिसै दूसरेसै सुख मिलै वह स्वतंत्र नहीं है और जो परतंत्र हैं उन्है अवश्य दूसरौंसै भय होताहै ॥ २० ॥ हे भगवन् ! जो स्त्री निष्काम होकर तुह्मारे चरणकमलौंकी पूजा करती है वही अति चतुर है कारण कि उसै सब कामना प्राप्त होती हैं और जो फलकी कामनासै आपकी पूजा करतीहै उस्सै अधिक

स वै पतिः स्यादकुतोभयः स्वयं समन्ततः पाति भयातुरं जनम् ॥ स एक एवेतरथा मिथो भयं नैवात्मलाभादधिमन्यते परम् ॥२०॥ या तस्य ते पादसरोरुहार्हणं निकामयेत् साऽखिलकामलम्पटा ॥ तदेव रासीप्सितमीप्सितोऽर्चितो यद्भग्नयाच्ञा भगवन् प्रतप्यते ॥ २१ ॥ मत्प्राप्तयेऽजेशसुरासुरादयस्तप्यन्त उग्रं तप ऐन्द्रियेधियः ॥ ऋते भवत्पादपरायणान्न मां विन्दन्त्यहं त्वद्धृदया यतोऽजित ॥ २२ ॥

मूर्ख कोई नहीं कारण कि तुम उसै मनोवांछितही फल देतेहो उस्सै अधिक नहीं देते फिर जब भोग चुकनेपर वह फल नष्ट होजाताहै तब पीछे उस स्त्रीको कष्ट भोगना पडताहै ॥ २१ ॥ हे अज हे ईश हे अजित ! मेरी प्राप्तिके अर्थ सुर असुर आदिक इंद्रियसुखमें बुद्धिकर उग्र तप करैं हैं आपके चरणके विना मोको नहीं चाहैं है मैं आपमें परायण हूं, सो और काऊकी चाहना न करूं हूं (१) ॥ २२ ॥

---

१ शंका-लक्ष्मीजीने भगवान्से बूझा कि हे भगवान् ! जो मनुष्य त्रिलोकीमें आपका पूजन, सेवन, भजन नहीं करते, वह मनुष्य मुझको कभीभी प्राप्त नहीं होंगे, ऐसे वाक्य लक्ष्मीजीने क्यों कहे ? क्योंकि दुष्टजीव जैसे कि दैत्य, दानव, अत्याचारी मनुष्य, यह सब चारों युगमें विष्णु भगवान्को नहीं जानते कि विष्णु भगवान् क्या वस्तु हैं, और सेवन पूजनका तो कहनाही क्या है ? परन्तु उनके घरमें लक्ष्मी अचल होकर रहती है, इस बातसें तौ लक्ष्मीका वाक्य झूठ हुआ; तो फिर क्यों झूठ हुवा ?

उत्तर-दैत्य, दानव, म्लेच्छादि और जो कोई दुष्ट मनुष्य भगवान्को नहीं जानते, और लक्ष्मीका सुख भोगते हैं वह मनुष्य पूर्व जन्ममें लक्ष्मीके सेवक थे मृत्युलोकमें आनकर अपने अपने कर्मसे होगये हैं और भगवान्को भूलगये हैं, तपसे भ्रष्ट होकर, दुष्ट बुद्धि मनुष्य कोई सुन्दर योनिको प्राप्त होता है कोई नीचयोनिको प्राप्त होता है परन्तु भगवान्के सेवनरूप तपस्याके द्वारा अचल लक्ष्मीका सुख भोगता रहताहै, जबतक भगवान्की सेवाका पुण्य उनका बनारहेगा तबतक अचल लक्ष्मीका सुख भोगते रहैंगे, जब सेवाका पुण्य नष्ट हो जायगा, और इस जन्ममें भगवान्का पूजन जो पुरुष नहीं करे हैं वह वहां न पावेंगे खानेको अन्नभी पेट भरकर नहीं करें मिलेगा, इसलिये लक्ष्मीने भगवान्से कहाथा कि जो मनुष्य आपको सेवन नहीं करते वह मुझको कभीभी प्राप्त नहीं होंगे ॥

विराजते हैं सम्वत्सर उनकी कन्या रात्रिके अभिमानी देवता और उनके पुत्र दिनके अभिमानी देवता जो कि इस खण्डके पति हैं वह प्रजापतिके पुत्र हैं सो वर्षके जितनै दिन रात होतेहैं उतनीही इन प्रजापतिके पुत्रौंकी संख्या है अर्थात् ३६० इसपरभी वह परमहित करते हैं इस संवत्सरौंके विशेष हित करनेका कारण यह है कि महापुरुष भगवानके चक्रके तेजसै उन कन्याओंके अन्तःकरण अतिशय निर्बल और कंपायमान होजाते हैं और उनके गर्भ वर्षके अन्तमें पतित होकर निष्प्राण हो जाते हैं इस कारण उस खण्डमें पुरुषोंकी संख्या अधिक नहीं हौने पाती ॥ १५ ॥ तहां भगवान् कामदेव अत्यंत सुंदर ललित गतिविलाससे शोभित रुचिरहास्यके लेशमात्रके चितवनकी लीलाकरकै कुछेक उठीभई सुंदर भ्रूमंडल श्रेष्ठमुखकमलकी शोभा करके महालक्ष्मीजीको रमण करत अपनी इंद्रियनको रमावैं हैं ॥ १६ ॥ वह रमा देवीजी सम्वत्सरकी रात्रि समय

अतीव सुललितगतिविलासविलसितरुचिरहासलेशावलोकलीलया किंचिदुत्तम्भितसुन्दरभ्रूमण्डलसुभगवदनारविन्दश्रिया रमां रमयन्निन्द्रियाणि रमयते ॥ १६ ॥ तद्भगवतो मायामयं रूपं परमसमाधियोगेन रमा देवी संवत्सरस्य रात्रिषु प्रजापतेर्दुहितृभिरुपेताऽहस्सु च तद्भर्तृभिरुपास्ते ॥ इदं चोदाहरति॥१७॥ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ नमो भगवते हृषीकेशाय सर्वगुणविशेषैर्विलक्षितात्मन आकूतीनां चित्तीनां चेतसां विशेषाणां चाधिपतये षोडशकलाय छन्दोमयायान्नमयायामृतमयाय सर्वमयाय सहसे ओजसे बलाय कान्ताय कामाय नमस्ते उभयत्र भूयात् ॥ १८ ॥ स्त्रियो व्रतैस्त्वां हृषिकेश्वरं स्वतो ह्याराध्य लोके पतिमाशासतेऽन्यम् ॥ तासां न ते वै परिपान्त्यपत्यं प्रियं धनायूंषि यतोऽस्वतन्त्राः ॥ १९ ॥

उनकी कन्या अर्थात् रात्रिकी अधिष्ठाता देवियौंके साथ और दिनमें इन कन्याऔंके स्वामी अर्थात् दिनके अधिष्ठाता देवताऔंके साथ मिलकर भगवानके इस मायामय रूपकी उपासना कर सदा इस मंत्रका जप कियाकरतीहैं ॥ १७ ॥ ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ॐ इन पांच बीजमंत्रनको नमस्कार है; भगवान इंद्रियोंके ईश सब गुण विशेषोंसे विलक्षण देहयुक्त, क्रिया ज्ञान चित्त विशेषण स्वामी सोलह कलारूप वेदमय अन्नमय अमृतमय सर्वरसमय सह ओज बलके पति सब कामनानके पति तुह्मारे अर्थ नमस्कार होय दौनों लोकमें हमको मंगल हो ॥ १८ ॥ सब इंद्रीनके ईश्वर तुमको अपने व्रतसे स्त्रियें आराधन कर लोकमें आपके बिना अन्यपतिको न चाहैहैं, तिनके संतान धन आयुकी तुम रक्षा करोहो, क्योंकि वे तो

शांत स्वरूप अहंकाररहित वैराग्यवान् निर्धनके धन, ऋषिनमें बडे ऋषि नरनारायण परमहंस परमगुरु आत्मज्ञानियोंके स्वामीके अर्थ वारंवार नमस्कार
होय ॥ ११ ॥ इस मंत्रका जप करते इस प्रकार प्रार्थना करते हैं जो ईश्वर या विश्वके कर्ता हैं, परन्तु सर्ग आदिमें बंधे नहीं है, और देहमें
प्रातहैं तोभी देहके धर्मोंसे मारे न जाय है, द्रष्टाकेभी द्रष्टा हैं गुणोंसे दूषित न होयहै, एकांतके साक्षी काऊमें आसक्त न होय तिनके अर्थ नमस्कार
होय ॥ १२ ॥ ब्रह्माजीकी कही हुई योगसंबन्धी यही बडी विचक्षणता है कि अंतकालमें निर्गुण आपमें भक्तिसें जो मन लगावै तौ ये दुष्ट कलेवर

ॐ नमो भगवते उपशमशीलायोपरतानात्म्याय नमोऽकिंचनवित्ताय ऋषिऋषभाय नरनारायणाय परमहंसपरमगुरवे
आत्मारामाधिपतये नमो नम इति॥११॥ गायन्ति चेदम्॥ कर्ताऽस्य सर्गादिषु यो न बध्यते न हन्यते देहगतोऽपि
दैहिकैः ॥ द्रष्टुर्न दृग् यस्य गुणैर्विदूष्यते तस्मै नमोऽसक्तविविक्तसाक्षिणे ॥१२॥ इदं हि योगेश्वर योगनैपुणं हिरण्यगर्भो
भगवान् जगाद यत् ॥ यदन्तकाले त्वयि निर्गुणे मनो भक्त्या दधीतोज्झितदुष्कलेवरः ॥ १३ ॥ यथैहिकामुष्मिककामलम्पटः
सुतेषु दारेषु धनेषु चिन्तयन् ॥ शङ्केत विद्वान् कुकलेवरात्ययाद् यस्तस्य यत्नः श्रम एव केवलम्
॥ १४ ॥ तन्नः प्रभो त्वं कुकलेवरार्पितां त्वन्माययाऽहंममतामधोक्षज ॥ भिन्द्याम येनाशु वयं सुदुर्भिदां विधेहि
योगं त्वयि नः स्वभावजमिति ॥ १५ ॥ भारतेप्यस्मिन् वर्षे सरिच्छैलाः सन्ति बहवः ॥ मलयो मङ्गलप्रस्थो मैनाकस्त्रिकूट
ऋषभः कूटकः कोल्लकः सह्यो देवगिरिर्ऋष्यमूकः श्रीशैलो वेङ्कटो महेन्द्रो वारिधारो विन्ध्यः शुक्तिमानृक्षगिरिः
पारियात्रो द्रोणश्चित्रकूटो गोवर्धनो रैवतकः ककुभो नीलो गोकामुख इन्द्रकीलः कामगिरिरिति चान्ये च शतसहस्रशः
शैलास्तेषां नितम्बप्रभवा नदा नद्यश्च सन्त्यसंख्याताः ॥ १६ ॥

त्याग वैकुंठको जाय है ॥ १३ ॥ जैसै या लोकके परलोकके काममें लंपट मूर्ख पुत्र स्त्री धनकी चिंतासे देहके नाशसै डरते हैं वैसेही विद्वान पुरुषभी
देहके नाशसै डरै तो उनका विद्याआदिका यत्न परिश्रम मात्र है ॥ १४ ॥ तातैं हे प्रभो ! कुत्सित शरीरमें करीभई अहंता ममताको हम शीघ्र
भेदन करे है, हे अधोक्षज ! ये कठिनसें भेदी जाय है हमें अपनेमें स्वाभाविक वासनारूप योग दो ॥ १५ ॥ या भरतखंडमें नदियें पर्वत

राक्षसोंके वधके लिये नहीं है, केवल मनुष्योंके शिक्षाके लिये है, कि स्त्रीके संगसे हम ईश्वरको इतने क्लेश सहने पडे, मनुष्योंकी कहा चलाई, अपनी
आत्मामें रमण करनेहारे ईश्वरकों सीताके करे व्यसन कहां हैं कुछ नहीं है ॥५॥ सो रामजी आत्मा, आत्मज्ञानोंके सुहृत्तम भगवान् वासुदेव हैं, सो
त्रिलोकीमें कहीं आसक्ति न भये, और स्त्रीके करे कष्टनको न प्राप्त होतेभये श्रीलक्ष्मणजीकोंभी त्याग करवेको योग्य नहीं है परन्तु यह सब कुछ
लोककी शिक्षा करनेको हुआ ॥ ६ ॥ ये निश्चय है कि बडोंके प्रसन्न भावका कारण न जन्म है, न सुन्दर वाणी, न बुद्धि, न आकार, क्योंकि तिन
करकै त्यागे भएभी हमसरीके वनवासी वानरोंसे लक्ष्मणजीके भैया सख्यभाव करते भये ॥ ७ ॥ सुर असुर अथवा वानर मनुष्य चाहैं जो हो उसै

न वै स आत्मात्मवतां सुहृत्तमः सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेवः ॥ न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत न लक्ष्मणं चापि वि-
हातुमर्हति ॥६॥ न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ्न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः ॥ तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसश्चका-
र सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः ॥ ७ ॥ सुरोऽसुरो वाऽप्यथ वा नरोऽनरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम् ॥ भजेत रामं मनु-
जाकृतिं हरिं य उत्तराननयत् कोसलान् दिवमिति ॥८॥ भारतेपि वर्षे भगवान् नरनारायणाख्य आकल्पान्तमुपचि-
तधर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्योपशमोपरमात्मोपलम्भनमनुग्रहायात्मवतामनुकम्पया तपोऽव्यक्तगतिश्चरति ॥ ९ ॥ तं भ-
गवान् नारदो वर्णाश्रमवतीभिर्भारतीभिः प्रजाभिर्भगवत्प्रोक्ताभ्यां साङ्ख्ययोगाभ्यां भगवदनुभावोपवर्णनं सावर्णे-
रुपदेक्ष्यमाणः परमभक्तिभावेनोपसरति इदं चाभिगृणाति ॥ १० ॥

उचित है थोडे भजनसैभी बहुत प्रसन्न हौनेवाले सर्वात्मा अयोध्यावासीयौंको स्वर्गमें ले जानैवाले मनुष्यका अवतार धार श्रीरामचंद्रजीका भजन करै
सब प्रकार उन्हीके शरण होय ॥ ८॥ या भरतखंडमें भगवान् नरनारायण या कल्पसें लेकैं बढेभये धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य उपशम (इंद्रियोंका जी-
तना) निरहंकारता आत्मज्ञानदाता आत्मवेत्तोंके ऊपर कृपा अनुग्रहसै अप्रगट होयकर तप करै हैं ॥ ९ ॥ तिनकों भगवान्नारद वर्ण आश्रमवारी
भारतकी प्रजाकरकैं भगवान्‌के कहेभये सांख्ययोगोंसे भगवत्‌के अनुभावको वर्णन करते सावर्णिकों उपदेश देते परम भक्तिभावसै स्तुति कर ये
मंत्र उच्चारण करै हैं ॥ १० ॥

100

उनको कह्यो न मान वाही मार्गमें गए, सो चारहजारके ४ चार तोडा पडे, सब लेकर खुश होय बोले ल्यो रुपे खानेकों लाओ, सो दोजने बाजारकों गए, सो जहर डार लड्डू लाए इतनेमें इन दोनोने कही कि आतेही उनको मारो जो द्रव्य है सो हमी दोजने लेलैं वे सो वे आए, उन्ने मारे वे दो मरगये जो वे खायवेको लाए, वे लड्डू उन दोनोंने खाए वे यों मरगए चारों ज्वानोंको ढेर भयो रूपा वहांई पडे रहे, यासे भैया ये धन महादुखदाई है, सो जानो याय त्यागो" ॥ ३९ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां पञ्चम० रम्यकउत्तरखण्डे सेव्यसेवकभुवनकोशवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

श्रीशुकदेवजी बोले कि किंपुरुषखंडमें भगवान आदिपुरुष लक्ष्मणजीके भैया सीताजीके आनंददाता श्रीरामचंद्रजीके चरणमें परायण परमभागवत

श्रीशुक उवाच ॥ किंपुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताऽभिरामं श्रीरामं तच्चरणसन्निकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान् सह किंपुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते ॥ १ ॥ आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृभगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं चेदं गायति ॥ २ ॥ ॐ नमो भगवत उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति ॥ ३ ॥ यत् तद् विशुद्धानुभवमात्रमेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम् ॥ प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये ॥ ४ ॥ मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः ॥ कुतोऽन्यथा स्यू रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य ॥ ५ ॥

हनुमान्जी किंपुरुषवासियोंकरकै सहित अत्यंत भक्तिसे रामचंद्रकी उपासना करै है ॥१॥ आर्ष्टिषेणसहित गंधर्वोंकरकैं गाई भई परमकल्याणदायिनी अपने भर्ता भगवान्की कथाकों सुनैहैं, आप ये गावै है ॥ २ ॥ उत्पत्ति पालन नाशकर्ता भगवान् उत्तमश्लोकके अर्थ नमस्कार होय; बडोंके लक्षणकेसे शील व्रतधारीके अर्थ नमस्कार होय, सबके शिक्षाके आत्मा सब लोककरकै उपासितके अर्थ नमस्कार होय, साधुवादमें कसोटीके समान ब्रह्मण्यदेव महापुरुष महाराजाके अर्थ नमस्कार होय ॥ ३ ॥ विशुद्ध, अनुभवमात्र, एक अपने तेजसे गुणोंकी व्यवस्थाका मिटानैवाले सबमें प्रशांत सुंदर बुद्धिवारोंकरकै प्राप्त, नामरूपरहित, श्रीरामचंद्रजीके अर्थ नमस्कार होय ॥ ४ ॥ इन विभुके मनुष्योंमें अवतार

उपनिषदोंके मंत्र जपै है ॥ ३४ ॥ ओंकार विशिष्ट भगवान् मंत्रतत्वचिन्हधारीके अर्थ नमस्कार हो, यज्ञरूप महाअध्वरोंके अवयव महापुरुषके अर्थ नमस्कार होय, शुद्ध कर्म करवेवारे तीनों युगरूपके अर्थ नमस्कार होय ॥३५॥ जिनके स्वरूपकों विद्वान् कविलोग गुणोंमें ज्ञानयुक्त मनसे ढूंढै है, जैसै काष्ठमेंसे साधनद्वारा अग्नि प्रगट होय तैसे आपको ज्ञान साधनरूप मनसै ढूंढकर पाते है जिनको भगवतके रूप देखवेकी इच्छा है वे छिपे ईश्वरकों कर्मोंकरकै देखेहै, तिन सर्वप्रेरित आत्माके अर्थ नमस्कार होय ॥३६॥ मायाकार्यके विषय इन्द्रियादि व्यापार देवता देह काल अहंकार इन सब उपलक्षणोंसे जिनका यथार्थ रूप देखनेमें आताहै और यमनियमादिकोंसै जो महात्मा निश्चयात्मक बुद्धि युक्त है उनके निकट जिसकी मायासै बनी आकृति दूर होजाती है

ॐ नमो भगवते मन्त्रतत्त्वलिङ्गाय यज्ञक्रतवे महाऽध्वरावयवाय महापुरुषाय नमः कर्मशुक्लाय त्रियुगाय नमस्ते ॥३५॥ यस्य स्वरूपं कवयो विपश्चितो गुणेषु दारुष्विव जातवेदसम्॥ मथ्नन्ति मथ्ना मनसा दिदृक्षवो गूढं क्रियाऽर्थैर्नम ईरितात्मने ॥ ३६ ॥ द्रव्यक्रियाहेत्वयनेशकर्तृभिर्मायागुणैर्वस्तुनिरीक्षितात्मने ॥ अन्वीक्षयाऽङ्गातिशयात्मबुद्धिभिर्निरस्तमायाकृतये नमो नमः ॥ ३७ ॥ करोति विश्वस्थितिसंयमोदयं यस्येप्सितं नेप्सितमीक्षितुर्गुणैः ॥ माया यथाऽयो भ्रमते तदाश्रयं ग्राव्णो नमस्ते गुणकर्मसाक्षिणे ॥ ३८ ॥ प्रमथ्य दैत्यं प्रतिवारणं मृधे यो मां रसाया जयदादिसूकरः ॥ कृत्वाऽग्रदंष्ट्रे निरगादुदन्वतः क्रीडन्निवेभः प्रणताऽस्मि तं विभुमिति ॥३९॥ इति श्रीभा० पञ्चम० भुवनकोशवर्णनं नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

उन्हीं भगवानको हमारा प्रणाम है॥३७॥ देखवेवारे जीवके गुणोंकरकै वांछित अवांछित विश्वकी उत्पत्ति पालन नाश करनेहारी माया यद्यपि जड़ है तथापि जैसे लोहा चुंबकपाषाणके आश्रय होयकर घूमै है ऐसे हो आपके समीप होनेसै माया सब क्रिया करती है ऐसे गुणकर्मके साक्षी तुह्मारे अर्थ नमस्कार होय ॥ ३८ ॥ जो जगत्के आदिवाराहजी मो पृथ्वीकों दाढाके अग्रभागमें करकै रसातलसे लेके प्रलयके समुद्रमेंसे गजसमान निकारते भए, और गजतुल्य दैत्य हिरण्याक्षकों क्रीडा कर मारतेभए ऐसे प्रभुकूं मै प्रणाम करूंहूं “ परंतु मायाने सब संसार वस कर राखे है ॥ चार शिपाई तीरकमठा लिये जाते है, सो एक विद्वान बोले या गैलमै होय मत जाओ डाकनी बैठी है, या रस्तेसे फेर है इधर नाय है, यूं जाओ

103

जन्म लीने है सो सात्विक राजस तामस कर्मकरके प्रारब्ध कर्मसै देवता मनुष्य नरकवासियोंकी गतियें अपने आत्माके कर्म अनुसार सबकों होय हैं वर्णाश्रमके धर्म मोक्षके पृथक् पृथक् साधन तथा उन साधनोंसै हौनेवाला मोक्ष इसी खण्डमें होता है ॥१९॥ मोक्ष जिस प्रकारसै होता है सो सुनो जब भगवान्‌के भक्त महात्माओंका संग होताहै तब भगवान वासुदेव जो सब प्राणियोंके आत्मा रागादिरहित वाक्यके अगोचर परमात्मस्वरूप अनाधारमें निष्काम भक्ति होती है वही मोक्षका स्वरूप है कारण कि शरीरकी अनेक प्रकारकी गति और अविद्यारूपी ग्रन्थि भक्तिसे टूट जाती है

योऽसौ भगवति सर्वभूतात्मन्यनात्म्येऽनिरुक्तेऽनिलयने परमात्मनि वासुदेवेऽनन्यनिमित्तभक्तियोगलक्षणो नानागतिनैमित्ताऽविद्याग्रन्थिरन्धनद्वारेण यदा हि महापुरुषपुरुषप्रसङ्गः ॥२०॥ एतदेव हि देवा गायन्ति ॥ अहो अमीषां किमकारि शोभनं प्रसन्न एषां स्विदुत स्वयं हरिः ॥ यैर्जन्म लब्धं नृषु भारताजिरे मुकुन्दसेवौपयिकं स्पृहा हि नः ॥२१॥ किं दुष्करैर्नः क्रतुभिस्तपोव्रतैर्दानादिभिर्वा द्युजयेन फल्गुना ॥ न यत्र नारायणपादपङ्कजस्मृतिः प्रमुष्टाऽतिशयेन्द्रियोत्सवात् ॥ २२ ॥

॥२०॥याही बातको देवता गाते है वडे आश्चर्यकी वार्ता है कि इन भरतखंडवासी जीवनने कहा पुण्य कीनोहै जो या भरतखंडके आंगनमें जन्म लीनो है न जानै इनके ऊपर आप श्रीहरि प्रसन्न होगएहैं ये मनुष्यको जन्म मुकुंदकी सेवा करनेको उपायरूप है,या जन्मकी हमकोभी चाहना रहैहै (१)॥२१॥ अतिकठिन साधनावारे हमारे करे यज्ञोंसे कछु नही होयहै,तप व्रत दान आदिसे कछू न होय है,स्वर्ग जीतवेवारे ये सब तुच्छ साधन है अत्यंत इंद्रियोंकी विषयचाहरूप उत्सवसें सब या जीवके करे कर्म नाश होजाय हैं जहां नारायणके चरणकमलकी स्मृति नष्ट भईहै वाकर्मसे कुछ नहीं होय है ॥ २२ ॥

बीतगई, तब सबने मिलकर शाप दिया कि हे दुष्टा नदी ! भागवतमें जिसका वर्णन हुवा सो धन्य है, परन्तु तेरा आदर भागवत पुराणमें नहीं होगा. इसलिये मुनियोंकी शापित जान कर व्यासजीने श्रीमद्भागवतमें क्षिप्राका वर्णन नहीं किया ॥

१ या भरत खंडको ये पद महात्मानको बनायो भयो है " भरतखंडमाहि आय कृष्ण क्यों न आयों तै ॥ टेर ॥ भरतखंड कर्मभूमि घूमि बहुत आयो ताहूमें मनुष जन्म उत्तम तन पायो ॥ १ ॥ ब्रह्मादिक तरसत रहे सरस बखत पायो धरपत नहीं वेद सुनत विषय झूठ खायो ॥ २ ॥ धिक धिक तोही वेर वेर कृष्ण नहि रिझायो आयो कहाकर करार नारमें लुभायो ॥ ३ ॥ कैसी तेरी देह रही खेहमें मिलायो नेह, कियो जगत बीच जन्म्यो जनमायो ॥ ४ ॥ दामचाम देख देख भेख बहु सजायो पुरुषोत्तम कहे रे मूढ कृष्ण क्यों खिजायो ॥५॥

बहुत हैं मलय, मंगलप्रस्थ, मैनाक, त्रिकूट, ऋषभ, कूटक, कोल्लक, सह्य, देवगिरि, ऋष्यमूक, श्रीशैल, वेङ्कटाचल, महेंद्र, वारिधार, विंध्याचल, शक्तिमान्, ऋक्षगिरि, पारियात्र, द्रोणाचल, चित्रकूट, गोवर्द्धन, रैवतक, ककुभ, नीलाचल, गोकामुख, इंद्रकील, कामगिरि, औरभी सैकडों हजारों पर्वत तिनके नीचेसे निकले नद नदियें तो असंख्यात हैं ग्रंथके विस्तार भयसे नहीं कहे ॥ १६ ॥ इनको जल भरतखंडकी प्रजाको नामकरके और जो शरीरसे स्पर्श करते हैं तिन्हैभी पवित्र करते हैं ॥ १७ ॥ चंद्रवशा, ताम्रपर्णी, अवटोदा, कृतमाला, वैहायसी,

एतासामपो भारत्यः प्रजा नामभिरेव पुनन्तीनामात्मना चोपस्पृशन्ति ॥१७॥ चन्द्रवशा ताम्रपर्णी अवटोदा कृतमाला वैहायसी कावेरी वेणी पयस्विनी शर्करावर्ता तुङ्गभद्रा कृष्णा वेण्या भीमरथी गोदावरी निर्विन्ध्या पयोष्णी तापी रेवा सुरसा नर्मदा चर्मण्वती सिन्धुः अन्धः शोणश्च नदौ महानदी वेदस्मृती ऋषिकुल्या त्रिसामा कौशिकी मन्दाकिनी यमुना सरस्वती दृषद्वती गोमती सरयू रोधस्वती सप्तवती सुषोमा शतद्रूश्चन्द्रभागा मरुद्वृधा वितस्ता असिक्नी विश्वेति महानद्यः ॥ १८ ॥ अस्मिन्नेव वर्षे पुरुषैर्लब्धजन्मभिः शुक्ललोहितकृष्णवर्णेन स्वारब्धेन कर्मणा दिव्यमानुषनारकगतयो बह्वय आत्मन आनुपूर्व्येण सर्वा ह्येव सर्वेषां विधीयन्ते यथावर्णविधानमपवर्गश्चापि भवति ॥१९॥

कावेरी, वेणी, पयस्विनी, शर्करावर्ता, तुंगभद्रा, कृष्णा, वेणी, भीमरथी, गोदावरी, निर्विंध्या पयोष्णी, तापी, रेवा, सुरसा, नर्मदा, चर्मण्वती, सिंधु, अंध, शोणभद्र, ये दो महाभारी नद हैं, महानदी, वेदस्मृती, ऋषिकुल्या, त्रिसामा, कौशिकी, मंदाकिनी, यमुना, सरस्वती, दृषद्वती, गोमती, सरयू, रोधस्वती, सप्तवती, सुषोमा, शतद्रू, चंद्रभागा, मरुद्वृधा, वितस्ता, असिक्नी, विश्वा ये महानदियें हैं (१) ॥ १८ ॥ या भरतखंडमें जिनपुरुषोंनें

---

१ शंका–मृत्युलोकमें जो छोटी छोटी नदी हैं,जिनका नामभी कोई नहीं जानता,उनका तो वर्णन व्यासजीने श्रीमद्भागवतमें किया और उज्जेनिके सन्मुख वहनेवाली क्षिप्रा नदी जिसका शास्त्रमें नाम विख्यात है और लोकमें और पुराणोंमें प्रजागणभी क्षिप्राको भली भांति जानते हैं ऐसी उत्तम क्षिप्रा नदीका भगवान् व्यासदेवजीने श्रीमद्भागवतमें वर्णन क्यों नहीं किया ?

उत्तर–एक दिन शिवरात्रिके समय बहुतसे मुनिजन शंकरमहादेवके पूजन करनेके लिये पश्चिम दिशाकी ओर गये उसी दिन दैवयोगसे क्षिप्रा नदीभी जलसे परिपूर्ण होरहीथी मुनिजन उतरने लगे तो क्षिप्राने मार्ग नहीं दिया, मुनि लोग पश्चिम दिशाके तटपर बैठेही रहगये; जब शिवरात्रिको शिवका पूजन न हुवा सब रात्रि मुनियोंको नदीके निकटही बैठे

कल्याण विस्तार करते हैं और वहांके वासियोंको परम सुख देते हैं ॥ २८ ॥ (आगेके आठ श्लोक किसी २ पुस्तकमें नही हैं ॥ हे परीक्षित ! यातें देवता भरतखंडमें जन्म लेवेकी इच्छा करैं हैं यहां जो महापुण्यसंचय करनेसे अक्षय शुभफल होय है ॥ १ ॥ हे भारत ! या भूतलमें कब हम जन्म लैगें कब महापुण्यसें परमपदकों प्राप्त होयगें ॥ २ ॥ दान अनेक प्रकारके यज्ञ तप इन करकै क्षीरशायी भगवानकी पूजाकर जाकों बडे महात्मा देखै है वा पदकों हम कब जायगे ॥ ३ ॥ श्रीहरिकीर्तनमें शील करनो, तिनके भक्तनसे प्यार करनो, महात्मानकी सेवा करनी, मनुष्य महात्माओंका वंदन करना हमें कौनसे जन्ममें प्राप्त होगा ॥ ४ ॥ वेदके अर्थ सुनवेमें बुद्धि हमारी कब लगैगी, पुराण श्रवणमें जाको मन है, सत्संगमें

(अतोपि देवा इच्छन्ति जन्म भारतभूतले ॥ संचितुं सुमहत्पुण्यमक्षय्यममलं शुभम् ॥ १ ॥ कदा वयं हि लप्स्यामो जन्म भारतभूतले ॥ कदा पुण्येन महता प्राप्स्यामः परमं पदम् ॥ २ ॥ दानैर्वा विविधैर्यज्ञैस्तपोभिर्वाब्धिशायिनम् ॥ पूजयित्वा कदा यामो यद्वै पश्यन्ति सूरयः ॥ ३ ॥ हरिकीर्तनशीलो वा तद्भक्तानां प्रियोपि वा ॥ शुश्रूषुर्वापि महतां स वन्द्योऽस्माभिरुत्तमः ॥ ४ ॥ वेदार्थश्रवणे बुद्धिः पुराणश्रवणे तथा ॥ सत्सङ्गेपि हि यस्यास्ति स वन्द्योस्माभिरुत्तमः ॥५॥ संप्राप्य भारते जन्म सत्कर्मसु पराङ्मुखः ॥ पीयूषकलशं हित्वा विषभाण्डं स इच्छति ॥६॥ वासुदेवार्चनं हित्वा दुष्कर्माणि करोति यः॥कामधेनुमतिक्रम्य अर्कक्षीरं स इच्छति॥७॥एवं भारतभूभागं प्रशंसन्ति दिवौकसः ॥ तं प्राप्य विषयासक्तास्ते मुष्टा मायया हरेः ॥८॥) श्रीशुक उवाच ॥ जम्बूद्वीपस्य च राजन्नुपद्वीपानष्टौ हैक उपदिशन्ति सगरात्मजैरश्वान्वेषण इमां महीं परितो निखनद्भिरुपकल्पितान् ॥ २९ ॥

जाको मन है, वो हम सबसे वंदनीय है ॥५॥श्रेष्ठ भरतखंडमें जन्म पायकर जो सत्कर्मसे अलग है वो अमृतको घटकों त्याग विषके वासनाकी चाहना करै ॥ ६ ॥ जो वासुदेवके पूजनको त्याग बुरे कर्म लोग करै है, वो कामधेनुके दूधकों त्याग आकके दूधकी चाहना करै है ॥७॥ हे राजन् ! ऐसे देवते या भरतखंडकी प्रशंसा करै हैं, या खंडमें जन्म ले जो विषयमें आसक्त होय वाको जानो कि याकों भगवान्‌की मायाने हरलीनो है ॥ ८ ॥) श्रीशुकदेवजी बोले कि हे राजन् ! जंबूद्वीपके उपद्वीप आठ हैं ऐसे एक आचार्य कहैहैं,सगरके बेटानने घोडाके खोजनेके समय या भूमीको सब ओरसे

हे भारत! कल्पभरकी आयुवारोंके स्थान जयते पुनर्जन्मसे क्षणकी आयुवारोंको भारतभूमीमैं जन्म हौनो श्रेष्ठ है कि जहां कोई कर्म मनुष्यने एक क्षण
मात्रभी करयो तो वो मनस्वी सबको संन्यासकर अभयदाता हरिके पदको प्राप्त होय है ॥ २३ ॥ जहां वैकुंठभगवान्की कथारूप अमृतनदी वहै
हैं, तिनके आश्रय साधुभागवत जहां नहीं है जहां यज्ञेशके महायज्ञनके महोत्सव नहीं हैं, चाहै इंद्रलौक होय तोहू वाकी सेवा न करे ॥ २४ ॥
जो जीव या भरतखंडमें ज्ञान क्रिया द्रव्यकलाप करके भरीभई मनुष्य जातीकों प्राप्त होयकर मोक्षके लिये यत्न न करै तौ फिरभी वनके पशुप-
क्षीकी नाई बंधनको प्राप्त होतेहैं ॥ २५ ॥ भारतवासी मनुष्यगण अतिशय भाग्यवान है कारण कि यह श्रद्धा भक्तिसहित पुरोडाशादिभेदसे उन

कल्पायुषां स्थानजयात् पुनर्भवात् क्षणायुषां भारतभूजयो वरम् ॥ क्षणेन मर्त्येन कृतं मनस्विनः संन्यस्य संया-
न्त्यभयं पदं हरेः ॥ २३ ॥ न यत्र वैकुण्ठकथासुधापगा न साधवो भागवतास्तदाश्रयाः ॥ न यत्र यज्ञेशमखा महो-
त्सवाः सुरेशलोकोऽपि न वै स सेव्यताम् ॥२४॥ प्राप्ता नृजातिं त्विह ये च जन्तवो ज्ञानक्रियाद्रव्यकलापसंभृताम्॥ न
वै यतेरन्नपुनर्भवाय ते भूयो वनौका इव यान्ति बन्धनम् ॥ २५ ॥ यैः श्रद्धया बर्हिषि भागशो हविर्निरुप्तमिष्टं विधिम-
न्त्रवस्तुतः ॥ एकः पृथङ्नामभिराहुतो मुदा गृह्णाति पूर्णः स्वयमाशिषां प्रभुः ॥ २६ ॥ सत्यं दिशत्यर्थितमर्थितो नृणां
नैवार्थदो यत् पुरनर्थिता यतः॥स्वयं विधत्ते भजतामनिच्छतामिच्छापिधानं निजपादपल्लवम् ॥२७॥ यद्यत्र नः स्वर्ग-
सुखावशेषितं स्विष्टस्य सूक्तस्य कृतस्य शोभनम् ॥ तेनाजनाभे स्मृतिमज्जन्मनः स्याद् वर्षे हरिर्यद्भजतां शं तनोति २८

देवताओंके उद्देश्यसे जो हवि छोडतेहैं सो एकही भगवान इन्द्रादि पृथक् २ नामोंसे आह्वान किये जाकर उस सबको ग्रहण करतेहैं यद्यपि वह
सब कल्याणके प्रभु है और स्वयंभी परिपूर्ण स्वरूप हैं तथापि उस हविको त्याग नहीं सक्ते ॥ २६ ॥ मनुष्योंकरकै प्रार्थित मनोवांछित सब ईश्वर
देहैं, जाते फेर मांगवेयोग्य न रहैहै, जो भजनेवारे है जो विना इच्छा भजेहै, उनकी सब इच्छाको पूरण करवेवारो अपने चरणकमल आप वाकों
देहैं ॥ २७ ॥ जो कुछ यहां हमको स्वर्गसुखको शेष है, जो सुंदर यज्ञ कीने हैं, जो वेदपाठ करो है, और कुछ कर्म करैहैं, तो इस भारत खण्डमें
हमारा जन्म हो जिससे कि भगवान हरिही सेवा करनेके योग्य है यह स्मरण रहैगा, अधिक करकै श्रीभगवान भारत खण्डमें भजनकारियोंका

मणिकूट, वज्रकूट, इंद्रसेन, ज्योतिष्मान्, सुवर्ण, हिरण्यष्ठीव, मेघमाल, ये पर्वत हैं अरुणा, नृम्णा, आंगिरसा, सावित्री, सुप्रभाता, ऋतंभरा, सत्यंभरा, महानदियें हैं जिनके जलमें स्नान करनेसे राजस तामस दूर होय हैं, हंस पतंग ऊर्ध्वायन सत्यांग इन संज्ञाके चारवर्ण हजारवर्षकी आयुके देवसमान सुंदर होय स्वर्गके द्वारभूत भगवान त्रयीमय सूर्यांतर्यामी आत्माको वेदत्रयी विद्यासे पूजन करैहै ॥ ४॥ पुराणपुरुष सत्यरूप धर्मरूप बृहत्त्वा-

मणिकूटो वज्रकूट इन्द्रसेनो ज्योतिष्मान् सुपर्णो हिरण्यष्ठीवो मेघमाल इति सेतुशैलाः ॥ अरुणा नृम्णाङ्गिरसा सावित्री सुप्रभाता ऋतंभरा सत्यंभरा इति महानद्यः ॥ यासां जलोपस्पर्शनविधूतरजस्तमसो हंसपतङ्गोर्ध्वायनसत्याङ्गसंज्ञाश्चत्वारो वर्णाः सहस्रायुषो विबुधोपमसंदर्शनप्रजननाः स्वर्गद्वारं त्रय्या विद्यया भगवन्तं त्रयीमयं सूर्यमात्मानं यजन्ते॥४॥ प्रत्नस्य विष्णो रूपं च सत्यस्य ऋतस्य ब्रह्मण अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहीति॥५॥ प्लक्षादिषु पञ्चसु पुरुषाणामायुरिन्द्रियमोजः सहो बलं बुद्धिर्विक्रम इति च सर्वेषामौत्पत्तिकी सिद्धिरविशेषेण वर्तते ॥ ॥६॥प्लक्षः स्वमानेनेक्षुरसोदेनावृतो यथा तथा द्वीपोऽपि शाल्मलो द्विगुणविशालः समानेन सुरोदेनावृतः परिवृङ्क्ते ॥ ७॥

दिगुणविशिष्ट चैतन्य अमृतरूप मृत्युरूप श्रीविष्णुके रूप सूर्यनारायणकी हम शरण हैं ॥ ५ ॥ प्लक्षआदि पांच द्वीपोंमें पुरुषनकी आयु इंद्रिय ओज सह बल बुद्धि विक्रम ये सबकी सब औरनसें विशेष हैं ॥ ६ ॥ जैसे प्लक्ष अपने समान गन्नेके रसके समुद्रसे लिपटोभयो है तैसे शाल्मलीद्वीपभी द्विगुणविशाल मदिराके रससे चारों ओरसे घिरोभयो है ॥ ७ ॥

---

[१] शंका–द्वीपान्तरोंमें आपसे कुशके वृक्षकी, सेमलके तरुकी, पाकरके पेडकी, सिरषके पादपकी, जामुनके रुखकी, और कमलकी इस प्रकार लम्बाई और चौडाई सुनके हम सब लोगोंको मनमें दिन दिन प्रति अत्यन्त शंका बढती है, क्यों कि यह वृक्ष हैं कि आश्चर्यका रूप हैं ?

उत्तर–राजा प्रियव्रतके किये जो कर्म हैं, उन कर्मोंमें शंका कभी नहीं करनी चाहिये, क्यों कि जो आश्चर्य करने योग्य कर्म राजा प्रियव्रतने किये हैं, वह सब कर्म भगवान्ने किये हैं, राजा प्रियव्रतका तो एक निमित्त नियत कररक्खा है, क्यों कि पंचमस्कन्धके प्रथम अध्याय १ श्लो ३९ में व्यासजीने कहा है कि राजा प्रियव्रत करके किये जो कर्म हैं उन कर्मोंको करनेके लिये ईश्वरकी सामर्थ्य है और दूसरे पुरुषकी सामर्थ्य नहीं है । ऐसा व्यासजीके वाक्यसे जान पडता है कि जो आश्चर्यरूप काम राजा प्रियव्रतने किये सो वह सब काम भगवान्ने किये हैं इस लिये राजा प्रियव्रतके कियेहुए कर्मोंमें शंका करनी नहीं चाहिये, क्योंकि भगवान् क्या नहीं करसक्ते ॥

खोदी तब वे बनेहै ॥ २९ ॥ सो ये है स्वर्णप्रस्थ, चंद्रशुक्ल, आवर्तन, रमणक, मंदरहरिण, पांचजन्य,सिंहल, और लंका ॥ ३० ॥ हे भारतोत्तम ! ऐसे जंबूद्वीपके खंडनको विभाग जैसो हो तैसो वर्णन कीनो है॥ ३१ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां पञ्चम०जम्बूद्वीपे भरतखण्डमाहात्म्यवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि याके उपरांत प्लक्षआदि छै द्वीपनको प्रमाण लक्षणस्थितिसें खंडको विभाग वर्णन करै है ॥ १ ॥ ये जंबूद्वीपको जितनो विस्तार है उतनेही प्रमाणके अर्थात् लाख योजनके क्षार समुद्रसै यह घिरा हुआ है इस कारण जिस प्रकार जम्बूद्वीपसै सुमेरु पर्वत घिरा हुआ

तद्यथा स्वर्णप्रस्थश्चन्द्रशुक्ल आवर्तनो रमणको मन्दरहरिणः पाञ्चजन्यः सिंहलो लङ्केति ॥ ३० ॥ एवं तव भारतोत्तम जम्बूद्वीपवर्षविभागो यथोपदेशमुपवर्णित इति ॥ ३१ ॥ इति श्रीभा० म० पञ्चम० जम्बूद्वीपवर्णनं नामैकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अतः परं प्लक्षादीनां प्रमाणलक्षणसंस्थानतो वर्षविभाग उपवर्ण्यते ॥ १ ॥ जम्बूद्वीपोऽयं यावत्प्रमाणविस्तारस्तावता क्षारोदधिना परिवेष्टितो यथा मेरुर्जम्ब्वाख्येन लवणोदधिरपि ततो द्विगुणविशालेन प्लक्षाख्येन परिक्षिप्तो यथा परिखाबाह्योपवनेन प्लक्षो जम्बूप्रमाणो द्वीपाख्याकरो हिरण्मय उत्थितो यत्राग्निरुपास्ते सप्तजिह्वस्तस्याधिपतिः प्रियव्रतात्मज इध्मजिह्वः स्वं द्वीपं सप्त वर्षाणि विभज्य सप्तवर्षनामभ्य आत्मजेभ्य आकलय्य स्वयमात्मयोगेनोपरराम ॥ २ ॥ शिवं यवसं सुभद्रं शान्तं क्षेममममृतमभयमिति वर्षाणि तेषु गिरयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः ॥ ३ ॥

है प्लक्षभी ऐसेही प्लक्षद्वीप लाख योजन विस्तारवाले सागरसै घिरा हुआ है क्षार समुद्रभी अपनैसै दूने विस्तारवाले प्लक्षद्वीपसै बाहरके उपवनकी खाईकी समान घिरा है इसमें लक्ष योजन ऊंचा सुवर्णसदृश प्लक्षका वृक्ष है उसके नाम पर इस द्वीपका प्लक्ष नाम हुआ है इसमें सात जिह्वावाला अग्नि रहताहै इस द्वीपका अधिपति प्रियव्रतको पुत्र इध्मजिह्व अपने द्वीपको सात विभाग कर सातखंडके नाम उनके पुत्रनके नामसे उन पुत्रनको देकर आप आत्मज्ञानी होय सबसें विरक्त भयो ॥ २ ॥ शिव यवस सुभद्र शांत क्षेम अमृत अभय ये खंड है और पर्वत नदियें सातही हैं ॥ ३ ॥

पति प्रियव्रतके सुत हिरण्यरेतानामक अपने द्वीपको,सात अपने पुत्रनको यथाभाग विभाग कर आप तप करते भए,वसु,वसुदान,दृढरुचि, नाभिगुप्त, स्तुत्यव्रत, विविक्त, वामदेव, ये सातोंके नाम हैं ॥ १४ ॥ तिनके खंडोंमें सीमाके पर्वत नदी सात सातही करते भए, चक्र,चतुःशृंग, कपिल, चित्रकूट, देवानीक, ऊर्ध्वरोमा,द्रविण ये पर्वत हैं रसकुल्या, मधुकुल्या, मित्रविंदा, श्रुतविंदा, देवगर्भा, घृतच्युता, मंत्रमाला ये नदियें हैं ॥ १५॥ जिन नदियोंके जल करके कुशद्वीपवासी कुशल, कोविद, अभियुक्त, कुलकसंज्ञक चारवर्ण भगवान् अग्निरूपकों कुशल कर्म करकै पूजन करै है ॥ १६ ॥ हे अग्ने! आप साक्षात् परब्रह्मनारायणको हवि पहुंचाहते हो इस निमित्त देवताओंके यज्ञद्वारा परम पुरुष भगवानकी अर्चना करते हुए उनके सब अंगोंके

वसुवसुदानदृढरुचिनाभिगुप्तस्तुत्यव्रतविविक्तवामदेवनामभ्यस्तेषां वर्षेषु सीमागिरयो नद्यश्चाभिज्ञाताः सप्त सप्तैव चक्रश्चतुःशृङ्गः कपिलश्चित्रकूटो देवानीक ऊर्ध्वरोमा द्रविण इति ॥ १५ ॥ रसकुल्या मधुकुल्या मित्रविन्दा श्रुतविन्दा वेदगर्भा घृतच्युता मन्त्रमालेति यासां पयोभिः कुशद्वीपौकसः कुशलकोविदाभियुक्तकुलकसंज्ञा भगवन्तं जातवेदसरूपिणं कर्मकौशलेन यजन्ते ॥ १६ ॥ परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट् ॥ देवानां पुरुषाङ्गानां यज्ञेन पुरुषं यजेति ॥ १७ ॥ तथा च घृतोदाद् बहिः क्रौञ्चद्वीपो द्विगुणः स्वमानेन क्षीरोदेन परित उपक्लृप्तो वृतो यथा कुशद्वीपो घृतोदेन यस्मिन् क्रौञ्चो नाम पर्वतराजो द्वीपनामनिर्वर्तक आस्ते ॥ १८ ॥ योऽसौ गुहप्रहरणोन्मथितनितम्बकुञ्जोऽपि क्षीरोदेनासिच्यमानो भगवता वरुणेनाभिगुप्तो विभयो बभूव ॥ १९ ॥

नामोंसें दियाहुआ हव्य हम इस अग्निमें समर्पण करते हैं ॥ १७ ॥ तैसेई घृतके सागरसे बाहिर क्रौंचद्वीप दूनै अपने प्रमाण करकै क्षीरसमुद्रसें सब ओरते सघन है, जैसे कुशद्वीप घृतके समुद्रसें परिवृत है, जामें क्रौंचनाम पर्वतोंको राजा षष्ठ द्वीपनको हटायवेवारो होयकर स्थित है ॥ १८ ॥ यद्यपि स्वामिकार्तिकेयने शस्त्रप्रहारसे इनके किनारे और कुंज तोड़ दिये थे तथापि यह पर्वत चारौं ओरवाले क्षीरसागरके जलसै सींचे जानै और वरुणसै रक्षित होनेसे निर्भय था ॥ १९ ॥

इस द्वीपका शाल्मली वृक्ष प्लक्षकी समान विस्तारवाला है, जहां भगवान् वेद करकै स्तुत पक्षीनके राजा श्रीगरुडजीको स्थान है गरुडजीको वहां बहुत आराधन होयहै ॥ ८ ॥ वा द्वीपके मालक प्रियव्रतके पुत्र यज्ञबाहु अपने सातपुत्रनके नामसे सातखंडनको विभाग करतेभए, सुरोचन, सौमनस्य; रमणक, देववर्ष, पारिभद्र, आप्यायन, अविज्ञात, ॥ ९ ॥ तिनखंडोंमें खंडपर्वत नदी सात सात वर्णन करेहैं, स्वरस, शतशृंग, वामदेव, कुंद, कुमुद, पुष्पवर्ष, सहस्रश्रुति ये पर्वत हैं, अनुमति, सिनीवाली, सरस्वती, कुहू, रजनी, नंदा, राका, ये सात नदियें हैं ॥ १० ॥ या खंडके पुरुष श्रुतध-

यत्र ह वै शाल्मली प्लक्षायामा यस्यां वाव किल निलयमाहुर्भगवतश्छन्दःस्तुतः पतत्त्रिराजस्य सा द्वीपहूतये उपलक्ष्यते ॥ ८ ॥ तद्द्वीपाधिपतिः प्रियव्रतात्मजो यज्ञबाहुः स्वसुतेभ्यः सप्तभ्यस्तन्नामानि सप्त वर्षाणि व्यभजत् ॥ सुरोचनं सौमनस्यं रमणकं देववर्षं पारिभद्रमाप्यायनमविज्ञातमिति ॥ ९ ॥ तेषु वर्षाद्रयो नद्यश्च सप्तैवाभिज्ञाताः ॥ स्वरसः शतशृङ्गो वामदेवः कुन्दः कुमुदः पुष्पवर्षः सहस्रश्रुतिरिति ॥ अनुमतिः सिनीवाली सरस्वती कुहू रजनी नन्दा राकेति ॥ १० ॥ तद्वर्षपुरुषाः श्रुतधरवीर्यधरवसुंधरेषन्धरसंज्ञा भगवन्तं वेदमयं सोममात्मानं वेदेन यजन्ते ॥ ११ ॥ स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन् कृष्णशुक्लयोः ॥ प्रजानां सर्वासां राजाऽन्धः सोमो न अस्त्विति ॥ १२ ॥ एवं सुरोदाद्बहिस्तद्द्विगुणस्वमानेनावृतो घृतोदेन यथापूर्वः कुशद्वीपो यस्मिन् कुशस्तम्बो देवकृतस्तद्द्वीपाख्याकरो ज्वलन इवापरः स्वशष्परोचिषा दिशो विराजयति ॥ १३ ॥ तद्द्वीपपतिः प्रैयव्रतो राजा हिरण्यरेतो नाम स्वं द्वीपं सप्तभ्यः स्वपुत्रेभ्यो यथाभागं विभज्य स्वयं तप आतिष्ठत ॥ १४ ॥

र, वीर्यधर, वसुंधर, और इषंधर नाम चार वर्णके रहते हैं और भगवान वेदमय चंद्रमा अंतर्यामी परमात्माको वेदसे पूजन करै हैं ॥ ११ ॥ अपनी किरणोंसे शुक्ल कृष्ण पक्षरूप करकै पितर देवनके दिनरातकी विभाग करके और अन्न देनेवाले चंद्रमा हमारे और प्रजाओंके राजा होओ ॥ १२ ॥ ऐसे मदिराके समुद्रसे बाहिर वासे दूने प्रमाणसे घीके समुद्रसे घिराभयो कुशद्वीप है जामें देवनानको करोभयो कुशका स्तंभ है इसीसे उसका नाम कुशद्वीप है वो अग्निसमान देदीप्यमान है, अपने कुशोंकी कांति करकै सब दिशानमें विराजै है ॥ १३ ॥ हे राजन्! तिस द्वीपके

और सब भूमीमात्रकों पवित्र करो॥२३॥ ऐसै क्षीरसमुद्रसे आगैं सब ओरसें स्थित शाकद्वीप है, बत्तीसलक्ष योजन लंबो है, अपने समान दधिके मट्ठेके समुद्रसे परिवेष्टित है, जामैं शाकनामक वृक्ष है, अपने क्षेत्रकों विस्तारक जाकी महासुगंध वा द्वीपभरको सुंगधित कर रही है ॥ २४ ॥ वा खंडके प्रियव्रतके सुत राजा मेधातिथि नाम हो, वो अपने पुत्रोंके नामसें खंडविस्तृत कर सातोंको कि जिनके नाम पुरोजव, मनोजव, पवमान, धूम्रानीक, चित्ररेफ, बहुतरूप; विश्वधार उनका राज्य दे आप भगवान अनंतमें मति लगाय तपोवनकों जातोभयो ॥ २५ ॥ इनखंडोंके सीमाके पर्वत नदियें

एवं परस्तात् क्षीरोदात् परित उपवेशितः शाकद्वीपो द्वात्रिंशल्लक्षयोजनायामः समानेन च दधिमण्डोदेन परीतः॥ यस्मिन् शाको नाम महीरुहः स्वक्षेत्रव्यपदेशको यस्य ह महासुरभिगन्धस्तं द्वीपमनुवासयति॥२४॥तस्यापि प्रैयव्रत एवाधिपतिर्नाम्ना मेधातिथिः सोऽपि विभज्य सप्त वर्षाणि पुत्रनामानि तेषु स्वात्मजान् पुरोजवमनोजवपवमानधूम्रानीकचित्ररेफबहुरूपविश्वधारसंज्ञान् निधाय्याधिपतीन् स्वयं भगवत्यनन्त आवेशितमतिस्तपोवनं प्रविवेश ॥२५॥एतेषां वर्षमर्यादागिरयो नद्यश्च सप्त सप्तैव॥ ईशान उरुशृङ्गो बलभद्रः शतकेसरः सहस्रस्रोतो देवपालो महानस इति ॥ अनघाऽऽयुर्दा उभयस्पृष्टिरपराजिता पञ्चपदी सहस्रस्रुतिर्निजधृतिरिति॥२६॥तद्वर्षे पुरुषा ऋतव्रतसत्यव्रतदानव्रतानुव्रतनामानो भगवन्तं वाय्वात्मकं प्राणायामविधूतरजस्तमसः परमसमाधिना यजन्ति ॥२७॥ अन्तः प्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः॥ अन्तर्यामीश्वरः साक्षात् पातु नो यद्वशे स्फुटम्॥२८॥

सात सात है, ईशान, उरुशृंग, बलभद्र, शतकेसर, सहस्रस्रोत, देवपाल, महानस, ये पर्वत हैं, अनघा, आयुर्दा, उभयस्पृष्टि, अपराजिता, पंचपदी, सहस्रस्रुति, निजधृति, ये नदियें हैं ॥ २६ ॥ वा खंडके पुरुष ऋतव्रत सत्यव्रत दानव्रत अनुव्रत इन नामके चारवर्ण भगवान् वायुके अंतर्यामीको प्राणायामसें राजस तामस दूर कर परमसमाधिसे यजन करैं हैं ॥ २७ ॥ जो पवन आप प्राणरूप होयकर सब जीवनमें प्रवेश कर जीवमात्रकूं धारतो है, वो अंतर्यामी ईश्वर साक्षात् हमारी रक्षा करो जाके वशमें ये सब जगत है ॥ २८ ॥

वामै प्रियव्रतसुत घृतपृष्ठ नाम राजा अपने द्वीपमें खंडनको सात विभाग कर वे खंड पुत्रनके नामसे प्रगट भए, सातों दाय लेवेवारोंको खंडपालक करके आप परमकल्याण यशस्वी भगवान् सर्वांतर्यामी श्रीहरिके चरणारविंदकी शरणमें जाते भए ॥२०॥ आम, मधुरुह, मेघपृष्ठ, सुधाम, भ्राजिष्ठ, लोहितार्ण, वनस्पति ये घृतपृष्ठके पुत्र हैं;तिन खंडोंके पर्वत सात सात हैं नदीभी सात हैं, शुक्ल,वर्द्धमान, भोजन,उपबर्हिण,नंद,नंदन,सर्वतोभद्र ये पर्वत हैं,अभया,अमृतौघा,आर्यका,तीर्थवती,वृत्तिरूपवती,पवित्रवती, शुक्ला ये नदियें हैं ॥२१॥ जिनको जल निर्मल पवित्र है उसके सेवन करनेहारे पुरुष,ऋषभ,द्रविण,देवनामक चार वर्ण उस खंडमें जलमय श्रीवरुणदेव महाराजकों अंजलिमें जलभरके पूजन करै हैं॥ "आपो वै ब्रह्म" जल ब्रह्मको स्वरूप है,

तस्मिन्नपि प्रैयव्रतो घृतपृष्ठो नामाधिपतिः स्वे द्वीपे वर्षाणि सप्त विभज्य तेषु पुत्रनामसु सप्त रिक्थादान् वर्षपान् निवेश्य स्वयं भगवान् भगवतः परमकल्याणयशस आत्मभूतस्य हरेश्चरणारविन्दमुपजगाम ॥२०॥ आमो मधुरुहो मेघपृष्ठः सुधामा भ्राजिष्ठो लोहितार्णो वनस्पतिरिति घृतपृष्ठसुतास्तेषां वर्षगिरयः सप्त सप्तैव नद्यश्चाभिख्याताः शुक्लो वर्धमानो भोजन उपबर्हणो नन्दो नन्दनः सर्वभद्र इति॥ अभया अमृतौघा आर्यका तीर्थवती वृत्तिरूपवती पवित्रवती शुक्लेति ॥२१॥ यासामम्भः पवित्रममलमुपयुञ्जानाः पुरुषऋषभद्रविणदेवकसंज्ञा वर्षपुरुषा आपोमयं देवमपां पूर्णेनाञ्जलिना यजन्ते॥२२॥आपः पुरुषवीर्याः स्थ पुनन्तीर्भूर्भुवः स्वः॥ता नः पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुव इति॥२३॥

दृष्टांत है कि एकने ग्रीष्ममें प्याऊ लगाई, वहां अनेक मनुष्य जलपान करै, कोई ब्राह्मण महाप्यासो वहां आय जल पी तृप्त होय बोले जानो ये प्याऊ लगाई वाके सात पुत्र होय, थोडे दिनमें तैसेई भयो, धनसंतान बढे याते जलदान अन्नदान वस्त्रदान विद्यादान औषधिदान अभयदान गृहदान अश्वदान गजदान राज्यदान देवालयदानसे महापुण्य होय है, इनसबसे जलकी पूजा विशेष है (१)॥२२॥ हे जलहो! ईश्वरके वीर्यसे आप स्थित हो, भूर्भवःस्वर इन सबनको पवित्र करवेवारे हो, सब पापनाशक जलरूप ईश्वर आप हो सो हम अपने शरीरकरकै तुम्है स्पर्श करैहैं, यासे हमें

---

१ कवित्त–पर आव तौ यह दान रहे हैं॥ दानी कोउ नाहिने गुलावदानी पीकदानी गौंददानी घनी शोभा इनहीमें लहे हैं ।मानत न गुणीको गुणीहीमें प्रगट देखो, यातें गुणी जन मन सावधानी गहे हैं॥ हयदान, हेमदान, गजदान, भूमिदान, सुकवि सुनाये और पुराणनमें कहे हैं। अब तो कलमदान जुजदान जामदान खानदान पानदान कहिवेंकों रहे हैं॥१॥

मानसोत्तर और सुवर्ण पर्वतके बीचमें जितनी भूमि है उतनेही प्रमाणकी एक करोड साडेसत्तामन लाख योजन दूसरी भूमि स्वादिष्ठ जलके सागरके आगे है उसमें प्राणी रहते हैं उससे परे सुवर्णमय भूमि आठ करोड उन्तालिस लाख योजनमें है, वो सुवर्णमयी है, और शीशेके समान है, जापर गिरो पदार्थ फेर हाथ न आवै है,इस कारण वहां प्राणी नही रहते "शिवतंत्रमें कहा है कि दो क्रोड त्रेपन लाख पचास हजारके प्रमाणमें सप्तद्वीप सातों समुद्र है हे पार्वतीजी ! दशकोटमें सुवर्णमयी भूमी है, ताते परे देवनके क्रीडाके अर्थ लोकालोक पर्वत है " ॥ ३५ ॥ इसका लोकालोक पर्वत नाम पडनेका यह कारण है कि लोक जहां सूर्यका प्रकाश है, अलोक जहां सूर्यकी स्थिति नहीं उसके बीचमें उसकी स्थिति है ॥ ३६ ॥ सो लोकत्रयके अंतमें सब

यावन्मानसोत्तरमेर्वोरन्तरं तावती भूमिः काञ्चन्यन्याऽऽदर्शतलोपमा यस्यां प्रहितः पदार्थो न कथंचित् पुनः प्रत्युपलभ्यते तस्मात् सर्वसत्त्वपरिहृतासीत् ॥ ३५ ॥ लोकालोक इति समाख्या यदनेनाचलेन लोकालोकस्यान्तर्वर्तिनाऽवस्थाप्यते ॥ ३६ ॥ स लोकत्रयान्ते परित ईश्वरेण विहितो यस्मात् सूर्यादीनां ध्रुवापवर्गाणां ज्योतिर्गणानां गभस्तयोऽर्वाचीनाँस्त्रीँल्लोकानावितन्वाना न कदाचित् पराचीना भवितुमुत्सहन्ते तावदुन्नहनायामः ॥ ३७ ॥ एतावाँल्लोकविन्यासो मानलक्षणसंस्थाभिर्विचिन्तितः कविभिः स तु पञ्चाशत्कोटिगणितस्य भूगोलस्य तुरीयभागोऽयं लोकालोकाचलः ॥ ३८ ॥ तदुपरिष्टाच्चतसृष्वाशास्वात्मयोनिनाखिलजगद्गुरुणाऽधिनिवेशिता ये द्विरदपतय ऋषभः पुष्करचूडो वामनोऽपराजित इति सकललोकस्थितिहेतवः ॥ ३९ ॥

ओरसे ईश्वरने रचो है, जाते सूर्य आदि ध्रुव अपवर्ग ज्योतिर्गणनकी किरणे नीचेके तीनलोकनको विस्तार करती कभी अलग नहीं होयहै तितनो ऊंचो विस्तार है ॥३७ ॥ इतना लोकका विस्तार प्रमाण लक्षण स्थितिसे पंडितोंने लिखा है विशेष करकै चिंतवन करी है, सो पंचाशत्कोटि योजन है तिस भूगोलको चौथोभाग ये लोकालोकाचल है यह मेरुके चारों ओर बारह करोड पचास लाख योजन दूर है॥३८॥सो या भूमंडलके ऊपर चारोंदिशानमें सब जगतके गुरु श्रीब्रह्माजीने चार हाथीनके पति चार स्थित करे हैं ऋषभ,पुष्करचूड,वामन, अपराजित ये सकललोकके स्थितिके लिये हैं ॥ ३९॥

ऐसेई मट्ठेके समुद्रसे आगै दूनो विस्तृत पुष्करद्वीप है, सब ओरसें अपने समान शुद्ध स्वादू जलके समुद्रसे बाहिर आवृत है, जामैं बडो कमल अग्निकी निर्मलशिखासम सुवर्णके दस हज्जारपत्रयुक्त भगवान् ब्रह्माजीको आसन कल्पना करो है ॥२९॥ उस द्वीपके मध्यमें मानसोत्तरनामैकपर्वत अगलबगलके मर्यादाके पर्वत है, दस हज्जार योजनको विस्तार है, जहां चारों दिशानमें इंद्रादिलोकपालकनके चार पुर हैं, सूर्यका रथ जो सुमेरुके चारों ओर फिरताहै उसका वर्षरूप चक्र दक्षिणायन और उत्तरायणसे मानसोत्तर पर्वतके ऊपर भ्रमण करता है ॥ ३० ॥ उस द्वीपके राजा प्रियव्रतके पुत्र वीतिहोत्र नामक भये, तिनके पुत्र रमणक धातकी नामक दो पुत्रोंको खंडके पति कर आप अपने पूर्वके पुरुषनकी नांई भगवत्कर्ममें परायण होते भए ॥ ३१ ॥ वा खंडके पुरुष भगवान् ब्रह्मरूपोको सकामिक कर्म करकै आराधना करत ये उच्चारण करै हैं ॥ ३२ ॥ जो प्रसिद्ध कर्मफलोंके चिन्हरूप हैं जिनमें ब्रह्मका प्रकाश है और परमेश्वरमेंही जिनकी निष्ठा है इस कारणसे जो अद्वितोय हैं और सब जिनका भक्तियोगसे पूजन करते हैं सो शांत स्वभाववाले षडैश्वर्यवान भगवानको हम प्रणाम करतेहैं ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि ताते परे लोकालोकपर्वतनाम लोकअलोकोंके मध्यमें रचोहै तहां सूर्यका प्रकाश नहीं है ॥ ३४ ॥

एवमेव दधिमण्डोदात् परतः पुष्करद्वीपस्ततो द्विगुणायामः समन्तत उपकल्पितः समानेन स्वादूदकेन समुद्रेण बहिरावृतो यस्मिन् बृहत्पुष्करं ज्वलनशिखामलकनकपत्रायुतायुतं भगवतः कमलासनस्याध्यासनं परिकल्पितम् ॥ ॥ २९ ॥ तद्द्वीपमध्ये मानसोत्तरनामैक एवार्वाचीनपराचीनवर्षयोर्मर्यादाचलोऽयुतयोजनोच्छ्रायायामो यत्र तु चतसृषु दिक्षु चत्वारि पुराणि लोकपालानामिन्द्रादीनां यदुपरिष्टात् सूर्यरथस्य मेरुं परिभ्रमतः संवत्सरात्मकं चक्रं देवानामहोरात्राभ्यां परिभ्रमति ॥ ३० ॥ एतद्द्वीपस्याप्यधिपतिः प्रैयव्रतो वीतिहोत्रो नामैतस्यात्मजौ रमणकधातकिनामानौ वर्षपती नियुज्य स स्वयं पूर्वजवद् भगवत्कर्मशील इत्यास्ते ॥ ३१ ॥ तद्वर्षपुरुषा भगवन्तं ब्रह्मरूपिणं सकर्मकेन कर्मणाराधयन्ति इदं चोदाहरन्ति ॥ ३२ ॥ एतत् कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोर्चयेत् ॥ एकान्तमद्वयं शान्तं तस्मै भगवते नम इति ॥ ३३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ततः परस्ताल्लोकालोकनामाऽचलो लोकालोकयोरन्तराले परित उपक्षिप्तः ॥ ३४ ॥

देवता, पशु, पक्षी, मनुष्य, सर्प, वेल, सब जीवमात्रके समूहके सूर्यांतर्यामी ईश्वर द्रष्टा हैं ॥ ४६ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां पञ्चमस्कन्धे भुवनकोशवर्णने समुद्रद्वीपखण्डानां परिमाणलक्षणवर्णनं नाम विंशातितमोध्यायः ॥२०॥ "इन वीसअध्यायसे पृथिवीकी मर्यादा कही, तीन अध्यायकरके स्वर्गकी मर्यादा कहें हैं" ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि भूमंडलकी रचना प्रमाण लक्षणोंसे शास्त्रकारोंने इतनी वर्णन कीहै इस प्रमाणसे खगोलका प्रमाणभी पंडित जन कहते हैं ॥ १ ॥ जैसे चनेकी दाल सीजाय तौ वे दौनौ टुकड़े परस्पर बरोबर होते हैं इसी प्रकार भूमंडल और खगोलका

देवातिर्यङ्मनुष्याणां सरीसृपसवीरुधाम्॥सर्वजीवनिकायानां सूर्य आत्मा दृगीश्वरः ॥४६ ॥ इति श्रीभा०म०पञ्चम० भुवनकोशवर्णने समुद्रद्वीपवर्षसन्निवेशपरिमाणलक्षणो नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच॥ एतावानेव भूवलयस्य सन्निवेशः प्रमाणलक्षणतो व्याख्यातः॥ एतेन हि दिवो मण्डलमानं तद्विद उपदिशन्ति॥१॥ यथा द्विदलयोर्निष्पावादीनां ते अन्तरेणान्तरिक्षं तदुभयसंधितम् ॥२ ॥ तन्मध्यगतो भगवांस्तपतां पतिस्तपन आतपेन त्रिलोकीं प्रतपत्यवभासयत्यात्मभासा॥स एष उदगयनदक्षिणायनवैषुवतसंज्ञाभिर्मान्द्यशैघ्र्यसमानाभिर्गतिभिरारोहणावरोहणसमानस्थानेषु यथासवनमभिपद्यमानो मकरादिषु राशिष्वहोरात्राणि दीर्घह्रस्वसमानानि विधत्ते ॥ ३ ॥

प्रमाण समान है मध्यका आकाश दोनौंसे मिला हुआ है ॥२॥ जाके मध्यगत भगवान् तेजोमयपदार्थोंके पति सूर्य त्रिलोकीको अपने प्रकाशसे तपाते हैं, सो ये सूर्य उत्तरायण दक्षिणायन वैषुवतसंज्ञासे मंद शीघ्र समान गतिकरकै बढनो उतरनो इन समानस्थानोंमें यथाकाल प्राप्त होयकर मकर आदि राशिमें दिन्[१]रात बडे छोटे समान करै है ॥ ३ ॥

---

१ शंका–सूर्यनारायण आकाशमें वास करते हैं, पृथ्वीके नीचे सूर्य नहीं रहते, फिर व्यासजी महाराजने कैसे कहा कि सूर्य तीन लोकमें प्रकाश करते हैं ?

उत्तर–भूमिके नीचे जो सात लोक हैं उन लोकोंकी कथा श्रीशुकदेवजीने नहीं कहीथी, मृत्युलोकके ऊपर जो लोक हैं उन लोकोंके बीचमें जो लोक हैं उनको त्रिलोकी कहाथा, उनही तीन लोकमें सूर्यनारायण प्रकाश करते हैं ।

अपनी विभूती लोकपालोंके अनेक प्रकारके पराक्रम वृद्धिके अर्थ श्रीभगवान्महापुरुष सब विभूतनिके पति अंतर्यामी अपनो विशुद्ध सत्व धर्म ज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य आदि अष्टमहासिद्धियोंकरकै लक्षित विष्वक्सेन आदि अपने पार्षदमुख्यों करकै परिवेष्टित अपने श्रेष्ठ आयुधोंको सुन्दर भुजाओंमें धारण किये वा पर्वतउत्तमपर सब ओरसे सकललोकके आनंदके लिये निवास करते स्थित हैं ॥ ४० ॥ ये भगवान् अपनी आत्ममायाके योगसे जो अनेक लोकौंकी रचना कीगई है इनकी रक्षाके निमित अपनी लीलाओंसे वेषकी रचना स्वीकार करते एक कल्पतक विराजते हैं॥४१॥जो भीतरको

तेषां स्वविभूतीनां लोकपालानां च विविधवीर्योपबृंहणाय भगवान् परममहापुरुषो महाविभूतिपतिरन्तर्याम्यात्मनो
विशुद्धसत्त्वं धर्मज्ञानवैराग्यैश्वर्याद्यष्टमहासिद्ध्युपलक्षणं विष्वक्सेनादिभिः स्वपार्षदप्रवरैः परिवारितो निजवरायुधोपशोभितैर्निजभुजदण्डैः संधारयमाणस्तस्मिन् गिरिवरे समन्तात् सकललोकस्वस्तय आस्ते ॥ ४० आकल्पमेवं वेषं गत एष भगवानात्मयोगमायया विरचितविविधलोकयात्रागोपीथायेति ॥ ४१ ॥ योन्तर्विस्तार एतेन
ह्यलोकपरिमाणं च व्याख्यातं यद्बहिर्लोकालोकाचलात् ततः परस्ताद् योगेश्वरगतिं विशुद्धामुदाहरन्ति ॥ ४२ ॥
अण्डमध्यगतः सूर्यो द्यावाभूम्योर्यदन्तरम् ॥ सूर्याण्डगोलयोर्मध्ये कोट्यः स्युः पञ्चविंशतिः ॥ ४३ ॥ मृतेऽण्ड एष
एतस्मिन् यदभूत् ततो मार्तण्ड इति व्यपदेशः ॥ हिरण्यगर्भ इति यद्धिरण्याण्डसमुद्भवः ॥ ४४ ॥ सूर्येण हि विभज्यन्ते
दिशः खं द्यौर्मही भिदा ॥ स्वर्गापवर्गौ नरका रसौकांसि च सर्वशः ॥ ४५ ॥

विस्तार है,उतनाही लोकाचल पर्वतके बाहिरका विस्तार कहा है ताते परै योगेश्वरोंकी शुद्धगति है सिवाय इनके और कोई नही जासक्ता ॥४२॥ स्वर्ग और भूमिके बीचमें जितना अंतर है वही ब्रह्माण्डका मध्य स्थल है सूर्य और अण्डकटाह दोनोंके मध्य स्थलका परिमाण २५ पच्चीस करोड़ योजन है ॥ ४३ ॥ सूर्यको मार्तण्ड इस कारण कहते हैं कि मृत अर्थात् अचेतन अण्डमें वैराजरूपसे प्रवृत्त हुए इस कारण उन्हे हिरण्यगर्भभी कहते है॥४४॥ सब कालमें, दिशा, आकाश; स्वर्ग, भूमी, वैकुंठ, मोक्ष, नरक, रसातल, इत्यादिक सूर्य करकै विभाग करे जायहै ॥ ४५ ॥

जब मेष तुलामें सूर्य वर्तेहैं, तब दिनरात बराबर होते हैं, जब वृषआदि पांचराशिमें सूर्य विचरै है तब दिन बढते है, और महिना महीनामें एक एक घडी रातमें कमती होती है ॥ ४ ॥ जब वृश्चिक आदि पांचराशिपर सूर्य वर्तेहै तब दिनरात उलटेपलटे होते हैं ॥ ५ ॥ दक्षिणायन आनेतक दिन बढते हैं, उत्तरायण आनेतक रात्रियें बढैहैं अर्थात् उत्तरायणमें दिन दक्षिणायनमें रात्रि बढतीहैं ॥ ६ ॥ ऐसे नौ क्रोड़ इक्यावन लाख योजन मानससरोवरके उत्तरके पर्वतको सूर्यको पर्यटन वर्णन करो है, वा पर्वतमें सुमेरुके पूर्व इंद्रकी देवधानी नाम्नी पुरी है दक्षिणमें संयमनीनामक यमराजकी पुरी है, पश्चिममें निम्लोचनीनाम वरुणकी पुरी है, उत्तरकी ओर विभावरीनाम्नी चंद्रमाकी पुरी है, इन चारोंमें उदय मध्याह्न अस्त अर्द्धरात्र

यदा मेषतुलयोर्वर्तते तदाऽहोरात्राणि समानानि भवन्ति यदा वृषभादिषु पञ्चसु च राशिषु चरति तदाऽहान्येव वर्धन्ते ह्रसति च मासि मास्येकैका घटिका रात्रिषु ॥४॥ यदा वृश्चिकादिषु पञ्चसु वर्तते तदाऽहोरात्राणि विपर्ययाणि भवन्ति ॥ ५ ॥ यावद्दक्षिणायनमहानि वर्धन्ते यावदुदगयनं रात्रयः ॥६॥ एवं नवकोटय एकपञ्चाशल्लक्षाणि योजनानां मानसोत्तरगिरिपरिवर्तनस्योपदिशन्ति ॥ तस्मिन्नैन्द्रीं पुरीं पूर्वस्मान्मेरोर्देवधानीं नाम दक्षिणतो याम्यां संयमनीं नाम पश्चाद्वारुणीं निम्लोचनीं नाम उत्तरतः सौम्यां विभावरीं नाम तासूदयमध्याह्नास्तमयनिशीथानीति भूतानां प्रवृत्तिनिमित्तानि समयविशेषेण मेरोश्चतुर्दिशम् ॥ ७ ॥ तत्रत्यानां दिवसमध्यंगत एव सदादित्यस्तपति सव्येनाचलं दक्षिणेन करोति ॥ ८ ॥

होयहै जीवमात्रके प्रवृत्तिनिवृत्तिके यही कारण हैं सुमेरुके दक्षिणकी ओर बसनेवालोंका इंद्रपुरीसे पश्चिमके निवासियोंको यमपुरीसे उत्तरदिशानिवासियोंको वरुणपुरीसे पूर्वके रहनेवालोंको चंद्रपुरीसे सूर्यका उदय दिखाई देता है ॥ ७ ॥ सुमेरुके रहनेवाले प्राणियोंको सूर्य मध्यान्हमें ताप देतेहै यद्यपि सूर्य बाई औरको चलतेहै अर्थात् नक्षत्रोंके सन्मुख होकर जानेसै सुमेरुको बाई ओर रखकर गमन करते हैं तथापि प्रवह पवनसे ज्योतिश्चक्रे भ्रमण करनेसै मेरु सूर्यके दक्षिण हो जाताहै ॥ “ चक्रकी गतिके वशतै अतिदूर भूमंडलसंलग्नको दर्शन सूर्यको उदय ॥ आकाशको ऊंचे होजाय तब मध्यान्ह ॥ भूमिप्रविष्टको दर्शन अस्त कहावै है, अतिदूर सूर्य जाय हैं तो अर्द्धरात्र कहावै है ये विष्णुपुराणमें है ॥ ” ॥ ८ ॥

जहां उदय होते है ताको बराबर सूत्रमें निपातसे अस्त होंय हैं, जहां कही किंचित् चलकै तपे है ताको समान सूत्रके निपातसै अर्धरात्र कहैं है तब वहांके प्राणी सोते है इस कारण जो उनका अस्त देखते हैं वह इस (सन्मुख सूत्र पड़नेंके स्थानपर) स्थानमें आनेकी जगह सूर्यको नही देख सक्ते है ॥ ९ ॥ जब सूर्य इंद्रकी पुरीमें चलते है, तब दो क्रोड अठारे लाख पच्चीसहजार योजन पंद्रह घडीमें चलकर दक्षिणकी पुरीको जाते हैं ॥ १० ॥ ऐसे वारुणी सौम्या ऐंद्री पुरीनको जाते हैं और सोम आदि ग्रह इसी प्रकार ज्योतिश्चक्रमें नक्षत्रोंके साथ उदय होकर चलते और अस्त होते हैं ॥ ११ ॥ ऐसै दो घडीमें चौतालीसलाख आठसै योजन कोश वेदत्रयीमय सूर्यको रथ चारों पुरीमें डोल आवै है ॥ १२ ॥ जिनको एक

यत्रोदेति तस्य ह समानसूत्रनिपाते निम्लोचति यत्र क्वचन स्पन्देनाभितपति तस्य हैष समानसूत्रनिपाते प्रस्वापयति तत्र गतं न पश्यन्ति ये तं समनुपश्येरन्॥९॥यदा चैन्द्रयाः पुर्याः प्रचलते पञ्चदशघटिकाभिर्याम्यां सपादकोटिद्वयं योजनानां सार्धद्वादशलक्षाणि साधिकानि चोपयाति ॥ १० ॥ एवं ततो वारुणीं सौम्यामैन्द्रीं च पुनस्तथाऽन्ये च ग्रहाः सोमादयो नक्षत्रैः सह ज्योतिश्चक्रे समभ्युद्यन्ति सह वा निम्लोचन्ति॥११॥एवं मुहूर्तेन चतुस्त्रिंशल्लक्षयोजनान्यष्टशताधिकानि सौरो रथस्त्रयीमयोऽसौ चतसृषु परिवर्तते पुरीषु॥१२॥यस्यैकं चक्रं द्वादशारं षण्नेमि त्रिणाभि संवत्सरात्मकं समामनन्ति तस्याक्षो मेरोर्मूर्धनि कृतोत्तरभागो मानसोत्तरे कृतेतरभागो यत्र प्रोतं रविरथचक्रं तैलयन्त्रचक्रवद्भ्रमन्मानसोत्तरगिरौ परिभ्रमति ॥ १३ ॥ तस्मिन्नक्षे कृतमूलो द्वितीयोऽक्षस्तुर्यमानेन संमितस्तैलयन्त्राक्षवद् ध्रुवे कृतोपरिभागः ॥ १४ ॥

चक्र, बारहमासरूप आरे छैऋतुरूप नेमियुक्त चातुर्मास ग्रीष्म शीत तीन नाभिका संवत्सररूप चक्र कह्यो है, ताको अक्ष मेरुके मूंडपर करो है, मानसके उत्तरमें दूसरो भाग है, जामें पुरा हुआ सूर्यका रथचक्र तैलयंत्र चक्रकी नाई घूमता मानसके उत्तर गिरीपर भ्रमण करता है ॥ १३ ॥ सूर्यके रथमें दो धुरे है प्रथम तो सुमेरु और मानसोत्तरतक फैला हुआ है उसका परिमाण एक करोड सत्तावन लाख पचास हजार योजन है दूसरा धुरा इससै चौथाई अर्थात उन्तालीस लाख साढे तैतीस हजार योजन है पहला धुरा दूसरे धुरेके पूर्व भागमें

बंधा है और कोलूके धुरेकी समान ध्रुव लोकके वायुपाशसे उसका ऊपर भाग बंधा हुआ है ॥ १४ सूर्यके बैठनेका रथका स्थान छत्तीसलक्ष योजन विस्तृत है, और उसका चौथाई अंश नौलाख योजन ऊंचा है और नौलाख योजनका इसका जुआ है इसमें गायत्री आदिनामधारी सात अपूर्व घोडे अरुण सारथीसे जोड़े हुए भगवान् सूर्यके रथको ले चलते हैं ॥ १५ ॥ सूर्यके आगे अरुणसारथी है, यद्यपि वह सूर्यके आगे बैठता है तथापि उसका मुख सूर्यकी ओरको रहताहै वायुपुराणमें कहा है कि ॥ " सप्ताश्वरूपच्छंदांसि वहंते वामतो रविं ॥ चक्रपक्षनिबद्धानि चक्रे चाक्षः समाहितः ॥ " इति ॥ १६ ॥ तैसे वालखिल्यऋषि अंगुष्ठके समान साठहजार, सूर्यके आगे चलते सत्य सत्य कहितेभए सुंदर बोलवेके लिये सूर्यकी स्तुति करैं हैं ॥१७॥

रथनीडस्तु षट्त्रिंशल्लक्षयोजनायतस्तत्तुरीयभागविशालस्तावान् रविरथयुगो यत्र हयाश्छन्दोनामानः सप्तारुणयोजिता वहन्ति देवमादित्यम् ॥ १५ ॥ पुरस्तात् सवितुररुणः पश्चाच्च नियुक्तः सौत्ये कर्मणि किलास्ते ॥ १६ ॥ यथा वालखिल्या ऋषयोऽङ्गुष्ठपर्वमात्राः षष्टिसहस्राणि पुरतः सूर्यं सूक्तवाकाय नियुक्ताः संस्तुवन्ति ॥ १७॥ तथान्ये च ऋषयो गन्धर्वाप्सरसो नागा ग्रामण्यो यातुधाना देवा इत्येकैकशो गणाः सप्त चतुर्दश मासि मासि भगवन्तं सूर्यमात्मानं नानानामानं पृथङ्नानानामानः पृथक्कर्मभिर्द्वन्द्वश उपासते ॥ १८॥ लक्षोत्तरं सार्धनवकोटियोजनपरिमण्डलं भूवलयस्य क्षणेन सगव्यूत्युत्तरं द्विसहस्रयोजनानि स भुङ्क्ते ॥ १९ ॥ इति श्रीभा० म० पञ्चम० ज्योतिश्चक्रसूर्यरथमण्डलवर्णनं नामैकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

तैसेई और ऋषि गंधर्व अप्सरा नाग ग्रामणी यातुधान देवता इनके एक एक गण सात सात नानानाम पृथक् २ मासमासमें सूर्यात्माको नानानामके पृथक् कर्मकरके उपासना करै हैं ॥ १८ ॥ नवक्रोड एकलाख पचास हज़ार योजन परिमित भूमंडलको फिरनेको निमित्त एक क्षणमात्रमें दोहजार योजन और दो कोस चलते हैं, " सूर्य ईश्वर है " एकपीपरपर उल्लू रहै, नीचे सब आय सूर्यको रोज जल दै, तब उल्लू मासे बोलो मा! सूर्य तो मैंनै कभी देखो नाय, ये सब मूर्ख है, तब वाको मा बोली बेटा! सूर्ज तेरे दादेने न देखो तेरे बापने न देखो, तूं कहासे देखेगो, क्योंकि सूर्यके अतितेजसे उल्लूकके नेत्र मूंदजांय है जैसेई मूर्ख लोगनको परमेश्वर नाय दीखै है, जैसे उल्लुके वंशनको सूर्य नांय दीखै है

इसी प्रकार वह नारायण पूर्ण रूपसे इनमें स्थित हैं ॥१९॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां पञ्चमस्कन्धे सूर्यरथमण्डलवर्णनं नाम एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ राजा परीक्षित बोले कि ये भगवान् सूर्य मेरु ध्रुवको प्रदक्षिण करके चलत हैं, और राशिनके सन्मुख वाए होयकर चलैहैं, ये अपने वर्णन करो है याको हम कैसे अनुमान करैं, ये विरुद्ध बात है यासे कहिये ॥ १ ॥ सो शुकाचार्य हर्षसे बोले कि जैसै घूमते भये कुम्हारके चाकके साथ वाके ऊपर घूमती भई चीटि आदियोंकी गति औरही प्रकारकी मालूम पडै है, ऐसेई नक्षत्रराशियों करके उपलक्षित कालचक्रकरकै ध्रुव और मेरुको प्रदक्षिण करकै शीघ्र साथ चलनेसे उनके आश्रय सूर्य आदि ग्रहोंकी गति औरही प्रकार करकै नक्षत्रराशिके मध्यमें मालूम

राजोवाच ॥ यदेतद्भगवत आदित्यस्य मेरुं ध्रुवं च प्रदक्षिणेन परिक्रामतो राशीनामभिमुखं च प्रचलितं चाप्रदक्षिणं भगवतोपवर्णितममुष्य वयं कथमनुमीमहीति ॥ १ ॥ स होवाच ॥ यथा कुलालचक्रेण भ्रमता सह भ्रमतां तदाश्रयाणां पिपीलिकादीनां गतिरन्यैव प्रदेशान्तरेष्वप्युपलभ्यमानत्वात् ॥ एवं नक्षत्रराशिभिरुपलक्षितेन कालचक्रेण ध्रुवं मेरुं च प्रदक्षिणे परिधावता सह परिधावमानानां तदाश्रयाणां सूर्यादीनां ग्रहाणां गतिरन्यैव नक्षत्रान्तरे राश्यन्तरे चोपलभ्यमानत्वात् ॥ २ ॥ स एष भगवानादिपुरुष एव साक्षान्नारायणो लोकानां स्वस्तय आत्मानं त्रयीमयं कर्मविशुद्धिनिमित्तं कविभिरपि च वेदेन विजिज्ञास्यमानो द्वादशधा विभज्य षट्सु वसन्तादिषु ऋतुषु यथोपजोषमृतुगुणान् विदधाति ॥ ३ ॥ तमेतमिह पुरुषास्त्रय्या विद्यया वर्णाश्रमाचारानुपथा उच्चावचैः कर्मभिराम्नातैर्योगवितानैश्च श्रद्धया यजन्तोऽञ्जसा श्रेयः समधिगच्छन्ति ॥ ४ ॥

पडै है ॥ २ ॥ सो ये भगवान् आदि पुरुषही साक्षात् नारायण लोकनके मंगलके अर्थ अपने आत्माको त्रयीमय कर्म विशुद्धि निमित्तक द्वादश सूर्यरूप विभागकर छै वसंतादि ऋतुओंमें यथासुख ऋतुके गुणनको भोगै हैं परम पुरुषके इस व्यापारमें आत्मतत्वके जान्नेवाले विद्वानभी तर्क वितर्क किया करते हैं ॥ ३ ॥ तिन सूर्यको वर्ण आश्रम आचारवान पुरुष वेदत्रयीकी विद्याकरकै छोटे मोटे वेदके योगविस्तारके कर्म श्रद्धाकरकै यजन करते अनायासकरकै आनन्दको प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥

121

यह सूर्यही सब लोकौंके आत्मा है स्वर्ग और पृथ्वीके मध्यमें जो आकाश मंडल है उसके मध्यमें कालचक्रमें स्थित होकर यही सूर्य बारह महिनौंकी राशि भोग करते है मेषादि राशियौंके नामही इन सब मासोंके नाम है यह मास सम्वत्सरके अंग है महीनेमें पृथक् २ भांतिके होते हैं चन्द्रमाकी गतिसै दो पक्षका महिना होता है सूर्यकी गतिके हिसाबसे सूर्यके सवादो नक्षत्र भोगकरनेके कालको एक मास कहते हैं यह एक महिना पितरोंका दिन रात होता है यह सूर्य जितने कालमें संवत्सरका छठवां भाग अर्थात् दो राशियौंको भोग करते हैं वह काल ऋतु कहा जाता है इस कारण ऋतु संवत्सरका एक अंग है ॥ ५॥ इस कारण सूर्यदेव जितने समयमें पृथ्वीके अधोभागमें घूमजाते हैं उतनै समयको

अथ स एष आत्मा लोकानां द्यावापृथिव्योरन्तरेण नभोवलयस्य कालचक्रगतो द्वादश मासान् भुङ्क्ते राशिसंज्ञान् संवत्सरावयवान् मासः पक्षद्वयं दिवा नक्तं चेति सपादर्क्षद्वयमुपदिशन्ति यावता षष्ठमंशं भुञ्जीत स वै ऋतुरित्युपदिश्यते संवत्सरावयवः ॥ ५ ॥ अथ च यावताऽर्धेन नभोवीथ्यां प्रचरति तं कालमयनमाचक्षते ॥६॥ अथ च यावन्नभोमण्डलं सह द्यावापृथिव्योर्मण्डलाभ्यां कार्त्स्न्येन सह भुञ्जीत ॥ तं कालं संवत्सरं परिवत्सरमिडावत्सरमनुवत्सरं वत्सरमिति भानोर्मान्द्यशैघ्र्यसमगतिभिः समामनन्ति ॥७॥ एवं चन्द्रमा अर्कगभस्तिभ्य उपरिष्टाल्लक्षयोजनत उपलभ्यमानोऽर्कस्य संवत्सरभुक्तिं पक्षाभ्यां मासभुक्तिं सपादर्क्षाभ्यां दिनेनैव पक्षभुक्तिमग्रचारी द्रुततरगमनो भुङ्क्ते ॥ ८ ॥

अयन कहते हैं ॥ ६ ॥ जितने आकाशमंडलको द्यावापृथ्वीके मंडलों करकै सहित सम्पूर्णतासे भोगे हैं, वा कालकी संवत्सर परिवत्सर इडावत्सर अनुवत्सर संज्ञा है, सूर्यके मंद शीघ्र समान गतियोंसे होय है ॥ “ ऐसा लिखा है कि शुक्लपक्षकी पडवाकों संक्राति जब होती हैं तब सौर चांद्रमासमें एकसंग वर्ष होय है. सौरमानसे वर्षमै छैः दिन बढै हैं चांद्रमासमें छैः दिन घटै है ऐसे बारह दिनके घटने बढनेसे दोनों आगे पीछे हो जांय है तो पांच वर्षके मध्यमें दो मलमास होय हैं पाछै छठा वर्ष होय है ॥ ७ ॥ ऐसै चन्द्रमा सूर्यकी किरणोंसे लाखयोजन ऊपर है सूर्यके वर्षकी भुक्तिको चन्द्रमा दो पक्षमें भोगता है और चान्द्रमास वा दो दिनमें सूर्यके एक मासकी बराबर चलता है और एक दिनमें सूर्यके एक पक्ष चलनेकी

122

बराबर चलताहै कभी २ चन्द्रमाकी गति अतिशीघ्र होनेके कारण यह ग्रह सूर्यकी बराबरीसैभी आगे हो जाताहै ॥ ८ ॥ और पूर्ण कलासे देवनके
और क्षीणकलोंसें पितरोंके दिनरात्र शुक्लकृष्णपक्षके विस्तारसे हैं सब जीवमात्रको निर्वाह करवेवारे प्राणदाता जीवरूप एकएक नक्षत्रको तीस मुहू-
र्तोंसे भोगै है ॥ ९ ॥ ये षोडशकलाधारी पुरुष भगवान्ही मनोमय अन्नमय अमृतमय देवता पितर मनुष्य भूत पशु पक्षि सर्प वेल इत्यादिकोंको
प्राणदाता वृद्धिकारी शील युक्त सर्वमय चंद्रमा है ॥ १० ॥ ताते ऊपर तीनलाख योजनपर सब नक्षत्र हैं, सुमेरुकी दक्षिणकी ओर होते भये काल-
रूप ईश्वर करकै लगाए भये अभिजितसहित अट्ठाईस नक्षत्र हैं अश्विनी भरणी कृत्तिका रोहिणी मृगशिर आर्द्रा पुनर्वसु पुष्य आश्लेषा मघा पूर्वा-

अथवा पूर्यमाणाभिश्च कलाभिरमराणां क्षीयमाणाभिश्च कलाभिः पितॄणामहोरात्राणि पूर्वपक्षापरपक्षाभ्यां वितन्वानः सर्वजीवनिवहप्राणो जीवश्चैकमेकं नक्षत्रं त्रिंशता मुहूर्तेन भुङ्क्ते ॥ ९ ॥ य एष षोडशकलः पुरुषो भगवान्मनोमयोऽन्नमयोऽमृतमयो देवपितृमनुष्यभूतपशुपक्षिसरीसृपवीरुधां प्राणाप्यायनशीलत्वात् सर्वमय इति वर्णयन्ति ॥ १० ॥ तत उपरिष्टात् त्रिलक्षयोजनतो नक्षत्राणि मेरुं दक्षिणेनैव कालायन ईश्वरयोजितानि सहाभिजिताऽष्टाविंशतिः ॥ ११ ॥ तत उपरिष्टादुशना द्विलक्षयोजनत उपलभ्यते पुरतः पश्चात् सहैव वाऽर्कस्य शैघ्र्यमान्द्यसाम्याभिर्गतिभिरर्कवच्चरति ॥ लोकानां नित्यदाऽनुकूल एव प्रायेण वर्षयन् चारेणानुमीयते स वृष्टिविष्टम्भग्रहोपशमनः ॥ १२ ॥ उशनसा बुधो व्याख्यातः तत उपरिष्टाद् द्विलक्षयोजनतो बुधः सोमसुत उपलभ्यमानः प्रायेण शुभकृद् यदाऽर्काद् व्यतिरिच्येत तदाऽतिचरताऽभ्रप्रायानावृष्ट्यादिभयमाशंसते ॥ १३ ॥

फाल्गुनी उत्तराफाल्गुनी हस्त चित्रा स्वाति विशाखा अनुराधा ज्येष्ठा मूल पूर्वाषाढा उत्तराषाढा अभिजित् श्रवण धनिष्ठा शतभिषा पूर्वाभाद्रपदा
उत्तराभाद्रपदा रेवती यह नक्षत्र हैं ॥ ११ ॥ तिनसे ऊपर दोलाख योजनपर शुक्र है, आगेसै पीछैसे सूर्यके साथही शीघ्र मंद समान गतियों करकै
सूर्यकीनांई चलै है लोकनको नित्य अनुकूल रहैं हैं यह प्रायकरकै वर्सते हैं, ॥ क्रममें स्थित नक्षत्रकों छोडकै चलै हैं, सो ये वृष्टिके रोकवेवारे ग्रहको
शांतकारी अनुमान करोहै ॥ १२ ॥ शुक्रके उपरांत बुध तिनसे दोलाख योजन पर कहेहैं, वो चंद्रमाके पुत्र हैं बहुधाकरके शुभकारी है जब सूर्यसे

अलग होय तब पवन बहुतच लावै है मेघ वर्षैं नहीं, बादरमात्र बनेरहै हैं वर्षा न होय ये भयकी शंका रहैहै॥१३॥ याते ऊपर मंगलभी दोलक्षयोजनपर है तीनतीन पक्षौं करकै एक एक राशीनको द्वादश राशीनको भोगै हैं जो यह वक्री न होयतौ तब यह बहुधा अशुभ ग्रहसै अमंगलसूचक हो जाताहै॥ १४ ॥ ताते ऊपर दोलक्षयोजनपर भगवान् बृहस्पति एकएकराशिपर वर्षवर्षतक रहै है, जो वक्री न होय तो प्रायकरकै ब्राह्मणकुलकों सदा सुख देवैहैं॥१५॥ ताते ऊपर दो लक्षयोजनपर शनैश्चर प्रतीत होय है, एकएकराशिको तीसमासतक हौलै हौलै भोगैं हैं, उतने वर्षमें सबको दुःख देवैं है "एकसमय रावण सब आठ ग्रह जहां कैद थे वहां देख बोले कि शनैश्चर कैदमें न आयो तो मंत्री बोले वह दुखदायक है यासे वाकौ घरमें आनो योग्य नहीं तोहू कालवस रावण बोलो नहीं

अत ऊर्ध्वमङ्गारकोऽपि योजनलक्षद्वितय उपलभ्यमानस्त्रिभिस्त्रिभिः पक्षैरेकैकशो राशीन् द्वादशानुभुङ्क्ते यदि न वक्रेणाभिवर्तते प्रायेणाशुभग्रहोऽघशंसः ॥१४॥ तत उपरिष्टाद् द्विलक्षयोजनान्तरगतो भगवान् बृहस्पतिरेकैकस्मिन् राशौ परिवत्सरं चरति यदि न वक्रः स्यात् प्रायेणानुकूलो ब्राह्मणकुलस्य ॥१५॥ तत उपरिष्टाद् योजनलक्षद्वयात् प्रतीयमानः शनैश्चर एकैकस्मिन् राशौ त्रिंशन्मासान् विलम्बमानः सर्वानेवानुपर्येति तावद्भिरनुवत्सरैः प्रायेण हि सर्वेषामशान्तिकरः ॥ १६ ॥ तत उत्तरस्मादृषय एकादशलक्षयोजनान्तर उपलक्ष्यन्ते ॥ य एव लोकानां शमनुभावयन्तो भगवतो विष्णोर्यत् परमं पदं प्रदक्षिणं प्रक्रमन्ति ॥१७॥ इति श्रीभा०म०प० ज्योतिश्चक्रवर्णने द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

वाहूंको कैद करो, सो बुलाओगयो सो शनैश्चरने दृष्टि उठाय लंकाकी और देखो सो आधीलंका गिरपडी रावणने कही ये कहा मंत्री बोले शनैश्चरकी दृष्टि आई हैं रावणने स्तोत्र करो कह्यो वहाई रहो, शनि बोलो अब तो हम घरसें चले सो लंकामें साढेसातवर्ष वास करैंगे उसी शनिकी दशामें रावणकी बुद्धि बिगडी, सीतामैया चुराई कुटुम्बसहित मरकर वैकुंठ गए यासे लिखा है कि ॥ सर्वेषामशांतिकरः ॥ ये मूलगद्यमें पाठ है " ॥१६॥ ताते ग्यारह लाखयोजन ऊपर ऋषिलोग हैं वे सबलोकमात्रको मंगल अनुभव करते भए भगवान् विष्णुके परमपद प्रदक्षिणा करतेभए विचरैं हैं’ ॥ १७॥

इति श्रीमद्भागवतभा० टी० पञ्चमस्कन्धे ज्योतिश्चक्रे नवग्रहाणां वर्णनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

शंका-हमने सब शास्त्र और पुराणोंमें ऐसा सुना है कि सब ऋषि लोग भूमिमें तप करते हैं परन्तु मुनिजन फिर ऋषि लोकमेंभी निवास करके तप करते रहते हैं वही मुनि

श्रीशुकदेवजी बोले कि ॥ याके उपरांत तेरह लक्षयोजनके ऊपर जाकों विष्णुपरमपद महात्मालोग वर्णन करै हैं जहां महाभागवत ध्रुवजी उत्तानपादके पुत्र अग्नि इंद्र प्रजापति कश्यप और धर्म सहित जब नक्षत्ररूपी हुएथे उसी दिनसें आजतक प्रदक्षिणा किया करते हैं और एक कल्पतक जीनेवालोंके आधार होकर भगवानकी आराधना करते हैं जिनकी महिमा पीछे कह आये हैं ॥ १ ॥ सो ध्रुव सब ज्योतिर्गणनके नक्षत्रादिकोंके ऊपर महावेगवारे भगवानके कालसे जो घूमैंहै, उनके मध्यमें स्तंभकीनाई स्थित हैं, ईश्वरकरके स्थित करेभए प्रकासें है ॥ २॥ जैसे कोलूके बीचके स्तंभमें खींचनेवारे पशु जोडे भए तीनतीन सवनसैं जैसे अपने स्थानमंडलकों चलै हैं ऐसै भगण ग्रहादिक इन ध्रुवमें बाहिर भीतर योगसे कालचक्रमें बन्धेभए ध्रुवरूप स्तंभको आश्रय लेकर वायुकरके घुमाए भए कल्पपर्यंत परिक्रमा करतेहैं, आकाशमें जैसैं वायुके विवश हो मेघ शिकरे इत्यादि कर्म सारथी उडै हैं ऐसै ज्योतिर्गण प्रकृति पुरुषके संयोगसे ग्रहण करतेभए कर्मनिर्मित गतिवारे भूमिमें नहीं गिरैहैं ॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथ तस्मात्परतस्त्रयोदशलक्षयोजनान्तरतो यत् तद् विष्णोः परमं पदमभिवदन्ति यत्र ह महाभागवतो ध्रुव औत्तानपादिरग्निनेन्द्रेण प्रजापतिना कश्यपेन धर्मेण च समकालयुग्भिः सबहुमानं दक्षिणतः क्रियमाण इदानीमपि कल्पजीविनामाजीव्य उपास्ते ॥ तस्येहानुभाव उपवर्णितः ॥ १ ॥ स हि सर्वेषां ज्योतिर्गणानां ग्रहनक्षत्रादीनामनिमिषेणाव्यक्तरंहसा भगवता कालेन भ्राम्यमाणानां स्थाणुरिवावष्टम्भ ईश्वरेण विहितः शश्वदवभासते ॥ यथा मेढीस्तम्भ आक्रमणपशवः संयोजितास्त्रिभिस्त्रिभिः सवनैर्यथास्थानं मण्डलानि चरन्ति॥२॥एवं भगणा ग्रहादय एतस्मिन्नन्तर्बहिर्योगेन कालचक्र आयोजिता ध्रुवमेवावलम्ब्य वायुनोदीर्यमाणा आकल्पान्तं परिचङ्क्रमन्ति नभसि यथा मेघाः श्येनादयो वायुवशाः कर्मसारथयः परिवर्तन्ते॥ एवं ज्योतिर्गणाः प्रकृतिपुरुषसंयोगानुगृहीताः कर्मनिर्मितगतयो भुवि न पतन्ति ॥ ३ ॥

भूमिमें पृथ्वीपर तप करनेवाले हैं कि और दूसरे कोई हैं ?

उत्तर-पृथ्वीपर तो तपस्या करनेवाले मुनि लोग हैं वह अपने तपकी सिद्धिको समाप्त करके पृथ्वीको तजकर ऋषि लोकको चले जाते हैं और ऋषि लोकमें बैठे भगवान्का ध्यान करते रहते हैं, और कठिन कठिन तपोंको छोड देते हैं परन्तु उनही ऋषियोंके शिष्य पृथ्वीपर निवास करते रहते हैं और अपने अपने गुरुओंके आश्रमोंपर तप करते रहते हैं ॥

कोई यह ज्योतिश्चक्र शिशुमारकी स्थितिकरकै भगवान् वासुदेवकी योगधारणामें स्थित है ऐसे वर्णन करें हैं ॥ ४ ॥ जाके पुच्छाग्रमें नीचेको शिर करे कुंडलभूतदेहके बीचमें ध्रुव है, ताके लांगूलके अग्रभागमें प्रजापति, अग्नि इंद्र धर्म ये पुच्छ मूलमें हैं, धाता विधाता सप्तऋषि कमरमें हैं, दक्षिणावर्त कुंडलीभूत शरीरके अभिजितसे आदिले पुनर्वसुतक चौदह नक्षत्र दहिने कूखमें हैं, और वाएमें पुष्यादिउत्तराषाढ पर्यंत चौदह नक्षत्र हैं इस कारण कुंडलके विस्तारानुसार शिशुमारके सब अवयव दौनों पार्श्वमें समान संख्यावाले हैं पीठमें अजवीथी है आकाशगंगा उदरमें है ॥ ५ ॥ पुन-

केचनैतज्ज्योतिरनीकं शिशुमारसंस्थानेन भगवतो वासुदेवस्य योगधारणायामनुवर्णयन्ति ॥४॥ यस्य पुच्छाग्रेऽवाक्शिरसः कुण्डलीभूतदेहस्य ध्रुव उपकल्पितः॥ तस्य लाङ्गूले प्रजापतिरग्निरिन्द्रो धर्म इति पुच्छमूले धाता विधाता च कट्यां सप्तर्षयः॥ तस्य दक्षिणावर्तकुण्डलीभूतशरीरस्य यान्युदगयनानि दक्षिणपार्श्वे तु नक्षत्राण्युपकल्पयन्ति॥ दक्षिणायनानि तु सव्ये यथा शिशुमारस्य कुण्डलाभोगसन्निवेशस्य पार्श्वयोरुभयोरप्यवयवाः समसङ्ख्या भवन्ति पृष्ठे त्वजवीथी आकाशगङ्गा चोदरतः ॥ ५ ॥ पुनर्वसुपुष्यौ दक्षिणवामयोः श्रोण्योरार्द्राश्लेषे च दक्षिणवामयोः पादयोरभिजिदुत्तराषाढे दक्षिणवामयोर्नासिकयोर्यथासङ्ख्यं श्रवणपूर्वाषाढे दक्षिणवामयोर्लोचनयोः धनिष्ठामूलं च दक्षिणवामयोः कर्णयोः मघादीन्यष्ट नक्षत्राणि दक्षिणायनानि वामपार्श्ववङ्क्रिषु युञ्जीत तथैव मृगशीर्षादीन्युदगयनानि दक्षिणपार्श्ववङ्क्रिषु प्रातिलोम्येन प्रयुञ्जीत ॥ शतभिषाज्येष्ठे स्कन्धयोर्दक्षिणवामयोर्न्यसेत् ॥ ६ ॥ उत्तराहनावगस्तिरधराहनौ यमः ॥ मुखेषु चाङ्गारकः शनैश्चर उपस्थे बृहस्पतिः ककुदि वक्षस्यादित्यो हृदये नारायणो मनसि चन्द्रो नाभ्यामुशना स्तनयोरश्विनौ बुधः प्राणापानयो राहुर्गले केतवः सर्वाङ्गेषु रोमसु सर्वे तारागणाः ॥ ७ ॥

र्वसु पुष्य दहिने वाए चूतडमें है, आर्द्रा आश्लेषा दहिने वाये पादमें है, अभिजित् उत्तराषाढ दहिनीवाई नाकमें है, यथासंख्य जानने, श्रवण पूर्वाषाढ दहिनेवाए नेत्रमें हैं, धनिष्ठा मूल दहिनेवाए कानमें हैं, मघादि आठ नक्षत्र दक्षिणायन वांये पसवाडेमें हैं मृगशीर्षा आदि उत्तरायण दहिने पसवाडेमें हैं यथाक्रमसे शतभिषा ज्येष्ठा दहिनेवांए कंधापर हैं ॥ ६ ॥ उत्तरा ऊपरकी ठोडी है अगस्ति नीचेकी ठोडी है, यम मुखमें है, मंगल शनि उपस्थ-

में है, बृहस्पति कंधामें हैं, वक्षस्थलमें सूर्य हैं, हृदयमें नारायण हैं, मनमें चंद्रमा है, नाभिमें शुक्राचार्य है, दौनों स्तनमें अश्विनीकुमार हैं; बुध प्राण अपानमें है, राहु गलेमें, केतु सब अंगमें है, रोममै तारागण है ॥ ७ ॥ सर्वदेवतामय भगवान विष्णुके ये रूप दिनरातसंध्यामें जितेंद्रिय होयकर वाणी जीतकर दर्शन करै, पाठ करै तो सब पापसे छूटैंगे, ज्योतिश्चक्र सबकालको निवासस्थान सब निमिषको पति महापुरुषको हम ध्यान करै है यह शिशुमार भगवान् ग्रह नक्षत्रादिकोंके स्वरूप सब देवताओंके अधिपति है इस कारण जो लोग त्रिकालमें उनका प्रथम कहा हुआ मंत्र जपैंगे शिशुमार भगवान् उनके पापोंको नष्ट करैंगे और जो तीन कालकी संध्यामें उनको प्रणाम करै स्मरण कर उसके तत्काल सब पाप नाश होंगे “ ये

एतदु हैव भगवतो विष्णोः सर्वदेवतामयं रूपमहरहः संध्यायां प्रयतो वाग्यतो निरीक्षमाण उपतिष्ठेत ॥ नमो ज्योतिर्लोकाय कालायनायानिमिषां पतये महापुरुषाय धीमहीति ॥ ग्रहर्क्षताराममयमाधिदैविकं पापापहं मन्त्रकृतां त्रिकालम् ॥ नमस्यतः स्मरतो वा त्रिकालं नश्येत तत्कालजमाशु पापम् ॥ ८ ॥ इति श्रीभा० म० पञ्च० शिशुमारसंस्थानं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥२३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अधस्तात् सवितुर्योजनायुते स्वर्भानुर्नक्षत्रवच्चरतीत्येके ॥ योऽसावमरत्वं ग्रहत्वं चाऽलभत भगवदनुकम्पया स्वयमसुरापसदः सैंहिकेयो ह्यतदर्हः ॥ तस्य तात जन्मकर्माणि चोपरिष्टाद् वक्ष्यामः ॥ १ ॥

ज्योतिःशास्त्र ऐसो है कि सब बात यासें दीखै है एकसमय बृहस्पति शुक्र दोनों महाज्योतिषी पार्वतीकी महा बडाई ज्योतिषमें सुन कैलासकों गए मार्गमें बृहस्पति शुक्रसै बोले कि यासमय लग्न धरो पार्वती कहा करै है, तो शुक्रने लग्नमें देखो नग्न हो पार्वती स्नान करै हैं, थोडी देर बाद भीतर चलैंगे, वो काल लग्न व्यतीत हुए पर वस्त्रधार जब पार्वती पूजास्थानमें आय बैठी, तो गए, दोनोंनें एक ग्रंथ बनाया वो निवेदन किया उसे देख पार्वती बोले तुमने या ग्रंथसे मुझै नग्न देखा, यासे मै शाप देतीहूं कि ज्योतिषका फलादेश कभी फलै कभी न फल देवै (क्वचित्फलति कश्चन) ये लिखा है ” ॥ ८ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां शिशुमारचक्रवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि अब तीन

वारो किसी इमलीके वृक्षके नीचेकू आय लकडीको बोझ धर क्षणमात्र बैठो, तितनेमें एक सिपाई घोडासवार घोडा कुदातो जातो देख याके मनमें
भई लकडी बेचत चांद घिस गई, मोपै घोडा होतो तो ऐसे मैंभी कुदातो, या मनोरथमें स्वप्न आयो सोवतेही कहा जीवात्मा अनुसंधान करै है,
या बोझका घोडा बनाय आप सुपनेमें सवार भयो जो कूदा सो झट् कुवामें गिरपडो, जैसे तैसें निकस बोलो आज मनमें घोडा चढवेको संकलपमात्र
करो सो तो कुआमैं गिरो, जो रोज घोडापर चढते होंगे वे न जानै कैसे खाई खंदकमें पडते होंगे, याते मैं अपनी लकडी वेचेमें प्रसन्न हूं, ये स्वप्नमें
अनर्थागमन भयो, तैसे विषयनके ध्यान करनेसे जीव संसार बंधसे न छुटै है याते मनुष्य असतोंके मार्गमें आसक्त चित्तको तीव्र भक्तियोगसें
विरक्तिकरकै वश करै ॥ ५ ॥ श्रद्धायुत योगके मार्ग यमादिकोंसे अभ्यास कर मेरेमें सांचो भाव कर मेरी कथा सुनै ॥ ६ ॥ सब जीवमात्रमें

यमादिभिर्योगपथैरभ्यसञ्छ्रद्धयाऽन्वितः ॥ मयि भावेन सत्येन मत्कथाश्रवणेन च ॥ ६ ॥ सर्वभूतसमत्वेन निर्वैरेणाप्रसङ्गतः ॥
ब्रह्मचर्येण मौनेन स्वधर्मेण बलीयसा ॥ ७ ॥ यदृच्छयोपलब्धेन संतुष्टो मितभुङ् मुनिः ॥ विविक्तशरणः
शान्तो मैत्रः करुण आत्मवान् ॥ ८ ॥ सानुबन्धे च देहेऽस्मिन्नकुर्वन्नसदाग्रहम् ॥ ज्ञानेन दृष्टतत्त्वेन
प्रकृतेः पुरुषस्य च ॥ ९ ॥ निवृत्तबुद्ध्यवस्थानो दूरीभूतान्यदर्शनः ॥ उपलभ्यात्मनाऽऽत्मानं चक्षुषेवार्कमात्मदृक्
॥ १० ॥ मुक्तलिङ्गं सदाभासमसति प्रतिपद्यते ॥ सतो बन्धुमसच्चक्षुः सर्वानुस्यूतमद्वयम् ॥ ११ ॥ यथा जलस्थ
आभासः स्थलस्थेनावदृश्यते ॥ स्वाभासेन तथा सूर्यो जलस्थेन दिवि स्थितः ॥ १२ ॥

समान भाव करकै काऊसें वैर न करै, कुसंग न करै, ब्रह्मचर्य धारे मौन व्रतधारे बलवान अपने धर्ममें बनो रहै ॥ ७ ॥ जो लाभ होय तासें संतुष्ट
रहै, थोडा खाय, मुनिकिसीनांई रहै, एकांतमें वसे, शांत सबसे मैत्री राखे, दयालु आत्मज्ञान रहै ॥ ८ ॥ कुटुंब सहित देहमें आसक्त नहीं होय,
ज्ञानसे तत्त्वको दर्शन करै प्रकृति पुरुषकों देखै ॥ ९ ॥ बुद्धिकी अवस्था जाग्रदादिसे निवृत्त रहै, सब अमंगलोंसे पृथक् रहै, बुद्धिसें परमात्माकों
प्राप्त होय, जैसे चक्षु इंद्रिय द्वारा सूर्य दीखै है तद्वत् आत्माको दर्शन करै ॥ १० ॥ मायाके अधिष्ठान कार्यके प्रकाश कर्ता सब कार्य कारणोंमें
अनुप्रविष्ट परिपूर्णका साक्षात्कार होताहै ॥ ११ ॥ जैसे आकाशके सूर्यका बिम्ब जलमें जलके प्रतिबिम्बका भीतमें बिम्ब पडै तौ मनुष्यकी
दृष्टि अनुसंधान करनेसे क्रमानुसार सूर्यपर पहुचैगी ॥ १२ ॥

चित्तसे चित्तके स्वामी क्षेत्रज्ञ ईश्वर जब प्रविष्ट भए तबही विराट् पुरुष जलसे उठतेभए ॥ ७१ ॥ जैसें सोए पुरुषकों जिस चेतनके विना प्राण इंद्रिय मन बुद्धि पराक्रम करकै उठायवेकों नहीं समर्थ होयहैं ॥ ७२ ॥ सब जीव जीवके प्रति इन ईश्वरको योगसे उत्पन्न बुद्धि करकै विरक्ति ज्ञानसे एकांतमैं वैठकर आत्मामें चिंतवन करै जो आत्माको चिंतवन करै तो वो ऐसी गतिको प्राप्त होयहै (१) ॥ ७३ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां चतुर्विंशतितत्त्ववर्णनं नाम षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ श्रीभगवान् कपिलदेवजी बोले कि प्रकृतिमें स्थित पुरुष प्रकृतिके गुणोंकरके

चित्तेन हृदयं चैत्त्यः क्षेत्रज्ञः प्राविशद्यदा॥ विराट् तदैव पुरुषः सलिलादुदतिष्ठत ॥७१॥ यथा प्रसुप्तं पुरुषं प्राणेन्द्रियमनोधियः ॥ प्रभवन्ति विना येन नोत्थापयितुमोजसा ॥७२॥ तमस्मिन्प्रत्यगात्मानं धिया योगप्रवृत्तया ॥ भक्त्या विरक्त्या ज्ञानेन विविच्यात्मनि चिन्तयेत् ॥७३॥ इति श्री०तृ०कापिलेयोपाख्याने तत्त्वसमाम्नाये षड्विंशोऽध्यायः॥२६॥ श्रीभगवानुवाच ॥ प्रकृतिस्थोऽपि पुरुषो नाज्यते प्राकृतैर्गुणैः॥ अविकारादकर्तृत्वान्निर्गुणत्वाज्जलार्कवत् ॥१॥ स एष यर्हि प्रकृतेर्गुणेष्वभिविषज्जते ॥ अहंक्रियाविमूढात्मा कर्तास्मीत्यभिमन्यते ॥२॥ तेन संसारपदवीमवशोऽभ्येत्य निर्वृतः ॥ प्रासङ्गिकैः कर्मदोषैः सदसन्मिश्रयोनिषु ॥३॥ अर्थे ह्यविद्यमानेऽपि संसृतिर्न निवर्तते ॥ ध्यायतो विषयानस्य स्वप्नेऽनर्थागमो यथा ॥ ४ ॥ अत एव शनैश्चित्तं प्रसक्तमसतां पथि ॥भक्तियोगेन तीव्रेण विरक्त्या च नयेद्वशम् ॥ ५ ॥

अविकारी अकर्ता निर्गुणता होनेसे जलमें सूर्यकी छांईकी नांई लिप्त नहीं होय हैं ॥ १ ॥ सो ये जब प्रकृतिके गुणोंमें सब ओरसे आसक्त होयहै, अहंक्रिया करनेसे विमूढ आत्मामें कर्ता हूं ऐसे अभिमान करै है ॥ २ ॥ तब तासे अवश होकै सुख न पायकर सत् असत् मिश्र योनियोंमें प्रकृतिके संगके कर्म दोषनकरकै संसार पदवीकों प्राप्त होय है ॥ ३ ॥ संसारके न होनेपरभी विषयका ध्यान करनेवाले पुरुषका संसार नहीं छूटता जैसे स्वप्न मिथ्या है तौभी स्वप्नावस्थावाले पुरुषके अनर्थ उस समय नहीं मिटते और भोगनेही पडते हैं ॥ ४ ॥ एक दृष्टांत है कि एक लकडी बेचवे-

---

१ जैसे विषयी एक ब्रह्मचारीकों देख तुलसीदासजी ऐसें बोले धिक्कार है तोहि ॥ " मूंड मुडाय रखाय जटा शिर खाख लगाय भए ब्रह्मचारी । बैठ रहै पट दे मठ भीतर साधके मौन लगायकै तारी ॥ धर्म अधूमके घूंट पिये ममता मद लोभ माया न विसारी ऐसे भए तो कहा तुलसी जो पै आसन मारकै आसन मारी ॥ १ ॥

मनसे चंद्रमा भयो, सब वाणियोंको पति बुद्धि भई अहंकार भयो तासैं क्षेत्रज्ञ अधिष्ठाता रुद्र भयो ॥ ६२ ॥ ये सब देवता एक विराट् देहमें घुसे परंतु याके उठानेकों समर्थ न भए फेर क्रमसे आकाश आदि स्थानकों प्रवेश करते भए ॥ ६३ ॥ वाणी करकै अग्नि मुखमें घुसी तोभी विराट् न उठो घ्राण इंद्रिय सहित नाकमें वायु बैठी तोभी विराट् न उठो ॥ ६४ ॥ चक्षु इंद्रियसहित सूर्य नेत्रमें प्रगट भए, तोभी विराट न उठो, श्रोत्र करकै दिशा कानमें आई तोहु विराट् न उठो ॥ ६५ ॥ रोम करकै सहित सब औषधी त्वचामें घुसी तोहु विराट् न उठो, वीर्य करकै शिश्नमें जलने

मनसश्चन्द्रमा जातो बुद्धिर्बुद्धेर्गिरांपतिः ॥ अहंकारस्ततो रुद्रश्चित्तं चैत्त्यस्ततोऽभवत् ॥ ६२ ॥ एते ह्यभ्युत्थिता देवा
नैवास्योत्थापनेऽशकन् ॥ पुनराविविशुः खानि तमुत्थापयितु क्रमात ॥ ६३ ॥ वह्निर्वाचा मुखं भेजे नोदतिष्ठत्तदा
विराट् ॥ घ्राणेन नासिके वायुर्नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६४ ॥ अक्षिणी चक्षुषादित्यो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ श्रो-
त्रेण कर्णौ च दिशो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६५ ॥ त्वचं रोमभिरौषध्यो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ रेतसा शिश्नमापस्तु
नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६६ ॥ गुदं मृत्युरपानेन नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ हस्ताविन्द्रो बलेनैव नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६७॥
विष्णुर्गत्यैव चरणौ नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ नाडीर्नद्यो लोहितेन नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥६८॥ [illegible]तृड्भ्यामुदरं सिन्धु-
र्नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ हृदयं मनसा चन्द्रो नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ६९ ॥ बुद्ध्या ब्रह्मापि हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट्
॥ रुद्रोऽभिमत्या हृदयं नोदतिष्ठत्तदा विराट् ॥ ७० ॥

प्रवेश करौ, तोहु न उठो ॥ ६६ ॥ अपान करकै मृत्यु गुदामें आई तोभो विराट् न उठो, इंद्र बल करकै हाथमें प्रगट भए तोभी विराट् न उठो ॥ ६७ ॥ गतिकरकै चरणमें विष्णुनें प्रवेश कीनों तोभी विराट् न उठो, नदियें रुधिर ले नाडीमें घुसीं तोभी विराट् न उठो ॥ ६८ ॥ क्षुधा तृषा करकै समुद्र उदरमें पैठे तोहु विराट् न उठो, मन करकै हृदयमें चंद्रमा घुसे तोहु विराट् न उठो ॥ ६९ ॥ बुद्धि करकै ब्रह्मा हृदयमें पैठे, तबभी विराट् न उठो, रुद्र अभिमान करकै हृदयमें प्रविशे, तोभी विराट् न उठो ॥ ७० ॥

जिस्से यह विराट् पुरुष उत्पन्न भयो, ये अंडाविशेष क्रमसे एक एकसै दस गुनै वृद्धिको प्रात हुए ॥ ५२ ॥ जल आदि आवरणसे वेष्टित है, बाहिरकी ओर यह हरिभगवान्का स्वरूप भूत ब्रह्माण्ड प्रधानसै घिरे जलादिकोंसै घिराहै ॥ ५३ ॥ जलमें पड़े हुए उस हिरण्मय अंडको उठाकर महादेव उसमें प्रवेश करगये और उसमें कई छिद्र किये ॥ ५४ ॥ याके प्रथम मुख निकसो, तामें वाणी भई, वाणीमें वन्हिदेवता आये, नासिकामें प्राण अनुस्यूत भयो इनसे घ्राण इन्द्रिय होती भई ॥ ५५ ॥ घ्राणसे वायु भई इन दोनोंसे अक्षिणी चक्षु भये, ताते सूर्य भये, कान श्रोत्र दिशा होते भये ॥ ५६ ॥ विराटके त्वचा निकसी, रोम मूछ आदि वामें भए, ताते औषधी भई, शिश्न उत्पन्न भयो ॥ ५७ ॥ जल रूप वीर्य भयो फेर गुदा भई गुदामें अपान रहै है, अपान वायुसें लोक भयंकर मृत्यु होयहै ॥ ५८ ॥ दोनों हाथ भए, बल भयो इंद्रदेवता प्रगट भए. पांव निकरे गतिहुई हरि वहां वसे ॥ ५९ ॥ नाडियें निकरीं, तिनमें रुधिर भरतोभयो, नदियें हुई उदर भयो ॥ ६० ॥ क्षुधा पिपासा भई, देवता समुद्र भयो, याके हृदय भयो हृदयसे मन भयो ॥ ६१ ॥

उत्थितं पुरुषो यस्मादुदतिष्ठदसौ विराट् ॥ एतदण्डं विशेषाख्यं क्रमवृद्धैर्दशोत्तरैः ॥ ५२ ॥ तोयादिभिः परिवृतं प्रधानेनावृतैर्बहिः ॥ यत्र लोकवितानोऽयं रूपं भगवतो हरेः ॥ ५३ ॥ हिरण्मयादण्डकोशादुत्थाय सलिलेशयात् ॥ तमाविश्य महादेवो बहुधा निर्बिभेद खम् ॥ ५४ ॥ निरभिद्यतास्य प्रथमं मुखं वाणी ततोऽभवत् ॥ वाण्या वह्निरथो नासे प्राणोऽतो घ्राण एतयोः ॥ ५५ ॥ घ्राणाद्वायुरभिद्येतामक्षिणी चक्षुरेतयोः ॥ तस्मात्सूर्यो न्यभिद्येतां कर्णौ श्रोत्रे ततो दिशः ॥ ५६ ॥ निर्बिभेद विराजस्त्वग्रोमश्मश्र्वादयस्ततः ॥ तत औषधयश्चासञ्छिश्नं निर्बिभिदे ततः ॥ ५७ ॥ रेतस्तस्मादाप आसन्निरभिद्यत वै गुदम् ॥ गुदादपानोऽपानाच्च मृत्युर्लोकभयंकरः ॥ ५८ ॥ हस्तौ च निरभिद्येतां बलं ताभ्यां ततः स्वराट् ॥ पादौ च निरभिद्येतां गतिस्ताभ्यां ततो हरिः ॥ ५९ ॥ नाड्योऽस्य निरभिद्यन्त ताभ्यो लोहितमाभृतम् ॥ नद्यस्ततः समभवन्नुदरं निरभिद्यत ॥ ६० ॥ क्षुत्पिपासे ततः स्यातां समुद्रस्त्वेतयोरभूत् ॥ अथास्य हृदयं भिन्नं हृदयान्मन उत्थितम् ॥ ६१ ॥

गीलापन, गोला बंधना, तृप्ति, जीवन, प्यास मिटानो, कोमल करनों, ताप दूर करनों जल निकासनेपर फिर निकल आनों ये जलकी वृत्तियें
हैं "आपोमयः प्राण इति स्मृतेः" ॥ ४३ ॥ रस गुण वारो दैवप्रेरित जल जब विकारकों प्राप्त भयो, तातें गंधतन्मात्रा भयी जासें गंधगुणवारी
पृथिवी भई ॥ ४४ ॥ मिली गंध, सुगंध, शांत, उग्र, अम्लादि द्रव्यके अवयवोंकी विषमतासें पृथक् एक गंध भेदको प्राप्त होती भई ॥ ४५ ॥ प्रति-
मादिकमें ब्रह्मभाव करनों, स्थान धारण, सद् विशेषण, सब जीवमात्रके गुणोंको भेद करनों; ये पृथिवीकी वृत्तिको लक्षण है ॥ ४६ ॥ आकाशको
असाधारण गुण शब्द जिसका विषय है वह श्रोत्र इन्द्रिय कहलाती है वायुका असाधारण गुण स्पर्श जिसका विषय है वह त्वचा इन्द्रियें कहलातीहै

क्लेदनं पिण्डनं तृप्तिः प्राणनाप्यायनोदनम् ॥ तापापनोदो भूयस्त्वमम्भसो वृत्तयस्त्विमाः ॥ ४३ ॥ रसमात्रा-
द्विकुर्वाणादम्भसो दैवचोदितात् ॥ गन्धमात्रमभूत्तस्मात्पृथ्वी घ्राणस्तु गन्धगः ॥ ४४ ॥ करम्भपूतिसौरभ्यशां-
न्तोदग्रादिभिः पृथक् ॥ द्रव्यावयववैषम्याद्गन्ध एको विभिद्यते ॥४५॥ भावनं ब्रह्मणः स्थानं धारणं सद्विशेषणम् ॥
सर्वसत्त्वगुणोद्भेदः पृथिवीवृत्तिलक्षणम् ॥ ४६ ॥ नभोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्छ्रोत्रमुच्यते ॥ वायोर्गुणविशेषोऽर्थो
यस्य तत्स्पर्शनं विदुः ॥४७॥ तेजोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तच्चक्षुरुच्यते ॥ अम्भोगुणविशेषोऽर्थो यस्य तद्रसनं विदुः
॥ ४८ ॥ भूमेर्गुणविशेषोऽर्थो यस्य स घ्राण उच्यते ॥ परस्य दृश्यते धर्मो ह्यपरस्मिन्समन्वयात् ॥ ४९ ॥ अतो
विशेषो भावानां भूमावेवोपलक्ष्यते ॥ एतान्यसंहत्य यदा महदादीनि सप्त वै ॥५०॥ कालकर्मगुणोपेतो जगदादि-
रुपाविशत् ॥ ततस्तेनानुविद्धेभ्यो युक्तेभ्योऽण्डमचेतनम् ॥ ५१ ॥

जिसका विषय है वह चक्षु इन्द्रिय कहाती है तथा जलका असाधारण गुण रस जिसका विषय है वह जिव्हा
॥ ४७ ॥ तेजको असाधारण गुण रूप जाको विषय है वह घ्राण इन्द्रिय है पूर्व २ पदार्थोंका पिछलोंके साथ संबंध होनेसे
कहलाती है ॥ ४८ ॥ पृथिवीका असाधारण गुण गंध जिसका विषय है वह घ्राण इन्द्रिय है पूर्व २ पदार्थोंका पिछलोंके साथ संबंध होनेसे
आकाशादिकोंका धर्म अगले पदार्थोंके साथ दीखता है पृथ्वीमें शब्द स्पर्श रूप रस यह चार पूर्वके आर गंध निजका गुण है ॥ ४९ ॥ यातें
विशेषभावनको भूमिमें उपलक्षण होयहै ये महदादि सात जब न मिले ॥ ५० ॥ तब काल कर्म गुण करकै युक्त जगदादि ईश्वर उसमें
प्रवेश करतेभए तब तत्व क्षोभको प्राप्त होकर इकट्ठे भये उनसे अचेतन अंड उत्पन्न हुआ ॥ ५१ ॥

ये आकाशको लक्षण कवियोंने कह्योहै ॥ ३३ ॥ सब जीवमात्रमें अवकाश छिद्र रखनों वाहिर भीतरता जामैं पाईजाय प्राण इंद्रियें आत्मा इनमें स्थान रखनो ये आकाशकी वृत्तिको लक्षण है ॥३४॥ शब्द मात्रावारे कालकी गतिसे जब आकाश विकारी भयो, तब वासै स्पर्श गुणवारी वायु भई त्वचा भई जासे स्पर्शको ज्ञान होनोंलग्यो ॥३५॥ कोमलता कठिनता शीतता ग्रीष्मता स्पर्श गुण पवनकी तन्मात्राका होना वायुका गुण है ॥ ३६ ॥ द्रव्य और शब्दका चालन मेलन प्राप्ति लेजानो सब इंद्रियोंके आत्मा वायुको कर्मकरकै लक्षण होयहै ॥ ३७ ॥ स्पर्शगुणवारी वायुसै दैवप्रेरित होने-

भूतानां छिद्रदातृत्वं बहिरन्तरमेव च ॥ प्राणेन्द्रियात्मधिष्ण्यत्वं नभसो वृत्तिलक्षणम् ॥ ३४॥ नभसः शब्दतन्मात्रात्कालगत्या विकुर्वतः॥ स्पर्शोऽभवत्ततो वायुस्त्वक्स्पर्शस्य च संग्रहः॥ ३५॥ मृदुत्वं कठिनत्वं च शैत्यमुष्णत्वमेव च॥ एतत्स्पर्शस्य स्पर्शत्वं तन्मात्रत्वं नभस्वतः ॥ ३६ ॥ चालनं व्यूहनं प्राप्तिर्नेतृत्वं द्रव्यशब्दयोः ॥ सर्वेन्द्रियाणामात्मत्वं वायोः कर्माभिलक्षणम् ॥ ३७ ॥ वायोश्च स्पर्शतन्मात्राद्रूपं दैवेरितादभूत् ॥ समुत्थितं ततस्तेजश्चक्षू रूपोपलम्भनम् ॥ ३८ ॥ द्रव्याकृतित्वं गुणता व्यक्तिसंस्थात्वमेव च ॥ तेजस्त्वं तेजसः साध्वि रूपमात्रस्य वृत्तयः॥ ३९ ॥ द्योतनं पचनं पानमदनं हिममर्दनम् ॥ तेजसो वृत्तयस्त्वेताः शोषणं क्षुत्तृडेव च॥ ४० ॥ रूपमात्राद्विकुर्वाणात्तेजसो दैवचोदितात् ॥ रसमात्रमभूत्तस्मादम्भो जिह्वारसग्रहः॥ ४१ ॥ कषायो मधुरस्तिक्तः कट्वम्ल इति नैकधा॥ भौतिकानां विकारेण रस एको विभिद्यते ॥ ४२॥

को कारण रूप भयो, वासैं तेज उत्पन्न भयो जो रूपचक्षु इंद्रियौंसै जानो जायहैं ॥ ३८ ॥ हे साध्वी ! किसी वस्तुकी आकृति बननो, तथा द्रव्यमें गौणरीतिसै प्रतीत होना पदार्थोंकी रचनाके परिणाम प्रतीत हौना तेजका असाधारण गुण होना रूपका लक्षण है ॥ ३९ ॥ प्रकाश, पचना, पान, भोजन, शीतमर्दन, क्षुधा, तृषा सुखाना ये तेजकी वृत्तियें हैं ॥४०॥ रूपगुणवारो तेज दैवप्रेरित हो जब विकारी भयो, तब तातें रस तन्मात्रा भयी तातें जल भयो, रसग्रहण करवेवारी जिह्वा भई ॥४१॥ कषाय मधुर तिक्त कटु अम्ल ये अनेक भेद भौतिक विकारसे एक रसकेही होते भये ॥४२॥

133

वैकारिक तैजस तामस जिससे मन इन्द्रिय और पंचमहाभूत प्रगट हुए ॥ २४ ॥ जो पंचमहाभूत इन्द्रिय और मनोमय साक्षात् अनंत सहस्र मस्तकवाले संकर्षण नामसे प्रसिद्ध हैं अहंकारमें उपास्य देवता भगवान् शेषजी हैं ॥ २५ ॥ कर्तृत्व करणत्व कार्यत्व शांतत्व घोरत्व विमूढत्व ये अहंकारको लक्षण है ॥ २६ ॥ वैकारिक अहंकार विकारको प्राप्त होयहै तब मन तत्त्व होयहै, जासे संकल्प विकल्प सब कामना उत्पन्न होती है ॥ २७ ॥ सब इन्द्रियनके अधीश्वर शरदकालके कमलसमान श्याम योगियोंकरके सुंदर आराधनकरबे योग्य मनमें उपास्य देवताको अनिरुद्ध कहैं

वैकारिकस्तैजसश्च तामसश्च यतो भवः ॥ मनसश्चेन्द्रियाणां च भूतानां महतामपि ॥ २४ ॥ सहस्रशिरसं साक्षाद्यमनन्तं प्रचक्षते ॥ संकर्षणाख्यं पुरुषं भूतेन्द्रियमनोमयम् ॥२५॥ कर्तृत्वं करणत्वं च कार्यत्वं चेति लक्षणम् ॥ शान्तघोरविमूढत्वमिति वा स्यादहंकृतेः ॥ २६ ॥ वैकारिकाद्विकुर्वाणान्मनस्तत्त्वमजायत॥यत्संकल्पविकल्पाभ्यां वर्तते कामसंभवः ॥ २७ ॥ यद्विदुर्ह्यनिरुद्धाख्यं हृषीकाणामधीश्वरम् ॥ शारदेन्दीवरश्यामं संराध्यं योगिभिः शनैः ॥२८॥ तैजसात्तु विकुर्वाणाद्बुद्धितत्त्वमभूत्सति ॥ द्रव्यस्फुरणविज्ञानमिन्द्रियाणामनुग्रहः ॥२९ ॥ संशयोऽथ विपर्यासो निश्चयः स्मृतिरेव च ॥ स्वाप इत्युच्यते बुद्धेर्लक्षणं वृत्तितः पृथक् ॥३०॥ तैजसानीन्द्रियाण्येव क्रियाज्ञानविभागशः॥ प्राणस्य हि क्रियाशक्तिर्बुद्धेर्विज्ञानशक्तिता ॥३१॥ तामसाच्च विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यचोदितात् ॥ शब्दमात्रमभूत्तस्मान्नभः श्रोत्रं च शब्दगम् ॥ ३२ ॥ अर्थाश्रयत्वं शब्दस्य द्रष्टुर्लिङ्गत्वमेव च ॥ तन्मात्रत्वं च नभसो लक्षणं कवयो विदुः ॥ ३३ ॥

है ॥ २८ ॥ हे सति ! तैजसतत्त्व विकारकूं प्राप्त भयो जब बुद्धितत्त्व होतोभयो द्रव्यका स्फुरण विज्ञान इंद्रियोंकी सहायताकी प्राप्ति बुद्धिका लक्षण है ॥ २९ ॥ संशय मिथ्याज्ञान निश्चय स्मृति निद्रा यह पृथक् वृत्तियेंभी बुद्धिका लक्षण है ॥ ३० ॥ क्रिया ज्ञानके विभागसे तैजस इंद्रियें होयहैं, क्रियाशक्ति प्राणको है, विज्ञानशक्ति बुद्धिको है ॥ ३१ ॥ भगवतके वीर्यसें प्रेरित तामस अहंकार जब विकारकों प्राप्त भयो उस्सै शब्दमात्र होतोभयो, नभ श्रोत्र शब्दसे होयहै ॥ ३२ ॥ शब्दके अर्थको जानन्नो, देखबेवारेको चिन्हमात्रको ज्ञान होनों ताकी मात्रा जाननी

सगुण ब्रह्मको इतनोही व्याख्यान है, ये संक्षेप मैंने कह्यौ, जो काल पच्चीस तत्वरूप होकर रहै हैं ॥ १५ ॥ अहंकारसे विमूढ कर्ता प्रकृतिको प्राप्त जीवकों प्रभाव पौरुष कालकों कहैं हैं, जासें जगत्को भय होय है ॥ १६ ॥ हे मानवि! जाको कोई विशेष नहीं ऐसे गुणसाम्य प्रकृतिकी चेष्टा जिससै होतीहै वही भगवान् काल कहाताहै ॥ १७ ॥ भीतर पुरुषरूप करकै, बाहर कालरूपसे जो भगवान् अपनी मायासे सब जीवमात्रके भीतर प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ जीवोंके अदृष्टसै जिसके गुणोंमें क्षोभ होता है ऐसी अपनी प्रकृतिमें परमेश्वरनै अपना चिदाभास रूप वीर्य स्थापन किया जिससै प्रकाशित महत्तत्त्व उत्पन्न हुआ ॥ १९ ॥ अपनेमें प्राप्त विश्वकों प्रकाश करनेको सर्वांतरस्थित जगतके अंकुर महत्तत्त्वने अपनपेको सुवा-

एतावानेव संख्यातो ब्रह्मणः सगुणस्य ह ॥ सन्निवेशो मया प्रोक्तो यः कालः पञ्चविंशकः ॥ १५ ॥ प्रभावं पौरुषं प्राहुः कालमेके यतो भयम् ॥ अहंकारविमूढस्य कर्तुः प्रकृतिमीयुषः ॥ १६ ॥ प्रकृतेर्गुणसाम्यस्य निर्विशेषस्य मानवि ॥ चेष्टा यतः स भगवान्काल इत्युपलक्षितः ॥ १७ ॥ अन्तः पुरुषरूपेण कालरूपेण यो बहिः ॥ समन्वेत्येष सत्त्वानां भगवानात्ममायया ॥ १८ ॥ दैवात्क्षुभितधर्मिण्यां स्वस्यां योनौ परः पुमान् ॥ आधत्त वीर्यं साऽसूत महत्तत्त्वं हिरणमयम् ॥ १९ ॥ विश्वमात्मगतं व्यञ्जन्कूटस्थो जगदङ्कुरः ॥ स्वतेजसाऽपिबत्तीव्रमात्मप्रस्वापनं तमः ॥ २० ॥ यत्तत्सत्त्वगुणं स्वच्छं शान्तं भगवतः पदम् ॥ यदाहुर्वासुदेवाख्यं चित्तं तन्महदात्मकम् ॥ २१ ॥ स्वच्छत्वमविकारित्वं शान्तत्वमिति चेतसः ॥ वृत्तिभिर्लक्षणं प्रोक्तं यथाऽपां प्रकृतिः परा ॥ २२ ॥ महत्तत्त्वाद्विकुर्वाणाद्भगवद्वीर्यसंभवात् ॥ क्रियाशक्तिरहंकारस्त्रिविधः समपद्यत ॥ २३ ॥

यवेवारे तमको अपने तेजसें पीलिया ॥ २० ॥ जो सत्त्वगुण स्वच्छ शांत भगवत्को स्थान है, जो वासुदेव नामसै प्रसिद्ध चित्त है वह महत्तत्त्वका स्वरूप है आशय यह कि अधिभूत रूपसै महत्तत्त्व अध्यात्म रूपसै अधिदैव रूपसै वासुदेव है ॥ २१ ॥ और विकार होनैसै प्रथम स्वच्छता लय विक्षेप शून्यता शान्त वृत्तियोंसै महत्तत्त्वका लक्षण कहा है जैसा पृथ्वीका संयोग होनेके पूर्व जलकी स्थिति मधुर स्वच्छ और शान्त होतीहै ॥ २२ ॥ भगवतके वीर्यसे उत्पन्न महत्तत्त्व जब विकारको प्राप्त भयो तब क्रियाशक्ति युक्त तीन प्रकारका अहंकार हुआ ॥ २३ ॥

135

इस भांति देहके किये अध्यासके कारण गुणोंकरके करेभए कर्ममें ये जीव कर्ताभावको आत्मामें मानै है ॥ ६ ॥ यद्यपि पुरुष साक्षिमात्र है इससे अकर्त्ता है, तथापि इस अकर्त्ताकोही अपनेंमें कर्तृत्वधर्मको माननेंसेही कर्मोंकरके बन्धन होता है और जो किसीके आधीन नहीं है, तिसकोही भोगोंमें पराधीनता होती है, और जो सुखात्मक है तिसकोही जन्म अर्थात् मृत्युप्रवाह होताहै ॥ ७ ॥ कार्य कारण कर्तृत्वमें कारण प्रकृतिको जानों, सुख दुःखके भोक्ता प्रकृतिसे परे पुरुष है ॥८॥ देवहूती बोली कि हे पुरुषोत्तम! प्रकृति पुरुषको लक्षण कहा, इनको सत् असत् आत्माको

एवं पराभिध्यानेन कर्तृत्वं प्रकृतेः पुमान् ॥ कर्मसु क्रियमाणेषु गुणैरात्मनि मन्यते॥६॥तदस्य संसृतिर्बन्धः पारतन्त्र्यं च तत्कृतम् ॥ भवत्यकर्तुरीशस्य साक्षिणा निर्वृतात्मनः ॥ ७ ॥ कार्यकारणकर्तृत्वे कारणं प्रकृतिं विदुः ॥ भोक्तृत्वे सुखदुःखानां पुरुषं प्रकृतेः परम् ॥ ८ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ प्रकृतेः पुरुषस्यापि लक्षणं पुरुषोत्तम ॥ ब्रूहि कारणयोरस्य सदसच्च यदात्मकम् ॥ ९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यत्तत्त्रिगुणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम् ॥ प्रधानं प्रकृतिं प्राहुरविशेषं विशेषवत् ॥ १० ॥ पञ्चभिः पञ्चभिर्ब्रह्म चतुर्भिर्दशभिस्तथा ॥ एतच्चतुर्विंशतिकं गणं प्राधानिकं विदुः ॥ ११ ॥ महाभूतानि पञ्चैव भूरापोऽग्निर्मरुन्नभः ॥ तन्मात्राणि च तावन्ति गन्धादीनि मतानि मे ॥ १२ ॥ इन्द्रियाणि दश श्रोत्रं त्वग्दृग्रसननासिकाः ॥ वाक्करौ चरणौ मेढ्रं पायुर्दशम उच्यते ॥ १३ ॥ मनो बुद्धिरहङ्कारश्चित्तमित्यन्तरात्मकम् ॥ चतुर्धा लक्ष्यते भेदो वृत्त्या लक्षणरूपया ॥ १४ ॥

कारण कहो ॥ ९ ॥ श्रीभगवान् बोले कि जो त्रिगुण अव्यक्त नित्य सद्‌ असदात्मक सब विशेषोंका आश्रय और प्रधान तत्व है उसैही प्रकृति कहते हैं ॥१०॥ पांच पांच चार और दशकरके ये चोवीस तत्वोंका समूह प्रकृतिकी बनावट होनेसे प्राकृतिक ब्रम्ह कहाता है ॥ ११ ॥ पंच महाभूत, पृथिवी, जल, पवन, आकाश, अग्नि, तितनीही गंधादिक मानीजातीहैं ॥ १२ ॥ दश इंद्रियें, कर्ण, त्वचा, दृष्टि, जीभ, नाक, वाक्, कर, चरण, शिश्न, गुदा ये दश इंद्रियें हैं ॥ १३ ॥ मन बुद्धि अहंकार चित्त ये आत्माके भीतर हैं लक्षणरूप वृत्तिसे चार तरहको भेद लक्षित होय है ॥ १४ ॥

ज्ञानवैराग्य युक्त भक्तियोगसे योगी लोग क्षेमके अर्थ सबओरसे भय रहित मेरे चरणकमलमें प्रवेश करे है ॥ ४३ ॥ पुरुषनको आनंदको हेतु या लोकमै इतनोही है, कि तीव्र भक्तियोगसे स्थिरमन मेरेमें अर्पित करे ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां तृतीयस्कंधे कापिलेयोपाख्याने भक्तिलक्षणवर्णनं नाम पंचविंशतितमोऽध्यायः ॥ २५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि अब तुमसे हम तत्त्वनको लक्षण वर्णन करे हैं अलग अलग जाके जाननेसें पुरुष प्रकृतिके गुणसे मुक्त होजायहै ॥ १ ॥ पुरुषके आत्माको दर्शन जो ज्ञान मोक्षके वास्ते कहाता है, सो तुमसें वर्णन करे हैं, वो हृदयकी ग्रंथिको भेदन करवेवारो है ॥ २ ॥ अनादि आत्मा पुरुष निर्गुण प्रकृतिसें परे पूजनीय तेज आप ज्योतिः स्वरूप है और जाकरके विश्वमें

ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियोगेन योगिनः ॥ क्षेमाय पादमूलं मे प्रविशन्त्यकुतोभयम् ॥ ४३ ॥ एतावानेव लोकेऽस्मिन् पुंसां निःश्रेयसोदयः ॥ तीव्रेण भक्तियोगेन मनो मय्यर्पितं स्थिरम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीभा॰ तृती॰ कापिलेयोपाख्याने भक्तिलक्षणवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ अथ ते संप्रवक्ष्यामि तत्त्वानां लक्षणं पृथक् ॥ यद्विदित्वा विमुच्येत पुरुषः प्राकृतैर्गुणैः ॥ १ ॥ ज्ञानं निःश्रेयसार्थाय पुरुषस्यात्मदर्शनम् ॥ यदाहुर्वर्णये तत्ते हृदयग्रन्थिभेदनम् ॥ २ ॥ अनादिरात्मा पुरुषो निर्गुणः प्रकृतेः परः ॥ प्रत्यग्धामा स्वयंज्योतिर्विश्वं येन समन्वितम् ॥ ३ ॥ स एष प्रकृतिं सूक्ष्मां दैवीं गुणमयीं विभुः ॥ यदृच्छयैवोपगतामभ्यपद्यत लीलया ॥ ४ ॥ गुणैर्विचित्राः सृजतीं सरूपाः प्रकृतिं प्रजाः ॥ विलोक्य मुमुहे सद्यः स इह ज्ञानगूहया ॥ ५ ॥

व्याप्त हैं ॥ ३ ॥ सो यह प्रभु सूक्ष्म दैवी गुणमयी यदृच्छासे प्राप्त प्रकृतिकों लीलाकरकै प्राप्त होतभए यहां ये सिद्धांत है कि " आवरणशक्ति और विक्षेपशक्ति भेदकरकै प्रकृति दो प्रकारकी है तहां आवरणशक्तिकरकै सोई जीवकी उपाधि अविद्या है, विक्षेपशक्तिकरकैं सोई माया परमेश्वरी है, पुरुष जीव ईश्वररूपसै दो प्रकारको है जो प्रकृतिके अज्ञानकरकै संसारमें आवै सो जीव है, जो प्रकृतिकों वश करकै विश्वकी सृष्टयादि करै हैं सो ईश्वर है " ॥ ४ ॥ विचित्र अपने समान प्रजाको गुणों करकैं रचतीमायाकों देख वोही जीव ज्ञानचेष्टाकरकैं यहां मोहित होगयाहै ॥ ५ ॥

समें इकट्ठे हो मेरें पुरुषार्थनको सत्कार करैं है कहैं है ॥ ३४ ॥ हे अम्ब ! मेरे रुचिर प्रसन्न मुख लाल नेत्र दिव्य वरप्रद रूपनको वाणीसे स्पृहा करके कहै हैं और देखै हैं ॥ ३५ ॥ जिनके दर्शन योग्य रूप, उदार विलास, हास, ईक्षण मनोहर हैं इन स्वरूपौंने जिनके मन इंद्रियोंको आकर्षण कर लियाहै उन भक्तौंको मुक्तिकी इच्छा नहीं होती तथापि भक्ति उन्हें मुक्तिं देकी है ॥ ३६ ॥ अविद्याके निवृत्त होनेपर सातौं लोककी संपत्ति तथा अणिमादि आठ सिद्धि और वैकुंठकी सब सम्पत्ति उनके इच्छा न करनेपरभी मेरी इच्छासै उन्है सब वैकुंठमें प्राप्त होती है ॥ ३७ ॥ जो मेरेमें परायण हैं, वे शांतरूपमें कदी नाश न होय हैं, मेरो कालचक्र उन्हें न मारे है, क्यों कि जिनके हम प्रिय आत्मा सुत सखा गुरु सुहृद देवतावत्

पश्यन्ति ते मे रुचिराण्यम्ब सन्तः प्रसन्नवक्त्रारुणलोचनानि ॥ रूपाणि दिव्यानि वरप्रदानि साकं वाचं स्पृहणीयां
वदन्ति ॥ ३५ ॥ तैर्दर्शनीयावयवैरुदारविलासहासेक्षितवामसूक्तैः ॥ हृतात्मनो हृतप्राणांश्च भक्तिरनिच्छतो मे गतिं
मण्वीं प्रयुङ्क्ते ॥ ३६ ॥ अथो विभूतिं मम मायाविनस्तामैश्वर्यमष्टाङ्गमनुप्रवृत्तम् ॥ श्रियं भागवतीं वाऽस्पृहयन्ति भद्रां
परस्य मे तेऽश्नुवते तु लोके ॥ ३७॥ न कर्हिचिन्मत्पराः शान्तरूपे नङ्क्ष्यन्ति नो मेऽनिमिषो लेढि हेतिः ॥ येषामहं प्रिय
आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टम् ॥ ३८ ॥ इमं लोकं तथैवामुमात्मानमुभयायिनम् ॥ आत्मानमनु ये चेह
ये रायः पशवो गृहाः ॥ ३९ ॥ विसृज्य सर्वानन्यांश्च मामेवं विश्वतोमुखम् ॥ भजन्त्यनन्यया भक्त्या तान्मृत्योरतिपारये
॥ ४० ॥ नान्यत्र मद्भगवतः प्रधानपुरुषेश्वरात् ॥ आत्मनः सर्वभूतानां भयं तीव्रं निवर्तते ॥ ४१॥ मद्भयाद्वाति
वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात् ॥ वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निर्मृत्युश्चरति मद्भयात् ॥ ४२ ॥

पूज्य हैं ॥ ३८ ॥ या लोक परलोक और दोनों लोकमें जानेवाला आत्मा तथा आत्माके पीछे जो यहां धन पशु गृह आदि हैं ॥ ३९ ॥ तिन सबकों त्यागकर और सबको छोड विश्वमुख मोको अनन्य भक्तिसे जो भजै हैं उनको मैं मृत्युसे पार करूहूं ॥ ४० ॥ भगवत्प्रधान पुरुषेश्वर मेरेसे विना आत्माको सब जीवनको तीव्र भय नहीं निवृत्त होय है ॥४१ ॥ मेरे भयसे पवन चलै है, मेरे भयसे सूर्य तपैहै इंद्र वर्षै है अग्नि दाह करैहै, मेरे भयसे मृत्यु विचरै है " श्रुतिश्च–भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः ॥ भीषास्मादग्निश्चेंद्रश्च मृत्युर्धावति पंचमः " ॥ ४२ ॥

प्रकृतिके गुणनकी सेवा न करनेसे ज्ञान वैराग्य अत्यंत योगसे मेरेमें समर्पण कर भक्तिसे सर्वांतर्यामी मोको प्राप्त होवैहैं ॥ २७ ॥ देवहूति
बोली कि कैसी भक्ति तुह्मारेमें करनी उचित है और मै कैसी भक्ति करूं जिसके प्रभावसै तुह्मारो मोक्षपद प्राप्त होय है ॥ २८ ॥ भगवतको लक्ष
करवेवारो जो योग तुमने कह्यो है सो कैसो है, कितनें वाकै अंग हैं जाते तत्वज्ञान होय है ॥ २९ ॥ हे हरे ! ये मोंसे कहो, मंदमति स्त्री मैं तुह्मारे
अनुग्रहसे अतिकठिन बातको सुखसे जानूंगी ॥ ३० ॥ मैत्रयजी बोले जिसके उदरसे आपने शरीर धारण कर जन्म लिया है सो कपिलदेवजी

असेवयाऽयं प्रकृतेर्गुणानां ज्ञानेन वैराग्यविजृम्भितेन ॥ योगेन मय्यर्पितया च भक्त्या मां प्रत्यगात्मानमिहावरुन्धे
॥२७ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ कास्वित्त्वय्यच्युता भक्तिः कीदृशी मम गोचरा ॥ यया पदं ते निर्वाणमञ्जसाऽन्वाश्रवा अहम्
॥ २८ ॥ यो योगो भगवद्बाणो निर्वाणात्मंस्त्वयोदितः ॥ कीदृशः कति चाङ्गानि यतस्तत्त्वावबोधनम् ॥ २९ ॥ तदेतन्मे
विजानीहि यथाहं मन्दधीर्हरे ॥ सुखं बुध्येय दुर्बोधं योषा भवदनुग्रहात् ॥ ३० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ विदित्वार्थं कपिलो
मातुरित्थं जातस्नेहो यत्र तन्वाऽभिजातः ॥ तत्त्वाम्नायं यत्प्रवदन्ति सांख्यं प्रोवाच वै भक्तिवितानयोगम् ॥३१॥ श्रीभगवानुवाच ॥
देवानां गुणलिङ्गानामानुश्राविककर्मणाम् ॥ सत्त्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या॥३२॥ अनिमित्ता
भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ॥ जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ॥ ३३ ॥ नैकात्मतां मे स्पृहयन्ति
केचिन्मत्पादसेवाऽभिरता मदीहाः ॥ येऽन्योन्यतो भागवताः प्रसज्य सभाजयन्ते मम पौरुषाणि ॥ ३४ ॥

माताको ये मनोरथ जान स्नेहसैं " तत्वान्याम्नायन्ते अनुक्रमिष्यन्ते यस्मिन् तत्तत्त्वाम्नायम् " तत्वोंकी संख्या युक्त सांख्यशास्त्रको तथा भक्ति
विस्तृत योगको कहितेभये ॥ ३१ ॥ श्रीभगवान् बोले कि गुणनके शरीर वेदविहित कर्म करनेहारे देवतानकी सतोगुण एक मनकी स्वाभाविकी
वृत्ति भक्ति है ॥ ३२ ॥ सिद्धिरहित भगवान्में भक्ति करनी सिद्धिसैभी बडी है जैसे शीघ्र अग्नि खायेहुवे अन्नको भस्म करै है, तैसें भक्ति
सब वासनाको जरायदेहै ॥ ३३ ॥ मेरे चरणकी निरंतर सेवामें तत्पर और मेरेही निमित्त कर्म करनेवाले मुक्तिकी इच्छाभी नहीं करते वे आप-

भगवान् अखिलात्मानें लगाई भई भक्तिके समान योगियोंकों ब्रह्मसिद्धिके लिये मंगलदायक पंथा और नहीं है ॥ १९ ॥ या जीवको आसक्त होनो ये अजर फांसो है, सो ही आसक्ति जो साधुओंमें करै तो मोक्षको खुला भयो द्वार प्राप्त होजायहै ॥ २० ॥ सबकी सब बातें सहै दयालु सब देहधारीयोंमें सुहृदय जिनके कोई शत्रु नहीं जन्म शांत ये गुण परकार्यसाधक साधुओंके भूषण हैं ॥ २१ ॥ मोमें अनन्यभाव करकै जो दृढ भक्ति करैं हैं मेरे अर्थ सब कर्म त्यागे मेरे लिये स्वजन बंधु त्यागे हैं ॥२२॥ मेरी ही उज्ज्वल कथा सुनै हैं कहैं हैं वे मेरेमें चित्त लगाय हैं अनेक तापनकों

न युज्यमानया भक्त्या भगवत्यखिलात्मनि ॥ सदृशोऽस्ति शिवः पन्था योगिनां ब्रह्मसिद्धये ॥ १९ ॥ प्रसङ्गमजरं पाशमात्मनः कवयो विदुः॥ स एव साधुषु कृतो मोक्षद्वारमपावृतम् ॥२०॥ तितिक्षवः कारुणिकाः सुहृदः सर्वदेहिनाम् ॥ अजातशत्रवः शान्ताः साधवः साधुभूषणाः ॥२१॥ मय्यनन्येन भावेन भक्तिं कुर्वन्ति ये दृढाम् ॥ मत्कृते त्यक्तकर्माणस्त्यक्तस्वजनबान्धवाः ॥ २२ ॥ मदाश्रयाः कथा मृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च ॥ तपन्ति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसः॥२३॥ त एते साधवः साध्वि सर्वसङ्गविवर्जिताः॥ सङ्गस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः सङ्गदोषहरा हि ते ॥२४॥ सतां प्रसङ्गान्मम वीर्यसंविदो भवन्ति हृत्कर्णरसायनाः कथाः ॥ तज्जोषणादाश्वऽपवर्गवर्त्मनि श्रद्धा रतिर्भक्तिरनुक्रमिष्यति ॥ २५ ॥ भक्त्या पुमाञ्जातविराग ऐन्द्रियाद्दृष्टश्रुतान्मद्रचनाऽनुचिन्तया ॥ चित्तस्य यत्तो ग्रहणे योगयुक्तो यतिष्यते ऋजुभिर्योगमार्गैः ॥ २६ ॥

नहीं तपै हैं ॥ २३ ॥ हे साध्वि! वे साधु हैं जो सब संगते रहित हैं उनके संगकी चाहना करनी वे सब संगके दोषके हरवेवारे हैं ॥ २४ ॥ सतोंके प्रसंगसे मेरे वीर्यकी जामें वार्ता ऐसी हृदय कर्णकी रसायन कथा होती है उनमें प्रीति करनेतें मोक्षमार्गमें शीघ्र श्रद्धा प्रीति भक्ति क्रम क्रमसें होय है ॥ २५ ॥ भक्तिसें पुरुषकों वैराग्य होय है इंद्रियोंसे देखी सुनी मेरी रचनाकी चिंतासे प्रयत्न योगयुक्त होयकर चित्तके ग्रहण करवेमें कोमल योगके मार्गोंकरकै यत्न करै ॥ २६ ॥

---

१ दोहा ॥ साधु ऐसो चाहिये, दुखै दुखावै नाहि ॥ पान फूल छेडै नहीं, रहै बगीचे मांहि ॥ १ ॥

मैत्रेयजी बोले कि, इस प्रकार पुरुषनके मोक्षकी देवेवारी, अपनी माताकी दोषरहित इच्छाको सुनकर बुद्धिसे सराहना कर आत्मवान सतोंकी गति कुछेक मुसकानसे शोभित मुख, कपिलदेवजी बोले ॥ १२ ॥ श्रीभगवान् बोले कि, अध्यात्मयोग पुरुषनके मोक्षके वास्ते है, जामें दुःख सुखकी अत्यंत उपरति होय है ॥ १३ ॥ हे अनघे! जो पहिले हमनें कह्यो सो तुमसे कहै हैं, सुननेकी इच्छावारे ऋषीनको ये योग्य सब अंगसें निपुण है ॥ १४ ॥ निश्चयकरके या जीवको मनहीसे बंध और मोक्ष है गुणोंमें आसक्त होनेसे बंधन होय है, पुरुष ईश्वरमें लगे तो मुक्त होजाय है ॥ १५ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ इति स्वमातुर्निरवद्यमीप्सितं निशम्य पुंसामपवर्गवर्धनम् ॥ धियाऽभिनन्द्यात्मवतां सतां गतिर्बभाष ईषत्स्मितशोभिताननः ॥१२॥ श्रीभगवानुवाच ॥ योग आध्यात्मिकः पुंसां मतो निःश्रेयसाय मे ॥ अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य च सुखस्य च ॥ १३ ॥ तमिमं ते प्रवक्ष्यामि यमवोचं पुरानघे ॥ ऋषीणां श्रोतुकामानां योगं सर्वाङ्गनैपुणम् ॥ १४ ॥ चेतः खल्वस्य बन्धाय मुक्तये चात्मनो मतम् ॥ गुणेषु सक्तं बन्धाय रतं वा पुंसि मुक्तये॥ ॥१५॥ अहंममाभिमानोत्थैः कामलोभादिभिर्मलैः ॥ वीतं यदा मनः शुद्धमदुःखमसुखं समम् ॥१६॥ तदा पुरुष आत्मानं केवलं प्रकृतेः परम् ॥ निरन्तरं स्वयंज्योतिरणिमानमखण्डितम् ॥१७॥ ज्ञानवैराग्ययुक्तेन भक्तियुक्तेन चात्मना ॥ परिपश्यत्युदासीनं प्रकृतिं च हतौजसम् ॥ १८ ॥

हम मेरो ये अभिमानसे उठोभयो काम लोभादि मलोंकरके रहित शुद्ध मन होय है तब दुःखको नाश होयहै, सुख प्राप्त होयहै । "जैसे एक पंड़ित सब कुछ पढे हे पर धनीके आगे श्वानसमान लोभसे भए" ॥ १६ ॥ तब पुरुष आत्मा केवल प्रकृतिसे परै निरंतर स्वयंज्योति अणुमात्र अखंड़ित परब्रह्म ॥ १७ उदासीन ईश्वरको ज्ञान वैराग्यसे भक्तियुक्त आत्माकरके देखताहै उस समय प्रकृति पराक्रमहीन होजाती है ॥ १८ ॥

---

[१] सो लिखो है ॥ "पूर्व मीमांसा उत्तर मीमांसा ऐसी कौनसी जो बात है मुझको न आई है ॥ न्यायमें न बोलन देऊं ब्रह्मा क्यों न भावै आवै सांख्य पातंजलीकी पवनसी उड़ाई है ॥ बारह वर्ष जों काशीजीमें वास कीनो दाधि ज्यु वलीयो वेद छोड हूंनराई है । कहत नारायण बली देखे लोभ मोह धनी आगेकू करै ज्यूं पूछडी हलाई है ॥ १ ॥

सूतजो बोले कि व्यासजीके सखा मैत्रेय भगवान् विदुरसे प्रीतिके मारे ब्रह्मविद्यामें प्रेरित ऐसे कहिते भए जैसे तुमनें हमसे पूछो सो हम कहेंगे तुम सुनो ॥ ४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि पिता अब वनको चलेगए, तब माताकी प्रियकी इच्छा कर वा बिंदुसरोवरपर भगवान् कपिलदेवजी वसते भए ॥ ५ ॥ बैठभए अकर्मी तत्वमार्गके अग्र दिखायवेवारे अपने सुतसे ब्रह्माको वचन याद कर देवहूती बोली ॥ ६ ॥ देवहूती बोली कि, हे भूमन् हे प्रभो ! खोटी इंद्रियनकी तृष्णासे अब वैराग्य प्राप्त भयो, जिन विषयनकी भावनासे अंधतममें गिरनो पडेः ॥ ७ ॥ दुःखसे पार जाने योग्य अंधतमके

सूत उवाच ॥ द्वैपायनसखस्त्वेवं मैत्रेयो भगवांस्तथा ॥ प्राहेदं विदुरं प्रीत आन्वीक्षिक्या प्रचोदितः ॥ ४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ पितरि प्रस्थितेऽरण्यं मातुः प्रियाचिकीर्षया ॥ तस्मिन्बिन्दुसरेऽवात्सीद्भगवान्कपिलः किल ॥ ५ ॥ तमासीनमकर्माणं तत्त्वमार्गाग्रदर्शनम् ॥ स्वसुतं देवहूत्याह धातुः संस्मरती वचः ॥ ६ ॥ देवहूतिरुवाच ॥ निर्विण्णा नितरां भूमन्नसदिन्द्रियतर्षणात् ॥ येन संभाव्यमानेन प्रपन्नाऽन्धं तमः प्रभो ॥ ७ ॥ तस्य त्वं तमसोऽन्धस्य दुष्पारस्याद्य पारग ॥ सच्चक्षुर्जन्मनामन्ते लब्धं मे त्वदनुग्रहात् ॥ ८ ॥ य आद्यो भगवान् पुंसामीश्वरो वै भवान्किल ॥ लोकस्य तमसाऽन्धस्य चक्षुः सूर्य इवोदितः ॥ ९ ॥ अथ मे देव संमोहमपाक्रष्टुं त्वमर्हसि ॥ योऽवग्रहोऽहंममेतीत्येतास्मिन्योजितस्त्वया ॥ १० ॥ तं त्वा गताऽहं शरणं शरण्यं स्वभृत्यसंसारतरोः कुठारम् ॥ जिज्ञासयाऽहं प्रकृतेः परस्य नमामि सद्धर्मविदां वरिष्ठम् ॥ ११ ॥

पार करवेवारे अनेक जन्मोंके अंतमें अपनी कृपासेही तुम प्राप्त भएहो ॥ ८ ॥ जो पुरुषनको आद्य भगवान् ईश्वर है, सो आप हो तमसे अंध लोकोंके नेत्रोंको सूर्य समान उदित भए हो ॥ ९ ॥ यातें हे देव ! हमारो मोह दूर करवेको तुम योग्य हो, जो असत् आग्रह अहं मम ये तुमने लगा दिया है याके दूर करनेको योग्य हो ॥ १० ॥ शरणागतप्रतिपालक शरण्य अपने भृत्यौंको संसारवृक्षको काटवेवारे सद्धर्ममें श्रेष्ठ प्रकृति पुरुष जानवेकी इच्छा कर मैं शरण आईहूं, यासे तुह्में नमस्कार करूंहूं ॥ ११ ॥

अहंकार त्याग ममता छोड सुख दुःख समान समझ धीरतायुक्त समदर्शी ज्ञानदर्शी होय शांत बुद्धि कर शांत तरंगयुक्त समुद्रकी समान मुनि होतेभए ॥४४॥ वासुदेव भगवान् सर्वज्ञ सर्वांतरयामीमें परम भक्तिभावकरकै आत्मज्ञान प्राप्त होय सब बंधनसें मुक्त भए ॥४५॥ सब जीवोंमें आत्मा भगवान्को स्थित देखतेभए, सब जीवनको भगवान्के आत्मामें देखते भए ॥ ४६ ॥ इच्छा द्वेष त्याग सब जगे समान चित्तकर भगवान्की भक्तिमें युक्त होयके भागवती गतिकों प्राप्त होतेभये, (१) “ जैसे भक्तिके वशमें हैकै इन सबकी रक्षा कीनी तैसे कर्दमकी करतेभए ” ॥ ४७ ॥ इति श्रीभा० भाषाटी-

निरहंकृतिर्निर्ममश्च निर्द्वन्द्वः समदृक् स्वदृक् ॥ प्रत्यक् प्रशान्तधीर्वीरः प्रशान्तोर्मिरिवोदधिः ॥४४॥ वासुदेवे भगवति सर्वज्ञे प्रत्यगात्मनि ॥ परेण भक्तिभावेन लब्धात्मा मुक्तबन्धनः ॥ ४५ ॥ आत्मानं सर्वभूतेषु भगवन्तमवस्थितम् ॥ अपश्यत्सर्वभूतानि भगवत्यपि चात्मनि ॥ ४६ ॥ इच्छाद्वेषविहीनेन सर्वत्र समचेतसा ॥ भगवद्भक्तियुक्तेन प्राप्ता भागवती गतिः ॥ ४७ ॥ इति श्रीभा॰तृती॰कापिलेये कपिलावतारवर्णनं नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ शौनक उवाच ॥ कपिलस्तत्त्वसंख्याता भगवानात्ममायया ॥ जातः स्वयमजः साक्षादात्मप्रज्ञप्तये नृणाम् ॥ १ ॥ न ह्यस्य वर्ष्मणः पुंसां वरिम्णः सर्वयोगिनाम् ॥ विश्रुतौ श्रुतदेवस्य भूरि तृप्यन्ति मेऽसवः ॥२॥ यद्यद्विधत्ते भगवान् स्वच्छन्दात्माऽऽत्ममायया ॥ तानि मे श्रद्दधानस्य कीर्तन्यान्यनुकीर्तय ॥ ३ ॥

कायां तृतीयस्कंधे कपिलाऽवतारवर्णनं नाम चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ॥२४॥ श्रीशौनकजी बोले कि कपिलदेवजी तत्त्वसंख्याकारी भगवान् अजन्मा साक्षात् मनुष्योंके आत्मज्ञानके अर्थ अपनी मायाकरकै आप जन्मे ॥ १ ॥ पुरुषोंके मध्यमें बडे, और योगिजनोंके मध्यमें श्रेष्ठ परमेश्वरकी कीर्ति श्रवण करनेसै बारंबार प्रभुके यशको सुनकेभी मेरी इंद्रियें तृप्त नहीं होती हैं ॥ २ ॥ अपने भक्तनकी इच्छा करकै जो जो स्वरूप भगवान् धारण करै हैं, वे श्रद्धालु मेरेको कीर्तन करिये ॥ ३ ॥

---

१ सो कवित्तमें है कि ॥ “ गिरिकों उठाय व्रज गोपकों बचाय लीनो अनलते उबारचो पण बालक मांजारीको । गजकी अरज सुन ग्राहते छुडायलीनो राख्यो व्रतनेम धर्म पांडवकी नारीको ॥ राख्यो गज घंटा तलै बालक विहंगमको, राख्यो पण भारतमें भीष्म ब्रह्मचारीको । त्रिविध तापहारी निज संतन सुखकारी मोहिं तो भरोसो एक सांवरे गिरधारीको ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले कि हे मुने! वेद और लोकसंबंधी सब कार्योंमें मेरा वचन सबको प्रमाण है इस कारण मैंने जो तुम्हें वचन दिया उसके सत्य करवेकों तुम्हारे यहां मैंनें जन्म लीनो ॥ ३५ ॥ या लोकमें लिंगशरीरसे मुमुक्षूनको आत्माके दर्शनके लिये और तत्वनकी संख्याके अर्थ ये मेरो जन्म है ॥ ३६ ॥ बहुत काल करकै ये सूक्ष्मतर ईश्वर संबंधी ज्ञानमार्ग नष्ट होगयो है ताके प्रवर्त करवेको ये देह पूरण मैंने धारण कीनी है ॥ ३७ ॥ मेरेमें सब कर्मनको संन्यास कर यथासुख जाओ, अत्यंत दुर्जय या मृत्युको जीत मोक्षके अर्थ मेरो भजन करो ॥ ३८ ॥ मैं आत्मा स्वयंज्योति सब जीवोंके हृदयमें शयन करूंहूं, बुद्धिसे ईश्वरको दर्शन कर विगत शोक होय अभय पदकों प्राप्त होओगे ॥ ३९ ॥ हम सब कर्मकी शमन करवेवारी ब्रह्मविद्या माताके अर्थ विस्तार करेंगे, जासें संसारको तरजायगी ॥ ४० ॥ मैत्रेयजी बोले कि ऐसे जब कपिलदेवजीने कही तब कर्दम प्रजापति कपिलदेवजीकी प्रदक्षिणा करकै वनमें जातेभए ॥ ४१ ॥ सो मुनि मौन व्रतमें स्थित होकै आत्माके शरणागत होकै सब संगत्याग फल आहार करतेभए, एक जगे न रहकर पृथ्वीपर विचरतेभए ॥ ४२ ॥ कार्य कारणसें परै गुणनके प्रकाशक अलौकिक गुणयुक्त ब्रह्ममें अनन्य भक्तिसे मन लगाय ॥ ४३ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ मया प्रोक्तं हि लोकस्य प्रमाणं सत्यलौकिके ॥ अथाजनि मया तुभ्यं यदवोचमृतं मुने ॥ ३५ ॥ एतन्मे जन्म लोकेऽस्मिन् मुमुक्षूणां दुराशयात् ॥ प्रसंख्यानाय तत्वानां संमतायात्मदर्शने ॥ ३६ ॥ एष आत्मपथोऽव्यक्तो नष्टः कालेन भूयसा ॥ तं प्रवर्तयितुं देहमिमं विद्धि मया भृतम् ॥ ३७ ॥ गच्छ कामं मयाऽऽपृष्टो मयि संन्यस्तकर्मणा ॥ जित्वा सुदुर्जयं मृत्युममृतत्वाय मां भज ॥ ३८ ॥ मामात्मानं स्वयंज्योतिः सर्वभूतगुहाशयम् ॥ आत्मन्येवात्मना वीक्ष्य विशोकोऽभयमृच्छसि ॥ ३९ ॥ मात्रे आध्यात्मिकीं विद्यां शमनीं सर्वकर्मणाम् ॥ वितरिष्ये यया चासौ भयं चातितरिष्यति ॥ ४० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं समुदितस्तेन कपिलेन प्रजापतिः ॥ दक्षिणीकृत्य तं प्रीतो वनमेव जगाम ह ॥ ४१ ॥ व्रतं स आस्थितो मौनमात्मैकशरणो मुनिः ॥ निःसङ्गो व्यचरत्क्षोणीमनग्निरनिकेतनः ॥ ४२ ॥ मनो ब्रह्मणि युञ्जानो यत्तत्सदसतः परम् ॥ गुणावभासे विगुण एकभक्त्याऽनुभाविते ॥ ४३ ॥

दुःख है कि इस जगतमें यह जीव अपने अमंगलीक कर्मोंसे अनेक दुःख पा रहेहैं इनपर देवता तो बहुत समय बीतनेपर अवश्य प्रसन्न होतेहैं ॥२७॥
बहुत जन्मके करेभए सुंदर योग समाधिसे एकांत स्थानमें बैठ जिनके पद देखवेको यतिलोग यत्न करै है ॥ २८ ॥ सोई भगवान् आज हमारे
करे अपराधको न गिनके अपनेनके पक्ष पुष्ट करवेवारे हमसरीके ग्रामवासीनके घरमें जन्मे हैं ॥ २९ ॥ अपनो वाक्य सत्य करवेको मेरे घरमें
अवतरे भगवान् भक्तनको मान बढाते ज्ञान करवेकी इच्छा करते भए ॥ ३० ॥ हे भगवन्! यद्यपि चतुर्भुज आदि रूपही तुह्मारे योग्य है, तथापि
आपके सुजन भक्तोंकों जिस जिस रूपकी रुचि होय है तिन तिन रूपोंकोभी अरूपी तुम धारण करोहो ॥ ३१ ॥ हे भगवन्! तत्वकी जाननेकी

अहो पापच्यमानानां निरये स्वैरमङ्गलैः ॥ कालेन भूयसा नूनं प्रसीदन्तीह देवताः ॥ २७ ॥ बहुजन्मविपक्वेन सम्यग्योगसमाधिना ॥ द्रष्टुं यतन्ते यतयः शून्यागारेषु यत्पदम् ॥२८॥ स एव भगवानद्य हेलनं न गणय्य नः॥ गृहेषु जातो ग्राम्याणां यः स्वानां पक्षपोषणः ॥२९॥ स्वीयं वाक्यमृतं कर्तुमवतीर्णोऽसि मे गृहे ॥ चिकीर्षुर्भगवान् ज्ञानं भक्तानां मानवर्धनः ॥ ३० ॥ तान्येव तेऽभिरूपाणि रूपाणि भगवंस्तव ॥ यानि यानि च रोचन्ते स्वजनानामरूपिणः ॥ ३१ ॥ त्वां सूरिभिस्तत्त्वबुभुत्सयाऽद्धा सदाऽभिवादार्हणपादपीठम् ॥ ऐश्वर्यवैराग्ययशोऽवबोधवीर्यश्रिया पूर्णमहं प्रपद्ये ॥ ३२ ॥ परं प्रधानं पुरुषं महान्तं कालं कविं त्रिवृतं लोकपालम् ॥ आत्मानुभूत्याऽनुगतप्रपञ्चं स्वच्छन्दशक्तिं कपिलं प्रपद्ये ॥ ३३ ॥ अस्माभिष्टृच्छेऽद्य पतिं प्रजानां त्वयाऽवतीर्णार्ण उताप्तकामः ॥ परिव्रजत्पदवीमास्थितोऽहं चरिष्ये त्वां हृदि युञ्जन् विशोकः ॥ ३४ ॥

इच्छासे महात्मा लोगोंके पूजन योग्य आपके चरणपीठको प्रणाम करतेहैं उन ऐश्वर्य वैराग्य यश ज्ञान वीर्य्य श्रीसे पूर्ण आपकी मैं शरणमें प्राप्त
हूं, अर्थात् सर्वगुणनिधान आपके प्राप्त होनेसे हमभी निष्काम भये ॥ ३२ ॥ परमेश्वर, प्रधान पुरुष, महत्तत्त्व, काल कवि अहंकाररूप लोकपालक
सर्वज्ञ स्वतंत्र स्वाधीन शक्तिमान जिनके स्वरूपमें प्रपंच लीन होजाताहै उन कपिलदेवजीकी मैं शरणहूं ॥ ३३ ॥ अब प्रजानके पति आपसे हम
पूछे हैं तुमारे अवतारही लेवेसें हमें सब काम प्राप्तभए, अबमें संन्यासियोंकी पदवीमें मैं स्थित हो तुमको हृदयमें धार विशोक होयके विचरूंगो॥३४॥

145

हे मानवी ! इस प्रकार गुणयुक्त तुह्मारे उदरमें कैटभ दैत्यके मारनेहारे भगवान् प्रविष्ट हुएहै यह अविद्या और संशयकी ग्रंथीको छेदन कर पृथ्वीमें विचरेंगे ॥ १८ ॥ यह तुह्मारा सुत सिद्धगणोंमें मुख्य सांख्यके आचार्योंकरके सुपूजित, और लोकमें कपिल नामसे विख्यात हो तुह्मारी कीर्तिका बढानेवाला होगा ॥ १९ ॥ मैत्रेयजी बोले कि उन दोनोंको ऐसे आश्वासन कर जगत्कर्ता सनत्कुमार नारदसहित हंसवाहनपर बैठ सत्यलोकको जाते भए ॥ २० ॥ हे विदुर ! जब ब्रह्माजी चलेगए तब कर्दम तिनकरके प्रेरित हो जैसे कही तैसे ही अपनी कन्यानको विश्व रचवेवारेनको देतेभए

एष मानवि ते गर्भं प्रविष्टः कैटभार्दनः ॥ अविद्यासंशयग्रन्थिं छित्त्वा गां विचरिष्यति ॥ १८ ॥ अयं सिद्धगणाधीशः सांख्याचार्यैः सुसंमतः ॥ लोके कपिल इत्याख्यां गन्ता ते कीर्तिवर्धनः ॥ १९ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ तावाश्वास्य जगत्स्रष्टा कुमारैः सहनारदः ॥ हंसो हंसेन यानेन त्रिधाम परमं ययौ ॥ २० ॥ गते शतधृतौ क्षत्तः कर्दमस्तेन चोदितः ॥ यथोदितं स्वदुहितॄः प्रादाद्विश्वसृजां ततः ॥ २१ ॥ मरीचये कलां प्रादादनसूयामथात्रये ॥ श्रद्धामङ्गिरसेऽयच्छत् पुलस्त्याय हविर्भुवम् ॥ २२ ॥ पुलहाय गतिं युक्तां क्रतवे च क्रियां सतीम् ॥ ख्यातिं च भृगवेऽयच्छद्वसिष्ठायाप्यरुन्धतीम् ॥ २३ ॥ अथर्वणेऽददाच्छान्तिं यया यज्ञो वितन्यते ॥ विप्रर्षभान् कृतोद्वाहान् सदारान् समलालयत् ॥ २४ ॥ ततस्त ऋषयः क्षत्तः कृतदारा निमन्त्र्य तम् ॥ प्रातिष्ठन् नन्दिमापन्नाः स्वं स्वमाश्रममण्डलम् ॥ २५ ॥ स चावतीर्णं त्रियुगमाज्ञाय विबुधर्षभम् ॥ विविक्त उपसंगम्य प्रणम्य समभाषत ॥ २६ ॥

॥ २१ ॥ कला कन्या मरीचिकों व्याही, अत्रिको अनुसूया अंगिराके अर्थ श्रद्धा दीनी, हविर्भू पुलस्त्यकों व्याही ॥ २२ ॥ योग्यगति पुलहकों सौंपी क्रिया सती यज्ञके लिये दीनी, ख्याति भृगुकों व्याही, अरुंधती वसिष्ठजीकों व्याहदेतेभए ॥ २३ ॥ शांति अथर्वके अर्थ दीनी, जासे यज्ञ होय है, इस प्रकार ब्राह्मणश्रेष्ठोंका विवाह कर उन्हें प्रसन्न किया ॥ २४ ॥ हे विदुर ! ता पाछे वे ऋषि व्याह कर कर्दमसे पूछके आनंदित होय अपने अपने आश्रमोंको जातेभए ॥ २५ ॥ कर्दमजी अपनी स्त्रीमें देवश्रेष्ठ विष्णु पैदाभये जान एकांतमें आयके प्रणाम कर ऐसे बोले ॥ २६ ॥

हे शत्रुहन् विदुर ! भगवान् परब्रह्म सत्त्व अंशकरकै सम्यक् ज्ञानके प्रगट करवेके अर्थ जन्मे हैं यह ब्रह्माजी जानतेभए ॥ १० ॥ ब्रह्माजी विशुद्ध चित्तकरकै तिनकी करवेकी इच्छाको सत्कार करते हर्षितचित्तसे कर्दमजीसे ये बोले ॥ ११ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे पुत्र ! निष्कपट होकर तुमनें मेरी पूजा कीनी, हे मानद ! मेरो वाक्य आपनें मानसे ग्रहण कऱ्यो ॥ १२ ॥ पुत्रोंको पिताकी इतनीही शुश्रूषा करवेयोग्य है, कि बहुत अच्छा ऐसे पितृवचन गुरुवचन गौरवतासे मांनें ॥ १३॥ हे सभ्य ! ये सुंदर तुह्मारी पुत्रियें अपने प्रभावोंकरकै अनेक प्रकार सृष्टिको बढावेंगी ॥ १४॥ याते

भगवन्तं परब्रह्म सत्त्वेनांशेन शत्रुहन् ॥ तत्त्वसंख्यानविज्ञप्त्यै जातं विद्वानजः स्वराट् ॥ १० ॥ सभाजयन् विशुद्धेन चेतसा तच्चिकीर्षितम् ॥ प्रहृष्यमाणैरसुभिः कर्दमं चेदमभ्यधात् ॥ ११ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ त्वया मेऽपचितिस्तात कल्पिता निर्व्यलीकतः ॥ यन्मे संजगृहे वाक्यं भवान् मानद मानयन् ॥१२॥ एतावत्येव शुश्रूषा कार्या पितरि पुत्रकैः॥बाढमित्यनुमन्येत गौरवेण गुरोर्वचः ॥ १३॥ इमा दुहितरः सभ्य तव वत्स सुमध्यमाः ॥ सर्गमेतं प्रभावैः स्वैर्बृंहयिष्यन्त्यनेकधा ॥ १४ ॥ अतस्त्वमृषिमुख्येभ्यो यथाशीलं यथारुचि ॥ आत्मजाः परिदेह्यऽद्य विस्तृणीहि यशो भुवि ॥ १५ ॥ वेदाहमाद्यं पुरुषमवतीर्णं स्वमायया ॥ भूतानां शेवधिं देहं बिभ्राणं कपिलं मुने ॥ १६ ज्ञानविज्ञानयोगेन कर्मणामुद्धरन् जटाः ॥ हिरण्यकेशः पद्माक्षः पद्ममुद्रापदाम्बुजः ॥ १७ ॥

जैसे इनके शील जैसी इनकी रुचि है, तैसे मुख्य ऋषियोंके अर्थ इन पुत्रियोंको देवो, भूमिमें यशकों विस्तार करो ॥ १५ ॥ हम जानें हैं कि आद्य पुरुष अपनी मायाकरकै अवतरेहैं, हे मुने ! भूतनकी कल्याणकी अवधि कपिल देहको धारे हैं ॥ १६ ॥ अब ब्रह्माजी देवहूतिके प्रति तीन श्लोकसें कहतेहैं कि हे मानवि ! जो यह पुरुष तुह्मारे गर्भमें प्रवेश कियेहै सो ज्ञानशास्त्रका सिद्धान्त और विज्ञान अपारोक्ष्य अर्थात् वे देखे सुनें कहे यथार्थ वस्तुको जानकर कर्मोंके मूल अर्थात् वासनाको उखाडनेके निमित्त यह सुवर्णवर्णकेश कमलकी समान नेत्र और पद्मचिन्हसे युक्त ॥ १७ ॥

मैत्रेयजी बोले कि ज्ञानकी वार्ता कहिवेवारी मनुकी सूधी बेटीसे दयालु मुनि श्रीभगवतकी कही बात याद करतेभए बोले ॥ १ ॥ ऋषि बोले कि
हे राजपुत्रि! खेद मत करो; अपनपेकी ऐसी निंदा मत करो, अक्षर भगवान् थोडे ही कालमें तुमारे गर्भमें प्राप्त होयगे ॥ २ ॥ तुमनें व्रत धारेहै,
तुह्मारो मंगल होय, दम, नियम, तप धन दान करकै श्रद्धासे ईश्वरको भजन करो ॥ ३ ॥ सो ईश्वर तुमनें आराधन कीनोहै, वो मेरो यश
विस्तारेगो तुम्हारे हृदयकी ग्रंथिको छेदैगो उदरसे ब्रह्मरूप पुत्र होयगो ॥ ४ ॥ मैत्रेयजी बोले कि देवहूती भी कर्दम प्रजापतिके वचनको महाश्रद्धाते

मैत्रेय उवाच॥ निर्वेदवादिनीमेवं मनोर्दुहितरं मुनिः ॥ दयालुः शालिनीमाह शुक्लाभिव्याहृतं स्मरन् ॥ १ ॥
ऋषिरुवाच ॥ मा खिदो राजपुत्रीत्थमात्मानं प्रत्यनिन्दिते॥ भगवांस्तेऽक्षरो गर्भमदूरात् संप्रपत्स्यते॥२॥धृतव्रतासि
भद्रं ते दमेन नियमेन च ॥ तपोद्रविणदानैश्च श्रद्धया चेश्वरं भज ॥३॥ स त्वयाराधितः शुक्लो वितन्वन् मामकं यशः ॥
छेत्ता ते हृदयग्रन्थिमौदर्यो ब्रह्मभावनः ॥ ४ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ देवहूत्यपि संदेशं गौरवेण प्रजापतेः ॥ सम्यक् श्रद्धाय
पुरुषं कूटस्थमभजद्गुरुम् ॥ ५ ॥ तस्यां बहुतिथे काले भगवान् मधुसूदनः ॥ कार्दमं वीर्यमापन्नो जज्ञेऽग्निरिव
दारुणि ॥ ६ ॥ अवादयंस्तदा व्योम्नि वादित्राणि घनाघनाः ॥ गायन्ति तं स्म गन्धर्वा नृत्यन्त्यप्सरसो मुदा ॥७॥
पेतुः सुमनसो दिव्याः खेचरैरपवर्जिताः ॥ प्रसेदुश्च दिशः सर्वा अम्भांसि च मनांसि च ॥ ८ ॥ तत् कर्दमाश्रमपदं
सरस्वत्या परिश्रितम् ॥ स्वयंभूः साकमृषिभिर्मरीच्यादिभिरभ्ययात् ॥ ९ ॥

मान कूटस्थ पुरुष जगद्गुरु ईश्वरको भजती भई ॥ ५ ॥ बहुत दिनके उपरांत देवहूतीमें भगवान् मधुसूदन कर्दमके वीर्यको प्राप्त होके काष्ठमें
जैसे अग्नि उत्पन्न हो तैसे उत्पन्न होते भए ॥ ६ ॥ ता समय आकाशमें घनघोरसे बाजे बजतेभए, गंधर्व गायवेलगे अप्सरा आनंदसे नृत्य करतीभई
॥ ७ ॥ दिव्य आकाशवासियोंके छोड़ेभए पुष्प वर्षते भए सब दिशा और जल और मन प्रसन्न होतेभए ॥ ८ ॥ सरस्वतीसै घिरेहुए तिन कर्दमके
आश्रमपर मरीचि आदि ऋषियोंके सहित ब्रह्माजी आवतेभए ॥ ९ ॥

लिखन्त्यधोमुखी भूमिं पदा नखमणिश्रिया ॥ उवाच ललितां वाचं निरुध्याश्रुकलां शनैः ॥५०॥ देवहूतिरुवाच ॥ सर्वं तद्भगवान् मह्यमुपोवाह प्रतिश्रुतम् ॥ अथापि मे प्रपन्नाया अभयं दातुमर्हसि ॥ ५१ ॥ ब्रह्मन् दुहितृभिस्तुभ्यं विमृग्याः पतयः समाः ॥ कश्चित् स्यान्मे विशोकाय त्वयि प्रव्रजिते वनम् ॥ ५२ ॥ एतावताऽलं कालेन व्यतिक्रान्तेन मे प्रभो ॥ इन्द्रियार्थप्रसङ्गेन परित्यक्तपरात्मनः ॥ ५३ ॥ इन्द्रियार्थेषु सज्जन्त्या प्रसङ्गस्त्वयि मे कृतः ॥ अजानन्त्या परं भावं तथाऽप्यस्त्वभयाय मे ॥ ५४ ॥ सङ्गो यः संसृतेर्हेतुरसत्सु विहितो धिया ॥ स एव साधुषु कृतो निःसङ्गत्वाय कल्पते ॥ ५५ ॥ नेह यत्कर्म धर्माय न विरागाय कल्पते ॥ न तीर्थपादसेवायै जीवन्नपि मृतो हि सः ॥ ५६ ॥ साहं भगवतो नूनं वञ्चिता मायया दृढम् ॥ यत्त्वां विमुक्तिदं प्राप्य न मुमुक्षेय बन्धनात् ॥ ५७ ॥ इति श्रीभा॰तृ॰कर्दमस्य नवकन्योत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

नीचेको मुख किये मणिसमानकांतिवारे पांवके नखोंसे भूमिको खोदती धीरेसे आंसूं पोछ ललित वाणी बोली ॥ ५० ॥ देवहूति बोली कि अपने सब मेरो कहिनो पूरो कीनो, तोहू मैं आपके शरण आईहूं, सो मोकों अभय देवेको योग्य हो ॥ ५१ ॥ हे ब्रह्मन् ! इन कन्यानके समान पति ढूंढो, कोई एक मेरो शोकनाशक पुत्र होय तब पाछे तुम वनको जाओ ॥ ५२ ॥ हे प्रभो! इतनेही कालकरके तृप्त भई इंद्रियोंके अर्थ प्रसंगकरके परब्रह्म मैंने त्याग दीने ॥ ५३ ॥ इंद्रियसुखमें आसक्त होय तुममें मैंनें प्रसंग कीनो सो तुमारे परम भावकों न जानती ही, तथापि मेरे अभयके अर्थ कोई होय ॥ ५४ ॥ संयोग संसारको हेतु है, सो अबुद्धिसे असत् पदार्थमें संयोग कीनो वोही संयोग साधुओंसे करै तो मोक्ष होजाय है ॥ ५५ ॥ या संसारमें जो कर्म धर्म वैराग्यके अर्थ न कीनो, न भगवतकी सेवा कीनी वो जीतो ही मरेके समान है ॥५६॥ निश्चय है कि मैं भगवान्की दृढ मायासे मोहित भई तुम मुक्तिदायकको प्राप्त होकरभी बंधनसे मुक्त न होतीभई कितनी बुद्धि होय पर ईश्वरकी भक्ति विना सब वृथा है (१) ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भा॰ भा॰ तृती॰ कर्दमस्य नवकन्योत्पत्तिवर्णनं नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः ॥ २३ ॥

---

१ तहां कवित्त है कि ॥ " बुद्धि बडी चतुराई बडी तनमें ममता अति ना लिपटी है । नाम बडो धन धाम बडो करतूत बडी जगमें प्रगटी है ॥ गजवाजिय द्वार मनुष्य हजार तो इंद्रसमानसे कौन घटी है । सो सब विष्णुकी भक्ति विना मानो सुंदरनारीकी नाक कटी है " ॥

प्रकाशक तथा मनकी इच्छानुसार चलनेवाले बडे विमानसे लोकनमें पवनकी समान शीघ्र गतिसे सब विमाननकों उल्लंघन कर स्थित होते भए ॥ ४१ ॥ धीर चित्तवारे पुरुषनको कौन चीज दुष्प्राप है, तीर्थ चरण भगवानके चरणनको जिन्होंने आसरो लीनो, सब व्यसन उनके नाश होय हैं ॥ ४२ ॥ अनेक आश्चर्ययुक्त भूमंडल अपनी पत्नीको दिखाय, फिर महायोगी कर्दमजी अपने आश्रमको आतेभए ॥ ४३ ॥ कर्दमजी नव संतान उत्पन्न कर सुरतकी चाहनेहारी मनुकन्या अपनी स्त्रीको बोहोत वर्षतक एक मुहूर्तकीसीनांई रमणकरतेभए ॥ ४४ ॥ ता विमानमें रतिदायक उत्तम शय्या सुंदर पतिके साथ स्थित हो देवहूती कालकों न जानतीभई ॥ ४५ ॥ ऐसे योगके प्रभावकरके स्त्रीपुरुष रमण करते

भ्राजिष्णुना विमानेन कामगेन महीयसा ॥ वैमानिकानत्यशेत चरँल्लोकान्यथाऽनिलः ॥४१॥ किं दुरापादनं तेषां पुं-
सामुद्दामचेतसाम् ॥ यैराश्रितस्तीर्थपदश्चरणो व्यसनात्ययः ॥४२॥ प्रेक्षयित्वा भुवो गोलं पत्न्यै यावान् स्वसंस्थया॥
बह्वाश्चर्यं महायोगी स्वाश्रमाय न्यवर्तत ॥ ४३ ॥ विभज्य नवधाऽऽत्मानं मानवीं सुरतोत्सुकाम् ॥ रामां निरमयन्
रेमे वर्षपूगान् मुहूर्तवत् ॥ ४४ ॥ तस्मिन् विमान उत्कृष्टां शय्यां रतिकरीं श्रिता ॥ नचाबुध्यत तं कालं पत्याऽ
पीच्येन संगता ॥ ४५ ॥ एवं योगानुभावेन दम्पत्यो रममाणयोः ॥ शतं व्यतीयुः शरदः कामलालसयोर्मनाक्
॥ ४६ ॥ तस्यामाधत्त रेतस्तां भावयन्नात्मनात्मवित् ॥ नोधा विधाय रूपं स्वं सर्वसंकल्पविद्विभुः ॥ ४७ ॥
अतः सा सुषुवे सद्यो देवहूतिः स्त्रियः प्रजाः ॥ सर्वास्ताश्चारुसर्वाङ्ग्यो लोहितोत्पलगन्धयः ॥ ४८ ॥ पतिं सा प्रव्रजि-
ष्यन्तं तदालक्ष्योशती सती ॥ स्मयमाना विक्लवेन हृदयेन विदूयता ॥ ४९ ॥

रहे दोनोंको कामलालसासे रमण करते सौ वर्ष बहुत थोडे कालकी समान व्यतीत होगए ॥ ४६ ॥ देवहूतिको अतिप्रीतिके कारण अपने अर्द्धांग रूपसे भावना करते हुए समर्थ और आत्मज्ञानी ऋषिने उसकी बहुत संतान होनेकी इच्छाको जानकर अपने स्वरूपके नौ विभाग कर उसमें वीर्य स्थापन किया ॥ ४७ ॥ याते शीघ्र देवहूति कन्या उत्पन्न करती भई सब वे श्रेष्ठ अंगवारी हीं, जिनके अंगमें लालकमलकीसी सुगंधि आतीथी ॥ ४८ ॥ फिर कर्दमजी संन्यास ग्रहण करके जब जानेकी इच्छा करनेलगे तब सती देवहूति ऊपरसे मुस्काती परन्तु दुःखी सन्ताप करती ॥ ४९ ॥

सुन्दर दांत, सुन्दर भौं, मनोहर कटाक्षवारे रसभरे नेत्र और कमलकोशकी स्पर्धा करनेहारे नील अलकोंकरके शोभित मुखको देखा ॥ ३३ ॥
ऋषीनमें श्रेष्ठ प्यारे पतिको जब स्मरण कीनो, तब जहां प्रजापति वहांही स्त्रियों सहित अपनेको देखतीभई ॥ ३४ ॥ भर्ताके आगे स्त्रीसहस्र
सहित अपनेको देख उनकी योगगतिको विचार संशयको प्राप्त होतीभई ॥ ३५ ॥ मलस्नान कर अपूर्ववत् प्रकाशमान अपनेसरीको रूप धारे
छिपेभए सुन्दरस्तनवारी देवहूतीको कर्दमजी देखतेभए ॥ ३६ ॥ हे विदुर ! वे ऋषिसहस्र विद्याधरियोंसे सेवित हो सुन्दर वस्त्रधारे भावसे वा

सुदता सुभ्रुवा श्लक्ष्णास्निग्धापाङ्गेन चक्षुषा ॥ पद्मकोशस्पृधा नीलैरलकैश्च लसन्मुखम् ॥ ३३ ॥ यदा सस्मार ऋषभमृषीणां दयितं पतिम् ॥ तत्र चास्ते सह स्त्रीभिर्यत्रास्ते स प्रजापतिः ॥ ३४ ॥ भर्तुः पुरस्तादात्मानं स्त्रीसहस्रवृतं तदा ॥ निशाम्य तद्योगगतिं संशयं प्रत्यपद्यत ॥ ३५ ॥ स तां कृतमलस्नानां विभ्राजन्तीमपूर्ववत् ॥ आत्मनो बिभ्रतीं रूपं संवीतरुचिरस्तनीम् ॥ ३६ ॥ विद्याधरीसहस्रेण सेव्यमानां सुवाससम् ॥ जातभावो विमानं तदारोहयदमित्रहन् ॥ ३७ ॥ तस्मिन्नलुप्तमहिमा प्रिययाऽनुरक्तो विद्याधरीभिरूपचीर्णवपुर्विमाने ॥ बभ्राज उत्कचकुमुद्गणवानपीच्यस्ताराभिरावृत इवोडुपतिर्नभस्थः ॥ ३८ ॥ तेनाष्टलोकपविहारकुलाचलेन्द्रद्रोणीष्वनङ्गसखमारुतसौभगासु ॥ सिद्धैर्नुतो द्युधुनिपातशिवस्वनासु रेमे चिरं धनदवल्ललनावरूथी ॥ ३९ ॥ वैश्रम्भके सुरसने नन्दने पुष्पभद्रके॥ मानसे चैत्ररथ्ये च स रेमे रामया रतः ॥ ४० ॥

विमानपर चढतेभए ॥ ३७ ॥ प्रकाशित महिमावारे प्रियामें आसक्त विद्याधरीनसे शुश्रूषित देहवारे कर्दमजी खिलेभए कमलसमान सुन्दर
आकाशस्थित तारानसे शोभित चंद्रमाकी नांई शोभित होते भए ॥ ३८ ॥ वा विमान करकै अष्टलोकपालकोंके विहारको कुलाचलेंद्र सुमेरुकी
गुफानमें कामसखा पवनकी सुगंधसे युक्त गंगाके पातसे शिवदायक शब्दवारे कुबेरवत् ललनावरूथमें रमण करते सिद्धौंसै स्तुतिको प्राप्त हो
रमण करतेभए ॥ ६९ ॥ वैश्रंभक, सुरसन, नंदन, पुष्प, भद्रक, मानस, चैत्ररथ, इन सात देवतानके बागनमें स्त्रीसहित रमतेभए ॥ ४० ॥

कमलनयनवारी सो देवहूति भर्ताको वचन मान मलिन वस्त्र पहिने वेणीभूत वार धारेथी ॥ २४ ॥ पंक तथा मैलसे लिप्त विस्तीर्ण स्तन ढके भए सरस्वतीके शिव जलाशयमें स्नान करतीभई ॥ २५ ॥ वा सरोवरके भीतर स्थित एक सहस्र कन्या सर्व किशोर अवस्थाकी कमल समान सुगंधिवाली देखतीभई ॥ २६ ॥ देवहूतिको देख एक संग उठकर हाथ जोड सब स्त्री बोली, तुह्मारी हम सब सेवाकर्मकी करवेवारी हैं, हमें आज्ञा करो सो करैं ॥ २७ ॥ वा मनस्विनीको खूब स्नान करायकर मन देवेवारी नवीन वस्त्र याको देतीभई ॥ २८ ॥ बढमोले श्रेष्ठ प्रकाशक भूषण पहरातीभई

सा तद्भर्तुः समादाय वचः कुवलयेक्षणा ॥ सरजं बिभ्रती वासो वेणीभूतांश्च मूर्धजान् ॥२४॥ अङ्गं च मलपङ्केन संछन्नं शबलस्तनम् ॥ आविवेश सरस्वत्याः सरः शिवजलाशयम् ॥२५॥ साऽन्तःसरसि वेश्मस्थाः शतानि दश कन्यकाः ॥ सर्वाः किशोरवयसो ददर्शोत्पलगन्धयः ॥ २६ ॥ तां दृष्ट्वा सहसोत्थाय प्रोचुः प्राञ्जलयः स्त्रियः ॥ वयं कर्मकरीस्तुभ्यं शाधि नः करवाम किम् ॥ २७ ॥ स्नानेन तां महार्हेण स्नापयित्वा मनस्विनीम् ॥ दुकूले निर्मले नूत्ने ददुरस्यै च मानद ॥ २८ ॥ भूषणानि परार्ध्यानि वरीयांसि द्युमन्ति च ॥ अन्नं सर्वगुणोपेतं पानं चैवामृतासवम् ॥ २९ ॥ अथादर्शे स्वमात्मानं स्रग्विणं विरजाम्बरम् ॥ विरजं कृतस्वस्त्ययनं कन्याभिर्बहु मानितम् ॥ ३० ॥ स्नातं कृतशिरःस्नानं सर्वाभरणभूषितम् ॥ निष्कग्रीवं वलयिनं कूजत्काञ्चननूपुरम् ॥ ३१ ॥ श्रोण्योरध्यस्तया काञ्च्या काञ्चन्या बहुरतया ॥ हारेण च महाऽर्हेण रुचकेन च भूषितम् ॥ ३२ ॥

सब गुण युक्त अन्न दीनो, अमृतसमान मीठो मादक जल प्यातीभई ॥ २९ ॥ जब देवहूतीनै दर्पणमें अपना मुख देखा तौ माला पहिने, शुक्ल वस्त्र धारे निर्मल स्वस्त्ययन करीभई बहुत कन्याओंसे अपनेको सन्मानित देखतीभई ॥ ३० ॥ स्नान करीभई शिरसे न्हाई सब आभरणसे शोभित पदक पहिरे कंकण पहिरे शब्द करनेहारे कांचनके नूपुर धारे ॥ ३१ ॥ बहु रत्नकी कौंधनी कमरपर पहिरे, बढमोले रुचक नामक हारसे शोभित "तदुक्तं काव्यप्रकाशे–रुचकं मंगलद्रव्ये ग्रीवाभरणदंतयोरिति" ॥ ३२ ॥

जो विमान दिव्य सामग्रीसहित, सब काल सुखदायक, पट्टी पताकाओंसे विचित्र अलंकारित होताभया ॥ १४ ॥ विचित्र पुष्पवारी कमल मालाओंसे
अलंकृत भौंरोंके गुंजारसे शब्दायमान कूजै रेशमी वस्त्र बढके पीतांबर नानावस्त्रोंसे विराजित होतोभयो ॥ १५ ॥ ऊपरसे ऊपर रचे भए स्थानोंमें अलग
अलग शैयानमें शोभित पलंग पंखा आसन बडे बडे जहां धरे हैं ॥ १६ ॥ तहां तहां नानाप्रकारकी शिलपकी कारीगरीसे शोभित महामरकतके
स्थलमें मूंगोकी वेदी बनी है ॥ १७ ॥ दरवाजोंमें मूंगोंकी देहली हैं हीराके किवाड बने हैं, शिखरोंमें इंद्रनील जडीहै सुवर्णके कलशे लगे हैं ॥ १८ ॥
नेत्र सम चमकनेहारी पद्मराग मणि हीराजटित भींतमें जडी हैं, विचित्र चंदोवेवारे बढमोलके सुवर्णके तोरण लगे हैं ॥ १९ ॥ हंस कबूतरोंके समूह

दिव्योपकरणोपेतं सर्वकालसुखावहम् ॥ पट्टिकाभिः पताकाभिर्विचित्राभिरलंकृतम् ॥ १४ ॥ स्रग्भिर्विचित्रमाल्याभिर्
मञ्जुसिञ्जत्षडङ्घ्रिभिः ॥ दुकूलक्षौमकौशेयैर्नानावस्त्रैर्विराजितम् ॥१५॥ उपर्युपरिविन्यस्तनिलयेषु पृथक् पृथक् ॥
क्षिप्तैः कशिपुभिः कान्तं पर्यङ्कव्यजनासनैः ॥१६॥ तत्र तत्र विनिक्षिप्तनानाशिल्पोपशोभितम् ॥ महामरकतस्थल्या
जुष्टं विद्रुमवेदिभिः ॥१७॥ द्वास्सु विद्रुमदेहल्या भातं वज्रकपाटवत् ॥ शिखरेष्विन्द्रनीलेषु हेमकुम्भैराधिश्रितम् ॥१८॥
चक्षुष्मत्पद्मरागाढ्यैर्वज्रभित्तिषु निर्मितैः ॥ जुष्टं विचित्रवैतानैर्महार्हैर्हेमतोरणैः ॥१९॥ हंसपारावतव्रातैस्तत्र तत्र निकूजितम्
॥ कृत्रिमान्मन्यमानैः स्वानधिरुह्याधिरुह्य च ॥ २० ॥ विहारस्थानविश्रामसंवेशप्राङ्गणाजिरैः ॥ यथोपजोषं
रचितैर्विस्मापनमिवात्मनः ॥२१॥ ईदृग्गृहं तत्पश्यन्तीं नातिप्रीतेन चेतसा ॥ सर्वभूताशयाभिज्ञः प्रावोचत्कर्दमः स्वयम्
॥ २२ ॥ निमज्यास्मिन्ह्रदे भीरु विमानमिदमारुह ॥ इदं शुक्लकृतं तीर्थमाशिषां यापकं नृणाम् ॥ २३ ॥

जहां तहां कूजैं हैं, अपनी परछांई मान उड उड वहांके वहांई बैठे हैं ॥ २० ॥ विहारस्थान विश्रामस्थान उपभोगस्थान घरसे बाहरके स्थान प्राकारके
बाहरके स्थान यथासुख अपने आत्माके विस्मयजनक हैं ॥२१ ॥ ऐसे उस घरको देख देहकी मलीनता और सखीआदिका अभाव विचार जब
देवहूती अति प्रसन्न न भई तब सब जीवमात्रके अंतरके ज्ञाता आप कर्दमजी बोले ॥ २२ ॥ हे भीरु ! या बिंदुसरोवरमें स्नान कर विमान पर बैठो,
ये आनंदके बिंदु गेरके श्रीहरिको करो तीर्थ है, मनुष्यको सब आशीर्वाद देवेवारो है ॥ २३ ॥

फेर औरभी भगवान्की भौंके वक्रीभावसें जिनकी रचना नष्ट हो जातीहै और वैभव तौ क्या वस्तु है तू सिद्ध होगईहै इस कारण अपने धर्मसे प्रात हुए वैभवोंको अनुभव कर जिन वैभवोंका मिलना अभिमानी राजोंकोभी कठिन है ॥ ८ ॥ ऐसे कहितेभए पतिकी सब योगमाया विद्या पंडिता अवला देखकर सब पीडासे रहित होती भई और विनय प्रेमसें विह्वल गद्गदगिरासे कुछ लज्जाके चितवनसे विलसित हसित मुखवारी देवहूती बोली ॥ ९ ॥ देवहूती बोली कि हे ब्राम्हणश्रेष्ठ हे विभो हे स्वामिन् ! जो अमोघ योगमायाके स्वामी तुममें ये सब है सो मैं जानूहूं, जो समय तुमने

अन्ये पुनर्भगवतो भ्रुव उद्विजृम्भविभ्रंशितार्थरचनाः किमुरुक्रमस्य ॥ सिद्धाऽसि भुङ्क्ष्व विभवान्निजधर्मदोहान् दिव्यान्नरैर्दुरधिगान्नृपविक्रियाभिः॥८॥ एवं ब्रुवाणमबलाऽखिलयोगमायाविद्याविचक्षणमवेक्ष्य गताधिरासीत् ॥ संप्रश्रयप्रणयविह्वलया गिरेषद्व्रीडाऽवलोकविलसद्धसिताननाह ॥९॥ देवहूतिरुवाच ॥ राद्धं बत द्विजवृषैतदमोघयोगमायाऽधिपे त्वयि विभो तदवैमि भर्तः ॥ यस्तेऽभ्यधायि समयः सकृदङ्गसङ्गो भूयाद्गरीयसि गुणः प्रसवः सतीनाम् ॥१०॥ तत्रेतिकृत्यमुपशिक्ष यथोपदेशं येनैष मे कर्शितोऽतिरिरंसयात्मा ॥ सिध्येत ते कृतमनोभवधर्षिताया दीनस्तदीश भवनं सदृशं विचक्ष्व ॥११॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रियायाः प्रियमन्विच्छन्कर्दमो योगमास्थितः ॥ विमानं कामगं क्षत्तस्तर्ह्येवाविरचीकरत् ॥ १२ ॥ सर्वकामदुघं दिव्यं सर्वरत्नसमन्वितम् ॥ सर्वर्द्ध्युपचयोदर्कं मणिस्तम्भैरुपस्कृतम् ॥ १३ ॥

कहोहो सो अंगसंग करौ, बडेनमें सतीनको गुण प्रसव होय है ॥ १० ॥ हे ईश ! तहां अंगसंगम जो करवे योग्य कामशास्त्रानुसार होय सो शिक्षा करो जासे दीन कर्षित मेरी इस देहसै अतिरमणकी इच्छा सिद्ध होय तुह्मारे करे भए कामसे मैं धर्षित हूं सो सदृश भवन बनाओ ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी बोले कि प्रियाके प्रियकी इच्छाकर कर्दमजी योगमें स्थित होतेभये, हे विदुर ! अपने मनकी इच्छाके अनुसार चलनेवारो विमान वाही समय प्रकट करते भए ॥ १२ ॥ सब कामपूरक दिव्य सब रत्न सहित सब ऋद्धीनके समूह मणिजटित खंभसे शोभित विमान होतो भयो ॥ १३ ॥

श्रीमैत्रेयजी वोले कि माता पिता चले गए तब पतिके चित्तकी जननेहारी साध्वी चतुर देवहूती नित्य प्रीतिकरकै पतिकी सेवा करती भई,जैसे पार्वतीजी
शिवकी सेवा करतीहैं ॥ १ ॥ विश्वास, शौच, गौरवता, दमसे शुश्रूषाकरकै सुहृदता और मधुरवाणीसे ॥ २ ॥ कपट दंभ द्वेष लोभ पाप मद
सबको त्यागकरके महातेजस्वी मुनिको संतुष्ट करतीभई ॥ ३ ॥ देवर्षियोंमें श्रेष्ठ वह कर्दमजी वा मानवी सदा सेवा करवेवारी भाग्यसे प्राप्त हुए पूज्यतम
पतिसे बडे बडे आशीर्वादोंकी चाहना करनेवाली ॥ ४ ॥ बहोतकालतक व्रत करवेसे अतिकृश देवहूतीसे प्रेमसहित गद्गदवाणीसें पीडित हो कृपाकर

मैत्रेय उवाच ॥ पितृभ्यां प्रस्थिते साध्वी पतिमिङ्गितकोविदा ॥ नित्यं पर्यचरत् प्रीत्या भवानीव भवं प्रभुम् ॥ १ ॥
विश्रम्भेणात्मशौचेन गौरवेण दमेन च ॥ शुश्रूषया सौहृदेन वाचा मधुरया च भोः ॥ २ ॥ विसृज्य कामं दम्भं च द्वेषं
लोभमघं मदम् ॥ अप्रमत्तोद्यता नित्यं तेजीयांसमतोषयत् ॥ ३ ॥ स वै देवर्षिवर्यस्तां मानवीं समनुव्रताम् ॥ दैवाद्गरीयसः
पत्युराशासानां महाशिषः ॥ ४ ॥ कालेन भूयसा क्षामां कर्शितां व्रतचर्यया ॥ प्रेमगद्गदया वाचा पीडितः कृपयाऽब्रवीत्
॥ ५ ॥ कर्दम उवाच ॥ तुष्टोऽहमद्य तव मानवि मानदायाः शुश्रूषया परमया परया च भक्त्या ॥ यो देहिनामयमतीव
सुहृत् स्वदेहो नावेक्षितः समुचितः क्षपितुं मदर्थे ॥ ६ ॥ ये मे स्वधर्मनिरतस्य तपःसमाधिविद्यात्मयोगविजिता
भगवत्प्रसादाः ॥ तानेव ते मदनुसेवनयाऽवरुद्धान् दृष्टिं प्रपश्य वितराम्यभयानशोकान् ॥ ७ ॥

वोले ॥ ५ ॥ कर्दमजी वोले कि हे मानवी ! आज मानदात्री तुमारी परम शुश्रूषा और परमभक्तिसे हम तुष्ट हैं, जो देहधारीनको अत्यंत सुहृत् अपनो
देह है सो तू मेरे अर्थ नष्ट करवेको उचित जान त्यागती भई, अर्थात् हमारी सेवाके लिये तुमने देहकूं नहीं गिना इनसे मैं बहोत प्रसन्न भया हूं॥ ६॥
जो मुझे स्वधर्ममें निरत होकै तप समाधि विद्या आत्मयोगसे विशेष करकै जीते भए भगवतके दिव्य प्रसाद प्राप्त भएहैं, सो मेरेमें हैं उनको मेरी
सेवा करकै तुमने वश कर लियेहैं, अब मैं तुमकूं दिव्यदृष्टि देताहूं तिस्सै तू मेरे वैभवको देख जो निर्भय और शोकरहित है ॥ ७ ॥

धर्मके अनुसार भार्या पुत्र सहित राजा मनु विरोधरहित कामादि भोगतेभये इसी कारण उनकी सत्कीर्ति देवता स्त्रियों सहित गातेथे ॥ ३३ ॥ प्रातःसमय सांझको अनुरागि हृदयकरकै हरिकी कथा सुनतेभये, कलिमें तौ जिस कथा श्रवणसे संसार समुद्रको जीव तरजांयगे॥३४॥ योगमायामें निमग्न मुनि स्वायंभुवमनु भगवत्परायणकूं भ्रष्ट करवेको भोग न समर्थ होतेभए ॥ ३५ ॥ सदा विष्णुकी कथा सुनते, ध्यान करते और भगवानकी कथा कहतेथे इस कारण उनके प्रहर मन्वन्तरके वितानेवाले निस्तार नहीं थे॥३६॥ सो राजा इकत्तर युग वासुदेवकी कथा करके मन्वंतरको जाग्रदादि तीन

सभार्यः सप्रजः कामान् बुभुजेऽन्याविरोधतः ॥ संगीयमानसत्कीर्तिः सस्त्रीभिः सुरगायकैः ॥ ३३ ॥ प्रत्यूषेष्वनुबद्धेन हृदा शृण्वन्हरेः कथाः ॥ कलौ कथाश्रवणतस्तरन्ति भववारिधिम् ॥ ३४ ॥ निष्णातं योगमायासु मुनिं स्वायंभुवं मनुम् ॥ यदा भ्रंशयितुं भोगा न शेकुर्भगवत्परम् ॥३५॥ अयातयामास्तस्यासन् यामाः स्वान्तरयापनाः ॥ शृण्वतो ध्यायतो विष्णोः कुर्वतो ब्रुवतः कथाः ॥ ३६ ॥ स एव स्वान्तरं निन्ये युगानामेकसप्ततिम् ॥ वासुदेवप्रसङ्गेन परिभूतगतित्रयः ॥ ३७॥ शारीरा मानसा दिव्या वैयासे ये च मानुषाः ॥ भौतिकाश्च कथं क्लेशा बाधन्ते हरिसंश्रयम् ॥ ३८ ॥ यः पृष्टो मुनिभिः प्राह धर्मान् नानाविधान् शुभान् ॥ नृणां वर्णाश्रमाणां च सर्वभूतहितः सदा ॥ ३९ ॥ एतत्त आदिराजस्य मनोश्चरितमद्भुतम् ॥ वर्णितं वर्णनीयस्य तदपत्योदयं शृणु ॥४०॥ इति श्रीभा॰ तृती॰सपत्नीकस्वायंभुवमनोः बर्हिष्मतीं प्रत्यागमनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २२ ॥

अवस्थाको व्यतीत करतेभए, क्यों कि या देहको येही फल है कि सुकृत कर्मकर आयु व्यतीत करै (१) ॥ ३७ ॥ हे विदुर ! शारीरी मानसी दिव्य मानुषी अरु शीतोष्णादिक ये क्लेश हरिके आश्रयवारेको कैसेंहू बाधा नहीं करते ॥ ३८ ॥ यही मनुजी मुनियोंके पूछनेपर वर्णाश्रमके मनुष्योंके और सब जीवनके हित नाना प्रकारके सुन्दर धर्म कहतेभये ॥ ३९ ॥ ये आदिराज मनुको अद्भुत चरित्र वर्णन कीनो, अब उनके संतानोंकी कथा सुनो ॥ ४० ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां तृतीयस्कंधे स्वायंभुवमनोर्बर्हिष्मतीं प्रत्यागमनं नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः ॥२२॥

---

(१) ताको या भाषा प्रबंधमें वर्णन हैं "घरिघरि घटत छीजत जात छिन छिन भीजतही गरि जात मांटीको सो ढेलहै। मुक्तिके द्वार आय सावधान क्यो न होत बार बार चढत न त्रियाको सो तेल है ॥ करले सुकृत हरिभजन अखंड नर याही मैं अंतर पर यामैं ब्रह्ममेल है। मनुष्यजन्में अवजीत भावै हार कहा सुंदर कहत यामें जूआकोसो खेल है ॥ १ ॥

मंगलकी बात है कि आपने आज्ञा कीनी महा अनुग्रह कीनो खुले कान छिद्रोंसें सुंदर तुह्मारी वाणी सुनी ॥ ७ ॥ हे मुने! सो तुम पुत्रीके स्नेह
विवश दीन मोपर कृपाकर मेरी विनती सुनवेको योग्य हो ॥ ८ ॥ प्रियव्रत उत्तानपादकी बहिनी मेरी बेटी है, वय शील गुणसे अपने समान पति-
युक्त होवेकी इच्छा करै है ॥ ९ ॥ जा समय आपके शील रूप ऊमर गुण नारदसे सुनें, तबसे तुममैं याने निश्चय कर मन कीनो है ॥ १० ॥
हे द्विजाग्र्य! श्रद्धासे मैं लायोहूं, सो याय तुम लेवो, तुह्मारे गृहस्थके कर्ममें सब प्रकार करके तुह्मारे योग्यही है ॥ ११ ॥ जो अपने आप काम

दिष्ट्या त्वयाऽनुशिष्टोऽहं कृतश्चानुग्रहो महान् ॥ अपावृतैः कर्णरन्ध्रैर्जुष्टा दिष्ट्योशतीर्गिरः ॥७॥ स भवान्दुहितृ-
स्नेहपरिक्लिष्टात्मनो मम ॥ श्रोतुमर्हसि दीनस्य श्रावितं कृपया मुने ॥ ८ ॥ प्रियव्रतोत्तानपदोः स्वसेयं दुहिता म-
म ॥ अन्विच्छती पतिं युक्तं वयःशीलगुणादिभिः ॥९॥ यदा तु भवतः शीलश्रुतरूपवयोगुणान् ॥ अशृणोन्नारदादेषा
त्वय्यासीत्कृतनिश्चया ॥ १० ॥ तत्प्रतीच्छ द्विजाग्र्येमां श्रद्धयोपाहृतां मया ॥ सर्वात्मनाऽनुरूपां ते गृहमेधिषु क-
र्मसु ॥ ११ ॥ उद्यतस्य हि कामस्य प्रतिवादो न शस्यते ॥ अपि निर्मुक्तसङ्गस्य कामरक्तस्य किं पुनः ॥ १२ ॥ य उद्यत-
मनादृत्य कीनाशमभियाचते ॥ क्षीयते तद्यशः स्फीतं मानश्चावज्ञया हतः ॥ १३ ॥ अहं त्वाऽशृणवं विद्वन्विवाहार्थं
समुद्यतम् ॥ अतस्त्वमुपकुर्वाणः प्रत्तां प्रतिगृहाण मे ॥ १४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ बाढमुद्वोढुकामोऽहमप्रत्ता च तवात्म-
जा ॥ आवयोरनुरूपोऽसावाद्यो वैवाहिको विधिः ॥ १५ ॥

प्राप्त है वाको मने करनो सब संगसे निर्मुक्तौंकोभी योग्य नहीं कामासक्तोंकी तो कहा बात है ॥ १२ ॥ जो कोई प्राप्तको अनादर कर कृपणसें मांगै
है वाको उज्ज्वल यश क्षीण होय है अवज्ञासें मान नाश होय है ॥ १३ ॥ हे विद्वन्! हमने सुनी ही कि आप विवाह करनेकों उद्यत है, याते याकों
तुम अंगीकार करो, मेरी दीभई याय ग्रहण करो ॥ १४ ॥ ऋषि बोले कि ॥ जो तुमने कही सो हमें अंगीकार है क्यों कि हमें व्याहकी इच्छा है
तुह्मारी पुत्रीभी अप्रत्त अर्थात् अविवाहित है, हमारे दोनोंके अनुरूप ये आद्य विवाहकी विधि है ॥ १५ ॥

हे नरदेव ! तुह्मारी या पुत्रीको मनोरथ पूरण होय, वेदविधि योंही है, अपनीं कांतिसे श्रीकी कांतिको दूर करनेहारी तुह्मारी कन्याको कौन आदर न करैगो ॥ १६ ॥ जा तुह्मारी कन्याको महलके ऊपर गेंद क्रीड़ा करती देख और चरणोंके नूपुरोंके शब्द सुन मोहसे मोहितचित्त होकर विश्वावसु गंधर्व अपने विमानसे गिरपडो ॥ १७ ॥ लक्ष्मीके चरणोंकी सेवासे हीन पुरुषको जिनका दर्शन अतिदुर्लभ है ऐसी स्त्रियोंमें शिरोमणि मनुकी पुत्री उत्तानपादकी भगिनी अपने आप प्राप्त हुईको कौन बुद्धिमान ग्रहण न करैगो ॥ १८ ॥ यातें समय करके साध्वीको भजेंगे, जबतक यह हमारो तेज धारण करै याते परमहंसनके मुख्य भगवत्प्रोक्त हिंसारहित धर्म हम बहुत मानेंगे ॥ १९ ॥ जाते ये विचित्र विश्व भयो, जासे नष्ट

कामः स भूयान्नरदेव तस्याः पुत्र्याः समाम्नायविधौ प्रतीतः ॥ क एव ते तनयां नाद्रियेत स्वयैव कान्त्या क्षिपतीमिव श्रियम् ॥१६॥ यां हर्म्यपृष्ठे क्वणदङ्घ्रिशोभां विक्रीडतीं कन्दुकविह्वलाक्षीम् ॥ विश्वावसुर्न्यपतत्स्वाद्विमानाद्विलोक्य संमोहविमूढचेताः ॥ १७ ॥ तां प्रार्थयन्तीं ललनाललाममसेवितश्रीचरणैरदृष्टाम् ॥ वत्सां मनोरुच्चपदः स्वसारं को नानुमन्येत बुधोऽभियाताम् ॥ १८ ॥ अतो भजिष्ये समयेन साध्वीं यावत्तेजो बिभृयादात्मनो मे ॥ अतो धर्मान्पारमहंस्यमुख्याञ्छुक्लप्रोक्तान्बहु मन्येऽविहिंस्रान् ॥१९॥ यतोऽभवद्विश्वमिदं विचित्रं संस्थास्यते यत्र च वाऽवतिष्ठते ॥ प्रजापतीनां पतिरेष मह्यं परं प्रमाणं भगवाननन्तः ॥ २० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ स उग्रधन्वन्नियदेवाबभाष आसीत्तूष्णीमरविन्दनाभम् ॥ धियोपगृह्णन्स्मितशोभितेन मुखेन चेतो लुलुभे देवहूत्याः ॥ २१ ॥ सोऽनुज्ञात्वा व्यवसितं महिष्या दुहितुः स्फुटम् ॥ तस्मै गुणगणाढ्याय ददौ तुल्यां प्रहर्षितः ॥ २२ ॥ शतरूपा महाराज्ञी पारिबर्हान्महाधनान् ॥ दम्पत्योः पर्यदात्प्रीत्या भूषावासःपरिच्छदान् ॥ २३ ॥

होय. जासे रक्षित होयहै वह प्रजापतीनके पति अनन्त भगवान् मुझे परम प्रमाण है ॥ २० ॥ मैत्रेयजी बोले कि हे उग्रधन्वन् हे विदुर ! ऐसे कहकर भगवान् कर्दमजी चुप होगए, बुद्धिसे स्मित शोभित मुखसें देवहूतीके चित्तको लुभावतेभए ग्रहण करतेभए ॥ २१ ॥ इस प्रकार मनु उनसे आज्ञा ले राणीकी, और बेटीको निश्चय जान प्रसन्न होय सम्पूर्ण गुणयुक्त तिन मुनिके अर्थ अपनी कन्या देतेभये ॥ २२ ॥ शतरूपा महाराणी दहेज महाधन भूषण वस्त्र घरकी सब समाग्री स्त्री पुरुषको देतीभई ॥ २३ ॥

राजा सब व्यथासे दूर हो समान वरको दुहिता देकर उत्कंठासे विवश हृदय होय बाहुसे मिलतेभए ॥ २४ ॥ वे कन्याके विरहको न सहसके, वारंवार आंसू त्यागन करते हे वत्से ! ऐसे कहि नेत्रोंके जलसें दुहिताकी शिखाको सींचतेभए ॥ २५ ॥ फिर मुनिवरसें आज्ञा ले चाकरसहित रथमें बैठ स्त्रीसहित राजा स्वायंभुवमनु प्रस्थान करतेभए ॥ २६ ॥ ऋषिकुलसहित सरस्वतीके दोनों ओरके शांत ऋषीनके आश्रमोंकी संपदा देखतेहुए जाते भये ॥२७॥ ब्रह्मावर्तसे तिन प्रजापतिको आए जान गीत स्तुति बाजे बजायकर हर्षसे सब प्रजाजन सामने आए ॥२८॥ उनकी सर्व संपत्सहित

प्रत्तां दुहितरं सम्राट् सदृक्षाय गतव्यथः ॥ उपगुह्य च बाहुभ्यामौत्कण्ठ्योन्मथिताशयः ॥ २४ ॥ अशक्नुवंस्तद्विरहं मुञ्चन्बाष्पकलां मुहुः ॥ आसिञ्चदेव वत्सेति नेत्रोदैर्दुहितुः शिखाः ॥ २५ ॥ आमन्त्र्य तं मुनिवरमनुज्ञातः सहानुगः ॥ प्रतस्थे रथमारुह्य सभार्यः स्वपुरं नृपः ॥ २६ ॥ उभयोर्ऋषिकुल्यायाः सरस्वत्याः सुरोधसोः ॥ ऋषीणामुपशान्तानां पश्यन्नाश्रमसंपदः ॥ २७ ॥ तमायान्तमभिप्रेत्य ब्रह्मावर्तात् प्रजापतिम् ॥ गीतसंस्तुतिवादित्रैः प्रत्युदीयुः प्रहर्षिताः ॥ २८ ॥ बर्हिष्मती नाम पुरी सर्वसंपत्समन्विता ॥ न्यपतन् यत्र रोमाणि यज्ञस्याङ्गं विधुन्वतः ॥ २९ ॥ कुशाः काशास्त एवासन् शश्वद्धरितवर्चसः ॥ ऋषयो यैः पराभाव्य यज्ञघ्नान् यज्ञमीजिरे ॥ ३० ॥ कुशकाशमयं बर्हिरास्तीर्य भगवान् मनुः ॥ अयजद्यज्ञपुरुषं लब्ध्वा स्थानं यतो भुवम् ॥ ३१ ॥ बर्हिष्मतीं नाम विभुर्यां निर्विश्य समावसत् ॥ तस्यां प्रविष्टो भवनं तापत्रयविनाशनम् ॥ ३२ ॥

बर्हिष्मती नाम पुरी थी कि जहां यज्ञरूप श्रीवाराहजीने आयकर अंग कंपायो तब वहां उनके रुएं गिरेथे ॥२९॥ जिनसे निरंतर हरे वर्णके कुश काश होतेभए, जिन कुशानसे यज्ञनाशकोंको ऋषिलोग तिरस्कार कर यज्ञोंको करतेभए॥३०॥भगवान् मनुजी जहां पृथ्वीरूप स्थान पाकर कुश काशके आसन बिछाय यज्ञपुरुषको यजन करतेभए ॥३१॥बर्हिष्मती नाम पुरीमें प्रवेश कर वे समर्थ तीनों ताप दूर करनेहारे अपने भवनमें आये ॥ ३२ ॥

तोभी हे वीर ! हम तुमसे पूछेहैं कि तुम वहां कैसे आये, जो मनोरथ होगो सो निष्कपट हृदयसे हम पूरण करेंगे। क्योंकि कपटी जीवनसे अधर्म बढैहै ॥ (१) ॥ ५७ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां तृतीय० कर्दमाश्रमे स्वायंभुवमनुसमागमनं नाम एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ मैत्रेयजी बोले कि जब इस प्रकार कर्दमजीने उनके गुणकर्मोंके उदय प्रगट किये तब लज्जावालेकी नाईं राजा मुनिसे हर्षमें होकर बोले ॥ १ ॥ मनु बोले श्रीब्रह्माजी अपने मुखसें अपनी समान वेदमय तप विद्या योगसे युक्त अलंपट तुम ब्राह्मणोंको रचतो भयो ॥ २ ॥ सहस्र पदवारे ईश्वर सहस्र भुजानसे ब्राह्मणोंके पालनके लिये हमको रचते भए तिनके हृदय ब्राह्मण हैं, क्षात्रिय उनके अंग हैं ॥ ३ ॥ यातें ब्राह्मण क्षत्रियोंकी रक्षा करैं, क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी रक्षा करें, ऐसे आपसमें रक्षा करते हुवे सबके अविनाशी देव सत् असत्के आत्मा रक्षा करैं हैं ॥ ४ ॥ तुह्मारे दर्शनसे मेरे सब संशय कटकर दूर भए, जो आप भगवान् प्रीति करकै रक्षाकी इच्छाकर धर्म कहितेभये ॥ ५ ॥ मंगल भयो जो अजितेन्द्रिय तथा चंचलवारौंको न दीखनेहारे भगवान दीखे, भद्र है, कि मेरे मंगलीक आपको पादरज स्पर्शभयो ॥ ६ ॥

अथापि पृच्छे त्वां वीर यदर्थं त्वमिहागतः ॥ तद्वयं निर्व्यलीकेन प्रतिपद्यामहे हृदा ॥ ५७ ॥ इति श्रीभा० तृतीय० स्वपुत्रीस्वायंभुवमनुकर्दमसमागमवर्णनं नाम एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवमाविष्कृताशेषगुणकर्मोदयो मुनिम् ॥ सव्रीड इव तं सम्राडुपारतमुवाच ह ॥ १ ॥ मनुरुवाच ॥ ब्रह्माऽसृजत् स्वमुखतो युष्मानात्मपरीप्सया ॥ छन्दोमयस्तपोविद्यायोगयुक्तानलम्पटान् ॥ २ ॥ तत्त्राणायासृजच्चास्मान् दोःसहस्रात् सहस्रपात् ॥ हृदयं तस्य हि ब्रह्म क्षत्त्रमङ्गं प्रचक्षते ॥ ३ ॥ अतो ह्यन्योऽन्यमात्मानं ब्रह्म क्षत्रं च रक्षतः ॥ रक्षति स्माव्ययो देवः स यः सदसदात्मकः ॥ ४ ॥ तव संदर्शनादेव च्छिन्ना मे सर्वसंशयाः ॥ यत्स्वयं भगवान्प्रीत्या धर्ममाह रिरक्षिषोः ॥ ५ ॥ दिष्ट्या मे भगवान्दृष्टो दुर्दर्शो योऽकृतात्मनाम् ॥ दिष्ट्या पादरजः स्पृष्टं शीर्ष्णा मे भवतः शिवम् ॥ ६ ॥

---

(१) वे कपटी कहै ॥ कपटी कठोर दूती लम्पटी गुलाम सेती वासी सुत बेईमान कबहू न धीजिये । हाथीवान पिलीवान सारवान प्रधाकमान कुंजडा भटयारीनिसे कबहू न पतीजियै ॥ निपट निगोडे लूले लम्बे ओछे कंधे धूरत चटारेनसे कबहू न लरीजिये । कहैं कवि विश्वनाथ एते जी वागे न राखो काम पडे एतेनसूं चर्चाहूं न कीजिये ॥ १ ॥

ऊचें कंधां कमलनयन जटाधारो चीर वसन पहिरे संस्काररहित रत्नकी समान मलीन प्रतीत होते कर्दमजीके निकट मनु गये ॥ ४८ ॥ याके अनंतर मुनि पर्णशालाके समीप आए आगेसे प्रणाम करते राजाको वाके समान बडाई कर पूजा करकै ग्रहण करतेभए ॥ ४९ ॥ पूजन ग्रहण कर निचिंत राजाको प्रसन्न कर भगवत आज्ञा याद करते कोमल वाणीसे मुनि बोले॥५०॥ हे देव! तुमारो विचरण सज्जनोंके रक्षाके अर्थ, और असतोंके वधके अर्थ है, कारण कि तुमे श्रीहरिकी अनपायिनी शक्ति हो ॥ ५१ ॥ जो राजा सूर्य चंद्र अग्नि इंद्र वायु यमधर्म प्रचेतौंके रूप धार स्थान

प्रांशुं पद्मपलाशाक्षं जटिलं चीरवाससम् ॥ उपसंसृत्य मलिनं यथाऽर्हणमसंस्कृतम् ॥ ४८ ॥ अथोटजमुपायान्तं नृदेवं प्रणतं पुरः ॥ सपर्यया प्रत्यगृह्णात्प्रतिनन्द्यानुरूपया ॥ ४९ ॥ गृहीतार्हणमासीनं संयतं प्रीणयन्मुनिः ॥ स्मरन्भगवदादेशमित्याह श्लक्ष्णया गिरा ॥ ५० ॥ नूनं चंक्रमणं देव सतां संरक्षणाय ते ॥ वधाय चासतां यत्त्वं हरेः शक्तिर्हि पालिनी ॥ ५१ ॥ योऽर्केन्द्वग्नीन्द्रवायूनां यमधर्मप्रचेतसाम् ॥ रूपाणि स्थान आधत्से तस्मै शुक्लाय ते नमः ॥ ५२ ॥ न यदा रथमास्थाय जैत्रं मणिगणार्पितम् ॥ विस्फूर्जच्चण्डकोदण्डो रथेन त्रासयन्नघान् ॥ ५३ ॥ स्वसैन्यचरणक्षुण्णं वेपयन्मण्डलं भुवः ॥ विकर्षन्बृहतीं सेनां पर्यटस्यंऽशुमानिव ॥ ५४ ॥ तदैव सेतवः सर्वे वर्णाश्रमनिबन्धनाः ॥ भगवद्रचिता राजन् भिद्येरन् बत दस्युभिः ॥ ५५ ॥ अधर्मश्च समेधेत लोलुपैर्व्यङ्कुशैर्नृभिः ॥ शयाने त्वयि लोकोऽयं दस्युग्रस्तो विनङ्क्ष्यति ॥ ५६ ॥

स्थानमें सब काम करैं हैं, तिन धर्मरूप तुमको नमस्कार होय ॥ ५२ ॥ जयप्रद मणिगणजटित रथपर बैठ चंडकोदंड ले पापीनको त्रास देते जो तुम न पर्यटन करो तो सब धर्म नष्ट होजाय ॥ ५३ ॥ अपनी सैनाके चरणोंसे रुंदे भूमंडलपर सब सेना लिये सूर्यसमान तुम विचरोहो ॥ ५४ ॥ हे राजन्! यदि ऐसा न हो तौ ईश्वरकी स्थापन करीहुई सब वर्ण और आश्रम संबंधी मर्यादा तत्काल दुष्ट पुरुषोंसे छिन्न भिन्न होजाय ॥ ५५ ॥ जब तुम शयन करजाओहो, तो लोभी निरंकुश जीवोंकरकै अधर्म बढजायहै, ये लोक चोरोंसे ग्रसित होकर सब विनष्ट होजायहै ॥ ५६ ॥

161

शांतव्रत मुनिके वा आश्रमपर आतेभए ॥ ३७ ॥ जामें भगवान्के अश्रुबिंदु कृपाकरकै शरणागत कर्दमपर अत्यंत प्रसन्न होय गिरैहैं ॥ ३८ ॥ सो वो बिंदुसरोवर नाम सरस्वती करकै परिवेष्टित है, पुण्य आरोग्यदायक अमृतसमान जल है महर्षिगणोंकरकै सेवित है ॥ ३९ ॥ पुण्यदायक वृक्ष लताजालोंसे शोभित, मनोहर बोलनेहारे मृग पक्षियोंसे शोभित सब ऋतुनमें फलपुष्पयुक्त वनपंक्तियोंसे शोभित है ॥ ४० ॥ जहां मत्त पक्षीगण बोलते, मतवारे भ्रमर गुंजार करते मतवारे मयूर नटोंकी नाईं कला करते नृत्य कर रहे हैं जहां मदमत्त कोकिल अपनी बोलीसै बुलारहीहै ॥ ॥ ४१ ॥ कदंब, चंपक, अशोक, कंजे, बकुल, अशन, कुंद, मंदार, कुटज, आम, पोत, वृक्षोंसे शोभित है ॥ ४२ ॥ जलमुर्गावी मेडका हंस कुरर जलमुर्गा सारस चकई चकवा चकोर ये मनोहर जहां कूंजैं हैं ॥ ४३ ॥ तैसेई हिरण वराह श्वान शल्लक गवय हाथी गोपुच्छ वानर सिंह नौले कस्तूरीमृगोंसे शोभित है ॥ ४४ ॥ आदिराज स्वायंभुवमनु कन्यासहित वा तीर्थश्रेष्ठमें प्रवेशकर हवनयोग्य अग्निमें होम कर बैठेभए मुनिको देखते भए ॥ ४५ ॥ उग्र संयोगी तपसें जिनका वपु प्रकाशित है, उन तप करनेसे दुर्बल होनेपरभी जो भगवानके स्नेहसहित कटाक्षभरे अवलोकन ॥ ॥ ४६ ॥ और भगवान्के भाषणरूप अमृतमय चंद्रमाको कला संबंधी अमृतका सेवन करनेसे अति कृश नहीं थे कारण कि जो उपरोक्त प्रकार प्रिय वचन बोलताहै वह मनुष्य मोक्षको प्राप्त होताहै ॥ ४७ ॥

यस्मिन्भगवतो नेत्रान्न्यपतन्नश्रुबिन्दवः ॥ कृपया संपरीतस्य प्रपन्नेऽर्पितया भृशम् ॥ ३८ ॥ तद्वै बिन्दुसरो नाम सरस्वत्या परिप्लुतम् ॥ पुण्यं शिवामृतजलं महर्षिगणसेवितम् ॥ ३९ ॥ पुण्यद्रुमलताजालैः कूजत्पुण्यमृगद्विजैः ॥ सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं वनराजिश्रियाऽन्वितम् ॥ ४० ॥ मत्तद्विजगणैर्घुष्टं मत्तभ्रमरविभ्रमम् ॥ मत्तबर्हिनटाटोपमाह्वयन्मत्तकोकिलम् ॥ ४१ ॥ कदम्बचम्पकाशोककरञ्जबकुलाशनैः ॥ कुन्दमन्दारकुटजैश्चूतपोतैरलंकृतम् ॥ ४२ ॥ कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कुररैर्जलकुक्कुटैः ॥ सारसैश्चक्रवाकैश्च चकोरैर्वल्गुकूजितम् ॥४३॥ तथैव हरिणैः क्रोडैः श्वाविद्गवयकुञ्जरैः ॥ गोपुच्छैर्हरिभिर्मर्कैर्नकुलैर्नाभिभिर्वृतम् ॥४४॥ प्रविश्य तत्तीर्थवरमादिराजः सहात्मजः ॥ ददर्श मुनिमासीनं तस्मिन्हुतहुताशनम् ॥ ४५ ॥ विद्योतमानं वपुषा तपस्युग्रयुजा चिरम् ॥ नातिक्षामं भगवतः स्निग्धापाङ्गावलोकनात् ॥ ४६ ॥ तद्व्याहृतामृतकला पीयूषश्रवणेन च ॥ योऽतिप्रियं वचो ब्रूते स वै मोक्षं व्रजेन्नरः ॥ ४७ ॥

वो तुह्मारो वीर्य नव विभागसे उत्पन्न करेगी, तुह्मारो जमाईके कन्यानमें ऋषिलोग अनायाससे अपनी संतान उत्पन्न करेंगे ॥ २९ ॥ तुम सुंदर मेरी
आज्ञामें स्थित होकर मोको तीर्थरूप मान मेरेमें सब कर्मफल समर्पण कर मोको प्राप्त होओगे ॥ ३० ॥ सब जीवनमें दयाकर आत्मज्ञानी हाय
सबको अभयदान देकर मोमें आप सहित सब जगत देखोगे अपनेमें मोको देखोगे ॥ ३१ ॥ हे महामुने ! हम अंशकलासहित तुमारे वीर्यकरके तुह्मारी
देवहूतीमें अवतार धार तत्वसंहिता कहेंगे ॥ ३२ ॥ मैत्रेयजी बोले कि" प्रत्यग्भूतेषु अक्षेषु जायत इति प्रत्यगक्षजः " प्रत्यक्षभूत इंद्रियोंके

यात आत्मभृतं वीर्यं नवधा प्रसविष्यति ॥ वीर्ये त्वदीये ऋषय आधास्यन्त्यऽञ्जसाऽऽत्मनः ॥ २९ ॥ त्वं च सम्यगनुष्ठाय
निदेशं म उशत्तमः ॥ मयि तीर्थीकृताशेषक्रियाऽर्थो मां प्रपत्स्यसे ॥ ॥ ३० ॥ कृत्वा दयां च जीवेषु दत्त्वा
चाभयमात्मवान् ॥ मय्यात्मानं सह जगद्द्रक्ष्यस्यात्मनि चापि माम् ॥ ३१ ॥ सहाऽहं स्वांशकलया त्वद्वीर्येण महामुने
॥ तव क्षेत्रे देवहूत्यां प्रणेष्ये तत्त्वसंहिताम् ॥ ३२ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं तमनुभाष्याऽथ भगवान्प्रत्यगक्षजः ॥
जगाम बिन्दुसरसः सरस्वत्या परिश्रितात् ॥ ३३ ॥ निरीक्षतस्तस्य ययावऽशेषसिद्धेश्वराभिष्टुतसिद्धमार्गः ॥ आकर्णयन्पत्ररथेन्द्रपक्षैरुच्चारितं
स्तोममुदीर्णसाम ॥ ३४ ॥ अथ संप्रस्थिते शुक्के कर्दमो भगवानृषिः ॥ आस्ते स्म
बिन्दुसरसि तं कालं प्रतिपालयन्॥३५॥मनुः स्यन्दनमास्थाय शातकौम्भपरिच्छदम्॥ आरोप्य स्वां दुहितरं सभार्यः
पर्यटन्महीम् ॥ ३६ ॥ तस्मिन्सुधन्वन्नहनि भगवान्यत्समादिशत् ॥ उपायादाश्रमपदं मुनेः शान्तव्रतस्य तत् ॥ ३७ ॥

सामने आए भगवान तिनसें कहिकै स्वरस्वती परिवेष्टित बिंदुसरसे जाते भये ॥ ३३ ॥ सब सिद्धेश्वर जिनके वैकुंठमार्गकी स्तुति करते हैं
वह भगवान् गरुडके पंखौंसे उच्चारण हुए मंत्र समूह और प्रगट हुए सामवेदको सुनते कर्दमजीके देखते तहांसे जातेभये ॥ ३४ ॥ याके उपरांत
भगवान् जब चलेगये, तब कर्दम भगवान् ऋपि बिंदुसरपर बैठे वा समयको प्रतिपाल करतेरहे ॥ ३५ ॥ सुवर्णके सब कामवारे रथपर बैठे मनुजी
अपनी बेटीको बैठाय स्त्रीसहित महीपर पर्यटन करतेभए ॥ ३६ ॥ हे सुंदरधनुषधारी हे विदुर ! तासे भगवान् जो कहिगएहैं वाही समय

---

१ उस स्थानपर भगवानके शोकसै आसूं गिरा कि कर्दमजीने विवाह संसारी सुखके निमित्त इतनी तपस्या की इसी कारण उस स्थानका नाम विन्दुसरोवर हुआ ।

अनुभवजन्य ज्ञानसें क्रियाके अर्थसै रहित अपनी मायासे सब लोकको रचनेहारे आपके नमस्कार योग्य चरणकमलको जो थोडेसे भजन सेवा पूजासे संपूर्ण काम देतेहैं मैं वारंवार नमस्कार करताहूं ॥ २१ ॥ मैत्रेय ऋषि बोले कि ॥ या प्रकार निष्कपट प्रणाम करवेवारेसे गरुडजीके ऊपर बैठे प्रेमकी स्मितसे चलायमान भ्रू भगवान कमलनाभ अमृत समान वचनसै बोले ॥ २२ ॥ श्रीभगवान् बोले कि तुह्मारे चित्तकी जानकर पहिलेसेही हमने सब यत्न कर दीनो है, जा अर्थ तुमने आत्माके नियमोंसे हमारी पूजा कीनी है ॥ २३ ॥ सब प्रजाके स्वामी मेरो पूजन कदीभी

तं त्वाऽनुभूत्योपरतक्रियार्थं स्वमायया वर्तितलोकतन्त्रम् ॥ नमाम्यभीक्ष्णं नमनीयपादसरोजमल्पीयसि कामवर्षम् ॥ २१ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ इत्यव्यलीकं प्रणतोऽब्जनाभस्तमाबभाषे वचसाऽमृतेन ॥ सुपर्णपक्षोपरि रोचमानः प्रेमस्मितोद्वीक्षणविभ्रमद्भ्रूः ॥ २२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ विदित्वा तव चैत्यं मे पुरैव समयोजि तत् ॥ यदर्थमात्मनियमैस्त्वयैवाहं समर्चितः ॥ २३ ॥ न वै जातु मृषैव स्यात्प्रजाध्यक्ष मदर्हणम् ॥ भवद्विधेष्वतितरां मयि संगृभितात्मनाम् ॥ २४ ॥ प्रजापतिसुतः सम्राड् मनुर्विख्यातमङ्गलः ॥ ब्रह्मावर्तं योऽधिवसञ्छास्ति सप्तार्णवां महीम् ॥ २५ ॥ स चेह विप्र राजर्षिर्महिष्यः शतरूपया ॥ आयास्यति दिदृक्षुस्त्वां परश्वो धर्मकोविदः ॥ २६ ॥ आत्मजामसितापाङ्गीं वयःशीलगुणान्विताम् ॥ मृगयन्तीं पतिं दास्यत्यनुरूपाय ते प्रभो ॥ २७ ॥ समाहितं ते हृदयं यत्रेमान्परिवत्सरान् ॥ सा त्वां ब्रह्मन्नृपवधूः काममाशु भजिष्यति ॥ २८ ॥

मिथ्या नहीं होय हैं; और मेरेमें आत्मा समर्पण करनेहारे तुमसरीकेनमें तो अत्यंत हम वास करै है ॥ २४ ॥ प्रजापति सुत राजा मनु विख्यात मंगलीक है सो ब्रह्मावर्त विठुरमें वसे है, जो सप्त समुद्रतक सब पृथिवीको पालन करैहै ॥ २५ ॥ हे विप्र ! सो धर्मात्मा राजर्षि शतरूपा राणीसमेत परसो तुह्मे देखनेको यहां आवैगो ॥ २६ ॥ हे प्रभो ! सुंदर कटाक्षवारी वय शील गुणवारी पति चाहवारी उस कन्याके तुम अनुरूप हो, सो अपनी बेटीको तुह्मे देजायगो॥२७॥हे ब्रह्मन्!तुमने इतने वर्षोंसे जिस स्त्रीमें मन लगाथा,वह राजकन्या तुह्मारे कामको शीघ्र पूर्ण करेगी॥२८॥

हो परंतु वे काम नरकमेंभी प्राप्त होंय है ॥ १४ ॥ मुझे अपने समान शीलवारी स्त्रीके व्याहकी चाहना है स्त्रीसें त्रिवर्ग सिद्ध होय है, सब कर्मपूरक कल्पवृक्षरूप आपके चरणके शरण मैं आयोहूं मेरो अंतःकरण अच्छो नहीं है कि काम सुख आपसे चाह्यो ॥ १५ ॥ हे अधीश ! प्रजापतिरूप वचनरूप डोरसे कामपीडित बंधो भयो ये लोक है, हे शुक्र ! हमभी निश्चय करकै या लोकमें प्राप्त कालरूप तुह्मारे अर्थ बलि देवैं हैं ॥१६॥ लोक लोकके अनुगत पशूनको त्याग परस्पर तुह्मारे गुणवाद मादक अमृतपानसे, लोकधर्म त्यागे वे आपके चरणरूप छत्रके आश्रित होय हैं ॥ १७ ॥ ये कालचक्र तुह्मारे भक्तनकी आयु तो नहीं काटै है और इन सब जगतकी आयु काट कालचक्र दौडै है, ब्रह्मरूप अक्षमें तो वो घूमैहै

तथा स चाहं परिवोढुकामः समानशीलां गृहमेधधेनुम् ॥ उपेयिवान्मूलमशेषमूलं दुराशयः कामदुघाङ्घ्रिपस्य ॥१५॥ प्रजापतेस्ते वचसाऽधीश तन्त्या लोकः किलाऽयं कामहतोऽनुबद्धः ॥ अहं च लोकानुगतो वहामि बलिं च शुक्राऽनिमिषाय तुभ्यम् ॥ १६ ॥ लोकांश्च लोकानुगतान्पशूंश्च हित्वा श्रितास्ते चरणातपत्रम् ॥ परस्परं त्वद्गुणवादसीधुपीयूषनिर्यापितदेहधर्माः ॥ १७ ॥ न तेजराक्षभ्रमिरायुरेषां त्रयोदशारं त्रिशतं षष्टिपर्व ॥ षण्नेम्यनन्तच्छदि यत्रिणाभि करालस्रोतो जगदाच्छिद्य धावत् ॥ १८ ॥ एकः स्वयं सञ्जगतः सिसृक्षया द्वितीययात्मन्नधियोगमायया ॥ सृजस्यदः पासि पुनर्ग्रसिष्यसे यथोर्णनाभिर्भगवान्स्वशक्तिभिः ॥ १९ ॥ नैतद्बताऽधीश पदं तवेप्सितं यन्मायया नस्तनुषे भूतसूक्ष्मम् ॥ अनुग्रहायाऽस्त्वपि यर्हि मायया लसत्तुलस्या तनुवा विलक्षितः ॥ २० ॥

तेरह मास चक्रके आरा हैं, तीन सो साठ दिन वाके पूर्व हैं, छै ऋतु वाकी नेमी हैं, पत्र वाके अनंत हैं, शीत उष्ण वर्षा तीन नाभी हैं, कठोर वाको वेग है, ये सात विशेषण कालचक्रके हैं ॥ १८ ॥ एकही आप जगत् रचवेकी इच्छाकर दूसरी अपनी योगमायाकरकै मकडीकी नाईं भगवान् अपनी शक्तियोंसे या विश्वको रचै है रक्षा करोहो फेर ग्रसोहो ॥ १९ ॥ हे अधीश ! "बत खेदे" तुमको मनोवांछित पद जिनकी माया करकै हमको भूतसूक्ष्म विस्तारो हो, जा समय तुलसी शोभित विलक्षित तनुसे हमारे अनुग्रहके अर्थ होओहो ॥ २० ॥

165

कही तब वे दश हजार वर्षतक सरस्वती नदीपर तप करतेभए ॥ ६ ॥ तब समाधियुक्त क्रियायोगसे कर्दमजी प्रपन्नवरदायक हरिको भक्तिसे प्राप्त होतेभए ॥ ७ ॥ हे क्षत्तः! तब कमलनयन भगवान् सतयुगमें प्रसन्न होय शब्दब्रह्मरूप शरीर धार कर्दमजीको रूप दिखाते भए ॥८॥ रजोगुणरहित सूर्य समान शुक्लकमलकी माला धारे चिकनी नीली अलक समूह युक्त मुखकमल उज्ज्वल वस्त्र पहिरे ईश्वरको कर्दमजी देखतेभए ॥९॥ किरीट कुंडल धारे शंख चक्र गदाधारे श्वेत उत्पल रूप खिलोना हाथमें लिये मन्द हांसी और दृष्टिसे मनको प्रसन्न करनेहारे ॥१०॥ गरुडजीके कंधेपे चरणकमल धरे, वक्षस्थलमें श्रीजी कौस्तुभ कंठमें धारण करे आकाशमें स्थित भगवानको देखकर ॥ ११ ॥ सब मनोरथ पूर्ण हो हर्षसें मस्तकसे पृथिवीमें साष्टांग दंडवत करते प्रीति युक्त वाणीसे धर्मात्मा हाथ जोड स्तुति करतेभए ॥ १२ ॥ कर्दम ऋषि बोले कि हे स्तुतियोग्य! हमारे नेत्रनको तुमारो दर्शन सब सत्वराशि सिद्धिको देतोभयो, जिनको दर्शन शतजन्मसें समाधियोगमें स्थित हो योगीलोग वांच्छा करै हैं ॥ १३ ॥ जो तुह्मारी मायासे हत बुद्धिवारे जन हैं,वे संसारसमुद्रमें नावरूप तुह्मारे चरणारविंदको कामलेश लवमात्रके लिये उपासना करै हैं, उनको तुम सब काम देओ

ततः समाधियुक्तेन क्रियायोगेन कर्दमः॥ संप्रपेदे हरिं भक्त्या प्रपन्नवरदाशुषम् ॥ ७ ॥ तावत्प्रसन्नो भगवान्पुष्कराक्षः कृते युगे॥ दर्शयामास तं क्षत्तः शाब्दं ब्रह्म दधद्वपुः ॥ ८ ॥ स तं विरजमर्काभं सितपद्मोत्पलस्रजम्॥ स्निग्धनीलालकव्रातवक्त्राब्जं विरजाम्बरम् ॥ ९॥ किरीटिनं कुण्डलिनं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ श्वेतोत्पलक्रीडनकं मनःस्पर्शस्मितेक्षणम् ॥ १० ॥ विन्यस्तचरणाम्भोजमंसदेशे गरुत्मतः ॥ दृष्ट्वा खेऽवस्थितं वक्षःश्रियं कौस्तुभकन्धरम् ॥ ११ ॥ जातहर्षोऽपतन्मूर्ध्ना क्षितौ लब्धमनोरथः ॥ गीर्भिस्त्वभ्यगृणात्प्रीतिस्वभावात्मा कृताञ्जलिः ॥ १२ ॥ ऋषिरुवाच ॥ जुष्टं बताऽद्याऽखिलसत्वराशेः सांसिद्ध्यमक्ष्णोस्तव दर्शनान्नः ॥ यद्दर्शनं जन्मभिरीड्य सद्भिराशासते योगिनो रूढयोगाः ॥ १३ ॥ ये मायया ते हतमेधसस्त्वत्पादारविन्दं भवसिन्धुपोतम् ॥ उपासते कामलवाय तेषां रासीश कामान्निरयेऽपि ये स्युः ॥ १४ ॥

---

१ एक समय देवहूतीकी तपस्यासै भगवानने प्रसन्न हो कहाथा मैं तेरे गर्भमें जन्म लूंगा तब नारदजीनै यही बात कर्दमजीको सुनाईथी कर्दमजीने कहा तौ हम उसीसै व्याह करैंगे जा भगवत्त हमारे पुत्र हौंगे इसी कारण तप कियाथा।

तप विद्यासे युक्त योग सुंदरसमाधिसें हृषीकेश ब्रह्मा अपने सम प्रजा और ऋषिनको रचते भए ॥ ५३ ॥ तिन एकएकको ब्रह्माजी देहको अंश देते भए समाधियोग सिद्धि तप विद्या विरक्ति सब देतेभए, (१) ॥ ५४ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां तृतीयस्कंधे सर्गवर्णनं नाम विंशोध्यायः ॥ २० ॥ विदुरजी बोले कि हे भगवन्! स्यायंभुव मनुको परमश्रेष्ठ वंश कहो जहां मैथुनसै प्रजा बढी ॥ १ ॥ प्रियव्रत उत्तानपाद स्वायंभुवके

तपसा विद्यया युक्तो योगेन सुसमाधिना ॥ ऋषीनृषिर्हृषीकेशः ससर्जाभिमताः प्रजाः ॥ ५३ ॥ तेभ्यश्चैकैकशः स्वस्य देहस्यांशमदादजः ॥ यद्यत्ससाधियोगर्द्धितपोविद्याविरक्तिमत् ॥ ५४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे तृतीयस्कन्धे सर्गवर्णनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥ २० ॥ विदुर उवाच ॥ स्वायम्भुवस्य च मनोर्वंशः परमसंमतः ॥ कथ्यतां भगवन्यत्र मैथुनेनैधिरे प्रजाः ॥ १ ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौ सुतौ स्वायंभुवस्य वै ॥ यथा धर्मं जुगुपतुः सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥ २ ॥ तस्य वै दुहिता ब्रह्मन्देवहूतीति विश्रुता ॥ पत्नी प्रजापतेरुक्ता कर्दमस्य त्वयाऽनघ ॥ ३ ॥ तस्यां स वै महायोगी युक्तायां योगलक्षणैः ॥ ससर्ज कतिधा वीर्यं तन्मे शुश्रूषवे वद ॥ ४ ॥ रुचिर्यो भगवान्ब्रह्मन् दक्षो वा ब्रह्मणः सुतः ॥ यथा ससर्ज भूतानि लब्ध्वा भार्यां च मानवीम् ॥ ५ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ प्रजाः सृजेति भगवान्कर्दमो ब्रह्मणोदितः ॥ सरस्वत्यां तपस्तेपे सहस्राणां समा दश ॥ ६ ॥

सुत जैसे धर्मकी और सप्तद्वीपवती महीकी रक्षा करते भए सो कहो ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन्! हे पापरहित! तिनकी विख्यात देवहूती सुता कर्दम प्रजापतिकी पत्नी भई सो कहो ॥ ३ ॥ सो महायोगी योगलक्षणयुक्त तिसमें कितनो वीर्य रचतेभए सो सुनवेवारे मोसे कहो ॥ ४ ॥ हे ब्रह्मन्! रुचि भगवान् ब्रह्मा सुत दक्ष ये मनुकी भार्याकों प्राप्त होय सब जीवमात्र रचतेभए सो कहो ॥ ५ ॥ मैत्रेयजी बोले कि प्रजा रचों ऐसे भगवान् कर्दमको ब्रह्मानें

---

१ जाकी खबर पडी कि यामें कोन बौले है कोनको नाम है॥ कवित्त ॥ " केश शीस मुहु भाल भ्रूहणो पलक नैन गोलक कपोल गंड नासा मुख श्रवण है। अधर दशन होठ रशन ममुडा तालू चुंबुका कण्टिका कंठ कंधर कर मौनहै ॥ कख कटि भुजा कर नाभि कुच पेट पीठ अंगुली हेथली नख जंघास्थल जौन है। नितंब चरण रोम एते नाम अंगनकै तामें तो विचार नर तेरो नाम कौन है ॥ १ ॥

167

ऊर्जस्वन्तं मन्यमान आत्मानं भगवानजः ॥ साध्यान्गणान्पितृगणान्परोऽक्षेणाऽसृजत्प्रभुः ॥ ४३ ॥ तमात्मसर्गं
तत्कायं पितरः प्रतिपेदिरे ॥ साध्येभ्यश्च पितृभ्यश्च कवयो यद्वितन्वते ॥ ४४ ॥ सिद्धान्विद्याधरांश्चैव तिरोधाने-
न सोऽसृजत् ॥ तेभ्योऽददात्तमात्मानमन्तर्धानाख्यमद्भुतम् ॥ ४५ ॥ स किन्नरान्किंपुरुषान्प्रत्यात्म्येनासृजत्प्रभुः ॥
मानयन्नात्मनाऽऽत्मानमात्माभासं विलोकयन् ॥ ४६ ॥ ते तु तज्जगृहू रूपं त्यक्तं यत्परमेष्ठिना ॥ मिथुनीभूय गाय-
न्तस्तमेवोषसि कर्मभिः ॥ ४७ ॥ देहेन वै भोगवता शयानो बहुचिन्तया ॥ सर्गेऽनुपचिते क्रोधादुत्ससर्ज ह तद्वपुः
॥४८॥ येऽहीयन्ताऽमुतः केशा अहयस्तेऽङ्ग जज्ञिरे॥ सर्पाः प्रसर्पतः क्रूरा नागा भोगोरुकन्धराः ॥४९॥ स आत्मानं
मन्यमानः कृतकृत्यमिवात्मभूः ॥ तदा मनून्ससर्जान्ते मनसा लोकभावनान् ॥ ५० ॥ तेभ्यः सोऽत्यसृजत्स्वीयं पुरं
पुरुषमात्मवान् ॥ तान्दृष्ट्वा ये पुरा सृष्टाः प्रशशंसुः प्रजापतिम् ॥ ५१ ॥ अहो एतज्जगत्स्रष्टः सुकृतं बत ते कृतम्
प्रतिष्ठिता क्रिया यस्मिन्साकमन्नमदामहे ॥ ५२ ॥

भगवान् ब्रह्मा बढीभई आत्माको मान परोक्ष भावसे साध्यगण पितृगण रचतेभए ॥ ४३ ॥ वे पितृगण ब्रह्माजीके रचतेहुए उस शरीरको प्राप्त होते भये जिस शरीरके निमित्त कर्ममें चतुर लोग साध्य और पितरोंको श्राद्ध करकै हव्यकव्य देतेहैं ॥ ४४ ॥ ब्रह्माजी सिद्ध विद्याधरनकों तिरोधान करकै रचतेभए, अंतर्धान नामक अद्भुत आत्मा तिनकों देतेभए ॥ ४५ ॥ अपनें प्रतिबिंबसें ब्रह्माजी किन्नर किंपुरुषनको रचतेभए, आत्मासे आत्माकों मान आत्माको प्रकाश देखतेभए ॥ ४६ ॥जो ब्रह्मानें त्यागो वो रूप वे ग्रहण करतेभए, वाहीकों मिथुन अर्थात् जोडा होय प्रातःसमय सब गावै है ॥ ४७ ॥ हे विदुर ! जब ऐसा करनेसेभी सृष्टि नहीं बढी तब चिन्तासे व्याकुल हो हाथ पसार सोगये और क्रोधसे वह शरीरभी छोड दिया ॥ ४८ ॥ जो या देहसे च्युत वार भए, वे सर्प अहि नामक भए, यह हाथ पांवको संकोच करकै चलनेवाले भये और मोटी गर्दन बडे शरीरवाले नाग हुए ॥ ४९ ॥ सो ब्रह्माजी जब आपनपेकों कृतकृत्यकी नांई मानतेभए, तब अंतमें लोकपालक मनूनको मनसे रचतेभए ॥ ५० ॥ उन्हें ब्रह्माजीने अपना पुरुषाकार शरीर दिया मनुकी सृष्टिको देख प्रथम उत्पन्न हुओने ब्रह्माजीकी बडी प्रशंसा की ॥ ५१ ॥ अहो ये जगत्स्रष्टानें बडो सुकृत कीनों है, जामें स्थित होकर कर्म करते भए हम सब अन्नकों पावैंगे ॥ ५२ ॥

कौन हो किसकी हो हे रम्भोरु ! हे भामिनि ! यहां क्यों आई तुम्हारो कहा प्रयोजन है रूपधनके व्यवहारसे हमसरीके दुर्भागीनको तुम बाधा करोहो
॥ ३४ ॥ हे अबले ! भद्र होय जो ये तुम्हारो दर्शन है, सो गेंद खेलनकी क्रीडाकरकै हम असमर्थनके मनको मथाहो ॥ ३५ ॥ हे शालिनि !
एक जगैं तुम्हारो पादपद्म नहीं ठैरै है, वारंवार हाथसें कंदुकको फैंकोहो, बडे स्तनभारसे भीत पेट विषादको प्राप्त होयरह्यो है शांतकी नाई तुम
चलतोहो, और केश तुम्हारे बहुत सुन्दर हैं ॥ ३६ ॥ या प्रकार सायंतनकी संध्या स्त्रीरूपधारिणी प्रलोभ करानेंवारीको स्त्री मान वे मूर्ख असुर

कासि कस्यासि रम्भोरु को वाऽर्थस्तेऽत्र भामिनि ॥ रूपद्रविणपण्येन दुर्भगान्नो विबाधसे ॥ ३४ ॥ या वा काचित्वमबले
दिष्ट्या संदर्शनं तव ॥ उत्सुनोषीक्षमाणानां कन्दुकक्रीडया मनः ॥ ३५ ॥ नैकत्र ते जयति शालिनि
पादपद्मं घ्नन्त्या मुहुः करतलेन पततपतङ्गम् ॥ मध्यं विषीदति बृहत्स्तनभारभीतं शान्तेव दृष्टिरमलासुशिखासमूहः
॥ ३६॥ इति सायंतनीं संध्यामसुराः प्रमदायतीम् ॥ प्रलोभयन्तीं जगृहु मंत्वा मूढधियः स्त्रियम् ॥३७॥ प्रहस्य भावगम्भीरं
जिघ्रन्त्यात्मानमात्मना ॥ कान्त्या ससर्ज भगवान् गन्धर्वाप्सरसां गणान् ॥ ३८ ॥ विससर्ज तनुं तां वै ज्योत्स्नां
कान्तिमतीं प्रियाम् ॥ त एव चाददुः प्रीत्या विश्वावसुपुरोगमाः ॥ ३९ ॥ सृष्ट्वा भूतपिशाचांश्च भगवानात्मतन्द्रितः
॥ दिग्वाससो मुक्तकेशान्वीक्ष्य चामीलयद्दृशौ ॥ ४० ॥ जगृहुस्तद्विसृष्टां तां जृम्भणाख्यां तनुं प्रभोः ॥
निद्रामिन्द्रियविक्लेदो यया भूतेषु दृश्यते ॥ ४१ ॥ येनोच्छिष्टान्धर्षयन्ति तमुन्मादं प्रचक्षते ॥ उन्मादेनैव जीवानां
महान्क्लेशः प्रजायते ॥ ४२ ॥

ग्रहण करतेभए ॥ ३७ ॥ फिर ब्रह्माजी गंभीर भावसे हसकै अपनें आत्मासे आत्माको सूंघती हुई कान्तिसे गंधर्व अप्सरागणनको रचतेभए ॥ ३८ ॥
तिस ज्योत्स्ना कांतिमयी प्रियातनुको जब त्यागतेभए, तब विश्वावसु गंधर्व मुख्य प्रीतिसें वाकों ग्रहण करतेभए ॥ ३९ ॥ ब्रह्माजी अपनें आलस्यसे
भूत पिशाचनको रचकर नंगेवार खोले ठाडे देख नेत्र मूंद लेतेभये॥४०॥वे प्रभुके उस छोडे हुए जूंभारूप शरीरको ग्रहण करतेभये, वोही निद्रा
सबको वश करवेवारी प्राणियोंमें दीखती है॥४१॥जाकरकै उच्छिष्टकों धर्षण करैहै, उसे उन्माद कहैं हैं उन्मादसे सब जीवनको महाक्लेश होयहै॥४२॥

169

करनेहारे सबदुःखहारक श्रीहरिकी शरण जायकर ब्रह्माजी बोले ॥ २५ ॥ हे परमात्मन् ! हे प्रभो ! मेरी रक्षा करो आपकी आज्ञासे ये मैने प्रजा रची सो पापी प्रजा मोक्षे मैथुन करवेकों आवै है " यभ मैथुने " धातु व्याकरणमें हैं ॥२६॥ निश्चय है कि तुमही एक लोकनके क्लेशनाशक हो जो तुम्हारे चरणको आश्रय न लेंहैं तिनकों तुमही एक क्लेश देवेवारे हो ॥ २७ ॥ सो परमेश्वर ब्रह्माकों ये कृपणभाव जान एकांतमें ब्रह्मविद्यासे दर्शन दाता भगवान् बोले कि या घोर शरीरको त्यागो, ये सुन विरंचि त्यागतेभए ॥२८॥ "सा अहोरात्रयोः संधिरभवदिति श्रुतेः " जिसके नूपुर चरणमें छमके, मदसे विह्वल नेत्र कांचीकलापसे शोभित वस्त्रसें कटिपश्चाद्भागको ढकै ॥ २९ ॥ जिसके स्तनयुगल परस्पर उपमर्द हौनेके कारण ऊंचे और

पाहि मां परमात्मंस्ते प्रेषणेनाऽसृजं प्रजाः ॥ ता इमा यभितुं पापा उपक्रामन्ति मां प्रभो ॥ २६ ॥ त्वमेकः किल लोकानां क्लिष्टानां क्लेशनाशनः ॥ त्वमेकः क्लेशदस्तेषामनासन्नपदां तव ॥ २७ ॥ सोऽवधार्यास्य कार्पण्यं विविक्ताध्यात्मदर्शनः ॥ विमुञ्चात्मतनुं घोरामित्युक्तो विमुमोच ह ॥ २८ ॥ तां क्वणच्चरणाम्भोजां मदविह्वललोचनाम् ॥ काञ्चीकलापविलसद्दुकूलच्छन्नरोधसम् ॥ २९ ॥ अन्योऽन्याश्लेषयोत्तुङ्गनिरन्तरपयोधराम् ॥ सुनासां सुद्विजां स्निग्धहासलीलाऽवलोकनाम् ॥ ३० ॥ गूहन्तीं व्रीडयात्मानं नीलालकवरूथिनीम् ॥ उपलभ्यासुरा धर्म सर्वे संमुमुहुः स्त्रियम् ॥ ३१ ॥ अहो धैर्यमहो रूपमहो अस्या नवं वयः ॥ मध्ये कामयमानानामकामेव विसर्पति ॥ ३२ ॥ वितर्कयन्तो बहुधा तां संध्यां प्र[illegible]ाकृतिम् ॥ अभिसंभाव्य विश्रम्भात्पर्यपृच्छन्कुमेधसः ॥ ३३ ॥

अंतर रहित हैं और सुन्दर ना[illegible] बनींहूई, और सुन्दर दांतोंकी पांति और प्यारी हांसी और लीलासै देखती ॥३०॥ लाजके मारे कपडेके परदेसे अपनें शरीरको ढकती और [illegible]रे कारे केशोंकी सघनतासे दिपती ऐसी स्त्रीको प्राप्त होके सब दैत्य मोहको प्राप्त होतेभये ॥ ३१ ॥ और बोले अहो धैर्य अहोरूप, अहो [illegible]ो नवीन वय, चाहवारोंमें अचाहीसीं डोलैहै ॥ ३२ ॥ स्त्रीकी आकृतिं वा संध्याको बहुत वितर्कै कर विश्वाससे सत्कार कर वे कुबुद्धिवा[illegible]ः पूछतेभए ॥ ३३ ॥

सोऽनुविष्टो भगवता यः शेते सलिलाशये ॥ लोकसंस्थां यथापूर्वं निर्ममे संस्थया स्वया ॥ १७ ॥ ससर्ज च्छायया-ऽविद्यां पञ्चपर्वाणमग्रतः ॥ तामिस्रमन्धतामिस्रं तमो मोहो महातमः ॥ १८ ॥ विससर्जात्मनः कायं नाभिनन्दंस्तमोमयम् ॥ जगृहुर्यक्षरक्षांसि रात्रि क्षुत्तृट्समुद्भवाम् ॥ १९ ॥ क्षुत्तृड्भ्यामुपसृष्टास्ते तं जग्घुमभिदुद्रुवुः ॥ मा रक्षतैनं जक्षध्वमित्यूचुः क्षुत्तृडर्दिताः ॥ २० ॥ देवस्तानाह संविग्नो मा मां जक्षत रक्षत ॥ अहो मे यक्षरक्षांसि प्रजा यूयं बभूविथ ॥ २१ ॥ देवताः प्रभया या या दीव्यन्प्रमुखतोऽसृजत् ॥ ते अहार्षुर्देवयन्तो विसृष्टां तां प्रभामहः ॥ २२ ॥ देवोऽदेवाञ्जघनतः सृजति स्मातिलोलुपान् ॥ त एनं लोलुपतया मैथुनायाभिपेदिरे ॥ २३ ॥ ततो हसन्स भगवानसुरैर्निरपत्रपैः ॥ अन्वीयमानस्तरसा क्रुद्धो भीतः पराऽपतत् ॥ २४ ॥ स उपव्रज्य वरदं प्रपन्नार्तिहरं हरिम् ॥ अनुग्रहाय भक्तानामनुरूपात्मदर्शनम् ॥ २५ ॥

जो जलरूप हृदयमें सोतेहैं सो भगवानके आसरेसें सब लोककी रचना जैसी पूर्वमें ही तैसी नाम रूपके विभागसे निर्माण करते भए ॥ १७ ॥ सबसै प्रथम पांच पर्ववाली अविद्या छायासें रचतेभए, तामिस्र अंधतामिस्र तम मोह महातम ये पांच पर्व हैं ॥ १८ ॥ जब तमोमय सृष्टिसै अप्रसन्न हो ब्रह्माजीने अपने शरीरका त्यागन किया तौ उससै रात्रि प्रादुर्भूत हुई जिस्सै क्षुधा पिपासा उत्पन्न होती है उसै यक्षराक्षस ग्रहण करतेभए ॥ ॥ १९ ॥ वे रचेभए भूखेप्यासे ब्रह्माकूं खानेको दौडे क्षुधासें पीडित कोई बोले इसकी मत रक्षा करो कोई बोले याको खायजाओ “ जक्ष भक्ष हसनयोरिति धातुरस्ति ” ॥ २० ॥ उद्विग्न ब्रह्माजी तिनसें बोलै मोकों मतखाओ, मेरी रक्षा करो, अहो यक्ष राक्षस ! तुम सब मेरी प्रजा हो जिन्होंने रक्षा मतकरो यह कहा वे राक्षस और जिन्होने खालो कहा वे यक्ष हुए ॥ २१ ॥ प्रभासै कान्तिमान जिन जिन देवताओंको ब्रह्माजीनै प्रमुखतासै उत्पन्न किया वे ब्रह्माजीके त्यागे प्रभा और दिवसको ग्रहण करतेभये ॥२२ ॥ “स जघनादसुरानसृजतेति श्रुतेः” ॥ ब्रह्माजी जांघसे असुरनकों रचतेभए, वेही स्त्रीमें लंपट होय ब्रह्मासे मैथुन करवेको दौडे ॥२३॥ निर्लज्ज असुरनकों देख भगवान् ब्रह्माजी हंसकर शीघ्र अपने पीछै दौडे आते देख क्रोधकर डरकर भाग जातेभए ॥२४॥वरदायक शरणागतपीडाहारक भक्तनपर अनुग्रहके अर्थ भक्तनकी इच्छानुसार स्वरूप धारण

अपनी स्त्रियांके सहित वे सब मरीचिआदि ऋषि स्वतंत्र होके इस जगतको रचतेभये, अथवा सब इकट्ठे होय या विश्वकूं रचते भए ॥ ११ ॥ मैत्रेयजी बोले कि ब्रह्मानें किसकर्मको आरम्भ किया इस प्रश्नका यक्षआदिकोंको रचतेभये इस उत्तरको कहनेके लिये पहिले कही हुई सृष्टिको स्मरण करवाते हैं, और मनु आदिकोंको प्रश्नका उत्तर अगिले अध्यायमें कहेंगे,किसीको न समझपडे ऐसे जीवोंके अदृष्ट और प्रकृतिके अधिष्ठाता अर्थात् महापुरुष और काल इन हेतुओंकरके निर्विकार भगवत्से क्षोभको प्राप्त रजः सत्व तम इन तीनों गुणसे महत्तत्व उत्पन्न होताभया सोही मंत्रमें कहाहै कि “ विष्णोस्तु त्रीणि रूपाणि पुरुषाख्यान्यथो विदुः । प्रथमं महतः सृष्टं द्वितीयं त्वण्डसंस्थितं ॥ तृतीयं सर्वभूतस्थं तानि ज्ञात्वा

सद्वितीयाः किमसृजन्स्वतन्त्रा उत कर्मसु ॥ आहोस्वित्संहताः सर्व इदं स्म समकल्पयन् ॥ ११ ॥ मैत्रेय उवाच ॥
दैवेन दुर्वितर्क्येण परेणाऽनिमिषेण च ॥ जातक्षोभाद्भगवतो महानासीद्गुणत्रयात् ॥ १२ ॥ रजःप्रधानान्महतस्त्रिलिङ्गो
दैवचोदितात् ॥ जातः ससर्ज भूतादिर्वियदादीनि पञ्चशः ॥१३॥ तानि चैकैकशः स्रष्टुमसमर्थानि भौतिकम् ॥ संहत्य
वयोगेन हैममण्डमवासृजन्॥ १४ ॥ सोऽशयिष्टाब्धिसलिले आण्डकोशो निरात्मकः ॥ साग्रं वै वर्षसाहस्रमन्ववा-
त्तमीश्वरः ॥ १५ ॥ तस्य नाभेरभूत्पद्मं सहस्रार्कोरुदीधिति ॥ सर्वजीवनिकायौको यत्र स्वयमभूत्स्वराट् ॥ १६ ॥

विमुच्यते ॥ ” अर्थ–विष्णुके तीन रूप एक महत्तत्त्वका उत्पादक, एक अंडकोशरूप, एक सब प्राणियोंमें रहनेवाला, इनको जान मुक्त होता है ॥ ॥ १२ ॥ रजोगुणप्रधान दैवप्रेरित महत्तत्त्वसे सब भूतोंका आदि त्रिगुण अहंकार भयो, वाते पांच मात्रा और पांच महाभूत,और पांच ज्ञानेंद्रिय, और पांच कर्मेन्द्रिय और पांच पांच तिन इन्द्रियोंके देवता ये उत्पन्न हुये ॥ १३ ॥ वे सब तत्व एक एक अलग अलग होके जब रचनेको समर्थ न भए तब दैवयोगसें सब मिलकर सुवर्णमय अंड रचते भए ॥ १४ ॥ सो आत्मासे रहित अंडकोश समुद्रके जलमें सहस्र वर्षतक सोताभयो, वामें ईश्वर वसतेभए ॥ १५ ॥ तिसकी नाभिसें सब जीवके समूहको धार सहस्रसूर्यके सम कांतिवारो पद्म भयो जासें स्वयंभू ब्रह्मा होतोभयो॥१६॥

172

विदुर महाभागवत श्रीकृष्णजीके एकांती सुहृद श्रीकृष्णसे पुत्रसहित वैर करते धृतराष्ट्रको त्यागतेभए ॥ २ ॥ यह द्वैपायनजीसे महिमामें न्यून नहीं थे क्यों कि तिनके देहसे उत्पन्न हे सब प्रकारसें श्रीकृष्णमें आसक्त हैं अनुवृत्तिसेंभी तत्पर हैं ॥ ३ ॥ तीर्थोंको सेवन करनेंसे रजोगुण जिनका नष्टहुवा ऐसे विदुर हरिद्वारमें आके तत्त्वके अतिशय जान्नेवाले मैत्रेयजीसे क्या पूछतभये ॥४॥ तिनके संवादतें हे सूत! निर्मल कथा प्रवृत्त भई श्रीहरिके पादकमलाश्रय गंगाजल सब पापनाशक है, तैसे भगवत्कथा सब पापनाशिनी है ॥ ५ ॥ सो हमसे कीर्तन करो, तुह्मारो मंगल होय कीर्तन योग्य उदारकर्मवारे हरिकी लीला अमृत पीते पीते कौन रसज्ञ तृप्त होय है ॥ ६ ॥ नैमिषारण्यवासी ऋषियोंनें ऐसे उग्रश्रवासे पूछी तब भगवानमें अर्पितआत्मा सूत तिन कथानको कहितेभए सो सुनो ॥ ७ ॥ सूतजी बोले कि श्रीवाराहरूपधारी हरिनें अपनी मायासे रसातलसे पृथिवीको उद्धार कर हिरण्याक्षको अवज्ञासे मारकर लीला करी ये सुन कर हर्षको प्राप्त हो विदुरजी मुनिसे पूछते भये॥८॥विदुरजी बोले कि प्रजापतियोंके स्वामी ब्रह्मा प्रजाके रचनाके निमित्त प्रजापतियोंको उत्पन्न करके किस कर्मकों आरम्भ करतेभये, सो हे ब्रह्मन्! भगवत्के मार्गके जाननेवाले आप इस वृत्तान्तको कहो ॥९॥ जो मरीचि आदि विप्र हैं, जो स्वायंभुव मनु है सब, श्रीब्रह्माकी आज्ञासे कैसें या विश्वकों उत्पन्न करतेभए ॥१०॥

क्षत्ता महाभागवतः कृष्णस्यैकान्तिकः सुहृत् ॥ यस्तत्याजाग्रजं कृष्णे सापत्यमघवानिति ॥ २ ॥ द्वैपायनादनवरो महित्वे तस्य देहजः ॥ सर्वात्मना श्रितः कृष्णं तत्परांश्चाप्यनुव्रतः ॥ ३ ॥ किमन्वपृच्छन्मैत्रेयं विरजास्तीर्थसेवया ॥ उपगम्य कुशावर्त आसीनं तत्त्ववित्तमम् ॥४॥ तयोः संवदतोः सूत प्रवृत्ता ह्यमलाः कथाः॥ आपो गाङ्गा इवाघघ्नीर्हरेः पादाम्बुजाश्रयाः ॥५ ॥ ता नः कीर्तय भद्रं ते कीर्तन्योदारकर्मणः ॥ रसज्ञः को नु तृप्येत हरिलीलामृतं पिबन् ॥ ६ ॥ एवमुग्रश्रवाः पृष्ट ऋषिभिर्नैमिशायनैः ॥ भगवत्यर्पिताध्यात्मस्तानाह श्रूयतामिति ॥ ७ ॥ सूत उवाच ॥ हरेर्धृतक्रोडतनोः स्वमायया निशम्य गोरुद्धरणं रसातलात् ॥ लीलां हिरण्याक्षमवज्ञया हतं सञ्जातहर्षो मुनिमाह भारतः ॥८॥ विदुर उवाच ॥ प्रजापतिपतिः सृष्ट्वा प्रजासर्गे प्रजापतीन् ॥ किमारभत मे ब्रह्मंस्तद् ब्रूह्यऽव्यक्तमार्गवित् ॥९॥ ये मरीच्यादयो विप्रा यस्तु स्वायम्भुवो मनुः ॥ ते वै ब्रह्मण आदेशात्कथमेतदभावयन् ॥ १० ॥

173

और पवित्रयशस्वी विख्यातयशी ब्राह्मणोंकी कथा सुननेसे आनंद होय है, सो श्रीकांतकी कथा सुन पवित्र होय यामें कहा आश्चर्य है ॥ ३४ ॥ जिन श्रीभगवानने चरणकमलको ध्यान करनेहारे मगरग्रस्त गजेंद्रको हथनीनके पुकारते कष्टसे शीघ्र छुडाया (१) ॥ ३५ ॥ अन्य शरणागतकोमल मनुष्योंकरकै सुखाराध्य श्रीहरिको कृतज्ञ को न सेवन करैगो, जो भगवान् दुष्ट जनोंसे सदा दुराराध्य हैं ॥ ३६ ॥ जो कोई हिरण्याक्षको वध महाअद्भुत श्रीवाराहजीकी लीलाको सुनैहैं गावै हैं अनुमोदन करैहै वो हे ब्राह्मण हो! ब्रह्मवधसेभी विमुक्त होजायहैं॥३७॥ हे महापुण्य! अत्यंत पवित्र

अन्येषां पुण्यश्लोकानामुद्दामयशसां सताम् ॥ उपश्रुत्य भवेन्मोदः श्रीवत्साङ्कस्य किं पुनः ॥ ३४ ॥ यो गजेन्द्रं झषग्रस्तं ध्यायन्तं चरणाम्बुजम् ॥ क्रोशन्तीनां करेणूनां कृच्छ्रतोऽमोचयद् द्रुतम् ॥ ३५ ॥ तं सुखाराध्यमृजुभिरनन्यशरणैर्नृभिः ॥ कृतज्ञः को न सेवेत दुराराध्यमसाधुभिः ॥ ३६ ॥ यो वै हिरण्याक्षवधे महाऽद्भुतं विक्रीडितं कारणसूकरात्मनः ॥ शृणोति गायत्यनुमोदतेऽञ्जसा विमुच्यते ब्रह्मवधादपि द्विजाः ॥ ३७ ॥ एतन्महापुण्यमलं पवित्रं धन्यं यशस्यं पदमायुराशिषाम् ॥ प्राणेन्द्रियाणां युधि शौर्यवर्धनं नारायणोन्ते गतिरङ्ग शृण्वताम् ॥ ३८ ॥ इति श्रीभा० तृती० हिरण्याक्षवधवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥ शौनक उवाच ॥ महीं प्रतिष्ठामध्यस्य सौते स्वायम्भुवो मनुः ॥ कान्यऽन्वतिष्ठद्द्वाराणि मार्गायावरजन्मनाम् ॥ १ ॥

ध[illegible]ा वैकुंठदाता आयु आशीसदायक प्राण इंद्रियोंको युद्धमें शूरता बडानेंवारो है, हे राजन्! याके सुनवेवारेकी अंतमें श्रीनारायणमें गति होयहै ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे तृतीयस्कंधे हिरण्याक्षवधवर्णनं नाम एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९॥ शौनकजी बोले कि हे सूतपुत्र! पृथिवीको स्थितकर स्वायंभुव मनु पीछे जन्मोंके मार्गके अर्थ कौन कौन द्वारमें स्थित भए सो कहो ॥ १ ॥

---

(१) जिनको या पदमें वर्णन है " राग देस ताला तिताला ।। धाए गोविंद गजेंद्र उबारो ॥ टेर ॥ फरर फरर फरात पीत पट चरन गवनकियो कुंजर तारो ॥ १ ॥ खैंचत याह ग्रह अपनेकूं कुदिन जान हरिनाम उचारो ॥ २ ॥ श्रवन नासिका डूबन लागी कमल नयन देखत ललकारो ॥ ३ ॥ काट्यो फंद चक्रधारासूं अघमोचन कियो कुंजर तारो ॥ ४ ॥ अग्रदास पंकजपद परसत इंद्रदमन वैकुंठ पधारो ॥ ५ ॥

पृथिवीमें सोये प्रगट तेजस्वी कराल दंष्ट्रासे होठ दाबे पडे भए हिरण्याक्षको वध देख ब्रह्मादिक आय प्रशंसा कर बोले या समान मृत्यु कौनकों प्राप्त
होगी ॥ २७ ॥ असत् लिंग शरीरसे मोक्षकी इच्छाकर योग समाधिसे एकांतमें योगी लोग जाको ध्यान करैं हैं, तिस दैत्याधमने उन्हि भगवतके पदसें
मरकर मुख देखते देखते शरीर त्याग किया॥२८॥ये वेही दोनों पार्षद हैं शापसें खोटी गतिकों प्राप्त भए हैं, फेर कुछ जन्मो करकै वैकुंठस्थानको
प्राप्त होवैंगे ॥ २९ ॥ देवता बोले कि सब यज्ञोंके विस्तारके कारण स्थितिके निमित्त निर्मल सत्यमूर्ति ग्रहण करवेवारे तुह्मारे अर्थ वारंवार नमस्कार

क्षितौ शयानं तमकुण्ठवर्चसं करालदंष्ट्रं परिदष्टदच्छदम् ॥ अजादयो वीक्ष्य शशंसुरागता अहो इमां को नु लभेत
संस्थितिम् ॥ २७ ॥ यं योगिनो योगसमाधिना रहो ध्यायन्ति लिङ्गादसतो मुमुक्षया ॥ तस्यैष दैत्यापसदः
पदाहतो मुखं प्रपश्यंस्तनुमुत्ससर्ज ह ॥ २८ ॥ एतौ तौ पार्षदावस्य शापाद्यातावसद्गतिम् ॥ पुनः कतिपयैः स्थानं प्रपत्स्येते
ह जन्मभिः ॥ २९ ॥ देवा ऊचुः ॥ नमो नमस्तेऽखिलयज्ञतन्तवे स्थितौ गृहीतामलसत्त्वमूर्तये ॥ दिष्ट्या
हतोऽयं जगतामरुन्तुदस्त्वत्पादभक्त्या वयमीश निर्वृताः ॥ ३० ॥ मैत्रेय उवाच ॥ एवं हिरण्याक्षमसह्यविक्रमं स
सादयित्वा हरिरादिसूकरः ॥ जगाम लोकं स्वमखण्डितोत्सवं समीडितः पुष्करविष्टरादिभिः ॥ ३१ ॥ मया यथाऽनूक्तम
वादि ते हरेः कृतावतारस्य सुमित्र चेष्टितम् ॥ यथा हिरण्याक्ष उदारविक्रमो महामृधे क्रीडनवन्निराकृतः॥३२॥
सूत उवाच ॥ इति कौषारवाख्यातामाश्रुत्य भगवत्कथाम् ॥ क्षत्तानन्दं परं लेभे महाभागवतो द्विज ॥ ३३ ॥

होय, भलो भयो सब जगतको पीडक ये मऱ्यो,हे ईश्वर ! तुह्मारे चरणकी भक्तिसे हम अत्यंत पवित्र भए ॥ ३० ॥ मैत्रेयजी बोले कि ऐसे असह्यपराक्रमी
हिरण्याक्षको श्रीआदिवाराहजी मार सदा जहां सुख युक्त श्रीवैकुंठलोकको ब्रह्मादि देवनसे स्तुत हो जातेभए ॥ ३१ ॥ हे सुमित्र ! मैंने तुमते
तैसे अवतारधारी श्रीहरीकी चेष्टा कही, जैसे उदारपराक्रमी हिरण्याक्षको महासंग्राममें खेलकीसीनांई तिरस्कार करतेभए ॥ ३२ ॥ सुतजी बोले कि
ये मैत्रेयजीकी भगवतकथाकी कही बात सुन विदुर महाभागवतोत्तम परम आनंदको प्राप्त होतेभए ॥ ३३ ॥

धूलि और अन्धकारको फैलाती हुई प्रचंड वायु चली, सब दिशानसे पाथरकी वर्षा भई, जैसे कोई फैके तैसे पाथर वर्षतेभए ॥ १८ ॥ आकाशमें
नक्षत्रसमूह नष्ट भयो, विजुरीगर्जनासहित मेघसमूह पीप केश रुधिर विष्ठा मूत्र हाड वर्षतेभए ॥ १९ ॥ हे विदुर ! नाना आयुध फैकते पर्वत दीखे,
शूल लिये वार खोल नंगी यातुधानी दीखनेलगी ॥ २० ॥ यक्ष राक्षस सिपाई घोडे रथ हाथी आततायी लोग हिंसित वाणी अति भयंकर बोले ॥ २१ ॥
प्रगटी भई आसुरी माया नाशक तीनपदी भगवान् सुदर्शनास्त्रको प्रयोग करते भए "त्रयो अस्य पादाः" इति श्रुतेः ॥ २२ ॥ तब दितिके हृदयमें

प्रववुर्वायवश्चण्डास्तमःपांसवमैरयन् ॥ दिग्भ्यो निपेतुर्ग्रावाणः क्षेपणैः प्रहिता इव ॥१८॥ द्यौर्नष्टभगणाऽभ्रौघैः सवि-
द्युत्स्तनयित्नुभिः ॥ वर्षद्भिः पूयकेशासृग्विण्मूत्रास्थीनि चासकृत् ॥ १९ ॥ गिरयः प्रत्यदृश्यन्त नानायुधमुचो-
नघ ॥ दिग्वाससो यातुधान्यः शूलिन्यो मुक्तमूर्धजाः ॥ २० ॥ बहुभिर्यक्षरक्षोभिः पत्त्यश्वरथकुञ्जरैः ॥ आततायिभि-
रुत्सृष्टा हिंस्रा वाचोऽतिवैशसाः ॥ २१ ॥ प्रादुष्कृतानां मायानामासुरीणां विनाशयन् ॥ सुदर्शनास्त्रं भगवान् प्रायु-
ङ्क्त दयितं त्रिपात् ॥ २२॥ तदा दितेः समभवत् सहसा हृदि वेपथुः ॥ स्मरन्त्या भर्तुरादेशं स्तनाच्चासृक् प्रसुस्रुवे॥२३॥
विनष्टासु स्वमायासु भूयश्चाव्रज्य केशवम् ॥ रुषोपगूहमानोऽमुं ददृशेऽवस्थितं बहिः ॥ २४॥ तं मुष्टिभिर्विनिघ्नन्तं
वज्रसारैरधोक्षजः ॥ करेण कर्णमूलेऽहन् यथा त्वाष्ट्रं मरुत्पतिः ॥ २५ ॥ स आहतो विश्वजिता ह्यवज्ञया परिभ्रम-
द्गात्र उदस्तलोचनः ॥ विशीर्णबाह्वङ्घ्रिशिरोरुहोऽपतद् यथा नगेन्द्रो लुलितो नभस्वता ॥ २६ ॥

महाकंप उठी पतिकी आज्ञाको याद करतेही उसके स्तनोंसे रुधिर वहिवेलगो ॥ २३ ॥ जब वाकी सब माया नष्ट होगई फेर केशवके समीप आय
क्रोधसे आलिंगन करतो भयो तब इनको बाहरि स्थित देखतोभयो ॥ २४ ॥ वज्र समान मुक्कानसे मारते हिरण्याक्षको भगवान् हाथसे वाके कनपटीमें
मारतेभये, जैसे इंद्र वृत्रासुरकूं मारे ॥ २५ ॥ विश्वके जीतवेवारोंने जब अवज्ञाकर वाकों मारो, तब वाको शरीर सब ओर घूमवेलगो, नेत्र निकस आए
भुजा चरण शिर कंधा टूटे जैसे कोई पवनसे उखाडोभयो वृक्ष गिरे तैसे हिरण्याक्ष गिरतोभयो ॥ २६ ॥

तब भगवान् बोले जो तू जीतनेकी इच्छा करे है तो आयुध लेकर और प्रहार कर ऐसें कहिने पर वह फिर ताडन कर अत्यंत दहाडतोभयो ॥ १० ॥ उस वा गदाकों आती देख भगवान खडेभए जैसे सर्पिणीको गरुडजी पकडे या प्रकार लीलाकर पकड लेतेभए ॥ ११ ॥ अपनो पुरुषार्थ नष्ट होनेपर महाअसुरने भगवानके देनेपरभी वह गदा ग्रहण नहीं की॥१२॥तब जरतीभई अग्नि समान तीन शिखावारे त्रिशूलको लेकर वाराहरूपी यज्ञ भगवान् पर फैंकतोभयो, जैसे कोई ब्राह्मणके ऊपर मारण प्रयोग करे तैसे ॥ १३ ॥ तासमय पराक्रमसें दैत्य महाभटको फैको त्रिशूल उत्कट कांतिमान्

आह चायुधमाधत्स्व घटस्व त्वं जिगीषसि ॥ इत्युक्तः स तदा भूयस्ताडयन्व्यनदद्भृशम् ॥ १०॥ तां स आपततीं वीक्ष्य भगवान्समवस्थितः ॥ जग्राह लीलया प्राप्तां गरुत्मानिव पन्नगीम् ॥ ११ ॥ स्वपौरुषे प्रतिहते हतमानो महासुरः ॥ नैच्छद्गदां दीयमानां हरिणा विगतप्रभः ॥ १२ ॥ जग्राह त्रिशिखं शूलं ज्वलज्ज्वलनलोलुपम् ॥ यज्ञाय धृतरूपाय विप्रायाभिचरन्यथा ॥ १३ ॥ तदोजसा दैत्यमहाभटार्पितं चकासदन्तः ख उदीर्णदीधितिम् ॥ चक्रेण चिच्छेद निशातनेमिना हरिर्यथा तार्क्ष्यपतत्रमुज्झितम् ॥ १४ ॥ वृक्णे स्वशूले बहुधाऽरिणा हरेः प्रत्येत्य विस्तीर्णमुरो विभूतिमत् ॥ प्रवृद्धरोषः स कठोरमुष्टिना नदन्प्रहत्यान्तरधीयतासुरः ॥ १५ ॥ तेनेत्थमाहतः क्षत्तर्भगवानादिसूकरः ॥ नाकम्पत मनाक् क्वापि स्रजा हत इव द्विपः ॥ १६ ॥ अथोरुधा सृजन्मायां योगमायेश्वरे हरौ ॥ यां विलोक्य प्रजास्त्रस्ता मेनिरेऽस्योपसंयमम् ॥ १७ ॥

आकाश प्रकाश करतोभयो श्रीवाराहजी अपने पैनी नेमिके चक्रसे त्रिशूल काटते भए जैसे गरुडजीके गिरेभए पंखकों इंद्रने काटाथा ॥ १४ ॥ श्रीहरिके चक्रसें अपनो त्रिशूलके खंड खंड करदिया तब विस्तृतवक्षस्थल श्रीमान् ईश्वरके सामनें आ अत्यन्त क्रोधकर कठोर मुक्कासे मार नादकर असुर अन्तर्धान होगयो ॥ १५ ॥ हे विदुर ! भगवान् आदिवाराह ऐसे मुक्काखाय मालाके मारनेसे जैसे हाथी न हटे तैसे नैकभी नहीं कंपायमान भए ॥ १६ ॥ तब वह योगमायाके ईश्वर हरिमें बहुत माया रचतोभयो, जाको देख त्रसित प्रजा विश्वको नाश मानतीभई ॥ १७ ॥

मैत्रेयजी बोले कि निष्कपट अमृततुल्य विरिंचिको वचन सुनकर भगवान हंसकर प्रेमके कटाक्षसे ग्रहण करतेभए ॥ १ ॥ तब सामनें कहींसे जिनकों भय नहीं ऐसे विचरते शत्रुकी ठोडीमें उछलके गदा मारतेभए ॥ २ ॥ तब उस दैत्यने ऐसी गदा मारी कि सोनेकी गदा भगवतके करसें छुटीभई घूमकर गिरी सो महाद्भुत होय शोभित भई ॥ ३ ॥ यद्यपि उसै अवसर मिला तथापि निरायुध भगवानपर ता समय संग्रामके धर्मकों मान विष्वक्सेनको कोप करा शस्त्र न चलाया ॥ ४ ॥ गदा छूटगई तब हाहाकार होनेलगो, तब संग्रामके धर्मको मान वाराह विभु चक्रको स्मरण करते भए ॥५॥ दितिके अधम पुत्र अपने पार्षदमें मुख्यके संग चक्र लिया संग्राममें तत्पर भगवानके पराक्रमको न जाननेहारे देवता कहने लगे कि हे प्रभु! आपका मंगल हो इस पापीको मारो ॥ ६ ॥ चक्रलिये आगे ठाडे कमलनयन श्रीवराहजीको ऐसे देख क्रोधमें भर क्रोधसे स्वांस लेत दैत्य अपने दांत पीसतोभयो ॥ ७ ॥ कराल डाढा नेत्रसे भस्म करैगो ऐसे हरिकी ओर देख उछलकर " यह मारा "ऐसा कह भगवानके ऊपर प्रहार किया ॥ ८ ॥ हे साधो ! भगवान् यज्ञवाराह लीलाकर शत्रुके देखते देखते पवन वेग समान गदाको बांए पांवसें फेंकतेभए ॥ ९ ॥

मैत्रेय उवाच ॥ अवधार्य विरिञ्चस्य निर्व्यलीकामृतं वचः ॥ प्रहस्य प्रेमगर्भेण तदपाङ्गेन सोऽग्रहीत् ॥ १ ॥ ततः सपत्नं मुखतश्चरन्तमकुतोभयम् ॥ जघानोत्पत्य गदया हनावसुरमक्षजः ॥ २ ॥ सा हता तेन गदया विहता भगवत्करात् ॥ विघूर्णिताऽपतद् रेजे तदद्भुतामिवाऽभवत् ॥ ३ ॥ स तदा लब्धतीर्थोऽपि न बबाधे निरायुधम् ॥ मानयन् स मृधे धर्मं विष्वक्सेनं प्रकोपयन् ॥ ४ ॥ गदायामपविद्धायां हाहाकारे विनिर्गते ॥ मानयामास तद्धर्मं सुनाभं चास्मरद्विभुः ॥ ५ ॥ तं व्यग्रचक्रं दितिपुत्राधमेन स्वपार्षदमुख्येन विषज्जमानम् ॥ चित्रा वाचोऽतद्विदां खेचराणां तत्र स्माऽसन् स्वस्ति तेऽमुं जहीति ॥ ६ ॥ स तं निशाम्यात्तरथाङ्गमग्रतो व्यवस्थितं पद्मपलाशलोचनम् ॥ विलोक्य चामर्षपरिप्लुतेन्द्रियो रुषा स्वदन्तच्छदमादशच्छ्वसन् ॥ ७ ॥ करालदंष्ट्रश्चक्षुर्भ्यां संचक्षाणो दहन्निव ॥ अभिप्लुत्य स्वगदया हतोऽसीत्याहनद्धरिम् ॥ ८ ॥ पदा सव्येन तां साधो भगवान् यज्ञसूकरः ॥ लीलया मिषतः शत्रोः प्राहरद्वातरंहसम् ॥ ९ ॥

स्वामी भगवान् ब्रह्माजी आदिवाराहरूपधारी श्रीमन्नारायणसे बोले ॥ २१ ॥ ब्रह्माजी बोले कि हे देव ! आपके चरणकमलके समीप प्राप्त होनेवारे देवता ब्राह्मण गौ निरपराधी जीव ॥ २२ ॥ इन सबको वृथाही यह अपराधकारी भयकारी दुष्टकर्मकारी है, हमसे इसकों वर मिलोहै हमारे समान कोई नहीं है ऐसे ढूंढतोभयो ये कंटक लोकनमें फिरैहै ॥ २३ ॥ मायावी गर्वी निरंकुश असत्तम या असुरको मत राखो हे देव ! जैसे बालक उठे भए सर्पको पुच्छादि खींच खेलै है तैसे आप इसके संग खेल मत करो ॥ २४ ॥ हे अच्युत! ये दारुण जबतक अपने अधिकारको प्राप्त होय न बढै तबतक

ब्रह्मोवाच ॥ एष ते देवदेवानामङ्घ्रिमूलमुपेयुषाम् ॥ विप्राणां सौरभेयीणां भूतानामप्यनागसाम् ॥२२॥ आगस्कृद्भयकृद्दुष्कृदस्मद्राद्धवरोऽसुरः ॥ अन्वेषन्नप्रतिरथो लोकानटति कण्टकः ॥ २३ ॥ मैनं मायाविनं दृप्तं निरङ्कुशमसत्तमम् ॥ आक्रीड बालवद्देव यथाऽऽशीविषमुत्थितम् ॥२४॥ न यावदेष वर्धेत स्वां वेलां प्राप्य दारुणः ॥ स्वां देवमायामास्थाय तावज्जह्यघमच्युत ॥ २५ ॥ एषा घोरतमा सन्ध्या लोकच्छम्बकरी प्रभो ॥ उपसर्पति सर्वात्मन् सुराणां जयमावह ॥ ॥२६॥ अधुनैषोऽभिजिन्नाम योगो मौहूर्तिको ह्यगात् ॥ शिवाय नस्त्वं सुहृदामाशु निस्तर दुस्तरम् ॥२७॥ दिष्ट्या त्वां विहितं मृत्युमयमासादितः स्वयम् ॥ विक्रम्यैनं मृधे हत्वा लोकानाऽधेहि शर्मणि ॥ २८ ॥ इति श्रीभा०तृतीय० हिरण्याक्षश्रीवराहयुद्धवर्णनं नामाऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

अपनी योगमायामें स्थित होकर या पापीको तुम मारो ॥ २५ ॥ हे सर्वात्मन् ! ये घोरतम संध्याकी वेला लोकके विनाश करवेवारी है “ ये छंबट् अव्यय विनाश अर्थमें है ” हे प्रभो ! देवनको जय करो ॥ २६ ॥ अब अभिजिन्नाम योग मुहूर्त आयो है, हमें सुहृदोंके कल्याणके अर्थ शीघ्र या दुःखसें तारो ॥ २७ ॥ आपको मंगल होय, तुम जाके मारनेवारे हो सो ये पापी आपही आयो, याको पराक्रमसे संग्राममें मार सब लोकनको सुख देओ (१) ॥ २८ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां तृतीयस्कंधे श्रीवाराहहिरण्याक्षयुद्धवर्णनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

---

१ सो या ध्रुवपदमैं है चौताल राग खंमाचका धुरपद है “ चक्रके धरनहारे गरुडके असवारे नंदके कुमार मेरी संकट निवारेजू । यमलार्जुन तारे गज ग्रहसें उवारे कालीछे नाथनहारे मेरे प्राण आधारेजू ॥ नखपर गिरि धारे गोपी ग्वालकों उबारे इंद्रहूके गर्व गारे विदरविचारेजू । द्रुपदसुताकी वेर कहीं न लागी देर अब कहा अवेर सूर सेवक तिहारेजू ॥

मैत्रेयजी बोले कि भगवाननें ऐसे जब आक्षेप कीनो और क्रोधसे उसका बहुत उपहास्य कर वचन कहे तब उस दैत्यने खिलाडी सर्पकी समान महाक्रोध किया ॥१३॥ क्रोधसें चलायमान इंद्रियें अमर्षसे श्वास लेता वह दैत्य शीघ्र आयकर गदासे श्रीहरिको मारतोभयो ॥१४॥ वैरीकी वक्षस्थलपर फैकीभई गदाके वेगको बचाय तिरछे होके भगवान् ऐसे बचावतेभये जैसे योगारूढ योगी मृत्युको बचाताहै ॥१५॥ फेर दूसरी गदाकों लेके वारंवार घुमाते आते भए असुरपर श्रीहरी दांतोंसे होठ पीसकर क्रोधसे दौडतेभये ॥१६॥ तापाछै गदासे शत्रुके दहिनी भौंमें प्रभु मारतेभए हे विदुर! गदामें चतुर वाहीको फेर फैकतोभयो ॥ १७ ॥ ऐसे भारी भारी गदासें हिरण्याक्ष और श्रीवाराहजी इच्छाकरकै आपसमें क्रोधकर वो वाको मारै वो वाको

मैत्रेय उवाच ॥ सोऽधिक्षिप्तो भगवता प्रलब्धश्च रुषा भृशम् ॥ आजहारोल्बणं क्रोधं क्रीडमानोऽहिराडिव ॥ १३ ॥ सृजन्नमर्षितः श्वासान् मन्युप्रचलितेन्द्रियः ॥ आसाद्य तरसा दैत्यो गदयाऽभ्यहनद्धरिम् ॥ १४ ॥ भगवांस्तु गदावेगं विसृष्टं रिपुणोरसि ॥ अवञ्चयत् तिरश्चीनो योगारूढ इवान्तकम् ॥१५॥ पुनर्गदां स्वामादाय भ्रामयन्तमभीक्ष्णशः ॥ अभ्यधावद्धरिः क्रुद्धः संरम्भादष्टदच्छदम् ॥ १६ ॥ ततश्च गदयारातिं दक्षिणस्यां भ्रुवि प्रभुः ॥ आजघ्ने स तु तां सौम्य गदया कोविदोऽहनत् ॥ १७ ॥ एवं गदाभ्यां गुर्वीभ्यां हर्यक्षो हरिरेव च ॥ जिगीषया सुसंरब्धावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ १८ ॥ तयोः स्पृधोस्तिग्मगदाहताङ्गयोः क्षतास्रवघ्राणविवृद्धमन्य्वोः ॥ विचित्रमार्गांश्चरतोर्जिगीषया व्यभादिलायामिव शुष्मिणोर्मृधः ॥ १९ ॥ दैत्यस्य यज्ञावयवस्य मायया गृहीतवाराहतनोर्महात्मनः ॥ कौरव्य मह्यां द्विषतोर्विमर्दनं दिदृक्षुरागादृषिभिर्वृतः स्वराट् ॥ २० ॥ आसन्नशौण्डीरमपेतसाध्वसं कृतप्रतीकारमहार्यविक्रमम् ॥ विलक्ष्य दैत्यं भगवान् सहस्रणीर्जगाद नारायणमादिसूकरम् ॥ २१ ॥

मारै ऐसे दोनों युद्ध करतेभए ॥ १८ ॥ दोनों जयकी इच्छासे स्पर्द्धाके वश हो पैनी गदासे प्रहार करतेथे उनके प्रहार लगवेसे अंगके घावमेंसे रुधिर निकलनेसे दूना क्रोध बढताथा पैतरे पलटकर उन दोनोंका युद्ध ऐसा विदित होताथा जैसे दो बैल एक गौके निमित्त युद्ध करतेहो ॥ १९ ॥ हे राजन् परीक्षित्! दैत्यकी और यज्ञावतार श्रीवाराहजीकी जिन महात्मानने वाराहतनु ग्रहण कीनो हैं उन द्वेषीनके मायायुद्ध देखवेको ऋषिनको संग लिये ब्रह्माजी आवतेभए ॥ २० ॥ चतुरतायुक्त मदमत्त निर्भय बराबर प्रतीकार करनेवाले अघट पराक्रम दैत्यको देख सहस्र ऋषिनके

उसके बुरे वचन सहन करते ग्राहसे ताडित हुए हथीनी सहित हाथीके समान जलसै बाहर निकले ॥ ६ ॥ सुवर्ण रंगवाले केश और कराल डाढवाला हिरण्याक्ष वज्रके समान शब्द कर जलसे निकलते हुवे वराहको देखकर उनके पीछे दौडा, जैसे हाथीके पीछे मगर दौडताहै, और बोला कि निर्लज्ज दुष्टोंको क्या कर्म निन्दित हैं ॥ ७ ॥ उस समय भगवान कि ब्रह्मा जिनकी स्तुति करतेथे और सब देवता पुष्पोंकी वर्षा कररहेथे तब श्रीवराहजी जलपर पृथ्वीकों धरकर अपनी आधाररूप शक्तिसें स्थित करतेभए ॥ ८ ॥ पीछे चलो आये सुवर्णके गहिने पहिनै बडी गदा लिये सुवर्णको विचित्र कवच धारे खोटे वचनोंसे वारंवार मर्मस्थानमें पीडा देते हिरण्याक्षसे प्रचंडक्रोधी वाराहजी हंसके बोले ॥ ९ ॥

तं निःसरन्तं सलिलादनुद्रुतो हिरण्यकेशो द्विरदं यथा झषः॥करालदंष्ट्रोऽशनिनिःस्वनोऽब्रवीद्गताह्रियां किंन्वसतां विगर्हितम् ॥ ७ ॥ स गामुदस्तात्सलिलस्य गोचरे विन्यस्य तस्यामदधात्स्वसत्त्वम् ॥ अभिष्टुतो विश्वसृजा प्रसूनैरापूर्यमाणो विबुधैः पश्यतोऽरेः॥८॥परानुषक्तं तपनीयोपकल्पं महागदं काञ्चनचित्रदंशम्॥मर्माण्यभीक्ष्णं प्रतुदन्तं दुरुक्तैः प्रचण्डमन्युः प्रहसंस्तं बभाषे॥९॥श्रीभगवानुवाच॥सत्यं वयं भो वनगोचरा मृगा युष्मद्विधान् मृगये ग्रामसिंहान्॥न मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य वीरा विकत्थनं तव गृह्णन्त्यभद्र ॥ १०॥एते वयं न्यासहरा रसौकसां गतह्रियो गदया द्राविताऽस्ते॥तिष्ठामहेऽथापि कथंचिदाजौ स्थेयं क्व यामो बलिनोत्पाद्य वैरम् ॥ ११ ॥ त्वं पद्रथानां किल यूथपाधिपो घटस्व नोऽस्वस्तय आश्वनूहः ॥ संस्थाप्य चास्मान् प्रमृजाऽश्रु स्वकानां यः स्वां प्रतिज्ञां नातिपिपर्त्यसभ्यः ॥ १२ ॥

श्रीभगवान् बोले कि ॥ हे हिरण्याक्ष ! तुम सत्य कहोहो हम वनवासी सूकर हैं परंतु तुमसरीके कूकरनको ढूंढते डोलै हैं हे अभद्र ! जो मृत्युरूप फांसीमें बंधेभए तेरे बकनेको धीर लोग कदी नहीं ग्रहण करे है ॥ १० ॥ रसातलवासीनके धरौहरके हरनेवारे लाजरहित हम हैं जो तुह्मारी गदासे भागे फिरतेहैं तुमसरीके बलीनसें वैर उत्पन्न कर कहा जायगे इस कारण संग्राममें स्थित होना पडेगा इसीसै तुह्मारे सामनें खड़े हैं ॥ ११ ॥ तुम पदाती रथीनके यूथपोंके निश्चय स्वामी हो, तर्क छोड हमारे कल्याणके अर्थ शीघ्र चेष्टा करो, हमें मार अपनैनके आंशु पोछो, जो अपनेनकी प्रतिज्ञा नहीं पुरी करते सो सभाके योग्य नहीं है ॥ १२ ॥

181

मैत्रेयजी बोले कि हे विदुर ! वरुणकी ऐसी वाणी सुन महामनस्वी दुर्मदी हिरण्याक्ष उनके वचनको कुछ न गिनकर नारदजोसे श्रीवराह भगवानकी गति जान महाशीघ्रतासे रसातलमें प्रवेशकर जातो भयो ॥ १ ॥ तहां सब ओरसे जीतवेवारे धराधारी डाढाके अग्रभागपर धरतीको धर ऊपरको उठाए अपनी नेत्रकी रक्त शोभासे हिरण्याक्षके तेजकों दूर करते श्रीवराह भगवानकों देखकर हँसा कि अहो यह वनवासी वराह है "हिरण्याक्षेणाधिक्षेपार्थं प्रयुक्तापि भारती भगवंतं स्तौति" वनगोचर मृग जलशायी जिन्हे योगिजन ढूंढैहै ॥ २ ॥ वो हिरण्याक्ष बोले कि ब्रह्मानें हमको ये पृथ्वी अर्पित की है, सो छोडो तुम अज्ञानी हौ, द्वितीय अर्थ अज्ञको ये है "नास्ति ज्ञो यस्मात्सः सर्वज्ञः" हे सर्वज्ञ ! हे सुराधम ! "सुराः अधमाः यस्मात्"

मैत्रेय उवाच ॥ तदेवमाकर्ण्य जलेशभाषितं महामनास्तद्विगणय्य दुर्मदः ॥हरेर्विदित्वा गतिमङ्ग नारदाद्रसातलं निर्विविशे त्वरान्वितः ॥ १॥ ददर्श तत्राभिजितं धराधरं प्रोन्नीयमानावनिमग्रदंष्ट्रया ॥ मुष्णन्तमक्ष्णा स्वरुचोऽरुणश्रिया जहास चाहो वनगोचरो मृगः ॥२॥ आहैनमेह्यज्ञ महीं विमुञ्च नो रसौकसां विश्वसृजेयमर्पिता ॥ न स्वस्ति यास्यस्यनया ममेक्षतः सुराधमासादितसूकराकृते ॥ ३ ॥ त्वं नः सपत्नैरभवाय किं भृतो यो मायया हन्त्यसुरान्परोक्षजित् ॥ त्वां योगमायाबलमल्पपौरुषं संस्थाप्य मूढ प्रमृजे सुहृच्छुचः ॥४॥ त्वयि संस्थिते गदया शीर्णशीर्षण्यस्मद्भुजच्युतया ये च तुभ्यम् ॥ बलिं हरन्त्यृषयो ये च देवाः स्वयं सर्वे न भविष्यन्त्यमूलाः ॥५॥ स तुद्यमानोरिदुरुक्ततोमैरर्दंष्ट्राग्रगां गामुपलक्ष्य भीताम् ॥ तोदं मृषन्निरगादम्बुमध्याद्ग्राहाहतः सकरेणुर्यथेभः ॥ ६ ॥

हे सुरोत्तम ! हे सूकराकृते ! मेरे सामनें या पृथिवीसहित मंगलकों न प्राप्त होओगे ॥ ३ ॥ हे परोक्षजित् ! तुम मायासै कपटकरकै छिपकर असुरोंको मारते हो और क्या तुम्ही हमारा नाश करनेको देवताओंसै पुष्ट हुए हो हे निर्बुद्धि ! योगमायाका बल रखनेवाले अल्प पुरुष तुमको मारकर मैं अपने सुहृदनको शोक दूर करूंगो ॥ ४ ॥ हमारी भुजासे चलाई गदासे शिर टूटनेसे तुम जब मृतक होओगे, तौ जो तुमैं बलि देनेवारे ऋषिलोग और देवता हैं वे आप निर्बल होकर नष्ट होंगे ॥ ५ ॥ शत्रुकी दुष्ट उक्तिरूप शस्त्रोंसे व्यथितशरीर दंष्ट्राके अग्रभागसे पृथिवीको डरी देखकर

नीचोंकी नाई बोलो हे अधिराज! मोसे युद्ध करो ॥२७॥ हे प्रभो! तुम सब लोकपालनके स्वामी महायशस्वी दुर्मदवीरमानीनके पराक्रम नाशक हो, सो पहिले सब दैत्य दानवकौ जीतकर राजसूय यज्ञ करतेभये ॥ २८ ॥ सो या प्रकार वह अत्यंत मद वैरसे भगवान् जलपतिका उपहास्य करनेलगा तब वरुणजी बढे हुए रोषको अपनी बुद्धिसे शांत कर बोले हे राजन्! अब तो हम युद्धादिककी कुशलता सब छोडकर भगवतके भजनमें सदा लीन रहे हैं ॥ २९ ॥ हे असुरश्रेष्ठ! पुरातन पुरुषसे विना और रणके मार्गमें चतुर आपकों संग्राममैं संतुष्ट करवेवारे कोई मोंको नहीं दीखै है, तुम उनके पास जाओ आप सरीके मनस्वी उनकी सदा स्तुति करै है ॥३०॥ तनि वीरके समीप आप जायकर नष्टगर्व हो रणभूमिमें कुत्तानके मध्यमें सोओगे जो ईश्वर तुम सरीके असतोंके नाशके लिये सज्जनोंके ऊपर कृपा करकै रूपनको धारण करैं हैं ❀ ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवतभाषाटीकायां तृतीयस्कंधे हिरण्याक्षहिरण्यकशिपूत्पत्तिर्नामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

त्वं लोकपालोऽधिपतिर्बृहच्छ्रवा वीर्यापहो दुर्मदवीरमानिनाम्॥विजित्य लोकेऽखिलदैत्यदानवान्यद्राजसूयेन पुराऽयजत्प्रभो॥२८॥स एवमुत्सिक्तमदेन विद्विषा दृढं प्रलब्धो भगवानपाम्पतिः ॥ रोषं समुत्थं शमयन्स्वया धिया व्यवोचदङ्गोपशमं गता वयम्॥२९॥पश्यामि नान्यं पुरुषात्पुरातनाद्यः संयुगे त्वां रणमार्गकोविदम् ॥ आराधयिष्यत्यसुरर्षभेहितं मनस्विनो यं गृणते भवादृशाः॥३०॥तं वीरमारादभिपद्य विस्मयः शयिष्यसे वीरशये श्वभिर्वृतः॥यस्त्वद्विधानामसतां प्रशान्तये रूपाणि धत्ते सदनुग्रहेच्छया ॥३१॥ इति श्रीभा० तृती० हिरण्याक्षदिग्विजये सप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

---

* हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु सूर्यके भक्त थे जब वह पूजन करते तब देवता विघ्न करने लगते इसकारण वह पूजाके समय मायासै सूर्यके निकट अपना शरीर बढाते जिसके भयसे देवता भागजाते, घरमें उसी छोटे रूपसै रहते।

जब हिरण्यकश्यपु हिरण्याक्षनै जन्म लियाथा तबतक नीचेके पाताल लोकोंकी रचना न हुई थीं स्वर्गादि लोक बनचुकेथे प्राणी जन्मतेही बढजातेथे ऐसेही उत्पन्न होतेही राक्षस बढगये दूसरेके हाथ इनकी मृत्यु नहीं थी यही इनका अदृष्ट था कि पृथ्वीका उद्धार करनेहारा वाराह हिरण्याक्षको मारैगा यही वरदान था इसी कारण वाराह शरीर धारण किया और सनकादिकोंका शापभी था और सनकादिकोंने एक समय अहंकारसै कहाथा कि इन्द्रिय प्राणीका क्या करसक्ती हैं यह कारण था कि उन्हें वैकुंठके द्वारपर क्रोध आया और पीछे समझकर अहंकारहीन हुए।

हिरण्यकशिपु भुजानसें ब्रह्माके वरकरके त्रिलोकीके लोकपालनको वशमें करतेभए, और मृत्युकाभी भय न मानते भये ॥ १९ ॥ हिरण्याक्ष प्रिय तिनको भैया दिनरात प्रीति करतो भयो, गदा हाथमें लिये स्वर्गमें गयो, युद्धकी इच्छा कर रणको ढूंढतो भयो ॥ २० ॥ दुःसहवेगी शब्दायमान सुवर्णके नूपुर वैजयंती माला पहिने कांधेपर महागदा धरे ॥ २१ ॥ बल पराक्रम और वरदानसै गर्वित निरंकुश और भयहीन हिरण्याक्षको देखकर देवता भयभीत हुए और ऐसे छिपगये जैसे गरुडसे डरकै सर्प छिपजातेहैं ॥ २२ ॥ अपने तेजसे भगे भए दैवतानकों जान दैत्यराज इंद्रसहित

चक्रे हिरण्यकशिपुर्दोर्भ्यां ब्रह्मवरेण च ॥ वशे सपालाँल्लोकांस्त्रीनकुतोमृत्युरुद्धतः ॥ १९ ॥ हिरण्याक्षोऽनुजस्तस्य प्रियः प्रीतिकृदन्वहम् ॥ गदापाणिर्दिवं यातो युयुत्सुर्मृगयन्रणम् ॥ २० ॥ तं वीक्ष्य दुःसहजवं रणत्काञ्चननूपुरम् ॥ वैजयन्त्या स्रजा जुष्टमंसन्यस्तमहागदम् ॥ २१ ॥ मनोवीर्यवरोत्सिक्तमसृण्यमकुतोभयम् ॥ भीता निलिल्यिरे देवास्ताक्ष्यत्रस्ता इवाहयः ॥ २२ ॥ स वै तिरोहितान्दृष्ट्वा महसा स्वेन दैत्यराट् ॥ सेन्द्रान्देवगणान्क्षीबानपश्यन्व्यनदद्भृशम् ॥ २३ ॥ ततो निवृत्तः क्रीडिष्यन्गम्भीरं भीमनिस्वनम् ॥ विजगाहे महासत्त्वो वार्धिं मत्त इव द्विपः ॥ २४ ॥ तस्मिन्प्रविष्टे वरुणस्य सैनिका यादोगणाः सन्नधियः ससाध्वसाः ॥ अहन्यमाना अपि तस्य वर्चसा प्रधर्षिता दूरतरं प्रदुद्रुवुः ॥ २५ ॥ स वर्षपूगानुदधौ महाबलश्चरन्महोर्मीन् श्वसनेरितान्मुहुः ॥ मौर्व्याऽभिजघ्ने गदया विभावरीमासेदिवांस्तात पुरीं प्रचेतसः ॥ २६ ॥ तत्रोपलभ्यासुरलोकपालको यादोगणानामृषभं प्रचेतसम् ॥ स्मयन्प्रलब्धुं प्रणिपत्य नीचवज्जगाद मे देह्यधिराज संयुगम् ॥ २७ ॥

देवगणनकों नत देख अत्यंत नाद करतेभए ॥ २३ ॥ वहांसे लौटकर क्रीडाकी इच्छाकर गंभीर भयंकर चिल्लाकै महाबली मत्तहाथीकी नाईं समुद्रमें स्नान करतेभए ॥ २४ ॥ जब जलमें प्रवेश कीनो तब वरुणके सेनापति, जलके गण अधीर बुद्धिवारे भ्रमसहित उसके तेजसे ताडित डरेभए अत्यंत दूर भागजाते भए ॥ २५ ॥ हे तात ! सो महाबली अनेक वर्षतक पवनप्रेरित सागरकी लहरनकों वारंवार लोहेकी गदासें मारतोभयो, प्रचेताकी विभावरी नाम्नी पुरीको प्राप्त भयो ॥ २६ ॥ तहां जायकर असुरलोकपाल जलके गणनको ऋषभ प्रचेताको अवज्ञा प्रमाण कर मुसकाय कर हांसी कर

पुण्यतम नक्षत्रगण गुरु बुधादिक ग्रह दीपित हो और क्रूर मंगलादि ग्रह वक्रगतिसें चलते भए परस्पर युद्ध करते भए ॥ १४ ॥ वा तत्त्वके न जानवेवारी प्रजा अनेक महाउत्पातनको देखकर डरके मारे विश्वको नाश आयो जानतीभई, केवल ब्रह्माके पुत्र सनकादिक नाश न मानते भए ॥ १५ ॥ वे आदि दैत्य हठात्कारसे अपने पुरुषार्थको प्रकट करते भए पाषाण सम शरीरसे पर्वतकी नाईं बढते भए ॥ १६ ॥ सुवर्णके किरीटाग्रभागसे स्वर्गको स्पर्श करते प्रकाशमान भुजाओंके बाजूसे दिशाओंको रोके चरणोंसे पद पदमें पृथ्वीको कंपाते वे दोनों भ्राता सुंदर कटि मेखलावाली कमरकी कांतिसे सूर्यकोभी उल्लंघन कर स्थितहुए ॥ १७ ॥ प्रजापति कश्यप तिन दोनोंका नामकरण करते भये, जैसे कि जो कश्यपसे पहले पैदा हुवा उसको प्रजा हिरण्यकशिपु जानती भयी, और जो दितिसे पहले पैदा हुवा उसको हिरण्याक्ष ऐसे कहते भये“ यह भाव है कि जिस समयमें योनिके पुष्पको प्रवेश करता हुवा बीज दो भागसे पहले पीछे होकर प्रवेश करता है तब यम (अर्थात दो गर्भ) होते हैं फिर वे दोनों गर्भ माताके पेटसे दूसरे क्रमसे निकलते हैं अर्थात् जो बिन्दु गर्भाधान कालमें पहले योनिपुष्पमें गिरता है उस बिन्दुका जो गर्भ है सो माताके गर्भाशयसे पीछे निकलता है, और जो बिन्दु पीछे गिरता है उसका गर्भ पहले निकलता है ”सोही पिण्डसिद्धिमें कहा है कि “ यदा विशेद्द्विधाभूतं बीजं पुष्पं परिक्षरत्॥ द्वौ तदा भवतो गर्भौ सूतिर्वैशविपर्य्ययात् ॥ १ ॥ इति ” अर्थ यह है कि जिस समयमें गिरताहुवा बीज दो भागसे होकर पुष्पमें प्रवेश करता है तो दो गर्भ होते हैं और जन्म दूसरे क्रमसे होताहै ॥ १८ ॥

ग्रहान्पुण्यतमानन्ये भगणांश्चापि दीपिताः ॥ अतिचेरुर्वक्रगत्या युयुधुश्च परस्परम् ॥ १४ ॥
दृष्ट्वाऽन्यांश्च महोत्पातानतत्त्वविदः प्रजाः ॥ ब्रह्मपुत्रानृते भीता मेनिरे विश्वसंप्लवम् ॥ १५ ॥
तावादिदैत्यौ सहसा व्यज्यमानात्मपौरुषौ ॥ ववृधातेऽश्मसारेण कायेनाद्रिपती इव ॥ १६ ॥
दिविस्पृशौ हेमकिरीटकोटिभिर्निरुद्धकाष्ठौ स्फुरदङ्गदाभुजौ ॥ गां कम्पयन्तौ चरणैः पदे पदे कट्या सुकाञ्च्याऽर्कमतीत्य तस्थतुः ॥ १७ ॥
प्रजापतिर्नाम तयोरकार्षीद्यः प्राक् स्वदेहाद्यमयोरजायत ॥ तं वै हिरण्यकशिपुं विदुः प्रजा यं तं हिरण्याक्षमसूत साग्रतः ॥ १८ ॥

वारंवार फुंकार करती भई अति कठोर वायु चलती भई महावृक्षनको पवनरूप सेनासे रज ध्वजा धार उखाडतीभई ॥ ५ ॥ वारंवार चमकती हुई विजुरीसें, और वादलोंसें तारागण लुप्त होगये और आकाशमें महाअंधकार छा जानेसें कुछभी दिखाई न दिया ॥ ६ ॥ सागरमें अधिकतरंगे उठनेलगीं जिसै उसके मकरादि जंतु क्षुभित होगये सागर अपने शब्दसे चिल्लातासा दृष्टि आनेलगा बावडी कूप तलावके कमल सूख गये नदियें चलायमान भईं ॥ ७ ॥ राहुग्रस्त सूर्य चंद्रमाके मंडल वारंवार होते भए, बादर विना गर्जै रथतुल्य शब्द गिरि गुहानसे होतोभयो ॥ ८ ॥ और गीदड उलूक भयंकर शब्द करते भये, और गीदडी गांवोंकें भीतर आके मुखसे भयंकर अग्निको उगलती भई, भयंकर शब्दोंको करतीभई ॥ ९ ॥

ववौ वायुः सुदुःस्पर्शः फूत्कारानीरयन्मुहुः ॥ उन्मूलयन्नगपतीन्वात्याऽनीको रजोध्वजः ॥ ५ ॥ उद्धसत्तडिदम्भोदघटया नष्टभागणे ॥ व्योम्नि प्रविष्टतमसा न स्म व्यादृश्यते पदम् ॥ ६ ॥ चुक्रोश विमना वार्धिरुदूर्मिः क्षुभितोदरः ॥ सोदपानाश्च सरितश्चक्षुभुः शुष्कपङ्कजाः ॥ ७ ॥ मुहुः परिधयोऽभूवन्सराह्वोः शशिसूर्ययोः ॥ निर्घाता रथनिर्ह्रादा विवरेभ्यः प्रजज्ञिरे ॥ ८ ॥ अन्तर्ग्रामेषु मुखतो वमन्तो वह्निमुल्बणम् ॥ सृगालोलूकटङ्कारैः प्रणेदुरशिवं शिवाः ॥ ९ ॥ संगीतवद्रोदनवदुन्नमय्य शिरोधराम् ॥ व्यमुञ्चन्विविधा वाचो ग्रामसिंहास्ततस्ततः ॥ १० ॥ खराश्च कर्कशैः क्षत्तः खुरैर्घ्नन्तो धरातलम् ॥ खार्काररभसा मत्ताः पर्यधावन्वरूथशः ॥ ११ ॥ रुदन्तो रासभत्रस्ता नीडादुदपतन्खगाः ॥ घोषेऽरण्ये च पशवः शकृन्मूत्रमकुर्वत ॥ १२ ॥ गावोऽत्रसन्नसृग्दोहास्तोयदाः पूयवर्षिणः ॥ व्यरुदन्देवलिङ्गानि द्रुमाः पेतुर्विनाऽनिलम् ॥ १३ ॥

संगीतवत् रोदनकी नाईं धरतीसे शिर ऊंचो कर अनेक तरहकी वाणी कुत्ता जहां तहां बोलनेलगे ॥ १० ॥ हे विदुर! कठोर खुरोंसें गधा धरती खोदने लगे सैकडों गधे चिल्लाते दौडते फिरै हैं ॥ ११ ॥ गधोंके रोनेसे डरे भए पक्षी घोंसलोंसे गिरतेभए, घरमें वनमें पशु विष्ठा मूत्र वारंवार करते भए ॥ १२ ॥ त्रासके मारे गायोंके थनसै रुधिर निकलने लगा बादर पीप वर्षावने लगे देवतानकी प्रतिमा रोवनेलगी, वृक्ष पवन विना गिरपडे ॥ १३ ॥

वे दोनों देवनमें श्रेष्ठ दुस्तर हरिलोकसें ब्राह्मणोंके शापसे नीचे गिरे तव वे श्रीविहीन और गर्वरहित होगये ॥ ३३ ॥ हे पुत्रो ! ता समय वैकुंठसे जब वे दोनों गिरे तासमय विमानोंके आगे महान् हाहाकार होतोभयो ॥ ३४ ॥ वेही दोनों श्रीहरिके पार्षद दितिके पेटमें कश्यपजीके महातेज रूप प्रविष्ट हैं ॥ ३५ ॥ उन दोनों असुरनके तेजसें तुम्हारो तेज तिरस्कृत भयोहै सो भगवान् तुह्मारो तेज वढावेंगे ॥ ३६ ॥ विश्वके उत्पत्ति स्थितिके कारण तथा योगीश्वरभी जिनको मायाका पार नहीं पासक्ते सो भगवान् हमारे क्षेम करेंगे, हमारो विचारसें कहा होयहै वे त्रिगुणोंके स्वामी

तौ तु गीर्वाणऋषभौ दुस्तराद्धरिलोकतः ॥ हतश्रियौ ब्रह्मशापादभूतां विगतस्मयौ ॥ ३३ ॥ तदा वैकुण्ठधिषणात्तयोर्निपतमानयोः ॥ हाहाकारो महानासीद्विमानाग्र्येषु पुत्रकाः ॥ ३४ ॥ तावेव ह्यधुना प्राप्तौ पार्षदप्रवरौ हरेः ॥ दितेर्जठरनिर्विष्टं काश्यपं तेज उल्बणम् ॥३५॥ तयोरसुरयोरद्य तेजसा यमयोर्हि वः ॥ आक्षिप्तं तेज एतर्हि भगवांस्ताद्विधित्सति ॥ ३६ ॥ विश्वस्य यः स्थितिलयोद्भवहेतुराद्यो योगेश्वरैरपि दुरत्यययोगमायः ॥ क्षेमं विधास्यति स नो भगवांस्त्र्यधीशस्तत्रास्मदीयविमृशेन कियानिहार्थः ॥ ३७ ॥ इति श्रीभा०तृतीय० वैकुण्ठनाथेन वैकुण्ठे ब्राह्मणमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥१६ ॥ मैत्रेय उवाच ॥ निशम्यात्मभुवा गीतं कारणं शङ्कयोज्झिताः ॥ ततः सर्वे न्यवर्तन्त त्रिदिवाय दिवौकसः ॥ १ ॥ दितिस्तु भर्तुरादेशादपत्यपरिशङ्किनी ॥ पूर्णे वर्षशते साध्वी पुत्रौ प्रसुषुवे यमौ ॥ २ ॥ उत्पाता बहवस्तत्र निपेतुर्जायमानयोः ॥ दिवि भुव्यन्तरिक्षे च लोकस्योरुभयावहाः ॥ ३ ॥ सहाचला भुवश्चेलुर्दिशः सर्वाः प्रजज्वलुः ॥ सोल्काश्चाशनयः पेतुः केतवश्चार्तिहेतवः ॥ ४ ॥

हैं ॥ ३७ ॥ इति श्री भा० भा० तृ० ब्राह्मणमाहात्म्यवर्णनं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ मैत्रेयजी वोले कि ब्रह्माजीको वचन सुन जन्मको कारण सुन शंका त्याग सब देवता स्वर्गकों जाते भए ॥ १ ॥ दिति तो भर्ताकी आज्ञासें पुत्रनकी ओरसें शंकित होय पूर्ण वर्षशत हुए तब वह साध्वी दो पुत्र उत्पन्न करती भई ॥ २ ॥ जब वे जन्मे तब स्वर्गमें भूमिमें आकाशमें सब लोकके बहुत भयदायक उत्पात होतेभए ॥ ३ ॥ पर्वतसहित भूमि चलायमान भई सब दिशा प्रज्वलित भई, उल्कासहित वज्रपात होतेभए, आर्तिके हेतु धूमकेतुको उदय भयो ॥ ४ ॥

फल है, और ये शाप तो मैनेंही तुह्मारे द्वारा दिवायो है हे ब्राह्मणो ! सो तुम जानों ॥ २६ ॥श्रीब्रह्माजी बोले कि याके उपरांत नयन आनंदपात्र श्रीवैकुंठलोक स्वयंप्रकाश उस स्थानको देखकर सब मुनि लोग ॥ २७ ॥ भगवान्की परिक्रमा दे प्रणाम कर आज्ञा ले, वैष्णवी श्रीशोभाकी प्रशंसा करते मुदित हो चलेजाते भए ॥ २८ ॥ भगवान् पार्षदनसें जाती वखत बोले मत डरो तुम्हारो कल्याण होयगो, ब्रह्मतेज दूर करनेकों हम समर्थ हैं परंतु ये हमारेकों संमत नहीं है " यहां ये सिद्धांतहै कि यद्यपि सनकादिकनको क्रोध संभवभी न होवै है न भगवत्पार्षदनको ब्राह्मणोंसे प्रतिकूलताही न भगवान् भक्तकी उपेक्षाही करै न वैकुंठ गएनको पुनर्जन्म होयहै तथापि भगवान् सृष्टि रचवेकीसी नाईं कोई समय भगवतको युद्ध करवेकी इच्छा भई तो औरको थोडो बली जान अपनें पार्षदनकों अपनें तुल्यबल मान ये दोनों हमारे प्रतिपक्षी होय, ये विचार दोनों ब्राह्मणोंको निवारण करवेमें प्रवृत्त होकर तिनमें क्रोध उत्पन्न कर तिनके शापरूप वहानों कराय युद्धरूप खेल करनों चाहिये ये भगवान्कोही संकल्प सब हो यासेही भगवान्ने कह्योहै कि " शापो मयैव निमितस्तदवैत विप्राः " ये जाननों योग्य है यह ग्रंथ विस्तारके भयसे सिद्धांतमात्र कहा है, सो सब विद्वान लोग जान लैवैं ईश्वर सर्वज्ञ सच्चिदानन्द सर्वकर्ता श्रीश्वर हैं ॥ २९ ॥ हम उपरामको प्राप्त भए तब आनंदसे क्रोधित होकर श्रीलक्ष्मीजीनें पहिलेही कहीथी कि द्वारमें आवैगे उन्हे पार्षद रोकैंगे ॥ ३० ॥ मेरेमें क्रोधके योगसे ब्राह्मणोंके शापसे तरकर थोडेसे कालमें मेरे समीप आओगे ॥ ३१ ॥ भगवान् द्वारपालकनसे ऐसें कह विमानोंकी पंक्तियोंसे शोभित सबसे सुंदर लक्ष्मीकरके युक्त अपने वैकुंठस्थानमें प्रवेश करतेभए ॥ ३२ ॥

ब्रह्मोवाच ॥ अथ ते मुनयो दृष्ट्वा नयनानन्दभाजनम् ॥ वैकुण्ठं तदधिष्ठानं विकुण्ठं च स्वयंप्रभम् ॥ २७ ॥ भगवन्तं परिक्रम्य प्रणिपत्यानुमान्य च ॥ प्रतिजग्मुः प्रमुदिताः शंसन्तो वैष्णवीं श्रियम् ॥ २८ ॥ भगवाननुगावाह यातं मा भैष्टमस्तु शम् ॥ ब्रह्मतेजः समर्थोऽपि हन्तुं नेच्छे मतं तु मे ॥ २९ ॥ एतत्पुरैव निर्दिष्टं रमया क्रुद्धया मुदा ॥ पुराऽपवारिता द्वारि विशन्ती मय्युपारते ॥ ३० ॥ मयि संरम्भयोगेन निस्तीर्य ब्रह्महेलनम् ॥ प्रत्येष्यतं निकाशं मे कालेनाल्पीयसा पुनः ॥ ३१ ॥ द्वास्थावादिश्य भगवान् विमानश्रेणिभूषणम् ॥ सर्वातिशयया लक्ष्म्या जुष्टं स्वं धिष्ण्यमाविशत् ॥ ३२ ॥

वर्तमान श्रीजीको आप अति आदर न करोहो परम भागवतोंमें तुमारो प्रसंग गुणोंके आश्रयरूप तुम द्विजनके मार्गकी पुण्यरजसे अथवा श्रीवत्स चिन्ह विश्वकों भृगुलतासे पवित्र होतेहो इन दोनोंका धारण करना शोभाके निमित्त है ॥ २१ ॥ आप अपनें धर्मके तीनों युगोंमें तीनों चरणोंसें चराचर या ब्राह्मण देवतानके अर्थ निश्चयकर धारण करोहो, तिनके घातक हमारे रज तमकों सतोगुण वरदाता तनुसे तुम दूर करो ॥ २२ ॥ हे देव ! आपके रक्षायोग्य ब्राह्मणोत्तमोंके कुलोंकी जो अत्यंत पूजनकरकै कोमल वाणीसें आप न रक्षा करो तो कल्याणरूप तुम्हारों मार्ग नष्ट होजाय, आप श्रेष्ठ हैं जो श्रेष्ठ आदमी करै वाको प्रमाण सब लोग ग्रहण करैहै सो गीतामें है कि, “यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः॥स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते”॥२३॥अत्यंत शुद्धसत्वमय क्षेम विधान करवेको जीवनके अर्थ निज शक्तियोंसे धर्मप्रतिपक्षीके दूरकरनेहारे आपको ब्राह्मणोंकों पूजनों योग्यहीहै त्रिगुण मायाके स्वामी विश्वभर्ताको तेज ऐसी सेवासे नष्ट नहीं होय है,यह तो केवल आपका विनोद है ॥ २४ ॥ हे अधीश ! इन दोनोकों और दंड विधान करो, अथवा कोई कपटरहित वृत्ति इनसे करावनीं योग्य है, जो उचित दंड होय सो हमको देओ, जो निरपराधीनकों हमने शाप दीनों ॥ ॥ २५ ॥ श्रीभगवान् बोले कि हे ब्राह्मणो ! ये दोनों असुरयोनिको प्राप्त होकर शीघ्र फेर मेरे समीप आवेंगे, क्रोधावेश समाधिबंधनके योगको यही

धर्मस्य ते भगवतस्त्रियुगस्त्रिभिः स्वैः पद्भिश्चराचरमिदं द्विजदेवतार्थम् ॥ नूनं भृतं तदभिघातिरजस्तमश्च सत्त्वेन नो वरदया तनुवा निरस्य ॥ २२ ॥ न त्वं द्विजोत्तमकुलं यदिहात्मगोपं गोप्ता वृषः स्वर्हणेन ससूनृतेन ॥ तर्ह्येव नङ्क्ष्यति शिवस्तव देव पन्था लोकोऽग्रहीष्यदृषभस्य हि तत् प्रमाणम् ॥ २३॥ तत्तेऽनभीष्टमिव सत्त्वनिधेर्विधित्सोः क्षेमं जनाय निजशक्तिभिरुद्धृतारेः ॥ नैतावता अधिपतेर्बत विश्वभर्तुस्तेजः क्षतं त्ववनतस्य स ते विनोदः ॥ २४ ॥ यं वाऽनयोर्दममधीश भवान्विधत्ते वृत्तिं नु वा तदनुमन्महि निर्व्यलीकम् ॥ अस्मासु वा य उचितो ध्रियतां स दण्डो येऽनागसौ वयमयुङ्क्ष्महि किल्बिषेण ॥ २५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एतौ सुरेतरगतिं प्रतिपद्य सद्यः संरम्भसंभृतसमाध्यनुबद्धयोगौ ॥ भूयः सकाशमुपयास्यत आशु यो वः शापो मयैव निमितस्तदवैत विप्राः ॥ २६ ॥

श्रेष्ठ थोरे अक्षर, बडे अर्थसे अत्यंत गंभीर वाणीकों कानसे सुनकर, उसका विचार किया कि भगवत्की क्या इच्छा है परंतु तिन ईश्वरकी करवेकी इच्छाको न जानतभए ॥ १४ ॥ फिर योगमायासे ब्रह्मको महाउदय जान हाथ जोड प्रसन्न रोमांचित हो सनकादिक ब्राह्मण बोले ॥ १५ ॥ ऋषि बोले कि हे भगवन् हे देव ! तुह्मारी करवेकी इच्छाको हम नहीं जानैं है, हम पर बडो अनुग्रह कीनों कि हमारे सामनें होकर आप बोलो हो ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! निश्चय करकै ब्रह्मण्य आपके परमदेवता ब्राह्मण है देवनके देव ब्राह्मणोंके आत्मदेव आप हो ॥ १७ ॥ सनातन धर्म तुमसे हैं

सतीं व्यादाय शृण्वन्तो लघ्वीं गुर्वर्थगह्वराम् ॥ विगाह्याऽगाधगम्भीरां न विदुस्तच्चिकीर्षितम् ॥ १४ ॥ ते
योगमाययारब्धपारमेष्ठ्यमहोदयम् ॥ प्रोचुः प्राञ्जलयो विप्राः प्रहृष्टाः क्षुभितत्वचः ॥ १५ ॥ ऋषय ऊचुः ॥ न वयं भगवन्
विद्मस्तव देव चिकीर्षितम् ॥ कृतो मेऽनुग्रहश्चेति यदध्यक्षः प्रभाषसे ॥ १६ ॥ ब्रह्मण्यस्य परं दैवं ब्राह्मणाः किल ते
प्रभो ॥ विप्राणां देवदेवानां भगवानात्मदैवतम् ॥ १७ ॥ त्वत्तः सनातनो धर्मो रक्ष्यते तनुभिस्तव ॥ धर्मस्य परमो
गुह्यो निर्विकल्पो भवान्मतः ॥ १८॥ तरन्ति ह्यञ्जसा मृत्युं निवृत्ता यदनुग्रहात्॥योगिनः स भवान्किं स्विदनुगृह्येत
यत् परैः ॥ १९ ॥ यं वै विभूतिरुपयात्यनुवेलमन्यैरर्थार्थिभिः स्वशिरसा धृतपादरेणुः ॥
धन्यार्पिताङ्घ्रितुलसीनवदामधाम्नो लोकं मधुव्रतपतेरिव कामयाना ॥ २० ॥ यस्तां विविक्तचरितैरनुवर्तमानां नात्याद्रियेत्परमभागवतप्रसङ्गः ॥
स त्वं द्विजानुपथपुण्यरजःपुनीतः श्रीवत्सलक्ष्म किमगा भगभाजनस्त्वम् ॥ २१ ॥

तुम शरीर धारकर रक्षा करोहो, परम गुह्य धर्मके निर्विकाररूप तुम हो ॥ १८ ॥ निवृत्तमार्गमें लगेभए योगिजन तुह्मारे अनुग्रहसे मृत्युकों अनायासें तरजाय हैं, उनपर दूसरे जन अनुग्रह करैं क्या यह संभव है ॥ १९ ॥ जिन ईश्वरकी श्रीलक्ष्मी क्षणक्षणमें सेवा करै है, कि धनकी चाहनावारे पुरुष अपने शिरसें जिन लक्ष्मीके चरणकी रजको क्षणक्षणमें धारण करैहैं सो पुण्यात्माओंकी अर्पण करी चरणसंबंधी तुलसीकी नवीन मालाही जिसका स्थान है ऐसे भ्रमर राजके निवास लक्ष्मी स्थान चरणकमलकी इच्छावाली आपकी सेवा करतीहै ॥ २० ॥ एकांतचरितवारों करकै अनु-

यज्ञमें यजमानकी चरुपुरोडाशादि हवि अग्निमुखसें भोजन करते मैं तैसो भोजन नहीं करूं हूं जैसो मुझै अर्पण किये कर्म फलसै संतुष्ट ब्राह्मणके घी चुवाते मोहन भोग आदिसे ग्रास ग्रासमें रसको स्वादपूर्वक भोजन करते भये मुखसै हम पावतहैं ॥ ८ ॥ जिन ब्राह्मणोंके चरणकी निर्मल रज अखंड अकुंठित योगमायाको वैभववारे हम कि जिनके चरणको धोमन गंगाजी शिवसहित सबको पवित्र करती है अपने किरीटनसे धारण करै हैं, ऐसे ब्राह्मणको कौन तिरस्कार करैहै ॥ ९ ॥ मेरो शरीर पूर्णकाम मेरे विना जिनका कोई रक्षक नहीं ऐसे गौ और ब्राह्मणश्रेष्ठनको जो भेदबुद्धिसें देखें हैं उनकी पापसे नष्टदृष्टि हैं ऐसे ब्राह्मणद्रोहीनको मेरे दंडदाता यमके सर्पवत् क्रोधी गीध रोषकरकै चोंचसे छेदै हैं ॥ १० ॥ कठोर

नाहं तथाऽद्मि यजमानहविर्विताने श्च्योतद्घृतप्लुतमदन् हुतभुङ्मुखेन॥यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघासं तुष्टस्य
मय्यवहितैर्निजकर्मपाकैः ॥८॥ एषां बिभर्म्यहमखण्डविकुण्ठयोगमायाविभूतिरमलाङ्घ्रिरजः किरीटैः ॥ विप्रांस्तु को
न विषहेत यदर्हणाम्भः सद्यः पुनाति सह चन्द्रललामलोकान् ॥९॥ ये मे तनूर्द्विजवरान् दुहतीर्मदीया भूतान्यऽलब्धशरणानि
च भेदबुद्ध्या॥ द्रक्ष्यन्त्यघक्षतदृशो ह्यहिमन्यवस्तान् गृध्रा रुषा मम कुषन्त्यधिदण्डनेतुः ॥ १० ॥ ये
ब्राह्मणान् मयि धिया क्षिपतोऽर्चयन्तस्तुष्यद्धृदः स्मितसुधोक्षितपद्मवक्त्राः ॥ वाण्याऽनुरागकलयाऽऽत्मजवद्गृणन्तः
संबोधयन्त्यहमिवाहमुपाहृतस्तैः ॥११॥ तन्मे स्वभर्तुरवसायमलक्षमाणौ युष्मद्व्यतिक्रमगतिं प्रतिपद्य सद्यः ॥ भूयो
ममान्तिकमितां तदनुग्रहो मे यत् कल्पतामचिरतो भृतयोर्विवासः ॥ १२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ अथ तस्योशतीं देवीमृषिकुल्यां
सरस्वतीम् ॥ नास्वाद्य मन्युदष्टानां तेषामात्माऽप्यतृप्यत ॥ १३ ॥

बोलवेवारे ब्राह्मणनकों जो ईश्वरबुद्धिसे पूजैहैं हृदयसैं तुष्ट हो स्मितसुधासिक्त कमलसरीके मुखकी प्रेमशोभित वाणीसे जो स्तुति करैं हैं मेरी समान संबोधन करै हैं उन्होनें मोकों वश कीनों है ॥ ११ ॥ मुझ अपने स्वामीका अभिप्राय जानकर ये दोनों पार्षद तुम्हारे अपराधकी उचिता गतिको शीघ्र प्राप्त होकर फेर मेरे समीप आवैंगे ये मेरी कृपा है, मेरे भृत्यनकों थोडे काल वनवास रहै ॥ १२ ॥ ब्रह्माजी बोले कि याके उपरांत सुंदर प्रकाशित ऋषिकुल योग्य वचन सुनकर, तिन क्रोधसर्पसें डसे भएनके आत्माभी तृप्त होतेभये ॥ १३ ॥

ब्रह्माजी बोले कि इसप्रकार स्तुति करते योगाभ्यासी मुनीनकी प्रशंसा कर श्रीवैकुंठवासी प्रभु बोले ॥ १ ॥ श्रीभगवान् बोले कि ये दोंनों जय विजय पार्षदोंनें तुमारो अपराध करो सो मेरोभी अपराध करो है ॥ २ ॥ मेरे अनुवर्ति तुमनें जो इनकों दंड दींनों सोही हमारेको संमत है कारणकि इन्होंने मुनीनको देवतानको अनादर कीनों है ॥ ३ ॥ ब्राह्मण मेरे परम देवता हैं सो मैं तुम्है अब प्रसन्न करूंगो हमारे पार्षदननें जो अपराध कीनो है सो हमनेंही करो है ऐसे हम माने हैं ॥ ४ ॥ चाकर जाके अपराध करैं तो लोक मालककोही नाम लेहैं वो असाधुवाद सब कीर्तिको नाश करै है जैसे श्वेतकुष्टको रोग सब शरीरको बिगाडै ॥ ५ ॥ जिन श्रीमन्नारायणको अमृत समान निर्मल यश श्रवणमें स्नान करनो

ब्रह्मोवाच ॥ इति तद्गृणतां तेषां मुनीनां योगधर्मिणाम् ॥ प्रतिनन्द्य जगादेदं विकुण्ठनिलयो विभुः ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ एतौ तौ पार्षदौ मह्यं जयो विजय एव च ॥ कदर्थीकृत्य मां यद्वो बह्वक्रान्तामतिक्रमम् ॥ २ ॥ यस्त्वेतयोर्धृतो दण्डो भवद्भिर्मामनुव्रतैः ॥ स एवानुमतोऽस्माभिर्मुनयो देवहेलनात् ॥ ३ ॥ तद्वः प्रसादयाम्यद्य ब्रह्म दैवं परं हि मे ॥ तद्धीत्यात्मकृतं मन्ये यत्स्वपुम्भिरसत्कृताः ॥ ४ ॥ यन्नामानि च गृह्णाति लोको भृत्ये कृतागसि ॥ सोऽसाधुवादस्तत्कीर्तिं हन्ति त्वचमिवामयः ॥ ५ ॥ यस्यामृतामलयशःश्रवणावगाहः सद्यः पुनाति जगदाश्वपचाद्विकुण्ठः ॥ सोऽहं भवद्भ्य उपलब्धसुतीर्थकीर्तिश्छिन्द्यां स्वबाहुमपि वः प्रतिकूलवृत्तिम् ॥ ६ ॥ यत्सेवया चरणपद्मपवित्ररेणुं सद्यः क्षताखिलमलं प्रतिलब्धशीलम् ॥ न श्रीर्विरक्तमपि मां विजहाति यस्याः प्रेक्षालवार्थ इतरे नियमान्वहन्ति ॥ ७ ॥

जगत्के श्वपचपर्यंतको तत्काल पवित्र करै है, सो पवित्रकीर्ति वैकुंठपति हम आपकों प्राप्त भए सो जो तुम्हारी वृत्तिके प्रतिकूल हमारी भुजा होय उसैभी छेदन करडालूं फिर औरकी तौ बातही क्या है लोकपाल होय तोभी मारडालूं ॥ ६ ॥ जिनकी सेवा करकै मेरे चरणकमलकी रेणु पवित्र मानीजातीहै और मैं सब जगतके पापको तत्काल दूर करसक्ताहूं तथा शीलवान हूं और विरक्त रहने परभी श्रीमहालक्ष्मी मुझै त्याग नहीं करती है जा श्रीलक्ष्मीके लवमात्र अनुग्रहार्थ ब्रह्मादिक नियमनको धारण करते हैं ॥ ७ ॥

सनकादिक बोले कि हे अनंत! जो आप हृदयमें प्राप्तभी हो तोभी दुरात्मानको दर्शन न देओहो; सो आप हमारे नेत्रके सन्मुख प्राप्त भए, आपसें उत्पन्न एकांतमें उपदेश करो रहस्य, पिता ब्रह्माकरके जा समय कर्णके विवरसें प्राप्त भए ताही समय अंतःकरणमें आप प्राप्त होते भए ॥ ४६ ॥ हे भगवन्! आपकी कृपासै जानेहुए भक्तिरूप उपाय द्वारा शुद्ध सतोगुणयुक्त अहंकार विहीन विरक्त मुनिलोग जिस आत्मस्वरूपको हृदयमें अनुभव करते हैं जो शुद्ध सत्त्वमूर्ति धारणकर भक्तोंपर प्रीति करते हैं हम आपके उस आत्मतत्व स्वरूपको जान्ते हैं ॥ ४७ ॥ तुम्हारे भक्त आपके अत्यन्त प्रसादरूप मुक्तिकोभी इच्छा नहीं करते फिर आपकी भ्रुकुटीसै भय मान्नेहारे इन्द्रपदकी कथाही क्या है हे भगवन्! आपकी

कुमारा ऊचुः ॥ योऽन्तर्हितो हृदि गतोऽपि दुरात्मनां त्वं सोऽद्यैव नो नयनमूलमनन्तराद्धः ॥ यर्ह्येव कर्णविवरेण गुहां गतो नः पित्राऽनुवर्णितरहा भवदुद्भवेन ॥ ४६ ॥ तं त्वा विदाम भगवन् परमात्मतत्त्वं सत्त्वेन संप्रति रतिं रचयन्तमेषाम् ॥ यत्तेऽनुतापविदितैर्दृढभक्तियोगैरुद्ग्रन्थयो हृदि विदुर्मुनयो विरागाः ॥ ४७॥ नात्यन्तिकं विगणयन्त्यपि ते प्रसादं किं त्वन्यदर्पितभयं भ्रुव उन्नयैस्ते ॥ येऽङ्ग त्वदङ्घ्रिशरणा भवतः कथायाः कीर्तन्यतीर्थयशसः कुशला रसज्ञाः ॥ ४८॥ कामं भवः स्ववृजिनैर्निरयेषु नः स्ताच्चेतोऽलिवद्यदि नु ते पदयो रमेत ॥ वाचश्च नस्तुलसिवद्यदि तेऽङ्घ्रिशोभाः पूर्येत ते गुणगणैर्यदि कर्णरन्ध्रः ॥ ४९ ॥ प्रादुश्चकर्थ यदिदं पुरुहूतरूपं तेनेश निर्वृतिमवापुरलं दृशो नः ॥ तस्मा इदं भगवते नम इद्विधेम योऽनात्मनां दुरुदयो भगवान् प्रतीतः ॥ ५० ॥ इति श्रीभा॰ तृतीय॰ श्रीवैकुण्ठवर्णनं विप्रशापवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

कथा कीर्तन तीर्थ यश कर्ममैं कुशल रसज्ञ तुम्हारे चरणकीही शरण होय हैं ॥ ४८ ॥ हे भगवन्! आपके भक्तनको शाप दीनों सो हमारो भलेई नरकमें जन्म होय, परंतु चित्त भ्रमरवत् तुम्हारे पदमें सदा रमैं, तुलसीवत् तुम्हारे चरणकी शोभा वाणी कहैं, और कर्णको छिद्र तुम्हारे गुणगणोंसे पूर्ण होय ॥ ४९ ॥ हे विपुलकीर्ते! जो ये रूप आपनें प्रगट कीनों यासे हमारी दृष्टिको अत्यंत आनंद भयो, ताते भगवानको नमस्कार होय, अजितेंद्रियोंको अप्रगट हो तोभी भगवान् सन्मुख भएहो ॥ ५० ॥ इति श्रीभा॰भा॰तृ॰विप्रशापवर्णनं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

पहिने एक हाथ गरुडपर धरे, दूसरेसें कमलकूं घुमाते ॥ ४० ॥ बिजुरीके तेजको दूर करनेहारे मकराकृत कुंडलसें शोभित कपोल ऊंची नाक सुंदर मुख मणिमय किरीट धारे भुजदंडके समूहोंके मध्यमें मनोहर बढमोले हार कंठमें कौस्तुभमणि धारे शोभित हैं ॥ ४१ ॥ श्रीमहालक्ष्मीकी सब सुंदरता भगवतके सौंदर्यमें अस्त होयगई है, अपनें भक्तोंकी बुद्धिकरकै विशेषकरकै रचेभए बहुत सुंदरताको धारेहै, भक्त जैसी चाहैं तैसी सुंदरता धारैं हैं, मेरे अर्थ महादेवके लिये और जो कोई भजन करै उनके वास्ते शरीरधारी श्रीभूलीलानायक श्रीमन्नारायणको देख दर्शन कर अतृप्त दृष्टि सनकादिक आनंदसें अपनें अपनें शिरोंसे नमस्कार करतेभए ॥ ४२ ॥ कमलनयनके पदारविंदकी केशरमिश्रित तुलसीके सुगंधकी

विद्युत्क्षिपन्मकरकुण्डलमण्डनार्हगण्डस्थलोन्नसमुखं मणिमत्किरीटम् ॥ दोर्दण्डखण्डविवरे हरता परार्ध्यहारेण कन्धरगतेन च कौस्तुभेन ॥ ४१ ॥ अत्रोपसृष्टमिति चोत्स्मितमिन्दिरायाः स्वानां धियां विरचितं बहुसौष्ठवाढ्यम् ॥ मह्यं भवस्य भवतां च भजन्तमङ्ग नेमुर्निरीक्ष्य न वितृप्तदृशो मुदा कैः ॥४२॥ तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्दकिञ्जल्कमिश्रतुलसीमकरन्दवायुः ॥ अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां संक्षोभमक्षरजुषामपि चित्ततन्वोः ॥ ४३ ॥ ते वा अमुष्य वदनासितपद्मकोशमुद्वीक्ष्य सुन्दरतराधरकुन्दहासम् ॥ लब्धाशिषः पुनरवेक्ष्य तदीयमङ्घ्रिद्वन्द्वं नखारुणमणिश्रयणं निदध्युः ॥ ४४ ॥ पुसां गतिं मृगयतामिह योगमार्गैर्ध्यानास्पदं बहुमतं नयनाभिरामम् ॥ पौंस्नं वपुर्दर्शयानमनन्यासिद्धैरौत्पत्तिकैः समगृणन्युतमष्टभोगैः ॥ ४९ ॥

वायु नासाके छिद्रसे भीतर होकर ब्रह्मानंदसेवा करवेवारेनकेभी चित्त देहको बहुत क्षोभ करतीभई ॥ ४३ ॥ श्रीवैकुंठपतिके अत्यंत सुंदर अधर और कुंदकलीसमान उज्ज्वल हास्ययुक्त मुखकमलको देख सब आशीर्वादनकों प्राप्त होकर फिर तिनके दोनो चरणनके माणिक्यवत् लाल नख देख सनकादिक ध्यान करतेभए ॥ ४४ ॥ या विश्वमें योगमार्गसें पुरुषनकी गतीनकों ढूंढनेवारोंको ध्यानयोग्य तत्ववेत्तापुरुषोंके सन्मान योग्य नेत्रोंको आनन्द देनेहारे स्वाभाविक अणिमादि आठ सिद्धियोंसें संयुक्त और अपने पुरुषस्वरूपसे दर्शन देते हरि भगवानकी सनकादिक स्तुति करनेंलगे ॥ ४९ ॥

और बोले जो आपनें दंड दियो सो पापयोनि हमैं होय, जासें देवकी अवज्ञारूप अपराध हरजाय, यहांसें हम नीचैसे नीचेकी योनिमैं जाय तोभी आपकी कृपाकरकै भगवतकी स्मृतिको नाशक मोह न होय ॥ ३६ ॥ या प्रकार वाही समय बडोंके मन हरवेवारे कमलनाभ भगवान् अपनें पार्षदनसे अपनेनको अपराध करचो जान परमहंस महामुनि जिन चरणनको ढूंढैं तिनचरणोंसे श्रीमहालक्ष्मीजी सहित तहां आप आवतेभए " श्रीमच्चरणदर्शनप्रतिघातजं क्रोधं तौ दर्शयन् शमयिष्यामीति त्वराव्याजेन चरणाभ्यामेव ययौ " ॥ ३७ ॥ पांच श्लोकसे भगवत्स्वरूप वर्णन करैहै कि भगवत्पार्षद श्रीहरिके उपयोगी छत्र चमर लिये भगवतके संग नेत्रको विषय भए अपनी समाधिरूप भाग्यसें प्राप्त, हंसतुल्य दो पं-

भूयादघोनि भगवद्भिरकारि दण्डो यो नौ हरेत सुरहेलनमप्यशेषम् ॥ मा वोऽनुतापकलया भगवत्स्मृतिघ्नो मोहो भवेदिह तु नौ व्रजतोरधोऽधः ॥ ३६ ॥ एवं तदैव भगवानरविन्दनाभः स्वानां विबुध्य सदतिक्रममार्यहृद्यः ॥ तस्मिन्ययौ परमहंसमहामुनीनामन्वेषणीयचरणौ चलयन्सहश्रीः ॥ ३७ ॥ तं त्वागतं प्रतिहृतौपयिकं स्वपुंभिस्तेऽचक्षताऽक्षविषयं स्वसमाधिभाग्यम् ॥ हंसश्रियोर्व्यजनयोः शिववायुलोलच्छुभ्रातपत्रशशिकेसरशीकराम्बुम् ॥ ३८ ॥ कृत्स्नप्रसादसुमुखं स्पृहणीयधाम स्नेहावलोककलया हृदि संस्पृशन्तम् ॥ श्यामे पृथावुरसि शोभितया श्रिया स्वश्चूडामणिं सुभगयन्तमिवात्मधिष्ण्यम् ॥ ३९ ॥ पीतांशुके पृथुनितम्बिनि विस्फुरन्त्या काञ्च्याऽलिभिर्विरुतया वनमालया च ॥ वल्गुप्रकोष्ठवलयं विनतासुतांसे विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जम् ॥ ४० ॥

खोंके सुखदायक वायुसे चलायमान शुक्ल चंद्रसमान छत्रकी झालरनसे मोती अंबुकणिकाकी समान गिररहे हैं ॥ ३८ ॥ द्वारपाल और सनकादि मुनियोंपर कृपा करनैमें जिनका प्रसन्न मुख है जो स्पृहणीय गुणोंके धाम हैं जो प्रेमभरी दृष्टिसै भक्तौंके हृदयको सुख देतेहैं श्याम और बडे वक्षस्थल के बीच शोभायमान लक्ष्मीके निमित्त सातौं लोकौंके ऊपर मुकुटमणिके समान विराजमान अपने धाम वैकुंठको शोभित कर रहे हैं ॥ ॥ ३९ ॥ बडे कटिपश्चाद्भागपर पीतांबर धारे, दमकतीभई क्षुद्रघंटिकासें शोभित, भ्रमरगुंजारसंसक्त वनमाला पहिने, मनोहर हाथमें कडा

जब पूज्यतम श्रीनारायणके द्वारपालोंने देवताओंके देखते २ उन्है रोक दिया तब अत्यंत सुहृद श्रीमन्नारायणके देखवेकी चाह भंगसे कुछेक
कामदेवके भाई क्रोधसे लाल नेत्रकर सनकादिक बोले ॥ ३१ ॥ सनकादि मुनिलोग बोले कि तुम दोनों कौन हो जो बडी भारी भगवतकी
परिचर्या कर या वैकुठमें आये, निवास करनेवाले समदृष्टि पुरुषोंमेंसे किसीको प्रवेश करने दैना किसीको नहीं यहां आनेपरभी तुह्मारी यह
विषम दृष्टि कैसे भई या वैकुंठमें प्रशांत पुरुष श्रीमन्नारायणके विग्रहके दर्शनको भगवद्भक्त विना और कौन आवैगो, जैसे तुम आप कपटी हो
तैसें औरमेंभी शंका करतेहो याते तुम धूर्त हो ॥ ३२ ॥ या दिव्य त्रिपाद विभूतिमें सब विश्व जाके कोखमें है सब आत्मानके आत्मामें धीर

ताभ्यां मिषत्स्वनिमिषेषु निषिध्यमानाः स्वर्हत्तमा ह्यपि हरेः प्रतिहारपाभ्याम् ॥ ऊचुः सुहृत्तमदिदृक्षितभङ्ग ईषत्का-
मानुजेन सहसा त उपप्लुताक्षाः ॥ ३१ ॥ मुनय ऊचुः ॥ को वामिहैत्य भगवत्परिचर्ययोच्चैस्तद्धर्मिणां निवसतां विषमः
स्वभावः ॥ तस्मिन् प्रशान्तपुरुषे गतविग्रहे वां को वात्मवत्कुहकयोः परिशङ्कनीयः ॥ ३२ ॥ न ह्यन्तरं भगवतीह सम-
स्तकुक्षावात्मानमात्मनि नभो नभसीव धीराः ॥ पश्यन्ति यत्र युवयोः सुरलिङ्गिनोः किं व्युत्पादितं ह्युदरभेदि भयं य-
तोस्य ॥ ३३ ॥ तद्वाममुष्य परमस्य विकुण्ठभर्तुः कर्तुं प्रकृष्टमिह धीमहि मन्दधीभ्याम् ॥ लोकानितो व्रजतमन्तरभा-
वदृष्ट्या पापीयसस्त्रय इमे रिपवोऽस्य यत्र ॥ ३४ ॥ तेषामितीरितमुभाववधार्य घोरं तं ब्रह्मदण्डमनिवारणमस्त्रपूगैः ॥
सद्यो हरेरनुचरावुरु बिभ्यतस्तत्पादग्रहावपततामतिकातरेण ॥ ३५ ॥

लोग तनक भेद नहीं देखैं है, जैसे आकाशमें आकाशको भेद नहीं, याते श्रीहरीके सुरवेषधारी तुमको ये भेद कैसें उत्पन्न भयो जैसें पेट भरवे-
वारेको दुसरे और उदरपोषकको भय होय तैसें तुम्है क्यों भयो ॥ ३३ ॥ तातें इन वैकुंठनाथ परमश्रेष्ठ ईश्वरके मंदभागी तुमसरीकेनको जामें
कल्याण होय सो करवेको ये विचारो है कि या वेकुंठसे उन लोकनमें तुम जाओ जहां भेदभाव करनेवालोंके महाशत्रु काम क्रोध लोभादि विद्य-
मान हैं ॥ ३४ ॥ यह घोर ब्रह्मशाप जो अस्त्रोंके समूहोंसेभी न निवारण किया जाय वे दोन पार्षद सुनकर महाभयभीत हुए और अतिकातर
होकर वे दौनौ भगवत्के द्वारपाल सनकादिकके चरणोंमें गिरपडे ॥ ३५ ॥

काल और देवनमें श्रेष्ठ श्रीमन्नारायण भर्ताकी सेवा करनसे जिन्हे यमादिककी आवश्यकता नहीं करुणामय, शीलवान आपसमें सुंदर भगवतके यश कथनके अनुरागसे विवश अश्रुपातसे अंगमें पुलकावलीवारे हमसे श्रेष्ठ ब्राह्मण वैकुंठको जाय हैं ॥२५॥ याके उपरांत विश्वके गुरु जहां विराजे सब भुवननमें एक वंदन करवेयोग्य, दिव्य विचित्र देवेंद्रोंके विमानोंकी कांतिवारे वैकुंठमें योगमायाके बलकरकै मुनिलोगननें जो पूर्व न देखो सो प्राप्त होकर अत्यंत आनंदको प्राप्त होते भए ॥ २६ ॥ वा वैकुंठमैं मुनिलोग छै डयोढीनको उलांघकर सातवी डयोढीपर गदा लिये बढमोले बाजु कुंडल किरीटसे सुंदर वेषधारी दो देव जय विजय नामक पार्षद देखतेभए ॥ २७ ॥ मतवारे भ्रमरोंकी गुंजारसे युक्त कंठमें वनमाला पहरे जो

यच्च व्रजन्त्यऽनिमिषामृषभानुवृत्त्या दूरे यमा ह्युपरि नः स्पृहणीयशीलाः॥ भर्तुर्मिथः सुयशसः कथनानुरागवैक्लव्यबाष्पकलया पुलकीकृताङ्गाः ॥ २५ ॥ तद्विश्वगुर्वधिकृतं भुवनैकवन्द्यं दिव्यं विचित्रविबुधाग्र्यविमानशोचिः ॥ आपुः परां मुदमपूर्वमुपेत्य योगमायाबलेन मुनयस्तदथो विकुण्ठम् ॥ २६ ॥ तस्मिन्नतीत्य मुनयः षडसज्जमानाः कक्षाः समानवयसावथ सप्तमायाम् ॥ देवावचक्षत गृहीतगदौ परार्ध्यकेयूरकुण्डलकिरीटविटङ्कवेषौ ॥ २७॥ मत्तद्विरेफवनमालिकया निवीतौ विन्यस्तया सितचतुष्टयबाहुमध्ये ॥ वक्त्रं भ्रुवौ कुटिलया स्फुटनिर्गमाभ्यां रक्तेक्षणेन च मनाग् रभसं दधानौ ॥ २८ ॥ द्वार्येतयोर्निविविशुर्मिषतोरपृष्ट्वा पूर्वा यथा पुरटवज्रकपाटिकायाः ॥ सर्वत्र तेऽविषमया मुनयः स्वदृष्ट्या विश्वं चरन्त्यविहता विगताभिशङ्काः ॥२९॥ तान्वीक्ष्य वातरशनांश्चतुरः कुमारान्वृद्धान्दशार्धवयसो विदितात्मतत्त्वान् ॥ वेत्रेण चास्खलयतामतदर्हणांस्तौ तेजो विहस्य भगवत्प्रतिकूलशीलौ ॥ ३० ॥

कि श्याम चार भुजाओंके बीचमें शोभित है कुटिलभ्रू और चढी नाक और लाल नेत्रोंसे जिनके कुछ क्रोध प्रतीत हो रहाहै ॥ २८ ॥ सुवर्णमें जटित हीराके कपाट युक्त पहिले द्वारनकों जैसे उल्लंघन करते आए तैसे इनको देखते या द्वारमेंबी वे ऋषि घुसतेभये, क्यों कि सर्वत्र वे अविषम दृष्टिसे सर्वत्र अनिवारित भयत्यागे विचरते हैं ॥ २९ ॥ आत्मतत्वके ज्ञाता पवनआहारी चारों कुमार वृद्ध होनेपरभी पांच वर्षकी अवस्थाके प्रतीत होते रोकनेके अयोग्य भगवतके तेज उन सनकादिक कुमारोंको वे भगवतसे प्रतिकूल स्वभाववारे द्वारपाल हंसकर वेतसे रोकतेभए ॥ ३० ॥

197

नितम्बौंसे युक्त और शोभायमान मुस्क्यान युक्त मुखवाली ललना जहां श्रीकृष्णमें मन लगाये पुरुषौंके हृदयमें कामादि रजोगुण उत्पन्न नहीं करसक्ती ॥ २० ॥ श्रीमहालक्ष्मीजी चरणारविंदमें नूपुरनकी ध्वनिकों करतीभई लीलाके लिये कमल हाथमें लिये अपने चंचलताके दोषको त्यागे शोभाके निमित्त सुवर्ण संयुक्त स्फटिककी भीतवाले नारायणके मलमें बुहारी देतीसी प्रतीत होती हैं जिनके निमित्त ब्रह्मादिक यत्न करतेहैं॥२१॥ जहां अपनी सखियोंको संगलीये लक्ष्मी अपने वनमें तुलसीसे श्रीनारायणको अर्चन करती लक्ष्मी मूंगोंके तट और अमृत समान जलवाली बावडियोंमें सुंदर वार और ऊंचे नासिकावाले अपने मुखको प्रतिबिम्ब निहार कर ऐसा मान्ती हैं कि हमारे इस मुखका हरिने स्पर्श कियाहै लक्ष्मीका

श्रीरूपिणी क्वणयती चरणारविन्दं लीलाम्बुजेन हरिसद्मनि मुक्तदोषा ॥ संलक्ष्यते स्फटिककुड्य उपेतहेम्नि संमार्जतीव यदनुग्रहणेऽन्ययत्नः ॥ २१ ॥ वापीषु विद्रुमतटास्वऽमलामृताप्सु प्रेष्यान्विता निजवने तुलसीभिरीशम् ॥ अभ्यर्चती स्वलकमुन्नसमीक्ष्य वक्त्रमुच्छेषितं भगवतेत्यमताऽङ्ग यच्छ्रीः ॥ २२ ॥ यन्न व्रजन्त्यघभिदो रचनाऽनुवादाच्छृणवन्ति येऽन्यविषयाः कुकथा मतिघ्नीः ॥ यास्तु श्रुता हतभगैर्नृभिरात्तसारास्तांस्तान्क्षिपन्त्यऽशरणेषु तमस्सु हन्त ॥ २३ ॥ येऽभ्यर्थितामपि च नो नृगतिं प्रपन्ना ज्ञानं च तत्त्वविषयं सहधर्ममत्र ॥ नाराधनं भगवतो वितरन्त्यऽमुष्य संमोहिता विततया बत मायया ते ॥ २४ ॥

सौभाग्य नारायणकी अनुग्रहके आधीन है ॥ २२ ॥ वा वैकुंठकूं वे नहीं जायहै जो पापनाशक श्रीहरिकी सृष्ट्यादि चरित्रके विना और विषयकी मतिकी विनाश करनेवारी कुकथा सुने हैं बडे खेदकी बात है कि भाग्यहीन पुरुषननें जो सुनी है वो कुत्सित कथा उनके सब सार नाशकर कोई रक्षा न करै ऐसे नरकमें उनको पटकै हैं ॥ २३ ॥ हम ब्रह्मादिकभी जिस मनुष्यगतिकी इच्छा रखतेहैं वह मनुष्ययोनि कि जिसमें धर्म और तत्वज्ञान बहुत सुलभ है उस देहको पाकर जो नारायणका अर्चन नहींकरते वे हरिकी विस्तृत मायासे मोहित होनेके कारण वैकुंठको नहीं प्राप्त होते ॥ २४ ॥

जा श्रीवैकुंठलोकमें आद्य पुरुष शब्दमात्रके वक्ता भगवन्नारायण शुद्धसत्त्वमय रूप धारें शुद्धधर्ममूर्ति अपनें पार्षदनको सुखी करते विराजते हैं ॥ १५ ॥ जहां निरंतर सुखदायक नैःश्रेयसनामक वन है सब काम पूरण करवेवारे जहां द्रुम हैं सब ऋतुकी शोभासे प्रकाश होय रह्यो है, मानूं कैवल्य मूर्तिमान् विराजें हैं ॥ १६ ॥ जा वैकुंठमें श्रीमन्नारायणके सब लोकके पापनाशक चरित्र स्त्रीनकरकै सहित भगवत्पार्षद विमानपर बैठ बैठ गावे हैं, जहां जलके बीचमें खिलीहुई वसन्तऋतुसंबंधी मकरंद संयुक्त चमेलीकी लताओंकी सुगंधिसे आकृष्टमन हौनेपरभी नारायणके भजनके अत्यन्त आनंदसे उसका तिरस्कार करते हैं ॥ १७ ॥ कबूतर कोकिल सारस चक्रवाक चातक हंस शुक तीतर मयूरनको कोलाहल जब विरामको प्राप्त भयो तो भृंगराज श्रीहरिकथानको गायरहेहैं श्रीवैकुंठमें सब दिव्य है सबके शुद्धसत्त्वमय अप्राकृत देह हैं ॥ १८ ॥ जहां श्रीनारायण आभूषण रूपसै तुलसीका अंगिकार कर उसकी बड़ाई करते हैं तब कल्पवृक्ष, कुंद, तिलवृक्ष, रात्रिमें प्रकाश करनेहारे कमल, चंपक, अर्ण, मोगरा, पुन्नाग, नागकेसर, बकुल, दिनमें प्रकाश करनेहारे कमल, और सुगंधिवाले पुष्प वृक्ष स्वयं सुगंधियुक्त हौनेपरभी ईर्षा रहित हो तुलसीके तपका बहुत मान करते हैं ॥ १९ ॥ श्रीहरिके पदको नमस्कार मात्र करनेमें आये देखनेमें वैडूर्य मरकत सुवर्णमय विमानोंसें वैकुंठ सघन होय रह्योहै, बडे

यत्र चाऽद्यः पुमानास्ते भगवाङ्छब्दगोचरः ॥ सत्त्वं विष्टभ्य विरजं स्वानां नो मृडयन्वृषम् ॥ १५ ॥ यत्र नैःश्रेयसं नाम वनं कामदुघैर्द्रुमैः ॥ सर्वर्तुश्रीभिर्विभ्राजत्कैवल्यमिव मूर्तिमत् ॥ १६ ॥ वैमानिकाः सललनाश्चरितानि यत्र गायन्ति लोकशमलक्षपणानि भर्तुः ॥ अन्तर्जलेऽनुविकसन्मधुमाधवीनां गन्धेन खण्डितधियोऽप्यनिलं क्षिपन्तः ॥ १७ ॥ पारावतान्यभृतसारसचक्रवाकदात्यूहहंसशुकतित्तिरिबर्हिणां यः ॥ कोलाहलो विरमतेऽचिरमात्रमुच्चैर्भृङ्गाधिपे हरिकथामिव गायमाने ॥ १८ ॥ मन्दारकुन्दकुरबोत्पलचम्पकार्णपुन्नागनागबकुलाम्बुजपारिजाताः ॥ गन्धेऽर्चिते तुलसिकाभरणेन तस्या यस्मिंस्तपः सुमनसो बहु मानयन्ति ॥ १९ ॥ यत् संकुलं हरिपदानतिमात्रदृष्टैर्वैडूर्यमारकतहेममयैर्विमानैः ॥ येषां बृहत्कटितटाः स्मितशोभिमुख्यः कृष्णात्मनां न रज आदधुरुत्स्मयाद्यैः ॥ २० ॥

सच हाकमको भाते हैं ॥ छूठ कपट छल छिद्र बुराइया ये सबही उतपाते हैं ॥ ८ ॥ शिरपर धरत हुकम हाकमको हक्क अपनो लेखाते हैं ॥ हरद महाजरनेकी करते वे फिर माफी
पाते हैं ॥ ९ ॥ हक्क औरको छीन लेत हैं परधन ठगठग लाते हैं ॥ उनके घरके बाग बगीचे आंम औरही खाते हैं ॥ १० ॥ जोई जोई बागी भए हाकमके सोई खतरे खाते हैं ॥
बहुत माल घर वार खजाना खैर खाह सब पाते हैं ॥ ११ ॥ सबके शिरपर चढत रातदिन वेदपुराण हटाते हैं ॥ वे चिडिया मुरगे बकरे बन अपनो शीश कटाते हैं ॥ १२ ॥ पुरुषो-
त्तमकी कही निसानी सुन चितमें कोई लाते हैं ॥ ब्रह्मानंद पाय सुखपूरण जन्ममरण मिटजाते हैं ॥ १३ ॥

दोहा-जो चाहो निस्तार निज तौ भजिये ब्रजचंद ॥ निकट न फिर यमयातना दूर सकल दुखदंद ॥ विष्णुरात शुकदेवको यह अद्भुत संवाद ॥ चारो पदारथ देत है लो ज्वालाप्रसाद ॥

॥ अथाच्युताष्टकम् ॥

ाच्युतं केशवं रामनारायणं कृष्णदामोदरं वासुदेवं भजे ॥ श्रीधरं माधवं गोपिकावल्लभं जानकीनायकं रामचन्द्रं हरिम् ॥१॥ अच्युतं केशवं सत्यभा-
ाधवं माधवं श्रीधरं राधिकाराधनम् ॥ इन्दिरामन्दिरं चेतसा सुन्दरं देवकीनन्दनं नन्दजं संदधे ॥२॥ विष्णवे जिष्णवे शङ्खिने चक्रिणे रुक्मिणीरागिणे
जानकीजानये ॥ बल्लवीवल्लभायाजितायात्मने कंसविध्वंसिने वंशिने ते नमः ॥ ३ ॥ कृष्ण गोविन्द हे राम नारायण श्रीपते वासुदेवार्चित श्रीनिधे ॥
अच्युतानन्त हे माधवाधोक्षज द्वारकानायक द्रौपदीरक्षक ॥ ४ ॥ राक्षसक्षोभितः सीतया शोभितो दण्डकारण्यभूपुण्यताकारणम् ॥ लक्ष्मणेनान्वि-
तो वानरैः सेवितोऽगस्तिना पूजितो राघवः पातु माम् ॥५॥ धेनुकारिष्टकानिष्टकृद्द्वेषिणां केशिहा कंसहृद्वंशिकावादकः ॥ पूतनाशोषकः सूरजाखेलनो
बालगोपालकः पातु मां सर्वदा ॥ ६ ॥ वैद्युतद्योतकासंस्फुरद्वाससा प्रावृडम्भोदवत्प्रोल्लसद्विग्रहम् ॥ वैजयन्तीप्रभाशोभितोरस्थलं लोहिताङ्घ्रि-
द्वयं वारिजाक्षं भजे ॥ ७ ॥ कुञ्चितैः कुन्तलैर्भ्राजमानाननं रत्नमौलिं लसत्कुण्डलं गण्डयोः ॥ हारकेयूरिणं किङ्किणोजाज्वलं किङ्किणीमञ्जुलं श्याम-
लं भावये ॥ ८ ॥ अच्युतस्याष्टकं यः पठेत् प्रत्यहं प्रेमतः प्रत्यहं सर्वतः सन्नहम् ॥ सर्वतः सुन्दरं कर्तृविश्वंभरस्तस्य वश्यो हरिर्जायते सत्वरम् ॥९॥

इति श्रीमदच्युताष्टकं संपूर्णम् ॥

इदं पुस्तकं कल्याणनगर्यां श्रीकृष्णदासात्मजेन गङ्गाविष्णुना स्वकीये “लक्ष्मीवेंकटेश्वर”
मुद्रणयन्त्रालयेऽङ्कित्वा प्रकाशितम् ॥ संवत् १९५२ शके १८१७। कल्याण-मुंबई.

॥ इति भाषाटीकायुत श्रीमद्भागवते पञ्चमस्कंधः समाप्तः॥

2.50

२२

॥ अथ भाषाटीकायुतश्रीमद्भागवतदशमस्कन्धप्रारम्भः ॥

यह ग्रन्थ सन् १८६७ के ऐक्ट २५ के अनुसार रजिष्टरी करके सब हक्क ग्रन्थाधिकारीने अपने स्वाधीन रक्खा है.

दशमस्कंध पूर्वार्धः

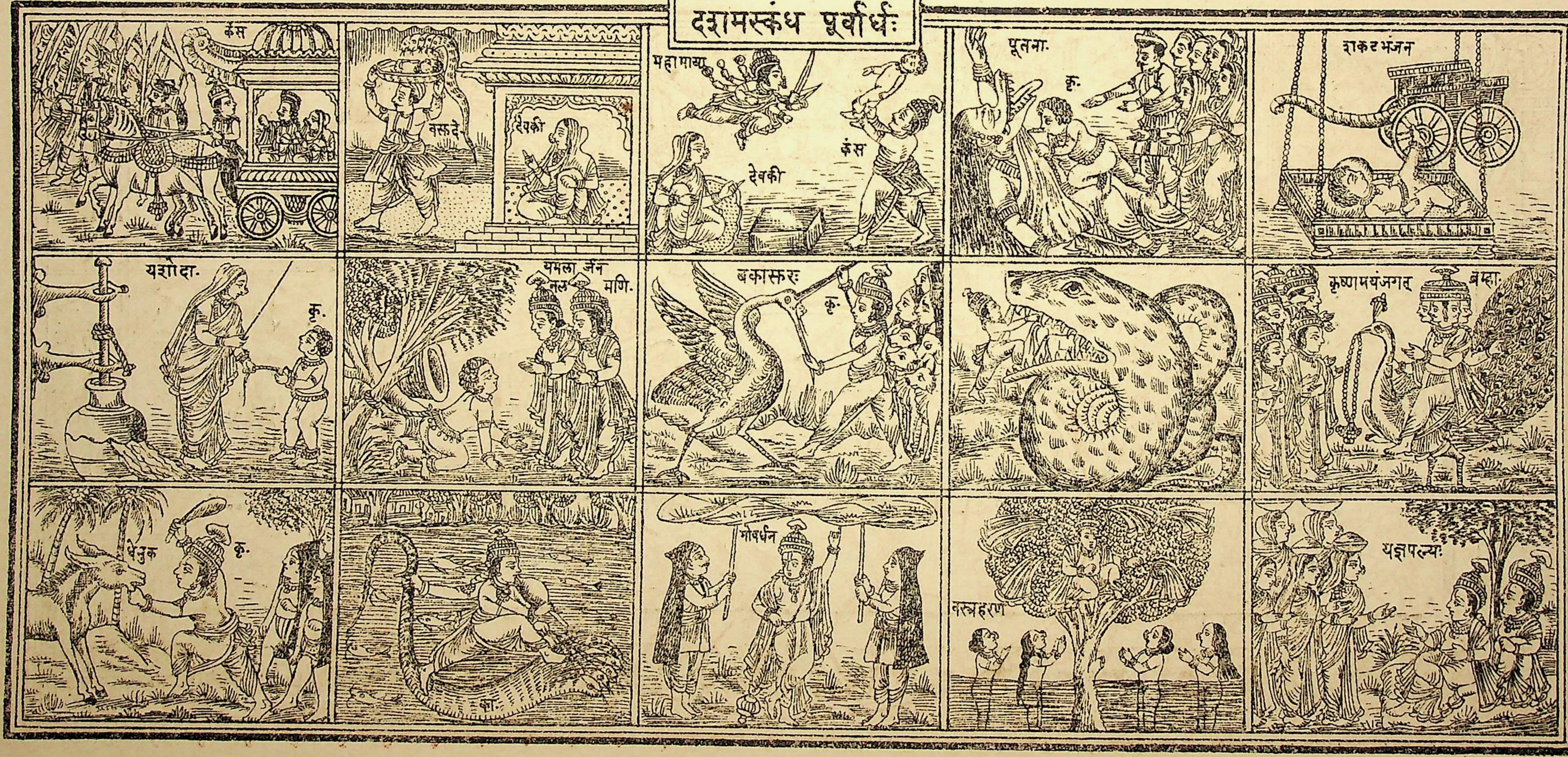
कंस
वसुदे
देवकी
महामाया
देवकी
कंस
पूतना
कृ.
शकटभंजन
यशोदा
कृ.
यमला र्जुन
नल मणि
बकासुरः
कृ.
कृष्णमयंजगत्
ब्रह्मा
धेनुक
कृ.
का.
गोवर्धन
वस्त्रहरण
यज्ञपत्न्यः

2

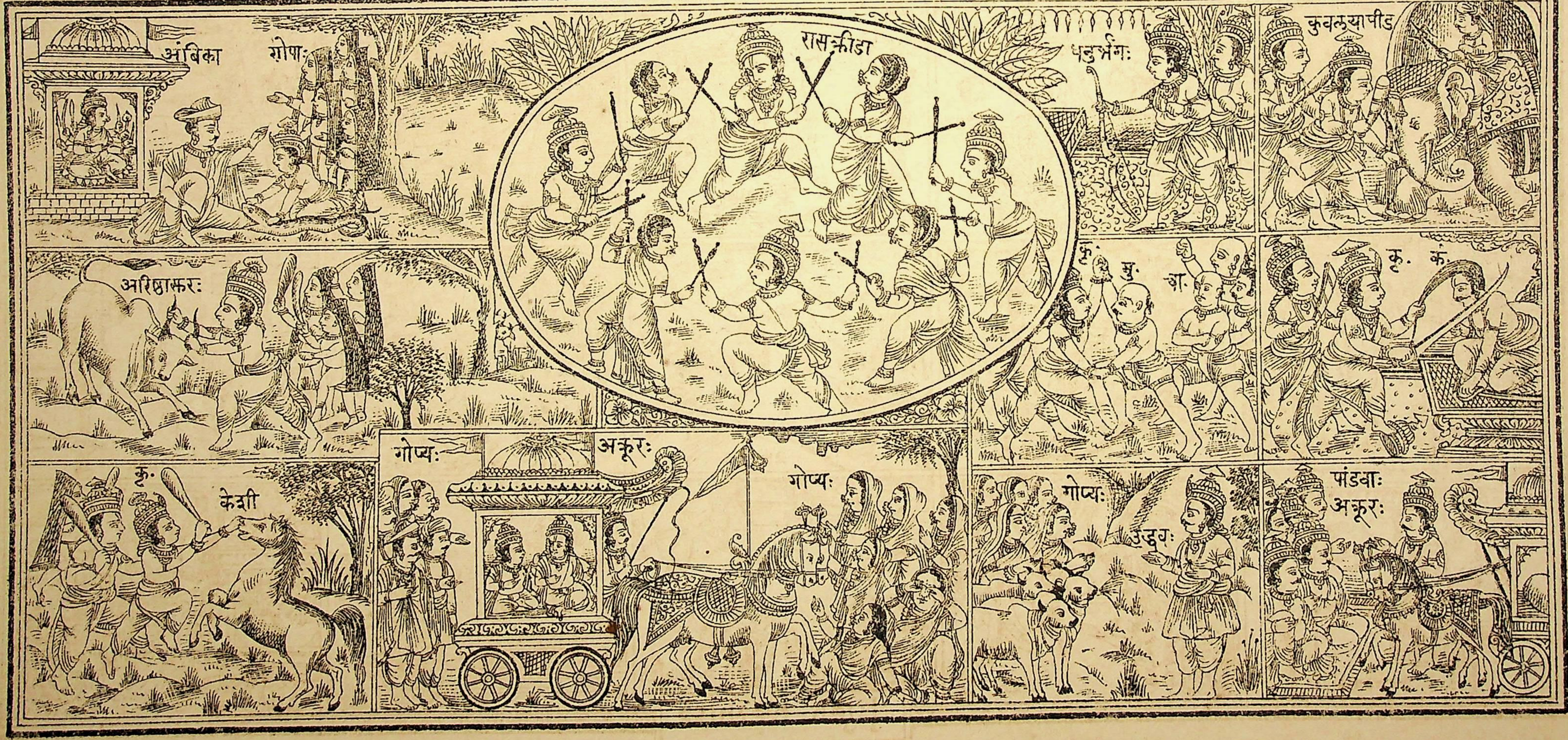
अंबिका
गोपाः
रासक्रीडा
धनुर्भंगः
कुवलयापीड
अरिष्टासुरः
कृ.
मु.
चा.
कृ.
कं.
कृ.
केशी
गोप्यः
अक्रूरः
गोप्यः
गोप्यः
उद्धवः
पांडवाः
अक्रूरः

3

॥४॥

श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥ अथ दशमस्कन्धो लिख्यते ॥ श्रीशुकदेवजी ते राजा परीक्षित् प्रश्नकरते हैं कि हेमहाराज ! आपने पूर्व नवमस्कन्धमें सूर्य्यवंश और चन्द्रवंश विस्तारपूर्वक कह्यो और दोनों वंशके राजानको आश्चर्य्ययुक्त चरित्र कह्यो ॥ १ ॥ हेमुनिनमें श्रेष्ठ ! धर्म्मशील महाराज यदुको वंश निरन्तर अच्छी तरहते कहो तिन महाराज यदुके वंशमें परिपूर्णरूपते अवतार लेकर श्रीकृष्णचन्द्र महाराजने जो लीलाचरित्र करे सो हमारे सन्मुख वर्णन कीजिये ❀ ॥ २ ॥ संपूर्ण प्राणिनके रक्षाकरनवारे भगवानने यदुवंशमें अवतार लेकर जो जो लीला करी तिनको हमारे आगे विस्तारपूर्वक कथन कीजिये ॥ ३ ॥ संसारमें तीन प्रकारके मनुष्य हैं एक तो ज्ञानी, द्वितीय मुमुक्षु, तृतीय विषयी, इन तीनों प्रकारके मनुष्यनको उत्तम

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ कथितो वंशविस्तारो भवता सोमसूर्ययोः ॥ राज्ञां चोभयवंश्यानां चरितं परमाद्भुतम् ॥ १ ॥ यदोश्च धर्मशीलस्य नितरां मुनिसत्तम ॥ तत्रांऽशेनावतीर्णस्य विष्णोर्वीर्याणि शंस नः ॥ २ ॥ अवतीर्य यदोर्वंशे भगवान्भूतभावनः ॥ कृतवान्यानि विश्वात्मा तानि नो वद विस्तरात् ॥ ३ ॥ निवृत्ततर्षैरुपगीयमानाद्भवौषधाच्छ्रोत्रमनोऽभिरामात् ॥ क उत्तमश्लोकगुणानुवादात्पुमान्विरज्येत विना पशुघ्नात् ॥ ४ ॥ पितामहा मे समरेऽमरञ्जयैर्देवव्रताद्यातिरथैस्तिमिङ्गिलैः ॥ दुरत्ययं कौरवसैन्यसागरं कृत्वाऽतरन्वत्सपदं स्म यत्प्लवाः ॥ ५ ॥

श्लोक भगवानके चरित्र प्रिय है, ज्ञानीनको परमेश्वरके चरित्र श्रवण करनेते संसारकी वासना दूर भई, और मोक्षकी इच्छा है जिनके ऐसे नारद उद्धवादिकनको संसाररूपी रोगके दूर करनको औषधि है, और विषयमें चित्त है जिनको ऐसे मनुष्यनके चित्तको और काननको आनंदके देनवारे हैं ऐसो आत्मघाती कोनसो मनुष्य है जो परमेश्वरके गुणानुवाद सुनकर उपरामको प्राप्तहोय ॥ ४ ॥ संग्राममें देवतानको पराजय करनवारे भीष्म सदृश ग्राहनसों अति दुस्तर कौरवकी सेनारूपी सागर ताको मेरे पितामह युधिष्ठिरादिक जैसे बछराके खुरके जलको मनुष्य उल्लंघन करि

❀ कहो कृष्णके चरित्र उदारा कौन भांति अवतार लियो प्रभु कौन भांति कंसासुर मारा ॥ १ ॥ कौने भांति नंदगृह गमने दैत्यमार ब्रज यश विस्तारा ॥ २ ॥ जिनके चरित पवित्र गानकर विनुश्रम पार होत संसारा ॥ ३ ॥ मिश्र कहो तिनके गुण हमसौ शरण सुखद जेहि वेद पुकारा ॥ ४ ॥

जायहै तैसें श्रीकृष्णरूपी नौकाको आश्रयकरिके पार उतरिगये ॥ ५ ॥ कौरव और पाण्डवनकी संतानको बीजरूप जो मेरो अंग सो अश्वत्थामाके ब्रह्मास्त्रके तेजते दग्ध देखकर मेरी माता उत्तरा अतिकष्टको प्राप्तह्वैकर श्रीकृष्णकी शरण प्राप्तभई, तासमय श्रीकृष्ण चक्र ग्रहणकर मेरी माताकी कुक्षिमें प्रविष्ट होकर रक्षा करतभये ॥ ६ ॥ हे विद्वन्! संपूर्णप्राणिनको पुरुष कालरूप संसारमोक्षके देनवारे अतिकृपाकरिके मनुष्यरूप धारण किये जो श्रीकृष्णचंद्र तिनकी लीला हमारे आगे कहो ॥ ७ ॥ और राम संकर्षण तुमने नवमस्कंधमें रोहिणीके पुत्र कहे, फिर तिनको देवकीके पुत्र कहे यामें संदेह होत है कि एक देहते दोउनके पुत्र कैसे भए ॥ ८ ॥ अपने पिता वसुदेवके घरते मुक्तिके देनवारे भगवान् ब्रजमें क्यों गये

द्रौण्यस्त्रविप्लुष्टमिदं मदङ्गं संतानबीजं कुरुपाण्डवानाम्॥जुगोप कुक्षिं गत आत्तचक्रो मातुश्च मे यः शरणं गतायाः॥६॥
वीर्याणि तस्याखिलदेहभाजामन्तर्बहिः पूरुषकालरूपैः ॥ प्रयच्छतो मृत्युमुतामृतं च मायामनुष्यस्य वदस्व विद्वन्
॥ ७ ॥ रोहिण्यास्तनयः प्रोक्तो रामः संकर्षणस्त्वया ॥ देवक्या गर्भसंबन्धः कुतो देहान्तरं विना ॥ ८ ॥ कस्मान्मुकुन्दो
भगवान्पितुर्गेहाद्व्रजं गतः ॥ क्व वासं ज्ञातिभिः सार्धं कृतवान्सात्वतांपतिः ॥ ९ ॥ व्रजे वसन्किमकरोन्मधुपुर्यां च
केशवः ॥ भ्रातरं चावधीत्कंसं मातुरद्धाऽतदर्हणम् ॥ १० ॥ देहं मानुषमाश्रित्य कति वर्षाणि वृष्णिभिः ॥ यदुपुर्यां सहावात्सीत्पत्न्यः
कत्यभवन्प्रभोः ॥ ११ ॥ एतदन्यच्च सर्वं मे मुने कृष्णविचेष्टितम् ॥ वक्तुमर्हसि सर्वज्ञ श्रद्दधानाय
विस्तृतम् ॥ १२ ॥ नैषातिदुःसहा क्षुन्मां त्यक्तोदमपि बाधते ॥ पिबन्तं त्वन्मुखाम्भोजच्युतं हरिकथामृतम् ॥ १३ ॥

और भक्तनके रक्षक भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अपनी ज्ञातिके मनुष्यनको संग लेकर कहां वसे ॥ ९ ॥ ब्रजमें वसिकै भगवान् कहा करतभये, और मथुरामें वसिके कहा करतभए, और माताके भैया कंसको सन्मुख ठाडे व्हैकर अपने हाथसों कैसे मारतेभये ॥ १० ॥ हेप्रभो ! मनुष्यदेह धारणकरिके श्रीकृष्णचंद्र यादवनसहित मथुरापुरीमें कितने वर्षपर्यंत वसे, और उनके कितनी स्त्री भईं सो मेरे आगे कहो ॥ ११ ॥ जो प्रथम मैंने प्रश्न कऱ्यो है सो और जो श्रीकृष्णजीको चरित्र प्रश्नकरवेमें बाकीरह्यो है, सो सब श्रद्धावान् मेरे आगे विस्तारते कहो, काहेसौं कि हे मुनि ! आप संपूर्णके जानिवेवारे हो ॥ १२ ॥ तुम्हारे चंद्ररूपीमुखसों निकसे हरिकथारूपी अमृतके पान करनेसे मैंने जलपानादि सब त्याग दियाहै और

यह न सहनेके योग्य क्षुधाभी मुझको अब बाधा नहीं करतीहै ॥१३॥ सूतजी महाराज कहतभए कि हे भृगुनंदन शौनक ! या प्रकार[1] व्यासपुत्र श्रीशुकदेवजी महाराज राजाको पूजनकरिके कलियुगके पापनको नाश करनवारो श्रीकृष्णचंद्रके चरित्रको कहिवेको प्रारम्भ करतभए ॥ १४ ॥ हे राजऋषिनमें श्रेष्ठ राजा परीक्षित ! तुह्मारी बुद्धिने भले प्रकार निश्चय कियो है जा बुद्धिते तुह्मारी कृष्णकथानमें अति उत्कृष्ट प्रीति भई ॥ १५ ॥ वासुदेव भगवानकी कथाको प्रश्न तीन मनुष्यनको पवित्र करैहै, कहिनवारेको, प्रश्नकरनवारेको, और सुननवारेको, जैसे श्रीगंगाजीको जल पुरोहित यजमान और ग्रहण करनवारेको पवित्र करै है ॥ १६ ॥ गर्ववंत दैत्यराजनकी सेनाके समूह सेकरान् हजारनके भारसो दुखित भई पृथ्वी ब्रह्माजीकी शरण जातीभई ॥ १७ ॥ पृथ्वी गौको रूप धारण करिके और रुदन करतभई और करुणा जामें उपजे ऐसे वाक्यनको कहिती पुकारती ब्रह्माके पास जायके अपनो संपूर्ण दुःख कहतभई ॥ १८ ॥ ब्रह्माजी तब पृथ्वीको दुःख श्रवण करिके देवतानको, पृथ्वीको लेके और शिवजीको

सूत उवाच ॥ एवं निशम्य भृगुनन्दन साधुवादं वैयासकिः स भगवानथ विष्णुरातम् ॥ प्रत्यर्च्य कृष्णचरितं कलिकल्मषघ्नं व्याहर्तुमारभत भागवतप्रधानः ॥ १४ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ सम्यग्व्यवसिता बुद्धिस्तव राजर्षिसत्तम ॥ वासुदेवकथायां ते यज्जाता नैष्ठिकी रतिः ॥१५॥ वासुदेवकथाप्रश्नः पुरुषांस्त्रीन्पुनाति हि ॥ वक्तारं प्रच्छकं श्रोतॄंस्तत्पादसलिलं यथा ॥१६॥ भूमिर्दृप्तनृपव्याजदैत्यानीकशतायुतैः ॥ आक्रान्ता भूरिभारेण ब्रह्माणं शरणं ययौ॥१७॥ गौर्भूत्वाऽश्रुमुखी खिन्ना क्रन्दन्ती करुणं विभोः ॥ उपस्थिताऽन्तिके तस्मै व्यसनं स्वमवोचत॥१८॥ब्रह्मा तदुपधार्याऽथ सह देवैस्तया सह ॥ जगाम सत्रिनयनस्तीरं क्षीरपयोनिधेः ॥ १९ ॥

---

१ जो परमात्माकी कथामें जन्मसों अभ्यास न होयगो तौ अन्तसमय स्मरण कहाँसे होयगो जो कार्य करतरहैगो वाहीमें चित्त रहैगो यामें दृष्टांतहै कि एक लाला नाजकी दुकान कर तरहे, एकदिन उनके मित्रने कही कि चलो जी कथा सुनि आवैं लाला बोले कथा में कहा होहै, मित्रने कही भगवानकी लीला होंहै लाला बोले कछू दैनो तो नहीं परेगो, मित्र बोल्यो नहीं लाला बोले तौं दुकानको हिसाबकिताब करकै चलेंगे, तब हिसाबकरकै कथा सुन्ने चले, लठिया हाथमें ले कथामें जाय बैठे, पंडितजीने जानी यह आज लाला नयेआयेहैं कछु तौ मिलैहीगो लालाजीको बैठतेही नींद आयगई, सपनो देखन लगे कि दुकान खुलरही है नाजकी ढेरी लगीहै इतनेहीमें एकगैया आयके नाज खान लगी, लालाने क्रोधकरकै जो लठियामारी सोई वह लठिया पंडितजीके माथेमें लगी, पंडितजी हायरहाय करनलगे, और लालाजीने अचकदेसी उठकर घरकी राहलीनी फिर दोचारदिन कथासौं बैठरहे, याते कहैहै कि जहांऐसे अभ्यासी हैं वहां कहां ठीकहै।

संगले क्षीरसागरके तटके निकट जातेभऐ ॥ १९ ॥ क्षीरसमुद्रके समीप जायके जगतके नाथ संपूर्ण मनोरथ पूरणकरनवारे देवनके देव ऐसे भगवान् नारायण तिनकी "सहस्रशीर्षापुरुषः" इनषोडश ऋचानते स्तुती करतभए ॥ २० ॥ ब्रह्माजीने समाधि लगाई तासमय आकाशवाणी भई तावाणीको श्रवणकरि ब्रह्माजी देवतानसों बोले कि हे देवताओ ! मोकों ईश्वरकी आज्ञा भई है, ताहि तुम श्रवणकरो और श्रवणकरि बैठे मतरहो, शीघ्र वैसेही करो ॥ २१ ॥ हमारी प्रार्थनासों प्रथमही परमेश्वरने यापृथ्वीको दुःख दूरिकरनो विचारो है, सो तुम अपने अंशनकरिके यादवनके कुलमें जायकर जन्म धारण करो । यावत्पर्य्यंत ब्रह्मादिकनके ईश्वर अपनी कालशक्ति करि पृथ्वीको भार उतारैं, और पृथ्वीमें विचरैं तावत् पर्य्यंत

तत्र गत्वा जगन्नाथं देवदेवं वृषाकपिम् ॥ पुरुषं पुरुषसूक्तेन उपतस्थे समाहितः ॥२०॥ गिरं समाधौ गगने समीरितां निशम्य वेधास्त्रिदशानुवाच ह ॥ गां पौरुषीं मे शृणुताऽमराः पुनर्विधीयतामाशु तथैव मा चिरम् ॥ २१ ॥ पुरैव पुंसाऽवधृतो धराज्वरो भवद्भिरंशैर्यदुषूपजन्यताम् ॥ स यावदुर्व्या भरमीश्वरेश्वरः स्वकालशक्त्या क्षपयंश्चरेद्भुवि॥२२॥ वसुदेवगृहे साक्षाद्भगवान्पुरुषः परः ॥ जनिष्यते तत्प्रियार्थं संभवन्तु सुरस्त्रियः ॥ २३ ॥ वासुदेवकलानन्तः सहस्रवदनः स्वराट् ॥ अग्रतो भविता देवो हरेः प्रियचिकीर्षया ॥ २४ ॥ विष्णोर्माया भगवती यया संमोहितं जगत् ॥आदिष्टा प्रभुणांऽशेन कार्यार्थे संभविष्यति ॥२५॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥इत्यादिश्याऽमरगणान्प्रजापतिपतिर्विभुः ॥ आश्वास्य च महीं गीर्भिः स्वधाम परमं ययौ ॥ २६ ॥

पृथ्वीपर रहो ॥ २२ ॥ यापृथ्वीमें वसुदेवके घरमें साक्षात् परम पुरुष भगवान् आयके प्रगट होयंगे, तिनके संग विहार करिवेके लिये देवतानकी स्त्री जायके ब्रजमें जन्म धारणकरो ॥ २३ ॥ हजार जिनके मुख वासुदेवकी अंशकला ऐसे शेषजी बलभद्र श्रीकृष्णके संग क्रीडा करिवेके लिये प्रथम प्रगट होयंगे ॥ २४ ॥ देवकीके गर्भ खींचिवेके लिये और यशोदाको मोह करिवेके लिये परमेश्वरकी माया सम्पूर्ण जगतको मोह करायवेवारी ताको आज्ञा देत भये सो वह माया अंशकरिके सहित यशोदाके प्रगट होयगी ॥ २५ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले याप्रकार प्रजापतिनके पति श्रीब्रह्माजी देवतानके गणनको आज्ञा देके और पृथ्वीको समाधान करिके आप अपने सत्यलोकको जातभये ॥ २६ ॥

यादवनके राजा शूरसेन मथुरापुरीमें वसिके माथुरदेश और शूरसेन देशनको राज्य करत भये ॥ २७ ॥ जा मथुरापुरीमें भगवान् हरि नित्य विराजमान रहे हैं सो संपूर्ण पृथ्वीके भोग करनवारे यादवनकी राजधानी होतभई ॥ २८ ॥ एकसमय मथुरापुरीमें शूरसेनके पुत्र वसुदेवजी विवाह करिके नववधू देवकीको संगलिये रथमें बैठतभए ॥ २९ ॥ उग्रसेनको पुत्र कंस अपनी बहिन देवकीको प्यार करिवेके लिये सैंकरान सुवर्णसों जटित रथनको संग लेकर बहिनके रथके घोडनकी वागडोरी पकरिके हांकिवेको बैठि गयो ॥ ३० ॥ अपनी कन्यापैं अधिक है प्रीति जाकी

शूरसेनो यदुपतिर्मथुरामावसन्पुरीम् ॥ माथुराञ्छूरसेनांश्च विषयान्बुभुजे पुरा ॥ २७ ॥ राजधानी ततः साऽभूत्सर्वयादवभूभुजाम् ॥ मथुरा भगवान्यत्र नित्यं संनिहितो हरिः ॥ २८ ॥ तस्यां तु कर्हिचिच्छौरिर्वसुदेवः कृतोद्वहः ॥ देवक्या सूर्यया सार्धं प्रयाणे रथमारुहत् ॥२९॥ उग्रसेनसुतः कंसः स्वसुः प्रियचिकीर्षया॥रश्मीन्हयानां जग्राह रौक्मै रथशतैर्वृतः ॥ ३० ॥ चतुःशतं पारिबर्हं गजानां हेममालिनाम् ॥ अश्वानामयुतं सार्धं रथानां च त्रिषट्शतम् ॥ ३१ ॥ दासीनां सुकुमारीणां द्वे शते समलंकृते ॥दुहित्रे देवकः प्रादाद्याने दुहितृवत्सलः ॥३२॥ शङ्खतूर्यमृदङ्गाश्च नेदुर्दुन्दुभयः समम् ॥ प्रयाणप्रक्रमे तावद्वरवध्वोः सुमङ्गलम् ॥ ३३ ॥ पथि प्रग्रहिणं कंसमाभाष्याऽऽहाऽशरीरवाक् ॥ अस्यास्त्वामष्टमो गर्भो हन्ता यां वहसेऽबुध ॥ ३४ ॥

ऐसो देवक ताने विदाके समय सुवर्णकी माला पहिरेभये चारसै हाथी और दशहजार घोडा अठारहसै रथ दाइजेमें दिये ॥ ३१ ॥ सुकुमार जिनके अंग ऐसे दास और दासी दोसौ शृंगार करिके देतभयो ॥ ३२ ॥ यात्राके समय वरवधूके मंगलके लिये शंख भेरी नगारे यह सब वरातके संग वाजे बजतभए ॥ ३३ ॥ मार्गमें देवकीके रथके घोडनकी वागडोर पकरे जो कंस जायहै ताको आकाशवाणी सम्बोधन करके बोली अरे मूर्ख ! या

---

१ श्रीमन्मथुरा नगरी नगरी यस्याऽस्ति मानसे पुंसः । तस्याप्यत्र नगरी याम्येहा भवति नगरीति ॥ १॥ अद्यावन्ति पतद्ग्रहं कुरु करे माये शनैर्वीजय च्छत्रं काञ्चि गृहाण काशि पुरतः पादूयुगं धारय ॥ मायोध्ये भज संभ्रमं स्तुतिकथां नोद्गारय द्वारिके किं तेषा भवतीषु हन्त मथुरा दृष्टिप्रसादं दधे॥२॥काश्यादिपुर्यो यदि सन्ति लोके तासां तु मध्ये मथुरैव धन्या ॥ या जन्ममौञ्जीव्रतमृत्युदाहैर्नृणां चतुर्धा विदधाति मुक्तिम् ॥ द० रा० मा०।

को तू पहुंचाइवेकूं जाय है यही देवकी तेरो बहिन ताको आठवों बालक तोको मारैगो ॥ ३४ ॥ याविधि आकाशवाणीके वचन श्रवण करतेही भोजवंशीनके कुलको कलंक लगावनवारो दुष्ट पापी कंस बहिनको मारिवेको हाथमें तरवार लेकर केश पकरतभयो ॥ ३५ ॥ निंदाके योग्य है कर्म्म जाको ऐसो मूर्ख निर्लज्ज कंस है ताकों बडे ऐश्वर्य्यवान वसुदेवजी समझावतभए ॥ ३६ ॥ वसुदेवजी बोले तुम बडे गुणवान् और शूर वीर भोजवंशीनके यशके करनवारे हो, विवाहके उत्साहमें एक तौ स्त्रीजाति दूसरे तुम्हारी बहिन ताय कैसें मारोहो ॥ ३७ ॥ और मृत्युके डरते मारोहो तो मृत्यु तौ जन्मधारी मनुष्यनकों जो दिन मनुष्य जन्में है वाही दिन संग मृंत्युको जन्म है आज

इत्युक्तः स खलः पापो भोजानां कुलपांसनः ॥ भगिनीं हन्तुमारब्धः खड्गपाणिः कचेऽग्रहीत् ॥ ३५ ॥ तं जुगुप्सितकर्माणं नृशंसं निरपत्रपम् ॥ वसुदेवो महाभाग उवाच परिसान्त्वयन् ॥ ३६ ॥ वसुदेव उवाच ॥ ॥ श्लाघनीयगुणः शूरैर्भवान्भोजयशस्करः ॥ स कथं भगिनीं हन्यात्स्त्रियमुद्वाहपर्वणि ॥ ३७ ॥ मृत्युर्जन्मवतां वीर देहेन सह जायते॥ अद्य वाऽब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः॥३८॥देहे पञ्चत्वमापन्ने देही कर्मानुगोऽवशः ॥ देहान्तरमनुप्राप्य प्राक्तनं त्यजते वपुः ॥३९॥ व्रजंस्तिष्ठन्पदैकेन यथैवैकेन गच्छति ॥ यथा तृणजलूकैवं देही कर्मगतिं गतः॥४०॥स्वप्ने यथा पश्यति देहमीदृशं मनोरथेनाऽभिनिविष्टचेतनः ॥दृष्टश्रुताभ्यां मनसाऽनुचिन्तयन्प्रपद्यते तत्किमपि ह्यपस्मृतिः॥४१॥

अथवा सौ (१००) वर्ष पीछे देहधारीको मरण निश्चय है ॥ ३८ ॥ जा समय यादेहको अंतकाल आवे है तासमय देहमें जो जीवात्मा है सो अपने कर्मानुसार अवशहो दूसरे देहको प्राप्त होयके अपने पूर्वदेहको त्यागे है ॥ ३९ ॥ जैसे चलती वेर मनुष्य अगले पांवको धरिले है, तब पिछले पांवको उठावै है, और जैस जोंक चलते समय पहिले अगले तृणको पकरि लेई तब पिछिलै तृणको छोडै,ऐसेही देहस्थ जीवात्मा कर्मनके वशते और देहको प्रथम ग्रहण करिके तब या देहको त्याग करै है ॥ ४० ॥ स्वप्नमें मनुष्य जैसे देखे सुने संस्कारके वश जो मन है, ताके

---

१ मृत्युतैं को पावत निस्तार ॥ टेक ॥ स्थावर जंगम युत जो कुछ यह दीसत संसार ॥ १ ॥ एकादिन अवासिनष्ट व्है जै है कियो वेद निर्धार ॥ २ ॥ राजा रंक सबै इक सारे सबकी एक विचार ॥ ३ ॥ हरिगुण गान करेते निश्चय चौरासीसै पार ॥ ४ ॥ ताते मिश्र उपाय यही है भजिये कृपाअगार ॥ ५ ॥

चिंतवनते संसारमें सोवतदेहको भूलिके अपनेको राजा और इंद्रादिकरूपके अभिमानको बांधिलेहै ऐसेही मनोरथ देहकूं भूलिके और देहमें अभिमान बांधले है ॥४१॥ फलके देनवारे कर्म्मनकारि प्रेरित विकारनको भरो जो मन है सो मायारचित पंचभूतनके बने जो शरीर तिनमें जा जा शरीरमें दौरे है और अभिमानको बांधे है, वाही शरीरमें जीवको संग लेके जन्मेहै ॥ ४२ ॥ जैसे सूर्य चन्द्रमादिकनकी ज्योति जलके भरे घटादि पात्रनमें प्रतिबिंबित होयके पवनके वेगते जलमें कंपित प्रतीत होय है, ऐसेही यह पुरुष अपनी अविद्यारचित जो देह तिनमें अभिमान करि मोहको प्राप्त होइहै ॥ ४३ ॥ ताकारणते अपने आत्माको कल्याण करनवारो पुरुष काहूसों वैरभावको न करै, क्यों कि द्रोह करनवारे पुरुषको दूसरे(शत्रु)ते भय होत है ॥ ४४ ॥ जाते हे राजन्! यह तेरी छोटी बहिन है और बालक है, और कृपण है काष्ठकी पुतरीकी नाईं तेरे सन्मुख ठाडी है तुम तो दीननके हितकारी हो या मंगलरूपीकूं मारिवे योग्य नहीं हो ॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजी महाराज कहितभए कि हे कुरुवंशी राजा परीक्षित ! ऐसे प्रिय वचन कहिके वसुदेवजीने समझायो, तथापि एक तो आपही दुष्ट दूसरे असुरनको संग याते एकहू वचन मान्यौ नहीं ॥ ४६ ॥ वसुदेवजी कंसके हठको विचारिके देवकीकी प्राप्त भई जो मृत्यु ताय दूरि करिवेके लिये तासमय यह विचार करतभये ॥ ४७ ॥ जहांतक बुद्धिबल होय तहांतक मृत्यु दूर करवेको यत्न करे, याहूसों मृत्यु निवृत्त न होय तो या पुरुषको दोष नहीं है ॥ ४८ ॥

यतो यतो धावति दैवचोदितं मनो विकारात्मकमाप पञ्चसु ॥ गुणेषु मायारचितेषु देह्यसौ प्रपद्यमानः सह तेन जायते ॥४२॥ ज्योतिर्यथैवोदकपार्थिवेष्वदः समीरवेगानुगतं विभाव्यते ॥ एवं स्वमायारचितेष्वसौ पुमान्गुणेषु रागानुगतो विमुह्यति ॥४३॥ तस्मान्न कस्यचिद्द्रोहमाचरेत्स तथाविधः ॥ आत्मनः क्षेममन्विच्छन्द्रोग्धुर्वै परतो भयम्॥४४॥ एषा तवानुजा बाला कृपणा पुत्रिकोपमा ॥ हन्तुं नार्हसि कल्याणीमिमां त्वं दीनवत्सलः ॥ ४५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं स सामभिर्भेदैर्बोध्यमानोऽपि दारुणः ॥ न न्यवर्तत कौरव्य पुरुषादाननुव्रतः॥४६॥ निर्बन्धं तस्य तं ज्ञात्वा विचिन्त्यानकदुन्दुभिः ॥ प्राप्तं कालं प्रतिव्योढुमिदं तत्रान्वपद्यत ॥ ४७ ॥ मृत्युर्बुद्धिमताऽपोह्यो यावद्बुद्धिबलोदयम् ॥ यद्यसौ न निवर्तेत नापराधोऽस्ति देहिनः ॥४८ ॥

मृत्युरूप कंसको पुत्र देने कहिके या कृपण देवकीके प्राण बचाऊंगो, कदाचित् कहो कि पुत्र देके देवकीके प्राण बचावने यह तो नीति नहीं है, तहां
वसुदेवजी विचार करे हैं कि जा समय देवकीके पुत्र होयंगे, ता समय जो होनहार होयगी सो होय रहैगी तब ताईं तो याके प्राण बचेंगे ॥ ४९ ॥
पुत्र उत्पन्न होनेते पहिले यही कंस मरजाय तो कछूभी अनीति नहीं है, और जो मेरे पुत्र होई वाको कंस न मारे तौ मेरो पुत्रही या कंसकूं
मारेगो, ऐसे उलटी बात तो न होय, कदाचित् कहो कि तुम्हारे पुत्र बालक या तरुण बलवान् कंसकूं कैसे मारेंगे तहां वसुदेवजी कहै हैं विधाताकी
मति काहूके जानिवेमें नहीं आवे है, जे पुरुष मरिवे योग्य हैं ते नहीं मरैं हैं, और जो मरिवे योग्य नहीं हैं तिनकी मृत्यु होजाय है ॥ ५० ॥

प्रदाय मृत्यवे पुत्रान्मोचये कृपणामिमाम् ॥ सुता मे यदि जायेरन्मृत्युर्वा न म्रियेत चेत् ॥ ४९ विपर्ययो वा किं न
स्याद्गतिर्धातुर्दुरत्यया ॥ उपस्थितो निवर्तेत निवृत्तः पुनरापतेत् ॥ ५० ॥ अग्नेर्यथा दारुवियोगयोगयोरदृष्टतोऽन्य-
न्न निमित्तमस्ति ॥ एवं हि जन्तोरपि दुर्विभाव्यः शरीरसंयोगवियोगहेतुः॥५१॥एवं विमृश्य तं पापं यावदात्मनिदर्श
नम् ॥ पूजयामास वै शौरिर्बहुमानपुरःसरम् ॥ ५२ ॥ प्रसन्नवदनाम्भोजो नृशंसं निरपत्रपम् ॥ मनसा दूयमानेन
विहसन्निदमब्रवीत् ॥ ५३ ॥ वसुदेव उवाच ॥ ॥ न ह्यस्यास्ते भयं सौम्य यद्वै साहाशरीरवाक् ॥ पुत्रान्समर्प
यिष्येऽस्या यतस्ते भयमुत्थितम् ॥ ५४ ॥

जैसे अग्निकाष्ठनमें वियोगयोगकों केवल अदृष्टके विना और कोई कारण प्रतीत नहीं होयहैं जैसे वनमें अग्नि लगे है तौ जो वृक्ष जरनहार
नहीं हैं ते समीपके बचिजांय हैं, और जरनहार हैं ते दूरिके जरिजांय हैं और जैसे गांममें पासके घर बचिजांय हैं दूरके जरिजाय हैं,
ऐसेंही प्राणिनके जन्म मृत्युको कारणहू विचारिवेमें नहीं आवे है ॥ ५१ ॥ श्रीशुकदेवजी महाराज राजा परीक्षितसे कहैं हैं कि या प्रकार
जहां ताईं अपनी बुद्धि चली तहां ताईं वसुदेवजीने विचार करके कंसको पूजन करचो ॥ ५२ ॥ कंसके विश्वाससे कारण ऊपरतें प्रफुल्लित है
मुखकमल जिनको ऐसे वसुदेवजी क्रूर निर्लज्ज कंसते दुःखितमन मुसिकायके यह बोले ॥ ५३ ॥ हे सौम्य ! जैसे आकाशवाणीने कही तै

से निश्चय या देवकीते तुमकूं भय नहीं है जिन पुत्रन ने तुम्हैं भय भयो है सो याके पुत्र लायके तुह्मारे अर्पण करिदेउंगो॥५४॥श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन्! वसुदेवजीके वाक्यको सत्य मानिके कंस अपनी बहिनके मारिवेते निवृत्त भयो वसुदेवजी हूं प्रसन्न होइ कंसकी बडाई करिके अपने घर जात भये ॥५५॥ समस्त प्राणीनके आत्मा भगवान् हैं देवता जिनके ऐसी जो देवकी तिसके जब पुत्रजन्मको समय आयो तब वर्षवर्षप्रति एकएक पुत्र और एक कन्या ऐसे नो बालक उत्पन्न किये ॥ ५६ ॥ प्रथम कीर्तिमान पुत्र भयो ताको वसुदेवजी बडेकष्टते कंसके समीप लेगये क्योंकि मिथ्या बोलिवेते वसुदेवजी डरपेहैं ॥ ५७ ॥ कदाचित् कहो कि कंस मंगावतो तब लेजाते, वसुदेवजी आपही ते कंसपै क्यों लैगए तहां कहैं हैं कि साधु महात्मा जो हैं ते कौनसी बात न सहिसकें हैं, और पुत्रके लाडकरिवेको आनंद वसुदेवजीपै कैसे त्यागो गयो, तहां कहैंहैं विद्वाननको कौन बात अपेक्षितहै, कदाचित् कहो कि वसुदेवजी या कारण आप लेगये कि मैं लेजाउंगो तो दया विचार कंस न मारेगो, तहां कहैं हैं कि दुष्टजन कहा नहीं करैं हैं, कंससदृश दुष्टनकूं दया कब आवै, वसुदेवजी पुत्रकूं लेगये परंतु देवकीपै पुत्र कैसे दीयोगयो तहां कहैं हैं कि देवकीने मनमें विचार करिराखो है कि ऐसे पुत्र तो बहुत होंयगे मेरे सांचे पुत्र तो श्रीकृष्णचंद्र हैं, यह जानिके दियो ॥ ५८ ॥ वसुदेवजीकी समता देखिके हे राजन्! परीक्षित! संतुष्ट जाको मन ऐसो कंस सो मुसिकायके यह वचन बोल्यो ॥ ५९ ॥ या पुत्रको घरको फेर लेजाउ यातें मोकूं भय नहीं है आपके आठमें पुत्रतें मेरी मृत्यु निश्चय रचीहै ॥ ६० ॥

॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ स्वसुर्वधान्निववृते कंसस्तद्वाक्यसारवित् ॥ वसुदेवोऽपि तं प्रीतः प्रशस्य प्राविशद्गृहम् ॥ ५५ ॥
अथ काल उपावृत्ते देवकी सर्वदेवता ॥ पुत्रान्प्रसुषुवे चाष्टौ कन्यां चैवानुवत्सरम् ॥५६॥ कीर्तिमन्तं प्रथमजं कंसायानकदुन्दुभिः ॥ अर्पयामास कृच्छ्रेण सोऽनृतादतिविह्वलः॥५७॥ किं दुःसहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम्॥किमकार्यं
कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम् ॥५८॥ दृष्ट्वा समत्वं तच्छौरेः सत्ये चैव व्यवस्थितिम् ॥ कंसस्तुष्टमना राजन्प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥५९॥ प्रतियातु कुमारोऽयं न ह्यस्मादस्ति मे भयम्॥अष्टमाद्युवयोर्गर्भान्मृत्युर्मे विहितः किल॥६०॥

तथास्तु ऐसे कहिके वसुदेवजी पुत्रकूं लेके घरको आवतभये परंतु कंसके वचनको विश्वास न करचो, अब फेरि दियोहै पश्चात् फिरि चाहैं जब मंगाइ
लेइगो; असाधु है याके वचनको कछु विश्वास नहीं, कंसने वसुदेवजीको पुत्र फेरिदियो यह बात श्रवण करि नारदजीने आयके कंसते कही ॥ ६१ ॥
व्रजमें नंदजीते आदिलेके जे गोप हैं और जिन गोपनकी स्त्री हैं और वसुदेवजीते आदिलेके वृष्णि यादव और देवकीते आदिलेके यादवनकी स्त्री
ये तुह्मारे समीपवर्त्ती हैं ते संपूर्ण हे कंस ! वसुदेवजी और नंदजीके कुलमें ज्ञाति बंधु सुहृद ये समस्त देवता प्रकट भएहैं, पृथिवीमें दैत्यनको भार
बढ्यो है ताके उद्धारके निमित्त भगवान्ने यह उपाय रच्यो है, सो तुम जानि लीजौ आठ लकीर खैंच दिखराई, गिन्तीमें सब आठो आईं,तब नारदजी

तथेति सुतमादाय ययावानकदुन्दुभिः ॥ नाभ्यनन्दत तद्वाक्यमसतो विजितात्मनः ॥ ६१ ॥ नन्दाद्या ये व्रजे गोपा
याश्चामीषां च योषितः ॥ वृष्णयो वसुदेवाद्या देवक्याद्या यदुस्त्रियः ॥ ६२ ॥ सर्वे वै देवताप्राया उभयोरपि भारत ॥
ज्ञातयो बन्धुसुहृदो ये च कंसमनुव्रताः ॥ ६३ ॥ एतत्कंसाय भगवाञ्छशंसाभ्येत्य नारदः ॥ भूमेर्भारायमाणानां
दैत्यानां च वधोद्यमम् ॥६४॥ ऋषेर्विनिर्गमे कंसो यदून्मत्वा सुरानिति ॥ देवक्या गर्भसंभूतं विष्णुं च स्ववधं प्रति ॥६५॥
देवकीं वसुदेवं च निगृह्य निगडैर्गृहे ॥ जातं जातमहन्पुत्रं तयोरजनशङ्कया ॥ ६६ ॥ मातरं पितरं भ्रातॄन्सर्वांश्च सुहृद-
स्तथा ॥ घ्नन्ति ह्यसुतृपो लुब्धा राजानः प्रायशो भुवि ॥६७॥ आत्मानमिह संजातं जानन्प्राग्विष्णुना हतम् ॥ महासुरं
कालनेमिं यदुभिः स व्यरुध्यत ॥ ६८ ॥

बोले आठवें गर्भको निश्चय नहीं कौनसो होय ॥ ६२ ॥६३॥६४॥ ऐसे उपदेश करि नारदजी तो जातभये अब कंसने यादवनकूं देवता मानिके और
देवकीके गर्भतें विष्णुभगवान् प्रगट होयके मोकूं मारेंगे यह मानिके ॥ ६५ ॥ देवकी और वसुदेवकूं बंदीघरमें रोक पांवनमें बेडी डारिदई और
जो जो इनके पुत्र भये ताईकूं विष्णुभगवान्की शंका मानिके मारतभयौ ॥ ६६ ॥ अपने प्राणनके लोभी राजा पृथ्वीमें माता पिता भैया और
संपूर्ण मित्रनको मारिडारैं हैं ॥ ६७ ॥ पहले जन्ममें मैं कालनेमी दैत्य हो मोको विष्णुने मारचो हो, सोही मैं कंस भयो हूं यह

जानके यादवनसों वैर करतभयो ॥ ६८ ॥ यदुवंशी भोजवंशी अंधकवंशीनके राजा उग्रसेन ऐसे अपने पिता तिनके पांवनमें वेडी डारिके वडो वलवान् कंस सो आपही शूरसेन देशनको राज्य करत भयो ॥ ६९ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषायां दशमस्कन्धे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ प्रलम्बासुर-वकासुर-चाणूर-तृणावर्त-अघासुर-मुष्टिक-अरिष्ट-द्विविदवंदर-पूतना-केशी-धेनुकासुर ॥ १ ॥ और असुरनके राजा वाणासुर भौमासुर इनको संग लेके और मगधदेशको राजा जरासंध सुसरके वलसों वली कंस यादवनकूं कष्ट देत भयो ॥ २ ॥ ते यादव दुःखित होयके कंसके भयतें

उग्रसेनं च पितरं यदुभोजान्धकाधिपम् ॥ स्वयं निगृह्य बुभुजे शूरसेनान्महाबलः ॥ ६९ ॥ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे श्रीकृष्णावतारोपक्रमे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ शुक उवाच ॥ ॥ प्रलम्बबकचाणूरतृणावर्तमहाशनैः ॥ मुष्टिकारिष्टद्विविदपूतनाकेशिधेनुकैः ॥ १ ॥ अन्यैश्चासुरभूपालैर्बाणभौमादिभिर्युतः ॥ यदूनां कदनं चक्रे बली मागधसंश्रयः ॥ २ ॥ ते पीडिता निविविशुः कुरुपाञ्चालकेकयान् ॥ शाल्वान्विदर्भान्निषधान्विदेहान्कोसलानपि ३ ॥ एके तमनुरुन्धाना ज्ञातयः पर्युपासत ॥ हतेषु षट्सु बालेषु देवक्या औग्रसेनिना ॥ ४ ॥ सप्तमो वैष्णवं धाम यमनन्तं प्रचक्षते ॥ गर्भो बभूव देवक्या हर्षशोकविवर्धनः ॥ ५ ॥ भगवानपि विश्वात्मा विदित्वा कंसजं भयम् ॥ यदूनां निजनाथानां योगमायां समादिशत् ॥ ६ ॥

कुरुदेश-पंजाव-कैकय-साल्व-विदर्भ-निषध-विदेह-कौशल-इनदेशनमें जायके वास करतभये ॥ ३ ॥ कोऊ एक अक्रूरादिक यादव कंसके आज्ञाकारी सर्वकार्यमें लगिरहे हैं जब उग्रसेनके बेटा कंसने देवकीके छ वालक मारे ॥ ४ ॥ तब विष्णु भागवानकी कला अनन्त जिनकूं कहे हैं ऐसो सातमों गर्भ देवकीके भयो सो कैसो है कि आनन्दरूपको अवतार होईगो यातें तो मन में हर्ष भयो और पहलेकीसी नाईं याहूको कंस मारेगो यातें कछु शोकभी है ॥ ५ ॥ तब विश्वके आत्मा भगवानने जानी कि मेरे यादवनकूं कंस दुःख देत है तासमय अपनी योगमायाकूं आज्ञा देतभए ॥ ६ ॥

हे देवी! मंगलरूपिणी! जो गोप और गौअनकरि शोभायमान व्रज है तहां तुम जायके नंदरायजीकी गोकुलमें जहां वसुदेवजीकी स्त्री रोहिणी है कंसके डरतें औरहू स्त्री गुप्त स्थानमें वास करै हैं ॥ ७॥ सो देवकीके उदरमें मेरी कला शेषजीस्वरूप हैं, तिन्है निकासके रोहिणीके उदरमें प्राप्तिकरि॥८॥जब तू गर्भकूं खैंचेगी याके पीछें हे मङ्गलरूपिणी!अपने परिपूर्ण रूपकरिके मैं देवकीके पुत्रभावकूं प्राप्त होउंगो, और तुम नंदरायजीकी पत्नी यशोदाके प्रगट होउ ॥ ९ ॥ हे मंगलरूपिणी! सम्पूर्ण पुत्रादिकनकी कामना करनेवारे पुरुषनकी ईश्वरी सर्व कामनानकूं देनवारी तू होयगी, और सम्पूर्ण मनुष्य धूप दीप सामग्री बलिप्रदान भेटकरि तेरो पूजन करैंगे, तू उनके सम्पूर्ण मनोरथ पूरन करेगी ॥ ॥ १० ॥ पृथ्वीमें मनुष्य तुम्हारे स्थान करेंगे

गच्छ देवि व्रजं भद्रे गोपगोभिरलंकृतम् ॥ रोहिणी वसुदेवस्य भार्याऽऽस्ते नन्दगोकुले ॥ अन्याश्च कंससंविग्ना विवरेषु वसन्ति हि ॥ ७ ॥ देवक्या जठरे गर्भं शेषाख्यं धाम मामकम् ॥ तत्संनिकृष्य रोहिण्या उदरे सन्निवेशय ॥ ८ ॥ अथाऽऽहमंशभागेन देवक्याः पुत्रतां शुभे ॥ प्राप्स्यामि त्वं यशोदायां नन्दपत्न्यां भविष्यसि ॥ ९ ॥ अर्चिष्यन्ति मनुष्यास्त्वां सर्वकामवरेश्वरीम् ॥ धूपोपहारबलिभिः सर्वकामवरप्रदाम् ॥ १० ॥ नामधेयानि कुर्वन्ति स्थानानि च नरा भुवि ॥ दुर्गेति भद्रकालीति विजया वैष्णवीति च ॥ ११ ॥ कुमुदा चण्डिका कृष्णा माधवी कन्यकेति च ॥ माया नारायणीशानी शारदेत्याम्बिकेति च ॥ १२ ॥ गर्भसंकर्षणात्तं वै प्राहुः संकर्षणं भुवि ॥ रामेति लोकरमणाद्बलं बलवदुच्छ्रयात् ॥ १३ ॥ ॥ संदिष्टैवं भगवता तथेत्योमिति तद्वचः ॥ प्रतिगृह्य परिक्रम्य गां गता तत्तथाऽकरोत् ॥ १४ ॥

और दुर्गा-भद्रकाली-विजया-वैष्णवी ॥ ११ ॥ कुमुदा-चण्डिका-कृष्णा-माधवी-कन्यका-माया-नारायणी-ईशानी-शारदा-अंबिका ये नाम धरैंगे ॥ १२ ॥ गर्भमें तें खैंचिके निकासैगी याते पृथ्वीमें मनुष्य या बालकको सङ्कर्षण कहैंगे, लोकनकूं रमावैंगे यातें राम कहैंगे बल अधिक है याते बलभद्र कहैंगे ॥ १३ ॥ या प्रकार योगमायाकूं भगवानने आज्ञा दीनी, तब कही ऐसेही करूंगी या प्रकार भगवानकी परिक्रमा करि वचनकूं ग्रहणकरि पृथ्वीमें आयके तैसेई करतभई ॥ १४ ॥

वह योगमाया देवकीके उदरमेंते बालकको रोहिणीके उदरमें लेगई, तासमय समस्त पुरवासी मनुष्य यों पुकार उठे कि अबके कंसने अपनी बहिनको ऐसी धमकाई यातें याको गर्भ गिरि पऱ्यो ॥ १५ ॥ विश्वके आत्मा भगवान् भक्तनके भयको दूर करनेवारे सो अपने परिपूर्ण रूपकरि वसुदेवजीके मनमें आयके प्रकट होत भये ॥ १६ ॥ जब वसुदेवजीके मनमें भगवान् आये, तब सूर्य्यके तेजके तुल्य तेज होत भयो कोई मनुष्य तेजके प्रकाशके मारे सन्मुख न आवै ऐसे वसुदेवजी होतेभये ॥ १७ ॥ ताके अनंतर जगतको मूर्तिमान मंगलरूप भगवान्को स्वरूप वसुदेवजीने मनतें अर्पण करयो, तब देवकीने भले प्रकार धारन करयो जैसे पूर्वदिशा चंद्रमाकूं धारन करै ॥ १८ ॥ जैसे ढके दीपकको प्रकाश नहीं होयहै

गर्भे प्रणीते देवक्या रोहिणीं योगनिद्रया ॥ अहो विस्रंसितो गर्भ इति पौरा विचुक्रुशुः ॥ १५ ॥ भगवानपि विश्वात्मा भक्तानामभयंकरः ॥ आविवेशांशभागेन मन आनकदुन्दुभेः ॥ १६ ॥ स बिभ्रत्पौरुषं धाम भ्राजमानो यथा रविः ॥ दुरासदोऽतिदुर्धर्षो भूतानां संबभूव ह ॥ १७ ॥ ततो जगन्मङ्गलमच्युतांशं समाहितं शूरसुतेन देवी ॥ दधार सर्वात्मकमात्मभूतं काष्ठा यथाऽऽनन्दकरं मनस्तः ॥ १८ ॥ सा देवकी सर्वजगन्निवासनिवासभूता नितरां न रेजे ॥ भोजेन्द्रगेहेऽग्निशिखेव रुद्धा सरस्वती ज्ञानखले यथा सती ॥ १९ ॥ तां वीक्ष्य कंसः प्रभया जितान्तरां विरोचयन्तीं भवनं शुचिस्मिताम् ॥ अहैष मे प्राणहरो हरिर्गुहां ध्रुवं श्रितो यन्न पुरेयमीदृशी ॥ २० ॥ किमद्य तस्मिन्करणीयमाशु मे यदर्थतन्त्रो न विहन्ति विक्रमम् ॥ स्त्रियाः स्वसुर्गुरुमत्या वधोऽयं यशः श्रियं हन्त्यनुकालमायुः ॥ २१ ॥

और जैसे ज्ञानवंचककूं विद्या सुन्दर नहीं लगे है तैसे सब ब्रह्मांड जिनके उदरमें ऐसे भगवान् अपनी कान्ति संयुक्त देवकीके उदरमें आये तथापि कंसके कारागारमें रुके हैं याते संपूर्ण मनुष्यनको जैसे निरंतर आनंद होय तैसे देवकी शोभाको प्राप्त न होती भई ॥ १९ ॥ अजित भगवान् जा कुक्षिके विषे अपनी कांति करि बंदीघरकूं प्रकाशमान करे सुन्दर जाकी मुसकानि ऐसी देवकीकूं देखि कंस यह बोल्यो कि मेरे प्राणनको हरनवारो हरिरूपी सिंह निश्चय या देवकीके उदररूपी गुफामें आय बैठ्योहै, प्रथम याको तेज ऐसो नहींहो ॥ २० ॥ कंसराय अपने मनमें विचार करैहै कि

अब मैं जल्दी याके लिये कहा उपाय करूं यह तो देवतानके कार्य करिवेको आयो है, याते निश्चय मोकूं मारैगो अब या देवकीकूं मैं मारूं तो एक तो स्त्रीजाति, दूसरे मेरी बहिन, तीसरे गर्भिणी याके मारेते हमारो यश लक्ष्मी आयुर्बल ये सब हीनताको प्राप्त होयँगे ॥ २१ ॥ जो मनुष्य संसारमें दुष्टता करै सो मनुष्य जीवतोही मरचो है, देह धरे पीछे समस्त मनुष्य वाहिको शापें हैं, कि इस पापीको धिक्कार है निश्चय घोर नरकमें परैगो॥२२॥ ऐसे विचार करिके घोर पापरूप जो देवकीको वध ताते सामर्थ्यमान कंस आपही निवृत्त होत भयो, भगवानके जन्म होयवेकी वाट देखैहै ॥ २३ ॥ तब बैठते सोवते ठाढे भोजन करते पृथ्वीमें विचरते इन्द्रियनके ईश्वर भगवान्हीकी चिंता करतो संपूर्ण जगत्में हरिरूपही देखतभयो ॥ २४ ॥ इतनेहीमें नारदादिक मुनीश्वरनकूं संग ले और गंधर्वादिक सहित देवतानकूं संग लेके ब्रह्माजी और महादेवजी आयके गर्भहीमें स्थित नारायणकी

स एष जीवन्खलु संपरेतो वर्तेत योऽत्यन्तनृशंसितेन॥देहे मृते तं मनुजाः शपन्ति गन्ता तमोऽन्धं तनुमानिनो ध्रुवम् २२ इति घोरतमाद्भावात्स निवृत्तःस्वयं प्रभुः ॥ आस्ते प्रतीक्षंस्तज्जन्म हरेर्वैरानुबन्धकृत् ॥२३॥ आसीनः संविशंस्तिष्ठन् भुञ्जानः पर्यटन्महीम् ॥ चिन्तयानो हृषीकेशमपश्यत्तन्मयं जगत् ॥ २४ ॥ ब्रह्मा भवश्च तत्रैत्य मुनिभिर्नारदादिभिः॥ देवैः सानुचरैः साकं गीर्भिर्वृषणमैडयन् ॥ २५ ॥ ॥ देवा ऊचुः ॥ ॥ सत्यव्रतं सत्यपरं त्रिसत्यं सत्यस्य योनिं निहितं च सत्ये ॥ सत्यस्य सत्यमृतसत्यनेत्रं सत्यात्मकं त्वां शरणं प्रपन्नाः ॥ २६ ॥ एकायनोऽसौ द्विफलस्त्रिमूलश्चतूरसः पञ्चविधः षडात्मा ॥ सप्तत्वगष्टविटपो नवाक्षो दशच्छदी द्विखगो ह्यादिवृक्षः ॥ २७ ॥

स्तुति करते भये ॥ २५ ॥ देवता बोले सत्य है संकल्प जिनको सत्यपरायण और भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालमें पृथ्वी जल तेज वायु आकाश इन पंच भूतनके कारणरूप आप हो और पंचभूतनके नाशमें आपही बाकी रहो हो, और मनोहर जिनकी वाणी ज्ञानीनके प्रेरणा करनेवारे सत्यरूप जो तुम तिनकी हम शरण प्राप्त भए हैं ॥ २६ ॥ एक मायाही जाको थामरो, सुख दुःख जामें फल, सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुण जाकी जड़; धर्म्म अर्थ काम मोक्ष जामें रस हैं, पांच इन्द्रियनते जामें ज्ञान होयहै, क्षुधा पिपासा शोक मोह मृत्यु बुढापो ये सब स्वभाव हैं, त्वचा लोहित मेद मांस स्नाव अस्थि मज्जा रेत ये जाके वल्कल, पृथ्वी जल तेज पवन आकाश मन बुद्धि अहंकार ये जाकी शाखा, नौ इन्द्रियनके दरवाजे जा

में कोटर अर्थात् खोतरि, प्राण अपान व्यान उदान समान नाग कूर्म कृकल देवदत्त धनंजय ये दश प्राण जामें पत्ता,और जीव ईश्वर ये दोनों पक्षिनको घोंसुला ऐसो यह देह आदिवृक्ष है, काटिवेसे कटैहै, ऐसेही देहभी मरे है जन्मैहै ॥ २७ ॥ या संसारके उत्पत्ति पालन संहार करनेवारे तुमही हौ तुम्हारी मायामें भूलेहैं चित्त जिनके ते पुरुष तुम्हे नानाप्रकार जानैहैं, और जे विवेकी पुरुष हैं ते एकरूप करि जानैहैं ॥ २८ ॥ एक स्वरूप जो भगवान हा सो तुम ब्रह्मारूप होयके उत्पन्न और विष्णुरूप करि पालन शिवरूप करि संहार करो हो, सत्वगुणकरिक संयुक्त सत्य पुरुषनकूं सुख देनवारे दुष्टनको दण्ड देनवारे जे रूप हैं तिन्हैं धारण करोहो ॥ २९ ॥ हे कमलदललोचन ! समस्त जीवनके आश्रय तुमही हो, तातें तुह्मारेविषें विवेकी

त्वमेक एवास्य सतः प्रसूतिस्त्वं सन्निधानं त्वमनुग्रहश्च ॥ त्वन्मायया संवृतचेतसस्त्वां पश्यन्ति नाना न विपश्चितो
ये ॥ २८ ॥ बिभर्षि रूपाण्यवबोध आत्मा क्षेमाय लोकस्य चराचरस्य ॥ सत्त्वोपपन्नानि सुखावहानि सतामभद्राणि
मुहुः खलानाम् ॥ २९ ॥ त्वय्यम्बुजाक्षाखिलसत्त्वधाम्नि समाधिनावेशितचेतसैके ॥ त्वत्पादपोतेन महत्कृतेन कुर्वन्ति
गोवत्सपदं भवाब्धिम् ॥ ३० ॥ स्वयं समुत्तीर्य सुदुस्तरं द्युमन्भवार्णवं भीममदभ्रसौहृदाः॥ भवत्पदाम्भोरुहनावमत्र
ते निधाय याताः सदनुग्रहो भवान् ॥ ३१ ॥ येन्येरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः ॥ आरुह्य
कृच्छ्रेण परं पद ततः पतन्त्यधो नादृतयुष्मदङ्घ्रय ः ॥ ३२ ॥

महात्मा समाधिद्वारा चित्तकूं लगायके महत पुरुषनने सिद्धकरि ऐसी जो तुम्हारे चरणारविंदरूपी नौका आश्रय करिके यह संसाररूप समुद्रको अवगाहन करि बछराके खुरकी बराबरीकरिके तरिजायंगे ॥ ३० ॥ हे स्वयप्रकाश ! जे करुणावान् पुरुषहैं ते अतिशय करिके तरिवेमें न आवै ऐसे महाभयङ्कर ससारसमुद्रके पार उतरिके और भजन भावना संप्रदाय यह जो तुह्मारे चरणारविंदरूपी नाव है ताकूं औरनके पार उतरिवेके निमित्त या ससारमें राखिकें; आप पारलगि जायहैं, हे ईश्वर ! आप कैसेहो संतनके ऊपर कृपा करनवारेहो ॥३१॥ हे कमलदललोचन ! जे ज्ञानी पुरुष अपनेकूं मुक्त मानैहैं, और तुम्हारेविषैं भाव नहीं करैहैं, यातें अविशुद्धबुद्धिभी हैं और बड़े कष्टते ऊंचे पदकूं प्राप्त हुएहैं ऊचापद कहा सुंदरकुलमें

जन्म और तप करिके शास्त्र पढिवो ताकूं पायकें तुह्मारे चरणकमलको आदर नहीं करैंहैं, वे नीचेपदको गिरैंहैं और नीचो पद कहाकि विघ्नकरिके कष्टकूं प्राप्तहोयं हैं ॥ ३२॥ हे माधव! जैसे ज्ञानीको विघ्न होयं हैं तैसे आपके भक्तनको विघ्न नहीं होयंहैं, काहेतें कि तुमसें जिनने स्नेह बांध्यो है तिनकी तुम रक्षा करोहो, हे प्रभो यातें तुम्हारे भक्त निर्भय होइकै विघ्नके माथेपर पांव धरिकै आनंदपूर्वक विचरैंहैं ॥३३॥ हे प्रभो! पालन समय समस्त देहधारीनको पालन करनेवारो जो रूप ताहि धारण करोहो, या स्वरूप करि ब्रह्मचारि गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यासी ये चारों आश्रमी वेद कर्म्म योग तप समाधि इन उपायनते आपकोही पूजन करैं हैं ॥ ३४ ॥ हे विधाता! तुम्हारो सत्त्वगुणयुक्त श्याम सुंदररूप प्रगट न होतो तौ अज्ञानको कर्‍यो

तथा न ते माधव तावकाः क्वचिद्भ्रश्यन्ति मार्गात्त्वयि बद्धसौहृदाः ॥ त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो ॥ ३३ ॥ सत्त्वं विशुद्धं श्रयते भवान् स्थितौ शरीरिणां श्रेय उपायनं वपुः ॥ वेदक्रियायोगतपःसमाधिभिस्तवार्हणं येन जनः समीहते ॥ ३४ ॥ सत्त्वं न चेद्धातरिदं निजं भवेद्विज्ञानमज्ञानभिदापमार्जनम् ॥ गुणप्रकाशैरनुमीयते भवान्प्रकाशते यस्य च येन वा गुणः ॥ ३५ ॥ न नामरूपे गुणजन्मकर्मभिर्निरूपितव्ये तव तस्य साक्षिणः ॥ मनोवचोभ्यामनुमेयवर्त्मनो देव क्रियायां प्रतियन्त्यथापि हि ॥३६॥ शृण्वन्गृणन्संस्मरयंश्च चिन्तयन्नामानि रूपाणि च मङ्गलानि ते ॥ क्रियासु यस्त्वच्चरणारविन्दयोराविष्टचेता न भवाय कल्पते ॥ ३७॥

भेद ताको नाशक विज्ञान है सो कैसे प्रकाश करतो सोऊ ईश्वरको प्रेर्‍यो भयो बुद्ध्यादिक गुणनको प्रकाशैंहै और जो ईश्वरगुणनको साक्षी है ऐसे इन्द्रीनके प्रकाश करके तुम अनुमान करिवेमें आवो हो ॥ ३५ ॥ हे प्रकाशमान! या विश्वके साक्षी तुमही हो और तुम्हारे नाम रूप गुण कर्म्म जन्म कहिवेमें नहीं आवैं हैं, मनवाणीद्वारा अनुमान करिवेमें जिनको स्वरूप नहीं आवै तौभी तुम्हारे जो भक्त हैं ते ध्यान और उपासनामें तुम्हारे रूपको साक्षात् दर्शन करैं हैं ॥३६॥ हे ईश्वर! तुम्हारे जो मङ्गलरूपी नाम रूप हैं तिनकूं काननतें श्रवण करैंहैं, जिव्हातें उच्चारण करैं

और मनुष्यनकूं श्रवण करावें आप स्मरण करैंहैं और पूजनादिक क्रियानमें तुम्हारे चरणारविंदमें जिन पुरुषनको मन लग्योहै ते जन्म मरणकूं नहीं प्राप्त होय हैं॥३७॥हे ईश्वर! तुम्हारे अवतारते तुम्हारे चरणारविंद करिके पृथ्वीको भार दूरी होयगो, यह बडो मंगल भयो और तुम्हारे सुन्दर चरणारविंद करिके यापृथ्वीपै चिन्ह परैंगे तिनके हम दर्शन करैंगे, अपने वैकुंठधामकूं जानि पृथ्वी और स्वर्गपै कृपाकरोगे ताकूं हम देखैंगे, यह बडो मंगल होयगो *

दिष्ट्या हरे स्याद्भवतः पदो भुवो भारोपनीतस्तव जन्मनेशितुः ॥ दिष्ट्याङ्किता त्वत्पदकैः सुशोभनैर्द्रक्ष्याम गां द्यां च तवानुकम्पिताम् ॥ ३८ ॥ न तेऽभवस्येश भवस्य कारणं विना विनोदं बत तर्कयामहे ॥ भवो निरोधः स्थितिरप्यविद्यया कृता यतस्त्वय्यभवाश्रयात्मनि ॥३९॥ मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंसराजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः ॥ त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाधुनेश भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते ॥४०॥ दिष्ट्याम्ब ते कुक्षिगतः परः पुमानंशेन साक्षाद्भगवान्भवाय नः ॥ मा भूद्भयं भोजपतेर्मुमूर्षोर्गोप्ता यदूनां भविता तवात्मजः ॥४१॥

॥ ३८ ॥ हेईश्वर! जन्म करिके रहित जो तुम सो तुम्हारे जन्मको कारण और लीलाविनोद विचारिवेमें नहीं आवैहै हे नित्यमुक्त! तुम्हारे स्वरूपको ज्ञान नहींहै यातें अविद्या करिके जीवनको जन्म मृत्यु पालन होयहैं ॥ ३९ ॥ मत्स्य, हयग्रीव, कच्छप, वराह, नृसिंह, रामचंद्र, परशुराम, वामनरूप धरिके तुम त्रिलोकीकी रक्षा करोहो, तैसें समस्त पृथ्वीको भार उतारोहो यादवनमें उत्तम जो तुम हो तिनको नमस्कार करैंहैं ॥ ४० ॥ अब देवकी

---

* भक्तोंके हेत नारायणही क्यों अवतार धारण करते हैं किसी देवताकूं आज्ञा देदें वोह उनका कार्य संपादन कर दुःख दूर करदे यह शंका एक राजाने पंडितजीसे करी तब पण्डितजी बोले महाराज एक वर्षमें इसका उत्तर दूंगा यह कह कछु दिनोपरान्त पण्डितजीने राजाके पुत्रकी सूरतकी एक मूर्ति बनवाई, और जो दासी राजकुमारको खिलाया करे थी उसे देकर बोले कि जब हम राजाके साथ नौकामें जलविहारको बैठें तब यह मूर्ति गोदीमें लाना, जबही पण्डितजी राजाके संग सरोवरमें जलविहारकूं नौकामें बैठे तबही दासी पुत्रकी मूर्ति लेकर आई. पण्डितजी उसको गोदीमें लेन लगे सो दासीने उसे बीचमें ही छोड़ दिया वोह ज्यों ही जलमें गिरी राजाभी पुत्रकी भ्रांतिसे जलमें कूदा जब मूर्ति निकली तब राजासे पण्डितजी बोले महाराज ! सैंकडों मल्लाह थे उन्हें आज्ञा करदेते आप स्वयं क्यों कूदपड़े राजाने कही पुत्रके स्नेहकी प्रबलतासे मुझे कुछ न सूझा मैं आपही कूदपड़ा तब पण्डितजी बोले राजन्! ऐसेही वोह ईश्वर भक्तोंके दुःख दूर करनेको स्वयंही अवतार लेताहै. प्रेमसे भक्तोंके वशमें है ॥

22

के प्रति कहैहैं कि हेमातर ! हमारे कल्याण करिवेके लिये साक्षात् परमपुरुष भगवान् अपने परिपूर्णरूप करि तुम्हारी कोंखिमें आये यह बडो मङ्गल भयो अब यह कंस मरैगो याते तुम डरपो मति तुम्हारो पुत्र सम्पूर्ण यादवनकी रक्षा करनवारो होयगो ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजी महाराज राजा परीक्षितते कहैहैं कि राजन्! जिनको रूप इदंतत् कहिवेमें नहीं और ऐसे जो परम पुरुष भगवान् तिनकी याप्रकार यथायोग्य स्तुति करके ब्रह्माजी महादेवजीकूं आगे करि देवता स्वर्गकूं जातेभये ॥ ४२ ॥ इतिश्रीमद्भागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ श्रीशुकदेवजी महाराज परिक्षितते कहे हैं हेराजन्! जा समय देवकीके साक्षात् भगवान् प्रगट होत भये ता समय सर्व शुभगुणयुक्त परम शोभायमान

॥ श्रीशुकउवाच ॥ ॥ इत्यभिष्टूय पुरुषं यद्रूपमनिदं यथा ॥ ब्रह्मेशानौ पुरोधाय देवाः प्रतिययुर्दिवम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे गर्भगतविष्णोर्ब्रह्मादिकृतस्तुतिर्नाम द्वितीयोध्यायः ॥ २ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ अथ सर्वगुणोपेतः कालः परमशोभनः ॥ यर्ह्येवाजनजन्मर्क्षं शान्तर्क्षग्रहतारकम् ॥१॥ दिशः प्रसेदुर्गगनं निर्मलोडुगणोदयम् ॥ मही मङ्गलभूयिष्ठपुरग्रामव्रजाकरा ॥ २ ॥ नद्यः प्रसन्नसलिला ह्रदा जलरुहश्रियः ॥ द्विजालिकुलसन्नादस्तबका वनराजयः ॥ ३ ॥ ववौ वायुः सुखस्पर्शः पुण्यगन्धवहः शुचिः ॥ अग्नयश्च द्विजातीनां शान्तास्तत्र समिन्धत ॥४॥ मनांस्यासन्प्रसन्नानि साधूनामसुरद्रुहाम् ॥ जायमानेऽजने तस्मिन्नेदुर्दुन्दुभयो दिवि ॥५॥

काल होत भयो और तासमय, ब्रह्माजीको नक्षत्र रोहिणी आवतभयो, और शांतियुक्त शुभ ग्रह तारका होतेभये ॥ १ ॥ तासमय सम्पूर्ण दिशा प्रसन्न होतीभई और आकाश निर्मल तारागण उदय होतेभये, पृथ्वी मंगलरूपिणी होती भई पुर ग्राम व्रज आकर वनवाटिका श्रीकृष्णचन्द्रके जन्मसमय अत्यंत शोभायमान होतेभये ॥ २ ॥ जा समय श्रीकृष्णचंद्रको जन्म भयो तासमय नदीनके जल निर्मल होते भए, सरोवरनमें कमल प्रफुल्लित भए सम्पूर्ण पक्षी मनोहर शब्द करते भए, और भ्रमर बहुत सुन्दर पुष्पनकी सुगंधि सूंघिके गुंजार करनेलगे ॥ ३ ॥ और वा समय सुखदायक शीतल मंद सुगंधियुक्त पवन चलतभई, और ब्राह्मणनकी शांतिहोमकी अग्नि प्रज्वलित होतीभई ॥ ४ ॥ और तासयम कंसादिकनके विना

पुत्रकूं परब्रह्म नारायण जानिके नम्र जिनके अंग, शुद्ध जिनकी बुद्धि, भय जिनको जात रह्यो, प्रभावके जाननवारे वसुदेवजी सूतिकागृहकूं शोभायमान करैं ऐसे श्रीकृष्णचंद्रकी हाथ जोरिके स्तुति करतेभए ॥ १२ ॥ तुमकूं मैंने जाने आप मायाते परे साक्षात् परमपुरुष हो केवल अनुभव आनंदस्वरूप हो संपूर्ण प्राणीनकी बुद्धिके साक्षीहो ॥ १३ ॥ अपनी मायाते सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुण रूप यह विश्व है ताकूं पहिले रचो हो, तामें प्रविष्ट नहीं हो और प्रविष्टसे देखिवेमें आवो हो ॥ १४ ॥ तामें दृष्टांत है जैसे विकारकूं प्राप्त न भये महत्तत्त्वादिक भाव जैसे महत्तत्त्व अहंकार पंच तन्मात्रा ये सातो पदार्थ पंच ज्ञानेन्द्रिय पंच कर्मेन्द्रिय और मन पंच महाभूत अर्थात् पृथ्वी आप तेज वायु आकाश इन सोलै विका-

अथैनमस्तौदवधार्य पूरुषं परं नताङ्गः कृतधीः कृताञ्जलिः॥स्वरोचिषा भारत सूतिकागृहं विरोचयन्तं गतधीः प्रभाव-
वित् ॥ १२ ॥ वसुदेव उवाच ॥ ॥ विदितोऽसि भवान्साक्षात्पुरुषः प्रकृतेः परः ॥ केवलानुभवानन्दस्वरूपः सर्वबुद्धिदृक्
॥ १३ ॥ स एव स्वप्रकृत्येदं सृष्ट्वाग्रे त्रिगुणात्मकम् ॥ तदनु त्वं ह्यप्रविष्टः प्रविष्ट इव भाव्यसे ॥ १४ ॥ यथेमे विकृता
भावास्तथा ते विकृतैः सह ॥ नानावीर्याः पृथग्भूता विराजं जनयन्ति हि ॥ १५ ॥ संनिपत्य समुत्पाद्य दृश्यन्तेनुगता
इव ॥ प्रागेव विद्यमानत्वान्न तेषामिह संभवः ॥१६॥ एवं भवान्बुद्ध्यनुमेयलक्षणैर्ग्राह्यैर्गुणैः सन्नपि तद्गुणाग्रहः ॥ अना-
वृतत्वाद्बहिरन्तरं न ते सर्वस्य सर्वात्मन आत्मवस्तुनः ॥ १७ ॥

रनके संग मिलके समस्त ब्रह्मांडकूं उत्पन्न करे पृथक् पृथक् ब्रह्मांड बनाइवेमें असमर्थहै * ॥ १६ ॥ ऐसेही तुह्मारो स्वरूप बुद्ध्यादिक इन्द्रियन करिके जानिवेमें आवहै विषयनमें अपार हो परंतु विषयनके संग तुम ग्रहण करिवेमें नहीं आवो हो जैसे एक दूधमें शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये पांचो वस्तु हैं नेत्रनतेंई रूप जानिवेमें आवे है रसको ज्ञान नहीं होइहै ऐसेई विषयनके ग्रहणमें तुम्हारो ग्रहण नहीं होय है परिच्छिन्न पक्षीको वेसुलामें प्रवेश होय है तुम अपरिच्छिन्न हो याते बाहिर भीतर भेद नहीं है गर्भमें प्रवेश कहांते हो आवरण करिके रहित कहांते हो सर्व स्वरूप हो संपूर्णमें व्यापक हो सत्य वस्तुरूप हो ॥ १७ ॥

---

* और उत्पन्न हुए पीछे ब्रह्माण्डमें प्रविष्ट होकर जैसे जाननेमें आते हैं तौभी यथार्थरीतिसों प्रथम कारण रूपसे प्रविष्टही थे इस कारण उत्पन्न हुए, कार्यमें उनका पीछेसे प्रवेश होना संभव नहीं होसक्ता तैसेही आपका प्रवेश पीछेसे संभव नहीं ॥ १५ ॥

संपूर्ण महात्मानके मन प्रसन्न होतेभए प्रभुके प्रगट होनेके समय आपहीतें स्वर्गमें नगारे बाजतेभए ॥ ५ ॥ किन्नर गंधर्व गान करतेभए, सिद्ध चारण स्तुति करनेलगे अप्सरानकूं संग लेके विद्याधर नृत्य करनलगे ॥ ६ ॥ बड़े आनन्द पूर्वक देवता मुनीश्वर पुष्पनकी वर्षा करतेभए मेघ मंद मंद गर्जन लगे ॥ ७ ॥ अर्द्धरात्रिके समय सवकी प्रार्थना भई तव तो देवरूपिनी देवकीके कोखिमें सवके अंतर्यामी भगवान् प्रकट होतेभए, जैसे पूर्वदिशामें चंद्रमा उदय होय है ॥ ८ ॥ कमलसे है नेत्र जिनके चारि भुजा और शंख चक्र गदा पद्मकूं धारण करे हृदयमें भृगुपदको चिन्ह जिनके

जगुः किन्नरगन्धर्वास्तुष्टुवुः सिद्धचारणाः ॥ विद्याधर्यश्च ननृतुरप्सरोभिः समं तदा ॥ ६ ॥ मुमुचुर्मुनयो देवाः सुमनांसि मुदान्विताः ॥ मन्दं मन्दं जलधरा जगर्जुरनुसागरम् ॥ ७ ॥ निशीथे तमउद्भूते जायमाने जनार्दने ॥ देवक्यां देवरूपिण्यां विष्णुः सर्वगुहाशयः ॥ आविरासीद्यथा प्राच्यां दिशीन्दुरिव पुष्कलः ॥ ८ ॥ तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम् ॥ श्रीवत्सलक्ष्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम् ॥ ९ ॥ महार्हवैडूर्यकिरीटकुण्डलत्विषा परिष्वक्तसहस्रकुन्तलम् ॥ उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत ॥ ॥ १० ॥ सविस्मयोत्फुल्लविलोचनो हरिं सुतं विलोक्यानकदुन्दुभिस्तदा ॥ कृष्णावतारोत्सवसंभ्रमोऽस्पृशन्मुदा द्विजेभ्योऽयुतमाप्लुतो गवाम् ॥ ११ ॥

कण्ठविषैं शोभायमान कौस्तुभमणि पीताम्बरकी धोती उपरना पहिरे वर्षती घटाकी तुल्य श्याम सुन्दर जिनको अग ॥ ९ ॥ बहुत श्रेष्ठ वैडूर्य मणिजटित किरीट मस्तकपै शोभायमान है उज्ज्वल कुंडलनकी कांतिकरि शोभायमान जिनके केश भुजानमें सुन्दर बाजूबन्द पहिरे और उत्तम कंकण धारण करे और अनेक प्रकारके आभूषण कारि परम शोभायमान अद्भुत बालक वसुदेवजी देखते भये ॥ १० ॥ हरिभगवानकूं अपने पुत्र देखिके आश्चर्य्यतें वसुदेवजीके नेत्र प्रफुल्लित होय गये, श्रीकृष्णचन्द्रके प्रगट होयवेके समय हरबराय गये; बंदीखानेंईमें दश हजार गौअनको संकल्प मनसेही कऱ्यो ॥ ११ ॥

आत्माके जो दृश्यगुण देहादिक तिनकूं आत्माके विना जो पुरुष सत्य मानेहै वह अज्ञानी है, विचारिके देखो तो कथनमात्रविना देहादिक सब झूंठेहो हैं, यातें झूंठे देहादिकनकूं जो पुरुष सत्य माने है सो अज्ञानी है ॥ १८ ॥ हे विभो ! निरीह निर्गुण निर्विकार तुम हो, तुमहींते या विश्वको जन्म पालन संहार होयहै, तुम ईश्वर ब्रह्म जिनमें कछु विरोध नहीं है, तुम्हारो आश्रय लके तीनों गुण सृष्टि करैहैं यातें तुम कर्ता कहिवेमें आवो हो ॥ १९ ॥ जैसे कार्य तो करे सेवक राजामें उसको आरोप कियाजाय है इसी प्रकार आपमें कर्तापनको आरोप कियो जायहै, त्रिलोकीके पालन करिवेके लिये अपनी मायाकरिके सतोगुणी शुक्लवर्ण विष्णुरूप तुम धारणकरोहो, और सृष्टिकी उत्पत्तिके समय रजोगुणी रक्तवर्ण ब्रह्मारूप धारण करोहो, संहारके समय तमोगुणी कृष्णवर्ण रुद्ररूप धारणकरोहौ ॥ २० ॥ हे समर्थ श्रीकृष्ण हे ब्रह्मादिकनके ईश्वर! तुम या लोककी रक्षा करिवेके कारण हमारे गृहमें प्रगट भयेहो, और क्षत्री जिनको नाम ऐसे असुरनकी सेनाके किरोडों यूथ जित तित चलायमान तिनकूं मारोगे ॥ २१ ॥ हे देवतानके ईश्वर ! या दुष्टकंसने तुह्मारे जन्मकूं हमारे घरमें श्रवण करि तुम्हारे वहुत भ्राता मारे हैं अब जो कोई तुम्हारो अवतार भयो यह वार्ता कहि देयगो तो सुनिके शस्त्र लके सन्मुख चल्यो आवैगो ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितते कहै हैं कि, हे राजन् ! या प्रकार वसुदे-

य आत्मनो दृश्यगुणेषु सन्निति व्यवस्यते स्वव्यतिरेकतो बुधः ॥ विनानुवादं न च तन्मनीषितं सम्यग्यतस्त्यक्तमुपाददत्पुमान् ॥ १८ ॥ त्वत्तोस्य जन्मास्थितिसंयमान्विभो वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात् ॥ त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुध्यते त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते गुणैः ॥ १९ ॥ सत्त्वं त्रिलोकास्थितये स्वमायया बिभर्षि शुक्लं खलु वर्णमात्मनः ॥ सर्गाय रक्तं रजसोपबृंहितं कृष्णं च वर्णं तमसा जनात्यये ॥ २० ॥ त्वमस्य लोकस्य विभो रिरक्षिषुर्गृहेवतीर्णोऽसि ममाखिलेश्वर ॥ राजन्यसंज्ञासुरकोटियूथपैर्निर्व्यूह्यमाना निहनिष्यसे चमूः ॥ २१ ॥ अयं त्वसभ्यस्तव जन्म नौ गृहे श्रुत्वाऽग्रजांस्ते न्यवधीत्सुरेश्वर ॥ स तेऽवतारं पुरुषैः समर्पितं श्रुत्वाऽधुनैवाभिसरत्युदायुधः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथैनमात्मजं वीक्ष्य महापुरुषलक्षणम् ॥ देवकी तमुपाधावत्कंसाद्भीता शुचिस्मिता ॥ २३ ॥

वजो स्तुति करिचुके पश्चात् देवकी पुत्रमें महापुरुष भगवान्के लक्षण देखि सुन्दर जिनकी मुसिकानि कंसके भयते स्तुति करनेलगी ॥ २३ ॥ अनादिव्यापक ज्योतिःस्वरूप निर्गुण निर्विकार सत्तामात्र चरणादिकनकरि रहित चेष्टारहित जो तुम सो काहू प्रकार जानिवेंमें नहीं आवोहो, वेद जो है सो तुह्मारे स्वरूपको वर्णन करेहै, सो तुम ज्ञानके प्रकाश करनेवारे साक्षात् विष्णु हो ॥ २४ ॥ जा समय ब्रह्माजीको सौवर्षकी अवस्था होय है तब प्रलयकालमें सम्पूर्ण लोक नष्ट होयहैं पृथ्वी जल तेज वायु आकाश ये पंचतत्त्व अपने कारणमें मिलिजायहैं तासमय प्रधानके जान्नेहार केवल एक आपही अजन्मा शेष रहो हो ॥ २५ ॥ हे मायाके प्रेरक ! यह जो काल है ताकूं तुमारी लीला वर्णन करेहै, या काल ते विश्व होय है, पलते आ-

॥ देवक्युवाच ॥ ॥ रूपं यत्तत्प्राहुरव्यक्तमाद्यं ब्रह्म ज्योतिर्निर्गुणं निर्विकारम् ॥ सत्तामात्रं निर्विशेषं निरीहं स त्वं साक्षाद्विष्णुरध्यात्मदीपः ॥ २४ ॥ नष्टे लोके द्विपरार्धावसाने महाभूतेष्वादिभूतं गतेषु ॥ व्यक्तेऽव्यक्तं कालवेगेन याते भवानेकः शिष्यतेऽशेषसंज्ञः॥२५॥ योयं कालस्तस्य ते व्यक्तबन्धो चेष्टामाहुश्चेष्टते येन विश्वम् ॥ निमेषादिर्वतसरान्तो महीयांस्तं त्वेशानं क्षेमधाम प्रपद्ये॥२६॥ मर्त्यो मृत्युव्यालभीतः पलायँल्लोकान्सर्वान्निर्भयं नाध्यगच्छत्॥ त्वत्पादाब्जं प्राप्य यदृच्छयाद्य स्वस्थः शेते मृत्युरस्मादपैति ॥ २७ ॥ स त्वं घोरादुग्रसेनात्मजान्नस्त्राहि त्रस्तान् भृत्यवित्रासहाऽसि ॥ रूपं चेदं पौरुषं ध्यानधिष्ण्यं मा प्रत्यक्षं मांसदृशां कृषीष्ठाः ॥ २८ ॥

दिलेके वर्षपर्यंत जाकी गिनती होयहै यह परार्द्धरूप करिके बड़ो है, ऐसे तुम निर्भय रूप तिनकी मैं शरणागत हूं ॥ २६॥ अब ये सम्पूर्ण मनुष्य मृत्युरूपी सर्पके भयते समस्तलोकनमें भाजे फिरै हैं जिनकूं निर्भय स्थान कहूं प्राप्त नहीं होय है, कोई एक पुण्यके फलतें आपके चरणारविंदकूं प्राप्त होइ जायहै तब निर्भय होयके शयन करैहै, मृत्यु याको पीछो छोडिदेयहै ॥ २७ ॥ और महाराज ! अतिभयंकर स्वरूपवाले उग्रसेनके पुत्र कंसतें हम डरपैहैं सो आप हमारी रक्षा करो भक्तनके भयके दूरि करनवारे ध्यान करिवेयोग्यहो यह जो आपको श्यामसुन्दर स्वरूप ताको चर्मचक्षुवारेनकूं मति दिखावो ॥ २८ ॥

हेमधुसूदन ! तुह्मारो जन्म मेरे यहां भयोहै यह बात कंस न जानै तुह्मारे लिये अधीर चित्तवाली स्त्री मैं हूं या कंसके भयते डरपूंहूं ॥ २९ ॥ हे विश्वके आत्मा ! शंखचक्रगदापद्मकरि शोभायमान जो यह आपको चतुर्भुजस्वरूप है याकूं आप छिपाइलेउ ॥ ३० ॥ जो तुम पहिले परमपुरुष भगवान् प्रलयसमय विना परिश्रमही समस्त विश्वको अपने उदरमें राखो हो, सो तुम मेरे गर्भमें प्राप्तभयेहो यासें या संसारमें बड़ी हांसी होयगी ॥ ३१ ॥ अब श्रीकृष्णचंद्र भगवान् कहैं हैं अहो मात ! तुम अपने पूर्वजन्मकी कथा सुनो, तुम तो पहले जन्ममें पृश्नि हीं और ये

जन्म ते मय्यसौ पापो मा विद्यान्मधुसूदन ॥ समुद्विजे भवद्धेतोः कंसादहमधीरधीः ॥ २९ ॥ उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम् ॥ शङ्खचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम् ॥ ३० ॥ विश्वं यदेतत्स्वतनौ निशान्ते यथावकाशं पुरुषः परो भवान् ॥ बिभर्ति सोयं मम गर्भगोभूदहो नृलोकस्य विडम्बनं हि तत् ॥ ३१ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वायंभुवे सति ॥ तदायं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः ॥ ३२ ॥ युवां वै ब्रह्मणादिष्टौ प्रजासर्गे यदा ततः ॥ सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तेपाथे परमं तपः ॥ ३३ ॥ वर्षवातातपहिमघर्मकालगुणाननु ॥ सहमानौ श्वासरोधविनिर्धूतमनोमलौ ॥ ३४ ॥ शीर्णपर्णानिलाहारावुपशान्तेन चेतसा ॥ मत्तः कामानभीप्सन्तौ मदाराधनमीहतुः ॥ ३५ ॥ एवं वां तप्यतोस्तीव्रं तपः परमदुष्करम् ॥ दिव्यवर्षसहस्राणि द्वादशेयुर्मदात्मनोः ॥ ३६ ॥

वसुदेवजी तासमय पापनकरि रहित सुतपा नाम प्रजापति भए ॥ ३२ ॥ सो तुम दोउनकूं सृष्टि उत्पन्न करिवेके निमित्त जब ब्रह्माजीने आज्ञा करी, तब तुमने इंद्रीनको रोकिके बडो तप कियो ॥ ३३ ॥ वर्षा, पवन, धूप, जाडो, गरमी, ये कालके गुण हैं तिनकूं तुमने सह्ये और श्वासको रोकिके मनके मैल दूरिकिये ॥ ३४ ॥ शुष्क पत्र और पवनको भोजनकरिकै मोसे कामनाकूं चाहिके तुमने चित्तशांतिकरि मेरो आराधन कर्यो ॥ ३५ ॥ हे मात ! मोमें चित्त लगाय करि तुम दोउननें बडो तीव्र तप कर्यो, तप करत करत बारह हजार वर्ष देवतानके व्यतीत होगये ॥ ३६ ॥

हे निष्पापौ ! ताही समय याही देहते तुह्मारे ऊपर प्रसन्न भयो, कारण कि तुमने तप श्रद्धा भक्ति करि नित्य हृदयमें मेरो ध्यान कर्योहो ॥३७॥ तुम दोनोंकी कामना पूरी करिवेके लिये मैं प्रकट होतो भया, जब मैंने कही कि वर मांगो, तब तुमने यह वर मांग्यो महाराज ! जो वर देनकी इच्छा है तौ तुमसदृश हमारे पुत्र होय * ॥ ३८ ॥ विषय तुमने भोगे नहीं, और कोऊ पुत्र भयो नहीं सो तुमने मेरी मायामें मोहित होयके मोते मुक्ति नहीं मांगी ॥ ३९ ॥ तासमय मैंने तुमकूं वर दियो कि तुह्मारे मोसरीका पुत्र होयगा, ऐसे कहिके मैं जातभयो, और तुम मनोरथको प्राप्तहोयकै विषयनको भोग करतभए ॥ ४० ॥ जब मैंने शील उदारता इन गुणनसैं युक्त अपनी सदृश दूसरो पुरुष यालोकमें न देख्यो, तब मैं पृश्निगर्भ नामकरि विख्यात तुह्मारे आयके पुत्र भयो ॥ ४१ ॥ दूसरे जन्ममें तुम कश्यप अदितिरूप हुए मैं फिरि अदितिमाताविषैं उपेन्द्रनामकरिके विख्यात भयो, और तबही वामनरूप धरिके वामन विख्यात भयो ॥ ४२ ॥ तीसरे जन्ममें ताही रूप करिके फिर तुह्मारे जन्मलियोहै हेमात ! मेरो वचन सत्य जानो, देखो तुमने एकवेर पुत्रको वर मांग्यो मैं तुह्मारे तीनवेर पुत्र भयो ॥ ४३ ॥ पहले जन्मको स्मरण करायवेके लिये यह स्वरूप तुमैं दिखायो है, और प्रकार मनुष्यके बालकको रूप धारण करि प्रकट होतो तौ तुम कहाजानते कि यह परमेश्वर बेर बेर जन्म लेइहैं ॥ ४४ ॥

तदा वां परिष्टोहममुना वपुषानघे ॥ तपसा श्रद्धया नित्यं भक्त्या च हृदि भावितः ॥ ३७ ॥ प्रादुरासं वरदराड् युवयोः कामदित्सया ॥ व्रियतां वर इत्युक्ते मादृशो वां वृतः सुतः ॥ ३८ ॥ अजुष्टग्राम्यविषयावनपत्यौ च दम्पती ॥ न वव्राथेपवर्गं मे मोहितौ देवमायया ॥ ३९ ॥ गत मयि युवां लब्ध्वा वरं मत्सदृशं सुतम् ॥ ग्राम्यान् भोगानभुञ्जाथां युवां प्राप्तमनोरथौ ॥ ४० ॥ अदृष्ट्वान्यतमं लोक शीलौदार्यगुणैः समम् ॥ अहं सुतो वामभवं पृश्निगर्भ इति श्रुतः ॥ ४१ ॥ तयोर्वां पुनरेवाहमदित्यामास कश्यपात् ॥ उपेन्द्र इति विख्यातो वामनत्वाच्च वामनः ॥ ४२ ॥ तृतीयेऽस्मिन् भवेहं वै तेनैव वपुषाऽथ वाम् ॥ जातो भूयस्तयोरेव सत्यं मे व्याहृतं सति ॥ ४३ ॥ एतद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे ॥ नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिङ्गेन जायते ॥ ४४ ॥

---

* दानि शिरोमणि कृपानिधि, नाथ कहँ सतभाव । चाहत तुमहिं समान सुत, प्रभु सन कवन दुराव ॥

अब तुम चाहो पुत्रभाव करि मेरो ध्यान करो चाहो परमेश्वर जानिके ध्यान करो, मोमें स्नेह करोगे तो मेरी परमगतिकूं प्राप्त होउंगे ॥ ४५ ॥ (और जो तुमको कंसते भयहै कि याकूं मारैगो, तो तुम मोकूं गोकुलमें नंदरायजीके घर प्राप्त करो, और यशोदाके गर्भते प्रगट भई जो मेरी माया ताहि शीघ्र अपने घरकूं लै आवो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी महाराज राजा परीक्षतते कहैहैं कि ॥ हे राजन् ! इतनी वार्त्ता कहिके भगवान् चुप ह्वै गए, अपनी माया करिके माता पिताके देखतेही शीघ्रही साधारण बालक होइगये ॥ ४६ ॥ जब भगवानने वसुदेवजीते कही तब वसुदेव

युवां मां पुत्रभावेन ब्रह्मभावेन चासकृत् ॥ चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यास्येथे मद्गतिं पराम् ॥४५॥ (यदि कंसाद्बिभेषि त्वं तर्हि मां गोकुलं नय ॥ मन्मायामानयाशु त्वं यशोदागर्भसंभवाम् ॥१॥) श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त्वासीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया ॥ पित्रोः संपश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः ॥ ४६ ततश्च शौरिर्भगवत्प्रचोदितः सुतं समादाय स सूतिकागृहात् ॥ यदा बहिर्गन्तुमियेष तर्ह्यजा या योगमायाऽजनि नन्दजायया ॥ ४७ ॥ तया हृतप्रत्ययसर्ववृत्तिषु द्वाःस्थेषु पौरेष्वपि शायितेष्वथ ॥ द्वारस्तु सर्वाः पिहिता दुरत्यया बृहत्कपाटायसकीलशृङ्खलैः ॥ ४८ ॥ ताः कृष्णवाहे वसुदेव आगते स्वयं व्यवर्तन्त यथा तमो रवेः ॥ ववर्ष पर्जन्य उपांशुगर्जितः शेषोन्वगाद्वारि निवारयन्फणैः ॥ ४९ ॥

जी सूतिकाघरते श्रीकृष्णचंद्रकूं बाहिर निकारीवेकी इच्छा करतभए, ताही समय श्रीनंदरानी यशोदाके घर योगमाया जन्म लेत भई ॥ ४७ ॥ ता समय योगमायाने संपूर्ण द्वारपालनके पुरवासीनके ज्ञान हरिलीने, और सबकूं सुवायदीने, जब श्रीकृष्णचंद्रकूं लेके चले तब द्वारनके बडे बडे किवानरकी लोहकी सांकल आपसूं आप खुलिगई, जैसें सूर्य्यके उदय होते अंधकार दूरि होत है, और मंदमंद गर्जना करि मेघ जल वर्षतभए, पीछे शेषजी फणकी छायातें बूंदनकूं निवारण करतभये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

---

१ तीनवेर यह शब्द उच्चारण कियाथा कि तुमसमान पुत्र होय इसकारण भगवानने तीनवेर इन्हींके जन्मलिया इसकारण तीसरे जन्ममें मुक्ति हुई ।

निरंतर इंद्रके वर्षनेतें तासमय अतिगंभीर जाको जलतरंग जामें उठे असंख्यात भँवर जामें परैं ऐसी श्रीयमुनाजी भगवान्‌के चरण छूइके श्रीवसुदेवजीकूं मार्ग देतीभई जैसे जानकीके पति श्रीरामचंद्रजीकूं समुद्र मार्ग देतोभयो ॥ ५० ॥ वसुदेवजी गोकुल जाय संपूर्ण गोप गोपीन कूं सोवते देखिके श्रीकृष्णकूं यशोदाजीकी शय्यापर सोवाय, और उनकी कन्याकूं लैकें फिरि श्रीमथुराजीकूं आवतभये ॥ ५१ ॥ वा कन्याकूं, देवकीजीकी शय्यापै सुवायकै वसुदेवजीनें वाहीं स्थानमें जाय पावनमें बेडी पहिरिलीनी मानों यहांते गएई नहीं हैं ॥ ५२ ॥ अब नंदरानी श्रीयशोदाजीने जाना कि कछु मेरे बालक भयो, और होनेसमय कछु दुःख न भयो, यातें पुत्र भयो कि पुत्री यह न जानी, निद्रामें मग्नही यातें कछु

30

मघोनि वर्षत्यसकृद्यमानुजा गम्भीरतोयौघजवोर्मिफेनिला॥भयानकावर्तशताकुला नदी मार्गं ददौ सिन्धुरिव श्रियः पतेः ॥ ५० ॥ नन्दव्रजं शौरिरुपेत्य तत्र तान्गोपान्प्रसुप्तानुपलभ्य निद्रया॥सुतं यशोदाशयने निधाय तत्सुतामुपादाय पुनर्गृहानगात् ॥५१॥ देवक्याः शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकाम् ॥ प्रतिमुच्य पदोर्लोहमास्ते पूर्ववदावृतः॥५२॥ यशोदा नन्दपत्नी च जातं परमबुद्ध्यत ॥ न तल्लिङ्गं परिश्रान्ता॥निद्रयाऽपगतस्मृतिः ॥५३॥ इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कृष्णजन्मनि तृतीयोऽध्यायः॥३॥श्रीशुक उवाच॥ बहिरन्तःपुरद्वारः सर्वाः पूर्ववदावृताः ॥ ततो बालध्वनिं श्रुत्वा गृहपालाः समुत्थिताः ॥ १ ॥ ते तु तूर्णमुपव्रज्य देवक्या गर्भजन्म तत् ॥ आचख्युर्भोजराजाय यदुद्विग्नः प्रतीक्षते ॥ २ ॥ स तल्पात्तूर्णमुत्थाय कालोऽयमिति विह्वलः ॥ सूतीगृहमगात्तूर्णं प्रस्खलन्मुक्तमूर्धजः ॥३॥

सुधि न रही ॥ ५३ ॥ इतिश्रीमद्भागवतभाषाटीकायांदशमस्कन्धेपू० तृतीयोध्यायः ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षिततें कहैं हैं की ॥ हे राजन्! तासमय बाहिर भीतरके संपूर्ण पुरके दरवाजे हैं सो पहिलेकीसी नाईं बंद ह्वैगए, तापीछे बालकको रुदन श्रवणकरिके ड्योढीवान् उठे ॥ १ ॥ उठिकें शीघ्र देवकीके आठमें गर्भको जन्म जायके कंसते कह्यो, उद्विग्न जाको मन सो कंस याही गर्भको पैंडो देखेहो ॥ २ ॥ श्रवणकरिके उसीसमय शय्याते जल्दी उठिकें कंस शीघ्र सूतिकागृहमें आवतो भयो, घबड़ायके जल्दीसें मार्गमें गिरिपड़्यो मस्तकके बाल खुल गए ॥३॥

देवकी कंसकूं देखिके दीन होयगई और करुणासे भरे वचन कंसते बोली हे मंगलरूप ! या कन्याकूं मतिमारै तो कदाचित् जीवैगी जो तेरेही पुत्रकूं व्याही देउंगी ॥ ४ ॥ हे भैया अग्निकोसो जिनको तेज ऐसे बहोत तैंने मेरे पुत्र मारे परंतु तू कहाकरै दैवने तेरी ऐसीही बुद्धि करि दीनी अब या एक कन्याकूं मांगे दे मति मारे ॥ ५ ॥ हेसामर्थ्यवान ! मैं दीन तेरी छोटी बहिन मंदभागिनी हूं और मेरे सब पुत्र मारेगयेहैं सो हेभइया यह अंतिम पेट पौछनी कन्या तौ तू मुझे दे ॥ ६ ॥ श्रीशुकदेवजी महाराज राजा परीक्षितते कहैंहैं कि ॥ हे राजन् ! याप्रकार देवकी कंसते कहिके कन्याकूं छातीते लगाइके अति दीनकी नाईं रुदन करनेलगी कछुदीनतौ नहीं है किंतु मनमें प्रसन्नहै जानैहै कि मेरो पुत्र तो और

तमाह भ्रातरं देवी कृपणा करुणं सती ॥ स्नुषेयं तव कल्याण स्त्रियं मा हन्तुमर्हसि ॥ ४ ॥ बहवो हिंसिता भ्रातः
शिशवः पावकोपमाः ॥ त्वया दैवनिसृष्टेन पुत्रिकैका प्रदीयताम् ॥ ५ ॥ नन्वहं ते ह्यवरजा दीना हतसुता प्रभो ॥
दातुमर्हसि मन्दाया अङ्गेमां चरमां प्रजाम् ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उपगुह्यात्मजामेवं रुदन्त्या दीनदीनवत् ॥
याचितस्तां विनिर्भर्त्स्य हस्तादाचिच्छिदे खलः ॥ ७ ॥ तां गृहीत्वा चरणयोर्जातमात्रां स्वसुः सुताम् ॥ अपोथय-
च्छिलापृष्ठे स्वार्थोन्मूलितसौहृदः ॥८॥ सा तद्धस्तात्समुत्पत्य सद्यो देव्यम्बरं गता ॥ अदृश्यतानुजा विष्णोः
सायुधाष्टमहाभुजा ॥ ९ ॥

स्थानपै पहुंचगयो है, और यह कन्या योगमाया है, याके हाथ लगै नहीं याते रुदन करैहै तथापि देवकीके हाथमेंते दुष्टने घुड़ककै हठते कन्या झटकि लीनी अत्यन्त नम्र होइके कह्यो तौऊ दुष्टने न मानी ॥ ७ ॥ तुरतकी उत्पन्न भई बहिनकी कन्याके चरण पकरिके जोरसे सिलाके ऊपर दे मारी, अपने प्रयोजनके लिये प्रीतिको न गिनी ॥ ८ ॥ वह कन्या कंसके हाथतें उछिटिके कंसके माथेमें लात देके तत्कालही देवीको रूप धरिके आकाशकूं जाती भई, शस्त्रन सहित आठ जाकी महाभुजा ऐसी विष्णुकी छोटी बहिन देखिवेमें आई ॥ ९ ॥

---

१ दोहा—कन्या ले ठाढी भई, देवी अंचल जोड । भैया तेरे शरणहै, चाहै मार कि छोड ॥

दिव्यस्रगम्बरालेपरत्नाभरणभूषिता ॥ धनुःशूलेषुचर्मासिशङ्खचक्रगदाधरा ॥ १० ॥ सिद्धचारणगन्धर्वैरप्सरःकिन्नरोरगैः ॥ उपाहृतोरुबलिभिः स्तूयमानेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ किं मया हतया मन्द जातः खलु तवान्तकृत् ॥ यत्र क्व वा पूर्वशत्रुर्मा हिंसीः कृपणां वृथा ॥ १२ ॥ इति प्रभाष्य तं देवी माया भगवती भुवि ॥ बहुनामनिकेतेषु बहुनामा बभूव ह ॥ १३ ॥ तयाऽभिहितमाकर्ण्य कंसः परमविस्मितः ॥ देवकीं वसुदेवं च विमुच्य प्रश्रितोऽब्रवीत् ॥१४॥ अहो भगिन्यहो भाम मया वां बत पाप्मना ॥ पुरुषाद इवापत्यं बहवो हिंसिताः सुताः ॥ १५ ॥ स त्वहं त्यक्तकारुण्यस्त्यक्तज्ञातिसुहृत्खलः ॥ काँल्लोकान्वै गमिष्यामि ब्रह्महेव मृतः श्वसन् ॥ १६ ॥ दैवमप्यनृतं वक्ति न मर्त्या एव केवलम् ॥ यद्विश्रम्भादहं पापः स्वसुर्निहतवाञ्छिशून् ॥ १७ ॥

दिव्यमाला पहिरे चंदन जाके लगिरह्यो दिव्य रत्नजटित आभूषणनकरि शोभायमान धनुष त्रिशूल ढाल तरवार शंख चक्र गदा पद्म इनकूं धारण करे ॥ १० ॥ सिद्ध चारण गंधर्व अप्सरा किन्नर नागनमें बडि बडि भेठें दीनी और अस्तुति करी तब वह यह बोली ॥ ११ ॥ अरे मूर्ख! मेरे मारेते तेरे हाथ कहा लगैगो तेरो मारिवेवारो पहलेई कहूं जहां तहां प्रगटव्है चुक्योहै अरे कृपण! बालनकूं वृथा क्यों मारैहै ॥ १२ ॥ या प्रकार भगवान्की देवी योगमाया कंसते कहती भई और बहुत स्थाननपरि दुर्गा भद्रकाली इत्यादिक नामनकरि प्रकाशित होती भई ॥१३॥ या प्रकार योगमायाको वचन श्रवण करि कंसको बडो विस्मय भयो, देवकी वसुदेवके पाइनमेंतें बेडी खुलवाय डारी, हाथ जोरिकरिके यह वचन कहत भयो ॥ १४ ॥ अहो बहिन! अहो बहनेऊ! हाय मो पापीने तुम्हारे बहोत बालक मारे, जैसे कोऊ राक्षस अपने पुत्रनकूं मारैहै ॥ १५ ॥ और देखो करुणा मैंने छोडदीनी जातिके हितकारी सम्पूर्ण छोडिदिये, अहो मैं दुष्ट कौन लोकमें जाऊंगो ब्रह्महत्यारेकी नाईं जीवतोही मैं मरे बराबर हौं ॥ १६ ॥ और केवल मनुष्यही मिथ्या बोलै यह बात नहीं, किंतु देवताहू मिथ्या बोलै हैं, देखो आकाशवाणीके कहतें विश्वासमें आय मो पापीन बहिनके पुत्र मारे ॥ १७ ॥

अहो बडभागियो! तुम पुत्रनको शोक मति करौ ये जीव अपने करे कर्मको भोगैंहैं जीव दैवके आधीन हैं सर्वदा एकत्र नहीं रहसकैंहैं ॥ १८ ॥ जैसे पृथ्वीके विकार घट पट इत्यादिक उत्पन्न होइहैं, और फूटिजाइहैं, इनके होवेमें पृथ्वीको विकार नहीं आवैहै, तैसैंही देहतेंही जन्मे है और मरे है देहनके संग आत्मा नहीं मरै है ॥ १९ ॥ जे पुरुष ऐसे नहीं जानैं हैं वे देहकूं आत्मा मानैं हैं, और देहकूं आत्मातें अहं त्वं ये नाना बुद्धि भेद उदय होइहै, या भेदतें पुत्रादिकके देहनसूं योग वियोग होइहै, यातें उनके अज्ञानकी निवृत्ति नहीं होइहै ॥ २० ॥ हे मंगलरूपिणि! मैंने तुम्हारे पुत्र मारे हैं, तौऊ तुम उनको शोच मति करो, संपूर्ण जीव विवश होयके अपने कर्मके फलको भोगैंहैं ॥ २१ ॥ यावत् पर्यंत अज्ञानी पुरुष अपनेकूं मानैं हैं, कि मरूं हूं मारूं हूं तावत् पर्यंत देहाभिमानी अज्ञानी पुरुष मरैंहैं ॥ २२ ॥ अब तुम मो दुष्टपर क्षमा करो साधु मनुष्य दीनपर दयाही करैं हैं, यह कहिके अश्रु जाके नेत्रमें भरि आए ऐसो कंस देवकी वसुदेवके चरणनमें गिरि परचो ॥ २३ ॥ तेरो मारनवारो कहूं उत्पन्न होय चुक्यौ हैं, यह वाक्य आकाशवाणीको श्रवण करि विश्वास पाय कंसने देवकी वसुदेवजीके पावनमेंसे बेडी काटिदीनी, और अपनी सुहृदता स्नेह जतावतो भयो ॥ २४ ॥ देवकी भैया कंसकूं अति व्याकुल देखिके क्षमा करि अपने रोषकूं

मा शोचतं महाभागौ स्वात्मजान्स्वकृतं भुजः ॥ जन्तवो न सदैकत्र दैवाधीनाः सहाऽऽसते ॥ १८ ॥ भुवि भौमानि भूतानि यथा यान्त्यपयान्ति च ॥ नायमात्मा तथैतेषु विपर्येति यथैव भूः ॥ १९ ॥ यथाऽनेवंविदो भेदो यत आत्मविपर्ययः ॥ देहयोगवियोगौ च संसृतिर्न निवर्तते ॥ २० ॥ तस्माद्भद्रे स्वतनयान्मया व्यापादितानपि ॥ माऽनुशोच यतः सर्वः स्वकृतं विन्दतेऽवशः ॥ २१ ॥ यावद्धतोस्मि हन्तास्मीत्यात्मानं मन्यते स्वदृक् ॥ तावत्तदभिमान्यज्ञो बाध्यबाधकतामियात् ॥ २२ ॥ क्षमध्वं मम दौरात्म्यं साधवो दीनवत्सलाः ॥ इत्युक्त्वाश्रुमुखः पादौ श्यालस्वस्रोरथाग्रहीत् ॥ २३ ॥ मोचयामास निगडाद्विस्रब्धः कन्यकागिरा ॥ देवकीं वसुदेवं च दर्शयन्नात्मसौहृदम् ॥ २४ ॥ भ्रातुः समनुतप्तस्य क्षान्तरोषा च देवकी ॥ व्यसृजद्वसुदेवश्च प्रहस्य तमुवाच ह ॥ २५ ॥

त्यागती भई, और वसुदेवजी मुसिकायके कंसतें यह बोले ॥ २५ ॥ हे महाभाग कंस! जेसे तुम कहो हो यह बात तैसेंही है देहधारीनकूं अज्ञानते अहंकार होयहै, या अहंकारतेही मेरो तेरो भेद करायदियो है ॥ २६ ॥ शोक हर्ष भय द्वेष लोभ मोह जिनकूं लगि रहे हैं, वे मदोन्मत्त पुरुष ईश्वरही पदार्थोंसे पदार्थोंका परस्पर नाश करताहै इस वार्ताको नहीं जान्ते ईश्वर परमात्माकूं नहीं देखैं हैं, यातें मैं मरूंहूं मारूंहूं ऐसे मानैं हैं ॥ २७ ॥ अब श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षिततें कहैं हैं कि हे राजन्! या प्रकार प्रसन्न भए तथा श्रद्धायुक्त देवकी वसुदेवजीतें कंस आज्ञा ग्रहण करि अपने स्थानकूं गयौ ॥ २८ ॥ जैसें तैसें वह रात्रि व्यतीत भई पश्चात् प्रातःकाल भयो ता समय कंसने मंत्री

एवमेतन्महाभाग यथा वदसि देहिनाम् ॥ अज्ञानप्रभवाहंधीः स्वपरेति भिदा यतः ॥ २६ ॥ शोकहर्षभयद्वेषलोभमोहमदान्विताः ॥ मिथो घ्नन्तं न पश्यन्ति भावैर्भावं पृथग्दृशः ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कंस एवं प्रसन्नाभ्यां विशुद्धं प्रतिभाषितः॥ देवकीवसुदेवाभ्यामनुज्ञातोविशद् गृहम्॥२८॥तस्यां रात्र्यां व्यतीतायां कंस आहूय मन्त्रिणः ॥ तेभ्य आचष्ट तत्सर्वं यदुक्तं योगनिद्रया ॥२९॥ आकर्ण्य भर्तुर्गदितं तमूचुर्देवशत्रवः॥ देवान्प्रति कृतामर्षा दैतेया नातिकोविदाः ॥ ३० ॥ एवं चेत्तर्हि भोजेन्द्र पुरग्रामव्रजादिषु ॥ अनिर्दशान्निर्दशांश्च हनिष्यामोद्य वै शिशून् ॥ ३१॥ किमुद्यमैः करिष्यन्ति देवाः समरभीरवः ॥ नित्यमुद्विग्नमनसो ज्याघोषैर्धनुषस्तव ॥३२॥ अस्यतस्ते शरव्रातैर्हन्यमानाः समन्ततः॥ जिजीविषव उत्सृज्य पलायनपरा ययुः ॥ ३३ ॥

बुलाये और योगमायाने कह्यो तेरो मारनवारो उत्पन्न ह्वै चुक्यो है सो यह वार्ता संपूर्ण मंत्रीन प्रति कही ॥ २९ ॥ कंसको वचन श्रवण करि देवनके शत्रु दूरतक विचार नहीं करनवारे देवनके ऊपर क्रोध करनवारे मंत्री कहे हैं ॥ ३० ॥ कि हे भोजवंशीनके इंद्र तुम्हारो मारनवारो कहूं ह्वै चुक्यो है तो कहा चिंताहै, पुरग्राम खिरक इत्यादिक जितने स्थानमें तिनमें दश दश पांच पांच दिनके बालकनकूं हम मारि आवैंगे, इनहीमें तुम्हारो मारनवारो भी आय जायगो ॥ ३१ ॥ रणके विषैं डरपनहारे ये देवता ते कहां पराक्रम करैंगे, तुमारे धनुषकी टंकार सुनिकेही उनके मन कंपायमान रहते हैं ॥ ३२ ॥ आप जा समय धनुषमें लगायके बाणनकी चारों ओर ते मार देउ हो ता समय देवता अपनो जीव लैकें

मार्ग छोड़के भाजिजायेंहैं भाजनोही जिनके श्रेष्ठहैं ॥ ३३ ॥ कोई देवता रणमें शस्त्र त्याग करि अपनेको दीनजानिके हाथ जोरिलेंहैं और कोई कोई देवता धोंतीकी कांछ खोल और चुटिया खोल हम डरैं हैं ऐसे कहैहैं ॥ ३४ ॥ आपके सन्मुख शस्त्रदीने रथ जिनके टूटि गये भयकरिके भाजने में जिनके मन लगे संग्रामते विमुख, धनुष जिनके टूटगए युद्ध न करैं ऐसे देवतानकूं तुम नहीं मारो हो ॥ ३५ ॥ संग्रामके विना निर्भय स्थानमें वैठिकें [1]बकबाद करनवारे देवता कहां पराक्रम करैंगे तुह्मारे डरके मारे एकांतमें छिपे गुप्त रहनेहारे हरि कहां पराक्रम करैंगे जहां पुरुष जायके स्त्रीरूप होयजायं ऐसे इलावृतखण्डके रहनवारे वनवासी ऐसे महादेव कहां करैंगे ॥ ३६ ॥ थोरो जाको पराक्रम और यत्किंचित् विपत्ति परै तो

केचित्प्राञ्जलयो दीना न्यस्तशस्त्रा दिवौकसः ॥ मुक्तकच्छशिखाः केचिद्भीताः स्म इति वादिनः ॥ ३४ ॥ न त्वं विस्मृतशस्त्रास्त्रान्विरथान्भयसंवृतान् ॥ हंस्यन्यासक्तविमुखान्भग्नचापानयुद्ध्यतः ॥ ३५ ॥ किं क्षेमशूरैर्विबुधैरसंयुगविकत्थनैः ॥ रहोजुषा किं हरिणा शंभुना वा वनौकसा ॥ ३६ ॥ किमिन्द्रेणाल्पवीर्येण ब्रह्मणा वा तपस्यता ॥ तथापि देवाः सापत्न्यान्नोपेक्ष्या इति मन्महे ॥ ततस्तन्मूलखनने नियुङ्क्ष्वास्माननुव्रतान् ॥ ३७ ॥ यथाऽऽमयोऽङ्गे समुपेक्षितो नृभिर्न शक्यते रूढपदश्चिकित्सितुम् ॥ यथेन्द्रियग्राम उपेक्षितस्तथा रिपुर्महान्बद्धबलो न चाल्यते ॥ ३८ ॥ मूलं हि विष्णुदवानां यत्र धर्मः सनातनः ॥ तस्य च ब्रह्मगोविप्रास्तपोयज्ञाः सदक्षिणाः ॥ ३९ ॥

भगवानके पास भाज्यो जाय ऐसौ इंद्र कहां करैगो वेदनको वांचनवारो [2]ब्रह्मा कहां करैगो तोहू देवता बैरीहैं छांडिवेलायक नहींहैं यह जानिके देवतानकी जर उखारिवेके लिये आज्ञाकारी हम हैं तिनकूं आप आज्ञा करो या प्रकार समस्त मंत्रीनने कही ॥ ३७ ॥ जैसे शरीरमें रोग विना उपाय करे जड पकर जायेहै पश्चात मनुष्यते वाको उपाय नहीं होय सकैहै और जैसे योगीजन प्रथम इंद्रियनकरि विषयभोग करिके पश्चात् विषयनते इंद्रियनको रोको चाहै तो नहीं रुकिसकै हैं ऐसेही शत्रु छोटे जानि छोडे पीछे प्रबल होनेते जीतिवेमें नहीं आवै है ॥ ३८ ॥ समस्त

---

[1] यहां पर लुडकोंके चाचाको दृष्टांत कहनो । [2] यहांपर खटमलनने काट्यो ऐसे पंडितको दृष्टांत कहनो ।

देवतानके मूल अर्थात् जड विष्णु[1] हैं और विष्णुको मूल सनातन धर्म है और वेद गौ ब्राह्मण तप तथा दक्षिणासहित यज्ञ ये समस्त धर्मके मूल हैं ॥ ३९ ॥ हे राजन् कंस ! याही ताकारणते सर्वप्रकारकरिके वेद [2]पढनवारे और तपस्वी और यज्ञ करनवारे ब्राह्मणनको और होमको द्रव्यकी पूरण करनवारी गऊनको हम मारेंगे ॥ ४० ॥ विप्र-गऊ-वेद-तप-सत्य-दम-शम-श्रद्धा-दया-तितिक्षा-यज्ञये समस्त हरि भगवानके शरीर हैं ॥ ४१ ॥ सो हरि संपूर्ण देवतानमें मुख्य असुरनके द्रोही सबकें अंतःकरणमें विराजमान हैं और समस्त देवता महादेव ब्रह्मा इन सब के यही मूल हैं ऋषीश्वरों

तस्मात्सर्वात्मना राजन्ब्राह्मणान्ब्रह्मवादिनः ॥ तपस्विनो यज्ञशीलान्गाश्च हन्मो हविर्दुघाः ॥ ४० ॥ विप्रा गावश्च वेदाश्च तपः सत्यं दमः शमः ॥ श्रद्धा दया तितिक्षा च क्रतवश्च हरेस्तनूः ॥ ४१ ॥ स हि सर्वसुराध्यक्षो ह्यसुरद्विड् गुहाशयः ॥ तन्मूला देवताः सर्वाः सेश्वराः सचतुर्मुखाः ॥ अयं चैतद्वधोपायो यदृषीणां विहिंसनम् ॥ ४२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं दुर्मन्त्रिभिः कंसः सह संमन्त्र्य दुर्मतिः ॥ ब्रह्महिंसां हितं मेने कालपाशावृतोऽसुरः ॥४३॥ संदिश्य साधुलोकस्य कदने कदनप्रियान् ॥ कामरूपधरान्दिक्षु दानवान्गृहमाविशत् ॥ ४४ ॥ ते वै रजःप्रकृतयस्तमसा मूढचेतसः ॥ सतां विद्वेषमाचेरुरारादागतमृत्यवः ॥ ४५ ॥

को वध करिवो यही विष्णुवध करिवेको उपाय है ॥ ४२ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितते कहैहैं कि हे राजन् ! दुष्ट बुद्धि काल फांसमें बंध्यो असुर कंस दुष्ट मंत्रीनसहित ऐसे विचारकरिके ब्राह्मणके मारिवेते अपनो कल्याण मानतो भयो ॥ ४३ ॥ साधुनको कष्ट जिनकूं प्यारो इच्छापूर्वक रूपकूं धारण करै ऐसे दानवनकूं जहां तहां भेजके कंस अपने घरकूं आवतो भयो ॥ ४४ ॥ रजोगुणी तमोगुणी जिनके स्वभाव अ-

---

१ सब देवतानकी जड विष्णु है, यह राक्षस और दैत्यहू जानैं हैं जो मनुष्य व्हैके न जाने वह राक्षस और दैत्यनहूंसो गयोबीत्योंहै । २ कदाचित् कंसकहैकि वेदपाठि ब्राह्मणको मारोगे और बिना पढेनको क्यौं नहीं मारोगे वहां राक्षस बोले महाराज बिनापढे ब्राह्मण जो मूर्ख है वह तो हमारीही जातीके है याते वेद पढे ब्राह्मणकोंही हम मारेंगे यह आशय है. द०रा०मा०

ज्ञान करिके मूढ जिनको चित्त मृत्यु जिनकी आयलगी ऐसे असुरनने साधुनते वैर कियो॥४५॥साधुनते द्वेष करनेते पुरुषकी आयु-बल-धन-यश-धर्म और स्वर्गादिकनको आशीर्वाद और सब प्रकारके कल्याण इन संपूर्णको नाश होय है॥४६॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्थोऽध्यायः॥४॥ श्रीशुकदेवजी राजापरीक्षितते कहें हैं कि हे राजन्! उदार है चित्त जिनको ऐसे नंदरायजी पुत्रजन्मके समयमें बडे आनंदको प्राप्त होते भये स्नानकरि पवित्र होइकै सुंदर वस्त्र आभूषण पहिरिके ज्योतिषी ब्राह्मणनकूं बुलाय॥१॥पुत्रको जातकर्म संस्कार कराय स्वस्तिवाचन पढवायके

आयुः श्रियं यशो धर्मं लोकानाशिष एव च॥ हन्ति श्रेयांसि सर्वाणि पुंसो महदतिक्रमः॥ ४६ ॥ इतिश्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कंसोद्यमनिरूपणं नाम चतुर्थोऽध्यायः॥ ४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो[1] महामनाः॥ आहूय विप्रान्दैवज्ञान्स्नातः शुचिरलंकृतः॥१॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं जातकर्मात्मजस्य वै॥ कारयामास विधिवत्पितृदेवार्चनं तथा॥ २ ॥ धेनूनां नियुते प्रादाद्विप्रेभ्यः समलंकृते ॥ तिलाद्रीन्सप्त रत्नौघशातकौम्भाम्बरावृतान् ॥ ३ ॥ कालेन स्नानशौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया॥ शुद्ध्यन्ति दानैः संतुष्ट्या द्रव्याण्यात्मात्मविद्यया॥ ४ ॥ सौमङ्गल्यगिरो विप्राः सूतमागधबन्दिनः॥ गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेर्यो दुन्दुभयो मुहुः॥५॥

विधिपूर्वक पितृ और देवतानको पूजन करतभये॥२॥ब्राह्मणनकूं दो लाख गौ शृंगार करिके दान करतभये, भीतर अनेक प्रकारके रत्नकूं धरिके सातं[2] तिल के पर्वतनको दान करत भए॥३॥कालकरिके पृथिव्यादिकनकी शुद्धि होइहै, और स्नानते देहादिकनकी शुद्धि होइहै धोयेते वस्त्रादिक शुद्ध होइहैं, संस्कारतें गर्भादिक शुद्ध होइहै और तप करेते इंद्रियनकी शुद्धि होइहै यज्ञ करेते ब्राह्मणादिक शुद्ध होइहैं, दानके करते द्रव्य शुद्ध होइहै, और संतोषते मन शुद्ध होइ है, और ज्ञानते आत्मा शुद्ध होइहै ॥ ४ ॥ ब्राह्मण स्वस्तिवाचन पढ़त भए, पुराणवक्ता पुराण कहतभए, गायक वंशाव-

---

[1] तुशब्दसों भादोशुदी छट्ठके दिन श्रीबलदेवको जन्मचरित्र जानलेनो चाहिये। [2] सात तिलके पर्वत दान करनेको हेतु यह है कि आगे यही मेरो पुत्र गिर गोवर्धनको सात दिन पर्यंत धारण करेगो याते नंदरायने सात पर्वत दान करे।

ली कहतभए, भाट बंदीजन बडाई करतभये, गवैया गान करतभए, भेरि नगारेवारे बाजे बजावत भए ॥ ५ ॥ ब्रजमें जो दरवाजे और आंगनघर हैं तिनमें बुहारि झारी छिरकाव होइगए, और उत्तम चित्रविचित्र ध्वजा पताका माला जहां तहां टांगिदीनी, वस्त्रनकी पल्लवनकी बंदनवार दरवाजे पै बंधिगई ॥ ६ ॥ गौ बैल बछरानके हरदी तेल लगाय दियो, और श्रृंगनते खरिया गेरु लगाय दीनी, और मोरछल जिनमें टंको ऐसी सुंदर झूलैं उढाइदीनी, और सुवर्णकी माला पहिरायदीनी हैं ॥ ७ ॥ हेराजन् परीक्षित्! संपूर्ण गोप सुंदर वस्त्र आभूषण पाग पहिरिके भेंटनकूं हाथनमें लैके

व्रजः संमृष्टसंसिक्तद्वाराजिरगृहान्तरः॥ चित्रध्वजपताकास्रक्चैलपल्लवतोरणैः॥६॥गावो वृषा वत्सतरा हरिद्रातैलरूषिताः ॥ विचित्रधातुबर्हस्रग्वस्त्रकाञ्चनमालिनः॥७॥ महार्हवस्त्राभरणकञ्चुकोष्णीषभूषिताः ॥ गोपाः समाययू राजन्नानोपायनपाणयः ॥ ८ ॥ गोप्यश्चाकर्ण्य मुदिता यशोदायाः सुतोद्भवम् ॥ आत्मानं भूषयांचक्रुर्वस्त्रकल्पाञ्जनादिभिः ॥९॥ नवकुङ्कुमकिञ्जल्कमुखपङ्कजभूतयः ॥ बलिभिस्त्वरितं जग्मुः पृथुश्रोण्यश्चलत्कुचाः ॥१०॥ गोप्यः सुमृष्टमणिकुण्डलनिष्ककण्ठ्यश्चित्राम्बराः पथि शिखाच्युतमाल्यवर्षाः ॥ नन्दालयं सवलया व्रजतीर्विरेजुर्व्यालोलकुण्डलपयोधरहारशोभाः ॥ ११ ॥

नंदरायजीके घर आवतभए ॥ ८ ॥ यशोदाजीके पुत्र भयोहै यह सुनिके गोपीनके बडो आनंद भयोहै वे सुंदरवस्त्र आभूषण पहिरिके काजरटीकी लगायके अपने श्रृंगार करतभईं ॥ ९ ॥ नवीन केशरिकी खौरि मुखारविंदनपै लगाये, पतली जिनकी कमरि, चलायमान जिनके कुच, ऐसी गोपिका हाथनमें भेटें लैलैके शीघ्रही नंदरायजीके घर जातभईं ॥ १० ॥ उज्ज्वल मणिनके जडाऊ कुंडल काननमें पहिरे, अति सुंदर मोतिनके हार हृदयके ऊपर विराजमान, तिनकरिके परम शोभायमान स्तन जिनके ऐसे गोपिनकी भीर नंदरायजीके मंदिरकूं जातीभईं तासमय मार्गमें

---

१ पूतसपूतजन्योयशुदाइतनीसुनिकैवसुधासबदौरी, देवनकोआनंदभयोसुनिधावतगावतमंगलगौरी ॥ नंदकछूइतनोजुदियोवनश्यामकुबेरहुकीमतिबौरी, मोहिंदेखतव्रजहिलुटायदियोनवचीबछियाछछियानपिछौरी ॥ गौरी—आज बनकौ वे जनिजाई, सब गौअन बछरनि समेत ले आवहु चित्र बनाई ॥ बालक है ब्रज भयो नंदके कहत सुनाय सुनाई । सब मिल ग्वाल कुलाहल करते उर आनंद न समाई ॥ कतहो गहर करत बेकाजहि बेग चलो उठि धाई । अपने अपने मनके चीते नैननि देखो आई ॥ एक फिराति दधि दूब देत सुनि एक रहै गहिपाई । एक वसन वसु देत बधाई एक उठे हंसि गाई ॥ बाल वृद्ध नरनारिनके मनभये चौगनै चाई । सूरदास प्रभु प्रेम मगन मन गिनत न राजा राई ॥

अतिशोभा प्राप्त होत भई ॥ ११ ॥ तब गोपिका नंदरायजीके घर आइके श्रीकृष्णचंद्रकूं आशीर्वाद देतभई अहो कृष्ण ! तुम चिरंजीव चिरंजीव और लाला तुम बहुत दिनपर्यंत हमारी रक्षा करो याप्रकार बालककूं आशीर्वाद देतभई हरदीचूर्ण तेल जल आपुसमें छिरकत श्रीकृष्णचंद्रके चरित्रकूं गावत भई ॥ १२ ॥ विश्वके ईश्वर भगवान्, अंत जिनको नहीं ऐसे श्रीकृष्णचंद्र जासमय व्रजमें आए तासमय मनुष्यनके बडे उत्सवमें मनभये याते नानाप्रकारके विचित्र बाजे बजावतभए ॥ १३ ॥ व्रजवासी प्रसन्न होइके दही दूध घृत जलनकूं आपुसमें छिरकत (अर्थात् दधिकादो मचावत) गावत भये और माखनके लोंदा फैंकतभए ॥ १४ ॥ अतिउदारहै चित्त जिनको ऐसे नंदरायजी सूत जगा बंदीजनकूं और जे कोऊ गुणीजन हैं गवैया तिनको वस्त्र आभूषण गउनको दान करतभए ॥ १५ ॥ विष्णु भगवान् मोपै प्रसन्न होई, और यह मेरो पुत्र चिरंजीव रहै याकारणते अति उदारहै

ता आशिषः प्रयुञ्जानाश्चिरं पाहीति बालके ॥ हरिद्राचूर्णतैलाद्भिः सिञ्चन्त्यो जनमुज्जगुः ॥१२॥ अवाद्यन्त विचित्राणि
वादित्राणि महोत्सवे ॥ कृष्णे विश्वेश्वरेऽनन्ते नन्दस्य व्रजमागते ॥ १३ ॥ गोपाः परस्परं हृष्टा दधिक्षीरघृताम्बुभिः॥
आसिञ्चन्तो विलिम्पन्तो नवनीतैश्च चिक्षिपुः ॥१४॥ नन्दो महामनास्तेभ्यो वासोलंकारगोधनम् ॥ सूतमागधबन्दि-
भ्यो येऽन्ये विद्योपजीविनः ॥ १५ ॥ तैस्तैः कामैरदीनात्मा यथोचितमपूजयत् ॥ विष्णोराराधनार्थाय स्वपुत्रस्यो-
दयाय च ॥ १६ ॥ रोहिणी च महाभागा नन्दगोपाभिनन्दिता ॥ व्यचरद्दिव्यवासःस्रक्कण्ठाभरणभूषिता ॥ १७ ॥

चित्त जिनको ऐसे नंदरायजीके समीप ये मनुष्य गुणी जन जाजा वस्तुकी कामना करके आये हैं उनकूं वही वही वस्तु दैके यथायोग्य सबको पूजन करत भए ॥ १६ ॥ नंदरायजीके घर संपूर्ण व्रजवधू आई; परंतु रोहिणीजी नहीं आई कहाकारणते कि इनके पति मथुरामें हैं, जा स्त्रीको पति परदेश में है सो स्त्री अपनो शृंगार न करै. और परायेघर न जाय यह शास्त्रकी आज्ञा है तासमय नंदरायजी जायके रोहिणीजीते कही की तुमतो [१]बडभागिनीहो चलो क्यों न आज हमारे बधाई भई है, ऐसे नंदरायजीकी आज्ञा मानिकै अच्छे सुंदर वस्त्र और मोतिनके हार सुंदर धुकधुकी पहिर शृंगारकर बनिठनिकै आवतीभई ॥ १७ ॥

---

[१] तुम्हारे लाला भली घडीमें भयो जो यह सुख हमनेहू देख्यो याते नंदरायतें रोहिणीजीको महाभागा कह्यो ।

40

जबते या व्रजमें श्रीकृष्णचंद्र प्रगट भये तबते नंदरायजी संपूर्ण संपत्तिनकरिके परिपूर्ण होयगयेहैं ॥ हेराजन् परीक्षित् ! जहां हरि नारायण प्रकटभए ताव्रजमें लक्ष्मी आय क्रीडा करतभई ॥ १८ ॥ अहो राजन् परीक्षित ! नंदरायजी गोपनको सर्वप्रकार गोकुलकी रक्षा करिवेमें नियुक्त करिके आप कंसकूं वर्ष दिनको कर देवेके लिये मथुराजीकूं जात भए ॥ १९ ॥ अब नंदरायजीकूं आयेहैं और कंसकूं कर देचुके हैं यह वार्ता श्रवणकरिके नंदरायजीके स्थानपै वसुदेवजी मिलिवेकूं आवतभये ॥ २० ॥ तब जैसे देहमें प्राण आएते देह उठेहै ऐसे बडे प्यारे वसुदेवजीकूं आये देखिके नंदरायजी शीघ्र उठिके आप हाथनते पकरिके प्रेममें विव्हल होइके अपनी छातीसूं लगायके मिले ॥ २१ ॥ नंदरायजीने वसुदेवजीकी पूजा करी और सुखपूर्वक आसनपै बैठिकै कुशल क्षेम पूछत भये सो हे राजन् परीक्षित! पुत्रनमें मन जिनको लग्यो ऐसे वसुदेवजी नंदजीते यह बोले ॥२२॥ अहो भैया नंदजी तुम्हारे पुत्र नहीं होइहै पुत्रहोइवेको आशरो नहींहो सो अब बहुत अवस्थामें तुम्हारे पुत्र भयो यह बडो मंगल भयो ॥ २३ ॥

तत आरभ्य नन्दस्य व्रजः सर्वसमृद्धिमान् ॥ हरेर्निवासात्मगुणै रमाक्रीडमभून्नृप ॥ १८ ॥ गोपान् गोकुलरक्षायां निरूप्य मथुरां गतः ॥ नन्दः कंसस्य वार्षिक्यं करं दातुं कुरूद्वह ॥ १९ ॥ वसुदेव उपश्रुत्य भ्रातरं नन्दमागतम् ॥ ज्ञात्वा दत्तकरं राज्ञे ययौ तदवमोचनम् ॥ २० ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय देहः प्राणमिवागतम् ॥ प्रीतः प्रियतमं दोर्भ्यां सस्वजे प्रेमविह्वलः ॥ २१ ॥ पूजितः सुखमासीनः पृष्ट्वाऽनामयमादृतः ॥ प्रसक्तधीः स्वात्मजयोरिदमाह विशांपते ॥ २२ ॥ दिष्ट्या भ्रातः प्रवयस इदानीमप्रजस्य ते ॥ प्रजाशाया निवृत्तस्य प्रजा यत्समपद्यत ॥ २३ ॥

---

१ यह नंदोत्सव श्रीशुकदेवजीने राजापरीक्षितके आगे अठारहही श्लोकमें क्यों कह्यो तहां कहैहैं कि अठारहश्लोक कहनेमें श्रीशुकदेवजीको यह तात्पर्य हैकि चहिये १८ पुरान सुनो चहिये ए नंदोत्सवके अठारह श्लोक सुनो अथवा महाभारतके अठारह पर्वको पाठ करो चहिये ए नंदोत्सवको पाठ करो अथवा गीताकी अठारह अध्यायको पाठ करो चहिये यह नंदोत्सवके अठारह श्लोक सुनो ऐसे अनेक भावहैं सो जान लेने ।

या संसारचक्रमें रहिके पुनर्भवकीनाईं तुम्हारो मिलाप भयो, यह बडो मंगल भयो अपने प्यारेनको दर्शन या समयमें बडो दुर्लभ है ॥ २४ ॥ अहो प्यारे! प्यारे कर्मवारे अपने प्यारे मित्रनको एक ठौर वास नहीं होईहै, जैसे नदीके प्रवाहमें बहिते तृण एकत्र इकठौरे नहीं रहैं हैं कदाचित् संयोग कदाचित वियोग होय है ॥ २५ ॥ हे नंद! बहुत जल तृण लतानयुक्त और पशूनको हितकारी जो महावन तहां अपने सुहृदनसहित आप वासकरो हौ। या धुनिते अपने पुत्रनकी कुशल वसुदेवजीने पूछी अर्थात् बहुत जलतृण होंइगे तो उनकूं गऊ चरैंगी उन गउनको निरोग लघु दूध होइगो ताकूं यशोदा रोहिणी पान करैंगी तिनको निरोग दूध मेरे पुत्र पीवेंगे ॥ २६ ॥ वसुदेवजी कहैं हैं कि अहो भैया नंदजी! मेरो पुत्र बलदेव

दिष्ट्या संसारचक्रेऽस्मिन्वर्तमानः पुनर्भवः ॥ उपलब्धो भवानद्य दुर्लभं प्रियदर्शनम् ॥ २४ ॥ नैकत्र प्रियसंवासः सुहृदां चित्रकर्मणाम् ॥ ओघेन व्यूह्यमानानां प्लवानां स्रोतसो यथा ॥२५॥ कच्चित्पशव्यं निरुजं भूर्यम्बुतृणवीरुधम् ॥ बृहद्वनं तदधुना यत्रास्ते त्वं सुहृद्वृतः ॥२६॥ भ्रातर्मम सुतः कच्चिन्मात्रा सह भवद्व्रजे ॥ तातं भवन्तं मन्वानो भवद्भ्यामुपलालितः ॥ २७ ॥ पुंसस्त्रिवर्गो विहितः सुहृदो ह्यनुभावितः ॥ न तेषु क्लिश्यमानेषु त्रिवर्गोऽर्थाय कल्पते ॥२८॥ नन्द उवाच ॥ अहो ते देवकीपुत्राः कंसेन बहवो हताः ॥ एकाऽवशिष्टाऽवरजा कन्या साऽपि दिवं गता ॥२९॥ नूनं ह्यदृष्टनिष्ठोऽयमदृष्टपरमो जनः ॥ अदृष्टमात्मनस्तत्त्वं यो वेद न स मुह्यति ॥ ३० ॥

अपनी माता रोहिणीकूं संग लेके तुम्हारे व्रजमें रहै है और तुमकूं पिता मानै है तुमहीं उनको पालन करौहौ सो वे तो प्रसन्न हैं ॥ २७ ॥ और जे पुरुष अपने स्नेही प्यारेनकूं संग लैके धर्म्म अर्थ काम इन तीनों पदार्थनकूं करै तौही वे सफल हैं और जो प्यारे स्नेहीनकूं छोडिके अथवा उन्हैं क्लेश देकै अकेलो धर्म्म करै अथवा द्रव्य भोगे कामविषयनको भोग करै तौ ये त्रिवर्ग याकूं सुखदाई नहीं होय है अर्थात् वे त्रिवर्ग किसी कामके नहीं ॥ २८ ॥ अब नंदरायजी वसुदेवजीते कहैहैं कि, अहो भैया वसुदेवजी! देखो तौ देवकीसे उत्पन्न तुम्हारे बहुतसे पुत्र कंसने मारे एक पिछली कन्याही सोभी उडिके आकाशमें चलीगई ॥ २९ ॥ और जा जीवकी प्रारब्धहीमें समाप्ति है जासमय पुत्रादिकनको देनहारो प्रारब्ध हीन होइजाय है

तासमय वे पुत्रादिक नहीं होइहै, यामें प्रारब्धही परम कारण है, और भये पुत्रादिकभी बिछड़जांय है और जो कभी अच्छौ प्रारब्ध होय तो फेरि आईमिलैंहैं, ऐसे भैया प्रारब्धहीते सुख और दुःख होइहैं, जो पुरुष याप्रकार जाने है वह कभी मोहको प्राप्त नहीं होइहै, याते ऐसो सूचित करयो कौ अहो वसुदेवजी ! अपने मनमें पुत्रादिकनको शोच मतिकरो तेरे बिछुरे पुत्रनको कोई समय संयोगसै दर्शन होइजायगो, हमते वियोग होइ जायगो. ॥ ३० ॥ अब वसुदेवजी नंदरायजीते कहैं हैं कि, अब तुम कंसरायकूं वर्षदिनको कर देचुके और हमहूंते मिलिचुके अब यहां बहुत दिन मतिरहौ गोकुलमें उत्पात आवै है ॥ ३१ ॥ अब श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितते कहैं हैं कि, हे राजन् ! याप्रकार वसुदेवजीके कहते नंदरायसौं आदि लैके संपूर्ण गोप गाडानमें बैल जोरिके और वसुदेवजीते आज्ञा मांगिके आप मथुरातें गोकुलकूं गमन करतभए ॥ ३२ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां द० पूर्वा० पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ श्रीशुकदेवजी राजापरीक्षितते कहैं हैं कि ॥ हे राजन् ! अब नंदजी मार्गमें यह विचार करत भए भाई वसुदेवजीको वचन मिथ्या तो नहीं होइहै उत्पातके आइवेते डरपिके नारायणकी शरण होवभए कि महाराज यह तुमने पुत्र दियौ तौ तुमही याकी रक्षा करोगे ॥ १ ॥ घोर रूपवाली बालकनकी मारनेवारी पूतना कंसकी पठई पुरग्रामनमें बालकनकूं मारत डोले है ॥ २ ॥ यह बात श्रवणकरिके राजापरिक्षितके मनमें शंका भई कि महाराज ! वह पूतना नंदजीके महलमें

वसुदेव उवाच ॥ करो वै वार्षिको दत्तो राज्ञे दृष्टा वयं च वः ॥ नेह स्थेयं बहुतिथं सन्त्युत्पाताश्च गोकुले ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच॥इति नन्दादयो गोपाः प्रोक्तास्ते शौरिणा ययुः॥ अनोभिरनडुद्युक्तैस्तमनुज्ञाप्य गोकुलम् ॥३२॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नन्दवसुदेवसंगमो नाम पञ्चमोध्यायः॥५॥ श्रीशुक उवाच॥ नन्दः पथि वचः शौरेर्न मृषेति विचिन्तयन्॥हरिं जगाम शरणमुत्पातागमशङ्कितः॥१॥ कंसेन प्रहिता घोरा पूतना बालघातिनी॥शिशूंश्चचार निघ्नन्ती पुरग्रामव्रजादिषु॥२॥न यत्र श्रवणादीनि रक्षोघ्नानि स्वकर्मसु॥कुर्वन्ति सात्त्वतां भर्तुर्यातुधान्यश्च तत्र हि३

---

१ अर्थात् कंसकी भेजी पूतना गोकुलमें गईहै सो तुम जल्दी जाऊ यह ढकी भई बात वसुदेवजीने नंदरायको जतायदीनी । सो०-गई पूतना आज, [illegible] बालकघातिनी । करिहै कछू अकाज, बेग धाम सुधि लीजिये ॥

गई होइगी तहां शुकदेवजी कहैंहैं कि राजा! चिंता मतिकरो उहां जायगी तो मरैगी राक्षसनके नाश करनवारे जा स्थानमें यज्ञादिक कर्म्म और परमेश्वरकी कथा स्मरण कीर्तनादिक नहीं होइ हैं तहां राक्षसनी प्रवृत्त होइके अपनो पराक्रम करेहैं जिस भगवान्‌के नाम स्मरणको तो यह प्रभाव है, और जहां साक्षात् आपही हैं तहां पूतनाकी कहां सामर्थ्य जो उनको मारे ॥ ३ ॥ आकाशकी विचरनेवारी इच्छापूर्वक रूप धरनवारी ऐसी वह पूतना मायाते अपनो स्त्रीरूप बनायके श्रीनंदरायजीके गोकुलमें जात भई ॥ ४ ॥ वाकी चोटीमें चमेलीके पुष्प गुंथरहेथे वडे नितम्ब और कुचनके भारसे कमर लचरहीथी सुन्दर वस्त्रधारे हिलतेहुए कुंडलकी कांतिसे झलकते बालोंसे मुख शोभित होरहाथा ॥ ५ ॥

सा खेचर्येकदोपेत्य पूतना नन्दगोकुलम् ॥ योषित्त्वा माययाऽऽत्मानं प्राविशत्कामचारिणी ॥४॥ तां केशबन्धव्यतिषक्तमल्लिकां बृहन्नितम्बस्तनकृच्छ्रमध्यमाम् ॥ सुवाससं कम्पितकर्णभूषणत्विषोल्लसत्कुन्तलमण्डिताननाम् ॥५॥ वल्गुस्मितापाङ्गविसर्गवीक्षितैर्मनो हरन्तीं वनितां व्रजौकसाम् ॥ अमंसताम्भोजकरेण रूपिणीं गोप्यः श्रियं द्रष्टुमिवागतां पतिम् ॥६॥ बालग्रहस्तत्र विचिन्वती शिशून्यदृच्छया नन्दगृहेऽसदन्तकम् ॥ बालं प्रतिच्छन्ननिजोरुतेजसं ददर्श तल्पेऽग्निमिवाहितं भसि ॥ ७ ॥

व्रजवासीनके मनकूं मोहैं ऐसी जाकी मुसिकानी सुन्दर जाकी चितवनि ताकी चितवनी करि व्रजवासिनी मोहित होइके वा पूतनाकूं मने न करत भई और हाथमें कमल फिरावत आई याते गोपीनने जानी कि अपने पति नारायणके देखिवेकूं लक्ष्मी आई हैं यातें यशोदा रोहिणी और गोपीनने मने न करी ॥ ६ ॥ बालकनकूं ग्रहरूप पूतना छोटे छोटे बालकनकूं ढूंढती अकस्मात् गोकुलमें श्रीनन्दरायजीके आवत भई, दुष्टनके मारन

---

१ चौपाई–एककहै यहहै कोउरानी । यशुमतिके आई हमजानी ॥ एक कहै यह कमलाबाई । श्रीकमलापति देखन आई ॥ पद–रूप मोहिनी धरिव्रज आई । अद्भुत साजसिंगार मनोहर असुर कंस देपान पठाई ॥ कुच विषबांटि लगाय कपट करि बालघातनी परम सुहाई ॥ बैठी हुती जसोदा मंदिर दुलरावति सुतश्याम कन्हाई ॥ प्रकटी वहां पूतना आकर प्रेरित काल अवधि नियराई ॥ आवत देखि बैठिकादीन्हौ कुशल बूझि अतिनिकट बुलाई ॥ पौढाये हरि शुभग पालने नंदघरनि कछु काज सिधाई ॥ बालकलियो उछंग दुष्टमति हरषति स्तन पान कराई ॥ वदन पसारि प्राण हरलीन्हौं परी राक्षसी योजन ताई ॥ सूरदई जननी गति ताको कृपा करी निजधाम पठाई ॥

वारे जिन भगवान्ने भस्ममें ढकी अग्निकीसी नाईं बालकरूपमें अपनो तेज छिपाय राख्यो है ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र शय्या ऊपर सोवैहैं तिन्हे देखत भई ॥७॥ स्थावर जंगम जीवनके अंतर्यामी श्रीकृष्णचंद्रने पूतनाकूं बालकनके मारनवारी ग्रहरूपी जानिके नेत्र मूंदिलिये भगवान्के नेत्र मूंदिवेको कारण कहा कि मेरी शुद्ध दृष्टि जाके ऊपर परैगी तो ताको शुद्ध मन होइ जायगो । स्तननमें विष लगायके मारिवेकूं आईहै यह याको मनोरथ सिद्ध न होइगो याते नेत्र मूंदि लिये, आप अनंत औरनके अंतकरनवारे श्रीकृष्णचंद्र तिनकूं गोदमें उठाय लेतभई जैसे अज्ञानी पुरुष जेवरीजानि सूते सांपकूं उठाइ लेइहै ॥ ८ ॥ जैसे मखमलके म्यानकी तरवार होइहै तैसे भीतरमें जाको चित्त, ऊपरतें मनोहर जाकी चेष्टा ऐसी सुन्दर स्त्री पूतना नंदरायजीके घरके भीतर आई देखि वाके तेजसै रोहिणी यशोदा चकित होयके ढाढी देखत रहीं कछु न कहसकीं ॥ ९ ॥ तहां घोररूप पूतना

विबुध्य तां बालकमारिकां ग्रहं चराचरात्मा स निमीलितेक्षणः ॥ अनन्तमारोपयदङ्कमन्तकं यथोरगं सुप्तमबुद्धिरज्जुधीः ॥८॥ तां तीक्ष्णचित्तामतिवामचेष्टितां वीक्ष्यान्तरा कोशपरिच्छदासिवत् ॥ वरस्त्रियं तत्प्रभया च धर्षिते निरीक्षमाणे जननी ह्यतिष्ठताम् ॥ ९ ॥ तस्मिन्स्तनं दुर्जरवीर्यमुल्बणं घोराङ्कमादाय शिशोर्ददावथ ॥ गाढं कराभ्यां भगवान्प्रपीड्य तत्प्राणैः समं रोषसमन्वितोऽपिबत् ॥ १० ॥ सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी निष्पीड्यमानाखिलजीवमर्मणि ॥ विवृत्य नेत्रे चरणौ भुजौ मुहुः प्रस्विन्नगात्रा क्षिपती रुरोद ह ॥ ११ ॥ तस्याः स्वनेनातिगभीररंहसा साद्रिर्मही द्यौश्च चचाल सग्रहा ॥ रसा दिशश्च प्रतिनेदिरे जनाः पेतुः क्षितौ वज्रनिपातशङ्कया ॥ १२ ॥

श्रीकृष्णचंद्रकूं गोदमें लैके और भयानक विष लग्यौ स्तन मुखमें देतभई, श्रीकृष्णचंद्रभी क्रोध करिके दोनों हाथनतें कसिके पकरिके प्राण सहित स्तनकूं औषधिरूप मानिके पीवत भए ॥ १० ॥ पूतना यह कहत भई अरे लाल छोडिदे, छोडिदे, बसकरि बसकरि, ऐसे पुकारन लगी मर्मस्थलनमें पीडा जाके होती भई, नेत्र जाके फटि गए, हाथ पांव बेर बेर पटकत देहमें पसीना जाके आय गयो पुकारिके रुदन करत भई ॥ ११ ॥ पूतनाके रुदनको बडो शब्द भयो ता शब्दतें पर्वतन सहित पृथ्वी कांपने लगी, ग्रह तारागण रसातल ये सम्पूर्ण हलन लगे, और दिशानमें गर्जना भई, मानो इंद्रके वज्रगिरिवेकी शंका करिके मनुष्य पृथ्वीमें गिरत भए ॥ १२ ॥

हे परीक्षित! इसप्रकारसे वह राक्षसी स्तनकी व्यथासे प्राणरहित होगई और मरण समय उसका मुख फटगया हाथ पैर फैलादिये कपट त्यागकरकें अपना राक्षसीरूप प्रकटकर वज्रसे मारेहुये वृत्रासुरकी समान पृथ्वीमें गिरि गई ॥ १३ ॥ हेराजन् परीक्षित! जासमय पूतनाको देह गिरचो तासमय छः कोशके बीचमें जो वृक्ष हैं तिनको चूर्ण होतभयो यह वडो आश्चर्य भयो ॥ १४ ॥ पूतनाके भयंकर मुखमें हलकी समान लम्बी तीक्षण डाढें हैं और पर्वतकी गुफासी नाक, घोर पर्वतके समान स्तन, और भयानक अरुण विखरेभये केश हैं ॥ १५ ॥ अंधेरे कूआकी नांई बैठीहुई गंभीर आंखें नदीके तटके तुल्य भयंकर नितम्ब पुल बंधोहोइ तैसे हाथ पांव जंघा और शुष्क सरोवरके समान उदर है ॥ १६ ॥ ऐसी भयंकर पूतना की

निशाचरीत्थं व्यथितस्तना व्यसुर्व्यादाय केशांश्चरणौ भुजावपि ॥ प्रसार्य गोष्ठे निजरूपमास्थिता वज्राहतो वृत्र इवापतन्नृप ॥ १३ ॥ पतमानोऽपि तद्देहस्त्रिगव्यूत्यन्तरद्रुमान् ॥ चूर्णयामास राजेन्द्र महदासीत्तदद्भुतम् ॥ १४ ॥ ईषामात्रोग्रदंष्ट्रास्यं गिरिकन्दरनासिकम् ॥ गण्डशैलस्तनं रौद्रं प्रकीर्णारुणमूर्धजम् ॥ १५ ॥ अन्धकूपगभीराक्षं पुलिनारोहभीषणम् ॥ बद्धसेतुभुजोर्वङ्घ्रि शून्यतोयह्रदोदरम् ॥ १६ ॥ संतत्रसुः स्म तद्वीक्ष्य गोपा गोप्यः कलेवरम् ॥ पूर्वं तु तन्निःस्वनितभिन्नहृत्कर्णमस्तकाः ॥ १७ ॥ बालं च तस्या उरसि क्रीडन्तमकुतोभयम् ॥ गोप्यस्तूर्णं समभ्येत्य जगृहुर्जातसंभ्रमाः ॥ १८ ॥ यशोदारोहिणीभ्यां ताः समं बालस्य सर्वतः ॥ रक्षां विदधिरे सम्यग्गोपुच्छभ्रमणादिभिः ॥ १९ ॥ गोमूत्रेण स्नापयित्वा पुनर्गोरजसार्भकम् ॥ रक्षां चक्रुश्च शकृता द्वादशाङ्गेषु नामभिः ॥ २० ॥

देह देखिके गोप गोपीनको वडो भय होत भयो पहलेही वाके रुदनके शब्दतें गोप गोपीनके हृदय कान मस्तक विदीर्ण होइ गये हैं ॥ १७ ॥ ता पूतनाकी छातीपर निर्भय श्रीकृष्णचन्द्र क्रीडा करै हैं तिनकूं हरबरायके शीघ्र जायके गोपिनने उठाय लियो ॥ १८ ॥ संपूर्ण गोपी और यशोदा रोहिणी श्रीकृष्णचंद्रकौं गोपुच्छको झारो दैकें फूंक मारि रक्षा करत भई ॥ १९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रकौं गोमूत्रसूं स्नान करायके गोरजमें लुटाय गोबर लगाय करि द्वादश अंगनमें केशवादि द्वादश नामनकरि रक्षा करत भई ॥ २० ॥

46

गोपी हाथ पांव धोईकें आचमन करिके अपने अंगनमें तथा करनमें न्यारो न्यारो न्यास करिके बालकको विजयन्यास करत भई ॥ २१ ॥ हे श्रीकृष्णचन्द्र! अजन्मा भगवान् तुम्हारे चरणकी रक्षा करे, मणिमान् भगवान् तुम्हारे ऊरुनकी रक्षा करे यज्ञ भगवान् तुम्हारी जंघानकी रक्षा करे अच्युत भगवान् तुम्हारे करकी रक्षा करै हयग्रीव भगवान् तुम्हारे उदरकी रक्षा करैं केशव भगवान् तुह्मारे हृदयकी रक्षा करैं विष्णु भगवान् तुह्मारी भुजानकी रक्षा करै उरुक्रम भगवान् तुह्मारे मुखारविंदकी रक्षा करैं ईश्वर भगवान् तुह्मारे मस्तककी रक्षा करैं ॥ २२ ॥ चक्रधारी भगवान् तुम्हारे अग्रभागकी रक्षा करैं, गदाधारण करिवेवारे भगवान् तुम्हारे पीछेतें रक्षा करैं, धनुषकूं धारण करिकै मधुनामा दैत्यके मारनवारे भगवान्

गोप्यः संस्पृष्टसलिला अङ्गेषु करयोः पृथक् ॥ न्यस्यात्मन्यथ बालस्य बीजन्यासमकुर्वत ॥ २१ ॥ अव्यादजोऽङ्घ्रिमणिमांस्तव जान्वथोरू यज्ञोऽच्युतः कटितटं जठरं हयास्यः ॥ हृत्केशवस्त्वदुर ईश इनस्तु कण्ठं विष्णुर्भुजं मुखमुरुक्रम ईश्वरः कम् ॥२२॥ चक्र्यग्रतः सहगदो हरिरस्तु पश्चात्त्वत्पार्श्वयोर्धनुरसी मधुहा जनश्च ॥ कोणेषु शङ्ख उरुगाय उपर्युपेन्द्रस्तार्क्ष्यः क्षितौ हलधरः पुरुषः समन्तात् ॥ २३ ॥ इन्द्रियाणि हृषीकेशः प्राणान्नारायणोऽवतु ॥ श्वेतद्वीपपतिश्चित्तं मनो योगेश्वरोवतु ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भस्तु ते बुद्धिमात्मानं भगवान्परः ॥ क्रीडन्तं पातु गोविन्दः शयानं पातु माधवः ॥ २५ ॥

और खड्ग धारण करनवारे अजन्मा भगवान् यह दोनों तुम्हारे दाहिने और बांएतें रक्षा करैं, और शंखकूं धारण करनेवारे उरुगाय भगवान् चारों कोणनते रक्षा करैं उपेंद्र भगवान् तिहारे ऊपर रहो, तार्क्ष्य भगवान् पृथ्वीमें रक्षा करैं हलधर भगवान् सर्वत्र रक्षा करें ॥ २३ ॥ हृषीकेश भगवान् तुम्हारी इंद्रीनकी रक्षा करैं, और नारायण भगवान् प्राणनकी रक्षा करैं, श्वेतद्वीपके पति भगवान् तुम्हारे चित्तकी रक्षा करैं, और योगेश्वर भगवान् तुम्हारे मनकी रक्षा करैं ॥ २४ ॥ पृश्निगर्भ भगवान् तुम्हारी बुद्धिकी रक्षा करैं, परम भगवान् तुम्हारी आत्माकी रक्षा करैं क्रीडा करते समय गोविंद भगवान् तुम्हारी रक्षा करै सोवतसमय माधव भगवान् तुम्हारी रक्षा करै ॥ २५ ॥

बैकुंठ भगवान् तुम्हारी चलतीबेर रक्षा करैं लक्ष्मीपति भगवान बैठते रक्षा करैं समस्त ग्रहनके भयके करनहारे यज्ञभोक्ता भगवान् भोजनसमय रक्षा करै ॥ २६ ॥ डाकिनी यातुधान और जे बालकनके ग्रह भूत प्रेत पिशाच यक्ष, राक्षस विनायक गण हैं ते ॥ २७ ॥ और कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना, और मातृकानकूं आदि लेके राक्षसीहैं ते और उन्मादहैं, ते और जेजे अपस्मार रोगके करनवारे देहप्राण इंद्रिनके द्रोही ॥ २८ ॥ और जे स्वप्नमें देखे उत्पातहैं और वृद्धग्रह बालग्रहहैं ते समस्त नाशकूं प्राप्त होउ, विष्णुभगवानके नाम लियेते संपूर्ण नष्ट होइजाय है

व्रजन्तमव्याद्वैकुण्ठ आसीनं त्वां श्रियः पतिः ॥ भुञ्जानं यज्ञभुक्पातु सर्वग्रहभयङ्करः ॥२६॥ डाकिन्यो यातुधान्यश्च कूष्माण्डा येऽर्भकग्रहाः ॥ भूतप्रेतपिशाचाश्च यक्षरक्षोविनायकाः ॥ २७ ॥ कोटरा रेवती ज्येष्ठा पूतना मातृकादयः ॥ उन्मादा ये ह्यपस्मारा देहप्राणेन्द्रियद्रुहः ॥ २८ ॥ स्वप्नदृष्टा महोत्पाता वृद्धबालग्रहाश्च ये ॥ सर्वे नश्यन्तु ते विष्णोर्नामग्रहणभीरवः ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति प्रणयबद्धाभिर्गोपीभिः कृतरक्षणम् ॥ पाययित्वा स्तनं माता संन्यवेशयतात्मजम्॥३०॥ तावन्नन्दादयो गोपा मथुराया व्रजं गताः॥ विलोक्य पूतनादेहं बभूवुरतिविस्मिताः॥३१॥ नूनं बतर्षिः संजातो योगेशो वासमास सः ॥ स एव दृष्टो ह्युत्पातो यदाहानकदुन्दुभिः ॥ ३२ ॥

॥ २९ ॥ याप्रकार हाथ जोरि गोपिनने विष्णुभगवानकी प्रार्थना करि रक्षा करिके श्रीकृष्णचंद्रकूं माताकूं सौंपिदीयो तब यशोदाजीने स्तन पान करायके श्रीरामचंद्रकी शय्या पर पौढाय दीनो ॥ ३० ॥ तब ताई नंदादिक ब्रजवासी मथुरातें गोकुलमें आये, तब मार्गमें मृत्युकूं प्राप्त भई पूतनाको देखिके बडौ आश्चर्य मान्यो ॥ ३१ ॥ नंदजी कहैहैं कि वसुदेवजो निश्चय कोई ऋषिहै वसुदेवजीने कही भैया तुम शीघ्र मथुरातें गोकुलको जावो गोकुलमें उत्पात होयगो सोई नेत्रनते देखो ॥ ३२ ॥

---

१ सो०—कहत यशोदा माय, फिर फिर सबके पांय परि । उबऱ्यो आज कन्हाय, तुम पंचन के पुण्यतें ॥

तापाछे संपूर्ण गोकुलके मनुष्य पूतनाके शरीरकूं फरसानते काटि काटि घरनसे दूरि लकरियानमें धरिके दाह करतभये ॥ ३३ ॥ जासमय पूतनाको देह जरायो तो जरते देहमेंते अगरकीसी सुगंधिके सो धुंवा उठतभयो श्रीकृष्णचंद्रने याके स्तन पानकिये याते संपूर्ण पाप तत्काल दूरि होइगए ॥ ३४ ॥ संसारके बालकनकी मारनवारी रुधिरकी पीवनवारी राक्षसी भगवानकूं मारिवेकूं आई सोभी स्तनपान करायके सुंदर गतिकूं प्राप्तभई ॥ ३५ ॥ फिर श्रद्धाभक्ति करिके श्रीकृष्णचंद्र परमात्माकूं माता अति प्यारि वस्तु दैकै बहुत सुंदर गतिकूं पावैहै यामें कहा कहिनोहै ॥३६॥ भक्तनके हृदयमें विराजैं और लोकन करिकें वंदित ऐसें जो ब्रह्मादि देवता जिनकूं प्रणाम करै ऐसे चरणारविंदनसुं पूतनाको अंग दाबिके भगवान

कलेवरं परशुभिश्छित्त्वा तत्ते व्रजौकसः ॥ दूरे क्षिप्त्वावयवशो न्यदहन्काष्ठवेष्टितम् ॥ ३३ ॥ दह्यमानस्य देहस्य धूमश्चागुरुसौरभः ॥ उत्थितः कृष्णनिर्भुक्तसपद्याहतपाप्मनः॥३४॥ पूतना लोकबालघ्नी राक्षसी रुधिराशना॥ जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाऽऽप सद्गतिम् ॥३५॥ किं पुनः श्रद्धया भक्त्या कृष्णाय परमात्मने ॥ यच्छन्प्रियतमं किं नु रक्तास्तन्मातरो यथा॥३६॥ पद्भ्यां भक्तहृदिस्थाभ्यां वन्द्याभ्यां लोकवन्दितैः ॥ अङ्गं यस्याः समाक्रम्य भगवानपिबत्स्तनम् ॥ ३७ ॥ यातुधान्यपि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम् ॥ कृष्णभुक्तस्तनक्षीराः किमु गावो नु मातरः ॥ ३८ ॥ पयांसि यासामपिबत्पुत्रस्नेहस्नुतान्यलम् ॥ भगवान्देवकीपुत्रः कैवल्याद्यखिलप्रदः ॥ ३९॥ तासामविरतं कृष्णे कुर्वन्तीनां सुतेक्षणम् ॥ न पुनः कल्पते राजन्संसारोऽज्ञानसंभवः ॥ ४० ॥

श्रीकृष्णचंद्र स्तनपान करतभयें ॥ ३७ ॥ माताकी गति स्वर्ग है ताय वह पूतना राक्षसी पावतभईं और जिन गउनके गोपिनके स्तनको श्रीकृष्णचंद्रने उत्तम दुग्ध पान करो वे सुंदर गतिकूं प्राप्तहों यामें कहा कहिनौ है ॥ ३८ ॥ मोक्षकूं आदिलैकैं समस्त पदार्थनके दैनवारे देवकीके पुत्र भगवान् पुत्रस्नेहीते गऊ गोपिन को दुग्ध परिपूर्ण होयके पीवत भये ॥ ३९ ॥ हे राजा परीक्षित श्रीकृष्णचंद्रमें पुत्रभाव माननेहारी उन माता और गोपियोंको अज्ञानते उत्पन्न हौनै हारो संसार न होइगो ॥ ४० ॥

ब्रजवासी मनुष्य श्मशानके धूआंकी सुगंधि सूंघिके यह कहत भये कि यह कहांहै कहांते आवै है ऐसे कहत २ गोकुलकूं आवत भये ॥ ४१ ॥ गोकुलमें ब्रजवासीनतें पूतनाको आयवो और आयके मृत्यु होइवो श्रवण करिके और कृष्णको कल्याण श्रवण करिके नंदते आदिलेके ब्रजवासी बडौ आश्चर्य्य मानतभए ॥ ४२ ॥ हे कौरवनके कुलकूं आनंद देनवारे राजन् परीक्षित ! उदारबुद्धि नंदरायजी मथुरातें गोकुलकूं प्राप्त होइ पुत्रकूं गोदमें लैकें बडे आनन्दकूं प्राप्त होत भये ॥ ४३ ॥ यह जो श्रीकृष्णचंद्रको परम अद्भुत चरित्र पूतनाकी मोक्ष जौ कोई श्रद्धा करिके श्रवण करै तो वा पुरुषको गोविंद भगवान्में प्रीति होइहै ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषायां दशमस्कंधे पू० पूतनामोक्षो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

कटधूमस्य सौरभ्यमवघ्राय व्रजौकसः ॥ किमिदं कुत एवेति वदन्तो व्रजमाययुः ॥ ४१ ॥ ते तत्र वर्णितं गोपैः पूतनागमनादिकम् ॥ श्रुत्वा तन्निधनं स्वस्ति शिशोश्चासन्सुविस्मिताः ॥ ४२ ॥ नन्दः स्वपुत्रमादाय प्रेत्यागतमुदारधीः ॥ मूर्ध्न्युपाघ्राय परमां मुदं लेभे कुरूद्वह ॥४३॥ य एतत्पूतनामोक्षं कृष्णस्यार्भकमद्भुतम् ॥ शृणुयाच्छ्रद्धया मर्त्यो गोविन्दे लभते रतिम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पूतनामोक्षनिरूपणं नाम षष्ठोध्यायः ॥ ६ ॥ राजोवाच ॥ येन येनावतारेण भगवान् हरिरीश्वरः ॥ करोति कर्णरम्याणि मनोज्ञानि च नः प्रभो ॥१॥ यच्छृण्वतोऽपैत्यरतिर्वितृष्णा सत्त्वं च शुद्ध्यत्यचिरेण पुंसः ॥ भक्तिर्हरौ तत्पुरुषे च सख्यं तदेव हारं वद मन्यसे चेत् ॥ २ ॥ अथान्यदपि कृष्णस्य तोकाचरितमद्भुतम् ॥ मानुषं लोकमासाद्य तज्जातिमनुरुन्धतः ॥ ३ ॥

महाराज परीक्षित कहैंहैं कि ॥ हे प्रभो ! छः प्रकारके ऐश्वर्य करिके परिपूर्ण समस्त प्राणिनके कष्टनके हरनवारे श्रीकृष्णचंद्रने जिन जिन अवतारनकूं लैके जो जो लीला करी है ते ते हमारे काननकूं रमणीय मनोहर हैं ॥ १ ॥ जे पुरुष श्रीकृष्णचंद्रके चरित्र श्रवण करे हैं. तिनके मनकी ग्लानि जायहै, और अनेक प्रकारकी तृष्णा दूरि होइ जायहै, शीघ्र संपूर्ण अंतःकरण शुद्ध होइहै, हरिमें भक्ति होइहै, और हरि भक्तनतें मित्रता होइहै, यातें आपकी इच्छामें आवै तौ श्रीकृष्णको मनोहर चरित्र कहो ॥ २ ॥ याके अनंतर मनुष्य देह धारण करि मनुष्यनकीसी लीला धारण करनेहारे श्रीकृ-

ष्णचंद्रको मनोहर अद्भुत बालचरित्र हमारे आगे वर्णन करो ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी महाराज राजा परिक्षिततें कहैं हैं कि ॥ हे राजन्! एक समय श्रीकृष्णचंद्रकी वर्षग्रंथिके उत्सवको दिन प्राप्त भयो, और वाही दिन जन्म नक्षत्रको आइवो भयो, यातें अति मंगल भयौ ता दिन संपूर्ण गोपिका आवतभई और बाजे बजावत भये, गीत गावे, ब्राह्मणनपै स्वस्तिवाचन पढावायके श्रीयशोदाजी श्रीकृष्णचंद्रको अभिषेक स्नान करावति भई ॥ ४ ॥ अब नंदरानी यशोदाजीने अन्नादिक वस्त्र मोतिनके हार सुंदर शृंगार करिके गौपूजन करि ब्राह्मणनकूं दीनी और ब्राह्मणनतें स्वस्तिवाचन पढवाय स्नान करवायो, ता समय पुत्रके नेत्रोंमें निद्रा आई जान श्रीकृष्णचंद्रकूं होलेते गाडाके नीचे पालनेमें नंदनारी सुवावत भई ॥ ५ ॥ करवट

श्रीशुक उवाच ॥ कदाचिदौत्थानिककौतुकाप्लवे जन्मर्क्षयोगे समवेतयोषिताम् ॥ वादित्रगीतद्विजमन्त्रवाचकै-
श्चकार सूनोरभिषेचनं सती ॥ ४ ॥ नन्दस्य पत्नी कृतमज्जनादिकं विप्रैः कृतस्वस्त्ययनं सुपूजितैः ॥ अन्नाद्यवासः-
स्रगभीष्टधेनुभिः संजातनिद्राक्षमशीशयच्छनैः ॥ ५ ॥ औत्थानिकौत्सुक्यमना मनस्विनी समागतान् पूजयती
व्रजौकसः ॥ नैवाशृणोद्वै रुदितं सुतस्य सा रुदन्स्तनार्थी चरणावुदक्षिपत् ॥ ६ ॥ अधःशयानस्य शिशोरनोऽल्पक-
प्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं व्यवर्तत ॥ विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम् ॥ ७ ॥ दृष्ट्वा यशोदाप्रमुखा
व्रजस्त्रिय औत्थानिके कर्मणि याः समागताः ॥ नन्दादयश्चाद्भुतदर्शनाकुलाः कथं स्वयं वै शकटं विपर्यगात् ॥ ८ ॥

लेवेकी बधाईमें हर्ष जिनके मनमें भयो, और उदार मनवाली यशोदा रानी घरआई गोपियौंकी शुश्रूषा कररहींथी उस समय पुत्र श्रीकृष्णचंद्रके रोइवेको शब्द न सुनत भई; भगवानकी स्तन पीवेकी इच्छा भई तब रोवत २ चरण ऊपरकूं उठावतभए ॥ ६ ॥ गाडाके नीचे पालनेमें कृष्णचंद्रके छोटे अति कोमल मूंगा कीसी कांतिवारे चरणारविंद ताकी ठोकरते गाडा गिरतभयो, अनेक प्रकारके रसनके भरे ताम्बेपीतरके बासन गिरिपरे पहिया न्यारे न्यारे गिरिपरे, धुरि निकसि गई जूआ टूटिगयो ॥ ७ ॥ यशोदाते आदिलेके जो व्रजकी स्त्री हैं ते और करवट देवक उत्सवमें आई हैं ते, और नंदजीतें आदि लैके जो ब्रजवासी हैं ते आश्चर्यकूं देखिके व्याकुल भये कि आपहीते गाडा कैसे उलटि पऱ्यो ॥ ८ ॥

(कोई कुछ कोई कुछ विवाद करके कहने लगे और व्याकुल होगये परन्तु किसीको कुछ निश्चय नहींहुआ) तब उन गोप गोपीनतें श्रीकृष्णचंद्रके समीपके बालक कहन लागे कि तुम क्यों संदेह करो हो रोवत २ जो श्रीकृष्णने पांवकी ठोकर मारी यातें यह गाडा उलटिके गिरिपर्‍यौ यामें कुछ संदेह मतिजानौं ॥ ९ ॥ बालक श्रीकृष्णचंद्र अनंतबलकूं ब्रजवासी नहीं जानें, यातें बालकनकी बातको विश्वास न करत भए कि ये बालक हैं कहा जानें कहौ बालककी ठोकरते गाडा कैसे गिरिपर्‍यो ॥ १० ॥ पालनेमेंसे रोवत श्रीकृष्णचंद्रकूं गोदमें लैके यशोदाजीने जानी की आज या घरी कोई खोटो ग्रह आयो यह शंका मानिके ब्राह्मणनकूं बुलाय स्वस्तिवाचन कराय स्तन प्यायो, स्तन आछे पीये तो जानिये डरे

(इति ब्रुवन्तोतिविवादमोहिता जनाः समन्तात्परिवव्रुरार्तवत् ॥) ऊचुरव्यवसितमतीन्गोपान्गोपीश्च बालकाः ॥ रुदतानेन पादेन क्षिप्तमेतन्न संशयः ॥ ९ ॥ न ते श्रद्दधिरे गोपा बालभाषितमित्युत ॥ अप्रमेयं बलं तस्य बालकस्य न ते विदुः ॥१०॥ रुदन्तं सुतमादाय यशोदा ग्रहशङ्किता ॥ कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत् ॥११॥ पूर्ववत्स्थापितं गोपैर्बलिभिः सपरिच्छदम् ॥ विप्रा हुत्वाऽर्चयाञ्चक्रुर्दध्यक्षतकुशाम्बुभिः ॥ १२ ॥ येसूयानृतदम्भेर्ष्याहिंसामानविवर्जिताः ॥ न तेषां सत्यशीलानामाशिषो विफलाः कृताः ॥ १३ ॥ इति बालकमादाय सामर्ग्यजुरुपाकृतैः ॥ जलैः पवित्रौषधिभिरभिषिच्य द्विजोत्तमैः ॥ १४ ॥

नहीं ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णचंद्र भगवानके प्रभावको न जानिके ब्रजवासीनने ब्राह्मणनके कहेतें आठदिशान्में बलिदानकूं करिके संपूर्ण वस्तु धरिकै गाडा धरिदियो ब्राह्मणनने नवग्रहादिकनको होम कियो और दही अक्षत कुश जलते गाडाकी पूजाकरी, प्रेमी ब्रजवासीनको अन्न खायके ब्राह्मण प्रेमी होय गये, जो संपूर्णगाडाकी पूजा करी ॥ १२ ॥ निंदा झूंट पाखंड ईर्ष्या अर्थात् दूसरेको न सहारिवो और हिंसा गर्व जिनके नहीं हैं और सत्यवादी जो ब्राह्मणहैं तिनके आशीर्वाद निष्फल नहीं होतेहैं ॥ १३ ॥ या प्रकार मनमें बिचार नंदरायजी श्रीकृष्णचंद्रकूं गोदमें लेके जलमें पवित्र औषधि डरवायके सामवेद ऋग्वेद यजुर्वेदके मंत्र उत्तम ब्राह्मणते पढवायके अभिषेक करावत भए ॥ १४ ॥

52

स्वस्तिवाचन कराय और अग्निमें होम करायके नंदरायजी और संपूर्ण गोप गोपी सावधान होइके बडे गुणकारी अन्नको दान ब्राह्मणनको करतभए ॥ १५ ॥ बहुत सुंदर गुणवाली बहुत गौ वस्त्रनकूं उढाय फूलनकी माला तथा सुवर्णते शृंग मढाय सोनेकी माला पहिराय पुत्रके कल्याणके निमित्त देतभए ब्राह्मण आशीर्वाद देतभए ॥ १६ ॥ मंत्रनके जानिवेवारे योग्य ब्राह्मणनने जो जो आशीर्वाद दिये ते ताही प्रकार होतभये ब्रह्मवाक्य किसी समय निष्फल नहीं होइहैं यह बात प्रकट है ॥ १७ ॥ एक दिन नंदरानी श्रीकृष्णचंद्रको लाडकरैंहीं तासमय श्रीकृष्णचंद्रने पर्वतकी समान अपने शरीरको बोझ बढायौं सो यशोदाजीपै सहारचौ न गयौ; बोझ बढायवेको कारण यह है कि श्रीकृष्णचंद्रन

वाचयित्वा स्वस्त्ययनं नन्दगोपः समाहितः ॥ हुत्वा चाग्निं द्विजातिभ्यः प्रादादन्नं महागुणम् ॥१५॥ गावः सर्वगुणो-
पेता वासःस्रग्रुक्ममालिनीः ॥ आत्मजाभ्युदयार्थाय प्रादात् ते चान्वयुञ्जत ॥ १६ ॥ विप्रा मन्त्रविदो युक्तास्तैर्याः
प्रोक्तास्तथाशिषः ॥ ता निष्फला भविष्यन्ति न कदाचिदपि स्फुटम् ॥१७॥ एकदाऽऽरोहमारूढं लालयन्ती सुतं सती ॥
गरिमाणं शिशोर्वोढुं न सेहे गिरिकूटवत् ॥ १८ ॥ भूमौ निधाय तं गोपी विस्मिता भारपीडिता ॥ महापुरुषमाद-
ध्यौ जगतामास कर्मसु ॥ १९ ॥ दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः ॥ चक्रवातस्वरूपेण जहारासीन-
मर्भकम् ॥ २० ॥ गोकुलं सर्वमावृण्वन् मुष्णंश्चक्षूंषि रेणुभिः ॥ ईरयन्सुमहाघोरशब्देन प्रदिशो दिशः ॥ २१ ॥

जानी कि जो मैं माताकी गोदमें रहूंगो तौ यह उपस्थित जो तृणावर्त है सो मेरी माता सहित उठायके लेजायगो, याते मोकूं कष्ट होउ तो होउ मेरे कारण मेरी माताकूं कष्ट न होय ॥ १८ ॥ तब तो यशोदाजी अति आश्चर्यको प्राप्त होयके और बोझते अति पीडित होयके श्रीकृष्णचंद्रकूं पृथिवी में बैठायके नारायणको ध्यान करत भई, और कहत भई की आज कृष्णमें बोझ क्यों भयो ऐसे विचारके घरके काममें लगिगई ॥ १९ ॥ इतने हीमें कंसको टहलुवा कंसको पठायो तृणावर्त नाम दैत्य पवनके बबूरेको रूप धरिके श्रीकृष्णचंद्रकूं उडायके लैगयो ॥ २० ॥ संपूर्ण गोकुल धूरिते ढकिदियो मनुष्यनके धूरिते नेत्र मुंदि गए, और उसके घोर शब्दते दिशा विदिशा मुंदत भई ॥ २१ ॥

दो घडी ताईं उडीहुई धूरिके अंधकारते संपूर्ण गोकुल ढकिगयो, अब जहां श्रीयशोदाजी श्रीकृष्णकूं बैठारि गई ही तहां आयके देखै तो हैई नहीं ॥ २२ ॥ तृणावर्तने कंकरी ठीकरीनकी वर्षा करी तासूं पीडित हो गोकुलवासी मोहकूं प्राप्त होइके अपने आत्माकूं न देखत भए न किसी दूसरेको देखसके ॥ २३ ॥ इस प्रकार महाकठोर धूलिकी वर्षा होनेसे और आंधीके चलनैसै यशोदाने ढूंढते २ श्रीकृष्णको न पाया तब अत्यन्त निर्बलहो मरे बछडेवाली गौकी समान पृथ्वीपर गिरपड़ी और करुणाभरे वचन कहकर शोच करनेलगी ॥ २४ ॥ तासमय यशोदाजीको रुदन श्रवण करिके अतिपीडित बहुत व्याकुल होय नेत्रनमें आंसूभरे गोपिकांये श्रीकृष्णचंद्रके देखे बिना रुदन करत भई इतनेहीमें धूरि वर्षतो पवन थंभिगयो ॥

मुहूर्त्तमभवद्गोष्ठं रजसा तमसावृतम् ॥ सुतं यशोदा नापश्यत्तस्मिन्न्यस्तवती यतः ॥ २२ ॥ नापश्यत्कश्चनात्मानं परं चापि विमोहितः ॥ तृणावर्तनिसृष्टाभिः शर्कराभिरुपद्रुतः ॥ २३ ॥ इति खरपवनचक्रपांसुवर्षे सुतपदवीमबलाऽविलक्ष्य माता ॥ अतिकरुणमनुस्मरन्त्यशोचद्भुवि पतिता मृतवत्सका यथा गौः ॥ २४ ॥ रुदितमनुनिशम्य तत्र गोप्यो भृशमनुतप्तधियोऽश्रुपूर्णमुख्यः ॥ रुरुदुरनुपलभ्य नन्दसूनुं पवन उपारतपांसुवर्षवेगे ॥२५॥ तृणावर्तः शान्तरयो वात्यारूपधरो हरन् ॥ कृष्णं नभोगतो गन्तुं नाशक्नोद्भूरिभारभृत् ॥ २६ ॥ तमश्मन्तं मन्यमान आत्मनो गुरुमत्तया ॥ गले गृहीत उत्स्रष्टुं नाशक्नोदद्भुतार्भकम् ॥ २७ ॥ गलग्रहणनिश्चेष्टो दैत्यो निर्गतलोचनः ॥ अव्यक्तरावो न्यपतत्सहबालो व्यसुर्व्रजे ॥ २८ ॥

॥ २५ ॥ बबूलेका रूप धरनेहारे तृणावर्त दैत्यका वेग सब जगतके धारण करनेहारे भगवानके उठाले जानैसे शान्त होगया इसी कारण ऊपरको अधिक ऊंचा न उठसका ॥ २६ ॥ जब तृणावर्तको बहुत बोझ लगा तब यह जाना कि मैं किसी बड़े पत्थरको ग्रहण कियेहूं और कृष्णसे छूटनेकी चेष्टा करने लगा परन्तु भगवानने उसका कंठ ऐसा पकड़ लियाथा कि वह किसी प्रकार न छुड़ासका ॥ २७ ॥ कंठके घुटेते उसकी चेष्टा हत भई, नेत्र निकसि परे बोल बंद होयगयो प्राण जात रहे ऐसो वह तृणावर्त दैत्य श्रीकृष्णचंद्रसहित गोकुलमें गिरतभयो ॥ २८ ॥

जैसे शिवजीके बाणको मारचौ त्रिपुर दैत्य गिरचौ तैसे आकाशतें शिलाके ऊपर वह दैत्य गिरपरचो वाके सब अंग टूटिगये महा भयंकर रूप तृणावर्तकूं रोती और इकट्ठी हुई व्रज गोपियोंने देखा ॥ २९ ॥ ता तृणावर्तके ऊपर छातीपै श्रीकृष्णचंद्र निर्भय खेलैं हैं तिनकूं उठायके गोपिका यशोदाजीकूं देतभई और बडे आश्चर्यको मानिके यह कहत भई कि या बालककूं उठायके राक्षस आकाशमें लैगयो हो सो यह बालक मृत्युके मुखमेंते फिरि निकसि आयो है ॥ ३० ॥ नंदरायजी मुख्य जिनमें ऐसे गोप और गोपिका सो संपूर्ण फिरि श्रीकृष्णचंद्रकूं प्राप्ति होइके निश्चय बडे आनंदकूं प्राप्त होतभये और बोले अहो बडो आश्चर्य है देखो या राक्षसने या बालकके मारिवेमें कछु कसरि नहीं राखी, परंतु भगवान्नें याकूं ब-

तमन्तरिक्षात्पतितं शिलायां विशीर्णसर्वावयवं करालम् ॥ पुरं यथा रुद्रशरेण विद्धं स्त्रियो रुदन्त्यो ददृशुः समेताः ॥ २९ ॥ प्रादाय मात्रे प्रतिहृत्य विस्मिताः कृष्णं च तस्योरसि लम्बमानम् ॥ तं स्वस्तिमन्तं पुरुषादनीतं विहायसा मृत्युमुखात्प्रमुक्तम् ॥ गोप्यश्च गोपाः किल नन्दमुख्या लब्ध्वा पुनः प्रापुरतीव मोदम् ॥ ३० ॥ अहो बतात्यद्भुतमेष रक्षसा बालो निवृत्तिं गमितोऽभ्यगात्पुनः ॥ हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते ॥ ३१ ॥ किं नस्त्वपश्चीर्णमधोक्षजार्चनं पूर्त्तेष्टदत्तमुत भूतसौहृदम् ॥ यत्संपरेतः पुनरेव बालको दिष्ट्या स्वबन्धून्प्रणयन्नुपस्थितः ॥ ३२ ॥ दृष्ट्वाद्भुतानि बहुशो नन्दगोपो बृहद्वने ॥ वसुदेववचो भूयो मानयामास विस्मितः ॥ ३३ ॥

चायो और यह दुष्ट आपही अपनें पापसै मरिगयो और यह बालक साधुतुल्य है, याते या दुष्टते छूटिआयो अथवा साधुपुरुष अपनी समतासै भयसै छुटजायहै ॥ ३१ ॥ देखो हमने कहा कौन तप कीयो है, कि भगवान्की पूजा करीहै, अथवा कुआ बाउरी तलाव खुदवाये हैं, कि यज्ञ करे हैं, कि दान करे हैं, अथवा प्राणीनते स्नेह करचौ है जिन पुण्यनके प्रतापते मृत्युको प्राप्तभयो श्रीकृष्ण अपने बंधुनकूं आनंद दैवेकूं कारण फिरि आयगयो ॥ ३२ ॥ नंदरायजीने गोकुलमें बहुतसे उत्पातनकूं देखिकें मनमें बड़ौ आश्चर्य मानो, कि वसुदेवजीने प्रथम कही ही गोकुलमें बडो उत्पात आवैहैं, वसुदेवजीके वचनकी सुधि करतभए ॥ ३३ ॥

---

१ दोहा—ना जाने केहि पुण्यतें, को कर लेत सहाय। कियो काम वोंह पूतना, तृणावर्त फिर आय ॥

एक समय यशोदाजी श्रीकृष्णचंद्रकूं अपनी गोदमें बैठारिके मोहमें अति निमग्न होइके दुग्धतें चुवे जो स्तन तिनकूं प्यावैंही ॥ ३४ ॥ कछु एक स्तन पियो पाछे माता यशोदाजी अपनी मंद मुसिकान सहित श्रीकृष्णचंदके मुखके ऊपर अंगुरिया धरिके प्यावनलगी, इतनेहीमें हे राजन् परीक्षित! श्रीकृष्णचंद्रने जम्भुआई लीनी तासमय मुखारविंदमें यह संसार देखत भई ॥ ३५ ॥ आकाश, द्यावापृथ्वी, तारागण, दिशा, सूर्य, चंद्रमा, अग्नि, पवन, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदी, वन, स्थावर, जंगम, संपूर्ण प्राणी देखत भई ॥ ३६ ॥ हे राजन् परीक्षित! सम्पूर्ण विश्वकूं तत्काल श्रीकृष्णचंद्रके मुखमें देखिके डरके मारे कंपायमान होइके यशोदाने अपने मृगकेसे नेत्र मूंदलिये और बडो आश्चर्य मानत भई कि यह बालक श्रीकृष्णचंद्रके मुखमें मैने कहा आल जंजाल देख्यो ॥ ३७ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां दशमस्कंधे पू० तृणावर्तमोक्षोनाम सप्तमोऽध्यायः ॥७॥ श्रीशुकदेवजी कहेहैं कि हे राजन् परीक्षित! बडे तपस्वी यादवनके पुरोहित श्रीगर्गाचार्य वसुदेवजीके पठाये मथुराजीते नंदके गोकुलमें जातभए ॥ १ ॥ नंदरायजी श्रीगर्गाचार्यकूं देखिके प्रसन्न होत भए और उठिके हाथ जोरि प्रथम प्रणाम करिके भगवान्की तुल्य जानिके पूजन कर-

एकदार्भकमादाय स्वाङ्कमारोप्य भामिनी ॥ प्रस्नुतं पाययामास स्तनं स्नेहपरिप्लुता ॥ ३४ ॥ पीतप्रायस्य
जननी सा तस्य रुचिरस्मितम् ॥ मुखं लालयती राजन् जृम्भतो ददृशे इदम् ॥ ३५ ॥ खं रोदसी ज्योति-
रनीकमाशाः सूर्येन्दुवह्निश्वसनाम्बुधींश्च ॥ द्वीपान्नगांस्तद्दुहितॄर्वनानि भूतानि यानि स्थिरजङ्गमानि ॥ ३६ ॥
सा वीक्ष्य विश्वं सहसा राजन्संजातवेपथुः ॥ संमील्य मृगशावाक्षी नेत्रे आसीत्सुविस्मिता ॥३७॥ इति श्रीमद्भागवते
महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे तृणावर्तमोक्षो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ गर्गः पुरोहितो राजन्य-
दूनां सुमहातपाः ॥ व्रजं जगाम नन्दस्य वसुदेवप्रचोदितः ॥ १ ॥ तं दृष्ट्वा परमप्रीतः प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ॥
आनर्चाधोक्षजधिया प्रणिपातपुरःसरम् ॥ २ ॥

---

१ दोहा—हलरावत मावत मधुर, हरिके बालविनोद । जो सुख सुरमुनिको अगम, सो सुख लेत यशोद ॥ १ ॥ कबहुं झुलावत पालने, कबहुं खिलावत गोद । कबहुं सुलावत पलंगपर, यशुदा सहितविनोद ॥ २ ॥

56

तभए ॥ २ ॥ गर्गाचार्यजीकूं सुन्दर आसनपै बैठारिके भोजन करायो, और मधुर मधुर वाक्य सुनाये आनंद देके नंदरायजी यह बोले अहो ब्रह्मन्! आप तौ परिपूर्ण हो, अहो आपको कहा पूजन करें ॥ ३ ॥ हे भगवन्! दीन गृहस्थ पुरुषनके कल्याण करिवेके निमित्त तुमसरीखे महान् अपनें आश्रमते गृहस्थोंके घर जाय हैं, और उनकूं अपना कुछ प्रयोजन नहीं हैं ॥ ४ ॥ देखिवे सुनिवेमें नहीं आवे ऐसे ज्ञान जनावनवारो और सूर्य चन्द्रमा नक्षत्रादिकनको प्रतिपादन करनवारौ, ज्योतिषशास्त्र तुमनें कह्यो है, जाके पढेते पुरुष अगिले पिछले जन्मकी बात जानि लेई है ॥ ५ ॥ ब्रह्मवेत्तानमें श्रेष्ठ तुम हमारे पुत्रनको नामकरणादि संस्कार करो, तब गर्गाचार्यजीनें कही तुम्हारे गुरु आचार्य होइ तिनते क्यों न कराय लेउ तब नन्द-

सूपविष्टं कृतातिथ्यं गिरा सूनृतया मुनिम् ॥ नन्दयित्वाऽब्रवीद्ब्रह्मन्पूर्णस्य करवाम किम् ॥ ३ ॥ महद्विचलनं नृणां गृहिणां दीनचेतसाम् ॥ निःश्रेयसाय भगवन्कल्पते नान्यथा क्वचित् ॥ ४ ॥ ज्योतिषामयनं साक्षाद्यत्तज्ज्ञानमतीन्द्रियम् ॥ प्रणीतं भवता येन पुमान्वेद परावरम् ॥ ५ ॥ त्वं हि ब्रह्मविदां श्रेष्ठः संस्कारान्कर्तुमर्हसि ॥ बालयोरनयोर्नृणां जन्मना ब्राह्मणो गुरुः ॥ ६ ॥ गर्ग उवाच ॥ यदूनामहमाचार्यः ख्यातश्च भुवि सर्वदा ॥ सुतं मया संस्कृतं ते मन्यते देवकीसुतम् ॥ ७ ॥ कंसः पापमतिः सख्यं तव चानकदुन्दुभेः ॥ देवक्या अष्टमो गर्भो न स्त्री भवितुमर्हति ॥ ८ ॥ इति संचितयञ्छ्रुत्वा देवक्या दारिकावचः ॥ अपि हन्ता गताशङ्कस्तर्हि तन्नोऽनयो भवेत् ॥ ९ ॥

जी बोले कि महाराज! ये ब्राह्मण मनुष्यनके जन्मतेही गुरु कहेहैं ॥ ६ ॥ अब श्रीगर्गाचार्य कहे हैं कि मैं यादवनका पुरोहित समस्त पृथ्वीपै विख्यातहूं, मैं जो तुम्हारे पुत्रनकों नाम धरूंगो तौ दुष्टबुद्धि कंस इन बालकनकूं देवकीके पुत्र मानेगो ॥ ७ ॥ और तुम्हारी वसुदेवजीकी परस्पर मित्रताही हैं या कारणते औरहू एक बात है देवकीके आठमें गर्भमें कन्या न होनी चहिये यही विचार रात दिन कंस कियो करैहै ॥ ८ ॥ और देवकीकी कन्याकी बात सुनी है दूसरी यह वार्ता सुनेंगो कि गर्गाचार्यनें नाम धर्‍यो है, याते निश्चय वसुदेवको पुत्र है यह शंका मानिके जो वह कंस या बालककूं आय मारे तो बडौ अनर्थ होयगो ॥ ९ ॥

नंदजी बोले हे गर्गाचार्यजी! जिस प्रकार हमारे साथी ब्रजवासीभी न जानैं इस प्रकार एकांत गऊनके खिरकमें बैठिके स्वस्तिवाचन पढिके पुत्रका संस्कार करो जो ब्राह्मण क्षत्री वैश्योंको करने योग्य है ॥ १० ॥ अब शुकदेवजी राजा परीक्षितते कहैं हैं कि हे राजन्! या प्रकार नंदजीने प्रार्थना करी तो एकांतमें गर्गाचार्यजी छिपके नामकरण करतभए कारण कि नामकरण करनेकी इच्छासे गर्गजी आयेथे ॥ ११ ॥ गर्गजी बोले यह रोहिणीको पुत्र अपने गुणनकरि सुहृदनकूं रमावैगो याते याको राम नाम होइगो बल अधिक होइगो याते बलदेव नाम होइगो, विछुरे यादवनकूं मिलावैगो याते संकर्षण कहैंगे ॥ १२ ॥ और या तुम्हारे बालकके तीन रंग होत भए याने युगयुगमें रूप धरेहैं सत्ययुगमें याको शुक्लरूप हो, त्रेतामें लालवर्ण हो द्वापरमें अतसीके पुष्पकेसो रंग है. अब इंद्रनीलमणिकी नाईं श्याम सुंदर रूप धारन करचोहै यासौ कृष्ण नाम होयगो ॥ १३ ॥ काहू समय नंदरायजी यह तुह्मारे पुत्र पहले वसुदेवजीकेभी जन्म लेत भयो है, याते ज्ञानी पुरुष इनका नाम वासुदेव कहैं हैं ॥ १४ ॥ तुम्हारे पुत्रके गुण कर्मनके अनुसार बहुत नाम हैं और रूपभी बहुत हैं तिनकूं मैं जानूं हूं और पुरुष नहीं जानैं हैं ॥ १५ ॥ गौअनकूं और गोपीनकूं और तुमकूं आनंद देनवारो तुम्हारो पुत्र होयगो, और नंदरायजी तुम्हारे ऊपर बड़े बड़े कष्ट आयके प्राप्त होइंगे तिनकूं याकी कृपाते सहजमें तरिजावोगे ॥ १६ ॥

नन्द उवाच ॥ अलक्षितोऽस्मिन्रहसि मामकैरपि गोव्रजे ॥ कुरु द्विजातिसंस्कारं स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥ १० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संप्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत् ॥ चकार नामकरणं गूढो रहसि बालयोः ॥ ११ ॥ गर्ग उवाच ॥ अयं हि रोहिणीपुत्रो रमयन्सुहृदो गुणैः ॥ आख्यास्यते राम इति बलाधिक्याद्बलं विदुः ॥ यदूनामपृथग्भावात्संकर्षणमुशन्त्युत ॥ १२ ॥ आसन्वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ॥ शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ १३ ॥ प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ॥ वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥ १४ ॥ बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ॥ गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १५ ॥ एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः ॥ अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥ १६ ॥

हे व्रजराज! पहले जब कोई राजा नहीं हो तब इस बालकने पृथ्वीपै दुष्ट चोरनकरि पीडित महात्माओंकी रक्षा करी और चोरोंको जीता ॥१७॥ और जो कोई महाभागी पुरुष इस तुम्हारे पुत्रमें प्रीति करते हैं उनका शत्रु कुछ तिरस्कार नहीं करसक्ते जिस प्रकार विष्णुके सहायक रहनेसै देवताओंका दैत्य कुछ नहीं करसक्ते ॥ १८ ॥ हे नंद! तुम्हारो यह पुत्र गुण कीर्ति लक्ष्मी और प्रभावमें नारायणकी समान है सावधान होइके याकी तुम रक्षा करो ॥ १९ ॥ या प्रकार श्रीकृष्णके गुणनकूं गर्गाचार्यजी नंदरायजीते वर्णन करिके अपने घरकूं जातभये उनके गये पीछे नंदजी आनंदयुक्त होयके मनोरथनसे अपने आत्माकूं परिपूर्ण मानतभये ॥ २० ॥ अब कछु थोरे दिन व्यतीत भये तब श्रीगोकुलमें श्रीकृष्णचंद्र तथा बलदेवजी दोऊ भैया हाथ टेकके घुटवन चलिवेकी लीला करत हुए * ॥ २१ ॥ जासमय श्रीकृष्ण बलदेव दोनों भैया व्रजकी कीचमें बिचरे हैं, तास मय उनके पावनकी पेंजनीकी झनकारको सुन्दर शब्द सुनिके श्रीयशोदाजी और रोहिणीजी बड़े आनन्दकूं प्राप्त होतभई, और जो कोई रस्तागीर पुरुष निकसे है तो ताहीके पीछे घोंटुनतें चले निकसे है जब वह पुरुष इनके साहूं देखें हैं तब डरपिके अपनी मातानके पास भाजिजात हैं ॥ २२ ॥ माता यशोदा रोहिणी श्रीकृष्ण बलदेवकूं देखैं हैं कि कहीं तो ब्रजकी कीचमें लिपटि रहे हैं, और कहीं प्रसादकी केशरि अंगमें लगी रही है

पुरानेन व्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ॥ अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून्समेधिताः ॥ १७ ॥ य एतस्मिन्महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ॥ नारयोऽभिभवन्त्येतान्विष्णुपक्षानिवासुराः ॥१८॥ तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः ॥ श्रिया कीर्त्याऽनुभावेन गोपायस्व समाहितः ॥१९॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यात्मानं समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते॥ नन्दः प्रमुदितो मेने आत्मानं पूर्णमाशिषाम्॥२०॥कालेन व्रजताऽल्पेन गोकुले रामकेशवौ॥ जानुभ्यां सहपाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजह्रतुः ॥२१॥ तावङ्घ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु॥ तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं मुग्धप्रभीतवदुपेयतुरन्ति मात्रोः ॥२२॥ तन्मातरौ निजसुतौ घृणया स्नुवन्त्यौ पङ्काङ्गरागरुचिरावुपगुह्य दोर्भ्याम् ॥ दत्त्वा स्तनं प्रपिबतोः स्म मुखं निरीक्ष्य मुग्धस्मितालपदशनं ययतुः प्रमोदम् ॥ २३ ॥

---

* सिखवतचलनियसोदामैया । अरबरायकर पान गहावतडगमगात धरनीपरपैया । कबहुंकठाड़ी मुखतनहरेत आनंद करि हारिलेत बलैया । कबहूं कुलदेवता मनावत चिरजीव हु मम बाल कन्हैया ॥ कबहूं बल को टेर बुलावत इहि आंगन खेलो दोउ भैया । सूरदास प्रभु सुखनिधि दाता अति प्रताप बालक भदैरेया ।

यर्ह्यङ्गनादर्शनीयकुमारलीलावन्तर्व्रजे तदबलाः प्रगृहीतपुच्छैः॥वत्सैरितस्तत उभावनुकृष्यमाणौ प्रेक्षन्त्य उज्झितगृहा जहृषुर्हसन्त्यः ॥ २४ ॥ शृङ्ग्यग्निदंष्ट्र्यासिजलद्विजकण्टकेभ्यः क्रीडापरावतिचलौ स्वसुतौ निषेद्धुम् ॥ गृह्याणि कर्तुमपि यत्र न तज्जनन्यौ शेकात आपतुरलं मनसोऽनवस्थाम् ॥ २५ ॥ कालेनाल्पेन राजर्षे रामः कृष्णश्च गोकुले ॥ अघृष्टजानुभिः पद्भिर्विचक्रमतुरञ्जसा ॥ २६ ॥ ततस्तु भगवान्कृष्णो वयस्यैर्व्रजबालकैः ॥ सहरामो व्रजस्त्रीणां चिक्रीडे जनयन्मुदम् ॥ २७॥ कृष्णस्य गोप्यो रुचिरं वीक्ष्य कौमारचापलम् ॥ शृण्वन्त्याः किल तन्मातुरिति होचुः समागताः ॥ २८ ॥

तिन पुत्रनकूं पुकारत भई और स्नेहते स्तन दूधतें खसि आये दोनों माता हाथनमें उठाय छातीते लगाय स्तन देके खिलावती भईं स्तन पीवतेमें श्रीकृष्ण बलदेवके मुखमें भोरी मुसिकानि और छोटी २ दतुरिया युक्त ता मुखारविंदकूं देखिके अति आनंदकूं प्राप्त होत भईं ॥ २३ ॥ जासमयं व्रजके मध्य गोपीनके देखिवे योग्य श्रीकृष्ण बलदेव बाललीलानकूं करत भये तब घुटवन चलते वछरानकूं आयके पकरि लैहैं तब बछरा उठिकें भेजैं हैं तब उनकी पूंछकूं पकरे लौटत चले जायहैं या प्रकारकी लीला वे गोपी देखिके घरके कामनकूं छोडि छोडि हंसती भईं आनंदकूं प्राप्त होत भईं ॥ २४ ॥ माता यशोदा रोहिणी अति चंचल खेलमें लगे श्रीकृष्ण बलदेव पुत्रनकूं गऊ बैल डाढवाले जीव बंदर तरवार जल सांप पक्षी कांटनते रोकि रोकि बचावति फिरैं और घरके काम काज न करिसकै उस समय उनको चित्त अति चंचल और चलायमान होतभयो ॥ ॥ २५ ॥ हे राजन् परीक्षित ! व्रजमें राम कृष्ण दोऊ भैया थोरेही दिनमें घोटूं घिसे नहीं परंतु चरणनते अनायासपूर्वक चलत भये ॥ २६ ॥ पावनते चलै पीछे श्रीकृष्ण बलदेवजी अपनी बराबरीके व्रजवासीनके बालकनकूं संग लैके क्रीडा करि गोपिनकूं आनंद देतभए ॥ २७ ॥ गोपी श्रीकृष्णचन्द्रकी बाललीलाकी चपलता देखिके संपूर्ण मिलि जुरी आई श्रीकृष्णकी माता यशोदाजीकूं सुनायके यह कहनेलगी ॥ २८ ॥

---

१ कवित्त—डगमगपगनतेंअलखअलेखजोतिनन्दकेहैंजाहरकेयोगिनकेजपके । रुनझुनपैंजनियाखेलतहैरजभरेगभुआरेघुंघवारेसोहैंवारझपके ॥ मोहनबलैयालेउंआवोधूरिझारडारोंसुनिवातमातगलेलागनकोलपके । शारदागणेशशेषविधिसोंनागनेजातभक्तनकेहितकेअहीरनकेतपके ॥

अहो यशोदाजी तुम अपने पुत्रकूं बरजलीजो हमारे घरनमें आइके गऊ दुहन नहीं पावैहैं तासू पहलेही बछरानकूं छोडि देइहै बछरा दूध पीजा-
यहै दुहनवारे मूंडमारिके चले जायहैं तहां यशोदाजी कहैं हैं अरी तुम्हारे घर जाय तब याकूं तुम डाट दीजो यशोदाजीके बचन कूं गोपिका श्रवण
करिके कहती भई कि जब हम याहि डाटैं हैं तब यह हांसि देइहै, याकी हांसि देखिके हमहूंकूं हांसी आय जाय है, और ये बालक चोरीके उपायते
दूध दही स्वादते खाय जायहै, और आप खाइके बंदरनकूं खवावैहै और बंदर न खांय तो जानिकैं दूध दही घीके चीकने बासननकूं फोरिडारै,
और कदाचित् याके हाथमें दही माखन न लगैहै तब क्रोध करि यह कहैहै कि याके घरमें आगिलगि जावो, फिरि पलिकानपैं सोवत हमारे बालक-

वत्सान्मुञ्चन्क्वचिदसमये क्रोशसंजातहासः स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधिपयः कल्पितैः स्तेययोगैः ॥ मर्कान्भोक्ष्यन्वि-
भजति स चेन्नात्ति भाण्डं भिनत्ति द्रव्यालाभे स गृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥ २९ ॥ हस्ताग्राह्ये रच-
यति विधिं पीठकोलूखलाद्यैश्छिद्रं ह्यन्तर्निहितवयुनः शिक्यभाण्डेषु तद्वित् ॥ ध्वान्तागारे धृतमणिगणं स्वा-
ङ्गमर्थप्रदीपं काले गोप्यो यर्हि गृहकृत्येषु सुव्यग्रचित्ताः ॥ ३० ॥

नकूं रुवायके चल्योजायहै ॥ २९ ॥ और जो ऊंचे छींकेनपैं धरैं जहां याके हाथ नहीं आवै, तब पीढा मूढा ऊखरी इत्यादिकनकूं धरिके चुरावनेके
उपाय रचैहै, और छींकेनपै धरे बासननमें छेद करि देइहै, और जा बासनमें मीठो दधि जानैहै तामें छेद हू माफिककरै बडो छोटो न करै,
और जो जो हम अंधेरे घरमें दही माखन धरें, तो याके गहनेनमें हीरा मणि लगेहैं, तिनको चांदनो होइजाय है, यशोदाजी कहनलगीं कि कहने
मैं उतारि लेऊंगी, तहां कहैं हैं कि याके अंगको प्रकाश कैसो है, यावत् पर्यंत हम घरमें बैठी रहैहैं तावत् पर्यंत आवै तो देखिके भाजि जाय,
जब हम घरके काममें लगैं तब आइ घुसे है[1] ॥ ३० ॥

---

[1] रागरामकली– गारी मतदीजो मो गरीबनीको जायो है ॥ टेक ॥ तेरो जो बिगार्‍यो सो तौ मोसों आन कहो वीरमैं तौ काहू बातको नहीं तरसायेहै ॥ दधिकी मथनिया भरी आंगन में आनधरी तोलातोल लीजो बीर जा को जे तो खायेहै ॥ सूरदास प्रभु प्यारे नेकहू न हूजे न्यारे कान्हासो पूत मैंने बडे पुण्य पायो है ।

कबहूँ हम आयके कहैं कि घरमें चौर है, तब कहैहै कि तुमहीं चोरहो मैं तौ घरको मालिक हूं ऐसे हसिके वात करै है, और हमारे लिपे पुते घरनमें हंगि जायहै, मूति जायहै सब दिन चोरिके उपायमें फिऱ्यो करैहै, अब देख्यो तुम्हारे आगे गरीब सो ठाढोहै याप्रकार गोपीनने डरपायो तास भय संयुक्त नेत्र तिनके श्रीमुखकी शोभा देखिवेके निमित्त श्रीयशोदाजीते आयके गोपी उलाहनो देत भई तब श्रीयशोदाजीने हंसिके श्रीकृष्णकूं डाऱ्यौ नांहीं ॥ ३१ ॥ एक समय बलदेवजीते आदि लैके गोपिनके बालक क्रीडा करत हैं तहां जाय श्रीकृष्णचंद्र मृत्तिका खात भये, तब संपूर्ण

एवं धाष्ट्र्यान्युशति कुरुते मेहनादीनि वास्तौ स्तेयोपायैर्विरचितकृतिः सुप्रतीको यथास्ते ॥ इत्थं स्त्रीभिः सभयनयनश्रीमुखालोकिनीभिर्व्याख्यातार्था प्रहसितमुखी नह्युपालब्धुमैच्छत् ॥ ३१ ॥ एकदा क्रीडमानास्ते रामाद्या गोपदारकाः ॥ कृष्णो मृदं भक्षितवानिति मात्रे न्यवेदयन् ॥ ३२ ॥ सा गृहीत्वा करे कृष्णमुपालभ्य हितैषिणी ॥ यशोदा भयसंभ्रान्तप्रेक्षणाक्षमभाषत ॥ ३३ ॥ कस्मान्मृदमदान्तात्मन्भवान्भक्षितवान्रहः ॥ वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ॥ ३४ ॥

बालकनने कही कि आज कृष्णकूं मैयापै पिटवावेंगे, और यह कहैंगे मैयाजी आज श्रीकृष्णचंद्रने माटी [illegible] विचार करत २ सम्पूर्ण बालक बलदेवजी सहित श्रीकृष्णचंद्रकी मातातें कहत भए ॥ ३२ ॥ तब हितकी चाहनवारी श्रीकृष्णकी माता यशोदाने श्रीकृष्णचंद्रकूं हाथ पकरिके डरपायो तब भययुक्त चंचल नेत्र श्रीकृष्णते यह बोली ॥ ३३ ॥ हे चपलगात्र चंचल अरे बेटा ! तैंने अकेलेमें जायके माटी क्यों खाई, ये तेरे संगके बालक कहैहैं, और तेरो भैया बलदेवजी कहै है ॥ ३४ ॥

---

१ रागरामकली ॥ मैयामैनहिमाखनखायो । भोरभयोगैाअनके पाछे मधुबनमोहिपठायो । चारपहरबंसीबटभटक्योसांझपरीघरआयो । मैंबालकबैयनकोछोटोछींका किसविधपायो । ग्वालबालसबबैल पडे हैं वरबसमुखलपटायो । तूजननीमनकीहैभोरीइनकेकहेपतिआयो । तेरेजियाकछुभेदउपजहैजानपरायोजायो । येलेअपनीलकुटकमरिया बहुतहीनाचनचायो । सूरदासतब हंसीजसोदालेउरकंठलगायो ॥

हे मैया ! मैंने माटी नहीं खाई है और जो तुम इनकी बात मानो हो तो तेरे आगे मेरो मुख है ताकूं तू देखिले ॥ ३५ ॥ यह सुनिकरि मैया बोली तैने माटी नहीं खाई है तो अपनो मुख दिखायदै, या प्रकार जब माताने कही तब सब प्रकारके दुःखके दूरी करनवारे अखंड ऐश्वर्यमान परमेश्वर क्रीडा करिवेकेलिये मनुष्यबालकरूप श्रीकृष्णचंद्रने अपनो मुखारविंद उघारकै माताकूं दिखायो ॥ ३६ ॥ तब यशोदाजीने श्रीकृष्णके मुखमें स्थावर जंगम सम्पूर्ण विश्व देख्यो, ताहीको आगे विस्तारहै अंतरिक्षलोक, दिशा, पर्वत, द्वीप, समुद्रसहित भूलोक देख्यो, और पवन, अग्नि, चन्द्रमा तारागणसहित समस्त देख्यो ॥ ३७ ॥ ज्योतिश्चक्र देख्यो, जल, पवन, तेज, आकाश ये समस्त देखे, इंद्रियनके अधिष्ठातादेवता, इंद्रिय मन और इनके विषय शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये पांचौ सत्वगुण रजोगुण तमोगुण ये समस्त देखतभई ॥ ३८ ॥ जीव काल स्वभाव कर्म अंतःकरण इनसहित स्थावर जंगम और सम्पूर्ण प्राणीनके भेदसहित चित्रविचित्र विश्वकूं श्रीकृष्णचंद्रके उघारे मुखमें देखतभई, सम्पूर्ण व्रज देख्यो और अपने आत्माकूं देख्यो, यह समस्त देखि भारिके यशोदाजीके मनमें शंकाभई ॥ ३९ ॥ अब यशोदाजी कहैं हैं कि ये देख्यौ सो कहा कछु स्वप्नो तौ न देख्यो फिरि कहन लगी कि स्वप्नो तो सोवतमें आवतहै मैं तौ जागू हूं, अथवा कोई ईश्वरकी मायाहै, अथवा कोई मेरी बुद्धि मोहित होगई है, अथवा मेरे पुत्र कृष्णको यह स्वाभाविक ऐश्वर्य है अथवा बेरबेर दिखायवेकौ स्वभाव पडिगयो है ॥ ४० ॥

नाहं भक्षितवानम्ब सर्वे मिथ्याभिशंसिनः ॥ यदि सत्यगिरस्तर्हि समक्षं पश्य मे मुखम् ॥ ३५ ॥ यद्येवं तर्हि व्यादेहीत्युक्तः स भगवान्हरिः ॥ व्यादत्ताव्याहतैश्वर्यः क्रीडामनुजबालकः ॥ ३६ ॥ सा तत्र ददृशे विश्वं जगत्स्थास्नु च खं दिशः ॥ साद्रिद्वीपाब्धिभूगोलं सवाय्वग्नीन्दुतारकम् ॥ ३७ ॥ ज्योतिश्चक्रं जलं तेजो नभस्वान्वियदेव च ॥ वैकारिकाणीन्द्रियाणि मनोमात्रा गुणास्त्रयः ॥ ३८ ॥ एतद्विचित्रं सहजीवकालस्वभावकर्माशयलिङ्गभेदम् ॥ सूनोस्तनौ वीक्ष्य विदारितास्ये व्रजं सहात्मानमवाप शङ्काम् ॥३९॥ किं स्वप्न एतदुत देवमाया किंवा मदीयो बत बुद्धिमोहः ॥ अथो अमुष्यैव ममार्भकस्य यः कश्चनौत्पत्तिक आत्मयोगः ॥ ४० ॥

---

१ नंदराय सौंकहत जसोदारानी ॥ टेक ॥ माटीके मिस मुखदिखरायौ तिहूं लोक रजधानी । स्वर्ग पताल धरनि बन पर्वत वदन मांझ रहे आनी ॥ नदी सुमेरु देखि चकित भई याकी अकथकहानी ॥ चितै रहै तब नंद जुवति मुखमन मन करत विनानी ॥ सूरदासतब कहत यशोदा गर्ग कही यह बानी ॥

चित्त मन वाणी इन करिके अनायासपूर्वक भलेप्रकार विचारमें नहीं आवैहै, जाके आश्रय करिके संसार प्रतीत होइ है स्नेहकरिके भावनामें नहीं आनेहारे अचिंतनीय स्वरूपकूं मैं नमस्कार करूं हूं ॥ ४१ ॥ मैं यशोदा हूं और यह व्रजराज मेरो पति है यह कृष्ण मेरो पुत्रहै और यह पुत्र राजके संपूर्ण धनकी मैं रक्षा करनवारीहूं और ये समस्त गोप गोपिका मेरे ये संपूर्ण जाकी माया करिके कुबुद्धि लगिरही है सो अब भगवान् तुह्मारी शरणहूं ॥ ४२ ॥ या प्रकार यशोदाजीकूं कृष्णमें ईश्वरकी बुद्धि होइगई तब कृष्णने विचार कियो कि मेरो लाड कौन करैगो, तब पुत्रस्नेहरूपा अपनी वैष्णवी माया यशोदापै फैलाय दीनी ॥ ४३ ॥ तासमय यशोदाजीकी श्रीकृष्णचंद्रमेंते ईश्वरत्व बुद्धि हटि गई

अथो यथावन्न वितर्कगोचरं चेतोमनःकर्मवचोभिरञ्जसा ॥ यदाश्रयं येन यतः प्रतीयते सुदुर्विभाव्यं प्रणताऽस्मि तत्पदम् ॥ ४१ ॥ अहं ममासौ पतिरेष मे सुतो व्रजेश्वरस्याखिलवित्तपा सती ॥ गोप्यश्च गोपाः सह गोधनाश्च मे यन्माययेत्थं कुमतिः स मे गतिः ॥ ४२ ॥ इत्थं विदिततत्त्वायां गोपिकायां स ईश्वरः ॥ वैष्णवीं व्यतनोन्मायां पुत्रस्नेहमयीं विभुः ॥ ४३ ॥ सद्यो नष्टस्मृतिर्गोपी साऽऽरोप्यारोहमात्मजम् ॥ प्रवृद्धस्नेहकलिलहृदयाऽऽसीद्यथा पुरा ॥ ४४ ॥ त्रय्या चोपनिषद्भिश्च सांख्ययोगैश्च सात्त्वतैः ॥ उपगीयमानमाहात्म्यं हरिं साऽमन्यतात्मजम् ॥ ४५ ॥ ॥ राजोवाच ॥ नन्दः किमकरोद्ब्रह्मञ्छ्रेय एवं महोदयम् ॥ यशोदा च महाभागा पपौ यस्याः स्तनं हरिः ॥ ४६ ॥ पितरौ नान्वविन्देतां कृष्णोदारार्भकेहितम् ॥ गायन्त्यद्यापि कवयो यल्लोकशमलापहम् ॥ ४७ ॥

और पुत्रभाव मानिकै गोदमें बैठारिके अतिस्नेहमें मग्न होइके पहिलेकीसीनाईं वात्सल्यभाव करतभई ॥ ४४ ॥ ऋग यजुः साम यह तीनों वेद सांख्ययोग समस्त निरंतर जिन भगवानकी महिमाकूं गावैं हैं तिनकूं यशोदाजी अपने पुत्र मानैं हैं ॥ ४५ ॥ अब श्रीराजा परीक्षित् विस्मित होयके श्रीशुकदेवजीते प्रश्न करै है कि हे ब्रह्मन्! नंदरायजीने ऐसो कहा पुण्य कर्‍यौ हो याते इनको ऐसो उदय भयो, और यशोदाजीने कौन पुण्य कर्‍यौ हो याते श्रीकृष्णचंद्र भगवान्ने स्तनपान कियो ॥ ४६ ॥ और समस्तलोकनके पापके दूरि करनवारो श्रीकृष्णचंद्रको

बालचरित्र अब पर्य्यंत कवीश्वर वर्णन करै है सो वह बाललीलाको सुख माता देवकी और वसुदेवको प्राप्त न होतभयो याको कारण कहाहै ॥ ४७ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहैं हैं आठ वसुनमें श्रेष्ठ द्रोण नाम वसु अपनी धरा स्त्रीकूं संग लैके ब्रम्हाजीकी आज्ञा करिवेके लिये ब्रम्हाजीते बोले ॥ ४८ ॥ हमारे जन्म पृथ्वीमें होय परन्तु विश्वके ईश्वर देवनके देव भगवान् हरिमें हमारी भक्ति होइ जिस भक्तिके प्रभावतें यह जीव संसारके पार लगिजाइ है ॥ ४९ ॥ ता समय ब्रह्माजीने कही कि जावो तुम्हारे भक्ति होइगी, तब तौ बडे यशस्वी भाग्यवान् द्रोण व्रजमें जन्म धारण करि नंदनामते विख्यात होतभये और वह धरा यशोदानामसे विख्यात होतभई ॥ ५० ॥ हे भारत ! याके अनंतर पुत्ररूप जना

श्रीशुक उवाच ॥ द्रोणो वसूनां प्रवरो धरया सह भार्यया ॥ करिष्यमाण आदेशान्ब्रह्मणस्तमुवाच ह ॥ ४८ ॥ जातयोर्नौ महादेवे भुवि विश्वेश्वरे हरौ ॥ भक्तिः स्यात्परमा लोके ययाऽञ्जो दुर्गतिं तरेत् ॥ ४९ ॥ अस्त्वित्युक्तः स भगवान्व्रजे द्रोणो महायशाः ॥ जज्ञे नन्द इति ख्यातो यशोदा सा धराऽभवत् ॥ ५० ॥ ततो भक्तिर्भगवति पुत्रीभूते जनार्दने ॥ दम्पत्योर्नितरामासीद्गोपगोपीषु भारत ॥ ५१ ॥ कृष्णो ब्रह्मण आदेशं सत्यं कर्तुं व्रजे विभुः ॥ सहरामो वसंश्चक्रे तेषां प्रीतिं स्वलीलया ॥ ५२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे विश्वरूपदर्शनेऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा गृहदासीषु यशोदा नन्दगेहिनी ॥ कर्मान्तरनियुक्तासु निर्ममन्थ स्वयं दधि ॥ १ ॥ यानि यानीह गीतानि तद्बालचरितानि च ॥ दधिनिर्मन्थने काले स्मरन्ती तान्यगायत ॥ २ ॥

र्दन भगवान्के विषे नंदयशोदाजीकी गोप गोपिकानहूतें अतिशयकरिके भक्ति होतिभई ॥ ५१ ॥ अब विष्णुभगवान् श्रीकृष्णचंद्र ब्रह्माजीकी आज्ञा करिवेके कारण बलदेवजी सहित नंद यशोदाजीके वासकरत अपनी लीला करिके परम आनंद देत भये ॥ ५२ ॥ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां दशमस्कंधे पू० विश्वरूपदर्शनो नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षिततें कहैं हैं कि हे राजन् ! एक दिवस संपूर्ण घरकी दासी तौ और कामनमें लगि रही हैं तासमय नंदरानी यशोदाजी अपनेही हाथ दधिमंथन करतभई ॥ १ ॥ दधिमंथनके समय जो जो

लीला बालचरित्र या संसारमें श्रीकृष्णके हैं तिनकूं स्मरण करिके गावतिभई ॥ २ ॥ सूत्रते बंधी रेशमी सारी कमरिमें धारण करे पुत्रके स्नेहते स्तननमें दुग्ध भरिआयो और नेती खेंचिवेको अतिश्रम भयो और भुजानमें चुरियानको शब्द होत जायहै कंकण हाथनमें और काननमें कर्णफूल हलतजाय हैं और मुखपै पसीनानके बिंदु आयगए हैं मस्तकके केशनमें ते चमेलीके पुष्प गिरतजाय हैं और सुंदर जिनकी भ्रकुटि या प्रकार बडी शोभायमान श्रीयशोदाजी दधि मंथन करती भई ॥ ३ ॥ इतनेहीमें श्रीकृष्णचंद्रजी स्तन पीवेकी इच्छा भई तब मैयाके पास आयके रइकूं पकरिके कहन लगेकी अरी मैया पहले मोकूं स्तन प्यायदे ॥ ४ ॥ यशोदा दुग्धते भरो जो स्तन सो श्रीकृष्णचंद्रकूं गोदमें लिटारिके

क्षौमं वासः पृथुकटितटे बिभ्रती सूत्रनद्धं पुत्रस्नेहस्नुतकुचयुगं जातकम्पं च सुभ्रूः ॥ रज्वाकर्षश्रमभुजचलत्कङ्कणौ कुण्डले च स्विन्नं वक्रं कबरविगलन्मालती निर्ममन्थ ॥ ३ ॥ तां स्तन्यकाम आसाद्य मथ्नन्तीं जननीं हरिः ॥ गृहीत्वा दधिमन्थानं न्यषेधत्प्रीतिमावहन् ॥४॥ तमङ्कमारूढमपाययत्स्तनं स्नेहस्नुतं सस्मितमीक्षती मुखम् ॥ अतृप्तमुत्सृज्य जवेन सा ययावुत्सिच्यमाने पयसि त्वधिश्रिते ॥ ५ ॥ संजातकोपः स्फुरितारुणाधरं संदश्य दद्भिर्दधिमण्डभाजनम् ॥ भित्त्वा मृषाश्रुर्दृषदश्मना रहो जघास हैय्यङ्गवमन्तरं गतः ॥ ६ ॥ उत्तार्य गोपी सुश्रृतं पयः पुनः प्रविश्य संदृश्य च दध्यमत्रकम् ॥ भग्नं विलोक्य स्वसुतस्य कर्म तज्जहास तं चा[illegible] न तत्र पश्यती ॥७॥

[illegible]ापन लगी मुसिकानी भऱ्यो मुख देखति जाय है, इतनेहीमें चूल्हेके ऊपर टिवेकूं धऱ्यो दूध बहुत आंच लगनेसै उफनिचल्यो तब यशोदा श्रीकृष्णचंद्रको पेट तो भऱ्यो नहीं परतु गोदमेंते पृथ्वीपै उतारि दूध उतारि कूं शीघ्रतासे चली ॥ ५ ॥ पूतते दूध प्यारो लग्यो याते श्रीकृष्णचंद्रकूं क्रोध भयो ता क्रोधतें अरुण ओठकूं दांतनतें काटते जाइहैं, और एक बासन मठाबिलोवनको फोरि डाऱ्यो, नेत्रनमें झूंठे आशू लगाय माखनको एक लोद लैके भीतर घरके कोनमें बैठिके खानलगे ॥ ६ ॥ यशोदाजी बहुत औटे दूधकूं चूल्हेते नीचे उतारिके फेर दही मथवेकी जगह आयके दही मथिवेके बासनकूं फूट्यो देखिके विचार करत भई कि यह कृष्णकोही कौतुक है वाके बिना और कौन फोरे, उहां देखे तौ

श्रीकृष्ण नहींहै तब तो हंसिके कहनलगी की एक तो काम बिगाऱ्यो दूसरे भागि गयो ॥ ७ ॥ देखे तो घरके भीतर उलूखल ओंधो करिके वाके ऊपर बैठिके छींकेपर धऱ्यो माखन निकासिके बंदरानकूं खवावे हैं और मैया तो न आयजावे या भयते इत उत देखत जायहैं, इतनेहीमें पुत्रकूं ढूंढत ढूंढत श्रीयशोदाजी आवतभई ॥ ८ ॥ लकरिया हाथमें लिये माताकूं आवति देखिके शीघ्रही उलूखल ने कूदते डरे कीसी नाईं भाजतभए, एकाग्र ध्यान करिके योगीराज जिनकी गतिकूं नहीं जानेहैं तपकरिके जिनमें मन नहीं पहुँचे है, ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे यशोदाजी भागति भई तथापि हाथ नहीं आवत भए ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके पीछे जाती यशोदाजीकी गति नितम्बके बोझते सिथिल होगई, दौरिवेते केशनके बंधन खुलिगये, तिनमेंते गिरे पुष्पनके ऊपर पांव धरती जायहैं याप्रकार श्रीकृष्णचंद्रकूं जायके पकरिलीयो ॥ १० ॥ अपराधकर श्रीकृष्णचंद्र रोवते जायहै, और काजर लगे नेत्रनकूं हातते मीडत जायहै, और वारंवार यशोदाजीकूं देखते जायहैं, डरकेमारे चंचलनेत्र श्रीकृष्णचंद्रको हाथ पकरि यशोदाजी डरपावति भई ॥ ११ ॥ पुत्रमें हित करनेहारी यशोदाजी श्रीकृष्णचंद्रकूं अति भयभीत देखिकें लकरी हाथते डारत भइ पुत्रके पराक्रमकूं नहीं जानिके रस्सीते बांधिवेंकी इच्छा करति भई ॥ १२ ॥ जिस परमेश्वरके अन्तर बाहर, आगे वा पीछे कुछभी नहीं है जो पूर्ण अवतार हैं, और जो जगतके भीतर बाहर तथा आगे पीछे रहतेहैं और जो जगतरूप हैं ॥ १३ ॥

उलूखलाङ्घ्रेरुपरि व्यवस्थितं मर्काय कामं ददतं शिचि स्थितम् ॥ हैयङ्गवं चौर्यविशङ्कितेक्षणं निरीक्ष्य पश्चात्सुतमागमच्छनैः ॥ ८ ॥ तामात्तयष्टिं प्रसमीक्ष्य सत्वरस्ततोऽवरुह्यापससार भीतवत् ॥ गोप्यन्वधावन्न यम योगिनां क्षमं प्रवेष्टुं तपसेरितं मनः ॥ ९ ॥ अन्वञ्चमाना जननी बृहच्चलच्छ्रोणीभराक्रान्तगतिः सुमध्यमा ॥ जवेन विस्रंसितकेशबन्धनच्युतप्रसूनानुगतिः परामृशत् ॥ १० ॥ कृतागसं तं प्ररुदन्तमक्षिणी कर्षन्तमञ्जन्मषिणी स्वपाणिना ॥ उद्वीक्षमाणं भयविह्वलेक्षणं हस्ते गृहीत्वा भिषयन्त्यवागुरत् ॥ ११ ॥ त्यक्त्वा यष्टिं सुतं भीतं विज्ञायार्भकवत्सला ॥ इयेष किल तं बद्धुं दाम्नाऽतद्वीर्यकोविदा ॥ १२ ॥ न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम् ॥ पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्च यः ॥ १३ ॥

इन्द्रियनकी जिनमें पहुंच नहीं ऐसे अव्यक्त भगवानकूं पुत्र मानिके यशोदाजी डोरि लैके उलूखलते बांधन लगी जैसे कोई साधारण मनुष्य बालककूं बांधे हैं ॥ १४ ॥ अपराध करनेहारे जब यशोदा अपनें पुत्र श्रीकृष्णकूं बांधने लगी, तासमय वह रस्सी दो अंगुल ओछी भई तासमयँ और दूसरी जोरी ॥ १५ ॥ जो और [illegible]सी जोरी सोभी ओछी भई, याप्रकार रस्सी जोरी सो सम्पूर्ण दो अंगुल ओछी होत भई ॥ १६ ॥ ऐसें यशोदाजीने सम्पूर्ण घरक[illegible] रस्सी लायके जोरी परंतु श्रीकृष्णकूं न बंधे [illegible]खिके गोपी हंसत भई और मुसिकायके आप यशोदाजी विस्मित होत भई ॥ १७ ॥ अंगमें पसीना आय गयो और माला कंठते टूटिके गिरत भई तब यशोदामाताकूं श्रमित देखिके

तं मत्वाऽऽत्मजमव्यक्तं मर्त्यलिङ्गमधोक्षजम् ॥ गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा ॥१४॥ तद्दामबद्ध्यमानस्य स्वार्भकस्य कृतागसः ॥ द्व्यङ्गुलोनमभूत्तेन संदधेऽन्यच्च गोपिका ॥१५॥ यदासीत्तदपि न्यूनं तेनान्यदपि संदधे ॥ तदपि द्व्यङ्गुलं न्यूनं यद्यदादत्त बन्धनम् ॥१६॥ एवं स्वगेहदामानि यशोदा संदधत्यपि ॥ गोपीनामुस्मयन्तीनां स्मयन्ती विस्मिताऽभवत् ॥ १७॥ स्वमातुः स्विन्नगात्राया विस्रस्तकबरस्रजः ॥ दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्णः कृपयाऽऽसीत्स्वबन्धने ॥१८॥ एवं संदर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भक्तवश्यता ॥ स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे ॥ १९ ॥ नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया ॥ प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत्प्राप विमुक्तिदात् ॥२०॥ नायं सुखापो भगवान्देहिनां गोपिकासुतः ॥ ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह ॥ २१ ॥

करुणामय श्रीकृष्णचंद्र आपही कृपा करिके बंधनमें आयगये ॥ १८ ॥ हे राजन् परीक्षित ! ऐसे कष्टके हरनवारे भगवान्की ब्रह्मासहित विश्व जिनके आधीन है उन श्रीकृष्णचंद्रने अपने भक्तनको वश होईवो दिखायो, कि जो मेरे भक्त मोकूं बांधिवो चाहैं तो बंधिभी जाऊंहूं, ऐसो आधीन हूं ॥ १९ ॥ हे राजा ! भक्तिके देनवारे श्रीकृष्णचंद्र भगवान्ने पुत्रके संबन्धते जो प्रसाद गोपिननें पायो सो कृपा ब्रह्मापै न भई और शिवजी आत्मा हैं तिनपै न भई लक्ष्मी सर्वदा अंगमें आवै रही है और पत्नीहै तथापि न भई कि जो कृपा यशोदाजीपै भई ॥ २० ॥ यशोदानंदन श्रीकृष्ण भगवान जैसै भक्तौंको सहज में प्राप्त हो जातेहैं तैसै देहाभिमानी तपस्वी आदिकौं को और देहाभिमान रहित आत्मज्ञा-

नियौं को सहजमें नहीं प्राप्त होते ॥ २१ ॥ मैया यशोदाजी तौ घरके काममें लगिरहीहैंकि इतनेमें समर्थ श्रीकृष्णचंद्र भगवान् कुबेरके बेटा जो प्रथम जन्ममें गुह्य कहे और अब आयके यमलार्जुन वृक्ष होतभए, तिनके पास जात भए ॥ २२ ॥ सुंदर शोभायमान नलकूबर मणिग्रीव नाम करिके प्रसिद्ध कुबेरके पुत्र प्रथम जन्मके मदते नारदजीके शापते वृक्षयोनि पावतभये ॥ २३ ॥ इति श्रीभागवतभाषायां दशमस्कन्धे पू० गोपीप्रसादो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ अब राजापरीक्षित श्रीशुकदेवजीते प्रश्न करैहैं कि हे भगवन् ! नलकूबर मणिग्रीवके शापको कारण कहो तिन्हौने ऐसो कहा निंदित कर्म्म करचौ जाते नारदजीकूं क्रोध भयो ॥ १ ॥ शुकदेवजी बोले कि ॥ शिवजीके अनुचर अति गर्ववंत मद पीनेसै मतवारे

कृष्णस्तु गृहकृत्येषु व्यग्रायां मातरि प्रभुः ॥ अद्राक्षीदर्जुनौ पूर्वं गुह्यकौ धनदात्मजौ ॥ २२॥ पुरा नारदशापेन वृक्षतां प्रापितौ मदात्॥नलकूबरमणिग्रीवाविति ख्यातौ श्रियान्वितौ ॥२३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गोपीप्रसादोलूखलबन्धनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥ ॥ राजोवाच ॥ कथ्यतां भगवन्नेतत्तयोः शापस्य कारणम्॥ यत्तद्विगर्हितं कर्म येन वा देवर्षेस्तमः ॥१॥ श्रीशुक उवाच ॥ रुद्रस्यानुचरौ भूत्वा सुदृप्तौ धनदात्मजौ ॥ कैलासोपवने रम्ये मन्दाकिन्यां मदोत्कटौ ॥ २ ॥ वारुणीं मदिरां पीत्वा मदाघूर्णितलोचनौ ॥ स्त्रीजनैरनुगायद्भिश्चेरतुः पुष्पिते वने ॥ ३ ॥ अन्तः प्रविश्य गङ्गायामम्भोजवनराजिनि ॥ चिक्रीडतुर्युवतिभिर्गजाविव करेणुभिः ॥४॥ यदृच्छया च देवर्षिर्भगवांस्तत्र कौरव ॥ अपश्यन्नारदो देव क्षीबाणौ समबुध्यत ॥ ५ ॥ तं दृष्ट्वा व्रीडिता देव्यो विवस्त्राः शापशङ्किताः ॥ वासांसि पर्यधुः शीघ्रं विवस्त्रौ नैव गुह्यकौ ॥ ६ ॥

कुबेरके पुत्र मंदाकिनीके तटपै रमणीय कैलासके बगीचामें ॥ २ ॥ वारुणी मदिराकूं पान करनैसै उनके नेत्र मदसै चलायमान हो रहे थे और पुष्पवाटिकामें विचर रहेथे कि उनकें पीछे पीछे सुन्दर स्त्रियांभी फिरतीथीं ॥ ३ ॥ फिर वे फूले कमलोंसै युक्त श्रीगंगाजीके मध्यमें जायके स्त्रीनकूं संग लैके विहार करत भये, जैसें हथिनीनके संगमें हाथी विहार करते हैं॥ ४ ॥ हे कौरव वंशमें भये राजा परीक्षित ! अनायास पूर्वक देवर्षि भगवान् नारदजी तहां आये और इनकूं देखिके मतवारो जानत भए ॥ ५ ॥ अब श्रीनारदजीकूं

देखिके नग्न देवांगना लज्जित होयके शापके डरते शीघ्र वस्त्रनकूं पहिरि लेतभईं, और नलकूबर मणिग्रीवने वस्त्र न पहिरे नग्नही ठाडेरहे ॥ ६ ॥ तब नारदजी कुबेरके बेटानकूं मतवारौ देखिके मद दूरि करिवेके लिये और श्रीकृष्णचंद्रके दर्शनके निमित्त शाप देते यह गान करन लगे ॥ ७ ॥ अब नारदजी कहैं हैं कि प्रिय विषयनके भोग करनवारे पुरुषकी बुद्धिको धनमदके विना हास्यहर्षादिक कुलीनता पंडिताई आदिसे हुआ मद अथवा रजोगुण नाश नहीं करताहै परन्तु धनका मदही बुद्धिको नष्ट करताहै क्योंकि धनमद जाके होईहै तब वह स्त्रीनको संग करैहै जुआ खेलैहै मदिराकौ पान करैहै ॥८॥ इस क्षणभंगुर शरीरको लक्ष्मीके मदसै अजर और अमर मान्नेहारे अजितेन्द्रिय मनुष्य निर्दई होकै पशुओंको मारैहै ॥९॥ राजा-

तौ दृष्ट्वा मदिरामत्तौ श्रीमदान्धौ सुरात्मजौ ॥ तयोरनुग्रहार्थाय शापं दास्यन्निदं जगौ ॥ ७ ॥ नारद उवाच ॥ न ह्यन्यो जुषतो जोष्यान्बुद्धिभ्रंशो रजोगु[illegible]ः ॥ श्रीमदादाभिजात्यादिर्यत्र स्त्रीद्यूतमासवः ॥ ८ ॥ हन्यन्ते पशवो यत्र निर्दयैरजितात्मभिः ॥ मन्यमानैरिं[illegible] देहमजरामृत्यु नश्वरम् ॥ ९ ॥ देवसंज्ञितमप्यन्ते कृमिविड्भस्मसंज्ञितम् ॥ भूतध्रुक् तत्कृते स्वाथ किं वेद [illegible]रयो यतः ॥ १० ॥ देहः किमन्नदातुः स्व निषेक्तुर्मातुरेव च ॥ मातुः पितुर्वा बलिनः क्रेतुरग्नेः शुनोऽपि वा ॥१[illegible]॥ एव साधारणं देहमव्यक्तप्रभवाप्ययम् ॥ को विद्वानात्मसात्कृत्वा हन्ति जन्तूनृतेऽसतः॥१२॥असतः श्रीमदान्धस्य दारिद्र्यं परमाञ्जनम्॥आत्मौपम्येन भूतानि दरिद्रः परमीक्षते ॥ १३ ॥

केभी देहकी मृत्यु भये पीछे तीन गति होयहै, कृमि होयजाय अथवा पश्वादिजीव खाय तौ विष्ठा होयजाय अग्नि दग्धकरे भस्म होयहै या कारण देहके निमित्त प्राणीनते विरोध करिवो अपनो श्रेयस्कर नहीं होयहै किंतु जीवनके द्रोहनतें याकूं नरक होइहै ॥ १० ॥ जो अन्न देकर यादेहकूं पालन करैहै वह पुरुष कहैहै कि यह मेरोही है और माता पिता कहै है कि हमारो है नाना कहै कि मेरो है मोल लेनवारो कहै कि हमारो है बलवान दास व नौकर कहैं कि हमाराही है अग्नि कहै कि मेरो है कुत्ता कहै कि मेरोहीहै ॥११ ॥ या प्रकार देह मायाते होइके मायाहीमें लीन हो जायहै पांच तथा सातनको जामें विवादहै ऐसे देहकूं पायके एकअज्ञानीके विना ऐसा विवेकी पुरुष कौन है जो जीवनको बधकरै ॥ १२ ॥ द्रव्यके

मदसे अंधे पुरुष ताकूं दरिद्रही श्रेष्ठ अंजनहै दरिद्री पुरुष समस्त प्राणिनकूं सुख दुःखमें अपने समान देखे है क्योंकि अपने मनमें विचार करि लेइहै कि या प्रकार मोकूं दुःख बाधा करैहै ऐसेही और पुरुषनकूं भी बाधा करत होइगो, जैसे आपकूं सुख होइहै तैसे औरनकूं भी सुख होइहै ॥ १३ ॥ जा पुरुषके पांवमें कांटो लगैहै वह पुरुष दूसरेके कांटे लगिवेकी इच्छा नहीं करैहै अपने मनमें विचार करैहै कि जैसे मोकूं कांटे लागवेको दुःख भयो ऐसेही सबको होइहै और जाके कांटो लागो नहीं वह कांटेके दुःखकूं कहा जानेगो कि कांटेको कहा दुःख होइहै ॥ १४ ॥ दरिद्री पुरुषको अहंकार मद संपूर्ण गर्व नष्टहोइजायहै, और जो कष्ट आयके प्राप्त होइहै तो वह वाकूं तपस्या समान होइजायहै, तपमें व्रत होइहै अन्नके विना भूखो प्यासो रहैहै ऐसे दरिद्रीकूं अन्न न मिलै तौ वही व्रत होइ जायहै ॥ १५ ॥ अन्नकी आकांक्षा करनवारे दरिद्रीके नित्य कड़ाके होयहै याते देह सूखिजाय है इंद्रियां शिथिल होजायहैं याते हिंसा नहीं करैहै, जो आपुही मरैहै वह कौनकूं मारेगो ॥ १६ ॥ दरिद्री पुरुष सबकूं समान देखेहै, और दरिद्रीकूं साधु महात्मा भी मिलि जाइहै, जा समय दरिद्री क्षुधित होइके अन्न अन्न पुकारैहै तब साधु महात्मा कहै हैं अरे कृष्ण २ पुकारो करि याप्रकार वे महात्मा याकी अन्नकी तृष्णा दूरि करिदेइहैं, तब शीघ्र संताप छूटि जाइ हैं ॥ १७ ॥ समान चित्त साधु महात्मानको श्रीकृष्णचंद्रके चरणारविंदमें चित्त लगा रह्यो है, उन्हें धनके मदसे उन्मत्त दुष्ट पुरुषनते प्रयोजन कहाहै ॥ १८ ॥

यथा कण्टकविद्धाङ्गो जन्तोर्नेच्छति तां व्यथाम् ॥ जीवसाम्यं गतो लिङ्गैर्न तथाऽविद्धकण्टकः ॥ १४ ॥ दरिद्रो निरहंस्तम्भो मुक्तः सर्वमदैरिह ॥ कृच्छ्रं यदृच्छयाऽऽप्नोति तद्धि तस्य परं तपः ॥ १५ ॥ नित्य क्षुत्क्षामदेहस्य दरिद्रस्यान्नकाङ्क्षिणः ॥ इन्द्रियाण्यनुशुष्यन्ति हिंसाऽपि विनिवर्तते ॥ १६ ॥ दरिद्रस्यैव युज्यन्ते साधवः समदर्शिनः ॥ सद्भिः क्षिणोति तं वर्षं तत आराद्विशुध्यति ॥ १७ ॥ साधूनां समचित्तानां मुकुन्दचरणैषिणाम् ॥ उपेक्ष्यैः किं धनस्तम्भैरसद्भिरसदाश्रये ॥ १८ ॥

इसकारणमैं इन दोनोंको जो वारुणी मदिरासे मतवाले, धनके मदसे अंधे स्त्रियेके लम्पट और अजितेन्द्री हैं इनके अज्ञानसे उत्पन्न हुए मदको मैं दूर करूंगा ॥ १९ ॥ ये कुवेरके पुत्र होय के अज्ञानमें बूडिगये हैं यह नहीं जानैं हैं कि हम नंगेहैं इनकूं कछु खबरि न रही अतिमद होयगयो है ॥ २० ॥ यातें ये दोनों वृक्षयोनि होजाये जो फिर इनकूं मद न होय, और वृक्षयोनिमें भी मेरी कृपासै सुधि बनी रहै ॥ २१ ॥ और वासुदेव भगवानकी समीपताकूं प्राप्त होयकर ता पीछे फिर स्वर्गमें जाय देवता होय जायंगे और भगवान्‌में इनकी भक्ति होयगी ॥ २२ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षिततै कहैं हैं कि हे राजन् ! देवतामें ऋषि नारदजी याप्रकार कहिके बद्रिकाश्रवकूं आत भए, अब नलकूबर मणिग्रीव दोनों यमला-

तदहं मत्तयोर्माध्व्या वारुण्या श्रीमदान्धयोः ॥ तमोमदं हरिष्यामि स्त्रैणयोरजितात्मनोः ॥ १९ ॥ यदिमौ लोकपालस्य पुत्रौ भूत्वा तमःप्लुतौ ॥ न विवाससमात्मानं विजानीतः सुदुर्मदौ ॥ २० ॥ अतोऽर्हतः स्थावरतां स्यातां नैवं यथा पुनः ॥ स्मृतिः स्यान्मत्प्रसादेन तत्रापि मदनुग्रहात् ॥ २१ ॥ वासुदेवस्य सान्निध्यं लब्ध्वा दिव्यशरच्छते ॥ वृत्ते स्वर्लोकतां भूयो लब्धभक्ती भविष्यतः ॥ २२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमुक्त्वा स देवर्षिर्गतो नारायणाश्रमम् ॥ नलकूबरमणिग्रीवावासतुर्यमलार्जुनौ ॥ २३ ॥ ऋषेर्भागवतमुख्यस्य सत्यं कर्तुं वचो हरिः ॥ जगाम शनकैस्तत्र यत्रास्तां यमलार्जुनौ ॥ २४ ॥ देवर्षिर्मे प्रियतमो यदिमौ धनदात्मजौ ॥ तत्तथा साधयिष्यामि यद्गीतं तन्महात्मना ॥ २५ ॥ इत्यन्तरेणार्जुनयोः कृष्णस्तु यमयोर्ययौ ॥ आत्मनिर्वेशमात्रेण तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥ २६ ॥

अर्जुन होतभए ॥ २३ ॥ अपने भक्तनमें मुख्य श्रीनारदजीकौ वचन सत्य करिवेके निमित्त श्रीकृष्णचंद्र महाराज यमलार्जुनवृक्षों के निकट हौले हौले जात भए ॥ २४ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने विचार कियो कि श्रीनारदजी मेरे प्यारे भक्तहैं, और ये कुवेरके दोनों पुत्र हैं, सो नारद महात्माने जो कुछ इनके विषयमें कह्योहै सो सत्यकरूंगो ॥ २५ ॥ ऐसे विचारकरिके यमलार्जुन वृक्षनके बीचमें होयके निकसे, और वृक्षके बीचमें आयके उलूखलकौं तिरछो करदियो ॥ २६ ॥

रस्सीते कमरिमें बंधे उलूखलकूं बालक श्रीकृष्णचंद्रने झटोका मारिके खींच्यौं, तासमय जडते उखरिके वृक्ष पृथ्वीपैं गिरत भये श्रीकृष्णके पराक्रमते गुद्द डार पतौवा सब हलत भये बडो शब्द भयो ॥ २७ ॥ जैसे संघर्षण भयेतैं वृक्षनमेंतें अग्नि निकसे तैसे अति शोभायमान और दिशानकूं प्रकाश करत दोनों पुरुष निकसत भये, तब भगवान त्रिलोकीके नाथ श्रीकृष्णचंद्रकूं शिरते प्रणाम करत भये, और मदको त्याग हाथ जोरिके यह बोले ॥ २८ ॥ हे कृष्ण ! हेकृष्ण ! हेमहायोगिन् ! तुम बालक नहींहौ, किंतु परम कारणरूप हौ, और स्थूल सूक्ष्म रूप जो तुमहो तिनकूं ब्रह्मवेत्ता जानैहैं ॥ २९ ॥ समस्त प्राणीनके देह प्राण अहंकार इंद्रियनके तुमही एक ईश्वर हौ और संपूर्ण में व्यापक भगवान कालरूप तुम हो ॥ ३० ॥ तुमही महान्रूप हो रजोगुण सत्वगुण तमोगुण और सूक्ष्म मायारूप समस्त तुमहीहो देहनके विकारके जाननवारे साक्षी पुरुष तुमही हो ॥ ३१ ॥ तुम प्रकृतिके गुण बुद्धि अहंकार इंद्रियादिकसे ग्रहण करिवेमें नहीं आवोहो, उत्पत्तिते पहिले स्वयंप्रकाशताकरिके वर्तमान हो कारणगुण आच्छादित जीव तुमकौ कैसे जानिवेकूं समर्थ होय ॥ ३२ ॥ अपने वासुदेव सर्वके कर्ता और स्वयं प्रकाशित हुए गुणोंसे जिनकी महिमा ढकरहीहै आप ज्ञानस्वरूप परब्रह्म हो तुमकूं नमस्कार है ॥ ३३ ॥

बालेन निष्कर्षयताऽन्वगुलूखलं तद्दामोदरेण तरसोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ ॥ निष्पेततुः परमविक्रमितातिवेपस्कन्धप्रवालविटपौ कृतचण्डशब्दौ ॥ २७ ॥ तत्र श्रिया परमया ककुभः स्फुरन्तौ सिद्धावुपेत्य कुजयोरिव जातवेदाः ॥ कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽखिललोकनाथं बद्धाञ्जली विरजसाविदमूचतुः स्म ॥ २८ ॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिंस्त्वमाद्यः पुरुषः परः ॥ व्यक्ताव्यक्तमिदं विश्वं रूपं ते ब्राह्मणा विदुः ॥ २९ ॥ त्वमेकः सर्वभूतानां देहस्वात्मेन्द्रियेश्वरः ॥ त्वमेव कालो भगवान्विष्णुरव्यय ईश्वरः ॥ ३० ॥ त्वं महान्प्रकृतिः साक्षाद्रजःसत्त्वतमोमयी ॥ त्वमेव पुरुषोऽध्यक्षः सर्वक्षेत्रविकारवित् ॥ ३१ ॥ गृह्यमाणैस्त्वमग्राह्यो विकारैः प्राकृतैर्गुणैः ॥ को न्विहार्हति विज्ञातुं प्राक्सिद्धं गुणसंवृतः ॥ ३२ ॥ तस्मै तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ॥ आत्मद्योतगुणैश्छन्नमहिम्ने ब्रह्मणे नमः ॥ ३३ ॥

हे भगवन्! आप संपूर्णके शरीरमें रहकरभी शरीरके संबंधसे रहितहो यद्यपि आपका शरीर नहीं परन्तु जब आप अवतार धारण करतेहो तब और जीवोंसे न होनेवाले जिनकी तुल्य वा अधिक कोई न करसकै ऐसे चरित्रोंसे आपके अवतार जाने जातेहैं ॥ ३४ ॥ समस्त लोकनके ऐश्वर्य्य और विभव अर्थात् मोक्षके निमित्त निरंतर परिपूर्णरूप होयके अंशोंसहित प्रगट भएहो ॥ ३५ ॥ हे परमकल्याणरूप, हे मंगलरूप! तुमकूं नमस्कार है, शांतिरूपकूं नमस्कार है, यादवनके रक्षा करनवारे तुमकूं नमस्कार है ॥ ३६ ॥ हे परिपूर्ण भगवन्! हम तुम्हारे अनुचर दास हैं हमने भगवान् नारद महाराजकी कृपाकरिके आपको दर्शन पायो; और आपकूं जान्यों अब आज्ञा दीजे ॥ ३७ ॥ हमारी वाणी तुम्हारे गुणानुवादकूं

यस्यावतारा ज्ञायन्ते शरीरेष्वशर[illegible]॥ तैस्तैरतुल्यातिशयैर्वीर्यैर्देहिष्वसंगतैः ॥ ३४ ॥ स भवान्सर्वलोकस्य भवाय विभवाय च ॥ अवतीर्णोंऽशभागेन साम्प्रतं पतिराशिषाम् ॥ ३५ ॥ नमः परमकल्याण नमः परममङ्गल ॥ वासुदेवाय शान्ताय यदूनां पतये नमः ॥ ३६ ॥ अनुजानीहि नौ भूमंस्तवानुचरकिंकरौ ॥ दर्शनं नौ भगवत ऋषेरासीदनुग्रहात् ॥ ३७ ॥ वाणी गुणानुकथने श्रवणौ कथायां हस्तौ च कर्मसु मनस्तव पादयोर्नः ॥ स्मृत्यां शिरस्तव निवासजगत्प्रणामे दृष्टिः सतां दर्शनेऽस्तु भवत्तनूनाम् ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं संकीर्तितस्ताभ्यां भगवान्गोकुलेश्वरः ॥ दाम्ना चोलूखले बद्धः प्रहसन्नाह गुह्यकौ ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ज्ञातं मम पुरैवैतदृषिणा करुणात्मना ॥ यच्छ्रीमदान्धयोर्वाग्भिर्विभ्रंशोऽनुग्रहः कृतः ॥ ४० ॥

कह्यो करै और कान आपकी कथानकूं श्रवण करैं, और हाथ आपके सेवा पूजनमें लगे रहैं, हमारो मन आपके चरणारविंदमें लग्योरहै, हमारो मस्तक आपके निवास रूप जगतकूं प्रणाम करै, हमारी दृष्टि तुम्हारी साधुमूर्तिनको दर्शन करचो करै, हे महाराज! आपते यह वर मांगें हैं ॥ ३८ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षिततै कहैहैं कि हे राजन्! या प्रकार नलकूबर मणिग्रीवने गोकुलनाथ भगवान्की स्तुति करी, तब रस्सीते उलूखल जिनकी कमरिमें बंध्यो ऐसे श्रीकृष्णचंद्र मुसिकायके यह बोले ॥ ३९ ॥ करुणामय श्रीनारदजीने लक्ष्मीके मदसे अंध तुमको देखिके शाप देके

लक्ष्मीते भ्रष्ट करिके तुमपै यह अनुग्रह कियो यह बात हमने पहिलेही जानींहै ॥ ४० ॥ समान चित्तवारे और निरंतर मोमें मन लगाये साधुनके
दर्शनतें या पुरुषको बंधन कटजाय है जैसे सूर्यके दर्शनते नेत्रको अंधकार जायहै ॥ ४१ ॥ हे नलकूबर! मणिग्रीव! तुम मेरे भक्त होकर अपने
स्थानकूं जावो, तुह्मारी मेरे विषै सर्वदा भावना रहैगी, और जन्ममरण रूप संसार मुझमें प्रेम करनेसे छूटगया ॥ ४२ ॥ अब श्रीशुकदेवजी राजा
परीक्षितते कहें हैं कि हे राजन्   प्रकार भगवानके वाक्य श्रवण करि नलकूबर मणिग्रीव वारंवार परिक्रमा प्रणाम करतभये और उलूखलते बंधे
श्रीकृष्णचंद्र ते आज्ञा मांगिके उत्तरदिशाकूं जातेभये ॥४३॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे पू० नारदशापो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम् ॥दर्शनान्नो भवेद्बन्धः पुंसोऽक्ष्णोः सवितुर्यथा ॥ ४१ ॥ तद्गच्छतं मत्परमौ
नलकूबरसादनम् ॥ संजातो मयि भावो वामीप्सितः परमो भवः ॥ ४२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तौ तौ परिक्रम्य प्रणम्य च पुनः पुनः ॥बद्धोलूखलमामन्त्र्य जग्मतुर्दिशमुत्तराम् ॥४३॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे
नारदशापोद्धारो नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥ श्रीशुक उवाच ॥ गोपा नन्दादयः श्रुत्वा द्रुमयोः पततो रवम् ॥ तत्राजग्मुः कुरुश्रेष्ठ निर्घातभयशङ्किताः ॥१॥ भूम्यां निपतितौ तत्र ददृशुर्यमलार्जुनौ॥ बभ्रमुस्तदविज्ञाय लक्ष्यं पतनकारणम् ॥ २ ॥ उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं च बालकम् ॥ कस्येदं कुत आश्चर्यमुत्पात इति कातराः ॥ ३ ॥

अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं कि ॥ हे कुरुवंशीनमें श्रेष्ठ राजा परीक्षित! नंदरायजीसूं आदि लेकें समस्तगोप जब वृक्ष गिरे तिनको शब्द सुनिके कहन
लगे कि कोई वज्र गिर्यो कहा या भयते जहां वृक्ष गिरे तहां आवत भये ॥१॥ पृथ्वीमें यमलार्जुन वृक्षकूं उखरिके गिरिवेको कारण विद्यमानहैं परन्तु तिनके बिना गोपनकूं भ्रम भयो, आंधी व्यारी बिना ये वृक्ष आपसूं आप कौन कारणतें उखरि परे॥२॥ रस्सीते बंधे बालक श्रीकृष्णचंद्रकूं उलूखल
खेंचते देखा तौभी ब्रजवासीयोंने न जाना और कहन लगे कि यह कौन राक्षसको कर्महै कहांते आश्चर्य्य रूप उत्पात भयो ऐसे कह ब्रजवासी डरपे॥३॥

---

१ यह जिय जान गोपाल बंधाये ॥ टेक ॥ शाप दग्ध दोऊ सुत कुबेरके आय भये तरु जुगल सुहाये ॥ श्याम रुदन लोचन जल डारत ऊखलदाम सहित चलिआवे ॥ विटप भंज जमलार्जुन तारे करि अस्तुति गोविंद रिझावे ॥ तुमविन कौन दीन खल तारै गुन अरु सगुन रूप दिखराये ॥ सूरदास श्याम गुन गावत हरषि संत निजपुरी सिधाये ॥

ता स्थानपै जो छोटे २ बालक खेलते हैं ते बोले कि यह श्रीकृष्णचंद्र उलूखलकूं खेंचे २ वृक्षनके बीचमें आये तब उलूखल तिरछो होइके अडिगयो तब याने झटका मारिके खेंच्यौ तासूं यह वृक्ष गिरिपरे इनमेंते दो पुरुष निकसे तेऊ हमने देखे ॥ ४ ॥ बालकनकी बात व्रजवासीनने न मानी और कहन लगे तनक सो बालक इतने बडे वृक्षनकौं कैसें उखारेगौ, कोई व्रजवासीनकूं या प्रकार संदेह भयो और कोई कहत भये कि या बालकने जन्मतेही ऐसे औठपाय किये हैं बालकसेने पूतना मारी, और तृणावर्त्त मार्‍यो, गाडा पटकि दियो, ये वृक्षहू पटकि दिये होइंगे ॥ ५ ॥ कमरमें बंधे उलूखलको खेंचते अपने पुत्र श्रीकृष्णकूं देखकै नंदरायजी हंसिके यह बोले, तेरे उलूखल कौंनने बांध्यौ है, तब श्रीकृष्णने कही मैयाने बांध्यो है

बाला ऊचुरनेनेति तिर्यग्गतमुलूखलम् ॥ विकर्षता मध्यगेन पुरुषावप्यचक्ष्महि ॥ ४ ॥ न ते तदुक्तं जगृहुर्न घटेतेति
तस्य तत् ॥ बालस्योत्पाटनं तर्वोः केचित्संदिग्धचेतसः ॥ ५ ॥ उलूखलं विकर्षन्तं दाम्ना बद्धं स्वमात्मजम् ॥ विलोक्य
नन्दः प्रहसद्वदनो विमुमोच ह ॥६॥ गोपीभिः स्तोभितोऽनृत्यद्भगवान्बालवत्क्वचित् ॥ उद्गायति क्वचिन्मुग्धस्तद्वशो
दारुयन्त्रवत् ॥ ७ ॥ बिभर्ति क्वचिदाज्ञप्तः पीठकोन्मानपादुकम् ॥ बाहुक्षेपं च कुरुते स्वानां च प्रीतिमावहन् ॥ ८ ॥
दर्शयंस्तद्विदां लोक आत्मनो भृत्यवश्यताम् ॥ व्रजस्योवाह वै हर्षं भगवान्बालचेष्टितैः ॥ ९ ॥

चल तेरी मैयाकूं कैसो डाटोहों यों कहिके उलूखल खोल[1] दियो ॥ ६ ॥ गोपी कहैं हैं कि हम तारी बजामें तुम नांचौ[2] तब श्रीकृष्णचंद्र भगवान् कबहू बालककीसी नाईं नाचन लगेहैं, कबहू भोरे बनिकर गावें हैं, जैसे काष्ठकी पुतरी बाजीगरके वश जितमें कर फेरे तितमें मुरिजाय ऐसे गोपीनके प्रेमके वशहैं ॥ ७ ॥ कबहू यशोदाजी कहे हैं लाला पीढा लेआऊ, बाबाकी खडाऊ लेआऊ, तब पीढा लामें हैं, खडाऊ लामें हैं कबहू वस्तु न उठेहै तब हाथ नचावे हैं, या प्रकार अपने व्रजवासीनकूं लीला करिके आनंद देतहैं ॥ ८ ॥ संसारमें पंडित पुरुषौंकूं यह दिखानेकूं कि मैं इस प्रकार भक्तौंके वशमें हूं जैसे नचावैं तैसेही नांचूंहूं, या प्रकार बाललीला करिकै व्रजवासीनकूं आनंद दियो सबनके मनमें आनंद होत भयो ॥९॥

---

[1] दोहा–व्रजवासीप्रभुभक्तहित,आपबंधायोदाम, ताहीदिनतेंप्रकटभयो,दामोदरअसनाम ॥ [2] सवैया–शंकर से सुर जाहि जपैं चतुरानन ध्यानन धर्म बढावैं । नेक हियेमें जो आवत ही रसखान महा जड मूढ कहावैं ॥ जापर सुंदर देव वधू नहिं वारत प्राण अबार लगावैं । ताहि अहीर की छोहरियां छछियाभर छाछ पै नाच नचावैं ॥

(एक समय फल लो ऐसे मालनको शब्द श्रवण करकै सम्पूर्ण फलौंके दाता श्रीकृष्णभगवान् धान्य लेकर फल लैनेको चले ॥ १ ॥ मालनने उनके धान्य डाल देनेके उपरान्त श्रीकृष्णके दौनों हाथ फलौंसे भर दिये तव भगवानने उसकी डलिया रत्नोंसे परिपूर्ण करदी ॥ २ ॥) यमलार्जुन वृक्षनकूं उखारिके श्रीकृष्ण यमुनातीरपै बालकनके संग बलदेवजीसहित खेलैं हैं तिनकूं रोहिणीजी बुलावतीभयी ॥ १० ॥ रोहीणीजीके बुलाये ते पुत्र कृष्ण और बलदेव खेलमें लगि रहे हैं तासों न आये तव पुत्रमें प्रेम करनेहारी यशोदाजीको बुलानेको रोहिणीने भेजा ॥ ११ ॥ बालकनके संग भैया बलदेवसहित खेलत खेलत दिन बहुत आय गयौ ता समय पुत्रके स्नेहतैं स्तननमें दूध चुवन लागो तव यशोदाजी श्रीकृष्णचंद्रकूं बुलावन लगी ॥ १२ ॥ हे कृष्ण ! हे कमलदललोचन! तू आउ स्तन पीले क्षुधाके मारे पेट तेरो लगि रह्यो है हे पुत्र ! खेलत खेलत हारिगयो होयगो अब तो खेलिवो रहनदे ॥१३॥ या प्रकार यशोदाजीके बुलाये श्रीकृष्ण न आये तव कहे हैं की श्रीकृष्ण न आवे तो याकूं जानदे हेराम ! हेपुत्र ! हे कुलकूं आनंद देनवारे ! तू शीघ्र आऊ और छोटे भैयानकूंभी हाथ पकरिके लैआऊ प्रातःकालही कलेवा करौ है अब आयके भोजन करिलेऊ ॥१४॥ व्रजराज भोजन करवेकूं बैठे हैं तेरे आयवेकौ पैंडो देखैं है तोकों बूढे बाबाकी दया नहीं आवै है, तू आऊ हमको प्रसन्न करि या प्रकार कहे ते श्रीकृष्ण आवन लगे तब बालक बोले जैसे तैसें करिके तौ खेल जम्यो है, अब श्रीकृष्ण जायहैं, याकौ कबहू न खिलावेंगे, ऐसे श्रवण करिके फिरि खेलन लगे तब यशोदाजी बोली बालकहो तुम्हारे घरवार है कि नाहीं ? जावो अपने घरकूं ॥ १५ ॥

(गृह्णीहि भोः फलानीति श्रुत्वा सत्वरमच्युतः ॥ फलार्थी धान्यमादाय ययौ सर्वफलप्रदः ॥ १ ॥ फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यकरद्वयम् ॥ फलैरपूरयद्रत्नैः फलभाण्डमपूरि च ॥ २ ॥) सरित्तीरगतं कृष्णं भग्नार्जुनमथाह्वयत् ॥ रामं च रोहिणी देवी क्रीडन्तं बालकैर्भृशम् ॥ १० ॥ नोपेयातां यदाहूतौ क्रीडासङ्गेन पुत्रकौ ॥ यशोदां प्रेषयामास रोहिणी पुत्रवत्सलाम् ॥ ११ ॥ क्रीडन्तं सा सुतं बालैरतिवेलं सहाग्रजम् ॥ यशोदाऽजोहवीत्कृष्णं पुत्रस्नेहस्नुतस्तनी ॥ १२ ॥ कृष्ण कृष्णारविन्दाक्ष तात एहि स्तनं पिब॥अलं विहारैः क्षुत्क्षान्तः क्रीडाश्रान्तोऽसि पुत्रक॥ १३ ॥हे राम गच्छ ताताशु सानुजः कुलनन्दन ॥ प्रातरेव कृताहारस्तद्भवान् भोक्तुमर्हति ॥ १४ ॥ प्रतीक्षते त्वां दाशार्ह भोक्ष्यमाणो व्रजाधिपः ॥ एह्यावयोः प्रियं धेहि स्वगृहान्यात बालकाः ॥ १५ ॥

हे पुत्र ! तुह्मारा अङ्ग धूलिसे लिप्त होरहा है इससे तुम स्नान करो और आज तुम्हारा जन्मका नक्षत्र है इससे स्नान करिके ब्राह्मणनको गऊनके दान करो ॥ १६ ॥ बुलायेते न आये तब कहे है तेरी बराबरके बालकनकूं उनकी माताओंने स्नान करायो है, सुंदर कपरा गहने पहिरायेहैं तू देखि तौ सही इन के आगे बुरोही लगतुहै, याते तूभी स्नान करिके भोग लगायके सुन्दर गहने पहिरके अच्छे सुखपूर्वक खौरि लगायके खेलौकरि॥१७॥ हे राजन् परीक्षित ! स्नेहते बुद्धि जिनकी बढी ऐसी यशोदाजी ब्रह्मादिकनके मुकुटमणि श्रीकृष्णकूं अपनो पुत्र मानिके बलदेवसहित श्रीकृष्णचंद्रको हाथ पकरिके घरमें लैआई, उवटन करि स्नान करायो गौनको दान करायो ब्राह्मणभोजन करायो गहने वस्त्र पहिराय या प्रकार उत्सव करो ॥ १८ ॥ नंदजीते

धूलिधूसरिताङ्गस्त्वं पुत्र मज्जनमावह ॥ जन्मर्क्षं तेऽद्य भवति विप्रेभ्यो देहि गाः शुचिः ॥ १६ ॥ पश्य पश्य वयस्यांस्ते मातृमृष्टान्स्वलंकृतान् ॥ त्वं च स्नातः कृताहारो विहरस्व स्वलंकृतः ॥ १७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं यशोदा तमशेषशेखरं मत्वा सुतं स्नेहनिबद्धधीर्नृप ॥ हस्ते गृहीत्वा सहराममच्युतं नीत्वा स्ववाटं कृतवत्यथोदयम् ॥ १८ ॥ गोपवृद्धा महोत्पाताननुभूय बृहद्वने॥ नन्दादयः समागम्य व्रजकार्यममन्त्रयन्॥१९॥तत्रोपनन्दनामाह गोपो ज्ञानवयोधिकः ॥ देशकालार्थतत्त्वज्ञः प्रियकृद् रामकृष्णयोः ॥ २० ॥ उत्थातव्यमितोऽस्माभिर्गोकुलस्य हितैषिभिः ॥ आयन्त्यत्र महोत्पाता बालानां नाशहेतवः ॥ २१ ॥ मुक्तः कथंचित् राक्षस्या बालघ्न्या बालको ह्यसौ ॥ हरेरनुग्रहान्नूनमनश्चोपरि नापतत् ॥ २२ ॥

आदि लैके वृद्ध व्रजवासीनने जब महावनमें बड़े बड़े उत्पात देखे तब संपूर्ण जुरि मिलिके गोकुलके हितके विचार करन लगे ॥ १९ ॥ ज्ञान और अवस्थाकरिके अधिक देशकालकी वातके जाननवारो बलदेव और कृष्णचंद्रसे अति स्नेह करनेहारो उपनंद नाम गोप तहां बोल्यो ॥ २० ॥ गोकुलके हितकी इच्छाकरकै उपनंद कहने लगेकि हम यहांते उठिके और जगह बास करेंगे; यहां बालकनके मरिवेके कारण बड़े बड़े उत्पात आवेहैं ॥ २१ ॥ बालकनकी मारनवारी पूतना राक्षसीपैतै जैसें तैसें यह बालक बच्योहै, और हरिकी अनुग्रहते एक वखत गाडा याके ऊपर गिर्‍यो ताते

बचि गयो ॥ २२ ॥ और एक समय तृणावर्त बवूरेको स्वरूप धरिके या बालककूं आकाशमें उडायके लैगयौ तब शिलाके ऊपर गिऱ्यौ वहांहू देवताननें याकी रक्षा करी ॥२३॥ यह बालक तथा और कोई बालक वृक्षनके बीचमें आयके मऱ्यो नहीं वहां भी अच्युत भगवानने रक्षा करी ॥२४॥ यावत् पर्यंत उत्पातको करनवारो अरिष्ट व्रजमें न आवै तावत् पर्यंत बालकनकूं लैके और जगह जायकरि बसैंगे ॥ २५ ॥ पशुनको हितकारि और नये बाग बगीचा वारो बृंदावन नाम वन है, गोप गोपी गऊनके रहिवे लायक ठिकानो है, पवित्र जहां गोवर्द्धन पर्वत है सुंदर घास जल और लता

चक्रवातेन नीतोऽयं दैत्येन विपदं वियत् ॥ शिलायां पतितस्तत्र परित्रातः सुरेश्वरैः ॥ २३ ॥ यन्न म्रियेत द्रुमयोरन्तरं प्राप्य बालकः ॥ असावन्यतमो वापि तदप्यच्युतरक्षणम् ॥ २४ ॥ यावदौत्पातिकोऽरिष्टो व्रजं नाभिभवेदितः ॥ तावद्बालानुपादाय यास्यामोऽन्यत्र सानुगाः ॥ २५ ॥ नवं वृन्दावनं नाम पशव्यं नवकाननम् ॥ गोपगोपीगवां सेव्यं पुण्याद्रितृणवीरुधम् ॥ २६ ॥ तत्तत्राद्यैव यास्यामः शकटान्युङ्क्त मा चिरम् ॥ गोधनान्यग्रतो यान्तु भवतां यदि रोचते ॥ २७ ॥ तच्छ्रुत्वैकधियो गोपाः साधु साध्विति वादिनः ॥ व्रजान्स्वान्स्वान्समायुज्य ययू रूढपरिच्छदाः ॥ २८ ॥ वृद्धान्बालान्स्त्रियो राजन्सर्वोपकरणानि च ॥ अनस्स्वारोप्य गोपाला यत्ता आत्तशरासनाः ॥ २९ ॥ गोधनानि पुरस्कृत्य शृङ्गाण्यापूर्य सर्वतः ॥ तूर्यघोषेण महता ययुः सहपुरोहिताः ॥ ३० ॥ गोप्यो रूढरथा नूत्नं कुचकुङ्कुमकान्तयः ॥ कृष्णलीला जगुः प्रीता निष्ककण्ठ्यः सुवाससः ॥ ३१ ॥

है ॥ २६ ॥ ता बृन्दावनमें अबही चलि बसैं तुमकूं अच्छी लगेतो गाडानकूं जोतो गायनको आगे हांकिलेऊ ढील माति करो ॥ २७ ॥ या प्रकार उपनंद गोपको वचन सुनिके एक बुद्धिवारे गोप भले भले ऐसे बडाईकरिके अपने अपने गाडान्को जोरि चीज वस्तु लादिके जातभये ॥ २८ ॥ हे राजन् परीक्षित! वृद्ध बालक स्त्रीनकूं और सब वस्तूनकूं गाडानमें लादके धनुषकूं हाथमें लेके समस्त व्रजवासी सावधान होयके गऊनकूं आगे करिके बडी बडी तुरही बजायकै पुरोहितनकूं संग लैके संपूर्णगोकुलतें वृन्दावनकूं जातभये ॥ २९ ॥ ३० ॥ गोपी नवीन केशरि कुचनमें ल-

गायके धुकधुकीनकूं कंठमें पहिरके सुन्दर वस्त्रनकूं पहिरके रथनमें बैठिके कृष्णकी लीला गावत भई ॥ ३१ ॥ ताही प्रकार रोहिणी यशोदा एक गाडामें बैठिके श्रीकृष्णचंद्र और बलदेवजीकूं साथ लैके तिनके लीला चरित्र श्रवण करत शोभाकूं प्राप्त होत भई ॥ ३२ ॥ समस्त ऋषिनमें सुखको देनवारे वृंदावनमें आयके गाडानकूं बराबर ठाढो करिके आधे चंद्रमाकी तुल्य गौनके रहिवेकूं खिरक बनावत भये ॥ ३३ ॥ वृन्दावनकूं देखिके गोवर्द्धन पर्वतकूं देखके यमुनाजीको सुन्दर तट देखिके हे राजन् परीक्षित ! कृष्णबलरामकूं बडो आनंद होत भयो ॥ ३४ ॥ याप्रकार बाललीलानसूं और तोतली बातनसूं व्रजवासीनकूं आनन्द देई हैं आप जासमय बछरा चरावन लायक भये तब बछरानके पालक भये ॥ ३५ ॥ व्रज भूमिके निकटही गोपालनके लडकानकूं संग लैके श्रीकृष्ण बलदेव दोनों भैया बछरानकूं चरावतभये और तरह तरहकी क्रीडानकूं करत भये ॥ ३६ ॥ काहू समय एक वांसुरकूं बजामें हैं और कभऊं आमरेनकूं फेंके हैं कभऊं पांवनमें घुंघुरू बांधिके नाचे हैं और कभऊं व्रजवासिनके बालकनकूं कंबल उढायके कृष्ण बलदेव दोनों भैया बैल बनामें हैं और उनके संग आपहू बैल बनिके शब्द करे हैं कबऊं परस्पर युद्ध करे हैं कबऊं पक्षीनकी बोलीकी नकल करे हैं या प्रकार बालक खेले हैं ता प्रकार जायके बनमें खेले हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ एक समय यमुनाजीके किनारेपै श्रीकृष्ण बलदेवजी अपनी बराबरके मित्रनकूं संग लैके बछरानकूं चरावतहै तहां इनके मारनकी इच्छा करके दैत्य आवत भयो ॥ ३९ ॥

तथा यशोदारोहिण्यावेकं शकटमास्थिते ॥ रेजतुः कृष्णरामाभ्यां तत्कथाश्रवणोत्सुके ॥ ३२ ॥ वृन्दावनं संप्रविश्य सर्वकालसुखावहम् ॥ तत्र चक्रुर्व्रजावासं शकटैरर्धचन्द्रवत् ॥ ३३ ॥ वृन्दावनं गोवर्धनं यमुनापुलिनानि च ॥ वीक्ष्यासीदुत्तमा प्रीती राममाधवयोर्नृप ॥ ३४ ॥ एवं व्रजौकसां प्रीतिं यच्छन्तौ बालचेष्टितैः ॥ कलवाक्यैः स्वकालेन वत्सपालौ बभूवतुः ॥ ३५ ॥ अतिदूरे व्रजभुवः सह गोपालदारकैः ॥ चारयामासतुर्वत्सान्नानाक्रीडापरिच्छदौ ॥ ३६ ॥ क्वचिद्वादयतो वेणुं क्षेपणैः क्षिपतः क्वचित् ॥ क्वचित्पादैः किङ्किणीभिः क्वचित्कृत्रिमगोवृषैः ॥ ३७ ॥ वृषायमाणौ नर्दन्तौ युयुधाते परस्परम् ॥ अनुकृत्य रुतैर्जन्तूंश्चेरतुः प्राकृतौ यथा ॥ ३८ ॥ कदाचिद्यमुनातीरे वत्सांश्चारयतोः स्वकैः ॥ वयस्यैः कृष्णबलयोर्जिघांसुर्दैत्य आगमत् ॥ ३९ ॥

80

वछराको रूप धरिके वछरानके समूहमें आयके मिल्यो तासमय श्रीकृष्ण बलदेवजीकों दिखायके होले होले वाके पास जातभए ॥ ४० ॥ जायके श्रीकृष्णचंद्रने पुच्छसहित वा दैत्यके पिछिले पांव पकरिके खूब घुमायके कैथके पेडके ऊपर फैंक दियो घुमाईवे में प्राण निकसि गये, बडो देहवारो वत्सासुर दैत्य कैथके वृक्षनको संग लैकै पृथ्वीमें गिरत भयो ॥ ४१ ॥ ताको गिर्‍यो देखिके सम्पूर्ण बालक आश्चर्य मानिके भलीकरी भलीकरी ऐसे बडाई करत भये, देवता संतुष्ट होयके पुष्प बरषावत भये ॥ ४२ ॥ समस्त लोकनके पालन करनवारे श्रीकृष्णचंद्र और बलदेवजी महाराज

तं वत्सरूपिणं वीक्ष्य वत्सयूथगतं हरिः ॥ दर्शयन्बलदेवाय शनैर्मुग्ध इवासदत् ॥ ४० ॥ गृहीत्वाऽपरपादाभ्यां सहलाङ्गूलमच्युतः ॥ भ्रामयित्वा कपित्थाग्रे प्राहिणोद्गतजीवितम् ॥ स कपित्थैर्महाकायः पात्यमानैः पपात ह ॥ ४१ ॥ तं वीक्ष्य विस्मिता बालाः शशंसुः साधु साध्विति ॥ देवाश्च परिसंतुष्टा बभूवुः पुष्पवर्षिणः ॥ ४२ ॥ तौ वत्सपालकौ भूत्वा सर्वलोकैकपालकौ ॥ सप्रातराशौ गोवत्सांश्चारयन्तौ विचेरतुः ॥ ४३ ॥ स्वं स्वं वत्सकुलं सर्वं पाययिष्यन्त एकदा ॥ गत्वा जलाशयाभ्याशं पाययित्वा पपुर्जलम् ॥ ४४ ॥ ते तत्र ददृशुर्बाला महासत्त्वमवस्थितम् ॥ तत्रसुर्वज्रनिर्भिन्नं गिरेः शृङ्गमिव च्युतम् ॥ ४५ ॥ स वै बको नाम महानसुरो बकरूपधृक् ॥ आगत्य सहसा कृष्णं तीक्ष्णतुण्डोऽग्रसद्बली ॥ ४६ ॥

वछराके ग्वाल होयके प्रातःकालको कलेवा लेके वनमें जायके बछरानकूं चरावत लीलाबिहार करत भये ॥ ४३ ॥ एक दिन समस्त बालक अपने २ बछरानके समूहनको श्रीयमुनाजीके तटपै जल पिवाइवेके निमित्त गये तहां बछरानको जल प्यायके आप जल पीवत भये ॥ ४४ ॥ ते बालक यमुनाजीके तीरपै वज्रसे टूटे हुए पर्वतकी शिलाके सदृश बडो मुखवारो जनावर देखत भये, वाकूं देखिके बडो त्रास मानत भये ॥ ४५ ॥ बडो बली तीक्ष्ण चोंचवारो बकासुर दैत्य बगुलाको रूप धरिके श्रीकृष्णचंद्रकूं आयके शीघ्रही निगल गयो ॥ ४६ ॥

श्रीकृष्णचंद्रकूं बकासुर निगल गयो तासमय बलदेवजीसूं आदि लैके समस्त बालक प्राणनके विना इंद्रियकी समान अचेत होयगये ॥ ४७ ॥ गउनके पालन करनवारे नंदरायजीके पुत्र जगतके गुरु ब्रह्माके पिता श्रीकृष्णचंद्र अग्निके अंगारकी तुल्य वाके तालुवेंकूं जरावतभये, तासमय बकासुर कृष्णको तुरत उगिलत भयो जिनके अंगमें तनकभी घाउ न आयो तबतो अतिक्रोध करि श्रीकृष्णचंद्रकूं फिर बकासुर मारिवेंकूं आवत भयो ॥ ४८ ॥ साधुन्के पालन करनबारे देवतानकूं आनंद देनवारे श्रीकृष्णचंद्र धावतेहुए कंसके सखा बकासुरकी दोनों हाथनते चोंच पकरिके बालकनके देखत २ ही तृणकी समानताको चीर डारत भये ॥ ४९ ॥ तासमय सुरलोकके देवता बकासुरके वैरी श्रीष्णकृचंद्रके ऊपर नंदनवनके

कृष्णं महाबकग्रस्तं दृष्ट्वा रामादयोऽर्भकाः ॥ बभूवुरिन्द्रियाणीव विना प्राणं विचेतसः ॥ ४७ ॥ तं तालुमूलं प्रदहन्तमग्निवद्गोपालसूनुं पितरं जगद्गुरोः ॥ चच्छर्द सद्योऽतिरुषाक्षतं बकस्तुण्डेन हन्तुं पुनरभ्यपद्यत ॥ ४८ ॥ तमापतन्तं स निगृह्य तुण्डयोर्दोर्भ्यां बकं कंससखं सतां पतिः ॥ पश्यत्सु बालेषु ददार लीलया मुदावहो वीरणवद्दिवौकसाम् ॥ ४९ ॥ तदा बकारिं सुरलोकवासिनः समाकिरंश्चन्दनमल्लिकादिभिः ॥ समीडिरे चानकशङ्खसंस्तवैस्तद्वीक्ष्य गोपालसुता विसिस्मिरे ॥५०॥ मुक्तं बकास्यादुपलभ्य बालका रामादयः प्राणमिवैन्द्रियो गणः ॥ स्थानागतं तं परिरभ्य निर्वृताः प्रणीय वत्सान्व्रजमेत्य तज्जगुः ॥५१ ॥

चंबेलीके पुष्पनकी वर्षा करत भये, और नगारे शंख बजायके स्तुति करत भये, श्रीकृष्णचंद्रके ऊपर पुष्पनकी वर्षा स्तुति देखिके ब्रजवासीनके बालक आश्चर्य मानत भये ॥ ५० ॥ जैसे इंद्रिय प्राण आये ते सुखी होय हैं तैसे बलदेवजीतें आदि लैके समस्त बालक बकासुरके मुखमेंते निकसिके श्रीकृष्णचंद्र अपने पास आये तिनतें छाती लगायके संपूर्ण बालक मिलिके सुखी भये बछरानको इक ठौरो करिके ब्रजमें लेके आये, और आज या श्रीकृष्णकूं बगला निगली गयो यह बात कहत भये ॥ ५१

यह सुन्तेही गोप और गोपी बडे विस्मयको प्राप्त हुए और गोपियें बडे आदर और प्रेमसैं श्रीकृष्णचंद्रको ऐसे देखनै लगीं जैसे कोई मृतक होयकै पुरुष आय जाय और कुटुम्बके लोग उसे देखतेही रहैंहैं तृप्त नहीं होंयहैं ॥ ५२ ॥और संपूर्ण गोप कहन लगे बडो आश्चर्य है यह बडो दुःख है या बालकके बहुत मृत्युके उपाय भये परन्तु जो मारिवेको आये तिनकोही बुरो होयगयो क्यों पहिले उननें औरकूं भय दियोहो ॥ ५३ ॥ घोर रूप असुर राक्षस या कृष्णको कछु विगार न करिसके आप मरिवेके कारण याके पास आमें हैं, जैसे आगिमें पतंग जरि जाय तैसे आपही

श्रुत्वा तद्विस्मिता गोपा गोप्यश्चातिप्रियादृताः ॥ प्रेत्यागतमिवौत्सुक्यादैक्षन्त तृषितेक्षणाः ॥ ५२ ॥ अहो बतास्य बालस्य बहवो मृत्यवोऽभवन् ॥ अप्यासीद्विप्रियं तेषां कृतं पूर्वं यतो भयम् ॥ ५३ ॥ अथाप्यभिभवन्त्येनं नैवैते घोरदर्शनाः ॥ जिघांसयैनमासाद्य नश्यन्त्यग्नौ पतङ्गवत् ॥ ५४ ॥ अहो ब्रह्मविदां वाचो नासत्याः सन्ति कर्हिचित् ॥ गर्गो यदाह भगवानन्वभावि तथैव तत् ॥ ५५ ॥ इति नन्दादयो गोपाः कृष्णरामकथां मुदा ॥ कुर्वन्तो रममाणाश्च नाविन्दन्भववेदनाम् ॥ ५६ ॥ एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥ निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ५७ ॥ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे वत्सबकवधो नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ क्वचिद्वनाशाय मनो दधद्व्रजात्प्रातः समुत्थाय वयस्यवत्सपान् ॥ प्रबोधयन् शृङ्गरवेण चारुणा विनिर्गतो वत्सपुरःसरो हरिः ॥ १ ॥

मरिजाय हैं ॥ ५४ ॥ अहो वेदके पढनवारे ब्राह्मणनकी वाणी कभऊ मिथ्या नहीं होयहै, जो बात गर्गाचार्य कहिगये हैं सो वैसेही देखिपरैं हैं ॥ ५५ ॥ नंदजीसूं आदिलैके समस्त ब्रजवासी श्रीकृष्ण बलदेवजीकी बातनको कहि कहिके आनंदित होयके सुख मानें है जिनको भववेदनाकी खबरि न भई ॥ ५६ ॥ या प्रकार आंखि मिचोनी, पुल बांधने, बंदरानकी नाईं कूदनो, यह कौमारअवस्थाके खेल करि करिके श्रीकृष्णचंद्र बलदेवने कौमार अवस्था व्यतीत करी ॥ ५७ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां द० पू० एकादशोध्यायः ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षितते कहैहैं

कि हे राजन् ! कभऊ एक बनमें जायके प्रथम कलेवा करेंगे यह मनमें विचारके ब्रजतें प्रातःकाल उठिके सुंदर सींगी बजायके बराबरके मित्रनकूं जगाय बछरानकूं आगें करिके श्रीकृष्णचंद्र निकसत भये ॥ १ ॥ तिन श्रीकृष्णचंद्रके संग स्नेही हजारन बालक छीके और वेतकी छडी बाँसुरी लैके अपने अपने बछरानकूं आगे करिके आनंदसे चलै ॥ २ ॥ असंख्यात श्रीकृष्णचंद्रके बछरानमें मिलायके चरावते चरावते बाललीला करिके तहां तहां विहार करत भये ॥ ३ ॥ मणिनके जडाऊ सुवर्णके गहने पहिरे हैं, तौभी वनमें जायके फलनके पत्तानके चौंटलीन गुच्छनके आभूषण बनायके पहिरे हैं खरिया माटीके तिलक लगायके अपनो शृंगार करे हैं ॥ ४ ॥ आपुसमें छांछके छीकेनकूं चुरावै जब जानिलेत हैं तब दूरि बालकनके पास फेकि देत हैं वे बालक फिरि फेकि देत हैं, तब वे छीकेनवारे बालक रोमनीमें आजाय हैं तब श्रीकृष्णचंद्र हसिके फेरि देय हैं ॥ ५ ॥ वृन्दावनकी शोभा देखिवे निमित्त श्रीकृष्णचन्द्र दूरि चलेजाय हैं तब बालक आपुसमें होड बद बदके दौरे है और कहैं हैं कि पहले में छुऊं वह कहै हैं पहले में छुऊं या प्रकार श्रीकृष्णचंद्रकूं छुयके खेलत भये ॥ ६ ॥ कोई बालक बासुरीकूं बजामें हैं, और कोई सींगीनकौ बजामें हैं कोई बालक भौरानकें संग गामें हैं और कोई कोकिलानके संग बोले हैं ॥ ७ ॥ और कोई आकाशमें उडते हुए पक्षिनकी छाया दाबके दौरे हैं कोई बालक हंसनके संग होले होले चले है, कोई बालक बगलानके पास चुपकेसे जाय बैठें है और कोई बालक मोरनके संग

तेनैव साकं पृथुकाः सहस्रशः स्निग्धाः सुशिग्वेत्रविषाणवेणवः ॥ स्वान्स्वान्सहस्रोपरिसंख्ययाऽन्वितान्वत्सान्पुरस्कृत्य विनिर्ययुर्मुदा ॥ २ ॥ कृष्णवत्सैरसंख्यातैर्यूथीकृत्य स्ववत्सकान् ॥ चारयन्तोऽर्भलीलाभिर्विजह्रुस्तत्र तत्र ह ॥ ३ ॥ फलप्रवालस्तबकसुमनःपिच्छधातुभिः ॥ काचगुञ्जामणिस्वर्णभूषिता अप्यभूषयन् ॥ ४ ॥ मुष्णन्तोऽन्योन्यशिक्यादीन्ज्ञातानाराच्च चिक्षिपुः ॥ तत्रत्याश्च पुनर्दूराद्धसन्तश्च पुनर्ददुः ॥ ५ ॥ यदि दूरं गतः कृष्णो वनशोभेक्षणाय तम् ॥ अहं पूर्वमहं पूर्वमिति संस्पृश्य रेमिरे ॥ ६ ॥ केचिद्वेणून्वादयन्तो ध्मान्तः शृङ्गाणि केचन ॥ केचिद्भृङ्गैः प्रगायन्तः कूजन्तः कोकिलैः परे ॥ ७ ॥ विच्छायाभिः प्रधावन्तो गच्छन्तः साधुहंसकैः ॥ बकैरुपविशन्तश्च नृत्यन्तश्च कलापिभिः ॥ ८ ॥

नाचत है ॥ ८ ॥ और बालक बंदरानकी पूछ पकरि पकरिके खैंचे हैं, और पूछ पकरिके वृक्षनपै चढिजाय हैं, और कोई बालक अपने कान चपटे करिके आंखें घुन्नायके बंदरानके सन्मुख घुडके हैं, कोई वृक्षनपे ते कूदे हैं ॥९ ॥ और कोई मेंडुकानके संग फुदकै है जब वे गोतामारै तब आपभी यमुनाजीमें गोता मारे हैं और कोई बालक अपनी परछांहीकी हांसि करै हैं कोई बालक कूआ बावडीमें जो शब्द होय हैं तिनकूं गारी देत हैं ॥ १० ॥ जो ब्रह्मज्ञानीनकूं ब्रह्मस्वरूप करिके जानिवेमें आवे हैं, दासभावके कारणवारे भक्त जिनको पर देवता स्वामी जान्ते हैं और मायामें पड़े हुए पुरुष जिनको मनुष्यका बालक जान्ते हैं माया जिनकूं लगि रही हैं, वे जाकी जैसी भावना ताकौं तैसेही दिखाई देत हैं ऐसे श्रीकृष्णचंद्र भगवानके संग बडे बडे पुण्यनके समूह जिनने करे उन ब्रजवासीनके बालक खेले हैं ॥ ११ ॥ जिनके चरणारविंदकी धूरि बहुत जन्म तपस्या करिके मनकूं

विकर्षन्तः कीशबालानारोहन्तश्च तैर्द्रुमान् ॥ विकुर्वन्तश्च तैः साकं प्लवन्तश्च पलाशिषु ॥ ९ ॥ साकं भेकैर्विलङ्घतः सरित्प्रस्रवसंप्लुताः ॥ विहसन्तः प्रतिच्छायाः शपन्तश्च प्रतिस्वनान् ॥ १० ॥ इत्थं सतां ब्रह्मसुखानुभूत्या दास्यं गतानां परदैवतेन ॥ मायाश्रितानां नरदारकेण साकं विजह्रुः कृतपुण्यपुञ्जाः ॥ ११ ॥ यत्पादपांसुर्बहुजन्मकृच्छ्रतो धृतात्मभिर्योगिभिरप्यगम्यः ॥ स एव यद्दृग्विषयः स्वयं स्थितः किं वर्ण्यते दिष्टमतो ब्रजौकसाम् ॥ १२ ॥ अथाघनामाऽभ्यर्भकान्कृष्णमुखानघासुरः कंसानुशिष्टः स बकीबकानुजः ॥ पतन्महासुरस्तेषां सुखक्रीडनवीक्षणाक्षमः ॥ नित्यं यदन्तर्निजजीवितेप्सुभिः पीतामृतैरप्यमरैः प्रतीक्ष्यते॥ १३ ॥ अयं तु मे सोदरनाशकृत्तयोर्द्वयोर्ममैनं सबलं हनिष्ये॥ १४॥ दृष्ट्वाऽ

रोंकनेहारे योगीश्वरनकूंभी नहीं प्राप्त होय है सो श्रीकृष्णचंद्र आप इनके सन्मुख ठाडे रहै है अहो इन ब्रजवासनके भाग्य कहां वर्णन करै ॥ १२ ॥ बालक वनमैं खेले हैं इतननेमें एक दिन अघासुर दैत्य आवत भयौ, तिन बालकनकूं सुखपूर्वक खेलत देखिके क्रुद्ध मरचो, अमृतपान करने देवताभी अपने जीनेकी इच्छासै सदा जिसके मरणकी प्रतीक्षा करे हैं॥ १३ ॥ पूतना और बकासुरको छोटो भैया कंसको पठायौ अघासुर जब आयो तब कृष्णादि बालकनकूं देखिको मनमें विचार करत भयो की या कृष्णने मेरे भैया और बहिन मारे हैं तिन दोनोंके बदले बालक वछरान सहित और बलदेव सहित आज या कृष्णकूं मारूंगो ॥ १४ ॥

और अपने भैया वहिनिकूं संगही इन बालकनकी तिलांजली देऊंगो तब सब ब्रजवासी नष्ट होइ जांयगे प्राण गये पीछे देहनकी कहां चिंता है प्राणधारी पुरुषनके तौ पुत्रही प्राण हैं ॥ १५ ॥ ऐसो मनमें निश्चय करिके चारकोशको लंबो बडे पर्वतकीसी नाईं मोटो अजगर सर्पको अद्भुत बडो देह धारण करिके गुफाकी तुल्य मुख पसारिकै बछरा बालकनके निगलिवेकेलिये मार्गमें दुष्ट सोवत भयो ॥ १६ ॥ धरतीमें नीचलो ओष्ठ और बादलमें ऊपरलो ओष्ठ फैलाय दीयो है पर्वतकी गुफाकी तुल्य जाके मुखको अंत, पर्वतकी शिखरके समान दाढै, घरके अंधेरोसो मुखमें अंधकार बडे रस्ताकीसीनाईं जीभ, कठोर पवनकी तुल्य श्वास अग्निकी तुल्य जाकी दृष्टि है ॥ १७ ॥ समस्तबालक अघासुरको देखिके वृंदावनकी

एते यदा मत्सुहृदस्तिलापः कृतास्तदा नष्टसमा व्रजौकसः ॥ प्राणे गते वर्ष्मसु काऽनुचिन्ता प्रजासवः प्राणभृतो हि ये ते ॥ १५ ॥ इति व्यवस्याजगरं बृहद्वपुः स योजनायाममहाद्रिपीवरम् ॥ धृत्वाऽद्भुतं व्यात्तगुहाननं तदा पथि व्यशेत ग्रसनाशया खलः ॥ १६ ॥ धराधरोष्ठो जलदोत्तरोष्ठो दर्याननान्तो गिरिशृङ्गदंष्ट्रः ॥ ध्वान्तान्तरास्यो वितताध्वजिह्वः परुषानिलश्वासदवेक्षणोष्णः ॥१७॥ दृष्ट्वा तं तादृशं सर्वे मत्वा वृन्दावनश्रियम् ॥ व्यात्ताजगरतुण्डेन ह्युत्प्रेक्षन्ते स्म लीलया ॥ १८ ॥ अहो मित्राणि गदत सत्त्वकूटं पुरः स्थितम् ॥ अस्मत्संग्रसनव्यात्तव्यालतुण्डायते न वा ॥ १९ ॥ सत्यमर्ककरारक्तमुत्तराहनुवद्घनम् ॥ अधराहनुवद्रोधस्तत्प्रतिच्छाययारुणम् ॥ २० ॥ प्रतिस्पर्धेते सृक्किभ्यां सव्यासव्ये नगोदरे ॥ तुङ्गशृङ्गालयोप्येतास्तद्दंष्ट्राभिश्च पश्यत ॥ २१ ॥

शोभा मानिके फैले हुए अजगरके मुखकी लीलासेही उत्प्रेक्षा करने लगे ॥ १८ ॥ आपुसमें कहत भये अहो मित्र! तुम कहौ आगे यह जानवरसो ठाढौ है कि नहीं हमारे निगलिवेके लिये सर्पकीसी नाईं मुख पसारे है कि नहीं ॥ १९ ॥ सत्य है सूर्यकी किरणनसूं लाल बादर ऐसे लगै हैं मानों सर्पको ऊपरलो ओष्ठ है, और सूर्यकी परछांईते लाल भई धरती ऐसी लगैहै मानों सर्पके नीचेकी ठोडी है ॥ २० ॥ वामें दाहिने पर्वतकी गुफा ऐसी लगै हैं मानौं या सर्पके मुखको अंत है ऊंचे ऊंचे पर्वतकी शिखर हमें ऐसी लगै है मानो सर्पकी डाढ हैं यह तुम देखो ॥ २१ ॥

चौडौ लंबो रस्तो यह हमकूं ऐसो लगै है मानो या सर्पकी जीभ है, और शिखरनके भीतर अंधकार हमको ऐसो लगै है मानो सर्पके मुखके भीतर अंधकार है ॥ २२ ॥ दावानलसे उष्ण तीक्ष्ण तीक्ष्ण पवन ऐसो लगे है मानो सर्पको श्वास है दवमें जीव जरै हैं तिनकी दुर्गंध ऐसी लगैहैं मानों सर्पके मुखके मांसकी दुर्गन्ध है ॥ २३ ॥ सर्पके मुखमें धसेंगे तौ कहा यह हमको निगलि जायगो और जो निगलै तो यह श्रीकृष्ण याहि छिनभरमें बकासुरकीसी नाईं मारि डारैगो या प्रकार कहिके बकासुरके वैरी श्रीकृष्णचंद्रको सुंदर मुख देखिके हंसिके तारी बजायके बालक आगेको जातभये तारी बजायवेको कारण यह है कि जो सर्प होयगो तो सरकि जायगो और जो बृन्दावनकी शोभा होयगी तो खेलेंगे ॥ २४ ॥

आस्तृतायाममार्गोऽयं रसनां प्रतिगर्जति ॥ एषामन्तर्गतं ध्वान्तमेतदप्यन्तराननम्॥२२॥ दावोष्णखरवातोऽयं श्वासवद्भाति पश्यत ॥ तद्दग्धसत्त्वदुर्गन्धोऽप्यन्तरामिषगन्धवत् ॥२३॥ अस्मान्किमत्र ग्रसिता निविष्टानयं तथा चेद्बकवद्विनङ्क्ष्यति ॥ क्षणादनेनेति बकार्युशन्मुखं वीक्ष्योद्धसन्तः करताडनैर्ययुः ॥ २४ ॥ इत्थं मिथोतथ्यमतज्ज्ञभाषितं श्रुत्वा विचिन्त्येत्यमृषा मृषायते ॥ रक्षो विदित्वाऽखिलभूतहृत्स्थितः स्वानां निरोद्धुं भगवान्मनो दधे ॥२५॥ तावत्प्रविष्टास्त्वसुरोदरान्तरं परं न गीर्णाः शिशवः सवत्साः ॥ प्रतीक्षमाणेन बकारिवेशनं हतस्वकान्तस्मरणेन रक्षसा ॥ २६ ॥ तान्वीक्ष्य कृष्णः सकलाभयप्रदो ह्यनन्यनाथान्स्वकरादवच्युतान् ॥ दीनांश्च मृत्योर्जठराग्निघासान्घृणार्दितो दिष्टकृतेन विस्मितः ॥ २७ ॥

वास्तवमें तौ यह सर्पका शरीर धारण किये हुये राक्षसही है और हमारे साथी बालकोंने इसे बृन्दावनकी शोभा कह फिर सर्पके समान वर्णन कीहै सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें विराजमान भगवान् जब तक उनके वचन सुनकर उसमें प्रवेश करनेके निमित्त उनके निषेध करनेका विचार करैं कि ॥ २५ ॥ तब ताईं बछरानकूं लैके बालक सर्पके मुखमें चलेगये, परंतु सर्पनें मरे हुए भैया और बहनकी सुधिकर वे बालक निगले नहीं काहेतेकि मनमें बिचार कऱ्यो बकासुरको मारनवारो मेरो दावादार कृष्णतो अभी आयो नहीं, ॥ २६ ॥ सबके अभयके देनवारे श्रीकृष्णचंद्र अनाथकी समान अपने हाथसे छूटे हुए दीनबालकोंको मृत्यु रूप अघासुरके पेटमें घासकी समान देखकर दयासे पीड़ित हुए और आश्चर्यसे कहने लगे दैवकी क्या

गति है ॥ २७ ॥ अब श्रीकृष्णचंद्र मनमें बिचार करैं हैं कि या दुष्टको जीवन न होय और साधु मेरे मित्रनको नाश न होय ये दोनों बातें कैसें होय यह विचार करिके तिन दोनोंनकूं जानिके संपूर्णके देखनवारे भगवान् अघासुरके मुखमें धसे क्यों कि मित्रताको यह धर्म नहीं है कि मित्र मुखमें गये आप बाहिर ठाढे रहैं जो होयगी सो मित्रनके संग होयगी याते आपु धसे ॥ २८ ॥ तासमय बादरनकी ओटमें देवता ठाढे होयके हाय हाय करन लगे और नैर्ऋतके वंशके अघासुरके भैया बंधु कंसकूं आदि लैके राक्षसौंकूं आनंद भयो ॥ २९ ॥ अविनाशी श्रीकृष्णचंद्र भगवान् देवतानको हाहाकार शब्द सुनिके बालक बछरान सहित अपने आत्माकूं चूर्ण करनेकी इच्छा करनेवाले अघासुरके गलेमें बढते हुए ॥ ३० ॥

कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनं न वा अमीषां च सतां विहिंसनम्॥ द्वयं कथं स्यादिति संविचिन्त्य तज्ज्ञात्वाऽविशत्तुण्डमशेषदृग्घरिः
॥ २८ ॥ तदा घनच्छदा देवा भयाद्धाहेति चुक्रुशुः ॥ जहृषुर्ये च कंसाद्याः कौणपास्त्वघबान्धवाः
॥ २९ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्कृष्णस्त्वव्ययः सार्भवत्सकम् ॥ चूर्णीचिकीर्षोरात्मानं तरसा ववृधे गले ॥ ३० ॥ ततोऽति
कायस्य निरुद्धमार्गिणोह्युद्गीर्णदृष्टेर्भ्रमतास्त्वितस्ततः ॥ पूर्णोऽन्तरङ्गे पवनो निरुद्धो मूर्द्धन्विनिष्पाट्य विनिर्गतो बहिः
॥३१॥ तेनैव सर्वेषु बहिर्गतेषु प्राणेषु वत्सान्सुहृदः परेतान् ॥ दृष्ट्वा स्वयोत्थाप्य तदन्वितः पुनर्वक्रान्मुकुन्दो भगवान्विनिर्ययौ
॥ ३२ ॥ पीनाहिभोगोत्थितमद्भुतं महज्ज्योतिः स्वधाम्ना ज्वलयद्दिशो दश ॥ प्रतीक्ष्य खेऽवस्थितमीशनिर्गमं
विवेश तस्मिन्मिषतां दिवौकसाम् ॥ ३३ ॥

तब बड़ेदेह वाले राक्षसको कंठ रुकि गयो, आंखि निकसि आई, इत उतमें भ्रमण करने लगा देहमें श्वास रुकि गयो बाहिर निकसिवेको रस्ता न पायो तब ब्रह्मरंध्रको फोरिके बाहिर निकरयौ ॥ ३१ ॥ अघासुरके श्वासके संग समस्तके प्राण बाहिर निकसिगये तब बछरा बालक मरे देखिके अपनी दृष्टिमेंते अमृतकी वृष्टि करिके सबको जिवायो तिनको संग लैके फेरि मुकुंद भगवान् अघासुरके मुखमेंते बाहिर निकसत भये ॥ ३२ ॥ दुष्ट सर्पके देहमेंते बड़ी अद्भुत ज्योति निकसिकै अपने तेजतै दशदिशानमें प्रकाश करिके आकाशमें स्थित्त हो श्रीकृष्णचंद्रके निकसिवेकी राह पेखने लगी जा समय श्रीकृष्ण बाहिर निकसे तब सब देवतानके देखते देखते श्रीकृष्ण के शरीरमें प्रवेश कर गयी ॥ ३३ ॥

तासमय समस्त देवतानके आनंद भयो और फूलनसों श्रीकृष्णचंद्रकी पूजा करी अप्सरा नृत्य करतभई सुर गंधर्व गावत भये बाजेवारे बाजे बजावत भये ब्राह्मण स्तुति करिके जय जय शब्द करत भये ॥ ३४ ॥ वह अद्भुत स्तुति और सुंदर बाजे गीत जय आदि लैके अनेक उत्सव मंगल शब्दनकूं ब्रह्माजी अपने ब्रह्मलोकमें श्रवण करिके शीघ्रही चले आये श्रीकृष्णचंद्रकी महिमा देखिके आश्चर्य मानत भये ॥ ३५ ॥ हे राजन् परीक्षित! वा अजगर को शुष्क अद्भुत चर्म्म वृन्दावनमें बहुत दिन पर्यंत ब्रजवासीनके बालकनके खेलीवेकूं बड़ी गुफासी होती भई मुखकी रस्ता घुसें आखिनकी रस्ता निकसे आखिनकी रस्तामें घुसे मुखकी रस्तामें निकसआवे याप्रकार क्रीडाकरतभये ॥ ३६ ॥ श्रीकृष्णचंद्र भगवान्

ततोऽतिहृष्टाः स्वकृतो कृतार्हणं पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्तनैः॥ गीतैः सुरा वाद्यधराश्च वाद्यकैः स्तवैश्च विप्रा जयनिःस्वनैर्गणाः ॥ ३४ ॥ तदद्भुतस्तोत्रसुवाद्यगीतिकाजयादिनैकोत्सवमङ्गलस्वनान् ॥ श्रुत्वा स्वधाम्नोऽन्त्यज आगतोचिराद्दृष्ट्वा महीशस्य जगाम विस्मयम्॥३५॥ राजन्नाजगरं चर्म शुष्कं वृन्दावनेऽद्भुतम्॥व्रजौकसां बहुतिथं बभूवाक्रीडगह्वरम् ॥ ३६ ॥ एतत्कौमारजं कर्म हरेरात्मविमोक्षणम् ॥ मृत्योः पौगण्डके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता व्रजे ॥ ३७ ॥ नैतद्विचित्रं मनुजार्भमायिनः परावराणां परमस्य वेधसः ॥ अघोपि यत्स्पर्शनधौतपातकः प्रापात्मसाम्यं त्वसतां सुदुर्लभम् ॥ ३८ ॥ सकृद्यदङ्गप्रतिमान्तराहिता मनोमयीं भागवतीं ददौ गतिम् ॥ स एव नित्यात्मसुखानुभूत्यभिव्युदस्तमायोऽन्तर्गतो हि किं पुनः ॥ ३९ ॥

ने बालक और अपनेकूं मृत्युसै छुड़ाना और अघासुरका मोक्ष यह काम पांच वर्ष की अवस्थामें करौ हैं परंतु याकूं आश्चर्य मानिके समस्त बालक ब्रजमें छठे वर्ष कहत भये और ब्रजवासीनकूं आनंद भयो ॥ ३७ ॥ मायासै मनुष्य बालकरूप धारण किये हुए सम्पूर्ण स्थावर जंगमके आदिकारण परमात्मा श्रीकृष्णके स्पर्श सै महापापी अघासुर पवित्र हो असत्पुरुषोंको दुर्लभ श्रीकृष्णचंद्रमें लय होगया यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है ॥३८॥ कारण कि जिसकी मनोहर मूर्ति प्रह्लादादिक भक्तोंने केवल एक वारही बलात्कारसै मनमें धारण की और उसीके प्रतापसे उनकी मुक्ति हुई तौ

सदैव अपने आत्मानंदके अनुभवसे मायासे रहित भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके अघासुरके शरीरमें प्रवेश करनेसे उसकी मुक्ति हुई तौ इसमें क्या आश्चर्य है ॥ ३९ ॥ अब श्रीसूतजी महाराज शौनकादिक ऋषीश्वरनते कहैं हैं कि हे ऋषियो! या प्रकार यादवनके देव श्रीकृष्णचन्द्रसे रक्षित हुए गर्भमें राजा परीक्षित अपने रक्षा करनेवारे श्रीकृष्णचन्द्र विचित्र पवित्र चरित्र श्रवण करिके व्यासनंदन श्रीशुकदेवजीतें फिरहूं प्रश्न करत भयो, कारण कि तिन चरित्रोंके श्रवण करेते परीक्षितको मन वश होइ गयो ॥ ४० ॥ अब राजा परीक्षित कहै हैं कि हे शुकदेवजी महाराज! जो और कालमें कऱ्यौ सौ तत्कालमें कऱ्यो कैसे होय गयो पांच वर्षकी अवस्थामें श्रीकृष्णचन्द्रने अघासुरको माऱ्यो छठे वर्षमें बालकनने ब्रजवासीनते कह्यो यह वर्ष दिनको बीच कैसे पऱ्यो ॥ ४१ ॥ हे बडे योगेश्वर! हे गुरु! यह बात मोते कहौ मेरे बडौ आश्चर्य है यह निश्चय भगवान्

सूत उवाच ॥ इत्थं द्विजा यादवदेवदत्तः श्रुत्वा स्वरातुश्चरितं विचित्रम् ॥ पप्रच्छ भूयोऽपि तदेव पुण्यं वैयासकिं यन्निगृहीतचेताः ॥ ४० ॥ राजोवाच ॥ ब्रह्मन्कालान्तरकृतं तत्कालीनं कथं भवेत् ॥ यत्कौमारे हरिकृतं जगुः पौगण्डकेऽर्भकाः ॥ ४१ ॥ तद् ब्रूहि मे महायोगिन्परं कौतूहलं गुरो ॥ नूनमेतद्धरेरेव माया भवति नान्यथा ॥ ४२ ॥ वयं धन्यतमा लोके गुरोऽपि क्षत्रबन्धवः ॥ यत्पिबामो मुहुस्त्वत्तः पुण्यं कृष्णकथामृतम् ॥ ४३ ॥ सूत उवाच ॥ इत्थं स्मपृष्टः स तु बादरायणिस्तत्स्मारितानन्तहृताखिलेन्द्रियः ॥ कृच्छ्रात्पुनर्लब्धबहिर्दृशिः शनैः प्रत्याह तं भागवतोत्तमोत्तमम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽघासुरवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

कीही माया है और कुछ नहीं है ॥ ४२ ॥ हे गुरु! हेतौ हम क्षत्रीनमें गये बीते परंतु अब संसारमें अतिशय करिके धन्य हैं कारण कि जा दिन ब्राह्मणको शाप भयो तादिन धन्य भये, जब तुम्हारे दर्शन करे तब धन्यतर भये, अब तुमते वारंवार कृष्णकथारूप अमृत पान करूं हूं याते अतिशय करिके धन्य हूं ॥ ४३ ॥ श्रीसूतजी शौनकादिकनसें कहैं हैं कि या प्रकार राजाने प्रश्न करिके श्रद्धा दिखाई तब श्रीकृष्णचन्द्रकी कथा अमृतमें शुकदेवजीकी सम्पूर्ण इंद्रियां जायलगीं तब व्यासनन्दन श्रीशुकदेवजी बडे कष्टते फिरि आंखि खोलिके भक्तनमें श्रेष्ठ श्रोता राजा परीक्षित कहते भये ॥ ४४ ॥ इति श्रीभा० भाषाटी० अघासुरवधो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

अब श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षिततें कहैं हैं कि हे बडभागी भक्तनमें अति उत्तम राजा परीक्षित! तुमने बहुत श्रेष्ठ प्रश्न पूछ्यो है याते ईश्वरकी कथाकूं वारंवार श्रवण करोहौ याते तुम श्रेष्ठ हो ॥ १ ॥ सार वस्तुके ग्रहण करनवारे साधुनको यही स्वभाव है, कारण कि श्रीकृष्णचन्द्रमें जिन पुरुषनकी वाणी श्रवण चितलगि रहैहैं वे वाणीते कृष्णगुणवर्णन करैं, श्रवणनते कथा सुनें, चित्तते स्वरूपको ध्यान करैं, या प्रकार अच्युत भगवान्‌की वार्त्ता में क्षण क्षण प्रति ध्यान लगाये रहैं, और ऐसी प्रिय लगै मानों कभऊ सुनी नहीं है, जैसे विषयी मनुष्यनकों स्त्रीनकी बात प्यारी लगै है ॥ २ ॥ हे राजन् परीक्षित! मैं तुम्हारे आगे गोप्य कथा कहूंहूं. तुम सावधान होइके श्रवण करो गुरु अपने प्यारे शिष्यकूं गोप्य

श्रीशुक उवाच ॥ साधु पृष्टं महाभाग त्वया भागवतोत्तम ॥ यन्नूतनयसीशस्य शृण्वन्नपि कथां मुहुः ॥ १ ॥ सतामयं सारभृतां निसर्गो यदर्थवाणीश्रुतिचेतसामपि ॥ प्रतिक्षणं नव्यवदच्युतस्य यत्स्त्रिया विटानामिव साधु वार्ता ॥ २ ॥ शृणुष्वावहितो राजन्नपि गुह्यं वदामि ते ॥ ब्रूयुः स्निग्धस्य शिष्यस्य गुरवो गुह्यमप्युत ॥ ३ ॥ तथाऽघवदनान्मृत्यो रक्षित्वा वत्सपालकान् ॥ सरित्पुलिनमानीय भगवानिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥ अहोऽतिरम्यं पुलिनं वयस्याः स्वकेलिसंपन्मृदुलाच्छवालुकम् ॥ स्फुटत्सरोगन्धहृतालिपत्रिकध्वनिप्रतिध्वानलसद्द्रुमाकुलम् ॥ ५ ॥ अत्र भोक्तव्यमस्माभिर्दिवा रूढं क्षुधार्दिताः ॥ वत्साः समीपेऽपः पीत्वा चरन्तु शनकैस्तृणम् ॥ ६ ॥

वार्त्ताकूंभी कहि देई है ॥ ३ ॥ अघासुरके मुखमेंते मरे बछरा और बालकनकूं जिवायके और यमुनाजीकी रेतिमें लायके भगवान् यह बोले ॥ ४ ॥ हे बराबरीके मित्रो! यह बडी रमणीक रेती है अपने खेलिवेके योग्य ठौर है, कोमल स्वच्छ वारूके पिछौना बिछरहे हैं कमल फूले हैं, तिनमें सुगन्धिके लोभसे भौंरे शब्द कररहे हैं और जलपक्षियोंके शब्दौंकी प्रतिध्वनिसे यहांके वृक्ष शब्दायमान हो रहे हैं ॥ ५ ॥ यहां बैठिके कलेवा करेंगे, दिन बहुत चढि आयोहै भूख[1] लगी है बछरानको जल प्यायके चरिवेको छोडि देउ येऊ हौले हौले घास चरेंगे ॥ ६ ॥

---

[1] तहां छाक सब घरनतैं, आई भरि भरि भार। यशुमति पठयो श्यामको, व्यञ्जन बहुत प्रकार ॥

हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित ! श्रीकृष्णचंद्रमें मन को लगाये ग्वाल बाल भोजन करिवेको बैठे तब बछरा हरी हरी घासके लोभते दूर वनके भीतर चले गये ॥ १२ ॥ बछरानकौ दूर गये देखिके बालक डरपे तब उनको भय दूरी करते श्रीकृष्णचंद्र बोलत भये हे मित्रो ! तुम बैठे भोजन करो उठो मति क्योंकि ऐसी मण्डली फिर न बंधेगी मैं सबके बीचमें बैठोहूं अलगते शीघ्र उठके बछरा लेआऊंगो ॥ १३ ॥ या प्रकार बालकनतें कहि श्रीकृष्णचंद्र पर्वतकी गुफा गव्हर वन इनमें अपने बछरानकूं ढंतढूं हाथमें दहीभातकों कौरलिये चलेगये ॥ १४ ॥ हे राजन् परीक्षित ! इसी अवसरमें कमलोत्पन्न ब्रह्माजी जो कि प्रथम मायाके द्वारा बालकरूप श्रीकृष्णसैं अघासुरकी गति देख आकाशमें स्थितहुए परम आश्चर्यको प्राप्त भये अब वे श्रीकृष्णकी यह दूसरी माया देखनेके निमित्त यहांसे बालकौंकूं और वनमें से बछडोंको हरणकर दूसरे स्थानमें लेजाय अन्तर्ध्यान होगये ॥ १५ ॥ ताके पीछे बछरानको न देखौ तब बगदके यमुनातीरपै आये यहां ग्वालबालहू नदेखे ता समय बछरा बालकनकूं चारों ओर ढूंडत भये ॥ १६ ॥ वनमें कहूं बछराहू न देखे बालकहू न देखे तब विश्वकी बातके जाननवारे श्रीकृष्णचंद्र भगवान् तत्काल संपूर्ण ब्रह्माके कर्तब जानत भये ॥ १७ ॥

भारतैवं वत्सपेषु भुञ्जानेष्वच्युतात्मसु ॥ वत्सास्त्वन्तर्वने दूरं विविशुस्तृणलोभिताः ॥ १२ ॥ तान्दृष्ट्वा भयसंत्रस्तानूचे कृष्णोऽस्य भीभयम् ॥ मित्राण्याशान्मा विरमतेहानेष्ये वत्सकानहम् ॥ १३ ॥ इत्युक्त्वाऽद्रिदरीकुञ्जगह्वरेष्वात्मवत्सकान् ॥ विचिन्वन्भगवान्कृष्णः सपाणिकवलो ययौ ॥ १४ ॥ अम्भोजन्मजनिस्तदन्तरगतो मायार्भकस्येशितुर्द्रष्टुं मञ्जु महित्वमन्यदपि तद्वत्सानितो वत्सपान् ॥ नीत्वाऽन्यत्र कुरूद्वहान्तरदधात्खेऽवस्थितो यः पुरा दृष्ट्वाऽघासुरमोक्षणं प्रभवतः प्राप्तः परं विस्मयम् ॥ १५ ॥ ततो वत्सानदृष्ट्वैत्य पुलिनेऽपि च वत्सपान् ॥ उभावपि वने कृष्णो विचिकाय समन्ततः ॥ १६ ॥ क्वाप्यदृष्ट्वान्तर्विपिने वत्सान्पालांश्च विश्ववित् ॥ सर्वं विधिकृतं कृष्णः सहसाऽवजगाम ह ॥ १७ ॥

बालक तथास्तु ऐसे कहि बछरानकों जल प्याय हरी घासमें चरिवेकों छोडके छीकेनकों खोलि खोलिके श्रीकृष्णचंद्रके संग भोजन करिवेको बैठत भये ॥ ७ ॥ व्रजके बालक श्रीकृष्णचन्द्रके चारों और बहुतसी पंक्तिनके मंडल बनायके एक संग बैठे श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख मुख करनेसे जिनकी दृष्टि प्रफुल्लित होय रही या प्रकार यमुनाजीकी रेतीमें शोभाको प्राप्त होत भये जैसें कमलकी कलीके चारों ओर पखुरी सुंदर लगे है श्रीकृष्णचन्द्र कलीकी समान हैं बालक पखुरीनके समान हैं ॥ ८ ॥ कोई बालक फूलनकी पातर बनायके भोजनको बैठे, कोई बालक पखरीनकी पातर बनायके बैठे और कोई बालकनने पत्तानकी पातर बनाई, और कोई बालकनने अंकुरानकी पातर बनाई, कोईने फलनकी पातर और कोई बालक छीकेनमें भोजन करिवेको बैठे, कोई बालकननें बहोत सुंदर वृक्षनके बकुलानकी पातर बनाई, कोई बालक शिलानपैं परोसिकै भोजन करनलगे ॥ ९ ॥

तथेति पाययित्वाम्भो वत्सानारुद्ध्य शाद्वले ॥ मुक्त्वा शिक्यानि बुभुजुः समं भगवता मुदा ॥ ७ ॥ कृष्णस्य विष्वक्पुरुराजिमण्डलैरभ्याननाः फुल्लदृशो व्रजार्भकाः ॥ सहोपविष्टा विपिने विरेजुश्छदा यथाम्भोरुहकर्णिकायाः ॥ ८ ॥ केचित्पुष्पैर्दलैः केचित्पल्लवैरङ्कुरैः फलैः ॥ शिग्भिस्त्वग्भिर्दृषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः ॥ ९ ॥ सर्वे मिथो दर्शयन्तः स्वस्वभोज्यरुचिं पृथक् ॥ हसन्तो हासयन्तश्चाभ्यवजह्रुः सहेश्वराः ॥ १० ॥ बिभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृङ्गवेत्रे च कक्षे वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यङ्गुलीषु ॥ तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैः स्वर्गे लोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः ॥ ११ ॥

समस्त बालक अपनी अपनी सामग्रीनकूं न्यारे न्यारे चखावत जाय हैं, और आपुसमें हंसैं हैं हंसावत जाय हैं, याप्रकार श्रीकृष्णचंद्र भगवानके संग सुखपूर्वक भोजन करत भये ॥ १० ॥ फेंटमें बासुरी उरशलीनी सींग वेतकी छरिको कांखमें धरिलीनी, दही भातसों लपिटो ग्रास बामें हाथमें धरलियो, और बेर आमरे नीबू इत्यादिक फल अंगुलीनमें धरिलिये, चारों ओर अपने मित्र बैठेहैं तिनकूं हंसीकी बात कहि कहिके हंसावत जाय हैं स्वर्गमें देवता आश्चर्यसे ठाडे होयकरि तमासा देखें हैं, कि भगवान व्रजवासीनके बालछनकी जूंठनि छिनाय छिनायके खांयहैं, याप्रकार यज्ञके भोग करनवारे भगवान् बालकनके खेल करिके भोजन करत भये ॥ ११ ॥

ताके पीछे श्रीकृष्णचंद्रने विचार कियो कि चुप बैठिरहेंगे तो बालकनकी माता रोमेंगी, ब्रह्माके पासते ले आओगे तो वाको मोह न होयगो, बालकनकी मातानकूं आनंद देवेके लिये और ब्रह्माकूं मोह करिवेके लिये विश्वके उत्पन्न करनवारे श्रीकृष्णचंद्र भगवान अपने रूप अनेक करत भये बछराहू आप भये और ग्वालबालहू आप भये ॥ १८ ॥ जाके जा बछराको जैसो छोठो देहहो, और जैसे जा बालकके हाथ पांव है काहूके छःअंगुरीही जैसीजा बालककी छडी सींगी बांसुरी छीको हो, जैसे जा बालक के गहने कपरा है; काहूके जडाऊ गहने काहूके सादा है, काहूको कसूमी पाग ही काहूकी हरी पीरी गुलाबो ही जैसो जा बालकको सुभाव हो कोई सतो गुणी कोई रजोगुणी कोई तमोगुणी जैसा जा बालक में गुण हो और जो जो

ततः कृष्णो मुदं कतु तन्मातॄणां च कस्य च ॥ उभयायितमात्मानं चक्रे विश्वकृदीश्वरः ॥ १८ ॥ यावद्वत्सपवत्सकाल्पकवपुर्यावत्कराङ्घ्र्यादिकं यावद्यष्टिविषाणवेणुदलशिग्यावद्विभूषाम्बरम् ॥ यावच्छीलगुणाभिधाकृतिवयो यावद्विहारादिकं सर्वं विष्णुमयं गिरोऽङ्गवदजः सर्वस्वरूपो बभौ ॥ १९ ॥ स्वयमात्माऽऽत्मगोवत्सान्प्रतिवार्यात्मवत्सपैः ॥ क्रीडन्नात्मविहारैश्च सर्वात्मा प्राविशद्व्रजम् ॥ २० ॥ तत्तद्वत्सान्पृथङ्गीत्वा तत्तद्गोष्ठे निवेश्य सः ॥ तत्तदात्माऽभवद्राजंस्तत्तत्सद्म प्रविष्टवान् ॥ २१ ॥ तन्मातरो वेणुरवत्वरोत्थिता उत्थाप्य दोर्भिः परिरभ्य निर्भरम् ॥ स्नेहस्नुतस्तन्यपयःसुधासवं मत्वा परं ब्रह्म सुतानपाययन् ॥ २२ ॥

जा बालकको नाम हो जैसो जा बालकको रूप हो कोई गोरो कोई सामरो और जैसो जा बालक को खेल हो श्रीकृष्ण सब रूप होयके सब रूप धरिके सुंदर लगत भये ॥ १९ ॥ आप आत्मा श्रीकृष्णचन्द्र आपुही बछरा बने तिनको घेरी घेरिके अपने खेलसूं खेलत भये पाछेतैं सर्वात्मा भगवान् व्रजमें पधारे ॥ २० ॥ तिन तिन व्रजवासीनके बछरा समूहमेंते न्यारे करिके तिन तिनके खिरक पवारि के तिन तिन व्रजवासीनके बालक होयके हे राजन् परीक्षित्! व्रजवासीनके घरनमें जाते भये ॥२१॥ तिन बालकनकी माता बासुरी बजी श्रवण करिके शीघ्रतासे उठिके घरनते बाहर निकसिके बालकनको हाथनते उठाय छातीते लगामें हैं स्नेहते स्तननमें दूध भरि आवै है वही अमृतकी तुल्य स्वादको दूध परब्रह्म श्रीकृष्णचंद्रकूं अपनो पुत्र

मानिके प्यावत भई ॥२२॥ आये पीछे उवटनो करै हैं, मज्जन स्नान करावे हैं, चन्दन केशर लगामें हैं, गहने पहरामें हैं, तिलक लगामें हैं, भोजन करामें हैं या प्रकार समस्त गोपी श्रीकृष्णचंद्रको लाडलडामें है, तब अपने सुंदर चरित्रनसूं उनको आनंद दे हैं, ता समयके खेलको नेम साध के संध्याकाल व्रजमें आमें है ॥ २३ ॥ ऐसे गोपीनको मोह कहिके गोपनको मोह कहैहै, गौ दौरि दौरि के रह्माय रह्माय के ब्रजमें आमें है बछरानको बुलामें हैं बछरा आमें हैं तब अपने बछरानको स्नेहते ऐनमें संचित दूधकूं पिवामें हैं वारंवार हित मानिके चाटती जाय हैं॥२४ ॥या कृष्णचंद्रमें सम्पूर्ण गोपगोपिनको मैत्रीभाव पहलेकीसी नाईं भयो, परन्तु पहिलो इतनो हित नहीं हो अब हित अधिक बढो, गाय गोपिनमें भी श्रीकृष्णकी बालभावना

ततो नृपोन्मर्दनमज्जलेपनालंकाररक्षातिलकाशनादिभिः ॥ संलालितः स्वाचरितैः प्रहर्षयन्सायं गतो यामयमेन माधवः ॥ २३ ॥ गावस्ततो गोष्ठमुपेत्य सत्वरं हुंकारघोषैः परिहूतसंगतान् ॥ स्वकान्स्वकान्वत्सतरानपाययन्मुहुर्लिहन्त्यः स्रवदौधसं पयः ॥ २४ ॥ गोगोपीनां मातृताऽस्मिन्सर्वा स्नेहर्द्धिकां विना ॥ पुरोवदास्वपि हरेस्तोकता मायया विना ॥ २५ ॥ व्रजौकसां स्वतोकेषु स्नेहवल्ल्याब्दमन्वहम् ॥ शनैर्निःसीम ववृधे यथा कृष्णे त्वपूर्ववत् ॥ २६ ॥ इत्थमात्माऽऽत्मनाऽऽत्मानं वत्सपालमिषेण सः ॥ पालयन्वत्सपो वर्ष चिक्रीडे वनगोष्ठयोः ॥ २७ ॥ एकदा चारयन्वत्सान्सरामो वनमाविशत् ॥ पञ्चषासु त्रियामासु हायनापूरणीष्वजः ॥ २८ ॥

पहिले कीसी नाईंभई, परंतु मैं याको पुत्रहौं और यह मेरी माता है यह मोह न भयो ॥ २५ ॥ ब्रजवासीनकी अपने बालकनमें स्नेहरूपी लता वर्ष दिन पर्यंत होले होले ऐसी वृद्धीको प्राप्त भईकी जाको पारावार नहीं जैसे पहले कृष्णमें बढीही ॥ २६ ॥ या प्रकार सबके आत्मा श्रीकृष्णचंद्र बछरा ग्वालनके मिस करि के आपरूप बछरानकूं आपरूप ग्वालनकूं करी बछरा चरायके वनमें व्रजमें वर्षदिनपर्यंत क्रीडा करत भये ॥ २७ ॥ और एक दिन बछरा चरायवेको पांच छः रात्रि दिनवर्षमें बाकी रहगई तब अजन्मा श्रीकृष्णचंद्र भैया बलरामको संग लेकै वनमें आवत भये ॥ २८ ॥

ताके पीछे गोवर्द्धन पर्वतके ऊपर गऊ घास चरेंही तिननें वहुत दूरतै व्रजके पास बछरा चरत देखे ॥ २९ ॥ बछरौंको देखतेही, उनके प्रेमके मारे गऊ अपने आपेकी सुधि भूल गईं उनके थनौंसे दूध टपकने लगा गोपोंके निवारण करने और विषम मार्गका कुछभी ध्यान न करकै ऐसे वेगसे चलीं मानो दोही पांवसे चलरही हैं मुख और पूंछकूं ऊंचे करे बड़े वेगसे हुंकार शब्द करतीं बछरानके पास पहुंची ॥ ३० ॥ यद्यपि इनके दूसरी व्यातिके बछरा हैं तथापि वे गऊ गोवर्द्धन पर्वत ते नीचे आयके पहली व्यातिके जो बड़े बड़े बछरा हैं तिनकूं अपने ऐननको दूध प्यावत भईं, उनके अंगनकों ऐसे चाटै मानों निगल जांयगी ॥ ३१ ॥ अब गोपनको मोह कहैं हैं जब गोपनने गऊनकों घेरो तब गऊ न घिरीं, तब लज्जित

ततोविदूराच्चरतो गावो वत्सानुपव्रजम् ॥ गोवर्धनाद्रिशिरसि चरन्त्यो ददृशुस्तृणम् ॥ २९ ॥ दृष्ट्वाथ तत्स्नेहवशोऽस्मृतात्मा स गोव्रजोऽऽत्यात्मपदुर्गमार्गः ॥ द्विपात्ककुद्ग्रीव उदास्यपुच्छोऽऽगाद्धुंकृतैरास्नुपया जवेन ॥ ३० ॥ समेत्य गावोऽऽधो वत्सान्वत्सवत्योऽऽप्यपाययन् ॥ गिलन्त्य इव चाङ्गानि लिहन्त्यः स्वौधसं पयः ॥ ३१ ॥ गोपास्तद्रोधनायासमौघ्यलज्जोरुमन्युना ॥ दुर्गाध्वकृच्छ्रतोऽऽभ्येत्य गोवत्सैर्ददृशुः सुतान् ॥ ३२ ॥ तदीक्षणोत्प्रेमरसाप्लुताशया जातानुरागा गतमन्यवोऽर्भकान् ॥ उदुह्य दोर्भिः परिरभ्य मूर्धनि घ्राणैरवापुः परमां मुदं ते ॥ ३३ ॥ ततः प्रवयसो गोपास्तोकाश्लेषसुनिर्वृताः ॥ कृच्छ्राच्छनैरपगतास्तदनुस्मृत्युदश्रवः ॥ ३४ ॥

होके कहन लगे, हम वानेत गोप कहामे हैं, आज हम पै गऊभी नहीं रुकी, तव मनमें वडो क्रोध आवत भयो, कठिन मार्गमें ते बडे कष्टते नीचे आय, बछरानकूं लिये ठाढे अपने वालकनको देखत भये ॥ ३२ ॥ गोप आये तो बालकनके मारिवेको हैं परंतु बालकनकूं देखिके प्रेम उदय भयो तामें अंतःकरण डूबि गयो, ताते क्रोध जात रहो बालकनकूं हाथते उठायके हृदयसौं लगाय उनके माथे सूंघिके ब्रजवासी बडो आनंद पावत भये ॥ ३३ ॥ ताके पीछे वृद्ध वृद्ध गोप बालकनकूं छाती ते लगाय बडे सुखी भये, कष्टते हौले हौले बालकनकों छोड़कै बाहर निकसे, बालकनकी सुधिसै उनके नेत्रोंमें जल भरिआये ॥ ३४ ॥

यद्यपि वे बालक इस समय दूध नहीं पीते है बडे होगयेहै तौभी उनमें ब्रजवासीयोंके प्रेमकी ऐसी वृद्धि देख उसके कारणको न जानकर बलदेवजी मनमें विचारत भये ॥३५॥ संपूर्णके आत्मा श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर व्रजवासियोंका जैसा प्रेम है वैसा अपूर्व प्रेम अब बालकौंपरभी वृद्धिको प्राप्त होता जाताहै और यही नहीं मेरे हृदयमेंभी वत्स और बालकौंपर अधिक प्रेम बढताहै सो यह बडी अद्भुत बात है इसका कारण क्या है ॥ ३६ ॥ यह कहा है, कहांते आये हैं देवतानकी माया है अथवा मनुष्यकी माया है या मेरे स्वामी श्रीकृष्णचंद्र भगवान्‌की माया है कारण कि और की माया मोको मोह करनवारी नहीं हैं ॥ ३७ ॥ दाशार्हवंशोत्पन्न श्रीबलदेवजी या प्रकार विचार करिके संपूर्ण ग्वाल बछरान सहितनकूं ज्ञान दृष्टिते श्रीकृष्णरूप देखत भये ॥ ३८ ॥ संपूर्ण देवता ग्वाल बाल भये हैं और ऋषीश्वर बछरा भये है यह मैं जानू हूं परंतु अब तो देवता

व्रजस्य रामः प्रेमर्धेर्वीक्ष्यौत्कण्ठ्यमनुक्षणम् ॥ मुक्तस्तनेष्वपत्येष्वप्यहेतुविदचिन्तयत् ॥३५॥ किमेतदद्भुतमिव वासुदेवेऽखिलात्मनि ॥ व्रजस्य सात्मनस्तोकेष्वपूर्वं प्रेम वर्धते ॥ ३६ ॥ केयं वा कुत आयाता दैवी वा नार्युतासुरी ॥ प्रायो मायास्तु मे भर्तुर्नान्या मेऽपि विमोहिनी ॥ ३७ ॥ इति संचिन्त्य दाशार्हो वत्सान्सवयसानपि ॥ सर्वानाचष्ट वैकुण्ठं चक्षुषा वयुनेन सः ॥ ३८ ॥ नैते सुरेशा ऋषयो न चैते त्वमेव भासीश भिदाश्रयेऽपि ॥ सर्वं पृथक्त्वं निगमात्कथं वदेत्युक्तेन वृत्तं प्रभुणा बलोऽवैत् ॥ ३९ ॥ तावदेत्यात्मभूरात्ममानेन त्रुट्यनेहसा ॥ पुरोवदब्दं क्रीडन्तं ददृशे सकलं हरिम् ॥४०॥ यावन्तो गोकुले बालाः सवत्साः सर्व एव हि ॥ मायाशये शयाना मे नाद्यापि पुनरुत्थिताः ॥४१॥

नहीं है, और ये बछरा ऋषि नहीं है, हे ईश्वर ! या भेदकों प्रकाशो यह भेद कैसे हैं सो तुम संपूर्ण न्यारो न्यारो संक्षेपते विचारिके कहो, या प्रकार श्रीबलदेवजीने श्रीकृष्णचंद्रते कही ता समय श्रीकृष्णने समस्त वृत्तान्त कह्यो कि दाऊ! तुमको आज खबर भई है ब्रह्मा बछरा और बालकनको चुरायके लैगयो मैं बछरा बालक भयौ हों या प्रकार श्रीकृष्णके कहेतें श्रीबलदेवजी जानत भये ॥ ३९ ॥ इस प्रकारसे यहां तो एक वर्ष वीत गया और ब्रह्माजीका एक पलही वीता तब आयके देखें तो पहले कीसीनाई बछरा बालकनकों लिये श्रीकृष्ण खेलेहै तिनकूं ब्रह्मा देखत भयो ॥ ४० ॥ तब ब्रह्माजी विचार करने लगे कि जितने गोकुलमें बछरा बालक हैं ते सम्पूर्ण मेरी मायारूपी श-

य्यामें सोवत हैं अब ताई फेरि जगे नहीं हैं ॥ ४१ ॥ यहां यह बछरा बालक कहांते आये जितने मे हरके लैगयो हों तिनते यह न्यारे हैं क्यों कि वेतौ मेरी मायासे मोहित पडे हैं जितने मैं हर लैगयो तितनेही यहां वर्ष दिनपर्यंत श्रीकृष्णचंद्रके संग खेलेंहैं ॥ ४२ ॥ आपही मोहित हो ब्रह्माजी मनमें बहुतें बेरतांई विचार करते रहे कि कौनसे बछरा बालक सत्य हैं और कौनसे मिथ्या हैं मैं लैगयो ते सत्य हैं, अथवा ये श्रीकृष्णके संग खेले हैं ये सत्य हैं, या प्रकार जानिवेकूं समर्थ न होत भयो ॥ ४३ ॥ इस प्रकार ब्रह्माजी जगतके मोह करनेवाले और आप मोह रहित भगवानको अपनी मायासे मोहित करते स्वयंही मोहित होगये ॥ ४४ ॥ जैसे अंधेरी रात्रिमें कुहर पृथक आवरण नहीं करसकैहै

इत एतेऽत्र कुत्रत्या मन्मायामोहितेतरे ॥ तावन्त एव तत्राब्दं क्रीडन्तो विष्णुना समम् ॥ ४२ ॥ एवमेतेषु भेदेषु चिरं ध्यात्वा स आत्मभूः ॥ सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथंचन ॥ ४३ ॥ एवं संमोहयन्विष्णुं विमोहं विश्वमोहनम् ॥ स्वयैव माययाऽजोऽपि स्वयमेव विमोहितः ॥ ४४ ॥ तम्यां तमोवन्नैहारं खद्योतार्चिरिवाहनि ॥ महतीतरमायैश्यं निहन्त्यात्मनि युञ्जतः ॥ ४५ ॥ तावत्सर्वे वत्सपालाः पश्यतोऽजस्य तत्क्षणात् ॥ व्यदृश्यन्त घनश्यामाः पीतकौशेयवाससः ॥ ४६ ॥ चतुर्भुजाः शङ्खचक्रगदाराजीवपाणयः ॥ करीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ॥ ४७ ॥ श्रीवत्साङ्गददोरत्नकम्बुकङ्कणपाणयः ॥ नूपुरैः कटकैर्भाताः कटिसूत्राङ्गुलीयकैः ॥ ४८ ॥

परन्तु उस अंधकारमें लीन हो जाताहै और जैसे दिनमें पटवीजना पृथक् प्रकाश नहीं कर सक्ता तैसेही ऐश्वर्यमान् पुरुषोंपर कोई छोटा पुरुष माया करै तौ उसकी माया बड़े पुरुषका कुछ नहीं करसकै है किन्तु चलानेवालोंकी ही सामर्थ्यका नाश करतीहै, ॥ ४५ ॥ ब्रह्माके देखत क्षण भरमें तब ताईं समस्त बछरा ग्वाल मेहकीसीनाईं सामरे पीरे रेशमी वस्त्रनकूं पहिरे ॥ ४६ ॥ चार चार भुजों में शंख चक्र गदा पद्म इनको लिये माथेपै किरीट पहरे, कानमें कुंडल मोतीनके हार वनमाला पहरे दिखाई देत भये ॥ ४७ ॥ श्रीवत्सकी कान्तिसे शोभायमान हाथों में बाजूबंद पहरे रत्नोंसे जडे हुए शंखकी समान तीन २ रेखावाले कंकण हाथमें पहरे नूपुर कटक कमरमें तगड़ी और मुंदरियोंके धारण करनेसे

शोभायमान ॥ ४८ ॥ बड़े पुण्यवान महात्मा पुरुषौंसे अर्पण की हुई तुलसीकी नवीन और कोमल मालासै शिरसे चरणतक परिपूर्ण ॥ ४९ ॥ चंद्रकी समान उज्ज्वल मन्द हंसनसे मानो अपने दासोंको सतो गुणसे पालन करते और अरुणाई युक्त कटाक्ष भरी चितवनसे अपने भक्तौंके मनोरथको मानो रजो गुणसे उत्पन्न करते विदित होतेथे ॥ ५० ॥ ब्रह्मातें आदिलेके तृणपर्यंत स्थावर जंगम समस्त प्राणी मूर्तिमान होयके एक एक बछराके सन्मुख नाचे गामें हैं अनेक प्रकारकी पूजा कौरहैं ॥ ५१ ॥ अणिमातें आदि लेके महिमादिक विभूति मायातें आदिलेके महदादिक विभूति चौविस तत्त्व हैं ते चारो ओर ठाढे हैं ॥ ५२ ॥ काल स्वभाव संस्कार काम कर्म सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुण ये रूप धरिकें

अङ्घ्रिमस्तकमापूर्णास्तुलसीनवदामभिः ॥ कोमलैः सर्वगात्रेषु भूरिपुण्यवदर्पितैः ॥ ४९ ॥ चन्द्रिकाविशदस्मेरैः सारुणापाङ्गवीक्षितैः ॥ स्वकार्थानामिव रजःसत्त्वाभ्यां स्रष्टृपालकः ॥ ५० ॥ आत्मादिस्तम्बपर्यन्तैर्मूर्तिमद्भिश्चराचरैः ॥ नृत्यगीताद्यनेकार्हैः पृथक्पृथगुपासिताः ॥ ५१ ॥ अणिमाद्यैर्महिमभिरजाद्याभिर्विभूतिभिः ॥ चतुर्विंशतिभिस्तत्त्वैः परीता महदादिभिः ॥ ५२ ॥ कालस्वभावसंस्कारकामकर्मगुणादिभिः ॥ स्वमहिध्वस्तमहिभिर्मूर्तिमद्भिरुपासिताः ॥ ५३ ॥ सत्यज्ञानानन्तानन्दमात्रैकरसमूर्तयः ॥ अस्पृष्टभूरिमाहात्म्या अपि ह्युपनिषद्दृशाम् ॥ ५४ ॥ एवं सकृद्ददर्शाजः परब्रह्मात्मनोऽखिलान् ॥ यस्य भासा सर्वमिदं विभाति सचराचरम् ॥ ५५ ॥ ततोऽतिकुतुकोद्वृत्तस्तिमितैकादशेन्द्रियः ॥ तद्धाम्नाऽऽभूदजस्तूष्णीं पूर्देव्यन्तीव पुत्रिका ॥ ५६ ॥

प्रत्येककी सेवा करतेथे इन सबकी स्वतंत्रता श्रीकृष्णचंद्रकी महिमाके सामने नष्ट होगईथी ॥ ५३ ॥ सत्यज्ञानरूप आनंद मात्र एकरस जो ब्रह्म मूर्तिवाले तथा जिनकी चक्षु आत्मज्ञान है ऐसे पुरुषभी जिनकी महिमाको नहीं जानसक्ते ऐसा रूप ब्रह्माजीने सबका देखा ॥ ५४ ॥ या प्रकार ब्रह्माजी एक संग समस्त बछरा बालकनकूं परब्रह्म देखतभये, जिस परब्रह्मकी कांति करि संपूर्ण स्थावर जंगम विश्व प्रकाशैहैं ॥ ५५ ॥ ताके पीछे बडे आश्चर्यसै ब्रह्माजीकी सब इन्द्री शिथिल होगई और उनके तेजते ब्रह्मा चुप होयगयो, जैसे ग्रामकी रक्षा करनवारी पूतरीके आगे

चार मुखकी सोनेकी प्रतिमा ठाढी होय या प्रकार ठाडौ भयो ॥ ५६ ॥ या प्रकार सरस्वतीके स्वामी तर्कना रहित, स्वप्रकाश सुख निधान प्रकृतिसे परे और जिनका ज्ञान ब्रह्मसे भिन्न वस्तुको मिथ्या प्रतिपादन करनेहारे उपनिषदों से होसक्ताहै उस अलौकिक रूपको देखकर और उस महिमाको विचार कर ' यह क्या है ' सोचते हुए ब्रह्माजी मोहित होगये, और उसके अवलोकन करनेकीभी सामर्थ्य न रहां तब भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने ब्रह्माजीकी यह दशा देखकर मायाका आवरण उनके उदयसे दूर करदिया अथवा दूरसो अर्थ यह ब्रह्मा लोकाभिमानी है यातै मेरी माया देखिवेको अधिकारी नहीं यह जानिके ताके ऊपर मायारूपी परदा फैलायदीयो ॥ ५७ ॥ ताके पीछे ब्रह्माजीकी इंद्रियां चेतन भईं तब जैसे

इतीरेशेऽतर्क्ये निजमहिमानि स्वप्रमितिके परत्राजातोऽतन्निरसनमुखब्रह्मकमितौ ॥ अनीशेऽपि द्रष्टुं किमिदमिति
वा मुह्यति सति चच्छादाजो ज्ञात्वा सपदि परमोऽजाजवनिकाम् ॥ ५७ ॥ ततोऽर्वाक्प्रतिलब्धाक्षः कः परेतवदु-
त्थितः ॥ कृच्छ्रादुन्मील्य वै दृष्टीराचष्टेदं सहात्मना ॥ ५८ ॥ सपद्येवाभितः पश्यन्दिशोऽपश्यत्पुरः स्थितम् ॥
वृन्दावनं जनाजीव्यद्रुमाकीर्णं समाप्रियम् ॥५९॥ यत्र नैसर्गदुर्वैराः सहासन्नृमृगादयः ॥ मित्राणीवाजितावासद्रुतरुट्-
तर्षकादिकम् ॥ ६० ॥ तत्रोद्वहत्पशुपवंशशिशुत्वनाट्यं ब्रह्माद्वयं परमनन्तमगाधबोधम् ॥ वत्सान्सखीनिव पुरः
परितो विचिन्वदेकः सपाणिकवलं परमेष्ठ्यचष्ट ॥६१॥ दृष्ट्वा त्वरेण निजधोरणतोवतीर्य पृथ्व्यां वपुः कनकदण्ड-
मिवातिपात्य ॥ स्पृष्ट्वा चतुर्मुकुटकोटिभिरङ्घ्रियुग्मं नत्वा मुदश्रुसुजलैरकृताभिषेकम् ॥ ६२ ॥

मृतक उठैहै ऐसे उठिके कष्टते नेत्रनकूं खोलिके अपने सहित ब्रह्माजी यह जगत देखत भये ॥ ५८ ॥ जब ब्रह्माजीनें चारों ओरकूं दृष्टि करी तौ सन्मुखही चहुं ओर प्रियपदार्थोंसे परिपूर्ण और मनुष्योंकी जीविकाके कारण वृक्षोंसे भरा पूरा वृंदावन देखा ॥ ५९ ॥ जिस वृंदावनमें स्वाभाविक वैर करनेहारे सिंह मृग और मनुष्य परस्पर मित्रकी समान रहतेहैं श्रीकृष्णचंद्रके संग रहनेसे सम्पूर्ण प्राणियोंका क्रोध और तृष्णा दूरहो गई ॥ ६० ॥ ता वृन्दावनमें गोपालवंशमें बालकपनेको आचरण करनेहारे अनंत अगाध ज्ञानस्वरूप बछरा और ग्वाल बालकनकूं पहले कीसी नाईं चराते और ढूंढते फिरते हाथमें दहीं भातकौ ग्रासलिये अद्वितीय परब्रह्म श्रीकृष्णचंद्रके दर्शन ब्रह्माजी करत हुए ॥ ६१ ॥ दर्शन करिकै ब्रह्मा अपने वाहन हंसपैते

शीघ्रताते उतरिके अपने देहको सुवर्णकी लठियाकी तुल्य डालके चारों मुकटनको अग्रभाग चरणारविंदमें लगाय दंडवत करिके आनंदके आंसुओंके सुंदर जलसे श्रीकृष्णको अभिषेक करत भये ॥ ६२ ॥ प्रथम जो महिमा देखी ताकी वारंवार सुधि करिके श्रीकृष्णचंद्रके चरणारविंदमें उठे फेरि गिरि परे ऐसी बडी देर ताईं ब्रह्मा पर्यौरह्यौ ॥ ६३ ॥ याके पीछे उठिके आंखीनकूं पोंछिके श्रीकृष्णचंद्रको दर्शन करि लज्जाके मारे नीची दृष्टि करिके हाथ जोरि थर थर कांपते कछु अक्षर निकसैं कछु नहीं निकसैं गदगद वाणीसूं ब्रह्माजी स्तुति करत भये ॥ ६४ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां पू० त्रयोदशोध्यायः ॥ १३ ॥ ब्रह्माजी कहैहैं हे स्तुति करिवे योग्य! श्यामघटाकी समान तुम्हारा शरीर है बिजुरी से

100

उत्थायोत्थाय कृष्णस्य चिरस्य पादयोः पतन् ॥ आस्ते महित्वं प्राग्दृष्टं स्मृत्वा स्मृत्वा पुनः पुनः ॥६३॥ शनैरथोत्थाय विमृज्य लोचने मुकुन्दमुद्वीक्ष्य विनम्रकन्धरः॥कृताञ्जलिः प्रश्रयवान्समाहितः सवेपथुर्गद्गदयैलतेलया॥६४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ॥ वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणुलक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥१॥ अस्यापि देव वपुषो मदनुग्रहस्य स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि ॥ नेशे महित्ववसितुंऽमनसान्तरेण साक्षात्तवैव किमुतात्मसुखानुभूतेः ॥ २ ॥

चटकीले पीतांबरकूं पहिरे हैं, गुंजानके कुंडल, मयूरपुच्छके मुकुटसे शोभायमान मुखारविंद है, वनमालाकूं पहिरे, दहीभातको ग्रास, वेतकी छरी, सींग वांसुरीकों लिये, अति सुन्दर कोमल चरणसैं विचरते गोपाल नंदजीके लाल आपको नमस्कार है ॥ १ ॥ हे देव! सच्चिदानन्द मेरे ऊपर कृपा करनेहारी और भक्तोंकी इच्छानुसार रूप धारनेहारी पंचभूत रहित यह आपकी मूर्ति शुद्ध सत्वयुक्त है इस तुम्हारे अवतारकीभी महिमाको मैं क्या कोईभी जाननेको समर्थ नहीं है तुम साक्षात् आत्मसुखके अनुभवरूप अवतारधारी हो तुम्हारी महिमाको मन रोककेभी कौन जानसकैहै अथवा पंचभूतमय विराट रूपकीही कोई महिमा जाननेमें समर्थ नहीं होयहै मेरे ऊपर आपने कृपा करिकै दर्शन दियाहै ॥ २ ॥

तौ अज्ञानी कैसे संसारके पार होंगे उसपे कहैं हैं हे अजित ! आप किसीके जीतनेमें नहीं आते परन्तु जो मनुष्य ज्ञानप्राप्ति करनेके परिश्रमको त्याग कर महात्माओंके मुखसे निकली तुह्मारी कथाकूं श्रवणद्वारा पान करकै मनवाणी देहसै अपने स्थानमें बैठे २ तुम्हारा अर्चन वंदन करकै जीते उन्हें कोई नहीं दुख देसक्ता और वे आपको अपने वशमें करलेतेहैं ॥ ३ ॥ हे विभो ! भुक्तिमुक्ति की देनवारी तुम्हारी भक्तिकूं त्यागिकै जे पुरुष अकेले ज्ञानी होयवेके लिये खेदकरे हैं, तिन पुरुषको खेदही शेष रहि जायहै, और कछु नहीं मिलैहै, जैसे जो पुरुष थोथे तुषनकूं कूटै उनकों दुःख ही मिलैहै और कछु हाथ नहीं लगैहै ॥ ४ ॥ हे व्यापक ! या संसारमें पहिले बहुतसे योगीश्वरोंको जब योगसे ज्ञानकी प्राप्ति न हुई तौ अपनी सम्पूर्ण

ज्ञाने प्रयासमुदपास्य नमन्त एव जीवन्ति सन्मुखरितां भवदीयवार्ताम् ॥ स्थाने स्थिताः श्रुतिगतां तनुवाङ्मनोभिर्ये प्रायशोऽजितजितोऽप्यसितैस्त्रिलोक्याम् ॥ ३ ॥ श्रेयःस्रुतिं भक्तिमुदस्य ते विभो क्लिश्यन्ति ये केवलबोधलब्धये ॥ तेषामसौ क्लेशल एव शिष्यते नान्यद्यथा स्थूलतुषावघातिनाम् ॥ ४ ॥ पुरेह भूमन्बहवोऽपि योगिनस्त्वदर्पितेहा निजकर्मलब्धया ॥ विबुद्ध्य भक्त्यैव कथोपनीतया प्रपेदिरेऽञ्जोऽच्युत ते गतिं पराम् ॥ ५ ॥ तथापि भूमन्महिमाऽगुणस्य ते विबोद्धुमर्हत्यमलान्तरात्मभिः ॥ अविक्रियात्स्वानुभवादरूपतो ह्यनन्यबोध्यात्मतया न चान्यथा ॥ ६ ॥ गुणात्मनस्तेऽपि गुणान्विमातुं हितावतीर्णस्य क ईशिरेऽस्य ॥ कालेन यैर्वा विमिताः सुकल्पैर्भूपांसवः खे मिहिका द्युभासः ॥ ७ ॥

क्रिया और कर्म आपको समर्पण करनेसै और कथा श्रवण करनेसै भक्तिको प्राप्त हो उसके द्वारा आत्मज्ञानकी प्राप्ति कर फिर अनायासही आपके पदको प्राप्तहुए ॥ ५ ॥ हे परिच्छेदरहित ! इस प्रकार आपके सगुण निर्गुण दोनों रूपका ज्ञान होना कठिन है और भक्तिसेही आप जाने जातेहो तोभी निर्मल अंतःकरणवाले जितेन्द्रिय महात्मा पुरुष आत्माकार अंतःकरणके साक्षात्कारसै निर्विकारतासै अरूपतासै अनन्य बोधसै आपकी महिमाको जानसक्तेहैं और किसी प्रकारसै आप जाननेमें नहीं आतेहो ॥ ६ ॥ आप गुणोंके आधार हो इस विश्वके कल्याण करिवेके लिये आपने अव-

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मगतं विपाकम् ॥ हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक् ॥ ८ ॥ पश्येश मेऽनार्यमनन्त आद्ये परात्मनि त्वय्यपि मायिमायिनि ॥ मायां वितत्येक्षितुमात्मवैभवं ह्यहं कियानैच्छमिवार्चिरग्नौ ॥९॥ अतः क्षमस्वाच्युत मे रजोभुवो ह्यजानतस्त्वत्पृथगीशमानिनः ॥ अजावलेपान्धतमोऽन्धचक्षुष एषोऽनुकम्प्यो मयि नाथवानिति ॥१०॥ क्काहं तमोमहदहंखचराग्निवार्भूसंवेष्टिताण्डघटसप्तवितस्तिकायः ॥ क्केदृग्विधाऽविगणिताण्डपराऽणुचर्यावाताध्वरोमविवरस्य च ते महित्वम् ॥ ११ ॥

तार लियाहै सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुण इनके तुम साक्षी हो आपके इतने गुण हैं जिनके गिनिवेके लिये कौन पुरुष सामर्थ्यमान होयगो, पुरुष बहुत दिनमें बहुतसे जन्म धरिके पृथ्वीकी रेणुकी गिनती करिलेय आकाशके हिमके मणिकानकी गिनती करिलेय स्वर्गके तारनकी गिनती करिसके परंतु तुम्हारे गुण गिनिवेमें नहीं आमें हैं ॥ ७ ॥ आप किससमय कृपा करैंगे इसकी वाट जोहते आसक्ति रहितहो अपने किये कर्मफल दुःखसुखको भोगते हृदय वाणी मनसे आपको प्रणाम करतेहुए प्राणीभी मुक्तिको प्राप्त होतेहैं ॥ ८ ॥ हे ईश्वर ! मेरी दुष्टता तो देखो कि तुम सम्पूर्ण मायावियोंके मोहित करनेहारे अनंतरूप परमात्मा हो तुमपरभी मैंने अपनी माया फैलायकर अपना वैभव देखनेकी इच्छा की सो इस्से क्या होयसकैहै जैसे अग्निके सामने स्फुलिंग तुच्छ है वैसे तुह्मारे सामने मैं तुच्छ हूं ॥ ९ ॥ हे अच्युत ! हे अखंडरूप ! मैंने रजोगुणसे उत्पन्न होनेके कारण आपके स्वरूप को न जाना तुमसे पृथकही ईश्वरकूं जाना, और मैं जगत्का कर्ता हूं इस मदसे अंधा होरहाहूं आप स्वामी हो मुझे अपना दास जान कर कृपा करिये क्योंकि मैं आपकी कृपाके योग्य हूं ॥ १० ॥ यदि तुम मुझे ब्रह्माण्डका नायक कहो तो हे भगवन् ! माया, महत्तत्त्व, अहंकार, आकाश, पवन, अग्नि, जल, पृथ्वी इनके बने ब्रह्माण्डमें सात बिलादिकी देहवाला मैं कहां, और आपके रोम कूपोंमों अनेक ब्रह्माण्ड विराजतेहैं ऐसी आपकी महा महिमा कहां इस कारण मोमें और आपमें बडो अंतर है ॥ ११ ॥

हे अधोक्षज अर्थात् इंद्रिनकरि जानिवेमें न आनेहारे! बालक गोदीमें बैठिके पांव उछारे, अथवा लात मारे तौ कहा माता वाको अपराध माने है, "तव श्रीकृष्णचंद्रने कही ब्रह्मा जो तेरी मा होय ताते जायके कहो मोते कहा कहै है" इस पर ब्रह्माजी बोले कि स्थूल सूक्ष्म कार्य कारणरूप सब विश्व तुम्हारे उदरमें विद्यमान है जो शब्दसे कहनेमें नहीं आता, जब जगत आपके उदरमें है तौ जगत्में रहनेसे मैंभी आपके उदरमें हुआ इस कारण मुझे अपना पुत्र जान मेरा अपराध क्षमा करो ॥ १२ ॥ भूर्लोक भुवर्लोक स्वर्लोक इन तीनोंका नाश होय जाय है तब चारों ओरते समुद्र उमडे हैं, तिसके भीतर नारायणकी नाभिसे कमल उत्पन्न होकर उस्से ब्रह्मा उत्पन्न होतेहैं क्या यह देववाणी मिथ्या है अर्थात् मिथ्या नहीं सत्य है जब

उत्क्षेपणं गर्भगतस्य पादयोः किं कल्पते मातुरधोक्षजागसे॥किमस्तिनास्तिव्यपदेशभूषितं तवास्ति कुक्षेः कियदप्यनन्तः॥ १२ ॥ जगत्त्रयान्तोदधिसंप्लवोदे नारायणस्योदरनाभिनालात् ॥ विनिर्गतोऽजस्त्विति वाङ्न वै मृषा किं त्वीश्वरात्मन्न विनिर्गतोऽस्मि ॥ १३ ॥ नारायणस्त्वं न हि सर्वदेहिनामात्माऽस्यधीशोऽखिललोकसाक्षी ॥ नारायणोऽङ्गं नरभूजलायनात्तच्चापि सत्यं न तवैव माया ॥ १४ ॥ तच्चेज्जलस्थं तव सज्जगद्वपुः किं मे न दृष्टं भगवंस्तदैव ॥ किं वा सुदृष्टं हृदि मे तदैव किन्नो सपद्येव पुनर्व्यदर्शि ॥ १५ ॥

कि मैं आपसे उत्पन्न हुआ हूं तौ तुम्हारे पुत्रहीहूं मेरे ऊपर कृपा करो ॥ १३ ॥ तब श्रीकृष्णचंद्र कहैंहैं ब्रह्मा तू अपने बापहीको भूलिजाय है नारायणको पुत्र होगयो मोकों कहा तहां कहै हैं, तुम कहा नारायण नहीं हो किंतु तुमही नारायण हो समस्त देहधारिनके आत्मा हौ हे अधीश! अर्थात् सबके प्रेरणा करनवारे समस्त लोकनकूं साक्षात् देखोहो, नरते भयो जो जल तिसमें तुम्हारो वास है तिस कारण नारायण नाम प्रसिद्ध है सो तुम्हारी मूर्ति है और जलमें वासहू सत्य नहीं है किंतु तुम्हारी माया है ॥ १४ ॥ जगतको आश्रयभूत तुम्हारो रूप जलके भीतर सत्य है तो जा समय मैंने कमलके भीतर साधिकर ढूंढो तब क्यों नहीं दिखाई दिये, हृदयमें भी नहीं दीखे और तपस्या करने पर तुरतही क्यों दृष्टिमें आई इस

कारण यह सब तुम्हारी मायाही है तुम्हारी मूर्तिमें किसी देशकालका परिच्छेद नहीं बनता ॥ १५ ॥ हे मायाके करनवारे! बाहिर भीतर समस्त विश्वके प्रकाश करनवारे यदि यह जलादिसा प्रपंच तुमसे पृथक् होय तो उस्से तुम्हारा परिच्छेद होना संभव है परन्तु यह मायासे उत्पन्न है यह बात आपने इस कृष्णावतारमेंही यशोदा मैयाको अपने उदरमें सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड दिखाकर प्रत्यक्ष करदी इस्सै यह प्रपंच मायाहीका कियाहुआ है ॥ १६ ॥ जिस तुम्हारे उदरके भीतर तुम सहित यह विश्व प्रकाशै है तैसैही बाहिर प्रकाशै है और तुम्हारे साथ इसका प्रकाश होना मायाके विनाही बनसक्ता जो बाहरके जगतका तुममें प्रतिबिंब पड़े तो वह बाहरकी वस्तु उलटी दीखनी चाहिये और यदि आपको दर्पण स्थानमें माना

अत्रैव मायाधमनाऽवतारे ह्यस्य प्रपञ्चस्य बहिः स्फुटस्य ॥ कृत्स्नस्य चान्तर्जठरे जनन्या मायात्वमेव प्रकटी
कृतं ते ॥ १६ ॥ यस्य कुक्षाविदं सर्वं सात्मं भाति यथा तथा ॥ तत्त्वय्यपीह तत् सर्वं किमिदं मायया विना ॥१७॥
अद्यैव त्वदृतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शितमेकोऽसि प्रथमं ततो व्रजसुहृद्वत्साः समस्ता अपि ॥ तावन्तोऽ-
सि चतुर्भुजास्तदखिलैः साकं मयोपासितास्तावन्त्येव जगन्त्यभूस्तदमितं ब्रह्माद्वयं शिष्यते॥१८॥अजानतां त्वत्प-
दवीमनात्मन्यात्मात्मना भासि वितत्य मायाम् ॥ सृष्टाविवाहं जगतो विधान इव त्वमेषोऽन्त इव त्रिनेत्रः ॥ १९ ॥

जाय तौ तुम्हारा दर्शन उसमें न होना चाहिये इस कारण यह सब मायाही है ॥ १७ ॥ तुम्हारे विना यह सब जगत मायारूप है क्या यह मायाही दिखाई है अब मायाको कहैं हैं प्रथम तुम अकेले हे पीछे संपूर्ण ब्रजके बछरारूप भये तिनमेंही समस्त चतुर्भुजरूप भये ता पीछे मैंने समस्त तत्वनको लैंके एक एक बछरा बालककी स्तुति करी तिनमेंही तुम ब्रह्माण्डरूप होयगये ता पीछे प्रमाण करिवेमें नहीं आये ऐसे अद्वितीय ब्रह्मरूप शेष रहे ॥ १८ ॥ सर्व व्यापक तुम्हारे स्वरूपको मायामें स्थित होयके जो नहीं जानेहैं तिन पुरुषके ऊपर माया फैलायके स्वतंत्रतासै आपके प्रकाशो हो जगत्के उत्पन्न करिवेके समय ब्रह्मा हो जाते हो और पालनसमय विष्णु होते हो और संहारसमयमें

तीन नेत्रवाले रुद्रसे होजातेहो ॥ १९ ॥ हे ईश ! हे प्रभु हे जन्मरहित विधाता ! देवतान में, ऋषीश्वरनमें, मनुष्यनमें, पशुपच्छिनमें, जलके जीवनमें तुम साधुनके ऊपर कृपा करिवेके लिये, दुष्टनके मद दूरी करिवेंके लिये जन्म लेउहो ॥ २० ॥ हे व्यापक हे भगवन् हे परात्मन् हे योगेश्वर ! आप जो योग मायाको विस्तार करिके जिस समय क्रीडा करते हो उन लीलाओंको त्रिलोकीमें कौन जाननेको समर्थ है कि वे कहां है कैसे हैं कितनी हैं और समयमें हैं ॥ २१ ॥ इस कारणसे यह मिथ्या स्वरूप स्वप्नकी तुल्य प्रकाशमान दुःखरूप यह समस्त जगत केवल तुम्हारे नित्य सुख चैतन्यमय अनंत स्वरूपमें मायासैं उत्पन्न होने और पश्चात् लय होनेके कारण नित्य सुख और चैतन्यसा विदित होताहै ॥ २२ ॥ एक आ-

सुरेष्वृषिष्वीश तथैव नृष्वपि तिर्यक्षु यादस्स्वपि तेऽजनस्य ॥ जन्माऽसतां दुर्मदनिग्रहाय पभो विधातः सदनुग्रहाय च ॥ २० ॥ को वेत्ति भूमन् भगवन् परात्मन् योगेश्वरोतीर्भवतस्त्रिलोक्याम् ॥ क्व वा कथं वा कति वा कदेति विस्तारयन् क्रीडसि योगमायाम् ॥२१॥ तस्मादिदं जगदशेषमसत्स्वरूपं स्वप्नाभमस्तधिषणं पुरुदुःखदुःखम् ॥ त्वय्येव नित्यसुखबोधतनावनन्ते मायात उद्यदपि यत् सदिवावभाति ॥२२॥ एकस्त्वमात्मा पुरुषः पुराणः सत्यः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः ॥ नित्योऽक्षरोऽजस्रसुखो निरञ्जनः पूर्णोऽद्वयो मुक्त उपाधितोऽमृतः ॥ २३ ॥ एवंविधं त्वां सकलात्मनामपि स्वात्मानमात्मात्मतया विचक्षते ॥ गुर्वर्कलब्धोपनिषत्सु चक्षुषा ये ते तरन्तीव भवानृताम्बुधिम् ॥ २४ ॥

त्मा कहिये व्यापक तुम एकही सत्यस्वरूप हो कारण कि आत्मा हो जो कुछ दृष्टिगोचर होताहै जहांतक मन जाताहै वह सब माया है आत्मा दृश्य नहीं इसकारण सत्य है आपमें कोई विचार नहीं इस कारण सत्यरूप हौ तुम सबके कारण स्वरूप हो सबमें व्यापक होनेसे पुरुष कहलाते हो तुम सनातन पूर्ण हो, सदां सुखस्वरूप हो अक्षर हो अमृत हो इस्से तुम्हारा कभी विनाश नहीं होता, तुम अनंत और अद्वैत हो इस कारण तुम्है देशकालका परिच्छेद नहीं तुम स्वयंप्रकाश उपाधि रहित असंग हो सदा मुक्त स्वरूप हो अमृत हो ॥२३॥ इस प्रकार तुम समस्त जीवोंके आत्मा हो जिन पुरुषौंने सूर्यरूप गुरुसै उपनिषदके ज्ञानरूप नेत्र प्रात लिये हैं वह महात्मा आत्मद्वाराही तुम्हारा दर्शन करकै संसारसागरके पार हो जाते हैं ॥२४॥

यावत् पर्यंत और प्राणी तुम आत्मस्वरूपको आत्मारूप नहीं जान्ते उनकूं अज्ञानसै यह सम्पूर्ण प्रपंच प्रगट भासता है और यही प्रपंच आत्मस्वरूपको जाननेसैं लय होताहै जबतक अज्ञान है तबतक रस्सी सर्प विदित होताहै जब ज्ञान होतीहै तब रस्सी जाननेमें आती है अज्ञानसै रज्जुमें सर्प जान्ना अध्यास है और ज्ञानसै रस्सीही जान्नी अपवाद है ॥ २५ ॥ संसारमें बंधन और मोक्ष दोनों अज्ञानसौ हैं सत्यज्ञानरूप आत्मासे

आत्मानमेवात्मतयाऽविजानतां तेनैव जातं निखिलं प्रपञ्चितम् ॥ ज्ञानेन भूयोऽपि च तत् प्रलीयते रज्ज्वामहेर्भोगभवाभवौ यथा॥२५॥अज्ञानसंज्ञौ भवबन्धमोक्षौ द्वौ नाम नान्यौ स्त ऋतज्ञभावात्॥अजस्रचिन्त्याऽऽत्मनि केवले परे विचार्यमाणे तरणाविवाहनी॥२६॥त्वामात्मानं परं मत्वा परमात्मानमेव च॥आत्मा पुनर्बहिर्मृग्य अहोऽज्ञजनताऽज्ञता॥२७॥

पृथक्‌ नहीं है. निरंतर चैतन्य रूप आत्मा परमेश्वर तुम हो ऐसा विचार करनेसे आत्मामें अज्ञान वा बन्धन कुछभी नहीं है जैसे सूर्यके निकट रात दिन नहीं है सदा प्रकाशही है ॥ २६ ॥ आत्मस्वरूप परब्रह्म आपको देह मानके और देहादिकूं आत्मा मानकर यहीं खोये हुए आत्मारूपी पदार्थको बाहर खोजना अहो यह मूर्खोंकी मूर्खता है कारण कि घरकी खोई वस्तु कोई वनमें ढुंढने नहीं जाता ॥ २७ ॥

---

१ विनाजाने झूंठभी सत्यमालूम पडैहै, जैसे एक राजाको एक पाखण्डीने "शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् । प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये" इस श्लोकके अर्थ दही वडेके बतादिये, कि दही सफेद उसमें लिपटाहोहै वोही शुक्लवस्त्र है, और वेवेष्टीति विष्णु विशेष लिपटा होनेसे विष्णुहै, गोलगोल चंद्रमाकेसा मुख है, और चतुर्भुजम् अर्थात् चतुरपुरुषोंके भोजन योग्यहै ध्यानकरतेही प्रसन्नमुख होजाताहै, सब गरमीके विघ्न शान्त होजाताहै, यह अर्थ राजाकूं बतादिया, राजाने उसकूं महात्मा जानकै मान्यसे रक्खा, जो विद्वान् आवै राजा उसीसे अर्थ पूछै, सब विष्णु भगवानकाही अर्थ करैं, अनेक पंडितोंका तिरस्कार हुआ, एक महात्माने विचारा कि यह राजा किसीका बहकायाहै, फिर विचारा कि यहां किसका अधिकमानहै, उस पाखण्डीका सतकार अधिक देखकै उसीके यहां जा रहै, और स्त्रीकी सेवा प्रेमसे करनलगे, एक दिन उसने प्रसन्नहोकै कहाकि पुत्र क्या इच्छा है मांग तब इसने कहा (शुक्लाम्बर) इसश्लोकके अर्थ अपने पतिसे पूछदो, वोह बोली आजहीलो जैसे वे आये तुरतपूछा इस श्लोकका क्या अर्थ है, वस 'नारिविवस नर सकल गुसाईं । नाच हिं नटमर्कटकीनाईं' तुरत बतादिया उससे उनमहात्माजीको बतादिया, वे राजाको सुनानेगये, राजा सुन्तेही बोले तुम बडे विद्वानहो, हमारे पास रहो, पंडितजी रहे और मनमें कहनेलगे मूर्खके निकट रहना अच्छा नहीं, इसे यातौ कुछपढावै, या कहीं चलै, जब राजासे पढनेको कहैतौ वोह पढनेलगा, व्याकरण पढनेसे थोडे दिनमें जब पदपदान्तक बोध होगया तौ राजा उस श्लोकको विचारने लगा, तौ कहांभी दही बडेका अर्थ न पाया, चकितहो पंडितजी और दूसरे महात्माको बुलाभेजा, आतेही राजाने उनसें क्रोधकर कहा तुमने बडा मुझे धोकादिया बताओ इसमें वह अर्थ कहाहै, पाखण्डीके तौ छक्के टूट गये, पंडितजी बोले मैंने क्या सवही माहात्माओंने शुद्ध अर्थ कियाथा, राजा जब क्यों न माना, तव राजा बोला उससमयमें अज्ञानी था, पंडितजी बोले बिनापढाये यह ज्ञान कभी नहीं होता, अब ज्ञान होनेसे समझै, ऐसेही मायाके वस हो यह उलटाही समझ रहाहै ॥

हे अनंत! साधु महात्मातौ यह भी आत्मा नहीं यहभी आत्मा नहीं ऐसे जड पदार्थकों निषेध करिके देहके भीतर तुमहीकौ ढूंढे हैं कारणकी अपने निकट यद्यपि सर्प नहीं है परन्तु उसका निषेध किये विना सत्य रज्जु जाननेमें नहीं आती सर्पके निषेध होनेके उपरान्त रस्सी जाननेमे आतीहै ॥२८॥ ज्ञानसे मुक्ति होय जाय है मुक्तिकी क्यौं बडाई करी तहां ब्रह्मा कहेहैं यद्यपि ज्ञान हाथमें प्राप्तहै सुगमहै तथापि आपके चरणारविंदनके प्रसादके

अन्तर्भवेऽनन्त भवन्तमेव ह्यऽतत्त्यजन्तो मृगयन्ति सन्तः ॥ असन्तमप्यऽन्त्यऽहिमन्तरेण सन्तं गुणं तं कि[illegible] यन्ति सन्तः ॥ २८ ॥ अथापि ते देव पदाम्बुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव हि ॥ जानाति तत्त्वं भगवन्महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ॥ २९ ॥ तदस्तु मे नाथ स भूरिभागो भवेऽन्यत्र वाऽन्यत्र तु वा तिरश्चाम् ॥ येनाहमेकोऽपि भवज्जनानां भूत्वा निषेवे तव पादपल्लवम् ॥ ३० ॥

कणिकानके कणिकानको अनुग्रह जापै भयो है वही तुम्हारी महिमाके स्वरूपको जानै है, जापै तुम्हारे चरणारविंदनकी कृपाही नहीं है वह और कोई पुरुष बहुत दिनपर्यंत ढूंढोकरे तौभी तुम्हारी महिमाको नहीं जाने * ॥ २९ ॥ हे नाथ! या ब्रह्माके जन्ममें अथवा और कोई जन्म होय तामें अथवा पशुपच्छीनमें जन्म होय तौ मैं अपना वड़ा भाग्य मानूगा जो तुम्हारे ब्रजवासीनमें कोई एक होयके तुम्हारे चरणारविंदको सेवन करै ॥ ३० ॥

---

* शुधभक्ति सैही मिलोहो एक राजानै दिवानसैं कही कोई ऐसी दवाहै जाके खायसै परमेश्वर मिले मंत्री ने कही हमारे परदादा परदेससै साढे तिन लाखकी ऐसीही पुडिया लाये है सोधरधरी हे राजा बोला मैं खाऊंगो तुमलाओ दिवान अपने घरजाय चुल्हेकी राखकी पुडिया बांधलाये राजासैं कही इलायची वंशलोचन सहतमें खइयो पर याको पथ्य जरूर करना और जो पथ्य ना करोगे तौ औषधि कहां पराक्रम करैगी तीन लाखकी दवाई वृथा जायगी विचार देखो जो रोगी पथ्यको करौ तौ रोगको जीतलेयहै और कुपथ्य करै तौ रोग औषधिको जीत लेईहै यातै पथ्यकी पुडिया खाय मनमें झूंठमत लैइयो और झूंठ मनमें आयो तौ भगवान ना मिलैंगे यह कह दिवानजी घरगये भोर भये स्नानकर राजा पुडिया खानैलग्यो सो मनमें झूंठी दवा मालूमपरी सो दवा धर मन वहलाय दोघडी पीछे फिर खानै लगै सो फिर झूंठ आंखोंके सामनै झूंठ आएगयो दवा फिर धरदेई ऐसेही तीनपहर बीतगये अब कछु खागये संध्याकूं दिवान आयो पूछी आपनै दवा खाईकि नहीं राजा बोले झूंठ तौ मनमेंसे निकसैही नहीं खांय कैसे दिवाननै कही यही इलाज भगवानके मिलनैको है जो मनमेंसै सब वासना निकरै शुद्धमनहोय तौ भगवान मिलै तनकभी अंतर होय तौ नहीं मिलते ।

देवताके जन्मते जा काहूके जन्मसे तुह्मारी भक्ति होय वह जन्म श्रेष्ठ है या प्रकार उत्कंठापूर्वक सात श्लोककरि स्तुति करैहै ॥ अहो आश्चर्य, ब्रजकी गऊ गोपी धन्य है हे प्रभु ! जिन गोपीनके स्तननको दूधरूप अमृत बछरा होयके तुमने आनंदसू पेटभरिके पियो तुह्मारी तृप्तिके लिये अब ताईं यज्ञहू पूर्ण नहीं होयहैं, कहा यज्ञनमेंहू तुम्हारो पेट नहीं भरै है, भगवान्के सखानकी महिमा कहिवेमें जानिवेमें नहीं आवै है ॥ ३१ ॥ ब्रह्माजी कहै हैं नंदरायजीके ब्रजबासीनको आश्चर्यरूप बडो भाग्य है परमानंद पूर्ण ब्रह्म सनातन जिन ब्रजवासीको सर्वदा मित्र होयरहो है ॥ ३२ ॥ इन ब्रजवासीनके भाग्यकी महिमा कहिवेकी कौनकी सामर्थ्य है इंद्रियनके अधिष्ठाता यज्ञदेवता महादेव बुद्धिके अधिष्ठाता मैं ब्रह्मा ऐसे ग्यारह देवता महादेवते आदिलेके हम बडभागी हैं, कोई ब्रजवासी इंद्रियरूप दोनोंनसूं तुम्हारे चरणारविंदको मकरंद अमृतकी तुल्य मधुर पीमें हैं जा

अहोऽतिधन्या व्रजगोरमण्यः स्तन्यामृतं पीतमतीव ते मुदा ॥ यासां विभो वत्सतरात्मजात्मना यत्तृप्तयेऽद्यापि न
चालमध्वराः ॥ ३१ ॥ अहो भाग्यमहो भाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम् ॥ यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णब्रह्म सनातनम् ॥ ३२ ॥
एषां तु भाग्यमहिमाऽच्युत तावदास्तामेकादशैव हि वयं बत भूरिभागाः ॥ एतद्धृषीकचषकैरसकृत् पिबामः शर्वादयोऽङ्घ्र्युदजमध्वमृतासवं ते ॥३३॥ तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद्गोकुलेऽपि कतमाङ्घ्रिरजोभिषेकम्॥
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान् मुकुन्दस्त्वद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥ ३४ ॥

समय ब्रजवासी तुम्हारै दर्शन नेत्रनते करे हैं तासमय नेत्रनको अधिष्ठाता सूर्य कृतार्थ होयजायहै कानन्ते तुम्हारी बात सुने हैं तब काननकें देवता दिशा कृतार्थ होजाय हैं नाकते तुह्मारी प्रसादि तुलसी सुंघे है; तब नाकके देवता अश्विनीकुमार कृतार्थ होजायहै हाथते तुह्मारी सेवा करें तब हाथके देवता कृतार्थ होयजाय हैं, याही प्रकार समस्त इंद्रियनके जानि लैने इंद्रियौंके सम्पूर्ण पदार्थोंके सेवन करनेहारे ब्रजवासीयोंके भाग्यकी महिमा कैसी कही जाय ॥ ३३ ॥ या मनुष्यलोकमें कदाचित् जन्म होय तो वृंदावनमें होय, ताहूमें गोकुलमें जन्म होय यह मेरे भाग्य होय तब श्रीकृष्णचंद्र कहैहै ब्रह्मा ! सत्यलोकको छोडिके यहां जन्मभयेते तोको कहा लाभ होयगो, तब ब्रह्मा कहैहै जा जन्ममें ब्रजवासीनके चरणनकी रज मेरे माथेपै परेगी वही मोको एक बडो लाभ होयगो, तब कृष्णचंद्र कहैहैं ब्रजवासी काहेतें धन्य हैं. तब ब्रह्मा कहैहै इन ब्रजवासीनको पूर्ण जीवन

है काहेते कि मुकुंदपरायण हैं, जिनके चरणारविंदकी रजकूं वेद ढूंढोकरै उसका मिलना अहो भाग्यहै ॥ ३४ ॥ इन व्रजवासीनकी कृतार्थन्‌ कहा वर्णन करूं जिनकी भक्तिते तुमहूं ऋणीसे होय रहेहो, तब श्रीकृष्णचंद्र कहेहैं में कहां देवेको असमर्थ हो जों ऋणीरहूं तहां ब्रह्मा कहे है हे देव ! अर्थात् प्रकाशमान समस्त फलरूप तुमहो ताते और फल इन व्रजवासीनको कहा देउगे यह जब विचार करेहैं तब, हमारो चित्त मोहित होतेहै तब श्रीकृष्णचंद्र कहेहै मैं अपनेको ऋणी होय जाउंगो तहां ब्रह्मा कहेहैं नहीं माताको स्वरूप धारिके पापनी पूतना आईही ताको अपनपो दीनो, तब कहे हैं व्रजवासीनको कुंटुबसहित अपनपो दूंगो तब ब्रह्मा कहे है पूतनाको कुटुंब अघासुर बकासुरको अपनपो दीयो. तब कृष्ण कहै हैं मेरे पास तो यही देवेकूं हैं तहां ब्रह्मा कहैं हैं जिन व्रजवासीनने घर धनहितकारी

एषां घोषनिवासिनामुत भवान् किं देवरातेति नश्चेतो विश्वफलात् फलं त्वदपरं कुत्राप्यऽयन्मुह्यति ॥ सद्वेषादिव पूतनापि सकुला त्वामेव देवाऽऽपिता यद्धामार्थसुहृत्प्रियात्मतनयप्राणाशयास्त्वत्कृते ॥ ३५॥ तावद्रागादयः स्तेनास्तावत् कारागृहं गृहम् ॥ तावन्मोहोऽङ्घ्रिनिगडो यावत् कृष्ण न ते जनाः॥३६॥ प्रपञ्चं निष्प्रपञ्चोऽपि विडम्बयसि भूतले ॥ प्रपन्नजनताऽऽनन्दसंदोहं प्रथितुं प्रभो ॥३७॥ जानन्त एव जानन्तु किं बहूक्त्या न मे प्रभो ॥ मनसो वपुषो वाचो वैभवं तव गोचरः ॥ ३८ ॥ अनुजानीहि मां कृष्ण सर्वं त्वं वेत्सि सर्वदृक् ॥ त्वमेव जगतां नाथो जगदेतत् तवार्पितम् ॥ ३९ ॥

प्यारे देह पुत्र प्राण अंतःकरण तुममें अर्पण करि राखेहैं तिन व्रजवासीनको और वैरिनको कहा बरोबरिहि राखोगे तुम परमेश्वरहो तो कहा भयो तुम्हारेहियां भलौं न्याय है ॥ ३५ ॥ तबताईं रागादिक चोर है, तबताईं घर बंदिखनो हैं, तबही तांई मोह पांवकी बेडी है, हे कृष्ण ! जबताईं जन तुम्हारे शरण नहीं लेइहैं तुम्हारे शरण लिये पीछे रागादिक जो है तेभी चोरते साह हो जाय है, और घर है सो तुम्हारे मंदिर होय हैं, और मोह छुडावनवारो होय जाय है ॥ ३६ ॥ हे प्रभो ! पृथिवी में शरणागत भक्तनकूं आनंद देवेकूं, संसारकरिके रहित हो, तौभी संसारको अनुकरण करो हो अर्थात् अवतार धारण करो हो ॥ ३७ ॥ जे पुरुष कहे हैं हम जाने है तेही जाने हैं हे प्रभो ! मैं बहुत कहा कहौं देहते बचनते तुम्हारो वैभव जानिवेमें नहीं आवै हैं ॥ ३८ ॥ हे कृष्ण ! मोको आज्ञा देउ तुम सम्पूर्ण जानौ हौ अर्थात् अपनी महिमा हमारो

ज्ञान बल पराक्रम समस्त के देखनेवारे हो तुमही जगत के नाथ हो मैनें ब्रह्मापनो छोड़ो तुमहीकौ जगत् दियो ॥ ३९ ॥ हे कृष्ण ! हे यदुकुल कमलकूं प्रीति के देनवारे ! यामें सूर्य्य की उपमा दीनी है पृथिवी के देवता ब्राह्मण पशु समुद्र इनके वृद्धि करनवारे यामें चन्द्रमा की उपमा आई है, पाखण्ड धर्म्मस्वरूप अंधकारकें नाश करनवारे यामें सूर्य्य चन्द्रमा दोनोंकी उपमा आई है, पृथ्वीपै कंसादिक राक्षसनके मारनवारे यामें फिरि सूर्य्यकी उपमा आई हे सूर्य्य हे अर्हन् ! सबके पूज्यभगवान् अर्थ छः प्रकारके ऐश्वर्य्य करि परिपूर्ण तुमको दण्डवत हैं ॥ ४० ॥ अब श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षिततें कहे हैं कि हे राजन् परीक्षित ! या प्रकार व्यापक श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति करि कल्पपर्य्यन्त तीन परिक्रमकर चरणारविन्दको नमस्कार करिके जगत्के विधाता ब्रह्मा श्रीकृष्णको पूजन करिके अपने ब्रह्मलोकको जातभयो ॥ ४१ ॥ तापीछे भगवान्ने ब्रह्माकी आज्ञा देके बछरा

श्रीकृष्ण वृष्णिकुलपुष्करजोषदायिन् क्ष्मानिर्जरद्विजपशूदधिवृद्धिकारिन् ॥ उद्धर्मशार्वरह रक्षितिराक्षसध्रुगाकल्पमार्कमर्हन् भगवन् नमस्ते ॥ ४० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिष्टूय भूमानं त्रिः परिक्रम्य पादयोः ॥ नत्वाऽभीष्टं जगद्धाता स्वधाम प्रत्यपद्यत ॥ ४१ ॥ ततोऽनुज्ञाप्य भगवान्स्वभुवं प्रागवस्थितान् ॥ वत्सान्पुलिनमानिन्ये यथापूर्वसखं स्वकम् ॥ ४२ ॥ एकस्मिन्नपि यातेऽब्दे प्राणेशं चान्तरात्मनः ॥ कृष्णमायाहता राजन्क्षणार्धं मेनिरेऽर्भकाः ॥४३॥ किं किं न विस्मरन्तीह मायामोहितचेतसः ॥ यन्मोहितं जगत्सर्वमभीक्ष्णं विस्मृतात्मकम् ॥ ४४ ॥ ऊचुश्च सुहृदः कृष्णं स्वागतं तेऽतिरंहसा ॥ नैकोऽप्यभोजि कवल एहीतः साधु भुज्यताम् ॥ ४५ ॥

लायके आगे ठाढे करिदिये, प्रथमकीसीनाईं ग्वाल मण्डली बैठी, वह यमुनाजीकी रेतीमें लावतभये, इतने दिनपर्य्यन्त बालक केसे यमुनातीर पै बैठे रहे, भूख प्यास भूलिगये, या प्रकार राजाने शङ्का करी तहां शुकदेवजी कहे हैं ॥ ४२ ॥ हे राजन् ! परीक्षित अपने प्राणनाथ श्रीकृष्णचन्द्र विना एक वर्ष वीतिगयो तथापि श्रीकृष्णचन्द्रकी मायाकरि मोहित भये बालकनकूं अधोक्षज व्यतीत होतभयो ऐसे मानतभये ॥ ४३ ॥ मायाकरि मोहित चित्त या संसार में कहा कहा नहीं भूले हैं सो समस्त जगत् माया से मोहित होयके वारम्वार अपने आत्माकूं भूलिरह्यो है ॥ ४४ ॥ अब सम्पूर्ण ग्वाल बाल श्रीकृष्णचन्द्रते बोले भैया भलो जलदी आयो, हमने तो तेरेविना एक ग्रासहू नहीं खायो है अब आओ हम भोजन करैं ॥ ४५ ॥

ऐसे बालकनने कही ताके पीछे इंद्रियनके प्रेरणा करनवारे श्रीकृष्णचंद्र श्रवण करिके हंसे, वर्षदिनको ग्रास करिगये और कहे हैं एकग्रासभी नहीं खायो, बालकनके संग भोजन करिके रस्तामें जो शुष्क अघासुरको देह परोहो ताकूं दिखावत व्रजमें बगदिके आवत भये ॥ ४६ ॥ मोर मुकुटको पहिरे, पुष्पनके गुच्छनको धारन करें नवीन धातु खरिया गेरू मनशिलकी विचित्र खोरि लगाये बडी सुन्दर बांसुरी सींगिका शब्द करते उत्सव मनाते श्रीकृष्णचंद्र बछरानकूं नाम लैलैके बुलावत व्रजमें आवत भये तासमय ग्वालबाल कृष्णके यश गाते चले और गोपियोंकी दृष्टिको उनका दर्शन उत्सवरूप भया ॥ ४७ ॥ कोई कहे यशोदाको बेटा है कोई कहै नंदरायजीको बेटा है एक तौ यह अर्थ है यशोदाको आनन्दके देनेवारे पुत्र श्रीकृष्णचंद्रने आज बडो सर्प मारोहै हमारी रक्षा वाते करी याप्रकार समस्त ग्वालबाल व्रजमें कहत भये ॥ ४८ ॥

ततो हसन्हृषीकेशोऽभ्यवहृत्य सहार्भकैः ॥ दर्शयंश्चर्माजगरं न्यवर्तत वनाद्व्रजम् ॥४६॥ बर्हप्रसूननवधातुविचित्रिताङ्गः प्रोद्दामवेणुदलशृङ्गरवोत्सवाढ्यः ॥ वत्सान् गृणन्ननुगगीतपवित्रकीर्तिर्गोपीदृगुत्सवदृशिः प्रविवेश गोष्ठम् ॥ ४७ ॥ अघानेन महाव्यालो यशोदानन्दसूनुना ॥ हतोऽविता वयं चास्मादिति बाला व्रजे जगुः ॥४८॥ राजोवाच॥ ब्रह्मन् परोद्भवे कृष्णे इयान् प्रेमा कथं भवेत् ॥ योऽभूतपूर्वस्तोकेषु स्वोद्भवेष्वपि कथ्यताम् ॥ ४९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सर्वेषामपि भूतानां नृप स्वात्मैकवल्लभः ॥ इतरेऽपत्यवित्ताद्यास्तद्वल्लभतयैव हि॥५०॥ तद्राजेन्द्र यथा स्नेहः स्वस्वकात्मनि देहिनाम् ॥ न तथा ममतालम्बिपुत्रवित्तगृहादिषु ॥ ५१ ॥ देहात्मवादिनां पुंसामपि राजन्यसत्तम ॥ यथा देहः प्रियतमस्तथा न ह्यनु ये च तम् ॥ ५२ ॥

अब राजा परीक्षित प्रश्न करे हैं कि हे ब्रह्मन् शुकदेवजी! पराये पुत्र श्रीकृष्णचंद्रमें इतनो प्रेम व्रजवासीनको कैसे भयो, अपने पुत्रनमेंभी इतनो प्रेम न भयो, यह मेरे आगे कहो, ॥४९॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित ! समस्त प्राणीनके साक्षात् आत्मा हैं याते श्रीकृष्णचंद्रमें प्रेम भयोही चाहै और जो स्त्री पुत्र वित्तादिक हैं ते आत्माके सुखदाई हैं याते प्रियहैं ॥ ५० ॥ ताकारणते हे राजेंद्र परीक्षित ! देहधारीनको जैसो अपने आत्मामें प्यारहै तैसो ममताके स्थान अपने पुत्र वित्त घर इनसूं आदिलैके जो वस्तु हैं तिनमें नहीं है ॥ ५१ ॥ हे क्षत्रीनमें श्रेष्ठ राजन् परीक्षित् ! देहको आत्मा कहे ऐसे पुरुषनकूंभी देह अतिप्रिय हैं और देहके अनुवर्त्ता जो स्त्री पुत्रादिक हैं ते देहकी अपेक्षा प्यारे नहीं लगे हैं ॥५२॥

और देहकूंभी मेरो देह है या प्रकार मानिले अर्थात् यह देह जब ममताका स्थान होजाय तब यह देह आत्माकी तुल्य प्यारो नहीं लगे हैं, जासमय यह देह जीर्ण हो जाय है तब निश्चय करिलेय हैं कि यह देह न रहैगो तथापि जीवनकी आशा बलवान् रहेहैं ॥ ५३ ॥ ता प्रकार समस्त देहधारीनको अपनो आत्माही प्यारो लगै है ता आत्माहीके लिये समस्त स्थावर जंगम न्यारो लगै हैं ॥ ५४ ॥ तुमने पूछी राजा परीक्षित ब्रजवासीको विराने पुत्र श्रीकृष्णचंद्रमें इतनो प्रेम क्यों भयो ताको उत्तर दियो अब आगेको प्रसंग कहैहैं समस्त देहधारीनके आत्मा जगत्के कल्याण करिवेके लिये देह धारणकर अपनी माया करिके प्रकाश करनेहारे श्रीकृष्णही हैं इसकारण उनपर प्रेम होना संभव हैं मायासे प्रकाश करो हो ॥ ५५ ॥ या विश्वके कारण श्रीकृष्णचंद्र है या प्रकार ये पुरुष माने है तिन पुत्रनकूं स्थावर कहिये वृक्षादिक, जंगम कहिये मनुष्यादिक

देहोऽपि ममताभाक्चेत्तर्ह्यसौ नात्मवत्प्रियः ॥ यज्जीर्यत्यपि देहेऽस्मिञ्जीविताशा बलीयसी ॥ ५३ ॥ तस्मात्प्रियतमः स्वात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ॥ तदर्थमेव सकलं जगदेतच्चराचरम् ॥ ५४ ॥ कृष्णमेनमवेहि त्वमात्मानमखिलात्मनाम् ॥ जगद्धिताय सोऽप्यत्र देहीवाभाति मायया ॥ ५५ ॥ वस्तुतो जानतामत्र कृष्णं स्थास्नु चरिष्णु च ॥ भगवद्रूपमखिलं नान्यद्वस्त्विह किंचन ॥ ५६ ॥ सर्वेषामपि वस्तूनां भावार्थो भवति स्थितः ॥ तस्यापि भगवान्कृष्णः किमेतद्वस्तु रूप्यताम् ॥ ५७ ॥ समाश्रिता ये पदपल्लवप्लवं महत्पदं पुण्ययशो मुरारेः ॥ भवाम्बुधिर्वत्सपदं परं पदं पदं पदं यद्विपदां न तेषाम् ॥ ५८ ॥

जो सम्पूर्ण है सो भगवान्कोही रूप है, कछु या संसारमें न्यारो नहीं है यह विदित होजाय है ॥ ५६ ॥ समस्त वस्तुनको परमार्थरूप कारणमें रहे है जैसे घटको रूप माटीमें रहे हैं; वा कारणहूको कारण श्रीकृष्ण भगवान् आपहै, श्रीकृष्णचंद्रते न्यारी वस्तु कहा है राजा तुमही कहो ॥ ५७ ॥ पवित्र वंश निर्मलकीर्ति मुरनामा दैत्यके शत्रु श्रीकृष्णचंद्रके महत् पुरुषनकूं आश्रय करिवेकों योग्य चरणारविंदरूपी नौकाको जिन पुरुषने आश्रय लियो है उनकूं संसाररूपी समुद्र बछराके खुरके जलकी समान होय है और वैकुंठ धाममें वास होयहै कभऊ विपत्ति नहीं होयहै वे पुरुष वगदिके संसारमें नहीं आवे हैं ॥ ५८ ॥

पांच वर्षकी उमरिमें जो श्रीकृष्णचंद्रने लीला करी सो छठे वर्षमें आयकै बालकननें कही जो राजा तुमनें पूछी सो संपूर्ण हमनें तुम्हारे आगे कही ॥ ५९ ॥ मुरनामा दैत्यके शत्रु श्रीकृष्णचंद्रने मित्रनके संग यह चरित्र कियेहैं अघासुरको मारो, यमुनातीरपै ग्वालबालनके संग भोजन करो, जड प्रपंचते न्यारो शुद्ध सतोगुणीरूप बछरा और ग्वालबालोंका रूप धरा, ब्रह्माने बडी स्तुति करी, या चरित्रको जो कोई पुरुष कहै अथवा श्रवण करै, वा पुरुषको सर्वथा अर्थकी प्राप्ति होय श्रीकृष्णचंद्रमें भक्ति होय ॥ ६० ॥ आँखि मिचौनीमें छिपि जानौ नदीनके पुल बांधने बंदरनकीसी नाईं कूदनो याप्रकार कौमार अवस्थाके खेल करिके ब्रजमें श्रीकृष्ण बलदेव कौमार अवस्था बितावत भये ॥ ६१ ॥ इति श्रीमन्महाभागवते भाषाटीकायां

एतत् ते सर्वमाख्यातं यत् पृष्टोऽहमिह त्वया ॥ यत् कौमारे हरिकृतं पौगण्डे परिकीर्तितम् ॥ ५९ ॥ एतत् सुहृद्भिश्चरितं मुरारेरघार्दनं शाद्वलजेमनं च ॥ व्यक्तेतरद्रूपमजोर्वभिष्टवं शृण्वन् गृणन्नेति नरोखिलार्थान् ॥ ६० ॥ एवं विहारैः कौमारैः कौमारं जहतुर्व्रजे ॥ निलायनैः सेतुबन्धैर्मर्कटोत्प्लवनादिभिः ॥ ६१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे ब्रह्मस्तुतिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततश्च पौगण्डवयःश्रितौ व्रजे बभूवतुस्तौ पशुपालसंमतौ ॥ गाश्चारयन्तौ सखिभिः समं पदैर्वृन्दावनं पुण्यमतीव चक्रतुः ॥ १ ॥ तन्माधवो वेणुमुदीरयन् वृतो गोपैर्गृणद्भिः स्वयशो बलान्वितः ॥ पशून् पुरस्कृत्य पशव्यमाविशद् विहर्तुकामः कुसुमाकरं वनम् ॥ २ ॥

दशमस्कन्धे पू० ब्रह्मस्तुतिर्नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥ अब श्रीशुकदेवजी राजा परीक्षिततें कहे हैं कि हे राजन् ! कौमार अवस्था बीती ताके पीछे पौगंड अवस्था लगी अर्थात् छठो वर्ष जब लगो तब ब्रजमें गाय चरायवे लायक कृष्ण बलदेव दोनों भैया भये, तब ग्वालनकूं संग लैके गऊनकूं चरावत अपनें चरणनसूं वृंदावनकूं अत्यंत पवित्र करत भये ॥ १ ॥ मधुवंशमें प्रकट भये श्रीकृष्णचंद्र अपनें यश गानेहारे ग्वालबालनको संग लैके और बलदेव भैयाको संग लैके, बांसुरीको बजावत गऊनको आगे करिके गऊनकी हितकारी पुष्पवाटिका जामें फूलि रही वा वृंदावनमें विहार करिवेको जातभये ॥ २ ॥

मधुर जिनकी बोली ऐसे भौंरा पशु पक्षी जामें वास करैं महत पुरुषनके मनकी तुल्य निर्मल जल जामें भर्यो ऐसे सरोवरते स्पर्श करिके कमलकी सुगन्धियुक्त पवन जामें चले ऐसे वृन्दावनको देखिके श्रीकृष्णचन्द्र के मनमें खेलवेकी इच्छा आवती भई ॥ ३ ॥ जहां तहां अरुण पल्लव निकसे हैं, तिनकी शोभा है, कली फल फूलन के बोझते झुकिके चरणनमें जिनकी शाखा लगैं ऐसे वृक्षनकूं देखिके बड़े आनन्दित हो, मुसिकायके आदिपुरुष श्रीकृष्णचन्द्र बड़े भैया बलदेवजीतें यह बोलत भये ॥ ४ ॥ श्रीभगवान् कृष्णचन्द्र कहे हैं हे देवतानमें श्रेष्ठ बलदेवजी! बड़ो आश्चर्य है ये वृन्दावनके वृक्ष, देवतों के पूजन योग्य तुम्हारे चरणारविन्दोंको फल फूल भेट लैलैके अपनी शाखानसों झुकिझुकिके प्रणाम करे हैं, काहेके लिये कि जा अज्ञानते हमारो वृक्षजन्म भयो है वह अज्ञान दूरि होयजाय इसकारण ॥ ५ ॥ हे आदिपुरुष ! सब लोकनको पवित्र करनवारो तुम्हारो यश है

तन्मञ्जुघोषालिमृगद्विजाकुलं महन्मनःस्वच्छपयःसरस्वता॥वातेन जुष्टं शतपत्रगन्धिना निरीक्ष्य रन्तुं भगवान् मनो
दधे॥३॥स तत्र तत्रारुणपल्लवश्रिया फलप्रसूनोरुभरेण पादयोः॥ स्पृशच्छिखान् वीक्ष्य वनस्पतीन् मुदा स्मयन्निवाहा-
ग्रजमादिपूरुषः॥४॥श्रीभगवानुवाच॥अहो अमी देववरामरार्चितं पादाम्बुजं ते सुमनःफलार्हणम्॥नमन्त्युपादाय शि-
खाभिरात्मनस्तमोऽपहत्यै तरुजन्म यत्कृतम्॥५॥ एतेऽलिनस्तव यशोऽखिललोकतीर्थं गायन्त आदिपुरुषानुपदं भज-
न्ते॥प्रायो अमी मुनिगणा भवदीयमुख्या गूढं वनेऽपि न जहत्यनघात्मदैवम्॥६॥नृत्यन्त्यमी शिखिन ईड्य मुदा हरि-
ण्यः कुर्वन्ति गोप्य इव ते प्रियमीक्षणेन॥सूक्तैश्च कोकिलगणा गृहमागताय धन्या वनौकस इयान् हि सतां निसर्गः॥७॥

ताय भौंरा निरन्तर गावत तुम्हारौ भजन करे हैं, बहुधा ये भौंरा तुम्हारे मुख्य भक्तनमें मुनिजन हैं, हे पापरहित ! या वनके विषे मनुष्यरूप धरे छिपे तुम देवकूं ये मुनिजन नहीं छोड़ै हैं, भौंरापनमें छिपिके तुम्हारो भजन करे हैं ॥ ६ ॥ हे स्तुतिकरिवे के योग्य! आनन्दते ये वृन्दावन के मोर तुम्हारे आगे नृत्य करैं हैं, और ये हरिणी गोपीन के तुल्य चितवन ते तुमपै प्यार करै हैं, और ये कोकिलान के समूह इनको वृन्दावन घर है सो हमारे आने से सुन्दर बोलीनसों सत्कार करे हैं, ये वृन्दावनवासी धन्य हैं, साधुन को यही स्वभाव है; बड़े पुरुष अपनें घर आमें तो जो कछु अपने पास फूल फल होय सो उनकी भेट करैं ॥ ७ ॥

115

यह पृथ्वी अव वडी धन्य है तुह्मारे चरणारविंदकूं स्पर्श करैहै, और ये तृणभी धन्य हैं तुम्हारे नखको स्पर्श करे हैं, और ये लता वृक्ष धन्य हैं, नदी पर्वत पच्छी वनके पशु धन्य हैं, जो तुह्मारी दयापूर्वक चितवन करैहैं, और जा वक्षस्थलकी लक्ष्मी चाहना करे ताको स्पर्श गोपीनकूं होय है, याते गोपीभी धन्य हैं ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले या प्रकार शोभायमान वृन्दावनमें प्रसन्न मन श्रीकृष्णचंद्र पर्वतके समीप यमुनाजीके तीरमें गऊनको चरावत ग्वालबालनकों संग लेके खेलतभये ॥ ९ ॥ मदोन्मत्त भौंरा जा समय गुंजार करे हैं तब श्रीकृष्णचंद्र आप गामें हैं और ग्वालबाल जिनके चरित्रनको गामें हैं, वनमाला पहिरे हैं, बलदेवजी संग हैं ॥ १० ॥ कहूं राजहंसनमें कोई हंस बोले है ताके पीछे श्रीकृष्णचंद्र

धन्येयमद्य धरणी तृणवीरुधस्तत्पादस्पृशो द्रुमलताः करजाभिमृष्टाः ॥ नद्योऽद्रयः खगमृगाः सदयावलोकैर्गोप्योऽन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं वृन्दावनं श्रीमत् कृष्णः प्रीतमनाः पशून् ॥ रेमे संचारयन्नद्रेः सरिद्रोधस्सु सानुगः ॥ ९ ॥ क्वचिद् गायति गायत्सु मदान्धालिष्वनुव्रतैः ॥ उपगीयमानचरितः स्रग्वी संकर्षणान्वितः ॥ १० ॥ क्वचिच्च कलहंसानामनुकूजति कूजितम् ॥ अभिनृत्यति नृत्यन्तं बर्हिणं हासयन् क्वचित् ॥ ११ ॥ मेघगम्भीरया वाचा नामभिर्दूरगान् पशून् ॥ क्वचिदाह्वयति प्रीत्या गोगोपालमनोज्ञया ॥१२॥ चकोरक्रौञ्चचक्राह्वभारद्वाजांश्च बर्हिणः ॥ अनुरौति स्म सत्त्वानां भीतवद् व्याघ्रसिंहयोः ॥ १३ ॥

आप बोले हैं, कभऊ अपने संगके मित्रनको हंसायवेके लिये मोर नाचतो देखिके वाके सन्मुख आपहू जामा फैलायकै नाचे हैं ॥ ११ ॥ कभऊ एक गऊ जब दूरि निकसि जाय है तब मेघ जैसे गरजे ऐसे गर्जके प्रसन्न होयके उनको नाम लैलैके बुलामें हैं, वह बोलनो गऊनको ग्वालबालनकूं बहुत प्यारो लगैहै ॥ १२ ॥ चकई चकोर चकवा फडरिया मोर इनकीसी बोली बोलेहैं, कभऊ एक व्याघ्र सिंहते डरपिके और सब जनावर भाजेहैं तब आपहू भाजेहैं या प्रकार लीला करैहैं ॥ १३ ॥

---

१ दोहा—कबहु बजावत बासुरी, कबहु नचावत मोर ॥ कबहूं खेलत सखनसंग, मोहन नन्दीकशोर ॥

काहू समय खेलत खेलत बलदेवजीको परिश्रम होयजायहै तब काहू गोपकी गोदको तकिया बनायकै सोइजाय हैं तब श्रीकृष्णचंद्र आय उनके चरण दाबिके पंखा करिके श्रम दूरि करैहै ॥ १४ ॥ कभऊ एक समय ग्वालबाल नाचें गामें दौरे हैं, आपसमें कुस्ती लडें, तब उनके हाथ पकरिके हंसिके कृष्ण बलदेव दोनों भैया कहैहैं भले नाचें भले गाये या प्रकार बडाई करैहैं ॥ १५ ॥ काहू समय जब कुस्तीमें परिश्रम होयहै तब श्रीकृष्णचंद्र वृक्षकी जरमें पत्तानकी शय्यापै गोपोंकी गोदको तकिया करिके सोमैंहैं ॥ १६ ॥ हे राजा परीक्षित! कोई ग्वालबाल महात्मा श्रीकृष्णचंद्रके चरण दाबतभये, पाप रहित ग्वाल पत्तानके पंखानते बयारि करत भये ॥ १७ ॥ और स्नेहभरी बुद्धिसै हैं ते, महात्मा श्रीकृष्णचंद्रको नींद जिनते आय जायऐसे

क्वचित् क्रीडापरिश्रान्तं गोपोत्सङ्गोपबर्हणम् ॥ स्वयं विश्रमयत्यार्यं पादसंवाहनादिभिः ॥ १४ ॥ नृत्यतो गायतः क्वापि वल्गतो युध्यतो मिथः ॥ गृहीतहस्तौ गोपालान् हसन्तौ प्रशशंसतुः ॥ १५ ॥ क्वचित् पल्लवतल्पेषु नियुद्धश्रमकर्शितः ॥ वृक्षमूलाश्रयः शेते गोपोत्सङ्गोपबर्हणः ॥ १६ ॥ पादसंवाहनं चक्रुः केचित् तस्य महात्मनः ॥ अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ॥ १७ ॥ अन्ये तदनुरूपाणि मनोज्ञानि महात्मनः ॥ गायन्ति स्म महाराज स्नेहक्लिन्नधियः शनैः ॥ १८ ॥ एवं निगूढात्मगतिः स्वमायया गोपात्मजत्वं चरितैर्विडम्बयन् ॥ रेमे रमालालितपादपल्लवो ग्राम्यैः समं ग्राम्यवदीशचेष्टितः ॥ १९ ॥ श्रीदामा नाम गोपालो रामकेशवयोः सखा ॥ सुबलस्तोककृष्णाद्या गोपाः प्रेम्णेदमब्रुवन् ॥ २० ॥

प्यारे प्यारे मलारके पद हौले हौले गावत भये ॥ १८ ॥ या प्रकार अपनी मायासूं अपनो ईश्वररूप छिपाये चरित्र करिके गोपबालकको अनुकरण करते लक्ष्मी जिनके चरणपैं लोटै वे श्रीकृष्णचंद्र ग्रामके रहनवारे ब्रजवासीनके संग उनईकी तुल्य खेलतभये, नीचबीच कभऊ ईश्वरपनेकी चेष्टा दिखायदेइहैं ॥ १९ ॥ ईश्वरपनेकी चेष्टा दिखायवेकें लिये कहैहैं राम कृष्णके मित्र श्रीदामा नाम गोप सुबल स्तोक कृष्ण आदि लैके और गोप हैं ते प्रेमते यह बोलत भये ॥ २० ॥

हेराम ! हेराम ! हे बडे भुजावारे हे दुष्टनके मारनवारे कृष्णचंद्र ! यहांते थोरीसी दूरि पै तालवन है ॥ २१ ॥ वा तालवनमें बहुतसे तालनके फल टूटे परेहैं औरहू टूटिके गिरेहैं परंतु दुष्ट धेनुकासुर वहां रहेहै ताने रोकि राखेहैं न वह आप खायहै न काहूकों खानदेयहै ॥ २२ ॥ हे राम ! हे श्रीकृष्णचंद्र ! गधाको रूप धरे वह असुर बडो पराक्रमी है, और अपनी बराबर बल ज्ञाति भाईभी बहुत वाके संग हैं ॥ २३ ॥ हे दुष्टनके मारनवारे ! केसो वह दुष्ट है मनुष्यनकूं खाय जाय है, वाके भयते मनुष्य वहां नहीं जाय हैं पशुनके समूह और पक्षीनके समूह कोईभी वहां नहीं जाय हैं ॥ २४ ॥

राम राम महाबाहो कृष्ण दुष्टनिबर्हण ॥ इतोऽविदूरे सुमहद् वनं तालालिसंकुलम् ॥२१॥ फलानि तत्र भूरीणि पतितानि पतन्ति च ॥ सन्ति किं त्ववरुद्धानि धेनुकेन दुरात्मना॥२२॥ सोऽतिवीर्योऽसुरो राम हे कृष्ण खररूपधृक्॥ आत्मतुल्यबलैरन्यैर्ज्ञातिभिर्बहुभिर्वृतः ॥ २३ ॥ तस्मात् कृतनराहाराद् भीतैर्नृभिरमित्रहन् ॥ न सेव्यते पशुगणैः पक्षिसंघैर्विवर्जितम् ॥ २४ ॥ विद्यन्तेऽभुक्तपूर्वाणि फलानि सुरभीणि च ॥ एष वै सुरभिर्गन्धो विषूचीनोऽवगृह्यते ॥ २५ ॥ प्रयच्छ तानि नः कृष्ण गन्धलोभितचेतसाम् ॥वाञ्छास्ति महती राम गम्यतां यदि रोचते॥२६॥एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया ॥ प्रहस्य जग्मतुर्गोपैर्वृतो तालवनं प्रभू॥२७॥ बलः प्रविश्य बाहुभ्यां तालान् संपरिकम्पयन् ॥ फलानि पातयामास मतङ्गज इवौजसा ॥ २८ ॥ फलानां पततां शब्दं निशम्यासुररासभः ॥ अभ्यधावत् क्षितितलं सनगं परिकम्पयन् ॥ २९ ॥

काहूने पहिले खाये नहीं ऐसे सुगंधि युक्त वा वनमें फल हैं न मानो तो चारों ओर सुगंधि फैलि रहीहै ताकूं सूंघिलेउ ॥ २५ ॥ हे श्रीकृष्णचंद्र ! सुगंधिसे हमारे चित्त लुभाय गये हैं हमकौ वे फल देउ, हमारी बडी वांछा है तुमकौ अच्छी लगे तो वा तालवनमें चलैं ॥ २६ ॥ या प्रकार मित्रनको वचन श्रवण करिके हंसिके मित्रनके प्रिय करिवेके लिये मित्रनको संग लैके समर्थ श्रीकृष्णचंद्र बलदेव दोनों भैया तालवनमें जात भये ॥ २७ ॥ वहां जायके बलदेवजीनें ताल बजायके भुजानते फल पटके, जैसे बलते मतवारो हाथी पटके है ॥ २८ ॥ पृथ्वी पै फल जो

118

गिरे तिनको शब्द श्रवण करिके गर्द्दभरूप धेनुकासुर पर्वतन सहित पृथ्वीको कंपायमान करत दौरिके सन्मुख आवत भयो ॥ २९ ॥ बली जोरा
वर दुष्ट धेनुकासुर शीघ्रतासूं आयकै पिछिले दोनों पांवनतें छातीमें लात मारिके शब्द करिके भाजत भयो ॥ ३० ॥ हे राजन् परीक्षित !
क्रोधमें भरोभयो धेनुकासुर फेरि आयके मुख फेरिके ठाढो भयो, और क्रोध करिके बलदेवजीकूं पिछले पांवनकी दुलत्ती फेंकत भयो ॥ ३१ ॥
बलदेवजी धेनुकासुरके दोनों पाव पकरिकै एक हाथते फिरायके वृक्षके ऊपर फेंकत भये फिरावतमें वाके प्राण निकसिगये ॥ ३२ ॥ धेनुका-
सुरको मारि वृक्षपै फेक्यों तासूं बडो भारी तालवृक्ष टूटिके गिरच्यो तासूं दूसरो पासमें तालवृक्ष हो सो गिरो ताकी चपेटसूं और हलिके तालवृक्ष

समेत्य तरसा प्रत्यक् द्वाभ्यां पद्भ्यां बलं बली ॥ निहत्योरासि काशब्दं मुञ्चन्पर्यसरत्खलः ॥ ३० ॥ पुनरासाद्य संरब्ध
उपक्रोष्टा पराक् स्थितः ॥ चरणावपरौ राजन्बलाय प्राक्षिपद्रुषा ॥ ३१ ॥ स तं गृहीत्वा प्रपदोर्भ्रामयित्वैकपाणिना ॥
चिक्षेप तृणराजाग्रे भ्रामणत्यक्तजीवितम् ॥ ३२ ॥ तेनाहतो महातालो वेपमानो बृहच्छिराः ॥ पार्श्वस्थं कम्पय-
न्भग्नः स चान्यं सोऽपि चापरम् ॥ ३३ ॥ बलस्य लीलयोत्सृष्टखरदेहहताहताः ॥ तालाश्चकम्पिरे सर्वे महावातेरिता
इव ॥ ३४ ॥ नैतच्चित्रं भगवति ह्यनन्ते जगदीश्वरे ॥ ओतप्रोतमिदं यस्मिंस्तन्तुष्वङ्ग यथा पटः ॥ ३५ ॥ ततः कृष्णं च
रामं च ज्ञातयो धेनुकस्य ये ॥ क्रोष्टारोऽभ्यद्रवन्सर्वे संरब्धा हतबान्धवाः ॥ ३६ ॥ तांस्तानापततः कृष्णो रामश्च नृप
लीलया ॥ गृहीतपश्चाच्चरणान्प्राहिणोत्तृणराजसु ॥ ३७ ॥

गिरे या प्रकार अनेक तालवृक्ष गिरत भये ॥ ३३ ॥ बलदेवजीसे खेल करिके फेंके भयो गधाके देहको चपेट जो लगी, तासूं सगरे तालके
वृक्ष हलत भये जैसे बडी आंधीमें हले हैं ॥ ३४ ॥ जिनका अंत नहीं, जगत्के ईश्वर भगवान् बलदेवजी तिनमें यह कछु आश्चर्य नहीं है
जिन बलदेवजीमें यह सब विश्व ओतप्रोत होत रहो है, जैसे कपरा ताने वानेमें ओतप्रोत है ॥ ३५ ॥ जब धेनुकासुर गधानमें मुखिया
मारच्यो गयो, तब धेनुकासुरकी जातिके संपूर्ण गधा क्रोधमें भरिके कृष्ण बलदेवके सन्मुख दौरिके आवत भये ॥ ३६ ॥ हे राजन् परीक्षित !
कृष्ण बलदेव दोनों भैया जे जे गधा आये तिनके पांव पकरिके वृक्षनके ऊपर फेंकत भये ॥ ३७ ॥

लाल लाल फल टूटिके गिरेहैं, श्वेत श्वेत गधाइनके मारे देह परेहैं लीली लीली लता टूटी परी हैं तासों धरती बहुत शोभायमान लगति
भई जैसे लाल सफेद लीली घटानसूं आकाश सुंदर लगेहैं ॥ ३८ ॥ देवता या प्रकार उत्कृष्ट कर्म्म श्रीकृष्ण बलदेवजीको देख प्रसन्न होयके
फूल वर्षावत भये, बडे २ नाना प्रकारके बाजे बाजत भये देवता स्तुति करत भये ॥ ३९ ॥ जब धेनुकासुर मारो गयो ताके पीछे भय रहित-
होय बहुत मनुष्य तालके फल खात भये तब वा वनमें गऊ घासकूं चरत भई ॥ ४० ॥ अनुचर गोप जिनकी स्तुति कर रहे हैं कमल पत्रसे विशा

फलप्रकरसंकीर्णा दैत्यदेहैर्गतासुभिः ॥ रराज भूः सतालाग्रैर्घनैरिव नभस्तलम् ॥ ३८ ॥ तयोस्तत् सुमहत् कर्म नि-
शम्य विबुधादयः ॥ मुमुचुः पुष्पवर्षाणि चक्रुर्वाद्यानि तुष्टुवुः ॥ ३९ ॥ अथ तालफलान्यादन् मनुष्या गतसाध्वसाः ॥
तृणं च पशवश्चेरुर्हतधेनुककानने ॥ ४० ॥ कृष्णः कमलपत्राक्षः पुण्यश्रवणकीर्तनः ॥ स्तूयमानोऽनुगैर्गोपैः साग्रजो
व्रजमाव्रजत् ॥४१॥ तं गोरजश्छुरितकुन्तलबद्धबर्हवन्यप्रसूनरुचिरेक्षणचारुहासम् ॥ वेणुं क्वणन्तमनुगैरनुगीतकीर्तिं
गोप्यो दिदृक्षितदृशोऽभ्यगमन् समेताः ॥ ४२ ॥ पीत्वा मुकुन्दमुखसारघमक्षिभृङ्गैस्तापं जहुर्विरहजं व्रजयोषितोऽ-
ह्नि ॥ तत्सत्कृतिं समधिगम्य विवेश गोष्ठं सव्रीडहासविनयं यदपाङ्गमोक्षम् ॥ ४३ ॥

ल जिनके नेत्र और पवित्र जिनकी कथानको श्रवण हैं वे श्रीकृष्णचंद्र बलदेवजी सहित ब्रजमें आवत भये ॥ ४१ ॥ गऊनके खुरनकी रज
जो उडी है तासों अलकैं जिनकी धूसरी होय रही हैं, मोरपुच्छनके मुकुटनकूं पहिरे, वनके फूलनके तुर्रा टांगे, सुन्दर चितमन, मनोहर
जिनकी हंसन, बांसुरीकूं बजामें, ग्वाल बाल जिनके यशको गामें, उन श्रीकृष्णचंद्रके देखिवेके लिये सब गोपी जुरमिलके आवत भई ॥ ४२ ॥
ब्रजकी योषिता नेत्ररूपी भौंरानसों श्रीकृष्णचंद्रके मुखकमलतें सुन्दरतारूपी अमृतकूं पीके दिन दिनमें श्रीकृष्णके बिरहमें जो ताप हैं ताय

---

[१] कवित्त ॥ मोरनके मुकुटमाथेहाथमेलकुटराजेसाजेगुंजमालगलेललितलरनतें, सुन्दरकपोलश्रुतिकुंडलकीझलकराजैजुल्फअमोलभरेगोरजकनकतें । गौअनकेआछेपाछेकाछने
काछनी कोकाछरागगौरीगावतगवावतसखनतें, आनंदकेकन्दव्रजलोचनचकोरचन्दमन्दमन्दआवतगोविंदवृन्दावनतें ॥

छोडत भई, लाज भरी मुसिकानी, कटाक्षभरी चितमनसूं सत्कार करे है, ताय प्राप्त होयके ब्रजमें जात भई ॥ ४३ ॥ पुत्रनमें जिनको प्यार वे यशोदा रोहिणी अपनें पुत्रनकूं जैसी उनकी कामना होय जैसो देखे है तैसोही आशीर्वाद देयहैं और सब पदार्थ बनाय राखैं हैं ॥ ४४ ॥ ब्रजमें आयके स्नान उवटनों इत्यादिकनसूं मार्गको परिश्रम दूरकर श्रीकृष्ण बलदेवजी सुन्दर पीतांबर पहिरें, माला गंध चंदन लगाय बडी शोभाको प्राप्त होत भये ॥ ४५ ॥ कृष्ण बलदेव दोनों भैयानकूं माता थार परोसि लाई जो सुन्दर सामग्री हैं ताय भोजन करिके मैयानें लाडलड़ाये तब शैयापै जायके ब्रजमें सुखपूर्वक शयन करत भये ॥ ४६ ॥ हे राजन् परीक्षित! या प्रकार वृंदावनविहारी श्रीकृष्णभगवान् कबऊ एक बलदेवजी विना आपही ग्वालनबालनकूं संग लैके यमुनातीरपै जात भये ॥ ४७ ॥ गरमीकी धूपसों व्याकुल गऊ आर ग्वालबाल प्याससूं पीडित होयके कालीके विषसै दूषित यमुना जलकूं पीवत भये ॥ ४८ ॥ हे कुरुवंशीनमें भये राजा परीक्षित्! वा विषके जलको पीके दैवने चित्त जिनके हरि लिये प्राण जिनके निकसि गये समस्त ग्वालबाल गऊ किनारेपर गिरत भये ॥ ४९ ॥ योगेश्वरनके ईश्वर श्रीकृष्णचंद्र भगवान् अपने मित्र ग्वालबाल और गऊनको मरे देखिके अपनी अमृतवर्षिणी दृष्टितै देखिकै सबको जिवावत भये ॥ ५० ॥ शीघ्रही स्मरण जिनको होय आयो वे ब्रजवासी जलके किनारेपैते उठिके बडो आश्चर्य मानते भये आपुसमें देखन लगे ॥ ५१ ॥

तयोर्यशोदारोहिण्यौ पुत्रयोः पुत्रवत्सले ॥ यथाकामं यथाकालं व्यधत्तां परमाशिषः ॥ ४४ ॥ गताध्वानश्रमौ तत्र मज्जनोन्मर्दनादिभिः॥ नीवीं वसित्वा रुचिरां दिव्यस्रग्गन्धमण्डितौ॥४५॥जनन्युपहृतं प्राश्य स्वाद्वन्नमुपलालितौ ॥ संविश्य वरशय्यायां सुखं सुषुपतुर्व्रजे॥४६॥ एवं स भगवान् कृष्णो वृन्दावनचरः क्वचित्॥ ययौ राममृते राजन् कालिन्दीं सखिभिर्वृतः ॥४७॥ अथ गावश्च गोपाश्च निदाघातपपीडिताः ॥ दुष्टं जलं पपुस्तस्यास्तृषार्ता विषदूषितम् ॥४८॥ विषाम्भस्तदुपस्पृश्य दैवोपहतचेतसः ॥ निपेतुर्व्यसवः सर्वे सलिलान्ते कुरूद्वह ॥ ४९ ॥ वीक्ष्य तान् वै तथाभूतान् कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ ईक्षयाऽमृतवर्षिण्या स्वनाथान् समजीवयत् ॥ ५० ॥ ते संप्रतीतस्मृतयः समुत्थाय जलान्तिकात् ॥ आसन् सुविस्मिताः सर्वे वीक्षमाणाः परस्परम् ॥ ५१ ॥

विषको पीके प्राण निकसि गये फिरि जो जी उठे व्रजवासी इसै श्रीकृष्णचंद्रकी कृपादृष्टि मानत भये ॥ ५२ ॥ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभा-
षाटीकायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे धेनुकवधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥ ॥ श्रीशुकदेवजी कहेहैं कि हे राजन् परीक्षित ! प्रभु श्रीकृष्णचंद्र काली
सर्पसूं कालिंदी यमुनाकौ बिगरी देखिके शुद्ध करिवेके कारण वा कालीसर्पकूं निकासत भये ॥ १ ॥ अब राजा परीक्षित पूछे है कि भगवान्
श्रीकृष्णचंद्र अगाध जलके भीतर कैसे कालीकूं दंड देतभये वह काली बहुत युगनते आयके वास कैसे करत भयो हे शुकदेवजी ! यह मेरे आगे
कहिये ॥ २ ॥ राजा कहेहैं हे श्रीशुकदेवजी ! व्यापक अपनी इच्छा पूर्वक लीला करनेहारे भगवान् श्रीकृष्णचंद्रजीकौ गौनके पालनादि जो बडे

अन्वमंसत तद् राजन् गोविन्दानुग्रहेक्षितम् ॥ पीत्वा विषं परेतस्य पुनरुत्थानमात्मनः ॥५२॥ इतिश्रीभागवते
म०दशमस्कन्धे पू० धेनुकवधो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ विलोक्य दूषितां कृष्णां कृष्णः
कृष्णाहिना विभुः ॥ तस्या विशुद्धिमन्विच्छन् सर्पं तमुदवासयत् ॥ १ ॥ राजोवाच ॥ कथमन्तर्जलेऽगाधे न्यगृह्णद्
भगवानहिम् ॥ स वै बहुयुगावासं यथाऽसीद् विप्र कथ्यताम् ॥ २ ॥ ब्रह्मन् भगवतस्तस्य भूम्नः स्वच्छन्दवर्तिनः ॥
गोपालोदारचरितं कस्तृप्येतामृतं जुषन् ॥ ३ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ कालिन्द्यां कालियस्यासीद् ह्रदः कश्चिद्
विषाग्निना ॥ श्रप्यमाणपया यस्मिन् पतन्त्युपरिगाः खगाः ॥ ४ ॥ विप्रुष्मता विषोदोर्मिमारुतेनाभिमर्शिताः ॥ म्रिय-
न्ते तीरगा यस्य प्राणिनः स्थिरजङ्गमाः ॥ ५ ॥ तं चण्डवेगविषवीर्यमवेक्ष्य तेन दुष्टां नदीं च खलसंयमनावतारः ॥
कृष्णः कदम्बमधिरुह्य ततोऽतितुङ्गमास्फोट्य गाढरशनो न्यपतद्विषोदे ॥ ६ ॥

चरित्र हैं सो अमृत है ताय श्रवण करिके कौन तृप्त होय ॥ ३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहेहैं कि हे राजन् परीक्षित ! कालिंदीयमुनामें कालीय नागको
कोई एक दह होत भयो, विषकी अग्निसूं जलजामें औटोकरे आकाश के उडे पक्षी जामें गिरिपरैहै ॥ ४ ॥ छींटानकूं लिये लिये विषके जलसूं स्पर्श
करि जो पवन चले हैं, ताके स्पर्श करेते किनारेते वृक्ष शुष्क हो गये और चराचर जीव जिस दहके तटपर प्राप्त होतेही उसकी झलसे मरजाते ॥ ५ ॥
बड़े बली विषके अभिमानी कालीसर्पकूं देखिके, और ताते बिगरी यमुनाकूं देखिके दुष्टोंको दंड देवेके लिये जिनको अवतार ऐसे श्रीकृष्णचंद्र कदंबपै

122

चढिके खेंचिकरि पीतांबरते फेंट बांधिके ऊंचे कदंबते खंब ठोकिके विषके जलमें कूदत भये अब राजा कहे है कि महाराज ! अबहीं तो तुमने कही कि तटके समस्त वृक्ष सूखिगये अब कहो हौकी कदंबपै चाढिकै कूदत भये कदंब कहाते आयो तहां कहे हैं या कदंब के भाग्यमें कृष्णचंद्रके चरणारविंदको स्पर्श लिखो हो याते यह नहीं सूखो अथवा और पुराणमें कथा है गरुडजीने स्वर्गते लायके अमृतको कलश एक समय याके ऊपर धऱ्यो हो सो अमृतकी बूंद परी याते यह अमर होयगयो ॥ ६ ॥ पुरुषनमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचंद्र जा समय वामें कूदे तब उनके बोझते होय खेदको प्राप्त हुए सर्पके विषसे जल बहुत ऊंचा उछलगया और विषके प्रभावसे कषाय और भयानक लहरैं उठने लगीं और चारौं ओरसे यमुनाका जल

सर्पह्रदः पुरुषसारनिपातवेगसंक्षोभितोरगविषोच्छ्वसिताम्बुराशिः ॥ पर्यक् प्लुतो विषकषायविभीषणोर्मिर्धावन् धनुःशतमनन्तबलस्य किं तत् ॥ ७ ॥ तस्य ह्रदे विहरतो भुजदण्डघूर्णवार्घोषमङ्ग वरवारणविक्रमस्य ॥ आश्रुत्य तत् स्वसदनाभिभवं निरीक्ष्य चक्षुःश्रवाः समसरत् तदमृष्यमाणः ॥ ८ ॥ तं प्रेक्षणीयसुकुमारघनावदातं श्रीवत्सपीतवसनं स्मितसुन्दरास्यम् ॥ क्रीडन्तमप्रतिभयं कमलोदराङ्घ्रिं संदश्य मर्मसु रुषा भुजया चछाद ॥ ९ ॥ तन्नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्टमालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्ताः ॥ कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामा दुःखानुशोकभयमूढधियो निपेतुः ॥ १० ॥

सौ सौ धनुष फैलगया अनंत बल भगवानके इस कार्यमें कोई आश्चर्य नहीं है ॥ ७ ॥ हे राजन् परीक्षित ! श्रेष्ठ हाथीको सौ जिनको पराक्रम ज समय कालीके डोहमें परे ता समय श्रीकृष्णचंद्रके हाथनते भये जलशब्दकूं श्रवण करिके और तिन श्रीकृष्णचंद्रते अपने घरको नाश देखिके, ऐसो जोरावर कौन है जो मेरे घरमें आयके धूम करें जब वापे न सहारो गयो तब श्रीकृष्णचंद्रके सन्मुख आवत भयो ॥ ८ ॥ देखिबे योग्य सुकुमार मेघकी तुल्य निर्मल स्वरूपवान भृगुलत्ताके चिन्हयुक्त पीतांबरको पहिरे मुसिकानिते सुंदर मुख, निर्भय खिले कमलसे चरणारविन्दवारे श्रीकृष्णचंद्रको जलमें क्रीडा करते देख वह काली क्रोधसे मर्मस्थानोंमें काटकर वनमाली के अंगमें लिपिटगयो ॥ ९ ॥ सर्प देहमें लिपटि

गयो श्रीकृष्णको चेष्टारहित देखिके तिनके प्यारे मित्र ग्वालबाल बहुत दुःखित होत भये श्रीकृष्णचंद्रमें देह मित्र धन स्त्री समस्त कामना जिनमें
अर्पण करिदीनी और दुःख शोक भयसों सुधि बुद्धि जिनकी विसरि गई ऐसे वे गोप पृथ्वीमें पछार खायके गिरतभये ॥ १० ॥ गौ बैल छोटी
छोटी बछिया अतिदुःखित होयके रम्हावै हैं कृष्णकी और टकटकी लगायके देखिरहे हैं डरके मारे रोवतसे ठाढेहैं ॥ ११ ॥ ताके पीछे ब्रजमें
बड़े तीन तरहके उत्पात उठत भये धरती हाली; आकाशतें तारे टूटतभये पुरुषनकी बांई भुजा बांई आंखि फरकत भई यह उत्पात शीघ्र भय
को जतामें हैं ॥ १२ ॥ नंदजी जिनमें मुख्य वे उन उत्पातनकों देखिके भयतें व्याकुल होत भये और यह जानकर कि बलदेवजी बिना कृष्ण अके-

गावो वृषा वत्सतर्यः क्रन्दमानाः सुदुःखिताः ॥ कृष्णे न्यस्तेक्षणा भीता रुदन्त्य इव तस्थिरे ॥ ११ ॥ अथ व्रजे महो-
त्पातास्त्रिविधा ह्यतिदारुणाः ॥ उत्पेतुर्भुवि दिव्यात्मन्यासन्नभयशंसिनः ॥ १२ ॥ तानालक्ष्य भयोद्विग्ना गोपा नन्द-
पुरोगमाः ॥ विना रामेण गाः कृष्णं ज्ञात्वा चारयितुं गतम् ॥ १३ ॥ तैर्दुर्निमित्तैर्निधनं मत्वा प्राप्तमताद्विदः ॥ त-
त्प्राणास्तन्मनस्कास्ते दुःखशोकभयातुराः ॥ १४ ॥ आबालवृद्धवनिताः सर्वेऽङ्ग पशुवृत्तयः ॥ निर्जग्मुर्गोकुलाद्दी-
नाः कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १५ ॥ तांस्तथा कातरान् वीक्ष्य भगवान् माधवो बलः ॥ प्रहस्य किंचिन्नोवाच प्रभाव-
ज्ञोऽनुजस्य सः ॥ १६ ॥ तेऽन्वेषमाणा दयितं कृष्णं सूचितया पदैः ॥ भगवल्लक्षणैर्जग्मुः पदव्या यमुनातटम् ॥ १७ ॥

लो आज गाय चरायवेको गयो है ॥ १३ ॥ उन खोटे उत्पातनसूं कृष्णचंद्रको निधन मानिके श्रीकृष्णचंद्रके प्रभावको न जानकर और तिन श्रीकृष्ण-
चंद्रमें जिनके प्राण और मन लगि रहे हैं दुःख शोक भयके मारे अतिपीडित हुए ॥ १४ ॥ बाल वृद्ध स्त्री समस्त पशुकी तुल्य बडो जिनके मोह
श्रीकृष्णचंद्रके देखिवेकों जिनको उत्कण्ठा वे समस्त दीन होय गोकुलसों ढुंढिवेकों निकसत भये ॥१५॥ मधुवंशमें भये भगवान् बलदेवजी ब्रजवासीन
कूं व्याकुल देखिके हंसिके कछु न बोलत भये, काहेतें की वे अपने छोटे भैया श्रीकृष्णचंद्रके प्रभावको जाने हैं, इनके हंसनैही सें सबके प्राण बचें
क्योंकि जाको बडो भैया हंसै है तो जानि परै है कि कछु कुशल है ॥ १६ ॥ ते संपूर्ण ब्रजवासी प्यारे कृष्णको ढूंढत मार्गमें कृष्णचंद्रके चरणके

124

खोज देखके यमुनाके किनारेपै जातभये ॥ १७ ॥ हे राजन् परीक्षित्! ते ब्रजवासी गायनके रस्तामें औरनके पावनके बीचमें श्रीकृष्णचंद्र भगवान् प्रजापतिके पावनके चिन्ह कमल यव अंकुश वज्र ध्वजकी रेखायुक्त चरणनकूं देखत देखत जलदीसों जात भये जिस प्रकार योगिजन वेदमार्गमें परतत्वको ढूंढकर उसै प्राप्त होते हैं ॥ १८ ॥ वा दहके भीतर काली सर्प जिनके लिपटरह्यो चेष्टा जिनकी जातरही ऐसे श्रीकृष्णचंद्रकूं देखिके किनारेपें जड़ बुद्धि होय ग्वालबाल पछार खायके गिरे तिनकों देखिके और चारों ओर रह्माती डोलती गऊ बछियांकूं देखिके ब्रजवासी अति कष्टकूं पावत भये ॥ १९ ॥

ते तत्र तत्राब्जयवाङ्कुशाऽशनिध्वजोपपन्नानि पदानि विश्पते : ॥ मार्गे गवामन्यपदान्तरान्तरे निरीक्षमाणा ययुरङ्ग सत्वराः ॥ १८ ॥ अन्तर्ह्रदे भुजगभोगपरीतमारात् कृष्णं निरीहमुपलभ्य जलाशयान्ते ॥ गोपांश्च मूढधिषणान् परितः पशूंश्च संक्रन्दतः परमकश्मलमापुरार्ताः ॥ १९ ॥ गोप्योऽनुरक्तमनसो भगवत्यनन्ते तत्सौहृदस्मितविलोकगिरः स्मरन्त्यः ॥ ग्रस्तेऽहिना प्रियतमे भृशदुःखतप्ताः शून्यं प्रियव्यतिहृतं ददृशुस्त्रिलोकम् ॥ २० ॥ ताः कृष्णमातरमपत्यमनुप्रविष्टां तुल्यव्यथाः समनुगृह्य शुचः स्रवन्त्यः ॥ तास्ताः प्रियव्रजकथाः कथयन्त्य आसन् कृष्णाननेऽर्पितदृशो मृतकप्रतीकाः ॥ २१ ॥

अंतरहित छःप्रकारके ऐश्वर्यकारि पूर्ण श्रीकृष्णचंद्रमें मन लगानेहारी गोपी तिन श्रीकृष्णचंद्रको प्यार मुसिकानि चितवनि बातनकी सुधि करिके अतिशय प्यारे श्रीकृष्णको सर्पने ग्रास लियो यह जानिके बहुत दुःखसों व्याकुल होयके प्यारे विना तीनों लोकनकूं सूनो देखत भईं ॥ २० ॥ पुत्र श्रीकृष्णको दहमें गिरो देख यशोदा माता जलमें गिरने चली तब गोपियां उन्हें पकड़ अतिदुःखित होयके आंखिनमें आंसु वहाती यशोदाकी समान दुख करतीं ब्रजमें करी हुई भगवान्की प्यारी लीलाओंका वर्णन करती भगवान्के मुखकी ओर दृष्टि दिये गोपियां मृतकके समान होगईं ॥ २१ ॥

दोहा—सुखदानी देखे विना, विलखानी अतिसाय। रानी अररानी परैं, पानीमें अकुलाय ॥ १ ॥ लोटत अतिव्याकुल धरणि, जातगिरन जलधाय। कहत श्याम तुम दियो दुख, मोको- वैस वुढाय ॥ २ ॥ ब्रज युवती सुनि महरिके, वचन प्रेमआधीर। अकुलानी रोवत सबै, भई कठिन उरपीर ॥ ३ ॥

श्रीकृष्णचंद्रमें प्राण लगाये कालीके देहमें पुत्रशोकके मारे नंद आदि ब्रजवासीयौनकूं दहमें गिरतादेख श्रीकृष्णके प्रभावकों जाननवारे भगवान् बलदेवजी रोकत भये ॥ २२ ॥ या प्रकार अपने गोकुलकूं अनन्यगति देख और कोई छुडावनवारो नहीं यह जानिके, और स्त्रीबालकन सहित गोकुलवासी मेरे लिये बहुत दुःखित है यह विचारिके मनुष्यनकी तुल्य लीला करनेहारे श्रीकृष्णचंद्र दो घडीपर्यंत वा सर्पकी कुंडली में रहिके फिर वाते बाहिर निकसत भये ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णचंद्रने अपनो देह बढायो ताते सर्पके देहमें अतिदुःख भयो कहा कहा दुःख भयो नस नस टूटनलगी तब कृष्णको छोडिके क्रोधकरिकै अपने फणनकूं उठायके बडे बडे श्वासनकूं लैके स्थित होयके नकुअनमें जाको विष आयगये ता क्रोधते आखिनके पलक न लगे, बरती लकरीकी तुल्य मुखकरे श्रीकृष्णचंद्रकी ओर देखत जायहै ॥ २४ ॥ दो फांकवारी जीभते दोनों ओठनको चाटते विषकी आगि भरी चितवनि वाले कालीकूं भगवान खेलत खेलत फिरावते भये, जैसें गरुड सर्पकों फिरावै है, कालीभी श्रीकृष्णचंद्रकें पकरिवेको अवसर देखत फिरत है, श्रीकृष्ण अपनो दांउ विचारै, काली अपनों दांऊ विचारै, श्रीकृष्णचंद्रको मनतो यह है कि हमारो दांउ लगे तो याके फणनपैं चढिके नृत्य करैं, कालीके मनमें यह है कि मेरो दाउं लगे तौ में याके लिपटि जाऊं ऐसे अपनो अपनो दांउ

कृष्णप्राणान् निर्विशतो नन्दादीन् वीक्ष्य तं ह्रदम् ॥ प्रत्यषेधत् स भगवान् रामः कृष्णानुभाववित् ॥ २२ ॥ इत्थं स्वगोकुलमनन्यगतिं निरीक्ष्य सस्त्रीकुमारमतिदुःखितमात्महेतोः ॥ आज्ञाय मर्त्यपदवीमनुवर्तमानः स्थित्वा मुहूर्तमुदतिष्ठदुरङ्गबन्धात् ॥ २३ ॥ तत्प्रथ्यमानवपुषा व्यथितात्मभोगस्त्यक्त्वोन्नमय्य कुपितः स्वफणान् भुजङ्गः ॥ तस्थौ श्वसन् श्वसनरन्ध्रविषाम्बरीषस्तब्धेक्षणोल्मुकमुखो हरिमीक्षमाणः ॥ २४ ॥ तं जिह्वया द्विशिखया परिलेलिहानं द्वे सृक्किणी ह्यतिकरालविषाग्निदृष्टिम् ॥ क्रीडन्नमुं परिससार यथा खगेन्द्रो बभ्राम सोऽप्यवसरं प्रसमीक्षमाणः ॥ २५ ॥

---

१ चौपाई—ब्रजवासी सब उठैं पुकारी । जलभीतर कहा करत मुरारी ॥ मात पिता अतिही दुख पावैं । रोय रोय सब कृष्ण बुलावैं ॥ २ दोहा—मोहि दुहाई नंदकी, अबही आवत श्याम । नागनाथ ले आवही, तौ कहियो बलराम ॥

विचारे हैं ॥ २५ ॥ ऐसे फिरते जब कालीको बल घटि गयो तब कालीके ऊंचे फणनको नवायके ऊपर चढिके श्रीकृष्णचंद्र नाचत भये कालीके फणनमें जो मणि रत्न लगे हैं तिनसूं लगिके चरणारविंद अरुण होयगये, कदाचित् कहो कि चंचल सर्पके फणनपै कैसे नृत्य करत भये तहां कहे हैं ये श्रीकृष्णचंद्र समस्त कलानके आप गुरु हैं, कोई तरवारनकी धारपै नाचे, कोई वांसपै चढिके नाचे, हम देखो कालीके शिरपै नाचे है ॥ २६ ॥ श्रीकृष्णचंद्र कालीके फणनपै नृत्य करिवेको ठाढे भये तिनको देखिके ता समय गंधर्व सिद्ध सुरगण चारण देवांगना ये सब प्रसन्न होयके मृदंग ढोलक नगाडे लैलैके बजावत गावत भये, पुष्प वरषावत भेटें लेके स्तुति करत शीघ्र आवत भये ॥ २७ ॥ एक सो एक शिरवारे कालीको जो जो शिर ऊंचो उठे है, ताय ताय दुष्टनके दंड देनवारे श्रीकृष्णचंद्र पांवकी ठोकरसों नवावत भये, तब क्षीण अवस्थावारो इत उत भ्रमत

एवं परिभ्रमहतौजसमुन्नतांसमानम्य तत्पृथुशिरस्स्वधिरूढ आद्यः॥तन्मूर्धरत्ननिकरस्पर्शातिताम्रपादाम्बुजोऽखिलकलादिगुरुर्ननर्त॥२६॥तं नर्तुमुद्यतमवेक्ष्य तदा तदीयगन्धर्वसिद्धसुरचारणदेववध्वः॥प्रीत्या मृदङ्गपणवानकवाद्यगीतपुष्पोपहारनुतिभिः सहसोपसेदुः॥२७॥यद्यच्छिरो न नमतेऽङ्ग शतैकशीर्ष्णस्तत् तन्ममर्द खलदण्डधरोऽङ्घ्रिपातैः॥ क्षीणायुषो भ्रमत उल्बणमास्यतोऽसृङ् नस्तो वमन् परमकश्मलमाप नागः॥ २८ ॥ तस्याक्षिभिर्गरलमुद्वमतः शिरस्सु यद्यत्समुन्नमति निःश्वसतो रुषोच्चैः॥नृत्यत् पदाऽनुनमयन् दमयाम्बभूव पुष्पैः प्रपूजित इवेह पुमान् पुराणः ॥ २९ ॥

डोलने लगो तब मुखते नाशिकाते भयंकर रुधिर निकसो याप्रकार काली दुष्टसर्पकों मर्दन करतभये तब कालीको महाकष्ट भयो ॥ २८ ॥ नेत्रनते विष उगलता और क्रोधकरिके बडे बडे श्वासनको लेते कालीको जो जो शिर ऊंचो उठेहै भगवान ताके ऊपर नृत्य करिके चरणकी ठोकरसों नवायके दंड देतभये, या समय गंधर्व देवतानके आनंद जो भयो सो शेषनागकी शय्यापै शयन करनेहारे नारायणकी तुल्य यशोदा नंदन श्रीकृष्णचंद्रकी पुष्पन करिकै पूजा करतभये, अथवा दूसरो अर्थ देवता गंधर्व अप्सरानने तासमय फूलनकरिकै पूजन करो, और ब्रजवासीननें नारायणकी तुल्य श्रीकृष्णचंद्रको दर्शन करो, अथवा याही पदको तीसरो अर्थ फूलनसों प्रसन्न करेसे, प्रसन्न होयके कालीकों दंड देत भये, यह वाको भलो करतभये ॥ २९ ॥

हे राजन् परीक्षित ! श्रीकृष्णचन्द्र ने जो चित्रविचित्र ताण्डव नृत्य करो तासूं काली के फणारूपी छत्र ढीले होयगये देहकी नश नश ढीली होयगई, मुखते रुधिर वमन करत स्थावर जङ्गम के गुरु पुराणपुरुष नारायणकी सुधि करिके मनते नारायणकी शरण लेत भयो ॥ ३० ॥ ब्रह्माण्ड जिनके गर्भ में उन श्रीकृष्ण के बोझते दबो एड़ीनकी ठोकरन के मारे फणरूपी छत्र जाको ढीलो होयगयो ऐसे काली नागको देखिके गहने कपरे जिनके अस्तव्यस्त होयगये केश जिनके खुलिगये ऐसी या कालीकी स्त्री पीड़ित होयके श्रीकृष्णचन्द्रकी शरण लेत भई ॥ ३१ ॥ अति व्याकुल जिनके मन छोटे छोटे अपने बच्चानको आगे करिके हाथ जोरिके नागकी पतिव्रता पत्नी साष्टाङ्ग धरती में गिरिके समस्त प्राणीन के पति

तच्चित्रताण्डवविरुग्णफणातपत्रो रक्तं मुखैरुरु वमन् नृप भग्नगात्रः ॥ स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं नारायणं तमरणं मनसा जगाम॥३०॥ कृष्णस्य गर्भजगतोऽतिभरावसन्नं पार्ष्णिप्रहारपरिरुग्णफणातपत्रम् ॥ दृष्ट्वाऽहिमाद्यमुपसेदुरमुष्य पत्न्य आर्ताः श्लथद्वसनभूषणकेशबन्धाः ॥३१॥ तास्तं सुविग्नमनसोऽथ पुरस्कृतार्भाः कायं निधाय भुवि भूतपतिं प्रणेमुः ॥ साध्व्यः कृताञ्जलिपुटाः शमलस्य भर्तुर्मोक्षेप्सवः शरणदं शरणं प्रपन्नाः ॥ ३२ ॥ नागपत्न्य ऊचुः ॥ न्याय्यो हि दण्डः कृतकिल्बिषेऽस्मिंस्तवावतारः खलनिग्रहाय॥ रिपोः सुतानामपि तुल्यदृष्टेर्धत्से दमं फलमेवानुशंसन्॥३३॥ अनुग्रहोऽयं भषता कृतो हि नो दण्डोऽसतां ते खलु कल्मषापहः ॥ यद्दन्दशूकत्वममुष्य देहिनः क्रोधोऽपि तेऽनुग्रह एव संमतः॥ ३४ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रकूं प्रणाम करतभई, पतिके पाप छुड़वायवे के लिये श्रीकृष्णचन्द्र भगवान की शरण लेति भई ॥ ३२ ॥ अब नागपत्नी कहती है या अपराधीको तुमने दण्ड दियो सो योग्य है तुम्हारो अवतार दुष्टनके दण्ड देवेकूं है बैरी और पुत्रनकूं बराबर देखोहौ, दुष्ट विचारके दण्ड देउहो, और पुत्रन के ऊपर अनुग्रह करौहौ, दुष्टनको दण्ड देवौ यह तुम्हारे विषमता नहीं है ॥ ३३ ॥ या सर्पको तुमने दण्ड दीनों याके ऊपर बड़ो अनुग्रह कियो तुम्हारे दण्ड दियेते दुष्टन के समस्त पाप जात रहेहैं जा अपराधते याकी सर्पयोनी भई वह अपराध दूरि होयगयो तुम्हारो क्रोध है सो कृपारूप है ॥ ३४ ॥

इस मानरहित औरनके मान दैनेहारे हमारे पति दूरि भयो है मान जाको औरनकूं मान देय ऐसो जो कालीने पूर्व जन्ममें कहा तप करो है अथवा समस्त जननके ऊपर कृपा करिके धर्म कहा करचौ है जा कारणते संपूर्णकी जिवावनवारे तुम या कालीके ऊपर संतुष्ट भये ॥ ३५ ॥ हे प्रकाशमान ! यह सर्प तुम्हारे चरणारविंदकी रजके स्पर्श करिवेको अधिकारी भयो, सो कौन तपस्याको फल है, यह हम नहीं जाने है, जिन चरणारविंदके स्पर्शके लिये लक्ष्मीसी उत्तम स्त्री कामनानको छोडिके व्रतको धारण करिकै बहुत दिन पर्यन्त तप करत भई ॥ ३६ ॥ जिन पुरुषनने तुम्हारे चरणारविंदकी रजकों शरण लियो है, वे पुरुष काहू वस्तुकी चाहना नहीं करे हैं. पृथ्वीको चक्रवर्ती राज्य नहीं चाहे हैं, अणिमादिक अष्ट सिद्धिनकी चाह नहीं हैं, और मोक्षकूंभी नहीं चाहे हैं ॥ ३७ ॥ हे नाथ! लक्ष्मीते आदि लैके बड़े बड़ेनको दुर्लभ तुम्हारे चरणारविंदकी रज है, ताकूं तमोगुणसे उत्पन्न क्रोधके वश सर्पनको राजा काली विना उपाय पावत भयो, कारण कि अपने कर्मनके वशते संसार चक्रमें भ्रमते तुम्हारे चरणारविंदके रजकी शरण चाहनेहारे शरीरधारीको मनकी चाहती सम्पति मिले है ॥ ३८ ॥ छ प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त समस्त देहनमें अंतर्यामी रूप करिके रहित उनमें रहो हौ तथापि उनमें ढकि नहीं जाओ हौ पृथ्वी अप तेज वायु आकाश इनके आश्रय पंच भूतनते पहिले रहौ समस्तके कारण आप कारण करिके रहित ऐसे तुम हौ तिनकौं नमस्कार है ॥ ३९ ॥ तुम ज्ञान विज्ञान कही चैतन्य शक्ति करिकै परिपूर्ण हौ व्यापक हौ अनंत शक्तिमान् निर्गुण निर्विकार मायाके प्रवर्त्तक तुमकूं नमस्कार हैं ॥ ४० ॥

तपः सुतप्तं किमनेन पूर्वं निरस्तमानेन च मानदेन॥ धर्मोऽथ वा सर्वजनानुकम्पया यतो भवांस्तुष्यति सर्वजीवः॥३५॥ कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे तवाङ्घ्रिरेणुस्पर्शाधिकारः ॥ यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाचरत् तपो विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता ॥ ३६ ॥ न नाकपृष्ठं न च सार्वभौमं न पारमेष्ठ्यं न रसाधिपत्यम्॥ न योगसिद्धीरपुनर्भवं वा वाञ्छन्ति यत्पादरजः प्रपन्नाः ॥ ३७ ॥ तदेष नाथाऽऽप दुरापमन्यैस्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः ॥ संसारचक्रे भ्रमतः शरीरिणो यदिच्छतः स्याद्विभवः समक्षः ॥ ३८ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ॥ भूतावासाय भूताय पराय परमात्मने ॥ ३९ ॥ ज्ञानविज्ञाननिधये ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ अगुणायाविकाराय नमस्ते प्राकृताय च ॥ ४० ॥

कालरूपहौ कालशक्तिके आश्रय हौ कालके अंग कौन क्षण लवादिक तिनके देखनवारे हौ विश्वरूप हौ विश्वके देखनवारे हौ और विश्वके उत्पन्न करनवारे हौ विश्वके कारण हो ॥ ४१ ॥ पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध और दश इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, इन के रूप हौ, और तीन प्रकारके अहंकारसूं अपने अंशरूप जीवोंके स्वरूपका आच्छादन करनेहारे आपको प्रणाम हैं ॥ ४२ ॥ अहंकारते आच्छादित नहीं याते अनंत हो, दृष्टिगोचर नहीं याते सूक्ष्म हौ उपाधिके करे विकार नहीं याते निर्विकार हौ, सर्वज्ञ हौ कोई कहे है कोई कहे नहीं है, कोइ कहै सर्वज्ञ है, कोई कहे अचिंतनीय है, कोई कहै बद्ध हौ, कोई कहे मुक्त हौ, कोई कहै एकहैं, कोई कहे अनेकहैं इत्यादिक जो अनेक नानाविध झगरे हैं, तिनमें मायातै जो जैसें कहे हैं तामें तैसेही होय जाय है, नाम नामी यह जो शक्तिको भेद ताते अनेक रूप करिके प्रतीक्षा करिवे योग्य जो तुमहौ तिन कूं नमस्कार है ॥ ४३ ॥ तुम नेत्रनसों आदि लैके इंद्रियनके प्रकाशके करनवारे हौ, और उनके ज्ञानके विषयी हो, वेद जिनके श्वास ते भयो है, प्रवृत्तरूप निवृत्तरूप वेदरूप तुम कों नमस्कार हैं ॥ ४४ ॥ शुद्ध अंतःकरण प्रकाश करनवारे भक्तनके रक्षक हो, और कृष्ण संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्धरूप तुमकूं नमस्कार है ॥ ४५ ॥ सत्वगुण रजोगुण तमोगुणके प्रकाश करनवारे, मन बुद्धि चित्त अहंकारके प्रकाश करनवारे, अर्थात् इनके अधिष्ठाता हो, ताहीते चाररूप हो, तीन गुणनसूं उपासनाकूं चित्र विचित्र फल दैवेके लिये अपने आत्माकूं ढकिके अनेकरूप करिके प्रकाशो हो,

कालाय कालनाभाय कालावयवसाक्षिणे ॥ विश्वाय तदुपद्रष्ट्रे तत्कर्त्रे विश्वहेतवे ॥ ४१ ॥ भूतमात्रेन्द्रियप्राणमनोबुद्ध्याशयात्मने ॥ त्रिगुणेनाभिमानेन गूढस्वात्मानुभूतये ॥ ४२ ॥ नमोऽनन्ताय सूक्ष्माय कूटस्थाय विपश्चिते ॥ नानावादानुरोधाय वाच्यवाचकशक्तये ॥ ४३ ॥ नमः प्रमाणमूलाय कवये शास्त्रयोनये ॥ प्रवृत्ताय निवृत्ताय निगमाय नमो नमः ॥ ४४ ॥ नमः कृष्णाय रामाय वसुदेवसुताय च ॥ प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्त्वतां पतये नमः ॥ ४५ ॥ नमो गुणप्रदीपाय गुणात्मच्छेदनाय च ॥ गुणवृत्त्युपलक्ष्याय गुणद्रष्ट्रे स्वसंविदे ॥ ४६ ॥

130

मन बुद्धि चित्त अहंकार करि चैतन्य निश्चयकूं आदिलेके वृत्तिसै जानिवेमें आऔहौ, मन बुद्धि चित्त अहंकारके साक्षी तुमकूं नमस्कार है * ॥ ४६ ॥ तुम्हारी महिमा विचार करनेंमें नहीं आती और सम्पूर्ण विश्वको उत्पत्ति प्रकाश करनेके कारण सो जानिवेमें आवो हो, इंद्रियनके प्रेरक आत्मा में रमण करो हो, सत्स्वभाव तुमको नमस्कार है ॥४७॥ स्थूल सूक्ष्म सबकी गतिके जाननेहारे हो समस्तके विश्वके साक्षी हो, विश्व आपके स्वरूप में नहीं और विश्वके स्वरूपमें आप नहीं, तुम विश्वके निषेधकी अवधिहो, जैसे सर्पकै प्रकाश को जेवरी आश्रय है तैसे आप विश्व प्रकाशिवेके

अव्याकृतविहाराय सर्वव्याकृतसिद्धये ॥ हृषीकेश नमस्तेऽस्तु मुनये मौनशीलिने ॥ ४७ ॥ परावरगतिज्ञाय सर्वाध्यक्षाय ते नमः ॥ अविश्वाय च विश्वाय तद्द्रष्ट्रेऽस्य च हेतवे ॥ ४८ ॥ त्वं ह्यस्य जन्मस्थितिसंयमान् प्रभो गुणैरनीहोऽकृतकालशक्तिधृक् ॥ तत्तत्स्वभावान् प्रतिबोधयन् सतः समीक्षयाऽमोघविहार ईहसे ॥ ४९ ॥

आश्रयहो, आरोप और निषेधके साक्षी हो, विश्वको आरोप और निषेधके ज्ञान अज्ञानसों कारण हो, यावत् पर्यंत अज्ञान है तावत् पर्यंत विश्वमानिवेमें आवै हैं अर्थात् विद्या और अविद्यासै अपवाद और अध्यासके हेतु आपको प्रणाम है या प्रकार नागपत्नी कालीके दंडकी प्रशंसा करिके कृष्णचंद्रको प्रसन्न करिके कहत भई अब तुम्हारे आधीन प्राणी है तिनको कहां अपराध है, ऐसे मनमें विचारकै प्रार्थना करै है ॥ ४८ ॥ हे प्रभो! तुम चेष्टाकरिके रहित हो कालशक्तिकूं धारण करिके सत्वगुण रजोगुण तमोगुणसूं या विश्वको उत्पन्न पालन प्रलय करोहो, हे अमोघवि-

---

* एक धनाढच ब्राह्मण बडे कृष्णके भोरे भक्त हे लोगौने सिखाय बुझाय द्रव्य ले इनका एक चांडाल की कन्याके संग विवाह कर दिया एक दिन वह कन्या खिरकी में बैठी ही सो उसकी पहचानके चांडाल आय निकले वह देखकै वोले अरी फलानै कि बेटी तूं यहां कहां आई लोगौंने पूछी तो वे बोले चांडालकन्या है अब वे ब्राह्मण बडे व्याकुल हुए प्रायश्चित्त पूछो शास्त्री नै कही सूखे पीपरकी खखोडर में जरो तौ पापजाय ब्राह्मण मालाले पीपर में बैठे लोगौने लकडी धरदीं आग लगायदी सब लकडी पीपरकी राख होगई ब्राह्मण माला जपतेरहे तव लोग प्रणाम कर बोले उठो प्रायश्चित्त होगया ब्राह्मण बोले तौ अब स्त्रीको कहा डौल करैं वे बोले उसकी विरादरी को दो. चाण्डाल बोले ब्राह्मण के यहां रही अब हमारे कौन काम की है लोग बोले तुम्ही रहन दो ब्राह्मण बोले तुम मो तें फेर प्रायश्चित्तकराओगे वो वोले नहीं अलग कोठरी में राखियो दो रोटी डार दिये करियो दैवयोगसै चांडाली को देह छुटगया तव वे ब्राह्मण चांडालौं से बोले इसै उठाओं चंडाल बोले इसै उठानै सै हमें विरादरी में रोटी दैनी परैगी हम नहीं उठावैगे तुमही उठाओ ब्राह्मण बोले मुझै प्रायश्चित्त करना पडैगा ऐसे संदेहकरते २ दोघडी दिन रहा तब ब्राह्मण ही उठानैचले वस्त्र उठाकै देखै तौ तहां पुष्प धरे है वह सदेह वैकुंठ को गई सत्संगत की ऐसी महिमा है ॥

हार ! अर्थात् सफल विहार क्रीड़ा वाले तुम उन उन संस्काररूप से रहे घोर स्वभावौं प्रतिबोधन करते हुए क्रीड़ा करतेहो ॥ ४९ ॥ त्रिलोकी में शान्तस्वभाव घोरस्वभाव मूढस्वभाव या प्रकार सत रज तमो गुणकी प्रधानता से तीन स्वभावके प्राणी तुम्हारे खेलिवेके खिलौंना है, साधुनकी रक्षा करिवेके लिये कमर बांधिके अवतार धारन करोहो तासूं अब तुमको शान्ति स्वभाव प्राणी प्यारे लगे हैं ॥ ५० ॥ हे भगवन् ! अब कृपा कीजिये नहीं तो अब यह कालीनाग प्राण त्याग न किये देता है सत्पुरुषोंके शोचनीय हम अबलाओंपर दया करके पतिरूप प्राणदान कीजिये ॥ ५१ ॥

तस्यैव तेऽमूस्तनवस्त्रिलोक्यां शान्ता अशान्ता उत मूढयोनयः ॥ शान्ताः प्रियास्ते ह्यधुनाऽवितुं सतां स्थातुश्च ते
धर्मपरीप्सयेहतः ॥५०॥ अनुगृह्णीष्व भगवन् प्राणांस्त्यजति पन्नगः ॥ स्त्रीणां नः साधुशोच्यानां पतिः प्राणः प्रदीय-
ताम् ॥ ५१ ॥ अपराधः सकृद् भर्त्रा सोढव्यः स्वप्रजाकृतः ॥ क्षन्तुमर्हसि शान्तात्मन् मूढस्य त्वमजानतः ॥ ५२ ॥
विधेहि ते किंकरीणामनुष्ठेयं तवाज्ञया ॥ यच्छ्रद्धयाऽनुतिष्ठन् वै मुच्यते सर्वतो भयात् ॥ ५३ ॥

स्वामीको यह धर्म है कि एकवार अपनी प्रजापर अपराध बनिआवै ताको सहलैहै हे शान्तस्वरूप! अनजान इस मूढकालीके अपराध अब क्षमा करो ॥ ५२ ॥ तुम्हारी हम दासी हैं तुम्हारी आज्ञा करिवेलायक हैं जो आप आज्ञा करैंगे; ताइ हम श्रद्धापूर्वक करेंगी; तो संपूर्ण भयते छूट जांयगी, तुम आज्ञा करोगे तो प्राणीनकूं न काटेंगी तुम्हारी आज्ञाकूं श्रद्धासे पालन करनेहारा[1] सब भयसै छूट जाताहै ॥ ५३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहैहैं कि हे राजन् परीक्षित! या प्रकार नागपत्नीनने श्रीकृष्णचंद्रकी स्तुति करी तब भगवानने मूर्छाको प्राप्त चरणनकी ठोकरते मग्नमस्तक कालीसर्पको छो

---

१ जैसे एक राजाने सह्यो एक राजा वेष बदले आधी रातमें निकला चौकीदारने पूछा कौन राजाने जवाब न दियो तब चौकीदारनै रिझाय धोरेजाय पाग उतारली और मुसके बांध डंडा मारे राजा तौ बोले नहीं और चौकीदारनै बांधकै चोर जान मार दीनी कि ऐसे चोरी करकै तू रोज लेजाय है जब प्रातःकाल हुआ देखौ तौ राजा है तब तौ पायन में गिर पडा खोल दियो राजा चुपकेसै उठ महलौंमें गये, न्हाय धोय वस्त्र पहर दरबारमें आये और जमादार सौं कही रात अमुकस्थान के चौकीदारको बुलाओ सुन्ते ही सिपाही कांपनलगो, राजाने उसै सौ असरफी और एक दुशाला इनाम में दियो दिवानके बहुत पूछने पर राजाने आपनी पीठ दिखाई दिवाननें कही इसै सूली दैनीचहिये राजा बोले तुमने समझी नहीं यह अपनै काम पै सावधान है जब मुझसै नहीं चुकोतौ चोर सै क्यौं चूकैंगो काम पै सावधान रहनेवारेको सुख होयहैं ॥

इंद्रिनमें प्राणनमें चेत जब भयो तब काली सर्प होले होले बडे श्वास लेतभयो बडो गरीब होयके हाथ जोरिके यह
ड़दिया ॥ ५४ ॥ हे नाथ ! जबते हम उत्पन्न भये हैं तब तेही हम दुष्ट हैं, तामसी हमारो स्वभाव है, बडो हमारो क्रोध है, लोकनका खोटा आग्रहरूप
बोलो ॥ ५५ ॥ हे नाथ ! जबते हम उत्पन्न भये हैं तब तेही हम दुष्ट हैं,
स्वभाव नहीं छुटता अथवा दूसरो अर्थ जा स्वभावते मिथ्यादेहमें आग्रह है सो नहीं छूटै है ॥ ५६ ॥ हे संपूर्णके रचनवारे! सत्त्वगुण रजो
गुण तमोगुण अनेकप्रकारको विश्व तुमने रचो है तामें सबके न्यारे न्यारे स्वभाव पराक्रम तेज योनिबीज आशयरूप हैं ॥ ५७ ॥ हे भग-
वन् ! ता विश्वमें हम सर्प बनाये, जन्मतही हमारे बडो क्रोध भयो, मायाकरि मोहित होय रहे हैं, सो आपसे मोहित हुए हम आपकी मायाकूं

श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं स नागपत्नीभिर्भगवान्समभिष्टुतः ॥ मूर्छितं भग्नशिरसं विससर्जाङ्घ्रिकुट्टनैः ॥ ५४ ॥ प्रति-
लब्धेन्द्रियप्राणः कालियः शनकैर्हरिम् ॥ कृच्छ्रात् समुच्छ्वसन् कृष्णं दीनः प्राह कृताञ्जलिः ॥ ५५ ॥ वयं खलाः
सहोत्पत्त्या तामसा दीर्घमन्यवः ॥ स्वभावो दुस्त्यजो नाथ लोकानां यदसद्ग्रहः ॥ ५६ ॥ त्वया सृष्टमिदं विश्वं
धातुर्गुणविसर्जनम् ॥ नानास्वभाववीर्योजोयोनिबीजाशयाकृति ॥ ५७ ॥ वयं च तत्र भगवन् सर्पा जात्युरुमन्यवः ॥
कथं त्यजामस्त्वन्मायां दुस्त्यजां मोहिताः स्वयम् ॥ ५८ ॥ भवान् हि कारणं तत्र सर्वज्ञो जगदीश्वरः ॥ अनुग्रहं
निग्रहं वा मन्यसे तद् विधेहि नः ॥ ५९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्याकर्ण्य वचः प्राह भगवान् कार्यमानुषः ॥ नात्र
स्थेयं त्वया सर्प समुद्रं याहि मा चिरम् ॥ ६० ॥ स्वज्ञात्यपत्यदाराढ्यो गोनृभिर्भुज्यतां नदी ॥ य एतत् संस्मरे-
न्मर्त्यस्तुभ्यं मदनुशासनम् ॥ ६१ ॥

कैसें छोड सकैहैं ॥ ५८ ॥ संपूर्णके जाननवारे जगत्के ईश्वर तुमहो, सो तुमही मायाके छुडायवेके कारणहो, जो काम तुमने सोंपौ तापे हम ऐसे
दुष्ट रहे सो तुमहूसें न चूके, यह मानिके हमारे ऊपर कृपा करो, चाहो दंड देउ आप परमेश्वर सब करिवे योग्य हो ॥ ५९ ॥ पृथिवीको बोझ उता
रिवेके लिये मनुष्यरूप जिनने धारी श्रीकृष्णचंद्र भगवान् या कालीसर्पको वचन श्रवण करिके बोलतभये हे सर्प! तुम या दहमें मति रहो समुद्रको
जाओ देर मति करो ॥ ६० ॥ अपनी जातिके सर्प बालक स्त्रीनकूं संग लै समुद्रको जाओ गऊ मनुष्य यमुनाजल पीवेंगे जो मैंने तोको

आज्ञा करी याहि जो कोई मनुष्य ध्यान करै अथवा संध्या प्रातःकाल या चरित्रको पाठ करै वाकों तोते भय नहीं होय यह हमारी आज्ञा है मेरे खेलिवेको ठिकानो यह दह है यामें जो मनुष्य स्नान करै पितृदेवताकूं तर्पणकरे व्रतकरिके मेरे ध्यान करे मेरो पूजन करे वह पुरुष समस्त पापनतै छुटि जायहै ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ जा गरुडके भयते रमणकद्वीपकूं छोडिके तू या दहमें आयके रह्यौ है वह गरुड तोकूं न खायगो कारण कि तेरे माथेपै मेरे चरणनको चिन्ह है या ते ॥ ६३ ॥ ऋषीश्वर कहे हैं कि अद्भुत कर्मा भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने या प्रकार कालीसर्पकूं कही तब काली सर्प बडे आनंदसूं श्रीकृष्णचंद्रकी पूजा करत भयो, और कालीकी स्त्री हैं ते आनंदते पूजा करत भई ॥ ६४ ॥ दिव्य वस्त्र माला

कीर्तयन्नुभयोः संध्योर्न युष्मद्भयमाप्नुयात् ॥ योऽस्मिन् स्नात्वा मदाक्रीडे देवादींस्तर्पयेज्जलैः ॥ उपोष्य मां स्मरन्नर्चेत् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६२ ॥ द्वीपं रमणकं हित्वा ह्रदमेतमुपाश्रितः ॥ यद्भयात् स सुपर्णस्त्वां नाद्यान्मत्पादलाञ्छितम् ॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवमुक्तो भगवता कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ तं पूजयामास मुदा नागपत्न्यश्च सादरम् ॥ ६४ ॥ दिव्याम्बरस्रङ्मणिभिः परार्ध्यैरपि भूषणैः ॥ दिव्यगन्धानुलेपैश्च महत्योत्पलमालया ॥ ६५ ॥ पूजयित्वा जगन्नाथं प्रसाद्य गरुडध्वजम् ॥ ततः प्रीतोऽभ्यनुज्ञातः परिक्रम्याभिवाद्य तम् ॥ सकलत्रसुहृत्पुत्रो द्वीपमध्ये जगाम ह ॥ ६६ ॥ तदैव साऽमृतजला यमुना निर्विषाऽभवत् ॥ अनुग्रहाद् भगवतः क्रीडामानुषरूपिणः ॥ ६७ ॥

इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कालियनिर्यापणं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

मणि और बडे मोलके गहने दिव्य जिनमें सुगंधि ऐसे केशरि कस्तूरी चंदन बडी बडी कमलनसूं ॥ ६५ ॥ गरुडध्वज जगतके नाथ श्रीकृष्णचंद्रकी पूजा करि प्रसन्न करिके पीछे आज्ञा पाय वह काली सर्प प्रसन्न होयके परिक्रमा प्रणाम करिके अपनी स्त्री बालकनकूं संग लैके समुद्रके द्वीपमें जात भयो ॥ ६६ ॥ क्रीडा करिवेके निमित्त मनुष्यरूपधारी भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकी कृपाते ताही समय यमुनाजीको विष दूरि होयके अमृतसो जल होतभयो ॥ ६७ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषायां दशमस्कन्धे पू० कालियनिर्यापणो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

134

अब राजा परीक्षित प्रश्न करै हैं कि सर्पनके रहिवेको स्थान रमणकद्वीप है, ताकूं काली सर्प कौन कारणते छोडत भयो और गरुडको अकेले काली
नेही अपराध करो अथवा और सर्पननेभी करो यह कथा हमारे आगे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ हे महावाहु राजा परीक्षित! गरुड नित्यप्रति रमणकद्वीपमें
सर्पनकूं भक्षण करिवेको आवै हो, तब संपूर्ण सर्पनने आपुसमें विचार करि मास मासको अपनो दुःख निवृत्त करिवेके लिये वृक्षकी जडमें एका
न्त गरुडकी भेंट निश्चय करि दीनी ॥ २ ॥ सो अपनी अपनी वारीसूं भेंट रखि आमें, ओर पर्व पर्व में महात्मा गरुडकों भेंट देय हैं ॥ ३ ॥
विषके पराक्रमको अभिमानी कद्रुको पुत्र काली गरुडकों तुच्छ मानिके सर्पान्न गरुडके भोगको एक दिन आपही खात भयो ॥ ४ ॥

नागालयं रमणकं कस्मात् तत्याज कालियः ॥ कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमञ्जसम् ॥ १ ॥ श्री-
राजोवाच ॥ नागालयं रमणकं कस्मात् तत्याज कालियः ॥ कृतं किं वा सुपर्णस्य तेनैकेनासमञ्जसम् ॥ १ ॥

शुक उवाच ॥ उपहार्यैः सर्पजनैर्मासि मासीह यो बलिः ॥ वानस्पत्यो महाबाहो नागानां प्राङ्निरूपितः ॥ २ ॥
स्वं स्वं भागं प्रयच्छन्ति नागाः पर्वणि पर्वणि ॥ गोपीथायात्मनः सर्वे सुपर्णाय महात्मने ॥ ३ ॥ विषवीर्यमदाविष्टः
काद्रवेयस्तु कालियः॥कदर्थीकृत्य गरुडं स्वयं तं बुभुजे बलिम् ॥४॥ तच्छ्रुत्वा कुपितो राजन् भगवान् भगवत्प्रियः॥
विजिघांसुर्महावेगः कालियं समुपाद्रवत् ॥ ५ ॥ तमापतन्तं तरसा विषायुधः प्रत्यभ्ययादुच्छ्रितनैकमस्तकः ॥
दद्भिः सुपर्णं व्यदशद् ददायुधः करालजिव्होच्छ्वसितोग्रलोचनः ॥ ६ ॥ तं ताक्ष्यपुत्रः स निरस्य मन्युमान् प्रच-
ण्डवेगो मधुसूदनासनः ॥ पक्षेण सव्येन हिरण्यरोचिषा जघान कद्रूसुतमुग्रविक्रमः ॥ ७ ॥

हे राजन् परीक्षित ! भगवान्के प्यारे भगवान् गरुडजी हमारो भोजन काली खाय गयो यह बात श्रवण करिके क्रोध करि
कालीकूं मारिवेकें लिये दौरिके कालीके पास आवत भये ॥ ५ ॥ विषही जाके शस्त्र ऐसो काली सर्प ऊंचे फणनकूं उठायके दौरिके आये
गरुडजीकै सन्मुख जातभयो, दंत आयुध, भयानक जीभ, पलक जिनमें लगैं ऐसी भयानक आंखोवारो काली दांतनते
गरुडको काटतभयो ॥ ६ ॥ अतिक्रोधी शीघ्रगामी बडे पराक्रमी भगवान्के वाहन तार्क्ष्यके पुत्र गरुडजी सर्पकूं अपने

अंगमेंते छुडायकै सुवर्णकेसे प्रकाशवारे वांये पंखसो कद्रूके पुत्र कालीकूं मारत भये ॥ ७ ॥ गरुडके पंख लगनेसे वह कालीसर्प व्याकुल होयके जहां सौभरिऋषीश्वरके शापते गरुडजी आयभी न सकै जलमें पराक्रमभी न चले ऐसी यमुनाजीकी दह तामें आयके कालीने निवास कियो॥८॥ता दहमें एक समय गरुडजी मछरीनके खानेकी इच्छाकरिके आये तब सौभरि ऋषिनें मने करो तथापि क्षुधाके मारे जोरावरी खायगयो ॥९॥ जब मच्छरीनकौ राजा एक बडो मच्छ मरिगयो, तब और मच्छरीनकूं दीन देखिके उनके बचिवेके लिये सौभरिऋषी यह कहतभये ॥१०॥

सुपर्णपक्षाभिहतः कालियोऽतीव विह्वलः ॥ ह्रदं विवेश कालिन्द्यास्तदगम्यं दुरासदम् ॥ ८ ॥ तत्रैकदा जलचरं गरुडो भक्ष्यमीप्सितम् ॥ निवारितः सौभरिणा प्रसह्य क्षुधितोऽहरत् ॥ ९ ॥ मीनान् सुदुःखितान् दृष्ट्वा दीनान् मीनपतौ हते ॥ कृपया सौभरिः प्राह तत्रत्यं क्षेममाचरन् ॥ १० ॥ अत्र प्रविश्य गरुडो यदि मत्स्यान् स खादति ॥ सद्यः प्राणैर्वियुज्येत सत्यमेतद् ब्रवीम्यहम् ॥ ११ ॥ तं कालियः परं वेद नान्यः कश्चन लेलिहः ॥ अवासीद् गरुडाद् भीतः कृष्णेन च विवासितः ॥ १२ ॥ कृष्णं ह्रदाद्विनिष्क्रान्तं दिव्यस्रग्गन्धवाससम् ॥ महामणिगणाकीर्णं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥ १३ ॥ उपलभ्योत्थिताः सर्वे लब्धप्राणा इवासवः ॥ प्रमोदनिभृतात्मानो गोपाः प्रीत्याऽभिरेमिरे ॥ १४ ॥

या दहमें गरुड आयके जो मच्छरीनकूं खाय तौ तुरत गरुडके प्राण निकसि जांय यह बात में सत्य कहूंहूं या प्रकार प्राणिमात्रकी रक्षामें तात्पर्य वारे सौभरिऋषि यह शाप देतभये ॥ ११ ॥ गरुडको सौभरिऋषिको शाप भया यह बात कालीही जाने हो और कोई न जानेहै इस लिये गरुडके भयते काली वास करेहो, सो श्रीकृष्णचंद्रने निकासि दियो ॥ १२ ॥ सुंदर माला पहिरे चंदन केशरि लगाये वस्त्रनकूं पहिरे मणिनके जडाऊ सुवर्णके गहने पहिरे श्रीकृष्णचंद्र जब दहमेंते बाहर निकसे[१] ॥ १३ ॥ तब उनकों देखिके समस्त ब्रजवासी ठाढे होगये जैसे प्राण आयेते इंद्रिय चै-

---

[१] सवैया–हरि वदन को लखिराशि सुखकी मुदित वृजवासी भये। मनहु बूडत नावपाई परम उर आनंद छये॥ मातु पितु लखि जो भये सुखजात सो कांपै कह्यो। पुलकित नमन हरखी गद्गद् प्रेमजल लोचन वह्यो ॥

तन्य होय जाय हैं, या प्रकार आनंदमें भरे ब्रजवासी प्रसन्न होयकें छाती लगाये मिलत भये ॥ १४ ॥ हे कुरुवंशमें भये राजा परीक्षित ! यशोदाजी रोहिणीजी नंदजी गोपी गोप समस्त श्रीकृष्णचंद्रकूं आये देखिके जैसे गये प्राण ऐसे पूर्ण आई मनोरथ भये ॥ १५ ॥ श्रीकृष्णचंद्रके प्रभावके जाननेवारे बलदेवजी छातीते लगायके हसत भये, वृक्ष गउ बैल बछरानको देखिके बडे प्रसन्न होत भये ॥ १६ ॥ स्त्रीनकूं संग लैके गुरु पुरोहित ब्राह्मण नंदजीके पास आयके कहत भये कि कालीने तुह्मारो पुत्र श्रीकृष्ण डस्यौ वाते अब छुठौ यह बडो मंगल भयो ॥ १७ ॥ इनके मंगलके निमित्त ब्राह्मणौको दान दो तब जा समय श्रीकृष्णचंद्र नागते छूटिके आये तासमयकी वधाईमें नंदरायजी प्रसन्न होयके हे राजन् परीक्षित ! गौ सुवर्ण दान करि ब्राह्मणको देतभये ॥ १८ ॥ पतिव्रता श्रीयशोदाजी नष्ट भयेसे पुत्र श्रीकृष्णचंद्रकूं प्राप्त होयके छातीते लगाय गोदमें बैठार वेरि वेरि नेत्रनमेंते आंसूं छोड़तभई ॥ १९ ॥ नष्ट भयेसे पुत्रकूं पायके हे राजन् परीक्षित ! भूख[१] प्यासकरिकै पीडित ब्रजवासी गउ संपूर्ण वा दिन रात्रकूं

यशोदा रोहिणी नन्दो गोप्यो गोपाश्च कौरव ॥ कृष्णं समेत्य लब्धेहा आसन् लब्धमनोरथाः॥ १५॥ रामश्चाच्युतमालिङ्ग्य जहासास्यानुभाववित् ॥ नगा गावो वृषा वत्सा लेभिरे परमां मुदम्॥ १६॥ नन्दं विप्राः समागत्य गुरवः सकलत्रकाः ॥ ऊचुस्ते कालियग्रस्तो दिष्ट्या मुक्तस्तवात्मजः ॥ १७ ॥ देहि दानं द्विजातीनां कृष्णनिर्मुक्तिहेतवे ॥ नन्दः प्रीतमना राजन् गाः सुवर्णं तदाऽदिशत् ॥ १८॥ यशोदापि महाभागा नष्टलब्धप्रजा सती ॥ परिष्वज्याङ्कमारोप्य मुमोचाश्रुकलां मुहुः॥ १९॥ तां रात्रिं तत्र राजेन्द्र क्षुत्तृड्भ्यां श्रमकर्षिताः ॥ ऊषुर्व्रजौकसो गावः कालिन्द्या उपकूलतः॥ २०॥

---

[१] एक राजाके पास एक वैद्य डिब्बा भरकै रस लायें और कही जो इस रसको शींक भरके हाथी को सुंघाओ तौ वह भी मरजाय आदमी की तौ बात ही कौन है यह डेढपाव रस १० हजारको है राजाने कही समय पर जानै कौन वस्तु काम आय जाय लेलियो और अपने नौकर को सौंप दियो एक नया नौकर नै कहीं खिडकीमें राजपुत्री देखली फिर बडे उपाय देखनैके किये और वो न दीखी तौ उसके वियोगमें वह रस खालियो पर मरो नहीं एक वर्ष वीतगया राजानै एक दिन डिब्बा मंगाया देखै तौ उसमें उंगरिन को चिन्ह है राजाने खिदमतगारसे पूछी तब उसने कही कि खायो तौ मैंने है पर मरो नहीं राजाने वैद्य बुलाय समाचार कहे वैद्यने आय नौकरकूं एकान्तमें लेजाय सत्य२ समाचार पूछें तौ उसने सत्य कहदी वैद्य बोले राजन् रस सांचो है और एक सींक भरकै कुत्ताकूं सुंघाई वोह तुरत मरगयो तब राजानै कही नौकर क्यौं न मरो वैद्य बोले राजकन्या को छन मात्र की खिडकी में बैठाय दो और आपने यह नौकर ह्यां खडे रहैं राजा नै वैसै ही करी सो राजकन्या की दृष्टि पडतेही नौकर मरगयो कारणकी उसके प्राण राजकन्या में अटक हैं तो ऐसे ही व्रजवासियौं के मन जब कृष्णमें निकसै तब उन्हें भूख प्यास लगी ।

यमुनाजीके किनारे वास करतभये ॥ २० ॥ उसी दिन अर्द्धरात्र समय गरमी की ऋतु में शुष्कवनमें ब्रजवासी सब सोय गये, तब चारों ओरते घेरके दैत्य वनकी ज्वालासै जरायवेको उपाय करतभयो ॥ २१ ॥ तापीछे सब ब्रजवासी जरनेलगे तब उठिके हरबरान लगे मायाकरिके मनुष्यरूप धारी समर्थ श्रीकृष्णकी शरण लेतभये ॥ २२ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे महाभाग ! हे राम ! बडे पराक्रमी तेरे हम ब्रजवासीनको भयानक यह अग्नि जरावै है ॥ २३ ॥ हे समर्थ ! असह्य कालरूप अग्नि हम मित्रौंकूं मन बचाई ओरतै भय रहित तुम्हारे चरण हमपै नहीं छोडे जाते अग्निमें जरिवे तेभी हम

तदा शुचिवनोद्भूतो दवाग्निः सर्वतो व्रजम् ॥ सुप्तं निशीथ आवृत्य प्रदग्धुमुपचक्रमे ॥२१॥ तत उत्थाय संभ्रान्ता दह्यमाना व्रजौकसः ॥ कृष्णं ययुस्ते शरणं मायामनुजमीश्वरम् ॥ २२ ॥ कृष्ण कृष्ण महाभाग हे रामामितविक्रम ॥ एष घोरतमो वह्निस्तावकान् ग्रसते हि नः॥२३॥सुदुस्तरान्नः स्वान् पाहि कालाग्नेः सुहृदः प्रभो॥ न शक्नुमस्त्वच्चरणं संत्यक्तुमकुतोभयम् ॥ २४ ॥ इत्थं स्वजनवैक्लव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः ॥ तमग्निमपिबत् तीव्रमनन्तोऽनन्तशक्तिधृक् ॥२५॥ इति श्रीभागवते म० दशमस्कन्धे पू० कालियदमनो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ कृष्णः परिवृतो ज्ञातिभिर्मुदितात्मभिः ॥ अनुगीयमानो न्यविशद्व्रजं गोकुलमण्डितम् ॥ १ ॥ व्रजे विक्रीडतोरेव गोपालच्छद्ममायया ॥ ग्रीष्मो नामर्तुरभवन्नातिप्रेयान् शरीरिणाम् ॥ २ ॥

नहीं डरपै हैं किंतु तुम्हारे चरणनके वियोगते डरपे हैं ॥ २४ ॥ या प्रकार विश्वके ईश्वर और अनंत शक्तिनकूं धारण करनेहारे श्रीकृष्णचंद्र अपने ब्रजवासीनकी व्याकुलता देखिके भयानक अग्निकूं पान करत भये ॥ २५ ॥ इतिश्रीमन्म० भाषाटीकायां द० पू० कालियदमनो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ श्रीशुकदेवजी राजापरीक्षिततें कहेहैं कि हे राजन् ! प्रसन्नमनवारे जातिके ब्रजवासीनकूं संग लैके आगि पियेके पीछे ब्रजवासी जिनके चरित्रनकूं गावत आमें ऐसे श्रीकृष्ण गऊनके समूहसूं शोभायमान ब्रजमें आवत भये ॥ १ ॥ गौननको चराकेमिससै मायाकरिके

---

१ पद-अबकैराखिलेहुगोपाल दसोंदिशातें दुसहदवाग्नि उपजीहैएहिकाल पटकतबांसकांसकुशचटकतलटकततालतमाल ॥ १ ॥ उचतटअतिअंगार फुटतफिर उपटतलपटकराल धूम सूखवाढीघुरअंबरचमकतविचाविचज्वाल॥२॥हिरनवराह मोरचातकपिकजरतजीवबेहाल जिनजियडरो नैन सब मूदों हंसिबोलेनँदलाल॥३॥सूरअनलसब वदन समानी अभयकरै ब्रजबाल ॥ ४ ॥

या प्रकार ब्रजमें श्रीकृष्णचंद्र बलदेवजी को लीला करते २ गरमीऋतु आवत भई, यह गरमीकी ऋतु देहधारीनकूं बहुत प्यारी नहीं लगेहै ॥ २ ॥ गरमी की ऋतु वृन्दावनकें गुणनसूं वसंत ऋतुकी तुल्य दिखाई देय हैं, जा वृन्दावनमें साक्षात् केशव भगवान् बलदेवजी कूं संग लेकै रहें हैं ॥ ३ ॥ जा वृन्दावनमें झरनानके शब्दसूं झींगरकी बोली नहीं सुनाई देइ है, सदा झरना जो झरे है तिनके छीटानसों हरे वृक्षके समूहनसूं शोभायमान वृन्दावन होय रह्यो है ॥ ४ ॥ हरी हरी घास जामें ह्वैरहै वा वृन्दावनमें कल्हार कंज उत्पल यह जो कमलकी जाती हैं तिनकी गंधयुक्त नदी सरोवर झरनानसूं स्पर्श करिके जो पवन चले है तासूं वृन्दावनवासीनकूं गरमीकी ऋतुमें अग्निकी तथा सूर्यकी गरमाई नहीं सतावैहै ॥ ५ ॥

स च वृन्दावनगुणैर्वसन्त इव लक्षितः ॥ यत्रास्ते भगवान् साक्षाद्रामेण सह केशवः ॥ ३ ॥ यत्र निर्झरनिर्ह्रादनिवृत्तस्वनझिल्लिकम् ॥ शश्वत्तच्छीकरर्जीषं द्रुममण्डलमण्डितम् ॥ ४ ॥ सरित्सरःप्रस्रवणोर्मिवायुना कह्लारकञ्जोत्पलरेणुहारिणा ॥ न विद्यते यत्र वनौकसां दवो निदाघवह्न्यर्कभवोतिशाद्वले ॥ ५ ॥ अगाधतोयह्रदिनीतटोर्मिभिर्द्रवत्पुरीष्याः पुलिनैः समन्ततः ॥ न यत्र चण्डांशुकरा विषोल्बणा भुवो रसं शाद्वलितं च गृह्णते ॥ ६ ॥ वनं कुसुमितं श्रीमन्नदच्चित्रमृगद्विजम् ॥ गायन्मयूरभ्रमरं कूजत्कोकिलसारसम् ॥ ७ ॥ क्रीडिष्यमाणस्तत् कृष्णो भगवान् बलसंयुतः ॥ वेणुं विरणयन् गोपैर्गोधनैः संवृतोऽविशत् ॥ ८ ॥ प्रवालबर्हस्तबकस्रग्धातुकृतभूषणाः ॥ रामकृष्णादयो गोपा ननृतुर्युयुधुर्जगुः ॥ ९ ॥ कृष्णस्य नृत्यतः केचिज्जगुः केचिदवादयन् ॥ वेणुपाणितलैः शृङ्गैः प्रशशंसुरथापरे ॥ १० ॥

बडे जलवारे सरोवरनके किनारेसूं लगिके जो लहरें उठैहैं तिनसूं टापूनकी तथा किनारेनकी पृथ्वीमें सजलताई आवै है, वा पृथ्वीकी सजलताईकूं और हरियालीकूं विषकी तुल्य भयानक सूर्यकी किरणैं नहीं सुखावैं हैं ॥ ६ ॥ पुष्प जहां फूलि रहे अनेक जाति के जीव जंतु पक्षी जिनमें बोलें भौंरा जहां गामें कोकिला सारस पच्छी जामें बोलें ऐसो शोभायमान वृन्दावन है ॥ ७ ॥ तामें श्रीभगवान् कृष्णचंद्र बलदेवजीकूं संगलैके और गोप गोपीनकूं संग लैके बांसुरी बजायके खेलिवेकूं जातभये ॥ ८ ॥ पत्ता मोरपुच्छ फूलनके गुच्छा मारा खरिया गेरु मनशिलसूं शृंगार करिके राम कृष्णसूं आदिलैके ब्रजबासी कभऊ नाचत भये कभऊ गावत भये कभऊ कुस्ती लडतभये ॥ ९ ॥ कृष्णचंद्र जब नृत्य

करे हैं तब कोई ग्वालबाल गावतभये, और बांसुरी हथेरी सींगी इन बाजेनकूं बजावत भये, कोई भले नाचे या प्रकार बढाई करत भये ॥१०॥ हे राजन् परीक्षित ! गोपरूपमें छिपे देवता गोपालरूप श्रीकृष्णचंद्र बलदेवकी बढाई करतभये जैसे नट नटकी बढाई करे हैं ॥ ११ ॥ मूंडनो जिनको भयो नहीं ऐसे श्रीकृष्णचंद्र बलदेवजी दोनों भैया कभऊ छाई मांई खेले हैं, कभऊ कूदेहैं कभऊ धक्काधक्की करे हैं, कभऊ खंब ठोके हैं, कभऊ खेंचाखेंची करे हैं, या प्रकार क्रीडाकरिके खेलतभये ॥ १२ ॥ हे राजन् परीक्षित ! कभऊ एक ग्वालबाल नाचे हैं, तब श्रीकृष्णचंद्र बलदेव दोनों भैया आप गामें हैं और बाजे बजायके भले नाचे भले नाचे या प्रकार बडाई करत भये ॥ १३ ॥ कभऊ बेलके फलनकूं फेके हैं, कभऊ कुंभवृक्षके फलनकूं फेके

गोपजातिप्रतिच्छन्ना देवा गोपालरूपिणः ॥ ईडिरे कृष्णरामौ च नटा इव नटं नृप ॥ ११ ॥ भ्रामणैर्लङ्घनैः क्षेपैरास्फोटनविकर्षणैः ॥ चिक्रीडतुर्नियुद्धेन काकपक्षधरौ क्वचित् ॥१२॥ क्वचिन्नृत्यत्सु चान्येषु गायकौ वादकौ स्वयम्॥ शशंसतुर्महाराज साधु साध्विति वादिनौ ॥१३॥ क्वचिद्‍ बिल्वैः क्वचित् कुम्भैः क्व चामलकमुष्टिभिः॥ अस्पृश्यनेत्रबन्धाद्यैः
क्वचिन्मृगखगेहया ॥ १४ ॥ क्वचिच्च दर्दुरप्लावैर्विविधैरुपहासकैः ॥ कदाचित् स्पन्दोलिकया कर्हिचिन्नृपचेष्टया ॥१५॥
एवं तौ लोकसिद्धाभिः क्रीडाभिश्चेरतुर्वने ॥ नद्यद्रिद्रोणिकुञ्जेषु काननेषु सरस्सु च ॥ १६ ॥ पशूंश्चारयतोर्गोपैस्तद्वने
रामकृष्णयोः ॥ गोपरूपी प्रलम्बोऽगादसुरस्तज्जिहीर्षया ॥ १७॥

हैं, कभऊ आमले मुट्ठीनमें लैलैके फेकै हैं, कभऊ छुआछुई कभऊ आंखिमिचौनी आदि लेके खेल खेलत भये कभऊ एक पशु पच्छी बनिके खेले हैं ॥ १४ ॥ कभऊ एक मेंढककी तुल्य फुदकै हैं कभऊ टेढी पाग करिके भांडनकीसी नकल करे हैं, कभऊ वृक्षमें झूला डारिके झूले हैं, कभऊ श्रीकृष्णचंद्र बलदेवजी राजा बने हैं, ग्वालबालनकों सिपाई बनामें हैं, ग्वालिन दही लेके आमें हैं तिनसूं कर लेय हैं ॥ १५ ॥ या प्रकार श्रीकृष्णचंद्र बलदेवजी दोनों भैया संसारमें प्रसिद्ध खेलनकूं करि करिके नदीनमें गोवर्द्धन पर्वतकी गुफानमें कुंजनमें वननमें सरोवरनमें बिचरत भये ॥१६॥ ता वृंदावनसें गोपनकूं संग लैके गऊनकूं चरानेहारे श्रीकृष्णचंद्र बलदेवजीको हर लैवेके कारण प्रलंबासुर गोपको रूप धरिके आवतभयो ॥ १७ ॥ दाशार्ह

140

वंशमें प्रकट भये समस्त बातनके जाननेवारे श्रीकृष्णचंद्र भगवान् मनमें जानें हैं कि यह असुर आयो तब वाके मारनेको विचार कर तथापि वाके न जानिवेके लिये बडाई करत भये भली भई भली भई मित्र तू अब जलदी आय गयो ॥ १८ ॥ खेलके जाननवारे श्रीकृष्णचंद्र ता समय ग्वालबालनकूं बुलायके कहत भये हैं ग्वालबालो हम बराबरके दोनों मिलिके खेल खेलेंगे ॥ १९ ॥ ता समय ग्वाल श्रीकृष्णचंद्र बलदेवजी दोनोंनको मुख्य बनावत भये, कोई ग्वाल श्रीकृष्णचंद्रकी ओर होतभये, और कोई ग्वाल बलदेवजीकी ओर होत भये ॥ २० ॥ पीठिंपै चढिवो और चढायके ले चलिवो यह जिनके स्वरूप ऐसे अनेक प्रकारके खेल खेलत भये या खेलमें जे बालक खेल जीते तौ पीठिंपै चढै

तं विद्वानपि दाशार्हो भगवान् सर्वदर्शनः ॥ अन्वमोदत तत्सख्यं वधं तस्य विचिन्तयन् ॥१८॥ तत्रोपहूय गोपालान् कृष्णः प्राह विहारवित् ॥ हे गोपा विहरिष्यामो द्वन्द्वीभूय यथायथम् ॥१९॥ तत्र चक्रुः परिवृढौ गोपा रामजनार्दनौ॥ कृष्णसंघट्टिनः केचिदासन् रामस्य चापरे ॥ २० ॥ आचेरुर्विविधाः क्रीडा वाह्यवाहकलक्षणाः ॥ यत्रारोहन्ति जेतारो वहन्ति च पराजिताः ॥ २१ ॥ वहन्तो वाह्यमानाश्च चारयन्तश्च गोधनम् ॥ भाण्डीरकं वटं नाम जग्मुः कृष्णपुरोगमाः ॥ २२ ॥ रामसंघट्टिनो यर्हि श्रीदामवृषभादयः ॥ क्रीडायां जयिनस्तांस्तानूहुः कृष्णादयो नृप ॥ २३ ॥ उवाह कृष्णो भगवान् श्रीदामानं पराजितः ॥ वृषभं भद्रसेनस्तु प्रलम्बो रोहिणीसुतम् ॥२४॥ अविषह्यं मन्यमानः कृष्णं दानवपुङ्गवः ॥ वहन् द्रुततरं प्रागादवरोहणतः परम् ॥ २५ ॥

हैं, और जे हारे ते चढायके ले चलै हैं, चढत चढावत गायनकूं चरावत श्रीकृष्ण सहित वे ग्वाल भांडीरक वटको जात भये ॥ २१ ॥ २२ ॥ हे राजन् परीक्षित ! बलदेवजीकी ओरके श्रीदामा वृषभकूं आदि लैके बालक या समय खेलमें जीते, तब श्रीकृष्णचंद्रकूं आदि लैके जे बालक ते पीठिंपै चढायके चलत भये ॥ २३ ॥ भगवान् श्रीकृष्णचंद्र जब हारे तब श्रीदामा गोपकूं ऊपर अपने चढायके चलत भये, भद्रसेन ग्वाल वृषभको चढावत भयो, प्रलंबासुर रोहिणी पुत्र बलदेवजीकूं चढावत भयो ॥ २४ ॥ दानवनमें श्रेष्ठ प्रलंबासुर श्रीकृष्णकूं जोरावर मानिके बलदे-

वजीकूं पीठिपै चढायके शीघ्रताते दौरिके उतरिवेको करार हो तहांते आगे जातभये ॥ २५ ॥ महा असुर पर्वतके समान भार करनेहारे बलदेवजी को पीठिपै चढायके भाज्यो, तासुं वाको बल थकिगयो तब अपने असुर रूप को धरि कै सुवर्णके गहिने पहिरे ऐसे सुन्दर लगतभयो जैसे चंद्रमा बिजली सहित मेघ सुंदर लगे है इहां चंद्रमासमान बलदेवजी है, और मेघसमान असुर है, विजुरी सदृश वाके गहने हैं ॥२६॥ आकाश पर्यंत प्रकाशमान ऊंची जाके नेत्र (अथवा करालभौं हैं और भयानक जिसकी डाढ हैं) भौंहनसूं लगी भयानक जाकी दाढ है लाल ताम्र वर्ण जाके बार है कडा कुंडल मुकटकी शोभा है तासु अद्भुत असुर को रूप देखिकै हलके धारण करनवारे बलदेवजी यह कैसो गोप ऐसे कुछ मन में ड़रपत भये ॥ २७ ॥ प-

तमुद्वहन् धरणिधरेन्द्रगौरवं महासुरो विगतरयो निजं वपुः ॥ स आस्थितः पुरटपरिच्छदो बभौ तडिद्द्युमानुडुपतिवाडिवाम्बुदः ॥२६॥ निरीक्ष्य तद्वपुरलमम्बरे चरत् प्रदीप्तदृग् भ्रुकुटितटोग्रदंष्ट्रकम् ॥ ज्वलच्छिखं कटककिरीटकुण्डलत्विषाऽद्भुतं हलधर ईषदत्रसत् ॥ २७॥ अथाऽऽगतस्मृतिरभयो रिपुं बलो विहायसाऽर्थमिव हरन्तमात्मनः ॥ रुषाऽहनच्छिरसि दृढेन मुष्टिना सुराधिपो गिरिमिव वज्ररंहसा ॥ २८ ॥ स आहतः सपदि विशीर्णमस्तको मुखाद्वमन् रुधिरमपस्मृतोऽसुरः ॥ महारवं व्यसुरपतत् समीरयन् गिरिर्यथा मघवत आयुधाहतः ॥ २९ ॥ दृष्ट्वा प्रलम्बं निहतं बलेन बलशालिना ॥ गोपाः सुविस्मिता आसन् साधु साध्विति वादिनः ॥ ३० ॥ आशिषोऽभिगृणन्तस्तं प्रशशंसुस्तदर्हणम् ॥ प्रेत्यागतमिवालिङ्ग्य प्रेमविह्वलचेतसः ॥ ३१ ॥

हिले तो किंचित् भयमानो तापीछे सुधी आयगई कि यह तो असुर है, तब भय रहित दूर होय बलदेवजी अपने गोपनते छुटायके आपकूं जोरावरी लेजाते असुरके मुंडमें क्रोधकरिके जोरते मुक्का मारत भये, जैसे देवतानमें मुख्य इंद्र वज्रतें पर्वतको मारे हैं ॥ २८ ॥ मुक्काके लगते तुरत ताको माथो फटिगयो, सुधि जातरही तब प्रलम्बासुर बड़ो शब्द करत इंद्रके वज्रके मारे जैसे पहाड़ गिरैहै तैसे मरिके गिरत भयो ॥ २९ ॥ बड़े बलवान् बलदेवजी से मरे प्रलम्बासुरकूं देखिके ग्वालबालनने बड़ौ आश्चर्य मानौ, भलीकरी भलीकरी ऐसे कहत भए ॥ ३० ॥ चिरंजीव रहो ऐसे बलदेवजी को गोप आशीर्वाद देत भये प्रशंसाके योग्य बलदेवजीकी प्रशंसा करत भये, और जैसे कोई मरिके बगद आवै है, ऐसे बलदेवजां सों मिलिके प्रेमविह्वल

मन होत भये ॥३१॥ पापी प्रलम्बासुर मरो देवतानके बडो आनंद होत भयो, बलदेवजीके ऊपर फूलनकी वर्षा करत भलीकरी भलीकरी ऐसे स्तुति करत भये ॥ ३२ ॥ इतिश्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे पू० प्रलंबवधो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं कि हे राजन् परीक्षित ! ग्वालबाल समस्त खेलमें आसक्त भये, तब उनकी गौ दूरि अपनी इच्छासों चरत चरत सघनबनमें जात भई ॥ १ ॥ ओसरें गऊ भेसि एक वनमें धसिके दूसरे वनमें धसिके मुंजके बनमें धसतभई और दाव लगनेसै प्यासी हो रम्हाने लगी ॥ २ ॥ तासमय श्रीकृष्ण रामसूं आदिलैके ग्वालहैं गऊनके देखेबिना व्याकुल होयके ढूंढनलगे कहां गऊ चली गई यह न जानत भये ॥ ३ ॥ जीविकाके साधन खोय जाने-

पापे प्रलम्बे निहते देवाः परमनिर्वृताः॥ अभ्यवर्षन् बलं माल्यैः शशंसुः साधु साध्विति ॥३२॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे प्रलम्बवधो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥ श्रीशुक उवाच ॥ क्रीडासक्तेषु गोपेषु तद्गावो दूरचारिणीः॥ स्वैरं चरन्त्यो विविशुस्तृणलोभेन गह्वरम् ॥ १ ॥ अजा गावो महिष्यश्च निर्विशन्त्यो वनाद्वनम् ॥ इषीकाटवीं विविशुः क्रन्दन्त्यो दावतर्षिताः ॥ २॥ तेऽपश्यन्तः पशून् गोपाः कृष्णरामादयस्तदा ॥ जातानुतापा न विदुर्विचिन्वन्तो गवां गतिम् ॥ ३ ॥ तृणैस्तत्खुरदच्छिन्नैर्गोष्पदैरङ्कितैर्गवाम् ॥ मार्गमन्वगमन् सर्वे नष्टाऽऽजीव्या विचेतसः ॥ ४ ॥ मुञ्जाटव्यां भ्रष्टमार्गं क्रन्दमानं स्वगोधनम् ॥ संप्राप्य तृषिताः श्रान्तास्ततस्ते संन्यवर्तयन् ॥५॥ ता आहूता भगवता मेघगम्भीरया गिरा ॥ स्वनाम्नां निनदं श्रुत्वा प्रतिनेदुः प्रहर्षिताः ॥ ६ ॥

से तिनके चित्त स्थिर नहीं रहे तब ग्वालबाल गौनके खुरनते दांतनते काटी घासको और खुरनके खौंजनकों देखत देखत जहां होयके गऊ गईही तहां आवत भये ॥ ४ ॥ मूंजके वनमें धसि गयो रस्ता रुकनसे दुःखित शब्द करत गऊनको समूहकूं देखिके प्यासे और ढूंढनेके खेदसै कातर होय ब्रजवासी उन्है घेर पीछे फिरे ॥ ५ ॥ मेघकीसी गरजनवारी वाणीसूं भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने जब बुलाई तब वे गऊ अपनें अपनें नामकूं श्रवण करिके हर्षित होयके रम्हात भई यामें यह जतामें हैं तुम्हारी बोली तो सुनी है परंतु मार्गमें अग्नि जो लगि रहि है तासूं आय नहीं सके हैं ॥६॥

ता पीछे वनमें धूम ध्वजावारो बडो अग्नि अनायास वनवासी जीवनकूं जरायवेके लिये लगत भयो, और पवन चलने सों भवक गयो सिलगती लकरियानसूं वृक्षनकूं प्राणीनकूं जराने लगे ॥ ७ ॥ गोप गऊ चारों ओरते लगी अग्निकूं देखिके भयभीत होय बलदेवजी सहित श्रीकृष्णचंद्र तिनकी शरण आयके बोलत भये, जैसे मृत्युके भयतें व्याकुल होयके प्राणी हरिको शरण लेइहैं ॥ ८ ॥ हे कृष्ण हे कृष्ण ! बडे पराक्रमी अप्रमाण पराक्रमवारे हे राम ! वनकी अग्नि हमको जरावे है तुम्हारे शरण आयहैं हमारी रक्षा करौ ॥ ९ ॥ हे कृष्ण हे समस्त धर्मनके जाननवारे ! हम तेरे मित्र कष्ट पायवे योग्य नहीं हैं निश्चय करिके तुमही हमारे नाथ हो तुमारोही हमको आसरो है ॥ १० ॥ अब

ततः समन्ताद् वनधूमकेतुर्यदृच्छयाभूत् भयकृद् वनौकसाम् ॥ समीरितः सारथिनोल्बणोल्मुकैर्विलेलिहानः स्थिरजङ्गमान्
महान् ॥ ७ ॥ तमापतन्तं परितो दवाग्निं गोपाश्च गावः प्रसमीक्ष्य भीताः ॥ ऊचुश्च कृष्णं सबलं प्रपन्ना यथा
हरिं मृत्युभयार्दितो जनः॥८॥ कृष्ण कृष्ण महावीर्य हे रामामितविक्रम॥ दवाग्निना दह्यमानान् प्रपन्नांस्त्रातुमर्हथः॥९॥
नूनं त्वद्बान्धवाः कृष्ण नचार्हन्त्यवसीदितुम् ॥ वयं हि सर्वधर्मज्ञ त्वन्नाथास्त्वत्परायणाः ॥१०॥ श्रीशुक उवाच ॥ वचो
निशम्य कृपणं बन्धूनां भगवान् हरिः ॥ निमीलयत मा भैष्ट लोचनानीत्यभाषत ॥ ११ ॥ तथेति मीलिताक्षेषु
भगवानग्निमुल्बणम् ॥ पीत्वा मुखेन तान् कृच्छ्राद् योगाधीशो व्यमोचयत् ॥ १२ ॥ ततश्च तेऽक्षीण्युन्मील्य पुनर्भाण्डीरमापिताः ॥ निशम्य विस्मिता आसन्नात्मानं गाश्च मोचिताः ॥१३॥ कृष्णस्य योगवीर्यं तद् योगमायाऽनुभावितम्
॥ दवाग्नेरात्मनः क्षेमं वीक्ष्य ते मेनिरेऽमरम् ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहेहैं सबके दुःखनके हरनवारे भगवान् मित्रनको दीनवचन सुनिके कहतभये भय मतिकरौ नेत्र अपने मूंदिलेऊ ॥ ११ ॥ ता प्रकार सब गोपनके नेत्र मूंदवायके योगके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचंद्र भयानक अग्निकूं मुखतें पीके मित्रनकूं कष्टते छुडावत भये ॥ १२ ॥ तापीछे वे गोप नेत्र खोले तो फिर भांडीरवनमें लायके बैठार दिये, अपनेकूं और गौनकूं अग्नितै छूटे देखिके विस्मित होत भये ॥ १३ ॥ जिसमें योगमाया का प्रभाव प्रगट होरहाहै ऐसे दवाग्निके छुडानैसै श्रीकृष्णचंद्रके प्रभावकूं देखिके कृष्ण हममें मनुष्य नहीं है देवता है ऐसे सब गोप मानत भये ॥ १४ ॥

बलदेवजी सहित श्रीकृष्णचंद्र संध्यासमय वनते गौनकों लेके बासुरी बजावत गोप जिनकी स्तुति करै ऐसे ब्रजमें आवतभये ॥ १५ ॥ कृष्णचंद्रके दर्शन करेतै गोपींनको परम आनंद होतभयो उन्है श्रीकृष्णके दर्शनबिना एकक्षण सौ युगकी बराबर बीततभयो ॥ १६ ॥ इतिश्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे पू० दावाग्निमोक्षो नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥ श्रीशुकदेवजी बोले कि अग्निते अपनेको छुडायो, इस श्रीकृष्ण बलरामके अद्भुत कर्मकूं गोप स्त्रीनते कहतभये प्रलंबासुरको वधभी कहत भये ॥ १ ॥ वृद्ध वृद्ध गोप गोपी यह बात सुनके विस्मय मानिके ब्रजमें आये श्रीकृष्ण बलदेवकूं मुख्यदेवता मानत भये ॥ २ ॥ गरमीकी ऋतुके पीछे वर्षाऋतु आवतभई ता वर्षाऋतुमें कितनेहु जीव उत्पन्न होयहैं, और कितनेहू जीव नष्ट होयहै और कितनेहू जीवन की जीविका होयहै सूर्य चंद्रमाके मंडल प्रकाशित होयहैं आकाशमें क्षोभ होयहै ऐसी वर्षाऋतु प्राप्तभई ॥ ३ ॥ बिजुरी जिनमें चमके गर्जन जिनमें होय ऐसे सघन नीले बादर छारहेहैं सूर्य चंद्रमा तारागणको प्रकाश ढकजानेसै आकाश वर्षाऋतुमें सुंदर लगत भयो, जैसे सतोगुण रजो गुण तमोगुणकी उपमा है, यह त्यागिवे योग्य दृष्टांतहै जीवकों ऐसो नहीं चहिये जो गुणनकरि आवृत होई जाय ॥ ४ ॥ आठ महिने पर्यंत जो सूर्यने अपनी किरणनकरि पृथ्वीकों जलरूप द्रव्य सोखो है उसै बर्षाऋतुमें वर्षायवेको प्रारंभ करत भयो, या श्लोकमें राजाकी उपमा जताई जो अपनी प्रजासुं सुकालमें कर लेईहै, अकालमें उनकों अन्न देकै पालन करे, यह ग्रहणकरिवे योग्य दृष्टांत है राजाकूं

गाः सन्निवर्त्य सायाह्ने सहरामो जनार्दनः॥ वेणुं विरणयन् गोष्ठमगाद् गोपैरभिष्टुतः॥१५॥ गोपीनां परमानन्द आसीद् गोविन्ददर्शने ॥ क्षणं युगशतमिव यासां येन विनाऽभवत् ॥ १६ ॥ इति श्रीभा०द०पू० दावाग्निपानं नामैकोनविंशोध्यायः ॥ १९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ तयोस्तदद्भुतं कर्म दावाग्नेर्मोक्षमात्मनः ॥ गोपाः स्त्रीभ्यः समाचख्युः प्रलम्बवधमेव च ॥ १ ॥ गोपवृद्धाश्च गोप्यश्च तदुपाकर्ण्य विस्मिताः ॥ मेनिरे देवप्रवरौ कृष्णरामौ व्रजं गतौ ॥ २ ॥ ततः प्रावर्तत प्रावृट् सर्वसत्त्वसमुद्भवा ॥विद्योतमानपरिधिर्विस्फूर्जितनभस्तला ॥३॥ सान्द्रनीलाम्बुदैर्व्योम सविद्युत्स्तनयित्नुभिः ॥ अस्पष्टज्योतिराच्छन्नं ब्रह्मैव सगुणं बभौ ॥ ४ ॥ अष्टौ मासान् निपीतं यत् भूम्याश्चोदमयं वसु ॥ स्वगोभिर्मोक्तुमारेभे पर्जन्यः काल आगते ॥ ५ ॥

ऐसोही उचित है ॥ ५ ॥ बड़ी पवनने चलायमान किये बिजुली की चमकसे युक्त बड़े मेघ या विश्वको पुष्ट करनवारे जीवन जलको वर्षावत भये, जैसे करुणावान पुरुष दुःखीनको देखिके वाके ऊपर कृपा करिके ताके सुखके लिये अपने प्राणतक देई है, तैसे बड़े मेघ अपने विजुली रूप नेत्रनते सन्तप्तविश्वको देखिके पवनसे चलायमान होयके जलकूं वर्षावें हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है, जो महान् पुरुषनको ऐसोही चहिये ॥६॥ गरमी की धूपसों दुर्बल हुई तब इन्द्र से वर्षाद्वारा सींची गई पृथ्वी वर्षाऋतु में फूलत भई यह वर्षाऋतुको वर्णन है यामें दृष्टान्त है जैसो कोई पुरुष पुत्रकी अथवा धनकी इच्छा करिके तप करे है तब वाको देह सूख जाय है तपको फल मिले पीछे फिर देह जैसे पुष्ट होय है, यह त्याज्य दृष्टान्त है पुरुष को ऐसो उचित नहीं है जो सकाम तप करे ॥ ७ ॥ वर्षाऋतुमें सन्ध्यासमय पटवीजना प्रकाश करे हैं तारागण नहीं प्रकाश करे हैं यामें

तडित्त्वन्तो महामेघाश्चण्डश्वसनवेपिताः ॥ प्रीणनं जीवनं ह्यस्य मुमुचुः करुणा इव ॥ ६॥ तपःकृशा देवमीढा आसीत्
वर्षीयसी मही ॥ यथैव काम्यतपसस्तनुः संप्राप्य तत्फलम् ॥ ७ ॥ निशामुखेषु खद्योतास्तमसा भान्ति न
ग्रहाः ॥ यथा पापेन पाखण्डा नहि वेदाः कलौ युगे ॥ ८ ॥ श्रुत्वा पर्जन्यनिनदं मण्डूका व्यसृजन् गिरः ॥
तूष्णीं शयानाः प्राग् यद्वत् ब्राह्मणा नियमात्यये ॥ ९ ॥ आसन्नुत्पथवाहिन्यः क्षुद्रनद्योऽनुशुष्यतीः ॥ पुंसो यथाऽ-
स्वतन्त्रस्य देहद्रविणसंपदः ॥ १० ॥ हरिता हरिभिः शष्पैरिन्द्रगोपाश्च लोहिताः ॥ उच्छिलीन्ध्रकृतच्छाया नृणां
श्रीरिव भूरभृत् ॥ ११ ॥

दृष्टान्त देई है जैसे कलियुगमें पापसूं पाखण्डमार्ग चले हैं, वेदमार्ग अस्त होयहै, यह त्याज्य दृष्टान्त है पुरुषनकूं ऐसो उचित नहीं है जो पाखण्डमार्गमें प्रवृत्त होय ॥ ८ ॥ वर्षाऋतुमें मेघकी गर्जन सुनिके मेढुक बोलत भये, यामें दृष्टान्त है जैसे विद्यार्थी पहले चुप बैठरहे हैं गुरु जब सन्ध्योपासन करचुके है तब पाठ लैके पढे हैं यह ग्राह्य दृष्टान्त है विद्यार्थीको यही उचित है गुरु जब बुलावे तब पाठलेय ॥ ९ ॥ शीघ्र सूख जानेवाली क्षुद्र नदी वर्षाऋतुमें जल वर्षनेसे मर्य्याद छोड़ छोड़ के उमड़ उमड़ के बहत भई जैसे इन्द्रीन के बशते पुरुष के देह द्रव्य सम्पत्ति खोटे मार्गमें लगै है, यह त्याज्य दृष्टान्त है ऐसो न चाहिये जो कुमार्गमें धन लगामें ॥ १० ॥ वर्षाऋतुमें हरे हरे घास उत्पन्नभये, लाल लाल वीरबहोटी डोलनेलगे छतोना फूले

आये ऐसी पृथ्वी शोभित होतभई, यह तो वर्षाऋतु वर्णन है यामें दृष्टान्त है जैसे राजानकी सैन्य डेरा तम्बूनसूं हरे लाल बनाती बिछानोनसूं सुन्दर लगे हैं यह ग्राह्य दृष्टान्त है राजानकूं ऐसोही चाहिये जो बनाती बिछोना बिछामें फटे टूटे न राखें॥ ११ ॥ वर्षाऋतुमें हरे हरे अन्न जो उपजे हैं तिनकूं देखिके खेतवारेनकूं आनन्द होत है, देवकी बातको नहीं जानिकर जिन मनुष्यनने अन्न की भरतीकरी तिनकूं दुःख होत भयो हम तो यह जानी ही की एक के दो करेंगे पर यहां तो आधी जमा रहिगई, यह त्याज्य दृष्टान्त है ऐसो व्यवहार करनो न चाहिये जामें सब को बुरो विचारवो आवे ॥१२॥ जल और स्थल के समस्त प्राणी वर्षाऋतु के नये जलको सेवन कर तासूं सुन्दर रूप होतभये यह तो वर्षाऋतु को वर्णन है जैसे भगवान् को सेवन करे तैं भक्त सुन्दर रूप होयजाय हैं, यह ग्राह्य दृष्टान्त है मनुष्यको ऐसोही उचित है ॥१३॥ वर्षाऋतुमें नदियों के आकर मिलने से पवनद्वारा लहर उठने से समुद्र को जल चलायमान होतभयो, यह तो वर्षाऋतु को वर्णन है यामें दृष्टान्त है जैसे अपक्वचित्त योगी और विषयी मनुष्य का चित्त विषय में चलायमान होय है, यह त्याज्य दृष्टान्त है योगीन को ऐसो न चाहिये जो विषयनते चलायमान होय ॥ १४ ॥ वर्षाऋतुमें पर्वतनके ऊपर मेघ वर्षने से यत्किञ्चितहू उनको खेद नहीं होय है, धुइ धुइ के उनकी शिला स्वच्छ होयजांय हैं यह तो वर्षाऋतुको वर्णन यामें दृष्टान्त है जैसे

क्षेत्राणि सस्यसंपद्भिः कर्षकाणां मुदं ददुः ॥ धनिनामुपतापं च दैवाधीनमजानताम् ॥ १२ ॥ जलस्थलौकसः सर्वे नववारिनिषेवया ॥ अबिभ्रद्रुचिरं रूपं यथा हरिनिषेवया ॥ १३ ॥ सरिद्भिः संगतः सिन्धुश्चुक्षुभे श्वसनोर्मिमान् ॥ अपक्वयोगिनश्चित्तं कामाक्तं गुणयुग्यथा ॥ १४ ॥ गिरयो वर्षधाराभिर्हन्यमाना न विव्यथुः ॥ अभिभूयमाना व्यसनैर्यथाऽधोक्षजचेतसः ॥ १५ ॥

जिन पुरुषनके चित्त भगवानमें लगे हैं उनके ऊपर कैसोहू कष्ट आवै अर्थात् पुत्र मरिजाय धन[१] नष्ट होय जाय यामें कष्ट नहीं माने है यह ग्राह्य दृष्टांत है दुःखमें मनुष्य व्याकुल न होयजाय ॥ १५ ॥ वर्षाऋतुमें तृण बढनेसै मार्ग ढकिगये, संदिग्ध होगये, अर्थात् या ग्रामको कौन मार्ग है यह जानिवेमें नहीं आंवै, यह वर्षाऋतुको वर्णनहै यामें दृष्टांत है जैसे ब्राह्मण एकबेर वेद पढिके पोथी बांधिके धरिदेइ हैं फिरि बहुत दिनमें खोलिके देखे तब उनको संदेह होयहै या श्रुतिको अर्थ कैसे है यह त्याज्य दृष्टांत है ब्राह्मणनको ऐसो उचित नहीं है जो बहुत दिनमें

मार्गा बभूवुः संदिग्धास्तृणैश्छन्ना ह्यसंस्कृताः ॥ नाभ्यस्यमानाः श्रुतयो द्विजैः कालहता इव ॥ १६ ॥ लोकबन्धुषु मेघेषु विद्युतश्चलसौहृदाः ॥ स्थैर्यं न चक्रुः कामिन्यः पुरुषेषु गुणिष्विव ॥१७॥ धनुर्वियति माहेन्द्रं निर्गुणं च गुणिन्यभात् ॥ व्यक्ते गुणव्यतिकरेऽगुणवान् पुरुषो यथा ॥ १८ ॥

पोथी खोलें किंतु खोलिके देखोकरें ॥ १६ ॥ लोकनके हितकारी मेघन में चलायमान विजुरी स्थिरता न करत भई कभऊ काहूं वादरमें जाय चमके हैं कभऊ काहू वादरमें जाय चमके है यह वर्षाऋतुको वर्णन है यामें दृष्टांत है जैसे विवेकी पुरुषनमें व्यभिचारिणी स्त्री स्थिर नहीं रहै; यह ग्राह्य दृष्टांत है कि व्यभिचारिणी स्त्रीनको विश्वास न करे ॥ १७ ॥ वर्षाऋतुमें गर्जनके शब्द वारे आकाशमें प्रत्यंचारोदा

---

[१] एक बनियाको दोबेटाहै बाने बिचार कियोकि बेटान के जूदे किया बिना इनपै वोझ नहीं परैगो यह बिचार के दौनों ने परदेसमें जाय पांच पांचसै रुपैया कमाये अब घरकू चलती वेर बिचारकरी कि जो हुंडी करावैं तौ दौनों पै हुंडिया बनपरे यासे स्यान के मारे असरफी बंधाय बसनीमें धर कमरमें बांध चले जायकै सुनिकि रस्तामें लूटपरैहै अब कैसे चलैं बडे भयानै तौं वाही सहरमें हलावाई बुलाय अच्छी सुंदर मिठाई बनवाय दूसरे दिन ब्राह्मण साधूनकी पंगत करदई दूसरे भैंयानै कही यहतौ बावरोहै सबरुपया लुटायदेयहै घरकनकू कहाधूरिदेयगो हमतौ ऐसेलै चलैंगेकि कोऊ नजानै सो लंगोटीमें अशरफी की बसनी धर ताके ऊपर धोती कस तापै पाजामा पहर अंगरखा सजाय ऊपरसै पटका कस्यो दौनों चले लूटनै हारौंने आय घेरे बडो भैया बोल्यो मैनैतौ ब्राह्मण जिमाया दीन्है यह कह कपडा हिलाय अलग ठाडो है गयो वाकू छोड दिनो अब दूसरे कू पकरकै दोचार लात मारकै लंगौटी खुलवाय असरफी निकसवाय लीनी अब धनतौ दौनौ को गयो पर जाको धर्म में गयो वाके चौगुनो भयो जाको चोर लेगये वाको वृथाही गयो लालाने बोझडारौ वे घरको जमाहू लुटाय आये ॥

विना इंद्रको धनुष शोभाको प्राप्त होतभयो यह वर्षाऋतुको वर्णन हैं यामें दृष्टांत है गुणनके बने संसारमें निर्गुण पुरुष जैसे सुंदर लगै हैं अर्थात् जैसे गुण युक्त प्रपंचमें निर्गुण आत्मा शोभादेताहै ॥ १८ ॥ वर्षाऋतुमें अपनी चांदनीसूं प्रकाशमान बादरसौ आवृत्त होयके चंद्रमा सुंदर नहीं लगेहै, यह तो वर्षाऋतुकौ वर्णनहै यामें दृष्टांत है जैसे मैं पंडितहूं दाताहूं सर्वज्ञहूं शूरवीरहूं ऐसै अभिमान तै पुरुष सुंदर नहीं लगे है, अथवा जैसे आत्माहीसै प्रकाशित हुए अहंकारसै आच्छादित आत्मा प्रकाशित नहीं होता यह त्याज्य दृष्टांत है पुरुषको ऐसो उचित नहीं है ॥ १९ ॥ वर्षाऋतुमें मेघनके आयवेके आनंदसूं हर्षित होयके मोर शब्द करतभये यह तो वर्षाऋतुको वर्णन है यामें दृष्टांत है जैसे घरनमें संतापित हुए याही वैराग्यमान पुरुष साधुनकै आये ते हर्षित होयहै यह ग्राह्य दृष्टांतहै गृहस्थीनकूं यही चहिये जो अपने यहां साधु सज्जन आवे तो

न रराजोडुपश्छन्नः स्वज्योत्स्नाराजितैर्घनैः ॥ अहंमत्या भासितया स्वभासा पुरुषो यथा ॥ १९ ॥ मेघागमोत्सवाहृष्टाः प्रत्यनन्दन् शिखण्डिनः ॥ गृहेषु तप्ता निर्विण्णा यथाऽच्युतजनाऽगमे ॥ २० ॥ पीत्वाऽपः पादपाः पद्भिरासन् नानात्ममूर्तयः ॥ प्राक् क्षामास्तपसा श्रान्ता यथा कामानुसेवया ॥२१॥ सरस्स्वशान्तरोधस्सु न्यूषुरङ्गापि सारसाः ॥ गृहेष्वशान्तकृत्येषु ग्राम्या इव दुराशयाः ॥ २२ ॥

यह न कहैहै कि हमही भूखे मरैहैं याकूं कहांते लामें ॥ २० ॥ वर्षा ऋतुमें वृक्ष अपनी जडनसूं जल पीके हरे हरे लाल लाल पत्तानसे शोभितभये यह वर्षाऋतुको वर्णन हैं, यामें दृष्टांत है तपके करेतें मनुष्यनके प्रथमदेह दुर्बल होयजायहैं जब फिरि पुष्टिकारक भोजन मिलेते पुष्ट होयके लाल हो जायहैं, यह त्याज्य दृष्टांत है मनुष्य खाने पीनेके लिये तप न करे ॥ २१ ॥ वर्षाऋतुमें कांटे और कीचसे युक्त किनारेवारे सरोवरनमें चकवा चकवी वास करत भये यह वर्षाऋतुको वर्णनहै यामें दृष्टांतहै जैसे अनेक प्रकारके करने योग्य धंधौंकी पीड़ासै घरौंमें विषयी पुरुष वास करे है यह त्याज्य दृष्टांत है मनुष्यको ऐसो न चहिये जो सर्वदा घरमें शिर दिये रहै कछु भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकोभी भजन करे जाय जामें याकौ कल्याण होय ॥ २२ ॥

वर्षाऋतुमें इंद्रके वर्षनेंसे खेती की मर्यादा टूटि जातभई यह तौ वर्षाऋतुकौ वर्णन है यामें दृष्टांत है पाखंडिनके शब्द सुनिके जैसे कलियुगमें वेदमार्ग दूरि हो जाय हैं यह त्याज्य दृष्टांत है मनुष्य पाखंडिनके शब्द सुनिके वेदमार्गकौ त्याग न करै ॥ २३ ॥ वर्षाऋतुमें बादर पवनसूं चलायमान होयके प्राणीनकौ अमृत जल वर्षावत भये, यह वर्षाऋतुको वर्णन है यामें दृष्टांत है जैसे समय समयमें राजा पुरोहितके कहेते दान पुण्य करै है यह ग्राह्य दृष्टांत है पुरोहितनकूं ऐसोही चहिये जो कहिके राजाते दान करायकर दीननकूं दिवामें ॥ २४ ॥ जंबू फल और खजूर जामें पके ऐसे श्रेष्ठ वृंदावनमें श्रीकृष्णचंद्र बलदेवजीकूं संग लैके और गऊ गोपनकू संगलैके रमण करिवेको जातभये ॥ २५ ॥ बडे बडे ऐननके वोझसूं होले होले चलनेहारी गऊयें श्रीकृष्णचंद्र भगवान्ने प्रीति करिके नाम लैके बुलाईं तब स्तननमेंते दूध जिनके टपके ऐसी गऊ दौरि दौरिके आवति भई ॥ २६ ॥ वननकी रहनवारी भीलनीकूं श्रीकृष्णचंद्र प्रसन्न देखतभये, मकरंद चुचानेहारी वृक्षनकी लतानकूं, और गोवर्द्धन पर्वतमेंते झरना झरैहैं तिनकूं देखतभये, और झरनानके जलके शब्दको सुनतभये, निकट गुफाकूं देखतभये ॥ २७ ॥ कभऊ एक वर्षा होय है तब श्रीकृष्णचंद्र वृक्षकी खोंतरिमें गिरिराजकी गुफामें जाय बैठे हैं वनके कंद मूल फलनके भोजन करि करिकै मित्रनके संग खेलत भये ॥ २८ ॥ इतनेमें यशोदाजी पठाई ग्वालिनी दही भात लेके आवतभई ताही जलके समीप शिलेके ऊपर परोसिकें भोजन करायवे योग्य गोपनकूं और बलदेवजीकूं संग लैके भोजन करतभये ॥ २९ ॥

जलौघैर्निरभिद्यन्त सेतवो वर्षतीश्वरे ॥ पाखण्डिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा ॥ २३ ॥ व्यमुञ्चन् वायुभिर्नुन्ना भूते-
भ्योथामृतं घनाः ॥ यथाऽऽशिषो विश्पतयः काले काले द्विजेरिताः ॥ २४ ॥ एवं वनं तद्वर्षिष्ठं पक्वखर्जूरजम्बुमत् ॥
गोगोपालैर्वृतो रन्तुं सबलः प्राविशद्धरिः ॥ २५ ॥ धेनवो मन्दगामिन्य ऊधोभारेण भूयसा ॥ ययुर्भगवताऽऽहूता द्रुतं
प्रीत्या स्नुतस्तनीः ॥ २६ ॥ वनौकसः प्रमुदिता वनराजीर्मधुच्युतः ॥ जलधारा गिरेर्नादानासन्ना ददृशे गुहाः ॥ २७ ॥
क्वचिद्वनस्पतिक्रोडे गुहायां चाभिवर्षति ॥ निर्विश्य भगवान् रेमे कन्दमूलफलाशनः ॥ २८ ॥ दध्योदनं समानीतं
शिलायां सलिलान्तिके ॥ संभोजनीयैर्बुभुजे गोपैः संकर्षणान्वितः ॥ २९ ॥

150

उस काल पेट भर जानेसै बैल बछडे हरी हरी घासपर बैठे आंखै मीचकर जुगालकर रहे थे और गैया ऊधके भारसै थककर बैठी जुगाल करतीथी ऐसी गौनकूं देखिके ॥ ३० ॥ सब प्राणीनकूं आनंदकी देनवारी वर्षाऋतुकी शोभा और अपनी शक्तिते युक्त वर्षा ऋतुकों देखिके श्रीकृष्णचंद्र भगवान् प्रशंसा करत भये, या वृंदावनमें वर्षाके ऋतु कैसी सुंदर लगे हैं ॥ ३१ ॥ या प्रकार ब्रजमें श्रीकृष्णचंद्र बलदेवजीके वास करते २ बादरौंसे रहित निर्मल जलवारी मंद पवन वहानेहारी शरदऋतु प्राप्त होत भई ॥ ३२ ॥ कमल उपजनेसै शरदऋतुमें जल निर्मल होत भये, जैसे विगरे योगिनके चित्त फिर योग करे तै शुद्ध होय जाय है, यह ग्राह्य दृष्टांत है योगिनकूं यही चाहिये विगरे चित्तको योग करिके सुधारिलेमें ॥ ३३ ॥ वर्षाऋतुमें आकाशमें बादर गर्जा करे हैं, शरदऋतुमें बादरनकी गर्जन जात रहे, वर्षाऋतुमें प्राणी मिलिके एक स्थानमें रहे हैं, शरदऋतुमें न्यारे न्यारे बिछुरि जांय हैं, पृथ्वीकी कीच शुष्क होय गई, जलनको मैल दूरि होय गयो, यह तो शरदऋतुको वर्णन है यामें दृष्टांत है जैसे ब्रह्मचारी गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यासी इन चारों आश्रमीनको भगवान्की भक्ति भयेसूं क्लेश जात रहैं ब्रह्मचारी गुरुनके लिये जल जब ताई भरो करै यावत्पर्यंत भक्ति उदय नहीं होय, भक्ति भये पीछे जल भरिवेको परिश्रम नहीं रहे है, गुरुभी जब वाके भक्ति होय जाय है तब वाकौं टहलकी आज्ञा नहीं करे है, ऐसे आकाशकी गर्जन शरदऋतुमें दूरि होय गई, गृहस्थीके जब ताई भक्ति उदय नहीं होय है तब ताई अपने संतानादिकनमें रह्यो आमें हैं, भक्ति भये पीछे एकांत वास करिवेकी इच्छा होय है, तब उनको संग छोडिं देइ हैं ताही प्रकार प्राणीनको जो एक वास है सो छूटत भयो, ऐसेही वानप्रस्थ जब ताई भक्ति उदय नहीं होय है तब ताई देह मलीन राखै हैं भक्ति भये पीछे जैसे वाकी मलीनता दूरि होय जाय है, ऐसे

शाद्वलोपरि संविश्य चर्वतो मीलितेक्षणान् ॥ तृप्तान् वृषान् वत्सतरान्गाश्च स्वोधोभरश्रमाः ॥ ३० ॥ प्रावृट्श्रियं च तां वीक्ष्य सर्वभूतमुदावहाम् ॥ भगवान् पूजयाञ्चक्रे आत्मशक्त्युपबृंहिताम् ॥ ३१ ॥ एवं निवसतोस्तस्मिन् रामकेशवयोर्व्रजे ॥ शरत् समभवद् व्यभ्रा स्वच्छाम्ब्वऽपरुषानिला ॥ ३२ ॥ शरदा नीरजोत्पत्त्या नीराणि प्रकृतिं ययुः ॥ भ्रष्टानामिव चेतांसि पुनर्योगनिषेवया ॥ ३३ ॥ व्योम्नोऽब्दं भूतशाबल्यं भुवः पङ्कमपां मलम् ॥ शरज्जहाराश्रमिणां कृष्णे भक्तिर्यथाऽशुभम् ॥ ३४ ॥

पृथ्वीकी कीच शुष्क होयजाय है, और जैसे संन्यासीनको काम वासनारूप मैल श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् में भक्ति भये ते दूरि होय है, ऐसे शरदऋतुमें जलको मैल दूरि होत भयो है ॥ ३४ ॥ वादरमेंते जलकी वर्षा होय चुकी तब वे शरदऋतुमें श्वेत श्वेत रुईकेसे पहल सुंदर लगत भये, यह तो शरदऋतुको वर्णन है यामें दृष्टांत है जैसे द्रव्य पुत्र और लोक वासना और पाप दूरि होनेसे शांत स्वभाव मुनीश्वर सुंदर लगे हैं यह ग्राह्य दृष्टांत है मुनीश्वरनको यही उचित है जो वासनानकूं दूरि करैं ॥ ३५ ॥ पर्वत कहूं मंगलरूप तोय झरनानसूं वहावै हैं और कहूं नहीं वहावे हैं यह शरदऋतुको वर्णन है यामें दृष्टांत है जैसे ज्ञानी पुरुष समय समय ज्ञानरूप अमृतके पात्रकूं देखिके उपदेश करैं हैं सबकूं नहीं करै हैं, यह ग्राह्य दृष्टांत है विवेकिनकूं यही योग्य है पात्र देखिके उपदेश करे सबकूं नहीं करे ॥ ३६ ॥ शरदऋतुमें सरोवरनके थोरे जलके रहनवारे जीव नित्य नित्य घट तै जलकूं नहीं जानत भये यह शरदऋतुको वर्णन है यामें दृष्टांत है जैसे अज्ञानी कुटुंबी पुरुष घरनमें रहिके नित्य आयुर्बल घटे है ताकूं नहीं जानै हैं यह त्याज्य दृष्टांत है पुरुषको ऐसी भूल न चहिये जो आयुर्बलकी खबरि न राखे ॥ ३७ ॥ शरदऋतुमें थोरे जलके रहनवारे जीव सूर्यके तेजसे जल गरम होय जानेसे क्लेशित होत भये यह शरदऋतुको वर्णन है जैसे कुटुंबी पुरुष इंद्रीनके नहीं जीतनेसूं दरिद्री कृपणपनमें रहिकै क्लेशकूं पावैं हैं यह त्याज्य दृष्टांत है जो घरमें क्लेश होय तो निकसिजाय ॥ ३८ ॥ शरदऋतुमें स्थलनकी होले होले कीच शुष्क होतभई, लतानकी कचाई जातरही, यह शरदऋतुको वर्णन है यामें दृष्टांत है जैसे मिथ्या देह गृहमें विवेकी पुरुष मायाकृत अहंता ममताकूं त्यागि देइहै, यह ग्राह्य दृष्टांत है विवेकीनकूं यही उचित है अभिमानकूं त्यागै ॥ ३९ ॥

सर्वस्वं जलदा हित्वा विरेजुः शुभ्रवर्चसः ॥ यथा त्यक्तैषणाः शान्ता मुनयो मुक्तकिल्बिषाः ॥ ३५ ॥ गिरयो मुमुचुस्तोयं क्वचिन्न मुमुचुः शिवम् ॥ यथा ज्ञानामृतं काले ज्ञानिनो ददते न वा ॥ ३६ ॥ नैवाविदन् क्षीयमाणं जलं गाधजलेचराः ॥ यथायुरन्वहं क्षय्यं नरा मूढाः कुटुम्बिनः ॥ ३७ ॥ गाधवारिचरास्तापमविन्दन् शरदर्कजम् ॥ यथा दरिद्रः कृपणः कुटुम्ब्यविजितेन्द्रियः ॥ ३८ ॥ शनैः शनैर्जहुः पङ्कं स्थलान्यामं च वीरुधः ॥ यथाहंममतां धीराः शरीरादिष्वनात्मसु ॥ ३९ ॥

शरदऋतु जब आई तब समुद्रको जल निर्मल भयो यह तो शरदऋतुको वर्णन है यामें दृष्टांत है जैसे आत्मज्ञान भये पीछे मुनीश्वरनको पढिवो लिखिवो छुटिजायहै यह ग्राह्य दृष्टांत है आत्माके जाने पीछे पढिवे गुनिवेसूं कहा काम है ॥ ४० ॥ शरदऋतुमें खेतवारे मनुष्य खेतकी जवर जवर मेंड बांधिके जलकूं रोकतभये यह शरदऋतुको वर्णन है यामें दृष्टांत है जैसे योगीराज इंद्रीनको रस्ते ज्ञानकूं रोक्यो करैहैं इंद्रीनकूं रोकिकें मनको रोक्यो करैं हैं यह ग्राह्य दृष्टांत है योगीनकूं यही उचित है ज्ञानकूं निकसन न देईं इंद्रीनकूं रोकिके राखैं ॥ ४१ ॥ शरदऋतुमें सूर्यकी किरणकी गरमीकूं रात्रिसमय चंद्रमा उदय होयके हरतभयो, यह शरदऋतुको वर्णन है यामें दृष्टांत है जैसे ज्ञान भये पीछे देहको अभिमान रूप ताप दूरि होयहै और जैसे व्रजकी स्त्रीनके ताप मुकुंद भगवान् दूरि करे ॥ ४२ ॥ शरदृतुमें मेघ दूरि होयगये आकाश निर्मल होयगयो तारागणसें

निश्चलाम्बुरभूत् तूष्णीं समुद्रः शरदागमे ॥ आत्मन्युपरते सम्यङ् मुनिर्व्युपरतागमः ॥ ४० ॥ केदारेभ्यस्त्वपोऽगृह्णन् कर्षका दृढसेतुभिः ॥ यथा प्राणैः स्रवज्ज्ञानं तन्निरोधेन योगिनः ॥ ४१ ॥ शरदर्कांशुजांस्तापान् भूतानामुडुपोऽहरत् ॥ देहाभिमानजं बोधो मुकुन्दो व्रजयोषिताम् ॥ ४२ ॥ खमशोभत निर्मेघं शरद्विमलतारकम् ॥ सत्त्वयुक्तं यथा चित्तं शब्दब्रह्मार्थदर्शनम् ॥ ४३ ॥ अखण्डमण्डलो व्योम्नि रराजोडुगणैः शशी ॥ यथा यदुपतिः कृष्णो वृष्णिचक्रावृतो भुवि॥४४॥आश्लिष्य समशीतोष्णं प्रसूनवनमारुतम् ॥ जनास्तापं जहुर्गोप्यो न कृष्णहृतचेतसः॥४५॥

आकाश शोभाकूं प्राप्त होतभयो यह शरदऋतुको वर्णन है यामें दृष्टांत है जैसे वेदके अर्थको दिखानेहारे सत्त्वगुणी चित्त सुंदर लगैं हैं यह ग्राह्य दृष्टांत है चित्त वही सुंदर है जामें वेदके अर्थको ज्ञान हो ॥ ४३ ॥ शरदऋतुमें समस्त मंडलसों चंद्रमा आकाशमें तारागणनसहित सुंदर लगतभयो यह शरदऋतुको वर्णन है यामें दृष्टांत है जैसे पृथ्वीमें यादवनके पति श्रीकृष्णचंद्र यादवनसहित सुंदर लगे हैं ॥ ४४ ॥ शरदऋतुमें जाड़ा गरमी नहीं सतावै है और पुष्पनको स्पर्श करिके जो पवन चले है ताके स्पर्शते मनुष्य तापको त्यागत भये, यह शरदऋतुको वर्णन है यामें दृष्टान्त है जैसे गोपी श्रीकृष्णकूं आलिङ्गन करिके तापकूं त्यागत भई यह ग्राह्य दृष्टान्त है मनुष्यको यही उचित है भगवान्‌को स्पर्श करिके सांसारिक तापनको त्यागे ॥ ४५ ॥

शरदऋतुमें गऊ हरिणो पक्षिणी स्त्री पुष्पवती होत भईं इनके पीछे लगे डोलैहैं यह शरदऋतुको वर्णन है यामें दृष्टांत है जैसे ईश्वरकी प्रसन्नताके लिये पुरुष योग यज्ञ तप करै हैं तिनके पीछे फल लगे डोलैहैं ॥ ४६ ॥ शरदऋतुमें कुमोदनी विना सरोवरनमें कमल फूलतभये यह शरदऋतुको वर्णन है यामें दृष्टांत है हे राजन् परीक्षित ! जैसे चोरनबिना लोक निर्मल होयके आनंद पावैहैं ॥४७॥ शरदऋतुमें नवीन अन्नके भोजनके वैदिक उत्सवसें और इंद्रिनके पुष्ट करिवेके विवाहादिक लौकिक उत्सवसें और अन्न पकनेसें और श्रीबलदेव कृष्णचंद्रजीके क्रीडा करनेसें पृथ्वी अतिही सुंदर लगति भई ॥ ४८ ॥ वर्षाऋतुके रुके वणियां मुनीश्वर राजा ब्रह्मचारी ये शरदऋतुमें अपने अपने कर्मनमें लगतभये, वणियां अपने

गावो मृगाः खगा नार्यः पुष्पिण्यः शरदाऽभवन् ॥ अन्वीयमानाः स्ववृषैः फलैरीशक्रिया इव ॥ ४६ ॥ उदहृष्यन्
वारिजानि सूर्योत्थाने कुमुद्विना ॥ राज्ञा तु निर्भया लोका यथा दस्यून् विना नृप ॥ ४७ ॥ पुरग्रामेष्वाग्रयणैरैन्द्रियैश्च
महोत्सवैः ॥ बभौ भूः पक्कसस्याढ्या कलाभ्यां नितरां हरेः ॥४८॥ वणिङ्मुनिनृपस्नाता निर्गम्याऽर्थान् प्रपेदिरे॥
वर्षरुद्धा यथा सिद्धाः स्वपिण्डान् काल आगते ॥४९॥ इति श्रीभा०दश०प्रावृट्शरद्वर्णनं नाम विंशोध्यायः॥२०॥ श्रीशुक
उवाच ॥ इत्थं शरत्स्वच्छजलं पद्माकरसुगन्धिना॥न्यविशद् वायुना वातं सगोगोपालकोऽच्युतः॥१॥ कुसुमितवनराजिशुष्मिभृङ्गद्विजकुलघुष्टसरःसरिन्महीध्रम्॥मधुपतिरवगाह्य चारयन् गाः सहपशुपालबलश्चुकूज वेणुम् ॥ २ ॥

व्यापारकूं गये, संन्यासी विचारिवेकूं गये, राजा विजय करिवेकूं गये ब्रह्मचारी विद्या पढिवेकूं गये यामें दृष्टान्त है जैसै मंत्र और योगादिसे रुके सिद्ध महात्मा आयुके बंधनसे रुकेसमय आनेपर दिव्य शरीर पातेहैं ॥४९॥ इतिश्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे पू० प्रावृट्शरद्वर्णनं नाम विंशतितमोऽध्यायः ॥२०॥ शरदऋतुमें निर्मल भये और कमलनकी सुगंधियुक्त पवनवारे वृन्दावनमें गौग्वालनकूं संग लेके श्रीकृष्णचंद्र जातभये ॥ १ ॥ फूली हुई बनकी पंक्तिकी सुगंधिते मतवारे भौंरा पच्छीनके समूहनकी बोलीसूं सरोवर नदी पर्वत गूंज रहेथे ऐसे वृन्दावनमें ग्वालबाल बलदेवजी सहित श्रीकृष्णचंद्र गऊनकों चरावत बांसुरी बजावत भये ॥ २ ॥

प्रमादात्मक कामको उदय करनेहारो वंशिको शब्द श्रवण करिके कई एक व्रजकी स्त्री कृष्णचंद्रके पीछे अपनी सखीनके आगे कहति भई ॥ ३ ॥ जासमय कछु कहनको प्रारंभ करो तासमय श्रीकृष्णचंद्रके रूपको स्मरण होय आयो तासूं कामदेवके वेगसूं तिनके मन चलायमान होय गये वे व्रजकी स्त्री हे राजन् परीक्षित ! कहिवेकूं समर्थ न होत भई ॥ ४ ॥ मोरपुच्छको मुकुट धारण करिके काछनी पहिरके नटकी तुल्य श्रेष्ठरूपको धारण करके काननमें कचनारके फूल उरसिके सुवर्णकी तुल्य पीताम्बरकों धारण करिके वैजयंती मालाकों पहिरके वांसुरीके छेदनकूं अधरामृत

तद् व्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् ॥ काश्चित् परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ॥ ३ ॥ तद् वर्णयितुमारब्धाः स्मरन्त्यः कृष्णचेष्टितम् ॥ नाशकन् स्मरवेगेन विक्षिप्तमनसो नृप ॥४॥ बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम् ॥ रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैर्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ॥ ५ ॥

सूं पूरण करत गोपनके समूह जिनके यशकों गामें वे श्रीकृष्णचन्द्र अपने चरणारविंदके चिह्नसूं रमणीक वृन्दावनमें जात भये । "नटवरवपुः" का आशय यह कि तुम्हे नृत्य दिखायवेको यह वेष कियो है जब गोपियोंकी वार्त्ता सुनाई न आवै तब कानोंकौ सन्ताप होय शीतल करनकूं यातें कानमें कर्णिकार धरे प्यारीकी सुधि आनेसे पीतवस्त्र इसकारण धारण करे हैं कि जब उनके शरीरकी सुधि आवे तब इसे देखके जी शीतल होयहै गोपियोंके वियोगकी विरहाग्नि शान्त करनेकूं वैजयन्ती माला धारण करे हैं, गोपियोंके पदचिन्हसे युक्त मनोहर वृन्दावन जानकर प्रवेश करते भये ॥ ५ ॥

---

१ किसी साहूकारके कथ्थकको बडो गुनी लडका नाचिवेकूं आयो वाने अपने समधीको नाच देखिवेकूं बुलायो और पहलीही तानपै हजार रुपैयाको दुसाला उतार दियो कथ्थकने ले साजवारेनकू दियो सो दूसरे भजनमें वाके गरीब नौकरने गुण देख फटो दमडी को दुपट्टा दियो सो कथ्थकने ले सिरसै लपेट लियो लोग बोले साहूकारको दुपट्टा शिरसै बांधो नहीं और यह शिरसें कैसै लपेटो कथ्थक बोलो लालानै तौ सेखी दिखाई गुण नहीं जान्यो और याने गुण जानो यासें शिरपैं धारन कियो यातें कृष्णने मोरपुच्छमें गुण देखके धारोहै कृष्ण यह दिखावैं है जैसे यह मोरपुच्छ पलक नहीं मारैं हैं ऐसे मेरे नेत्र होते तौ तुह्मारो रूप देखतो ।

हे राजन्! परीक्षित! या प्रकार सब प्राणीन के मनकी हरनवारी बांसुरीकी टेरकूं ब्रजकी स्त्री सुनिके आपुसमें कहैं हैं और कहत कहत परम आनन्दरूप कृष्णको मनसूं आलिङ्गन करत भईं ॥ ६ ॥ अब गोपी कहैं हैं हे सखी! नेत्रवान् पुरुष को यही फल है और फल हम नहीं जानैं हैं जो सखा सहित गौनकूं बन में चरावत कृष्ण बलदेव को मुखारविन्द जिन पुरुषनने देख्यो है तिननेही वह फल सेवन कऱ्यो है, और कहती हैं हे सखी!

इति वेणुरवं राजन् सर्वभूतमनोहरम् ॥ श्रुत्वा व्रजस्त्रियः सर्वा वर्णयन्त्योऽभिरेमिरे ॥ ६ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः ॥ वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टं यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥ ७ ॥ चूतप्रवालबर्हस्तबकोत्पलाब्जमालाऽनुपृक्तपरिधानविचित्रवेषौ ॥ मध्ये विरेजतुरलं पशुपालगोष्ठ्यां रङ्गे यथा नटवरौ क्व च गायमानौ ॥ ८ ॥

गौर मुख की तो शोभा हैई परन्तु बांसुरी को बजाते स्नेह भरे कटाक्षवारे वा सांमरे मुखकी शोभा देखी चहिये जिन्होंने देखी है वे धन्य हैं ॥ ७ ॥ आम के पात मोरपुच्छ फूलन के गुच्छा उत्पल अब्ज अर्थात् कमलनकी माला तिनसूं लगे भये नीलाम्बर पीताम्बरनसूं चित्र विचित्र देहवारे श्रीकृष्ण बलदेव दोनों भैया गान करत ग्वालमण्डलीमें बहुत सुन्दर लगत भये, जैसे रङ्गभूमि दो नटनसे सुन्दर लगै है ॥ ८ ॥

पद–कियो है कठिनतपआली मुरलियाताहीसे हरिनेमुखधारी । जन्मतहीकीनीमातिगाढी वनमेंरहीएकपगठाढी वर्षाशीतअरुगरमीको दुखसहकीनोतपभारीप्यारी । १ । मुरलीनिजतपके फललीन्हे ब्रह्मारुद्रइन्द्रवश कीन्हे चेतन व्हैते जडकरिदीन्हे अधरनचढीविहारीप्यारी । २ । एकमंत्र विधिहरिसोंपावैं तातेइतनीसृष्टिउपावैं याको हारनितमंत्रसुनावैं अचरजभयो कहारी प्यारी । ३ । हरिब्रजमेंनितवेणुबजावैं तीनलोकधुनिसुनि सुख पावैं झव्वीलालमनावैं ब्रजको वासमिलै वनवारी प्यारी ॥ ४ ॥

156

और गोपी कहैं है हे गोपियो ! यह बांसुरी कौन पुण्य करत भई जा पुण्यके प्रभावते हम गोपीनके पीवे योग्य अधरामृतके रसको यह आपुही इच्छा पूर्वक पीवे है, जिन सरोवरनके जलते या बांसुरीकों बांस सींच्यौ है, उन सरोवरनमें कमल नहीं फूलै हैं, मानों आनन्दसूं रोमांच होय आमें हैं, और जिन वृक्षनके वंशमें या बांसुरीको बास भयो है उन वृक्षनके मद नहीं चुवे है, मानों आनन्दके आंशू वहैं हैं धन्य हमारे कुलको बांस जाकी बांसुरी कृष्णचन्द्रके मुखते लगी है जैसे श्रेष्ठ पुरुष अपने वंशमें पुत्रकूं भगवान्‌को भक्त देखिके आनन्द मानिके आंशू बहामें हैं ॥ ९ ॥ और गोपी कहै हैं यह वृन्दावन पृथ्वीके यशको बढावै है, धन्य वह पृथ्वी है जामें वृन्दावन सदृश धाम है, देवकीपुत्र श्रीकृष्णचन्द्रके चरणार-

गोप्यः किमाचरदयं कुशलं स्म वेणुर्दामोदराधरसुधामपि गोपिकानाम् ॥ भुङ्क्ते स्वयं यदवशिष्टरसं ह्रदिन्यो हृष्यत्त्वचोऽश्रु मुमुचुस्तरवो यथाऽऽर्याः ॥ ९ ॥ वृन्दावनं सखि भुवो वितनोति कीर्तिं यद्देवकीसुतपदाम्बुजलब्धलक्ष्मि ॥ गोविन्दवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं प्रेक्ष्याद्रिसान्वऽपरतान्यसमस्तसत्त्वम् ॥ १० ॥ धन्याः स्म मूढमतयोऽपि हरिण्य एता या नन्दनन्दनमुपात्तविचित्रवेषम् ॥ आकर्ण्य वेणुरणितं सहकृष्णसाराः पूजां दधुर्विरचितां प्रणयावलोकैः ॥ ११ ॥ कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपवेषं श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम् ॥ देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥ १२ ॥

विन्दसे अतिशय परम शोभा यानै पाई है और श्रीकृष्णचन्द्र बांसुरीको बजामें हैं ताकी टेर श्रवण करिके उसे मन्दकी गर्जनहारी नीलीघटा जानकै मोर प्रसन्न होयके नाचैं हैं तिनको नाच देखिके सब जीव जंतु निश्चल होयके बैठे हैं, यह आनन्द और लोकनमें नहीं है ॥ १० ॥ और गोपी कहैं हैं मूर्ख पशुजाति ये हरिणी धन्य हैं जो ऐसे क्षुद्र हैं कि बांसुरीकी टेर श्रवण करिके अपने पतिको संगलिये विचित्र रूप धारे नन्दनन्दन श्रीकृष्णको स्नेहभरी चितवनसूं सनमान करैं हैं हमारे पति तो हमको देखनहू न देइ हैं ॥ ११ ॥ और गोपी कहैं हैं कि सखी ! यह तो आ-

श्चर्यंकी बात सुनो कि स्त्रियौंको आनंदको देनेहारो श्रीकृष्णको मनोहर रूप निहार उनकी बजाई बांसुरीकी विचित्र ध्वनि सुन विमानोंमें बैठकर गमन करतीहुई देवताओंकी स्त्रियें यद्यपि अपने स्वामीयोंके अंकमें बैठीहैं तौभी काम बाणके लगनेसे ऐसी व्याकुल होगई हैं कि उनके बालौंमेंसे पुष्प गिरे जांयहै नीवी खुली जाय है देवाङ्गना याके स्वरूपकों देखिके मोहित होत भई और जो हम मोहित होयजांय तो कहा आश्चर्य्य है ॥१२॥ श्रीकृष्णचन्द्रके मुखते निकसे बांसुरीके गीतरूप अमृतकूं गौ कानरूपी दोनानसूं उठायके पीवत भई, और श्रीकृष्णचंद्रकूं दृष्टिते आलिंगन

गावश्च कृष्णमुखनिर्गतवेणुगीतपीयूषमुत्तभितकर्णपुटैः पिबन्त्यः ॥ शावाः स्नुतस्तनपयःकवलाः स्म तस्थुर्गोविन्दमात्मनि दृशाऽश्रुकलाः स्पृशन्त्यः ॥१३॥ प्रायो बताऽम्ब विहगा मुनयो वनेऽस्मिन् कृष्णेक्षितं तदुदितं कलवेणुगीतम् ॥ आरुह्य ये द्रुमभुजान् रुचिरप्रवालान् शृण्वन्त्यमीलितदृशो विगतान्यवाचः ॥ १४ ॥

करत प्रेमसे आंशू बहाती चित्रसी लिखी ठाढी होतभईं ताहीप्रकार बछरा उनके चौंखत ठाडे होत भये उस समय बछरौंके सुखमेका दूध और गैयौंके घासका कबल मुहका मुंहमेंही रह जाय है ॥ १३ ॥ हे मैया ! या वृंदावनमें जे पक्षी हैं ते मुनीश्वर हैं जो मनोहर पातवारे वृक्षनकी शाखापै बैठिकै नेत्रनकूं मूंदिकै मौन होय प्यारे श्रीकृष्णचंद्रको दर्शन करैं हैं और बांसुरीके मनोहर गीतकूं श्रवण करै हैं कारण कि मुनिभी भगवानके दर्शनके निमित्त काम्य कर्मको त्याग वेदकी शाखाओंके आश्रित हो उनके किशलयरूप कर्मौंका गुण ग्रहण कर सुखी हो मौनसे

भगवानके गुणानुवाद श्रवण करैहैं याते उनकी साम्यतावारे यह पक्षीभी मुनि हौंयगे ॥ १४ ॥ मुकुंद भगवान्की बांसुरीकी टेर श्रवण करिके नदीनमें भ्रमर परे हैं तासुं यह जतामें हैं कि ये भ्रमर नहीं परे हैं हमारी छातीमें कामदेवके गढेलां परे हैं यासे वह जैसे स्तंभित होय मानों आलिंगन करिके ढकि लेंइगी ऐसें लहररूप हाथनते कमल भेटें लेके मुरारी श्रीकृष्णचंद्रके चरणारविंदकूं पकरैहैं ॥ १५ ॥ भैया बलदेवजी

नद्यस्तदा तदुपधार्य मुकुन्दगीतमावर्तलक्षितमनोभवभग्नवेगाः ॥ आलिङ्गनस्थगितमूर्मिभुजैर्मुरारेर्गृह्णन्ति पादयुगलं कमलोपहाराः ॥१५॥ दृष्ट्वाऽऽतपे व्रजपशून् सह रामगोपैः संचारयन्तमनुवेणुमुदीरयन्तम् ॥ प्रेमप्रवृद्ध उदितः कुसुमावलीभिः सख्युर्व्यधात् स्ववपुषाऽम्बुद आतपत्रम् ॥ १६ ॥

कूं और गोपनकूं संग लैके धूपमें व्रजकी गऊनकूं चराते बांसुरीकूं[2] बजाते श्रीकृष्णचंद्रकूं देखिके मेघ प्रेमसूं बढिके उदय होयके छत्र छाया करके अपने मित्र श्रीकृष्णचंद्रके उपर छोटी छोटी बुंदनकी वर्षा करतभयो सांचो मित्र याको मेघ है यह सामरो है और बहु सामरो है याके पीतांबर वामें बिजुरि याके मोतीनको हार वाके बगुलानकी पंक्ति वह गर्जे याकी मुरली गर्जे वह जलकी वर्षा करे यह अमृतकी वर्षा करे, याको

---

१ चारभंगड नसामें कहन लागे राजा के आदमी कितने हैं एक बोलो फलानै परगनामें दस लाख हैं दूसरो बोलो फलाने परगनामें १५ लाख हैं तीसरो बोलो फलाने परगनामें २५ लाख हैं चौथो बोलो फलाने परगनामें ५० लाख हैं ऐसे करोड आदमी हैं अब याको खर्च विचारो कुछ खजानेमें बचेहै कि नहीं एक बोलो ५० लाख फौजमें उठैहै दूसरो बोलो २५ लाख महलनमें उठैहै तीसरो बोलो दस लाख इमारतमें उठैहै चौथो बोलो १५ लाख गहने वस्त्रनमें उठैहै खजाने में कुछ नहीं परैहै यह बात राजाके दूत सुनैहै सो राजकाजकी बातैं सुन राजाकौ परचा लिखदियो राजाने मंत्रीको बुलाय खर्चकी बही देखी तौ सब बातठीक परी राजाने उन चारौं आमलीनको बुलायो वे आये तब राजा बोले हमारे घरकी बात तुम्हैं कैसे मालूम पडी तुम हमारे मुत्सदीनसै मिले हो अमली बोले न हम चोर न मुत्सदीसैं मिले हम तौ भांगके अमलमें बातें करैं हैं सो आपही विधमिलगई देखो चार कोडिकी भांगके अमलमें राजाके घरको बंदोबस्त बांधदियो और गोपी तौ अमोल कृष्णको प्रेमामृत पीरही हैं जो कृष्णरूपको बंदोबस्त बांधदियो तौ कौन बडी बात हैं ॥

२ छन्द । जबहि मुरली श्याम करगहि अधरराखि बजावहीं । तरल तान तरंग अगणित अमित गति उपजावहीं ॥ रहत सुनि ध्वनि मगन जल थल जीवजह सोहतसही। कहतब्रह्मानंद जासों पाय संग पूजतनहीं ।। सब सयान समान ज्ञान गुमान तबही लौं अहै। लोक वेद मर्याद पतिव्रत चार फल तबलौं चहै ॥ तबहि लोमन चपल बुधिबल सकल रुचिधन धामकी। सुनी सपनेहुं माहिं जब लों श्रवण मुरली श्यामकी ॥

वाको सब लक्षण मिलेहैं ॥ १६ ॥ और ये वनकी भीलिनी धन्य हैं प्रियाके स्तनमें चर्चित कस्तूरी केशर जब राति समय कृष्णचंद्रके चरणोंमें लगी और वे चरण अरुणाई युक्त जब वनमें विहार करते घासमें लगेहैं उसे देख कामातुर भीलनी उस केशरको घासपरसे ले अपने मुख और स्तनोंपर लगाय कामतापको शांत करै सखि हमारे भागमें तौ यहभी नहींहै ॥ १७ ॥ हे अबला हे सखियो! यह गोवर्धनपर्वत हरिके दासनमें अतिश्रेष्ठ दास है राम श्रीकृष्णचंद्रके चरण जे लगेहैं तिनसूं याके बडो आनंद होय है, गऊ गोपनकूं संग लैकें कृष्ण बलदेव आमें हैं तिनकूं जल हरी घास कंदरा अर्थात् गुफा कंदमूल इनको भेट धरिकें उनको सत्कार करैहै ॥ १८ ॥ हे सखियो! गौ और गोपनकूं संग लैके कृष्णचंद्र बलदेवजीकी मनोहर बांसुरीका शब्द सुनिके यह आश्चर्य होय है की वृक्षनकी जंगम गति अर्थात् उनके रोमांच होजायहै और जलके जीवनकी वृक्षनकी तुल्य गति हो जायहै अर्थात् वे एकस्थानपै ठाडे रहेहैं और गोदोहन समय गायनके बांधवेकी रस्सी शिरपर बांधने और कंधापै धरनेसे कृष्ण बलरामकी बडी शोभा होयहै ॥ १९ ॥ श्रीशुकदेवजी बोले राजन्! वृंदावनमें विहार करनेहारे श्रीकृष्णचंद्रको या प्रकार लीलानकूं गोपी आपुसमें वर्णन करत तन्मय होती भई ॥ २० ॥ इतिश्री-

पूर्णाः पुलिन्द्य उरुगायपदाब्जरागश्रीकुङ्कुमेन दयितास्तनमण्डितेन ॥ तद्दर्शनस्मररुजस्तृणरूषितेन लिम्पन्त्य आननकुचेषु जहुस्तदाधिम् ॥ १७ ॥ हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यो यद् रामकृष्णचरणस्पर्शप्रमोदः ॥ मानं तनोति सहगोगणयोस्तयोर्यत् पानीयसूयवसकन्दरकन्दमूलैः ॥ १८ ॥ गोगोपकैरनुवनं नयतोरुदारवेणुस्वनैः कलपदैस्तनुभृत्सु सख्यः ॥ आस्पन्दनं गतिमतां पुलकस्तरूणां निर्योगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्रम् ॥ १९ ॥ एवंविधा भगवतो या वृन्दावनचारिणः ॥ वर्णयन्त्यो मिथो गोप्यः क्रीडास्तन्मयतां ययुः ॥ २० ॥ ॥ इति श्रीभा० म० दशमस्कन्धे पू० एकविंशतितमोऽध्यायः ॥ २१ ॥

न्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे पू० एकविंशोध्यायः॥२१॥ अब श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित! हेमन्तऋतुमें प्रथम मास अगहनके महीनामें नंदरायजीके व्रजमें कुमारी कन्या मूंगभातको भोजन करिके कात्यायनीको व्रत करिवो प्रारम्भ कियो व्रत करिके अरुणोदयके समय यमुनाजीके जलमें स्नान करिके किनारेमें बैठिके वारूकी कल्याणी देवीकी प्रतिमा बनायके चंदन सुगंधिके फूल धूप बलिनसूं और छोटी बडी सामग्रीनसूं प्रवालफल पत्रचामलनसूं पूजा करत भई ॥१॥२॥ ३ ॥ हे कात्यायनी हे महामाया हे महाजोगिनी हे अधीश्वरी हे देवी ! नंदगोपको पुत्र ताइ हमारो पति

श्रीशुक उवाच ॥ ॥ हेमन्ते प्रथमे मासि नन्दव्रजकुमारिकाः ॥ चेरुर्हविष्यं भुञ्जानाः कात्यायन्यर्चनव्रतम् ॥ १ ॥ आप्लुत्याम्भसि कालिन्द्या जलान्ते चोदितेऽरुणे ॥ कृत्वा प्रतिकृतिं देवीमानर्चुर्नृप सैकतीम् ॥२॥ गन्धैर्माल्यैः सुरभिभिर्बलिभिर्धूपदीपकैः ॥ उच्चावचैश्चोपहारैः प्रवालफलतण्डुलैः ॥ ३ ॥ कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ॥ नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरु ते नमः ॥४॥ इति मन्त्रं जपन्त्यस्ताः पूजां चक्रुः कुमारिकाः ॥ एवं मासं व्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः ॥ ५ ॥ भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नन्दसुतः पतिः ॥ उपस्युत्थाय गोत्रैः स्वैरन्योन्याबद्धबाहवः ॥ ६ ॥ कृष्णमुच्चैर्जगुर्यान्त्यः कालिन्द्यां स्नातुमन्वहम् ॥ नद्यां कदाचिदागत्य तीरे निक्षिप्य पूर्ववत् ॥ ७ ॥ वासांसि कृष्णं गायन्त्यो विजह्रुः सलिले मुदा ॥ भगवांस्तदभिप्रेत्य कृष्णो योगेश्वरेश्वरः ॥ ८ ॥

करि तोकों नमस्कार है ॥४॥ या मंत्रकूं जपिके कुमारिका पूजा करतिभई या प्रकार श्रीकृष्णचंद्रमें चित्त लगाये वे कन्या महीनाको व्रत करतभई नंदको पुत्र पति होउ यह इच्छा करिके भद्रकालीदेवीकी पूजा करतभई, प्रातःकालसमय उठिके अपने अपने नाम लैके आपुसमें परस्पर हाथ पकरिके नित्य नित्य यमुनाजीमें स्नान करिवेकूं जात ऊंचे स्वरसूं श्रीकृष्णचंद्रकूं गावतभई यह गोपी यमुनाजीपै आइके कभऊ एक दिन पहिलेकीसी नाईं अपने वस्त्र ॥५॥६॥७॥ किनारेपै धरिके श्रीकृष्णचंद्रकूं गावत बडे आनंदपूर्वक जलमें विहार करतभई योगेश्वरनके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचंद्र तिनको मनो-

---

१ सवैया॥ मज्जनकरियमुनाजलमेंकात्यायनीदेवीसे ध्यानलगायो । जिनवारूकी मूरतिलीनीबनाययथाविधिसोंअसनानकरायो ॥ फूलअरुपानमिष्टानसभींचंदनअक्षतकर पूरवरायो । करजो रसबन वरमांगो यहीपतिहोयहमारोयशोदाकोजायो ॥ १ ॥

रथ जानिके ॥ ८ ॥ बराबरके मित्रनकूं संग लैके तिनके मनोरथ सिद्ध करिवेके लिये ता यमुनाके तीरपर जात भये कन्यानके वस्त्र लैके शीघ्र कदंबपै चढिकै ॥ ९ ॥ हंसत भये और संगके बालक हंसत भये हँसीकी बातें कहतभये और कहत भये कि हे अबलाओ ! यहां आयके अपने अपने वस्त्र लेजाओ ॥ १० ॥ मैं सत्य कहूंहूं तुम व्रत करेते दुर्बल होरही हो याते हांसी नहीं करूं हूं पहिले मैं मिथ्या कभी नहीं बोल्यो हूं या बातको ये मेरे मित्र जानैं हैं ॥ ११ ॥ एक एक आयके लेजाओ अथवा हे सुमध्यमा ! अर्थात् सुंदर कटिवारी नारियो ! एक संगही आयके

वयस्यैरागतस्तत्र वृतस्तत्कर्मसिद्धये ॥ तासां वासांस्युपादाय नीपमारुह्य सत्वरः ॥ ९ ॥ हसद्भिः प्रहसन् बालैः परिहासमुवाच ह ॥ अत्रागत्याबलाः कामं स्वं स्वं वासः प्रगृह्यताम् ॥ १० ॥ सत्यं ब्रवाणि नो नर्म यद्यूयं व्रतकर्शिताः ॥ न मयोदितपूर्वं वा अनृतं तदिमे विदुः ॥ ११ ॥ एकैकशः प्रतीच्छध्वं सहैवोत सुमध्यमाः ॥ तस्य तत्क्ष्वेलितं दृष्ट्वा गोप्यः प्रेमपरिप्लुताः ॥ १२ ॥ व्रीडिताः प्रेक्ष्य चान्योऽन्यं जातहासा न निर्ययुः ॥ एवं ब्रुवति गोविन्दे नर्मणाऽऽक्षिप्तचेतसः ॥ आकण्ठमग्ना शीतोदे वेपमानास्तमब्रुवन् ॥ १३ ॥

लेजाओ यामें हमारे आग्रह नहीं है या प्रकार श्रीकृष्णचंद्रकी हांसी देखिके गोपी प्रेममें मग्न होयके ॥ १२ ॥ लज्जासहित आपुसमें देखि देखिके हंसतिभई वस्त्रहीन हैं याते जलके बाहिर नहीं निकसतीभई याप्रकार श्रीकृष्णचंद्रकी कही हांसीकी जब बात सुनिके वस्त्र हर जानेसै सरमीली गोपी थोरे जलके भीतर कंठताई डूबरहीं, जाडेके मारे कांपत २ श्रीकृष्णचंद्रसूं बोलतभई ॥ १३ ॥

---

१ पद–यमुना न्हाने चलीं व्रजनारी, पहुंची जाय निकट यमुनाके सब मिल वस्त्र धरें हैं उतारी । १ । लागी करन कलोल परस्पर गावत गीत पुकार पुकारी । २ । ताही समय ग्वालबालन संग तर यमुना पहुंच्यौ वनवारी । ३ । लेकर चीर सभी गोपिनके राखे जाय कदंबकी डारी । ४ । लेबुडकी उछरी जब जलतें देखत चीर निहार निहारी । ५ । कोई न दृष्टि परोकाहूकी एक सखी कह सुनो मेरी प्यारी । ६ । देखो कौन चढ्यो तरु वर पर मांगो इनसे हाथ पसारी । ७ । हम तौ खडी मग्न जल भीतर लागत शीत हमें अतिभारी । ८ । कृपा कर दासिनपर अपनी चीर हमारे देउ गिरिधारी ॥ ९ ॥

हे कृष्णचंद्र ! अनीति मति करो हे तुम नंदगोपके पुत्र ! ब्रजमें प्रशंसाके योग्य हो मेरे प्यारे या शीतसूं कंपित हमैं वस्त्र देउ ॥ १४ ॥ हे श्यामसुंदर ! हम तुम्हारी दासी हैं जो तुम कहोगे सोई हम करैंगी हे धर्मके जाननवारे ! हमारे वस्त्र देउ नहीं देउ तो राजा नंदते अथवा कंसते

माऽनयं भोः कृथास्त्वां तु नन्दगोपसुतं प्रियम् ॥ जानीमोऽङ्ग व्रजश्लाघ्यं देहि वासांसि वेपिताः ॥ १४ ॥ श्यामसुन्दर ते दास्यः करवाम तवोदितम् ॥ देहि वासांसि धर्मज्ञ नो चेद्राज्ञे ब्रुवामहे ॥ १५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ भवत्यो यदि मे दास्यो मयोक्तं वा करिष्यथ ॥ अत्रागत्य स्ववासांसि प्रतीच्छन्तु शुचिस्मिताः ॥ १६ ॥

हम कहेंगी ॥ १५ ॥ श्रीकृष्णचंद्र भगवान् कहैहैं जो तुम मेरी दासी हो और मेरो कह्यो करोगी हे सुविस्मिता ! अर्थात् सुंदर मुसिकानिवारियों

---

१ पद–क्यौं श्याम करौ उत्पातैं ॥ यह मनमें कैसी है ठानी यह सीख कौनकी मानी हम जानत तुमरी घातैं । १ । हम रावकंसपरजावैं तोहि बहुतिकमार दिवावै तब भूलजाओ यह बातैं । २ । तब कहेगी यशोदा मैया अबकैसी भई मोरी दइया याको कौन छुडावैं ह्यांतै । ३ । (कृष्ण वचन) ऐसी क्यौंरिस कीन्ही सखियो । जो ऐसे हिमथुराजाओ सब कुलके ले हंसाओ कछु ऊंच नीचमतलखियो । १ । मैंनेचोरी अधिक मिठाई ऐसी तुम कभऊ नहिंखाई आपने नृपके संगचखियो । २ । दोहा ॥ गोपसुताकहे श्यामसों, सुनियेचतुर सुजान ॥ राखो धर्म अधर्मकी, हृदयमें पहचान । १ । (श्रीकृष्ण वचन) तुममोसैं कहो कि विचारो धर्मकूं अनीतिकहाकछुमो तैं भई है । सबलोक और वेदमर्याद तजीकुलकाननिरालीहीत्यागदईहै । है दासी वही जो कहेकूं करै और ऐसीको देखकै आवत हांसी । निज काजकूं दासी वने पतिकी पर काज को देखकै होतउदासी । (गोपी वचन) दोहा । वस्त्र हमारे दीजिये, मन मोहन ब्रजराज। तुमसन्मुख आवै नग्न, लागै हमको लाज । (श्रीकृष्ण वचन) भजन॥ अरी देऊं का विधिचीरतिहारे । मोहिकदमचढायो ग्वाला मेरे निकट आयपट डाला सब गौअनमाहिंसिधारे । १ । निजबल उतरो नहीं जाई नाहिं देतोचीर गहाई मेरे पगकंपत है भारे । २ । तुम कहना मेरा मानो निज निज वस्तरपहिचानो जाने पीरे हैं या कारे । ३ । सब जलतैं बाहर आओ मत लज्जाजीमें लाओ मैंडारदेऊंपटसारे ।४। भजन ॥ जब हटकीन्ही यह श्याम आनतजसबधाई। लुकछिपकर दौउकरसैं ढकअंग झटपट पट धारन धाई । १ । कीह्नौ तुम अपराध वरुणेको जो जल माहिं नगन न्हाई । २ । भानुदेव सब पाप हरतहैं करजोरो विकनेताई । ३ । जोरयुगलकर अस्तुतिकीन्हीतबहारिके ते मन भाई । ४ । कृपाकर दासिन पर अपनी चीर दिये विनके ताई ॥ ५ ॥

ततो जलाशयात् सर्वा दारिकाः शीतवेपिताः ॥ पाणिभ्यां योनिमाच्छाद्य प्रोत्तेरुः शीतकर्शिताः ॥१७॥ भगवानाहता वीक्ष्य शुद्धभावप्रसादितः ॥ स्कन्धे निधाय वासांसि प्रीतः प्रोवाच सस्मितम् ॥ १८ ॥ यूयं विवस्त्रा यदपो धृतव्रता व्यगाहतैतत्तदु देवहेलनम् ॥ बद्ध्वाञ्जलिं मूर्ध्न्यपनुत्तयेंऽहसः कृत्वा नमोऽधो वसनं प्रगृह्यताम् ॥ १९ ॥ इत्यच्युतेनाभिहितं व्रजाबला मत्त्वा विवस्त्राऽऽप्लवनं व्रतच्युतिम् ॥ तत्पूर्तिकामास्तदशेषकर्मणां साक्षात्कृतं नेमुरवद्यमृग्यतः ॥ २० ॥ तास्तथावनता दृष्ट्वा भगवान् देवकीसुतः ॥ वासांसि ताभ्यः प्रायच्छत्करुणस्तेन तोषितः ॥ २१ ॥ दृढं प्रलब्धास्त्रपया च हापिताः प्रस्तोभिताः क्रीडनवच्च कारिताः ॥ वस्त्राणि चैवापहृतान्यथाप्यमुं ता नाभ्यसूयन् प्रियसङ्गनिर्वृताः ॥२२॥ परिधाय स्ववासांसि प्रेष्ठसङ्गमसज्जिताः ॥ गृहीतचित्ता नो चेलुस्तास्मिल्लँज्जायितेक्षणाः ॥ २३ ॥

तुम यहां आयके अपने वस्त्र लेजाओ ॥ १६ ॥ ताके पीछे शीतसूं कम्पित व्रतकरिके कर्षित समस्त कुमारिका हाथनते अपनी अपनी योनिकूं ढकिके जलके बाहिर निकसति भईं ॥ १७ ॥ उनके शुद्धभाव और सुन्दर प्रेमते प्रसन्न भये भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र उन शुद्ध कन्या कुमारिकानकूं देखिके उनके वस्त्र कंधापै धरिके प्रसन्न होयके मुसिकायके यह बोले ॥ १८ ॥ तुम जो व्रतकों करिके नङ्गी होयके यमुनाजलमें स्नान करत भईं तासूं जलको देवता वरुणको अपराध भयो, ताके दूरि करिवेके लिये हाथ जोरि माथेते लगायके धरतीमें प्रणाम करिके वस्त्र पहिरो ॥ १९ ॥ या प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने उनते कही तब ब्रजबाला वस्त्र त्यागिके नग्न स्नान करिबेकूं व्रतके खण्डन करनवारो मानिके ता व्रतके पूरण करिवेके लिये व्रतके और समस्त कर्मनके फलके देनवारे श्रीकृष्णचन्द्रकूं नमस्कार करत भईं क्योंकि जा कारणते श्रीकृष्णचन्द्रही सम्पूर्ण पापनके दूर करनवारे हैं ॥ २० ॥ देवकीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रने आधीनता करनेहारी कुमारिकाओंनकूं देखिके और उनके भावसूं सन्तुष्ट होयके करुणा कर उनको वस्त्र दिये ॥ २१ ॥ बहुत ठगी गई लाज जिनकी छुटाई, हांसी जिनकी करी खिलौनाकीसी नाईं ठाढी करीं वस्त्र जिनके लेलिये तथापि कुमारिका श्रीकृष्णके संग आनन्द मानिके श्रीकृष्णकी निन्दा न करत भईं ॥ २२ ॥ अपने अपने वस्त्र पहिरके प्यारे-

के सङ्ग वशसै उनके चित्त हरि गये तिन श्रीकृष्णचन्द्रकी ओर लाज करिके देखती देखती कुमारिका ऐसी विह्वल हुईं कि उस स्थानसै चलनेकूं सामर्थ्य न हुई ॥ २३ ॥ अपने चरणारविन्दके स्पर्शकी चाहना करिके व्रत करनेहारी कुमारीनके मनोरथ जानिके दामोदर भगवान् अवलानसूं बोलत भये ॥ २४ ॥ श्रीकृष्ण भगवान् बोले हे सुशीलाओ ! जाकारण तुमने मेरो पूजन करो वह मनोरथ लाजके मारे तुमने नहीं कह्यो तथापि मैंने जानो और मैंने तुम्हारे मनोरथको अनुमोदन करो याते यह मनोरथ सत्य होयगो ॥ २५ ॥ मुझमें मन लगानेहारौंकी कामना विषय भोगके लिये नहीं होय है, जैसे भुंजे रंधे अन्न बहुधा उपजिवेके योग्य नहीं होय हैं ॥ २६ ॥ हे अवलाओं ! तुम व्रजको जाओ तुम्हारे मनोरथ

तासां विज्ञाय भगवान् स्वपादस्पर्शकाम्यया ॥ धृतव्रतानां संकल्पमाह दामोदरोऽबलाः ॥ २४ ॥ संकल्पो विदितः साध्व्यो भवतीनां मदर्चनम् ॥ मयाऽनुमोदितः सोऽसौ सत्यो भवितुमर्हति ॥ २५ ॥ न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ॥ भर्जिताः क्वथिता धानाः प्रायो बीजाय नेष्यते ॥२६॥ याताऽबला व्रजं सिद्धा मयेमा रंस्यथ क्षपाः ॥ यदुद्दिश्य व्रतमिदं चेरुरार्यार्चनं सतीः ॥२७॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यादिष्टा भगवता लब्धकामाः कुमारिकाः ॥ ध्यायन्त्यस्तत्पदाम्भोजं कृच्छ्रान्निर्विविशुर्व्रजम् ॥ २८ ॥ अथ गोपैः परिवृतो भगवान् देवकीसुतः ॥ वृन्दावनाद्गतो दूरं चारयन् गाः सहाग्रजः ॥ २९ ॥ निदाघार्कातपे तिग्मे छायाभिः स्वाभिरात्मनः ॥ आतपत्त्रायितान् वीक्ष्य द्रुमानाह व्रजौकसः ॥ ३० ॥ हे स्तोक कृष्ण हे अंशो श्रीदामन् सुबलार्जुन ॥ विशालर्षभ तेजस्विन् देवप्रस्थ वरूथप ॥ ३१ ॥

पूरे भये हे पतिव्रताओं ! जाको मनमें विचारिके तुम यह व्रत करति भईं कात्यायनी देवीकी पूजा करत भईं या कारण जब शरदऋतु की रात्री आमेंगी तिनमें मेरे संग रमण करोगी ॥ २७ ॥ इसप्रकार भगवान् श्रीकृष्णसे आज्ञा पाय पूर्ण मनोरथ होय वे कुमारिका श्रीकृष्णचन्द्रके चरणारविन्दको ध्यान करत कष्टते व्रजको जात भईं ॥ २८ ॥ याके पीछे देवकीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण गोपनकूं संग लैके बलदेवजीको संग लैके गौनको चरावत वृन्दावनमेंते दूरि चले जात भये ॥ २९ ॥ बड़ी तीक्ष्ण गरमीकी धूपमें अपनी छायासूं छाया करनेहारे वृक्षनकूं देखिके श्रीकृष्णचन्द्र व्रजवासीनसूं कहत भये ॥ ३० ॥ हे बालक कृष्ण ! हे अंशो हे श्रीमन् हे अर्जुन हे विशाल हे ऋषभ हे तेजस्विन् हे देवप्रस्थ हे वरूथप ! ॥ ३१ ॥

इन बडभागी वृक्षनकूं तुम देखो तो ये बडे बडभागी है परोपकारके लिये तुम एकांत वास करेंहैं पवन वर्षा शीत धूप आप सहते हैं और हमें इनते बचामें हैं ॥ ३२ ॥ अहो इन वृक्षनको प्राणिनको उपकारका करनवारो जन्म धन्य है जैसे काहू दयावान् पुरुषके पास याचक मनुष्य विमुख नहीं जाय ऐसे इन वृक्षनके पास आयके प्राणी विमुख नहीं जाय है ॥ ३३ ॥ पात फूल फल छाया जड वल्कल लकडी सुगंध गोंद भस्म कोइला कोंपल इनकरिके सब प्राणीनकी कामना पूरण करे हैं ॥ ३४ ॥ या संसारमें देहधारिनको इतनोही जन्म सुफल है जो अपने प्राण धन बुद्धि वचन

पश्यतैतान्महाभागान् परार्थैकान्तजीविनः ॥ वातवर्षातपहिमान् सहन्तो वारयन्ति नः ॥ ३२ ॥ अहो एषां वरं जन्म सर्वप्राण्युपजीवनम् ॥ सुजनस्येव येषां वै विमुखा यान्ति नार्थिनः ॥३३॥ पत्रपुष्पफलच्छायामूलवल्कलदारुभिः॥ गन्धनिर्यासभस्मास्थितोक्मैः कामान् वितन्वते ॥३४॥ एतावज्जन्मसाफल्यं देहिनामिह देहिषु॥ प्राणैरर्थैर्धिया वाचा श्रेय एवाचरेत् सदा ॥३५॥ इति प्रवालस्तबकफलपुष्पदलोत्करैः॥ तरूणां नम्रशाखानां मध्येन यमुनां गतः ॥३६॥ तत्र गाः पाययित्वाऽपः सुमृष्टाः शीतलाः शिवाः॥ ततो नृप स्वयं गोपाः कामं स्वादु पपुर्जलम् ॥ ३७॥ तस्या उपवने कामं चारयन्तः पशून्नृप॥ कृष्णरामावुपागम्य क्षुधार्ता इदमब्रुवन् ॥३८॥ इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पू० कृष्णयमुनागमनं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥

इनसूं सदा परायो भलोही करे है ॥ ३५ या प्रकार पात गुच्छा फलन फूलन दलनके समूहनते शाखा जिनकी नई रही उन वृक्षनके बीचमें होयके श्रीकृष्णचंद्र यमुनातीरपै जात भये ॥ ३६ ॥ हे राजन् परीक्षित! ता यमुना तीरपै गोप निर्मल शीतल मंगलरूप जल गौनकूं प्यायके आपहू स्वादसूं पीवत भये ॥ ३७ ॥ हे राजन् परीक्षित! ता यमुनाजी के समीप बागमें इच्छापूर्वक गऊनकूं चरावत गोपनकूं क्षुधा जब लगी तब श्रीकृष्णचंद्र बलदेवजीके पास आयके यह कहतभये ॥ ३८ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वाविंशोध्यायः ॥ २२ ॥

हे राम हे राम हे बडे पराक्रमी हे कृष्ण दुष्टनके मारनवारे! यह क्षुधा दुष्टिनी हमें बहुत सतावै है याकी शांति करो ॥ १ ॥ श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित! या प्रकार गोपनने जा समय प्रार्थना करी तब देवकीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण भक्तिवती ब्राह्मणनकी स्त्रीनके ऊपर प्रसन्न होयके यह बोलत भये ॥२॥ हे सखाओ! वेदके पढनवारे ब्राह्मण स्वर्गकी कामना करिके आंगिरसनाम यज्ञ करें हैं देवतानको पूजन जहां होई है तहां जाओ ॥३॥ हे गोपो! ता यज्ञमें जायके भात मांगो हमारे भेजे जाओ तुमे कहा लाज आवै बडे भैया भगवान् बलदेवजीको नाम लीजो कि उनके भेजे हम आये हैं ॥ ४ ॥

गोपा ऊचुः ॥ राम राम महावीर्य कृष्ण दुष्टनिबर्हण ॥ एषा वै बाधते क्षुन्नस्तच्छान्तिं कर्तुमर्हथः ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति विज्ञापितो गोपैर्भगवान् देवकीसुतः ॥ भक्ताया विप्रभार्यायाः प्रसीदन्निदमब्रवीत् ॥ २ ॥ प्रयात देवयजनं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ॥ सत्त्रमाङ्गिरसं नाम ह्यासते स्वर्गकाम्यया ॥३॥ तत्र गत्वौदनं गोपा याचतास्मद्विसर्जिताः ॥ कीर्तयन्तो भगवत आर्यस्य मम चाभिधाम् ॥ ४ ॥ इत्यादिष्टा भगवता गत्वाऽयाचन्त ते तथा ॥ कृताञ्जलिपुटा विप्रान् दण्डवत् पतिता भुवि ॥५॥ हे भूमिदेवाः शृणुत कृष्णस्यादेशकारिणः ॥ प्राप्तान् जानीत भद्रं वो गोपान् नो रामचोदितान् ॥ ६ ॥ गाश्चारयन्तावविदूर ओदनं रामाच्युतौ वो लषतो बुभुक्षितौ ॥ तयोर्द्विजा ओदनमर्थिनोर्यदि श्रद्धा च वो यच्छत धर्मवित्तमाः ॥७॥ दीक्षायाः पशुसंस्थायाः सौत्रामण्याश्च सत्तमाः ॥ अन्यत्र दीक्षितस्यापि नान्नमश्नन् हि दुष्यति ॥ ८ ॥

या प्रकार भगवान् श्रीकृष्णजीकी आज्ञा ग्रहण करिके वे गोप जायके तैसेही मांगत भये और ब्राह्मणके हाथ जोरि पृथ्वीमें परिके दंडवत करत भए ॥५॥ हे भूमिदेव! तुम हमारी बात सुनो श्रीकृष्णचंद्रकी आज्ञाके करनवारे और बलदेवजीके भेजे हम गोप तिहारे पास आयेहैं तिनकूं जानोहो तुह्मारा कल्याण होउ ॥ ६ ॥ श्रीकृष्णचंद्रबलदेवजी दोनों भैया गौ चरावत समीप आएहैं तुम्हारे भातकी चाहना करेहैं हे ब्राह्मणओ! हे धर्मके जाननवारेनमें उत्तम! तुह्मारे यहां भात है जो श्रद्धा होय तौ मागनेहारे कृष्ण बलदेवकूं देउ ॥ ७ ॥ हे श्रेष्ठओ! दीक्षाते आरंभ लैके पशुके हिंसनते पहिले

सौत्रामण्ययज्ञते और ठौर दीक्षावारेके अन्नके खाएते दोष नहीं लगे है यामें पशुको हिंसन तुम्हारे होय चुकौ है सौत्रामण्य यज्ञ तुह्मारे है नहीं तुह्मारे
अन्नभोजन करिवेको दोष नहीं ॥ ८ ॥ या प्रकार वे ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकी याचनाकूं सुनिके अनसुनी करतभये कारण कि वे ब्राह्मण
क्षुद्र फलवाले स्वर्गमें जानेकी इच्छा कररहेथे वे क्लेशकारी कर्म अपनो मूर्खतासै करेहै और अपनेको वडा ज्ञानी मानैहै ॥ ९ ॥ देशकाल न्यारो
न्यारो चरु पुरोडाशादिक न्यारी न्यारी सामग्री मंत्र तंत्र ऋत्विज अग्नि देवता यजमान ऋतु यज्ञफल यह सव कृष्णमय है ॥ १० ॥ सो इन्द्रियोंसे परे
परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको उन कुत्सित बुद्धियुक्त देहकोही आत्मा माननेहारे ब्राह्मणोंने अज्ञान वश मनुष्यही जानकर अवज्ञा करी ॥ ११ ॥

इति ते भगवद्याच्ञां शृण्वन्तोऽपि न शुश्रुवुः ॥ क्षुद्राशा भूरिकर्माणो बालिशा वृद्धमानिनः ॥ ९ ॥ देशः कालः पृथक्
द्रव्यं मन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः ॥ देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥ १० ॥ तं ब्रह्म परमं साक्षाद्भगवन्तमधोक्षजम्॥
मनुष्यदृष्ट्या दुष्प्रज्ञा मर्त्यात्मानो न मेनिरे ॥११॥ न ते यदोमिति प्रोचुर्न नेति च परन्तप ॥ गोपा निराशाः प्रत्येत्य
तथोचुः कृष्णरामयोः ॥ १२ ॥ तदुपाकर्ण्य भगवान् प्रहस्य जगदीश्वरः ॥ व्याजहार पुनर्गोपान् दर्शयन् लौकिकीं
गतिम् ॥ १३ ॥ मां ज्ञापयत पत्नीभ्यः ससंकर्षणमागतम् ॥ दास्यन्ति काममन्नं वः स्निग्धा मय्युषिता धिया ॥ १४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहेहैं कि हे परंतप अर्थात् शत्रुनके करनवारे राजा परीक्षित ! वे ब्राह्मण देंयगे अथवा नहीं देंयगे ऐसीभी न कहतभये गोप निराश
होयके बगदिके रामकृष्णतै तैसेही कहतभये कि भले ब्राह्मणनके पास भेजा देंयगे अथवा न देंयगे कछुभी न कही ॥ १२ ॥ जगत्के ईश्वर भगवान्
श्रीकृष्णचंद्र गोपनकी बात सुनिकै लोकनकी रीति दिखायके हंसिके फेरी गोपनते कहत भये अपनो काम करौ जिनको इच्छा है ते खेद
नहीं मानैहै; कौन ऐसौ मांगनवारो है जाको मानभंग नहीं होय है ॥ १३ ॥ अब तुम संकर्षण भय्या सहित कृष्णचंद्र आये हैं यह मेरी बात
ब्राह्मणनकी स्त्रीनते जाय कहो जो कि तुमको बहुतसी सामग्री भोजनकूं देंइगी शरीरते वे घरनमें रहें हैं मन तो उनको मेरे विषेही लगिरह्यो है या-

168

हीते मोमें उनको बडो प्यार है ॥ १४ ॥ श्रीकृष्णके कहे पीछे स्त्री जहां पत्नी शालामें शृंगार करै बैंठीहीं तहां सभामें गोप जायके तिनकूं देखिके ब्राह्मणकी सती स्त्रीनकूं नमस्कार करिके आधीनतापूर्वक यह बोलतभये ॥ १५ ॥ हे ब्राह्मणनकी स्त्रीयो! तुमको नमस्कार है हमारी बात सुनो यहांते समीप कृष्ण बैठे हैं तिनने हमे भेजे हैं ॥ १६ ॥ गोप और बलदेवजी भय्याको संग लैके गौ चरावत २ दूरि आयगये हैं, सो वह भूखे हैं वाके मित्र हम भूखे हैं तुम कछु भोजनकी सामग्री देउ ॥ १७ ॥ नित्य श्रीकृष्णचंद्रके दर्शनकी चाहना करनेहारी और श्रीकृष्णकीही कथाकी मन लगानेहारी वे ब्राह्मणनकी स्त्री श्रीकृष्णचंद्रकूं आयो सुनिके हर्षमानि होतीभईं ॥ १८ ॥ बडे बडे पात्रमें सुंदर सुंगधियुक्त ऐसी चार प्रकारकी

गत्वाऽथ पत्नीशालायां दृष्ट्वाऽऽसीनाः स्वलंकृताः ॥ नत्वा द्विजसतीर्गोपाः प्रश्रिता इदमब्रुवन् ॥ १५ ॥ नमो वो विप्रपत्नीभ्यो निबोधत वचांसि नः ॥ इतोऽविदूरे चरता कृष्णेनेहेषिता वयम् ॥ १६ ॥ गाश्चारयन् स गोपालैः सरामो दूरमागतः ॥ बुभुक्षितस्य तस्यान्नं सानुगस्य प्रदीयताम् ॥१७॥ श्रुत्वाऽच्युतमुपायान्तं नित्यं तद्दर्शनोत्सुकाः ॥ तत्कथाक्षिप्तमनसो बभूवुर्जातसंभ्रमाः ॥ १८ ॥ चतुर्विधं बहुगुणमन्नमादाय भाजनैः ॥ अभिसस्रुः प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः ॥ १९ ॥ निषिध्यमानाः पतिभिर्भ्रातृभिर्बन्धुभिः सुतैः ॥ भगवत्युत्तमश्लोके दीर्घश्रुतधृताशयाः ॥ २० ॥ यमुनोपवनेऽशोकनवपल्लवमण्डिते ॥ विचरन्तं वृतं गोपैः साग्रजं ददृशुः स्त्रियः ॥ २१ ॥

सामग्री भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्य अर्थात् चना चवेना रोटी पुरी भक्ष्य दारि भात इत्यादिक भोज्य कढी क्षीर इत्यादिक लेह्य गांडो आम इत्यादिक चोष्य इनको लैके सब ब्राह्मणनकी स्त्री प्यारे श्रीकृष्णचंद्रके पास आवति भईं जैसे नदी समुद्रके सन्मुख उमड़ उमडके जाय हैं ॥ १९ ॥ पति भैया बंधु पुत्रनने मनेकरी तथापि उत्तम यशवारे श्रीकृष्णचंद्र भगवान्में बहुत दिनते गुण सुनिके मन लगाये वे ब्राह्मणकी स्त्री ॥ २० ॥ अशोकवृक्षके नए पल्लवनकरि शोभायमान यमुनाजीके समीप बागमें गोपनकूं और भैया बलदेवजीकूं संग लैके श्रीकृष्णचंद्र डोले हैं तिनकूं दृष्टि करिके देखत भईं॥२१॥

कैसे श्रीकृष्णचंद्रको देखोहै ताको वर्णन करे हैं श्यामसुंदर स्वरूप सुवर्णकी तुल्य रंगवारे पीतांबरकूं पहिरे. वनके फूल माला मोरपुच्छ खरिया गेरू पात इनकरिके शोभायमान नटकी तुल्य रूप बनाये मित्रके कंधापै एकहाथ धरे दूसरे हाथसूं कमल घुमाते काननमें कमलके फूल उरसे अलके छुटिके कपोलनपै आयरहीं मंद मंद मुसिकानि युक्त श्रीकृष्णचंद्रको दर्शन करतिभई ॥ २२ ॥ कानके कृतार्थ करनहारे अतिप्रिय श्रीकृष्णके चरित्र श्रवण करनैसै उनके मन ब्रजराजमें लग रहेथे सो अब उनका दर्शन कर वे ब्राह्मणनकी स्त्री पीछे तिन श्रीकृष्णचंद्रकूं नेत्रद्वारा अंतःकरणमें लेजायके बहुतवेरताईं आलिंगन करिके हे राजन् परीक्षित्! अपने तापको त्यागत भईं दृष्टांत जैसे अहंकार वृत्तिते सुषुप्ति अवस्थाके साक्षी प्राज्ञको प्राप्त होय उसमें लीन होय तापको त्यागन करैंहै ॥ २३ ॥ पुत्रादिकगृहादिकनकी आशा छोड अपने दर्शन करिवेके लिये आईं ब्राह्मणनकी स्त्रीयौ जानिके सबकी बुद्धि देखनवारे श्रीकृष्णजंद्र हंसिके बोलतभये ॥ २४ ॥ हे बडभागिनिओ! तुम भले आईं आओ हम तुमारो कहा सत्कार करैं जो हमारे दर्शन करिवेको आईहो यह तुमको योग्य है ॥ २५ ॥ अपने अर्थकूं देखनवारे विवेकी पुरुष आत्मा और प्रियरूप मुझमें फलकी अनिच्छा करिके निरंतर भक्ति करें हैं ॥ २६ ॥

श्यामं हिरण्यपरिधिं वनमाल्यबर्हधातुप्रवालनटवेषमनुव्रतांसे ॥ विन्यस्तहस्तमितरेण धुनानमब्जं कर्णोत्पलालककपोलमुखाब्जहासम् ॥ २२ ॥ प्रायः श्रुतप्रियतमोदयकर्णपूरैर्यस्मिन् निमग्नमनसस्तमथाक्षिरन्ध्रैः ॥ अन्तः प्रवेश्य सुचिरं परिरभ्य तापं प्राज्ञं यथाभिमतयो विजहुर्नरेन्द्र ॥ २३ ॥ तास्तथा त्यक्तसर्वाशाः प्राप्ता आत्मदिदृक्षया ॥ विज्ञायाखिलदृग्द्रष्टा प्राह प्रहसिताननः ॥ २४ ॥ स्वागतं वो महाभागा आस्यतां करवाम किम् ॥ यन्नो दिदृक्षया प्राप्ता उपपन्नमिदं हि वः ॥ २५ ॥ नन्वद्धा मयि कुर्वन्ति कुशलाः स्वार्थदर्शनाः ॥ अहैतुक्यव्यवहितां भक्तिमात्मप्रिये यथा ॥ २६ ॥

प्राण बुद्धि मन अपनो देह धन स्त्री पुत्रकूं आदिलैके सब वस्तु जा आत्माके संबंधते प्यारी लगेहैं ता आत्मातें परे और कौंन प्रिय हैं ॥२७॥ ताकारण हे सुशीलाओ ! तुम अपने यज्ञमें जाओ गृहस्थी तुमारे पति ब्राह्मण तुम जाउंगी तब अपने यज्ञको पूर्ण करेंगे ॥ २८ ॥ या प्रकार कृष्णचंद्रको वचन सुनिके ब्राह्मणनकी पत्नी कहती भईं हे महाराज ! आप ऐसो कठोर वचन कहिवेको योग्य नहींहो (न मे भक्तः प्रणश्यति) अर्थात् मेरे भक्तको नाश न ही होयहै यह गीतामें लिखोहै (न स पुनरावर्तते) अर्थात् मोको प्राप्त होयके फेरि नहीं आवैहै यह आपकी आज्ञा है ताको सत्य करौ, तुमने जो अपने चरणसे तुलसीकी माला तिरस्कार करदीहै उसैभी हम बडे आदरते शिरपै चढावेके लिये सब भैया बंधूनकूं त्यागिके तुमारे चरणनके नीचे आईहैं ॥२९॥

प्राणबुद्धिमनःस्वात्मदारापत्यधनादयः ॥ यत्संपर्कात् प्रिया आसंस्ततः को न्वपरः प्रियः ॥ २७॥ तद्यात देवयजनं पतयो वो द्विजातयः ॥ स्वसत्रं पारयिष्यन्ति युष्माभिर्गृहमेधिनः ॥२८॥ पत्न्य ऊचुः ॥ मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं सत्यं कुरुष्व निगमं तव पादमूलम् ॥ प्राप्ता वयं तुलसिदाम पदावसृष्टं केशैर्निवोढुमतिलङ्घ्य समस्तबन्धून् ॥ ॥२९॥गृह्णन्ति नो न पतयः पितरौ सुता वा न भ्रातृबन्धुसुहृदः कुत एव चान्ये ॥ तस्माद् भवत्प्रपदयोः पतितात्मनां नो नान्या भवेद्गतिररिन्दम तद्विधेहि ॥ ३० ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ पतयो नाभ्यसूयेरन् पितृभ्रातृसुतादयः ॥ लोकाश्च ये मयोपेता देवा अप्यनुमन्वते ॥ ३१ ॥ न प्रीतयेनुरागाय ह्यङ्गसङ्गो नृणामिह ॥ तन्मनो मयि युञ्जाना अचिरान्मामवाप्स्यथ ॥ ३२ ॥ स्मरणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ॥ न तथा सन्निकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥ ३३ ॥

हम जायके कहा करैं हमारे पति माता पिता पुत्र भैया बंधु और अपने प्यारे हमें कोई अंगीकार नहीं करेंगे और क्योंकरि करेंगे ताकारणते तुमारे चरणारविंदमें हमारे देह परैहैं, स्वर्गादिकहूको सुख नहीं चाहेहैं, हे काम लोभ भयादिक शत्रूनके दंड देनवारे ! हमको अपनो दास्यभाव देउ ॥३०॥ या प्रकार सुनिके श्रीकृष्णचंद्र भगवान् बोले पति तुमको दोष नहीं लगावेंगे, माता पिता भैया पुत्रादिकभी दोष नहीं लगावेंगे, मेरी आज्ञा जिनको भई ऐसो लोकभी दोष नहीं लगावेंगे, आकाशमें देवताहू घरकूं जाऊ ऐसे कहतभये ॥ ३१ ॥ या संसारमें शरीरमें शरीरते स्पर्श भयेते प्रीति नहीं रहे है स्नेह नहीं बढै है याकारण तुम घरमें रहिके मन मोंमें लगाओ शीघ्र मोको पाओगी ॥ ३२ ॥ मेरे स्मरण करेते दरशन ध्यान करेते निरंतर

कीर्तन करेते जैसे मोमें भाव होय है तैसे पास रहेते नहीं होय है ताते तुम शीघ्र अपने घरको जाओ ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहे हैं या प्रकार श्रीकृष्णचन्द्रने कही तब वे यज्ञ करनवारे ब्राह्मणनकी स्त्री फेरि यज्ञ जहां होतहो तहां आवती भई तब दोष लगाये विना वे ब्राह्मण अपनीनस्त्री को संग लैंके यज्ञ पूरण करत भये ॥ ३४ ॥ तहां एक ब्राह्मणने अपनी स्त्री रोकी तब वह स्त्री जैसो श्रीकृष्ण भगवान्‌को रूप काननते सुनो तैसो ध्यान धरि हृदयमें आलिङ्गन करिके कर्मनके आधीन देहकूं छोड़त भई ॥ ३५ ॥ गौनके पालन करनवारे समर्थ श्रीकृष्ण भगवान् भक्ष्य भोज्य लेह्य चोष्य चार प्रकार की सामग्रीनकूं गोपनको भोजन करायके आपहू भोजन करतभये ॥ ३६ ॥ या प्रकार लीलासे मनुष्यरूपको धारे लोकनकेसो आचरण करिके गौ गोप गोपीनकूं रूप वाणी चरित्रनसूं आनन्द देत आपहूं रमण करतभये ॥ ३७ ॥ याके पीछे वे ब्राह्मण अपने भोजन न दैनेके अपराधकूं स्मरण करिके दुःख पावत भये, जो मनुष्य व्रत आचरण करनेहारे श्रीकृष्ण बलदेवके मांगिवेको न सुनत भये ॥ ३८ ॥ वे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रमें स्त्रीनकी अलौकिक भक्ति देखिके और अपनेको भक्ति रहित देखिकें दुःखित होयके अपनी निन्दा करत भये ॥ ३९ ॥ शुद्ध माता पितातें सावित्री यज्ञोपवीत भयेते यज्ञकी दीक्षा लियेते यह तीन प्रकारको हमारो जन्म है ताकूं धिक्कार है और हमारो व्रत करिवेकूं बहुत शास्त्र पढिवेकूं हमारे कुलकूं हमारे कर्मनकी चतुराईकूं धिक्कार है, क्योंकि हम परमेश्वरते विमुख होयगये ॥ ४० ॥

श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्ता मुनिपत्न्यस्ता यज्ञवाटं पुनर्गताः ॥ ते चानसूयवः स्वाभिः स्त्रीभिः सत्त्रमपारयन्॥३४॥तत्रैका विधृता भर्त्रा भगवन्तं तथा श्रुतम् ॥ हृदोपगुह्य विजहौ देहं कर्मानुबन्धनम् ॥३५॥ भगवानपि गोविन्दस्तेनैवान्नेन गोपकान् ॥ चतुर्विधेनाऽऽशयित्वा स्वयं च बुभुजे प्रभुः ॥ ३६ ॥ एवं लीलानरवपुर्नृलोकमनुशीलयन् ॥ रेमे गोगोपगोपीनां रमयन् रूपवाक्कृतः ॥ ३७ ॥ अथानुस्मृत्य विप्रास्ते अन्वतप्यन् कृतागसः ॥ यद्विश्वेश्वरयोर्याच्ञामहन्म नृविडम्बयोः ॥३८॥ दृष्ट्वा स्त्रीणां भगवति कृष्णे भक्तिमलौकिकीम् ॥ आत्मानं च तया हीनमनुतप्ता व्यगर्हयन्॥३९॥ धिग् जन्म नस्त्रिवृद्विद्यां धिग् व्रतं धिग् बहुज्ञताम् ॥ धिक् कुले धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥ ४० ॥

निश्चय भगवान्की माया योगीनकौं भुलावनवारी है, या मायासूं मनुष्यनमें गुरु ब्राह्मण हमभी स्वार्थमें मोहित भये॥४१॥ अहो बडो आश्चर्य है जगत् के गुरु श्रीकृष्णचंद्रमें स्त्रीनकी कैसी भक्ति भईहै जो भक्ति घरनामवारी मृत्युकी फांसीनकूं काटत भई ॥ ४२ ॥ इन स्त्रीनके यज्ञोपवीत नहीं होय गुरुकुलमें वासभी नहीं करैं तप और आत्माको विचारहू नहीं करें पवित्रताहू नहीं करैं न कुछ यह अनुष्ठानही करैं हैं ॥ ४३ ॥ तथापि उत्तम यशवारे योगेश्वरके ईश्वर भगवान्में टारी न टरै ऐसी भक्ति होत भई, स्नान संध्या जप तप करनेहारे हमकों भक्ति न होत भई ॥ ४४ ॥

नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी ॥ यद्वयं गुरवो नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजाः ॥ ४१ ॥ अहो पश्यत नारीणामपि कृष्णे जगद्गुरौ ॥ दुरन्तभावं योऽविध्यन्मृत्युपाशान् गृहाभिधान् ॥ ४२ ॥ नासां द्विजातिसंस्कारो न निवासो गुरावपि ॥ न तपो नात्ममीमांसा न शौचं न क्रियाः शुभाः ॥ ४३ ॥ अथापि ह्युत्तमश्लोके कृष्णे योगेश्वरेश्वरे ॥ भक्तिर्दृढा न चास्माकं संस्कारादिमतामपि ॥ ४४ ॥ ननु स्वार्थविमूढानां प्रमत्तानां गृहेहया ॥ अहो नः स्मरयामास गोपवाक्यैः सतां गतिः ॥ ४५ ॥ अन्यथा पूर्णकामस्य कैवल्याद्याशिषां पतेः ॥ ईशितव्यैः किमस्माभिरीशस्यैतद्विडम्बनम् ॥ ४६ ॥ हित्वाऽन्यान् भजते यं श्रीः पादस्पर्शाशयाऽसकृत् ॥ आत्मदोषापवर्गेण यद्याच्ञा जनमोहिनी ॥ ४७ ॥ देशः कालः पृथग्द्रव्यं मन्त्रतन्त्रर्त्विजोऽग्नयः ॥ देवता यजमानश्च क्रतुर्धर्मश्च यन्मयः ॥ ४८ ॥

निश्चय करिके अपने अर्थको न जाननेहारे घरके व्यापारमें भूले हमकूं साधुनकी गति श्रीकृष्णचंद्र गोपनके वचन सुनिके सुधि करावत भये ॥ ४५ ॥ पूर्ण मनोरथ मोक्षकूं आदि लेके सब मनोरथनके पति श्रीकृष्ण हैं, तिनकूं ईश्वरके वशीभूत हम जीवौं सै कहा प्रयोजन है भातको मांगिवो यह तौ ईश्वरको खेल है ॥ ४६ ॥ लक्ष्मी ब्रह्मादिकनको छोडिके चरणारविंदके स्पर्शकी चाहना करिके अपनो चंचलता दोष दूर करिवेके लिये जिनको सदा भजन करे है तिन श्रीकृष्णचंद्रको मांगिवो जननके मोह करनवारो है ॥ ४७ ॥ देशकाल न्यारो न्यारो

चरुपुरोडाशादिक द्रव्य मंत्र तंत्र ऋत्विज अग्नि देवता यजमान यज्ञ यह सब कृष्णको रूप है ॥ ४८ ॥ सो साक्षात् भगवान् विष्णु योगेश्वरनके ईश्वर यादवनमें आयके जन्मे हैं हमने यह बात सुनीही तौभी हम मूर्ख अज्ञानी न जानत भये ॥ ४९ ॥ कोई ब्राह्मण कहन लगे अहो हम बडे धन्य हैं हमारे ऐसी भक्तिवती स्त्री हैं जिनकी भक्तिसूं हमारेभी हरिभगवानमें भक्ति होती होई ॥ ५० ॥ अकुंठित बुद्धि भगवान्

स एष भगवान् साक्षाद्विष्णुर्योगेश्वरेश्वरः ॥ जातो यदुष्वित्यशृण्म ह्यपि मूढा न विद्महे ॥ ४९ ॥ अहो वयं धन्यतमा येषां नस्तादृशीः स्त्रियः ॥ भक्त्या यासां मतिर्जाता ह्यस्माकं निश्चला हरौ ॥ ५० ॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाकुण्ठमेधसे ॥ यन्मायामोहितधियो भ्रमाम कर्मवर्त्मसु ॥ ५१ ॥ स वै न आद्यः पुरुषः स्वमायामोहितात्मनाम् ॥ अविज्ञातानुभावानां क्षन्तुमर्हत्यतिक्रमम् ॥ ५२ ॥ इति स्वाघमनुस्मृत्य कृष्णे ते कृतहेलनाः ॥ दिदृक्षवोऽप्यच्युतयोः कंसाद्भीता न चाऽचलन् ॥ ५३ ॥ इतिश्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे यज्ञपत्न्युद्धरणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

श्रीकृष्णचंद्रकूं नमस्कार है जिनकी मायासे मोहितबुद्धि हो हम कर्म रमें भटकत हैं ॥ ५१ ॥ उनकी मायाकरि मोहित चित्त और उनके प्रभावको न जाननेवारे हमारे अपराधको कृष्णचंद्र भगवान् क्षमा करेंगे ॥ ५२ ॥ श्रीकृष्णचंद्रके अपराधी वे ब्राह्मण अपने अपराधकी सुधि करिके कृष्ण बलदेवके दर्शन करिवेकी इच्छा करत भये तथापि कंसके भयते न जात भये ॥ ५३ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां

---

१ कहूं स्त्रीभी तार देयहै - एक कोई बडो पापी सुरापी अपने स्त्रीको लेकर बनमें गयो एक बडे पुराने मंदिरकी भीतके नीचे दोनों जाय बैठे बातैं करनलगे वाने वाकूं पान दिया सो बीडीमें चूना अधिक हो सो उंगलीसे निकाल दिवालपै लगाय दीनो दैवयोगसै तहां दोनोंके प्राण छूटगये भगवानने अपने पार्षदौंको आज्ञा दी कि उन दोनोंने मंदिरपै सुपेदी करीहै सो तुम शीघ्र दो विमान लेजाय उन्हें यहां लाओ ऐसीही भई सोधर्म कहूं बडो काम देईहै कहीं स्त्रीभी तार देहै ॥

दशमस्कन्धे यज्ञपत्न्युद्धरणं नाम त्रयोविंशोध्यायः ॥ २३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहैं हैं श्रीकृष्ण भगवान् भैया बलदेवजीसहित ब्रजमें वास करत भये इंद्रके यज्ञ करिवेकी तयारी करते गोपनकूं देखत भये ॥ १ ॥ समस्त जीवनके आत्मा भगवान् अर्थात् सबमें व्यापक याहीते सब बातनको जाननेंहारे भगवान् श्रीकृष्णचंद्र इंद्रके यज्ञकी तयारी होय रही है तथापि आधीनतासों नंदराय आदि वृद्ध गोपनसों पूछत भये ॥ २ ॥ श्रीभगवान् कहैं हैं हे पिता! तुमको कहा संभ्रम होय रह्यो है यह मेरे आगे कहो वृथा संभ्रम नहीं है यज्ञ होयगो ऐसे कदाचित पिता कहैं ताको उत्तर

श्रीशुक उवाच ॥ ॥ भगवानपि तत्रैव बलदेवेन संयुतः ॥ अपश्यन्निवसन् गोपानिन्द्रयागकृतोद्यमान् ॥ १ ॥
तदभिज्ञोऽपि भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥ प्रश्रयावनतोऽपृच्छत् वृद्धान्नन्दपुरोगमान् ॥ २ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ कथ्यतां मे पितः कोऽयं संभ्रमो व उपागतः ॥ किं फलं कस्य चोद्देशः केन वा साध्यते मखः
॥ ३ ॥ एतद्ब्रूहि महान् कामो मह्यं शुश्रूषवे पितः ॥ नहि गोप्यं हि साधूनां कृत्यं सर्वात्मनामिह ॥ ४ ॥ अस्त्यस्वपरदृष्टीनाममित्रोदास्तविद्विषाम् ॥ उदासीनोरिवद्वर्ज्य आत्मवत् सुहृदुच्यते ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णचंद्र देइंगे यज्ञको कहा फल है और कौन देवता है कौन याके करिवेको अधिकारी है कौन वस्तुनते यज्ञ होयहै ॥ ३ ॥ यह तुम मोसूं कहो हे पिता! मेरी सुनिवेकी इच्छा है, या संसारमें सबके आत्मा साधुनको कर्म छिपायवे योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ साधुके अपनो परायो यह दृष्ट नहीं है, मित्र उदासीन वैरीभी जिनके नहीं है, उदासीन तो शत्रुकी तुल्य वर्जित है, सुहृद आत्माकी तुल्य कह्योहै आत्मातुल्य सुहृद है याते मंत्रनमें वर्जितनहीं है इस कारण उसे विचार करनेमें संग लेनो चाहिये ॥ ५ ॥

यह प्राणी जानिके और विनाजानिके कर्म करैहै परन्तु जानिके जो कर्म करैहै वाको जो फल मिले है तैसे विनांजाने कर्म करनवारेको नहीं मिले है ॥ ६ ॥ तहां यह जो तुम सब तयारी यज्ञकी करोहो सो शास्त्रकी रीतते करोहो अथवा लोकरीतिते करोहो यह मैं पूछूं हूं मेरे आगे भले प्रकार कहो ॥ ७ ॥ पूर्व पुरुषनते चल्यो आयो है यह बात नंदरायजी कहे हैं मेघरूप भगवान् इंद्र है मेघ वाकी प्यारी मूर्ति है

ज्ञात्वाऽज्ञात्वा च कर्माणि जनोऽयमनुतिष्ठति ॥ विदुषः कर्मसिद्धिः स्यात् तथा नाविदुषो भवेत् ॥ ६ ॥ तत्र तावत् क्रियायोगो भवतां किं विचारितः ॥ अथवा लौकिकस्तन्मे पृच्छतः साधु भण्यताम् ॥ ७ ॥ नन्द उवाच ॥ पर्जन्यो भगवानिन्द्रो मेघास्तस्यात्ममूर्तयः ॥ तेऽभिवर्षन्ति भूतानां प्राणनं जीवनं पयः ॥ ८ ॥ तं तात वयमन्ये च वार्मुचां पतिमीश्वरम् ॥ द्रव्यैस्तद्रेतसा सिद्धैर्यजन्ते क्रतुभिर्नराः ॥ ९ ॥ तच्छेषेणोपजीवन्ति त्रिवर्गफलहेतवे ॥ पुंसां पुरुषकाराणां पर्जन्यः फलभावनः ॥ १० ॥

वे मेघ प्राणीनके करनवारे जीवन जलकूं वर्षामें हैं ॥ ८ ॥ हे पुत्र ! मेघनके राजा ईश्वर इंद्रकूं हम और हू संपूर्ण पुरुष वाके जलते उत्पन्न भये अन्ननसूं पूरण करे हैं ॥ ९ ॥ यज्ञ करे पीछे शेष अन्नसूं जीविका करिके धर्म करे हैं और धर्म अर्थ काम मोक्ष इनकूं सेवन करे हैं उद्यम करनवारे

---

१ देखा देखीं कार्य से काम नहीं चलै शास्त्रसे चलै है । एकरसायनी बाबाजीके दो चेलाहैं सो वे बाबाजी वर्ष छः महीनापीछे हजार दोहजार को सौनो बनाय साधू ब्राह्मणनकूं खवायदे और बडो चेला उनकी बहुत सेवा करे और बाबाजी से सब रसायन पूछ कै सीखलीनी। छोटो चेला धूर्तहो सो देख्योकरै कि यह बूंटी निचोडै है ऐसे आंचदेइ हैं ऐसोही बनाय लैउंगो पूछौं काहेकूं बाबाजी तौ मरगये और दोनों चेला लडके जुदे होगये छोटे चेलाने दोहजार ब्राह्मण न्यौतदिये सब चीज बनिये से मंगायकै ब्राह्मण जिमाय दिये दूसरे दिन बनियै को तगादो आयो इसै तौ निश्चयही कि घडी भरमें सेरौं सौनौ बनाऊंगो सो तांबे को गलाय दवाई निचोड दीनी सोनो न बन्यो अबतो बाबाजी कटारी बगलमें दाव आधीरातकूं गुरु भाई पैं पहुंचे सब हाल कह्यो बडो चेला बोल्यो तैंने गुरूसे सीखी नहीं उडायकै विद्यालीनीहै अब मेरे सामने सामग्री इकट्ठीकर बना जब बूंटी निचोरन लगो तो हाथ पकर कै कही ऐसे नहीं ऐसै निचोर तुरंत सोनो होयगयो यासै उडाई विद्यासौं काम नहीं चलै है ॥

176

पुरुषोंकूं फलदाता इंद्र है ॥ १० ॥ जे पुरुष ऐसी परंपराते चले आये धर्मकूं कामना लोभ भय द्वेषते त्यागिदेइ हैं, वे कल्याणकूं नहीं पावै हैं ॥ ११ ॥ श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित! या प्रकार नंदरायजीको वचन सुनिके और व्रजवासीनको वचन सुनिके इंद्रके ऊपर क्रोध करिके श्रीकृष्णचंद्र भगवान् पिताते बोलत भए ॥ १२ ॥ भगवान् कहैं हैं कर्मनते जीव जन्मैहैं और कर्मनतेही देह त्यागै हैं और सुख दुःख कल्याण भय क्षेम कर्मनतेही पावैं हैं ॥ १३ ॥ कर्मनके फलको देनवारो जो कोई ईश्वर है वह कर्म करनेहारे पुरुषकूं फल देइहै और जो कर्म नहीं करे ताकूं फल नहीं

य एवं विसृजेद्धर्मं पारम्पर्यागतं नरः ॥ कामाल्लोभाद्भयाद्द्वेषात् स वै नाप्नोति शोभनम् ॥ ११ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वचो निशम्य नन्दस्य तथान्येषां व्रजौकसाम् ॥ इन्द्राय मन्युं जनयन् पितरं प्राह केशवः ॥ १२ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव विलीयते ॥ सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥ १३ ॥ अस्ति चेदीश्वरः कश्चित् फलरूप्यन्यकर्मणाम् ॥ कर्तारं भजते सोपि न ह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः ॥ १४ ॥ किमिन्द्रेणेह भूतानां स्वस्वकर्मानुवर्तिनाम् ॥ अनीशेनान्यथा कर्तुं स्वभावविहितं नृणाम् ॥ १५ ॥ स्वभावतन्त्रो हि जनः स्वभावमनुवर्तते ॥ स्वभावस्थमिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ १६ ॥ देहानुच्चावचान् जन्तुः प्राप्योत्सृजति कर्मणा ॥ शत्रुर्मित्रमुदासीनः कर्मैव गुरुरीश्वरः ॥ १७ ॥

देइहै इस कारण फल सिद्धि तौ कर्मसे होती है तौ कर्म परतंत्र रहनेसे इन्द्रकी क्या आवश्यकता है? ॥ १४ ॥ अपने अपने कर्मनके अनुसार वर्तें प्राणीकूं या संसारमें इंद्रते कहा प्रयोजन है, मनुष्यनके पूर्वजन्मके संस्कारते रचे कर्मोंकूं अन्यथा करिवेकूं इंद्रहू असमर्थ है ॥ १५ ॥ जीव स्वभावके वश है और स्वभावहीकूं वर्तैं हैं देवता असुर मनुष्यनसहित यह समस्त विश्व स्वभावमें रहै है इस कारण कर्मकी वृत्ति संस्कारके आधीन है तौ उस प्रवृत्तिमें अंतर्यामीकी क्या अपेक्षा है? ॥ १६ ॥ यह जीव बडे छोटे देहनकूं पाइके छोडे है कर्मही शत्रु है और कर्मही उदासीन है कर्मही गुरु है कर्मही ईश्वर है ॥ १७ ॥

ताकारणते स्वभावमें स्थित होयके अपने कर्मनकूं करे ऐसे पुरुष कर्मकी पूजा करे अनायासपूर्वक जिस्से या पुरुषका निर्वाह होय वही उसकी
देवता है यदि देवताके निमित्त होम करनोही कर्म है और देवता विना सिद्धि न होगी ऐसे मानो तौ देवता कर्मके अंगभूत होनेसे मुख्य नहीं हैं यदि
ईश्वर कर्मफल दाता है तौ उसे कर्ममें अंगत्व सिद्ध होयहै वास्तवमें तौ जिसकी जिससै निवाहता होयहै वही उसकी देवता है ॥ १८ ॥ जे पुरुष एक
पदार्थका सेवन करिके दूसरेका सेवन करैं हैं वातें यह पुरुष कल्याणकों नहीं पावै है दृष्टांत जैसे व्यभिचारिणी स्त्री परपुरुषको सेवन करिकै कल्याण
को नहीं पावै है ॥ १९ ॥ ब्राह्मण वेद पढिके जीविका करे, क्षत्री पृथ्वीकी रक्षा करिके, और वैश्य व्यापार करिके, शूद्र ब्राह्मण क्षत्री वैश्यकी सेवा करे ॥ २० ॥

तस्मात् संपूजयेत्कर्म स्वभावस्थः स्वकर्मकृत् ॥ अञ्जसा येन वर्तेत तदेवास्य हि दैवतम् ॥ १८ ॥ आजीव्यैकतरं
भावं यस्त्वन्यमुपजीवति ॥ न तस्माद्विन्दते क्षेमं जारं नार्यसती यथा ॥ १९ ॥ वर्तेत ब्रह्मणा विप्रो राजन्यो
रक्षया भुवः ॥ वैश्यस्तु वार्तया जीवेच्छूद्रस्तु द्विजसेवया ॥ २० ॥ कृषिवाणिज्यगोरक्षाः कुसीदं तुर्यमुच्यते ॥ वार्ता
चतुर्विधा तत्र वयं गोवृत्तयोऽनिशम् ॥ २१ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति स्थित्युत्पत्त्यन्तहेतवः ॥ रजसोत्पद्यते विश्वमन्यो-
न्यं विविधं जगत् ॥ २२ ॥ रजसा चोदिता मेघा वर्षन्त्यम्बूनि सर्वतः ॥ प्रजास्तैरेव सिध्यन्ति महेन्द्रः किं करिष्यति
॥ २३ ॥ न नः पुरो जनपदा न ग्रामा न गृहा वयम् ॥ नित्यं वनौकसस्तात वनशैलनिवासिनः ॥ २४ ॥

खेती और वाणिज्य गौकी रक्षा करनो व्याज लेनो यह चार प्रकारकी वैश्यकी जीविका है, तिन चारोंनसे हमारे तौ सदा गौनकी जीविका है ॥ २१ ॥
सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुण इन तीनोंनसूं विश्वको पालन उत्पत्ति नाश होय है रजोगुणसूं स्त्रीपुरुष मिलिके नाना प्रकारको जगत् उत्पन्न होइ
है ॥ २२ ॥ रजो गुणके प्रेरे मेघ सर्वत्र जलको वर्षामें हैं तिन जलनसूं प्रजा जीवै है इंद्र कहा करै है व तुम कहो कि यह ज्ञान कहांते सीखो है
तौ हे पिताजी! जे ऋषि मुनि जगन्नाथजी से पुष्करकूं जांय हैं और बद्रीनाथ से सेतुबन्धकूं जांय हैं तिन्हैं बीचमें वृंदावन पडे है वे सब गोवर्धन होके
जाय हैं तहां ठहरै हैं मैं ग्वालौंसहित तहां खेलोकरूंहूं उनके मुख से यह सब बातें सुनी हैं ॥ २३ ॥ हमारे पुर देश ग्राम घर कछु नहीं है हे

पिता ! वन हमारो घर है और नित्य वननमें पर्वतनमें वसैं हैं ॥ २४ ॥ ताते गौ ब्राह्मण गोवर्धनपर्वत इनके यज्ञको प्रारंभ करो ये इंद्रके यज्ञकी सामग्री है तिनसूं यज्ञ करो ॥ २५ ॥ खीरते आदिलेके दालिपर्यंत अनेक प्रकारकी सामग्री करो, गेंहूंकी पूरी पुआ कचोरी गोझा करो संपूर्ण दूध इकठोरो करो ॥ २६ ॥ वेदके पढनवारे ब्राह्मण भले प्रकार होम करें, तिन ब्राह्मणनको बहुत प्रकारकी सामग्री गौ दक्षिणा तुम देउ ॥ २७ ॥ और जो अन्य चांडालसूं आदिलैके पतित पर्यंत है तिन सबको यथायोग्य भोजन कराओ गौअनको घास देके गोवर्द्धन

तस्माद्गवां ब्राह्मणानामद्रेश्चारभ्यतां मखः ॥ य इन्द्रयागसंभारास्तैरयं साध्यतां मखः ॥ २५ ॥ पच्यन्तां विविधाः
पाकाः सूपान्ता पायसादयः ॥ संयावापूपशष्कुल्यः सर्वदोहश्च गृह्यताम् ॥ २६ ॥ हूयन्तामग्नयः सम्यग् ब्राह्मणैर्ब्रह्मवा-
दिभिः ॥ अन्नं बहुगुणं तेभ्यो देयं वो धेनुदक्षिणाः ॥ २७ ॥ अन्येभ्यश्च श्वचाण्डालपतितेभ्यो यथार्हतः ॥ यवसं च
गवां दत्त्वा गिरये दीयतां बलिः ॥ २८ ॥ स्वलंकृता भुक्तवन्तः स्वनुलिप्ताः सुवाससः ॥ प्रदक्षिणं च कुरुत गोविप्राऽनलपर्व-
तान् ॥ २९ ॥ एतन्मम मतं तात क्रियतां यदि रोचते ॥ अयं गोब्राह्मणाद्रीणां मह्यं च दयितो मखः ॥ ३० ॥ श्रीशुक उ-
वाच ॥ कालात्मना भगवता शक्रदर्पं जिघांसता ॥ प्रोक्तं निशम्य नन्दाद्याः साध्वगृह्णन्त तद्वचः ॥ ३१ ॥ तथा च व्यद-
धुः सर्वं यथाह मधुसूदनः ॥ वाचयित्वा स्वस्त्ययनं तद्द्रव्येण गिरिद्विजान् ॥ ३२ ॥

पर्वतको बलि देउ ॥ २८ ॥ सुंदर आभूषण पहिरके शृंगार करिके भोजन करिके गौ ब्राह्मण अग्नि पर्वतकी परिक्रमा करो ॥ २९ ॥ हे पिता! यह मेरो मत है जो तुमको अच्छो लगै तो तुम करौ यह गौ ब्राह्मण गोवर्धनपर्वतका यज्ञ मुझै आतिप्रिय है गोवर्द्धन पर्वत विष्णु स्वरूप है नंदको पर्वत नंदीश्वर है बरसानैको पर्वत ब्रह्मा है यह तीनों देवता ब्रजमें बास करै हैं ॥ ३० ॥ इंद्रको गर्व दूरि करिवेके लिये कालरूप भगवान्‌को कह्यो सुनिके नंदादिक समस्त ब्रजवासी तिनको वचन भले प्रकार मानत भये ॥ ३१ ॥ जैसे मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने कह्यो तैसेही

सब ब्रजवासी करत भये स्वस्तिवाचन वचायके संपूर्ण इंद्रके यज्ञकी सामग्री ॥ ३२ ॥ पर्वत द्विज ब्राह्मणनकूं यथाविधि देके आदरयुक्त ब्रजवासी गौनकूं आगे करिके गोवर्द्धनपर्वतकी परिक्रमा देत भये ॥ ३३ ॥ वे ब्रजवासी बनठनके बैल जुते गाडानमें चढिके और गोपीभी गाडानमें चढिके श्रीकृष्णचंद्रकी लीलानकूं गावत ब्राह्मणके आशीर्वाद लेती परिक्रमा करत भईं ॥ ३४ ॥ श्रीकृष्णने गोपोंके विश्वासके निमित्त बड़ा रूप धारण

उपहृत्य बलीन् सर्वानादृता यवसं गवाम् ॥ गोधनानि पुरस्कृत्य गिरिं चक्रुः प्रदक्षिणम् ॥ ३३ ॥ अनांस्यनडुद्युक्तानि ते चारुह्य स्वलंकृताः ॥ गोप्यश्च कृष्णवीर्याणि गायन्त्यः सद्विजाशिषः ॥ ३४ ॥ कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणं गतः ॥ शैलोऽस्मीति ब्रुवन् भूरि बलिमादद् बृहद्वपुः ॥ ३५ ॥ तस्मै नमो व्रजजनैः स चक्रे आत्मनाऽत्मने ॥ अहो पश्यत शैलोऽसौ रूपी नोऽनुग्रहं व्यधात् ॥ ३६ ॥ एषोऽवजानतो मर्त्यान् कामरूपी वनौकसः ॥ हन्ति ह्यस्मै नमस्यामः शर्मणे आत्मने गवाम् ॥ ३७ ॥

करकै मैं पर्वत हूं यह कह बहुत सामग्री भक्षण[२] की ॥ ३५ ॥ और श्रीकृष्णचंद्र सब ब्रजबासीनसहित अपने रूपको आपही नमस्कार करत भये और यह कहत भये तुम देखो तो यह गोवर्द्धन पर्वतरूप धरिके हमारे ऊपर अनुग्रह करै है ॥ ३६ ॥ यह गोवर्द्धनपर्वत जो पुरुष वनमें रहिके इनकी अवज्ञा करै हैं तिनकूं सर्पादिकको रूप धारिके मारै है याते हमारो भलो होय गौनको सुख होय याते गोवर्द्धनपर्वतकूं नमस्कार करै हैं ॥ ३७ ॥

---

१ छन्द ॥ तुम्हीं कर्ता हो सबनके तुम्हीं सबके ईश हो ॥ कोटि कोटि ब्रह्माण्ड तुम्हरे रोमपति जगदीश हो ॥ श्याम हलधर दास तुम्हरे कुशल यह दोऊ रहैं ॥ करि कृपा यह देहु प्रभु हम और कछु नाहीं चहैं ॥ अब हमें डर कौनगो प्रभु शरण तुम्हरी पायकै ॥ इन्द्र कहा करि हैं हमारो नाथ व्रजपर आयकै ॥ सुतनले दोउ डारि गिरिपद आप नंद चरणनपरे ॥ विहँसि गिरि लखि प्रीति पंकज पाणि दुहुं माथे धरे ॥

२ सोरठा—सहसौं भुजा पसार, लागे भोजन करन गिरि । बढ्यो अनंद अपार, कह्यो जात केहि भांतिसो ॥ अब गोवर्द्धनजी हाथ से सबकूं बुलाने लगे व्रजवासी भेंटधर पूजने लगे ब्राह्मणसे कहैं मंत्र पढो वे बोले हमारे दादेहूनै यह यज्ञ नहीं करो हम कहा जानै तब कृष्ण बोले हम पूजा करावै हैं स्नान कराय चंदन लगाय भोजनकी सामग्री खाने को दी वे सबकी वस्तु खाने लगे गोपियैं कहन लगीं यह कृष्णकोही कौतुक है गिरिराज को और इनको एकही सो रूप दीख परै है केवल भुजान में भेद है और जे गोपियैं घूंघट काढे देखैहीं तिनके घूंघट खोल कृष्ण कहने लगे जो ऐसे बडे घरकी थीं घरसे काहेको आई हीं जो भेट लाई हो सो चढाओ गोपियैंने हीरा मोती भोजनकी सामग्री सब चढाई गिरिराज भोजन कर बोले वरदान मांगो नंदराज आदि बोले कृष्ण अच्छो रहै उनमें हमारी प्रीति होय गोवर्द्धनजीने तथास्तु कही ॥

या प्रकार संपूर्ण गोप वासुदेव भगवान्की आज्ञाते गोवर्द्धनपर्वत गौ ब्राह्मणको यज्ञ भलेप्रकार करिके श्रीकृष्णचंद्रकूं संग लैके ब्रजकों आवत भये ॥ ३८ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे इन्द्रमखभङ्गश्चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित ! वह इंद्र तासमय अपनी पूजाको लोप जानिके श्रीकृष्णचंद्र जिनके नाथ ऐसे नंदरायजीसूं आदिलैके जे गोप हैं तिनपै कोप करत भयो ॥ १ ॥ प्रलय करनवारे सांवर्तक नाम मेघगणकूं भेजत भयो, मैं ईश्वर हूं यह जाके मनमें अभिमान है वह इंद्र यह वचन कहत भयो ॥ २ ॥ अहो वडो आश्चर्य है

इत्यद्रिगोद्विजमखं वासुदेवप्रणोदिताः ॥ यथा विधाय ते गोपाः सहकृष्णा व्रजं ययुः ॥ ३८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे
दशमस्कन्धे पूर्वार्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रस्तदात्मनः पूजां विज्ञाय विहतां नृप ॥ गोपेभ्यः
कृष्णनाथेभ्यो नन्दादिभ्यश्चुकोप सः ॥ १ ॥ गणं सांवर्तकं नाम मेघानां चान्तकारिणाम् ॥ इन्द्रः प्राचोदयत् क्रुद्धो
वाक्यं चाहेशमान्युत ॥ २ ॥ अहो श्रीमदमाहात्म्यं गोपानां काननौकसाम् ॥ कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य ये चक्रुर्देवहेलनम्
॥ ३ ॥ यथा दृढैः कर्ममयैः क्रतुभिर्नामनौनिभैः ॥ विद्यामान्वीक्षिकीं हित्वा तितीर्षन्ति भवार्णवम् ॥ ४ ॥ वाचालं
बालिशं स्तब्धमज्ञं पण्डितमानिनम् ॥ कृष्णं मर्त्यमुपाश्रित्य गोपा मे चक्रुरप्रियम् ॥ ५ ॥

वनके रहनवारे गौनके चरामनवारे ग्वालजातिनके कैसो धनको मद भयोहै, इन ग्वालौंने मनुष्य कृष्णको आश्रय लैके मो देवताको अपराध कर्यो ॥ ३ ॥ जैसे कल्याण करनेहारी ब्रह्मविद्याको त्यागकर नाममात्रसेही नौकाकी समान दृढतारहित क्रियासे होनेहारे यज्ञोंसे संसार सागरके पार जानैकी कोई इच्छा करै हैं ॥ ४ ॥ तैसेही यह वाचाल मूर्ख बालक अपनेको पंडित माननेहारे मनुष्य श्रीकृष्णको आश्रय लैके मेरी अवज्ञा करतभये ॥ ५ ॥

लक्ष्मीसे मतवारे कृष्णने वहकाये इन गोपोंको धनको मद भयो है ताय दूरि करिदेउ और इनके पशूनको नाश करिदेउ ॥ ६ ॥ मैंभी ऐरावत हाथीपै चढिके वडे पराक्रमी मरुद्गण देवतानकूं संग लैके नंदके व्रजको नाश करिवेके लिये व्रजमें तुह्मारे पीछेही आऊ हूं ॥ ७ ॥ ऋषीश्वर कहैं हैं. या प्रकार इंद्रकी आज्ञा पाय मुक्तबंधन होय वे मेघ नंदरायके गोकुलमें बलते बडी वर्षा करिके पीडा देतभये ॥ ८ ॥ विजली चमकनै लगी कड़कड़ शब्द हौनै लगा तीव्र मरुद्गणसे चलायमान होय बादर जलके कंकर और जलनकी वर्षा करत भये ९ ॥ स्तंभको तुल्य

एषां श्रियावलिप्तानां कृष्णेनाध्मायितात्मनाम् ॥ धुनुत श्रीमदस्तम्भं पशून् नयत संक्षयम् ॥ ६ ॥ अहं चैरावतं नागमारुह्यानुव्रजे व्रजम् ॥ मरुद्गणैर्महावीर्यैर्नन्दगोष्ठजिघांसया ॥ ७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ इत्थं मघवताऽऽज्ञप्ता मेघा निर्मुक्तबन्धनाः ॥ नन्दगोकुलमासारैः पीडयामासुरोजसा ॥८॥ विद्योतमाना विद्युद्भिः स्तनन्तः स्तनयित्नुभिः ॥ तीव्रैर्मरुद्गणैर्नुन्ना ववृषुर्जलशर्कराः ॥ ९ ॥ स्थूणास्थूला वर्षधारा मुञ्चत्स्वभ्रेष्वभीक्ष्णशः ॥ जलौघैः प्लाव्यमाना भूर्नादृश्यत नतोन्नतम् ॥ १० ॥ अत्यासारातिवातेन पशवो जातवेपनाः ॥ गोपा गोप्यश्च शीतार्ता गोविन्दं शरणं ययुः ॥ ११ ॥ शिरः सुतांश्च कायेन प्रच्छाद्यासारपीडिताः ॥ वेपमाना भगवतः पादमूलमुपाययुः ॥ १२ ॥ कृष्ण कृष्ण महाभाग त्वन्नाथं गोकुलं प्रभो ॥ त्रातुमर्हसि देवान्नः कुपिताद्भक्तवत्सल ॥ १३ ॥

स्थूल जलकी धारा वारंवार वादरनमेंते निकलने लगी तिनसूं पृथ्वी डूबिगई, ऊंचे नीचे गाढगढेला कछु न दिखाई देत भये ॥ १० ॥ अत्यन्त वर्षा और तीव्र वायुके चलनैसै सब गैयां कांपने लगी और गोप गोपी जाडेसै दुःखी होय श्रीकृष्णकी शरण गई ॥ ११ ॥ जलधारासैं पीडित होयके गौ शिरनकूं नीचे करिके और बछरानकों छातीके नीचे करिके कांपत भगवानके चरणके समीप जातभई ॥ १२ ॥ हे कृष्ण हे कृष्ण हे महाभाग हे

---

१ दोहा-उमडि घुमाडि घहरायकै, परन लगे जल जोर ॥ अरररररर आकाशतें, जलडारत झकझोर ॥ १ ॥ ग्वाल बाल सब डरपिकैं, वनसैं आये धाय ॥ भय व्याकुल सब व्रज भयो, शरण कौनकी जाय ॥ २ ॥

182

समर्थ हे भक्तनके ऊपर हितके करनवारे ! तुमही जाके नाथ ऐसे गोकुलकूं और हमकूं क्रोधी इन्द्रसे रक्षित करौ ॥ १३ ॥ बडी बडी शिला ओले वर्षनेसै पीडित और अचेतन गोकुलकूं देखिके सबके दुःखनके हरनवारे श्रीकृष्णचन्द्र भगवान् क्रोधी इन्द्रको कर्तब मानतभये ॥ १४ ॥ ऋतु विना भयानक शिलामय वर्षा भई और पवन चले सो हमने इन्द्रको यज्ञ मेटिदियो तासूं इन्द्र हमारे नाशके लिये वर्षावै है ॥ १५ ॥ ता वर्षाके दूरी करिवेके उपायको अपनी सामर्थ्यसूं रचूंगो और अज्ञानते अपनेको लोकनके ईश्वरको माननेहारे इन्द्रादिक देवतानके मदते भये

शिलावर्षनिपातेन हन्यमानमचेतनम् ॥ निरीक्ष्य भगवान् मेने कुपितेन्द्रकृतं हरिः ॥ १४ ॥ अपर्त्वत्युल्बणं वर्षमतिवातं शिलामयम् ॥ स्वयागे निहतेऽस्माभिरिन्द्रो नाशाय वर्षति ॥ १५ ॥ तत्र प्रतिविधिं सम्यगात्मयोगेन साधये ॥ लोकेशमानिनां मौढ्याद्धरिष्ये श्रीमदं तमः ॥ १६ ॥ नहि सद्भावयुक्तानां सुराणामीशविस्मयः ॥ मत्तोऽसतां मानभङ्गः प्रशमायोपकल्पते ॥ १७ ॥ तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहम् ॥ गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्धनाचलम् ॥ दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः ॥ १९ ॥ अथाह भगवान् गोपान् हेऽम्ब तात व्रजौकसः ॥ यथोपजोषं विशत गिरिगर्तं सगोधनाः ॥ २० ॥

अज्ञानकूं दूरि करोंगो ॥ १६ ॥ मेरी भक्ति करनेहारे अथवा सत्त्वगुणी देवताओंको सामर्थ्यका अभिमान न होनो चहिये परन्तु अब इनमें अभिमान प्राप्त भयो यातें इन असाधुओंका मान भंगकर इनका कल्याण करूंगा ॥ १७ ॥ ताकारणते मेरी शरण आयो, और मैंही जाको नाथ मेरो ग्रहण किया यह ब्रज है, ताकी अपने योगबलते रक्षा करूंगो शरणागत पालक मेरो वानोही है यह मैंने संकल्प करोहै ॥ १८ ॥ ऐसे कहिके निकट जाय एकहाथते गोवर्द्धन पर्वतकूं उखारिके लीलाकरिके श्रीकृष्णचन्द्र उठावत भये जैसे बालक छतोनाकूं उठामें हैं ॥ १९ ॥ पर्वत उठाये पीछे

---

१ रागबिलावल–राख लेहु गोकुलके नायक । भीजत ग्वाल गाय गोसुत सब विषम बूंद लागत जनु सायक । १ । वरषत मूसलधार सैंनपति महामेघ मघवाके पायक । २ । तुम विन ऐसो कौन नंदसुत यह दुख दुसह मेटवे लायक । ३ । अघमर्दन बकवदनविदारन बकीविनाशन सब सुखदायक । ४ । सूरदास तिनकौं काको डर जिनके तुमसे सदा सहायक ।५॥१३॥

भगवान् श्रीकृष्ण गोपनते कहत भये हे मैया ! हे पिता ! हे ब्रजवासीयो ! गायनकूं लेलेके सुखसों पर्वतके नीचे आय जाओ ॥ २० ॥ मेरे हाथते पर्वत गिरिपरेगो हम दबिजांयंगे ऐसो भय तुम मति मानो पवन वर्षाके भयते डरपो मति, तुम्हारी मैंने रक्षा करी है ॥ २१ ॥ श्रीकृष्णने भरोसो जिनकूं दियो वे ब्रजवासी गौ गाडा पुरोहितनकूं संग लैके आनन्दपूर्वक पर्वतके नीचे गढेलामें धसत भये ॥ २२ ॥ भूख प्यासको दुःख और सुखकी चाहना त्यागिके वे ब्रजवासी ठाढे देखत रहे सातदिन पर्यंत श्रीकृष्ण पर्वत धारण करत भये और जहां ठाढे हे तहांते तनकहूं न डिगत भये ॥२३॥

न त्रास इह वः कार्यो मद्धस्ताद्रिनिपातने ॥ वातवर्षभयेनालं तत्त्राणं विहितं हि नः ॥ २१ ॥ तथा निर्विविशुर्गर्तं कृष्णाश्वासितमानसाः ॥ यथावकाशं सधनाः सव्रजाः सोपजीविनः ॥ २२ ॥ क्षुत्तृड्व्यथां सुखापेक्षां हित्वा तैर्व्रजवासिभिः ॥ वीक्ष्यमाणो दधावद्रिं सप्ताहं नाचलत् पदात् ॥ २३ ॥ कृष्णयोगानुभावं तं निशम्येन्द्रोऽतिविस्मितः ॥ निस्तम्भो भ्रष्टसंकल्पः स्वान् मेघान् संन्यवारयत् ॥ २४ ॥ खं व्यभ्रमुदितादित्यं वातवर्षं च दारुणम् ॥ निशाम्योपरतं गोपान् गोवर्धनधरोऽब्रवीत् ॥ २५ ॥

जब सात दिन वर्षनैसै महाप्रलयको पानी सब निवड़गयो तब वादरनने जाय इन्द्रसै कही कि महाराज जल सब ह्वै चुक्यो पर ब्रजमें बूंदहूं नहीं परी तब इंद्र श्रीकृष्णके प्रभावको सुनिके अति आश्चर्य मानिके गर्वको त्याग विफलमनोरथ होय अपने मेघनकूं मने करत भयो ॥ २४ ॥ बादर जानेसै सूर्यउदय ह्वै आयो ऐसे आकाशकों देखिके और भयानक पवन वर्षाको थम्यों देखिके गोवर्द्धनधारी श्रीकृष्ण गोपनते बोलत भये ॥ २५ ॥

---

१ चौपाई ॥ करी सहाय देव गिरि राया । आवहु तुम सब इन की छाया । सब व्रजवासी कृष्णचंद्र के मुखको देखरहे थे जिस्सै किसी को भूख प्यास नहीं लगी बाहर जलकी वर्षा और भीतर आनंदामृतकी वर्षा होय रही सखा चरण दाव रहेहै हास्य रस युक्त गोपियां बोलीं हमारो माखनचुराय कै खायो ताके बलसौ पर्वत धारन करोहै यशोदा माखन खवावे है किशोरीजी सन्मुख खडी है । दावत भुजा यशोदा मैया, वार वार मुखलेत बलैया, उहां नीलमेघ यहां श्यामवरण कृष्ण, उहां विद्युत यहां किशोरी, उहां जलकी वर्षा यहां आनंदकी वर्षा, गोवर्द्धन उठानै के समय श्रीकृष्ण सीधेही ठाडें रहे टेढे हौनेसे गोप जान्ते कि लालाको परिश्रम होय है ॥

हे गोपओ ! स्त्री धन बालकनकूं लैके तुम या पर्वतके नीचेते निकसो, भयको त्यागो अब पवन वर्षा थमिगई नदीनके जलहू उतरी गये ॥ २६ ॥ श्रीकृष्णने इतनी बात कही तब गोप अपने अपने गौनके समूहनकूं लैके और गाडानमें सब वस्तु धरिके स्त्री बालक वृद्ध सब होले होले निकसत भये ॥ २७ ॥ समर्थ भगवान् श्रीकृष्णचंद्रभी ता पर्वतकूं अपने ठिकानेपै पहिलेकी तुल्य समस्त प्राणिनके देखते २ लीला करिके धरत भये ॥ २८ ॥ प्रेमते भरे ब्रजवासी सन्मुख आयके जैसो जाकूं उचित हो तैसो मिलत भये, और स्नेहभरी गोपी आनन्दसों दही अक्षत जलनसूं पूजा करत आशीर्वाद देत भईं ॥ २९ ॥ यशोदाजी रोहिणीजी नंदरायजी और बलिनमें बलवान् श्रीबलदेवजी श्रीकृष्णचन्द्रकूं छातीते लगाय स्नेहते कायर होयके आशीर्वाद देत भये यशोदाजी बोली आज मेरो नाम सार्थक भयो जो काहूकी बछियाहू मरि जाती तौ मेरो नाम यशोदा हो जातो ॥ ३० ॥ श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित ! स्वर्गमें देवतानके गण साध्यगण सिद्ध गन्धर्व चारण संतुष्ट होयके फूलनकी वर्षा करतभये ॥ ३१ ॥ हे राजन् परीक्षित ! स्वर्गके देवता शंख नगारे बजावत भये और तुंबुरु जिनमें मुख्य ऐसे गन्धर्वपति गावत भये ॥ ३२ ॥

निर्यात त्यजत त्रासं गोपाः सस्त्रीधनार्भकाः ॥ उपारतं वातवर्षं व्युदप्रायाश्च निम्नगाः ॥ २६ ॥ ततस्ते निर्ययुर्गोपाः स्वं स्वमादाय गोधनम् ॥ शकटोढोपकरणं स्त्रीबालस्थविराः शनैः ॥ २७ ॥ भगवानपि तं शैलं स्वस्थाने पूर्ववत् प्रभुः ॥ पश्यतां सर्वभूतानां स्थापयामास लीलया ॥ २८ ॥ तं प्रेमवेगान्निभृता व्रजौकसो यथा समीयुः परिरम्भणादिभिः ॥ गोप्यश्च सस्नेहमपूजयन्मुदा दध्यक्षताद्भिर्युयुजुः सदाशिषः ॥ २९ ॥ यशोदा रोहिणी नन्दो रामश्च बलिनां वरः ॥ कृष्णमालिङ्ग्य युयुजुराशिषः स्नेहकातराः ॥ ३० ॥ दिवि देवगणाः साध्याः सिद्धगन्धर्वचारणाः ॥ तुष्टुवुर्मुमुचुस्तुष्टाः पुष्पवर्षाणि पार्थिव ॥ ३१ ॥ शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्दिवि देवप्रणोदिताः ॥ जगुर्गन्धर्वपतयस्तुम्बुरुप्रमुखा नृप ॥ ३२ ॥

तापीछे हे राजन् परीक्षित्! बलदेव सहित श्रीकृष्णचंद्र प्यारे मित्रनकूं संग लैके ब्रजमें आवत भये और आनंदको प्राप्त होय गोपी हृदयकूं आनंद देनवारे श्रीकृष्णचंद्रके गोवर्द्धन उठायवेते आदि [illegible]के चरित्रनकूं गावति भई श्रीकृष्णने मेघोंहीका निवारण क्यों न करदिया ता पर कहैहैं कि गिरिराज सैंकरन मन मिठाई खायगए और अनगिनत [illegible]ठाई जहां तहां गिर गई अब गिरिराजके न्हवायवे आचमन करवेकी किसे सामर्थ्य है तब श्रीकृष्ण ने कही ऐसो टहलुआ बुलावै जो इन्हें तृप्त करै यासौं वर्षा भई. और ग्वालबालोंको डरे देख कृष्णने कही तुमभी सहारो लगाओ तब सबने लाठी लगाय लीनी कृष्ण बोले अबकै भलो उचकायो ॥ ३३ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कंधे पू० गोवर्द्धनोद्धरणं नाम पंचविंशोऽध्यायः

ततोऽनुरक्तैः पशुपैः परिश्रितो राजन् स्वगोष्ठं सबलोऽव्रजद्धरिः ॥ तथाविधान्यस्य कृतानि गोपिका गायन्त्य ईयुर्मुदिता हृदिस्पृशः ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पू० पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवंविधानि कर्माणि गोपाः कृष्णस्य वीक्ष्य ते ॥ अतद्वीर्यविदः प्रोचुः समभ्येत्य सुविस्मिताः ॥ १ ॥ बालकस्य यदेतानि कर्माण्यत्यद्भुतानि वै ॥ कथमर्हत्यसौ जन्म ग्राम्येष्वात्मजुगुप्सितम् ॥ २ ॥ यः सप्तहायनो बालः करेणैकेन लीलया ॥ कथं बिभ्रद्गिरिवरं पुष्करं गजराडिव ॥ ३ ॥ तोकेनामीलिताक्षेण पूतनाया महौजसः ॥ पीतः स्तनः सह प्राणैः कालेनेव वयस्तनोः ॥ ४ ॥

॥ २६ ॥ ॥ श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित्! गोप गोवर्धन उठायवेकूं आदि लैके श्रीकृष्णचंद्रके कर्म देखिके प्रभाव जानिके ब्रजवासी बडो आश्चर्य मानके नंदरायजीके पास आयके बोलत भये ॥ १ ॥ या बालकके बडे अद्भुत चरित्र हैं इन्हें देखकर हमें संदेह होयहै कि अपने स्वरूपके ए ग्रामके रहनेहारे पुरुषोंमें इनका जन्म होना कैसे संभव है ॥ २ ॥ जो सात वर्षको बालक एक हाथते लीलाकरिके हाथी जैसे कमलकूं उठावैं है तैसे पर्वतकूं उठायके कैसे ठाढो होत भयो ॥ ३ ॥ नेत्र मींचे हुएही अति छोटी अवस्थामें यह बालक बडे वेगवारी पूतनाके स्तनको प्राण सहित पीवत भयो जैसे काल देह जीवन अथवा आयुर्बलकूं पीवै है ॥ ४ ॥

तीन महीनाके गाडानके नीचे पालनेमें सोतेभये रोवत रोवत जो या बालकने ऊपरको प्राण उछारे तो चरणकी ठोकर लगिके गाडो उलटिके कैसे गिरतभयो ॥ ५ ॥ एक वर्ष दिनको यह कृष्ण आंगनमें बैठ्यौ हो तब दैत्य तृणावर्त आकाशमें हरिकै लैगयो ता दैत्यको गरो घोंटि कैसे मारतभयो ॥६॥ कभऊ एक माखन चुरायोहो तब माता यशोदाने उलूखलसों बांध्यो तब यमलार्जुन वृक्षके बीचमें आयके हाथनते उनको कैसे उखारिके डारत भयो ॥ ७ ॥ वनमें बलदेव सहित बछरा चरावत हे तासमय बकासुर मारिवेको आयो ताको दोनों हाथनतें चोंचि पकरिके कैसे चीर डारत भयो ॥ ८ ॥

हिन्वतोऽधः शयानस्य मास्यस्य चरणावुदक् ॥ अनोऽपतद्विपर्यस्तं रुदतः प्रपदा हतम् ॥ ५ ॥ एकहायन आसीनो ह्रियमाणो विहायसा ॥ दैत्येन यस्तृणावर्तमहन् कण्ठग्रहातुरम् ॥ ६ ॥ क्वचिद् हैयङ्गवस्तैन्ये मात्रा बद्ध उलूखले ॥ गच्छन्नर्जुनयोर्मध्ये बाहुभ्यां तावपातयत् ॥ ७ ॥ वने संचारयन् वत्सान् सरामो बालकैर्वृतः ॥ हन्तुकामं बकं दोर्भ्यां मुखतोऽरिमपाटयत् ॥ ८ ॥ वत्सेषु वत्सरूपेण प्रविशन्तं जिघांसया ॥ हत्वा न्यपातयत् तेन कपित्थानि च लीलया ॥ ९ ॥ हत्वा रासभदैतेयं तद्बन्धूंश्च बलान्वितः ॥ चक्रे तालवनं क्षेमं परिपक्वफलान्वितम् ॥ १० ॥ प्रलम्बं घातयित्वोग्रं बलेन बलशालिना ॥ अमोचयद् व्रजपशून् गोपांश्चारण्यवह्नितः ॥ ११ ॥ आशीविषतमाहीन्द्रं दमित्वा विमदं ह्रदात् ॥ प्रसह्योद्वास्य यमुनां चक्रेऽसौ निर्विषोदकाम् ॥ १२ ॥

बछरानमें बछराको रूप धरिके मारिवेकी इच्छा करिके आये वत्सासुरकूं मारिके वाके देहते लीला करिके कैथके वृक्षपै कैसे पटकत भयो और लीलासेही वे वृक्ष गिरा दिये ॥ ९ ॥ बलदेव सहित धेनुकासुर दैत्यको मारिके और वाके संगके बंधूनको मारिके फल जामें पकिरहे वा तालवनकूं निर्भय करत भये ॥ १० ॥ बडे बलवान् बलदेवजीसे भयानक प्रलंबासुर दैत्यको मरवायके वनमें आगि लगी ताते ब्रजके पशूनकूं और गोपनकूं छुडावतभये ॥ ११ ॥ अति भयानक विषवारे कालीसर्पको दंड देके वाके मदकूं दूरि करिके जोरावरी दहमेंते निकासिके यह श्रीकृष्ण यमुनाकूं निर्विष करतभये ॥ १२ ॥

हे नंद ! हम सब ब्रजवासीनको इनमें बड़ो अनुराग है अर्थात् ऐसो प्यार है कि छुटायेसे न छुटसकै है इन कृष्णहूको भी हममें स्वाभाविक प्यार कैसो है अर्थात् यह कृष्ण सबको आत्मा है यह शंका होय है ॥ १३ ॥ सात वर्षको बालक कहा इतनो बडो पर्वत उठावै ताते हे ब्रजनाथ ! तेरे पुत्रमें हमकूं शंका होइ है कदाचित् परमेश्वर न होइ यासैं हम याकी पंचायत करैंगे कि यह तुह्मारे कैसो पुत्र भयोहै ॥ १४ ॥ याप्रकार गोपनकी बातें सुनिके नंदरायजी बोले संदेह करवेकी कछू बात नायहै मैं या बालककी जन्मपत्री लाऊंहूं जो गर्गाचार्यने बनाई है यह कह नंदरायजी जन्मपत्री लाये और बोले हे गोप ! मेरी बात सुनो तासूं या बालकमेंते तुम्हारी शंका जाय गर्गाचार्य या बालकको नाम धरिके मोको जे जे गुण बतायगये हैं ते ते श्रवण

दुस्त्यजश्चानुरागोऽस्मिन् सर्वेषां नो ब्रजौकसाम् ॥ नन्द ते तनयेऽस्मासु तस्याप्यौत्पत्तिकः कथम् ॥ १३ ॥ क्व सहायनो बालः क्व महाद्रिविधारणम् ॥ ततो नो जायते शङ्का ब्रजनाथ तवात्मजे ॥ १४ ॥ नन्द उवाच ॥ श्रूयतां मे वचो गोपा व्येतु शङ्का च वोर्भके ॥ एनं कुमारमुद्दिश्य गर्गो मे यदुवाच ह ॥ १५ ॥ वर्णास्त्रयः किलास्यासन् गृह्णतोऽनुयुगं तनूः ॥ शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः ॥ १६ ॥ प्रागयं वसुदेवस्य क्वचिज्जातस्तवात्मजः ॥ वासुदेव इति श्रीमानभिज्ञाः संप्रचक्षते ॥ १७ ॥ बहूनि सन्ति नामानि रूपाणि च सुतस्य ते ॥ गुणकर्मानुरूपाणि तान्यहं वेद नो जनाः ॥ १८ ॥ एष वः श्रेय आधास्यद्गोपगोकुलनन्दनः ॥ अनेन सर्वदुर्गाणि यूयमञ्जस्तरिष्यथ ॥ १९ ॥ पुराऽनेन ब्रजपते साधवो दस्युपीडिताः ॥ अराजके रक्ष्यमाणा जिग्युर्दस्यून् समेधिताः ॥ २० ॥

रे ॥ १५ ॥ या बालकके तीन रंग होतभये और युगयुगमें देह धरैंहै पहिले जाको श्वेतवर्ण हो फिर रक्तवर्ण हो फिरि पीतवर्ण हो अब याने कृष्णरूप धरो है ॥ १६ ॥ यह तुह्मारो पुत्र पहिले कबहुँ वसुदेवके जन्मोहै याते जे कोई जाने ते श्रीमान् वासुदेव कहैं हैं ॥ १७ ॥ तुह्मारे पुत्रके नाम बहुत हैं और रूप बहुत हैं जैसे जैसे यामें गुण होंयगे तैसे तैसे कर्म करेगो तिनके अनुसार नाम होंयगे ॥१८॥ यह तुह्मारो कल्याण करैगो और गोपनकूं गौनकूं आनंद देइगो। या कृष्णकी सहायते तुम समस्त कष्टनते सहजमें छुटि जाओगे ॥ १९ ॥ हे ब्रजराज ! पहिले तुह्मारे पुत्र कृष्णने राजारहित पृथ्वीमें चोरनसें सताये साधुओंकी रक्षा करी तब साधु वृद्धिकूं प्राप्त होयके चोरनकूं जीतत भये ॥ २० ॥

जे बडभागी पुरुष या कृष्णमें प्रीति करैं हैं तिनकूं वैरी नहीं सतामें हैं जैसे विष्णु से रक्षित देवताओंकूं असुर नहीं सतावैं हैं ॥ २१ ॥ ताकारणते हे नंद ! तुह्मारो यह पुत्र गुणनमें शोभामें कीर्ति प्रभाव करिके नारायणकी तुल्य है, याके कर्मनमें आश्चर्य मति मानियो ॥ २२ ॥ याप्रकार साक्षात् गर्गाचार्य मोते कहिके अपने घरको चले गये वा दिनतें बड़े २ कार्य करनेहारे श्रीकृष्णको मैं नारायणको अंश मानूं हूं ॥ २३ ॥ या प्रकार ब्रजवासी गर्गाचार्यको कह्यो नंदजीको वचन सुनिके प्रसन्न होयके नंदजीको पूजन करतभये और श्रीकृष्णमेंते शंका उनकी दूरि भई ॥ २४ ॥ यज्ञके नाशसैं क्रोध करिके इंद्रने वर्षा करी, तासमय ब्रज पत्थर पवनसूं पीडित ग्वालबाल पशु स्त्रीनकूं अपनी शरण आये देखिके दया जिनको आयगई ऐसे श्रीकृष्ण मुसकायके बालक जैसे छतोनाकूं उखाड़ेहैं ऐसे एक हाथसों गोवर्द्धनपर्वतकूं उखारिके धारण करिके ब्रजकी रक्षा करत भये इंद्रके मदको दूरि करनवारे गौनके इंद्र श्रीकृष्ण हमारे ऊपर प्रसन्न होउ ॥ २५ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कंधे पूर्वार्धे गोपसंशयनोदनं नाम षड्विंशातितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

य एतस्मिन् महाभागाः प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः ॥ नारयोऽभिभवन्त्येतान् विष्णुपक्षानिवासुराः॥२१॥तस्मान्नन्दात्मजोऽयं ते नारायणसमो गुणैः॥ श्रिया कीर्त्यानुभावेन तत्कर्मसु न विस्मयः ॥ २२ ॥ इत्यद्धा मां समादिश्य गर्गे च स्वगृहं गते ॥ मन्ये नारायणस्यांशं कृष्णमक्लिष्टकारिणम् ॥ २३ ॥ इति नन्दवचः श्रुत्वा गर्गगीतं व्रजौकसः ॥ दृष्टश्रुतानुभावास्ते कृष्णस्यामिततेजसः ॥ मुदिता नन्दमानर्चुः कृष्णं च गतविस्मयाः ॥ २४ ॥ देवे वर्षति यज्ञविप्लवरुषा वज्राश्मवर्षानिलैः सीदत्पालपशुस्त्रि आत्मशरणं दृष्ट्वानुकम्प्युत्स्मयम् ॥ उत्पाट्यैककरेण शैलमबलो लीलोच्छिलीन्ध्रं यथा बिभ्रद् गोष्ठमपान्महेन्द्रमदभित् प्रीयान्न इन्द्रो गवाम् ॥ २५ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ गोवर्धने धृते शैल आसाराद्रक्षिते व्रजे ॥ गोलोकादाव्रजत् कृष्णं सुरभिः शक्र एव च ॥ १ ॥
विविक्त उपसंगम्य व्रीडितः कृतहेलनः ॥ पस्पर्श पादयोरेनं किरीटेनार्कवर्चसा ॥ २ ॥ दृष्टश्रुतानुभावोऽस्य कृष्णस्यामिततेजसः ॥
नष्टत्रिलोकेशमद इन्द्र आह कृताञ्जलिः ॥ ३ ॥ इन्द्र उवाच ॥ विशुद्धसत्त्वं तव धाम शान्तं तपोमयं ध्वस्तरजस्तमस्कम् ॥
मायामयोऽयं गुणसंप्रवाहो न विद्यते तेऽग्रहणानुबन्धः ॥ ४ ॥ कुतो नु तद्धेतव ईश तत्कृता लोभादयो
येऽबुधलिङ्गभावाः ॥ तथाऽपि दण्डं भगवान् बिभर्ति धर्मस्य गुप्त्यै खलनिग्रहाय ॥ ५ ॥

श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित् ! श्रीकृष्णने गोवर्धन पर्वत उठायके ब्रजकी रक्षा करी तब इन्द्रने जायके ब्रह्माजीको सब सुनाई ब्रह्माजी बोले इन्द्र तैंने बडो अपराध कियो * मैंहू वत्सहरनमें अपनी बूढी दाढीपर धूलि डार चुकोहूं तब स्वर्गलोकते सुरभी गौ और इन्द्रलोकते इन्द्र आवत भये ॥ १ ॥ अपराध करेते लज्जित होय इन्द्र एकान्तमें आयके सूर्यकी समान तेजवारे किरीटको श्रीकृष्णचंद्रके चरणारविंदसूं लगावत भयो ॥ २ ॥ अमिततेजस्वी श्रीकृष्णचंद्रको प्रभाव जाप्रकार काननते श्रवण कर्‍यो हो ताही प्रकार नेत्रनते देख्यो तासमय त्रिलोकीको ईश्वर मैं हूं यह मद जाको जात रह्यो, तब वह इंद्र हाथ जोरिके बोलत भयो ॥ ३ ॥ इंद्र कहै है तुम्हारो स्वरूप शुद्ध सत्त्वगुणी है अर्थात् एकरूप है शांत सर्वज्ञ है रजोगुण तमोगुणसे रहित है मायाको जो कार्य आज्ञानसूं जीवनको लगि रह्यो है सो संसार है यह तुम्हारे स्वरूपमें नहीं है ॥ ४ ॥ हे ईश ! देहसम्बन्ध तुमको नहीं है तो उस देहसंबन्धते करे भये और अन्य देहके कारण जे काम लोभादिक हैं ते कहांते होंयगो, ऐसे काम लोभादिक तो अज्ञानीको होइ हैं, तुम्हारे काम लोभादिक तो नहीं हैं तथापि धर्मकी रक्षा करिवेके लिये और दुष्टनके मद दूरि करिवेके लिये तुम दंड देउ हो ॥ ५ ॥

---

* लोकनकी वाह वाहमें जीवको सत्यानाश होय है एक नकली भांडको लरिका बाजारमें निकसो सो वाहि सर्पने डस लियो घुमेंर आगई वह पुकारा अरे भाई मुझे सांपने का व्यो है मेरी दवा करो अब यह तौ लहरमें घूमे है लोग तमासा देखैंहैं और कहैं हैं भलो स्वांग भयो है वह "श्रीकृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः" यह कहै हैं लहर ज्यादा बढै है लोग कहैं खूब स्वांग भरोहै सत्यही स्वांग कर दिखायो अब वह मारे जहरके व्याकुल होय मरने पर भयो कहन लगो अबहू मेरी दवाई करो लोक बोले ऐसो स्वांग तौ याके दादेहू पै न भयो निदान वह गिर पर्‍यो और प्राण निकलगये लोक वाह वाह करत रहे लोकों की वाह वाह में भूलनेसे अपनो सत्यनाश भयो ।

तुम जगत्के पिता हो गुरु हो ईश्वर हो नाशरहित दंडके ग्रहण करनवारे कालरूप हो जीवनके हित करिवेके लिये और अपनेकूं ईश्वर माननेहारौंके मान दूरि करिवेके लिये अपनी इच्छासूं रूप धरिके लीला करोहो तुम्हारी लीलाहीमें हमारे मान दूर होय जाय है लोकनकी वाहवाहमें जीवको सत्या नाश होय है ॥६॥ जो मो सारिके अज्ञानी आपकूं जगतके ईश्वर मानैं हैं ते भयके समयभी निर्भय आपका दर्शन कर शीघ्रही ईश्वरत्वको मद त्यागैं हैं और गर्वको छोडिके सत्पुरुषोंकी और तुम्हारी भक्तिकूं करैं हैं तुम्हारी सहजकी चेष्टा है सोई दुष्टनको दंडरूप है ॥७॥ हे समर्थ! ऐश्वर्यके मदमें डूबि रह्यो तुम्हारे प्रभावकूं न जानिके तुम्हारो अपराध करनेहारे मूढचित्त मेरे ऊपर क्षमा करो। हे ईश्वर! फिरि मेरी ऐसी बुद्धि न होय यह मैं प्रार्थना करूंहूं ॥ ८ ॥ हे अधोक्षज! अर्थात् इंद्रियनकरि जानिवेमें नहीं आओ हे देव! अर्थात् प्रकाशमान् या संसारमें तुम्हारे अवतार पृथ्वीको भार और

पिता गुरुस्त्वं जगतामधीशो दुरत्ययः काल उपात्तदण्डः ॥ हिताय स्वेच्छातनुभिः समीहसे मानं विधुन्वन् जगदीशमानिनाम् ॥ ६ ॥ ये मद्विधाज्ञा जगदीशमानिनस्त्वां वीक्ष्य कालेऽभयमाशु तन्मदम् ॥ हित्वाऽऽर्य्यमार्गं प्रभजन्त्यपस्मया ईहा खलानामपि तेऽनुशासनम् ॥ ७ ॥ स त्वं ममैश्वर्यमदप्लुतस्य कृतागसस्तेऽविदुषः प्रभावम् ॥ क्षन्तुं प्रभोऽथार्हसि मूढचेतसो मैवं पुनर्भून्मतिरीश मेऽसती ॥ ८ ॥ तवावतारोऽयमधोक्षजेह स्वयंभराणामुरुभारजन्मनाम् ॥ चमूपतीनामभवाय देव भवाय युष्मच्चरणानुवर्तिनाम् ॥ ९ ॥ नमस्तुभ्यं भगवते पुरुषाय महात्मने ॥ वासुदेवाय कृष्णाय सात्त्वतां पतये नमः ॥ १० ॥ स्वच्छन्दोपात्तदेहाय विशुद्धज्ञानमूर्तये ॥ सर्वस्मै सर्वबीजाय सर्वभूतात्मने नमः ॥ ११ ॥ मयेदं भगवन् गोष्ठनाशायासारवायुभिः ॥ चेष्टितं विहते यज्ञे मानिना तीव्रमन्युना ॥ १२ ॥

बडो भार जिनते होय ऐसे सैन्यके पालन करनवारे मुख्यसेनापतियोंके मारिवेके कारण और तुम्हारे चरण के सेवन करनवारे भक्तनके कल्याणके निमित्त है ॥ ९ ॥ तुम जो भगवान्! महात्मा पुरुष हो तुम्हारे अर्थ नमस्कार है। शुद्ध अंतःकरणके प्रकाश भक्तनके रक्षक वासुदेव भगवान् श्रीकृष्ण तुम्हारे अर्थ नमस्कार है ॥ १० ॥ अपने भक्तनके ऊपर कृपा करिवेके लिये देह धरनेहारे और शुद्ध ज्ञानमूर्ति सर्वरूप सबके कारण सब प्राणिनके आत्मा तुमकूं नमस्कार है ॥ ११ ॥ हे भगवन्! जब यज्ञ नाशकूं प्राप्त भयो तब बडो क्रोधकर मुझ अज्ञानी अभिमानीने व्रजके नाश करिवेके लिये वर्षा करिवेके पवन चलायके करिवेके अयोग्य कार्य करे ॥ १२ ॥

तुमने मोपै अनुग्रह कियो जो मेरो गर्व दूरि होगयो उद्यमहू वृथा भयो, तुम सबके ईश्वर आत्मा हो तुम्हारी मैं शरणमें प्राप्त भयोहूं ॥ १३ ॥ या प्रकार इन्द्रने भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रकी स्तुति करी तब हँसिके मेघकी तुल्य गंभीर बाणीसे इन्द्रते बोलत भये ॥ १४ ॥ भगवान् कहें हैं हे इन्द्र ! मैंने तेरे ऊपर अनुग्रह करिवेके लिये ही मखका भंग किया है तुम देवतौंका राज्य पाय अचेत होगयेथे सो अपना स्मरण करानेके निमित्त यह मैंने किया ॥१५॥ ऐश्वर्यमद धनमदसौं अंधे भये पुरुष दंड हाथमें लिये मुझे नहीं देखते जाके ऊपर मैं कृपा करिवेकी इच्छा करूंहूं ता पुरुषकी संपत्ति हरिलेउहूं ॥ १६ ॥ हे इंद्र ! अब तुम जाओ तुह्मारो कल्याण हो अहंकार त्यागिके मेरी आज्ञाकूं करियो सावधान होयके अपने अधिकारपै रहो ॥ १७॥

त्वयेशानुगृहीतोऽस्मि ध्वस्तस्तम्भो हतोद्यमः ॥ ईश्वरं गुरुमात्मानं त्वामहं शरणं गतः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं संकीर्तितः कृष्णो मघोना भगवानमुम् ॥ मेघगम्भीरया वाचा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मया तेऽकारि मघवन् मखभङ्गोऽनुगृह्णता॥मदनुस्मृतये नित्यं मत्तस्येन्द्र श्रिया भृशम्॥ १५॥मामैश्वर्यश्रीमदान्धो दण्डपाणिं न पश्यति ॥ तं भ्रंशयामि संपद्भ्यो यस्य चेच्छाम्यनुग्रहम् ॥ १६ ॥ गम्यतां शक्र भद्रं वः क्रियतां मेऽनुशासनम् ॥ स्थीयतां स्वाधिकारेषु युक्तैर्वः स्तम्भवर्जितैः॥ १७॥ अथाह सुरभिः कृष्णमभिवाद्य मनस्विनी ॥ स्वसंतानैरुपामन्त्र्य गोपरूपिणमीश्वरम् ॥ १८ ॥ सुरभिरुवाच ॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वसंभव ॥ भवता लोकनाथेन सनाथा वयमच्युत ॥ १९ ॥ त्वं नः परमकं दैवं त्वं न इन्द्रो जगत्पते ॥ भवाय भव गोविप्रदेवानां ये च साधवः ॥ २० ॥

इंद्र स्तुति करिचुको ताके पीछे उदारचित्त सुरभि गौ अपनी संतानसहित आयके गोपरूपी ईश्वर श्रीकृष्णचंद्रको नमस्कार करिके संबोधन देके बोलतभई ॥ १८ ॥ हे कृष्ण ! हे महायोगिन् ! हे विश्वके आत्मा ! हे विश्वके उपजावनवारे ! हे अच्युत ! अर्थात् हे अखण्डरूप ! इंद्रने तो हमें मा रेहो है परंतु हे लोकनके नाथ तुमने बचाये ॥ १९ ॥ हे जगत्के पति ! तुम हमारे श्रेष्ठ देवता हो और तुमही गौ ब्राह्मणके देवता हो और जे साधु हैं जिनके कल्याणके लिये हमारे इंद्र होउ ॥ २० ॥

ब्रह्माजीकी हमें आज्ञा भई है इसकारण इन्द्र पदवी देनेके निमित्त हम तुम्हारा अभिषेक करेंगे हे विश्वके आत्मा! पृथ्वीको भार उतारिवेके लिये तुमने अवतार लियो है ॥ २१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित्! याप्रकार कहिके श्रीकृष्णचंद्रको यह कामधेनु अपने दुग्धते अभिषेक करत भई और ऐरावत हाथीकी सूंड़सै लाये आकाशगंगाके जलसे अभिषेक किया ॥ २२ ॥ और इंद्रनेभी देवमाताओंकी प्रेरणासे देवर्षियोंके सहित भगवान्का अभिषेक किया और गोविन्द नाम धरा ॥ २३ ॥ और दाशार्हवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचंद्रको तासमय तुंबर नारदजीते आदि लेके गंधर्व विद्याधर सिद्ध चारण आयकर लोकनके पापनको दूरि करिवेके लिये श्रीकृष्णचंद्रके यशको गावत भये, और अति आनंदित होयके देवांगना नृत्य करत

इन्द्रं नस्त्वाभिषेक्ष्यामो ब्रह्मणा नोदिता वयम् ॥ अवतीर्णोऽसि विश्वात्मन् भूमेर्भारापनुत्तये ॥ २१ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं कृष्णमुपामन्त्र्य सुरभिः पयसात्मनः ॥ जलैराकाशगङ्गाया ऐरावतकरोद्धृतैः॥२२॥ इन्द्रः सुरर्षिभिः साकं नोदितो देवमातृभिः ॥ अभ्यषिञ्चत दाशार्हं गोविन्द इति चाभ्यधात् ॥ २३ ॥ तत्रागतास्तुम्बुरुनारदादयो गन्धर्वविद्याधरसिद्धचारणाः ॥ जगुर्यशो लोकमलापहं हरेः सुराङ्गनाः संननृतुर्मुदान्विताः ॥ २४ ॥ तं तुष्टुवुर्देवनिकायकेतवो व्यवाकिरंश्चाद्भुतपुष्पवृष्टिभिः ॥ लोकाः परां निर्वृतिमाप्नुवंस्त्रयो गावस्तदा गामनयन् पयोद्रुताम् ॥ २५ ॥ नानारसौघाः सरितो वृक्षा आसन् मधुस्रवाः ॥ अकृष्टपच्यौषधयो गिरयोऽबिभ्रदुन्मणीन् ॥ २६ ॥ कृष्णेऽभिषिक्त एतानि सत्त्वानि कुरुनन्दन ॥ निर्वैराण्यभवंस्तात क्रूराण्यपि निसर्गतः ॥ २७ ॥

भई ॥ २४ ॥ देवतानमें मुख्य देवता श्रीकृष्णचंद्रकी स्तुति करतभये, अद्भुत पुष्पनकी वर्षा करत भये, तीनों लोक परम आनंदकूं पावत भये, तासमय गौ धरतीकूं दूधते भिजोवत भई ॥ २५ ॥ श्रीकृष्णचंद्रको जासमय गोविंदाभिषेक भयो तासमय नदी अनेक तरहके रसनकी वहनवारी होतिभई, और वृक्षनमेंते मदकी धारा चुवति हुई, विना जोते खेत आपही पकतभये, पर्वत अपनी गुफामेंते मणिनकूं बाहिर निकाशकरि धरतभये ॥ २६ ॥ हे कौरवनके आनंदके देनवारे! श्रीकृष्णचंद्रको गोविंदाभिषेक भयो तासमय क्रूर स्वभाव सिंहादिकजीवनके वैरभाव दूर होतभयो ॥ २७ ॥

याप्रकार गोकुलके रक्षा करनवारे श्रीकृष्णचंद्रकूं गोविंदाभिषेक करिके आज्ञा पाय वह इंद्र देवतानकूं संग लेके स्वर्गकूं जातभयो ॥ २८ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कंधे पूर्वार्धे गोविंदाभिषेको नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ नंदजीने एकादशीके दिन निराहार व्रत करिके भगवान्को पूजन कियो, दूसरे दिन द्वादशी दो घरी ही तासमय पारनो करिवेके लिये अरुणोदयते पहिले रात्रिमें धर्म्मसत्रके बलते स्नान करिवेके लिये यमुनाजलमें धसतभये नंदरायजी आसुरी वेलाको न जानकर जलमें प्रवेश करतभये याकारण वरुणको एक दैत्य सेवक उन्हें पकड़ वरुणके पास लेगयो ॥ २ ॥ नंदरायजीकूं न देखिके गोपसंग गये ते हे कृष्ण! हे राम! ऐसे पुकारतभये तासमय भगवान् श्रीकृष्णचंद्र पिताकों वरुण हरिके लेगयो यह बात सुनिके

इति गोगोकुलपतिं गोविन्दमभिषिच्य सः ॥ अनुज्ञातो ययौ शक्रो वृतो देवादिभिर्दिवम् ॥ २८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे इन्द्रस्तुतिर्नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ॥ स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत् ॥ १ ॥ तं गृहीत्वाऽनयद्भृत्यो वरुणस्यासुरोऽन्तिकम् ॥ अविज्ञायासुरीं वेलां प्रविष्टमुदकं निशि ॥ २ ॥ चुक्रुशुस्तमपश्यन्तः कृष्ण रामेति गोपकाः ॥ भगवांस्तदुपश्रुत्य पितरं वरुणाहृतम् ॥ ३ ॥ तदन्तिकं गतो राजन् स्वानामभयदो विभुः ॥ प्राप्तं वीक्ष्य हृषीकेशं लोकपालः सपर्यया ॥ महत्या पूजयित्वाऽथ तद्दर्शनमहोत्सवः ॥ ४ ॥ ॥ वरुण उवाच॥ अद्य मे निभृतो देह अद्यार्थोऽधिगतः प्रभो ॥ त्वत्पादभाजो भगवन्नवापुः पारमध्वनः ॥ ५ ॥

हे राजन् परीक्षित्! अपने भक्तनकूं अभयके देनवारे समर्थ श्रीकृष्ण वरुणके पास जातभये ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णके दर्शन करेते बडो आनंद पाय लोकनको पालनवारो वरुण इंद्रियनके ईश्वर श्रीकृष्णको आयो देखि बडी पूजाकी सामग्रीनसूं पूजा करिके बोलतभयो ॥ ४ ॥ वरुण कहै है आजही तुम्हारे दर्शन करेते मेरो जन्म सफल भयो है, समर्थ आज मेरे मनोरथ सफल भये हे भगवन्! तुह्मारे चरणारविंदको जो भजन करै हैं ते संसारके पार होय मोक्षकूं प्राप्त होय हैं ॥ ५ ॥

194

परिपूर्ण समस्त जीवनके साक्षी जिनकी बराबर काहूको ऐश्वर्य नहीं ऐसे भगवान्‌को नमस्कार है और जिनके स्वरूपमें लोकनकी रचना करनेहारी माया नहीं सुनी जाय है ॥ ६ ॥ धर्मकी महिमाकूं नहीं जाननेहारो कार्यकूं नहीं जाननेहारो मूढ मेरो टहलुआ तुम्हारे पिताको लेआयो सो अपराध क्षमा करौ ॥ ७ ॥ हे समस्त पदार्थनके देखनवारे कृष्ण! मेरे ऊपर तुम अनुग्रह करिवेके योग्य हो हे गोविंद! अर्थात् गौनके इंद्र हे पितृवत्सल! अर्थात् हे पिताके हितके करनवारे अपने पिताकूं आप लेजाओ ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहैं हैं या प्रकार ब्रह्मादिकनके ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको जब वरुण ने प्रसन्न करे तब अपने पिताकूं ले और सब बंधुनकूं आनंद देत आवतभये ॥ ९ ॥ कभऊ देखिवे में नहीं आयो ऐसो वरुणको ऐश्वर्य और श्रीकृष्णचंद्र

नमस्तुभ्यं भगवते ब्रह्मणे परमात्मने ॥ न यत्र श्रूयते माया लोकसृष्टिविकल्पना ॥ ६ ॥ अजानता मामकेन मूढेनाकार्यवेदिना ॥ आनीतोऽयं तव पिता तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥ ७ ॥ ममाप्यनुग्रहं कृष्ण कर्तुमर्हस्यशेषदृक् ॥ गोविन्द नीयतामेष पिता ते पितृवत्सल ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रसादितः कृष्णो भगवानीश्वरेश्वरः ॥ आदायागात् स्वपितरं बन्धूनां चावहन्मुदम् ॥९॥ नन्दस्त्वतीन्द्रियं दृष्ट्वा लोकपालमहोदयम् ॥ कृष्णे च सन्नतिं तेषां ज्ञातिभ्यो विस्मितोऽब्रवीत् ॥ १० ॥ ते त्वौत्सुक्यधियो राजन् मत्वा गोपास्तमीश्वरम् ॥ अपि नः स्वगतिं सूक्ष्मामुपाधास्यदधीश्वरः ॥ ११ ॥ इति स्वानां स भगवान् विज्ञायाखिलदृक् स्वयम् ॥ संकल्पसिद्धये तेषां कृपयैतदचिन्तयत् ॥ १२ ॥

में उनकी अतिप्रीति देखिके नंदरायजी आश्चर्य मानिके अपनी जातिके गोपनसूं कहतभये मोको लेजायके एक कोनमें बैठारिदियो पश्चात् यह कृष्ण गयो तब याकूं देखिके वरुणने नमस्कार करि पूजा करी ॥ १० ॥ हे राजन् परीक्षित्! उत्कंठायुक्त बुद्धिसै ब्रजवासी श्रीकृष्णचंद्रकूं ईश्वर मानिके विचारकर कहत भये कि श्रीकृष्ण कहां हमकूं अपने वैकुंठधाममें प्राप्त करोगे, ब्रह्मादिकनके ईश्वर श्रीकृष्णचंद्र अपने ब्रह्मस्वरूपको दर्शन करामेंगे ॥ ११ ॥ याप्रकार सबके देखनवारे भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अपने ब्रजबासीनको मनोरथ जानिके उनके मनोरथ पूर्ण करिवेके लिये कृपा करिके यह बिचारतभये ॥ १२ ॥

या संसारमें प्राणी देहमें अहंकार काम कर्म इनकरिके देवता पशु पच्छी आदि लेके जो जो योनि हैं तिनमें भटकत अपनो स्वरूप नहीं जानैं हैं ॥ १३ ॥ या प्रकार बडे करुणावान् समर्थ श्रीकृष्णचंद्र भगवान् विचारिके गोपनकूं ब्रह्मरूप दिखावतभये फेरि मायाते परे जो वैकुंठधाम है ताको दर्शन करावतभये ॥ १४ ॥ अब ब्रह्मस्वरूपको वर्णन करैं हैं सत्य अर्थात् बाधारहित ज्ञानस्वरूप है अनंत अर्थात् देखिवेमें न आवैहै ज्योति अर्थात् स्वयंप्रकाश है, गुणनके निषेधमें सावधान मुनीश्वर उस रूपकूं देखैं हैं ॥ १५ ॥ ते संपूर्ण ब्रजवासी ब्रह्मस्वरूपद्रहमें प्राप्त होतेही मग्न होगये फिर भगवान् श्रीकृष्णने कृपाकर तहांसे निकास वैकुंठ लोक दिखाया जहां पहले अक्रूरजी गयेथे यहां शंका है ब्रह्ममें डूबेकूं वैकुंठको दर्शन नहीं बनै है तहां कहैं हैं जिन श्रीकृष्णचंद्रकी कृपाते पहिले अक्रूरजी देखत भये उन अचिन्त्य ऐश्वर्यवारे भगवान् श्रीकृष्णचंद्रमें कछु बात अनुचित नहीं है ॥ १६ ॥ तहां वेदों से श्रीकृष्ण भगवानकी स्तुति होति देख नंदजीसूं आदिलेके ब्रजवासी वैकुंठधामको दर्शन परमानंददेहसूं सुखी होयके बडो आनंद मानतभये ॥ १७ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे नन्दमोक्षो नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित् ! गोपकन्यानते जिन रात्रिनकी प्रतिज्ञा करीही वे शरदऋतुकी रात्रि प्राप्ति होतभई जिनमें जहां तहां चमेली खिल रहीहै रात्रिनकूं देखिके योगमायाको आश्रय लेके भगवान् कृष्णचंद्र रमण करिवेको मनोरथ करतभये ॥ १ ॥ ॥ ॥

जनो वै लोक एतस्मिन्नविद्याकामकर्मभिः ॥ उच्चावचासु गतिषु न वेद स्वां गतिं भ्रमन् ॥ १३ ॥ इति संचिन्त्य भगवान् महाकारुणिको हरिः ॥ दर्शयामास लोकं स्वं गोपानां तमसः परम् ॥ १४ ॥ सत्यं ज्ञानमनन्तं यद्ब्रह्म ज्योतिः सनातनम् ॥ यद्धि पश्यन्ति मुनयो गुणापाये समाहिताः ॥ १५ ॥ ते तु ब्रह्महृदं नीता मग्नाः कृष्णेन चोद्धृताः ॥ ददृशुर्ब्रह्मणो लोकं यत्राऽक्रूरोऽध्यगात् पुरा ॥ १६ ॥ नन्दादयस्तु तद् दृष्ट्वा परमानन्दनिर्वृताः ॥ कृष्णं च तत्र च्छन्दोभिः स्तूयमानं सुविस्मिताः ॥ १७ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽष्टाविंशतितमोऽध्यायः ॥ २८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिकाः ॥ वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥ १ ॥

सुखदायक किरणसूं पूर्वदिशाके मुखको अरुण करत तासमय चंद्रमा उदय होत भयो दृष्टांत जैसे परदेशते बहुत दिनमें पुरुष आयके अपनी प्यारीके मुखपै केशरि लगाय अरुण करै है ॥ २ ॥ परिपूर्ण मंडल और लक्ष्मीके मुखकीसी कांति नवीन केशरिकी तुल्य अरुण चंद्रमाकूं देखिके और ताकी कोमल किरणसूं रंगे वृन्दावनकूं देखिके मनोहर दृष्टिवारी स्त्रीनके मनको हरनवारो मधुर गीत गावतभये या कलंमेसेही बीजमंत्र "क्लीं" निकरै है ॥ ३ ॥ प्रेमात्मक कामके बढावनवारे गीतकूं श्रवण करिके श्रीकृष्णचंद्रने हरे वे व्रजकी स्त्री जहां पति कृष्ण हैं तहां आवत भई

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शंतमैः ॥ स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन् प्रियः प्रियाया इव दीर्घदर्शनः ॥ २ ॥ दृष्ट्वा कुमुद्वन्तमखण्डमण्डलं रमाननाभं नवकुङ्कुमारुणम् ॥ वनं च तत् कोमलगोभिरञ्जितं जगौ कलं वामदृशां मनोहरम् ॥ ३ ॥ निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनं व्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ॥ आजग्मुरन्योऽन्यमलक्षितोद्यमाः स यत्र कान्तो जवलोलकुण्डलाः ॥ ४ ॥ दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद्दोहं हित्वा समुत्सुकाः ॥ पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः ॥ ५ ॥ परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः ॥ शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम् ॥ ६ ॥

और अरी किशोरी चलैगी ऐसे आपुसमें कहत शीघ्रतासूं चलीं, तासूं काननके कुंडल जिनके हलत आये ॥ ४ ॥ उत्कंठासे कोई गोपी गौनको दुहावतें दोहनीकूं पटकिके आवति भई, और कोई गोपी चूल्हेपै दूध औटिवेकूं धरिके आवति भई, और कोई गोपी चूल्हैपै रावडी चढाय ताको नहीं उतारिके आवति भई ॥ ५ ॥ कोई पातर परोसी जब कानमें वंशीकी टेर सुनी तब छोडिके आवति भई, और कोई गोपी अपने देवरजेठके बालकनकों दूध प्यामेंही उनको छोडिके आवति भई, कोई गोपी अपने पतिनकी सेवा करैही उनकूं छोडिके आवति भई कोई भोजन करतेसे चली आई ॥ ६ ॥

---

१ सवैया ॥ बाजीबौरानी बाजी देखवेको धाई बाजी बाजी अकुलानी सुनि वंशी वंशीधरकी । बाजी नापहरैं चीर बाजी नाधरैं धीर बाजिनके उठी पीर विरहानल दवकी ॥ बाजी ना बोलैं बाजी संग लागी डोलैं बाजिनको बिसरगई सुधिबुधि घरकी । बाजी कहैं बाजी बाजी कहैं कहां बाजी बाजी कहैं बाजी बंशी बाजी श्यामसुन्दरकी ॥

कोई गोपी घरनकूं लीपति कोई नेत्रनमें अंजन लगावतते और कोई पावनके गहने हाथनमें पहिरिके और हाथनके पांवनमें पहिरिके और लहंगा ओढिके ओढनी पहरके श्रीकृष्णचंद्रके पास जातभई ॥ ७ ॥ पति पिता माता भ्राता ज्ञातिनने मनेभी करी परंतु श्रीकृष्णचंद्रने मन जिनके हरे वे गोपी नहीं मानत भई ॥ ८ ॥ कोई गोपी घरनमें मूंदि दीनी निकसिवेको रस्ता न मिलो तासमय वे गोपी पहिले ध्यान जिनको लग्योहो वाके स्मरणते आंखि मूंदिके फेरि श्रीकृष्णचंद्रको अंतःकरणमें ध्यान करतभई ॥ ९ ॥ सहारो न जाय ऐसे प्यारेके विरहरूप तापसों पाप जिनके दूर होयगये और ध्यानमें

लिपन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने ॥ व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः ॥ ७॥ ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः ॥ गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्तन्त मोहिताः ॥ ८ ॥ अन्तर्गृहगताः काश्चिद् गोप्योऽलब्धविनिर्गमाः॥कृष्णं तद्भावनायुक्ता दध्युर्मीलितलोचनाः॥९॥ दुःसहप्रेष्ठविरहतीव्रतापधुताशुभाः॥ध्यानप्राप्ताच्युताश्लेषनिर्वृत्त्या क्षीणमङ्गलाः ॥ १० ॥ तमेव परमात्मानं जारबुद्ध्याऽपि संगताः ॥ जहुर्गुणमयं देहं सद्यः प्रक्षीणबन्धनाः ॥ ११ ॥ राजोवाच ॥ कृष्णं विदुः परं कान्तं न तु ब्रह्मतया मुने ॥ गुणप्रवाहोपरमस्तासां गुणधियां कथम् ॥१२॥

प्राप्त भये श्रीकृष्णचंद्रके आलिंगन करेके सुखके पुण्यसे बंधन उनके दूरि होयगये ऐसे अत्यन्त विरहके दुःख और कृष्णकी अत्यन्त प्राप्तिके भोगसे एक संगही सब प्रारब्ध कर्म क्षीण हो जानेसे मुक्त हुई ॥ १० ॥ वे गोपी जारबुद्धि करिके परमात्मा श्रीकृष्णचंद्रकूं पाइके बंधन जिनके कटिगये ऐसी गोपी गुणनके बने देहकूं तत्कालही त्यागतभई और दिव्य देह धारण कर सबसे पहले कृष्णसो मिलतभई ॥ ११ ॥ अब राजा परीक्षित् प्रश्न करै है कि हे महाराज ! गोपी श्रीकृष्णचंद्रको अति सुन्दर जानैही ब्रह्मरूप करिके नहीं जानैही गुणमय बुद्धिवारी उन गोपीनके गुणनको

---

[1] यद्यपि गोपियैांके शृङ्गार उलट पुलट हे परन्तु योगमायाने सुधारादिये जैसे आठ छैला सैलकूं निकरे बागमें जायकै कही कि भांग बनाओ सो मीठी बनाई मिठाईके लालच सैं तीन २ लोटा चढायगये, एक मित्र वामें चतुर हो सो वानै विचार कियो अभ्यास तौ है नहीं, और तीन तीन लोटा चढाय गयेहैं, जब यह बेसुध हो जायँगे तौ इन्हें कौन संभारैगो, वाने एक चुल्लूभरही पी, अब चढो जो नसा काहूकी पाग गिर गई, काहूको पटका खुलिगयो, काहूकी धोती, जाको नसा नहीं हो वानै सबकूं सुधार दियो, ऐसेही योगमायाने सबकूं सुधार दियो ॥

प्रभाव संसार कैसे छूटिगयो ॥ १२ ॥ श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् ! यह बात मैंने तोते पहलेही कही ही शिशुपाल श्रीकृष्णचंद्रसूं वैर करत जैसे मुक्ति पाइ गयो, तैसे श्रीकृष्णचंद्रकी प्यारी गोपी उनकूं प्राप्त भई यामें कहा संदेह है जब वैर करवेवारे तरगये तब प्यार करवेवारीके तरवेमें कहा संदेह है ॥ १३ ॥ हे राजन् परीक्षित ! अविनाशी अप्रमेय अर्थात् प्रमाण करिवेमें न आवैं निर्गुण अर्थात् प्राकृत–गुणरहित गुणनके आत्मा भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको मनुष्यनके कल्याण करिवेके लिये रूप प्रकट भयो है ॥ १४ ॥ काम क्रोध भय स्नेह एकभाव सौहृद जे पुरुष नित्य

श्रीशुक उवाच ॥ उक्तं पुरस्तादेतत् ते चैद्यः सिद्धिं यथा गतः ॥ द्विषन्नपि हृषीकेशं किमुताधोक्षजप्रियाः ॥ १३ ॥
नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ॥ अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥ १४ ॥ कामं क्रोधं भयं
स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च ॥ नित्यं हरौ विदधतो यान्ति तन्मयतां हि ते ॥ १५ ॥ न चैवं विस्मयः कार्यो भवता भग-
वत्यजे ॥ योगेश्वरेश्वरे कृष्णे यत एतद् विमुच्यते ॥ १६ ॥ ता दृष्ट्वान्तिकमायाता भगवान् व्रजयोषितः ॥ अवदद्
वदतां श्रेष्ठो वाचः पेशैर्विमोहयन् ॥ १७ ॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ स्वागतं वो महाभागाः प्रियं किं करवाणि वः ॥ व्रज-
स्यानामयं कच्चिद् ब्रूतागमनकारणम् ॥ १८ ॥

हरिभगवान्में करैं हैं वे पुरुष तन्मय होयजाय हैं ॥ १५ ॥ हे राजन् ! अजन्मा योगेश्वरनके ईश्वर श्रीकृष्णचंद्र भगवान्में तुम आश्चर्य मति करो जिनमें प्रेम करेते स्थावरहू संसारमेंते छुटिजाय हैं ॥ १६ ॥ बोलनवारेनमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचंद्र व्रजकी स्त्रीनकूं अपने पास आई देखिके वाणीनके विलास करि मोहित करिके बोलतभये ॥ १७ ॥ श्रीभगवान् बोले हे बडभागिनिओ ! भले आई आओ मैं तुम्हारो कहा आदर करौं

---

१ प्रेमसे भावसहित नारायण कथा सुनले ॥ कहूं भागवतकी कथा बैठीही काहूनै कही लालाजी सुनवेको चलो लालाजी बोले जब दशम प्रारम्भ होयगो तब चलैंगे फिर जब दशम होने लगो तौ लालानै कही भैया पंचाध्यायीमें चलैंगे जहां कृष्णने लाखन गोपी बुलाय उनके संग विहार कियो हमहू वैसी करैं जैसे वीर कडके सुनकै आगे बढै हैं तैसे विषयी विषय-सो और जगह जो भाव बिगरै तो ठिकानौ लगहू जाय जो साक्षात् कृष्णकान्ता त्रैलोक्यजननीमें भाव बिगर्‍यो तौ याको सत्यानाश होजाय है ॥

व्रजमें कुशल है कैसे आई यह कारण कहो ॥ १८ ॥ यह भयानक रात्रि है सिंह व्याघ्र घोर प्राणी डोलैं हैं, याते तुम अपने घरनको जाओ हे सुमध्यमा ! अर्थात् सुंदर है कटि जिनकी स्त्रीजाति होयके यहां मति रहो ॥ १९ ॥ तुम्हारे माता पिता पुत्र भ्राता पति तुमकूं विनादेखे ढूंढत डोलें है, बंधुनकूं हरबराहट मति करो ॥ २० ॥ फूलवार जामें फूलिरही चंद्रमाकी किरणसो रंगिरह्यो यमुनाते लगि के मंदपवनसों हलनेहारे वृक्षों के पात सौ शोभायमान तुमने देखो ॥ २१ ॥ ताते तुम व्रजमें जाओ ढील मतिकरो तुम पतिव्रता हो पतिनकी सेवा करो बछरा रम्हाइहैं बालक रोमें हैं बालनकूं दूध प्याओ गौनकूं दुहो ॥ २२ ॥ अथवा मेरे स्नेहते वशीभूत अंतःकरणसे तुम आई सो तुमको योग्यही

रजन्येषा घोररूपा घोरसत्त्वनिषेविता ॥ प्रतियात व्रजं नेह स्थेयं स्त्रीभिः सुमध्यमाः ॥ १९ ॥ मातरः पितरः पुत्रा भ्रातरः पतयश्च वः ॥ विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो मा कृध्वं बन्धुसाध्वसम् ॥ २० ॥ दृष्टं वनं कुसुमितं राकेशकररञ्जितम् ॥ यमुनाऽनिललीलैजत्तरुपल्लवशोभितम् ॥ २१ ॥ तद्यात मा चिरं गोष्ठं शुश्रूषध्वं पतीन् सतीः ॥ क्रन्दन्ति वत्सा बालाश्च तान् पाययत दुह्यत ॥ २२ ॥ अथवा मदभिस्नेहाद्भवन्त्यो यन्त्रिताशयाः ॥ आगता ह्युपपन्नं वः प्रीयन्ते मयि जन्तवः ॥ २३ ॥ भर्तुः शुश्रूषणं स्त्रीणां परो धर्मो ह्यमायया ॥ तद्बन्धूनां च कल्याण्यः प्रजानां चानुपोषणम् ॥ २४ ॥ दुःशीलो दुर्भगो वृद्धो जडो रोग्यधनोऽपि वा ॥ पतिः स्त्रीभिर्न हातव्यो लोकेप्सुभिरपातकी ॥ २५ ॥ अस्वर्ग्यमयशस्यं च फल्गु कृच्छ्रं भयावहम् ॥ जुगुप्सितं च सर्वत्र औपपत्त्यं कुलस्त्रियाः ॥ २६ ॥

है क्योंकि सब जीव मोंमें प्यार करैं हैं ॥ २३ ॥ हे मंगलरूपिणिओ ! निष्कपट होयके पतिकी सेवा करो देवरनकी सेवा करो पुत्रनको पोषण करो यही स्त्रीनको परमधर्म है ॥ २४ ॥ जो कदाचित् अपनो पति खो` स्वभावयुक्त होइ, दुर्भाग्य होय, अथवा वृद्ध होइ, मूर्ख होइ, रोगी होइ, दरिद्री होइ तथापि स्वर्गकी जिनके चाहना है ऐसी स्त्रीनकूं त्यागिवे योग्य नहीं है और जो पतित होवै तो त्यागिवे योग्य है ॥ २५ ॥ कुलकी स्त्रीनकूं जार पुरुषके सेवन करते स्वर्ग नहीं मिलै है, और यश जाय है जार पुरुषको सेवन

200

तुच्छ है दुःखको देनवारो हैं सर्वत्र निंदाके योग्य है ॥ २६ ॥ मेरी बातनके श्रवण करेते ध्यान करेते निरंतर कीर्तन करेते जैसो मोंमें भाव होइहै तैसे
पास रहेते नहीं होइ है ताते अपने घरकूं जाओ[1] कृष्णनै थाकारणतैं गोपियौंसै जाओ जाओ कही कि जो मैं इनसै कहूंगो तुम मेरे साथ विहार करो तौ
यह गारी देइंगी और निकट हू न आवैंगी यातैं पहलेई इनके मानखंडन करूं तौ फिर या आप मेरो पल्ला पकरैंगी यातैं जाओ जाओ कही ॥ २७ ॥
अब[2] श्रीशुकदेवजी कहे हैं याप्रकार गोपी गोविंदको वचन श्रवण करिके दुःखित भईं और मनोरथके सिद्ध न होनेतैं बडी चिंताकूं

श्रवणाद्दर्शनाद्ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्तनात् ॥ न तथा संनिकर्षेण प्रतियात ततो गृहान् ॥ २७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
इति विप्रियमाकर्ण्य गोप्यो गोविन्दभाषितम् ॥ विषण्णा भग्नसंकल्पाश्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम् ॥ २८ ॥ कृत्वा मुखान्य-
वशुचः श्वसनेन शुष्यद्बिम्बाधराणि चरणेन भुवं लिखन्त्यः॥ अस्रैरुपात्तमषिभिः कुचकुङ्कुमानि तस्थुर्मृजन्त्य उरुदुः-
खभराः स्म तूष्णीम् ॥२९॥ प्रेष्ठं प्रियेतरमिव प्रतिभाषमाणं कृष्णं तदर्थविनिवर्तितसर्वकामाः ॥ नेत्रे विमृज्य रुदितो-
पहते स्म किंचित्संरम्भगद्गदगिरोऽब्रुवतानुरक्ताः ॥ ३० ॥

पावतभईं ॥ २८ ॥ चिंताके श्वासते कुंदरूके फलके समान उनके अरुण ओष्ठ सूखगये मुखनकूं नीचे करिके चरणके अंगूठासूं धरतीपै लिखन
लगीं तथा रुदनते नेत्रनसूं कज्जलसहित आंशू चलैं हैं जिनसूं कुचनकी केशरि धुइगई, अति दुःखके बोझते गोपी चुप होयके ठाढी होतिभईं
॥ २९ ॥ जिनके निमित्त गोपियनने अपने सब घरवार छोडदीने उन अपने परम प्रीतम श्रीकृष्णके ऐसे कठोर वचन सुन प्रेमभरी गोपियैं रो-

---

[1] देखो स्त्रियोंको पतिव्रताधर्म पालन करनाचाहिंये पतिव्रताओंकी बडी महिमा है. एक स्त्रीकी गोदीमें उसका पति शिर धरे सोवै हो उसका बालक खेलते२अग्निमें जापडा स्त्रीने यह देख
पतिकी निद्राभंग न होय यह विचार अपना धुट्टवा नहटाया आग्नि पतिव्रताके शापके भयसे शीतल होगई ॥ श्लोक ॥ सुतं पतन्तं प्रसमीक्ष्य पावके न बोधयामास पतिं पतिव्रता। अभूत्तदानीं व्रतभङ्ग-
शङ्कया हुताशनश्चन्दनपङ्कशीतलः ॥ इसकारण हे सखियो ! अपने पतियोंपै जाओ। [2] कृष्णने वंसी फूंकतौ दई, जब लाख गोपीननै आयके घेर लियो, तब अक्कल भुलायगई, जैसे
काहूके बालक घरमें रुईको फोहा जलायो करै है, और प्रसन्न भयो करैं है सो बाजारमें काहू साहूकारके दुकानमें लाख रुपैयाकी रुईको ढेर लग्यो देख याने मनमें विचार कियो यामें
बडो तमासो होयगो, सो ढेर में आग लगायदई, जब थोडो थोडो जर्यो तब तो ताली बजावत रहे अब जो भभकी आग तब घबरायगये, ऐसेही कृष्ण की दशा भई जब एकाद गोपी
को कहूं देख पाते तब तौ प्रसन्न होते अब लाखौं गोपिनको देख वर जानेको कही ॥

नेके कारण आंसुओं सैं पूर्ण नेत्रौंको पोंछ कुछेक कोपसैं गद्गद्कंठ हो बोलीं ॥ ३० ॥ गोपी कहैं हे समर्थ ! ‘ जाउ जाउ ’ ऐसो कठोर वचन मति कहो, हम सब विषयनकूं त्यागिके तुम्हारे चरण सेवन करतिभई, हे दुराग्रही ! हमकूं मति त्यागौ जैसे आदिपुरुष भगवान्की शरण सर्व त्याग करिके मुमुक्षु जाय हैं तो मुमुक्षु पुरुषनकूं वह भजे हैं तैसे तुम्हारे लिये सर्वस्व त्यागिके हम आई हैं हमारो सेवन करो मति त्यागो ॥ ३१ ॥ हे कृष्ण धर्मवेत्ता ! तुमने पति पुत्र सुतनकी सेवा करो यह स्त्रीनको परम धर्म है जो कह्यो सो हमारे धर्म सुनिवेकी इच्छा नहीं है, काहेते हमें चाहना नहीं है तुम धर्मके उपदेश करनवारे नहींहो तुम देहधारीनके प्यारे हो तुमने कही पत्यादिकनकी सेवा करनो धर्म है सो आत्मासहित पत्यादि प्यारे लगैं हैं स्त्रीको पति प्यारो लगै है आत्मासों लगै है सो आत्मा निकसे पीछे देहको बांधिके लेजायहैं जराय देहैं सो सबके आत्मा तुम हो तुम्हारे सेवन करनेही सैं सब धर्म हमें प्राप्तहो जायंगे कारण कि सब उपदेश वाक्य ईश्वरकी सेवा करनाही परम धर्म बतावैं हैं तुम सब जीवौं के आत्मा होने सैं परम बंधु ईश्वर हो तुमसों जो जीव बहिर्मुख है सो दग्ध होने के योग्य है ॥ ३२ ॥ अपने आत्मा नित्य प्यारे तुम हो तिनमें विवेकी पुरुष प्रीति करैं हैं दुःखके देनवारे पतिपुत्रादिकनसूं कहा प्रयोजन है, ताते तुम हमपै प्रसन्न होउ हे ईश्वर हे कमलदललोचन ! बहुत दिनते तुममें आशारूपी लता लगाई है ताकौं ‘ जाउ जाउ ’ ऐसे कुठारी रूप वचनते कैसे काटौहो, देखो विषके वृक्षकोभी आप बढायके विवेकी नहीं काटिवेको समर्थ होय हैं ॥ ३३ ॥ तुमने कही जाउ सो हम कैसे जाँय जो चित्त सुखपूर्वक घरनमें लगोहो सो तुमने हरिलियो, और जिन हाथ-

गोप्य ऊचुः ॥ ॥ मैवं विभोऽर्हति भवान् गदितुं नृशंसं संत्यज्य सर्वविषयांस्तव पादमूलम् ॥ भक्ता भजस्व दुरवग्रह मा त्यजास्मान् देवो यथादिपुरुषो भजते मुमुक्षून् ॥ ३१ ॥ यत्पत्यपत्यसुहृदामनुवृत्तिरङ्ग स्त्रीणां स्वधर्म इति धर्मविदा त्वयोक्तम् ॥ अस्त्वेवमेतदुपदेशपदे त्वयीशे प्रेष्ठो भवांस्तनुभृतां किल बन्धुरात्मा ॥ ३२ ॥ कुर्वन्ति हि त्वयि रतिं कुशलाः स्व आत्मन्नित्यप्रिये पतिसुतादिभिरार्तिदैः किम् ॥ तन्नः प्रसीद परमेश्वर मा स्म छिन्द्या आशां भृता त्वयि चिरादरविन्दनेत्र ॥ ३३ ॥ चित्तं सुखेन भवताऽपहृतं गृहेषु यन्निर्विशत्युत करावपि गृह्यकृत्ये ॥ पादौ पदं न चलतस्तव पादमूलाद्यामः कथं व्रजमथो करवाम किं वा ॥ ३४ ॥

नते घरको काम करैंही ते तुमने हरिलिये हे गोपियो! अब तुम जाओ परसोंके दिन तुम सबके चित्त बिचारकरिके देंइगे ऐसे श्रीकृष्णने कही तहां गोपी कहैं हैं तुमारे चरण छोडिके हमारे पांव एक पेगहू नहीं चलैं हैं ब्रजमें कैसे जीवेंगी जायके हम कहा करैं ॥ ३४ ॥ हे सखे! यामें कहा भली बुरी बात करे हैं जैसे दर्वी अग्निकों निकाशिके सिलगामें हैं घीकी धारा परेते प्रज्वलित होयहै ऐसे हमारे हृदयमें कामकी अग्नि सोइरही है तेरी हँसनि चितवनि सुंदर गीतरूपी पवनसूं प्रज्वलित भई है ऐसे हमारे हृदयकी अग्नि अधरामृतके प्रभावसों बुझाय देउ और जो न बुझाओगे तो एक अग्नि जरायवेको बहुत होय है यहां तो दोइहैं एक तौ कामकी दूसरी विरहकी तासों हमारे देहनकी जरिके ढेरी होयजायगी, याते अपनी हँसनि चितवनि अधरा-

सिश्चाङ्ग नस्त्वदधरामृतपूरकेण हासावलोककलगीतजहृच्छयाग्निम् ॥ नो चेद्वयं विरहजाग्न्युपयुक्तदेहा ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ते ॥ ३५ ॥ यर्ह्यम्बुजाक्ष तव पादतलं रमाया दत्तक्षणं क्वचिदरण्यजनप्रियस्य ॥ अस्प्राक्ष्म तत्प्रभृति नान्यसमक्षमङ्ग स्थातुं त्वयाभिरमिता बत पारयामः ॥ ३६ ॥ श्रीर्यत्पदाम्बुजरजश्चकमे तुलस्या लब्ध्वाऽपि वक्षसि पदं किल भृत्यजुष्टम् ॥ यस्याः स्ववीक्षणकृतेऽन्यसुरप्रयासस्तद्वद्वयं च तव पादरजः प्रपन्नाः ॥ ३७ ॥

मृतरूपधारानसो बुझाय दो नहीं तौ जैसे योगीजन ज्ञानरूप अग्निकरिके शरीरनको जरायके ध्यान करिके समीपकूं प्राप्त होयहैं तैसे हम तन त्याग तुह्मैं मिलैंगी ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्ण कहैं हैं तुम अपने पतिनके पास जाओ वे कामदेवकी आगि बुझावेंगे तहां गोपी कहैं हैं हे कमलदललोचन! वनवासी जाको प्यारे ऐसे तुम हो और लक्ष्मीको किसी समयही जिनकी सेवा प्राप्त होय है ऐसे तुम्हारे चरणको तरुआ हम जबसे स्पर्श करत भईं जा दिनते उनको सुख अनुभव कियो तादिनते औरके सन्मुख ठाढीभी न होसकैं हैं ॥ ३६ ॥ लक्ष्मी सदा वक्षस्थलमें रहे तथापि भक्त जाको सेवन करे ऐसी तुम्हारे चरणकी रेणुकूं तुलसी सौत सहित चाहना करत भईं जा लक्ष्मीकी चितवनिके लिये और देवता तपस्या करिके परिश्रम करैं हैं

ता लक्ष्मीकी तुल्य हमभी तुम्हारे चरणकी रजकूं प्राप्त भई हैं अर्थात् शरण लीनी है ॥ ३७ ॥ हे दुःखके काटनवारे ! तुम्हारे भजिवे में आशा लगाये हम घर छोडिके तुम्हारे चरणनके पास आई हैं तुम हमारे ऊपर प्रसन्न होउ तुम्हारी सुंदर मुसिकानि चितवनिसूं बढे कामदेवसूं तपित देह हमकूं हे पुरुषनके शोभा करनेवारे अपनी दासी करिके राखिये ॥ ३८ ॥ अलकावली जापै छुटिरही, और कुंडलनकी कांतिसें युक्त कपोल अमृतभरे ओष्ठमें हास सहित चितवनिवारे तुम्हारे मुखको देखिके, और भक्तनकूं अभय दान देनेहारे तुम्हारे दोनौं भुज दंडनको देखिके, लक्ष्मीकूं एकही प्रीतिको उपाजावनवारे तुम्हारे वक्षस्थलकूं देखिके हम तुम्हारी दासी होइ हैं, हे कृष्ण ! मनोहर पद वारे बडे

तन्नः प्रसीद वृजिनार्दन तेऽङ्घ्रिमूलं प्राप्ता विसृज्य वसतीस्त्वदुपासनाशाः॥त्वत्सुन्दरस्मितनिरीक्षणतीव्रकामतप्तात्मनां पुरुषभूषण देहि दास्यम् ॥ ३८ ॥ वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्रीगण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकम् ॥ दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य वक्षः श्रियैकरमणं च भवाम दास्यः ॥ ३९ ॥ काप्यङ्ग ते कलपदायतवेणुगीतसंमोहिताऽऽर्यचरितान्न चलेत् त्रिलोक्याम् ॥ त्रैलोक्यसौभगमिदं च निरीक्ष्य रूपं यद्गोद्विजद्रुममृगाः पुलकान्यबिभ्रन् ॥ ४० ॥ व्यक्तं भवान् व्रजभयार्तिहरोऽभिजातो देवो यथादिपुरुषः सुरलोकगोप्ता ॥ तन्नो निधेहि करपङ्कजमार्तबन्धो तप्तस्तनेषु च शिरस्सु च किंकरीणाम् ॥ ४१ ॥ ॥

बांसुरीके गीतसों मोहित होयके त्रिलोकी में ऐसी कौनसी स्त्री है जो अपने धर्मते चलायमान न होय, त्रिलोकी में सुंदर इह तुम्हारो रूपकूं देखिके गौ पक्षी मृग यहभी रोमांचित होजायहैं फिर इस मनमोहन रूपसें हम मोहित होय गईं तौ यामें कहा आश्चर्य है तुम्हारा प्रकाशक शब्द सुनकरभी अपनो धर्म त्यागनौ उचित है और तुम्हारे रूपके अनुभवसैं त्याग करने में कहा आश्चर्य है ॥ ४० ॥ तुम निश्चय ब्रजके भय पीडा दूरि करिवेके लिये जन्मे हो जैसे आदिपुरुष नारायण स्वर्गलोककी रक्षा करैं हैं ताकारणते हे दीनके बन्धु ! हम तेरी दासी हैं हमारे कामदेवते तप्त स्तन

और शिरनपै अपने हस्तकमलकूं धरो ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित ! याप्रकार योगीश्वरनके ईश्वर श्रीकृष्णचंद्र गोपीनको विलाप सुनके हँसिके दयाको प्राप्त हो आत्मारामहू है तथापि गोपिनके संग रमण करतभये ॥ ४२ ॥ प्यारे श्रीकृष्णचंद्रकी चितवनसूं प्रफुल्लित मुखवारी इकट्ठी भई गोपियोंके सहित उदार जिनकी चेष्टा और उदार जिनकी हंसनि दंतनमें कुंदकलीकी तुल्य कांतिवारे श्रीकृष्णचंद्र ऐसे सुंदर लगत भये जैसे तारागणसहित चंद्रमा सुंदर लगै है ॥ ४३ ॥ गोपी जिनको गामें और स्त्रीनके सैंकरान यूथनकूं पालन करैं ऐसे श्रीकृष्णचंद्र आप

श्रीशुक उवाच ॥ इति विक्लवितं तासां श्रुत्वा योगेश्वरेश्वरः ॥ प्रहस्य सदयं गोपीरात्मारामोऽप्यरीरमत् ॥ ४२ ॥ ताभिः समेताभिरुदारचेष्टितः प्रियेक्षणोत्फुल्लमुखीभिरच्युतः ॥ उदारहासद्विजकुन्ददीधितिर्व्यरोचतैणाङ्क इवोडुभिर्वृतः ॥ ४३ ॥ उपगीयमान उद्गायन् वनिताशतयूथपः ॥ मालां बिभ्रद्वैजयन्तीं व्यचरन्मण्डयन् वनम् ॥ ४४ ॥ नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम् ॥ रेमे तत्तरलानन्दकुमुदामोदवायुना ॥ ४५ ॥ बाहुप्रसारपरिरम्भकरालकोरुनीवीस्तनाऽऽलभननर्मनखाग्रपातैः ॥ क्ष्वेल्यावलोकहसितैर्व्रजसुन्दरीणामुत्तम्भयन् रतिपतिं रमयाञ्चकार ॥ ४६ ॥ एवं भगवतः कृष्णाल्लब्धमाना महात्मनः ॥ आत्मानं मेनिरे स्त्रीणां मानिन्योऽभ्यधिकं भुवि ॥ ४७ ॥

गावत वैजयंती माला पहिरिके वनकूं शोभायमान करत विहार करतभये ॥ ४४ ॥ शीतल वारूके विछोनावारे यमुनाजीके पुलिनमें गोपिनसहित आयके रमण करत भये, तहां यमुनाजीकी लहरिको आनंद और कमलौंकी सुगन्ध सनी वायुसै अत्यन्त प्रसन्न होतभये ॥ ४५ ॥ भुजानको पसारिवो आलिंगनको करिवो कर अलक ऊरू नीवी स्तन इनको स्पर्श करिवो परिहासके वचन कहिवो नखनके चिन्ह क्रीडा चितवनि हांसीनसूं ब्रजसुन्दरीनकूं भगवान् काम उद्दीपन करत रमण करतभये ॥ ४६ ॥ या प्रकार महात्मा श्रीकृष्णचंद्रते मान जिनने पायो ऐसी गोपी मानवती होयके

---

१ दोहा—अब तुमको यह उचित नाहिं, सुनो श्याम सुखरास । मन हमरो अपनायकै, अब तुम करत निरास ॥ सोरठा—पाप पुण्य कहा नाथ, यह तौ हम जाने नहीं । विकीं तुम्हारे हाथ, अधरामृतके लोभते ॥

पृथ्वीकी स्त्रीनमें अपनेकूं अधिक मानतभईं ॥ ४७॥ ब्रह्मा और महादेवके वशके करनवारे श्रीकृष्णचंद्र तिन गोपिनकूं सौभाग्यके मदसूं अपने आधीन देखिके उनके गर्व दूरि करिवेके लिये और कृपा करिवेके लिये ता रासमंडलमेंही अंतर्धान होतभये श्रीकृष्णने विचारी कि अभीतौ रासको नेक प्रारंभही भयोहै सेरमें पौनहू नाहीं औ इन्हें मान भयौ लाखन गोपीनके पाँय परत डोलूंतौ बरसौं लगजाय तव रास कैसे होय यासै उनके मान भंग करनैको अंतर्धान भये अथवा जे प्यारीही उनको मान घटन लगो कि देखो हमहूंकूं कृष्ण सबकी बराबर देखैं हैं साधारणको मान बढ्यो कि प्यारी गोपी हमारे आधीन हैं सो दोनोंको मान सम करिवेको अंतर्धान भये ॥४८॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां कृष्णान्तर्धानं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित ! जासमय श्रीकृष्णचंद्र रासमंडलमेंते अंतर्द्धान भये ता समय तत्कालही

तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ॥ प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥ ४८ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां कृष्णान्तर्धानं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अन्तर्हिते भगवति सहसैव व्रजाङ्गनाः ॥ अतप्यंस्तमचक्षाणाः करिण्य इव यूथपम् ॥ १ ॥ गत्यानुरागस्मितविभ्रमेक्षितैर्मनोरमालापविहारविभ्रमैः ॥ आक्षिप्तचित्ताः प्रमदा रमापतेस्तास्ता विचेष्टा जगृहुस्तदात्मिकाः ॥ २ ॥ गतिस्मितप्रेक्षणभाषणादिषु प्रियाः प्रियस्य प्रतिरूढमूर्तयः ॥ असावहं त्वित्यबलास्तदात्मिका न्यवेदिषुः कृष्णविहारविभ्रमाः ॥ ३ ॥ गायन्त्य उच्चैरमुमेव संहता विचिक्युरुन्मत्तकवद्वनाद्वनम् ॥ पप्रच्छुराकाशवदन्तरं बहिर्भूतेषु सन्तं पुरुषं वनस्पतीन् ॥ ४ ॥

व्रजकी स्त्री गोपी उनके देखेविना व्याकुल होत भईं, जैसे हाथीके देखे विना हथिनी व्याकुल होयहै श्रीकृष्णचंद्रकी चलनि स्नेहभरी मुसिकानि, विलाप पूर्वक चितवनी मधुर बोलीनकी क्रीडानमें मन जिनके पकरे गये, ऐसी गोपी तन्मय होती भईं उनकी लीलाका अनुकरण करने लगीं ॥१॥२॥ कृष्णचंद्रको गमन हासभरी चितवनि मधुरवाणीनके विहारकरि प्यारेमें आरूढ होयके कृष्णरूप बनिके कहतभईं कि मैं कृष्ण हूं मैं कृष्ण हूं या प्रकार चेष्टा करतीभईं ॥ ३ ॥ सब गोपी मिलिके श्रीकृष्णचंद्रकूं ऊंचो स्वर करिके गावति मतवारेकी तुल्य बन बन ढूंढति भईं, सब प्राणीनमें आकाशकी तुल्य व्यापक जो श्रीकृष्णचंद्र हैं तिनकूं वृक्षनते पूछतभईं ॥ ४ ॥

हे पीपरके वृक्ष ! हे प्लक्ष अर्थात् पाकरके वृक्ष ! हे बटके वृक्ष ! नंदको पुत्र श्रीकृष्ण प्रेमभरी चितवनी हाँसी करिके हमारो चित्त चुरायके लेगयो तुमने देखो होय तो बताय देउ कोई बोली अरी यह कहा बतावैगो यह तौ अश्वत्थ है याकी जो जड़ थोडीसी ऊपर रहीहै सो यह ऐसी चिंता कियो करैहै कि ऐसी पवन न आयजाय कि मोकों उखारि डारै और बोली अरी यह पीपर नारायणको रूप है नारायण भक्तनके कार्यमें मग्न रहै हैं सो हमें कहा बतावेंगे न्यग्रोध शिवको रूप है सो यह योगमें मग्न रहै है हमे कहा बतावेंगें ॥ ५ ॥ कहूं वनमें कुडाके वृक्ष हैं तिनसूं पूछैहैं कहूं अशोकसे पूछै हैं कहूं नागकेशरिके वृक्ष कहूं चंपाके वृक्ष तिनसूं कहतीं हे मालतीके वृक्ष ! गर्वहरनवारी जाकी मुसिकानि ऐसो रामको छोटो भैया कहूं तुमने जात देखो है रामानुजयातें कह्यो कि कहूं बड़े भैयाको प्रसाद भांगको चुल्लू पीगये हैं जो हमारे यह रक्षा करत फिरैहै कोई बोली अशोकसे कहा पूछोहो

दृष्टो वः कच्चिदश्वत्थ प्लक्ष न्यग्रोध नो मनः ॥ नन्दसूनुर्गतो हृत्वा प्रेमहासावलोकनैः ॥ ५ ॥ कच्चित् कुरुबकाशोक-
नागपुन्नागचम्पकाः ॥ रामानुजो मानिनीनां गतो दर्पहरस्मितः ॥ ६ ॥ कच्चित् तुलसि कल्याणि गोविदचरणप्रिये ॥
सह त्वाऽलिकुलैर्बिभ्रद् दृष्टस्तेऽतिप्रियोऽच्युतः ॥ ७ ॥ मालत्यदर्शि वः कच्चिन्मल्लिके जाति यूथिके ॥ प्रीतिं वो जनय-
न् यातः करस्पर्शेन माधवः ॥ ८ ॥ चूतप्रियालपनसाऽसनकोविदारजम्ब्वर्कबिल्वबकुलाम्रकदम्बनीपाः ॥ येऽन्ये
परार्थभवका यमुनोपकूलाः शंसन्तु कृष्णपदवीं रहितात्मनां नः ॥ ९ ॥

आप असोच है सो विराने सोचको कहा जाने ॥ ६ ॥ कहूं बनमें कहैं हैं हे तुलसी कल्याणरूपिणी ! गोविंदके चरणकी प्यारी भौरा जामें गुंजार करै तेरी मालाकूं पहिरे तेरो अति प्यारो श्रीकृष्णचंद्र कहूं देख्यो होय तो बताय देउ ॥ ७ ॥ हे मालती ! हे चमेली ! हे जाया ! हे जुही ! मधुवंशमें भये श्रीकृष्णचंद्र हस्तस्पर्श करिके तुमसूं प्रीति करिके कहां गये तुमने देखे होय तो बतायदेउ ॥ ८ ॥ अब गोपी आपुसमें कहैहैं हे सखियो ! ये फलयुक्त वृक्ष हैं सब प्राणीनको तृप्त करैं हैं इनसें पूछो हे आमके वृक्ष हे चिरोंजीके वृक्ष हे कटहरके वृक्ष हे विजयसारके वृक्ष हे कचनारके वृक्ष हे जामनके वृक्ष हे बेलके वृक्ष हे मोरशिरीके वृक्ष हे सफरीके वृक्ष हे आम्रके वृक्ष हे लोटन कदंब ! तुम परोपकारी यमुनातीरवासी हो याते हमें बताय

205

ष्णकी तिन तिन लीलानको अनुकरण करतभई ॥ १४ ॥ कोई गोपी पूतना बनी ताको कोई गोपी कृष्ण बनिके स्तन पीवत भई, और गोपी बालक बनिके रुदन करत शकटासुर बनी, जो कोई गोपी है ताके पांवकी ठोकर मारत भई ॥ १५ ॥ एक गोपी तृणावर्त दैत्य बनिके कृष्णके बालकरूपको धरे जो और गोपी है ताको हरत भई, गोपी घुंघुरू बांधिके पांवनको घसीटत घोटुवन ते चलत भई ॥ १६ ॥ दो गोपी कृष्ण बलदेव बनीं और कोई गोपी गोप बनी और कोई वत्सासुर बनी ताकूं मारतभई एक गोपी बकासुर बनी ताय और गोपी मारत

कस्याश्चित् पूतनायन्त्याः कृष्णायन्त्यपिबत् स्तनम् ॥ तोकायित्वा रुदन्त्यन्या पदाऽहन् शकटायतीम् ॥ १५ ॥ दैत्यायित्वा जहारान्यामेका कृष्णार्भभावनाम् ॥ रिङ्गयामास काऽप्यङ्घ्री कर्षन्ती घोषनिस्वनैः ॥ ॥ १६ ॥ कृष्णरामायिते द्वे तु गोपायन्त्यश्च काश्चन ॥ वत्सायन्तीं हन्ति चान्या तत्रैका तु बकायतीम् ॥ १७ ॥ आहूय दूरगा यद्वत् कृष्णस्तमनुकुर्वतीम् ॥ वेणुं क्वणन्तीं क्रीडन्तीमन्याः शंसन्ति साध्विति ॥ १८ ॥ कस्यां चित् स्वभुजं न्यस्य चलन्त्याहापरा ननु ॥ कृष्णोहं पश्यत गतिं ललितामिति तन्मनाः ॥ १९ ॥ मा भैष्ट वातवर्षाभ्यां तत्त्राणं विहितं मया ॥ इत्युक्त्वैकेन हस्तेन यतन्त्युन्निदधेऽम्बरम् ॥ २० ॥

भई ॥ १७ ॥ जैसे श्रीकृष्णचंद्र बुलामें हैं तैसे दूर गई गऊनकूं बुलायके श्रीकृष्णको अनुकरण करे, बांसुरीको बजामें क्रीडा करे ऐसी गोपीकी और गोपी स्याबासि स्याबासि ऐसे बडाई करतभई ॥ १८ ॥ एक गोपी गोपीके कंधापै हाथ धरि चलिके और गोपीते कहतभई मेरी मनोहर नृत्यलीलाकूं तुम देखो, या प्रकार श्रीकृष्णमें तिनको मन जाय लगो ॥ १९ ॥ कोई गोपी पवनवर्षाते भय मति करो मैं तुमारी रक्षा करुंगो यह

---

१ एक बडो गवैया हो सो वह अपनी खुशीसै गावै काहूके कहवेतै नहीं गावै एक भले आदमीको मन वाके गायवेके सुननेको भयो तौ वानै कहा चतुराई करी की वाहीकी तानमें गाऊं मोतें बनैगी है नहीं अपनी तान सुधारवेको यह आपही गावैगो सो गानैंलग्यो और वैसी न आई तब गवैयेने कही यह मेरी तान गावै है परन्तु बिगडी जायहै तब आपहू गावनलग्यो और कही ऐसे गाओ सोई गोपियोंने विचारी कि हम श्रीकृष्णकी लीला करें सो हमतै बनैगी तौ नहीं वाके बतायवेको कृष्ण आप आय जायगो ॥

देउ तुमने कहूं श्रीकृष्णचंद्रको जात देखे ? ॥ ९ ॥ कोई सखी कहै है कि या पृथ्वीकूं बूझो हे पृथ्वी! तैंने कहा तप कियौ है जो केशवभगवान्को चरणस्पर्श भयो तासूं तोकों आनंद सहित रोमांच भये हैं तासूं सुंदर लगे है यह आनंद प्यारेको चरण लग्यो है तासूं भयोहै अथवा वामनजीने पहिले तोकों तीन पैंड नापी है अथवा वाते पहिले वराहजी तोकूं डाढपै धरिके ले आये हैं तवको आनंद है परंतु वे आनंद तो पुराने परिगए अवही प्यारेको चरणारविंद तैंने स्पर्श कीनो है तैंने निश्चय देख्यो है हमें वतायदे ॥ १० ॥ हे सखी हरिणकी स्त्री हरिणी! अच्युत श्रीकृष्णचंद्र प्यारिकूं संग लैके अपने अंगनसूं तुम्हारी दृष्टिकूं आनंद देत यहां आयोहै प्यारीकूं संग लेके गयो ताको जतावनवारो

किं ते कृतं क्षिति तपो बत केशवाङ्घ्रिस्पर्शोत्सवोत्पुलकिताङ्गरुहैर्विभासि ॥ अप्यङ्घ्रिसंभव उरुक्रमविक्रमाद्वा आहो वराहवपुषः परिरम्भणेन ॥ १० ॥ अप्येणपत्न्युपगतः प्रिययेह गात्रैस्तन्वन् दृशां सखि सुनिर्वृतिमच्युतो वः॥ कान्ताङ्गसङ्गकुचकुङ्कुमरञ्जितायाः कुन्दस्रजः कुलपतेरिह वाति गन्धः ॥ ११ ॥ बाहुं प्रियांस उपधाय गृहीतपद्मो रामानुजस्तुलसिकालिकुलैर्मदान्धैः ॥ अन्वीयमान इह वस्तरवः प्रणामं किं वाऽभिनन्दति चरन् प्रणयावलोकैः ॥ १२ ॥ पृच्छतेमा लता बाहूनप्याऽऽश्लिष्टा वनस्पतेः॥ नूनं तत्करजस्पृष्टा बिभ्रत्युत्पुलकान्यहो ॥१३॥ इत्युन्मत्तवचो गोप्यः कृष्णान्वेषणकातराः ॥ लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिकाः॥ १४ ॥

यह लक्षण है कृष्णचंद्रको प्यारीते जो अंगसंग है तासूं कुचनकी केशरसूं रंगी गई कुंदकी मालाकी सुगंधि यहां आवैहै ॥ ११ ॥ प्यारीके कंधापै भुजाको धरे कमल फिरावत तुलसीकी माळाकी सुगंधसूं मतवारे भौंरा जाके पीछे चले जांय ऐसे रामके छोटे भैयाने हे वृक्षो! स्नेहभरी चितवनिसूं तुमारी दंडवत यहां आयके लीनीहै ॥ १२ ॥ कोई बोली हे वीर! यह लतायें श्रीकृष्णसे अवश्य मिली होयगी कारण कि यह अपने पति वृक्षकी शाखारूप बाहोंको आश्रय कर रहीहैं अवश्य हमारे प्यारे श्रीकृष्णके नख इनमें लगे हैं तासों रोमांच होय आयेहैं वृक्षोंके समागममें ऐसे रोमांच नहीं होते ॥ १३ ॥ या प्रकार मतवारेकी समान बोलतीं श्रीकृष्णमें तन्मय होय श्रीकृष्णके ढूंडिवेमें विव्हल होयके गोपी श्रीकृ-

कहिके एक हाथते यत्न करिके जैसे गोवर्द्धन पर्वत श्रीकृष्णचंद्रने उठायो तैसे अपनी ओढनीकूं ऊंची उठावति भई ॥ २० ॥ हे राजन् परीक्षित ! एक गोपी और गोपीके ऊपर चढिके पांव शिर ऊपर धरिके एक गोपीते कहत भई हे दुष्ट सर्प ! तू यहांते निकसि जा मैं दुष्टनके दंड देनवारो जन्मोंहो ॥ २१ ॥ ता समय एक गोपी बोलत भई हे गोपियो ! यह वनमें भयानक दाव लगी है ताकूं देखो शीघ्र नेत्र मूंदिलेऊ मैं या आगिकूं बुझाऊंगो अनायास देखे विना कल्याण करूंगो ॥ २२ ॥ कोई एक दुर्बल अंगकी गोपी मालासूं उलूखलमें बांधिदीनी तब वह डरपिके सुंदर नेत्रवारे मुखकूं ढकिके डरपेका अनुकरण करतिभई जब लीला करते२ रास लीला करने लगीं तब ज्यौंही श्रीकृष्णके अन्तर्धान होनेकी लीला आई कि श्रीकृष्णको स्मरण करने ढूंढने लगीं ॥२३॥ या प्रकार वृंदावनकी लता वृक्षनते पूंछत पूंछत आगे वनमें जायके परमात्मा श्रीकृष्णचंद्रके शरणके खोज देखत भई ॥२४॥ ध्वजा कमल वज्र अंकुश इनते आदिलेके इन चिन्हनसूं महात्मा नंदके बेटाको यह चरण निश्चय होयहै या प्रकार खोज लखैं हैं॥२५॥ अबला गोपी चरणनके खोजसूं श्रीकृष्णचंद्रके जायवेके मार्गकूं ढूंढत भई, आगे जायके श्रीकृष्णके चरणनके खोजमें प्यारीके चरणनके खोज देखिके दुःखी होय यह बोलत भई ॥२६॥ ये कौनके खोज हैं नंदको पुत्र काहूको अपने संग लै गयो है और वाके कंधापै हाथ धरिलियो है जैसे हाथी हथिनीके ऊपर

आरुह्यैका पदाक्रम्य शिरस्याहापरां नृप ॥ दुष्टाहे गच्छ जातोहं खलानां ननु दण्डधृक् ॥ २१ ॥ तत्रैकोवाच हे गोपा दावाग्निं पश्यतोल्बणम् ॥ चक्षूंष्याश्वपिदध्वं वो विधास्ये क्षेममञ्जसा ॥ २२ ॥ बद्धाऽन्यया स्रजा काचित् तन्वी तत्र उलूखले ॥ भीता सुदृक् पिधायास्यं भेजे भीतिविडम्बनम् ॥ २३ ॥ एवं कृष्णं पृच्छमाना वृन्दावनलतास्तरून् ॥ व्यचक्षत वनोद्देशे पदानि परमात्मनः ॥ २४ ॥ पदानि व्यक्तमेतानि नन्दसूनोर्महात्मनः ॥ लक्ष्यन्ते हि ध्वजाम्भोजवज्राङ्कुशयवादिभिः ॥ २५ ॥ तैस्तैः पदैस्तत्पदवीमन्विच्छन्त्योग्रतोऽबलाः ॥ वध्वा पदैः सुपृक्तानि विलोक्यार्ताः समब्रुवन् ॥ २६ ॥ कस्याः पदानि चैतानि याताया नन्दसूनुना ॥ अंसन्यस्तप्रकोष्ठायाः करेणोः करिणा यथा ॥ २७ ॥

21

सूंड धरिलेय है ॥ २७ ॥ निश्चय भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको याने आराधन कीनो है, जा कारण हम सबको त्यागके प्रसन्न होयके प्यारो गोविंद याकूं एकांतमें लेगयो ॥ २८ ॥ हे सखियो ! इह गोविंदके चरणकी रेणुकूं ब्रम्हा महादेव लक्ष्मी संपूर्ण अपने पाप दूरि करिवेके लिये माथेपै चढामें है यह रज बड़ी धन्य है जो इसे शिरपर धारण करोगी तौ भगवान् मिल जांयगे ॥ २९ ॥ ता प्यारीके पांवनके खोज हमको बहुत व्याकुल करैं हैं देखो हम सबको त्यागिके अकेली एकांतमें लेजाय श्रीकृष्णचंद्रको अधरामृत भोग करै है ॥ ३० ॥ आगे चलिके कहैं हैं यहां वाके

अनया राधितो नूनं भगवान्हरिरीश्वरः ॥ यन्नो विहाय गोविन्दः प्रीतो यामनयद्रहः ॥ २८ ॥ धन्या अहो अमी आल्यो गोविन्दाङ्घ्र्यब्जरेणवः ॥ यान् ब्रह्मेशो रमा देवी दधुर्मूर्ध्न्यघनुत्तये ॥ २९ ॥ तस्या अमूनि नः क्षोभं कुर्वन्त्युच्चैः पदानि यत् ॥ यैकापहृत्य गोपीनां रहो भुङ्क्तेच्युताधरम् ॥ ३० ॥ न लक्ष्यन्ते पदान्यत्र तस्या नूनं तृणाङ्कुरैः ॥ खिद्यत्सुजाताङ्घ्रितलामुन्निन्ये प्रेयसीं प्रियः ॥ ३१ ॥ (इमान्यधिकमग्नानि पदानि वहतो वधूम् ॥ गोप्यः पश्यत कृष्णस्य भाराक्रान्तस्य कामिनः ॥ अत्रावरोपिता कान्ता पुष्पहेतोर्महात्मना ॥ १ ॥) अत्र प्रसूनावचयः प्रियार्थे प्रेयसा कृतः ॥ प्रपदाक्रमणे एते पश्यताऽसकले पदे ॥ ३२ ॥ केशप्रसाधनं त्वत्र कामिन्याः कामिना कृतम् ॥ तानि चूडयता कान्तामुपविष्टमिह ध्रुवम् ॥ ३३ ॥

पांवनके खोज नहीं दीखैं हैं सखि तुनिका अंकुरा लगिके कोमल चरणनमें खेद भयो है तब प्यारे ने प्यारीको उठाय लियो है ॥ ३१ ॥ (हे वीर ! जा समय कृष्णने प्यारीको उठायो तौ उन कामके रसिया कृष्णके चरण पृथ्वीमें धस गये हैं देखो यह फूलोंके निमित्त अवश्य सखी को उठायो है) हे सखि ! यह देखो यहां प्यारे ने प्यारीके कारण फूल तोड़े हैं, इस स्थानमें चरणोंका उचकके खडे होनेसे थोडा चिन्ह दिखाई देता है ॥ ३२ ॥ कामी श्रीकृष्णचंद्रने कामिनीके या स्थानमें केश वाहिके सुधारे हैं, प्यारीकूं बैठायके केश गुहे जो प्यारो है सो या स्थान में

निश्चय वैठत भयो[1] ॥ ३३ ॥ श्रीशुकदेवजी कहैं हैं आत्माराम अर्थात् अपने स्वरूपमें रमण करनेहारे अखंडित अर्थात् स्त्रीनके कटाक्षके वश नहीं होनेहारे श्रीकृष्णचंद्र ता प्यारीके संग रमण करतभये कामी पुरुषनकूं दीनता दिखायवेके लिये कि कामी पुरुष ऐसे स्त्रीनके वशीभूत आधीन होयजाय है, जैसे तैसे तैसेही करै है, स्त्री ऐसी दुष्टा होय हैं जो इच्छामें आवै सोई करामें हैं ॥ ३४ ॥ या प्रकार गोपी अचेत होय होयके खोजनकों देखत भई, श्रीकृष्ण और स्त्रीनकूं छोडिके वनमें जा गोपीकूं अपने संग लेजात भये ॥ ३५ ॥ वह गोपी सब स्त्रीनमें अपनेकूं श्रेष्ठ मानत भई, कि देखो चाहना करवेवारी गोपिनको छोड़के प्यारो मेरो संग सेवन करै है ॥ ३६ ॥ ता पीछे वह गोपी गर्वित होयके केशव श्रीकृष्णचंद्रते बोलत भई

रेमे तया चात्मरत आत्मारामोप्यखण्डितः॥कामिनां दर्शयन् दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम् ॥ ३४ ॥ इत्येवं दर्शयन्त्यस्ताश्चेरुर्गोप्यो विचेतसः ॥ यां गोपीमनयत् कृष्णो विहायान्याः स्त्रियो वने ॥ ३५ ॥ सा च मेने तदात्मानं वरिष्ठं सर्वयोषिताम् ॥ हित्वा गोपीः कामयाना मामसौ भजते प्रियः ॥३६॥ततो गत्वा वनोद्देशं दृप्ता केशवमब्रवीत्॥न पारयेऽहं चलितुं नय मां यत्र ते मनः॥३७॥एवमुक्तः प्रियामाह स्कन्धमारुह्यतामिति॥ततश्चान्तर्दधे कृष्णः सा वधूरन्वतप्यत३८

मोपै चलो नहीं जाय है जहां तुह्मारो मन होय तहां लेचलो कृष्णने कही प्यारी दस कदम और चलो किशोरीजी बोली हां जी जैसे तुम चार प्रहर गायनके पीछे फिरोहो तैसेही सबको जानो हो हम तौ महलके बाहरहू नहीं निकलीं सो कैसे चलै ॥ ३७ ॥ या प्रकार जब प्यारीनें कहीं तब श्रीकृष्णचंद्र प्यारीते कहैं हैं मेरे कंधापै चढिलेऊ तब चढने लगी तबही श्रीकृष्णचंद्र अंतर्धान होयगये प्यारीजीने विचारी कि सखी बड़ी व्याकुल होय रही है सो मैं मानकरकै इहांही रहूं उन्हैं मिल जाऊं तौ नेक उनके आंसूं तौ पुछ जांयगे यासैं जानकै मान कियो और श्रीकृष्ण या कारण तै छोड़गये कि मैं याहि लाखनमेंते अकेलीकूं ले आयो हूं सो उनको दांत यापै होयगो सो वे याहि शापत होंयगी सो मोहि विरह दुःख होय तौ भलेही होय पर

---

१ क०—विरहानलदाहीं सब ठाढीसी गिरि भूमि गाढी पीरबाढी निजहात धुनै माथहीं । मोहनके हेतसे अचेत व्है पुकार उठीं अब सुधिलेत ना हमारी प्राणनाथहीं ॥ कैसी गति कीन दीन सुखद प्रवीन कान्ह कहै बलदेव मीन जैसे बिन पाथहीं । दुसहसमोई दोऊ दीननते खोई अतिविरहमें मोही गोपी रोई एक साथहीं ॥

मेरी प्यारिके ऊपर काहूको दांत न परै यासैं छोड गये वह गोपी विलाप करत भई ॥ ३८ ॥ हा नाथ ! हे रमावनवारे हे महाभुज ! तुम कहां हो कहां हो हे सखे ! तुह्मारी दासी कृपण मैं हूं ताको अपनो समीप होयके दर्शन देऊ ॥ ३९ ॥ अब शुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित ! वे सब इकट्ठी गोपी श्रीकृष्णचंद्रको दूरते मार्ग ढूंढत ढूंढत प्यारेके वियोगमें मोहित और अति दुःखित वा सखीकूं देखत भई ॥ ४० ॥ ता प्यारीकी कही बातकूं सुनिके, और माधव भगवान् श्रीकृष्णचंद्रसैं प्यारीने सत्कार पायो और गर्व भये ते अपमान भयो सुनिके गोपी बडे आश्चर्यकूं प्राप्त होती भई ॥ ४१ ॥ चंद्रमाकी चांदनीको प्रकाश जहांतक हो तहांताई तो गोपी वनमें ढूंढत भई, आगे वृक्षनकी छायाको अंधेरो देखिके बगदि आई ॥ ४२ ॥

हा नाथ रमण प्रेष्ठ क्वासि क्वासि महाभुज ॥ दास्यास्ते कृपणाया मे सखे दर्शय सन्निधिम् ॥ ३९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अन्विच्छन्त्यो भगवतो मार्गं गोप्यो विदूरतः ॥ ददृशुः प्रियविश्लेषमोहितां दुःखितां सखीम् ॥४०॥ तया कथितमाकर्ण्य मानप्राप्तिं च माधवात् ॥ अवमानं च दौरात्म्याद् विस्मयं परमं ययुः ॥ ४२॥ ततोऽविशन् वनं चन्द्रज्योत्स्ना यावद्विभाव्यते ॥ तमः प्रविष्टमालक्ष्य ततो निववृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥ तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः ॥ तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः ॥ ४३ ॥ पुनः पुलिनमागत्य कालिन्द्याः कृष्णभावनाः ॥ समवेता जगुः कृष्णं तदागमनकाङ्क्षिताः ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

तिन श्रीकृष्णमें मन लगाये कृष्णसंबंधी वार्ता करती उन्हींकी लीला करतीं तन्मय हो उन्हींके गुण गाय रहीथी कि उन्हें अपने घरकी कृष्ण वियोगमें-भी सुधि न हुई ॥ ४३ ॥ फेरि बगदिके यमुनाजीके पुलिनमें आयके श्रीकृष्णकी जिनके भावना लगि रही तिनके आयवेको पैंडो देखैं संपूर्ण जुरि मिलिके श्रीकृष्णचंद्रकूं गावत भई ॥ ४४ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कंधे पूर्वार्धे रासक्रीडायां भगवदन्वेषणं नाम त्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३० ॥

अब संपूर्ण गोपी कहैं हैं प्रीतम तुम्हारे जन्म लियेते यह ब्रज अधिक सुन्दर लगै है और याहीतें लक्ष्मी सो निरंतर शोभायमान करै है या प्रकार सब ब्रजमें आनन्द होय रह्यो है, हे प्यारे! तोमें प्राणनकूं धरिके तेरी गोपी तोकूं दिशानमें ढूंढत डोलै हैं ॥ १ ॥ हे सम्भोगके पति हे मनोवांच्छित फलके देनवारे! शरदऋतुके सरोवरनमें भली प्रकार उपजे श्रेष्ठ कमलके भीतरकी शोभाकूं चुरानेहारी तुम्हारी दृष्टिकी विना मोलकी हम दासी हैं तिनकूं तुम मारोहो, जो तुम कहो कि हमने कहा मारो है तौ कहा शस्त्रहीते मरैं हैं दृष्टिसूं नहीं मरैं हैं, कहा याते तुमने दृष्टिसूं हमारे प्राण हरिलीने हैं

गोप्य ऊचुः ॥ जयति तेऽधिकं जन्मना व्रजः श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि ॥ दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते ॥ १ ॥ शरदुदाशये साधुजातसत्सरसिजोदरश्रीमुषा दृशा ॥ सुरतनाथ ते शुल्कदासिका वरद निघ्नतो नेह किं वधः ॥ २ ॥ विषजलाप्ययाद् व्यालराक्षसाद्वर्षमारुताद्वैद्युतानलात् ॥ वृषमयात्मजाद्विश्वतोभयादृषभ ते वयं रक्षिता मुहुः ॥ ३ ॥ न खलु गोपिकानन्दनो भवानखिलदेहिनामन्तरात्मदृक् ॥ विखनसाऽर्थितो विश्वगुप्तये सख उदेयिवान् सात्वतां कुले ॥ ४ ॥

तिनके देवेके लिये दर्शन दो ॥ २ ॥ हे लाल! आपने वारंवार मृत्युनते कृपा करिके रक्षा करी, अब क्यों कामदेवको भेजिके दृष्टिसूं मारोहो विषके जलते मृत्युही ताते रक्षा करि, अघासुरसे, इंद्रने वर्षा करी पवन चलाई ताते, बिजुरीकी आगितें, वृषासुरते, मयके पुत्र व्योमासुर और सम्पूर्ण भयते बचायो हे श्रेष्ठ! तुमने बेरबेरमें रक्षा करि है अब क्यों हमें छोडोहो ॥ ३ ॥ तुम यशोदाके पुत्र नहींहो यशोदाके पुत्र होते तौ 'मापै पूत पिता पै घोडो। बहुत नहींतौ थोरो थोरो' कछु तौ अपनी जातिको पक्ष आतो सब देहधारीनकी बुद्धिके साक्षी हो ब्रह्माने विश्वकी रक्षा करिवेके लिये प्रार्थना करी

---

१ एक चोर काहू साहूकारके घरमें चोरीकूं घुसो सो देखै कहा रुपयान के ढेर लगे हैं यानेहू रुपैयान की गांठ बांधी दूसरे कोठा में असर्फी देख रुपैयो छोड असर्फी की गांठ बांधी तीसरे में मोती बांधे चौथे में हीरा जवाहर देख चकित होगयो विचारन लग्यो असरफी लू कि मोती जवाहर या विचारतही भोर होगयो मुस्के बंधगई सो प्यारे ऐसेही हमारे नेत्र चोर तेरी रूप माधुरी की लूटमें परे हैं पर आपही बंधगये कपोलन को देख फिर वाहू ते सुंदर नासिका में लगे फिर अधर चिबुक में गये सब अंग एक ते एक सुंदर है हम आछे देखवेहू नपाई अब तौ हमारे नेत्र तेरे रूप में बंध गये हैं अब छूट नाय सकै हैं ॥

तब हे सखे! यादवनके कुलमें प्रगट भये जब ब्रह्माने आपकूं रक्षाके निमित्त कही तब यह कह दियो होयगो कि सबकी रक्षा करनी और गोपीनको जराय २ मारचो करना सो ब्रह्मा तौ ब्राह्मण है वह ऐसो अधर्म काहेको बतावैगो ॥४॥ हे यादवनमें श्रेष्ठ! हे कांत! संसारके भयते तुम्हारे चरणसेवन करनेहारे जे पुरुष हैं तिनकूं अभयदाता कामनानके देनवारे लक्ष्मीके हाथके करनवारो जो तुम्हारो हस्तकमल है ताकूं हमारे माथेपै धरो ॥ ५ ॥ हे सखे हे वीर हे व्रजवासीनके दुःखके हरनवारे! अपने जननके गर्वको दूरी करनवारी तुम्हारी मुसिकानिकी हम दासी हैं तिनकूं सेवन करो; पहिले स्त्री हम हैं तिनको अपनो मुखकमल दिखाओ ॥ ६ ॥ प्रणत अर्थात् नम्र देहधारिनके पापको दूरि करनवारे गौनके पाछे पाछे चलनेहारे शोभाके स्थान कालीके फणपै नृत्य करनेहारे आपके चरणकमल हैं तिनकूं हमारे कुचनपै धरिके कामदेवकी व्यथाको दूरि करो ॥ ७ ॥ हे कमलदललोचन! हे वीर! सुन्दर वाक्यवारी गंभीर मधुरवाणी सैं मोहित हुई हम दासियोंको अधरामृत पिवायकै जीवदान दो ॥ ८ ॥ आपके विरहमें हमारे प्राण जाय चुके हैं परन्तु तुम्हारे कथामृतको पान करतेहुए सुकृति जनोंने हमें बचाय लिये कारण कि संसारमें तप्त पुरुषको जिवावनवारो ब्रह्मादिक जाकी स्तुति करै ऐसे पापनको दूरि करनवारे मंगलरूप शांत तुम्हारे कथारूप अमृतकूं जे पुरुष पृथ्वी में कहैं हैं वे बडे दाता हैं जब तुम्हारी कथा कहनेहारे धन्य हैं तौ जो तुम्हारा दर्शन करैं हैं उनका कहनाही क्याहै यासैं अब दयाकर दर्शन दो ॥ ९ ॥ हे सौम्य हे कपटी! तेरो हंसी सहित मुख प्रेमभरी चितवनि ध्यानमें मंगलरूप तेरो विहार हृदयकूं स्पर्श करनवारी एकांतकी बातें हमारे मनकूं क्षोभ करैं हैं ॥ १० ॥

विरचिताभयं वृष्णिधुर्य ते चरणमीयुषां संसृतेर्भयात् ॥ करसरोरुहं कान्त कामदं शिरसि धेहि नः श्रीकरग्रहम् ॥ ५ ॥
व्रजजनार्तिहन् वीरयोषितां निजजनस्मयध्वंसनस्मित ॥ भज सखे भवत्किङ्करीः स्म नो जलरुहाननं चारु दर्शय॥६॥
प्रणतदेहिनां पापकर्शनं तृणचरानुगं श्रीनिकेतनम् ॥ फणिफणार्पितं ते पदाम्बुजं कृणु कुचेषु नः कृन्धि हृच्छयम् ॥७॥
मधुरया गिरा वल्गुवाक्यया बुधमनोज्ञया पुष्करेक्षण ॥ विधिकरीरिमा वीर मुह्यतीरधरसीधुनाऽऽप्याययस्व नः ॥८॥
तव कथाऽमृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं कल्मषापहम् ॥ श्रवणमङ्गलं श्रीमदाततं भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः ॥ ९ ॥
प्रहसितं प्रिय प्रेमवीक्षणं विहरणं च ते ध्यानमङ्गलम्॥रहसि संविदो या हृदिस्पृशः कुहक नो मनः क्षोभयन्ति हि ॥१०॥

हे नाथ ! जा समय गौ चरायवेकूं ब्रजते चलोहो तब तुम्हारे कमलकी तुल्य सुंदर चरण कांकरी तृण अंकुर लगिके कष्ट पावैं हैं तासूं हे कांत ! हमारो मन चंचल होय है सो ऐसे प्रेम रखनेहारी दासियों परभी आप दया नहीं करते ॥ ११ ॥ संध्या समय नील केशसूं ढके गोरजसे धूसरित कमलतुल्य मुखकूं धारण करिके बेरबेर दिखाइके हे वीर ! हमारे मनमें कामदेवको उत्पन्न करोहो परन्तु संग नहीं देते यही तुम्हारो निश्चय कपट है ॥१२॥

चलसि यद्व्रजाच्चारयन् पशून् नलिनसुन्दरं नाथ ते पदम् ॥ शिलतृणाङ्कुरैः सीदतीति नः कलिलतां मनः कान्त गच्छति॥११॥
दिनपरिक्षये नीलकुन्तलैर्वनरुहाननं बिभ्रदावृतम्॥घनरजस्वलं दर्शयन् मुहुर्मनसि नःस्मरं वीर यच्छसि १२
प्रणतकामदं पद्मजार्चितं धरणिमण्डनं ध्येयमापदि ॥ चरणपङ्कजं शन्तमं च ते रमण नः स्तनेष्वर्पयाधिहन् ॥ १३ ॥
सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरितवेणुना सुष्ठु चुम्बितम् ॥ इतररागविस्मारणं नृणां वितर वीर नस्तेऽधरामृतम् ॥ १४ ॥

नम्र देहधारीनकूं कामना देनवारे जिनकी ब्रह्माने पूजन करी, पृथ्वीकी शोभाके करनवारे, आपत्तिमें ध्यानसैंही पीड़ा दूर करनेहारे सेवामें सुखरूप ऐसे अपने चरणकमलकूं हे रमावनवारे हे कामदेवकी पीडाके दूर करनवारे ! हमारे कुचनपै धरो ॥ १३ ॥ हे वीर ! कामदेवकूं वढावनवारे शोककूं दूर

---

१ गोपियौंने कही अरी यह मनको झगरो है मनने कही बनमें श्रीकृष्णके चरणनमें काँटे लगत हौंगे उनके तौ बडे बडे नेत्र हैं, वे काँटे खोबरानमें क्यौं पग धरैंगे, मनने कही अरी बावरी भई हो तुम एक एककूं कृष्णके वियोगमें देहकी सुधि नहीं रहै है, वह तौ हजारन गोपिनके विरहमें अचेत रहै है कही बेसुधिमें चरण पडजात होयगो, तब हम कहैं है अरे मन ! वे कोमल पृथ्वीपै चरण धरैं हैं मन कहै है अरी वह गैया चरायवेकूं जायहै, कछु दलाली करवे को नहीं जायहै, गैयाको स्वभाव है जहां बडी घास होय तहां कटे खोबरान मेंहूं चली जायं हैं, तहां वेभी जाते हौंयगे, तब गोपी कहै अरे मन ! क्यौं डरै है, हमारे ब्रजकी पृथ्वी बडी दयालु है जहां कृष्ण चरण धरैं हैं, तहां वह अपनी जिह्वा पसार देहै, अथवा कृष्ण चरण की संगत तै कांकरीहू माखन समान होजायहैं मन कहै तुमतौ अपनी चित्रसारीन में बैठी बातैं बनाओहो मैं कृष्ण के पासही जाऊंगो फिर गोपी बोलीं अरे तू क्यौं डरपै है कांटे तो वाके लगै है जो जूती न पहरेहोय वे तौ लाखन गोपियनके मनकी जूती पहरे हैं सो कांटे तौ हमारे मनमें लगैं हैं मनने कही मोपै तौ रह्यो नहीं जाय है में जाऊंगो, गोपी बोलीं अरे तू अकेलो जायगो मन कहै कि मैं तिहारे पंच प्राणनकूं संग लेतो जाऊंगो, प्यारे सारे दिन हमारे मनसे और हमसे ऐसी कलह होयहै, और संध्याभई सो तुम आतेही मैया की गोदी में घुसजाओहो ॥

216

करनहारो स्वरभरी वजती हुई वांसुरी भलेप्रकार चुम्बित, मनुष्योंकूं चक्रवर्ती आदिके सुखको भुलानेहारा सुखदायक तुह्मारा अधरामृत है सो हमारे रोग शान्त करनेको दीजिये हे कृष्ण ! यह औषधी मिलनेसे हम भली होजायंगी और जो प्यारे तुम दवाका मोल मांगो तौ दमडीकी बांसकी बंसी जो रातदिन मुखपर धरे रहोहो वह तुम्हें कहा मोल देहै और जो तुम कहो कि तुम कुपथ्य करोहो कुपथ्यकूं दवा न देनी चहिये अभी तुम गैया मैया भैया घर पत्यादिकनकी वासनाको कुपथ्य करोहो सो प्यारे तेरी औषधी यह सव दूरकर देगी नैक हमें औषधी पिवाओ तौ सही ॥ १४ ॥ जब तुम दिनमें वनमें जाओ हौ तव तुमारे देखेविना आधो क्षण युगकी तुल्य बीते यह विनादेखेको दुःख कहो, और जब घूमघुमारे केशौंसे युक्त तुम्हारे मुख कमलका दर्शन करें हैं उससमय पलकनको वनावनवारो ब्रह्मा हमें मूर्ख विदित होय है पलकनसौं दर्शनमें वांधो पड़े है यह दर्शनमें दुःख है और छः

अटति यद्भवानह्नि काननं त्रुटिर्युगायते त्वामपश्यताम् ॥ कुटिलकुन्तलं श्रीमुखं च ते जड उदीक्षतां पक्ष्मकृद्
दृशाम् ॥ १५ ॥ पतिसुतान्वयभ्रातृबान्धवानतिविलङ्घ्य तेऽन्त्यच्युतागताः ॥ गतिविदस्तवोद्गीतमोहिता कितव
योषितः कस्त्यजेन्निशि ॥१६॥ रहसि संविदं हृच्छयोदयं प्रहसिताननं प्रेमवीक्षणम् ॥ बृहदुरः श्रियो वीक्ष्य धाम ते
मुहुरतिस्पृहा मुह्यते मनः ॥ १७ ॥ व्रजवनौकसां व्यक्तिरङ्ग ते वृजिनहन्त्र्यलं विश्वमङ्गलम् ॥ त्यज मनाक् च
नस्त्वत्स्पृहात्मनां स्वजनहृद्रुजां यन्निषूदनम् ॥ १८ ॥

वरसकी हमारी नंद अपनी मायसे जाय पुकारै है अरी देखरी मा भावी वा नंदके कूं देखनै गई है अब सास त्रास दिखावै है वापै ब्रह्मा वैर पडो है अपनी आठ आंखैं वनाई हमारी दोही और ताहूपै पलक लगाय दीने हैं ॥१५॥ पति पुत्र वंशके भैया बंधूनकूं त्यागिके तेरे गीतसूं मोहित होयके हम तुम्हारे पास आई, गायवेकी गतिनकूं जाननेहारे वा हमारे आगमनकूं जाननेहारे हे अच्युत ! हम तुम्हारे निकट आई हैं हे कपटी ! रात्रिमें आई स्त्रीकूं तेरे विना ऐसो कौन है जो त्यागेगो ॥ १६ ॥ कामदेवको प्रगट करने हारे एकांतको संकेत देखिके, हंसीसहित मुख और प्रेमकी चितवन देखिके, लक्ष्मीके रहिवे को स्थान तिहारो वक्षस्थल देखिके हमारे बडी चाहना भई है और हमारो मन मोहित होय है ॥ १७ ॥ अंग अर्थात् हे श्रीकृष्ण ! तुम्हारो प्रकट होनो व्रजबासीनके वनवासीनके दुःखको दूर करनवारो है, अतिशय करिके विश्वको मंगलरूप है या कारण तुम्हारे दर्शन विना व्याकुल हमें अपने भक्त जनौं

के मनकी पीडा दूर करनहारी गुप्त औषधि दो कृपणता मति करौ या औषधीको तुम्ही जानो हो ॥ १८ ॥ कठोर स्तननपै तुम्हारे चरणकमलकूं भयते हम होले होले धरैं हैं क्यों कहूं कोमलचरण में गडि न जाय, और तुम उन चरणको वनमें उठाय उठाय डोले करोहौ कहा चरणमें कांटे कांकरी लगिके खेद नहीं होय है, यह जब विचार करैं हैं तब तुम्हैं अपना जीवन धन माननेहारी हमारी बुद्धि मोहित होजाय है पर नेक पुकारके इतनी तौ कहदो कि अरी गोपियो ! तुम कहां हो मैं तौ पुलिनमें लताके नीचे आरामसे बैठोहूं इतनौ तौ कहदो ॥१९॥ इतिश्रीम०भाषाटीकायां दश०पू०रासक्रीडा

यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु भीताः शनैः प्रिय दधीमहि कर्कशेषु ॥ तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किं स्वित् कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषां नः ॥१९॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे गोपीकृतकृष्णस्तुतिर्नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ इति गोप्यः प्रगायन्त्यः प्रलपन्त्यश्च चित्रधा ॥ रुरुदुः सुस्वरं राजन् कृष्णदर्शनलालसाः ॥ १ ॥ तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः ॥ पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥२॥ तं विलोक्यागतं प्रष्ठं प्रीत्युत्फुल्लदृशोऽबलाः ॥ उत्तस्थुर्युगपत् सर्वास्तन्वः प्राणमिवागतम् ॥ ३ ॥

यामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित ! या प्रकार गोपी गावत चित्र विचित्र विलाप करत श्रीकृष्णचंद्रके दर्शनकी लालसासे वे गोपी बडे स्वरते रुदन करत भईं ॥ १ ॥ मुसिकान युक्त मुखकमल वारे शूरवंशोत्पन्न पीतांबरकूं पहिरे वनमालाको धारण करे साक्षात् मन्मथ कामदेव ताके मनकूं मोहित करनेहारे श्रीकृष्णचंद्र गोपीनके बीचमें प्रकट होत भये ॥ २ ॥ प्रीतिपूर्वक प्रसन्न होयके प्रफुल्लित

---

१ कवित्त ॥ राखैंगी न प्राण यह जानिके कुमर कान्ह प्रगटे सुजान वीच तान वान मारे हैं । लखतही गोपिनके वृंदमें आनन्द बढो मन्द मुसकात व्रजचन्द यों निहारे हैं ॥ भने बलदेव यह वानी सुधा सानी सुनो सकल सयानी तुम सभै दुःख भारे हैं । गलेमाल डारे मुखपीतपटधारे पिया कहत पुकारे हम ऋनियां तुम्हारे हैं ॥

नेत्र होय संपूर्ण अवला श्रीकृष्णचंद्रकूं आया देखिके एक संग उठत भई जैसे देहमें प्राण आयेते हाथ पांव उठे हैं ॥ ३ ॥ कोई गोपी श्रीकृष्णचंद्रको हस्तकमल बडे आनंदपूर्वक अपने हाथसूं पकरत भई कोई गोपी चंदन सै शोभायमान भगवानकी ऐसी भुजाकूं कंधापै धरत भई ॥ ४ ॥

कांचित् कराम्बुजं शौरेर्जगृहेऽञ्जलिना मुदा ॥ काचिद्दधार तद्बाहुमंसे चन्दनभूषितम् ॥ ४ ॥ काचिदञ्जलि-
नाऽगृह्णात् तन्वी ताम्बूलचर्वितम् ॥ एका तदङ्घ्रिकमलं सन्तप्ता स्तनयोरधात् ॥ ५ ॥

कृश अंगवारी कोई गोपी श्रीकृष्णके मुखमेंते तांबूलको बीडा अपने हाथनमें लेत भई, और कामते तपायमान कोई गोपी श्रीकृष्णचंद्रको

---

१ 'काचित् कराम्बुजं' यहां शुकदेवजीने काचित्कही नाम नहीं लियो याको कारण यह है कि नाम शुकदेवजीको परम इष्ट है द्वै अक्षर मंत्ररूप हैं सो जप मंत्र का प्रकाश करना भला नहीं अथवा महादेवजीने शुकदेवजी सैं तत्वज्ञान कह्यो परन्तु नामके दो अक्षर प्रकाशे नहीं रारा कह्यो करैं हैं दूसरो अक्षर नहीं कहते कदाचित् कोई चुराय लेजाय एकवार तौ तत्वज्ञान खोयो यामें कथा है—एक समय नारदजीने कैलासमें आय कही कि यहां कछु आग लगानी चाहिये सो पार्वतीसैं कही कि तुम्हें महादेवजी कछु प्यारभी करैं हैं पार्वती बोली कछु अन्तर नहीं राखैं हैं तब नारदजी बोले तौ तुम यह पूछियो कि आपके गलेमें मुण्डौंकी माला कहा वस्तु है यह कह नारदजी चलेगये, जब वर्षभर पीछे महादेवजी समाधिसैं जागे तब पार्वती बोली महाराज! यह मुंडनकी माला कहा वस्तु है बताओ पार्वती सै यह सुन शिवजी बोले जब तिहारो शरीर छुटजायहै तब तुह्मारो शिर धारण करलूंहूं पार्वती बोली मेरे तौ सैंकडौं जन्म भये और तुमने ऐसी कहा अमरोटी खाई है जो तुम अमर हो शिवजी ने कही काहूने भली आग लगाई फिर बोले मोहि तत्वज्ञान है पार्वती ने कही वह तत्व मोहि बताओ तब शिवजी ने स्नेह हटाय एक चुटकी बजाई कि वा स्थानके सब पक्षी उड़गये फिर एक चुटकी बजाई बच्चनके पंख जमि आये, फिर बजाई सब बच्चा उडादिये ताहि समय शुकीके गर्भ में शुकदेवजी आये हैं सो एक चुटकी सैं बाहर आये दूसरी सैं अंडा फूटो तीसरी सैं पर निकसे सो एक वृक्षकी डाळीपैं जाय बैठे तब महादेवजी पार्वती सैं तत्बज्ञान कहन लगे पार्वती हुंकारी देती सो गई, यह सुआ हूंहूं करन लगो, महादेव ब्रह्मानंदमें मग्न नेत्र मीचे सब कथा कहिगये, जब नेत्र खोल देखैं तौ पार्वती सोगई, और हूंहूं तोताने करी झट वाके मारने को शूल चलायो, और पीछे भये, सुआ भाज्यो व्यासजीकी स्त्री कोठे पर ही वानैं जंभाई ली सूक्ष्मरूप सेवाके उदरमें प्रवेश करगये, शिवजीने व्याससे कही तुम्हारी स्त्रीके गर्भ में हमारो चोर है, निकासो व्यास बोले आपके पास कहा है जो यानैं चुरायो शिवजीने कही तत्वज्ञान जासैं अमर होंय हैं सो याने चुरायो, व्यास जीने कही याही तैं आप भोलानाथ कहाओ हो विचारो तौ जानै तत्वज्ञान सुनो, वह त्रिशूल से कैसैं मरैगो महादेवजी हंस कै कैलासको गये, वा दिनसै रारा रटैं हैं पूरो नाम नहीं लै हैं शुकदेवजी सम्पूर्णही गुप्त राखैं हैं, यासौं राधाको कहूं नाम न लियो ॥

चरणकमल अपने स्तनपै धरत भई ॥ ५ ॥ एक गोपी अपनी भौंह चढायके कोपके आवेशसूं विकल होयके अपने ओष्ठकूं दांतनते दाबिके कटाक्षरूपी बाणनते मारतीसी देखत भई ॥ ६ ॥ और गोपी निमेषरहित दृष्टिसे श्रीकृष्णचंद्रको मुखकमल भले प्रकार देख्योभी है परन्तु फेर फेर देखत नहीं तृप्त होत भई, जैसे साधुजन् श्रीकृष्णके चरणारविंद देखेते नहीं तृप्त होइ हैं ॥ ७ ॥ कोई गोपी नेत्रोंके छिद्रद्वारा भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको हृदयमें लेजाय नेत्रमूंद भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकूं आलिंगनकर रोमांचित शरीर होय योगीजनके समान महान आनन्दमें मगन होगई ॥ ८ ॥ केशव श्रीकृष्णचंद्रके दर्शन करिके आनन्दसों सुखी होयके सम्पूर्ण गोपी विरहके तापको त्यागत भई जैसे ईश्वरको पायके

एका भ्रुकुटिमाबध्य प्रेमसंरम्भविह्वला ॥ घ्नन्तीवैक्षत् कटाक्षेपैः संदष्टदशनच्छदा ॥ ६ ॥ अपराऽनिमिषद्दृग्भ्यां जुषाणा तन्मुखाम्बुजम् ॥ आपीतमपि नातृप्यत् सन्तस्तच्चरणं यथा ॥७॥ तं काचिन्नेत्ररन्ध्रेण हृदि कृत्य निमील्य च ॥ पुलकाङ्ग्युपगूह्यास्ते योगीवानन्दसंप्लुता ॥ ८ ॥ सर्वास्ताः केशवालोकपरमोत्सवनिर्वृताः ॥ जहुर्विरहजं तापं प्राज्ञं प्राप्य यथा जनाः ॥ ९ ॥ ताभिर्विधूतशोकाभिर्भगवानच्युतो वृतः ॥ व्यरोचताधिकं तात पुरुषाः शक्तिभिर्यथा ॥ १० ॥ ताः समादाय कालिन्द्या निर्विश्य पुलिनं विभुः ॥ विकसत्कुन्दमन्दारसुरभ्यनिलषट्पदम् ॥ ११ ॥ शरच्चन्द्रांशुसन्दोहध्वस्तदोषातमः शिवम् ॥ कृष्णाया हस्ततरलाऽऽचितकोमलवालुकम् ॥ १२ ॥

मुमुक्षुजन तापकूं छोडैहैं अथवा सुषुप्ति अवस्थाको साक्षीको पायके जाग्रतरूप अवस्थावान् जीव जैसे तापकूं छोडै हैं ॥ ९ ॥ हे परीक्षित्! भगवान श्रीकृष्णचंद्र उन दुःखरहित गोपियोंके मध्यमें अधिक सुंदर लगत भये जैसे परमात्मा सत्व आदिशक्तियों से सुन्दर लगे हैं अथवा उपासक पुरुष ज्ञान बल वीर्यसूं आदिलैके जे शक्ति हैं तिनसूं सुन्दर लगें है ॥ १० ॥ तिन गोपिनको संग लेके फूले हुए कुंद और मंदारकी सुगन्धि पवनके कारण जहां भौंरे गुंजाकर रहे ऐसे यमुनाजीके पुलिनमें सब लेगये ॥ ११ ॥ फेर कैसे पुलिन है शरदऋतुके चंद्रमाकी किरणनके समूहते रात्रिको अन्धकार जामेंते दूर होयगयो है फेर कैसो है यमुनाजीकी बाहूकी समान तरंगनसों

कोमल वारूके बिछोना जामें बिछ रहे हैं ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णचंद्रके दर्शनके आनन्दसूं हृदयके रोग दूर करके गोपी मनोरथके अंतकूं पावत भई अर्थात् मनोरथ उनको पूरो होतभये जैसे ज्ञानकाण्डमें श्रुति परमेश्वरकूं देखिके आनन्दसूं पूर्ण होय कामके सम्पूर्ण बंधननकूं त्यागै है कुचनकी केशरियुक्त अपनी ओढनीनकूं उतार उतारके श्रीकृष्णचंद्रके बैठिवेको तकिया गद्दी बनावत भई ॥ १३ ॥ योगेश्वरनके भीतर जिनको कल्पित आसन है वे ईश्वर भगवान् श्रीकृष्ण तीन लोककी शोभाको एक एकही स्थान कहा तीन लोककी शोभा जामें आयरही ऐसे रूपको धरिके ता आसन पै बैंठके गोपिनसे पूजित होय गोपीनकी सभामें सुन्दर लगत भये ॥ १४ ॥ कामदेव के

तद्दर्शनाह्लादविधूतहृद्रुजो मनोरथान्तं श्रुतयो यथा ययुः ॥ स्वैरुत्तरीयैः कुचकुङ्कुमाङ्कितैरचीक्लृपन्नासनमात्मबन्धवे ॥ १३ ॥ तत्रोपविष्टो भगवान् स ईश्वरो योगेश्वरान्तर्हृदि कल्पितासनः ॥ चकास गोपीपरिषद्गतोऽर्चितस्त्रैलोक्यलक्ष्म्येकपदं वपुर्दधत् ॥ १४ ॥ सभाजयित्वा तमनङ्गदीपनं सहासलीलेक्षणविभ्रमभ्रुवा ॥ संस्पर्शनेनाङ्ककृताङ्घ्रिहस्तयोः संस्तुत्य ईषत्कुपिता बभाषिरे ॥ १५ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ भजतोनुभजन्त्येक एक एतद्विपर्ययम् ॥ नोभयांश्च भजन्त्यन्य एतन्नो ब्रूहि साधु भोः ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ मिथो भजति ये सख्यः स्वार्थैकान्तोद्यमा हि ते ॥ न तत्र सौहृदं धर्मः स्वार्थार्थं तद्धि नान्यथा ॥ १७ ॥

बढावनवारे श्रीकृष्णकी हासलीला पूर्वक चितवनिसों चलायमान भ्रुकुटीसूं सत्कार करिके गोदमें धरे हुए श्रीकृष्णचन्द्रके चरणनकूं हाथनते दाबत स्तुति करिके कछुएक क्रोधते गोपी बोलत भई ॥ १५ ॥ सम्पूर्ण गोपी कहैं हैं कि हे महाराज ! एक पुरुष तो भजतेनको भजे हैं वे कौनसे हैं, और एक ऐसे हैं कि नहीं भजतेनको भजे हैं वे कौन हैं, और एक भजतेनकौ न भजतेनकौ दोनोंनको नहीं भजे हैं वे कौनसे हैं, सो हे कृष्ण ! यह हमारे आगे भले प्रकार समझाके कहो ॥ १६ ॥ श्रीभगवान् कृष्णचंद्र बोले हे सखियो ! जे पुरुष परस्पर भजे हैं अर्थात् जितनो वे उनको चाहैं तितनो वे उनको चाहैं वे पुरुष तो आपस्वार्थी हैं वा भजनमें स्नेहसुख धर्म कछुभी

नहीं हैं वह तो केवल अपनौही भजन है॥१७॥और जे नहीं भजतेनकों भजे हैं वे पुरुष दो प्रकारके हैं एक तो करुणावान् दूसरे स्नेही जैसे माता पिताको पुत्र नहीं चाहे है परंतु वे वाके ऊपर कृपा करें हैं, और या भजनमें निर्दोष धर्म है हे सुमध्यमाओ ! अर्थात् सुंदर है कटि जिनकी हे गोपियो ! दयालु होकर भजने में सत्य धर्म है और स्नेहसैं भंजने में सत्य प्रेम है॥१८॥कोई पुरुष भजतेनकूं भी नहीं भजै हैं तो अभजतेकूं कहांते भजेंगे वे चार प्रकारके हैं एकतो आत्मा हीमें रमण करैं हैं और एक पूर्ण मनोरथ हैं जिनके कोई बातकी चाहना नहीं है, और एक अकृतज्ञ हैं उपकारकूं नहीं समझैं हैं;और एक गुरुद्रोही

भजन्त्यभजतो ये वै करुणाः पितरो यथा ॥ धर्मो निरपवादोऽत्र सौहृदं च सुमध्यमाः ॥ १८ ॥ भजतोऽपि न वै केचित् भजन्त्यभजतः कुतः ॥ आत्मारामा ह्याप्तकामा अकृतज्ञा गुरुद्रुहः ॥१९ ॥ नाहं तु सख्यो भजतोऽपि जन्तून् भजाम्यमीषामनुवृत्तिवृत्तये ॥ यथाऽधनो लब्धधने विनष्टे तच्चिन्तयाऽन्यन्निभृतो न वेद ॥ २० ॥ एवं मदर्थोज्झितलोकवेदस्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ॥ मया परोक्षं भजता तिरोहितं माऽसूयितुं मार्हथ तत् प्रियं प्रियाः ॥ २१ ॥

हैं जो उपकार करें ताहीते द्रोह करैं हैं ॥ १९ ॥ श्रीकृष्णचंद्र कहैं हैं हे सखियो ! मैं इनमें सैं कोई नहीं केवल दयालु और स्नेहीहूं जो कोई प्राणी मेरो भजन करै है तिनको अपनी ओर ध्यान लगायवेके लिये मैं उनकूं नहीं भजूं हूं, जैसे दरिद्रीपुरुषकों धन मिलै है और वह धन जातरहै है तब वाकी चिंताको मारो भूख प्यास नहीं जानै है ॥ २० ॥ हे अबलाओ ! मेरेलियेही लोकमर्यादा, वेदमर्यादा पति पुत्र तुमने त्याग दिये सो तुम्हारी चित्तवृत्ति

---

१ परभजन विश्वाससे करना योग्य है तामें दृष्टान्त है विश्वासमेंही भगवान हैं और कहीं नहीं एकमनुष्य किसी कार्यवश भगवानका पूजन करैथा परन्तु मनमें यह कहता यह पाषाण मूर्ति हमारा कार्य कैसे साधन करसकैगी उसका चल विश्वास होनेसे उसका कार्य नहीं हुआ तब किसीने उससे कहा तू भगवती दुर्गादेवी का पूजन कर तुरंत काम सिद्ध होगा वो मनुष्य आलेमें ठाकुरजीकी मूर्ति रख दुर्गादेवीका पूजन करनेलगा एक दिन धूपदेती समय मनमें विचारा कि धूपसीधी ऊपर हीको जाती है सो नारायण हीको पहुंचती है इस कारण दुर्गादेवी को पीछे मिलनेसे वे प्रसन्न नहीं होतीं इसका यत्नकरूं यह विचार रुई ढूंठकर भगवत मूर्तिकी नाकमें भरनेलगा जिस्से कि सुगंध न जाय भगवान् तत्काल मूर्तिमेंहीं हंस कर बोले भाई रुई मत ठूंसे वरमांग क्या चहिये वोह बोला महाराज ! मुझे क्या खबरथी आप रुई घूंसने से प्रसन्न होते हैं और यह विधि किसी पद्धाति में भी नहीं लिखी, भगवान् बोले पहले तुझे विश्वास नहींथा मूर्तिकूं पाषाण जानेथा आज वोह बात जाती रही आज ईश्वरही जाना नहीं तौ पत्थरमें सूंघनेकी शक्तिकहां आज तेरा विश्वास ईश्वर रूपका था ॥

लगायवेके लिये तुमकूं देखिवेको नहीं आयो तुह्मारे पासही छिपिके रहतभयो कहूं दूरि नहीं गयोहो याते हे प्रियाओ ! यह कृष्ण बुरोहैं ऐसे मोप्यारे में दोष मति लगाओ ॥ २१ ॥ तुम निर्दूषित तुम्हारे संग उपकारको बदलो मोपै देवतानकी बराबर अवस्था होती तौभी नहीं होसके है क्योंकि जो छोडे न जाय ऐसी घररूप बेडीनकूं काटिके मेरी सेवा करतभई याते तुमही कहिदेउ कि कृष्ण हमारो ऋणिया[1] नहीं है

न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः ॥ या माभजन् दुर्जरगेहशृङ्खलाः संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ॥ २२ ॥ इति श्रीभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं भगवतो गोप्यः श्रुत्वा वाचः सुपेशलाः ॥ जहुर्विरहजं तापं तदङ्गोपचिताशिषः ॥ १ ॥ तत्रारभत गोविन्दो रासक्रीडामनुव्रतैः ॥ स्त्रीरत्नैरन्वितः प्रीतैरन्योन्याबद्धबाहुभिः ॥ २ ॥

तो मेरो छुटिकारो है मोपै तुम्हारे उपकारको बदलो नहीं होय सके है ॥ २२ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ या प्रकार या श्रीकृष्णचंद्रके हस्तचरण आदि अंग स्पर्शकर मनोरथ पाय गोपी भगवान् श्रीकृष्णके अति कोमल वचन श्रवण करिके विरहतापकूं त्यागत भईं ॥ १ ॥ तहां गोविंद श्रीकृष्ण अपनी आज्ञा करनवारी प्रसन्नमन आपुसमें हाथ पकरे खड़ी हुई पकरि स्त्रीनमें रत्न गोपीनकूं संग लैके रासक्रीडाको आरम्भ करत भये ॥ २ ॥

---

[1] कृष्णने ऋणिया कही याको कारण यह है कि काहू के एक मित्र दरिद्री होगयो सो वह महादुःखी होय अपने करोरपति मित्रके पास गयो वाने इन्हैं देखतेही हजामत वनवाय अच्छी पौशाक पहराय मोती गहने पहराय लाख रुपैयादे विदाकियो अब जो यह दरिद्री अपनें मित्रको बदलो उतारो चाहै तौ जब वह किरोरपति दरिद्री होय तौ बदलो दियो जाय यासैं वह बात कलुना जामें मित्रको सत्यानाश जाय यातैं ऋनियां रहनोही भलो ॥

रास मंडलकीशोभा ॥ जहां सहस्रकुंज लतानकी पाड़रनके परिकोटाहै, पोरहै, पनासहै, नैठे हैं,दाड़िमनके दरवाजे हैं,देहरी है,दिवालहै, दासहै, चंदनकी चौखटहै, चोवारे हैं, चित्रसारी है,चिरोनीनकी चोकहैं, चांदनी हैं, चिकहैं,किरवारेनके किवारहै कंगूराहै कलसाहैं,कोठे हैं देवदारके दरहैं,दलीची हैं भोजपत्रनके भवनहैं, भंडारहैं बेलनकी बैठकहै बिछावटहै, किरवारेनकी कुरसी हैं, त्रुनकी शिखिरहै, श्रेणी है, कटहनके कटहराहै, पनसनके पताकाहै, जामुननकी जाजमहै, पाकरेनकेपलकापाये हैं, करकाये हैं, गहरनकी गद्दी है, गलीचाहै, गिलमहै, तामें तीनों तमालनके तकियाहैं, अतरनते तरवतर होरहे है, जापै श्रीराधाकृष्ण विराजे हैं ॥ १ ॥ अथाष्ट कुंजपुष्पनकी मोतियानके महल. जिसकी मालतीनकी मुडगेली, मरुएहैं, मंदिरहैं, मरगोलहैं, कंनेरनके कटहराहैं, किवारहै, कुरसी हैं, कलसाहैं, मोरसिरीनके मुतक्काहैं, चंपानके चोकहैं, चबूतराहैं, चांदनी हैं, चिकहैं, चोवारे हैं, रायवेलनके रंगमहलहैं, जुही राउठी हैं, रासस्थलसे हैं,केवरेनकी कुरसी हैं,कंगूराहैं, कोठे हैं; दुपुहरियानकी दलीची हैं, दरहैं, दह्लानहैं, दिवालहैं,चमेलीनके चोखटहैं, चोवारे हैं, जुही गुडरानकी गद्दिजिनकीजाली है,जर्जारहै, जीनाहै, जिमीनकी जाजमहै, गेंदानके गली हैं, गलीचाहैं,गद्दाहैं, गिलमहैं, पाडरनकेपोरहैं, परदाहैं, परकाएहैं, गुडरानकी गद्दिजि मोंग नपै चांदनैनकी चादरहै, गुलचिमनके गेंदुवाधरे, गद्दीनपैन्यारे हैं ॥ कबित्त केवरानके किवार जिनमें केतकीकी कुलफजड़ी, वांसेके बंगलाजामें मोंग नपै रानके मोखाहै रोसनमें रायवेल सुगंधनरानकी सिढ़ीबनी कुंदनकी कुंजनमें गुलाबनके गोखाहै ॥ राते पीत फूल सब झूमरहे झाडनमें पद्मनकी पाखुरीके झूमके झुरोखाहैं ॥ ऐसी कुंजमध्यमें विराजैं श्रीराधाकृष्ण गोपिनके मनभाई आई शरदनकी दोषाहै ॥ १ ॥ पच्चीसकुंजनमेंललितादिकनकी गतिहै, ते मणीनकी कंचनकी कुंजहैं किवारहैं, कटहराहैं, कलशाहैं, चांदीके चबूतराहैं, चोकहैं, चोवारे हैं, चोखटे हैं, चांदनी हैं, चिकहैं मूंगानकी मूरगेली हैं, मरुवेली हैं पन्नानकीपारहै, परकोटाहैं हिरानके हिंडोरे, पिरोजानकीपटली हैं, पद्मराग मणिनके पलकाहै परकाये हैं, ऐसी कुंजमें राधा कृष्ण विराजे हैं । योग मायाकूं आज्ञा दीनी सो सब रासकी साजकी समाजकी जुगति बनाई वृंदादेवीतौ राधाजीको शृंगारकरै है, योग माया श्रीकृष्णको, वनदेवी सर्व रीतिसैं सब सखिनको शृंगार करे है न्यारी २ नको श्रीकृष्ण शृंगार वर्णनम्, रत्न जटित चौकीपै विराजे तब योग मायाने अंगमें केशरको उवटनो लगायो, फेर केश सम्हारे फेर फुलेल लगायो सोनेनके कलशानमें केशर घोर गुलाब जलतें समोये भये सौं मसलर न्हवाये फेर अंगवस्त्र कीनो फेर केसरिया धोती कलावतूनकी दीनी, सो आपने धारण कीनी, पीछे गुलाबके अंजुरनको लगाय अलकैं संभार वो पंचरंगी चीरा धारनकरायो, पीछे गुलबदनको घुटन्ना पहरायो, उछरवे कूदवेमें फिरवे ढरवेमें, ढीले गीलेको काम नहीं, वो कलावत्तुको नारो

खेंच बांध्यो वामें रेशमी गुच्छानमें मोतिनके लच्छा लटक रहे हैं; फेर जरीको घेर हारकेदार घूम दार जामा पहरायो, जामें मोतीनकी लामन लगी, ताके ऊपर दुछोरमा पटुका खेंच बांध्यो पटुकामें रतन जटित मुरली खुरशी, पीछे माथेपै दुहरा मोतीनकी कंठी पागके नीचे बांधि ताके ऊपर वीच २ में मोरचंद्रिकान सहित मणि जटित मुकुट धारण कियो, ताके आगे जामें मोती सुराईदार पन्ना लटके ऐसो जड़ाऊ शिरपेच बांध्यो वो जरीकी कलँगी लगाई मोतीनको तुर्रा दांई ओर लटकायो पीछे वो केशरको तिलक लगायो, वो मृगमद रेखा व ऊंची सुवासारी नासिका पै भाल तिलक लगायो, वो बुलाक नासामें धारण कीनी, पीछे नेत्रनमें अंजन आंज्यो मुखमें पानको बीरा, चिबुकमैं हीरा, माथेपै चीरा, काननमैं मकराकृति कुंडल धारणकीने. पीछे एक अलक कपोलनतैं छिटकाई, अतरनसूं तरबत्तरभई, आरसी से गोल कपोलनपै पत्रनकी रचना कीनी, पीछे श्रीकंठमैं मोतिनको गोफ धारण कियो, ताके नीचे हीरानको कंठा पहरो; ताके नीचे मोतिनकी दुलरी, ताके नीचे तिलरी, तापैं चोलरी, ताके नीचे पचलरी, ताके नीचे सतलरी, ताके नीचे एक अमोलक चंद्रहार धारण कीनो, ताके नीचे बैजयंतीमाला, दोहा—करीदरी अरु सूकरी, कंठी स्वाती वाल। षट षट पदसों पोहिये, सो वैजंती माल ॥ ताके आगे गुलाबके फूलनकी पागदार नंदलालने माला पहरी, बराबर २ कंठसू कमर तलक धुकी चली गई, करनमें जड़ाऊ कडला भुजानमें बाजू धारणकीने जिनमें मोतीनके झब्बा लटकैं हैं, पीछे ऊंगरी अंगुठानमैं छल्ला मुदरी धारनकीने पीछे कटिमैं जडाऊ कोंधनी धारी पीछे चरणनमैं नूपूर धारण किये, तिनके ऊपर झांझन धारण कीने, तिनके ऊपर सांकडा अमैठमा आंकडा दार पहरे, ताकी ऊपर कडा पहरे, ताकी सोभा राजा मैं कहा कहूं वो नूपुरनकी पहरन, वो घेरदार जमाकी झमकन, तामैं मोतीकी लामनकी लगन, कोधनीकी कसन, गजरा फूलनकी गसन, पटुकाके छोरनकी छुटन, वो घुटनाकी घटन, मालाकी पहन, वेहारनकी हरन, वेदुलरीकी दुलन, वो चौकीकी चमकन, वा धुकधुकीकी धुकन, वो बाजूकी कसन, कड़ानकी रुरमकन, वो छल्लानकी मुदरीनकी जडन, वो मुखारविंदकी हसन, वो कपोलनकी लसन, अलकनकी विथुरन, वो तिलकनकी लगन, वो पचरंगी चीराकी बंधन, ताके नीचे मोती लडकी दमकन, वो मोर मुकुटकी सजन, वो शिरपेचकी चमकन, झाकलगीकी खिलन, वो तुर्रेकी लटकन, राजा वो ब्रजेश सुतके वेशकी शोभाकू अशेष विशेष शेष नहीं वर्णन करिसके, तौ मेरी कहा सामर्थ्य है, पीछे अलकन में अतर मुखमें वीडा लियो, पीछे योगमायाने दर्पण दिखायो, अपने रूप अनूपकूं कृष्ण भूप देखकैं आपही टूक २ होगये, योगमायाने राई नोन

करो, वहां राधाको शृंगार वृंदादेवीने कीनो, रतनजडित चोकी पै विराजमान करकै केशरको उबटनो कीनी, फेर कंघहीते सटकारे कारे केश सम्हारे, फुलेल लगायो बेणि गुही; फेर सोनेनके कलशानमें केशर घोर गुलाब जल पडे भये समोये, जलसूं मसल २ न्हवायो, अंगवस्त्र कीनो, फिर चुह चुहा तौ कसुंभी दामन घूमदार, मोतीन लामनदार लामन पाटन पगोट घेरमें गोट कलाबतुको नारो, रेशमनके लच्छामैं मोतीनके गुच्छा लटकै, ऊपर कारी जरीकी चूंदरी उढाई, हरी जरीकी कंचुकी रेशमकी कस बांधी, कार चोवीनके कामकी कंचुकी पहराई (अथ भूषणानि) शिरके वेणी १ चंद्रिका २ बोरला ३ खुटला ४ मांगफूल ५ शीशफूल ६ चुटबंद ७ जडाऊ आटी ८ मस्तक फूल ९ मस्तककी खोर १० वेना ११ जडाऊ टीको १२ वेंदा १३ तिलक १४ सितारे १५ कर्णनके कर्णफूल १६ झूमका १७ ढेढी १८ बंदिया १९ वाली २० पीपरपत्ता २१ झिवझिवी २२ विचकनी २३ नासिकाकी नथ २४ चमेलिया लटकन २५ नथ झलका दार २६ कलशादार २७ नोरदार २८ मोरदार २९ गुमानी छोगादार ३० बिजलीदार ३१ कबूतरदार ३२ चांदनीके भलकादार ३३ जडाऊ ३४ जवाहरी ३५ केहरकीदार ३६ बुलाख ३७ पान ३८ बेसर ३९ दुर ४० मोती पान ४१ कंठके जंजीरा ४२ तिमनियों ४३ पतरीदार पचमनियां ४४ कंठा ४५ होंस ४६ हमेल ४७ लडलडी ४८ गरसोली ४९ टीक ५० झुमरी ५१ आड ५२ कंठश्री ५३ ढुलनी ५४ दुलरी ५५ तिलरी ५६ मोरली ५७ तखती ५८ सतलरी ५९ मुक्तामाला ६० चंपकली ६१ चंद्रहार ६२ तोमर ६३ चोसर ६४ पुतरीमाल ६५ सर ओसर ६६ (वांहके) बरा ६७ वांके ६८ बाजूबंद बच्चादार जंगदार ६९ दक्षिणी खएला ७० करनके हथमूलर७१ गूजरी ७२ दोहरी ७३ पछेली ७४ कंकण ७५ चूरण तारकसी ७६ नोगरी ७७ पहुंची ७८दआ ७९ बंगली ८० डार ८१ मिणि ८२ हाथनके हाथसाँकडा ८३ हथफूल ८४ उँगरीनके मुदरी ८५ छल्ला ८६ गुस्ताना ८७ आरसी ८८ कमरके क्षुद्र घंटिका ८९ किंकिणी ९० थई ९१ गठवंध ९२ पायनके कडा ९३ पायजेब ९४ सांकर ९५ सांट ९६ तोडा ९७ जेहर ९८ नूपुर ९९ पेजना १०० घुंघरू १०१ बिछुवा १०२ चुटकी १०३ दुछल्ली १०४ मछिया १०५ अनवट १०६ पोला १०७ नाहियां १०८ पगपान १०९ एडी भूषण ११० चोप १११ यह सब धारण कराये ॥ अथ गोपीनको शृंगार ॥ लाल, हरे, पीरे, सोसनी, नील, पीत, कारे, आसमानी, गुलाबी, ककरेजिया, हवासी, कासनी, किरमिजी, किसमिसी, नारंगी, नाफरमानी, जोजई, चंपई, पिस्तई, दाखी, गुलाबी, गुलनार, कमलपत्री; सुनहरी, सपतालु, सरवती, ऊदो, गुमरदीनके दामन, भांति २ के दामन, कंचुकी, भांति २ की ऊपर ओढनी तरैकी २ ऊपर छापेनकी जरीकी चूंदरीनकी लहरी पानकी,

धनकनकी,आभरनकी शोभा ओढ २ सेलासालदुशाले, फूलनकी माला रूपकी आला रिझावनेकूं नंदलालाकूं ज्वालासी तैयार शृंगार वनदेवीनें तैयार करी, मुख्य गोपी ललिता, विशाखा,चित्रा, चंपक लता (वल्लिका) तुंग, विद्या, इन्दु लेखा, रंग देवी, सुदेविका, रही ऐसे शृंगार होय चुक्यो तब श्रीराधाकृष्ण रासस्थलकी कुंजमें पधारे, तब सब गोपीजन जहांतें तहांते ऊपर सों, नीचेसों, इतसों, उतसों, बाहरसों, भीतरसों; पूरबसों, पश्चिमसों, दक्षिणसों, उत्तरसों, भुमोक, चारों ओरतें, आयकै विराजी विजुरीसी, उतरी गुजरी जोरै रूपनकी गुदरी, पहरे भये मुदरी धीरे २ रमकती मुखचंद्रसूं दमकती आय विराजी (कुंजस्थल वर्णनम्) कुंजको सोनेको परिकोटा बडो भारी योगमायाने सम्हारो, सोनेको दर्वाजो है, स्फटिककी चोखटहै, मूंगाकी देहरी है, पन्नाकी मेहरावहै, लाल मणिनके मरगोलहै, नील मणिनके टोडे हैं, वे पुखराज मणिनकी ऊपरकी कुरसी हैं, वे हीरानके कटहराहैं, चुलीके मुक्ताहै, वे सोनेनके किमार हैं, हीरानकी कील लगी हैं, वे जड़ाऊ कड़ा लगे हैं, वे द्वारेनपै मोतीनकी वंदनवारहैं सुराई द्वारनकी, आमनके पत्ते आमकी वंदनवारहैं, वे फूलनकी वंदनवारहैं, जरीनकी थैलीनकी वंदनवारहैं, वो सुलतानी बनातको दरवज्जेमें पंखा बंध रह्यो है, वो जामैं कलाबत्तुकी डोरी बंधी है तामें मोतीनके गुच्छा लटकैहैं, वे सुन्दर ऊपर गोखाहैं, तामें सुन्दर जालीनदार किवाड़ सोनेनके हैं, वे हरे लाल पीले कारे सोसनी परदा परे हैं, ता दर्वाजेपै गोपी देवांगनासी ठाडी हैं, जिनके हाथनमें वेत्र है, छडी है, फूलनकी छरी है, झुकी भई वे सुन्दर सूहो चह २ चये रंगके दामन हैं, हरी जरीकी कंचुकी है, सोसनी चोटीनमें फूलमाला तिनके गुथ रही हैं, मांग सिंदूरनते भरी है, मांगफूल सीसफूल झिवझिवी हार हमेल हाथनमें चूरी, सांकडा पामनमें पहरे, जूथनके जूथ टोलीनकी दरवाजेन पै ठाड़ी है, जामे कुंजके भीतर बड़ी भारी पोरीहै, तामें कांचनकी भूमिहै, वे स्फटिक मणिकी भीतहै नील मणिनके किवारहैं, वे सुन्दर, पन्नाकी, मोरकी, नाडकी तोता की नाड़की हाथीके नाड़की सिंहके मुंहकी जडाउ टोले लग रहे हैं, वे सुन्दर सामई तीन दर्वाजे हैं, मूंगानकी देहरीहै, सोनेनके किवाड हैं, मरकत मणिनकी चौखटहै, वे हरीजरी लालजरी सोसनी जरीके परदा पर रहे हैं, कोई बंध रहे हैं, कोई खुल रहे हैं, काऊकी कलाबत्तूकी डोरी है, काऊकी रेशमीमें कलाबत्तूके गुच्छा लग रहे हैं, जरीनके मैं तो मोतिनके गुच्छा लटकै हैं बडी २ कांचनकी भीतनमें जड़ रहे हैं, वे ऊपर सोंटनमें कांचनके काम हो रहे हैं, वे तने चंदोवा तन रहे हैं, लालजरीके तो बीचके होतहैं, हरीजरीके हाँसियाहैं, कारचोबीनकी मगजी लग रही हैं वे सुराईदार मोतिन की झालर लटके हैं, वे धरतीनमें टाटबाफीनके काम होय रहे हैं; ऐसे गलीचानकी फरस होय रही है झाड लालटेन हांडिया दिवालगीरी न्यारी होय

रही हैं, मानो दूसरे पूनोंके चंद्रमाकी चांदनी छिटक रहीहै, ऐसी तौ कुंजमें शोभा होय रही है ताके भीतर बड़ो भारी चौकहै चोखूंटी तामें नील मणि हीरानको जाल कढ़ रह्यो है, ताके चारों आडीदरोयकेकी भीतैं; लालमणिनके पन्नानके कंगूराहै, तामें नीलमणि, ताके ऊपर चारों ओडी दरदल्लान तिनके मूंगानके तोड़ाहैं, हीरानके खंभहैं पन्नानकी मेहरावहैं, पीत मणिनकी ऊपर कुरसी है नीलमणिनके टोडे हैं, पुखराजनके कटेराहै पिरोजानके मुक्ताहैं, वे द्वारनपै परदा परे हैं, वे कलावत्तूनकी डोरी तिनमें मोतीनके गुच्छा लटके हैं, ऐसे चारों आड़ी दल्लानहै, ऊपर चौवारे, तिवारे, अटारी, तिवारी, वारह द्वारी, दुखने, तिखने, चौखने, पचखने, सतखने, दुमैहला, तिम्हैला, चौम्हैला, पचम्हैला चले गये हैं, बराबर २ ऊपर सीसमहल, रंगमहल, मोतीमहल, मुकटमहल, माणिकमहल बन रहे हैं बरावर २ बँगलानपै सोनेनके जड़ाऊ कलश चढरहे हैं, वे ध्वजा पताका फहराय रही हैं, तिन दल्लानकी धरतीनके ऊपर बैटाट वार्फानकी गलीचानकी ऊपर फरस होरही है, तिनके ऊपर मखमलनके गुदगुदे गद्दा बिछे हैं, तिनपै वे सुपेदी खासानकी चद्दर बिछ रही है, ताके भीतर चलकर श्रीप्रिया प्रियतम श्रीराधा कृष्णकी रास समय शृंगार करि विराजवेंकी रास स्थलकी निकूंजहै, ताकी चुन्नीनकी तौ धरतीहै, ताकी स्फटिक मणिकी भीतहै, नीलमणिनके फूलकढ रहे हैं द्वारेनमें पन्नानकी चौखटहैं, मरकत मणिनके सरदलहैं, मूंगानकी देहरी है, पुखराजनकी सुहावटी है, सोनेनके किवाड़ हैं, हीरानकी कीलहैं, पन्नानके फूलहैं, द्वारनमें कार चोवीनके कामके मखमलके परदापरे हैं वे सुपेदी बिछ रहे हैं, ऐसी कुंज झलमल २ कर रही है, तापै पश्चिम ओर भीतके नीचे, चार सोनेनके वांस ताके ऊपर एक बड़ो चंदोवा तन रह्यो है, सुराई दार मोतीनकी झालर लटकै है, ताके नीचे बीचमें, जड़ाऊ सोनेनको कामको नाहरके मुहको, बड़ो भारी सिंहासन है, ताको कांचकों पीठकाहै, वोह सुन्दर जरीको वस्त्रहै तामें जमुनी किरनकी झालरहै चारों ओर लग रही है, वे सुन्दर टाटवाके कामकी बड़ी भारी गद्दी बिछ रही है, ताके पीठको सुलग्यो है बड़ो भारी लाल मखवलकी बन्नात जामें लगरही है वे सुन्दर कलावत्तूकी डोरी में जड़ाऊ झब्बा लटके हैं ऐसो तकिया लगरह्यो है, अगल बगलके तकिया न्यारे लगरहे हैं, गोपीनको समाजमें वा सिंहासनके अगाड़ी एक छोटी गोल मटोल बादामीसी राजकुमार पहेरे मोतिनके हार, बहारसूं, सजे नखशिखसूं विराजे हैं, बांई ओर नख शिखसूं बनीठनी श्रीवृषभानु नंदिनीजी विराजी हैं, एक चरण दाँयकू श्रीकृष्णचंद्रने वा चौकीपै धर रख्यो है, जाकी शोभा तुम्हारे आगे कहा कहूं; मोको तौ मालूम परेहै चरण नहीं है,मानों नील चिन्हहै, वो चोकी नहीं मानो चंद्रमाहै; वो सुपेदी नहीं मानो चांदनी हो रही है; वामें तो तारेनकी शोभाहै, यहां कामदार सखीनकी शोभाहै, अथवा कुंज नहीं, मानो

सरोवरहै, तामें गोल जड़ाऊ चौकी नहीं है, मानो कृष्णरूपी सूर्य के उदय ते फूल्यो कमल है; तापै कृष्णको श्याम चरण नहीं है; मानो भौंरा बैठ्यो मकरंदको आस्वादन कर रह्यो है अथवा स्फटिक कटोरापै कस्तूरी के चंदनको गोला धरो है; अथवा मोकूं तौ ऐसो मालूम परै है मानो उदयाचलपर नील मेघकी कोई घटाहै, अथवा वृंदादेवी नायकाकी नील मणिकी जड़ाऊ टीकी है, फेर वा सिंहासनके पीछे वो सुन्दर जड़ाऊ दंडी लगी; वो सुराईदार मोतीनकी झालरदार कलस झलमल करै, ऐसो श्वेत छत्र लिये ललिताजी ठाढी है इत उतमें विशाखा १ चित्रा २ सोनेकी दंडी दार चमर लिये ठाढी हैं, चंपकलता ३ चरण दाब रही है, तुंग विद्यार अनाड़ी लिये ठाढी है, इंदुलेखा खमासीमें ठाडी है, रंगदेवी सुदेवी दोनों ओर मोरछल लिये ठाडी है, और वृंदा देवी सोनेकी सोटी लिये द्वारसूं लगी ठाढी है, और रत्नप्रभा, रत्नकला, सुभद्रा, भद्ररेखा, सुमुखी, धनिष्ठा, कलहंसी कलापिनी, माधवी, मालती, चंद्ररेखा, कुंजरी, तथा हारिणी, चपला, कुरंगाक्षी, सुचरिता, मंडलीमणि, कुंडला, चंद्रिका, चंद्रतिलका, कंदुकाक्षी, सुमंदिरा, रसालिका, तिलकिनी, सौरसेनी, सुगंधिका, गमिला, कामनगरी, नागरी, चित्ररेखा, मंजुमेधा, सुमधुरा, सुमध्या, मधुरेक्षणा, तनुमध्या, मधुमंदा, गुणवती, सुसंगता, चित्रांगा, मोहिनी, मदनावंशा, कलकंठी, शशिकला, कमलमधुरा, राका, कंदर्पसुन्दरी, कमलललिता, प्रेममंजरी, कावेरी, चारुकवरा, सुकेशी, मंजुकेशिका, ॥ ऐसी प्रकारकी गोपी वा समाजमें हजारन २ खवासी में कोई अतरदान, कोई पानदान, कोई गंगाजली, कोई जलझारी, कोई चन्दनदान, कोई पींकदान, अपने २ हाथमें लिये ठाडी हैं. ताके अगारी विछावटपै बांई दांई ओर कोई मालागूंथरही हैं, कोई वाजनके स्वर मिलाय रही हैं, कोई अलापभर रही हैं, कोई पान लगाय रही हैं कोई अतर लगाय कोई गायरही हैं, कोई कृष्णको रिझायरही हैं, ता सिंहासनके अगाड़ी एक कलपतरु है, ताकी अद्भुत छबि है, राजा मैं तेरे अगारी कहा अद्भुतता वा कल्पवृक्षकी वर्णन करूं, हे राजा ! तिनमें अधिक एक कल्पतरुकी जगमगाहट ज्योति लगरही है, पत्र फूल फलनसैं हीरा मणि मोती लगरहे हैं, तिनके मध्य गन्धर्व, किन्नर, अप्सरा वलिहार करैं हैं, श्रीकृष्णके श्रम दूर करवेकूं अमृतपुष्प गुंहींमुंही वरस्यो करैं हैं ऐसो कल्पतरुहै, कै वाकी शाखानमें, दलनमें, फूलनमें, फलनमें, राधाकृष्णको प्रतिबिंब झलकै है. जाहि देखि २ सखीगणके मन ललकैं हैं, और यमुना जलमें झलकै ताके नीचे कोमल मणिमय भूमि सोहै है, सो भक्तनके मनको मोहै है वैकुंठ कहूं तौ ताहूसै अधिक सो है, हेराजा ! वा भूमिमें सब

प्रतिबिंब दीखे हैं, ऐसो मालूम पडे है, वा भूमिमें दूसरो वनहै; जब यह सब तयारी होचुकी तब श्रीकृष्णचंद्र आनन्दकंद जगवंद यशोदानंद श्रीविहारी गिरिधारीजीके पास आयकै वृंदादेवीने अरज करी महाराजाधिराज अब सब सखी वृंद आयके मुखचंद्रको चकोरीसी निहार रही हैं, कि कब महाराज रासविहारी रासकी तैयारी करैं, और हमारे मनोरथ भरैं, तब श्रीकृष्णचंद्र रासेश्वरी वृषभानु नंदनीकी ओर कटाक्षकर पटको कटिसौं कस, हंसते थेइ थेइकर छमाकदेसी कूद रासमंडलमें ठाडेभये, ता पीछे सब गोपीगण रासमंडलमें आय ठाडी भई, अब मंडलमें कृष्णकी भुजातौ गोपिनके कंठमें, और गोपी श्रीकृष्णकी कटिके पीछे करसौं कर मिलाय ठाढी भई, उनकी ऐसी शोभा भई मानो श्रीवृंदावनने अनेकरंगकी माला पहरी है, दोहा—वृंदावनवानकवन्यौ,भँवरकैंरंगुजार। दुलहनप्यारीराधिका,दूलहनंदकुमार॥ इसप्रकारसे सहस्रों गोपियें यूथ बांध श्रीकृष्णको घेर ठाढी भई, कृष्णकी कान्ति राधेपर और राधाकी कान्ति कृष्णपर पडी, तादिनसे 'हरे कृष्ण' प्रसिद्ध भये,गुलाबी कृष्ण, धौरे कृष्ण, कोई नहीं कहै है, देवता कृष्णकी शोभा देख बोले देखो तो प्यारे से मुकुटकी लटक, पीतपटकी चटक, भौंहनकी मटक, तुर्राकी चमक, कलँगी की दमक, कुंडलकी झमक, शीरपेचकी तमक, तब देवी राधाजूकी शोभा देखबोलीं, देखो नीलाम्बर चंद्रिकाकी चटक, भ्रुकुटीनकी मटक, नासा मोती की लटक, हमारे मनरहे अटक, जासौं मिटै भटक, देवता बोले हमें राधाजू की छबि नहीं दीखै है, देवी बोलीं जो रासलीला कू सखीभावसे कहैं सुनै वह रासपंचाध्यायीके श्रवण कीर्त्तनको अधिकारी है, जगतपूज्य श्रीराधा कृष्णको विहार सब श्रुतिनको सार, आभूषण में जैसे हार, यामें जो कोई उपजावै विकार तौ बडो भारी होजाय विगार, तासौं सखी भावकरिकै अधिकार है, जो कोई कहै हम पुरुषनकोस्त्री वनाओहो तौसखी नामतौ बड़ो सुन्दर है, यामें आड कहाहै, प्रातही सौदागर साहूकार मालिन यह मनावैं है, भाई कोई सखीके लालको हाथ लगियो, मंगता कहैं हैं, प्रभात कोई दाता सखीको भैंटियो, यासौं सखी भावसे सुनैं, जासमय कृष्ण ठाडे भये आकाश सैं पुष्प वर्षे, जड वाजे चैतन्य होयगये, डंका उछर उछर नौवत नगारैनपै परनलगे, सारंगी, तंबूरा, सितार, बीन, करवीन आपही बजन लगे, नृत्य होन लगो, उस समय वह चरणनकी धरण, भुजानकी कपन, मुस्क्यानकी करण, ताननकी भरण, वह भ्रुकुटीनकी चढन, वह कटाक्षनकी करण, कमरनकी लचकन, कटाक्षन की नचकन, अंगनकी चमकन, वह एडीनकी पटकन, भ्रुकुटीनकी मटकन, तालनकी चटकन, ताननकी गटकन, मोतीनकी लटकन, चोटीनकी सटकन, पटनकी झटकन, अलकनकी अटकन, पायलनकी खनकन, चित्तनकी अटकन, देखमिटै भटकन, कुचपटनकी उडन, कुंडलनकी डुलन, अलकनकी विथुरन,

पसीनानकी उलझन, फूलनकी वरसन, अंगनकी परसन, आनंदनकी सरसन, त्हदयकी हरसन, देवतनकू तरसन, रसिकनकूं सुख दरसन, हे परीक्षित ! वह रंगीली गोपिनके चरणनको चलायवो, भुजानको कंपायवो, दंतनको विकसायवो, मुखनको मुसिकायवो, भ्रुकुटीको चढायवो, आनंदको बढायवो, मुखारविंदनको मटकायवो, चोटीनको छिटकायवो, अधिक शोभित ह्वै रह्यो है, वासमय कृष्णकी शोभामें भ्रुकुटीकी लटक, पीतपटकी चटक, भ्रुकुटीकी मटक, तुर्राकी चमक, अलकनकी हिलन, दंतनकी खिलन, मत्तगजराज कीसी चलन, केशर को तिलक भाल, कंठमैं वनमाल, मस्तकमें वैंदालाल, मुकुटमें जड़े हीरालाल अधर बने बिंबलाल, वह वासमय गोपिनकी सजन, क्षुद्र घंटिकाकी वजन मोती मालनकी हलन, पटुकाकी खिचन; भ्रुकुटीकी इचननचन; बीडाकी रचन, पचरंगी चीरा चिह्लेदार, तामेंतै कारे सटकारें, समसुधारे छूटके छिटके छह्लादार, आरसीसें कपोलनपै छिटकरहे हैं, लटक रहे हैं, धूमकै झोटा खाय रहे हैं जुटीदार भौंहन पै घूमरहे हैं, याप्रकार गोपिनके संग नृत्यकर आप आय सिंहासन पर विराजे, योगमाया वृंदादिकनने पवन करी, पानको बीडा खवाय नवीन माला पहराय चरण सहराय शिरनाय विनन्ति की, जै हो व्रजराज आज सब समाज आपकी शरण है,महाराज रास अकेलेको भयो,परन्तु यहां बड़ी बड़ी गुणिजन गोपी जुरी हैं रमायूथकी, माधवी यूथकी, विरजा यूथकी, ऊर्ध्व वैकुंठवासिनी यूथकी, लोकाचल वासिनी यूथकी, ललितादिक सब गोपी वाट देखैं हैं, कि न्यारी न्यारी न्यारे न्यारे गुण दिखावैं, सो आप कोई पहलै तानबोलो, तब सब बोलैं, तब कृष्णने कही मेरी या समाज में कहाचलै, ह्यांतौ प्रियाजीकी अधिकताई है, तब प्यारीजी बोलीं आपही बोलो, तब आपने वृंदासै कही जब लहरदार बाजे बजे है, तब गुणियन को पांव उठै है सो अब वासमय बाजे बजे, दोहा—जगमें सब सुरसात हैं, बाजे साढे तीन। खाल तार और फूंक पुनि, अर्द्धताल सुरहीन ॥ खाल नगारो ढोल ढफ, और पखावज जान ॥ ताल तंबूरा बीनहै, वोहरवाव बखान ॥ फूंक नफीरी वांसुरी, सुरनाई करनाय । ताल खंजरी झांझ सब, वाजे दिये बताय ॥ तथा ढफ, मुरचंग, वीन, रवाव, मृदंग, डिमडिमी, दायरा, तबला, सारंगी, सितार, झालर, मजीरा, डमरू, मुरली, बंब वासुरी, वीन, करवीन, राग, जिहाज, महुवर, मृदंग, तमूरा, ढोलक, ढोल, सुरमंडल, सुरवीन, सहनाई, सुरनाई, सुरहीताल, अड़वी, वजवी, दुंदुभी, नस्तरंग, नफीरी, खंजरी, खटताल, जलतरंग, जील, करनाई, कानूरकिन्नरी, सारंगी, नफीरी, चंग, उपंग सुरनदी, धुनछाई, रुंज, ख्याल, पूंगी, इत्यादिक अनेक वाजे एक स्वरसै बजने लगे वा समय शंखनके शब्द डफनकी घोर दुंदुभिनके सोर

231

गोपिनके समूहसों शोभायमान रासको उत्सव योगके ईश्वर श्रीकृष्ण रचत भये मंडल रूप करिके ठाढी भई दोदो गोपीनके बीचमें अपने अनेक रूप धार कंठमें गलबांही डारि गान करत आपहू ठाडे भये ॥३॥ जिन श्रीकृष्णचंद्रको सब गोपी "प्यारो मेरे पास हैं" वह कहै है "प्यारो मेरे पास है" या प्रकार अपने अपने पास मानत भई रास देखिवेकी इच्छासे देवता अपनी स्त्रीनकूं लेके आये, तिनके बिमानसूं आकाश छाइ रह्यो है ॥ ४ ॥ देवतानके आए पीछे नगारे बाजतभये, फूलनकी वर्षा होतभई, मुख्य मुख्य गंधर्व अपनी अपनी स्त्रीनकों संग लैके श्रीकृष्णके निर्मल यशको गावत भये॥५॥ प्यारे श्रीकृष्ण सहित जे स्त्री हैं तिनके कंकण नूपुर किंकिणीनको रासमंडलमें बडो झनकार शब्द होतभयो ॥६॥जैसे दोदो सोनेके मनियानके बीचमें एक एक नीलमणि सुंदर लगै है तैसे वा रासमंडलमें दोदो गोपीनके बीचमें एक एक भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अति सुंदर लगतभये॥ ७ ॥ पांवनकी धरनि, भुजानकी हलनि, मुसिकानिसहित भ्रुकुटीनकी चढनि, कमरनकी लचकनि, कुचनकी और वस्त्रनकी हलनि कपोलनपै कुंडलनकी हलनि तिनसूं पसीना मुंहपै जिनके आयगये, चोटिनकी नारेनकी गांठि जिनकी खुलगई, ऐसी श्रीकृष्णचंद्रकी वधू गोपी श्रीकृष्णचंद्रकूं गावत जैसे मेघमंडलमें बिजुरी लगै है तैसे सुंदर लगत भई ॥ ८॥ नाना रंगनसूं कंठ जिनके रंगिरहे रतिही जिनको प्यारी श्रीकृष्णको स्पर्श जिनको हो

रासोत्सवः संप्रवृत्तो गोपीमण्डलमण्डितः ॥ योगेश्वरेण कृष्णेन तासां मध्ये द्वयोर्द्वयोः ॥ प्रविष्टेन गृहीतानां कण्ठे स्वनिकटं स्त्रियः ॥ ३ ॥ यं मन्येरन् नभस्तावद्विमानशतसङ्कुलम् ॥ दिवौकसां सदाराणामौत्सुक्यापहृतात्मनाम् ॥ ४ ॥ ततो दुन्दुभयो नेदुर्निपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥ जगुर्गन्धर्वपतयः सस्त्रीकास्तद्यशोऽमलम् ॥ ५ ॥ वलयानां नूपुराणां किङ्किणीनां च योषिताम् ॥ सप्रियाणामभूच्छब्दस्तुमुलो रासमण्डले ॥ ६ ॥ तत्रातिशुशुभे ताभिर्भगवान् देवकीसुतः ॥ मध्ये मणीनां हैमानां महामारकतो यथा ॥ ७॥ पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासैर्भज्यन्मध्यैश्चलकुचपटैः कुण्डलैर्गण्डलोलैः ॥ स्विद्यन्मुख्यः कबररशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः ॥ ८॥ उच्चैर्जगुर्नृत्यमाना रक्तकण्ठ्यो रतिप्रियाः ॥ कृष्णाभिमर्शमुदिता यद्गीतेनेदमावृतम् ॥ ९ ॥

मुरली मुरचंगकी घोर, सितार सहनाईके सुरन, नगारनकी घुरन, झांझ झालरनकी झंकार, और शंखनकी भंकार मृदंगनकी परन, वीननकी बजन, खंजरीनकी घुमकन, तबलानकी गुमकन, डौरूनकी डमकन, मर्जीरानकी खमकन, करतालनकी कटकन, ताननकी गटकन, सुरन मंडलके सुरन, सुरवीननकी नुरन, सुतारकी इचन, सारंगीनकी खिचन, मुरलीकी बजन, गोपिनकी सजन, फूलनकी वर्षन, देवनकी हर्षन, अनंदनकी हरसन, सुरनकी सरसन, गंधर्वादिकनकी तरसन, तथेइकरकै चरणकी धरन, वाजेनकी परन, मुकुटनकी लटकन, अलकनकी छिटकन, पटुकाकी कसन, वाजुनकी फसन, गजानकी गसन, मनकी फसनसै आनन्दसै आप रासमण्डलमें आय अंगकूं झुकायकै तान बोले " आ आई आति आआ अति अइ अति आ आति आ आति आआ, आतिज्योत्स्नावलांगं नटदिव पुलिनं राधिके पश्य आरे आ आई आति आ आ नटति च विपिनं मंदवातेरितं आ, आ आ आ एति कृष्णः पुनरिह निगदन् सालसांगं ननर्त " याप्रकार श्रीकृष्णनै गायकर ऐसी अद्भुतताकरी कि सबही वस्तु तहां श्याम वर्ण दीखनै लगी वासमय दोहा--हंस हरनखंजनवका, सारस सरस विलास! सखी पुष्पवृंदा विपिन, भये श्याम सुखरास॥ऐसीअधिकता कृष्णकी देख सबन्नै वलिहार वलिहारकर पुष्पनकी वृष्टि कीनी. राई नौनलीनौ, फिर आप विराजे, तब सखियौंने राधेजीसैं विनन्ती कीनी की आपतौ यूथेश्वरीहो, हमकूं कृतार्थ करिवेकूं कछु श्रीमुखसौं उच्चारण करो. तब प्रियाजी उठीं रास स्थलमें आय मुख मुस्काय चरण चलाय मेघ घटामें सै विजुरीकीसी छटा छूट छमाक उतरकै गान सहित संगीतकी गिट किरीकी तान बोली " आई आइ अने प्रियहासश्चंद्रति कुंदति हंसति आरै क्षीरति हीरति हाराति हारे आइ अआ इति नृत्यतिराधा " वा समय प्रियाजीके शरीरसैं ऐसी कांति निकसी कि सब पीत होगये दोहा--कोकिल भृंग कुरंग पिक, चातक वृक्षसफूल। वृंदावन और मोर सब, श्वेतभये सुखमूल ॥ वा समय राग रागिनी अपनी देहधार आये भैंरो राग, मालकोश, हिंडोल, मेघ, श्रीराग, दीपक, रागनी भैरवी बंगाली मधुमाधवी सिंधवी टोडी गौरी गुनकली खम्माच रामकली परमंजरी ललित देश विलावल नट काहुरो केदारो कामोद धनाश्री आसावरी मारू वसन्त मालसिरी भूपाली गुर्जर देसी मलार अथराम. जंगला सूहा अडानौ सारंग सोरठ पूर्वी झझोटी विहाग विभास विहागरो वरुवो सोहनी काफी इमनी देवगिरी देवगन्धार बसन्त कामीर सुखी जैजैवंती कारी कल्यान जैतश्री दोहा--कहैरागिनी कहांलों,जिनको नाहिंन पार। विरहमयी सब जानिये, इनको बहु विस्तार॥ याप्रकारसैं कृष्णचंद्र रासविलास करत भये. तासमय

य तासूं बडो जिनके आनंद वे गोपी नृत्य करत ऊंचे स्वरसे गावत भई जिनको गीत या विश्वमें छायरह्यो ॥ ९ ॥ कोई गोपी मुकुंद श्रीकृष्ण के संग उच्चस्वरनकी अलापनकी गतिनकूं उठावतभई, कैसे स्वरनकी जाति लीनी, श्रीकृष्णने जो स्वर उठायोहै तिनमें मिली हैं, तब श्रीकृष्ण प्रसन्न होयके स्याबास स्याबास ऐसे बडाई करतभये ताते स्वरनकी जाति लीनीही तिनकूं ध्रुव तालमें बांधिके गावत गोपी प्रशंसा करतभई तब वा गोपीको श्रीकृष्ण बहुतमान देतभये ॥ १० ॥ कोई गोपी रासमें श्रमित होयके पासमें गदाके धारण करनवारे श्रीकृष्ण ठाढे हैं तिनके कंधाकों हाथते पकरतभई कंकण चूरी फूलनके हार जाके शिथिल होगये यहां गदा वंशीही जाननी काहेतै गोपियोंके हृदयको चूरकरै है ॥ ११ ॥

काचित् समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः॥उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधु साध्विति ॥ तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात् ॥१०॥ काचित् रासपरिश्रान्ता पार्श्वस्थस्य गदाभृतः ॥ जग्राह बाहुना स्कन्धं श्लथद्वलयमल्लिका ॥११॥ तत्रैकांसगतं बाहुं कृष्णस्योत्पलसौरभम्॥चन्दनालिप्तमाघ्राय हृष्टरोमा चुचुम्ब ह ॥१२॥कस्याश्चिन्नाट्यविक्षिप्तं कुण्डलत्विषमण्डितम् ॥ गण्डे गण्डं संदधत्या अदात् ताम्बूलचर्वितम् ॥ १३ ॥ नृत्यन्ती गायती काऽपि कूजन्नूपुरमेखला॥ पार्श्वस्थाच्युतहस्ताब्जं श्रान्ताऽधात् स्तनयोः शिवम् ॥ १४ ॥ गोप्यो लब्ध्वाऽच्युतं कान्तं श्रिय एकान्तवल्लभम् ॥ गृहीतकण्ठ्यस्तद्दोर्भ्यां गायन्त्यस्तं विजह्रिरे ॥ १५ ॥ कर्णोत्पलालकविटङ्ककपोलघर्मवक्त्रश्रियो वलयनूपुरघोषवाद्यैः ॥ गोप्यः समं भगवता ननृतुः स्वकेशस्रस्तस्रजो भ्रमरगायकरासगोष्ठ्याम् ॥ १६ ॥

तासमय रोमांच जाके होय आए ऐसी एक गोपी कमलकी तुल्य सुगंधि वारी आय चंदनसे चर्चित श्रीकृष्णकी भुजाको अपने कंधापै धरिके चुंबन करतभई ॥ १२ ॥ नृत्यसूं चलायमान कपोलनकूं श्रीकृष्णके कपोलनते लगावती गोपीकूं श्रीकृष्णके बीरीको जूंठन देतभये ॥ १३ ॥ नूपुर कन्धनी जाके बजे ऐसी कोई एक गोपी नृत्य करत गावत श्रमको पाय तब पास श्रीकृष्ण ठाढेहै तिनको मंगलरूप हस्तकमल अपने स्तनपै धरतिभई ॥ १४ ॥ लक्ष्मीकूं अत्यंत प्यारे अच्युत श्रीकृष्णचंद्रकूं सुंदर पति पाइके तिनकी भुजानसूं कंठमें गलबांही डारिके गोपी श्रीकृष्ण को गावती विहार करतभई ॥ १५ ॥ उस रास मंडलमें स्त्रियौं सहित गंधर्व और किन्नरादिक जो बाजे बजाय रहेथे और गवैये बन गाय रहेथे वे सब

रासरसमें मोहित होय नृत्य करन लगे वासमय कंकण और नूपुर बाजेको कार्य और भौंरा गवैयेको कार्य करैहे रास मंडलमें ब्रजवनिता
कृष्णके संग नृत्य करती हुईं शोभा पाय रहीथीं तिनके काननके कमल अलकौंसें युक्त कपोल और प्रस्वेदकी बूंदनकी शोभा मुखपै छायरही
नृत्य समय जो फूलौंकी माला गिरैंहीं तिनसौं ऐसी शोभा होयरही मानो तालनकी गतिसैं प्रसन्न होय केश शिर हलाय चरणनपर
फूलनकी वर्षा कररहे हैं ॥ १६ ॥ या प्रकार लक्ष्मीके पति श्रीकृष्ण आलिंगन, हाथनको स्पर्श स्नेहभरी चितवनि बडे विलास हाससूं जैसे
बालक अपनी परछांईसूं खेलै है, तैसे ब्रजसुंदरीनके संग रमण करत भये ॥ १७ ॥ हे कुरूद्वह अर्थात् कौरवनके वंशको आनंदको देनवारे
राजा परीक्षित् ! तिन श्रीकृष्णके अंगमें जो आनंद तासूं विवस हैं इंद्रिय जिनकी और खिसिले हैं माला गहने जिनके ऐसी ब्रजकी स्त्री गोपी हैं

एवं परिष्वङ्गकराभिमर्शस्निग्धेक्षणोद्दामविलासहासैः ॥ रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिर्यथाऽर्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः
॥ १७ ॥ तदङ्गसङ्गप्रमदाकुलेन्द्रियाः केशान् दुकूलं कुचपट्टिकां वा ॥ नाञ्जः प्रतिव्योढुमलं व्रजस्त्रियो विस्रस्तमालाभरणाः
कुरूद्वह ॥ १८ ॥ कृष्णविक्रीडितं वीक्ष्य मुमुहुः खेचरस्त्रियः ॥ कामार्दिताः शशाङ्कश्च सगणो विस्मितोऽभवत्
॥ १९ ॥ कृत्वा तावन्तमात्मानं यावतीर्गोपयोषितः ॥ रेमे स भगवांस्ताभिरात्मारामोऽपि लीलया ॥ २० ॥ तासामतिविहारेण
श्रान्तानां वदनानि सः ॥ प्रामृजत् करुणः प्रेम्णा शन्तमेनाङ्ग पाणिना ॥ २१ ॥

ते केशनकूं शरीरनकूं कुचनकूं वस्त्रनकूं समावरेकूं न समर्थ होत भईं ॥ १८ ॥ श्रीकृष्ण की रासक्रीडा देखिके आकाशमें देवांगना कामसूं
पीडित होयके मोहित होत भईं, तारागण सहित चंद्रमा आश्चर्य मानके चलिबो भूलिगयो तब और ग्रहभी जहांके तहां रहत भये, तासूं
राति जो बढिगई तिनमें सुखपूर्वक बिहार करतभये ॥ १९ ॥ जितनी गोपनकी स्त्री हीं तितनेही अपने रूप करिके आत्माराम भगवान्
श्रीकृष्ण गोपिनके संग लीला करत भये ॥ २० ॥ अत्यंत बिहारसूं श्रम जिनको भयो ऐसी गोपीनके मुखसे पसीनाको देखिको करुणाको
प्राप्त हो श्रीकृष्ण प्रेमसे सुखके देनवारे अपनो हाथसूं उनके मुख पोंछत भये ॥ २१ ॥

वे मानवती गोपी श्रीकृष्णचंद्रके हस्तकमल नखस्पर्शसें महासुख पाय प्रकाशमान सुवर्णके कुंडलसे कान्तिमान कपोल और रसभरी चितवन और मुसिकानि युक्त श्रेष्ठगुण भरे श्रीकृष्णकी वे पूजा करके सुंदर चरित्र गावती भई ॥ २२ ॥ मर्यादाको उल्लंघन करनहारे श्रीकृष्ण जब रास विलास करते २ थकित हुए तव तिन गोपिनकों संग लैके श्रम दूरि करिवेके लिये जलमें धसत भये, कुचनकी केशर जामें लगी, अंग संगसूं

गोप्यः स्फुरत्पुरटकुण्डलकुन्तलत्विङ्गण्डश्रिया सुधितहासनिरीक्षणेन ॥ मानं दधत्य ऋषभस्य जगुः कृतानि पुण्यानि तत्कररुहस्पर्शप्रमोदाः ॥ २२ ॥ ताभिर्युतः श्रममपोहितुमङ्गसङ्गघृष्टस्रजः स कुचकुङ्कुमरञ्जितायाः ॥ गन्धर्वपालिभिरनुद्रुत आविशद्वाः श्रान्तो गजीभिरिभराडिव भिन्नसेतुः ॥ २३ ॥ सोऽम्भस्यलं युवतिभिः परिषिच्यमानः प्रेम्णेक्षितः प्रहसतीभिरितस्ततोऽङ्ग ॥ वैमानिकैः कुसुमवर्षिभिरीड्यमानो रेमे स्वयं स्वरतिरत्र गजेन्द्रलीलः ॥ २४ ॥

रिगडी मालाकी सुगंधिसूं मोहित भौंरा गंधर्वनकी तुल्यगावत पीछे२चले जाय हैं, जैसे हाथिनीनकूं संग लैके हाथी जलविहार करिवेकूं जायहै॥२३॥अंग अर्थात् हे राजन् परीक्षित ! इत उतते जलमें स्त्रीनकूं छींटा देय हैं, श्रीकृष्णकूं देखिके प्रेमते हंसैं हैं, भगवानको जलतैं भिजोमें हैं विमानमें बैठे देवता स्तुति करैं पुष्पनकी वर्षा करैं, हाथीकी तुल्य जिनकी लीला ऐसे आत्माराम श्रीकृष्ण तहूं जलमें अथवा गोपिनके मंडलमें विहार करतभये ॥२४॥

---

१ जासमय जलविहार करते समय व्यंग वचन बोलेकि—" उत्तिष्ठारात्तरिमें तरुणि मम तरौ शक्तिरारोहणे का मुग्धे प्रस्तौमि चारु तरणिमथ रवौ का वधूर्गन्तुमीष्टे। वार्तेयं नौप्रसङ्गे कथमपि भविता नावयोः सङ्गमायां वार्तापीति स्मितास्यं जितगिरमजितं राधयाराधयामि ॥ " हे तरुणि उत्तिष्ठारात् इत्यादिवाक्यको व्यंग्यार्थ सुनके प्रसन्नमुख हो जिन अजितकी वाणी राधाने जीतलीहै उनका मैं आराधन करूंहूं (आरात्) समीपमें (तरिः) नौका है (अस्मिन् तरौ) उसमें (आरोहणं कुरु) चढो यह तौ कृष्णने कही तब राधा बोली (तरौ आरोहणे मम का शक्तिः) वृक्षके चढनेमें मेरी क्या शक्ति है ? कृष्ण बोले हे मुग्धे (तरणिं प्रस्तौमि) तुम्हे तरणि कहूंहूं. राधा बोली तरणि नामसूर्यको है सो (रवौ का वधूर्गन्तुमीष्टे) सूर्यमें कौनसी वधूके पास जायवेकी इच्छा है कृष्णने कही (वार्तेयं नौप्रसङ्गे) यह तौ नावप्रसंगको वार्ता है राधिका बोली (नावयोः संगमायां) हमारे आपके नूतन सङ्गकी वार्ता कैसे न भई, याप्रकार राधासें जीतेभये कृष्णको आराधन करूं हूं ॥

जल विहार करे पीछे जलके स्थलके पुष्पनकी सुगंधी भरी पवन जिसके सब दिशाओंमें व्याप्त होरही है ऐसे जो यमुनाजीके बागमें भौंरा गोपिनके संग श्रीकृष्णचंद्र विहार करत भये जैसे मदस्रावी हाथी हथिनीनके संग विहार करैं हैं ॥ २५ ॥ या प्रकारसैं सत्य संकलपभगवान् चंद्रमाकी किरणोंसैं शोभायमान वा शरदऋतुकी रात्रिमें साहित्य काव्यनमें जो करनेकी विधि लिखी है वह स्नेहभरी गोपिनके संग वीर्यको धारण कर करते भये जितनी गोपी तितनेही श्याम उतनेही कुंजनमें फूलनकी शय्यापर पौढे हंसते हंसाते कोमल बातेंकरत जांय हैं ॥ २६ ॥ राजा परीक्षित प्रश्न करै है

ततश्च कृष्णोपवने जलस्थलप्रसूनगन्धानिलजुष्टदिक्तटे॥चचार भृङ्गप्रमदागणावृतो यथा मदच्युद् द्विरदः करेणुभिः
॥ २५ ॥ एवं शशाङ्कांशुविराजिता निशाः स सत्यकामोनुरताबलागणः ॥सिषेव आत्मन्यवरुद्धसौरतः सर्वाः शरत्का-
व्यकथारसाश्रयाः ॥ २६ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च ॥ अवतीर्णो हि भगवानंशेन
जगदीश्वरः ॥ २७ ॥ स कथं धर्मसेतूनां वक्ता कर्त्ताऽभिरक्षिता ॥ प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम् ॥ २८ ॥
आप्तकामो यदुपतिः कृतवान् वै जुगुप्सितम् ॥ किमभिप्राय एतं नः संशयं छिन्धि सुव्रत ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणां च साहसम् ॥ तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा ॥३०॥

हे महाराज शुकदेवजी! धर्म के स्थापन करिवेके लिये और अधर्मके नाश करिवेके लिये जगतके ईश्वर श्रीकृष्ण भगवान् परिपूर्ण रूप करिके अवतरे हैं ॥ २७ ॥ और धर्मकी मर्यादानके करनवारे रक्षा करनवारे श्रीकृष्ण बिरानि स्त्रीनको स्पर्श करनो यह अधर्म कैसें करतभये ॥ २८ ॥ पूर्णकाम यादवनके पति श्रीकृष्ण निंदित कर्म कैसें करतभये याको कहा अभिप्राय है हे सुंदर व्रतवारे! शुकदेवजी ! यह हमारो संदेह दूरि करौ॥२९॥ यह बचन श्रवण करिके श्रीशुकदेवजी बोले हे राजन् ! सामर्थ्यमानकूं धर्म्मको उलांघिवो देख्यो है और सामर्थ्यमानकूं साहसहू देख्यो है

---

१ बडोंकी रीत न करै उसमें पीछे पछताना पडै है, एक राजा रानीने संमतिकरी कि हमारे यहां भी अनेक युद्ध हुएहैं, ऐसो महाभारत बनवानो चाहिये यह विचार पंडितों को बुलाकर कहाकि एक हमारे नामका भी महाभारत बनाओ, परन्तु बोह व्यासजीके महाभारतसे किसी वातमें कमती न होय चाहै बढती होय, नहीं तो तुम्है देशसे निकालूंगा ब्राह्मण आपसमें सम्मतिकर राजाके पास जाय कहने लगे, महाराज महाभारत बनानेकी सामग्री सब प्रस्तुतहै, सब बातें अधिकही कैरेंगे, पर एक बात आप बताइये राजाने कह्यो कहा ? ब्राह्मण बोले महाभारतमें द्रौपदीके पांच पति थे, आपकी रानीके उस्से अधिक कितने लिखैं सो बताइये और उनके नामवर्णन कीजिये, सुन्तेही राजा की बुद्धि लोप होगई, घबडाकर बोला महाराज क्षमाकरो मुझे महाभारत लिखाने की सामर्थ नही, बडोंके चरित्रपै शंका नहीं करनी चाहिये ॥ समरथको नहीं दोस गुसाई ॥ रबि पावक सुरसरि की नाई ॥

जैसे अग्निमें बुरी भली वस्तु डारो ताकूं जरायदेइ वाकूं दोष नहीं लगै है ऐसे तेजस्वी पुरुषनकूं दोष नहीं लगै है ॥ ३० ॥ सामर्थ्यवान पुरुषनके
करे कर्मकूं मनसेहू न करे, और जो अज्ञानते करे तो मारो जाय, जैसे रुद्रबिना और कोई समुद्रके विषकूं पीवे तो मारोजाय ॥ ३१ ॥ ईश्वर
के वचनहीको सत्य माने, और उनके आचरणकूं कहूं सत्य मानै, जैसो उनने कह्यौ है ताहीके अनुसार बुद्धिमान पुरुष करे, राम कृष्ण दोऊ
अवतार भये है, रामचंद्रने जैसो कह्यो तैसोही करो है याते उनको करनो कहनो दोनों करै, श्रीकृष्णने गीतामें जो कह्यो है ताय करै, और जो
उनने लीला करी है तिनको न करे, किंतु ध्यान करै ॥ ३२ ॥ हे प्रभो अर्थात् राजन् परीक्षित् ! या संसारमें अहंकार जिनके नहीं ऐसो सामर्थ्यवान्
पुरुष जो अच्छो कर्म करे तासूं उनको पुण्य नहीं होय है, और निकृष्ट कर्म करनेसूं पाप नहीं होय है, पुण्य पाप तो देहमें अहंकारके वशसूं

नैतत्समाचरेज्जातु मनसाऽपि ह्यनीश्वरः ॥ विनश्यत्याचरन्मौढ्याद्यथा रुद्रोब्धिजं विषम् ॥ ३१ ॥ ईश्वराणां वचः
सत्यं तथैवाचरितं क्वचित् ॥ तेषां यत् स्ववचो युक्तं बुद्धिमांस्तत् समाचरेत् ॥३२॥ कुशलाचरितेनैषामिह स्वार्थो
न विद्यते ॥ विपर्ययेण वाऽनर्थो निरहङ्कारिणां प्रभो॥३३॥किमुताखिलसत्त्वानां तिर्यङ्मर्त्यदिवौकसाम् ॥ ईशितु-
श्चेशितव्यानां कुशलाकुशलान्वयः ॥३४॥ यत्पादपङ्कजपरागनिषेवतृप्ता योगप्रभावविधुताखिलकर्मबन्धाः ॥ स्वैरं
चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमानास्तस्येच्छयाऽऽत्तवपुषः कुत एव बन्धः ॥३५॥गोपीनां तत्पतीनां च सर्वेषामेव देहिना-
म् ॥ योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः क्रीडनेनेह देहभाक् ॥ ३६ ॥

लगै हैं, अहंकाररहित पुरुषकूं कछु दोष नहीं है ॥ ३३ ॥ जब और महात्माओंको भी पाप पुण्य नहीं लगै हैं तब समस्त प्राणी पशु पच्छी
मनुष्य देवता जीव इनके ईश्वर श्रीकृष्णकूं पुण्य पाप नहीं लगै है यामें कहा कहनो है ॥ ३४ ॥ जिनके चरणारविंदके पराग अर्थात् मक
रंदको सेवन करे ते तृप्त होयकर भक्त जन और योगके प्रभावसों संपूर्ण कर्म बन्धन दूरकर मुनीश्वर ज्ञानी बन्धनसूं रहित होयके अपनी इच्छा-
पूर्वक विचरें हैं, तौ इच्छाकरिके शरीर धारण करनेहारे भगवान् श्रीकृष्णचंद्रकूं बन्धन कहांते होय ॥ ३५ ॥ गोपी और तिनके पतिनके सम्पूर्ण
देहधारीनके साक्षी रूप होयके जो देहके भीतर रहैं हैं, तिन श्रीकृष्णने क्रीडा करिवेके लिये देह धारण करो है यासै श्रीकृष्णमें कछु दोष

नहीं आवै है कारणकि सर्वत्र वही रमणकर रहैं हैं बाहर भीतर व्याप्त हैं ॥ ३६ ॥ प्राणीनके ऊपर अनुग्रह करिवेके लिये मनुष्यदेह धारण करिके ऐसी मनुष्यलीला करी है जिन लीलानके श्रवण करेते मनुष्य कृष्णपरायण होय जाय ॥ ३७ ॥ ता श्रीकृष्णकी मायामें मोहित ब्रजवासी श्रीकृष्णको दोष नहीं लगावत भये अपनी अपनी स्त्रीनको अपने अपने पास मानत भये ॥ ३८ ॥ ब्राह्म मुहूर्त अर्थात् चारघडी रात्रि रहे श्रीकृष्णके कहेते घर

अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमास्थितः ॥ भजते तादृशीः क्रीडा याः स्मृत्वा तत्परो भवेत् ॥ ३७ ॥ नासूयन् खलु कृष्णाय मोहितास्तस्य मायया ॥ मन्यमानाः स्वपार्श्वस्थान् स्वान् स्वान् दारान् व्रजौकसः ॥ ३८ ॥ ब्रह्मरात्र उपावृत्ते वासुदेवानुमोदिताः ॥ अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः स्वगृहान् भगवत्प्रियाः ॥ ३९ ॥ विक्रीडितं व्रजवधूभिरिदं च विष्णोः श्रद्धान्वितोनुशृणुयादथ वर्णयेद् यः ॥ भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे रासक्रीडावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

आइवे की इच्छा जिनके नहीं ऐसी प्यारी गोपी अपने अपने घरकूं आवतभई[1] ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्णचंद्र भगवानको परम कौतुक जो व्रजवधू गोपीनके संग रास लीला है ताय जो पुरुष श्रद्धा पूर्वक श्रवणकरे[2] और कथन करे,वह पुरुष भगवानमें परमभक्ति पायके थोरे दिनमें धीर होयके शीघ्रही हृदय के कामरूप रोगको त्यागै है ॥ ४० ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कंधे रासक्रीडावर्णनं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

---

१ कृष्णचंद्रके ध्यान करिवेको भावनाकी कुंज, भक्तिकी भावना भूमि, ध्यान की रज, मनके महल, भावनाकी भीत, दास्यताके द्वार दल्लान, दीनताकी देहरी दिवाल दीपक और दीवट, कीर्तन के किवाड कटहरा कील और कडा हैं, चाहके चबूतरा चौखट चौक चौबारे चित्रसारी, वंदनाकी वंदनवार आसन, आत्मनिवेदनके आरे, विह्वलताके बंगला बाजू औवारोठे बिछावट हैं, श्रवणकी सुवढा सीढी सोठ, कंपकी कचहरी कलसा है, रागकी रावटी, रासस्थल तत्वनके तकिया, जिनपैराधी गद्गदताकी गली गलीचा, गद्दी, गिलम, रोमांचौकी रोसनी है, समाधिके सिंहासन सुखसेज है जिनपै चित्तनकी सुपेद चद्दर है. तत्वनके तकिया, जिनपै राधिका कृष्ण पौढे हैं चित्तकी चिक है जुगलनाम ड्योढीदार है जो इन दोनोंतें ध्यान लगावै वह चितरूपी चितसूं दर्शन पावै, नहीं तो नामकीर्तन विना पछतावै ॥ ॥ २ परमेश्वरके चरित्र बडे भाग्यसे सुननेको मिलैं हैं, बुढिया कथा सुनैकूं बडी कहा सुनीसे गई, पीछेमें कटोरा जातोरहो, दूसरेदिन कथामें नआई लुगाइयोंने कही बुढिया तू कथा सुनने न आई बोलीकि भैना खर्चे बहुत पडै है,पहले दिन गई तो कटोरा गया,और सुनूंगीतौ आठही दिनमें थालीलोटे परात सब खो बैठुंगी इस कारण मेरीतौ कथाको दूरसेही दंडवत है ॥

श्रीशुकदेव जी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित्! एक समय बडे उत्साहसैं व्रजवासी देवीकी यात्रा करिवेके लिये बैलोंको जोत गाड़ानमें बैठिके देवीके वनमें जात भये॥ १ ॥ हे राजन् ता वनमें सरस्वती नदीमें स्नान करिके पशुपति महादेव तिनकी भक्तिपूर्वक पूजा करिके अंबिका देवीकी पूजा करतभये ॥ २ ॥ संपूर्ण व्रजवासी महादेव हमारे ऊपर प्रसन्न होय या कारण मधुयुक्त मधुर अन्न गौ ब्राह्मणकूं दान करतभये ॥३॥ बडे भाग्यवारे नंदसूं आदिलेके समस्त व्रजवासी वा दिन रात्रिकूं जलको आचमन करिके तीर्थ व्रत करते सरस्वतीके किनारे बसतभये ॥४॥ वा वनमें कोई एक अत्यंत भूखो सर्प अकस्मात्

श्रीशुक उवाच ॥ एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः ॥ अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥ १ ॥ तत्र स्नात्वा सरस्वत्यां देवं पशुपतिं विभुम् ॥ आनर्चुरर्हणैर्भक्त्या देवीं च नृपतेऽम्बिकाम् ॥२॥ गावो हिरण्यं वासांसि मधु मध्वन्नमादृताः ॥ ब्राह्मणेभ्यो ददुः सर्वे देवो नः प्रीयतामिति ॥ ३ ॥ ऊषुः सरस्वतीतीरे जलं प्राश्य धृतव्रताः ॥ रजनीं तां महाभागा नन्दसुनन्दकादयः ॥ ४ कश्चिन्महानहिस्तस्मिन् विपिनेऽतिबुभुक्षितः ॥ यदृच्छयाऽऽगतो नन्दं शयानमुरगोऽग्रसीत् ॥ ५ ॥ स चुक्रोशाहिना ग्रस्तः कृष्ण कृष्ण महानयम् ॥ सर्पो मां ग्रसते तात प्रपन्नं परिमोचय ॥ ६ ॥ तस्य चाक्रन्दितं श्रुत्वा गोपालाः सहसोत्थिताः ॥ ग्रस्तं च दृष्ट्वा विभ्रान्ताः सर्पं विव्यधुरुल्मुकैः ॥ ७ ॥ अलातैर्हन्यमानोऽपि नामुञ्चत्तमुरङ्गमः ॥ तमस्पृशत् पदाऽभ्येत्य भगवान् सात्त्वतां पतिः ॥ ८ ॥ स वै भगवतः श्रीमत्पादस्पर्शहताशुभः ॥ भेजे सर्पवपुर्हित्वा रूपं विद्याधरार्चितम् ॥ ९ ॥

आयके नंदरायजीको ग्रसतभयो ॥५॥ सर्पसे ग्रसितहोय नंदरायजी पुकारतभये हे कृष्ण! हे कृष्ण! यह बडो सर्प है मोको निगले जाय है हे पुत्र! मैं तेरी शरण आयोहूं तू मोको छुडाउ ॥६॥ या प्रकार नंदजीकी पुकार सुनिके हरबराटसे व्रजवासी शीघ्रही उठिके नंदजीकूं सर्प निगले है ऐसे देखिके सिलगती लकरियानसूं सर्पकूं मारतभये ॥७॥ सिलगती लकरियानसूं मारो तथापि नंदरायजीको न छोडतभयो, तब भक्तनकी रक्षा करनवारे भगवान् श्रीकृष्णचंद्र वा सर्पके चरननकी ठोकर मारतभये ॥८॥ भगवान् श्रीकृष्णको सुंदर जो चरण है ताके लगेसे पाप जाके दूरभये वह सर्प देहको त्यागिके विद्याधर

240

जाको पूजनकरैं ऐसे स्वरूपको धारण करतभयो ॥९॥ प्रकाशमान रूपको धरिके सुवर्णकी माला पहिरे हाथ जोरि ठाढो जो पुरुष है ताय श्रीकृष्ण पूंछतभये ॥ १० ॥ परमशोभायमान अद्भुत दर्शन तुम कौन हौ विवस होयके यह निंदित सर्पकी योनि तुमको कैसी मिली है ॥ ११ ॥ यह सुनिके वह सर्प बोल्यो हे महाराज! सुदर्शन नाम करिके विख्यात मैं कोई विद्याधर हों, संपत्ति और शरीरकी जो सुंदरता है तासूं गर्वित होयके विमानमें बैठिके दिशानमें विचरत भयो ॥ १२ ॥ एक समैं मैंने रूपके मदसौं मत्त होयकै कुरूप अंगिरादि ऋषियौंकि हांसी करी तब उन्हेंाने मुझे शाप दियो तासौं मेरी सर्पयोनि होगई ॥ १३ ॥ करुणावान् ऋषीश्वरनने मेरे ऊपर कृपा करिवेके लिये मोको शाप

तमपृच्छद्धृषीकेशः प्रणतं समुपस्थितम् ॥ दीप्यमानेन वपुषा पुरुषं हेममालिनम् ॥१०॥ को भवान् परया लक्ष्म्या रोचतेऽद्भुतदर्शनः ॥ कथं जुगुप्सितामेतां गतिं वा प्रापितोऽवशः ॥ ११ ॥ सर्प उवाच ॥ अहं विद्याधरः कश्चित्सुदर्शन इति श्रुतः ॥ श्रिया स्वरूपसम्पत्त्या विमानेनाचरं दिशः ॥१२॥ ऋषीन् विरूपानङ्गिरसः प्राहसं रूपदर्पितः॥ तैरिमां प्रापितो योनिं प्रलब्धैः स्वेन पाप्मना॥१३॥ शापो मेऽनुग्रहायैव कृतस्तैः करुणात्मभिः ॥ यदहं लोकगुरुणा पदा स्पृष्टो हताशुभः ॥ १४ ॥ तं त्वाऽहं भवभीतानां प्रपन्नानां भयापहम् ॥ आपृच्छे शापनिर्मुक्तः पादस्पर्शादमीवहन् ॥१५॥ प्रपन्नोऽस्मि महायोगिन् महापुरुष सत्पते ॥ अनुजानीहि मां देव सर्वलोकेश्वरेश्वर ॥१६॥ ब्रह्मदण्डाद्विमुक्तोऽहं सद्यस्तेऽच्युतदर्शनात् ॥ यन्नाम गृह्णन्नखिलान् श्रोतॄनात्मानमेव च ॥ १७ ॥

दियो जाकारणते त्रिलोकीके गुरु तुम हौं तिनके चरणारविंदको स्पर्श करेते पाप दूर भये और जो वे शाप न देते तो तुम्हारे चरण मेरे कहांते लगते ॥१४॥ संसारते डरपिके शरण आये पुरुषके भयके दूर करनवारे तुम हौ तिनको पूछों हौं हे सब पापनके दूरि करन वारे! तुम्हारे चरण स्पर्शसूं मेरे सब पाप दूरि होयगये॥१५॥ हे महायोगिन्! हे महापुरुष! हे महासाधुनके पति! हे प्रकाशमान! हे समस्तलोकनके ईश्वर! हे ईश्वरके ईश्वर! तुम्हारी शरण आयो जो मैं हों सो मोको आज्ञा देऊ ॥ १६ ॥ हे अच्युत अर्थात् अखंडरूप! तुम्हारो दर्शन करते शीघ्रही

ब्राह्मणके शापते छूटिगयो, जिनको नामोच्चारण करेते वक्ता श्रोतानकूं और अपनेनकूं पवित्र करैहै ॥ १७ ॥ तुम्हारे चरणस्पर्शते मैं पवित्र भयो यामें कहा कहिनो है याप्रकार दाशार्हवंशमें भये श्रीकृष्णकी आज्ञा लेके परिक्रमा दे प्रणाम करिके वह सुदर्शन स्वर्गकूं जातभयो, और नंदरायजी कष्टते छूटतभये ॥ १८ ॥ श्रीकृष्णचंद्रको वैभव देखिके आश्चर्यकूं प्राप्त होय ब्रजवासी तापीछे तीर्थमें नेमकूं पूरण करिके बडे आनंदते श्रीकृष्ण चंद्रके चरित्रको कहते ब्रजमें आवतभये ॥ १९ ॥ काहू समय एक यात्राके पीछे गोविंद और अद्भुत पराक्रमवारे बलराम दोनों भैया वनके विषे रात्रिमें ब्रजकी स्त्रीनके बीचमें विहार करतभये ॥ २० ॥ स्नेहसे बद्ध होनेके कारण ललित स्त्रियें श्रीकृष्णके चरित्र गा रहीथीं और दोनों भैया

सद्यः पुनाति किं भूयस्तस्य स्पृष्टः पदा हि ते ॥ इत्यनुज्ञाप्य दाशार्हं परिक्रम्याभिवन्द्य च ॥ सुदर्शनो दिवं यातः कृच्छ्रान्नन्दश्च मोचितः ॥ १८ ॥ निशम्य कृष्णस्य तदात्मवैभवं व्रजौकसो विस्मितचेतसस्ततः ॥ समाप्य तस्मिन् नियमं पुनर्व्रजं नृपाऽऽययुस्तत् कथयन्त आदृताः ॥ १९ ॥कदाचिदथ गोविन्दो रामश्चाद्भुतविक्रमः ॥ विजह्रतुर्वने रात्र्यां मध्यगौ व्रजयोषिताम् ॥ २० ॥ उपगीयमानौ ललितं स्त्रीजनैर्बद्धसौहृदैः ॥ स्वलङ्कृतानुलिप्ताङ्गौ स्रग्विणौ विरजोम्बरौ ॥ २१ ॥ निशामुखं मानयन्तावुदितोडुपतारकम् ॥ मल्लिकागन्धमत्तालिजुष्टं कुमुदवायुना ॥ २२ ॥ जगतुः सर्वभूतानां मनःश्रवणमङ्गलम् ॥ तौ कल्पयन्तौ युगपत् स्वरमण्डलमूर्च्छितम् ॥ २३ ॥ गोप्यस्तद्गीतमाकर्ण्य मूर्च्छिता नाविदन्नृप ॥ स्रंसद्दुकूलमात्मानं स्रस्तकेशस्रजं ततः ॥ २४ ॥

सुंदर आभूषण पहिरे केशर चंदन लगाये वनमाला और निर्मल वस्त्र पहरे ॥ २१ ॥ रात्रिके प्रारम्भ होनेसे तारागण और चंद्रमाका उदय हो रहा है चमेलीकी सुगंधिसों मत्त होयके भौंरा गुंजार करे हैं, फूली कुमोदनीसे लगके पवन चल रही है ॥ २२ ॥ ताकी सराहना करते सब प्राणियोंके मन और कानको आनंद दायक संग स्वरके मंडलोंकी मूर्छना करते गान करनलगे ॥ २३ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! कृष्ण बलदेवको गायवो सुनिके मूर्छाको प्राप्तहो गोपीनके वस्त्र ढीले होय गये चोटीनकी गांठ खुलि गई तिनसे फूलोंकी माला गिरगई और अपनेकूं न जानत भई ॥ २४ ॥

या प्रकार कृष्ण बलदेव दोनों भैया मतवारेकी तुल्य क्रीडा करत गान करत है इतनेमें शंखचूड नाम कुबेरको टहलुआ आवत भयो ॥ २५ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! कृष्ण बलदेवके देखत निर्भय होय शंखचूड उन गोपियोंके समूहको जिसके स्वामी कृष्ण बलदेव हैं लेकर उत्तरकी ओर चल्यो तासमय वे पुकारीं ॥ २६ ॥ जैसे सिंहकी पकरी गौ पुकारै है तैसे हे कृष्ण ! बलदेव ! या प्रकार पुकार करती गोपियोंको देखिके कृष्ण बलदेव दोनों भैया शंखचूडके पीछे दौरत भये ॥ २७ ॥ मत डरपो ऐसे भयके दूर करनवारे वचन कह शालके वृक्ष हाथमें लिये शीघ्रतासूं कृष्ण बलदेव दौरिके गुह्यगणमें अधम शंखचूडके पीछे जातभये ॥ २८ ॥ काल मृत्युकी तुल्य पीछे दौरेचले आते श्रीकृष्ण बलदेवकूं देखिके स्त्रीनकूं छोडिके

एवं विक्रीडतोः स्वैरं गायतोः संप्रमत्तवत् ॥ शङ्खचूड इति ख्यातो धनदानुचरोऽभ्यगात् ॥ २५ ॥ तयोर्निरीक्षतो राजंस्तन्नाथं प्रमदाजनम् ॥ क्रोशन्तं कालयामास दिश्युदीच्यामशङ्कितः ॥२६॥ क्रोशन्तं कृष्ण रामेति विलोक्य स्वपरिग्रहम् ॥ यथा गा दस्युना ग्रस्ता भ्रातरावन्वधावताम् ॥२७॥ मा भैष्टेत्यभयाऽऽरावौ शालहस्तौ तरस्विनौ ॥ आसेदतुस्तं तरसा त्वरितं गुह्यकाधमम् ॥ २८ ॥ स वीक्ष्य तावनुप्राप्तौ कालमृत्यू इवोद्विजन् ॥विसृज्य स्त्रीजनं मूढः प्राद्रवज्जीवितेच्छया ॥२९॥ तमन्वधावद् गोविन्दो यत्र यत्र स धावति ॥ जिहीर्षुस्तच्छिरोरत्नं तस्थौ रक्षन् स्त्रियो बलः ३० अविदूर इवाभ्येत्य शिरस्तस्य दुरात्मनः ॥ जहार मुष्टिनैवाङ्ग सहचूडामणिं विभुः ॥ ३१ ॥शङ्खचूडं निहत्यैवं मणिमादाय भास्वरम् ॥ अग्रजायाददात् प्रीत्या पश्यन्तीनां च योषिताम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे शङ्खचूडवधो नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

मूढ शंखचूड अपने प्राण बचायवेके लिये भाजतभयो॥ २९ ॥ जहां जहां शंखचूड दौरके गयो तहां तहां गोविन्द श्रीकृष्णचंद्र वाके शिरकी मणि लेवेके लिये पीछे भाजत भये और बलदेवजी स्त्रीनकी रक्षाके लिये ठाढे होत भये ॥ ३० ॥ हे राजन् परीक्षित ! थोरीसी दूर जायके श्रीकृष्णचंद्र दुष्ट मनवारे शंखचूडके मुष्टिसे मारिके शिर सहित माथेकी मणिकूं लेत भये ॥ ३१ ॥ श्रीकृष्णचंद्र या प्रकार शंखचूड दैत्यको मारिके प्रकाशमान मणि लेके समस्त स्त्रीनके देखत बडे भैया बलदेवजीको प्रसन्नताते देत भये ॥ ३२ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कंधे शंखचूडवधो नाम चतुस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः॥ ३४ ॥

श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित्! श्रीकृष्णचंद्र जब वनमें गये तब श्रीकृष्णचंद्रमें मन लगाये ऐसी गोपी विरहमें उनकी लीलानको गायगायके बडे कष्टते दिननकूं व्यतीत करत भई ॥ १ ॥ अब गोपी आपुसमें कहैं हैं हे गोपियो! बांई भुजापै बांए कपोलको धरिके, भ्रुकुटीनकों चढायके, मुकुंद श्रीकृष्णचंद्र अधरके ऊपर बांसुरीको धरिकै कोमल अंगुलीनसूं वाके छिद्रनकूं दाबिके जासमय बजामें हैं ॥ २ ॥ तासमय आकाशमें गमन करनहारी देवतानकी स्त्री अपने पतिन सहित बांसुरीको सुनिके प्रथम आश्चर्य मानिके लाजसहित कामदेवके बाणनसूं परवश होय मन हरजानेके कारण नारेनकी सुधि जिनकों न रही या प्रकार मोहको प्राप्त होत भई ॥ ३ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ गोप्यः कृष्णे वनं याते तमनुद्रुतचेतसः ॥ कृष्णलीलाः प्रगायन्त्यो निन्युर्दुःखेन वासरान् ॥ १ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ वामबाहुकृतवामकपोलो वल्गितभ्रुरधरार्पितवेणुम् ॥ कोमलाङ्गुलिभिराश्रितमार्गं गोप्य ईरयति यत्र मुकुन्दः ॥२॥ व्योमयानवनिताः सह सिद्धैर्विस्मितास्तदुपधार्य सलज्जाः ॥ काममार्गणसमर्पितचित्ताः कश्मलं ययुरपस्मृतनीव्यः ॥ ३ ॥ हन्त चित्रमबलाः शृणुतेदं हारहास उरसि स्थिरविद्युत ॥ नन्दसुनुरयमार्तजनानां नर्मदो यर्हि कूजितवेणुः ॥ ४ ॥ वृन्दशो व्रजवृषा मृगगावो वेणुवाद्यहृतचेतस आरात् ॥ दन्तदष्टकवला धृतकर्णा निद्रिता लिखितचित्रमिवासन् ॥ ५ ॥ बर्हिणस्तबकधातुपलाशैर्बद्धमल्लपरिबर्हविडम्बः ॥ कर्हिचित् सबल आलि सगोपैर्गाः समाह्वयति यत्र मुकुन्दः ॥ ६ ॥

हंत अर्थात् हे अबलाओ! यह आश्चर्य सुनो हारकी तुल्य निर्मल जाकी हंसनि बांसुरीके बजावतसमय नीचो मुख करिके जो हंसै है ताकी हारनमें प्रकाशित हंसनि होय है अथवा हारकी तुल्य छातीमें शोभायमान जाकी हंसनि है और छातीमें बिजुरीकी तुल्य प्रकाशमान स्थिर लक्ष्मी जाके रहे पीडित जननको सुख देनवारो यह नंदको पुत्र जा समय बांसूरीकूं बजावै है ॥ ४ ॥ तब दूरिते बांसुरीको शब्द श्रवण करिके हरिगये हैं चित्त जिनके ऐसे गौ बैल हिरणनके समूहके समूह दंतनके कौर काटिके वाहि पकरे भये काननकों ऊंचे करिके सोवतसे चित्र लिखेकी तुल्य ठाढे होत भये अज्ञानी पशु पच्छीनकी यह दशा है यह आश्चर्य है ॥ ५ ॥ अब अचेतन नदीनमें आश्चर्य है यह कहैं हैं हे सखी! मोरपुच्छ खरिया गेरू मनसिल पात

इनसूं मल्लकी तुल्य स्वरूप करिके कभऊ एक बलदेव भैयासहित गोपनसहित जो मुकुन्द हैं सो जा समय बांसुरी बजायके गौनको बुलामें हैं ता समय बांसुरीको शब्द श्रवण करिके नदीनके प्रवाह बहितेसूं बन्द होयजाय हैं और पवनसूं उडिके गई उनके चरणकी रजकूं हमारी तुल्य आकांक्षा करैं हैं और हमारी तुल्य उनकेभी उत्कृष्ट पुण्य नहीं है यासे वह नदीनकूं मिलै नहीं है प्रेमते जिनकी लहरि कंपै जल जिनके निश्चल होय जांय हैं ॥ ६ ॥ ७ ॥ गोप ग्वालबाल देवता जिनके यशकूं गामें नारायणकी तुल्य सदा स्थिर लक्ष्मी वारे वनको विचरनवारे कृष्ण जासमय गोवर्द्धन पर्वतके शिखरपै चरती गौकूं बांसुरी बजायके बुलामें हैं ता समय फूल फल जिनमें लगे उनके बोझते शाखा जिनकी झुकि रही प्रेम करिके हर्षित चित वनके लता वृक्ष अपनपेमें विष्णुको प्रकट करत मकरंदकी धारा बहावैं हैं ॥ ८ ॥

तर्हि भग्नगतयः सरितो वै तत्पदाम्बुजरजोऽनिलनीतम्॥स्पृहयतीर्वयमिवाऽबहुपुण्याः प्रेमवेपितभुजास्तिमितापः ७
अनुचरैः समनुवर्णितवीर्य आदिपूरुष इवाचलभूतिः ॥ वनचरो गिरितटेषु चरन्तीर्वेणुनाऽह्वयति गाः स यदा हि ॥८॥
वनलतास्तरव आत्मनि विष्णुं व्यञ्जयन्त्य इव पुष्पफलाढ्याः॥प्रणतभारविटपा मधुधाराः प्रेमहृष्टतनवः ससृजुः स्म
॥ ९ ॥ दर्शनीयतिलको वनमालादिव्यगन्धतुलसीमधुमत्तैः ॥ अलिकुलैरलघु गीतमभीष्टमाद्रियन् यर्हि सन्धितवेणुः
॥१०॥ सरसि सारसहंसविहङ्गाश्चारुगीतहृतचेतस एत्य ॥ हरिमुपासत ते यतचित्ता हन्त मीलितदृशो धृतमौनाः ११
सहबलः स्रगवतंसविलासः सानुषु क्षितिभृतो व्रजदेव्यः ॥हर्षयन् यर्हि वेणुरवेण जातहर्ष उपरम्भति विश्वम् ॥१२॥

॥ ९ ॥ सुंदरनमें अति सुंदर अथवा सुन्दर देखिवे लायक भगवान श्यामरे ललाटमें केशरको तिलक लगाये वनमाला पहरे जिसकी दिव्य गंध और तुलसीके मकरन्दसैं मत्त होय भौंरे उनके उच्च और अनुकूल गानको मान देते हैं ऐसे भगवान अधरके ऊपर बांसुरीकूं धारिके बजामें हैं ता समय सरोवरनमें सारस हंस और पच्छी गानसैं मोहित चित्त हो उस स्थानमें आंखैं मूंदे मौन धारन करे चित्त रोके कृष्णके निकट बैठे रहैं हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ हे गोपियो ! मालानके काननमें कुंडलसूं शोभायमान, आनंदको प्राप्त बलदेव भैयासहित कृष्ण सब विश्वको आनंद देके बांसुरीके शब्दसों पूरण करै ता समय या महान् कृष्णको अपराध न होय ऐसे मेघ मनमें शंका मानिके मुरलीके शब्दके पीछे मंद मंद गरजै हैं,

और अपने मित्र श्रीकृष्णचंद्रके ऊपर फूल वर्षामें हैं, छत्र करिके छाया करैं हैं सो वह मेघ याको सांचो मित्र है यह सामरौ है वोहू सामरो ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ हे यशोदा ! अनेक प्रकारके गोपनके खेलनमें निपुण तुमारो पुत्र अधरके ऊपर बांसुरीको धरिके आपसे आपही सीखे षडज निषाद ऋषभ गांधारकूं आदिलेके स्वरनके आलापवेके भेद उठावत भयो ॥१४॥ ता समय इंद्र महादेव ब्रह्मा ये हैं मुख्य जिनमें ऐसे बुद्धिमान देवता मंद मध्य तारसूं बांसुरीको शब्द सुनिके मोहित होत भये नीचेको नारि लचायके कौन स्वरकूं गामें हैं ऐसे निश्चय नहीं करिसके हैं ॥ १५ ॥ ध्वजा वज्र अंकुश कमल इनके चित्र विचित्र चिन्हवारे अपने चरणकमल करिके व्रजभूमिकौ गौनके खुर परेते जो खेद है ताकूं शांति करत भये मतवारे हाथीकी तुल्य

महदतिक्रमणशङ्कितचेता मन्दमन्दमनुगर्जति मेघः ॥ सुहृदमभ्यवर्षत्सुमनोभिश्छायया च विदधत्प्रतपत्त्रम् ॥ ॥ १३ ॥ विविधगोपरसेषु विदग्धो वेणुवाद्य उरुधा निजशिक्षाः ॥ तव सुतः सति यदाऽधरबिम्बे दत्तवेणुरनयत् स्वरजातीः ॥ १४ ॥ सवनशस्तदुपधार्य सुरेशाः शक्रशर्वपरमेष्ठिपुरोगाः ॥ कवय आनतकन्धरचित्ताः कश्मलं ययुरनिश्चिततत्त्वाः ॥ १५ ॥ निजपदाब्जदलैर्ध्वजवज्रनीरजाङ्कुशविचित्रललामैः ॥ व्रजभुवः शमयन् खुरतोदं वर्ष्मधुर्यगतिरीडितवेणुः ॥ १६ ॥ व्रजति तेन वयं सविलासवीक्षणार्पितमनोभववेगाः ॥ कुजगतिं गमिता न विदामः कश्मलेन कबरं वसनं वा ॥ १७ ॥ मणिधरः क्वचिदागणयन् गा मालया दयितगन्धतुलस्याः ॥ प्रणयिनोऽनुचरस्य कदांसे प्रक्षिपन् भुजमगायत यत्र ॥ १८ ॥ क्वणितवेणुरववञ्चितचित्ताः कृष्णमन्वसत कृष्णगृहिण्यः ॥ गुणगणार्णमनुगत्य हरिण्यो गोपिका इव विमुक्तगृहाशाः ॥ १९ ॥

चलनिवारे कृष्ण बांसुरीको बजायके जा समय चलै हैं, ता समय विलासपूर्वक चितवनसूं कामदेवको वेगमें भरी हमें वृक्षनकी तुल्य जड़ होयके चोटीकी सुधि न रही और वस्त्रनकी सुधि न रही ॥ १६ ॥ १७ ॥ प्यारी सुगंधिवारी तुलसीकी मालाकूं पहिरे माणिनकी सुमिर्णी हाथमें लैके गौनकों गितन प्यारे मित्रके कंधापै हाथ धरिके जासमय गामें है, और बाजत हुई बांसुरीकी टेर सुनिके चित्त हरि जानैसे हरिणनकी स्त्री हरिणी गुणनके समुद्र कृष्णचंद्रके पास आयके गोपीनकी तुल्य घरकी आशानकूं त्यागिके सेवन करतभई ॥ १८ ॥ १९ ॥

हे यशोदे ! गोपिनके आनंद देवेके लिये कुंदकी मालानसूं आनंदपूर्वक शृंगार किये स्नेहीनकूं आनंदको देनवारो यह तेरो पुत्र नन्दकुमार गोप गौनकूं संग लेके जा समय यमुनामें विहार करै है ता समय चंदनकीसी सुगंधिवारो शीतलस्पर्श पवन श्रीकृष्णचंद्रको सन्मान करत अनुकूल मन्द २ चलै गंधर्वादिक वन्दीजननकीसी नाईं बाजे बजावत गायके फूलनकी वर्षा करिके सेवन करै है ॥ २० ॥ २१ ॥ व्रजको गौनको हितके करनवारेने इन्द्रने जब वर्षा करी तब गोवर्द्धन उठायके रक्षा करी, बडे बडे ब्रह्मादिक आयके चरणनमें प्रणाम करैं संध्या समय सब गौनको एकत्र करिके मित्र जाके यशको गामें ऐसो कृष्ण बांसुरीकूं बजावत श्रमभरी शोभासों आनंद देत गौनकी रज जाकी मालामें छायरही चंद्रमाकी तुल्य प्रकाशमान ऐसो देवकीके उदरमें प्रगट भयो कृष्ण सो हमारे मनोरथ देवेके लिये आवै है ॥ २२ ॥ २३ ॥ कछु एक मंद मंद नेत्र जिनके घूम अपने स्नेहीनको मानको देनवारो, वनमालाकूं पहिरे, पकेबे रकीसी नाईं पांडुर जाको मुख कुंड़लनकी कांतिसूं कोमल कपोलनकूं शोभायमान करत, मतवारे हाथीकोसो जाको विहार प्रसन्न मुख यह यादवनको पति श्रीकृष्णचंद्र संध्या समय जैसे चंद्रमा उदय होय है तैसे व्रजकी गौ हमहैं, सो बडे दिनके तापकूं दूंर करत भये हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

कुन्ददामकृतकौतुकवेषो गोपगोधनवृतो यमुनायाम् ॥ नन्दसूनुरनघे तव वत्सो नर्मदः प्रणयिनां विजहार ॥२०॥
मन्दवायुरनुवात्यनुकूलं मानयन् मलयजस्पर्शेन ॥ बन्दिनस्तमुपदेवगणा ये वाद्यगीतबलिभिः परिवव्रुः ॥ २१ ॥
वत्सलो व्रजगवां यदगध्रो वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः ॥ कृत्स्नगोधनमुपोह्य दिनान्ते गीतवेणुरनुगेडितकीर्तिः ॥२२॥
उत्सवं श्रमरुचाऽपि दृशीनामुन्नयन् खुररजश्छुरितस्रक् ॥ दित्सयैति सुहृदाशिष एष देवकीजठरभूरुडुराजः ॥२३॥
मदविघूर्णितलोचन ईषन्मानदः स्वसुहृदां वनमाली॥बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डं मण्डयन् कनककुण्डललक्ष्म्या॥२४॥
यदुपतिर्द्विरदराजविहारो यामिनीपतिरिवैष दिनान्ते॥मुदितवक्त्र उपयाति दुरन्तं मोचयन् व्रजगवां दिनतापम्॥२५॥

जब श्रीकृष्ण वनकूं गऊ चरावनेकूं जाय तो गोपीनकूं एक एक क्षण कोटिन युगकी बराबर बीतै है, जब घरमें मन न लगै तौ कहैं अरी चारि घरी चलो ब्रजरानीकेही घर काटि आवें, ऐसो कहि दस बीस गोपी मिल ब्रजरानीके यहां गईं, ब्रजरानीने सत्कार कियो, कहूं श्रीकृष्ण आइवेको जो समय भयो सो ब्रजरानी व्याकुल भई अरी फलानी टहलनी मेरो कन्हैया नहिं आयो, देख तौ कहां देर लगी, अब गोपी बोलीं अरी मैया तू सोच मत करै तेरो बेटा या समय अधरनमें धर वंशी बजावै है, और आनंदसों है, अरी तुम मेरे बेटाकी बात कहा जानों, तुम कहा देख आईहो, हम कहा जानें तिहारो बेटा कैसो है, हमारे देवर जेठनके बेटा वाके संग जायो करें हैं, वे हम ते कह्यो करें है, कि कृष्ण बनमें ऐसे खेल खेलो करै है, ऐसे २ कर्म करै है, सो उनतें सुन्यो करे है सो हम जानें, और कहा जानें तेरो बेटा केसो है, ऐसे कह गोपीनने अपनो शृंगार रसहू पुष्ट राखो, उनकी सत्यहू राख्यो आप विरहमें कृष्ण चरित्र गामें हैं, और ब्रजरानीहूको समाधान करत जायहैं, और आप अलगहू रहै हैं,इतने हीमें गोपी बाहर निकस आईं. वोह टहलनी कृष्णकी खबर लैके जो न आई ब्रजरानी फेर घबरान लगी हाय बडी देर भई मेरो कान्हवा नहीं आयो कछु वनमें विघ्नह्वै गयो होयगो जब इन्हे व्याकुल देखी, तौ वेई गोपी फेर आईं, मैया तू चिंता मतकरै, तेरो बेटा आछे है, तुम जानोहो मेरे कान्हवाका हवाल, हम कहा जानै हमारे देवर जेठनके लरका आय सदा कह्यो करैं हैं, सो हम सुनो करैं हैं, या समय मेरो कान्हवा कहा करत होयगो, या समय तुम्हारा लरिका यमुनाजीमें खेलै है, ब्रजरानी बोली हे परमेश्वर कहूं कालीदहको सो अनर्थ न करवावे जो हम सब जीवति मरजाँय; वोह नंदरायको बेटा है, ब्रजरानी जू तिहारे पुण्यतें वाको कानहू वांको नहीं होयगो; तुम तो निष्पाप हो, गोपियो! वाहि देर काहे को लगजायो करै है ? ब्रजरानीजू वोह यमुनामें न्हायके जलदी वस्त्र पहर लियो करै है, नंदरायके भटहैं, जगाहैं बंदीजन ये वाके आगे स्तुति गान करन लगे हैं, जो ठाडो ह्वैके न सुनै तौ वे कहै हैं कि नंदरायको बेटा मूर्खसो है, हमारो गानो सुनै समझै नहीं, याके लिये सुनन लगै है देर ह्वै जायहै, अब कितनीक देरमें आवेगो जब नैक वंशीकी धुनि सुनि सब गोपी अपने २ छात छज्जा दुवारी चौबारी गोखा मोखा, झरोखानमेंते उझुकन लगीं अब श्रीकृष्णचंद्र जों ब्रजमें आये हैं तौ उन गोपीनकी ओर कटाक्ष करत जायहैं, काहू ते कहत जायहैं, आज हमारो तिहारो संगम वा कुंजमें होयगो का फलानी कुंजमें का, वनमें होयगो, काहू ते कहै हैं आज तौ तिहारी बैंदीखिली है का आज तुमने फलानीं सारी न पहरी आजकाल तौ वाही रंगकी शोभाहै ऐसे कहत सुनत आप ब्रजरानीजीके पास गये वे आगेहीते आरती लिये ठाढीं हैं, आरती करी, यहां तौ कौतुक करत आये, मैया मैया मोहि भूख लगी है,अब ब्रजरानीने थाल आगे धरो, एक

ग्रास तौ खायो मइया मोहितौ भूख नहीं तू खवायदे, अब रानी खवावत जाँय मेरे राजा बेटा एक ग्रासतौ और खा जैसे कोऊ सिंहके चीताकूं मनाय खवावै है, ऐसे दोऊ भैयानको खवायो है, छने जलसों आचमन कराय महीन रूमालसों हाथ पोंछे हैं बीरी खवाई है, याद जो आय गई मैया मैया तूतौ बड़ी झूंठी है, कहो बेटा कहा झूंठ कह्यो, वा दिना तैंने कहीही कि तेरो व्याह कर देउंगी, जैसो तू सुन्दर है तैसीही सुन्दर तोकों छोटीसी दुलहिन आवैगी, सो तैंने व्याह न कियो, अब देख तेरो व्याह करूंहूं, मैया व्याहमें क्या होयहै. बाजे बजैंगे, हाथी घोड़ा आमेंगे, तेरे साथ गठजोरा होयगो, मैया मैं वातैं गांठ बांधेही फिरो करूंगो गैया चरायवेकूं तौ जरूर जाउँगो, पर वनमें तौ वाहि बांधे बांधे नाहीं फिरूंगो. ना बेटा वनमें काहेको बांधे फिरैगो. वो अपने महलनमें खेलौ करैगी अब तौ सोनेकी दोहनी ले दोऊ भइया गो दुहनको गये हैं, खिरकनमें नंदराय संग गये हैं. बेटा तेरे चाकरका थोरे हैं दुहनवारे, तेरी बलाय दुहै. बाबा बाबा मैं दुहुवौ सीख राखूं. काहू बखत काम परजाय, जो हम गैयाही नहीं दुहैंगे तौ ग्वार काहेके, अरे कान्हवा ! याहि मति दुहै यह लात बहुत मारै है बेटा; ना बाबा मोहि पचहान गई है. आज मैंने याहि गिरिराजकी तरह हटीमें खुजाई बहुत है, जौनसी गैया कबहूं पैसाभर दूध नहीं देतही, और हाल तौ काहू ग्वारियाहि नीचेही न बैठनदे, और जो बैठ नहूदे तौ ऐसी जोरकी दगामें लात मारै कि ग्वारियाको तौ मूड़ कटि जाय और दोहनी कोस भरेपै जायपरै. सो गइया श्रीकृष्णको हस्तकमल लगावतही दोहिनी भरदेय और नीचे दूध बहि निकलै अब कृष्ण बलदेवतौ दुहत जाँय और नंदराय लोटा भरि २ पहुंचावत जाँय टहलवानके हाथ, अब दुहिके महलमें व्रजरानी जूने चांदीके कटोरामें सीरोकरि अधौटा दूध जामें मेवा मिश्री पड़ी है नारायणकी प्रसादी लाय बेटा कान्हवा याहि पलि, मैया मोकूं तौ भूख नहीं जब ये कहै है भूख नहीं, तबही इनके प्राण सूख जायहैं, माताकी बराबर दूसरो पोषण करनहारो नहीं जन्मको सुख वाहीको है जाकी माता जीवै है ॥ दृष्टांत ॥ एक राजा हो वाके मंत्रीकूं अन्य राजाके मंत्रीने लिख्यो कि तुम्हारे राजाके घर फौज कै लाख है, और खजाने में रुपया कितनो है, और राजाकी उमर कितनी है, और राजा खाय कितनो है, यह सब हमें लिख भेजो. यह खत देखिकै या राजाके मंत्रिने ज्वाब लिख्यो फौजकी संख्या तौ यह है कि राजाके जितने भइया भतीजे काका ताऊ सब एक मन है जाको कुटुम्ब एक मन होय ताको बैरी जो देखताहू होय तौ कछु न करि सकै. एक खजानेको उत्तर लिख्यो, जितनी प्रजा है सब राजाते प्रसन्न है जो प्रजा भई प्रसन्न तौ सब द्रव्य प्रजाको राजाहीको है दूसरो भोजनको उत्तर लिख्यो कि खायवेको कौन प्रमाण है जाकी माता जी-

वत है ताके खायवेको प्रमाण कहा, तीसरो राजाकी उमरिको उत्तर लिख्यो, राजाकी उमरिको जवाब यह है कि राजा हरिभक्त है, और पुण्यात्मा है जो पुण्यात्मा होयहै तिनकी उमरि तो सदा वृद्ध भवति· पापात्माकी आयु क्षीण होजायहै, यह चारों बातनको ज्वाब सुनि वह राजा सिथिल हो गयो कि वाको रसदको तगादा मतकरो वो हमरे मानको नहीं है ॥ ब्रजरानी श्रीकृष्णको माथे पर हाथ फेरति जायहैं बेटा जो तू यह दूध पीलै तौ तोरी चोटी बढि जायगी; और जो तू याहि अवस्थामें दूध न पीवेगो तौ तेरो शरीर कैसे पुष्ट होयगो, अब इतनेमैं पहररात जो गई, नंदराय अपनी कचहरीमें बैठे हैं, गुनी लोग जो आये हैं अपनो २ न्यारो २ गुण दिखावन लगे हैं; नंदराय बोले भइया अभी मतगावो बजावो हमतौ बहुत सुन चुके हैं. अब हमारो कान्हवा नयो रसिक भयो है वाहि आय जान देउ खवासको भेजादियो है, कृष्ण बलदेवको लिवाय लावो ब्रजरानीजी महाराजने कृष्ण बलदेवको बुलायो है इनके विना सब बैठेरहे हैं, उन्हैं तौ येही आवै है सारे दिनके हारे थके आये हैं, भोजन कियो है, नैक सोवनहू न देवै हैं यह कह देउ वे तौ सोयगये हैं· नहीं मैया हमैं तो नींद नहीं आवै है हमतौ बाबाके पासजायंगे, तब जिद्द करने लगे हैं तोतौ ब्रजरानीजूने गहनेनको डिव्वा और कपरनको पिटारा मंगाय इनको विशेष शृंगार कियो है, बनमैं तौ सामान्य गहने पहरामैं हैं चोरादिकनके डरके मारे· सुन्दर चीरा तौ शिरपर बांध्यो है तामैं हीरानकी कलँगी शिरपेच बंध्यो है, जरीको जामा पहराय, गुलबदनको चूरीदार जामा कंठमें मोतिनकी माला तामें सिंहके नख सुवर्णमें मढ़े पुह रहे हैं सो कठुला पहिरायो भुजानमें फलैवा बाजूबंद, हाथनमें इमठमा जड़ाऊकड़े पौंहची कंकण कमरमें कौंधनी, काननमें कुंडल चरणनमें नूपुर दुछोरमा पटका कमरमें बाँध्यो है, माथेपर केशरको ऊर्ध्व पुण्ड्र तिलक लगायो है बीरी खवाई है, कपोलनपै नैक कज्जलको डठोना लगायदियो है कि मेरे बेटानकूं काहूकी नजर न लगजाय अब कृष्ण बलदेवकूं सुन्दर जूता पहराये हाथमें जड़ाऊ छड़ी लिये हैं हाथ सों हाथ पकरे दोनों भइया आपसमें बातैं करत जाँय हैं तब कचैरीमें पहुंचे तब इन्हें देख सब उठ खडे हुए, बाबाको हाथ जोर एकबांई ओर बैठि गये एक दाहनी ओर बैठि गये हैं. अब नंदरायने जो आज्ञा दई कोऊ पौराणिक तौ श्लोक पढै है. भाट कवित्त कहनेलगे गवैया गामें हैं, नांचनवाले साज मिलाय नाचनेलगे· नंदरायने रुपया आसरफीनके तोड़ा खोलदिये काह्ना बेटा इन्हैं देतजाओ अब काहूको रुपैयानकी मुट्ठी देयहै काहूको अशरफीकी मुट्ठी जाकी जैसी इज्जत तैसोई देयहैं, वाह वाह कहि सराहत चले जातहैं, काहूको फरमायसकरैं है तुम फलानी चीज गावो तुमते अच्छी बनै है वो इनकी बलैया लेतजातहैं असीस देत जायहैं, आधी रातको समय भयो नंदरायने हाथतैं मनैकर दई अब काल्ह रातको गामना

ऐसे कह कचहरी वरखास्तभई व्रजरानी बेटानकी वाट देखै है यह जो आये मा मा मोकूं तो निद्रा आई है मैं तौ याहीके लिये मनै करतही सब शृंगार तौ उतार लियो है नीलांबर पीताम्बर धोती पहराय दई है दोऊ भैया अपने २ पलंगनपैं पोढे हैं; दासी पंखा करतहैं ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित! या प्रकार श्रीकृष्णचंद्रमें जीवन जिनको, और बढे हैं उत्सव जिनके, ऐसे ब्रजकी स्त्री श्रीकृष्णके लीलानको गायगायके दिननको वितावत भई ॥ २६ ॥ इ० म० भा० द० पू० गोपिकागीतं नाम पंचत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहै हैं हे राजन् परीक्षित! याप्रकार देवता गंधर्वादिक गामें नृत्य करैं बाजेनको बजामें फूलनकी वर्षा जिनके ऊपर करैं ऐसे श्रीकृष्णको आये देखिके

श्रीशुक उवाच ॥ एवं व्रजस्त्रियो राजन् कृष्णलीलानुगायतीः ॥ रेमिरेऽहस्सु तच्चित्तास्तन्मनस्का महोदयाः ॥ २६ ॥ इति श्रीभागवते मा० द० पू० वृन्दावनक्रीडागोपिकागीतं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ तर्ह्यागतो गोष्ठमरिष्टो वृषभासुरः ॥ महीं महाककुत्कायः कम्पयन् खुरविक्षताम् ॥१॥ रम्भमाणः खरतरं पदा च विलिखन् महीम् ॥ उद्यम्य पुच्छं वप्राणि विषाणाग्रेण चोद्धरन् ॥ २ ॥ किञ्चित्किञ्चित् शकृन्मुञ्चन् मूत्रयन् स्तब्धलोचनः ॥ यस्य निर्ह्रादितेनाङ्ग निष्ठुरेण गवां नृणाम् ॥ ३ ॥ पतन्त्यकालतो गर्भाः स्रवन्ति स्म भयेन वै ॥ निर्विशन्ति घना यस्य ककुद्यचलशङ्कया ॥ ४ ॥ तं तीक्ष्णशृङ्गमुद्वीक्ष्य गोप्यो गोपाश्च तत्रसुः ॥ पशवो दुद्रुवुर्भीता राजन् सन्त्यज्य गोकुलम् ॥ ५ ॥ कृष्ण कृष्णेति ते सर्वे गोविन्दं शरणं ययुः ॥ भगवानपि तद् वीक्ष्य गोकुलं भयविद्रुतम् ॥ ६ ॥

परम उत्सव भयो याके पीछे ताही समय ब्रजमें बैलको रूप धरिके अरिष्टासुर आवत भयो, जो बडे पुट्ठनवारी देहसैं पृथ्वीको खुरौं सैं विदीर्णकर कंपायमान करै है ॥ १ ॥ बहुत रम्हाय है पांवनसूं धरतीकूं खोदत आवै है पूंछ उठायके खेतनकी मेंडनको खोदै है ॥ २ ॥ बीचबीचमें गोवर करत जाय मूत्र करत जाय है, भयानक जाकी आंखें हैं, हे राजन् परीक्षित! अरिष्टासुरके रह्मायवेको कठोर शब्द सुनिके गौनके स्त्रीनके विना समय गर्भ गिरिपरे डरकेमारे पतन होयगये जाके टांटके ऊपर पर्वत मानिके मेघ आय बैठे हैं ॥ ३ ॥४ ॥ तीक्ष्णपैने जाको सींग ऐसे अरिष्टासुरको देखिके संपूर्ण गोप और गोपी भयके मारे डरपतभये हैं राजन् परीक्षित! पशु खिरकनकूं छोडिके डरकेमारे भाजत भये हे कृष्ण हे कृष्ण ऐसे पुकारते भये समस्त

ब्रजवासी गोविंदकी शरण आवत भये याके पीछे गोकुलबासीनको भयके मारे भजते देखिके मति भय करो या प्रकार सावधान करत अरिष्टासुरको अपने पास बुलावत भये ॥ ६ ॥ हे मूर्ख ! असाधु ! ग्वाल गौनके डरपावनेते तोकों कहा होयगो दुष्ट ! हे मतवारे ! तोसरीखे दुष्टनको बल और मदमें दूरि करोंहों ॥ ७ ॥ या प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचंद्र खम्भ ठोंकिके अरिष्टासुरकूं क्रोध करायकै मित्रके कंधापै सर्पके आकार भुजा है ताकूं पसारिके ठाढे होत भये ॥ ८ ॥ या प्रकार क्रोध करायो अरिष्टासुर खुरनतें धरतीकूं खोदत पूंछ उठायके वादरनकूं इत उत करिके क्रोध करिके श्रीकृष्णचंद्रके पास आवत भयो ॥ ९ ॥ आगेकूं सींग करे पलक विसारे लाल लाल आंखे करे अरिष्टासुर श्रीकृष्णकी ओर कटाक्षसूं तिरछो देखिके

मा भैष्टेति गिराऽश्वास्य वृषासुरमुपाह्वयत् ॥ गोपालैः पशुभिर्मन्द त्रासितैः किमसत्तम ॥ ७ ॥ बलदर्पहाऽहं दुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनाम् ॥ इत्यास्फोट्याच्युतोऽरिष्टं तलशब्देन कोपयन् ॥ ८ ॥ सख्युरंसे भुजाभोगं प्रसार्यावस्थितो हरिः ॥ सोऽप्येवं कोपितोऽरिष्टः खुरेणावनिमुल्लिखन् ॥ उद्यत्पुच्छभ्रमन्मेघः क्रुद्धः कृष्णमुपाद्रवत् ॥ ९ ॥ अग्रन्यस्तविषाणाग्रः स्तब्धासृग्लोचनोऽच्युतम् ॥ कटाक्षिप्याऽद्रवत् तूर्णमिन्द्रमुक्तोऽशनिर्यथा ॥ १० ॥ गृहीत्वा शृङ्गयोस्तं च अष्टादश पदानि सः ॥ प्रत्यपोवाह भगवान् गजं प्रति गजो यथा ॥ ११ ॥ सोऽपविद्धो भगवता पुनरुत्थाय सत्वरः ॥ आपतत् स्विन्नसर्वाङ्गो निःश्वसन् क्रोधमूर्छितः ॥१२॥ तमापतन्तं स निगृह्य शृङ्गयोः पदा समाक्रम्य निपात्य भूतले ॥ निष्पीडयामास यथाऽर्द्रमम्बरं कृत्वा विषाणेन जघान सोऽपतत् ॥ १३ ॥ असृग्वमन् मूत्रशकृत् समुत्सृजन् क्षिपंश्च पादाननवस्थितेक्षणः ॥ जगाम कृच्छ्रं निर्ऋतेरथ क्षयं पुष्पैः किरन्तो हरिमीडिरे सुराः ॥ १४ ॥

इंद्रके छोडे बज्रकीसी जलदीसे आवत भयो ॥ १० ॥ भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अरिष्टासुरके सींग पकरिके जैसे हाथीको हाथी धक्का देइहै ऐसे अठारहपैर उलटे पांवन धकावत भये ॥ ११ ॥ भगवान् श्रीकृष्णने अरिष्टासुरको ढकेलि दियो तब फेर उठिके पसीना जाके अंगमें आयगये मूर्छित होयके क्रोधमें भरिके बडे बडे श्वासनकूं लेत दोरिके आवतभयो ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण आते हुए अरिष्टासुरको सींग पकरिके पृथ्वीपै पछारत भये पांवते छाती दाबके जैसे गीले कपराको निचोरैं हैं तैसे उमेठिके सींग उखारिके मारतभये अरिष्टासुर गिरतभयो ॥ १३ ॥ तब वाके नेत्र चलायमान

भये तब अरिष्टासुर रुधिरको वमन करत मूत्र गोबर करत पांवनकूं पटकत कष्टते मरतभयो देवता श्रीकृष्णचंद्रके ऊपर फूल वर्षायके स्तुति करतभये ॥ १४ ॥ या प्रकार अरिष्टासुरकूं मारके जातिके मित्रनने स्तुति करी तब गोपीनके नेत्रनकूं आनन्द देनवारे श्रीकृष्णचंद्र व्रजमें आवतभये ॥ १५ ॥ अद्भुत कर्म करनवारे श्रीकृष्णने अरिष्टासुर मारो तब देवताकेसे जिनके दर्शन ऐसे भगवान् नारदजी कंसते जायके कहत भये ॥ १६ ॥ यशोदाके कन्या भई है और देवकीके कृष्ण भयो है बलदेव रोहिणीके पुत्र है तेरे भयके मारे वसुदेवजी अपने मित्र नंदजीके घर रातोरात पहुंचाय आये हैं, और तैंने भेजे वे सब दैत्य कृष्णबलदेवने मारे। यह वचन नारदजीको श्रवण करिके कंस क्रोधसे विकलइंद्रिय होत

एवं ककुद्मिनं हत्वा स्तूयमानः स्वजातिभिः ॥ विवेश गोष्ठं सबलो गोपीनां नयनोत्सवः ॥ १५ ॥ अरिष्टे निहते दैत्ये कृष्णेनाद्भुतकर्मणा ॥ कंसायाथाह भगवान् नारदो देवदर्शनः ॥१६॥ यशोदायाः सुतां कन्यां देवक्याः कृष्णमेव च ॥ रामं च रोहिणीपुत्रं वसुदेवेन बिभ्यता ॥ १७॥ न्यस्तौ स्वमित्रे नन्दे वै याभ्यां ते पुरुषा हताः ॥ निशम्य तद्भोजपतिः कोपात् प्रचलितेन्द्रियः ॥ १८॥ निशातमसिमादत्त वसुदेवजिघांसया ॥ निवारितो नारदेन तत्सुतौ मृत्युमात्मनः ॥ १९ ॥ ज्ञात्वा लोहमयैः पाशैर्बबन्ध सह भार्यया ॥ प्रतियाते तु देवर्षौ कंस आभाष्य केशिनम् ॥२०॥ प्रेषयामास हन्येतां भवता रामकेशवौ ॥ ततो मुष्टिकचाणूरशलतोशलकादिकान् ॥ २१ ॥ अमात्यान् हस्तिपांश्चैव समाहूयाह भोजराट् ॥ भो भो निशम्यतामेतद् वीरचाणूरमुष्टिकाः ॥२२॥

भयो ॥ १७ ॥ १८ ॥ तब कंस वसुदेवके मारिवेके लिये पैनी तरवार लेतभयो तब नारदजी मने करतभये, और तिन वसुदेवजीके पुत्र कृष्णबलदेवते अपनी मृत्यु जानिके ॥ १९ ॥ देवकीसहित वसुदेवके पांवनमें बेडी डारत भयो इतनी बात कहिके नारदजी जब गये तब कंस केशीकूं बुलायके ॥ २० ॥ भेजतभयो और रामकृष्णकों तू मारि आओ यह कहतभयो तापीछे मुष्टिक चाणूर शल तोशल आदि लैके जे मल्ल हैं तिनको बुलायके ॥ २१ ॥ और मंत्रीनकूं बुलायके और हाथीनके महावतनकूं बुलायके भोजवंशीनको राजा कंस बोलतभयो हे वीर ! हे चाणूर !

हे मुष्टिक! यह मेरी बात श्रवण करौ ॥ २२ ॥ नंदके गोकुलमें वसुदेवके पुत्र कृष्ण बलदेव रहैं हैं उनते विधाता नारदजीने मेरी निश्चय मृत्यु बताई है ॥ २३ ॥ ये जब आमें तासमय पावनसूं दाबिके मल्ललीला करिके मारिडारियो, और मल्लनकी जो रंगभूमि है तामें अनेक प्रकारके मंचाननकूं बनाओ ॥ २४ ॥ पुरवासी और देशवासी संपूर्ण तिनपै बैठिके मल्लनकी कुस्ती देखेंगें हे महावत! मंगलरूप कुवलियापीड हाथीकूं रंगभूमिके दरवाजेपै ठाढो कर देउ ॥ २५ ॥ मेरे वैरी कृष्ण बलदेव आमें तब उन्हें कुवलियापीड हाथीपै मरवाय डारियो, और चतुर्दशीके दिन विधिपूर्वक धनुषयज्ञकी त्यारी करो और संपूर्ण कामनानके पूरण करनवारे महादेवजीके पूजनके लिये पवित्र पवित्र पशु देओ ॥ २६ ॥ अपने अर्थ के तत्त्वको जा-

नन्दव्रजे किलासाते सुतावानकदुन्दभेः ॥ रामकृष्णौ ततो मह्यं मृत्युः किल निदर्शितः ॥ २३ ॥ भवद्भ्यामिह संप्राप्तौ हन्येतां मल्ललीलया ॥ मञ्चाः क्रियन्तां विविधा मल्लरङ्गपरिश्रिताः ॥२४॥ पौरा जानपदाः सर्वे पश्यन्तु स्वैरसंयुगम् ॥ महामात्र त्वया भद्र रङ्गद्वार्युपनीयताम् ॥ २५ ॥ द्विपः कुवलयापीडो जहि तेन ममाहितौ ॥ आरभ्यतां धनुर्यागश्चतुर्दश्यां यथाविधि ॥ विशसन्तु पशून् मेध्यान् भूतराजाय मीढुषे ॥ २६ ॥ इत्याज्ञाप्यार्थतन्त्रज्ञ आहूय यदुपुङ्गवम् ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं ततोऽक्रूरमुवाच ह ॥ २७ ॥ भो भो दानपते मह्यं क्रियतां मैत्रमादृतः ॥ नान्यस्त्वत्तो हिततमो विद्यते भोजवृष्णिषु ॥ २८ ॥ अतस्त्वामाश्रितः सौम्य कार्यगौरवसाधनम् ॥ यथेन्द्रो विष्णुमाश्रित्य स्वार्थमध्यगमद्विभुः ॥ २९ ॥ गच्छ नन्दव्रजं तत्र सुतावानकदुन्दुभेः ॥ आसाते ताविहानेन रथेनानय मा चिरम् ॥ ३० ॥

ननवारो कंस अपने टहलुआनकूं या प्रकार आज्ञा देके और यादवनमें श्रेष्ठ अक्रूरको बुलायके हाथ पकरिके यह कहत भयो ॥ २७ ॥ हे दानपति अक्रूर! तुम एक मेरो मित्रताको कार्य करो, या समय भोजवंशी यादवनमें और कोई तुमते सिवाय आदरसहित अतिशय करिके हितको करनवारो नहीं है ॥ २८ ॥ हे बडे कार्य के करनवारे साधु अक्रूर! तुम्हारो आश्रय लीनो है, जैसे इन्द्र विष्णुको आश्रय लैके अपने मनोरथकूं पायगयो ॥ २९ ॥ अब तुम नंदके व्रजको जाओ ता नंदके व्रजमें वसुदेवके पुत्र रहैं हैं तिन्हें या रथमें बैठारिके शीघ्रही ले आओ ॥ ३० ॥

निसृष्टः किल मे मृत्युर्देवैर्वैकुण्ठसंश्रयैः ॥ तावानय समं गोपैर्नन्दाद्यैः साभ्युपायनैः ॥ ३१ ॥ घातयिष्य इहानीतौ
कालकल्पेन हस्तिना ॥ यदि मुक्तौ ततो मल्लैर्घातये वैद्युतोपमैः ॥ ३२ ॥ तयोर्निहतयोस्तप्तान् वसुदेवपुरोगमान् ॥
तद्बन्धून् निहनिष्यामि वृष्णिभोजदशार्हकान् ॥ ३३ ॥ उग्रसेनं च पितरं स्थविरं राज्यकामुकम् ॥ तद्भ्रातरं देव-
कं च ये चान्ये विद्विषो मम ॥ ३४ ॥ ततश्चैषा मही मित्र भवित्री नष्टकण्टका ॥ जरासन्धो मम गुरुर्द्विविदो दयितः
सखा ॥ ३५ ॥ शम्बरो नरको बाणो मय्येव कृतसौहृदाः ॥ तैरहं सुरपक्षीयान् हत्वा भोक्ष्ये महीं नृपान् ॥ ३७ ॥
एतज्ज्ञात्वाऽऽनय क्षिप्रं रामकृष्णाविहार्भकौ ॥ धनुर्मखनिरीक्षार्थं द्रष्टुं यदुपुरश्रियम् ॥ ३७ ॥ अक्रूर उवाच ॥
राजन् मनीषितं सम्यक् तव स्वावद्यमार्जनम् ॥ सिद्ध्यसिद्ध्योः समं कुर्याद्दैवं हि फलसाधनम् ॥ ३८ ॥

विष्णुको आश्रय लैके देवताननें मेरे मारिवेके लिये कृष्ण बलदेव प्रकट करे हैं, नन्दते आदि लैके संपूर्ण ब्रजवासीसहित कृष्ण बलदेवको यहां लै आओ और कहियो कि राजा कंसको चलिके भेट देआओ ॥ ३१ ॥ यहां लिवायके लाओगे तब कालकी तुल्य कुवलयापीड हाथीपै घात कराऊंगौ हाथीते कदाचित् छूटि जायगो तो विजुरी तुल्य जे मल्ल तिनपै घात कराऊंगो ॥ ३२ ॥ कृष्ण बलदेव जा समय हत होजांयगे तब उनके दुःखके मारे व्याकुल वसुदेवते लेके तिनके भैया बंधुनकूं मरवाऊंगो, और वृष्णि भोज दाशार्ह वंशमें भये यादवनको मरवाऊंगो ॥ ३३ ॥ और उग्रसेन मेरो वृद्ध पिता है तौभी जाके राज्यकी चाहना है याहूकूं मरवाऊंगो, और याके भैया देवकको और मेरे वैरी जितने हैं तिनको सबको मरवाऊंगो ॥ ३४ ॥ ताके पीछे हे मित्र अक्रूर ! यह पृथ्वी कंटकनरहित होयगी, जरासंध है सो मेरो श्वशुर है द्विविद मेरो प्यारो मित्र है ॥ ३५ ॥ शंबरासुर नरकासुर बाणासुर इनने मोमें स्नेह कियो है, इनकों संग लेके देवतानकी ओरके राजा हैं तिनकूं मारिके पृथ्वीको भोग करूंगो ॥ ३६ ॥ यह बात अपने मनमें जानिके राम कृष्ण बालकनको यहां शीघ्र लिवाय आओ, वहां जायके यह कहियो मामा धनुषयज्ञ करे है ताकूं चलिके देखिआओ यादवनको पुर मथुरा है ताकी शोभा देखि आओ ॥ ३७ ॥ यह वचन राजा कंसको श्रवण करिके अक्रूरजी बोले हे राजन् कंस! तुमने

भलो विचारो है, तुम्हारी मृत्युको दूर करनवारो यह उपाय है, परन्तु होने और न होनेमें मनुष्य समता करै दैव जो प्रारब्ध है सोही फलको दाताहै ॥ ॥३८॥ यह पुरुष बडे बडे मनोरथ करै है परन्तु जब दैवहत करदेय है तब दुःखी होयहै जो मनोरथ पूर्ण होजाय तब तो मनमें हर्ष माने हैं न होय तो तब शोक करै हैं यामें कहा ध्वनि निकसी कि तुम कहो हौ कृष्णबलदेवको मरवाऊंगो न जाने वेई तुमको मारें तथापि तुम्हारी आज्ञा करूंगो ॥ ३९ ॥

मनोरथान् करोत्युच्चैर्जनो दैवहतानपि ॥ युज्यते हर्षशोकाभ्यां तथाप्याज्ञां करोमि ते ॥ ३९॥ एवमादिश्य चाक्रूरं मन्त्रिणश्च विसृज्य सः ॥ प्रविवेश गृहं कंसस्तथाक्रूरः स्वमालयम् ॥४०॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अक्रूरसम्प्रेषणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ केशी तु कंसप्रहितः खुरैर्महीं महाहयो निर्जरयन् मनोजवः ॥ सटावधूताऽभ्रविमानसङ्कुलं कुर्वन् नभो हेषितभीषिताखिलः॥ १ ॥

या प्रकार राजा कंस अक्रूरको[1] आज्ञा देके मंत्रिनको विदा कर महलमें जात भयो तैसें अक्रूर अपने घर जात भये ॥ ४० ॥ इति श्रीमन्महाभागवत भाषाटीकायां, दशमस्कन्धे पू० अक्रूरसंभाषणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहैं है हे राजन् परीक्षित् ! मनहूते है अधिक वेग जाके ऐसो कंसको पठायो केशी दैत्य बडे घोडाको रूप धरिके टापनतै पृथ्वीकूं खोदत फुरहरी लैके कंधाके ऊपर वारनसूं आकाशमें

---

[1] कोई शंकाकरै अक्रूर कंसके ढिगरहके महात्मा कैसेरहे तापर यह दृष्टान्त है महात्मा कुसंगतमें भी महात्मापन नहीं त्यागते एक बाबाजी आधीरातकूं कहीं जायथे मार्गमें चोरमिले चोर कौन बोले बाबाजी बोले जो तुम सो मैं चोर बोले कहांजातेहो बाबाजी जहांकूं तुमजातेहो चोरोंने जाना यह चोर है संग लेलिया,बाबाजीने भी जानाकि यह चोर हैं चौरोंने एकके वरकूं मलदिया, और चोरी करने लगे बाबाजी भी घुसे एक वरतनजो उघाडा तौ इमरती धरींहीं बाबाजी सारेदिनके भूखेथे,झट ठाकुरजीका बटुआ निकाल ठाकुरजीके सामने भोग रख शंख बजाया शंख बजतेही घरके लोग जागै, और चोरोंके संग बाबाजी भी पकडेगये बाबाजी तौ वृत्तान्त सुनाय छूटगये चोरोंको दंडहुआ, सो महात्माओंको कुसंगतका फल नहीं व्यापता, जैसे अक्रूरकूं कंसका संगनव्यापा चोरों कीनाईं मरवायो ॥

2 56

इत उत विमाननकों चलायमान करत आवत भयो, हींसनेमैंही समस्त विश्वको डराता है ॥ १ ॥ कठोर हींसनसूं गौनके समूहनको भय देत पुच्छ हलाय बादर चलायमान करता, युद्ध करिवेकूं श्रीकृष्णचंद्रकूं ढुंढता आया तब केशी दैत्यको भगवान् श्रीकृष्ण आगे निकासिके अपने पास बुलावत भये, तब श्रीकृष्णकूं देखिके सिंहकी तुल्य शब्द करत भयो ॥ २ ॥ केशी श्रीकृष्णको देखिके मुखसूं मानो आकाशकूं पीजायगो, ऐसे मुखको फारिके सन्मुख दौरिके आवत भयो, कोई जाको जीति न सकै बडो जाको वेग महादुःखकरिके जीत्योजाय ऐसो केशी दैत्य कमलदललोचन भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके पिछिले पावनकी दुलत्ती मारत भयो ॥ ३ ॥ इंद्रियनकी जिनमें पहुंच नहीं ऐसे भगवान्

([1]विशालनेत्रो विकटास्यकोटरो बृहद्गलो नीलमहाघनोपमः॥दुराशयः कंसहितं चिकीर्षुर्व्रजं स नन्दस्य जगाम कम्पयन् ॥ १ ॥) तं त्रासयन्तं भगवान् स्वगोकुलं तद्धेषितैर्बालविघूर्णिताम्बुदम् ॥ आत्मानमाजौ मृगयन्तमग्रणीरुपाह्वयत् सव्यनदन्मृगेन्द्रवत् ॥ २ ॥ स तं निशम्याभिमुखो मुखेन खं पिबन्निवाभ्यद्रवदत्यमर्षणः॥ जघान पद्भ्यामरविन्दलोचनं दुरासदश्चण्डजवो दुरत्ययः ॥ ३ ॥ तद् वञ्चयित्वा तमधोक्षजो रुषा प्रगृह्य दोर्भ्यां परिविध्य पादयोः ॥ सावज्ञमुत्सृज्य धनुःशतान्तरे यथोरगं तार्क्ष्यसुतो व्यवस्थितः ॥ ४ ॥ स लब्धसंज्ञः पुनरुत्थितो रुषा व्यादाय केशी तरसाऽपतद्धरिम् ॥ सोऽप्यस्य वक्त्रे भुजमुत्तरं स्मयन् प्रवेशयामास यथोरगं बिले ॥५॥दन्ता निपेतुर्भगवद्भुजस्पृशस्ते केशिनस्तप्तमयस्पृशो यथा ॥ बाहुश्च तद्देहगतो महात्मनो यथाऽऽमयः संववृधे उपेक्षितः ॥ ६ ॥

श्रीकृष्णचंद्र ता दैत्यकी दुलत्ती बचायके क्रोधकरिके हाथनसों वाके दोनों पाव पकरिके घन्न फिरायके जैसे गरुड सर्पकूं फैंकि देय है ऐसे अवज्ञाकरिके सौ (१००) धनुष्यपर फैंकिके ठाढे होत भये ॥ ४ ॥ जब चेत भयो तब केशी दैत्य फेरी उठिके मुख फारिके क्रोधयुक्त दौरिके श्रीकृष्णके पास आवत भयो तब श्रीकृष्णचंद्र भी हंसिके तिस दैत्य के मुखमें अपना बाया हाथ बिलमें सर्पके तुल्य डारतभये ॥ ५ ॥ जैसें तप्त लोह लगेते जरै है, ऐसे भगवानकी भुजा लगेते केशीके दांत उखरिके गिरत भये औषधि न करनेसे जैसे जलंदर रोग उदरमें

---

[1] बडे जिसके नेत्र मुख बडी गुफासो, जाकी भंयकर नार, बडे नीलपर्वतकी समान बोह दुष्टकंसके प्रिय करनेकूं नंदके गाममें पृथ्वी कंपावत आवतभयो ॥ १ ॥ यह श्लोक प्रक्षिप्त है ॥

बढै है, ऐसे केशी के उदरमें श्रीकृष्णचंद्रकी भुजा फूलत भई ॥ ६ ॥ केशीके उदरमें फूली श्रीकृष्णकी भुजासों श्वास रुकि गयो, अंगमें पसीना आयगये नेत्रनके तारे निकासि आये सो पापी केशी पांवनकों पटकत लीद करत प्राणरहित होयके पृथ्वीमें गिरतभयो ॥ ७ ॥ पकी ककरीकी तुल्य विदीर्ण और प्राण रहित केशीकी देहमेंते श्रीकृष्णने अपनी बडी भुजाकूं निकास ली यद्यपि शत्रुको अनायास मारो तौहू भगवान्ने कछु गर्व न करो तब श्रीकृष्णचंद्रके ऊपर पुष्पनकी वर्षा करिके आश्चर्य मानिके देवता स्तुति करत भये ॥ ८ ॥ श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित् ! भक्तनमें श्रेष्ठ श्रीनारदजी क्लेशरहित कर्म वारे श्रीकृष्णचंद्रके पास आयके एकान्तमें यह कहत भये ॥ ९ ॥ हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! हे अप्रमेयात्मन् ! अर्थात् नहीं प्रमाण करिवेमें आवै है स्वरूप जिनको ऐसे जोगके ईश ! हे जगतके ईश्वर ! हे वासुदेव ! नहीं प्रमाण करिवेमें आवै

समेधमानेन स कृष्णबाहुना निरुद्धवायुश्चरणांश्च विक्षिपन् ॥ प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः पपात लेण्डं व्यसृजत् क्षितौ व्यसुः ॥ ७ ॥ तद्देहतः कर्कटिकाफलोपमाद् व्यसोरपाकृष्य भुजं महाभुजः॥अविस्मितोऽयत्नहतारिरुत्स्मयैः प्रसूनवर्षैर्दिविषद्भिरीडितः ॥ ८ ॥ देवर्षिरुपसंगम्य भागवतप्रवरो नृप ॥ कृष्णमक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत ॥ ९ ॥ कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् योगेश जगदीश्वर ॥ वासुदेवाखिलावास सात्त्वतां प्रवर प्रभो ॥ १० ॥ त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम् ॥ गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः ॥ ११ ॥ आत्मनाऽत्माश्रयः पूर्वं मायया ससृजे गुणान् ॥ तैरिदं सत्यसङ्कल्पः सृजस्यत्स्यवसीश्वरः ॥ १२ ॥

है प्रभाव जिनको हे जगदीश्वर ! विश्वके साक्षी हे अखिलावास अर्थात् सबके आश्रय हौ ! हे सात्वतां प्रवर ! अर्थात् सब यादवनमें श्रेष्ठ हे प्रभो ! ॥ १० ॥ तुम जैसे काष्ठनमें ज्योति तैसे सब प्राणीनमें व्यापक गूढ अर्थात् सबमें रहोहौ, परन्तु उनको दिखाई नहीं देउहो क्यों कि बुद्धिके परेहो, साक्षी हौ, आपको स्वरूप देखिवेमें नहीं आवै है, महापुरुष ईश्वर हौ ॥ ११ ॥ मैं ईश्वरहूं और सब मेरे वश है यह काहेते तहां नारदजी कहै हैं अपने आधीन तुम प्रथम मायाकरिके सत्व रज तम इन गुणनकूं उत्पन्न करिके सम्पूर्ण विश्वको उत्पन्न करोहौ, और पालन रक्षा संहार करोहो, और फेर तुम्हैं सत्यसंकल्प अर्थात् काहू साधनकी अपेक्षा नहीं है, याकारण तुमही ईश्वर हौ ॥ १२ ॥

सो तुमने राजारूप दैत्य राक्षसनके नाश करिवेके लिये और धर्म मर्यादानकी रक्षा करिवेके लिये अवतार लियो है ॥ १३ ॥ घोड़ाके रूपको धरिके यह दैत्य आयो सो लीला करिके तुमने मार्‍यो यह बडो मंगल भयो, जाके हींसनको शब्द सुनिके भयके मारे देवता क्षणमें स्वर्गकूं त्यागि देई हैं ॥ १४ ॥ हे विभो अर्थात् समर्थ ! परसोंके दिन तुम निज हाथनते चाणूर मुष्टिक और मल्लनकूं तथा कुवलियापीड हाथीको और कंसको मारोगे सो देखोंगो ॥ १५ ॥ ता कंसके मरे पीछे शंखासुर कालयवन मुर दैत्य इनको वध देखूंगो, स्वर्गमें ते इंद्रकूं

त्वं भूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम् ॥ अवतीर्णो विनाशाय सेतूनां रक्षणाय च ॥ १३ ॥ दिष्ट्या ते निहतो दैत्यो लीलयायं हयाकृतिः ॥ यस्य हेषितसंत्रस्तास्त्यजन्त्यनिमिषा दिवम् ॥ १४ ॥ चाणूरं मुष्टिकं चैव मल्लान्यांश्च हस्तिनम् ॥ कंसं च निहतं द्रक्ष्ये परश्वोऽहनि ते विभो ॥ १५ ॥ तस्यानु शङ्खयवनमुराणां नरकस्य च ॥ पारिजातापहरणमिन्द्रस्य च पराजयम् ॥ १६ ॥ उद्वाहं वीरकन्यानां वीर्यशुल्कादिलक्षणम् ॥ नृगस्य मोक्षणं पापाद् द्वारकायां जगत्पते ॥ १७ ॥ स्यमन्तकस्य च मणेरादानं सह भार्यया ॥ मृतपुत्रप्रदानं च ब्राह्मणस्य स्वधामतः ॥ १८ ॥ पौण्ड्रकस्य वधं पश्चात् काशिपुर्याश्च दीपनम् ॥ दन्तवक्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ ॥ १९ ॥ यानि चान्यानि वीर्याणि द्वारकामावसन् भवान् ॥ कर्ता द्रक्ष्याम्यहं तानि गेयानि कविभिर्भुवि ॥ २० ॥

जीतके कल्पवृक्षको लाओगे ताय देखूंगो ॥ १६ ॥ अपनो पराक्रम मोल देके राजनकी कन्यानको व्याहोगे, सो देखूंगो। हे जगत्के पति ! द्वारकामें जायके नृगराजाको छुडाओगे सो देखूंगो ॥ १७ ॥ जाम्बुवती स्त्री व्याहिके स्यमंतक मणिकूं दायजेमें लाओगे, सो देखूंगो सांदीपनगुरुके महाकालपुरते मरे पुत्र सजीव लायके देउगे सो देखूंगो ॥ १८ ॥ मिथ्यावासुदेवको मारिके काशीपुरीको जराओगे, दंतवक्रको मारोगे, राजा युधिष्ठिरके यज्ञमें शिशुपालको मारोगे ताय मैं देखूंगो ॥ १९ ॥ द्वारिकावास करिके जे जे लीला करोगे तिन लीलानको कवीश्वर पृथ्वीमें गामेंगे सो

सब हम देखेंगे ॥ २० ॥ याके पीछे कालरूप तुम यापृथ्वीको बोझ उतारिवेके निमित्त अर्जुन के रथवान् होयके सैन्यानकूं मारोगे ताय देखेंगे ॥२१॥ केवल ज्ञान मूर्ति अपनी पूर्णानंद स्थितिसे पूर्णकाम सत्य संकल्प और अपनी चैतन्य शक्ति अपने तेजते नित्य मायासूं निवृत्त और छःप्रकार के ऐश्वर्ययुक्त तुम्हारी शरण प्राप्त भयो हूं ॥ २२ ॥ तुम ईश्वर हो अपने आश्रय औरके वश नहीं हो, अपने आधीन मायासूं महत्तत्त्व अहंकारते आदिलेके समस्त तत्वक्रीडा करिवेकेलिये तुमने रचे हैं, और मनुष्य रूप धारे यदु वृष्णि सात्वतनमें श्रेष्ठ तुमकूं नमस्कार है ॥ २३ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित् ! भक्तनमें श्रेष्ठ मननशील श्रीकृष्णचंद्रके दर्शनसें प्रसन्न होय नारदजी या प्रकार यादवनके पति श्रीकृष्णचन्द्रकूं

अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोरमुष्य वै ॥ अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः ॥२१॥ विशुद्धविज्ञानघनं स्वसंस्थया समाप्तसर्वार्थममोघवाञ्छितम् ॥ स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमायया गुणप्रवाहं भगवन्तमीमहि ॥२२॥ त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया विनिर्मिताशेषविशेषकल्पनम् ॥ क्रीडार्थमद्याऽऽत्तमनुष्यविग्रहं नतोऽस्मि धुर्यं यदुवृष्णिसात्त्वताम् ॥२३॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं यदुपतिं कृष्णं भागवतप्रवरो मुनिः ॥ प्रणिपत्याभ्यनुज्ञातो ययौ तद्दर्शनोत्सवः ॥२४॥ भगवानपि गोविन्दो हत्वा केशिनमाहवे ॥ पशूनपालयत् पालैः प्रीतैर्व्रजसुखावहः ॥२५॥ एकदा ते पशून् पालाश्चारयन्तोऽद्रिसानुषु ॥ चक्रुर्निलायनक्रीडाश्चोरपालापदेशतः ॥ २६ ॥ तत्रासन् कति चिच्चौराः पालाश्च कतिचिन्नृप ॥ मेषायिताश्च तत्रैके विजह्रुरकुतोभयाः ॥ २७ ॥ मयपुत्रो महामायो व्योमो गोपालवेषधृक् ॥ मेषायितानपोवाह प्रायश्चोरायितो बहून् ॥ २८ ॥

प्रणाम करि आज्ञा लेके जातभये ॥ २४ ॥ ब्रजवासीनके सुखके करनवारे भगवान गोविंद श्रीकृष्ण युद्धमें केशीको मारिके पशूनके पालन करनवारे ग्वाल सहित पशुनकूं पालन करत भये ॥ २५ ॥ एक समय गौनके पालनकर्त्ता ग्वालबाल गोवर्द्धनपर्वतके शिखरपै गौनको चरावत चौरपालनका मिसि करिके छिपाछिपीको खेल करत भये ॥ २६ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! ता खेलमें कितेकहू बालक चोर बने और कितेकहू रखवारे बने कितेकहू भेड बने ऐसे निर्भय होयके खेलत भये ॥ २७ ॥ इतनेमें बडो मायावी मय दैत्यको पुत्र व्योमासुर गोपालको रूप धरिके चोर

260

बनिके जे बालक भेड बने हे तिनमेंते चुरायके लेजात भयो ॥ २८ ॥ व्योमासुर जे बालक भेड बने हैं तिनमेंते चुरायके पर्वतकी गुफामें धरिके
शिलासे गुफाको द्वार मूंदत भयो जे बालक भेड बने हैं तिनमेंसे कोई पांच चार बाकी रहिगये ॥ २९ ॥ साधुनकों शरणके देनवारे श्रीकृष्णचंद्रने
मनमें विचार करो कि हमने तौ खेल करो है यह सांचौही चोर आय पहुंच्यौ ऐसे ता व्योमासुरकी चोरी जानिके गोपनकों लैके जाते
व्योमासुरकूं जैसे सिंह बल करिके व्याघ्रकूं पकरे है ऐसे पकरत भये ॥ ३० ॥ बली व्योमासुर पर्वतकी बराबर अपनो रूप धरिके

गिरिदर्यां विनिक्षिप्य नीतं नीतं महासुरः ॥ शिलया पिदधे द्वारं चतुःपञ्चावशेषिताः ॥ २९ ॥ तस्य तत् कर्म विज्ञाय
कृष्णः शरणदः सताम् ॥ गोपान् नयन्तं जग्राह वृकं हरिरिवौजसा ॥ ३० ॥ स निजं रूपमास्थाय गिरीन्द्रसदृशं बली ॥
इच्छन् विमोक्तुमात्मानं नाशक्नोद् ग्रहणातुरः ॥ ३१ ॥ तं निगृह्याच्युतो दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले ॥ पश्यतां दिवि
देवानां पशुमारममारयत् ॥३२॥ गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान् निःसार्य कृच्छ्रतः॥स्तूयमानः सुरैर्गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥ ३३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे व्योमासुरवधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ श्रीशुक
उवाच ॥ अक्रूरोऽपि च तां रात्रिं मधुपुर्यां महामतिः ॥ उषित्वा रथमास्थाय प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥

अपनेको छुडायो चाहै परन्तु नहीं छूटत भयो श्रीकृष्णके पकरनेसे आतुर भयो ॥ ३१ ॥ अच्युत श्रीकृष्ण व्योमासुरकी दोनों
भुजा पकरिके पृथ्वीमें पटकिके स्वर्गके देवतानके देखत देखत श्वास घोटिके मारत भये ॥ ३२ ॥ गुफाके ढकनाको फोरिके गोपनको कष्टते
बाहिर निकासिके ऊपर देवता विमाननमें स्तुति करें पृथ्वीमें गोप जिनकी स्तुति करें ऐसे श्रीकृष्ण अपने गोकुलमें आवत भये॥ ३३ ॥
इति श्रीमन्म० भाग० भाषाटी० दश० पू० व्योमासुरवधो नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित् !

---

१ एक काहू बनियेको टीका आयो, सब लोक गये काहूको पैसा मिलो काहूको नारियल काहूको लडुआ यह सुन कोई सूरदास काहूसैं आधोसाझो ठहराय वाके संगगये वहां सूरदासको बतासेही मिले अपने घर आय दोनों जने एक २ खान लगे अंधो बेईमान होय है यानै बिचार कियो जाहि सूझै है सो दोदो बतासे खात होयगो सो आंधो दोदो खाने लगो फिर हाथ सैं टटोरै है तौ थोरे होत जांय बिचारचोकि यह चारचार खातहोयगो सो आप चार २ खानलगो ऐसेही हाथसैं टटोरे कमती दीखैं तौ दूने खातजाय तौ दूने चौगुने आठगुने कमती होतजांय हैं ऐसेही व्योमासुर बालकनको लेजाय ॥

बडी बुद्धिवारे अक्रूरजी वा दिन रात्रिकूं मधुपुरीमें बसिके प्रातःकाल रथमें बैठिके नंदजीके गोकुलमें जात भये ॥ १ ॥ बडे भाग्यवारे अक्रूरजी मार्गमें जाते कमलनेत्र श्रीकृष्णचंद्रमें परमभक्तिकूं पावतभये; और यह विचार करत भये ॥ २ ॥ मैंने कौन मंगल कर्म करौ है अथवा तप करौ है वा सत्पात्रनकूं दान करो है, जाके प्रभावते ब्रह्मा महादेवके ईश्वर श्रीकृष्णचंद्र भगवान्को आज दर्शन करूंगो ॥ ३ ॥ मोको भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको दर्शन होयगो, यह मैं दुर्लभ मानूंहूं, विषयनमें मन, शूद्र कुलमें जन्म ऐसे पुरुषको वेदको उच्चारण जैसे दुर्लभ है ॥ ४ ॥ ऐसे मत कहूं श्रीकृष्णको दर्शन न होय किंतु मुझ अधमकूं श्रीकृष्णके दर्शन निश्चय होइगे जैसे नदीनके प्रवाहमें बडे तृणनमें कोई किनारे पै लगे हैं, तैसे कामनके वश होयके जो जीव हैं तिनमें कोई तरैं हैं ॥ ५ ॥ मैं श्रीकृष्णके लिवायवेकूं चल्योहूं याते मेरो अब मंगलरूप भयो मेरो जन्म सफल भयो, योगी जिनको ध्यान करैं ऐसे श्रीकृष्णचंद्र भगवान्के चरणकमलको नमस्कार करूंगो ॥ ६ ॥ बडो आश्चर्य है अत्यंत दुष्ट कंसने मेरे ऊपर बडो अनुग्रह करौ है जो कंसको भेज्यो मैं आयो, अवतारधारी भक्तनके मनके हरनवारे श्रीकृष्णचंद्रके चरणारविंदको मैं दर्शन करूंगो प्रथम अंबरीषसूं आदि लैके जे राजा भये हैं ते जिन श्रीकृष्णके नखमंडलकी कांतिसूं तरिवेमें अशक्य संसाररूपी अंधकारकूं तरिजात भये ॥ ७ ॥ जो चरणारविंद ब्रह्मा महादेवसूं आदि लेके देवतानने और प्रकाशमान लक्ष्मीने मुनीश्वरनके भक्तनने पूजे हैं, और गौनके चरायवेके

गच्छन् पथि महाभागो भगवत्यम्बुजेक्षणे ॥ भक्तिं परामुपगत एवमेतदचिन्तयत् ॥ २ ॥ किं मयाचरितं भद्रं किं तप्तं परमं तपः ॥ किं वाऽथाऽप्यर्हते दत्तं यद् द्रक्ष्याम्यद्य केशवम् ॥ ३ ॥ ममैतद् दुर्लभं मन्य उत्तमश्लोकदर्शनम् ॥ विषयात्मनो यथा ब्रह्मकीर्तनं शूद्रजन्मनः ॥ ४ ॥ मैवं ममाधमस्यापि स्यादेवाच्युतदर्शनम् ॥ ह्रियमाणः कालनद्या क्वचित् तरति कश्चन ॥ ५ ॥ ममाद्यामङ्गलं नष्टं फलवांश्चैव मे भवः ॥ यन्नमस्ये भगवतो योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजम् ॥ ६ ॥ कंसो बताद्याऽकृत मेऽत्यनुग्रहं द्रक्ष्येऽङ्घ्रिपद्मं प्रहितोऽमुना हरेः ॥ कृतावतारस्य दुरत्ययं तमः पूर्वेऽतरन् यन्नखमण्डलत्विषा ॥ ७ ॥ यदर्चितं ब्रह्मभवादिभिः सुरैः श्रिया च देव्या मुनिभिः ससात्त्वतैः ॥ गोचारणायानुचरैश्चरद्वने यद्गोपिकानां कुचकुङ्कुमाङ्कितम् ॥ ८ ॥

लिये जो चरणारविंद ग्वालबालनके संग वनमें फिरचो है और जा चरणारविंदमें गोपनिके कुचनकी केशरी लगी है वा चरणारविंदको दर्शन करूंगो सुंदर कपोल नासिका और मुसिकानि भरी चितमनि अरुण डोर जिनमें आयरहे ऐसे कमलनेत्र, घुमघुमारी अलकौंसै युक्त श्रीकृष्णचंद्रके मुख को निश्चय दर्शन करूंगो कारण कि हरिण मेरे दाहिने आये हैं ॥ ९ ॥ पृथ्वीको भार उतारिवेको लिये अपनी इच्छासूं अब मनुष्यरूप धारण करनेहारे शोभाके धाम श्रीकृष्णचंद्रको सुंदररूप दर्शन करूंगो तब मेरे नेत्र सफल होयगे ॥ १० ॥ तहां कोई शंका करै है कि हमारी तुल्य कर्मनके करनवारो दिखाई देयहै तुम कैसे भगवान् कहो हौ, ताकौ उत्तर देयहै तीन लोकके कार्यरूप जगत और कारणरूप महदादिक तत्त्वकूं श्रीकृष्णचंद्र चितवनिसूं करे हैं, तथापि उनके अहंकार नहीं है, अपने तेजसों अज्ञानके भेद भ्रमसै रहित हैं अपने आधीन माया मायाकी ओर

द्रक्ष्यामि नूनं सुकपोलनासिकं स्मितावलोकारुणकञ्जलोचनम् ॥ मुखं मुकुन्दस्य गुडालकावृतं प्रदक्षिणं मे प्रचरान्ति
मृगाः ॥ ९ ॥ अप्यद्य विष्णोर्मनुजत्वमीयुषो भारावताराय भुवो निजेच्छया ॥ लावण्यधाम्नो भवितोपलम्भनं मह्यं
न न स्यात् फलमञ्जसा दृशः ॥ १० ॥ य ईक्षिताऽहं रहितोऽप्यसत्सतोः स्वतेजसापास्ततमोभिदाभ्रमः ॥ स्वमाययाऽत्मन्
रचितैस्तदीक्षया प्राणाक्षधीभिः सदनेष्वभीयते ॥ ११ ॥ यस्याखिलाऽमीवहाभिः सुमङ्गलैर्वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः
॥ प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जगद् यास्ताद्विरक्ताः शवशोभना मताः ॥ १२ ॥ स चावतीर्णः किल सात्त्वतान्वये
स्वसेतुपालामरवर्यशर्मकृत् ॥ यशो वितन्वत् व्रज आस्त ईश्वरो गायन्ति देवा यदशेषमङ्गलम् ॥ १३ ॥

चितवनि करिके अपनेमें रचे जीव वृंदावनके वृक्षनके नीचे और गोपिनके घरनमें लीला करिके बद्धसे दिखाई देय हैं ॥ ११ ॥ जिन श्रीकृष्णके अहकार नहीं है तो आत्माराम है तिनकूं लीला करिवो कैसे बने है या शंकाको उत्तर कहे हैं कि भक्तनके ऊपर कृपा करिवेके लिये लीला करे हैं, सबके पापनके दूर करनवारे सुंदर मंगलरूप श्रीकृष्णचंद्रके गुण जन्म कर्मसूं मिली वाणी जगतकूं जिवावै हैं, और शोभायमान करे हैं, पवित्र करे हैं, और जिन वाणीनमें श्रीकृष्णचंद्रके लीला गुण जन्म कर्म नहीं गाये हैं उनको जे कहे हैं और श्रवण करे हैं ते अपवित्र हैं जैसे मृत्यु भयो शरीर अपवित्र है ॥ १२ ॥ यादवनके कुलमें जिन श्रीकृष्णचंद्रने अवतार लियो है अपनी मर्यादानको पालन करनेहारे लोकपालोंके

सुखके करनवारे श्रीकृष्णचंद्र ईश्वर लीला करिके यशको फैलावत व्रजमें रहे हैं सबको मंगलरूप उनके यशको देवता गामैं हैं ॥ १३ ॥
महतपुरुषनको सुंदर गतिके देनवारे गुरु त्रिलोकीमें सुंदर नेत्रनवारे पुरुषनकूं आनंदके देनवारो लक्ष्मीको वांछित रहिवेको ठिकानो अतिसुंदर
रूपकों धारण करें श्रीकृष्णचंद्रको आज मैं निश्चय दर्शन करूंगो, प्रातःकालके समय मेरे श्रेष्ठ शकुन भये हैं ॥ १४ ॥ दर्शन करे पीछे शीघ्र
रथमेंते उतरिके ईश्वर रामकृष्णकों निश्चय प्रणाम करोंगो, और इनसहित व्रजवासी सखानकों प्रणाम करूंगो, जिन रामकृष्णको चरणारविं
योगीनने आत्मलाभके लिये केवल मनमें ध्यान कियोहै ताकों मैं साक्षात् प्रणाम करूंगो ॥ १५ ॥ चरणमें परे परे शिरपै समर्थ श्री-

तं त्वद्य नूनं महतां गतिं गुरुं त्रैलोक्यकान्तं दृशिमन्महोत्सवम् ॥ रूपं दधानं श्रिय ईप्सितास्पदं द्रक्ष्ये ममाऽऽसन्नुष-
सः सुदर्शनाः ॥ १४ ॥ अथावरूढः सपदीशयो रथात् प्रधानपुंसोश्चरणं स्वलब्धये ॥ धिया धृतं योगिभिरप्यहं ध्रुवं न-
मस्य आभ्यां च सखीन् वनौकसः ॥ १५ ॥ अप्यङ्घ्रिमूले पतितस्य मे विभुः शिरस्यऽधास्यन्निजहस्तपङ्कजम् ॥ दत्ताभ-
यं कालभुजङ्गरंहसा प्रोद्वेजितानां शरणैषिणां नृणाम् ॥ १६ ॥ समर्हणं यत्र निधाय कौशिकस्तथा बलिश्चाप जगत्त्रये-
न्द्रताम् ॥ यद्वा विहारे व्रजयोषितां श्रमं स्पर्शेन सौगन्धिकगन्ध्यपानुदत् ॥ १७ ॥ न मय्युपैष्यत्यरिबुद्धिमच्युतः
कंसस्य दूतः प्रहितोऽपि विश्वदृक् ॥ योऽन्तर्बहिश्चेतस एतदीहितं क्षेत्रज्ञ ईक्षत्यमलेन चक्षुषा ॥ १८ ॥

कृष्णचंद्र अपने हाथको धरैं गे, जो हाथ कालरूप सर्पकी फुंकारसौं डरपिके शरणकूं चाहनेहारे मनुष्यनकूं अभयदान दैने हारो है ॥ १६ ॥ जिन श्री-
कृष्णके हाथमें इंद्र पूजा राखिके इंद्रता पावत भयो तैसें ही राजा बली संकल्प राखिके त्रिलोकीकी इंद्रता पावतभयो रासक्रीडामें व्रजकी स्त्री गोपी-
नके श्रमके पसीनाकूं जा हाथते पोंछत भये और कमलकीसी जा हाथमें सुगंधि आवै वा हाथको मेरे शिरपै धरेंगे ॥ १७ ॥ कंसको संदेशो लैके
कंसको भेज्यो जाऊंहूं तथापि समस्त विश्वके जाननवारे श्रीकृष्णचंद्र वैरी कंसके पासते यह आयो है ऐसी बुद्धि नहीं करैं गे कारण कि वे अंतर्यामी
श्रीकृष्ण मेरे चित्तकी बाहिर भीतरकी चेष्टाकूं नित्यज्ञान करिके देखे हैं ऊपरते कंसको भेज्यो जाऊंहो भीतरते श्रीकृष्णको ध्यान लगिरह्यो है जा

बातको नित्यज्ञानकरिके अंतर्यामी जाने हैं॥८॥ चरणारविंदमैं गिऱ्यो हाथ जोरे मुझै मुसिकाय के श्रीकृष्णचंद्र करुणाभरी दृष्टिसों जा समय देखेंगे तासमय शीघ्रहू पाप और भय दूर हो जानेसै दूरि भये हैं सब पाप जाके गयो है भय जाके जाति और कुटुम्बी जान मुझे अपनी बडे आनंद पाऊंगो ॥१९॥जिनके अतिशयकरिके हितकारी श्रीकृष्णके विना और कोई देवता नहीं वह श्रीकृष्णचंद्र अपनी जाति और कुटुंबी मुझै अपनी लंबी भुजा पसारिके छातीते लगामेंगे, तासमय यह देह पवित्र होय जायगो और कर्मरूप बन्धनभी या देहको छूटि जायगो॥२०॥श्रीकृष्णते मिलिके नारि झुकाय

अप्यङ्घ्रिमूलेऽवहितं कृताञ्जलिं मामीक्षिता सस्मितमार्द्रया दृशा॥सपद्यपध्वस्तसमस्तकिल्बिषो वोढा मुदं वीतविशङ्क ऊर्जिताम् ॥ १९ ॥ सुहृत्तमं ज्ञातिमनन्यदैवतं दोर्भ्यां बृहद्भ्यां परिरप्स्यतेऽथ माम् ॥ आत्मा हि तीर्थीक्रियते तदैव मे बन्धश्च कर्मात्मक उच्छ्वसित्यतः ॥ २० ॥ लब्ध्वाङ्गसङ्गं प्रणतं कृताञ्जलिं मां वक्ष्यतेऽक्रूर ततेत्युरुश्रवाः ॥ तदा वयं जन्मभृतो महीयसा नैवादृतो यो धिगमुष्य जन्म तत् ॥ २१ ॥ न तस्य कश्चिद्दयितः सुहृत्तमो न चाप्रियो द्वेष्य उपेक्ष्य एव वा ॥ तथाऽपि भक्तान् भजते यथा तथा सुरद्रुमो यद्वदुपाश्रितोऽर्थदः ॥ २२ ॥ किं वाऽग्रजो माऽवनतं यदूत्तमः स्मयन् परिष्वज्य गृहीतमञ्जलौ ॥ गृहं प्रवेश्याप्तसमस्तसत्कृतं सम्प्रेक्ष्यते कंसकृतं स्वबन्धुषु ॥ २३ ॥

के हाथ जोरिके जब ठाढो होऊगो तब हे अक्रूर हे काका ! या प्रकार बडे यशस्वी श्रीकृष्ण मोते कहें गे, तासमय हम सफलजन्म होंयगे भगवान जाको आदर नहीं करै वा पुरुषकों धिक्कार है॥२१॥तिन श्रीकृष्णके कोई प्यारो और अतिशय करिके हितकारी भी नहीं है कोई कुप्यारो नहीं, और न कोई वैरी है न कोई छोडिवे योग्य है, तथापि जो भक्त जैसे भजे हैं, ताको तैसें ही भजे है, जैसे कल्पवृक्ष जो सेवन करे हैं ताही कों वह फल देह है॥२२॥ यादवन में श्रेष्ठ बडे भैया ! बलदेवजी नीची नारि करिके ठाढे मुझे मुसिकायके आलिंगन करिके हाथ पकरिके घरमें लेजाय के समस्त सत्कार करकै

---

१ कृष्णअंतरयामी कपट प्रीति सबकी जाने है एक बडे मारी ठगथे सो एकदिन बडी ऐंठभा पाग बांधके चले लोगन्ने कही कहां चले बोले सबकूं तौ हमने ठग्यो परन्तु जो परमेश्वरकूं ठगैंकै लावैं तौ हमारो नाम ठग है ऐसा कह चले परन्तु थोरी दूरजाय बगादि आये लोक बोले क्यौं भाई कैसे बगदे तौ यह बोले कहा कहै ठगते तौ सही परन्तु वह तौ अन्तर्यामी है हमारे मनको कपट जान जायगो वातैं हमारो दाव नही लैंगगौं ॥

मुझसे अपने बन्धु यादवनमें कंसके कर्त्तव्यको पूछेंगे ॥ २३ ॥ अब श्रीशुकदेवजीकूं कहैं हैं हे राजन् परीक्षित् ! या प्रकार श्वफल्कके पुत्र अक्रूर मार्गमें श्रीकृष्णचंद्रको चिंतवन करत रथमें बैठकर गोकुल पहुंचे इतनेमें सूर्य अस्ताचलको प्राप्त होयगयो ॥ २४ ॥ सम्पूर्ण लोकनके पालन करनवारे ब्रह्मादिक देवता अपने मुकुटनके ऊपर जिनके चरणनकी रेणुको धारण करें ऐसे श्रीकृष्णचंद्रके चरणनके खोज अक्रूरजी व्रजमें देखत भये कैसे खोज हैं पृथ्वीके गहनेरूप हैं, कमल जव अंकुशके जिनमें चिन्ह हैं ॥ २५ ॥ श्रीकृष्णचंद्रके चरणचिन्हके दर्शनके आनंदते संभ्रम और प्रेमसे रोमांच होय आये नेत्रनमें आंसू आयगये, सो अक्रूरजी रथते उतरिके अहो यह मेरे प्रभुके चरणनकी रज है ऐसे कहत

श्रीशुक उवाच ॥ इति सञ्चितयन् कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि ॥ रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ॥ २४ ॥ पदानि तस्याखिललोकपालकिरीटजुष्टामलपादरेणोः ॥ ददर्श गोष्ठे क्षितिकौतुकानि विलक्षितान्यऽब्जयवाङ्कुशाद्यैः ॥ ॥२५॥तद्दर्शनाह्लादविवृद्धसम्भ्रमः प्रेम्णोर्ध्वरोमाऽश्रुकलाकुलेक्षणः ॥ रथादवस्कन्द्य स तेष्वचेष्टत प्रभोरमून्यङ्घ्रिरजांस्यहो इति॥२६॥ देहं भृतामियानर्थो हित्वा दम्भं भियं शुचम्॥सन्देशाद्यो हरेर्लिङ्गदर्शनश्रवणादिभिः॥२७॥ददर्श कृष्णं रामं च व्रजे गोदोहनं गतौ ॥ पीतनीलाम्बरधरौ शरदम्बुरुहेक्षणौ ॥ २८ ॥ किशोरौ श्यामलश्वेतौ श्रीनिकेतौ बृहद्भुजौ ॥ सुमुखौ सुन्दरवरौ बालद्विरदविक्रमौ ॥२९॥ध्वजवज्राङ्कुशाम्भोजैश्चिह्नितैरघ्रिभिर्व्रजम् ॥ शोभयन्तौ महात्मानौ सानुक्रोशस्मितेक्षणौ॥३०॥उदाररुचिरक्रीडौ स्रग्विणौ वनमालिनौ॥पुण्यगन्धानुलिप्ताङ्गौ स्नातौ विरजवाससौ ॥३१॥

कहत चरणनके खोजनमें लोटत भये ॥ २६ ॥ देहधारीनको इतनोही पुरुषार्थ है कंसके संदेश लेके दंभ भय सोच छोडके श्रीकृष्णके चरणनके चिन्ह दर्शन श्रवणादिकसूं जो अक्रूरको प्रेम भयो ॥ २७ ॥ व्रजमें गोशालामें गौ दुहिवेको गये श्रीकृष्ण और बलदेवजीको अक्रूरजी देखत भये जो पीताम्बर और नीलाम्बरकूं पहिरे हैं तथा जिनके शरदऋतुके कमलसे नेत्र हैं ॥ २९ ॥ किशोर अवस्था श्याम और गौर स्वरूप लक्ष्मीकी शोभाके स्थान लंवी भुजा, सुन्दर मुख, सुन्दरनमें अति सुन्दर, हाथीके छोनाके तुल्य पराक्रमवारे ॥ २८ ॥ ध्वजा वज्र अंकुश [illegible]लके चिन्ह वारे चरणसूं व्रजको शोभायमान करैं हैं, महात्मा हैं, कृपाभरी मुसिकानि लिये जिनकी चितवनि है ॥ ३० ॥ उदार रुचिर जिनकी क्रीडा है,

मोतिनके हार और वनमाला पहिरे, पावन चंदन केशरि लगाये स्नान किये निर्मल वस्त्र पहरे ॥ ३१ ॥ प्रकृतिपुरुषरूप आदिकारण जगत्के पालन करनवारे, पृथ्वीको भार उतारिवेके लिये बलराम केशव दो रूप धारिके अवतार लियें हैं ॥ ३२ ॥ हे राजन् परीक्षित्! अपने तेजते दिशानके अंधकारको दूर करें हैं जैसे सुवर्ण करिके नीलमणिको पर्वत अथवा रूपेको पर्वत झगमगाय है ऐसे रामकृष्णके रूप निहार ॥ ३३ ॥ स्नेहमें विह्वल होयके अक्रूरजी शीघ्र रथमैंते उतरिके रामकृष्णके चरणनमें दंडवत करत भये ॥ ३४ ॥ हे राजन्! परीक्षित! श्रीकृष्णके दर्शनसूं आनंद भयो तासूं नेत्रनमें अश्रुपात भरि आए. उत्कंठाते अंगमें रोमांच होय आये मैं अक्रूर दंडवत् करूंहूं ऐसे कहिवेको न समर्थ होत भये ॥ ३५ ॥ हितके करनवारे भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अक्रूर एतदर्थ आये हैं यह जानिके चक्रकी रेखावारे अपने हाथते पकरिके प्रसन्न होयके छातीसों लगायके मिलत भये मिलिवेको कारण यह है कि कंसके मारिवेकी सामर्थ्य श्रीकृष्णने जताई ॥ ३६ ॥ उदार मन संकर्षण बलदेवजी दंडवत करते हुए अक्रूरजीकों छातिसूं लगायकै अपने हाथते दोनों हाथ पकरिके घरमें श्रीकृष्ण सहित लिवाय जातभये ॥ ३७ ॥ भले आये ऐसे कुशल पूछिके अक्रूरजीको आसन बिछायके विधिपूर्वक पावनकों धोयके मधुपर्क देकै पूजन करत भये ॥३८॥ विधिपूर्वक पूजा करिके गौदान अक्रूरजीको दी मार्गमें परिश्रम पाये अक्रूरजीके चरणारविंद आदरसों दाबिके गुणभरी पवित्र अन्नकी सामग्री भोजनार्थ अति श्रद्धासों अक्रूरजीके आगे निवेदन करतभये॥३९॥

प्रधानपुरुषावाद्यौ जगद्धेतू जगत्पती ॥ अवतीर्णौ जगत्यर्थे स्वांशेन बलकेशवौ ॥३२॥ दिशो वितिमिरा राजन् कुर्वाणौ प्रभया स्वया ॥ यथा मारकतः शैलो रौप्यश्च कनकाचितौ ॥ ३३ ॥ रथात् तूर्णमवप्लुत्य सोऽक्रूरः स्नेहविह्वलः ॥ पपात चरणोपान्ते दण्डवद् रामकृष्णयोः ॥ ३४ ॥ भगवद्दर्शनाह्लादबाष्पपर्याकुलेक्षणः ॥ पुलकाचिताङ्ग औत्कण्ठ्यात्स्वाख्याने नाशकन्नृप ॥ ३५ ॥ भगवांस्तमभिप्रेत्य रथाङ्गाङ्कितपाणिना ॥ परिरेभेऽभ्युपाकृष्य प्रीतः प्रणतवत्सलः ॥ ३६ ॥ सङ्कर्षणश्च प्रणतमुपगुह्य महामनाः ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणी अनयत् सानुजो गृहम् ॥ ३७ ॥ पृष्ट्वाथ स्वागतं तस्मै निवेद्य च वरासनम् ॥ प्रक्षाल्य विधिवत् पादौ मधुपर्कार्हणमाहरत् ॥ ३८ ॥ निवेद्य गां चातिथये संवाह्य श्रान्तमादृतः ॥ अन्नं बहुगुणं मेध्यं श्रद्धयोपाहरद्विभुः ॥ ३९ ॥

अक्रूरजी भोजन जब करिचुके तब परधर्मके जाननवारे बलदेवजी वीरी चंदन केशरि अतर फूलनके हार इत्यादिकनसूं प्रसन्न करतभये ॥ ४० ॥ सनमान करके अक्रूरजीते नंदजी पूछतभये निर्दयी कंसके जीवत तुमारो कैसे जीवन होयहै, कसाईके घर रहती भेडकी समान तुम कैसे रहते हो! ॥ ४१ ॥ प्राणनके पोषणवारे दुष्ट कंसने विलाप करती अपनी बहिनिके पुत्र मारे ता कंसकी प्रजा तुमहो तुम्हारी कहा कुशल विचारे ॥ ४२ ॥ याप्रकार मधुर बचनते पूंछिके नंदजीसे सत्कार पाय अरक्रूजी मार्गके परिश्रमको त्यागतभये ॥ ४३ ॥ इति श्रीमन्महाभागव

तस्मै भुक्तवते प्रीत्या रामः परमधर्मवित् ॥ मुखवासैर्गन्धमाल्यैः परां प्रीतिं व्यधात् पुनः ॥ ४० ॥ पप्रच्छ सत्कृतं नन्दः कथं स्थ निरनुग्रहे ॥ कंसे जीवति दाशार्ह सौनपाला इवावयः ॥ ४१ ॥ योऽवधीत् स्वस्वसुस्तोकान् क्रोशन्त्या असुतृप् खलः ॥ किं नु स्वित् तत्प्रजानां वः कुशलं विमृशामहे ॥ ४२ ॥ इत्थं सूनृतया वाचा नन्देन सुसभाजितः ॥ अक्रूरः परिपृष्टेन जहावध्वपरिश्रमम् ॥ ४३ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अक्रूरागमनं नामाऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ सुखोपविष्टः पर्यङ्के रामकृष्णोरुमानितः ॥ लेभे मनोरथान् सर्वान् पथि यान् स चकार ह ॥१॥ किमलभ्यं भगवति प्रसन्ने श्रीनिकेतने ॥ तथाऽपि तत्परा राजन् नहि वाञ्छन्ति किञ्चन ॥ २ ॥ सायन्तनाशनं कृत्वा भगवान् देवकीसुतः ॥ सुहृत्सु वृत्तं कंसस्य पप्रच्छान्यच्चिकीर्षितम् ॥ ३ ॥

तभाषाटीकायां दशमस्कन्धे पू० अक्रूरागमनं नाम अष्टत्रिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ३८ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहैंहैं हे राजन्! परीक्षित! शय्याके ऊपर सुखपूर्वक बैठे कृष्ण बलदेवसे बडो सत्कार पाय अक्रूरजी मार्गमें जे जे मनोरथ करते भये हे ते समस्त पूरणभये ॥ १ ॥ छःप्रकारके ऐश्वर्य करि परिपूर्ण शोभाके स्थान श्रीकृष्ण जब प्रसन्न भये तब कौनसी वस्तुकी प्राप्ति न भई ? हे राजन् परीक्षित! कृष्णपरायण भक्तको कछु वस्तुकी चाहना नहीं है ॥ २ ॥ देवकीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्णचंद्र संध्यासमय व्यारू करिके अपने यादवनसे जो कंसको वर्त्ताबहै सो अक्रूरजीसूं पूछत

268

भये. और कछु करिवेको विचार है सो पूछत भये ॥ ३ ॥ श्रीभगवान् श्रीकृष्ण बूझें हैं हे काका साधु ! तुम भलेआये, तुम्हारो कल्याण होउ, जाति के भैयाबंधूकों सुख है आरोग्य है ॥ ४ ॥ अंग अर्थात् हे अक्रूर ! मामा कंसतो हमारे कुलको रोग बढो है तब अपने भैया बंधुननकी और कंसकी प्रजाकी कहा कुशल पूछें ॥ ५ ॥ हमारे निरपराध मातापिताकूं हमारे लिये बडो दुःख भयो हमारे लिये उनके पुत्र मरे हमारे लिये उन को बंधन भयो ॥ ६ ॥ हे साधु ! बहुत दिनते तुम्हारे दर्शनकी अभिलाषा रही, अब अपनेनको दर्शन भयो हे काका ! तुम्हारो आयवो कैसे भयो यह हमते वर्णन करो ॥ ७ ॥ मधुवंशोद्भव अक्रूरजी श्रीकृष्णके पूछे ते सम्पूर्ण वृत्तांत कहत भये कंस यादवनसूं वैर करे है और वसुदेवके मारिवेके उद्यम करै है धनुषयज्ञके देखिवेको तो मिस है चाणूरादिकनपै घात करायवेके लिये मोहि भेजो है, वसुदेवके श्रीकृष्णको जन्म भयो है, यह बात नारदजी कंसते कहिआये हैं सो संपूर्ण अक्रूरजी श्रीकृष्णते कहतभये ॥ ९ ॥ श्रीकृष्णचंद्र और बडे बडे शत्रुनके पराजय करनवारे श्रीबलदेवजी अक्रूरको वचन श्रवण करिके पिता नंदजीसूं हंसिके राजा कंसको संदेशो जतावतभये ॥ १० ॥ नंदजी गोपनको आज्ञा देतभये संपूर्ण दूध दही लैलेउ गाडानको जोतो ॥ ११ ॥

श्रीभगवानुवाच ॥ तात सौम्यागतः कच्चित् स्वागतं भद्रमस्तु वः ॥ अपि स्वज्ञातिबन्धूनामनमीवमनामयम् ॥ ४ ॥ किं नु नः कुशलं पृच्छे एधमाने कुलामये ॥ कंसे मातुलनाम्न्यङ्ग स्वानां नस्तत्प्रजासु च ॥ ५॥ अहो अस्मदभूद् भूरि पित्रोर्वृजिनमार्ययोः ॥ यद्धेतोः पुत्रमरणं यद्धेतोर्बन्धनं तयोः ॥६॥ दिष्ट्याऽद्य दर्शनं स्वानां मह्यं वः सौम्य काङ्क्षितम् ॥ सञ्जातं वर्ण्यतां तात तवागमनकारणम् ॥७॥ श्रीशुक उवाच ॥ पृष्टो भगवता सर्वं वर्णयामास माधवः ॥ वैरानुबन्धं यदुषु वसुदेववधोद्यमम् ॥ ८ ॥ यत्सन्देशो यदर्थं वा दूतः संप्रेषितः स्वयम् ॥ यदुक्तं नारदेनास्य स्वजन्मानकदुन्दुभेः ॥ ९ ॥ श्रुत्वाऽक्रूरवचः कृष्णो बलश्च परवीरहा ॥ प्रहस्य नन्दं पितरं राज्ञाऽऽदिष्टं विजज्ञतुः ॥ १० ॥ गोपान् समादिशत् सोऽपि गृह्यतां सर्वगोरसः ॥ उपायनानि गृह्णीध्वं युज्यन्तां शकटानि च ॥११॥

कल्हके दिन मथुरा जांयगे राजा कंसको रस देंयगे, यामें यह बोधन करो कि जब देहमें रोग वृद्धिकूं प्राप्त होयहै तब रस देयहैं, ऐसे कंसरूपी रोग बढो है याकों रस देंयगे, और देशवासीहू जांयगे ऐसे नंदरायजी अपनी गोकुलके कोतवालको बुलायके दोंडी पिटावत भये ॥ १२ ॥ वे गोपी जा समय अपने जीवन श्रीकृष्ण बलरामको मथुरापुरीमें लेजायवेकूं ब्रजमें अक्रूरजी आये हैं, यह बात सुनिके अत्यंत दुःखित होतभई ॥ १३ ॥ अब गोपीनके दुःखके लक्षण कहें हैं श्रीकृष्ण मथुरा जांयगे यह बात सुनिकै हृदयके उत्पन्न हुए तापसों गोपिनके मुख कुमलायगये, वस्त्र चूरी कंकण केशनकी ग्रंथि यह सब शिथिल होगई ॥ १४ ॥ ता श्रीकृष्णके ध्यान करते बहुत गोपियौंकी यह दशा हुई कि उनकी इन्द्रियौंकी वृत्ति

यास्यामः श्वो मधुपुरीं दास्यामो नृपते रसान् ॥ द्रक्ष्यामः सुमहत् पर्व यान्ति जानपदाः किल ॥ एवमाघोषयत् क्षत्त्रा नन्दगोपः स्वगोकुले ॥ १२ ॥ गोप्यस्तास्तदुपश्रुत्य बभूवुर्व्यथिता भृशम् ॥ रामकृष्णौ पुरीं नेतुमक्रूरं व्रजमागतम् ॥ १३ ॥ काश्चित् तत्कृतहृत्तापश्वासम्लानमुखश्रियः ॥ स्रंसद्दुकूलवलयकेशग्रन्थ्यश्च काश्चन ॥ १४ ॥ अन्याश्च तदनुध्याननिवृत्ताशेषवृत्तयः ॥ नाभ्यजानन्निमं लोकमात्मलोकं गता इव ॥ १५ ॥ स्मरन्त्यश्चापराः शौरेरनुरागस्मितेरिताः ॥ हृदिस्पृशश्चित्रपदा गिरः संमुमुहुः स्त्रियः ॥ १६ ॥ गतिं सुललितां चेष्टां स्निग्धहासावलोकनम् ॥ शोकापहानि नर्माणि प्रोद्दामचरितानि च ॥ १७ ॥ चिन्तयन्त्यो मुकुन्दस्य लीलाविरहकातराः ॥ समेताः सङ्घशः प्रोचुरश्रुमुख्योऽच्युताशयाः ॥ १८ ॥

जाती रही नेत्रनते देखिबो काननते सुनिबो वाणीते बोलिबो नासिकाते सूंघिबो सब छूटिगयो और कोई गोपी मुक्त पुरुषोंके समान या देहको न जानत भई ॥ १५ ॥ कोई गोपी स्नेहते मुसिकायके हृदयको आनंददायक चित्रविचित्र बोलनिवारे श्रीकृष्णके वचननकी सुधि करिके मोहित होत भई ॥ १६ ॥ कोई मुक्तिके देनवारे श्रीकृष्णचंद्रकी मनोहर चलनि स्नेहभरी चितवनि शोककी दूरि करनवारी बोलनि इत्यादिक चेष्टानकूं बडे चरित्रनकूं स्मरण करत भई ॥ १७ ॥ यह सत्यही जायंगे या भयसें विरहमें कातर अश्रु मोहपै बहाती श्रीकृष्ण भगवान्में मन लगाये

हजारन गोपिनके झुंड जुरि मिलिके समस्त आपुसमें यह कहत भई ॥१८॥ गोपी कहैं हैं अहो विधाता ! तेरे कहूं दया नहीं है देहधारीनको मिलायके मित्रता करावै स्नेह लगावै फेरि उनके मनोरथ पूर्ण न होनपामें तबतक उनको ऐसो न्यारो न्यारो करिदेय है जैसे बालक खिलौनाको इकठौरो करिके फेरि न्यारो न्यारो करदेय है यह तेरो कर्तव्य व्यर्थ है ॥ १९ ॥ तेरो यह कर्म निंदित है अब यह कहैं हैं घूमघुमारी छल्लादार अलकें जापैं छूटरही सुन्दर जामें कपोल ऊंची जामें नासिका शोककी हरनवारी मंद मंद जामें मुसिकानि तासों सुन्दर ऐसे प्यारे श्रीकृष्णचंद्रको मुख दिखायके हमारे नेत्रनसे न्यारो करै है यह तेरो कर्म बुरो है ॥२०॥ दान करिके लेइ है याते तू बडो कठोर है (अक्रूर लेजाय है मैं तौ नहीं लेजाऊंहू कदाचित् ऐसे विधाता कहै है तहां गोपी कहै हैं) अरे विधाता निर्दयी! अक्रूर नामधरिके तुही आयो है सो तैंने हमकौं कृष्णरूपनेत्र दिये हैं, तिनकूं अज्ञानी तुल्य हरिके लेजाय

गोप्य ऊचुः ॥ अहो विधातस्तव न क्वचिद् दया संयोज्य मैत्र्या प्रणयेन देहिनः ॥ तांश्चाकृतार्थान् वियुनङ्क्ष्यपार्थकं विक्रीडितं तेऽर्भकचेष्टितं यथा ॥ १९ ॥ यस्त्वं प्रदर्श्यासितकुन्तलावृतं मुकुन्दवक्त्रं सुकपोलमुन्नसम् ॥ शोकापनोदस्मितलेशसुन्दरं करोषि पारोक्ष्यमसाधु ते कृतम् ॥ २० ॥ क्रूरस्त्वमक्रूरसमाख्यया स्म नश्चक्षुर्हि दत्तं हरसे बताज्ञवत् ॥ येनैकदेशेऽखिलसर्गसौष्ठवं त्वदीयमद्राक्ष्म वयं मधुद्विषः ॥२१॥ न नन्दसूनुः क्षणभङ्गसौहृदः समीक्षते नः स्वकृतातुरा बत ॥ विहाय गेहान् स्वजनान् सुतान् पतींस्तद्दास्यमद्धोपगता नवप्रियः ॥ २२ ॥ सुखं प्रभाता रजनीयमाशिषः सत्या बभूवुः पुरयोषितां ध्रुवम् ॥ याः संप्रविष्टस्य मुखं व्रजस्पतेः पास्यन्त्यपाङ्गोत्कलितस्मितासवम् ॥२३॥

है कदाचित् कहो कि कृष्णको हरकै लिये जाऊंहूं तुह्मारे नेत्रको तो नहीं हरोंहों तहां कहे हैं हमारे नेत्रको तो हरैही है जो तैंने नेत्र दियो है तासूं श्रीकृष्णकें एक अंगमें संपूर्ण विश्वकी चतुराई देखलेत भई कृष्णरूप बिना आंधरी गोपी कौनको देखैंगी ॥ २१ ॥ क्षणभंग स्नेहवारे नंदके पुत्रकी मुसिकानिसों मोहित भई घरमें या बंधूनको त्यागिके और पुत्र पतिनको छोडिके साक्षात् उनकी दासी भई, हाय हाय हमें देखहूनांय है याकूं नये नये प्यारे लगै हैं ॥ २२ ॥ मथुराकी स्त्रीनकूं या रात्रिको सवेरो अच्छो होयगो, क्यों कि उनके मनोरथ निश्चय सांचे होंयगे, जब मथुरामें जायगो तब कटाक्षनको लिये मुसिकानि रूप रसवारे मुखकौं वे आदरते देखेंगी, कदाचित् कहो दो तीन दिनको जाय है तुमते अधिक

प्यार करनहारो बावा संग जायहै लिवायके चल्यो आवैगो ऐसी व्याकुल क्यों होउहौ, तहां गोपी कहैं हैं मथुराकी स्त्रीनकी मोठी मनोहर बातनसूं प्यारेको चित्त पकरोजायगो, उनकी लाजभरी मुसिकानि कटाक्षनसों मन चलायमान होयजायगो ! दोहा कवित्तनके अर्थ करनेहारी चतुर स्त्रीनकी आंखि जब प्यारो देखैगो तब हे सखी ! अधीर्यवान् बाबाके आधीन है तथापि गामकी रहनबारी हम गंवारियोंके पास फेरि काहेको आवैगो ! ॥ २३ ॥ ॥ २४ ॥ आज तौ मथुरामें दाशार्हवंशी भोजवंशी अंधकवंशी यादवनकी आंखिनको निश्चय आनंद होयगो लक्ष्मीके रमामनवारे समस्त गुणयुक्त देवकीके पुत्र श्रीकृष्णचंद्रकूं जे पुरुष मार्गमें देखेंगे तिनकी आंखिनको निश्चय बडो आनंद होयगो ॥ २५ ॥ ऐसे क्रूर कर्म करनेवाले निर्दयीको अक्रूर

तासां मुकुन्दो मधुमञ्जुभाषितैर्गृहीतचित्तः परवान् मनस्व्यपि ॥ कथं पुनर्नः प्रतियास्यतेऽबला ग्राम्याः सलज्जस्मितविभ्रमैर्भ्रमन् ॥ २४ ॥ अद्य ध्रुवं तत्र दृशो भविष्यते दाशार्हभोजान्धकवृष्णिसात्वताम् ॥ महोत्सवः श्रीरमणं गुणास्पदं द्रक्ष्यन्ति ये चाध्वनि देवकीसुतम् ॥ २५ ॥मैतद्विधस्याकरुणस्य नाम भूदक्रूर इत्येतदतीव दारुणः ॥योसावनाश्वास्य सुदुःखितं जनं प्रियात् प्रियं नेष्यति पारमध्वनः ॥ २६ ॥ अनार्द्रधीरेष समास्थितो रथं तमन्वमी च त्वरयन्ति दुर्मदाः ॥ गोपा अनोभिः स्थविरैरुपेक्षितं दैवं च नोऽद्य प्रतिकुलमीहते ॥ २७ ॥ निवारयामः समुपेत्य माधवं किं नोऽकरिष्यन् कुलवृद्धबान्धवाः ॥ मुकुन्दसङ्गान्निमिषार्धदुस्त्यजाद् दैवेन विध्वंसितदीनचेतसाम् ॥ २८ ॥

यह सुंदर नाम मतिहोऊ जो यह निर्दयी बहुत दुःखित हमारे विना पूछे प्राणनते प्यारे कृष्णकूं हमारी आंखिनते दूर लिये जायहै ॥ २६ ॥ देखो कठोर बुद्धि यह कृष्ण रथमें जाय बैठे हैं अभागे गोप जलदी गाडा हांको ऐसे श्रीकृष्णके पीछे उतावल करैं हैं और वृद्धभी याकूं नाहीं नहीं करैं हैं, अरी सखि ! और कौनको दोष देई आज हमारो दैवही उलटो होयगयो, दैव सूधो होतो तौ कोई विघ्न होय जातो बुरो शकुन विचारके प्यारो यहांही रहितो, न जातो ॥ २७ ॥ गोपी कहैं हैं चलिके या श्रीकृष्णको मनें करैं याके रथके आगे आडो परिके कहैंगी जो जायहै तो हमारी छातीपै रथको पैया धरिके जा हमारो यह कुलके बडे बूढ़े कहा करेंगे जो आधे क्षणभी नहीं छुटसक्ते उन मुकुन्दका वियोग कर दैवने हमारे चित्त दीन कर

दिये हैं ॥ २८ ॥ या श्रीकृष्णकी स्नेहभरी मनोहर मुशिकानी ,मनोहर लीलापूर्वक चितवनी आलिंगन इन करिके रासकी सभामें बडी बडी रात्री एकक्षणकी तुल्य विताई, हे गोपीओ ! या कृष्ण बिना विरहरूपी दुःखके समुद्रको कैसे तरेंगी ॥ २९ ॥ बलदेवके सखा गौनके खुरनकी रजसूं धूसरी अलक किये और माला पहरे कृष्ण संध्यासमय ग्वाल बालनको संग लैके बांसुरीको बजावत आवैं हैं मुसिकान कटाक्षभरी चितवनिसों चित्तको चुरावै

यस्यानुरागललितस्मितवल्गुमन्त्रलीलावलोकपरिरम्भणरासगोष्ठ्याम्॥ नीताः स्म नः क्षणमिव क्षणदा विना तं गोप्यः कथं न्वतितरेम तमो दुरन्तम् ॥ २९॥ योऽह्नः क्षये व्रजमनन्तसखः परीतो गोपैर्विशन् खुररजश्छुरितालकस्रक्॥ वेणुं क्वणन् स्मितकटाक्षनिरीक्षणेन चित्तं क्षिणोत्यमुमृते नु कथं भवेम ॥ ३० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं ब्रुवाणा विरहातुरा भृशं व्रजस्त्रियः कृष्णविषक्तमानसाः॥ विसृज्य लज्जां रुरुदुः स्म सुस्वरं गोविन्द दामोदर माधवेति ॥ ३१ ॥ स्त्रीणामेवं रुदन्तीनामुदिते सवितर्यथ ॥ अक्रूरश्चोदयामास कृतमैत्रादिको रथम् ॥ ३२ ॥

हैं, अब इन बिना कैसे जीमेंगी ॥ ३० ॥ अब शुकदेवजी कहें हैं हे राजन् परीक्षित् ! या प्रकार अत्यन्त विरहमें व्याकुल श्रीकृष्णमें मन लगाये ब्रजकी स्त्री गोपी लाज छोड़िके हे गोविन्द हे दामोदर ! हे माधव ! ऐसे पुकार पुकारके रोवतभई ॥ ३१ ॥ या प्रकार स्त्री रुदन करेही इतनेमें सूर्य्य उदयहोइ आयो तापीछे संध्योपासन कर अक्रूरजी रथको हांकत भये ॥ ३२ ॥

---

१ यशोदावचन ॥ चौपाई ॥ मोहनइधरदेखतो लीजे । बिछुरतलाल हमेंकछुदीजे । लेहुनिहारजन्म व्रजखेरो । बहुरो ब्रजमें होत अंधेरो ॥ राग सोरठ ॥ जसुमति वारवार यह भाषै है कोइ व्रजमें हितू हमारो चलत गुपालहि राखै ॥ १ ॥ कहा काज मेरे छगन मगनको नृपमधुपुरी बुलाये । सुफलकसुत मेरे प्राण हरणको कालरूपहोय आये ॥ २ ॥ वर यह गोधन कंस लेहि सब मोहि बदलेमेंले । इतनो मांगत कमलनैन मेरी आंखन आगेखेले ॥ ३ ॥ को करकमल मथानी गहिहै को दधि माखन खै है । बहुरो इंद्र वरसिहै व्रज पर को गिरि नखपर लैहै ॥४॥बासररैन विलोकों जीओं संग लागहुलराऊं । हरि विसरत जो रहों कर्मवस तौ केहि कंठलगाऊं ॥ ५ ॥ टेरटेर धरपरत जसोधा अधरवदन विलखानी । सूरसोदेशा कहांलगि वरनों दुखित नंदकी रानी ॥ ६ ॥

नंदादिक संपूर्ण गोप बडी भेट लैके दूध दही माखनतैं भरे कलशनकूं लैके गाडानमें बैठिके पीछेते जातभये ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्णमें आसक्त मनवारी गोपी श्रीकृष्णके पीछे जायके अभऊ प्यारो बगदिके आवै ऐसे श्रीकृष्णको बगदिवेको पैंडो ठाढी देखत भई ॥ ३४ ॥ यादवनमें उत्तम श्रीकृष्ण अपने चलिवेके समय गोपीनको व्याकुल देखिके जलदी आऊंगो ऐसे प्रेम सहित दूतनसे वचन कहिवायके शांत करतभये ॥ ३५ ॥ जहां ताईं रथकी ध्वजा दीख्यौकरी तहां ताईं रथकी धूर उडती दीखी तब ताईं श्रीकृष्णमें चित्त लगाये गोपी अबहू बगदि आमें ऐसे विचार करत चित्रकी तुल्य

गोपास्तमन्वसज्जन्त नन्दाद्याः शकटैस्ततः ॥ आदायोपायनं भूरि कुम्भान् गोरससंभृतान् ॥ ३३ ॥ गोप्यश्च दयितं कृष्णमनुव्रज्यानुरञ्जिताः ॥ प्रत्यादेशं भगवतः काङ्क्षन्त्यश्चावतस्थिरे ॥ ३४ ॥ तास्तथा तप्यतीर्वीक्ष्य स्वप्रस्थाने यदूत्तमः ॥ सान्त्वयामास सप्रेमैरायास्य इति दौत्यकैः ॥ ३५ ॥ यावदालक्ष्यते केतुर्यावद्रेणू रथस्य च ॥ अनुप्रस्थापितात्मानो लेख्यानीवोपलक्षिताः ॥ ३६ ॥ ता निराशा निववृतुर्गोविन्दविनिवर्तने ॥ विशोका अहनी निन्युर्गायन्त्यः प्रियचेष्टितम् ॥ ३७ ॥ भगवानपि संप्राप्तो रामाक्रूरयुतो नृप ॥ रथेन वायुवेगेन कालिन्दीमघनाशिनीम् ॥ ३८ ॥ तत्रोपस्पृश्य पानीयं पीत्वा मृष्टं मणिप्रभम् ॥ वृक्षखण्डमुपव्रज्य सरामो रथमाविशत् ॥ ३९ ॥

लिखीसी ठाढी होतभई ॥ ३६ ॥ तब श्रीकृष्णके बगदिवेकी आशा त्याग वे गोपी बगदिके आवति भई, श्रीकृष्णकी लीलानको गायगायके शोक त्यागती दिननको बितावत भई ॥ ३७ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! पवनकी तुल्य बेगवारे रथमें बैठिके बलदेव अक्रूर सहित श्रीकृष्णचंद्र भगवान् पाप दूर करनवारी यमुनाके निकट प्राप्त होत भये ॥ ३८ ॥ ता यमुनातीरमें हाथ पांव धोइ आचमन करि मीठो निर्मल जल पीके बगीचामें आयके बलदेवस-

---

१ क०–कुटिल अक्रूर वैरी काहू जन्मनको घेटक चेटकसीडार सरलेकै ब्रज मूरिगो । व्याकुल विहालवार बंशी वरश्याम विन मीनसी तलफ मानो प्रेमरस झूरिगो ।। चरण उठाय चकित चितवन ऊंचेधाम चढि चिन्तामणी चकित भयो चैन सवचूरिगो । वार वार कहत विसूरिजिल पूरिनैन धूरिना उडत आली अब रथ दूरिगो ।।

हित रथमें बैठत भये ॥ ३९ ॥ अक्रूरजी श्रीकृष्ण बलदेवकूं रथमें बैठारिके उनते आज्ञा मांगिके यमुनाके तीरपै आयके विधिपूर्वक स्नान करत भये ॥ ४० ॥ ता जलमें गोता मारिके गायत्रीको जप करत अक्रूरजी राम कृष्णको देखत भये ॥ ४१ ॥ वसुदेवके पुत्र राम कृष्ण रथमें बैठे हैं यहां कैसे आयगये कदाचित् रथमेंसे उतर तो न आये मैं निकसिके देखों तो या प्रकार अक्रूरजी कहत भये ॥ ४२ ॥ फेर अक्रूरजी निकसिके देखें तो पहिले कीसीनाई रथमें बैठे हैं ता समय अक्रूरजी विस्मित होत भये कि जो जलके भीतर मोको दोनोंको दर्शन भयो सो कहा मिथ्या है

अक्रूरस्तावुपामन्त्र्य निवेश्य च रथोपरि ॥ कालिन्द्या ह्रदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥ ४० ॥ निमज्ज्य तस्मिन् सलिले जपन् ब्रह्म सनातनम् ॥ तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ ॥ ४१ ॥ तौ रथस्थौ कथमिह सुतावानकदुन्दुभेः ॥ तर्हि स्वित् स्यन्दने न स्त इत्युन्मज्ज्य व्यचष्ट सः ॥ ४२ ॥ तत्रापि च यथापूर्वमासीनौ पुनरेव सः ॥ न्यमज्जद् दर्शनं यन्मे मृषा किं सलिले तयोः ॥ ४३ ॥ भूयस्तत्रापि सोऽद्राक्षीत् स्तूयमानमहीश्वरम् ॥ सिद्धचारणगन्धर्वैरसुरैर्नतकन्धरैः ॥ ४४ ॥ सहस्रशिरसं देवं सहस्रफणमौलिनम् ॥ नीलाम्बरं बिसश्वेतं शृङ्गैः श्वेतमिव स्थितम् ॥ ४५ ॥ तस्योत्सङ्गे घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ पुरुषं चतुर्भुजं शान्तं पद्मपत्त्रारुणेक्षणम् ॥ ४६ ॥ प्रसन्नचारुवदनं चारुहासनिरीक्षणम् ॥ सुभ्रून्नसं चारुकर्णं सुकपोलारुणाधरम् ॥ ४७ ॥

ऐसे विचारिके फेरी गोता मारत भये तब सिद्ध चारण गन्धर्व देवता नर्तक सम्पूर्ण स्तुति करें हैं शेषजी विराजमान हैं ऐसे देखत भये ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ हजार है शिर जाके मुकुटसहित हजार फणहैं नील वस्त्रकूं धारण करे कमलनके नालकी तुल्य श्वेत वर्ण कैलासकी तुल्य प्रकाशमान शेषजीको देखत भये ॥ ४५ ॥ कुंडली करिके विराजमान तिनके ऊपर श्याम और पीत वस्त्रनको धारण करे चार भुजा शांत स्वरूप पुरुष कमलके पत्तोंकी तुल्य अरुण नेत्र ॥ ४६ ॥ सुंदर प्रसन्न मुख, सुंदर हासभरी चितवनि, सुंदर भ्रकुटी और

नासिका सुन्दर कर्ण सुन्दर कपोल और अरुण ओष्ठ ॥ ४७ ॥ लंबी मोटी भुजा, विशाल हृदयमें लक्ष्मी विराजमान, गोलशंखसी ग्रीवा त्रिवली जापै परिरही ऐसी सुन्दर जिनकी नाभी पीपरके पत्ताकी तुल्य चिकनो उदर ॥ ४८ ॥ पतली कमरि बृहत् श्रोणी करिके शोभायमान दोनों जंघा ॥ ४९ ॥ लंबी दोनों गुल्फ, लाल नख, प्रकाश करिकै सुन्दर हैं कोमल अंगुली सुन्दर चरणकमल ॥ ५० ॥ बहुत मोलनके मणिनसों जडित किरीट, कडे, बाजूबन्द और कमरमें कोंदनी यज्ञोपवीत मोतिनके हार चरणनमें नूपुर काननमें कुण्डल तिनसूं प्रकाशमान हैं ॥ ५१ ॥ कमल और शंख चक्र गदाकूं धारण किये भृगुलताको चिह्न जाकी छातीमें प्रकाशमान कौस्तुभमणिकी जिनके धुकधुकी ॥ ५२ ॥ सुनंद नंद

प्रलम्बपीवरभुजं तुङ्गांसोरःस्थलश्रियम् ॥ कम्बुकण्ठं निम्ननाभिं वलिमत्पल्लवोदरम् ॥ ४८ ॥ बृहत्कटितटश्रोणिकरभोरुद्वयान्वितम् ॥ चारुजानुयुगं चारुजङ्घायुगलसंयुतम् ॥ ४९ ॥ तुङ्गगुल्फारुणनखव्रातदीधितिभिर्वृतम् ॥ नवाङ्गुल्यङ्गुष्ठदलैर्विलसत्पादपङ्कजम् ॥ ५० ॥ सुमहार्हमणिव्रातकिरीटकटकाङ्गदैः ॥ कटिसूत्रब्रह्मसूत्रहारनूपुरकुण्डलैः ॥ ॥ ५१ ॥ भ्राजमानं पद्मकरं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभं वनमालिनम् ॥ ५२ ॥ सुनन्दनन्दप्रमुखैः पार्षदैः सनकादिभिः ॥ सुरेशैर्ब्रह्मरुद्राद्यैर्नवभिश्च द्विजोत्तमैः ॥ ५३ ॥ प्रह्लादनारदवसुप्रमुखैर्भागवतोत्तमैः ॥ स्तूयमानं पृथग्भावैर्वचोभिरमलात्मभिः ॥ ५४ ॥ श्रिया पुष्ट्या गिरा कान्त्या कीर्त्या तुष्ट्येलयोर्जया ॥ विद्ययाऽविद्यया शक्त्या मायया च निषेवितम् ॥ ५५ ॥ विलोक्य सुदृशं प्रीतो भक्त्या परमया युतः ॥ हृष्यत्तनूरुहो भावपरिक्लिन्नात्मलोचनः ॥ ५६ ॥

जिनमें मुखिया ऐसे पार्षद सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमार ब्रह्मा महादेवते आदिलैके देवता मरीचिको आदि लैके जो ब्राह्मण प्रल्हाद नारद वसु जिनमें मुख्य ऐसे उत्तम भक्त हैं ते न्यारे न्यारे भावते निर्मल वचननते जिनकी स्तुति करे हैं ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ श्री पुष्टि वाणी कांति कीर्ति तुष्टि इला ऊर्ज्जा विद्या अविद्या शक्ति माया ये जिनको निरंतर सेवन करैं हैं ॥ ५५ ॥ ऐसे परिपूर्ण श्रीकृष्णचन्द्रको दर्शन करिके अत्यन्त प्रसन्न होयके परम भक्तिको पाय आनन्दते देहमें रोमांच भये भक्तिसूं नेत्रनमें आंसूं भरि आये ऐसे अक्रूरजी माथेसूं

प्रणाम करिके सावधान होयके हाथ जोरिके होलेसे सत्त्वगुणको आश्रय लैके गदगद वाणीसूं स्तुति करत भये ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अक्रूरप्रतियाने एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥ अब अक्रूरजी कहे हैं समस्त कारणके कारण नारायण आदिपुरुष अविनाशी तुमकूं नमस्कार करूंहूं, जिनकी नाभिमें भये कमलसे ब्रह्मा होतभयो ता ब्रह्मातै यह लोक उत्पन्न भयो ॥ १ ॥ पृथ्वी जल अग्नि पवन आकाश अहंकार महत्तत्त्व पुरुष मन इंद्रिय समस्त इंद्रियनके अर्थ विषयसूं संपूर्ण देवता ये जगत् के कारण हैं ते

गिरा गद्गदयाऽस्तौषीत् सत्त्वमालम्ब्य सात्वतः ॥ प्रणम्य मूर्धावहितः कृताञ्जलिपुटः शनैः ॥ ५७ ॥ इति श्रीभा० म० द० पूर्वार्धेऽक्रूरप्रतियाने एकोनचत्वारिंशोध्यायः ॥ ३९ ॥ अक्रूर उवाच ॥ नतोऽस्म्यहं त्वाखिलहेतुहेतुं नारायणं पूरुषमाद्यमव्ययम् ॥ यन्नाभिजातादरविन्दकोशाद् ब्रह्माऽविरासीद्यत एष लोकः ॥ १ ॥ भूस्तोयमग्निः पवनः खमादिर्महानजादिर्मन इन्द्रियाणि ॥ सर्वेन्द्रियार्था विबुधाश्च सर्वे ये हेतवस्ते जगतोङ्गभूताः ॥ २ ॥ नैते स्वरूपं विदुरात्मनस्ते ह्यजादयोऽनात्मतया गृहीताः ॥ अजोऽनुबद्धः स गुणैरजाया गुणात् परं वेद न ते स्वरूपम् ॥ ३ ॥ त्वां योगिनो यजन्त्यद्धा महापुरुषमीश्वरम् ॥ साध्यात्मं साधिभूतं च साधिदैवं च साधवः ॥ ४ ॥ त्रय्या च विद्यया केचित् त्वां वै वैतानिका द्विजाः ॥ यजन्ते विततैर्यज्ञैर्नानारूपामराख्यया ॥ ५ ॥

तुम्हारे अंगते भये हैं ॥ २ ॥ ब्रह्माते आदिलैके जड जो संपूर्ण तत्त्व हैं ते अपने स्वरूपको नहीं जानैं हैं जीव हैं सो तत्त्वनको जानैं हैं, अपने स्वरूपको जानैं हैं माया के गुणनतें बंध्यो जीव गुणनते न्यारो तुम्हारो स्वरूप नहीं जानै है ॥ ३ ॥ ब्रह्माके उपासक महापुरुष ईश्वर तुम हो तुम्हारी पूजा करै हैं, इंद्रिय पंचभूत देवता इनके साक्षी अंतर्यामी तुम हो तिनकी साधु पूजा करै हैं ॥ ४ ॥ कोई एक कर्मनमें निष्ठावारे ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेदसों यज्ञनको विस्तार करिके अनेक रूप देवतानको नाम लैलैके पूजन करैं हैं ॥ ५ ॥

कोई एक ज्ञानी पुरुष समस्त कर्मनको त्यागि समाधिमें आयके ज्ञानरूप तुमको पूजन करै हैं॥६॥और दूसरे पुरुष विष्णुकी दीक्षा लैके नारदपंचरात्रमें कही पूजाकी विधिसूं वासुदेव संकर्षण प्रद्युम्न अनिरुद्ध इन भेदनकरिके बहुत रूप और नारायणरूपकरिके एक रूप तुम्हारी पूजा करैं हैं ॥७॥ और दूसरे पुरुष शिवजीके कहे शैवमार्ग पाशुपत मार्गसैं शिवरूप तुमको पूजते हैं,हेके भगवन्! अनेक प्रकारसैं उपासना करैं हैं ॥८॥हे सर्वदेवतारूप ! हे समर्थ ! जे पुरुष और देवतानके भक्त हैं और देवतानमें उनके मन लगिरहे हैं वे सबके ईश्वर तुम्हारीही पूजा करैं हैं कारण कि आप सब देवताओंके रूपहै ॥ ९ ॥ हे प्रभो ! जैसे पर्वतनते निकासि मेघसे जलसूं पूर्ण होय नदी चारौं ओरते वहि वहिके समुद्रमें जा मिलै हैं तैसें सब देवतानके मार्ग अंतमें तुमहीमें आय मिले हैं ॥ १० ॥ तुमारी प्रकृति माया ता सत्व रज तम ये तीनों गुण हैं तिन तीनों गुणनमें वृक्षते आदि लेके ब्रह्मापर्यन्त सब जीव प्रविष्ट भये है अर्थात् तीनों गुणनमें रहे हैं, वे गुण मायामें रहे हैं या क्रमते जो उपाधिनको नाश है ताते सब जीव तुमहीमें प्रवेश करे हैं ॥ ११ ॥ संसारमें अलिप्त बुद्धि जिसके आत्मा सब प्राणीनके बुद्धिके साक्षी तुम हो तिनको नमस्कार है, अविद्याको भयो गुणको प्रभाववारो संसार देवता मनुष्य पशु पच्छी इनकी देहमेंही प्रवृत होता है इस कारण इनमें और आपमें बड़ा अंतर है ॥ १२ ॥

एके त्वाऽखिलकर्माणि संन्यस्योपशमं गताः॥ ज्ञानिनो ज्ञानयज्ञेन यजन्ति ज्ञानविग्रहम् ॥ ६॥ अन्ये च संस्कृतात्मानो विधिनाऽभिहितेन ते॥ यजन्ति त्वन्मयास्त्वां वै बहुमूर्त्यैकमूर्तिकम् ॥७॥ त्वामेवान्ये शिवोक्तेन मार्गेण शिवरूपिणम् ॥ बह्वाचार्यविभेदेन भगवन् समुपासते ॥ ८ ॥ सर्व एव यजन्ति त्वां सर्वदेवमयेश्वरम् ॥ येऽप्यन्यदेवताभक्ता यद्यप्यन्यधियः प्रभो ॥ ९ ॥ यथाऽद्रिप्रभवा नद्यः पर्जन्याऽऽपूरिताः प्रभो ॥ विशन्ति सर्वतः सिन्धुं तद्वत्त्वां गतयोन्ततः ॥ १० ॥ सत्त्वं रजस्तम इति भवतः प्रकृतेर्गुणाः ॥ तेषु हि प्राकृताः प्रोक्ता आब्रह्म स्थावरादयः ॥११॥ तुभ्यं नमस्तेऽस्त्वविषक्तदृष्टये सर्वात्मने सर्वधियां च साक्षिणे ॥ गुणप्रवाहोऽयमविद्यया कृतः प्रवर्तते देवनृतिर्यगात्मसु ॥ १२ ॥

अग्नि तुम्हारो मुख है पृथ्वी तुम्हारो चरण है, सूर्य नेत्र, आकाश नाभि, दिशा कान है, स्वर्ग मस्तक है, देवता तुमारी भुजा है, और समुद्र कांखि हैं पवन प्राणरूप बलरूप कल्पना करो है ॥ १३ ॥ वृक्ष औषधि देहके रोम हैं, मेघ तुमारे केश हैं पर्वत तुम्हारे हाड और नख हैं रात्रि दिन पलकनको खोलिवो मूंदिवो है, प्रजापति तुमारो मेढ्र है, वर्षा तुमारो वीर्य कहे हैं ॥१४॥ तुम अविनाशी पुरुषमें ही लोकपालनसहित लोक स्थित हैं और वे बहुत जीवनकरिके व्याप्त हैं जैसे जलमें छोटे कीरा चलैं हैं गूलरमें भुनगा उड़ैं हैं, ऐसैं मनकी वृत्तितै जानिवेमें आओ जो तुमहो तिनमें अनंत ब्रह्मांड फिरै हैं ॥ १५ ॥ या संसारमें खेलिवेके लिये अपने जो जो रूप धरे हैं तिनसों शोक दूरकर लोक आनंदसूं तुम्हारे यशकों गामैं हैं ॥ १६ ॥ सत्यव्रतको माया दिखायवेके लिये मत्स्यरूप धरिके प्रलयके समुद्रमें विचरनेहारे तुम्हारे अर्थ नमस्कार है मधुकैटभ दैत्यनको मारिवेके लिये हयग्रीवरूप धारनेहारे तुम्हारेनकों नमस्कार है ॥ १७ ॥ मंदराचल पर्वतके धारण करनवारे वडे कच्छपरूप तुम्हारे अर्थकूं नमस्कार है पृथ्वीके लायवेके लिये वराहरूप जिनने धारण करनेहारे तुमकूं नमस्कार है ॥ १८ ॥ साधूनके भयके दूर करनवारे अद्भुत नृसिंहरूप धरनेहारे तुमकूं नमस्कार है, वामन होयके तीनों लोक नापनेहारे तुम्हैं नमस्कार है ॥ १९ ॥

अग्निर्मुखं तेऽवनिरङ्घ्रिरीक्षणं सूर्यो नभो नाभिरथो दिशः श्रुतिः ॥ द्यौः कं सुरेन्द्रास्तव बाहवोऽर्णवाः कुक्षिर्मरुत्प्राणबलं प्रकल्पितम् ॥ १३ ॥ रोमाणि वृक्षौषधयः शिरोरुहा मेघाः परस्यास्थिनखानि तेऽद्रयः ॥ निमेषणं रात्र्यहनी
प्रजापतिर्मेढ्रस्तु वृष्टिस्तव वीर्यमिष्यते ॥ १४ ॥ त्वय्यव्ययात्मन् पुरुषे प्रकल्पिता लोकाः सपाला बहुजीवसंकुलाः ॥
यथा जले संजिहते जलौकसोऽप्युदुम्बरे वा मशका मनोमये ॥ १५ ॥ यानि यानीह रूपाणि क्रीडनार्थं बिभर्षि हि ॥
तैरामृष्टशुचो लोका मुदा गायन्ति ते यशः ॥ १६ ॥ नमः कारणमत्स्याय प्रलयाब्धिचराय च ॥ हयशीर्ष्णे नमस्तुभ्यं
मधुकैटभमृत्यवे ॥ १७ ॥ अकूपाराय बृहते नमो मन्दरधारिणे ॥ क्षित्युद्धारविहाराय नमः सूकरमूर्तये ॥ १८ ॥नमस्तेऽद्भुतसिंहाय साधुलोकभयापह ॥ वामनाय नमस्तुभ्यं क्रान्तत्रिभुवनाय च ॥ १९ ॥

गर्वीले क्षत्रियरूप वनके काटनवारे भृगुवंशीनके पति परशुरामरूप तुमको नमस्कार है रावणके मारनवारे रघुवंशीनमें श्रेष्ठ रामचंद्ररूप तुमको नमस्कार है ॥ २० ॥ वासुदेवरूप तुमको नमस्कार है संकर्षणरूप तुमको नमस्कार है प्रद्युम्नरूप तुमको नमस्कार है अनिरुद्धरूप तुमको नमस्कार है भक्तोंके पति तुमको नमस्कार है ॥ २१ ॥ दैत्य दानवनके मोहन करनवारे शुद्ध बुद्धरूप तुमको नमस्कार है म्लेच्छ क्षत्रियोंको मारनेहारे कल्कीरूप तुमको नमस्कार है ॥ २२ ॥ हे भगवन् ! यह जीव तुमारी मायामें भूलि रह्यो है, मैं मेरो ऐसे देहगेहादिकमें और कर्ममार्गनमें भ्रमण करे

नमो भृगूणां पतये दृप्तक्षत्रवनच्छिदे ॥ नमस्ते रघुवर्याय रावणान्तकराय च ॥ २० ॥ नमस्ते वासुदेवाय नमः संङ्कर्षणाय च ॥ प्रद्युम्नायाऽनिरुद्धाय सात्त्वतां पतये नमः ॥ २१ ॥ नमो बुद्धाय शुद्धाय दैत्यदानवमोहिने ॥ म्लेच्छप्रायक्षत्रहन्त्रे नमस्ते कल्किरूपिणे ॥ २२ ॥ भगवन् जीवलोकोऽयं मोहितस्तव मायया ॥ अहं ममेत्यसद्ग्राहो भ्राम्यते कर्मवर्त्मसु ॥ २३ ॥ अहं चात्मात्मजागारदारार्थस्वजनादिषु ॥ भ्रमामि स्वप्नकल्पेषु मूढः सत्यधिया विभो ॥ २४ ॥ अनित्यानात्मदुःखेषु विपर्ययमतिर्ह्यहम् ॥ द्वन्द्वारामस्तमोविष्टो न जाने त्वात्मनः प्रियम् ॥२५॥ यथाऽबुधो जलं हित्वा प्रतिच्छन्नं तदुद्भवैः ॥ अभ्येति मृगतृष्णां वै तद्वत् त्वाऽहं पराङ्मुखः ॥ २६ ॥ नोत्सहेऽहं कृपणधीः कामकर्महतं मनः ॥ रोद्धुं प्रमाथिभिश्चाक्षैर्ह्रियमाणमितस्ततः ॥ २७ ॥

हैं ॥ २३ ॥ हे विभो ! आत्मा कहिये देह पुत्र घर स्त्री धन भैया बंधु इत्यादिक जो स्वप्नकी तुल्य तिनको सत्य मानिके भ्रमोहूं ॥ २४ ॥ अनित्य आत्मा दुःखरूप है, तिनकूं नित्य आत्मा सुखरूप जानूहूं सुखदुःखमें क्रीडा करनेहारो अज्ञानसे भरो मैं अपने प्यारे तुमकौ नहि जानूहूं ॥ २५ ॥ जैसें अज्ञानी पुरुष शैवाल सोढके जलकौं छोडिके सूर्यकी किरणसौं वारू चमकते जलके लिये जायहैं तैसें मायासूं ढके तुमको त्यागिके देहादिकनमें मेरा मन लग रह्योहै ॥ २६ ॥ कृपणबुद्धि अर्थात् विषयनमें बुद्धि लगनेसे काम्य कर्मसे क्षुभित हुए मनकूं रोकनेमें समर्थ नहींहूं

जोरावर इंद्रिय मनकूं इत उत चलायमान करे है ॥ २७ ॥ जो में पराधीन हों सो तुमारे चरणकी शरण आयो हों तुमारे चरणनकी शरण असाधुनको दुर्लभ है, हे अंतर्यामी! तुमारे चरणनको स्पर्श तुमारी कृपाते भयो है यह मैं मानूहूं,पुरुषको जब संसार छूटनहार होयहै तब हे कमलनाभ! साधुनकी सेवा करे हैं साधुनकी सेवाते तुममें आयके मति लगे हैं, तुमारी कृपाविना साधुनकी सेवाभी नहीं बने है तुममें मतिहू नहीं लगि सके है॥२८॥ विज्ञान मूर्ति समस्त ज्ञानके कारण पुरुष काल माया इनरूप ब्रह्म तुम हो, और अनंत शक्ति तुमको मैं नमस्कार करूहूं ॥२९॥ हे समर्थ! हे इंद्रियनके प्रेरणवारे ! चित्तके अधिष्ठाता सब प्राणीनके आश्रय तुमकूं में नमस्कार करहूं, आपके शरणमें आये मैं मेरी रक्षा करो ॥ ३० ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटिकायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे अक्रूरस्तुतिर्नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित् ! स्तुति करते हुए अक्रूरको भगवान् जलके भीतर रूप दिखायके फेर समेटत भये जैसें नट अपने स्वांगको दिखायके समेटे है ॥ १ ॥ अक्रूरजी श्रीकृष्णचंद्रको जलमेंते अंतर्द्धान भये देखिके उछरिके जल्दीदेसी सम्पूर्ण संध्योपासन करिके आश्चर्य मानिके रथमें आवत भये ॥ २ ॥ श्रीकृष्ण अक्रूरजीसूं पूछत भये पृथ्वीमें जलमें आकाशमें तुमनें आश्चर्यसों कहा देखो है कछु आश्चर्यरूप चकितसे तुम व्हैरहे है ॥ ३ ॥

सोऽहं तवाङ्घ्र्युपगतोऽस्म्यसतां दुरापं तच्चाप्यहं भवदनुग्रह ईश मन्ये ॥ पुंसो भवेद्यर्हि संसरणापवर्गस्त्वय्यब्जनाभ सदुपासनया मतिः स्यात् ॥ २८ ॥ नमो विज्ञानमात्राय सर्वप्रत्ययहेतवे ॥ पुरुषेशप्रधानाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ ॥ २९ ॥ नमस्ते वासुदेवाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ हृषीकेश नमस्तुभ्यं प्रपन्नं पाहि मां प्रभो ॥३०॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽक्रूरस्तुतिर्नाम चत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स्तुवतस्तस्य भगवान् दर्शयित्वा जले वपुः ॥ भूयः समाहरत् कृष्णो नटो नाट्यमिवात्मनः ॥१ ॥ सोऽपि चान्तर्हितं वीक्ष्य जलादुन्मज्ज्य सत्वरः ॥ कृत्वा चावश्यकं सर्वं विस्मितो रथमागमत् ॥२॥ तमपृच्छद् हृषीकेशः किं ते दृष्टमिवाद्भुतम् ॥ भूमौ वियति तोये वा तथा त्वां लक्षयामहे ॥ ३ ॥

तब अक्रूरजी बोले या संसारमें पृथ्वीमें आकाशमें जलमें जितने आश्चर्य हैं ते सब आश्चर्य विश्वरूप तुममें भरे हैं तुमारो दर्शन करो मैंने कहा आश्चर्य देखो या प्रकार अक्रूरजी कहत भये ॥ ४ ॥ जो तुममें सब आश्चर्य भरे हैं, तिन तुमारो दर्शन मैंने कियो है, हे परमेश्वर ! पृथ्वीमें आकाशमें या संसारमें कहा आश्चर्य देखिवो बाकी रह्यो है ॥ ५ ॥ ऐसे कहिके गांदिनीके पुत्र अक्रूरजी रथको हांकत भये तीसरे पहरके समय रामकृष्णकूं मथुरा पुरीमें लावत भये ॥ ६ ॥ हे राजन् परीक्षित ! मार्गमें ग्राममें ग्रामके रहनवारे पुरुष तहां तहां आयके वसुदेवके पुत्र श्रीकृष्ण बलदेवको देखिके प्रस-

अक्रूर उवाच ॥ ॥ अद्भुतानीह यावन्ति भूमौ वियति वा जले ॥ त्वयि विश्वात्मके तानि किं मेऽदृष्टं विपश्यतः ॥ ४ ॥
यत्राद्भुतानि सर्वाणि भूमौ वियति वा जले॥ तं त्वाऽनुपश्यतो ब्रह्मन् किं मे दृष्टमिवाद्भुतम् ॥ ५ ॥ इत्युक्त्वा नोद-
यामास स्यन्दनं गान्दिनीसुतः ॥ मथुरामनयद् रामं कृष्णं चैव दिनात्यये ॥ ६॥ मार्गे ग्रामजना राजंस्तत्र तत्रो-
पसङ्गताः ॥ वसुदेवसुतौ वीक्ष्य प्रीता दृष्टिं न चाऽऽददुः ॥७॥ तावद् व्रजौकसस्तत्र नन्दगोपादयोऽग्रतः ॥ पुरोपव-
नमासाद्य प्रतीक्षन्तोऽवतस्थिरे ॥ ८ ॥ तान् समेत्याह भगवानक्रूरं जगदीश्वरः॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रश्रितं
प्रहसन्निव ॥ ९ ॥ भवान् प्रविशतामग्रे सहयानः पुरीं गृहम् ॥ वयं त्विहावमुच्याथ ततो द्रक्ष्यामहे पुरीम् [illegible] ॥ १० ॥
अक्रूर उवाच ॥ नाहं भवद्भ्यां रहितः प्रवेक्ष्ये मथुरां प्रभो ॥ त्यक्तुं नार्हसि मां नाथ भक्तं ते भक्तवत्सल ॥ ११ ॥

न्न होयके वा रूपमें दृष्टि लगायके नहीं निकासत भये अर्थात् देखतेही ठाढे रहिगये ॥ ७ ॥ तब ताईं नंदगोपसूं आदि लेके सब ब्रजवासी आगे आयके मथुराके बागमें कृष्ण बलदेवके आयवेको पैंडो देखत ठाढे होत भये ॥ ८ ॥ जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचंद्र तिन ब्रजवासीनके पास आयके नम्र अक्रूरको हाथते हाथ पकरिके मुसिकातसे बोलत भये ॥ ९ ॥ हे काका ! तुम आगे रथकूं लिवाय पुरीमें जाओ अपने घर जाओ, हम यहां तिनक विश्राम लैके पछि मथुरापुरीकूं देखेंगे, या प्रकार श्रीकृष्ण भगवान् कहत भये ॥ १० ॥ अब अक्रूरजी कहे हैं हे प्रभो ! तुम विना अकेलो मथु-

2 282

रापुरीमें न जाऊंगो हे नाथ ! हे भक्तनके ऊपर हितके करनवारे ! तुमारो भक्त मैं हूं ताय त्यागो मति ॥ ११ ॥ तुम आओ हम तुम घर चले, हे अधोक्षज हे सुहृदनमें उत्तम ! अपने बलदेव भैयासहित और ग्वालबालन सहित हमारे घर चलिके हमें सनाथ करो ॥ १२ ॥ अपने चरणनकी रजसूं हम गृहस्थनके घरकूं पवित्र करो, तुमारो चरणनकी धोमनसूं पितृ अग्नि देवता तृप्त होंयगे ॥ १३ ॥ तुमारो चरणयुगल धोइके राजा बलिको बडो पवित्र यश होत भयो, बडे ऐश्वर्यकों प्राप्त भयो, अनन्य भक्तनकों जो गति मिलै है ताय पावत भयो ॥ १४ ॥ हे देवताओंके देवता हे जगन्नाथ! तुम्हारी कथा श्रवण और गुण कथनसे भक्त पवित्र ह्वै जायहै, ऐसे तुम पवित्र गुणयुक्त हो हे नारायण ! आपको नमस्कार है ॥१५॥ तुमारे चर-

आगच्छ याम गेहान्नः सनाथान् कुर्वधोक्षज ॥ सहाग्रजः सगोपालैः सुहृद्भिश्च सुहृत्तम ॥ १२ ॥ पुनीहि पादरजसा गृहान्नो गृहमेधिनाम् ॥ यच्छौचेनानुतृप्यन्ति पितरः साग्नयः सुराः ॥ १३ ॥ अवनिज्याङ्घ्रियुगलमासीत् श्लोक्यो बलिर्महान् ॥ ऐश्वर्यमतुलं लेभे गतिं चैकान्तिनां तु या ॥ १४ ॥ आपस्तेङ्घ्र्यवनेजन्यस्त्रींल्लोकाञ्छुचयोपुनन् ॥ शिरसाऽधत्त याः शर्वः स्वर्याताः सगरात्मजाः ॥ १५ ॥ देवदेव जगन्नाथ पुण्यश्रवणकीर्तन ॥ यदूत्तमोत्तमश्लोक नारायण नमोऽस्तु ते ॥ १६ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ आयास्ये भवतो गेहमहमार्यसमन्वितः ॥ यदुचक्रद्रुहं हत्वा वितरिष्ये सुहृत्प्रियम् ॥ १७ ॥ एवमुक्तो भगवता सोऽक्रूरो विमना इव ॥ पुरीं प्रविष्टः कंसाय कर्माऽऽवेद्य गृहं ययौ ॥ १८ ॥ अथापराह्णे भगवान् कृष्णः सङ्कर्षणाऽन्वितः ॥ मथुरां प्राविशद् गोपैर्दिदृक्षुः परिवारितः ॥ १९ ॥

णारविंदको धोमन जल गंगारूप होयके त्रिलोकीकूं पवित्र करे हैं,जिन जलनकूं शिवजी अपने शिरपै धारण करे हैं, जिन जलनके स्पर्शते साठि हजार राजा सगरके पुत्र स्वर्गकूं गये ॥ १६ ॥ अब श्रीकृष्ण भगवान् बोले बडे भैया बलदेवजीकों संग लैके मैं तुमारे घर आऊंगो, यादवनसों द्रोह करनेहारे कंसकूं मारिके सुहृदनको प्रिय विस्तार करूंगो ॥ १७ ॥ या प्रकार भगवान् श्रीकृष्णको वचन कह्यो सुनिके अक्रूरजी विमन होयके पुरीमें जाय रामकृष्णकूं लेआयो ऐसे कंसते कहिके अपने घरकूं जात भये ॥ १८ ॥ या पीछे तीसरे पहरके समय बलदेव भैयासहित भगवान् श्रीकृष्णचंद्र गोपनकूं संग लैके देखिवेके लिये मथुरापुरीमें जात भये ॥ १९ ॥ ॥ ॥ ॥

अब मथुरापुरीको कृष्णने देख्यो ताको वर्णन करे हैं स्फटिकमणिनके ऊंचे सहरपनाहके और घरनके द्वार बने हैं तिनमें बडे बडे सोनेके किवार चढे हैं और बन्दनवार बंधेहैं, तामेंके पीतरके अन्न भरिवेके कोठे बने हैं, चारौं ओर औंडी खाई बनी हैं, उद्यान (दूरिके बाग) और रमणीय उपवन (निकट के बाग) तिनसो अति शोभायमान पुरी है ॥ २० ॥ सुवर्णके चौरस्ता और साहूकारनके महल और बडे बडे कारीगर मनुष्यनके मकान तिनकरिके शोभायमान पुरी है, वैदूर्यमणि हीरा निर्मल नीलमणि मूंगा मोती पन्ना इनके काम जिनमें भये मालनके छज्जे हैं ॥ २१ ॥ जाली झरोकानमें बैठें परेवा मोर जहां बोले हैं, तिनको सोर होय रह्यो हैं, छिरकाऊ जिनमें भयो ऐसे राजमार्ग चौराये गली बने हैं, तिनमें पुष्पनकी माला अंकुराधानकी खीले, चामर ये मंगल द्रव्य फैंलि रहे हैं ॥ २२ ॥चंदन दहींसूं छिरके फूल जिनपै धरे ऊपर दीवानकी पंक्ति धरी, आमकी डार जिनपै धरी ध्वजा जिनपै फुहराय दरियाई के कपरा जिनकी नारिसों बंधे गहिर सहित केराके वृक्ष सुपारिके वृक्ष जिनके पास लगे ऐसे जलके भरे कलश द्वारनके ऊपर धरे हैं ऐसी शोभायमान पुरी है ॥ २३ ॥ बराबरके मित्रनकूं संग लेके मथुरापुरीके बीच बजारमें होयके निकसे वसुदेवजीके पुत्र श्रीकृष्ण बलदेवके देखिवेको पुरीकी स्त्री दौरिके आवतीभई हे राजन् परीक्षित् ! देखिवेकी इच्छा भई जिनकों वे स्त्री महलनपै चढति भई ॥ २४ ॥

ददर्श तां स्फाटिकतुङ्गगोपुरद्वारां बृहद्धेमकपाटतोरणाम् ॥ ताम्राऽऽरकोष्ठां परिखादुरासदामुद्यानरम्योपवनोपशोभिताम् ॥ २० ॥ सौवर्णशृङ्गाटकहर्म्यनिष्कुटैः श्रेणीसभाभिर्भवनैरुपस्कृताम् ॥ वैदूर्यवज्राऽमलनीलविद्रुमैर्मुक्ताहरिद्भिर्वलभीषु वेदिषु ॥ २१ ॥ जुष्टेषु जालामुखरन्ध्रकुट्टिमेष्वाविष्टपारावतबर्हिनादिताम् ॥ संसिक्तरथ्यापणमार्गचत्वरां प्रकीर्णमाल्याङ्कुरलाजतन्दुलाम् ॥ २२ ॥ आपूर्णकुम्भैर्दधिचन्दनोक्षितैः प्रसूनदीपावलिभिः सपल्लवैः ॥ सवृन्तरम्भाक्रमुकैः सकेतुभिः स्वलंकृतद्वारगृहां सपट्टिकैः ॥ २३ ॥ तां सम्प्रविष्टौ वसुदेवनन्दनौ वृतौ वयस्यैर्नरदेववर्त्मनि ॥ द्रष्टुं समीयुस्त्वरिताः पुरस्त्रियो हर्म्याणि चैवारुरुहुर्नृपोत्सुकाः ॥ २४ ॥

कोई स्त्री उतावलके मारे ओढनीनकों पहिरके लहंगानकों ओढिके हाथनके गहने पांवनमें पहिरके आवतिभईं, कोई एक स्त्री एक हाथमें एक पावमें गहनो पहिरके आवतभईं, कोई एक स्त्री एक कानमें कर्णफुल पहिरके एक पांवमें पाइजेव पहिरके आवतभईं और स्त्री एकही आंखिमें काजल लगायके आवत भईं ॥ २५ ॥ कोई एक स्त्री भोजन करेंही ताकूं छोडिके आवतभईं " कहूं व्याह होयरह्यो हो जव कृष्ण बलदेव आये सुने तव देखिवेको दूलो आपको भाज्यो दुलहिन आपकों भाजी वरायती आपकों भाजे " और कोई स्त्री आंगनमें तेल लगावेंही वे विना स्नानकरेही आवतिभईं, कोई सोवतसूं उठिके आवतिभईं, कोई स्त्री अपने बालकनकों दूध प्यामेंही कृष्णबलदेव आये सुने तब उनकों रोवते छोडिके आवतिभईं बालक यालिये

काश्चिद्विपर्यग्धृतवस्त्रभूषणा विस्मृत्य चैकं युगलेष्वथापराः ॥कृतैकपत्त्रश्रवणैकनूपुरा नाङ्क्त्वा द्वितीयं त्वपराश्च लोचनम् ॥ २५ ॥ अश्नन्त्य एकास्तदपास्य भोजनमभ्यज्यमाना अकृतोपमज्जनाः ॥ स्वपन्त्य उत्थाय निशम्य निःस्वनं प्रपाययन्त्योऽर्भमपोह्य मातरः ॥ २६ ॥ मनांसि तासामरविन्दलोचनः प्रगल्भलीलाहसितावलोकनैः ॥ जहार मत्तद्विरदेन्द्रविक्रमो दृशां ददच्छ्रीरमणात्मनोत्सवम् ॥२७॥ दृष्ट्वा मुहुः श्रुतमनुद्रुतचेतसस्तं तत्प्रेक्षणोत्स्मितसुधोक्षणलब्धमानाः ॥ आनन्दमूर्तिमुपगुह्य दृशात्मलब्धं हृष्यत्त्वचो जहुरनन्तमरिन्दमाधिम्॥ २८ ॥

रोमें हैं तुम तौ दर्शन करिवेको चली हमें क्यों छोडे जाऊंहो हमकोंहूं ले चलो ॥२६॥ मतवारे हाथीकी तुल्य पराक्रमवारे कमलदललोचन श्रीकृष्णचंद्र डिठाई लीलापूर्वक हंसनी चितवनिसूं तिन स्त्रीनके मन चुरावत भये, लक्ष्मीको रमानेहारो आपनो रूपसूं तिन स्त्रीनकी आंखिनकों आनंद देतभये ॥ २७ ॥ बेरबेर बातें सुनिके ता श्रीकृष्णमें लगे हैं चित्त जिनके और तिनकी चितवनि मुसिकानिरूपी अमृतको जो सींचिवो है तासों सत्कार पानेसे रोमांच होय आये ऐसी स्त्री श्रीकृष्णकों देखिके नेत्रद्वारा हृदयमें लेजायके आनंदरूप श्रीकृष्णको आलिंगन करिके हे कामलोभादिकनको दंड देनवारे राजन् परीक्षित! श्रीकृष्णके विना मिलेतै भईं कामदेवकी पीडाकों त्यागत भईं ॥ २८ ॥

महलनकी शिखरपै चढी प्रसन्नतासों प्रफुल्लित हैं नेत्रवारी स्त्री बलदेव श्रीकृष्णके ऊपर फूल वर्षावत भई ॥ २९ ॥ दही अक्षत जलके भरेपात्र माला
चंदन भेट लैके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य प्रसन्न होयके कृष्ण बलदेवको पूजन करत भये ॥ ३० ॥ समस्त मथुरावासी आश्चर्य मानिके यह कहत भये
गोपीनने कहा उत्कृष्ट तप कियो है, जे गोपी मनुष्य लोकको बडे उत्सवरूप श्रीकृष्ण बलदेवकूं देखे हैं ॥ ३१ ॥ वस्त्रनको धोवनवारो और रंगन-
वारो एक धोबी मार्गमें सन्मुख आवतो देखिके तासे धुये अति उत्तम वस्त्रनकूं श्रीकृष्णचंद्र मांगत भये ॥ ३२ ॥ हे धोबी ! पात्र हम हैं तिनके योग्य

प्रासादशिखरारूढाः प्रीत्युत्फुल्लमुखाम्बुजाः ॥ अभ्यवर्षन् सौमनस्यैः प्रमदा बलकेशवौ ॥ २९ ॥ दध्यक्षतैः सोदपा-
त्रैः स्रग्गन्धैरभ्युपायनैः ॥ तावानर्चुः प्रमुदितास्तत्र तत्र द्विजातयः ॥३०॥ ऊचुः पौरा अहो गोप्यस्तपः किमचरन्
महत् ॥ या ह्येतावनुपश्यन्ति नरलोकमहोत्सवौ ॥ ३१ ॥ रजकं कञ्चिदायातं रङ्गकारं गदाग्रजः ॥ दृष्ट्वाऽयाचत वा-
सांसि धौतान्यत्युत्तमानि च ॥ ३२ ॥ देह्यावयोः समुचितान्यङ्ग वासांसि चार्हतोः ॥ भविष्यति परं श्रेयो दातुस्ते ना-
त्र संशयः ॥ ३३ ॥ स याचितो भगवता परिपूर्णेन सर्वतः ॥ साक्षेपं रुषितः प्राह भृत्यो राज्ञः सुदुर्मदः ॥ ३४ ॥ ईदृशा-
न्येव वासांसि नित्यं गिरिवनेचराः ॥ परिधत्त किमुद्वृत्ता राजद्रव्याण्यभीप्सत ॥ ३५ ॥ याताशु बालिशा मैवं प्रार्थ्यं
यदि जिजीविषा ॥ बध्नन्ति घ्नन्ति लुम्पन्ति दृप्तं राजकुलानि वै ॥ ३६ ॥

ये वस्त्र हैं तिने तू दे, तो दाताको अभी कल्याण होयगो यामें संदेह नहीं है ॥ ३३ ॥ सब ओरते परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने धोबीते वस्त्र मांगे
तब कंसको टहलुआ बडो घमंडी वह धोबी क्रोधकरिके डाटिके बोलत भयो ॥ ३४ ॥ नित्य पर्वतनके वनमें फिरनवारे, ऐसेही कपरा पहिरनवारे हो
हे उद्धत ! राजाके वस्त्रनपै क्यों मन चलाओहो ॥ ३५ ॥ हे मूर्खो ! तुम यहांते शीघ्रही निकसि जाओ जो अपनो जीवन चाहो तो फेरि मति
मांगिओ राजा कंसके प्यादे बहुत फिरें हैं जो धूम करे है ताहि बांधें हैं लूटे हैं मारे हैं तुम तो ये वस्त्र मांगो हो मोहीं यह दीखे है कि तुमारेऊ

चौपाई ॥ एहिविधिजहांतहांखडिनारी । प्रभुहिबतावैंहाथपसारी । नीलवसनगोरेबलराम । पीतांबरपहनेघनश्याम । गुनतहुतीं पुरुषारथाजिनको । देखहुरूपनैनभरितिनको ॥

285

कोई उतारि लेइगो ॥ ३६ ॥ या प्रकार बकते धोबीके शिरकों देवकीके पुत्र श्रीकृष्णचंद्र कोप करिके अपने हाथके थापसूं काटत भये ॥३७॥ जब मुख्य धोबी मारो गयो तब वाके टहलुआ धोबी वस्त्रनकी पोट पटकि पटकिके चारों ओरको भाजत भये तासमय श्रीकृष्ण तथा बलदेवजी अपने मनमानते वस्त्रनको पहिरिके बाकी जे रहे ते गोपनकों देत भये और जे रहे ते वहांही छोडत भये ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ वस्त्र पहिरके चले ताके पीछे प्रसन्नमन एक दर्जी तिन रामकृष्णकों लाल हरे पीरे रंगके जे वस्त्र हैं तिनके माला चंपकली बाजूबंद अनेक प्रकारके आभूषण बनायके शोभायमान पोषाक

एवं विकत्थमानस्य कुपितो देवकीसुतः ॥ रजकस्य कराग्रेण शिरः कायादपातयत् ॥ ३७॥ तस्यानुजीविनः सर्वे वासःकोशान् विसृज्य वै ॥ दुद्रुवुः सर्वतो मार्गं वासांसि जगृहेऽच्युतः ॥ ३८ ॥ वसित्वात्मप्रिये वस्त्रे कृष्णः सङ्कर्षणस्तथा ॥ शेषाण्यदत्त गोपेभ्यो विसृज्य भुवि कानिचित् ॥ ३९ ॥ ततस्तु वायकः प्रीतस्तयोर्वेषमकल्पयत् ॥ विचित्रवर्णैश्चैलेयैराकल्पैरनुरूपतः ॥ ४० ॥ नानालक्षणवेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः ॥ स्वलङ्कृतौ बालगजौ पर्वणीव सितेतरौ ॥ ४१ ॥ तस्य प्रसन्नो भगवान् प्रादात् सारूप्यमात्मनः ॥ श्रियं च परमां लोके बलैश्वर्यस्मृतीन्द्रियम् ॥ ४२ ॥ ततः सुदाम्नो भवनं मालाकारस्य जग्मतुः ॥ तौ दृष्ट्वा स समुत्थाय ननाम शिरसा भुवि ॥ ४३ ॥

बनाई ॥ ४० ॥ कृष्ण बलदेव दोनौं भैया अनेक प्रकारके दर्जीके बनाये वस्त्रनके आभूषणनसों शोभायमान लगे हैं जैसे पर्वमें सामरे गोरे शृंगार किये हाथीके छोना सुन्दर लगेहैं ॥ ४१ ॥ ता दर्जीके ऊपर प्रसन्न होय भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अपनी सारूप मुक्ति दी या लोकमें सम्पत्ति देतभये बल ऐश्वर्य स्मरण और हाथ पांव नाक कान आंखि अच्छे बने रहैं इनकी चतुराई देतभये ॥ ४२ ॥ ताके पाछे सुदामा मालीके घर कृष्ण बलदेव जात भये तब सो तिनकों देखिके धरतीमें शिर लगाय प्रणाम करत भयो ॥ ४३ ॥

और तिन कृष्णबलदेवकों आसन बिछायके बैठावत भयो, और पाद्य अर्घ इत्यादिक पूजाकी सामग्रिसूं पूजा करतभयो पानकी बीरी चंदन इत्यादिक अर्पण करतभयो ॥ ४४ ॥ माली कहत भयो हे प्रभो ! तुमारे आइवेसूं हमारो जन्म सार्थक भयो कुल पवित्र भयो और हमारे पितर देवता ऋषि संतुष्ट भये ॥ ४५ ॥ तुम निश्चय या संसारके परम कारण हो जगतके कारण हो जगत्के कल्याणके निमित्त और वृद्धिके लिये अंश करिके अवतार लिये हो ॥ ४६॥ जगत्के हितकारी आत्मा तुमहीं हो तुम्हारी विषम दृष्टि नहीं है सब प्राणिनमें समवर्ती हौ भजन करनवारेनकों भजौहो ॥ ४७ ॥

तयोरासनमानीय पाद्यं चाथार्हणादिभिः ॥ पूजां सानुगयोश्चक्रे स्रक्ताम्बूलानुलेपनैः ॥ ४४ ॥ प्राह नः सार्थकं जन्म पावितं च कुलं प्रभो ॥ पितृदेवर्षयो मह्यं तुष्टा ह्यागमनेन वाम् ॥ ४५ ॥ भवन्तौ किल विश्वस्य जगतः कारणं परम् ॥ अवतीर्णाविहांशेन क्षेमाय च भवाय च ॥ ४६ ॥ न हि वां विषमा दृष्टिः सुहृदोर्जगदात्मनोः ॥ समयोः सवभूतेषु भजन्तं भजतोरपि ॥ ४७ ॥ तावाज्ञापयतं भृत्यं किमहं करवाणि वाम् ॥ पुंसोऽत्यनुग्रहो ह्येष भवद्भिर्यन्नियुज्यते ॥ ४८ ॥ इत्यभिप्रेत्य राजेन्द्र सुदामा प्रीतमानसः ॥ शस्तैः सुगन्धैः कुसुमैर्मालां विरचितां ददौ ॥ ४९ ॥ ताभिः स्वलङ्कृतौ प्रीतौ कृष्णरामौ सहानुगौ ॥ प्रणताय प्रपन्नाय ददतुर्वरदौ वरान् ॥ ५० ॥ सोऽपि वव्रेऽचलां भक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्मनि ॥ तद्भक्तेषु च सौहार्दं भूतेषु च दयां पराम् ॥ ५१ ॥

तुम मो भृत्यको आज्ञा करौ मैं तुम्हारी कम्हा पूजा करौं, पुरुषकौ जो तुमारो दर्शन होइ यह बडो अनुग्रह है ॥ ४८ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! या प्रकार जिनके प्रसन्न है मन सुदामामाली सुंदर सुगंधिनके फूलनकी बनी माला निवेदन करतभयो ॥ ४९ ॥ ते माला पहिरके मित्रनसहित सुंदर प्रसन्न होय वरके देनवारे रामकृष्ण शरण आये सुदामाकूं वर देतभये ॥ ५० ॥ सुदामा मालीभी सबके आत्मा श्रीकृष्ण भक्ति मांगत भयो भगवानभक्तनमें स्नेह रहे और जीवमात्रमें दया रहे यह वर मांगत भयो ॥ ५१ ॥

ता मालीको येही वर दैके और ताके वंशमें सर्वदा रहनेहारी सम्पत्ति दैके वल आयु यश शोभा दैके बलदेवजीकों संग लैके ताके घरते निकसत भयो ॥ ९२ ॥ इति श्रीमन्महाभागवत भाषाटीकायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे मथुरापुरप्रवेशो नाम एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित् ! मालीके घरते निकसे पीछे, मधुवंशमें भये सुखके देनवारे श्रीकृष्णचंद्र राजमार्ग बाजारमें आयके ग्रहण किये चंदनके पात्र सुंदर मुखवारी सन्मुख तरुण कुबरी स्त्रीकों देखिके हंसिके पूछतभये ॥ १ ॥ सुंदर जंघावारी तू स्त्री कौनकी है, चंदन कौनकौ है हमारे आगे भले प्रकार कहो, यह उत्तम चंदन हमकों देइ तौ अभी तेरो कल्याण होयगो ॥ २ ॥ यह सुनिके कुबरी बोली हे सुंदर ! मैं कंसकी दासी हों कुबरी मेरो नाम

इति तस्मै वरान् दत्त्वा श्रियं चान्वयवर्धिनीम् ॥ बलमायुर्यशः कान्तिं निर्जगाम सहाग्रजः ॥९२॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे पुरप्रवेशो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ अथ व्रजन् राजपथेन माधवः स्त्रियं गृहीताङ्गविलेपभाजनाम् ॥ विलोक्य कुब्जां युवतीं वराननां पप्रच्छ यान्तीं प्रहसन् रसप्रदः ॥ ॥ १ ॥ का त्वं वरोर्वेतदु हानुलेपनं कस्याङ्गने वा कथयस्व साधु नः ॥ देह्यावयोरङ्गविलेपमुत्तमं श्रेयस्ततस्तेन चिराद् भविष्यति ॥२॥ सैरन्ध्र्युवाच ॥ दास्यस्म्यहं सुन्दर कंससंमता त्रिवक्रनामा ह्यनुलेपकर्मणि॥मद्भावितं भोजपतेरतिप्रियं विना युवां कोऽन्यतमस्तदर्हति ॥ ३ ॥ रूपपेशलमाधुर्यहसितालापवीक्षितैः ॥ धर्षितात्मा ददौ सान्द्रमुभयोरनुलेपनम् ॥ ४ ॥ ततस्तावङ्गरागेण स्ववर्णेतरशोभिना ॥ संप्राप्तपरभागेन शुशुभातेऽनुरञ्जितौ ॥ ५ ॥

है चंदन घसिवो यह मेरो काम है मेरो घिसो चंदन कंसको आच्छो लगैहै अब तुमबिना और चंदन लगायवेको कौन पात्र है ॥ ३ ॥ सुंदररूप सुकुमारि और रसिकता हंसानि बोलनि चितवनसूं मोहित मन होय कुबरी कृष्णबलदेवको गहिरो चंदन देत भई ॥ ४ ॥ केशरी जामें परी ऐसो चंदन सांवरे अंगमें श्रीकृष्णने लगायो कस्तूरी जामें मिली ऐसो चंदन गोरे अंगमें बलदेवजीने लगायो, नाभिते ऊपरके अंगमें चंदन लगायके दोनों भैया बहुत सुंदर लगत भये ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्ने विचारी कि हमारे आगे या कुबरीको वांकोपनेसे रहै अथवा मोकों मथुराको वांकोपन सीधो करनो है सो ह्यांईसे लग्गा लगाऊं सो अपने दर्शनको फल दिखायवेके लिये सुंदरमुखी तीन स्थानते टेढी कुब्जाकूं सूधी करिवेको मन करत भये ॥ ६ ॥ कुब्जाके पांवनको अपने चरणते दाबिके दो अंगुली जामें ऊंची करी ऐसे हाथको टोढीके नीचे लगायके श्रीकृष्ण कुब्जाके देहको सूधो करत भये ॥ ७ ॥ तासमय सूधे बराबर हैं अंग जाके बडे हैं नितम्ब और स्तन जाके ऐसे कुब्जा श्रीकृष्णके स्पर्श करेतें शीघ्र उत्तम स्त्री होतभई ॥८॥ सूधी भए पीछे रूप गुण उदारता ये सब कुब्जामें आयगये, तब कामदेवसे पीडित होय वह कुब्जा दुपट्टाको छोर पकरिके श्रीकृष्णते बोलतभई ॥ ९ ॥ हे वीर ! तुम

प्रसन्नो भगवान् कुब्जां त्रिवक्रां रुचिराननाम् ॥ ऋज्वीं कर्तुं मनश्चक्रे दर्शयन् दर्शने फलम् ॥ ६ ॥ पद्भ्यामाक्रम्य प्रपदे द्व्यङ्गुल्युत्तानपाणिना ॥ प्रगृह्य चुबुकेऽध्यात्ममुदनीनमदच्युतः ॥ ७ ॥ सा तदर्जुसमानाङ्गी बृहच्छ्रोणिपयोधरा ॥ मुकुन्दस्पर्शनात् सद्यो बभूव प्रमदोत्तमा ॥ ८ ॥ ततो रूपगुणौदार्यसंपन्ना प्राह केशवम् ॥ उत्तरीयान्तमाकृष्य स्मयन्ती जातहृच्छया ॥ ९ ॥ एहि वीर गृहं यामो न त्वां त्यक्तुमिहोत्सहे ॥ त्वयोन्माथितचित्तायाः प्रसीद पुरुषर्षभ ॥ १० ॥ एवं स्त्रिया याच्यमानः कृष्णो रामस्य पश्यतः ॥ मुखं वीक्ष्यानुगानां च प्रहसंस्तामुवाच ह ॥ ११ ॥ एष्यामि ते गृहं सुभ्रूः पुंसामाधिविकर्शनम् ॥ साधितार्थो गृहाणां नः पान्थानां त्वं परायणम् ॥२१॥ विसृज्य माध्व्या वाण्या तां व्रजन् मार्गे वणिक्पथैः ॥ नानोपायनताम्बूलस्रग्गन्धैः साग्रजोऽर्चितः ॥ १३ ॥

आओ घरकों चलो तुम मोपै छोडे नहीं जाओ हौ हे पुरुषनमें श्रेष्ठ ! तुमने मेरो मन चलायमान कीनो है मेरे ऊपर प्रसन्न होउ ॥१०॥ या प्रकार स्त्रीने कही तासमय श्रीकृष्णचंद्र बलदेवजीको मुख देखिके, मित्रनको मुख देखिके मुसिकायके कुब्जाते बोलत भये ॥ ११ ॥ हे सुंदर भ्रकुटीवारी ! तुम्हारी भ्रुकुटी हमारे मनकों खैंचै है, हमारो उपरना काहेको खैंचेहो कंसको मारिके अपने सुहृदनको कार्य सिद्ध करके पुरुषनके मनके दुःखको दूर करनवारे तुमारे घरमें आउंगो, बाल ब्रह्मचारी काहू सों जानि नहीं पहिचानि नहीं हमारे घर नहीं परदेशी हैं तिनकूं तुमही आश्रय हौ तुम्हारे घर न आमेंगे तो जांइगे कहां ॥ १२ ॥ ऐसें मीठे मीठे वचन कहिके कुब्जाकों छोडिकै चले तब वणियानने अनेक भेंट पान माला चंदन लैके बलदेवजी सहित कृष्णको

पूजन करचो ॥ १३ ॥ श्रीकृष्णके दर्शन करेतै प्राप्त जो कामदेवके क्षोभतें वह स्त्री आपेकूं नहीं जानतभई, वस्त्र ढीले होयगये चोटी खुलिगई चूरी खिसलआंई चित्रसी लिखि ठाढी रहिगई ॥ १४ ॥ तापीछे अच्युत श्रीकृष्ण मथुरावासीनते धनुषनको ठिकानो पूंछत पूंछत गये धनुषकी शालामें इन्द्रके धनुषकी तुल्य धनुष धरो देखतभये ॥ १५ ॥ हे राजन् ! पुरुष जाकी रक्षा करे हैं पूजा होई रही है बडी जाकी शोभा है पुरुषनने मने करो तौभी श्रीकृष्ण जोरावरी धनुषको उठावतभये ॥१६॥ खेल करत एक हाथते उठायके चिल्ला चढाइके पलभरमें मनुष्यनके देखत देखत बीचते

तद्दर्शनस्मरक्षोभादात्मानं न विदन् स्त्रियः ॥ विस्रस्तवासःकबरवलयालेख्यमूर्तयः ॥ १४ ॥ ततः पौरान् पृच्छमानो धनुषः स्थानमच्युतः ॥ तस्मिन् प्रविष्टो ददृशे धनुरैन्द्रमिवाद्भुतम् ॥ १५ ॥ पुरुषैर्बहुभिर्गुप्तमर्चितं परमर्द्धिमत् ॥ वार्यमाणो नृभिः कृष्णः प्रसह्य धनुराददे ॥ १६ ॥ करेण वामेन सलीलमुद्धृतं सज्यं च कृत्वा निमिषेण पश्यताम् ॥ नृणां विकृष्य प्रबभञ्ज मध्यतो यथेक्षुदण्डं मदकर्युरुक्रमः ॥१७॥ धनुषो भज्यमानस्य शब्दः खं रोदसी दिशः ॥ पूरयामास यं श्रुत्वा कंसस्त्रासमुपागमत् ॥१८॥ तद्रक्षिणः सानुचराः कुपिता आततायिनः ॥ ग्रहीतुकामा आवव्रुर्गृह्यतां बध्यतामिति॥१९॥अथ तान् दुरभिप्रायान् विलोक्य बलकेशवौ॥क्रुद्धौ धन्वन आदाय शकलैस्तांश्च जघ्नतुः ॥ २० ॥

खैंचिके जैसे मतवारे हाथी गांडेकूं तोरडारे है तैसे तोरिके डारतभये ॥१७॥ तासमय धनुष टूटो तब वाको शब्द आकाश स्वर्ग पृथ्वी दिशानमें व्याप्त होतभयो ऐसे शब्दको सुनिके कंसको भय होतभयो ॥ १८ ॥ धनुषके रक्षक जो हैं ते अपने अनुचरणसहित क्रोध करिके श्रीकृष्णके पकरिवेके लिये लेउ लेउ ऐसे कहत चारों ओरते घेरत भये ॥ १९ ॥ घेर लेनेके पीछे श्रीकृष्ण बलदेव दोनों भैया मारिवेको पकरिवेकों आये पुरुषनको देखिके क्रोध करिके धनुषको एक एक टूट लैके तिन पुरुषनको मारतभये ॥ २० ॥

कंसकी भेजी सेना मारिके धनुषशालाके बाहिर निकसिके मथुरापुरी कंपित देखि हर्षित होयके चितवतभये ॥ २१ ॥ मथुरापुरीके वासी स्त्रीपुरुष
रामकृष्णको अद्भुत कर्म धृष्टता पराक्रम देखिके देवतानमें उत्तम मानतभये ॥ २२ ॥ ते कृष्ण बलदेव अपनी इच्छापूर्वक विचरे हैं इतनेमें सूर्य अस्त
होत भयो संध्यासमय भयो तब कृष्ण बलदेव दोनों भैया गोपनकों संग लैके मथुरापुरीते निकसे जहां गाडा छूटे हें तहां आवत भये ॥ २३ ॥ श्रीकृ-
ष्णकूं व्रजमें ते निकसतींवेर गोपीनने विरहमें व्याकुल होयके जे जे बातें कहीहीं ते सबही श्रीकृष्णके अंगकी शोभा देखिकें मथुरावासीनकूं सांची
होत भई, कारणकी लक्ष्मीभी अपने भजनेहारे ब्रह्मादिकको छोडिके जाही रूपकी चाहना करे है ॥ २४ ॥ चरण धोय श्रीकृष्ण बलदेवजी दूध-

बलं च कंसप्रहितं हत्वा शालामुखात्ततः ॥ निष्क्रम्य चेरतुर्हृष्टौ निरीक्ष्य पुरसम्पदः ॥२१॥ तयोस्तदद्भुतं वीर्यं नि-
शम्य पुरवासिनः ॥ तेजः प्रागल्भ्यरूपं च मेनिरे विबुधोत्तमौ ॥ २२ ॥ तयोर्विचरतोः स्वैरमादित्योऽस्तमुपेयिवा-
न् ॥ कृष्णरामौ वृतौ गोपैः पुराच्छकटमीयतुः ॥ २३॥ गोप्यो मुकुन्दविगमे विरहातुरा या आशासताशिष ऋताम-
धुपुर्यभूवन् ॥ संपश्यतां पुरुषभूषणगात्रलक्ष्मीं हित्वेतरान्नु भजतश्चकमेऽयनं श्रीः ॥२४॥अवनिक्ताङ्घ्रियुगलौ भुक्त्ता
क्षीरोपसेचनम् ॥ ऊषतुस्तां सुखं रात्रिं ज्ञात्वा कंसचिकीर्षितम् ॥ २५ ॥ कंसस्तु धनुषो भङ्गं रक्षिणां स्वबलस्य च ॥
वधं निशम्य गोविन्दरामविक्रीडितं परम् ॥ २६ ॥ दीर्घप्रजागरो भीतो दुर्निमित्तानि दुर्मतिः ॥ बहून्याचष्टोभयथा मृ-
त्योर्दौत्यकराणि च॥२७॥अदर्शनं स्वशिरसः प्रतिरूपे च सत्यपि॥असत्यपि द्वितीये च द्वैरूप्यं ज्योतिषां तथा॥२८॥

भातको भोजन करिके कंसको विचार जानिके वा रात्रिकों सुखते वसत भये ॥ २५ ॥ कंस धनुषकों टूटनो वाके रखवारेनकों मरनो और अपनी
सैन्याको वध सुनकर कि यह कृष्णबलदेवको केवल खेल है पराक्रम नहीं है ॥ २६ ॥ यह विचार ताके मारे रात्रिको निद्रा नहीं आई, महा भयभीत
भयो तब वह दुष्टबुद्धि कंस मृत्युके जतावनवारे जागतमें सोवतमें बहुतसें खोटे सगुण देखत भयो ॥ २७ ॥ दर्पनमें जलमें मुख देखे तो अपनो शिर
नहीं दिखाई देइहै, चन्द्रमा सूर्य दोदो रूप नहीं हैं परन्तु वाको दोदो दिखाई दिये ॥ २८ ॥

छिद्रप्रतीतिश्छायायां प्राणघोषानुपश्रुतिः ॥ स्वर्णप्रतीतिर्वृक्षेषु स्वपदानामदर्शनम् ॥ २९ ॥ स्वप्ने प्रेतपरिष्वङ्गः
खरयानं विषादनम् ॥ यायान्नलदमाल्येकस्तैलाभ्यक्तो दिगम्बरः ॥३०॥ अन्यानि चेत्थंभूतानि स्वप्नजागरितानि
च ॥ पश्यन् मरणसंत्रस्तो निद्रां लेभे न चिन्तया ॥ ३१ ॥ व्युष्टायां निशि कौरव्य सूर्ये चाद्भ्यः समुत्थिते ॥
कारयामास वै कंसो मल्लक्रीडामहोत्सवम् ॥३२॥ आनर्चुः पुरुषा रङ्गं तुर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥ मञ्चाश्चालङ्कृताः स्रग्भिः
पताकाचैलतोरणैः ॥३३॥ तेषु पौरा जानपदा ब्रह्मक्षत्रपुरोगमाः ॥ यथोपजोषं विविशू राजानश्च कृतासनाः॥३४॥
कंसस्तु संवृतोऽमात्यै राजमञ्च उपाविशत् ॥ मण्डलेश्वरमध्यस्थो हृदयेन विदूयता ॥३५॥ वाद्यमानेषु तूर्येषु मल्ल-
तालोत्तरेषु च ॥ मल्लाः स्वलङ्कृता दृप्ताः सोपाध्यायाः समागताः ॥ ३६ ॥

अपनी परछाईमें छिद्र दीखे अंगुरी देके कानमें देखे तो घूंघूं शब्द नहीं सुनोजाय वृक्ष सोनेके दिखाई दिये कीचमें रेतमें अपन पांवनके खोज न दीखे ॥ २९ ॥ स्वप्नमें भूत प्रेत छातीसूं लगाय लगायके मिलेहैं, गधापै चढो गुडहरके फूलनकी माला पहिरे अकेलो तेलमें भीज्यो नग्नवेषको खात दक्षिण दिशाकों चल्यो जायहै यह स्वप्न देखत भयो ॥ ३० ॥ और ऐसे ऐसे स्वप्नमें जागतमें खोटे खोटे सगुन देखिके मृत्युसें डरप्यो कंस चिंताके मारे सोवत न भयो ॥३१॥ हे कुरुवंशमें भये राजन् परीक्षित् ! जैसे तैसे करिके वह रात्री विती सवेरो भयो जलमैंते सूर्य निकसो ता समय कंस मल्लनकी कुस्ती लडवायवेको बडो उत्सव करावत भयो ॥ ३२ ॥ पुरुष रंगभूमीकी पूजा करत भये तुरतही भेरी बजत भई, माला पताका वस्त्रनकी वन्दनवारि इनते मचान शोभायमान करे ॥ ३३ ॥ तिन मचाननके ऊपर ब्राह्मण क्षत्री जिनमें मुख्य ऐसे पुरवासी देशवासी आयके सुखपूर्वक बैठत भये ॥ ३४ ॥ कंस अपने प्रधानदीमानकूं संग लैके खंडमंडलनके राजा हैं तिनके बीचमें एक राजमंचान है ताके ऊपर बैठत भयो भयके मारे हृदय कंपित है ॥ ३५ ॥ नगाडे बजे हैं मल्ल चटचट खंभ ठोंके हैं, जांघियानकूं पहिरिके सिंदूरको बिंदा लगायके धूरि मलिके छोटी छोटी चुटियां बडो गर्व भरे उस्तादनको संग लैके आवत भये ॥ ३६ ॥

अब मल्लनके नाम लेइ हैं चाणूर, मुष्टिक, कूट, शल, तोशल, ये अखाड़ेमें आवत भये, मनोहर बाजनकूं सुनिके हर्षित होरहे हैं ॥ ३७ ॥ कंसके बुलाये नंद गोपसों आदि लैके और गोप हैं ते कंसको भेंट दैके एक मचानपै बैठत भये ॥ ३८ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे मल्लरंगोपवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे शत्रुनके तपावनवारे राजा परीक्षित् ! धोबीको मारिके धनुषको तोरिके हमने अपनो ऐश्वर्य जतायो तथापि हमारे माता पिताको नहीं छोडे हैं और हमकूं मार्‍यो चाहै है यातें या मामाके मारिवेमें हमें कछु दोष नहीं है या प्रकार दोषके दूर करिवेको विचारकर कृष्ण बलदेव दोनों भैया जहां मल्ल खंब ठोकैं हैं नगाडे बजै हैं तिनको शब्द सुनिके दे-

चाणूरो मुष्टिकः कूटः शलस्तोशल एव च ॥ त आसेदुरुपस्थानं वल्गुवाद्यप्रहर्षिताः ॥ ३७॥ नन्दगोपादयो गोपा
भोजराजसमाहुताः ॥ निवेदितोपायनास्ते एकस्मिन् मञ्च आविशन् ॥३८॥ इति श्रीभा० म०द० पू०मल्लरङ्गोपवर्णनं
नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परन्तप ॥ मल्लदुन्दुभिनिर्घोषं
श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः ॥ १ ॥ रङ्गद्वारं समासाद्य तस्मिन्नागमवस्थितम् ॥ अपश्यत् कुवलयापीडं कृष्णोम्बष्ठप्रचोदि-
तम् ॥ २ ॥ बद्ध्वा परिकरं शौरिः समुह्य कुटिलालकान् ॥ उवाच हास्तिपं वाचा मघनादगभीरया ॥ ३ ॥ अम्बष्ठाम्बष्ठ
मार्गं नौ देह्यपक्रम मा चिरम् ॥ नो चेत् सकुञ्जरं त्वाद्य नयामि यमसादनम् ॥ ४ ॥ एवं निर्भर्त्सितोऽम्बष्ठः
कुपितः कोपितं गजम् ॥ चोदयामास कृष्णाय कालान्तकयमोपमम् ॥ ५ ॥

खिवेको जात भये ॥ १ ॥ श्रीकृष्णचंद्र रंगभूमिके दरवाजेपै जायके देखें तो कुवलियापीड हाथी ठाडो है और महावत वाहि प्रेर रह्यो है ॥ २ ॥ शूरके वंशमें भये श्रीकृष्णचंद्र फेंटि बांधिके मुखपैं छूटिरही कुटिल अलकोंको सह्मारिके गलेकी लंबी मालाको जनेऊकी तुल्य कंधानपै पहिरके मेघकी तुल्य गर्जके बोलत भये ॥ ३ ॥ अरे महावत ! हमको मार्ग दे, शीघ्र हाथीकूं हटायले, नहीं हठावैगो तो हाथीसहित तोकों यम लोकको पठाऊंगो ॥ ४ ॥ या प्रकार डाटिकै जब कही ता समय महावत कुपित होयके कालमृत्यु यम इनकी तुल्य क्रोध कर हाथीको श्रीकृष्णचंद्रके ऊपर

294

हूलत भयो ॥ ५ ॥ हाथी श्रीकृष्णके पास जायके जलदीसे अपनी सूंडमें पकरत भयो श्रीकृष्ण हाथीकी सूंडमेंते खिसिलके वाके मूडमें मुक्क मारिके पांउनमें छिप जात भये ॥ ६ ॥ श्रीकृष्णको देखिके क्रोधित होय सूंघासांघीकी दृष्टिवारे हाथीने जब सूंड पकरिवेकों चलाई ता समय सूंड पकरि पिछिले पावनमें निकसिगये ॥ ७ ॥ बडे बली हाथीकी पूंछ पकरिके जैसे गरुड सर्पको घसीटै है या प्रकार पचीस धनुष्य पर्यन्त लीला करिके घसीटत भये ॥ ८ ॥ पूंछको पकरे श्रीकृष्णकूं पकरिवेको दाहिनी ओर हाथी आवै है तब वांई ओर भ्रमावै है, ओर वांई ओर आवै है तब दाहिनी ओर भ्रमावैं हैं जैसे गौके बछराके संग बालक फिरै हैं ऐसे फिरै हैं ॥ ९ ॥ तापीछे हाथीके सामुही आयके थाप मारिके दौरिके पटकतभये,

करीन्द्रस्तमभिद्रुत्य करेण तरसाऽग्रहीत् ॥ कराद्विगलितः सोऽमुं निहत्याङ्घ्रिष्वलीयत ॥ ६ ॥ संक्रुद्धस्तमचक्षाणो घ्राणदृष्टिः स केशवम् ॥ परामृशत् पुष्करेण स प्रसह्य विनिर्गतः ॥ ७ ॥ पुच्छे प्रगृह्याऽतिबलं धनुषः पञ्चविंशतिम् ॥ विचकर्ष यथा नागं सुपर्ण इव लीलया ॥ ८ ॥ स पर्यावर्तमानेन सव्यदक्षिणतोऽच्युतः ॥ बभ्राम भ्राम्यमाणेन गोवत्सेनेव बालकः ॥ ९ ॥ ततोऽभिमुखमभ्येत्य पाणिनाऽऽहत्य वारणम् ॥ प्राद्रवन् पातयामास स्पृश्यमानः पदे पदे ॥ ॥ १० ॥ स धावन् क्रीडया भूमौ पतित्वा सहसोत्थितः ॥ तं मत्वा पतितं क्रुद्धो दन्ताभ्यां सोऽहनत् क्षितिम् ॥ ११ ॥ स्वविक्रमे प्रतिहते कुञ्जरेन्द्रोऽत्यमर्षितः ॥ चोद्यमानो महामात्रैः कृष्णमभ्यद्रवद्रुषा ॥१२॥ तमापतन्तमासाद्य भगवान् मधुसूदनः ॥ निगृह्य पाणिना हस्तं पातयामास भूतले ॥ १३ ॥

और पद पदपै स्पर्श करने देते उसे गिरादिया श्रीकृष्ण तनिक दौरके खेलिवेके लिये धरतीमें गिरिके शीघ्रतासूं ठाडे होयगये तब श्रीकृष्णकूं गिऱ्यो मानिके वह हाथी दांतनसों पृथ्वीको खोदत भयो ॥१०॥११॥ अपनो बल जब घटि गयो तब हाथीको बड़ो क्रोध भयो महावतने जब अंकुश मारिके हूल्यो तब क्रोध करिके श्रीकृष्णचंद्रके ऊपर दौरत भयो ॥ १२ ॥ मधुदैत्यके मारनवारे भगवान् श्रीकृष्ण सन्मुख आते हाथीकूं सूंड हाथसैं पकरिके पृथ्वीमें पटकत भये ॥ १३ ॥

सिंहकी तुल्य गरजते हाथीकूं पांवके नीचे दाबिके लीला करिके वाके दांत उखारिके दांतसों महावतकूं श्रीकृष्णचंद्र मारत भये ॥ १४ ॥ जब हाथी मरिगयो तब वाकों छोडिके हाथमें हाथीके दांत लैके कांधेपै धरिके जातभये उस समय रुधिर और मधुकी बुंद उनके लगि रहीहै ॥ १५ ॥ और पसीनानकी बूंद जिनके मुखकमलपै आइरही हैं या प्रकार श्रीकृष्णचंद्र सुंदर लगतभये कितनेक गोप संग लिये हाथीके दांतही सुंदर शस्त्र धारण करे कृष्ण बलदेव दोनों भैया हे राजन् परीक्षित ! रंगभूमिमें जातभये ॥ १६ ॥ ता समय मल्लनको वज्रतुल्य दृष्टि आये, मनुष्यनको अतिसुंदर जानिपरे, और स्त्रीनको साक्षात् कामदेव स्वरूप धरे जानि परे, दुष्ट राजानको मृत्यु देनवारे जानि परे, अपने पितामाता वसुदेव देवकीकूं पुत्र जानिपरे भोजपति कंसकूं यह जानिपरी कि मेरी मृत्यु चली आवै है, अज्ञानीनको भयंकर रूप दृष्टि परे, और ज्ञानीनकों परम तत्त्वरूप दृष्टि परे, यादवनको परम देवतारूप जानि परे जैसी जाकी भावना ताको तैसेही जानि परे या प्रकार श्रीकृष्णचंद्र बलदेवजीकूं संग लैके रंगभूमिमें जातभये[1] ॥ १७ ॥ हे राजन् परीक्षित ! कुवलयापीड हाथीकूं मरचो देखिके जीतवेमें न आमें ऐसे श्रीकृष्णचंद्र बलदेवजीकूं देखिके धीरजमानहू कंस डरपत भयो ॥ १८ ॥ बडी भुजा विचित्र वेष आभूषण माला वस्त्रनकूं धारण करे कृष्ण बलदेव रंगभूमिमें जायके ऐसे सुंदर लगत भये

पतितस्य पदाक्रम्य मृगेन्द्र इव लीलया ॥ दन्तमुत्पाट्य तेनेभं हस्तिपांश्चाहनद् हरिः ॥ १४ ॥ मृतकं द्विपमुत्सृज्य दन्तपाणिः समाविशत् ॥ अंसन्यस्तविषाणोऽसृङ्मदबिन्दुभिरङ्कितः ॥ ॥ १५ ॥ विरूढस्वेदकणिकावदनाम्बुरुहो बभौ ॥ वृतौ गोपैः कतिपयैर्बलदेवजनार्दनौ ॥ रङ्गं विविशतू राजन् गजदन्तवरायुधौ ॥ १६ ॥ मल्लानामशनिर्नृणां नरवरः स्त्रीणां स्मरो मूर्तिमान् गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता स्वपित्रोः शिशुः॥ मृत्युर्भोजपतेर्विराडविदुषां तत्त्वं परं योगिनां वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रङ्गं गतः साग्रजः ॥१७॥ हतं कुवलयापीडं दृष्ट्वा तावपि दुर्जयौ ॥ कंसो मनस्व्यपि तदा भृशमुद्विविजे नृप ॥ १८ ॥ तौ रेजतू रङ्गगतौ महाभुजौ विचित्रवेषाभरणस्रगम्बरौ ॥ यथा नटावुत्तमवेषधारिणौ मनः क्षिपन्तौ प्रभया निरीक्षताम् ॥ १९ ॥

---

१ यहि विधि रहा जाहि जस भाऊ, तेहि तस देखेउ यदुकुलराऊ ॥

जैसे उत्तम रूपको धारण करनवारो नट सुंदर लगै है, या प्रकार अपनी कांतिकर देखनवारे पुरुषनके मनकूं चुरामें हैं ॥ १९ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! मचाननके ऊपर बैठे पुरवासी देशवासी जन पुरुषनमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण बलदेवको देखिके आनंदके वेगते डहडहे नेत्र मुखवारे होयगये नेत्रन करिके मुखकी शोभा देखिके तृप्त न होतभये ॥ २० ॥ नेत्र ऐसे चलामें हैं मानो रूपको पी जांयगे, जिव्हा ऐसी चलामें मानो चाटिजांयगे नासिका ऐसी चलामें मानों सूंघि लेइगे, भुजा ऐसी चलामें हैं मानो लिपट जांयगे जैसे, श्रीकृष्णको रूप काननते सुन्योहो, तैसोही आंखिनते देखिके तिनके रूप गुण माधुर्य्य ढिठाईसूं बुद्धि जिनकूं होय आई ऐसे पुरुष जैसा सुना वैसा आपुसमें कहतभये ॥ २१ ॥ २२ ॥ ये जो

निरीक्ष्य ता उत्तमपूरुषौ जना मञ्चस्थिता नागरराष्ट्रका नृप ॥ प्रहर्षवेगोत्कलितेक्षणानना: पपुर्न तृप्ता नयनैस्तदाननम् ॥ २० ॥ पिबन्त इव चक्षुर्भ्यां लिहन्त इव जिह्वया ॥ जिघ्रन्त इव नासाभ्यां श्लिष्यन्त इव बाहुभिः ॥२१॥ ऊचुः परस्परं ते वै यथादृष्टं यथाश्रुतम् ॥ तद्रूपगुणमाधुर्यप्रागल्भ्यस्मारिता इव ॥ २२ ॥ एतौ भगवतः साक्षाद्धरेर्नारायणस्य हि ॥ अवतीर्णाविहांशेन वसुदेवस्य वेश्मनि ॥ २३ ॥ एष वै किल देवक्यां जातो नीतश्च गोकुलम् ॥ कालमेतं वसन् गूढो ववृधे नन्दवेश्मनि ॥ २४ ॥ पूतनानेन नीतान्तं चक्रवातश्च दानवः ॥ अर्जुनौ गुह्यकः केशी धेनुकोऽन्ये च तद्विधाः ॥ २५ ॥ गावः सपाला एतेन दावाग्नेः परिमोचिताः ॥ कालियो दमितः सर्प इन्द्रश्च विमदः कृतः ॥ २६ ॥

श्रीकृष्ण बलदेव ते साक्षात् भगवान हरि नारायण हैं, अंश करिके या संसारमें वसुदेवके घर अवतरे हैं ॥ २३ ॥ यह जो सामरो बालक है ताने देवकीके जन्म लियो है, अब ताईं छिप्यो रह्यो पिताने गोकुलमें पहुंचाय दियो हो, नंदरायके घरमें वृद्धिकूं प्राप्त भयो ॥ २४ ॥ या कृष्णने पूतना मारी बभूरेके स्वरूप धरिके आयो तृणावर्त दैत्य ताकूं मारतभये, और यमलार्जुन वृक्ष उखारिके डारिदिये, धेनुकासुर मारो केशीदानव मार्यो शंखचूड मार्यो, अघासुर आदिलैके और सब दानव मारे ॥ २५ ॥ या याकृष्णने गौ और ग्वाल वनमें दों लगी ताते छुडाये, कालीसर्प्पकों दंड दियो इंद्रको मद दूरि कियो ॥ २६ ॥

सात दिन पर्यंत यह कृष्ण गोवर्द्धन पर्वतकूं हाथमें लिये रह्यो, वर्षा पवन वज्रपातते गोकुलकी रक्षा करी ॥ २७ ॥ गोपीजन या कृष्णको नित्य
प्रसन्न हंसनि चितवनि युक्त श्रमरहित मुख देखिके अनेक तापनकूं दूर करत भई ॥ २८ ॥ और दूसरे या कृष्णते यह यदुवंश बहुत विख्यात
होयके संपति यश बढाईकूं पावैगो, और या कृष्णते रक्षा होयगी या प्रकार कहत भये ॥ २९ ॥ कमलसे नेत्र सुंदर या कृष्णके बडे भैया बलरामने
प्रलंबासुर धेनुकासुर बकासुर मारै। क्योंजी मारे तौ कृष्णने, बलदेवको नाम क्यों कहेहैं देखी सुनी बातनमें भेद होयजाय है ॥ ३० ॥

सप्ताहमेकहस्तेन धृतोद्रिप्रवरोमुना ॥ वर्षवाताशनिभ्यश्च परित्रातं च गोकुलम् ॥ २७ ॥ गोप्योस्य नित्यमुदितहासितप्रेक्षणं मुखम् ॥ पश्यन्त्यो विविधांस्तापांस्तरान्ति स्माश्रमं मुदा ॥ २८ ॥ वदन्त्यनेन वंशोऽयं यदोः सुबहुविश्रुतः॥ श्रियं यशो महत्त्वं च लप्स्यते परिरक्षितः ॥ २९ ॥ अयं चास्याग्रजः श्रीमान् रामः कमललोचनः ॥ प्रलम्बो निहतो येन वत्सको ये बकादयः ॥ ३० ॥ जनेष्वेवं ब्रुवाणेषु तूर्येषु निनदत्सु च ॥ कृष्णरामौ समाभाष्य चाणूरो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३१ ॥ हे नन्दसूनो हे राम भवन्तौ वीरसंमतौ ॥ नियुद्धकुशलौ श्रुत्वा राज्ञाऽऽहूतौ दिदृक्षुणा ॥ ३२ ॥ प्रियं राज्ञः प्रकुर्वन्त्यः श्रेयो विन्दन्ति वै प्रजाः ॥ मनसा कर्मणा वाचा विपरीतमतोऽन्यथा ॥ ३३ ॥ नित्यं प्रमुदिता गोपा वत्सपाला यथा स्फुटम् ॥ वनेषु मल्लयुद्धेन क्रीडन्तश्चारयन्ति गाः ॥ ३४ ॥ तस्माद् राज्ञः प्रियं यूयं वयं च करवामहे ॥ भूतानि नः प्रसीदन्ति सर्वभूतमयो नृपः ॥ ३५ ॥

सब मनुष्य या प्रकार कहत हैं नगाड़े बाज रहेहैं इतनेमें चाणूर कृष्ण बलदेवकों संबोधन देकै बोलत भयो ॥ ३१ ॥ हे नंदके पुत्र हे राम ! तुममें बल
अधिक है, कुस्ती अच्छी करजानोहो यह श्रवण करिके कंसरायने देखिवेके लिये बुलाये हो ॥ ३२ ॥ प्रजा मन कर्म्म वचन करिके राजाको प्रिय करै
तो कल्याणको पामे हैं, और जे विपरीत करै हैं वे नहीं पामे हैं ॥ ३३ ॥ प्रतिदिन वछरानके चरावनवारे गोप प्रसन्न होयके वनमें कुस्तीको खेल
करिके गौ चरामे हैं यह बात प्रगट है ॥ ३४ ॥ ताकारण हम तुम राजा कंसको प्रिय करें राजा प्रसन्न होयगो तो सब प्राणी हमारे ऊपर प्रसन्न

होंयगे ॥ ३५ ॥ चाणूरको वचन सुनिके श्रीकृष्णचंद्र कुस्ती करिवो आपको योग्य मानिके बढाई करिके वा समयके उचित वाक्य बोलत भये ॥ ३६ ॥ जा कंसकी तुम प्रजा हों हम वनकी रहनवारी प्रजा हैं, राजा कंसको प्रिय नित्यकरै याहीमें हमारो भलो है ॥३७॥ देखो हम बालक है अपनी बराबरके बालकनके संग कुस्ती लडैंगे, जैसे उचित होइ तैसी कुस्ती करो, मल्लनकी सभामें अधर्म न होय ॥ ३८ ॥ या प्रकार श्रीकृष्णचंद्रको वचन सुनिके चाणूर बोलो तुम बालक नहीं हो, और बलीनमें बलवान बलदेव बालक नहीं हैं, किशोर नहीं हौ हजार हाथीको बलवारो कुवलयापीड हाथी खेलमेंही तुमने मारिलियो ॥ ३९ ॥ ताते हमारे संग कुस्ती तुम करो, यह अनीति नहीं है हे वृष्णिवंशमें भये कृष्ण मेरी

तन्निशम्याब्रवीत् कृष्णो देशकालोचितं वचः॥नियुद्धमात्मनोऽभीष्टं मन्यमानोऽभिनन्द्य च॥३६॥प्रजा भोजपतेरस्य वयं चापि वनेचराः॥ करवाम प्रियं नित्यं तन्नः परमनुग्रहः॥ ३७॥ बाला वयं तुल्यबलैः क्रीडिष्यामो यथोचितम् ॥ भवेन्नियुद्धं माधर्मः स्पृशेन्मल्लसभासदः॥ ३८॥ चाणूर उवाच ॥ न बालो न किशोरस्त्वं बलश्च बलिनां वरः ॥ लीलयेभो हतो येन सहस्रद्विपसत्त्वभृत् ॥ ३९ ॥ तस्माद् भवद्भ्यां बलिभिर्योद्धव्यं नाऽनयोऽत्र वै ॥ मयि विक्रम वार्ष्णेय बलेन सह मुष्टिकः॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कुवलयापीडवधो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं चर्चितसङ्कल्पो भगवान् मधुसूदनः॥ आससादाथ चाणूरं मुष्टिकं रोहिणीसुतः॥ १ ॥हस्ताभ्यां हस्तयोर्बद्ध्वा पद्भ्यामेव च पादयोः॥ विचकर्षतुरन्योन्यं प्रसह्य विजिगीषया॥ २॥

तुमारी कुस्ती होय बलदेवके संग मुष्टिककी होय ॥ ४० ॥ ॥ इति श्रीमद्भागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे कुवलयापीडवधो नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित् ! या प्रकार निश्चय संकलप कर नीलाम्बर पीताम्बरकी कच्छै बांधि खंब ठोकिके ठाढे होय गये, ऐसे मधुदैत्यके मारनवारे भगवान् श्रीकृष्ण चाणूरसे जुटत भये रोहिणीनन्दन बलदेवजी मुष्टिकसे जुटत भये ॥ १ ॥ हातनसूं हाथ पावनसूं पाव मिलायके आपुसमें जीतिवेकी इच्छा करिके परस्पर बलात्कारतें खेंचत भये ॥ २ ॥

अरत्नीनसों[1] अरत्नी मिलायके घोटूनसों घोटू मिलायके शिरसों शिर मिलायकै छातीसों छाती मिलायकै कृष्ण चाणूर दोनों आपुसमें कुस्ती करत भये ॥ ३ ॥ अब जैसे जैसे परस्पर दाउ पेंच करे है परिभ्रमण अर्थात् फिरामनो विक्षेप अर्थात् धक्का देनो परिरम्भण अर्थात् हाथते विडारनो अवपातन अर्थात् नीचो पटकिदेनो, उत्सर्पण अर्थात् छोडिके पीछे से आगे आई जानो अपसर्पण अर्थात् पीछे जायके ठाडे होनो, इन दावन करिकै लडत भये ॥ ४ ॥ उत्थापन अर्थात् पांव और घोटू मिलिके गिरे हैं तिनको उखार देनो, चालन अर्थात् बंधे दावकों दूर करदेनो, स्थापन

अरत्नी द्वे अरत्निभ्यां जानुभ्यां चैव जानुनी ॥ शिरः शीर्ष्णोरसोरस्तावन्योन्यमभिजघ्नतुः ॥ ३ ॥ परिभ्रामणविक्षेपपरिरम्भावपातनैः ॥ उत्सर्पणापसर्पणैश्च अन्योन्यं प्रत्यरुन्धताम् ॥ ४ ॥ उत्थापनैरुन्नयनैश्चालनैः स्थापनैरपि॥ परस्परं जिगीषन्तावपचक्रतुरात्मनः ॥ ५ ॥ तद्बलाबलवद्युद्धं समेताः सर्वयोषितः ॥ ऊचुः परस्परं राजन् सानुकम्पा वरूथशः ॥ ६ ॥ महानयं बताऽधर्म एषां राजसभासदाम् ॥ ये बलाबलवद्युद्धं राज्ञोऽन्विच्छन्ति पश्यतः ॥ ७ ॥ क्व वज्रसारसर्वाङ्गौ मल्लौ शैलेन्द्रसन्निभौ ॥ क्व चातिसुकुमाराङ्गौ किशोरौ नाप्तयौवनौ ॥ ८ ॥ धर्मव्यतिक्रमो ह्यस्य समाजस्य ध्रुवं भवेत् ॥ यत्राधर्मः समुत्तिष्ठेन्न स्थेयं तत्र कर्हिचित् ॥ ९ ॥

अर्थात् हाथ पांव पकरिके मिलायदेनो या प्रकार परस्पर देहको पीडा देतभये ॥ ५ ॥ स्त्रीनकै समूहके समूह इकठौरी होयके बैठी हैं ते कहैं हैं देखो यह कृष्ण तौ निर्बल है, और चाणूर सबल है, यह विचारके दयाको प्राप्त होय स्त्री आपुसमें बोलतभई ॥ ६ ॥ ये राजसभाके बैठनवारेनकूं बडो अधर्म होयगो राजाके देखते निर्बल सबलकी कुस्ती करामें हैं ॥ ७ ॥ देखो वज्रसे कठोर सब अंगवारे पर्वतसे ऊंचे ऊंचे मल्ल कहां, और श्रीकृष्णको स्वरूप अतिसुकुमार कोमल अंग जिनको यौवन अवस्थाभी प्राप्त नहीं भई ऐसे किशोर अवस्थावाले बालक कहां ॥ ८ ॥ यास-

---

[1] अरत्नि-समुष्टिहस्त अर्थात् कोहनीसे नीचकी अंगुलीतक ॥

भामें निश्चय धर्मनाश होई है, जहां अधर्म हो तासभामें कदाचित् न बैठे ॥ ९ ॥ और स्त्रीं कहेहैं विवेकी पुरुषको ऐसी सभामें जानां योग्य नहीं है, सभाके बैठनवारेनके दोषनकूं स्मरण करिके बातको जानिके चुप बैठ्यो रह तो दोषभागी होय, काहूकी झूठी सांची कहैतौ दोष लगे अथवा हम काहूकी न बुरी जाने न भली जाने ऐसे काननपै हाथ धरे तो दोषभागी होय या कारण सभामें जायनहीं ॥ १० ॥ शत्रुके चारों ओर दौरा धूपीकरते कृष्णके मुखको शोभा देखो, कुस्तीमें जोर करनेसै इनके मुखके ऊपर पसीनानकी बूंद आयरही हैं, जैसे कमलकोशके ऊपर ओसकी बूंद परै हैं ॥ ११ ॥ और स्त्री कहे हैं अरुण नेत्र बलदेवजीके मुखकी शोभाकूं देखौ मुष्टिकके ऊपर क्रोध आइरह्यो है तौभी हासी सहित है यासे सुन्दर लगे हैं ॥ १२॥ और गोपी कहे हैं वे ब्रजभूमि बडी पवित्र है जिनके वनके चित्र विचित्र फूलनकूं धारणकिये पुराणपुरुष श्रीकृष्ण बलदेव सहित मनुष्यरूपमें छिपिके गौनकूं चरावत समय बांसुरीकूं बजावत खेलत डोले हैं जिनके चरणोंकूं महादेव और लक्ष्मीजीभी पूजन करैं हैं ॥ १३ ॥

न सभां प्रविशेत् प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन् ॥ अब्रुवन्विब्रुवन्नज्ञो नरः किल्बिषमश्नुते ॥ १० ॥ वल्गतः शत्रुमभितः कृष्णस्य वदनाम्बुजम् ॥ वीक्ष्यतां श्रमवार्युप्तं पद्मकोशमिवाम्बुभिः ॥ ११ ॥ किं न पश्यत रामस्य मुखमाताम्रलोचनम् ॥ मुष्टिकं प्रति सामर्षं हाससंरम्भशोभितम् ॥ १२ ॥ पुण्या बत व्रजभुवो यदयं नृलिङ्गगूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः ॥ गाः पालयन् सहबलः क्वणयंश्च वेणुं विक्रीडयाऽञ्चति गिरित्ररमार्चिताङ्घ्रिः ॥ १३ ॥

---

१ सत्यबोलनवालेकूं दुःख नहीं होता सत्ययुक्त पुरुषकूं कोई विघ्न नहीं सतासक्ते एक राजाने एक बजार बनवाया और कही जो वस्तु यहां वेचनकूं लावैगा और संध्या समयतक न विकैगी, उस में लेलूंगा इसप्रकार वोह बजार विख्यात होगया, एक दिन एक लुहार लोहेकी शनीचरकी मूर्ति बनाकरलाया, एकलाख रुपया उसका मोल मांगा, और कही जिसके यहां यह मूर्ति रहैगी उसके यहां द्रव्यादिकुछ न रहैगा, अब उस अनिष्टकारक मूर्तिको किसीने न लिया, संध्यासमय राजाने देखा कि बडी भीड होरही हैं, कारण पूछतेही राजाने विचारकर उस मूर्तिको लेलिया, और लक्ष रुपया उसे दे दिये जब राजाने घरमें मूर्तिरक्खी तौ पहले लक्ष्मी राजासे बोली महाराज में जाती हूं, राजा बोले क्यों, लक्ष्मी बोली जहां शनिश्चर देव रहैं, तहां हमारा क्या काम, राजाने कहा जाओ, इसी प्रकार नीति साम दाम दंड भेद सब रूप धरकै आये, और राजाने जाने दिया, पीछेसे जब सत्य देव आये, तौ राजासे कहकै जब जानैलगे तौ राजाने हाथ पकडकर कहा आपके रखनेकोतौ हम शनिश्चर देवको लायेहैं, तुम कैसे जातेहो, सत्यदेवसे कुछ उत्तर न आया और रहगये, सत्यके रहनैसे नीति लक्ष्मी आदि सब लौट आये, और सत्यके प्रभावसे शनिश्चर राजाका कुछ न करसके ॥

और स्त्री कहे हैं देखो गोपी कहा तप करतभई जाकारण जिनसें श्रेष्ठ और कोई सुंदर नहीं और जिनकी बराबर कोइ नहीं जाते अधिक नहीं देखौ जो आभूषण वस्त्र विनाही सुंदर लगेहैं यश लक्ष्मी ऐश्वर्य इनको इकांतस्थान, अर्थात् सर्वदा जिनमें वास करै ऐसे प्यारेके स्वरूपकूं दृष्टिकरिके देखेहैं ॥ १४ ॥ सखियो ब्रजबाला धन्य हैं जो गोपी गाय दुहावतीवेर, धान्य छरतीवेर, दधिफिरावतीवेर, बालकनकूं झुलावतसमय बालक जब रोमें तब उनकों राखतीवेर, घरनके काम काज करतीवेर श्रीकृष्णमें आसक्त होय कृष्णगुण गामेंहैं तासमय प्रेमानंदसूं आंशूं तिनके नेत्रनमें आयजाय हैं उस समय उनका चित्त कृष्णमेंही लगजायहै ॥ १५ ॥ प्रातःकाल जब व्रजते गौ चरायवेकों जाइ हैं संध्यासमय गौनकूं लैके बासुरी बजावत जब आमें हैं,

गोप्यस्तपः किमचरन् यदमुष्य रूपं लावण्यसारमसमोर्ध्वमनन्यसिद्धम्॥ दृग्भिः पिबन्त्यनुसवाभिनवं दुरापमेकान्तधाम यशसः श्रिय ऐश्वरस्य ॥ १४ ॥ या दोहनेऽवहनने मथनोपलेपप्रेङ्खेङ्खनार्भरुदितोक्षणमार्जनादौ ॥ गायन्ति चैनमनुरक्तधियोऽश्रुकण्ठ्यो धन्या व्रजस्त्रिय उरुक्रमचित्तयानाः ॥ १५ ॥ प्रातर्व्रजाद् व्रजत आविशतश्च सायं गोभिः समं क्वणयतोऽस्य निशम्य वेणुम् ॥निर्गम्य तूर्णमबलाः पथि भूरिपुण्याः पश्यन्ति सस्मितमुखं सदयावलोकम् ॥ १६ ॥ एवं प्रभाषमाणासु स्त्रीषु योगेश्वरो हरिः॥ शत्रुं हन्तुं मनश्चक्रे भगवान् भरतर्षभ ॥ १७ ॥ सभयाः स्त्रीगिरः श्रुत्वा पुत्रस्नेहशुचातुरौ॥ पितरावन्वतप्येतां पुत्रयोरबुधौ बलम् ॥ १८ ॥

ता समय वे महाभाग्यवारी गोपी या कृष्णकी बांसुरी सुनिके शीघ्र अपने घरसूं निकासिकै मार्गमें आइके सुंदर मुसिकानि दयापूर्वक चितवनि युक्त कृष्णके मुखका दर्शन करैहैं वे गोपी बडभागिनी हैं ॥ १६ ॥ हे भरतवंशीनमें श्रेष्ठ राजा परीक्षित् ! या प्रकार स्त्री आपुसमें कहे हैं ता समय योगिनके ईश्वर सबके दुःखके दूर करनवारे भगवान् शत्रुकूं मारिवेकूं मन करत भये ॥ १७ ॥ भयसहित स्त्रीनकी बात सुनिके पुत्रनमें स्नेहके शोकसूं व्याकुल, पुत्रनके बलकूं नहीं जाननेहारे मातापिता देवकी वसुदेव दुःखित होतभये, और नंद पछितातभये, हाय हाय क्यौं में अक्रूरके कहेतै इन दोनोंको मथुरापुरीमें लायो, घरमें पकरिके कोठरीमें मून्दि क्यों न राखे ऐसे नंदजी पछिताते भये ॥ १८ ॥

अनेक प्रकारके कुस्तीके दाउपेचनसूं श्रीकृष्ण चाणूरसूं जैसें आपुसमें लड़त भये तैसेही बलदेव और मुष्टिक लडत भये ॥ १९ ॥ वज्र पातकी तुल्य कठोर भगवानके अंगके प्रहारसै चाणूरके अंग चुरकट होयगये, तासूं अत्यंत दुःखित होतभयो ॥ २० ॥ शिकरेके वेगकी समान चाणूर दोनों हाथकी मुष्टि बांधिके क्रोधमें भरिके ऊपरकूं उछरिके भगवान् वासुदेवकी छातिमें मारतभयो ॥ २१ ॥ जैसें हाथी फूलनकी मालाकी चोटसे नहीं डिगेहै ऐसे श्रीकृष्णचंद्र चाणूरकी मुष्टिके मारे न डिगतभये, हरि श्रीकृष्ण चाणूरके दोनों हाथ पकरिके बहुत घुमाइके वेग करिके पृथ्वीमें

तैस्तैर्नियुद्धविधिभिर्विविधैरच्युतेतरौ ॥ युयुधाते यथान्यायं तथैव बलमुष्टिकौ ॥ १९ ॥ भगवद्गात्रनिष्पातैर्वज्रनिष्पेषनिष्ठुरैः ॥ चाणूरो भज्यमानाङ्गो मुहुर्ग्लानिमवाप ह ॥ २० ॥ स श्येनवेग उत्पत्य मुष्टीकृत्य करावुभौ ॥ भगवन्तं वासुदेवं क्रुद्धो वक्षस्यबाधत ॥ २१ ॥ नाचलत् तत्प्रहारेण मालाहत इव द्विपः ॥ बाह्वोर्निगृह्य चाणूरं बहुशो भ्रामयन् हरिः ॥ २२ ॥ भूपृष्ठे पोथयामास तरसा क्षीणजीवितम् ॥ विस्रस्ताऽऽकल्पकेशस्रगिन्द्रध्वज इवापतत् ॥ ॥ २३ ॥ तथैव मुष्टिकः पूर्वं स्वमुष्ट्याभिहतेन वै ॥ बलभद्रेण बलिना तलेनाभिहतो भृशम् ॥ २४ ॥ प्रवेपितः स रुधिरमुद्वमन्मुखतोऽर्दितः ॥ व्यसुः पपातोर्व्युपस्थे वाताहत इवाङ्घ्रिपः ॥ २५ ॥ ततः कूटमनुप्राप्तो रामः प्रहरतां वरः ॥ अवधील्लीलया राजन् सावज्ञं वाममुष्टिना ॥ २६ ॥

पटकतभये गिरतेही तुरत प्राण निकल गहने केश माला सब विखर गईं गिरते समय ऐसा विदित हुआ मानो इन्द्रध्वज गिरा ॥ २२ ॥ २३ ॥ याही प्रकार मुष्टिक की जिसने पहले बलदेवजीके मुष्टि प्रहार कियाथा उस बलदेवजीने थाप मारके गिराय दियो ॥ २४ ॥ मुष्टिक कंपित होय मुखते रुधिरकूं वमन करत पीडित होयके प्राण निकसि जानेसै जैसें पवनको मारो वृक्ष उखरिपे है ता प्रकार गिरतभयो ॥ २५ ॥ हे राजन् परीक्षित ! ता पीछे धावते कूटमल्लकूं मारनवारेनमें श्रेष्ठ बलदेवजी लीला करिके वाई मुष्टिसूं अवज्ञा करिके मारत भये ॥ २६ ॥

शल तोशलने विचारी दण्डवतके मिषसूं पांव पकरिके पटकि देईंगे परन्तु भगवान् सबके बाहिर भीतरके जाननवारे हैं जासमय दण्डवत कारिवेकों आये ता समय मारी जो लात तासूं शिर फटिगयो ऐसो शल तोशल दो टूक विदीर्ण होइके दोनों पृथ्वीमें गिरतभये ॥ २७ ॥ चाणूर मुष्टिक कूट शल तोशल जे मुख्य मल्ल जब मरिचुके तापीछे और सब मल्ल अपने प्राण बचायवेके लिये भाजत भये और कहत भये यह मन मनभर दूध और दश दश सेर मलाईसे जो शरीर पोषणकरो है सो सैंतमेंत प्राण देनैके नई, कुस्ती चाहैं जैसी लड़ो पर कृष्ण बलदेवतौ मारे डारे है ऐसा कह वहानोकर निकसि गये ॥ २८ ॥ बराबरके, गोपनकों आखाडेमें खेंचिके श्रीकृष्ण बलदेव गोपनके संग मिलिके विहार करत भये वा समय बाजे

तर्ह्येव हि शलः कृष्णपदापहतशीर्षकः ॥ द्विधा विदीर्णस्तोशलक उभावपि निपेततुः ॥ २७ ॥ चाणूरे मुष्टिके कूटे शले तोशलके हते ॥ शेषाः प्रदुद्रुवुर्मल्लाः सर्वे प्राणपरीप्सवः ॥ २८ ॥ गोपान् वयस्यानाकृष्य तैः संसृज्य विजह्रतुः ॥ वाद्यमानेषु तूर्येषु वल्गन्तौ धृतनूपुरौ ॥२९॥ जनाः प्रजहृषुः सर्वे कर्मणा रामकृष्णयोः ॥ ऋते कंसं विप्रमुख्याः साधवः साधु साध्विति ॥ ३० ॥ हतेषु मल्लवर्येषु विद्रुतेषु च भोजराट् ॥ न्यवारयत् स्वतूर्याणि वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ ३१ ॥ निःसारयत दुर्वृत्तौ वसुदेवात्मजौ पुरात् ॥ धनं हरत गोपानां नन्दं बध्नीत दुर्मतिम् ॥ ३२ ॥ वसुदेवस्तु दुर्मेधा हन्यतामाश्वसत्तमः ॥ उग्रसेनः पिता चापि सानुगः परपक्षगः ॥ ३३ ॥ एवं विकत्थमाने वै कंसे प्रकुपितोऽव्ययः ॥ लघिम्नोत्पत्य तरसा मञ्चमुत्तुङ्गमारुहत् ॥ ३४ ॥

वज रहे थे और कृष्णके नूपुर नृत्य करनकेसे नृत्यकूं कर रहे हे ॥ २९ ॥ श्रीकृष्णचंद्र और बलदेवजीके चरित्र देखिके कंसके विना संपूर्ण जन प्रसन्न होत भये ब्राह्मण जिनमें मुख्य ऐसे सज्जन पुरुष भले भले ऐसे कहिके स्तुति करत भये ॥ ३० ॥ बडे बडे मल्ल मरिगये कितनेऊ भाजि गये तब भोजवंशिनको राजा कंस नगाडे थमाय देत भयो ॥ ३१ ॥ और क्रोधकर बोल्यो कुटिलकर्मा वसुदेवके बेटानकूं पुरते बाहिर निकासी देऊ, और इनकौ धन छिनाइ लेऊ कुटिल बुद्धि नंदकों बांधिलेऊ ॥ ३२ ॥ खोटी बुद्धिवारे वसुदेवकूं जलदी मारौ, शत्रुनसे मिलनेहारे पिता उग्रसेनकूं टहलुआन सहित बांधिलेऊ ॥ ३३ ॥ याप्रकार कंस जब बकन लग्यौ तब बडो क्रोधकर अव्यय भगवान् धीरेसूं उछरिके ऊंचे मचानपै

चढतभये ॥ ३४ ॥ धीरजवान कंस अपनी मृत्युकूं आवती देखिकै आसनसे उठिकै ढाल तरवार लेतभयो ॥३५॥ तरवार हाथमें लैके आकाशमें, जैसे शिकारा पच्छी डोलै है तैसें दांई वांई ओर जलदी जलदी फिरनैहारे कंसकूं असह्य और उग्रतेजवाले श्रीकृष्णचंद्रने तार्क्ष्यको पुत्र गरुड़ जैसे सर्पकूं पकरिलेइहै तैसे उसै पकर लियो ॥ ३६ ॥ उसका मुगुट फेंक केशनकों पकरिकें ऊंचे मचानपैतै रंग भूमिमें पटक दियो और याके ऊपर सर्व जगत्के आश्रय और स्वतंत्र कमलनाभ भगवान् स्वयं कूदपरे केश पकरनेको कारण यह कि कंसने देवकीके केश पकडे यासै वाको बदलो लियो ॥ ३७ ॥

तमाविशन्तमालोक्य मृत्युमात्मन आसनात् ॥ मनस्वी सहसोत्थाय जगृहे सोऽसिचर्मणी ॥ ३५ ॥ तं खड्गपाणिं विचरन्तमाशु श्येनं यथा दक्षिणसव्यमम्बरे ॥ समग्रहीद् दुर्विषहोग्रतेजा यथोरगं तार्क्ष्यसुतः प्रसह्य ॥ ३६ ॥ प्रगृह्य केशेषु चलत्किरीटं निपात्य रङ्गोपरि तुङ्गमञ्चात् ॥ तस्योपरिष्टात् स्वयमब्जनाभः पपात विश्वाश्रय आत्मतन्त्रः ॥ ३७ ॥ तं संपरेतं विचकर्ष भूमौ हरिर्यथेभं जगतो विपश्यतः ॥ हा हेति शब्दः स महांस्तदाऽभूदुदीरितः सर्वजनैर्नरेन्द्र ॥ ३८ ॥ स नित्यदोद्विग्नधिया तमीश्वरं पिबन् वदन्वा विचरन् स्वपन् श्वसन् ॥ ददर्श चक्रायुधमग्रतो यथा तदेव रूपं दुरवापमाप ॥ ३९ ॥ तस्याऽनुजा भ्रातरोऽष्टौ कङ्कन्यग्रोधकादयः ॥ अभ्यधावन्नभिक्रुद्धा भ्रातुर्निर्वेशकारिणः ॥ ४० ॥

सिंह जैसें हाथीकूं खेंचे हैं तैसे सब जगत्के देखत मृतकभये कंसकूं पृथ्वीमें घसीठत भये, हे नरनके राजा परीक्षित्! तासमय समस्त प्रजानके बडो हाहाकार शब्द होत भयो ॥ ३८ ॥ कंस प्रति दिन चलायमान चित्तसूं जल पीवत बात कहत मार्ग चलत, सोवत श्वासलेत चक्र आयुधवारे भगवान्कूही शत्रुभावसे ध्यान करेहो, तासों श्रीकृष्णके स्वरूपकूं पांवत भयो ॥ ३९ ॥ ता कंसके कंक न्यग्रोधसूं आदिलैके छोटे आठ भैया अत्यं-

---

१ दोहा—जब धरनीमें आयकै परचो उतानो भूप । उरऊपर दर्शनदियो, श्याम चतुर्भुजरूप ॥ एक घसियारो नित्य घास बेचवेकू लायो करै सोधेला पैसा मिल्योकरै वामें निर्वाह कियो करै रुपैयाकी तू सूरत हू कभीनहीं देखीही दैवयोगसे वाय घास खुरचते में असरफीन को तोडा मिलगयो घर में ले आयो गिनके फिर बाही में घरदीनी घरी भरवाद फिर थैली खोली गिननलग्यो फिर थैलीमें भर मोढो बांध दियो दिनभरमे हजारन वेर गिनोकरै एक दिन रखकै भूलगयो वह थैली जातरही अब वाहि निद्राहू नहीं आवै है बहुत व्याकुल भयो वा थैलीहीको स्मरण करै है थैलीहीको स्वप्नमें देखै थैलीहीको खोजत फिरै संसार में वाही दूसरो पदार्थहू नहीं दरसै ऐसेही श्रीकृष्ण कंसकू दीखै है ॥

त क्रोध करिके भैया कंसको बदलो लैवेके लिये दोरिके आवत भये ॥ ४० रोहिणीके सुत बलदेवजी ताही समय क्रोध करिके हाथनमें शस्त्र लैके आये कंसके भैयानकूं सिंह जैसे पशुनकूं मारै तैसे परिघ उठायके मारत भये ॥ ४१ ॥ ता समय आकाशमें नगाडे बाजत भये, भगवान्की विभूति ब्रह्मा महादेवको आदि लै जे देवता हैं ते प्रसन्न होयके श्रीकृष्णके ऊपर पुष्पनकी वर्षा करिके स्तुति करत भये स्त्री नृत्य करत भईं ॥ ४२ ॥ हे महाराज ! पतिके मरणसूं अतिदुःखित आंशू आंखिनमें जिनके आइगये ऐसी जे कंसकी स्त्री ते शिरनकूं कूटत जहां उनकी लोथ परीही तहां आवति भईं ॥ ४३ ॥ वीरशय्यामें परे पतिकूं आलिंगन करिकै शोकातुर स्त्री वारंवार आंखिनमेंते आंशू बहायकै पुकार कर विलाप करती भईं ॥ ४४ ॥

तथाऽतिरभसांस्तांस्तु संयत्तान् रोहिणीसुतः ॥ अहन् परिघमुद्यम्य पशूनिव मृगाधिपः ॥ ४१ ॥ नेदुर्दुन्दुभयो व्योम्नि ब्रह्मेशाद्या विभूतयः ॥ पुष्पैः किरन्तस्तं प्रीत्या शशंसुर्ननृतुः स्त्रियः ॥ ४२ ॥ तेषां स्त्रियो महाराज सुहृन्मरणदुःखिताः ॥ तत्राभीयुर्विनिघ्नन्त्यः शीर्षाण्यश्रुविलोचनाः ॥ ४३ ॥ शयानान् वीरशय्यायां पतीनालिङ्ग्य शोचतीः ॥ विलेपुः सुस्वरं नार्यो विसृजन्त्यो मुहुः शुचः ॥ ४४ ॥ हा नाथ प्रिय धर्मज्ञ करुणानाथ वत्सल ॥ त्वया हतेन निहता वयं ते सगृहप्रजाः ॥ ४५ ॥ त्वया विरहिता पत्या पुरीयं पुरुषर्षभ ॥ न शोभते वयमिव निवृत्तोत्सवमङ्गला ॥ ४६ ॥ अनागसां त्वं भूतानां कृतवान् द्रोहमुल्बणम् ॥ तेनेमां भो दशां नीतो भूतध्रुक् को लभेत शम् ॥ ४७ ॥ सर्वेषामिह भूतानामेष हि प्रभवाप्ययः ॥ गोप्ता च तदवध्यायी न क्वचित् सुखमेधते ॥ ४८ ॥

हा नाथ ! हे प्यारे ! हे धर्मके जाननेवारे ! हे करुणानाथ! वत्सल ! तुम आप मरिकै घरवारसहित बालकवारेनसहित हमको क्यों मारिगये ? या प्रकार विलाप करतभईं ॥ ४५ ॥ हे पुरुषनमें श्रेष्ठ ! जैसे तुम विना हम रंडा होइकैं सुंदर नहीं लगें हैं, ऐसे तुम पतिविना मथुरापुरीभी सुंदर नहीं लगैहै संपूर्ण मंगल उत्सव यामें ते दूर होइरहे हैं ॥ ४६ ॥ निरपराध प्राणीनते तुम बडो द्रोह करतभये, ताते तुम्हारी यह दशा भई है, जो मरेपडे हो, प्राणीनते वैर करिकै कौन पुरुष सुख पावै है ॥ ४७ ॥ या संसारमें समस्त प्राणीनको उत्पत्तिकर्त्ता पालनकर्त्ता नाशकर्त्ता यह कृष्णही है, याकी जो

॥ श्रीशुक उवाच ॥ राजयोषित आश्वास्य भगवाँल्लोकभावनः ॥ यामाहुर्लौकिकीं संस्थां हतानां समकारयत्॥४९॥
मातरं पितरं चैव मोचयित्वाऽथ बन्धनात् ॥ कृष्णरामौ ववन्दाते शिरसास्पृश्य पादयोः ॥ ५० ॥
देवकी वसुदेवश्च विज्ञाय जगदीश्वरौ ॥ कृतसंवन्दनौ पुत्रौ सस्वजाते न शङ्कितौ ॥ ५१ ॥
इति श्रीभागवते महापुराणे द० पूर्वार्धे कंसवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥
॥ श्रीशुक उवाच ॥ पितरावुपलब्धार्थौ विदित्वा पुरुषोत्तमः ॥ माभूदिति निजां मायां ततान जनमोहिनीम् ॥ १ ॥
उवाच पितरावेत्य साग्रजः सात्वतर्षभः ॥ प्रश्रयावनतः प्रीणन्नम्ब तातेति सादरम् ॥ २ ॥
नास्मत्तो युवयोस्तात नित्योत्कण्ठितयोरपि ॥ बाल्यपौगण्डकैशोराः पुत्राभ्यामभवन् क्वचित् ॥ ३ ॥
न लब्धौ दैवहतयोर्वासो नौ भवदन्तिके ॥ यां बालाः पितृगेहस्था विन्दन्ते लालिता मुदम् ॥ ४ ॥

पुरुष अवज्ञा करै वह सुख नहीं भोगै है ॥४८॥ अब श्रीशुकदेवजी कहै हैं हे राजन् परीक्षित ! लोकनके पालन करनवारे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र राजा कंसकी स्त्रीनको समाधान कर कंसकी दाहादिक क्रिया करावत भये ॥ ४९ ॥ माता पिता देवकी वसुदेवकूं कंसके बंदिखानेते छुटावतभये राम कृष्ण दोनों भैया मातापिता के चरणनमें शिर लगायके प्रणाम करत भये॥५०॥ देवकी वसुदेव प्रणाम करते पुत्रनकूं जगतके ईश्वर मानिकै भयभीत होयकै नहीं मिलत भये ॥५१॥ इति श्रीमन्महाभा०भाषाटी०दश० पू० कंसवधो नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः॥४४॥ अब श्रीशुकदेवजी कहैहैं हे राजन् परीक्षित्! पुरुषनमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णचंद्र मातापितानकूं ज्ञान प्राप्त हुए ज्ञान यह ज्ञान अभि ठीक नहीं यासै जननकी मोहन करनवारी अपनी मायाकूं फैलावत भये (हमकों पुत्र मानिकै अभी संसारके सुख भोगे नहीं है, पहिलेही ये परमेश्वर हैं यह ज्ञान इनकूं होइआयो हैं मैं प्रसन्नभयो तब इनकों ज्ञान कहा दुर्लभ है मोमें पुत्रभाव करिकै जो प्रेम करनोहै सो दुर्लभ है, याते अभी ये परमेश्वरहैं ये इनकौं ज्ञान मोमें न होय या लिये अपनी माया फैलावतभये)॥ १ ॥ यादवनमें श्रेष्ठ श्रीकृष्ण बलदेवजीकूं संग लैके मातापिताके पास आवत भये विनयपूर्वक नमिकै हेमात ! हेपिता ! ऐसे आदरपूर्वक प्रसन्न होयके बोलतभये ॥२ ॥ हे पिता! सर्वदा तुम्हारे चाहनाई बनीरही हम पुत्रनते बाल्य अवस्था पौगंड अवस्था किशोर अवस्थाके सुख कभऊ तुमकों न होतभयो॥३॥ दैवंकेमारे

---

१ दोहा ॥ सबैजीवसन्तानसों,सुखपावतदिनरैन । तुम्हैहमारेजन्मतैं, बहुतभयेकुचैन ॥ यद्यपिहमऔगुणभरे, प्रगटे महा असाध । तद्यपिसुतहितजानिकै, क्षमा करो अपराध ॥

हम हैं तुमारे निकट वासहू न करिसके पिताके घरमें बालक रहेंहैं लालन पालन होइहै आनंदकों पावैहैं हमको कुछभी प्राप्त न भयो ॥४॥ धर्म अर्थ काम मोक्ष सब पदार्थ जाते होइ ऐसो यह देह जिन माताने उत्पन्न कियो उनकी यह मरणधर्मा मनुष्य सौवर्ष सेवा करे तथापि उनते उऋण नहीं होइ है ॥ ५ ॥ जो पुत्र समर्थ होयके देहसूं अथवा धनते मातादि ताकूं जीविका नहीं देवै, वाको परलोकमें यमके दूत वाको मांस वाहीकूं काटि काटिकें खवामें हैं ॥ ६ ॥ माता पिता वृद्ध सुशीला स्त्री पुत्र बालक गुरु ब्राह्मण और जो कोई शरण आयोहै इनको जो मनुष्य भरण पोषण न करै तौ वह मरेतुल्य है ॥ ७ ॥ असमर्थ और कंसके भयके मारे नित्य चंचल मन होनेके कारण तुम्हारी सेवा विनाकरे हमारे इतने दिन व्यर्थ वीत गये ॥ ८ ॥ हे पिता ! हे मात ! पराए आधीन होनेतै हमसै तुमारी सेवा न बनी और दुष्ट त्हृदय कंससूं अत्यन्त दुःखित रहे अब हम पर तुम क्षमा करिवेकूं योग्यहो ॥ ९ ॥ या प्रकार माया करिके मनुष्यरूप धारी विश्वके आत्मा हरिके वचनसूं मोहित होयके देवकी वसुदेव पुत्रको गोदमें बैठायके आलिंगन करिके आनंदकूं पावत भये ॥ १० ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित! स्नेहके पाशसे बन्धे मोहित देवकी वसुदेव नेत्रनतें आंशुनकी धारनते कृष्णबलदेवकूं भिजोवत कछुभी न बोलत भये ॥ ११ ॥ देवकीके पुत्र भगवान् श्रीकृष्ण या प्रकार मातापिताको

सर्वार्थसंभवो देहो जनितः पोषितो यतः ॥ न तयोर्याति निर्वेशं पित्रोर्मर्त्यः शतायुषा ॥ ५ ॥ यस्तयोरात्मजः कल्प आत्मना च धनेन च ॥ वृत्तिं न दद्यात् तं प्रेत्य स्वमांसं खादयन्ति हि ॥ ६ ॥ मातरं पितरं वृद्धं भार्यां साध्वीं सुतं शिशुम् ॥ गुरुं विप्रं प्रपन्नं च कल्पोऽबिभ्रत् श्वसन् मृतः ॥ ७ ॥ तन्नावकल्पयोः कंसान्नित्यमुद्विग्नचेतसोः ॥ मोघमेते व्यतिक्रान्ता दिवसा वामनर्चतोः ॥८॥ तत् क्षन्तुमर्हथस्तात मातर्नौ परतन्त्रयोः॥ अकुर्वतोर्वां शुश्रूषां क्लिष्टयोर्दुर्हृदा भृशम् ॥ ९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति मायामनुष्यस्य हरेर्विश्वात्मनो गिरा ॥ मोहितावङ्कमारोप्य परिष्वज्यापतुर्मुदम् ॥ १० ॥ सिञ्चन्तावश्रुधाराभिः स्नेहपाशेन चावृतौ ॥ न किञ्चिदूचतू राजन् बाष्पकण्ठौ विमोहितौ ॥ ११ ॥ एवमाश्वास्य पितरौ भगवान् देवकीसुतः ॥ मातामहं तूग्रसेनं यदूनामकरोन्नृपम् ॥ १२ ॥

समाधान करिके नाना उग्रसेनकों यदूनको राजा करत भये ॥ १२ ॥ श्रीकृष्ण बोलत भये हे महाराज! हम तुम्हारी प्रजा हैं तिनकूं
तुम आज्ञा करिवेकों योग्य हौ ययातिकों शाप है याते यादवनकों सिंहासनपै बैठवो योग्य नहीं है राज्यकरिवो योग्य नहीं है तुमहूं यादवहौ
मेरी आज्ञाते तुमकूं दोष नहीं है या प्रकार भगवान् कहत भये ॥ १३ ॥ मैं वृद्ध कहा अव राज्य करौंगो तहां श्रीकृष्ण कहे मैं टहलुआ होयके
तुमारे पास रहूंगो, बडे बडे देवादिक तुमकों भेंट देंयगे, और राज्य देंयगे यामें कहा कहिनो है ॥ १४ ॥ कंसके डरकेमारे भाजिगये अपनी
जातिके नाते गोतके सम्पूर्ण यदु वृष्णि अन्धक मधु दाशार्ह कुकुरादिक हैं तिनको दिशानतें बुलायके और विदेशमें वसनेके कारण जो यादव

आह चास्मान् महाराज प्रजाश्चाज्ञप्तुमर्हसि ॥ ययातिशापाद्यदुभिर्नासितव्यं नृपासने ॥ १३ ॥ मयि भृत्य
उपासीने भवतो विबुधादयः ॥ बलिं हरन्त्यवनताः किमुतान्ये नराधिपाः १४ ॥ सर्वान् स्वज्ञातिसंबन्धान् दिग्भ्यः
कंसभयाकुलान् ॥ यदुवृष्ण्यन्धकमधुदाशार्हकुकुरादिकान् ॥ १५ ॥ सभाजितान् समाश्वास्य विदेशावासकर्शिता-
न् ॥ न्यवासयत् स्वगेहेषु वित्तैः सन्तर्प्य विश्वकृत् ॥ १६ ॥ कृष्णसंकर्षणभुजैर्गुप्ता लब्धमनोरथाः ॥ गृहेषु रेमिरे
सिद्धाः कृष्णरामगतज्वराः ॥ १७ ॥ वीक्षन्तोऽहरहः प्रीता मुकुन्दवदनाम्बुजम् ॥ नित्यं प्रमुदितं श्रीमत् सदयस्मि-
तवीक्षणम् ॥ १८ ॥

कृश हो रहेहैं तिनको सत्कार करिके बहुतसे धन दैके तृप्ति करिकै सब विश्वके करनवारे श्रीकृष्ण अपने अपने घरनमें वसावत भये ॥ १५ ॥
॥ १६ ॥ कृष्ण बलदेवकी भुजानसों रक्षित होय मनोरथ पाय यादवनके श्रीकृष्णबलदेवके दर्शनते ताप दूर कर पूर्ण होयके घरमें रमण करत
भये ॥ १७ ॥ नित्य आनंदसै पूर्ण शोभायुक्त दयासहित मंद हास्य पूर्वक चितवनि युक्त श्रीकृष्णके मुखकमलको प्रतिदिन दर्शन
करनैसै आनंद होय हैं ॥ १८ ॥

मुकुन्दके मुखकमलके अमृतकूं पीकै ता समय वृद्धभी बडो जिनके बल ऐसे तरुण होत भये ॥ १९ ॥ याकें पीछे हे राजन् परीक्षित् ! भगवान् देवकीके पुत्र और बलदेवजी नंदरायके पास आयके मिलिके यह बोलत भये ॥ २० ॥ हे पिता ! तुम स्नेहीनने हमारो पोषण कऱ्यो बहुत लाड कऱ्यो माता पिताकों अपने पुत्रनमें अधिक प्यार होय है सो तुम उस्सेहू जादा प्रीति करी ॥ २१ ॥ वही पिताहै वही माताहै जो अपने पुत्रकी तुल्य पोषण करै करिवेमें जिनकी सामर्थ्य न भई ऐसे हमारे माता पितानमें हमकों बालकपनेंतेहो छोडीदिये हैं ॥ २२ ॥ हे पिता ! तुम

तत्र प्रवयसोऽप्यासन् युवानोऽतिबलौजसः ॥ पिबन्तोऽक्षैर्मुकुन्दस्य मुखाम्बुजसुधां मुहुः ॥ १९ ॥ अथ नन्दं समासाद्य भगवान् देवकीसुतः ॥ संङ्कर्षणश्च राजेन्द्र परिष्वज्येदमूचतुः ॥ २० ॥ पितर्युवाभ्यां स्निग्धाभ्यां पोषितौ लालितौ भृशम् ॥ पित्रोरभ्यधिका प्रीतिरात्मजेष्वात्मनोऽपि हि ॥ २१ ॥ स पिता सा च जननी यौ पुष्णीतां स्वपुत्रवत् ॥ शिशून् बन्धुभिरुत्सृष्टानकल्पैः पोषरक्षणे ॥ २२ ॥ यात यूयं व्रजं तात वयं च स्नेहदुःखितान् ॥ ज्ञातीन् वो द्रष्टुमेष्यामो विहाय सुहृदां सुखम् ॥ २३ ॥ एवं सान्त्वय्य भगवान् नन्दं सव्रजमच्युतः ॥ वासोऽलङ्कारकुप्याद्यैरर्हयामास सादरम् ॥ २४ ॥ इत्युक्तास्तौ परिष्वज्य नन्दः प्रणयविह्वलः ॥ पूरयन्नश्रुभिर्नेत्रे सह गोपैर्व्रजं ययौ ॥ २५ ॥

व्रजकों जाओ, अपने सुहृदनकों सुख करिके स्नेहते दुःखित ज्ञातिके और तुम्हारे देखिवेकों हम पीछें आवेंगे ॥ २३ ॥ या प्रकार अच्युत भगवान् श्रीकृष्ण व्रजवासीनसहित नन्दरायजीकूं समझायकै वस्त्र आभूषण मोने चांदीके बासन दैकै बडे आदरते पूजन करतभये ॥ २४ ॥ या प्रकार श्रीकृष्णको वचन सुनिकै नन्दरायजी श्रीकृष्ण बलदेवको छातीतै लगायकै प्रेममें व्याकुल होयके नेत्रनमें आंशु कारि व्रजवासीनको[१] संग लैके व्रज-

---

[१] चौ०-मैयासों पालागनकहियो । हमपर प्रेमकरेतुमरहियो ॥ होगीदुखितयशोमतिमैया । मोविनव्रजातिरियासवगैया ॥ तातेंवेगगवनव्रजकीजै । जायसवनकौंधीरजदीजै ॥ मेरीसुरत नमनतटारो । मैंतुमसेकबहूनहिन्यारो ॥ दोहा ॥ निठुरवचनसुनिश्यामके, भये विकलअति नंद ॥ उमगिनीरनैननचले, पडगयेदुखकेफन्द ॥

कों जातभये ॥ २५ ॥ याके पीछे हे राजन् परीक्षित् ! शूरके पुत्र वसुदेवजी ब्राह्मण पुरोहित बुलायकै पुत्रनको यथायोग्य द्विजन्मासंस्कार करावतभये ॥ २६ तिन ब्राह्मणनकों गौ सिंगार करिके दक्षिणामें देतभये, रेशमी झुल जिनपै परी सोनेकी माला पहिरे ऐसी बछरासहित दान करत भये ॥ २७ ॥ बडे बुद्धिमान् वसुदेवजी कृष्णरामकें जन्मनक्षत्रके समय जिन गौनको मनते दान कियोहो, और कंसने अधर्म करिके हरिलीनी ही उतनी गौ स्मरण करिके दान करतभये ॥ २८ ॥ तापीछे सुव्रती कृष्णबलदेव द्विजन्मानको संस्कार पायकै यदुकुलके पुरोहित गर्गाचार्यसूं

अथ शूरसुतो राजन् पुत्रयोः समकारयत् ॥ पुरोधसा ब्राह्मणैश्च यथावद् द्विजसंस्कृतिम् ॥ २६ ॥ तेभ्योऽदाद्दक्षिणा गावो रुक्ममाल्यः स्वलंकृताः ॥ स्वलंकृतेभ्यः संपूज्य सवत्साः क्षौममालिनीः ॥ २७ ॥ याः कृष्णरामजन्मर्क्षे मनोदत्ता महामतिः ॥ ताश्चादददनुस्मृत्य कंसेनाधर्मतो हृताः ॥ २८ ॥ ततश्च लब्धसंस्कारौ द्विजत्वं प्राप्य सुव्रतौ ॥ गर्गाद् यदुकुलाचार्याद् गायत्रं व्रतमास्थितौ ॥ २९ ॥ प्रभवौ सर्वविद्यानां सर्वज्ञौ जगदीश्वरौ ॥ नान्यसिद्धामलज्ञानं गूहमानौ नरेहितैः ॥ ३० ॥ अथो गुरुकुले वासमिच्छन्तावुपजग्मतुः ॥ काश्यं सान्दीपनिं नाम ह्यवन्तिपुरवासिनम् ॥ ३१ ॥ अथोपसाद्य तौ दान्तौ गुरौ वृत्तिमनिन्दिताम् ॥ ग्राहयन्तावुपेतौ स्म भक्त्या देवमिवादृतौ ॥ ३२ ॥ तयोर्द्विजवरस्तुष्टः शुद्धभावानुवृत्तिभिः ॥ प्रोवाच वेदानखिलान् साङ्गोपनिषदो गुरुः ॥ ३३ ॥

गायत्रीको उपदेश लैके ब्रह्मचर्यव्रतमें रहतभये ॥ २९ ॥ समस्त विद्या जाननेहारे सर्वज्ञ अर्थात् सब बातके जाननवारे सब जगत्के ईश्वर कृष्ण बलदेवते स्वतः सिद्ध जो निर्मल ज्ञानकूं मनुष्यनकी तुल्य चेष्टा करनेके कारण गुप्त रखतेहै ॥ ३० ॥ यज्ञोपवीत भयेपीछे गुरुकुलमें वसिवेकी इच्छासे कृष्णबलदेव कश्यप गोत्री उज्जैनपुरीकेवासी सांदीपनी गुरुके पास जातभये जाको काश्य नाम हो॥३१॥जितेंद्रिय कृष्ण बलदेव भले प्रकार गुरुनके पास आयके बडे आदरते भक्ति पूर्वक जैसे नारायणको सेवन करेहैं ऐसे गुरुको सेवन करतभये॥३२॥शुद्धभावसूं सेवासे संतुष्टभये द्विजन्मानमें श्रेष्ठगुरु-

ने श्रीकृष्णबलदेवकूं शिक्षादिक अंगनसहित उपनिषदसहित वेद पढाये ॥ ३३ ॥ मंत्र और देवताके ज्ञानसहित शस्त्र चलायवेको धनुर्वेद और धर्मशास्त्र, राजनीति, मीमांसादिक तर्कविद्या और शत्रुते मिलाप करनो, युद्ध करनो, वाके ऊपर चढजानो, समीप जायकै रहनो, अपनी ओर फोरि लेनो, मिलाप करनो, यह छः प्रकारकी राजनीति पढतभये ॥ ३४ ॥ संपुर्ण मनुष्यनमें उत्तमनमें उत्तम सब विद्यानके चलामनवारे सावधान कृष्ण बलदेव, हे राजन् परीक्षित्! गुरुके विना बतायेही सब विद्यानकों पढतभये ॥ ३५ ॥ चौसठ रात्रनमें गायवो बजायवो नृत्य करिवेसूं आदिलैके चौसठ कला शीखत भये जब विद्या पढिचुके तब हे राजन् परीक्षित! कृष्णबलदेव दोनों भैया गुरुनते गुरुदक्षिणाकी आज्ञा करौ ऐसे कहत भये

सरहस्यं धनुर्वेदं धर्मान्न्यायपथांस्तथा ॥ तथा चान्वीक्षिकीं विद्यां राजनीतिं च षड्विधाम् ॥ ३४ ॥ सर्वं नरवरश्रेष्ठौ सर्वविद्याप्रवर्तकौ ॥ सकृन्निगदमात्रेण तौ संजगृहतुर्नृप ॥ ३५ ॥ अहोरात्रैश्चतुःषष्ट्या संयतौ तावतीः कलाः ॥ गुरुदक्षिणयाऽऽचार्यं छन्दयामासतुर्नृप ॥ ३६ ॥ द्विजस्तयोस्तं महिमानमद्भुतं संलक्ष्य राजन्नतिमानुषीं मतिम् ॥ संमन्त्र्य पत्न्या स महार्णवे मृतं बालं प्रभासे वरयाम्बभूव ह ॥ ३७॥ तथेत्यथारुह्य महारथौ रथं प्रभासमासाद्य दुरन्तविक्रमौ ॥ वेलामुपव्रज्य निषीदतुः क्षणं सिन्धुर्विदित्वाऽर्हणमाहरत्तयोः ॥ ३८ ॥ तमाह भगवानाशु गुरुपुत्रः प्रदीयताम् ॥ योऽसाविह त्वया ग्रस्तो बालको महतोर्मिणा ॥३९॥ समुद्र उवाच ॥ नैवाहार्षमहं देव दैत्यः पञ्चजनो महान् ॥ अन्तर्जलचरः कृष्ण शङ्खरूपधरोऽसुरः ॥ ४० ॥

॥ ३६ ॥ सांदीपनी ब्राह्मण कृष्ण बलदेवकी अद्भुत महिमा देखिके मनुष्यनसें परे चमत्कारी बुद्धि देखिकै स्त्रीसे सम्मतकर प्रभासक्षेत्रमें समुद्रमें डूबीके मरे अपने पुत्रको स्त्रीके कहेते वर मांगत भये ॥ ३७ ॥ तथास्तु ऐसे प्रमान करिकै बडे पराक्रमी बडे रथी कृष्ण बलदेव रथमें बैठिके प्रभास क्षेत्रमें समुद्रके किनारेपै जायकै एक क्षणभर बैठत भये, तब समुद्र कृष्ण बलदेवकों आये जानिके तिनकी पूजा लावत भयो ॥ ३८ ॥ तब भगवान् श्रीकृष्ण ता समुद्रतै कहत भये, जो हमारे गुरुके बालक तैंने यहां बडी लहरनकरि डुबाये हैं वे गुरुके पुत्र लायकै दे ॥ ३९ ॥ तब समुद्र बोल्यो हे देव! अर्थात् प्रकाशमान कृष्ण! मैंने तौ तुमारे गुरुके पुत्र नहीं डुबाये हैं, मेरे भीतर रहनवारो शंखरूपकौं धरे एक बड़ो दैत्य है वह ह-

रिलै गयोहै, निश्चय वाके पासहैं, यह सुनिकै समर्थ श्रीकृष्णचंद्र शीघ्रतासूं जलमें धसिकै पंचजन्य दैत्यकूं मारिकै वाके पेटमें बालनकूं नहीं देखत भये ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ता दैत्यके अंगमेंते शंखकूं लैके श्रीकृष्ण रथपै आवत भये, फिर यमराजकी अति प्यारी संयमनीपुरीमें आवत भये ॥ ४२ ॥ तहां जायकै बलदेवसहित श्रीकृष्णचंद्र शंख बजावत भये, प्रजाको दंड देनवारो धर्मराज शंखको शब्द सुनिकै ॥ ४३ ॥ कृष्ण बलदेवकी भक्तिपूर्वक पूजा करतभयो, सब प्राणीनके हृदयमें विराजमान कृष्णसों हाथ जोरिकै यह बोलत भयो, हे विष्णु भगवान् ! लीलाकरिकै तुम मनुष्यरूप हो तुम्हारी कहा सेवा करौं ॥ ४४ ॥ अब श्रीभगवान् श्रीकृष्णचंद्र बोले हे महाराज ! यहां गुरुके पुत्र तू लेआयोहै तिनकूं देउ तब यमराजने कही अ-

आस्ते तेनाहतो नूनं तच्छ्रुत्वा सत्वरं प्रभुः ॥ जलमाविश्य तं हत्वा नापश्यदुदरेऽर्भकम् ॥ ४१ ॥ तदङ्गप्रभवं शङ्खमा-
दाय रथमागमत् ॥ ततः संयमनीं नाम यमस्य दयितां पुरीम् ॥ ४२ ॥ गत्वा जनार्दनः शङ्खं प्रदध्मौ सहलायुधः ॥
शङ्खनिर्ह्रादमाकर्ण्य प्रजासंयमनो यमः ॥ ४३ ॥ तयोः सपर्यां महतीं चक्रे भक्त्युपबृंहिताम् ॥ उवाचावनतः कृष्णं स-
र्वभूताशयालयम् ॥ लीलामनुष्य हे विष्णो युवयोः करवाम किम् ॥ ४४ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ गुरुपुत्रमिहानीतं
निजकर्मनिबन्धनम् ॥ आनयस्व महाराज मच्छासनपुरस्कृतः ॥ ४५ ॥ तथेति तेनोपानीतं गुरुपुत्रं यदूत्तमौ ॥
दत्त्वा स्वगुरवे भूयो वृणीष्वेति तमूचतुः ॥ ४६ ॥ सम्यक् संपादितौ वत्स भवद्भ्यां गुरुनिष्क्रयः ॥ को नु युष्म-
द्विधगुरोः कामो नामावशिष्यते ॥ ४७ ॥ गच्छतं स्वगृहं वीरौ कीर्तिर्वामस्तु पावनी ॥ छन्दांस्ययातयामा-
नि भवन्त्विह परत्र च ॥ ४८ ॥

पने कर्मनतै बंधपरे हैं कैसे लाऊं तब श्रीकृष्ण कहे हैं मेरी आज्ञा भईहै मेरी आज्ञाते कर्म जोरावर नहीं है ॥ ४५ ॥ जो आज्ञा ऐसे कहिकै यमराजने गुरुपुत्र लायदियो यादवनमें उत्तम जो कृष्ण बलदेव उसे लै अपने गुरूको देकै बोले और वर मांगो ॥ ४६ ॥ तब गुरु कहत भये हे पुत्र ! तुमने गुरुसेवा भलेप्रकार करी तुमसारिखेनको गुरु मैं भयो तौ मेरे कौन बातकी चाहना बाकी रही ॥ ४७ ॥ हे वीर ! तुम अब अपने घरकों जाओ या-लोकमें और परलोकमें तुमारी पवित्रकीर्ति होऊ, तुमारे वेद नवीन पढेभये स्फुरण बने रहौ ॥ ४८ ॥

याप्रकार गुरुसे आज्ञा पाय श्रीकृष्ण बलदेव दोनों भैया पवनकी तुल्य शीघ्र चलनेहारे मेघकी तुल्य गर्जनावारे रथमें बैठिकै हे राजन् परीक्षित् ! अपने घरकूं आवत भये ॥ ४९ ॥ रामकृष्ण भगवान् बहुत दिनते नहीं देखे अब तिनके दर्शन करिकै प्रजा बडे आनंदकौं प्राप्त होतभई जैसे गयो धन मिलवेसूं आनंद होयहै ॥ ५० ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे पू० गुरुकुलवासो नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ श्रीशुकदेवजी कहेहैं हे राजन् परीक्षित! यादवनमें श्रेष्ठ श्रीकृष्णके प्यारे मंत्री सखा साक्षात् बृहस्पतिके शिष्य बुद्धिमाननमें श्रेष्ठ जो उद्धवजी हैं ॥ १ ॥

गुरुणैवमनुज्ञातौ रथेनानिलरंहसा ॥ आयातौ स्वपुरं तात पर्जन्यनिनदेन वै ॥ ४९ ॥ समनन्दन् प्रजाः सर्वा दृष्ट्वा
रामजनार्दनौ॥अपश्यन्त्यो बह्वहानि नष्टलब्धधना इव ॥५०॥ इति श्रीभा० म०द०पू० पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥
॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृष्णीनां प्रवरो मन्त्री कृष्णस्य दयितः सखा ॥ शिष्यो बृहस्पतेः साक्षादुद्धवो बुद्धिसत्तमः ॥ १ ॥
तमाह भगवान् प्रेष्ठं भक्तमेकान्तिनं क्वचित् ॥ गृहीत्वा पाणिना पाणिं प्रपन्नार्तिहरो हरिः ॥ २ ॥ गच्छोद्धव व्रजं सौम्य
पित्रोर्नौ प्रीतिमावह ॥ गोपीनां मद्वियोगाधिं मत्सन्देशैर्विमोचय ॥ ३ ॥ ता मन्मनस्का मत्प्राणा मदर्थे त्यक्तदैहि-
काः ॥ ये त्यक्तलोकधर्माश्च मदर्थे तान् बिभर्म्यहम् ॥ ४ ॥

शरणागतनके दुःख दूर करनवारे मनोहर भगवान् श्रीकृष्ण प्यारे एकांती भक्त उद्धवजीसूं एकांतमें हाथ पकरिके बोलतभये ॥ २ ॥ हे उद्धव ! हे साधु ! तुम ब्रजकों जाओ; हमारे मातापिताको प्रसन्न करो, और गोपीनको मेरे बिछुरिवेमें कष्टभयो है ताय मेरो संदेशो लेजायके दूर करौ ॥ ३ ॥ मेरेविषे जिनके मन और प्राण लगिरहे हैं मेरे अर्थ पतिपुत्रादिको त्यागि दिये हैं मैंही प्यारो जिनके आत्मा हूं मोमें मनकरिकै रहेहैं

313

---

१ ऊधोजी बोले गोपिनकी प्रीति आपमें स्वार्थकी है वा और प्रकारकी स्वार्थकी तौ ऐसी होयहै जैसे एक लडका बडो सुंदर हो एक मनुष्य वाय प्यारसौं देखोईकरै एक दिन वाय संगले बागकी सैरको चले सो लरिकाके पांयके नीचे कंकर आयगयो सो लरिकानैं भौंह संकोरकै सिसकारी लई वो अदा वाको प्यारी लगी सो वो अदा देखवेकूं हाथ पकरे पकरे जहां जहां कांटे कांकर होंय तहां तहां लिये फिरै याके तौ कंकर चुभैहै और वह अदां देखत फिरै हैं ऐसी प्रीति पर धिक्कार हैं गोपिननैं सूर्यकुंडपैं देवीकी पूजाकर यही वरदान मांगो हो कि हम कृष्णकूं चाहैं और वह हमे न चाहै नहीं तौ हमारे वियोगमें बडे दुःखी हौंयगे हम काम धंधेमें लगी हौंयगी तौ वे कहां कहां खोजत फिरैंगे ॥

मेरे लिये यालोक परलोक सुखनके उपाय जिनने त्यागिदिये हैं तिनकूं मैं सुख देऊहूं ॥ ४ ॥ हे उद्धव ! उनके प्यारो मैं जबते दूर आयोहों तबसे वे गोकुलकी स्त्री मेरी सुधि करिकै विरहमें मेरी चाहसूं बेवस होयकै मोहित होयजांयहैं ॥ ५॥ जब मैंने उनसै कह दीथी कि मैं शीघ्र आऊंगा याकारणसै किसी प्रकार वे गोपियां प्राणधारण किये रहीं सोभी महाकष्टसै यदि उनका आत्मा उनके शरीरमें रहता तौ दग्ध होय जाता वह तौ मुझमें लीन है या कारण गोपियों प्राण धारण कियेहैं ॥ ६ ॥ अब श्री कदेवजी कहेहैं हे राजन् परीक्षित् ! याप्रकार जिनसूं कही ऐसे उद्धवजी बडे आदरसे स्वा-

मयि ताः प्रेयसां प्रेष्ठ दूरस्थे गोकुलस्त्रियः ॥ स्मरन्त्योङ्ग विमुह्यन्ति विरहौत्कण्ठ्यविह्वलाः ॥ ५ ॥ धारयन्त्यतिकृच्छ्रेण प्रायः प्राणान् कथंचन ॥ प्रत्यागमनसन्देशैर्बल्लव्यो मे मदात्मिकाः ॥ ६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्त उद्धवो राजन् संदेशं भर्तुरादृतः ॥ आदाय रथमारुह्य प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ ७ ॥ प्राप्तो नन्दव्रजं श्रीमान् निम्लोचति विभावसौ ॥ छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ॥८॥ वासिताऽर्थेऽभियुध्यद्भिर्नादितं शुष्मिभिर्वृषैः ॥ धावन्तीभिश्च वास्राभिरूधोभारैः स्ववत्सकान् ॥ ९ ॥

मी श्रीकृष्णचंद्रके संदेशकूं लैके रथमें बैठिके नंदरायजीके गोकुलकूं जातभये ॥ ७ ॥ सूर्यास्त समय सुंदर नंदरायजीके ब्रजमें प्राप्त होतभये संध्यासमय आती गौ खुरनकी रेणुसूं उद्धवजीको रथ ढकिगयो ॥ ८ ॥ पुष्पवती गौनके लिये चारों ओरसै मतवारे बैलनके युद्धको वहां बहुत शब्द होयरह्यो है, ऐननके बोझनतें व्याई गौ दौरी दौरिके अपने बछरानकके पांस आमें हैं शोभायमान ब्रज है ॥ ९ ॥

---

१ कवित्त- कामरीलकुटमोहिभूलतनएकौपलघुघचींनाविसारेजो पैलालउरधारे है । जादिनतैंछाकेंछूटगईग्वालनकीतादिनते भोजन नपावतसकारेहैं ॥ भनेयदुवंश यहनेहनंदवंशसोवंशीना बिसारैं जोपैवंशविस्तारेहैं । उद्धवब्रजजैयोमेरीलैओचौवानगैंदमैयासेकहियोहमऋनियांतुम्हारे हैं ॥ कौनविधिपावैंयहकर्म बलवानउद्धवछाछुछुआकीब्रजभामिनिकोभातहै । मुक्तहूपदारथसोदेचुके वाकी अबकहादेंजननीकोयातेंपछतातहैं, विधिनेबनाई आहकौन विधिमेटैताहि ऐसेकरिशोचतरहतदिनरातहैं । ऊधोव्रज जैयोमेरीकहियोसमझायमैयाजापेरिनवाढेसोविदेश उठिजातहैं ॥ ३ ॥
दोहा—कहाकहूंजादिवसते, जननीविछरचोतोहि ॥ तादिनसेकोऊनहीं, कहतकन्हैयामोहि ॥

जहां तहां सफेद गौनके बछरा फुदकतडोले हैं गौनकै दुहिवेको शब्द जहां तहां होईरह्यो है अर्थात् तासमय दोहा दोहनीकौ घोटनपैं धरिकै दुहैं तासमय छुर छुर होयहै जब आधीसी दोहनी होय आवै तब घर्र घर्र होयहै, मुंहताई भारि आवै तब धम्म धम्म होयहै और कोई कहैहै बछडा छोडो कोई कहे है दोहनी लाओ, कोई कहैहै लेउ कोई कहैहै देउ ऐसो शोर जहां होयरह्योहै और बांसुरी बजनेको शब्द होय रह्यो है तासूं वह ब्रज शोभायमान है ॥ १० ॥ बलदेव श्रीकृष्णके मंगलरूप कर्मनकूं बनी ठनी गोप गोपी गायरहीथीं ब्रज शोभायमान हैं॥११॥ अग्नि सूर्य अभ्यागत गौ ब्राह्मण पितर देवता इनके पूजनकी सामग्री जहां धरी है, धूप होयरही, दीवा बरे रहे फूल धरे गोपनको घरनसो वह ब्रज मनोहर है ॥ १२ ॥ सब

इतस्ततोऽविलङ्घद्भिर्गोवत्सैर्मण्डितं सितैः ॥ गोदोहशब्दाभिरवैर्वेणूनां निःस्वनेन च ॥ १० ॥ गायन्तीभिश्च कर्माणि
शुभानि बलकृष्णयोः ॥ स्वलंकृताभिर्गोपीभिर्गोपैश्च सुविराजितम् ॥११॥ अग्न्यर्कातिथिगोविप्रपितृदेवार्चनान्वितैः ॥
धूपदीपैश्च माल्यैश्च गोपावासैर्मनोरमम् ॥ १२ ॥ सर्वतः पुष्पितवन द्विजालिकुलनादितम् ॥ हंस कारण्डवाकीर्णैः
पद्मखण्डैश्च मण्डितम् ॥ १३ ॥ तमागतं समागम्य कृष्णस्यानुचरं प्रियम् ॥ नन्दः प्रीतः परिष्वज्य वासुदेव-
धियाऽर्चयत् ॥ १४ ॥ भोजितं परमान्नेन संविष्टं कशिपौ सुखम् ॥ गतश्रमं पर्यपृच्छत् पादसंवाहनादिभिः ॥ १५ ॥
कच्चिदङ्ग महाभाग सखा नः शूरनन्दनः ॥ आस्ते कुशल्यपत्याद्यैर्युक्तो मुक्तः सुहृद्वृतः ॥ १६ ॥

ओरतें फूलवारी, जामें फूलिरही; पच्छी बोलैं, भौंरा गुंजारैं, राजहंस कारंडपच्छी जहां में बैठे ऐसे कमलनके समूहसौं वह ब्रज शोभायमान है॥१३॥ श्रीकृष्णके प्यारे उद्धवजीकों आये जानिकै नंदरायजी प्रसन्न होयके मिलत भये, कृष्णके पासते आयो है यह जानिके ईश्वरबुद्धिसै पूजन करत भये ॥ १४ ॥ परम श्रेष्ठ सामग्रिनको भोजन करायकै शय्यापै सुखपूर्वक पौढायके, चरण दाबिकै मार्गको खेद मिटायकै, उद्धवजीते नंदरायजी पूछत भये ॥ १५ ॥ कृष्णकी कुशल पूछिवेमें आंशूनसों कंठ रुकि जायगो यह शंका विचारिकै प्रथम वसुदेवजीकी कुशल पूछे हैं हे बडभागी

316

उद्धव ! कहो शूरके पुत्र हमारे सखा वसुदेव लरिकावारेनसहित कुशलपूर्वक हैं, कंसके बंदीखानेते छूटे हैं, भैया बंधु हितकारी सहित प्रसन्न हैं ॥ ॥ १६ ॥ पापी कंस संपूर्ण टहलुआन सहित अपने पापनते मर्चो यह बडो मंगल भयो, वह कंस धर्म्मस्वभावी साधु यादवनसूं सर्वदा वैर करै हो ॥ १७ ॥ हे उंद्धवजी ! वह कृष्ण कभऊ हमारी और अपनी माताकी सुधि करे है, सुहृद सखा गोपिनकी सुधि करे हैं, आपुही जाकी रक्षा करनवारो ऐसे या ब्रजकी सुधि करें हैं, गौ वृन्दावन गोवर्द्धन पर्वतकी कभऊ सुधि करे है ॥ १८ ॥ गौनके हितको करनवारो कृष्ण जब कभऊ अपने

दिष्ट्या कंसो हतः पापः सानुगः स्वेन पाप्मना ॥ साधूनां धर्मशीलानां यदूनां द्वेष्टि यः सदा ॥ १७ ॥ अपि स्मरति नः कृष्णो मातरं सुहृदः सखीन् ॥ गोपान् व्रजं चात्मनाथं गावो वृन्दावनं गिरिम् ॥ १८ ॥ अप्यायास्यति गोविन्दः स्वजनान् सकृदीक्षितुम् ॥ तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्त्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम् ॥ १९ ॥ दावाग्नेर्वातवर्षाच्च विषसर्पाच्च रक्षिताः ॥ दुरत्ययेभ्यो मृत्युभ्यः कृष्णेन सुमहात्मना ॥ २० ॥ स्मरतां कृष्णवीर्याणि लीलापाङ्गनिरीक्षितम् ॥ हसितं भाषितं चाङ्ग सर्वा नः शिथिलाः क्रियाः ॥ २१ ॥

भैया बन्धुनके देखिवेकों आवैगो ता समय सुन्दर नासिका सुन्दर मुसिकानि चितवनि युक्त वाके मुखकूं देखेंगे ॥ १९ ॥ दावाग्नितै पवनतै इन्द्रकी वर्षातै विषसर्पतै अघासुरतै और बडी बडी मृत्युनते महात्मा कृष्णने हमारी रक्षा करी ॥ २० ॥ हे उद्धवजी ! श्रीकृष्णके पराक्रमानकी लीलापूर्वक कटाक्षभरी चितवनिकी हसनिकी बोलनिकी जब सुधि करे है तब हमारी सम्पूर्ण क्रिया शिथिल होयजाय है ॥ २१ ॥

---

१ दोहा ॥ सुरतहमारीकरतहैं, कछुउद्धवबलवीर । पुलकीगातलोचनसजल, पूछतनन्दअधीर ॥ १ ॥ वोहग्वालनसंगखेलवो, वोहगोपिनसंगहास । कबहुकलालनसुधकरत, मात पितहिसुखरास ॥ २ ॥ बहुविधिसैंरक्षाकरी, ब्रजवासिनकीजौन । अबऊधोउत्पातहोय, तौउद्धारैंकौन ॥ ३ ॥

मुकुन्दके चरणनके खोजके पर्वत नदी वनके स्थान और वाके खेलिवेके स्थानोंको जब देखे हैं तब हमारो मन कृष्णमय होयजायहै ॥ २ ॥ देवतानके कार्यकरिवेके निमित्त या संसारमें कृष्ण अवतार ले आयेहै तिने देवतानमें उत्तम मानूहूं मैंने बडो गम्भीर गर्गाचार्यको वचनहू ऐसे सुनो [1] ॥२३॥ दशहजार हाथीको बलवारे कंस और मल्लनकों तैसेही कुवलयापीड हाथीकों सिंह जैसे पशूनकूं मारे है ऐसे श्रीकृष्ण लीलाकरिके मारतभये ॥ २४ ॥ बडो भारी तीन तालकी बराबर धनुष एक हाथते उठायके जैसे हाथी लठियाकूं तोरे ऐसे तोरतभये और सात दिनपर्यंत गोवर्द्धन पर्वतकों धारण

सरिच्छैलवनोद्देशान् मुकुन्दपदभूषितान् ॥ आक्रीडानीक्षमाणानां मनो याति तदात्मताम् ॥ २२ ॥ मन्ये कृष्णं च रामं च प्राप्ताविह सुरोत्तमौ ॥ सुराणां महदर्थाय गर्गस्य वचनं यथा ॥२३॥ कंसं नागायुतप्राणं मल्लौ गजपतिं तथा ॥ अवधीष्टां लीलयैव पशूनिव मृगाधिपः ॥ २४ ॥ तालत्रयं महासारं धनुर्यष्टिमिवेभराट् ॥ बभञ्जैकेन हस्तेन सप्ताहमदधाद्गिरिम् ॥ २५ ॥ प्रलम्बो धेनुकोऽरिष्टस्तृणावर्तबकादयः ॥ दैत्याः सुरासुरजितो हता येनेह लीलया ॥ २६ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ इति संस्मृत्य संस्मृत्य नन्दः कृष्णानुरक्तधीः ॥ अत्युत्कण्ठोऽभवत् तूष्णीं प्रेमप्रसरविह्वलः ॥ ॥ २७ ॥ यशोदा वर्ण्यमानानि पुत्रस्य चरितानि च ॥ शृण्वन्त्यश्रूण्यवास्राक्षीत् स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ २८ ॥

करत भये ॥ २५ ॥ प्रलंबासुर धेनुकासुर तृणावर्त्त बकासुरकों आदि लैके और जे सुर असुरनके जीतनवारे दैत्य हैं ते कृष्णने लीलाही करिके मारे ॥ २६ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित् ! कृष्णमें प्रेमबुद्धिवारे नन्दरायजी या प्रकार सुधि करिके आंशू कंठमें भरि प्रेमके भावमें व्याकुल होयके चुप होतभये ॥ २७ ॥ यशोदाने जो ऐसे वर्णन किये जाते कृष्णके सुन्दर चरित्र श्रवण करे तौ स्नेहसूं स्तननमें दूध उमगी आयो नेत्रनमेंते आंशू वहातिभई ॥ २८ ॥

---

१ चौ०–ऊधोकहोकुशलदौउभैया, नीकोहै मेरोलालकन्हैया । फाटतनहींवज्रकीछाती, अबयहसमुझिहृदयपछिताती ॥ ऐसोभागकभीअबपैहों, बहुरिश्यामकोगोदखिलैहों ॥ दोहा ॥ ग्वालसखासंगजोरि अव, कोगैयनलेजाय । कोआवैसंध्यासमय, वनतैगायचराय ॥ उद्धवयद्यपिहमेंसब, समुझावतव्रजलोग । उठतशूलतद्यपि निरख, माखनप्रभुमुखयोग ॥ लाडलडायोविवीधीविधि, दूधपियायपियाय । लालानेंऐसीकरी, छोडीबूढीमाय ॥

या प्रकार नन्दरायजी यशोदाको भगवान् श्रीकृष्णमें परम अनुराग देखिके उद्धवजी नन्दजीते बोलत भये ॥ २९ ॥ उद्धवजी कहेहैं हे मानके देनवारे नन्दराय ! या संसारमें देहधारीके मध्यमें निश्चय तुम प्रशंसाके योग्य हौं जोकि सबके गुरु नारायणमें ऐसी मति लगाई है ॥ ३० ॥ ये जो कृष्ण बलदेव हैं ते विश्वके निमित्त उपादान कारण हैं याहीते पुरुष प्रकृतिरूप हैं सब प्राणीनमें प्रवेशकरिकै अनेक प्राणीनके अनेक प्रकारके ज्ञानके साक्षी हैं और अनादि हैं ॥ ३१ ॥ प्राणनको छुटती बिरिया यह पुरुष क्षणभर शुद्धमनकों जिन श्रीकृष्णमें लगायकै शीघ्रही कर्मनकी बासनानकूं छोडिकै सूर्यकी तुल्य प्रकाशमान ब्रह्मरूप होयकै परमगतिकूं पावै है ॥ ३२ ॥ सबके आत्मा कार्य और कारणकरिकै मनुष्यरूप धरे परिपूर्ण नारायणमें अतिशय करिकै भक्ति करौहो तुमकौ कहा करनो बाकी रह्यो ॥ ३३ ॥ अच्युत श्रीकृष्ण थोरेही दिनमें व्रजमें आमेंगे भक्तनके पालन करनवारे भगवान् श्रीकृष्ण तुम्है और यशोदाकूं आनंद देंइगे ॥ ३४ ॥ सब यादवनके वैरी कंसकूं रंगभूमिमें मारिके तुमारे पास आयकै श्रीकृष्ण जो कहतभये ताय सत्य करेंगे ॥ ३५ ॥

तयोरित्थं भगवति कृष्णे नन्दयशोदयोः ॥ वीक्ष्यानुरागं परमं नन्दमाहोद्धवो मुदा ॥ २९ ॥ उद्धव उवाच ॥ युवां
श्लाघ्यतमौ नूनं देहिनामिह मानद ॥ नारायणेऽखिलगुरौ यत्कृता मतिरीदृशी ॥ ३० ॥ एतौ हि विश्वस्य च बीजयोनी
रामो मुकुन्दः पुरुषः प्रधानम् ॥ अन्वीय भूतेषु विलक्षणस्य ज्ञानस्य चेशात इमौ पुराणौ ॥ ३१ ॥ यस्मिन् जनः प्राण-
वियोगकाले क्षणं समावेश्य मनो विशुद्धम् ॥ निर्हृत्य कर्माशयमाशु याति परां गतिं ब्रह्ममयोऽर्कवर्णः ॥ ३२ ॥
तस्मिन् भवन्तावखिलात्महेतौ नारायणे कारणमर्त्यमूर्तौ ॥ भावं विधत्तां नितरां महात्मन् किं वाऽवशिष्टं युवयोः
सुकृत्यम् ॥ ३३ ॥ आगमिष्यत्यदीर्घेण कालेन व्रजमच्युतः ॥ प्रियं विधास्यते पित्रोर्भगवान् सात्वतां पतिः ॥ ३४ ॥
हत्वा कंसं रङ्गमध्ये प्रतीपं सर्वसात्वताम् ॥ यदाह वः समागत्य कृष्णः सत्यं करोति तत् ॥ ३५ ॥

हे बड भागिओ ! तुम खेद मतिकरो, कृष्णकूं अपने पासही देखौगे, जैसे लकडीमें ज्योति रहे है ऐसे सब प्राणीनके ह्रदयमें रहे हैं ॥ ३६ ॥ याकृष्णके कोई प्यारो नहीं हैं, और कुप्यारो कोई नहीं हैं, कोई उत्तम नहीं, अधम नहीं है, और कोई समान नहीं है, और वह विषम नहीं है, और वाके मान नहीं है वे समदृष्टि हैं ॥ ३७ ॥ न वाके माता है, न वाके पिता है न स्त्री है न पुत्रादिक है वाके देहभी नहीं है और वाकौ जन्मभी नहीं हैं ॥३८॥ या कृष्णके कर्महू नहीं हैं, संसारमें देवादिकनकी मनुष्यादिकनकी नृसिंहादिकनकी जो योनि हैं, तिनमें खेलिवेके लिये और साधुनकी रक्षा करिवेके लिये प्रकट होइ है ॥३९॥ निर्गुण भगवान् सत्वगुण रजोगुण तमोगुण इन तीन मायाके गुणनकूं अंगिकार करे हैं, गुणनसूं न्यारे अजन्मा भगवान् क्रीडा करिकै विश्व-

मा खिद्यतं महाभागौ द्रक्ष्यथः कृष्णमन्तिके ॥ अन्तर्हृदि स भूतानामास्ते ज्योतिरिवैधसि ॥ ३६ ॥ न ह्यस्यास्ति प्रियः कश्चिन्नाप्रियो वाऽस्त्यमानिनः ॥ नोत्तमो नाधमो वाऽपि समानस्य समोऽपि वा ॥ ३७ ॥ न माता न पिता तस्य न भार्या न सुतादयः ॥ नात्मीयो न परश्चापि न देहो जन्म एव च ॥ ३८ ॥ न चास्य कर्म वा लोके सदसन्मिश्रयोनिषु ॥ क्रीडार्थं सोऽपि साधूनां परित्राणाय कल्पते ॥ ३९ ॥ सत्त्वं रजस्तम इति भजते निर्गुणो गुणान् ॥ क्रीडन्नतीतोऽत्र गुणैः सृजत्यवति हन्त्यजः ॥४०॥ यथा भ्रमरिका दृष्ट्या भ्राम्यतीव महीयते ॥ चित्ते कर्तरि तत्रात्मा कर्तैवाहंधिया स्मृतः ॥ ४१ ॥ युवयोरेव नैवायमात्मजो भगवान् हरिः ॥ सर्वेषामात्मजो ह्यात्मा पिता माता स ईश्वरः ॥ ४२ ॥ दृष्टं श्रुं भूतभवद्भविष्यत्स्थास्नुश्चरिष्णुर्महदल्पकं च ॥ विनाऽच्युताद्वस्तुतरां न वाच्यं स एव सर्वं परमार्थभूतः ॥ ४३ ॥

को उपजावै है पालन करै हैं संहार करे है ॥ ४० ॥ जैसे बालक झांईमांई फिरे हैं तब वाकी दृष्टि फिरे है, तासों पृथ्वी फिरतीसी दिखाई देइहै, याप्रकार चित्त जो कर्त्ता है तामें अहंकार करिकै आत्माभी कर्त्तासौ दिखाईदे है ॥ ४१ ॥ जे भगवान् श्रीकृष्ण तुमारेही पुत्र नहीं है सबके पुत्रहैं, आत्मा हैं, पिताहैं, माताहैं, और ईश्वरनके ईश्वर हैं ॥४२॥ जो कछु देखिवेमें आवै और जो कछु होयचुको और जो होयहै और जो होइगो और जो कछु स्थावर हैं, जंगम है, जो कछु बडो छोटो हैं, सो सब श्रीकृष्ण विना अतिशय करिके कहिवेकूं योग्य नहीं हैं, परमार्थरूप श्रीकृष्ण हैं सोई सर्वरूप हैं ॥ ४३ ॥

हे राजन् परीक्षित् ! नंदजी और श्रीकृष्णके अनुचर उद्धवजीकों याही प्रकार वार्त्ता करत करत सब रात्री बीतिगई गोपी प्रातःकाल उठिके दियानको वारिकै देहरीनको पूजन करिकै दही मथाति भई ॥ ४४ ॥ दियानकरिकै प्रकाशमान मणिनके जडाऊ गहनेसो सुंदर लगतभई नेतीनको खेंचे हैं, तासूं भुजानमें चूरी कंकण हलै हैं, नितंब हलतजाय हैं स्तनपैं हारभी हलतजायहैं; कुंडलन करिके प्रकाशमान कपोल अरुण केशरिकी खोरि मुखपै लगी है ॥ ४५ ॥ कमलदललोचन श्रीकृष्णको चरित्र जब ब्रजवालाऔंने गायो तब वह गीत स्वर्ग पर्यंत जातभयो, दहीके मथिवेकी शब्दभी गीतमें मिलिरह्यो हैं उन गोपीनके गीतसें दिशानमें संपूर्ण अमंगल दूर होयजाय है ॥ ४६ ॥ भगवान् सूर्यके उदयभये पर नंदरायजीके दरवाजेपै सुनहरी साजको रथ ठाडो देखिकै यह कौनको रथ है या प्रकार कहत ब्रजवासी कहतभये ॥ ४७ ॥ कहां कंसके कार्यको साधक अक्रूर आयो है जो अक्रूर कमलदललोचन कृष्णकूं मथुरा लैगयोहो अपने स्वामी कंसकी मरवायकै अब क्यों आयो है कहा हमें लेजायकै हमारे मांसके पिंड बनायेकै देयगो या प्रकार गोपी आपुसमें बात करेंहीं, इतनेमें उद्धवजी सन्ध्योपासनादिक नित्यकर्म करिकै आवत भये ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

एवं निशा सा ब्रुवतोर्व्यतीता नन्दस्य कृष्णानुचरस्य राजन् ॥ गोप्यः समुत्थाय निरूप्य दीपान् वास्तून् समभ्यर्च्य दधीन्यमन्थन् ॥ ४४ ॥ ता दीपदीप्तैर्मणिभिर्विरेजू रज्जूर्विकर्षद्भुजकङ्कणस्रजः ॥ चलन्नितम्बस्तनहारकुण्डलत्विषत्कपोलारुणकुङ्कुमाननाः ॥ ४५ ॥ उद्गायतीनामरविन्दलोचनं व्रजाङ्गनानां दिवमस्पृशद्ध्वनिः ॥ दध्नश्च निर्मन्थनशब्दमिश्रितो निरस्यते येन दिशाममङ्गलम् ॥ ४६ ॥ भगवत्युदिते सूर्ये नन्दद्वारि व्रजौकसः॥ दृष्ट्वा रथं शातकौम्भं कस्यायमिति चाब्रुवन् ॥ ४७ ॥ अक्रूर आगतः किं वा यः कंसस्यार्थसाधकः॥ येन नीतो मधुपुरीं कृष्णः कमललोचनः ॥४८॥ किं साधयिष्यत्यस्माभिर्भर्तुः प्रेतस्य निष्कृतिम् ॥ इति स्त्रीणां वदन्तीनामुद्धवोऽगात् कृताह्निकः ॥ ४९ ॥ इति श्रीभा०महा०दशम०पू०नन्दशोकापनयनं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

अब श्रीशुकदेवजी कहे है हे राजन् परीक्षित ! लंबी भुजा नवीनकमलसे नेत्र, पीतांबरको पहिरे कमलकी माला धारे प्रकाशमान मुखारविंद स्वच्छ काननमें कुंडल पहिरे, कृष्णके अनुचर उद्धवजीके देखिके व्रजकी स्त्री बडौ आश्चर्य मानत भई और परस्पर कहने लगीं ॥ १ ॥ सुन्दर रूप यह कौन है, कहांते आयो है, श्रीकृष्णचंद्रकेसो वेष है, वैसेही गहनेनको पहिरे हैं, ऐसी सब गोपी श्रीकृष्णके चरणारविंदको भक्त जान उद्धवजीकों चारों ओरते घेरत भई ॥ २ ॥ आधीनता करिके वे गोपी नम्र होय लाजभरी हंसानि चितवनि मीठी बोलनीसूं सतकार कर एकान्त आसन पै बैंठे उद्धवजीको

श्रीशुक उवाच ॥ तं वीक्ष्य कृष्णानुचरं व्रजस्त्रियः प्रलम्बबाहुं नवकञ्जलोचनम् ॥ पीताम्बरं पुष्करमालिनं लसन्मुखारविन्दं परिमृष्टकुण्डलम् ॥ १ ॥ शुचिस्मितः कोऽयमपीच्यदर्शनः कुतश्च कस्याच्युतवेषभूषणः ॥ इति स्म सर्वाः परिवव्रुरुत्सुकास्तमुत्तमश्लोकपदाम्बुजाश्रयम् ॥ २ ॥ तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः ॥ रहस्यऽपृच्छन्नुपविष्टमासने विज्ञाय संदेशहरं रमापतेः ॥ ३ ॥ जानीमस्त्वां यदुपतेः पार्षदं समुपागतम् ॥ भर्त्रेह प्रेषितः पित्रोर्भवान् प्रियचिकीर्षया ॥ ४ ॥ अन्यथा गोव्रजे तस्य स्मरणीयं न चक्ष्महे ॥ स्नेहानुबन्धो बन्धूनां मुनेरपि सुदुस्त्यजः ॥ ५ ॥ अन्येष्वर्थकृता मैत्री यावदर्थविडम्बनम् ॥ पुम्भिः स्त्रीषु कृता यद्वत् सुमनस्स्विव षट्पदैः ॥ ६ ॥ निःस्वं त्यजन्ति गणिका अकल्पं नृपतिं प्रजाः ॥ अधीतविद्या आचार्यमृत्विजो दत्तदक्षिणम् ॥ ७ ॥

श्रीकृष्णके पासते संदेशो लैके आये जानिके पूंछति भई ॥ ३ ॥ यादवनके पति श्रीकृष्णके तुम सेवक हो यह हम जाने हैं माता पिताके प्रसन्न करिवेके निमित्त तुम कृष्णके भेजे हो ॥४॥ या व्रजमें और ऐसो कोई नहीं हैं जो वाको स्मरण आवै, माता पिताके स्नेह बडे वैराग्यवान् पुरुषपै भी नहीं छूटे हैं ॥ ५ ॥ औरनसौं अपने कार्यके निमित्त मित्रता यहां जताई, यावत् पर्यंत कामपरो तावत् मित्रता राखी जैसे पुरुष स्त्रीनते प्यार करै है, और भौंरा फूलनसों प्यार करे है यह स्वार्थहीकी है ॥ ६॥ वा कृष्णने हमसे प्रीति करीही परन्तु दरिद्री पुरुषकूं जैसे वेश्या त्यागे है, प्रजा असमर्थ

राजाकूं त्यागे हैं और विद्यार्थी जैसे विद्या पढिकै गुरुकों त्यागे है, और दक्षिणा पायकै पुरोहित जैसे यजमानकौं त्यागेहै ॥ ७ ॥ पच्छी जैसे फलनिवृत्त वृक्षकों छोडे हैं, अभ्यागत भोजन करिकै जैसे गृहकों त्यागे हैं, जार पुरुष भोग करिकै जैसे स्त्रीकौं त्यागे है, या प्रकार कृष्ण हमकौं त्यागिगयो ॥ ८ ॥ श्रीकृष्णके दूत उद्धवजी व्रजमें आये तासमय गोपीनकी वाणी, देह, मन, कृष्ण गोविंदमें जायलगे, लौकिक व्यवहार खान पानादिक सब छूटिगये ॥ ९ ॥ प्यारेके कर्मनकूं गामें हैं श्रीकृष्णके बाल अवस्था और किशोर अवस्थाके जे चरित्र हैं तिनकौं स्मरण करिकै लाज त्यागिकै रुदन करत उद्धवजीतें पूछतभई, कोई एक गोपी उद्धवजीको स्वरूप देखिकै श्रीकृष्णके संगको ध्यान करिकै, प्यारेने प्रसन्न करिवेके निमित्त

खगा वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चातिथयो गृहम् ॥ दग्धं मृगास्तथारण्यं जारो भुक्त्वा रतां स्त्रियम् ॥ ८ ॥ इति गोप्यो हि गोविन्दे गतवाक्कायमानसाः ॥ कृष्णदूते व्रजं याते उद्धवे त्यक्तलौकिकाः ॥ ९ ॥ गायन्त्यः प्रियकर्माणि रुदन्त्यश्च गतह्रियः ॥ तस्य संस्मृत्य संस्मृत्य यानि कैशोरबाल्ययोः ॥ १० ॥ काचिन्मधुकरं दृष्ट्वा ध्यायन्ती कृष्णसंगमम् ॥ प्रियप्रस्थापितं दूतं कल्पयित्वेदमब्रवीत् ॥ ११ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ मधुप कितवबन्धो मा स्पृशाङ्घ्रिं सपत्न्याः कुचविलुलितमालाकुङ्कुमश्मश्रुभिर्नः ॥ वहतु मधुपतिस्तन्मानिनीनां प्रसादं यदुसदसि विडम्ब्यं यस्य दूतस्त्वमीदृक् ॥ १२ ॥

दूत भेजो है ताय भ्रमर मानिकै एक भ्रमरको देखकै ये बोलत भईं ॥ १० ॥ ११ ॥ अब गोपी कहे हैं हे मधुप ! अर्थात् पुष्पनके रसके पीवनवारे हे कपटी कृष्णके मित्र हमारे चरणनकूं स्पर्श मतिकरै, भौंराको देह तो कारो और मुखपीरो होयहै, वाकों देखिके कहे हैं, सौतिके कुचनसौं मीठी पुष्पनकी मालाकी केशरि तेरी डाढी मूछनसों लगी है, जो तू स्पर्श करैगौ तो स्नानकरिवो होयगो, कदाचित् कहो की में तुमारे प्रसन्न करिवेको कृष्णने भेजोहूं तहां गोपी कहैं हैं वे जो मथुराकी स्त्री हैं तिनहींकूं प्रसन्न करो, जैसे तू हमारे पास आयो है, ऐसेही यादवनकी स्त्रीनके पास जात होयगा, परन्तु यादवनकी सभामें या बातकी हंसी होयगी कि कृष्णको दूत ऐसो निर्लज्ज है॥ १२ ॥

गोपियो ! ऐसे तुम वा कृष्णको क्यों आदर करौहौ वाने तुमारो कहा अनादर करो है, तहां कहे, मोहन करनवारी अपनी अधरामृत है ताय एक वेर प्यायकै तू जैसे फलनको छोडि देइहै, ऐसे वह कृष्ण तुरत हमें छोडि देत भयो, वा लक्ष्मी कृष्ण के चरणकमलकूं कैसे सेवन करे हैं तहां कहे हैं मैंने जानिलीनी कृष्णके मीठे मीठे वचनसूं वाको चित्त हऱ्योगयो है तासूं वह परी रहैहै ॥ १३ ॥ बहुत भुंभूं शब्द करते भौंरेसे कहै हैं कि तू हमारे प्रसन्न करनेको कृष्ण चरित्र गावै है हे छ पांवके भौंरा देख पशु जितने हैं ते चार पांवके है तू छ पांवको है याते तूं डेढ पशू है,कैसे कहा गामें हैं सो तू नहीं जाने है, यादवनके पति कृष्णकों तू हमारे आगे बहुत गावै हैं, बहुत पुरानो हैं, हमारो देखे भारोहौ, और सखी गायवो अपने घरमें बैठो होय ताकूं अच्छो लगैं है, जादिनतै कृष्ण मथुरा गये हैं तादिनते घर है न बाहरहै हमपै तै तू कहा लियो चाहै है, जो

सकृदधरसुधां स्वां मोहिनीं पाययित्वा सुमनस इव सद्यस्तत्यजेऽस्मान् भवादृक् ॥ परिचरति कथं तत्पादपद्मं तु पद्मा ह्यपि बत हृतचेता उत्तमश्लोकजल्पैः ॥ १३ ॥ किमिह बहु षडङ्घ्रे गायसि त्वं यदूनामधिपतिमगृहाणामग्रतो नः
पुराणम् ॥ विजयसखसखीनां गीयतां तत्प्रसङ्गक्षपितकुचरुजस्ते कल्पयन्तीष्टमिष्टाः ॥ १४ ॥ दिवि भुवि च रसायां काः स्त्रियस्तद्दुरापाः कपटरुचिरहासभ्रूविजृम्भस्य याः स्युः ॥ चरणरज उपास्ते यस्य भूतिर्वयं का अपि च कृपणपक्षे ह्युतमश्लोकशब्दः ॥ १५ ॥ विसृज शिरसि पादं वेद्म्यहं चाटुकारैरनुनयविदुषस्तेऽभ्येत्य दौत्यैर्मुकुन्दात् ॥
स्वकृत इह विसृष्टापत्यपत्यन्यलोका व्यसृजदकृतचेताः किं नु सन्धेयमस्मिन् ॥ १६ ॥

तेरौ गायवो सुनें तोकूं रीझदेय, एक ठोरा तोको बतामें हैं, वहां जा अर्जुनके सखा कृष्णकी सखी मथुराकी स्त्री हैं उनके आगे वाको प्रसंग तू गाउ मथुरा की स्त्रीनके कुचनके रोग अब गये हैं, कृष्णकी प्यारी स्त्री तोकों रीझ देंयगीं ॥१४॥ मात ऐसे मति कहो तेरी सुधि करिकै कामदेवते व्याकुल होयकै तोई प्रसन्न करिवेके लिये में भेजोंहौ तहां गोपी कहे हैं, कपट भरी रुचिर हांसीवारे कृष्णकी भ्रुकुटीकी मरोर ऐसी है कि स्वर्ग पृथ्वी और पातालकी भी स्त्री उन्हैं दुर्लभ नहीं हैं लक्ष्मी जाकै चरणनके रजकी सेवन करे हैं तहां हमारी कहा चलै है, भौंरा वा कृष्णको उत्तमश्लोके यह नाम सुनो है जब हम गरिबनीनकी सुधि लेयगो तब यह नाम रहिगो नहीं तो जात रैहगो ॥ १५ ॥ अपने पांवनपै भौंरका पड़तो देखे जो हमपै क्षमा करा-

यवेकूं आयो है ऐसे मानिकै गोपी कहे हैं अपने शिरको मेरे पांवनसे उठायले पांवनमेंते नहीं उठै तब कहे हैं मुकुन्दते सीखके दूतकर्मन करिके प्यारे वचनकी रचना करिकै मनाईवेमें तू चतुर है तातै तेरी सम्पूर्ण बात मैं जानूंहूं; जब कभऊ रासमें मान करती तब अपनो मुकुट उतारिकै हमारे चरणनमें धरतो, बहुत खुशामत करतो, जैसे वाकी बातनको विश्वास नहीं आवै है; ऐसी तेरी बातनको विश्वास नहीं आवै है, क्योंजी ऐसो वाने कहा अपराध कियो है तहां गोपी कहे है, या संसार में कृष्णके लिये पति पुत्र यह लोक परलोक सब हमने त्यागि दियो, जाके मनको ठिकानो नहीं ऐसो कृष्ण हमको त्यागिकै चलो गयो, अब वाते हमें कहा मिलाप करैं, या प्रकार गोपी कहत भई ॥१६॥ कृष्णके पहिले कर्मनकी सुधि करिकै हम या कृष्णते भय करेहै, यह वर्णन करेहै कारे रंगके जे भौरा है तिनकी कथा हमने सुनि राखी है, पहिले अयोध्यामें दशरथको पुत्र राम भयो तामें सुग्रीवकी ओर होयकै वधिककी तुल्य वालीको मार्‍यो, व्याध मांस खायवेके कारण मारे है, याने तौ व्यर्थही मार्‍यो, बन्दरको कोई मांस हूं नहीं खाय है, दूर्वा

मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्मा स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम् ॥ बलिमपि बलिमत्त्वाऽवेष्टयद्ध्वाङ्क्षवद्यस्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः ॥ १७ ॥ यदनुचरितलीलाकर्णपीयूषविप्रुट्सकृददनविधूतद्वन्द्वधर्मा विनष्टाः ॥ सपदि गृहकुटुम्बं दीनमुत्सृज्य दीना बहव इह विहङ्गा भिक्षुचर्यां चरन्ति ॥ १८ ॥

दलश्यामके सुन्दर रूपपै रीझके रावणकी बहिनि शूर्प्पणखा आई सीताके वश होयकै लक्ष्मणकूं सिखायकै वाके नाक कान काटिलिये, दूसरे कारे रंगको वामन रूप भयो वह राजा बलीपै तै तीन पांव पृथ्वीके मिस सब पृथ्वी लैके कांउ कांउ करिके जैसे कौआ घर घेरलेइहैं तैसे वाको बांधत भयो, तातै हम कारेनकी मित्रतासूं अघाई पूरण भईं अब कदाचित् भूलिकै कारेनतै मित्रता न करैंगी उद्धवजी कहे हैं जबते मैं आयोहों तबतै वाहीकी बातको कहोहों तहां गोपी कहे है जैसे वामें और गुण हैं तैसे यह अवगुण है वाकूं दुखदाई जाने हैं तथापि वाकी बात हमपै छूटे नहीं है ॥ १७ ॥ कछु गोपी और कहे हैं यह बात हम जाने हैं कृष्णकी कथा धर्म अर्थ कामकी जडकी उखारनवारी है तथापि हमपै त्यागि नहीं जाय है देखो जा श्रीकृष्णको लीलाचरित्ररूपी अमृतको काननमें एक कणकाको स्वाद ले लियो वे राग द्वेष त्याग असत्यके तुल्य होय दुःखरूप पुत्र पौत्रादि-

कनकों त्यागिके भोगनकों छोडिके पच्छीकी तुल्य घरघर भीख मांगत डोले हैं ॥ १८ ॥ भौंरा कहे हैं ऐसे अब क्यों कहौ हो पहिलेही ता कृष्णके संग एकांतमें क्यों न कहतिभईं तापर गोपी कहे हैं जैसे अज्ञानिनी कृष्णसारहरिणकी स्त्री हरिणी वधिकके गीतसूं मोहित होंय घायल होय हैं, ऐसे हम वा कपटी कृष्णको वचन सत्य मानिके यह देखत भईं, जाके नखनके स्पर्शते बडी हमेभी कामदेवकी पीडा भई, हे उपमंत्रिन् अर्थात् दूत, वा कपटीकी बात जानदे और बात कहो ॥ १९ ॥ इत उत फिरफिरायके फेरि आये भौंरासूं कहे हैं हे प्यारेके सखा ! तू फेरि आयो तोकूं प्यारे कृष्णने भेज्यो है, हे दूत ! तू पूजाकरिवे योग्य है जो तेरे इच्छा होय सो वर मांगिके कहा लक्ष्मीको संग न छोड़नेहारे कृष्णके पास हमें लेजाओ चाहै है, हे भौंरा ! वह लक्ष्मी सर्वदा संग रहे है तथापि छातीपै चढै है वाकूं दूरि करियो सब हम चलैंगी जबतक लक्ष्मी है जबतक हमारो कहा प्रयोजन है ॥ २० ॥ मथुरापुरीमें अब नंदको पुत्र सूधो रहे है हे भौंरा ! कभऊ वाकों अपने माता पिता नन्दको स्मरण आवे है, और अपने भैया बन्धूनकी सुधि करै है. और कभऊ गोपीनको स्मरण करे है कभऊ वह कृष्ण हम दासीनकी बात चलावे है, अगरकी तुल्य सुगन्धिवारी अपनी भुजाकूं हमारे शिरपै कभऊं आयके धरैगो ॥ २१ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित ! या प्रकार उद्धवजी श्रीकृष्णचंद्रके दर्शनकी

वयमृतमिव जिह्मव्याहृतं श्रद्दधानाः कुलिकरुतमिवाज्ञाः कृष्णवध्वो हरिण्यः ॥ ददृशुरसकृदेतत् तन्नखस्पर्शतीव्रस्मररुज उपमन्त्रिन् भण्यतामन्यवार्ता ॥ १९ ॥ प्रियसख पुनरागाः प्रेयसा प्रेषितः किं वरय किमनुरुन्धे माननीयोऽसि मेऽङ्ग ॥ नयसि कथमिहास्मान् दुस्त्यजद्वन्द्वपार्श्वं सततमुरसि सौम्य श्रीर्वधूः साकमास्ते ॥ २० ॥ अपि बत मधुपुर्यामार्यपुत्रोऽधुनाऽऽस्ते स्मरति स पितृगेहान् सौम्य बन्धूंश्च गोपान् ॥ क्वचिदपि स कथा नः किङ्करीणां गृणीते भुजमगुरुसुगन्धं मूर्ध्न्यधास्यत् कदा नु ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथोद्धवो निशम्यैवं कृष्णदर्शनलालसाः ॥ सान्त्वयन् प्रियसन्देशैर्गोपीरिदमभाषत ॥ २२ ॥

---

१ एक सेठजी बडे मोहमें परेथे कहूंनेक सेठानीजीके शिरमें जो पीडाभई सो वैद्य को बुलायो उन्ने मोती कस्तूरी आदि लाखन रुपैयाको मसाला वाके मूडमे लगायो तब कहूं नेक आराम भयो जब कहूं नेक बेटाके मूंडमें दर्द होय तब आप वाकी पाटी पै मूड धर बैठे कि मेरेहू शिरमे दर्द होयहै ऐसे तौ कुटुम्बमें मोह करै परन्तु कहीं काहू वक्ताके मुख से जो कृष्ण कथाश्रवण करली तौ सब लरिका लरिकी छोड कोपीन लगाय वृंदावनमें भिक्षा करनलगे उनकी कथामें ऐसो जादू है ॥

चाहना गोपीनकी सुनिकै प्यारे श्रीकृष्णके संदेशनकूं समझावतभये ॥२२॥ उद्धवजी गोपीनसूं कहे हैं तुमने वासुदेव भगवान् श्रीकृष्णमें मन लगायो है,
अहो गोपीओ! तुम निश्चय करिके कृतार्थ भईं, और लोकनमें तुमारो यश होयगो ॥ २३ ॥ दान व्रत तप होम जप यज्ञ वेदपाठ इन्द्रियनकों रोकिवो
और अनेक प्रकारके कल्याणके उपाय सब करिवेको फल यही है जो कृष्णमें भक्ति होय ॥ २४ ॥ बडे मुनीश्वरनको दुर्लभ भक्ति तुमने उत्तमश्लोक
भगवान् श्रीकृष्णमें करी यह बडो मंगल है ॥२५॥ पति पुत्र देह भैया बंधु घरनकूं त्यागिके परमपुरुष भगवान् श्रीकृष्ण तुमने पति करे यह बडो मंगल

उद्धव उवाच ॥ अहो यूयं स्म पूर्णार्था भवत्यो लोकपूजिताः ॥ वासुदेवे भगवति यासामित्यर्पितं मनः ॥ २३ ॥
दानव्रततपोहोमजपस्वाध्यायसंयमैः ॥ श्रेयोभिर्विविधैश्चान्यैः कृष्णे भक्तिर्हि साध्यते ॥ २४ ॥ भगवत्युत्तमश्लोके
भवतीभिरनुत्तमा ॥ भक्तिः प्रवर्तिता दिष्ट्या मुनीनामपि दुर्लभा ॥ २५ ॥ दिष्ट्या पुत्रान् पतीन् देहान्स्वजनान्
भवनानि च ॥ हित्वाऽवृणत यूयं यत् कृष्णाख्यं पुरुषं परम् ॥ २६ ॥ सर्वात्मभावोऽधिकृतो भवतीनामधोक्षजे ॥
विरहेण महाभागा महान् मेऽनुग्रहः कृतः ॥ २७ ॥ श्रूयतां प्रियसन्देशो भवतीनां सुखावहः ॥ यमादायागतो भद्रा
अहं भर्तू रहस्करः ॥ २८ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भवतीनां वियोगो मे न हि सर्वात्मना क्वचित् ॥ यथा भूतानि भूतेषु खं
वाय्वग्निर्जलं मही ॥ २९ ॥ तथाहं च मनःप्राणभूतेन्द्रियगुणात्मना ॥ आत्मन्येवात्मनात्मानं सृजे हन्म्यनुपालये ॥३०॥

भयो ॥२६॥ हे बडभागिनिओ! इन्द्रियनकी जिनमें गम नहीं ऐसे श्रीकृष्णचंद्रमें विरहसूं एकांत भक्ति तुमारे भई, यह तुमने मेरे ऊपर बडो अनुग्रह
कियो ॥२७॥ हे मंगलरूपिणियो! तुमको सुख देनवारो प्यारेको संदेशो सुनो, श्रीकृष्णके रहस्यकार्यके करनवारे संदेशकूं लैके में आयो हों॥२८॥अब भगवान्
गोपीनकूं उपदेश करे है सबको उपादान कारण में हूं मोसो तुम कभऊ दूरी नहीं हो,जैसे आकाश पवन जल पृथ्वी तेज ये पंचतत्त्व समस्त प्राणीनके
देहमें रहे हैं ॥२९॥ तैसे मन बुद्धि प्राण इंद्रिय और गुण इनको आश्रय हूं, अपनेपै में अपने करिकै अपनेकूं उत्पन्न करूंहूं, अपनी मायाके प्रभाव करिके

आत्ममायानुभावेन भूतेन्द्रियगुणात्मना॥३१॥आत्मा ज्ञानमयः शुद्धो व्यतिरिक्तोऽगुणान्वयः ॥ सुषुप्तिस्वप्नजाग्रद्भिर्मायावृत्तिभिरीयते ॥ ३२ ॥ येनेन्द्रियार्थान् ध्यायेत मृषा स्वप्नवदुत्थितः ॥ तन्निरुन्ध्यादिन्द्रियाणि विनिद्रः प्रत्यपद्यत ॥ ३३॥ एतदन्तः समाम्नायो योगः सांख्यं मनीषिणाम्॥त्यागस्तपो दमः सत्यं समुद्रान्ता इवापगाः॥३४॥यत्त्वहं भवतीनां वै दूरे वर्ते प्रियो दृशाम् ॥ मनसः सन्निकर्षार्थं मदनुध्यानकाम्यया ॥३५॥ यथा दूरचरे प्रेष्ठे मन आविश्य वर्तते ॥ स्त्रीणां च न तथा चेतः सन्निकृष्टेऽक्षगोचरे ॥ ३६ ॥ मय्यावेश्य मनः कृत्स्नं विमुक्ताशेषवृत्ति यत् ॥ अनुस्मरन्त्यो मां नित्यमचिरान्मामुपैष्यथ ॥ ३७ ॥

पंचभूत इंद्रिय तीनों गुण इनरूप जो अपनपो है, ता करिके सृष्टिकूं उत्पन्न पालन प्रलय करूंहूं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ यहां एक शंका है आत्मा पंचभूतरूप होय तो वाकूं पंचभूतनके संग दोष लगे है तहां उत्तर करे हैं आत्मा तौ शुद्ध है, काहेते मायाके गुणनमें जाय है सब ते न्यारो है ज्ञानरूप है अहंहो है ॥ ३२॥ अनेक अवस्थामान् प्रतीत होय है, मनके रुकिवेमें जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति अवस्था जाति रहे हैं, यह दिखायवेकूं मनको निरोधविधान करे है जागिके जैसे मिथ्या स्वप्नेको ध्यान करे है, ऐसे मिथ्या विषयनकूं जा मनसूं विचार करिके इंद्रियनकूं पावै है ता मनकूं आलस्य छोड़िके रोको ॥ ३३ ॥ मन जब जाको रुकै है तब कृतार्थ होय है यह कहे हैं, वेद पढेको अष्टांग योग करेको आत्मा अनात्माके विचार करेको, त्याग तप इंद्रियनको जीतीवो सांच बोलिवो इत्यादि कर्मनसूं विवेकीनसो मन रुकै है यही फल है जैसे नदीनको अंत समुद्रमें होय है ॥ ३४ ॥ तुम्हारो प्रियमें तुम्हारी दृष्टिसूं या कारण दूर रहूंहूं कि तुम्हारो मन मेरे विषे लग्यो रहैं और मेरो ध्यान करौ ॥ ३५ ॥ जैसे दूर रहै प्यारे में स्त्रीको मन लग्यो रहे है जो नेत्रनके आगे रहै तामें चित नहीं रहे है ॥ ३६ ॥ सम्पूर्ण वृत्ति त्याग मनको मों कृष्णमें लगायकै नित्य मेरो ध्यान करती रहोगी

327

तौ शीघ्र मोकूं प्राप्त होउगी ॥३७॥ हे मंगलरूपिणियो ! जा समय मैने रात्रि के समय वृन्दावन मे रासक्रीडा करी उस समय जिन गोपियौं को उनके स्वामीने रोकलियो तासे वे रासक्रीड़ामें न आय सकी तब मेरी लीलानको ध्यान करिकै मोहीकूं पावतभई ॥ ३८ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित् ! या प्रकार प्यारे श्रीकृष्णके उपदेशकूं श्रवण करिकै व्रजकी स्त्री गोपी प्रसन्न होयकै भगवानका स्मरणकर उद्धवजीसूं बोलत भई ॥ ३९ ॥ अब संपूर्ण गोपी कहे हैं यादवनको दुःखको देनवारौ अपने भृत्यनसहित वैरी कंस मऱ्यो यह बडो मंगल भयो संपूर्ण मनोरथ पाय

या मया क्रीडता रात्र्यां वनेऽस्मिन् व्रज आस्थिताः ॥ अलब्धरासाः कल्याण्यो मा ऽऽपुर्मद्वीर्यचिन्तया ॥ ३८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं प्रियतमादिष्टमाकर्ण्य व्रजयोषितः ॥ ता ऊचुरुद्धवं प्रीतास्तत्सन्देशाऽऽगतस्मृतीः ॥ ३९ ॥ गोप्य ऊचुः ॥ दिष्ट्याऽहितो हतः कंसो यदूनां सानुगोऽघकृत् ॥ दिष्ट्याऽऽप्तैर्लब्धसर्वार्थैः कुशल्यास्तेऽच्युतोऽधुना ॥४०॥ कच्चिद्गदाग्रजः सौम्य करोति पुरयोषिताम् ॥ प्रीतिं नः स्निग्धसव्रीडहासोदारेक्षणार्चितः ॥४१ ॥ कथं रतिविशेषज्ञः प्रियश्च वरयोषिताम् ॥ नानुबध्येत तद्वाक्यैर्विभ्रमैश्चानुपूजितः ॥ ४२ ॥ अपि स्मरति नः साधो गोविन्दः प्रस्तुते क्वचित् ॥ गोष्ठीमध्ये पुरस्त्रीणां ग्राम्याः स्वैरकथान्तरे ॥ ४३ ॥

हितूनसहित श्रीकृष्णचंद्र प्रसन्न हैं यह बडो मंगल भयो ॥ ४० ॥ हे साधु उद्धव ! रामको छोटो भैया कृष्ण हमसूं जो प्रीति करै हो सो प्रीति कहा मथुराकी स्त्रीनसूं करे है वे सुंदर लाजभरी हंसनि उदारभरी चितवनिसूं वाको सत्कार करे हैं ॥ ४१ ॥ रतिविशेषको जाननवारो प्यारो कृष्ण मथुराकी स्त्रीनके वचननसूं विलासनसूं सब सत्कार करैंगी तब कैसे न बँधैगो ॥ ४२ ॥ हे साधु उद्धव ! गोविंद कभऊ प्रसंग पायकै मथुराकी स्त्रीनकी सभामें बैठिकै तब बातैं करै है, तब गांमकी स्त्री हमारी कभऊ बात स्मरण करै है ॥ ४३ ॥

---

१ सोरठ—छोडगयेमधुबनमें श्यामवंसीवारो रे, विकलरहतहरिविन दिनराती, दहतरहतउनविन नितछाती, करमलमलपछतातीनेह विसारोरे । १ । व्याकुलहो सबरोवनलागी, हमरी प्रीति श्यामने त्यागी, अधिकनेहरसपागीं नैनजलढारोरे ।२। श्यामविनाएतोदुखपावैं, विरहअगिनिमें जरजरजावैं, यो दुखकिसे सुनावैं कौन मेरो प्यारो रे । ३ । वृथाकरतक्यों अरीपरेखा, उनका देखायेही लेखा, कपटीसोंकछुबुलबुलचलतनचारो रे ॥ ४ ॥

हे उद्धवजी ! श्रीकृष्णको कभउ उन रात्रिनको स्मरण आवै है जिनमें कुमोदनी कुंद फूलरहे, चंद्रमाकी चांदनीसो रमणीय वृंदावनमें पावनमें झन्न झन्न नूपुर बजतजांय रासमें हमारे संग रमण करतभयो और हमने उनकी स्तुति की कदाचित स्मरण करे है वा नहीं ॥ ४४ ॥ जैसे ग्रीष्मऋतुसे दग्ध वनके सिंचनकरिवेकों जैसे इंद्र आवै है, तैसे उन कृष्णके दिये शोकसूं पजरीभई हमकूं हाथके स्पर्श करिकै जीवन करत दाशार्हवंशोत्पन्न श्रीकृष्ण कभऊ यहां आवैगो वा नहीं यह गोपी कहे हैं ॥ ४५ ॥ और गोपी कहे हैं आवैगो २ यह कहा लगाई है, कृष्ण यहां काहेकों आवैगो, अब

ताः किं निशाः स्मरति यासु सदा प्रियाभिर्वृन्दावने कुमुदकुन्दशशाङ्करम्ये ॥ रेमे क्वणच्चरणनूपुररासगोष्ठ्यामस्माभिरीडितमनोज्ञकथः कदाचित् ॥४४॥ अप्येष्यतीह दाशार्हस्तप्ताः स्वकृतया शुचा ॥ संजीवयन्नु नो गात्रैर्यथेन्द्रो वनमम्बुदैः ॥ ४५ ॥ कस्मात् कृष्ण इहायाति प्राप्तराज्यो हताऽहितः॥नरेन्द्रकन्या उद्वाह्य प्रीतः सर्वसुहृद्वृतः ॥४६॥किमस्माभिर्वनौकोभिरन्याभिर्वा महात्मनः॥ श्रीपतेराप्तकामस्य क्रियेताऽर्थः कृतात्मनः ॥ ४७॥ परं सौख्यं हि नैराश्यं स्वैरिण्यप्याह पिङ्गला ॥ तज्जानतीनां नः कृष्णे तथाऽप्याशा दुरत्यया ॥ ४८ ॥ क उत्सहेत संत्यक्तुमुत्तमश्लोकसंविदम् ॥ अनिच्छतोऽपि यस्य श्रीरङ्गान्न च्यवते क्वचित् ॥ ४९ ॥

वाकों राज्य मिलिगयो है, शत्रु मारि लियो है, राजानकी कन्या व्याहिलीनी है, सब मित्र वाके पास हैं, प्रसन्न है, अब यहां कहा करेगो ॥ ४६ ॥ और गोपी कहे हैं वीर लक्ष्मीको पति सब वस्तु जाको प्राप्त याहींते परिपूर्ण कृष्णकूं वनकी रहनवारी हमसूं और राजानकी कन्या कहा प्रयोजन है ॥ ४७ ॥ आशाको त्यागिही बडो सुख है, यह पिंगला वेश्याने (एकादशस्कंधमें) कह्यो है निराशा बराबर सुख नहीं है यह जाने हैं तथापि हमारी कृष्णते आशा नहीं छूटे है ॥ ४८ ॥ कृष्णकी एकांतकी बात त्यागिवेकों कौन समर्थ होयगो, वाके राखिवेकी इच्छा नहीं तथापि लक्ष्मी

---

१ रागबडहंस ॥ होगयेश्याम दूजकेचंदा मधुबनजाय भये मधुबनियांहमपरडारो प्रेमको फंदा, मीराके प्रभु गिरिधरनागर अब तौ नेह परचोकछुमंदा ॥

329

अंगमेंतै न्यारी नहीं होय है ॥ ४९ ॥ हे उद्धव ! ता कृष्णकूं हम भूलिजायँतो दुःख नहोय सो भूलनो हमकूं नहीं होय है यह गोपी कहे हैं हे प्रभु उद्धव ! हम विचारी कहूं दोघरीकूं जांय परन्तु वाकूं भूले नहीं है, कदाचित् यमुनापै जांय तो वाकी कारी लहर हमें खायवेकौं दौरे है, जब गोवर्धन पर्वतकूं देखे हैं तव सुधि आयजायहै, यह वही गोवर्धन है जाय सातदिन हाथपै राख्यौ, फेर गौनमें जाय हैं तब सुधि आयजायहै इन्हें धौरी धूमरि कहिकै बुलावैहो, फेरि बांसुरी श्रवणकरे वाकी सुधि आयजायहै वाकों कैसे भूलें जाने बलदेवजीकूं संग लैके ऐसे आचरण करे

सरिच्छैलवनोद्देशा गावो वेणुरवा इमे ॥ सङ्कर्षणसहायेन कृष्णेनाऽऽचरिताः प्रभो ॥ ५० ॥ पुनः पुनः स्मारयन्ति नन्दगोपसुतं बत ॥ श्रीनिकेतैस्तत्पदकैर्विस्मर्तुं नैव शक्नुमः ॥ ५१ ॥ गत्या ललितयोदारहासलीलावलोकनैः ॥ माध्व्या गिरा हृतधियः कथं तद्र विस्मरामहे ॥ ५२ ॥ हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ॥ मग्नमुद्धर गोविन्द गोकुलं वृजिनार्णवे ॥ ५३ ॥

है ॥ ५० ॥ हे उद्धवजी! नंदगोपके पुत्र कृष्णके सुन्दर शोभायमान चरणनके खोज देखिकै भूलिवेकूं समर्थ नहीं होय हैं विरहमें वारंवार स्मरण करामें हैं ॥ ५१ ॥ मनोहर चलनि, उदार हंसानि लीलापूर्वक चितवनि, मनोहर वचन, इनसूं हमारी बुद्धि हरि लीनी वा कृष्णकूं कैसे भूलें ॥ ५२ ॥ अवं तौ मथुराकी ओर हाथ उठायके पुकारत भई हे रमानाथ ! हे ब्रजनाथ ! हे दुःखनके दूर करनवारे ! हे गोविंद ! यह नामतौ गौनको पालनकरोगे तवही रहैगो नहीं तौ या नामको हाथ आरि बैठो, और जासमय इंद्र वर्षों तब यह संकल्प करचोहो कि अपने ब्रजकी मैं रक्षा करूंगो सो अब तो तुमारेही विरह

---

१ सारंग–विनगोपालवैरनभइँकुंजै, तवएलतालगतअतिशीतल अब भइँ विषमज्वालकी पुंजै, वृथा बहत यमुनाखग वोलत वृथा कमल फूले आलि गुंजै, सूरदासप्रभुको मगजोवत आंखियाँ भई वर न ज्यों गुंजै ॥ १ ॥ राग देस–नाथअनाथनकी सुधिलीजै, तुमाविन दीन दुखित हैं गोपी वे गाहिदर्शन दीजै, नैन सकल भरि आये हरिविन ऊधौको पतियां लिख दीजै, सूरदासप्रभु आश मिलनकी अवकीवेर हरि आवनकीजै ॥ २ ॥

रूप समुद्रमें गोकुल डुब्यो जाय है शीघ्र आयके याको उद्धार करौ ॥ ६३ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित् ! श्रीकृष्णके संदेशनसूं विरह ताप मिटाय गोपी श्रीकृष्णको परमेश्वर जानिके और परमेश्वरको अपनो आत्मा निश्चय करिके उद्धवजीकी पूजा करत भई ॥ ५४ ॥ गोपीनके शोक दूरि करिवेके निमित्त कितनेहूं मास उद्धवजी व्रजमें वास करतभये, कृष्णचंद्रकी लीला कथा गायगायके व्रजवासीनकूं आनंद देत भये ॥ ५५ ॥ जितने दिन पर्यन्त उद्धवजी नंदके व्रजमें वसे, उतने दिन व्रजवासीनकों कृष्णकी वातनसूं क्षण समान बीततभये ॥ ५६ ॥ नदीपर्वत वन गुफा पुष्पित वृक्ष इत्यादिकनकूं देखिकैं हरिदास उद्धवजी व्रजवासीनको श्रीकृष्णका स्मरण करावतभये ॥ ५७ ॥ गोपीनके चित्तकूं या प्रकार श्रीकृष्णनमें लीन होनेसे व्याकुल देखिकै परम प्रसन्न होयके उद्धवजी गोपीनकूं दंडवत कर कहतभये ॥ ५८ ॥ इन गोपीनकी स्त्रीनको पृथ्वीपै जन्म सफल है, काहेसे कि सबके आत्मा गोविंदमें इनको परम प्रेम भयो है, जा प्रेमकूं संसारते भयभीत मुमुक्षु पुरुष और मुक्त और हम भक्त इच्छा करे हैं अनंत श्रीकृष्णकी कथामें जा पुरुषको अनुराग है, वाकूं ब्रह्मजन्मसूं कहा प्रयोजन है, अथव एक तो शुद्ध माता पितासूं द्वितीय

॥ श्रीशुक उवाच ॥ ततस्ताः कृष्णसन्देशैर्व्यपेतविरहज्वराः ॥ उद्धवं पूजयाञ्चक्रुर्ज्ञात्वात्मानमधोक्षजम् ॥ ५४ ॥ उवास कतिचिन्मासान् गोपीनां विनुदन् शुचः ॥ कृष्णलीलाकथां गायन् रमयामास गोकुलम् ॥ ५५ ॥ यावन्त्यहानि नन्दस्य व्रजेऽवात्सीत् स उद्धवः ॥ व्रजौकसां क्षणप्रायाण्यासन् कृष्णस्य वार्तया ॥ ५६ ॥ सरिद्वनगिरिद्रोणीर्वीक्षन् कुसुमितान् द्रुमान् ॥ कृष्णं संस्मारयन् रेमे हरिदासो व्रजौकसाम् ॥ ५७ ॥ दृष्ट्वैवमादि गोपीनां कृष्णाऽऽवेशात्मविक्लवम् ॥ उद्धवः परमप्रीतस्ता नमस्यन्निदं जगौ ॥ ५८ ॥ एताः परं तनुभृतो भुवि गोपवध्वो गोविन्द एव निखिलात्मनि रूढभावाः ॥ वाञ्छन्ति यद्भवभियो मुनयो वयं च किं ब्रह्मजन्मभिरनन्तकथारसस्य ॥ ५९ ॥

---

१ जित देखें तित श्याममई है, श्यामकुंजवनयमुनाश्यामाश्याम गगनघनवटाछई हैं, सब रंगनमें श्याम भरो है लोग कहत यह बात नई है, मैं बौरनके लोग [illegible] की श्याम पुतरिया बदलगई है, चंद्रसार रविसार श्याम है मृगमदश्यामकामाविजई है, नीलकंठको कंठ श्याम है मनोश्यामतावेलिवई है, श्रुतिको अक्षर श्याम देखियत दीपशिखा [illegible] श्यामतई है, नरदेवनकी मोहरश्यामा अलखब्रह्मछवि श्यामभई है ॥

332

गायत्रीउपदेशसूं तृतीय यज्ञदीक्षासूं जे ब्राह्मणके तीन जन्म है तिनसूं कहा प्रयोजन है ॥ ५९ ॥ वृन्दावनकी विचरनवारी व्यभिचारदृष्टि करिकै दूषित गोपी स्त्री कहां और परमात्मा श्रीकृष्णमें आरूढभाव वारे मन कहां निरन्तर भगवान्‌को स्मरण कर अज्ञानी पुरुषभी कल्याण प्राप्त करे हैं जैसे कोई मनुष्य अमृतको सेवन करे वह अमर होय है ॥ ६० ॥ सर्वकाल अंगमें रहनहारी लक्ष्मीपैभी यह प्रसन्नता न भई, और कमलके गंधकीसी कांतिवारी देवांगनानकूं जो प्रसाद नहीं मिल्यो, सो रासके उत्सवमें श्रीकृष्णके भुजदंडनसूं गल वाहीं लगायके व्रजसुंदरीनकूं मिलतभयो ॥ ६१ ॥

क्वेमाः स्त्रियो वनचरीर्व्यभिचारदुष्टाः कृष्णे क्व चैष परमात्मनि रूढभावः ॥ नन्वीश्वरोऽनुभजतो विदुषोऽपि साक्षाच्छ्रेयस्तनोत्यगदराज इवोपयुक्तः ॥ ६० ॥ नायं श्रियोऽङ्ग उ नितान्तरतेः प्रसादः स्वर्योषितां नलिनगन्धरुचां कुतोऽन्याः ॥ रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठलब्धाशिषां य उदगाद् व्रजवल्लवीनाम् ॥ ६१ ॥ आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ॥ या दुस्त्यजं स्वजनमार्यपथं च हित्वा भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्यम् ॥ ६२ ॥ या वै श्रियाऽर्चितमजादिभिराप्तकामैर्योगेश्वरैरपि यदात्मनि रासगोष्ठ्याम् ॥ कृष्णस्य तद् भगवतश्चरणारविन्दं न्यस्तं स्तनेषु विजहुः परिरभ्य तापम् ॥ ६३ ॥ वन्दे नन्दव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः ॥ यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥ ६४ ॥

इन गोपीनके चरणरजको सेवन करनवारो वृन्दावनमें गुल्म लता औषधिनमें कछु मेरो जन्म होय जें गोपी दुस्त्यज अपने भैया बंधु बडेनके मार्गको त्यागिकै वेदगम्य मुकुन्द श्रीकृष्णके मार्गकूं सेवन करतभई ॥ ६२ ॥ लक्ष्मी जिन चरणोंका पूजन करती पूर्ण काम ब्रह्मादिक देवता और योगीश्वर जिनको अपने हृदयमें चिन्तन करते उन श्रीकृष्णभगवान्‌के चरणारविंदकूं रासमभामें स्तननके ऊपर धरिकै आलिंगन करिकै यह गोपी तापकों दूर करतभई ॥६३॥ नंदके व्रजकी स्त्रीनके चरणकी रजको वारंवार नमस्कार करूहूं, जिन गोपीनकी गाई हरिकथा तीनों लोकनको

पवित्र करे है ॥ ६४ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित ! याके पीछे गोपिनसूं यशोदाजीसूं नंदरायजीसूं गोपनसूं आज्ञा मांगिके दाशार्हवंशोत्पन्न उद्धवजी गमनसमय रथमें बैठत भये ॥ ६५ ॥ उद्धवजीके विदा होनेके समय नन्दरायजीसूं आदि लैके समस्त ब्रजवासी अनेक प्रकारकी भेटनको हाथमें लैके उद्धवजीके पास आयके स्नेहतै आंशूं नेत्रमें भर ब्रजवासी बोलत भये ॥ ६६ ॥ हमारे मनकी वृत्ति श्रीकृष्णके चरणारविंदमें लगी है, और हमारी वाणी वा कृष्णको नाम लियो करे है, हमारो शरीर वा कृष्णकूं प्रणाम करे है ॥६७॥ अपने कर्मानुसार ईश्वरकी इच्छातै जा काहू योनिमें

॥ श्रीशुक उवाच ॥ अथ गोपीरनुज्ञाप्य यशोदां नन्दमेव च ॥ गोपानामन्त्र्य दाशार्हो यास्यन्नारुरुहे रथम् ॥ ६५ ॥ तं निर्गतं समासाद्य नानोपायनपाणयः ॥ नन्दादयोऽनुरागेण प्रावोचन्नश्रुलोचनाः ॥६६॥ मनसो वृत्तयो नः स्युः कृष्णपादाम्बुजाश्रयाः ॥ वाचोऽभिधायिनीर्नाम्नां कायस्तत्प्रह्वणादिषु ॥६७॥कर्मभिर्भ्राम्यमाणानां यत्र क्वापीश्वरेच्छया॥ मङ्गलाचरितैर्दानैर्मतिर्नः कृष्ण ईश्वरे ॥ ६८ ॥ एवं सभाजितो गोपैः कृष्णभक्त्या नराधिप ॥ उद्धवः पुनरागच्छन्मथुरां कृष्णपालिताम् ॥ ६९ ॥ कृष्णाय प्रणिपत्याह भक्त्युद्रेकं व्रजौकसाम् ॥ वसुदेवाय रामाय राज्ञे चोपायनान्यदात ॥ ७० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे पूर्वार्धे उद्धवप्रतियाने सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

हम जायँ, तो जो कछु हमने मंगलरूप कर्म्म करे हैं अथवा दान करे हैं तिनको यही फल मांगे हैं कि कृष्णमें हमारी प्रीति रहै ॥ ६८ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! या प्रकार गोपीनने कृष्णसै उद्धवजीका सत्कार किया तब उद्धवजी उनसै विदा होय कृष्णपालित मथुरापुरीमें आवत भये ॥ ६९ ॥ श्रीकृष्णको प्रणाम करिकै उद्धवजी ब्रजवासीनकी भक्तिकी अधिकता कहत भये, और वसुदेवकौ प्रणाम करिकै बलदेवजीकौ प्रणाम करिकै

---

१ कवित्त–तासमय गोपी बोलीं ॥ ओढवेकोकंथाअरुभस्मरमाइवेकोकाननकेकुंडलकरटोपियांबनांवैंगी, हाथमेंकमंडलअरुखप्परभरायवेकोआदिआदेशकरशृंगियाबजावैंगी। ऋद्धिदीनीकुबजाको सिद्धिदीनीगोपिनकोफिरैंगीद्वार २ अलखहूजगावैंगी, एकबातऊधोजीहरिसोंयोंकहियोजायएतीव्रजवालामृगछालाकहांपावैंगी ॥ चौपाई ॥ जसोदा बोली–इतनीदयामातुपरकीजे एकवारफिरदर्शनदीजे । सोरठा–दईयशोमतिमाय, मुरलीललितगुपालकी, ऊधोदीजोजाय, प्यारीहीअतिलालकी । नन्ददोहनीभरिदई, कह्योनैनभरिनीर, बाधारीकोदूधयह, भावतहोबलबीर ॥

राजा उग्रसेनको भेट देत भये ॥ ७० ॥ इति श्रीमन्महाभागवते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे उद्धवप्र० सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित ! उद्धवजी जब व्रजतै आए ताके पीछे सबके आत्मा और सबके देखनवारे छ प्रकारके ऐश्वर्य करिके युक्त श्रीकृष्णचंद्र कामसूं तपायमान कुब्जाके प्रिय करिवेके लिये वाके घर जातभये ॥ १ ॥ कैसो घर है ताको वर्णन करे हैं बडे मोलकी अनेक तरहकी जामें वस्तु धरी हैं, कामके उद्दीपन करनवारे चित्र जामें लिखे हैं, मोतीनकी झालरि जिनमें लटकैं, ऐसी पताका फहराय हैं चंदोवा तनिरहे हैं, शय्या बिछरही है, सुंदर आसन बिछे है सुगंधिकी धूप लगि रही है, दीवा प्रज्वलित होय रहे हैं माला अतर अरगजा धरे हैं, तिनसों शोभायमान घर हैं ॥ २ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ अथ विज्ञाय भगवान् सर्वात्मा सर्वदर्शनः ॥ सैरन्ध्र्याः कामतप्तायाः प्रियमिच्छन् गृहं ययौ ॥ १ ॥
महार्होपस्करैराढ्यं कामोपायोपबृंहितम् ॥ मुक्तादामपताकाभिर्वितानशयनादिभिः ॥धूपैः सुरभिभिर्दीपैः स्रग्गन्धै-
रपि मण्डितम्॥२॥ गृहं तमायान्तमवेक्ष्य साऽऽसनात् सद्यः समुत्थाय हि जातसंभ्रमा॥ यथोपसंगम्य सखीभिरच्युतं
सभाजयामास सदासनादिभिः ॥ ३ ॥ तथोद्धवः साधुतयाऽभिपूजितोन्यषीददुर्व्यामभिमृश्य चासनम् ॥ कृष्णोऽपि
तूर्णं शयनं महाधनं विवेश लोकाचरितान्यनुव्रतः ॥ ४॥ सा मज्जनालेपदुकूलभूषणस्रग्गन्धताम्बूलसुधासवादिभिः ॥
प्रसाधितात्मोपससार माधवं सव्रीडलीलोत्स्मितविभ्रमेक्षितैः ॥ ५ ॥

श्रीकृष्णको अपने घरमें आये देखिकै कुब्जा जलदी देशी आसनपैते उठिकै हरबराहट पाय या प्रकार सखीनको संग लिये श्रीकृष्णके पास आवति भई, सुन्दर आसन बिछायक चरण धोइकै सत्कार करत भई ॥ ३ ॥ तैसेही भले प्रकार पूजन पाय उद्धवजी आसनकूं हाथ लगायकै पृथ्वीमें बैठतभये, लौकिक लीलानकूं करनहारे श्रीकृष्ण जलदी देशी सुन्दर बिछी शय्यापै जातभये ॥ ४ ॥ स्नान करिकै चंदन लगाय सुन्दर वस्त्र पहिर गहने माला अतर अरगजा ताम्बूल और अमृतकीसीनाईं मादक वस्तुसूं अपनपेकूं बनाय ठनायकै लाजभरी लीलापूर्वक मुसिकानि कटाक्ष भरी

चितवनिसूं मोहित भई कृष्णके पास आई ॥ ५ ॥ नवीन समागमकी लज्जासूं शंकासहित कुब्जाकूं बुलायके कंकण करिकै शोभायमान हाथको पकरिकै शय्यापै बैठायके चन्दन देने तनक पुण्य कियेसे जो कुब्जा स्त्रीके संग श्रीकृष्ण रमण करत भये ॥ ६ ॥ कामदेवसूं तप्त कुचनको छाती और नेत्रनके तापकूं अनन्त श्रीकृष्णके चरणारविंदकूं लगायकै और वा चरणारविंदकूं सूंघिकै, स्तननके मध्यमें प्राप्तभये सुन्दर आनन्द मूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रको भुजानसूं आलिंगन करिकै बहुत दिनसूं बढे तापकूं त्यागतभई ॥ ७ ॥ चन्दनके अर्पण करेते मोक्षके देनवारे दुर्लभ श्रीकृष्ण ईश्वरको पा-

आहूय कान्तां नवसंगमह्रिया विशङ्कितां कङ्कणभूषिते करे ॥ प्रगृह्य शय्यामधिवेश्य रामया रेमेऽनुलेपार्पणपुण्यलेशया ॥ ६ ॥ साऽनङ्गतप्तकुचयोरुरसस्तथाक्ष्णोर्जिघ्रन्त्यनन्तचरणेन रुजो मृजन्ती ॥ दोर्भ्यां स्तनान्तरगतं परिरभ्य कान्तमानन्दमूर्तिमजहादतिदीर्घतापम् ॥ ७ ॥ सैवं कैवल्यनाथं तं प्राप्य दुष्प्रापमीश्वरम् ॥ अङ्गरागार्पणेनाहो दुर्भगेदमयाचत ॥ ८ ॥ आहोष्यतामिह प्रेष्ठ दिनानि कतिचिन्मया ॥ रमस्व नोत्सहे त्यक्तुं सङ्गं तेऽम्बुरुहेक्षण ॥ ९ ॥ तस्य कामवरं दत्त्वा मानयित्वा च मानद ॥ सहोद्धवेन सर्वेशः स्वधामागमदर्चितः ॥ १० ॥ दुराराध्यं समाराध्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ॥ यो वृणीते मनोग्राह्यमसत्त्वात् कुमनीष्यसौ ॥ ११ ॥ अक्रूरभवनं कृष्णः सहरामोद्धवः प्रभुः ॥ किञ्चिच्चिकीर्षयन् प्रागादक्रूरप्रियकाम्यया ॥ १२ ॥

यके अभागिनी कुब्जा मांगति भई ॥ ८ ॥ अहो प्यारे! कोई दिन वसिके मेरे संग रमण करो, हे कमलनेत्र ! तुम मोपै त्यागे नहीं जाओ हो ॥ ९ ॥ एक वेर तेरे नित्य होय जाओ करूंगो ऐसे ता कुब्जाको कामवर देकै वाको सन्मान करिके मानके देनवारे ब्रह्मादिकनके ईश्वर श्रीकृष्ण उद्धवजीको संग लैके सुन्दर अपने घरमें आवतभये ॥ १० ॥ संपूर्ण ईश्वरनके ईश्वर दुःख करिकै आराधन करिवेमें आमें ऐसे विष्णुको प्रसन्न करिके पुरुष विषयनको वर मांगे वह वडो कुबुद्धि है क्यों कि विषय तुच्छ है ॥ ११ ॥ बलदेव उद्धवजीको संग लैके समर्थ श्रीकृष्ण कछु कार्य करायवेके लिये अ-

क्रूरको भलो मनाईवेके निमित्त अक्रूरके घर जातभये ॥ १२ ॥ अक्रूरजी मनुष्यनमें श्रेष्ठ अपने बंधु श्रीकृष्णबलदेवको दूरते देखिके प्रसन्न होयकै मिलिकै आनन्द पावत भये ॥ १३ ॥ कृष्ण बलदेव उद्धवजीने उन्हे नमस्कार करी अक्रूरजीने पश्चात् कृष्ण बलदेवको प्रणाम कर और आसनपै बैठाय कृष्ण बलदेवकी पूजा करी ॥ १४ ॥ हे राजन् परीक्षित्! कृष्ण बलदेवके चरणनको धोमनके जलकू शिरपै चढावत भये भेंट दिव्यवस्त्र चन्दन माला उत्तम गहनेनसूं पूजा करिके चरण धोइके प्रणाम करतभये, और गोदमें चरणनकू धरिकैं दाबत भये, आधीनतापूर्वक नविकै अक्रूरजी कृष्ण बलदेवजीसूं बोलत भये ॥ १५ ॥ १६ ॥ मंत्रीन सहित पापी कंस मारो बडे कष्टते तुमने या अपने कुलको उद्धार कियो, और कुलको बढायो, यह बडो मंगल भयो ॥ १७ ॥ तुम प्रकृतिरूप हों जगत्के कारण हों जगन्मय तुमते पृथक् कछु कार्य कारण नहीं है ॥ १८ ॥ तुम अपने रचे विश्वमें अपनी शक्तिनसहित प्रवेश करिके हे ब्रह्मन् अर्थात् परमेश्वर ! श्रवण करिवेमें देखिवेमें बहुत प्रकारके प्रतीत होउहो ॥ १९ ॥ जैसे स्थावर जंगम देहमें पृथ्वीको आदि लैके पंचभूत है तिनकूं अनेक प्रकार करिकै प्रकाशो हो, ऐसे अपने आधीन अकेले तुम आपही आपने कार्य पंचभूत और पंचभूतनके बने देहमें बहुतरूप करिकै प्रकाशो हो ॥ २० ॥

स तान् नरवरश्रेष्ठानाराद्वीक्ष्य स्वबान्धवान् ॥ प्रत्युत्थाय प्रमुदितः परिष्वज्याभिनन्द्य च ॥ १३ ॥ ननाम कृष्णं रामं च स तैरप्यभिवादितः ॥ पूजयामास विधिवत् कृतासनपरिग्रहान् ॥ १४ ॥ पादावनेजनीरापो धारयञ्छिरसा नृप ॥ अर्हणेनाम्बरैर्दिव्यैर्गन्धस्रग्भूषणोत्तमैः ॥ १५ ॥ अर्चित्वा शिरसाऽनम्य पादावङ्कगतौ मृजन् ॥ प्रश्रयावनतोऽक्रूरः कृष्णरामावभाषत ॥ १६ ॥ दिष्ट्या पापो हतः कंसः सानुगो वामिदं कुलम् ॥ भवद्भ्यामुद्धृतं कृच्छ्राद्दुरन्ताच्च समेधितम् ॥ १७ ॥ युवां प्रधानपुरुषौ जगद्धेतू जगन्मयौ ॥ भवद्भ्यां न विना किञ्चित् परमस्ति न चापरम् ॥ १८ ॥ आत्मसृष्टमिदं विश्वमन्वाविश्य स्वशक्तिभिः ॥ ईयते बहुधा ब्रह्मन् श्रुतप्रत्यक्षगोचरम् ॥ १९ ॥ यथा हि भूतेषु चराचरेषु मह्यादयो योनिषु भान्ति नाना ॥ एवं भवान् केवल आत्मयोनिष्वात्मात्मतन्त्रो बहुधा विभाति ॥ २० ॥

रजोगुण तमोगुण सत्त्वगुण अपनी शक्ति है तिनसों विश्वको उत्पन्न पालन प्रलय करोहो गुण और उत्पत्त्यादिक कर्म्मनसों बंधे नहीं हो ज्ञानरूप तुमहो तिनकूं बंधन करनवारी अविद्या नहीं है ॥ २१ ॥ देहादि उपाधि झूठी सांच कहिवेमें नहीं आवै ताते आत्माको साक्षात् जन्म नहीं है जन्मको कारण भेद नहीं है तुममें अविद्या नहीं है याते बंधे नहीं हो छूटेभी नहीं हो ऐसे बंध मोक्ष दोनों तुमको नहीं हैं उलूखलमें मोकों बंधो सुनो है, यमुनाके भीतर खुल्यो देखो है, बंधमोक्ष कैसे नहीं हैं हमारे अज्ञान करिकै बंध मोक्ष दिखाई देउहो, तुम बंधे हो न छूटे हो ॥ २२ ॥ जगत्के कल्याण करिवेके निमित्त तुम्हारो कह्यो सनातन वेदमार्ग जासमय असाधुनके पाखंडमार्गसे बाधित होय है

सृजस्यथो लुम्पसि पासि विश्वं रजस्तमःसत्त्वगुणैः स्वशक्तिभिः ॥ न बध्यसे तद्गुणकर्मभिर्वा ज्ञानात्मनस्ते क्व च बन्धहेतुः ॥ २१ ॥ देहाद्युपाधेरनिरूपितत्वाद्भावो न साक्षान्न भिदाऽऽत्मनः स्यात् ॥ अतो न बन्धस्तव नैव मोक्षः स्यातां निकामस्त्वयि नोऽविवेकः ॥ २२ ॥ त्वयोदितोऽयं जगतो हिताय यदा यदा वेदपथः पुराणः ॥ बाध्येत पाखण्डपथैरसद्भिस्तदा भवान् सत्त्वगुणं बिभर्ति ॥ २३ ॥ स त्वं प्रभोऽद्य वसुदेवगृहेऽवतीर्णः स्वांशेन भारमपनेतुमिहासि भूमेः ॥ अक्षौहिणीशतवधेन सुरेतरांशराज्ञाममुष्य च कुलस्य यशो वितन्वन् ॥ २४ ॥ अद्येश नो वसतयः खलु भूरिभागा यः सर्वदेवपितृभूतनृदेवमूर्तिः ॥ यत्पादशौचसलिलं त्रिजगत् पुनाति स त्वं जगद्गुरुरधोक्षज याः प्रविष्टः ॥ २५ ॥

तासमय सत्त्वगुण रूपको धारण करोहो ॥ २३ हे प्रभो ! तुम या संसार में पृथ्वी का भार उतारिवेके लिये अपने अंश बलदेव सहित वसुदेवजीके घरमें जन्मै हो देवतानते इतर जे असुर तिनके अंशनतै उत्पन्न भये जे राजा हैं तिनकी सेकरान अक्षोहिणीनके वध करोगे और यदुकुलंको यशकूं बढाओगे ॥ २४ ॥ हे ईश ! आज हमारो घर निश्चय बडभागी है, सब देवता पितृ मनुष्य प्राणी देवरूप तुम हो तुम्हारे चरणारविंदको धोमन जल गंगारूप तीनों लोकनकूं पवित्र करे है सो तुम जगतके गुरु अधोक्षज भगवान् हमारे घरमें आये हो याते हमारो घर बडभागी है ॥२५॥

हे प्रभु! आप भक्तवत्सल सत्यवक्ता सबके हितकारी कृतके जाननवारे तिनकूं त्यागिकै ऐसो बुद्धिमान कौन है जो अन्यकी शरण [illegible],भजन करनवारेनकूं तुम संपूर्ण कामनानको देउहौ, और अपने आत्माकूंभी देउहो, और तुम्हारे यह उत्तमहै यह नीचहै यह भेद नहींहै॥२६॥हे जनार्दन!आपने घरमें आयकै

कः पण्डितस्त्वदपरं शरणं समीयाद्भक्तप्रियादृतगिरः सुहृदः कृतज्ञात् ॥ सर्वान् ददाति सुहृदो भजतोऽभिकामा ना-
त्मानमप्युपचयापचयौ न यस्य ॥ २६ ॥ दिष्ट्या जनार्दन भवानिह नः प्रतीतो योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः ॥
छिन्ध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्तगेहदेहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥ २७ ॥ इत्यर्चितः संस्तुतश्च भक्तेन भगवा-
न्हरिः ॥ अक्रूरं सस्मितं प्राह गीर्भिः संमोहयन्निव ॥ २८ ॥

दर्शन दीनों यह बडो मंगल भयो,योगेश्वर और देवता ये तुमारे स्वरूपकूं नहीं जानेहैं पुत्र स्त्री धन हितकारी घर देहादिकनमें मोहकी रस्सीरूप जो तुम्हारी माया है सो हमको लगिरही ताये जलदी काटो ॥ २७ ॥ भक्त अक्रूरनें जब याप्रकार पूजन और स्तुति करी तौ भगवान् श्रीकृष्ण वाणीनसूं मोहित

---

१ यह संसार झूंठा है कोई किसीका नही है, एक सेठजीका लडका घरसे रूठकै एक बाबाजीपै चलागया और कही मुझे चेला करलो, बाबाजी बोले बच्चा चेलागुरूसबझूठीबातहै वह बैठरहा बाबाजी बातेंकरनेलगे, संध्याको जब गुस्साउतरगया, तौ बोला बावाजी मेरी मा मुझै बहुतप्यारकरै है, वह बडी दुःखी होगी, मैं जाऊंहू, बाबाजी बोले बच्चायहसब झूंठहै, जाफिर भी आइये, वहघर गया माता पिताने प्रसन्न हो प्रसाद वटाया, और बाबाजीके पास आयो जायो करै, बाबार्जीने उसे प्राणायामसमाधी सिखादी, और एकदिन बोले आज भोजन करके प्राण चढालीजो, कौन किसका है विदित होजायगा, उसनें जायकै भोजन कर प्राण चढालिये, जब चार बजे और वह न उठा, तवउसकीमाताने जाकै जगाया, देखो तौ प्राणही नहीं, लगी सिर पीटने पिता स्त्री सब प्राणप्यारा कह रोने लगे, मित्रादिसबरोने लगे, प्राण देने लगे, सिरपटकने लगे, गुणकथन करने लगे, जब बडेव्याकुलहुए, एकने कही यह बाबाजीपे बहुतजायथा, एकमनुष्य बाबाजीको बुलाकैलाया, बाबाजी देखकै बोले यह तौ अबहोचुका, सब पैरों पै गिरे कि महाराजचाहैं हममरजांय, परन्तु यह पुत्र जी जाय, बाबाजी बोले तौ एककटोरा दूध मिश्री डालकै ले आओ, कटोरा आतेही बाबाजीने उतारके सातवार पांयतेधरादिया, और वोले जो इसे पीवेगा वह मरजायगा, और इसमे प्राण आयजायंगे, यह सुनते ही सब सुन्नहोगये, अडौसी पडौसी बोले कहांकी आफत आगई, मित्रादिसब चलने लगे, कोई बोली लल्लारोता होगा, किसीकू लघुशंका किसीकू दिशानेसताये, केवलमाता पिता स्त्रीरहगये, वे कहां जाय बाबाजी बालकके पितासेबोले तुमही पीलो, जब तौ प्राणखोवे है, सेठजी बोले जोमेंजीउंगोतौ औरलल्लाहो रहैगा, फिरबाबाजी मातासे बोले तुमपीलो, जब तौ प्राण दियेदेही, वहबोली लालाके चाचा जीते रहैंगेतौ औरहो जांयगे फिर बाबाजी वा स्त्रीसेबोले तूपीले, अर्द्धांगनीहै वोह बहूत कहनेसे वोली मुझे ह्यां रोटी नामिलैगी तौ माबापके चली जाउंगी, जवकोई सम्मत नहुए तौ बाबाजी बोले तौ हमही पीलें, तीनो हाथजोडकै बोले महाराज इतनीकृपा आपही करो, बाबाजीने हंसके पीलिया, और उसकी नाडी ज्यों दवाई, उठबैठा, सेठजीके बडा मंगलहुआ, वा बाबाजी उस लडकेसे बोले, देख बच्चा संसारझूठाहैकिनहीं सब अपने २ स्वार्थहीके हैं ॥

करत मुसिकायके अक्रूरजीते बोलत भये॥२८॥श्रीकृष्ण भगवान् कहे है तुम हमारे गुरु हो,नित्य स्तुति करिवे योग्य हौ, बंधु हौ हम तुमारे लरिकावारे हैं, हमारी रक्षा करो पोषण करो हमपै कृपा करो॥२९॥ हे पूज्यनमें श्रेष्ठ ! तुम सदृश बडभागी कल्याणकी इच्छा करनेहारे मनुष्यनको नित्य सेवा करिवे लायक हौ, देवता आप स्वार्थी हैं साधु महात्मा आप स्वार्थी नहीं होय हैं ॥ ३० ॥ कहां जलमय तीर्थ नहीं हैं, और मृत्तिका सिलानके बने देवता नहीं हैं किंतु वे सब बहुत दिन पर्यंत सेवा करनेते पवित्र करे हैं, और साधु जो हैं ते दर्शनहीं ते पवित्र करे हैं ॥ ३१ ॥ हे अक्रूरजी ! तुम

श्रीभगवानुवाच ॥ त्वं नो गुरुः पितृव्यश्च श्लाघ्यो बन्धुश्च नित्यदा ॥ वयं तु रक्ष्याः पोष्याश्च अनुकम्प्याः प्रजा हि वः ॥ २९ ॥ भवद्विधा महाभागा निषेव्या अर्हसत्तमाः ॥ श्रेयस्कामैर्नृभिर्नित्यं देवाः स्वार्था न साधवः ॥ ३० ॥ न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥ ३१ ॥ स भवान् सुहृदां वै नः श्रेयान् श्रेयश्चिकीर्षया ॥ जिज्ञासार्थं पाण्डवानां गच्छस्व त्वं गजाह्वयम् ॥ ३२ ॥ पितर्युपरते बालाः सह मात्रा सुदुःखिताः ॥ आनीताः स्वपुरं राज्ञा वसन्त इति शुश्रुम ॥३३॥ तेषु राजाऽम्बिकापुत्रो भ्रातृपुत्रेषु दीनधीः॥ समो न वर्तते नूनं दुष्पुत्रवशगोन्धदृक् ॥ ३४ ॥ गच्छ जानीहि तद्वृत्तमधुना साध्वसाधु वा ॥ विज्ञाय तद् विधास्यामो यथा शं सुहृदां भवेत् ॥ ३५ ॥

हमारे सुहृदनमें उत्तम हो याते पांडवनके कल्याण करिवेके लिये हस्तिनापुरकूं जाओ ॥ ३२ ॥ पिता पांडुको मरण भये पीछे माता कुन्ती सहित दुःखित पांडव बालकनको धृतराष्ट्र अपने पुरमें लेआयो है, वाके पास रहे हैं यह मनेनी है ॥३३ ॥ लुब्ध बुद्धि अंबिकाको पुत्र राजा धृतराष्ट्र भैयाँके पुत्र पाण्डवनमें समता नहीं राखै है, दुष्टदुर्योधनकूं आदिलैके पुत्रनके आधीन होय रह्यो है आंधरि जाकी दृष्टि है॥ ३४ ॥ तुम अब हस्तिनापुरको जाओ, बुरी भली उनकी सब खबरि लाओ, हम जानिकै पाण्डवनको जामें शुभ होय वह उपाय करेंगे ॥ ३५ ॥

या प्रकार अक्रूरजीसों कहिकै छः प्रकारके ऐश्वर्य युक्त हरि श्रीकृष्णचंद्र बलदेव और उद्धवजीको संगलैके अपने घर आवतभये ॥ ३६ ॥ इति श्रीभा॰ भा॰ दश॰ पू॰ अक्रूरप्रेषणं नामाष्टचत्वारिंशोध्यायः ॥ ४८॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित् ! पुरुवंशी राजानके यशते शोभायमान हस्तिनापुरमें जायकै अंबिकाके पुत्र धृतराष्ट्रकूं अक्रूरजी देखतभये, और भीष्मपितामह विदुर कुंती और सोमदत्त पुत्रसहित बाल्हीहक भारद्वाज अर्थात् द्रोणाचार्य गौतम अर्थात् कृपाचार्य कर्ण दुर्योधन अश्वत्थामा पांचो पांडव और जो सुहृद हैं तिन सबकूं देखतभये ॥ १ ॥ २ ॥ गांदिनीके पुत्र अक्रूरजी बंधुनके संग यथायोग्य मिलिकै, ते बंधु सुहृदनकी वार्त्ता अक्रूरजीतै पूछतभये, और अक्रूरजी आप उनतै कुशल क्षेम

इत्यक्रूरं समादिश्य भगवान् हरिरीश्वरः ॥ संकर्षणोद्धवाभ्यां वै ततः स्वभवनं ययौ ॥ ३६ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे पूर्वार्धेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥४८॥ श्रीशुक उवाच ॥ स गत्वा हास्तिनपुरं पौरवेन्द्रयशोऽङ्कितम् ॥ ददर्श तत्राम्बिकेयं सभीष्मं विदुरं पृथाम् ॥१॥ सहपुत्रं च बाह्लीकं भारद्वाजं सगौतमम् ॥ कर्णं सुयोधनं द्रौणिं पाण्डवान् सुहृदोऽपरान् ॥२॥ यथावदुपसंगम्य बन्धुभिर्गान्दिनीसुतः ॥संपृष्टस्तैः सुहृद्वार्त्तां स्वयं चापृच्छदव्ययम् ॥ ३ ॥ उवास कतिचिन्मासान् राज्ञो वृत्तविवित्सया ॥ दुष्प्रजस्याल्पसारस्य खलच्छन्दानुवर्तिनः ॥४॥ तेज ओजो बलं वीर्यं प्रश्रयादींश्च सद्गुणान् ॥ प्रजानुरागं पार्थेषु न सहद्भिश्चिकीर्षितम् ॥ ५ ॥ कृतं च धार्तराष्ट्रैर्यद्गरदानाद्यपेशलम् ॥ आचख्यौ सर्वमेवास्मै पृथा विदुर एव च ॥ ६ ॥

पूंछतभये ॥ ३ ॥ दुष्ट पुत्र और अल्प बुद्धि दुष्ट कर्णादिकनके कहेमें रहनेहारे धीरतारहित राजा धृतराष्ट्रके वृत्तान्त जानिवेके कारण कितनेऊ मास पर्यंत अक्रूरजी वहां वास करतभये ॥ ४ ॥ तेज अर्थात् प्रभाव ओजोबलं अर्थात् शस्त्र चलायवेकी निपुणता वीर्य अर्थात् शूरता पांडवनमें प्रजाको स्नेह वीरतासों आदिलैके जे अच्छे गुण हैं तिनेन सहारकर धृतराष्ट्रके पुत्रनकी और जो कुछ आगे करिवेकी इच्छा है उसे ॥ ५ ॥ और धृतराष्ट्रके पुत्रनने विषके दैवेसूं आदिलैके जो कुछ अन्याय करचो है सो संपूर्ण वार्ता कुंती और विदुर अक्रूरजीके आगे कहतभये ॥ ६ ॥

कुंती भैया अक्रूरकू आयो सुनिके तासूं मिलिकै और अपने जन्मस्थानको स्मरण करिकै नेत्रनमें आंशू वहावति अक्रूरजीते बोलत भई ॥ ७ ॥ हे
सौम्य ! अर्थात् साधु ! मेरे माता पिता कभऊ मेरो स्मरण करे हैं, मेरे भैया बहिनी भैयाके पुत्र कुलकी स्त्री सखी ये सब कभऊ मेरी सुधि करे
हैं ॥ ८ ॥ शरणागतनको पालन भक्तनके ऊपर हितको करनवारो भैयाको पुत्र भगवान् श्रीकृष्णचंद्र कभऊ अपनी फूफूके पुत्रनकी सुधि करे हे
कमलकी तुल्य नेत्रवारे राम कभऊ हमारी सुधि करे हैं ॥ ९ ॥ ल्यारीनके बीचमें हरिणी जैसे घिरजाय ऐसे वैरीनके बीचमें घिरी भई मैं शोचकरूं

पृथा तु भ्रातरं प्राप्तमक्रूरमुपसृत्य तम् ॥उवाच जन्मनिलयं स्मरन्त्यश्रुकुलेक्षणा॥७॥अपि स्मरन्ति नः सौम्य पितरौ
भ्रातरश्च मे ॥ भगिन्यो भ्रातृपुत्राश्च जामयः सख्य एव च ॥ ८ ॥ भ्रात्रेयो भगवान् कृष्णः शरण्यो भक्तवत्सलः ॥ पैतृष्वसेयान्
स्मरति रामश्चाम्बुरुहेक्षणः ॥ ९ ॥ सपत्नमध्ये शोचन्तीं वृकाणां हरिणीमिव ॥ सान्त्वयिष्यति मां वाक्यैः
पितृहीनांश्च बालकान् ॥ १० ॥ कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ॥ प्रपन्नां पाहि गोविन्द शिशुभिश्चावसीदतीम्
॥ ११ ॥ नान्यत्तव पदाम्भोजात्पश्यामि शरणं नृणाम् ॥ बिभ्यतां मृत्युसंसारादीश्वरस्याऽऽपवर्गिकात्
॥ १२ ॥ नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने ॥ योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गता ॥ १३ ॥

हूं सो क्या मुझे और पिताहीन मेरे बालकनको श्रीकृष्ण तुम्हारे वचनोंसे कहा समझावैगो॥१०॥ हे कृष्ण हे कृष्ण! हे महायोगिन् ! हे विश्वके आत्मन् !
हे सबके अंतर्यामिन् ! हे विश्वके पालनकर्ता ! हे गोविन्द ! बालकनके सहित दुःखित होयकै मैं तेरी शरण आईहूं मेरी रक्षा करो ॥ ११ ॥ मृत्युरूपी
संसारते भयभीत मनुष्यनके ईश्वर तुम हो, और मोक्षके देनवारे तुम्हारे चरण कमलके विना मुझे और कोई शरण देनेहारा नहीं दीखता
॥ १२ ॥ शुद्ध अर्थात् धर्मात्मा ब्रह्म अपरिच्छिन्न अर्थात् ढकिवेमें नहीं आवै, परमात्मा अर्थात् जीवके सखा योगेश्वर अर्थात् अणिमादिक शा-

क्तियुक्त योग अर्थात् ज्ञानरूप ऐसे जो श्रीकृष्णचंद्र तुम हो तिनको नमस्कार है तुमारो मैंने शरण लियो है ॥ १३ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित! या प्रकार जगतके ईश्वर अपने भतीजे श्रीकृष्णकी सुधि करिके तुमारी परदादी कुन्ती दुःखित होयके रुदन करत भई ॥ १४ ॥ बराबर सुख दुःख वारे अक्रूर, और बडे यशी विदुरजी कुन्तीकूं समझावे हैं, तुमारे पुत्र धर्म पवन इन्द्र इत्यादिकनके अंशते उत्पन्न भये, तुम इतनो शोच क्यों करोहो, या प्रकार कहत भये ॥ १५ ॥ चलते समय अपने पुत्रनमें स्नेह, और भतीजेनमें विषमता करनहारे राजा धृतराष्ट्रके पास जायके सुहृदनके मध्यमें जे रामकृष्णादि बंधुओंके कहे वचन अक्रूरजी कहत भये ॥ १६ ॥ अब अक्रूरजी कहे हैं हे विचित्रवीर्यज धृतराष्ट्र! कौरवनकी कीर्तिके बढावनवारे भैया पांडु मरे तिनके पीछे अब तुम राज्यसिंहानपै बैठे हो, अर्थात् राजापांडुके पुत्र युधिष्ठिरादिक बैठे हैं तुम राज्यपै बैठे सो उचित नहीं है यह कटाक्ष करे है ॥ १७ ॥ अब अक्रूरजी कहे हैं बहुत उत्तम राज्य करो परन्तु या प्रकार वर्तोगे तो कल्याण और यशको सो अक्रूरजी कहे हैं धर्मकरिके पृथ्वीको पालन करोगे और शीलकरिके प्रजाको आनंद देउगे, और भतीजेनमें और पुत्रनमें ममता राखोगे तब संसारमें कल्याण और यशको पावोगे ॥ १८ ॥ और जो विषमता राखोगे तो संसारमें निंदा होयगी, और मरिके नरकमें जाओगे, ता कारण पांडवनमें और अपने पुत्रनमें समता राखो ॥ १९ ॥

श्रीशुक उवाच ॥ इत्यनुस्मृत्य स्वजनं कृष्णं च जगदीश्वरम् ॥ प्रारुदद्दुःखिता राजन् भवतां प्रपितामही ॥ ॥ १४ ॥ समदुःखसुखोऽक्रूरो विदूरश्च महायशाः ॥ सान्त्वयामासतुः कुन्तीं तत्पुत्रोत्पत्तिहेतुभिः ॥ १५ ॥ यास्यन् राजानमभ्येत्य विषमं पुत्रलालसम् ॥ अवदत् सुहृदां मध्ये बन्धुभिः सौहृदोदितम् ॥ १६ ॥ अक्रूर उवाच ॥ भो भो वैचित्रवीर्य त्वं कुरूणां कीर्तिवर्धने ॥ भ्रातर्युपरते पाण्डावधुनाऽऽसनमास्थितः ॥ १७ ॥ धर्मेण पालयन्नुर्वीं प्रजाः शीलेन रञ्जयन् ॥ वर्तमानः समः स्वेषु श्रेयः कीर्तिमवाप्स्यसि ॥ १८ ॥ अन्यथा त्वाचरँल्लोके गर्हितो यास्यसे तमः ॥ तस्मात् समत्वे वर्तस्व पाण्डवेष्वात्मजेषु च ॥ १९ ॥

हे राजन् धृतराष्ट्र ! या संसारमें काहूको सत्संग सर्वकाल नहीं रहे है और अपनो देहभी सदा नहीं रहे है विचार करिकै देखो स्त्री पुत्र ये सर्वदा कहांते रहेंगे ॥ २० ॥ जीव अकेलोही जन्म लेइहै, और अकेलोही मृत्यु पावै है अकेलोही पुण्यके फल सुखकूं भोगे है; और अकेलोही पापको फल दुःख भोग करे है ॥ २१ ॥ अज्ञानी पुरुषने जो पाप करिके धन संचय करचो है ताकूं स्त्री पुत्र भैया बन्धु होयके लेई हैं जैसे जलकी रहनवारी मछरीनको जिवावनवारो जल है, ताकूं वाके पुत्र पीले हैं, तब वाको कष्ट होय है ॥२२॥ पाप करता पुरुष नरकमें पडै है यह कहे है अधर्मते अपने मानिके प्राण धन स्त्री पुत्रादिक को भरण पोषण करे है और जब वे भोग उनकूं नहीं मिलै हैं तब वा अज्ञानी पुरुषको त्यागी देइहैं ॥२३॥

नेह चात्यन्तसंवासः कर्हिचित्केनचित्सह॥राजन् स्वेनापि देहेन किमु जायात्मजादिभिः॥२०॥एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते ॥ एको नु भुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥ २१ ॥ अधर्मोपचितं वित्तं हरन्त्यन्येऽल्पमेधसः ॥ संभोजनीयापदेशैर्जलानीव जलौकसः ॥ २२ ॥ पुष्णाति यानधर्मेण स्वबुद्ध्या तमपण्डितम् ॥ तेऽकृतार्थं प्रहिण्वन्ति प्राणा रायः सुतादयः ॥ २३ ॥ स्वयं किल्बिषमादाय तैस्त्यक्तो नार्थकोविदः ॥ असिद्धार्थो विशत्यन्धं स्वधर्मविमुखस्तमः ॥ २४ ॥ तस्माल्लोकमिमं राजन् स्वप्नमायामनोरथम् ॥ वीक्ष्यायम्यात्मनात्मानं समः शान्तो भव प्रभो ॥२५॥ धृतराष्ट्र उवाच ॥ यथा वदति कल्याणीं वाचं दानपते भवान् ॥ तथाऽनया न तृप्यामि मर्त्यः प्राप्य यथाऽमृतम् ॥ २६॥

जब स्त्री पुत्रादिक याको त्यागि देइहैं तब सांचे स्वार्थको न जानकर और प्रयोजन नष्ट होनेसे निज धर्मसै विमुख होय सबके पापको अपने शिरपै धरिकै वही पूर्ण नरकमें परे है ॥ २४ ॥ ता कारण हे समर्थ राजा धृतराष्ट्र ! स्वप्न और बाजीगरकी माया तथा मनको विचार ये सब तुमकूं मिथ्याभूत दिखाई देयहै, तैसेही या संसारकूं मिथ्याभूत समझिकै आपही अपने मनको रोकिकै समता राखौं, शांत होउ ॥ २५ ॥ राजा धृतराष्ट्र कहे हैं हे दाननके पति अक्रूर ! जे तुम कल्याणकारक श्रेष्ठ वचन कहो हौ तिनकूं श्रवण करत करत मेरो मन तृप्त नहीं होय है, जैसे मनुष्य

अमृतकूं पान करत करत तृप्त नहीं होय है ॥ २६ ॥ तथापि हे अक्रूर! मेरी चंचल पुत्रनमें स्नेह है, तासूं विषम हृदयमें तुमारी प्यारी वात ठैरे नहीं है जैसे स्फटिकमणिके सुदामापर्वतपै विजुरी चमकीके स्थिर नहीं रहे है ॥ २७ ॥ ऐसो तुम जानो हो फेरी मोह क्यों करो हो जो या प्रकार कदाचित् अक्रूरजी कहो ताको उत्तर धृतराष्ट्र देइहैं, ईश्वरकी मायाकूं कौन पुरुष अन्यथा करिसकै है, जो ईश्वरने पृथ्वीको भार उतारिवेके कारण यादवनके कुलमें आयकै अवतार लियो है ॥ २८ ॥ जो ईश्वर विचारमें न आवै ऐसी अपनी मायासूं या विश्वकूं उत्पन्न करिकै और तामें प्रवेश करिकै कर्म और कर्मनके फलनकूं न्यारे न्यारे करिकै जीवनको देइहै, जानिवेमें न आवै ऐसी लीलासे रचे हुए, संसार चक्रके घुमानेहारे उस परमेश्वरकूं में नमस्कार करूं हूं ॥ २९ ॥ अव श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित्! या प्रकार यदुवंशोत्पन्न अक्रूरजी धृतराष्ट्रको अभिप्राय जानिकै सुहृदनसूं आज्ञा मांगिकै फेरि मथुरापुरीमें आवत भये ॥ ३० ॥ हे कुरुवंशोत्पन्न राजन् परीक्षित्! वलदेव श्रीकृष्णचंद्रने आप जिस कारण अक्रूरजीको पांडवनके पास भेजोहो सो सव धृतराष्ट्रकी कथित वार्ताको अभिप्राय आयकै श्रीवलदेवजी और श्रीकृष्णचंद्रसूं कहत भयो ॥ ३१ ॥
इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ ॥ पूर्वार्धं समाप्तम् ॥ ॥

तथाऽपि सूनृता सौम्य हृदि न स्थीयते चले ॥ पुत्रानुरागविषमे विद्युत् सौदामनी यथा ॥ २७ ॥ ईश्वरस्य विधिं को नु विधुनोत्यन्यथा पुमान् ॥ भूमेर्भारावताराय योऽवतीर्णो यदोः कुले ॥ २८ ॥ यो दुर्विमर्शपथया निजमाययेदं सृष्ट्वा गुणान् विभजते तदनुप्रविष्टः ॥ तस्मै नमो दुरवबोधविहारतन्त्रसंसारचक्रगतये परमेश्वराय ॥ २९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्यभिप्रेत्य नृपतेरभिप्रायं स यादवः ॥ सुहृद्भिः समनुज्ञातः पुनर्यदुपुरीमगात् ॥ ३० ॥ शशंस रामकृष्णाभ्यां धृतराष्ट्रविचेष्टितम् ॥ पाण्डवान् प्रति कौरव्य यदर्थं प्रेषितः स्वयम् ॥ ३१ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणेऽष्टादशसाहस्र्यां संहितायां दशमस्कन्धे पूर्वार्धे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

रेखता—मनलैगयोचुराकैचितचोरबंसीवारो । जबसेसुनीहैबंसीनहिंचैनमेरेचितको ॥ उसनंदकेकुंवरनेकुछऐसोजादूडारो ॥ नहिंघरमें मनलगैहैवनवनफिरूंअकेली । अलबेली छविदिखाकैमनहरलियोहमारो ॥ सासऔरननदजिठानोद्यौरानीमुस्सेबूझैं । सांचीबतावोहमकोक्याभेदहैतुम्हारो ॥ मतिबूझोभेदमेरोहैचितनहींठिकानै । एकमत्तह थीमैं नेद्वारे खडोनिहारो ॥ चौपटगिरीधरनपरतनकीरही न सुधबुध। धोरेनकोऊआयेसबकोबहुतपुकारो ॥ फिरतौतबीबपंडितलाखौवहांबुलाये । विधनाकीगतिहैप्यारीचल ताननैकचारो ॥ कोईकहैसिडीहैकोईकहैडरीहै । कोईकहैहैइसपैझालरतौतुमउतारो ॥ सबयंत्रमंत्रटोनागंडातवीजधूनी । स्यानेहकीमहारेकरकरजतनहजारो ॥ हंसकरकहाकिर नेयहकैसी झाडाफूंकी । इसकाइलाजजानैहैनंदकोदुलारो ॥ जो अच्छीकराचाहोतौजाओवृंदावनको । लाओकिसीढबउस्कोजोचाहोदुखनिवारो ॥ ललताविशाखामिलकैम नकेपास पहुंची । तुमकैसेनिरदईहोचितमेंदयानधारो ॥ तुमहोबडेहीछलियाकरतेफिरोहोछलबल । उसमोहनीसखीनेतुमरोकहाबिगारो ॥ ललताकीबाँतैसुनकैहँसकर कहै को ॥ मनमेंविलगनमानोमैंदासहूंतिहारो । ललताकेसंगसिधारेवनवारीवैद्यवनके । कछुलेलीगोलीपुडियांकछुसारहूसंभारो ॥ आयेविहारीप्यारीबेसुधजहांपडीही । कहारोगभय। याकोतुमहाथतौनिकारो ॥ करदेखबोलेमोहनअबहीकरूंगोनीकी । घबराओतुमनजीमेंकछुरोगनहींभारो ॥ जबघोलप्रेमरसमें देदीविरहकीबूटी । उठबैठीसिटपिटाकर ढिगठाढाप्राणप्यारो ॥ आनँदभयोभवनमेंमनहरनीछबिनिरखकै । ज्वालाप्रसादद्विजनेतनमनतुम्हींपैवारो ॥ इतिश्रीकृष्णलीलासंपूर्णम् ॥

सो०—निजमतिके अनुसार, जहां तहां करि टिप्पणी । शोधी सहित विचार, द्विज ज्वालाप्रसादने ॥
दोहा—जहां तहां उपयुक्त अति, शुभ दृष्टान्त मिलाय । भेंट कीन्ह हरिभक्तजन, देखहिं अतिसुख पाय ॥

यह भागवत दशमस्कन्ध पूर्वार्ध भाषाटीकासमेत श्रीकृष्णदासात्मज गंगाविष्णु ने अपने
" लक्ष्मीवेंकटेश्वर " छापाखाने में छापकर प्रसिद्ध किया.

कल्याण–मुंबई.

इति श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते दशमस्कन्धपूर्वार्धम.

अथ श्रीमद्भागवते भाषाटीकायुते दशमस्कन्धोत्तरार्धम्.

३४७
३५

दशमस्कंध उत्तरार्ध.

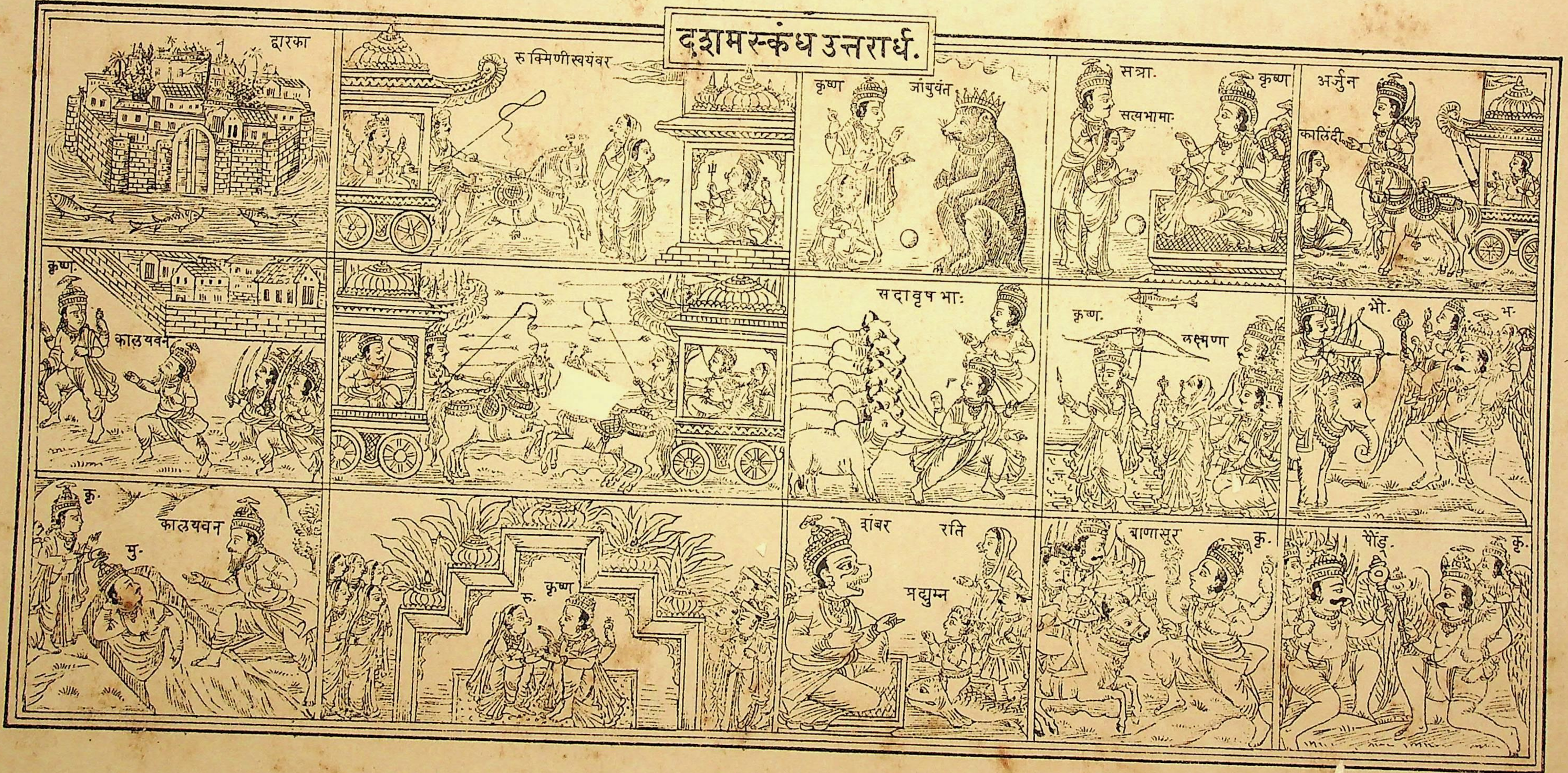
द्वारका
रुक्मिणीस्वयंवर
कृष्ण
जांबुवंत
सत्रा.
सत्यभामा.
कृष्ण
अर्जुन
कालिंदी
कृष्ण.
कालयवन
सदावृषभाः
कृष्ण.
लक्ष्मणा
भौ.
भ.
कृ.
कालयवन
मु.
रु.
कृष्ण
शंबर
रति
प्रद्युम्न
बाणासुर
कृ.
पौंड्र.
कृ.

349

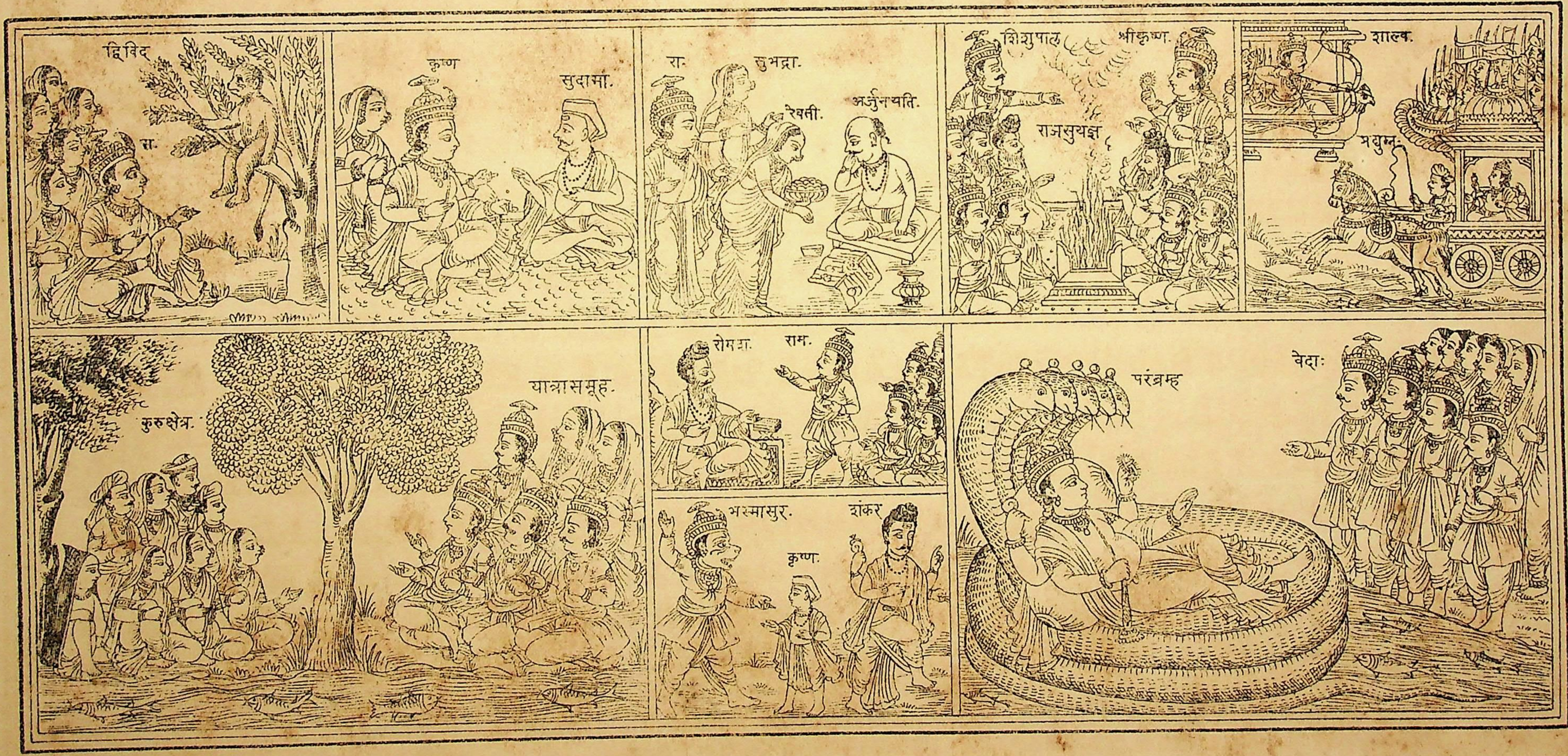
द्विविद
रा.
कृष्ण
सुदामा.
रा.
सुभद्रा.
रेवती.
अर्जुनयति.
शिशुपाल
श्रीकृष्ण.
राजसुयज्ञ
शाल्व.
प्रद्युम्न.
कुरुक्षेत्र.
यात्रासमूह.
रोमश.
राम.
भस्मासुर.
शंकर
कृष्ण.
परंब्रम्ह
वेदाः

330

तैसे द्रव्य अर्थात् अधिभूत प्राण इंद्रिय अध्यात्म गण आधिदैव

श्रीगोपीजनवल्लभाय नमः ॥ जरासंधसै युद्ध कर, कृष्णचंद्र यदुराय । कालयवनको वध कियो, वसे द्वारका जाय ॥ भक्तनपालक जन सुखद, दीनबंधु भगवान । कृपादृष्टि नित कीजिये, भक्त परम सुखदान ॥ ततः पञ्चाशत्तमे तु जरासंधभयादिव ॥ कारयित्वाम्बुधौ दुर्गं तं निनाय निजं जनम् ॥१॥ अब पूर्वार्द्ध कहे पीछे पचासके अध्यायमें जो कथा है ताको वर्णन करे हैं जरासंधके भयतेही मानो समुद्रमें किल्ला बनायकै श्रीकृष्ण अपने यादवनको लेजात भये ॥ १ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहैं हैं-हे भरतवंशीनमें भये राजन् परीक्षित ! अस्ति और प्राप्ति ये दोनों कंसकी रानी अपने पति कंसके मरणसूं दुःखित होयके पिताके घर जातभईं ॥ १ ॥ दुःखित अस्ति प्राप्ति अपनो पिता मगधदेशके राजा जरासंधसैं संपूर्ण अपने विधवा-

॥ श्रीशुक उवाच ॥ अस्तिः प्राप्तिश्च कंसस्य महिष्यौ भरतर्षभ ॥ मृते भर्तरि दुःखार्तै ईयतुः स्म पितुर्गृहान् ॥ १ ॥ पित्रे मगधराजाय जरासन्धाय दुःखिते ॥ वेदयाञ्चक्रतुः सर्वमात्मवैधव्यकारणम् ॥२॥ स तदप्रियमाकर्ण्य शोकामर्षयुतो नृप ॥ अयादवीं महीं कर्तुं चक्रे परममुद्यमम् ॥ ३ ॥ अक्षौहिणीभिर्विंशत्या तिसृभिश्चापि संवृतः ॥ यदुराजधानीं मथुरां न्यरुणत् सर्वतो दिशम् ॥ ४ ॥ निरीक्ष्य तद्बलं कृष्ण उद्वेलमिव सागरम् ॥ स्वपुरं तेन संरुद्धं स्वजनं च भयाकुलम् ॥५॥ चिन्तयामास भगवान् हरिः कारणमानुषः ॥ तद्देशकालानुगुणं स्वावतारप्रयोजनम् ॥ ६ ॥ हनिष्यामि बलं ह्येतद्भुवि भारं समाहितम् ॥ माँगधेन समानीतं वश्यानां सर्वभूभुजाम् ॥ ७॥

पनेको कारण जतावति भईं ॥ २ ॥ हे राजन् परीक्षित ! ताहीकाल दुःखके भरे अप्रिय वचन सुनिके जरासंध जामाताको शोक न सहिके यादवनसूं रहित पृथ्वीकूं करिवेकूं उपाय करत भयो ॥ ३ ॥ तेईस अक्षौहिणी[१] सेनाकूं संग लैके जरासंध यादवनकी राजधानी मथुराकूं सम्पूर्ण दिशानते घेरतभयो ॥ ४ ॥ मर्या[illegible] त्यागिके मानों समुद्र उमड्यो चल्यो आवै है, या प्रक[illegible] जरासंधकी सैन्यकूं आवत देखिके, और ता सैन्यासों आवृत मथुरापुरीको देखिके, और [illegible] जन अपने यादवनकूं व्याकुल देखिके ॥ ५ ॥ पृथ्वीको भार उतारिवेके कारण मनुष्यरूप धरनेहारे सबके दुःखके हरनवारे, श्रीकृष्ण तासमय देशकालके योग्य अपने अवतारको प्रयोजन देखिके विचार करत भये ॥ ६ ॥ जरासंधकूं छोडके या सैन्याको वध

---

[१] अक्षौहिणीप्रमाण—रथ २१८७०, गज २१८७०, अश्व ६५६१०, पदाति १०९३५०, सब मिलके २१८७०० यह अक्षौहिणीका प्रमाण है ॥

करूं अथवा जरासंधको मारिके सैन्याकूं ग्रहण करूं अथवा सैन्यासहित जरासंधकू मारूं ऐसे तीन प्रकारके मनमें संकल्प विकल्प करिके प्रथम विचार सैन्यावधकूं निश्चय करत भये, क्योंकि पृथ्वीको भाररूप यह सैन्या है याहीकूं मारूंगो, सम्पूर्ण वंशनके राजानकी सैन्याको जरासंध लै आयो है ऐसो समय वारंवार न मिलेगो ॥ ७ ॥ प्यादे अश्व रथ हस्ती यह चतुरंगिनी अनेक अक्षौहिणी सेनाकोही मारिवो योग्य है, जरासंधको मारिवो योग्य नहीं है, काहेसे यह कामको है संपूर्णनकूं समेटिके यहां लै आवेगो, मैं कहां कहां फिरूंगो ॥ ८ ॥ भूमिको बोझ उतारिवेको और साधुनकी रक्षा करिवेको और दुष्टनके वध करिवेके निमित्त मैंने अवतार लियो है ॥ ९ ॥ कोई समय पायकै

अक्षौहिणीभिः सङ्ख्यातं भटाश्वरथकुञ्जरैः॥ मागधस्तु न हन्तव्यो भूयः कर्ता बलोद्यमम् ॥ ८ ॥ एतदर्थोऽवतारोऽयं भूभारहरणाय मे ॥ संरक्षणाय साधूनां कृतोऽन्येषां वधाय च ॥ ९ ॥ अन्योऽपि धर्मरक्षायै देहः सम्भ्रियते मया॥ विरामायाप्यधर्मस्य काले प्रभवतः क्वचित् ॥ १० ॥ एवं ध्यायति गोविन्द आकाशात् सूर्यवर्चसौ ॥ रथावुपस्थितौ सद्यः ससूतौ सपरिच्छदौ ॥ ११ ॥ आयुधानि च दिव्यानि पुराणानि यदृच्छया ॥ दृष्ट्वा तानि हृषीकेशः सङ्कर्षणमथाब्रवीत् ॥ १२ ॥ पश्यार्य व्यसनं प्राप्तं यदूनां त्वावतां प्रभो ॥ एष ते रथ आयातो दयितान्यायुधानि च ॥ १३ ॥ यानमास्थाय जह्येतद्व्यसनात् स्वान् समुद्धर ॥ एतदर्थं हि नौ जन्म साधूनामीश शर्मकृत् ॥ १४ ॥ त्रयोविंशत्यनीकाख्यं भूमेर्भारमपाकुरु ॥ एवं संमन्त्र्य दाशार्हौ दंशितौ रथिनौ पुरात् ॥ १५ ॥

पृथ्वीपै बडे अधमके नष्ट करिवेके कारण, और धर्म्मकी रक्षा करिवेके कारण, देहको मैं धारण करूं हूं ॥ १० ॥ या प्रकार गोविंद श्रीकृष्णचन्द्र विचार करतेही सूर्यकी तुल्य तेजवान ध्वजा कवच जिनमें धरे, रथवान सहित दो रथ शीघ्रही आकाशते उतरत भये ॥ ११ ॥ वाही समय अनायासपूर्वक आये दिव्य शस्त्र देखिके हृषीकेश श्रीकृष्णचंद्र बलदेवजीसों बोलत भये ॥ १२ ॥ हे आर्य अर्थात् श्रेष्ठ हे प्रभो ! तुमही जिनकी रक्षा करनवारे हो उन यादवनकूं दुःख आयके प्राप्त भयो है तुम देखो यह रथ आयो है प्यारे शस्त्र आये हैं ॥ १३ ॥ रथमें बैठिके सैन्याको मारो अपने यादवनको कष्ट दूरि करो हे ईश ! साधूनके कल्याणके निमित्त या संसारमें हमारो तुमारो जन्म है ॥ १४ ॥ तेईस अक्षौहिणी

ये तव

सेना आयके प्राप्त भई है,ताको पृथ्वीपर बोझ है, ताकूं दूरि करो याप्रकार दाशार्हवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचंद्र और बलदेवजी विचार करिके कवचनकूं पहरिके सुंदर शस्त्रनकूं लैके रथमें बैठिके कछु थोरीसी सैन्या संग लैके पुरके बाहिर निकसके दारुक सारथीको लिये श्रीकृष्णचन्द्र शंखकूं बजावत भये ॥ १५ ॥ १६ ॥ ताके पीछे जरासंधकी सेनाके हृदय भयाभीत होयके कंपित होतभये, कृष्णबलदेवकूं देखिके जरासंध बोलत भयो, हे कृष्ण अधम ! ॥ १७ ॥ तूं अकेलो बालक है तेरे संग युद्ध न करूंगो मोकूं लज्जा आवै है हे बन्धुनके मारनवारे हे मूर्ख ! तूं गुप्त रहनवारो है ताते तेरे संग युद्ध न करूंगो ॥ १८ ॥ हे राम ! जो तेरे श्रद्धा होय तौ धीरज धरिके युद्ध करि, मेरे बाणनकरिकै कटे देहकूं त्यागि स्वर्गकूं जा अथवा संग्रामके बीचमें मोहिं

निर्जग्मतुः स्वायुधाढ्यौ बलेनाल्पीयसाऽऽवृतौ ॥ शङ्खं दध्मौ विनिर्गत्य हरिर्दारुकसारथिः ॥ १६ ॥ ततोऽभूत् परसैन्यानां हृदि वि[illegible]सवेपथुः ॥ तावाह मागधो वीक्ष्य हे कृष्ण पुरुषाधम ॥ १७ ॥ न त्वया योद्धुमिच्छामि बालेनैकेन लज्जया ॥ गुप्तेन हि[illegible]वया मन्द न योत्स्ये याहि बन्धुहन् ॥ १८ ॥ तव राम यदि श्रद्धा युद्ध्यस्व धैर्यमुद्वह ॥ हित्वा वा मच्छरैश्छिन्नं देहं स्वर्याहि मां जहि ॥ १९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ न वै शूरा विकत्थंते दर्शयन्त्येव पौरुषम् ॥ न गृह्णीमो वचो राजन्नातुरस्य मुमूर्षतः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ जरासुतस्तावभिसृत्य माधवौ महाबलौघेन बलीयसाऽवृणोत् ॥ ससैन्ययानध्वजवाजिसारथी सूर्यानलौ वायुरिवाभ्ररेणुभिः ॥ २१ ॥ सुपर्णतालध्वजचिह्नितौ रथावलक्षयन्त्यो हरिरामयोर्मृधे ॥ स्त्रियः पुराट्टालकहर्म्यगोपुरं समाश्रिताः संमुमुहुः शुचार्दिताः ॥ २२ ॥

मारिले ॥ १९ ॥ अब श्रीभगवान् कहे हैं शूरवीर बकै नहीं हैं, अपने पुरुषार्थकूं दिखावे हैं, हे राजन् जरासंध ! तुम्हारी मृत्यु निकट आय गई है यासे तुम्हारे वचनपर मैं ध्यान नहीं करूंहूं ॥२०॥ जैसे पवन बादर धूरि यह सूर्य और अग्निकूं घेर लेइ है तैसे माधव श्रीकृष्ण बलदेवके पास जायके जरासंध अपनी बलवती सेना प्यादे रथ ध्वजा घोडा रथवानोंसे घेरत भयो ॥ २१ ॥ गरुडके और तालकी ध्वजाके चिन्हवारे कृष्णरामके रथ युद्धमें नहीं दीखे, तब पुर अटारी महल दरवाजेनपै ठाढी स्त्री शोकसूं व्याकुल होयके मोह करत भई ॥ २२ ॥

शत्रुकी सैन्यारूप बादरमेंसूं वारंवार बाणनकी भयंकर वर्षा पीडित अपनी सैन्याकूं श्रीकृष्णचंद्र देखिके देवता असुरोंसे पूजित उत्तम शार्ङ्ग धनुषमें टंकारतभये ॥ २३ ॥ तरकसते तीर निकासिके शीघ्र प्रत्यंचामें लगायके प्रत्यंचाकूं खैंचिके तीक्ष्ण बाणनके समूहनसूं रथ घोडा हाथी प्यादेनकूं मारिके जैसेसुलगति लकर्डीको घुमामनेसूं चक्र बंधे है तैसे बाणनके पीछे बाण लगावत भये ॥ २४ ॥ मस्तक कटनेसे हजारन हाथी गिरत भये, बाणनसूं नारी कटनेसे घोडा गिरतभये रथनकी कटिके ध्वजा गिरत भई और रथवान् गिरत भये, भुजा नारी जंघा कटनेसे प्यादे गिरत भये ॥ २५ ॥ युद्धमें प्यादे हाथी घोडोंको अंग कटनेसे तिनके अंगनमेते निकसिके असंख्याक रुधिरनकी नदी वहाती भई रुधिरकी नदीनकी प्रसिद्ध नदीसों रूपक बांधिके वर्णन करे हैं नदीनमें सर्प्प रहे हैं रुधिरनकी नदीनमें मनुष्यनकी भुजा मानों सर्प्प हैं, नदीनमें कछुवा रहे हैं रुधिरकी नदीनमें मनुष्यनके शिर कटिके कछुवाके सदृश बहे हैं, नदीनमें टापू रहे हैं, रुधिरकी नदीनमें मरे हाथी टापूनके समान परे हैं, नदीनमें ग्राह होय हैं, रुधिरकी नदीनमें घोडा ग्राहके सदृश मरे परे हैं तिनसूं व्याप्त होय रही हैं ॥ २६ ॥ नदीनमें मत्स्य होइहैं, रुधिरकी नदीनमें हथेरी पिंडरी मत्स्यके तुल्य हैं नदीनमें शिवार होय हैं, रुधिरकी नदीनमें मनुष्यनके केश शिवारके सदृश बहे डोले हैं, नदीनमें तरंग उठे हैं, रुधिरकी नदीनमें धनुष तरंगके सदृश हैं, नदीनमें झार झंकाड होइहैं, रुधिरकी नदीनमें शस्त्र हैं ते झार झंकाडके सदृश हैं नदीनमें भ्रमर परे हैं तिनसूं अति भयंकर होइ हैं रुधिरकी नदीनमें ढाले मानो भयंकर भ्रमर फिरे हैं नदीनमें कांकर पत्थर होय हैं रुधिरकी नदीनमें मणि गहने कांकर पत्थरके तुल्य हैं ॥ २७ ॥

हरिः परानीकपयोमुचां मुहुः शिलीमुखात्युल्बणवर्षपीडितम् ॥ स्वसैन्यमालोक्य सुरासुरार्चितं व्यस्फूर्जयच्छार्ङ्गशरासनोत्तमम् ॥ २३ ॥ गृह्णन्निषङ्गादथ संदधच्छरान्विकृष्य मुञ्चन् शितबाणपूगान् ॥ निघ्नन् रथान् कुञ्जरवाजिपत्तीन् निरन्तरं यद्वदलातचक्रम् ॥ २४ ॥ निर्भिन्नकुम्भाः करिणो निपेतुरनेकशोऽश्वाः शरवृक्णकन्धराः ॥ रथा हताश्वध्वजसूतनायकाः पदातयश्छिन्नभुजोरुकन्धराः ॥ २५ ॥ संछिद्यमानद्विपदेभवाजिनामङ्गप्रसूताः शतशोऽसृगापगाः ॥ भुजाऽहयः पूरुषशीर्षकच्छपा हतद्विपद्वीपहयग्रहाकुलाः ॥२६॥ करोरुमीना नरकेशशैवला धनुस्तरङ्गायुधगुल्मसंकुलाः ॥ अच्छूरिकावर्तभयानका महामणिप्रवेकाभरणाश्मशर्कराः॥ २७ ॥

बडे तेजस्वी ब[illegible]जीने संग्राम विषे दुष्ट मदवारे शत्रुनकूं मूशल ते मारिमारिके रुधिरनकी नदी वहाई जो भयभीत मनुष्यनको भयकी देनवा[illegible] और
शूर वीरनको [illegible]नंदकी देनवारी है ॥ २८ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! दुर्मद वैरियांको मूसलसे मार सागरकी समान दुस्तर और भयंकर उस जरासंध
पालित सेनाको महापराक्रमी कृष्णबलदेवने मारिमारिके नाश करदीनो, वसुदेवके पुत्र जगत्के ईश्वर कृष्ण बलदेवको सेनाके नाश करिवो क्रीडामा-
त्रही है कछु पराक्रम नहीं है॥२९॥ अनंत गुण भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अपनी लीला करिके तीनो लोकनकूं उत्पन्न पालन संहार करे हैं, तिन श्रीकृष्ण-
कूं शत्रु जरासंधकी सैन्याको मारिवो कछु आश्चर्य नहीं है,तथापि मनुष्यनके अनुकरण करनेहारे श्रीकृष्णके कर्म आश्चर्यसे कहिवेमें आमें हैं ॥ ३० ॥

प्रवर्तिता भीरुभयावहा मृधे मनस्विनां हर्षकरीः परस्परम्॥विनिघ्नताऽरीन् मुसलेन दुर्मदान् संकर्षणेनापरि मेयतेज-
सा ॥२८॥ बलं तदङ्गार्णवदुर्गभैरवं दुरन्तपारं मगधेन्द्रपालितम् ॥ क्षयं प्रणीतं वसुदेवपुत्रयोर्विक्रीडितं तज्जगदीशयोः
परम् ॥ २९ ॥ स्थित्युद्भवान्तं भुवनत्रयस्य यः समीहतेऽनन्तगुणः स्वलीलया ॥ न तस्य चित्रं परपक्षनिग्रहस्तथापि म-
र्त्यानुविधस्य वर्ण्यते ॥ ३० ॥ जग्राह विरथं रामो जरासन्धं महाबलम् ॥ हतानीकावशिष्टासुं सिंहः सिंहमिवौजसा ॥
॥ ३१ ॥ बध्यमानं हतारातिं पाशैर्वारुणमानुषैः ॥ वारयामास गोविन्दस्तेन कार्यचिकीर्षया ॥ ३२ ॥ स मुक्तो लोकना-
थाभ्यां व्रीडितो वीरसंमतः ॥ तपसे कृतसङ्कल्पो वारितः पथि राजभिः ॥३३॥ वाक्यैः पवित्रार्थपदैर्नयनैः प्राकृतैरपि॥
स्वकर्मबन्धप्राप्तोऽयं यदुभिस्ते पराभवः ॥ ३४ ॥ सेनाके नष्ट होने और रथ टूट जानेसे जब प्राण मात्रही अवशेष रहे तब बलवान्
जरासंधकूं जैसे सिंह सिंहकूं पकरे हैं ता प्रकार बल करिके बलदेवजी पकरत भये ॥ ३१ ॥ शत्रुओंके संहार करनेहारे जरासंधकूं वरुणपाश
और मनुष्यपाशसे जब बलदेवजी बांधने लगे तब श्रीकृष्ण छुडावत भये क्योंकि जरासंधसों और कछु काम करामनो है॥ ३२ ॥ शूरवीरोंके माननी-
य जरासंधकूं त्रिलोकीके नाथ श्रीकृष्ण बलदेवनें जा समय छोड दियो तब लज्जित होयके मनमें विचारत भयो कि घर जायके कहा करूंगो, वनमें
जायके तप करूंगो, ता समय मार्गमें राजानने निवारण करचो॥३३॥ धर्मके उपदेश करनवारे पदयुक्त नीतिके तुष्टिकारक वचननकूं कहिके जरासं-
धकूं समझायो, तुमारो कोई दुष्कर्म आयगयो, याते तुच्छ यादवनने तुमकूं जीतिलियो, अब तुम लाज मति करो ॥ ३४ ॥

जासमय संपूर्ण सेना नष्ट होगई, श्रीकृष्णने छोड दियो, ता समय बृहद्रथके वंशोत्पन्न जरासंध उदासी होयके मगधदेशकूं जात भयो ॥ ३५ ॥ शत्रुकी सेनारूप सागरसे तरकर और अपनी अक्षतसेना संग लिये श्रीकृष्णजीके ऊपर देवतानने पुष्पनकी वर्षा करी, और प्रशंसा पूर्वक स्तुति करी॥३६॥ तब श्रीकृष्णचंद्र अपनी मथुरापुरीमें आवत भये, खेदरहित प्रसन्नमन मथुरावासीनसूं मिले सूत मागध वंदीजन जिनकी विजयके गावतभये ॥ ३७॥ ऐसे श्रीकृष्णचंद्र जासमय मथुरापुरीमें आये, तब शंख नगारे अनेकन भेरी तुरही वीणा बांसुरी मृदंग ये सब बाजे बजावत भये ॥ ३८ ॥ मार्गमें छिरकाव होय रहे प्रसन्न मनुष्योंसेभी पताकानसूं शोभायमान,वेदध्वनिसे युक्त श्रीकृष्णचंद्रके आगमनके आनंदसूं घर घर बंदनवारसे परिपूर्ण ऐसी मथु-

हतेषु सर्वानीकेषु नृपो बार्हद्रथस्तदा ॥ उपेक्षितो भगवता मगधान् दुर्मना ययौ ॥३५॥ मुकुन्दोप्यक्षतबलो निस्तीर्णारिबलार्णवः ॥ विकीर्यमाणः कुसुमैस्त्रिदशैरनुमोदितः ॥ ३६ ॥ माथुरैरुपसंगम्य विज्वरैर्मुदितात्मभिः ॥ उपगीयमानविजयः सूतमागधबन्दिभिः ॥३७॥ शङ्खदुन्दुभयो नेदुर्भेरीतूर्याण्यनेकशः ॥ वीणावेणुमृदङ्गानि पुरं प्रविशति प्रभौ ॥ ३८ ॥ सिक्तमार्गां हृष्टजनां पताकाभिरलंकृताम् ॥ निर्घुष्टां ब्रह्मघोषेण कौतुकाबद्धतोरणाम् ॥ ३९॥ निचीयमानो नारीभिर्माल्यदध्यक्षताङ्कुरैः ॥ निरीक्ष्यमाणः सस्नेहं प्रीत्युत्कलितलोचनैः ॥ ४० ॥ आयोधनगतं वित्तमनन्तं वीरभूषणम् ॥ यदुराजाय तत् सर्वमाहृतं प्रादिशत् प्रभुः ॥ ४१ ॥ एवं सप्तदशकृत्वस्तावत्यक्षौहिणिबलः ॥ युयुधे मागधो राजा यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ ४२ ॥ अक्षिण्वंस्तद्बलं सर्वं वृष्णयः कृष्णतेजसा ॥ हतेषु स्वेष्वनीकेषु त्यक्तोऽयादरिभिर्नृपः ॥ ४३ ॥ ॥

रापुरीकी शोभा होतभई ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्णचंद्रके ऊपर स्त्रीपुरुष पुष्प दधि अक्षत अङ्कुरनकी वर्षा करति भई, स्नेहते प्रफुल्लित नेत्रनसूं श्रीकृष्णकूं देखने लगीं ॥ ४० ॥ शूरवीर राजानकी शोभाके करनवारे रणभूमिमें परे बहुत धनकूं लायके श्रीकृष्णचंद्र राजा उग्रसेनकूं देत भये ॥ ४१ ॥ श्रीकृष्णचंद्रसे रक्षित यादवनसे मगधदेशको राजा जरासंध सतरहबार तेईस तेईस अक्षौहिणी सेना लेके युद्ध करत भयो ॥ ४२ ॥ यादव श्रीकृष्णके तेजसे जरासंधकी सम्पूर्ण सैन्याको नाश करत भये, हे राजन् परीक्षित ! सम्पूर्ण सेना जब कटिगई शत्रुने छोड दियो, तब जरासंध अपने देशकूं जातभयो॥४३॥

तैसे द्रव्य अर्थात् अधिभूत प्राण इंद्रिय अध्यात्म गुण आधिदैव इतने स्वरूप आत्मामें अविद्याने रचे हैं, वेही देहधारीनकूं संसारमें भटकावे हैं ॥४५॥ हे पतिव्रता रुक्मिणी ! मिथ्या देहसे आत्माका संयोग नहीं है, और या देहते वियोगभी नहीं है, देह मिथ्या काहेते है तहां कहे हैं देहकूं प्रकाशता आत्माते है, जैसे सूर्यते चक्षुइंद्रिय रूपकूं प्रकाशे है ॥ ४६ ॥ जन्ममरणादिक छः विकार देहकूं हैं, आत्माकूं कदाचित् नहीं हैं, जैसे चंद्रमाकी कला घटे बढे हैं चंद्रमा कदाचित् घटे बढे नहीं है, जैसे अमावसके दिन कलानके घटनेते चंद्रमाको नाश कहिये है, तैसे या आत्माकूं देहके नाशते मरण कहिवेमें आवे है ॥ ४७ ॥ जैसे पुरुष सोवतमें स्वप्नमें अपनेकूं और विषयनके भोगिवेको फलके सुखकूं मिथ्या भोग करे, ताही प्रकार अज्ञानी पुरुष संसारकूं पावे है ॥ ४८ ॥ हे सुहासिनी ! इस कारण अज्ञानसे उत्पन्न भये आत्माको शोष और मोह देनेहारे शोकका तत्वज्ञानसे त्यागन करो और स्वस्थ हो ॥ ४९ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित् ! या प्रकार भगवान् बलदेवजीने समझाई तब सुकुमार रुक्मिणी मनकी उदासीनता त्यागिके बुद्धिते मनकूं सावधान करति भई ॥ ५० ॥ केवल प्राणही जाके बाकी रहे, शत्रुनते छुटो हतसैन्य, गतप्रभाव, हीनमनोरथ मुंडितशिर दुष्ट

देह आद्यन्तवानेष द्रव्यप्राणगुणात्मकः ॥ आत्मन्यविद्यया क्लृप्तः संसारयति देहिनम् ॥ ४५ ॥ नात्मनोऽन्येन संयोगो वियोगश्चासतः सति ॥ तद्धेतुत्वात्तत्प्रसिद्धेर्दृग्रूपाभ्यां यथा रवेः ॥ ४६ ॥ जन्मादयस्तु देहस्य विक्रिया नात्मनः क्वचित् ॥ कलानामिव नैवेन्दोर्मतिर्ह्यस्य कुहूरिव ॥ ४७॥ यथा शयान आत्मानं विषयान्फलमेव च ॥ अनुभुङ्क्तेऽप्यसत्यर्थे तथाप्नोत्यबुधो भवम् ॥ ४८ ॥ तस्मादज्ञानजं शोकमात्मशोषविमोहनम् ॥ तत्त्वज्ञानेन निर्हृत्य स्वस्था भव शुचिस्मिते॥४९॥श्रीशुक उवाच॥ एवं भगवता तन्वी रामेण प्रतिबोधिता॥ वैमनस्यं परित्यज्य मनो बुद्ध्या समादधे॥५०॥ प्राणावशेष उत्सृष्टो द्विड्भिर्हतबलप्रभः ॥ स्मरन्विरूपकरणं वितथात्ममनोरथः ॥ चक्रे भोजकटं नाम निवासाय महत्पुरम् ॥ ५१ ॥ अहत्वा दुर्मतिं कृष्णमप्रत्यूह्य यवीयसीम् ॥ कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामीत्युक्त्वा तत्रावसद्रुषा ॥ ५२ ॥

दोहा–सुन [illegible]न समुझिकै. किये जेठकी लाज । सैन माहिं पियासों कहत, रथ हांकहु व्रजराज ॥ १ ॥ चौपाई–घूंवट ओट बदनकी करै । मधुर वचन हरिसों उच्चरै ॥ सनमुख ठाढे हैं बलदाऊ । अहो कंत रथ वेगि चलाऊ ॥ २ ॥

अव रुक्मिणीकूं समझावे हैं हे सुशीले ! भैयाको कुरूप होयगयो या ईर्षाते हमकूं दोष माति लगावै, यह पुरुष अपने कर्मनको फल भोगे हैं सुख दुःखको देनवारो और कोई नहींहैं ॥ ३८ ॥ फेर श्रीकृष्णकूं समझावै हैं अपने नातेदारने मारवे योग्य अपराध करोभी होई तथापि न मारे वाकूं अपराधी करिके त्यागि देनो, वह पहिलेही अपने दोष करि मरि रह्या है, फेरि वाकूं कहा मारिये ॥ ३९ ॥ फेरि रुक्मिणीकूं समझावैं है क्षत्रीनको यही धर्म विधातानें बनाया, जा धर्मसूं भैया भैयाकूं मारि डारे, सारे श्वशुरनकी कौन बातहै,यहै बडो घोर धर्म है, ताते हमारो कहा दोष है॥४०॥फेर श्रीकृष्णकूं समझावे हैं हे कृष्ण ! राज्यके निमित्त पृथ्वीके लिये धनके लिये स्त्रीकेलिये प्रतिष्ठाके लिये तेजके लिये और वस्तुके लिये श्रीमदान्ध अभिमानी राजा लडेहैं हमकूं उचित नहीं हैं॥४१॥फेरि रुक्मिणीकूं समझावे हैं सब प्राणीनमें दुष्ट हृदय अर्थात् सब बातको बुरौ विचारनेहारे जो शिशुपालादिकको बुरोचाहो

मैवास्मान्साध्व्यसूयेथा भ्रातुर्वैरूप्यचिन्तया ॥ सुखदुःखदो न चान्योऽस्ति यतः स्वकृतभुक् पुमान् ॥ ३८ ॥ बन्धुर्वधार्हदोषोऽपि न बन्धोर्वधमर्हति ॥ त्याज्यः स्वेनैव दोषेण हतः किं हन्यते पुनः ॥३९॥ क्षत्त्रियाणामयं धर्मः प्रजापतिविनिर्मितः ॥ भ्राताऽपि भ्रातरं हन्याद्येन घोरतमस्ततः ॥ ४० ॥ राज्यस्य भूमेर्वित्तस्य स्त्रियो मानस्य तेजसः ॥ मानिनोऽन्यस्य वा हेतोः श्रीमदान्धाः क्षिपन्ति हि ॥ ४१ ॥ तवेयं विषमा बुद्धिः सर्वभूतेषु दुर्हृदाम् ॥ यन्मन्यसे सदाऽभद्रं सुहृदां भद्रमज्ञवत् ॥ ४२ ॥ आत्ममोहो नृणामेष कल्पते देवमायया ॥ सुहृद्दुर्हृदुदासीन इति देहात्ममानिनाम् ॥ ४३ ॥ एक एव परो ह्यात्मा सर्वेषामपि देहिनाम् ॥ नानेव गृह्यते मूढैर्यथा ज्योतिर्यथा नभः ॥ ४४ ॥

हो, और अपने भैयाको भलो चाहो हो, रुक्मिणी तुमारी विषम बुद्धि है, अज्ञानी पुरुषनकूं जैसे होय अथवा तुम्हारो भ्राता जो सब जीवनको शत्रुरूप है उसका तुम अज्ञानी पुरुषकी समान भला चाहो हो सो यह तुम्हारी बुद्धिकी भूल है कारण कि उसका भला चाहनेसै और सम्बांधियोंका बुराहोगा ॥४२॥ यह हमारो मित्र है यह शत्रु है यह बराबर है,या प्रकार देहाभिमानी पुरुषनकूं देवमाया.करिके एक मोह रच्यो है ॥४३॥ समस्त देहधारीनमें एकही शुद्ध आत्मा है वाहीकूं अज्ञानी पुरुष अनेक रूपकरिके माने हैं, जैसे जलके भरे घटमें एकही सूर्य्यको प्रतिबिंब अनेक होयके दीखै है जैसे एक आकाश घटादिकनमें बहुतरूपकरिके दीखे है ॥ ४४ ॥

दृष्ट्वा भ्रातृवधोद्योगं रुक्मिणी भयविह्वला ॥ पतित्वा पादयोर्भर्तुरुवाच करुणं सती ॥ ३२ ॥ योगेश्वराप्रमेयात्मन्देवदेव
जगत्पते ॥ हन्तुं नार्हसि कल्याण भ्रातरं मे महाभुज ॥ ३३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ तया परित्रासविकम्पिताङ्गया
शुचाऽवशुष्यन्मुखरुद्धकण्ठया ॥ कातर्यविस्रंसितहेममालया गृहीतपादः करुणो न्यवर्तत ॥ ३४ ॥ चैलेन बद्ध्वा तमसाधुकारिणं
सश्मश्रुकेशं प्रवपन्व्यरूपयत् ॥ तावन्ममर्दुः परसैन्यमद्भुतं यदुप्रवीरा नलिनीं यथा गजाः ॥ ३५ ॥
कृष्णान्तिकमुपव्रज्य ददृशुस्तत्र रुक्मिणम् ॥ तथाभूतं हतप्रायं दृष्ट्वा संकर्षणो विभुः ॥ विमुच्य बद्धं करुणो भगवान्कृष्णमब्रवीत्॥३६॥
असाध्विदं त्वया कृष्ण कृतमस्मज्जुगुप्सितम् ॥ वपनं श्मश्रुकेशानां वैरूप्यं सुहृदो वधः॥३७॥

भैयाके मारिवेको उद्यम देखिके भयसूं व्याकुल होयके प्रतिव्रता रुक्मिणी पति श्रीकृष्णचंद्रके चरणनमें गिरिके करुणाभरे वचनकूं बोलत भई ॥३२॥ हे योगके ईश्वर ! हे अप्रमेयात्मन् ! अर्थात् नहीं प्रामाण करवेमें आवे है स्वरूप जिनकौ,हे देवतानके देव ! हे जगतके पालन करनवारे श्रीकृष्णचन्द्र ! हे महाभुज ! मेरे भैयाकूं मतिमारो मारिवो तुम्हैं योग्य नहीं है ॥ ३३॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित् ! त्राससे कंपायमान अंग शुष्कमुख गदगद कंठ कि जिसकी व्याकुलतासे सुवर्णकी माला गिरी जातीथी ऐसी रुक्मिणीकूं श्रीकृष्ण अपने चरणोंमें गिरी देखकर दयापरवश होय रुक्मिकूं नहीं मारत भये ॥ ३४ ॥ दुष्ट कर्मनकूं करनहारे रुक्मीकूं वस्त्रते बांधिके मोछन सहित मुंड मूंडिके अभद्ररूप करत भये, तबताईं यादव शूर वीर उद्यत रुक्मिकी सेनाकूं जैसे हाथी कमलिनीनकूं मर्दन करैहै याप्रकार मर्दन करत भये ॥ ३५ ॥ बलदेवजी श्रीकृष्णचन्द्रके पास आयके रुक्मिकूं देखत भयो कि रुक्मीका शिर मूंडिगयो, मृतककी तुल्य बंध्यो देखिके करुणाकर सामर्थ्यवान् बलदेवजी रुक्मिकूं बन्धनते छोडिके कहत भये॥ ३६॥ हे कृष्ण ! तुमने यह निंदित कर्म्म कर्‌यो, हमारी यामें निंदा होयगी, शिर मूंछ डाढी मुंडायके विरूप करदेनो यही अपने नातेदारको मारनों है ॥ ३७ ॥

---

१ चौपाई–मारो मत भैया है मेरो । छांडो नाथ तुमारो चेरो ॥ बंधु भीख प्रभु मोको देऊ । इतनो यश तुम जगमें लेऊ ॥ १ ॥
२ चौपाई–बांधो याहि करी बुधि थोरी । यह तुम कृष्ण सगाई तोरी ॥ अरु यदुकुलको लीक लगाई । अब हमसे को करे सगाई ॥ १ ॥

दृढ धनुषकूं खैंचिके श्रीकृष्णके तीन[1] बाण मारतभयो, और हे यादवनके कुलकूं दोषके लगावनवारे ! यहां तू क्षणभर खडो रहि ऐसे कहत भयो ॥
॥ २४ ॥ अरे जैसे होमकी सामग्रीकूं कौआ लैजायहै ऐसे मेरे बहिनिकूं चुरायके कहां लिये जाय है बडे मायावी कपटकरिकै युद्ध करनहारे तेरे मदको
मैं अब हरि लेऊंगो ॥ २५ ॥ मेरे बाणनसूं पीडित होयके जब ताईं युद्धमें न सोओ तबताईं कन्याकूं त्यागिदो, श्रीकृष्णचंद्र मुसिकायके वाके
धनुषकूं काटिके छः बाणनसूं रुक्मीको वेधतभये ॥२६॥ आठ बाणकरिके रथके चारों घोडानकूं और दो दो बाणनसूं रथमानकूं वेधतभये,तीन बाणनकरिके
ध्वजा काटतभये, इतनेमें रुक्मी और धनुषकूं लैके श्रीकृष्णचंद्रकूं पांच बाणनसूं वेधतभयो ॥ २७॥ बाणन करिके ताडित अच्युत श्रीकृष्ण

धनुर्विकृष्य सुदृढं जघ्ने कृष्णं त्रिभिः शरैः ॥ आह चात्र क्षणं तिष्ठ यदूनां कुलपांसन ॥२४॥ कुत्र यासि स्वसारं मे मुषित्वा
ध्वाङ्क्षवद्धविः ॥ हरिष्येऽद्य मदं मन्द मायिनः कूटयोधिनः ॥ २५ ॥ यावन्न मे हतो बाणैः शयीथा मुञ्च दारिकाम्
॥ स्मयन्कृष्णो धनुश्छित्त्वा षड्भिर्विव्याध रुक्मिणम् ॥ २६ ॥ अष्टभिश्चतुरो वाहान्द्वाभ्यां सूतं ध्वजं त्रिभिः॥
स चान्यद्धनुरादाय कृष्णं विव्याध पञ्चभिः ॥ २७ ॥ तैस्ताडितः शरौघैस्तञ्चिच्छेद धनुरच्युतः ॥ पुनरन्यदुपादत्त तदप्यच्छिनदव्ययः
॥ २८ ॥ परिघं पट्टिशं शूलं चर्मासी शक्तितोमरौ ॥ यद्यदायुधमादत्त तत्सर्वं सोऽच्छिनद्धरिः
॥ २९ ॥ ततो रथादवप्लुत्य खड्गपाणिर्जिघांसया ॥ कृष्णमभ्यद्रवत्क्रुद्धः पतङ्ग इव पावकम् ॥ ३० ॥ तस्य चापतः
खड्गं तिलशश्चर्म चेषुभिः ॥ छित्त्वासिमाददे तिग्मं रुक्मिणं हन्तुमुद्यतः ॥ ३१ ॥

रुक्मीको धनुष काटतभये, तब फेर रुक्मी और धनुष लेतभया, ताहूकूं अविनाशी भगवान् काटतभये ॥ २८ ॥ परिघ अर्थात् बेंडा पट्टिश अर्थात्
पट्टा, त्रिशूल, ढाल, तरवारि, बरछी, नेजा, और जो जो हथियार रुक्मी लेतभयो, ते ते सब श्रीकृष्णचंद्र काटतभये ॥ २९ ॥ तापीछे रुक्मी रथमेंते
कूदिके हाथमें तरवारी लैके मारिवेकी इच्छा करिके जैसे पतंग अग्निके सन्मुख जाय ऐसे श्रीकृष्णके सन्मुख जातभयो ॥ ३० ॥ धावमान होते रुक्मी
ताकी ढाल तरवारिकूं बाणनते तिल तिल भर काटिके पैंनी धारकी तरवारि लैके श्रीकृष्णचंद्र रुक्मीके मारिवेकूं उद्यत होतभये ॥ ३१ ॥

---

[1] चौपाई—व्रजवासी हम नहीं अहीर । ऐसे कहिके लीने तीर ॥ विष के बुझे लिये उनवीन । खैंच धनुष शर छांडे तीन ॥ १ ॥

वडे वडे शूर वीरन यूथनाथोंके पतियोंकेभी हम पालन करनेवारे हैं तथापि थोडे सैनावारे कृष्णपालित यदुवंशियोंसे हारगये ॥ १५ ॥ या समय उनके दिन अच्छे हैं तासूं हम शत्रुनको जीततभये, जव हमारे दिन अच्छे आमेंगे तव हम जीतेंगे॥ १६ ॥ याप्रकार मित्रनने समझायौ तव शिशुपाल अपने चाकर टहलुआनकूं संग लेके अपने देशकूं जातभयो मरेनते वाकी वचे राजाभी अपने पुरनकूं जातभये ॥ १७ ॥ कृष्णको वैरी रुक्मी वहिनिको युद्धमेंते हरिके लैजायवेकूं नहीं सहिकै एक अक्षौहिणी सेनाकूं संग लेके वली कृष्णके पीछे दौरतभयो ॥ १८ ॥ असहनतासे क्रोधित होयके कवच पहिर लियो, धनुष ग्रहण करिके सव राजानके श्रवण करत महाभुज रुक्मी प्रतिज्ञा करतभयो॥ १९ ॥ युद्धमें कृष्णके मारेविना और रुक्मि-

अधुनापि वयं सर्वे वीर यूथपयूथपाः ॥ पराजिताः फल्गुतन्त्रैर्यदुभिः कृष्णपालितैः ॥ १५॥ रिपवो जिग्युरधुना काल आत्मानुसारिणि ॥ तदा वयं विजेष्यामो यदा कालः प्रदक्षिणः ॥ १६ ॥ एवं प्रबोधितो मित्रैश्चैद्योऽगात्सानुगः पुरम् ॥ हतशेषाः पुनस्तेपि ययुः स्वं स्वं पुरं नृपाः ॥ १७ ॥ रुक्मी तु राक्षसोद्वाहं कृष्णद्विडसहन्स्वसुः ॥ पृष्ठतोऽन्वगमत्कृष्णमक्षौहिण्या वृतो बली ॥ १८ ॥ रुक्म्यमर्षी सुसंरब्धः शृण्वतां सर्वभूभुजाम् ॥ प्रतिजज्ञे महाबाहुर्दंशितः सशरासनः ॥ १९ ॥ अहत्वा समरे कृष्णमप्रत्यूह्य च रुक्मिणीम् ॥ कुण्डिनं न प्रवेक्ष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि वः ॥ २० ॥ इत्युक्त्वा रथमारुह्य सारथिं प्राह सत्वरः ॥ नोदयाश्वान्यतः कृष्णस्तस्य मे संयुगं भवेत् ॥ २१ ॥ अद्याहं निशितैर्बाणैर्गोपालस्य सुदुर्मतेः ॥ नेष्ये वीर्यमदं येन स्वसा मे प्रसभं हृता ॥ २२ ॥ विकत्थमानः कुमतिरीश्वरस्याप्रमाणवित् ॥ रथेनैकेन गोविन्दं तिष्ठ तिष्ठेत्यथाह्वयत् ॥ २३ ॥

णीके वगदाये विना कुंडिनपुरमें न आऊंगो, यह मैं सत्य कहूंहूं ॥ २० ॥ रुक्मी याप्रकार कहिके रथमें वैठिके रथमानसूं कहत भयो कि जहां कृष्ण है तहां शीघ्र घोडानकूं हांकिके लैचलो वाके संग मेरो युद्ध होयगो ॥ २१ ॥ वडी दुष्ट बुद्धिवारे गौनको चरावनवारे कृष्णके पराक्रमके मदकूं पैने वाणनसे मारिके अव हरिलेउगो कृष्ण जोरावरो मेरी वहिनकूं कैसे हरि लेगयो ॥ २२ ॥ खोटि बुद्धिसै रुक्मी ईश्वर श्रीकृष्णचंद्रके वलकूं न जानिके कुत्सित शब्दकूं कहत अकेलो रथकूं दौरायके ठाडो रहि ठाडो रहि ऐसे गोविंद श्रीकृष्णकूं पुकारतभयो ॥ २३ ॥

जीतिवेकी इच्छा करनवारे यादवोंने जब इस प्रकारसे शत्रुसेनाका संहार किया तब जरासंधसूं आदि लैके राजा विमुख होयके जात[1] भये॥९॥ स्त्री हर जानेसे व्याकुल तेजहीन उत्साहरहित मलीनमुख शिशुपाल होगया तब सब राजा उसके पास आयके सब राजा बोलतभये ॥ १० ॥ हे पुरुषनमें सिंह राजा शिशुपाल ! तुम अपने मनकी उदासीनताकूं त्यागो, देहधारीनकूं सुख और दुःख सर्वदा नहीं रहे है ॥११॥ जैसे काठकी पुतरी नचावन वारेकी

हन्यमानबलानीका वृष्णिभिर्जयकाङ्क्षिभिः ॥ राजानो विमुखा जग्मुर्जरासन्धपुरःसराः ॥ ९ ॥ शिशुपालं समभ्येत्य हतदारमिवातुरम् ॥ नष्टत्विषं गतोत्साहं शुष्यद्वदनमब्रुवन् ॥ १० ॥ भो भोः पुरुषशार्दूल दौर्मनस्यमिदं त्यज ॥ न प्रियाप्रिययो राजन्निष्ठा देहिषु दृश्यते ॥ ११ ॥ यथा दारुमयी योषिन्नृत्यते कुहकेच्छया ॥ एवमीश्वरतन्त्रोऽयमीहते सुखदुःखयोः ॥ १२ ॥ शौरेः सप्तदशाहं वै संयुगानि पराजितः ॥ त्रयोविंशतिभिः सैन्यैर्जिग्य एकमहं परम् ॥ १३ ॥ तथाऽप्यहं न शोचामि न प्रहृष्यामि कर्हिचित् ॥ कालेन दैवयुक्तेन जानन्विद्रावितं जगत् ॥ १४ ॥

इच्छा करिके नांच हैं, ऐसेही ईश्वरके अधीन जीवकूं सुखदुःख होइ है ॥ १२ ॥ कृष्णते सत्रहवार तेईस अक्षौहिणी सेना लैके युद्धमें हारचो केवल एक वेर जीत्यौ, तथापि मैं शोच नहीं करूंहूं[2] कदाचित् हर्ष नहीं मानूंहूं, दैवके वश कालने समस्त जगत् चलायमान कियो है यह में जानूंहूं ॥१३॥१४॥

---

[1] दोहा-यादव असुरन सौं लरत, होत महा संग्राम। ठाढे देखत कृष्ण हैं, युद्ध करत बलराम ॥१॥ यहि प्रकार दुहु ओरते, प्रगट्यो युद्ध विशाल। जीत भई नंदलालकी, हार गयो शिशुपाल ॥२॥

[2] एक पंडितजी एक स्थानमें ठहरे दो चार चेलेभी पास पढै हैं किसीके यहांका भोजनभी नहीं करे हैं, एक दिन एक लालाके यहां विवाह था, सब पंडितोंको बुलाके जिमाया पीछेसे किसीने कही पीपलके मंदीरमें जो पंडितजी टिके हैं, उन्हे न बुलाया, लालाजी बोले भूल गये, अच्छा, उनके यहां परोसे पहुंचा दो एक अच्छी वहंगीमें, दौ थाल पंचपकवानी से भर, और हलुआ पुरी भरके लालाजी स्वयं गये पंडितजी बोले कि यह तुम क्या लाये, हम किसी के यहांका भोजन नहीं करते, लालाजी बोले आप ले लीजिये, विद्यार्थीयोंको दे देना, पंडितजी बोले नहीं विद्यार्थी मनमें कोसने लगे, भले पंडितजी हैं, न आप लें न औरोंको लेने दे, अन्तमें लालाजी परोसे उठा चल दिये, पीछेसे पंडितजी बोले, हलुआ तौ अच्छा भना था, गरमागरम था, चेले बोले महाराज! परोसे ले लेते तौ हलुआही खाते शेष हमें वांट देते पंडितजीने कही अच्छा तौ बुला लाओ एक चेला दौडा गया लालाजी नहीं मिले पंडितजीकूं बडा शोच हुआ पूंछने लगे कि उसका घर कहां है चेलोंने बता दिया संध्या समय जब रात हुई तौ पंडितजी भेष बदलके वैश्योंकी ज्योनार में जा मिले किसी वैश्यने पूंछा आप कहां रहे हैं किसीके संग आये हैं बोले, इकलेही हैं स्वयंही आये हैं उसने इन्हे उठा दिया यह झगडा करने लगे तकरार होनेमें लालाजी और पंडितजीको आये पहचान हाथ जोडकर बोले मैं तौ स्थानमेंही लेके गयाथा यहां कैसे आगये पंडितजी बोले तृष्णा ले आई जो यह दशा कराई इससे कहे है तृष्णा बलवान् है.

॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति सर्वे सुसंरब्धा वाहानारुह्य दंशिताः॥ स्वैः स्वैर्बलैः परिक्रान्ता अन्वीयुर्धृतकार्मुकाः ॥१॥ तानापतत आलोक्य यादवानीकयूथपाः ॥ तस्थुस्तत्संमुखा राजन्विस्फूर्ज्य स्वधनूंषि ते ॥ २ ॥ अश्वपृष्ठे गजस्कन्धे रथोपस्थे त्वकोविदाः ॥ मुमुचुः शरवर्षाणि मेघा अद्रिष्वपो यथा ॥ ३॥ पत्युर्बलं शरासारैश्छन्नं वीक्ष्य सुमध्यमा॥ सव्रीडमैक्षत्तद्वक्त्रं भयविह्वललोचना ॥ ४ ॥ प्रहस्य भगवानाह मा स्म भैर्वामलोचने ॥ विनङ्क्ष्यत्यधुनैवैतत्तावकैः [illegible]त्रवं बलम् ॥ ५ ॥ तेषां तद्विक्रमं वीरा गदसंकर्षणादयः ॥ अमृष्यमाणा नाराचैर्जघ्नुर्हयगजान्रथान् ॥ ६ ॥ पेतुः शिरांसि रथिनामश्विनां गजिनां भुवि ॥ सकुण्डलकिरीटानि सोष्णीषाणि च कोटिशः ॥७॥ हस्ताः सासिगदेष्वासाः करभा उरवोऽङ्घ्रयः ॥ अश्वाश्वतरनागोष्ट्रखरमर्त्यशिरांसि च ॥ ८ ॥

अब श्रीशुकदेव कहे हैं हे राजन् परीक्षित् ! याप्रकार अत्यंत क्रोधकर कवचनकूं पहिरे सम्पूर्ण राजा अपनी अपनी सवारीपै चढिके सैन्याकूं संग लैके धनुषनकूं उठायके पीछेते आवत भये ॥ १ ॥ हे परीक्षित् ! यादवनकी सैन्यानके यूथके पालन करनवारे मुख्य मुख्य यादव राजानकूं देखिके अपने धनुषनकूं टंकार करिके सन्मुख ठाढे होत भये ॥ २ ॥ युद्ध करनेमें निपुण राजा घोडानकी पीठपे, हाथीनके कंधापे, रथनके ऊपर बैठिके, जैसे पर्वतनके ऊपर मेघ जल वर्षामें हैं, ऐसे बाणनकी वर्षा करत भये ॥ ३ ॥ सुंदर कटिवारी रुक्मिणी अपने पति श्रीकृष्णकी सैन्याकूं बाणसूं ढकी देखिके भय करिके विव्हल नेत्र होय लाजसूं श्रीकृष्णको मुख देखत भई ॥ ४ ॥ तब भगवान् हंसिके बोलत भये हे वामलोचने ! अर्थात् मनोहर नेत्रवारी ! तूं भय मति करै, तुम्हारी ओरके यादव शत्रुनकी सैन्याकूं अवही नाश करदेंइगे ॥ ५ ॥ गद संकर्षणकूं आदि लैके शूर वीर तिन राजानके पराक्रमनकूं नहीं कहिसके घोडा हाथी रथोंकूं बाणनसैं नाश करत भये ॥ ६ ॥ रथमें रथी घुडचढे और हाथियोंपे बैठे हुए योद्धाओंके पगडियों सहित हजारन शिर कटिके पृथ्वीपै गिरत भये ॥ ७ ॥ तरवार गदा धनुष्यनसहित हाथ कटिके गिरत भये, करभनके तुल्य जंघा कटिके गिरत भईं, घोडा खच्चर हाथी ऊंट गधा मनुष्य इनके शिर कटिके गिरत भये ॥ ८ ॥

ता रुक्मिणीकी उदार हंसनि और लज्जापूर्वक चितवनिसूं राजाओंके चित्त हर गयेते हथियारनकूं छोडिके रथ घोडा हाथीनपैते मूढ होयके पृथ्वीमें गिरत भये, रुक्मिणी यात्राके मिस करिके श्रीकृष्णचंद्रकूं अपनी शोभा दिखावै है ॥ ५४ ॥ या प्रकार चलायमान कमलकोशकी तुल्य कोमल जे चरण होले होले चलायके तासमय श्रीकृष्णके आयवेको पेंडो देखती रुक्मिणी वायें हाथके नखसूं अलकनकूं उठायके आयेभये राजाओंको लाजसूं देखती आगे ठाढे श्रीकृष्णकूं देखत भई ॥ ५५ ॥ भीष्मक राजाकी कन्या रुक्मिणी ज्योंहीं रथपै चढने लगी त्योंहीं भगवान् श्रीकृष्णचंद्र उसे हरण-

यां वीक्ष्य ते नृपतयस्तदुदारहासव्रीडावलोकहृतचेतस उज्झितास्त्राः ॥ पेतुः क्षितौ गजरथाश्वगता विमूढा यात्राच्छलेन हरयेऽर्पयतीं स्वशोभाम् ॥ ५४ ॥ सैवं शनैश्चलयती चलपद्मकोशौ प्राप्तिं तदा भगवतः प्रसमीक्षमाणा ॥ उत्सार्य वामकरजैरलकानपाङ्गैः प्राप्तान्ह्रियैक्षत नृपान्ददृशेऽच्युतं सा ॥ ५५ ॥ तां राजकन्यां रथमारुरुक्षतीं जहार कृष्णो द्विषतां समीक्षताम्॥ रथं समारोप्य सुपर्णलक्षणं राजन्यचक्रं परिभूय माधवः॥ ततो ययौ रामपुरोगमैः शनैः शृगालमध्यादिव भागहृद्धरिः ॥ ५६ ॥ तं मानिनः स्वाभिभवं यशःक्षयं परे जरासंधवशा न सेहिरे ॥ अहो धिगस्मान्यश आत्तधन्वनां गोपैर्हृतं केसरिणां मृगैरिव ॥५७॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिणीहरणं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥

कर आप गरुड़ध्वजावारे रथमें बैठारिके क्षत्रीनकी सैन्याकूं तिरस्कार कर जात भये जैसे स्यारनके[2] बीचमेंते अपने भागकूं लैके सिंह चल्यो जाय है, फिर रामआदि यादवन सहित रुक्मिणीकूं लैके श्रीकृष्णचंद्र होले होले जात भये ॥ ५६ ॥ जरासंधादि अभिमानी राजा यशको नाशरूपी अपनो अपमान नहीं सम्हारत भये और बोले अहो हमको धिक्कार है जैसे सिंहनके यशकूं स्यार हरे हैं, ऐसे हम धनुषधारीनके यशकूं ग्वारियानने हरिलियो ॥ ५७ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिणीहरणं नाम त्रिपञ्चाशत्तमोध्यायः ॥५३॥

---

१ दोहा–पूजि गौरि जबही चली, एक कहत अकुलाय । सुन सुन्दरि आये हरि, देख ध्वजा फहराय ॥ १ ॥ चौपाई–कंपित गात सकुच मन भारी । छांड सवै हरि संग सिधारी ॥ ज्यों वैरागी छांड गेह । कृष्णचरणसों करै सनेह ॥ २ ॥ ॥ २ दोहा–ज्यौं बहु कुंडन स्यार के, परै सिंह बिच आय । अपनो भक्षण लेइकै, चलै निडर घहराय ॥ १ ॥

अम्बिके पार्वति! अपने संतान सहित मंगलरूपिणी तुमकूं वारंवार प्रणाम करूंहूं, भगवान् श्रीकृष्ण मेरे पति होयँ, या प्रकार शिर नवायके रुक्मिणी प्रार्थना करत भंई[१] ॥ ४६ ॥ जल चंदन अक्षत धूप वस्त्र माला फल गहने और नानाप्रकारकी सामग्रीनकी भेटनसूं और न्यारी न्यारी दीवानकी पंक्तिसूं देवीकी पूजा करतिभई ॥ ४७ ॥ ताही प्रकार तिन सामग्रीनसूं और नोनके पूआपान कलाये सुपारी गांडे इनसूं सौभाग्यवती ब्राह्मणनकी स्त्रीयोंकी पूजा करत भई ॥ ४८ ॥ रुक्मिणी देवीकूं और ब्राह्मणनकी स्त्रीनकूं नमस्कार करत भई, और प्रसाद लेतभई, ब्राह्मणकी स्त्री आशीर्वाद देत भई ॥४९॥ ताके पीछे मौनकूं त्यागिके जडाऊ मुंदरीसूं शोभायमान हाथसूं दासीको पकरिके मंदिरसूं बाहिर निकसति भई ॥ ५० ॥ ईश्वरकी मायाकी तुल्य

अद्भिर्गन्धाक्षतैर्धूपैर्वासःस्रङ्माल्यभूषणैः ॥ नानोपहारबलिभिः प्रदीपावलिभिः पृथक् ॥४७॥ विप्रस्त्रियः
पतिमतीस्तथा तैः समपूजयत् ॥ लवणापूपताम्बूलकण्ठसूत्रफलेक्षुभिः ॥ ४८ ॥ तस्यै स्त्रियस्ताः प्रददुः
शेषां युयुजुराशिषः ॥ ताभ्यो देव्यै नमश्चक्रे शेषां च जगृहे वधूः ॥ ४९ ॥ मुनिव्रतमथ त्यक्त्वा निश्चक्रामा-
म्बिकागृहात् ॥ प्रगृह्य पाणिना भृत्यां रत्नमुद्रोपशोभिना ॥ ५० ॥ तां देवमायामिव वीरमोहिनीं सुमध्यमां
कुण्डलमण्डिताननाम् ॥ श्यामां नितम्बार्पितरत्नमेखलां व्यञ्जत्स्तनीं कुन्तलशङ्कितेक्षणाम् ॥५१॥ शुचि-
स्मितां बिम्बफलाधरद्युतिशोणायमानद्विजकुन्दकुड्मलाम् ॥ पदा चलन्तीं कलहंसगामिनीं सिञ्जत्कला-
नूपुरधामशोभिना ॥५२॥ विलोक्य वीरा मुमुहुः समागता यशस्विनस्तत्कृतहृच्छयार्दिताः ॥ ५३ ॥

बडे बडे शूरवीर राजानकी मोहनवारी सुन्दर कटीवारी कुंडलन करि शोभायमान मुखवाली रुक्मिणी रत्ननकी जडाऊ कौंधनी नितम्बौंमें पहिरे स्तनकी प्रगटता और केशोंकी शंकासै चलायमान नेत्रवारी ॥ ५१ ॥ सुंदर मुसिकान कुंदरूके फलकी तुल्य अव्रण ओष्ठनकी कांतिसै कुंदकी कलिके समान दंत पांतिपर अरुणाई छाइ हैं राजहंसकी समान गतिसे और झनकार शब्द करते नूपुरकी प्रभासे शोभित चरणोंसे गमन करती रुक्मिणीको देख संगमें जो बडे २ यशस्वी शूरवीर योद्धा आयेथे वे सब उसके दर्शनसे उत्पन्न हुए कामदेवसे पीडित हो मोहकूं प्राप्तभये ॥५२॥५३॥

---

[१] दोहा—जो विधि सों पूजो तुम्हैं, जगजननी मन लाय । तौ यह वर दीजे शिवे, वर पाऊं यदुराय ॥ १ ॥ चौपाई—मोपर गौरि कृपा तुम करो । यदुपति पति दे मम दुख हरो ॥

ऐसे परस्पर कहत भये ॥ ३७ ॥ जो कछु हमने पुण्य करे हैं ताके प्रभाव करिके त्रिलोकीके करनवारो ईश्वर प्रसन्न होयके अनुग्रह करो और हम यही अनुग्रह चाहे है कि कृष्णचंद्र रुक्मिणीको पाणिग्रहण करौ ॥ ३८ ॥ या प्रकार प्रेमबद्ध होयके संपूर्ण पुरवासी कहत भये, तासमय कन्या रुक्मिणी पुरते बाहिर निकसिके प्यादैं और सेनासे रक्षित होयके देवी अम्बिकाके मंदिरमें जाति भई ॥ ३९ ॥ मुकुन्द श्रीकृष्णचंद्रके चरणकमलको भले प्रकार ध्यान करत अम्बिका भवानीके चरणारविंदके दर्शनके निमित्त पावनहींसे जात भई ॥ ४० ॥ मौन धारण कियो पुरोहितानी संग, और सखी सहेली संगमें चली कँवच पहिरि पहिरिके शस्त्र हाथनमें लैके पहरेदार राजाके सिपाई रक्षानिमित्त संग भये मृदंग, शंख, ढोल, तुरही, भेरि बाजे बजत भये

किञ्चित्सुचरितं यन्नस्तेन तुष्टस्त्रिलोककृत् ॥ अनुगृह्णातु गृह्णातु वैदर्भ्याः पाणिमच्युतः ॥ ३८ ॥ एवं प्रेमकला बद्धा
वदन्ति स्म पुरौकसः ॥ कन्या चान्तःपुरात्प्रागाद्भटैर्गुप्ताऽम्बिकालयम् ॥ ३९ ॥ पद्भ्यां विनिर्ययौ द्रष्टुं भवान्याः
पादपल्लवम् ॥ सा चाऽनुध्यायती सम्यङ्मुकुन्दचरणाम्बुजम् ॥ ४० ॥ यतवाङ्मातृभिः सार्धं सखीभिः परिवारिता ॥
गुप्ता राजभटैः शूरैः सन्नद्धैरुद्यतायुधैः ॥ मृदङ्गशङ्खपणवास्तूर्यभेर्यश्च जघ्निरे ॥ ४१ ॥ नानोपहारबलिभिर्वारमुख्याः
सहस्रशः ॥ स्रग्गन्धवस्त्राभरणैर्द्विजपत्न्यः स्वलंकृताः ॥ ४२ ॥ गायन्तश्च स्तुवन्तश्च गायका वाद्यवादकाः ॥ परिवार्य
वधूं जग्मुः सूतमागधवन्दिनः ॥ ४३ ॥ आसाद्य देवीसदनं धौतपादकराम्बुजा ॥ उपस्पृश्य शुचिः शान्ता प्रविवे-
शाम्बिकाऽन्तिकम् ॥ ४४ ॥ तां वै प्रवयसो बालां विधिज्ञा विप्रयोषितः ॥ भवानीं वन्दयाञ्चक्रुर्भवपत्नीं भवान्विताम्
॥४५॥ नमस्ये त्वाम्बिकेऽभीक्ष्णं स्वसन्तानयुतां शिवाम् ॥ भूयात्पतिर्मे भगवान्कृष्णस्तदनुमोदताम् ॥ ४६ ॥

॥ ४१ ॥ उत्तम उत्तम हजारन वेश्या संगमें नाचत जात भईं, माला चंदन वस्त्र गहनेनसूं शृंगार करिके और अनेक प्रकारकी सामग्री भेट लैके द्विजनकी स्त्री संग जाति भईं ॥ ४२ ॥ गवैया और बाजेनके बजवैया और सूत जगा बंदीजन रुक्मिणीकूं बीचमें करिके गावत और स्तुति करत जात भये ॥ ४३ ॥ देवीके मंदिरमें जाय हाथ पांव धोइ आचमन करि पवित्र होयके शांत स्वरूप रुक्मिणी अम्बिका देवीके पास जातभई ॥४४॥ विधिकी जाननेवारी वृद्ध ब्राह्मणनकी स्त्री बालक रुक्मिणीपै महादेवसहित महादेवकी पत्नी भवानीकी पूजा करावतभई ॥ ४५ ॥ तब रुक्मिणी मनमें कहतभई हे

तब रुक्मिणीते श्रीकृष्णचंद्र आये हैं यह ब्राह्मण कहत भयो, और राजनकूं जीतिके रुक्मिणीकूं ले आऊंगो, यह सत्य वचन श्रीकृष्णचंद्रने कह्यो ताकूभी कहत भयो ॥ ३० ॥ श्रीकृष्णकूं आये जानिके हर्षित मनसे विदर्भ देशके राजाकी पुत्री रुक्मिणी विचार करै हैं, कि यासमय ब्राह्मणकूं सर्वस्व देऊं सोभी थोरो है ऐसे ब्राह्मणके देवेयोग्य कोई वस्तु नहीं देखिके प्रणामही करत भई पश्चात् धनभी देतभई ॥ ३१ ॥ कन्याके विवाह देखिवेकी इच्छा करिके श्रीकृष्ण बलदेवकूं आये सुनिके राजा भीष्मक नगाडे बजावत पूजनकी सामग्री लैके सन्मुख जातभयो ॥ ३२ ॥ मधुपर्क लायके आगे धरत भयो, सुन्दर वस्त्र और अनेक प्रकारकी भेटें निवेदन करिके विधिपूर्वक राजा भीष्मक श्रीकृष्ण बलदेवको पूजन करत भयो

तस्या आवेदयत्प्राप्तं शशंस यदुनन्दनम् ॥ उक्तं च सत्यवचनमात्मोपनयनं प्रति ॥ ३० ॥ तमागतं समाज्ञाय वैदर्भी हृष्टमानसा ॥ न पश्यन्ती ब्राह्मणाय प्रियमन्यन्ननाम सा ॥ ३१ ॥ प्राप्तौ श्रुत्वा स्वदुहितुरुद्वाहप्रेक्षणोत्सुकौ ॥ अभ्ययात्तूर्यघोषेण रामकृष्णौ समर्हणैः ॥ ३२ ॥ मधुपर्कमुपानीय वासांसि विरजांसि च ॥ उपायनान्यभीष्टानि विधिवत्समपूजयत् ॥ ३३ ॥ तयोर्निवेशनं श्रीमदुपकल्प्य महामतिः ॥ ससैन्ययोः सानुगयोरातिथ्यं विदधे यथा ॥ ३४ ॥ एवं राज्ञां समेतानां यथावीर्यं यथावयः ॥ यथाबलं यथावित्तं सर्वैः कामैः समर्हयत् ॥ ॥ ३५ ॥ कृष्णमागतमाकर्ण्य विदर्भपुरवासिनः ॥ आगत्य नेत्राञ्जलिभिः पपुस्तन्मुखपङ्कजम् ॥ ३६ ॥ अस्यैव भार्या भवितुं रुक्मिण्यर्हति नापरा ॥ असावप्यनवद्यात्मा भैष्म्याः समुचितः पतिः ॥ ३७ ॥

॥३३॥ बडो बुद्धिमान् राजा भीष्मक कृष्ण बलदेवके लिये सुन्दर स्थान बनाईके सैन्या टहलुआन सहित यथायोग्य आतिथ्य करत भयो ॥ ३४ ॥ याप्रकार एक ठौर भये राजाओंमें जैसो जाको पराक्रम जैसी जाकी अवस्था और जैसो जाको बल, जितनो जाके धन है, ताको ताही प्रकार सम्पूर्ण वस्तुनकरिके राजा भीष्मक पूजन करत भयो ॥ ३५ ॥ विदर्भपुरके वासी श्रीकृष्णचन्द्रकूं आयो सुनिके नेत्ररूप अंजलीनसूं श्रीकृष्णचन्द्रके मुखकमलकूं पीवत भये ॥ ३६ ॥ दोषरहित रुक्मिणी सो श्रीकृष्णचन्द्रकी स्त्री होइवेके योग्य है, ऐसेही श्रीकृष्णचन्द्र रुक्मिणीके पति होनेके योग्य हैं

---

[१] दोहा—मकराकृत कुंडल श्रवण, उर भुज नैन विशाल । मंद हंसनि चितवनि सुभग, उर वैजयन्ती माल ॥ १ ॥ योग्य रुक्मिणी के यही, वर है अति सुकुमार । जहां तहां मिलि कहहिं सब, पुरके नर अरु नार ॥ २ ॥ हमरे पुण्य प्रभावते, रुक्मिणि व्याहैं श्याम । यहै लालसा में मग्न, पूजिहैं विधि सब काम ॥ ३ ॥

मुझ मंद भागिनीके विवाहमें अव एक रात्री वाकी रहीहै, परंतु कमलनेत्र श्रीकृष्णचंद्र नहीं आयपहुंचे,याको कारण मैं नहीं जानूंहूं, मेरो संदेशो ब्राह्मण लेके गयो सोभी नहीं आयो है[1] ॥२३ ॥ निर्दोष श्रीकृष्णने मेरे पाणिग्रहणको निश्चय उपाय कियो होइगो, परंतु कन्या अभीते पाती लिखि लिखि भेजे यह दोष देखिके नहीं आये ॥ २४ ॥ मो अभागिनीकूं विधाता ईश्वर अनुकूल नहीं है और देवी गौरी रुद्राणी पार्वती ये अनुकूल नहीं है ॥ २५ ॥ भगवानने जाकी सुध बुध हरली समयकी जाननेहारी रुक्मिणी वाला आसुओंसे व्याकुल भये नेत्रोंको मूंदकर वैठ गई ॥ २६ ॥ हे राजन् परीक्षित !

अहो त्रियामान्तरित उद्वाहो मेऽल्पराधसः ॥ नागच्छत्यरविन्दाक्षो नाहं वेद्म्यत्र कारणम् ॥ २३ ॥ सोपि नावर्ततेऽद्यापि मत्संदेशहरो द्विजः ॥ अपि मय्यनवद्यात्मा दृष्ट्वा किञ्चिज्जुगुप्सितम् ॥ मत्पाणिग्रहणे नूनं नायाति हि कृतोद्यमः ॥ २४ ॥ दुर्भगाया न मे धाता नानुकूलो महेश्वरः ॥ देवी वा विमुखा गौरी रुद्राणी गिरिजा सती ॥ २५ ॥ एवं चिन्तयती वाला गोविन्दहृतमानसा ॥ न्यमीलयत कालज्ञा नेत्रे चाश्रुकलाकुले ॥ २६ ॥ एवं वध्वाः प्रतीक्षन्त्या गोविन्दागमनं नृप ॥ वाम ऊरुर्भुजो नेत्रमस्फुरन्प्रियभाषिणः ॥ २७ ॥ अथ कृष्णविनिर्दिष्टः स एव द्विजसत्तमः ॥ अन्तःपुरचरीं देवीं राजपुत्रीं ददर्श ह ॥ २८ ॥ सा तं प्रहृष्टवदनमव्यग्रात्मगतिं सती ॥ आलक्ष्य लक्षणाभिज्ञा समपृच्छच्छुचिस्मिता ॥ २९ ॥

याप्रकार गोविंद श्रीकृष्णके आइवेको पेंडो देखते[2] रुक्मिणीकी वांई ऊरु भुजा नेत्र ये अंग फरकत भये स्त्रीनके वायें अंग फरकने शुभ होयेंहैं, प्यारी वातके जनावनवारे हैं ॥ २७ ॥ याके पीछे ब्राह्मण तुम आगे जायके खवरी करौ याप्रकार श्रीकृष्णसे आज्ञा पाय ब्राह्मण अंतःपुरमें व्याकुलतासे डोलती राजपुत्री रुक्मिणीकूं देखत भयो ॥ २८ ॥ पतिव्रता रुक्मिणी प्रसन्नमुख और स्वस्थ रीतिसे चले आते ब्राह्मणकूं देखिके कार्य करिके आयो है या लक्षणकूं जानिके पवित्र मुसिकानिवारी रुक्मिणी पूंछतीभई ॥ २९ ॥

---

[1] चौपाई–विलखि वदन चितवै चहुं ओर । जैसे चंद मलिन भये भोर ॥ अति चिंता सुंदरि जिय वाढी । देखे झूकि अटापर ठाढी ॥ १ ॥ चढि चढि ऊझ के खिरकी द्वार । नैननतै छांडत जलधार ॥ ले वरात आयो शिशुपाल । कैसे विरमे दीनदयाल ॥ २ ॥ दोहा–विलख वदन अति मलिन मन, लेत उसास निसास । व्याकुल वर्षा नयन जल, मोचति कहत उदास ॥ ३ ॥

[2] दोहा– मेरे दोष विचारके, नहिं आये भगवान । जो न मिलैं मनभावते, तौ देहों तज प्राण ॥ १ ॥ कहां जाउं कैसी करों, धरत नहीं चित धीर । दासी प्यासी दरस की, कब ऐहैं यदुवीर ॥ २ ॥

लडिकाके पिताकी वात कहे हैं जैसे राजा भीष्मकने कन्याको मंगल करायो ऐसेही चंदेलीको पालन करनवारो राजा दमघोष अपने पुत्र शिशुपालको मंत्रके जाननवारे ब्राह्मणनसूं संपूर्ण विवाहके उचित मंगल कर्म्म करावत भयो ॥१४॥ मद चुवाते सुवर्णकी माला पहरे हाथीनके समूह और रथ प्यादे घोडा इनकी चतुरंगिनी सैन्याकूं संग लैके राजा दमघोष कुंडिनपुरमें आवत भयो ॥ १५ ॥ विदर्भदशैंको राजा भीष्मक शिशुपालके पास आयके पूजन करिके सजाये भये एक और स्थानमें प्रसन्न होयके उन्हें वसावत भयो ॥ १६ ॥ तहां शाल्व जरासंध दंतवक्र विदूरथ शिशुपाल और पौंड्रक आदि लैके हजारन राजा शिशुपालकी ओरके आवत भये ॥ १७ ॥ राम कृष्णते वैर करकै वडे यत्नसे कन्याकूं शिशुपालके विवाह करिवेके लिये

मदच्युद्भिर्गजानीकैः स्यन्दनैर्हेममालिभिः ॥ पत्त्यश्वसङ्कुलैः सैन्यैः परीतः कुण्डिनं ययौ ॥ १५ ॥ तं वै विदर्भाधिपतिः समभ्येत्याभिपूज्य च ॥ निवेशयामास मुदा कल्पितान्यनिवेशने ॥ १६ ॥ तत्र शाल्वो जरासन्धो दन्तवक्त्रो विदूरथः ॥ आजग्मुश्चैद्यपक्षीयाः पौण्ड्रकाद्याः सहस्रशः ॥१७॥ कृष्णरामद्विषो यत्ताः कन्या चैद्याय साधितुम् ॥ यद्यागत्य हरेत्कृष्णो रामाद्यैर्यदुभिर्वृतः ॥ १८ ॥ योत्स्यामः संहतास्तेन इति निश्चितमानसाः ॥ आजग्मुर्भूभुजः सर्वे समग्रबलवाहनाः ॥ १९ ॥ श्रुत्वैतद्भगवान्रामो विपक्षीयनृपोद्यमम् ॥ कृष्णं चैकं गतं हर्तुं कन्यां कलहशङ्कितः ॥ २० ॥ बलेन महता सार्धं भ्रातृस्नेहपरिप्लुतः ॥ त्वरितः कुण्डिनं प्रागाद्गजाश्वरथपत्तिभिः ॥ २१ ॥ भीष्मकन्या वरारोहा काङ्क्षत्यागमनं हरेः ॥ प्रत्यापत्तिमपश्यन्ती द्विजस्याचिन्तयत्तदा ॥ २२ ॥

उद्यम करकै आये हैं और मनमें निश्चय करलीही कदाचित् रामसूं आदि लैके यादवनकूं संग लैके कृष्ण आयके कन्याकूं चुरायके लैजायगो, तौ वाके संग युद्ध करेंगे, ऐसे मनमें निश्चय करिके अच्छे अच्छे सिपाही घोडा हाथीनकूं संग लैके सम्पूर्ण राजा आवत भये ॥ १८ ॥ १९ ॥ भगवान् बलदेवजी शत्रु शिशुपालकी पक्षके राजानको उद्यम सुनिके और कन्या लेवेकूं श्रीकृष्ण अकेलो गयो है [illegible] कलह होयगो यह शंका मानिके भैया श्रीकृष्णके स्नेहसे बलदेवजी हाथी घोडा रथ प्यादेनकी चतुरंगिनी सेनाकूं लैके शीघ्र कुंडिनपुरमें आवतभये ॥२०॥२१॥ श्रेष्ठजंघावारी भीष्मककी कन्या रुक्मिणी हरि श्रीकृष्णके आयवेको पेंडो देखत २ ब्राह्मण पत्री लैके गयोहै, वह लौटिके न आयो तब चिंता करतिभई ॥ २२ ॥

पुत्र रुक्मीके स्नेहवश होयके वाके कहेमें चलनेहारो कुंडनपुरको राजा प्रजाको पालन करनवारो भीष्मक शिशुपालकूं अपनी कन्या देवेके लिये पुरकी शोभा और पितृदेवतानके पूजनकूं आदिलेके कर्म करावत भयो ॥७॥ राजा भीष्मक अपने पुरकूं शोभायमान करावत भयो राजमार्गमें झार बुहारके छिरकाव होत भयो चित्र विचित्र ध्वजा पताका वंदनवारनकरिके वह पुर शोभायमान कियो ॥८॥ माला चंदन फूलनके गहने स्वच्छ वस्त्र इनसूं शोभायमान स्त्री पुरुष डोले हैं अगरको धूपसे शोभायमान घर है ॥९॥ हे राजन् परीक्षित्! पितृदेवतानको पूजन करिके ब्राह्मणनको विधिपूर्वक भोजन करायके राजा भीष्मक रुक्मिणीको यथावत् स्वस्तिवाचन करावत भये ॥१०॥ सुन्दर कन्याको भली प्रकार स्नान कराय कौतुकसे ताके हाथमें विवाहको कंगन बांध उत्तम नवीन वस्त्र पहराय अलंकारोंसे शोभित कर ॥ ११ ॥ द्विजोत्तम ब्राह्मण सामवेद ऋग्वेद यजुर्वेदके मंत्रनकूं पढिके वधू रुक्मिणीकी रक्षा करत भये, अथर्ववेदके मंत्रनको जाननवारो पुरोहित सूर्य्यादिक ग्रहनकी शांति करिवेके लिये होम करत भयो ॥१२॥ विधिके जाननवारेनमें श्रेष्ठ राजा भीष्मक ब्राह्मणनकूं सुवर्ण रूपो वस्त्र और गुड मिलायके तिल और दुग्धकी गौवनको दान करत भयो ॥ १३ ॥ यह तो रुक्मिणीके पिताकी बात कही अब

राजा स कुण्डिनपतिः पुत्रस्नेहवशं गतः॥ शिशुपालाय स्वां कन्यां दास्यन्कर्माण्यकारयत् ॥ ७ ॥ पुरं संमृष्टसंसिक्तमार्गरथ्याचतुष्पथम् ॥ चित्रध्वजपताकाभिस्तोरणैः समलंकृतम् ॥ ८ ॥ स्रग्गन्धमाल्याभरणैर्विरजोम्बरभूषितैः ॥ जुष्टं स्त्रीपुरुषैः श्रीमद्गृहैरगुरुधूपितैः ॥ ९ ॥ पितॄन्देवान्समभ्यर्च्य विप्रांश्च विधिवन्नृप ॥ भोजयित्वा यथान्यायं वाचयामास मङ्गलम् ॥ १० ॥ सुस्नातां सुदतीं कन्यां कृतकौतुकमङ्गलाम् ॥ अहतांशुकयुग्मेन भूषितां भूषणोत्तमैः ॥ ११ ॥ चक्रुः सामर्ग्यजुर्मन्त्रैर्वध्वा रक्षां द्विजोत्तमाः ॥ पुरोहितोऽथर्वविद्वै जुहाव ग्रहशान्तये॥ १२ ॥ हिरण्यरूप्यवासांसि तिलांश्च गुडमिश्रितान् ॥ प्रादाद्धेनूश्च विप्रेभ्यो राजा विधिविदां वरः ॥ १३ ॥ एवं चेदिपती राजा दमघोषः सुताय वै ॥ कारयामास मन्त्रज्ञैः सर्वमभ्युदयोचितम् ॥ १४ ॥

---

१ चौपाई–झारैं गली चौहटे छावैं। चोवा चंदन सों छिरकावैं॥ पान सुपारी झोरा किये। बिच बिच कनक नारियल दिये ॥ १ ॥
हरे पात फल फूल अपार। ऐसी घर घर बंदनवार॥ ध्वजा पताका तोरण तने। सुभग कलश कंचनके बने ॥ २ ॥

अब ब्राह्मण कहै हैं हे यादवनके देव ! गुप्त संदेशो लैकै मैं आयोहूं जो यहां करिवे योग्य कार्य्य हो ताय विचारिके शीघ्रता करौ विलंब मतिकरौ ॥४४॥ इति श्रीमन्महाभागवते भाषाटीकायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिण्युद्वाहे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित् ! यदुकुलकूं आनंदके देनवारे श्रीकृष्णचंद्र विदर्भदेशके राजाकी पुत्री रुक्मिणीको संदेशो सुनिके ब्राह्मणको अपने हाथमें हाथ पकारिके बोलत भये ॥ १ ॥ अब भगवान् श्रीकृष्णचंद्र कहैं हैं जैसो रुक्मिणीको मेरे विषै चित्त लग्यो है ऐसेही रुक्मिणीमें मेरोहू चित्त लग्यौ है चिंताके मारे रात्रिमें नींद नहीं आवै है, मैं जानूहूं रुक्मिणीने द्वेष करिके मेरे व्याहकूं मने करचो है ॥२ ॥ दुष्ट राजनकूं जीतिके दोषरहित अंगवारी अनन्यगति रुक्मिणीकूं जैसे काष्ठमथन करिके अग्नि निकास लेइहैं तैसे लै आऊंगो ॥ ३ ॥ शुकदेवजी बोले हे परीक्षित् ! मुरदैत्यके मारनवारे भगवान् रुक्मिणीके विवाहको नक्षत्र जानिके हे रथवान् ! रथकूं शीघ्र जोतो या प्रकार रथवानसूं कहतभये ॥ ४ ॥ शैब्य सुग्रीव मेघपुष्प बलाहक नामवारे घोडानकूं रथमें जोतिके सन्मुख लायके रथवान हाथ जोरिके बोलतभयो ॥ ५ ॥ शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्र रथमें बैठिके और ब्राह्मणकूं बैठारिके शीघ्रगामी घोडानसूं आनर्तदेशते चलिके एक रातिमेंही विदर्भदेशमें आवत भये ॥ ६ ॥

ब्राह्मण उवाच ॥ इत्येते गुह्यसंदेशा यदुदेव मयाऽऽहृताः ॥ विमृश्य कर्तुं यच्चात्र क्रियतां तदनन्तरम् ॥४४॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिण्युद्वाहे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वैदर्भ्याः स तु संदेशं निशम्य यदुनन्दनः ॥ प्रगृह्य पाणिना पाणिं प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि ॥ वेदाहं रुक्मिणा द्वेषान्ममोद्वाहो निवारितः ॥ २ ॥ तामानयिष्य उन्मथ्य राजन्यापसदान्मृधे ॥ मत्परामनवद्याङ्गीमेधसोऽग्निशिखामिव ॥ ३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ उद्वाहर्क्षं च विज्ञाय रुक्मिण्या मधुसूदनः ॥ रथः संयुज्यतामाशु दारुकेत्याह सारथिम् ॥ ४ ॥ स चाश्वैः शैब्यसुग्रीवमेघपुष्पबलाह[illegible] ॥ युक्तं रथमुपानीय तस्थौ प्राञ्जलिरग्रतः ॥ ५ ॥ आरुह्य स्यन्दनं शौरिर्द्विजमारोप्य तूर्णगैः ॥ आ[illegible]र्तादेकरात्रेण विदर्भानगमद्धयैः ॥ ६ ॥

भाग हूं उसे जैसे सिंहके भागकूं स्यार नहीं स्पर्श कर सक्ता तैसे शिशुपाल आनकर तुरत स्पर्श न करै ॥ ३९ ॥ बावरी कुआं तलाव बाग यज्ञ दान नियम तीर्थ देवता ब्राह्मण गुरु इनकी पूजा करिके ईश्वर भगवान् प्रसन्न करें हैं, तो श्रीकृष्णचंद्र हाथ पकरिके लैजाओ, दमघोषको पुत्र शिशुपालते आदि लैके राजा न आवैं ॥ ४० ॥ हे अजित ! अर्थात् जीतिवेमें न आवौ कालि विवाह होयगो तामें तुम छिपके विदर्भदेशमें आओ, और अकेले मतिआओ पीछेते सैन्याकूं लगाये आओ शिशुपाल और मगधदेशको राजा जरासंध इनकी सैनाको बलसे मथनकर पराक्रमके मोलवारी मुझ अपनी दासीके संग असुर विधिसे व्याह करलो ॥ ४१ ॥ कदाचित् कहो कि तुम तौ रुक्मिणी पुरके भीतर हो तुमारे भैया बंधून के

पूर्तेष्टदत्तनियमव्रतदेवविप्रगुर्वर्चनादिभिरलं भगवान्परेशः ॥ आराधितो यदि गदाग्रज एत्य पाणिं गृह्णातु मे न दमघोषसुतादयोऽन्ये ॥ ४० ॥ श्वो भाविनि त्वमजितोद्वहने विदर्भान्गुप्तः समेत्य पृतनापतिभिः परीतः ॥ निर्मथ्य चैद्यमगधेन्द्रबलं प्रसह्य मां राक्षसेन विधिनोद्वह वीर्यशुल्काम् ॥ ४१ ॥ अन्तःपुरान्तरचरीमनिहत्य बन्धूंस्त्वामुद्वहे कथमिति प्रवदाम्युपायम् ॥ पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा यस्यां बहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् ॥ ४२ ॥ यस्याङ्घ्रिपङ्कजरजःस्नपनं महान्तो वाञ्छन्त्युमापतिरिवात्मतमोऽपहत्यै ॥ यर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं जह्यामसून्व्रतकृशाञ्छतजन्मभिः स्यात् ॥ ४३ ॥

मारे विना कैसे व्याहूं ऐसी मनमें शंका करौ तौ उपाय बताऊंहूं विवाहते पूर्व दिन बडी कुलदेवी अंबिकाकी यात्रा होयहै, ता यात्रा करिवेके लिये और देवकी पूजा करिवेकौं नववधू कन्या बाहर जांय है तहांते मेरो लैजायवो सुगम है जैसे पार्वतीको शिवजी लेगये ॥ ४२ ॥ जिनके चरणारविंदनकी रजसूं स्नान करिवेकूं बडे बडे साधु महान् अपने अज्ञान दूरि करिवेके लिये इच्छा करें हैं हे कमलदललोचन ! जो तुम मेरे ऊपर प्रसन्न भये तौ व्रत करिवेते दुर्बल प्राणत्याग देऊंगी कदाचित् कहौ कि प्राण त्यागवेते कहा होयगो तहां रुक्मिणी कहै हैं वारंवार प्राणत्याग करूंगी तौ सौजन्ममें तौ प्रसन्न होउगे ॥ ४३ ॥

373

समुद्रको उल्लंघन करिकै जिस कार्यके करिवेकी इच्छा करिकै जा स्थानते तुम या किलामें प्राप्त भये हो जो कथन योग्य बात होय तौ हमारे आगे संपूर्ण कहौ हम तुम्हारो कहा कार्य करें ॥ ३५॥ श्रेष्ठ आसनपै विराजमान होय लीला करिके मनुष्यदेह धारण करनहारे श्रीकृष्णचंद्रके पूछनेपर वह ब्राह्मण श्रीकृष्णते वर्णन करत भयो ॥ ३६ ॥ हे भगवन् ! रुक्मिणीने आपको एकांतमें लिखिके पत्री दी है उस प्रेमके चिन्हवारी पत्री को खोलके वह ब्राह्मण श्रीकृष्णकूं दिखायके उनकी आज्ञाते पत्रीकूं वांचे हैं रुक्मिणी कहै है हे त्रिलोकीमें सुन्दर ! हे अच्युत ! अखंडरूप जबसे श्रवण करनेवाले

यतस्त्वमागतो दुर्गं निस्तीर्येह यदिच्छया ॥ सर्वं नो ब्रूह्यऽगुह्यं चेत्किं कार्यं करवाम ते ॥ ३५ ॥ एवं संपृष्टसंप्रश्नो ब्राह्मणः परमेष्ठिना ॥ लीलागृहीतदेहेन तस्मै सर्वमवर्णयत् ॥ ३६ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ श्रुत्वा गुणान्भुवनसुन्दर शृण्वतां ते निर्विश्य कर्णविवरैर्हरतोऽङ्गतापम् ॥ रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युताऽऽविशति चित्तमपत्रपं मे ॥ ३७॥ का त्वा मुकुन्द महती कुलशीलरूपविद्यावयोद्रविणधामभिरात्मतुल्यम् ॥ धीरा पतिं कुलवती न वृणीत कन्या काले नृसिंह नरलोकमनोऽभिरामम् ॥ ३८ ॥ तन्मे भवान्खलु वृतः पतिरङ्ग जायामात्मार्पितश्च भवतोऽत्र विभो विधेहि ॥ मा वीरभागमभिमर्शतु चैद्य आराद्गोमायुवन्मृगपतेर्बलिमम्बुजाक्ष ॥३९॥

पुरुषोंके कर्णोंके छिद्रों द्वारा हृदयमें प्रवेश कर शोक संताप दूर करनेहा आपके गुण और दृष्टिवालौंकी दृष्टिके सकल मनोरथोंका लाभ रूप श्रीमानका रूप सुनाहै तबसें मेरा मन आपमें लगरह्या है ॥ ३७ ॥ हे मुकुन्द हे पुरुषशार्दूल ! कौ कुलवान् उदारगुणयुक्त धीरजवान कन्या तुम्है जोकि मनुष्यलोकके अतिप्रिय कुल शील रूप विद्या अवस्था धन घर इन सबमें तुम्ह रोही समा ो तिन्है विवाहके समयमें पति स्वीकार न करै ॥ ३८ ॥ हे समर्थ ! ताकारण मैंने तुम पति करेहो तुमकूं अपनो देह अर्पण कर्यो है मोकूं अपनी स्त्री करौ, हे कमललोचन ! तुममें जो आप वीरका

---

१ पत्री–है सुरत तुमसे हरिजू लगाई, कृपा कीजे श्री यदुराई । दासी प्यासी दरसकी है प्यारे, इच्छा है वे लखूं पद तुम्हारे, सिद्ध सनकादि जो मनमें धारे, चित्तकी तिनमें वृत्ति लगाई॥१॥ मुझ को शिशुपाल वरनेको आया, मैंने तौ चित्त तुमसे लगाया, जान दासी करो प्रभुदाया, लीजे राख शरण सुखदाई॥२॥ आनकरके दरश अपना दीजै, दूर संकट मेरा शीघ्र कीजै, लाज दासीकी अब राखलीजै, लीजे दुष्टोंसे मुझको छुडाई ॥३॥ आओगे जो कृपाकरके मुझपर, भेंटदू जीव तन श्यामसुन्दर, और नहीं तौ करूं जी निछावर, मेरे मनमें यही आस माई ॥ ४ ॥ भेजी है ज्वाला द्विज हाथ पाती, दे दरश कीजिये ठंडी छाती, जोर कर तुमको विन्ती सुनाती, दुखहरण कीर्ति वेदोंने गाई ॥ ५ ॥

धर्म बहुत कष्टते तौ नहीं चलै है, सर्वदा तुमारे मनमें संतोष रहै है ॥ ३० ॥ जा काहू प्रकार करिकै ब्राह्मण संतुष्ट होयके वर्ते अर्थात् जो कछु वस्तु आयके प्राप्त होय वाहीमें संतोष करिके रहे, अपने धर्म्मसूं च्युत न होय तौ वही उसके संपूर्ण फलके देनवारो है ॥ ३१ ॥ और जाके मनमें संतोष नहीं है वह ब्राह्मण इन्द्र होजाउ तथापि लोकनते लोकनमें डोल्यौ करै है तृष्णाके मारे एक स्थानमें स्थिर होयके नहीं रहै है और जाके पास कछु भी

संतुष्टो यर्हि वर्तेत ब्राह्मणो येन केनचित् ॥ अहीयमानः स्वाद्धर्मात्स ह्यस्याखिलकामधुक् ॥ ३१ ॥
असंतुष्टोऽसकृल्लोकानाप्नोत्यपि सुरेश्वरः ॥ अकिञ्चनोऽपि संतुष्टः शेते सर्वाङ्गविज्वरः ॥ ३२ ॥
विप्रान्स्वलाभसंतुष्टान्साधून्भूतसुहृत्तमान् ॥ निरहङ्कारिणः शान्तान्नमस्ये शिरसाऽसकृत् ॥ ३३ ॥
कच्चिद्वः कुशलं ब्रह्मन्राजतो यस्य हि प्रजाः ॥ सुखं वसन्ति विषये पाल्यमानाः स मे प्रियः ॥ ३४ ॥

नहीं है और मनमें संतोष है वह ब्राह्मण सब अंगनके खेदनकूं दूर करिके आनंदपूर्वक सोवै है ॥ ३२ ॥ आपही ते विना मांगे प्राप्त भई वस्तुमें संतोष और सब प्राणीनते हित करनहारे विद्यमान कुलीन अहंकाररहित शांत स्वभाव साधू ब्रह्मणोंकूं शिर नवाइकै मैं प्रणाम करूंहूं ॥ ३३ ॥ हे ब्राह्मण ! जाकी तुम प्रजा हो ता राजाते तुमकूं कुशल है, जा राजाके देशमें ब्राह्मणनको पालन होई वह राजा मोकूं प्यारो लगे है ॥ ३४ ॥

१प्रारब्धही तौ मनुष्यको राजा रंक करती है, एक घोडोंके व्योपारीके घोडेसे राजाके पुत्रका कोई रोग जातारहा राजाने व्योपारीसे कहा घोडेकी कीमत लेलो व्योपारी बोला महाराज ! यह घोडा मैंने कुमार के चढनेको दिया और मुझे द्रव्यकी इच्छा नहीं राजाने उसे सन्मान कर विदा किया कि यहां आते जाते रहियो कुछ वर्ष उपरान्त व्योपारीका प्रारब्ध बिगडा, धन सब चोरि होगया घोडे मरगये जब कुछ उपाय न चला तब राजाके पासकूं आया जब राजाने यह समाचार सुने तौ उसे एक मकानमें टिकादिया, और कुछ दिन उपरान्त उस से भेटकर पूछा, तुम्हें क्या बनाना आताहै व्योपारी बोला चावक बनाना जानताहूं राजाने पांच रुपये देकर कहा कि इसके चावक बनाओ, और वेंचो हमारे यहां रहो, वोह बडा दुःखी हो बनानेलगो, कुछ दिन उपरान्त उनमें भी घाटाहुआ पांचो रुपये जातेरहे, राजाने फिर पांच दिये, और फिर धटगये, इसीप्रकार सात वर्षतक राजाने दिये,और रुपये घटते गये जब आठवाँ वर्ष प्रारम्भ हुआ तौ पांच रुपयेके छः रुपये होगये तब राजाने १० रुपये दिये फिर और नफा हुआ, एवं द्रव्य बढनेलगा, राजाने फिर घोडे लिवादिये उसमें अधिक द्रव्य उपार्जन किया, जब पूर्ववत द्रव्य होगया तौ व्योपारीने विचारा जितना कुछ राजाका द्रव्य लियाहै सब देदूं यह विचार मिलनेगया उसदिन राजानै उसका अधिक सन्मान किया, और बोला कि मेरा आधा राज्य तू लेले, व्योपारी क्रोधकर बोला कि जब मेरे पास कुछ नहीं था तो पांच रुपयेसे अधिक नहीं दिये न मुझसे अच्छी प्रकार मिले अब आधा राज्य देतेहो राजा बोले उस समय तेरी प्रारब्ध बिगड रही थी यदि सारा राज्य दे देता तौभी तेरे पास कुछ न रहता इसकारण थोडेही द्रव्यसे तेरी दुर्दशा टालदी प्रारब्धके बल होनेमें और बलहीन होजावे हैं.

तासूं छोटो रुक्मबाहु तासूं छोटो रुक्मकेश, तासूं छोटो रुक्ममाली ये पांच पुत्र होतभये, इन पांचोनकी बहन पतिव्रता रुक्मिणी होतभई ॥ २२ ॥ घरमें आये नारदादिक मुनिनसे गाये मुक्तिके देनवारे श्रीकृष्णकी सुंदर रूप पराक्रम गुण शोभाकूं श्रवण करिके रुक्मिणी अपनी बराबर मानतभई ॥ २३ ॥ यहां सुन्दर बुद्धि उदारता रूप पराक्रम शोभायुक्त रुक्मिणीकूं श्रवणकरिके श्रीकृष्णचंद्र अपनी बराबरीकी स्त्री व्याहिवेकूं मनमें करतभये ॥२४॥ माता पिता और भैया बंधुनकूं सबकी यह इच्छा ही कि रुक्मिणी श्रीकृष्णचंद्रकूं देवेंगे, परन्तु श्रीकृष्णको शत्रु रुक्मीणी ‘ हम अपनी बहिन कृष्णकूं न व्याहेंगे ’ ऐसे निषेध करिके या लायक वर शिशुपाल है या प्रकार मानत भयो ॥ २५ ॥ सुन्दरनीलकटाक्षवारी विदर्भदेशके राजाकी पुत्री

सोपश्रुत्य मुकुन्दस्य रूपवीर्यगुणश्रियः ॥ गृहागतैर्गीयमानास्तं मेने सदृशं पतिम् ॥ २३ ॥ तां बुद्धिलक्षणौदार्यरूपशीलगुणाश्रयाम् ॥ कृष्णश्च सदृशीं भार्यां समुद्वोढुं मनो दधे ॥ २४ ॥ बन्धूनामिच्छतां दातुं कृष्णाय भगिनीं नृप ॥ ततो निवार्य कृष्णद्विड् रुक्मी चैद्यममन्यत ॥२५॥ तदवेत्यासितापाङ्गी वैदर्भी दुर्मना भृशम् ॥ विचिन्त्याऽऽप्तं द्विजं कंचित्कृष्णाय प्राहिणोद् द्रुतम् ॥ २६ ॥ द्वारकां स समभ्येत्य प्रतीहारैः प्रवेशितः ॥ अपश्यदाद्यं पुरुषमासीनं काञ्चनासने ॥ २७ ॥ दृष्ट्वा ब्रह्मण्यदेवस्तमवरुह्य निजासनम् ॥ उपवेशार्हयाञ्चक्रे यथात्मानं दिवौकसः ॥ २८ ॥ तं भुक्तवन्तं विश्रान्तमुपगम्य सतां गतिः ॥ पाणिनाऽभिमृशन्पादावव्यग्रस्तमपृच्छत ॥ २९ ॥ कच्चिद्द्विजवर श्रेष्ठ धर्मस्ते वृद्धसंमतः ॥ वर्तते न[illegible]कृच्छ्रेण संतुष्टमनसः सदा ॥ ३० ॥

रुक्मिणी श्रीकृष्णके व्याहिवेकूं मेरो भैया मने करै है यह जानिके बहुत उदास मन होय कोई एक अपनो स्नेही ब्राह्मणकूं विचारके श्रीकृष्णके लिवायवेकूं भेजतिभई ॥ २६ ॥ यह ब्राह्मण जासमय द्वारिकापुरीमें प्राप्त भयो तब द्वारपालने भीतर पहुंचायो, तहां सुवर्णके सिंहासनपै बैठे आदिपुरुष नारायणको दर्शन करतभयो ॥ २७ ॥ ब्राह्मणके माननेहार श्रीकृष्णचंद्र ता ब्राह्मणकूं देखिके आप सिंहासनपैते उतरिके ब्राह्मणकूं सिंहासनपै बैठायके जैसे अपने देवताकी पूजा करै हैं ऐसे वाको पूजन करतभये ॥ २८ ॥ जब ब्राह्मण भोजन करचुका और मार्गका श्रम दूर होगया तब सत्पुरुषोंकी गति भगवान् श्रीकृष्ण उसके निकट जाय अपने हाथते उनके चरणारविन्दकूं सहरावत निर्विग्रह होयके पूछतभये ॥२९॥ हे द्विजन्ममें श्रेष्ठ ब्राह्मण! वृद्धसंमत तुमारो

अब श्रीकृष्णके विवाह कहिवेके लिये प्रथम बलदेवको विवाह नवमस्कंधमें कहि आये है तथापि फेर एक श्लोकमें कहे है शोभायमान आनर्तदेशको राजा रैवत ब्रह्माके कहेते अपनी पुत्री रेवतीकूं बलदेवजीको देतभयो, यह प्रथम कहिआये हैं ॥ १५ ॥ हे कौरवनके कुलकूं आनंदके दैनवारे राजन् परीक्षित! भगवान गोविंदभी स्वयंवरमें लक्ष्मीको अंश विदर्भ देशमें जन्मी भीष्मककी कन्याकूं व्याहत भये ॥ १६ ॥ शाल्वते आदि लेके शिशुपालकी ओरके राजानकूं शीघ्रतासै जीतिके सब लोकनके देखते जैसे देवतानकूं जीतिके गरुड अमृतकूं लावै हैं या प्रकार लावत भये ॥ १७ ॥ अब राजा परीक्षित् कहैं हैं सुंदरमुखी भीष्मकराजाकी पुत्री रुक्मिणीकूं युद्धमैंते हरिके श्रीकृष्णचंद्र व्याहतभये, यह हमने तुमारेही मुखते सुनो है ॥ १८ ॥ हे शुकदेवजी! जरासंध शाल्व इत्यादिक राजानकूं जीतिके जैसे रुक्मिणीकूं लावत भये, यह बडे तेजस्वी श्रीकृष्णचंद्रको चरित्र श्रवण कर्‍यौ चाहूहूं ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन्! श्रीकृष्णचन्द्रकी कथा पवित्र है मनोहर है लोकनके पापनकूं दूर करै है नित्य नवीन है, सुनिवेके सारकूं जाननेहारे कौन पुरुष हैं जो ऐसी कथानकूं सुनिके तृप्त होय ॥ २० ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित! विदर्भ देशको पालन करनवारो भीष्मक नाम बडो राजा होत भयो, भीष्मक राजाके पांच पुत्र होतभये, और सुंदरमुखी एक कन्या होतभई ॥ २१ ॥ तिनमें बडो रुक्मी तासूं छोटे रुक्मरथ

आनर्ताधिपतिः श्रीमान्रैवतो रेवतीं सुताम् ॥ ब्रह्मणा चोदितः प्रादाद्बलायेति पुरोदितम् ॥१५॥ भगवानपि
गोविन्द उपयेमे कुरूद्वह ॥ वैदर्भीं भीष्मकसुतां श्रियो मात्रां स्वयंवरे ॥ १६ ॥ प्रमथ्य तरसा राज्ञः
शाल्वादींश्चैद्यपक्षगान् ॥ पश्यतां सर्वलोकानां तार्क्ष्यपुत्रः सुधामिव ॥ १७ ॥ राजोवाच ॥ भगवान्भीष्मकसुतां
रुक्मिणीं रुचिराननाम् ॥ राक्षसेन विधानेन उपयेम इति श्रुतम् ॥ १८ ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामः
कृष्णस्यामिततेजसः ॥ यथा मागधशाल्वादीञ्जित्वा कन्यामुपाहरत् ॥ १९ ॥ ब्रह्मन्कृष्णकथाः
पुण्या माध्वीर्लोकमलापहाः ॥ को नु तृप्येत शृण्वानः श्रुतज्ञो नित्यनूतनाः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥
राजासीद्भीष्मको नाम विदर्भाधिपतिर्महान् ॥ तस्य पञ्चाभवन्पुत्राः कन्यैका च वरानना ॥ २१ ॥ रुक्म्यग्रजो
रुक्मरथो रुक्मबाहुरनन्तरः ॥ रुक्मकेशो रुक्ममाली रुक्मिण्येषां स्वसा सती ॥ २२ ॥

हे राजन् परीक्षित् ! माधव श्रीकृष्ण बलदेव शत्रुकी सेनाकूं देखिके मनुष्यलीलामें आयके शीघ्र भाजत भये ॥ ७ ॥ भयरहित कृष्ण बलदेव बहुत धनकूं मार्गहीमें त्यागके बहुत भयभीतकी तुल्य कमलसे कोमल चरणसूं बहुत दूरतक कोसौं भाजत [1]भये ॥ ८ ॥ ईश्वर श्रीकृष्ण बलदेवके बलकूं नहीं जानिके बली मगधदेशको राजा जरासंध कृष्ण बलदेवकूं भाजे देखिके हंसिके बहुतसे रथनकूं संग लैके पीछे दौरत भयो ॥ ९ ॥ बहुत दूर भाजनेसै श्रम पाय कृष्ण बलदेव प्रवर्षणनामक पर्वतपै चढत भये, जा पर्वतपै इन्द्र नित्य वर्ष्यौं करे है ॥१०॥ हे राजन् परीक्षित् ! श्रीकृष्ण बलदेवकूं

विलोक्य वेगरभसं रिपुसैन्यस्य माधवौ ॥ मनुष्यचेष्टामापन्नौ राजन्दुद्रुवतुर्द्रुतम् ॥७॥ विहाय वित्तं प्रचुरमभीतो भीरुभीतवत् ॥ पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां चेलतुर्बहुयोजनम् ॥ ८ ॥ पलायमानौ तौ दृष्ट्वा मागधः प्रहसन्बली ॥ अन्वधावद्रथानीकैरीशयोरप्रमाणवित् ॥ ९ ॥ प्रद्रुत्य दूरं संश्रान्तौ तुङ्गमारुहतां गिरिम् ॥ प्रवर्षणाख्यं भगवान्नित्यदा यत्र वर्षति ॥ १० ॥ गिरौ निलीनावाज्ञाय नाधिगम्यपदं नृप ॥ ददाह गिरिमेधोभिः समन्तादग्निमुत्सृजन् ॥ ११ ॥ तत उत्पत्य तरसा दह्यमानतटादुभौ ॥ दशैकयोजनोत्तुङ्गान्निपेततुरधो भुवि ॥ १२ ॥ अलक्ष्यमाणौ रिपुणा सानुगेन यदूत्तमौ ॥ स्वपुरं पुनरायातौ समुद्रपरिखां नृप ॥ १३ ॥ सोऽपि दग्धाविति मृषा मन्वानो बलकेशवौ ॥ बलमाकृष्य सुमहान्मगधान्मागधो ययौ ॥ १४ ॥

पर्वतमें छिपे जानिके ता पर्वतमें ढूंढिके तिनके छिपेको स्थान न मिल्यो तब चारों ओरते आगि लगायके जरासंध जरावत [2]भयो ॥ ११ ॥ शिखर जलनेसे चवालीस कोस ऊंचे पर्वतपैते कृष्ण बलदेव दोंनो भैया उछरिके जरासंधके कटककूं उलांघिके नीचे पृथ्वीमें कूदत भये ॥ १२ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! टहलुआन सहित वैरी जरासंध अलक्षित यादवनमें उत्तम कृष्ण बलदेव समुद्रकी खाईसे युक्त द्वारकापुरीमें आवत भये ॥१३॥ मगधदेशको राजा जरासंध भी कृष्ण बलदेवकूं मिथ्या जरिगये मानिके बडे दलको संग लेके मगध देशकूं जातभयो ॥ १४ ॥

---

[1] जरासंध बोल्यो–काहे डरके भाजे जात, ठाढे रहो करो कछु बात । परत उठत कंपत क्यौं भारी, आई है ढिग मीच तिहारी ॥

[2] देख जरासंध कहे पुकारी, शिखर चढे बलभद्र मुरारी । अब किमि हमसों जाय पलाय, या पर्वत को देहुं जलाय ॥

क्षात्र धर्ममें रहिके शिकार खेलिके जो तैंने जीवनकी हिंसा करी, सो अब सावधान होयके मेरो आश्रय लैके तप करिके वा पापकूं दूरी करि ॥६४॥ हे राजन् मुचुकुन्द! दूसरे जन्ममें सब प्राणीनके हितके करनवारे ब्राह्मण होयके शुद्धरूप मोकूं प्राप्त होयगो॥६५॥इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे मुचुकुन्दस्तुतिर्नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥ अब श्रीशुकदेवजी कहेहैं हे राजन् परीक्षित! या प्रकार श्रीकृष्णसे अनुगृहीत होय इक्ष्वाकुनन्दन मुचुकुन्द श्रीकृष्णकी परिक्रमा दैके नमस्कार करिकै गुफामेंते बाहर निकसत भयो ॥ १ ॥ राजा मुचुकुन्द मनुष्यनकूं पशूनकूं लतानकूं और छोटे छोटे वृक्षनकूं देखके कलियुग आय गयो यह जानिके उत्तर दिशानकूं जात भये ॥ २ ॥ तप करिवेमें श्रद्धा कर सब संग त्याग

क्षात्रधर्मे स्थितो जन्तून्न्यवधीर्मृगयादिभिः ॥ समाहितस्तत्तपसा जह्यघं मदुपाश्रितः ॥ ६४ ॥ जन्मन्यनन्तरे राजन्सर्वभूतसुहृत्तमः ॥ भूत्वा द्विजवरस्त्वं वै मामुपैष्यसि केवलम् ॥ ६५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे मुचुकुन्दस्तुतिर्नामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥ श्रीशुक उवाच ॥ इत्थं सोनुगृहीतोऽङ्ग कृष्णेनेक्ष्वाकुनन्दनः ॥ तं परिक्रम्य संनम्य निश्चक्राम गुहामुखात् ॥ १ ॥ संवीक्ष्य क्षुल्लकान्मर्त्यान्पशून्वीरुद्वनस्पतीन् ॥ मत्वा कलियुगं प्राप्तं जगाम दिशमुत्तराम् ॥ २ ॥ तपःश्रद्धायुतो धीरो निःसङ्गो मुक्तसंशयः ॥ समाधाय मनः कृष्णे प्राविशद्गन्धमादनम् ॥ ३ ॥ बदर्याश्रममासाद्य नरनारायणालयम् ॥ सर्वद्वन्द्वसहः शान्तस्तपसाऽऽराधयद्धरिम् ॥ ४ ॥ भगवान्पुनराव्रज्य पुरीं यवनवेष्टिताम् ॥ हत्वा म्लेच्छबलं निन्ये तदीयं द्वारकां धनम् ॥ ५ ॥ नीयमाने धने गोभिर्नृभिश्चाच्युतचोदितैः ॥ आजगाम जरासन्धस्त्रयोविंशत्यनीकपः ॥ ६ ॥

संदेह रहित होय राजा मुचुकुन्द श्रीकृष्णमें मन लगायके गंधमादन पर्वतपै जात भये ॥ ३ ॥ नरनारायणके स्थान बद्रिकाश्रममें जायके सम्पूर्ण द्वंद्व अर्थात् सुख दुःख भूख प्यास शीत उष्ण इनकूं सहिके शांत स्वरूप मुचुकुन्द तप करिके हरिको आराधन करत भयो ॥ ४ ॥ म्लेच्छौंसे घिरी मथुरापुरीमें भगवान श्रीकृष्ण फेरि आयके म्लेच्छनकी सेना मारिके और उनको धन लैके द्वारकामें पहुंचावत भये ॥ ५ ॥ श्रीकृष्णचंद्रके कहेते मनुष्य बैलनके ऊपर धनकूं लादिके लेचले तब जरासंध तेईस अक्षौहिणी सेनाकूं संग लैके आवत भयो ॥ ६ ॥

हे ईश! अर्थात् सबके प्रेरण करनवारे इसी कारणसे सत्वगुण रजोगुण तमोगुण इनके बन्धन, और ऐश्वर्य, तथा शत्रुको मरण और धर्मादिक मनोरथ त्यागि ज्ञानघन निरंजन उपाधिसूं न्यारे निर्गुण अद्वैत अक्षर ईश्वर आपकी मैं शरण आयो हूं ॥ ५८ ॥ हे ईश! या संसारमें बहुत दिननते कर्मफलोंसे तपायमान हूं और कर्मोंकी वासनाओंसे अति पीडित हूं, और तृष्णासहित जे छः इन्द्रियरूपी शत्रु मेरे पीछे पड़े हैं इस कारण मुझे किसी प्रकारसे शान्ति नहीं है हे शरणके देनवारे हे परमात्मन् ईश्वर! अब मैं ज्यों त्यों करिके शोक रहित भयके दूर करनवारे तुमारे चरणारविंदकी शरण आयाहूं मेरी रक्षा करो ॥ ५९ ॥ अब श्रीभगवान् कहे हैं चक्रवर्ती राजन्! तुम्हारी बुद्धि बड़ी निर्मल और उदार है कि मैंने वर देने कहिके तुमकूं

तस्माद्विसृज्याशिष ईश सर्वतो रजस्तमःसत्त्वगुणानुबन्धनाः ॥ निरञ्जनं निर्गुणमद्वयं परं त्वां ज्ञप्तिमात्रं
पुरुषं व्रजाम्यहम् ॥५८॥ चिरमिह वृजिनार्तस्तप्यमानोऽनुतापैरवितृषषडमित्रोऽलब्धशान्तिः कथञ्चित् ॥
शरणद समुपेतस्त्वत्पदाब्जं परात्मन्नभयमृतमशोकं पाहि माऽऽपन्नमीश ॥ ५९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥
सार्वभौम महाराज मतिस्ते विमलोर्जिता ॥ वरैः प्रलोभितस्यापि न कामैर्विहता यतः ॥ ६० ॥ प्रलोभितो
वरैर्यस्त्वमप्रमादाय विद्धि तत् ॥ न धीर्मय्येकभक्तानामाशीर्भिर्भिद्यते क्वचित् ॥ ६१ ॥ युञ्जानामात्म-
भक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः ॥ अक्षीणवासनं राजन् दृश्यते पुनरुत्थितम् ॥ ६२ ॥ विचरस्व महीं कामं
मय्यावेशितमानसः ॥ अस्त्वेव नित्यदा तुभ्यं भक्तिर्मय्यनपायिनी ॥ ६३ ॥

लोभ उत्पन्न कियो, तथापि कामना करिके तुमारी मति चलायमान न भई ॥ ६० ॥ मैंने वर देने कहिके जो लोभ उत्पन्न कियो सो तोकूं सावधान करचो, यह तूं जानि मेरे भक्तनकूं कदाचित् वर आयके प्राप्ति होय तथापि उनकी बुद्धि चलायमान नहीं होय है ॥ ६१ ॥ हे राजन् मुचुकुंद! जो मेरे भक्त नहीं है वे प्राणायामादि साधनोंसे मनको वश करैं तौभी उनका मन विषयें [illegible]लचमें आता दीखै है कारण कि उनकी वासना क्षीण नहीं हुई ॥ ६२ ॥ हे राजन् मुचुकुंद! मेरे विषे मनकूं लगायके जहां इच्छा आवै तहां विचरो, तुमारी नित्य दृढ भक्ति मोंमें होउ ॥ ६३ ॥

समान स्त्रियोंसे नाच नचाये जाते हैं जैसे बाजीगर बंदरको नचाते हैं ॥ ९३ ॥ प्रथम यह पुरुष सब विषयनके भोगकूं त्यागिके तपमें बडी श्रद्धा कर पृथ्वीमें सोवै ब्रह्मचर्यसूं रहै व्रतनकूं करै विषयनके भोगवेकूं दानपुण्य करै है, और विचारै है कि या जन्ममें तप करूंगो तब चक्रवर्ती राजा हो जाऊंगो फिर तपस्या कर दूसरे जन्ममें जायके इंद्र होऊंगो, या प्रकार तृष्णाके बढनेसे वा पुरुषकूं कबहूं सुख नहीं होय है ॥ ९४ ॥ ऐसे आठ श्लोकन करिके ईश्वरसे बहिर्मुखनकूं संसार कहिके अब संसारकी निवृत्ति कहै है हे अच्युत ! या संसारमें जन्म मरणकूं प्राप्त भये जीवकूं जा समय तुमारी अनुग्रहसे संसारको अंत होय ता समय तुम्हारे भक्तनको संग होय ता समय सब संगकूं दूरि करि कार्य कारणके नियंता तुम ईश्वरमें भक्ति होय है, ता

करोति कर्माणि तपस्सु निष्ठितो निवृत्तभोगस्तदपेक्षयाददत् ॥ पुनश्च भूयेयमहं स्वराडिति प्रवृद्धतर्षो न सुखाय कल्पते ॥ ९४ ॥ भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत सत्समागमः ॥ सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥ ९५॥ मन्ये ममानुग्रह ईश ते कृतो राज्यानुबन्धापगमो यदृच्छया ॥ यः प्रार्थ्यते साधुभिरेकचर्यया वनं विविक्षद्भिरखण्डभूमिपैः ॥ ९६ ॥ न कामयेऽन्यं तव पादसेवनादकिञ्चनप्रार्थ्यतमाद्वरं विभो ॥ आराध्य कस्त्वां ह्यपवर्गदं हरे वृणीत आर्यो वरमात्मबन्धनम् ॥ ९७ ॥

भक्तिते संसार छूटे है ॥ ९५ ॥ हे ईश्वर ! मेरो अनायास पूर्वक राज्यबन्धन छूटि गयो यह तुमने मेरे ऊपर बडो अनुग्रह कर्यो, यह मैं मानूंहूं, राज्यके छूटिवेके लिये अकेलो होयके वनमें जायवेकी इच्छा करनहारे चक्रवर्ती राजाभी प्रार्थना करे हैं, कि हमारा कोई तरह राज्य छूटिजाइ तो अकेले होयके वनमें जाय बैठें ॥ ९६ ॥ हे समर्थ! निष्किंचन साधुसै पूजित तुमारे चरणारविंदके सेवनतैं मैं और काहू बरकी चाहना नहीं करूं हूं, हे हरे ! मोक्षके देनवारे तुह्मारो आराधन करिके ऐसो कौन विवेकी पुरुष है जो आत्माको बन्धनरूप वर मांगेगो ॥ ९७ ॥

---

१ सवैया–नैननकी पलही पलमें क्षण आधि घरी घटिका हो गई है । याम गयो युग याम गयो पुनि सांझ गई तब रात भई है ॥ आज गई अरु काल गई परसों तरसों कछु और ठई है। सुन्दर ऐसहि आयु गई तृसना दिनही दिन होत नई है ॥ १ ॥ तूही भ्रमाय पर देश पठावत बूडत जाय समुद्र हि जाजा। तूंही भ्रमाय पहाड चढावत वादि वृथा मरिजाय अकाजा ॥ तैं सब लोक भ्रमाय भली विधिभांड किये सब रंकहु राजा। सुन्दर तोहिं दिखाइ कहूं अब हे तृष्णा तोहिं नेक न लाजा ॥ २ ॥

होंय पचास होंय हजार होंय लाख होंय या प्रकार लोभ बढत जाय है, विषयनमें चाहना करनहारे ऐसे पुरुषनकूं कालरूप तुम शीघ्र मारिलेउ हौ जैसे क्षुधासे व्याकुल होट चावता सर्प मूसेकूं मारिलेय है ॥ ९१ ॥ मनुष्यको देव अर्थात राजा यह नाम धारण कर जो सुवर्णके बने रथनपै बैठिके डोले है, सो देह दुरत्यय कालकरिके मेरे पीछे कुत्ता स्यार भक्षण करिजांय तौ विष्ठा होयजाय, परचोरहै तौ कीरा परिजांय, अग्निसे भस्म होजाय है

पुरा रथैर्हेमपरिष्कृतैश्चरन्मतङ्गजैर्वा नरदेवसंज्ञितः ॥ स एव कालेन दुरत्ययेन ते कलेवरो विट्कृमिभस्म-
संज्ञितः ॥९२॥ निर्जित्य दिक्चक्रमभूतविग्रहो वरासनस्थः समराजवन्दितः ॥ गृहेषु मैथुन्यसुखेषु योषितां
क्रीडामृगः पूरुष ईश नीयते ॥ ९३ ॥

यह तीन नामकूं धारण करै है ॥ ९२ ॥ हे भगवन्! जिस पुरुषने सम्पूर्ण दिशा मंडल जीतलीनी है जिस संग्राम करनेको कोई शत्रुशेष नहीं रह्यो जिसे सब बराबरके राजा प्रणाम करैं हैं ऐसो उत्तम सिंहासनपै विराजमान चक्रवर्ती राजाभी मैथुनके सुख निमित्त घरोंमें क्रीडामृगके

---

१ चौ०–नारिबिवसनरसकलगुसाईं। नाचहिं नटमर्कट कीनाईं ॥ यामेंदृष्टान्तहै–एकपंडितजी कथावाचैथे, एकसाहुकारनेकही मुझेअपनाचेलाकरलो, पंडितजीने बहुतकहनेसुन्नेसे अपनाचेला करलिया, चेलाहोनेउपरान्त पंडितजीनेकही अबतूंकृतार्थहोगया, चेलाउसदिनसेसुननेनआया एकदिनपंडितजीकूं मार्गमेंमिले; बोले कथासुनने नहींआते, चेलानेकही महाराजकृतार्थहोकर अबक्यासुननेकीइच्छाहै, पंडितजीनेकहीभलाचेलाकरद। [illegible]णाभीगई, वोचेला परदेसमेंरोजगारकरनेंचलागया; औरबडाधनीहोगया पंडितजीको एकसमयद्रव्यका संकोचहुआ, स्त्रीके समझानेसे साहुकारके पासगये, उसने बडीखातिरकरी, पंडितजी कईदिनरहे, एकदिनबोले अबजांयगे चेलेनेकहीं अभीठहरो, पंडितजीनेजानी कुछअधिकदक्षिणादेगे टहररहे इसीप्रकार दोमहीनेसे अधिकहोगये जबजानेकहै, तबयहीउत्तरदे कि ठहरो, एकदिनसाहुकारकीस्त्रीने कही कि यह ब्राह्मणकोनहै, दासीनेकही यहलालाजीकेगुरुहै, दोमहीनेसे ठहरे हैं, कुछदियानहीं, उसने पंडितजीको बुलाकरकहा कि तुमकैसेआये, पंडितजीने कही यह हमाराचेलाहै, दोमहीने ठहरे हैं उसनेंकहीं यह तुम्हाराचेलाहै, पंडितजीबोलेहां उसस्त्रीने अपनीनथउतार पंडितजीको देदी, औरकहा इसेछिपाकररखलो पंडितजीतौ प्रसन्नहो कोठरीमेंआगये, औरसेठानीजी आंसनपाटीलेपडी, लालाजीने आनकरपूछा आजउदासक्योंहो भोजनक्योंनहींकरा वोह बोली नथखोगई, जबदूसरी बनै तौ भोजनकरूंगी, लालाजीबोले कि वोहक्याउससेसवाई बनवादूंगा, स्त्रीनेकही जबबनकेआवैगी तौ भोजनकरूंगी, लालाजीनेतुरंत उससेसवाई बनवादी जबसेठानीकोदी तौ भोजन करा, पीछेसेटानीजीने पंडितकोबुलायकर सबवृत्तान्तसुनायकर कहा कि अबकहोयहतुम्हारेचेलेहैं या मेरे। पंडितजीचुपरहे तबसेठानीजीबोली जाओ अबघरकूं यह तौ रोजहीटालैंगे; देंगे कुछनहीं पंडितजी नथले अपनेघरआये सो, इससमय तौ स्त्रियोंके चेलेहैं ॥

अब श्रीशुकदेवजी कहैं है हे राजन् परीक्षित् ! या भांति श्रीकृष्णचन्द्रने जब कही तब राजा मुचुकुन्द प्रसन्न होयके वृद्ध गर्गाचार्यके कहे बचन स्मरण करिके इन्हें साक्षात् परिपूर्ण नारायणदेव जानिके प्रणाम करिके बोलत भयो ॥ ४६ ॥ अब राजा मुचुकुन्द आठ श्लोकन करके स्तुति करे है हे ईश्वर ! तुम्हारी माया करिके यह मनुष्य मोहित होयगयो है याते मिथ्याभूत मायाकी दृष्टिसूं नहीं देखे है याहीते तुम्हें नहीं भजे है, कहा स्त्री कहा पुरुष दोनों ठगि गये हैं, सुखके निमित्त दुःखके मूल घरनमें परे है ॥ ४७ ॥ कर्मभूमि इस पृथ्वीमें आयके यह मनुष्य सुन्दर हाथ पांव आँखि नाक कान ऐसे मनुष्यदेहकूं पायकै हे अनघ ! तुमारे चरणारविंदको भजन नहीं करे है, जैसे हरी घासके निमित्त पशु अंधकूपमें गिरे है ऐसे खोटी मतिवारे पुरुष विषयनके निमित्त अंधकूपरूप घरनमें परचो रहे है ॥ ४८ ॥ हे अजित अर्थात् जीतवेमें न आओ ! केवल यह प्राणीही भूलि रहे हैं

श्रीशुक उवाच ॥ इत्युक्तस्तं प्रणम्याह मुचुकुन्दो मुदान्वितः ॥ ज्ञात्वा नारायणं देवं गर्गवाक्यमनुस्मरन् ॥ ४६ ॥ मुचुकुन्द उवाच ॥ विमोहितोऽयं जन ईशमायया त्वदीयया त्वां न भजत्यनर्थदृक् ॥ सुखाय दुःखप्रभवेषु सज्जते गृहेषु योषित् पुरुषश्च वञ्चितः ॥ ४७ ॥ लब्ध्वा जनो दुर्लभमत्र मानुषं कथञ्चिदव्यङ्गमयत्नतोऽनघ ॥ पादारविन्दं न भजत्यसन्मतिर्गृहान्धकूपे पतितो यथा पशुः ॥ ४८ ॥ ममैष कालोऽजित निष्फलो गतो राज्यश्रियोन्नद्धमदस्य भूपतेः ॥ मर्त्यात्मबुद्धेः सुतदारकोशभूष्वासज्जमानस्य दुरन्तचिन्तया ॥४९॥ कलेवरेऽस्मिन् घटकुड्यसन्निभे निरूढमानो नरदेव इत्यहम् ॥ वृतो रथेभाश्वपदात्यनीकपैर्गां पर्यटंस्त्वागणयन् सुदुर्मदः ॥ ५० ॥ प्रमत्तमुच्चैरिति कृत्यचिन्तया प्रवृद्धलोभं विषयेषु लालसम् ॥ त्वमप्रमत्तः सहसाऽभिपद्यसे क्षुल्लेलिहानोऽहिरिवाखुमन्तकः ॥ ५१ ॥

सो बात नहीं, मेरीभी यही गति है मोकूं इतने दिन निष्फलही वीत गये राज्यकी संपत्ति पायके मोकूं बडो गर्व होय गयो मैं पृथ्वीका पालन करनवारो राजा हों, मनुष्यदेहमें मेरी आत्मबुद्धि है अर्थात् देहकूं आत्मा मानेहूं, स्त्री पुत्र खजाने पृथिवी इनकी बडी चिन्तामें आसक्त होय रह्योहों ॥ ४९ ॥ जैसे कच्चो घडा क्षणमें फूटि जाय बारूकी भीति जैसे क्षणमें गिरपरै, या प्रकार देहकोभी भरोसो नहीं है तादेहमें मैं राजा हूं यह अभिमान कर रथ घोडा हाथी प्यादौ सैना की और मुख्य सैनाध्यक्षोंकूं संग लेके पृथ्वीपै भ्रमण करता रहा काल रूप तुम्हारा कभी स्मरण न कियो मतवार रह्या इससे मेरा इतना काल व्यर्थ गया ॥ ५० ॥ आज यह काम करनो कल यह काम करनो है या प्रकारकी चिन्तामें मतवारो होयरह्यो, दश होय अब बीस

कदाचित् कोई पुरुष बहुत जन्मनमें पृथ्वीकी धूरिकूं तौ गिनिभी लेय. परंतु मेरे गुण कर्म्म जन्म नाम गिनतीमें नहीं आवै हैं ॥ ३९ ॥ हे राजन् मुचुकुंद ! भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालमें विद्यमान जन्म मेरे कर्म्मकी बडे बडे ऋषीश्वर संख्या करें हैं, तथापि अंत नहीं पावें हैं ॥ ४० ॥ तथापि हे मुचुकुन्द ! अबके जन्म कर्म नाम कहूंहूं मोते श्रवण करौ धर्म्मकी रक्षा करिवेके कारण और पृथ्वीपै बोझ करनवारे असुरोंके नाश करिवेके हेतु पहिले ब्रह्माने मेरी विनती करीही ॥ ४१ ॥ तासूं यादवनके कुलमें वसुदेवके घर प्रगट भयोहूं वसुदेवको पुत्र हूं याते मोंहि वासुदेव कहैं हैं ॥ ४२ ॥

क्वचिद् रजांसि विममे पार्थिवान्युरुजन्मभिः ॥ गुणकर्माभिधानानि न मे जन्मानि कर्हिचित् ॥ ३९ ॥ कालत्रयोपपन्नानि जन्मकर्माणि मे नृप ॥ अनुक्रमन्तो नैवान्तं गच्छन्ति परमर्षयः ॥ ४० ॥ तथाप्यद्यतनान्यङ्ग शृणुष्व गदतो मम ॥ विज्ञापितो विरिञ्चेन पुराऽहं धर्मगुप्तये ॥ भूमेर्भारायमाणानामसुराणां क्षयाय च ॥ ४१ ॥ अवतीर्णो यदुकुले गृह आनकदुन्दुभेः ॥ वदन्ति वासुदेवेति वासुदेवसुतं हि माम् ॥ ४२ ॥ कालनेमिर्हतः कंसः प्रलम्बाद्याश्च सद्विषः ॥ अयं च यवनो दग्धो राजंस्ते तिग्मचक्षुषा ॥ ४३ ॥ सोऽहं तवानुग्रहार्थं गुहामेतामुपागतः ॥ प्रार्थितः प्रचुरं पूर्वं त्वयाऽहं भक्तवत्सलः ॥४४ ॥ वरान् वृणीष्व राजर्षे सर्वान् कामान् ददामि ते॥मां प्रपन्नो जनः कश्चिन्न भूयोर्हति शोचितुम्॥४५॥

कालनेमि कंस मैंने मारचो साधुनके द्वेषि प्रलंबसे आदि लैके असुर मैंने मारे हे राजन् मुचुकुन्द ! यह जो कालयवन है सो तेरी तीक्ष्ण दृष्टिद्वारा दग्ध होगयो ॥ ४३ ॥ हे राजन् मुचुकुन्द ! पहिले तुपने मेरी बहुत प्रार्थना करीही और मैं भक्तवत्सल हूं या कारण तोपै अनुग्रह करिवेकूं या गुफामें आयो हूं[1] ॥ ४४ ॥ हे राजन्में ऋषि मुचुकुंद ! मैं प्रसन्न हौं तुम मोपै वर मांगो, मेरी शरण आये पीछे फेर प्राणी शोच नहीं रहै है ॥ ४५ ॥

---

[1] मनसुखदास परमात्माके बडे भक्त हुए जो कुछ पास था सो भक्तोंको भोजन करादिया जब पास कुछ न रहा तौ कोई दिन महात्मा आये और लोगोंसे पूछनेलगें कि यहां कोई भक्त रहे हैं किसीने हंसीसे मनसुखदासका घर बतादिया वोह मनसुखदासपै आया और भोजन मांगा यह उसे बैठाय अपनी स्त्रीके पास जाय बोले कि तू अपनी नथ देदे ता मैं इसमें थोडा सौना और डलवादूं स्त्री जानगई कि यह महात्माओंको खवानेकूं लिये जाय है और कुछ न कही और नथ उतारदी, यह ले नथ बेच उस महात्माको भोजन कराय शेषधनसे और भक्तोंकों भोजन करा दिया, भगवान यह देख बडे प्रसन्न हुए, और दूसरेही दिन उससे चौगुनी नथ ले स्त्रीके पास आय बोले कि यह मैं नथ बनवालाया (रूप मनसुखदासका बनालियाथा) स्त्री घरमेंलीप रहीथी बोली तुम्ही पहरादो भगवान् अपने हाथसे नथ पहराय चलेगये पीछे मनसुखदास आये और नथ देख आश्चर्यसे पूंछनेलगे पीछे भगवानकी महिमा विचार प्रेममें मग्न होगये यह भक्तवत्सलता है कि भक्तोंका मानभंग नहीं होनेदेते ॥

ब्रह्मा विष्णु शिव इन तीनों देवतानमेंसे विष्णु भगवान् हो यह मैं जानूंहूं, दीपक जैसे अपने प्रकाशते अंधेरेकूं दूर करे है, ऐसे अपने तेजसूं या गुफाको अंधकार तुमने दूरि करो है ॥ ३१ ॥ हे मनुष्यनमें श्रेष्ठ! हमारी सुनिवेकी इच्छा है सो मेरे आगे निष्कपट होयके जो तुमें अच्छी लगै तौ अपनौ जन्म कर्म नाम गोत्र बताओ ॥ ३२ ॥ हे पुरुषनमें श्रेष्ठ समर्थ! मैं तौ इक्ष्वाकुके वंशमें उत्पन्न भयौ क्षत्रियनमें अधम मांधाताका पुत्र हूं मुचुकुन्द हूं ॥ ३३ ॥ बहुत दिननते जो जाग्योहूं तासूं मोकूं खेद भयो और नींदसूं मेरी इन्द्रिय चलायमान भई है या उद्यान वनमें अपनी इच्छापूर्वक सोवै हौं अबहीं काहूने आयके उठायौ है ॥ ३४ ॥ जाने मुझे जगायो वह पुरुष अपने पापते जरिके भस्म होयगयो वाके जरे पीछे हे शत्रुनके नाशक

मन्ये त्वां देवदेवानां त्रयाणां पुरुषर्षभम् ॥ यद्बाधसे गुहाध्वान्तं प्रदीपः प्रभया यथा ॥ ३१ ॥ शुश्रूषतामव्यलीकमस्माकं नरपुङ्गव ॥ स्वजन्म कर्म गोत्रं वा कथ्यतां यदि रोचते ॥३२॥ वयं तु पुरुषव्याघ्र ऐक्ष्वाकाः क्षत्त्रबन्धवः ॥ मुचुकुन्द इति प्रोक्तो यौवनाश्वात्मजः प्रभो ॥ ३३ ॥ चिरप्रजागरश्रान्तो निद्रयोपहतेन्द्रियः ॥ शयेऽस्मिन् विजने कामं केनाप्युत्थापितोऽधुना ॥ ३४ ॥ सोपि भस्मीकृतो नूनमात्मीयेनैव पाप्मना ॥ अनन्तरं भवान् श्रीमाँल्लक्षितोऽमित्रशातनः ॥ ३५ ॥ तेजसा तेऽविषह्येण भूरि द्रष्टुं न शक्नुमः ॥ हतौजसो महाभाग माननीयोऽसि देहिनाम् ॥ २६ ॥ एवं संभाषितो राज्ञा भगवान् भूतभावनः ॥ प्रत्याह प्रहसन् वाण्या मेघनादगभीरया ॥३७॥ श्रीभगवानुवाच ॥ जन्मकर्माभिधानानि सन्ति मेऽङ्ग सहस्रशः ॥ न शक्यन्तेऽनुसंख्यातुमनन्तत्वान्मयापि हि ॥ ३८ ॥

शोभायमान तुम देखे ॥ ३५ ॥ असह्य तुमारे तेजसे मेरो तेज दूर होयगयो, बहुत देखवेकी सामर्थ नहीं है, हे महाभाग! देहधारीनकूं तुम मानिवे योग्य हौ ॥ ३६ ॥ याप्रकार राजा मुचुकुन्दने कही तब प्राणीनके पालन करनवारे भगवान श्रीकृष्णचंद्र हंसिके मेघ जैसे गरजे है ता प्रकार गर्जिके बोलत भये ॥ ३७ ॥ अब श्रीभगवान् श्रीकृष्णचंद्र कहै हैं, हे मुचुकुन्द! मेरे जन्म कर्म नामनको अंत नहीं है, असंख्यात है, याते मैं नहीं गिनसकूंहूं ॥ ३८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

सोई देवतानने दियो, तब राजा मुचुकुंद देवतानकी दी निद्रासूं पर्वतकी गुफामें जायके सोवत भयो ॥ २१ ॥ २२ ॥ देवतानने वर दियो कि जाओ तुम अचैतन्य सोओ, जो तुमें बीचमें जगावैगो वह तुमारी दृष्टि परेते तत्काल जरिके भस्म होयजायगो ॥ २३ ॥ जा समय कालयवन जरिके भस्म होयगयो तासमय यादवनमें श्रेष्ठ भगवान् श्रीकृष्णचंद्र बुद्धिमान् मुचुकुंदकूं अपनो दर्शन करावतभयो ॥ २४ ॥ मेघकी तुल्य श्यामवर्ण पीतवस्त्र धारण करे हृदयमें भृगुलत्ताके चिन्हसे प्रकाशवान् कौस्तुभमणि धारण करनेसों शोभायमान हैं ॥ २५ ॥ चतुर्भुज वैजयंती मालासूं प्रकाशमान, सुन्दर मुख मकराकृत कुंडलनसूं शोभायमान हैं ॥ २६ ॥ मनुष्यनको देखिवे योग्य स्नेहभरी मुसिकान सहित चितवन; और नवीन अव-

यः कश्चिन्मम निद्राया भङ्गं कुर्यात्सुरोत्तमाः ॥ स हि भस्मीभवेदाशु तथोक्तश्च सुरैस्तदा ॥ २२ ॥ अशयिष्ट गुहाविष्टो निद्रया देवदत्तया ॥ स्वापं यातं यस्तु मध्ये बोधयेत् त्वामचेतनः ॥ स त्वया दृष्टमात्रस्तु भस्मीभवतु तत्क्षणात् ॥ २३ ॥ यवने भस्मसान्नीते भगवान् सात्त्वतर्षभः ॥ आत्मानं दर्शयामास मुचुकुन्दाय धीमते ॥ २४ ॥ तमालोक्य घनश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभेन विराजितम् ॥ २५ ॥ चतुर्भुजं रोचमानं वैजयन्त्या च मालया ॥ चारुप्रसन्नवदनं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ २६ ॥ प्रेक्षणीयं नृलोकस्य सानुरागस्मितेक्षणम् ॥ अपीच्यवयसं मत्तमृगेन्द्रोदारविक्रमम् ॥ २७ ॥ पर्यपृच्छन्महाबुद्धिस्तेजसा तस्य धर्षितः ॥ शङ्कितः शनकै राजा दुर्धर्षमिव तेजसा ॥ २८ ॥ मुचुकुन्द उवाच ॥ ॥ को भवानिह संप्राप्तो विपिने गिरिगह्वरे ॥ पद्भ्यां पद्मपलाशाभ्यां विचरस्युरुकण्टके ॥ २९ ॥ किं स्वित्तेजस्विनां तेजो भगवान् वा विभावसुः ॥ सूर्यः सोमो महेन्द्रो वा लोकपालोऽपरोऽपि वा ॥ ३० ॥

स्थायुक्त मतवारेसिंहकी तुल्य पराक्रमी ॥ २७ ॥ श्रीकृष्णकूं देखिके बडे बुद्धिमान् श्रीकृष्णचन्द्रके तेजसूं पराभवकूं प्राप्त भये राजा मुचुकुन्द भयमानिकै हौले हौले पूंछतभये ॥ २८ ॥ अब राजा मुचुकुन्द पूंछे हैं या वनमें पर्वतकी गुफामें तुम कौन कहांसे आये हो, कमलसे कोमल तुम्हारे चरण हैं बहुत कांटेनमें फिरोहो तुम कौन हो ॥ २९ ॥ तेजस्वीनके तुम तेजस्वरूप हो, अथवा भगवान् अग्निरूप हो, अथवा सूर्य हो, किंवा चन्द्रमा हो, अथवा इन्द्र हो, किंवा समस्त लोकनके पालनकर्ता हो, अथवा कोई देवता हो ॥ ३० ॥

असुरनसे भयभीत होय इन्द्रादिक देवतानके समूहने अपनी रक्षा करवेके निमित्त राजा मुचुकुंदते प्रार्थना करी, तौ बहुतदिन पर्यंत देवतानकी रक्षा करत भयो ॥ १५ ॥ पीछे स्वर्गके पालन करनवारे स्वामि कार्तिककूं आये देखिके सब देवता मुचुकुंद राजाते बोलत भये हे राजन् मुचुकुंद ! हमारे पालन करिवेमें जो कछु कष्ट है तासूं निवृत्त होयके आराम करौ ॥ १६ ॥ हे वीर ! मनुष्यलोकके निष्कंटक राज्यकूं त्यागिके हमारो पालन कऱ्यो तासूं तुमारे विषयनके भोग छूटे ॥ १७ ॥ और तुमारे पुत्र रानी ज्ञातिके भैया बन्धु दिवान प्रधान मंत्री राज्यकी प्रजा ये सम्पूर्ण अब कोई नहीं बच्यो है सबको कालने नाश करि दियो ॥ १८ ॥ काल बलवाननमें बलवान है भगवान्की शक्ति है, समर्थ अविनाशी है, जैसे पशूनको पालन कर-

स याचितः सुरगणैरिन्द्राद्यैरात्मरक्षणे ॥ असुरेभ्यः परित्रस्तैस्तद्रक्षां सोऽकरोच्चिरम् ॥ १५ ॥ लब्ध्वा गुहं ते स्वःपालं
मुचुकुन्दमथाब्रुवन् ॥ राजन् विरमतां कृच्छ्राद्भवान् नः परिपालनात् ॥ १६ ॥ नरलोके परित्यज्य राज्यं निहतकण्टकम् ॥ अस्मान् पालयतो वीर कामास्ते सर्व उज्झिताः ॥ १७ ॥ सुता महिष्यो भवतो ज्ञातयोऽमात्यमन्त्रिणः ॥
प्रजाश्च तुल्यकालीया नाऽधुना सन्ति कालिताः ॥ १८ ॥ कालो बलीयान् बलीनां भगवानीश्वरोऽव्ययः ॥ प्रजाः
कालयते क्रीडन् पशुपालो यथा पशून् ॥१९॥ वरं वृणीष्व भद्रं ते ऋते कैवल्यमद्य नः ॥ एक एवेश्वरस्तस्य भगवान्
विष्णुरव्ययः ॥ २० ॥ एवमुक्तः स वै देवानभिवन्द्य महायशाः ॥ निद्रामेव ततो वव्रे स राजा श्रमकर्शितः ॥ २१ ॥

नवारो ग्वालिया पशूननकूं चलावै है, ऐसे काल आप क्रीडा करिके समस्त प्रजाकूं इत उत चलावै हैं ॥ १९ ॥ सम्पूर्ण देवता कहे हैं हे राजन् मुचुकुंद ! तुम्हारो कल्याण होय मोक्षके विना जो कोई वर चाहो सो मांगि लेउ मोक्षको दाता तौ केवल एक अविनाशी विष्णु भगवान् ईश्वर है॥२०॥ या प्रकार जब देवतानने कह्यो तब बडो यशस्वी राजा मुचुकुंद बहुत दिन देवतानकी रक्षा करनेसे अति श्रमित होनेके कारण शयनके अर्थ निद्रा वर मांगत भयो, हे देवताओ ! जो कोई सोवतमें मेरी निद्राको भंग करै वह उसी समय भस्म होजाय या विधिको वर मांग्यो,

---

१ सवैया-काल उपावत काल खपावत काल मिलावत है गहि माटी । काल हलावत काल चलावत काल खिलावत है सब आटी ॥ काल बुलावत काल भुलावत काल डुलावत है वनघाटी । सुन्दर काल मिटै तवहीं पुनि ब्रह्म विचार पढै जब पाटी ॥ १ ॥ वे श्रवना रसना मुख वैसहि बैसहि नासिका वैसेहि अंखी । वे कर वे पग वे सब द्वारसु वे नख शीस हि रोम असंखी ॥ वे सहि देह परी पुनि दीसत एक बिना सब लागत संखी । सुंदर को उन जान सकै यह बोलत हो सो कहां गयो पंखी ॥ २ ॥

पैंड पैंडपै अब पकरचौ अब पकरचो ऐसे अपनेकूं दिखावत दिखावत म्लेच्छराज कालयवनकूं श्रीकृष्ण दूरि पर्वतकी गुफामें लेजात भये ॥ ७ ॥ यादवनके कुलमें तेरो जन्म है तोकों भाजिवो उचित नहीं है याप्रकार आक्षेप करत पीछे दौरचौ चल्यो जाय है परन्तु पापी होनेसे श्रीकृष्णकूं नहीं पकरत भयो क्योंकि पाप गये विना श्रीकृष्णकी प्राप्ति नहीं होय है ॥८॥ या प्रकार आक्षेप करिके जासमय कालयवनने डाटे तब भगवान् श्रीकृष्णचंद्र पर्वतकी गुफामें धसिजात भये, पश्चात् कालयवनहू गुफामें धस्यौ, वहां एक पुरुष और सोवे हो ताकूं देखत भयो ॥ ९ ॥ यह कृष्ण मोकूं इतनी दूर लायके यहां गरीब बनिके आप सो रह्यो है या प्रकार मूर्ख कालयवन समझिके उस सोते पुरुषकूं श्रीकृष्ण मानिके लात मारत भयो ॥१०॥

हस्तप्राप्तमिवात्मानं हरिणा स पदे पदे ॥ नीतो दर्शयता दूरं यवनेशोऽद्रिकन्दरम् ॥७॥ पलायनं यदुकुले जातस्य तव नोचितम् ॥ इति क्षिपन्ननुगतो नैनं प्रापाहताशुभः ॥८॥ एवं क्षिप्तोऽपि भगवान् प्राविशद्गिरिकन्दरम् ॥ सोऽपि प्रविष्टस्तत्रान्यं शयानं ददृशे नरम् ॥ ९ ॥ नन्वसौ दूरमानीय शेते मामिह साधुवत् ॥ इति मत्वाऽच्युतं मूढस्तं पदा समताडयत् ॥ १० ॥ स उत्थाय चिरं सुप्तः शनैरुन्मील्य लोचने ॥ दिशो विलोकयन् पार्श्वे तमद्राक्षीदवस्थितम् ॥ ११ ॥ स तावत्तस्य रुष्टस्य दृष्टिपातेन भारत ॥ देहजेनाऽग्निना दग्धो भस्मसादभवत् क्षणात् ॥ १२ ॥ राजोवाच ॥ को नाम स पुमान् ब्रह्मन् कस्य किंवीर्य एव च ॥ कस्माद्गुहां गतः शिश्ये किंतेजा यवनार्दनः ॥ १३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ स इक्ष्वाकुकुले जातो मान्धातृतनयो महान् ॥ मुचुकुन्द इति ख्यातो ब्रह्मण्यः सत्यसङ्गरः ॥ १४ ॥

बहुत दिननते सोयो सो पुरुष धीरे धीरे नेत्रनकूं खोलिके दिशानकूं देखिके पास ठाढे कालयवनकूं देखतभये ॥ ११ ॥ हे भारतवंशी राजा परीक्षित ! ताही समय क्रोधी मुचुकुन्दके देखवेते कालयवनके शरीरते अग्नि प्रकट होति भई तासूं क्षणभरमें जरिके भस्म होयगयो ॥ १२ ॥ अब राजा परीक्षित प्रश्न करे हैं हे ब्रह्मन् ! अर्थात् शुकदेवजी जाने कालयवन मारचो वाको नाम कहा है और वह कौन पुरुष है कौनके वंशमें उत्पन्न भयो है, कहा वाको प्रभाव है, कौनको पुत्र है किसकारण गुफामें सोयोहै, सो सम्पूर्ण मोसे वर्णन कीजिये ॥ १३ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित ! इक्ष्वाकुके कुलमें जन्म्यो मांधाताको पुत्र गुणवान् ब्राह्मणको भक्त सत्यवादी मुचुकुंद नाम हो ॥ १४ ॥

ता द्वारका नगरमें योगके प्रभावकरिके सब जननकूं पहुंचायके श्रीकृष्णचंद्रने बलदेवजीसों कही कि तुम यहां मथुरामें रहिके शेष प्रजाकी रक्षा करो
ऐसे बलदेवजीके संग विचार करिके कमलनकी माला पहिरे शस्त्ररहित मथुरापुरीके दरवाजेके बाहर निकसतभये ॥ ५८ ॥ इतिश्रीभा० भा० द०उ०
दुर्गनिवेशनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं-हे राजन् परीक्षित्! जासमय श्रीकृष्णचंद्र पुरते बाहर निकसे मानो चंद्रमा
उदय भयो, देखिवे लायक श्याम अंग पीत रेशमी वस्त्रनकूं पहिरे ॥ १ ॥ छातीमें भृगुलत्ताको जिनके चिन्ह प्रकाशवान, कौस्तुभमणि कंठमें पहिरे
पुष्ट लम्बी चार भुजा, नवीन कमलसे अरुण नेत्र ॥ २ ॥ नित्य प्रसन्न शोभायमान और सुंदर मुसिकानसे प्रकाशवान मकराकृत कुंडलसे शोभित

तत्र योगप्रभावेण नीत्वा सर्वजनं हरिः ॥ प्रजापालेन रामेण कृष्णः समनुमन्त्रितः ॥ निर्जगाम पुरद्वारात् पद्ममाली
निरायुधः ॥५८॥ इति श्रीभा० म० द० उ० दुर्गनिवेशनं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५०॥ श्रीशुक उवाच॥ तं विलोक्य
विनिष्क्रान्तमुज्जिहानमिवोडुपम् ॥ दर्शनीयतमं श्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ १ ॥ श्रीवत्सवक्षसं भ्राजत्कौस्तुभा-
मुक्तकन्धरम् ॥ पृथुदीर्घचतुर्बाहुं नवकञ्जारुणेक्षणम् ॥ २ ॥ नित्यप्रमुदितं श्रीमत्सुकपोलं शुचिस्मितम् ॥ मुखारविन्दं
बिभ्राणं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥ ३ ॥ वासुदेवो ह्ययमिति पुमान् श्रीवत्सलाञ्छनः ॥ चतुर्भुजोऽरविन्दाक्षो वनमाल्य-
तिसुन्दरः ॥ ४ ॥ लक्षणैर्नारदप्रोक्तैर्नान्यो भवितुमर्हति ॥ निरायुधश्चलन् पद्भ्यां योत्स्येऽनेन निरायुधः ॥ ५ ॥ इति
निश्चित्य यवनः प्राद्रवन्तं पराङ्मुखम् ॥ अन्वधावज्जिघृक्षुस्तं दुरापमपि योगिनाम् ॥ ६ ॥

मुखारविंदकूं धारण करे हैं ॥ ३ ॥ भृगुलत्ताके चिन्हसे शोभायमान चार भुजा और वनमालाकूं पहिरे बहुत सुंदर श्रीकृष्णकूं देखिके कालयवन विचार
करने लगा कि श्रीकृष्ण यही है ॥ ४ ॥ नारदने जे लक्षण बताये हैं ते यामें मिले हैं याते यही पुरुष वासुदेव है और नहीं है शस्त्ररहित पांव प्यादौ
जाय है याते मैंभी शस्त्ररहित पांवप्यादौ होयके याके संग युद्ध करूंगो ॥ ५ ॥ या प्रकार कालयवन निश्चय करिके पराङ्मुख होयके भाजे चले
जाय, योगी नेकभी हाथमें न आवैं ऐसे कृष्णके पकरिवेकूं पीछे भाजत भयो ॥ ६ ॥

राजाके निकसवेके बडे बडे बजार और गली और चौक जामें बने हैं ॥ ५१ ॥ बीच बीचमें हवेली बनिवेकी जगह छिकी गई है कल्पवृक्ष और लतावारे फलनके बाग चित्र विचित्र फुलवारी बगीचा लगि रहे हैं, सुवर्णके शिखरसे आकाशकूं स्पर्श करनेहारे ऊंचे स्फटिकमणिनके अटा बनि रहे हैं और ऊंचे ऊंचे किलेके द्वार बने हैं ॥ ५२ ॥ घोडानके बंधिवेके और अन्न भरिवेके लोहे पीतलके स्थान बने हैं, तिनके ऊपर सोनेके कलश धरे हैं, तिनसूं सुन्दर लगे हैं, पद्मरागमणिके जिनके शिखर, और महामरकत मणिनकी जिसमें धरती, ऐसे सुवर्णके घर जहां बने हैं ॥ ५३ ॥ देवतानके मंदीर बने हैं, और चित्रसारी बनी हैं, ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र ये चार वर्ण जामें वसे हैं, यादवनके और देवराज उग्रसेनके महल शोभायमान हैं ॥ ५४ ॥ जा नगरमें इन्द्र श्रीकृष्णके निमित्त सुधर्मा सभा और कल्पवृक्ष पठावत भयो, जा सभामें जो कोई मनुष्य रहै हैं, तिने भूख प्यास शीत गरमी शोक मोह नहीं सतामें हैं ॥ ५५ ॥ श्यामकर्ण श्वेतवर्ण मनकी तुल्य वेगवारे घोडानकूं वरुण भिजवावत भयो, लोकनको पालन करनवारे कुबेरने पद्म महापद्म मत्स्य कूर्म औदक नील मुकुंद शंख यह भगवान् आठ विभूती पठाई ॥ ५६ ॥ हे राजन् परीक्षित्! और जो सिद्धादिक हैं तिने भगवानने आपकूं अधिकारकी सिद्धिके निमित्त जहां तहांको अधिकार दियोहो तहां तहांकी संपूर्ण वस्तु जासमय श्रीकृष्णचंद्र पृथ्वीमें आये ता समय लायके अर्पण करत भये ॥ ५७ ॥

सुरद्रुमलतोद्यानविचित्रोपवनान्वितम् ॥ हेमशृङ्गैर्दिविस्पृग्भिः स्फाटिकाट्टालगोपुरैः ॥ ५२ ॥ राजताऽऽरकुटैः कोष्ठैर्हैमकुम्भैरलंकृतैः ॥ रत्नकूटैर्गृहैर्हैमैर्महामरकतस्थलैः ॥ ५३ ॥ वास्तोष्पतीनां च गृहैर्वलभीभिश्च निर्मितम् ॥ चातुर्वर्ण्यजनाकीर्णं यदुदेवगृहोल्लसत् ॥ ५४ ॥ सुधर्मां पारिजातं च महेन्द्रः प्राहिणोद्धरेः ॥ यत्र चावस्थितो मर्त्यो मर्त्यधर्मैर्न युज्यते ॥५५॥ श्यामैककर्णान् वरुणो हयाञ्छुक्लान् मनोजवान् ॥ अष्टौ निधिपतिः कोशान् लोकपालो निजोदयान् ॥ ५६ ॥ यद्यद्भगवता दत्तमाधिपत्यं स्वसिद्धये ॥ सर्वं प्रत्यर्पयामासुर्हरौ भूमिगते नृप ॥ ५७ ॥

अठारवीं बार फेर युद्ध होनहारा हो ताके बीचमेंही नारदजीको भेज्यो वीर कालयवन आयके दिखाई देत भयो ॥ ४४ ॥ संसारमें जाके तुल्य कोई योद्धा नहीं ऐसो कालयवन यादवनकूं अपनी बराबरीके मानिके तीन करोड म्लेच्छनकूं संग लेके मथुरापुरीकूं घेरत भयो नारदजीने यासों कही यादव और श्रीकृष्ण तुम्हारी बराबरीके हैं उनसे संग्राम करो ॥ ४५ ॥ बलदेजीकी सहाययुक्त श्रीकृष्णचन्द्र कालयवनकूं आयो देखिके चिंता करत भये, बड़ो आश्चर्य है यादवनकूं दोनों ओरते बडो कष्ट आयो है ॥ ४६॥ अब तौ यह बडो बली कालयवन हमकूं घेरे है; फेर जरासंधहूं आज अथवा

अष्टादशमसंग्रामे आगामिनि तदन्तरा ॥ नारदप्रेषितो वीरो यवनः प्रत्यदृश्यत ॥ ४४ ॥ रुरोध मथुरामेत्य तिसृभिर्म्लेच्छकोटिभिः ॥ नृलोके चाप्रतिद्वन्द्वो वृष्णीन् श्रुत्वात्मसंमितान् ॥ ४५ ॥ तं दृष्ट्वाऽचिन्तयत् कृष्णः सङ्कर्षणसहायवान् ॥ अहो यदूनां वृजिनं प्राप्तं ह्युभयतो महत् ॥ ४६ ॥ यवनोऽयं निरुन्धेऽस्मानद्य तावन्महाबलः ॥ मागधोऽप्यद्य वा श्वो वा परश्वो वाऽऽगमिष्यति ॥४७॥ आवयोर्युध्यतोरस्य यद्यागन्ता जरासुतः ॥ बन्धून् वधिष्यत्यथ वा नेष्यते स्वपुरं बली ॥४८॥ तस्मादद्य विधास्यामो दुर्गं द्विपददुर्गमम् ॥ तत्र ज्ञातीन् समाधाय यवनं घातयामहे ॥४९॥ इति संमन्त्र्य भगवान् दुर्गं द्वादशयोजनम् ॥ अन्तःसमुद्रे नगरं कृत्स्नाद्भुतमचीकरत् ॥५०॥ दृश्यते यत्र हि त्वाष्ट्रं विज्ञानं शिल्पनैपुणम् ॥ रथ्याचत्वरवीथीभिर्यथा वास्तु विनिर्मितम् ॥ ५१ ॥

काल अथवा परसों पर्यंत आवेहोगो ॥ ४७ ॥ जो यासमय हम याते युद्ध करेंगे, और बीचमें जरासंध आय गयो तौ हमारे बंधूनकूं मारेगो और जो न मारोगो तौ बलवान है, बांधिके अपने पुरमें लै जायगो ॥ ४८ ॥ याते मनुष्य जहां न जाय सके ऐसो एक किला बनावेंगे तामें अपने ज्ञातिके यादवनकूं राखिके कालयवनकूं मारूंगो ॥ ४९ ॥ याविधि भगवान् श्रीकृष्णचंद्र मनमें विचार करिकै अडतालीस कोसको समुद्रके बीचमें किला और ता किलाके बीचमें आश्चर्य अद्भुत नगर रचित भये॥ ५० ॥ कैसो नगर है कि जा नगर में सम्पूर्ण विश्वकर्माकी कारीगिरी दिखाई देय है,

बडे क्रोधसै बन्दर फेरि और वृक्षकूं बलते उखारिके और वाके सब पत्तानकूं साफ करिके बलदेवजीके मारत भयो, तब बलदेवजी वा वृक्षके टूक टूक करत भये ॥ २० ॥ ताके पीछे और वृक्षकूं उखारिके बलदेवजीके मारत भयो, तब वा वृक्षके बलदेवजीसौ टूक करत भये, या प्रकार भगवान् बलदेवजीके साथ युद्ध करिके फेरि फेरि जब वृक्ष कटिगये, तब चारों ओरसे वृक्षनकूं उखारिके निर्वृक्ष वन करत भयो ॥ २१ ॥ ताके पीछे असहनतासै वह बन्दर बलदेवजीके ऊपर पत्थर वर्षावत भयो मूशलधारी बलदेवजी बन्दरके वर्षाये पत्थर लीलाकरिके चूर्ण करत भये ॥ २२ ॥ बन्दरनको स्वामी वह बन्दर ताल वृक्षकी बराबर बडी भुजाकी मुट्ठी बांधिके रोहिणीपुत्र बलदेवजीके पास जायके छातीमें मुष्टि मारत भयो ॥ २३

पुनरन्यं समुत्क्षिप्य कृत्वा निष्पत्रमोजसा ॥ तेनाहनत्सुसंक्रुद्धस्तं बलः शतधाऽच्छिनत् ॥ २० ॥ ततोऽन्येन॥ षा जघ्ने तं चापि शतधाऽच्छिनत् ॥ एवं युध्यन्भगवता भग्ने भग्ने पुनः पुनः ॥ २१ ॥ आकृष्य सर्वतो वृक्ष ॥ वृक्षमकरोद्वनम् ॥ ततोऽमुञ्चच्छिलावर्षं बलस्योपर्यमर्षितः ॥ तत्सर्वं चूर्णयामास लीलया मुशलायुधः ॥ २ ॥ स बाहू तालसंकाशौ मुष्टीकृत्य कपीश्वरः ॥ आसाद्य रोहिणीपुत्रं ताभ्यां वक्षस्यरूरुजत् ॥ २३ ॥ यादवेन्द्रोऽपि तं दोर्भ्यां त्यक्त्वा मुशललाङ्गले ॥ जत्रावभ्यर्दयत्क्रुद्धः सोऽपतद्रुधिरं वमन् ॥ २४ ॥ चकम्पे तेन पतता सटङ्कः सवनस्पतिः ॥ पर्वतः कुरुशार्दूल वायुना नौरिवाम्भसि ॥ २५ ॥ जयशब्दो नमःशब्दः साधु साध्विति चाम्बरे ॥ सुरसिद्धमुनीन्द्राणामासीत्कुसुमवर्षिणाम् ॥ २६ ॥ एवं निहत्य द्विविदं जगद्व्यतिकरावहम्॥ संस्तूयमानो भगवाञ्जनैः स्वपुरमाविशत्॥२७॥इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्धे द्विविदवधो नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः॥६७॥

यादवनके इन्द्र बलदेवजीभी हल मूशलकूं त्यागिके क्रोध करिके भुजानते बन्दरके कण्ठकूं मर्दन करत भये, ता समय वह बन्दर रुधिरकी वमन करि गिरत मरत भयो ॥ २४ ॥ हे कौरवनमें सिंहरूप राजा परीक्षित् ! जिस समय वह वानर गिरा तब जैसे जलमें नाव कांपती है इस प्रकार टंक और वृक्षौंसहित वह पर्वत कांपने लगा ॥ २५ ॥ आकाशमार्गमें देवता सिद्ध मुनीश्वर फूलनकी वर्षा करत जय शब्द और नमःशब्द और भले २ शब्द करत भये ॥ २६ ॥ या प्रकार जगत्के नाश करनवारे बन्दरकूं मारिकें जनोंसे स्तुतिको प्राप्त होय ऐसे भगवान् बलदेवजी द्वारकापुरीमें आवत

भये ॥ २७ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे द्विविदवधोनाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥ अब श्रीशुकदेवजी
कहें हैं हे राजन् परीक्षित् ! युद्धमें जीतनवारो जांबवतीको पुत्र सांब दुर्योधनकी पुत्री लक्ष्मणाको स्वयंवरमेंते हरिकें लावतभयो॥ १ ॥ ता समय
सम्पूर्ण कौरव क्रोध करिके बोलत भये, यह बालक बडो अनम्र है, हमारो अनादर करिकें इच्छा न करती हमारी कन्याकूं बलते हरत भयो
॥ २ ॥ अनम्र इस बालककूं बांधिलेउ यादव हमारो कहा करेंगे, जे यादव हमारी प्रसन्नतासूं वृद्धिकूं प्राप्त भये हैं हमारी दीनीभई पृथ्वीको
भोग करें हैं ॥ ३ ॥ या बालककूं बंध्यो सुनिके यो यादव यहां आमेगे प्राणायाम करेतें जैसे इन्द्रिय शांति होति है ऐसे गर्व भंजन होनेपर शांतिकूं
पावेंगे ॥ ४ ॥ या प्रकार भीष्मजीकी सम्मतिसैं कर्ण, शल, भूरी, यज्ञकेतु, दुर्योधन, यह बांधिवेको उपाय करतभये ॥ ५ ॥ महारथी सांब पीछे

॥ श्रीशुक उवाच ॥ दुर्योधनसुतां राजँल्लक्ष्मणां समितिञ्जयः॥ स्वयंवरस्थामहरत्साम्बो जाम्बवतीसुतः ॥ १ ॥
कौरवाः कुपिता ऊचुर्दुर्विनीतोऽयमर्भकः ॥ कदर्थीकृत्य नः कन्यामकामामहरद्बलात् ॥ २ ॥ बध्नीतेमं दुर्विनीतं किं
करिष्यन्ति वृष्णयः ॥ येऽस्मत्प्रसादोपचितां दत्तां नो भुञ्जते महीम् ॥ ३ ॥ निगृहीतं सुतं श्रुत्वा यद्येष्यन्तीह
वृष्णयः ॥ भग्नदर्पाः शमं यान्ति प्राणा इव सुसंयताः ॥ ४ ॥ इति कर्णः शलो भूरिर्यज्ञकेतुः सुयोधनः ॥ साम्बमारेभिरे बद्धुं कुरुवृद्धानुमोदिताः ॥ ५ ॥ दृष्ट्वानुधावतः साम्बो धार्तराष्ट्रान्महारथः ॥ प्रगृह्य रुचिरं चापं तस्थौ दोणं
इवैकलः ॥ ६ ॥ तं ते जिघृक्षवः क्रुद्धास्तिष्ठ तिष्ठेति भाषिणः ॥ आसाद्य धन्विनो बाणैः कर्णाग्रण्यः समाकिरन् ॥ ७
सोऽपविद्धः कुरुश्रेष्ठ कुरुभिर्यदुनन्दनः ॥ नामृष्यत्तदचिन्त्यार्भः सिंहः क्षुद्रमृगैरिव ॥ ८ ॥

आते छः धृतराष्ट्रके अनुयायीओंको देखिकें सुन्दर धनुष हाथमें लैके सिंहकी तुल्य अकेलोही ठाढो होतभयो ॥ ६ ॥ कर्णआदि धनुषके धारन
करनवारे वीर क्रोधमें भरिके सांबके पकरिवेके लिये ठाढो रह २ ऐसे कहत पास आयके बाणनकूं चलावतभये ॥ ७ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! यादवनकूं
आनंदके देनवारे अचिंत्य भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र सांबके कौरवनने बाण मारे, तब वह क्षुद्र जानवरनिके पराक्रमकूं सिंह जैसे नहीं
सहारे है ऐसे नहीं सहारत भयो ॥ ८ ॥

वीर सांब मनोहर धनुषकूं चढायके कर्णादिक छः वीरौंको छः बाणनकरिके एक संग वेधतभयो ॥ ९ ॥ चार बाणन करिके रथके चारों घोडानकूं, और एक बाणकरिकें रथमाननकूं वेधत भयो, बडे बडे धनुषधारी छः रथी सांबके पराक्रमकी प्रशंसा करत भये ॥ ॥ १० ॥ तिन कौरवनमेंसे चार जने तौ सांबके चारों घोडानकूं मारतभये और एक जनो रथमानकूं मारतभयो एक धनुषकूं तोरत भयो, याप्रकार सब मिलिके सांबकूं विरथ करत भये ॥ ११ ॥ कौरव वीर युद्धमें बालक सांबकूं विरथ करिकें और बांधिकें अपनी कन्याकूं लैके जीतिकें अपने पुरमें जातभये ॥ १२ ॥ हे राजन् परीक्षित्! नारदके कहेते सांबकूं बंध्यो सुनिके क्रोधित होय यादवराजा उग्रसेनके कहेते

विस्फूर्ज्य रुचिरं चापं सर्वान्विव्याध सायकैः ॥ कर्णादीन्षड्रथान्वीरस्तावद्भिर्युगपत्पृथक् ॥ ९ ॥ चतुर्भिश्चतुरो व ॥
नेकैकेन च सारथीन् ॥ रथिनश्च महेष्वासांस्तस्य तत्तेऽभ्यपूजयन् ॥ १० ॥ तं तु ते विरथं चक्रुश्चत्वारश्चतुरो ह ॥
एकस्तु सारथिं जघ्ने चिच्छेदान्यः शरासनम् ॥ ११ ॥ तं बद्ध्वा विरथीकृत्य कृच्छ्रेण कुरवो युधि ॥ कुमारं स ॥
कन्यां च स्वपुरं जयिनोऽविशन् ॥ १२ ॥ तच्छ्रुत्वा नारदोक्तेन राजन्संजातमन्यवः ॥ कुरून्प्रत्युद्यमं चक्रुरुग्रसेनप्रचोदिताः ॥ १३ ॥ सान्त्वयित्वा तु रामस्तान्सन्नद्धान्वृष्णिपुङ्गवान् ॥ नैच्छत्कुरूणां वृष्णीनां कलिं कलिमलापहः ॥
॥ १४ ॥ जगाम हास्तिनपुरं रथेनादित्यवर्चसा ॥ ब्राह्मणैः कुलवृद्धैश्च वृतश्चन्द्र इव ग्रहैः ॥ १५ ॥ गत्वा गजाह्वयं
रामो बाह्योपवनमास्थितः ॥ उद्धवं प्रेषयामास धृतराष्ट्रं बुभुत्सया ॥ १६ ॥ सोऽभिवन्द्याम्बिकापुत्रं भीष्मं द्रोणं
च बाल्हिकम् ॥ दुर्योधनं च विधिवद्राममागतमब्रवीत् ॥ १७ ॥

रवनसूं लडिवेको उद्यम करत भये ॥ १३ ॥ कलियुगके पापनके नाश करनवारे बलदेवजी कौरव यादवनको परस्पर विरोध न होय यह विचारिकें कवच पहिरे, हथियार बांधे यादवोंको समझायके ॥ १४ ॥ सूर्यकी तुल्य कांतिवारे रथमें बैठिके ब्राह्मणकूं संग लिये, कुलमें वृद्धनकूं संग लैके, जैसे ग्रहन सहित चन्द्रमा गमन करै है ऐसे हस्तिनापुरकूं जात भये ॥ १५ ॥ बलदेवजी हस्तिनापुरमें जायके वस्तीके बाहिर बगीचामें ठहरिकें कौरवनको अभिप्राय जानिवेके लिये धृतराष्ट्रके पास उद्धवजीकूं भेजतभये॥ १६॥ उद्धवजी अम्बिकाके पुत्र धृतराष्ट्रकूं प्रणाम करिकें भीष्मजीकूं

और बाल्हीकसहित द्रोणाचार्यकूं दुर्योधनकूं विधिपूर्वक प्रणाम करिके बलदेवजी आये हैं यह कहत भये ॥ १७ ॥ बडे हितकारी बलदेवजीकूं आये सुनिके अति प्रसन्न होय सम्पूर्ण कौरव उद्धवजीको पूजन करिके भेटनकूं हाथमें लैकें बलदेवजीके सन्मूख जातभये ॥ १८ ॥ ते कौरव रीतपूर्वक बलदेवजीते मिलके गौ और धन देतभये और तिन कौरवनमें बलदेवजीके प्रभावकूं जाननेहारे इन्हे शिर नमाइके प्रणाम करतभये ॥ १९ ॥ समस्त बंधुनकी कुशल श्रवण करि आपुसमें कुशल क्षेम पूछिकें पीछे जाके श्रवण करेते व्याकुलता होय ऐसो वचन बलदेवजी कहत भये ॥ २० ॥ सामर्थ्यमान् पृथ्वीके ईश्वर राजा उग्रसेनने जो आज्ञा तुमकूं करी है उसै एकाग्र बुद्धिसूं श्रवण करिके शीघ्र करौ ॥ २१ ॥ अब राजा उग्रसेनने कहीहै तुम

तेऽतिप्रीतास्तमाकर्ण्य प्राप्तं रामं सुहृत्तमम् ॥ तमर्चयित्वाभिययुः सर्वे मङ्गलपाणयः॥१८॥तं संगम्य यथान्यायं गामर्घ्यं च न्यवेदयन्॥ तेषां ये तत्प्रभावज्ञाः प्रणेमुः शिरसा बलम्॥१९॥बन्धून्कुशलिनः श्रुत्वा दृष्ट्वा शिवमनामयम् ॥ परस्परमथो रामो बभाषेऽविक्लवं वचः ॥ २० ॥ उग्रसेनः क्षितीशेशो यद्व आज्ञापयत्प्रभुः ॥ तदव्यग्रधियः श्रुत्वा कुरुध्वं मा विलम्बितम् ॥ २१ ॥ यद्यूयं बहवस्त्वेकं जित्वाऽधर्मेण धार्मिकम् ॥ अबध्नीताथ तन्मृष्ये बन्धूनामैक्यकाम्यया ॥ ॥ २२ ॥ वीर्यशौर्यबलोन्नद्धमात्मशक्तिसमं वचः॥ कुरवो बलदेवस्य निशम्योचुः प्रकोपिताः ॥ २३ ॥ अहो महच्चित्र कालगत्या दुरत्यया ॥ आरुरुक्षत्युपानद्वै शिरो मुकुटसेवितम् ॥ २४ ॥ एते यौनेन संबद्धाः सहशय्यासनाश वृष्णयस्तुल्यतां नीता अस्मद्दत्तनृपासनाः ॥ २५ ॥

बहुतौंने अधर्मकरिके धर्मात्मा बालककूं बांधिलियो यह तुमारो अपराध बंधुनकी आपुसमें एकता रहै विरोध न होय या कारण हमने सहारि लियो; तुम शीघ्र सांबकूं लायके अर्पण करो॥२२॥पराक्रम शूरता बलयुक्त और अपनी सामर्थ्यके समान बलदेवजीके वचन श्रवण करिके कोपकरिके कौरव बोलतभये ॥ २३ ॥ अहो बडे आश्चर्यकी बात है देखो कालकी गति बडी दुरत्यय है पावके पहिरवेकी जूती मुकुट करिकें सेवित शिरपै चढ्यो चाहे हैं ॥ २४ ॥ इनके यहांते जबते पृथाकूं व्याहिके लाये तबते यादवनते संबंध भयो है हमारे संग पलंगपै सोमे हैं संग बैठे है संग भोजन करे है यादव हमने अपनी बराबरीके करि लिये और हमनेही इनकूं राज्यासन दियो है ॥ २५ ॥

॥

पीछे [illegible]। सब [illegible] ॥६॥ वह जो कामदेवकी स्त्रीही रति वाको नाम बडी पतिव्रता ही पति कामदेवको देह दग्ध होयगयो सो वाके देहके उत्पन्न होयवेकी प्रतीक्षा करै ही ॥ ७ ॥ वह मायावती कामदेवकी स्त्री शंबरासुरने मूंग भात करिवेके निमित्त अपने पास राखीही, सो उस बालककूं कामदेव जानिके ता समय बालकमें स्नेह करतभई ॥ ८ ॥ थोरेसेंही दिननमें यौवन अवस्थाको प्राप्त होय श्रीकृष्णचंद्रके पुत्र प्रद्युम्न देखनवारी स्त्रीनकूं मोह उत्पन्न करतभये ॥ ९ ॥ कमलदलसे बडे नेत्र, लम्बी भुजा, मनुष्यलोकमें सुंदर, ऐसे पति प्रद्युम्नकूं लाज भरी मुसिक्यानिसूं उठी भृकुटीसूं

सा च कामस्य वै पत्नी रतिर्नाम यशस्विनी ॥ पत्युर्निर्दग्धदेहस्य देहोत्पत्तिं प्रतीक्षती ॥ ७ ॥ निरूपिता शम्बरेण सा सूपौदनसाधने ॥ कामदेवं शिशुं बुद्ध्वा चक्रे स्नेहं तदाऽर्भके ॥ ८ ॥ नातिदीर्घेण कालेन स कार्ष्णी रूढयौवनः ॥ जनयामास नारीणां वीक्षन्तीनां च विभ्रमम् ॥ ९ ॥ सा तं पतिं पद्मदलायतेक्षणं प्रलम्बबाहुं नरलोकसुन्दरम् ॥ सव्रीडहासोत्तभितभ्रुवेक्षती प्रीत्योपतस्थे रतिरङ्ग सौरतैः ॥ १० ॥ तामाह [illegible]वान्कार्ष्णिर्मातस्ते मतिरन्यथा ॥ मातृभावमतिक्रम्य वर्तसे कामिनी यथा ॥ ११ ॥ रतिरुवाच ॥ भवान्नाराय[illegible]ुतः शम्बरेणाहृतो गृहात् ॥ अहं तेऽधिकृता पत्नी रतिः कामो भवान्प्रभो ॥ १२ ॥ एष त्वाऽनिर्दशं सिन्धावक्षिप[illegible]छम्बरोऽसुरः ॥ मत्स्योऽग्रसीत्तदुरादिह प्राप्तो भवान्प्रभो ॥ १३ ॥

देखिके, प्रीति करिके सुरतसंबंधी भाव करिके सेवन करतभई ॥ १० ॥ अब श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नजी रतिते बोलत भये हे मात! तुम्हारी मति और प्रकार भई है, मातृभावकूं त्यागिके अब स्त्रीकी तुल्य आचरण करौ हौ ॥ ११ ॥ अब रति बोलै है तुम नारायणके पुत्र हौ, शंबरासुर तुमकूं चुरायके घरमेंते लैगयोहो, मैं तुमारी स्त्री हूं रति मेरो नाम है, तुम कामदेव हौ ॥१२॥ तुम जब दश दिनभी नहीं थे तब तुमकूं शंबरासुर समुद्रमें पटकत भयो, तब मत्स्य तुमकूं निगलत भयो, हे प्रभो! तुम मत्स्यके पेटमेंते आयेहौ ॥ १३ ॥

---

१ शिवजीने जब कामदेवको भस्म किया था तब रतिके विलाप करने पर उसे समझायकर कहा तू शंबरासुरके यहां जायकै रह वहां तेरा पति तुझे रसोई घरमें मिलैगा तू उसे पाल. लीजौ मछलीके उदरमेंसे प्राप्त होगा तबसे रति रूप छिपाये वहां रहती थी.

तुम्हारो शत्रु शंबरासुर सैकरन मायानको जाननवारो है इसकारण असह्य और दुर्जेय है ताकूं मोहनादिक मायानसूं मारो ॥ १४ ॥ तुम्हारे खोजानेके कारण पुत्रके स्नेहसे अति व्याकुल दीन तुम्हारी माता कुररी अर्थात् टटिरहिकी तुल्य शोच करे है, विना वछराकी गौकी तुल्य आतुर है ॥ १५ ॥ या प्रकार मायावती स्त्री कहिके सब मायानकी नाश करनवारी महामाया विद्या महात्मा प्रद्युम्नजीकूं देतभई ॥ १६ ॥ प्रद्युम्नजी शंबरासुरके पास आयके असह्य वचनसूं तिरस्कार करि कलह उत्पन्न करि युद्ध करिवेके अर्थ बुलावतभये ॥ १७ ॥ खोटे वाक्यनसूं तिरस्कार पाय शंबरासुर जैसे ठोकर लगते सर्व फुंकारे है या प्रकार क्रोध करिके लाल नेत्र कर गदा हाथमें लैके निकसत भयो॥१८॥ शंबरासुर गदाकूं फिरायके महात्मा प्रद्युम्नजीके ऊपर फेंकिके

तमिमं जहि दुर्द्धर्षं दुर्जयं शत्रुमात्मनः ॥ मायाशतविदं त्वं च मायाभिर्मोहनादिभिः ॥ १४ ॥ परिशोचति ते माता
कुररीव गतप्रजा ॥ पुत्रस्नेहाकुला दीना विवत्सा गौरिवातुरा ॥ १५॥ प्रभाष्यैवं ददौ विद्यां प्रद्युम्नाय महात्मने॥ माया-
वती महामायां सर्वमायाविनाशिनीम् ॥ १६ ॥ स च शम्बरमभ्येत्य संयुगाय समाह्वयत् ॥ अविषह्यैस्तमाक्षेपैः
क्षिपन्सञ्जनयन्कलिम् ॥ १७॥ सोऽधिक्षिप्तो दुर्वचोभिः पदाहत इवोरगः॥ निश्चक्राम गदापाणिरमर्षात्ताम्रलोचनः ॥
॥ १८ ॥ गदामाविध्य तरसा प्रद्युम्नाय महात्मने॥ प्रक्षिप्य व्यनदन्नादं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम् ॥ १९ ॥ तामापतन्तीं भग-
वान्प्रद्युम्नो गदया गदाम् ॥ अपास्य शत्रवे क्रुद्धः प्राहिणोत्स्वगदां नृप ॥ २० ॥ स च मायां समाश्रित्य दैतेयीं मय-
दर्शिताम् ॥ मुमुचेऽस्त्रमयं वर्षं कार्ष्णौ वैहायसोऽसुरः ॥२१॥ बाध्यमानोऽस्त्रवर्षेण रौक्मिणेयो महारथः ॥ सत्त्वा-
त्मिकां महाविद्यां सर्वमायोपमर्दिनीम् ॥ २२ ॥

वज्रपातकी तुल्य कठोर शब्दसूं अधिक शब्द करत भयो ॥ १९ ॥ हे राजन् ! भगवान् प्रद्युम्नजी अपने ऊपर चली आती गदाकूं गदासूं दूरि करिके वैरी शंबरासुरके ऊपर क्रोधकरिके अपनी गदा फेकत भये ॥ २० ॥ शंबरासुर मयकारीगरके सिखाई दैत्यनकी मायाको आश्रय लैके आकाशमें जायके श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नजीके ऊपर पत्थरनकी वर्षा करतभयो ॥२१॥ पत्थरनकी वर्षासूं पीडित होय रुक्मिणीके पुत्र प्रद्युम्नजी समस्त मायानकी [illegible] अपनी मायाकूं बुलावतभये ॥ २२ ॥

पीछे शंबरासुर, गुह्यक, गंधर्व, पिशाच, सर्प राक्षसनकी सैकरान माया छोडत भयो, ता समय श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नजी सब मायानको नाश करत भयो ॥ २३ ॥ प्रद्युम्नजी पैनी तरवारी उठायके कुंडल और किरीट सहित और रक्त डाढी मोछन सहित शंबरासुरको शीश बलकरिके धडते काटतभये ॥ २४ तब स्तुति करके देवताओंने पुष्प वर्षाये और आकाशकी विचरनवारी स्त्रीनने आकाशमार्ग होयके प्रद्युम्नजीको द्वारकापुरीमें पहुंचाय दिया ॥ २५ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! सैकरान स्त्रीयोंसे शोभित अंतःपुरमें आकाशते उतरिके जैसे विजुरी सहित मेघ आवै या प्रकार आवत भये ॥२६॥ वर्षाकी घटानकी तुल्य सांवरे, रेशमी पीले वस्त्रनकूं पहिर, लम्बी भुजा, अरुण नेत्र, सुंदर मुसिकानि, मनोहरमुख, नीली टेढी अलकावलीसूं शोभायमान

ततो गौह्यकगान्धर्वपैशाचोरगराक्षसीः ॥ प्रायुङ्क शतशो दैत्यः कार्ष्णिर्व्यधमयत्स ताः ॥ २३ ॥ निशातमसिमुद्यम्य
सकिरीटं सकुण्डलम् ॥ शम्बरस्य शिरः कायात्ताम्रश्मश्र्वोजसाऽहरत् ॥ २४ ॥ आकीर्यमाणो दिविजैः स्तुवद्भिः
कुसुमोत्करैः ॥ भार्ययाम्बरचारिण्या पुरीं नीतो विहायसा ॥ २५ ॥ अन्तःपुरवरं राजँल्ललनाशतसङ्कुलम् ॥ विवेश
पत्न्या गगनाद्विद्युतेव बलाहकः ॥ २६ ॥ तं दृष्ट्वा जलदश्यामं पीतकौशेयवाससम् ॥ प्रलम्बबाहुं ताम्राक्षं सुस्मितं
रुचिराननम् ॥ २७ ॥ स्वलंकृतमुखाम्भोजं नीलवक्रालकालिभिः ॥ कृष्णं मत्वा स्त्रियो ह्रीता निलिल्युस्तत्र तत्र ह ॥२८॥
अवधार्य शनैरीषद्वैलक्षण्येन योषितः ॥ उपजग्मुः प्रमुदिताः सस्त्रीरत्नं सुविस्मिताः ॥ २९ ॥ अथ तत्रासितापाङ्गी
वैदर्भी वल्गुभाषिणी ॥ अस्मरत्स्वसुतं नष्टं स्नेहस्नुतपयोधरा ॥ ३० ॥ को न्वयं नरवैदूर्यः कस्य वा कमलेक्षणः ॥
धृतः कया वा जठरे केयं लब्धा त्वनेन वा ॥ ३१ ॥

मुखारविंदवारे प्रद्युम्नजीकूं देखिके श्रीकृष्ण आये यह मानिके स्त्री लज्जित होयके जहां तहां छिपती भई ॥ २७ ॥ २८ ॥ कछु एक स्त्री कोई विलक्षणता देखिके श्रीकृष्ण नहीं हैं ऐसे जानिके प्रसन्न होयके आश्चर्य मानिके स्त्रीनमें श्रेष्ठ रति सहित बेटे प्रद्युम्नजीके पास आवतभई ॥ २९ ॥ याके पीछे तासमय स्नेह करिके जिसके स्तननमें दूध चुवै, ऐसी नीले कटाक्ष, मनोहर वचनवारी विदर्भदेशके राजाकी पुत्री रुक्मिणी नष्टभये अपने पुत्रको स्मरण करतभई॥३०॥ मनुष्यनमें श्रेष्ठ कमलकी तुल्य नेत्रवारो यह बालक कौनको है, और कौन स्त्रीने याकूं गर्भमें राख्यो है, और याकूं यह कौन स्त्री प्राप्ति भई है ॥ ३१ ॥

मेरोभी पुत्र नष्ट होय गयो, सूतिकागृहमेंते वाकूं कोई लैगयो है, जो कदाचित् कहूं जीवंत होयगो तौ याहीकी बराबरि होयगो, ऐसोई वाको स्वरूप
होयगो॥३२॥शार्ङ्ग धनुषधारी श्रीकृष्णकी तुल्य रूप याने कैसै पायौ है, याको स्वरूप और हाथ पावनकी चालनि बोलनि हसनि चितवनि सब श्रीकृष्णकी समान है ॥ ३३॥ जो बालक मैंने गर्भमें धारण कर्यो हो निश्चय वह यही है यामें मेरी प्रीति बढी है, और मेरी बांई भुजा फरकति है ॥३४॥ विदर्भदेशके राजाकी पुत्री रुक्मिणी या प्रकार विचार करै ही कि इतनेमें उत्तम यशवारे देवकीके पुत्र श्रीकृष्णचंद्र देवकी वसुदेवजीकूं संग लैके आवत
भये ॥ ३५॥ पत्नी सहित पुत्र आयो है या बातकूं जनार्दन श्रीकृष्णचंद्र जाने हैं तथापि चुप होत भये,इतनेमें नारदजी आयके शंबरासुर हरिके लैग-

मम चाप्यात्मजो नष्टो नीतो यः सूतिकागृहात् ॥ एतत्तुल्यवयोरूपो यदि जीवति कुत्रचित् ॥ ३२ ॥ कथं त्वनेन
संप्राप्तं सारूप्यं शार्ङ्गधन्वनः ॥ आकृत्यावयवैर्गत्या स्वरहासावलोकनैः॥३३॥ स एव वा भवेन्नूनं यो मे गर्भे धृतोऽर्भकः ॥ अमुष्मिन्प्रीतिरधिका वामः स्फुरति मे भुजः ॥ ३४ ॥ एवं मीमांसमानायां वैदर्भ्यां देवकीसुतः ॥ देवक्याऽऽनकदुन्दुभ्यामुत्तमश्लोक आगमत् ॥ ३५ ॥ विज्ञातार्थोऽपि भगवांस्तूष्णीमासीज्जनार्दनः ॥ नारदोऽकथयत्सर्वं शम्बराहरणादिकम् ॥ ३६ ॥ तच्छ्रुत्वा महदाश्चर्यं कृष्णान्तःपुरयोषितः ॥ अभ्यनन्दन्बहून्शब्दान्नष्टं
मृतमिवागतम् ॥ ३७ ॥ देवकी वसुदेवश्च कृष्णरामौ तथा स्त्रियः ॥ दम्पती तौ परिष्वज्य रुक्मिणी च ययुर्मुदम्
॥ ३८ ॥ नष्टं प्रद्युम्नमायातमाकर्ण्य द्वारकौकसः ॥ अहो मृत इवायातो बालो दिष्ट्येति हाऽब्रुवन् ॥ ३९ ॥

यो समुद्रमें पटकि आयो तब मछरी निगलिगई यासूं आदिलैके सब वृत्तान्त कहत भये ॥ ३६ ॥ कृष्णके अंतःपुरकी स्त्री बडो आश्चर्य श्रवण करिके
बहुत कालके पीछे मृतक जैसे बगदके आवै या प्रकार आये प्रद्युम्नजीकी प्रशंसा करत भई॥३७॥ देवकी वसुदेव और बलदेव श्रीकृष्ण तथा और स्त्री
और रुक्मिणीजी स्त्रीपुरुष प्रद्युम्नसूं मिलिके आनंदकूं प्राप्त होतभये ॥ ३८ ॥ समस्त द्वारकावासी नष्ट भये प्रद्युम्नकूं आये सुनिके अहो बडो आश्चर्य
है, मृतककी तुल्य यह बालक आवत भयो ऐसे कहत भये ॥ ३९ ॥

अपने पिता श्रीकृष्णकी समान स्वरूपवारे प्रद्युम्नजी हमारे पुत्र हैं, यह विचार एकांतमें अत्यन्त प्रेमसै प्रद्युम्नजीकी माता रुक्मिणीकूं आदि लैके श्रीकृष्णकी रानी भ्रांत हो प्रद्युम्नजीको सेवन करत भई, यह कछु आश्चर्य नहीं है, क्यों कि लक्ष्मीनिवास श्रीकृष्णके पुत्र कामदेवका स्मरण करतेही मन चलायमान होइ है, साक्षात् मूर्तिमानके दर्शन करेते स्त्री सेवन करें तौ यामें कहा कहिनो है ॥ ४० ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहैं हैं हे राजन् परीक्षित् !, प्रथम अपराध करकै सत्राजितने अपने पापकी निवृत्तिके अर्थ अपनी कन्याकूं स्यमंतक नाम मणिके साथ श्रीकृष्णचंद्रकूं देवेको उपाय करिके देतभयो ॥ १ ॥ अब राजा परीक्षित् कहै हैं हे शुकदेवजी ! सत्राजित श्रीकृष्णचंद्रको कहा अपराध करत भयो और स्यमंतकमणि कहांते आई, और कौन कारण अपनी कन्या श्रीकृष्णचंद्रकूं दीनी, यह सब हमारे आगे वर्णन करौ ॥ २ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहै हैं सत्राजित सूर्यको भक्त परम मित्र हौ, सूर्य प्रसन्न और संतुष्ट होयके सत्राजितकूं स्यमंतकमणि देतभये ॥३ ॥ हे राजन् ! सत्राजित मणिकूं कंठमें पहिरिके सूर्यके प्रकाशकी तुल्य प्रकाशमान होयके द्वारकापुरीमें आये. तासमय वाके तेजसूं सत्राजित आवै है यह जानिवेमें नहीं आवतभयो ॥ ४ ॥ तेजकी चकाचौंधीसूं दृष्टि चौंधजानेसै मनुष्य सत्राजितकूं दूरिते आवत देखिके राजा उग्रसेनकी सभामें चौपरि खेलते श्रीकृष्णसूं यह सूर्य आवै है ऐसे शंकित होयके कहतभये ॥ ५ ॥

यं वै मुहुः पितृसरूपनिजेशभावास्तन्मातरो यदभजन्रहरूढभावाः ॥ चित्रं न तत्खलु रमास्पदबिम्बबिम्बे कामे स्मरेऽक्षिविषये
किमुतान्यनार्यः ॥४०॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्धे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥
श्रीशुक उवाच ॥ सत्राजितः स्वतनयां कृष्णाय कृतकिल्बिषः ॥ स्यमन्तकेन मणिना स्वयमुद्यम्य दत्तवान् ॥ १ ॥
राजोवाच ॥ सत्राजितः किमकरोद्ब्रह्मन्कृष्णस्य किल्बिषम् ॥ स्यमन्तकः कुतस्तस्य कस्माद्दत्ता सुता हरेः ॥ २ ॥
श्रीशुक उवाच ॥ आसीत्सत्राजितः सूर्यो भक्तस्य परमः सखा ॥ प्रीतस्तस्मै मणिं प्रादात्सूर्यस्तुष्टः स्यमन्तकम् ॥ ३ ॥
स तं बिभ्रन्मणिं कण्ठे भ्राजमानो यथा रविः ॥ प्रविष्टो द्वारकां राजंस्तेजसा नोपलक्षितः ॥४॥ तं विलोक्य जना दूरात्तेजसा
मुष्टदृष्टयः ॥ दीव्यतेऽक्षैर्भगवते शशंसुः सूर्यशङ्किताः ॥ ५ ॥

हे नारायण ! हे शंख चक्र गदा धारण करनवारे ! हे दामोदर ! हे कमलनेत्र ! हे गोविंद ! हे यादवनकूं आनंदके देनवारे ! तुमकू नमस्कार है ॥ ६ ॥ हे जगत्के पति ! तुमारे दर्शनके लिये यह सूर्य आवै है तीक्ष्ण किरणनके समूहते मनुष्यनके नेत्रनकूं चुरावत आवै है॥७॥ हे प्रभो ! त्रिलोकीके देवतानमें श्रेष्ठ देवताभी तुम्हारे मार्गकूं ढूंढें हैं,यादवनमें तुमकूं छिप्यों जानिके देखिवेके लिये सूर्य्य आवै है ॥८॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित् ! कमलनेत्र श्रीकृष्णचंद्र अज्ञानी पुरुषनको वचन सुनिके हंसिके बोलत भये यह सूर्यदेव नहीं हैं मणिकरिके प्रकाशमान सत्राजित आवै है॥९॥फिर सत्राजितने अपने घरमें मांगलिक कर्म करवाय देवताके मंदिरमें ब्राह्मणसे पूजा कराय मणिकूं धरावत भये॥१०॥ हे प्रभो राजन् परीक्षित् ! वह मणि प्रति-

नारायण नमस्तेऽस्तु शङ्खचक्रगदाधर ॥ दामोदरारविन्दाक्ष गोविन्द यदुनन्दन ॥ ६ ॥ एष आयाति सविता त्वां दिदृक्षुर्जगत्पते ॥ मुष्णन्गभस्तिचक्रेण नृणां चक्षूंषि तिग्मगुः ॥ ७ ॥ नन्वन्विच्छन्ति ते मार्गं त्रिलोक्यां विबुधर्षभाः ॥ ज्ञात्वाद्य गूढं यदुषु द्रष्टुं त्वां यात्यजः प्रभो ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ निशम्य बालवचनं प्रहस्याम्बुजलोचनः ॥ प्राह नासौ रविर्देवः सत्राजिन्मणिना ज्वलन् ॥ ९ ॥ सत्राजित्स्वगृहं श्रीमत्कृतकौतुकमङ्गलम् ॥ प्रविश्य देवसदने मणिं विप्रैर्न्यवेशयत् ॥ १० ॥ दिने दिने स्वर्णभारानष्टौ स सृजति प्रभो ॥ दुर्भिक्षमार्यरिष्टानि सर्पाधिव्याधयोऽशुभाः ॥ न सन्ति मायिनस्तत्र यत्रास्तेऽभ्यर्चितो मणिः ॥ ११ ॥ स याचितो मणिं क्वापि यदुराजाय शौरिणा ॥ नैवार्थकामुकः प्रादाद्याच्ञाभङ्गमतर्कयन् ॥ १२ ॥ तमेकदा मणिं कण्ठे प्रतिमुच्य महाप्रभम् ॥ प्रसेनो हयमारुह्य मृगयां व्यचरद्वने ॥ १३ ॥ प्रसेनं सहयं हत्वा मणिमाच्छिद्य केसरी ॥ गिरिं विशञ्जाम्बवता निहतो मणिमिच्छता ॥ १४ ॥

दिन चार मनको भार,आठ भार सुवर्ण उगलैही, और जहां वह मणि होइ ता देशमें दुर्भिक्ष न परे और अकाल मृत्यु तथा अरिष्ट अर्थात् अमंगल नहीं होइ सर्प नहीं काटे मनुष्यनके देहमें दुःख नहीं होय,और अशुभ नहीं होयहै, मायावी पुरुष वा देशमें नहीं वसे है ॥ ११ ॥ एक समय यादवनके राजा उग्रसेनके लिये श्रीकृष्णचंद्रने मणि मांगी तौ सत्राजित लोभके वश होयके मणिकूं न देत भयो श्रीकृष्णकूं नाहीं कैसे करूं यह न विचारत भयो॥१२॥ बडी प्रकाशवारी मणिकूं एक समय सत्राजितको भैया प्रसेन कंठमें पहिरके घोडापै चढिके वनमें शिकार खेलवेकूं जातभयो ॥ १३ ॥ एक सिंह घोडा

सहित प्रसेनकूं मारिके मणिकूं लैके पर्वतमें जानेलगा इसीसमय मणि लैवेकी इच्छा कर जाम्बवान् ऋच्छने उसे मारडाला ॥ १४ ॥ जाम्बवान् अपने बिलमें जायके मणिको पुत्रका खिलौना करतभयो, सत्राजित अपने भैया प्रसेनकूं शिकार खेलके वनमेंते नहीं आयो देखिके शोच करतभयो ॥ १५॥ मणि कंठमें पहिरके मेरो भैया वनमें गयोहो और या मणिपै कृष्णको दांत है याते बहुधा यह जान पडै है भैयाकूं कृष्णने माऱ्यो या प्रकार सत्राजितके मुखते श्रवण करिकें सम्पूर्ण मनुष्य कान कानमें कहतभये ॥ १६ ॥ भगवान् श्रीकृष्ण इस दुर्यशरूप कलंक लगा श्रवणकरिके द्वारिकावासीनकूं संग

सोऽपि चक्रे कुमारस्य मणिं क्रीडनकं बिले ॥ अपश्यन्भ्रातरं भ्राता सत्राजित्पर्यतप्यत ॥१५॥ प्रायः कृष्णेन निहतो मणिग्रीवो वनं गतः ॥ भ्राता ममेति तच्छ्रुत्वा कर्णे कर्णेऽजपञ्जनाः ॥ १६ ॥ भगवांस्तदुपश्रुत्य दुर्यशो लिप्तमात्मनि ॥ मार्ष्टुं प्रसेनपदवीमन्वपद्यत नागरैः ॥ १७ ॥ हतं प्रसेनमश्वं च वीक्ष्य केसरिणा वने ॥ तं चाद्रिपृष्ठे निहतमृक्षेण ददृशुर्जनाः ॥ १८ ॥ ऋक्षराजबिलं भीममन्धेन तमसा वृतम् ॥ एको विवेश भगवानवस्थाप्य बहिः प्रजाः ॥ १९ ॥ तत्र दृष्ट्वा मणिं श्रेष्ठं बालक्रीडनकं कृतम् ॥ हर्तुं कृतमतिस्तस्मिन्नवतस्थेऽर्भकान्तिके ॥ २० ॥ तमपूर्वं नरं दृष्ट्वा धात्री चुक्रोश भीतवत् ॥ तच्छ्रुत्वाऽभ्यद्रवत्क्रुद्धो जाम्बवान्बलिनां वरः ॥ २१ ॥

लैके प्रसेनके खोजढूंढिवेकूं जात भये ॥ १७ ॥ वनमें सिंहसे मारे प्रसेन और घोडेकूं दैखिके और आगे पर्वतके ऊपर रीछसे मारे सिंहकूं समस्त द्वारकावासी मनुष्य देखत भये ॥ १८ ॥ अंधेरी बडी भयानक ऋक्षराज जाम्बवान्के बिलमें सब प्रजाकूं बाहर ठाढे करिके श्रीकृष्णचंद्र आपही भीतर जातभये ॥ १९ ॥ तहां बिलमें बालकके खेलिवेकूं खिलौना करी मणिकूं देखके मणि लैवेके मनोरथसै बालकके पास ठाढे होत भये ॥ २० ॥ प्रथम कभी न देखनेके कारण मनुष्य श्रीकृष्णकूं देखिके डरपैकीसी नांई धाइ पुकारतिभई, बलीनमें बली जाम्बवान ऋक्ष धाइकी पुकार श्रवण करिके

---

१ सत्राजितने स्त्रीसैं कही उसने सबसे कही घरकी बात काहू स्त्रीसे नहीं कहै एक बनिया हो सो दिसा गये दोनों चोटौंके बीचमें नीचे कौआको पर परोहो देखकै यह वहम भयो कि यह हमारे पेटमेंसे निकस्यो हे सो घर आय अपनी घरवारीतैं कही कि आज हमारे पेटमैंसै कौआको पर निकस्यो जानै कहा रोग भयो वानै टहलनीसौं कही टहलनी औरके घर जाय बोली कि फलानै साहजीके पेटमैंसै पांच कौआ निकसे यह हमने आंखौं देखी वा स्त्रीनै औरतैं कहीं कि उनके पचास कौआ निकसो करै हैं वाने पांच सौ कहे कहां ताईं कहैं जब वह लाला बाहर निकसे तौ लोग कहन लागे जब यह लाला दिशाको जांयहै तौ इनके पेटमैंसै दो हजार कौआ निकसै हैं स्त्रीसे बात कहेमें यह दोष है ॥

क्रोधित होय सम्मुख दौरिके आवत भयो ॥ २१ ॥ क्रोधी जाम्बवान श्रीकृष्णके प्रभावकूं नहीं जानिके और साधारण पुरुष मानिके अपने स्वामि श्रीकृष्णके संग युद्ध करत भयो ॥ २२ ॥ परस्पर जीतिवेकी इच्छासे श्रीकृष्ण और जाम्बवानको शस्त्र पत्थर वृक्ष भुजासूं बडो भयानक युद्ध होत भयो जैसे मांसके लिये दो सिकारापक्षी लडे हैं ॥ २३ ॥ वज्रपातकी तुल्य कठोर मुष्टिसूं खेद रहित अट्ठाईस दिनराति परस्पर युद्ध होत भयो ॥ २४ ॥ जब कृष्णचंद्रकी मुष्टिनके परिवेते उसके सब अंग शिथिल होगये बल घटगया पसीना आगया तब जांबवान् बडो आश्चर्य मानिके बोलत भयो ॥ २५ ॥ सम्पूर्ण प्राणीनके प्राणमें जो बल है, और सहोबल अर्थात् इन्द्रिय हृदय देह इत्यादिकनको बल तुम हो यह में जानूहूं, विष्णु

स वै भगवता तेन युयुधे स्वामिनात्मनः ॥ पुरुषं प्राकृतं मत्वा कुपितो नानुभाववित् ॥ २२ ॥ द्वन्द्वयुद्धं
सुतुमुलमुभयोर्विजिगीषतोः ॥ आयुधाश्मद्रुमैर्दोर्भिः क्रव्यार्थे श्येनयोरिव ॥ २३ ॥ आसीत्तदष्टाविंशाहमितरे-
तरमुष्टिभिः ॥ वज्रनिष्पेषपरुषैरविश्रममहर्निशम् ॥ २४ ॥ कृष्णमुष्टिविनिष्पातनिष्पिष्टाङ्गोरुबन्धनः ॥ क्षीण-
सत्त्वः स्विन्नगात्रस्तमाहातीव विस्मितः ॥ २५ ॥ जाने त्वां सर्वभूतानां प्राण ओजः सहोबलम् ॥ विष्णुं पुरा-
णपुरुषं प्रभविष्णुमधीश्वरम् ॥ २६ ॥ त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा सृज्यानामपि यच्च सत् ॥ कालः कलयतामीशः
पर आत्मा तथात्मनाम् ॥ २७ ॥ यस्येषदुत्कलितरोषकटाक्षमोक्षैर्वर्त्मादिशत्क्षुभितनक्रतिमिङ्गिलोऽब्धिः ॥
सेतुः कृतः स्वयश उज्ज्वलिता च लङ्का रक्षःशिरांसि भुवि पेतुरिषुक्षतानि ॥ २८ ॥

भगवान् पुराणपुरुष कृपालु सबके ईश्वर तुम हो ॥ २६ ॥ विश्वके सृजनवारे ब्रह्मादिकके तुम निश्चय निमित्तकारण हो, और उत्पत्तिके योग्य पदार्थके उपादानकारण हो और सबके प्रेरणावारौके ईश्वर तुम कालरूप हो, तथा आत्मा जीवके उत्कृष्ट आत्मा हो ॥ २७ ॥ विष्णु पुराण हो याहीते मेरे इष्टदेव रघुनाथ हो, जिन रघुनाथजीके कछु एकक्रोधसे भ्रूके कटाक्षपातसे मगर और बडे बडे ग्राह दुःखित होगये तब समुद्रने मार्ग दियो, और जिन रामचन्द्रने अपनो यश प्रगट करिवेके लिये पुल बांध्यो, लंका जराई, बाणकरिकें राक्षस रावणके शिर काटिके पृथ्वीमें डारे सो तुम मेरे स्वामी रघुनाथ हो यह में जानूं हूं ॥ २८ ॥

जब इसप्रकार जाम्बवानको ज्ञान हुआ तब देवकीके पुत्र अच्युत भगवान् श्रीकृष्णचंद्र उससै बोलतभये॥२९॥ कमलनेत्र श्रीकृष्णचंद्र सुखके देनवारे अपने हाथसे परम कृपा करिके भक्त जांबवानही ताके ऊपर धरिके प्रेमगर्भित वाणीसै बोलत भये ॥ ३० ॥ हे ऋच्छनके राजा जांबवान् ! हम मणि लैवेके कारण तेरे यहां बिलमें आये हैं, मिथ्या कलंक हमकूं लग्यो है उसै मणि लैजायके दूरि करेंगे ॥ ३१ ॥ यह वचन सुन्तेही जाम्बवान् बडे आनंदपूर्वक अपनी कन्या जांबवती मणिसहित पूजा करिवेके निमित्त श्रीकृष्णचंद्रकूं देतभयो ॥ ३२ ॥ जो द्वारकावासी मनुष्य प्रभुके संग गये थे वे जांबवानके बिलमें धसे श्रीकृष्णको निकासिवो नहीं देखिके बारह दिन प्रतीक्षा करिके दुःखित होय द्वारकापुरीमें आवतभये ॥३३॥ बिलमेंते श्रीकृष्णचंद्र नहीं

इति विज्ञातविज्ञानमृक्षराजानमच्युतः ॥ व्याजहार महाराज भगवान् देवकीसुतः ॥२९॥ अभिमृश्यारविन्दाक्षः पाणिना शंकरेण तम् ॥ कृपया परया भक्तं प्रेमगम्भीरया गिरा ॥ ३० ॥ मणिहेतोरिह प्राप्ता वयमृक्षपते बिलम् ॥ मिथ्याऽभिशापं प्रमृजन्नात्मनो मणिनामुना ॥ ३१ ॥ इत्युक्तः स्वां दुहितरं कन्यां जाम्बवतीं मुदा ॥ अर्हणार्थं स मणिना कृष्णायोपजहार ह ॥ ३२ ॥ अदृष्ट्वा निर्गमं शौरेः प्रविष्टस्य बिलं जनाः ॥ प्रतीक्ष्य द्वादशाहानि दुःखिताः स्वपुरं ययुः ॥ ३३ ॥ निशम्य देवकी देवी रुक्मिण्यानकदुन्दुभिः ॥ सुहृदो ज्ञातयोऽशोचन्बिलात्कृष्णमनिर्गतम् ॥ ३४ ॥ सत्राजितं शपन्तस्ते दुःखिता द्वारकौकसः ॥ उपतस्थुर्महामायां दुर्गां कृष्णोपलब्धये ॥ ३५ ॥ तेषां तु देव्युपस्थानात्प्रत्यादिष्टाशिषा सह ॥ प्रादुर्बभूव सिद्धार्थः सदारो हर्षयन्हरिः ॥ ३६ ॥ उपलभ्य हृषीकेशं मृत्वा पुनरिवागतम् ॥ सह पत्न्या मणिग्रीवं सर्वे जातमहोत्सवाः ॥ ३७ ॥

निकसे यह बात श्रवण करिके देवकी रुक्मिणी वसुदेव और सुहृदजन तथा ज्ञातिके मनुष्य सम्पूर्ण शोच करत भये ॥३४॥ संपूर्ण द्वारकावासी दुःखित होयके सत्राजितकूं गारी देते श्रीकृष्णचंद्रकी प्राप्तिके अर्थ माया दुर्गादेवीकी पूजा करतभये ॥ ३५ ॥ देवीकी पूजा करिवेते श्रीकृष्णचंद्रकूं देखोगे या प्रकार द्वारकावासीनकूं देवीने आशीर्वाद दियो, तब सिद्धमनोरथ श्रीकृष्णचंद्र स्त्रीकूं लैके द्वारकावासीनकूं आनंद देत प्रकट होतभये ॥ ३६ ॥ जैसे कोई मृतक पुरुष फेरि बगदके आवे हैं, ऐसे मणिकूं पहिरिके स्त्रीकूं संग लैके आये श्रीकृष्णचंद्रकूं प्राप्त होयके समस्त द्वारकावासीनके बडो

आनंद होतभयो ॥ ३७ ॥ सभामें राजाके उग्रसेन पास सत्राजितकूं बुलायके जांबवान ऋच्छपैते मणि लाये हैं यह कहिके भगवान् श्रीकृष्णचंद्र सत्राजितकूं देतभये ॥ ३८ ॥ सत्राजित मणिकूं लैके अतिलज्जित होय मुख नीचो करिके अपने पापते पश्चात्ताप करत घरकूं जातभयो ॥ ३९ ॥ बलवान् श्रीकृष्णसूं विरोध परेसूं व्याकुल होय सत्राजित अपने पूर्व अपराधकूं रात्र दिन स्मरण करत अपने पापकूं कैसे दूर करूं और कैसे अच्युत भगवान् प्रसन्न होइ ऐसे विचार करतभयो ॥ ४० ॥ कौन कर्म करेते मेरो भलो होइ, मैंने बिना विचारे श्रीकृष्णकूं दोष लगाय दीनो, मैं कृपण मंदबुद्धि हूं द्रव्यको लोभी हूं, अब मोकूं प्राणी बुरो न कहै, ऐसो कोई कार्य करूंगो, यह विचार करतभयो

सत्राजितं समाहूय सभायां राजसन्निधौ ॥ प्राप्तिं चाख्याय भगवान्मणिं तस्मै न्यवेदयत ॥ ३८ ॥
स चातिव्रीडितो रत्नं गृहीत्वाऽवाङ्मुखस्ततः ॥ अनुतप्यमानो भवनमगमत्स्वेन पाप्मना ॥ ३९ ॥
सोऽनुध्यायंस्तदेवाघं बलवद्विग्रहाकुलः ॥ कथं मृजाम्यात्मरजः प्रसीदेद्वाऽच्युतः कथम् ॥ ४० ॥
किं कृत्वा साधु मह्यं स्यान्न शपेद्वा जनो यथा ॥ अदीर्घदर्शनं क्षुद्रं मूढं द्रविणलोलुपम् ॥ ४१ ॥
दास्ये दुहितरं तस्मै स्त्रीरत्नं रत्नमेव च ॥ उपायोऽयं समीचीनस्तस्य शान्तिर्न चान्यथा ॥ ४२ ॥
एवं व्यवसितो बुद्ध्या सत्राजित्स्वसुतां शुभाम् ॥ मणिं च स्वयमुद्यम्य कृष्णायोपजहार ह ॥ ४३ ॥
तां सत्यभामां भगवानुपयेमे यथाविधि ॥ बहुभिर्याचितां शीलरूपौदार्यगुणान्विताम् ॥ ४४ ॥

॥ ४१ ॥ या प्रकार विचार करिके अब उपाय निश्चय करे है श्रीकृष्णचंद्रकूं मैं अपनी कन्या देउंगो, और पीछेतै भेटमें मणि देउंगो, यही सुंदर उपाय है और तरह मेरो अपराध दूरि न होयगो, या प्रकार बुद्धिसूं निश्चय करिकै सत्राजित मंगलरूप अपनी कन्या और मणिकूं आपही उपाय करिके श्रीकृष्णकूं देतभयो ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ सुंदर स्वभाव रूप उदारतादि गुणयुक्त सत्यभामाकूं भगवान् श्रीकृष्णचंद्र विधिपूर्वक व्याहत भये जिसे पहले कृतवर्मादि कई यादव मांग चुकेथे ॥ ४४ ॥

हे राजन् परीक्षित् ! तब श्रीकृष्णचंद्रने सत्राजितसै कही हमकूं मणि नहीं चाहिये तुम सूर्यके भक्त हौ तुम्हारेही पास मणि रहैगी और याको जो सुवर्ण होय ताय हमारे भिजवाय दियो करो, तुमारे पुत्र नहीं हैं तुमारो जो धन है सो हमारोही है यह भगवान्को गूढ अभिप्राय है ॥ ४५॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे स्यमन्तकमणिहरणो नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५६॥ पांडव लाक्षागृहते बिलेमें होयके बाहर निकस गए या प्रकार जाने हैं तथापि पांडवनकूं जरे सुनिके और कुन्तीकूं जरी सुनि करिके कुलोचित व्यवहार करिवेके लिये बलदेवजीकूं संग लैके श्रीकृष्णचंद्र कुरुदेशनकूं जातभये ॥ १ ॥ भीष्म, पितामह, विदुरसहित कृपाचार्य, गांधारी, द्रोणाचार्य इनसूं मिलिके समान दुःखसै कृष्ण बलदेव हाय ! पांडव जरिगये बडो कष्ट भयो या प्रकार कहिके बोलतभये ॥२॥ हे राजन् ! कछु एक दिननके पश्चात् अक्रूर और कृतवर्मा ये दोनों अन्तर पाय शतधन्वाते बोलत भये सत्राजितते मणि क्यों न छुडाय लेता जिस सत्राजितनें अपनी कन्यारत्न देनी स्वीकार करकै फिर हमकूं त्यागिके कृष्णकूं व्याहिदीनी, वह सत्राजित भैया प्रसेनके पीछे क्यो नहीं जाय अर्थात् मरे क्यों नहीं ॥ ३ ॥ ४ ॥ या प्रकार अक्रूर और कृतवर्माके बहिकानेसे बुद्धिहीन और क्षीणजीवन होय पापी असाधु शतधन्वा शय्यापै सोवते सत्राजितको शिर काटतभयो ॥ ५ ॥ स्त्री अनाथकी तुल्य पुकारि पुकारिके रुदन करनै लगी कसाई जैसे पशुनकूं मारे ऐसे शतधन्वा सत्राजितकूं मारिके जात भयो ॥ ६ [illegible]

भगवानाह न मणिं प्रतीच्छामो वयं नृप ॥ तवास्तां देवभक्तस्य वयं च फलभागिनः ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ विज्ञातार्थोऽपि गोविन्दो दग्धानाकर्ण्य पाण्डवान् ॥ कुन्तीं च कुल्यकरणे सहरामो ययौ कुरून् ॥१॥ भीष्मं कृपं सविदुरं गान्धारीं द्रोणमेव च ॥ तुल्यदुःखौ च संगम्य हा कष्टमिति होचतुः॥२॥लब्ध्वैतदन्तरं राजन् शतधन्वानमूचतुः ॥ अक्रूरकृतवर्माणौ मणिः कस्मान्न गृह्यते ॥ ३ ॥ योऽस्मभ्यं सम्प्रतिश्रुत्य कन्यारत्नं विगर्ह्य नः ॥ कृष्णायादान्न सत्राजित्कस्माद्भ्रातरमन्वियात् ॥ ४ ॥ एवं भिन्नमतिस्ताभ्यां सत्राजितमसत्तमः ॥ शयानमवधील्लोभात्स पापः क्षीणजीवितः ॥ ५ ॥ स्त्रीणां विक्रोशमानानां क्रन्दन्तीनामनाथवत् ॥ हत्वा पशून् सौनिकवन्मणिमादाय जग्मिवान् ॥ ६ ॥

अपने पिता सत्राजितकूं मरचो देखिके अहो पिता अहो पिता हा मैं मरी या प्रकार मोहित होयके सत्यभामा विलाप करतभई ॥ ७ ॥ मृतक पिताकी देहकूं तेलकी कोठीमें राखिके सत्यभामा हस्तिनापुरकूं जाति भई, सत्राजितकूं शतधन्वाने मारचो यह बात श्रीकृष्णचंद्रने जानिलीनी तथापि वह मेरो पिता शतधन्वाने मारचो यह बातं दुःखित होयके कहत भई ॥ ८ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! ईश्वर श्रीकृष्ण बलदेव सत्राजितको मरण श्रवण करिके मनुष्यलीलामें आयके अहो हमकूं बड़ो कष्ट है, या प्रकार कहिके आंखिनमेंते आंशू लायके विलाप करतभये ॥९॥ सत्यभामा और भैया बलदेवजीकूं संग लैके श्रीकृष्णचंद्र हस्तिनापुरते द्वारकापुरीमें आयके शतधन्वाके मारिवेको और वाते मणि लैवेको प्रारंभ करतभये ॥ १० ॥ श्रीकृष्णने मेरे

सत्यभामा च पितरं हतं वीक्ष्य शुचाऽर्पिता ॥ व्यलपत्तात तातेति हा हतास्मीति मुह्यती ॥ ७ ॥ तैलद्रोण्यां मृतं प्रास्य जगाम गजसाह्वयम् ॥ कृष्णाय विदितार्थाय तप्ताऽऽचख्यौ पितुर्वधम् ॥ ८ ॥ तदाकर्ण्येश्वरौ राजन्ननुसृत्य नृलोकताम् ॥ अहो नः परमं कष्टमित्यस्राक्षौ विलेपतुः ॥ ९ ॥ आगत्य भगवांस्तस्मात्सभार्यः साग्रजः पुरम् ॥ शतधन्वानमारेभे हन्तुं हर्तुं मणिं ततः ॥ १० ॥ सोऽपि कृष्णोद्यमं ज्ञात्वा भीतः प्राणपरीप्सया ॥ साहाय्ये कृतवर्माणमयाचत स चाब्रवीत् ॥ ११ ॥ नाहमीश्वरयोः कुर्यां हेलनं रामकृष्णयोः ॥ को नु क्षेमाय कल्पेत तयोर्वृजिनमाचरन् ॥ १२ ॥ कंसः सहानुगोऽपीतो यद्द्वेषात्त्याजितः श्रिया ॥ जरासन्धः सप्तदश संयुगान् विरथो गतः ॥ १३ ॥ प्रत्याख्यातः स चाक्रूरं पार्ष्णिग्राहमयाचत ॥ सोऽप्याह को विरुध्येत विद्वानीश्वरयोर्बलम् ॥ १४ ॥

मारिवेको उपाय कियो है यह बात शतधन्वा जानिके प्राण बचावेके लिये भयभीत होयके कृतवर्म्मातै सहायके निमित्त कहत भयो, तब वह कृतवर्म्मा बोलत भयो ॥ ११ ॥ ईश्वर श्रीकृष्ण बलदेवको अपराध में न करूंगो कृष्ण बलदेवको अपराध करिके कौनको कल्याण होयगो ॥ १२ ॥ या कृष्णते द्वेष करिके कंस लक्ष्मीतें भ्रष्ट होयके भैयानसहित मरिगयो और जरासंध सत्रहवार युद्धमें हारिके अंतमें विरथ होयके गयो ॥ १३ ॥ कृतवर्माने शतधन्वाते मनैं करदीनी तब अक्रूरते सहाय करिवेके लिये कहत भयो, तब अक्रूरहू बोलत भयो ईश्वर कृष्णके पराक्रमकूं जानिके कौन पुरुष उनते विरोध करैगो ॥ १४

---

१ चौ०–देखतहीं उठि बोले हरि । घर है कुशल सेम सुन्दरि ॥ सतभामा कहि जोरे हाथ । तुम विन कुशल कहां यदुनाथ ॥ १ ॥

जो ईश्वर लीला करिकें या विश्वकी उत्पत्ति पालन नाश करै है, और मायासूं मोहित होयके उसकी चेष्टाकूं ब्रह्मादिक नहीं जानें हैं ॥ १५ ॥ जो सात वर्षकी अवस्थामें श्रीकृष्णचन्द्र एक हाथसूं गोवर्धन पर्वतकूं उखारिके जैसे बालक छतोनाकूं उठायलेइ हैं ऐसे उठावत भये ॥ १६ ॥ अद्भुतकर्मा भगवान् श्रीकृष्णचंद्रके अर्थ नमस्कार है, अनंत सबके आदिकारण निर्विकार सबके आत्माकूं नमस्कार है ॥ १७ ॥ या प्रकार अक्रूरने जब नाहींकरी तब शतधन्वा मणिकूं अक्रूरके पास धरिके चारसों कोस चलनेहारे घोडापै चढिके भाजत भयो ॥ १८ ॥ हे राजन् ! राम और श्रीकृष्ण गरुडध्वजावारे रथमें सवार होयके शीघ्रगामी घोडौंकरिके श्वशुरको मारनवारे शतधन्वाके पीछे दौरत भये ॥ १९ ॥ शतयोजनते अधिक न चलनेवारो घोडा

य इदं लीलया विश्वं सृजत्यवति हन्ति च ॥ चेष्टा विश्वसृजो यस्य न विदुर्मोहिताऽजया ॥ १५ ॥ यः सप्तहायनः शैलमुत्पाट्यैकेन पाणिना ॥ दधार लीलया बाल उच्छिलीन्ध्रमिवार्भकः ॥ १६॥ नमस्तस्मै भगवते कृष्णायाद्भुतकर्मणे ॥ अनन्तायादिभूताय कूटस्थायात्मने नमः ॥ १७ ॥ प्रत्याख्यातः स तेनापि शतधन्वा महामणिम् ॥ तस्मिन्न्यस्याश्वमारुह्य शतयोजनगं ययौ ॥ १८ ॥ गरुडध्वजमारुह्य रथं रामजनार्दनौ ॥ अन्वयातां महावेगैरश्वै राजन् गुरुद्रुहम् ॥ १९ ॥ मिथिलाया उपवने विसृज्य पतितं हयम् ॥ पद्भ्यामधावत्संत्रस्तः कृष्णोऽप्यन्वद्रवद्रुषा ॥ २० ॥ पदातेर्भगवांस्तस्य पदातिस्तिग्मनेमिना ॥ चक्रेण शिर उत्कृत्य वाससोर्व्यचिनोन्मणिम् ॥ २१ ॥ अलब्धमणिरागत्य कृष्ण आहाऽग्रजान्तिकम् ॥ वृथा हतः शतधनुर्मणिस्तत्र न विद्यते ॥ २२ ॥ तत आह बलो नूनं स मणिः शतधन्वना ॥ कस्मिंश्चित्पुरुषे न्यस्तस्तमन्वेष पुरं व्रज ॥ २३ ॥

मिथिलापुरीके बागमें गिरचो, उसे त्यागिके भयभीत होय पांवप्यादो भाजत भयो, और श्रीकृष्णहू क्रोधको करिके पीछे दौरतभये ॥ २० ॥ पांवप्यादे शतधन्वाके पीछे पांवप्यादे श्रीकृष्ण भगवान् दौरिके पकरिके तीक्ष्ण धारके चक्रसूं शतधन्वाको शिर काटिके वस्त्रनमें मणिकूं ढूंढतभये ॥ २१ ॥ मणिकूं न पाय श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजीके पास आयके कहतभये, देखो शतधन्वाकूं वृथाही मारचो वापै मणि नहीं निकसी ॥ २२ ॥ ताके पीछे बलदेवजी कहतभये शतधन्वा काहू पुरुषके पास मणिकूं धरि आयो है, वा पुरुषकूं ढूंढौ, और तुम द्वारकाकूं जाओ ॥ २३ ॥

(श्रीकृष्णचन्द्र सब बातकूं जानै हैं मणिको मोते छिपाव कियो है यह मानिके बलदेवजी मनमें क्रोधकरिके बोलत भये, याको अभिप्राय यह है कि द्रव्य ऐसो निषिद्ध पदार्थ है याके लिंये श्रीकृष्ण बलदेवजीको मन बिगरी गयो, तौ मनुष्यनकी कहां कथा है) मेरो अतिप्रिय विदेह देशको राजा बहुलाश्व है ताय देखिवेकूं जाऊंगो हे राजन् परीक्षित! या प्रकार श्रीकृष्णते कहिके यादवनकूं आनंद देनवारे बलदेवजी मिथिलापुरीमें प्रवेश करतभये ॥ २४ ॥ प्रसन्न मन होय मिथिलापुरीको राजा बलदेवजीकूं आयो देखिके शीघ्र उठिके पूजन करिवे योग्य बलदेवजीकी पूजनकी सामग्रीनसूं पूजा करत भयो ता मिथिलापुरीमें समर्थ बलदेवजी कितनेक वर्ष वास करत भये ॥ २५ ॥ प्रीतियुक्त महात्मा जनकसे सत्कार पाय धृतराष्ट्रको पुत्र दुर्योधन तहां आय

अहं विदेहमिच्छामि द्रष्टुं प्रियतमं मम ॥ इत्युक्त्वा मिथिलां राजन्विवेश यदुनन्दनः ॥ २४ ॥ तं दृष्ट्वा सहसोत्थाय मैथिलः प्रीतमानसः ॥ अर्हयामास विधिवदर्हणीयं समर्हणैः ॥ उवास तस्यां कतिचिन्मिथिलायां समा विभुः ॥ २५ ॥ ततोऽशिक्षद्गदां काले धार्तराष्ट्रः सुयोधनः ॥ मानितः प्रीतियुक्तेन जनकेन महात्मना ॥ २६ ॥ केशवो द्वारकामेत्य निधनं शतधन्वनः ॥ अप्राप्तिं च मणेः प्राह प्रियायाः प्रियकृद्विभुः ॥ २७ ॥ ततः स कारयामास क्रिया बन्धोर्हतस्य वै ॥ साकं सुहृद्भिर्भगवान्या याः स्युः साम्परायिकाः ॥ २८ ॥ अक्रूरः कृतवर्मा च श्रुत्वा शतधनोर्वधम् ॥ व्यूषतुर्भयवित्रस्तौ द्वारकायाः प्रयोजकौ ॥ २९ ॥ अक्रूरे प्रोषितेऽरिष्टान्यासन्वै द्वारकौकसाम् ॥ शारीरा मानसास्तापा मुहुर्दैविकभौतिकाः ॥ ३० ॥

बलदेवजीसूं गदा चलायवो सीखत भयो ॥ २६ ॥ प्रिय कार्यके करनवारे समर्थ केशव भगवान् द्वारकापुरीमें आयके शतधन्वाको नाश और मणिकी अप्राप्ति प्यारी सत्यभामासूं कहतभये ॥२७॥ ताके पीछे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अपने सुहृदनकूं संग लैके मृतक सत्राजितकी परलोककी साधन क्रिया करावतभये ॥ २८ ॥ सत्राजितते मणिके हरि लैनेमें शिक्षा करनवारे अक्रूर और कृतवर्मा शतधन्वाको मरण सुनिके श्रीकृष्णसूं भयभीत होयके द्वारकापुरीते भाजत भये ॥ २९ ॥ द्वारकाते अक्रूरकूं भिजवाय दियो ता समय द्वारकावासीनकूं देवता और मनुष्योंको शरीरके मनके ताप और अरिष्ट वारंवार द्वारका पुरीमें होतभये ॥ ३० ॥

हे राजन् परीक्षित् ! कितने एक ऋषि जिन्हौंने प्रथम श्रीकृष्णकी महिमा कही है वे श्रीणके माहात्म्यकूं भूलकर ऐसा कहते है कारण कि मुनियोंके निवास श्रीकृष्णके विद्यमान रहते अरिष्ट किस प्रकार होसक्ते हैं ॥ ३१ ॥ या प्रकार दूषितकरिके फेर और ऋषिनको मत कहैं हैं कोई कोई कहन लगे कि एक समय जब इन्द्र न वर्षो तब काशीको राजा अपनी कन्या गांदिनीकूं पुरीमें प्राप्तभये श्वफल्ककूं देतभयो तब काशीके देशनमें मेघ वर्षतभयो ॥ ३२ ॥ पिता श्वफल्ककी तुल्य प्रभाववारे अक्रूर जहां जहां रहै, तहां तहां इंद्र वर्षा करे, और वा देशनमें प्राणीनकूं खेद नहीं होय है, मरी नहीं परै है ॥ ३३ ॥ या प्रकार बूढेनको वचन सुनिके केवल अक्रूरही यहांते गयो सो नहीं मणिहू गई यह बात श्रवण करि निश्चय करिके

इत्यङ्गोपदिशन्त्येके विस्मृत्य प्रागुदाहृतम् ॥ मुनिवासनिवासे किं घटेतारिष्टदर्शनम् ॥ ३१ ॥ देवेऽवर्षति काशीशः श्वफल्कायागताय वै ॥ स्वसुतां गान्दिनीं प्रादात्ततोऽवर्षत्स्म काशिषु ॥ ३२ ॥ तत्सुतस्तत्प्रभावोऽसावक्रूरो यत्र यत्र ह ॥ देवोऽभिवर्षते तत्र नोपतापा न मारिकाः ॥ ३३ ॥ इति वृद्धवचः श्रुत्वा नैतावदिह कारणम् ॥ इति मत्वा समानाय्य प्राहाक्रूरं जनार्दनः ॥ ३४ ॥ पूजयित्वाभिभाष्यैनं कथयित्वा प्रियाः कथाः ॥ विज्ञाताखिलचित्तज्ञः स्मयमान उवाच ह ॥ ३५ ॥ ननु दानपते न्यस्तस्त्वय्यास्ते शतधन्वना ॥ स्यमन्तको मणिः श्रीमान्विदितः पूर्वमेव नः ॥ ३६ ॥ सत्राजितोऽनपत्यत्वाद्गृह्णीयुर्दुहितुः सुताः ॥ तदायं निनीयाऽपः पिण्डान्विमुच्यर्णं च शेषितम् ॥ ३७ ॥ तथापि दुर्धरस्त्वन्यैस्त्वय्यास्तां सुव्रते मणिः ॥ किं तु मामग्रजः सम्यङ्न प्रत्येति मणिं प्रति ॥ ३८ ॥

अक्रूरकूं काशीते बुलायके श्रीकृष्णचंद्र बोलत भये ॥ ३४ ॥ अक्रूरकी पूजा करिके हे काका अक्रूर ! या प्रकार सम्बोधन दैकै प्यारी प्यारी बात कहिके सब विश्वके जाननवारे श्रीकणचंद्र अक्रूरके मनकी जानिके मुसिक्यायके बोलत भये ॥ ३५ ॥ हे दाननके पति अक्रूर ! शतधन्वा स्यमंतक मणि तुमारे पास धरिगयो है सो तुमारे पास है यह हम पहिलेतेही जाने है ॥ ३६ ॥ सत्राजितके पुत्र नहीं याते वाकूं पिंड जलदान दैके ऋण चुकायके शेष धन रहैगो ताय वाकी कन्याके पुत्र लेइगें यह शास्त्रकी आज्ञा है ॥ ३७ ॥ हे अक्रूर ! तुम हमते कदाचित् न कहो तथापि हम जानें हैं मणि औरपै नहीं रहिसके तुम्हारे पास है कारण कि तुम सुन्दर व्रत धारण करो हो तहां अक्रूरजी कहै हैं हमारे पास है तुमैं कहा प्रयोजन है

409

तब श्रीकृष्ण कहै हैं बडे भैया बलदेवजी या मणिके पीछे मेरो विश्वास नहीं करे हैं ॥ ३८ ॥ श्रीकृष्णचंद्र कहैं हैं हे बडभागी अक्रूर ! तुम मणि दिखायके बंधुनकूं शांति करो मेरे पास मणि नहीं है यह मति कहौ जो कदाचित् मणि न होवै तौ सुवर्णकी वेदी बनाय बनायके अखण्ड यज्ञ कहांते काशीमें जायके करते ॥ ३९ ॥ या प्रकार साम भेदन करिके समझानेसै श्वफल्कके पुत्र अक्रूर वस्त्रते ढकी सूर्यके समान तेजवारी मणि लैके श्रीकृष्णचंद्रकूं देत भयो ॥ ४० ॥ श्रीकृष्णचन्द्र स्यमंतक मणि अक्रूरजीते लैके जातिके भैया बंधुनकूं दिखायके मणि कृष्णने लीनी यह अपनेको मिथ्याकलंक लग्यो ताइ दूर करिके फेर प्रभु श्रीकृष्णचन्द्र अक्रूरजीकूं वह मणि समर्पण करत भये ॥ ४१ ॥ ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रको कह्यो पुरुषनके दुःख-

दर्शयस्व महाभाग बन्धूनां शान्तिमावह ॥ अव्युच्छिन्ना मखास्तेऽद्य वर्तन्ते रुक्मवेदयः ॥ ३९ ॥ एवं सामभिरालब्धः श्वफल्कतनयो मणिम् ॥ आदाय वाससा छन्नं ददौ सूर्यसमप्रभम् ॥ ४० ॥ स्यमन्तकं दर्शयित्वा ज्ञातिभ्यो रज आत्मनः ॥ विमृज्य मणिना भूयस्तस्मै प्रत्यर्पयत्प्रभुः ॥ ४१ ॥ यस्त्वेतद्भगवत ईश्वरस्य विष्णोर्वीर्याढ्यं वृजिनहरं सुमङ्गलं च ॥ आख्यानं पठति शृणोत्यनुस्मरेद्वा दुष्कीर्तिं दुरितमपोह्य याति शान्तिम् ॥ ४२ ॥ इति श्रीमद्भागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे स्यमन्तकोपाख्याने सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदा पाण्डवान् द्रष्टुं प्रतीतान् पुरुषोत्तमः ॥ इन्द्रप्रस्थं गतः श्रीमान्युयुधानादिभिर्वृतः ॥ १ ॥ दृष्ट्वा तमागतं पार्था मुकुन्दमखिलेश्वरम् ॥ उत्तस्थुर्युगपद्वीराः प्राणा मुख्यमिवागतम् ॥ २ ॥

को हरनवारो सुन्दर मंगलरूप स्यमंतक मणिके प्रसंगकूं जो कोई पुरुष पढै श्रवण[1] करै, स्मरण करै, वह कुत्सित पापकूं कलंककूं दूर करिके कल्याणकूं पावै है ॥ ४२ ॥ इ० भा० स्यमन्तकोपाख्याने सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहै हैं हे राजन् परीक्षित् ! पहिले लाक्षागृहमें जारेगये यह श्रवण करीही फेर द्रुपदके घरमें सबने देख पाण्डवोंकूं देखिवेके लिये श्रीकृष्णचन्द्र सात्यकी आदिके साथ इन्द्रप्रस्थमें जातभये ॥ १ ॥ सबके ईश्वर श्रीकृष्णचंद्रकूं आये देखिके जैसे प्राणके आयेते इंद्रिय चैतन्य होय ऐसे वीर पांडव उठतभये ॥ २ ॥

---

[1] दो०-जो भादोंके चोथको, चांद निहारे कोय । मणिप्रसंग श्रवणन करै, ताहि कलंक न होय ॥ १ ॥

श्रीकृष्णचन्द्रके मिलिवेमें अंगसंग होनेसै पापरहित होय वीर पांडव स्नेहभरी मुसिक्यानसहित श्रीकृष्णचन्द्रको मुखारविंद देखिके आनन्दकूं प्राप्तिभये ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णचन्द्र बडे युधिष्ठिर और भीमसेनके चरणनमें नमस्कार करिके और बराबरीके अर्जुनसूं मिलतभये, पीछे छोटे नकुल और सहदेव श्रीकृष्णचंद्रकूं प्रणाम करतभये ॥४॥ श्रेष्ठ आसनपै बैठे श्रीकृष्णचन्द्रकूं पांडवनकी स्त्री नई विवाहिता निंदारहित लज्जामान द्रौपदी होले होले आयके प्रणाम करतिभई॥५॥ वैसे ही सात्यकीकोभी पांडवोंने आकर बंदन किया और आसनपर बैठाया तथा और मनुष्योंनेभी सन्मान किया॥६॥फेरि श्रीकृष्णचंद्र कुंतीके पास आयके प्रणाम करत भये, कुंती स्नेहभरी चितवनसूं आलिंगन करतभई, श्रीकृष्णचंद्र पिताकी बहिन कुंतीते कुशल पूछतभये,

परिष्वज्याच्युतं वीरा अङ्गसङ्गहतैनसः ॥ सानुरागस्मितं वक्त्रं वीक्ष्य तस्य मुदं ययुः ॥ ३ ॥ युधिष्ठिरस्य भीमस्य कृत्वा पादाभिवन्दनम् ॥ फाल्गुनं परिरभ्याथ यमाभ्यां चाभिवन्दितः ॥ ४ ॥ परमासन आसीनं कृष्णा कृष्णमनिन्दिता ॥ नवोढा व्रीडिता किञ्चिच्छनैरेत्याभ्यवन्दत ॥५ ॥ तथैव सात्यकिः पार्थैः पूजितश्चाभिवन्दितः ॥ निषसादासनेऽन्ये च पूजिताः पर्युपासिताः ॥ ६ ॥ पृथां समागत्य कृताभिवादनस्तयातिहार्दार्द्रदृशाऽभिरम्भितः ॥ आपृष्टवांस्तां कुशलं सहस्नुषां पितृष्वसारं परिपृष्टबान्धवः ॥७॥ तमाह प्रेमवैक्लव्यरुद्धकण्ठाश्रुलोचना ॥ स्मरन्ती तान्बहून्क्लेशान्क्लेशापायात्मदर्शनम् ॥ ८ ॥ तदैव कुशलं नोऽभूत् सनाथास्ते कृता वयम् ॥ ज्ञातीन्नः स्मरता कृष्ण भ्राता मे प्रेषितस्त्वया ॥ ९ ॥ न तेऽस्ति स्वपरभ्रान्तिर्विश्वस्य सुहृदात्मनः ॥ तथापि स्मरतां शश्वत्क्लेशान्हंसि हृदि स्थितः ॥ १० ॥

श्रीकृष्णके बंधुनकी कुशल कुंतीने पूछी ॥ ७ ॥ प्रेमकी व्याकुलतासे गदगद कंठ होय नेत्रनमें आंशु भर कुंती कौरवनके दिये कष्टकी सुधि करिके भक्तनके क्लेश दूरि करनवारे श्रीकृष्णचन्द्रसूं बोलत भई ॥ ८ ॥ हे कृष्ण ! जातिके बन्धु हमको स्मरण करिके जा समय तुमने मेरे भैया अक्रूरकूं खबरिके लिये भेज्यो है ताही समय हमारी कुशल होत भई और तुमने हम सनाथ करे ॥ ९ ॥ समस्त विश्वके हितकारी आत्मा तुम यह अपनो है यह परायो है या भ्रमसे रहित हो तथापि जो कोई तुम्हारो सर्वदा स्मरण करे है तिनके हृदयमें स्थित होयके सब क्लेशनकूं दूरि करौ हो॥१०॥

अब राजा युधिष्ठिर कहे हैं हे ब्रह्मादिकनके ईश्वर हमने कहा कल्याण कियो है यह मैं नहीं जानू हूं जो तुम योगेश्वरनके देखिवेमें नहीं आओ सो हम विषयासक्तनकूं दिखाईदिये ॥ ११ ॥ या प्रकार राजा युधिष्ठिरके प्रार्थना करनेपर श्रीकृष्णचन्द्र इन्द्रप्रस्थनिवासीनके नेत्रनकूं आनन्द देत वर्षाके महीना वास करत भये ॥ १२ ॥ एक समय शूरवीर शत्रुनके मारनवारो अर्जुन कपिध्वजावारे रथमें चढिके गांड़िव धनुषकूं और बाणनको भऱ्यौ तरकस लैके कवच पहरिके बहुत सर्प और मृगवारे बडे वनमें श्रीकृष्णके संग शिकार खेलवेकूं जातभयो ॥ १३ ॥ १४ ॥ ता वनमें व्याघ्र शूकर भैंसा रुरू अर्थात् हरिण शरभ अर्थात् आठ पांवके जीव रौज गेंडा मृग खरहा स्याही इनकूं बाणनते वेधत भये ॥ १५ ॥ अमावास्या पूर्ण-

युधिष्ठिर उवाच ॥ किं न आचरितं श्रेयो न वेदाहमधीश्वर ॥ योगेश्वराणां दुर्दर्शो यन्नो दृष्टः कुमेधसाम् ॥ ११ ॥ इति वै वार्षिकान्मासान्राज्ञा सोऽभ्यर्थितः सुखम् ॥ जनयन्नयनानन्दमिन्द्रप्रस्थौकसो विभुः ॥ १२ ॥ एकदा रथमारुह्य विजयो वानरध्वजम् ॥ गाण्डीवं धनुरादाय तूणौ चाक्षयसायकौ ॥ १३ ॥ साकं कृष्णेन संनद्धो विहर्तुं गहनं वनम् ॥ बहुव्यालमृगाकीर्णं प्राविशत्परवीरहा ॥ १४॥ तत्राविध्यच्छरैर्व्याघ्रान्सूकरान्महिषान्रुरून् ॥ शरभान्गवयान्खड्गान्हरिणाञ्छशशल्लकान् ॥ १५ ॥ तान्निन्युः किङ्करा राज्ञे मेध्यान्पर्वण्युपागते ॥ तृट्परीतः परिश्रान्तो बीभत्सुर्यमुनामगात् ॥ १६ ॥ तत्रोपस्पृश्य विशदं पीत्वा वारि महारथौ ॥ कृष्णौ ददृशतुः कन्यां चरन्तीं चारुदर्शनाम् ॥ १७ ॥तामासाद्य वरारोहां सुद्विजां रुचिराननाम् ॥ पप्रच्छ प्रेषितः सख्या फाल्गुनः प्रमदोत्तमाम् ॥ १८ ॥ का त्वं कस्यासि सुश्रोणि कुतोऽसि किं चिकीर्षसि ॥ मन्ये त्वां पतिमिच्छन्तीं सर्वं कथय शोभने ॥ १९ ॥

मासी ये पर्व जब आयके प्राप्त भये तब टहलुआ पवित्र पशु राजा युधिष्ठिरके पास लावत भये, शिकार खेलिवेमें श्रमसें प्यासो होय अर्जुन यमुनापै जातभयो ॥ १६ महारथी श्रीकृष्ण और अर्जुन यमुनाके तटपै आयके निर्मल जलको आचमन करिके पीके जब ठाढे भये तब सुंदर येक कन्या बैठी देखत भये ॥ १७ सुंदर जंघा, श्रेष्ठ दांत, मनोहर मुख, ऐसी प्रमदा कन्याके पास श्रीकृष्णको भेजो अर्जुन जायकै पूछत भयो ॥ १८ ॥ हे सुश्रोणि ! अर्थात् सुंदर कटिवारी तुम कौन हो और कौनकी पुत्री हो कहांते आई हो, तुमारे मनमें कहा करिवेकी है,तुमारी पति करिवेकी इच्छा है,

मैं जानूंहूं हे सुंदरी! सब बात कहो ॥ १९ ॥ कालिंदी कहे हैं मैं सूर्यदेवकी पुत्री हूं, वरके देनवारे विष्णुकूं पति करिवेकी इच्छा करिके बडो तप करूंहूं ॥ २० हे वीर !. सुंदर श्रीकृष्णचन्द्रके विना औरकूं पति न करूंगी अनाथके आश्रय मुकुंद भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न होउ ॥ २१॥ मैं कालिंदी नाम करिके विख्यात हूं, और मेरे पिता सूर्यने यमुना जलमें स्थान वना दिया है यावत्पर्यंत श्रीकृष्णचंद्रको दर्शन न होयगो तबलों वास करूंगी ॥ २२ ॥ निद्राजीत अर्जुननें वासुदेव श्रीकृष्णचंद्रके पास आयके कालिंदीके वचन कहे कालिंदी मेरे निमित्त तप करे है या बातकूं जानिके श्रीकृष्णचंद्र कालिंदीकूं अपने रथमें बैठायिके धर्मराजा युधिष्ठिरके पास आवत भये ॥ २३ ॥ ता समय पांडवनकी आज्ञासे श्रीकृष्णचंद्र देवतानके कारीगर विश्वकर्मासूं कहिके पांडवनके लिये चित्र विचित्र अद्भुत नगर निर्माण करावत भये ॥ २४ ॥ अपने पांडवनके प्रिय करिवेके लिये इन्द्रप्रस्थमें वास करनेहारे श्रीकृष्णचंद्र भगवान् इन्द्रको खांडववन अग्निकूं देवेके लिये अर्जुनके रथमान् होत भये ॥२५॥ हे राजन्! परीक्षित् जब अग्निकूं खांडववन दियो तब अग्नि प्रसन्न होयके अर्जुनकूं धनुष और श्वेतरंगके घोडा तीरनके भरे तरकस, और हथ्यारनसूं भेदन न होय ऐसो कवच देत भयो ॥ २६ ॥ अग्निते बचायो मयनाम दैत्य सभा बनायके अर्जुनकूं देतभयो, जा सभामें जलमें स्थल और स्थलमें जल या प्रकार दुर्योधनकी दृष्टिमें भ्रम होत भयो ॥२७॥

कालिन्द्युवाच ॥ अहं देवस्य सवितुर्दुहिता पतिमिच्छती ॥ विष्णुं वरेण्यं वरदं तपः परममास्थिता ॥ २० ॥ नान्यं पतिं वृणे वीर तमृते श्रीनिकेतनम् ॥ तुष्यतां मे स भगवान्मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः ॥ २१ ॥ कालिन्दीति समाख्याता वसामि यमुनाजले ॥ निर्मिते भवने पित्रा यावदच्युतदर्शनम् ॥ २२ ॥ तथाऽवदद्गुडाकेशो वासुदेवाय सोऽपि ताम् ॥ रथमारोप्य तद्विद्वान्धर्मराजमुपायमत् ॥ २३ ॥ यदैव कृष्णः संदिष्टः पार्थानां परमाद्भुतम् ॥ कारयामास नगरं विचित्रं विश्वकर्मणा ॥ २४ ॥ भगवांस्तत्र निवसन्स्वानां प्रियचिकीर्षया ॥ अग्नये खाण्डवं दातुमर्जुनस्यास सारथिः ॥ २५ ॥ सोऽग्निस्तुष्टो धनुरदाद्धयाञ्छ्वेतान्रथं नृप ॥ अर्जुनायाक्षयौ तूणौ वर्म चाभेद्यमस्त्रिभिः ॥ २६ ॥ मयश्च मोचितो वह्नेः सभां सख्य उपाहरत् ॥ यस्मिन्दुर्योधनस्यासीज्जलस्थलदृशिभ्रमः ॥ २७ ॥

राजा युधिष्ठिरसे आज्ञा पाय सुहृदनमें प्रशंसा पाय श्रीकृष्णचंद्र सात्यकी आदि यादवनकूं संग लैके फेर द्वारकापुरीमें आवत भये ॥२८॥ जाके पीछे सुंदर पवित्र ऋतु नक्षत्रमें कालिंदीकूं व्याहत भये, परम मंगलरूप श्रीकृष्णचंद्र हैं अपने यादवनकूं परमानंद देतभये ॥ २९ ॥ उज्जैनपुरीके रहनहारे राजा विंद और अनुविंदकी बहनने श्रीकृष्णको स्वयम्वरमें वरनेकी इच्छा करी परन्तु उन दोनों भाइयोंने निषेध कियो क्योंकि वे दुर्योधनके वशमें थे ॥ ३० ॥ हे राजन्! उस वसुदेवकी बहिनि राजाधिदेवीकी पुत्री मित्रविंदाकूं श्रीकृष्णचंद्र सब राजानके देखत बल करिके हर लावत भये ॥ ३१ ॥ हे राजन् परीक्षित्! अयोध्यापुरीको पालन करनवारो बडो धर्मात्मा राजा नग्नजित् नामकरिके होत भयो ता राजाके प्रकाशमान सत्या नामक कन्या

स तेन समनुज्ञातः सुहृद्भिश्चानुमोदितः॥आययौ द्वारकां भूयः सात्यकिप्रमुखैर्वृतः ॥२८॥ अथोपयेमे कालिन्दीं सुपुण्यर्त्वृक्ष ऊर्जिते ॥ वितन्वन्परमानन्दं स्वानां परममङ्गलम् ॥ २९ ॥ विन्दानुविन्दावावन्त्यौ दुर्योधनवशानुगौ ॥ स्वयंवरे स्वभगिनीं कृष्णे सक्तां न्यषेधताम् ॥ ३० ॥ राजाधिदेव्यास्तनयां मित्रविन्दां पितृष्वसुः ॥ प्रसह्य हृतवान्कृष्णो राजन्राज्ञां प्रपश्यताम् ॥ ३१ ॥ नग्नजिन्नाम कौसल्य आसीद्राजातिधार्मिकः ॥ तस्य सत्याऽभवत्कन्या देवी नाग्नजिती नृप ॥३२ ॥ न तां शेकुर्नृपा वोढुमजित्वा सप्त गोवृषान् ॥ तीक्ष्णशृङ्गान्सुदुर्धर्षान्वीरगन्धासहान्खलान् ॥ ३३ ॥ तां श्रुत्वा वृषजिल्लभ्यां भगवान्सात्वतां पतिः ॥ जगाम कौसल्यपुरं सैन्येन महतावृतः ॥३४॥ स कोसलपतिः प्रीतः प्रत्युत्थानासनादिभिः ॥ अर्हणेनापि गुरुणाऽपूजयत्प्रतिनन्दितः ॥ ३५ ॥

भई, उसे नाग्नजितीभी कहे हैं ॥ ३२ ॥ राजाने ऐसी प्रतिज्ञा करी की जो वीरपुरुषकी गंधभी न सहसकै ऐसे दुर्धर्ष कठोर सींगवाले महाकठोर सात बलीवर्दोंको एक साथही जीतले उसे अपनी कन्या व्याह दूंगा अनेक राजा मार खाय फिरगये पर कोई जीत न सका ॥ ३३ ॥ भक्तनके पति भगवान् जो सात बैलनकूं एक संग नाथें, वह या कन्याकूं व्याहैं, यह बातकूं श्रवण करिके बडी सैन्याकूं संग लैके अयोध्यापुरीमें जातभये ॥ ३४ ॥ अयोध्यापुरीको राजा नग्नजित् प्रसन्न होयके उठिके भले आये या प्रकार प्रशंसा करिके सुन्दर आसन बिछाय चरण धोइके बडी पूजाकी सामग्रीनसूं पूजन करत भयो ॥ ३५ ॥

राजा नग्नजितकी कन्या लक्ष्मीपति श्रीकृष्णको आये देख अपने योग्य वर जान इनकी इच्छा करतिभई और कहती भई कि जो मैंने व्रतन करिके मनमें धाऱ्यो तौ यह श्रीकृष्णचंद्र मेरो पति होऊ और मेरे मनोरथनकूं सत्य करौ ॥ ३६ ॥ जिन भगवानके चरणकमलकी रजकूं लक्ष्मी और कमलजन्म ब्रह्मा तथा महादेव, और लोकपाल समस्त शिरपै धारण करे हैं और जो अपनी वंधी हुई मर्याद पालनेकी इच्छासे समयपर लीलासे नृसिंहादि शरीर धारण करै हैं वह भगवान मेरे ऊपर प्रसन्न हौ ॥ ३७॥ पूजन करिके फिरि नग्नजित राजा कहत भये हे नारायण हे जगत्के पति आत्माके आनंदकरिके पूर्ण! तुम्हारो मैं तुच्छ कहा पूजन करूं ॥ ३८ ॥ अब, श्रीशुकदेवजी कहै हैं हे कौरवनके कुलकूं आनन्द दैनवारे राजा परीक्षित्! आसनपै बैठि

वरं विलोक्याभिमतं समागतं नरेन्द्रकन्या चकमे रमापतिम् ॥ भूयादयं मे पतिराशिषोमलाः करोतु सत्या यदि मे धृतो व्रतैः ॥ ३६ ॥ यत्पादपङ्कजरजः शिरसा बिभर्ति श्रीरब्जजः सगिरिशः सह लोकपालैः ॥ लीलातनूः स्वकृतसेतुपरीप्सयेशः कालेदधत्स भगवान्मम केन तुष्येत् ॥ ३७ ॥ अर्चितं पुनरित्याह नारायण जगतपते ॥ आत्मानन्देन पूर्णस्य करवाणि किमल्पकः ॥ ३८॥ श्रीशुक उवाच ॥ तमाह भगवान्हृष्टः कृतासनपरिग्रहः ॥ मेघगम्भीरया वाचा सस्मितं कुरुनन्दन ॥ ३९ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ नरेन्द्र याञ्चा कविभिर्विगर्हिता राजन्यबन्धोर्निजधर्मवर्तिनः ॥ तथापि याचे तव सौहृदेच्छया कन्यां त्वदीयां नहि शुल्कदा वयम् ॥ ४० राजोवाच ॥ कोऽन्यस्तेऽभ्यधिको नाथ कन्यावर इहेप्सितः ॥ गुणैकधाम्नो यस्याङ्गे श्रीर्वसत्यनपायिनी ॥ ४१ ॥ किं त्वस्माभिः कृतः पूर्वं समयः सात्वतर्षभ ॥ पुंसां वीर्यपरीक्षार्थं कन्यावरपरीप्सया ॥ ४२ ॥

करि भगवान् श्रीकृष्णचंद्र मेघकी तुल्य गंभीर वाणीसे मुसिकाते राजा नग्नजितते बोलत भये ॥ ३९॥ हे राजन् नग्नजित्! निजधर्मवर्ती क्षत्रीकूं याचना करिवो कविननें मने कऱ्यो है तथापि स्नेह करिके हम तुमारी कन्याकूं मांगे हैं, कछु मोलके देनवारे हम नहीं हैं ॥ ४० ॥ अब राजा नग्नजित कहे हे हे नाथ! समस्त गुण जिनमें रहै और लक्ष्मी सर्वदा जिनके अंगमें वास करे ऐसे तुमते अधिक या संसारमें कौन वर है जाकूं कन्या देऊंगो ॥ ४१ ॥ हे यादवनमें श्रेष्ठ! पुरुषनके पराक्रमकी परीक्षा लेवेके निमित्त और कन्याके बरकी परीक्षाके लिये हमने प्रथम एक प्रतिज्ञा करी है ॥ ४२ ॥

हे वीर कृष्ण ! इन शिक्षा रहित और पकडनेमें न आवै ऐसे बैलोंको जो जीतै वह कन्या वरै यह बात सुन बहुतसे राजपुत्र यहां आये और इनसे शरीर जरजरित करायकै गये ॥ ४३ ॥ हे यदुनंदन हे लक्ष्मीके पति ! जो तुम इन बैलनकूं अपने वश करि लेउ तो मेरी कन्याकूं सम्मत वर हौ ॥ ४४ ॥ समर्थ श्रीकृष्णचंद्र या प्रकार राजा नग्नजितको वचन श्रवण करिके फेंटि बांधिके अपने सात रूप धरिके लीलाही करिके बैलनकूं पकरंत भये॥४५ ॥ गर्व और शक्ति नाश करिकै उन बैलनकूं शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचंद्र रस्सानते बांधिके जैसे बालक काष्ठके बैलकूं खैंचे हैं ऐसे खेंचत भये ॥ ४६ ॥

सप्तैते गोवृषा वीर दुर्दान्ता दुरवग्रहाः ॥ एतैर्भग्नाः सुबहवो भिन्नगात्रा नृपात्मजाः ॥ ४३ ॥ यदीमे निगृहीताः स्युस्त्वयैव यदुनन्दन ॥ वरो भवानभिमतो दुहितुर्मे श्रियः पते॥४४॥ एवं समयमाकर्ण्य बद्ध्वा परिकरं प्रभुः ॥ आत्मानं सप्तधा कृत्वा न्यगृह्णाल्लीलयैव तान् ॥४५॥ बद्ध्वा तान्दामभिः शौरिर्हतदर्पान्हतौजसः ॥ व्यकर्षल्लीलया बद्धान्बालो दारुमयान्यथा ॥ ४६ ॥ ततः प्रीतः सुतां राजा ददौ कृष्णाय विस्मितः ॥ तां प्रत्यगृह्णाद्भगवान्विधिवत्सदृशीं प्रभुः ॥ ४७ ॥ राजपत्न्यश्च दुहितुः कृष्णं लब्ध्वा प्रियं पतिम् ॥ लेभिरे परमानन्दं जातश्च परमोत्सवः ॥ ४८ ॥ शङ्खभेर्यानका नेदुर्गीतवाद्यद्विजाशिषः ॥ नरा नार्यः प्रमुदिताः सुवासःस्रगलंकृताः ॥ ४९ ॥ दश धेनुसहस्राणि पारिबर्हमदाद्विभुः ॥ युवतीनां त्रिसाहस्रं निष्कग्रीवसुवाससाम् ॥ ५० ॥

ताके पीछे आश्चर्यमान राजा नग्नजित प्रसन्न होयके श्रीकृष्णचंद्रकूं अपनी कन्या देत भयो, समर्थ भगवान् श्रीकृष्ण अपनी समान कन्याकूं विधिपूर्वक व्याहत भये ॥ ४७ ॥ राजानग्नजितकी रानी अपनी कन्याकूं प्यारो पति पायके परमानंद पावत भईं, और बडो उत्सव भयो ॥ ४८ ॥ शंख भेरी नगाडे बजत भये और गीत बाजे बजावत भये, ब्राह्मणनके आशीर्वाद होत भये, सुन्दर वस्त्र मालानसूं शोभायमान नरनारी प्रसन्न होत भये ॥ ४९ ॥ सामर्थ्यमान् राजा नग्नजित दाइजेमें दश हजार गौ देत भयो, धुकधुकी कंठमें धारे सुन्दर वस्त्रनकूं पहिरे तीन हजार दासी देतभयो ॥ ५० ॥

---

१ दोहा–फैंट बांधि तहां हरि गये, सात रूप निज धार । श्रीयदुपति व्रजरत्नने, नाथे एकहि वार ॥ १ ॥

नौ हजार हाथी देत भयो, और हाथीनसूं सौगुणे अर्थात् नौलाख रथ और रथनसूं सौगुणे अर्थात् नौ करोड घोडा देत भयो और घोडानसूं सौगुणे अर्थात् एक अर्व मनुष्य देतभयो ॥ ५१ ॥ स्नेहसे व्याप्त हृदय कोशलदेशको राजा नग्नजित अपनी कन्यासहित श्रीकृष्णचंद्रकूं रथमें बैठारिके वडी सैन्याकूं संग लैके पहुंचावत भयो ॥ ५२ ॥ यादवनने और बैलनने पहिले राजानको मद दूर करदियो है तथापि असहनतासे वे राजा कृष्ण या कन्याकूं लियो जाय है यह बात श्रवण करिके मार्गमें आयके रोकतभये ॥ ५३ ॥ बंधु कृष्णचंद्रके प्यारको करनवारो गांडीवधनुषधारी अर्जुन बाणनकूं चलानेवाले राजौंकूं सिंह जैसे छोटे छोटे जानवर मृगनकूं भजावै ऐसै भजावत भयो ॥ ५४ ॥ यादवनमें श्रेष्ठ देवकीके पुत्र भगवान् दाइजेकूं लैके द्वारकापुरीमें आयके सत्या रानीके संग रमण करत भये ॥ ५५ ॥ वसुदेवकी बहिन श्रुतिकीर्तिकी पुत्री केकयदेशोत्पन्न भद्राकूं संतर्दनादि भैयानके देनेपर श्रीकृष्णचंद्र व्याहत भये ॥ ५६ ॥ सुन्दर लक्षणवाली मद्रदेशके राजाकी कन्या लक्ष्मणाकूं गरुड जैसे अमृतकूं लावै है या प्रकार अकेले श्रीकृष्णचंद्र हरिके लावतभये ॥ ५७ ॥ भौमासुरके बंदीखानेमेंते छुडाई हुई सुन्दर रूपवती हजारन स्त्री श्रीकृष्णचंद्रके औरभी होती हुईं ॥ ५८ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अष्टमहिष्युद्वाहो नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

नव नागसहस्राणि नागाच्छतगुणान्रथान् ॥ रथाच्छतगुणानश्वानश्वाच्छतगुणान्नरान् ॥ ५१ ॥ दम्पती रथमारोप्य महत्या सेनया वृतौ ॥ स्नेहप्रक्लिन्नहृदयो यापयामास कोसलः ॥ ५२॥ श्रुत्वैतद्रुरुधुर्भूपा नयन्तं पथि कन्यकाम् ॥ भग्नवीर्याः सुदुर्मर्षा यदुभिर्गोवृषैः पुरा ॥ ५३ ॥ तानस्यतः शरव्रातान्बन्धुप्रियकृदर्जुनः ॥ गाण्डीवी कालयामास सिंहः क्षुद्रमृगानिव ॥ ५४ ॥ पारिबर्हमुपागृह्य द्वारकामेत्य सत्यया ॥ रेमे यदूनामृषभो भगवान्देवकीसुतः ॥५५॥ श्रुतकीर्तेः सुतां भद्रामुपयेमे पितृष्वसुः ॥ कैकेयीं भ्रातृभिर्दत्तां कृष्णः संतर्दनादिभिः ॥५६॥ सुतां च मद्राधिपतेर्लक्ष्मणां लक्षणैर्युताम् ॥ स्वयंवरे जहारैकः स सुपर्णः सुधामिव ॥५७॥ अन्याश्चैवंविधा भार्याः कृष्णस्यासन्सहस्रशः ॥ भौमं हत्वा तन्निरोधादाहृताश्चारुदर्शनाः॥५८॥इति श्रीभागवते महा०द०उ०अष्टमहिष्युद्वाहो नामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

918

अब राजा परीक्षित् प्रश्न करे हैं हे शुकदेवजी ! श्रीकृष्णचंद्रने भौमासुरकूं मार्यो और जैसे भौमासुरने वे स्त्री रोकीही यह समस्त कथा और शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् श्रीकृष्णचंद्रको पराक्रम हमारे आगे वर्णन कीजिये ॥ १ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं राजन् परीक्षित् ! जब सुरनाथ इन्द्रने श्रीकृष्णसे आयकर कही हे भगवन् ! मेरा छत्र अदितिके कुंडल भौमासुर हरकर लेगया और अमराद्रि सुमेरुमें मणिपर्वत स्थानमें उसने अधिकार कर लिया है और हमें बडा दुःखी करदिया है यह इन्द्रकी वार्ता सुनिके श्रीकृष्णचन्द्र गरुडके ऊपर चढिके सत्यभामा रानीकूं संग लैके प्राग्ज्योतिष नामक भोमासुरके नगरमें जातभये ॥ २ ॥ अब भौमासुरके नगरको वर्णन करे हैं जहां पर्वतके, शस्त्रनके, जलके, अग्निके और पवनके किला है, जिनमें कोई जाय न सकै ऐसो भयानक गढ मुरदैत्यकी हजारन दृढ भयानक फांसीसूं चारो ओरसूं व्याप्त है ॥ ३ ॥ श्रीकृष्णचंद्र गदाते पर्वत तोरत भयो,और बाणनसूं शस्त्रनके गढ काटतभये, चक्रसूं अग्निकूं बुझावत, जलकूं शोषत, पवनकूं रोकत भये, ऐसेही मुरदैत्यके फांसनकूं काटतभये ॥ ४ ॥ और शंख बजानेके शब्द करिके अनेक युद्धके यंत्र उलटे चलन लगे, और शूरनके मन हृदय थरथर कांपतभये, गदाके धारनवारे श्रीकृष्णचंद्र बडी गदासूं भौमासुरके नगरको कोट तोरतभये ॥ ५ ॥ प्रलयकालके वज्रके शब्दकी तुल्य भयंकर शब्दवारे पांचजन्यशंखके शब्द सुनिके पांच शिरवारो मुर दैत्य जो जलके भीतर सोवै हो सो उठतभयो ॥६॥ अति खोटी दृष्टि प्रलयकालके सूर्य और अग्निकी तुल्य तेज भयंकर रूपवारो मुर दैत्य त्रिशूल हाथमें लैके

राजोवाच ॥ यथा हतो भगवता भौमो येन च ताः स्त्रियः ॥ निरुद्धा एतदाचक्ष्व विक्रमं शार्ङ्गधन्वनः॥१॥ श्रीशुक उवाच ॥ इन्द्रेण हतच्छत्रेण हतकुण्डलबन्धुना ॥ हतामराद्रिस्थानेन ज्ञापितो भौमचेष्टितम् ॥ २॥ सभार्यो गरुडारूढः प्राग्ज्योतिषपुरं ययौ ॥ गिरिदुर्गैः शस्त्रदुर्गैर्जलाग्न्यनिलदुर्गमम् ॥ मुरपाशयुतैर्घोरैर्दृढैः सर्वत आवृतम् ॥ ३ ॥ गदया निर्बिभेदाद्रीञ्छस्त्रदुर्गाणि सायकैः ॥ चक्रेणाग्निं जलं वायुं मुरपाशांस्तथासिना ॥ ४ ॥ शङ्खनादेन यन्त्राणि हृदयानि मनस्विनाम् ॥ प्राकारं गदया गुर्व्या निर्बिभेद गदाधरः ॥५॥ पाञ्चजन्यध्वनिं श्रुत्वा युगान्ताशनिभीषणम् ॥ मुरः शयान उत्तस्थौ दैत्यः पञ्चशिरा जलात् ॥ ६ ॥ त्रिशूलमुद्यम्य सुदुर्निरीक्षणो युगान्तसूर्यानलरोचिरुल्बणः ॥ ग्रसंस्त्रिलोकीमिव पञ्चभिर्मुखैरभ्यद्रवत्तार्क्ष्यसुतं यथोरगः ॥ ७ ॥

॥ हे राजन् परीक्षित! द्वारकापुरीमें पुरवासीनका [illegible] द्वारिके श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख आवतभयो, जैसे गरुड सर्पके सन्मुख जाय ॥ ७ ॥ मुर
गवते उत्तरार्धे भाषाटीकायां रुक्मिणीविवाहोत्सवे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ [illegible] शब्द करत भयो, बडे शब्द सो अंतरिक्ष द्यावापृथिवी समस्त दि-
कामदेव रुद्रके क्रोध करिके भस्म होयगयो, फेरि देह [illegible]इवेके लिये वासुदेवमें आवत भयो ॥ १ ॥ [illegible] श्रीकृष्णते तीन हाथ [illegible]ाके
जन्म लैके प्रद्युम्न नाम करिके विख्यात होतभयो, जो पिता श्रीकृष्णसै किसी प्रकारनमें न्यून नहीं है ॥ २ ॥ इच्छापूर्वक [illegible] धारण करै शंबरासुर
अपनो शत्रु जानिके दश दिनके बालककूं हारके समुद्रमें डारिके घरकूं आवत भयो ॥ ३ ॥ बडो बलवान् मत्स्य बालककूं निगलत भयो, वा मत्स्य

द्वारकायाममभूद्राजन्महामोदः पुरौकसाम् ॥ रुक्मिण्या रमयोपेतं दृष्ट्वा कृष्णं श्रियः पतिम् ॥ ६० ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धे उत्तरार्धे रुक्मिण्युद्वाहोत्सवे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कामस्तु वासुदेवांशो दग्धः प्राग्रुद्रमन्युना ॥ देहोपपत्तये भूयस्तमेव प्रत्यपद्यत ॥ १ ॥ स एव जातो वैदर्भ्यां कृष्णवीर्यसमुद्भवः ॥ प्रद्युम्न इति विख्यातः सर्वतोऽनवमः पितुः ॥ २ ॥ तं शम्बरः कामरूपी हृत्वा तोकमनिर्दशम् ॥ स विदित्वात्मनः शत्रुं प्रास्योदन्वत्यगाद्गृहम् ॥ ३ ॥ तं निर्जगार बलवान्मीनः सोऽप्यपरैः सह ॥ वृतो जालेन महता गृहीतो मत्स्यजीविभिः ॥ ४ ॥ तं शम्बराय कैवर्ता उपाजह्रुरुपायनम् ॥ सूदा महानसं नीत्वाऽवध्यन्स्वधितिनाऽद्भुतम् ॥ ५ ॥ दृष्ट्वा तदुदरे बालं मायावत्यै न्यवेदयन् ॥ नारदोऽकथयत्सर्वं तस्याः शङ्कितचेतसः ॥ बालस्य तत्त्वमुत्पत्तिं मत्स्योदरनिवेशनम् ॥ ६ ॥

कूं मछरीनकी जीविका करनवारे धीमर बडो जाल डारिके और मछरीनके संग पकरत भयो ॥ ४ ॥ वा बडे मत्स्यकूं लायके धीमर शंबरासुरके भेट करतभयो, शंबरासुरने रसोइयानकूं दियो, वे रसोईमें लायके छुरीते अद्भुत मत्स्यकूं विदीर्ण करत भये ॥ ५ ॥ ता मछरीके उदरमें बालककूं देखिके रसोइया मायावतीको देतभये, शंकितचित्त मायावतीसूं आयके सब वृत्तान्त नारदजी कहतभये, यह बालकको स्वरूप तेरो पति कामदेव है श्रीकृष्णते रुक्मिणीमें उत्पन्न भयो है, या प्रकार उत्पत्ति और शंबरासुर समुद्रमें डारि आयो वहां याकूं मत्स्य निगलिगयो या प्रकार मत्स्यके उदरमें प्र-

421

419

बुद्धि अपनी कुरूपताका स्मरण कर रुक्मि श्रीकृष्णकूं मारेविना और छोटी बहिनिके बगदाये विना या कुंडिनपुरमें न आऊंगो या प्रतिज्ञाके मारे वहां भोजकटपुर वसायुके रहतभयो ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे कौरवनकूं आनंदके दैनवारे राजन् परीक्षित्! भगवान् श्रीकृष्ण याप्रकार राजानकूं जीतिके भीष्मककी पुत्री रुक्मिणीकूं द्वारकापुरीमें लायके विधिपूर्वक विवाह करतभये ॥ ५३ ॥ हे राजन् परीक्षित्! यादवनकी पुरी द्वारकामें यादवनके पालन करनवारे श्रीकृष्णमें अनन्यभाववारे मनुष्यनके घरमें मंगल होतभयो ॥ ५४ ॥ आनंदमें भरे उज्ज्वल मणिनके जडाऊ गहने पहरे स्त्री पुरुष चित्र विचित्र वस्त्र धारे दुलहै दुलाहन रुक्मिणी कृष्णके दैवेके लिये सुंदर सुंदर वस्तु लावतभये ॥ ५५ ॥ ऊंची ध्वजा और चित्र विचित्र माला वस्त्र

भगवान्भीष्मकसुतामेवं निर्जित्य भूमिपान् ॥ पुरमानीय विधिवदुपयेमे कुरूद्वह ॥ ५३ ॥ तदा महोत्सवो नृणां यदुपुर्यां गृहे गृहे ॥ अभूदनन्यभावानां कृष्णे यदुपतौ नृप ॥ ५४ ॥ नरा नार्यश्च मुदिताः प्रमृष्टमणिकुण्डलाः ॥ पारिबर्हमुपाजह्रुर्वरयोश्चित्रवाससोः ॥ ५५ ॥ सा वृष्णिपुर्युत्तभितेन्द्रकेतुभिर्विचित्रमाल्याम्बररत्नतोरणैः ॥ बभौ प्रतिद्वार्युपक्लृप्तमङ्गलैरापूर्णकुम्भाऽगुरुधूपदीपकैः ॥ ५६ ॥ सिक्तमार्गा मदच्युद्भिराहूतप्रेष्ठभूभुजाम् ॥ गजैर्द्वाःषु परामृष्टरम्भापूगोपशोभिता ॥ ५७ ॥ कुरुसृञ्जयकैकेयविदर्भयदुकुन्तयः ॥ मिथो मुमुदिरे तस्मिन्संभ्रमात्परिधावताम् ॥ ५८ ॥ रुक्मिण्या हरणं श्रुत्वा गीयमानं ततस्ततः ॥ राजानो राजकन्याश्च बभूवुर्भृशविस्मिताः ॥ ५९ ॥

रत्ननकी वंदनमालासूं और द्वारद्वारपै धानकी खीलै अंकुर फूल और जलके भरे कलस और अगरकी धूप दीप इत्यादिकनसूं वह यादवनकी पुरी द्वारिका सुंदर लगतिभई ॥ ५६ ॥ छिरकाव होयगयो है और दरवाजनपै केरा सुपारीनके जे वृक्ष लगे हैं और जो सुहृद राजा बुलायेगये हैं तिनके मद झरते हाथियोंसे ऊंचे उठाये सुप[illegible]ोंके वृक्षोंसे बडी शोभा होरही है ॥ ५७ ॥ खुशीके मारे दौरे दौरे फिरते द्वारक[illegible]योंके बीचमें कुरुदेश सृंजयदेश कैकयदेश विदर्भदेशके वासी राजाभी विवाहमें मिलके आनंदकूं पावतभये ॥ ५८ ॥ जहां [illegible]रुक्मिणीको [illegible] काटत भ[illegible]के [illegible] गायो जातो श्रव[illegible] कर राजा और राजानकी कन्या बडो आश्चर्य मानतभई ॥ ६० ॥

१ चौपाई-पँडित

पाचों मुख फारिके त्रिलोकीकूं मानो निगलि जायगो ऐसो दौरिके श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख आवतभयो, जैसे गरुड सर्पके सन्मुख जाय ॥ ७ ॥ मुर दैत्य त्रिशूलकूं फिरायके बडे जोरते गरुडके ऊपर चलायके पांचो मुख फारिके शब्द करत भयो, बडे शब्द सो अंतरिक्ष द्यावापृथिवी समस्त दिशानमें फैलिके ब्रह्मांडकूं व्याप्त करतभयो ॥ ८ ॥ तासमय श्रीकृष्णचन्द्र गरुडके ऊपर त्रिशूल आते देखकर बाणनते तीन टूक करतभये और मुरदैत्यके पांचो मुखनमें पांच बाण मारतभये मुर दैत्यभी क्रोधकरिके श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर गदा चलावतभयो ॥ ९ ॥ गदके बडे भैया श्रीकृष्ण युद्धमें चली आती मुरदैत्यकी गदाके अपनी गदासूं हजारन टूक करतभये, तासमय भुजानकूं उठायके दौरिकै सन्मुख आये मुरदैत्यके शिरनकूं

आविध्य शूलं तरसा गरुत्मते निरस्य वक्त्रैर्व्यनदत्स पञ्चभिः ॥ स रोदसी सर्वदिशोम्बरं महानापूरयन्नण्डकटाहमावृणोत् ॥ ८ ॥ तदापतद्वै त्रिशिखं गरुत्मते हरिः शराभ्यामभिनत्त्रिधौजसा ॥ मुखेषु तं चापि शरैरताडयत्तस्मै गदां सोपि रुषा व्यमुञ्चत ॥ ९ ॥ तामापतन्तीं गदया गदां मृधे गदाग्रजो निर्बिभिदे सहस्रधा ॥ उद्यम्य बाहूनभिधावतोऽजितः शिरांसि चक्रेण जहार लीलया ॥ १० ॥ व्यसुः पपाताम्भसि कृत्तशीर्षो निकृत्तशृङ्गोऽद्रिरिवेन्द्रतेजसा ॥ तस्यात्मजाः सप्त पितुर्वधातुराः प्रतिक्रियामर्षजुषः समुद्यताः ॥ ११ ॥ ताम्रोऽन्तरिक्षः श्रवणो विभावसुर्वसुर्नभस्वानरुणश्च सप्तमः ॥ पीठं पुरस्कृत्य चमूपतिं मृधे भौमप्रयुक्ता निरगन्धृतायुधाः ॥ १२ ॥ प्रायुञ्जतासाद्य शरानसीन् गदाः शक्त्यृष्टिशूलान्यजिते रुषोल्बणाः ॥ तच्छस्त्रकूटं भगवान्स्वमार्गणैरमोघवीर्यस्तिलशश्चकर्त ह ॥ १३ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र लीलाही करिके चक्रसूं काटत भये ॥ १० ॥ शिरके कटनेसे जो मरचो है तासूं आतुर व जैसे इन्द्रके वज्रसे पर्वतका शृंग कटकर गिरे है तैसै शिर कटनेसे प्राणरहित हो वह दैत्य जलमें गिरगया उसके सात पुत्र पिताके वधसे दुःखी होय बदला लैनेके निमित्त आये ॥ ११ ॥ ताम्र अंतरिक्ष श्रवण विभावसु वसु नभस्वान् अरुण यह सब पीठ नाम सेनापतिको आगे कर भौमासुरकी प्रेरणासे शस्त्र ले रणभूमिमें आयें ॥ १२ ॥ रोष करिके भयानक मुरदैत्यके पुत्रआयके श्रीकृष्णचंद्रके ऊपंर क्रोध करिके बाण तरवार गदा बर्छी गुर्ज त्रिशूल इत्यादिक शस्त्र चलावत भये तब बडे पराक्रमी भगवान् श्रीकृष्णचंद्र अपने बाणनते तिनके चलाये भये शस्त्र तिल तिलकी बराबर टूक करिके काटत भये ॥ १३ ॥

पीठ आदि मुरदैत्यके पुत्रनके शिर, ऊरू, भुजा, पांव, कवच काटिके मारिके यमलोककूं पहुंचावत भये, पृथ्वीको पुत्र नरकासुर श्रीकृष्णचंद्रके चक्र बाणनसूं अपने सैनापतियोंका नाश देख बडा क्रोधित हो समुद्रसे प्रगट हुए मद झरते हाथियोंकी सैना ले बाहर निकला ॥ १४ ॥ सूर्यके ऊपर जैसे बिजलीसहित मेघ होय ऐसे गरुडके ऊपर सत्यभामासंहित श्रीकृष्णचंद्रको बैठे देखिके भौमासुर बरछी चलावत भयो और सम्पूर्ण योद्धाभी एक संग वेधत भये ॥ १५ ॥ गदके बडे भैया श्रीकृष्ण चित्र विचित्र पंखवारे बाणनसूं भौमासुरकी सैन्याकूं काटतभये, क्षणमात्रमें तीखे बाणोंसे भुजा ऊरु गदन व अंग काट हाथी घोडोंको मार छिन्न भिन्न करदी ॥ १६ ॥ हे कुरुवंशकूं आनंद देनवारे राजा परीक्षित ! जो जो शस्त्र योद्धानने

तान्पीठमुख्याननयद्यमालयं निकृत्तशीर्षोरुभुजाङ्घ्रिवर्मणः ॥ स्वानीकपानच्युतचक्रसायकैस्तथा निरस्तान्नरको
धरासुतः ॥ १४ ॥ निरीक्ष्य दुर्मषण आस्रवन्मदैर्गजैः पयोधिप्रभवैर्निराक्रमत् ॥ दृष्ट्वा सभार्यं गरुडोपरि स्थितं सू-
र्योपरिष्टात्सतडिद्घनं यथा ॥ कृष्णं स तस्मै व्यसृजच्छतघ्नीं योधाश्च सर्वे युगपत्स्म विव्यधुः ॥ १५ ॥ तद्भौमसैन्यं
भगवान्गदाग्रजो विचित्रवाजैर्निशितैः शिलीमुखैः ॥ निकृत्तबाहूरुशिरोङ्घ्रिविग्रहं चकार तर्ह्येव हताश्वकुञ्जरम् ॥ १६ ॥
यानि योधैः प्रयुक्तानि शस्त्रास्त्राणि कुरूद्वह ॥ हरिस्तान्यच्छिनत्तीक्ष्णैः शरैरेकैकशस्त्रिभिः ॥ १७ ॥ उह्यमानः सुपर्णेन
पक्षाभ्यां निघ्नता गजान् ॥ गरुत्मता हन्यमानास्तुण्डपक्षनखैर्गजाः ॥ १८ ॥ पुरमेवाविशन्नार्ता नरको युध्ययुध्यत ॥
दृष्ट्वा विद्रावितं सैन्यं गरुडेनार्दितं स्वकम् ॥ १९ ॥ तं भौमः प्राहरच्छक्त्या वज्रः प्रतिहतो यतः ॥ नाकम्पत तया विद्धो
मालाहत इव द्विपः ॥ २० ॥

चलाये, तिन सबकूं श्रीकृष्णचन्द्र तीक्ष्ण तीन तीन बाणनसूं एक एक टूक काटतभये ॥ १७ ॥ श्रीकृष्णको अपने ऊपर चढाये हुए गरुडनेभी अपनी चोंच और पंखौंसे हाथियोंको मारकर व्याकुल करदिया ॥ १८ ॥ और वे पीडित हो पुरमें प्रवेश करगये नरकासुर रणमें युद्ध करतभयो गरुडसे पीडित अपनी सैन्याकूं भाजी देखिके॥१९॥ भौमासुर गरुड़के बरछी मारत भयो जिस बर्छीने गरुडकी गति रोक दी थी जैसे हाथी मालाके प्रहारको कुछभी नहीं गिन्ता इसी प्रकार गरुडजी उसके प्रहारसे कुछभी व्यथित नहीं हुए ॥ २० ॥

और भौमासुरने अपना उद्यम वृथा देख श्रीकृष्णके मारनेकूं त्रिशूल लिया और उस शूलके छोडनेसे पहलेही श्रीकृष्णचंद्रने अपने चक्रसे हाथीपर बैठे हुए भौमासुरका शिर काटड़ाला ॥ २१ ॥ जिस समय कुंडलन सहित मनोहर किरीटसूं शोभायमान प्रकाशमान भौमासुरको शिर पृथ्वीमें गिरकर शोभित हुआ उस समय दैत्य हाहाकार और ऋषि देवता धन्य २ कहते श्रीकृष्णचंद्रके ऊपर फूलनकी वर्षा कर स्तुति करत भये ॥२२॥ भौमासुरके मरे पीछे पृथ्वी श्रीकृष्णके पास आयके तपायमान सुवर्णमें जड़े रत्नोंसे प्रकाशमान कुंडल वैजयंती माला और प्रचेताको छत्र तथा महामणि देत भई ॥ २३ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! उस समय पृथ्वी विश्वकै ईश्वर देवतानमें श्रेष्ठ ब्रह्मादिकसे पूजित श्रीकृष्णचंद्रको हाथ जोरि नम्र होय भक्तिपूर्वक बुद्धि लगायके स्तुति करति[1]भई ॥ २४ ॥ अब पृथ्वी कहै है हे देवनके देव ईश्वर! हे शंख चक्र गदाके धारण करनेवारे! तुमकूं नमस्कार है हे परमात्मन् ! भक्तनकी रक्षाके लिये साकार रूप धारण करनेहारे तुमकूं नमस्कार है ॥ २५॥ कमल जिनकी नाभिमें है कमलकी माला धारण करनेहारे कमलनेत्र, और कमलकी तुल्य चरणवारे तुमकूं नमस्कार है ॥ २६ ॥ भगवान् वासुदेव अर्थात् समस्त प्राणी जिनमें वास करें, विष्णु अर्थात् सबके हृदयमें व्यापक, संपूर्ण कार्यनके आदिकारण, पूर्णज्ञानस्वरूप तुमकूं नमस्कार है ॥ २७ ॥

शूलं भौमोऽच्युतं हन्तुमाददे वितथोद्यमः ॥ तद्विसर्गात्पूर्वमेव नरकस्य शिरो हरिः ॥ अपाहरद्गजस्थस्य चक्रेण क्षुरनेमिना ॥२१॥ सकुण्डलं चारुकिरीटभूषणं बभौ पृथिव्यां पतितं समुज्ज्वलत् ॥ हा हेति साध्वित्यृषयः सुरेश्वरा माल्यैर्मुकुन्दं विकिरन्त ईडिरे ॥ २२ ॥ ततश्च भूः कृष्णमुपेत्य कुण्डले प्रततजाम्बूनदरत्नभास्वरे ॥ स वैजयन्त्या वनमालयाऽऽर्पयत्प्राचेतसं छत्रमथो महामणिम् ॥ २३ ॥ अस्तौषीदथ विश्वेशं देवी देववरार्चितम् ॥ प्राञ्जलिः प्रणता राजन्भक्तिप्रवणया धिया ॥ २४ ॥ भूमिरुवाच ॥ नमस्ते देवदेवेश शङ्खचक्रगदाधर ॥ भक्तेच्छोपात्तरूपाय परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २५ ॥ नमः पङ्कजनाभाय नमः पङ्कजमालिने ॥ नमः पङ्कजनेत्राय नमस्ते पङ्कजाङ्घ्रये ॥ २६ ॥ नमो भगवते तुभ्यं वासुदेवाय विष्णवे ॥ पुरुषायादिबीजाय पूर्णबोधाय ते नमः ॥ २७ ॥

---

[1] पृथिवीने पुत्रके निमित्त तपस्या करी थी तब देवताओंने प्रसन्न हो पुत्र हौनेका नर दिया तब भौमासुर उत्पन्न हुआ ।

आप अजन्मा हौ, या विश्वके उत्पत्तिकर्त्ता हौ, ब्रह्म हौ, याहीते अजन्मा हौ, अनंतशक्ति हौ, याहीते विश्वके उत्पत्तिकर्त्ता हौ तहां शंका है क्योंजि पित्रादिक पुत्रादिकके उत्पत्ति कर्त्ता हैं, और पित्रादिकनके उत्पत्तिकर्त्ता उनके पूर्व पुरुष हैं, और पूर्वपुरुषनके उत्पत्तिकर्त्ता पंचभूत है, और पंचभूतनके अपने कर्मद्वारा जीव हैं, मैं कहा करूंहूं तहां पृथ्वी कहै है हे कार्यकारणरूप ! हे समस्त प्राणीनके आत्मा ! हे परमात्मा ! तुम सर्वरूप हौ तुमकूं नमस्कार है ॥ २८ ॥ यहां एक शंका है कि तीन गुणनकरिके विश्वके उत्पन्न पालन संहार करै है और तीनों गुण मायाके हैं और मायाको क्षोभ करनवारो पुरुष है, और कालनिमित्त है, यह बात प्रसिद्ध है मैं कहां करूंहूं तहां पृथ्वी कहै है तुम आवरणरहित हो, हे समर्थ ! जिस समय विश्वकूं रच्यौ चाहोहो तब तुम रजोगुणकूं धारण करौ हो और हे जगतके पति ! जगतके पालन करिवेकूं सत्वगुणकूं धारण करौ हो, तथा नाश करिवेके

अजाय जनयित्रेऽस्य ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ परावरात्मन्भूतात्मन्परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥ २८ ॥ त्वं वै सिसृक्षू रज उत्कटं प्रभो तमोनिरोधाय बिभर्ष्यसंवृतः ॥ स्थानाय सत्त्वं जगतो जगत्पते कालः प्रधानं पुरुषो भवान् परः ॥ २९ ॥ अहं पयो ज्योतिरथानिलो नभो मात्राणि देवा मन इन्द्रियाणि॥कर्ता महानित्यखिलं चराचरं त्वय्यद्वितीये भगवन्नयं भ्रमः ॥ ३० ॥ तस्यात्मजोऽयं तव पादपङ्कजं भीतः प्रपन्नार्तिहरोपसादितः ॥ तत्पालयैनं कुरु हस्तपङ्कजं शिरस्यमुष्याखिलकल्मषापहम् ॥ ३१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ इति भूम्याऽर्थितो वाग्भिर्भगवान्भक्तिनम्रया ॥ दत्त्वाऽभयं भौमगृहं प्राविशत्सकलर्द्धिमत् ॥ ३२ ॥

निमित्त तमोगुणकूं धारण करौ हौ और कालरूप तुम हौ, पुरुषरूप तुम हौ और सबते न्यारे हो याते सबके उत्पन्नकर्ता तुमही हो ॥ २९ ॥ हे ईश ! मैं (पृथ्वी) जल, ज्योति, पवन, आकाश, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, देवता, मन, इंद्रिय, अहंकार, तत्त्व, ये समस्त, स्थावर, जंगम आपके अद्वितीय स्वरूपमें भ्रमसे भासे है ॥ ३० ॥ हे शरणागतनके दुःखके हरनवारे ! भौमासुरको पुत्र भगदत्त भयभीत होयके तुमारे चरणकमलमें आयके परचो है तुम याको पालन करो और समस्त क्लेशनको हरनवारो अपनो हस्तकमल याके शिरपै राखो ॥ ३१॥ भक्तिपूर्वक नम्र होयके पृथ्वीने वाणीकरि या प्रकार स्तुति करि तब भगवान् उसे अभय दैके सर्वसंपत्तियुक्त भौमासुरके घरमें जात भये ॥ ३२ ॥

श्रीकृष्ण तहां जायकर सोलह हजार कन्या भौमासुरके महलनमें देखतभये जिन्है भौमासुर पराक्रमसे हर लायाथा ॥ ३३ ॥ वीर श्रीकृष्णचन्द्रको आये देखिके सम्पूर्ण स्त्रीं मोहित होयके दैवसे प्राप्त मनोवांछित पति श्रीकृष्णचन्द्रकूं मनसूं वर करतीभई ॥ ३४ ॥ यह मेरो पति होउ यह विधाता अनुमोदन करो या प्रकार समस्तकन्या भावकरिके श्रीकृष्णचन्द्रमें अपनो अपनो मन लगावतभईं ॥ ३५ ॥ श्रीकृष्ण उन्है सुन्दर वस्त्र पहराय पालकीमें बैठाय द्वारकापुरीमें भिजवावत भये बडे बडे खजाने और रथ घोडे द्रव्यभी भिजवावतभये ॥ ३६ ॥ चार चार दांतके श्वेत रंग शीघ्रगामी चौंसटि ऐरावत कुलके हाथी श्रीकृष्णचन्द्र भिजवावत भये ॥ ३७ ॥ तब भगवान्‌ने इंद्रलोकमें जायके अदितिकूं कुंडल दिये, तब इन्द्राणी सहित

तत्र राजन्यकन्यानां षट्सहस्राधिकायुतम् ॥ भौमाहृतानां विक्रम्य राजभ्यो ददृशे हरिः ॥ ३३ ॥ तं प्रविष्टं स्त्रियो वीक्ष्य नरवीरं विमोहिताः ॥ मनसा वव्रिरेऽभीष्टं पतिं दैवोपसादितम् ॥ ३४ ॥ भूयात्पतिरयं मह्यं धाता तदनुमोदताम् ॥ इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदयं दधुः ॥ ३५ ॥ ताः प्राहिणोद्द्वारवतीं सुमृष्टविरजोऽम्बराः ॥ नरयानैर्महाकोशान्रथाश्वान्द्रविणं महत् ॥ ३६ ॥ ऐरावतकुलेभांश्च चतुर्दन्तांस्तरास्विनः ॥ पाण्डुरांश्च चतुःषष्टिं प्रेषयामास केशवः ॥ ३७ ॥ गत्वा सुरेन्द्रभवनं दत्त्वाऽदित्यै च कुण्डले ॥ पूजितस्त्रिदशेन्द्रेण सहेन्द्राण्या च सप्रियः ॥३८॥ नोदितो भार्ययोत्पाट्य पारिजातं गरुत्मति ॥ आरोप्य सेन्द्रान्विबुधान्निर्जित्योपानयत्पुरम् ॥ ३९ ॥ स्थापितः सत्यभामाया गृहोद्यानोपशोभनः ॥ अन्वगुर्भ्रमराः स्वर्गात्तद्गन्धासवलम्पटाः ॥ ४० ॥ ययाच आनम्य किरीटकोटिभिः पादौ स्पृशन्नच्युतमर्थसाधनम् ॥ सिद्धार्थ एतेन विगृह्यते महानहो सुराणां च तमो धिगाढ्यताम् ॥ ४१ ॥

इन्द्रने सत्यभामासहित श्रीकृष्णचन्द्रकी पूजा करी ॥ ३८ ॥ सत्यभामानें श्रीकृष्णचन्द्रसूं कही तब कल्पवृक्षकूं उखार गरुडके ऊपर धरिके इन्द्रसहित देवतानकूं जीतिके द्वारकापुरीमें आवतभये ॥ ३९ ॥ सत्यभामाके महलके बगीचाकूं शोभायमान करनेअर्थ कल्पवृक्ष तहांके बगीचामें लगावत भये ताकी गन्ध सूंघिवेके निमित्त स्वर्गसूं चलिके भौंरा आवतभये ॥ ४० ॥ प्रथम तो इन्द्रने कार्य सिद्धि के निमित्त अपने किरीटनके अग्रभाग प्रभुके चरणनमें लगायके नमस्कार करिके सम्पूर्ण अर्थके सिद्धि करनेवारे श्रीकृष्णचन्द्रकी विन्ती करी और कार्य सिद्धि होने पर भगवानके

साथ विरोध किया अहो देवताओंका बडा क्रोध आता है धनिकताकोही धिक्कार है ॥ ४१ ॥ याके पीछे एकही मुहूर्तमें सोलह हजार एकसो आठ महलमें सर्वत्र परिपूर्ण भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जितनी स्त्री हैं उतनेही स्वरूप धरिके सबनकूं यथा योग्य व्याहत भये ॥ ४२ ॥ जिनके घरकी समान अथवा अधिक कोईभी घर नहीं ही इस प्रकारसे उन रानियोंके घरोंमें सदां रहते और पूर्ण आनंदस्वरूप रहतेभी औरोंकी समान गृहस्थ धर्म करते अचिंत्य कार्य करता अविनाशी भगवान् लक्ष्मीकी अंशरूप स्त्रियोंके साथ रमण करतेथे ॥ ४३ ॥ ब्रह्मादिक देवता जिनके मार्गकूं नहीं जानते उन लक्ष्मीपति श्रीकृष्णकूं पति पाय वे स्त्री उनका निरन्तर बढीहुई प्रीति और स्नेह मेरे हास्यपूर्वक अवलोकन करती थीं और आनंद पूर्वक नवीन संगम भाषण और लज्जाका सेवन करती थीं ॥ ४४ ॥ एक एक रानीके पास सौ सौ दासी हाथ जोरे ठाडी हैं, तथापि सन्मुख जायके लिवालाना आसन बिछायवो, सुन्दर पूजा करनी चरण धोईवो, बीरी लगावनों, चरण दाबनो, पंखा करनो, अत्तर अरगजा लगाईवो, पुष्प चढामने, केशनको सुधारिवो, शय्या बिछामनो, स्नान करवानो, भेटको धरिवो, इन करिके श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवा आपही करती भई ॥ ४६ ॥

अथो मुहूर्त एकस्मिन्नानागारेषु ताः स्त्रियः ॥ यथोपयेमे भगवांस्तावद्रूपधरोऽव्ययः ॥ ४२ ॥ गृहेषु तासामनपाय्यतर्क्यकृन्निरस्तसाम्यातिशयेष्ववस्थितः ॥ रेमे रमाभिर्निजकामसंप्लुतो यथेतरो गार्हकमेधिकांश्चरन् ॥ ४३ इत्थं रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं यदीयाम् ॥ भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनुरागहासावलोकनवसङ्गमजल्पलज्जाः ॥ ४४ ॥ प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचताम्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ॥ केशप्रसारशयनस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ४५ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्धे पारिजातहरणनरकवधो नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ कर्हिचित्सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम् ॥ पतिं पर्यचरद्भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥ १ ॥

इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशम०उ०एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥ अब श्रीशुकदेवजी कहै हैं हे राजन् परीक्षित ! काहू समय एक शय्यापै सुखपूर्वक बैठे जगत्के गुरु अपने पति श्रीकृष्णचन्द्रकूं भीष्मकराजाकी पुत्री रुक्मिणी सखिनसहित चमर करिके सेवन करतिभई ॥ १ ॥

यस्त्वेतल्लीलया विश्वं सृजत्यत्त्यवतीश्वरः ॥ स हि जातः स्वसेतूनां गोपीथाय यदुष्वजः ॥ २ ॥ तस्मिन्नन्तर्गृहे भ्राजन्मुक्तादामविलम्बिना ॥ विराजितवितानेन दीपैर्मणिमयैरपि ॥ ३ ॥ मल्लिकादामभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादिते ॥ जालरन्ध्रप्रविष्टैश्च गोभिश्चन्द्रमसोऽमलैः ॥ ४ ॥ पारिजातवनामोदवायुनोद्यानशालिना ॥ धूपैरगुरुजै राजञ्जालरन्ध्रविनिर्गतैः ॥ ५ ॥ पयःफेननिभे शुभ्रे पर्यङ्के कशिपूत्तमे ॥ उपतस्थे सुखासीनं जगतामीश्वरं पतिम् ॥ ६ ॥ वालव्यजनमादाय रत्नदण्डं सखीकरात् ॥ तेन वीजयती देवी उपासाञ्चक्र ईश्वरम् ॥ ७ ॥ सोपाच्युतं क्वणयती मणिनूपुराभ्यां रेजेऽङ्गुलीयवलयव्यजनाग्रहस्ता ॥ वस्त्रान्तगूढकुचकुङ्कुमशोणहारभासा नितम्बधृतया च परार्ध्यकाञ्च्या ॥ ८ ॥ तां रूपिणीं श्रियमनन्यगतिं निरीक्ष्य या लीलया धृततनोरनुरूपरूपा ॥ प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककण्ठवक्त्रोल्लसत्स्मितसुधां हरिराबभाषे ॥ ९ ॥

जो अजन्मा भगवान् लीला करिके या विश्वकूं उत्पन्न पालन संहार करे हैं, वे भगवान् अपनी मर्यादानकी रक्षा करिवेके निमित्त यादवनमें आयके प्रकट होत भये ॥ २ ॥ अब घर और शय्याको वर्णन करे हैं, मंदिरमें प्रकाशमान मोतिनकी झालर लटकतीथीं शोभायमान छत बंधीथी मणियोंके दीपक जगमगाय रहेथे ॥ ३ ॥ चमेलीकी मालाके फूलौं भौंरानके समूह गूंजत हैं और जारी झरोकानमें होयके आई चन्द्रमाकी निर्मल किरणें आय रही हैं ॥ ४ ॥ कल्पवृक्षके वनकी सुगंधि लिये उद्यानसे सुगंधि सनी पवन आतीथी हे महाराज ! झरोखे जालियोंमें अगरके धूपका धुआं निकल रहाथा ॥ ५ ॥ ता महलके भीतर शय्या बिछी तापै दूधके फेनकी तुल्य कोमल श्वेत बिछोना बिछो है, ताके ऊपर सुखपूर्वक बैठे जगतके ईश्वर श्रीकृष्णचन्द्रको रुक्मिणी सेवन करतिभई ॥ ६ ॥ हीराकी डांडीवारो चमर सखीके हाथमेंते लैके उससे पवन करती रुक्मिणी भगवान श्रीकृष्ण को सेवन करति भई ॥ ७ ॥ रुक्मिणी श्रीकृष्णके पास मणिनके जडाऊ नूपुरके झनकार शब्द करति सुन्दर लगतिभई कैसी रुक्मिणी है ताको वर्णन करैं हैं अंगुरीनमें मुंदरीनकूं पहिरे और पहूंचेमें चूरी कंकण, हाथमें जडाऊ डांडीको चमर लिये सारीके छोरसूं ढके कुचौंकी केशरसे रंगे अरुण मोतीनको हार और कटिमें पहिरे बडे मोलकी कोंधनीसूं शोभायमान है ॥ ८ ॥ लीला करिके देह धारण करनेहारे श्रीकृष्णचन्द्रकेही योग्य

जिसका रूपहै और आपके विना जिसका कोई आश्रय नहीं है ऐसी रूपवती लक्ष्मीकी समान रुक्मणीको देखकर कि जिसके अलकै कुंडल धुकधुकीयुक्त कंठसे शोभायमान मुखमें मंद मुस्कानरूप अमृत झलक रह्या है उसे देख प्रसन्न हो श्रीकृष्ण बोले ॥ ९ ॥ श्रीभगवान बोले हे राजपुत्री ! लोकपालौंकी समान ऐश्वर्यवाले महानुभाव लक्ष्मीमान रूप उदारता और बलसे बढे हुए राजा तुह्मारी चाहना करतेथे ॥ १० ॥ और कामदेवके मदसे व्याकुल शिशुपालादि राजा तुम्है लैनेकूं आये जिन्है तुह्मारे पिता भ्राता देभी चुकेथे फिर तुमने किसकारण उन्है छोड़कै हमें जो तुह्मारी बराबरके नहीं हैं वरण किया ॥ ११ ॥ हे सुंदर भ्रुकुटीवारी ! बहुधा राजाओंसे डरकै तौ हमने समुद्रकी शरण ली है और बलवानोंके साथ विरोध होनेसेही हमने राजगद्दी त्यागनकर रक्खी है ॥१२॥ हे सुभ्रु ! जिनके आचरणकी खबर नहीं और जो स्त्रीनके कहेमें न चले ऐसे पुरुषनको जे स्त्री हाथ पकरे

श्रीभगवानुवाच ॥ राजपुत्रीप्सिता भूपैर्लोकपालविभूतिभिः ॥ महानुभावैः श्रीमद्भी रूपौदार्यबलोर्जितैः ॥१०॥ तान्प्राप्तानर्थिनो हित्वा चैद्यादीन्स्मरदुर्मदान् ॥ दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मान्नो ववृषेऽसमान् ॥ ११ ॥ राजभ्यो बिभ्यतः सुभ्रूः समुद्रं शरणं गतान् ॥ बलवद्भिः कृतद्वेषान्प्रायस्त्यक्तनृपासनान् ॥ १२ ॥ अस्पष्टवर्त्मनां पुंसामलोकपथमीयुषाम् ॥ आस्थिताः पदवीं सुभ्रूः प्रायः सीदन्ति योषितः ॥ १३ ॥ निष्किञ्चना वयं शश्वान्निष्किञ्चनजनप्रियाः ॥ तस्मात्प्रायेण न ह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे॥ १४॥ ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः ॥ तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित्॥ १५॥ वैदर्भ्येतदविज्ञाय त्वयाऽदीर्घसमीक्षया॥ वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा॥ १६॥

हैं वे स्त्री बहुधा दुःखित होय हैं ॥ १३ ॥ और हम निष्किंचन हैं और निष्किंचन जनकूं प्यारे हैं ताकारण हे सुमध्यमे रुक्मिणी ! धनवारे पुरुष हम दरिद्रि होय जांयगे या भयते बहुधा मेरो भजन नहीं करै हैं ॥ १४ ॥ जिनके बराबरको धन है बराबरको जन्म है बराबरीको ऐश्वर्य है और बराबरिकी रूप जाति है और सदा जिनको एकसो निर्वाह होय है तिनकोही विवाह और मित्रता होय है छोटे बडेकी कदाचित नहीं होय है ॥ १५ ॥ हे विदर्भदेशके राजाकी पुत्री रुक्मिणी ! तुमने कछु विचार नहीं किया और बराबरीकेनको व्याह होय है यह बात जाने विना गुणहीन हमको भिक्षुकौंके सराहनेसे भूलकर वर लिया ॥ १६ ॥

अवहूं तुम अपनी वरावरीको क्षत्री होय ताको हाथ पकरिलेउ या क्षत्रीते या लोक परलोकके मनोरथकूं पावोगी ॥ १७ ॥ रुक्मिणी कहे हैं तुम क्यों लेआये हैं तहां श्रीकृष्णचंद्र कहे हैं हे वामोरू ! शिशुपाल शाल्व जरासंध दंतवक्रकूं आदि राजा सब हमसे शत्रुता करे हैं तेरो वडो भैया रुक्मीभी वैर करे है ॥ १८ ॥ हे मंगलरूपिणी ! पराक्रमके दमसे अंधे गर्ववंत राजाओंके गर्व दूरि करनेके निमित्त और दुष्टोंका तेज हरन करनेके निमित्त तुमको हरकर लायाथा ॥ १९ ॥ हम घरमें देहमें उदासीन हैं, हमारे स्त्रीकी पुत्रकी चाहना नहीं हैं, आत्माके आनंदसूं सदा पूर्ण रहे हैं, ज्योतिकी तुल्य साक्षी मात्र क्रिया रहित वर्ते हैं ॥ २० ॥ अव श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित् रुक्मिणीके मनके हरनवारे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रसे अपनेसे कवहूं

अथात्मनोऽनुरूपं वै भजस्व क्षत्रियर्षभम् ॥ येन त्वमाशिषः सत्या इहामुत्र च लप्स्यसे ॥ १७ ॥ चैद्यशाल्वजरासन्धदन्तवक्त्रादयो नृपाः ॥ मम द्विषन्ति वामोरु रुक्मी चापि [illegible]ग्रजः ॥ १८ ॥ तेषां वीर्यमदान्धानां दृप्तानां स्मयनुत्तये ॥ आनीतासि मया भद्रे तेजोऽपहरताऽसताम् ॥ १९ ॥ उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः ॥ आत्मलब्ध्याऽऽस्महे पूर्णा गेहयोर्ज्योतिरक्रियाः ॥ २० ॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ एतावदुक्त्वा भगवानात्मानं वल्लभामिव ॥ मन्यमानामविश्लेषात्तद्दर्पघ्न उपारमत् ॥ २१ ॥ इति त्रिलोकेशपतेस्तदात्मनः प्रियस्य देव्यश्रुतपूर्वमप्रियम् ॥ आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथुश्चिन्तां दुरन्तां रुदती जगाम ह ॥ २२ ॥ पदा सुजातेन नखारुणश्रिया भुवं लिखन्त्यश्रुभिरञ्जनासितैः ॥ आसिञ्चती कुङ्कुमरूषितौ स्तनौ तस्थावधोमुख्यतिदुःखरुद्धवाक् ॥ २३ ॥

न्यारी न होनेहारी और अपनपेकूं वहुत वल्लभा माननेहारी रुक्मिणी ते इतनो कहिके चुप होत भये ॥ २१ ॥ या प्रकार त्रिलोकीके ईश्वरनके पालन करनवारे अपने प्यारे श्रीकृष्णचंद्रको कवहूं न सुन्यो ऐसो कुप्यारो वचन श्रवण करिके हृदयसें कंपित हो रुक्मिणी देवी भयभीत होयके रुदन करति वडी चिंताकूं पावतिभई ॥ २२ ॥ नख करिके अरुण कांतिवारे सुकुमार चरणसूं पृथ्वी लिखनेलगी अंजनसूं श्याम आंसूं आखिनमेंतें वहचले तिनसूं केशरयुक्त स्तननकूं भिजोवती नीचेकूं मुख किये अत्यंत दुःखसूं वाणी रुकनेके कारण रुक्मिणी चुप हो स्थितभई ॥ २३ ॥

430

अप्रिय वचन सुननेके दुःख और त्यागि देनेकी शंकाके शोकसूं बुद्धिरहित होय रुक्मिणी व्याकुल होय गई तब उनके हाथसे पंखा गिरगया और कंकण शिथिल हो गिरने लगे और महाव्याकुलतासे मोहित होय पवनसे गिराई हुई कदलीके समान रुक्मिणी मूर्च्छित हो पृथ्वीमें गिरी उस समय उनके केश खुल गये ॥ २४ ॥ हास्यकी गंभीरता न जाननेहारी प्यारी रुक्मिणोको प्रेमबंधन देखिके करुणाकर ऐसे श्रीकृष्णचंद्र कृपा करत भये ॥ २५ ॥ चार भुजा धारनकर श्रीकृष्णचन्द्र पलंगपैते शीघ्र नीचे उतारिके श्रीरुक्मिणीकूं उठाइके केशनकूं सम्हारके मुखकूं कमलकी तुल्य कोमल हाथसूं पोंछतभये ॥ २६ ॥ हे राजन् ! आंशूभरे नेत्रनकूं और शोक करिके ताडित स्तनकूं पोंछिके अनन्य आश्रय पतिव्रता रुक्मिणीकूं भुजासूं

तस्याः सुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धेर्हस्ताच्छ्लथद्वलयतो व्यजनं पपात ॥ देहश्च विक्लवधियः सहसैव मुह्यन्रम्भेव वायुविहता प्रविकीर्य केशान्॥२४॥ तद्दृष्ट्वा भगवान्कृष्णः प्रियायाः प्रेमबन्धनम् ॥ हास्यप्रौढिमजानन्त्याः करुणः सोऽन्वकम्पत ॥२५॥ पर्यङ्कादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः ॥ केशान्समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत्पद्मपाणिना॥२६॥ प्रमृज्याश्रुकले नेत्रे स्तनौ चोपहतौ शुचा ॥ आश्लिषद्बाहुना राजन्ननन्यविषयां सतीम् ॥२७॥ सान्त्वयामास सान्त्वज्ञः कृपया कृपणां प्रभुः ॥ हास्यप्रौढिभ्रमच्चित्तामतदर्हां सतां गतिः॥२८॥ श्रीभगवानुवाच॥ मा मां वैदर्भ्यसूयेथा जाने त्वां मत्परायणाम्॥त्वद्वचः श्रोतुकामेन क्ष्वेल्याचरितमङ्गने॥२९॥मुखं च प्रेमसंरम्भस्फुरिताधरमीक्षितुम् ॥ कटाक्षेपारुणापाङ्गसुन्दरभ्रुकुटीतटम् ॥३०॥ अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम् ॥ यन्नर्मैर्नीयते यामः प्रियया भीरु भामिनि॥३१॥

आलिंगन करके ॥ २७ ॥ हांसीसूं चलायमान चित्त, और कठोर हांसीके अयोग्य दीन रुक्मिणीकूं साधुनकी गति समर्थ श्रीकृष्णचन्द्र समझावत भये ॥ २८ ॥ अब श्रीभगवान् श्रीकृष्णचन्द्र कहै हैं हे विदर्भदेशके राजाकी पुत्री ! मोते ईर्षा मति करो तूं मेरे और विना काहूंकूं नहीं जाने हैं यह मैं जानूंहूं हे सुंदरी ! तू कहा कहेगी यह सुनिवेके लिये मैंने हांसी करीही ॥ २९ ॥ स्नेहके कोपसे फरकते अधरयुक्त और चलायमान अरुण कटाक्षसें टेढी भ्रुकुटीवारे मुखकी शोभा देखिवेके लिये हांसी करीही ॥ ३० ॥ हे डरपोकनी ! अपनी प्रियाके संग हंसी करके समय व्यतीत करनो गृहस्थीनकूं घरमें यही लाभ है ॥ ३१ ॥

अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित् ! या प्रकार भगवान् श्रीकृष्णचंद्रने शांति करी तौ विदर्भदेशके राजाकी पुत्री रुक्मिणी प्यारेने मोते हँसिके कही है यह जानिके, प्यारे मोकूं त्यागि देइंगे इस मनके तापकूं त्यागति भई ॥ ३२ ॥ हे भरतवंशोत्पन्न राजन् परीक्षित् ! लाजभरी हँसनि मनोहर स्निग्ध कटाक्षनसूं सुंदर मुख देखती पुरुषनमें श्रेष्ठ कृष्णचंद्र तिनसूं बोलतिभई ॥ ३३ ॥ श्रीकृष्णचंद्रने जो अपनेमें औगुण कहे तिनकूं गुण करिके रुक्मिणी वर्णन करे हैं प्रथम श्रीकृष्णने कही तुम हमारी बराबरीकी नहीं हो हमारौ हाथ कैसे पकरचो ताको उत्तर रुक्मिणी देइहै हे कमलदललोचन ! तुमारी बराबरी में नहीं हूं, छः प्रकारके ऐश्वर्ययुक्त आपकी बात सत्य है, [illegible]नी महिमा करिके आप आवृत तीनों ब्रह्मादिकनके ईश्वर आप कहा, और सकाम पुरुषननें जाके पांव पकरे ऐसी सत्त्वगुणी तमोगुणी रूपवाली मैं माया कहा, मोमें आपमें बडो अंतर है ॥ ३४ ॥ और जो

श्रीशुक उवाच ॥ सैवं भगवता राजन्वैदर्भी परिसान्त्विता ॥ ज्ञात्वा तत्परिहासोक्तिं प्रियत्यागभयं जहौ ॥३२॥ बभाषे ऋषभं पुंसां वीक्षन्ती भगवन्मुखम् ॥ सव्रीडहासरुचिरस्निग्धापाङ्गेन भारत ॥ ३३ ॥ रुक्मिण्युवाच ॥ नन्वेवमेतदरविन्दविलोचनाऽहं यद्वै भवान्भगवतोऽसदृशी विभूम्नः ॥ क्व स्वे म[illegible]न्याभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा ॥ ३४ ॥ सत्यं भयादिव गुणेभ्य उरुक्रमान्तः शेते समुद्र उपलम्भनमात्र आत्मा ॥ नित्यं कदिन्द्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोऽन्धम् ॥ ३५ ॥ त्वत्पादपद्ममकरन्दजुषां मुनीनां वर्त्मास्फुटं नृपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम् ॥ यस्मादलौकिकमिवेहितमीश्वरस्य भूमंस्तवेहितमथो अनु ये भवन्तम् ॥ ३६ ॥

कृष्णने कही कि राजानके भयके मारे समुद्रमे आ[illegible]के रहे हैं ताको उत्तर रुक्मिणी देइ है हे उरुक्रम ! यह सत्य है सत रज तम तीन गुणही राजा हैं मानो उनके भयसेही सागरकी समान अगाध विषय[illegible]े अक्षोभित हृदयमें चैतन्यघन तुम निश्चलता करिके प्रकाशो हो, और जोरावरनते हमने वैर करचो है यह जो तुमने कही सोभी सत्य है क्योंकि [illegible]षयनमें जिनकी इन्द्री लगी है ऐसे पुरुषनने तुमते विरोध करचो है, उनमें तुम्हारी अप्रीति है, और जो कृष्णने कही हमारे राज्य आसन [illegible] है ताको उत्तर रुक्मिणी देइ है कि महाअविवेकको स्थान राज्य आसन है सो तुमारे सेवक छोंडि देइ हैं तुमने छोडचो यामें कहा कहिनो है ॥ ३५ ॥ और जो श्रीकृष्णने कही हमारो मार्ग जानिवेमें नहीं आवे हैं और स्त्रीनके

431

432

आधिनमें नहीं हूं, ताको उत्तर रुक्मिणी देइ है तुम्हारे चरणारविंदके मकरंदको सेवन करनेहारे मुनि हैं, तिनको मार्ग पशुरूप मनुष्योंको प्रकट नहीं होय है, और जानिवेमें नहीं आवे है, तुम्हारो मार्ग जानिवेमें न आवै यामें कहा आश्चर्य है हे व्यापक ! तुम्हारे अनुवर्ती भक्तनकी चेष्टा न्यारी है, तुम्हारी न्यारी है यामें कहा आश्चर्य है ॥ ३६ ॥ और निष्किंचन पुरुषोंको हम प्रिय लगे हैं, और धनिक पुरुष हम दरिद्री होयजांयगे या डरके मारे हमारो भजन नहीं करे है यह श्रीकृष्णने कही ताको उत्तर रुक्मिणी देइ है आपसे भिन्न कुछ नहीं इस कारण तुम निष्किंचन हो दरिद्रतारूपी निष्किंचनता तुममें नहीं बनै है, प्रजानते भेंट लेनेहारे ब्रह्मादिक देवता तुमकूं भेट देइ हैं, और जो तुमने कही हम निष्किंचनजनप्यारे हैं और उनको मैं प्रिय हूं सोभी सत्य है क्योंकि जिनको किंचित्‌भी देहाभिमान नहीं है ऐसे ब्रह्मवेत्ता और ब्रह्मादिकको आप प्यारे हो वे आपको प्यारे है और जो

निष्किञ्चनो ननु भवान्न यतोस्ति किञ्चिद्यस्मै बलिं बलिभुजोऽपि हरन्त्यजाद्याः ॥ न त्वा विदन्त्यसुतृपोऽन्तकमाढ्यतान्धाः प्रेष्ठो भवान्बलिभुजामपि तेऽपि तुभ्यम् ॥ ३७॥ त्वं वै समस्तपुरुषार्थमयः फलात्मा यद्वाञ्छया सुमतयो विसृजन्ति कृत्स्नम् ॥ तेषां विभो समुचितो भवतः समाजः पुंसः स्त्रियाश्च रतयोः सुखदुःखिनोर्न ॥ ३८ ॥ त्वं न्यस्तदण्डमुनिभिर्गदितानुभाव आत्मात्मदश्च जगतामिति मे वृतोऽसि ॥ हित्वा भवद्भ्रुव उदीरितकालवेगध्वस्ताशिषोऽब्जभवनाकपतीन्कुतोऽन्ये ॥ ३९ ॥

आपने कही धनवान हमारा भजन नहीं करते यहभी सत्य है कारण कि धन पात्रताके अभिमानसे अंधे लोग कालस्वरूप आपको नहीं जान्ते इस कारण वे इन्द्रियोंको तृप्त करते हैं आपका भजन नहीं करते ॥ ३७ ॥ जिनके बराबरिको जन्म है तिनको विवाह और मित्रता होय है यह जो श्रीकृष्णने कही ताको उत्तर रुक्मिणी देइ है तुम संपूर्ण पुरुषार्थ और परमानंदरूप हो सुन्दर बुद्धिवारे पुरुष तुम्हारी प्राप्तिके लिये सब वस्तु त्यागि देइ हैं हे प्रभो ! उन पुरुषनको और तुम्हारो सेव्यसेवकभाव है, सुखदुःखसूं व्याकुल परस्पर स्त्री पुरुषके स्वामीसेवकभाव नहीं है ॥ ३८ ॥ और भिखारिनने झूँठी बडाई करी है यह जो श्रीकृष्णने कही ताको उत्तर रुक्मिणी देइहै सबको अभयदान देकर संन्यासी जन मुनिजन आपकी सराहना करते हैं और यह जो आपने कही तुमने विना जाने हमें वरा सो यह ऐसै नहीं है कारण कि आपको जिसके निमित्त सब वस्तु प्रिय लगती है उस जगत्‌के आत्मरूप और

अपना स्वरूप देनेवाले आप हो इससे आपको वरा और भूलके वरा यहभी आपका कहना ठीक नहीं, औरोंकी तौ बातही क्या है ब्रह्मा और इन्द्रादिक देवताओंकोभी कि जिनका आप आपकी भ्रुकुटीसे प्रेरित कालके वेगसे सुखका नाश होयहै यह विचार मैने इन्हैं छोड आपको वरण किया इससे जो आपने मुझपर अविचारताका दोष दिया सो ठीक नहीं॥३९॥अपने अज्ञानकूं दूरि करिके और पुरुषोंकी बड़ाईसे क्रोधित हो श्रीकृष्णकी अज्ञानता रुक्मिणी कहै है, हे गदाग्रज ! तुमने शार्ङ्गधनुष्यके शब्दसे जरासंध आदि राजा भजायके, जैसे सिंह पशुओंकूं भजायके अपनी बलीकूं लाते हैं इसप्रकार आप आपने भागरूप मुझे लावत भये, इससे तीन राजनके भयते हम समुद्रमें आयके रहै हैं यहभी तुम्हारो कहनो नहीं बनै है ॥ ४० ॥ और मेरो भजन करें हैं ते दुःखी होय हैं यामें दुःख कह्यो सोभी नहीं बने हैं यह रुक्मिणी कहे हैं, हे कमलदललोचन ! तुमारे भजनकी इच्छा करिके राजानके

जाड्यं वचस्तव गदाग्रज यस्तु भूपान्विद्राव्य शार्ङ्गनिनदेन जहर्थ मां त्वम् ॥ सिंहो यथा स्वबलिमीश पशून्स्वभागं तेभ्यो भयाद्यदुदधिं शरणं प्रपन्नः ॥ ४० ॥ यद्वाञ्छया नृपशिखामणयोऽङ्गवैन्यजायन्तनाहुषगयादय ऐकपत्यम् ॥ राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमम्बुजाक्ष सीदन्ति तेऽनु प[illegible] न इहास्थिताः किम् ॥ ४१ ॥ काऽन्यं श्रयेत तव पादसरोजगन्धमाघ्राय सन्मुखरितं जनताऽपवर्गम् ॥ लक्ष[illegible]ालय [illegible]विगणय्य गुणालयस्य मर्त्यां सदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः ॥ ४२ ॥ तं त्वानुरूपमभजं जगतामधीशमात्मानमत्र च परत्र च कामपूरम् ॥ स्यान्मे तवाङ्घ्रिशरणं सृतिभिर्भ्रमन्त्या यो वै भजन्तमुपयात्यनृतापवर्गः ॥ ४३ ॥

मुकुटमणी राजा अंग, पृथु भरत, ययाति, और गय इत्यादि राजा चक्रवर्ती राज्यकूं त्यागिके बनकूं जातभये, तुमारे भजन करनेहारे राजाओंकूं कहा दुःख भयो है किंतु सुखही भयो है, तुम्हारे वैकुंठधामकी प्राप्ति भई है ॥ ४१ ॥ और जो कि श्रीकृष्णने कही रुक्मिणी ! और काहू ब[illegible]रीके क्षत्रीका हाथ पकरिलेउ ताको उत्तर रुक्मिणी देइ है साधुओंसे वर्णित जननकूं मोक्षको देनवारो, लक्ष्मी जाको सेवन करै ऐसे गुणनकी खानि तुमारे चरणारविंदकी सूंघिके फेरि त्यागिके मरणधर्मिणी कौन विवेकिनी स्त्री है जो सर्वदा मृत्युके भयवारे पुरुषको सेवन करैगी याही कारण तुमैं भजो है ॥४२॥ हे जगत्के ईश्वर ! आत्मारूप भजन करनवारेनकूं या लोक परलोकमें कामनानके पूरण करनवारे अपने योग्य तुमको मैंने सेवन कियो

है, चाहै अनेक प्रकारकी योनियोंमें मेरा जन्म होय परन्तु उन जन्मों मेंभी मिथ्या संसारके भयका नाश करनेहारे और भक्तोंके आपनानेहारे तुम्हारे चरणौंकी शरण मुझै प्राप्त हो यही प्रार्थना है ॥ ४३॥ श्रीकृष्णने राजानकी बहुत बडाई करी ही तामें ईर्षासहित गारी दैकैं अंगुरी चटकायके रुक्मिणी कहै है हे अखंडरूप ! हे शत्रुनके मारनवारे ! तुमने बनाये राजा घरनमें स्त्रीनके आगे गधानकी तुल्य भारके उठावनवारे,बैलकी समान क्लेश पानेहारे रोजी करिके दुःखित कुत्तानकी नांई स्त्रीयोंके ललकारे खानेहारे बिलावकी नांई हत्या करनेहारे भृत्यनकी तुल्य आधीन रहनेहारे ऐसे राजा जिस स्त्रीके काननमें ब्रह्मा महादेवकी सभामें गाई तुम्हरी कथा नहीं परी है वा स्त्रीके पति होउ ॥ ४४ ॥ और जा स्त्रीने तुमारे चरणारविंदकी सुगंधि नहीं सूंघि है वह मूढ स्त्री जीतेहुएही मृतक पुरुषको पति मान कर भजै जो कि बाहर तौ चर्म रोम नख केश इनते ढको है और

तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वबिडालभृत्याः ॥ यत्कर्णमूलमरिकर्षण नोपयायाद्युष्मत्कथा मृडविरिञ्चसभासु गीता ॥ ४४ ॥ त्वक्श्मश्रुरोमनखकेशपिनद्धमन्तर्मांसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तवातम् ॥ जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढा या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्री ॥ ४५ ॥ अस्त्वम्बुजाक्ष मम ते चरणानुराग आत्मन्रतस्य मयि चानतिरिक्तदृष्टेः ॥ 'यर्ह्यस्य वृद्धय उपात्तरजोऽतिमात्रो मामीक्षसे तदु ह नः परमाऽनुकम्पा ॥ ४६ ॥ नैवालीकमहं मन्ये वचस्ते मधुसूदन ॥ अम्बाया इव हि प्रायः कन्यायाः स्याद्रतिः क्वचित्॥४७॥

भीतर मांस हाड रुधिर कीरा विष्ठा कफ वात पित्तसै भराहै उसे अपनो पति मानिके कौन सेवन करै ॥ ४५ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रजीने कही ही हम घर और देहमें उदासीन हैं ताको उत्तर रुक्मिणी कहै है हे कमलदललोचन ! तुम अपने स्वरूपमें रमण करौ हो और मोमें अशक्त नहीं है दृष्टि जिनकी अर्थात् मेरी चाहना नहीं है तथापि तुम्हारे चरणारविंदमें मेरो स्नेह होउ तब श्रीकृष्णने कही स्नेह भएते तोकूं कहा लाभ होयगो ताको उत्तर देई हैं तुम्हारे चरणारविंदमें अनुराग होनाही बडो लाभ है और जा समय या विश्वके बढायवेके लिये गुणकूं अंगिकार करिके मुझ मायाकी ओर देखोगे वही बडो अनुग्रह है ॥ ४६ ॥ याप्रकार श्रीकृष्णचंद्रने जे जे बाते कही तिनको उत्तर दैके प्रसन्नचित्त हो रुक्मिणी कहे है हे मधुसूदन !

तुमने कही अपनी बराबरीके छत्रीको अभऊं हाथ [illegible] में मिथ्या नहीं मानूंहूं जैसे काशीके राजाकी पुत्री अंबा अम्बिका अम्बालिका इन
तीनों कन्यानमेंते अम्बा कन्याकी शाल्व राजामें जैसी रति भई तैसे मेरी रति तौ तुम्हारेही विषे भई॥४७॥और हे अच्युत! विवाहिता व्यभिचारिणी स्त्री-
के मन नवीन पुरुषोंमें जाते हैं ऐसी बहुत कथा है विवेकी पुरुष ऐसी खोटी स्त्रीनकूं राखेनहीं हैं कदाचित् राखें हैं तो या लोक और परलोकसे भ्रष्ट होय-
है ॥४८॥ अब श्रीकृष्णचंद्र कहै हैं हे राजपुत्री रुक्मिणी! तुम्हारी बात सुनिवेके लिये मैंने ऐसी कही है मेरे वचनको जो जो तुमने उत्तर कह्यो सो सब
सत्य है ॥ ४९ ॥ हे भामिनि हे मंगलरूपिणी! जो जो वस्तुकी तुम चाहना करोहो सो सो मुझमें एकांत भक्ति होनेसै तुमको प्राप्तही हैं हे कल्याणी! मु-

व्यूढायाश्चापि पुंश्चल्या मनोऽभ्येति नवं नवम् ॥ बुधोऽसतीं न बिभृयात्तां बिभ्रदुभयच्युतः ॥ ४८ ॥ श्रीभगवा-
नुवाच ॥ साध्व्येतच्छ्रोतुकामैस्त्वं राजपुत्रि प्रलम्भिता ॥ मयोदितं यदन्वात्थ सर्वं तत्सत्यमेव हि ॥ ४९ ॥ या-
न्यान्कामयसे कामान्मय्यकामाय भामिनि ॥ सन्ति ह्येकान्तभक्तायास्तव कल्याणि नित्यदा ॥ ५० ॥ उप-
लब्धं पतिप्रेम पातिव्रत्यं च तेऽनघे ॥ यद्वाक्यैश्चाल्यमानाया न धीर्मय्यपकर्षिता ॥ ५१ ॥ ये मां भजन्ति दाम्पत्ये
तपसा व्रतचर्यया ॥ कामात्मानोऽपवर्गेशं मोहिता मम मायया ॥ ५२ ॥ मां प्राप्य मानिन्यपवर्गसंपदं वाञ्छन्ति
ये संपद एव तत्पतिम् ॥ ते मन्दभाग्या निरयेऽपि ये नृणां मात्रात्मकत्वान्निरयः सुसंगमः ॥ ५३ ॥

क्ति पर्यन्त तुम्हारे सब मनोरथ प्राप्त रहैंगे ॥ ५० ॥ हे निष्पाप रुक्मिणी! तुमने पतिमें प्रेम पायो और पतिव्रताको धर्म तुमने पायो, वचननकरिके डि-
गाई तथापि तुम्हारी बुद्धि मोमेंसै चलायमान न भई ॥ ५१ ॥ विषयनमें आत्मा और मन लगाये पुरुष तपस्या और ब्रह्मचर्य करिके स्त्री पुरुषके भो-
गके सुखके लिये मेरो भजन करे हैं वे पुरुष मेरि मायाते मोहित हैं अर्थात् भूलि रहे है ॥५२॥ हे भामिनी! मोक्षसहित संपूर्ण संपत्तिनको देनवारे मुझे
पायके जो विषयनकी चाहना करे हैं और मुझे सुखके देनवारेकी चाहना नहीं करै हैं वे पुरुष अभागे हैं विषय सुख तौ मनुष्यनकूं कुत्तानकी सूकरन-
की योनिमें हूं मिले हैं विषयनमें मन रहनेसै नरक होय है ॥ ५३ ॥

हे घरकी महारानी ! संसारकी छुडामनवारी चाहनारहित मनकी वृत्ति तैंने मोंमें लगाई यह भली बात है खोटे अभिप्राय और अपने प्राणनको भरण
पोषण कर दुसेरकूं ठगनेहारी स्त्रीके मनकी वृत्ति मोमें नहीं लगे है ॥ ५४ ॥ हे भामिनी ! सोलह हजार एकसो आठ महलनमें तुम्हारी बराबरी प्यारकी
करनवारी और स्त्री नहीं देखूंहूं, जो तुमने अपने विवाहके समय आये राजौंकूं त्यागिके मेरी बात सुनिके पाती लिखके मेरे पास ब्राह्मण भिजवायो
॥ ५५ ॥ युद्धमें तेरे भैया रुक्मीकूं जीतिलीयो, वाको शिर मूंडिके विरूप कर दियोहो और अनिरुद्धके विवाहमें चौपर खेलत वाकूं मारचो
यह भैयाके मारवेको दुःख हमारे त्यागिवेके भयके मारे सहारचो, और कछु न कही ऐसी तेरी बातनने हम वश करि राखे हैं ॥ ५६ ॥ मेरे

दिष्ट्या गृहैश्वर्यसकृन्मायि त्वया कृतानुवृत्तिर्भवमोचनी खलैः ॥ सुदुष्कराऽसौ सुतरां दुराशिषो ह्यसुम्भराया निकृतिं
जुषः स्त्रियाः ॥ ५४ ॥ न त्वादृशीं प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु पश्यामि मानिनि यया स्वविवाहकाले ॥ प्राप्तान्नृपानविगणय्य
रहोहरो मे प्रस्थापितो द्विज उपश्रुतसत्कथस्य ॥ ५५ ॥ भ्रातुर्विरूपकरणं युधि निर्जितस्य प्रोद्वाहपर्वणि
च तद्वधमक्षगोष्ठ्याम् ॥ दुःखं समुत्थमसहोऽस्मदयोगभीत्या नैवाब्रवीः किमपि तेन वयं जितास्ते ॥ ५६ ॥
दूतस्त्वयाऽऽत्मलभने सुविविक्तमन्त्रः प्रस्थापितो मयि चिरायति शून्यमेतत् ॥ मत्वा जिहास इदमङ्गमनन्ययोग्यं
तिष्ठेत तत्त्वयि वयं प्रतिनन्दयामः ॥ ५७ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एवं सौरतसंलापैर्भगवाञ्जगदीश्वरः ॥ स्वरतो रमया
रेमे नरलोकं विडम्बयन् ॥ ५८ ॥ तथान्यासामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव ॥ आस्थितो गृहमेधीयान्धर्मांल्लोकगुरुर्हरिः
॥ ५९ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्धे कृष्णरुक्मिणीसंवादो नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

बुलायवेको सबसे छिपायके दूतकूं मेरे पास भेज्यो, जब मोकूं आयवेमें विलंब भयो, तब या विश्वकूं शून्यमानिके, और राजा मेरे योग्य नहीं हैं यह
निश्चय करिके देहके त्यागिवेकी इच्छा करतिभई, यह बात तेरे विना कापै बनै है, हम तेरी कहा प्रशंसा करें ॥ ५७ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहै हैं हे
राजन् परीक्षित् ! या प्रकार आत्माराम जगत्के ईश्वर भगवान् श्रीकृष्णचंद्र मनुष्यको अनुकरण करिके हास्यकी बातें करि करिके स्त्रीनके
संग रमण करतभये ॥ ५८ ॥ समर्थ संपूर्ण लोकनके गुरु सबके दुःखके हरनवारे श्रीकृष्णचन्द्र इसी प्रकार और रानीनके महलनमें रहिके

गृहस्थनकेसे धर्म सिखावे हैं ॥ ५९ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां द०उ० कृष्णरुक्मिणीसंवादो नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ अब श्रीशु-
कदे[illegible]जी कहे हैं हे राजन् परीक्षित ! श्रीकृष्णचन्द्रकी एक एक रानी श्रीकृष्णचन्द्रको तुल्य रूप गुणवारे दश दश पुत्रनकूं उत्पन्न करती भई ॥ १ ॥
घरते कहूं बाहिर नही जाय अपने पास रहै ऐसे श्रीकृष्णचन्द्रकूं राजानकी पुत्री देखिके और श्रीकृष्ण आत्माराम हैं या बातकूं नहीं जानिके अपनो
अपनो प्यारो मानति भई ॥ २ ॥ व्यापक श्रीकृष्णचन्द्र भगवान्के कमलकोशकी तुल्य सुकुमार मुख बडी भुजा बडे नेत्र और प्रेमसहित हंसनि
रसभरी चितवनि मनोहर बोलनि इत्यादिकसूं मोहित होय जे स्त्री अपने २ अनेक विलासन करिके पूर्ण श्रीकृष्णचन्द्रको मन मोहित करिवेकूं नहीं

श्रीशुक उवाच ॥ एकैकशस्ताः कृष्णस्य पुत्रान्दश दशाबलाः ॥ अजीजनन्ननवमान्पितुः सर्वात्मसंपदा ॥ १ ॥
ग्रहादनपगं वीक्ष्य राजपुत्र्योऽच्युतं स्थितम् ॥ प्रेष्ठं न्यमंसत स्वं स्वं न तत्तत्त्वविदः स्त्रियः ॥ २ ॥ चार्वब्जकोशवद-
नायतबाहुनेत्रसप्रेमहासरसवीक्षितवल्गुजल्पैः ॥ संमोहिता भगवतो न मनो विजेतुं स्वैर्विभ्रमैः समशकन्वनिता
विभूम्नः ॥ ३ ॥ स्मायावलोकलवदर्शितभावहारि[illegible] मण्डलप्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः ॥ पत्न्य[illegible]तु षोडशसहस्रमनङ्ग-
बाणैर्यस्येन्द्रियं विमथितुं करणैर्न शेकुः ॥ ४ ॥ इत्थ रमापतिमवाप्य पतिं स्त्रियस्ता ब्रह्मादयोऽपि न विदुः पदवीं य-
दीयाम् ॥ भेजुर्मुदाऽविरतमेधितयाऽनु[illegible]सावलोकनवसंगमलालसाद्यम् ॥ ५ ॥ प्रत्युद्गमासनवरार्हणपादशौचता-
म्बूलविश्रमणवीजनगन्धमाल्यैः ॥ केशप्रसारश[illegible]नस्नपनोपहार्यैर्दासीशता अपि विभोर्विदधुः स्म दास्यम् ॥ ६ ॥

समर्थ होतिभई ॥ ३ ॥ गूढ हंसनि पूर्वक कटाक्षनसूं जताये अभिप्रायसे मनके हरनवारे भ्रुकुटीरूप मंडलसे पठाये सुरत संबंधि मंत्रसूं पैने कामदेवके
बाण और जे कामके प्रसिद्ध साधन है तिनकरिके सोलह हजार रानी श्रीकृष्णचन्द्रके मनकूं चलायमान करिवेकूं समर्थ न होती भई ॥ ४ ॥ ब्रह्मादिक
जिनके मार्गकूं नहीं जाने ऐसे लक्ष्मीपति श्रीकृष्णचन्द्रकूं या प्रकार पति पायके यह स्त्री निरंतर बढ्ये आनंदसूं स्नेहभरी हंसनि चितवनि और हास्य
चितवनिपूर्वक नवीन संगम, ता नवीन संगममें बोलना और लाजकू सेवन करतिभई ॥ ५ ॥ एक एक रानीके सन्मुख सौ सौ दासी हाथ जोरे ठाढी
हैं तथापि सन्मुख जायके लिवाय लायवो, आसन विछायवो सुन्दर पूजन करिवो चरण धोइवो वीरा लगामनो, चरणको दाबनो, पंखा करिवो

438

अतर्, अरगजा लगाइवो, पुष्प जढामनो, केशनकूं सुधारिवो, शय्या बिछामनो, स्नान करावनों भेंटको धरिवो इन करिके श्रीकृष्णचन्द्रकी सेवा करतिभई ॥ ६ ॥ दश दशपुत्र वारी श्रीकृष्णकी रानी हैं तिनमें आठ पटरानी प्रथम कहीं हैं तिनके प्रद्युम्न आदि पुत्रोंके नाम तुमसे कहता हूं ॥ ७ ॥
प्रद्युम्न,चारुदेष्ण, सुदेष्ण, बलवान् चारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त; तैसेही भद्रचारु ॥ ८ ॥ चारुचन्द्र, विचारु, चारु ये दशपुत्र श्रीकृष्णचन्द्रसूं रुक्मिणीमें उत्पन्न होतभये ॥ ९ ॥ भानु, सुभानु, स्वर्भानु, प्रभानु, भानुमान्, चन्द्रभानु, बृहद्भानु तैसोही आठवो रतिभानु, ॥ १० ॥ श्रीभानु, प्रतिभानु, ये दश पुत्र सत्यभामाके उत्पन्न होतभये और साम्ब, सुमित्र, पुरुजित्, शतजित्, सहस्रजित, ॥ ११ ॥ विजय, चित्रकेतु, वसुमान्, द्रविड,

तासां या दशपुत्राणां कृष्णस्त्रीणां पुरोदिताः ॥ अष्टौ महिष्यस्तत्पुत्रान्प्रद्युम्नादीन्गृणामि ते ॥ ७ ॥ चारुदेष्णः सुदेष्णश्च
चारुदेहश्च वीर्यवान् ॥ सुचारुश्चारुगुप्तश्च भद्रचारुस्तथापरः ॥ ८ ॥ चारुचन्द्रो विचारुश्च चारुश्च दशमो
हरेः ॥ प्रद्युम्नप्रमुखा जाता रुक्मिण्यां नावमाः पितुः ॥ ९ ॥ भानुः सुभानुः स्वर्भानुः प्रभानुर्भानुमांस्तथा ॥ चन्द्रभानुर्बृहद्भानू
रतिभांनुस्तथाष्टमः ॥ १० ॥ श्रीभानुः प्रतिभानुश्च सत्यभामात्मजा दश ॥ साम्बः सुमित्रः पुरुजिच्छतजिच्च
सहस्रजित् ॥ ११ ॥ विजयश्चित्रकेतुश्च वसुमान्द्रविडः क्रतुः ॥ जाम्बवत्याः सुता ह्येते साम्बाद्याः पितृसंमताः
॥ १२ ॥ वीरश्चन्द्रोऽश्वसेनश्च चित्रगुर्वेगवान् वृषः ॥ आमः शङ्कुर्वसुः श्रीमान्कुन्तिर्नाग्नजितेः सुताः ॥ १३ ॥
श्रुतः कविर्वृषो वीरः सुवाहुर्भद्र एकलः ॥ शान्तिर्दर्शः पूर्णमासः कालिन्द्याः सोमकोऽवरः ॥ १४ ॥ प्रघोषो गात्रवान्सिहो
बलः प्रबल ऊर्ध्वगः ॥ माद्र्याः पुत्रा महाशक्तिः सह ओजोऽपराजितः ॥ १५ ॥

क्रतु, ये साम्बसूं आदि लैके श्रीकृष्णचन्द्रकी तुल्य गुणवारे दश पुत्र जाम्बवतीके होत भये ॥ १२ ॥ वीरचन्द्र, अश्वसेन, चित्र, वेगवान्,
वृष, आम, शंकु, तथा शोभायमान, वसु, और कुंति ये दश नाग्निजितीके पुत्र होत भये ॥ १३ ॥ श्रुत, कवि,वृष, वीर, सुवाहु और भद्र, शांति,दर्श,
पूर्णमास, और इन सबसूं छोटो सोमक ये दशपुत्र कालिंदीके होतभये ॥ १४ ॥ प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊर्ध्वग, महाशक्ति, सह, ओज,
अपराजित, ये दश पुत्र लक्ष्मणाके होतभये ॥ १५ ॥

वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्द्धन, अन्नाद, महाश, पावन, वन्हि, क्षुधि, ये दश मित्रविंदाके पुत्र होतभये ॥ १६ ॥ संग्रामजित्, बृहत्सेन, शूरप्रहरण, अरिजित्, जय, सुभद्र, वाम, आयु, सत्यक, ये दश पुत्र भद्राके उत्पन्न होत भये, श्रीकृष्णचन्द्रकी आठ राणीनके पुत्र कहे अब बलदेवकी राणी रोहिणीके दीप्तिमान् ताम्रतप्तकूं आदि लेके पुत्र होत भये जैसे रोहिणीके पुत्र कहे ऐसेही और सोलह हजार राणीकेभी दश दश पुत्र जानि लीजे ॥ ॥ १७ ॥ हे राजन् परीक्षित ! भोजकटपुरवाले रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीमें प्रद्युम्नजीते बलवान् अनिरुद्ध नाम पुत्र होत भये ॥ १८ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! ये जो श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र और तिनके पुत्र और नाति करोडन होत भये, और श्रीकृष्णते जन्मे पुत्रौंकी सोलह हजार माता होतिभई ॥

वृको हर्षोऽनिलो गृध्रो वर्धनोऽन्नाद एव च ॥ महाशः पावनो वह्निर्मित्रविन्दात्मजाः क्षुधिः ॥ १६ ॥ संग्रामजिद्बृहत्सेनः शूरः प्रहरणोऽरिजित् ॥ जयः सुभद्रो भद्राया वाम आयुश्च सत्यकः ॥ दीप्तिमांस्ताम्रतप्ताद्या रोहिण्यास्तनया हरेः ॥ १७ ॥ प्रद्युम्नाच्चानिरुद्धोऽभूद्रुक्मवत्यां महाबलः ॥ पुत्र्यां तु रुक्मिणो राजन्नाम्ना भोजकटे पुरे ॥ १८ ॥ एतेषां पुत्रपौत्राश्च बभूवुः कोटिशो नृप ॥ मातरः कृष्णजातानां सहस्राणि च षोडश ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ कथं रुक्म्यरिपुत्राय प्रादाद्दुहितरं युधि ॥ कृष्णेन परिभूतस्तं हन्तुं रन्ध्रं प्रतीक्षते ॥ २० ॥ एतदाख्याहि मे विद्वन्द्विषोर्वैवाहिकं मिथः ॥ अनागतमतीतं च वर्तमानमतीन्द्रियम् ॥ विप्रकृष्टं व्यवहितं सम्यक्पश्यन्ति योगिनः ॥ २१ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ वृतः स्वयंवरे साक्षादनङ्गोऽङ्गयुतस्तया ॥ राज्ञः समेतान्निर्जित्य जहारैकरथो युधि ॥ २२ ॥ ॥

॥ १९ ॥ अब राजा परीक्षित् कहे है संग्रामके विषे श्रीकृष्णसे तिरस्कार पाय रुक्मि वैरी श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्नजीकूं अपनी कन्या कैसे विवाहत भयो वह तौ कृष्णके मारिवेको उपाय करे हो, हे विवेकी शुकदेवजी ! शत्रुनको आपसमें विवाह कैसे भयो यह मेरे आगे वर्णन कीजिये ॥ २० ॥ जो कदाचित् कहो कि हम या बातनकूं कहा जाने ताको उत्तर राजा देइ हैं योगीश्वर तौ भूत भविष्य वर्तमान इन्द्रियोंसे अगम्य दूर अट वा ओटकी सब वार्ताको अच्छी प्रकार जानै हैं ॥ २१ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित ! रुक्मीकी पुत्री रुक्मवतीने साक्षात् मूर्तिमान् कामदेवको स्वयंवरमें वर लिया तौ वह युद्धमें इकट्ठे हुए राजाओंको एकर [illegible]थसे जीत उसे हर लेगये ॥ २२ ॥ ॥ ॥

यद्यपि रुक्मी श्रीकृष्णचन्द्रके तिरस्कारके वैरको स्मरण करै है तथापि बहिनको भलो मनाइवेके लिये भांजे प्रद्युम्नकूं अपनी कन्या देतभयो ॥ २३ ॥ श्रीकृष्णकी सब राणीनके एक एक कन्या भई, यह दिखाईवेके लिये बडी राणी रुक्मिणीकी कन्याको विवाह कहै हैं हे राजन् परीक्षित् ! सुन्दरबुद्धि विशाल नेत्रवारी रुक्मिणीकी चारुमती पुत्रीको बलवान् कृतवर्माको पुत्र बली विवाहत भयो ॥ २४ ॥ यद्यपि वैर बंधी रह्यो है तथापि रुक्मी अपनी बहिनिको भलो मनायवेके कारण श्रीकृष्णके नाती अपने दोहिते अनिरुद्धकूं अपनी रोचना नाम नातिनीकूं देत भयो, नातेमें विवाह करनो अधर्म है या बातकूं रुक्मि जानेभी है परंतु स्नेहके पाशसे बन्धकर विवाहि देत भयो ॥ २५ ॥ हे राजन् परीक्षित् ! ता विवाहमें

यद्यप्यनुस्मरन्वैरं रुक्मी कृष्णावमानितः ॥ व्यतरद्भागिनेयाय सुतां कुर्वन्स्वसुः प्रियम् ॥ २३ ॥ रुक्मिण्यास्तनयां राजन्कृतवर्मसुतो बली ॥ उपयेमे विशालाक्षीं कन्यां चारुमतीं किल ॥ २४ ॥ दौहित्रायानिरुद्धाय पौत्रीं रुक्म्यददाद्धरेः ॥ रोचनां बद्धवैरोऽपि स्वसुः प्रियचिकीर्षया ॥ जानन्नधर्मं तद्यौनं स्नेहपाशानुबन्धनः ॥ २५ ॥ तस्मिन्नभ्युदये राजन्रुक्मिणी रामकेशवौ ॥ पुरं भोजकटं जग्मुः साम्बप्रद्युम्नकादयः ॥ २६ ॥ तस्मिन्निवृत्त उद्वाहे कालिङ्गप्रमुखा नृपाः ॥ दृप्तास्ते रुक्मिणं प्रोचुर्बलमक्षैर्विनिर्जय ॥ २७ ॥ अनक्षज्ञो ह्ययं राजन्नपि तद्व्यसनं महत् ॥ इत्युक्तो बलमाहूय तेनाक्षै रुक्म्यदीव्यत ॥ २८ ॥ शतं सहस्रमयुतं रामस्तत्राददे पणम् ॥ तं तु रुक्म्यजयत्तत्र कालिङ्गः प्राहसद्बलम् ॥ दन्तान् संदर्शयन्नुच्चैर्नामृष्यत्तद्धलायुधः ॥ २९ ॥ ॥ ॥

रुक्मिणी श्रीकृष्णचन्द्र बलदेवजी और सांब प्रद्युम्नकूं आदि लैके श्रीकृष्णचन्द्रके पुत्र रुक्मीके भोजकट नाम पुरमें जात भये ॥ २६ ॥ विवाह होय चुक्यो ता पाछे कलिंगदेशके राजाको आदिलै गर्ववंत राजा रुक्मीते बोलत भये पांसेनकरिके बलदेवजीकूं जीत लेउ ॥ २७ ॥ हे राजन् रुक्मी ! यह बलदेव पांसे खेलि नहीं जाने है परंतु याकूं खेलिवेको व्यसन बडो है, याप्रकार सुन्तेही रुक्मी बलदेवको बुलायके तिनके संग पांसेन करिके खेलतभयो ॥ २८ ॥ बलदेवजी सो मोहरनको तापाछे हजार मोहरनको, फेर दशहजार मोहरनको दांव लगावतभये; वह दाव रुक्मी जीतत भयो, तासमय कलिंगदेशको राजा दांतदिखायके बलदेवजीकी बहुत हांसी करतभयो, तब हलआयुधधारी बलदेवजी हांसीकू नहीं सहारत भये॥२९॥

---

१ चौ०-आजु खेल पासेकी सार, यह तुम जानौ कहा गंवार ॥ जुआ युद्ध गति भूपति जाने, ग्वाल गोप गैयन पहचाने ॥ १ ॥

तापीछे रुक्मी लाखमोहरनको दाव लगावतभयो ताकूं बलदेवजी जीते, वासमय कपट करिके मैंनें जीत्यो है या प्रकार रुक्मी कहत भयो ॥ ३० ॥
अमावस पूर्णमासीकूं समुद्रमें जैसे क्षोभ होय या प्रकार क्रोधसैं क्षुभित होय गये और स्वाभाविक अरुणनेत्रवारे बलदेवजी अत्यंत रोष करिके दश-
करोड मोहरनको दांव लगावत भये ॥ ३१ ॥ धर्म्मसैं वह दांव बलदेवजी जीततभये, तब रुक्मी छलकरिके कहत भयो कि मैं जीत्यों ये मेरे पासके
राजा हैं इन्हे बुझिलेउ, या प्रकार रुक्मी और बलदेवजीको विवाद होय रह्यो इतनेमें आकाशवाणी भई धर्मते बलदेवजी दांव जीते हैं रुक्मीको वचन
मिथ्या है ॥ ३२ ॥ ॥ ३३ ॥ तासमय आकाशवाणीको अनादर करिके दुष्ट राजानसे सिखायो विदर्भ देशको राजा रुक्मी बलदेवजीकी हांसी

ततो लक्षं रुक्म्यगृह्लाद्ग्लहं तत्राजयद्बलः ॥ जितवानहमित्याह रुक्मी कैतवमाश्रितः ॥ ३० ॥ मन्युना क्षुभितः श्रीमान्समुद्र इव पर्वणि ॥ जात्यारुणाक्षोऽतिरुषा न्यर्बुदं ग्लहमाददे ॥ ३१ ॥ तं चापि जितवान्रामो धर्मेण च्छलमाश्रितः ॥ रुक्मी जितं मयाऽत्रेमे वदन्तु प्राश्निका इति ॥ ३२ ॥ तदाऽब्रवीन्नभोवाणी बलेनैव जितो ग्लहः ॥ धर्मतो वचनेनैव रुक्मी वदति वै मृषा ॥ ३३ ॥ तामनादृत्य वैदर्भो दुष्टराजन्यचोदितः ॥ सङ्कर्षणं परिहसन्बभाषे कालनोदितः ॥ ३४ ॥ नैवाक्षकोविदा यूयं गोपाला वनगोचराः ॥ अक्षैर्दीव्यन्ति राजानो बाणैश्च न भवादृशः ॥ ३५ ॥ रुक्मिणैवमधिक्षिप्तो राजभिश्चोपहासितः ॥ क्रुद्धः परिघमुद्यम्य जघ्ने तं नृम्णसंसदि ॥ ३६ ॥ कलिङ्गराजं तरसा गृहीत्वा दशमे पदे ॥ दन्तानपातयत्क्रुद्धो योऽहसद्विवृतैर्द्विजैः ॥ ३७ ॥

करत कालको प्रेरयो यह वचन बोलत भयो ॥ ३४ ॥ गौनके चरामनवारे बनवासी तुम पासे नहीं खेलि जानोहो, पासेनसूं और बाणनसूं राजा
खेले हैं तुमसारिखे नहीं खेले हैं ॥ ३५ ॥ या प्रकार रुक्मीने अनादर करयो और राजानने हांसी करी तब तौ बलदेवजी क्रोध करिके परिघ
उठायके मंगलसभामें रुक्मीकूं मारत भये ॥ ३६ ॥ तासमय कलिंग देशको राजा भाजो तब बलरामजीने झपट कर उसे दश कदम
पर पकड लिया और जिन दांतोंको दिखाय उनै हंसी करी थी वह दांत तोड़दिये ॥ ३७ ॥

---

१ चौपाई–करी सगाई वैर न छोडो, हमसैं फेर कलह तुम भांडो । मारा तोहिं अरे अन्याई, भलो बुरो मानै भानाई ॥ १ ॥

बलदेवजीने बेडेसूं मारे याते हाथ जंघा शिरके टूटनैसै रुधिरसूं भीजे और राजा भयभीत होयके भाजत भये ॥ ३८ ॥ हे राजन् परिक्षित् ! रुक्मी सारो मार्‍यो गयो, तासमय रुक्मिणी और बलदेवके डरके मारे श्रीकृष्णचंद्र कछुहू भली बुरी नहीं कहतभये, भली भई यह कहते तौ रुक्मिणी बुरो मानती, बुरी करी यह कहते तौ बलदेवजी बुरो मानते याते चुपही होतभये ॥ ३९ ॥ श्रीकृष्णचन्द्रके आश्रयसेते सिद्ध मनोरथ होय रामसूं आदिलैके यादव नवीन वधूसहित अनिरुद्धकू सुन्दर रथमें बैठायके रुक्मीके भोजकट पुरते द्वारकापुरीमें आवतभये ॥ ४० ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशम० उ० अनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधो नामैकषष्टितमोध्यायः ॥ ६१ ॥ अब राजा परीक्षित् कहै हैं हे शुकदेवजी ! यादवनमें उत्तम अ

अन्ये निर्भिन्नबाहूरुशिरसो रुधिरोक्षिताः ॥ राजानो दुद्रुवुर्भीता बलेन परिघार्दिताः ॥ ३८ ॥ निहते रुक्मिणि श्याले नाब्रवीत्साध्वसाधु वा ॥ रुक्मिणीबलयो राजन् स्नेहभङ्गभयाद्धरिः ॥ ३९ ॥ ततोऽनिरुद्धं सह सूर्यया वरं रथं समारोप्य ययुः कुशस्थलीम् ॥ रामादयो भोजकटाद्दशार्हाः सिद्धाखिलार्था मधुसूदनाश्रयाः ॥ ४० ॥ इति श्रीभागवते म० दशमस्कन्धे उ० अनिरुद्धविवाहे रुक्मिवधो नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ बाणस्य तनयामूषामुपयेमे यदूत्तमः ॥ तत्र युद्धमभूद्धोरं हरिशङ्करयोर्महत् ॥ एतत्सर्वं महायोगिन्समाख्यातुं त्वमर्हसि ॥ १ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बाणः पुत्रशतज्येष्ठो बलेरासीन्महात्मनः ॥ येन वामनरूपाय हरयेऽदायि मेदिनी ॥ २ ॥ तस्यौरसः सुतो बाणः शिवभक्तिरतः सदा ॥ मान्यो वदान्यो धीमांश्च सत्यसन्धो दृढव्रतः ॥ ३ ॥

निरुद्धजी बाणासुरकी कन्या ऊषाकूं विवाहत भये और विवाहमें श्रीकृष्णचन्द्र और महादेवको घोर युद्ध होतभयो सो सम्पूर्ण मेरे सन्मुख कहिवेकूं योग्य हो ॥ १ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहै हैं हे राजन् परीक्षित् ! विष्णुने जब वामनरूप धारण करिके पृथ्वी मांगी तब सम्पूर्ण पृथ्वी जिनने दान करी ॥ २ ॥ ऐसे माहात्मा राजा बलिके सौ पुत्र होत भये, तिनमें ज्येष्ठपुत्र शिवको अत्यंत भक्त सबको मान्य ज्ञानवान् बुद्धिमान् सत्यसंकल्प दृढव्रत बाणासुर नाम करिके होत भयो शोणित नाम रमणीक पुरमें राज्य करतभयो ॥ ३ ॥

ता बाणासुरके शिवजीकी कृपासे सम्पूर्ण देवता टहलुआनकी तुल्य ठाढे रहै एक समय तांडव नृत्यमें हजार हाथोनसूं बाजेनकूं बजाय शिवजीकूं
बाणासुरने प्रसन्न करे तब सब प्राणीनके ईश्वर भक्तवत्सल भगवान् शिवजी बाणासुरकूं वर देवेकी इच्छा करत भये, तब शिवजीते मेरे पुरकी तुम
रक्षा करो यह वर मांगत भयो ॥ ४ ॥ ५ ॥ पराक्रमके दुर्मदसे बाणासुर अपने पास रहनेहारे शिवजीके चरणारविंदकूं सूर्यकेसे तेजकी समान किरी-
टसूं स्पर्श करिके एक समय बोलत भयो ॥ ६ ॥ हे लोकनके गुरू ईश्वर महादेव ! जिनके मनोरथ पूर्ण नहीं हुए हैं तुम उन पुरुषोंके मनोरथ पूर्ण
करनवारे कल्पवृक्षरूप हौ तुमकूं नमस्कार है ॥ ७ ॥ और हे देव ! तुमने हजार भुजा मोकूं दीनी है, इनकूं अबतक केवल बोझही भयो है याते

शोणिताख्यपुरे रम्ये स राज्यमकरोत्पुरा ॥ तस्य शम्भोः प्रसादेन किङ्करा इव तेऽमराः ॥ सहस्रबाहुर्वाद्येन ताण्डवे-
ऽतोषयन्मृडम् ॥४॥ भगवान्सर्वभूतेशः शरण्यो भक्तवत्सलः ॥ वरेण च्छन्दयामास स तं वव्रे पुराधिपम् ॥५॥ स एक-
दाह गिरिशं पार्श्वस्थं वीर्यदुर्मदः ॥ किरीटेनार्कवर्णेन संस्पृशंस्तत्पदाम्बुजम् ॥ ६ ॥ नमस्ये त्वां महादेव लोकानां
गुरुमीश्वरम् ॥ पुंसामपूर्णकामानां कामपूरामराङ्घ्रिपम् ॥ ७ ॥ दोःसहस्रं त्वया दत्तं परं भाराय मेऽभवत् ॥ त्रिलोक्यां
प्रतियोद्धारं न लभे त्वदृते समम् ॥ ८ ॥ कण्डूत्या निभृतैर्दोर्भिर्युयुत्सुर्दिग्गजानहम् ॥ आद्याऽयां चूर्णयन्नद्रीन्भीता-
स्तेऽपि प्रदुद्रुवुः ॥ ९ ॥ तच्छ्रुत्वा भगवान्क्रुद्धः केतुस्ते भज्यते यदा ॥ त्वद्दर्पघ्नं भवेन्मूढ संयुगं मत्समेन ते ॥ १० ॥
इत्युक्तः कुमतिर्हृष्टः स्वगृहं प्राविशन्नृप ॥ प्रतीक्षन्गिरिशादेशं स्ववीर्यनशनं कुधीः ॥ ११ ॥

त्रिलोकीमें तुम्हारे बिना और कोई मोकूं बराबरीको युद्ध करिवेकूं नहीं मिलै है ॥८॥ हे सम्पूर्णके कारण शिवजी ! जब मेरी भुजाओंमें खुजली चली
तौ मै युद्ध करनेको पर्वतनकूं चूर्ण करत दिशानके हाथीनके पास जात भयो, तब मेरे भयके मारे वेभी दिशानकूं छोडिके भाजत भये ॥९॥ या प्रकार
बाणासुरको वचन सुनिके भगवान् शिवजी क्रोध करिके कहतभये हे मूढ ! जा समय तेरी ध्वजा टूटैगी तासमय मेरी बराबरीकेसूं तेरो युद्ध होयगो
और तेरो गर्वभंग होयगो ॥ १० ॥ हे राजन् परीक्षित् ! शिवजीने या प्रकार कही तौ कुबुद्धि बाणासुर अपने घरकूं जातभयो, और अपनो बलबुद्धि
पराक्रमको नाश करनवारी शिवजीकी आज्ञाको पेंडो देखने लगो ॥ ११ ॥

ऊषानाम बाणासुरकी कन्या अपंनी कन्यापनकी अवस्थामें स्वप्नमें प्रद्युम्नजीके पुत्र अनिरुद्धके संग रति पावतीभई, जिन अनिरुद्धकूं प्रथम कभी उसने देखा सुना नहीं था ॥ १२ ॥ पाछे ऊषा तहां अनिरुद्धकूं नहीं देखिके बडी लज्जित होयके हे कांत! तुम कहां गये, या प्रकार पुकारति विह्वल होयके सखीनके बीचमें गिरतिभई ॥ १३ ॥ बाणासुरके मन्त्री कुंभाण्डकी पुत्री चित्ररेखा सखी आश्चर्य मानिके अपनी सखी ऊषासूं पूंछतभई ॥१४॥ हे सुभ्रु! सुन्दर भ्रुकुटीवारी हे ऊषा! तू कौनकूं ढुंढे है और तेरो कैसो मनोरथ है. हे राजाकी पुत्री! तेरो हाथको पकरनवारे पतिकूं अबतक में नहीं देखेहूं पति पति तू कैसे पुकारती है ॥ १५ ॥ या प्रकार चित्ररेखाको वचन सुनिके ऊषा बोलत भई सामरो स्वरूप कमलसे नेत्र, पीताम्बरको पहिरे,

तस्योषा नाम दुहिता स्वप्ने प्राद्युम्निना रतिम् ॥ कन्याऽलभत कान्तेन प्रागदृष्टश्रुतेन च ॥१२॥ सा तत्र तमपश्यन्ती क्वासि कान्तेतिवादिनी ॥ सखीनां मध्य उत्तस्थौ विह्वला व्रीडिता भृशम् ॥ १३ ॥ बाणस्य मन्त्री कुम्भाण्डश्चित्रलेखा च तत्सुता ॥ सख्यपृच्छत्सखीमूषां कौतूहलसमन्विता ॥ १४ ॥ कं त्वं मृगयसे सुभ्रूः कीदृशस्ते मनोरथः ॥ हस्तग्राहं न तेऽद्यापि राजपुत्र्युपलक्षये ॥ १५ ॥ ऊषोवाच ॥ दृष्टः कश्चिन्नरः स्वप्ने श्यामः कमललोचनः ॥ पीतवासा बृहद्बाहुर्योषितां हृदयङ्गमः ॥ १६ ॥ तमहं मृगये कान्तं पाययित्वाऽधरं मधु ॥ क्वापि यातः स्पृहयतीं क्षिप्त्वा मां वृजिनार्णवे ॥ १७ ॥ चित्रलेखोवाच ॥ व्यसनं तेऽपकर्षामि त्रिलोक्यां यदि भाव्यते ॥ तमानेष्ये नरं यस्ते मनोहर्ता तमादिश ॥ १८ ॥ इत्युक्त्वा देवगन्धर्वसिद्धचारणपन्नगान् ॥ दैत्यविद्याधरान्यक्षान्मनुजांश्च तथाऽलिखत् ॥ १९ ॥

बडी भुजा, स्त्रीनकूं मनोहर ऐसो पुरुष स्वप्नमें मैंने देख्यो है ॥ १६ ॥ उस प्रीतमकूं में ढूंढू हूं, अपनो अधरामृत प्यायके मुझ अभिलाषिणीको दुःखके समुद्रमें पटकिके कहूं चल्यो गयो ॥ १७ ॥ यह वचन सुनिके चित्ररेखा बोली हे ऊषा! तेरो दुःख मैं दूरि करूंगी, जा पुरुषने तेरो मन हर्यो है, वह त्रिलोकीमें कहूं होइगो, तौ लै आऊंगी, परन्तु वाय बताय दे ॥ १८ ॥ चित्ररेखा इतनो कहिके देवता गन्धर्व सिद्ध चारण पन्नग इनके चित्र लिखतभई, दैत्य विद्याधर यक्ष मनुष्य इन सबकूं लिखतिभई ॥ १९ ॥

चित्ररेखा मनुष्यनमें यादवनके चित्र लिखतीभई और शूरसेनको चित्र तथा वसुदेवको बलदेवजीको तथा प्रद्युम्नजीको चित्र लिखतीभई जब प्रद्युम्नजीको चित्र ऊषाने देख्यो, तब तौ श्वशुर जानिके लज्जित होतभई ॥ २० ॥ शुकदेवजी कहे हैं हे पृथ्वीपति राजा परीक्षित ! ऊषा अनिरुद्धकूं लिख्यो देखिके लाजसूं नीचेकूं मुख कर मेरे मनको हरनवारो पुरुष यही है ऐसे मुसिक्यायके सखीते कहति भई ॥ २१ ॥ हे परीक्षित्! योगके बलवाली चित्ररेखा उन्हे श्रीकृष्णचन्द्रको नाती जानिके आकाशमार्ग होयके कृष्णपालित द्वारकापुरीमें जातभई ॥२२॥ योगको आश्रय लैके चित्ररेखा द्वारकापुरीमें पलंगके ऊपर सोते अनिरुद्धकूं शोणितपुरमें लायके सखी ऊषाकूं प्यारेकूं दिखावति भई ॥ २३ ॥ सुंदरवर अनिरुद्धकूं देखिके प्रसन्न-

मनुजेषु च सा वृष्णीञ्छूरमानकदुन्दुभिम् ॥ व्यलिखद्रामकृष्णौ च प्रद्युम्नं वीक्ष्य लज्जिता ॥ २० ॥ अनिरुद्धं विलिखितं वीक्ष्योषाऽवाङ्मुखी ह्रिया ॥ सोऽसावसाविति प्राह स्मयमाना महीपते ॥ २१ ॥ चित्रलेखा तमाज्ञाय पौत्रं कृष्णस्य योगिनी ॥ ययौ विहायसा राजन्द्वारकां कृष्णपालिताम् ॥ २२ ॥ तत्र सुप्तं सुपर्यङ्के प्राद्युम्निं योगमास्थिता ॥ गृहीत्वा शोणितपुरं सख्यै प्रियमदर्शयत् ॥ २३ ॥ सा च तं सुन्दरवरं विलोक्य मुदितानना ॥ दुष्प्रेक्षे स्वगृहे पुम्भी रेमे प्राद्युम्निना समम् ॥२४॥ परार्ध्यवासःस्रग्गन्धधूपदीपासनादिभिः ॥ पानभोजनभक्ष्यैश्च वाक्यैः शुश्रूषयार्चितः ॥ २५ ॥ गूढः कन्यापुरे शश्वत्प्रवृद्धस्नेहया तया ॥ नाहर्गणान्स बुबुधे ऊषयाऽपहृतेन्द्रियः ॥ २६ ॥ तां तथा यदुवीरेण भुज्यमानां हतव्रताम् ॥ हेतुभिर्लक्षयाञ्चक्रुराप्रीतां दुरवच्छदैः ॥ २७ ॥

मुख ऊषा पुरुषनके देखिवेमें न आवै ऐसे अपने घरमें अनिरुद्धके संग रमण करतभई ॥ २४ ॥ बडे मोलके वस्त्र माला सुगंधि धूप दीप आसन इत्यादिकनसूं और पीवेकी सामग्री तथा भोजन और भक्षण वचननसूं पूजन करतभई ॥ २५ ॥ ऐसे अनिरुद्धजी कन्याके पुरमें छिपके निरंतर बढ्यो है स्नेह जाको ऐसी ऊषाने हरी हैं इन्द्रिय जिनकी ऐसे अनिरुद्धजी मोहित होइके वास करत कितने रात्र दिन चले जांय है ऐसे नहीं जानतभये ॥ २६ ॥ यादवनमें वीर अनिरुद्धके भोग करनेसे जिसका कन्यापनका व्रत दूर हुआ तब उस अत्यंत प्रसन्न मन ऊषाको गुप्त न रहनेवाले लक्षणौंसै पहरेदारोंने पहचान लिया और आकर बाणासुरसे कहा ॥ २७ ॥

हे राजन् बाणासुर ! कन्याके कुलकूं दोष लगावनवारे कुत्सित तुम्हारी कन्याके चलनकूं हम देखे हैं ॥२८॥ हे समर्थ बाणासुर ! हमने सावधान होयके घरके भीतर होयके घरके भीतर कोई पुरुष उसै न देखसकै या प्रकार रखवारी करी परन्तु कन्याको दोष कहा लगा यह नहीं जानते ॥ २९॥ कन्याके दोष सुन बडो दुःखी होय बाणासुर शीघ्रही कन्याके घरमें जायके यादवनमें उत्तम अनिरुद्धकूं देखतभयो ॥ ३० ॥ कामदेवके पुत्र त्रिभुवनमें एक सुन्दर श्यामस्वरूप पीताम्बरकूं पहिरे कमलसे नेत्र बडी भुजा, काननमें कुंडल और केशकी कांतिसूं और मुसिक्यानिपूर्वक चितवनिसूं शोभायमान मुख ॥ ३१ ॥ सब ओरते मंगलरूप प्यारीके संग पांसे खेलते हैं ता प्यारीके अंगसंगकूं स्तनकी केशर जिसमें लगी ऐसी

भटा आवेदयाञ्चक्रू राजंस्ते दुहितुर्वयम् ॥ विचेष्टितं लक्षयामः कन्यायाः कुलदूषणम् ॥२८॥ अनपायिभिरस्माभिर्गुप्तायाश्च गृहे प्रभो ॥ कन्याया दूषणं पुम्भिर्दुष्प्रेक्षाया न विद्महे ॥२९॥ ततः प्रव्यथितो बाणो दुहितुः श्रुतदूषणः॥ त्वरितः कन्यकागारं प्राप्तोऽद्राक्षीद्यदूद्वहम् ॥ ३० ॥ कामात्मजं तं भुवनैकसुन्दरं श्यामं पिशङ्गाम्बरमम्बुजेक्षणम् ॥ बृहद्भुजं कुण्डलकुन्तलत्विषा स्मितावलोकेन च मण्डिताननम् ॥ ३१ ॥ दीव्यन्तमक्षैः प्रियया॰भिनृम्णया तदङ्गसङ्गस्तनकुङ्कुमस्रजम् ॥ बाह्वोर्दधानं मधुमल्लिकाश्रितां तस्याग्र आसीनमवेक्ष्य विस्मितः ॥ ३२॥ स तं प्रविष्टं वृतमाततायिभिर्भटैरनेकैरवलोक्य माधवः॥ उद्यम्य मौर्वं परिघं व्यवस्थितो यथाऽन्तको दण्डधरो जिघांसया॥३३॥जिघृक्षया तान्परितः प्रसर्पतः शुनो यथा सूकरयूथपोऽहनत्॥ते हन्यमाना भवनाद्विनिर्गता निर्भिन्नमूर्धोरुभुजाः प्रदुद्रुवुः॥३४॥

वसंतऋतुकी चमेलीकी माला पहिरे अनिरुद्धको ऊषाके आगे बैठे देखिके आश्चर्य मानतभयो ॥ ३२ ॥ शत्रुनकूं लिये अनेक प्यादेन सहित आये बाणासुरकूं देखिके मधुवंशोत्पन्न अनिरुद्धजी लोहेको परिघ उठायके मारिवेकेलिये दंडकूं धारण करके कालकी समान ठाढो होतभयो ॥ ३३ ॥ पकारिवेके लिये चारचो ओरते चले आते प्यादौंकूं शूकरनके यूथको पालन करनवारो मुख्य शूकर जैसे कुत्तानकूं मारे है ऐसे मारतभये, मार खाय शिर हाथ पांव टूटनेसे वे प्यादे घरमैंसे निकलकर भागगये ॥ ३४ ॥

राजा बलिको पुत्र बली बाणासुर क्रोध करिके अपनी सैन्याकूं मारतेहुए अनिरुद्धकूं नागफासके रस्सानते बांधतभयो, ता समय अनिरुद्धकूं बंधो देखके
अत्यंत शोक और खेदसूं व्याकुल नेत्रनमें आंसुभर रोवतभई ॥ ३५॥ इतिश्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे अनिरुद्धबन्धनो नाम
द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे भरतवंशोत्पन्न राजा परीक्षित्! अनिरुद्धके देखे विना भैया बंधुनकूं शोच करत वर्षाके
चार महिना वीततभये ॥ १ ॥ ता समय नारदजीसे अनिरुद्धजीके बंधनको कर्म, और बात सब श्रवण करिके श्रीकृष्णचंद्र यादव संग ले बाणासुरके
शोणितपुरकूं जातभये ॥ २ ॥ प्रद्युम्न, युयुधान, गद, सांब, सारण, नंद, उपनंद और भद्र आदि रामकृष्णके आज्ञाकारी मुख्य मुख्य यादव संपूर्ण

तं नागपाशैर्बलिनन्दनो बली घ्नन्तं स्वसैन्यं कुपितो बबन्ध ह ॥ ऊषा भृशं शोकविषादविह्वला बद्धं निशम्या-
श्रुकलाक्ष्यरोदिषीत् ॥ ३५ ॥ इति [illegible]ीभागवते म० दशमस्कन्धो० अनिरुद्धबन्धो नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥
॥ श्रीशुक उवाच ॥ ॥ अपश्यतां चानिरुद्धं तद्बन्धूनां च भारत ॥ चत्वारो वार्षिका मासा व्यतीयुरनुशोचताम् ॥ १ ॥
नारदात्तदुपाकर्ण्य वार्तां बद्धस्य कर्म च ॥ प्रययुः शोणितपुरं वृष्णयः कृष्णदेवताः ॥ २ ॥ प्रद्युम्नो युयुधानश्च गदः सा-
म्बोऽथ सारणः ॥ नन्दोपनन्दभद्राद्या रामकृष्णानुवर्तिनः ॥३॥ अक्षौहिणीभिर्द्वादशभिः समेताः सर्वतो दिशम् ॥ रुरु-
धुर्बाणनगरं समन्तात्सात्वतर्षभाः ॥ ४ ॥ भज्यमानपुरोद्यानप्राकाराट्टालगोपुरम् ॥ प्रेक्षमाणो रुषाविष्टस्तुल्यसैन्यो-
ऽभिनिर्ययौ ॥ ५ ॥ बाणार्थे भगवान्रुद्रः ससुतैः प्रमथैर्वृतः ॥ आरुह्य नन्दिवृषभं युयुधे रामकृष्णयोः ॥६॥ आसीत्सुतु-
मुलं युद्धमद्भुतं रोमहर्षणम् ॥ कृष्णशङ्करयो राजन्प्रद्युम्नगुहयोरपि ॥ ७ ॥

मिलिके बारह अक्षौहिणी सैन्यासूं बाणासुरके पुरकूं चारचो ओरते घेरतभये ॥ ३ ॥ ४ ॥ यादवनसे अपने पुरके बाग परकोटा अटारी दरवाजे टूटे
देखकै क्रोधमें भरिके बारह अक्षौहिणी सैन्या लैके बाणासुर निकसतभयो ॥५॥ बाणासुरके लिये अपने पुत्र स्कंदकूं और बडे गणनकूं संग लैके नांदि-
यापै चढिके रामकृष्णते युद्ध करिवेके लिये भगवान् शिवजी प्राप्त होतभये ॥ ६ ॥ हे राजन् परीक्षित्! श्रीकृष्णचंद्र और शिवजीको बडो भयानक
रोमाञ्च ठाढे होय ऐसे आश्चर्य युद्ध होत भयो, और प्रद्युम्नको स्वामि कार्तिकको युद्ध होत भयो ॥ ७ ॥

कुंभांड और कूपकर्णको युद्ध बलदेवजीके संग भयो श्रीकृष्णके पुत्र सांबको बाणासुरके पुत्रके संग युद्ध होतभयो ॥ ८ ॥ देवतानमें मुख्य ब्रह्मादिक और मुनि, सिद्ध, चारण, गंधर्व, अप्सरा, यक्ष ये सम्पूर्ण विमाननमें बैठिके युद्ध देखिवेकूं आवत भये ॥ ९ ॥ ता समय शंकर महादेवके अनुचर भूत, प्रेत, गुह्यक, डाकिनी, यातुधान, वेताल, विनायक, ॥ १० ॥ प्रेत, मातृ, पिशाच, कूष्मांड, ब्रह्मराक्षस, इन सबकूं शूरवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचंद्र अपने शार्ङ्गधनुष्यमेंसे निकासके पैनी भालके बाणनसूं भजावत भये ॥ ११ ॥ पिनाक नाम धनुषधारी शिवजी श्रीकृष्णचंद्रके ऊपर न्यारे न्यारे शस्त्र चलावतभये, आश्चर्यरहित श्रीकृष्णचंद्र शिवजीकूं बराबरिके शस्त्रनसूं शांति करत भये ॥ १२ ॥ शिवने ब्रह्मास्त्र चलायो ताको ब्रह्मास्त्रते शांत करत भये,

कुम्भाण्डकूपकर्णाभ्यां बलेन सह संयुगः ॥ साम्बस्य बाणपुत्रेण बाणेन सह सात्यकेः ॥ ८ ॥ ब्रह्मादयः सुराधीशा
मुनयः सिद्धचारणाः ॥ गन्धर्वाप्सरसो यक्षा विमानैर्द्रष्टुमागमन् ॥ ९ ॥ शङ्करानुचराञ्छौरिर्भूतप्रमथगुह्यकान् ॥
डाकिनीर्यातुधानांश्च वेतालान्सविनायकान् ॥ १० ॥ प्रेतमातृपिशाचांश्च कूष्माण्डान्ब्रह्मराक्षसान् ॥ द्रावयामास
तीक्ष्णाग्रैः शरैः शार्ङ्गधनुश्च्युतैः ॥ ११ ॥ पृथग्विधानि प्रायुङ्क्त पिनाक्यस्त्राणि शार्ङ्गिणे ॥ प्रत्यस्त्रैः शमयामास
शार्ङ्गपाणिरविस्मितः ॥१२॥ ब्रह्मास्त्रस्य च ब्रह्मास्त्रं वायव्यस्य च पार्वतम् ॥ आग्नेयस्य च पार्जन्यं नैजं पाशुपतस्य
च ॥ १३ ॥ मोहयित्वा तु गिरिशं जृम्भणास्त्रेण जृम्भितम् ॥ बाणस्य पृतनां शौरिर्जघानासिगदेषुभिः ॥ १४ ॥
स्कन्दः प्रद्युम्नबाणौघैरर्द्यमानः समन्ततः ॥ असृग्विमुञ्चन्गात्रेभ्यः शिखिनाऽपाक्रमद्रणात् ॥१५॥

जब वायुदेवताको अस्त्र शिवजीने चलायो, तब श्रीकृष्णचंद्र पर्वत देवताको अस्त्रकूं चलावत भये, तासमय पर्वतसूं रुकिके पवन थमिगयो पश्चात् अग्नि देवताके अस्त्रकूं चलायके शिवजी अग्नि लगावत भये, ता समय श्रीकृष्णचंद्र मेघदेवताके अस्त्रकूं चलायके मेघ वर्षायके अग्निकूं शांत करत भये, फेर शिवजी अपनो पाशुपत अस्त्र चलावत भये, ताकूं श्रीकृष्णचंद्र अपने नारायणास्त्रसूं शांत करतभये ॥ १३ ॥ फेर श्रीकृष्णचंद्रने जृम्भणास्त्र चलायो, तासूं शिवजी जंभाई लेने लगे उन्हें मोहित करिके बाणासुरकी सैन्याकूं तरवार गदा बाणनते मारतभये ॥ १४ ॥ प्रद्युम्नजीके बाणनके समूहनते चारों ओरते पीडित होय स्वामिकार्तिक अंगनमेंते रुधिर बहात वाहन मोर है ताकूं भजायके रणमेंते भाजत भये ॥ १५ ॥

कुंभांड और कूपकर्ण मुसलके मारे पृथ्वीमें गिरतभये, तब स्वामीके मरनेसे उनकी सम्पूर्ण सैना भाजतभई ॥ १६ ॥ अपनी सैन्याकूं जहां तहां बिखरी देखिके बडी असहनतासों बाणासुर संग्राममें सात्यकी यादवकूं छोडिके श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख आवत भयो ॥ १७ ॥ रणमें बडे मदसों बाणासुर पंचशत धनुषकूं एक संग खेचिके एक धनुष्यपै दो दो बाण लगावत भयो ॥ १८ ॥ ता समय भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र बाणासुरके पंचशत धनुषनकूं एक संग अपने धनुषसूं काटतभये, फिर बाणासुरके रथमानकूं घोडानकूं मारिके रथकूं तोरिके जीतको शंख बजावतभये ॥ १९ ॥ ता समय कोटरा नाम बाणासुरकी माता अपने केशनकूं खोलिके नंगी होयके पुत्रके प्राण बचायवेके लिये श्रीकृष्णचन्द्रके सन्मुख ठाढी होतिभई॥

कुम्भाण्डः कूपकर्णश्च पेततुर्मुसलार्दितौ ॥ दुद्रुवुस्तदनीकानि हतनाथानि सर्वतः ॥ १६ ॥ विशीर्यमाणं स्वबलं दृष्ट्वा बाणोऽत्यमर्षणः ॥ कृष्णमभ्यद्रवत्संख्ये रथी हित्वैव सात्यकिम् ॥ १७ ॥ धनूंष्याकृष्य युगपद्बाणः पञ्च शतानि वै ॥ एकैकस्मिञ्छरौ द्वौ द्वौ सन्दधे रणदुर्मदः ॥ १८ ॥ तानि चिच्छेद भगवान्धनूंषि युगपद्धरिः ॥ सारथिं रथमश्वांश्च हत्वा शङ्खमपूरयत् ॥ १९ ॥ तन्माता कोटरा नाम नग्ना मुक्तशिरोरुहा ॥ पुरोऽवतस्थे कृष्णस्य पुत्रप्राणरिरक्षया ॥२०॥ ततस्तिर्यङ्मुखो नग्नामनिरीक्षन्गदाग्रजः ॥ बाणश्च तावद्विरथश्छिन्नधन्वाऽविशत्पुरम् ॥२१॥ विद्राविते भूतगणे ज्वरस्तु त्रिशिरास्त्रिपात् ॥ अभ्यपद्यत दाशार्हं दहन्निव दिशो दश ॥ २२ ॥ अथ नारायणो देवस्तं दृष्ट्वा व्यसृजज्ज्वरम् ॥ माहेश्वरो वैष्णवश्च युयुधाते ज्वरावुभौ ॥ २३ ॥

॥ २० ॥ नंगी स्त्रीकूं शास्त्रमें देखिवो मने है या कारण श्रीकृष्णचन्द्र मुख फेरके ठाढे होतभये, इतनेमें टुट्यो रथ कट्यो धनुष बाणासुर रणमेंते भाजिके पुरमें जातभयो ॥ २१ ॥ भूतनके गण जासमय भाजिगये तब तीन शिर, और तीन पांवको ज्वर दशो दिशानकूं जरावत दाशार्हवंशोत्पन्न श्रीकृष्णचन्द्रके पास आवतभयो ॥ २२ ॥ तब नारायणदेव श्रीकृष्णचन्द्र शिवजीके ज्वरकूं आयो देखिके अपनों शीतज्वर छोडतभये, शिवजीको ज्वर और भगवान्को ज्वर दोनों आपसमें युद्ध करतभये ॥ २३ ॥

विष्णुके शीतज्वरके बलसे पीडाकूं प्राप्तहोय शिवजीको तप्तज्वर रुदन करत भयभीत होयके अपनी रक्षाके अर्थ और कोई निर्भय स्थान न पायके हाथ जोरिके श्रीकृष्णचंद्रकी स्तुति करत भयो ॥२४॥ अब ज्वर कहे है अनंतशक्ति ब्रह्मादिकनके ईश्वर सबके आत्मा, शुद्धचैतन्यघन, विश्वके उत्पत्ति पालन संहार करनवारे तुमकूं नमस्कार करूंहूं, विश्वको उत्पादन पालन संहार ब्रह्मते होय है मोतै नहीं जो ऐसे श्रीकृष्ण कहैं ताको उत्तर ज्वर देइ है वेद जाको वर्णन करैं सो तुमही हौ, सर्वविकार रहित हो याते कहिवेमे नहीं आवो हो ॥ २५ ॥ काल दैव कर्म जीव स्वभाव द्रव्य स्पर्श रूप रस गंध शरीर प्राण अहंकार विकार अर्थात् ग्यारह इंद्रिय और पंच महाभूत अर्थात् पृथ्वी आप तेज वायु आकाश इन तत्त्वनको बनो यह देह जैसे बीजते

माहेश्वरः समाक्रन्दन्वैष्णवेन बलार्दितः ॥ अलब्ध्वाऽभयमन्यत्र भीतो माहेश्वरो ज्वरः ॥ शरणार्थी हृषीकेशं तुष्टाव प्रयताञ्जलिः ॥ २४ ॥ ज्वर उवाच ॥ नमामि त्वाऽनन्तशक्तिं परेशं सर्वात्मानं केवलं ज्ञप्तिमात्रम् ॥ विश्वोत्पत्तिस्थानसंरोधहेतुं यत्तद्ब्रह्म ब्रह्मलिङ्गं प्रशान्तम् ॥ २५ ॥ कालो दैवं कर्म जीवः स्वभावो द्रव्यं क्षेत्रं प्राण आत्मा विकारः ॥ तत्सङ्घातो बीजरोहप्रवाहस्त्वन्मायैषा तन्निषेधं प्रपद्ये ॥ २६ ॥ नानाभावैर्लीलयैवोपपन्नैर्देवान्साधूँल्लोकसेतून्बिभर्षि ॥ हंस्युन्मार्गान्हिंसया वर्तमानाञ्जन्मैतत्ते भारहाराय भूमेः ॥ २७ ॥ ततोऽहं ते तेजसा दुःसहेन शान्तोग्रेणात्युल्बणेन ज्वरेण ॥ तावत्तापो देहिनां तेऽङ्घ्रिमूलं नो सेवेरन्यावदाशानुबद्धाः ॥ ॥ २८ ॥

अंकुर अंकुरतें फेर बीज होय है या प्रकार कर्मनते देह फिर देहते कर्म, फिर कर्मते देह, ऐसे जलकोसो प्रवाह चल्यो जाय है, यही तुम्हारी माया है तुम ताके निषेधके अवधि हो तुम्हारी शरण मैं आयोहूं ॥ २६ ॥ कदाचित् कहौ कि मैं देवकीको पुत्र हौं ऐसो मोमें कैसे बनेहे ताको उत्तर कहै है लीला करिके मत्स्यादिक अवतारनकूं लैके देवतानको पालन करो हो, तथा वर्णाश्रमके धर्मनकूं पालन करो हो और धर्मके करनवारे साधुनको पालन करोहो हिंसा सहित पापमार्गको नाश करौ हौ या कारण पृथ्वीको बोझ उतारिवेके लिये तुम्हारो जन्म है ॥ २७ ॥ शांति करिवेकूं आवै शीतल उग्र अत्यंत भयानक तुम्हारो तेजरूप ज्वरसूं मैं तपायमान भयोहूं देहधारीनकूं तबही तांई ताप है, जबलों आशा बांधिके तुम्हारे चरणके तरुआको सेवन न करैं ॥ २८ ॥

अब श्रीभगवान् कहे हैं हे तीन शिरके ज्वर ! तेरे ऊपर में प्रसन्न भयोहूं, मेरे ज्वरते तेरो भय जात रहो, और जो पुरुष तेरे हमारे संवादकूं कहै वाकूं तू भय मति दीजो ॥ २९ ॥ या प्रकार जब कही तौ माहेश्वर ज्वर श्रीकृष्णचन्द्रकूं नमस्कार करिके जातभायो, पश्चात् बाणासुर रथमें बैठिके श्रीकृष्णचन्द्रते युद्ध करिवेके लिये आवत भयो ॥ ३० ॥ हे राजन् ! हजार भुजानमें अनेक प्रकारके शस्त्रनकूं धारणकर बाणासुर बडो क्रोध करिके चक्रधारी श्रीकृष्णचन्द्रके ऊपर शस्त्रनकूं छोडत भयो ॥ ३१ ॥ निरंतर शस्त्रनकूं चलाते बाणासुरकी भुजानकूं भगवान् श्रीकृष्णचंद्र छुरीकी तुल्य पैनी धारके चक्रसूं जैसे माली वृक्षकूं छांटे है ऐसे छांटतभये ॥ ३२ ॥ बाणासुरकी भुजा कटि गई, तासमय भक्त बाणासुरके ऊपर कृपा

श्रीभगवानुवाच ॥ त्रिशिरस्ते प्रसन्नोऽस्मि व्येतु ते मज्ज्वराद्भयम् ॥ यो नौ स्मरति संवादं तस्य त्वन्न भवेद्भयम् ॥ २९ ॥ इत्युक्त[illegible]च्युतमानम्य गतो माहेश्वरो ज्वरः ॥ बाणस्तु रथमारूढः प्रागाद्योत्स्यञ्जनार्दनम् ॥ ॥ ३० ॥ ततो बाहुसहस्रेण नानायुधधरोऽसुरः ॥ मुमोच परमक्रुद्धो बाणांश्चक्रायुधे नृप ॥ ३१ ॥ तस्याऽस्यतोऽस्त्राण्यसकृच्चक्रेण क्षुरनेमिना ॥ चिच्छेद भगवान्बाहूञ्छाखा इव वनस्पतेः ॥ ३२ ॥ बाहुषु च्छिद्यमानेषु बाणस्य भगवान्भवः ॥ भक्तानुकम्प्युपव्रज्य चक्रायुधमभाषत ॥ ३३ ॥ श्रीरुद्र उवाच ॥ त्वं हि ब्रह्म परं ज्योतिर्गूढं ब्रह्मणि वाङ्मये ॥ यं पश्यन्त्यमलात्मान आकाशमिव केवलम् ॥ ३४ ॥ नाभिर्नभोऽग्निर्मुखमम्बु रेतो द्यौः शीर्षमाशाः श्रुतिरङ्घ्रिरुर्वी ॥ चन्द्रो मनो यस्य दृगर्क आत्मा अहं समुद्रो जठरं भुजेन्द्रः ॥ ३५ ॥

करनहारे भगवान् शिवजी आयके चक्रधारी श्रीकृष्णचन्द्रते बोलत भये ॥ ३३ ॥ अब शिवजी स्तुति करे है हे परब्रह्म ! तुमारे विना जाने यह बाणासुर युद्ध करैंहो यामें आश्चर्य नहिं है या कारण वाणीमय वेदमें तुम छिपे भये परब्रह्म हो, और ज्योति सूर्यादिकनके तुम प्रकाश करनवारे हौ, याते काहूके जानिवेमें नहीं आओहो कदाचित् कहौ तौ कैसे प्रतीत होय है तहां शिवजी कहै हैं, निर्मलमन ऐसे पुरुष आकाशकी तुल्य निर्लेप निर्गुण तुमें देखे हैं ॥ ३४ ॥ निर्गुण ज्ञानकी बात तौ एक और है परन्तु तुम्हारी लीलाको आश्रय ब्रह्मांडभी जानिवेमें नहीं आवै है, जैसे गूलरके फलके भीतरके जीव गूलरके फलकूं नहीं जानैं है, तैसे या अभिप्रायसूं ब्रह्मांडरूप करिके शिवजी स्तुति करे हैं, आकाश

तुमारी नाभि है, अग्नि तुमारो मुख है, जल तुमारो वीर्य है स्वर्ग तुमारो शिर है, दिशा तुमारे कान है पृथ्वी तुमारो चरण है, चन्द्रमा तुमारो मन है, और सूर्य तुमारे नेत्र हैं, में शिव तुमारो आत्मा हूं समुद्र तुमारो उदर है इन्द्र तुमारी भुजा हैं ॥ ३५ ॥ वृक्ष रोम है, मेघ केश हैं, ब्रह्मा बुद्धि है, प्रजापति लिंग है, धर्म हृदय है, लोकनकी कल्पनासे विराट पुरुष तुम हो ॥ ३६ ॥ सो हे अखंडरूप ! यह तुमारो अवतार धर्म्मकी रक्षा करिवेके कारण और जगतके कल्याणके निमित्त है और हम सब लोकपाल आपहीसे रक्षा पाकर सप्तलोकनको पालन करे हैं॥३७॥ जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीन अवस्थोंमें पुरुषके तुम कारण हो,और शुद्ध हौ याहीते अद्वितीय पुरुष हो,और सब विश्वके कारण हो, आप कारण करिके रहित हौ तथापि

रोमाणि यस्यौषधयोम्बुवाहाः केशा विरिञ्चो धिषणा विसर्गः ॥ प्रजापतिर्हृदयं यस्य धर्मः स वै भवान्पुरु-
षो लोककल्पः ॥३६॥ तवावतारोऽयमकुण्ठधामन्धर्मस्य गुप्त्यै जगतो भवाय ॥ वयं च सर्वे भवतानुभावि-
ता विभावयामो भुवनानि सप्त ॥ ३७॥ त्वमेक आद्यः पुरुषोऽद्वितीयस्तुर्यः स्वदृग्घेतुरहेतुरीश ॥ प्रतीयसे-
ऽथापि यथाविकारं स्वमायया सर्वगुणप्रसिद्ध्यै ॥ ३८॥ यथैव सूर्यः पिहितः स्वछायया छायां च रूपाणि
च संचकास्ति ॥ एवं गुणेनापिहितो गुणांस्त्वमात्मप्रदीपो गुणिनश्च भूमन् ॥ ३९॥ यन्मायामोहिताधि-
यः पुत्रदारगृहादिषु ॥ उन्मज्जन्ति निमज्जन्ति प्रसक्ता वृजिनार्णवे ॥ ४० ॥

सम्पूर्ण विषयके प्रकाश करिवेके लिये अपनी माया करिके जैसो जो देह है तामें तैसेही प्रतीत होउ हो ॥ ३८ ॥ जैसे सूर्य अपनी मेघरूपी छायासे ढकाहुआ होनेपरभी बादरनकूं प्रकाशे है और बादरनके बाहिरभी रूपकूं प्रकाशे हैं हे भूमन् ! इसी प्रकार स्वयंप्रकाश आप जीवकी दृष्टिमें अपनें कार्यरूप अहंकारसे ढकेहुए प्रतीत होनेपरभी सत्त्व रज तम गुणरूप उपाधियों और उनके जीवोंकोभी प्रकाशित करते हो ॥ ३९ ॥ मायाकरिके मोहित बुद्धिवारे पुरुष पुत्रस्त्रीगृहादिकनमें अटकिकें दुःखरूपी समुद्रमें उछरे हुवे देवादिक योनिनकूं पामें हैं, यह उछरनो है और वृक्षादिक योनिनकूं पामें हैं यह डूबनो है ॥ ४० ॥

ईश्वरकी दी मनुष्ययोनकूं प्राप्त होयके जिसने इन्द्रिय नहीं जीती और जो पुरुष तुम्हारे चरणको आदर नहीं करे हैं वह पुरुष शौचकरिके योग्य हैं, और आत्माके ठगनवारे हैं ॥४१॥ प्यारे पुत्रादिकनके लिये जो पुरुष प्रिय आत्मा तुमकूं त्यागें हैं वह पुरुष अमृतकूं त्यागिके विषकूं पीवे॥४२॥ मैं शिव, ब्रह्मा, देवता, निर्मल अंतःकरणवारे मुनिभी प्रिय ईश्वर और आत्मरूप आपहीको भजते हैं ॥ ४३ ॥ जगत् के उत्पत्ति पालन नाशके कारण और सबमें समान शांतस्वरूप हितकारी आत्मा ईश्वर अनन्य और कोई बराबरी जिनकी नहीं बडो कोई नहीं जगत्के आत्मा आश्रय देव तुम हौ तिने संसार त्यागिवेके लिये हम भजे हैं ॥ ४४ ॥ हे प्रकाशमान ! यह बाणासुर मोकूं वांछित है, मेरो प्यारो है आज्ञाकारी है, मैंने

देवदत्तमिमं लब्ध्वा नृलोकमजितेन्द्रियः॥ यो नाद्रियेत त्वत्पादौ स शोच्यो ह्यात्मवञ्चकः ॥ ४१ ॥ यस्त्वां विसृजते मर्त्य आत्मानं प्रियदर्शनम् ॥ विपर्ययेन्द्रियार्थार्थं विषमत्त्यमृतं त्यजन् ॥ ४२ ॥ अहं ब्रह्माऽथ विबुधा मुनयश्चामलाशयाः ॥ सर्वात्मना प्रपन्नास्त्वामात्मानं प्रेष्ठमीश्वरम् ॥ ४३ ॥ तं त्वा जगत्स्थित्युदयान्तहेतुं समं प्रशान्तं सुहृदात्मदैवम् ॥ अनन्यमेकं जगदात्मकेतं भवापवर्गाय भजाम देवम् ॥ ४४ ॥ अयं ममेष्टो दयितोऽनुवर्ती मयाऽभयं दत्तममुष्य देव ॥ सम्पाद्यतां तद्भवतः प्रसादो यथा हि ते दैत्यपतौ प्रसादः ॥ ४५ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ यदात्थ भगवंस्त्वं नः करवाम प्रियं तव ॥ भवतो यद्व्यवसितं तन्मे साध्वनुमोदितम् ॥ ४६ ॥ अवध्योऽयं मामाप्येष वैरोचनसुतोऽसुरः ॥ प्रह्लादाय वरो दत्तो न वध्यो मे तवान्वयः ॥ ४७ ॥ दर्पोपशमनायास्य प्रवृक्णा बाहवो मया ॥ सूदितं च बलं भूरि यच्च भारायितं भुवः ॥ ४८ ॥

याकूं अभय दीनों है, याते जैसी तुम्हारी दैत्यनके पति प्रल्हादके ऊपर कृपा है ऐसी यापर कृपा करौ ॥ ४५ ॥ भगवान् कहे हैं हे शिवजी ! तुम हमते कहौहो सो तुमारो प्रिय करेंगे, तुमनें जो निश्चय कऱ्यो सो हमने भले प्रकार मान्यो ॥ ४६ ॥ विरोचनके पुत्र राजा बलिको पुत्र यह बाणासुर है, सो मारिवे योग्य नहीं है काहेते मैंने प्रल्हादको वर दीनो हैं कि तेरे वंशमें जो होयगो ताकूं मैं नहीं मारूंगो ॥ ४७ ॥ गर्व दूरि करिवेके लिये मैंने याकी हजार भुजा काटी है और जो पृथ्वीपै जो बोझ होय रह्यो है सो मैंनें दूरि करिदियो है ॥ ४८ ॥

454

सुरः ॥४९॥ या प्रकार अभय पाय-
कटिवेते चारि भुजा की रहीं वे अजर अमर होंयगी, और वह दैत्य वाणासुर भयरहित तुम्हारे पार्षदनमें मुख्य होयगो ॥४९॥ या प्रकार अभय पाय-
के वाणासुर श्रीकृष्णचन्द्रकूं वारंवार प्रणाम करिके ऊषासहित अनिरुद्धकूं रथमें बैठारि बिदा करतभयो ॥ ५० ॥ अक्षौहिणी सैना संग लिये सुंदर
वस्त्रनसूं शोभायमान स्त्रीसहित अनिरुद्धकूं आगे करिके शिवजीसे अनुमोदन पाय श्रीकृष्णचन्द्र जातभये ॥५१॥ तोरणसहित ध्वजासूं शोभायमान
मार्गमें जहां चौराहेनमें छिरकाव होयरह्यो ऐसी अपनी द्वारावती राजधानीमें पुरवासी सुहृद ब्राह्मणनते सत्कार पाय श्रीकृष्णचन्द्र शंख ढोल नगाडे-

चत्वारोऽस्य भुजाः शिष्टा भविष्यन्त्यजरामराः ॥ पार्षदमुख्यो भवतो न कुतश्चिद्भयोऽसुरः ॥ ४९ ॥ इति लब्ध्वाऽ-
भयं कृष्णं प्रणम्य शिरसाऽसुरः ॥ प्राद्युम्निं रथमारोप्य स वध्वा समुपानयत् ॥ ५०॥ अक्षौहिण्या परिवृतं सुवासःस-
मलंकृतम् ॥ सपत्नीकं पुरस्कृत्य ययौ रुद्रानुमोदितः ॥५१॥ स्वराजधानीं समलंकृतां ध्वजैः सतोरणैरुक्षितमार्गचत्व-
राम् ॥ विवेश शङ्खानकदुन्दुभिस्वनैरभ्युद्यतः पौरसुहृद्द्विजातिभिः ॥ ५२ ॥ य एवं कृष्णविजयं शंकरेण च संयुगम् ॥
संस्मरेत्प्रातरुत्थाय न तस्य स्यात्पराजयः ॥ ५३ ॥ इति श्रीभागवते महापु० दशमस्कन्धोत्तरार्धे त्रिषष्टितमोऽध्यायः
॥ ६३ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ एकदोपवनं राजञ्जग्मुर्यदुकुमारकाः ॥ विहर्तुं साम्बप्रद्युम्नचारुभानुगदादयः ॥ १ ॥ क्री-
डित्वा सुचिरं तत्र विचिन्वन्तः पिपासिताः ॥ जलं निरुदके कूपे ददृशुः सत्त्वमद्भुतम् ॥ २ ॥

नके शब्दसहित प्रवेश करतभये ॥ ५२ ॥ यह श्रीकृष्णचन्द्रकी जीत और श्रीकृष्णचन्द्रको शिवजीसे युद्ध जोपुरुष प्रातः समय उठिके स्मरण करैं-
गे वाकी कभऊ हार नहीं होगी ॥ ५३ ॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धे ऊषाचरित्रवर्णनं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥
॥६३॥ अब श्रीशुकदेवजी कहे हैं हे राजन् परीक्षित् ! सांब, प्रद्युम्न, चारुभानु, गद, इत्यादिक यादवनके पुत्र विहार करिवेके निमित्त बनमें जातभये
॥ १ ॥ ता बनमें बहुत देरतांई क्रीडा करिके प्यासे होय यादवनके पुत्र जलकूं ढूंढत विना जलके कूपमें अद्भुत एक जीव परचो देखतभये ॥ २ ॥

---

१ चौ०–यह संवाद सुनै जो कोय, ज्वरको भय ताको नहिं होय।

करकेंटाके निकासवेको उपाय करत भये ॥ ३ ॥ बालक
पर्वतकी बराबरी करकेंटा देखिके आश्चर्ययुक्त मनसे कृपायुक्त होय यादवनके बालक करकेंटाके निकासवेको उपाय करत भये ॥ ३ ॥ बालक
पर्वतकी बराबरी करकेंटा देखिके आश्चर्ययुक्त मनसे कृपायुक्त होय यादवनके बालक श्रीकृष्णचंद्रते आयके कहतभये ॥ ४ ॥
करकेंटाकूं चामके और सूतके रस्सानसूं बांधिके निकासवेकूं नहीं समर्थ होत भये, तब उत्कण्ठायुक्त बालक श्रीकृष्णचंद्रके
विश्वके करनवारे भगवान् श्रीकृष्णचंद्र तहां आयके करकेंटाकूं देखिके लीलाकरिके वांए हाथते निकासत भये ॥ ५ ॥ उत्तम यश श्रीकृष्णचंद्रके
हाथ लगेते शीघ्रही करकेंटाके रूपकूं त्यागिके तप्तसुवर्णकी तुल्य सुंदर वर्ण अद्भुत आभूषण वस्त्र मालानकूं धारण करें वह देवस्वरूप होतभ-
यो ॥ ६ ॥ मुक्तिके देनवारे श्रीकृष्णचन्द्र ताके करकेंटा होयवेके कारणकूं जानेभी हैं परंतु जननमें विख्यात करिवेके निमित्त पूंछतभये हे वडभा

चर्मजैस्तान्तवैः
कृकलासं गिरिनिभं वीक्ष्य विस्मितमानसाः ॥ तस्य चोद्धरणे यत्नं चक्रुस्ते कृपयान्विताः ॥ ३ ॥
पाशैर्बद्ध्वा पतितमर्भकाः ॥ नाशक्नुवन्समुद्धर्तुं कृष्णायाचख्युरुत्सुकाः ॥ ४ ॥ तत्रागत्यारविन्दाक्षो भगवान्विश्व-
भावनः ॥ वीक्ष्योज्जहार वामेन तं करेण स लीलया ॥ ५ ॥ स उत्तमश्लोककराभिमृष्टो विहाय सद्यः कृकलासरूप-
म् ॥ संतप्तचामीकरचारुवर्णः स्वर्ग्यद्भुतालंकरणाम्बरस्रक् ॥ ६ ॥ पप्रच्छ विद्वानपि तन्निदानं जनेषु विख्यापयि-
तुं मुकुन्दः ॥ कस्त्वं महाभाग वरेण्यरूपो देवोत्तमं त्वां गणयामि नूनम् ॥ ७ ॥ दशामिमां वा कतमेन कर्मणा संप्रा-
पितोऽस्यतदर्हः सुभद्र ॥ आत्मानमाख्याहि विवित्सतां नो यन्मन्यसे नः क्षममत्र वक्तुम् ॥ ८ ॥ श्रीशुक उवाच ॥
इति स्म राजा संपृष्टः कृष्णेनानन्तमूर्तिना ॥ माधवं प्रणिपत्याह किरीटेनार्कवर्चसा ॥ ९ ॥ नृप उवाच ॥
नृगो नाम नरेंद्रोऽहमिक्ष्वाकुतनयः प्रभो ॥ दानिष्वाख्यायमानेषु यदि ते कर्णमस्पृशम् ॥ १० ॥

गी ! श्रेष्ठ सुन्दररूपवारे तुम कौन हो में तुम्है देवतानमें उत्तम देवता निश्चय मानूहूं ॥ ७ ॥ हे मंगलरूप ! य,लायक तू नहीं है कोन कर्मते तोकूं
करकेंटाकी योनि प्राप्त भई जो हमकूं कहने योग्य समझो तौ हमारे आगे अपना वृत्तान्त कहो॥८॥ अब श्रीशुकदेवजी कहै हैं हे राजन् परीक्षित ! अ-
नंतमूर्ति श्रीकृष्णचन्द्रने या प्रकार पूच्छ्यो तब राजा नृग सूर्यकी तुल्य तेजवारे किरीटसूं श्रीकृष्णचन्द्रकूं प्रणाम करिके बोलतभयो ॥९॥ राजा नृग
कहै हैं हे समर्थ ! मैं इक्ष्वाकूको पुत्र नृगनाम राजा हूं, दानी राजनकी बात चलीहोयगी तब मेरो नामहू आपके कानमें परो होयगो ॥ १० ॥

हे नाथ! सब प्राणीनकी बुद्धिके साक्षी तुम हौ सो कहा नहीं जानोहौ कालकरिके तुम्हारा ज्ञान नहीं होता तथापि तुमने बूझी है तौ तुम्हारी आज्ञाते कहूंगो ॥११॥ हे नाथ ! जितनी पृथ्वीकी रेणुका हैं और जितने आकाशमे तारागण हैं तथा जितनी वर्षाकी बूंदे हैं तितनी गौनको मैंने दान करचो है ॥१२॥ दूध देनवारी तरुण अवस्था, शील स्वभाव रूप गुणसे भरी कपिला और नीतिपूर्वक संचय करी सुवर्णसूं सींग रूपेसूं खुर मढे, बछरा संग और वस्त्र माला गहने पहिराय ऐसी गौ मैं देतभयो ॥ १३ ॥ भलेप्रकार शोभायमान गुण शील युक्त दूधबिना दुःखित, कुटुम्बी पाखंडरहित आचारवाले तपस्या करिके प्रसिद्ध, वेदकूं पढानेहारे तरुण अवस्थावाले द्विजनमें श्रेष्ठ ब्राह्मणकूं दान करिके देतभयो ॥ १४ ॥ गौ पृथ्वी सुवर्ण महल घोडा

किं नु तेऽविदितं नाथ सर्वभूतात्मसाक्षिणः ॥ कालेनाव्याहतदृशो वक्ष्येऽथापि तवाज्ञया ॥ ११ ॥ यावन्त्यः सिकता भूमेर्यावन्त्यो दिवि तारकाः ॥ यावन्त्यो वर्षधाराश्च तावतीरददां स्म गाः ॥ १२ ॥ पयस्विनीस्तरुणीः शीलरूपगुणोपपन्नाः कपिला हेमशृङ्गीः ॥ न्यायार्जिता रूप्यखुराः सवत्सा दुकूलमालाभरणा ददावहम् ॥ १३ ॥ स्वलंकृतेभ्यो गुणशीलवद्भ्यः सीदत्कुटुम्बेभ्य ऋतव्रतेभ्यः ॥ तपःश्रुतब्रह्मवदान्यसद्भ्यः प्रादां युवभ्यो द्विजपुङ्गवेभ्यः ॥ १४ ॥ गोभूहिरण्यायतनाश्वहस्तिनः कन्यादासीस्तिलरूप्यशय्याः ॥ वासांसि रत्नानि परिच्छदान्रथानिष्टं च यज्ञैश्चरितं च पूर्तम् ॥ १५ ॥ कस्यचिद्द्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने ॥ संपृक्ताऽविदुषा सा च मया दत्ता द्विजातये ॥ १६ ॥ तां नीयमानां तत्स्वामी दृष्ट्वोवाच ममेति तम् ॥ ममेति प्रतिग्राह्याह नृगो मे दत्तवानिति ॥ १७ ॥

हाथी इत्यादि दान करें, और दासीनसहित कन्यादान करे तिल रूपो शय्या वस्त्र रत्न और आच्छादनके श्रेष्ठ वस्त्र रथनके दान करे, यज्ञ करे, कुआ तलाव बावरी बनवाये ॥ १५ ॥ ऐसो मैं हौ परंतु मोकूं एक संकट आयके प्राप्तभयो सो श्रवण करो, कोई एक अयाचक ब्राह्मणकी गौ भाजिके मेरी गौवनमें मिलिगई, वह गौ मैंने बिना जाने ब्राह्मणकूं दान करिदिनी ॥ १६ ॥ वा गौको मालिक गौकूं लैजाती देखिके यह गौ मेरी है या प्रकार कहतभयो, दूसरो ब्राह्मण कहतभयो कि यह गौ मोकूं राजा नृगने दान करिके दीनी है ॥ १७ ॥

या प्रकार आपसमें विवाद कर, अपने अपने प्रयोजनकूं सिद्धि करनेहारे दोनों ब्राह्मण आयके कहतभये, जाकूं दान करिके दीनीही वह ब्राह्मण कहत भयो, कि राजा ! तूही याको दाता है और जाकी गौ ही ताने कही कहांको दाता है विरानो गौ पुण्य करै है, यह वार्ता श्रवण करिके मोकूं भ्रम भयो ॥ १८ ॥ धर्मसे कष्टित मैंने दोनो ब्राह्मणनकी विनती करी, कि महाराज ! या गौके बदले सुंदर सुंदर एक लक्ष गौ देऊंगो यह गौ दीजिये ॥ १९ ॥ मैं तुमारो दास हूं, मैंने जानी नहीं कि यह गौ तुमारी है, मेरे ऊपर अनुग्रह करो, घोरनरकमें गिरतेहुए मेरी कष्टते रक्षा करो ॥ २० ॥ हे राजन् नृग ! और तेरी लाख गौ मोकूं नहीं अपेक्षित है, जो दान करिके दीनी है सोई लेऊंगो यह कहिके जा ब्राह्मणकूं गौ दीनीही वह गौकूं त्यागिके घरकूं जात

विप्रौ विवदमानौ मामूचतुः स्वार्थसाधकौ ॥ भवान्दाताऽपहर्तेति तच्छ्रुत्वा मेऽभवद्भ्रमः ॥ ॥ १८ ॥ अनुनीतावुभौ विप्रौ धर्मकृच्छ्रगतेन वै ॥ गवां लक्षं प्रकृष्टानां दास्याम्येषा प्रदीयताम् ॥ १९ ॥ भवन्तावनुगृह्णीतां किङ्करस्याविजानतः ॥ समुद्धरत मां कृच्छ्रात्पतन्तं निरयेऽशुचौ ॥ २० ॥ नाहं प्रतीच्छे वै राजन्नित्युक्त्वा स्वाम्यपाक्रमत् ॥ नान्यद्गवामप्ययुतमिच्छामीत्यपरो ययौ ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नन्तरे याम्यैर्दूतैर्नीतो यमक्षयम् ॥ यमेन पृष्टस्तत्राहं देवदेव जगत्पते ॥ २२ ॥ पूर्वं त्वमशुभं भुङ्क्ष उताहो नृपते शुभम् ॥ नान्तं दानस्य धर्मस्य पश्य लोकस्य भास्वतः ॥ २३ ॥ पूर्वं देवाशुभं भुञ्ज इति प्राह पतेति सः ॥ तावदद्राक्षमात्मानं कृकलासं पतन्प्रभो ॥ २४ ॥ ब्रह्मण्यस्य वदान्यस्य तव दासस्य केशव ॥ स्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता भवत्संदर्शनार्थिनः ॥ २५ ॥

भयो ॥ २१ ॥ हे देवतानके देव जगत्के पालन करनवारे ! याके पीछे यमके दूत आयके धर्मराजके पास मोंकूं लेगये तहां धर्मराजानें मोसूं पूछो ॥ २२ ॥ हे राजन् नृग ! तुमारे दान और धर्मको लोकके प्रकाशको मैं अंत नहीं देखूंहूं, परन्तु यत्किंचित् तुम्हारो पाप है, और सम्पूर्ण शुभ है सो प्रथम तुम पाप भोगोगे अथवा शुभ ॥ २३ ॥ या प्रकार धर्मराजने कह्यो तब प्रथम पाप भोगोंगो ऐसे मैंने कह्यो, ताहीं समय धर्म्मराजनें आज्ञा करी कि याकू करकेंटाकी योनिमे गिरायदेउ हे प्रभो ! तब मैं गिरतेही अपनो करकेंटाकों रूप देखतभयो ॥ २४ ॥ हे केशव ! ब्राह्मणको भक्त, दाता, तुमारे दर्शनकी इच्छा अबतक मुझै लगरही है आपकी कृपासे स्मृतिका नाश नहीं हुआ है ॥ २५ ॥

हे प्रभो योगेश्वर ! वेदरूप नेत्र करिकें निर्मल हृदयमें जिनकी भावना करे और इन्द्रियनकी जिनमें पहूंच नहीं, ऐसे परमात्मा तुम अति दुःखनकरिके अंधरी बुद्धिवारे मुझै कैसे प्रत्यक्ष दीखाई दिये यह आश्चर्य है या संसारमें जा पुरुषको संसार छूटनहार होई है ताकूं तुमारो दर्शन होई है॥२६॥ हे देवनके देव हे जगत्के नाथ हे गोविन्द हे पुरुषमें उत्तम हे नारायण हे इन्द्रियनके प्रेरणवारे हे पवित्रयशी श्रीकृष्णचन्द्र हे अखण्डरूप हे अविनाशी ॥२७॥ हे कृष्ण ! हे समर्थ ! अब मैं स्वर्गमें जाऊंहूं मोकूं आज्ञा देउ, जहां कहूं मैं रहूं तहां मेरो चित्त तुमारे चरणनमें लग्योरहै ॥२८॥ जिनतै सब कार्यको जन्म होय है विश्वके कर्त्ता तथापि विकाररहित हो, अनन्त माया शक्तिमान् वासुदेव अर्थात् सब प्राणीनके आश्रय कृष्ण अर्थात् सर्वदा

स त्वं कथं मम विभोऽक्षिपथः परात्मा योगेश्वरैः श्रुतिदृशाऽमलहृद्विभाव्यः ॥ साक्षादधोक्षज उरुव्यसनान्धबुद्धेः स्यान्मेऽनुदृश्य इह यस्य भवापवर्गः ॥ २६ ॥ देवदेव जगन्नाथ गोविन्द पुरुषोत्तम ॥ नारायण हृषीकेश पुण्यश्लोकाच्युताव्यय ॥ २७ ॥ अनुजानीहि मां कृष्ण यान्तं देवगतिं प्रभो ॥ यत्र क्वापि सतश्चेतो भूयान्मे त्वत्पदास्पदम् ॥ २८ ॥ नमस्ते सर्वभावाय ब्रह्मणेऽनन्तशक्तये ॥ कृष्णाय वासुदेवाय योगानां पतये नमः ॥ २९ ॥ इत्युक्त्वा तं परिक्रम्य पादौ स्पृष्ट्वा स्वमौलिना ॥ अनुज्ञातो विमानाग्र्यमारुहत्पश्यतां नृणाम् ॥ ३० ॥ कृष्णः परिजनं प्राह भगवान्देवकीसुतः ॥ ब्रह्मण्यदेवो धर्मात्मा राजन्याननुशिक्षयन् ॥ ३१ ॥ दुर्जरं बत ब्रह्मस्वं भुक्तमग्नेर्मनागपि ॥ तेजीयसोऽपि किमुत राज्ञामीश्वरमानिनाम् ॥ ३२ ॥ नाहं हालाहलं मन्ये विषं यस्य प्रतिक्रिया ॥ ब्रह्मस्वं हि विषं प्रोक्तं नास्य प्रतिविधिर्भुवि ॥ ३३ ॥

आनन्दरूप वेदनके कहे जे यज्ञादिक कर्म, और स्मृतिनके कहे जे कुआ बावरी तलाव इत्यादिक कर्मनके फलदाता तुमकूं नमस्कार है ॥ २९ ॥ राजा नृग या प्रकार कहिये श्रीकृष्णचंद्रकी परिक्रमा दैके अपने मुकुटते चरणकूं स्पर्श करिके आज्ञा लैके सब प्राणीनके देखत विमानमें चढतभयो ॥ ३० ॥ ब्राह्मणनके भक्त धर्मात्मा देवकीके पुत्र श्रीकृष्णचंद्र क्षत्रियनकी शिक्षाके लिये अपने परिवार यादवनसूं कहत भये ॥ ३१ ॥ अग्निकी तुल्य तेजस्वी पुरुषोंकोभी ब्रह्मअंश नहीं पचै है और अपनेकूं ईश्वर माननेहारे राजानकी कौन कथा है ॥ ३२॥ मैं हालाहल विषकूं विष नहीं मानूहूं वाके दूरि करिवेके औषधि है, परंच ब्रह्मअंश विष है या पृथ्वीमें ब्रह्मअंशके दूर करिवेको उपाय नहीं है ॥ ३३ ॥

विष खानवारेकूंही मारे है अग्निभी जलसूं शांति होई है और अग्निके जराइवेमें जड बाकी रहजातहै, परंतु ब्रह्मअंशरूप लकडीमेंते जन्मी अग्नि
मूल सहित कुलकूं भस्म करै है ॥३४॥ शास्त्रनसे निषेध कऱ्यो ब्रह्मअंश भोगेते तीन पीडीनको नाश करै है, जो भोगे ताकूं वाके पुत्रकूं याके पौत्रकूं
और राजाके बलके अथवा छीनके जो ब्रह्मअंशको भोग करै, तौ दश अगिली और दश पीछली एक आप ऐसे इक्कीस पीडीनको नाश करै है यासे

हिनस्ति विषमत्तारं वह्निरद्भिः प्रशाम्यति ॥ कुलं समूलं दहति ब्रह्मस्वारणिपावकः ॥ ३४ ॥ ब्रह्मस्वं दुरनुज्ञातं भु-
क्तं हन्ति त्रिपूरुषम् ॥ प्रसह्य तु बलाद्भुक्तं दश पूर्वान् दशापरान् ॥ ३५ ॥ राजानो राजलक्ष्म्याऽन्धा नात्मपातं
विचक्षते ॥ निरयं येऽभिमन्यन्ते ब्रह्मस्वं साधु बालिशाः ॥ ३६ ॥ गृह्णन्ति यावतः पांसून्क्रन्दतामश्रुबिन्दवः ॥
विप्राणां हृतवृत्तीनां वदान्यानां कुटुम्बिनाम् ॥ ३७ ॥ राजानो राजकुल्याश्च तावतोऽब्दान्निरङ्कुशाः ॥ कुम्भीपाकेषु
पच्यन्ते ब्रह्मदायापहारिणः ॥ ३८ ॥

॥ ॥ ॥

ब्राह्मणको पूजनही[1] करै॥३५॥ जो कि लक्ष्मीसूं आंधरे राजा है ते अपनो नरकमें गिरिवो नहीं देखे हैं जे मूर्ख पुरुष ब्रह्मअंशपै मन चलामें हैं वे पुरुष
नरकमें जायवेकी इच्छा करे हैं ॥३६॥ कुटुंबी उदार जीविका हरजानैसै जो ब्राह्मण रुदन करते हैं तिनके नेत्रनते आंसूनकी बूंद गिरिके जितनी पृथ्वीकी
रे[illegible] भीजै है, तितने वर्ष पर्य्यंत ब्राह्मणके धनके हरनवारे निरंकुश राजा और राजनके दीमान प्रधान टहलुआतै कुम्भीपाक नरकमें पडे हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

---

[1] यासो ब्राह्मणको पूजनही करै–एक राजा परदेसी ब्राह्मणको जो द्वारेपै आवै तौ लाख रुपैया दियो करै एकदरिद्र ब्राह्मणकी स्त्रीने बहुत कह सुनकर अपने पतिको उनके नगरमें भेजा यह चली राजा सिकारखेले आवै है मार्गमें ब्राह्मणसे भेंट भई राजा बोले कहांते आयेहो कहां जाओगे ब्राह्मण न बोले तब राजाने प्रार्थना कर पांव पकड पूछी कहा काम है कहो तौ तब यह बोले हम पंडित हैं काशीजीसै आये हैं इस राजाके मूडपै पन्ही मार लाख रुपैया लेजायगे राजाने कही ब्राह्मण बुरे जो लाख रुपैया लेजाय और पन्ही मारै सो महलोंमे जाय ड्योढीवानसे कही किसी ब्राह्मणकूं भीतर मत आनेदो अब वे पंडित थारी कठोरा लोटा बेंचके खागये पर भीतर न जान पाये तब बगदकै अपने घर जाय समाचार सुनाये यह राजा वैष्णव हा बलभद्र श्रीकृष्णका पूजन करैहा एक दिन बलदेवजी सिंहासन तै गिरपरे देखकै राजा बडा भयभीत हुआ ब्राह्मणोंको बुलाय पूछा क्या उत्पात होगा कोई कुछ कोई कुछ कहनेलगे तब राजानै ढंढोरा पिटवायहु जो समाधान करैगा बडो द्रव्य मिलैगा फिर उन ब्राह्मणकी स्त्रीनै प्रार्थना करी तब वे पूर्व ब्राह्मण राजाके प्रश्नका उत्तर देने आये और बोले राजा तू कुछ मत डरै,कुछ उत्पात न होगा जगन्नाथजी गिरते तौ उत्पात होता बलदेवजी तौ नित्य वारुणी पिये मत्त रहैं है इनके गिरनेका क्या आश्चर्य ? तब राजाने प्रसन्न होयँ लाख रुपैये दिये और कही ब्राह्मणको आनेसे कोई मत रोकियो यह पन्हैया मारकैही धन लैहैं ब्राह्मण विना मेरे प्रश्नका कौन उत्तर देता ॥

460

स्वदत्तां परदत्तां वा ब्रह्मवृत्तिं हरेच्च यः ॥ षष्टिं वर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥ ३९ ॥ न मे ब्रह्मधनं भूयाद्यद्दृष्ट्वाऽल्पायुषो नृपाः ॥ पराजिताश्च्युता राज्याद्भवन्त्युद्वेजिनोऽहयः ॥ ४० ॥ विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः ॥ घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ॥ ४१ ॥ यथाहं प्रणमे विप्राननुकालं समाहितः ॥ तथा नमत यूयं च योऽन्यथा मे स दण्डभाक् ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणार्थो ह्यपहृतो हर्तारं पातयत्यधः ॥ अजानन्तमपि ह्येनं नृगं ब्राह्मणगौरिव ॥ ४३ ॥ एवं विश्राव्य भगवान्मुकुन्दो द्वारकौकसः ॥ पावनः सर्वलोकानां विवेश निजमन्दिरम् ॥ ४४ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्धे नृगोपाख्यानं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ श्रीशुक उवाच ॥ बलभद्रः कुरुश्रेष्ठ भगवान् रथमास्थितः ॥ सुहृद्दिदृक्षुरुत्कण्ठः प्रययौ नन्दगोकुलम् ॥ १ ॥ परिष्वक्तश्चिरोत्कण्ठैर्गोपैर्गोपीभिरेव च ॥ रामोऽभिवाद्य पितरावाशीर्भिरभिनन्दितः ॥ २ ॥

जो पुरुष अपनी दीनी अथवा औरकी दीनी ब्राह्मणकी जीविका हरे वह पुरुष साठिहजार वर्ष पर्यंत विष्ठाको कीरा होय है ॥ ३९ ॥ मेरे घरमें ब्राह्मणको धन मति आओ, जे मनुष्य ब्राह्मणनके धनकी चाहना करे है वे अल्पायु होइ हैं, पराजयकूं प्राप्ति होइहै, और राज्यते भ्रष्ट होयके मनुष्यनकूं भयके देनवारे सर्प होय हैं ॥ ४० ॥ अपराधकूं करै मारतो आवे बहुत गारी देई ऐसे ब्राह्मणतेभी द्रोह मति करो नित्य नित्य नमस्कारही करो ॥४१॥ जैसे सावधान होइके समय समयते ब्राह्मणनकूं मैं नमस्कार करूहूं तैसे तुमहूं नमस्कार करो और कोई मेरी आज्ञाकूं न मानेगो वह पुरुष मुझसै दण्ड पावैगो ॥ ४२ ॥ ब्राह्मणको धन हरनवारेकूं नरकमें डारै हैं, या बातकूं कोई मिथ्या मति मानियो विना जाने नृगराजाने ब्राह्मणकी गौ ब्राह्मणकूं दीनीही तासूं यह जैसे नरकमें गिरचो तैसे ॥ ४३ ॥ समस्त लोकनके पवित्र करनवारे मुकुन्द भगवान् या प्रकार द्वारिकावासीनकूं सुनायके अपने मंदिरमें जात भये ॥ ४४ ॥ इति श्रीमन्महाभा० भा० दश० उ० नृगोपाख्यानं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ अब श्रीशुकदेवजी कहै है हे कुरुवंशीनमें श्रेष्ठ राजा परीक्षित् ! एकसमय इच्छासे भगवान् बलदेवजी रथमें बैठिके सुहृदनके देखिवेके लिये नन्दजीके गोकुलमें जातभये ॥ १ ॥ बहुत दिननते उत्कंठा लगाये गोप गोपी मिलतभये, बलदेवजीने माता पिता नंद यशोदाकूं प्रणाम करी, तब

उनने आशीर्वाद दीने ॥२॥ हे दाशार्हवंशोत्पन्न जगत्के ईश्वर बलदेवजी! छोटे भैया श्रीकृष्णसहित तुम हमारी बहुत दिन पर्यंत रक्षा करौ या प्रकार गोदमें बैठारिके छातीते लगायके नेत्रनमेंते वहे आंशूसूं बलदेवजीकूं भिजोवतभये ॥ ३ ॥ विधिपूर्वक वृद्ध गोपनकूं प्राणाम करिके छोटे गोपनने इनकूं प्रणाम करि इसप्रकार बलदेवजी जैसी जाकी अवस्था और जैसी जाते मित्रता है जैसो जाते संबंध हो ॥ ४ ॥ तैसेही तिनकूं प्राप्ति होयके हास्य और हाथको पकरवो इत्यादिकनसूं मिलिके जब बलरामजी विश्राम लेचुके सुखपूर्वक बैठे और कुशल पूछी ॥ ५ ॥ उस समय गोप कि जिन्हौने कमललोचन श्रीकृष्णचंद्रके निमित्त सब विषय त्याग दिये हैं वे सब बलरामजीके निकट आय चारो ओर बैठ गये और प्रेमसे गद्गद वचन

चिरं नः पाहि दाशार्ह सानुजो जगदीश्वरः ॥ इत्यारोप्याङ्कमालिङ्ग्य नेत्रैः सिषिचतुर्जलैः ॥ ३ ॥ गोपवृद्धांश्च विधिवद्यविष्टैरभिवन्दितः ॥ यथावयो यथासख्यं यथासम्बन्धमात्मनः ॥ ४ ॥ समुपेत्याथ गोपालान्हास्यहस्तग्रहादिभिः ॥ विश्रान्तं सुखमासीनं पप्रच्छुः पर्युपागताः ॥ ५ ॥ पृष्टाश्चानामयं स्वेषु प्रेमगद्गदया गिरा ॥ कृष्णे कमलपत्राक्षे संन्यस्ताखिलराधसः ॥ ६ ॥ कच्चिन्नो बान्धवा राम सर्वे कुशलमासते ॥ कच्चित्स्मरथ नो राम यूयं दारसुतान्विताः ॥७॥ दिष्ट्या कंसो हतः पापो दिष्ट्या मुक्ताः सुहृज्जनाः ॥ निहत्य निर्जित्य रिपून्दिष्ट्या दुर्गं समाश्रिताः ॥ ८ ॥ गोप्यो हसन्त्यो पप्रच्छू रामसंदर्शनादृताः ॥ कच्चिदास्ते सुखं कृष्णः पुरस्त्रीजनवल्लभः ॥ ९ ॥ कच्चित्स्मरति वा बन्धून्पितरं मातरं च सः ॥ अप्यसौ मातरं द्रष्टुं सकृदप्यागमिष्यति ॥ अपि वा स्मरतेऽस्माकमनुसेवां महाभुजः ॥ १० ॥

होय अपने बंधु यादवनके कुशल पूछनेलगे ॥ ६ ॥ राम! सम्पूर्ण हमारे बंधु यादव प्रसन्न हैं, अब तुमारे विवाह भये, तुमारे पुत्र भये तुम कछु हमारी सुधी करौहौ ॥७॥ पापी कंस मरचो यह बडो मंगल भयो, और हमारे सुहृदजन बंदीखानेते छूटे यह बडो मंगल भयो, शत्रुनकू मारिके तुम द्वारकापुरीमें किला बनाइके रहे यह बडो मंगल भयो ॥ ८ रामके दर्शनसे प्रसन्न होय गोपी हंसीके पूछतिभई, पुरके स्त्रीजनकूं प्यार करनवारे कृष्ण सुखी है ॥ ९ ॥ यह कृष्ण कभऊ अपने बंधुनकीभी सुधि करेहै, अपने माताकीभी सुधि करे है, कभऊ अपनी माताकूं एकवार देखनेकूंभी आवैगो बडी भुजावारे श्रीकृष्ण कभऊ हमारी सेवाकीभी सुधि करे है ॥ १० ॥

हे दाशार्हवंशोत्पन्न समर्थ बलदेवजी ! या कृष्णके लिये मातापिता भैया पति पुत्र बहिनि स्वजन ये सब दुःख करिकेभी छोड़े न जाय सो हमनें छोडि दिये ॥ ११ ॥ तिन हमकूं छोडिके स्नेहकूं तोरिके कृष्ण जातभयो, कदाचित् तुम कहो कि जब गयो हो तब क्यों नहीं रोक्यों ताको जवाब देइ है वाके मनको विश्वास आयगयो, तासूं न रोक्यों, वाके वचनको विश्वास तुम करोहो यह बलदेवजी कहैं ताको उत्तर है कि वाके मीठे मीठे वचन स्त्रीनके मनमें कैसे न आमें कहनवारी बहुत हैं याते नाना प्रकारके वचन हैं ॥ १२ ॥ तहां और गोपी कहैं हैं चंचलचित्त कृष्णके वचन विवेकिनी पुरकी

मातरं पितरं भ्रातॄन्पतीन्पुत्रान्स्वसॄरपि ॥ यदर्थेजहिम दाशार्ह दुस्त्यजान्स्वजनान्प्रभो ॥ ११ ॥ ता नः सद्यः परित्यज्य गतः संछिन्नसौहृदः ॥ कथं नु तादृशं स्त्रीभिर्न श्रद्धीयेत भाषितम् ॥ १२ ॥ कथं नु गृह्णन्त्यनवस्थितात्मनो वचः कृतघ्नस्य बुधाः पुरस्त्रियः ॥ गृह्णन्ति वै चित्रकथस्य सुन्दरस्मितावलोकोच्छ्वसितस्मरातुराः ॥ १३ ॥ किं नस्तत्कथया गोप्यः कथाः कथयतापराः ॥ यात्यस्माभिर्विना कालो यदि तस्य तथैव नः ॥ १४ ॥ इति प्रहसितं शौरेर्जल्पितं चारु वीक्षितम् ॥ गतिं प्रेमपरिष्वङ्गं स्मरन्त्यो रुरुदुः स्त्रियः ॥ १५ ॥

स्त्री कैसे सत्य माने हैं, और गोपी कहै है चित्रविचित्र है कथावारे कृष्ण सुंदर मुसिक्यान चितवनिसूं वृद्धिसूं प्राप्त भये कामदेवकूं आतुर होयके सत्य माने है ॥ १३ ॥ और गोपी कहै है हे गोपीयों ! वाकी बातसूं हमें कहा काम है और बात क्यों न कहों, हमारे विना जैसे वाको काल व्यतीत होय है तैसे वाके विना हमारोभी काल व्यतित होय है, वाकूं सुखसूं वीते हैं हमकूं दुःखसूं वीतेहै इतनोही अंतर है ॥ १४ ॥ या प्रकार श्रीकृष्णकी हंसनी बोलनी सुंदर चितवनि पांवनकी चलनि प्रेमपूर्वक आलिंगन इनकी सुधि करिके सब स्त्री रुदन करति भई ॥ १५ ॥

---

१ गोपियें आससे जीये हैं एक लालानै बिलैया पालीही वाको नित्य दूध मलाई खवायोकरैं एक दिन कछु कामको ग्रामांतरमें गये और बिलैयाको डोरीसै खंभमें बांधगये और वाकी सुधि भूल गये और कईदिन लगगये बिलैया भूंखौं मरनै लगी घरमें कहूं दल्लानके कौनेमें एक रुईको गाला धरोहो सो बिलैयानै जान्यो कि यह घीको लादा है सो उछर उछर कै बिलैया वा रुईके गालपै जायपर वह हाथ न आवै अब लियो २ याही आशामें अठारह दिन वीतगये इधर लाला अठारह दिनमें आय कहनें लगे अरे राम बिलाई तौ मरगई होगी ताला खोलकै देखैं तौ अभी जीवै है ज्यौ वाकी डोरी खोली कि वह झपटकै रुईके गालापर गिरी सो वह तौ गालाई हो निरासा जो भई झट बिलैयाके प्राण निकस गये यासे जीमैं आसा मरै निरासा यह सत्य है ॥ २ करि करि सुधि श्रीकृष्णकी, व्याकुल भई ब्रजबाल । कब आवेंगें कृष्णजू, सुखदायक नन्दलाल ॥ कहइ श्याम अति निठुरता, करी हमारे संग । कहा यह दुःख दिखावने, कहां रासरसरंग ॥

/

463

सङ्कर्षणस्ताः कृष्णस्य संदेशैर्हृदयङ्गमैः ॥ सान्त्वयामास भगवान्नानाऽनुनयकोविदः ॥ १६ ॥ द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च ॥ रामः क्षपासु भगवान्गोपीनां रतिमावहन् ॥ १७ ॥ पूर्णचन्द्रकलामृष्टे कौमुदीगन्धवायुना ॥ यमुनोपवने रेमे सेविते स्त्रीगणैर्वृतः ॥ १८॥ वरुणप्रेषिता देवी वारुणी वृक्षकोटरात् ॥ पतन्ती तद्वनं सर्वं स्वगन्धेनाध्यवासयत् ॥ १९ ॥ तं गन्धं मधुधाराया वायुनोपहृतं बलः ॥ आघ्रायोपगतस्तत्र ललनाभिः समं पपौ ॥ २० ॥ उपगीयमानचरितो वनिताभिर्हलायुधः ॥ वनेषु व्यचरत्क्षीबो मदविह्वललोचनः ॥ २१ ॥ स्रग्व्येककुण्डलो मत्तो वैजयन्त्या च मालया ॥ बिभ्रत्स्मितमुखाम्भोजं स्वेदप्रालेयभूषितम् ॥ २२ ॥ स आजुहाव यमुनां जलक्रीडार्थमीश्वरः ॥ निजं वाक्यमनादृत्य मत्त इत्यापगां बलः ॥ अनागतां हलाग्रेण कुपितो विचकर्ष ह ॥ २३ ॥ पापे त्वं मामवज्ञाय यन्नायासि मयाऽऽहुता ॥ नेष्ये त्वां लाङ्गलाग्रेण शतधा कामचारिणीम् ॥ २४ ॥

अनेक प्रकार समझायवेमें निपुण भगवान् संकर्षण मनोहर श्रीकृष्णके संदेशेकूं कहिके समझावत भये ॥ १६ ॥ ता व्रजमें भगवान् श्रीबलदेवजी रात्रिनमें गोपीनकूं आनन्द देत चैत्र वैशाख दोमहीना पर्यंत वास करतभये ॥ १७ ॥ पूर्णचन्द्रमाकी कला करिके शोभायमान कुमोदनीनकी सुगंधियुक्त पवन जहां आवै ऐसे यमुनाजीके बागमें स्त्रीनकूं संग लैके रमण करतभये ॥ १८ ॥ उस समय वरुणकी भेजी वारुणी मदिरा वृक्षनकी खोतरीनमेंते गि[illegible] समस्त बनकूं अपनी गंधते सुगंधित करतभई ॥ १९ ॥ पवनसे प्राप्त मदिराकी धारकी सुगंधि सूंघिके बलदेवजी तहां आयके स्त्रीनकूं संग लै मादरापान करतभये ॥ २० ॥ स्त्री जिनके चरित्र गाय रहीं और हल शस्त्रके धारण करनहारे मतवारे अमलसे विह्वल नेत्र होय बलदेवजी वनमें विचरत भये ॥२१॥ बनमाला और एक कानमें कुंडल पहिरे, मतवारे, वैजयंती मालाकूं पहिरे, तासूं शोभायमान पसीनाके बिंदुन करिके शोभायमान मंद मंद हास्ययुक्त कमलरूप मुख धारण करे ॥ २२ ॥ जलक्रीडा करिवेके लिये समर्थ बलदेवजी यमुनाकूं बुलावत भये यह मतवारे हैं या कारणते बलदेवजीके वचनको अनादर करिके यमुना नहीं आवतभई तब क्रोध करिके हलके अग्रभागसूं खेंचत भये ॥ २३ ॥ और बोले हे पापिनी ! मैंने बुलाया और तू नहीं आई इस कारण स्वच्छंद फिरनेहारी तुझको हलके अग्रभागसै में खंडित करदूंगा ॥ २४ ॥

हे राजन् ! या प्रकार डराई यमुना भयभीत और चकित होयके चरणनमें गिरकै यदुनन्दन बलदेवजीसूं बोलतभई ॥२५॥ हे राम हे राम हे महाबाहो ! तुमारे पराक्रमकूं मै नहीं जानूं हूं, जिन तुमारे एक अंश शेषजीने समस्त पृथ्वीकूं सहस्र फणनमेंते एक फणपै धारण करि राख्यो है ॥ २६ ॥ हे भगवन् ! तुमारे श्रेष्ठ प्रभावकूं नहीं जानेही अब शरण आई हूं हे विश्वके आत्मा भक्तनपै हितके करनवारे मुझै छोडिवेकूं योग्य हो ॥ २७ ॥ इस प्रकारसै प्रार्थना करी तब भगवान् बलदेवजी यमुनाकूं छोडि देतभये, जैसे हाथी हथिनीनके संग विहार करें ऐसे यमुनामें गोपीनके संग विहार करतभये ॥ २८ ॥ इच्छापूर्वक विहार करिके जलमेंते निकसे बलदेवजीकूं लक्ष्मी नीलाम्बरीकी धोती उपरना देत भई, बडे मोलके आभूषण और सुंदर माला देत भई ॥ २९ ॥ नीलाम्बरकी धोती और नीलाम्बरकेही उपरना और सुवर्णकी माला पहिरिके भले प्रकार शोभा मान चंदन लगाये बलदेवजी इन्द्रके हाथीकी समान शोभायमान होत भये ॥ ३० हे राजन् परीक्षित् ! अबपर्यंतभी यमुनाजी खींचीहुई दिखाई देइ है, अनंतपराक्रम बलदेवजीके पराक्रमकूं यमुनाजी जतावें हैं ॥३१॥ व्रजकी स्त्रीनके संग विलास करिके चलायमान चित बलदेवजीकूं ब्रजमें रमण करत एक रातिकी समान सम्पूर्ण राति वीतत भई ॥३२॥ इति श्रीमन्महाभागवतभाषाटीकायां दशमस्कन्धे उत्तरार्धें बलदेवकृतयमुनाऽऽकर्षणं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः॥६५॥

एवं निर्भर्त्सिता भीता यमुना यदुनन्दनम् ॥ उवाच चकिता वाचं पतिता पादयोर्नृप ॥ २५ ॥ राम राम महाबाहो न जाने तव विक्रमम् ॥ यस्यैकांशेन विधृता जगती जगतः पते ॥ २६ ॥ परं भावं भगवतो भगवान्मामजानतीम् ॥ मोक्तुमर्हसि विश्वात्मन्प्रपन्नां भक्तवत्सल ॥ २७ ॥ ततो व्यमुञ्चद्यमुनां याचितो भगवान्बलः ॥ विजगाह जलं स्त्रीभिः करेणुभिरिवेभराट् ॥ २८ ॥ कामं विहृत्य सलिलादुत्तीर्णायासिताम्बरे ॥ भूषणानि महार्हाणि ददौ कान्तिः शुभां स्रजम् ॥२९॥ वसित्वा वाससी नीले मालामामुच्य काञ्चनीम् ॥ रेजे स्वलंकृतो लिप्तो माहेन्द्र इव वारणः ॥ ३० ॥ अद्यापि दृश्यते राजन्यमुना कृष्टवर्त्मना ॥ बलस्यानन्तवीर्यस्य वीर्यं सूचयतीव हि ॥ ३१ ॥ एवं सर्वा निशा याता एकेव चरतो व्रजे ॥ रामस्याक्षिप्तचित्तस्य माधुर्यैर्व्रजयोषिताम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीभागवते महापुराणे दशमस्कन्धोत्तरार्धें बलदेवविजये यमुनाकर्षणं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

466

॥इति भाषाटीकायुते श्रीमद्भागवते दशमस्कन्धः समाप्तः॥

॥ श्रीभागवतस्थवृत्तलक्षणानि उवाचपरिगणनं ग्रन्थसंख्यागणना च ॥

॥ श्रीहरिः ॥ द्रुतविलंबितमाह नभौ भरौ ० ॥ निगमकल्पतरोः० ॥ जयजय जह्यजामजित० ॥ यह वेदस्तुतिमें नर्दटक छंद है ॥ ताकौ लक्षण॥यदि भवतो नजौ भजजला गुरुर्नर्दटकं ॥ वामबाहुकृतवामकपोलो० ॥ इहां युगलगीतमें स्वागता छंद है ॥ तस्य लक्षणं ॥ स्वागता रतभगैर्गुरुणा च ॥ जन्माद्यस्य यतो० ॥ यह शार्दूलविक्रीडित छंद है ॥ तस्य ल० ॥ सूर्याश्वैर्यदि सः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितं ॥ नृपाजिकांचनशिबिकाभिरच्युतं ०॥ यह रुचिरा छंद है ॥ तस्य लक्षणं ॥ जभौ सजौ गिति रुचिरा चतुर्ग्रहैः ॥ ॥ चतुर्थमें दक्षयज्ञकी स्तुतिमें ॥ ॥ सदस्या ऊचुः ॥ उत्पत्त्यध्वन्यशरण उरुक्लेशदुर्गेऽन्तकोग्र ॥ यह मंदाक्रांता छंदहै ॥ तस्य लक्षणं ॥ मंदाक्रांतांबुधिरसनगैर्मोभनौ तौगयुग्मं ॥ ॥ रुद्रउवाच ॥ तव वरद वराहा ॥ यह मालिनी छंदहै ॥ तल्लक्षणं ॥ ननमयययुतेयं मालिनी भोगिलोकैः ॥ ॥ पत्न्यऊचुः ॥ यज्ञोयं तव यजनाय० ॥ यह प्रहर्षिणी छंदहै ॥ तल्लक्षणं॥आशाभिर्मनजरगाः प्रहर्षणीयं ॥ सिद्धाऊचुः ॥ अयं त्वत्कथामृष्टपीयूषनद्यां ॥ यह भुजंगप्रयातछंदहै ॥ तल्लक्षणं ॥ भुजंगप्रयातं चतुर्भिर्यकारैः ॥ यजमान्युवाच ॥ स्वागतं ते प्रसीदेश तुभ्यं नमः ॥ यह स्रग्विणी छंदहै ॥ तल्लक्षणं ॥ कीर्तितैषा चतूरेफका स्रग्विणी ॥ लोकपालाऊचुः ॥ दृष्टः किंनो दृग्भिरसद्ग्रहैस्त्वं ॥ यह वातोर्म्मी छंदहै ॥ तल्लक्षणं॥ वातोर्म्मीयं गदिताम्भौतगोग ०॥ ब्राह्मणाऊचुः॥त्वंक्रतुस्त्वंहवि०॥ यहभी स्रग्विणीछंदहै ॥ योगेश्वराऊचुः ॥ जगदुद्भवस्थितिलयेषु ॥ यह मंजुभाषिणी छंदहै ॥ तल्लक्षणं ॥ सजसा जगौ च यदि मंजुभाषिणी ॥ गंधर्वाप्सरसऊचुः ॥ अंशांशास्ते देवमरीच्यादयएते ॥ यह मत्तमयूर छंदहै ॥ तल्लक्षणं ॥ वेदैरंध्रैर्मांतयसागा मत्तमयूरः ॥ सप्तममें प्रल्हादचरित्र देवतानिकी स्तुतिमें ॥ चारणाऊचुः ॥ हरेतवांघ्रिपंकजं ॥ यह प्रमाणिका छंदहै॥ तल्लक्षणं॥ प्रमाणिका जरौलगौ॥तीर्थचक्रे नृपाणां यदजनियदुषु० ॥ यह स्रग्धरा छंदहै ॥ ताकौ लक्षण ॥ म्रभ्नैर्यानां त्रयेण त्रिमुनियतियुता स्रग्धरा कीर्तितेयं ॥ इति मतिरुपकल्पिता वितृष्णा ॥ यह भीष्मजीकी स्तुति ॥ पुष्पिताग्रा छंदहै ॥ ताकौ लक्षण ॥ अयुजि नयुगरेफतोयकारोयुजितु नजौजरगाश्च पुष्पिताग्रा ॥ नायं देहो देहभाजां नृलोके ॥ यह शालिनी छंदहै ॥ तल्लक्षणं॥ मातौगौचेच्छालिनीवेदलोके ॥ इति छंदांसि ॥ अथ उवाच ॥ प्रथम स्कंधमै ॥ वेदव्यास ॥३॥ सूत ॥३३॥ ऋषय ॥२॥ शौनक ॥६॥नारद ॥ ३ ॥ अर्जुन॥१॥ भगवान् ॥२॥ कुंतीउवाच ॥ १ ॥ भीष्मउवाच ॥१॥ राजोवाच ॥३॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥१ ॥ युधिष्ठिरउ० ॥ ४ ॥ संजय०॥ १॥ धरण्युवा० ॥ १ ॥ धर्मउ० ॥१॥ प्रथम स्कंधमै सब उवाच६३ हैं ॥ अथ द्वितीयस्कंधे ॥ शुकउ० ॥८॥ राजोवा० ॥३॥ शौनकउ०॥२॥ सूतउ०॥४॥नारदउ० ॥ १ ॥ ब्रह्माउ० ॥ ४ ॥ भगवानुउ० ॥ २ ॥ द्वितीयस्कंधमै सब उवाच२४ है ॥ अथ तृतीयस्कंधे ॥ शुक ॥ १४ ॥ राजो ॥ २ ॥ सूत ॥६॥ विदुर

॥११॥ उद्धव ३ भगवान् २० मैत्रेय ४२ शौनक २ कुमारा१देवा २ ऋषिरु४ब्रह्मो८मनु२ऋषय२दिति३कश्यप२मुनय१देवहूती७जीव१॥तृतीयस्कंधमें सब उवाच१३४है ॥ अथ चतुर्थस्कंधे ॥मैत्रेय६६विदुर९शुक३अत्रि१देवा२सती १ ऋषिरु१भगवान्६देवी१ब्रह्मा३दक्ष २महादेव१राजो९सूत २ ऋत्विज१सदस्या१रुद्र३भृगु१इंद्र१पत्न्य१ऋषय२सिद्धा१यजमानी१लोकपाल१योगेश्वर १ अग्नि१ब्राह्मण १पृथ्वी १ देव्य १ राम२प्रचेतस२सुरुची१ नारद१ध्रुव ३ मुनय २ मनु १धनद१सुनंदनंदा१अंग२सदसस्पतय१वेन१पृथु ४ प्रजा१धरा१सनत्कुमार१चतुर्थस्कंधमै सब उवाच१९९है॥अथपंचमस्कंधे॥राजो६शुक२२ब्रह्मो१भगवान्२ऋषभदेव३ ऋषिरु४सहो १ ब्राह्मण ३ रहुगण १ भद्रश्रवस १पंचमस्कंधमै ४२ है॥अथ षष्ठस्कंधे॥राजो॥ १० शुक ३९ बादरायणि ६ विष्णुदूता२ऋषिरु३ब्रह्मो१विश्वरूप१देवा३यम१सूत ३ प्रजापति१ भगवान ३ दक्ष१वृत्र १इंद्र१परीक्षित १ चित्रकेतु४अंगिरा२पार्वती१दिति २कश्यप२नारद२जीव १षष्ठस्कंधमै सब९२है॥अथ सप्तमस्कंधे॥राजो २ शुक३नारद २८ युधिष्ठिर६ऋषी १ हिरण्यकशिपु९यम२ प्रल्हाद८ब्रह्मो४गुरु१ दैत्यपुत्रा१इंद्र२रुद्र १विद्याधर१सिद्धा१पितर१ऋषय१नागा१मनव १ प्रजापतय १गंधर्वा१चारणा १ किंपुरुषा १ वैतालिका १ किन्नरा१विष्णुपार्षदा१भगवान्४ब्राह्मण१॥सप्तमस्कंधमें सब८२है॥अथ अष्टमस्कंध॥राजो७ऋषि २ मनु१शुक ४९ सूत ३ गजेंद्र १ गुरु १ भगवान् १२ ब्रह्मो ४ प्रजापति१ शिव २ बलि ६ विंध्यावलि१ नारद १ बादरायणि १ अदिति ३ कश्यप १ प्रल्हाद १ शुक्र १ ॥अष्टमस्कंधमें९९है॥ नवमस्कंधमें ॥ राजो ८ शुक २१ सूत १ ब्रह्मा १ शंकर १ भगवान् २ बादरायणि ४ अंबरीष १ दुर्वासा १ अंशुमान् १ ब्राह्मण १ देवा१पुरूरवा १ उर्वशी २ ययाति १ यदु १ पुरु १ शकुंतला १ दुष्यंत १ नवमस्कंधमै सब ६१ है॥अथ दशमस्कंधपूर्वार्द्धे ॥ राजो १० शुक ९३ सूत ३ वसुदेव ९ देवकी १ भगवान्१९नंद ३ नंदादयऊ१ गर्ग २ नारद १ ब्रह्म १ नागपत्न्य १ काली१ ऋषि २ गोपाऊ १ यज्ञपत्न्य १ इंद्र १ सुरभि १ बादरायणि ९ वरुण १ गोप्यऊ ६ सर्प१अक्रूर ५ सैरंध्री१ चाणूर १ गुरु १ समुद्र १ उद्धव २ धृतराष्ट्र १ पूर्वार्द्धमै सब १६८ है ॥अथ उत्तरार्द्धे ॥ शुक ७३ भगवान् २९ राजो १४ मुचुकुंद २ बादरायणि१२ रुक्मिणी ३ ब्राह्मण ३ रति १ युधिष्ठिर ३ कुंति१वसुदेव ४द्रौपदी १ सत्यभामा १ जांबवती १ भद्रा१मित्रविंदा १ लक्ष्मणा१कालिंदी २ महिष्य२मुनय १ सूत ३ देवकी १ बलि १ श्रुतदेव १भूमि १ उषा१चित्रलेखा १ ज्वर १ रुद्र १ नृग१नारद ९ ऋषि ४ ऋषय ३ दूत १ उद्धव १ राजन् १ सारथि १ अर्जुन१परीक्षित१ सनंदन १ श्रुतयऊ१॥उत्तरार्द्धमें सब१९०है ॥इति दशमः ॥अथ एकादशस्कंधे॥ बादरायणि २ राजो ७शुक १३ वसुदेव १ नारद ३ निमि ४ कवि १ हरि १ अंतरिक्ष १ प्रबुद्ध १ पिप्पलायन १ आविर्होत्र १ द्रुमिल १ चमस १

करभाजन १ देवाऊ १ ब्रह्मा १ भगवान् ४४ उद्धव २३ यदु १ ब्राह्मण४पिंगला १ सनकादय १ ऋषि १द्विज १ ऐल १॥ एकादशमें सब ११६ ॥ अथ द्वादशस्कंधे ॥ शुक ५राजो २ सूत १८ शौनक ४ याज्ञवल्क्य १ मार्कंडेय ३ भगवान् ३ऋषि३॥द्वादशमै३७है ॥ सब १२ स्कंधको जोर१२६७॥ अथ स्तुति लिख्यते ॥ प्रथमस्कंधमें ॥ अर्जुनस्तुति १ कुंतीस्तुति २ भीष्मस्तुति ३॥ द्वितीयमै तृतीयमै महदादिकस्तु०४ब्रह्मस्तुति ५ ऋषिस्तुति वराहकी ६ देवस्तुतिब्रह्माकी ७ कुमारस्तुति ८ कर्दमस्तुति ९ जीवस्तुति१० हेवहूतिस्तु० ११ ॥ चतुर्थमै ॥ नरनारायणस्तुति १२ शिवप्रार्थना १३ दक्षते क्षमाकराई १४ दक्षस्तुति विष्णुकी १५ ऋत्विज १६ सदस्या १७ रुद्र० १८ भृगु १९ ब्रह्मा २० इंद्र२१ पत्नी२२ऋषि २३ सिद्धा २४ यजमानी २५ लोकपाल २६ योगेश्वर २७ ब्रह्मा २८ अग्नि २९ देवता ३० गंधर्वाप्सरा ३१ विद्याधर ३२ ब्राह्मण३३ध्रुवस्तु० ३४पृथुस्तु० ३५पृथ्वीकृत पृथुस्तु० ३६ पृथुकृतविष्णुस्तव ३७ प्रजाकृत स्तुति पृथुकी ३८ प्रचेताकृत विष्णुस्तुति ३९ ॥ पंचममै ॥ ऋत्विग्जनकृत विष्णुस्तु० ४०भवकर्तृक संकर्षणस्तु० ४१ भद्रश्रवःकर्तृक हयग्रीव ४२ प्रल्हादकृत नृसिंहस्तुति ४३ लक्ष्मीकर्तृक भगवत्स्तु० ४४ सत्यव्रतकर्तृक मत्स्यस्तु० ४५ पृथ्वीकर्तृक वराहस्तु०४६ हनुमत्कर्तृक रामस्तु० ४७ नारदकर्तृक नरनारायणस्तु० ४८॥ षष्ठस्कंधमें ॥ हंसगुह्यस्तव ४९ वृत्रदेवकर्तृक विष्णुस्तु० ५० पुनः देवकृत विष्णुस्तव ५१ चित्रकेतुकृतसंकर्षणस्तव ५२॥ सप्तमस्कंधमें ॥ हिरण्यकशिपुकर्तृक विष्णु० ५३ ब्रह्मकर्तृकनृसिंहस्तव ५४ रुद्रकर्तृकनृ० ५५ इंद्रकर्तृक नृ० ५६ ऋषिक० नृ० ५७ पितृक० नृ० ५८ सिद्धक० नृ०५९विद्याधरक० नृ०६० नागकन्याक० नृ०६१ मनुक० नृ० ६२ प्रजापतिक० नृ० ६३ गंधर्वक० नृ० ६४ चारणक० नृ० ६५ यमक० नृ० ६६ किंपुरुषक० नृ० ६७ वैतालिकक० नृ० ६८ किन्नर० नृ० ६९ विष्णुपार्ष०नृ० ७० प्रल्हाद० नृ० ७१ पुनर्ब्रह्मक० नृ० ७२ ॥अष्टममै ॥ मनुकृतविष्णुस्त०७३गजेंद्रकृतविष्णुस्तव ७४देवकृ०वि० स्त०७५ ब्रह्माकृत वि० स्त० ७६ देवादिकृ० शिवस्त० ७७ शिवकृत० वि० स्त० ७८ अदितिकृत वि० स्त० ७९ ब्रह्मकृत विष्णु० स्त० ८० सत्यव्रतकृ० वि० स्त०८१॥ नवमस्कंधमै ॥ अंबरीषकृत सुदर्शनस्तव॥८२अंशुमत्कृतकापिलस्तुति ८३॥ दशममैं पूर्वार्धमें ॥ गर्भस्तुति८४वसुदेवकृत स्तव ८५ देवकीक० स्तुति ८६ यमलार्जुन० स्तव ८७ ब्रह्म० स्तुति ८८ नागपत्नी० स्तु०८९ इंद्रकृ०स्तुति ९०नारदस्तुति ९१ अक्रूरस्तुति ९२ पुनः अक्रूरस्तव ९३॥ उत्तरार्द्धमें ॥ मुचुकुंदस्तुति ९४ भूमि०स्तव९५ ज्वर०स्तव ९६ रुद्रस्तुति ९७ कौरवकृत बलदेवस्त०९८ राजकृतस्तव ९९ बलिराजकृ० स्त० १०० श्रुतदेव० स्त० १०१ बहुलाश्व० स्तव १०२ वेदस्तव० १०३ ॥ एकादशमें ॥ देव०स्तव १०४॥ द्वादशमैं ॥ मार्कंडेयस्तव१०५॥

जिला मथुरा ग्राम गोवर्द्धन निवासी महाभारती पंडित गोवर्द्धनात्मजस्य आनंदवल्लभस्य कृतिरियं परोपकाराय ।

॥ प्रथम स्कंध ॥

अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.
१	२६	२४	११	४६	८
२	३६	८	१२	२९	१६
३	४७	०	१३	५१	२०
४	३४	८	१४	४६	०
५	४१	४	१५	६४	२०
६	४०	०	१६	४१	२०
७	६०	२०	१७	४४	२०
८	५४	२४	१८	५६	१६
९	५५	०	१९	५२	४
१०	४१	२८	समाप्तम्		

जोर प्रथम स्कंधको श्लोक ॥ ८८० ॥ अक्षर ॥ १४ ॥

॥ द्वितीय स्कंध ॥

अ.	श्लो.	अ.
१	४४	२४
२	५१	१०
३	२८	०
४	३०	१६
५	४३	०
६	५९	२४
७	८९	१६
८	२८	१६
९	५२	१२
१०	५२	०

जोर द्वितीय स्कन्धको ॥ श्लोक ॥४७०॥ अक्षर ॥२२॥

॥ तृतीय स्कंध ॥

अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.
१	८०	०	११	४२	८	२१	६०	०	३१	५६	२४
२	३८	२८	१२	५७	०	२२	४१	२८	३२	४४	१६
३	३०	०	१३	६२	८	२३	६३	१६	३३	४०	१६
४	३७	१६	१४	५७	२८	२४	४८	४			
५	५१	१२	१५	७५	१६	२५	४७	२४			
६	४०	२८	१६	४७	८	२६	७३	०			
७	४७	८	१७	३५	१६	२७	३०	१२			
८	४५	१६	१८	३५	१६	२८	५७	१६			
९	६२	२४	१९	४४	०	२९	४६	०			
१०	३०	०	२०	५४	२४	३०	३४	१६			

जोर तृतीय स्कंधको श्लोक १५२२
अक्षर १२

॥ चतुर्थ स्कंध ॥

अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.
१	६९	०	११	४१	४	२१	५४	०	३१	३१	३०
२	३६	१२	१२	५६	८	२२	७२	८			
३	३४	०	१३	५१	०	२३	४२	१६			
४	४९	१६	१४	४७	०	२४	८५	२४			
५	३२	१२	१५	२६	२०	२५	६४	२८			
६	५९	०	१६	२९	०	२६	२४	१६			
७	७९	१६	१७	४०	२	२७	३१	१६			
८	८७	१२	१८	३०	०	२८	६५	०			
९	७९	१२	१९	४३	८	२९	९३	१२			
१०	३२	८	२०	४३	२८	३०	५४	२०			

जोर चतुर्थस्कंधको
श्लोक १५९५ अक्षर ८

पंचमस्कंध.

अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.
१	७९	२४	११	२३	१२	२१	३१	८
२	४१	२०	१२	२२	०	२२	३५	१४
३	३४	०	१३	३९	६	२३	२७	१३
४	३४	०	१४	८०	२६	२४	७२	२१
५	६३	३	१५	२७	३	२५	३२	७
६	३३	२८	१६	५१	३०	२६	९९	२१
७	३०	१५	१७	५०	०	जोर पंचम स्कंधको श्लोक १२६१ अक्षर ६		
८	५३	१८	१८	६८	८			
९	५२	२	१९	५६	०			
१०	४६	२१	२०	८३	२६			

षष्ठस्कंध.

अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.
१	६९	१२	११	३५	१०
२	५१	०	१२	३८	८
३	४०	२८	१३	२५	२८
४	६०	०	१४	६७	०
५	४४	०	१५	२८	२४
६	४५	१६	१६	७५	४
७	४०	८	१७	८३	०
८	४८	२६	१८	७८	१६
९	८०	०	१९	३४	४
१०	३५	२०			

जोर षष्ठस्कंधको श्लोक ९४३ अक्षर १७

सप्तमस्कंध.

अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.
१	५१	८	११	३६	१६
२	६१	२०	१२	३७	१६
३	४०	१२	१३	४६	१६
४	५०	०	१४	४२	१६
५	५८	१६	१५	८५	०
६	३५	८	जोर सप्तमस्कंधको श्लोक ८३० अक्षर ८		
७	५६	२४			
८	७६	२०			
९	८३	०			
१०	७४	२८			

अष्टमस्कंध.

अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.
१	३४	१२	११	५१	८	२१	३६	२८
२	३९	२४	१२	५६	४	२२	४३	१२
३	४३	१६	१३	३६	०	२३	३४	२०
४	२८	१२	१४	११	०	२४	६७	४
५	५१	२८	१५	४०	१२	जोर अष्टम स्कंधको श्लो० १०४४ अक्षर २२		
६	९२	२८	१६	६३	०			
७	५७	२०	१७	३३	१२			
८	५१	१९	१८	३९	०			
९	३२	१६	१९	४६	८			
१०	६१	२८	२०	४१	२४			

नवमस्कंध.								
अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.
१	४२	०	११	३८	१६	२१	३७	८
२	३६	१६	१२	१६	१६	२२	४९	१६
३	३८	१६	१३	२७	०	२३	३९	१६
४	७७	२०	१४	५०	०	२४	६९	८
५	३०	४	१५	४४	१६	जोर नवमस्कंधको श्लोक१०१४ अक्षर १६		
६	५८	२४	१६	३७	१६			
७	२७	०	१७	१८	१६			
८	३३	२०	१८	५१	१६			
९	५०	१२	१९	२९	२८			
१०	७१	४	२०	३३	१६			

दशमस्कंध.																							
अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.	अ.	श्लो.	अ.
१	७१	१२	११	६२	०	२१	३१	१३	३१	२६	२६	४१	५५	२४	५१	६२	१२	६१	४४	१३	७१	५४	२०
२	४३	१६	१२	५२	२०	२२	४१	०	३२	२४	२६	४२	४०	२४	५२	४९	८	६२	३४	१६	७२	५४	२४
३	५५	२४	१३	७३	२०	२३	५४	०	३३	४८	२०	४३	४२	१६	५३	६२	०	६३	५८	४	७३	३५	१६
४	४७	१६	१४	८१	१२	२४	३८	०	३४	३३	०	४४	५५	२०	५४	६२	१६	६४	४७	०	७४	५५	८
५	३२	२४	१५	५८	१६	२५	३४	०	३५	३५	०	४५	५१	१६	५५	४२	८	६५	३३	०	७५	४५	२४
६	४९	१६	१६	८४	८	२६	२६	२८	३६	४१	१६	४६	४९	१२	५६	४६	२४	६६	४८	२२	७६	३३	०
७	४४	६	१७	२६	०	२७	३१	१४	३७	३९	१६	४७	८३	०	५७	४३	४	६७	२८	०	७७	४१	१२
८	५९	२०	१८	३५	१६	२८	१७	१६	३८	५२	१२	४८	४३	२८	५८	५९	२४	६८	५३	८	७८	३५	०
९	२७	२०	१९	१६	२४	२९	६०	१६	३९	६४	१६	४९	३१	२४	५९	५०	८	६९	५२	८	७९	३४	१६
१०	४९	१६	२०	४८	०	३०	५०	०	४०	३२	१२	५०	६४	०	६०	७६	९	७०	५४	१६	८०	४६	२८

०१०
७५

गीता हिन्दी

पृष्ठ - २२३८

ner, an
stitutional
plaining, hi
by legislative
at the statem
o explain the
tering, quite
ght whateve
le ext